प्रकाशक
लिछमीलाल मिश्रीलाल वैद्य महता
मन्त्री
श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला
फलोदी (मारवाड़)

इस ग्रन्थ के शुरू के १६५ फार्म, इनर टाईटल तथा उसके बाद के फार्म
आदर्श प्रिन्टिंग प्रेस, केसरगंज अजमेर में छपे हैं।

इस ग्रन्थ के अन्त के ३५ फार्म, १६६ से २०० तक
श्री नथमलजी लूणिया द्वारा सस्ता साहित्य प्रेस ब्रह्मपुरी अजमेर में छपे हैं।
संचालक—जीतमल लूणिया

मुद्रक—
बाबू चिम्मनलाल जैन
आदर्श प्रिंटिंग प्रेस,
कैसरगंज, अजमेर

भगवान् पार्श्वनाथ

कमठे धरणेन्द्रच, स्वोचितंकर्मकुर्वति ।
प्रभुतुल्य मनोवृतिः, पार्श्वनाथःश्रियेऽस्तुवः ॥ २५ ॥

Publisher

Lichmi Lal, Misri Lal Vaidya Mehta

Secretary

Shree Ratnaprabhakar Gyan Pushpa Mala

***PHALODI* (*Marwar*)**

The first one hundred and sixty five forms, inner title & subsequent forms printed by Babu Chimman Lal Jain at Adarsh Printing Press, Kaisargunj, AJMER.

The last 35 forms, from 166 to 200, have been printed by Nathmul Loonia at the Sasta Sahitya Press, Brahmpuri, AJMER.

Sanchalak—Jeet Mal Loonia

Printer :—

Babu Chimman Lal Jain

At

ADARSH PRINTING PRESS,

Kaisarganj, AJMER.

१—जन्म वीर निर्वाण संवत् १ प्रारम्भ ।
२—दीक्षा वीर निर्वाण संवत् ४० ।
३—आचार्यपद वीर निर्वाण संवत् ५२ ।
४—उपकेशपुर के राजा प्रजा को जैनधर्म की दीक्षा वी० नि० सं० ७० वर्ष ।
५—आपश्रीजी ने अपनी मौजूदगी में चौदहलक्ष घर वालों को जैन बनाये ।
६—सर्व आयुष्य ८४ वर्ष का अन्त में वी० नि० ८४ वर्ष पुनीत तीर्थश्री शत्रुंजय पर समाधि पूर्वक स्वर्ग पधारे । श्री संघ ने वहाँ विशाल स्तूम्भ बनाया था 'ज्ञान'
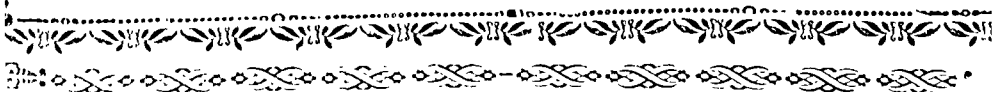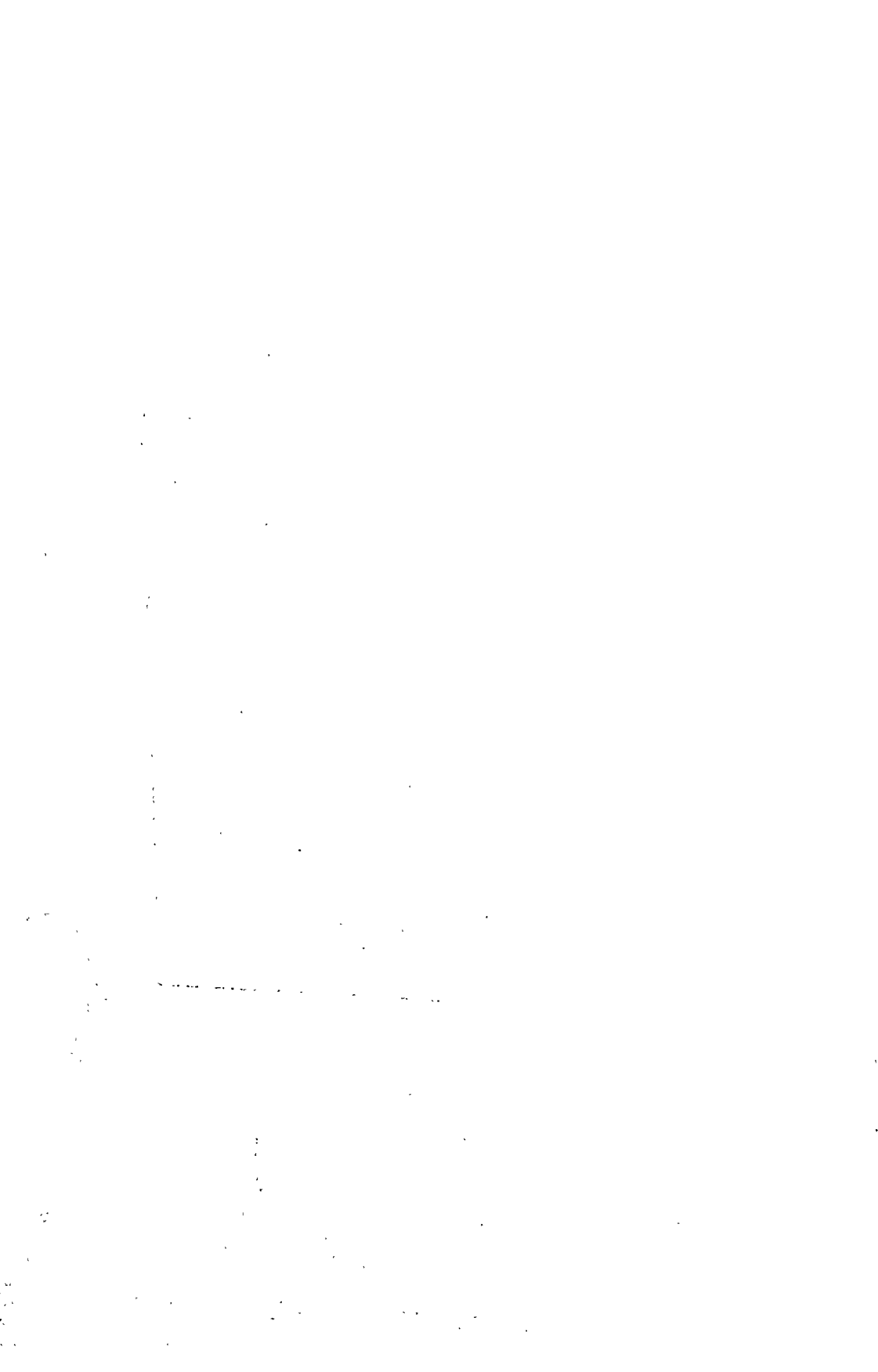
शास्त्रविशारद जैनाचार्य विजयधर्मसूरीश्वरजी

आपश्री ने काशी में जाकर जैनों के लिये विद्या का केन्द्र स्थापन किया आपके मौलिक गुणों से मुग्ध हो काशी नरेश एवं जैनेत्तर पण्डितों ने आपको शास्त्रविशारद जैनाचार्य पद से विभूपित किये आपने बहुत मांस आहारियों को मांस खाना छोड़ाया तथा अनेक पाश्चात्य विद्वानों एवं अंग्रेजों को जैनधर्म के अनुरागी बनाये। जो कई चित्र में है।
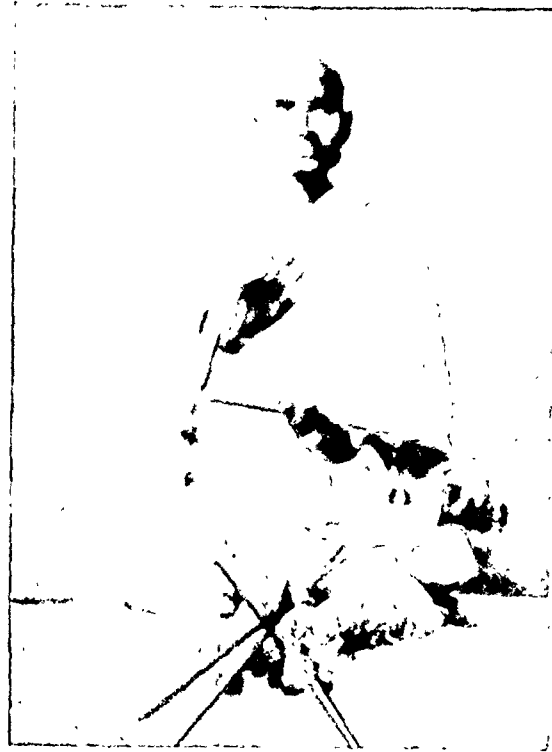
आप ओसवंशिय रत्नशी नाम के होनहार थे आपने पिता कर्मचन्दजी थे. आप किशोरावस्था में स्था० समुदाय में दीक्षा ली १८ वर्षों के पश्चात् आपने संशोधन कर शास्त्र विशारद जैनाचार्य विजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज के पास संवेग दीक्षा ली थी। १८ वर्षों तक दीक्षा पा ली अन्त में वि० सं० १९७७ पालि ग्राम में समाधि के साथ स्वर्ग पधारे।

जन्म	स्थान दीक्षा	संवेगपक्षी दीक्षा	स्वर्गवास
१९३१	१९४१	१९५९	१९७७

आइये सज्जनों ! दो शब्द मेरे भी पढ़ लीजिये !

१—जैन समाज हमेशाँ से गुणानुरागी रहा है यदि १०० अवगुणों के अन्दर एक भी गुण है तो अवगुणों की उपेक्षा कर एक गुण को ही ग्रहन करेगा। कारण अवगुण तो पहले से ही आत्मा में भरे पड़े है पर गुणों के लिये स्थान खाली है उसकी पूर्ति के लिये गुण ही ग्रहन करते हैं इस पर भ० श्रीकृष्ण और मृत श्वांन का उदाहरण खूब ही विख्यात है।

२—दूसरा अवगुण ग्राही—यदि १०० गुणों के अन्दर एक भी अवगुण मिल जाता हो तो वह गुणों की उपेक्षा कर अवगुण को ही ग्रहन करेगा क्योंकि उसके हृदय में गुणों के लिये स्थान ही नहीं है जिसके लिये एक सेठानी और वन्दरी का दृष्टांत प्रसिद्ध है।

इन दोनों की परीक्षा के लिये आज हम मुनिश्री का लिखा हुआ यह ग्रन्थ रख देते हैं कि जिसके अन्दर से दोनों महाशय अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार गुण अवगुण ग्रहन कर सकेगा।

(१) गुणग्राही कहता है कि मुनिजी अच्छे उद्योगी साधु हैं। जैन-मुनियों की दैनिक क्रियाकाण्ड के अलावा विहार, व्याख्यान, जिज्ञासुओं के साथ वार्तालाप, प्रश्नो के उत्तर देना एवं लिखना धर्म चर्चा करना, जैनधर्म पर अन्य लोगों द्वारा किये हुए आक्षेपों का प्रतिकार करना जहाँ धर्म की शिथिलता देखी वहाँ धार्मिक महोत्सवों द्वारा जागृत करना, मन्दिरों की प्रतिष्ठा, यात्रार्थ तीर्थों का संघ निकलाना ज्ञान प्रचारार्थ विद्यालयों की स्थापना करवाना, कुरूढ़ियां निवारणार्थ उपदेश एवं ट्रेक्टों द्वारा प्रचार करना इत्यादि कार्यो से आपको समय वहुत कम मिलना एक स्वभाविक बात है। दूसरा इस समय आपकी आयुः भी ६२ वर्ष की हो चुकी है शरीर में वायु का प्रकोप होने से स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता है और नेत्रों की रोशनी भी कम हो गई है तथापि ऐसा वर्ष शायद ही व्यतीत होता हो कि आपके लिखे हुए छोटे वड़े ८-१० ग्रन्थ मुद्रित नहीं होता हो आपने २८ वर्षो में छोटे वड़े २३५ ग्रन्थ लिख कर प्रकाशित करवा दिये हैं। फिर भी न तो आपके पास कोई सहायक साधु है और न आपके पास हमने ऐसा पण्डित ही देखा है कि आपके कार्य में कुछ मदद पहुंचा सके अर्थात् जितना कार्य आप करते हैं वह प्रायः सब अपने हाथोंसे ही करते हैं। हाँ एक कारण आपके पास इतना जवर्दस्त है कि जिसके जरिये आप इतना कार्य कर पाये हैं वह कारण है आपके पास आडम्बर का अभाव इतना ही क्यों पर आपको अपने भक्तोंके द्वारा कभी प्रोपोगेंडा करवाते भी हमने नहीं देखा हैं यही कारण है कि न तो आप समाज में लेखक के नाम से प्रसिद्ध हैं और न समाज ने भी आपको इतने अपनाये है और न कभी आप हतोत्साही भी होते हैं इतना ही क्यों पर आपके कार्य में कई सज्जनों ने विघ्न भी उपस्थित किये पर आप किसी की परवाह किये विना अपना कार्य करते ही रहे हैं। आपके ऐसा कोई भक्त श्रावक भी नहीं हैं कि उसकी ओर से ज्ञान प्रचार के लिये द्रव्य की छूट है तब भी आपका कार्य सदैव चलता ही रहता है अतः आपके एकेक कार्यसे गुण ग्रहण करे तो हमारे रिक्त स्थानों की पूर्ति हो सकती है।

(२) दूसरा अवगुणग्राही-वे भी निराश नहीं होते हैं पर अपनी प्रकृति के अनुसार कैसा ही कार्य क्यों न हो पर उनको भी कुछ न कुछ मिल ही जाता है। वे कहते हैं कि इस ग्रन्थ को लिखकर मुनिजी ने क्या अधिकाइ की है जो बातें आपने अपने ग्रन्थ में लिखी है वह तो सब पहले से ही लिखी हुई थी दूसरा आपने वंशावलियों एवं पट्टावलियों के आधार पर बहुत-सी वातें लिखी हैं जिन पर विद्वानों का विश्वास ही कम है तीसरा आपके लिखे ग्रन्थों में अशुद्धियाँ भी बहुत हैं चतुर्थ बात यह है कि इस ग्रन्थ लिखने में आपने जो अयोजन पहले से किया वह व्यवस्था भी ठीक नहीं कर पाये फिर आपके ग्रन्थ से हम क्या गुण ले सके हमें तो जहाँ देखे वहाँ अवगुण ही दृष्टि गोचर होते हैं। हमने तो भूतकाल में कहीं गुण देखा नहीं और भविष्य में उम्मेद भी नहीं रख सकते हैं एक मुनिजी के ग्रन्थ में ही क्यों पर संसार भर में जहाँ देखूँ वह मुझे तो अवगुण ही अवगुण दीख पड़ते हैं।

(३) तीसरा मध्यस्थ दृष्टि वाला पुरुष कहता है कि नहीं करने की अपेक्षा तो कुछ करना हजार दर्जे अच्छा है जो मनुष्य कार्य करने में गलती करता है फिर भी वह कार्य करता रहता है वह अपनी भूल को अवश्य सुधार सकता है। पृथक् २ ग्रन्थ में पृथक् बातें लिखी हैं उसको एक स्थान संग्रह करना कोई साधारण काम नहीं हैं और पाठकों के लिये भी कम सुविधा नहीं है कि सौ-ग्रन्थों की अपेक्षा एक ग्रन्थ से ही सौ बातें पढ़ने को मिल जाय। दूसरा वंशावलियों और पट्टावलियों पर अविश्वास रखने से ही समाज अपना गौरवशाली इतिहास से हाथ धो बैठा है। स्थानाभाव से हम अधिक नहीं लिख सकते हैं पर यह बात तो प्रसिद्ध है कि जैन समाजके दाँनी मानी वीर उदार पुरुषोंने समाज व धर्म की नहीं पर देशके सर्वसाधारण की बड़ी बड़ी सेवाएं की हैं असंख्य द्रव्य ही नहीं पर अपने प्राणों का भी वलीदान देश हित कर दिये थे यहीं कारण है कि उन राजा महाराजा एवं बादशाह और नागरिकों की ओर से जगतसेठ नगरसेठ चोवरिया टीकायत चौधरी पंच और शाह जैसी पद्वियों केवल इसी समाज के वीरों को मिली थी पर आज उनका इतिहास के अभाव उनकी संतान का न कहीं नाम है न कहीं स्थान है वे पग पग पर ठुकराए जाते हैं आज स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों में साधारण व्यक्तियों का इतिहास मिलता है पर उन वीरों का कहीं नाम निशान तक भी नहीं हैं। वंशा० पट्टावलियों हमारे पंचमहाव्रतधारी सत्यवक्ता भवभीरू आचार्यों की लिखी हुई है वे एक अक्षर भी जानबूझकर न्यूनाधिक लिखना संसार भ्रमन समझते थे उन वंशा० पट्टावलियों पर अविश्वास करने का नतीजा यह हुआ कि हमारे पूर्वजों का गौरवशाली इतिहास होने पर भी आज हमारी यह दशा हो रही है। मुनिजी ने अपने ग्रन्थ में वंशा० पट्टावलियों को स्थान दिया है यह बहुत दीर्घ दृष्टि का ही काम किया है। तीसरा प्रेस के कार्य में अशुद्धियाँ रह जाना एक साधारण बात है और एक मनुष्य पर अनेक कामों की जुम्मावारी होने से अव्यवस्था हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है अतः अवगुणग्राही अवगुण न ले तो वे अवगुण निकल ही नहीं सके इसलिये अवगुणग्राही लोगों का भी उपकार ही मानना चाहिये कि उनके चुने हुए अवगुण फिर दूसरी बार नहीं रह सके। और गुणग्राही सज्जनों का तो कर्तव्य ही है कि वह गुणग्रहन कर लेखक के उत्साह को बढ़ावे कि वे ऐसे ऐसे अनेक ग्रन्थ लिखकर समाज के सामने रखे।

म—सज्जन 'चान्द'

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रमणों के गच्छ-शाखाएं
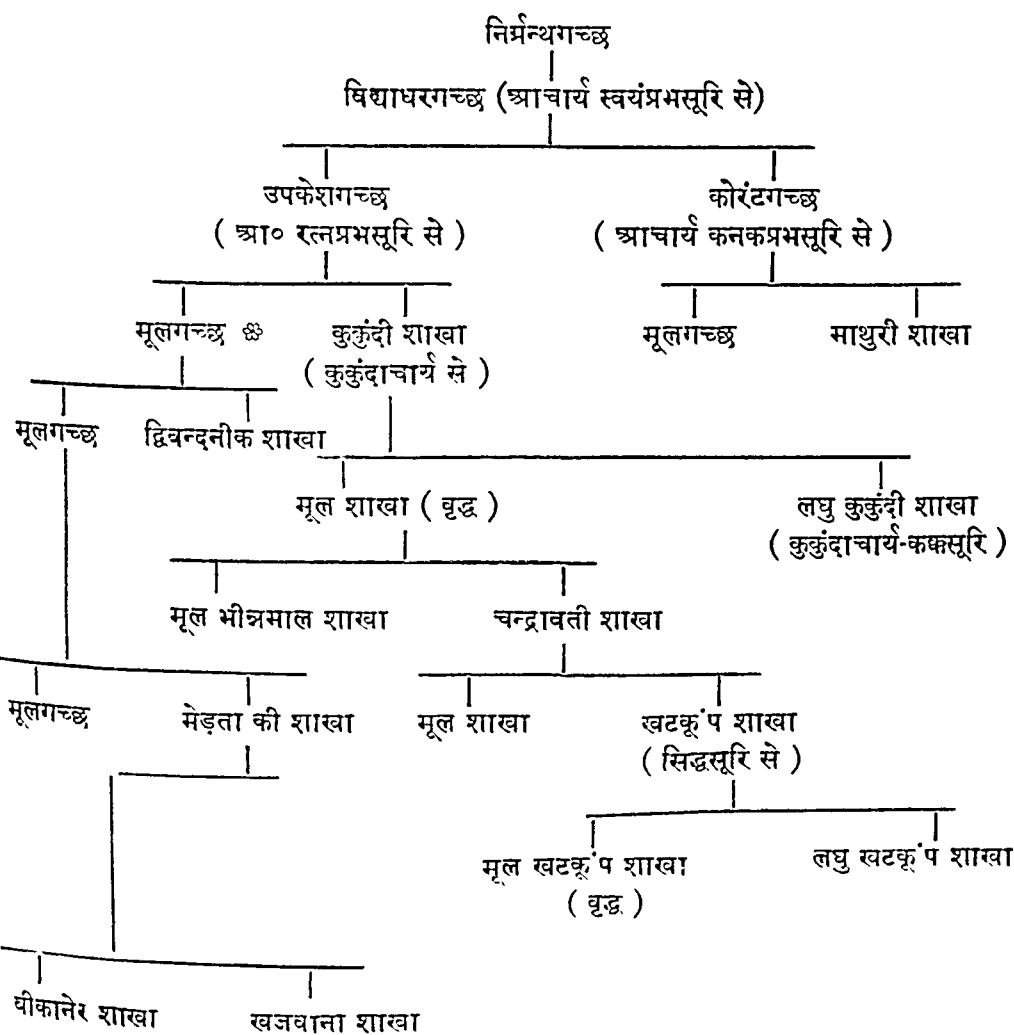
❀. ऊपर बतलाई उपकेशगच्छ की सब शाखाओं में—आचार्यों की नामावली क्रमशः कक्कसूरि देवगुप्तसूरि और सिद्धसूरि नाम से ही चली आई हैं अतः निर्णय करने में बड़ी सावधानी रखनी चाहिये ।

सामान्य बिषय-सूची

श्रीमान् कानमलजी साहब वैद्य मेहता
पीपलिया (मारवाड़)

आप श्रीमान् ने इस ग्रन्थ के लिये २३०१) के कागज मंगवाय दिये जिससे हम इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने में सफल हुए हैं। तदार्थ आपको सादर धन्यवाद दिया जाता है।

मंत्री—श्रीरत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला—फलोदी (मारवाड़)

श्रीमान् देवकरणजी महता अजमेर

श्रीमान् रूपकरणजी महता अजमेर

सेठ वंशीलालजी प्यारालालजी वोहरा पीपाड़ सीटी (मारवाड़)

श्रीमान् जवहरीलालजी दफतरी पीपाड़ सीटी (मारवाड़)

साहित्य प्रचार

यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि जिस धर्म के साहित्य का जितना अधिक प्रचार होगा उतना ही धर्म क्षेत्र विशाल बनता जायगा इसबात को लक्ष्यमें रखकर हमारे पूर्वाचार्यों ने साहित्य निर्माण कर सर्वत्र प्रचार करवाया था पर वर्तमान जैन साहित्य का प्रचार बहुत मर्यादित क्षेत्र में ही रहगया यही कारण है कि जैन धर्म के विषय सभ्यसमाज भिन्न २ कल्पना कर भ्रमित हो रहा है। अतः जैनाचार्यों एवं उपदेशकों का कर्त्तव्य है कि समाज में पठन-पाठन की रूची को बढ़ाकर जैन साहित्य का सर्वत्र प्रचार करें एवं करावें। कारण साहित्य प्रचार में जैनसमाज बहुत पिछड़ा हुआ है उदाहरण के तौर देखिये:—

आचार्य विजयनन्दसूरिजी म० ने जैनतत्त्वादर्श नाम का ग्रन्थ बनाया जिसमें जैनतत्त्व षट्दर्शन एवं क्रियात्मिक सब विषय का ज्ञान है वह भी प्रचलित देशी भाषा, कि जिसको सर्व साधारण पढ़ सके पर ५०-६० वर्ष में उस ग्रन्थ की दो आवृति से अधिक नहीं छपी है जब आर्य्यसमाज का सत्यार्थप्रकाश सब धर्मों का खण्डन होने पर भी उसकी २६ आवृतियों की लाखों पुस्तकें छप चुकी हैं। खैर इतने दूर क्यों जावे पर हमारे स्थानकवासी समाज की ओर से मुखवस्त्रिका के विषय कई आवृतियाँ निकल चुकी है और उनके उपदेशक जहाँ जाते वहाँ प्रचार की कोशिश करते हैं तब हमारे यहाँ भी इस विषय की पुस्तकें छपी हैं पर वे अधिक जहाँ की तहाँ ही पड़ी हैं इसका कारण हमारे हृदय की संकीर्णता है एक मुनि की छपाई पुस्तक का प्रचार दूसरा मुनि बहुत कम करता है। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण देखिये:—

हाल ही में हमारी संस्था की ओर से 'भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास' नाम का वृहद् ग्रन्थ छप रहा है जिसकी विषयानुक्रमणका कइ ३८०० पक्तियाँ एवं ४॥ फार्म में समाप्त हुई है हमने ग्रन्थ के अतिरिक्त १०० प्रतियाँ अधिक छपाकर पूज्याचार्यादि कई मुनिवरों के पास इस उद्देश्य से भेजी थी कि कम से कम पांच पांच ग्राहक बना देंगे तो इस ग्रन्थ का शीघ्र प्रचार हो जायगा पर मात्र एक पूज्याचार्य श्री विजयवल्लभसूरीश्वरजी म० के सिवाय किसी ने पहुँचतक लिखने का कष्ट नहीं उठाया। जहाँ ऐसी संकीर्ण भावना होती हो वहाँ साहित्य का कितना प्रचार हो सकता है ? पाठक ! स्वयं विचार कर सकते हैं यही कारण है कि समाज की संख्या दिन व दिन कम होती जा रही है। क्या जैनसमाज के नेताओं की अब भी आंखें खुलेंगी ?

हमारी संस्था की साधारण पुस्तकें भी स्टाक में बहुत कम रहती हैं तब ऐसा ऐतिहासिक ग्रन्थ का तो कहना ही क्या है ? ग्रन्थ प्रकाशित होने के पूर्व ही बहुत से ग्राहक बन गये हैं जिन्होंकी शुभ नामावली पिछले पृष्टों में छप चूकी है देखने से आपको ज्ञात हो जायगा:—

पूज्याचार्यश्री विजयवल्लभ सूरीश्वरजी म० के उपदेश द्वारा पंजाब श्रीसंघ ने अपना नाम ग्राहक श्रेणी में लिखवाये है वह निम्न लिखित है—

१—श्रीसंघ—गुजरावाला	पंजाब	१—श्रीसंघ—हुसियारपुर	पंजाब
१—श्रीसंघ—लाहौर	पंजाब	१—श्रीसंघ—जलंधर	पंजाब
१—श्रीसंघ—अमृतसर	पंजाब	१—श्रीसंघ—अंबाला	पंजाब
१—श्रीसंघ—जण्डियाला गुरु	पंजाब	१—श्रीसंघ—सढोरा	पंजाब
१—श्रीसंघ—लुधियाणा	पंजाब	१—श्रीसंघ—सामाना	पंजाब

श्रीमान् देवकरणजी महता अजमेर

१—श्रीसंघ—मलार कोटला पंजाब
१—श्रीसंघ—रामकोट पंजाब
१—श्रीसंघ—जीरा पंजाब
१—श्रीसंघ—पट्टी पंजाब
१—श्रीसंघ—कसूर पंजाब
१—श्रीसंघ—खानीगाडोगरा पंजाब
१—श्रीसंघ—जहलम् पंजाब
१—श्रीसंघ—शियालकोट पंजाब
१—श्रीसंघ—जम्मू पंजाब
१—श्रीसंघ—नारनौल पंजाब
१—श्रीसंघ—रोपड़ पंजाब
१—श्रीसंघ—नकोदरा पंजाब
१—श्रीआत्मानन्द जैन गुरु० लाला-बनारसिदास जी गुजलालजी लुधियाणा
१—श्री आत्मानन्द जैन कॉलेज-अंबाला पंजाब
१—पू० हर्षविजयजीपैच अमृतसर पंजाब

इन पचवीस ग्राहकोंके रू. ६२५) ऊपर लिखे गये हैं।

श्रीमान् राजमलजी मानमलजी समदड़िया मंचर वालोंने १३ ग्राहक बनाकर भेजे जिन्हों के नाम ऊपर लिखे गये हैं अतः आपको धन्यवाद दिया जाता है।

१२५)—श्रीमान् रावतमलजी मुलतानमलजी बोत्यरा नागोर
२५)—श्रीमान् शंकरलालजी मनसालालजी बेलगाव
२५)—श्रीसार्वजनिक लायब्रेरी भिन्नमाल
२५)—श्रीमान् अगरचन्दजी अमरचन्दजी वैद्यमहता फलोदी
५०)—श्रीमान् देवीचन्दजी चम्पालालजी वैद्य महता फलोदी
५०)—श्रीमान् फूलचन्दजी नेमिचन्दजी श्रावक फलोदी
२५)—श्रीमान् हंसराजजी
२५)—श्रीमान् तुलसीरामजी मालेसाहजी शाहकोट पंजाब
२५)—श्री जैन ज्ञान भण्डार जून्नेर
२५)—श्री जैन ज्ञान भण्डार घोडनदी
२५)—श्री जैन ज्ञान भण्डार मंचर
२५)—श्रीमन् घेवरचन्दजी घीसुलालजी श्री श्रीमाल पीपलिया
१०)—श्रीमान् भूरालालजी गादिया ब्यावर

इस ग्रन्थ के लिये द्रव्य सहायकों की शुभ नामावली

११०१) श्रीमान कानमलजी गणेशमलजी वैद्य महता — पीपलिया (मारवाड़)
४००) " सौभागमलजी मिसरीलालजी वैद्य महता — फलोदी (मारवाड़)
२००) " दुर्गाचन्दजी चिनायलिया धर्म-प्रतापमलजी अमोलकचन्दजी — वेजवाड़ा
१२५) " माणकलालजी भवराजजी वैद्य महता — फलोदी (मारवाड़)
१०७) " घीसुलालजी सुंदरलालजी मुनोयत ५१) ३१) २५) — ब्यावर
१०१) " रूपचन्दजी हस्तीमलजी सेठिया — गुंदोच
१००) " लाभचन्दजी मंगलचन्दजी वैद्य महता — फलोदी
१००) " लालचन्दजी बापना पंचायतवाले ५०) ५०) — वेजवाड़ा
१००) " हमीरमलजी धनरूपमलजी शाह जोहरी — अजमेर
१००) " जीतमलजी लढा की धर्म पत्नी श्रीमती प्रभावती बाई — अजमेर
१००) " सेठ वन्शीलालजी प्यारालालजी बोहरा — पीपाड़ सीटी
१००) " मोतीलालजी मंगलचंदजी भंडारी अजमेर — सोजत
७१) " गंभीरभाई ओघड़भाई ब्यावर में — भावनगर
५१) " रायबहादुर सेठ वरधमलजी लोढा की धर्म पत्नी — अजमेर
५१) " कस्तुरमलजी बोत्थरा — निबाहेड़ा (मेवाड़)
५१) " लालचन्दजी अमानमलजी बोत्थरा — गोगेलाव (मारवाड़)
५१) " छोगमलजी केसरीमलजी सेठिया — बीलाड़ा (मारवाड़)
५१) " ताराचंदजी बोत्थरा के हस्तु — राजम (सी. पी.)
५१) " उदयराजजी वैद्य महता — फलोदी (मारवाड़)
५०) " जालमचन्दजी गदइया — चंडावल
३१) " जगतसेठ उदयचन्दजी की पत्नी—हाल — अजमेर
१५) " भूरामलजी गदइया — ब्यावर
१०) " एक सुपुत्र की माता गुप्तपने — ब्यावर
५) " भँवरलालजी जालौरी — ब्यावर
५) " एक मात ने गुप्त नाम से दिये — ब्यावर
२) " एक जैनेतर बाईने उत्कृष्ट भावना से — अजमेर

"उपरोक्त सहायकों का हम सहर्ष उपकार के साथ धन्यवाद देते हैं" —प्रकाशक"

इस ग्रन्थ के पहले से ग्राहकों की शुभनामावली

६२५) श्रीसंघ पंजाब—पुस्तकें २५ — पंजाब
२५) श्रीमान जतनमलजी सुजाणमलजी भंडारी — ब्यावर
२५) " गणेशमलजी कोठारी — ब्यावर
२५) " केसरीमलजी लिखमीचंदजी मुत्ता — ब्यावर
२५) " तेजमलजी अमरचंदजी तातेड़ — ब्यावर
२५) " गणेशमलजी चांदमलजी मुत्ता जैतारण वाले — ब्यावर
२५) " कुनणमलजी अनराजजी कोठारी — ब्यावर
५) " लिखमीचन्दजी नेमीचन्दजी सोंढ — ब्यावर

१—श्रीसंघ—मलार कोटला	पंजाब
१—श्रीसंघ—रामकोट	पंजाब
१—श्रीसंघ—जीरा	पंजाब
१—श्रीसंघ—पट्टी	पंजाब
१—श्रीसंघ—कसूर	पंजाब
१—श्रीसंघ—खानीगाडोगरा	पंजाब
१—श्रीसंघ—जहलम्	पंजाब
१—श्रीसंघ—शियालकोट	पंजाब
१—श्रीसंघ—जम्गुसेर	पंजाब
१—श्रीसंघ—नारनौल	पंजाब
१—श्रीसंघ—रोपड़	पंजाब
१—श्रीसंघ—नकोदरा	पंजाब
१—श्रीआत्मानन्द जैन गुरु० लाला-बख्तावरसिंह जी पृजलालजी लुधियाणा	
१—श्री आत्मानन्द जैन कॉलेज-अंबाला	पंजाब
१—पू० हर्षपिजीवैद्य अमृतसर	पंजाब

इन पचवीस ग्राहकोंके रू. ६२५) ऊपर लिखे गये हैं।

श्रीमान् राजमलजी मानमलजी समदड़िया मंचर वालोंने १३ ग्राहक बनाकर भेजे जिन्हों के नाम ऊपर लिखे गये हैं अतः आपको धन्यवाद दिया जाता है।

१२५)—श्रीमान् रावतमलजी मुलतानमलजी बोत्यरा	नागोर
२५)—श्रीमान् शंकरलालजी मनसालालजी	बेलगाव
२५)—श्रीसार्वजनिक लायब्रेरी	भिन्नमाल
२५)—श्रीमान् अगरचन्दजी अमरचन्दजी वैद्यमहता	फलोदी
५०)—श्रीमान् देवीचन्दजी चम्पालालजी वैद्य महता	फलोदी
५०)—श्रीमान् फूलचन्दजी नेमिचन्दजी झाबक	फलोदी
२५)—श्रीमान् हंसराजजी	
२५)—श्रीमान् तुलसीरामजी मालेसाहजी शाहकोट	पंजाब
२५)—श्री जैन ज्ञान भण्डार	जून्नेर
२५)—श्री जैन ज्ञान भण्डार	घोडनदी
२५)—श्री जैन ज्ञान भण्डार	मंचर
२५)—श्रीमन् घेवरचन्दजी घीसुलालजी श्री श्रीमाल	पीपलिया
१०)—श्रीमान् भूरालालजी गादिया	ब्यावर

इस ग्रन्थ के लिये द्रव्य सहायकों की शुभ नामावली

२२०१) श्रीमान् कानमलजी गणेशमलजी वैद्य महता — पीपलिया (मारवाड़)
४००) „ लीछमीलालजी मिसरीलालजी वैद्य महता — फलोदी (मारवाड़)
२००) „ दुर्गाचन्दजी धिनायगिया फार्म-प्रतापमलजी अमोलखचन्दजी — वेजवाड़ा
१२५) „ माणकलालजी भनराजजी वैद्य महता — फलोदी (मारवाड़)
१०७) „ घीसुलालजी शंकरलालजी गुनोयत ५१) ३१) २५) — व्यावर
१०१) „ रूपचन्दजी हस्तीमलजी सेठिया — गुंदोच
१००) „ लाभचन्दजी मंगलचन्दजी वैद्य महता — फलोदी
१००) „ लालचन्दजी बाफना चंडावलवाले ५०) ५०) — वेजवाड़ा
१००) „ हमीरमलजी धनरूपमलजी शाहा जोहरी — अजमेर
१००) „ जीतमलजी लढ़ा की धर्म पत्नी श्रीमती प्रभावती बाई — अजमेर
१००) „ सेठ बन्शीलालजी प्यारालालजी बोहरा — पीपाड़ सीटी
१००) „ मोतीलालजी मंगलचंदजी भंडारी अजमेर — सोजत
७१) „ गंभीरभाई ओघड़भाई व्यावर में — भावनगर
५१) „ रायबहादुर सेठ वरधमलजी लोढा की धर्म पत्नी — अजमेर
५१) „ कस्तुरमलजी बोत्थरा — निबाहड़ा (मेवाड़)
५१) „ लालचन्दजी अमाममलजी बोत्थरा — गोगेलाव (मारवाड़)
५१) „ छोगमलजी केसरीमलजी सेठिया — बीलाड़ा (मारवाड़)
५१) „ ताराचंदजी बोत्थरा के हस्तु — राजम (सी. पी.)
५१) „ उदयराजजी वैद्य महता — फलोदी (मारवाड़)
५०) „ जालमचन्दजी गदइया — चंडावल
३१) „ जगतसेठ उदयचन्दजी की पत्नी—हाल — अजमेर
१५) „ भूरामलजी गदइया — व्यावर
१०) „ एक सुपुत्र की माता गुप्तपने — व्यावर
५) „ भँवरलालजी जालोरी — व्यावर
५) „ एक मात ने गुप्त नाम से दिये — व्यावर
२) „ एक जैनेतर बाईनेउत्कृष्ट भावना से — अजमेर

"उपरोक्त सहायकों का हम सहर्ष उपकार के साथ धन्यवाद देते हैं" —प्रकाशक"

इस ग्रन्थ के पहले से ग्राहकों की शुभनामावली

६२५) श्रीसंघ पंजाब—पुस्तकें २५ — पंजाब
२५) श्रीमान जतनमलजी सुजाणमलजी भंडारी — व्यावर
२५) „ गणेशमलजी कोठारी — व्यावर
२५) „ केसरीमलजी लिखमीचंदजी मुत्ता — व्यावर
२५) „ तेजमलजी अमरचंदजी तातेड़ — व्यावर
२५) „ गणेशमलजी चांदमलजी मुत्ता जैतारण वाले — व्यावर
२५) „ कुनणमलजी अनराजजी कोठारी — व्यावर
२५) „ लिखमीचन्दजी नेमीचन्दजी सॉंड

१—श्रीसंघ—मलार कोटला पंजाब
१—श्रीसंघ—रामकोट पंजाब
१—श्रीसंघ—जीरा पंजाब
१—श्रीसंघ—पट्टी पंजाब
१—श्रीसंघ—कसूर पंजाब
१—श्रीसंघ—खानीगाडोगरा पंजाब
१—श्रीसंघ—जहलम् पंजाब
१—श्रीसंघ—शियालकोट पंजाब

१—श्रीसंघ—[illegible] पं[illegible]
१—श्रीसंघ—नारनौल पंजाब
१—श्रीसंघ—रोपड़ पंजाब
१—श्रीसंघ—नकोदर पंजाब
१—श्री आत्मानन्द जैन गुरु० लाला-[illegible]
श्री [illegible] लुधियाना
१—श्री आत्मानन्द जैन कॉलेज-अंबाला पंजाब
१—पू० दर्शनविजयजी [illegible] अमृतसर पंजाब

इन पचवीस ग्राहकोंके रू. ६२५) ऊपर लिखे गये हैं।

श्रीमान् राजमलजी मानमलजी समदड़िया मंचर वालोंने १२ ग्राहक बनाकर भेजे जिन्हों के नाम ऊपर लिखे गये हैं अतः आपको धन्यवाद दिया जाता है।

१२५)—श्रीमान् रावतमलजी मुलतानमलजी बोरथरा — नागोर
२५)—श्रीमान् शंकरलालजी मनसालालजी — बेलगाव
२५)—श्रीसार्वजनिक लायब्रेरी — भिन्नमाल
२५)—श्रीमान् अगरचन्दजी अमरचन्दजी वैद्यमहता — फलोदी
५०)—श्रीमान् देवीचन्दजी चम्पालालजी वैद्य महता — फलोदी
५०)—श्रीमान् फूलचन्दजी नेमिचन्दजी झाबक — फलोदी
२५)—श्रीमान् हंसराजजी
२५)—श्रीमान् तुलसीरामजी मालेसाहजी शाहकोट — पंजाब
२५)—श्री जैन ज्ञान भण्डार — जून्नेर
२५—श्री जैन ज्ञान भण्डार — घोडनदी
२५)—श्री जैन ज्ञान भण्डार — मंचर
२५)—श्रीमन् घेवरचन्दजी घीसुलालजी श्री श्रीमाल — पीपलिया
१०)—श्रीमान् भूरालालजी गादिया — ब्यावर

इस ग्रन्थ के लिये द्रव्य सहायकों की शुभ नामावली

)	श्रीमान कानमलजी गणेशमलजी वैद्य महता	पीपलिया (मारवाड़)
)	,, लीछमीलालजी मिसरीलालजी वैद्य महता	फलोदी (मारवाड़)
)	,, दुर्गाचन्दजी धिनायकिया फार्म-प्रतापमलजी अमोलखचन्दणी	बेजवाड़ा
)	,, माणकलालजी धनराजजी वैद्य महता	फलोदी (मारवाड़)
)	,, घीसुलालजी शंकरलालजी गुनोयत ५१) ३१) २५)	ब्यावर
)	,, रूपचन्दजी हस्तीमलजी सेठिया	गुंदोच
)	,, लाभचन्दजी मंगलचन्दजी वैद्य महता	फलोदी
)	,, लालचन्दजी बाफना चंडावलवाले ५०) ५०)	बेजवाड़ा
)	,, हमीरमलजी धनरूपमलजी शाहा जौहरी	अजमेर
)	,, जीतमलजी लढ़ा की धर्म पत्नी श्रीमती प्रभावती बाई	अजमेर
)	,, सेठ बन्शीलालजी प्यारालालजी बोहरा	पीपाड़ सीटी
)	,, मोतीलालजी मंगलचंदजी भंडारी अजमेर	सोजत
१)	,, गंभीरभाई ओघड़भाई ब्यावर में	भावनगर
१)	,, रायबहादुर सेठ वरधमलजी लोढा की धर्म पत्नी	अजमेर
१)	,, कस्तुरमलजी बोत्थरा	निबाहड़ा (मेवाड़)
१)	,, लालचन्दजी अमाममलजी बोत्थरा	गोगेलाव (मारवाड़)
१)	,, छोगमलजी केसरीमलजी सेठिया	बीलाड़ा (मारवाड़)
१)	,, ताराचंदजी बोत्थरा के हस्तु	राजम (सी. पी.)
१)	,, उदयराजजी वैद्य महता	फलोदी (मारवाड़)
०)	,, जालमचन्दजी गदइया	चंडावल
१)	,, जगतसेठ उदयचन्दजी की पत्नी—हाल	अजमेर
५)	,, भूरामलजी गदइया	ब्यावर
०)	,, एक सुपुत्र की माता गुप्तपने	ब्यावर
५)	,, भँवरलालजी जालौरी	ब्यावर
५)	,, एक मात ने गुप्त नाम से दिये	ब्यावर
२)	,, एक जैनेतर बाईनेउत्कृष्ट भावना से	अजमेर

"उपरोक्त सहायकों का हम सहर्ष उपकार के साथ धन्यवाद देते हैं" —प्रकाशक"

इस ग्रन्थ के पहले से ग्राहकों की शुभनामावली

२५)	श्रीसंघ पंजाब—पुस्तकें २५	पंजाब
५)	श्रीमान जतनमलजी सुजाणमलजी भंडारी	ब्यावर
५)	,, गणेशमलजी कोठारी	ब्यावर
५)	,, केसरीमलजी लिखमीचंदजी मुत्ता	ब्यावर
५)	,, तेजमलजी अमरचंदजी बातेड़	ब्यावर
५)	,, गणेशमलजी चांदमलजी मुत्ता जैतारण वाले	ब्यावर
२५)	,, कुनणमलजी अनराजजी कोठारी	ब्यावर
)	,, लिखमीचन्दजी नेमीचन्दजी सांढ	ब्यावर

२५) ,, अमीचन्दजी काँसटिया — भोपाल
२५) ,, इन्द्रचन्द्रजी धोखा — अगमीतुर
२५) ,, हीराचन्दजी रतनचंदजी संचेती — अजमेर
२५) ,, देवकरणजी रूपकरणजी महता — अजमेर
२५) ,, गणेशमलजी वसतिमलजी मिसरीमलजी मुत्ता — जोधपुर
२५) ,, चंदनचंदजी अचलचंदजी विवेकचंदजी उपयोगचंदजी भंडारी — जोधपुर
२५) ,, वदनमलजी जोरावरमलजी वैद्य महता — फलोदी
२५) ,, कस्तुरमलजी वरडिया — फलोदी
२५) ,, अगरचंदजी फकिरचंदजी वैद्य मेहता — फलोदी
२५) ,, जुगराजजी सुराणा — चण्डावल
२५) ,, भूरचन्दजी भुरंट — चण्डावल
२५) ,, पन्नालालजी बांठिया — चण्डावल
२५) ,, गाडमलजी प्रेमराजजी बांठिया — चण्डावल
२५) ,, अमीचन्दजी हिन्दुजी — कालेद्री (सिरोही स्टेट)
२५) ,, नेमीचन्दजी आसकरणजी वैद्य महता — फलोदी
२५) ,, गजराजजी अनराजजी संपतराजजी नेमीचंदजी संघी — सोजत
२५) ,, मुलतानमलजी सेठिया बीलाड़ा वाले मुनीम — कापरड़ाजी तीर्थ
२५) ,, घेवरचन्दजी सुकनचन्दजी जांघड़ा — कापरड़ाजी तीर्थ
२५) ,, शिवराजजी किसनलालजी सेठिया — बीलाड़ा
२५) ,, मिसरीमलजी अनराजजी भणवट — बीलाड़ा
२५) ,, फूसालालजी पारसमलजी मोहनलाल सोनराज डागा — बीलाड़ा
२५) ,, रूपचन्दजी पारसमल—सेठिया — सोजत
२५) ,, मगनमलजी कस्तुरमलजी बाठिया — अजमेर
२५) ,, गजराजजी मेहता लावियावाले — जोधपुर
२५) ,, मूलचन्दजी गजराजजी, चोरड़िया — बाला
२५) ,, वंशीलालजी प्यारालालजी वोहरा — पीपाड़
२५) ,, जवहरीलालजी दफ्तरी — पीपाड़
२५) ,, लाभचन्दजी लोढ़ा — बनारस
२५) ,, अनराजजी सुकनचन्दजी सामडा — पीपलिया
२५) ,, राजमलजी मानमलजी समदड़िया * — मंचर (पुना:)
२५) ,, राजमलजी लखेचन्दजी ललवाणी — जामनेर
२५) ,, सागरमलजी नथमलजी लुंकड — जलगाव
२५) ,, रायचन्दजी गुलावचन्दजी चोपड़ा — अच्छेरा
२५) ,, गुलावचन्दजी चूनिलालजी नाहर — सावटा
२५) ,, नवलमलजी धनराजजी वाफणा — डहणुबंदर
२५) ,, माणकचन्दजी कीसनचन्दजी संघी — उभाणा
२५) ,, श्री महावीर जैन लायब्रेरी — कालेद्री (सिरोही)
२५) ,, अमोलख-सुन्दरजी — काठियावाड़—चूड़ा
२५) ,, ज्ञानचन्दजी पल्लीवाल (सलावदिया) — कैसरगंज अजमेर

२५) ,, थानमलजी सुकनमलजी लुणिया — हैद्राबाद
२५) ,, नेणसुखजी कस्तुरचंद पारख — वणी
२५) ,, जवहरीलालजी नाहटा — शेकंद्राबाद
२५) ,, प्रेमचन्दजी गोमाजी वाली वाले — बंबई
२५) ,, रंगरूपमलजी लक्ष्मीमलजी चौधरी — नागोर
२५) ,, मीसरीमलजी अगरचन्दजी ओस्तवाल — नागोर
२५) ,, मनोहरमलजी पुनमचन्दजी सुरांणा — नागोर
२५) ,, श्रीरत्नप्रभाकर ज्ञान लायब्रेरी मुताजी घीसुलालजी की मारफत— — पीसांगण
२५) ,, भीमराजजी घेवरचन्दजी — उदयपुर
२५) ,, रतिलाल जीवणलाल वडवाण — २५) श्री० रत्नचन्दजी अमरचन्दजी खीवसरा — अजमेर
२५) ,, भगवान्जी लुम्बाजी सियाणा — २५) ,, नेमिचन्दजी खालिया — अजमेर
२५) ,, जेठमलजी वालजी — सियांण
२५) ,, रिषभदासजी जुहारमलजी राठौर — फिरोजावदा
२५) ,, रिखवदासजी जुहारमलजी राठौर — वीजावा
२५) ,, सरदारमलजी केरंगजी धोका — सांढेराव
५०) ,, सागरमलजी हस्तीमलजी सोदागरान — फिरोजाबाद
२५) ,, सोधाराज चूड़ी — फिरोजावाद
२५) ,, यतिवर्य रत्नविजयजी कनैयालालजी नौरतनमलजी रामपुरा वाले— — अजमेर
२५) ,, लीखमीचन्दजी मानमलजी सोनीगरा — पोस्ट—चाणोद—वालराई
२५) ,, लीखमीचन्दजी मानमलजी सोनीगरा — वालराइ
२५) ,, ए. न. दीपाजी मेरावाला १७४ गुलालाबाड़ी नं० ४ — बंवाई
२५) ,, पुरुषोतमदास सूरचन्द — बंवाई
२५) ,, अनराजजी नार — वेंगलूर
२५) ,, रतनचन्दजी कोचर महता — जयपुर सीटी
२५) ,, दीपचन्दजी पाँचूलालजी वैद्य महता धमत्तरी — फलोदी
२५) ,, राजमलजी केसरीचन्दजी वैद्य महता धमत्तरी — फलोदी
२५) ,, लाभचन्दजी अमरचन्दजी वैद्य महता धमत्तरी — फलोदी
२५) ,, चम्पालालजी भँवरलालजी वैद्य महता धमत्तरी — फलोदी
२५) ,, जैन ओसवाल साधारण खाते — धमत्तरी
२५) ,, मेघराजजी मिखमचन्दजी मुनौयत खेरागढ़ — फलोदी
२५) ,, अगरचन्दजी वैद्य महता — फलोदी
२५) ,, पन्नालालजी गजराजी सराफ — वीलाड़ा
२५) ,, अमोलखचन्दजो भंडारी — वीलाड़ा
२५) ,, वावारामजी छोटमलजी वंब — पुना:
२५) ,, रिषभदास हाथीभाई — अमलनेर
२५) ,, चेलाजी वनाजी — कोल्हापुर
५०) ,, रोशनलालजी मोहनलालजी चतुर — उदयपुर

उपरोक्त प्रथम ग्राहकों ने हमारा उत्साह में वृद्धि की है इसलिये हम आप ज्ञान प्रेमियों को सहर्ष धन्यवाद देते हैं।

समर्पण

पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय न्यायोम्भोनिधि पंजाब केसरी, बीसवी शताब्दी के युगप्रवृक जैनाचार्य श्री श्री १००८ श्री श्री विजयानन्दसूरीश्वरजी (आत्मारामजी) महाराज की आदर्श सेवा में—

पूज्यगुरुदेव ! आप श्री जी ने अपने अमृतमय उपदेश से एवं प्रोड प्रज्ञा द्वारा लिखे हुए ग्रन्थों से अनेक भ्रमित आत्माओं का उद्धार कर सद् पथ के पथिक बनाये जिसमें मैं भी एक हूँ । अतः मेरे पर आपका असीम उपकार हुआ है उस उपकार से उऋण होने के लिये यह मेरी तुच्छ कृति आपकी आदर्श सेवा में श्रद्धा भक्ति एवं सादर समर्पण करता हूँ आप श्रीजी स्वर्गमें विराजमान हुए भी स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करावें ।

—ज्ञानसुन्दर

न्यायाम्भोनिधि पंजाब केसरी

जैनाचार्य श्री श्री १००८ श्री श्री विजयानन्द सूरीश्वरजी

(प्रसिद्ध नाम श्री आत्मारामजी महाराज)

कलिकाल कल्पतरु समाजसुधारक विद्याप्रचारक

जैनाचार्य श्री श्री १००८ श्री श्री विजयवल्लभ सूरीश्वरजी

मूल ग्रन्थ के प्रारम्भ के पूर्व प्रस्तावनादि की विषय सूची

२३१ ग्रन्थों के लेखक

इतिहासप्रेमी-मुनीश्रीज्ञानसुन्दरजी महाराज

आपश्रीने माता भाई और स्त्री आदि कुटम्ब को त्याग कर २५ वर्ष की युवकावस्था में स्था० सा० दीक्षा ली बाद ६ वर्ष के संवेगपक्षी दीक्षालेकर जैनशासन की बहुत २ सेवा की साहित्य प्रचार का तो आपको बड़ा ही शोक है। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आपने अपने जीवन में छोटे बड़े २३१ ग्रन्थ लिख कर प्रकाशित करवाये।

जन्म	स्था० दीक्षा	संवेगपक्षी
१९३७	१९६३	१९७२

लेखक महोदय का संक्षिप्त परिचय

इस अपार संसार के अन्दर अनेकानेक जीव जन्म लेकर अपनी अवधि के पूर्ण होने से मुसाफिर की भांति चले जाते हैं, पर संसार में अमर नाम उन्हीं महानुभावों का रह जाता है कि जो हजारों कठिनाइयों को सहन करते हुए भी जनता की भलाई करते रहते हैं मारवाड़ में एक ग्रामीण कहावत है कि दो कारणों से दुनियां में नाम रह सकता है "एक गीतड़े, दूसरे भीतड़े" गीतड़ा का अर्थ है मौलिक ग्रन्थ का निर्माण करना, और भीतड़ा का मतलब है मन्दिर मकान आदि बनवा जाना। इसमें ग्रन्थों के निर्माण करने में हम यदि मरुधरकेसरी इतिहासप्रेमी मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज को भी एक समझलें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। आप अपने जीवन में छोटी बड़ी सब मिला कर अभी तक २३१ पुस्तकें लिख कर प्रकाशित करवा चुके हैं। जैन मुनियों के क्रियाकांड, व्याख्यान, आए हुए जिज्ञासुओं के साथ वार्तालाप करना, प्रश्नों का उत्तर देना, या पत्र द्वारा आए हुए प्रश्नों का उत्तर लिखना, प्रभु प्रतिष्ठा, शांति स्नात्र, आदि महोत्सव करवाना, तीर्थ यात्रार्थ संघ निकालना, वादि प्रतिवादियों से शास्त्रार्थ करने में कटिबद्ध रहना, अन्य लोगों द्वारा जैनधर्म पर किये हुये आक्षेपों का लेख एवं ट्रेक्ट द्वारा प्रतिकार करना इत्यादि कार्य करते रहने से आपको कितना कम समय मिलता होगा यह बात पाठक स्वयं सोच सकते हैं ? पर आप इतने पुरुषार्थी एवं श्रमजीवी हैं कि अपने प्रायः एक मिनट के समय को भी व्यर्थ नहीं खोते हैं। पहिले तो जवानी थी पर अब तो आपकी साठ वर्ष से भी अधिक आयु है तथा शरीर भी आपका हमेशा नरम रहता है तथापि आपके पास बैठ कर नवजवान भी इतना काम नहीं कर सकता है। दूसरा जहां समय और साधनों की अनुकूलता हो वहां कार्य करना आसानी है पर मरुधर जैसे विद्या में पिछड़े हुए प्रदेश में कि जहां न तो पण्डितादि का साधन है और न द्रव्य की ही छूट है। हम देखते हैं कि अन्य साधुओं के पास में दो दो चार चार पंडित काम करते हैं केवल नाम ही साधुओं का रह जाता है पर यहां तो पुस्तक की सामग्री एकत्र करना सिलसिला जमाना प्रेस कापी करना प्रूफ संशोधन करना आदि आदि सब काम प्रायः हाथों से ही करना पड़ता है। आप श्री ने गद्य एवं पद्य दोनों प्रकार की पुस्तक लिखी हैं। शुरू से आपने आधे फार्म की पुस्तक से कार्य आरम्भ किया था क्रमशः बढ़ते २ करीब ४०० फार्म का एक ग्रन्थ आपके हाथों से लिखा जा रहा है हम ऊपर लिख आये हैं कि आपश्री की लिखी हुई पुस्तकों के आज तक छोटे बड़े २३१ नं० आगये हैं [illegible] यदि बिलकुल छोटी और एक दूसरे के अनुकरण रूप ३१ पुस्तकों को छोड़ भी दी जायं तो भी २०० पुस्तक एक मनुष्य अपने अल्प समय में लिख दे तो यह कोई साधारण बात नहीं कही जा सकती है। [illegible] यह कहा जाय तो भी अत्युक्ति न होगी कि वर्तमान जैन धर्म में पांच हजार साधु साध्वीओं में ऐसा [illegible] ही कोई होगा जो अपने शरीर से पुरुषार्थ कर इस प्रकार ग्रन्थों का निर्माण किया हो। इसमें भी [illegible] यह है कि वर्तमानकालिक आडम्बर का तो आपके पास नाम निशान भी नहीं है। आपकी [illegible]ति ही ऐसी है कि बिना किसी आडम्बर किये अपना काम किया करते हैं। यही कारण है कि दूसरे [illegible] क्या पर खास जैनधर्म के कितने ही लोग आपका नाम तक भी नहीं जानते होंगे फिर भी जैनों में ऐसी [illegible]री या पुस्तकालय शायद ही होगा कि जिसमें आपकी लिखी पुस्तक न मिलती हो।

आज मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ कि एक सेवाभावी महापुरुष का जीवनचरित्र मेरे हाथ से

लिखा जा रहा है। यदि मुझे आपश्री का जीवनचरित्र विस्तृत रूप से लिखने की इजाजत मिल गई होती तो मैं बड़े ही उत्साह से आपश्री का जीवन सर्वांग सुन्दर बना कर जन साधारण की सेवा में रखता पर स्थानाभाव आपश्री के जीवन का संक्षिप्त से दिग्दर्शन करवाने के उद्देश्य से ही मैंने यह प्रयत्न किया है तथापि हजार मन माल के कोठे से मूठी भर का नमूना देख कर विद्वान कोठे के माल का अनुमान लगा सकते हैं इसी प्रकार हमारी लिखी संक्षिप्त जीवनी से ही पाठकों को आपश्री का ठीक परिचय हो ही जायगा।

१—"महाजन संघ" वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ने मरुधर के उपकेशपुर में पदार्पण कर वहां के सूर्यवंशी राव उत्पलदेव मन्त्रीऊहड आदि लाखों वीर क्षत्रियों को एवं हजारों भैंसा बकराओं की बलि लेने वाली देवी चामुण्डा को प्रतिबोध कर "महाजन संघ" की स्थापना की थी इसके लिये अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं समझी जाती क्योंकि इसी ग्रन्थ में इस विषय को बहुत कुछ लिखा गया है अतः पिष्टपेषण करना उचित नहीं समझा जाता।

२—"उपकेशवंश" इस नाम की उत्पत्ति उपकेशपुर नगर की अपेक्षा से हुई है जब वीरा सं० ३७३ वर्षे उपकेशपुर में महावीरमूर्ति के ग्रन्थिच्छेद का उपद्रव हुआ तब कितने ही लोग उपकेशपुर को छोड़ कर अन्यत्र जाकर वहां अपना निवास स्थान बना लिया तब से वे लोग उपकेशपुर से आने के कारण उपकेशी कहलाये। और समयान्तर में वे ही लोग उपकेशवंशी एवं उपकेशजाति कहलाये गये। वंश एवं जाति नामकरण का समय विक्रम की तीसरी चौथी शताब्दी के आस पास का होना अनुमान किया जा सकता है।

३—श्रेष्ठिगोत्र—उपकेशपुर का शासनकर्त्ता सूर्यवंशी राव उत्पलदेव जब से जैन हुए तब से ही वे जैनध र्म का प्रचार करने में संलग्न हो गये और आपकी सन्तान परम्परा में भी जैनधर्म की उन्नति के लिये ऐसे ऐसे चोखे और अनोखे काम अर्थात् अनेक श्रेष्ठ कार्य हुये जिससे जनता उनको श्रेष्ठी कहने लग गयी। कालान्तर आपका गोत्र ही श्रेष्ठिगोत्र बन गया। राव उत्पलदेव की सन्तान ने कई पुश्तों तक तो राज किया बाद उनके परिवार वाले कई ने राजा के मन्त्री महामन्त्री आदि राज्य का काम भी किया और राज्य का काम करने वाले को मरुधर में मेहताजी कहा करते हैं। अतः आपके सन्तानवाले मेहताजी के नाम से भी सम्मानित हुए।

४—"वैद्यमेहता" वि० सं० १२०१ में गढ़शिवान के मेहताजी लालचन्दजी साहब अपने ससुराल तीसरीवार चित्तोड़ पधारे थे वहीं के राणाजी की माता के आंखों में असह्य वेदना हो रही थी। लालचन्दजी को जैसे परमात्मा की पूजा करने का अटल नियम था वैसे ही कुलदेवी सत्यका का भी इष्ट था अतः राज्य कर्मचारियों ने मेहताजी से आंखों के लिये पूछा तो आपने अपने इष्ट के बल पर दवाई बतलाई जिससे तत्काल ही वेदना चोरों की तरह रफूचक्कर हो गई। इस हालत में वहां के राणाजी ने मेहताजी को बड़े ही सम्मान पूर्वक आठ ग्रामों के साथ वैद्य पदवी इनायत की उसी दिन से वे श्रेष्ठिगोत्र वाले वैद्य महता के नाम से मशहूर हुये, जिसके खानदान में हमारे चरित्रनायकजी का जन्म हुआ।

५—"वीसलपुर" ऊपर लिखा गया है कि गढ़शिवान में श्रेष्ठि गोत्रीय लोग बसते थे। पट्टावलियों में लिखा है कि विक्रम की पन्द्रहवी शताब्दी में ३५०० घर एक श्रेष्ठि गोत्र वैद्यमेहता शाखा के एक ही गढ़ शिवान में थे पर म्लेच्छों के उत्पात से कई लोग गढ़शिवान को त्याग कर के अन्यत्र चले गये जिसमें मेहताजी जोरावरसिंहजी भी शामिल थे उन्होंने खेरवे जाकर वास किया बाद कई अर्सों से वहीं के ठाकुरों के आपस में अनबन होने से मेहताजी खेरवा को छोड़ कर बनाड़ में जाकर बस गये। उस समय

बनाड़ एक शहरों की गिनती का नगर था कहा है कि "नव नादड़ा बारह जाजीवालों जिस बीच वडा बनाड़" इत्यादि पर वि० सं० १५१५ में राव जोधाजी ने जोधपुर आबाद किया तब से बनाड की आबादी टूटती गई फिर भी वि० सं० १९४० तक बनाड़ में ५० घर महाजनों के, एक मन्दिर, एक उपाश्रय विद्यमान था। बनाड़ में वैद्य मेहता स्वनामधन्य श्रीमान् जीतमलजी साहब वहां रहते थे। आपके ३ पुत्र थे १ भूरमलजी, २ जोधराजजी, ३ मुलतानमलजी जिसमें भूरामलजी राज्य का काम करते थे जोधराजजी ठाकुरों की लेन देन या मारवाड़ में व्यापार किया करते थे और मुलतानमलजी दिशावर में नासिक जिले के गिरनार ताल्लुका में कोचर ग्राम में दूकानदारी करते थे इन तीनों भ्राताओं के पृथक् २ काम होने पर भी वे सब शामिल थे और इन सब के आपस में भ्रातृस्नेह प्रेम भी प्रशंसनीय था। आगे भूरमलजी के पुत्र नवलमलजी, जोधराजजी के जीवणचंदजी और मूलतनमलजी के उदयचन्दजी थे। वि० सं० १९४० में मेहताजी नवलमलजी व्यापार की सुविधा के लिये बनाड से चल कर वीसलपुर आ गये और वहीं पर अपना निवास स्थान बना लिया उस समय वीसलपुर में दो सौ घर महाजनों के एक अजितनाथ प्रभु का मन्दिर और कई धर्मस्थान थे। एक यतीजी भी उपाश्रय में रहते थे वे बड़े ही चमत्कारी थे। यद्यपि प्राचीन स्तुति में वीसलपुर में चार मन्दिर और ४७ जिन प्रतिमा का होना लिखा है। शायद जोधपुर बसने के पूर्व वीसलपुर बड़ा नगर हो और वह चार जिन मन्दिरों में ४७ मूर्तियों का होना भी असंभव जैसी बात नहीं है क्योंकि उस समय वहां ५०० घर महाजनों के और वनजारों की बालदों द्वारा लाखों रुपयों का वाणिज्य होता था।

६—"जन्म" ऊपर लिखा जा चुका है कि मुताजी नवलमलजी बनाड़ का त्याग कर वीसलपुर में में रहने लगे और आपका सब व्यापार वगैरह भी अच्छी तरह से चलता था। मेहताजी का विवाह भी वीसलपुर में श्रीमान् प्रयागदासजी चोरड़िया की सुशील कन्या रूपादेवी के साथ हुआ था अतः आपकी दम्पति जीवन बड़े ही सुख शांति में व्यतीत होता चला जा रहा था। श्रीमती रूपादेवी ने 'गयवर' महान् गज का स्वप्न सूचित वि० सं० १९३७ में विजयदशमी की रात्रि में एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। मुताजी के यह प्रथम पुत्र होने से आपके हर्ष का पार नहीं था अतः आपने अच्छा महोत्सव किया और पुत्र का नाम स्वप्नानुसार 'गयवरचंद' रख दिया। ज्योतिषविज्ञ विप्रदेव ने आपकी जन्मपत्रिका भी बनाई। गयवर की

जन्मकुण्डली

चं० १० | रा० | ८ मं०
११ | ९ | बु० शु० ७
श० बृ० १२ | सू० ६ |
१ | ३ के० | ५
२ | | ४
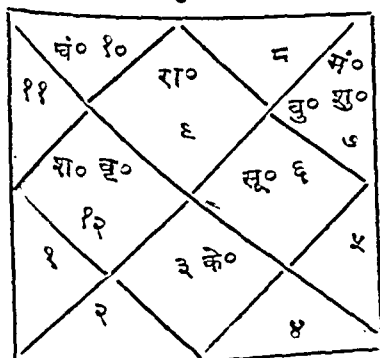
'जन्म'
वि० सं० १९३७ आश्विन शुक्ला १० वार बुध १६-५५ नक्षत्र धनिष्ठा ५३-४२ शूल-योग ३२-४० गरकर्ण १६-५५।

चन्द्रकुण्डली

११ | ९ रा | ८
बृ० श० १२ | चं० १० |
१ | मं० शु० बु० ७ | सू०
२ | ४ | ६
३ के० | ५ |
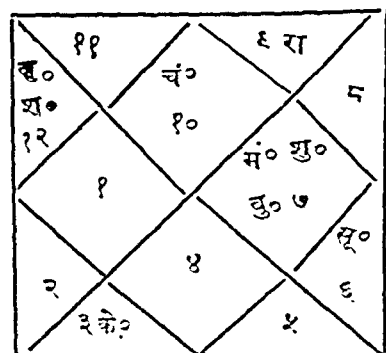
बालक्रीड़ा और तोतली भाषा सबको कर्णप्रिय लगती थी। आपकी अनोखी चेष्टायें भविष्य में होनहार की आगाही दे रही थी। जब आप विद्याध्ययन के लिये पाठशाला में प्रविष्ट हुए तो अपने २ सहपाठियों में हमेशा नम्बर बढ़ता ही रहता था। यद्यपि आपके जमाने में न तो सरकारी दट्टे न स्कूल ही थे और न हिन्दी

की पढ़ाई ही थी उस समय के लोग अपने बाल बच्चों को महाजनी की पढ़ाई करवाने में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझते थे और उस साधारण पढ़ाई से ही वे लोग लाखों के व्यापार किया करते थे अतः मेहताजी ने पूरा एक रुपया पुत्र की पढ़ाई में व्यय किया जिसमें गयवर ने उस समय की पढ़ाई में धुरंधर होकर व्यापार में मुताजी के कन्धे का भार हलका कर दिया।

७—"विवाह" जब आपकी सतरह वर्ष की आयु हुई तो श्रीमान् भानुमलजी बागरेचा सेलावस वालों की सुशील कन्या राजकुंवारी के साथ सं० १९५४ मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी को गयवरचंद का बड़े ही समारोह के साथ विवाह कर दिया। मुताजी के वि० सं० १९४० में एक पुत्र का पुनः लाभ हुआ जिसका नाम गणेशमल रखा बाद सं० १९४६ में रूपादेवी का स्वर्गवास हो गया। जिससे मुताजी पर बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी। दोनों बच्चे छोटे थे अतः मुताजी ने दूसरा विवाह किया। जिससे क्रमशः हस्तीमल, बरतीमल, मिश्रीमल और गजराज तथा एक यत्नबाई एवं पांच सन्तान हुई। जिसमें गजराज और यत्नबाई का तो स्वल्पायु में ही देहान्त हो गया शेष गयवरचंद, गणेशमल, हस्तीमल बसंतीमल और मिश्रीमल मुताजी के अन्त समय तक आपकी सेवा में विद्यमान थे।

८—'वैराग्य का कारण'—ऊपर लिख आये हैं कि गयवरचंद का विवाह १९५४ में हो गया था। आप जैसे द्रव्योपार्जन करने में हिम्मत रखते थे वैसे ही जवानी के नशे में ऐश आराम में खर्च भी किया करते थे पर मुताजी पुराने जमाने के होने से बरदाश्त नहीं कर सकते थे अतः गयवरचन्द को अलग कर दिया फिर भी उसकी अकल ठिकाने लाने के लिये मुत्ताजी ने अपने घर से थोड़ा भी सामान नहीं दिया इतना ही क्यों पर मुताजी ने सोचा कि कहीं जेवर पर हाथ न पड़ जाय अतः उन दम्पति के पास जो जेवर था वह भी सब उतार लिया मुताजी का ध्येय तो यह था कि कुछ भी करने से इसकी व्यर्थ खर्च करने की आदत मिट जाय। खैर इतना करने पर भी गयवरचंद ने अपने पिताजी से यह सवाल नहीं किया कि आप मुझे घर से कुछ हिस्सा क्यों नहीं देते हो ? पुरुषार्थी के लिये दुनिया में क्या कमी है। वह सब कुछ कर सकता है। गयवरचंद को अलग रहते चार वर्ष हो गया। आपके खर्च वगैरह का वही ठाठ रहा जो पहिले था। बचित रकम से कुछ जेवर भी करवा लिया। आप दम्पति में इतना प्रेम था कि अधिक समय पृथक् रहना नहीं चाहते थे। आपके दो सन्तान भी हुई पर अल्पायु के कारण वे जीवित नहीं रह सकी। एक समय राजकुंवारी को लेने के लिये सेलावस से उनके भाई आये पर गयवरचंदजी भेजने को राजी नहीं हुये तथापि अत्याग्रह होने से भेज दिया। बाद आप अकेले ही रहे जब राजकुवांरी को अपने पीहर गये पूरा एक महीना भी नहीं हुआ कि गयवरचंदजी के शरीर में एकदम बीमारी हो आई। इस हालत में सेलावस से लाने के लिये गाड़ी भेजी पर राजकुमारी ने सोचा कि बीमारी के बहाने से मुझे बुला रहे हैं मैं दो वर्ष से पितागृह आयी हूँ और अभी पूरा एक महीना भी नहीं हुआ है। अतः वे आने से इन्कार कर गई। इधर बीमारी दिनवदिन जोर पकड़ती गई। माता पिता भाई और मोसाल भी ग्राम में ही था पर न जाने कैसा अशुभ कर्मों का उदय था कि किसी ने आकर थोड़ा भी आश्वासन नहीं दिया। रात बड़ी मुश्किल से व्यतीत होती थी एक दिन जब रात्रि में आप दर्द की भयंकरता को सहन न करते हुये ठुसक २ कर रुदन कर रहे थे तो पड़ोस में रहनेवाले प्रतापमलजी मुत्ता ने आकर धीरज दिया और अनाथी मुनि की स्वाध्याय सुनायी। ×बस वह स्वाध्याय सुनते ही आपको संसार की असारता दिखने लगी और मुनि अनाथी

×श्री अनाथी मुनि की स्वाध्याय।

श्रेणिक रेवाडी चढ्योरे पेखिया मुनि एकान्त। वर रूप क्रान्ते मोहियोरे रायपुछे व

भाँति आपने भी प्रतिज्ञा करली कि यदि मेरी वेदना चली जावे तो मैं अवश्य दीक्षा ग्रहण करूंगा। कारण संसार में सर्व स्वार्थ के सम्बन्धी हैं मेरे इतना परिवार होने पर भी यह वेदना मुझे अकेले ही को भोगनी पड़ती है जब इस भव में सब उत्तम सामग्री के सद्भाव भी आत्मकल्याण न किया जाय और उल्टा कर्मबंधन किया जाता है तो वह भी भवान्तर में मुझे अकेले ही को भोगने पड़ेंगे अतः निश्चय कर लिया कि वेदना शान्त होते ही दीक्षा अवश्य लूंगा। रात्रि किसी प्रकार व्यतीत की। सुबह होते ही एक ब्राह्मण भिक्षा के लिये आया और गयवरचंद को चौपाई पर पड़ा देख कर पूछा क्यों गयवरचंद क्या तकलीफ है? आपने जहां दर्द था अपना शरीर बतलाया। विप्र ने कहा कि मेरा कहा हुआ इलाज करो जल्दी चंगे हो जाओगे। पर आपके पास इलाज करने वाला कोई नहीं था इसलिये आपने कहा विप्रदेव! आज आप भिक्षा के लिये ग्राम में नहीं जाय मैं ही आपको सन्तुष्ट कर दूंगा आप ही मेरा इलाज कीजिये बस ब्राह्मण ने एक पट्टी तैयार कर के दर्द पर बांध दी लगभग चार बजे दर्द फूट कर अन्दर से कोई सेर भर बिगड़ा हुआ रक्त निकल गया। दूसरी पट्टी बांधी तो बिलकुल शांत रात्रि में निद्रा भी आ गई। पांच सात दिनों में तो हलने चलने भी लग गये। ब्राह्मणदेव को सर्वथा सन्तुष्ट कर के घर भेज दिया। आपको विश्वास हो गया कि मेरी दीक्षा लेने की प्रतिज्ञा ने ही मुझे आरोग्य बनाया है बस आप दीक्षा लेने की तैयारी करने लग गये। आप, अपने मकान में जहां भोगविलास की सामग्री से खूब सजा हुआ था उसको हटा कर उसके स्थान योग सामग्री का संग्रह करने में तत्पर हो गये और ग्राम में भी इस बात की थोड़ी बहुत चर्चा भी फैलने लग गई। इतना ही क्यों पर वि० सं० १९५८ चैत्रवदी आठम को घर छोड़ने का मुहूर्त्त भी निश्चय कर लिया और ओघा पात्रा भी मंगवा लिया। जब इस बात की खबर सेलावस में पहुंची तो राजकुंवारी अपने काकाजी के साथ वीसलपुर में आई। वहाँ आकर अपना घर देखा तो साधुओं का स्थान ही दीख पड़ा। मोह के वस बहुत कुछ कहा सुना किया एवं बहुत कुछ समझाया पर आपने एक भी नहीं सुनी उल्टे उपदेश करने लग गये कि आप भी दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करो। इधर मुताजी को भी खबर पड़ी उन्होंने भी बहुत कुछ समझाया पर आप अपने विचार पर अटल ही रहे। राजकुंवारी ने कहा कि आप दीक्षा लेंगे तो मैं घर में किसके पास रहूँगी अतः मैं भी दीक्षा लेने के लिये तैयार हूँ। पर मेरे उदर में गर्भ है इसका क्या इन्तजाम होगा यह सुन कर गयवरचन्द को कुछ विचार तो अवश्य हुआ पर आखिर में सोचा कि

के वर्तत १ श्रेणिक राय हू छुरे अनाथी निर्ग्रन्थ। तीणे मैं लीघो लीघो साधुजी नो पन्थ श्रेणिक० टेर। इण कसुवी नगरी में वसेरे मुझ पिता परिगल धन्न। परिवारे पुरो परिवर्योरे हु छु तेनो पुत्र रत्न। श्रेणिक ॥२॥ एक दिवस मुझे वेदनारे, उपनी मो न खमाय। मात पिता झूरी रहायारे। पण किण भी ते न लेवय। श्रेणिक ॥३॥ गोरडी गुण मणि ओरड़ीरे। मोरडी अवलानार। कोरडी पिडा में सही रे कोणन किधीरे मोरडी सार ॥श्रे० ४॥ बहुराजवैद्य बोलावियारे, किधा कोडी उपाय, बावना चन्दन चरचियारे पण तो ही रे समाधि न थाय ॥श्रे० ५॥ जगमें को कहने नही रे ते भणी हू रे अनाथ, वीतरागना धर्म सरीखो। नहीं कोइ बीजोरे मुक्ति नो साथ ॥श्रे० ६॥ जो मुझे वेदनाउपशमेरे, तो लेउ संजमभार, इस चिन्तवतां वेदनागइरे, व्रत लीघा मै हर्ष अपार ॥श्रे० ७॥ करजोडी राजागुण स्तवेरे, धन्य धन्य यह अणगार, श्रेणिक समकितपामियोरे, वान्दी पहुतोनीज नगर मझार ॥श्रे० ८॥ मुनि अनाथी गावतांरे, छूटेकर्म नी कोड़ गणि समयसुन्दर तेहनारे, पायवन्दे बेकर जोड़ रे ॥श्रे० ९॥

सब जीव कर्माधीन हैं। यदि मैं मर जाऊँ तो फिर क्या होगा पीछे काम तो सब चलेगा ही अतः आपने अपना निश्चय नहीं बदला।

९—'दीक्षा की भावना की विदागीरी' चैत वद ७ की बात है कि स्था० पूज्य रुघनाथजी की समुदाय के साधु रतनचन्दजी सुबह ९ बजे बीसलपुर में आये उनको यह मालूम नहीं था कि चैत बद ८ को गयवरचन्द दीक्षा लेने का निश्चय कर चुका है इधर उसी दिन सुबह ७ बजे राजकुंवारी के गर्भ का पतन हो गया जिसकी करीब १० बजे ग्राम में सर्वत्र बात फल गई कि ढूंढिया साधु गयवरचंद को दीक्षा देने को आये हैं इसके दुःख से राजकुंवारी के गर्भ का पतन हो गया है कई जैनेतर औरतों ने तो स्था० साधुजी के पास जाकर भले बुरे ऐसे शब्द कहे कि साधुजी ने वहां पर भिक्षा भी नहीं की और विहार कर दिया। बस ग्राम में हाहाकार मच गया और दीक्षा तथा साधुओं की सर्वत्र निन्दा होने लगी। इस प्रकार अपवाद को देख कर गयवरचंद का दिल बदल गया और यह निश्चय कर लिया कि इस समय दीक्षा लेना अच्छा नहीं है। उसी दिन रात्रि में अपने पिताजी के पास जाकर कह दिया कि अब मेरा विचार दीक्षा लेने का नहीं है पर मैं कल दिशावर चला जाऊंगा। मेरे व्यापार सम्बन्धी लेन देन या माल वगैरह है इसकी व्यवस्था आप ही करावे यदि मैं दीक्षा लेता तो भी आप ही को करनी पड़ती मुताजी ने स्वीकार कर लिया। तथा राजकुंवारी को भी मुताजी ने अपने घर पर बुलवाली और गयवरचन्दजी चैतबद ८ सुबह तड़के ही दिशावर के लिये रवाने हो गये जो आपको चैत वद ८ को घर छोड़ना ही था।

गयवरचन्दजी छ मास दिशावर में रहे बाद व्यापार सम्बन्धी कहीं जाना था आप पांच सात दिनों के लिये बीसलपुर आये पर उस समय मुताजी बीमार हो गये थे अतः पन्द्रह दिन बीमार रह कर मुताजी का स्वर्गवास हो गया गयवरचन्द इतने भाग्यशाली थे कि पिताजी की अन्तिम सेवा कर धर्म का अच्छा सहाज दिया।

मावाजी एवं अन्य सम्बन्धी लोगों ने गयवरचन्द को कहा कि अब दिशावर जाना बन्द रखो और आपके पिताजी का लेन देन एवं दूकान का काम संभालो गणेशमल दिशावर में है हस्तीमलादि सब छोटे बच्चे हैं इत्यादि सब के कहने पर आपको स्वीकार करना पड़ा अब तो आप पर सब घर का काम आ पड़ा जो दीक्षा की भावना थी वह कुटम्ब भावना में परिवर्तित हो गई इतना ही क्यों पर वैराग्य की धुन में आपने पच्चक्खाण अर्थात् १ रात्रि भोजन, २ कच्चा पानी आदि सचित ३ वनस्पति और ४ मैथुन के त्याग यावत् जीवन के लिये किये थे वह भी पालन नहीं हो सके किन्तु सब के सब खण्डित हो गये। इस दशा में पांच वर्ष व्यतीत हो गये और आपके दो सन्तान हुई पर अल्पायु में ही शान्त हो गई तथापि आप गृहस्थावास में ऐसे फंस गये कि दीक्षा का नाम भी भूल गये। हां कभी याद भी आति पर यह उम्मेद नहीं रही कि मैं कभी दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करूंगा।

१०—'दीक्षा की पुनर्भावना'—आप दम्पति दिशावर जा रहे थे रास्ता में रतलाम शहर में पूज्य श्री [illegible]जी महाराज का चातुर्मास था अन्य लोगों के साथ आप भी दर्शनार्थ रतलाम उतर गये। पूज्य श्री के दर्शन कर व्याख्यान सुना तो पूज्य जी के व्याख्यान का विषय था कि व्रत कर के भंग करने से अनंत काल संसार में भ्रमण करना पड़ता है। बस इसको सुन कर पुनः दीक्षा की भावना हो गई। कारण आपने [illegible] बड़े व्रत लेकर खंडित कर दिये थे अब गृहस्थावास में रह कर वे व्रत पालन कर नहीं सके जिससे अनंत संसारी होना पड़े। इत्यादि आप अपनी पत्नी के साथ दो मास रतलाम में ठहर कर ज्ञान ध्यान करने लग गये। वहां आपके छोटे भाई गणेशमलजी आए और आपको बहुत प्रार्थना की कि कम से कम मेरा विवाह

तो आपके हाथों से होना चाहिये। सं० १९६३ के माघ मास में गणेशमलजी का विवाह करने का निश्चय आप ही ने किया था। आप श्री ने स्वीकार कर लिया। इस पर गणेशमलजी अपनी भौजाई को लेकर वीसलपुर चले आये और गयवरचन्दजी पूज्यश्री के पास रहे।

११—"वतमान काल के साधुओं की मनोवृत्ति" जैनसाधु "तीन्नाणंतारियाणं" कहलाते हैं पर शिष्यपिपासु लोग इस सूत्र को भूल जाते हैं। साधुओं ने सोचा कि यदि गयवरचन्दजी अपने भाई के विवाह करने के लिये चले जायेंगे तो उस राग रंग में यह वैराग्य रहेगा या नहीं अतः एक सुयोग्य आया हुआ शिष्य हाथ से चला जायगा अतः उन्होंने ऐसा जाल रचा कि मार्गशीर्ष कृष्ण पंचमी के दिन मेवाड़ प्रान्त के निंबहेड़ा ग्राम में लेजा कर गयवरचन्दजी के गृहस्थ कपड़े उतार कर ओघा मुहपती पात्रा झोली वगैरह देकर नकली साधु बना कर भिक्षाचारी करवानी शुरू करदी। जब इस बात का पता गणेशमलजी आदि आपके कुटुम्ब वालों को मिला तो उन्होंने सोचा कि जब आपने अपनी जबान का भी खयाल नहीं किया तो भविष्य में आप क्या करेंगे उन्होंने गुस्सा में आकर आज्ञा देने का साफ इन्कार कर दिया।

१२—'स्वयमेव दीक्षा' साधुओं के पास मायावी उपाय एक ही नहीं पर अनेक हुआ करते हैं साधुओं ने कहा कि गयवरचन्दजी अब आपकी सहज ही में आज्ञा होना तो मुश्किल है तुम स्वयं दीक्षा लेलो बस नीमच के पास एक जामुणिया नाम का छोटासा ग्राम है वहां मोतीलालजी महाराज चारठाणे से विराजते थे वहां भेज कर गयवरचन्दजी को स्वयं दीक्षा लेने का आग्रह किया आप श्री ने स्वयं दीक्षा लेली कारण दशवैकालिक उत्तराध्ययनादि कई सूत्र तो आपने पहिले से ही कण्ठस्थ कर लिये थे बस सं० १९६३ चैत्र वद ६ को गयवरचन्दजी स्वयं दीक्षा लेकर वहां से विहार कर आप कोटा पूज्य श्री लालजी म० के पास पहुँच गये और चैत्र वद १३ को बड़ी दीक्षा भी स्वयं ही लेली। यहां तक तो सब राजी खुशी थे स्वयं दीक्षा तीर्थङ्कर व प्रतिबुद्ध ही ले सकते हैं पर अबोधात्मा क्या नहीं कर सकते हैं खैर पश्चात् कई एक दिनों में ही रंग बदल गया जिसके लिये आपको करीब १४ मास तक जो कष्ट और दुःख का अनुभव करना पड़ा है वह आपकी आत्मा या परमात्मा ही जानते हैं। यदि कोई कच्चा वैराग्य वाला होता तो वस्त्र फेंक कर भाग ही जाता पर आप तो ज्यों ज्यों सुवर्ण को ताप देने से उसका मूल्य बढ़ता है इस प्रकार परीक्षा की कसौटी पर पास ही करते गये पर आपको साधुओं की मायावृत्ति और प्रपंच का ठीक अनुभव हो गया। फिर भी आपने तो उन मुनियों एवं पूज्य श्री का उपकार ही माना कि कितना ही कष्ट सहन करना पड़ा हो पर दीक्षा मिल गई इस बात का उपकार ही समझा अस्तु आपके भ्रमण का संक्षिप्त से हाल लिख दिया जाता है।

1—सं० १९६४ का चातुर्मास आपने सोजत में मुनिश्रीफूलचन्द महाराज के साथ किया वहां पर बखतावरमलजी सीयाटिया के कारण ज्ञान ध्यान थोकड़ा कण्ठस्थ करने का बड़ा भारी लाभ मिला तथा रिषभदासजी रातड़िया और बखतावरमलजी सुराणा ने आज्ञा की कोशिश की जब राजकुंवरबाई सोजत दर्शनार्थ आई तो उक्त दोनों सरदारों ने अपने हाथों से एक आज्ञा पत्र लिख कर उस पर अपठित राजकुं-वरबाई का अंगुष्टा चेपा दिया पर पूज्यजी ने उसको स्वीकार नहीं किया अतः पुनः माता की आज्ञा के लिये कोशिश करनी पड़ी जब वह काम हुआ तो गुरु करने के लिये साधुओं ने आपको बहुत कष्ट पहुँचाया। जिसका मैं यहां पर लिखना उचित नहीं समझता हूँ कारण ऐसा लिखने से लोगों की साधुओं से श्रद्धा ही हट जाती है। फिर भी यह प्रथा इतनी क्लेश करने वाली है कि साधु पदको शोभा नहीं दे

2—सं० १९६५ का चातुर्मास बीकानेर में पूज्य महाराज श्री की सेवा में हुआ। पूज्य [illegible] के शरीर में बीमारी होने पर चिरकाल के दीक्षित ज्यादा साधुओं के होने पर भी कोई व्याख्यान

वाला नहीं था। नवदीक्षित होने पर भी बीकानेर की विशाल परिषद् में आपने करीब १५ दिन व्याख्यान देकर सुयश पैदा किया। वहां से विहार कर पूज्य श्री के साथ में नागोर आये वहां सेठजी अमरचन्दजी आये सिद्धाचल का महात्म्य और मूर्ति के विषय मध्यस्थापूर्वक वार्ते हुई बाद वहां से कुचेरे पधारे। मुनि श्री में वैयावच्च का भी अच्छा गुण था अतः पूज्यश्री ने आपको 'वानावली' का पद बक्सीस किया। इस समय आप एकान्तर तपस्या भी करते थे। नेत्रों के बीमारी में भी आपको फूलचन्दजी की सेवा में जोधपुर भेज दिया आपने स्वामी जी की सेवा के साथ २ सूत्रों की वाचना भी ली।

3—सं० १९६६ का चातुर्मास आपने जोधपुर में फूलचन्दजी महाराज की सेवा में किया वहां आपने एक साधु के बदले में धोवण पानी पीकर मासक्षमण की तपस्या की थी बाद चातुर्मास के विहार कर सब पाली गये। वहां से पूज्यश्री का हुक्म आने पर मेवाड़ में जाने को साधु छगनमलजी के साथ विहार किया पर सीयाट में आपके नेत्रों में बीमारी हो गई इस पर भी छगनलालजी ने मुनिजी को बीमार अवस्था में छोड़ कर पुनः पाली चले गये यह तो मुनियों की दया है। खैर आपने तीन उपवास बिना पानी के किया जिससे आंखों की बीमारी स्वयं चली गई। वहां से आप काल्लू पधारे वहां पर स्वामी केवलचन्दजी जो पूज्य धर्मदासजी के समुदाय में थे उनसे मिले और उनके अत्याग्रह से वहां ठहर कर उनके साधु साध्वियों को आगमों की वाचनादी तथा कई एकों को थोकड़े भी सिखलाए।

4—वि० सं० १९६७ का चातुर्मास काल्लू में आपने अकेले ही कर दिया वहां देशी साधु केसरीमलजी तथा उदयचन्दजी का भी चातुर्मास था। वहीं के संघ ने यह ठहराव किया कि सुबह का व्याख्यान केसरीमलजी और दोपहर का व्याख्यान गयवरचन्दजी वांचे पर केसरीमलजी ने कुछ दिनों के बाद उस ठहराव का भंग कर दोनों बार (सुबहशाम) व्याख्यान वाचना शुरू कर दिया तब आपने नवयुवकों के अत्याग्रह से तीन वार व्याख्यान शुरू कर दिया। वहां आपके नेत्रों में तकलीफ हो गई बस आप श्री ने अष्टमतप कर दिया और भी तपस्या चलती ही रहती थी। वहां दिगम्बर भट्टारक और तेरापन्थियों का भी चातुर्मास था। इसलिये परस्पर कुछ चर्चा भी चली जिसमें आपने विजय प्राप्त किया। उस समय पूज्यजी का चातुर्मास ब्यावर में ही था वहीं के वर्तमान आप सुनते ही थे। चातुर्मास उतरते ही आपको पूज्य महाराज ने अपने पास बुलवा लिया और बीकानेर चातुर्मास करने की अनुमति प्रदान की।

5—सं० १९६८ का चातुर्मास मुनि शोभालालजी के साथ बीकानेर में हुआ वहां पर श्री भगवती सूत्र आदि ७ सूत्र की वाचनाजी १२५ थोकड़ा कंठस्थ किया दो मास तक व्याख्यान भी वांचा अनेक श्रावकों को भी बहुत थोकड़ा कंठस्थ करवाये। बाद चातुर्मास के ब्यावर आये वहां आने पर एक श्रावक ने प्रश्न किया कि आप सूत्रों का अर्थ किस आधार पर करते हैं ? मुनिजी ने उत्तर दिया कि हम सूत्रों का अर्थ गुर्जर भाषा के टब्बा से करते हैं।

श्रावक—टबा किस आधार से बना है ?

मुनि—टीका के आधार पर बना होगा।

श्रावक—आप टीका मानते हो ?

मुनि—नहीं हम संवेगी थोड़े ही हैं कि टीका माने।

श्रावक—इस बात को आप जरा दीर्घ दृष्टि से विचारना। इतना कह कर वह श्रावक तो चला गया मुनिजी ने अपने दिल से विचार किया कि जैसे समुद्र से एक घड़ा पानी का भर के लाया। तो यह कसे हो सकता कि घड़ा का पानी मीठा और समुद्र का पानी खारा। जब टीका के आधार पर ही टब्बा बना है

व टब्बा सत्य और टीका असत्य कहना तो बिलकुल ही विपरीत है। अतः इस विषय में आप श्री ने हुत कुछ निर्णय किया तो यह पता मिला कि टीका में स्थान २ मूर्तिपूजा का विस्तृत वर्णन है और अपनी ान्यता पूजा मानने की नहीं है इसलिये टीका नहीं मानी जाती है। फिरभी पार्श्वचन्द्रसूरि ने जो टीका आधार से टबा बनाया है उसमें तो टीका के अनुसार ही मूर्ति का उल्लेख किया है पर बाद में उस ार्श्वचन्द्रसूरि के टब्बा पर से धर्मशीजी ने टबा बनाया है उसमें मूर्तिके स्थान कहीं साधु कहीं ज्ञान कहीं ्दमस्थ तीर्थङ्कर अर्थ कर दिया है। अतः भद्रिकों के शुरु से ऐसे संस्कार जमा देते हैं कि टीका हम हीं मानते हैं। जब मुनिजी ने सोचा कि एक अक्षर मात्र न्यूनाधिक करने में अनंत संसार की वृद्धि ोना कहा जाता है फिर इस प्रकार उत्सूत्र प्ररूपना करनी यह तो बडा से बडा अन्याय है बस उस मय से आपके हृदय में मूर्ति पूजा ने स्थान बना लिया पर आपने सोचा कि अभी जल्दबाजी करने ी जरूरत नहीं है पर इस विषयका अच्छी तरह से जान पना करना चाहिये कि क्या बात है कि-जैन ास्त्रों में उल्लेख होने पर भी मूर्ति नहीं मानी जाय दूसरा मन्दिर आज कल के नहीं पर बहुत प्राचीन मन्दिर द्यमान हैं इत्यादि विचार करते ही रहे।

6—सं० १९६९ का—चातुर्मास अजमेर में स्वामी लालचन्दजी के साथ हुआ वहीं आपने श्रीभगवती ूत्र वांचा था व्याख्यान में सेठजी चान्दमलजी लोढ़ाजी उमेदमलजी संघवीजी मोखमसिंहजी वगैरह सब आया रते थे। स्थानक में देशीसाधु लक्ष्मीचंदजी का भी चातुर्मास था धर्मवाद में पंचरंगी-नौरंगी और पन्द्रहरंगी ी करवाई जाती। जिसमें कई मजूरलोग भी आये करते थे और बिना समझ से लाभ लिया करते थे। उसमें यह नियम रखा गया था कि जो एक सामायिक करे उसको एक पैसा मिले ऐसे ही एक दया का चारआना एक पौषध का एक रुपया। कइ दिगम्बर और आर्यसमाजी भी आया करते थे। कई बार आपके ास चर्चा भी होती आपश्री के अपूर्व प्रज्ञा के सामने सबों को सिर झुकाना ही पड़ता था। एक मय एक मन्दिर मार्गी आये उस समय सेठ चान्दमलजी भी बैठे थे। द्रौपदी की पूजा का प्रसङ्ग र आपने कहा कि उसने विवाह के समय मूर्ति पूजा की अतः वह मूर्ति तीर्थङ्करों की नहीं और पूजा भी वर वं भोग के लिये की थी पर सेठ चान्दमलजी ने कहा महाराज क्या आपने कहा वह सूत्रों में लिखा है? नहीं। इस विषय की चर्चा में टीकाका भी खुलाशा हो गया कि केवल मूर्तिपूजा न मानने के कारण ही टीका मानी नहीं जाती इत्यादि इस चर्चा से मूर्त्तिपूजा की श्रद्धा और भी सुदृढ़ होती गई। बाद चतुर्मास के ब्यावर होकर पाली पधारे वहीं पूज्यजी महाराज दो वर्ष फिर कर गुजरात से आये थे अतः ३७ साधू शामिल हुए। पाली में स्वामी कर्मचन्दजी शोभालालजी कनकमलजी और गयवरचन्द जी इन चारों की श्रद्धा मूर्ति मानने की थी जो चारों ही समुदाय के स्तम्भ थे। श्रावकों के कहने से मूर्ति के विषय में पूज्यजी ने व्याख्यान में बहुत कुछ समझाया पर भवभीरूपना यह था कि पूज्यजी ने मूर्ति का थोड़ा भी खण्डन नहीं किया। बाद वहां से जोधपूर गये रास्ता में रोयट ग्राम में पूज्यजी और गयवरचंदजी के मुहपत्ती में डोरा के विषय में चर्चा हुई तो पूज्यजी ने कहाकि डोरा तो सूत्रों में नहीं लिखा पर बिना उपयोग खुले मुंह बोला न जाय इसलिये ही डोरा डाला है। मूर्ति के विषय में भी कहाकि मूर्ति पूजकों ने धमाधम बहुत बढ़ा दी तब अपने वालों ने बिलकुल उठादी इत्यादि।

८—सं० १९७० का चातुर्मास गंगापुर, (मेवाड़) में स्वामी मगनमलजी के साथ हुआ वहाँ पर आपश्री ने व्याख्यान में श्रीभगवतीजी सूत्र बांचने के साथ २ एक पण्डित रख व्याकरण पढ़ना भी शुरु किया पर पूज्यजी को खबर होने से मनाई करदी। वहां पर एक यति के पास प्राचीन ज्ञानभण्डार था।

उसके अन्दर कई प्राचीन शास्त्र थे, उनको देखा तो आचाराङ्ग सूत्र की निर्युक्ति में तीर्थ यात्रा करने से दर्शन शुद्धि तथा और भी उपासकदशाङ्ग व उवाइजी में आनन्दअम्बड़ के अधिकार में मूर्त्तिपूजा के पाठ मिल गये। वहां पर तेरहपन्थियों से चर्चा हुई जिसमें आपको विजय प्राप्त हुई। बाद चातुर्मास के उदयपुर पधारे। रास्ता में बहुत से मांसाहारियों को उपदेश देकर मांस को छुड़वाया जब उदयपुर गये तो वहाँ के श्रीसंघ के आग्रह से व्याख्यान में श्री जीवाभिगमसूत्र बांचना प्रारम्भ किया। आपश्री आँखों का इलाज के कारण करीब ३॥ महिना तक उदयपुर में रहे वहाँ गुरुवर्य मोड़ीरामजी महाराज भी पधारे थे। पर थोड़े दिन रहकर विहार कर दिया। उदयपुर में आपके व्याख्यान कि इतनी ख्याति हुई कि वहां के संघ की इच्छा हुई कि आपको युगराजपद दिलाया जाय इत्यादि आपके व्याख्यान में बड़े २ राजकर्मचारी आया करते थे। जब विजयदेव के उत्पन्न होने के अधिकार में मूर्तिपूजा का फल के विषय में हित सुख कल्याण मोक्ष और अनुगमी पाठ आये तो जैसे सूत्र में लिखा था आपने वैसे ही परिषद् में सुनादिया बस फिरतो था ही क्या एकदम हा हो हुआ और कहने लगे कि महाराजकी श्रद्धाभ्रष्ट होगइ है पर जब सूत्र के पन्ने नगरसेठ नन्दलालजी व दीवान कोठारीजी साहब के हाथ में दिये तथा आपने एक लिखा पढ़ा विद्वान को खड़ाकर व्याख्यान में उस सूत्र के पन्ने को दुबारा बचवाया तो वही शब्द जो आपश्री ने फरमाये थे निकले इस से लोगों को शंका होने लगी। अतः ६० आदमी मुनिश्री से खिलाफ हो भीलाड़े पूज्यश्री के पास गये और आदि से अन्त तक सब हाल कह सुनाया पूज्यजी सब जानते थे इतना ही क्यों पर वह सूत्र ही मुनिजी को पूज्यजी ने दिया था तथापि चतुर बुद्धि वाले पूज्यजी ने कहा जब तक मैं गयवरचंद से न मिलूं वहां तक इस विषय में कुछ नहीं कह सकता हूँ इत्यादि। पूज्यजी ने खानगी कहला दिया कि गयवरचंदजी रतलाम चले जांय। बस गयवरचंदजी विहार कर गये रास्ता में छोटी सादड़ी आई वहां के श्रावकों ने चतुर्मास की आग्रह प्रार्थना की इस पर मुनिजी वहां चन्दनमलजी नगोरी से मिले और पूछा कि यदि मेरा यहां ठहरना होजाय तो आप मुझे शास्त्र पढ़ने के लिये देंगे कारण मुझे शास्त्रों द्वारा मूर्ति पूजा का निर्णय करना है। नागोरीजी ने विश्वास दिला दिया।

खैर चतुर्मास के लिये पूज्यजी पर छोड़ कर आप वहां से विहार कर रतलाम चले गये वहाँ पहले से शोभालालजी थे सेठजी अमरचंदजी के साथ मूर्त्ति के विषय में उनकी चर्चा चलती थीं। शोभालालजी वहाँ का सब हाल आपको कहकर विहार कर गये बाद में आपकी भी सेठजी से हमेशा मूर्त्ति के विषय में वादी प्रतिवादी के रूप में चर्चा चलती रही एक दिन आप सेठजी के यहां गोचरी के लिये गये तो एक ताक में श्री केसरियानाथजी का बड़ा फोटू पास में धूपदानी और फोटो के ऊपर केसर के छांटे पड़े देखे। देख कर सेठजी को बुलाया और पूछा कि यह क्या है। तब सेठजी ने कहा कि हमतो गृहस्थ हैं मैंने तो तीनवार केसरियाजी दो बार शत्रुञ्जय गिरिनार की यात्रा की है इत्यादि। मुनिश्री ने कहा सेठजी जब आपकी श्रद्धा तो तीर्थों की यात्रा या मूर्त्ति की पूजा करने से भी दोषित नहीं होती है तब हमको मूर्त्ति का नाम लेने का भी अधिकार नहीं पर अब इस प्रकार लिखे पढ़े साधुओं को आप कहां तक धमका २ कर रख सकोगे इत्यादि। बाद जावरा में पूज्यमहाराज से मिलाप हुआ उदयपुर के विषय में पूज्यमहाराज ने उपालम्भ जरूर दिया पर आपने मूर्त्तिका खण्डन या विरोध नहीं किया केवल यही कहा कि जैसा वायु चले ऐसा ओट लेना इत्यादि। बाद नगरी जाकर श्री शोभालालजी से मिले और उनके साथ विचारकर पक्का निर्णय करलिया कि प्राण जावे तो परवाह नहीं पर उत्सूत्र भाषण नहीं करेंगे।

8—सं० १९७१ का चातुर्मास छोटी सादड़ी में हुआ वहाँ पर व्याख्यान में राजप्रश्नीसूत्र बांचा

एक फूलचन्द नामका नवयुवक था उसने मूर्ति के विषय ७ प्रश्न लिख कर रतलाम पूज्यजी के पास भेजे उत्तर में सेठजी अमरचन्दजी ने अपने हाथ से ऐसा उत्तर लिखा कि जिसमें मूर्तिपूजा के विषय में ठीक मध्यस्थ पना से स्वीकार किया अस्तु ।

सादड़ी में पुस्तक पढ़ने की बहुत सुविधा थी श्रीमान् चन्दनमलजी नागोरी हरएक पुस्तक पढ़ने को दे देते थे इस पर यहां के श्रावक ने विरोध किया तथा पूज्यजी के पास जाकर मनाई का हुकुम लिखवाय लाये जिसको मुनिजी ने शिर पर चढ़ा लिया फिर भी आप पुस्तकें तो पढ़ते ही रहे। बादमें आपके शरीर में बादी की तकलीफ होने से ३॥ मास पथारी से उठा तक भी नहीं यद्यपि अशुभ कर्म के उदय होने से ही ऐसा हुआ था पर आपने तो उसको भी पुण्योदय ही समझा कारण इस बिमारी के समय में आपने एक लक्ष श्लोक पढ़लिया आपकी बीमारी के कारण गुरुवर्य श्री मोड़ीरामजी महाराज जावद से चातुर्मास में भी पधारे कुछ दिन ठहर कर वापिस पधार गये खैर इस चातुर्मास के समय बहुत वाद विवाद छिड़ गया था और आपकी इच्छा थी कि अब बेधड़क हो सत्योपदेश करें अतः चतुरमास के बाद आप चलकर स्वामि कर्मचंदजी के पास गंगापुर आये जब पूज्यजी को मालुम हुआ तो मोड़ीरामजी तथा शोभालालजी को जल्दी से गंगापुर भेजे कि—गयवरचंद को समझाकर मेरे पास ले आओ। गंगापुर में मिले हुए सब साधुओं की श्रद्धामूर्ति पूजा की थी परलोकापवाद के कारण वेष छोड़ने की हिम्मत नही हुई सबका यह निश्चय हुआ कि साधुओं को अपने पक्ष में करो फिर साथ ही निकलेंगे। खैर मोड़ीरामजी महाराज के साथ गयवरचंद ब्यावर होते हुए जोधपुर पहुँचे। आप व्याख्यान वांच रहे थे एक श्रावक ने प्रश्न किया कि श्रावक मूर्ति को नमस्कार करे जिससे क्या फल मिलता है उत्तर में मुनिश्री,ने कहा कि मूर्ति को ईश्वर का स्थापना निक्षेप समझकर नमस्कार करने से दर्शन शुद्धि होती हैं और पत्थर समझ कर नमस्कार करने से मिथ्यात्व लगता है बस वहाँ भी हा हो मच गया। पूज्यजी को तार देकर समाचार मंगवाया तो उत्तर मिला कि मैं साधुओं को भेज रहा हूँ गयवरचंद को वहीं ठहराओ। बस वहां ठहरने पर चार साधु पूज्यजी के भेजे हुए वहां आये। वे एक लिखित लिखाकर भी लाये जिसमें लिखा हुआ था कि १ मूर्ति की प्ररूपना नहीं करनी। २ टीका के शास्त्र नहीं पढ़ाना। ३ मूर्तिपूजक श्रावक से वार्तालाप नहीं करना। ४ धोवण पीना पर जीवोत्पत्ति की शंका नहीं रखना। ५ बासी रोटी खाने में इन्कार नहीं करना। ६ विद्दल नहीं टालना। ७ पेशाब परठ कर हाथ नहीं धोना। इत्यादि १२ कलमें लिखित में थी कि गयवरचंदजी सिद्धों की साक्षी से हस्ताक्षर करके पालन करे तो शामिल रखना वरना अलग कर देना। मुनिश्री ने कहा कि दीक्षा आत्मकल्याणार्थ ली है और आत्मा परमात्मा की साक्षी से पाळी जाती है हस्ताक्षर करना कराना चोरो का काम है इत्यादि सं १९७२ चैत्र शुक्ल १३ जोधपुर से आप अलग होगये। और वहां से चलकर महामन्दिर आये-वहां जोधपुर के दो मूर्तिपूजक श्रावक आकर आपको अपना लिये। तत्पश्चात् आपने सुना कि एक संवेगी साधु ओसियों में है अतः आपश्री ओसिया पधारे और श्री महावीर की यात्रा कर परमयोगिराज श्रीरत्नविजयजी महाराज से मिले दो मास वहीं पर ठहरकर प्रत्येक गच्छों की समाचारियों वगैरह देखी तथा ओसिया में आय, व्यय, का कोई हिसाब नहीं था अतः एक शान्ति स्नात्र भणाकर मंगलसी रत्नसी नाम की पेढ़ी की स्थापना करवाई। वहां पर एक बोर्डिङ्ग स्थापना करने की योजना भी तैयार की।

9—सं० १९७२ का चातुर्मास तिंवरी ग्राम में किया वहां तक आपके मुख पर मुहपत्ती डोरा सहित बन्धी हुई थी आपका विचार दीर्घकाल मुंहपर मुहपत्ती बन्धी रख कुछ डोरा धार्य करने का था परन्तु जब आप ओसिया पधारे थे तब प्रत्येक दिन एक एक नया स्तवन बनाकर वीर प्रभु के दर्शन स्तुति करते

उसके अन्दर कई प्राचीन शास्त्र थे, उनको देखा तो आचाराङ्ग सूत्र की निर्युक्ति में तीर्थ यात्रा करने से दर्शन शुद्धि तथा और भी उपासकदशाङ्ग व उवाइजी में आनन्दअम्बड़ के अधिकार में मूर्तिपूजा के पाठ मिल गये। वहां पर तेरहपन्थियों से चर्चा हुई जिसमें आपको विजय प्राप्त हुई। बाद चातुर्मास के उदयपुर पधारे। रास्ता में बहुत से मांसाहारियों को उपदेश देकर मांस को छुड़वाया जब उदयपुर गये तो वहाँ के श्रीसंघ के आग्रह से व्याख्यान में श्री जीवाभिगमसूत्र बांचना प्रारम्भ किया। आपश्री आँखों का इलाज के कारण करीब ३॥ महिना तक उदयपुर में रहे वहाँ गुरुवर्य मोड़ीरामजी महाराज भी पधारे थे। पर थोड़े दिन रहकर विहार कर दिया। उदयपुर में आपके व्याख्यान कि इतनी ख्याति हुई कि वहां के संघ की इच्छा हुई कि आपको युगराजपद दिलाया जाय इत्यादि आपके व्याख्यान में बड़े २ राजकर्मचारी आया करते थे। जब विजयदेव के उत्पन्न होने के अधिकार में मूर्तिपूजा का फल के विषय में हित सुख कल्याण मोक्ष और अनुगमी पाठ आये तो जैसे सूत्र में लिखा था आपने वैसे ही परिषद् में सुनादिया बस फिरतो था ही क्या एकदम हा हो हुआ और कहने लगे कि महाराजकी श्रद्धाभ्रष्ट होगइ है पर जब सूत्र के पन्ने नगरसेठ नन्दलालजी व दीवान कोठारीजी साहब के हाथ में दिये तथा आपने एक लिखा पढ़ा विद्वान को खड़ाकर व्याख्यान में उस सूत्र के पन्ने को दुबारा बचवाया तो वही शब्द जो आपश्री ने फरमाये थे निकले इस से लोगों को शंका होने लगी। अतः ६० आदमी मुनिश्री से खिलाफ हो भीलाड़े पूज्यश्री के पास गये और आदि से अन्त तक सब हाल कह सुनाया पूज्यजी सब जानते थे इतना ही क्यों पर वह सूत्र ही मुनिजी को पूज्यजी ने दिया था तथापि चतुर बुद्धि वाले पूज्यजी ने कहा जब तक मैं गयवरचंद से न मिलूं वहां तक इस विषय में कुछ नहीं कह सकता हूँ इत्यादि। पूज्यजी ने खानगी कहला दिया कि गयवरचंदजी रतलाम चले जांय। बस गयवरचंदजी विहार कर गये रास्ता में छोटी सादड़ी आई वहां के श्रावकों ने चतुर्मास की आग्रह प्रार्थना की इस पर मुनिजी वहां चन्दनमलजी नगोरी से मिले और पूछा कि यदि मेरा यहां ठहरना होजाय तो आप मुझे शास्त्र पढ़ने के लिये देंगे कारण मुझे शास्त्रों द्वारा मूर्ति पूजा का निर्णय करना है। नागोरीजी ने विश्वास दिला दिया।

खैर चतुर्मास के लिये पूज्यजी पर छोड़ कर आप वहां से विहार कर रतलाम चले गये वहाँ पहले से शोभालालजी थे सेठजी अमरचंदजी के साथ मूर्त्ति के विषय में उनकी चर्चा चलती थी। शोभालालजी वहाँ का सब हाल आपको कहकर विहार कर गये बाद में आपकी भी सेठजी से हमेशा मूर्त्ति के विषय में वादी प्रतिवादी के रूप में चर्चा चलती रही एक दिन आप सेठजी के यहां गोचरी के लिये गये तो एक ताक में श्री केसरियानाथजी का बड़ा फोटू पास में धूपदानी और फोटो के ऊपर केसर के छांटे पड़े देखे। देखकर सेठजी को बुलाया और पूछा कि यह क्या है। तब सेठजी ने कहा कि हमतो गृहस्थ हैं मैंने तो तीनबार केसरियाजी दो बार शत्रुञ्जय गिरिनार की यात्रा की है इत्यादि। मुनिश्री ने कहा सेठजी जब आपकी श्रद्धा तो तीर्थों की यात्रा या मूर्त्ति की पूजा करने से भी दोषित नहीं होती है तब हमको मूर्त्ति का नाम लेने का भी अधिकार नहीं पर अब इस प्रकार लिखे पढ़े साधुओं को आप कहां तक धमका २ कर रख सकोगे इत्यादि। बाद जावरा में पूज्यमहाराज से मिलाप हुआ उदयपुर के विषय में पूज्यमहाराज ने उपालम्भ जरूर दिया पर आपने मूर्त्तिका खण्डन या विरोध नहीं किया केवल यही कहा कि जैसा वायु चले ऐसा ओट लेना इत्यादि। बाद नगरी जाकर श्री शोभालालजी से मिले और उनके साथ विचारकर पक्का निर्णय करलिया कि प्राण जाय तो परवाह नहीं पर उत्सूत्र भाषण नहीं करेंगे।

४—सं० १९७१ का चातुर्मास छोटी सादड़ी में हुआ वहाँ पर व्याख्यान में राजप्रश्नीसूत्र बांचा।

एक फूलचन्द नामका नवयुवक था उसने मूर्ति के विषय ७ प्रश्न लिख कर रतलाम पूज्यजी के पास भेजे उत्तर में सेठजी अमरचन्दजी ने अपने हाथ से ऐसा उत्तर लिखा कि जिसमें मूर्तिपूजा के विषय में ठीक मध्यस्थ पना से स्वीकार किया अस्तु।

सादड़ी में पुस्तक पढ़ने की बहुत सुविधा थी श्रीमान् चन्दनमलजी नागोरी हरएक पुस्तक पढ़ने को दे देते थे इस पर यहां के श्रावक ने विरोध किया तथा पूज्यजी के पास जाकर मनाई का हुकुम लिखवाय लाये जिसको मुनिजी ने शिर पर चढ़ा लिया फिर भी आप पुस्तकें तो पढ़ते ही रहे। बादमें आपके शरीर में बादी की तकलीफ होने से ३॥ मास पथारी से उठा तक भी नहीं यद्यपि अशुभ कर्म के उदय होने से ही ऐसा हुआ था पर आपने तो उसको भी पुण्योदय ही समझा कारण इस बिमारी के समय में आपने एक लक्ष श्लोक पढ़लिया आपकी बीमारी के कारण गुरुवर्य श्री मोड़ीरामजी महाराज जावद से चातुर्मास में भी पधारे कुछ दिन ठहर कर वापिस पधार गये खैर इस चातुर्मास के समय बहुत वाद विवाद छिड़ गया था और आपकी इच्छा थी कि अब बेधड़क हो सत्योपदेश करें अतः चतुरमास के बाद आप चलकर स्वामि कर्मचंदजी के पास गंगापुर आये जब पूज्यजी को मालुम हुआ तो मोड़ीरामजी तथा शोभालालजी को जल्दी से गंगापुर भेजे कि—गयवरचंद को समझाकर मेरे पास ले आओ। गंगापुर में मिले हुए सब साधुओं की श्रद्धामूर्ति पूजा की थी परलोकापवाद के कारण वेष छोड़ने की हिम्मत नही हुई सबका यह निश्चय हुआ कि साधुओं को अपने पक्ष में करो फिर साथ ही निकलेंगे। खैर मोड़ीरामजी महाराज के साथ गयवरचंद ब्यावर होते हुए जोधपुर पहुँचे। आप व्याख्यान बांच रहे थे एक श्रावक ने प्रश्न किया कि श्रावक मूर्ति को नमस्कार करे जिससे क्या फल मिलता है उत्तर में मुनिश्री,ने कहा कि मूर्ति को ईश्वर का स्थापना निक्षेप समझ कर नमस्कार करने से दर्शन शुद्धि होती हैंऔर पत्थर समझ कर नमस्कार करने से मिथ्यात्व लगता है बस वहाँ भी हा हो मच गया। पूज्यजी को तार देकर समाचार मंगवाया तो उत्तर मिला कि मैं साधुओं को भेज रहा हूँ गयवरचंद को वहीं ठहराओ। बस वहां ठहरने पर चार साधु पूज्यजी के भेजे हुए वहां आये। वे एक लिखित लिखाकर भी लाये जिसमें लिखा हुआ था कि १ मूर्ति की प्ररूपना नहीं करनी। २ टीका के शास्त्र नहीं पढ़ाना। ३ मूर्तिपूजक श्रावक से वार्तालाप नहीं करना। ४ धोवण पीना पर जीवोत्पन्न की शंका नहीं रखना। ५ बासी रोटी खाने में इन्कार नहीं करना। ६ विद्वल नहीं टालना। ७ पेशाव परठ कर हाथ नहीं धोना। इत्यादि १२ कलमें लिखित में थी कि गयवरचंदजी सिद्धों की साक्षी से हस्ताक्षर करके पालन करे वो शामिल रखना वरना अलग कर देना। मुनिश्री ने कहा कि दीक्षा आत्मकल्याणार्थ ली है और आत्मा परमात्मा की साक्षी से पाळी जाती है हस्ताक्षर करना कराना चोरो का काम है इत्यादि सं १९७२ चैत्र शुक्ल १३ जोधपुर से आप अलग होगये। और वहां से चलकर महामन्दिर आये-वहां जोधपुर के दो मूर्तिपूजक श्रावक आकर आपको अपना लिये। तत्पश्चात् आपने सुना कि एक संवेगी साधु ओसियों में है अतः आपश्री ओसिया पधारे और श्री महावीर की यात्रा कर परमयोगिराज श्रीरत्नविजयजी महाराज से मिले दो मास वहीं पर ठहरकर प्रत्येक गच्छों की समाचारियों वगैरह देखी तथा ओसिया में आय, व्यय, का कोई हिसाब नहीं था अतः एक शान्ति स्नात्र भणाकर मंगलशी रत्नशी नाम की पेढ़ी की स्थापना करवाई। वहां पर एक बोर्डिङ्ग स्थापना करने की योजना भी तैयार की।

9—सं० १९७२ का चातुर्मास तिंवरी ग्राम में किया यहां तक आपके मुख पर मुहपत्ती डोरा सहित बन्धी हुई थी आपका विचार दीर्घकाल मुहपर मुहपत्ती बन्धी रख कुछ ठोस कार्य करने का था जब आप ओसिया पधारे थे तब प्रत्येक दिन एक एक नया स्तवन बनाकर वीर प्रभु के दर्शन

श्री वीरमण्डल संस्था और समवरसण की रचना का अपूर्व महोत्सव मनाया गया। बाद चातुर्मास के कुचेरे पधारे वहां जैन पाठशाला तथा मित्रमण्डल की स्थापना करवाई वहां से खजवाने पधारे एक जैन पाठशाला और मित्रमण्डल की स्थापना हुई। एवं महावीरजयंति बड़े समारोह के साथ मनाई गई। वहां से रुण पधारे वहीं भी ज्ञान प्रकाश मित्रमण्डल की स्थापना हुई। वहीं से फलौदी गये तथा मारवाड़ तीर्थ प्रबन्ध कारिणी सभा की स्थापना करवा कर मारवाड़ के तमाम मन्दिरों की सार संभार की।

19—सं० १९८२ में मेड़तारोड़ फलौदी में चातुर्मास किया वहाँ जैन जाति निर्णय एवं जैन जाति महोदय नाम की पुस्तकें लिखीं। वहाँ के मन्दिरों में दिगम्बरों का प्रवेश था वह साफ करवाया इत्यादि। वहाँ अजमेर जाकर वीरात् ८४ वर्ष का शिलालेख देखना था वह देखा वहाँ से विहार कर पीसागण जेठाणे गये। वापिस वे पीसांगण आये वहां कई जाति सुधार हुए बाद कालु वलुदा जैतारण में व्याख्यान देते हुए वीलाड़े गये। वहां स्था० साधु शिरेमलजी के साथ शास्त्रार्थ कर श्रीनथमलजी ंघी को प्रबोध कर वासक्षेप देकर पुनः जैन बनाया वहां से कापरडा तीर्थ की यात्रा कर पीपाड़ पधारे।

20—सं१९८३ का चातुर्मास पीपाड़ में किया वहां भी व्याख्यान में श्रीभगवती सूत्र बाचा। धर्म की बहुत अच्छी जागृत हुई। जैन मित्रमण्डल जैन लायब्रेरी जैन श्वेताम्बर सभा इत्यादि संस्थाए स्थापित करवाई। वहां से विहार कर कापरड़ा की यात्रा की वहां से वीलाड़ा आये। वहां स्थानकवासी साधु गंभीरमलजी को सं० १९८३ का चैत्रवद ३ को बड़े ही समारोह के साथ दीक्षा देकर उनका नाम गुणसुन्दरजी रखा बाद पुनः पीपाड़ आये और वंगड़ी की प्रतिष्ठा समारोह के साथ करवाकर वहाँ से सोजत आये।

21—सं० १९८४ कर चतुर्मास वीलाड़ा में हुआ यहां भी धर्म का अच्छी जागृति हुई। व्याख्यान में श्रीभगवतीसूत्रका वाचन हुआ। जैनपाठशाला मित्र मण्डलनाम की संस्था कायम करवाई। बाद विहार कर पाली आये गोडवाड़ की पञ्चतीर्थ कर मेवाड़ (उदयपुर) गये। वहां माह शुद्ध पूनम को आचार्य्य रत्न प्रभसूरिश्वरजी की जयंति मनाकर केसरियाजी की यात्रा की वहां से गोडवाड वापिस आये। वहाँ से लुवाना शिवगंज वाली होकर सादड़ी आगये।

22—सं० १९८५ का चतुर्मास सादड़ी में ही हुआ। वहाँ भी व्याख्यान में श्रीभगवती सूत्र का वांचन हुआ वहाँ खुड़ालावाला हजारीमलजी के कारण बड़ा भारी तनाजा पड़ा उसका समाधान करवाया। जैन जाति महोदय के लिये चार हजार रुपया का चन्दा करवाया। चातुर्मास के बाद वहीं से वाली आये वहाँ समवसरण की रचना से गोड़वाड़ में जागृति पैदा की हुई। वहाँ भी संघ में कलेश था जिसका समाधान करवाया बाद वहाँ से वरकाणा आये वहीं वगीचा में रह कर समरसिंह का इतिहास लिखा।

23—सं० १९८६ का चातुर्मास लूनावा में हुआ वहां भी धर्म की खूब जाहोजलाली हुई। पुस्तक प्रकाशन के लिये अच्छा चन्दा हुआ। धर्म की अच्छी जागृति हुई एक कन्याशाला की स्थापना करवाई वहीं ...ी आये वहां भी एक कन्याशाला की स्थापना हुई बाद कापरड़ा आये। वहाँ से नागोर पधारे वहाँ के ...ों के शिखरों की प्रतिष्ठा करवाकर बाद में पाली आये।

24—सं० १९८७ का चातुर्मास पाली में हुआ। यहां भी धर्म की अच्छी जागृति हुई। विशेष आग्रह कर समवसरण की रचना बड़ी ही मनोरम बनवाई। हाथी आदि समारोह के साथ प्रभु सवारी निकाली आदि बहुत ही अच्छी प्रभावि हुई। वहाँ से विहार कर कापरड़ाजी आये वहाँ से जोधपुर पधारे। जोधपुर में कई मन्दिर थे परन्तु ध्वजदण्ड किसी पर नहीं था अतः श्रीगौड़ीपार्श्वनाथ और शान्तिनाथ के मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवा कर सब मन्दिरों पर ध्वजदण्ड चढ़वाया जिसमें श्रीसंघ के पन्द्रह हजार रुपये

साहित्य रसिक—

मुनीश्रीगुणसुन्दरजीमहाराज

आपका जन्म भी ओशवंश में हुआ आप १६ वर्ष की किशोर व्यय में स्था० सं० में दीक्षित हुए वाद २२ वर्षो से संवेगपक्षीदीक्षाली आप में व्ययवच्च का बढ़िया गुण है। स्मरण शक्ति अच्छी होने से प्रत्येक ज्ञान शीघ्र कण्ठस्थ कर लेते हैं आपको कविता करने का भी शौक है आप की ही सहायता से गुरुवर्य ने इतने काम कर पाये हैं।

जन्म	स्था० दीक्षा	संवेगपक्षी दीक्षा
१९४६	१९६१	१९८३

खर्च हुए। भैरोबाग की देवभूमि के लिये आन्दोलन किया आखिर ओसवाल उस देव भूमि एवं देव द्रव्य को हजम कर ही गये जिसके फल आज प्रत्यक्ष में मिल ही रहा है। तथा भरूबाग में मन्दिर बनवाने के लिये उपदेश दिया। पहिले वाला के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई।

25—सं० १९८८ का चतुर्मास जोधपुर में हुआ वहां भी व्याख्यान में श्रीभगवतीसूत्र बांचा। और भी धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। वहाँ से कापरड़ा तीर्थ की यात्रा करने के लिये गये वहाँ भी बोर्डिंग की स्थापना करवाई। वहाँ से पीपाड़ आकर मन्दिर की तिष्ठा बड़े समारोह के साथ करवाई और समवसरण की रचना हुई।

26—सं० १९८९ का चातुर्मास कापरड़ा तीर्थ पर ही हुआ जिससे बोर्डिंग को अच्छी मदद मिली। पर्युषणपर्व में पीपाड़ बीलाड़ा जैतारण वालाफढ़ासला खारिया जोधपुर विशलपुर आदि ग्रामो से बहुत से भावुक जन आये पूजा प्रभावना स्वामीवात्सल्य आदि धर्मोद्योत हुआ। अर्थात् जंगल में भी मंगल होगया वहां पर श्री पांचूलालजी वगैरह तीनो भाई आये और जैसलमेर संघ के लिये आमन्त्रण किया तथा पांचूलालजी की तरफ से वहां बड़ा होल बनबाया बाद विहार कर फलोदी गये और पांचूलालजी ने जैसलमेर का बड़ा भारी संघ निकाला जिसमें ५००० गृहस्थ १०० साधुसाध्वी ने भाग लिया जिसका एक बड़ा ग्रन्थ बना हुआ है।

27 १९९० का चतुर्मास फलोदी में हुआ। व्याख्यान में श्री भगवती सूत्र बांचा। विशेष कार्य-वहाँ यह हुआ कि श्रीसूरजमलजी कोचर की धर्मशाला में बड़ा होल बनवाया जिसमें नन्दीश्वर द्वीप की रचना हुई हजारों जैन तथा जैनेतर भाई ने लाभ लिया और जैनधर्म का गुणगाया इत्यादि। वहाँ से विहारकर जोधपुर तथा पाली होते हुए सादड़ी आये चैत्र मास की शाश्वतीओली बड़ा ही उत्साह के साथ वहाँ ही करवाई। बाद लुनावा होकर शिवगंज तथा वहाँ से जावाल प्रतिष्ठा के लिये गये। वहाँ आचार्य्य विजयनेमिसूरीश्वर का दर्शन हुआ सूरिजी की बड़ी भारी मेहरबानी रही थी।

28 ं० १९९१ चतुर्मास शिवगञ्ज में हुआ व्याख्यान में श्री भगवतीसूत्र बांचा। वहाँ पर नाद-मांडवा कर तीन सौ नरनारियों को विधिविधान के साथ समकित दी इत्यादि। धर्मका खूब ही उद्योत हुआ व्याख्यान का ठाट बहुत ही अच्छा रहता था।

29 सं० १९९२ का चातुर्मास जोधपुर में हुआ। मुनिश्री का शरीर नरम था व्याख्यान श्रीगुण-सुन्दरजी वांचते थे। तथापि पर्युषणपर्व का बड़ाही ठाठ रहा था बाद चतुर्मास के वहां से विहारकर कापरड़ा की यात्रा की गयी।

30 सं० १९९३ का चतुर्मास पाली में हुआ वहाँ भी अच्छा ठाट रहा मूर्ति पूजा का प्राचीन इतिहास श्रीमान् लोकाशाह नाम की पुस्तक पाली में लिख कर वहां से सोजत तथा ब्यावर पधारे। वहाँ स्थानक वासी साधु अम्बालालजी तथा अर्जुनलालजी से भेंट हुई। उन दोनों साधुओं को मूर्ति के विषय में अच्छा प्रबोधित किया वहाँ से अजमेर तथा नागौर जाकर समदड़ियों के बनाये हुए स्टेशन पर चंद्रप्रभू के मन्दिर की प्रतिष्ठा एवं नंदीश्वर द्वीप की रचना समदड़ियों के तरफ से करवाई और आचार्य रत्नप्रभसूरिजी के पादुके की स्थापना भी करवाई। सुरांणों की बगेची में आचार्य धर्मघोषसूरि के पादुकों की स्थापना की।

31 १९९४ का चतुर्मास सोजत में हुआ वहां भी व्याख्यान में श्री भगवती सूत्र का वांचना हुआ और समवसरण की रचना बहुत समारोह के साथ हुई। सवारी में हाथी वगैरह आने से धर्म की बहुत अच्छी प्रभावना हुई। वहाँ से कापरड़ा होकर ब्यावर तथा अजमेर पधारे।

32 सं० १९९५ का चतुर्मास ब्यावर में हुआ वहाँ भी व्याख्यान में श्री भगवती सूत्र रखा गया। पर्युषण की आराधना आम पब्लिक रायली कंपान में हुई। जैनधर्म का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

33 सं० १९९६ का चातुर्मास अजमेर में हुआ। वहाँ भी व्याख्यान में श्रीभगवती सूत्र बांचा गया। और अनेक पुस्तकें छपवाई। तथा भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास का कार्य प्रारम्भ हुआ।

34 १९९७ का चतुर्मास ब्यावर में हुआ पहले ब्यावर गाँव की मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई बाद चतुर्मास में धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। वहाँ से कापरेड़ा पधारे आपके शरीर नरम थे अतः कुछ अर्शा कापरेडा में ही बिताना पड़ा बाद फलोदीका संघ आकर आग्रह किया कि मन्दिर के प्रतिष्ठा के लिये आप फलोदी पधारें।

35 सं० १९९८ का चतुर्मास फलोदी में हुआ वहाँ भी व्याख्यान में श्री भगवतीसूत्र को बांचा। आपके विराजने से धर्म का अच्छा उद्योत हुआ।

36 सं० १९९९ का चतुर्मास पीपलिया में हुआ वहाँ भी व्याख्यान में भगवतीसूत्र बाँचा यहाँ १०० वर्षों के अन्दर आपका ही चातुर्मास हुआ था। जैन तथा जैनोतर भाईयों ने बहुत अच्छा लाभ लिया था। जीर्णोद्धार के लिये करीव ५००० हजार की चन्दा एकत्रित हुई।

37 सं० २००० में आपका चातुर्मास अजमेर में हुआ जो खास भगवान् पार्श्वनाथ के परम्परा के इतिहास रचने के ही उद्देश्य से हुआ है। आपश्री के आजतक कुल ३७ चतुर्मास हुए जिसमें ९ स्थानकवासी समुदाय में २८ संवेगी समुदाय में जिस में २ चौमासा गुजरात में २ गोड़वाड़ में शेष २४ चतुर्मास मारवाड़ में ही हुआ है इसका कारण यह है कि आपके पास योग्य साधुओं का अभाव था जिससे कि दूर प्रान्त के विहार नहीं कर सके, दूसरा आपने जननी-जन्मभूमि की सेवा करने की पहले से ही प्रतिज्ञा करली थी आपने जननी,जन्मभूमि की सेवा करने में जैसा बहुत परिश्रम किया वैसा लाभ भी बहुत हासिल किया। यदि आप श्री इस प्रकार मरूधर में विहार न करते तो न जाने इस भूमिपर कितने भाई मूर्त्तिपूजक जैन रह जाते। जैसे पंजाब में पूज्याचार्य्य श्री आत्मारामजी महाराज ने पंजाब का उद्धार किया इसी प्रकार आपश्री भी मारवाड़ का उद्धार करने में सफल मनोरथ हुये। किन्तु स्वामी आत्मारामजी के पास जितने साधन उसका एक अंश भी यदि आपके पास होता तो आप कुछ और ही काम करके बतलाते पर साधनों के में भी जो भागीरथ प्रयत्न कर इतना काम कर दिखलाया है यह आपकी एक विशेषता है। ऊपर लेखमें आपके चतुर्मास सिलसिलेवार संक्षेप से कहे गये हैं। अब थोड़ासा आपका किए हुए कार्य का दिग्दर्शन कराना आवश्यक है।

मुनिश्री के उपदेश एवं प्रयत्न से श्रीरत्नप्रभ कर ज्ञान पुष्प मालादि संस्था द्वारा पुस्तकें मुद्रित हुई

-	पुस्तक का नाम	आवृत्ति	संख्या	नं०	पुस्तक का नाम	आवृत्ति	संख्या
१	प्रतिमा छत्तीसी	५	२५०००	६	पैंतीस बोल संग्रह	३	४०००
२	गयवर विलास	२	२०००	७	स्तवन संग्रह भाग १ ला	५	५०००
३	दान छत्तीसी	४	८०००	८	,, ,, ,, २ रा	३	३०००
४	अनुकम्पा छत्तीसी	३	६०००	९	,, ,, ,, ३ रा	३	३०००
५	प्रभमाला स्तवन	३	३०००	१०	,, ,, ,, ४ था	६	८०००

नं०	पुस्तक का नाम	आवृत्ति	संख्या
११	,, ,, ,, ५ वाँ	१	१०००
१२	दादा साहिब की पूजा	१	२०००
१३	चर्चा का पब्लिक नोटिस	१	१०००
१४	देव गुरु वन्दन माला	२	७०००
१५	लिंग निर्णय बहत्तरी	३	३०००
१६	सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली	१	१०००
१७	बत्तीस सूत्र दर्पण	१	५००
१८	जैन नियमावली	३	४०००
१९	जैन मन्दिरों की आशातना	२	२०००
२०	डङ्का पर चोट	१	५००
२१	आगम निर्णय	१	१०००
२२	चैत्यवन्दनादि	२	२०००
२३	जिन स्तुति	२	२०००
२४	सुबोध नियमावली	३	८०००
२५	जैन दीक्षा	२	२०००
२६	प्रभुपूजा विधि	२	२०००
२७	व्याख्या विलास भाग १	१	१०००
२८	,, ,, भाग २	१	१०००
२९	,, ,, भाग ३	१	१०००
३०	,, ,, भाग ४	१	१०००
३१	शीघ्रबोध भाग १ ला	३	३०००
३१	,, ,, २ जा	२	२०००
३३	,, ,, ३ जा	२	२० ०
३४	,, ,, ४ था	२	२०००
३५	,, ,, ५ वाँ	२	२०००
३६	,, ,, ६ ठा	२	२०००
३७	,, ,, ७ वाँ	२	२०:०
३८	,, ,, ८ वाँ	२	२०००
३९	,, ,, ९ वाँ	२	२०००
४०	,, ,, १० वाँ	२	२०००
४१	,, ,, ११ वाँ	१	१०००
४२	,, ,, १२ वाँ	१	१०००
४३	,, ,, १३ वाँ	१	१०००

नं०	पुस्तक का नाम	आवृत्ति	संख्या
४४	,, ,, १४ वाँ	१	१०००
४५	,, ,, १५ वाँ	१	१०००
४६	,, ,, १६ वाँ	१	१०००
४७	,, ,, १७ वाँ	१	१०००
४८	,, ,, १८ वाँ	१	१०००
४९	,, ,, १९ वाँ	१	१०००
५०	,, ,, २० वाँ	१	१०००
५१	,, ,, २१ वाँ	१	१०००
५२	,, ,, २२ वाँ	१	१०००
५३	,, ,, २३ वाँ	१	१०००
५४	,, ,, २४ वाँ	१	१०००
५५	,, ,, २५ वाँ	१	१०००
५६	सुखविपाक सूत्र मूल पाठ	१	१०००
५७	दशवैकालिक सूत्र ,, ,,	१	१०००
५८	नंदीसूत्र ,, ,,	१	१०००
५९	कागद हुंडी पेठ परमेठ } गु०	२	५०००
६०	और मेझरनामो } हि०	२	२०००
६१	तीन निर्नामा लेखों का उत्तर	१	२०००
६२	ओसियाँ ज्ञान भंडार की लिस्ट	१	१०००
६३	तीर्थमाला स्तवन	२	२०००
६४	अमे साधु शा माटे थया ?	१	१०००
६५	विनती शतक	१	१०००
६६	द्रव्यानुयोग प्रथम प्रवेशिका	२	७०००
६७	द्रव्यानुयोग द्वितीय प्रवेशिका	१	५०००
६८	आनंदघन चौवीसी	१	१०००
६९	कक्का बत्तीसी सार्थ	१	१०००
७०	स्वाध्याय गहूली सं०	३	५०००
७१	राईदेवसि प्रतिक्रमण	१	१०००
७२	उपकेशगच्छ लघु पट्टा०	१	१०००
७३	वर्णमाला	२	२०००
७४	तीन चतुर्मास का दिग्दर्शन	१	१०००
७५	हितशिक्षा प्रश्नोत्तर	१	१०००
७६	विवाद चूलिका की समालोचना	२	२०००

नं०	पुस्तक का नाम	आवृत्ति	संख्या
७७	पुस्तकों का सूचीपत्र	७	२५०००
७८	महासती सुरसुन्दरी	१	१०००
७९	विधि-सहित पंच प्रतिक्रमण	१	५०००
८०	मुनिनाममाला	२	२०००
८१	कर्मग्रन्थ हिन्दी अनु०	१	१०००
८२	दानवीर जगडू	१	१०००
८३	शुभमुहूर्त शुकनावली	३	५०००
८४	जैनजाति निर्णय प्रथमाङ्क	१	१०००
८५	जैनजाति निर्णय द्वितीयाङ्क	१	१०००
८६	पंच प्रतिक्रमण मूलसूत्र	२	२०००
८७	प्राचीन छन्द गु० भाग १ ला	१	१०००
८८	,, भाग २ जा	१	१०००
८९	,, भाग ३ जा	१	१०००
९०	,, भाग ४ था	१	१०००
९१	,, भाग ५ वाँ	१	१०००
९२	,, भाग ६ ठा	१	१०००
९३	धर्मवीर जिनदत्त	१	१०००
९४	जैनजातियों का इतिहास	१	१०००
९५	ओसवाल० समय नि०	१	१०००
९६	मुखवस्त्रिका नि० नि०	१	१०००
९७	निराकरण निरीक्षण	१	१०००
९८	दो विद्यार्थियों का संवाद	१	२०००
९९	धूर्त पंचों की क्रान्तिकारी पूजा	२	६०००
१००	उपकेशवंश कविता	१	१०००
१०१	नयचक्रसार मूल के साथ हिन्दी	१	१०००
१०२	जैनसमाज की वर्तमान दशा	१	१०००
१०३	समवसरण प्रकरण	१	१०००
१०४	सादड़ी के तपा-लुंका	१	१०००
५	बाली के फैसले	१	१०००
१०६	जैनजाति महोदय प्र० १ ला	१	१०००
१०७	,, ,, ,, २ जा	१	१०००
१०८	,, ,, ,, ३ जा	१	१०००
१०९	,, ,, ,, ४ था	१	१०००
११०	,, ,, ,, ५ वाँ	१	१०००
१११	,, ,, ,, ६ ठा	१	१०००
११२	जिनगुणभक्ति बहार भाग १	१	१०००
११३	,, ,, भाग २	१	१०००
११४	कायापुर पट्टन का पत्र	१	१००००
११५	जड़ चैतन संवाद	२	२०००
११६	बाला के मन्दिर की प्रतिष्ठा	१	१०००
११७	तत्वार्थ सूत्र सार्थ	२	२०००
११८	शान्तिधारापाठ	२	१५००
११९	आनन्दघन पद मुक्तावली	१	२०००
१२०	कापरड़ा तीर्थ स्तवनावली	१	१०००
१२१	नंदीश्वर द्वीप की रचना	१	५००
१२२	दशवैकालिक के ४ अ०	१	१०००
१२३	वीर पार्श्व निशानी	२	३०००
१२४	व्यवहार समकित के ६७ बोल	१	१५००
१२५	तत्वार्थ सूत्र मूल	१	१०००
१२६	जैनतत्त्व सार सं० भा० १	१	१५००
१२७	,, ,, ,, ,, २	१	१०००
१२८	नित्यस्मरण पाठमाला	२	२०००
१२९	कर्मवीर समरसिंह	१	१०००
१३०	लघुपाठमाला	१	१०००
१३१	जगता राष्ट्र	१	१०००
१३२	कापरड़ा तीर्थ का इतिहास	२	२०००
१३३	भाषण सं० भाग १	१	१०००
१३४	,, ,, ,, २	१	१०००
१३५	नौ पदानुपूर्वी	२	२०००
१३६	मुनि ज्ञानसुन्दर	१	१०००
१३७	समीक्षा की परीक्षा	१	१०००
१३८	अर्द्ध भारत की समीक्षा	१	१०००
१३९	पाली में धर्म का प्रभाव	१	५००
१४०	गुणानुराग कुलक	१	१०००
१४१	शुभगीत भाग १ ला	२	६०००
१४२	,, ,, २ जा	१	२०००

नं०	पुस्तक का नाम	आवृत्ति	संख्या
१४३	,, ,, ३ जा	१	१०००
१४४	विधि सहित राई देवासि प्र०	१	१०००
१४५	जैसलमेर का संघ	१	५००
१४६	आदर्श शिक्षा	१	१०००
१४७	संघ का सिलोका	२	१५००
१४८	स्नात्र पूजा (आत्मा०)	१	१०००
१४९	जैन मन्दिरों के पुजारी	१	१५००
१५०	वीर स्तवना	१	१०००
१५१	आ० रत्न० जयन्ति महोत्सव	१	१०००
१५२	शंकाओं का समाधान	१	१०००
१५३	हाँ मूर्त्तिपूजा शास्त्रोक्त है	१	१०००
१५४	जिनेन्द्र पूजा संग्रह	१	१२५०
१५५	लेख संग्रह भाग १ ला	१	१०००
१५६	,, ,, २ जा	१	१०००
१५७	,, ,, ३ जा	१	१०००
१५८	,, ,, ४ था	१	१०००
१५९	,, ,, ५ वाँ	१	१०००
१६०	मूर्त्तिपूजा का प्रा० इति०	१	१५००
१६१	मू० पू० प्रश्नोत्तर	१	१०००
१६२	क्या तीर्थंकरों भी मुहपत्ती०	१	१५००
१६३	श्रीमान् लौंकाशाह	१	१०००
१६४	ऐतिहासिक नोंध कि० ऐ०	१	१०००
१६५	कडुआमत की पट्टावली	१	१०००
१६६	वंगचूलिका सूत्र	२	२०००
१६७	नाभा नरेश का फैसला	१	१५००
१६८	महादेव पार्वती संवाद	१	५००
१६९	सुगुरु वन्दन विधि	२	२०००
१७०	तस्कर वृति का नमूना	१	१०००
१७१	गुरुगुण माला	१	१०००
१७२	संस्था की रिपोर्ट १-२	२	१०००
१७३	प्रमाणवाद	१	१०००
१७४	पंचों की बड़ी पूजा	१	२०००
१७५	महादेव स्तोत्र	१	५००
१७६	प्रा० जै० इ० सं० भाग १ ला	१	१०००
१७७	,, ,, भाग २ जा	१	१०००
१७८	,, ,, भाग ३ जा	१	१०००
१७९	,, ,, भाग ४ था	१	१०००
१८०	,, ,, भाग ५ वाँ	१	१०००
१८१	,, ,, भाग ६ ठा	१	१०००
१८२	,, ,, ,, ,, भाग ७ वाँ	१	१०००
१८३	,, ,, ,, ,, भाग ८ वाँ	१	१०००
१८४	,, ,, ,, ,, भाग ९ वाँ	१	१०००
१८५	,, ,, ,, ,, भाग १० वाँ	१	५००
१८६	,, ,, ,, ,, भाग ११ वाँ	१	५००
१८७	,, ,, ,, ,, भाग १२ वाँ	१	१०००
१८८	,, ,, ,, ,, भाग १३ वाँ	१	१०००
१८९	,, ,, ,, ,, भाग १४ वाँ	१	१०००
१९०	,, ,, ,, ,, भाग १५ वाँ	१	१०००
१९१	,, ,, ,, ,, भाग १६ वाँ	१	१०००
१९२	,, ,, ,, ,, भाग १७ वाँ	१	५००
१९३	,, ,, ,, ,, भाग १८ वाँ	१	५००
१९४	,, ,, ,, ,, भाग १९ वाँ	१	१०००
१९५	,, ,, ,, ,, भाग २० वाँ	१	१०००
१९६	,, ,, ,, ,, भाग २१ वाँ	१	१०००
१९७	,, ,, ,, ,, भाग २२ वाँ	१	१०००
१९८	,, ,, ,, ,, भाग २३ वाँ	१	१०००
१९९	,, ,, ,, ,, भाग २४ वाँ	१	१०००
२००	,, ,, ,, ,, भाग २५ वाँ	१	१०००
२०१	उपकेश गच्छाचार्यों की पूजा	१	१०००

उपरोक्त संस्था द्वारा २०१ पुष्प प्रकाशित हो से यह कार्य यहाँ ही समाप्त हो गया—अब जो पुष्प प्रकाशित होते हैं उसपर श्रीज्ञान-गुण पुष्पमाला के नंबर एक से लगाये जाते हैं जिसके आज तक ३१ नंबर आगये हैं तथा भविष्य में भी क्रमशः पुष्प नंबर लगाया जायगा।

श्री भगवतीजीसूत्र व्याख्यान में वाचा

नं०	संवत्	नगर	महोत्सव करने वाले
१	१९७२	तिवरी	श्री० लुंबकरणजी लोढ़ा
२	१९७३	फलोदी	,, श्रीसंघ
३	१९७४	जोधपुर	,, दीपचन्दजी पारख
४	१९७५	सूरत	,, छोटूभाई झवेरी
५	१९७७	फलोदी	,, वैद्यों का बास
६	१९७९	फलोदी	,, अगरचन्दजी लोढ़ा
७	१९८०	लोहावट	,, छोगमलजी कोचर
८	१९८१	नागोर	,, गुजराती पोलवाले
९	१९८३	पीपाड़	,, लीछमीप्रतापजीमुता
१०	१९८४	बीलाड़ा	,, छोगमलजीकटारिया
११	१९८५	सादड़ी	,, नथमलजी बिदामिया
१२	१९८६	लुनावाँ	,,गुलाबचन्दजीपोरवाल
१३	१९८७	पाली	,,शोभागमलजीजिनांणी
१४	१९८८	जोधपुर	,,जालमचन्दजी वकील
१५	१९९०	फलोदी	,,भैंवरचन्दजी लौंकड़
१६	१९९१	शिवगंज	,,फोजमलजी पोरवाड़
१७	१९९४	सोजत	,,सम्पतराजजी वकील
१८	१९९५	ब्यावर	,,गणेसमलजी कोठारी
१९	१९९६	अजमेर	,,हरिचंदजी घाड़ीवाल
२०	१९९७	ब्यावर	,,पूर्व से चलता
२१	१९९८	फलोदी	,, ,, ,,
२२	१९९९	पीपलिया	,, सहसमलजी मुता

वृहद् शान्ति स्नात्र पूजा

१	१९७२	ओसियों	महावीर मन्दिर में
२	१९७३	फलोदी	गौडी पार्श्वनाथ
३	१९७३	पाली	नौलखा पार्श्वनाथ
४	१९७४	भानपुरा	पब्लिक में
५	१९७४	सूरत	चिन्तामणि पार्श्व
६	१९७४	सूरत	सीमंधर स्वामी
७	१९७४	सूरत	महावीर मन्दिर
८	१९७४	सूरत	पार्श्वनाथ मन्दिर
९	१९७५	जघड़िया	आदीश्वर मन्दिर
१०	१९७६	फलोदी	सराय समवसरण
११	१९८०	नागोरी	चोरटाजी के म०
१२	१९७५	बीसलपुर	पार्श्व मन्दिर
१३	१९८५	वाली	समवसरण में
१४	१९८७	पाली	दूसरी वार समव०
१५	१९८७	बाला	पार्श्व-प्रतिष्ठा
१६	१९८८	जोधपुर	मुताजी के मन्दिर
१७	,,	,,	गौड़ी पार्श्वनाथ
१८	,,	,,	शान्तिनाथ
१९	१९८७	नागौर	बड़ा मन्दिर शिखर०
२०	१९८८	बीसलपुर	अजितनाथ मन्दिर
२१	१९८८	पीपाड़	शान्ति० प्रतिष्ठा
२२	१९९४	नागौर	चन्द्रप्रभ० स्टेशन पर
२३	१९९६	अजमेर	महताजी देवकरणजी
२४	,,	,,	संभवनाथ मन्दिर
२५	१९९७	ब्यावर	शान्तिनाथ मन्दिर

जैन बोर्डिंग पाठशालाएं

१	१९७२	ओसियाँतीर्थ	वर्द्धमान जैनबोर्डिंग
२	१९८७	कापरडातीर्थ	स्वयंभूपार्श्वनाथ ,,
३	१९९६	सादड़ी	आत्मानंद जैन ,,
४	१९७३	फलोदी	जैन पाठशाला
५	१९८१	कुंचेरा	जैनज्ञानोदय पाठशाला
६	१९८१	खजवाना	ज्ञानवृद्धि जैनपाठशाला
७	१९८३	बीलाड़ा	जैनपाठशाला
८	१९८१	नागौर	जैनपाठशाला को मदद
९	१९८६	सादड़ी	जैन कन्याशाला
१०	१९८७	पाली	जैन कन्याशाला
११	१९८६	लुनाव	जैन कन्याशाला

श्री ज्ञानभण्डार लायब्रेरी

१	फलोदी	श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला
२	ओसियाँ	रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला ब्रांच
३	ओसियाँ	श्री कक्क क्रान्ति जैनलायब्रेरी
४	लोहावट	श्री सुखसागर ज्ञानप्रचार सभा
५	फलोदी	श्री जैनलायब्रेरी

६	पीपाड़	श्री ज्ञानोदय जैन लायब्रेरी
७	कापरड़ा	श्री पार्श्वनाथ जैनज्ञानभंडार
८	पाली	श्री जैन श्वे० लायब्रेरी
९	वीसलपुर	श्री जैनलायब्रेरी
१०	लुनावा	श्री जैन ज्ञानलायब्रेरी
११	सायरा	श्री जन श्वे० ज्ञानलायब्रेरी

सेवा मंडल

१	१९७३	फलोदी	जैन मित्र मण्डल
२	१९७९	लोहावट	जैन नवयुवक मंडल
३	१९८०	नागोर	वीरमंडल
४	१९८१	कुचेरा	महावीर मित्रमण्डल
५	१९८१	खजवाना	जैन मित्र मण्डल
६	१९८१	रूण	ज्ञानप्रकाश मण्डल
७	१९८२	खारिया	जैन श्वे० मित्रमण्डल
८	१९८३	बीलाड़ा	ज्ञान प्रकाश मित्र मण्डल
९	११८३	पीपाड़	जैनमित्र मण्डल
१०	१९८३	कापरड़े	जैनसेवा मण्डल
११	१९८४	पीपाड़	जैन बालमित्र मण्डल
१२	१९८५	लुनावा	जैन बाल मण्डल
१३	१९८४	पीपाड़	जैन श्वे० संघ सभा
१४	१९८२	फलोदी	मारवाड़ तीर्थ प्रबंधकारणी

जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा एवं मदद

नं०	१९७२	ओसिया	जीर्णोद्धार में मदद के लिये उपदेश
१	१९८२	फलोदी	तीर्थ का सुधार के लिये चतुर्मास किया
२	१९८१	नागोर	मन्दिरों पर शिखर के लिये उपदेश
३	१९८८	जोधपुर	मन्दिरों पर ध्वज दंड व प्रतिष्ठाएं
४	१९८८	जोधपुर	भैरूबाग की देव भूमि मन्दिर के लिये अन्दोलन
५	१९८३	कापरड़ा	जीर्णोद्धार के लिए उपदेश
६	१९८८	जोधपुर	गोड़ीपार्श्व शान्तिनाथ प्रतिष्ठा का उप०
७	१९८७	बाला	पार्श्वनाथ के मन्दिर का जीर्णो० प्रति० का उ.
८	१९८८	चोपड़ा	जीर्णोद्वार मन्दिर की प्रतिष्टा का उप०
९	१९८८	पालासणी	मन्दिर का सुधारध्वजा दंड
१०	१९८८	वीसलपुर	मन्दिर की आशातना मिटाने का उप०
११	१९८७	वीसलपुर	गोढवाड़ के मन्दिर के लिये उप०
१२	१९८४	बगड़ी	मन्दिर की प्रति० में वासक्षेप दिया
१३	१९९०	फलोदी	धर्मशाला के नये होल का उपदेश
१४	१९९४	सोजत	उपाश्रय में प्रभु मूर्त्ति की प्रतिष्टा
१५	१९८८	पीपाड	शान्तिनाथ के मन्दिर
१६	१९९७		की पुनः प्रतिष्टा
१७	१९९९	चंडावल	रिषभवाडी में पादुकाएं
		व्यावरग्राम	मन्दिर की प्रतिष्टा
१८	१९९९	व्यावर	शान्तिनाथ की मूर्ति वास०

तीर्थयात्रा

इसके अलावा आपका बहुत समय तीर्थयात्रा में भी व्यतीत हुआ था

१ सं० १९७२ में श्री जैसलमेर लोद्रावजी की यात्राकी वहां का प्राचीन ज्ञानभंडार का अवलोकन किया

२ सं० १९७४ गोढवाड़ के पांचों तीर्थों की यात्रा की।

३ सं० १९७४ श्री केसरियानाथजी की यात्रा भी उत्साह से की।

४ सं० १९७४ श्री ईडर के किल्ला के जिनालय की यात्रा की।

५ सं० १९७४ नरवाड़ तथा अहमदाबाद की यात्रा की।
६ सं० १९७५ श्री जघड़ियातीर्थ की यात्रा की।
७ सं० १९७५ स्तम्भनतीर्थ की यात्रा की।
८ सं० १९७५ तीर्थाधिराज श्री शत्रुञ्जयादि की यात्रा की।
९ सं० १९७६ तीर्थ श्री कुंभारियाजी की विकट यात्रा की।
१० सं० १९७६ आबुदाचल देलवाड़ा अचलगढ़ की यात्रा की।
११ सं० १९७६ सिरोही आदि तीर्थों की यात्रा बड़े ही आनन्द से की।
१२ सं० १९७६ कोरंटा तथा ओसियों तीर्थ की यात्रा की।
१३ सं० १९७८ श्री जैसलमेर लोद्रवाजी की संघ के साथ यात्रा की।
१४ सं० १९८१ श्री फलोदी पार्श्वनाथ की यात्रा की।
१५ सं० १९८३ श्री कापरडाजी तीर्थ की यात्रा की।
१६ सं० १९८९ श्री जैसलमेर लोद्रवाजी की तीसरी वार श्री पांचूलालजी वैदमहता के निकाले हुए विराट् संघ के साथ यात्रा की और भी मुंडावा सोमेश्वर वगैरह तीर्थों की यात्रायें की।

स्थानकवासियों से आये हुये साधुओं को दीक्षा

१ सं० १९७३ स्थानकवासी साधु रूपचन्दजी को फलोदी में दीक्षा दे रूपसुन्दर नाम रखा।
२ सं० १९७३ स्था० साधु धूलचन्द को फलोदी में दीक्षा दे धर्मसुन्दर नाम रखा।
३ सं० १९८२ स्था० साधु मोतीलाल की फलोदी तीर्थ पर मुहपत्ती का डोरा तुड़ाया।
४ सं० १९८३ स्था० गंभीरमलजी को बीलाड़ा में दीक्षा दे गुणसुन्दर नाम रखा।
५ सं० १९८५ स्था० जीवणमल को बीसलपुर में दीक्षा दे जिनसुन्दर नाम रखा।
६ सं० १९८८ तेरहपन्थी मोतीलाल को दीक्षा दे क्षमासुन्दर नाम रखा।
७-८-९ इनके अलावा खंचन्द, जोधपुर और नागौर इन तीनों स्थानों में तीन गृहस्थ महिलाओं को दीक्षा दी तथा अनेक गृहस्थों को मिथ्या श्रद्धा से मुक्त कर मूर्तिपूजक श्रद्धा सम्पन्न श्रावक बनाये और विशेष में आपने २८ वर्ष तक भ्रमण कर अनेक चल चित्त वालों को धर्म में स्थिर किये यद्यपि योग्य साधुओं के अभाव आपका दूर २ प्रान्तों में विहार नहीं हो सका तथापि आपके कर कमलों से लिखी हुई पुस्तक का प्रचार प्रायः भारत के कौने कौने में होने से धर्म की जागृति हुई इतना ही क्यों पर जहां २ धार्मिक विषय का शास्त्रार्थ हुआ वहां वहां आपने जैनधर्म की विजय विजयंति फहरा दी थी उदाहरण के तौर पर देखिये।

१—देवगढ़ में तेरहपंथियों के साथ
२—फालु में दिगम्बरों के साथ
३—फालु में तेरहपन्थियों के साथ
४—गंगापुर में " "
५—ओसियों में स्था० श्रावकों के साथ
६—फलोदी में स्था० साधुओं के साथ
७—लोहावट में स्था० साधु हीरालालजी के साथ
८—जोधपुर में स्था० फूलचन्दजी के साथ
९—बीलाड़ा में स्था० सिरेमलजी के साथ
१०—सादड़ी में स्था० बख्तावरमलजी के साथ

अन्त में हम शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि आप चिरकाल तक गजहस्ती की भांति विहार कर हमारे जैसे भूले भटके जीवों को सत्य पंथ के पथिक बनावे।

आप श्री के चरणोपासक
केसरीचन्द चोरड़िया

जैनधर्म की प्राचीनता

जैनधर्म एक अति प्राचीन स्वतन्त्र विश्वव्यापि आत्मकल्याण करने में मुख्य कारण और अनादि-काल से अविच्छन्न रूप से चला आया उच्चकोटि का पवित्र सर्वश्रेष्ठ धर्म है इसकी आदि का पता लगाना बुद्धि के बाहर की बात है। फिर भी काल एवं क्षेत्र की अपेक्षा जैनधर्म सादि भी है जैनधर्म की नींव स्याद्वाद एवं विज्ञान के आधार पर रखी गई है इसका आत्मवाद अध्यात्मवाद परमाणुवाद सृष्टिवाद और कर्म फिलासोफी के कहने वाले साधारण व्यक्ति नहीं पर सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतरागदेव थे जैनधर्म जितना विशाल है उतना ही गंभीर भी है। जैनधर्म एक समुद्र है इसके थोड़े थोड़े छांटे वड़े हैं जिससे इतर लोगों ने अपनी अपनी दूकानें लगा रखी हैं अर्थात् अन्य धर्म वालों ने जो कुछ शिक्षा पाई है तो जैनधर्म से ही पाई है।

वर्तमान समय ऐतिहासिक युग कहलाता है आधुनिक धुरंधर विद्वानों में इतिहास का आसन सर्वोपरि माना गया है इतिहास ही अधिक विश्वास का पात्र एवं उच्च आदर्श है जिसमें भी जैनधर्म के विषय तो इतिहास ने और भी विशेष प्रकाश डाला है कारण गत एक शताब्दी पूर्व जैनधर्म के विषय में जनता में अनेक प्रकार भ्रान्तियें फैली हुई थीं जैसे कई कहते थे कि जैनधर्म वैदिकधर्म की एक शाखा है कई ने इसे बोद्धधर्म की शाखा मानली थी कई एकों ने जैनधर्म महावीर ने चलाया तो कई ने पार्श्वनाथ ने ही जैनधर्म प्रचलित किया तब पुराणों की बिना सिर पैर की गाथायें तो और भी अजब ढंग की ही थीं इतना ही क्यों पर कई एक ने तो यहाँ तक कल्पना करली थी कि गोरखनाथ के शिष्यों ने ही जैनधर्म चलाया था इत्यादि जिसके दिल में आया जैनधर्म के विषय घसीट मारा। पर जब सहस्र किरण युक्त सूर्यरूपी इतिहास का सर्वत्र प्रकाश हुआ तब उन भ्रमित मन वालों का अज्ञान अन्धकार दूर हुआ और वे लोग जैनधर्म को अति प्राचीन एवं स्वतन्त्र धर्म मानने लगे फिर भी भारतवर्ष में ऐसे मनुष्यों का सर्वत्र अभाव नही हुआ ही जो पुराणी लकीर के फकीर बने हुए आज वीसवीं शताब्दी में भी पन्द्रहवीं शताब्दी के स्वप्न देख रहे हैं।

पाठकों को एक बात पर अवश्य लक्ष देना चाहिये और वह यह है कि किसी भी धर्म पर कुछ लिखना चाहे तो पहिले उस धर्म के साहित्य का अवश्य अध्ययन करना चाहिये। बिना साहित्य के देखे किसी धर्म के विषय कुछ लिख देना केवल हांसी का ही पात्र बनना पड़ता है जैसे स्वामि शंकराचार्य एवं स्वामि दयानन्द सरस्वती ने जैनधर्म के विषय में लिखा है पर आज उन्हीं के अनुयायी कहते हैं कि स्वामीजी जैनधर्म के सिद्धान्तों को ठीक समझ ही नहीं पाये थे। जब उक्त विद्वानों का भी यह हाल है तब साधारण व्यक्तियों के लिये तो कहना ही क्या है वर्तमान में भी हम ऐसे लेखकों को देख रहे हैं कि दूसरे धर्म के साहित्य को स्पर्श करने मात्र से महापाप मानने वाले उन धर्मों के लिये लिखने के लिये उत्साही बन जाते हैं आखिरकार नतीजा वही होता है जो ऐसे कामों में होना चाहिये। अतः मेरी यही प्रार्थना है कि कोई भी व्यति किसी भी धर्म के लिये लेखनी हाथ में ले उसके पूर्व उस धर्म के मौलिक सिद्धान्तों का ठीक अध्ययन करले।

जैनधर्म के शास्त्रों के आधार पर जैनधर्म अति प्राचीन है। इतना ही क्यों पर हिन्दू धर्म के प्रमाणों से भी जैनधर्म इतना ही प्राचीन प्रमाणित होता है कारण हिन्दू धर्म में सब से प्राचीन ग्रन्थ वेदों को माना है यहां तक कि वेद ईश्वर कथित भी माने जाते हैं उन्हीं वेदों के अन्दर जैनधर्म का उल्लेख किया हुआ मिलता है इससे सिद्ध हो जाता है कि वेदों के पूर्व जैनधर्म विद्यमान था उन वेदों और पुराणों के पुष्कल प्रमाण मैंने इसी ग्रन्थ के पृ   पर उद्धृत किया है अतः यह पीष्टपेषण करने की आवश्यकता नहीं समझी जाती है।

स्व-परमत के शास्त्रों से जैनधर्म की प्राचीनता प्रमाणित हो गई पर वर्तमान इतिहास जैनधर्म के लिये क्या कहता है ? पाठकों की जानकारी के लिये ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर जैनधर्म की प्राचीनता कहां तक सिद्ध होती है इस पर विचार किया जाता है।

वर्तमान युग में इतिहास की शोध खोज से विद्वानों ने इ० सं० पूर्व नौसौ से एक हजार वर्ष से भारत का इतिहास प्रारम्भ होना सिद्ध किया है तब जैनधर्म के अन्तिम तीर्थङ्कर भ० महावीर और आपके पुरागामी भ० पार्श्वनाथ को इतिहास पुरुष होना स्वीकार किया है जिनका समय इ० सं० पू० नौसौ वर्ष के आस पास का है। इनके अलावा हाल ही में प्रभासपट्टन में भूमि खुदाई का काम करते एक ताम्रपत्र भूगर्भ से मिला है। जिसमें लिखा है कि—

" रेवा नगर के राज्य का स्वामि सु०ं०० जाति के देव 'नेबुशदनेझर' हुए वे यादूराज (श्री कृष्ण) के स्थान द्वारका आया उसने एक मन्दिर सर्व"देव नेमि जो स्वर्ग सदृश रेवत (गिरनार) पर्वत के देव हैं उसने मन्दिर बनाकर सदैव के लिये अर्पण किया।

"जैनपत्र वर्ष ३५ अंक ९ ता: ३-१-३७ से"

यद्यपि इस ताम्रपत्र का 'नेबुशदनेझर' राजा का समय इ. सं.पू. छटी शताब्दी का बतलाया जाता है इस विषय का एक विस्तृत लेख महावीर विद्यालय का रूप्पमहोत्सव अंक में प्रकाशित हुआ है जिससे पाया जाता है कि इ० सं० पू० छटी शताब्दी में गिरनार पर्वत पर भ० नेमिनाथ का मन्दिर विद्यमान था और वे नेमिनाथ जैनों के बावीसवें तीर्थङ्कर थे जो श्रीकृष्ण और अर्जुन के समकालीन हुए थे। हाँ किसी जमाना में भ० महावीर और पार्श्वनाथ को विद्वान लोगों ने कल्पनिक व्यक्ति कह कर इतिहास में स्थान नहीं दिया था पर जब शोध खोज ने उक्त दोनों महापुरुषों को ऐतिहासिक पुरुष होना प्रमाणित कर दिया इसी प्रकार आज भ० नेमिनाथ को ऐतिहासिक पुरुष नहीं भी माना जाय पर भविष्य में ठीक खोज होने पर वे ऐतिहासिक पुरुषों में आसन प्राप्त कर ही लेगा। और इसके कई कारण भी हैं जैसे पंजाब और सिन्ध की सरहद भूमि के अन्दर से 'हरप्पा तथपा मोहनजाडरो' नामके दो विशाल नगर निकले हैं, उन प्राचीन नगरों से ऐसे २ पदार्थ उपलब्ध हुए हैं कि विद्वान उनको पांच से दश हजार वर्ष जितने प्राचीन बतलाते हैं। जब जैनग्रन्थों में सिन्ध प्रान्त की राजधानी वीतभय पट्टन का उल्लेख मिलता है वहाँ पर राजा उदाइ राज करता था राजा उदाइ दीक्षित होने के बाद देव का कोप होने से धूल की वृष्टि होकर पट्टन दट्टन होगई थी शायद वही नगर भूमि से निकला हो खैर ज्यों ज्यों पुरात्व की शोध खोज होती जायगी त्यों २ इतिहास पर अपूर्व प्रकाश पड़ता जायगा।

जैनधर्म की प्राचीनताके विषय में जिन जिन पुरात्व विशारदों को अपनी शोध खोज में जैनधर्म की प्राचीनता के प्रमाण मिले हैं उन्होंने बिना किसी पक्षपात के जनता के सामने रख दिये हैं जिनके अन्दर से कतिपय प्रमाण यहाँ पर उद्धृत कर दिये जाते हैं।

(१) "पार्श्व ए ऐतिहासिक पुरुष हता ते वात तो बधी रीते संभवित लागे छे. केशी के जे महावीरना समयमां पार्श्वना संप्रदायनो एक नेता होय तेम देखाय छे. (हरमन जेकोबी).

(२) सबसे पहिले इस भारतवर्ष में ऋषभदेव नाम के महर्षि उत्पन्न हुए, वे दयावान् भद्रपरिणामी, पहिले तीर्थंकर हुए, जिन्होंने मिथ्यात्व अवस्था को देखकर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग् चारित्र रुपी मोक्षशास्त्र का उपदेश किया, बस यह ही जिनदर्शन इस कल्प में हुआ, इसके पश्चात् अजितनाथ से लेकर महावीर तक तेईस तीर्थंकर अपने अपने समय में अज्ञानी जीवों का मोह अंधकार नाश करते रहे, "

(श्रीयुत तुकाराम शर्मा लट्टु बी. ए. पी. एच. डी. एम. आर. ए. एस. एम. ए. एस. बी. एम. जी. ओ. एस. प्रोफेसर क्विन्स कॉलेज बनारस.)

(३) जैसे उन्हें आदिकाल में—खाने, पीने, न्याय, नीति और कानून का ज्ञान मिला, वैसे ही अध्यात्म शास्त्र का ज्ञान भी जीवों ने पाया। और वे अध्यात्म शास्त्र में सब है, जैसे सांख्य योगादि दर्शन और जैनादि दर्शन। तब तो सज्जनो! आप अवश्य जान गये होंगे कि—जैनमत तब से प्रचलित हुआ है जब से संसार में सृष्टि का आरम्भ हुआ।" (सर्वतन्त्रस्वतन्त्र सत्संप्रदायाचार्य स्वामि राममिश्र शास्त्री).

(४) वेदों में संन्यास धर्म का नाम-निशान भी नहीं है, उस वक्त में संसार छोड़ कर वन जा कर तपस्या करने की रीति वैदिक ऋषि नहीं जानते थे, वैदिक धर्म में संन्यास आश्रम की प्रवृत्ति ब्राह्मण काल में हुई है कि जो समय करीब ३००० तीन हजार वर्ष जितना पुराणा है, यही राय श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त अपने 'भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता के इतिहास' में लिखते हैं जो नीचे मुजब है—"तब तक दूसरे प्रकार के ग्रन्थों की रचना हुई जो 'ब्राह्मण' नाम से पुकारे जाते है। इन ग्रंथों में यज्ञों की विधि लिखी है। यह निस्सार और विस्तीर्ण रचना सर्व साधारण के क्षीण शक्ति होने और ब्राह्मणों के स्वमताभिमान का परिचय देती है। संसार छोड कर वनों में जाने की प्रथा जो पहिले नाम को भी नहीं थी, चल पड़ी, और ब्राह्मणों के अंतिम भाग अर्थात् आरण्यक में बन की विधिक्रियाओं का ही वर्णन है।" (भा० व० प्रा० स० इ. भूमिका) (तात्पर्य यह कि यह शिक्षा जैनों से ही पाई थी)

(५) "यज्ञ यागादिको में पशुओं का वध होकर 'यज्ञार्थ पशुहिंसा' आज कल नहीं होती है जैनधर्म ने यही एक बड़ी भारी छाप ब्राह्मण धर्म पर मारी है, पूर्व काल में यज्ञ के लिये असंख्य पशुओं की हिंसा होती थी इसके प्रमाण मेघदूत काव्य तथा और भी अनेक ग्रन्थों से मिलते हैं, रतिदेव (रंतिदेव) नामक राजाने यज्ञ किया था उसमें इतना प्रचुर पशुवध हुआ था कि नदी का जल खून से रक्तवर्ण हो गया था उसी समय से उस नदी का नाम रक्तावती 'चर्मवती' प्रसिद्ध हुआ, पशुवध से स्वर्ग मिलता है इस विषय में उक्त कथा साक्षी है, परंतु इस घोर हिंसा का ब्राह्मण धर्म से विदाई ले जाने का श्रेयः जैन के हिस्से में है।" (ता० ३०-९-१९०४ के दिन जैन श्वेताम्बर कोन्फरन्स के तीसरे अधिवेशन में बडोदे में दिये हुए लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के भाषण में से)

(६) " बुद्धना धर्मे वेदमार्गनो ज इन्कार कार्यो हतो, तेने अहिंसानो आग्रह न हतो, ए महादयारूप, एवं प्रेमरूप धर्म तो जैनोनो ज थयो, आखा हिन्दुस्थानमांथी पशुयज्ञ निकली गयो छे, X + X" (सिद्धान्त सार में प्रो० मणिलाल नभुभाई)

(७) हिन्दु, ईसाई, मुसलमान वगैरह ईश्वर, गौड, खुदा वगैरह नामों से एक असाधारण और सर्वविल- शक्तिशाली तत्व की कल्पना करते हैं और उसे सर्व सृष्टि का कर्ता हर्ता और नियन्ता मानते हैं।

(८) हिन्दुस्थान में यह ईश्वरविषयक मान्यता वैदिक युग के अन्त में (वि० पू० १४५६ के लगभग) हुई तब यूरोप में दार्शनिक तत्ववेत्ता विद्वान् एनेक्सागोरसने (वि० पू० ४४४-३५४) पहले ले ईश्वर को स्थापन किया। इससे यह बात तो निश्चित है कि भगवान् महावीर और पार्श्वनाथ के समय भारतवर्ष में ईश्वरविषयक उपर्युक्त मान्यता चिर प्रचलित हो चुकी थी तब भी जैन दर्शन में इसका स्वीकार नहीं हुआ है, इससे यह बात पाई जाती है कि जैनदर्शन के तत्व ईश्वरीय मान्यता के होने के पहिले ही निश्चित हो चुके थे।

(९) " महाराज ! अहिंयां एक निगंठ चारे दिशाना नियमथी सुरक्षित छे. (चातुयामसंवरसंवुतो) हे महाराज, केवी रीते निगंठ चारे दिशाना संवरथी रक्षित छे ? महाराज आ निगंठ सघळुं (थंडु) पाणी वापरता नथी. सर्व दुष्ट कर्म करता नथी. अने सघला दुष्कर्मोंना विरमन बडे ते सर्व पापोथी मुक्त छे. अने सर्व प्रकारना दुष्कर्मोंथी सघलां पापकर्मोथी निवृत्ति अनुभवे छे. आ प्रमाणे हे महाराज ! निगंठ चारे दिशान संवरथी संवृत छे, अने महाराज ! आ प्रमाणे संवृत होवाथी ते निगंठ नातपुत्तनो आत्मा मोटी योग्यतावालो छे. संयत अने सुस्थित छे." (दीर्घनिकाय—सामञ्ञफलसुत्तकी सुमंगलविलासीनी टीकाका अनुवाद, हरमन जेकोबीकी जैनसूत्रों की प्रस्तावना) ।

(१०) " पार्श्वनाथजी जैनधर्मके आदि प्रचारक नहीं थे. परंतु इसका प्रथम प्रचार ऋषभदेवजीने किया था, इसकी पुष्टिके प्रमाणोंका अभाव नहीं है। बौद्धलोग महावीरजीको निग्रन्थोंका (जैनियोंका) नायक मात्र कहते है स्थापक नहीं कहते हैं." ।

(श्रीयुत वरदाकांत मुखोपाध्याय एम्. ए. के बंगला लेखका अनुवादित अंश.) ।

(११) भारतेंदु बाबु हरिश्चंद्रने इतिहाससमुच्चयांतर्गत काश्मीरकी राजवंशावलीमें लिखा है कि "काश्मीरके राजवंश में ४७वां अशोक राजा हुआ, इसने ६२ वर्ष तक राज्य किया, श्रीनगर इसीने वसाया और जैनमतका प्रचार किया, यह राजा शचीनरका भतीजा था मुसलमानोंने इसको शुकराज वा शकुनिका वेटा लिखा है, इसके वक्तमें श्रीनगरमें छ लाख मनुष्य थे इसका सत्तासमय १३९४ ईसवी सन् पूर्वका है" (देखो इतिहाससमुच्चय पृ. १८) ।

ऊपरकी हकीकत से यह बात सिद्ध होती है कि आज से ३३१९ वर्ष पहले काश्मीर तक जैनधर्म प्रचार पा चुका था और बड़े बड़े राजालोग इस धर्म के माननेवाले थे, इसी इतिहाससमुच्चयमें रामायण का समय वर्णन करते (पृष्ठ ६) बावू हरिश्चंद्र लिखते हैं "अयोधयाके वर्णन में उसकी गलियों में जैन फकीरों का फिरना लिखा है, इससे प्रगट है कि रामायण के बननेके पहले जैनियों का मत था ।"

(१२) डक्टर फूहररने एपीग्राफिका इंडिका वॉल्युम २ पृष्ठ २०६-२०७ में लिखते हैं कि—"जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ ऐतिहासिक पुरुष माने गये हैं, भगवद्गीताके परिशिष्ट में श्रीयुत वरवे स्वीकार करते हैं कि नेमिनाथ श्रीकृष्ण के भाई (Cousin) थे, जब कि जैनियोंके बाईसवें तीर्थंकर कृष्णके समकालीन थे तो शेष इक्कीस तीर्थंकर श्रीकृष्णसे कितने वर्ष पहिले होने चाहिये, यह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं।"

(१३) "जैनधर्म एक ऐसा प्राचीन धर्म है कि जिसकी उत्पत्ति तथा इतिहास का पता लगाना एक बहुत ही दुर्लभ बात है ।" (मि० कन्नुलालजी)

(१४) "निस्संदेह जैनधर्म ही पृथ्वी पर एक सच्चा धर्म है, और यही मनुष्यमात्र का आदि धर्म है। और आदेश्वर को जैनियोंमें बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध पुरुष जैनियों के २४ तीर्थंकरोंमें सबसे पहिले हुए हैं ऐसा कहा है ।" (मि० आवे जे० ए० डवाई मिशनरी)

(१५) "जिनकी सभ्यताआधुनिक है वे जो चाहे सो कहे परंतु मुझे तो इसमें किसी प्रकार का उज्र नहीं है कि जैनदर्शन वेदान्तादि दर्शनों से भी पूर्वका है। तब ही तो भगवान् वेदव्यास महर्षि ब्रह्मसूत्रोंमें कहते हैं नैकस्मिन्संभवात् । सज्जनो ! जब वेदव्यास के ब्रह्मसूत्र-प्रणयनके समय पर जैन मत था तब तो उसके खण्डनार्थ उद्योग किया गया। यदि वह पूर्व में नहीं होता तो वह खंडन कैसा और किसका ?, सज्जनो समय अल्प है और कहना बहुत है इससे थोड़ा कहा जाता है नहीं तो बात यह है कि-वेदो में अनेकान्त-

वाद का मूल मिलता है। + + + सृष्टिकी आदिसे जैनमत प्रचलित है।"

(सर्वतन्त्रस्वतंत्र सत्संप्रदायाचार्य स्वामिराममिश्र शास्त्री.)

(१६) वर्तमान मुस्लीम धर्मकी उत्पत्ति हजरत मुहम्मद साहब पैगंबरसे हुई मानी जाती है. मुसलमानों का अरबी, फारसी, उर्दू वगैरह भाषा का साहित्य मुहम्मद साहेब के वक्तका अथवा इनके पिछले वक्त का है, मुहम्मद साहबको हुए पूरे १४०० वर्ष अभी तक नही हुए हैं, इससे यह बात साफ तौरसे सिद्ध है कि मुसलमानी किताबों में सृष्टिके आदि पुरुष की (आदमबावाकी) जो कथा लिखी गई है वह जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवके चरित्रके साथ संबंध रखती है, क्योंकि जैनशास्त्रोंमें उनको प्रथमतीर्थंकर, आदिनाथ आदिप्रभु, आदिमपुरुष युगादिम वगैरह अनेक नामों से उल्लिखित किया है, 'आदम' शब्द 'आदिम' शब्दका हूबहू रूपान्तर है, जैनोंमें 'आदिम' शब्द आदि तीर्थंकरके अर्थ में दो हजार वर्ष पहिले से प्रयुक्त हुआ दृष्टिमें आता है तब मुसलमानों की धार्मिक किताबों में उसका प्रयोग बहुत पीछे हुआ है. (जैनधर्म की महत्ता)

(१७) रायबहादुर पूर्णेन्दु नारायणसिंह एम० ए० बांकीपुर लिखते हैं—जैनधर्म पढ़ने की मेरी हार्दिक इच्छा है क्योंकि मैं ख्याल करता हूँ कि व्यवहारिकयोग्याभ्यास के लिये यह साहित्य सबसे प्राचीन (Oldest) है यह वेद की रीति रिवाजों से पृथक् है इसमें हिन्दू धर्म से पूर्व की आत्मिक स्वतन्त्रता विद्यमान है, जिसको परम पुरुषों ने अनुभव व प्रकाश किया है यह समय है कि हम इसके विषय में अधिक जानें।

(१८) महामहोपाध्याय पं० गंगानाथझा एम० ए० डी० एल० एल० इलाहाबाद—'जब से मैंने शंकराचार्य द्वारा जैन सिद्धान्त पर खंडन को पढा है, तब से मुझे विश्वास हुआ कि इस सिद्धान्त में बहुत कुछ है जिसको वेदान्त के आचार्य ने नहीं समझा, और जो कुछ अब तक मैं जैन धर्म को जान सका हूँ उससे मेरा यह विश्वास दृढ़ हुआ है कि यदि वह जैन धर्म को उसके असली ग्रन्थों से देखने का कष्ट उठाता तो उनको जैन धर्म से विरोध करने की कोई बात नहीं मिलती।

(१९) श्रीयुत् नैपालचन्द राय अधिष्ठाता ब्रह्मचर्याश्रम शांतिनिकेतन बोलपुर—मुझको जैन तीर्थंकरों की शिक्षा पर अतिशय भक्ति है।

(२०) श्रीयुत् एम० डी० पाण्डे थियोसोफिकल सोसाइटी बनारस मुझे जैन सिद्धान्त का बहुत शौक है, क्योंकि कर्म सिद्धान्त का इसमें सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है।

(२१) इन्डियन रिव्यू के अक्टोबर सन् १९२० ई० के अंक में मद्रास प्रेसीडेन्सी कालेज के फिलोसोफिना प्रोफेसर मि० ए० चक्रवर्ती एम. ए. एल. टी ए. लिखित "जैन फिलोसिफी" नामके आर्टिकल का गुजराती अनुवाद महावीर पत्र के पौष शुक्ला १ संवत २४४८ वीर संवत्के अंकमें छपा है उसमेंसे कुछ वाक्य उद्धृत।

(२२) रिषभदेवजी 'आदिजिन' 'आदीश्वर' भगवानना नामे पण ओलखाय छे ऋग्वेदनां सूक्तोमां तेमनो 'अर्हत तरीके उल्लेख थएलो. छे जैनो तेमने प्रथम तीर्थंकर माने छे. बीजा तीर्थंकरो बधा क्षत्रियोज हता.

(२३) भारत मत दर्पण नाम की पुस्तक राजेन्द्रनाथ पंडित उर्फ रायप्रपन्नाचार्यने सामाजी प्रेस बड़ोदा में छपा कर प्रकाशित की है। उसके पृष्ट १० की पंक्ति ९ से १४ में लिखा है कि पूज्यपाद बाबू कृष्णनाथ बेनरजी अपने 'जिन जम' (जेनिजम) में लिखा है कि भारतमें पहिले ४००००००००० जैन थे उसी मत से निकल कर बहुत लोग दूसरे धर्ममें जानेसे इनकी संख्या घट गई, यह धर्म बहुत प्राचीन है इस मत के नियम बहुत उत्तम है इस मत से देशको भारी लाभ पहुँचा है।

(२४) श्रीयुत् सी. वी. राजवाडे एम. ए. बी. एस. सी. प्रोफेसर ऑफ पाली बरोडा कालेजका एक लेख "जैन धर्मनुं अध्ययन" जैन साहित्य संशोधक पुना भाग १ अंक १में छपा है उसमेंसे कुछ वाक्य उद्धृत।

प्रोफेसर वेबर बुल्हर जेकोबी हॉरनल भांडारकर ल्युयन राइस गॅरीनोट वगैरा विद्वानोए जैन धर्मना संबंधमां अंत:करण पूर्वक अथाग परिश्रम लेई अनेक महत्त्वनी शोधो प्रगट करेली छे। जैन धर्म पूर्वना धर्मोमां पोतानो स्वतंत्र स्थान प्राप्त करतो जाय छे. जैन धर्म ते मात्र जैनोनेज नहीं परंतु तेमना सिवाय पाश्चात्य संशोधनना प्रत्येक विद्यार्थी अने खास करीने जो पौर्वात्य देशोंना तुलनात्मक अभ्यासमां रस लेवा होय तेमने तल्लीन करी नाखे एवो रसिक विषय छे.

(२५) डाक्टर F. OTTO SCHRADER, P. H. D. का एक लेख बुद्धिष्ट रिव्युना पुस्तक अंक १ मां प्रकट थयेला अहिंसा अने वनस्पति आहार शीर्षक लेख का गुजराती अनुवाद जैन साहित्य संशोधक अंक ४ में छपा है उसमें से कुछ वाक्य उद्धृत।

अत्यारे अस्तीत्व धरावता धर्मोमां जैन धर्म एक एवो धर्म छे के जेमां अहिंसानो क्रम संपूर्ण छे ब्राह्मण धर्ममां पण घणां लांवा समय पच्छी सन्यासीओ माटे आ सुक्ष्मतर अहिंसा विदित थई अने आखरे वनस्पति आहारना रुपमां ब्राह्मण ज्ञातिमां पण ते दाखील थई हती. कारण ए छे के जैनोना धर्म तत्त्वोए जे लोक मत जीत्यो हतो तेनी असर सज्जड रीते वधती जती हती.

(२६) राजा शिवप्रसाद सतारेहिन्द ने अपने निर्माण किये हुये "भूगोल स्तामलक" में लिखा है कि दो-ढाई हजार वर्ष पहिले दुनियाका अधिक भाग जैन धर्मका उपासक था।

(२७) पाश्चात्य विद्वान् रेवरेण्ड जे. स्टीवेन्स साहेब लिखते हैं कि:—

साफ प्रगट है कि भारतवर्षका अधःपतन जैनधर्म के अहिंसा सिद्धान्त के कारण नहीं हुआ था, बल्कि जब तक भारतवर्ष में जैनधर्म की प्रधानता रही थी, तब तक उसका इतिहास सुवर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। और भारतवर्ष के ह्रास का मुख्य कारण आपसी प्रतिस्पर्धामयी अनैक्यताहै। जिसकी नींव शङ्कराचार्य के जमाने से जमा दी गई थी। जैनमित्र वर्ष २४ अङ्क ४० से.

(२८) पाश्चात्य विद्वान् मि० 'सर विलियम' और हैमिल्टन ने मध्यस्थ विचारों के मंदिर का आधार जैनों के इस अपेक्षावाद को ही माना है। जैनमत में अपेक्षावाद का ही दूसरा नाम नयवाद है।

(२९) डाक्टर टामसने जे. एच. नेलसन्स "साइन्टिफिक स्टडी ऑफ हिन्दु लॉ" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि यह कहना काफी होगा कि जब कभी जैन धर्मका इतिहास बनकर तय्यार होगा तो हिन्दु कानूनके विद्यार्थी के लिये उसकी रचना बड़ी महत्त्व की होगी, क्योंकि वह निःसंशय यह सिद्ध कर देगा कि जैनी हिन्दु नहीं हैं।

(३०) इम्पीरियल ग्रेजीटियर ऑफ इंडिया व्हाल्यूम दो पृष्ठ ५४ पर लिखा है कि कोई २ इतिहासकार तो यह भी मानते हैं कि गोतम बुद्ध को महावीर स्वामी से ही ज्ञान प्राप्त हुआ था जो कुछ भी हो यह तो निर्विवाद स्वीकार ही है कि गोतम बुद्धने महावीर स्वामी के बाद शरीर त्याग किया, यह भी निर्विवाद सिद्ध ही है कि बौद्ध धर्म के संस्थापक गोतम बुद्ध के पहिले जैनियों के तेवीस तीर्थंकर और होचुके थे।

(३१) मिस्टर टी डब्ल्यू रोईस डेविड साहिब इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका० व्हा. २९ नाम की पुस्तक में लिखा है, यह बात अब निश्चित है कि जैनमत बौद्धमत से निःसंदेह बहुत पुराना है और बुद्ध के समकालीन महावीर द्वारा पुनः संजीवित हुआ है और यह बात भी भले प्रकार निश्चय है कि जैनमत के

मंतव्य बहुत ही जरूरी और बौद्धमत के मंतव्यों से बिलकुल विरुद्ध हैं, यह दोनों मत न केवल धर्म ही से स्वाधीन हैं बल्कि एक दूसरे से बिलकुल निराले हैं।

३२ श्रीयुत महामहोपाध्याय, सत्यसम्प्रदायाचार्य्य सर्वतंत्र स्वतंत्र पं० स्वामी राममिश्रजी शास्त्री भूतप्रोफेसर संस्कृत कालेज बनारस

यह शास्त्रीजी महोदय अपने मि० पौष शु० १ सं० १९६२ को काशी नगर में दिये हुये व्याख्यान में कहते हैं:—

(१) वैदिकमत और जैनमत सृष्टि की आदि से बराबर अविछिन्न चले आये हैं और इन दोनों मतों के सिद्धान्त विशेष घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं जैसा कि मैं पूर्व में कह चुका हूँ अर्थात सत्कार्यवाद, सत्कारणवाद, परलोकास्तित्व आत्मा का निर्विकारत्व, मोक्ष का होना और उसका नित्यत्व, जन्मान्तर के पुण्य पाप से जन्मान्तर में फलभोग, व्रतोपवासादि व्यवस्था, प्रायश्चित व्यवस्था, महाजनपूजन, शब्दप्रामाण्य इत्यादि समान हैं।

(२) जिन जैनों ने सब कुछ माना उनसे नफरत करने वाले कुछ जानते ही नहीं और मिथ्या द्वेषमात्र करते हैं।

(३) सज्जनो! जैनमत में और बौद्धमत में जमीन आसमान का अन्तर है उसे एक जान कर द्वेष करना अज्ञ जनों का कार्य है।

(४) सब से अधिक वह अज्ञ है जो जैन सम्प्रदाय सिद्ध मेलों में विघ्न डालकर पाप के भागी होते हैं।

(५) सज्जनो! ज्ञान, वैराग्य, शान्ति, क्षांति, अदम्भ, अनीर्ष्या, अक्रोध, अमात्सर्य, अलोलुपता, शम, दम, अहिंसा, समदृष्टिता इत्याद गुणों में एक एक गुण ऐसा है कि जहां वह पाया जाय वहां पर बुद्धिमान् पूजा करने लगते हैं। तब तो जहां ये (अर्थात जैनों में) पूर्वोक्त सब गुण निरतिशय सीम होकर विराजमान हैं उनकी पूजा न करना अथवा ऐसे गुणपूजकों की पूजा में बाधा डालना क्या इन्सानियत का कार्य है?

(६) पूरा विश्वास है कि अब आप जान गए होंगे कि वैदिक सिद्धान्तियों के साथ जैनों के विरोध का मूल केवल अज्ञों की अज्ञता है.................. ।

(७) मैं आपको कहां तक कहूँ, बड़े बड़े नामी आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में जो जैनमतखंडन किया है वह ऐसा किया है जिसे सुन कर हंसी आती है।

(८) मैं आपके सन्मुख आगे चलकर स्याद्वाद का रहस्य कहूँगा तब आप अवश्य जान जायंगे कि वह अभेद्य किला है उसके अन्दर वादी प्रतिवादियों के मायामय गोले नहीं प्रवेश कर सकते परन्तु साथ ही खेद के साथ कहा जाता है कि अब जैनमत का बुढ़ापा आगया है। अब इसमें इने गिने साधु गृहस्थ विद्वान् रह गए हैं..............

(९) सज्जनो! एक दिन वह था कि जैनसम्प्रदाय के आचार्यों की हुँकार से दशों दिशायें गूंज उठती थीं।

(१०) सज्जनो! जैसे कालचक्र ने जैनमत के महत्त्व को ढाँक दिया है वैसे ही उसके महत्त्व के जाननेवाले लोग भी अब नहीं रहे।

(११) "रज्जब सांचे सूर को वैरी करे [illegible]" यह किसी भाषाकवि ने बहुत ही ठीक कहा है।

सज्जनो ! आप जानते हैं मैं उस वैष्णव सम्प्रदाय का आचार्य हूँ यही नहीं मैं उस सम्प्रदाय का सर्वतोभाव से रक्षक हूँ और साथ ही उसकी तरफ कड़ी नजर से देखने वाले का दीक्षक भी हूँ तो भी भरी मजलिस में मुझे यह कहना सत्य के कारण आवश्यक हुआ है कि जैनों का ग्रन्थसमुदाय सारस्वत महासागर है उसकी ग्रंथसंख्या इतनी अधिक है कि उन ग्रन्थों का सूचीपत्र भी एक निबन्ध हो जायगा........उस पुस्तक समुदाय का लेख और लेख्य कैसा गंभीर, युक्तिपूर्ण, भावपूरित, विशद और अगाध है। इसके विषय में इतना ही कह देना उचित है कि जिन्होंने इस सारस्वत समुद्र में अपने मतिमन्थान को डालकर चिर आन्दोलन किया है वे ही जानते हैं............

(१२) तब तो सज्जनो ! आप अवश्य जान गए होंगे कि जैनमत तब से चलित हुआ है जब से संसार सृष्टि का आरम्भ हुआ।

(१३) मुझे तो इसमें किसी प्रकार का उज्र नहीं है कि जैन दर्शन वेदान्तादिदर्शनों से भी पूर्व का है इत्यादि........।

३३ भारतगौरव के तिलक, पुरुषशिरोमणि, इतिहासज्ञ, माननीय पं० बालगंगाधर तिलक, भूतसम्पादक, "केसरी"

इनके ३० नवम्बर सन् १९०४ को बड़ौदानगर में दिये हुए व्याख्यान से—

(१) जैनधर्म विशेषकर ब्राह्मणधर्म के साथ अत्यन्त निकट सम्बन्ध रखता है। दोनों धर्म प्राचीन हैं।

(२) ग्रन्थों तथा सामाजिक व्याख्यानों से जाना जाता है कि जैनधर्म अनादि है। यह विषय अब निर्विवाद तथा मतभेदरहित है और इस विषय में इतिहास के दृढ़ प्रमाण हैं।

(३) इसी प्रकार जैनधर्म में "महावीर स्वामी" का शक (सम्वत्) चला है जिसे चलते हुए २४०० वर्ष हो चुके हैं। शक चलाने की कल्पना जैनी भाइयोंने ही उठाई थी।

(४) गौतमबुद्ध महावीर स्वामी (जैन तीर्थंकर) का शिष्य था जिससे स्पष्ट जाना जाता है कि बौद्ध धर्मकी स्थापना के प्रथम जैनधर्म का प्रकाश फैल रहा था। चौबीस तीर्थंकरों में महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर थे। इससे भी जैनधर्मकी प्राचीनता जानी जाती है। बौद्धधर्म पीछे से हुआ यह बात निश्चित है। बौद्धधर्मके तत्त्व जैनधर्म्मके तत्वोंके अनुकरण हैं।

(५) श्रीमान् महाराज गायकवाड (बड़ोदा नरेश) ने पहिले दिन कान्फ्रेंस में जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार 'अहिंसा परमोधर्मः' इस उदार सिद्धान्तने ब्राह्मण धर्म पर चिरस्मरणीय छापमारी है। पूर्वकाल में यज्ञ के लिये असंख्य पशुहिंसा होती थी इसके प्रमाणमेघदूतकाव्य आदि अनेक ग्रन्थों से मिलते हैं...... परन्तु इस घोर हिंसा का ब्राह्मणधर्मसे विदाई ले जानेका श्रेय (पुण्य) जैनधर्म ही के हिस्से में हैं।

(६) ब्राह्मणधर्म और जैनधर्म दोनोंमें झगड़े की जड़ हिंसा थी जो अब नष्ट होगई है। और इस रीति से ब्राह्मण धर्म को जैनधर्म ही ने अहिंसाधर्म सिखाया।

(७) ब्राह्मणधर्म पर जो जैनधर्मने अक्षुण्ण छाप मारी है उसका यश जैनधर्म के ही योग्य है। अहिंसा का सिद्धान्त जैनधर्म में प्रारम्भ से है और इस तत्त्व को समझने की त्रुटि के कारण बौद्धधर्म अपने अनुयायी चीनीयों के रूप में सर्वभक्षी होगया है।

(८) ब्राह्मण और हिन्दुधर्म में मांस भक्षण और मदिरा पान बन्द होगया, यह भी जैनधर्म का ही प्रताप है।

(९) महावीर स्वामी का उपदेश किया हुआ धर्मतत्त्व सर्वमान्य होगया।

(१०) पूर्वकाल में अनेक ब्राह्मण जैनपण्डित जैनधर्म के धुरन्धर विद्वान् होगए हैं।

(११) ब्राह्मण धर्म जैनधर्म से मिलता हुआ है इस कारण टीक रहा है। बौद्धधर्म का जैनधर्मसे विशेष अमिल होने के कारण हिन्दुस्थान से नाम शेष होगया है।

(१२) जैनधर्म तथा ब्राह्मणधर्म का पीछेसे कितना निकट सम्बन्ध हुआ है सो ज्योतिषशास्त्री भास्कराचार्य्य के ग्रन्थ से विशेष उपलब्ध होता है। उक्त आचार्य्यने ज्ञान दर्शन और चारित्र (जैनशास्त्र विहित रत्नत्रय धर्म) को धर्म तत्त्व बतलाए हैं।

२४ श्रीयुत वरदाकान्त मुख्योपाध्याय एम० ए० के बंगला लेख के श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी द्वारा अनुवादित हिन्दी लेख से उद्धृत कुछ वाक्य

(१) हमारे देश में जैनधर्म की आदि उत्पत्ति, शिक्षा नीति और उद्देश्य सम्बन्धी कितने ही भ्रान्तमत प्रचलित हैं इसलिये हम लोग जैनियों से घृणा करते रहते हैं............। इसलिए मैं इस लेख में भ्रम समूह दूर करने की चेष्टा करूंगा।

(२) जैन निरामिषभोजी (मांसत्यागी) क्षत्रियों का धर्म है। "अहिंसा परमोधर्मः" इसकी सार शिक्षा और जड़ है। इस मत में "जीव हिंसा नहीं करना, किसी जीव को कष्ट नहीं देना" यही श्रेष्ठ धर्म है।

(३) शंकराचार्य महाराज स्वयं स्वीकार करते हैं कि जैनधर्म अति प्राचीनकाल से है। वे बादरायण व्यास के वेदान्त सूत्र के भाष्य में कहते हैं कि दूसरे अध्याय के द्वितीय पाद के सूत्र ३३-३६ जैनधर्म ही के सम्बन्ध में हैं। शारीरिक मीमांसा के भाष्यकार रामानुजजी का भी यही मत है।

(४) योगवासिष्ट रामायण वैराग्य प्रकरण, अध्याय १५ श्लोक ८ में श्री रामचन्द्रजी जिनेन्द्र के सदृश शान्त प्रकृति होने की इच्छा प्रकाश करते हैं, यथाः—

नाहं रामो नमे वांछा भावेषु च न मे मनः। शान्तिमासितु मेच्छामि स्वात्मनीव जिनो यथा ॥

(५) रामायण, बालकांड, सर्ग १४, श्लोक २२ में राजा दशरथ ने श्रमणगणों (अर्थात् जैन मुनियों) का अतिथिसत्कार किया, ऐसा लिखा हैः—

तापसाभुञ्जते चापि श्रमणा भुञ्जते तथा।

भूषण टीका में श्रमण शब्द का अर्थ दिगम्बर (अर्थात् सर्व वस्त्रादि रहित जैनमुनि) किया है। यथाः—

श्रमणा दिगम्बराः श्रमणा वातवसना इति निघण्टुः।

(६) शाकटायन के उणादि सूत्र में 'जिन' शब्द व्यवहृत हुआ हैः—

इणजस जिनीङुण्यविभ्योनक सूत्र २५९ पाद ३, सिद्धान्तकौमुदी के कर्त्ता ने इस सूत्र की व्याख्या में 'जिनोऽर्हन्,' कहा है।

मेदनीकोष में भी 'जिन' शब्द का अर्थ 'अर्हत्' 'जैनधर्म के आदि प्रचारक' है।

वृत्तिकारगण भी 'जिन' के अर्थ में 'अर्हत्' कहते हैं यथा उणादि सूत्र सिद्धान्तकौमुदी।

शाकटायन ने किस समय उणादि सूत्र की रचना की थी? यास्क की निरुक्त में शाकटायन के नाम का उल्लेख है। और पाणिनि के बहुत समय पहिले निरुक्त बना है इसे सभी स्वीकार करते हैं।

महाभाष्य प्रणेता पतंजलि के कई सौ वर्ष पहिले पाणिनि ने जन्म ग्रहण किया था। अतएव अब निश्चय है कि शाकटायन का उणादि सूत्र अत्यन्त प्राचीन ग्रंथ है।

(७) बौद्धशास्त्र में जैनधर्म निर्ग्रंथों का धर्म बतलाया है और यही निर्ग्रन्थ धर्म बौद्धधर्म के बहुत पहिले प्रचलित था।

(८) डा० राजेन्द्रलाल मित्र योगसूत्र की प्रस्तावना में कहते हैं कि सामवेद में एक बलिदानविरोधी यति (जैन मुनि) का उल्लेख है। उसका समस्त ऐश्वर्य भृगु को दान कर दिया गया था, क्योंकि ऐतरेय ब्राह्मण के मत में बलिदान विरोधी यति को शृगाल के सन्मुख प्रक्षिप्त करना चाहिये। मगध वा कीकट में यज्ञदानादि का विरोधी एक सम्प्रदाय था, (देखो ऋग्वेद अष्टक ३, अध्याय ३, वर्ग २१ ऋचा १४, तथा ऋग्वेद, मं० ८, अ० १०, सूक्त ८९, ऋचा ३, ४ तथा ऋग्वेद मं० २, अ० २, सू० १२, ऋचा ५; ऋग्वेद अष्टक ६, अध्याय ४, वर्ग ३२, ऋचा १०, इत्यादि)।

(९) सांख्य दर्शन सूत्र ६—"अविशेषश्चोभयोः" अर्थात् दुःख और यंत्रणा दूर करने वाले दृश्यमान और वैदिक उपायों में कोई भेद नहीं है। क्योंकि वैदिक बलिदान एक निष्ठुर प्रथामात्र है। यज्ञ में पशु हनन करने से कर्मबन्ध होता है, पुरुष को तज्जन्य लाभ कुछ नहीं होता।

"मा हिंस्यात्सर्वभूतानि।" "अग्निषामीयं पशुमालभेत्"

"दृष्टिवदानु अविकासह्यविशुद्धि क्षयातिशययुक्तः" सांख्यकारिका ॥

गौडपाद—सांख्यकारिका के भाष्य में निम्न लिखित श्लोक उद्धृत कर के कपिल ऋषि के मत का समर्थन करते हैं:—

तात तद्बहुशोभ्यस्तं जन्मजन्मांतरेष्वपि। त्रयी धर्ममधर्माढ्य न सम्यक्प्रतिभाति मे ॥

अर्थात्—हे पिता! वर्तमान और गत जन्म में मैंने वैदिकधर्म का अभ्यास किया है; परन्तु मैं इस धर्म का पक्षपाती नहीं हूँ क्योंकि यह अधर्मपूर्ण है।

(१०) कपिलसूत्र का भाष्यकार विज्ञान भिक्षु "मार्कण्डेय पुराण से" निम्न लिखित श्लोक उद्धृत करके कपिलमत का समर्थन करता है:—

तस्माद्यास्याम्यहं तात दृष्ट्वेमं दुःखसन्निधिम्। त्रयी धर्ममधर्माढ्यं किंपाकफलसन्निभम् ॥

अर्थात्—हे तात! वैदिकधर्म को सब प्रकार अधर्म और निष्ठुरतापूर्ण देख कर मैं किस प्रकार इसका अनुसरण करूँ? वैदिकधर्म किंपाकफल के समान बाह्य में सौन्दर्य किन्तु भीतर हलाहल (विष) पूर्ण है।

(११) "महाभारत" का मत इस विषय में जानने के लिये अश्वमेध पर्व, अनुगीत ४६, अध्याय ६, श्लोक ११ की नीलकंठ कृत टीका पढ़िये।

(१२) प्राचीनकाल में महात्मा ऋषभदेव "अहिंसा परमोधर्मः" यह शिक्षा देते थे। उनकी शिक्षा से देव मनुष्य और इतर प्राणियों के अनेक उपकार साधन किये हैं। उस समय ३६३ पुरुष पाखंड धर्म प्रचारक भी थे। चार्वाक के नेता "बृहस्पति" उन्हीं में से एक थे। मेक्समूलर आदि यूरोपीय पण्डितों की यही धारणा है जो उनके सन् १८९९ के लेखसे प्रकट है जिसे ७६ वर्ष की उमर में उन्होंने लिखा है।

(१३) अतएव प्राचीन भारत में नाना धर्म और नाना दर्शन प्रचलित थे इसमें कोई संदेह नहीं है।

(१४) जैनधर्म हिन्दूधर्म से सर्वथा स्वतंत्र है। उसकी शाखा वा रूपान्तर नहीं है। विशेषतः प्राचीन भारत में किसी धर्मान्तर से कुछ ग्रहण करके एक नूतन धर्म प्रचार करनेकी प्रथा ही नहीं थी। मेक्समूलर का भी यही मत है।

(१५) लोगों का यह भ्रमपूर्ण विश्वास है कि पार्श्वनाथ* जैनधर्म के स्थापक थे। किन्तु इसका प्रथम प्रचार ऋषभदेवने किया था, इसकी पुष्टिके प्रमाणों का अभाव नहीं है। यथा:—

(१) बौद्ध लोग महावीर को निर्ग्रन्थ अर्थात् जैनियों का नायक मात्र कहते हैं स्थापक नहीं कहते।

(२) जर्मन डाक्टर जैकोबी भी इसी मतके समर्थक हैं।

(३) हिन्दूशास्त्रों और जैनशास्त्रों का भी इस विषय में एक मत है। भागवत के पांचवें स्कन्ध के अध्याय २–६ में ऋषभदेव का कथन है जिसका भावार्थ यह है:—

चौदह मनुओं में से पहले मनु स्वयंभूके प्रपौत्र नाभिका पुत्र ऋषभदेव हुआ जो इस काल की अपेक्षा जैन सम्प्रदाय का आदि प्रचारक था। इनके जन्मकाल में जगत की बाल्यावस्था थी, इत्यादि।

भागवतके अध्याय ६ श्लोक ९–११ में लिखा है कि "कोंकवेंक और कुटक का राजा अर्हत् ऋषभ के चरित्र श्रवण करके कलियुग में ब्राह्मण विरोधी एक नवीन धर्म के प्रचार का मानस करेगा किन्तु हमने अन्य किसी भी ग्रन्थ में ऐसे किसी राजा का नाम नहीं पाया। अर्हत् को अन्य कोई भी ग्रन्थकार कोंकवेंक और कुटक का राजा नहीं कहता।

अर्हत् का अर्थ (अर्ह धातु से) प्रशंसार्ह तथा पूज्य है। शिव पुराण में अर्हत् शब्दका व्यवहार हुआ है किन्तु अर्हत नाम से कोई राजा का नाम नहीं है, ऋषभ ही को अर्हत् कहते हैं। अर्हत राजा कलियुग में जैनधर्म का प्रचारक होता तो वाचस्पत्य (कोषकार) ने ऋषभ को जिनदेव वा शब्दार्थ चिंतामणिने उन्हें आदि जिनदेव कभी नहीं कहा होता। किसी किंसी उपनिषद में भी ऋषभ को अर्हत् कहा है।

भागवत् के रचयिताने क्यों यह बात कही सो कहा नहीं जा सकता।

(४) महाभारत के सुविख्यात टीकाकार शांतिपर्व, मोक्षधर्म अध्याय २६३, श्लोक २० की टीका में कहते हैं:—

अर्हत् अर्थात् जैन ऋषभ के चरित्र में मुग्ध हो गये थे। यथा:—

"ऋषभादीनां महायोगिनामाचारे दृष्टाव अर्हतादयो मोहिताः"

इस प्रकार जाना जाता है कि हिन्दू शास्त्रों के मत से भी भगवान् ऋषभ ही जैनधर्म के प्रथम प्रचारक थे।

(५) डॉ० फुहरर ने जो मथुरा के शिलालेखों से समस्त इतिवृत्तिका खोज किया है उसके पढ़ने से जाना जाता है कि पूर्व काल में जैनी ऋषभदेव की मूर्तियां बनाते थे। इस विषय का एपिग्रेफिया इंडिका नामका ग्रन्थ अनुवाद सहित मुद्रित हुआ है। यह शिलालेख दो हजार वर्ष पूर्व कनिष्क, हुवष्क वासुदेवादि राजाओं के राजत्व काल में खोदे गये हैं।

(देखो उपरोक्त ग्रन्थ का भाग १, पृष्ट १८९, नं० ८ व १४ और भाग २, पृष्ट २०६, २०७, नं० १८ इत्यादि)।

अतएव देखा जाता है कि दो हजार वर्ष पूर्व ऋषभदेव प्रथम जैन तीर्थंकर कह कर स्वीकार किये गये हैं। महावीर का मोक्षकाल ईसवी सन् से ५२६ वर्ष पहिले और पार्श्वनाथ का ७७६ वर्ष पहिले निश्चित है। यदि ये जैनधर्म के प्रथम प्रचारक होते तो दो हजार वर्ष पहिले के लोग ऋषभदेव की मूर्ति की पूजा नहीं करते।

---

* इनके निर्वाण को आजसे २७०५ वर्ष होचुके। यह जैनियों के तेईसवें तीर्थंकर थे जो चौबीसवें अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी से २५० वर्ष पूर्व हुए।

(१६) जैन धर्म की सार शिक्षा यह है:—

१—इस जगत का सुख, शान्ति और ऐश्वर्य मनुष्य के चरम उद्देश्य नहीं हैं। संसार से जितना बन सके निर्लिप्त रहना चाहिये।

२—आत्मा की मंगल कामना करो।

३—तुम जब कभी किसी सत्कार्य के करने में तत्पर हो तब तुम कौन हो और क्या हो यह बात स्मरण रक्खो।

४—यह धर्म परलोक, (मोक्ष) विश्वासकारी योगियों का है।

५—सांसारिक भोग विलास की इच्छायें जैनधर्म की विरोधनी हैं।

६—अभिमान त्याग, स्वार्थ त्याग और विषय सुख त्याग इस धर्म की भित्तियां हैं।

(१७) जैनधर्म मलिन आचरण की समष्टी है, यह बात सत्य नहीं है दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों श्रेणियों के जैन शुद्धाचरणी हैं।

(१८) जैनधर्म ज्ञान और भाव को लिए हुए है और मोक्ष भी इसी पर निर्भर है।

(१९) जैन मुनियों की अवस्था और जिन मूर्तिपूजा उनका प्राचीनत्व सप्रमाण सिद्ध करता है।

३५ रा० रा० वासुदेव गोविन्द आपटे बी. ए., इन्दौर ने बम्बई हिन्दूयूनियन कलब में दिसम्बर १९०३ में दिये व्याख्यान के कुछ वाक्य

(१) हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण व्यापार का एक तिहाई भाग जैनियों के हाथ में है।

(२) बड़े बड़े जैन कार्यालय, भव्य जैन मन्दिर अनेक लोकोपयोगी संस्थाएं हिन्दुस्तान के बहुत से बड़े २ नगरों में हैं।

(३) प्राचीन काल से जैनियों का नाम इतिहास प्रसिद्ध है और जैनधर्म के अनेक राजा होगए हैं।

(४) स्वतः अशोक ही बौद्धधर्म स्वीकार करने से पहले जैन धर्मानुयायी था।

(५) कर्नल टॉड साहेब के राजस्थानीय इतिहास में उदयपुर के घराने के विषय में ऐसा लिखा है कि कोई भी जैन यति उक्त स्थानमें जब शुभागमन करता है तो राणाजी साहिब उसे आदर पूर्वक लाकर योग्य सत्कार का प्रवन्ध करते हैं। इस विनय प्रवन्ध की प्रथा वहां अब तक जारी है

(६) प्राचीन कालमें जैनियों ने उत्कट पराक्रम वा राज्य कार्य भार का + परिचालन किया है। आज के समय में इनकी राजकीय अवनति मात्र दृष्टिगोचर होती है।

(७) दक्षिणमें तामिल व कनड़ी इन—दोनों भाषाओं के जो व्याकरण प्रथम प्रस्तुत हुए हैं वे जैनियों ही ने किये थे।

(८) प्राचीन काल के भारतवर्षीय इतिहासमें जैनियों ने अपना नाम अजर अमर रखा है।

(९) वर्तमान शान्ति के समय व्यापारवृद्धि के कार्यों में अग्रेसर होकर इन्होंने (जैनियों ने) अपना पूर्ण रीति से स्थापित किया है।

(१०) हमारे जैन वान्धवों के पूर्वज प्राचीन कालमें ऐसे २ स्मरणीय कृत्य कर चुके हैं तो भी, जैनी कौन हैं, उनके धर्म के मुख्य तत्व कौन कोनसे हैं, इसका परिचय बहुत ही कम लोगों को होना बड़े आश्चर्य की बात है।

(११) "न गच्छेजैन मंदिरम्" अर्थात् जैनमंदिर में प्रवेश करने मात्र में भी महा पाप है, ऐसा निषेध उस समय कठोरता के साथ पाले जाने से जैन मन्दिर की भीत की आड में क्या है, इसकी खोज

+ प्राचीन काल में चक्रवर्ती, अर्द्धचक्री, महा मंडलीक, मंडलीक आदि बड़े २ पदाधिकारी जैनधर्मी हुए।

करे कौन ? ऐसी स्थिति होने से ही जैन धर्म के विषय में झूठे गपोड़े उड़ने लगे। कोई कहता है जैनधर्म नास्तिक है, कोई कहता है बौद्धधर्म का अनुकरण है, कोई कहता है जब शंकराचार्य ने बौद्धों का पराभव किया तब बहुत से बौद्ध पुनः ब्राह्मण धर्म में आगये। परन्तु उस समय जो थोड़े बहुत बौद्ध धर्म को ही पकड़े रहे उन्हीं के वंशज यह जैन हैं, कोई कहता है कि जैनधर्म बौद्धधर्म का शेष भाग तो नहीं किन्तु हिन्दू धर्म का ही एक पंथ है। और कोई कहते हैं कि नग्न देव को पूजने वाले जैनी लोग ये मूल में आर्य ही नहीं हैं किन्तु अनार्यों में से कोई हैं। अपने हिन्दुस्तान में ही आज चौबीस सौ वर्ष पूर्व से पड़ौस में रहने वाले धर्म के विषय में जब इतनी अज्ञानता है तब हजारों कोस से परिचय पानेवाले व उससे मनोऽनुकूल अनुमान गढ़नेवाले पाश्चिमात्यों की अज्ञानता पर तो हँसना ही क्या है !

(१२) ऋषभदेव जैनधर्म के संस्थापक थे यह सिद्धान्त अपनी भागवत से भी सिद्ध होता है। पार्श्वनाथ जैनधर्म के संस्थापक थे ऐसी कथा जो प्रसिद्ध है वह सर्वथा भूल है। ऐसे ही वर्द्धमान अर्थात् महावीर भी जैनधर्म के संस्थापक नहीं हैं। वे २४ तीर्थंकरों में से एक प्रचारक थे।

(१३) जैनधर्म में अहिंसा तत्त्व अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है। बौद्ध धर्म व अपने ब्राह्मण धर्म में भी यह तत्व है तथापि जैनियों ने इसे जिस सीमा तक पहुँचा दिया है वहां तक अद्यापि कोई नहीं गया है।

(१४) जैन शास्त्रों में जो यति धर्म कहा गया है वह अत्यन्त उत्कृष्ट है इस में कुछ भी शंका नहीं।

(१५) जैनियों में स्त्रियों को भी यति दीक्षा लेकर परोपकारी कृत्यों में जन्म व्यतीत करने की आज्ञा है। यह सर्वोत्कृष्ट है। हिन्दु समाज को इस विषय में जैनियों का अनुकरण अवश्य करना चाहिये।

(१६) ईश्वर सर्वज्ञ, नित्य और मंगल स्वरूप है, यह जैनियों को मान्य है परन्तु वह हमारी पूजन व स्तुति से प्रसन्न होकर हम पर विशेष कृपा करेगा—इत्यादि, ऐसा नहीं है। ईश्वर सृष्टि का निर्माता, शास्ता या संहार कर्ता न होकर अत्यन्त पूर्ण अवस्था को प्राप्त हुआ आत्मा ही है ऐसा जैनी मानते हैं। अतएव वह ईश्वर का अस्तित्व नहीं मानते ऐसा नहीं है। किन्तु ईश्वर की कृति सम्बन्धि विषय में उनकी और हमारी समझ में कुछ भेद है। इस कारण जैनी नास्तिक हैं ऐसा निर्बल व्यर्थ अपवाद उन विचारों पर लगाया गया है।

अतः यदि उन्हें नास्तिक कहोगे तो,

न कर्तृत्व न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः। न कर्म फल संयोगं स्वाभावस्तु प्रवर्तते ॥
नादत्ते कस्य चित्पापनं कस्य सुकृत्यं विभुः। अज्ञानो नावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥

ऐसा कहनेवाले श्री कृष्णजी की भी नास्तिकों में गणना करनी पड़ेगी।

आस्तिक व नास्तिक यह शब्द ईश्वर के अस्तित्व सम्बन्ध में व कर्तृत्व सम्बन्ध में न जोड़ कर पाणीनीय ऋषि के सूत्रानुसारः—

परलोकोऽस्तीति मतिर्यस्यास्तीति आस्तिकः। परलोको नास्तीति मतिर्यस्यास्तीति नास्तिकः ॥

श्रद्धा करें तो जैनियों पर नास्तिकत्त्व का आरोप नहीं आ सकता। कारण जैनी परलोक का अस्तित्व माननेवाले हैं।

(१७) मूर्ति का पूजन श्रावक अर्थात् गृहस्थाश्रमी करते हैं, मुनि नहीं करते। श्रावकों की पूजन विधि प्रायः हम ही लोगों सरीखी है।

(१८) हमारे हाथ से जीव हिंसा न होने पावे इसके लिये जैनी जितने डरते हैं उतने बौद्ध नहीं डरते। बौद्धधर्मी विदेशों में मांसाहार अधिकता के साथ जारी है। "आप स्वतः हिंसा न करके दूसरे के

द्वारा मारे हुए बकरे आदि का मांस खाने में कुछ हर्ज नहीं" ऐसे सुभीते का अहिंसा तत्त्व जो बौद्धोंने निकाला था वह जैनियों को सर्वथा स्वीकार नहीं।

(१९, बौद्धधर्म के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। इस धर्म का परिचय सब को हो गया है। परन्तु जैनधर्म के विषय में वैसा अभी तक कुछ भी नहीं हुआ है। बौद्धधर्म चीन, तिबट, जापानादि देशों में प्रचलित होने से और विशेष कर उन देशों में उसे राज्याश्रय मिलने से उस धर्म के शास्त्रों का प्रचार अति शीघ्र हुआ, परन्तु जैनधर्म जिन लोगों में है ये प्राय: व्यापार व्यवहार में लगे रहने से धर्म ग्रन्थ प्रकाशन सरीखे कृत्य की तरफ लक्ष देने के लिए अवकाश नहीं पाते इस कारण अगणित जैन ग्रन्थ अप्रकाशित पड़े हुए हैं।

(२०) यूरोपियन ग्रन्थकारों का लक्ष भी अद्यापि इस धर्म की ओर इतना खिंचा हुवा नहीं दिखाई देता। यह भी इस धर्म के विषय में उन लोगों के अज्ञान का एक कारण है।

(२१) जैनधर्म के काल निर्णय सम्बन्ध में दूसरी ओर के प्रमाण भी आने लगें हैं कोलब्रुक साहिब सरीखे पण्डितों ने भी जैनधर्म का प्राचीनत्व स्वीकार किया है। इतना ही नहीं किन्तु 'बौद्धधर्म जैनधर्म से निकला हुआ होना चाहिए' ऐसा विधान किया है। मिस्टर एडवर्ड थाम्स का भी ऐसा ही मत है। उपरोक्त पंडित ने 'जैनधर्म' या "अशोक की पूर्व श्रद्धा" नामक ग्रन्थ में इस विषय के जितने प्रमाण दिए हैं वे सब यदि यहां पर दिए जाय तो बहुत विस्तार हो जायगा।

(२२) चन्द्रगुप्त (अशोक जिस का पोता था) स्वतः जैन था इस बात को वंशावली का दृढ़ आधार है। राजा चन्द्रगुप्त श्रमण अर्थात् जैनगुरु से उपदेश लेता था ऐसी मेगस्थिनीज ग्रीक इतिहासकार की भी साक्षी है।

अबुलफजल नामक फारसी ग्रन्थकार ने "अशोक ने काश्मीर में जैनधर्म का प्रचार किया" ऐसा कहा है। राजतरंगिणी नामक काश्मीर के संस्कृत इतिहास का भी इस विज्ञान का आधार है।

(२३) उपरोक्त विवेचन से ऐसा मालुम पड़ता है कि इस धर्म में सुज्ञों को आदरणीय जचने योग्य अनेक बातें हैं। सामान्य लोगों को भी जैनियों से अधिक शिक्षा लेने योग्य है। जैन लोगों का भाविकपन, श्रद्धा व औदार्य प्रशंसनीय है।

(२४) जैनियों की एक समय हिन्दुस्तान में बहुत उन्नतावस्था थी। धर्म, नीति, राजकार्य धुरन्धरता, वाङ्मय (शास्त्र ज्ञान व शास्त्र भंडार) समाजोन्नति आदि बातों में उनका समाज इतर जनों से बहुत आगे। संसार में अब क्या हो रहा है इस ओर हमारे जैन बन्धु लक्ष दे कर चलेंगे तो वह महत्पद पुनः प्राप्त लेने में उन्हें अधिक श्रम नहीं पड़ेगा।

(२५) जैन व अमेरीकन लोगों से संगठन कर आने के लिए बम्बई के प्रसिद्ध जैन गृहस्थ परलोक मि० वीरचन्द गांधी अमेरीका को गये थे। वहां उन्होंने जैनधर्म विषयक परिचय कराने का क्रम भी किया था।

अमेरीका में गांधी फिलॉसोफिकल सोसायटी, अर्थात् जैन तत्त्वज्ञान का अध्ययन व प्रचार करने जो समाज स्थापित हुई वह उन्हीं के परिश्रम का फल है। दुर्दैव से मि० वीरचन्द गांधी का अकाल होने से उक्त आरंभ किया हुआ कार्य अपूर्ण रह गया है, इत्यादि।

(२६) पेरीस (फ्रान्स की राजधानी) के डॉक्टर ए. गिरनारने अपने पत्र ता. ३-१२-११ में है कि मनुष्यों की तरक्की के लिए जैनधर्म का चरित्र बहुत लाभकारी है यह धर्म बहुत ही असली,

स्वतंत्र, सादा, बहुत मूल्यवान तथा ब्राह्मणों के मतों से भिन्न है तथा यह बौद्ध के समान नास्तिक नहीं है।

(३७) जर्मनी के डाक्टर जोन्सहर्टल ता. १७-६-१९०८ के पत्र में कहते हैं कि मैं अपने देश वासियों को दिखाउंगा कि कैसे उत्तम नियम और ऊंचे विचार जैनधर्म और जैन आचार्यों में हैं। जैनों का साहित्य बौद्धों से बहुत बढ़कर है और ज्यों २ मैं जैनधर्म और उसके साहित्य को समझता हूँ त्यों २ मैं उनको अधिक पसंद करता हूँ।

(३८) मुहम्मद हाफिज सैयद बी. ए. एल. टी. थियोसोफिकल हाई स्कूल कानपूर लिखते हैं:—"मैं जैन सिद्धांत के सूक्ष्मतत्वों से गहरा प्रेम करता हूँ।"

(३९) श्रीयुत् तुकाराम कृष्ण शर्मा लट्टु बी. ए. पी. एच. डी. एम. आर. ए. एस. एम. ए. एस. बी. एम. जी. ओ. एस. प्रोफेसर संस्कृत शिलालेखादि के विषयकें अध्यापक क्वीन्स कॉलेज बनारस।

स्याद्वाद् महाविद्यालय काशी के दशम वार्षिकोत्सव पर दिये हुए व्याख्यान में से कुछ वाक्य उधृत।

"सबसे पहले इस भारतवर्ण में "रिषभदेवजी" नाम के महर्षि उत्पन्न हुए। वे दयावान् भद्र परिणामी, सबसे पहिले तीर्थंकर, हुए जिन्होंने मिथ्यात्व अवस्था को देखकर" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूप मोक्षशास्त्र का उपदेश दिया। बस यह ही जिनदर्शन इस कल्पमें हुआ। इसके पश्चात् अजित नाथसे लेकर महावीर तक तेइस तीर्थंकर अपने अपने समयमें अज्ञानी जीवोंका मोह अंधकार नाश करते थे।

(४०) साहित्यरत्न डाक्टर रवीन्द्रनाथ टागोर कहते हैं कि महावीरने डींडीम नादसे हिन्दमें ऐसा संदेश फैलाया कि:—धर्म यह मात्र सामाजिक रूढि नहि हैं परन्तु वास्तविक सत्य हैं, मोक्ष यह बाहरी क्रियाकांडसे नहिं मिलता, परन्तु सत्य-धर्म स्वरूपमें आश्रय लेने से ही मिलता है। और धर्म और मनुष्यों में कोई स्यायी भेद नहीं रह सकता। कहते आश्चर्य पैदा होता है कि इस शिक्षाने समाज के हृदयमें जड़ करके बैठी हुई भावनारूपी विघ्नोंको त्वरासे भेद दिये और देशको वशीभूत करलिया, इसके पश्चात् बहुत समय तक इन क्षत्रिय उपदेशकोंके प्रभाव बलसे ब्राह्मणों की सत्ता अभिभूत हो गई थी।

(४१) हिन्दी भाषाके सर्वश्रेष्ठ लेखक धुरंधर विद्वान् पंडीत् श्रीमहावीरप्रसादजी द्विवेदीने प्राचीन जैन लेख—संग्रहकी समालोचना "सरस्वती" में की है। उसमेंसे कुछ वाक्य ये हैं:—

(१) प्राचीन ढर्हेके हिन्दू धर्म्मावलम्वी बड़े बड़े शास्त्री तक अब भी नहीं जानते कि जैनियों का स्याद्वाद किस चिडियाका नाम है। धन्यवाद है जर्मनी, फ्रान्स और इंग्लेंड के कुछ विद्यानुरागी विशपज्ञोंको जिनकी कृपासे इस धर्मके अनुयायिओंको कीर्तिकलापकी खोज और भारत वर्ष के साक्षर जैनों का ध्यान आकृष्ट हुआ यदि यें विदेशी विद्वान् जैनों के धर्म ग्रंन्थों आदि की आलोचना न करते। यदि ये उनके कुछ ग्रंन्थों का प्रकाश न करते और यदि ये जैनों के प्राचीन लेखों की महत्ता प्रकट न करते तो हम लोग शायद पूर्ववत् ही अज्ञान के अंधकारमें ही डूबे रहते।

(२) भारतवर्षमें जैन धर्म्म ही एक ऐसा धर्म्म है जिसके अनुयायी साधुओं (मुनिओं) और आचार्यों में से अनेक जनोंने धर्मोपदेशके साथ ही साथ अपना समस्त जीवन ग्रन्थरचना और ग्रन्थ संग्रहमें र्च कर दिया है.

(३) बीकानेर, जैसलमेर और पाटण आदि स्थानों में हस्तलिखित पुस्तकोंके गाट्टों दन्ते अब भी ीत पाये जाते है।

(४) अकबर इत्यादि मुगल बादशाहों से जैन धर्म्मको कितनी सहायता पहुँची, इसका भी उल्लेख ई ग्रन्थों में हैं।

जैन शास्त्रों के अनुसार भगवान् ऋषभदेव का संक्षिप्त इतिहास लिख देता हूँ जिससे पाठक जैन धर्म का प्राचीन इतिहास से अवगत होजायंगे।

भगवान् ऋषभदेव का समय

जैसे काल का आदि अन्त नहीं है वैसे सृष्टि का भी आदि अन्त नहीं है अर्थात् सृष्टि का कर्त्ता-हर्त्ता कोइ नहीं है। अनादि काल से प्रवाह रूप चली आती है और भविष्य में अनन्तकाल तक ऐसे ही संसार चलता रहेगा। इसका अन्त न तो कभी हुआ और न कभी होगा।

सृष्टि में चैतन्य और जड़ एवं मुख्य दो पदार्थ है आज जो चराचर संसार दिखाई देता है वह सब चैतन्य और जड़ वस्तु का पर्यायरूप है। काल का परिवर्तन से कभी उन्नती कभी अवनति हुआ करती है उस कालका मुख्य दो भेद है (१) उत्सर्पिणी (२) अवसर्पिणी। इन दोनों को मिलाने से कालचक्र होता है ऐसा अनन्त कालचक्र भूतकाल में हो गये और अनंते ही भविष्यकाल में होगा वास्ते काल का आदि अन्त नहीं है। जब काल का आदि अन्त नहीं है तब काल की गणना करने वाला संसार (सृष्टि) का भी आदि अन्त नहीं होना स्वयं सिद्ध है।

(१) उत्सर्पिणी काल के अन्दर वर्ण गन्ध रस स्पर्श संहनन संस्थान जीवों का आयुष्य और शरीर (देहमान) आदि सब पदार्थों की क्रमशः उन्नति होती है।

(२) अवसर्पिणी काल में पूर्वोक्त सब बातों की क्रमशः अवनति होती है पर उन्नति और अवन्नति है वह समूहापेक्षा है न कि व्यक्ति अपेक्षा।

जब समय की अपेक्षा काल अनंता हो चुका है तब इतिहास भी इतना ही कालका होना एक स्वभावी बात है परंतु वह केवली गम्य है न कि एक साधारण मनुष्य उसे कह सके व लिख सके।

जैसे हिन्दू धर्म्ममें कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलयुग से कालका परिवर्त्तन माना है, वैसे ही जैनधर्म्म में प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी के छे छे हिस्से (आरा) द्वारा कालका परिवर्त्तन माना गया है।

(१) उत्सर्पिणी के छे हिस्से (१) दुःखमादुःखम (२) दुःखम (३) दुःखमासुखम (४) सुखमा-दुःखम (५) सुखम (६) सुखमासुखम, इस का स्वभाव है कि वह दुःखकी चरमसीमा से प्रवेश हो क्रमशः उन्नति करता हुआ सुख की चरमसीमा तक पहुँच के खतम होजाता है। बाद अवसर्पिणी का प्रारंभ होता है।

(२) अवसर्पिणी के छे हिस्से (१) सुखमासुखम (२) सुखम (३) सुखमादुःखम (४) दुःखमासुखम (५) दुःखम (६) दुःखमादुःखम. इस काल का स्वभाव है कि वह सुख की चरमसीमा से प्रवेश हो क्रमशः अवनति करता हुवा दुःख की चरम सीमा तक पहुँच के खतम होजाता है। बाद फिर उत्सर्पिणी कालका प्रारंभ होता है। एवं एक के अन्त में दूसरी घटमाल की माफीक काल घूमता रहता है। वर्तमान समय जो वरत रहा है वह अवसर्पिणी काल है। आज मैं जो कुछ लिख रहा हूँ वह इसी अवसर्पिणी काल के छ हिस्सों के लिये है।

अवसर्पिणी काल के छे हिस्से में पहले हिस्से का नाम सुखमासुखमारा है, वह चार कोडाक्रोड सागरोपम का है उस समय भूमिकी सुन्दरता सरसाइ व कल्पवृक्ष बड़े ही मनोहर—अलौकिक थे उस समय के मनुष्य अच्छे रूपवान, विनयवान्, सरलस्वभावी, भद्रिक परिणामी, शान्तचित्त, कषायरहित, ममत्वरहित, पद्चारी, तीन गाउका शरीर, तीन पल्योपमका आयुष्य, दोसो छप्पन्न पास अस्थि, असी मसी कसी, कर्म्म-रहित दश प्रकार के कल्पवृक्ष मनइच्छित भोगोपभोग पदार्थ से जिनको संतुष्ट करते थे उन युगलमनुष्यों (दम्पति) से एक युगल पैदा होता था। वह ४९ दिन उसका प्रतिपालन कर एक को छींक दूसरे को

उवासी आते ही स्वर्ग पहुँच जाते थे पीछे रहा हुआ युगल अपनी शेष अवस्था में दम्पति सा बरताव स्वयं ही कर लेते थे उस जमाने के सिंह व्याघ्रादि पशु भी भद्रिक, वैरभावरहित, शान्तचित्तवाले ही थे जैसे जैसे काल निर्गमन होता रहा वैसे वैसे वर्ण गन्ध रस स्पर्श संहनन संस्थान देहमान आयुष्यादि सब में न्यूनता होती गई। यह सब अवसर्पिणी काल का ही प्रभाव था।

(२) दूसरे हिस्से का नाम सुखमआरा वह तीन क्रोडाक्रोड सागरोपमका था इस समय भी युगलमनुष्य पूर्ववत् ही थे पर इनका देहमान दो गाउ और आयुष्य दो पल्योपमका था प्रतिपालन ६४ दिन पास अस्थि १२८ और भी काल के प्रभाव से सब वातों में क्रमशः हानि होती आइ थी।

(३) तीसरे हिस्से का नाम सुखमदुःखमारा यह दो कोडाकोड सागरोपम का था एक पल्योपम का आयुः एक गाउ का शरीर ७९ दिन प्रतिपालन ६४ पासास्थि आदि क्रमशः हानि होती रही इसके तीन हिस्से से दो हिस्सा तक तो युगलधर्म बराबर चलता रहा पर पिछले हिस्से में कालके प्रभाव से कल्प- वृक्ष फल देने में संकोच करने लगे इस कारण से युगल मनुष्यों में ममत्वभावका संचार हुआ जहां ममत्वभाव होता है वहां क्लेश होना स्वभाविक ही है जहां क्लेश होता है वहां इन्साफ की भी परमावश्यकता हुआ करती है। युगल मनुष्य एक ऐसे न्यायाधीश की तलासी में थे ठीक उससमय एक युगल मनुष्य उज्जवल वर्ण के हस्तीपर सवारी कर इधर-उधर घूमता था युगलमनुष्यों ने सोचा कि यह सब में बड़ा मनुष्य है "कारण कि इस के पहले किसी युगलमनुष्य ने सवारी नहीं करी थी" सब युगलमनुष्यों ने एकत्र हो उस सवारी वाले युगल को अपना न्यायाधीश बनाके उसका नाम "विमलवाहन" रखदिया कारण उसका वाहन सुफेद (विमल) था जब कोई भी युगलमनुष्य अपनी मर्यादा का उल्लंघन करे तब वही 'विमलवाहन' उसको दंड देने को 'हकार दंड नीति मुकर्रर करी तदानुसार कह देता कि हें ! तुमने यह कार्य किया ? इतने पर वह युगल लज्जित विलज्जित हो जाता और तमाम उमर तक फिर से ऐसा अनुचित कार्य्य नहीं करता था। कितने काल तो इसमें निर्गमन हो गया। बाद विमलवाहन कुलकर की चंद्रयशा भार्या से चक्षुष्मान नामका पुत्र हुआ वह भी अपने पिता के माफिक न्यायाधीश (कुलकर) हुआ, उसने भी 'हकार' नीति का ही दंड रखा चक्षुष्मान की चंद्राकान्ता भार्या से यशस्वी नाम का पुत्र हुआ वह भी अपने पिता के स्थान कुलकर हुआ पर इसके समय कल्पवृक्ष बहुत कम हो गये जिसमें भी फल देने में बहुत संकीर्णता होने से युगलमनुष्यों में और भी क्लेश बढ़ गया 'हकार' नीतिका उल्लंघन होने लगा तब यशस्वी ने हकार को बढ़ा के 'मकार' नीति बनाई अगर कोई युगलमनुष्य अपनी मर्यादा का उल्लंघन करे उसे 'मकार दंड अर्थात् 'मकरो' इससे युगलमनुष्य बड़े ही लज्जितविलज्जित होकर वह काम फिर कदापि नहीं करते थे। यशस्वी की रूपाखि से अभिचंद्र नामका पुत्र हुआ वह भी अपने पिता की माफिक कुलकर हुआ उसके समय हकार मकार नीति दंड रहा अभिचंद्र के प्रतिरूपा नाम की भार्या से प्रसेनजीत नामका पुत्र पैदा हुआ वह भी अपने पिता के स्थान कुलकर हुआ इसके समय काल का और भी प्रभाव बढ़ गया कि इसको 'हकार' 'मकार से बढ़ के 'धिकार' नीति बनानी पड़ी अर्थात् मर्यादा उल्लंघने वाले युगलों को, 'धिकार' कहने से वह लज्जितविलज्जित हो फिर दूसरीवार ऐसा कार्य्य नहीं करते थे प्रसेनजीत की चक्षुष्कान्ताखिसे मरुदेव नामका पुत्र हुआ, वह भी अपने पिता के स्थान कुलकर हो तीनों दंड नीति से युगलमनुष्यों को इन्साफ देता रहा मरुदेव की भार्या श्रीकान्ता की कुक्षी से नाभी नामका पुत्र हुआ वह भी अपने पिता के पद पर कुलकर हुआ, इसके समय भी तीनों प्रकार की दंड नीति प्रचलित थी पर कालका भयंकर प्रभाव युगलमनुष्यों पर इस कदर का हुआ कि वह हकार मकार धकार ऐसी तीनों प्रकार की दंड नीति को उल्लंघन करने से अमर्यादित हो गये थे इस समय कल्पवृक्ष भी

वहुत कम हो गये जो कुछ रहे थे वह भी फल देने में इतनी संकीर्णता करते थे कि युगल मनुष्यों में भोगोपभोग के लिये प्रचुर कषाय का प्रादुर्भाव होने लग गया—

सं०	कुलकर	भार्या	पिता	माता	आयुष्य	देहमान	दंडनीति
१	विमलवाहन	चंद्रयशा	अज्ञात	अज्ञात	पल्योपम के दशमे अंश	९०० धनुष्य	हकार
२	चक्षुष्मान	चंद्रकान्ता	विमलवाहन	चंद्रयशा	कुच्छ न्यून	८०० ,,	,,
३	यशस्वी	स्वरूपा	चक्षुष्मान	चंद्रकान्ता	सं० ,,	७०० ,,	मकार
४	अभिचन्द्र	प्रतिरूपा	यशस्वी	स्वरूपा	,, ,,	६५० ,,	,,
५	प्रसेनजीत	चक्षुकान्ता	अभिचंद्र	प्रतिरूपा	,, ,,	६०० ,,	धीकार
६	मरुदेव	श्रीकान्ता	प्रसेनजीत	चक्षुकान्ता	सं० व०	५५० ,,	,,
७	नाभिराजा	मरुदेवा	मरुदेव	श्रीकान्ता	,,	५०० ,,	,,

यद्यपि जैनशास्त्रकारों ने युगलमनुष्योंका व कुलकरों का विषय सविस्तर वर्णन किया है पर मैंने मेरे उद्देशानुसार यहां संक्षिप्तसे ही लिखा है अगर विस्तार से देखने की अभिलाषा हो उन ज्ञानप्रेमियों को श्री जम्बुद्विपप्रज्ञप्तिसूत्र जीवाभिगमसूत्र आवश्यकसूत्र और त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्रादि ग्रन्थों से देखना चाहिये।

इति भोगभूमि मनुष्यों का संबन्ध ॥

सर्वार्थसिद्ध वैमानमें राजा वज्रजंघ का जीव जो देवता था वह तेतीस सागरोपम की स्थिति को पूर्ण कर इक्ष्वाकु भूमिपर नाभीकुलकरकी मरुदेवा भार्या की पवित्र कुक्षी में असाढ वद ४ को तीन ज्ञान संयुक्त अवतीर्ण हुये माताने वृषभादि १४ स्वप्ने देखे नाभीकुलकर व इन्द्रने स्वप्नों का फल कहा—शुभ दोहला पूर्ण करते हुए चैत्र वद ८ को भगवानका जन्म हुआ ५६ दिग्कुमारिकाओं ने सूतिकाकर्म किया और ६४ इन्द्रोंने सुमेरु गिरिपर भगवान्‌का स्नात्रमहोत्सव बड़े ही समारोह के साथ किया। वृषभका स्वप्नसूचित भगवानका नाम वृषभ यानि ऋषभदेव रखा। इन्द्र जब भगवान् के दर्शनको आया तब हाथमें इक्षु (सेलडी का सांठा) लाया था और भगवान्‌को आमन्त्रण करनेपर प्रभुने ग्रहण किया वास्ते इन्द्रने आपका इक्ष्वाकुवंश स्थापन किया।

सुमंगला—भगवान्‌के साथ युगलपने जन्म लिया था।

सुनंदा—एक नूतन युगल ताड वृक्ष के नीचे बैठा था उस ताड का फल लड़का के कोमल स्थान पर पड़ने से लड़का मर गया बाद लड़की को नाभीराजा के पास पहुँचा दी। इन दोनों (सुमंगला और सुनंदा) के साथ भगवानका पाणिग्रहण हुआ यह पाणिग्रहण पहलापहल ही हुआ था जिसके सब व्यवहार विधि विधान पुरुषोंका कर्त्तव्य इन्द्रने और औरतों का कार्य्य इन्द्राणि ने किया था जबसे युगल धर्म्मबन्ध हो सब युगलमनुष्य इस रीति से पाणिग्रहण करने लगे।

इधर कल्पवृक्ष प्रायः सर्व नष्ट हो जानेसे युगल मनुष्योंमें अधिकाधिक क्लेश बढ़ने लगा नाभीकुलकर के हकार मकार धिक्कार दंड देनेपर भी क्षुधातुर युगल मर्य्यादाका बराबर भंग करने लगे युगलमनुष्यों ने नाभीराजासे एक राजा बनानेकी याचना करी उत्तर में यह कहा कि "जाओ तुम्हारे राजा ऋषभ होगा" इस अवसर पर इन्द्र ने आकर भगवानका राजभिषेक करने का सर्व रीतरिवाज युगलमनुष्यों को बतलाया और स्वच्छ

जल लानेका आदेश दिया तब युगल पाणिलानेको गया बाद इन्द्रने राजसभा राजसिंहासन राजाके योग्य वस्त्राभूषणों से भगवान् को अलंकृत कर राजसिंहासनपर विराजमान कर दिये । युगलमनुष्य जलपात्र लाये भगवान् को सालंकृत देख पैरोंपर जलाभिषेक कर दिये तब इन्द्रने युगलोंको विनीत कह कर स्वर्गपुरी सदृश १२ योजन लंबी ९ योजन चौडी विनीता नामकी नगरी बसाई उसके देखादेख अन्य नगर ग्राम वसना प्रारंभ हुआ. भगवान् का इक्ष्वाकुवंश था । जिसको कोटवाल पदपर नियुक्त किया उनका उग्रकुल जिनको बडा माना उनका भोगकुल जिनको मंत्रिपदपर मुकर्रर किया उनका राजन्कुल शेष जनताका क्षत्रियकुल स्थापन किया जबसे कुल व वंशोंकी स्थापना हुई शेष कुल वंश इनोके अन्दरसे कारण पा पाके प्रगट हुवे हैं ।

भगवान् ने युगल मनुष्यों का प्रतिपालन करने में व नीतिधर्म्म का प्रचार करने में कितना ही काल निर्गमन किया उसके दरम्यान भगवान् के भरत बाहुबलादि १०० पुत्र और ब्राह्मी सुन्दरी दो पुत्रियाँ हुई थी भरत बाहुबलादि को पुरुषों के ७२ *कला और ब्राह्मी सुन्दरी को स्त्रियों की ६४ †कला व अठारह प्रकार की लिपि बतलाई जिनसे संसार व्यवहार का सब कार्य प्रचलित हुआ अर्थात् आज संसार भरमें जो कलायें व लिपियाँ चल रही हैं वह सब भगवान ऋषभदेव की चलाई हुई कलाओं के अन्तर्गत हैं न कि कोई नवीन कला हैं । हाँ कभी किसी कला लिपिका लोप होना और फिर कभी सामग्री पाके प्रगट होना तो काल के प्रभाव से होता ही आया है ।

भगवान का चलाया हुआ नीति धर्म्म-संसारका आचार व्यवहार कला कौशल्यादि संपूर्ण आर्यव्रत में फैल गया मनुष्य असी मसी कसी आदि कर्म से सुखपूर्वक जीवन चलाने लगे पर आत्मकल्याण के लिये लौकिकधर्म्म के साथ लौकोत्तर धर्म्म की भी परमावश्यक्ता होने लगी ।

भगवान् के आयुष्य के ८३ लक्षपूर्व इसी संसार सुधारने में निकल चुके तब लोकान्तिकदेवने आके अर्ज करी कि हे दीनोद्धारक ! आपने जैसे नीतिधर्म्म प्रचलित कर क्लेश पाते हुये युगल मनुष्यों का उद्धार

---

*पुरुषों की ७२ कला—लिखनेकीकला, पढ़नेकीकला, गणितकला, गीतकला, नृत्यकला, तालबजाना, पटहबजाना, मृदंगबजाना, वीणाबजाना, वंशपरीक्षा, भेरीपरीक्षा, गजशिक्षा, तुरंगशिक्षा, धातुर्वाद, दृष्टिवाद, मंत्रवाद, बलिपलितविनाश, रत्नपरीक्षा, नारीपरिक्षा, नरपरीक्षा, छंदबंधन, तर्कजल्पन, नीतिविचार, तत्त्वविचार, कवितशक्ति, जोतिषशास्त्रज्ञान, वैद्यक, षड्भाषा, योगाभ्यास, रसायणविधि, अंजनविधि, अठारहप्रकारकीलिपि, स्वप्नलक्षण, इंद्रजालदर्शन, खेतीकरनी, वाणिज्य-करना, राजाकीसेवा, शकुनविचार वायुस्तंभन, अग्निस्तंभन, मेघवृष्टि, विलेपनविधि, मर्दनविधि, ऊर्ध्वगमन, घटबंधन, घटभ्रमन, पत्रच्छेदन, मर्मभेदन, फलाकर्पण, जलाकर्पण, लोकाचार, लोकरंजन, अफल वृक्षों को सफल करना, खड्गबंधन, छुरीबंधन, मुद्राविधि, लोहज्ञान, दांतसमारण, काललक्षण, चित्रकरण, बाहुयुद्ध, मुष्टियुद्ध, दंडयुद्ध, दृष्टियुद्ध, खड्गयुद्ध, वागयुद्ध, गारुडविद्या; सर्पदमन, भूतमर्दन, योग—द्रव्यानुयोग, अक्षरानुयोग, व्याकरण, औषधानुयोग, वर्षज्ञान ।

†अब स्त्रियोंकी चौसठ कला—नृत्यकला, औचित्यकला, चित्रकला, वादित्रकला, मंत्र, तंत्र, ज्ञान, विज्ञान, दंभ, जलस्तंभ, गीतज्ञान, तालज्ञान, मेघवृष्टि, फलवृष्टि, आरामारोपण, आकारगोपन, धर्मविचार, शकुनविचार, क्रियाकल्पन, संस्कृतजल्पन, प्रसादनीति, धर्मनीति, वर्णिकावृधि, स्वर्णसिद्धि, तैलसुरभीकरण, लीलासंचरण, गजतुरंगपरीक्षा, स्त्रीपुरुषके लक्षण, कामक्रिया, अष्टादश लिपिपरिच्छेद, तत्कालबुद्धि, वस्तुशुद्धि, वैद्यकक्रिया, सुवर्णरत्नभेद, घटभ्रम, सारपरिश्रम, अंजनयोग, चूर्णयोग, हस्तलाघव, वचनपाटव, भोज्यविधि, वाणिज्यविधि, काव्यशक्ति, व्याकरण, शालिखंडन, मुखमंडन, कथाकथन, कुसुमगुंथन, वरवेष, सकलभाषा, विशेषज्ञ, अभिधानपरिज्ञान, आभरण पहनने, भृत्योपचार, गृहाचार, [illegible], परनिराकरण, धान्यरंधन, केशबंधन वीणावादीनाद, वितंडावाद, अंकविचार, लोकव्यवहार, अंत्याक्षरिका, इसके सिवाय सोनार लोहार जो कुंभकार सुतार नाई दरजी छीपा आदि की कलाओं अर्थात् यों कहें तो दुनियाँ का सब व्यवहार ही भगवान् आदिनाथ ने ही चलाया था ।

किया है वैसे अब आत्मिक धर्म्म प्रकाश कर संसार समुद्र में परिभ्रमन करते हुये जीवों का उद्धार कीजिये आपकी दीक्षा का समय आ पहुँचा है अर्थात् कुछ न्यून अठारा क्रोडाक्रोड सागरोपम से मोक्षमार्ग बन्ध हो रहा है उसको आप फिरसे चालू करावें ।

भगवान् दीक्षाका अवसर जान एक वर्ष तक (वर्षिदान) अति उदार भावनासे दान दिया, भरत को विनीता का राज बहुबलीको तक्षशीला का राज और अंग वंग कुरु पुंड्र चेदि सुदन मागध अंध्र कलिंकभद्र पंचाल दशार्ण कौशल्यादि पुत्रों को प्रत्येक देशका राज देदिया. पुत्रोंका नाम था वह ही नाम देश का पड गया. भगवान् की दीक्षा के समय चौसठ इन्द्रोंने सपरिवार आकर के बडा भारी दीक्षा महोत्सव किया भगवान्ने ४००० पुरुषोंके साथ चैत वद ८ के दिन सिद्धोंको नमस्कार पूर्वक स्वयं दीक्षा धारण कर ली ।

पूर्वजन्ममें भगवान्ने अन्तराय *कर्मोपार्जन किया था वास्ते भगवान् को भिक्षा के लिये पर्यटन करने पर भी एक वर्ष तक भिक्षा न मिली कारण भगवान् के पहला कोई इस रीती से भिक्षा लेनेवाला था ही नहीं और उस समय के मनुष्य इस बात को जानते भी नहीं थे कि भिक्षा क्या चीज है ? हाँ हस्ति अश्व रत्न माणक मोती और सालंकृत सुन्दर बालाओं की भेटें वह मनुष्य करते थे पर भगवान् को इनसे कोइ भी प्रयोजन नहीं था । उस एक वर्षके अंदर जो ४००० शिष्य थे वह क्षुधा पिडित हो जंगल में जाके फलफूल कन्द मूलादिका भोजन कर वहांही रहने लगे. कारण उच्च कुलीन मनुष्य संसार त्यागन कर फिर उसको स्वीकार नहीं करते हैं वह सब जंगलों में रह कर भगवान् ऋषभदेवका ध्यान करते थे ।

एक वर्ष के बाद भगवान् हस्तनापुर नगरमें पधारे वहां बहुबली का पौत्र श्रेयांस कुमारके हाथ से वैशाख शुद ३ को इक्षुरसका पारणा किया देवताओंने रत्नादि पंच पदार्थ की वर्षा करी तबसे वह मनुष्य मुनियोंको दान देने की रीति जानने लगे. यह हाल सुनके ४००० जंगलवासि मुनि फक्त कच्छ महाकच्छ वर्जके क्रमशः सब भगवान् के पास आके अपने संयम तप से आत्मकल्याण करने लग गये ।

भगवान् छद्मस्थपने बाहुबली कि तक्षशीला के बाहर पधारे बाहुबली को खबर होने पर विचार किया कि प्रभात को मैं बड़े आडम्बर से भगवान् को बन्दन करने को जाउंगा पर भगवान् सुबह अन्यत्र विहार कर गये उस स्थान बाहुबली ने भगवान् के चरण पादुकाओं की स्थापना करी वह तीर्थ राजाविक्रम के समय तक मोजुद था बाद किसी समय म्लेच्छोंने नष्ट कर दिया.

क्रमशः भगवान् १००० वर्ष छद्मस्थ रहे अनेक प्रकारके तपश्चर्यादि करते हुवे पूर्वोपार्जित कर्मोंका क्षय कर फागण वद ११ को पुरिमताल के उद्यानमें दिव्य कैवल्यज्ञान कैवल्यदर्शन प्राप्त कर लिया आप सर्वज्ञ हो सकल लोकालोक के भावों को हस्तामलककी माफिक देखने लग गये. भगवान् को कैवल्यज्ञान हुआ उस समय सर्व इन्द्र मय देवीदेवताओं के कैवल्य महोत्सव करने को आये महोत्सव कर समवसरण की रचना करी यानि एक योजन भूमिमें रत्न, सुवर्ण, चांदी के तीन गढ बनाये उपर के मध्यभागमें स्फटिक रत्नमय सिंहासन बनाया. पूर्व दिशामें भगवान् विराजमान हुवे शेष तीन दिशाओं में इन्द्रके आदेशसे व्यन्तरदेवोने भगवान् के सदृश तीन प्रतिबिंब (मूर्त्तियां) विराजमान कर दी चोतरफ के दरवाजे से आनेवाले सबको भगवान् का दर्शन होता था और सब लोक जानते थे कि भगवान् हमारे ही सन्मुख हैं योजन प्रमाण समवसरण में स्वच्छ जल सुगन्ध पुष्प और दशांगी धूप वगैरह सब देवों ने तीर्थकरों की भक्ति के लिये किया था ।

भगवान् के चार अतिशय जन्म से, एकादश ज्ञानोत्पन्नसे और १९ देवकृत एवं चौंतीस अतिशय व अनंत ज्ञान अनंत दर्शन अनंत चरित्र अनंत लब्धि अशोकवृक्ष भामंडल स्फटिक सिंहासन आकाशमें देववाणि

---

*किसी कालमें ५०० बलदोंके मुंहपर छीकोयों बन्धा के अन्तराय कर्म बान्धा था ।

(उद्घोषणा) पांच वर्णके घुटने प्रमाणे पुष्प तीनछत्र चौसठ इन्द्र दोनों तर्फ चमर कर रहे इत्यादि असंख्य देव देवी नर विद्याधरोसे पूजित जिनके गुण ही अगम्य है ?

इधर माता मरूदेवा चिरकालसे ऋषभदेवकी राह देख रहीथी कभी कभी भरतको कहा करती थी कि भरत ! तुँ तो राज में मग्न हो रहा है कभी मेरे पुत्र ऋषभ की भी खबर मंगवाइ है? उसका क्या हाल होता होगा ? इत्यादि ।

भरत महाराज के पास एक तरफ से पिताजीको कैवलयज्ञानोत्पन्न की बधाई आइ, दूसरी तरफ आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न होने की खुशखबरी मिली, तीसरी तरफ पुत्र प्राप्ति की बधाई मिली. अब पहला महोत्सव किसका करना चाहिये ? विचार करने पर यह निश्चय हुआ कि पुत्र और चक्ररत्न तो पुन्याधीन है इस भवमें पौद्गलिक सुख देने वाला है पर भगवान् सच्चे आत्मिक सुख अर्थात् मोक्ष मार्ग के दातार हैं वास्ते पहिले कैवल्यज्ञानका महोत्सव करना जरूरी है इधर माता मरूदेवा को भी खबर दे दी कि आपका प्यारा पुत्र बड़ा ही ऐश्वर्य संयुक्त पुरिमतालोद्यानमें पधार गये हैं यह सुन माता स्नान मज्जन कर भरत को साथ लेकर हस्ती के उपर होदेमें बैठ के पुत्र दर्शन करनेको समवसरण में आई भरतने ऊंचा हाथ कर दादीजीको बतलाया कि वह रत्नसिंहासन पर आपके पुत्र ऋषभदेव विराजमान हैं माताने प्रथम तो स्नेह युक्त बहुत उपालंभ दिया. बाद वीतराग की मुद्रा देख आत्मभावना व क्षपकश्रेणि और शुक्ल ध्यान ध्याती हुई माता को कैवल्यज्ञान कैवल्यदर्शोत्पन्न हुआ, असंख्यात काल से भरतक्षेत्र के लिये जो मुक्ति के दर्वाजे बन्ध थे उसको खोलने को अर्थात् नाशमान शरीर को हस्ती पर छोड सबसे प्रथम आप ही मोक्ष में जा विराजमान हुइ मानो ऋषभदेव भगवान् अपनी माता को मोक्ष भेजने के लिये ही यहां पधारे थे. तत्पश्चात् चौसठ इन्द्रों और सुरासुर नर विद्यधरोंसे पूजित-भगवान् ऋषभदेवने चार प्रकार के देव व चार प्रकार की देवियों व मनुष्य मनुष्यणि और तीर्यंच तीर्यंचनि आदि विशाळ परिषदा में अपनां दिव्य ज्ञानद्वारा उच्चस्वर से भवतारणि अतीव गांभीर्य मधुर और सर्व भाव प्रकाश करने वाली जो नर अमर पशु पक्षी आदि सबकी समझ में आजावे वैसी धर्मदेशना दी जिसमें स्याद्वाद, नय निक्षेप द्रव्य-गुणापर्याय कारणकार्य निश्चय व्यवहार जीवादि नौतत्त्व षट्द्रव्य लोकालोक स्वर्ग मृत्यु पाताल का स्वरूप, व सुकृताकर्मका सुकृतफल दुःकृतकर्मका दुः-कृतफळ दान शील तप भाव गृहस्थधर्म षट्कर्म बारहव्रत यतिधर्म पंचमहाव्रतादि विस्तार से फरमाया उस देशनाका असर श्रोताजनपर इस कदर हुवा कि वृषभसेन (पुंडरिक) आदि अनेक पुरुष और ब्रह्मीआदि अनेक स्त्रियों वे भगवान् के पास मुनि धर्मको स्वीकार किया और जो मुनिधर्म पालनमें असमर्थ थे उन्होने श्रावक (गृहस्थ) धर्म अंगीकार किया उस समय इन्द्रमहाराज वज्ररत्नों के स्थाळ में वासक्षेप लाकर हाजर किया तब भगवान् नें मुनि आर्यिक श्रावक और श्राविका पर वासक्षेप डाल चतुर्विध श्रीसंघ की स्थापना करी जिसमें वृषभसेन को गणधरपद पर नियुक्त किया जिस गणधर ने भगवान् की देशना का सार रूप द्वादशाङ्ग सिद्धान्तों की रचना करी यथा-आचारांगसूत्र सूत्रकृतांगसूत्र स्थानायांगसूत्र समवायांगसूत्र विवाहपन्नतिसूत्र ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र उपासकदशांगसूत्र अन्तगढ़दशांगसूत्र अनुत्तरोववाइदशांगसूत्र प्रश्नव्याकरणदशांगसूत्र विपाकदशांगसूत्र और दृष्टिवादपूर्वांगसूत्र एवं तत्पश्चात् इन्द्रमहाराज ने भगवान् की स्तुति वन्दन नमस्कार कर स्वर्ग को प्रस्थान किया भरतादि भी प्रभु की गुणगान स्तुति आदि कर विसर्जन हुवे-अन्यदा एक समय सम्राट् भरतने नमस्कार किया कि हे विभो ! जैसे आप सर्वज्ञ तीर्थंकर हैं वैसा भविष्य में कोई तीर्थंकर होगा उत्तर में भगवान् ने भविष्य में होने वाले तेवीस तीर्थंकरों के नाम वर्ण आयुष्य शरीरमानादि सब हाल अपने दिव्य कैवल्यज्ञान द्वारा फरमाया (वह आगे बताया गया है) इसकी स्मृति के लिये भरत ने अष्टापद पर्वत पर २४ तीर्थंकरों

के रत्न सुवर्णमय २४ मन्दिर बनाके उसमें तीर्थंकरों के नाम वर्ण और देहमान प्रमाणे मूर्त्तियाँ बनवा के स्थापन करवा दीं वह मन्दिर भगवान् महावीर के समय तक मौजूद थे जिनकी यात्रा भगवान् गौतम-स्वामी ने की थी। इतना ही क्यों पर विक्रम की दशवीं शताब्दी में वीराचार्य ने भी यात्रा की थी।

भगवान्के साथ ४००० राजकुमारों ने दीक्षा ली थी जिनमें भरतका पुत्र मरिचीकुमार भी शामिल था पर मुनिमार्ग पालनमें असमर्थ हो उसने अपने मनसे एक निराले वेषकी कल्पना कर ली जैसे परिव्राजक सन्यासियोंका वेष है। पर वह तत्वज्ञान व धर्म्म सब भगवान् का ही मानता था अगर कोइ उसके पास दीक्षा लेनेको आता था तब उपदेश दे उसे भगवान् के पास भेज देता था एक समय भरतने प्रश्न किया कि हे प्रभु! इस समवसरणके अन्दर कोइ ऐसा जीव है कि वह भविष्यमें तीर्थंकर हो? भगवान्ने उत्तर दिया कि समवसरणके बाहर जो मरिची बैठा है वह इसी अवसर्पिणीके अन्दर त्रिपृष्ट नामक प्रथम वासुदेव व विदेहक्षेत्र की मूका राजधानीमें प्रियमित्र नामका चक्रवर्ति और भरत में कर चौवीसवां महावीर नामका तीर्थंकर होगा यह सुन भरत, भगवान् को बन्दन कर मरिचीके पास आकर वन्दना करता हुवा कहने लगा कि हे मरिची! मैं तेरे इस वेषको वन्दना नहीं करता हूँ परंतु वासुदेव चक्रवर्ति और चरम तीर्थंकर होगा वास्ते भावि तीर्थंकर को मैं वन्दना करता हूं यह सुन मरिचीने मद (अहंकार) किया कि अहो मेरा कुल कैसा उत्तम है? मेरा दादा तीर्थंकर मेरा बाप चक्रवर्ति और मैं प्रथम वासुदेव हूँगा इस मदके मारे मरिचीने नीच गोत्रोपार्जन किया। एक समय मरिची भगवान् के साथ विहार करता था कि उसके शरीरमे बीमारी हो गइ पर उसे असंयति समझ किसी साधुने उसकी वैयावृत्य नहीं करी तब मरिचीने सोचा कि एक शिष्य तो अपनेको भी बनाना चाहिये कि वह ऐसी हालतमें टहल चाकरी कर सके? बाद एक कपिल नामका राजपुत्र मरिचीके पास दीक्षा लेनेको आया मरिचीने उसे भगवान के पास जानेको कहा पर वह बहुलकर्मि कपिल बोला की तुमारेमत से भी धर्म है या नहीं इस पर मरिची ने सोचा कि यह शिष्य मेरे लायक है तब कहा कि मेरे मत में भी धर्म है और भगवान् के मतमे भी धर्म है इस पर कपिलने—मरिचीके पास योग ले सन्यासी का वेष धारण कर लिया मरिचीने इस उत्सूत्र भाषण करने से एक कोड़ाकोड़ सागरोपम संसार की वृद्धि करी। मरिची का देहान्त होने के बाद कपिल मरिची की बतलाई हुई ज्ञानशून्य क्रिया करने लगा इस कपिल के एक आसुरि नामका शिष्य हुवा उसने भी ज्ञानशून्य मार्गका पोषण किया क्रमशः इस मतमें एक सांख्य नामका आचार्य हुआ था उसी के नाम पर सांख्य मत प्रसिद्ध हुआ।

भगवान् ने दीक्षा समय पर सब पुत्रों को अलग २ देशों का राज दिया था उस समय नमि विनमि वहां ... नहीं थे बाद में वह आये और खबर हुई कि भगवान् ने सब को राज दे दिया अपुन भाग्यहीन कोरे रह ... ऐसा विचार कर वह भगवान् के पास आये कितने ही दिन प्रभुके पास रहे परन्तु भगवान् ने तो मौन ही ... किया उस समय धरणेन्द्र भगवान्को वन्दन करने को आया था उसने नमि विनमी को समझा के ...८००० विद्याओं के साथ वैताढ्यगिरिका राज्य दिया फिर नमीने उत्तर श्रेणिमें ६० नगर और विनमिने दक्षिण श्रेणिपर ५० नगर बसाके राज करने लगे और वे विद्याधर कहलाते हैं क्रमशः उनके वंश में रावण ... सुग्रीव पवन हनुमानादि हुये हैं वह सब इन दोनोंकी संतान है।

सम्राट भरतने जब छै खण्ड में दिग्विजय करके आया तब भी चक्ररत्नने आयुधशालामें प्रवेश ... किया इसका विचार करने से ज्ञात हुवा कि बाहुबलने अभी तक हमारी (भरतकी) आज्ञा स्वीकार नहीं ... तब दूत को तक्षशिला भेजके बाहुबली को कहलाया कि तुम हमारी आज्ञा मानो, इस पर बाहुबलीने ...कार कीया तब दोनों भाइयोंमें युद्ध की तय्यारी हुई अन्य लोगों का नाश न करते हुवे दोनों भाइयों में

कई प्रकार का युद्ध हुए पर बाहुबली पराजय नहीं हुआ अन्तमें मुष्टियुद्ध हुआ बाहुबली ने भरत पर मुष्टि प्रहार करने को हाथ उंचा कर तो लिया पर फिर विचार हुआ कि अहो संसार असार है एक राज के लिये में वृद्ध बन्धु को मारने को तैयार हुवा हूँ बस उंचा किया हुआ हाथ से अपने बालों का लोच कर आप दीक्षा धारण कर ली पर भगवान् के पास जानेमें यह रूकावट हुई कि—

भरतने बाहुबलीके पहिले ९८ भाईयोंके पास दूत भेजा था तब ९८ भाइयोंने भगवान् के पासमें जाकर अर्ज करी कि हे दयाल ! आपका दिया हुवा राज हमसे भरतराजा छीन रहा है वास्ते आप भरत को बुला के समझा दो इस पर भगवान ने उपदेश किया कि हे भद्र ! यह तो कृत्रिमराज है पर आओ मेरे पास में तुम को अक्षयराज देता हूँ कि जिसका कभी नाश ही नहीं हो सकेगा इस पर ९८ भाईयोंने भगवान्के पास दीक्षा ले ली—बस वहुवलीने सोचा कि में उन छोटे भाईयोंको वन्दना कैसे करू अर्थात् उन लघु बन्धुओं को नमस्कार करना नहीं चाहता हुआ जंगलमें जा कर ध्यान लगा दिया जिसको एक वर्ष हो गया। उनके शरीर पर लताओं वेलियो और घास इतना तो छा गया कि पशुपक्षीयोंने वहां अपना घोसले बना लिया। इधर भगवान् ने बाहुबल ऋषिको समझाने के लिये ब्राह्मी तथा सुन्दरी साध्वियों को भेजी वह आकर भाईयों को कहने लगी "वीरा म्हारा गजथ की उतरो, गज चढियो केवल नहीं होसीरे" यह सुनके बाहुबली ने सोचा कि क्या साध्वियां भी असत्य बोलती है ! कारण की मैं तो गज तुरंग सब छोड़के योग लिया है परजब ज्ञान दृष्टि से विचारने लगा तब साध्वियों का कहना सत्य प्रतीत हुआ सच ही मैं मानरूपी गजपर चढा हुँ ऐसा विचार ९८ भाईयोंको वन्दन करने की उज्वल भावना से ज्यों कदम उठाया कि उसी समय बाहुबलीजीको कैवल्यज्ञान उत्पन्न हो गया वहां से चलके भगवान्के पास जाके भगवान्को प्रदक्षिना कर केवली परिषदामें सामिल हो गये।

इधर भरत सम्राट् ने सुना कि मेरे राज लोभ के कारण ९८ भाईयों ने भी भगवान् के पास दीक्षा ले ली है अहो मेरी कैसी लोभदशा कि भगवान् के दीये हुवे राज भी मैंने ले लीया भगवान् क्या जानेगा इत्यादि पश्चात्ताप करता हुआ विचार किया कि मैं ९८ भाईयोंके लिये भोजन करवा कर वहाँ जा मेरे भाइयों को भोजन जीमा के क्षमा की याचना करू वैसे ही वहुत से गाड़ा भोजन से भरकर भगवान् के समवसरण में आया भगवान् को वंदन कर अर्ज करी कि प्रभो ! हमारे भाईयों को आज्ञा दो कि मैं भोजन लाया हूँ वह भोजन करके मुझे कृतार्थ करें भगवान् ने फरमाया कि हे राजन् ! मुनियों के लिये बनवाया हुआ भोजन मुनियों को करना नहीं कल्पता है इस पर भरत वडा उदास हो गया कि अब इस भोजन का क्या करना चाहिये ? उस समय इन्द्र ने फरमाया कि हे भरतेश ! यह भोजन आपसे गुणी हो उसको करवा दीजिये तब भरत ने सोचा कि मैं तो अव्रति सम्यक्दृष्टि हूँ मेरे से अधिक गुणवाले देशव्रती हैं तब भरत ने देशव्रती उत्तम श्रावकों को बुलवा कर वह भोजन उनको करवा दिया और कह दिया की आप सब लोग यहां ही भोजन किया करो बस फिर क्या था ? लिघा भोजन जीमने में कौन पीछा हटता है फिर तो दिन ब दिन जीमनेवालों कि संख्या इतनी बढने लगी कि रसोया घबरा उठा जिसले भरत महाराज को सबहाल अर्ज किया तब भरत ने उन उत्तम श्रावकों के हृदय पर कांगनी रत्नसे तीन तीन लीक खांचके चिन्ह कर दीया मानों वह "यज्ञोपवित" ही पहना दी थी भोजन करने के बाद उन श्रावकों को भरत ने कह दिया की तुम हमारे महेल के दरवाजा पर खड़े रह कर, हरसमय "जितोभगवान् वर्द्धते भयं तस्मान्माहन माहने" एसा शब्दोच्चारन किया करो श्रावकों ने इसको स्वीकार कर लिया इसका मतलब यह था कि भरतमहाराज सदैव राज का प्रपंच व सांसारिक भोगविलास में मग्न रहता था जब इन्हीं वक्त शब्द सुनता तब सोचता था कि मुझे क्रोध मान माया लोभने जीता है और इनसे ही मुझे भय है इससे भरत को बड़ा भारी वैराग्य हुआ करता था जब एह श्रावक वारवार माहन माहन शब्दोच्चारन करते थे इनसे

लोक उनको महाण ब्राह्मण अर्थात् जैनसिद्धान्तोंमें ब्राह्मणोंको माहण शब्द से ही पुकारा है अनुयोगद्वारसूत्र में ब्राह्मणों का नाम "वुड्ढसावया" वृद्धश्रावक भी लिखा है।

जब ब्राह्मणों की संख्या बढ़ गई तब भरत ने सोचा कि वह सिधा भोजन करते हुए प्रमादी पुरुषार्थ हीन न बन जावे वास्ते उनके स्वाध्याय के लिये भगवान् आदीश्वर के उपदेशानुसार चार आर्य वेदों * की रचना करी उनके नाम (१) संसारदर्शनवेद (२) संस्थापनपरामर्शनवेद (३) तत्त्वबोधवेद (४) विद्याप्रबोध वेद इन चारों वेदों का सदैव पठन पाठन ब्राह्मणलोक किया करते थे और जनता को उपदेश भी दिया करते थे तथा छे छे मास से उनकी परीक्षा भी हुआ करती थी। आगे नौवां सुविधिनाथ भगवान् के शासन में हम बतलावेंगे कि ब्राह्मणों ने उन आर्य वेदों में कैसा परिवर्तन कर स्वार्थवृत्ति और हिंसामय वेद बना दिया।

भगवान् ऋषभदेव का सुवर्णकान्तिवाला ५०० धनुष्य व वृषभ का चिन्हवाला शरीर या ८४ लक्ष पूर्व का आयुष्य था जिसमें ८३ लक्ष पूर्व संसार में १००० वर्ष छद्मस्थपने और एक हजार वर्ष कम एकलक्ष पूर्व सर्वज्ञपणे भूमिपर विहार कर असंख्य भव्यात्माओं का कल्याण किया अर्थात् जैनधर्म अखिल भारत व्याप्त बना दिया था। आप आदि राजा, आदि मुनि, आदि तीर्थंकर, आदि ब्रह्मा, आदि ईश्वर हुए पुंडरिक गणधर तो पांचक्रोडी मुनियों के परिवार से पवित्र तीर्थ श्रीशत्रुंजय पर मोक्ष गये जिस शत्रुंजय पर भगवान् ऋषभदेव ननाणु पूर्ववार समवसरे थे अन्त में भगवान्! अष्टापद पर्वत पर दशहजार मुनियों के साथ माघ वदी १३ को निर्वाण पधार गये इस अवसर पर शोक युक्त इन्द्रों ने भगवान् का निर्वाण कल्याणक किया भगवान् के शरीर का जहां पर अग्निसंस्कार किया था। वहां पर इन्द्र ने एक रत्नों का विशाल स्तूप बनवा दिया और एक एक गणधर व मुनियों के स्थान भी स्तूप बंधवाया था भगवान् के दाडों व अस्थि इन्द्र व देवता ले गये थे और उनका पूजन प्रक्षालन वन्दन भक्ति जिनप्रतिमा के तुल्य किया करते हैं।

जैसे एक सर्पिणी काल में २४ तीर्थंकर होने का नियम है वैसे ही १२ चक्रवर्ति राजा होने का भी नियम है। इस काल में बारह चक्रवर्ति राजाओं में यह भरत नामा चक्रवर्ति पहला राजा हुआ है इन की ऋद्धि अपरम्पार है जैसे चौदह रत्न * नौनिधान † पच्चीस हजार देवता बत्तीस हजार मुकटबंध राजा सेवा में चौरासी हजार २ हस्ती रथ अश्व–छन्नूक्रोड पैदल और चौसठहजार अन्तउरादि। छे खंड साधन करते हुए को ६० हजार वर्ष लगा था ऋषभकूट पर्वत पर आप के दिग्विजय की प्रशस्तिएं भी अंकित की गई थीं उस समय के आर्य अनार्य सब ही देशों के राजा आप की आज्ञासादर शिरोधार्य करते थे और आर्य-अनार्य राजाओं ने अपनी पुत्रियों का पाणिग्रहन भी सम्राट् के साथ किया था इत्यादि जो आज ...व इस आर्यव्रत का नाम भारतवर्ष है वह इसी भरत सम्राट् कि स्मृति रूप है।

भरत सम्राट् (चक्रवर्ति) ने छे खंड में एक छत्र न्याययुक्त राज कर दुनिया की बड़ी भारी आबादी (उन्नति) करी आपने अपने जीवन में धर्म्म कार्य भी बहुत सुन्दर किया अष्टापद पर चौवीस तीर्थंकरों के चौवीस मन्दिर और अपने ९८ भाइयों का "सिंहनिषद्या" नामका प्रासाद, श्री शत्रुंजयतीर्थका संघ और भी अनेक अनेक सुकृत कार्य्य कर अन्त में आरिसा का भुवन में आप विराजमान थे उस समय एक अंगुली से

* सिरि भरह चक्कवटी आरिय वेयाणवि स्सु उप्पत्ती, माहण पढणात्थमिणं, कहियं सुहझाण ववहारं ॥ १ ॥
जिण तित्थे वुच्छिन्ने, मिच्छत्ते माहणेहिं ते ठविया ॥ असंजयाणं पूआ, अप्पणं काहिया तेहिं ॥ २ ॥

* नौनिधान नैसर्ग, पांडुक, पिंगल सर्वरत्न, पद्म महापद्म, माणव, संक्ख! काल

† चौदह रत्न–सैनापति, गाथापति, वढाई पुरोहित, स्त्रि, हस्ती, अश्व, चक्र, छत्र, चामर, मणि, कांगणि, असी, दंड रत्न। एवं १४ रत्न थे।

मुद्रिका गिरजाने से दर्पण में अंगुली अनिष्ट दीखने लगी तब स्वयं दूसरे भूषण उतारते गये वैसे ही शरीर का स्वरूप भयंकर दिखाई देने लगा बस ! वहां ही अनित्य भावना और शुक्लध्यान क्षपकश्रेणि आरूढ़ हो कैवल्यज्ञान प्राप्त कर लिया वाद देवतों ने मुनिवेष दे दिया दश हजार राजपुत्रों को दीक्षा दे आपने कई वर्ष तक जनता का उद्धार कर आखिर मोक्ष में अक्षयसुख में जा विराजे।

भरत महाराज चक्रवर्ती राजा था इनो के वहुत सी ऋद्धि थी पर इनका अन्तरआत्मा सदैव पवित्र रहता था एक समय भरत ने आदेश्वर भगवान् से पूछा कि हे प्रभो ! मेरा भी कभी मोक्ष होगा ? भगवान् ने कहा कि भरत ! तुम इसी भव से मोक्ष जावोगे। इतने में किसी ने कहा कि वहा बाप तो मोक्ष देने वाला और पुत्र मोक्ष जाने वाला जिस भरत के इतना वड़ा भारी आरंभ परिग्रह लग रहा है फिर भी इसी भव में मोक्ष हो जावेगा क्या आश्चर्य है इस पर भरतने चौरासी बजारों के अन्दर सुन्दर सुन्दर नाटक मंडा दिये और आश्चर्य करने वाले के हाथ में एक तेल से पूर्ण भरा हुआ कटोरा दिया और चार मनुष्य नंगी तलवार वालों को साथ कर दिया कि इस कटोरा से एक बूंद भी तेलगिर जावे तो इसका शिर काट लेना, (यह धमकी थी) वस ! जीवका भय से उस मनुष्य ने अपना चित्त उसी कटोरे में रखा न तो उसको मालुम हुआ कि यह नाटक हो रहा है ? न कोई दूसरी बात पर ध्यान दिया, सब जगह फिर के वापिस आने पर भरत ने पूछा कि बजारों में क्या नाटक हो रहा है ? उसने कहा भगवान् मेरा जीव तो इस तेल के कटोरे में था मैंने तो दूसरा कुछ भी ध्यान नहीं रखा भरत ने कहा कि इसी माफिक मेरे आरंभ परिग्रह बहुत है पर दर असल उसमें मेरा ध्यान नहीं है मेरा ध्यान है भगवान् के फरमाया हुआ तत्त्वज्ञान में यह दृष्टान्त हरेक मनुष्य के लिये बड़ा फायदामंद है इति। पहले का उदाहरण।

भरत के मोक्ष होने के बाद भरत के पाट आदित्ययश राजा हुआ और बाहुबल के पाट चंद्रयश राजा हुआ इन दोनों राजाओं की संतान से सूर्यवंश और चन्द्र वंश चला है और कुरु राजा की संतान से कुरुवंश चला है जिसमें कौरव पांडव हुए थे।

भरत के पास कांगणी रत्न था जिससे ब्राह्मणों के तीन रेखा लगा के चिन्ह कर देता था पर आदित्य-यशः के पास कांगणी न होने से वह सुवर्ण कि जनेउ दे दिया करता था बाद सोना से रूपा हुआ रूपा से शुद्ध पंचवर्ण का रेशम रहा बाद कपास के सूत की दी जाति थी वह आज पर्यन्त चली आती है।

भरत राजा के आठ पाट तक तो सर्व राजा बराबर आरीसाके भुवन में केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गये और भी भरत के पाट असंख्य राजा मोक्ष गये अर्थात् भगवान् ऋषभदेव का चलाया हुवा धर्म-शासन पचास लक्ष क्रोड़ सागरोपम तक चलता रहा जिस में असंख्यात जीवों ने अपना आत्मकल्याण कियाथा इति प्रथम तीर्थङ्कर,

(२) श्री अजितनाथ तीर्थंकर-विजय वैमान से तीन ज्ञान संयुक्त वैशाख शुद १३ को अयोध्या नगरी के जयशत्रु राजा की विजयाराणी की रत्नकुक्षी में अवतीर्ण हुवे। माता ने चौदह स्वप्ने देखे जिसका शुभ फल राजा व स्वप्नपाठकों ने कहा माता को अच्छे अच्छे दोहले उत्पन्न हुवे उन सबको राजा ने सहर्ष पूर्ण किये बाद माघ शुद ८ को भगवान् का जन्म हुवा छप्पन्न दिग्कुमारि देवियों ने सूतिका कर्म किया और चोसठइन्द्रमय देवी देवताओं के भगवान् को सुमेरु गिरिपर लेजा कर जन्माभिषेक स्नात्रमहोत्सव किया तद-नन्तर राजा ने भी बड़ा भारी आनंद मनाया युवकवय में उच्च कुलीन राजकन्याओं के साथ भगवान् का पाणिग्रहण करवाया भगवान् का शरीर सुवर्ण कान्तिवाला ४५० धनुष्य प्रमाण गजलंछन कर सुशोभित था जब सांसारिक यानि पौद्गलिक सुखों से विरक्त हुवे उस समय लोकान्तिक देवों ने भगवान से अर्ज करी

कि हे प्रभो ! समय आ पहुँचा है आप दीक्षा धारण कर भगवान ऋषभदेव के चलाये हुवे धर्म का उद्धार करो तब माघ वदी ९ को एक हजार पुरुष के साथ भगवान् ने दीक्षा धारण करी उग्र तपश्चर्या करते हुये पौष वद ११ को भगवान् ने कैवलज्ञान प्राप्त किया भगवान् ऋषभदेव के प्रचलित किए हुए धर्म्म को वृद्धि करते हुवे सिंहसेनादि एकलक्ष मुनि फाल्गुनी आदि तीन लक्ष तीसहजार आर्यीकाए दो लक्ष अठानवे हजार श्रावक, पंचलक्ष पैंतालीस हजार श्राविकाओं का सम्प्रदाय हुआ क्रमशः बहत्तरलक्ष पूर्व का सर्व आयुष्य पूर्ण कर सम्मेतशिखर पर्वतपर चैतशुद ५ को भगवान् मोक्ष पधारे आपका शासन तीसलक्ष कोड सागरोपम तक प्रवृतमान रहा । उस समय प्रायः राजा प्रजा का एक धर्म जैन ही था ।

आपके शासन में सागर नाम का दूसरा चक्रवर्ती हुवा वह अयोध्या नगरी के सुमित्रराजा के यशोमति राणीकी कुक्षीसे चौदह स्वप्न सूचीत पुत्र हुआ जिसका नाम "सागर" था वह ४५० धनुष्य का शरीर ७२ लक्ष पूर्वका आयुष्य शेष छे खण्डादिका एक छत्रराज वगैरह भरत चक्रवर्ती की माफिक जानना विशेष सागर के साठहजार पुत्रों से जन्हुकुमार ने अपने भाईयों के साथ एक समय अष्टापद तीर्थपर भरतके बनाये हुये जिनालयों की यात्रा करी विशेष में उनका संरक्षण करने के लिये चौतरफ खाई खोद गंगानदी की एक नहर लाके उस खाई में पाणी भर दिया और जन्हुकुमार का पुत्र भागीरथ ने उस अधिक पाणी को फिर से समुद्र में पहुँचा दिया जब से गंगा का नाम जन्ही व भागीरथी चला पर उस पाणी से नागकुमार के देवों को तकलीफ होने से उन सब कुमारों को वहां ही भस्म कर दिया अस्तु ! सागर चक्रवर्ती अन्त में दीक्षा ग्रहन कर कैवल्यज्ञान प्राप्तकर नाशमान शरीर छोड़के आप अक्षय सुखरूपी मोक्षमन्दिर में पधार गये ।

भगवान् ऋषभदेव के पश्चात् दूसरे तीर्थङ्कर भ० अजितनाथ इनके बाद तीसरे संभवनाथ चतुर्थ अभिनन्दन पांचवे सुमतिनाथ छटे पद्मप्रभ सातवें सुपार्श्वनाथ आठवें चन्द्रप्रभ नोवें सुबुद्धिनाथ यहां तक तो समाज एवं धर्म की उत्तरोत्तर वृद्धि होती आई पर भ० सुबुद्धिनाथ से पन्द्रहवें धर्मनाथ का शासन तक अल्पकाल चल कर बीच बीच में शासन विच्छेद होता गया जिससे माहाणों (ब्राह्मणों) की जुलमी सत्ता बढ़ती गई उन्होंने मूल चार वेदों में भी काफी परिवर्तन करके अपने स्वार्थ के ऐसे विधि विधान रच डाले कि जिससे संसार अधः पतन होकर रसातल में पहुँचने लगा । जब सोलहवें भ० शान्तिनाथ का शासन प्रवृतमान हुआ तब से संसार में शान्ति का प्रचार हुआ आगे सतरहवें कुन्थुनाथ अठारहवें अरेनाथ उन्निसवें मल्लिनाथ और बीसवें मुनिसुव्रत के शासन में पर्वतने महाकाल देव की सहायता से मांस भक्षण का एवं यज्ञादिका जोरों से प्रचार किया बाद एक बीसवें नमिनाथ और बाईसवें नेमिनाथ के शासन में मांस का प्रचार आम तौर से राजा महाराजाओं के यहां लग्नसादियों में भी प्रयोग होने लगा पर भ० नेमिनाथ ने अपने शासन में मांस का प्रचार पर अंकुश लगा कर अहिंसा के प्रचार को बढ़ाया इसी प्रकार भ० पार्श्वनाथ और भ० महावीर ने तो अहिंसा का सर्वत्र प्रचार बढ़ा दिया इन चौवीस तीर्थङ्करों का विस्तृत हाल आगे चलकर हम कोष्ट द्वारा लिखेंगे । हाँ चौवीस तीर्थङ्करों में विशेष वर्णन तो भ० ऋषभदेव का ही था वह हम लिख आये हैं । शेष तीर्थङ्करों के शासन में जो विशेष घटना घटी है जिसको ही हम यहां संक्षिप्त से लिख देते हैं जब कि हमारा खास उद्देश्य तो भ० पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास लिखने का ही था पर कई सज्जनों का यह भी आग्रह रहा कि इतना बड़ा ग्रन्थ में कम से कम चौवीस तीर्थङ्करों का संक्षिप्त से भी वर्णन आजाना चाहिये कि पाठकों को उनके लिये अन्योन्य पुस्तकों को ढूंढना नहीं पड़े । अतः उन सज्जनों के आग्रह को मान देकर शेष तीर्थङ्करों के शासन की विशेष घटना यहां लिखदी जाती हैं ।

१—भ० ऋषभदेव तथा चक्रवर्ति भरत का अधिकार तो विस्तार से कर दिया है ।

२—भ० अजितनाथ के शासन में दूसरा सागर नामका चक्रवर्ति हुआ उनके ६०००० पुत्र थे जिसमें जन्हूकुमार ने अष्टापदतीर्थ रक्षार्थ पर्वत के चारों ओर खाई खोदी जिसमें नीचे रहने वाले नागकुमार जाति के देवों को तकलीफ होने लगी उन्होंने रोका भी पर कुँवरों ने गंगा नदी से एक नहर लाकर उन खाई में डालदी इस हालत में देवताओं ने उन ६०००० पुत्रों को एक ही साथ में बालकर भस्म कर दिये जिसके वैराग्य से चक्रवर्ति सागर ने दीक्षा स्वीकार करली।

३—भगवान् ऋषभदेव प्रथम तीर्थङ्कर।

जैनधर्म के जम्बुद्वीपपन्नति सूत्र में भ० ऋषभदेव का चरित्र विस्तार से लिखा है और प्राचीन काल से ही जैन ऋषभदेव को प्रथम तीर्थङ्कर मानते आये हैं इतना ही क्यों पर हजारों वर्षों से जैनों में भ० ऋषभदेव की मूर्तियाँ पूजी जाती हैं

ब्राह्मणों के प्राचीन शास्त्र वेद हैं उन वेदों में अवतार होने का कहीं पर उल्लेख नहीं है पर अर्वाचीन लोगों ने दश अवतारों की कल्पना की तथा कहीं कहीं दश अवतारों के मन्दिर भी बनाये गये तथा पुराणों में कहीं कहीं दश अवतारों का उल्लेख भी किया है जैसे:—

"मत्स्य१ कूर्मो२ वराहश्च३ नरसिंहोऽथ४ वामनः५।
रामो६ रामश्च७ कृष्णश्च८ बुद्ध९ कल्की१० चेत दशः॥ १॥

अर्थात् मच्छावतार, कच्छा०, सूअर०, नरसिंह, वामन, राम, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्की इस प्रकार दशावतारों की कल्पना की इसमें भी विशेषता यह है कि महात्मा बुद्ध ब्राह्मण धर्म का कट्टर विरोधी होने पर भी उनको अवतारों में स्थान दिया। अस्तु।

जब पुराणकारों को दशावतार से संतोष नहीं हुआ और जैनों में प्राचीन काल से २४ तीर्थङ्करों की मान्यता को देख उन्होंने भी चौवीस अवतारों की कल्पना कर डाली जिसमें भ० ऋषभदेव को आठवाँ अवतार मान लिया और जैनशास्त्रों में भ० ऋषभदेव का चरित्र वर्णित था ज्यों का त्यों भागवत पुराण में लिख दिया। भागवत के लिये कई विद्वानों का मत है कि विक्रम की पन्द्रहवी सोलहवीं शताब्दी में किसी वामदेव बंगाली ने भागवत की रचना की है* अतः भ० ऋषभदेव के लिये ब्राह्मणों के प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख नहीं है। दूसरा जब हिन्दू भाई ऋषभदेव को सृष्टि का आदि करता भी मानते हैं फिर वे आठवां अवतार बन ही कैसे सकते? कारण ऋषभ को आठवां अवतार माना जाय तो उनके पूर्व सात अवतार और भी हुए होंगे और सात अवतारों के समय सृष्टि का अस्तित्व अवश्य ही था फिर ऋषभ को सृष्टि का आदि मानना परस्पर विरुद्ध ही है इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि भ० ऋषभदेव के विषय में पुराणकारों ने जैन मान्यता का ही अनुकरण किया है अर्थात् जैनशास्त्रों के अन्दर से ऋषभदेव की कथा को लेकर भागवत पुराण में ऋषभावतार की कथा गढ़ डाली है।

जैसे पुराणकारों ने भ० ऋषभदेव के लिये कल्पित कथा लिख कर उनको अवतार माना है वैसे ही भ० रामचन्द्र और श्रीकृष्ण के लिये उनको भी अपने अवतारों में स्थान दे दिया है। वास्तव में भ० रामचन्द्र और श्रीकृष्ण जैन नरेश थे परन्तु पुराणकारों ने ऋषभदेव को आठवां अवतार की कल्पना की है इसने राम-

---

*भागवत एक उत्कर्ष रसपूर्ण ग्रंथ छे ए सहु कोई ने मान्य छे परन्तु आपणे धारिये छीए एटलो ते प्राचीन नथी लगभग ५०० वर्ष पहिले बंगालमा मुसलमानोंना राज्य ना वखत में थई गयेला बोपदेव नामना विद्वान ए ग्रंथ बनाव्यो छे कृष्णभक्ति नो प्रचार आ ग्रंथ थी वध्यो छे आ खरूं। परन्तु ए इतिहास नथी आ वात ध्यान में राखवी जोइये"

"त्रिवेदी कृत आर्योना तेहवार नो इतिहास पृ० १५०"

चन्द्र और श्री कृष्ण की कल्पना प्राचीनकाल की अवश्य है। पर जब भ० रामचन्द्र और श्रीकृष्ण के समय की तुलना कर के देखा जाय तो पाठकों को विदित हो जायगा कि उक्त दोनों नरेश जैनधर्म के परमोपासक ही थे जैनों के प्राचीन एवं मूल आगमों में इन दोनों का उल्लेख मिलता है जिसमें भी श्रीकृष्ण तो खास जैनों के बाईसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ के भाई थे वे जैनधर्म के उपासक एवं प्रचारक हों इसमें आश्चर्य की बात ही क्या हो सकती है अस्तु पुराणकारों की मान्यता है कि भ० रामचन्द्र द्वापर के अन्त में हुए जिसको करीब ५०००० वर्ष हुए हैं। तथा श्रीकृष्ण त्रेतायुग के अन्त में हुए जिसको करीब साधिक ५००० वर्ष हुए। साथ में यह भी लिखा है कि भ० रामचन्द्र के पिता राजा दशरथ की आयु ६०००० वर्ष की थी और भ० रामचन्द्रजी ने ११००० वर्ष अयोध्या में राज किया था। पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि ५०००० वर्ष पूर्व ६०००० वर्ष का आयु होना कैसे संभव हो सकता है जब कि ढाई हजार वर्ष पूर्व भ० महावीर और महात्मा बुद्ध हुये जिनका आयु ७२-८० वर्ष का था तथापि हम उस समय औसत आयु १०० वर्ष की समझ ले तो उसके पूर्व २५०० वर्ष में मनुष्य का कितना आयु होना चाहिये ? डेढ़सौ या दोसौ से अधिक नहीं हो सकता है तब ५०००० वर्षों पूर्व मनुष्यों का ५०००० या ६०००० वर्षों का आयुष्य होना सर्वथा असंभव ही है जब जैन शास्त्रकारों ने भ०रामचन्द्र को तीर्थङ्कर मुनिसुव्रत के शासन में होना बतलाया हैं जिसका समय करीब ११८७००० वर्ष पूर्व का है इस हालत में भ० रामचन्द्र ने अयोध्या में ११००० वर्ष राज किया हो तो असंभव जैसी कोई बात नहीं है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण का समय भी करीब ८७००० वर्षों का जैनों ने माना है और ८७००० वर्षों पूर्व श्रीकृष्ण का १००० वर्ष का आयुष्य होना ठीक संभव हो सकता है उपरोक्त प्रमाणों से भ० ऋषभदेव रामचन्द्र और श्रीकृष्ण जैनधर्म के ही महापुरुष हुए हैं जब इन्हों की ख्याति बहुत प्रसरित हो गई तब पुराणकारों ने जैनों की कथायें लेकर पुराणों में दाखिल कर उन महापुरुषों को वैदिकधर्म मानने वाले लिख दिये खैर पूज्य पुरुष तो सब के लिये पूजनीय ही होते हैं पर मैंने यहां पर वास्तव सत्य क्या है इसके लिये संक्षिप्त उल्लेख कर दिया है।

४—बीसवें तीर्थङ्कर मुनिसुव्रत के शासन में भ० रामचन्द्र लक्ष्मण और रावण हुए जिनका विस्तृत वर्णन पद्मचरित्र एवं त्रिषष्टिसिलाग पुरुष चरित्र में है उसमें रावण के विषय में लोग रावण के दशमुख होना कहते हैं पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है जैनशास्त्रकार लिखते हैं कि रावण के पूर्वजों से उनके वहाँ नौमाणक का एक हार था वह इतना बड़ा और वजनदार था कि साधारण मनुष्य उसको उठाकर गला में पहन ही नहीं सकता था पर रावण इतना शक्तिशाली था कि उस हार को अपने गला में पहन लेता था जिससे उन नौमाणकों में रावण के मुँह का प्रतिबिम्ब पड़ने से नौमुख तथा एक रावण का असली मुख एवं देखने वालों को दशमुख दीखता था जिससे लोग कहते थे कि रावण के दशमुख थे। पर वास्तव में रावण के मुख तो एक ही था पर नौमाणक के हार के प्रभाव से दशमुख दिखते थे।

५—बाईसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ के शासन में कृष्ण बलभद्र हुए इन वीरों का चरित्र भी जैनशास्त्रों में विस्तार से लिखा गया है। जैनशास्त्रों के अनुसार श्रीकृष्ण भविष्य में अर्थात् आवती चौबीसी में अमाम नाम का बारहवां तीर्थङ्कर होगा अतः जैनधर्म में श्रीकृष्ण के जीव का उतना ही उपासन है कि जितना

---

(१) चतुरंग समायुक्तं मया सह च तं नया। षष्टि वर्ष सहस्राणि, जातस्य मम कौशिक ।१।

(बा० रा० का० १ सर्ग २०)

(२) दश वर्ष सहस्राणि, दश वर्ष शतानि च । रामो राज्य मुपासित्वा ब्रह्मलोक प्रयास्यति ॥

(बा० रा० बालकाण्ड सर्ग १ श्लोक ९०)

तीर्थङ्करों के लिये है श्रीकृष्ण भविष्य में तीर्थङ्कर होने से जैनसंघ वर्तमान में भी प्रतिदिन सातवार नमस्कार करते हैं।

इस बात को जैनधर्म अच्छी तरह से मानता है कि चाहे समान जीव हो चाहे विशेष जीव हो अपने किये हुये कर्म अवश्य भुगतने पड़ते हैं जैसे भ० महावीर तीर्थङ्कर होने पर भी महावीर के भव में भी उनको अपने संचित कर्म भुगतने ही पड़े थे इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने भी कर्मोपार्जन किये थे कि कौसंबी के वन में आपको अकेले जराकुँवर के बान से शरीर छोड़ तीसरी पृथ्वी बालुकप्रभा में उत्पन्न होना पड़ा। इसी प्रकार हमारे कृष्णभक्त भी कृष्ण को बल राजा के द्वार तप करना मानते हैं यह भी एक प्रकार के कर्मों का ही फल है।

६—श्रीकृष्ण को ईश्वर अवतार परमेश्वर या कर्ताहर्ता की मान्यता कब से ? त्रिषष्ठीसिलाग पुरुष चरित्र में उल्लेख मिलता है कि जब श्रीकृष्ण कौसंबी बन में जराकुँवर के बान से शरीर छोड़ बालुका प्रभा में गये बाद बलभद्र ने दीक्षा ली और वे भी शरीर छोड़ पांचवें स्वर्ग में देव पने उत्पन्न हुए उन्होंने अपने ज्ञान से कृष्ण को बालुकाप्रभा में देखकर पूर्व भव के भ्रातृस्नेह के कारण आप भी कृष्ण के पास गये और कृष्ण को पीछला भव सुनाने से कृष्ण को भी भान हुआ और पूर्व संचित कर्मों का पश्चाताप हुआ बलभद्र का जीव देव ने कहा कि मैं आपकी क्या सेवा कर सकूं ? इस पर कृष्णने कहा मेरा कर्म तो मुझे भोगना ही पड़ेगा पर मैंने पूर्व भव में यदुवंश को बदनाम किया है अतः आप भरतखण्ड में जाकर देवशक्ति से मेरी और आपकी पूजा हो ऐसा प्रयत्न करो अतः बलभद्र का जीव देवता वैक्रय लब्धि से विमान बना कर एक में चक्र गदा शंख सहित पीत वस्त्र वाला कृष्ण का रूप दूसरा में हल मूसल एवं नील वस्त्र वाला बलभद्र का रूप बनाकर भरतक्षेत्रमें आये और लोगों को कहने लगे कि हम कृष्णबलभद्र ईश्वर परमात्मा पूर्णब्रह्म हैं वैकुंठ में हमारा वास है हम स्वतंत्र घूमते हैं हमारी मान्यता करने वाले भक्तों को हम मनोवांछित सुख देते हैं हे लोगों यदि तुम तुम्हारा कल्याण चाहते हो या सुख शांति की अभिलाषा रखते हो तो श्रीकृष्ण बलभद्र की सुन्दर मूर्तियां बना कर खूब सेवा पूजा भक्ति करो जिससे वे दोनों ईश्वर तुम्हारे पर खूब प्रसन्न होंगे इत्यादि। कहा भी है कि "दुनियां झुकती है झुकाने वाला होना चाहिये" सुख शान्ति के इच्छुक लोग श्रीकृष्ण और बलदेव की स्थान २ पर मूर्तियां स्थापन कर उनको ईश्वर परमात्मा पूर्णब्रह्म कह कर सेवा भक्ति पूजा करने लगे इधर बलभद्रदेव उन भक्तों की मनोकामना पूर्ण करने लगे बस फिर तो कहना ही क्या थोड़े ही समय में श्रीकृष्ण और बलभद्र की मूर्तियां सर्वत्र फैल गई इस घटना को शायद पांच हजार वर्ष हुए हों। यही कारण है कि कृष्ण भक्त कृष्ण को होने में पांच हजार वर्ष बताते हैं। वास्तव में श्रीकृष्ण जीवित थे उस समय उनके लिये ईश्वर एवं अवतार की कल्पना किसी ने भी नहीं की थी पर उनके मरने के बाद हजारों वर्षों के पीछे बलदेव के जीव देवता ने ऊपर लिखानुसार कृष्णबलभद्र की मूर्तियों की स्थापना करवा के उनको ईश्वर परमात्मा के नाम से पुजाये थे तब से ही यह कथा चल पड़ी तत्पश्चात् तो कृष्णभक्तों ने उनके नाम पर ऐसे २ ग्रन्थ भी रच डाले कि वे गोपियों के साथ नाच कूद एवं जलमज्जन करते थे महियरों का मक्खन चुरा कर खाते थे इत्यादि यदि श्रीकृष्ण के मौजूदगी में उनके लिये ऐसी अश्लील बातें उठाई होती तो वे उनकी अवश्य ही खबर लेते पर यहां तो केवल उन श्रीकृष्ण के सम्बन्ध की लोक प्रचलित बात का निर्णय करने के लिये संक्षिप्त से उल्लेख कर दिया है।

श्रीकृष्ण एक नीति निपुण आधे भारत का राजा था उन्होंने पहली अवस्था में भारत विजय करने में कई स्थानों पर युद्ध भी किये थे पर जब श्रीकृष्ण के काका समुद्रविजय के पुत्र नेमिनाथ तीर्थङ्कर हुए उनके

उपदेश से आप ने जैनधर्म स्वीकार कर जैनधर्म का खूब प्रचार किया यहां तक कि उन्होंने यह उद्घोषणा करवादी कि कोई भी व्यक्ति भ० नेमिनाथ के पास दीक्षा ले उनके लिये मैं जो चाहे सहायता करने को तैयार हूँ। इतना ही क्यों पर खास मेरे पुत्र एवं राणियां वगैरह कोई भी दीक्षा ले तो मैं बड़ी खुशी से आज्ञा देदेता हूँ। इस आज्ञा से श्रीकृष्ण की राणियों पुत्र और नागरिकों ने प्रभु नेमिनाथ के पास दीक्षा ली थी इस धर्मदलाली से ही श्रीकृष्ण आवती चौवीसी में अमामनाम के बारहवें तीर्थंकर होंगे। इस कारण जैन संघ श्रीकृष्ण को दिन प्रतिदिन ७ सातवार नमस्कार करते हैं।

७ शंका का समाधान—कई लोग यह शंका किया करते हैं कि जैनों ने मनुष्यों के कोसों तक शरीर और असंख्यत वर्षों का आयुष्य माना है यह कैसे संभव हो सकता है ? इस शंका के साथ हमारे भाई जैनों के माने हुए काल का भी ज्ञान कर लेते तो शंका को स्थान ही नहीं मिलता।

मनुष्यमात्र का कर्तव्य है कि जिस किसी धर्म के शास्त्र के विषय में शंका करे तो पहले उन धर्म के सिद्धान्त का ज्ञान हासिल करले खैर। देखिये जैन सिद्धान्तों में तीन प्रकार का अंगुल माना है १-प्रमाणांगुल २ आत्मांगुल ३ उत्सेदांगुल। जिसमें प्रमाणांगुल तो भ० ऋषभदेव के हाथ की आंगुल। आत्मांगुल जिस समय जैसा मनुष्य हो उसके हाथ की अंगुल और उत्सेदांगुल आधे पांचवा आरे के लघु मनुष्यों की अंगुल। जिन मनुष्यों को जैनशास्त्र ने बड़े शरीर वाला माना है वे मनुष्य आत्मंगुल से तो चार हाथ के ही होते हैं उनको वड़ा शरीर वाले कहते हैं वह उत्सेदांगुल की अपेक्षा से कहा जाता है जैसे एक दो वर्ष का बच्चा है वह अपने हाथ से चार हाथ का ही है पर उस दो वर्ष के बच्चा के हाथ से जवान मनुष्यों का नाप किया जाय तो करीब १५-१६ हाथ का हो सकता है यदि अपेक्षा के अज्ञात मनुष्य को कह दिया जाय कि आज के जवान, मनुष्य १५-१६ हाथ के होते है तो वह नहीं मानेगा पर जब उसको यह समझाया जाय कि हम जिस जवान मनुष्य को १६ हाथ के कहते हैं वह हाथ दो वर्ष के बच्चा का है तब उसकी समझमें आ जायगा इसी प्रकार असंख्याता काल पूर्व जो मनुष्य थे वे दीर्घ काय वाले तो थे ही फिर उनके शरीर का माप उन आधा पांचवा आरा के मनुष्यों की अंगुल से किया जाय तो उनके बड़े शरीर में शंका रही नहीं सकती है जैनो ने जिन मनुष्यों के शरीर को बड़ा माना है वह काल की अपेक्षा से माना है।

देखिये भ० महावीर का शरीर उन आधा पांचवा आरे के मनुष्यों के हाथ के नाप से सात हाथ का माना है भ० महावीर के २५० वर्ष पूर्व पार्श्वनाथ हुए उनका शरीर ९ हाथ का था उनके ८३७५० वर्ष पूर्व बावीसवें नेमिनाथ हुए उनका शरीर १० धनुष्य का माना है उनके पूर्व पांच लक्ष वर्ष नमिनाथ हुए उनका शरीर १५ धनुष्य का था उनके पूर्व छ लक्ष वर्ष मुनिसुव्रत हुए उनका शरीर २० धनुष्य का था इस प्रकार ज्यों ज्यों काल बढ़ता जाता है त्यों त्यों शरीरमान भी बढ़ता जाता है और जैसे काल की अधिकता से शरीर का मान बढ़ता गया वैसे ही मनुष्यों का आयुष्य भी बढ़ता गया जब प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव को इतना काल होगया कि गिनती के भी परे है अर्थात् मनुष्य उस काल की गिनती नहीं लगा सकता है उनका शरीर ५०० धनुष्य को और आयुष्य ८४ लक्ष पूर्व की थी यदि मनुष्य के योग्य बुद्धि और अनुभव है वह तो इस बात को कदापि इन्कार नहीं कर सकता है।

वर्तमान में पुरातत्त्व की शोध खोजसे कइ प्राचीन ऐसे भी पदार्थ मिले हैं कि जिनको बिना देखे कोइ मुह से कहदे तो मानने में शंका ही रहती है जैसे एक मनुष्य की खोपडीमें एक सौ पौन्डसे भी अधिक गाहु भरा जा सकता है एक मनुष्य के दोनो आखों के बीच अठारहइंच का अन्तर, एक मनुष्यके पौने दो तोले का एक एक दान्त है समुद्रमें एक मच्छी चौरासी फीटकी लम्बी जिसके उदरसे दो गाठें रूइ की निकली हैं इत्यादि

सैकड़ों उदाहरण हमारी आखों के सामने उपालब्ध हैं जिसके कालकी हम गिनती लगासकते हैं जब गिनती के परे है जिनका काल उसकाल के पदार्थ कितने लम्बे चौड़े होंगे जिसका अनुमान लगाना बुद्धि के बहार की ही बात है अतः जैनों के भूत भविष्य वर्तमान काल के ज्ञाताओं ने अपने तीक्ष्ण ज्ञानसे जिस बातको अपने ज्ञान द्वारा देखकर लिखी है उसमें शंका हो ही नही सकती है इत्यादि ।

८—नौवाँ सुबुद्धिनाथ का शासन विच्छेद और ब्राह्मणभासों की उत्पतिः— इस समय हुन्डावसर्पिणी काल का महाभयंकर असर भ० सुबुद्धिनाथ के शासन पर इस कदर का हुआ कि स्वल्पकाल से ही आपके शासन का उच्छेद हो गया अर्थात सुविधिनाथ भगवान् मोक्ष पधारने के बाद थोडे ही काल में मुनि, आर्याए व श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ व सत्यागम और उनकी उद्घोषना करनेवाले लोप हो गये ।

भ० ऋषभदेव के अधिकार में लिख आये हैं कि राजा भरत ने चार आर्य वेद बनाकर जैन ब्राह्मणों को दिये थे और वे उन वेदों द्वारा संसार का उपकार करते थे जिससे उन जैन ब्राह्मणों की मान्यता जैसे राजा महाराजा करते थे वैसे ही प्रजा भी करती थी, उस समय उनमें पूजा सत्कार के योग्य गुण थे । इस समय शासन उच्छेद होने से उन ब्राह्मणों में स्वार्थ वृत्ति से जो भगवान् आदीश्वर के उपदेश से भरतचक्रवर्ती ने चार आर्यवेद जनता के कल्याण के लिये बनाये थे उनमें इतना तो परिवर्तन कर दिया कि जहाँ निःस्वार्थपने जनता का कल्यान का रास्ता था वह स्वार्थवृति से दुनिया को लुटने का एवं अपनी आजीविका का साधन बना लिया और नये नये ग्रन्थादि की रचना भी कर डाली । कारण उस जमाने की जनता ब्राह्मणों के ही आधीन हो चुकी थी, सब धर्म का ठेका ब्राह्मणभासों ने ही ले रखा था ; तब तो उन्होंने गौदान, कन्या दान भूमिदान आदि का विधि—विधान बना के स्वर्ग की सड़क को साफ कर दी; इतना ही नहीं किन्तु ऐसे भी ग्रन्थ बना दिये कि जो कुच्छ ब्राह्मणों को दिया जाता है वह स्वर्ग में उनके पूर्वजों को मिलजाता हैं तथा ब्राह्मण है सो ही ब्रह्मा है इत्यादि ।

क्रमशः धर्म्मनाथ भगवान् के शासन तक जैनधर्म्म स्वल्पकाल उदय और विशेषकाल अस्त होता रहा इस सात जिनान्तर में उन ब्राह्मणभासों का इतना तो जोर बढ़ गया कि इनके आगे किसी की चल ही नहीं सकती थी ब्राह्मणों को इतने से ही संतोष नहीं हुआ था पर उन आर्यवेदों का नाम तक बदल के उनके स्थान पर ऋग्वेद, युजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद नाम रख दिया. इन वेदों में भी समय समय परिवर्तन होता गया था, जिस किसी की मान्यता हुई वह भी इनमे श्रुतियाँ मिलाते गये. अन्त में यह छाप ठोक दी कि वेद ईश्वरकृत है और इन वेदों को न माने वह नास्तिक हैं । वेदों में विशेष श्रुतियाँ हिंसामय यज्ञों के लिये ही रचि दी गई थी। जिसमें भी याज्ञवल्क्य सुलसा और पिप्पलादने तो नरमेघ, मातृमेघ, पितृमेघ, गजमेघ, अश्वमेघ तक का भी विधिविधान ठोक मारा और ऐसा यज्ञ किया भी था। वेदों में "याज्ञवल्केविहोवाच" यानि याज्ञवल्क्य ऐसा कहता है और उपनिषदों में कहीं कहीं पिप्पलाद का भी नाम आता है । इत्यादि

९-भ० शीतलनाथ के शासन में हरिवंश की उत्पति

कौसंबी नगरी में एक वीर नाम का सालवी रहता था उसकी स्त्री वनमाला बहुत रूपवंती थी जिसको राजा ने बलात्कार अपनी रानी बना ली जिससे वीर पागल होकर नगर में वनमाला २ करता फिरता था एक दिन राजा और वनमाला ने झरोखा में बैठे हुए वीर को पागलसा फिरता हुआ देखा तब उन दोनों के दिल में आया कि अपनलोगों ने अन्याय किया इत्यादि [illegible] परिणाम आते ही उन दोनो पर बिजली [illegible]

---

* इस विषय में मुनिवर्य श्रीदर्शनविजयजी की लिखी [illegible] नाम की पुस्तक का [illegible]

ते वे दोनों मर कर हरिवास युगल क्षेत्र में युगल योनि में उत्पन्न हुए। इधर राजा और वनमाल का अकस्मात् मृत्यु हुआ देख वीर का चित्त स्थिर हो गया कि इन्होंने किया जैसा ही पाया। वीर ने संसार का स्वरूप देख तापसी दीक्षा ले ली और तप करता हुआ वह मर कर देव योनि में उत्पन्न हुआ फिर उसने ज्ञान लगाकर देखा तो राजा और वनमाला युगल मनुष्य पने पैदा हुए और वहाँ से मर कर देव होंगे। इस हालत में देव ने अपना बदला लेने को अर्थात् उनको भविष्य में कष्ट पहुँचाने को उन दोनों के आयुः दह का संक्रमण कर चम्पानगरी में लाया वहाँ का राजा चण्डकीर्ति अपुत्रिया मर गया था वहां के लोग इस बात का विचार कर रहे थे कि अपने नगरका राजा कौन होगा ? उस समय देवता ने उन लोगों को कहा कि यह हरि राजा औरहरिणी राणी तुमकोदिये जाते हैं यही तुम्हारा राजा होगा पर एक बात याद रखना कि तुम लोग इन राजा-राणी को फलाहर के साथ मांस मदिरा भी खिलाना और भोग विलास में खूब सहायता करते रहना तब ही तुम लोग सुखी रहोगे। इत्यादि जैसे देवताने कहा वैसे ही नगर के लोगों ने किया जिससे वह राजा एवं राणी मर कर नरक में जाकर घोर दुखों का अनुभव करने लगे इति उस हरि राजा की सन्तान हरिवंश के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस हरि वंश में वीसवें मुनिसुव्रत तीर्थङ्कर हुए और आगे चलकर राज यादुसे हरिवंश का नाम यादुवंश प्रचलित हुआ जिसका थोड़ा सा परिचय राजा वसु के अधिकार में करवाया जायगा।

१०—पर्वत और महाकाल देव के द्वारा पशुवध रूपी यज्ञ का प्रचार

जिस समय सम्राट रावण दिग्विजय कर वापिस आ रहा था मार्ग में भय भ्रांत हुए नारदजी आये रावण ने पूछा कि आप ऐसे क्यों ? नारद ने कहा कि राजपुर का राजा मरुत मांस पीपासु ब्राह्मणों की बहकावट में आकर पशुवध रूप यज्ञ करवाता था उस समय मैं वहां चला गया राजा को उपदेश दिया इतने में ब्राह्मण लोग लाठी पत्थर से मारने के लिये मेरे पिच्छे हो गये मैं वहां से भागकर आपके पास आया हूँ आप उन पशुओं को अभयदान दिला कर अहिंसा का प्रचार करें इत्यादि। इस पर रावण नारदजी को साथ लेकर राजपुर गये और मरुत राजा को मधुर वचनों से समझा कर एवं यज्ञ वंद करवा कर राजा कों अहिंसा का उपासक वनाया। कारण रावण की आज्ञा सर्वत्र मान्य थी यही कारण है कि जैन राजाओं को ब्राह्मणोंने राक्षस के नाम से लिख मारा है कि हमारे यज्ञों को राक्षस विध्वंस कर डालते थे वे राक्षस थे अहिंसा धर्म केउपासक जैन राजा। एक समय सम्राट् रावण ने नारद से पूछा कि इस प्रकार हिंसामय यज्ञ किसने चलाये ? उत्तर में नारद ने कहा कि सुक्तमुता नगरी में अभिचन्द नामक राजा राज्य करता था जिसके एक वसु नाम का पुत्र था वह न्यायी सत्यवक्ता बड़ा ही धर्मात्मा था उस नगरी में खीरकदम्ब उपाध्याय भी रहता था जिसके पर्वत नाम का पुत्र था मैं वसुकुंवर और पर्वत ये तीनों उपाध्यायजी के पास पढ़ते थे एक दिन हम तीनों छत पर सो रहे थे निद्रा भी आ गई पर उपाध्यायजी जागृत थे उस समय आकाश से दो चारण मुनि जा रहे थे जो ज्ञानी थे उन्होंने कहा कि इन तीनों विद्यार्थियों में दो नरक गामी है और एक स्वर्ग गामी है उपाध्यायजी ने उनकी परीक्षार्थ लोट (आटा) के तीन कुर्कट बना कर तीनों को दिया कि कोई न देखे वहां मार आना। वस ! पर्वत और वसु तो जंगल में जाकर कोई नहीं देखा वहां पीठ के कुर्कट मार आये पर मैंने सोचा कि दूसरा नहीं तो मैं एवं कुर्कट तो देखते हैं शायद मैं आखें बन्द कर लूँ तो भी ईश्वर ज्ञानी तो सर्वत्र देखते हैं अतः कुर्कट को लेकर वापिस आया उपाध्यायजी ने उन तीनों की परीक्षा करली कि ठीक दो नरक और एक नारद स्वर्ग जाने वाले हैं।

नारद कहता है कि मैं एक समय सुक्तमुता नगरी में गया तो पर्वत अपने शिष्यों को पढ़ा रहा था तब ऋग्वेद में एक श्रुति आई कि "अजर्यष्टव्यमिति" इसका पर्वत ने अर्थ किया कि अज यानि छाग-बकरा

का बलिदान करना तब मैंने कहा पर्वत तू ऐसा अनर्थ क्यों करता है गुरुजी ने तो अजा शब्द का अर्थ तीन वर्ष की शाल अर्थात बोया हुआ न ऊगे वैसा धान किया था पर्वत ने हट पकड़ लिया नारद ने कहा कि वसुराज अपने साथ पढ़े हैं उनसे निर्णय करलें पर इस शर्त पर कि जो झूठा हो वह अपनी जुबान निकाल कर के दे दे। पर्वत ने इसको स्वीकार कर लिया बाद पर्वत अपनी माता के पास आया और सब हाल माता को कहा इस पर माता ने कहा बेटा तेरा बाप अजा शब्द का अर्थ पुरांणा धान ही करता था पर्वत ने कहा मैंने तो शर्त करली है इस पर माता रात्रि में चल कर राजा वसुके पास आई। राजाने गुरुजी की पत्नी समझ सत्कार कर रात्रिमें आने का कारण पुच्छा इस पर माताने सब हाल कहकर पुत्र रूपी भिक्षा की याचना की

लोगों में यह बात प्रचलित थी कि राजा वसु सत्यवादी है और सत्य से ही इसका सिंहासन पृथ्वी से अधर रहता है इस हालत में राजा असत्य कैसे बोल सकता। राजा ने कहा माता मैं ही क्यों पर आप भी जानती हो कि गुरुजी ने अजा शब्द का अर्थ पुरांणी शाल ही किया था अतः में मिथ्या अर्थ करना नहीं चाहता हूँ। माता ने कहा राजन्। मैं जानती हूँ और मैंने पर्वत से कहा भी था कि तेरा पिता अजा शब्द का अर्थ पुरांणा धान जो बोने पर न ऊगे किया करते थे। पर पर्वत मेरे एक ही पुत्र है अतः कुछ भी हो पर मेरे पुत्र को जीवन दाना देने की मेरी प्रार्थना स्वीकार करावें। मेरी जिन्दगी में यह पहली ही प्रार्थना है यदि आप अपने गुरुजी का थोड़ा भी उपकार समझते हैं, तब तो मेरा यह कार्य आपको करना ही होगा ? राजा वसुने गुराणी की लिहाज में आकर कह दिया कि आप निश्चित हो घर पर पधारे मैं किसी प्रकार से आपके पुत्र को बचादूगा।

दूसरे दिन राज सभा के समय में (नारद) और पर्वत राजसभा में आये और सब हाल कहा उस समय एक व्यक्ति राजासे कहने लगा कि राजन् ! आप सत्य, सत्य ही कहना क्योंकि सत्यसे पृथ्वी स्थिर है आकाश स्थिर है इत्यादि। पर राजा ने इस पर कुछ भी विचार नहीं किया और आम सभा में कह दिया कि हाँ गुरुजी अजा शब्द का अर्थ कभी पुराणी शाल और कभी छगा—बकरा भी किया करते थे (कहीं पर केवल बकरा ही कहा लिखा है) बस। इस मिश्र एवं झूट बोलने के कारण देवता वसुराजा को पृथ्वी पर पिछाट करके सिंहासन के साथ भूमिमें घुसा दिया जिससे वसु राजा मरकर सातवीं नरकमें जाकर घोर दुःखों का अनुभव करने लगा इससे पर्वत की बहुत निंदाहुई इतना ही क्यों पर नगरीके लोगोंने पर्वत को मारपीट कर नगरी से निकाल दिया पर भवितव्यता बलवान होती है पर्वतने जंगलमें जाकर एक महाकाल देव की आराधना की। देवने अधर्म पर्वत को सहायता देकर पशुवध यज्ञ का प्रचार करवाया। देवता विक्रय से यज्ञ में बलिदान होने वाले बकरों को स्वर्गमें जाते हुए दिखाये तथा पुनः जीवित करके दिखाये इससे मांस लोलुपी लोगोंने यज्ञ का काफी प्रचार कर दिया पर्वत ने भी लोगों को कहा कि यज्ञ से देव संतुष्ट होते हैं लोगो में सुख शान्ति रहती है और बलिदान में पशु होमे जाते हैं वे स्वर्ग में जाते हैं इत्यादि नारदजी ने रावण को पर्वत की कथा सुनाई। इस पर सम्राट् रावणने हिंसामय यज्ञ करने का निषेध किया जहाँ यज्ञ होता देखा तो अपनी सत्ता से ध्वंस भी किया पर कलिकाल की कुटलगति से यज्ञ कर्म सर्वथा बन्ध न हो सका।

वसुराजके क्रमशः आठ पुत्र राजा होते गये और मरते गये तब नवमें सुवसु वहाँ से भाग कर नागपुर चला गया और दशवां बृहद्ध्वज नाम का पुत्र भाग कर मथुरा चलागया उसकी संतान में एक यादुनाम का राजा हुआ वह महान् प्रतापी हुआ जिससे हरिवंश के स्थान यादुवंश नाम प्रसिद्ध हो गया—जिस यादुराज का वंश वृक्ष—
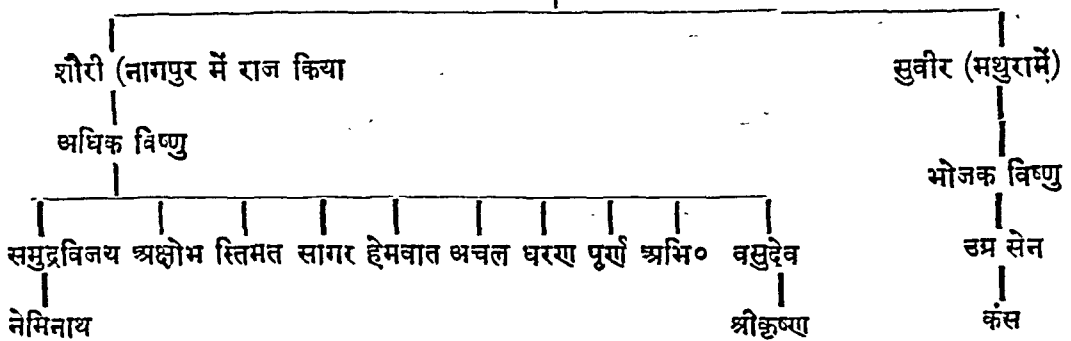
११—पीपलाद द्वारा यज्ञादि की उत्पतिः—

काशीपुरी में दो संन्यासिनियां रहती थीं जिसमें एक का नाम सुलसा दूसरी का नाम सुभद्रा था वे दोनों अच्छी लिखी पढ़ी धर्म शास्त्रों की भी जानकार थीं बहुतसे पण्डितों को वादमें परास्त भी किये उस समय याज्ञवल्क्य नामक परिव्राजक यह हाल सुन कर उन दोनों संन्यासिनियों के साथ वाद करने को आया और ऐसी शर्त रखी कि हारजाने वाला जीवजाने वाले की जन्म भर सेवा करे। जब वाद हुआ तो याज्ञवल्क्य ने सुलसा को पराजय कर अपनी सेवा करने वाली बनाली। पर दोनों के युवक वय में वे कामदेव के गुलाम बन आपस में भोग-विलास करने लग गये। जिससे सुलसा के गर्भ रह गया जब पुत्र का जन्म हुआ वो लोकापवाद के कारण नवजात पुत्र को एक पीपल के वृक्ष का कोटर में छोड़कर वे दोनों वहाँ से रफ्फूचक्कर होगये। सुभद्रा को मालूम हुआ तो उसने पीपल के झाड़ के पास जाकर देखा तो नवजात बच्चा के मुंह में स्वयं पीपल का फल पड़ा जिसको चाब रहा था सुभद्रा अपनी बहिन सुलसा का बच्चा जानकर अपने आश्रम में लेगई उसका पालन पोषण किया और बड़ा होने पर उसको वेद वेदांग पढ़ा कर धूरंधर बना दिया और वाद विवाद में कई पण्डितों को परास्त कर बहुत विख्यात होगया। एक समय याज्ञवल्क्य और सुलसा पुनः काशी में आये और पीपलाद से वाद किया जिसमें वे दोनों हार गये एवं पीपलाद की विजय हुई जब सुभद्रा द्वारा पीपलाद को ज्ञान हुआ कि सुलसा याज्ञवल्क्य मेरे माता पिता हैं और जन्म के साथ ही निर्दयता से मुझे पीपल के झाड की कोटर में डालकर पलायन होगये थे अतः पीपलाद ने कुपित हो अपना बदला लेने के लिए मातृमेघ पितृमेघ नामके यज्ञ करने की स्थापना की और मातृमेघमें सुलसा तथा पितृमेघमें याज्ञवल्क्य को होम दिया अर्थात् पीपलादने अपने माता पिता का बलिदान कर अपना बदला लिया और उपनिषधादि ग्रन्थों में इसका विधिविधान भी रचडाला कि भविष्य में यह प्रथा अमर बन जाय इत्यादि इन मांस प्रचारकों की लीला कहां तक लिखी जाय।

१२—वसंतपुर नगर में एक नाबालक लड़का था वह किसी सथवाड़ा के साथ देशान्तर जाता हुआ रास्ते में एक तापस के आश्रम में ठेर गया। वह बड़ा भारी तप करा वास्ते लोकोने यमदग्नि नाम रखा दीया उस समय एक विश्वानर नामका जैनदेव दूसरा धनंतरी तापसभक्त देव इन दोनों के आपस में धर्म संबंधि विवाद हुआ अपना २ धर्म को अच्छा बताते हुए परीक्षा करने को मृत्यु लोक में आये उस समय मिथिला नगरी का पद्मरथ राजा भाव यति बन चम्पा नगरी में विराजमान जैन मुनि के पास दीक्षा लेने को जा रहा था दोनों देवों ने उसे अनुकुल प्रतिकुल बहुत उपसर्ग किया पर वह तनक भी नहीं चला बाद दोनों

देवता यमदग्नितापस जो ध्यान लगा के तपस्या करता था उसकी दाढी में चीड़ा चीड़ीका रूप बना कर बेठ के चीड़ा कहने लगा कि मैं हेमाचल पर जाऊंगा—चीडी बोली तुम वहां जाके किसी दूसरी चीडी से यारि कर लोगे ? चीडा ने कहा नहीं करूगा अगर में ऐसा करुं तो मुझे गौ हत्या का पाप लगे। चीड़ी ने कहा ऐसे मैं नहीं मानूं ऐसे कहो कि मैं किसी दूसरी चीडी से यारि करूं तो इस यमदग्नि का पाप मुझे लगे यह सुनते ही तापस को खूब गुस्सा आया और पुच्छा कि क्या मेरा पाप गौहत्या से भी ज्यादा है चीड़ी ने कहा कि तुमको मालूम नहीं है कि शास्त्र कहता है "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" यह सुनके तापस को पुत्र की पिपासा लगी तब एक नजिक नगरी में गया वहां का जयशत्रु राजा ने आदर दिया बाबाजी ने राजा के १०० पुत्रियों में एक पुत्री की याचना करी। राजा ने कहा जो आपको चाहे उसको आप ले लीजिये। तापस ने सबसे आमन्त्रण किया पर ऐसी भाग्यहीन कौन कि उस तापस को वर करे। एक छोटी लड़की रेतमें खेलती थी उसे ललचा के तापस अपने आश्रम में ले आया बाद युवा होने पर उसके साथ लग्न किया। रेणुका ऋतु धर्म हुई तब तापस चरु (पुत्रविद्या) साधन करने लगा रेणुका ने कहा कि मेरी बहिन हस्तनापुरका राजा अनंतवीर्य को परणाई है उसके लिये भी एक चरू साधन करना। तापस ने एक ब्राह्मण दूसरा क्षत्रिय होने की विद्या साधन करी रेणुकाने क्षत्रिवाला और उसकी बहिन को ब्राह्मणवाला चरू खिलाने से दोनों के दो पुत्र हुये रेणुका के पुत्र का नाम राम, बहिन के पुत्र का नाम कृतवीर्य—राम ने एक वैमार विद्याधर की सेवा करी जिससे संतुष्ट हो उसने परशुविद्या प्रदान करी। तब से राम का नाम परशुराम हुआ। एकदा अनंतवीर्य राजा अपनी साली रेणुका को अपने वहां लाया परिचय विशेष होने से रेणुका से भोगविलास करते हुए को एक पुत्र भी हो गया बाद यमदग्नि स्त्री मोह में अन्ध हो सपुत्र रेणुका को अपने आश्रम में लाये परन्तु परशुराम ने उसका व्यभिचार जान माता और भाई का सिर काट दिया बाद अनंतवीर्य ने यह बात सुनी तत्काल फौज ले आया तापस का आश्रम भस्म कर दिया यह परशुराम को ज्ञात हुआ तब परशू लेके हस्तनापुर जाकर राजा को मारडाला कृतवीर्य क्रोधित हो यमदग्नि को मारा तब परशुराम कृतवीर्य को मारडाला तब कृतवीर्य की तारा राणी सगर्भा वहां से भाग के किन्हीं तापसों के सरणे गई परशुराम हस्तनापुरका राजा बन गया—ताराराणी भूमिग्रह में छिपके रही थी वहां चौदह स्वप्नसूचक पुत्र जन्मा जिसका नाम सुभूम रखा गया। परशूराम ने सातवार निःक्षत्रियपृथ्वी कर दी उन क्षत्रियों की दाढ़ों से एक स्थल भरा। परशूराम किसी निमितिये को पुच्छा कि मेरा मरणा किसके हाथ से होगा तब उसने कहा कि जिसके देखते ही दाढ़ों का थाल खीर बन जावेगा उस खीरको खाने वाला निश्चय तुमको मारेगा। परशुरामने एक दानशाला खोली और दाढ़ोंवाला थाल वहां सिंहासन पर रख दिया इधर एक मेघ नामका विद्याधर निमित्तिया के कहने से अपनी पद्मश्री नामकी पुत्री सुभूम को परणा दी थी बाद माता के कहने से सुभूम पिछली बात और परशुराम का अत्याचार जान कर वहां से हस्तनापुर में गया दाढ़ी को देखते ही खीर बन गई उसको सुभूम खा गया उसी थाल का चक्र बना परशूराम का सिर काट आप एक नगर का ही नहीं पर सार्वभौम्य राज करने वाला, चक्रवर्ती हुआ।

पुरांण वालों ने लिखा है कि परशुराम परशु ले क्षत्रियों को काटता हुआ रामचंद्रजी के पास आया जब रामचन्द्रजी ने परशुराम की पग चंपी कर उसका तेज हर लिया तब परशू नीचा पड़ गया फिर उठा नहीं सके। कैसी असंभव बात है कि एक अवतार दूसरा अवतार को मारने को आवे फिर भी तुर्रा यह कि एक अवतार दूसरा का तेज को भी हरण कर लिया क्या बात है ? सत्य तो यह है कि वह रामचन्द्रजी नहीं पर सुभूम चक्रवर्ती ही था, इति अष्टमा चक्री—

आपके शासन में महापद्म नाम का नौवा चक्रवर्ती हुआ जिसका संबन्ध—हस्तनापुर नगर में पद्मोत्तर

राजा की ज्वाला देवी राणि के विष्णुकुमार और महापद्म नाम के दो पुत्र हुए इस समय अवंती नगरी का श्रीधर्म नामक, राजा के राज्य में नमूची जिसका दूसरा नाम बलमंत्री था जाति का वह ब्राह्मण था उस समय मुनिसुव्रत भगवान् के शिष्य सुव्रताचार्य वहां पधारे नमुचिबल उनके साथ शास्त्रार्थ कर पराजय हुआ तब रात्रि में तलवार ले आचार्य को मारने को चला आचार्य के अतिशय से वह रास्ता में स्थंभित हो गया सुवह उसकी बहुत निंदा हुई तब वहां से मुक्त हो हस्तनापुर में जाकर युगराजा महापद्म की सेवा करने लगा एक समय महापद्म किसी कार्य से संतुष्ट हो "यथेच्छा" वर दे दिया था कालान्तर पद्मोतर राजा और विष्णुकुमार ने तो सुव्रताचार्य के पास दीक्षा ग्रहण कर ली और महापद्म राजा हो क्रमशः छे खण्डाधिपति चक्रवर्ती राजा हो गया बाद सुव्रताचार्य फिर से हस्तनापुर आये नमुचि—बलने सोचा कि इस समय इस आचार्य से वैर लेना चाहिये तब महापद्म से अर्ज करी कि वेदों में कहा माफिक मेरे एक महायज्ञ करना है वास्ते मुझे पूर्व दिया हुआ वर—वचन मिलना चाहिये राजा ने कहा मांगो तब नमुचिने यज्ञ हो वहां तक सर्व राज मांगा वचन के बंधा राजा ने नमुचि को राज दे आप अन्तेवर घर में चला गया बाद नमुचि ने नगर कर बाहर एक मंडप तैयार करवाय के आप राजा बन गया एक जैन साधुओं के सिवा सब लोक भेट ले के नमुचि के पास आये नमस्कारादि किया नमुचि ने पुछा कि सब लोगों की भेट आगई व कोई रहा भी है ब्राह्मणों ने कहा एक जैनाचार्य नहीं आये है।

इस पर नमुचिने गुस्से हो कहला भेजा कि जैनाचार्य तुमको यहां आना चाहिये आचार्य ने कहलाया कि संसार से विरक्त को ऐसे कार्यों से प्रयोजन नहीं है इस पर नमूचि क्रोधित हो हुक्म दिया हमारे राज से सात दिनों में शीघ्र चले जावो नहीं तो कतल करवा दिया जावेगा यह सुन आचार्य को बड़ी चिंता हुई कि चक्रवर्ती का राज छः खण्ड में है तो इनके बाहर कैसे जा सके आचार्य श्री सब साधुओं को पूछा कि तुम्हारे अन्दर कोई शक्तिशाली है कि इस धर्म निंदक को योग सजा दे इसपर मुनियों ने अर्ज करी ऐसा मुनि विष्णुकुमार है पर वह सुमेरुगिरि पर तप कर रहा है आचार्यश्री ने कहा कि जावो कोई मुनि उसको यह समाचार कहो। एक मुनिने कहा वहां जाने कि शक्ति तो मेरे में है पर पीछे आने की नहीं सूरिजी ने कहा तुम जावो विष्णुकुमार को सब हाल कहके यहां ले आवो वह तुमको भी ले आवेगा इस माफिक विष्णु मुनि गुरु के पास आया बाद विष्णुमुनि राजसभा में गया नमूचि के सिवाय सबने उठके वन्दन करी बाद धर्मदेसना दी और नमूचि से कहा हे विप्र। क्षणिक राज के लिये तू अनिति क्यों करता है चक्रवर्ती का राज छे खण्ड में है तो तब साधु सात दिन में कहां जा सके इत्यादि नमूचिने कहा कि तुम राजा के वड़े भाई हो वास्ते तुमको तीन कदम जगह देता हूँ बाकी कोई मुनि मेरे राज्य में रहेगा उसे मैं तत्काल ही मरवादूंगा। इस पर विष्णु मुनिने सोचा कि यह मधुर वचनों से मानने वाला नहीं है तब वैक्रयलब्धि से लक्ष योजन का शरीर बनाके एक पग भरतक्षेत्र दूसरा समुद्र और तीसरा पग नमूचि–बलके सिर पर रखा कि उसको पाताल में घुसा दिया वह मरके नरक में गया और विष्णुमुनि अपने गुरु के पास जा आलोचना कर क्रमशः कर्म क्षयकर मोक्ष गया।

भ० ऋषभदेव से भगवान् महावीर तक २४ तीर्थंकरों का विस्तृत हाल कोष्टक में दिया गया है पर बीच बीच में जो विशेष घटना घटित हुई वे कोष्टक में तो आ नहीं सके और जाननी भी जरूर थी अतः मैंने उन विशेष घटनाऐं को संक्षित रूप से यहाँ लिखदी है।

विशेष भ० महावीर का छद्मस्थ जीवन तो कल्पसूत्रादि कई स्थान पर मिलता है और हम प्रति वर्ष पढ़ते भी है पर तीर्थंकर जीवन सिल सिलेवार कहीं पर दृष्टि गोचर नहीं हुआ था अतः यह बिलकुल नया साहित्य है पाठकों के अवलोकनार्थ यहाँ दे दिया जाता है—

भगवान् महावीर का विहार क्षेत्र

भगवान् महावीर के श्रमण जीवन में छद्मस्थावस्था के १२ वर्ष का हाल तो कल्पसूत्रादि अनेक स्थानों पर दृष्टि गोचर होता है। पर केवलावस्था में भगवान् ने ३० वर्षों में कहाँ कहाँ विहार किया और उन विहार के अन्दर किस किस स्थान पर क्या क्या धर्म कार्य हुआ इत्यादि सिलसिलेवार वर्णन आज पर्यन्त कहीं पर भी देखने में नहीं आया था परन्तु हाल ही में पूज्य पन्यासजी श्री कल्याणविजयजी महाराज ने कई वर्षों तक बड़ा भारी परिश्रम कर "श्रमण भगवान् महावीर" नाम का ग्रन्थ लिखा तथा वह मुद्रित भी हो चुका है इस ग्रन्थ को लिखकर पन्यासजी महाराज ने जैन समाज पर महान उपकार किया है उसी ग्रन्थ के आधार पर मैं भगवान् महावीर के तीर्थङ्कर जीवन के विषय में यहाँ पर संक्षिप्त से हाल लिख देता हूँ।

भगवान् महावीर ३० वर्ष गृहस्थावास में रहे बाद श्रमण दीक्षा स्वीकार कर बारह चतुर्मास छद्मस्थावस्था में बिताये। जैसे १—आस्थिग्राम २—राजगृहनगर ३—चम्पापुरी ४—पृष्ठचम्पा ५—भद्दिला नगरी ६—भद्दिलानगरी ७—आलंभियानगरी ८—राजगृहनगर ९—अनार्यदेश में १०—श्रावस्तिनगरी ११—विशालानगरी ११—चम्पानगरी उपरोक्त स्थानों में भगवान् ने बारह चतुर्मास किये।

तीर्थङ्कर अवस्था में भगवान के ३० चतुर्मासों का वर्णन:—

जब भगवान को केवल ज्ञानोत्पन्न हुआ पहली देशना में किसी ने व्रत नहीं लिया तब रात्रि में ४८ कोस चलकर मध्यमा नगरी के महासनोद्यान में पधारे देवो ने समवसरण की रचना की। वहाँ पर सोमल ब्राह्मण के वहाँ एक वृहद् यज्ञ का आयोजन हो रहा था और बहुत दूर दूर से पण्डित भी आये थे उनमें इन्द्रभूति आदि ११ पण्डित तथा ४४०० उनके शिष्य भी थे जब उन्होंने भगवान का समवसरणादि की महिमा सुनी तो ईर्षा के मारे एक एक भगवान के पास गये भगवान उनके दिल की शंका का समाधान कर क्रमशः ११ आचार्य और उनके ४४०० शिष्यों को श्रमण दीक्षा दे उन ११ को गणधर पद दिया जिसके लिये जैन शास्त्रों में गणधर बाद के नाम से बहुत विस्तार से वर्णन है भगवान ने वहीं पर चतुर्विध श्री संघ की स्थापना की बाद वहाँ से विहार कर क्रमशः राजगृह नगर में पधारे वहाँ भी आपका धर्मोपदेश हुआ। जिसके फल स्वरूप—

१—राजा श्रेणिक का पुत्र मेघकुमार तथा नन्दीषेण ने श्रमण दीक्षा ली।

२—राजकुमार अभय तथा सुलसाने श्रावक धर्म स्वीकार किया।

३—राजा श्रेणिक ने प्रवचन पर श्रद्धा यानि सम्यक्त्व धारण की इनके अलावा भी बहुत से भावुक भगवान के भक्त बन गये।

१—पहला चतुर्मास राजगृहनगर में हुआ वहाँ प्रवचन का प्रचार हुआ बाद वहाँ से विहार कर क्षत्रीकुण्ड-महाणकुण्ड नगर की ओर पधारे वहाँ भी आपका प्रवचन हुआ जिसमे—

१—जमाली क्षत्रियकुमार ५०० के साथ तथा उनकी पत्नी १००० के साथ प्रभु पास दीक्षाली।

२—ब्राह्मण ऋषभदत्ता तथा देवानन्द ने भी दीक्षा ली इनके अलावा भी बहुत लोग भगवान के उपासक बन गये।

२—दूसरा चतुर्मास वैशालानगर में व्यतीत किया बाद वहाँ से विहार कर कौशाम्बीनगर में पधारे वहाँ पर राजा उदाई की माता मृगावती तथा भुआ जयंति भगवान को वन्दन किया भगवान ने देशनादी जयंति ने

प्रभु से प्रश्न किये और अन्त में श्रमण दीक्षा स्वीकार की वहाँ से श्रावस्ति में पधार वहाँ सुमनोभद्र सुप्रतिष्ठित ने दीक्षा ली वहाँ से वाणिज्यग्राम में पधारे और गाथापति आनन्द तथा उसकी स्त्री सेवानन्दा को गहस्थ धर्म की दीक्षा दी इनके अलावा आपके विहार के अन्दर बहुत से लोग आपके परमोपासक बन गये।

३—तीसरा चतुर्मास वाणिज्य ग्राम नगर में बिताया प्रचार कार्य बढ़ा बाद वहाँ से विहार कर भगवान् पुनः राजगृह में पधारे वहाँ गोतम ने काल विषय के प्रश्न किये-तथा-धना शालिभद्र को दीक्षादी और भी बहुत लोगों ने भगवान् के उपदेश को स्वीकार किया।

४—चतुर्थ चतुर्मास भगवान् ने राजगृह नगर में किया बाद विहार कर चम्पानगर में पधारे वहाँ के राजदत्त का पुत्र महचन्द्र कुंवार को दीक्षा दी बाद सिन्धु सौवीर के वीतभय पट्टन जाकर राजा उदाई को दीक्षा दी।

५—पांचवा चतुर्मास भगवान् ने वाणियाग्राम नगर में बिताया वहाँ से विहार कर बनारसी नगरी में आये वहाँ के राजा ने प्रभु का सत्कार किया आपका धर्मोपदेश से वहाँ के गाथापति चूलनीपिता तथा उसकी स्त्री श्यामा और सुरादेव तथा उनकी भार्या धना ने गृहस्थ धर्म (श्रावक) स्वीकार किया तत्पश्चात् आलम्बिया नगर में आये वहाँ पोगल सन्यासी को समझा कर श्रमण दीक्षा दी वहाँ चूलशतक गाथापति तथा उसकी पत्नि बहुलाने गृहस्थ धर्म स्वीकार किया बाद भगवान् राजगृह पधारे वहाँ भी मंकाती किंकम अर्जुन और काश्यपादि ने श्रमण दीक्षा ली।

६—छटा चतुर्मास राजगृह में किया आपका प्रवचन होता रहा बाद प्रभु राजगृह में ही ठहरे वहाँ राजा श्रेणिक ने दीक्षा के लिये उद्घोषणा करदी कोई भी दीक्षा ले मेरी आज्ञा है तथा मैं सब तरह की सहायता करुगा जिससे श्रेणिक के पुत्र जाली मयाली उवाली आदि २३ पुत्र और नंदा सुनंदादि तेरह राणियो दीक्षा ली और भी नागरिकों ने भी दीक्षा ली।

आर्द्रकुमार और गोसालों आदिकों के साथ संवाद बाद आर्द्रकुमार की दीक्षा।

७—सातवां चतुर्मास राजगृह नगर में व्यतीत किया, बाद आलंभिया नगर में पधारे वहाँ ऋषिभद्र पुत्र श्रावक तथा अन्य श्रावकों का संवाद का समाधन भगवान ने किया रांणी मृगावती तथा उज्जैन के राजा प्रद्योतन की रांणी ने प्रभु पासे दीक्षाली बाद पुनः विदेह में पधारे।

८—आठवां चतुर्मास वैशाली में ही किया वहाँ से विहार कर काकन्दी में पधारे वहां धन्ना सुनक्षादि को दीक्षा दी बाद काम्पिलपुर पधारे वहाँ कुण्डकोलिक को श्रावक के व्रत दिये फिर पोलासपुर पधारे वहाँ गोसाल का भक्त सकडालपुत्र कुम्हकार रहता था उसको श्रावक बनाया उसकी स्त्री अग्निमित्र ने भी श्रावक के व्रत लिये।

९—नोवा चतुर्मास वाणिज्य ग्रामनगर में बिताया वहाँ से विहारकर राजगृह नगर में पधारे वहाँ पर महारातक को श्रावक व्रत दिये वही पार्श्वनाथ के संतानियों ने प्रश्न किया प्रभु ने समाधान कर उनको चार के पांच महाव्रत दिये रोहा मुनि के प्रश्न भगवान् के उत्तर।

१०—दशवा चतुर्मास भगवान् ने राजग्रह नगर में किया वहां से कंयगला नगर में पधारे रंकद सन्यासी की दीक्षा आगे विहार कर श्रावस्ति नगरी में धर्मोपदेश दिया वहां नन्दनीपिता सालनीपिता तथा इन दोनों की स्त्रियों ने श्रावक के व्रत धारण किया।

११—ग्यारवा चतुर्मास वाणिज्य ग्राम नगर में किया जमाली ५०० साधुओं को लेकर अलग विहार किया कोसुंबी में सूर्य चन्द्र मूल रूप से आये प्रभु राजगृह में वेहास अभय का अनसन व्रत स्वर्ग।

१२—बारहवा चतुर्मास राजगृह में व्यतीत किया बाद विहार कर चम्पानगर में पधारे उस समय कणिक की राजधानी चम्पा में थी भगवान् का प्रवचन श्रेणिक के पौत्रे पद्म महापद्मादि १० ने दीक्षा ली और जिनपालितादिने भी दीक्षा ली शेष ने श्रावक व्रत लिया वहां से काकन्दी में क्षमेक घृतहरादिने दीक्षाली।

१३—तेरहवा चतुर्मास प्रभुने मिथिला नगरी में किया बाद विहार:—इस समय वैशाला रणभूमि बनी हुई थी कुणिक चेटक का संग्राम हुआ पुत्र की मृत्यु सुनकर काली आदि श्रेणिक की दश राणियों ने दीक्षा ली।

१४—चौदहवा चतुर्मास भगवान् का मिथिला में हुआ बाद विहार—वैशाली के निकट होकर श्रावस्ति की तरफ विहार मार्ग में हल विहल्ल की दीक्षा तथा भगवान और गोसाला का मिलाप जमाली का मतभेद भी उसी वर्ष हुआ।

१५—पन्द्रहवा चतुर्मास पुनः मिथिला में किया बाद विहार किया। कैशी—गौतमका श्रावस्ति में शास्त्रार्थ शिवराजाष सातद्वीप सातसमुद्र कहने वालाकों दीक्षा दी अग्निभूति वायुभूति के वैकुर्वणा के प्रश्न।

१६—सोलवा चतुर्मास वाणिज्य ग्राम नगर में किया बाद विहार आजीविका के प्रश्न तथा श्रावक के ४९ भंगों के प्रत्याख्यान और गोसाल के १२ श्रावक मुख्य।

१७—सत्तरहवां चतुर्मास राजगृह नगर में किया। विहार कर चम्पा पृष्टचम्पा में पधारे वहाँ शाल महाशाला की दीक्षा पुनः चम्पा कामदेव का उपसर्ग और उनकी प्रशंसा की वाणिज्य ग्राम का सोमल ब्राह्मण ने प्रभु से यात्रादि के प्रश्न किये।

१८—अठारहवां चतुर्मास वाणिज्य ग्राम में किया बाद विहार कर काम्पिलपुर गये अंबड सन्यासी को प्रतिबोध एवं श्रावक के व्रत दिये।

१९—उन्निसवां चतुर्मास वैशाली नगरी में किया बाद विहार कर वाणिज्य नगर में पधारे वहां पार्श्वसंतानिय गंगइयाजी आपको प्रश्न पुच्छे समाधान होने पर चार के पांच महाव्रत धारण किये।

२०—बीसवां चतुर्मास वैसाली में किया श्रुत—शिल की चौभंगी अन्यतिर्थियों के प्रश्न केवली के भाषा के विषय का प्रश्न मंडूक श्रावक और अन्यतिर्थियों के प्रश्न मंडूक की प्रशंसा।

२१—इकीसवां चतुर्मास राजगृह में वहाँ कालोदाइ के प्रश्न तथा उदकपेढाल के प्रश्न जाली मायली आदि निग्रन्थों ने विपुल पर अनसन किया।

२२—बाईसवां चतुर्मास राजगृह में ही किया। विहार वाणिज्य नगर में सुदर्शन सेठ ने काल के विषय के प्रश्न (महाबल का भव) दीक्षा तथा आनंद का अनसन और गौतम का आनन्द के पास जाना अवधि ज्ञान के विषय प्रश्न।

२३—तेईसवां चतुर्मास प्रभु ने वैशाला नगरी में व्यतीत किया बाद ग्राम नगरों में प्रवचन का प्रचार करते हुए साकेत नगर में पधारे—वहाँ जिनदेव के द्वारा राजा किरात भगवान् के पास आया उसको दीक्षा दी। वहां से विहार कर मथुरा शौरीपुरादि प्रदेश में धर्म प्रचार करते हुए।

२४—चौवीसवां चतुर्मास प्रभु मिथिला में व्यतीत किया बाद विहारकर राजगृह पधारे अन्यतिर्थियों के प्रश्नों का समाधान। तथा कालोदाई के शुभाशुभ कर्मों के विषय के प्रश्नों के उत्तर। [illegible] पुद्गलों के प्रश्नों के उत्तर इत्यादि।

२५—पच्चीसवां चतुर्मास प्रभु ने राजगृह में किया—बाद वहां से जिनन्द ने विहार किया [illegible]

तथा अन्य लोगों के विविध प्रश्नों के समाधान पूर्व उत्तर।

२६—छब्बीसवां चतुर्मास भगवान ने नालंदा (राजगृह) में व्यतीत किया बाद विहार किया गोतम ने सूर्य के विषय प्रश्न किये प्रभु ने समाधान किया।

२७—सतावीसवां चतुर्मास प्रभु ने मिथिला नगरी में बिताया—बाद वहां से विहार करके अनेक मुमुक्षुओं को प्रवचन के श्रद्धासम्पन्न बनाये कईएकों को श्रमण दीक्षा कईएकों को गृहस्थ धर्म की दीक्षा दी।

२८—अठाईसवां चतुर्मास प्रभु ने पुनः मिथिला नगरी में किया बाद चतुर्मास के मगध की ओर विहार—राजगृह में पधारे वहां महाशतक अन्तिम आराधना में लगा हुआ था उसकी स्त्री रेवंती ने उत्पात मचाया महाशतक को अवधि ज्ञान हो आया रेवंती का भविष्य कहा पर वह कठोर होने से प्रभु गौतम को महाशतक के पास भेज आलोचना करवाई इत्यादि। उष्णजल का होद के प्रश्न आयुष्यकर्म के विषय प्रश्न। अन्य भी बहुत से प्रश्नोत्तर।

२९—उन्तीसवां चतुर्मास प्रभु ने राजगृह नगरमें व्यतीत किया बादभी प्रभु वहां ठहरे। कई गण धरो की मोक्ष। गोतम ने छटा आरा के लिये पुच्छा बाद पांचवां आरा के विषय पुच्छा प्रभु ने उत्तर दिये इत्यादि।

३०—तीसवा चतुर्मास पावापुरी में हुआ। यह भगवान् के जीवन का अन्तिम चतुर्मास था वहाँ के राजा हस्तपाल की रज्जुग सभा में आपने चतुर्मास किया था चतुर्मास के तीन मास तो व्यतीत होगये थे कार्तिक मास में भगवान् की सेवा में काशी कौशल के अठारह गणशतक राजा उपस्थित थे जब प्रभु का अन्त समय निकट अर्थात् कार्तिक कृष्ण अमावश्य का सूर्योदय हो चुका था भगवान् ने अपुट्ठ (विनापुच्छे) वागरणा-देशना देना प्रारम्भ किया जिसमें ५५ पाप फल विपाक रूप और ५५ पुन्यफल विपाकरूप अध्ययन कह कर ३६ अध्ययन कहे जो आज उत्तराध्ययन सूत्र के नाम से कहालाते है तथा सेतीसवा प्रधान नाम तथा मरुदेवी नाम का अध्ययन प्रारम्भ करते ही आयुष्य कर्म की क्षीणता से भगवान् स्थुल शरीर तथा तेजस और कारमण शरीर अनादि काल से जीव के साथ थे उनको भी छोड़कर एक समय का गमन मार्ग अर्थात् उर्ध्व गमन लोकाग्रभाग में अक्षय सुखों का धाम-मोक्ष नगर में पधार गये उस समय के पूर्व ही भगवान् ने गौतम को एक देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध के लिये भेज दिये थे जब प्रभु के निर्वाण हुए और देवता कह कह करते हुए जाने आने वाले कह रहे थे कि अन्तिम तीर्थंकर का निर्वाण होने से लोक में अन्धकार हो गया है इन बातों को गोतम ने सुनी तो वे चल कर प्रभु के स्थान आया और पहले तो धर्म रागानुकूल विलापत किया और स्नेहवस उपालम्ब भी दिया पर बाद में सोचा कि प्रभु निरागी थे इत्यादि शुभ भावना से गोतम को भी कैवल्य ज्ञान उत्पन्न होगया अतः इन्द्रादि देवों ने प्रभु का निर्वाण महोत्सव के अनन्तर गोतम का केवल महोत्सव किया।

इस प्रकार भगवान् महावीर के तीर्थङ्कर अवस्था के ३० चतुर्मास का सिल सिलेवार संक्षिप्त में हाल लिखा दिया है। विस्तार देखो पन्यासजी म० का ग्रन्थ में। इति शुभम्॥

फूसालालजी
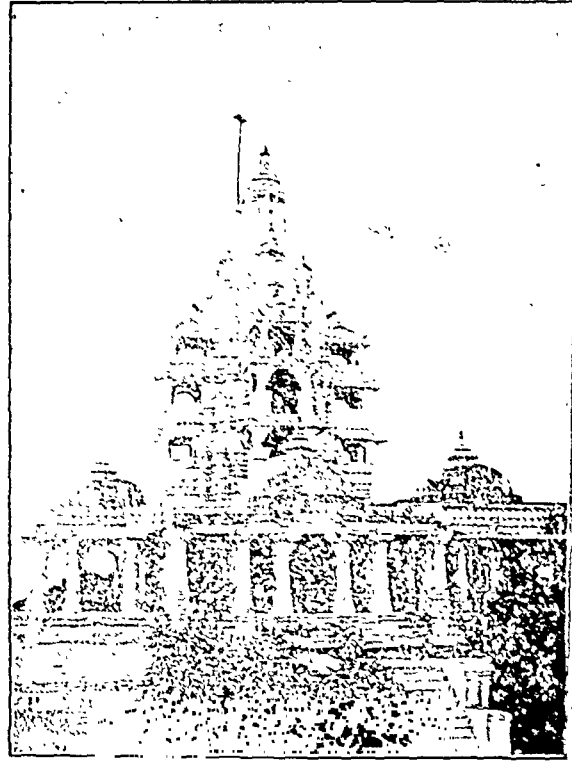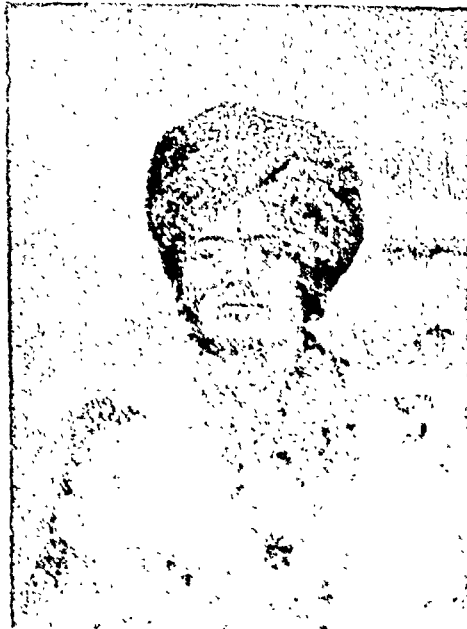
मिसरीमलजी

किसनलालजी

केसरीमलजी

भगवान् अजितनाथ के समय महाविदह में उत्कृष्ट १६० तीर्थङ्कर

	जम्बु० महाविदह	धा० पूर्व० विदह	धा० पश्चिम वि०	पुष्करा० पूर्व विदह	पु० पश्चि० विदह
	१	२	३	४	५
१	जयदेव	वीरचन्द्र	धर्मदत्त	मघवाहन	प्रसन्नचन्द्र
२	कर्णभद्र	वत्ससेन	भूमिपति	जीवरक्षक	महासेन
३	लक्ष्मीपति	नीलकांति	मेरुदत्त	महापुरुष	वृजनाथ
४	अनन्तहर्ष	मुंजकेशी	सुमित्र	पापहर	सुवर्णबाहु
५	गंगाधर	रुक्मिक	श्रीषेणनाथ	मृगांकनाथ	कुरुचन्द्र
६	विशालचन्द्र	क्षेमंकर	प्रमानन्द	सुरसिंह	वज्रवीर्य
७	प्रियंकर	मृगांकनाथ	पद्माकर	जगतपुज्य	विमलचन्द्र
८	अमरादित्य	मुनिमूर्ति	महाघोष	सुमतिनाथ	यशोधर
९	कृष्णनाथ	विमलनाथ	चन्द्रप्रभ	महामहेन्द्र	महाबल
१०	गुणगुप्त	आगमिक	भूमिपाल	अमरभूति	वज्रसेन
११	पद्मनाभ	निष्पापनाथ	सुमतिषेण	कुमारचन्द	विमलबोध
१२	जलधर	वसुंधरा धिप	अच्युत	वारिषेण	भीमनाथ
१३	युगादित्य	मल्लिनाथ	तीर्थपति	रमणनाथ	मेरुप्रभ
१४	वरदत्त	बनदेव	ललितांग	स्वयंभू	भद्रगुप्त
१५	चन्द्रकेतु	बलभृत	अमरचन्द्र	अचलनाथ	सुदृढसिंह
१६	महाकाय	अमृत वाहन	समाधिनाथ	मकरकेतु	सुव्रत
१७	अमरकेतु	पूर्णभद्र	मुनिचन्द्र	सिद्धार्थनाथ	हरिश्चन्द्र
१८	अरण्यवास	रेवांकित	महेन्द्रनाथ	सकलनाथ	प्रतिमाधर
१९	हरिहर	कल्पशाखा	शशांक	विजयदेव	अतिश्रेय
२०	रामेन्द्र	नलनिदत्त	जगदीश्वर	नरसिंह	कनककेतु
२१	शांतिदेव	विद्यापति	देवेन्द्रनाथ	शतानन्द	अजितवीर्य
२२	अनन्तकृत	सुपार्श्व	गुणनाथ	वृदारक	फाल्गु मित्र
२३	गजेन्द्र	भानुनाथ	उद्योतनाथ	चन्द्रातप	ब्रह्मभूत
२४	सागरचन्द्र	प्रभंजन	नारायण	चित्रगुप्त (चन्द्रगुप्त)	हितकर
२५	लक्ष्मीचन्द्र	विशिष्टनाथ	कपिलनाथ	दृढरथ	वारुणदत्त
२६	महेश्वर	जलप्रभ	प्रभाकर	महायशा	यशकीर्ति
२७	ऋषभदेव	मुनिचन्द्र	जिनदीक्षित	उष्णांक	नागेन्द्र
२८	सौम्यकान्त	ऋषिपाल	सकलनाथ	प्रद्युम्ननाथ	महाकीर्ति
२९	नेमिप्रभु	कुडगदत्त	शीलारनाथ	महातेज	कृतब्रह्मा
३०	अजितभद्र	भूतानन्द	वज्रधर	पुष्पकेतु	महेन्द्र
३१	महीधर	महावीर	सहस्रार	कामदेव	वर्धमान
३२	राजेश्वर	तार्थेश्वर	अशोकारम्भ	समरकेतु	सुरेन्द्रदत्त

पांच भरत, पांच एरवत एवं दश को मिलाने से १७० तीर्थङ्कर हुए।

	जम्बुद्वीप का भरत क्षेत्र			जम्बुद्वीप का ऐरवत क्षेत्र		
	भूतकाल ६	वर्तमान० ७	भविष्य ८	भूतकाल ९	वर्तमान १०	भविष्य ११
१	केवलनाणी ×	ऋपभ	पद्मनाथ	पंचरुप	बालचन्द्र	सिद्धार्थ
२	निर्वाणी	अजित	सूरदेव	जिनहर	श्रीशिवय	पूर्णघोष
३	सागर	संभव	सुपार्श्व	संपुटिक	अग्निसेन	यशघोष
४	महाजस	अभिनंदन	स्वयंप्रभ	अब्ज्यंतिक	नंदिषेण	नंदिषेण
५	विमल	सुमति	सर्वानुभूति	अधिष्टायक	विपिदत्त	सुमंगल
६	सर्वानुभुति	पद्मप्रभ	देवश्रुति	अभिनन्दन	व्रतधर	व्रजधर
७	श्रीधर	सुपार्श्व	उदय	रत्नेश	सोमचन्द्र	निर्वाण
८	श्रीदत्त	चन्द्रप्रभ	पेढ़ाल	रामेश्वर	दीर्घसेन	धर्मध्वज
९	दामोदर	सुविधि	पोटिल	अगुष्टम	शतायुष	सिद्धसेन
	सुतेज	शीतल	शतकीर्ति	विनाशक	शिवसुत	महासेन
	स्वामी	श्रेयांस	सुव्रत	आशेप	श्रेयांस	वीरमित्र
१	मुनिसुव्रत	वासुपुज्य	अमम	सुविधान	स्वयंजल	सत्यसेन
१३	सुमति	विमलनाथ	किष्कपाय	श्रीप्रदत्त	सिंहसेन	श्रीचन्द्र
१४	सिवगति	अनंत	निष्पुलाक	श्रीकुमार	उपशातं	महेन्द्र
१५	अस्तागं	धर्मनाथ	निर्मम	सर्वशैल	गुप्तसेन	स्वयंजल
१६	नमीश्वर	शान्तिनाथ	चित्रगुप्त	प्रभजिन	महावीर्य	देवसेन
१७	अनील	कुंथुनाथ	समाधि	सौभाग्य	पार्श्व	सुवर्त
१८	यशोधर	अरनाथ	सवंर	दिनकर	अभिधान	जिनेन्द्र
१९	कृतार्थ	मल्लिनाथ	यशोधर	व्रताधि	मरुदेव	सुपार्श्व
२०	जिनेश्वर	मुनिसुव्रत	विजय	सिद्धिकर	श्रीधर	सुकोशल
२१	शुद्धमति	नमिनाथ	मल्लजिन	शारीरिक	स्वामी कोष्ट	अनंत
२२	शिवकरं	नेमिनाथ	देवजिन	कल्पद्रुम	अग्निप्रभ	विमल
२३	स्वंदेन	पार्श्वनाथ	अनंतवीर्य	तीर्थादि	अग्निदत्त	अजितसेन
२४	संवति	महावीर	भद्रकृत्य	फलेश	वीरसेन	अग्निदत्त

× प्रस्तुत नामावलि आगमसार संग्रह नामक पुस्तक से लिखा गया है।

१—श्री तीर्थङ्करों को समकित प्राप्त होने के बाद एवं तीर्थङ्कर पद का निर्णय होने के पश्चात् कितने भव किये जैसे भगवान् ऋषभदेव के १३ भव १—धनासार्थवाह २—उत्तरकुरु युगलिक ३—सौधर्मदेव ४—महाबलराजा ५—ईशानदेव ६—वज्रजंघराजा ७—उत्तरकुरुयुगलिक ८—सौधर्मदेव ९—जीवानन्द वैद्य १०—अच्युतदेव ११—वज्रनाभचक्री १२—सर्वार्थसिद्धदेव १३—ऋषभदेव तीर्थङ्कर एवं १३ भव।

	धातकी खण्ड का पूर्व भरत क्षेत्र			धातकी खण्ड का पश्चिम भरत क्षेत्र		
	भूतकाल १२	वर्तमान १३	भविष्य १४	भूतकाल १५	वर्तमान० १६	भविष्य १७
१	रत्नप्रभ	युगादिनाथ	सिद्धनाथ	वृषभनाथ	विस्वेंद्जिन	रत्नकेश
२	अमित	सिद्धांत	सम्यग्नाथ	प्रियमित्र	करणनाथ	चक्रहस्त
३	असंभव	महेश	जिनेंद्र	शान्तनु	वृषभनाथ	साकृंत
४	अकंलक	परमार्थ	संप्रति	सुमृदुं	प्रियतेज	परमेश्वर
५	चन्द्रस्वामी	समुन्द्रर	सर्वस्वामी	अतीतजो	विमर्शजिन	सुमुर्ति
६	शुभकंर	भूधर	मुनिनाथ	अभ्यंत	प्रशमजिन	मुहूर्त्तिर्क
७	सत्यनाथ	उद्योत	विशिष्टनाथ	कलाशत	चारित्रजिन	निकेश
८	सुन्दरनाथ	आथर्व	अपरनाथ	सर्वजिन	प्रमादित्य	प्रशास्तिक
९	पुरदंर	अभय	ब्रह्मशान्ति	प्रबुद्धजिन	मंजुकेशीं	निराहार
१०	स्वामी	अप्रकपं	पर्वतनाथ	प्रवृजिन	पीतवास	अमुर्ति
११	देवदत्त	पद्मनाथ	कामुकं	सौधर्म	सुररिपू	द्विजनाथ
१२	वासवदत्त	पद्मानंद	ध्यानवर	तपोदीप	दयानाथ	श्वेतांगेश
१३	श्रीश्रेयांस	प्रियंकर	श्रीकल्प	वज्रसेन	सहस्त्रभुज	चारुनाथ
१४	विश्वरुप	सुकृतनाथ	स्वरनाथ	बुद्धिनाथ	जिनसिंह	देवनाथ
१५	तपस्तेज	भद्रेश्वर	स्वस्थनाथ	प्रबंधजिन	रैपकजिन	दयाधिक
१६	प्रतिबोध	मुनिचन्द्र	आनंद	अजित	बाहूजिन	पुष्पनाथ
१७	सिद्धार्थ	पचमुष्टि	रविचन्द्र	प्रमुख	पल्लिनाथ	नरनाथ
१८	सयमं	त्रिमुष्टि	प्रभवनाथ	पल्योपम	अघोर्गाजिन	प्रतिकृत
१९	अमल	गांगिक	सानिध	अर्कोपम	योगनाथ	मृगेन्द्रनाथ
२०	देवेंद्रनाथ	प्रणव	सुकर्ण	तिष्टित	कामरिपू	तपोनिधिक
२१	प्रवरनाथ	स्वींग	सुकर्मा	मृगनाभ	अरण्यसाहू	अचल
२२	विश्वसेन	ब्रह्मेंद	अमम	देवेंद्रजिन	नेमिकनाथ	अरण्यक
२३	मेघनदं	ईंद्रंदत्त	पार्श्वनाथ	प्रायश्चित	गर्भज्ञान	दशानन
२४	सर्वज्ञजिन	जिनपति	शास्वतनाथ	शिवनाथ	अजित	शातिकं

२—श्री चन्द्रप्रभ के ७ भव १—धर्मभूप २—सौधर्म देव ३—अजितसेन ४—अच्युतदेव ५—पद्मराजा ६—विजयन्तदेव ७—चन्द्रप्रभजिन।

३—शान्तिनाथ के १२ भव—जैसे १—श्रीषेणराजा २—[illegible] ३—सौधर्मदेव ४—अमितगति विद्याधर ५—प्राणतदेव ६—बलभद्र राजा ७—अच्युतदेव ८—[illegible] ९—[illegible] १०—मेघरथ राजा ११—सर्वार्थसिद्धदेव १२—श्री शान्तिनाथतीर्थंकर।

	धातकी खण्ड का पूर्व ऐरवत क्षेत्र			धातकी खण्ड का पश्चिम ऐरवत क्षेत्र		
	भूतकाल	वर्तमान०	भविष्य०	भूतकाल	वर्तमान०	भविष्य०
	१८	१९	२०	२१	२२	२३
१	अत्रस्वामी	अपश्चिम	विजयप्रभ	सुमेरुक	उपादिक	श्रीरवीन्द्र
२	ईन्द्रयत्न	पुष्फंदतं	नाराषण	जिनकृत	जिनस्वाम	स्कुमाल
३	सुर्य स्वामी	अर्हत	सत्यप्रभ	ऋषिकेली	स्वमित	पृथ्वीवंत
४	पुरुषोत्तम	सुचरित्र	महामृगेन्द्र	अशरतद	ईन्द्रजिन	कुलपरोधा
५	स्वामीनाथ	सिद्धानदं	चिन्तामणि	निर्धर्म	पुष्पकजिन	धर्मनाथ
६	अवबोध	नंदकजिन	असोगिन	कुटलिक	मंडिकजिन	प्रियसोम
७	विक्रमसेन	प्रकृपजिन	द्विमृन्द्र	वर्द्धमान	प्रहतजिन	वारुण
८	निर्घटीक	उदयनाथ	उपवासित	अमृतेन्द्र	मदनसिंह	अभिनन्दन
९	हरीद्र	रुकमेंद्र	पद्मचन्द्र	शखानंद	हस्तनिधी	सर्वभानु
१०	प्रतेरीक	कृपालु	वोधकेन्द्र	कल्याणव्रत	चन्द्रपार्श्व	सद्रष्टजिन
११	निर्वाण	पेढाल	चितांहिक	हरिनाथ	अश्वबोध	मौष्टिक
१२	धर्महेतू	सिद्धेश्वर	उतराहिक	बाहुस्वामी	जनकादि	सुवर्णकेतु
१३	चतुर्मुख	अमृततेज	अपाशित	भार्गव	विभूतिक	सोमचद्रं
१४	जनकृतेद्रं	जितेन्द्र	देवजल	सुभद्रजिन	कुमरीपिंड	क्षेत्राधिप
१५	स्वयकं	भागली	तारकजिन	पतिप्रास	सुवपि	सौढ़ातिक
१६	विमलादित्य	स्वार्येश	अमोध	वियोपित	हरिवास	कुमेपुक
१७	देवप्रभा	मघानन्द	नागेन्द्र	ब्रह्मचारी	प्रियमित्र	तमोरिपु
१८	धरणेद्रं	नंदिकेश	निलोत्पल	असख्यांगति	धर्मदव	देवतामित्र
१९	तीर्थनाथ	हरनाथ	अप्रकंप	चारित्रेश	धर्मचन्द्र	कृतपार्श्व
२०	उदयानंद	अधिष्टायक	पुरोहित	पारिणामिक	प्रवाहित	वहुनंद
२१	स्वार्थ	सातिंक	उमयेन्द्र	कर्बोज	नंदिनाथ	अघोरित
२२	धार्मिक	नदिंकजिन	पार्श्वनाथ	विधीनाथ	अश्वाविक	निकंबु
२३	क्षेत्रस्वामी	कुंडपार्श्व	निर्वचस	कौशिक	पुर्वनाथ	द्रष्टिस्वामी
२४	हरिचन्द्र	विरोजन्वन	वियोपित	धर्मेश	चित्रक	वक्षेशजिन

४—मुनिसुव्रतदेव के ९ भव १—शिवकेतुराजा २—सौधर्मदेव ३—कुबेरदत्त ४—सनत्कुमारदेव ५—वज्रकुंडलराजा ६—ब्रह्मदेवलोक ७—श्रीवर्मराजा ८—अपराजितदेव ९—श्रीमुनिसुव्रतदेव ।

५—नेमिनाथ के ९ भव १—धनराजा २—सौधर्मदेव ३—चित्रगंद विद्याधर ४—महेन्द्रदेव ५—अपराजित राजा ६—आरणदेव ७—शंखराजा ८—अपराजितदेव ९—श्री नेमिनाथ तीर्थंकर ।

	पुष्करार्द्ध पूर्व भरत क्षेत्र			पुष्करार्द्ध पश्चिम भरत क्षेत्र		
	भूतकाल	वर्तमान०	भविष्य०	भूतकाल	वर्तमान०	भविष्य०
	२४	२५	२६	२७	२८	२९
१	श्रीमदगन	जगन्नाथ	वसंतध्वंज	पद्मचन्द्र	पद्मपद	प्रभात्रक
२	मूर्तिस्वामी	प्रभास	त्रिमातुल	रक्तांवक	प्रभावक	विनयेन्द्र
३	निरागजिन	सरस्वामी	अघटित	अयोगिक	योगेश्वर	सुभात्र
४	प्रलंबित	भरतेश	त्रिखमंम	सर्वार्थ	बलनाथ	दिनकर
५	पृथ्वीपति	धर्मानन	अचल	ऋषिनाथ	सुपभाग	अगस्तेय
६	चारित्रनिधी	विख्यात	प्रवादिक	हरिभद्र	ब्लातीत	धनद
७	अपराजित	अवसानक	भूमानंद	गणाधिय	मृगांक	पोरव
८	सुबोधक	प्रवोधक	त्रिनयन	पारत्रिक	कलंत्रक	जिनदत्त
९	बुधेश	तपोनाथ	सिद्धांत	ब्रह्मनाथ	ब्रह्मनाथ	पार्श्वनाथ
१०	वैतालिक	पाठक	पृथग	मुनिद्रं	निपेधक	मुनिसिंह
११	त्रिमुष्टिक	त्रिकर	भद्रेग	दीपक	पापहर	आस्तिक
१२	मुनिबोध	शोगत	गोस्वामी	राजर्षि	सुस्वामी	भवानंद
१३	तीर्थस्वामी	श्रीयशा	प्रवासिक	विशाख	मुक्तिचन्द्र	नृपनाथ
१४	धर्माधिक	श्रीस्वामी	मंडलोक	अचिंतित	अप्रासिक	नारायण
१५	वमेश	सुकर्मेश	महावसु	रविस्वामी	नदीतक	प्राधनार्क
१६	समाधि	कर्मोतिकं	उदियतु	सोमदत्त	मलधारी	भूपति
१७	प्रमुनाथ	अमलेंद्र	दर्दुरिक	जयस्वामी	सुसयंम	द्रष्टोसु
१८	अनादि	ध्यजाशिक	प्रबोध	मोक्षनाथ	मलयसिंह	भवभीरुक
१९	सर्वतीर्थ	प्रसाद	अभयार्क	अग्निभानू	अक्षोभ	नंदननाथ
२०	निरुपम	विपरीत	प्रमोद	धनुष्कागं	देवधर	भार्गव
२१	कुमारिक	मृगांक	दफारिक	रोमांचित	प्रयच्छ	प्रशान्त्सु
२२	विहाराग्र	कफाहिक	व्रतस्वामी	मुक्तिनाथ	आगमीक	त्रिविश्राज
२३	धणेसर	गजेन्द्र	निधाम	प्रसिद्ध	विनीत	नरनारिक
२४	विकास	रत्नानन्द	त्रिकर्मक	जिनेश	रत्नानंद	भरतेश

६—पार्श्वनाथ के १० भव १—मरूभूति २—हस्ती ३—सहस्रार ४—किरणवेग विद्याधर ५—अच्युतदेव ६—वज्रनाभ ७—ग्रैवेयकदेव ८—सुवर्णवेग राजा ९—प्राणतदेव १०—श्री पार्श्वनाथ जिन ।

७—श्रीमहावीर के २७ भव १—नयसार २—सौधर्मदेव ३—मरीची ४—ब्रह्मदेव ५—कौशिक तापस ६—सौधर्मदेव ७—पुष्पमित्र तापस ८—सौधर्मदेव ९—अग्निद्योत तापस १०—ईशानदेव ११—अग्निभूति

	पुष्करार्द्ध द्वीप पूर्व ऐरवत क्षेत्र			पुष्करार्द्ध पश्चिम ऐरवत क्षेत्र		
	भूतकाल	वर्तमान०	भविष्य०	भूतकाल	वर्तमान०	भविष्य०
	३०	३१	३२	३३	३४	३५
१	कृतांत	निशामती	यशोधर	सुसंभव	श्री गार्गेय	अदोषित
२	ओखरिक	अक्षपास	सुमत	पच्छाभ	नलवशा	वृषभ
३	देवादित्य	अचिंतकर	अभयघोष	पुर्वास	भजिन	विनयानंद
४	अष्टनिधी	नयादि	निर्वाणिक	सौंदर्य	ध्वजाधिक	मुनिनाथ
५	प्रचंड	पर्णपंडू	व्रतवसु	गेरिक	सुभद्र	ईन्द्रक
६	वेणुक	स्वर्णनाथ	अतिराज	त्रिविक्रम	स्वामीनाथ	चन्द्रकेतु
७	त्रिभानू	तपोनाथ	अश्वनाथ	नारसिंह	हितक	ध्वजादित्य
८	ब्रह्मादि	पुष्यकेतु	अर्जुन	मृगवस्तु	नदिंघोष	वसुबोध
९	थभ्रगं	कर्मिक	तपचन्द्र	सोमेश्वर	रुपविर्य	वसुकीर्ति
१०	विरोहत	चन्द्रकेतु	शारीरिक	सुभानु	वज्रनाम	धर्म बोध
११	क्षपायक	प्रहारिक	महसेन	अपापमल्ला	सतोपं	देवाग
१२	लोकोत्तर	वितराग	सुश्राव	विबोध	सुधर्मा	मरिचिक
१३	धीजलधि	उद्योत	द्रढ़ प्रहार	संजमिक	श्रीफलादि	सुजीव
१४	विद्योतन	तपोधिक	अवरिक	माधीन	वीरचन्द्र	यशोधर
१५	सुमेरु	अतित	वृत्तातित	अश्वतेजा	मोघानिक	गौतम
१६	सुभाषित	मरुदेव	तुवंर	विद्याधर	स्वेच्छ	मुनिशुद्ध
१७	वत्सल	दामिक	सर्वशील	सुलोचन	कोपक्षय	प्रबोध
१८	जिनाल	शिलादित्य	प्रतिराज	मौननिधी	अकाम	शतानिक
१९	तुपारिक	स्वस्तिक	जितेंद्रिय	पुडरिक	सतोंपित	चारित्र
२०	भुवन	विश्वनाथ	तपादि	चित्रगण	शत्रुसेन	शतानदे
२१	सुकालिक	शतक	रत्नाकर	माणहिन्दु	क्षेमवात	वेदार्थनाथ
२२	देवाधिदेव	सहस्त्रादि	देवेश	स्वांकल	दयानाथ	सुधानाथ
२३	आकाशिक	तमोंकित	लांछन	भुरिसवी	कीर्ति	ज्योति मुख
२४	अबिंक	ब्रह्मार्क	प्रवेश	पुणयार्ग	शुभनाम	सूर्याकनाथ

तापस १२—सनत्कुमारदेव १३—भारद्वाज तापस १४—महिन्द्रदेव १५—स्थावरतापस १६—ब्रह्मदेव १७—विश्वभूति १८—शुक्रदेव १९—त्रिपुष्टवासुदेव २०—सातवीनरक २१—सिंह २२—चतुर्थनरक २३—प्रिय मित्रचक्री २४—शुक्रदेव २५—नन्दनराजा (इस भवमे ११८०६४५ मासखामण तप किये २६—प्रणितदेव २७—तीर्थंकर महावीर—

नम्बर	तीर्थंकर नाम	भव	च्यवन तिथी	च्यवन स्थान	गर्भ स्थिति मास—दिन	जन्म नगरी	जन्व तिथी
३६	३७	३८	९	४०	४१	४२	४३
१	श्री ऋषभदेव	१३	असाड़ वद ४	सर्वार्थ सिद्ध	९—४	वनिता	चैत्र वद ८
२	श्री अजितनाथ	३	वैशाख शुद १३	विजय वि०	८—२५	अयोध्या	महा शुद ८
३	श्री सम्भववाथ	३	फागण शुद ८	सातवां ग्रैवे	९—६	सावथ्थी	महा शुद १४
४	श्री अभिनंदन	३	वैशाख शुद ४	जयंत वि०	८—२८	अयोध्या	महा शुद २
५	श्री सुमतिनाथ	३	श्रावन शुद २	,,	९—६	,,	वैशाख शुद ८
६	श्री पद्मप्रभ	३	महा वदी ६	नौवां ग्रैवे	९—६	कौसंबी	कार्ति० वद १२
७	श्री सुपार्श्वनाथ	३	भादवा वद ८	छट्टा ग्रैवे	९—१९	वनारसी	जेठ शुद १२
८	श्री चंद्रप्रभ	७	चैत्र वद ५	विजयत वि०	९—७	चंद्रपुरी	पोप वद १२
९	श्री सुविधिनाथ	३	फागण वद ९	आनंत देव	८—२६	फाकंदी	महा वद ५
१०	श्री शीतलनाथ	३	वैशाख वद ६	प्राणत देव०	९—६	भद्दिलपुर	महा वद १२
११	श्री श्रेयांसनाथ	३	जेठ वद ६	अच्युत देव०	९—६	सिंहपूरी	फागण वद १२
१२	श्री वासुपुज्य	३	जेठ शुद ९	प्राणात देव०	८—२०	चंपापूरी	कार्ति वद १४
१३	श्री विमलनाथ	३	वैशाख शुद १२	सहस्र देव०	८—२१	कपिलपुर	महा शुद ३
१४	श्री अनंतनाथ	३	श्रावन वद ७	प्राणत देव०	९—६	अयोध्या	वैशाख वद १३
१५	श्री धर्मनाथ	३	वैशाख शुद ७	विजय वि०	९—२६	रत्नपुरी	महा शुद ३
१६	श्री शांतिनाथ	१२	भादवा वद ७	सर्वार्थ सिद्ध	९—६	गजपूर	जेठ वद १३
१७	श्री कुंथुनाथ	३	श्रावन वद ९	,,	९—५	,,	वैशाख वद १४
१८	श्री अरिनाथ	३	फागन शुद १२	,,	९—८	,,	माह शुद १०
१९	श्री मल्लिनाथ	३	फागन शुद ४	जयन्त वि०	९—७	मथुरा	,, ११
२०	श्री मुनिसुव्रत	९	श्रावन शुद १५	अपराजित	९—८	राजगृही	जेठ वद ८
२१	श्री नमिनाथ	३	आसोज शुद १५	प्राणत देव०	९—८	मथुरा	श्रावन वद ८
२२	श्री नेमिनाथ	९	कातिक वद १२	अपराजित वि०	९—८	सौरिपूर	श्रावन शुद ५
२३	श्री पार्श्वनाथ	१०	चैत्र वद ४	प्राणत देव०	९—६	बनारसी	पोष वद १०
२४	श्री महावीर	२७	आसाढ़ शुद ६	,,	९—७	क्षत्रिय कुंड	चैत्र शुद १३

८—शेप तीर्थंकरों के तीन तीन भव १—मनुष्य २—देव ३—तीर्थङ्कर।

२—तीर्थङ्कर नाम कर्मोपार्जन करने के बीस कारण हैं यथा—अरिहन्त, सिद्ध, प्रवचन (पांच समिति, तीन गुप्ती) गुरु, स्थविर, बहुश्रुत, तपस्वी, ज्ञानी, दर्शन विनय, आवश्यक (प्रतिक्रमण), व्रत, तप, ध्यान, दान, व्यावच्च, समाधि, अपूर्वज्ञानपढ़न, श्रुतभक्ति और शासन की प्रभावना इन बीस बोलों की आराधना करने से जीव तीर्थङ्कर नाम कर्मोपार्जन करता है। ("श्री ज्ञात सूत्र अ० ८ वाँ")

३—श्री तीर्थङ्करदेव के जन्म समय छप्पन दिशा कुमारी देवियों के आसन चलायमान होते हैं तब वे अवधि ज्ञान लगा कर जानती है कि देवाधिदेव के जन्म हुआ अतः हमारा कर्तव्य है कि हम उनका

जन्म नक्षत्र ४४	जन्म राशि ४५	गण ४६	योनि ४७	वर्ग ४८	लच्छन ४९	पिता का नाम ५०	माता नाम ५१	वंश ५२
उत्तराषाढ़ा	धन	मानव	नाकुल	गरुड़	वृषभ	नाभि राज	मरुदेवी	इक्ष्वाकु
रोहिणी	वृष	देव	सर्प	,,	हस्ति	जितशत्रु ,,	विजया	,,
मृगशिर	मिथुन	देव	सर्प	मेष	अश्व	जितारी ,,	सेना	,,
पुनर्वसु	,,	देव	बीलाडी	गरुड़	वन्द	संव ,,	सिद्धार्था	,,
मघा	सिंह	राक्षस	मूषा	मेष	कौंच पक्षी	मेघ ,,	मगला	,,
चित्रा	कन्या	,,	व्याघ्र	मूषक	पद्मकमल	श्रीधर ,,	सुसीमा	,,
विशाखा	तुला	,,	,,	मेष	साथियों	प्रतिष्ट ,,	पृथ्वी	,,
अनुराधा	वृश्चिक	देव	मृग	सिंह	चन्द्रमा	महासेन ,,	लक्ष्मणा	,,
मूल	धन	राक्षस	श्वान	मेष	मगरमच	सुग्रीव ,,	रामा	,,
पूर्वाआषाढ़ा	,,	मानव	बन्दर	,,	श्रीवत्स	दृढरथ ,,	नंदा	,,
श्रवण	मकर	देव	,,	,,	गेंडो	विष्णु ,,	विष्णा	,,
शतभिषा	कुम्भ	राक्षस	अश्व	मृग	पाड़ो	वसुपुज्य ,,	जया	,,
[illegible] । भा०	मीन	मानव	गौ	मेष	वराह	कृतवर्मा ,,	श्यामा	,,
[illegible]	,,	देव	हस्ती	गरुड़	सिचोणो	सिंहसेन ,,	सुयशा	,,
पुष्य	कर्क	देव	अज	सर्प	वज	भानु ,,	सुव्रता	,,
भरणी	मेष	मानव	हस्ती	मेष	हिरण	विश्वसेन ,,	अचिरा	,,
कृतिका	वृष	राक्षस	अज	बीलाड	बकरो	शूर ,,	श्रीराणी	,,
रेवती	मीन	देव	हस्ती	गरुड़	नद्यांवर्त	सुदर्शन ,,	देवी	,,
अश्विनी	मेष	,,	अश्व	मूषक	कलश	कुम्भ राजा ,,	प्रभावती	,,
श्रवण	मकर	,,	वन्दर	,,	कच्छ	सुमित्र ,,	प्रद्मावती	हरीवंश
अश्विनी	मेष	,,	अश्व	स[illegible]	कमल	विजय ,,	विप्रा	इक्ष्वाकु
चित्रा	कन्या	राक्षस	व्याघ्र	,,	शंख	समुन्द्रविजय ,,	शिवादेवी	हरिवंश
विशाखा	तुला	,,	,,	मूषक	सर्प	अश्वसेन ,,	वामादेवी	इक्ष्वाकु
उत्तराषाढ़ा	कन्या	मानव	गौ	मृग	सिंह	सिद्धार्थ ,,	त्रिशला	,,

त्रिलोक्यनाथ का सूतिक कर्म करे । छप्पन दिशाकुमारी जैसे—मेरु पर्वत के गजदंतादि के पास रहने वाली अधोलोकवासी आठ, मेरु के नन्दन वन के कूटों पर रहने वाली उर्ध्वलोकवासी आठ, रूचकद्वीप के पूर्व दिशा में रहने वाली ८, पश्चिम की ८, उत्तर की ८, दक्षिण की ८, मध्य में रहने वाली ४, और विदिशा में रहने वाली ४ एवं सर्व मिलकर ५६ दिक्कुमारी अपरिग्रहित देवियां समझनी ।

—कंदलीगृह २—भूमिशोधन संवर्त्तकवायु ३—सुरभि जल वृष्टि ४—जलपूर्ण अभिषेक कलस ५—ऐनक ६—बींजना ७—चामर ८ दीपक ९—नाल छेदन एवं नृत्य करती है इनमें प्रत्येक देवी के

गौत्र	शरीर	आयुष्य	वर्ण	पदवी	लग्न	पुत्र	कुमारावस्था	दीक्षापरिवार
५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१
काश्यप गौत्र	५००ध०	८४ ल० पू०	सुवर्ण	राजा	लग्न हुआ	१००-२	२० लक्ष पूर्व	४०००
,,	४५० ,,	७२ ,,	,,	,,	,,	०००	१८ ,, ,,	१०००
,,	४०० ,,	६० ,,	,,	,,	,,	३	१५ ,, ,,	,,
,,	३५० ,,	५० ,,	,,	,,	,,	३	१२॥ ,, ,,	,,
,,	३०० ,,	४० ,,	,,	,,	,,	३	१० ,, ,,	,,
,,	२५० ,,	३० ,,	लालवर्ण	,,	,,	१३	७॥ ,, ,,	,,
,,	२०० ,,	२० ,,	सुवर्ण	,,	,,	१७	५ ,, ,,	,,
,,	१५० ,,	१० ,,	श्वेत	,,	,,	१८	२॥ ,, ,,	,,
,,	१०० ,,	२ ,,	,,	,,	,,	१९	५० हजार पूर्व	,,
,,	९० ,,	१ ,,	सुवर्ण	,,	,,	१४	२५ ,, ,,	,,
,,	८० ,,	८४ लाख वर्ष	,,	,,	,,	९९	२१ लक्ष वर्ष	,,
,,	७० ,,	७२ ,,	लालवर्ण	कुमार	,,	१४	१८ ,, ,,	६००
,,	६० ,,	६० ,,	सुवर्ण	राजा	,,	०	१५ ,, ,,	१०००
,,	५० ,,	३० ,,	,,	,,	,,	८८	७॥ ,, ,,	,,
,,	४५ ,,	१० ,,	,,	,,	,,	१९	२॥ ,, ,,	,,
,,	४० ,,	१ ,,	,,	चक्री	६४०००स्त्री	१॥ क्रोड़	२५००० ,,	,,
,,	३५ ,,	९५०००	,,	,,	,,	१॥ क्रोड़	२३७५० ,,	,,
,,	३० ,,	८४०००	,,	,,	,,	१। क्रोड़	२१००० ,,	,,
,,	२५ ,,	५५०००	निल	कुमारी	नहीं हुआ	०	१०० ,,	३००
,,	२० ,,	३००००	श्याम	राजा	हुआ	१९	७५०० ,,	१०००
गौतमगौत्र	१५ ,,	१००००	सुवर्ण	,,	,,	०	२५०० ,,	,,
काश्यप	१० ,,	१०००	श्याम	कुमार	नही	०	३०० ,,	,,
गौतमगौत्र	९ हाथ	१००	निल	,,	हुआ	०	३० ,,	३००
काश्यप	७ ,,	७२ वर्ष	सुवर्ण	,,	,,	१ पुत्री	३० ,,	एकला

चार चार महत्तर देवियों, चार चार हजार सामानिकदेव, सोलह सोलह हजार आत्मरक्षक देव और सात सात अनिकादि देवी देवतां का परिवार होता हैं।

४—इन्द्र भुवन पतियों के २० वाणमित्रों के ३२ ज्योतिषियों के २ और विमानीकों के १० सर्व ६४ इन्द्र हैं प्रभु के जन्म समय शक्रेन्द्र प्रभु के जन्म स्थान और ६३ इन्द्र मेरु पर आते हैं। इन्द्रों का कर्तव्य है कि वे प्रभुका प्रतिबिम्ब बनाना २—पांच रूपकर एक रूप प्रभुको हस्तांजलि में लेवे ३—आठहजार चौसट कलसों से प्रभु का अभिषेक करावे ५—प्रभु के शरीर के गौशीस चन्दन चर्चना ५—अंग अग्र पूजा करे ६—वस्त्र भूषण धारण करावे ७—प्रभु को माता के पास रख प्रतिबिंब को अपहरण करना ८—[illegible]

दीक्षा नगरी	दीक्षा तिथी	दीक्षा तप	दीक्षा वृक्ष	प्रथम पारणो	पारणा किसके	तपस्या के दिन	छद्मस्थ काल
६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९
विनीता	चैत वदी ८	छठतप	बड वृक्ष	इक्षु रस	श्रेयांस के घर	१ वर्ष	१००० वर्ष
अयोध्या	महा वद ९	,,	शाल ,,	परमान्न खीर	ब्रह्मदत्त ,,	दो दिन	१२ ,,
सावथ्थी	मगशर शुद १५	,,	प्रियाल ,,	,,	सुरेन्द्रदत्त ,,	,,	१४ ,,
अयोध्या	महा शुद १२	,,	प्रियगु ,,	,,	इन्द्रदत्त ,,	,,	१८ ,,
,,	वैशाख शुद ९	नित्य भक्त	शाल ,,	,,	पद्म ,,	,,	२० ,,
कौशम्बी	कार्तिक वदी १३	छठतप	छत्र ,,	,,	सोमदेव ,,	,,	६ मास
वणारसी	जेठ शुद १३	,,	शिरीष ,,	,,	महेन्द्र ,,	,,	९ ,,
चन्द्रपुरी	पो० व० १३	,,	नाग ,,	,,	सोमदत्त ,,	,,	३ ,,
काकदी	मगशर वद ६	,,	शाली ,,	,,	पुष्प ,,	,,	४ ,,
भद्दिलपूर	महा वद १२	,,	पियगु ,,	,,	पुनर्वसु ,,	,,	३ ,,
सिंहपुरी	फाग वद १३	,,	तन्दुक ,,	,,	नन्द ,,	,,	२ ,,
चम्पापुरी	फाग वद १५	चोथ भक्त	पाडल ,,	,,	सुनन्द ,,	,,	१ ,,
कम्पलिपुर	महा शुद ४	छठतप	जम्बु ,,	,,	जयधर ,,	,,	२ ,,
अयोध्या	वैशा० वद १४	,,	अशोक ,,	,,	विजय ,,	,,	३ वर्ष
रत्नपुरी	महा शुद १३	,,	दधिपर्ण ,,	,,	धर्मसिंह ,,	,,	२ ,,
गजपूर	जेठ वद १४	,,	नन्दि ,,	,,	सुमित्र ,,	,,	१ ,,
,,	वैशा० वद ५	,,	भीलक ,,	,,	व्याघ्रासिंह ,,	,,	१६ ,,
,,	मगशर शुद ११	,,	आम्र ,,	,,	अपराजित ,,	,,	३ ,,
मिथिला	,,	अठमतप	अशोक ,,	,,	विश्वसेन ,,	,,	१ अहोरात्रि
राजग्रही	फाग० शुद १२	छठतप	चम्पक ,,	,,	ब्रह्मदत्त ,,	,,	११ मास
मथुरा	आसाढ़ वद ९	,,	बकुल ,,	,,	दिन्नकुमार ,,	,,	९ मास
द्वारामति	सावन शुद ६	,,	वेडस ,,	,,	वरदिन्न ,,	,,	५४ दिवस
बणारसी	पोष वद ११	अठमतप	धातकी ,,	,,	धन्यनाम ,,	,,	८४ दिवस
क्षत्र पकुन्ड	मगशर वद १०	छठतप	शाल ,,	,,	बहुल ब्राह्म ,,	,,	१२ वर्ष ६॥

के हस्तांगुष्ट में अमृत का संचार करना ९—वत्तीस करोड़ सोनाइयों की वर्षाद करना १०—आशीर्वाद देना ११ नन्दीश्वर द्वीप जाकर—अष्टान्हिका महोत्सव कर बाद स्वस्थान जाते हैं।

५—प्रभु के २५० ढाई सौ अभिषेक—सूर्य, चन्द्र, वर्जकर ६२ इन्द्रों के ६२, सूर्य के ६६ चन्द्र के ६६ सामानिक देवों का १ गुरु स्थानिक देवों का १ परिषद देवों का १ अंग रक्षक देवों का १ शक्रेन्द्र की अग्र महिषीदेवियों के ८ ईशानेन्द्र की अग्रमहिषी के ८ असुरकुमार के दो इन्द्रों की अग्रमहिषियों के १० नागकुमार के दो इन्द्रों की बारह इन्द्राणियों के १२ ज्योतिषियों की अग्रमहिषियों के ४ व्यन्तर देवों की देवियों के ८ अनिकाके देवों का १ और शेष सब देवों का १ एवं सर्व मिलकर २५० अभिषेक करते हैं।

ज्ञान नगरा	ज्ञान तिथी	ज्ञान तप	गणधर	प्रथम गणधर	प्रथम आर्य	वैक्रिय मुनी	वादी मुनि
७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	०७
पुरिमताल	फागण बद ११	अट्ठम तप	८४	पुंडरिक	ब्राह्मी	२०६००	१२६५०
अयोध्या	पौष शु ,, ,,	छठ्ठम तप	९५	सिंह सेन	फाल्गु	२०४००	१२४००
सावथ्थी	काती वद ,, ,,	,,	१०२	चारु	श्यामा	१९८००	१२०००
अयोध्या	पौष शु ,, १४	,,	११६	वज्रनाभ	अजिता	१९०००	११०००
,,	चैत्र शुद ११	,,	१००	चरम	कास्यपि	१८४००	१०४००
कौशंबी	चैत्र शुद १५	,,	१०७	पद्मोतर	रति	१६१०८	९६००
बणारसी	फाग वद ६	,,	९५	विदर्भ	सोमा	१५३००	८४००
चन्द्रपुरी	,, ,, ७	,,	९३	दिन्न	सुमना	१४०००	७६००
काकंदी	कार्ति शुद ३	,,	८८	वरहाक	वारुणी	१३०००	६०००
भदिलपुर	पौष वद १४	,,	८१	नदं	सुयसा	१२०००	५८००
सिंहपुरी	महा वद ३०	,,	७६	कौस्तु	धारणी	११०३०	५०००
चम्पापुरी	,, शुद २	चौथ भक्त	६६	सुभूम	धरणी	१००००	४७००
कंपिलपुर	पौष ,, ६	छटतप	५७	मदंर	धरा	९०००	३६००
अयोध्या	वैशाख वद १४	,,	५०	यस	पद्मा	८०००	३२००
रत्नपुरी	पोप शुद १५	,,	४३	अरिष्ट	आर्य शिवा	७०००	२८००
गजपुर	,, ,, ९	,,	३६	चक्रयुद्ध	शुचि	६०००	२४००
,,	चैत्र ,, ३	,,	३५	शाम्ब	दामिनी	५१००	२०००
,,	कार्ति ,, १२	,,	३३	कुंभ	रक्षिता	७३००	१६००
मथुरा	मगसर ,, ११	अठम	२८	अभिक्षक	वधुमति	२९००	१४००
राजगृही	फाग वद १२	छट्ठतप	१८	मल्ली	पुष्पमति	२०००	१२००
मथुरा	मगसर शुद ११	,,	१७	शुम्भ	अगिला	५०००	१०००
गिरनार	आ० वद ३०	अट्ठम	+११	वरदत्त	यक्ष दिन्ना	१५००	८००
बणारसी	चैत्र बदी १४	,,	×१०	आर्य शुभदत्त	पुष्पचुला	११००	६००
ऋजु वालिकनदी	वैशाख शुद १०	छट्ट तप	११	ईन्द्रभूति	चन्दनबाला	७००	४००

+ कल्पसूत्र में १८ कहा है × कल्पसूत्र में ८ कहा है, शायद दो अल्प समय में मोक्ष गये हों।

६—तीर्थंकरदेव का रूप—मंडलीक राजा, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, व्यान्तरदेव, भुवनपतिदेव, ज्योतिषीदेव, वैमानिकदेव, नौग्रीवैग के देव, चारानुतरवैमान के देव, सर्वार्थसिद्ध वैमान के देव, आहारीक शरीर और गणधरों के रूप की एक रासी की जाय तो इस रूप से भी तीर्थंकरों का रूप अनन्त गुणा है।

७—तीर्थंकरदेव का बल—संसार में मनुष्य देव और तिर्यंच इन सबका बल एक ओर रख दाले तो भी तीर्थंकरों का बल अनन्त गुणा है। तीर्थंकरदेव के वीर्य अन्तराय का सर्वनाश होने से वे अनन्त बली कहलाते हैं।

८—तीर्थंकरों का वर्षी दान जैसे प्रातः समय से भोजन के समय तक तीर्थंकर भगवान् प्रतिदिन

अवधि०	केवली०	मनः पर्यव	चौदह पूर्वधर	साधु सं०	साध्वी	श्रावक	श्राविक
७२	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५
९०००	२००००	१२६५०	४७५०	८४०००	३०००००	३०५०००	५५४०००
९४००	२००००	१२५५०	२७२०	१०००००	३३००००	२९८०००	५४५०००
९६००	१५०००	१२१५०	२१५०	२०००००	३३६०००	२९३०००	६३६०००
९८००	१४०००	११६५०	१५००	३०००००	६३००००	२८८०००	५१७०००
११०००	१३०००	१०४५०	२४००	३०००२०	५३००००	२८१०००	५१६०००
१००००	१२०००	१०३००	२३००	३०००३०	४२००००	२७६०००	५०५०००
९०००	११०००	९१५०	२०३०	३०००००	४३००००	२५७०००	४९३०००
८१००	१००००	८०००	२०००	२५००००	३८००००	२५००००	४७१०००
८४००	७५००	७५००	१५००	२०००००	१२००००	२२९०००	४३१०००
७२००	७०००	७१००	१४००	१०००००	१००००६	२८९०००	४५८०००
६०००	६५००	६०००	१३००	८४०००	१०३०००	२७९०००	४४८०००
५४००	६०००	६५००	१२००	७२०००	१०००००	२१५०००	४३६०००
४८००	५५००	५५००	११००	६८०००	१००८००	२०८०००	४२४०००
४३००	५०००	५०००	१०००	६६०००	६२०००	२०६०००	४०१४००
३६००	४५००	४१००	९००	६४०००	६२४००	२०४०००	४१३०००
३०००	४३००	४०००	८००	६२०००	६१६००	१९००००	३९३०००
२५००	३२००	३३४०	६७०	६००००	६०६००	१७९०००	३८१०००
२६००	२८००	२५५१	६६०	५००००	६००००	१८४०००	३७२०००
२२००	२२००	१७५०	६१८	४००००	५५०००	१८३०००	३७१०००
१८००	१८००	१४००	५००	३००००	७००१०	१७२०००	३५००००
१६००	१६००	१२५०	४५०	२००००	४१०००	१७००००	३४८०००
१५००	१५००	१०००	४००	१८०००	४००००	१६७०००	३३६०००
१४००	१०००	७१०	३५०	१६०००	३८०००	१६४०००	३३९०००
१३००	७१०	५००	३००	१४०००	३६०००	१५९०००	३१८०००

१०८००००० एक करोड़ आठ लाख सोनइयों का दान करते हैं। एक वर्ष तक निरन्तर दान करने से ३८८८०००००० सोनइयों का दान करते हैं।

९—तीर्थंकरों के तपस्या का पारणा के समय प्रथम दान देने वाला महा पुन्यवान होता है। प्रथम के आठ तीर्थंकरों को दान देने वाले उसी भव में मोक्ष गये शेष दातार तीन भव करके मोक्ष जायंगे।

१०—तीर्थंकरदेव जहां पारणा करते हैं वहां जघन्य साढ़ा बारह लक्ष और उत्कृष्ट साढ़ा बारह करोड़ सोनइयों की बरसात होती है और सुगन्ध जल पुष्पादि की भी बरसात होती है।

११—भगवान ऋषभदेव के शासन में उत्कृष्ट बारह मास का तप मध्यम २२ तीर्थंकरों के शासन में आठ मास और चरम तीर्थंकर महावीर के शासन में साधू छः मास का उत्कृष्ट तप करते थे।

भक्त राजाओं ना नाम	यक्ष	यक्षणि	मोक्ष	मोक्ष तिथि	मोक्ष तप	मोक्षासन
८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२
भरत चक्रवर्ति	गोमुख	चक्रेश्वरी	अष्टापद	महावद १३	छ उपवास	पद्मासन
सागर ,,	महायक्ष	अजित बाला	समेतशिखर	चैत्र शुद ५	एक मास	कायोत्सर्ग
मृगसेन राजा	त्रिमुख	दुरितारी	,,	,,	,,	,,
मित्र वीर्य ,,	यक्षेश	कालिका	,,	वैशा, शुद ८	,,	,,
सत्य वीर्य ,,	तुंबरु	महाकाली	,,	चैत्र ,, ९	,,	,,
अजितसेन ,,	कुसुम	अच्युता	,,	मागसर वद ११	,,	,,
दानवीर्य ,,	मातंग	शांता	,,	फाग वद ७	,,	,,
मघवा चक्रवर्ति ,,	विजय	ज्वाला	,,	भाद वद ७	,,	,,
युद्धवीर्य राजा ,,	अजित	सुतारिका	,,	,, शुद ९	,,	,,
सीमन्धर ,,	ब्रह्मा	अशोका	,,	वैशा, वद २	,,	,,
त्रिपृष्ठ वासुदेव	ईश्वर	मानवी	,,	श्रावण ,, ३	,,	,,
त्रिपृष्ठ ,,	कुमार	प्रचण्डा	चंपा पूरी	असा शुद १४	,,	,,
स्वंभु ,,	षट्मुख	विदिता	समेत सि०	,, वद ७	,,	,,
पुरुषोत्तम ,,	पाताल	अंकुशा	,,	चैत्र शुद ५	,,	,,
पुरुषसिंह ,,	किन्नर	कंदर्प्पा	,,	जेठ शु० ५	,,	,,
कोणालक राजा	गरुड	निर्वाणी	,,	,, वदी १३	,,	,,
कुबेर नृपति	गधंर्व	बला	,,	वैशा वद १	,,	,,
सुभूम चक्री	यक्षेन्द्र	धरणी	,,	मागसर शुद १०	,,	,,
अजितराजा	कुबर	धरण प्रिया	,,	फाग ,, १२	,,	,,
विजयमहनृप	वरुण	नरदत्ता	,,	जेठ वदी ९	,,	,,
हरिषेण चक्री	भृकुटी	गंधारी	,,	वैशा ,, १०	,,	,,
श्रीकृष्ण वासुदेव	गोमेघ	अंबिका	गिरनार	असा शुद ८	,,	पद्मासन
प्रसेनजित राजा	पार्श्व	पद्मावती	समेत शि०	श्राव शुद ८	,,	कायोत्सर्ग
श्रेणिक राजा	मातंग	सिद्धायिका	पावापुरी	काती वद १५	छठ तप	पद्मासन

१२—तीर्थङ्करदेव १८ दोष रहित होते हैं जैसे-दानान्तराय, लाभ०, भोग०, उपभोग० वीर्य०, मिथ्यात्व, अज्ञान, अव्रत, काम, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, राग, द्वेष, और निद्रा एवं अठारह दोष। अथवा हिंसा, झूंठ, चोरी, क्रीड़ा, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ, मत्सर, अज्ञान, निद्रा, और प्रेम एवं अठारह दोषों से रहित हो वेही सच्चे देव कहलाते हैं।

१३—तीर्थङ्करदेव के अतिशय—विशेष गुण, जन्म समय ४ घनघाती कर्मों का क्षय होने से ११ देवकृत १९ एवं सब ३४ अतिशय होते हैं। जन्म समय १—शरीर अनंत गुण रूप, सुन्दर सुगन्धी, रोग, मल परसेवा (पसीना) रहित २—रुधिर मांस गाय के दूध जैसा उज्वल और दुर्गन्ध रहित है। ३—आहार

अंतर मान	मोक्ष परिवार	माता गति	पिता गति	दीक्षा शेविका	युगान्त भूमि	पर्यायभू
९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९
५० लाख क्रो. सा.	१०००	मोक्ष	नागकुमार	सुदर्शना	असंख्याता पाट	दो घड़ी
३० ,, ,, ,,	,,	,,	ईशान	सुप्रभा	सख्याता पाट	एक दो दिवस
१० ,, ,, ,,	,,	,,	,	सिद्धार्था	,,	,,
९ ,, ,, ,,	,,	,,	,,	अर्थसिद्धा	,,	,,
९०हजार, क्रो. सा.	,,	,,	,,	अभयंकरा	,,	,,
९ ,, ,, ,,	३०८	,,	,,	मनोहरा	,,	,,
९०० क्रो० सा०	५००	,,	,,	मनोरंभिका	,,	,,
९० ,, ,,	१०००	,,	,,	सुप्रभा	,,	,,
९ ,, ,,	,,	सनत्कुमार	सनत्कुमार	शक्र प्रभा	,,	,,
१ कु० कम	,,	,,	,,	विमलप्रभा	,,	,,
५४ सागरोपम	,,	,,	,,	पृथ्वी	,,	,,
३० ,,	६००	,,	,,	देवदिक्षा	,,	,,
९ ,,	६०००	,,	,,	सागरदत्ता	,,	,,
४ ,,	७८००	,,	,,	सागरदत्ता	,,	,,
३ अ० क०	१०८	,,	,,	नागदत्ता	,,	,,
०॥ पल्योपम	९००	,,	,,	सार्वथा	,,	,,
०। अ० क०	१०००	माहेन्द्र	माहेन्द्र	विजया	,,	,,
१००० क्रोड वर्ष	,,	,,	,,	विजयंति	,,	,,
५४ लाख वर्ष	५००	,,	,,	जयन्ति	,,	,,
६ ,, ,,	१०००	,,	,,	अपराजिता	,,	,,
५ ,, ,,	,,	,,	,,	देवकुरा	,,	,,
८३७५० वर्ष	५३६	,,	,,	द्वारामती	आठ पाट	दो वर्ष
२५० ,,	३३	,,	,,	विशाला	चार पाट	तीन वर्ष
चरम जिन	अकेला	अच्यूत	अच्यूत	चन्द्रप्रभा	तीन ,,	चार वर्ष

निहार अदृश्य—चरम चक्षु वाला नहीं देख सकता ४—श्वासोश्वास पद्मकमल जैसा सुगन्धवाला होता है एवं अतिशय जन्म से तथा १-योजन प्रमाण समवसरण में देव मनुष्य तिर्यंच जितने हो सुखपूर्वक समावेश हो सकते हैं २—चारों दिशा में पचवीस २ योजन पूर्वोत्पन्न रोगों की शांति और नया रोग हो नहीं सके ३—आपसी वैरभाव उपशान्त हो नया वैर पैदा न हो ४-क्षुद्र जीवों की उत्पत्ति का अभाव । ५ मर की वगैरह बड़े रोग नहीं हो पहले के रोग उपशान्त हो जाते हैं ६-अति वर्षा न हो ७-अना वृष्टि भी न हो ८-दुष्काल न पड़े ९—स्वचक्री परचक्री का भय न हो १०—प्रभु की योजन गामनी वाणी देव मनुष्य तिर्यंच अपनी २ भाषा में समझ सके ११—प्रभु के पीछे सूर्य से भी अधिक तेज वाला भामण्डल प्रकाशमान रहे एवं ११ अतिशय केवल ज्ञान होने से होते हैं। १—प्रभु विहार करे तब पचवीस योजन तक प्रकाश पड़ता धर्मचक्र आगे चाले । २—देवकृत चमर तथा स्वयं वीजते एवं ढलते रहें ।

	जिन नाम १००	नगरी १०१	माता १०२	पिता १०३	स्त्री १०४	लच्छन १०५
१	श्री सीमंधर	पुंडरिगिणी	सत्य की देवी	श्रीयंश राजा	रूकमणी	वृषभ
२	श्री युगमंधर	सुसीमा	सुतारा "	सुदृढ़ "	प्रियमंगला	गज
३	श्री बाहु	वितशोका	विजया "	सुग्रीव "	मोहनी	हरिण
४	श्री सुबाहु	विजया	सुनन्दा "	निसढ़ "	किंपुरिषा	बन्दर
५	श्री सुजात	पुंडरिगिणी	देवसेना "	देवसेन "	जयसेना	सूर्य
६	श्री स्वयंप्रभ	सुसीमा	सुमंगला "	मित्रभुवन "	प्रियसेना	चन्द्र
७	श्री ऋषभानन	वितशोका	वीरसेना "	कीर्तिराजा "	जयावती	सिंह
८	श्री अनन्तवीर्य	विजया	मंगलावतो "	मेघराजा "	विजया	हस्ती
९	श्री सूरप्रभ	पुंडरिगिणी	विजयावती "	विजयसेन "	नंदसेना	चन्द्र
१०	श्री विशाल	सुसीमा	भद्रावती "	श्रीनाग "	विमला	सूर्य
११	श्री वज्रधर	वितशोका	सरस्वती "	पद्मरथ "	विजयावती	वृषभ
१२	श्री चन्द्रानन	विजया	पद्मावती "	वाल्मीक "	लीलावती	"
१३	श्री चन्द्रबाहु	पुंडरिगिणी	रक्षिका "	देवानन्द "	सुगन्धा	पद्मकमल
१४	श्री भुजंग	सुसीमा	महिमा "	महाबल "	गंधसेना	"
१५	श्री ईश्वर	वितशोका	जशोजला "	गजसेन "	भद्रावती	चन्द्र
१६	श्री नेमिप्रभ	विजया	सेनादेवी "	वीरराज "	मोहनी	सूर्य
१७	श्री वीरसेन	पुंडरिगिणी	भानुमती "	भूमिपाल "	राजसेना	हस्ती
१८	श्री महाभद्र	सुसीमा	ऊमादेवी "	देवराज "	सुरिकांता	वृषभ
१९	श्री देवजसा	वितशोका	गंगादेवी "	सर्वभूति "	पद्मावती	चन्द्र
२०	श्री अजितवीर्य	विजया	कानिकादेवी "	राजपाल "	रत्नावती	स्वास्तिक

३—पादपीठ सहित स्फटिक रत्न मंडित सिंहासन हो ४ चारों दिशा में ऊपर तीन तीन छत्र हो ५—रत्नमय इन्द्रध्वज प्रभु के आगे चले ६—सुवर्णमय नौ कमल जिस पर प्रभु पैर रखकर चले और कमल भी स्वयं चलते रहें ७ मणि सुवर्ण रजित मय तीन गढ़ वाला समवसरण हो ८—प्रभु चौमुख देशना दें जिसमें तीन दिशा देवता प्रतिबिंब रखे ९—प्रभु से बारह गुणा अशोक वृक्ष जो छत्र घंटा पताका संयुक्त हो १०—मार्ग के कांटा अधोमुख हो ११—प्रभु गमन करे तब सर्व वृक्ष नमन भाव से प्रभु को प्रणाम करे १२—आकश में देव दुंदुभी बाजती रहे १३—पवन-वायु अनुकूल चले १४—पक्षी जीव प्रभु को प्रदक्षिणा करते जाय १५—सुगन्धी जल वृष्टि हो १६—ढींचण प्रमाणे सुगंधी पुष्प की वृष्टि हो १७—दीक्षा लेने के बाद दाढ़ी मूंछ के बाल नहीं बढ़े १८—कम से कम चारों निकाय के एक करोड़ देव प्रभु की सेवा में रहे १९—छओऋतु अनुकूल और अपने २ समय फलवंती हो इत्यादि एवं उन्नित अतिशय देवकृत होते हैं एवं ४-११-१९ सर्व मिला कर ३४ अतिशय सर्व तीर्थंकर देवों के होते हैं।

१३—तीर्थङ्करदेव के पुनः चार अतिशय १—अपायापगम अतिशय-विहार क्षेत्र में [illegible]

योजन तक रोगादि भय न हो २—ज्ञानातिशय केवल ज्ञान द्वारा लोकालोक के भावों को जाने ३—पूजातिशय प्रभु, प्राणी मात्र के पूजनीक हैं ४—वचनातिशय प्रभु की देशना देव मनुष्य तिर्यंच सर्व अपनी-अपनी भाषा में समझ कर बोध को प्राप्त हो। इत्यादि तीर्थङ्करों के अनन्त अतिशय होते हैं।

१४—तीर्थङ्करदेव की वाणि के ३५ गुण होते हैं जैसे १—संस्कृतादि लक्षण युक्त हो २—मेघ जैसी गंभीर हो ३—ग्रामणि तुच्छ भाषा मुक्त हो ४—उच्च स्वभाव युक्त हो ५—प्रत्येक शब्द स्पष्ट सुन सके ६—विकृता दोष रहित सरल हो ७—माल कोषादि राग सहित हो ८—महान अर्थ वाली हो ९—पूर्वापर अविरोध वाली हो १०—संदेह रहित ११—शिष्ट पुरुषों की सूचना करवाने वाली हो १२—देश कालानुसारणी हो १३—पर दोषों को प्रकट न करने वाली हो १४—श्रोताओं के हृदय को आनन्द देने वाली हो १५—परस्पर पद एवं वाक्यानुसारणी हो १६—प्रति पाद्य विषय पर उलंघन न करे १७—अमृत से भी अधिक मधुर हो १८—स्वप्रशंसा और परनिंदा मुक्त हो १९—अच्छा सम्बन्ध और अक्षर पद वाक्य स्पष्ट जानने वाली हो २०—सत्व प्रधान और साहस युक्त हो २१—कारक, काल, वचन और लिंग वाली हो २२—अखंडनिय विषय वाली हो २३—प्रतिपाद्य अर्थ विशेष की साधने वाली हो २४—अनेक वस्तु समुदाय का विचित्र वर्णन करने वाली हो २५—दूसरों का मर्म प्रकाश करने वाली न हो २६—विभ्रमादि दोष रहित हो २७—विलम्ब रहित हो २८—वक्ता की अनुपम शक्ति प्रगट करने वाली हो २९—सुनने वाले को खेद न हो ३०—उत्सुकता मुक्त हो ३१—धर्मार्थरूप पुरुषार्थ को पुष्टि करने वाली हो ३२—सब लोग प्रशंसा करने योग्य हों ३३—अद्‌भूत अर्थ रचना वाली हो ३४—सापेक्षा वाली हो ३५—अद्‌भुत आश्चर्य पैदा करने वाली हो इत्यादि।

१४—तीर्थङ्कर देव के अष्ट महाप्रतिहार्य होते हैं जैसे कि १—तीर्थङ्करों के शरीर से बारह गुना ऊंचा अलंकृत अशोक वृक्ष २—पांच प्रकार के सुगन्धी पुष्पों की वर्षा ३—आकाशमें दिव्य ध्वनि ४—श्वेत चामर ५—सुवर्ण रत्नजित मय सिंहासन ६—भामण्डल प्रकाशवाला ७—देव दुन्दुभि ८—तीनछत्र एवं आठ महा प्रतिहार्य सर्व तीर्थङ्करों के होते हैं।

१५—महाविदह क्षेत्र में वर्तमान समय २० तीर्थङ्कर विद्यमान हैं जिन्हों का वर्णन ऊपर कोष्ठक में दिया है इनके सिवाय, कई सबके लिये समान बातें हैं, वह यहाँ लिख दी जाती है। बीस तीर्थङ्करों के स्थान क्रमशः ४ जम्बुद्वीप का सुदर्शन मेरू, चार पूर्व धातकी खण्ड का विजयमेरू, चार पश्चिमी घातकीखण्ड का अचलमेरू, चार पूर्व पुष्कराद्ध का पुष्कर मन्दिर मेरू, चार पश्चिम पुष्करार्द्धका विद्युन्माली मेरू। प्रत्येक मेरुकी ३२ विजयों से ८-९-२४-२५ वीं विजय में तीर्थङ्कर होते हैं जिन्हों के नाम—पुष्कलावती, वच्छा, निलीनावती और विप्रा है। नगरियों के नाम कोष्टक में दिये हैं। सब तीर्थङ्करों का जन्मादि समकालीन ही होते हैं। श्रावणवद १ को च्यवन, वैशाख वद १० को जन्म, फाल्गुण शुद्ध ३ को दीक्षा, चैत्र शुद्धि १३ को केवल ज्ञान—चौतीस अतिशय, पैंतीस गिरा गुण, अष्ट महाप्रतिहार्य, समवसरण की रचना करोड़ीदेव सेवा में रहना, पांच पांच कल्याणक इन्द्रादि देवों द्वारा किया जाना, देहमान ५०० धनुष्य कांचन वर्णी काया ८४ लक्ष पूर्वायुष्य, ८३ लक्ष पूर्व गृहवास, एक लक्ष पूर्व दीक्षा, १००० वर्ष छद्मस्थ, ८४ गणधर, दसलक्ष केवली, सौ करोड़ साधु साध्वी। जिस विजय में तीर्थङ्कर जन्म लेते है, उसी विजय में मोक्ष पधारते है, दूसरी विजय में भी साधु साध्वी एवं केवली होते हैं। धन्य है महाविदह के मनुष्यों को कि वे सदैव चतुर्थ आरा सदृश काल में रहते हुए तीर्थङ्कर देव का व्याख्यान सुन सेवा भक्ति करते हैं। महाविदह क्षेत्रके तीर्थङ्कर वहाँ के लोगों को कहते हैं कि धन्य है भरत क्षेत्र के धर्मी मनुष्यों को क्योंकि वहाँ तीर्थङ्कर, केवली, मनः पर्यव, अवधि, पूर्वधर न होने पर भी वे बिना धणी धुंज रहे हैं तथा महाविदहक्षेत्र में यह गाली दी जाती है कि जाओ भरत क्षेत्र में बहु धनी और बहु परिवार वाला होना। जब बोलो श्री तीर्थंकर देव की ॥ ३ ॥

नं०	नाम	पदवी	माता नाम	पिता नाम	नगरी	शरीरमान	आयुष्य	गति	दिग्वि. समय	तीर्थंकरशासन
१	भरत	चक्रवर्ति	सुमंगला	ऋषभदेव	अयोध्या	५०० धनु	८४ल.पू.	मोक्ष	६०००० वर्ष	ऋषभदेव
२	सागर	चक्रवर्ति	यशोमति	सुमित्र	,,	४५० धनु	७२ ,, ,,	,,	३२००० ,,	अजितनाथ
३	अचल	वलदेव	भद्रा	प्रजापति	पोतनपुर	८० ,,	८५ल०वर्ष	,,		श्रेयांसजिन
४	त्रिपृष्ठ	वासुदेव	मृगावती	,,	,,	,,	८४ ,, ,,	७ वीन.	१००० वर्ष	
५	अश्व ग्रीव	प्रतिव सु	नीलांजना	मयूरग्रीव	रत्नपुर	,,	,,	,,		,,
६	विजय	वलदेव	सुभद्रा	ब्रह्म	द्वारका	७० धनु	७५ ,, ,,	मोक्ष		,,
७	द्विपृष्ठ	वासुदेव	ऊमादेवी	,,	,,	,,	७२ ,, ,,	६ ठी.न.	१०० वर्ष	वासुपूज्य
८	तारक	प्रतिवासु०	श्रीमती	श्रीधर	विजयपुर	,,	,,	,,		,,
९	सुभद्र	वलदेव	सुप्रभा	रूद्र	द्वारका	६० धनु	६५ ,, ,,	मोक्ष		,
१०	स्वयंभू	वासुदेव	पृथ्वी	,,	,,	,,	६० ,, ,,	६ ठी.न.	९० वर्ष	विमलनाथ
११	मेरक	प्रतिव सु०	सुन्दरी	समरकेसरी	नन्दनपुर	,,	,,	,,		,,
१२	सुप्रभ	वलदेव	स्निग्धा	सोम	द्वारका	५० धनु	५५ ,, ,,	मोक्ष		,,
१३	पुरुषोत्तम	वासुदेव	सुदर्शना	,,	,,	,,	३० ,, ,,	६ ठी.न.	८० वर्ष	अनंतनाथ
१४	मधु	प्रतिवासु.	गुणवंती	विलास	पृथ्वीपुर	,,	,,	,,		,,
१५	सुदर्शन	वलदेव	विजया	शिव	अश्वपुर	४५ धनु	१७ ,,	मोक्ष		,,
१६	पुरुषसिंह	वासुदेव	अम्बिका	,,	,,	,,	१० ,,	६ ठी.न.	७० वर्ष	धर्मनाथ
१७	निशुम्भ	प्रतिवासु	०	०	हरिपुर	,,	१० ,,	,,		,,
१८	मघवा	चक्रवर्ति	भद्रा	समुद्रवि०	श्रावस्ती	५० धनु	५ ,,	तीजा दे.	१००० वर्ष	,,
१९	सनत्कुमार	,,	सहदेवी	अश्वसेन	हस्तनापुर	४५ ,,	३ ,,	,,	,,	,,
२०	शान्तिनाथ	,,	अचरा	विश्वसेन	,,	४० ,,	१०००००	मोक्ष	८०० वर्ष	शान्तिनाथ
२१	कुंथुनाथ	,,	श्रीमाता	शूर	,,	३५ ,,	९५०००	,	६०० ,,	
२२	अरनाथ	,,	श्रीदेवी	सुदर्शन	,,	३० ,,	८४०००	,,	४०० ,,	अरनाथ
२३	आनन्द	वलदेव	विजयंति	महाशिर	चक्रपुर	२९ ,,	८५०००	,,	०	,,
२४	पु० पुण्डरीक	वसुदेव	लक्ष्मीदवी	,,	,,	,, ,,	६५०००	६ ठी.न.	५० वर्ष	,,
२५	वली	प्रतिवासु०	तारादवी	मेघनाद	अरिजय	,, ,,	,,	,,	०	,,
२६	सुभूम	चक्रवर्ति	तारा	कृतवीर्य	हस्तनापुर	२८ ,,	६००००	७ वी न.	५०० वर्ष	,,

२७	नन्दन	बलदेव	जयंती	अग्निसिंह	बनारसी	२६ ध०	६५०००	मोक्ष		,,
२८	दत्त	वासुदेव	शेषवती	,,	,,	,, ,,	५६०००	५वीं न.	५० वर्ष	,,
२९	प्रल्हाद	प्रतिवासु०	०	०	सिंहपुर	,, ,,	,,	,,		,,
३०	महापद्म	चक्रवर्ति	ज्वाला	प्रोत्तर	हस्तनापुर	२० ,,	३००००	मोक्ष	३०० वर्ष	मुनिसुव्रत
३१	राम (पद्म)	बलदेव	अपराजित	दसरथ	अयोध्या	१५ ,,	१५०००	,,		,,
३२	लक्ष्मण	वासुदेव	सुमित्रा	,,	,,	,,	१२०००	४थी. न.	४० वर्ष	,,
३३	रावण	प्रतिवासु.	केकसी	रत्नाश्रवा	लंका	,,	,,	,,		,,
३४	हरिषण	चक्रवर्ति	मे ।	महाहरी	कपिलपुर	१५ ,,	१००००	मोक्ष	१५० वर्ष	नमिनाथ
३५	जय चक्र०	,,	वप्रा	विजय	राजगृह	१२ ,,	३०००	,,	१०० वर्ष	,,
३६	बलभद्र	बलदेव	रोहणी	वसुदेव	शौरीपुर	१० ,,	१२००	ब्रह्मदे०		नेमिनाथ
३७	कृष्ण	वासुदेव	देवकी	,,	,,	,, ,,	१०००	३ जी.न.	८ वर्ष	,,
३८	जरासिंध	प्रतिवासु.	०	जयद्रथ	राजगृह	,, ,,	,,	४थी न.		,,
३९	ब्रह्मदत्त	चक्रवर्ति	चूलनी	ब्रह्म	शौरीपुर	७ ,,	७००	७वीं न.	१६ वर्ष	,,

११—रुद्र

	रुद्र नाम	ती० वारामें	शरीर	आयु
१	भीमावली	ऋषभ०	५०० धनु	८४ ल० पू०
२	जितशत्रु	अजित	४५० ,,	७२ ,, ,,
३	रूद्रदत्त	सुबुद्धि०	१०० ,,	२० ,, ,,
४	विश्वानलु	शीतल	९० ,,	१० ,, ,,
५	सुप्रतिष्ठ	श्रीयंस	८० ,,	८४०००००
६	अचल	वासपूज्य	७० ,,	७२ ,,
७	पुंडरिक	विमल	६० ,,	६० ,,
८	अजितधर	अनंत	५० ,,	३० ,,
९	अजितनाभी	धर्म०	४५ ,,	२० ,,
१०	पेढालु	शान्ति	४० ,,	१० ,,
११	सत्यकी	महावीर	७ हाथ	७२ वर्ष

नव—नारद

	नारद	ती० वारे	वा० वारे	शरीर	आयु	गति
१	भीम	श्रयंस	त्रिपुष्ट	८० धनु०	८४ल.पू	मोक्ष
२	महाभीम	वासपूज	द्विपुष्ट	७० ,,	७२ ,,	,,
३	रूद्र	विमल	स्वयंभू	६० ,,	५० ,,	,,
४	महारूद्र	अनंत	पुरुषोतम	५० ,,	३० ,,	,,
५	काल	धर्म०	पुरुषसिंह	४५ ,,	१० ,,	,,
६	महाकाल	अर·मिल्ल	पुरुष पुंड०	२९ ,,	६५०००	,,
७	दुर्मुख	,,	दत्त	२५ ,,	५६०००	,,
८	नरमुख	मुनिसु०	लक्ष्मण	१६ ,,	१२०००	,,
९	अधोमुख	नेमि०	कृष्ण	१० ,,	१०००	,,

प्रस्तावना

यह बात प्राकृतिक सत्य है कि सूर्य्य उदय होकर अपनी अवधि के पश्चात् अस्त भी हो जाता है, ठीक इसी प्रकार संसार-चक्र में भी कई जातियों, समाजों, एवं राष्ट्रों का उदय और अस्त (उत्थान-एवं-पतन) हुआ करता है । यह उत्थान और पतन की घटमाला (क्रिया) अनादि काल से चली आई है और भविष्य में भी चलती रहेगी । यही नियम जैन धर्म के प्रति भी समझना चाहिये । एक समय वह था कि जैन धर्म एवं जैन समाज उन्नति के उच्च शिखर पर विराजमान था, पूर्व से पश्चिम एवं उत्तर से दक्षिण तक जैन धर्म का झंडा फहरा रहा था । इतना ही नहीं, कई पाश्चात्य देशों में भी जैन धर्म का काफ़ी प्रचार था, जिसको वहां कि भूमि-खोद (अन्वेषण-विभाग) के काम से उपलब्ध मन्दिर, मूर्तियों के खण्डहर पूर्णतः प्रमाणित कर रहे हैं: इत्यादि । किन्तु उपरोक्त काल चक्र (परिवर्तन-चक्र) के नियमानुसार जैन धर्म की वह स्थिति न रह सकी और वह उन्नति के उच्च शिखर से शनैः २ अवनत दशा को प्राप्त करता गया ।

वर्तमान जैन समाज की पतन अवस्था को देख कर किस समझदार व्यक्ति के हृदय में गहरा दुःख न होगा । इस पतनावस्था का भी कोई न कोई कारण तो अवश्य ही (होगा) होना चाहिये ! यों तो पतन के अनेक कारण हो सकते हैं किन्तु यदि हम दीर्घ-दृष्टि से अन्वेषण करें तो यही मालूम होगा कि मुख्य कारण, जैन-समाज का अपने पूर्वजों के गौरवमय इतिहास को भूल जाना है । यही कारण है कि जैन-समाज की नसों में अपने पूर्वजों के गौरवशाली रक्त के प्रवाह की शिथिलता, ओज की हीनता और इतिहास की अनभिज्ञता व्यापक है । इन्हीं कारण से आज वह मुर्दा-समाज की उपाधि धारण कर अपना नाम उसीपंक्ति में लिखाने को तत्पर हो गया है । जिस प्रकार मृतक को हेमगर्व व कस्तूरी अथवा चन्द्रोदय एवं तत्समान ही अमूल्य औषधियें देने पर भी उसमें चैतन्यता नहीं आती, ठीक इसी प्रकार आज जैन समाज का हाल हो रहा है ।

जैन समाज में अभी ऐसे मनुष्यों का भी अभाव नहीं है कि जो इस जाग्रति के युग अर्थात् बीसवी सदी में जन्म लेकर भी यह नहीं जानते कि इतिहास किस चिड़िया का नाम है ? अगर उनको समझाया भी जाय की अपने पूर्वजों के भूतकालीन सद्- चरित्र, उनकी वीरता-गम्भीरता, धैर्य्यता एवं उदारता, देश-समाज धर्म एवं राष्ट्र सेवा तथा उस समय की सामाजिक-धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थिति क्या थी ? उस समय का हुनर, उद्योग, शिल्प कला एवं रीति-रिवाज़ क्या क्या था ? इन सब बातों को जानना, उनके अन्तर से उपादेय कारणों को स्वीकार करना इत्यादि । इन सब का ही नाम इतिहास है । इस पर हमारे वे भोले भाई झट से बोल उठते हैं कि-'वाह ! जी वाह !! आपने ठीक इतिहास बतलाया । ऐसी व्यर्थ की गई गुजरी बातों के लिये घर का काम छोड़ कर रात दिन सिर-पच्ची (मगज़ खोरी) करना तथा बड़े कष्ट एवं परिश्रम से कमाया हुआ द्रव्य पानी की तरह बहा-देना कौन सी समझदारी है और क्या फायदा है ? हमारे तो पूर्वज सदा से कहते आये हैं और अभी हम भी हमारे बाल बच्चों को कहते हैं कि "गई तिथि तो ब्राह्मण भी नहीं बांचे हैं । हमारे पूर्वज धनवान थे अथवा वीर थे तो क्या उनके इतिहास पढ़ने से हम धनवान थोड़े ही बन जावेंगे ? मेरा तो ख्याल है कि ऐसी बेहूदा (मूर्खता पूर्ण) बातें करने वाले बेचारे नादान (मूर्ख) ही होते हैं कि जो समय, शक्ति और द्रव्य का बलिदान दे रहे हैं किन्तु हम ऐसे नादान नहीं हैं । यदि घर-दुकान का काम कर दो पैसे पैदा करेंगे तो भविष्य में उससे बाल बच्चे सुखी होंगे और पास में पैसे होंगे तो हर व्यक्ति हमारा खुशामद करेगा आदि २ ।"

बतलाइये ! ऐसे मनुष्यों को समझाना कितना मुश्किल है ? मेरे विचार से तो उतना ही, जितना कि एक जंगली आदमी को चितामणि रत्न का मूल्य-समझाना। ऐसे अनभिज्ञ लोगों ने ही इतिहास का कोई मूल्य न समझ कर हमारा अमूल्य साहित्य अथवा उनके बिखरे पन्नों को जल में गला कर, कूट पीस कर डाले (टोकरी , बना दिये जो प्रायः धूल कचरा ढाने के काम आते हैं। किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा है कि-"मूर्ख सज्जन द्वारा जितना नुकसान होता है उतना विद्वान् शत्रु द्वारा नहीं होता है।" अतः ऐसे मूर्ख सज्जनों से तो हज़ार हाथ दूर रहना ही अच्छा है। एक अंग्रेज विद्वान् ने कहा है कि:—

"People who take no pride in the noble achievements of remete aneerters will never achieve any thing worthy to be remembered with pride by remote decendents." [By Lord Macauley— one of the Historians]

"जो जाति अपने पूर्वजों के श्रेष्ट कार्यों का अभिमान एवं स्मरण नहीं करती है, वह ऐसी कोई बात ग्रहण नहीं करेगी जो बहुत वर्ष पश्चात् उसकी संतान को सगर्व स्मरण करने योग्य हों।

जब हम हमारे पूर्वजों की अच्छी बातों को ग्रहण नहीं करते हैं तो फिर हम अपनी संतान से थोड़ी सी भी आशा क्यों रखें कि वह हमारी किसी भी अच्छी बात का स्मरण कर सकेगी। बस, यही हमारे पतन की परम्परा है। एक दूसरा अंग्रेज विद्वान् कहता है:—

"अगर आप किसी जाति एवं समाज को नष्ट करना चाहें तो पहिले उसका इतिहास नष्ट कर दीजिये, जिसके नष्ट होने से वह स्वयं ही नष्ट हो जायगा।" यह सत्य ही है कि जिन जातियों का इतिहास नहीं है वे जातियां संसार में अधिक समय तक न टिकी हैं और न टिक सकती हैं।

१—इतिहास का महत्व:—

इतिहास आज संसार का एक मुख्य मौलिक विषय बन गया है। संसार भर के विद्वत्समाज में इतिहास का आसन सर्वोच्च एवं आदर्शमय है। इतिहास के अभाव से कोई भी जाति, समाज एवं राष्ट्र अधिक समय तक संसार में जीवित नहीं रह सकता है। इतिहास के अध्ययन से ही हम किसी जाति, समाज एवं राष्ट्र के पतनोत्थान के कारणों को जान सकते हैं। उसकी रक्षा करने को तत्पर हो सकते हैं। अतएव इतिहास ही साहित्य का सर्व प्रधान अंग है। बिना इतिहास के हमारा साहित्य अधूरा एवं अपूर्व रह जाता है। इतिहास के अभाव में हम यह कदापि नहीं जान सकते कि किन २ कारणों से किस देश, समाज एवं राष्ट्र का उत्थान-अभ्युदय एव पुनः पतन का श्री गणेश हुवा था और वह अपनी चरम-सीमा तक पहुँच गया था तथा अब हमें कौन २ उपाय ग्रहण करने चाहिये जिस के द्वारा कि हमारा पुनः उत्थान हो सके।

अतः भूतकाल की परिस्थिति को जानने के लिए इतिहास ही हमारा सच्चा शिक्षक एवं अवलम्ब है। इतिहास ही हम भूले, भटकतों को सच्चा पथ-प्रदर्शन कराने वाला परम मित्र का काम देता है अतएव इतिहास की हम जितनी महिमा एवं प्रशंसा करें उतनी ही थोड़ी है। कारण, इतिहास के अभाव से भविष्य की उन्नति का मार्ग साफ-स्वच्छ एवं निर्विघ्न बनाने में ऐसी २ उलझने उपस्थित हो जाती हैं कि जिससे पिण्ड छुडाना मुश्किल हो जाता है। भूतकालीन इतिहास से हम वर्त्तमान में भविष्य का मार्ग बड़ी सुविधा के साथ निर्माण कर सकते हैं। भूत-कालीन इतिहास वर्तमान में हम को ऐसी२ शिक्षायें देता है एवं ऐसी२ घटनाओं का बोध कराते हैं कि जिन के द्वारा भविष्य में अवनति मार्ग को त्याग कर भावी उन्नति-मार्ग का अवलम्बन कर मानवत जाति की सेवा करते हुए भाग्यशाली बन सकते हैं। भूतकालीन इतिहास से हम उस समय की सब परिस्थिति एवं घटनाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। हमारा अतीत कैसा था, राजनैतिक सामाजिक, धार्मिक एवं जातियों प्रवृत्ति रीति-रिवाज़ कैसा था किन किन जातियों ने किन२ साधनों एवं प्रयत्नों से अपनी उन्नति की थी। किन किन वीर पुरुषों ने देश-जाति के लिये सर्वस्व एवं आत्म बलिदान दिया था और अपनी कमनीय कीर्ति किस प्रकार ... भारी बना कर अमर बना दी थी तथा अपने इतिहास को सुस्वर्णाक्षरों में लिखा कर हमारे लिये पथ प्रदर्शक बना दिये हैं। प्राचीन काल में किस किस देश में क्या क्या उद्योग, कला कौशल्य, वाणिज्य-व्यौपार और किस २ स्थान एवं

भूमि में क्या क्या उत्पादन थी। किस देश के लोग किस देश से सभ्यता-सौम्यता और व्यवहार कुशलता की शिक्षा प्राप्त कर अपने देश में उसका प्रचार किया करते थे। जनता का जीवन-निर्माण तथा आत्म-कल्याण किस प्रकार से होता था। प्राचिन समय के अपने पूर्वजों की वीरता, उदारता, वात्सल्यता, परोपकारिता, व्यापार कुशलता-रण कुशलता एवं सामुद्रिक व्यापार कुशलता देश का मान, खान-पान आदि२ सब बातें हम एक मात्र इतिहास से ही जान सकते हैं। तथा इन बातों पर (ग़ौर) मनन करने के पश्चात् अपने जीवनोंपयोगी बना सकते हैं।

देश में वर्ण-व्यवस्था कब तक अपनी उन्नति करती रही और कब और किस समय व किस कारण से उसमें विकार पैदा हुआ। जातियों का निर्माण कब और किस संयोग से हुआ कौन २ सी जातिएँ विदेशों में जाकर विदेशी कहलाईं एवं इस के विपरीत कौन-कौन सी जातियां विदेशों से आकर यहां बसी। देश के प्राचिन आचार विचार में क्या क्या रद्दो-बदल एवं मिश्रण हुआ! हमारे देश की सभ्यता ने किस किस देश पर अपना प्रभाव डाला तथा विदेशियों के आचार-व्यवहार एवं सभ्यता का हमारे देश पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ा। धार्मिक विषय में किस किस धर्म का कब कब प्रादुर्भाव हुआ और उन नूतन धर्मों ने क्या क्या न्यूनाधिक किया। धर्म के नाम पर देश में किस प्रकार फूट-कलह के बीज बोकर जनता को किस प्रकार-अधोगति में ला पटका और इन कारणों से देश के सामूहिक संगठन को कैसे छिन्न-भिन्न कर डाला। एक ही धर्म के अन्दर से अनेक धर्मों की सृष्टि क्यों रची गई और इससे देश को क्या फ़ायदा अथवा नुकसान हुआ? यह सब बातें हम पुराने ज़माने के इतिहास से ही जान सकते हैं। साथ ही हम उससे यह भी जान सकते हैं कि किन किन उपायों से इस बिगड़ी अवस्था का सुधार हो सकेगा।

यहां पर हम अधिक लिख कर प्रस्तावना का कलेवर बढ़ाना नहीं चाहते। कारण कि विद्वद् समाज इस बात को अच्छी तरह से जानता है कि साहित्य में इतिहास ही मानव जाति को उन्नति-पथ पर लेजाने वाला एक सच्चा साधन है। अतएव अपनी भावी उन्नति की अभिलाषा रखने वाले प्रत्येक देहधारी मनुष्य का मुख्य और आवश्यक कर्त्तव्य है कि वह कम से कम अपने पूर्वजों के इतिहास को अवश्य पढ़े।

२—हमारे पूर्वज और इतिहासः—

वर्त्तमान काल में भूत कालीन इतिहास प्राप्त होने में दुर्लभता का अनुभव करने वाले महाशय यहां तक कह उठते हैं कि प्राचीन समय के लोगों का इतिहास की ओर इतना आकर्षण नहीं था जितना कि अध्यात्म एवं तत्वज्ञान की ओर था? कारण वे लोग इतिहास लिखने में एवं उसका संरक्षण करने में इतनी अधिक रुचि न रखते थे? पर वास्तव में यह बात ऐसी नहीं है। हाँ, हमारे पूर्वज अध्यात्म एवं तात्विक ज्ञान की ओर विशेष रुचि रखते जरूर थे; पर इसका यह अर्थ नहीं कि वह इतिहास की उपेक्षा करते थे? नहीं. कदापि नहीं। वे जैसे अध्यात्म एवं तात्विक ज्ञान की ओर लक्ष्य रखते थे वैसी ही इतिहास की ओर भी उनकी अभिरुचि थी। इतना ही क्यों? वे तो इतिहास को चिरस्थायी बनाने का भी प्रयत्न किया करते थे। इतिहास द्वारा यह स्पष्ट मालूम होता है कि अन्य देशों के विद्वान् इतिहास लिखना एवं उन्हें सुरक्षित रखना हमारे पूर्वजों से ही सीखे थे। प्राचीन काल में जब लेखन प्रवृत्ति अधिक न थी, उस अवस्था में भारतीय ऋषि-मुनि समस्त ज्ञानभण्डार कण्ठस्थ रखते थे। जब से लेखन वृत्तिका अधिक प्रचार हुआ तो उन्होंने अपना मस्तिष्क का ज्ञान एवं तत्कालीन घटनाएँ ताड़ पत्र, ताम्रपत्र, भोजपत्र, और पत्थर की चट्टानों पर लिख दिया करते थे। तत्पश्चात् जब कागज़ों पर लिखना प्रारम्भ हुआ उस समय से तो प्रत्येक घटनाएँ खूब विस्तार से लिख दिया करते थे। जिसके प्रमाण आज पर्याप्त मिल रहे हैं। अभी (भूगर्भ-अन्वेषण से) खुदाई के काम से पंजाब एवं सिन्ध की मरु भूमि से दो नगर ई० संवत् से ५००० वर्ष पांच हज़ार वर्ष पूर्व के बतलाये जाते हैं। इन दोनों नगरों के, जिनके नाम क्रमशः "हरप्पा" और "मोहन जादरा" रखा गया है। कई पदार्थ ऐसे निकले हैं जिनसे प्राचीन समय में भारत की सभ्यता का निश्चय हो चुका है। इतना ही, क्यों एक देवी की मूर्ति जिसके शरीर पर कपड़ा भी था [illegible] हुए पाये गये हैं। तथा एक ध्यान मग्न मूर्ति भी प्राप्त हुई है।" इससे यह भी सिद्ध किया गया है कि भारत में हज़ारों वर्ष पूर्व भी इस देश में कपड़े का उत्पादन होता था तथा देश में धर्म की भावना भी अच्छे परिमाण में थी। वे कोग धार्मिक दृष्टि से भी पूर्ण-

एवं सेवा भक्ति भी करते थे। अतः यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि भारत सभ्यता का भण्डार एवं केन्द्र था और अन्य देश वालों ने सभ्यता का पाठ भारत से ही सीखा था। भारत अन्य देशों का गुरू कहलाने के कारण ही जगद्गुरू माना जाता था।

इतिहास से यह भी पता मिल जाता है कि भारतीय लोग अन्य देशों में जाकर अपने उपनिवेशों की स्थापना भी करते थे और वहां की जनता पर भारतीय सभ्यता का गहरा प्रभाव पड़ता था। अतः उपरोक्त प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि हमारे पूर्वज इतिहास के बड़े ही प्रेमी थे। इतिहास लिख कर उसका संरक्षण चिरस्थायी बनाने की पूरी २ कोशिश भी करते थे। हां, भारत में लगातार कई वर्षों तक अकाल पड़ने से एवं विदेशी लोगों के समय-समय पर विविध आक्रमणों के फल स्वरूप कई इतिहासों के भण्डार, पठनालय एवं संग्रहालय और साधन नष्ट भ्रष्ट हो जाने से इस समय जितना चाहिये उतना सिलसिलेवार नहीं मिलता है, लेकिन यह बात दूसरी है। हम यह तो कदापि नहीं कह सकते कि उन लोगों ने अपने समय में इतिहास लिखा ही नहीं। आगे चल कर इस विषय का मैं विशेष खुलासा करूंगा।

३—वर्तमान काल में प्राचीन इतिहास की दुर्लभता:—

वर्तमान में भूत कालीन एवं प्राचीन इतिहास के न मिलने का प्रश्न सब जनता द्वारा हो रहा है। इसका उत्तर लिखने के पूर्व मुझे यह कह देना चाहिये कि—एक तो भारत में जन-संहारक ऐसे भीषण दुष्काल पड़े थे और वह भी एक दो वर्ष तक नहीं अपितु कोई-कोई दुष्काल तो निरन्तर १२-१२ वर्ष तक पड़ते ही रहे कि जिसकी भीषण यन्त्रणाओं (मार) से अनेकों नगर एवं ग्राम स्मशान तुल्य बन गए थे। उस आपत्ति काल में जन-समूह अपने प्राण बचाने एवं जन-धन की रक्षार्थ यत्र-तत्र मारे-मारे भटक रहे थे। फिर भला उस अवस्था में नया साहित्य निर्माण करना तो एक ओर रहा पुरानों की रक्षा भी मुश्किल हो गई थी, इस कारण वे ज्ञान भण्डार जहां थे वहीं रखे रखाये नष्ट हो गये। दूसरा कारण विदेशी म्लेच्छों का भारत पर लगातार और पके बाद दीगर आक्रमणों का होना। फलस्वरूप ग्रामों-नगरों को जन-संहार एवं अग्नि-दाह द्वारा शून्य अरण्यवत बना देना। अर्थात् प्रमुख साहित्यक भण्डार, ऐतिहासिक साधन, प्राचीन नगर एवं देवस्थान भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिए गए जिसमें हमारा अमूल्य ऐतिहासिक बहुत सा साहित्य भस्मीभूत एवं नष्ट-भ्रष्ट हो गया। फिर भी जो कुछ साहित्य पुराना बच गया था एवं नया निर्माण किया गया था वह धर्मान्ध मुसलमानों के हमलों से बर्बाद हो गया। जिसमें प्रसिद्ध धर्म-द्वेषी अलाउद्दीन खिलजी के अत्याचारों ने तो बहुत ही जुल्म किया उसने ऐतिहासिक उत्तम साधन, हजारों मन्दिर लाखों मूर्तियों को दुष्टता पूर्वक ध्वंस किया और कई ज्ञान भण्डारों, साहित्य, संग्रहालयों को ज्यों के त्यों जला कर भस्मभूत कर दिया। कहा जाता है कि अलाउद्दीन खिलजी ने ६ मास तक तो नित्य प्रति भारतीय-साहित्य भट्टी में जलवा कर स्नान के लिए गरम पानी किया गया और तक भारतीय साहित्य अमूल्य-रत्न से कई वर्ष हिन्दुओं की होली जलवाई थी।

इससे पाठक अनुमान लगा लें कि उस समय से पूर्व भारत में कितना विशाल साहित्य का खजाना भरपूर था, जिसे धर्म-द्वेषियों ने किस दुष्टता के साथ नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। इस बात की प्रमाणिकता के लिए यहां पर हम एक ऐसा ही उदाहरण पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हैं:—"विक्रम की छठी शताब्दी के प्रथम चरण में आर्य्य देवर्द्धि गणिक्षमाश्रमणजी ने वल्लभी नगरी में एक विराट संघ सभा की और जैनागमों को पुस्तकों पर लिखने का एक बृहद् आयोजन किया। जिसमें सैकड़ों मुनियों ने अपने हाथों से तथा कई वेतनदार लेखकों ने आगमों को तथा अनेक ग्रंथों को पुस्तकों पर लिखवाया। पश्चात् तो यह कार्य्य इतना व्यापक हो गया कि जिसने जो कोई ग्रंथ निर्माण किया तो वह तत्काल ही पुस्तकों पर लिख लिया जाता। इसमें थोड़ा भी संदेह नहीं कि जैन श्रमणों ने सैकड़ों ही नहीं अपितु हजारों ग्रन्थ लिखे होंगे पर वर्तमान काल में बहुत शोध करने पर भी उस समय अथवा उसके आसपास के सौ दो सौ वर्षों का लिखा हुआ एक पन्ना भी नहीं मिलता है। इसका यही अर्थ हो सकता है कि म्लेच्छ लोगों ने वे ज्ञान-भण्डार धर्मान्धता के कारण दुष्टता पूर्वक जला दिए एवं नष्ट-भ्रष्ट कर डाले थे, अन्यथा इतनी विशाल संख्या में लिखे गये पुस्तक नहीं तो दो एक पन्ने तो अवश्य मिलते। जैसा हाल जैन शास्त्रों का है, ठीक वैसा ही दूसरे धर्मावलम्बियों के शास्त्रों का

हाल है। आज भारत के बाहर कहीं कहीं विक्रम की चतुर्थ शताब्दि के बाद का कोई ग्रन्थ मिलता, पर भारत में जो कुछ साहित्य मिलता है वह विक्रम की आठवीं, नवीं शताब्दि के पीछे का मिलता है।

४—भारतीय साहित्य का सृजनः—

भारत के ऋषि-मुनियों ने साहित्य सृजन में कभी कमी नहीं की। उन्होंने अपने भक्त लोगों को उपदेश दे देकर इतना ढेर लगा दिया था कि उतना ढेर घास का भी शायद ही मिलता हो। गृहस्थ लोग भी उन त्याग मूर्त्ति आचार्य्यों का उपदेश शिरोधार्य्य कर अपने अथक परिश्रम से उपार्जित लक्ष्मी को ऐसे परमार्थ के कार्य निमित्त लगा अपने मानव-भव को सुफल बनाने में किसी प्रकार की कमी नहीं रखते थे। कारण, इस कलि-काल में जिन-मन्दिर-मूर्त्ति एवं आगम ही शासन के आधार समझे जाते हैं। दूसरा एक कारण यह भी था कि कोई भी आचार्य्य कोई भी आगम व्याख्यान में वांचना प्रारम्भ करते उसका महोत्सव कर गृहस्थ लोग ज्ञान-पूजा किया करते थे। जिसमें भी श्री भगवतीजी जैसा आगम का तो जैन समाज में और भी विशेष प्रभाव है। ऐसे बहुत से उदाहरण जैन-साहित्य में मिलते हैं कि अमुक भक्त ने श्री भगवती सूत्र वँचाया, जिसकी हीरा, माणिक्य, पन्ना, मोतियों से पूजा की और ३६००० प्रश्नों की ३६००० स्वर्ण मुद्रिकाओं से पूजा की। इस कार्य्य से आये हुए द्रव्य से पुनः आगम लिखाया जाता था। इससे पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि उस समय जैन समाज की आगमों पर कितनी भक्ति एवं पूज्यभाव था। इससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि साहित्य लिखवाने में जितना हिस्सा जैनों का था उतना दूसरों का शायद ही था। अतः म्लेच्छ विधर्मियों के दुष्टता पूर्ण साहित्य को हानि पहुँचाने पर भी उनका सर्वथा अन्त नहीं हुआ। बचा हुआ साहित्य भी कम न था किन्तु वह अवशेष साहित्य ऐसे लोगों के हाथ में पड़ गया कि उनके पीछे उनकी सन्तान ऐसी सपूत (!) निकली कि जिसने अपनी विषय-वासनाओं के पोषणार्थ उस अमूल्य साहित्य निधि को पानी के मूल्य में विदेशियों के हाथ में बेच दिया जो आज भी उन लोगों के पुस्तकालयों में विद्यमान हैं। उदाहरण के तौर पर कुछ पुस्तकालयों में विद्यमान हैं। नमूने के तौर पर कुछ पुस्तकालयों का व्यौरा निम्न लिख दिया जाता हैः—

१—लंदन में करीब १५०० बड़े पुस्तकालय हैं, जिसमें एक पुस्तकालय में कोई १५०० पुस्तकें हस्तलिखित हैं। उनमें अधिक पुस्तकें संस्कृत-प्राकृत और भारत से ही गई हुई हैं। यह तो केवल एक पुस्तकालय की ही बात है, विचारिये शेष १४९९ पुस्तकालयों में कितनी पुस्तकें होंगी?

२—जर्मन में कोई ५००० पुस्तकालय हैं। जिसमें बर्लिन में ही बहुत से पुस्तकालय हैं एवं उसके एक पुस्तकालय में ही १२००० पुस्तकें हस्तलिखित हैं। तब ५००० पुस्तकालयों में कितनी पुस्तकें होंगी और उन पुस्तकों में विशेष भारत से गई हुई हस्तलिखित पुस्तकें कितनी होंगी?

३—अमेरिका के वाशिंगटन नगर में ही ५०० पुस्तकालय हैं, जिसमें लगभग ४०००००० पुस्तकों का संग्रह है। और उसमें करीब २०००० पुस्तकें हस्तलिखित हैं। विचारिये कि भारत से गई हुई कितनी होंगी?

४—फ्रान्स में ११११ बड़े पुस्तकालय हैं। जिसमें पेरिश का एक बिबलियोथिक नामक पुस्तकालय में ४००००००पुस्तकें हैं, उनमें १२००० पुस्तकें हस्तलिखित हैं। संस्कृत एवं प्राकृत भाषा की हैं जो प्रायः सब की सब भारत से ही गई हुई हैं।

५—रूस में १५०० बड़े पुस्तकालय हैं। जिसमें एक राष्ट्रीय पुस्तकालय में ही ४०००००० पुस्तकें हैं। उनमें भी २२००० पुस्तकें संस्कृत एवं प्राकृत भाषा की भारत से गई हुई पुस्तकें हैं।

६—इटली में कोई ४५०० पुस्तकालय हैं। उनमें भी लाखों पुस्तकों का संग्रह है। कोई १०००० [illegible] पुस्तकें संस्कृत व प्राकृत भाषा की प्रायः सब भारत से ही गई हुई हैं।

यह तो एक नमूने के तौर पर बतलाया गया है, किन्तु इसके अतिरिक्त भी पाश्चात्य देशों में शायद ही कोई ऐसा राष्ट्र हो कि जहाँ के पुस्तकालयों में भारतीय पुस्तकों का संग्रह न हो! यह प्रवृत्ति केवल अंग्रेजों के शासन में ही हुई

वंशावलियाँ लिखने की शुरुआत कब से या किस कारण हुई ? इस के लिए पं० हीरालाल हंसराज जामनगर वाले ने अपनी अंचल गच्छ बृहद् पट्टावली में लिखा है कि भीनमाल का राजा भाण ने जैन धर्म स्वीकार करने के पश्चात् श्री शत्रुँजयादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला। उस समय उसके संघपति को वासक्षेप देने के विषय में आपस में खेंचा तानी होगई। उस समय तमाम गच्छों के आचार्य्य एकत्रित होकर एक मर्य्यादा क़ायम करदी कि जिस गच्छ के आचार्य्यों ने जिन लोगों को सब से पहले प्रतिबोध देकर अजैनों से जैन बनाया, उसी गच्छ के आचार्य्य उनको तीर्थ संघादि ऐसे प्रसंग पर वासक्षेप दे सकेंगे। इससे इतिहास की अव्यवस्था न होगी और गृहस्थ लोग भी कृतघ्नता के कलंक से बच जायेंगे इत्यादि। इस मर्यादा को उन्होंने एक लिखत पर लिख कर तथा सब आचार्यों के हस्ताक्षर करवा कर पक्की एवं चिरस्थायी बना दी। यदि उस मर्यादा के अनुसार चलते तो गृहस्थों का इतिहास ठीक सिलसिलेवार सुव्यवस्थित रह जाता किन्तु कलिकाल ने उस मर्यादा को चिरकाल तक चलने नहीं दिया। दुषम काल के कारण कई लोगों ने जिनशासन की चलती हुई मर्य्यादा एवं क्रिया समाचारी में न्यूनाधिक प्ररुपणा करके नये नये मत चला कर संघ में फूट-कलह पैदा कर दिया था। इतनी तो उनमें योग्यता न थी कि वे स्वयं कुछ कर सकें; वे तो चलते हुए शासन में छेद-भेद डाल कर कुछ भद्रिक लोगों को अपनी नयी दुकानदारी के अनुयायी बनाने का दुःसाहस कर डाला। अतः उन जिन-शासन-रक्षक,शासन शुभचिन्तक धुरन्धर आचार्यों की बान्धि हुई मर्य्यादा का छेद-भेद कर डाला। इनकी शुरुआत करीब विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दि से होने लगी थी जो वर्त्तमान समय तक भी मौजूद है।

पूर्वाचार्यों की स्थापन की मर्य्यादा में गड़बड़ होने का एक यह भी कारण हुआ था कि कई गच्छों के आचार्यों ने अपने २ पृथक् २ गच्छ के मन्दिरों की सार सँभाल के लिए उन मन्दिरों के गोष्ठिक समसदों) बना दिये। जिसमें स्वगच्छ-परगच्छ का भेद नहीं रखा गया था। किन्तु जिस मन्दिर के आस पास घर थे और उनमें मन्दिर की सार संभाल करने की योग्यता थी उनको ही सम्मिलित किया गया इस कार्य्य में भले ही शुरू करने वालों की इच्छा अच्छी होगी और वे गोष्ठिक बनने वाले भी अपने अपने प्रति बोधक आचार्य्य को जानते ही थे। अपने अपने गच्छ को एवं समाचारी को भी जानते थे किन्तु केवल एक पास में आये हुए मन्दिर की सार-सम्हाल करने की गर्ज से ही वे समासद बन गये थे। पर बाद ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया त्यों त्यों उसका रूप भी बदलने लगा। सब से पहले तो यह कार्रवाई की गई कि जिस मन्दिर के गोष्ठिक के घर में लग्न पुत्र जन्मादि शुभ कार्य्य हो, वह अन्य मन्दिरों में एक एक रुपया दे तो वह जिस मन्दिर का गोष्ठिक हो, उस मन्दिर में दो रुपया देवे। इससे यह हुआ कि एक बाप के दो पुत्र थे, एक पुत्र एक गच्छ के अर्थात् महावीर के मन्दिर के पास रहता था, वह महावीर के मन्दिर का गोष्ठिक (समासद) बन गया। तब दूसरा भाई दूसरे गच्छ के अर्थात् पार्श्वनाथ के मन्दिर के पास रहता था वह पार्श्व मन्दिर का गोष्ठिक बन गया। इस तरह दोनों भाई दो गच्छ के हो गये। आगे चल कर जिस गच्छ के मन्दिर का गोष्ठिक बना था, उसको सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण तथा व्याख्यान सुनने के लिए भी वहीं जाना पड़ता था और उनकी ही क्रिया समाचारी करनी पड़ती थी। अर्थात एक ही पिता के दो पुत्रों की दो गच्छ की क्रिया हो गई। बाद कई पुश्त गुज़र गई तब उन गच्छ के आचार्य्यों ने अपने गोष्ठिकों पर पक्की छाप लगा दी कि आपके पूर्वजों को हमारे पूर्वाचार्यों ने मांस मदिरा छुड़ा कर श्रावक बनाया था। अतएव आप हमारे गच्छ के हैं। इतना ही क्यों, उन्होंने तो कई कथाएँ भी रच डालीं और उनका प्राचीन इतिहास मिटा कर नूतन कल्पनाएँ कर डालीं, जिससे कि पूर्वाचार्य्यों की बांधी हुई मर्य्यादा में गड़बड़ होगई। नूतन मत धारियों को तो ज्यों त्यों कर अपना बाड़ा बढ़ाना ही था, अतः भद्रिक लोगों से उन्होंने काफ़ी लाभ उठाया एवं अपना स्वार्थ साधन किया।

कई एक गच्छ का श्रावक नया मन्दिर बनाता या संघ निकालना चाहता तो उस समय उसके प्रतिबोधक आचार्य्य की परम्परा के आचार्य्य नज़दीक न होने से तथा बुलाने पर भी न आने से दूसरे गच्छ के आचार्य्य से वासक्षेप लिया कि उन पर भी अपनी छाप लगा दी। इसी प्रकार किसी प्रान्त में दूसरों का भ्रमण न होकर जिसका अधिक भ्रमण एवं अधिक परिचय के कारण अन्य गच्छीय श्रावकों को अपनी क्रिया समाचारी करवा कर अपनी छाप ठोक दी। उनकी संतान ने बचपन से ही उनको ही देखा अतः उन पर विश्वास कर लिया। इस प्रकार नये नये मत पंथ निकाल कर गृहस्थ लोगों के इतिहास को इस प्रकार भ्रम में डाल दिया कि अब उनके अन्दर से शुद्ध सत्य वस्तु शोध कर निकालनी मुश्किल होगई।

एक गच्छ का श्रावक दूसरे गच्छ को मानने लग जाय एवं एक गच्छ का श्रावक दूसरे गच्छ का कहलाने लग जाय तो इससे न तो जैन संख्या में न्यूनाधिकता होती है और न किसी गच्छ वाले त्यागी आचार्य्यों को ही नुकसान हुआ है। क्योंकि त्यागी पुरुषों को तो सब गच्छ वाले मानते पूजते हैं। परन्तु इस गच्छ परिवर्त्तन से एक तो समाज में फूट, कुसंप की भट्टियाँ धधकने लग गई थीं, दूसरे प्राचीन इतिहास को मिटा देने से उनके पूर्वजों ने सैकड़ों वर्षों से देश, समाज एवं धार्मिक कार्य्यों में असंख्य द्रव्य व्यय कर एवं प्राणों की आहुति देकर बड़ी २ सेवायें करके जो धवल कीर्त्ति और उज्ज्वल यशः कमाया था वह सब मिट्टी में मिल गया। उस गौरवशाली इतिहास के अभाव से उनकी सन्तान की नसों में उन्नती का खून नहीं उबलेगा, फलस्वरूप वह उन्नति करने में अयोग्य ही रहेगी और वह अपना नाम मुर्दा कौम में बड़ी खुशी से लिखवा देगी।

जैन समाज का इतना बड़ा नुकसान होने पर भी गृहस्थों के गच्छ परिवर्तन करने वाले मतधारियों को कुछ भी लाभ नहीं। हाँ, इतना ज़रूर हुआ कि एक ही जाति के लोग भिन्न भिन्न स्थानों में पृथक् पृथक् गच्छों की क्रिया करने में आपसी फूट कुसम्प बढ़ने लग गये। आज भी हम बहुत से ग्राम ग्रामान्तर में देखते हैं कि एक जाति एक ग्राम में एक गच्छ की क्रिया करती है तब दूसरे ग्राम में वही जाति दूसरे गच्छ की उपासक होना बतलाती है।

वंशावलियों का लिखना ऊपर बतलाई हुई मन्दिरों के गोष्टिकों की योजनानुसार हुआ और जब उन २ पौसालों के आचार्य्यादि आचार में शिथिल हो गए तब वंशावलियाँ उनकी आजीविका का आधार बन गईं। जो जो गोष्टिक थे, वे पौसालों वाले उनकी वंशावलियाँ माँडने से वे धर्मगुरु के स्थान से हट कर कुल-गुरु कहलाने लग गए। यह हाल मैंने कई प्राचीन एवं प्रमाणिक ग्रन्थों को पढ़ कर लिखा है। इसमें कई जातियों के गच्छों का रद्दोबदल हो गया है। कारण, कि ओसवाल जाति के मूल स्थापक आचार्य्य रत्नप्रभसूरि ही थे। बाद में आप की संतान परम्परा के आचार्यों ने इस वंश को खूब बढ़ाया था। अतः ओसवालों की अधिक जातियाँ इसी उपकेश गच्छ द्वारा ही स्थापित की गई थीं, किन्तु उस गोष्टिक योजनानुसार कई-कई जातियाँ अनेक गच्छों के नाम से विभाजित हो गईं, जो आज वर्तमान समय में भी दृष्टिगोचर हो रही हैं। जैसे बाफना रांका चोरड़िया संचेती आदि जातियों के पूर्वजों को २४०० वर्ष जितना प्राचीन इतिहास था जिसको नूतन मत धारियों ने ८००-९०० वर्ष जितनी अर्वाचीन ठहरा दिया और इनकी पुष्टि में कई कल्पित कथाएं भी घड़ डालीं। इसी प्रकार संघी भंडारी मुनौयतादि जातियों के विषय भी गड़बड़ कर डाली। इससे और तो कुछ नहीं पर उन जातियों के इतिहास अव्यवस्थित हो जाने से जैन समाज को बड़ा भारी नुकसान हुआ है। इन गड़बड़ मचाने वालों में कई गच्छ तो नाम शेष ही रहे हैं पर इनके द्वारा फैलाई गलत फहमी अवश्य अमर बन गई है।

वंशावलियों में लिखा हुआ हाल कितना ही अतिशयोक्ति पूर्ण क्यों न हो किन्तु हमारे इतिहास के लिए इतना उपयोगी है कि दूसरे स्थानों में खोजने पर भी ओसवाल जाति का इतिहास नहीं मिलता है। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम उन वंशावलियों का ठीक संशोधन कर इतिहास के काम में लें। देखिये इतिहास के मर्मज्ञ एवं प्रसिद्ध लेखक पं० गौरीशंकरजी ओझा स्वनिर्मित राजपूताने के इतिहास में पृष्ठ १० पर लिखते हैं:—

"× × इतिहास व काव्यों के अतिरिक्त वंशावलियों की कई पुस्तकें मिलती हैं × × × × × × तथा जैनों की कई पटावलियां आदि मिलती हैं। वे भी इतिहास के साधन हैं"

पट्टावलियों और वंशावलियों के अतिरिक्त कई रासा, ढालें, चौपाई, सिलोकादि, अपभ्रंश भाषा का साहित्य उपलब्ध हुआ है और उसमें अर्वाचीन महापुरुषों की जीवन घटनाएँ आदि का वर्णन मिलता है। और वे घटनाएँ प्रायः सम-सामयिक होने से ऐतिहासिक कही जा सकती हैं। इनके अलावा कई राजा, बादशाहों के दिए हुए फरमान (आज्ञापत्र) वं (प्रमाणपत्र) भी इतिहास के साधन हैं।

वर्तमान की शोध-खोज से प्राप्त इतिहास की सामग्रीः—

वर्तमान में विद्वानों की इतिहास की ओर अधिक रुचि बढ़ती जा रही है और इसके लिए दौड़ धूप एवं

विद्वानों तथा सरकार के पुरातत्व विभाग की ओर से भारत के प्रत्येक प्रान्तों में शोध-खोज (अन्वेपण) का कार्य्य बहुत अर्से से आरम्भ भी हो चुका है। बहुत से प्राचीन साधन एवं सामग्री भी प्राप्त हो चुकी है। जैसे: —

१—प्राचीन शिला लेख—जिसमें कई तो मन्दिर एवं मूर्त्तियों पर, कई स्तम्भों पर, कई स्तूपों पर और कई पत्थर की छोटी बड़ी चट्टानों पर खुदे हुए मिलते हैं। सबसे प्राचीन शिलालेख भगवान महावीर के पश्चात् ८४ वर्ष का है, जो अजमेर के पास बड़ली ग्राम से पं० गौरीशंकरजी ओझा द्वारा मिला है। इसके अतिरिक्त सम्राट अशोक, सम्प्रति और चक्रवर्त्ति राजा खारवेल के शिला लेख हैं। इन शिला लेखों ने इतिहास क्षेत्र पर काफ़ी प्रकाश डाला है। इनके अलावा और भी बहुत शिलालेख मिले हैं, जो कुशान वंशी राजाओं के समय और उसके बाद के हैं।

२—प्राचीन मन्दिर मूर्त्तियाँ—इनकी प्राचीनता विक्रम पूर्व चार पांच शताब्दि की तो आम तौर से मानी जाती है पर इनके अतिरिक्त ई० सं० पूर्व पांच हज़ार वर्षों तक की मूर्त्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं।

३—प्राचीन स्तूप एवं प्राचीन स्तम्भ—इनकी प्राचीनता ई० सं० के पांच छः सौ वर्ष पूर्व की है।

४—प्राचीन सिक्के-सिक्का—हज़ारों की संख्या में मिले हैं। इनकी प्राचीनता ई० सं० पूर्व छठी शताब्दि कीहै।

५—इनके अलावा मध्य कालीन ताम्रपत्र, दान-पत्र, सिक्के, मन्दिर मूर्त्तियों के शिलालेख एवं स्तूप, गुफाएँ और सिक्के ये अधिकाधिक संख्या में मिले हैं।

६—लिखित पुस्तकें—जिसमें ताड़ पत्र पर लिखी पुस्तकें विक्रम की चौथी शताब्दि से प्रारम्भ होती हैं। इसके बाद उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है, यह पुस्तकें जो चतुर्थी सादी की पाश्चातीय प्रदेशों से मिली हैं। पर भारत में भी प्राचीन पुस्तकों का मिलना असम्भव नहीं।

आदि २ बहुत से साधन मिले हैं, शोद-खोज (अन्वेपण) का कार्य्य चालू है। आशा है और भी मिलते रहेंगे। किन्तु विशाल भारत का इतिहास के लिए इतने ही साधन पर्य्याप्त नहीं हैं। यह तो केवल नाम मात्र के साधन हैं। हाँ, यदि इन साधनों के साथ हमारी प्राचीन पट्टावलियों और वंशावलियाँ मिला दी जांय तो इतिहास की थोड़ी बहुत पूर्त्ति हो सकती है।

५—वर्तमान में जैन धर्म के इतिहास की दशा:—

भारत का इतिहास ई० सं० से करीब ९०० वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होना विद्वानों ने माना है। और जैनधर्म के भ० पार्श्वनाथ को भी विद्वानों ने ऐतिहासिक पुरुष होना स्वीकार किया है जो इ० सं० पूर्व की नौवीं शताब्दि में बनारस के राजा अश्वसेन के पुत्र थे। यदि अश्वसेन राज. को ई० सं० पूर्व नवीं शताब्दि से मानलें तो करीब २ इतिहास काल के पास पहुँच जाता है। जब श्रीकृष्ण और अर्जुन के समय का अनुमान किया जाय तो उस समय जैनों के बावीसवे नेमिनाथ तीर्थंकर होना साबित है। वर्तमान काठियावाड़ प्रान्त के प्रभास पट्टन के पास भूमि के खोद काम से एक ताम्र-पत्र मिला है-जिसमें लिखा है कि-

"रेवा नगर के राज्य का स्वामी सु.......जाती के देव 'नेबुसदनेज़र हुए। वे यादु राज (कृष्ण के) के स्थान (द्वारिका) आया। उसने एक मन्दिर सूर्य...देवनेमि जो स्वर्ग समान रेवतपर्व का देव है उसने मन्दिर बना कर सदैव के लिए अर्पन किया" ("जैन-पत्र वर्ष ३५अंक १ ता० ३१ ३-३७

विद्वानों का मत है कि नेबुसदनेज़र राजा का समय ई० सं० पूर्व छठी-शताब्दि का है। खैर, कुछ भी हो, पर शोध खोज करने पर भ० नेमिनाथ को भी ऐतिहासिक पुरुष मान लिया जाय तो आश्चर्य की बात नहीं है। जब इतिहास में जैनों का आसन इतना ऊंचा है, तब दुःख इस बात का है कि जैनों में आज करीब २००० दो हजार साधु विद्यमान होने पर भी आज पर्य्यन्त जैन धर्म का इतिहास लिखने को किसी एक ने भी लेखनी न उठाई यह कितने अफ़सोस की बात है?

यद्यपि! कई लेखकों ने एवं कई संस्थओं की ओर से जैन इतिहास के नाम से कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं किन्तु उनमें संक्षिप्त रूप से जैनाचार्यों का और प्रसंगोपात थोड़े नामांकित गृहस्थों का इतिहास लिख कर उनका नाम जैन इतिहास रख दिया है। किन्तु उन प्रकाशित पुस्तकों में भ० पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास नहीं आया। यदि जो

कुछ आया भी है तो इतना ही कि भगवान् पार्श्वनाथ के छठे पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वीरात् ७० वर्ष उपकेशपुर के राजा-प्रजा एवं सवालक्ष क्षत्रियों को प्रतिबोध कर जैन धर्म की दीक्षा देकर महाजन वंश की स्थापना करने का ही उल्लेख किया हुआ दृष्टिगोचर होता है पर इतना उल्लेख करने से उन परम्परा के इतिहास की इति श्री नहीं हो जाती है। आचार्य्य रत्नप्रभसूरि की परम्परा संतान आचार्यों ने उस महाजन संघ का पालन पोषण और वृद्धि यहां तक की थी कि मरुधर,सिन्ध कच्छ, सौराष्ट्र, लाट कोंकण, शूरसेन, पंचाल कुनाल आवंती, बुन्देल खण्ड और मेदपाटादि प्रान्त में घूम घूम कर उस महाजन वंश की वृद्धि कर करोंडों की संख्या तक पहुँचा दिया था। उस शुद्धि की मशीन का जन्म विक्रम पूर्व ४०० वर्ष में हुआ था और वह विक्रम की चौदहवीं-पन्द्रहवी शताब्दि तक द्रुति एवं मन्दगति से चलतां ही रही थी। मेरा तो यहां तक ख़याल है की भ० पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास एक ओर रख दिया जाय तो जैन धर्म का इतिहास अपूर्ण एवं अधूरा ही रह जाता है।

जैन धर्म का इतिहास लिखने वाले को भ० पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास लिखना परमावश्यक है। कारण कि, महाजन वंश का इतिहास के साथ इस परम्परा का घनिष्ट सम्बन्ध है और महाजन वंश का जितना इतिहास इस गच्छ व सम्प्रदाय के पास मिलेगा, दूसरे स्थान खौजने पर भी नहीं मिलेगा। यदि कोई विद्वान् लेखक इस कार्य को हाथों में लेता तों वे जैन धर्म का इतिहास सर्वाङ्ग सुन्दर बना सकता पर साथ में यह भी है कि इतिहास का लिखना कोई साधारण काम नहीं है इस कार्य में जितने साधनों की आवश्यकता है उतना ही पुरुषार्थ की जरूरत हैं इसको वे ही लोग जान सकते हैं कि जिन्होंने ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा है। जब हम देखते हैं कि साधारण जातियों का इतिहास जनता के सामने आ गया है तब जैन धर्म जैसा प्राचीन एवं विशाल धर्म का इतिहास इतने अन्धेरे में पड़ा यह एक बड़ी शरम की बात है मैंने इस विषय के कई सामयिक पत्रों में लेख भी दिया पर किसी के कानोंतक जूं भी नहीं रेंगी इस हालत में मैं मेरी भावना को दबा नहीं सका तथापि मुझे पहले से ही यह कह देना चाहिये कि न तो मैं इस विषय का विद्वान ही हूँ न ऐसा सुलेखक ही और न इस प्रकार विशाल इतिहास लिखने जितनी सामग्री ही मेरे पास है फिर भी दूसरे किसी विद्वान ने इस ओर कदम न उठाता देख मैंने यह अनाधिकारी चेष्टा कर इस वृद्ध कार्य में हाथ डाला है। मुझे यह भावना क्यों और किस तरह से पैदा हुई इसका भी थोड़ा हाल पाठकों के सामने रख देना अप्रसंगिक न होगा।

मेरा जन्म ओसवाल जाति में हुआ और संसार में मेरा पेशा (जीविका) व्यापार करने का था मैंने जिस ग्राम में जन्म लिया था, उसमें २०० घर महाजनों के थे। किन्तु वहां पर हिन्दी पढ़ाइ के लिए स्कूल न थी और न ही कोई सरकारी स्कूल थी। केवल एक जैन यतिजी का उपासरा था, और वे ही सब ग्राम के लड़कों को पढ़ाया करते थे। उनका परिश्रम-शुल्क (महनताना) एक पटी का एक टका था। करीब एक रुपये में एक विद्यार्थी अपना काम चलाऊ पढ़ाई कर लेता था। इससे अधिक उस समय पढ़ाना लोग व्यर्थ ही समझते थे। कारण उन लोगों की धारणा थी कि इतनी पढ़ाई से ही हमारे लड़के लाखों का व्यापार कर लेते हैं। उनकी लिखी हुई लाखों की हुण्डी वगैरह सिकर जाती है तो फिर अधिक पढ़ाई करवा कर समय और द्रव्य का व्यय क्यों किया जाय। यतिजी की पढ़ाई केवल धार्मिक ही नहीं थी किन्तु धार्मिक के साथ २ महाजनी भी पढ़ाया करते थे। उनकी पढ़ाई में एक खास विशेषता यह थी कि माता पिता एवं देवगुरु धर्म का विनय भक्ति पर अधिक ज़ोर दिया जाता था। यतिजी का पढ़ाया हुआ प्रत्येक लड़का अपने २ कार्य में प्रायः होशियार ही होता था। उन विद्यार्थीयों में मैं भी एक था किन्तु केवल एक व्यापार के अतिरिक्त संसार में क्या हो रहा है, इसको हम नहीं जानते थे। हमारे जीवन का ध्येय एकमात्र पैसा पैदा करना ही समझा जाता था।

जब पच्चीस वर्ष की उमर में मैं घर छोड़ कर स्थानकवासी समुदाय में साधु बना, तो वहां भी केवल थोकड़ा तथा शास्त्र के पाठ रट-रट कर कण्ठाग्र करने के अलावा विशेष ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। जो हमारे धर्म के शास्त्र प्राकृत संस्कृत भाषा में है, उनको पढ़ने के लिए उन भाषाओं के ज्ञान का भी मेरे पास अभाव ही था। उन शास्त्रों पर टुंढक भाषा का टब्बा (अर्थ) आप समझना या व्याख्यान द्वारा दूसरों को समझा देना। इतना ही काम था। किन्तु यदि इन शास्त्र

(अर्थ) लिखने में किसी लेखक की गलती हो गई हो तो उसको सुधारने के लिए हमारे पास कोई भाषा-ज्ञान का साधन नहीं था। और ऐसे कई उदाहरण बन भी चुके हैं। जैसेः—

१—निशीथ सूत्र के १९ वें उदेशा में एक सूत्र का ऐसा अर्थ लिखा हुआ था कि साधु की बगल (कक्ख) में रोग नहीं आवे वहां तक सूत्रों की वाचना नहीं दी जाये। पूछने पर कहा गया कि ज्ञानी का वचन तहत सूत्रों की कई रहस्यें होती हैं। बस इतना कह कर व्याख्यानदाता छुट गये परन्तु उसको सुधार लेने का ज्ञान उसमें नहीं था दर असल इसमें लिखने वाले की ही गलती थी कि उसने रोम के स्थान रोग लिख दिया था। वास्तव में होना चाहिये था रोम (बाल) पर लिखने वाले ने रोम के स्थान रोग लिख दिया। जब कि प्राकृत-संस्कृत भाषा का ज्ञान ही नहीं तो उस अशुद्धि को कैसे सुधार सकते हैं। वे तो अशुद्ध हो या शुद्ध हो पन्ने पर लिखे हुए अक्षरों को ही ज्ञानी के वचन मानते हैं।

२—एक मुनि उत्तराध्यान सूत्र का पांचवां अध्यायन व्याख्यान में बांच रहे थे, उसके गुर्जर टब्बा में लिखा हुआ था कि साधु जाव जीव स्त्री पाले। साधु ने भी व्याख्यान में पन्ने को पढ़ कर सुना दिया। श्रोताओं ने पूछा कि जब साधु ने स्त्री का त्याग किया है तो फिर वह पुनः स्त्री क्यों पाले ? मुनि ने उत्तर दिया कि वीतराग का ज्ञान स्याद्वाद है। सम्भव है इसमें भी सूत्र की कोई रहस्य हो। वास्तव में मूल पाठ का अर्थ यह था कि साधु जाव जीव तक चारित्र पाले किन्तु लिखने वाले वेतनी लेखक ने चारित्र के स्थान पर च अलग तोड़ दिया और रि त्र के स्थान रि में त्र मिला दिया; जिससे स्त्रि बन गया। जिसका अर्थ च अलग होने से पदपूर्ण (पदपूर्त्ति) समझ लिया और स्त्री का अर्थ औरत करके कह दिया कि 'साधु जाव जीव स्त्री पाले।" इससे कैसा अर्थ का अनर्थ हो जाता है। इसका मुख्य कारण भाषा-ज्ञान का अभाव ही है। आज भी यदि उन सस्ते वेतन दार लहियों के लिखी हुई सूत्र की प्रतियों को उठा कर देखे तो आप को ऐसे बहुत से उदाहरण मिल जांयगे कि जिन्होंने अर्थ का अनर्थ कर दिया और पढ़ने वाले भी ऐसे अनभिज्ञ थे कि पन्ने पर लिखा हुआ पढ़ कर सुना दिया। उन लोगों की पंक्ति में मैं भी एक था।

स्थानकवासी समुदाय में मैं नौ वर्ष रहा था पर वहां पर कई बातों में माया कपटाई तथा एक मूर्ति के न मानने से सूत्रों के पाठ छीपाना अर्थ को बदलाना या व्यर्थ आडम्बर और धमाधम इत्यादि मुझे पसन्द नहीं थी। मेरी प्रकृति शुरू से ही—एकान्त एवं निवृंति में रह कर ज्ञान-ध्यान करने की थी। जब आगमों का अध्ययन करने से मेरी श्रद्धा मूर्ति पूजा की ओर झुकी तो मैंने उस समुदाय में दो वर्ष ओर रहा और इस विषय में बहुत शोध खोज की पर सिवाय अन्ध-परम्परा के और कुछ भी नहीं देखा अतः उस को छोड़ दिया, किन्तु मैं उसी निवृत्ति को चाहता था। भाग्य वशात् मुझे एक ऐसे योगीश्वर मिल गए जो स्वयं अठारह वर्ष तक स्थानकवासी समुदाय में रह कर निकले थे और वे आचार्य विजयधर्म सूरीश्वरजी महाराज के पास संवेगी दीक्षा ली थी। आपका शुभ नाम था मुनिश्रीरत्नविजयजी महाराज। उस समय आप ओसियां तीर्थ पर रह कर अकेले योग साधन करते थे। आपके पास रहने से मेरी एकान्त में रहने की भावना तो सफल हो गई। पर भाषा शुद्धि के लिए जिस ज्ञान की मुझे अभिलाषा थी वह पूर्ण न हुई। कारण एक तो गुरु महाराज दीक्षा देकर थोड़े ही समय में मुझे ओसियां में रख कर विहार कर गये। अब मैं अकेला ही रह गया जिसे एक तो स्थानकवासियों से निकाला तो मूर्तिपूजा की चर्चा छिड़ गई। दूसरे जहां जाता वहां व्याख्यान देना और भी क्रियाकाण्ड से समय बहुत कम मिलता था; इसमें भी मुझे पुस्तकें लिख कर छपाने का शौक लग गया था। भाषा शुद्ध न होने से विद्वान् लोग मुझे उपालम्भ भी देते थे कि आपकी पुस्तकों का भाव अच्छा होने पर भी भाषा की अशुद्धियों से उनका उतना प्रभाव नहीं पड़ता कि जितना पड़ना चाहिये। फिर भी हमारे मारवाड़ी भाई अशुद्ध पुस्तकों को भी खूब अपनाया क्योंकि वे भी प्रायः [illegible] ही थे। अर्थात् सरीखा सरीखी संयोग मिल गया यही कारण था कि मेरी पुस्तकों की ऊपरा ऊपरी आवृतियों हो गई। खैर उस समय मैं अकेला ही था, किसी की सहायता भी न थी। इस परिस्थिति में मेरे दो वर्ष समाप्त हो गये।

तीसरे वर्ष मैंने गुरु महाराज की सेवा में सूरत में चातुर्मास किया वहां पढ़ाई करने का भी सुअवसर था किन्तु व्याख्यान यहां भी मुझे ही देना पड़ता था। तथापि एक पण्डित रख कर संस्कृत मार्गोपदेशिका पढ़ना प्रारम्भ किया। प्रथम भाग पूरा कर द्वितीय भाग के कई पाठ हुए, इतने में चातुर्मास खत्म हो गया और मैंने तीर्थराज श्री शत्रुंजय की यात्रार्थ विहार कर दिया। रास्ते में कई साधुओं से भेंट हुई तथा गुर्जरवासी साधु-साध्वियों का प्रायः शिथिलाचार देखा तो इस

मुताजी लीछमीलालजी
फलौदी (मारवाड़)

मुताजी बदनमलजी
फलौदी (मारवाड़)

मुताजी

२ वसतिमलजी १ गणेशमलजी ३ मिश्रीमलजी—जोधपुर

आप—मुनिश्रीज्ञानसुन्दरजी के संसार पक्ष के तीनों लघु भ्राता है

श्रीकापरड़ा तीर्थ
मुनिम–मुलतानमलजी जैन

परमभक्त श्रावक
भंडारीजीं चन्दनचन्दजी
जोधपुर

श्रीयुक्त सुगनचन्दजी जांवड़ा
कापरड़ा

हालत को परमात्मा सीमंधर स्वामी के पास कागज, हुण्डी पैठ परपैठ और मेझरनामा लिख कर भेजने की इच्छा हुई अतः मेझरनामा लिख दिया। इसका मुख्य कारण तो यही था कि मैं स्थानकवासी समुदाय से आया हुआ था, किया पर मेरी रुचि थी। इधर साधुओं का आचार-व्यवहार भी प्रायः शिथिल ही था।

खैर, उस मेझर नामे के लिखने से एक दो नहीं किन्तु अखिल संवेगी मुनि-मण्डल मेरे से खिलाफ हो उठा। स्थानकवासी तो पहिले से ही मुझ से खिलाफ थे, अब चारों ओर से ही विरोध के बादल उमड़ उठे। इससे नया ज्ञान-ध्यान करना तो दूर रहा किन्तु पहिले जो किया था उसकी भी सार सम्हाल होनी मुश्किल हो गई। मेरे पास अब केवल एक आधार अवश्य था और वह था सत्य। यदि उस समय मुझे इतना ज्ञान होता कि आज जिस दशा पर मैं मेझरनामा लिख रहा हूँ, भविष्य में मेरी भी यह दशा हो जायगी तो मुझे अवश्य विचार करना पड़ता। किन्तु जो होने वाला होता है वह तो अवश्य ही होकर रहता है। ‡

अभी तक इतिहास की ओर मेरी थोड़ी सी भी रुचि न थी। संसार में तो हम हमारे पूर्वजों के दो चार पीढ़ियों के नाम के अतिरिक्त और कुछ भी न जानते थे। हमारे कुलगुरु कभी नाम लिखने को आया करते थे तब वे कहते थे कि आपका गच्छ कंवलागच्छ है। जब दीक्षा एवं संवेग दीक्षाली, तब हमें इतना मालूम हुआ कि आचार्य्य रत्नप्रभसूरिजी ने वीरात् ७० वर्षे उपकेशपुर के राजा-प्रजा एवं सवालक्ष क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। जिनके आगे चल कर कई गोत्र हुए, उनमें १८ गौत्र मुख्य थे; जिनमें राव उत्पलदेव की संतान श्रेष्ठि गौत्र कहलाई और वैद महता उस श्रेष्ठि गौत्र की एक शाखा है। जब मैंने फलौदी में लगातार तीन चातुर्मास किए तो वहाँ कँवल गच्छ के उपाश्रय में एक विशाल ज्ञान भण्डार था, उसे देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसमें उपकेशगच्छ, पट्टावलियाँ कुछ वंशावलियों की वहियां एवं लम्बे लम्बे ओलिये और कई फुटकर पन्ने देखने को मिले। उनके अन्दर से कुछ उतारने लायक पन्ने थे वे मैंने अपने हाथ से वहीं उतार लिये। इसके पूर्व राजलदेसर के यतिवर्य्य माणकसुन्दरजी तथा रायपुर के यतिवर्य्य लाभसुन्दरजी ने भी उपकेशगच्छ सम्बन्धी कई प्राचीन ग्रन्थ कई चित्र और कई बादशाहों के दिए फ़रमान व सनदें आदि मुझे दिखाईं थीं किन्तु उस समय इस ओर मेरा लक्ष्य न होने के कारण उनको इतना उपयोगी नहीं समझा था। तथापि उन्होंने मुझे स्वगच्छ का समझ कर देखने के लिए एवं रखने के लिए दे दिए थे। मैंने उन सबको ओशियां में एक पेटी भर रख दिये थे। जब फलौदी में इस विषय की ओर मेरी रुचि हुई तो ओसियां से पेटी मंगवाकर उनको भी देखने लगा किन्तु, फलौदी में मैं अकेला था तथा दोनों समय व्याख्यान भी बाँचना पड़ता था, अतः समय बहुत कम मिलता था; फिर भी जितना हो सका अभ्यास जरूर करता रहा।

जब मैंने नागौरा में चातुर्मास किया तो एक सज्जन ने मुझे एक पुस्तक जिसका नाम "महाजन वंश मुक्तावली" जो बीकानेर के यति रामलालजी ने वि० सं० १९६५ में मुद्रित करवाई थी, मुझे दी और मैंने ध्यान लगा कर पढ़ा; उससे मालूम हुआ कि यतिजीने केवल गच्छ ममत्व के कारण ओसवाल जातियों के इतिहास का जबरदस्त खून कर डाला है। कारण कि उस पुस्तक में बापना रांका पोकरणा चोरड़िया संचेती आदि जातियों—आचार्य्य रत्नप्रभसूरिजी द्वारा प्रतिबोधित है। जिनका इतिहास कोई २४०० वर्ष जितना प्राचीन है, उनको अर्वाचीन आचार्य्य द्वारा प्रतिबोधित बतला कर ७००-८०० वर्ष जितनी अर्वाचीन बतला दी। यह एक बड़े से बड़ा अन्याय है। इनके अलावा संघी भण्डारी मुनोयत—इत्यादि

---

‡ स्थानकवासियों से जितने योग्य साधु संवेगी समुदाय में आये समाज सबका सत्कार किया पर मैं तो शुरू से ही समाज में कांटा खोला की तरह खटकने लगा इसमें एक तो मैं किसी के पास नहीं रह कर स्वतंत्र ही रहा। दूसरा मैं [illegible] होने पर भी उपकेश गच्छ 'जो सब गच्छों में ज्येष्ठ एवं प्राचीन है' का नाम धराया। यही कारण है कि मेरा सत्कार तो होना दूर रहा पर मुझे मेरे ही विचारों के लिये अनेक कठिनाइयाँ सहन करनी पड़ीं। [illegible] शिष्य मुझे मिला नहीं और अयोग्य को मैंने शिष्य बनाया नहीं। हाँ मूर्ति नहीं मानने वाले कैसे मुझे मिले [illegible] ठीक समझा: शायद वह योग्य नहीं निकले पर मूर्ति की [illegible] करने वाले [illegible]। आज मैं करीब २५ वर्षों से मेरी प्रतिज्ञा पालता हुआ एक साधु के साथ विहार करता हूँ।

बहुत-सी जातियाँ अन्यान्यो गच्छ के आचार्यों द्वारा प्रतिबोधित हुई थी, उन सबको खतरगच्छाचार्यों द्वारा प्रतिबोधित लिखकर उन जातियों के प्रति घोर अन्याय किया है। अतएव मैंने एक पत्र बीकानेर यतिजी को लिखा है कि आपने 'महाजन वंश मुक्तावली' किस आधार पर लिखी है आदि २ पर उत्तर के लिये बहुत समय तक इन्तजारी करने पर भी पत्र का उत्तर न मिला। अतः मेरी इच्छा हुई कि मैं इस पुस्तक की समालोचना रूप एक पुस्तक लिखूं किन्तु यह तो इतिहास का विषय था और इसमें केवल जैन पुस्तकों से ही काम नहीं चल सकता। किन्तु इसमें मुख्य तया भारतीय राजाओं के इतिहास की जरूरत थी। मेरे विचार से इन कठिनाइयों के कारण ही १५ वर्ष व्यतीत हो गये, किसी ने भी कलम न उठाई। फलतः मैंने इस विषय की सामग्री संकलित करनी आरंभ की। ज्यों ज्यों मैं इस विषय के इतिहास देखता गया त्यों त्यों ही मेरा इतिहास के प्रति प्रेम बढ़ता गया।

जब मैं नागौर से खजवाना आया तो वहाँ पर कई कँवलागच्छ की पौसालो वाले मिले। जिसमें भट्टरक देवगुप्त सूरि (प्रसिद्ध नाम यति मुकन जी) मिले और उन्होंने अपने पास का विस्तृत ज्ञान-भण्डार मुझे उपासरे बुला कर दिखलाया और उदारता भी बतलाई कि आप हमारे गच्छ के त्यागी साधु हो। इन पुस्तकों में से आपके जो उपयोग में आवें वे देखें व लिरावें। इनके अतिरिक्त महात्मा छोगमलजी तनसुखदासजी ने भी अपने पास की पुरानी वंशावलियाँ, ख्यातें की बहियाँ भी बतलाई, जिससे मेरा उत्साह और भी बढ़ गया! किन्तु ऐसा ग्रन्थ लिखने में किसी निर्वृत्ति स्थान की भी अपेक्षा रहती है, कारण कि इतिहास का काम एकाग्र चित्त से ही बन सकता है। अतएव इसके लिए महात्मा तनसुखदासजी ने मेड़ता रोड फलौदी में ही रहने की सलाह दी और यह मेरे भी पसंद आई। तनसुखजी भी छः मास फलौदी रह गए और मैंने भी फलौदी रह कर साधन एकत्रित कर "जैन जाति निर्णय" नामक पुस्तक लिखी। परन्तु कहा है कि श्रेयांसि बहु विघ्नानि अर्थात् मैंने कोई पचास साठ ग्रन्थों का अवलोकन कर बड़े ही परिश्रम से मैटर तैयार किया था, किन्तु एक सज्जन जो अच्छा विद्वान था; उस मैटर को देखने के लिए ले गया और कह गया कि मैं इसे देख कर बज़रिये रजिस्ट्री आपको वापिस भेज दूंगा। भवितव्यता वश उस सज्जन पुरुष ने उस मैटर को कहीं खो दिया।

जब मैटर खो जाने का समाचार मुझे मिला तो बहुत ही दुःख हुआ। किन्तु हतोत्साह न हो द्विगुणित उत्साह से उस पुस्तक को पुनः दोबारा लिखा और बीलाड़ा जाकर मुत्ताजी खींवराजजी की द्रव्य-सहायता से छपवा भी दिया। जब पुस्तक प्रकाशित हुई तो उसकी प्रशंसा पत्रों का मेरे पास ढेर लग गया। किन्तु हमारे कई भाइयों को इस पुस्तक से दुःख भी कम न हुआ। उन्होंने अत्यन्त हल्ला मचाया और असभ्य शब्दों द्वारा अपना परिचय दिया। लेकिन मेरा उत्साह कम न हुआ और मैं आगे बढ़ता ही गया, मैंने निश्चय किया कि ओसवाल जैसी विशाल एवं परोपकार प्रिय जाति का इतिहास अभी तक जनता के सामने नहीं रखा गया है। अतएव मैंने सामयिक पत्रों में लेख लिखकर जैन विद्वानों से कई वार अपील की किन्तु इस ओर किसी ने भी ध्यान न दिया। इतना ही नहीं, वरन् बहुत से सज्जनों ने तो मुझे ही पत्र लिखे कि गुजराती साधुओं में बहुत लिखे पढ़े विद्वान् साधु हैं, परन्तु वे जैन जातियों के इतिहास से इतने जानकार नहीं हैं कि जितने मारवाड़ के आप जैसे साधु हैं। कारण वर्तमान में जितनी जैन जातियाँ विद्यमान हैं इन सब की उत्पत्ति मरुधर प्रदेश से ही हुई है एवं इनके संस्थापक गुरु से ही उपकेश गच्छ-आचार्य रत्नप्रभसूरि आदि आचार्य्य ही थे। अतएव इन जातियों के विषय में जितना इतिहास उपकेशगच्छ वालों के पास मिलेगा उतना शायद ही दूसरों के पास मिल सके। इसलिये हम आपसे ही प्रार्थना करते हैं कि आप जैसे भी हो सके, जल्दी से एक ऐसा प्रामाणिक इतिहास लिखें कि जिसका जैन एवं जैनेतर जनता पर अच्छा प्रभाव पड़े। अतः इतनी योग्यता न होने पर भी जातिसेवा को लक्ष्य में रख कर इस कार्य्य को हाथ में ले लिया। इस कार्य के लिए सामग्री तो पहले से फलौदी के उपासर यतिवर्य्य लाभसुन्दरजी, रायपुर तथा माणकसुन्दरजी राजलदेसर तथा बीकानेर मेड़ता फलौदी नागौर केकीन चांगोद, पालसणी और खजवान के भट्टारक देवगुप्तसूरि एवं महात्मा नासीरामजी छोगमलजी तनसुखदासजी द्वारा मिल गई थी।

"जैन जाति निर्णय" लिखने के पश्चात् मेरा अनुभव भी काफी बढ़ गया था। मैंने "जैन जाति महोदय" नामक ग्रन्थ की एक ऐसी वृहद् योजना तैयार की, जिसके अलग २ पच्चीस प्रकरण के चार खण्ड बना देने का निर्णय कर लिया। जिसमें केवल जैन जातियों का ही नहीं किन्तु जैन धर्म सम्बन्धी सम्पूर्ण इतिहास समावेश हो सके। यह केवल विचार ही

नहीं किया वरन् कार्य्य भी शुरू कर दिया। और कोई ६० फार्म अर्थात् १००० पृष्ठ और ४३ चित्रों के साथ प्रथम विभाग में छः प्रकरण का एक खण्ड सादड़ी श्रीसंघ की द्रव्य-सहायता से मुद्रित करवा दिया। जिसको जैन समाज ने बहुत हर्ष एवं उत्साह के साथ अपनाया और द्वितीय खण्ड की आतुरता से प्रतीक्षा करने लगी। किन्तु प्रथम खण्ड के पश्चात् कार्य इतना शिथिल पड़ गया कि जिसको पुनः हाथ में नहीं लिया गया। इसका कारण एक तो मैं अकेला था दूसरा जैन साधुओं की दैनिक क्रिया व भ्रमण करना और व्याख्यान देना, चर्चादि करना; दूसरी और भी छोटी बड़ी कई पुस्तकें छपवाने में समय निकलता गया एवं कुछ अवस्था भी वृद्ध होती गई और बड़ा काम हाथ में लेने में कुछ आलस्य-प्रमादों का भी आक्रमण होजाना संभाविक था। कुछ भी हो, किन्तु उस छुटे हुए काम को पुनः हाथ में न ले सका। इस समय में बहुत से सज्जनों के पत्र भी आये। खेर, जब हम निश्चय पर आते हैं तो यही संतोष होता है कि जब जो काम बनना होता है तब ही बनता है।

इतना होने पर भी न तो मैं उस काम को भूल गया और न मेरा उत्साह ही कम हुआ। सदैव मेरा यही विचार रहता कि समय मिलने पर अधूरा रहा ग्रन्थ अवश्य पूरा करना है। इतने समय के विलम्ब में एक लाभ अवश्य हुआ कि जो पहिली सामग्री थी उसमें अधिकाधिक वृद्धि ही होती गई। कारण कि कई ग्रन्थ पढ़ने से एवं जहां गया वहां के ज्ञान-भण्डार देखने से, कुल गुरुओं के मिलने से, उनके पास की वंशावलियाँ एवं बहुत सी ख्यातें देखने से प्रमाणों एवं नई २ बातों का संग्रह करने में मुझे बहुत अधिक सहायता मिलती रही।

पुनः कार्यारम्भ और विचारों का परिवर्त्तन

जब वि० सं० १९९४ का मेरा चातुर्मास सोजत शहर में हुआ और वहां पर मेरे शरीर में बीमारी होगई, एक दम शरीर कमज़ोर होगया। एक दिन मकान से नीचे उतरता था तो चक्कर खाकर भूमि पर गिर गया। कुछ सावधान हुआ तो यह दिल में आई कि आयुष्य का कुछ निश्चय एवं विश्वास नहीं। यदि यह प्रारम्भ किया गया कार्य्य अधूरा रह गया तो मेरे पीछे कोई व्यक्ति इस कार्य्य को शायद ही पूरा कर सके। अतएव इतनी सामग्री जो एकत्र की है वह व्यर्थ सी हो जायगी। इसलिये अब छोटी छोटी पुस्तकें छपवानी बन्द कर इसी कार्य्य को पूरा कर देना ज़रूरी है। जब तबियत सुधर गई तब मैंने कापरड़ा तीर्थ जैसे निर्वृत्ति के स्थान में पुनः अधूरा काम हाथ में लिया। पर साथ ही यह भी विचार हुआ कि "जैन जाति महोदय" प्रथम खण्ड प्रकाशित हुए कोई ९-१० वर्ष हो गये। वे पुस्तकें किन किन के पास पहुँची हैं और अब लिखे जाने वाले ग्रन्थ किन किन को मिलेंगे। अतः पहले वाले को अब छपने वाले ग्रन्थ नहीं मिलेंगे तो दोनों ही अधूरे रह जाँयगे। इसलिए अब शुरु से ही क्यों न लिखा जाय ? कि जिस किसी के पास जायगा तो वहाँ पूरा ग्रन्थ ही जायगा।

जब मैंने मेरे परामर्शदाताओं से सलाह ली तो वे भी मेरे से सहमत हो गये। अतः मैंने यह निर्णय कर लिया कि इस ग्रन्थ को शुरू से ही छपवाना और पूरा छप जाने पर ही इसको वितीर्ण करना उचित होगा। यद्यपि कई सज्जनों ने यह भी आग्रह किया जैसे जैसे इसके भाग निकलते जांय वैसे वैसे ही ग्राहकों को दे दिये जावें। इसमें ग्रन्थ छपाने में, लिखाने में, खरीदने एवं द्रव्य की सहायता में सुविधा रहेगी; किन्तु कई सज्जनों ने इसमें पहली वाली अवस्था की आपत्ति की और सम्पूर्ण ग्रन्थ छपने पर ही प्रसिद्ध करने का विचार ठीक समझा और वैसा ही निर्णय किया तथा संस्था ने भी यही स्वीकार कर लिया।

ग्रन्थ का नाम-करण

पहिले इस विषय का जो ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका था उसका नाम "जैन जाति महोदय" रक्खा गया था। साधारणतः इस नाम पर यही भान होता था कि इसमें जैन जातियों का ही इतिहास होगा ! पर [illegible] इस ग्रन्थ का विषय बहुत विशाल कर दिया। कारण कि, इसमें केवल जैन जातियों का ही इतिहास नहीं [illegible] के [illegible] समय तक २४ पट्टधर हुए हैं उन सब का सामग्री के अनुकूल [illegible] इतिहास एवं [illegible] से जैन धर्म सम्बन्धी जो कुछ कार्य्य हुआ है, उन सब को [illegible] कर दिया है। [illegible]

आचार्य्य केशीश्रामण के शासन में भ० महावीर और महात्मा बुद्ध का शासन एवं उसके शासन के अन्दर की प्रत्येक घटनाऐं आदि का इतिहास भी शामिल लिख दिया गया है। इसी प्रकार भ० पार्श्वनाथ के ८४ पट्टधरों के शासन में भ० महावीर के पट्ट-परम्परा में जितने गच्छ निकले एवं उन गच्छों के जितने भी आचार्य्य हुए तथा उन आचार्य्यों के शासन में जितनी जितनी घटनाऐं घटी और उन में मुझे जितना इतिहास मिला, मैंने यथास्थान लिख दिया है। वह भी केवल धार्मिक ही नहीं अपितु सामाजिक और राजनैतिक इतिहास भी विशेष रूप से लिख दिया गया है। जोकि आप इस ग्रन्थ की विषयानुक्रमणिका से देख सकेंगे।

इस ग्रन्थ का नाम क्या रखा जाय। इस विषय में कई सज्जनों की सलाह ली- जैनधर्म का इतिहास रखा जाय: किन्तु इस नाम से कई पुस्तकें पहिले प्रकाशित हो चुकी हैं। और उसमें केवल एक जैन आचार्य्य, वह भी भ० महावीर की परमपरा के ही आचार्य्यों का ही शासनविशेष वर्णित है। उसमें भी जिस गच्छ वालों ने इतिहास लिखा है वे प्रायः अपने ही गच्छ परम्परा का इतिहास लिखा है अतः इस नाम से जनता एक साधारण इतिहास समझ सकती है ख़ैर, भ० महावीर की परम्परा के विषय को तो बहुत सी पट्टावलियां वगैरा में लिखी गई हैं किन्तु भ० पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास अभी तक किसी ने नहीं लिखा है। मेरे ख़याल से जैन धर्म्म के इतिहास में पार्श्वनाथ परम्परा का अधिक हिस्सा है। अतः मैंने मुख्यतया उन पार्श्वनाथ परम्परा का ही इतिहास लिखा है। इस कारण इस ग्रन्थ का नाम भी "भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास" रखना ही उपयुक्त समझा है। किन्तु पाठक ? यह न समझें कि इस ग्रन्थ में केवल पार्श्वनाथ की परम्परा का ही इतिहास है? इसमें पार्श्वनाथ या महावीर के शासन एवं परम्परा का तथा इन २८०० वर्षों में जैनधर्म सम्बन्धी घटी हुई घटनाओं में मुझे जितना इतिहास मिला है, मैंने सबका ही इसमें समावेश कर दिया है।

इस ग्रन्थ की सामग्री संकलन करने में मैंने कोई २० वर्षों से खूब ही परिश्रम किया है और कई प्रकार की कठिनाइयाँ भी उठाई हैं। तथा सैकड़ों ग्रन्थों का भी अवलोकन किया है। जो कोई सामग्री एवं प्रमाण मिला उठा नहीं छोड़ा है। जहां प्रमाण कहीं नहीं मिला वहां पट्टावलियों, वंशावलियों को भी काम में लिया है, कि जिन पर मेरा विश्वास हो गया था। मेरे ज्ञान से मैंने किसी गच्छ, समुदाय, मत, पन्थ एवं जाति-गोत्र के प्रति अन्याय नहीं किया है। अपक्षपात से ही इतिहास को लिखा है। यों तो आज पर्य्यन्त मैंने बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं किन्तु यह ग्रन्थ मेरे जीवन का अन्तिम ग्रन्थ है। इस समय मेरी आयु ६२ वर्ष की हो चुकी है, शरीर की कमजोरी एवं नेत्रों की रोशनी भी बहुत कम होती जारही है। अतः भविष्य में अब मुझे आशा नहीं कि कोई ऐसा दूसरा ग्रन्थ लिख सकूँ। हां, मेरे हृदय में यह भावना जरूर है कि यदि यह ग्रन्थ समाप्त हो गया तो मैंने जो पहले ग्रंथ लिखे हैं, उनके अंदर रही हुई अशुद्धियों का परिमार्जन कर दूं। तथा शीघ्रबोध के जो २५ भाग लिखे थे उनको ठीक विवेचन के साथ दूसरी आवृत्ति लिख कर मुद्रित करवा दूँ। ख़ैर, इस समय तो इस ग्रन्थ को ही पूर्ण करने का प्रयत्न करूँगा।

अन्त में मैं इतना कह देना आवश्यक समझता हूँ। कि प्रथम तो इतिहास का लिखना ही एक टेढ़ी खीर है, उसमें भी मेरे जैसा—अल्पज्ञ के लिए तो और भी विशेष है। दूसरे सबसे पहला तो यही सवाल रहता है कि जितनी सामग्री चाहिये उतनी मुझे उपलब्ध नहीं हुई है। इसलिए मैंने अधिक आश्रय पट्टावलियो एवं वंशावलियों का ही लिया है कि जिस पर वर्तमान में इक तर्फा देखने वालों का विश्वास बहुत कम है। तथपि मैंने अपने दीर्घकाल के अनुभव से और निश्चित धारणा से इन साधनों का ठीक संशोधन कर विश्वास किया है। अन्य विद्वानों से भी निवेदन करता हूँ कि जब तक मेरी लिखी घटनाओं के विरुद्ध कोई प्रमाण न मिले तब तक उनको ठीक-यथार्थ ही मानें।

मनुष्य की दृष्टि दो प्रकार की होती है। १ खण्डन और २ मण्डन। खण्डन दृष्टि वाला कहता है कि अमुक बात का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है ? तब मण्डन दृष्टि वाला कहता है कि इस बात के खिलाफ कोई प्रमाण नहीं मिलता है; अतः इसको हम असत्य नहीं कह सकते हैं। इन खण्डन मण्डन के विवाद में हमारे हजारों जैनवीरों का इतिहास अद्यावधि अंदेरे में पड़ा है। किसी की भी यह हिम्मत नहीं पड़ती कि उनको (प्रकाशित कर) प्रकाश में लावे।

इसका नतीजा यह हुआ कि वर्त्तमान स्कूलों में कोमल हृदय के विद्यार्थियों को जो पाठ्य पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनमें साधारण लोगों के इतिहास पढ़ाये जाते हैं पर जिन जैन वीरों ने एवं उदार नर रत्नों ने भारतके सार्वभौम उपकार करनेमें अपनी करोड़ों की सम्पत्ति पानी की तरह बहा दी, उनका इसमें प्रायः नामनिशान भी नहीं है। जब तक होनहार विद्यार्थियों को अपने पूर्वजों के गौरव शाली इतिहास को न पढ़ाया जाय तब तक उनकी संतानों की नशों में कदापि खून नहीं उबलेगा। जब कि भारत की सैकड़ों हजारों जातियोंमें जगतसेठ, नगरसेठ, चौवटिया, टीकायत शाह और पंचों जैसी महान् पदवियाँ यदि मिली हैं तो एक इस जैन जाति के वीरों को ही मिली हैं। यह कुछ काम करने से मिली हैं या यों ही? जब काम करने से मिली हैं तो उनके कार्मों का इतिहास कहां है? वह इतिहास हमारी पट्टावलीयों वंशावलीयों में ही मिल सकेगा, कि जिन पर हमारे कई एक विद्वानों (!) का विश्वास कम हो रहा है। यह केवल भ्रम या पक्षपातका विमोह है।

फिर हमारे पास ऐसा कौनसा साधन है कि जिसके द्वारा हमारे पूर्वजों का इतिहास जनताके सन्मुख रखा जा सके। मेरी तो अब भी यही राय है कि अभी भी समय है जैन विद्वान् एक ऐसी संस्था कायम करें कि जिसके द्वारा जितनी पट्टावलीयां एवं वंशावलियादि इस विषय का जितना साहित्य मिले उन सब को एकत्रित कर उनका अनुसंधान करें और यदि कहीं त्रुटियाँ नज़र आवें तो अन्य साधनों द्वारा संशोधन कर उसके अन्दर से जितना भी तथ्य मिले उनको इतिहास की कसोटी पर कस कर ठीक सिलसिलेवार संकलित कर जनता के सामने रखें तो मेरा पक्का विश्वास है कि विद्वत्समाज ऐसे इतिहास की अवश्य क़दर करेगा।

वर्तमान कइ सज्जनोंमें एक यह बड़ी भारी खूबी है कि आप कुछ काम करते नही और दूसरा कोइ करताहो तो उसके अन्दर कई प्रकार की व्यर्थ त्रुटियों निकालकर विघ्न उपस्थित करदेते हैं अतः काम करने वालों का उत्साह गिर जाता है यहाँ तो वही काम कर सकता है कि किसी के कहने सुनने की परवाह तक नही रखे और चुप चुप अपना काम करता रहे। हाँ जिस किसी को रुची हो या लाभ दिखताहो वह अपनावे यदि ऐसा नहो तो चपचाप रहें।

मेरे खयालसे जैनधर्म के लिये कोई भी छोटा मोटा काम करेगा वह जैनधर्म को नुकसान पहुचाने को या जैनागमोंसे खिलाफ तो करेगा ही नही। काम करने वाले की इच्छा शासन की सेवा करने की ही रहती है हाँ किसी विषय की अनभिज्ञता के कारण कुछ अन्यथा होता हो तो उनको सज्जनता पूर्वक सूचना दें। मेरे खयालसे ऐसा मूर्ख कौन होगा कि जिसके हाथोंसे शासन को नुकसान होताहो और उसका एक भाइ ठीक सुझाव कर रहा हो तो वह इन्कार करे अर्थात् कोइ नहींकरेगा यदि इस पद्धतिसे कार्य किया जायतो शासन का न अहितहो और न आपसमें किसी प्रकार से मन मलीनता का कारण बने?

प्रस्तावना को मैंने काफी लम्बी चौड़ी करदी है पर इसमें अनोपयोगी तो कइ बात मेरे खयाल से नही आइ होंगी फिर भी इतना बड़ाग्रन्थ का परिचय करवाना थोड़ा में हो नही सकता है खैर अब जिन जिन सज्जनों द्वारा सामग्री व सहायता मिली है उनका आभार मानना मैं मेरा कर्त्तव्य समझ कर उनकी नामावली लिख देता हूँ।

सहायकों की शुभ नामावली

इस वृहद्ग्रन्थ लिखने में जिन जिन महानुभावों की ओर से मुझे किसी प्रकार से सहायता प्राप्त हुई है उन सज्जनों का उपकार मानना मैं मेरा खास कर्तव्य समझता हूँ और शास्त्रकारों ने भी फरमाया है कि उपकारियोंके उपकार को भूल जाय वे लोग कृतघ्नी कहलाते हैं और कृतघ्नी जैसा दूसरा कोई पाप ही नहीं होता है अतः उपकारियों का उपकार मानना जरूरी है यों तो मेरे इस कार्य में बहुत सज्जनों का उपकार हुआ है और उन सबका मैं आभार भी समझता हूँ पर जिन महानुभाव ने विशेष सहायता पहुँचाई और इस समय मेरी स्मृति में है उनकी शुभनामावली यहाँ दे दी जाती है।

१—उपकेशगच्छीय यतिवर्य लाभसुन्दरजी जो कई वर्षों से आप रायपुर (मींडी) में ही रहते थे जब १९७३ का मेरा चतुर्मास फलोदी में हुआ था तब खास मेरे से मिलने एवं दर्शनार्थ फलोदी आये थे और मुझे उपकेशगच्छ में क्रिया उद्धार किया देख आपको बड़ी खुशी हुई थी कारण कि आप निर्लोभी निस्पृही एवं शान्तवृत्ति वाले थे वैसे ही गच्छानुरागी भी थे आपने कहा था कि मेरे पीछे ऐसा कोई सुयोग्य शिष्य

नहीं है कि मेरा ज्ञान भण्डार को संभाल सके अतः मैं मेरा ज्ञानभण्डार आपकी सेवा में अर्पण करना चाहता हूँ आप उनका सद् उपयोग करावें। मैंने कहा कि ज्ञानभण्डार देखने का तो मुझे शोक है पर उसको ग्रहन कर में कहाँ लिये फिरू तथापि आपकी इच्छा तो वहीं रही। बाद हम दोनों ने फलोदी के उपकेशगच्छ के उपाश्रय का ज्ञानभंडार देखा और उसमें कई गच्छ सम्वन्धी साहित्य था उसके अन्दर से मैंने कई नोट कर लिये। इस प्रकार नोट कर लेने का तो स्थानकवासियों में भी मुझे शौक था और अभी तक मेरे पास बहुतसे नोट किये हुए पड़े भी हैं खैर जिस समयमें ओसियोंमें ठहरा हुआ था उस समय यतिजीने अपना ज्ञानभंडार मेरे नाम पर ओसियों भेज दिया मैंने उसका अवलोकन किया जिसमें उपकेशगच्छ सम्वन्धी पट्टावलियो वंशावलियाँ व आचार्यके जीवन वगैरह थे मैंने रख लिया शेष जितने हस्तलिखित एवं मुद्रित पुस्तकें थी तथा मेरे पास हस्तलिखित आगम वगैरह थे वे सबके सब ओसियों में श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानभण्डार की स्थापना कर उसमें अर्पण कर दिये जिसकी लिस्ट में जिन जिन दातारों की ओर से मुझे पुस्तक मिली थीं उनके ही नाम लिखादिये।

२—उपकेशगच्छीय यतिवर्य माणकसुन्दरजी राजलदेसर वाले सं० १९७४ जोधपुरके चतुर्मासमें मेरेसे मिले उन्होंने भी अपने पासके प्राचीन साहित्य जिसमें भी स्वगच्छ सम्वन्धी बहुत साहित्य था एवं एक उपकेशगच्छ की विस्तृत पट्टावली जो मारवाड़ी भाषा में लिखी हुई थी तथा श्री पूज्यों के दफ्तर की वंशावलियों तथा राजा बादशाहों से मिले हुए पट्टे परवाने सिनन्दे वगैरह भी थी इनके अलावा कोरंटगच्छाचार्यों की एक वही जो कोरंटगच्छ के श्रीपूज्यों बीकानेर आये थे तब दे गये थे उस वही में कोरंटगच्छाचार्यों ने अजैन क्षत्रियों को जैन बनाये और बाद में कई कारणों से उनकी जातियाँ बन गई थी उन जातियों की उत्पति या वंशावलियों और उनके किये हुए धर्म कार्यो का विस्तृत लेख थे वह भी साथ लाये थे यतिवर्य गच्छ के पक्के अनुरागी थे और अपने गच्छ का उत्थान करना भी चाहते थे। मैंने यतिजी के लाये हुए साहित्य से बहुत से नोट कर लिये उन्होंने कहा कि यह सब आपके ही पास रखें पर मैंने इन्कार कर दिया और कहा कि जब मुझे जरुरत होगी तब मंगवालूंगा पर भवितव्यता कि वे मेरे से मिलने के बाद थोड़े ही जीवित रहे

३—यतिवर्य प्रेमसुन्दरजी आपने भी उपकेशगच्छ चरित्रादि कई साहित्य मुझे दिखाया जिसमें उपकेशगच्छ चरित्र तो कई दिन मेरे पास रहा मैंने उसकी प्रति उतरा कर मूल प्रति वापिस देदी।

४—जब मैंने नागोर चतुर्मास किया था वहां भी उपकेशगच्छीय उपाश्रय से मुझे बहुत साहित्य देखने को मिला कई बादशाही पट्टे परवाने भी देखे।

५—वहाँ से जब मैं खजवाने आया वहाँ पर भी उपकेशगच्छ की एक शाखा की गादी है भट्टारक देवगुप्त सूरि (प्रसिद्धनामगुरांनुकतजी) थे उन्होंने मुझे स्वगच्छ का त्यागी साधु समझ कर बड़े ही सम्मान के साथ अपने उपाश्रय ले गये और अपने पास का विस्तृत ज्ञान भँडार दिखाया और कहा कि मेरे कोई योग्य शिष्य नहीं है इन पुस्तकोंसे आपके उपयोगमें आवे तो आप कृपाकर लिरावें आपके ज्ञान कोष को मैंने तीन दिन अवलोकन किया और आगमों के अलावा व्याकरण न्यायादि तथा ज्योतिष वैद्यक के भी बहुत से ग्रन्थ थे और गच्छ सम्वन्धी पट्टावलियों तथा वंशावलियों के बड़े बड़े पोथे और लम्बे लम्बे भुगले भी थे जिनमें उपकेशगच्छ के मूल ४० गौत्रों की वंशावलियों तथा उन्होंके किये हुए धर्म कार्य तथा तलाब कुए बावियों धर्मशालाएं आदि जन कल्याणार्थ दुष्कालादि में महाजनों ने करोड़ों द्रव्य व्यय कर मनुष्यों को अन्न और पशुओं को घास दे उनके प्राण बचाये तथा बहुत से वीर पुरुष युद्ध में काम आये उनकी स्त्रियाँ सतियाँ हुई के भी उल्लेख थे। मैंने इसी कार्य के लिये खजवाने में कई २४ दिन ठहर कर बहुत से नोट कर लिये।

६—खजवाने में महात्मा धामीरामजी छोगमलजी तनसुखदासजी की पौसाल है और वे महाजनों की वंशावलियां भी लिखते हैं तथा बहुत वृद्ध होने से उनको स्वगच्छ सम्वन्धी बहुत बातों का ज्ञान भी था उनके पास से भी मैंने बहुत नोट किया था वे भी गच्छ के पक्के अनुरागी थे यही कारण है कि इसी काम के लिये तनसुखदासजी मेरे पास ७-८ वर्ष रहे और इस विषय की सामग्री के लिये स्वगच्छ और परगच्छ की

वंशावली नं० ३

वंशावली नं० ४

नंबर ६

नंबर ७

उपकेशगच्छ चरित्र (सं० १३६३ का बनाया हुआ)

वंशावली नं० १ बहुरा गौत्र

वंशावली नं० २ श्रीमाल वंश

(शेष ८ ब्लोक तैयार न होने से उत्तरार्द्ध में दिये जायगे)

पौसालों में घूम घूम कर कुछ द्रव्यार्थीयों को द्रव्य भी दिया पर बहुत सामग्री|एकत्र की—जिसका उपयोग मैंने जैनजातिमहोदय तथा इस ग्रन्थ में किया है।

७—जब मैं जैतारण से बीलाड़ा जा रहा था मार्ग में खारिया ग्राम आया मैं तपागच्छ के उपाश्रय में ठहरा वहाँ पर रद्दीखाते में वंशावलियों के लम्बे लम्बे १०-१२ भुगले पड़े थे मैंने वहां के अग्रेश्वर श्रावकों की आज्ञालेकर ले लिया इसी प्रकार पाली से कापरड़े जाते मार्ग में चौपड़ाग्राम आया वहां मन्दिर के भंडार में महाजनों की वहियों के साथ वंशावली की वहियां तथा कई कागज के भूगले पड़े थे जो बिलकुल रद्दी खाते में थे वहां के श्रावकों की आज्ञा से मैंने ले लिया और एक आदमी कर कापरड़ाजी ले गया उसमें प्रायः तपा गच्छ के श्रावकों की वंशावलियों थी।

८—जब मैं गोडवाड में विहार कर रहा था तो चांणोदगया वहां भी उपकेश गच्छ की पौसाल थी और वे भी श्रावकों की वंशावलियां लिखते हैं और उनके पास में भी प्राचीन साहित्य काफी था वहाँ से भी मुझे काफी मसाला मिला था इत्यादि मेरे २८ वर्षो का भ्रमन में जहाँ जहाँ इस विषय का साहित्य मिला प्राय अधिक नोट ही करता रहा कारण इतनी सामग्री कहा लिये फिरता रहूँ। बहुतसा साहित्य जो मुझे मिला मैंने संग्रह भी किया और कई महात्मा मेरे से ले भी गये थे तथापि मेरे पास आया उसके नोट मैं बराबर करता ही रहा।

९—इनके अलावा भी मेरे भ्रमन में जहाँ जहाँ मैंने ज्ञान भण्डारों का अवलोकन किया तथा महात्माओं की पौसाला वालोसे मिला और उन लोगोंसे मुझे जो कुछ उपयोगी जानने योग्य साहित्य मिला उसका संग्रह करतारहा जितना साहित्य मुझे मिला था उसपर मैंने आंखें मूंदकर अन्ध परम्परासे ही विश्वास नहीं कर लिया था कारण मैं जानता हूँ कि वंशावलियों में जिस जिस समय की घटनाएं लिखी मिलती हैं वे उस समय की लिखी हुई नहीं है फिर भी कुछ परिश्रम करके संशोधन किया जाय तो उसमें से इतिहास की सामग्री प्राप्त हो सकती है मैंने संशोधन करने पर भी जिस पर मेरा विश्वास हो गया उसको ही काम में ली है।

१०—श्रीमान प्रतापमलजी अमोलखचन्दजी बेजवाड़ाके फार्म वाले श्रीमान् दुर्गाचन्दजो कर्मावस वाले तथा किसनमलजी अनराजजी व्यावर वाले आपकी मारफत कम्पनी को कागजों का ओर्डर संस्था वालों ने दिया था तथा संस्थासे हुण्डी भी भजिवादी था पर प्रतिबन्धादि कारणसे कम्पनी वाले कागज देने से इन्कार कर दिया हुण्डी भी वापिस आगई पर उपरोक्त ज्ञानप्रेमियोंने बहुत कोशिश कर कागज भिजवाया जिससे ही हमने इस ग्रन्थ को समाज की सेवामे रख सके अतः आपका उपकार माना जाता हैं।

११—श्रीमान् त्रिभुवनदास लेहरचन्द शाह वड़ोदा वालों की मारफत शशीकान्त एण्ड कम्पनीने हमें कई ब्लौक छापनेके लिये देकर समाज के द्रव्य की रक्षा की है इस लिये हम आपका आभार समझते हैं।

१२ श्रीमान् देवकरणजी रूपकरणजी महता अजमेर वालोंने कागजो का स्टाक अपनी हवेलीमे रखवाया और समय-समय प्रेस वालों को देने में परिश्रम लिया अतः आपकी भी ज्ञान भक्ति हम भूल नहीं सकते हैं।

१३- सेठजी हीराचन्दजी संचेती अजमेर वालों ने भी हमारा अजमेर सं० २००० का चतुर्मास में सेवा का अच्छा लाभ उठाया है।

१४—श्रीमान् गणेशमलजी बसतीमलजी मिसरीमलजी वैद्य महता जोधपुर वालों ने भी इस ग्रन्थ के लिये प्रवन्ध करने में समय समय अच्छी सुविधाऐं कर दी थी।

१५—उपरोक्त सज्जनों के अलावा विशेष सहायता मुनि गुणसुन्दरजी की रही कि इनकी सहायता से ही मैंने इस वृहद्ग्रंथ लिखने में सफलता हांसिल की है।

१६—पण्डित गौरीनाथजी कि आपने कई संस्कृत पद्यः पाठ संध करने में सहायता [illegible]।

१७—श्रीमान् रामलालजी गोयल मैनेजर आदर्श प्रेस को तो आपने कई वर्षों से [illegible] करते आये हैं वरन इस ग्रन्थ के लिये तो आपने धार्मिक भावना से अच्छी सहायता [illegible]

सलाह देकर इस ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ादी है। और प्रेस के और भी सज्जनों ने एवं फोरमेन आदि ने समय समय पर अच्छी सहायता पहुँचाई है अतः आप सज्जनों का नाम भी भूल नहीं सकते हैं।

उपरोक्त सज्जनों के अलावा भी इस ग्रन्थ लिखने एवं प्रकाशन करवाने में जिन जिन सज्जनों ने हमें सहायता पहुचाई है उन सबका मैं सहर्ष उपकार प्रदर्शित करता हूँ। ॐ शान्ति

ग्रन्थका संक्षिप्त परिचय

अब हम इस ग्रन्थ का पाठकों को संक्षिप्त परिचय करवा देते हैं—

१—इस ग्रन्थ का नाम मैंने 'भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास' क्यों रखा ? है कि इस ग्रन्थमें मुख्य विषय भगवान् पार्श्वनाथ, की परम्परा में ८४ आचार्य हुए हैं उनका तथा उन आचार्योंके किये हुए शासन हितार्थ कार्यों को ही अग्र स्थान दिया है कारण इस विषय के आज पर्यन्त जितने ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनमें भ० पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास दृष्टिगोचर नहीं होता है यदि किसी ने लिखा भी है तो इतना ही कि 'भ० पार्श्वनाथ के छटे पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरिने वीरात् ७० वर्षे उपकेशपुर के क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर महाजन संघ की स्थापना की थी' पर बाद में भी पार्श्वनाथ के पट्टधर आचार्यों का हम पर कितना उपकार हुआ है कि जिन्होंने जैनधर्म की नीव ही क्यों पर जैनधर्म को जीवित रखा कह दिया जाय तो भी अतिशयोक्ति नहीं कही जा सकती कारण आज जैनधर्म पालन करने वाले ओसवाल पोरवाल और श्रीमाल वंश है वे उन्हीं आचार्यों के बनाये हुए हैं इतना ही नहीं पर उन आचार्यों द्वारा स्थापन की हुइ शुद्धि की मशीन कइ २००० वर्ष तक अपना काम करती रही जिसके जरियें लाखों नहीं पर करोड़ो अजैनों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा देकर महाजनसंघ की अशातित वृद्धि की थी ऐसे जबर्दस्त उपकार करने वाले आचार्यों के उपकार को भूलजाना एक बड़ा से बड़ा कृतध्नीपन कहा जा सकता है उस कृतघ्नीत्व के वज्रपाप से ही समज का पतन हो रहा है अतः मैंने उन आचार्यों का इतिहास लिख समाज के सामने रखा दिया है।

२—इस ग्रन्थ का नाम 'भ० पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास रखने से पाठक यह भूल न कर बैठे कि इस ग्रन्थमें केवल भ० पार्श्वनाथ की परम्परा का ही इतिहास है पर इस ग्रन्थमें भगवान् महावीर की परम्परा का इतिहास भी विस्तृत रूप से दिया गया है जितना भी मुझे उपलब्ध हुआ है। इनके अलावा भी जैनधर्म के साथ सम्बन्ध रखने वाले अनेक विषय का उल्लेख भी इस ग्रन्थ में यथा स्थान कर दिया गया है जिसको संक्षिप्त से बतला दिया जाता है।

३—राज-प्रकरण-इसमें महाराजा अश्वसेन के पश्चात् शिशुनागवंश, नंदवंश, सूर्यवंश, चन्द्रवंश, यादुवंश, मौर्यवंश, शुगवंश, विक्रमवंश, शकवंश चष्टानवंशके महाक्षत्रिप, कुशानवंश, गुप्तवंश', हुणवंश, वल्लभीवंश, चेटकवंश मगध का राजवंश, अंगदेश का राजवंश, कौसुवीराजवंश, कलिंगराजवंश, कोशलराजवंश, सिन्धु-सौवीरा राजवंश इनके अलावा दक्षिण के जैनराजाओंका तथा परमार, चौलक्य, च.वड़ा, राष्ट्रकूट, प्रतिहार, वगैरह जैन धर्म के साथ सम्बन्ध रखने वाले राजाओं का वर्णन एवं वंशावलियों भी दी गई हैं

४—इस प्रकरण में वंश कुल वर्ण गौत्र जातियों का इतिहास लिखा गया है इनके अलावा खंडेलवाल, नरसिंघपुरा बघेरवालादि दिगम्बरों की जातियों तथा अग्रवाल पल्लीवाल महेसरी वगैरह कि उत्पत्ति

५—इसमें जैनागमों की वाचना का वर्णन है, द्वादशवर्षीय जन संहारक दुष्काल के अन्त में पाटली पुत्र में संघसभा और आगम वाचना। पुनः वज्रसूरि के समय भयंकर दुष्काल के अन्त में सोपार पट्टन में आगम वाचना तीसरी मथुरानगरी तथा वल्लभी में आगम वाचना। आगमों के चारों अनुयोगद्वार पृथक् २ करना ८४ आगमों की संख्या ४५ आगमों के योगद्वाहन। जैन श्रमणों के लिये पुस्तके रखना एवं खोलना

बन्धनो का प्रायश्चित। आवश्यकता होने पर पुस्तकें लिखना वल्लभी नगरी में संघ सभा और आगमो को पुस्तकारूढ करना इत्यादि

६—चैत्यवास प्रकरण, इसमें चैत्यवासियोंके लिये चैत्यवास कबसे, चैत्यवास क्या सुविहित सम्मत ? चैत्य वास से हानी लाभ ? चैत्तवास में विकार, चैत्यवास के समय समाज का संगठन, संघ व्यवस्था समाज की उन्नत दशा, चैत्यवासी बड़े बड़े धुरंधर आचार्य जिन्हों का समाज एवं राजामहाराजो पर जबर्दस्तप्रभाव चैत्यवास हटा देने से हानी लाभ इत्यादि

७— व्यापारी प्रकरण—जैन व्यापारियों के व्यापार क्षेत्र की विशालता-भारत और भारत को बाहर पश्चात्य प्रदेशों में व्यापारियों की पेढियों और व्यापार से लक्ष्मी का वरदान इत्यादि—

८—गच्छ प्रकरण—तीर्थंकरों की मौजुदगीमें गच्छों की आवश्यकता—आचार्यों के शिष्योंसे पृथक् २ गच्छ, क्रिया भेद के गच्छ, एवंग्रामों के नाम के गच्छ, बर्तमानमें ८४ गच्छ कहे जाते हैं पर इस प्रकरण में ३१० गच्छों का पता लगाया है इत्यादि—

६—तीर्थ प्रकरण—इसमें प्राचीन अर्वाचीन तीर्थो का वर्णन है।

१०—पट्टावलीयां-इसमें जितने गच्छों की पट्टावलियो उपलब्ध हुई हैं उनको तथा गच्छों की शाखाए वगैर ही पट्टा-वलियों को भी दर्ज कर दिया है।

११—धर्म का प्रचार—किस प्रान्त में किस समय धर्म का प्रचार किस आचार्य द्वारा हुआ और किस कारण वे प्रान्त धर्म विहीन बनी।

१२—शाह प्रकरण—जैनोमें जगतसेठ नगरसेठ टीकायत चौधरी चौवटीया वोहरा कोठारी और शाह पद्वियों कब एवं क्यों तथा जैन समाज में ७४॥ शाह क्यों कहे जाते हैं इत्यादि।

१३—सिक्का प्रकरण-सिक्का का चलन कब से प्रारम्भ हुआ है इसके पूर्व व्यापार कैसे चलता था सिक्कों पर धार्मिक चिन्ह इत्यादि।

१४—स्तूभ प्रकरण—जिसमें प्राचीन समय में स्तूभ भी बनवाये जाते थे अतः जैनोंने भी बहुत से स्तूभ करवाये थे पर विद्वान लोगो ने भ्रांति से जैन स्तूभों को बौद्धोंकठहरादिये पर शोध खोज करने पर वे स्तूभ जैनों के ही सिद्ध हो गये इत्यादि

१५— गुफा प्रकरण-इसमें गुफाओं का वर्णन है पूर्व जमानेमें जैन श्रमण प्रायः गुफाओं एवं जंगलोंमें ही रहते थे इत्यादि इनके अलावा और भी कई विषय इस ग्रन्थ में लिखे गये हैं फिर भी जैन साहित्य समुद्र है जिसका पार पाना मुश्किल है तथापि अब सेकड़ों ग्रन्थ की बजाय इस एक ही ग्रन्थ पढ़नेसे ही पाठको का काम निकल आवेगा

अन्तमें मैं मेरे प्यारे पाठकों से इतना कहदेना आवश्यक समझता हूँ कि एक व्यक्ति पर अनेक कामों की जुम्मावारी होते हुए भी स्वल्प समयमें इतना बड़ा ग्रन्थ लिख कर समाज की सेवामें उपस्थित करदे और उनमें कई त्रुटियो रहजाना यह एक स्वभाविक बात है दूसरा जिस सिलसिलावर को पहली मैंने योजना बनवाई थी पर समय एवं सहायक के अभाव में ठीक उसकी पूर्ति कर नहीं सका दूसरा एक तो मेरी उतावल से लिखने की प्रकृति दूसरी इस समय मेरी ६३ वर्षों की अवस्था और नेत्रों की कमजोरी होने से कहीं कहीं अशुद्धि भी रह गई हैं फिर भी सायमें शुद्धिपत्र भी दे दिया गया है पाठक पहले शुद्धिपत्र से पुस्तक शुद्ध कर पढ़ें फिर भी यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो मैं मेरे पाठकों से क्षमा की प्रार्थना करता हुआ मेरी प्रस्तावना को समाप्त कर देता हूं शुभम्

ता० १-११-६१
अजमेर

ज्ञानसुन्दर

इस ग्रंथ को लिखने में अन्य ग्रंथों की ली गई सहायता

१ उपकेशगच्छ की पट्टावली नं० १
२ ,, ,, ,, नं० २
३ ,, ,, ,, नं० ३
४ उपकेशगच्छ चरित्र नं० १
५ ,, ,, ,, नं० २
६ नभिनन्दन जिनोद्धार
७ उपकेशगच्छ प्रबन्ध
८ भ० पार्श्वनाथ चरित्र
९ उत्तर भारत में जैनधर्म
१० उपकेशगच्छ छन्दबद्ध पट्टावली
११ उपकेशगच्छ मारवाड़ी भाषा पट्टा०
१२ उपकेशगच्छचार्यों की बड़ी पूजा
१३ उपकेशगच्छी श्रावकों की वंशावलियाँ
१४ 1 चौरडिया जाति की वही
१५ 2 वैद्य महता जाति का वडा ओलिया,
१६ 3 बाफणा जाति का वडा ओलिया
१७ 4 यतिवर्य लाभसुन्दरजी द्वारावंशा०
१८ 5 यतिवर्य माणकसुन्दरजीद्वारा ,,
१९ 6 यतिवर्य दीपसुन्दरजी द्वारा ,,
२० 7 भट्टारक देवगुप्तसूरि द्वारा वंशा
२१ 8 छाजेड़ जाति की वंशावलीयाँ
२२ 9 लुणावत जाति की वंशावलियाँ
२३ 10 संचेती जाति की वंशावलियाँ
२४ 11 बीसगौत्रों की वही
२५ कोरंटगच्छीय श्री पूज्यजी की वही
२६ कोरंटगच्छीय श्रावकों की वंशावलीयाँ
२७ कोरंटगच्छ की पट्टावली
२८ कोरंटगच्छ का इतिहास शिलालेखादि
२९ प्रभाविक चरित्र
३० प्रबन्ध चिंतामणि
३१ परिशिष्ट पर्व
३२ प्रबन्ध कोष
३३ विविध तीर्थ कल्प
३४ जैनगौत्र संग्रह
३५ आंचल गच्छ पट्टावली
३६ हेमवंत थेरावली
३७ तपागच्छ पट्टावली त्रिमासिक में
३८ तपागच्छ पट्टावली जै० क० हेरेल्ड में
३९ तपागच्छ पट्टावली प० समुच्चीय में
४० पल्लीवालगच्छ पट्टावली (श्री अगर०
४१ जैनधर्म का इतिहास (भावनगर०)
४२ जैनधर्म का प्राचीन इतिहास भाग १
४३ जैनधर्म का प्राचीन इतिहास भाग २
४४ महाजनवंश मुक्तावली
४५ जैन सम्प्रदाय शिक्षा
४६ स्याद्वादानुभव रत्नकर
४७ कल्पसूत्र हिन्दी भाषान्तर
४८ प्रभुमहावीर पट्टावली (स्था० मणिला०)
४९ नागपुरिया तपागच्छ पट्टावली
५० महावीर चरित्र
५१ जम्बु स्वामी चरित्र
५२ श्रेणिक चरित्र
५३ नीनाणवे प्रकार की पूजा
५४ शत्रुंजय महात्म्य
५५ शत्रुंजय का रास
५६ शत्रुंजय उद्धारसार
५७ श्री आचारांगसूत्र
५८ श्री सूयगड़ा सूत्र
५९ श्री स्थानायांगसूत्र
६० श्री समवायांगजी सूत्र
६१ श्री भगवतीजी सूत्र
६२ श्री ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र
६३ श्री उपासकदशांगसूत्र
६४ श्री अन्तगढदशांगसूत्र
६५ श्री अनुतरोववाई सूत्र
६६ श्री प्रश्नव्याकरणसूत्र
६७ श्री विपाकसूत्र
६८ श्री उववाईजीसूत्र
६९ श्री राजप्रश्नीजी सूत्र
७० श्री जीवाभिगमजीसूत्र
७१ श्री पन्नवणाजी सूत्र
७२ श्री जम्बुद्वीप पन्नतिसूत्र
७३ श्री निरियावलकाजी सूत्र
७४ श्री उत्तराध्यायनजी सूत्र

७५ श्री दशवैकालीक सूत्र
७६ श्री नंदीसूत्र
७७ श्री अनुयोगद्वार सूत्र
७८ श्री ओघनिर्युक्तिसूत्र
७९ श्री निशीथसूत्र
८० श्री वृहद् कल्पसूत्र
८२ श्री व्यवहारसूत्र
८३ श्री दशश्रुतस्कन्ध सूत्र
८४ श्री कल्पसूत्र सुबोधका
८५ श्री कल्प द्रुम टीका
८६ श्री पण्ड निर्युक्तिसूत्र
८७ श्री आवश्यकजी सूत्र
८८ बौद्धग्रन्थ महावगा
८९ बौद्ध ग्रन्थ दीर्घनिकाय
९० ,, ,, मज्जमिकाय
९१ ,, ,, विनय पिटिका०
९२ ऋग्वेद
९३ यजुर्वेद
९५ महाभारत
९६ रामायण
९६ मनुस्मृति
९७ पद्मपुराण
९८ ब्रह्माण्ड पुराण
९९ प्रभासपुराण
१०० शिवपुराण
१०१ श्रीमालपुरांण
१०२ नागपुरांण
१०३ योगवासिष्ट
१०४ दुर्वास महिम्नस्तोत्र
१०५ भवानी सहस्र नाम
१०६ स्कन्धपुरांण
१०७ वृहद्अरण्यका
१०८ कालीतंत्र
१०९ महानिर्वाण तंत्र
११० भैरवीचक्र तंत्र
१११ रुद्रायमलतंत्र
११२ वेद अंकुश
११३ सर्व धर्म संग्रह
११४ सुभाषीत रत्नभाण्डागर
११५ उपदेश कथाकोष
११६ उपदेशप्रसाद
११७ बारह व्रतों की टीप
११८ शीघ्रबोध भाग १ ला
११९ जैनतत्वालोक०
१२० मारवाड़ की ख्यात
१२१ मुनौयत नैणसी की ख्यात भा ?
१२२ मुनौयत नैणसी की ख्यात भा० २
१२३ साहित्यरत्नाकर
१२४ विविध विषय विचार
१२५ आगम सार संग्रह
१२६ महाजन संघ
१२७ प्राचीन जैन स्मारक वंबई प्रान्त
१२८ ,, ,, ,, मैसूर प्रान्त
१२९ ,, ,, ,, मध्य प्रान्त
१३० ,, ,, ,, वंगाल प्रान्त
१३१ ,, ,, ,, संयुक्त प्रान्त
१३२ ,, ,, शिलालेख दक्षिण प्रान्त के
१३३ जैन लेख संग्रह खण्ड १ (बा० पू० ना०)
१३४ ,, ,, ,, खण्ड २ ,,
१३५ ,, ,, ,, खण्ड ३ ,,
१३६ धातु प्रतिमा लेख संग्रह भा० १ (बु०)
१३७ ,, ,, ,, ,, भा० २ ,,
१३८ जैन लेख संग्रह भा० १ (जिनवि०)
१३९ ,, ,, ,, भा० २ ,,
१४० जैन शिलालेख भा० १ (आ० वि० धर्म-)
१४१ राजपूताना का इतिहास
१४२ मारवाड़ का इतिहास
१४३ भारत के प्राचीन राजवंश भा० १
१४४ ,, ,, ,, भा० २
१४५ ,, ,, ,, भा० ३
१४६ जैनधर्म विषय प्रश्नोत्तर
१४७ जैनतत्वादर्श भा० १-२
१४८ भारत इतिहास की रूपरेखा भा० १
१४९ ,, ,, ,, भा० २
१५० प्राचीन भारत वर्ष भा० १
१५१ ,, ,, ,, भा० २
१५२ ,, ,, ,, भा० ३

१५३ „ „ „ भा० ४
१५४ „ „ „ भा० ५
१५५ एक जूना पन्ना
१५६ श्रमण भगवान महावीर
१५७ वीर निर्वाण संवत् जैनकालागणना
१५८ राजपूताना की शोध खोज
१५९ कुवलयमाला कथा
१६० श्रीमाल वणियों का जातिभेद
१६१ अग्रवाल जाति का इतिहास
१६२ महेसरी कल्पद्रूम
१६३ पीसांगण की हस्तलिखित पोथी
१६४ खजवाणा की हस्तलिखित पोथी
१६५ समररासु (आम्रदेवसूरि)
१६६ ओसियाँ का प्राचीन शिलालेख
१६७ ओसियाँ का एक प्राचीन कवित
१६८ ओसवाल जाति का रासा
१६९ ओसवाल भीपालोरारास
१७० महाजनों के प्राचीन कवित
१७१ मारी सिन्ध यात्रा
१७२ वंग चूलिया सूत्र
१७३ निशीथसूत्र चूर्णी
१७४ वृहद् कल्पसूत्र चूर्णी
१७५ आवश्यकसूत्र चूर्णी
१७६ नागवंशी राजाओं का वर्णन
१७७ मौर्यवंशी राजाओं का इतिहास
१७८ हिन्दू सम्राट (चन्द्रगुप्तमौर्य)
१७९ अशोक के धर्मलेख संग्रह
१८० सम्राट् सम्प्रति
१८१ गांगाणी का प्रा० स्तवन
१८२ महान् सम्मति
१८३ कलिंग का इतिहास
१८४ बौद्ध दिव्यावदान ग्रन्थ
१८५ बौद्ध ग्रन्थ अशोकावदान
१८६ पद्चुन् अशोक और महान सम्प्रति
१८७ महेश्वर पुराण
१८८ टॉड राजस्थान
१८९ नवतत्त्व भाष्य
१९० विचारश्रेणि थेवरावली
१९१ तित्थोगाली पइन्ना
१९२ वैश्य काण्ड नामक पुस्तक
१९३ जैन रामायण
१९४ जैन साहित्य का इतिहास
१९५ सिंहलद्वीप का इतिहास
१९६ सुदर्शन विलास बौद्धग्रन्थ
१९७ कालसप्तति
१९८ दीवाली कल्प
१९९ रत्न संचय
२०० तत्वार्थ सूत्र
२०१ कालकाचार्य की कथा
२०२ वृहत्कल्प भाष्य
२०३ युग प्रधान
२०४ कथावली
२०५ योगशास्त्र
२०६ ज्योतिष कारण्डु पइन्ना
२०७ लोकप्रकाश
२०८ उपदेशकल्पवल्ली ?
२०९ लिपिमाला
२१० प्राप्त हुए शिलालेख
२११ भद्रबाहु चरित्र
२१२ स्त्री मुक्ति प्रकरण
२१३ केवलीभुक्ति प्रकरण
२१४ दिगम्बर पट्टावली का भाव
२१५ मथुरा के शिलालेख
११६ ज्ञानावर्णव
११७ श्रावक मूलाचार
११८ रत्नमालिका
११९ पोरवाल जाति का इतिहास
२२० अंगपन्नति
२२१ पार्श्व वस्ती का शिलालेख
२२२ सरस्वती मासिक का लेख
२२३ भारत के व्यापारी
२२४ महाजन संघ की पंचायतियाँ
२२५ मार्ताण्ड पुराण
२२६ भागवत पुराण
२२७ दान महात्म्य
२२८ ब्रह्मचर्य महात्म्य
२२९ कर्मग्रन्थ
२३० प्रा. जैन इतिहास भा०

१६

२३१ काव्यमाला गुच्छक सप्तम्
२३२ प्रबन्धावली
२३३ आत्मानन्द शताब्दी अंक
२३४ महावीर विद्यालय रोप्य महोत्सवांक
२३५ गच्छमत प्रबन्ध
२३६ विमल चरित्र
२३७ तपागच्छ श्रमण वृत्त
२३८ नागरी प्रचारणी पत्रिका अंक
२३९ शंखस्मृति
२४० आसन स्मृति
२४१ पारासर स्मृति
२४२ दर्शनसार दिगम्बर
२४३ जैनहिषैती भाग ७ वा
२४४ डा, फूहरार का मत
२४५ प्रोफेसर ए, चक्रवर्ति
२४६ बौद्ध साधु धेनूसेन का ग्रन्थ
२४७ जैनीझम (बाबू कृष्णा०)
२४८ सुक्त मुक्तावली
२४९ ललित विस्तरा
२५० डा० स्टीवेन्स का मत
२५१ डा० भाण्डाकार
२५२ मारी मेवाड़ यात्रा
२५३ सूरीश्वर और सम्राट
२५४ शतपदी भाषान्तर
२५५ डा० सर कनिंग होम
२५६ डा० फ्लट साब का मत
२५७ जैनसत्यप्रकाशमासिक
२५८ जैन सामाहिक भावनगर
२५९ जैसलमेर का इतिहास
२६० मेहताजी का चरित्र
२६१ भगवान् पार्श्वनाथ
२६२ भ० महावीर—म० बुद्ध
२६३ राजपूतांना के जैनवीर
२६४ जैनवीरों का इतिहास
२६५ मारवाड़ के सुपुत
२६६ मेवाड़ के सुपुत
२६७ प्राचीन गुर्जर काव्य संचय
२६८ जैन ऐतिहासिक रास माला
२६९ जैन ग्रन्थावली
२७० नवपद प्रकरण टीका
२७१ ऐतिहासिक जैन काव्य
२७२ प्रवचन परीक्षा
२७३ पंचासक प्रकरण
२७४ राज तरंगिणी
२७५ त्रिषष्टि सि० पुरुष चरित्र
२७६ वस्तुपाल तेजपाल
२७७ विमलमंत्री
२७८ बप्पभट्टसूरि और आमराजा
२७९ जैसलमेर ज्ञान भ० सूची
२८० पाटण ज्ञान भंडारों का सूची पत्र
२८१ बडौदा सेंट्रल लाइब्रेरी का सूची पत्र
२८२ कुमारपाल चरित्र
२८३ सिरोहीराज का इतिहास
२८४ उदयपुर राज का इतिहास
२८५ पाटण का इतिहास
२८६ सिद्धान्त समाचारी
२८७ ओसवाल जाति का इतिहास
२८८ जैनपत्र का रोप्यमहोत्सवांक
२८९ जैनगुजर कवियों भाग
२९० प्राचीन कलिंग और खारवेल
२९१ जैनसाहित्य का प्र० इतिहास
२९२ प्रगट प्रभाविकपार्श्वनाथ
२९३ तीर्थङ्करों के बोल
२९४ जैनसाहित्य संशोधक मासिक
२९५ जैनोंप्रतापी के पुरुष
२९६ साढा चमोतर शाह की ख्यात प्र० १
२९७ " " प्र० २
२९८ " " प्र० ३
२९९ " " प्र० ४
३९० " " प्र० ५

भगवान् पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध करने को बहु पश्चात्य विद्वानों ने अपने २ ग्रन्थों में उल्लेख किये हैं जिनको उत्तर भारत में जैनधर्म नामक पुस्तक में नामोल्लेख किया है पाठकों के जानने के लिये यह लिख दिया जाता है—

1. "Chandragupta Maurya" by Ho. H. L. O. Garrett M. A. I. E. S.
2. Dr. Vincent Smith,

(History of India) Page 146.
3. The Venerable Axcetic Mahavire's Parents were Worshipers of Parsva and followers of the Sraimans (S. B. E. Vol 22 Kalpa Sutra B. K. II Lc. I5. P. 194.)
4. Buhler, The Indian Sect of the Jainas, p. 32.
5. Jacobi, S. B. E., x/v., p. XXI.
6. Wilson, op. cit., i , p. 334.
7. Lassen, I. A., ii., p. 197.
8. Jacobi, I. A,, ix. p. 160.
9. Belvalkar, The Brahma-Sutras, p. 106.
10. Dasgupta, op. cit , p 173.
11. Radha Krishna, op. cit., p. 281.
12. Charpentier. C. H. I., i., p 153.
13. Mazumdar, op. cit., pp. 262 ff.
14. Guerinot, Bibliographie Jaina, Int., p. xi.
15. Frazer, Literary History of India, p. 128.
16. Elliot, Hinduism and Budhism, i., p. 110
17. Poussin, The way to Nirvana, p. 67.
18. Guerinot, op. and loc, Eit.
19. Charpentier, Uttaradhyayana Int., p. 21.
20. Colebrook, op. cit., ii , p. 377.
21. Stevenson (Rev.), op. and loc, cit.
22. Thomas (Edward), op. cit., p. 6.

\+ + + +

23 Colebrooke, op. and loc. cit.
24. Early faith of Ashok Jainism by Dr Thomas South Indian page 39. Jainism II
25. Vienna Oriental Journal VII 382.
26. Indian Antiquary XXI 5960.
27. Jainism of the Early Faith of Asoka page 23.
28 Journal or the Behar and Orissa Research Society Volume III.
29. Oxford History of India.

इस ग्रन्थ में आये हुए चित्रों का संक्षिप्त परिचय

विषयानुक्रमणिका

संसार में विद्वानों की संख्या हमेशों कम से कम हुआ करती है कि वे संक्षिप्त लेख होने पर भी उसका भाव को ठीक समझ सके पर साधारण लिखे पढे कि संख्या विशेष होती है उन लोगों को बोध के लिये सादी सरल भाषा और लेख विस्तारपूर्वक स्पष्ट लिखा हुआ हो तो वे सुविधा के साथ लाभ उठा सकते हैं अतःमैंने जैसे इस ग्रन्थ को विस्तार से लिखा है वैसे ही इसकी विषयानुक्रमणिका विस्तार से लिखना समुचित समझा है और इस प्रकार विषयानुक्रमणिका विस्तारसेलिखने में एक दो फार्म बढ़ जायगा पर इतना बड़ा ग्रंथ में एक दो फार्म का खर्चा अधिक हो जाना कोई बात नहीं है पर साधारण जनता विषयानुक्रमणिका पढ़ कर सम्पूर्ण ग्रन्थ के भावों को ठीक तरह से समझ ले यही हमारे उद्देश्य की पूर्ति है ।

२८-आचार्य कक्कसूरि ७६४

(वि स. २२६ २५७)

२९-आचार्य देवगुप्तसूरि ७७५

(वि. सं. २५७-२७०)

३०-आचार्य सिद्धसूरि ७९१

(वि० स० २७०-४००)

३१-आचार्य रत्नप्रभसूरि ८१[illegible]

(वि० सं० [illegible])

सिक्का-प्रकरण ९८७

स्तूप-प्रकरण ९९४

मथुरा का सिंह स्तूप

सांची स्तूप

३७–आचार्य देवगुप्तसूरि १०२७

(वि० सं० ६०१—६३१)

३८–आचार्य सिद्धसूरि १०४६

(वि० सं० ६३१—६६०)

३९–आचार्य ककसूरि (८) १०६३

(वि० सं० ६६०—६८०)

कल्पसूत्र की सुघोषा घंटा
प्रज्ञापन्नासूत्र का परिचारणपद
दाहाजा में बिनोवहलों की गाडियों
राजकुमार अमरयश की मूली का चमत्कार
एक वृक्ष के पुष्प से मनुष्य गधा बनजाय
चूर्ण का चमत्कार

त्रस जीव अग्नि का आहार कर सके
वृक्ष के फलों का चमत्कार
योनि प्रभत ग्रन्थ की अपूर्व विद्या
सुवर्ण एवं सरसप विद्या ११८५
राजसिंह का काष्ट—मयूर
मदन चरित्र उडन खटोला
मृगत्पशुग्रन्थतिर्यंच की भाषा
उपदेशप्रसाद का उदाहरण
सोपर में विक्रमराजा सोमल
सोमल की अद्भुत कला
कोकास की हस्तकला जैन धर्मी
उज्जैन में विचार धवल राजा
चार रत्नों के चार काम
पाटकी पुत्र का राजा उज्जैन पर
राजा का नाम काकजंघ होजाना
कोकास भी उज्जैन में
काष्ट के कबूतरों द्वारा धान
राजा से भेंट कोकास को मान
काष्ट का गरूड विमान
रोगी कोकास आकाश में
या तीर्थो की पहचान ११८८
राजा जैनधर्म छटाव्रत की मर्यादा
कांचनपुर में राजाराणी कोकास केद
कोकास की कला से मुक्त
पूर्व भाव-दोनों की दीक्षा ११९३
कैवल्यज्ञान होकर मोक्ष में

आचार्य विजयसिंहसूरि ११९४
भरोंच नगर का प्राचीन इतिहास
ब्राह्मणों का यज्ञ ५९७ का बलीदान
अश्व के लिए मुनि मु० पधारे
अपना तथा अश्व का पूर्व भव

अश्वबोध तीर्थ की स्थापना
शुकन की का पूर्वभव
सुदर्शना राजपुत्री होकर
इस तीर्थ का उद्धार करवाया
सम्राट् सम्प्रति विक्रम के उद्धार
सूरिजी गिरनार पर अंबा देवी
संतुष्टहो सूरिजी गुटका प्रदान की ११९८
जिससे मनचाहा काम कर सके
भरोंच नगर अग्नि से भस्म होगया
सूरिजी ने गुटक से तीर्थोद्धार करवाया

आचार्य वीरसूरि ११९८

श्रीमालनगर शिवनाग पूर्णलता
वीरनामका एक पुत्र सात स्त्रियां
सत्यपुरी महावीर की हमेंशा यात्रा
माताकामृत्यु एकर पत्नी को कोटिर द्रव्य
देकर आप निवृति विमलगणि अंग विद्या
देव बस में जीव दया राजा के द्वारा
अष्टापद की यात्रा देवसहाय
देवतों के चावल ले आये संघ
राजा को जैनधर्म की दीक्षा
एक राजपुत्र की जैन श्रमण दीक्षा
वीरसूरिका समय

आचार्य वीरसुरि दूसरे १२०१

भावहडा गच्छ के आचार्य वीरसूरि
पाटण का सिद्धराजा की राजसभा में
राजा का अहम् भाव सूरिजी के विहार का
विचार दरवाजेपर पेहरा आकाशगमन
से पाली जाना राजा का पश्चाताप
सूरिजी बोद्धपुर में बोद्धों की परास्त
ग्वालियर का राजा चामर छत्र दिये
नागपुर में सूरिजी पाटण के प्रधान
चामर छत्र राजा को भेज दिये
पुनः पाटण में पदार्पण
वादिसिंह नामका संहयदर्शनी
अभिमानी वीरसूरि द्वारा परास्त
कमलकीर्ति दिगम्बर की पराजय

आचार्य वप्पभट्टिसूरि १२०४

दुबतिथि-बप्प-भट्टिका पुत्र सूरपाल घर
से निकल मोढेरा गयो सिद्धसूरी की भेट
माता पिताकी आज्ञा से दीक्षा बप्पभट्ट
मुनि की प्रबल प्रज्ञा एक दिन में १००० श्लोक कण्ठस्थ करना

राजपुत्र आमकी भेट दुःख में सहाय
आम को ग्वालियर का राज
मुनि बप्पभट्टि को बुलाना हस्ती पर बैठा
कर नगर प्रवेश महोत्सव किया
सूरिपद सिंहासन पर बैठना
आमराजाने सुवर्ण मूर्त्ति और मन्दिर
ब्राह्मणों की ईर्षा सूरिजी का मान में
सूरिजी अन्यत्र विहार कर दिया
लक्ष्मणावती का राज धर्म ने सूरि का
स्वागत कर अपने वहा रखा राजा आम
का पश्चाताप प्रधानों को ही क्यों राजा आम
स्वयं सूरिजी की विनती को गया
एकगाथाका १०८ अर्थ सूरिजी ने किया
राजाके साथसूरिजीग्वालयेरमें आये
नगर प्रवेश का महोत्सव १२०९
आ. सिद्धसेन. बीमार बप्पभट्टि मोढेरामें
पुनः राजा आमके पास आये
समस्याओं में सूरि का चमत्कार
सूरिजी और बौद्धाचार्य के शास्त्रार्थ
सूरि को विजय में राजा आम की वि०
एकपाद की चार समस्याए की पूर्ति
बोद्धाचार्य जैन धर्म स्वीकार
वाकूराज विद्वान भी जैनधर्म स्वी.
भ. नन्नसूरि का राजसी ठाड आम ने देखा
राजा आम नटनी से मोहित हो गया
राजा आम का पूर्व भव
सूरिजी के शील की परीक्षा वैश्या द्वारा
राजगृह का किला. भोज की नजर
राजा आम जैनधर्म स्वीकार स्वर्ग में
सूरिजी का अनशन. स्वर्गवास
दुदुक वैश्या गामी राजा की मृत्यु
कनौज का राज भोज करने लगा
आम राज से भी भोज की विशेषता

कल्पसूत्र की सुघोषा घंटा
प्रज्ञापन्नासूत्र का परिचारणपद
दाहाजा में विनोवहलों की गाडियों
राजकुमार अमरयश की मूली का चमत्कार
एक वृक्ष के पुष्प से मनुष्य गधा बनजाय
चूर्ण का चमत्कार
त्रस जीव अग्नि का आहार कर सके
वृक्ष के फलों का चमत्कार
योनि प्रभत ग्रन्थ की अपूर्व विद्या
सुवर्ण एवं सरसप विद्या ११८५
गजसिंह का काष्ट—मयूर
मदन चरित्र उडन खटोला
मृगत्पशुमन्यतिर्यंच की भाषा
उपदेशप्रसाद का उदाहरण
सोपर में विक्रमराजा सोमल
सोमल की अद्भुत कला
कोकास की हस्तकला जैन धर्मी
उज्जैन में विचार धवल राजा
चार रत्नों के चार काम
पाटली पुत्र का राजा उज्जैन पर
राजा का नाम काकजंघ होजाना
कोकास भी उज्जैन में
काष्ट के कबूतरों द्वारा धान
राजा से भेंट कोकास को मान
काष्ट का गरूड विमान
राजा रांगी कोकास आकाश में
नगरों या तीर्थों की पहचान ११८८
जैनधर्म छटाव्रत की मर्यादा
कांचनपुर में राजारानी कोकास केद
कोकास की कला से मुक्त
भाव-दोनों की दीक्षा ११९३
स्वर्ग। होकर मोक्ष में

आचार्य विजयसिंहसूरि ११९४
भरोंच नगर का प्राचीन इतिहास
ब्राह्मणों का यज्ञ ५९७ का बलीदान
अश्व के लिए मुनि सु० पधारे
अपना तथा अश्व का पूर्व भव

अश्वबोध तीर्थ की स्थापना
शुकन की का पूर्वभव
सुदर्शना राजपुत्री होकर
इस तीर्थ का उद्धार करवाया
सम्राट् सम्प्रति विक्रम के उद्धार
सूरिजी गिरनार पर अंबा देवी
संतुष्टहो सूरिजी गुटका प्रदान की ११९८
जिससे मनचाहा काम कर सके
भरोंच नगर अग्नि से भस्म होगया
सूरिजी ने गुटक से तीर्थोद्धार करवाया

आचार्य वीरसूरि ११९८

श्रीमालनगर शिवनाग पूर्णलता
वीरनामका एक पुत्र सात स्त्रियां
सत्यपुरी महावीर की हमेंशा यात्रा
माताकामृत्यु एक२ पत्नी को कोटि२ द्रव्य
देकर आप निवृति विमलगणि अंग विद्या
देव बस में जीव दया राजा के द्वारा
अष्टापद की यात्रा देवसहाय
देवतों के चावल ले आये संघ
राजा को जैनधर्म की दीक्षा
एक राजपुत्र की जैन श्रमण दीक्षा
वीरसूरिका समय

आचार्य वीरसुरि दूसरे १२०१

भावहडा गच्छ के आचार्य वीरसूरि
पाटण का सिद्धराजा की राजसभा में
राजा का अहम् भाव सूरिजी के विहार का
विचार दरवाजेपर पेहरा आकाशगमन
से पाली जाना राजा का पश्चाताप
सूरिजी बोद्धपुर में बोद्धों की परास्त
ग्वालियर का राजा चामर छत्र दिये
नागपुर में सूरिजी पाटण के प्रधान
चामर छत्र राजा को भेज दिये
पुनः पाटण में पदार्पण
वादिसिंह नामका संख्यदर्शनी
अभिमानी वीरसूरि द्वारा परास्त
कमलकीर्ति दिगम्बर की पराजय

आचार्य बप्पभट्टिसूरि १२०४

दुबतिथि-बप्प-भट्टिका पुत्र सूरपाल घर
से निकल मोढ़ेरा गयो सिद्धसूरी की भेट
माता पिताकी आज्ञा से दीक्षा बप्पभट्ट
मुनि की प्रबल प्रज्ञा एक दिन में १०००
श्लोक कण्ठस्थ करना
राजपुत्र आमकी भेट दुःख में सहाय
आम को ग्वालियर का राज
मुनि बप्पभट्टि को बुलाना हस्ती पर बैठा
कर नगर प्रवेश महोत्सव किया
सूरिपद सिंहासन पर बैठना
आमराजाने सुवर्ण मूर्त्ति और मन्दिर
ब्राह्मणों की ईर्षा सूरिजी का मान में
सूरिजी अन्यत्र विहार कर दिया
लक्ष्मणावती का राज धर्म ने सूरि का
स्वागत कर अपने वहां रखा राजा आम
का पश्चाताप प्रधानों को ही क्यों राजा आम
स्वयं सूरिजी की बिनती को गया
एकगाथाका १०८ अर्थ सूरिजी ने किया
राजाके साथसूरिजीग्वालयेरमें आये
नगर प्रवेश का महोत्सव १२०९
आ. सिद्धसेन. बीमार बप्पभट्टि मोढ़ेरामें
पुनः राजा आमके पास आये
समस्याओं में सूरि का चमत्कार
सूरिजी और बौद्धाचार्य के शास्त्रार्थ
सूरि को विजय में राजा आम की वि०
एकपाद की चार समस्याए की पूर्ति
बोद्धाचार्य जैन धर्म स्वीकार
वाक्राज विद्वान भी जैनधर्म स्वी.
भ. नन्नसूरि का राजसी ठाठ आम ने देखा
राजा आम नटनी से मोहित हो गया
राजा आम का पूर्व भव
सूरिजी के शील की परीक्षा वैश्या द्वारा
राजगृह का किल्ला. भोज की नजर
राजा आम जैनधर्म स्वीकार स्वर्ग में
सूरिजी का अनशन. स्वर्गवास
दुदुक वैश्या गामी राजा की मृत्यु
कनौज का राज भोज करने लगा
आम राज से भी भोज की विशेषता

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास

उत्तरार्द्ध

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास पूर्वार्द्ध की दो जिल्दे पाठकों की सेवामें पहुच गई जिनको पढ़ने से आपको ज्ञात हो चूका है कि इसमें जैनधर्म का कितना विस्तृत इतिहास आया है कि आजपर्यन्त ऐसा ग्रन्थ कहीं से प्रकाशित नहीं हुआ होगा खैर अब पाठकों की यह जिज्ञासा अवश्य रहती होगी कि—इस ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में क्या क्या विषय आवेंगे ? अतः यहां पर संक्षिप्त से बतला देना अच्छा होगा कि—

१—भगवान् पार्श्वनाथ के ५१ से ८४ पट्टधर आचार्यों का जीवन तथा उनके शासन में भावुकों की दीक्षाए मन्दिरों की प्रतिष्ठाए तीर्थों के संघादि शुभकार्य—

२—भगवान् महावीर के ४० वाँपट्टधर से विर्तमान के आचार्यों का जीवन तथा उनके जीवन के शासन सम्बन्धी कार्यों का इतिहास जितना मुझे मिला है।

३—तीर्थाधिकार इसमें प्राचीन अर्वाचीन तीर्थों का इतिहास उनकी उत्पति मन्दिरों-मूर्तियों की प्रतिष्ठा का समयादि सब हाल लिखा जायगा।

४—गच्छाधिकार—भ० महावीर के पश्चात् किस समय से तथा किस कारण से और किस पुरुष द्वारा कौन सा गच्छ उत्पन्न हुआ यो तो ८४ गच्छ कहे जाते हैं पर मेरी शोध खोज से ३१० गच्छों का पता तो मिल गया है।

५—जैनशासन के अन्दर जैसे पृथक् २ गच्छ निकले हैं वैसे कई मत्त एवं पन्थ भी निकले उन लोगों ने अलग मत्त पन्थ निकाल कर क्या किया ?

६—चैत्यवासी अधिकार चैत्यवास कब से-क्यों और किसने किया चैत्यवास के समय जैन समाज की दशा तथा साथ में राज महाराजा पर चैत्यवासियों का प्रभाव, चैत्यवास में विकार कब से हुआ और चैत्यवास के हटाने से समाज को क्या क्या हानी लाभ हुआ ?

७—पट्टावली—अधिकार जैनधर्म में जितने गच्छ हुए उन गच्छों की पट्टावलियाँ सब तो नहीं मिलती हैं पर जितनी मिली है उनको लिखी जायगी—

८—जैन जातियों—जैनाचार्यों ने अजैनों को प्रतिबोध कर जैनधर्म में दीक्षित किये बाद किस कारण से कौन कौन जातियों बनी जिसका विवरण। साढ़ा बारह न्यात प्रान्तवर ८४ जातियों वगैरह

९—आगमाधिकार—जैनधर्म के मूल अंगोपांग आगमों के अलावा किस समय किन किन आचार्यों ने किस किस विषय के ग्रन्थों का निर्माण किया।

१०—जैनधर्म कहां तक राष्ट्र-राजाओं का धर्म रहा अर्थात् कहाँ तक राजा महाराजा जैनधर्म के उपासक बन कर रहे बाद जैन लोग राजाओं के मंत्री, महामंत्री सेनापति दीवान प्रधानादि उच्चाधिकार पर रह कर देश समाज एवं धर्म की किस प्रकार सेवा की इत्यादि।

इनके अलावा और भी कई छोटी बड़ी विषय लिखी जायगी—

पूर्वार्द्ध की अपेक्षा उत्तरार्द्ध लिखने में हमे बहुत सुविधा रहेगी कारण पूर्वार्द्ध लिखने में हमको बहुत कठनाइयों का सामना करना पड़ा है जिसमें अधिक मुश्किली तो प्रमाणों के लिये उठानी पडी है इस विषय का खुलास मैंने प्रस्तावनादि में कर दिया है कि उस समय केप्रमाण बहुत कम मिलते है वह भी केवल एक मेरे इस ग्रन्थ के लिये ही नही पर किसी विषय के लिये क्यो न हो पर प्रमाण के लिये सबकों यही अनुभव करना पड़ा है। यही कारण है कि पूर्वार्द्ध में [illegible] वंशावलियो पट्टावलियों से ही लिये गये है जब उत्तरार्द्ध [illegible] हम ऐतिहासिक प्रमाण कह सकते है। पट्टावलियों बहुत सामग्री भरी पडी है शेष समय पर—

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास

उत्तरार्द्ध

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास पूर्वार्द्ध की दो जिल्दे पाठकों की सेवामें पहुच गई जिनको पढ़ने से आपको ज्ञात हो चूका है कि इसमें जैनधर्म का कितना विस्तृत इतिहास आया है कि आजपर्यन्त ऐसा ग्रन्थ कहीं से प्रकाशित नहीं हुआ होगा खैर अब पाठकों की यह जिज्ञासा अवश्य रहती होगी कि—इस ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में क्या क्या विषय आवेंगे ? अतः यहां पर संक्षिप्त से बतला देना अच्छा होगा कि—

१—भगवान् पार्श्वनाथ के ५१ से ८४ पट्टधर आचार्यों का जीवन तथा उनके शासन में भावुकों की दीक्षाए मन्दिरों की प्रतिष्ठाए तीर्थों के संघादि शुभकार्य—

२—भगवान् महावीर के ४० वॉंपट्टधर से वितमान के आचार्यों का जीवन तथा उनके जीवन के शासन सम्बन्धी कार्यों का इतिहास जितना मुझे मिला है।

३—तीर्थाधिकार इसमें प्राचीन अर्वाचीन तीर्थों का इतिहास उनकी उत्पति मन्दिरों-मूर्तियों की प्रतिष्ठा का समयादि सब हाल लिखा जायगा।

४—गच्छाधिकार—भ० महावीर के पश्चात् किस समय से तथा किस कारण से और किस पुरुष द्वारा कौन सा गच्छ उत्पन्न हुआ यो तो ८४ गच्छ कहे जाते हैं पर मेरी शोध खोज से ३१० गच्छों का पता तो मिल गया है।

५—जैनशासन के अन्दर जैसे पृथक् २ गच्छ निकले हैं वैसे कई मत्त एवं पन्थ भी निकले उन लोगों ने अलग मत्त पन्थ निकाल कर क्या किया ?

६—चैत्यवासी अधिकार चैत्यवास कब से क्यों और किसने किया चैत्यवास के समय जैन समाज की दशा तथा साथ में राज महाराजा पर चैत्यवासियों का प्रभाव, चैत्यवास में विकार कब से हुआ और चैत्यवास के हटाने से समाज को क्या क्या हानी लाभ हुआ ?

७—पट्टावली—अधिकार जैनधर्म में जितने गच्छ हुए उन गच्छों की पट्टावलियाँ सब तो नहीं मिलती हैं पर जितनी मिली है उनको लिखी जायगी—

८—जैन जातियों—जैनाचार्यों ने अजैनों को प्रतिबोध कर जैनधर्म में दीक्षित किये बाद किस कारण से कौन कौन जातियों बनी जिसका विवरण। साढ़ा बारह न्यात प्रान्तवर ८४ जातियों वगैरह

९—आगमाधिकार—जैनधर्म के मूल अंगोपांग आगमों के अलावा किस समय किन किन आचार्यों ने किस किस विषय के ग्रन्थों का निर्माण किया।

१०—जैनधर्म कहां तक राष्ट्र-राजाओं का धर्म रहा अर्थात् कहाँ तक राजा महाराजा जैनधर्म के उपासक बन कर रहे बाद जैन लोग राजाओं के मंत्री, महामंत्री सेनापति दीवान प्रधानादि उच्चाधिकार पर रह कर देश समाज एवं धर्म की किस प्रकार सेवा की इत्यादि।

इनके अलावा और भी कई छोटी बड़ी विषय लिखी जायगी—

पूर्वार्द्ध की अपेक्षा उत्तरार्द्ध लिखने में हमे बहुत सुविधा रहेगी कारण पूर्वार्द्ध लिखने में हमको बहुत कठनाइयों का सामना करना पड़ा है जिसमें अधिक मुश्किली तो प्रमाणों के लिये उठानी पडी है इस विषय का खुलास मैंने प्रस्तावनादि में कर दिया है कि उस समय केप्रमाण बहुत कम मिलते है वह भी केवल एक मेरे इस ग्रन्थ के लिये ही नही पर किसी विषय के लिये क्यो न हो पर प्रमाण के लिये सबको यही अनुभव करना पड़ता है। यही कारण है कि पूर्वार्द्ध में अधिक प्रमाण वंशावलियो पट्टावलियों से ही लिये गये है जब उत्तरार्द्ध के लिये बहुत से ऐसे प्रमाण मिल सकते है कि जिनको हम ऐतिहासिक प्रमाण कह सकते है। पट्टावलियों वंशावलियों भी सर्वथा निराधार नही पर उनमें भी इतिहास की बहुत सामग्री भरी पडी है शेष समय पर—

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास

भ० आदीश्वरः

पूर्णानन्दमयं महोदयमयं कैवल्यचिद्दृङ्मयं,
रूपातीतमयं स्वरूप रमणं स्वाभाविकाश्रीमयम् ।
ज्ञानोद्योतमयं कृपारसमयं स्याद्वादविद्यालयं,
श्रीसिद्धाचलतीर्थराजमनिशं वन्देऽहमादीश्वरम् ॥

भ० पार्श्वनाथः

किं कर्पुरमयं सुधारसमयं किं चन्द्ररोचिर्मयं,
किं लावण्यमयं महामणिमयं कारूण्यकेलीमयम् ।
विश्वानन्दमयं महोदयमयं शोभामयं चिन्मयं,
शुक्लध्यानमयं वपुर्जिनपतेर्भूयाद् भवालम्बनम् ॥

भ० महावीरः

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिता,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय नित्यं नमः ।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्रीधृतिकीर्तिकान्तिनिचयः श्रीवीर! भद्रं दिश ॥

तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ

श्री तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान् ख्यात स्त्रिविंशोमहान् ।
सर्वः स्वेतर धार्मिकः सनिवहो भिन्नं न यं ज्ञानवान् ॥
दीप्ताग्ने 'अ. सि. आ. उ सा', त्ति वचसा नागम् च यत्ना तवान् ।
कुर्याच्छि धरणेन्द्र नामक करः सर्पस्य सोऽत्रात्मवान् ॥ १ ॥

आज से क़रीबन् २८०० वर्ष पूर्व का जिक्र है जब कि भारत भूमि भगवान् पार्श्वनाथ के पुनीत चरण कमलों से पवित्र हो रही थी। भगवान् पार्श्वनाथ का विश्वोपकारी शासन १६००० अतिशय प्रभावशाली लब्धिसम्पन्न उत्कृष्ट ज्ञानी ध्यानी विद्वान् मुनि पुङ्गवों, ३८००० विदुषी साध्वियों अनेक राजा महाराजा और असंख्य भव्य भक्तों से सुशोभित हो रहा था। प्रभु पार्श्वनाथ के कल्याणकारी-उपदेशामृत का पान कर भारत का जीवन परम उल्लासमय हो रहा था, उनके दिव्य चारित्र एवं भव्य भावनाओं से जन कल्याण के साथ-साथ आत्म विकास एवं मोक्ष साधन का मार्ग प्राणीमात्र के लिए खोल दिया गया था। क्षुद्र से क्षुद्र जीवों को जीने का स्वतंत्र अधिकार एवं अभयदान प्राप्त हो चुका था। आ हा! हा!! उस समय भारत में दो सूर्यों का प्रकाश हो रहा था। एक सूर्य संसार के द्रव्य अन्धकार को हटा रहा था, तब दूसरा सूर्य विश्व का भाव अन्धकार (अज्ञान) को समूल नष्ट कर रहा था। यही कारण है कि उन ज्ञान रश्मियों के आलोक में प्रेम का अद्भुत प्रवाह भारत के जीवन को नवप्लावित बना रहा था। बस, उन लोकोत्तर महापुरुष के दिव्य जीवन की यही विशेषता थी कि उनके दर्शन, स्पर्शन ही क्या, पर उनका स्मरण मात्र से ही जनों का कल्याण हो जाता था। यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगी कि उस समय संसार भर में इतने ही शुभ परमाणु थे कि जिससे भगवान् पार्श्वनाथ का शरीर का निर्माण हुआ था।

भगवान् पार्श्वनाथ किसी मत्त पंथ समुदाय एवं व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं थे किन्तु आप किसी प्रकार के भेद भाव बिना अखिल विश्व के कल्याणकर्त्ता थे। यही कारण है कि आपश्री का नाम विश्व विख्यात हैं, आप श्री का उज्जवल यश एवं कमनीय कीर्ति जैन समाज में ही नहीं, पर सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है। आप श्री का पुनीत एवं अलौकिक जीवन चरित्र के लिये यों तो बृहस्पति भी वर्णन करने में असमर्थ हैं तथापि कई विद्वानों एवं धुरंधरों ने आप श्रीजी के कई जीवन चरित्र लिखे और उनमें से कई मुद्रित भी हो चुके हैं। अतः यहां पर मैं आप श्री का जीवन विस्तृत रूप से नहीं लिख कर आप श्री के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाएं लिख कर पाठकों के सामने रख देता हूँ।

भारत के वक्षस्थल पर विश्व विख्यात काशी नाम का मनोहर एवं रम्य देश है, जो विद्या के लिये बहुत प्रसिद्ध है, इस काशी देश की मुख्य राजधानी बनारस नगरी जो धन धान्य से समृद्ध एवं [illegible]

का केन्द्र थी, जिस समय का इतिहास हम लिख रहे हैं उस समय बनारसी नगरी में महान् प्रतापी अश्वसेन नाम का राजा राज कर रहा था, उसने जनोपयोगी कार्य एवं भुजबल से अपनी कीर्ति एवं राज्य-सीमा खूब दूर-दूर तक फैला दी थी। राजा अश्वसेन के गृहदेवी एवं महिलाओं के सकल गुण विभूषित वामादेवी नाम की पटराणी थी, महाराणी वामादेवी एक समय अपनी सुख शय्या में अर्ध निद्रावस्था में सो रही थी। मध्यरात्रि में महाराणीजी ने गज, वृषभादि चौदह महास्वप्न देखे, बाद तत्क्षण सावधान हो एवं स्वप्नों की स्मृति कर अपने पतिदेव के पास आई और देखे हुए स्वप्न का हाल राजा को सुनाया। राजा स्वप्नों का हाल सुन कर बहुत हर्षित हुआ, और मधुर वचनों द्वारा महाराणी से कहने लगा कि आप बड़े ही भाग्यशाली हैं और आपने उत्तम स्वप्न देखे हैं इसके प्रभाव से आपकी कुक्षि से उत्तम पुत्र-रत्न जन्म लेगा इत्यादि। रानीजी ने राजा के शब्द सुन कर बहुत हर्ष मनाया और शेष रात्रि अपनी शय्या में देवगुरु की भक्ति में व्यतीत की। सूर्योदय होते ही राजा राजसभा में आकर अपने अनुचरों द्वारा स्वप्न-शास्त्र के जानकार पण्डितों को बुलाए उनका सत्कार कर, राणीजी ने जो स्वप्न देखे थे, जिनका फल पूछा। पण्डितों ने अपने शास्त्रों के आधार पर खूब जांच पड़ताल करके कहा हे राजन्! महाराणीजी ने बहुत उत्तम स्वप्न देखे हैं, जिससे आपके कुल में केतु समान महा भाग्यशाली पुत्र जन्म लेगा और बड़ा होने पर वह राजाओं का राजा होगा। यदि त्यागवृत्ति धारण करेगा तो संसार का उद्धार करने वाले तीर्थंकर होगा। राजा ने पण्डितों को पुष्कल द्रव्य दिया, बाद महाराणीजी के पास जाकर सब हाल कहा जिसको सुनकर महाराणी के हर्ष का पार नहीं रहा।

महाराणीजी गर्भ का सुखपूर्वक पालन पोषण कर रही थी और जो-जो दोहजा-मनोरथ उत्पन्न होते वे सब राजाजी अच्छी तरह से पूर्ण करते थे और शांति से समय जा रहा था।

विक्रम संवत् पूर्व ८२० वर्ष पौष वद १० की रात्रि में माता वामादेवी ने पुत्र को जन्म दिया। उस समय का वायुमंडल स्वभाव से ही स्वच्छ, रम्य और सुगन्धमय बन गया था। दशों दिशा अचेतन होने पर भी फल फूलित हो गई थी। सब ग्रह स्वभाव से ही उच्चस्थान पर आ गये। भगवान् के जन्म से दूसरे तो क्या पर नरक जैसे दुःखी जीवों को भी कुछ समय के लिये शांति मिली। भगवान् के जन्म के प्रभाव से छप्पन दिक्कुमारी देवियों के आसन कम्पने लगे, उन्होंने ज्ञान बल से जाना की भारत में तीर्थंकर भगवान् का जन्म हुआ है। अतः हमारा पुराना आचार है कि हम वहां जाकर सूतकी कार्य करें। अतः अपने-अपने स्थान से चल कर छप्पन दिक्कुमारिए माता के पास आई। माता और पुत्र को नमस्कार कर अपने-अपने करने योग्य सब कार्य किये। जब देवियां अपना कार्य कर चली गई तब शक्रेन्द्र का आसन कम्पा और उन्होंने भी अपने ज्ञान बल से भगवान् का जन्म हुआ जानकर माता के पास आये और पांच रूप बना कर तथा एक प्रतिबिंब बना कर माता के पास रखा और भगवान् को सुमेरु पर ले गये वहां ६४ इन्द्र और असंख्य देव देवियों ने शामिल होकर बड़े ही समारोह से प्रभु का स्नात्र महोत्सव किया। बाद प्रभु की पूजा कर माता के पास रख दिये और प्रतिबिंब वापस लेकर देव, इन्द्र सब नंदीश्वर द्वीप जाकर वहां के ५२ चैत्यों में अष्टाह्निका महोत्सव कर अपने-अपने स्थान चले गये इति देवकृत महोत्सव। यह सब कार्य रात्रि के समय में ही हुए।

सूर्योदय होते ही राजा अश्वसेन स्नान मंजन कर राजसभा में आया और पुत्र-जन्म का खूब ठाटबाट

से महोत्सव किया, जिन मंदिरों में सौ हजार और लक्ष द्रव्य वाली पूजा करांई। तीसरे दिन लोकाचार के अनुसार कुंवर को सूर्य चन्द्र के दर्शन कराए, छट्ठे दिन रात्रि जागरण, एकादशवें दिन असूची कर्म दूर करके बाहरवें दिन देशोटन अर्थात् ज्ञाति भोज बनवा कर सज्जन संबंधी को भोजन करवा कर पंडितों की सम्मति से नवजात कुंवर का नाम पार्श्वकुंवर रखा। आनंद मंगल के साथ द्वितीया के चन्द्र तथा चम्पकलता की तरह पार्श्वकुंवर वृद्धि पा रहा और माता के मनोरथ को पूरा कर रहा था। बाल क्रीड़ा भी आपकी अलौकिक थी, जब आपकी वय विद्याग्रहण के योग्य हुई तो माता-पिता बड़े ही समारोह-महोत्सव के साथ पार्श्वकुंवर को पाठशाला में ले गये। पर विचारे अध्यापक के पास इतना ज्ञान ही कहां था जो वह पार्श्वकुंवर को पढ़ाता। उसने पार्श्वकुंवर से कई प्रकार का ज्ञान प्राप्त किया। कारण जब पार्श्व माता के गर्भ में आया था उस समय मति श्रुति और अवधि ज्ञान अर्थात् तीन ज्ञान साथ में लेकर आए थे जिससे भूत भविष्य एवं वर्तमान की रहस्य छानी बातें भी जान सकें।

एक समय का जिक्र है कि बनारसी नगरी के बाहर एक कमठ नाम का तापस आया था और वह लकड़ जलाकर पांचाग्नि तापता हुआ तपस्या कर रहा था, जिस की महिमा नगरी में सर्वत्र फैल गई थी तथा नागरिक लोग पूजापा का सामान लेकर तापस की वन्दन पूजन करने को जा रहे थे जिसको देख कर माता वामादेवी की इच्छा भी तापस के दर्शनार्थ जाने की हुई, साथ में अपने प्यारे पुत्र पार्श्व को भी कहा क्या पार्श्व तू भी मेरे साथ चलेगा ? माता का मन रखने के लिए पार्श्वकुंवर भी हस्ती पर सवार हो माता के साथ तापस के पास आए। पर, वहां पार्श्वकुंवर क्या देखता है कि एक जलते हुए बड़े लकड़ के अंदर एक सर्प भी जल रहा था। करुणासागर पार्श्वकुंवर को सर्प की अनुकम्पा आई और तापस को कहने लगा कि हे महानुभाव ! आप ऐसा अज्ञान कष्ट क्यों करते हो कि जिसके अंदर पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा होती है ? इस पर तापस क्रोधित होकर बोला—हे राजकुंवार ! आप केवल गज अश्व ही खेलना जानते हैं योग एवं तप में आप क्या जानते हैं, व्यर्थ तपसी की छेड़छाड़ करना अच्छा नहीं है। बतलाइये आपने हमारे उत्कृष्ट तप में कौन-सी हिंसा देखी है ? यदि आप सत्य वक्ता हैं तो इस जन-समूह के सामने बतलावें कि हमारे तप में कौन-सी हिंसा है ? इस पर पार्श्वकुंवर ने अपने अनुचरोंको हुक्म दिया कि यह बड़ा लकड़ जल रहा है इसको फाड़ तोड़ कर टुकड़े कर डालो ? बस! फिर तो क्या देर थी, अनुचरों ने उस लकड़ को चीर कर दो टुकड़े कर दिये कि अन्दर से तड़फड़ाट करता हुआ व्याकुल हुआ दीर्घकायवाला सर्प जलता हुआ निकला जिसको देख कर सब के दिलों में करुणा के भाव पैदा हुए। अतः तापस की निंदा और पार्श्वकुंवर की प्रशंसा होने लगी जिससे तापस लज्जित होकर मुंह नीचा कर विचार करने लगा कि इतने जन समुदाय में पार्श्वकुंवर ने मेरा अपमान किया है, तो मेरी तपस्या का फल हो तो भविष्य में मैं पार्श्वकुंवर को दुःख दे कर अपना बदला लेने वाला होऊं, ऐसा निधान कर लिया। इधर जलता हुआ सर्प मरने की तयारी में था, पार्श्वकुंवर ने उसको अ. सि. आ. उ. सा. मंत्र सुनाया जिससे सर्प के अध्यवसाय शुभ हुआ वह मर कर धरणेन्द्र नागकुमार जाति का इन्द्र हुआ। तापस भी समयान्तर में मर कर मेघमाल जाति का कमठ देव हुआ।

पार्श्वकुंवर जब यौवन वय को प्राप्त हुआ तो अश्वसेन ने कुशस्थलनगर के राजा प्रसेनजित की पुत्री प्रभावती के साथ बड़े ही समारोह के साथ पार्श्वकुंवर का विवाह कर दिया। इच्छा के न होते हुए भी

पूर्व संचित कर्मों की निर्ज्जरा के हेतु पार्श्वकुंवर संसार में रह कर शुभ कर्मों को भोगने लगा। शास्त्रकारों ने भी कहा है कि सम्यग्दृष्टि के भोग भी कर्म निर्ज्जरा का हेतु होता है। जिस जीव को निकट भविष्य में मोक्ष जाना है वह शुभ हो या अशुभ हो संचित कर्म को अवश्य भोगवना ही पड़ता है। अतः पार्श्वकुंवर भी २९ वर्ष तक संसार में रहा। बाद में लौकान्तिक देव ने आकर प्रार्थना की कि हे ! प्रभू ! लोक में अज्ञान रूपी अन्धकार छा गया है, पाखण्ड का जोर बहुत बढ़ गया है आप श्रीजी दीक्षा लेकर संसार का उद्धार करावें इत्यादि। बस ! पार्श्वकुंवर ने उसी दिन से वर्षी दान देना प्रारम्भ कर दिया। दिन प्रति १०८००००० सौनइयों का दान दिया करता था। एक वर्ष में ३८८८०००००० सौनइयां दान में दिया, तत्पश्चात् ६४ इन्द्र और असंख्य देव दीक्षा महोत्सव निमित्त आये तथा मनुष्यों में राजा प्रजा ने भी दीक्षा महोत्सव में शामिल होकर खूब जोरदार महोत्सव किया। फिर वि० सं० पूर्व २७९० वर्ष पौष वद ११ के दिन ३०० नरनारी के साथ पार्श्वकुंवर ने संसार त्याग कर, दीक्षा धारण कर ली। महापुरुषों का एक यह भी नियम हुआ करता है कि पहले अपनी आत्मा का सर्व विकास कर ले बाद दूसरों को उपदेश देते हैं। अतः भगवान् पार्श्वनाथ ने दीक्षा स्वीकार कर घूमते घूमते एक दिन निर्जन जंगल में आकर प्रतिज्ञा पूर्वक ध्यान लगा दिया।

इधर कमठ तापस का जीव मर कर मेघमाली देव हुआ था उसने उपयोग लगाया कि मेरा वैरी पार्श्व कहां है, मैं जाकर उससे मेरा बदला लूं ? मेघमाली ने अपने ज्ञान से पार्श्वनाथ को एक जंगल में ध्यान में खड़ा देखा। देव ने अपना बदला लेने का सुअवसर जान कर पार्श्वनाथ के पास आया और वैक्रय लब्धि से पहले तो जोरों से वायु चलाई, जिससे जंगल के झाड़ तुट तुट कर गिर गये। पर पार्श्व प्रभू थोड़े भी चलायमान नहीं हुए, बाद में धूल की वृष्टि की जिससे प्रभू का शरीर धूल में दब गया। केवल नाक और श्वास ही बची। तदन्तर मूसलाधार पानी बरसाया प्रभू की नासिका तक पानी पहुँच गया, पर प्रभू तो अचल मेरु थे, वे धैर्य में अडिग रहे। इस हालत में धरणेन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ तो उसने ज्ञान लगा कर देखा तो भगवान् पार्श्वनाथ पर घोर संकट गुजर रहा है अतः धरणेन्द्र और पद्मावती शीघ्र ही प्रभू के पास आए। पद्मावती ने प्रभू को सिर पर ले लिया और धरणेन्द्र ने सहस्रफण बना कर प्रभू पर छत्र कर दिया। बाद में धरणेन्द्र ने ज्ञान लगा कर देखा तो यह नीच कर्म मेघमाली कमठासुर का ज्ञात हुआ शीघ्र ही दुष्ट देव को बुला कर इन्द्र ने खूब फटकारा इस हालत में मेघमाली ने घबराकर, प्रभू के चरणों में सिर झुका कर अपने अपराध की माफी मांगी और अपराध की क्षमा चाहता हुआ अपने स्थान को चला गया। धरणेन्द्र व पद्मावती ने प्रभू की भक्ति नाटक वगैरह करके वह भी स्वस्थान गये। प्रभू की प्रभुता ऐसी थी कि कष्ट देने वाले मेघमाली पर द्वेष नहीं धरणेन्द्र–पद्मावती भक्ति नाटक करने पर राग नहीं कहा भी है किः—

"कमठे धरणेन्द्रे च स्वोचितं कर्म कुर्वति, प्रभुस्तुल्यमनोवृत्तिः पार्श्वनाथः श्रियेऽस्तु वः।"

भगवान् पार्श्वनाथ दीक्षा के दिन से लगा कर ८२ दिन तक देव मनुष्य तिर्यंच के अनुकूल प्रतिकूल जितने उपसर्ग परिसह हुए उन सब को समभाव से सहन किये और पूर्व संचित घाती कर्म थे उनको निर्ज्जरा कर डाली। जब ८३ वां दिन वर्त रहा था तब शुक्ल ध्यान की उच्चश्रेणी और शुभ अध्वशाय

से केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया जिससे सकल लोकालोक के चराचर एवं दृश्यादृश्य सर्व पदार्थों को हस्तामल की तरह जानने देखने लग गये, उस समय ६४ इन्द्र एवं देवादि भगवान् के केवल कल्याण करने को आये रजत सुवर्ण और मणिरत्न मय तीन गढ़ वाला समवसरण की रचना की जिस पर प्रभू बिराजमान होकर देव,मनुष्य, तिर्यंच अपनी-अपनी भाषा में समझ सके ऐसी अमृतमय देशना दी और यह बतलाया कि संसार असार है, कुटुम्ब कारमो स्वार्थी है, यौवन संध्या के रंग के समान है, सम्पत्ति कुंजर का कान समान, शरीर क्षण भंगुर और आयु अस्थिर है यदि आप लोगों को जन्म मरण के दुःखों से छूटना है तो साधु धर्म एवं श्रावक धर्म की आराधना करो इत्यादि वैराग्यमय देशना सुनकर कई लोग तो संसार का त्याग कर दीक्षा ली कइयों ने श्रावक व्रत और कइयों ने समकित धारण की। इस प्रकार भगवान् पार्श्वनाथ ने ७० वर्ष तक केवलावस्था में विहार कर संसार का उद्धार किया। अनेक महानुभावों ने प्रभू के चरण कमलों में दीक्षा ली जिसमें १६००० महामुनिराज लब्धिसम्पन्न उत्तम ग्रंथों के रचने वाले मुनि तथा ३८००० विदुषी साध्वियां १६४००० उत्कृष्ट व्रतधारी श्रावक ३३९००० श्राविकाएं और असंख्य लोग जैन धर्म को पालन करने वाले हुए थे।

भगवान् पार्श्वनाथ जैनधर्म का प्रचार बढ़ाते हुए अपनी १०० वर्ष की पूरी आयु खतम कर वि० सं० पू० ७२० श्रावण शुक्ला ८ के दिन सम्मेत शिखर पहाड़ पर अनशन पूर्वक नाशवान शरीर का त्याग कर मोक्ष पधार गये। इनके पूर्व भी १९ तीर्थंकरों ने इसी स्थान पर मोक्ष प्राप्त किया था। जब भगवान् पार्श्वनाथ का निर्वाण हो गया तो चतुर्विध संघ निरुत्साही बन गया और ६४ इन्द्र तथा असंख्य देव भी निरुत्साही होते हुए भी भगवान् का निर्वाण कल्याण किया और आपके पट्ट पर गणधर शुभदत्त को स्थापित कर उनकी आज्ञा में चतुर्विध श्रीसंघ अपना कल्याण कार्य संपादन करने लगा इति पार्श्व चरित्र।"

कई पाश्चात्य विद्वान् लोग भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते थे। पर अनेक प्रमाण उपलब्ध हुए तब विद्वानों ने यह उद्घोषणा कर दी कि भगवान् पार्श्वनाथ एवं भगवान् महावीर काल्पनिक नहीं पर ऐतिहासिक पुरुष हैं। उन विद्वानों के कतिपय ग्रन्थों के नाम उल्लेख कर दिये जाते हैं:—

1 Stevenson (Rev.) Kalpa-Sutra, Int, P. XII 2. Lassen Indian Antiquary II P. 261, 3. Jacobi, Sacred Books of the East, YIP. P. XXI, 4. Belvalkar, The Brahma Sutras P. 106, 5. Charpentier, Cambridge History of India I. P. 153, 6. Guerinot. Bibliographie Jaina Int. P. XI, 7. Frazer. Literary History of India P. 128, 8. Elliet, Hinduism and Budhism I. P. 110, 9. Poussin, The way of Nirvana P. 67, 10. Dutt, op., cit, P. 11, 11. Colebrooke, op., cit, II P. 317, 12 Thomas (Edward), op., cit, P. 6, 13. Wilson, op., cit, I P. 334, 14. Dasgupta, op., cit P. 173, 15. Radha Krishna, op., cit, P. 281, 16. Mazumdar, op, cit. P. 281, 17. Stevenson (Rev.) op., and loc, cit

भगवान् पार्श्वनाथ के प्रथम पट्टधर गणधर शुभदत्ताचार्य

आचार्यः शुभदत्त देवगणभृत् पट्टेऽस्य तस्थौ सुधीः ।
तेजस्वी शतयोधतुल्यविजयी श्रीद्वादशाङ्गी रणे ॥
वीरो जैनमतोन्नतौ स सुकृतिश्च क्रेतु यत्नं महान् ।
गातुं तस्य गुणान् शुभान् सुरगुरुः शक्तो भवेद्वा न वा ॥ २ ॥

भगवान् पार्श्वनाथ के प्रथम पट्टधर गणधर भगवान् शुभदत्ताचार्य हुए। आप भगवान् पार्श्वनाथ के हस्त दीक्षित गणधरों में मुख्य थे। यद्यपि कल्पसूत्र में भगवान् पार्श्वनाथ के आठ गणधर कहे हैं पर आवश्यकवृत्ति आदि में दस गणधर होना लिखा है, शायद दस गणधरों में से दो गणधर अल्पायु वाले हों और उनका मोक्ष हो जाने से कल्पसूत्रकार ने आठ गणधर ही लिख दिया हो तो उपरोक्त अपेक्षा से उनका लिखना ठीक ही है। प्राचीन समय से एक यह भी कहावत चली आई है कि वर्तमान २४ तीर्थंकरों के १४५२ गणधर हुए हैं एवं मंदिरों में १४५२ गणधरों की पादुकाएं स्थापित की हुई दृष्टिगोचर भी होती हैं। जब कि १४५२ की संख्या भगवान् पार्श्वनाथ के १० गणधर माने जा तब ही मेल सकती है, इससे भी यही पाया जाता है कि भगवान् पार्श्वनाथ के दश गणधर हुए थे।

गणधर शुभदत्ताचार्य महान् तेजस्वी प्रखर प्रभाविक द्वादशाङ्गी के रचयिता जिन नहीं पर जिन तुल्य सोपयोग सकल चराचर एवं दृश्यादृश्य पदार्थों को हस्तामल की तरह जानने देखने वाले शासन भारवाहक एक धुरंधर आचार्य हुए। धर्म प्रचार करने में तो आप विजयी सुभट की तरह सदैव तत्पर रहते थे। शासन का संचालन करने में तो आप चतुर मुत्सद्दी का काम कर बतलाते थे। आपश्री की नायकत्व में चतुर्विध श्रीसंघ सुख और शांति से आत्मकल्याण सम्पादन किया करते थे। वादियों पर तो पहले से ही आपकी पक्की धाक जमी हुई थी कि आपका नाम सुन कर वे कोसों दूर भागते थे। यज्ञ वादियों के ... निर्मूल कर दिये थे। हिंसा जैसी राक्षसी निष्ठुर प्रथा निस्तेज बन गई थी। अहिंसा का सर्वत्र ... हो गया था। बहुत से राजा प्रजा जैन धर्म को स्वीकार कर अपने-अपने राज्य में अहिंसा का ... जोर से कर रहे थे। आपके आज्ञावर्ती हजारों साधु साध्वियां भारत के अनेक प्रान्तों में जैन धर्म प्रचार कर रहे थे अर्थात् आप श्री के शुभ प्रयत्नों से जैन धर्म उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँच गया था एवं जैन धर्म एक विश्व का धर्म बन चुका था।

गणधर शुभदत्ताचार्य ने ज्ञान, ध्यान, तप, संयम की आराधना करते हुए घाती कर्मों को जड़ामूल से नष्ट कर दिया, जिससे आपको कैवल्यज्ञान, कैवल्य दर्शन प्राप्त हो गया, जिससे आप लोकालोक के सर्व भावों को हस्तामल की भांति देखने, जानने लग गये। आपके जीवन के लिये मनुष्य तो क्या पर बृहस्पति जैसे देव भी कहने में असमर्थ हैं। आपने कैवल्यावस्था में भी सर्वत्र विहार कर संसार का उद्धार किया है।

एक समय की जिक्र है कि गणधर शुभदत्ताचार्य के हस्तदीक्षित मुनिवरदत्त ५०० शिष्यों के साथ विहार करते हुए जंगल में जा रहे थे पर सूर्य्य अस्त हो जाने से उनके सब साधुओं को जंगल में ही ठहर जाना पड़ा। जब वे अपनी आवश्यक क्रिया करके ज्ञान ध्यान में स्थित थे तो वहाँ कई चोर आ निकले और उन्होंने भी रात्रि में वहीं विश्राम लिया। चोरों का इरादा था कि इन साधुओं के पास कुछ माल हो तो छीन लिया जाय। जब रात्रि में वे चोर मुनियों के पास आये तो मुनियों के पास ज्ञान एवं धर्मोपदेश के अलावा था ही क्या, उन चोरों को उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया मुनियों के उपदेश में न जाने क्या जादू भरा हुआ था कि चोर अशुभ कृत्यों से नरक के दुःखों को सुन कर एकदम संसार से भय भ्रान्त होकर सोचने लगे कि आहा-हा-इन महात्मा का कहना सत्य है, एक मनुष्य अकृत्य करके द्रव्य उपार्जन करता हैं उसके खाने वाला तो सब कुटुम्ब है पर भवान्तर में दुःख जो पाप करता है उस एक मनुष्यको ही सहन करना पड़ता है अतः उन्हीं के अन्दर मुख्य चोर जो हरिदत्त नामका राजपुत्र था उसने मुनियों से पूछा कि इसका कोई ऐसा उपाय है कि हम लोग इस बुरे कृत्य से छुट जावें और पहिले किये हुये पाप से मुक्त हो जावें ? मुनि ने कहा कि भव्य ! इसका सीधा और सरल यही उपाय है कि आप भगवती जैनदीक्षा की शरण लें कि नये कर्म बन्ध हो जायं और पूर्व किये कर्मों का नाश हो जाय इत्यादि इनके अलावा कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है बस उन चोरों ने मुनियों के पास दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया, अतः उन्हीं ५०० चोरों ने सूर्य्योदय होते ही मुनियों के चरण कमल में भगवती जैनदीक्षा ग्रहण कर वे अपनी आत्मा के कल्याण में लग गये। अहाहा ! जैन मुनियों की संगत का शुभफल कि अधर्म्म से अधर्म्म कार्य्य करने वाले भी मुनियों की क्षणिक सत्संग में अपना कल्याण कर सकते हैं।

मुनिवरदत्त उन हरिदत्तादि ५०० चोरों को दीक्षा देकर क्रमशः विहार करते हुए गणधर शुभदत्ता-चार्य के चरण कमलों में आये और उन नूतन मुनियों को देख गणधरश्री ने वरदत्त एवं नूतन मुनियों की खूब प्रशंसा की। इस प्रकार गणधर भगवान् की समुदाय में ऐसे अनेकानेक रत्न थे जैसे समुद्र में अमूल्य रत्न होते हैं और वे महात्मा स्वकल्याण के साथ पर कल्याण करने में सदैव तत्पर रहते थे। सत्य कहा है कि "सरवर तरुवर सन्त जन, चौथा कहिये मेह। परोपकार के कारणे चारों धारी देह।" इस प्रकार गणधर शुभदत्ताचार्य चिरकाल तक शासन की सेवा एवं उन्नति कर अन्त में मुनि हरिदत्त को अपना उत्तराधिकारी बना कर आप अनशन एवं समाधिपूर्वक मोक्ष पधार गये।

भगवान पारस पट्टपर गणधर श्रीशुभदत्त हुए,
जो द्वादशांगी ज्ञान के विस्तार में समर्थ हुए।
उनकी विमल वर ज्योति से आलोकमय संसार था,
जैनधर्म के थे सूर्य वे उनके न यश का पार था।
विजयी सुभट सम वीर थे उनका चरित्र महान था,
पा सके नहीं थाह वृहस्पति गंभीर उनका ज्ञान था।

इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के प्रथम पट्टधर गणधर शुभदत्ताचार्य हुए।

२—आचार्य हरिदत्त सूरि

आचार्यो हरिदत्तसूरि रथ तं पट्टेऽनुयातो बहु- ।
तेजस्वी निजधर्मवृद्धिनिरतः निष्णातबुद्धिर्गुरुः ॥
सावत्थी नगरी स्थितो जिनमते लौहित्यकं दीक्षयन् ।
शिष्यानेक सहस्रकान् ग्रहितवान् यस्तान् महाराष्ट्रके ॥

आचार्य्य हरिदत्तसूरि—आप भी द्वादशाङ्गी एवं चतुर्दशपूर्व के पूर्णज्ञाता एवं प्रखर पण्डित थे। ऋद्धि-सिद्धि और विद्या लब्धियों के तो आप खजाने ही कहलाते थे। धर्मप्रचार करने में आप एक मशीनगिरी का ही काम किया करते थे। वाद और शास्त्रार्थ में आप सदैव विजयी होकर वादियों को नतमस्तक कर डालते थे। आपकी आज्ञा में हजारों साधु साध्वियां एवं लाखों करोड़ों श्रावक श्राविकायें मोक्षमार्ग का आराधन किया करते थे।

यज्ञ में होने वाले बलिदान ने आपका चित्त आकर्षित किया। प्राणिमात्र की हित कामना के उद्देश्य से हिंसा को धर्म का रूप देने वाले उन कर्मकाण्डियों को आपने अहिंसा तत्त्व का उपदेश कर जीव मात्र को अभयदान दिलाया। अहिंसा के प्रचार में संलग्न सूरीश्वरजी के हृदय की करुणा ने हिंसा पर विजय प्राप्त की। आपके सफल शासन में धर्म और नीति के पहिये वाले समाज रथ का सुचारु रूप से संचालन समस्त संसार को उन्नति के शिखर पर पहुँचा रहा था।

आचार्य हरिदत्तसूरि अपने शिष्य समुदाय के साथ भ्रमण करते हुये एक वार सावत्थी नगरी के उद्यान में पधारे। वह समय जनता के लिये बड़े ही सौभाग्य का था। राजा अदीनशत्रुआदि जनमेदनी सूरिजी के स्वागत-दर्शन एवं वन्दनार्थ उमड़ पड़ी। आपके उपदेशामृत से सब लोग मंत्रमुग्ध बन गये थे। और अहिंसा परमोधर्म की ओर उनकी विशेषाभिरुचि जागृति हुई।

उसी समय सावत्थी नगरी में एक लोहित्याचार्य नामक यज्ञप्रचारक अपने १००० शिष्यों के साथ हुआ था और वह अपने सिद्धान्त एवं यज्ञकर्म का जोर से प्रचार भी करता था। एक स्थान में दो समर्थ प्रचारक एकत्र हो जांय तो धर्मवाद खड़ा होना एक स्वाभाविक बात थी। चाहे अग्रेसर लोग वातों को नहीं भी चाहते हों पर साधारण जनता का तो यह एक व्यवसाय ही बन जाता है। और वह वाद उग्र रूप धारण कर अग्रेसरों को मत-ममत्व के अन्दर विवश बना ही देते हैं। यही हाल सावत्थी नगरी के अन्दर दोनों ओर का हो रहा था।

लोहित्याचार्य केवल विद्वान ही नहीं पर सत्यप्रिय भी था। अतः राजा अदीनशत्रु की राजसभा में दोनों आचार्यों का बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ। लोहित्याचार्य का पक्ष यज्ञधर्म का था और इसमें जो पशुबलि आदि हिंसा होती है वह हिंसा नहीं 'वैदिक हिंसा न हिंसा भवति' अर्थात यज्ञादि में जो हिंसा होती है वह हिंसा अहिंसा ही समझी जाती है और इसमें पशुओं की मुक्ति, संसार की शान्ति और धर्म का उत्कर्ष होता है इत्यादि लाभ बतलाया जाता था।

आचार्य हरिदत्तसूरि का पक्ष अहिंसा परमोधर्म का था। उन्होंने प्रतिवाद में ऐसे अकाट्य प्रमाण पेश करते हुये प्रियवचनों से समझाया कि आप विचार कर सकते हो कि यदि हिंसा से ही जीवों की मुक्ति एवं शान्ति हो सकती हो तो फिर तो 'अहिंसा परमो धर्मः' यह शास्त्र वाक्य निरर्थक ही साबित होगा और जो शास्त्रों में अहिंसा का उच्च आदर्श बतलाया है उन सब को अप्रमाणिक ही समझना होगा इत्यादि। आचार्य श्री के शान्तिमय प्रमाणों ने लोहित्य की अन्तरात्मा पर खूब गहरा प्रभाव डाला। बस फिरतो था ही क्या, मुमुक्षुओं को सत्य का भास होते ही वे असत्य को त्याग सत्य ग्रहण कर लेते हैं यही हाल लोहित्य का हुआ। उसने हिंसा को त्याग कर अहिंसा भगवती के चरणों में शिर झुका दिया। यह हिंसा पर अहिंसा की पूर्ण विजय थी। अहिंसा का जयनाद हुआ। उपस्थित राजा महाराजा एवं नागरिकों पर अहिंसा का खूब प्रभाव हुआ और लोहित्य के साथ अहिंसामय जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा ग्रहण कर वे भी जैन धर्म के उपासक बन गये।

लोहिताचार्य्य ने अपने हजार साधुओं के साथ आचार्य हरिदत्तसूरि के चरण कमलों में जैन दीक्षा लेने के पश्चात् जैनधर्म के शास्त्रों का गहरा अध्ययन कर लिया। तदनन्तर आपने निश्चय करलिया कि मैंने जैसे हिंसाधर्म का प्रचार किया था वैसे ही अब हिंसा का उन्मूलन कर अहिंसा का प्रचार करूँगा। जब आचार्य हरिदत्त ने लोहित्य की योग्यता देखी तो उसको गणि पद से विभूषित कर उनके १००० साधुओं को साथ दे महाराष्ट्र प्रान्त में विहार करने की आज्ञा फरमा दी। क्यों कि उस प्रान्त में यज्ञवादियों का खूब जोर जमा हुआ था और न वहाँ किसी अहिंसा प्रचारक का जाना ही होता था। यदि कोई साधारण व्यक्ति चला भी जाय तो उन हिंसा प्रचारकों के साम्राज्य में वह अधिक समय जीवित भी नहीं रह सकता था। अतः आचार्यश्री ने लोहित्य को इस कार्य्य के लिए सर्वगुण-सम्पन्न जान कर ही आज्ञा दे दी थी। इतना ही क्यों पर उन आगम विहारी भविष्यवेत्ता ने भविष्य का महान लाभ जान कर ही इस कार्य्य के लिए प्रयत्न किया था और आगे चल कर उन महर्षि हरिदत्तसूरि का प्रयत्न सफल भी हुआ जिसको आप आगे चल कर पढ़ ही लेंगे।

गणिवर लोहित्याचार्य बड़े ही उत्साह के साथ गुरु आज्ञा शिरोधार्य्य कर अपने सहस्र शिष्यों को साथ लेकर क्रमशः भ्रमण करते हुये अपने निर्देश स्थान अर्थात् महाराष्ट्रीय प्रान्त में पदार्पण कर अपना प्रचार कार्य्य प्रारम्भ कर दिया। कहने की आवश्यकता नहीं है कि उन हिंसक पाखण्डियों के साम्राज्य में इन अहिंसा के पुजारी को किस किस प्रकार कठनाइयों का सामना करना पड़ा था? उन निष्ठुर हृदयी दैत्यों ने जैन साधुओं को जान से मार डालने के अनेकों प्रयत्न करने में भी कुछ उठा नहीं रक्खा था। पर आखिर अहिंसा भगवती के चरणों में उन हिंसकों को शिर झुकाना ही पड़ा और गणिवर लोहित्य को अपने कार्य्य में आशातीत सफलता प्राप्त होती ही गई वह भी साधारण व्यक्तियों में नहीं पर अनेक राजा महाराजा अहिंसा के पुजारी बन गये अर्थात् जैन धर्म के अनुयायी बन कर लोहित्य के कार्य्य में सहायक भी बन गये। फिर तो था ही क्या, लोहित्य ने जैनधर्म की नींव सुदृढ़-मजबूत बनाने में मंदिरों जिनालयों से मंडित बना दी। वहाँ के श्रीसंघ ने लोहित्य की योग्यता पर मुग्ध बन उनको सूरिपद से विभूषित किया जो उस समय उस प्रान्त में इस पद की परमावश्यकता थी। इस विषय के जैनसाहित्य में अनेक प्रमाण [illegible]

१तत्पट्टे सूरिराचार्य, हरिदत्तःसुधीःस्थितः. [illegible] ।
जित्वा लौहित्याचार्य, शास्त्रार्थे शास्त्रविसमः, [illegible] ॥

हैं, इतना ही क्यों पर आज की शोध खोज से भी महाराष्ट्रप्रान्त में जैनधर्म के प्रचार के लिये यत्र तत्र कई प्रमाण ❀मिलते हैं उससे भी साबित होता है कि आचार्य भद्रबाहु के पूर्व महाराष्ट्र में जैनधर्म का काफी प्रचार था।

आचार्य्य लोहित्य ने उस सूरि पद को केवल खजाने में अमानत ही नहीं रख छोड़ा था पर उसको चिरस्थायी बनाने का जबर्दस्त प्रयत्न किया था। आपने अनेक स्थानों एवं राजसभाओं में यज्ञवादियों एवं हिंसाप्रचारकों के साथ शास्त्रार्थ कर विजय का डंका बजाया था। पशु-बलि और अत्याचार को उन्मूल कर असंख्य मूक प्राणियों को अभयदान दिलवाया था। अनेक भद्रिक जो मिथ्यात्व सेवन कर नरकाभिमुख हो रहे थे उनको सदुपदेश देकर समझाया अर्थात् उनको मोक्ष एवं स्वर्ग का अधिकारी बनाया इत्यादि। लोहित्याचार्यने अपने यश को उषा की लाली से लोहित कर दिया जो प्रातःकाल होते ही कृतज्ञ प्राणी के हृदय में उनकी पुन्य स्मृति को जागृति रखती है। अन्त में लोहिताचार्य्य केवलज्ञान प्राप्त करअपनी अन्तिम अवस्था में मुनि देवभद्र को अपना पदाधिकार देकर आप अनशन एवं समाधि के साथ इस नाशवान शरीर को त्याग कर मोक्ष पधार गये। इन लोहित्याचार्य की संतान महाराष्ट्रप्रान्त में भ्रमण करती हुई लोहित्य शाखा के नाम से प्रसिद्ध हुई।

इधर आचार्य हरिदत्तसूरि ने अपना विहारक्षेत्र इतना विशाल बना दिया कि अंग वंग पंचाल कलिंग और हिमालय तक आप स्वयं तथा अपने साधुओं को भेज भेज कर धर्म का खूब ही प्रचार बढ़ाया अन्त में आपने मुनि आर्य्यसमुद्र को सूरि बना कर व्यवहारगिरि पर्वत पर समाधि मरण कर अक्षय स्थान पर कब्जा कर लिया। हरिदत्तसूरि की संतान पूर्व भारत में रही वह निर्ग्रन्थ शाखा कहलाई।

पट्टधर उनके हुए आचार्य हरिदत्तसूरिवर।
अद्भुत प्रतिभा अकलुष सदय जिन धर्म की आभा प्रखर ॥
वे धर्म का विस्तार कर विख्यात शासन कर हुए।
सावत्थी नगरी मध्य जो शास्त्रार्थ में उद्धर हुए ॥
एक सहस्र शिष्यों सहित लोहित्य को दीक्षित किए।
फहरा ध्वजा महाराष्ट्र को जैनधर्म से भूषित किए ॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के पट्टपर आचार्य हरिदत्तसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुए।

❀ इतिहास की शोध खोज से पता मिलता है कि महाराष्ट्रप्रान्त के साहित्य निर्माण के लिये एक संघ कायम किया गया था। उसका उद्देश्य था कि प्रमाणित साहित्य जनता के सामने रक्खे। इस संघ का समय ईसवी सन् की पहली शताब्दी का था, ऐसा विद्वानों का मत है। उसी समय का तिरुवल्लुर नामक तामिल जैन साधु का बनाया हुआ एक कुरल नामका उत्कृष्ट काव्य मिलता है। यह साधु जैन ही था। नीलकेशी की टीका में इस काव्य को जैन शास्त्र होना स्पष्ट शब्दों में कहा गया है। इस ऐतिहासिक साहित्य से भी यही सिद्ध होता है कि ईसवी सन् के आरम्भ में महा-

राष्ट्रप्रान्त में जैनश्रमणों का अस्तित्व ही नहीं वरन् तामिल भाषा के ग्रन्थ निर्माण करने वाले मौजूद थे। इससे अनुमान किया जा सकता है कि इस समय के पूर्व भी उस प्रान्त में जैन धर्म प्रचलित होगा।

डॉ० फ्रेजरसाहिब ने अपने इतिहास में लिखा है कि यह जैनियों के ही प्रयत्न का सुंदर फल है कि दक्षिण भारत में नया आदर्श, साहित्य, आचार-विचार एवं नूतन भाषा शैली प्रगट हुई।"

इस घटना के लिये विश्वसनीय एवं ऐतिहासिक प्रमाण जैसा चाहिये वैसा मेरे जानने में अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसका यही कारण है कि यह घटना अति प्राचीन अर्थात् भगवान् महावीर के १५० वर्ष पूर्व की एवं विक्रमी ६२० वर्ष पूर्व की है। फिर भी एक प्रमाण ऐसा मिलता है कि पूर्वोक्त घटना का होना सम्भव हो सकता है।

दिगम्बर मतानुसार आचार्य्य भद्रबाहु अपने १२००० शिष्यों के साथ दुष्काल के समय महाराष्ट्र प्रान्त में पधारे थे और उन्होंने वहाँ के जिनालयों की यात्रा भी की थी। अतः भद्रबाहु के पूर्व वहाँ जैनधर्म होना सिद्ध होता है। प्रोफेसर ए. चक्रवर्ती का अनुमान है कि यदि भद्रबाहु के पूर्व दक्षिण भारत में जैनधर्म का प्रचार न होता तो दुर्भिक्ष के समय यकायक १२००० शिष्यों के साथ भद्रबाहु दक्षिण में जाने का साहस न करते, वरन् उनको अपने अनुयायियों द्वारा शुभागमन किये जाने का विश्वास था। इसी से वे दक्षिण में जाकर ठहर सके।

एक और भी प्रबल प्रमाण है कि सिंहलद्वीप के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाला महावंश नामका एक पाली भाषा का ग्रन्थ है जिसे धेनुसेन नामक एक बौद्धभिक्षु ने लिखा है। इस ग्रन्थ का निर्माण काल ईसवी सन् की पांचवी शताब्दी का अनुमान किया जाता है। इस ग्रंथ में ईसा के ५४३ वर्ष पूर्व से लगा कर ३०१ वर्ष तक का वर्णन है। इसमें वर्णित घटनायें सिंहलद्वीप के इतिहास के लिये यथेष्ट प्रमाणित मानी जाती हैं। इसमें सिंहलद्वीप के नरेश 'पनुगानय' के वर्णन में कहा गया है कि उन्होंने लगभग ४३७ ईसवी पूर्व अपनी राजधानी अनुराधपुर में स्थापित की और वहाँ निर्ग्रन्थ मुनियों के लिये एक गिरि नामक स्थान बनाया। निर्ग्रन्थ कुम्बन्ध के लिये राजा ने एक मन्दिर भी निर्माण कराया जो उक्त मुनि के नाम से विख्यात हुआ इत्यादि।

एक विधर्मी अर्थात् स्पर्द्धा करने वाला धर्म का भिक्षु इस प्रकार प्राचीन इतिहास लिखता है, जिससे ईसा की पांचवीं शताब्दी पूर्व अर्थात् भद्रबाहु की यात्रा के समय से दो सौ वर्ष पूर्व महाराष्ट्र में जैन मुनियों का भ्रमण और राजा महाराजाओं का उनके उपासक होना सिद्ध होता है। अतएव महाराष्ट्र प्रान्त में लोहित्याचार्य द्वारा जैनधर्म की नींव डालना जैनपट्टावल्यादि ग्रन्थों में लिखा हुआ मिलता है वह पूर्वोक्त प्राचीन ऐतिहासिक प्रमाणों से साबित हो सकता है।

† लोहित्याचार्य के पट्टधर देवभद्राचार्य देवभद्र के पट्टधर गुणभद्राचार्य हुए। [illegible] के [illegible] पर गुणभद्राचार्य अपने बहुत शिष्यों के साथ [illegible] के पास [illegible] — और [illegible] महाराष्ट्र [illegible] परम्परा कहां तक चली होगी पर भद्रबाहु के समय तो वे महाराष्ट्र में विद्यमान थे।

रियों के हाथ में थी और वे समाज के शिरताज बन चुके थे। सत्ता अहंकार की गुलाम बन अपना दुरुपयोग कर रही थी। बलवान अपने बल की आजमाइश निर्बलों पर करते थे। सिवाय ब्राह्मणों के ज्ञान के द्वार सब के लिये बन्द थे। विचारे शूद्रों की तो उस जमाने में सबसे बड़ी खराबी थी। उनकी संसार में घास फूंस जितनी भी कीमत नहीं रही थी। उनको धर्मशास्त्र पढ़ना तो क्या पर सुनने से ही प्राणदंड मिलता था धर्म पर स्वार्थ का साम्राज्य था। कर्तव्य सत्ता का गुलाम बन चुका था। करुणा ने पैशाचत्व का रूप धारण कर जनता में त्राहि-त्राहि मचा दी थी। मनुष्य कहलाने वालों ने अपने मनुष्यत्व को अत्याचार पर बलि कर दिया था। प्रेम, स्नेह और एकता केवल पुस्तकों के पृष्ठों पर ही अंकित थी अर्थात् इस भयंकरता ने चारों ओर पापाचार एवं तृष्णा की भट्टियें भभका दी थीं जिसके सामने यदि कोई पुकार भी करता तो सुनता कौन था ? फिर भी सुधारक लोग उन अत्याचारों के सामने कटिबद्ध हो जनता का रक्षण कर ही रहे थे : पर वे थे बहुत थोड़े जो उस बिगड़ी का सुधार करने में अपर्याप्त ही माने जाते थे।

इधर भगवान केशीश्रमणाचार्य ने अपने श्रमण संघ की एक विराट् सभा की, जिसमें समाज अग्रेसर श्राद्ध वर्ग भी शामिल थे। आचार्य्य केशीश्रमण ने अपने साधुओं को स्वकर्तव्य समझाते हुये अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा प्रभावशाली एवं सचोट उपदेश देकर कहा कि वीरो ! आपने जिस उद्देश्य को लक्ष्य में रख संसार का त्याग किया था, वह समय आपके लिये आ पहुँचा है। विश्वोद्धार के लिए प्राणप्रण से कटिबद्ध हो जाइये। जगत का उद्धार आप जैसे त्यागी महात्माओं ने किया और करेंगे। एक नहीं पर अनेक आफतें आपके सामने उपस्थित हों तो तुम तनिक भी परवाह मत करो, इतना ही क्यों पर इस नाशवान शरीर की भी परवाह मत करो और अपने कर्तव्य पर डट जाओ इत्यादि।

आखिर तो शेर शेर ही होते हैं। भले ही थोड़ी देर के लिये उनकी निद्रावस्था में मृगादि वनचर क्षुद्र प्राणी अपना विजय राज समझ लें पर जब वे शेर गर्जना करते हैं तो मृगादि पशुओं का धैर्य टिक नहीं सकता है, अतः सूरिश्वरजी का वीरतामय उपदेश सुनकर वे मुनिपुंगव शेरों की भांति बोल उठे कि हे पूज्यवर ! जिस प्रकार आप हुक्म फरमावें हम शिरोधार्य्य करने को तैयार हैं किसी भी कठिनाइयों की हमें परवाह नहीं है। हम अपना कर्तव्य अदा करने को कटिबद्ध हैं।

अपने साधुओं के वीरतामय वचन सुन कर सूरिजी का उत्साह और भी बढ़ गया और साधुओं की योग्यता पर उनकी अलग २ टुकड़ियां बनाकर निम्नलिखित स्थानों की ओर विहार की आज्ञा फरमा दी।

५०० मुनियों के साथ वैकुण्ठाचार्य को तैलंग प्रान्त की ओर।
५०० मुनियों के साथ कालिकापुत्राचार्य्य को दक्षिण-महाराष्ट्र प्रान्त की ओर।
५०० मुनियों के साथ गर्गाचार्य्य को सिन्ध सौवीर प्रान्त की ओर।
५०० मुनियों के साथ यवाचार्य्य को काशी कौशल की ओर।
५०० साधुओं के साथ अर्हन्नाचार्य्य को अंग वंग कलिंग की ओर।
५०० मुनियों के साथ काश्यपाचार्य्य को सूरसैन (मथुरा) प्रान्त की ओर।
५०० मुनियों के साथ शिवाचार्य्य को अवन्ती प्रान्त की ओर।
५०० मुनियों के साथ पालकाचार्य्य को कोंकण प्रदेश की ओर।

सावत्थी नगरी में जाकर आचार्य हरिदत्तसूरि ने लोहित्याचार्य को शास्त्रार्थ में परास्त कर उनके १००० शिष्यों के साथ जैन दीक्षा दी और उनको महाराष्ट्र प्रान्त में धर्म प्रचारार्थ भेजे। पृ० ३

मुनिपेहित ने कपीलवस्तुनगरी के राजा शुद्धोदन एवं राजकुंवर बुद्ध को धर्मोपदेश दिया जिससे विरक्त हो बुद्ध ने जैन दीक्षा स्वीकार करली। पृष्ट १७

केशीश्रमणाचार्य ने चित्तप्रधान के आग्रह से श्वेताम्बिकानगरी में जाकर के नास्तिक शिरोमणि राजा प्रदेशी को प्रतिबोध देकर जैनधर्म में दीक्षित किया। पृष्ट ३८

५०० मुनियों के साथ केशीश्रमण (जिन्होंने गौतम के साथ चर्चा की थी) को पांचाल की ओर ❀ इनके अतिरिक्त कुछ छोटी २ और टुकड़ियां बना कर शेष प्रदेशों में भेज दीं और स्वयं १००० नियों के साथ मगध प्रदेश में रहकर सर्वत्र उपदेश कर धर्म प्रचार करने का बीड़ा उठा लिया। आचार्य की इस महत्वपूर्ण योजना से आपको इतनी सफलता प्राप्त हो गई कि थोड़े ही दिनों में आपने चारों ओर जैनधर्म एवं अहिंसा भगवती का झंडा फहरा दिया और विश्व फिर से शान्ति का श्वास लेने लगा। नता अपने कर्तव्य को समझने लगी। यज्ञ जैसे निष्ठुर कार्य से उनको सहज ही में घृणा आने लगी जिसे ड़े दिन पूर्व वे धर्म का एक मुख्य अंग समझते थे।

आचार्यजी के प्रयत्न का प्रभाव केवल साधारण जनता पर ही नहीं पड़ा, था पर आपका प्रभाव ड़े २ राजा महाराजाओं पर हो चुका था। अतः चारों ओर फिर से जैन धर्म चमकने लगा। फलस्वरूपः—

–वैशाली नगरी का राजा चेटक
–राजगृह का राजा प्रसैनजीत
–चम्पा नगरी का राजा दधिवाहन
–क्षत्रिकुण्ड का राजा सिद्धार्थ
–कपिलवस्तु का राजा शुद्धोदन
६–पोलासपुर नगर का राजा विजयसेन
७–सांकेतपुर का राजा—चन्द्रपाल
८–सावत्थी नगरी का राजा अदीनशत्रु
९ कांचनपुर नगरका राजाधर्मशील
१०–कपिलपुर नगर का राजा जयकेतु
११–कौशाम्बीका राजा संतानीक
१२–सुग्रीव नगर का राजा बलभद्र
१३–काशी कौशल के अठारह गण राजा
१४–श्वेताम्बिका का राजा प्रदेशी राजा

इनके अलावा भी कई भूपति जैनधर्म की शरण लेकर स्वपर कल्याण करने लगे और जब राजा ी इस प्रकर जैनधर्म के झण्डे के नीचे आ गये तो साधारण जनता का तो कहना ही क्या था ? वे लाखों हीं पर करोड़ों की संख्या में अपनी पतित दशा को त्याग कर जैनधर्मोपासक बन गये। कहा भी है क 'यथा राजा तथा प्रजा'। अहाहा—संगठन में एक कैसी बिजली सी शक्ति रही हुई है कि जिसका ाक्षात्कार हमारे चरित्र नायकजी ने प्रत्यक्ष में कर बतलाया था जिसको पढ़ सुन कर यदि आज भी हमारे ूरिसम्राट् उन महात्माओं का अनुकरण करें तो हमारे लिये कोई भी कार्य्य असाध्य नहीं है।

महात्मा बुद्ध

आचार्य्य केशीश्रमण के आज्ञावृति साधुओं में एक पेहीत नामक विद्वान एवं प्रविभाशाली साधु ा। वह एक समय अपने शिष्य समुदाय के साथ विहार करता हुआ कपिलवस्तु नगर में आपहूँचा वहाँ का ारेश पहिले से ही जैनधर्मोपासक था, अतः आगंतुक मुनियों का स्वागत सत्कार करना स्वभाविक ही था। ुनिपुंगव का व्याख्यान हमेशा त्याग एवं वैराग्य पर होता था जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ता था। ाजा शुद्धोधन के पुत्र बुद्धिकीर्ति (गोतमबुद्ध) पर तो आप का इतना प्रभाव हुआ कि वह व्याख्यान सुन कर ंसार से विरक्त हो गया। पर राजा शुद्धोदन एवं आपका कुटुम्ब यह कब चाहता था कि बुद्धकीर्ति इनके

❀—श्री भगवतीजी सूत्र, राजप्रश्नीजी सूत्र, उत्तराध्ययनजी सूत्र, कल्पसूत्रादि सूत्रों में तथा चरित्र और पट्टावलियादिग्रन्थों में भगवान पार्श्वनाथ संतानियों के अस्तित्व के उल्लेख प्रचुरता से मिलते हैं।

छोड़ कर साधु बन जाय, इसलिये उन्होंने अपने प्यारे पुत्र बुद्धकीर्ति के लिये ऐसा प्रबन्ध कर रक्खा कि न तो वह दीक्षा ही ले सके और न उनकी आज्ञा बिना कहीं दूर प्रदेश में ही जा सके।

मुनिवर्य ने कुछ दिन वहाँ ठहरकर बाद वहाँ से विहार कर दिया। पर बुद्धकीर्ति के अन्तःकरण में जो वैराग्य का बीज बो गये थे वह दिन दूना और रात्रि चौगुना फलता फूलता ही गया। एक समय बुद्धिकीर्ति संसार त्याग की भावना से अपने एक छीनिया नाम के नौकर को साथ ले अश्वारूढ़ हो अपने वासस्थान से चल धरा। आगे चल कर अश्व और नौकर को तो वापिस लौटा दिया और आप जाकर पेहीत मुनि के पास जैनदीक्षा ले ली जो उनका अन्तःकरण चाहता था। बहुत अर्से तक बुद्ध ने जैनश्रमणत्व का पालन किया और यथासाध्य तपस्या भी की पर उनको इच्छित वस्तु न मिली। अतः तपस्या से उसका दिल हट गया और साधुओं से अलग हो स्वयं अकेला भ्रमण करने लगा। तदनन्तर उसने 'बौद्ध' नामक नूतन धर्म चलाया जो आज भी विस्तृत संख्या में विद्यमान है।

बौद्धमतवाले यद्यपि स्पष्ट रूप से यह स्वीकार नहीं करते हैं कि बुद्ध ने सबसे पहले जैनश्रमणों के पास जैनधर्म की दीक्षा ली थी। पर प्रमाणों के अनुशीलन करने पर यह पता सहज ही में लग जाता है कि बुद्ध ने प्राथमिक दीक्षा जैनसाधुओं के पास ही ली थी। जिसके कतिपय प्रमाण यहां उद्धृत कर दिये जाते हैं।

१—सिरिपासणाहतित्थे, सरऊतीरेपलास णयरत्थे। पहिआसवस्ससीहे, महालुद्धोवुद्धकीत्तिमुणी ॥
तिमिपूरणासणेया अहिगप पवज्जा वऊ परम भट्ठेरतंवरंधरिता पवाड्ढियतेणएयतं ॥
मंसस्सनत्थिजीवो, जहाफलेदहियदुद्धसकराए तम्हा तं मुणित्ता, भक्खंतो नत्थि पाविहो ॥
मझंणव ज्जाणिज्जं,दव्वदवं जहाजलतहा एदंइतिलोएधोसिता, पवतियं संघ सावद्यं ॥
अन्नो करेदिकम्मं, अणेतं भुँज दीसिद्धंतं परि कप्पिउणे णूणं, वसि किच्चणि रय सुववणे ॥

दर्शन सार नामक ग्रन्थ (दिगम्बर)

२. इसी प्रकार श्वेताम्बर समुदाय के श्रीआचारांगसूत्र की शिलांगाचार्य्य कृत टीका में भी बुद्ध को जैन साधु होना लिखा है।

३. बौद्धधर्म के 'महावग्ग' नामक ग्रन्थ में बुद्ध के भ्रमण समय का उल्लेख किया है जिसमें लिखा कि एक समय बुद्ध राजगृह गया और वहाँ 'सुप्प' सुपास वसति में ठहरे थे। इससे यही सिद्ध होता है बुद्ध प्रारम्भ समय में जैन थे और जैनों के सातवें तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथ के मन्दिर में ठहरे थे।

४. बौद्ध ग्रन्थ ललितविस्तरा के उल्लेख से भी यही सिद्ध होता है कि राजा शुद्धोदन जैनश्रमणोपासक थे अर्थात् पार्श्वनाथ सन्तानियों के उपासक थे। अतः बुद्ध ने सबसे पहिले जैनश्रमणों के पास दीक्षा ली हो तो यह असंभव भी नहीं है।

५. डॉ० स्टीवेन्सन साहब के मत से भी यही सिद्ध होता है कि राजा शुद्धोदन का घराना जैन धर्म का उपासक था।

६. इम्पीरियल गेजीटियर ऑफ इण्डिया व्हाल्यूम दो पृष्ठ ५४ पर लिखा है कि कोई कोई इतिहासकार तो यह भी मानते हैं कि गौतमबुद्ध को महावीर स्वामी से ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। जो कुछ भी हो यह तो निर्विवाद स्वीकार ही है कि गौतम बुद्ध ने महावीर स्वामी के बाद शरीर त्याग किया, यह भी निर्विवाद सिद्ध ही है कि बौद्धधर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध के पहिले जैनियों के तेईस तीर्थङ्कर और हो चुके थे।

महात्मा बुद्ध

महात्मा ईशु
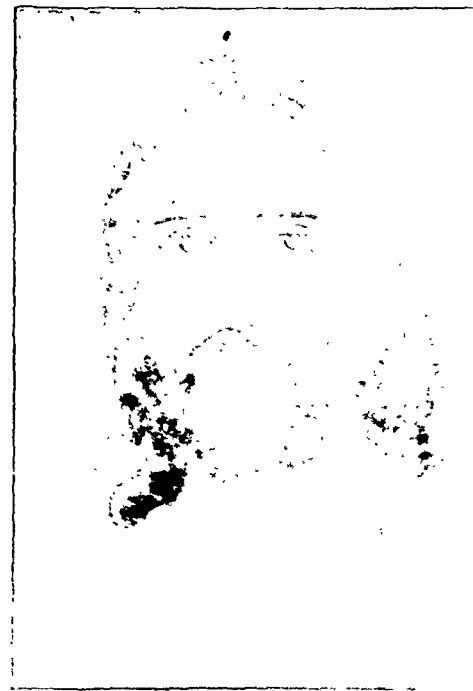
७—डाक्टर भरण्डारकर ने भी महात्मा बुद्ध का जैन मुनि होना स्वीकार किया है (देखो जैन हितैषी भाग ७ वां अंक १२ पृ० १)

८—बुद्ध ने अपने धर्म में जो अहिंसा को प्रधान स्थान दिया है यह भी जैन धर्म के संसर्ग का ही [परिणाम है ।

९—डाक्टर फहरार ने भी कहा है कि महात्मा बुद्ध का घराना जैनधर्मोपासक था । शायद् बुद्ध ने पहिले जैन धर्म की दीक्षा ली हो तो भी असंभव नहीं है ।

१० श्रीमान् ध्रुव ने अपने भाषण में कहा है कि महात्मा बुद्ध का जन्म जैन घराने में हुआ था, यही कारण है कि आपने अहिंसा पर खूब जोर दिया जैसे महावीर ने दिया था ।

११—बुद्ध ने आत्मा को क्षणिक स्वभाव माना है जो जैन सिद्धान्त में 'द्रव्य पर्याय' की व्याख्या की है द्रव्य नित्य और पर्याय अनित्य अर्थात पर्याय समय २ पर बदलते हैं । बुद्ध ने द्रव्य को पर्याय समझ आत्मा 'क्षणिक' प्रतिक्षण नाश होने वाला माना है, इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि बुद्ध का घराना जैन था और बुद्ध ने प्रारम्भ में जैनदीक्षा स्वीकार की थी ।

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट पाया जाता है कि महात्मा बुद्ध ने जैनश्रमणों के पास दीक्षा अवश्य ली थी । बुद्ध का यज्ञ-हिंसा के प्रति विरोध और अहिंसा के विषय में उपदेश जैनों से मिलता जुलता होने से कई अनभिज्ञ लोगों ने जैनों को ही बौद्ध लिख दिया एवं जैनधर्म को बौद्धों की एक शाखा बतलाने की भी धृष्टता कर डाली । पर जब जैनों ने अपनी स्वतंत्रता एवं प्राचीनता के अकाट्य प्रमाण विद्वानों के सामने रक्खे तब जाकर उन्होंने अपनी भूल समझ कर यह स्वीकार किया कि नहीं, बौद्धधर्म अलग है और जैन धर्म अलग है । बौद्धधर्म में यह शक्ति संगठन नहीं था कि वह जैनधर्म की बराबरी कर सके । कारण बौद्धधर्म अहिंसा की बुनियाद पर पैदा हुआ था पर बाद में वे मांसभक्षी बन गये थे और आज भी उनमें मांसभक्षण का प्रचुरता से प्रचार है तब जैनधर्म शुरू से आज तक अमांसभोजी है और भविष्य में रहेगा । अतः जैनधर्म और बौद्धधर्म पृथक पृथक धर्म हैं ।

जैन धर्म की नींव आस्तिवाद पर और बौद्ध धर्म की नींव क्षणिक वाद पर है । जैनधर्म का त्याग वैराग्य और तप संयम उत्कृष्ट होने से संसारलुब्ध एवं इन्द्रियों के वशीभूत प्राणियों से पालना दुस्साध्य है । तब बौद्धधर्म के नियम सादा और सरल थे जिसमें ऐसी किसी खास वस्तु का निषेध एवं कष्ट नहीं था जिससे हरेक व्यक्ति उसका पालन कर सकता था ।

बुद्ध ने अपना नया मत निकाल कर अपना मत चलाया था पर फिर भी महावीर के स्याद्वादसिद्धान्त को वह ठीक ही समझता था, जिसका प्रमाण खास बुद्ध के निर्माण किये शास्त्रों में भी मिलता है ।

बौद्धों के समस्त धार्मिक ग्रन्थ तीन भागों में विभक्त हैं जो 'त्रिपिटक' कहलाते हैं, इनके नाम क्रमशः विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक हैं । प्रथम पिटक में बौद्धमुनियों के आचार और नियमों का दूसरे में महात्मा बुद्ध के निज उपदेशों का और तीसरे में [illegible] से बौद्ध सिद्धान्त और दर्शन का वर्णन है । सुत्तपिटक के ५ निकाय अर्थात् अंग हैं जिसमें से दूसरे का नाम [illegible] है इसमें अनेक स्थानों पर महात्मा बुद्ध का निर्ग्रन्थ मुनियों से मिलने और उनके सिद्धान्तों आदि के विषय में बात-चीत करने का उल्लेख आया है । इन उल्लेखों से सिद्ध होता है कि बुद्ध को भगवान महावीर की [illegible]

पता मिल गया था और उन्हें उनके सिद्धान्त में रुचि भी हो गई थी। उदाहरणार्थ उन उल्लेखों में से एक यहाँ उद्धृत किया जाता है जिसमें बुद्ध कहता है कि —

एक मिदाह, महानाम, समयं राजगहे विहरामि गिज्झकूटे पब्बते ते नखोपन समयेन संबहुला निगण्ठा इसिगि लिपस्से काल सिलायं उब्भत्थकाहान्ति आसन पटिक्खित्ता ओपकमिका दुक्खातिप्पा कटुका वेदना वेदयन्ति अथखोहं महानाम सायण्ह समयं पटिसल्लाणा वुट्टि तो येन इसि गिलिपस्सम काय सिला येन ते निगण्ठा तेन उपसंकमिम् उपसंकमिचा ते निगण्ठे एतद् वोचम् किन्नु तुम्हे आवुसो तुब्भदका आसन पटिक्खित्ता ओपकमिका दुक्खा तिप्पा कटुका वेदना वेदियथाति एवं वुत्ते महानामते। निगण्ठामं एतदवोचुँ ॥

निगण्ठो आवुसो नायपुत्तो सव्वञ्ञु सव्वदस्सावी अयरिसे सं ञाण दस्सन परिजाणइ चरतो चमे तिट्टतो च सुतस्स च जागरस्स च सततं समित्तं ञाण दस्सनं पचुपट्ठितंतिः सो एवं आह अत्थि खोवो निगण्ठा पूव्वे पापं कम्मंकतं, तंइमायकटु काय दुकरि कारिकाय निज्जेरथ, पनेत्त्य एतरहि कायेन संवुता, वाचाय संवुता, मनसा संवुता तं आयतिं पापस्स कम्मस्स अकरणं, इति पुराणानं, कम्मानं तपसा व्यन्तिभावा नवानं कम्मनं अकरणा आयतिं अनवस्सवो, आयतिं अनवस्सवा, कम्मकक्खया कमकक्खयो, दुक्खयो, दुक्खया वेदनाक्खयो, वेदनाक्खया सव्वं दुक्ख निज्जिएणं भविस्सति तं चपन् अम्हाकं रुच्चति चेवखम ति च तेन च आम्हा अत्तमनातिः

P. T. D. Majjhim Vol. 18 I. PP. 92-93

भावार्थ—महात्मा बुद्ध कहता है हे महानाम मैं एक समय राजगृह में गृद्धकूट नामक पर्वत पर विहार कर रहा था उसी समय ऋषिगिरि के पास कालशिला नामक पर्वत पर बहुत से निर्ग्रन्थ (मुनि) आसन छोड़ उपकर्म कर रहे थे और तीव्र तपस्या में प्रवृत थे। हे महानाम मैं सायंकाल के समय उन निर्ग्रन्थों के पास गया और उनको कहा, "अहो निर्ग्रन्थ तुम आसन छोड़ उपकर्म कर क्यों ऐसी घोर तपस्या की वेदना का अनुभव कर रहे हो? ॥" हे महानाम जब मैंने उनसे ऐसा कहा तब वे निर्ग्रन्थ इस प्रकार बोले अहो निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है वे अशेष ज्ञान और दर्शन के ज्ञाता हैं हमारे चलते ठहरते सोते जागते समसत्त अवस्थाओं में सदैव उनका ज्ञान दर्शन उपस्थित रहता है। उन्होंने कहा कि हे निर्ग्रन्थ ... पूर्व जन्म में पापकर्म किया है उनकी इस घोर दुष्चर तपस्या से निर्जरा कर डालो। मन वचन और काया की संवरती से नये पाप नहीं बंधते और तपस्या से पुराने पापों का व्यय हो जाता है। इस प्रकार नये पापों के रुक जाने से और पुराने पापों के व्यय से आयति रुक जाती है, आयति रुक जाने से कर्मों का क्षय होता है, कर्मों के क्षय से दुःख क्षय होता है दुःख क्षय से वेदना क्षय और वेदनाक्षय से सर्व दुखों की निर्जरा होती है। इस पर बुद्ध कहता है यह कथन हमारे लिये रुचिकर प्रतीत होता है और हमारे मन को ठीक जचता है।

ऐसा ही प्रसंग मज्झिम निकाय में भी एक जगह पर आया है वहाँ भी निर्ग्रन्थों ने बुद्ध से ज्ञातपुत्र (महावीर) के सर्वज्ञ होने की बात कही और उनके उपदिष्ट कर्मसिद्धान्त का कथन किया जिस पर बुद्ध ने फिर उपर्युक्त शब्दों में ही अपनी रुचि और अनुकूलता प्रगट की।

इस उदाहरण से पाया जाता है कि भगवान महावीर का त्याग वैराग्य कठोर तप और स्याद्वाद को महात्मा बुद्ध बड़ी रुचि से मानता था।

महात्मा बुद्ध का समय भगवान महावीर के समकालीन था अर्थात् भगवान महावीर के जन्म के दो वर्ष पूर्व से महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ था भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् छः वर्षों से महात्मा बुद्ध का निर्वाण हुआ था, अतः महावीर का आयुष्य ७२ वर्ष का था और महात्मा बुद्ध का आयुष्य ८० वर्ष का था। प्रसंगोपात महात्मा बुद्ध का संक्षिप्त परिचय करवाने के बाद अब हम मूल विषय पर आते हैं।

केशीश्रमणाचार्य्य महाप्रतिभाशाली हुये। आपने जैनधर्म की कीमती सेवा की यज्ञवादियों की बढ़ती जाती क्रूरता को रोकने में भागीरथ प्रयत्न किया तथा उन पाखंडियों के चंगुल में फंसे हुए नरेशों को एवं जनता को जैनधर्म में स्थिर किया और जैनश्रमण संघ में खूब आशातीत वृद्धि की कि जिन्होंने भारत में चारों ओर भ्रमण कर जैनधर्म का प्रचार किया।

फिर भी उस समय की बिगड़ी हुई परिस्थिति को सुधारने के लिए कुदरत एक प्रतिभाशाली अलौकिक महापुरुष की प्रतीक्षा कर रही थी। ठीक उसी समय जगतोद्धारक विश्ववत्सल भगवान महावीर ने अवतार धारण किया। फिर तो था ही क्या ? जैसे सूर्य उदय होने के पूर्व ही चारों ओर प्रकाश फैल जाता है वैसे विश्व के वायुमण्डल में शान्ति के परमाणु प्रसरित होने लगे।

भगवान् महावीर

यों तो भगवान् महावीर के पवित्र एवं परोपकारी जीवन पर प्रकाश डालने वाले पृथक २ विद्वानों की ओर से बड़े २ ग्रन्थों का निर्माण हो चुका है ※ उनके अन्दर से कई ग्रन्थ तो मुद्रित भी हो गये हैं। अतः यहां पर भगवान महावीर के जीवन विषय संक्षिप्त में ही लिखा जाता है।

ई० स० पूर्व ५९८ वर्ष का समय था कि क्षत्रीकुण्डनगर के राजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिसला देवी की रत्न कुक्ष में चौदह स्वप्न सूचित भगवान महावीर ने अवतार लिया। उस दिन से ही राजा सिद्धार्थ का

१–भगवान महावीर की जन्म कुण्डली
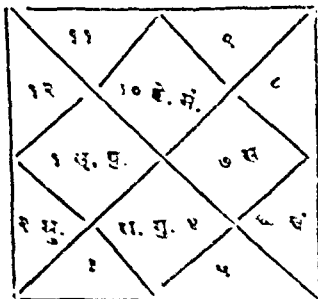
※१ महावीर स्वामी चरित्र कर्ता गुणचन्द्र गणि
२ महावीर स्वामी चरित्र ,, नेमिचन्द्र वि० सं० ११३९
३ महावीर स्वामी चरित्र ,, पं० मंगलकलश वि० सं०
४ महावीर स्वामी चरित्र ,,
५ महावीर स्वामी चरित्र ,, पं० निधान कुशल वि० सं०
६ महावीर स्वामी चरित्र ,,
७ महावीर स्वामी चरित्र ,, जिनरत्नसूरि शिष्य
८ महावीर स्वामी चरित्र ,, अमर [illegible]
इनके अलावा भी कई छोटे बड़े जीवन लिखे गये हैं।

राज समृद्धशाली बनता गया। धन-धान्य रत्न सुवर्ण और राज की खूब वृद्धि होने लगी। गर्भ के प्रभाव से रानी त्रिसला देवी को अच्छे २ दोहले (मनोरथ) होने लगे जिसको राजा सिद्धार्थ ने बड़े ही हर्ष के साथ पूर्ण किये। क्रमशः चैत्रशुक्लत्रयोदशी के दिन की रात्रि समय महावीर का जन्म हुआ। कुदरत से ही सब गृह[1] उच्च स्थान पर आ गये जो ऐसे पुरुष के लिये आना चाहिये थे। वह समय तीन लोक के जीवों के लिये बड़े ही आनन्द का था। नरकादि के जीवों को भी उस समय शान्ति मिली थी। उसी रात्रि में इन्द्रादि देवों ने भगवान को मेरुशिखर पर ले जाकर प्रभु का स्नात्र महोत्सव किया। तदनन्तर प्रभात होते ही राजा सिद्धार्थ ने जन्ममहोत्सव खूब समारोह से मनाया। विशेषता यह थी कि सौ हजार और लक्ष दिनार व्यय कर जिन मन्दिरों में पूजा रचवाई गई थी, क्योंकि राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिसला भगवान पार्श्वनाथ संतानियों के श्रावक थे और श्रावक के घरों में ऐसा मंगलिक कार्य हो तो पहिले प्रभुभक्ति होनी ही चाहिये। इस प्रकार कमशः महोत्सव मनाते हुए बारहवें दिन देशोठन (भोजन, करके प्रभु का नाम 'वर्द्धमान' रखा जो यथा नाम तथा गुण था, क्योंकि भगवान के गर्भ में आते ही राजा सिद्धार्थ के राज में धन धान्यादि की अभिवृद्धि हुई थीं।

भगवान जब बाल-क्रीड़ा करते थे उस समय एक देव भगवान की वीरता की परीक्षा करने को आया पर भगवान के पराक्रम के सामने वह लज्जित हो गया था। तत्पश्चात् माता पिता ने अपने मनोरथ पूर्ण करने को भगवान को विद्यालय में प्रवेश करवाने का महोत्सव किया, पर विचारे अध्यापक के पास इतना ज्ञान कहाँ था कि वह वर्द्धमान को पढ़ा सके। उस समय इन्द्र का आसन विचलित हुआ और उसने स्वर्ग लोक से चल कर ब्राह्मण का रूप धारण कर विद्यालय में आकर राजकुंवर वर्द्धमान को ऐसे २ प्रश्न पूंछे और भगवान ने उन प्रश्नों के उत्तर दिये, जिसको सुन कर विद्यालय का अध्यापक विस्मित हो गया। उन प्रश्नोत्तर का एक ग्रन्थ बन गया जिसका नाम जिनेन्द्र व्याकरण रखा गया था।

जब भगवान ने युवकावस्था में पदार्पण किया तो अनेक राजाओं के वहां से विवाह के आमन्त्रण आये। भगवान की इच्छा के न होने पर भी माता पिता के आग्रह से राजकन्या जसोदा के साथ राजकुंवर वर्द्धमान का विवाह बड़े ही समारोह से हो गया। हाँ पूर्व संचित जितने कर्म होते हैं वह तो भोगने ही पड़ते हैं और सम्यग्दृष्टि जीवों के भोग भी कर्म निर्जरा का हेतु होता है।

भगवान वर्द्धमान ने माता के गर्भ में ही दीक्षा की भावना कर ली थी, पर साथ में यह नियम कर । था कि जब तक माता पिता जीवित रहें वहाँ तक मैं दीक्षा नहीं लूंगा, इसका कारण माता पिता का प्रति अनुराग ही था। जब भगवान की उम्र २८ साल की हुई तो राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिसलादेवी का स्वर्गवास हो गया।

वर्द्धमान का अभिग्रह पूर्ण हो गया तो वृद्धभ्राता नन्दीवर्द्धन से कहा कि मैं दीक्षा लूंगा, इसमें आपकी अनुमति होनी चाहिये। वृद्धभ्राता ने कहा वीर! अभी तो मेरे माता पिता का वियोग हुआ है और जो आधार है वह तुम पर ही है कुछ अर्सा अभी तुम ठहरो; अतः वृद्धभ्राता के कहने से दो वर्ष और संसार में रहना स्वीकार किया। जब एक वर्ष व्यतीत हुआ तो लौकान्तिक देवों ने आकर प्रार्थना की कि प्रभो! विश्व में मिथ्यात्व का जोर अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया है। अतः आप दीक्षा लेकर जगत का उद्धार करावें।

भगवान् महावीर के मानस को डीगाने के लिये कामातुर स्त्रियों हावभाव करती है पर वीर मेरू की भाँति अचल रहे।

भगवान् महावीर के पैरों पर गोपालों ने खीर पकाई। और कुंतो से मांस कटाया

भगवान् महावीर को चण्डकोशीक सर्प ने जोरों से काटा जिसके बदले उन्होंने सर्प को आठवे स्वर्ग पहुँचाया।

पृष्ठ २३

भगवान् महावीर के कानों में गोपालों ने कीले ठोक दी। फिर भी वीर तो वीर ही थे।

भगवान वर्द्धमान ने एक वर्ष तक वर्षीदान दिया जिसका प्रमाण प्रति दिन १०८००:०० सौनइयों का था, अतः वर्षीदान के बाद ई. स. पूर्व ५६८ वर्ष के मार्गशीर्ष कृष्णा १० के दिन इन्द्रादि असंख्य देव और महाराजाओं के महोत्सव के साथ एकले दीक्षाव्रत ग्रहण कर लिया। विशेषता यह थी कि जिस दिन प्रभु ने दीक्षा ली उसी दिन अभिग्रह (प्रतिज्ञा) कर ली कि यदि देव मनुष्य और तिर्यन्च का कोई भी उपसर्ग होगा वह मुझे अपने पूर्व संचित कर्म समझ कर सम्यक् प्रकार से सहन करना होगा।

महापुरुषों का यह भी नियम हुआ करता है कि वे पहिले अपनी आत्मा का सर्व विकास कर लेते हैं तब ही वे दूसरों का कल्याण करने में प्रवृति करते हैं और यह बात है भी ठीक कि जिसने अपना कल्याण कर लिया है वही दूसरों का कल्याण कर सकता है। कहा भी है कि "तन्नाणं तारियाणं"।

भगवान् वर्द्धमान ने जिस दिन दीक्षा ले कर विहार किया उस दिन से ही आप पर उपसर्ग एवं परिसहों ने हमला करना प्रारम्भ कर दिया था, एवं बारह वर्षों में अधिक समय आपका उपसर्गों में ही व्यतीत हुआ था। यदि उन सब को लिखा जाय तो एक बड़ा भारी ग्रन्थ बन जाय, पर मैं अपने उद्देश्यानुसार संक्षिप्त में कतिपय उदाहरण आपके सामने रख देता हूँ कि भगवान महावीर ने कैसे २ उपसर्गों को सहन किया था।

१—भगवान के दीक्षा समय आपके शरीर पर चन्दनादि सुगन्ध पदार्थों का लेपन किया था जिसके मारे भ्रमरगण प्रभु के शरीर का मांस काट काट खाने लग गये थे, तब दूसरी ओर भगवान के अद्भुत रूप को देख कर कामातुर औरतों ने अनेक प्रकार के हाव-भाव नृत्य विलासादि किये, पर प्रभु ने दोनों पर सम भाव ही रखा।

२—एक समय जंगली गोपालकों ने अपने बैलों के कारण प्रभु को अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाये; उस समय शक्रेन्द्र का आसन कम्प उठा, अतः इन्द्र ने आकर गोपालकों को सजा देकर दूर हटाया और भगवान की वन्दना स्तुति की, पर प्रभु ने न तो गोपालकों पर द्वेष ही किया न शक्रेन्द्र पर राग ही किया। इतना ही क्यों इन्द्र ने अर्ज की कि प्रभो आपको बड़े २ कष्ट होने वाले हैं, यदि आप आज्ञा फरमावें तो मैं आपकी सेवा में रह कर उन कष्टों को निवारण करूं ? इस पर प्रभु ने कहा इन्द्र यह न तो हुआ और न होगा कि कोई भी व्यक्ति दूसरों की सहायता से कल्याण करे किया और करेगा अर्थात् अपना कल्याण आप ही कर सकेगा। अतः आपकी सहायता की मुझे आवश्यकता नहीं है। आ हा, वीर तो सच्चे वीर ही थे।

३—शूलपाणि यक्ष और संगम नामक अधम देवों के उपसर्ग को सुनते ही कलेजा कांप उठता है। उन अधम देवों ने प्रभु को इतने घोर कष्ट पहुँचाये कि वे अपनी आयुष्य से ही जीवित रहे, शेष देवों ने तो उपसर्ग करने में कुछ भी उठा न रक्खा।

४—एक समय महावीर जंगल में जा रहे थे तो किसी गोपालक ने कहा कि आप किसी दूसरे रास्ते से जाइये, कारण कि इस रास्ते के बीच एक चंडकोशिक सर्प रहता है और उसका विष इतना जहरीला है कि वह जिधर दृष्टि प्रसार करता है उधर ही जीवों को भस्मीभूत बना देता है इत्यादि। प्रभु ने सोचा कि जब उस सर्प में इतनी शक्ति है और उसका दुरुपयोग करता है, यदि इसी शक्ति का वह सदुपयोग करने लग जाय तो उसका कल्याण हो सकता है, क्योंकि 'कम्मेसूरा सो धम्मेसूरा' बस भगवान उसी रास्ते चले गये और जहां सर्प की बांबी (बिल) थी वहां ध्यान लगा दिया। फिर तो था ही क्या ? सर्प ने

क्रोध में लाल बंबूल होकर प्रभु को काटा, पर दूसरे लोगों को काटने पर खून निकलता है लेकिन भगवान को काटने पर सर्प ने दूध पाया, जिससे सर्प को वड़ा ही आश्चर्य हुआ उस समय प्रभु ने कहा चंडकोषिक ! वुझ वुझ इतने में तो सर्प को जाति-स्मरण हो आया उसने अपना पूर्व रूप देखा कि मैं पूर्व भव में एक मुनि था। क्रोध के मारे मर कर सर्प हुआ हूँ और यहां भी क्रोध के वश हो अन्य जीवों को कष्ट पहुँचा रहा हूँ जिसमें भी महावीर जैसे लोकत्तर पुरुष को, धिक्कार हो मेरे क्रोध को।

कृतापराधेऽपि जने, कृपामंथरतारयोः। ईषद्बाष्पार्द्रयोर्भद्रं, श्रोवीरजिननेत्रयोः ॥

बस उस सर्प ने शान्त चित्त से प्रतिज्ञा कर ली कि अब मैं किसी को भी तकलीफ नहीं दूंगा, इतना ही क्यों पर मुझे कोई कष्ट देगा तो भी क्षमा करूंगा। सर्प ने अपना मुंह वांबी (विल) में डाल कर शरीर को भूमि पर रख दिया। प्रभु ने वहां से विहार कर दिया। जब लोगों को मालूम हुआ कि सर्प ने शान्ति धारण कर ली है तो मिष्टान्न पदार्थों से सर्प की पूजा की, उस मिष्टान से वहां चींटियां आ गई और सर्प के शरीर को काट २ कर खाने लगीं तो भी सर्प ने उन पर क्रोध द्वेष नहीं किया अतः सर्प समभावों से मर कर आठवें देवलोक में उत्पन्न हुआ।

५—एक समय भगवान ने विहार करते हुये एक जंगल में ध्यान लगा दिया था। कोई किसान अपने बैलों को भगवान के पास छोड़ कर कार्यवशात् ग्राम में चला गया था। वलद वहाँ से चले गये, किसान ने वापिस आकर देखा वो वलद नहीं मिले। रात्रि भर ढूंढ़ता फिरा पर बलद नहीं मिले। फिर सुबह वे वलद स्वयं प्रभु के पास आ गये। किसान ने आकर देखा तो उसको प्रभु पर वहुत गुस्सा आया। उसने खैर की कीलें लाकर प्रभु के कानों में इस कदर ठोक दीं कि कानों के छेद आरपार हो गये। इतना कष्ट होने पर भी भगवान् ने उस गोपाल पर किंचित भी द्वेष नहीं किया अर्थात अपने पूर्वसंचित कर्म समझ कर सम-भाव से सहन कर लिया इस प्रकार अनेकानेक उपसर्ग एवं परिसह को वड़ी वीरता के साथ सहन करते हुये करीव साढ़े वारह वर्ष निकल गये और साढ़े वारह वर्षों में प्रभु ने तपश्चर्या भी इतनी की कि पूरा एक वर्ष भी आहार पानी नहीं किया होगा।

तपश्चर्या के नाम	संख्या	तप दिन	पारणा दिन	सर्व दिन
छ मासीतप	१	१८०	१	१८१
न्यून छ मासी तप	१	१७५	१	१७६
चतुर्मासी तप	९	१०८०	९	१०८९
तीन मासी तप	२	१८०	२	१८२
अढ़ाई मासी तप	२	१५०	२	१५२
दो मासी तप	६	३६०	६	३६६
डेढ़ मासी तप	२	९०	२	९२
एक मासी तप	१२	३६०	१२	३७२
पाक्षीक तप	७२	१०८०	७२	११५२
अष्टम तप	१२	३६	१२	४८
छट्ठ तप	२२९	४५८	२२९	६८७
		४१५९	३४८	४५१७

एक तरफ तो घोर उपसर्ग को सहन करना और दूसरी ओर उत्कृष्ट तपश्चर्या फिर बिचारे कर्म तो रह ही कैसे सकते थे ? अतः जम्बुक नामक ग्राम के पास रजुबालका नदी के किनारे पर सोमक के खेत में अशोक के वृक्ष के नीचे छट का तप गोधों आसन और शुक्लध्यान की उच्चश्रेणी में अध्यात्म चिन्तवन करते हुये ज्ञानावर्णिय, दर्शनावर्णिय, मोहनीय और अन्तराय इन चारों घनघाती कर्मों को क्षय कर प्रभु महावीर ने कैवल्यज्ञान कैवल्यदर्शन को प्राप्त कर लिया। आत्मा पर जो कर्मों के दलक के पर्दे थे वे दूर होते ही प्रभु लोकालोक के चराचर पदार्थों के द्रव्य गुण पर्याय को हस्तामलक की मुआफिक देखने लग गये।

इस सुअवसर को जान कर इन्द्रादि असंख्य देव-देवी महोत्सव करने को आये। प्रभु ने देव मनुष्य और विद्याधरों को धर्मदेशना दी, पर उस समय किसी ने व्रत नहीं लिया। दूसरे दिन देवों ने समवसरण की रचना की, उस पर विराजमान हो भगवान महावीर ने अहिंसा परमो धर्मः पर व्याख्यान दिया।

भगवान के उपदेश का अधिक प्रभाव वेदान्तियों के निष्ठुर यज्ञ पर हुआ। यही कारण है कि इन्द्रभूति आदि ११ यज्ञाध्यक्ष महान् पंडितों ने अपने २ दिल की शंकाओं का समाधान करके वे स्वयं तथा उनके ४४०० छात्रों ने भगवान महावीर के चरण कमलों में दीक्षा ग्रहण की और प्रभु के शिष्य बन गये फिर तो कहना ही क्या था ? प्रभु ने चतुर्विध संघ की स्थापना की और यज्ञ में होते हुये असंख्य निराधार मूक प्राणियों को अभयदान दिलवा कर उस पापवृति को समूल नष्ट कर दिया और उस समय की विषमता एवं वर्ण ज ति उपजाति और नीच ऊंच के मिथ्या भ्रम का शिर फोड़ कर सब को समभावी बना कर प्राणी मात्र को अपना कल्याण करने का अधिकार दे दिया।

भगवान् महावीर ने ३० वर्ष तक चारों ओर घूम घूम कर जैनधर्म का खूब प्रचार किया। कई नर नारियों को दीक्षा देकर अपने शिष्य बनाये, जिस में १४००० मुनि और ३६००० साध्वियाँ तो मुख्य थे। इसी प्रकार १५९००० श्रावक और ३३६००० श्राविकाएं व्रतधारियों में अग्रेश्वर थे इनके अलावा जैनों की संख्या उस समय +४००००००००० कही जाती है।

भगवान महावीर के लिए अनेक पौर्वात्य और पाश्चात्य धुरंधर विद्वानों, संशोधकों और इतिहासज्ञों ने अपना मत प्रगट किया है कि भगवान महावीर जैनधर्म के संस्थापक नहीं, परन्तु उपदेशक एवं प्रचारक थे। इस विषय में मैंने बहुत से प्रमाण जैनजाति महोदय ग्रन्थ के प्रथम प्रकरण में उद्धृत कर दिये हैं और उनके अलावा भी अनेक प्रमाणों से यह बात स्पष्टतया निश्चित हो चुकी है कि भगवान महावीर एक ऐतिहासिक पुरुष थे और उन्होंने अहिंसा का खूब जोरों से प्रचार करके प्राणीमात्र को जीने का अधिकार प्राप्त करा दिया था और यज्ञ यागादिक में दी जाने वाली बलि को उन्मूलन करके ब्राह्मण धर्म पर भी अहिंसा की जबरदस्त छाप जमा दी थी इत्यादि। भगवान महावीर का जीवन जगत के कल्याण के लिए हुआ था। भगवान महावीर के अहिंसा परमोधर्मः एवं स्याद्वाद सिद्धांत का प्रभाव केवल साधारण जनता पर ही नहीं परन्तु बड़े २ राजा महाराजाओं पर भी हुआ था। अतः कतिपय राजाओं के नाम यहाँ उद्धृत कर दिये जाते हैं।

+ "भारत में पहिले ४०००००००० जैन थे, इसी मत से निकल कर बहुत लोग अन्य धर्म में जाने से इनकी संख्या घट गई, यह धर्म बहुत प्राचीन है, इस मत के नियम बहुत उत्तम हैं, इस मत से देश को भारी लाभ पहुँचा है"। [illegible]

१–राजगृह नगर का शिशुनागवंशी महाराजा श्रेणिक–आप राजा प्रसेनजित के उत्तराधिकारी थे। आपने शुरू से बौद्धधर्म की शिक्षा पाई थी और उसी धर्म के उपासक थे, परन्तु आपका विवाह वैशाली के महाराजा चेटक की पुत्री चेलना के साथ हुआ था। महारानी चेलना कट्टर जैन उपासिका थी। उसने बड़ी कोशिश के साथ अपने पतिदेव को जैनधर्म के तत्त्वों को समझा कर जैनधर्म के उपासक बनाये। राजा श्रेणिक ने जैनधर्म की विशेषता समझ कर जैनधर्म का खूब ही प्रचार किया। केवल भारत में ही नहीं पर भारत के बाहर विदेशों में भी प्रचुरता से प्रचार किया था। आपने बहुत से जैन मन्दिर बनवा कर मूर्तियों की प्रतिष्ठा भी करवाई थी। हेमवन्तपट्टावली से ज्ञात होता है कि कलिंग की खंडगिरि पहाड़ी पर आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का मन्दिर बना कर उसमें स्वर्णमय मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी। उसी मूर्ति का जिक्र महामेघवान चक्रवर्ती महाराज खारवेल के शिलालेख में आया है जिसको हम आगे चल कर बतावेंगे। महाराजा श्रेणिक जिनभक्ति में इतना लीन था कि वह हमेशा १०८ स्वर्ण के जौ (चावल) बना कर जिन प्रतिमा के सामने स्वस्तिक किया करता था। यही कारण है कि उसने धर्म की प्रभावना करके तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन कर लिया जो अनागत चौबीसी में पद्मनाभ नामक तीर्थंकर होंगे।

२– चम्पा नगरी का महाराजा कोणिक (अशोकचन्द्र) आप राजा श्रेणिक के पुत्र और उत्तराधिकारी थे। आप भगवान महावीर के पूर्ण भक्त थे। आपको ऐसा नियम था कि भगवान महावीर प्रभु कहां बिराजते हैं जिसका पता मिलने से ही अन्न-जल ग्रहण करते थे। आज की भांति तार डाक का साधन नहीं था फिर भी उसने मनुष्यों की ऐसी डांक बैठा दी थी जिसकी हमेशा खबर आया जाया करती थी।

"उपपातिकसूत्र"

३–पाटलीपुत्र नगर के राजा उदाई–आप महाराजा कोणिक के पुत्र एवं उत्तराधिकारी थे। आपने चम्पानगरी को छोड़ कर अपनी राजधानी पाटलीपुत्र में कायम की। आप बड़े ही शान्तिप्रिय धर्मज्ञ एवं आत्म-कल्याण करने में ही संलग्न थे। किसी षडयंत्रवादियों द्वारा धर्म के विश्वास पर आपके जीवन का अन्त कर दिया गया। "श्रेणिक चरित्र"

४–वैशाली नगरी का महाराजा चेटक–आप भगवान महावीर के पूर्णभक्त थे, एवं बारह व्रतधारी श्रावक भी थे। जैनसिद्धान्तों में आपका विशेष वर्णन आता है। "भगवती सूत्र"

५–२२–काशी कोशल देश के १८ गणराजा–ये भी भगवान के परमभक्त थे। भगवान की अंतिम अवस्था में पावापुरी नगरी में आकर महाराजा चेटक के साथ पौषधव्रत किये थे। "निरियावलिका सूत्र"

२३–सिन्धु सौवीर देश का वितभयपाटण का महाराजा उदाई और पटराणी प्रभावती–ये दोनों भगवान महावीर के परमभक्त थे और इन्होंने भगवान के चरणों में जैन दीक्षा लेकर मोक्ष की प्राप्ति कर ली थी।

"भगवती सूत्र"

२४–वितभयपट्टण का राजा केशीकुमार–ये महाराज उदाई के भगिनी पुत्र (भानजा) थे वह भी जैनधर्मोपासक थे। "भगवती सूत्र"

२५–ब्राह्मणकुंड नगर के राजा ऋषभदत्त–आपने भगवान महावीर के पास दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त कर ली थी। "भगवती सूत्र"

(२६) आवन्तीनगरी के महाराजा चंडप्रद्योधन जैनधर्म बड़ी रुचि से पालन करते थे।
"उत्तराध्ययनसूत्र"

(२७) कपिलपुरनगर के महाराजा संयति ने भगवती जैनदीक्षा को पालन कर अक्षय सुख को प्राप्त किया था। "उत्तराध्ययनसूत्र"

(२८) दर्शानपुरनगर के महाराजा दर्शानभद्र जैन थे उन्होंने एक समय भगवान महावीर का स्वागत बड़ा ही शानदार किया था पर मन में ऐसा अभिमान आया कि भगवान के उपासक अनेक राजा हैं पर मेरे जैसा स्वागत शायद ही किसी ने किया हो? यह बात वहाँ पर आये हुए शकेन्द्र को ज्ञात हुई जिसने वैक्रय से अनेक हस्तियों के रूप बनाये कि जिसको देखते ही राजादर्शानभद्र का गर्व गल गया। अब वह इस सोच में था कि इन्द्र के सामने मेरा मान कैसे रह सके। आखिर उन्होंने ठीक सोच समझ के महावीर प्रभु के पास भगवतीजैनदीक्षा स्वीकर कर ली। यह देख इन्द्र ने आकर उन मुनि के चरणों में शिर झुका कर कहा हे मुनि सच्चा मान रखनेवाले संसार भर में एक आप ही हो, दर्शानभद्रमुनि ने उसी भव में मोक्ष प्राप्त करली।
"उत्तराध्ययनसूत्र"

(२९) आवंतीदेश के सुदर्शननगर के महाराजा युगबाहु और उनकी महाराणी मैणरया पक्के जैन थे। "उत्तराध्ययन सूत्र"

(३०) चम्पानगरी के महाराजा दधीवाहन भी जैनधर्मोपासक थे जिन्हों की पुत्री चन्दनबाला ने भगवान महावीर के पास सब से पहले दीक्षा ग्रहण की थी "[illegible]"

(३१) काशीदेश के महाराजा शंख ने भी भगवान के पास दीक्षा धारण कर कल्याण कर लिया था। '[illegible] सूत्र'

(३२) विदेहदेशमिथलानगरी के महाराजा नमिराज 'उत्तराध्ययन सूत्र'

(३३) कलिङ्गपतिमहाराजा करकंडू " "

(३४) पंचालदेश कपीलपुर के स्वामी महाराज दुमई

(३५) गंधारदेश पुंडवर्धननगर के नृपति निग्गई एवं चारों नृपति कट्टर जैन थे। अध्यात्म का अभ्यास करते चारों को साथ ही में ज्ञान हो आया और नाशमान संसार का त्याग कर उन्होंने जैनदीक्षा ग्रहण कर आत्म कल्याण कर लिया। "[illegible]"

(३६) सुग्रीवनगर के महाराजाबलभद्र जैनश्रमणोपासक थे। आपके एकाएक मृगापुत्रनामक कुमार ने भगवती जैनदीक्षा पालन कर संसार का पार कर दिया था। "[illegible]"

(३७) पोलासपुरके राजाविजयसेन जिन्हों के पुत्र अइमन्ताकुमार ने भगवान् महावीर प्रभु के पास दीक्षा ले के संसार का अन्त किया। [illegible]

(३८) सावत्थि नगरी के राजा प्रदीनशत्रु आदि भी परम जैन थे। [illegible]

(३९) सांकेतपुर नगर के राजा चन्द्रपाल जिन्हों के पुत्र ने महावीर प्रभु के पास दीक्षा ली थी। [illegible]

(४०) क्षत्रियकुन्ड नगर के राजा नंदवर्धन जो भगवान महावीर के बड़े भ्राता थे। [illegible]

१–राजगृह नगर का शिशुनागवंशी महाराजा श्रेणिक–आप राजा प्रसेनजित के उत्तराधिकारी थे। आपने शुरू से बौद्धधर्म की शिक्षा पाई थी और उसी धर्म के उपासक थे, परन्तु आपका विवाह वैशाली के महाराजा चेटक की पुत्री चेलना के साथ हुआ था। महारानी चेलना कट्टर जैन उपासिका थी। उसने बड़ी कोशिश के साथ अपने पतिदेव को जैनधर्म के तत्त्वों को समझा कर जैनधर्म के उपासक बनाये। राजा श्रेणिक ने जैनधर्म की विशेषता समझ कर जैनधर्म का खूब ही प्रचार किया। केवल भारत में ही नहीं पर भारत के बाहर विदेशों में भी प्रचुरता से प्रचार किया था। आपने बहुत से जैन मन्दिर बनवा कर मूर्तियों की प्रतिष्ठा भी करवाई थी। हेमवन्तपट्टावली से ज्ञात होता है कि कलिंग की खंडगिरि पहाड़ी पर आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का मन्दिर बना कर उसमें स्वर्णमय मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी। उसी मूर्ति का जिक्र महामेघवान चक्रवर्ती महाराज खारवेल के शिलालेख में आया है जिसको हम आगे चल कर बतावेंगे। महाराजा श्रेणिक जिनभक्ति में इतना लीन था कि वह हमेशा १०८ स्वर्ण के जौ (चावल) बना कर जिन प्रतिमा के सामने स्वस्तिक किया करता था। यही कारण है कि उसने धर्म की प्रभावना करके तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन कर लिया जो अनागत चौबीसी में पद्मनाभ नामक तीर्थंकर होंगे।

२– चम्पा नगरी का महाराजा कोणिक (अशोकचन्द्र) आप राजा श्रेणिक के पुत्र और उत्तराधिकारी थे। आप भगवान महावीर के पूर्ण भक्त थे। आपको ऐसा नियम था कि भगवान महावीर प्रभु कहाँ बिराजते हैं जिसका पता मिलने से ही अन्न-जल ग्रहण करते थे। आज की भांति तार डाक का साधन नहीं था फिर भी उसने मनुष्यों की ऐसी डांक बैठा दी थी जिसकी हमेशा खबर आया जाया करती थी।

"उपपातिकसूत्र"

३–पाटलीपुत्र नगर के राजा उदाई–आप महाराजा कोणिक के पुत्र एवं उत्तराधिकारी थे। आपने चम्पानगरी को छोड़ कर अपनी राजधानी पाटलीपुत्र में कायम की। आप बड़े ही शान्तिप्रिय धर्मज्ञ एवं आत्म-कल्याण करने में ही संलग्न थे। किसी षडयंत्रवादियों द्वारा धर्म के विश्वास पर आपके जीवन का अन्त कर दिया गया। "श्रेणिक चरित्र"

४–वैशाली नगरी का महाराजा चेटक–आप भगवान महावीर के पूर्णभक्त थे, एवं बारह व्रतधारी श्रावक भी थे। जैनसिद्धान्तों में आपका विशेष वर्णन आता है। "भगवती सूत्र"

५–२२–काशी कोशल देश के १८ गणराजा–ये भी भगवान के परमभक्त थे। भगवान की अंतिम अवस्था में पावापुरी नगरी में आकर महाराजा चेटक के साथ पौषधव्रत किये थे। "निरियावलिका सूत्र"

२३–सिन्धु सौवीर देश का वितभयपाटण का महाराजा उदाई और पटराणी प्रभावती–ये दोनों भगवान महावीर के परमभक्त थे और इन्होंने भगवान के चरणों में जैन दीक्षा लेकर मोक्ष की प्राप्ति कर ली थी। "भगवती सूत्र"

२४–वितभयपट्टण का राजा केशीकुमार–ये महाराज उदाई के भगिनी पुत्र (भानजा) थे वह भी जैनधर्मोपासक थे। "भगवती सूत्र"

२५–ब्राह्मणकुंड नगर के राजा ऋषभदत्त–आपने भगवान महावीर के पास दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त कर ली थी। "भगवती सूत्र"

(२६) आवन्तीनगरी के महाराजा चंडप्रयोधन जैनधर्म बड़ी रुचि से पालन करते थे।
"उत्तराध्ययनसूत्र"

(२७) कपिलपुरनगर के महाराजा संयति ने भगवती जैनदीक्षा को पालन कर अक्षय सुख को प्राप्त किया था।
"उत्तराध्ययनसूत्र"

(२८) दर्शनपुरनगर के महाराजा दर्शनभद्र जैन थे उन्होंने एक समय भगवान महावीर का स्वागत बड़ा ही शानदार किया था पर मन में ऐसा अभिमान आया कि भगवान के उपासक अनेक राजा हैं पर मेरे जैसा स्वागत शायद ही किसी ने किया हो? यह बात वहाँ पर आये हुए शकेन्द्र को ज्ञात हुई जिसने वैक्रय से अनेक हस्तियों के रूप बनाये कि जिसको देखते ही राजादर्शनभद्र का गर्व गल गया। अब वह इस सोच में था कि इन्द्र के सामने मेरा मान कैसे रह सके। आखिर उन्होंने ठीक सोच समझ के महावीर प्रभु के पास भगवतीजैनदीक्षा स्वीकर कर ली। यह देख इन्द्र ने आकर उन मुनि के चरणों में शिर झुका कर कहा हे मुनि सच्चा मान रखनेवाले संसार भर में एक आप ही हो, दर्शनभद्रमुनि ने उसी भव में मोक्ष प्राप्त करली।
"उत्तराध्ययनसूत्र"

(२९) आवंतीदेश के सुदर्शननगर के महाराजा युगबाहु और उनकी महाराणी मैणरया पक्के जैन थे।
"उत्तराध्ययन सूत्र"

(३०) चम्पानगरी के महाराजा दधीवाहन भी जैनधर्मोपासक थे जिन्हों की पुत्री चन्दनबाला ने भगवान महावीर के पास सब से पहले दीक्षा ग्रहण की थी
"[illegible]"

(३१) काशीदेश के महाराजा शंख ने भी भगवान के पास दीक्षा धारण कर कल्याण कर लिया था।
"[illegible] सूत्र"

(३२) विदेहदेशमिथलानगरी के महाराजा नमिराज　　'उत्तराध्ययन सूत्र'

(३३) कलिङ्गपतिमहाराजा करकंडू　　" "

(३४) पंचालदेश कपीलपुर के स्वामी महाराज दुमई　　" "

(३५) गंधारदेश पुंडवर्धननगर के नृपति निग्गई एवं चारों नृपति कट्टर जैन थे। अध्यात्म का अभ्यास करते चारों को साथ ही में ज्ञान हो आया और नाशमान संसार का त्याग कर उन्होंने जैनदीक्षा ग्रहण कर आत्म कल्याण कर लिया।
"उत्तराध्ययन सूत्र"

(३६) सुग्रीवनगर के महाराजाबलभद्र जैनश्रमणोपासक थे। आपके एकाएक मृगापुत्रनामक कुमार ने भगवती जैनदीक्षा पालन कर संसार का पार कर दिया था।
"[illegible]"

(३७) पोलासपुरके राजाविजयसेन जिन्हों के पुत्र अइमन्ताकुमार ने भगवान् महावीर प्रभु के पास दीक्षा ले के संसार का अन्त किया।
[illegible]

(३८) सावत्थि नगरी के राजा अदीनशत्रु आदि भी परम जैन थे।
[illegible]

(३९) सांकेतपुर नगर के राजा चन्द्रपाल जिन्हों के पुत्र ने महावीर प्रभु के पास दीक्षा ली थी।

(४०) क्षत्रियकुण्ड नगर के राजा नंदवर्धन जो भगवान महावीर के [illegible] थे। [illegible]

धर्म का खूब प्रचार किया। आपने महावीर के दीक्षा के सातवें वर्ष मुंडस्थल नगर में महावीर का दर्शन कर वहाँ महावीर का मंदिर बनाया। "कल्प सूत्र"

(४१) कौशाम्बी नगरी के महाराजा संतानीक और आपकी पट्टराणी मृगावती भी जैन थे जिन्हों की बहिन जयन्ति बाई ने भगवान महावीर के पास जैनदीक्षा ग्रहण करी थी। महाराजा संतानीक के पुत्र राजाउदाई आदि भी पक्के जैन थे। "भगवती सूत्र"

(४२) कपिलपुर के जयकेतु राजा भी जैन थे। "उत्पातिक सूत्र"

(४३) कांचनपुर के महाराजा धर्मशील भी जैन थे। "उत्तराध्यनसूत्र"

(४४) हस्तिनापुर के राजा अदीनशत्रु और आपकी महाराणी धारणी भी जैन थे जिन्हों के पुत्र सुबाहुकुमार ने भगवान के पास दीक्षा ली थी। "विपाक सूत्र"

(४५) ऋषभपुर नगर के महाराजा धनबहा और सरसावती राणी जैनधर्मानुयायी थे। आपके पुत्र भद्रनंदी ने प्रभु महावीर के पास जैनदीक्षा ग्रहण की थी। "विपाकसूत्र"

(४६) वीरपुरनगर के महाराजा वीर कृष्णमित्र और रविदेवी जैनधर्म पालन करते थे, आपके पुत्र सुजातकुमार ने महावीर के पास जैनदीक्षा लेकर उसका सम्यक् प्रकार से पालन किया।

(४७) विजयपुरनगर के वासवदत्त राजा और कृष्णादेवी जैनधर्मोपासक थे, आपके पुत्र सुवासवकुमार ने महावीर के पास जैनदीक्षा ली थी। "विपाकसूत्र"

(४८) सोगंधिकानगरी के अप्रहत नामक राजा जैनधर्म के बड़े भारी प्रचारक थे, आपके पुत्र महचन्द्रकुमार ने भी जैनदीक्षा ग्रहण की थी। "विपाकसूत्र"

(४९) कनकपुरनगर के प्रीचन्द्र राजा भी जैन थे, आपके पुत्र वैश्रमणकुमार ने भी भगवान वीर प्रभु के पास दीक्षा लेकर स्वपर कल्याण किया था। "विपाकसूत्र"

(५०) महापुरनगर के बलराजा सुभद्रादेवी जैनधर्मोपासक थे, आपके पुत्र महाबलकुमार ने ५०० अंतेवर और राज्य त्याग कर जैनदीक्षा ली थी। "विपाकसूत्र"

(५१) सुघोषनगर के अर्जुन राजा भी जैन थे आप के पुत्र भद्रनन्दी ने बड़े वैराग्य के साथ भगवान महावीर के पास जैन दीक्षा ग्रहण करी। "विपाकसूत्र"

(५२) चम्पानगरी के राजादत्त और रत्तवतीराणी जैनधर्म को प्रेमपूर्वक पालन करते थे, आपके पुत्र महिचन्द्र ने राजऋद्धि और ५०० अंतेवर का त्याग कर जैनदीक्षा ली थी। "विपाकसूत्र"

(५३) साकेतनामानगर के राजा मित्रनन्दी और श्रीकान्ता राणी जैनधर्मोपासक थे, आपके पुत्र वरदत्तकुमार ने भगवान महावीर के चरण कमलों में भगवती जैन दीक्षा को ग्रहण कर स्वपर कल्याण किया। "विपाक सूत्र"

(५४) अमलकम्पानगरी के राजा सेत जैनधर्मी थे, जिन्होंने भगवान महावीर प्रभु के आगमण समय बड़ा ही जोरदार स्वागत किया था। 'रायपसेनीसूत्र'

(५५) श्वेताम्बिकानगरी के राजा प्रदेशी और सूरिकान्तकुँवर भी जैनधर्म के परमोपासक थे। राजा प्रदेशी कठिन व्रत-तपश्चर्या करके सूरयाभ नाम का देव हुआ एक भव कर मोक्ष जायगा। "रायपसेनीसूत्र"

(५६) हस्तिनापुर के राजा शिव ने पहिले तापसी दीक्षा ली थी और इसका मत था कि संसार भर में सात द्वीप और सात समुद्र ही हैं, परन्तु जब भगवान महावीर का समागम होने से आपको अपनी मान्यता मिथ्या मालूम हुई तो भगवानवीर के सिद्धान्तको स्वीकार कर जैनदीक्षा ग्रहण कर ली। "भगवती सूत्र"

(५७) राजा वीरांग (५८) राजा वीरजस इन दोनों नृपतियों ने भगवान महावीर के पास दीक्षा लेकर मोक्षपद को प्राप्त किया। "ठाणायांग सूत्र ठा०८"

(५९) पावापुरी के राजा हस्तपाल जैनधर्म के कट्टर प्रचारक थे जिन्होंने भगवान महावीर को आग्रहपूर्वक विनती कर अन्तिम चातुर्मास अपने यहाँ कराया और उसी चातुर्मास में भगवान महावीर का निर्वाण हुआ। "कल्पसूत्र"

इनके अलावा भी कई राजा महाराजा भगवान महावीर प्रभु के शान्तिमय झंडे के नीचे अपना आत्म-कल्याण करते थे। मैंने अपने उद्देश्यानुसार महावीर प्रभु का जीवन संक्षेप में लिखा है।

अन्त में वि. सं. पूर्व ४७० वर्ष भगवान महावीर ने चरम चतुर्मास पावापुरीनगरी के महाराज हस्तपाल की रथशाला में किया और कार्तिक कृष्णा अमावस्या की रात्रि में भगवान ने वेदनीय नाम गोत्र और आयुष्यकर्म का क्षय कर मोक्ष पद प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात इन्द्रादिक असंख्य देव और चतुर्विध श्रीसंघ ने शोक संयुक्त प्रभु का निर्वाण कल्याणक किया उसी रात्रि के अन्त में गुरु गौतम स्वामीको केवल ज्ञान हुआ।

यह बात तो मैं पहिले ही लिख आया हूँ कि भगवान् के समय पार्श्वनाथ प्रभु के सन्तानिये केशी-श्रमण के आज्ञावृति हजारों की संख्या में साधु धर्मप्रचार कर रहे थे। यज्ञवादियों के चंगुल में फंसे हुए कई राजा महाराजाओं को सदुपदेश देकर जैनधर्म के परमोपासक बनाये थे।

जब भगवान् महावीर ने चतुर्विध श्रीसंघ की स्थापना कर प्रचलित नियमों में समयानुसार रद्दो-बदल कर कई नये नियमों का निर्माण किया था, उस समय भी पार्श्व संतानिये मौजूद थे तथा ज्यों ज्यों उनकी महावीर से भेंट होती गई त्यों त्यों वे वीरशासन स्वीकार करते गये।

जैसे पार्श्वनाथ संतानिये केशीकुमार जिसका वर्णन श्रीउत्तराध्ययन सूत्र के २३ वों अध्ययन में आता है जिसको मैं संक्षेप से यहाँ लिख देता हूँ। जो पाठकों के लिये बड़ा लाभदायक है।

एक समय का जिक्र है प्रभु पार्श्वनाथ के संतानियो में से मुनि केशीश्रमण भूमण्डल पर विहार करते हुए अपने ५०० मुनियों के परिवार से सावत्थी नगरी के तन्दुकवन उद्यान में पधार गये। आप तप संयम की सम्यक् आराधना कर रहे थे जिससे आपको अवधिज्ञान प्राप्त हो गया था, अतः आप मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान और अवधिज्ञान एवं तीनज्ञानधारक थे।

उसी समय भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य गणधर इन्द्रभूति जो मतिज्ञान श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनपर्यवज्ञान एवं चार ज्ञान के ज्ञाता तथा चौदहपूर्वधर थे वे भी अपने ५०० शिष्यों के साथ जगत उद्धार करते हुए क्रमशः सावत्थी नगरी के कोष्टक नाम के उद्यान में पधार गये।

इस बात की शहर में खूब चर्चा हुई। भक्त लोगों ने दोनों मुनियों का अच्छा स्वागत किया परन्तु भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानिये चार महाव्रतरूपी धर्मदेशना तथा भगवान महावीर के सन्ता-निये पांच महाव्रत रूपी धर्मदेशना दे रहे थे तथा पार्श्वनाथ संतानियों के पांच वर्ण के वस्त्र रखने का विधान

और वीर संतानियों के एक सफेद वर्ण के वस्त्र और वह भी परमाणुपेत होने से लोगों को शंका होना स्वाभाविक ही था जब कि दोनों का ध्येय मोक्ष मार्ग साधन करने का है तो फिर ये अन्तर क्यों ? जब दोनों नायकों के शिष्यों का आपस में मिलाप एवं संवाद हुआ और उन्होंने अपने २ आचार्यों को जा कर निवेदन किया तो वे आचार्य भी शासन के हितैषी एवं दूरदर्शी थे कि ऐसी बातें छोटे आदमियों के हाथों में न दे कर आप ही आपस में समाधान करके जनता की शंका को मिटा देवें। बस, फिर तो था ही क्या ? गणधर इन्द्रभूति ने सोचा कि भगवान पार्श्वनाथ के संतानिये हमारे लिए ज्येष्ठ हैं, अतः मुझे उनकी सेवा में जाना चाहिये। गणधर इन्द्रभूति ने केवल ऐसा विचार ही नहीं किया परन्तु उन्होंने अपने शिष्यों को ले कर तन्दुकवन की ओर चलने के लिए प्रस्थान ही कर दिया जहाँ कि पर्श्वनाथजी के सन्तानिये ठहरे हुए थे।

इधर केशीश्रमण आचार्य को मालूम हुई कि गौतम यहाँ आ रहा है तब अपने शिष्यों को कहा कि हम गौतम के सामने जा रहे हैं तुम गौतम के लिए पाट या उस पर घास का आसन लगा के तैयार रखो। बस, केशीश्रमण अपने कई शिष्यों को साथ ले कर गौतम के सामने गये। उधर गौतम आ ही रहा था रास्ते में दोनों का मिलाप हुआ और परस्पर मिलने से दोनों पक्ष में धर्मस्नेह की तरंगें उछलने लगीं। और वे सब चल कर तन्दुक उद्यान में आये जिस समय पूर्व स्थापित आसनों पर केशीश्रमण और गौतम विराजमान हुए उस समय प्रतीत होता था मानो सूर्य और चन्द्र ही उद्यान को शोभायमान कर रहे थे।

इधर इस बात की खबर स्वमत और परमत के लोगों को हुई कि आज दोनों आचार्य तन्दुकवन में एकत्र हुए हैं। इनके आपस में संवाद होगा जिसमें किसका पक्ष सच्चा रहेगा चल कर देखें अतः दुनिया उलट पड़ी और देखते २ उद्यान खचाखच भर गया। केवल मनुष्य ही नहीं पर आकाश में गमन करने वाले देव और विद्याधर भी इस संवाद सुनने को ललचा गये। जब उनको भूमि में बैठने को स्थान नहीं मिला तो वे आकाश में ही स्थिर रहे, अब सब लोगों के इच्छा यही हो रही थी कि इनका संवाद कब प्रारम्भ हो।

केशीश्रमण भगवान मधुर स्वर से बोले कि हे महाभाग्य ! अगर आपकी इच्छा हो तो मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ ?

गौतमस्वामि विनय पूर्वक बोले कि— हे भगवान ! मेरे पर अनुग्रह करावें अर्थात् आपकी इच्छा हो वह प्रश्न पूछने की कृपा करे।

(१) प्रश्न—केशीश्रमण भगवान ने प्रश्न किया कि हे गौतम ! पार्श्वप्रभु और वीर भगवान दोनों ने एक ही मोक्ष के लिए यह धर्म रास्ता (दीक्षा) बतलाते हुए पार्श्वप्रभु ने चार महाव्रतरूपी धर्म और वीर ...न ने पांच महाव्रतरूपी धर्म बतलाया है तो क्या इसमें आपको आश्चर्य नहीं होता है ?

उ०—गौतम स्वामी नम्रतापूर्वक बोले कि हे भगवान पहले तीर्थंकर श्रीआदिनाथ भगवान के मुनि सरल (माया रहित) थे किन्तु पहले न देखने से मुनियों का आचार व्यवहार को समझना ही दुष्कर था परन्तु प्रज्ञावान होने से समझनेके बाद आचार में प्रवृति करना बहुत ही सहज था और चरम तीर्थंकर वीर भगवान के मुनि प्रथम तो जड़वत होने से समझना ही दुष्कर और वक्र होने से समझे हुवे को भी पालन करना अति दुष्कर है इसीलिए इन्हीं दोनों भगवान के मुनियों के लिए पांच महाव्रत रूपी धर्म कहा है और शेष २२ तीर्थंकरों के मुनि प्रज्ञावान होने से अच्छी तरह से समझ भी सकते थे और सरल होने से परिपूर्ण आचार को पालन भी कर सकते थे अतः इन्हीं २२ भगवान के मुनियों के लिये चार महाव्रत रूपी धर्म कहा

है। पाँच महाव्रत कहने से स्त्री चोथा व्रत में और परिग्रह धन धान्यादि पांचवाँ व्रत में गिना है परन्तु प्रज्ञावान समझ सकते हैं कि जब किसी पदार्थ पर ममत्व भाव नहीं रखना तो फिर स्त्रियां तो ममत्व भाव का घर ही हैं अतः स्त्री और परिग्रह को एक ही व्रत में माना गया है। हे भगवान इसमें किंचित भी आश्चर्य की बात नहीं है दोनों भगवानों का ध्येय तो एक ही है। यह उत्तर श्रवण कर के परिषदा को बड़ा ही संतोष हुआ।

यह उत्तर श्रवण करके भगवान केशीश्रमण बोले कि हे गौतम इस शंका का समाधान आपने अच्छा किया परन्तु एक प्रश्न मुझे और भी पूछना है।

गौतम स्वामी ने कहा कि भगवान आप अवश्य कृपा करावें।

(२) प्रश्न—हे गौतम श्री पार्श्वप्रभु ने साधुओं के लिये 'सचेल' वस्त्र सहित रहना वह भी पांचों वर्ण के स्वल्प या बहुमूल्य अपरिमित मर्यादावाले वस्त्र रखना कहा है और भगवान वीरप्रभु ने 'अचेल' वस्त्र रहित अर्थात् जीर्ण वस्त्र वह भी श्वेतवर्ण और स्वल्प मूल्यवाला रखना कहा है इसका क्या कारण है?

उत्तर—हे भगवान मुनियों को वस्त्रादि धर्मोपकरण रखने की आज्ञा फरमाई है इसमें प्रथम तो साधुलिंग है वह बहुत से जीवों का विश्वास का भाजन है और लिंग होने से भव्यात्मा धर्म पर श्रद्धा रखते हुये स्वात्मकल्याण कर सकते हैं दूसरा मुनियों की चित्तवृत्ति कभी अस्थिर भी हो जावे तो भी ख्याल रहेगा कि मैं साधु हूँ, दीक्षित हूँ, वेश में यह अतिचारादि मुझे सेवन करने योग्य नहीं हैं अर्थात अतिचारादि लगाते हुये चिन्ह देखके रुक जावेगा। अतः यह लिंग एवं धर्मोपकरण संयम के साधक हैं इसमें पार्श्व प्रभुके संतानिये सरल और प्रज्ञावन्त होने से उन्हों को किसी भी पदार्थ पर ममत्व भाव नहीं है और वीर भगवान के मुनि जड़ और वक्र होने से उन्हों के लिये उक्त कायदा रखा गया है, परन्तु दोनों का ध्येय एक ही है धर्मोपकरण मोक्ष साधन करने में सहायक जान के ही रखने की आज्ञा दी है।

केशीश्रमण—हे गौतम! आपने इस शंका का अच्छा समाधान किया परन्तु और मुझे प्रश्न करना है। इस प्रकार दोनों के धर्म स्नेह युक्त वचनों को श्रवण करके परिषदा बड़ी ही आनन्द को प्राप्त हुई।

गौतम—हे भगवान आप कृपा करके फरमाइये।

(३) प्र०-हे गौतम! इस संसार भर में हजारों दुश्मन हैं उन्हीं दुश्मनों (वैरी) के अन्दर आप निवास किस प्रकार से करते हैं और वह दुश्मन आपके सन्मुख युद्ध करने को बराबर आते हैं और हमला भी करते हैं उन दुश्मनों को कैसे पराजय करते हो?

उ:—हे भगवान जो दुश्मन हैं वह सर्व मेरे जाने हुये हैं। इन्हीं दुश्मनों का एक नायक है उसको पहिले से ही मैंने अपने कब्जे में कर रखा है और उसी नायक के चार उमराव हैं वह तो हमेशा के लिये मेरे दास ही बन रहे हैं और नायक के राज्य में पाँच पंच हैं। वह मेरे आज्ञाकारी ही हैं। इन्हीं दुश्मनों में यह १ + ४ + ५=१० मुख्य योद्धा हैं। इन्हीं को अपने कब्जेमें कर लेने से पीछे बिचारे दूसरे दुश्मनोंकी तो सामर्थ ही क्या है? अतः मैं इन्हीं दुश्मनों का पराजय करता हुआ सुखपूर्वक विचरता हूँ।

तर्क—हे गौतम! आपके दुश्मन एक नायक, चार उमराव, पांच पंच कौन हैं और किनको पराजय किया है?

समाधान हे भगवान्! दुश्मनों का नायक एक 'मन' है, वह आत्मा के निज गुण को हरण करता

है, इन्हीं को अपने कब्जे में कर लेने से 'मन' के चार उमराव क्रोध, मान, माया, और लोभ यह मेरे आज्ञाकारी बन गये हैं। जब इन्हीं पांचों को आज्ञाकारी बना लिए तब ही से पांच पंच 'इन्द्रियां' हैं उन्हों का सहज में पराजय कर लिया, बस इन्हीं १० योद्धों को जीत लेने से सर्व दुश्मन अपने आदेश में हो गये हैं अतः मैं दुश्मनों के अन्दर निर्भय विचरता हूँ।

यह उत्तर श्रवण करने पर देवता विद्याधर और मनुष्यों को बड़ा ही आनन्द हुआ और भगवान् केशीश्रमण बोले कि प्रज्ञावन्त आपने मेरे प्रश्न का अच्छा युक्तिपूर्वक उत्तर दिया परन्तु मुझे एक और भी प्रश्न करना है ?

गौतम—हे महाभाग्य आप अनुग्रह कर अवश्य फरमावें।

(४) प्रश्न—हे गौतम ! इस आरापार संसार के अन्दर बहुत से जीव निवड़बन्धरूपी पाश में बन्धे हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं तो आप इस पाश से मुक्त होके वायु की माफिक अप्रतिबन्ध कैसे विहार करते हो ?

उ०—हे भगवान ! यह पाश बड़ा भारी है परन्तु मैं एक तीक्ष्ण धारा वाले शस्त्र के उपाय से इस पाश को छेद-भेद कर मुक्त होकर अप्रतिबन्ध विहार करता हूँ।

तर्क—हे गौतम ! आपके कौनसी पाश है और कौनसे शस्त्र से छेदी हैं ?

समा०—हे महाभाग्य ! इस घोर संसार के अन्दर रागद्वेष पुत्र कलत्र, धनधान्य रूपी जबरदस्त पाश है उन्हीं को जैन शासन के न्याय और सदागम भावों की शुद्ध श्रद्धना अर्थात् सम्यग्दर्शनरूपी तीक्ष्ण धारावाले शस्त्र से उस पाश को छेदन-भेदन कर मुक्त होकर आनन्द में विचर रहा हूँ। अर्थात् राग द्वेष मोहरूपी पाश को तोड़ने के लिए सदागम का श्रवण और सम्यग् श्रद्धनारूप सम्यग्दर्शनरूपी शस्त्र है इन्हीं के जरिये जीव पाश से मुक्त हो सकता है।

हे गौतम ! आप तो बड़े ही प्रज्ञावान हो और मेरे प्रश्न का उत्तर अच्छी युक्ति से कहके मेरे संशय को ठीक समाधान किया परन्तु एक और भी प्रश्न पूछता हूँ।

गौतम—हे भगवान् मेरे पर अनुग्रह करावें।

(५) प्रश्न—हे भाग्यशाली ! जीवों के हृदय में एक विषवेल्लि होती है जिसका फल विषमय है। उन्हीं फलों का आस्वादन करते हुए जगत् जीव भयंकर दुःख के भाजन हो जाते हैं तो हे गौतम विषवेल्लि को मूल से कैसे उखेड़ के दूर करदी और अमृतपान करते हो ?

उ०—हे भगवान् ! मैंने उसी विषवेल्लि को एक तीक्ष्ण कुदाले से जड़ामूल से उखेड़ दी, अब उन विषमय फल का भय न रखता हुआ जैन शासन में न्यायपूर्वक मार्ग का अवलम्बन कर अमृतपान करता हुआ विचरता हूँ।

तर्क—हे गौतम ! आपके कौनसी विषवेल्लि है और कौन से कुदाल से उसको उखेड़ कर दूर करी है ?

समा०—हे केशीश्रमण ! इस घोर संसार के अन्दर रहे हुवे अज्ञानी जीवों के हृदय में तृष्णारूपी विषवेल्लि है; वह वेल्लि भवभ्रमणरूपी विषमय फल देने वाली है परन्तु मैं संतोषरूपी तीक्ष्ण धारावाला कुदाला से जड़ा-मूल से नष्ट करके शासन के न्याय माफिक निर्भय होके विचरता हूँ।

(६) प्रश्न—हे गौतम ! इस रौद्र संसार के अन्दर प्राणियों के हृदय और रोमरोम के अन्दर भयंकर जाज्वल्यमान अग्नि प्रज्वलित होती हुई प्राणियों को मूल से जला देती है, तो हे गौतम ! आप इस ज्वलंत अग्निको शान्त करते निर्भय होकर कैसे विचरते हैं ?

उ०—हे भगवान् ! इस कुपित अग्नि पर मैं महामेघ की धारा के जल को छांट कर बिलकुल शान्त करके उस अग्नि से निर्भय होकर विचरता हूँ।

तर्क—हे गौतम! आपके कौन सी अग्नि है और कौनसा जल है ?

समा०—हे भगवान् ! कषायरूपी अग्नि अज्ञानी प्राणियों को जला रही है परन्तु तीर्थंकररूपी महामेघ के अन्दर से सदागम रूपी मूसलधारा जल से सिंचन करके बिलकुल शान्त करता हुआ मैं निर्भय विचरता हूँ।

(७) प्रश्न-हे गौतम ! एक महाभयंकर-रौद्र-दुष्ट दिशाविदशा में उन्मार्ग चलने वाला अश्व जगत के प्राणियों को स्वइच्छित स्थान पर ले जाता है तो हे गौतम ! आप भी ऐसे अश्वारूढ हैं फिर भी आपको वह उन्मार्ग नहीं ले जाता हुआ वह अश्व तुमारी मरजी माफिक चलता है इसका क्या कारण है ?

उ०—हे भगवान् ! उस अश्वका स्वभाव तो रौद्र भयंकर और दुष्ट ही है और अज्ञानी प्राणियों को उन्मार्ग लेजा के बड़ा ही दुःखी बना देता है परन्तु मैंने उस अश्व के मुंह में एक जबरजस्त लगाम और गले में एक बड़ा रस्सा डाल दिया है कि जिन्हों से सिवाय मेरी इच्छा के किसी भी उन्मार्ग में बिलकुल जा नहीं सकता है अर्थात् मेरी इच्छानुसार ही चलता है।

तर्क—हे गौतम ! आपके अश्व कौन और लगाम तथा रस्सा कौन सा है ?

समा०—हे भगवान् ! इस लोक में बड़ा साहसिक रौद्र उन्मार्ग चलने वाला 'मन' रूपी दुष्टअश्व है वह अज्ञानी जीवों को स्वइच्छा घुमाये करता है परन्तु मैं धर्म शिक्षणरूपी लगाम और शुभ ध्यानरूपी रस्सा से खेंच के अपने कब्जे में कर लिया है कि अब किसी प्रकार के उन्मार्गादि का भय नहीं रखता हुवा मैं आनन्द में विचरता हूँ।

केशीश्रमण। हे प्रज्ञावान, गौतम ! आपने अच्छी युक्ति से यह उत्तर दिया है परन्तु एक प्रश्न मुझे और भी पूछना है ? परिषदा को बड़ा ही आनन्द होता है।

गौतम—हे दयालु कृपा कर फरमावें।

(८) प्रश्न-हे गौतम इस लोक के अन्दर अनेक कुपन्थ (खराब मार्ग) हैं और बहुत से जीव अच्छे रास्ते का त्याग कर कुपन्थ को स्वीकार करते हैं। उन्हीं से अनेक शारीरिक मानसिक तकलीफें उठाते हैं तो हे गौतम आप इन्हीं कुपंथ से बच के सन्मार्ग पर किस तरह चलते हो ?

उ०—हे भगवान् ! इस लोक के अन्दर जितने सन्मार्ग और उन्मार्ग हैं वह सर्व मेरे जाने हुवे हैं अर्थात् सुपन्थ कुपन्थको मैं ठीक ठीक जानता हूँ इसी वास्ते कुपन्थ का त्याग कर सुपन्थ पर आनन्द से चलता हूँ।

तर्क—हे गौतम ! इस लोक में कौनसा अच्छा और कौनसा बुरा रास्ता है ?

समा०—हे महाभाग्य ! इस लोक में अनेक मत-मतांतर हैं जो स्वच्छंद निकृष्टकल्पना इन्द्रियपोषक स्वार्थवृत्ति से तरह के अज्ञात लोगों ने चलाये हैं अर्थात् ३६३ पाखण्डियों के चलाये हुये रस्तों को कुपन्थ कहते हैं और सर्वज्ञ भगवान् ने निःस्पृहता से जगदोद्धार के लिये सम्यग्ज्ञानादि रस्ता बतलाया है वह सुपंथ है अतः मैं कुपन्थ का त्याग करता हुआ सुंदर सद्बोधवाला सुपन्थ पर ही चलता हुआ आनन्द-रमणता कर रहा हूँ।

हे गौतम ! यह उत्तर आपने ठीक युक्ति द्वारा प्रकाश किया परन्तु एक और भी प्रश्न मुझे पूछना है।

हे क्षमागुणालंकृत भगवान फरमाइये ?

(९) प्रश्न–हे गौतम ! इस घोर संसार के अन्दर महापाणी के वेग के अन्दर बहुत से पामर प्राणी मृत्यु को प्राप्त होते हैं तो इनके शरणदायक किसी द्वीप को आप जानते हो ?

उ०—हे भगवान ! इनको पाणी के महावेग से बचाने के लिये एक बड़ा भारी विस्तारवाला और सौम्य प्रकृति सुंदराकार महाद्वीप है। वहां पर पाणी का वेग कभी नहीं आता है, उसी द्वीप का आवलम्बन करते हुए जीवों को पाणी का वेग सम्बन्धी किसी प्रकार का भय नहीं होता है ?

तर्क—हे गौतम ! वह कौनसा द्वीप और कौनसा पाणी है ?

समा०—हे भगवान ! इस रौद्र संसारार्णव में जन्म जरा मृत्यु रोग शोक भय आदि पाणी का महावेग है इसमें अनेक प्राणी शारीरिक मानसिक दुःख का अनुभव कर रहे हैं। जिसमें एक सुंदर विशाल अनेक गुणागार धर्म नाम का द्वीप है। अगर पाणी के वेग के दुख को देखते हुये भी इस धर्म द्वीप का अवलम्बन कर ले तो इन दुःखो से बच सक्ता है। अर्थात् इस घोर संसार के अन्दर जन्म मृत्यु आदि दुखी प्राणियों को सुखी बनने के लिये एक धर्म ही का अवलम्बन है और धर्म ही से अक्षय सुख की प्राप्ति होती है।

हे गौतम ! आपकी प्रज्ञा बहुत अच्छी है। यह उत्तर आपने ठीक दिया परन्तु एक प्रश्न मुझे और भी पूछना है ?

हे कृपासिंधु ! आप अवश्य कृपा करावें।

(१०) प्रश्न—हे गौतम ! महासमुद्र के अन्दर पाणी का वेग (चक्र) बड़े ही जोर शोर से चलता है उसके अन्दर बहुत से प्राणी डूब कर मृत्यु-शरण हो जाते हैं और उसी समुद्र के अन्दर निवास करते हुये, आप नौकारूढ़ हो कैसे समुद्र को तर रहे हो ?

उ०—हे भगवान ! उस समुद्र के अन्दर नाव दो प्रकार की है (१) छिद्र सहित कि जिन्हों के अंदर बैठने से लोग समुद्र में डूब मरते हैं (२) छिद्र-रहित कि जिन्हों के अन्दर बैठ के आनन्द के साथ समुद्र को तर सकते हैं।

तर्क—हे गौतम ! कौनसा समुद्र और कौनसी आप के नाव है ?

समा०—हे भगवान ! संसाररूपी महासमुद्र है। जिसमें औदारिक शरीररूपी नाव है परन्तु जिस में आश्रवद्वार रूपी छिद्र है अर्थात् जिस जीव ने आश्रवद्वार सहित शरीर धारण किया है वह तो संसार समुद्र में डूब जाता है और जिसने आश्रवद्वार रोक कर शरीर रूपी नौकारूढ हुवा है। वह संसार समुद्र से तर के पार हो जाता है। हे भगवान ! मैं छेदरहित नौकारूढ होता हुआ ही समुद्र तर रहा हूँ।

हे गौतम ! यह उत्तर तो आपने ठीक युक्तिपूर्ण दिया परन्तु मुझे एक प्रश्न और भी पूछना है ?

हे स्वामिन् ! आप कृपा कर फरमावें।

(११) प्र०—हे गौतम ! इस भयंकर संसार के अन्दर घोरोनघोर अन्धकार फैल रहा है जिसके अन्दर बहुत से प्राणी इधर के उधर धक्के खाते भ्रमण कर रहे हैं, उन्हों को रास्ता तक भी नहीं मिलता है। तो हे गौतम ! इस अन्धकार में उद्योत कौन करेगा ? क्या यह बात आप जानते हो ?

उ०—हे भगवान ! इस घोर अन्धकार के अन्दर उद्योत करने वाला एक सूर्य है, उन्हीं सूर्य के

प्रकाश होने से अन्धकार का नाश हो जायगा है तब उधर इधर भ्रमण करने वालों को ठीक रास्ता मालूम होगा।

तर्क—हे गौतम ! अन्धकार कौन सा और उद्योत करने वाला सूर्य कौन सा है ?

समा०—हे भगवान ! इस अारापार लोक के अन्दर मिथ्यात्वरूपी घोर अन्धकार है जिसमें पामर प्राणी अन्धे होकर इधर उधर भ्रमण करते हैं परन्तु जब तीर्थंकररूपी सूर्य केवल ज्ञान रूपी प्रकाश में भव्यात्माओं को सम्यग्दर्शन रूप अच्छा सुन्दर रास्ता दिखला देगा तब उन्हीं रास्ते से जीव सीधा स्वस्थान पहुँच जावेगा। यह उत्तर सुन के देवादि परिपदा प्रसन्नचित्त हो रही थी।

हे गौतम ! यह आपने ठीक कहा परन्तु एक और भी प्रश्न मुझे करना है।

गोतम—फरमावो भगवान।

(१२) प्रश्न—हे गौतम ! इस अनादि प्रवाह रूप संसार के अन्दर बहुत से प्राणी शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित हो रहे हैं उन्हों के लिए आप कौन सा स्थान मानते हो कि जहां पर पहुँच जाने से फिर जन्म मरण ज्वर रोग शोक की वेदना बिल्कुल ही न होने पावेगी।

उ०—हे भगवान्! इस लोक में एक ऐसा भी स्थान है कि जहां पर पहुँच जाने के बाद किसी प्रकार का दुःख नहीं होता है।

तर्क—हे गौतम ! ऐसा कौनसा स्थान है ?

समा—हे भगवान् ! लोक के अग्रभाग पर जो निवृत्तिपुर (मोक्ष) नाम का स्थान है वहां पर सिद्धावस्था में पहुँच जाने पर किसी प्रकार का जन्म ज्वर मृत्यु आदि दुःख नहीं हैं अर्थात् कर्म रहित होकर वहां जाते हैं अतः अव्याबाद सुखों में विराजमान हो जाते हैं।

केशीस्वामी—हे गौतम ! आपकी प्रज्ञा बहुत अच्छी है और अच्छी युक्तियों द्वारा आपने इन सब प्रश्नों का उत्तर दिया है। परिषदा भी यह प्रश्न सुन के शांत चित्त और वैरागरस का पान करती हुई जिनशासन की जयध्वनि के शब्द उच्चारण कर विसर्ज्जन हुई।

इन प्रश्नोत्तरों के अन्त में केशीश्रमण ने अपने शिष्यों के साथ जो पहले चार महाव्रत थे उसको भगवान गौतम स्वामी के पास पांचमहाव्रत स्वीकार कर लिया। इस प्रकार भगवान महावीर के शासन की आराधना करते हुए केशीश्रमण परमपद[1] को प्राप्त हो गये।

इसी प्रकार मुनि कालिसीवेसी[2] आदि ने भी महावीर शासन को स्वीकार कर के मोक्ष प्राप्त की तथा मुनि गंगियाजी[1] वगैरह और भी बहुत से साधुओं ने भगवान महावीर के शासन का आलम्बन कर अपनी आत्मा का कल्याण किया।

१—एवंतु संसए छिन्ने केसी घोर परक्कमे। अभिवंदित्ता सिरसा गोयमंतु महायसं ॥
पंच महव्वय धम्मं पडिवज्जइ भावओ। पुरिमस्स पच्छिमंमि मग्गे तत्थ सुहावहे ॥

उत्तराध्ययनसूत्र अध्ययन २३

२—तएणंसे कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता चाउज्जा-
माओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ

[illegible]

कई ऐसे भी पार्श्वनाथ के सन्तानिये थे कि अपने जीवन पर्यन्त वे पार्श्वनाथ के सन्तानिये ही रहे थे जैसे आनन्दमैथिलादि* ५०० मुनि तुंगिया नगरी में पधारे थे जिन्हों को भगवान महावीर ने तथा गणधर गौतमस्वामी† ने भी पार्श्वनाथ संतानिये कहा है तथा उन्होंने तुंगिया नगरी की आम परिषदा में चार महाव्रतरूपी धर्मदेशना दी थी।

दूसरे प्रदेशी राजा को प्रतिबोध देने वाले केशीश्रमणाचार्य‡ थे, उन्होंने भी चार महाव्रतरूपी देशना दी तथा उन्हों की मोक्ष भी पार्श्वनाथ संतानियों के रहते हुये ही हुई थी और इन केशीश्रमणाचार्य का विस्तृत वर्णन रायपसेनी सूत्र में है और वह है भी बहुत उपयोगी जिसको पाठकों के लाभार्थ यहां उद्धृत कर दिया जाता है कि भगवान केशीश्रमणाचार्य ने नास्तिक शिरोमणि कठोर हृदयी एवं क्रूर प्रकृति वाले राजा प्रदेशी को किस हेतु युक्ति एवं अपने ज्ञान द्वारा प्रतिबोध दे कर कट्टर आस्तिक एवं जैनी बनाया था जिसको मैं संक्षिप्त से यहां बतला देता हूँ।

एक समय भगवान महावीर प्रभु आमलकम्पा नगरी के उद्यान में पधारे वहां के राजा प्रजा ने

३—तप्पभिइं च णं से गंगेयेअणगारे समणं भगवं महावीरं पच्चभिजाणइ सव्वन्नु सव्वदरिसी, तए णं से गंगेयेअणगारे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ करेत्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते! तुब्भे अंतियं चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं एवं जहा कालासवेसियपुत्तो तहेव भाणियव्वं जाव सव्वदुक्खप्पहीणे॥

"भगवतीसूत्र शतक ६ उद्देशा ३२"

*—तेणं कालेणं २ पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जातिसंपन्ना कुलसंपन्ना बलसंपन्ना रूवसंपन्ना विणयसंपन्ना णाणसंपन्ना दंसणसंपन्ना चरित्तसंपन्ना लज्जासंपन्ना लाघवसंपन्ना ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी जियकोहा जियमाणा जियमाया जियलोभा जियनिद्दा जिइंदिया जियपरीसहा जीवियासमरणभय विप्पमुक्का जाव कुत्तियावणभूता बहुस्सुया बहुपरिवारा पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा अहाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुगामं दूइज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव तुंगिया नगरी जेणेव पुप्फवतीए चेइए तेणेव उवागच्छंति २ अहापडिरूवं उग्गहं उगिण्हित्ता णं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरंति॥ × × तएणंते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं तीसे य महति महालियाए [illegible] चाउज्जामं धम्मं परिकेहंति।

भगवतीसूत्र शतक २ उद्देशा ५ पृष्ठ १३६-३८

†—एवं खलु देवा० तुंगियाए नगरीए बहिया पुप्फवईए चेइए पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणोवासएहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छिया—संजमेणं भंते! किं फले? तवे किंफले?

भगवती सूत्र शतक २ उद्देशा ५ पृष्ठ १४०

‡—तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जे केशीनाम कुमार समणे जाइसंपण्णे × × ततेणं केसीकुमार समणे चित्तस्स सारहिस्सतीसेमहति महालियाए महच्च परिसाते चाउज्जामं धम्मंकहेइ

रायपसेनी सूत्र पृष्ठ २१५-२२१

भगवान का अभिवंदन किया और भगवान ने उनको धर्मदेशना सुनाई उस समय पहिले देवलोक में रहने वाला सूरयाभ नाम के देव ने अपने ऋद्धि एवं परिवार के साथ आकर भगवान का वंदन किया। भगवान ने उसको भी धर्म उपदेश दिया जिसको श्रवण कर के सूरयाभ ने कहा कि हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं, अतः मेरी भक्ति को जानते हो परन्तु यह गोतमादिक मुनि हैं जिनको मैं भक्तिपूर्वक ३२ प्रकार का नाटक कर के बतलाऊंगा ऐसे दो तीन बार कहा उस पर भी भगवान ने मौन ही रक्खा 'मौनं सम्मतिलक्षणं' बस, सूरयाभ ने ३२ प्रकार का नाटक किया, बाद भगवान को बन्दन कर के स्वर्ग चला गया।

गोतमने सूरयाभ देव का पूर्वभव पूछा जिसके उत्तरमें भगवानने फरमाया कि इस भारतके वक्षस्थल पर केकयी जिनपद देश की श्वेताम्बिका नाम की नगरी में राजा प्रदेशी राज करता था परन्तु वह था नास्तिक, जीव और शरीर को एक ही मानता था अतः वह परभव और पुन्य पाप के फल को भी नहीं मानता था। फिर वह पाप करने में उठा ही क्यों रक्खे ? अतः वह राजा अधर्म की ध्वजा ही कहलाता था। राजा प्रदेशी के सूरिकान्ता परमवल्लभ एवं प्रियकारिणी रानी थी और सूरिकान्त नाम का कुंवर था वह राजकार्य्य चलाने में बड़ा ही कुशल था। राजा प्रदेशी के चित्त नाम का प्रधान था वह भी चार बुद्धि निपुण एवं बड़ा ही विचारज्ञ, प्रत्येक राजकार्य में सलाह देने वाला मुत्सद्दी था। राजा के अधर्म कार्य को वह सहन नहीं कर सकता था और उसको अच्छे रास्ते पर लाने की कोशिश किया करता था।

एक समय राजा प्रदेशी को सावत्थी नगरी के राजा जसतु के साथ ऐसा कार्य उपस्थित हुआ कि उसने अपने प्रधान चित्त को सावत्थी भेजा। प्रधान चित्त सावत्थी जाकर अपने राजा की भेंट वहां के राजा की सेवा में रख जिस काम के लिये आया था उसको राजा से कह कर उस कार्य में लग गया।

चित्त प्रधान ने सुना कि यहां शहर के बाहर कोष्ठक नाम के उद्यान में पार्श्वनाथ के सन्तानिये केशीश्रमण आये हुए हैं अतः वहाँ से चल कर केशीश्रमण के पास आया और केशीश्रमण ने उस चित प्रधानादि को धर्म उपदेश सुनाया जिसको श्रवण कर के चित प्रधान बहुत खुश हुआ और वह गृहस्थ धर्म पालन करने योग्य श्रावक के बारह व्रत ग्रहण कर आचार्य श्री का परम भक्त बन गया। इधर राजा जयशत्रु ने प्रधान का कार्य कर दिया और राजा प्रदेशी से प्रेम की वृद्धि के लिए बहुमूल्य भेंट तैयार कर प्रधान को दे दी। जब प्रधान ने अपने नगर को जाने की तयारी करी तो वह अपने गुरु महाराज को वंदन करने के लिये उद्यान में आया और वंदन कर के प्रार्थना की कि हे प्रभो ! आप श्वेताम्बिका नगरी पधारें आपको बहुत लाभ होगा। एक बार नहीं परन्तु दूसरी तीसरी बार कहा इस पर आचार्य ने फरमाया कि चित्त तू खुद नीतिज्ञ है और समझ सकता है कि बगीचा कितना ही सुन्दर या फलफूल वाला हो, परन्तु उसमें एक शिकारी पारिधि बैठा हो तो क्या वनचर पशु या खेचर जानवर आ सकता है ? अतः तेरी श्वेताम्बिका कितनी ही अच्छी हो परन्तु प्रदेशी जैसा जहाँ पारिधि है वहाँ कैसे आया जाय। इस पर चित्त प्रधान ने कहा हे प्रभो ! श्वेताम्बिका नगरी में बहुत उदार चित वाले एवं भद्रिक लोग हैं। आपके पधारने पर वह लोग आपकी सेवा भक्ति उपासना करेंगे और विविध प्रकार का असन पान खादिम स्वादिम प्रतिलाभ करेंगे। फिर आपको प्रदेशी राजा से क्या प्रयोजन है ? यदि आपका वहां पधारना हो जाय और प्रदेशी राजा को उपदेश देने पर वह संभल गया तो बहुत द्विपद चौपद प्राणियों को आराम पहुँचेगा इत्यादि। इस पर आचार्य महाराज ने फरमाया ठीक है चित्त, वर्तमान योग अर्थात् अवसर देखा जायेगा। बस. चित्त [illegible]

की परिभाषा से समझ गया कि आचार्य श्री अवश्य हमारे नगर में पधारेंगे। चित्त प्रधान गुरु महाराज को वंदना कर के वहाँ से रवाना हो गया। क्रमशः वह श्वेताम्बिका नगरी में पहुँचा तो सबसे पहिले मुनियों को ठहरने के लिये बनपालक को कह दिया कि यदि कोई जैनश्रमण यहाँ आ जावें तो तुम उनकी अच्छी खातिर कर के इस बगीचे में ठहरा देना तथा पाट पाटला व संथारा के लिये घास वगैरह की आमंत्रण करना। तत्पश्चात आकर हमको खबर देना। बाद प्रधान अपने मकान पर गया और राजा को सब हाल सुना दिया जो कि सावत्थी नगरी में कर के आया था।

प्रधान चित्त ने नगरी के अच्छे २ मनुष्य थे उनको भी यह शुभ समाचार सुना दिये कि यहाँ केशी-श्रमणाचार्य पधारने वाले हैं। इधर केशीश्रमण अपने शिष्य समुदाय के साथ क्रमशः विहार करते हुये श्वेताम्बिका पधार गये। बनपालक को खबर मिलते ही बड़े ही सत्कार के साथ उन्हें उद्यान में ठहराया तथा पाट पाटले व घास वगैरह की आमंत्रणा करी। बाद में नगरी में जा कर चित्त प्रधान को शुभ संदेश दे दिया। चित्त ने बहुत खुश हो कर बनपालक को खूब इनाम दिया। यह खबर सब शहर में पहुँच गई और चित्तादि बहुत से लोग मुनियों को वंदन करने के लिए आये जिन्हों को केशीश्रमण ने धर्मलाभपूर्वक धर्म उपदेश सुनाया जिसको सुन कर लोगों ने जैनधर्म पर श्रद्धा कर के आचार्य की भूरि २ प्रशंसा की।

चित्तप्रधान ने एक समय केशीश्रमण से प्रार्थना की कि गुरु महाराज आप प्रदेशी राजा को धर्मोपदेश दिलावें। यदि यह राजा सुधर जायगा तो बहुत जीवों का भला होगा, इत्यादि।

इस पर आचार्य श्री ने कहा हे चित्त ! धर्म सुनने के अयोग्य जीवों के चार लक्षण हैं १—साधु को आता सुन कर दो चार मील सामने न जावे २—मुनि उद्यान में आ गये हों फिर भी दर्शन करने को न जावे ३—मुनि मकान पर आ गये हों तब भी वन्दन न करे। ४—और रास्ता में मुनि मिल जावें फिर भी वन्दन न करे। भला ऐसे मनुष्यों को कैसे धर्म सुनाया जावे ?

चित्त ने कहा कि आपका कहना सत्य है परन्तु मैं एक उपाय से राजा प्रदेशी को आपके पास ले आऊं, फिर आप मनमाना धर्म सुनाइये ? जहा सुखं

राजा प्रदेशी के कम्बोज देश से चार अच्छे घोड़े भेंट में आये थे। एक दिन चित्त ने राजा प्रदेशी को कहा और राजा ने स्वीकृति दे दी अतः प्रधान ने भेंट आये हुये चार घोड़ों के रथ को तैयार करवा कर राजा प्रदेशी को उस रथ में बैठा कर आप स्वयं सारथी बन कर रथ को जंगल में लेगया और इधर ५९ खूब घुमाया जिससे राजा प्रदेशी का जी घबराने लगा। चित्त ने कहा कि ये मृगवन उद्यान नजीक है, आपकी आज्ञा हो तो वहाँ चले चलें वहाँ सब तरह का आराम है। बस, रथ को लेकर उद्यान में चले और एक कमरे में ठहर गये। पास में ही केशीश्रमण का व्याख्यान हो रहा था और हजारों भक्तगण सुन रहे थे जिसको देख कर राजा प्रदेशी ने चित्त को कहा रे चित्त ! यह जड़ मूढ़ कौन है और इतने जड़ मूढ़ इसका व्याख्यान सुनने वाले कौन हैं ? इस पर चित्त ने कहा कि यह जैन श्रमण हैं अपने धर्म का उपदेश कर रहे हैं इनकी मान्यता जीव और शरीर को अलग अलग मानने की है। ये शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता हैं। पृच्छक के प्रश्नों का उत्तर अच्छी युक्ति से देते हैं। यदि आपकी मरजी हो तो आप भी पधारिये। इस पर राजा प्रदेशी प्रधान को साथ लेकर केशीश्रमण के पास गये परन्तु प्रदेशी ने मुनि को वंदन नहीं किया; फिर भी पूंछा कि आप जीव और शरीर को अलग २ मानते हो क्या ?

हे प्रदेशी ! जैसे कोई हसल के चुराने वाला व्यापारी मार्ग को छोड़कर उन्मार्ग जाता है इसी प्रकार राजन् ! तुम भी हमारा हसल (वंदना) चुरा कर प्रश्न करते हो । हे नरेश्वर ! क्या यहाँ आने के पहिले तुम्हारे ये विचार हुये थे कि यह जड़ मूढ़ कौन बैठा है, और इनकी सेवा करने वाले जड़मूढ़ कौन हैं, क्या यह सत्य है ?

राजा प्रदेशी को केशीश्रमण का वचन श्रवण कर बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने सोचा कि यह कोई ज्ञानी महात्मा है फिर भी उसने पूंछा हे प्रभो ! आपने मेरे मन की बात को कैसे जान ली ?

केशीश्रमण—हे भूपति ! हमारे जैन शासन में पांच प्रकार के ज्ञान बतलाये हैं यथाः—

१—मतिज्ञान—मगज से शक्तियों द्वारा ज्ञान होना ।
२—श्रुतिज्ञान—श्रवण करने से ज्ञान होना ।
३—अवधिज्ञान—मर्यादायुक्त क्षेत्र पदार्थों का देखना ।
४—मनः पर्यवज्ञान—अढ़ाई द्वीप के संज्ञी जीवों के मन का भाव जानना ।
५—केवल ज्ञान—आत्म का सर्व विकास होने से सर्व पदार्थों को हस्तामलक की भाँति देखना और जानना ।

इन पांच ज्ञानों से एक केवल ज्ञान छोड़ कर शेष चार ज्ञान मुझे हैं जिसके जरिये से मैंने तेरे मन की बात कही है ।

इस पर राजा प्रदेशी को इतना ज्ञान तो सहज ही में हो गया कि यह महात्मा कोई अलौकिक पुरुष है, शायद मेरे संशय को मिटा देवें तो भी ताज्जुब की बात नहीं । अतः राजा ने मुनि से पूंछा कि क्या मैं यहां बैठ सकता हूँ ?

केशीश्रमण ने उत्तर दिया हे राजन् ! यह आपका ही मकान है ।

राजा बैठ गया और प्रश्न किया कि क्या आप जीव और काया को अलग अलग मानते हो ?

मुनि ने कहा हाँ, जीव और काया अलग अलग हैं और इसको मैं प्रमाणों द्वारा साबित भी कर सकता हूँ ।

१—प्रश्न राजा—यदि आपकी यही मान्यता है तो मैं पूंछता हूँ कि मेरी दादी जो बड़ी धर्मात्मा थीं उनकी उम्र ही प्रायः धर्म में गई थी । आपकी मान्यतानुसार वह अवश्य स्वर्ग में गई होगी । यदि वह आके मुझे कह दें कि बेटा मैं धर्म करके स्वर्ग में गई हूँ और वहाँ सुख का अनुभव करती हूँ तुम भी पाप को छोड़ धर्म करो ताकि तुमको भी स्वर्ग मिले । तो मैं मान लूँ कि जीव और शरीर अलग हैं । जो मेरे दादीजी का शरीर यहाँ मेरे हाथ से जलाया गया और उनका जीव स्वर्ग में है । यदि ऐसा न हो तो मेरी मान्यता ठीक है कि वही जीव वही शरीर । शरीर के साथ जीव उत्पन्न होता है और शरीर नष्ट के साथ जीव भी नष्ट हो जाता है । जैसे पांच तत्त्वों के संयोग से जीव उत्पन्न होता है और पाँच तत्त्व नष्ट होने से जीव भी नष्ट हो जाता है ।

उ०—हे राजन् ! यह सब आपका भ्रम है । देखिये एक मनुष्य स्नान मज्जन कर सुगन्धित पदार्थ ले देवपूजन को जा रहा है । रास्ते में एक टट्टी आई जो कि महादुर्गन्धित थी । वहाँ किसी मनुष्य ने देवपूजन करने वाले को बुलाया कि जरा इस टट्टी में आइये तुम्हारे से कुछ बात करना है । भला वह देवपूजक [illegible]

सकता है ? नहीं । इसी प्रकार मनुष्यलोक के दुर्गंधित पुद्‌गलों की गन्ध भूमि से ४०० या ५०० योजन ऊंची जाती है । अतः उस दुर्गंध के मारे देवता मर्त्यलोक में नहीं आते हैं। जैसे देवपूजन को जाने वाले के लिए टट्टी का उदाहरण । और भी शास्त्रों में कहा है कि १—तत्काल के उत्पन्न हुए देवताओं के मनुष्यों का सम्बन्ध छूट जाता है (विस्मृत) और वहाँ देव देवियों से नया सम्बन्ध हो जाता है इसीसे देवता आ नहीं सकते हैं । २—तत्काल का उत्पन्न हुआ देवता देवता सम्बन्धी दिव्य मनोहर काम-भोगों में मूर्छित हो जाते हैं अतः यहाँ के सड़न पड़न विध्वंसन काम भोगों का तिरस्कार करते हैं इसलिए आ नहीं सकते ३—तत्काल का उत्पन्न हुआ देवताओं के आज्ञाकारी देवदेवियाँ एक नाटक करते हैं उन्हीं को देखने में लग जाते हैं वह सुखपूर्वक देखने वालों को ज्ञात होता है कि मुहूर्त्त मात्र का नाटक है परन्तु यहाँ २००० वर्ष क्षीण हो जाते हैं अतः देवता आ नहीं सकते हैं ४—तत्काल के उत्पन्न हुये देवता मनुष्य लोक में आना चाहें परन्तु मृत्यु लोक की दुर्गन्ध ४ ०-५०० योजन ऊर्ध्व जाती है । अतः दुर्गंध के मारे देवता यहां पर आ नहीं सकते हैं । अतः राजन् ! तू इस बात को स्वीकार करले कि जीव और शरीर अलग २ है और जीव को किये हुये शुभाशुभ कर्म अवश्य भोगने पड़ते हैं जो सुखी, दुखी, मूर्ख, विद्वान, ब्रह्मचारी, व्यभिचारी, अपुत्री, बहुपुत्री, रोगी, निरोगी, दुर्भागी, सुभागी, आदि आदि विचित्र प्रकार का संसार आपकी नजरों के सामने मौजूद है । यदि तज्जीव तद्‌शरीर माना जाय तो जीव के पुन्य पाप का फल ही नहीं । पुन्य पाप का फल नहीं तो परलोक नहीं; परन्तु यह ऊपर बतलाई संसार की विचित्रता से यह प्रत्यक्ष खिलाफ है अतः आप को मानना चाहिये कि जीव अलग है और शरीर अलग है ।

(२) प्रश्न—हे प्रभो आपको युक्तियाँ बहुत आती हैं परन्तु मैं आपको पूछता हूँ कि मेरे पितामह (दादा) बड़े ही अधर्मी थे। प्राणियों के रक्त से हमेशा हाथ रंगे रहते थे, जीवों को मारने में उनको घृणा नहीं थी अतः आपके मतानुसार वह नर्क में गये होंगे । यदि वह आकर मुझे नरक के समाचार कहें कि हे पौत्र ! मैं पाप करके नर्क में गया हूँ यदि तू भी पाप करेगा तो तेरे को भी नर्क में दुःख सहन करना पड़ेगा तो मैं आपका कहना स्वीकार कर सकता हूँ कि शरीर और जीव अलग २ हैं वरना मेरा माना हुआ अच्छा है कि जीव शरीर एक ही है ।

उ०—हे राजन् ! मैं आपसे पूछता हूँ कि यदि आपकी प्यारी पटरानी सूरिकान्ता के साथ कोई व्यभिचारी बलात्कार करे तो क्या आप उसको दंड देंगे ? हाँ प्रभो उस दुष्ट को मारूंगा पीटूंगा कैद करूंगा । मुनि ने कहा यदि वह व्यभिचारी आपसे कहे कि थोड़ी देर के लिये मुझे जाने दीजिये कि मैं अपनी पुत्रादि कुटुम्बियों से मिल कर वापिस आ जाऊंगा तो क्या आप उसको छोड़ देंगे ? नहीं प्रभो ऐसे करने वाले को क्षण भर भी नहीं छोड़ूं । हे राजन ! इसी भांति नारकी के नैरिये अपने दुष्कृत्यों को भोगते हुये यहां नहीं आ सकते हैं और उसके कई कारण भी हैं जैसे १—तत्काल उत्पन्न हुआ नैरिया नारकी की महावेदना को क्षय नहीं कर सका अतः वह आना चाहता है तो भी नहीं आ सकता अर्थात् जितनी मुद्दत कारागार की है उसको पूर्ण न भुगत ली हो वहाँ तक आ नहीं सकता है २—नैरिये परमाधानी देवताओं के आधीन रहते हैं अतः देवता उसको क्षण भर भी नहीं छोड़ता है ३—नारकी में भोगने योग्य कर्म नहीं भोग सके अतः वह आ नहीं सकता है ४—नारकी सम्बन्धी आयुष्य जहां तक सम्पूर्ण क्षय नहीं करता है वहां तक वहां से निकल नहीं सकता है । इन कारणों से नैरिये चाहते हुये भी नहीं आ सके तो

फिर तुम्हारा दादा नर्क से आकर तुमको कैसे कह सके ? परन्तु पाप करने वालों को अवश्य नर्क में जाना पड़ता है। अतः तुम मान लो कि जीव और शरीर अलग २ है और पुन्य पाप का फल भवान्तर में अवश्य भुगतना पड़ता है।

३—प्रश्न—हे स्वामिन्! एक समय मैं राज सिंहासन पर बैठा था उस समय कोतवाल एक चोर को पकड़ कर मेरे पास लाया। मैंने उस जीते हुए चोर को एक लोहे की कोठी में डाल दिया और ऊपर से ऐसा ढाकन लगा दिया कि जिसमें वायु तक भी प्रवेश न कर पावे फिर कितनेक समय बाद उस कोठी को खोली तो वह चोर मरा हुआ पाया। मैंने उस कोठी को बारीक दृष्टि से देखा तो कहीं पर छिद्र नजर नहीं आया जिससे कि चोर के शरीर से जीव अलग होकर बाहर निकल सका हो। बस, मैंने निश्चय कर लिया कि शरीर और जीव कोई भिन्न २ वस्तु नहीं है अतः एक ही है।

उ०—राजन्! यह तुम्हारी कल्पना ठीक नहीं क्योंकि आपको विचारना चाहिये कि शरीर तो स्थूल पुद्गलों से बना है और जीव अरूपी पदार्थ है। तथा उसकी गति भी अप्रतिहत है वह किसी पदार्थ की रुकावट से रुक नहीं सकता है। यदि कोठी के छिद्र न होने से ही आपको भ्रांति हुई हो तो मेरा एक उदाहरण सुन लीजिये। भूमि के अन्दर एक गुप्त घर बड़ा ही सुन्दर है। जिसके अन्दर एक पुरुष को ढोल और डाका दे के बैठा दिया, बाद उसका दरवाजा व सब छिद्र बन्द कर दिये जैसे आपने कोठी के छिद्र बन्द किये थे, तब अन्दर बैठे हुये आदमी ने ढोल को खूब जोर से बजाया। क्यों राजन्! क्या उस ढोल की आवाज बाहर आ सकती है एवं बाहर रहे हुए मनुष्य सुन सकते हैं ? हाँ प्रभो आवाज आती है और मनुष्य सुन भी सकते हैं। हे राजन! जब आठ स्पर्श वाले स्थूल पुदगलों के गुप्त घर से बाहर आने में न तो छिद्र होता है और न रुकावट होती है तब जीव अरूपी अति सूक्ष्म कोठी से निकल जावें और उसके छिद्र न पड़े इसमें आश्चर्य की बात ही कौनसी है। कोठी तो क्या परन्तु बड़े २ पहाड़ और पृथ्वी के अन्दर से भी निकल जाता है, अतः आप को मान लेना चाहिये कि जीव और शरीर पृथक २ हैं।

४—प्रश्न—हे प्रभो! एक समय कोतवाल ने चोर लाकर मेरे सामने खड़ा किया, मैंने उस चोर को मार कर कोठी में डाल दिया। ऊपर से ऐसा बन्द किया कि कोई छिद्र रहने नहीं पावे। फिर थोड़े दिनों में खोल के देखा तो उस चोर के मृत शरीर में बहुत से जन्तु दीख पड़े। जब कोठी के छिद्र न हुआ तो यह जीव कहां से आये ? अतः मैंने निश्चय किया कि तज्जीव तत्शरीर।

उ०—हे राजन्! यह आपकी एक भ्रान्ति है देखिये एक लोहे का गोला अग्नि में तपाने से अग्निमय बन जाता है परन्तु अग्नि शान्त होने पर उस गोले में कोई छिद्र होता है कि जिसके द्वारा अग्नि ने प्रवेश किया ? नहीं भगवान। बस समझ लो कि जैसे लोहे के गोले में स्थूल शरीर वाली अग्नि प्रवेश करने में छिद्र नहीं होता है तो कोठी में अदृश्य जीव के प्रवेश करने में छिद्र कैसे हो सकता है। अतः जीव और शरीर अलग २ हैं इसको मानना ही आप जैसे बुद्धिमानों का काम है।

५—प्रश्न-हे स्वामिन्। आपका मानना ऐसा है कि प्रत्येक जीव के अनन्त शक्ति रही हुई है परन्तु मैं देखता हूँ कि जितना वजन युवक उठा सकता है उतना वृद्ध नहीं उठा सकता। इसका क्या कारण है ? यदि सब जीवों में शक्ति समान है तो वजन उठाने में वृद्ध और युवक का अन्तर क्यों ? अतः मेरा मानना ठीक है कि शरीर और जीव अलग २ नहीं पर एक ही है।

उ०—हे नरेश ! प्रत्येक जीवों में अनन्त शक्ति है परन्तु उनके आत्मा पर कर्मरूपी आवरण लगे हुए हैं जिसमें जिनके जितने आवरण दूर हट जाते हैं उतनी २ शक्ति विकास में आ जाती है इसके लिए सुनिये, दो समान बलवान मनुष्य हैं एक के पास नई कावर दूसरे के पास पुरानी कावर है। क्या वे दोनों बराबर वजन उठा सकते हैं ? नहीं। इसका क्या कारण है ? मनुष्य तो दोनों बलवान हैं परन्तु कावर नई और पुरानी का अन्तर है। बस जीव सरीखे हैं परंतु नये पुराने कर्मों का ही अंतर है। अतः मान लो कि जीव और शरीर अलग २ हैं।

६—प्रश्न-हे प्रभो ! यदि सब जीव बराबर हैं तो मैं पूछता हूँ कि एक मनुष्य बाण चलाता है वह बहुत दूर जाता है तब दूसरे का चलाया बाण नजदीक गिर जाता है इस कारण मैंने तो यह निश्चय किया है कि जीव और शरीर एक ही हैं।

उ०—हे राजन् ! एक पुरुष के पास बाण या उसकी सब सामग्री नई है तब दूसरे के पास पुरानी है तब क्या वे दोनों बराबर बाण को दूर फेंक सकेंगे ? नहीं। बस, यही कारण है कि जीव पुराने होने पर भी उसके शरीर इन्द्रियें आदि सामग्री नई पुरानी का अंतर है। अतः इस उदाहरण से समझ लीजिये कि जीव और शरीर भिन्न हैं।

७—प्रश्न-प्रभो ! आपको युक्तियें तो बहुत याद हैं परंतु मैं भी पक्का खोजी हूँ। देखिये एक दिन कोतवाल ने एक चोर को लाकर मेरे सामने पेश किया। मैंने अपनी मान्यता की जाँच के लिये उस चोर के दो तीन चार एवं अनेक खंड करके देखा और खूब देखा परंतु कहीं भी जीव नहीं पाया। भला इस हालत में मैं कैसे मान लूं कि जीव और शरीर अलग २ हैं ?

उ०—वाह राजन् ! तुम भी एक मूढ़ कठियारे के समान दीख पड़ते हो। जैसे एक समय बहुत से कठियारे एकत्र हो काष्ट लेने की गरज से जंगल में गये, वहाँ जाकर स्नान मज्जन देवपूजन करके रसोई बनाई। सब ने भोजन किया। बाद एक कठियारे को कहा कि तू यहां ठहर जा इस अग्नि का संरक्षण करना। शायद अग्नि बुझ जाये तो यह आरण की लकड़ियें हैं इससे अग्नि निकाल कर समय पर रसोई बना के तैयार रखना हम काष्ट ले कर आवेंगे उसके अंदर से थोड़ा २ काष्ट तुमको दे कर बराबरी का बना लेंगे। बस, कठियारे काष्ट लेने को चले गये पीछे उस प्रमादी ने अग्नि बुझ जाने की परवाह न की। जब अग्नि बुझ गई तो उसने आरण की लकड़ियों के दो तीन चार एवं अनेक खंड करके देखा तो कहीं भी अग्नि नहीं पाई। [illegible] निराश हो कर बैठ गया। इतने में जंगल से कठियारे काष्ट लेकर आये तो न थी रसोई न थी अग्नि उसको पूछा तो जवाब दिया कि अग्नि तो बुझ गई थी लकड़ियों के टुकड़े २ करके सब टटोला परंतु भी अग्नि न पाई अतः मेरा क्या कसूर है, इस पर कठियारों ने कहा हे मूढ़ ! हे तुच्छ !! तुझे इतना [illegible] नहीं है कि लकड़ियों के टुकड़े २ करके अग्नि की तलाश करते हैं इत्यादि उसका खूब तिरस्कार किया। बाद में उन्होंने आरण की लकड़ियों को घिस कर अग्नि निकाली और भोजन बना कर खा पी कर सुखी हुये। हे प्रदेशी ! तू भी कठियारे की भांति मूढ़, तुच्छ एवं मूर्ख है।

प्रदेसी—हे भगवान ! आपने इस विस्तृत परिषदा में मेरा अपमान किया, क्या आपके लिये ऐसा करना योग्य है ?

केशीश्रमण—हे राजन् ! आप जानते हो परिषदा कितने प्रकार की होती है ?

प्रदेशी—हे भगवान ! मैं जानता हूँ कि परिषदा चार प्रकार की होती है (१) क्षत्रियों की परिषदा (२) गाथापतियों की परिषदा (३) ब्राह्मणों की परिषदा (४) ऋषियों की परिषदा

केशीश्रमण—प्रदेशी तू यह भी जानता है कि इन परिषदों का अपमान करने से क्या सजा मिलती है ?

प्रदेशी—हे प्रभो मैं जानता हूँ कि (१) क्षत्रियों की परिषदा का अपमान करने से सूली या फांसी की सजा (२) गाथापतियों की परि० का अपमान करने से डंडा या हाथ चपेटा की मार (३) ब्राह्मणों की परि० का अपमान करने से अक्रोष वचन और (४) ऋषि परि० का अपमान करने से मूढ़, तुच्छ, मूर्ख आदि शब्दों की सजा दी जाती है ।

केशीश्रमण—हे प्रदेशी ! तू जानता हुआ ऋषियों का अपमान करता है जब सजा मिलती है तब इज्जत और अपमान का बहाना लेता है । क्योंकि तुम जानते हुए मेरे से टेढ़ा टेढ़ा वर्ताव करते हो, क्या यह अपमान नहीं है ?

प्रदेशी—हे प्रभो ! आप का कहना सत्य है । आप मेरे मन की बात को जानते हो हे भगवान ! मैं आपकी पहली व्याख्या से ही ठीक समझ गया था परंतु अपनी जैसी श्रद्धा वाले अपने साथियों को समझाने के लिए मैंने आपसे प्रतिकूल प्रश्न किये थे ।

केशीश्रमण—हे राजन् ! आप जानते हो लोक में व्यवहारिया (व्यापारी) कितने प्रकार के होते हैं ?

प्रदेशी—हे स्वामिन् ! मैं जानता हूँ । व्यवहारिया चार प्रकार के होते हैं जैसे (१)—यदि साहूकार रुपये मांगने को आया है उसको रुपया भी देवे और सत्कार भी करे (२) रुपया देवे पर सत्कार न करे (३) रुपया न देवे और सत्कार करे (४) न रुपया दे न सत्कार करे ।

केशीश्रमण—हे प्रदेशी ! तू इन व्यवहारियों में से दूसरे नम्बर का व्यवहारिया है क्योंकि तू अपने मन में तो ठीक समझ गया है परंतु बाहर दिखाव में आदर सत्कार नहीं करता है । भला तुम्हारा मन गवाही देता है फिर लज्जा की क्या बात है, खुल्लमखुल्ला सत् धर्म को क्यों नहीं स्वीकार कर लेते हो ?

८—प्रश्न-भगवान् आप शरीर और जीव को प्रत्यक्ष हस्तामलक की माफिक बतला देवें तो मैं आपका कहना मानने को तैयार हूँ ।

केशीश्रमण—पास में रहे हुये वृक्ष के पान चलते हुए देख कर पूछा कि हे प्रदेशी ! यह पान क्यों चलते हैं ?

प्रदेशी—वायुकाय चलने से पत्ते चल रहे हैं ।

केशीश्रमण—प्रदेशी यदि तू वायुकाय से पत्ता चलना मानता है तो उस वायुकाय को हस्तामलक की तरह बता सकता है ?

प्रदेशी—नहीं प्रभो ! वायुकाय बहुत सूक्ष्म है इसे कैसे बताई जाय ।

केशीश्रमण—जब वायुकाय आठ फर्श तीन लेश्या और चार शरीरवाला होने पर भी तू नहीं बतला सकता है तो अरूपी अशरीरी जीव को कैसे बतलाया जाय ? हे प्रदेशी ! एक जीव ही क्या परन्तु छद्मस्थ मनुष्य दस बातों को नहीं देख सकता और नहीं बतला सकता है ।

१—धर्मास्तिकाय २—अधर्मास्तिकाय ३—आकाशास्तिकाय ४—शरीररहित जीव ५—परमाणु

पुद्गल ६—शब्द के पुद्गल ७—गंध के पुद्गल ८—भव्याभव्य ९—यह जीव इस भव में मोक्ष जावेगा या नहीं और १०—यह जीव तीर्थंकर होगा या नहीं ? इन दस बातों को सर्वज्ञ ही बता सकते हैं।

९—प्रश्न-हे भगवन् ! आपके शासन में सब जीवों को बराबर माना गया है तो हस्ति इतना बड़ा और कुंथवा इतना छोटा क्यों ?

उ०—एक दीपक है, उस पर छोटा सा ढाकन रख देने से दीपक का प्रकाश उस ढाकन के नीचे समावेश हो जाता है अगर उससे कुछ बड़ा ढाकन रक्खें तो दीपक का प्रकाश बड़ा ढाकन जितना पड़ेगा। इस न्याय से दीपक के मुताबिक जीव प्रदेश है और ढाकन के माफिक नाम कर्म की औघना (शरीरमान) है। जो पूर्व भव में जितना लम्बा चौड़ा शरीरमान-औघना कर्म बांधा है उतने में जीव का प्रदेश समावेश हो सकता है जैसे हाथी और कंथवा।

१०—प्रश्न-हे प्रभो ! आपकी युक्तियें प्रबल एवं प्रमाणिक हैं, परन्तु आप सोच सकते हो कि मेरे बाप दादा से चला आया धर्म चाहे वह खोटा भी क्यों न हो परन्तु मैं उसे एकाकी कैसे छोड़ सकता हूँ ?

उ०—प्रदेशी तू भी लोहावाणिया का भाई है, परन्तु याद रखना जैसे लोहावाणिया को पश्चाताप करना पड़ा उसी तरह तुमको भी पछताना पड़ेगा।

प्रदेशी—भगवान् ! लोहावाणिया कौन था और उसको क्यों पश्चाताप करना पड़ा था ? कृपा कर इसको भी सुना दीजिये।

केशीश्रमण—नरेश ! ध्यानपूर्वक सुनना यह तुम्हारे लिये बड़े लाभ का दृष्टान्त है। एक नगर से बहुत से व्यापारी लाभार्थ गाड़ों में किरयाणा आदि माल भर कर उसको बेचने के लिये विदेश में जा रहे थे, चलते २ रास्ते में कई लोहे की खानें आई जो किरयाणा से बहुमूल्य वाली थीं अतः व्यापारियों ने अपने माल को छोड़ कर गाड़ों में लोहा भर लिया, फिर आगे चलने पर तांबे की खानें आई जो लोहे से कई गुना अधिक मूल्य वाली थीं अतः व्यापारियों ने लोहे को छोड़ तांबा से गाड़ियां भरलीं। उसमें एक व्यापारी ऐसा भी था कि उसने तांबा न लेकर लोहा ही रक्खा तब दूसरे व्यापारियों ने उसका हित चाह कर कहा कि यह तांबा बहुमूल्य है हम सब लोगों ने लोहा छोड़ कर तांबा से गाड़ियां भर ली हैं अतः तुम भी तांबा ले लो परन्तु उसने जवाब दिया कि मैं जानता हूँ कि लोहा की बजाय तांबा बहुमूल्य है परंतु मैं तुम्हारे जैसा चंचल चित्तवाला नहीं हूँ कि एक को छोड़ दूसरे को ग्रहण कर लूं चाहे लाभ हो चाहे हानि मैंने तो जो ले सो ले लिया। खैर वहां से आगे चले तो चांदी की खानें आई सब लोगों ने तांबा छोड़ कर चांदी ली पर लोहा वाले लोहावाणिया ने तो लोहा ही रक्खा। आगे चल कर सोने की खानें आई सब लोगों चांदी छोड़ सोना ले लिया फिर भी लोहावाणिया ने तो लोहे को ही महात्म्य दिया, आगे चल कर रत्नों की खानें आई। व्यापारियों ने सोना छोड़ कर गाड़ों में रत्न भर लिये और अपने साथ वाले लोहावाणिया का हितचिन्तन करते हुए उसको बार २ समझाया, भाई तुमको तांबा चांदी और सोने की खानों पर समझाया था परन्तु तुमने एक की भी बात न सुनी फिर भी तुम हमारे साथ में आये हो इसलिये हम तुम्हारे भले की कहते हैं कि अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है तुम अब भी इस लोहे को छोड़ कर रत्नों को ले लो कि अपन सब बराबर हो जावें परंतु लोहावाणिया ने उत्तर दिया कि अपने बाप दादों से चली आई रीति रिवाज को हम कैसे छोड़ सकते हैं हमने एक बार ले लिया सो ले लिया अब बदला बदली नहीं करते हैं। भला ऐसे

मूर्ख अपने हिताहित को नहीं जानने वाले मनुष्य को मनुष्य तो क्या पर साक्षात् अवतारी पुरुष भी कैसे समझा सकता है ? आखिर लोहावाणिया ने अपना हठ नहीं छोड़ा । फिर वे सब के सब अपने निवासस्थान पर आये और वे लोग बहुमूल्य रत्नों में से एक एक रत्न बेच कर जेवर वस्त्र मकान सवारियां वगैरह सुख के तमाम साधन बनाकर देवताओं के समान सुख भोगने लगे जिसको लोहावाणिया ने देखा तो उसकी आंखें खुलीं और अपनी मूर्खता या हटाग्रहता के लिये सिर ठोक २ कर पछताने लगा । हे प्रदेशी ! तू बुद्धिमान है ऐसा न हो कि रत्न मिलने पर भी उसका अनादर कर कुल परम्परा के बहाने लोहे को ही पकड़े रख कर लोहेवाणिया के उदाहरण को चरितार्थ कर बैठे ।

प्रदेशी—हे प्रभो ! मैं लोहावाणिया का साथी नहीं हूँ । मैं हिताहित को अच्छी तरह से समझ गया हूँ । मेरे दिल में कुल परम्परा का वृथा भ्रम था वह आपके चरणों की कृपा से चोरों की भांति भाग गया है । हे प्रभो ! आप जैसे जगत-उद्धारक पुरुषों का सुयोग होने पर इस भव में तो क्या परंतु किसी भव-भवान्तर में भी पश्चाताप करने की आवश्यकता नहीं रहती है । हे दयानिधे ! मैं पहिले ही कह चुका हूँ कि आपकी पहिली ही व्याख्या से मेरी अन्तरात्मा में सत्य का सूर्य उदय हो चुका था और अब मैं जीव शरीर को भिन्न २ मान कर कट्टर आस्तिक बन गया हूं । अब तो आप कृपा कर मुझे ऐसा धर्म सुनावें एवं रास्ता बतलावें कि जो नास्तिकपने में कर्म संचय किया है वह शीघ्र ही टूट जाय ।

केशीश्रमण ने राजाप्रदेशी की अभ्यर्थना स्वीकार कर केवली प्ररूपित विचित्र प्रकार का धर्म सुनाना शुरू किया और उसको विस्तार से सुनाया । अन्त में कहा कि आत्म-कल्याण के लिए मुख्य २ मार्ग हैं १—साधुधर्म २—गृहस्थधर्म, जिसमें साधुधर्म के लिए सर्वथा संसार को त्याग कर पंचमहाव्रत पांच समिति तीन गुप्ति, दस यती धर्म, १२ प्रकार तप और १७ प्रकार संयम की आराधना करना और गृहस्थ धर्म के लिये समकित मूल १२ व्रत हैं ।

प्रदेशी—सूरीजी का व्याख्यान श्रवण कर परम आनन्द को प्राप्त हुआ और बोला कि हे प्रभो ! दीक्षा लेने की योग्यता अभी मेरे अन्दर नहीं, परन्तु गृहस्थ धर्म के १२ व्रत पालने की मेरी इच्छा है अतः इस विषय का जो विधि विधान हो वह करवा दीजिये ।

केशीश्रमण—जहा सुखं कह कर उसको समकित मूल १२ व्रत उच्चराय दिये । राजा प्रदेशी व्रत धारण कर अपने आपको अहोभाग्य समझ कर अपने स्थान जाने को तैयार होगया, इस पर केशीश्रमण ने पूछा कि हे राजन् ! आप जानते हो कि आचार्य कितने प्रकार के होते हैं ।

प्रदेशी—हां प्रभो मैं जानता हूँ कि कलाचार्य, शिल्पाचार्य और धर्माचार्य एवं तीन प्रकार के आचार्य होते हैं ।

केशीश्रमण—हे प्रदेशी ! आपको ये भी मालूम होगा कि इन आचार्यों का बहुमान कैसे किया जाता है ?

प्रदेशी—कलाचार्य्य और शिल्पाचार्य्य का बहुमान वस्त्राभूषण भोजनादि से होता है तब धर्माचार्य्य का सत्कार वन्दन, नमस्कार, सेवा और भक्ति से होता है ।

केशीश्रमण—हे राजन् ! जब आप इस प्रकार के जानकार हैं तब फिर तुमने हमारे धर्माचार्य का बिना बहुमान किये कैसे जाने की तैयारी कर ली ?

प्रदेशी—हे स्वामिन् ! मैंने जो बिना बहुमान किए जाने की तैयारी करी है इसमें भी कुछ रहस्य है

रहस्य रहा हुआ है और वह यह है कि यह पहिला ही पहिल मामला है। यदि मैं यहां अकेला कुछ कर भी लूँ तो इसे कौन जानेगा अतः मेरा इरादा है कि कल मैं अपने अन्तेवर पुत्र कुटुम्ब और अपनी प्रजा के साथ वड़े ही समारोह और भक्ति सहित आकर आपका वन्दन नमस्कार करूंगा।

केशीश्रमण—इसको सुन कर मौन साधन कर लिया क्योंकि साधुओं का ऐसा व्यवहार है कि जैनधर्म की विधि विधान के लिए उपदेश तो कर सकते हैं परन्तु आदेश के समय मौन व्रत रखते हैं।

प्रदेशी—उस रोज तो वहां से चला गया, बाद दूसरे दिन अपने पुत्र, रानियां, मन्त्री और नागरिक लोंगों के साथ चार प्रकार की सेना सहित बड़े ही समारोह के साथ आचार्यश्री को वन्दन करने के लिए आया जिसको देख कर और लोगों की भी जैनधर्म पर श्रद्धा होगई अर्थात् उन लोगों को भी आत्मकल्याण करने की रुचि हो गई।

आचार्य केशीश्रमण ने राजा प्रदेशी आदि को बड़े ही विस्तार से धर्म उपदेश सुनाया जिसमें मुख्य विषय था आत्मकल्याण का जिसके लिए त्याग वैराग्य और तपश्चर्या आदि का करना आवश्यक बतलाया था और दानादि के लिये विशेष जोर दिया था। इस उपदेश का असर राजा प्रदेशी वगैरह पर बहुत ही अच्छा हुआ। तदनंतर वे लोग आचार्य भगवान को वन्दन नमस्कार करके जाने के लिए तैयार हुए, उस समय केशीश्रमण ने मधुर वचनों से कहा कि हे नरेश ! आप रमणीक के स्थान अरमणीक न बन जाना।

प्रदेशी—हे प्रभो ! मैं आपकी परिभाषा में समझ नहीं सका हूँ कि रमणीक और अरमणीक किसे कहते हैं ?

केशीश्रमण—जैसे एक किसान का खेत जिसमें फसल पकती है तब वह रमणीक कहलाता है क्योंकि वहां किसान, साहूकार, मेहमान, ब्राह्मण, भिक्षु, पशु, पक्षी आया जाया करते हैं। तत्पश्चात् धान वगैरह अपने घरों पर ले जाते हैं। बाद वहां कोई भी नहीं आता है, जिसको अरमणीक कहा जाता है इसी प्रकार इक्षु का खेत वगैरह भी समझ लीजिए, जो कि पहले रमणीक होता है बाद में अरमणीक हो जाता है और इसी भांति नाटकशाला जो प्रारम्भ में रमणीक दीखती है जब नाटक करके लोग चले जाते हैं वही नाटकशाला अरमणीक दीख पड़ती है एवं फलाफूला उद्यान रमणीक दीखता है जब वह उद्यान सूख जाता है तब अरमणीक होजाता है, इस प्रकार अनेक उदाहरण हैं। अतः मैं आपसे यही कहता हूँ कि मेरी मौजूदगी में तो आप रमणीक दीखते हो जो कि आपकी धर्म पर श्रद्धा, एवं व्रत धारण करना तथा वन्दन भक्ति आदि २ धर्मकार्य्य में अभिरुचि है, परन्तु मेरे जाने पर अरमणीक न हो जाना कि कहीं भाव-भक्ति धर्म-साधन में शीतल ...जे अर्थात् धर्म-भावना को वढ़ाते हुये स्वपर कल्याण करने में तत्पर रहना।

प्रदेशी—हे प्रभो ! इस बात की आप पक्की खातिरी रक्खें कि मैं कदापि रमणीक का अरमणीक नहीं होऊंगा। मैं आपको विश्वास दिलाता हुआ प्रतिज्ञा करता हूँ। मेरे राज में श्वेताम्बिका नगरी आदि ७००० ग्राम हैं जिसकी आमद आवेगी उसके चार भाग कर दूँगा। १–अन्तेवर, २–सेना, ३–खजाना और ४–दानशाला* के लिये व्यय करूंगा, जिसमें याचकों को प्रति दिन अन्न, जल, वस्त्र वगैरह दान देता रहूँगा

* राजा प्रदेशी अपनी आमद को अन्तेवर, सेना और खजाने में तो पहिले ही व्यय करता था परन्तु केशीश्रमण की उदारता के व्याख्यान से उसने दानशाला खोलने का निश्चय किया जिसको केशीश्रमण ने उपादेय समझ कर के ही इन्कार नहीं किया था। अहाहा ! भिक्षुओं की भिक्षा के अन्दर से भाग लेने वाले राजा के विचारों में कितना परिवर्तन हुआ। यह सब भगवान केशीश्रमण की महती कृपा का सुन्दर फल है।

और मेरे करने योग्य पोषध, उपवास, व्रत, पच्चरखान तथा आचार विचार का पालन करता रहूंगा। अतः मैं रमणीक का अरमणीक न होऊंगा। राजा के कहने पर सूरीजी को विश्वास हो गया कि राजा प्रदेशी बड़ा ही धर्मज्ञ है अतः उसको और भी जो कुछ देने काबिल शिक्षा थी वह दी जिसको राजा ने बड़े हर्ष के साथ ग्रहण की। बाद सूरिजी को वन्दन नमस्कार कर अपने स्थान को चला गया और आत्मकल्याण में लग गया। इधर आचार्य केशीश्रमण भी वहां से विहार कर अन्य प्रदेश में चले गये।

आ हा ! संसार की स्वार्थ वृत्ति, जब से राजा प्रदेशी संसार के कार्य्य से विरक्त हो आत्मकल्याण में लग गया और छट छट पारणे करने लगा तो उसकी रानी सूरिकान्ता जो एक दिन राजा को वल्लभ थी उसने सोचा कि राजा ने राज की सार-सम्भाल करना छोड़ दिया और केवल धर्म्म कार्य्य में ही लग गया तो ऐसे राजा से मेरा क्या स्वार्थ है अतः किसी विष, शस्त्र या अग्नि के प्रयोग से मार डालूँ और अपने पुत्र सूरिकान्त को राज दे दूँ। इस विचार में रानी ने कई दिन निकाल दिये, परंतु ऐसा समय हाथ नहीं लगा कि वह राजा के जीवन का अंत कर दे। तब उसने अपने पुत्र सूरिकांत को बुला कर सब हाल कहा, परंतु कुंवर अपने पिता को इस प्रकार मारने में रानी से सहमत नहीं हुआ। अतः वहां से उठ कर चला गया। इस पर रानी ने सोचा कि कहीं कुंवर जाकर राजा को न कह दे अतः इस कार्य्य में विलम्ब न करना चाहिये।

राजा तो छट छट पारणा करता था उसके बारह छट हो चुके थे और तेरहवां छट का पारणा था उस समय रानी ने बड़ी नम्रता के साथ आग्रह किया कि हे धर्मात्मा पतिदेव ! आज का पारणा (भोजन) हमारे यहां करके मुझे अनुगृहीत करें। राजा ने स्वीकार कर लिया और रानी ने विषमिश्रित भोजन से राजा को पारणा करा दिया। जब राजा के शरीर में विष फैलने लगा तो उसने जान लिया। फिर भी रानी पर किंचित भी द्वेष नहीं किया और अपने संचित कर्म समझ कर अपना चित्त समाधि में रक्खा। इतना ही क्यों पर उसने समाधि मरण की तैयारी कर ली अर्थात् घास का संथारा बिछा कर उस पर आप बैठ गया। पहला नमस्कार सिद्ध भगवान को किया, दूसरा नमस्कार अपने धर्माचार्य्य केशीश्रमण को किया। तत्पश्चात् अपने भवसम्बन्धी पापों की आलोचना की और १८ पाप तथा ४ प्रकार के आहार का सर्वदा त्याग कर दिया और समाधि पूर्वक काल करके प्रथम देवलोक में सूरियाभ नाम के विमान में चार पल्योपम के आयुष्य वाला देव हुआ जिसका नाम सूरियाभ है जो अभी तुम्हारे सामने नाटक करके गया है। इससे तुम्हारे प्रश्न का समाधान हो गया कि सूरियाभ देव पूर्व भव में श्वेताम्बिका नगरी का प्रदेशी राजा था।

गौतम—हे प्रभो ! यह सूरियाभदेव देवता का भव समाप्त कर कहाँ जावेगा ?

महावीर—गौतम ! यह सूरियाभ देवता का जीव यहां से चल कर महाविदेह क्षेत्र में राजकुंवर होगा जिसका नाम दृढ़पइन्ना रक्खा जावेगा और वह वहां पर सब प्रकार के सांसारिक सुखों का अनुभव करके आखिर दीक्षा लेकर केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में चला जायगा। "राजप्रश्नी सूत्र"

प्रश्न—उत्तराध्ययन सूत्र के २३ वें अध्ययन में गौतम और केशीश्रमण की आपस में चर्चा हुई और केशीश्रमण ने चार महाव्रत के पाँच महाव्रत स्वीकार कर लिये थे तो केशीश्रमण को पार्श्वनाथ की संतान कैसे कही जा सकती है ?

उत्तर—इस समय केशीश्रमण नाम के दो मुनि हुये हैं १—गौतम के साथ चर्चा करने वाले और

रहस्य रहा हुआ है और वह यह है कि यह पहिला ही पहिल मामला है। यदि मैं यहां अकेला कुछ कर भी लूँ तो इसे कौन जानेगा अतः मेरा इरादा है कि कल मैं अपने अन्तेवर पुत्र कुटुम्ब और अपनी प्रजा के साथ वड़े ही समारोह और भक्ति सहित आकर आपका वन्दन नमस्कार करूंगा।

केशीश्रमण—इसको सुन कर मौन साधन कर लिया क्योंकि साधुओं का ऐसा व्यवहार है कि जैनधर्म की विधि विधान के लिए उपदेश तो कर सकते हैं परन्तु आदेश के समय मौन व्रत रखते हैं।

प्रदेशी—उस रोज तो वहां से चला गया, बाद दूसरे दिन अपने पुत्र, रानियां, मन्त्री और नागरिक लोगों के साथ चार प्रकार की सेना सहित वड़े ही समारोह के साथ आचार्यश्री को वन्दन करने के लिए आया जिसको देख कर और लोगों की भी जैनधर्म पर श्रद्धा होगई अर्थात् उन लोगों को भी आत्मकल्याण करने की रुचि हो गई।

आचार्य केशीश्रमण ने राजा प्रदेशी आदि को वड़े ही विस्तार से धर्म उपदेश सुनाया जिसमें मुख्य विषय था आत्मकल्याण का जिसके लिए त्याग वैराग्य और तपश्चर्या आदि का करना आवश्यक बतलाया था और दानादि के लिये विशेष जोर दिया था। इस उपदेश का असर राजा प्रदेशी वगैरह पर बहुत ही अच्छा हुआ। तदनंतर वे लोग आचार्य भगवान को वन्दन नमस्कार करके जाने के लिए तैयार हुए, उस समय केशीश्रमण ने मधुर वचनों से कहा कि हे नरेश! आप रमणीक के स्थान अरमणीक न वन जाना।

प्रदेशी—हे प्रभो! मैं आपकी परिभाषा में समझ नहीं सका हूँ कि रमणीक और अरमणीक किसे कहते हैं?

केशीश्रमण—जैसे एक किसान का खेत जिसमें फसल पकती है तब वह रमणीक कहलाता है क्योंकि वहां किसान, साहूकार, मेहमान, ब्राह्मण, भिक्षु, पशु, पक्षी आया जाया करते हैं। तत्पश्चात् धान वगैरह अपने घरों पर ले जाते हैं। बाद वहां कोई भी नहीं आता है, जिसको अरमणीक कहा जाता है इसी प्रकार इक्षु का खेत वगैरह भी समझ लीजिए, जो कि पहले रमणीक होता है बाद में अरमणीक हो जाता है और इसी भांति नाटकशाला जो प्रारम्भ में रमणीक दीखती है जब नाटक करके लोग चले जाते हैं वही नाटकशाला अरमणीक दीख पड़ती है एवं फलाफूला उद्यान रमणीक दीखता है जब वह उद्यान सूख जाता है तब अरमणीक होजाता है, इस प्रकार अनेक उदाहरण हैं। अतः मैं आपसे यही कहता हूँ कि मेरी मौजूदगी में तो आप रमणीक दीखते हो जो कि आपकी धर्म पर श्रद्धा, एवं व्रत धारण करना तथा वन्दन भक्ति आदि २ धर्मकार्य्य में अभिरुचि है, परन्तु मेरे जाने पर अरमणीक न हो जाना कि कहीं भाव-भक्ति धर्म-साधन में शीतल हो अर्थात् धर्म-भावना को बढ़ाते हुये स्वपर कल्याण करने में तत्पर रहना।

प्रदेशी—हे प्रभो! इस बात की आप पक्की खातिरी रक्खें कि मैं कदापि रमणीक का अरमणीक नहीं होऊंगा। मैं आपको विश्वास दिलाता हुआ प्रतिज्ञा करता हूँ। मेरे राज में श्वेताम्बिका नगरी आदि ७००० ग्राम हैं जिसकी आमद आवेगी उसके चार भाग कर दूँगा। १–अन्तेवर, २–सेना, ३–खजाना और ४–दानशाला* के लिये व्यय करूंगा, जिसमें याचकों को प्रति दिन अन्न, जल, वस्त्र वगैरह दान देता रहूँगा

* राजा प्रदेशी अपनी आमद को अन्तेवर, सेना और खजाने में तो पहिले ही व्यय करता था परन्तु केशीश्रमण की उदारता के व्याख्यान से उसने दानशाला खोलने का निश्चय किया जिसको केशीश्रमण ने उपादेय समझ कर के ही इन्कार नहीं किया था। अहाहा! भिक्षुओं की भिक्षा के अन्दर से भाग लेने वाले राजा के विचारों में कितना परिवर्तन हुआ। यह सब भगवान केशीश्रमण की महती कृपा का सुन्दर फल है।

और मेरे करने योग्य पोषध, उपवास, व्रत, पचरखान तथा आचार विचार का पालन करता रहूंगा । अतः मैं रमणीक का अरमणीक न होऊंगा । राजा के कहने पर सूरीजी को विश्वास हो गया कि राजा प्रदेशी बड़ा ही धर्मज्ञ है अतः उसको और भी जो कुछ देने काबिल शिक्षा थी वह दी जिसको राजा ने बड़े हर्ष के साथ ग्रहण की । बाद सूरिजी को वन्दन नमस्कार कर अपने स्थान को चला गया और आत्मकल्याण में लग गया । इधर आचार्य केशीश्रमण भी वहां से विहार कर अन्य प्रदेश में चले गये ।

आ हा ! संसार की स्वार्थ वृत्ति, जब से राजा प्रदेशी संसार के कार्य्य से विरक्त हो आत्मकल्याण में लग गया और छट छट पारणे करने लगा तो उसकी रानी सूरिकान्ता जो एक दिन राजा को वल्लभ थी उसने सोचा कि राजा ने राज की सार-सम्भाल करना छोड़ दिया और केवल धर्म्म कार्य्य में ही लग गया तो ऐसे राजा से मेरा क्या स्वार्थ है अतः किसी विष, शस्त्र या अग्नि के प्रयोग से मार डालूँ और अपने पुत्र सूरिकान्त को राज दे दूँ । इस विचार में रानी ने कई दिन निकाल दिये, परंतु ऐसा समय हाथ नहीं लगा कि वह राजा के जीवन का अंत कर दे । तब उसने अपने पुत्र सूरिकांत को बुला कर सब हाल कहा, परंतु कुंवर अपने पिता को इस प्रकार मारने में रानी से सहमत नहीं हुआ । अतः वहां से उठ कर चला गया । इस पर रानी ने सोचा कि कहीं कुंवर जाकर राजा को न कह दे अतः इस कार्य्य में विलम्ब न करना चाहिये ।

राजा तो छट छट पारणा करता था उसके बारह छट हो चुके थे और तेरहवां छट का पारणा था उस समय रानी ने बड़ी नम्रता के साथ आग्रह किया कि हे धर्मात्मा पतिदेव ! आज का पारणा (भोजन) हमारे यहां करके मुझे अनुगृहीत करें । राजा ने स्वीकार कर लिया और रानी ने विषमिश्रित भोजन से राजा को पारणा करा दिया । जब राजा के शरीर में विष फैलने लगा तो उसने जान लिया । फिर भी रानी पर किंचित भी द्वेष नहीं किया और अपने संचित कर्म समझ कर अपना चित्त समाधि में रक्खा । इतना ही क्यों पर उसने समाधि मरण की तैयारी कर ली अर्थात् घास का संथारा बिछा कर उस पर आप बैठ गया। पहला नमस्कार सिद्ध भगवान को किया, दूसरा नमस्कार अपने धर्माचार्य्य केशीश्रमण को किया। तत्पश्चात् अपने भवसम्बन्धी पापों की आलोचना की और १८ पाप तथा ४ प्रकार के आहार का सर्वदा त्याग कर दिया और समाधि पूर्वक काल करके प्रथम देवलोक में सूरियाभ नाम के विमान में चार पल्योपम के आयुष्य वाला देव हुआ जिसका नाम सूरियाभ है जो अभी तुम्हारे सामने नाटक करके गया है । इससे तुम्हारे प्रश्न का समाधान हो गया कि सूरियाभ देव पूर्व भव में श्वेताम्बिका नगरी का प्रदेशी राजा था ।

गौतम—हे प्रभो ! यह सूरियाभदेव देवता का भव समाप्त कर कहाँ जायगा ?

महावीर—गौतम ! यह सूरियाभ देवता का जीव यहां से चल कर महाविदेह क्षेत्र में राजकुंवर होगा जिसका नाम दृढ़पइना रक्खा जावेगा और वह वहां पर सब प्रकार के सांसारिक सुखों का अनुभव करके आखिर दीक्षा लेकर केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में चला जायगा । 'रायपसेनी सूत्र'

प्रश्न—उत्तराध्ययन सूत्र के २३ वें अध्ययन में गौतम और केशीश्रमण की आपस में चर्चा हुई और केशीश्रमण ने चार महाव्रत के पाँच महाव्रत स्वीकार कर लिये थे तो केशीश्रमण को पार्श्वनाथ की संतान कैसे कही जा सकती है ?

उत्तर—इस समय केशीश्रमण नाम के दो मुनि हुये हैं १—गौतम के साथ चर्चा करने वाले और

ज्ञान संयुक्त थे। २—राजा प्रदेशी को प्रतिबोध करने वाले चार ज्ञान वाले थे इनके लिये *कल्पसूत्र में उल्लेख मिलता है कि पार्श्वनाथ प्रभु की युगान्तगढ़ भूमि में पार्श्वनाथ के चार पट्टधर मोक्ष जावेंगे १-गणधर शुभदत्त २-आचार्य हरिदत्त ३-आचार्य समुद्रसूरि और ४-केशीश्रमणाचार्य। इस लेख से पार्श्वनाथ के चतुर्थ पट्टधर केशीश्रमणाचार्य्य गौतम के साथ चर्चा करने वाले केशीश्रमण से अलग थे और वे पार्श्वनाथ की परम्परा में मोक्ष गये हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि महावीर के निर्वाण समय भी पार्श्वनाथ के सन्तानिये पार्श्वनाथ के शासन की क्रिया समाचारी करने वाले विद्यमान थे।

भगवान महावीर ने यह भी आर्डर नहीं निकाला था कि अब मेरा शासन प्रवृतमान हो गया है तो तुम पार्श्वनाथ के संतानिये कहला कर अलग क्यों रहते हो अर्थात तुम सब हमारे शासन में चले आओ इत्यादि और न पार्श्वनाथ संतानियों का भी आग्रह था कि हम पार्श्वनाथ के संतानिये अलग रह कर पार्श्वनाथ का शासन चलावेंगे। इन सब का मतलब यह है कि जहां जहां पार्श्वनाथ के संतानियों को भगवान् महावीर की भेंट होती गई वहां वहां उन्होंने भगवान् महावीर के शासन को अर्थात चार महाव्रत के पांच महाव्रत स्वीकार करते गये। शेष रहे हुए भगवान् पार्श्वनाथ के संतानिये क्रिया प्रवृति सब भगवान् महावीर शासन की ही क्रिया करते थे, एवं आज भी करते हैं और वे पार्श्वनाथ की परम्परा में होने से महावीर संतानिये उनको पार्श्वनाथ संतानिये ही कहते थे। और भगवान् पार्श्वनाथ के संतानिये भी अपनी पट्ट परम्परा प्रभु पार्श्वनाथ से मिलाने की गरज से वे अपने को पार्श्वनाथ संतानिये कहलाते थे। दूसरे भगवान महावीर के पूर्व जैनधर्म के अस्तित्व का यह एक सबल प्रमाण भी है। तीसरे जहां आत्म-कल्याण है वहां परम्परा की खींचतान को थोड़ा भी स्थान नहीं मिलता है। परम्परा केवल उपचरित नय से ही कही जाती है। वास्तव में जैनधर्म अनादिकाल से प्रचलित है। यही कारण है कि आज पर्यंत वीर शासन के किसी आचार्य ने पार्श्वनाथ संतानियों के लिये एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया है कि भगवान् महावीर के शासन में आप पार्श्वनाथ संतानिये क्यों कहलाते हो ? इतना ही क्यों बल्कि इनको श्रेष्ठ समझ कर बहुमान-पूर्वक आदर सत्कार किया है। प्रसंगोपात् केशीश्रमणाचार्य के विषय के प्रश्नोत्तर लिखकर अब भगवान महावीर का विषय जो अपूर्ण रह गया था पूर्ण करते हैं।

भगवान् महावीर के छद्मस्थावस्था का विहार क्षेत्र १ अस्थिग्राम २ राजगृह ३ चम्पा ४ पृष्ट चम्पा ५ भद्रिका ६ आलंभिया ७ राजगृह ८ भद्रिका ९ अनार्य भूमि १० सावत्थि ११ विशाला १२ चम्पानगरी एवं बारह चर्तुमास हुये और कैवल्यज्ञान होने के बाद वेसालिक और वानिया गाँव में १२ राजगृह में १२ मिथिला में ६ और अंतिम चर्तुमास पावानगरी में हुआ, इससे पाया जाता है कि भगवान् महावीर का विहार प्रायः अंग वंग मगध कलिंग और सिन्धु सोवीर वगैरह पूर्व में ही हुआ था तथा महाराष्ट्रीय प्रान्त में लोहित्याचार्य्य की संतान विहार कर धर्म प्रचार किया करती थी।

ई० स० पूर्व ५२६ वर्षे भगवान महावीर का निर्वाण हुआ। और आपके पीछे गणधर सौधर्माचार्य्य

*—पासस्सणं अरहओ पुरिसादाणीयस्स दुविहाअंतगड़भूमि हुत्था। तं जहा—जुगंतगड़भूमिय परिआयंअंतगड़भूमिय, जाव चउत्थाओ पुरिसजुगाओ जुगंतगड़ भूमि—इत्यादि

कल्पसूत्र

पट्टधर हुये, क्योंकि भगवान् महावीर के नौ गणधर तो भगवान् की मौजूदगी में ही मोक्ष पधार गये थे, शेष इन्द्रभूति और सौधर्म दो गणधर रहे जिसमें इन्द्रभूति को तो उसी दिन केवल ज्ञान हो गया था. अतः भगवान् महावीर के पट्टधर गणधर सौधर्म को ही बनाया गया था। आप बड़े ही प्रतिभाशाली एवं धर्मप्रचारक थे, आपका पवित्र जीवन वीर वंशावली में विस्तार से लिखा मिलता है।

बौद्ध ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख किया है कि ज्ञातपुत्र महावीर के निर्वाण के पश्चात् उनके शिष्यों में कुछ कलह हो गया था पर जैनशास्त्रों में इस बात का जिक्र तक भी नहीं है कि महावीर के निर्वाण के बाद उनके शिष्यों में कुछ भी क्लेश हुआ हो। हां, भगवान् महावीर की मौजूदगी में जमाली और गोसाला का उत्पात जरूर हुआ था जो भगवत्यादिसूत्र में उल्लेख किया गया है। शायद बौद्धों ने उस जमाली गोसाला का क्लेश जो महावीर की मौजूदगी में हुआ उसको भगवान महावीर के निर्वाण के बाद लिख दिया हो तो उसको बौद्धों की भूल ही समझना चाहिये।

प्रसंगोपात भगवान् महावीर का संक्षिप्त में जीवन कह कर अब मैं अपने मूल विषय पर आता हूँ कि आचार्य केशीश्रमण बड़े ही प्रभाविक एवं धर्म-प्रचार करने वाले सूरीश्वर हुये जिन्होंने मृत्यु के मुँह में जाने वाले जैनधर्म को जीवित रक्खा। इतना ही क्यों पर भगवान् महावीर के शासन समय में भी वे चारों ओर घूम २ कर धर्म का प्रचार किया करते थे।

अन्त में आचार्य केशीश्रमण अपनी अन्तिम अवस्था में केवल ज्ञान प्राप्त करके मुनि स्वयंप्रभसूरि को आचार्य पदसे विभूषित बना कर अपनी सब समुदाय का भार स्वयंप्रभसूरि के अधिकार में करके आप जन्मजरामरणादि के दुःख को नष्ट कर अनशन एवं समाधिपूर्वक मोक्ष पधार गये—

वे क्रान्ति के अवतार थे आचार्य समुद्र सुनाम था।
उनसे प्रभावित थे सभी उनका स्वरूप ललाम था॥
आवन्ति नृप जयसेन निज पटदेवी अनंग सेना सहित।
जैनधर्म में दीक्षित हुये हो वीतराग हिंसा रहित॥
निजपुत्र केशीकुमार को भी धर्म में प्रवृत बना।
जैनधर्म को वर्द्धन किया कर दिव्यतम परभावना॥

ये तुर्य्य पटधर केशि ही विख्यात श्रमणाचार्य्य थे।
थे ब्रह्मचारी तापसी उनके अनोखे कार्य्य थे॥
सेविया का राजा प्रदेशी नास्तिकों में अग्र था।
आचार्य के उपदेश से ही वह बना जैनाग्र था॥
पाखंडियों के चक्र में अनेक भूपति ग्रस्त थे।
उनका किया उद्धार था दे [illegible] थे॥

॥ इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के चतुर्थ पट्टधर आचार्य केशीश्रमण [illegible] ॥

ने प्रार्थना की कि हे प्रभो ! आप क्या विचार करते हो ? वहाँ पधारने से आपको महान लाभ होगा, मेरी भी प्रार्थना है कि आप वहाँ अवश्य पधारें। वे पेटार्थी अपनी विषय वासना पोषणार्थ हम देवी देवों को बदनाम करते हैं और कहते हैं कि यह बलि देवी देवों को दी जाती है इत्यादि। आपके पधारने से हम लोगों का कलंक भी धुल जायगा।

बस फिर तो देर ही क्या थी ? सुबह होते ही क्रिया काण्ड से निवृत हो सूरिजी ने अपने शिष्यों के साथ श्रीमाल नगर की ओर विहार कर दिया, पर उन पाखण्डियों के साम्राज्य में इस प्रकार विहार करना कोई साधारण कार्य नहीं था पर एक टेढ़ी खीर थी। रास्ते के संकट के लिये तो भुक्त भोगी ही जान सकते हैं। पर जिन महाभाग्यशालियों ने जन कल्याणार्थ अपने आप को अर्पण कर दिया है। उनको सुख दुख एवं कठिनाइयों की क्या परवाह है। वे भूखे प्यासे क्रमशः चलते हुए श्रीमाल नगर के उद्यान में पहुँच गये पर वहाँ पहुँच जाने पर भी आपका कौन स्वागत करने वाला था। जो अर्बुदाचल पर गृहस्थ मिले थे वे भी भाग्यवशात् उस समय बाहर ग्राम गये हुये थे। खैर, मुनियों ने ध्यान लगा कर तपोवृद्धि की।

जब मुनियों को क्षुधा पिपासा प्रबल सताने लगी तो वे सूरिजी की आज्ञा ले नगर में भिक्षा के लिये गये और एक गृहस्थ के घर में प्रवेश किया तो वहाँ एक निर्दय दैत्य कई पशुओं का बध करते नजर आया। बस, वे साधु तो वहाँ से ही वापिस लौट कर सूरिजी के पास आ गये और नगर का सब हाल सुना कर प्रार्थना की कि हे पूज्यवर ! यह नगर साधुओं के ठहरने काबिल नहीं है, अतः यहाँ से शीघ्र ही विहार करना चाहिये।

सूरिजी ने साधुओं को धैर्य्य दिया और अपने विद्वान शिष्यों को साथ लेकर सीधे ही राजसभा में आये जहां कि अनेक जटाधारी यज्ञाध्यक्ष एकत्र हो यज्ञ विषय की सब तैयारियां कर रहे थे। कुछ लोग एक तरफ बैठ कर जैन साधुओं के विषय में बातें कर रहे थे कि यह जैन सेवड़ा अपने कार्य्य में विघ्न तो न डाल दें इत्यादि।

राजा जयसैन राजसभा में बैठा था कि सामने से एक तेजस्वी महात्मा आते हुए नजर पड़े जिनके मुखमण्डल पर अपूर्व तेज था। लम्बे कान, दीर्घ बाहु एवं विशाल हृदय था और भूमि देख कर चल रहे थे। राजा इस प्रकार सूरिजी का अतिशय प्रभाव देख कर अपने सिंहासन से चट से उठा और सूरिजी के सामने जाकर उनको नमन भाव किया प्रत्युत्तर में सूरिजी ने धर्मलाभ ❀ दिया जिसको सुन कर वे उपस्थित लोग मुसकरा कर हंसने लगे कि यही जैन साधुओं की मूढ़ता है कि अभी तक इनको आशीर्वाद देना भी नहीं आता है। राजा जयसैन ने उन लोगों की चेष्टा देख कर सूरिजी से कहा कि महात्माजी ! आप वन्दन के उत्तर में आशीर्वाद नहीं देते जैसे कि अन्य साधु दिया करते हैं ? सूरिजी ने कहा कि राजन् ! यदि मैं आपको चिरंजीवी का आशीर्वाद दूं तो नरक में भी दीर्घ आयुष्य है। बहुपुत्र का दूं तो श्वानादि के

❀ किसी शिवोपासक ने जैनों से कहा कि

नो वापि नैव कूपं न च वरं तुलसी नैव गङ्गा न काशी।
नो ब्रह्मा नैव विष्णुर्नच दिवसपतिर्नैव शंभू न दुर्गा ॥
विप्रेभ्यो नैव दानं न च तीर्थगमनं नैव होमो हुतासी।
रे रे पाखण्ड मूढ़ ! कथय भवतां कीदृशो धर्मलाभ ॥
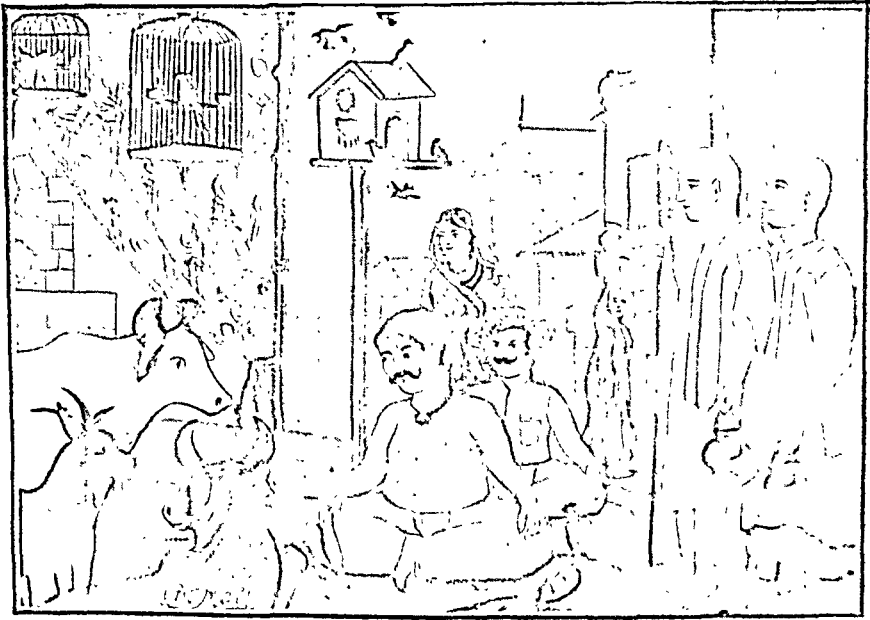
भी बहुपुत्र होते हैं। यदि धन धान्य का दूं तो वैश्या के भी होता है। अतः यह आशीर्वाद नहीं पर दुराशीष ही हैं। पर जो मैंने आपको धर्मलाभ सही आशीर्वाद दिया है वह त्रिवर्ग साधन रूप आशीर्वाद है क्योंकि जो कुछ मन इच्छित सुख शांति मिलती है वह सब धर्म से ही मिलती है। इतना ही क्यों पर धर्म साधन संसार में जन्म मृत्यु मिटा कर मोक्ष में पहुँचा देता है। अतः हमारा धर्मलाभरूप आशीर्वाद इस भव और परभव में कल्याणकारी है, इत्यादि।

सूरिजी के मार्मिक वचन सुन कर राजा की अन्तरात्मा में बड़ा ही चमत्कार पैदा हुआ और राजा को विश्वास हो गया कि यह अलौकिक महात्मा है अतः राजा को धर्म का स्वरूप सुनने की जिज्ञासा जागृत हो गई। और प्रार्थना करने लगा कि महात्मन्! आप कृपा कर यहां पधारे हैं तो कुछ धर्म का स्वरूप तो फरमावें कि जिस धर्म से जनता का कल्याण हो सके।

नगर में यह खबर बिजली की भांति सर्वत्र फैल गई कि आज एक जैन सेवड़ा राजसभा में गया है और वहां कुछ धर्मचर्चा करेगा। चलिये अपन लोग भी सुनेंगे वह क्या कहेगा ? अतः वे लोग भी शीघ्रता से राजसभा में आये और देखते देखते राजसभा खचाखच भरगई। उधर वे यज्ञाध्यक्ष भी सब सुनने को उपस्थित हो गये।

सूरिजी ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा धर्म का स्वरूप कहना प्रारम्भ किया जिसमें अधिक विवेचन हिंसा और अहिंसा की तुलना पर ही किया कि संसार में हिंसा सदृश कोई पाप नहीं और अहिंसा से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है इत्यादि अपनी मान्यता को इस प्रकार सिद्ध कर बतलाया कि उपस्थित श्रोताओं के हृदय कमल में अहिंसा ने चिरस्थाई स्थान कर लिया। इस विषय में ज्यों ज्यों वाद विवाद होता गया त्यों-त्यों सूरिजी के प्रमाण जनता को अपनी ओर आकर्षित करते गये। आखिर उस निष्ठुर यज्ञ की ओर जनता की घृणा और अहिंसा की ओर सद्भाव बढ़ता गया। फलस्वरूप राजा जयसेन उनके मंत्री और नागरिक लोगों के ९०००० घर वालों को सूरिजी ने जैनधर्म की दीक्षा-शिक्षा देकर उन्हें जैनधर्म का अनुयायी बनाया।

जिस यज्ञ के लिये लाखों मूक प्राणियों को एकत्र किया गया था उन सब को अभय दान दिला कर छुड़वा दिया और यज्ञ करना भी बंद करवा दिया। फिर तो था ही क्या ? श्रीमाल नगर में जैनधर्म और सूरिजी की घर २ में मुक्त-कण्ठ से भूरि भूरि प्रशंसा होने लगी।

जब कि श्रीमाल नगर के राजा प्रजा जैन बन गये तो अब सूरिजी के प्रति उनकी भक्ति का पार नहीं रहा। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता रहा और जैनधर्म का सत्य स्वरूप सुन कर लोगों की श्रद्धा जैनधर्म प्रति खूब मजबूत हो गई। सूरिजी ने सोचा कि यहाँ पर एक जैन मन्दिर बन जाना अच्छा

जैनों की ओर से उत्तर—

नो ज्ञानं नैव सत्यं न च सुगुण धरो नैव तत्वादि चिन्ता।
नाहिंसा प्राणी वर्गे न तु विमल मनं केवलं तुंद भर्ति ॥
रात्रि भोजी च नित्य पयसी जलचरा जीव घाते कृतांका।
रे रे पाखण्ड विप्र [illegible] भवतां [illegible] [illegible] ॥

है क्योंकि साधुओं का सदैव आना और रहना मुश्किल है। अतः सूरिजी ने एक दिन व्याख्यान में जैन मन्दिर* के लिये उपदेश दिया और कहा कि महानुभाव ! आत्मकल्याण के अन्य २ साधनों में अपने इष्ट देव का मन्दिर एक मुख्य साधन है क्योंकि इसके होने से देव की उपासना सेवा भक्ति हो सकती है, धर्म पर दृढ़ श्रद्धा और हमेश के लिये चित्तवृति निर्मल रहती है, पाप करने में घृणा होती है अन्याय एवं अत्याचार उनके हाथों से प्रायः नहीं होता है यदि कुछ अर्सा के लिये साधुओं का आगमन न भी हो तो मन्दिरों के द्वारा अपना आत्मकल्याण कर सकते हैं इत्यादि, बस, फिर तो देरी ही क्या थी ? उन भावुकों ने बड़ी खुशी के साथ स्वीकार कर उसी समय मन्दिर की नींव डाल दी।

आचार्यश्री ने वहाँ पर कितने ही समय ठहर कर उन नूतन श्रावकों को जैनधर्म के तात्विक विषय एवं सामायिकादि पूजा विधि और क्रिया विधान का अभ्यास करवाया।

एक समय सूरिजी ने यह संवाद सुना कि पद्मावती नगरी में एक वृहद् यज्ञ का आयोजन हो रहा है और वहाँ भी विचारे मूक प्राणियों की बलि दी जायगी, फिर तो था ही क्या ? आपने श्रीमाल नगर के मुख्य श्रावकों को सूचित किया कि मैंने पद्मावती नगरी की ओर जाने का निश्चय किया है। इस हालत में वे श्रावक लोग इस महान लाभ को हाथों से कब जाने देने वाले थे। उन्होंने कहा कि यदि आप पधारें तो हम भी इस कार्य्य के लिये पद्मावती चलेंगे ?

इधर तो सूरिजी पद्मावती पहुँचे उधर श्रीमाल नगर के श्रावक भी उपस्थित हो गये। सूरिजी इस कार्य्य में पहले सफलता पा चुके थे वे बड़े उत्साह से राजसभा में पहुँचे। पर वे यज्ञाध्यक्ष बड़े ही घमंड के साथ कहने लगे कि महात्मन् ! यह श्रीमाल नगर नहीं है कि आपने राजा प्रजा को भ्रम में डाल शास्त्र-विहित यज्ञ करना मना करा दिया। पर यहाँ तो है पद्मावती नगरी और वेदानुयायी कट्टर धर्मज्ञ राजा पद्मसैन। आप जरा संभल के रहना इत्यादि।

सूरिजी ने कहा विप्रो ! न तो मैं श्रीमाल नगर से कुछ ले आया और न यहाँ से कुछ ले जाना है। मेरा कर्त्तव्य दुनिया को सन्मार्ग बतलाने का है वही बतलाया जायगा फिर मानने न मानने के लिये जनता स्वतंत्र है इत्यादि सवाल जवाब हुये। इतने में तो बहुत से लोग एकत्र हो गये।

सूरिजी ने अपना व्याख्यान शुरू कर दिया। यह तो आप पहिले ही पढ़ चुके हो कि इस प्रकार

केशि नामा तद्विनयो, यः प्रदेशि नरेश्वरम्। प्रबोध्य नास्तिकाद्धर्मा, जैन धर्मेऽध्यरोपयत् ॥१॥
[illegible]ष्य : समजायन्त, श्री स्वयंप्रभ सूरयः। विहरन्तः क्रमेणेयुः श्री श्रीमालं कदापि ते ॥
तत्र यज्ञे यज्ञियानां, जीवानां हिंसकं नृपम्। प्रत्यपेधीत्तदा सूरिः, सर्व जीव दया रतः ॥
नवामुत्तगृहस्थान्न् सार्धं क्षमापति नतदा। जैन तत्त्वं संप्रदर्श्य, जैनधर्मे न्यवेशयत् ॥
पद्मावत्यां नगर्यश्च, यज्ञस्या योजनं श्रुतम्। प्रत्यरौत्सीत्तदा सूरि, र्गत्वा तत्र महामतिः ॥
राजानं गृहिणश्चैव चत्वारिंशत् सहस्र कान्। त्राण सहस्र संख्याश्च, चक्रेऽहिंसाव्रतान्नरान् ॥
अतः सूरेश्च शिष्याणां संख्या वै वृद्धितां गता। सुराणां पोषण यैव, एधितेन्दोः कलाइव ॥
न सेहिरे परे तत्र उन्नतिं धार्मिकीं तदा। यथा चान्द्रमसीं कान्ति तस्कराध्वान कामिनः ॥
तस्थुस्ते तत्पुरोद्याने मास कल्पं मुनीश्वराः। उपास्यमानाः सततं भव्यैर्भव तरुच्छिदे ॥

कार्य्यों में सूरिजी पक्के अनुभवी और सिद्ध हस्त थे। आपके कहने की शैली इतनी उत्तम प्रकार की थी कि कठोर से कठोर हृदय वाले निर्दयी भी आपका उपदेश सुनने से रहमदिल बन जाते थे। कुछ होनहार भी यज्ञ का उन्मूल था। सूरिजी तो मात्र एक निमित्त कारण ही थे, अतः आपके उपदेश का प्रभाव उपस्थित लोगों पर इस कदर हुआ कि राजा प्रजा करीब ४५००० घर वालों ने उस निष्ठुर कर्म का त्याग कर सूरिजी के चरण कमलों में जैनधर्म को स्वीकार कर लिया और अहिंसा भगवती के उपासक बन गये।

सूरिजी ने यहाँ पर मासकल्पादि ठहर कर उनको जैनधर्म के आचारव्यवहारादि का ज्ञान करवाया और वहाँ पर एक शान्तिनाथ के मन्दिर बनाने का निश्चय करवाया। इस प्रकार सूरिजी ने आबुदाचल से श्रीमाल नगर तक घूम घूम कर लाखों मनुष्यों को मांस मदिरादि दुर्व्यसन छुड़वा कर जैनधर्म का उपासक बनाया और उनके आत्म-कल्याण के लिये मेदनी जिनमन्दिरों से मण्डित करवा दी। सूरिजी की अध्यक्षता में तीर्थ यात्रार्थ कई संघ निकाल कर भावुकों ने यात्रा कर अपने अहोभाग्य समझे इत्यादि जैन धर्म का खूब प्रचार किया तथा अनेक जैनेतरों को जैनधर्म की दीक्षा देकर शासन की अपूर्व सेवा की।

आचार्य श्री स्वयंप्रभसूरि ने अपने पवित्र कर-कमलों से अनेक नर नारियों को दीक्षा देकर जैन श्रमणसंघ की आशातीत वृद्धि की थी पर एक महत्त्वपूर्ण दीक्षा आपके कर कमलों से ऐसी हुई कि वह चिरस्थाई बन गई थी। जिनका नाम था मुनि रत्नचूड़।

मुनिरत्नचूड़ का पवित्र एवं चमत्कारपूर्ण जीवन हम आगे चल कर आचार्य रत्नप्रभसूरि के नाम से लिखेंगे जिसको पढ़ कर पाठक मंत्रमुग्ध बन जायंगे कि आत्मकल्याण एवं जैनधर्म के प्रचारक महात्माओं ने किस प्रकार संसार की ऋद्धि को असार समझ कर त्याग किया है और ऐसे त्यागी महात्माओं का जीवन जगत के जीवों के लिए कैसे उपकारी बन जाता है इत्यादि।

आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने अपने उपकारी जीवन में जैनशासन की बड़ी भारी कीमती सेवा बजाई। जिन प्रदेशों में जैनधर्म का नाम तक भी लोग नहीं जानते थे वहाँ हजारों कठिनाइयों को सहन कर जैनधर्म का बीज बो कर अपनी ही जिन्दगी में फला फूला देखना यह कोई साधारण बात नहीं है। जिन माँसाहारियों को सूरीश्वरजी ने जैनधर्म के परमोपासक बनाये थे वे आगे चल कर नगर के नाम से श्रीमाली एवं प्राग्वट कहलाये और उन लोगों ने तथा उनकी सन्तान परम्परा के अनेक दानी मानी उदार नररत्नों ने शासन की बढ़िया से बढ़िया सेवा की है जिसको मैं अगले पृष्ठ पर लिखूंगा। आज जो श्रीमाल और पोरवाल लोग सुखपूर्वक जैनधर्म को आराधन कर आत्म-कल्याण कर रहे हैं यह सब उन महान् उपकारी आचार्य स्वयंप्रभसूरीश्वरजी के अनुग्रह का ही सुन्दर फल है।

पर दुःख इस बात का है कि जिनके पूर्वजों को मांस मदिरा छुड़वा कर जैनधर्म में दीक्षित किये थे वे श्रीमाल एवं पोरवाल आज उन परमोपकारी का नाम तक भूल कर कृतघ्नी बन गये हैं शायद उन लोगों के पतन का कारण ही यह कृतघ्नीपन तो न हो ?

आचार्य स्वयंप्रभसूरि के समय भगवान महावीर के पट्टधर गणधर सौधर्माचार्य तथा सौधर्म गणधर के पट्टधर आचार्य जम्बु हुए थे। उनके जीवन का विस्तार से वर्णन जैनग्रन्थों में किया है पर मैं अपने उद्देशानुसार यहां संक्षिप्त से लिख देता हूँ।

गणधर सौधर्माचार्य—इस भारत भूमि पर एक कोल्लाग नाम का सुन्दर एवं रम्य सन्निवेश था जिसके

अन्दर धम्मिल नाम का ब्राह्मण अपनी भद्दिला नाम की पत्नी के साथ रहता था। वे धन धान्य से पूर्ण और सुख शान्ति में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। उस ब्राह्मण के प्रबल पुन्योदय एक पुत्र रत्न का जन्म हुआ जिसका नाम सुधर्म रक्खा गया था जो कि यथा नामस्तथागुण था। माता पिता ने कई महोत्सवों के साथ उसका लालन पालन किया और बाल भाव व्यतीत होने पर उसको विद्याध्ययन के लिये अध्यापक गुरु की सेवा में भेज दिया। यों तो ब्राह्मणों के लिए विद्या हमेशा के लिए वरदायी हुआ ही करती है पर आप पर विशेष कृपा थी पहिले जमाने में विद्याध्ययन में विशेष समय खर्च कर दिया जाता था और प्रायः कर के ब्राह्मण लोग चार वेद छः शास्त्र अठारह पुराण और इतिहास आदि ग्रंथों का पठन पाठन कर लिया करते थे तदनुसार सुधर्म नाम का विद्यार्थी भी तमाम शास्त्रों का अध्ययन एवं चौदह विद्या के पारंगत हो गये। इनके अलावा आपने यज्ञाध्यक्ष पद को भी प्राप्त कर लिया था और इस कार्य्य में करीबन ५० वर्ष भी व्यतीत कर दिये थे।

एक समय मद्यपापा नगरी के अन्दर सौमल नाम के ब्राह्मण ने एक वृहद् यज्ञ करना प्रारम्भ किया जिसमें अन्य अन्य पंडितों के साथ सुधर्म नाम के पंडित भी शामिल थे। इधर जब भगवान महावीर को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ तब देवरचित समवसरण में विराजमान हो कर धर्मदेशना देना प्रारम्भ किया तो उस समय भिन्न २ विचार वाले इन्द्रभूति आदि पंडित भगवान के समीप आकर अपनी शंकाओं को दूर कर भगवान के शिष्य बन गये जिसका वर्णन आवश्यक सूत्र एवं कल्पसूत्र में विस्तार से किया है जिसमें सुधर्म पंडित भी एक था। उसके दिल में यह शंका थी कि मनुष्यादि सर्व जीव जैसे इस भव में हैं वैसे ही अगले जन्म में होते हैं? या मनुष्य मर कर पशु आदि योनि को प्राप्त होते हैं, जैसे वेद की श्रुतियों में लिखा है कि:—

पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वंइत्यादिनि।

भावार्थ यह है कि जैसे इस जन्म में पुरुष स्त्री आदि हैं वैसे ही पुनर्जन्म में होंगे या इनसे विरुद्ध।

शृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यत इत्यादि

इन सब श्रुतियों का भगवान ने यथार्थ अर्थ समझा कर उनके भ्रम को दूर हटा दिया, अतः सुधर्म पंडित ने सच्चे तत्वों की ठीक परीक्षा कर के आत्म-कल्याण की उत्कृष्ट भावना से अपने ५०० शिष्यों के साथ भगवान महावीर प्रभु के चरण कमलों में दीक्षा धारण कर ली और ३० वर्ष तक भगवान के चरणों की सेवा की, तत्पश्चात् भगवान के पट्टधर बन १२ वर्ष छद्मस्थ अवस्था में द्वादशांगी के पारंगतपने में [illegible]न को सुचारु रूप से चला कर जैनधर्म का प्रचार एवं उन्नति की। जब आप को केवलज्ञान केवल [illegible]न उत्पन्न हुआ, फिर भी आठ वर्ष तक भूमंडल पर विहार कर अनेक भव्य प्राणियों का उद्धार किया। अन्त में आप अपने पट्टधर जम्बू स्वामी को स्थापन कर मोक्ष पधार गये। ये महावीर के प्रथम पाट सुधर्म गणधर हुये। अब आगे जम्बू स्वामी के लिये भी संक्षिप्त से लिख दिया जाता है।

भगवान महावीर स्वामी के दूसरे पट्टधर आचार्य जम्बू स्वामी बड़े प्रभावशाली आचार्य हुए। आपका जन्म मगधदेश के अन्तर्गत राजगृहनगर के निवासी कश्यप गोत्रीय (उत्तम क्षत्रिय) छनवें करोड़ सुवर्ण मुद्रिकापति श्रेष्टि ऋषभदत्त की हरितन गोत्रीय भार्या धारणी के कुक्षि से हुआ था। जब ये गर्भ में थे तो इनकी माता को जम्बू सुदर्शन वृक्ष का स्वप्न आया था। ये पंचम ब्रह्मदेवलोक से चल के अवतीर्ण हुए थे। जब ये गर्भ में थे तो इनकी माता को कई-कई पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हुई थी। ऋषभदत्त ने बहुत हर्षोत्साह से धारणी के इष्ट वस्तुओं द्वारा मनोरथ पूर्ण किए। शुभ घड़ी में आपका जन्म

हुआ था। जन्मोत्सव बड़े धूम-धाम से किया गया। स्वप्न के अनुकूल आपका नाम जम्बुकुमार रक्खा गया। आपने अपनी बाल्यावस्था खेलते-कूदते बहुत प्रसन्नता-पूर्वक बिताई। आपने शिक्षा ग्रहण करने में किसी भी प्रकार की कमी नहीं रक्खी। आप बहोतर कला विज्ञ थे। जब आप विद्या पढ़ कर धुरन्धर कोटि के विद्वान हुए तो माता पिता ने इन्हीं के सदृश्य गुणों वाली विदुषी रूपवती देवकन्या सदृश्य आठ कुलीन लड़कियों से आपका विवाह कराना उचित समझा और वाक्दान (सगाई) का भी निश्चय हो गया।

इधर भगवान सौधर्माचार्य विचरते हुए राजगृह नगरी की ओर पधारे। आप अपने शिष्यों के साथ गुण शिलोद्यान नामक रमणीक स्थान में पधार गये। नगर के सारे लोग सूरिराज का दर्शन करने को आतुरता से उद्यान में आकर अपने जीवन को सफल बनाने लगे। ऋषभदत्त भी धारणी और जम्बुकुमार सहित सूरीश्वरजी की सेवा में दर्शनार्थ आ उपस्थित हुआ। आचार्यश्री ने धर्मोपदेश करते हुए बड़ी खूबी से प्रमाणित किया कि संसार असार एवं कष्टप्रद है तथा इस द्वन्द्व को हरने का उपाय दीक्षा लेना है। इसी से मुक्ति का मार्ग मिल सकता है। सच्चे उपदेश का प्रभाव भी खूब पड़ा। जम्बुकुमार के कोमल हृदय पर संसार की असारता अंकित होगई। जम्बुकुंवर ने विचार किया कि पूर्व पुन्योदय से ही इस मानव जीवन का आनन्द मुझे प्राप्त हुआ है। बड़े शोक की बात होगी यदि मैं इस अपूर्व अवसर से लाभ न उठाऊँ! बार-बार मानव-जीवन मिलना दुर्लभ है। अब देर करके चुप रहना मेरे लिए ठीक नहीं, ऐसा सोच कर उन्होंने निश्चय किया कि आचार्यश्री के पास ही दीक्षा ले लेनी चाहिए। इससे बढ़ कर कल्याण की बात मेरे लिए क्या हो सकती है? जम्बुकुमार ने आचार्यश्री के पास जाकर अपने मनोगत विचार प्रकट कर दिए। जम्बुकुमार इन्हीं विचार तरंगों में गोता लगाता हुआ नगर को लौट रहा था कि एक बन्दूक की आवाज सुनाई दी। देखता क्या है कि एक गोली पास होकर सररररररर निकल गई। कुँवर बाल-बाल बच गया। जम्बुकुँवर ने विचार किया कि यदि मैं इस घटना से पंचत्व को प्राप्त होता तो मेरे मनोरथ टूट जाते। अब देर करना भारी भूल है कौन कह सकता है कि मृत्यु कब आवे? उन्होंने सोचा क्षण भर भी व्यर्थ बिताना ठीक नहीं। इस समय मैं क्या कर सकता हूँ? यह सोचने की देर थी कि तत्काल आत्मनिश्चय हुआ कि मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहूँगा। मन ही मन में पूर्ण प्रतिज्ञा कर ली कि मैं सम्यक् प्रकार से जीवन-पर्यन्त शीलव्रत रक्खूंगा। धन्य! धन्य! जम्बुकुमार आतुरता से अपने माता-पिता के पास पहुँचा और उसने अपने निश्चय की बात कह सुनाई और भिक्षा मांगी कि मुझे आज्ञा दीजिये ताकि मैं दीक्षा लेकर अपने जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करने में शीघ्र समर्थ होऊँ।

ऋषभदत्त और धारणी कब चाहती थी कि अद्वितीय पुत्र हमसे दूर हो। पुत्र ने प्रार्थना करने में किसी प्रकार की भी कमी न रक्खी। वैराग्य के रंग में रंगा हुआ कुमार संसार में रहने के [illegible] को भार समझने लगा। पिता ने उत्तर दिया नादान कुमार! इतने अधीर क्यों होते हो? अभी तुम्हारी आयु ही क्या है? हमने तुम्हारा विवाह रूपवती शीलगुण सम्पन्न आठ कन्याओं से कराना निश्चय कर लिया है। अब न करने से सांसारिक व्यवहार में ठीक नहीं लगेगा। यदि तुझे हमारी मान मर्यादा का कुछ भी विचार है तो अपना हठ छोड़ कर हमारी बात मान ले। विवाह करने के [illegible] क्या तू हमारी इतनी बात तक न मानेगा? तू एक आदर्श पुत्र है। हमारी बात मान कर विवाह तो कर ले। जम्बुकुमार दुविधा में पड़ गया। आज्ञाकारी पुत्र ने पिता की बात टालनी नहीं चाही। विवाह करने की [illegible]

पुत्र के ऐसे विनय व्यवहार से पिता-माता बहुत उल्लासपूर्वक विवाह के लिये तैयारी करने लगे । सारी सामग्री वात की वात में एकत्रित हुई । कन्याओं के माता पिता ने विवाह की तैयारी कराने के प्रथम अपनी आठों वालिकाओं को बुला कर पूछा कि जिस कुँवर के साथ तुम्हारा विवाह होने वाला है वह सँसार से उदासीन है । वह एक न एक दिन संसार के बन्धनों को तोड़, राज्य सदृश्य लक्ष्मी और कामिनी को तिलांजलि दे दीक्षा अवश्य ग्रहण करेगा ही । तथापि उसका पिता विवाह करने पर उतारू है । वह बरजोरी अपने पुत्र को वाध्य कर विवाह के लिए तैयार करता है । तुम्हारी अनुमति इस विषय में क्या है ? निस्संकोचपूर्वक कहो, मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी इच्छाओं के विरुद्ध मैं कुछ करूं ।

पुत्रियों ने प्रत्युत्तर दिया कि पिताजी ! निरसंदेह हम अपना जीवन उस कुंवर पर समर्पित कर चुकी । उसने हमारे हृदय में घर करलिया है अतएव दूसरे पति के लिए हमारे मन में स्थान पाना असम्भव है । आप निस्संकोच हमारा पाणि-ग्रहण उसके साथ करवा दीजिए । पिता ने पुत्रियों की वात ही मानना उचित समझ कर विवाह की खूब तैयारियां की । निर्विघ्नतया विवाह समाप्त हुआ । पिता ने अपनी पुत्रियों को दहेज में इतना धन दिया कि सारे लोग उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे । वह धन ९९ वें करोड़ सुनैया था । विवाह के पश्चात् जम्बुकुमार रात्रि को महल में पधारे तो आठों स्त्रियाँ सुन्दर वेश भूषण पहिन कर वचन चतुराई से अपनी ओर आकर्षित करती हुई जम्बुकुमार के पास आकर हावभाव दिखा कर अपने वश में करने का प्रयत्न करने लगीं । पर भला उदासीन कुंवर पर इन वातों का क्या प्रभाव पड़ने का था ।

उधर प्रभव नाम का चोरों का सरदार अपने साथ ५०० चोरों को लेकर उस नगर में आया । उसने विचार किया कि जम्बुकुमार को ९९ करोड़ सुनैये दहेज में मिले हैं तो उन्हीं को जाकर किसी प्रकार चुरा कर लाना चाहिए । इसी हेतु से वह जम्बुकुमार के महलों में उसी दिन चतुराई से गुप्त रूप से पहुँच गया । जाकर क्या देखता है कि धन की ओर किसी का भी ध्यान नहीं है । जम्बुकुंवर अपनी नवविवाहित स्त्रियों को समझाने में तन्मय हैं । और वह सुरसुन्दरियां अपने पति को संसार में रखने के लिए अनेक उदाहरण [illegible] रहीं थीं । चोरों ने उनकी वातें सुनी । कुंवर अपनी स्त्रियों को कह रहा था कि जिस सुख के लिए तुम [illegible] लुभाने का प्रयत्न कर रही हो वह सुख वास्तव में तो दुःख है । यदि तुम्हें सच्चे सुख को प्राप्त करने की [illegible] है तो मेरा अनुकरण करो । स्त्रियों ने समझाए जाने पर कुंवर की वात मान ली और इस बात की [illegible] प्रकट की कि हम भी आठों आप के साथ ही साथ दीक्षा ग्रहण करेंगी । चोर विस्मित हुए । उनकी [illegible] में नहीं आया कि यह कुँवर इस धन की ओर, जिसके लिए कि हम दिन-रात हाय-हाय करते हुए अपने प्राण तक संकट में डालते हैं, इन स्त्रियों की ओर, जिनके कि वशीभूत होकर हम अनेकों निर्लज्ज काम कर डालते हैं, दृष्टि तक नहीं डालता । सचमुच यह कुँवर कदाचित पागल ही होगा । चोरों ने चाहा कि अपन तो अब इनका सन्वाद सुन चुके हैं । यहां से रफूचक्कर होना चाहिये । पर देखिये शासन देव ने क्या रचना रची । ज्योंही चोर सुनैयों की गठरिया सर पर धर कर टरकने लगे कि उनके पैर रुक गए । वे पत्थर मूर्ति की तरह फर्श पर अचल हो गये । चोरों के होश खता हो गए । वे प्रथम तो खूब डरे पर अन्त में और कोई उपाय न देख कर गिड़गिड़ा कर कातर स्वर से कुँवर को सम्बोधन कर बोले कि आप को धन्य है ।

कहाँ तो हम अधम कि धन को ही जीवन का ध्येय समझ कर रात दिन इसकी ही प्राप्ति के लोभ में अपनी जिन्दगी को पशुओं से भी बदतर बिताते हुए मारे मारे फिरते हैं; जिसके कारण कि हम फटकारे जाते हैं और कहाँ आप से भाग्यशाली नर कि इस धन को तृण समान तथा इन रूपवती स्त्रियों को नर्क प्रद समझ कर छोड़ने का साहस कर रहे हो। वास्तव में हम अति पामर हैं हम अंधेरे कुए में हैं। हम अपने लिये अपने हाथ से खड्डा खोद रहे हैं। आप अहोभागी हैं। सब कुछ करने में आप पूरे समर्थ हैं, मैं आज आप से एक बात की याचना करता हूँ। आप हम पर अनुग्रह कर वह शीघ्र दीजिएगा। मैं आपको उसके बदले दो चीजें दूंगा। अवसर्पिणी निद्रा और ताला तोड़ने की विद्या तो आप लीजिये और स्तम्भन विद्या दीजिये। जम्बुकुंवर ने समझाया कि जिस चीज को तुम प्राप्त करने की इच्छा करते हो वास्तव में वह निःसार है। तुम्हारे भागीरथ प्रयत्न का फल कुछ भी नहीं होगा। यदि सचमुच तुम्हारी इच्छा हो कि हम ऐसी विद्या सीखें कि जिस से सदा सर्वदा सुख हो तो चलो सौधर्माचार्य के पास और दीक्षा लेकर अपने जीवन का कल्याण करो। इस प्रकार से जम्बुकुंवर ने ५०० चोरों को भी प्रतिबोध देकर इस बात पर तत्पर कर दिया कि वे भी दीक्षा लेना चाहने लगे।

इस प्रकार कुंवर अपने माता पिता और ८ स्त्रियों के ८ माता ८ पिता आदि को भी प्रतिबोध देकर सब मिला कर ५२७ स्त्री पुरुषों के साथ बड़े समारोह के साथ सौधर्माचार्य से दीक्षा ग्रहण की। जम्बु मुनि अपने अध्ययन में दक्ष होने के लिये आचार्यश्री ही की सेवा में रहे। चौदहपूर्व और सकल शास्त्रों से पारंगत हो बीसवर्ष पर्यन्त छद्मस्थ अवस्था में दीक्षा पाली। वीरात् सं० २० वर्ष में आचार्य सौधर्मस्वामी ने अपने पद पर सुयोग्य जम्बुमुनि को आचार्य पद दे मुक्ति का मार्ग ग्रहण किया। इनके पीछे बालब्रह्मचारी जम्बुआचार्य को कैवल्यज्ञान और कैवल्यदर्शन उत्पन्न हुआ। आपने ४४ वर्ष पर्यन्त भारत भूमि पर विहार कर जैनधर्म का विजयी झंडा यत्र तत्र फहराया। अपने अमृतमय उपदेश से कई भव्यात्माओं का उद्धार किया। इति जम्बू सम्बन्ध।

आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने मरुधर देश में विहार कर वाममार्गियों के साम्राज्य में इस प्रकार जैनधर्म की नींव डाल कर उसका प्रचार किया यह कोई साधारण बात नहीं थी फिर भी उन्होंने अनेक कठिनाइयों को सहन कर अपने कार्य्य की सिद्धि कर ही ली। आज जो मरुधर प्रान्त में जैनधर्म का अस्तित्व विद्यमान है वह उन सूरीश्वर जी महाराज की कृपा का ही मधुर फल है। आचार्यश्री ५२ वर्ष तक धर्म का प्रचार करके वीर संवत् ५२ की चैत्रशुक्ला प्रतिपदा के शुभदिन तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजय की शीतल छाया में चतुर्विध श्रीसंघ की उपस्थिति में मुनि रत्नचूड़ को अपना पट्ट अधिकार देकर अनशन और समाधि-पूर्वक स्वर्ग सिधाये।

प्रश्न—कई लोग कहते हैं कि पोरवाल सबसे पहिले हरिभद्रसूरि ने ही बनाये थे तो फिर आप क्यों फरमाते हो कि प्राग्वट (पोरवाल) वंश की स्थापना स्वयंप्रभसूरि ने की थी ?

उत्तर—हरिभद्रसूरि ने पोरवाल बनाये हों तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि वे तो जैनाचार्यों का मुख्य काम ही था। जैसे ओसवाल जाति आचार्य रत्नप्रभसूरि ने बनाई थी। बाद में [illegible] आचार्य जैनेतरों को प्रतिबोध करके ओसवालों में मिलाते गये; इसी प्रकार हरिभद्रसूरि ने भी [illegible] पूर्व पोरवालों के शामिल कर दिये हो; परन्तु पोरवाल वंश के आदि संस्थापक तो स्वयंप्रभसूरि ही है।

आचार्य हरिभद्रसूरि का समय पट्टावलीकारों के मतानुसार वि० की छट्ठी शताब्दी का है परन्तु इतिहास की शोध से उनका समय ९ वीं शताब्दी के शुरूआत का स्थिर होता है तब विक्रम की दूसरी शताब्दी में प्राग्वट (पोरवाल) जाति के वीरों के अस्तित्त्व का प्रमाण मिलता है । देखिये पं० वीर विजयजी रचित ९९ प्रकार की पूजा में आप लिखते हैं:—

संवत एक अठलंतरे रे जावड़ सा नो उदार, उद्धरजो मुझ साहिवा रे
न आवे फिर संसार हो जिनजी भक्ति हृदय मां धारजो रे

पांचवी पूजा गाथा १

कविवर समयसुन्दरजी शत्रुंजय रास में फरमाते हैं कि:—

अट्ठोतरसो वरस गयो विक्रम नृपथी जी वारोजी, पोरवाड़ जावड़ करावयो ये तेरमो उद्धारोजी

ढाल चौथी गाथा १६

इनके अलावा विमल मंत्री की वंशावली में ऐसा उल्लेख मिलता है कि वि० सं० ८०२ में वनराज चावड़ा ने पाटण नगर आवाद किया था । उस समय विमल मंत्री के पूर्वज लहरीनाम का पोरवाल उनके मंत्री पद पर नियुक्त किया गया था और उस लहरी के पिता का नाम नानग्ग वतलाया जाता है जब विक्रम की आठवीं शताब्दी में नानग्ग और लहरी पोरवाल वंश के वीर विद्यमान थे तथा उपरोक्त वि० सं० १०८ में जावड़ पोरवाल का अस्तित्त्व मिलता है तो फिर वि० की छट्ठी एवं नवीं शताब्दी में हरिभद्रसूरि ने पोरवाल वंश की स्थापना की कैसे मान लिया जाय ?

जब हम वंशावलियों की ओर देखते हैं तो इनके विषय में प्रचुरता से प्रमाण मिलते हैं जो आगे चल कर इसी ग्रन्थ में वतलाये जायंगे जिससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जायगा कि प्राग्वटवंश (पोरवाल) के आदि संस्थापक आचार्य स्वयंप्रभसूरि ही थे ।

प्रश्न—कई लोग यह भी कहते हैं कि श्रीमाल जाति के स्थापक आचार्य उदयप्रभसूरि ही थे तो फिर आप स्वयंप्रभसूरि को कैसे वताते हो और इसके लिये आपके पास क्या प्रमाण है ?

उत्तर—जैसे हरिभद्रसूरि ने जैनेतरों को जैन वना कर पोरवालों में मिलाया और वे पोरवाल कहलाये [illegible] प्रकार उदयप्रभसूरि ने भी जैनेतरों को जैन वना कर श्रीमालों में मिलाया और वे श्रीमाल कहलाये [illegible]तु इससे उदयप्रभसूरि को श्रीमाल वंश का संस्थापक नहीं कहा जा सकता संस्थापक तो स्वयंप्रभसूरि ही हैं ।

श्रीमाल नगर की प्राचीनता के लिये कुछ सन्देह है ही नहीं; क्योंकि इस विषय के पुष्कल प्रमाण मिलते हैं । अब रहा श्रीमाल जाति का विषय इसके लिये यह कहना अनुचित नहीं है कि श्रीमाल नगर के लोगों से ही श्रीमाल वंश कहलाया है । जब हम समय की ओर देखते हैं तो उदयप्रभसूरि का समय वि० की आठवीं शताब्दी का है और स्वयंप्रभसूरि का समय वि० पू० ४०० वर्ष का इन १२०० वर्ष के अन्तर में सैंकड़ों नहीं वल्कि हजारों श्रीमाल वंश के नररत्नों ने धर्म कार्य्य किये हैं जिसके उल्लेख पट्टावलियों, वंशावलियों आदि ग्रन्थों में प्रचुरता से मिल ते हैं जो हम आगे चल कर इसी ग्रन्थ में प्रमाण के साथ प्रकट करेंगे ।

उपसंहार

आचार्य स्वयंप्रभसूरि

१—आपका जन्म विद्याधर कुल में हुआ ।

२—आपकी दीक्षा केशीश्रमणाचार्य के कर कमलों से हुई ।

३—आप चौदहपूर्वज्ञान के धुरंधर विद्वान एवं अहिंसा धर्म के कट्टर प्रचारक थे ।

४—आपके सूरिपद का समय महावीर निर्वाण वर्ष का है ।

५—आपने मरुधर भूमि में पधार कर जैनधर्म रूपी कल्पवृक्ष लगाया ।

६—आपने श्रीमाल नगर में पधार कर ९०००० घरों को दीक्षा दी । वही लोग आगे चल कर श्रीमाल कहलाये ।

७—आपने पद्मावती नगरी में जाकर यज्ञहिंसा बन्द कराई और ४५००० घर क्षत्रियों को जैनधर्म में दीक्षित किया । वही लोग समयान्तर में प्राग्वट (पोरवाल) नाम से प्रसिद्ध हुये ।

८—आपने आबू से कोरंटपुर तक जैनधर्म का काफी प्रचार किया ।

९—आपके शासन समय राजा जयसैन के पुत्र चन्द्रसैन ने चन्द्रावती नगरी और शिवसैन ने शिवपुरी की स्थापना कर जैन नगर बसाये । जो कि वहाँ के राजा प्रजा जैन धर्मोपासक थे । आपने अनेक मुमुक्षु नर नारियों को जैन दीक्षा देकर श्रमणसंघ में खूब वृद्धि की जिसमें रत्नचूड़ विद्याधर को भी दीक्षा दी थी ।

१०—आपका स्वर्गवास वीर निर्वाण सं० ५२ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के शुभ दिन सिद्धगिरि की शीतल छाया में हुआ था ।

११—आपका जीवन त्याग वैराग्य एवं परोपकार के लिये ही हुआ था जिसको पढ़ने सुनने अनुकरण करने से जीवों का कल्याण हो सकता है ।

आचार्य स्वयंप्रभसूरि वर संसार में विख्यात थे ।
विद्वान थे वहुभाषी थे वे पंच पट्टधर ज्ञात थे ॥
श्री माल नगरी मध्य में नव्वे सहस्र कुटुम्बजन ।
इनसे आधे पद्मावती में जैनी बने थे धार मन ॥
इस तरह आचार्य ने वर्द्धन किया जिन धर्म का ।
वे सम हृदय पर हो सदय बन्धन मिटाया कर्म का ॥

॥ इति भगवान पार्श्वनाथ के पंचम पट्ट पर आचार्य श्री स्वयंप्रभसूरि हुये ॥

६—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी

सूरिः षष्ठतमो बभूव गुणवान् रत्नप्रभो नामकः,
सोप्यासीदधिकः प्रियो जिनमते विद्याधराणां प्रभुः ।
गत्वाउत्पलदेव नाम नृपतिं ख्यातोपकेशे पुरे,
वंशीं मन्त्रिवरं तयोहडमपि क्षत्रांश्च लक्षाधिकान् ॥
दत्वा श्राद्धपट्टं महाजनगणं संस्थापयामास च,
ये नैवात्र त ओसवाल पद वाच्या ओसवंशोद्भवाः ।
श्री सूरेरुपदेश वारि जलदैर्नित्यं तथा वर्षितम्,
येनाद्यापि हि कीर्त्यते गुणगणः प्रातः महद्भिर्जनैः ॥

प श्रीमान् विद्याधरकुलभूषण और अनेक विद्याओं के वारिधि थे। रथनुपुर नगर के राजा महेन्द्रचूड़ की महादेवीलक्ष्मी की रत्नकुक्ष से आपका जन्म हुआ था। आपका नाम रत्नचूड़ रक्खा गया था। आपकी बालक्रीड़ा बड़ी ही अनुकरणीय थी। विद्याभ्यास के लिये तो कहना ही क्या; क्योंकि, विद्याधरों में विद्या प्रचार का तो जन्म-सिद्ध अधिकार था। अतः आप अनेक विद्याओं के पारगामी ही थे। जब आपने युवकवय में पदार्पण किया तो आपके पिताश्री ने योग्य राजकन्या के साथ आपका लग्न कर दिया। आपका का दाम्पत्य जीवन बड़े ही सुख शान्ति में व्यतीत हो रहा था। आपके कई संतानें भी हुई थीं।

राजा महेन्द्रचूड़ अपनी अन्तिमावस्था में अपने प्यारे पुत्र रत्नचूड़ को राजयोग्य सर्वगुणसम्पन्न जान कर अपना उत्तराधिकारी बना कर आप आत्म-कल्याण में जुट गये।

विद्याधरों का नायक राजा रत्नचूड़ बड़ी शान्ति और न्याय पूर्वक राज्य सम्पादन कर रहा था। अपनी कुल परम्परा से ही आप जैनधर्म के परमोपासक थे। इतना ही क्यों पर तीर्थङ्कर देवों की भक्ति और [illegible]पूजा का तो आपके अटल नियम था कि बिना पूजन किये आप अन्न जल भी ग्रहण नहीं करते थे; [illegible] एक मूर्ति तो ऐसी थी कि जिसकी महत्त्वपूर्ण घटना इस प्रकार है।

जिस समय रावण ने महासती सीता का हरण किया था और इस कारण भगवान रामचन्द्रजी और वीर लक्ष्मण आदि ने लंका पर चढ़ाई की थी उस समय रत्नचूड़ के पूर्वज चन्द्रचूड़ नाम के विद्याधर भी भगवान रामचन्द्र के पक्ष में लंका गये थे और लंका की लूट में अन्य अन्य पदार्थों के साथ चन्द्रचूड़ विद्याधर रावण के चैत्यालय से एक नीलम पन्नामय चिन्तामणि पार्श्वनाथ की मूर्ति ले आये थे। उसकी सेवा पूजा एवं उपासना क्रमशः परम्परा से भूपति करते आये थे उस नियमानुसार हमारे चरित्र नायक राजा रत्नचूड़ भी बड़ी भक्ति के साथ उस मूर्ति की त्रिकाल पूजा कर रहे थे। कहा भी है कि 'यथा राजा तथा प्रजा' जब राजा धर्मिष्ट होता है तब प्रजा भी उसका अनुकरण अवश्य किया करती है।

एक समय का जिक्र है कि रथनुपुर के उद्यान में एक चारणमुनि का शुभागमन हुआ। राजा प्रजा सब लोग मुनि को वन्दन करने के लिये गये और मुनिश्री ने उन आये हुए श्रावकों को संसार असार एवं भव तारण रूप देशना दी। आत्म-कल्याण के साधन कार्य्य में तीर्थ यात्रा भी एक है, इस पर मुनिराज ने खास अपना अनुभव किया हुआ अष्टम नन्दीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों का इस कदर वर्णन किया कि उपस्थित लोगों का दिल नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनालयों की यात्रा करने को हो आया। व्याख्यान खत्म होने के बाद मुनिराज ने तो आकाशगामिनी लब्धि द्वारा विहार कर दिया। राजा प्रजा के दिल में यात्रा की लगन लगी थी वह वृद्धि ही पाती ही गई। अतः राजा प्रजा ने निश्चय कर अपने आकाशगामी विमानों को तैयार कर यात्रा के लिए प्रस्थान कर दिया। पट्टावलीकार ने विमानों की संख्या का उल्लेख[1] नहीं किया है। पर नाभिनन्दन जिनोद्धार ग्रन्थकर्त्ता ने यात्रार्थ जाने वाले विद्याधरों के विमानों की संख्या एक लक्ष[2] की बतलाई है और यह सम्भव भी हो सकता है। कारण, आगे चल कर इन विद्याधरों में से ५०० ने दीक्षा ली थी।

जब वे विमान में बैठे हुए विद्याधर आकाश मार्ग से गमन कर रहे थे तो आगे चल कर उनके विमान आकाश में रुक गये। इसका कारण जानने को नीचे देखा तो अनेक मुनियों के साथ एक महात्मा कईदेव देवांगनाओं को धर्म देशना दे रहे थे। विद्याधरों के नायक ने सोचा कि हम लोग स्थावर तीर्थ की यात्रार्थ जा रहे हैं और जंगम तीर्थ की आशातना कर डाली यह अच्छा नहीं किया। अतः वे विद्याधर विमान से उतर कर सूरिजी के चरण कमलों में आये और अपने अपराध की माफी माँगते हुये कहा कि हे प्रभो! हम लोगों ने अज्ञान के वश आपकी आशातना की है अतः आप क्षमा प्रदान करें।

---

१ अन्यदा स्वयंप्रभसूरि देशनां ददतां उपरि रत्नचूड़ विद्याधरो नन्दीश्वरे गच्छन् तत्र विमान स्तंभितः। तेनचिंतितः मदीयो विमानः केन स्तंभितः। यावत् पश्यति तावदधो गुरु देशनां ददतं पश्यति। स चिंतय ते मयाऽविनयः कृतः यतः जंगम तीर्थस्य उल्लंघनं कृतं! स आगतः गुरुं वन्दति धर्म श्रुत्वा प्रतिबोद्धः स गुरु विज्ञापयति। मम परंपरागत श्री पार्श्व जिनस्य प्रतिमास्ति तस्य वन्दने मम नियमोस्ति। सा रावण लंकेश्वरस्य चैत्यालये अभवत्। यावत् रामेण लंका विध्वंसिता तावद् मदीय पूर्वजेन चन्द्रचूड़ नरनाथेन वैताढ्ये आनीता सा प्रतिमा मम पार्श्वेऽस्ति तया सह अहं चारित्रं ग्रहीष्यामि गुरुणा लाभं ज्ञात्वा तस्मै दीक्षा दत्ता।

'उपदेश [illegible]' पृ० [illegible]

२ तदा च वैताढ्य नगे, मणिरत्न इति प्रभुः विद्याधराणांमधर्प, पालयन्नस्ति [illegible]॥
स च अन्यदाऽष्टम द्वीपे, दक्षिणस्यां दिशि स्थिते नित्योद्यताञ्जन गिरौ, [illegible]॥
विवन्दिषुर्विमानानां, लक्षेण सहितोऽम्बरे गच्छन् ददर्शतान्. [illegible]॥
नोल्लंघ्यं जंगम तीर्थं, मत्वाऽतोऽवत तार च प्रणम्य भक्त्या [illegible]॥
[illegible]ऽपिहि संसारासारता परिभाविकाम् तादृशी देशना [illegible]॥
निवेश्यथ सुतं राज्येऽनुज्ञाप्य च निज जनम्, विद्याधर [illegible]॥

[illegible]

आचार्य श्री ने उन मुमुक्षुओं को क्षमा प्रदान से संतुष्ट कर योग्य समझ कर ऐसी देशना दी कि जिससे वे संसार को आसार जानकर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेने को उपस्थिति हो गये। पर राजा रत्नचूड़ ने जरूरी जान कर सूरिजी से निवेदन किया कि हे पूज्य वर ! आपके कहने से इतना तो अवश्य जान गये कि बिना दीक्षा के आत्म कल्याण हो नहीं सकता। इतना ही क्यों; पर हम दीक्षा लेने को भी तैयार हैं पर मेरे एक ऐसा अटल नियम है कि मैं चिन्तामणि पार्श्वनाथ की मूर्ति, जो मेरे पूर्वजों द्वारा लंका से लाई गई थी, की पूजा किये बिना मुंह में अन्न जल नहीं लेता हूँ। अतः मूर्ति साथ में रख कर दीक्षा ग्रहण करूं जिससे कि मेरा नियम भी भंग न हो और दीक्षा पाल कर कल्याण भी कर सकूं।

सूरिजी ने लाभालाभ को जान कर आज्ञा फरमादी। बस फिर तो देरी ही क्या थी राजा रत्नचूड़ ने अपने पुत्र को राजगद्दी सौंप कर ५०० विद्याधरों के साथ आचार्य स्वयंप्रभसूरि के चरण कमलों में दीक्षा धारण कर ली।

आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने उन मोक्षार्थियों को दीक्षा देकर राजा रत्नचूड़ का नाम रत्नप्रभ रख शेष पांच सौ मुनियों को रत्नप्रभ का शिष्य बना दिया। तदन्तर मुनि रत्नप्रभ गुरु चरणों की सेवा उपासना करते हुये क्रमशः बारह वर्ष निरन्तर ज्ञानाभ्यास कर द्वादशांगी[1] अर्थात् सकलागमों के पूर्णतया ज्ञाता बन गये। इतना ही क्यों; पर आपने तो आचार्य पद योग्य सर्वगुण भी प्राप्त कर लिये, अतः आपका भाग्य रवि मध्यान्ह के सदृश चमकने लग गया।

आचार्य्य स्वयंप्रभसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था और मुनिरत्नप्रभ की सुयोग्यता देख कर वीरात् ५२ वें वर्ष मुनिरत्नप्रभ को आचार्य्यपद से विभूषित[2] कर चतुर्विध संघ का नायक बना कर अपना सर्वाधिकार उनको सौंप दिया। तदनन्तर आचार्य रत्नप्रभसूरि शासन तंत्र सुचारु रूप से चलाते हुये पाँच सौ मुनियों को साथ लेकर भूतल पर धर्म प्रचार करते हुये विहार करने लगे।

आचार्य्य रत्नप्रभसूरीश्वर बड़े ही प्रतिभाशाली थे। आपका उपदेश मधुर, रोचक एवं प्रभावोत्पादक होता था। आप अनेक विद्याओं से विभूषित एवं अहिंसा परमोधर्म के कट्टर प्रचारक थे। आपके तप संयम का तप तेज सूर्य्य की भांति सर्वत्र फैला हुआ था। तांत्रिक, नास्तिक एवं वाममार्गियों पर आपकी जबरदस्त धाक जमी हुई थी। अतः आप अपने कार्य्य में सदैव सफलता पाया करते थे।

एक समय सूरिजी अपने शिष्य मंडल के साथ तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजय की यात्रा कर अर्बुदाचल [illegible]रे और वहाँ की यात्रा कर रात्रि में विहार का विचार कर रहे थे। उस समय वहाँ की अधिष्टात्री चक्रेश्वरीदेवी ने प्रार्थना की कि हे पूज्यवर ! आपका शुभ विहार यदि मरुधर की ओर हो तो बहुत ही लाभ होगा। कारण आपके गुरुवर्य ने श्रीमाल नगर तक विहार कर लाखों मूक प्राणियों को जीवन प्रदान कर यज्ञ जैसी निष्ठुर प्रवृति का उन्मूलन कर लाखों भक्त बनाये थे, पर वे भवितव्यता के कारण वहाँ से आगे

---

[1] सगीतार्थ क्रमेणऽथ, सूरिभिः स्वपद कृतः मुनि पंचशती युक्तो, विजाहार धरातले
'नाभिनन्दन जि० पृ० ४०'

[2] "क्रमेण द्वादशांगी चतुर्दशपूर्वी बभूव गुरुणास्वपदे स्थापितः श्रीमद्वीरजिनेश्वरात् द्विपंचाशत वर्षे आचार्य पदे स्थापितः पंचाशत साधुभि सहधरां विचरति"
'उपकेशगच्छ पट्टावली' पृष्ठ १८४

नहीं बढ़ सके। शायद उन्होंने वह प्रदेश आपके लिये ही छोड़ दिया हो, अतः मेरी प्रार्थना है कि आप मरु भूमि की ओर विहार करावें। कारण, आप इस प्रकार कार्य्य के लिये सर्व प्रकार से समर्थ हैं इत्यादि। देवी के वचन सुन कर सूरिजी ने अपने श्रुतज्ञान से उपयोग लगा कर देखा तो देवी का कथन सत्य जान पड़ा। बस फिर तो देर ही क्या थी ? सुबह होते ही विहार कर दिया और क्रमशः मरुधर भूमि की ओर [illegible] दिये।

जिस समय आचार्य रत्नप्रभसूरि ने मरुभूमि की ओर विहार किया था उस समय मरुधर अज्ञान से छाया हुआ था। नास्तिकों का साम्राज्य वरत रहा था। मांस मदिरा एवं व्यभिचार को धर्म का स्थान देकर इन बातों का जोरों से प्रचार हो रहा था। इतना ही क्यों पर इस विषय के कई ग्रन्थ† भी निर्माण कर उनको ईश्वरीय वाक्य कह कर जनता को विश्वास दिलाया जाता था। फिर तो जनता के लिये ऐसी कौनसी कामना शेष रह जाती थी कि वे धर्म के नाम पर अपनी इन्द्रियों एवं विषय कषाय का पोषण करने में थोड़ी सी भी कमी रक्खें ?

उन नास्तिक पाखण्डियों ने जनता को इस कदर वश में कर ली थी कि जैसे मंत्रवादी भूत पिशाच को वश में कर लेते हैं। इतना ही क्यों पर उन पाखंडियों के साम्राज्य में किसी सत्यवक्ता का प्रवेश करना तो मानों एक चौरपल्ली के समान ही था। फिर भी आचार्य्य श्री किसी बात की परवाह नहीं करते हुये यूथपति की भांति अपने शिष्यों के साथ आगे बढ़ते ही गये। हाँ, उन पाखंडियों की ओर से सूरिजी का स्वागत (?) होने में भी किसी प्रकार की कमी नहीं थी। न मिलता था अहार पानी न मिलता था ठहरने को मकान। इतना ही क्यों पर स्थान स्थान पर जैन साधुओं की ताड़ना, व तर्जन और असभ्य शब्दों से अपमान होता था। पर जिन महात्माओं ने जन कल्याणार्थ अपना जीवन अर्पण करने का निश्चय कर लिया हो उनको मान अपमान एवं जीवन मरण की परवाह ही क्या थी ? वे अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करते हुये एवं भूखे प्यासे क्रमशः उपकेशपुर नगर तक पहुँच गये जो नास्तिकों का एक केन्द्र नगर कहलाता था।

प्रसंगोपात उपकेशपुर (वर्तमान जिसे ओसियाँ कहते हैं) नगर का थोड़ा सा हाल लिख दिया जाता है कि इस नगर को कब और किसने आबाद* किया था ?

---

* श्री महावीर निर्वाणात् द्विपंचाशत वत्सरे गुरोः सूरिपद प्राप्य ततो अष्टादश हायनैः ॥२१७॥

[illegible]

† मद्यं मांसं च मीनं च, मुद्रा मैथुन मेव च। एते पंचमकाराश्च, मोक्षदा हि युगे युगे।
पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा, यावत् पतति भूतले। उत्थितः सन् पुनः पीत्वा, पुनर्जन्मो न विद्यते।
रजस्वला पुष्करं तीर्थं, चाण्डाली तु स्वयं काशी। चर्मकारी प्रयाग स्याद्रजकी मथुरा मता ×
मातृयोनि परित्यज्य विहरेत् सर्व योनिषु × × [illegible] × × ×

* कदाचिदुपकेशपुरे, सूरयः समवासरन्। यावद् तदग्रे देव, [illegible]

[illegible]

आचार्य्य स्वयंप्रभसूरि के जीवन में आप पढ़ चुके हो कि सूरिजी ने सबसे पहिले श्रीमाल के राजा जयसैनादि ९०००० घरों के क्षत्रियों को मांस मदिरा छुड़वा कर जैन बनाया था। राजा जयसैन को दो रानियें थीं। बड़ी का पुत्र भीमसैन और छोटी का पुत्र चन्द्रसैन था। जिसमें चन्द्रसैन तो अपने पिता का अनुकरण कर जैनधर्म की उपासना एवं प्रचार करता था पर भीमसैन की माता शिवधर्मोपासिका होने से भीमसैन शिवधर्मोपासक ही रहा। यही कारण था कि दोनों बन्धुओं में धर्म विषय सम्बन्धी द्वंद्वता चलती थी। पर स्वयं राजा जयसैन के जैनधर्मोपासक होने के कारण भीमसैन की इतनी नहीं चलती थी। फिर भी राजा जयसैन इन बातों को सुनता था तब उसको बड़ा भारी दुःख हुआ करता था और यह भी विचार आया करता था कि यदि भीमसैन को राजसत्ता दे दी गई तो यह धर्मान्धता के कारण जैनधर्मोपासकों को सुख से श्वास नहीं लेने देगा इत्यादि।

राजा जयसैन ने अपनी अन्तिमावस्था में अपने मनोगत भाव चन्द्रसैन को कहे जिसके उत्तर में चन्द्रसैन ने कहा पूज्य पिताजी आप इस बात का कुछ भी विचार न करें। यह तो जैसे ज्ञानियों ने भाव देखा है वैसे ही बनेगा। आप तो अन्तिम समय चित्त में समाधि रक्खें। जैनधर्म का यही सार है कि समाधि मरण से आराधिक हो अपना कल्याण करले इत्यादि।

फिर भी राजा जयसैन के दिल में जैनधर्म की इतनी लग्न थी कि उन्होंने उमराव मुत्सद्दी आदि अग्रेसरों को बुला कर कहा कि मेरा तो अब अन्तिम समय है और मैं आप लोगों को यह कहे जाता हूँ कि मेरे बाद मेरा पदाधिकार चन्द्रसैन को देना। कारण, यह राजतंत्र चलाने में सर्व प्रकार से योग्य है इत्यादि कह कर राजा जयसैन ने तो अल्प समय में आराधना पूर्वक समाधि के साथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया।

बाद राजपद के लिये तत्काल ही दो पार्टियें बन गई एक पार्टी का कहना था कि राजा जयसैन की अन्तिमाज्ञानुसार राजपद चन्द्रसैन को दिया जाय। तब दूसरी पार्टी का कहना था कि राजा चाहे धर्मान्धता के कारण चन्द्रसैन को राज देना कह भी गये हों पर यह नीतिविरुद्ध कार्य्य कैसे किया जाय? कारण, भीमसैन राजा का बड़ा पुत्र होने से राज्य का अधिकारी वही है। यह मतभेद केवल राजपद का नहीं था पर इसमें अधिक पक्षपात धर्म का ही था और इस पक्षान्धता ने इतना जोर पकड़ा कि .. । अन्तिम निर्णय करना तलवार की धारा पर आ पड़ा।

चन्द्रसैन जैसा धर्मज्ञ था वैसा ज्ञानी भी था। उसने सोचा कि यह जीव अनंत वार राजा हुआ है इससे आत्मिक कल्याण नहीं है। केवल एक नाशवान राज के कारण हजारों लाखों मनुष्यों का स्वाहा हो जावेगा। अतः उसने अपनी पार्टी वालों को समझा बुझाकर शान्त किया। बस फिर तो था ही क्या? शिवोपासकों का पानी नौ गज चढ़ गया और भीमसैन को राजतिलक कर राजा बना ही दिया।

भीमसैन ने राजपद पर आते ही जैनों पर जुल्म गुजारना शुरू कर दिया मानो कि जैनों से चिरकाल का बदला ही लेना हो? इस हालत में चन्द्रसैन की अध्यक्षता में जैनो की एक सभा हुई और उसमें नगर त्याग का निश्चय कर लिया। राजा चन्द्रसैन ने श्रीमालसे आबूकी ओर एक नया नगर बसानेकी गरज से प्रस्थान किया तो एक अच्छा उन्नत स्थान आपको मिल गया बस वहाँ ही उसने नीव डाल कर नगर

बसाया और उसका नाम चंद्रावती* नगरी रख दिया। बस श्रीमाल नगर के जितने जैन थे वे सबके सब नूतन स्थापित की हुई चन्द्रावती नगरी में आकर अपने स्थान बनाकर वहां रहने लगे और वहाँ का राजा चन्द्रसैन को बना दिया। थोड़े ही समय में यह नगरी अलकापुरी के सदृश होगई और आस पास के बहुत से लोग आकर बस गये वहां के लोगों के कल्याणार्थ राजा चन्द्रसैन ने भगवान पार्श्वनाथ का विशाल मन्दिर भी बनाया, कहा जाता है कि एक समय चन्द्रावती में जैनों के ३६० मन्दिर थे अतः वह जैनपुरी ही कहलाती थी।

चन्द्रसैन का एक लघुभ्राता शिवसैन था उसने पास ही में एक शिवपुरी नगरी बसा कर अपना राज्य वहाँ जमा दिया।

जब श्रीमाल से जैन सबके सब चले गये तो पीछे था ही क्या ? फिर भी रहे हुए लोगों की व्यवस्था के लिये कार्य्यकर्ताओं ने तीन प्रकोट बना दिये प्रथम प्रकोट में कोटिध्वज द्वितीय प्रकोट में लक्षाधिपति और तृतीय प्रकोट में शेष लोग। इस प्रकार व्यवस्था करने पर फिर नगर की थोड़ी बहुत सुन्दरता दीखने लगी।

कई ग्रन्थों* में इस नगर की प्राचीनता बतलाते हुए युग युग में नामों की रूपान्तरता भी बतलाई है जैसे कृतयुग में रत्नमाल त्रेतायुग में पुष्पमाल द्वापर में वीरनगर और कलियुग में श्रीमाल भिन्नमाल बतलाया है।

† राजा भीमसैन के दो पुत्र थे १—श्री पुंज २—सुरसुन्दर और श्रीपुंज के पुत्र उत्पल देव (श्रीकुमार)

---

* चन्द्रावती नगरी आबू के पास थी विक्रम की तेरहवी चौदहवी शताब्दी तक तो इस नगरी की बड़ी भारी जाहु जलाली थी परन्तु आज तो उसके भग्न खण्डहर नजर आते हैं।

† शिवपुरी का रूपान्तर वर्तमान सिरोही शहर है जो पुरानी सिरोही के नाम से प्रसिद्ध है। यह दोनों नगर उस समय जैनों के केन्द्रस्थल कहलाये जाते थे।

१ श्रीमाल मितियन्नाम, रत्नमाल मिति स्फुटम्, पुष्पमालं पुनर्भिन्नमालं युग चतुष्टये।
चत्वारि यस्य नामानि, वितन्वन्ति प्रतिष्ठितम्, अहो! नगर सौन्दर्य प्रहार्यं त्रिजगत्मपि॥

१ कृत युगे रयण माला, त्रेतायुगे पुष्पमाला, द्वापरे वीर नगरी कलियुगे भिन्नमाल।
२ श्रीश्रीमालपुरे पूर्वं श्रीपुंजोऽभून्नरेश्वरः। सुरसुन्दरनामास्य, कुमारः [illegible] ॥
स कदाप्यभिमानेन, पुरान्निर्गत्य निर्भयः। एकान्तेनिंजने भूदेशं नवस्थान [illegible]॥

* तत्रश्री राजा भीमसैन तत् पुत्र श्रीपुंज तत्पुत्र उत्पलकुमार अपरनाम श्रीकुमार [illegible] बान्धव श्रीसुरसुन्दर युवराज राज्यभार धुरंधर तयोरमात्य चन्द्रवंशीय [illegible] ऊहड़ १ उद्धरण २ लघुभ्राता गृहे सुवर्ण संख्या, अष्टादश कोटयः संति [illegible] संति। ये कोटीश्वरास्ते दुर्गमध्ये वसतिये लक्षेश्वरास्ते बाहे वसंति। [illegible] पार्श्वे उत्कीर्णं याचितं ततो बान्धवेन एवं कथितं भवते! [illegible] समागमे वासो भविष्यति। एवं ज्ञात्वा राजकुमार ऊहडेन [illegible] मम वचनं अग्रे आयातः।

[illegible]

एक समय का जिक्र है कि उत्पलदेवकुमार आपसी ताना के कारण अपमानित हो नगर से निकल गया उसकी इच्छा एक नया नगर वसा कर स्वयं राज करने की थी। जब कार्य बनने को होवा है तब निमित्त कारण सब अनुकूल मिल ही जाता है। इधर तो राजकुमार अपमानित होकर नगर से निकल रहा था उधर प्रधान का पुत्र ऊहड़ कुमार भी संयोग वश अपमानित होकर राजपुत्र के साथ हो गया।

नया नगर बसाना यह कोई बच्चों का खेल एवं साधारण कार्य नहीं था पर एक बड़ा ही ज़बरदस्त कार्य था। अतः न अकेला राजकुमार कर सकता था और न मंत्रीपुत्र ही, पर कार्य निकट भविष्य में ही बनने को था कि कुदरत ने दोनों का संयोग बना दिया।

जब दोनों नवयुवकों ने नगर को त्याग कर एक बड़ी आशा पर प्रस्थान कर दिया तब उनको प्रबल पुन्योदय के कारण शुकन वगैरह अच्छे से अच्छे होते गये। अतः क्रमशः वे रास्ता चलते चलते एक जंगल में होकर जा रहे थे वो रास्ते में एक सरदार मिला। उसने उन्हें तेजपुंज और चेहरे पर वीरता की झलक देख कर पूँछा कि कुँवरजी कहाँ से पधारे और कहाँ जा रहे हो ? कुमार ने जवाब दिया कि हम श्रीमाल नगर से आये और एक नया नगर आवाद करने को जा रहे हैं। सरदार ने सुन कर आश्चर्य किया और कहा कुँवरजी नयानगर आबाद करना बच्चों का खेल तो है ही नहीं, आपके पास ऐसी कौन सी सामग्री है कि जिसके आधार पर आप नया नगर वसाने की वातें कर रहे हो ? कुमार ने जवाब दिया कि सामग्री हमारी भुजाओं में भरी हुई है जिससे हम नयानगर आवाद करेंगे। सरदार ने सोचा यह कोई राजवंशी है। अतः उसने प्रार्थना की कि कुंवरजी दिन थोड़ा ही रह गया है, आज तो यहाँ ही विश्राम कीजिये। कुमार ने मंत्री की ओर देखा और दोनों ने एक मत होकर सरदार की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसके साथ हो लिये। सरदार था विराट नगर का संग्रामसिंह नाम का एक साधारण राजपूत।

सरदार ने दोनों मेहमानों को अपने घर लाकर भोजन पानी का स्वागत किया और अपने कुटुम्बियों से सलाह की कि अपने जालणदेवी कन्या बड़ी हो गई है, इन मेहमानों के साथ व्याही जाय तो भविष्य में एक राजरानी पद को प्राप्त कर लेगी। अतः सरदार ने कुंवरजी से प्रार्थना की कि आपने हमारा मकान पावन किया है वो इसको चिरस्थायी वनाने के लिये हमारी कन्या के साथ शादी कर लीजिये।

कुँवरसाहव ने जवाव दिया कि मैं एक मुसाफिर हूँ आप सोच समझ कर कार्य्य करें।

सरदार—मैंने ठीक सोच समझ करके ही प्रार्थना की है जिसको आप स्वीकार कीजियेगा।

जब सरदार का अति आग्रह हुआ तो मंत्रीकुमार ऊहड़ ने इसको शुभ शकुन एवं अच्छा निमित्त समझ कर सरदार संग्रामसिंह की प्रार्थना को इस शर्त पर स्वीकार कर ली कि जब हम राज स्थापन कर पावेंगे तब आकर लग्न करेंगे। सरदार ने मंजूर करके सगाई की सव रस्म कर डाली। बस प्रभात होते ही दोनों कुमार वहाँ से रवाना हो गये। उस समय शकुन बहुत ही अच्छे हुये अतः दोनों का उत्साह बढ़ता ही गया।

एक सौदागर कई घोड़े लेकर जा रहा था। मंत्री ऊहड़ ने जाकर १८० अश्व इस शर्त पर खरीद कर लिये कि जब हम नगर आवाद करेंगे तव तुम्हारे इन अश्वों का मूल्य चुका देंगे। केवल उनके वचन पर विश्वास करके सौदागर ने अश्व दे दिये।

दोनों वीर अश्व लेकर क्रमशः ढेलीपुर (देहली) नगर में पहुँचे। उस समय वहाँ पर श्री साधु नामक राजा राज कर रहा था पर उसके ऐसा नियम था कि ६ मास राज कार्य्य देखता और ६ मास अन्ते-

वरगृह में रहता । भाग्यवशात् जिस दिन दोनों कुमार देहली पहुँचे उसी दिन राजा ने अन्तेवरगृह में प्रवेश किया । अतः राजकुमार प्रतिदिन दरबार में मुजरो करने को जाकर एक अश्व भेंट कर दिया करता था । ऐसे करते १८० दिनों में १८० अश्व१ भेंट कर दिये । पर उसकी कुछ भी सुनवाई नहीं हुई । इधर तो उत्पल देव हताश हो रहा था उधर राजा राजसभा में आया । जब उत्पलदेव के अश्वभेंट का समाचार राजा ने सुना तो तुरंत ही कुमार को बुला कर पूंछा कि तुम क्या चाहते हो ? राजकुमार ने कहा कि मैं एक नगर आबाद करने के लिये भूमि चाहता हूँ । राजा ने कह दिया कि जहाँ ऊजड़ भूमि देखो वहाँ नयानगर बसा लो मेरी इजाजत है । बस फिर तो था ही क्या ? दोनों वीर वहाँ से चलते चलते मंडोर तक आये पर उनको कोई ऐसी भूमि न मिली कि नगर आबाद कर सकें । वहाँ से आगे चल कर एक समुद्र तट पर आकर देखा तो वहाँ उन्होंने भूमि पसंद कर ली क्योंकि जहाँ पानी की प्रचुरता होती है वहाँ सब बातों की सुविधा रहती है । खाद्य पदार्थ भी पैदा होता है जिससे व्यापार खुल उठता है इन फायदों को सोच कर उन्होंने वहीं छड़ी रोप दी अर्थात् नगर बसाने का निश्चय कर लिया ।

इस बात की इत्तला भिन्नमाल में पहुँची कि वहाँ से हजारों लोग चल कर नूतन नगर में आ बसे । भूमि ऊसवाली होने से नूतन नगर का नाम उएस रख दिया । स्वल्प समय में नगर२ नौ योजन चौड़ा और १२ योजन लम्बा बस गया । भिन्नमाल में १८००० व्यापारी ९००० ब्राह्मण और दूसरे लोग तो इतने थे कि जिनकी गिनती लगानी भी मुश्किल थी । इसका कारण राजा भीमसेन का जनता के प्रति सद्भाव नहीं पर क्रूर भाव ही था । अतः राजा के अत्याचार से दुःखित हुई जनता उन दुःखों से मुक्त हो नूतनवास उएस नगर में आ बसी । जब व्यापारी लोग आ गये तो दूसरे वहां रह कर करें भी क्या ? व्यापारियों के साथ ब्राह्मण भी आ गये और दो २ व्यापारी † एक एक ब्राह्मण का निर्वाह भी कर देते थे । और उस नूतन नगर की अधिष्टात्री चामुंडा देवी की स्थापना कर दी ।

---

१ ढेलीपुरे राजाश्रीसाधु तस्य ऊहडेन १८० (५५) तुरंगमा भेंटिकृता उएना संतुष्टो ददौ । ततो भिन्नमालात् अष्टादश सहस्र कुटुम्ब आगताद्वादश योजना नगरी जाता ।

'[illegible]'

२ अष्टादश सहस्राणि, कुलानां वणिजां तथा; तदर्द्धानि द्विजातीनामसंख्याः प्रकृतिगणि, सहादाय ययौ तत्र यत्रतन्नगरं कृतम्, नव योजन विस्तीर्णं दैर्घ्यं द्वादश योजनम् ।

'[illegible]'

२ कई प्राचीन वंशावलियों में इस विषय के कवित्त भी मिलते हैं जैसे —

गाड़ी सहस गुण तीन, भला रथ सहस्रग्यारे, अट्ठारह सहस्र असवार पाला पायक नहीं कोई पार
ऊंठी सहस अट्ठार, तीस हस्ती मद जरता; दश सहस्र दुकान वणिक व्यापार [illegible]
नव सहस्र विप्र भिन्नमाल से मणिधर साथे मोंडिया;गद उपलदे मंत्री ऊहड़,[illegible] [illegible] ।१।

† आभ्यां वणिग्भ्यां तत्रैक विप्रवृत्तिः प्रकल्पिता [illegible] [illegible] [illegible]
पिता पुत्रश्च यत्रोभौ वाणिजौ व्यवहारिणौ [illegible] [illegible] [illegible]

'[illegible]'

उस नूतन बसे हुये नगर में व्यापार तो इतना होने लगा कि यदि पिता पुत्र अलग २ व्यापार करते तो वह कभी २ छः छः मास तक भी न मिल पाते थे। श्रीमाल नगर के अलावा और भी बहुत नगरों के बड़े २ व्यापारी लोग भी व्यापारार्थ आ रहे थे, जैसे आज बम्बई कलकत्ता व्यापार के केन्द्र हैं और दूर २ के लोगों ने व्यापारार्थ वहां आकर अपना निवास स्थान बना लिया है। इसी प्रकार उस समय नूतन बसे हुये उपकेशपुर में व्यापारार्थ दूर २ के लोग आकर बस गये हों तो यह सम्भव हो सकता है। जहाँ पानी की प्रचुरता* होती है वहां व्यापार स्वयं खुल उठता है इसमें आश्चर्य्य की कोई बात नहीं। प्रसंगोपात उपकेशपुर की स्थापना कह कर अब मूल विषय पर आते हैं।

आचार्य रत्नप्रभसूरि उपकेशपुर पधार तो गये पर किसी एक आदमी ने भी उनका स्वागत सत्कार नहीं किया, इतना ही क्यों पर किसी ने ठहरने के लिये स्थान तक भी नहीं बतलाया। इस हालत में आचार्य श्री ने अपने साधुओं के साथ एक लुणाद्री पहाड़ी पर जाकर ध्यान लगा दिया। यह तो आप पहले ही पढ़ चुके हो कि उन मांस आहारियों के प्रदेश में जैन मुनियों के लाने योग्य सात्विक पदार्थ के आहार का कहीं पर योग नहीं मिलता था अतः कई अर्सा से मुनी तपस्या किया करते थे और इस प्रकार निरन्तर तपस्या करना कोई साधारण काम भी नहीं था। तब कई साधुओं को शरीर का निर्वाह न होता देख पारणा करने की इच्छा हुई तो वे गुरु महाराज की आज्ञा लेकर नगर में भिक्षा‡ के लिये गये पर नगर में ऐसा

---

* १ आज भी उपकेशपुर (ओसियाँ) के आस पास जो इक्षुरस निकालने की अनेक पत्थर की चरखियें यत्र तत्र मिलती हैं इससे साबित होता है कि पूर्व जमाने में यहां पानी की प्रचुरता थी और बहुत गुड़ पैदा होता था।

२ वर्तमान जैसलमेर, फलौदी और बीकानेर नगर हैं; वहाँ पहिले पानी था। आज वहाँ भूमि खुदाई का काम होता है तो दीर्घकाय वाले मच्छों के कलेवर हाड़ पिंजर मिलते हैं, वे इस बात को प्रमाणित करते हैं कि पूर्व जमाने में यहाँ पानी की प्रचुरता थी।

३ प्राचीन वंशावलियों में यह भी लिखा मिलता है कि यहाँ बालदियों का बहुत व्यापार था। लाखों पोटों द्वारा माल आता जाता था। इस पानी के कारण बालदियों को बहुत चक्कर काटना पड़ता था। अतः अनेक बालदियों ने इस पानी को हटाने का प्रयत्न किया था जिसमें एक हेमानामक बिनजारा ने ही सफलता पाई थी जिसकी एक कहावत भी है कि—

"लाखा सरीखा लख गया, ओठा सरीखा आठ। हेम हड़ाउन आवसी, फिरने इणही ज भट्ट॥

इत्यादि प्रमाणों से साबित होता है कि उपकेशपुर के पास मीठे पानी की झील थी।

‡ "गोचर्यां मुनीश्वरा व्रजंति परं भिक्षा न लभते। लोका मिथ्यात्ववासिताः यादृशा गता तादृशा आगता। मुनीश्वराः पात्राणि प्रतिलेख्य मासं यावत् संतोषेण स्थितः पश्चात् विहारः कृतः पुनः कदाचित् तत्रागतः शासनदेव्याकथितं भो आचार्य्य अत्र चातुर्मासकं कुरु। तत्र महालाभो भविष्यति। गुरुः पंचत्रिंशत् मुनिभिः सहस्थितः मासी द्विमासी त्रिमासी चतुर्मासी उपोसित कारिका"

उपकेशगच्छ पटावली—१८५
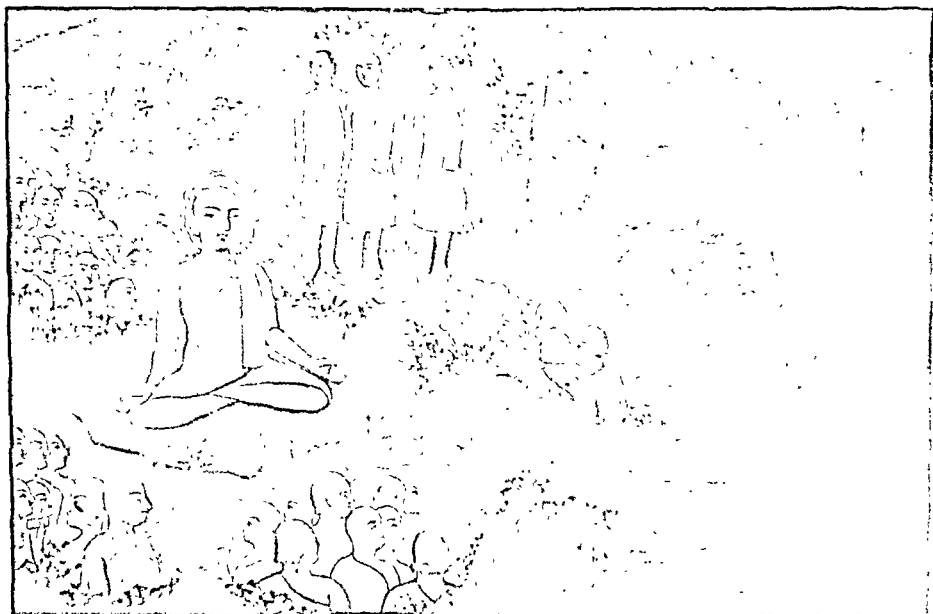
आचार्य रत्नप्रभ सूरि ५०० मुनियों के साथ अनेक कठिनाइयों को सहन करते हुए उपकेशपुर पधारे और लुणाद्रि पहाड़ी पर ध्यान लगा दिया । पृष्ठ ५०

आचार्य रत्नप्रभ सूरि के दो मुनि [illegible]
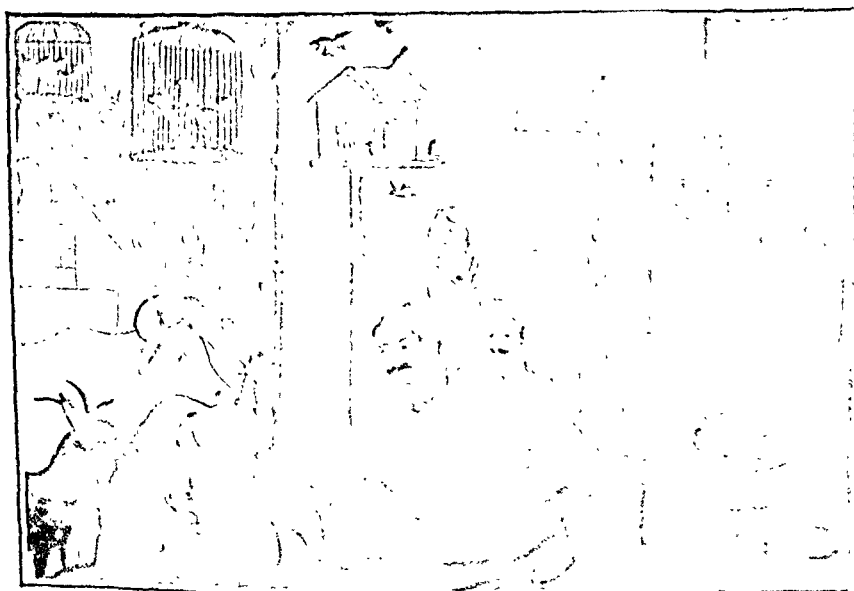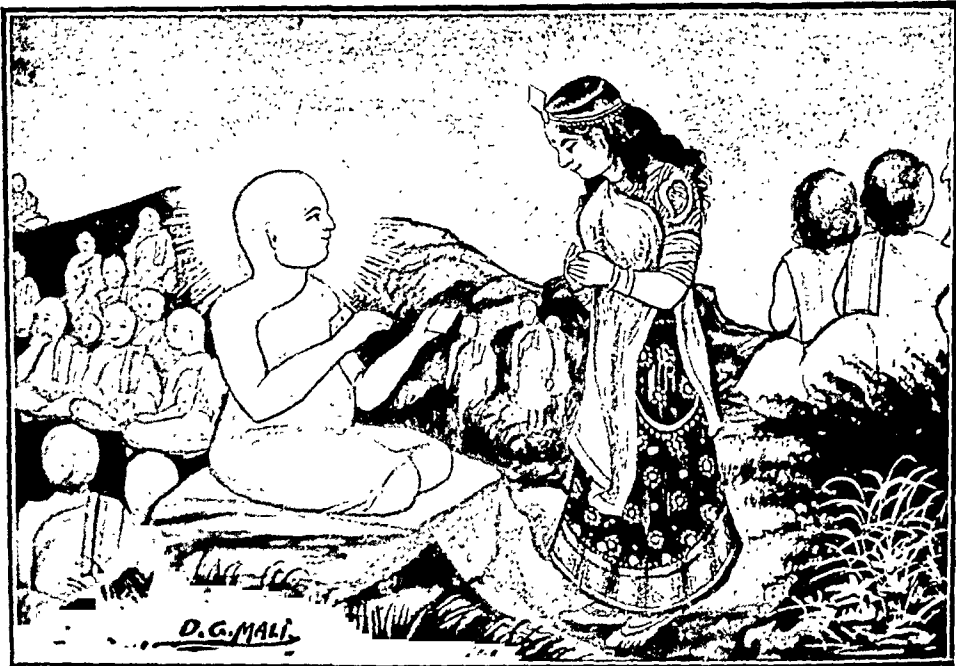
सूरिजी ने मुनियों को विहार का आदेश दिया उस समय चामुंडा देवी आकर सूरिजी से प्रार्थना की कि हे प्रभो ! आप यहाँ चतुर्मास करावें आपको बहुत लाभ होगा अतः ३५ साधुओं के साथ सूरि श्रीने चतुर्मास किया शेष ४६५ मुनि विहार कर दिया। पृष्ठ ७१
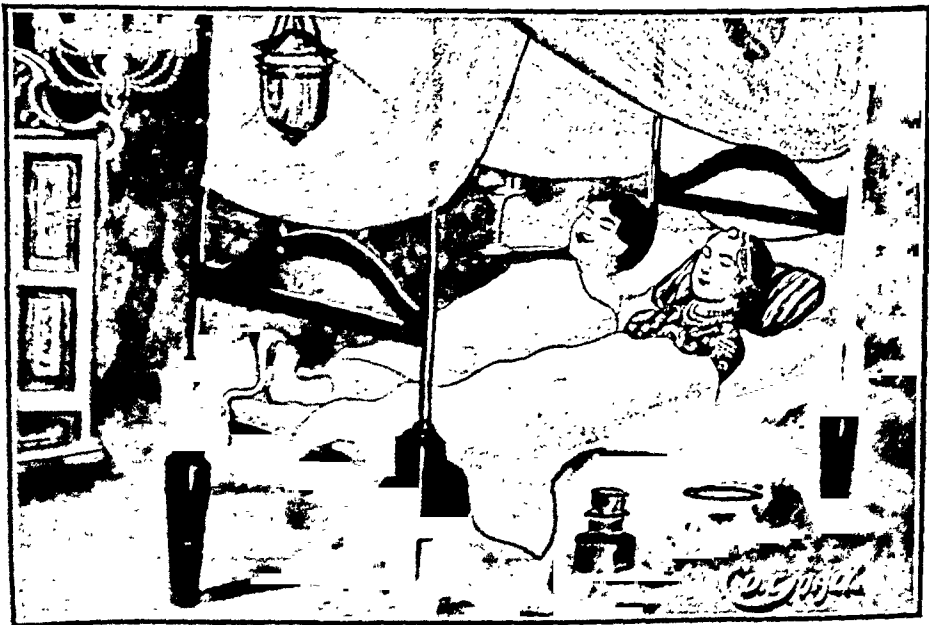
राजसुता अपने पति देव के साथ सुख शय्या में सो रही थी रात्रि समय राजा के जमाई को पीना सांप ने काटा जिससे उसका शरीर विष व्याप्त अर्थात् मृत्युवत् हो गया। पृष्ठ ७२

एक भी घर नहीं पाया कि जिसके घर की जैन साधु भिक्षा ले सके। क्योंकि नगर के तमाम लोग मांसाहारी थे। और मदिरा पीते थे घर २ में मांस मदिरा का खूब गहरा प्रचार था। रक्त एवं हड्डियाँ घास फूस की भांति दृष्टिगोचर होती थीं एवं मदिरा पानी की भाँति पीयी जाती थी। अतः साधु जैसे रिक्त हाथों गये थे वैसे ही वापिस लौट आये और तपोवृद्धि कर ध्यान में स्थित हो 'ज्ञानामृत भोजनम्' इस युक्ति को चरितार्थ कर रहे थे पर औदारिक शरीर वाले इस प्रकार आहार बिना कहाँ तक रह सकते हैं ?

उपाध्याय वीरधवल ने समय पाकर सूरिजी से निवेदन किया कि हे पूज्यवर! साधुओं को तप करते को वहुत समय हो गया। सब साधु एक से भी नहीं होते हैं। अतः इस प्रकार कैसे काम चलेगा ? इस पर सूरिजी ने आज्ञा फरमा दी कि यदि ऐसा ही है तो यहां से विहार करो। इस वात को सुन कर उपाध्यायजी ने भी सब साधुओं को विहार की आज्ञा दे दी और साधुओं ने विहार की तैयारी कर ली। वहां की अधिष्टात्री देवीचामुंडा ने अपने ज्ञानद्वारा इस सब हाल को जान विचार किया कि आबुदाचल से देवी चक्रेश्वरी के भेजे हुये महात्मा मेरे नगर में आकर इस प्रकार भूखे प्यासे चले जाँय इसमें मेरी क्या शोभा रहेगी। अतः देवीचामुण्डा ने सूरिजी के चरण कमलों में आकर प्रार्थना की कि हे प्रभो! आप कृपा कर यहां चतुर्मास करावें आपको वहुत लाभ होगा इत्यादि। इस पर सूरिजी ने अपने ज्ञान में उपयोग लगा कर देखा तो वास्तव में लाभ होने वाला ही था, देवी की विनती स्वीकार कर ली और साधुओं को आर्डर दे दिया कि जो विकट तपश्चर्या के करने वाले हैं मेरे पास ठहरें। शेष विहार कर सुविधा के क्षेत्र में चतुर्मास करें। इस पर कनकप्रभादि ४६५ साधु विहार कर कोरंटपुर की ओर चले गये और शेष ३५ साधु सूरिजी की सेवा में रहे, जो मास दो मास तीन मास और चार मास की तपश्चर्या करने में कटिबद्ध थे।

इधर तो सूरिश्वरजी अपने शिष्यों के साथ भूखे प्यासे जंगल की पहाड़ी पर ध्यान लगा रहे थे। उधर देवी ऐसे सुअवसर की प्रतीक्षा कर रही थी कि मैंने सूरिजी को वचन देकर चतुर्मास करवाया है तो इनके लिये कोई भी लाभ का कारण हो। ठीक है कि कार्य वनने को होता है तब कोई न कोई निमित्त भी मिल जाता है।

यह वात तो आप पीछे पढ़ आये हैं कि राजपुत्र उत्पलकुमार ने अपनी मुसाफिरी के समय वैराटपुर के क्षत्रिय वीर संग्रामसिंह के यहां एक रात्रि मेहमान रह कर उनकी पुत्री जलणदेवी के साथ सम्बन्ध किया था। बाद आप उपकेशपुर आवाद करने के पश्चात् उनके साथ शादी कर ली थी। उसी जालन देवी के एक पुत्री हुई थी जिसका नाम सौभाग्यसुन्दरी रक्खा था।

तस्मिन्नमूकेशिपुरे पर्यन्तोद्यानसीमनि। सूरीणां तस्थुषां कोऽपि नाऽकार्षीद् वन्दनादिकम्।
तमानादरमालोक्य सूरीणं शासनामरी। सौन्दार्थं शासनस्योत्कर्षणाय मनो दधौ॥
ततो देव्याऽर्थितः सूरि श्चातुर्मास्यंतु स्थीयताम्। एवंकृते महान्लाभः भाव्ये [illegible]।
आदि देश मुनिः शिष्या, नत्र तिष्ठन्तु तापसः। उग्रं तपः कर्तु कामा [illegible]॥
पंचत्रिंशतु मुनयः स्थितास्तत्र महोजसः। अन्ये विजह्रु कोरंटपुरं चातुर्मास्य [illegible]।

इधर मंत्री ऊहड़ के एक पुत्र हुआ जिसका नाम त्रिलोक्यसिंह रखा था। भाग्यवशात् राजा उत्पलदेव ने नगर आबाद करवाने में मंत्री ऊहड़ का उपकार समझ अपनी पुत्री सौभागसुंदरीका विवाह मंत्री पुत्र त्रिलोक्यसिंह के साथ कर अपने पर जो ऋण था उसे हलका कर दिया था। वे दम्पति आनन्द में अपना संसार निर्गमन कर रहे थे।

थली प्रान्त में एक पीना जाति के सर्प होते हैं। लघु शरीर होने पर भी उसका विष गुरु होता है। जिस किसी को काटा हो तो फिर उसके जीवन की आशा कम ही रहती है।

भाग्यवशात एक समय राजकन्या अपने पतिदेव की शय्या पर सो रही थी। रात्रि में अकस्मात् पीना सर्प ने मंत्रीपुत्र त्रिलोक्यसिंह को काट खाया। जिसका विष उसके सब शरीर में व्याप्त हो गया। जब राजपुत्री ने जागृत हो अपने पतिदेव के शरीर को विष व्याप्त पाषाणवत देखा तो एक दम दुःख के साथ रुदन करने लगी। जिसको सुन कर सब कुटुम्ब एकत्रित हुआ और कुमार की दशा पर करुणाक्रन्दन करने लगा। इधर बहुत से मंत्र तंत्रवादियों को बुलाया गया। उन्होंने अपना-अपना उपचार किया पर उन सबके सबने निराश होकर कह दिया कि राजजमाई मृत्यु को प्राप्त हो गया। अब इसको शीघ्र अग्नि-संस्कार कर देना चाहिये।

बस! फिर तो दुःख का पार ही क्या था? कारण इस प्रकार की मृत्यु उस समय बहुत कम होती थी। जिसमें भी मंत्रीपुत्र एवं राजजमाई की युवकवय में यकायक मृत्यु हो जाना बड़े ही दुःख की बात थी। नगर भर में हाहाकार मच गया। पर इसका उपाय भी तो क्या था? उस मृत कुमार के लिये एक झांपन (मंडी) बना कर उसमें बैठा कर श्मशान की ओर जाने लगे। इधर राजकन्या अपने पतिदेव के साथ जल कर सतित्व धर्म रखने के लिये अश्वारूढ़ हो झाँपन के साथ हो गई।※

कई अज्ञ लोग नासमझी के कारण यह भी कह देते हैं कि रत्नप्रभसूरि एक शिष्य को साथ लेकर ओसियों में आये थे और वहाँ गौचरी नहीं मिलने से वह शिष्य जंगल से काष्ट भार लाकर उसको बेच कर अन्न लाकर रोटी बना कर सूरिजी को खिलाता था। वह कार्य इतना अर्सा किया कि उसके शिर के बाल उड़ कर टाट पड़ गई। एक दिन सूरिजी ने उस शिष्य के शिर पर हाथ दिया तो शिर पर कोई बाल नहीं पाया।। अतः सूरिजी ने कारण पूछा शिष्य ने सब हाल सुनाया। अतः सूरिजी ने कुछ रुई मँगा कर उसके सांप से राजपुत्र को कटवाया। बाद राजा वगैरह सूरिजी के पास आकर पुत्र जिलाने की प्रार्थना की तब सूरिजी ने उस साँप से राजपुत्र का विष वापिस खिंचवाया। इस प्रकार चमत्कार बतला कर राजा प्रजा के

※ पतिं वै राजपुत्र्यास्तु, पुत्रं राजमन्त्रिणः। दैवात्तत्राऽदशत् सर्पः, निष्फलः सकलो विधिः॥
ऊह्यमानः स्मशानंतु, मृतो ज्ञात्वा जनैश्वसः भवितुं भस्म सादेवी, अश्वारूढ़ तु तं गता॥

उपकेशगच्छ चरित्र

अथ मंत्रेश्वर ऊहड़ सुतं भुजंगेन दष्टः। अनेक मंत्र वादिनः आहूताः परं न कोपि समर्थस्तैः कथितं अयं मृत दाघो दीयतां। तस्य स्त्री काष्ठभक्षणे स्मशाने आयाता, श्रेष्ठस्य महान दुःखो जातः।

उपकेशगच्छ पट्टावली पृ० १८५।

सवालक्ष मनुष्यों को ओसवाल बना कर जैनधर्म धारण करवाया इत्यादि । पर यह बात बिलकुल गलत ही नहीं बल्कि एक बिना शिर पैर की गप्प है । सूरिजी एक साधु के साथ नहीं पर ५०० साधुओं के साथ पधारे थे और भिक्षा के अभाव में वे तपश्चर्य्या करते थे । न रुई का साँप बनाया और न राजपुत्र को कटवाया । वे चौदहपूर्वधर महात्मा ऐसा कौतूहल करते ही क्यों ? इन्होंने जो कुछ किया था; वह अपने आत्मबल और उपदेश द्वारा ही किया था । वह प्राचीन पट्टावलियों, चरित्र ग्रन्थों में विद्यमान है जिसको कि मैं आज लिख रहा हूँ । जिसको पढ़ने से आप स्वयं समझ सकेंगे ।

नगर में शोक के काले बादल सर्वत्र छा गये थे । राजा, मंत्री और नगर के लोग रुदन करते हुये राजजामाता की स्मशान यात्रा के लिये जा रहे थे । भाग्यवशात् रास्ता में एक लघु साधु ने आकर उन लोगों से कहा अरे मूर्ख लोगो ! इस जीते हुये मंत्रीपुत्र को जलाने के लिये स्मशान क्यों ले जा रहे हो ? बस, फिर तो था ही क्या ? उन लोगों ने जाकर राजा एवं मंत्री से सब हाल निवेदन किया । अतः उनके अन्तरात्मा में कुछ चैतन्यता जागृत हुई । शीघ्र ही कहा कि उस साधु को यहाँ लाओ । जब साधु को ढूँढने को गये तो वह नहीं मिला । इस हालत में सब की सम्मति हुई कि बहुत अर्से से शहर के बाहर लुणाद्री पहाड़ी पर कई साधु आये हुये हैं और वह लघु साधु भी उनके अन्दर से एक होगा, अतः मृतकुमार को लेकर वहाँ ही चलना चाहिये । बस गरजवान क्या नहीं करते हैं ?

सब लोग चल कर सूरिजी के पास आये और राजा तथा मंत्री हाथ जोड़ कर दीनस्वर से करने लगे प्रार्थना । कि हे दयासिन्धो ! आज हमारे पर दुर्दैव का कोप होने से हमारा राज्य शून्य हो गया है । हमारे पुत्र रूपी धन को मृत्यु रूपी चोर ने हरण कर लिया है । हे करुणावतार ! आज हमारे दुःख का पार नहीं है, अतः आप कृपा कर हमारे संकट को दूर कर पुत्र रूपी भिक्षा प्रदान करें । आप महात्मा हैं रेख में मेख मारने को समर्थ हैं इत्यादि नम्रता पूर्वक प्रार्थना की ।

इस पर वीरधवलोपाध्याय ने समय एवं लाभालाभ का कारण जान उन लोगों से कहा कि थोड़ा गर्म जल होना चाहिये । बस पास में ही नगर था और आज तो घर २ में गरम जल था । एक आदमी जाकर गर्म जल लाया । उस गर्मजल से सूरिजी के चरणांगुष्ठ का प्रक्षालन कर इस जल को मंत्री पुत्र पर डाला । बस, फिर तो था ही क्या, मंत्रीपुत्र के शरीर से विष चोरों की तरह भाग गया और मंत्री-पुत्र खड़ा हो कर इधर उधर देखने लगा ।

वादित्रान् आकर्ण्य लघुशिष्यः तत्रागतः कंपाणो दृष्ट्वा एवं कथयति भो ! जीवितं कथं ज्वालयत्; ते श्रेष्ठिने कथितं एषः मुनिवरः एवं कथयति । श्रेष्ठिना कंपाणो वालितः [illegible] प्रदः गुरु पृष्ठे स्थितः—मृतकमानीय गुरु अग्रे मुंचति श्रेष्ठिकुटुम्बानां शिरं निवेश्य एवं कथयति भो दयालु ! मम देवो रुष्टः मम गृहो शून्यो भवति तेन कारणेन मम पुत्र भिक्षा देहि । गुरुणा प्रासुक जलमानीय चरणौ प्रक्षाल्य तस्य छंटितं । तत्क्षणादुत्थाय, सज्जो बभूव हर्षे [illegible] लोकैः कथितं श्रेष्ठि पुत्र नूतन जन्मो आगतः ।

सब लोग आश्चर्यचकित हो गये। चारों ओर हर्ष के नाद एवं बाजे बजने लगे। और सबके मुंह से यही शब्द निकलने लगे कि आज इन महात्मा की कृपा से मंत्रीपुत्र ने नया जन्म लिया है। अर्थात् काल के गाल में गया हुआ राजजमाई जीवित हो गया है इत्यादि। अब तो नगर में सर्वत्र आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि और जैनधर्म की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी।

राजा और मंत्री ने सोचा कि महात्मा का अपने पर महान उपकार हुआ है तो प्रत्युपकार के लिये अपने को भी महात्मा का उचित सत्कार करना चाहिये। अतः उन्होंने अपने खजानचियों को हुक्म कर दिया कि तुम्हारे पास कोष में जितने बढ़िया से बढ़िया रत्न मणियां हो वह सूरिजी की भेंट कर दो। तत्पश्चात् महात्माजी की जयध्वनि और हर्ष वाजित्रों के साथ मंत्रीपुत्र को लेकर नगर की ओर चले गये और सर्व नगर में महान हर्ष के साथ सूरिजी की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। वे ही लोग क्या; पर चमत्कार को नमस्कार सर्वत्र हुआ ही करता है।

जब राजखजानचियों ने बहुमूल्य रत्नमणि आदि लेकर सूरिजी की सेवा में भेंट की तो सूरिजी सोचने लगे कि अहो संसार-लुब्ध जीवों की अज्ञानता कि जिस परिग्रह को ज्ञानियों ने अनर्थ का मूल बतलाया है संसार में जितने पौद्गलिक सुख:दुख और तृष्णा है उनका मूल कारण परिग्रह ही है तथा मैं अनर्थ का मूल और संसार की वृद्धि समझ कर परिग्रह का त्याग कर आया हूँ। उसको ही संसारी लोग एक महत्व की वस्तु समझ यहां लाकर मुझे खुश करना चाहते हैं इत्यादि, विचार करते हुए आप विशेष उदासीनता के साथ केवल ध्यान में ही मस्त रहे।

इस पर खजानचियों ने सोचा कि शायद् महात्मा इतने थोड़ा द्रव्य से संतुष्ट नहीं हुये हों, उन्होंने जाकर राजा एवं मन्त्री से कहा कि हमारी भेंट महात्माजी ने स्वीकार नहीं की है। अतः आप जो कुछ हुक्म फरमावें वैसा ही किया जाय।

मन्त्री ने राजा से कहा कि अपनी बड़ी भारी गलती हुई है कि जिन महात्मा का अपने पर इतना बड़ा उपकार हुआ उनके लिये अपने नौकरों से भेंट करवाई। अतः खुद अपने को चलना चाहिये। बस, फिर तो देरी ही क्या थी ? चार प्रकार की सेना तैयार करवाई और सर्व नगर में इत्तला करवा दी। अतः ही समारोह से राजा मंत्री एवं नागरिक लोगों ने सूरिजी के चरण कमलों में आकर वन्दन कर नम्रता

मार्गेकश्चिन्मुनिस्तत्र, प्रोवाच तॉंस्तु वाहकान् कथं धक्ष्यन्ति जीवन्तमित्युक्त्वाऽन्दं र्धाहिस ॥
अन्वेपितो ऽपिसाधुः स न तेपां दृष्टिगोचरः ययुः सर्वे तदासूरे शरणं शोक विह्वला ॥
मृतकं तु समास्थाप्य ववन्दुस्ते यथा विधि मोचुश्च नम्र शिरसो रुदन्तो स्ते च वाहकाः ॥
अस्माकं मृत्यु चौरेण, मुषित पुत्रो महानिधि। जीवयत्वं मंत्रि पुत्रं राजजामातर्यं च नः
भवन्तो हि महात्मान शरणागत वत्सलः साध्नुवन्ति च कार्याणि साधव साधु दर्शना ॥
एवं ब्रुवाणे लोकेतु तेपामन्यतमोमुनि। प्रोवाच दयया. तॉंस्तु उष्ण मानीयतॉं जलम् ॥
मुने क्षालित चरणेन जलेन परिपेचनम्। कृतं मृतो परितदा सहसा जीवितोत्थित ॥
उवाच जनता तत्र हर्ष वादित्र निस्वनें। अद्य त्वया मंत्रिपुत्र ! लब्धं जन्म द्वितीयकम् ॥
'उपकेश गच्छ चरित्र'
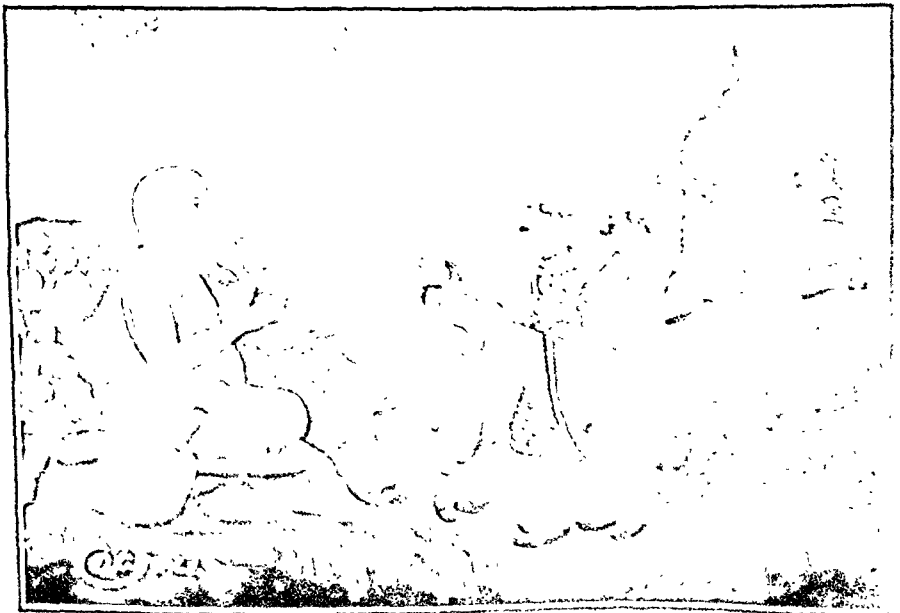
सूरिजी के चरणांगुष्ट का प्रक्षाल किया जिसपर सूरिजी ने वासक्षेप डाला। वह जल मृत प्राय: मंत्रीपुत्र पर छांटा जिससे ही वह निर्विष हो कर बैठा हो गया जिससे हर्षनाद होने लगा— पृष्ट ७२

राजा मंत्री ने सूरिजी को रत्नमणि आदि भेट की जिसको सूरिजी ने स्वीकार नहीं किया परन्तु धर्मोपदेश देकर सवा लक्ष क्षत्रियों को जैन बनाया और उन सबका महाजन संघ स्थापन किया—पृष्ट ९०

के साथ प्रार्थना की कि हे प्रभो ! आपका तो हम लोगों पर महान उपकार है; पर हम कृतघ्नी लोग उसको भूल कर आपका कुछ भी स्वागत नहीं कर सके। अतः उस अपराध को तो क्षमा करें और यह हमारा राज्य* को स्वीकार कर हम लोगों को कुछ कृतार्थ बनावें इत्यादि ।

सूरीश्वरजी ने लाभालाभ का कारण जान कर एवं ध्यान से निर्वृति पाकर आये हुये उन राजादि को कहा कि हे राजन् ! आप भले मेरा उपकार समझे; पर मैंने अपने कर्तव्य के अलावा कुछ भी अधिकता नहीं की है। क्योंकि हम लोगों ने स्वात्मा के साथ जनता के कल्याण के लिये ही योग धारण किया है। दूसरे आप जो रत्नादि द्रव्य और राज का आमंत्रण करते हैं वह ठीक नहीं क्योंकि अभी आपको यह ज्ञान नहीं है कि यह पदार्थ आत्म कल्याण में साधक हैं या बाधक ? यदि हमको इन पुद्गलिक पदार्थों का ही मोह होता तो हम स्वयं पुरअन्तेवर एवं राजभंडार का त्याग कर साधु नहीं बनते। अतः इस धन दौलत एवं राज से हम निस्पृही योगियों को किसी प्रकार से प्रयोजन नहीं हैं इत्यादि ।

राजा मन्त्री और नागरिक लोग सूरिजी महाराज के निस्पृहता के शब्द सुन कर मंत्र मुग्ध एवं एकदम चकित हो गये और मन ही मन में विचार करने लगे कि अहो ! आश्चर्य कि कहां तो अपने लोभानन्दी गुरु कि जिस द्रव्य के लिये अनेक प्रयत्न एवं प्रपंच कर जनता को त्रास देकर द्रव्य एकत्र करते हैं तब कहां इन महात्मा की निर्लोभता कि बिना किसी कोशिश के आये हुए अमूल्य द्रव्य को ठुकरा रहे हैं। वास्तव में सच्चे साधुओं का तो यही लक्षण है हमें तो अपनी जिन्दगी में ऐसे निस्पृही साधुओं के पहिले ही पहल दर्शन हुये हैं। फिर भी दुख इस बात का है कि ऐसे परम योगीश्वर अपने नगर में कई अर्से से विराजमान होने पर भी हम हतभाग्यों ने और तो क्या पर दर्शन मात्र भी नहीं किया। इनके खान पान का क्या हाल होता होगा ? इस वर्षा ऋतु में बिना मकान यह कैसे काल निर्गमन करते होंगे इत्यादि, विचार करते हुए राजा ने पुनः प्रार्थना की कि हे दयानिधि ! यदि इस द्रव्य एवं राज को आप स्वीकार नहीं करते हैं तो हमें ऐसा रास्ता बतलाइये कि हम आपके उपकार का कुछ तो बदला दे सकें ? क्योंकि हम लोग आपके आचार व्यवहार से बिलकुल अनभिज्ञ हैं ।

सूरिजी ने कहा राजेन्द्र ! हम लोग अपने लिये कुछ भी नहीं चाहते हैं हम केवल [illegible] भ्रमण करते हैं। हमारा कार्य यह है कि उन्मार्ग से भवान्तर में दुःखी बनते जीवों को सन्मार्ग पर लाकर सुखी बनाना। यदि आप लोगों की इच्छा हो तो धर्म का स्वरूप सुन कर जैन धर्म को स्वीकार कर लो [illegible] इस लोक और परलोक में आपका कल्याण हो ।

---

*श्रेष्ठिना गुरूणां अग्रे अनेक मणिमुक्ताफलसुवर्णवस्त्रादि आनीय [illegible] : सुरिणा कथितं मम न कार्यं परं भवद्भि जैन धर्मो गृह्यतां ।

ततस्तु राजसचिव हर्ये सर्व वर्णैः । अर्पयामास [illegible] [illegible]

१ततोऽस्मरत् न सचिवं, श्रुत्वार्थे धर्ममुपवन् । [illegible] जैन धर्मस्य, [illegible]
अर्पितं तद्धनं तेन, नाङ्गीकृतमलोभिना । [illegible]

राजादि सब लोगों का सूरिजी के आत्मज्ञान विशुद्धचरित्र, निस्पृह और जनकल्याणकारी वचनों पर पहिले से ही श्रद्धा विश्वास हो आया था। फिर सूरिजी ने स्वतः धर्म सुनने को फरमा दिया फिर तो था ही क्या? उन लोगों ने शिर झुका कर कह दिया कि प्रभो ! आप कृपा कर हम लोगों को जरूर धर्म का स्वरूप सुनावें।

इस पर आचार्यश्री ने उन धर्म जिज्ञासुओं पर दया भाव लाकर उच्च स्वर और मधुर भाषा से धर्मदेशना देना प्रारम्भ किया, हे राजेन्द्र ! इस अपार संसार के अन्दर जीव को परिभ्रमण करते हुये अनंताकाल हो गया कारण कि सूक्ष्मबादर निगोद में अनंतकाल, पृथ्वी पाणि तेउ वायु में असंख्याताकाल, और वनस्पति में अनंतानंत काल परिभ्रमण किया। बाद कुछ पुन्य बढ़ जाने से वेन्द्रिय एवं तेन्द्रिय चारिंद्रय तीर्यंच पांचेन्द्रिय व नरक और अनार्य मनुष्य व अकाम निर्ज्जरादि से देवयोनि में परिभ्रमण किया पर सामग्री के अभाव से शुद्ध धर्म न मिला, हे राजन् ! शास्त्रकारों ने फरमाया है कि सुकृतों [1] का सुफल दुष्कृत्यों का दुष्फल भवान्तर में अवश्य मिलता है। इस कारण शुभाशुभ कर्म करता हुआ जीव चतुर्गति में परिभ्रमन करता है जिसको अनंतानंतकाल व्यतीत हो गया। जिसमें अव्वल तो जीव को मनुष्यभव ही मिलना मुश्किल है। कदाच मनुष्य भव मिल भी गया तो आर्य्यक्षेत्र, उत्तमकुल, शरीरआरोग्य, इन्द्रियपरिपूर्णता और दीर्घायुष्य क्रमशः मिलना दुर्लभ है, कारण पूर्वोक्त साधनों के अभाव में धर्म्म कार्य्य बन नहीं सकता है अगर किसी पुण्य के प्रभाव से पूर्वोक्त सामग्री मिल भी जावे परन्तु सद्गुरु का समागम मिलना तो अति कठिन है और सद्गुरु विना सद्ज्ञान की प्राप्ति होना सर्वथा असंभव है।

हे नरेश ! आप जानते हो कि विना गुरु के ज्ञान हो नहीं सकता है और संसार में जितना अज्ञान फैलाया है वह स्वार्थी कुगुरुओं ने ही फैलाया है। आप स्वयं सोच सकते हो कि क्या जीवहिंसा से भी कभी धर्म हो सकता है? पर पाखण्डियों ने तो केवल मांस की लोलुपता के कारण मांस[2] खाने में, मदिरा[3] पीने में और व्यभिचार सेवन करने में भी धर्म बतला दिया है, इतना ही क्यों? जिस ऋतुवंती एवं शूद्रनियों का अच्छे मनुष्य स्पर्श तक भी नहीं करते वे उनके साथ गमन करने में भी तीर्थों की यात्रा जितना पुन्य बतलाते हैं। अरे उन्होंने तो अपनी बहिन बेटी से भी परहेज नहीं रक्खा है। अतः एक जन्म के देने वाली माता के अलावा संसार भर की स्त्रियों के साथ मैथुन कर्म की छूट दे दी है। भला थोड़ासा विवेक

---

१ यादृशं क्रियते कर्म, तादृशं भुज्यते फलम्। यादृशं मुच्यते बीजं तादृशं प्राप्यते फलम् ॥
सुचिनाकम्मा सुचिना फला दुचिना कम्मा दुचिना फला भवंति।

* चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो। माणुसत्तं सुइसद्धा संजमंमिय वीरियं।
समावन्नाण संसारे, नाणा गोत्तासु जाइसु। कम्मानाणा विहाकट्टु पुढो विस्सं भयापया॥
एगया देव लोएसु, नरएसु विएगया। एगया आसुरं कायं, अहा कम्मेहिंगच्छइ।
एगया खत्तिओ होई, तओ चंडाल बुक्कुसो। तओ कीड़पयंगोय तओ कुंथु पिपीलिया॥
माणुस्सं विग्गहं लद्धु, सुइ धम्मस्स दुल्लहा। जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंति महिंसयं।
आहच्च सवणं लद्धु, सद्धा परम दुल्लहा। सुच्चानेयाउयं मग्गं, बहवेपरिभस्सइ॥
खेत्तं वत्थु हिरण्णंच पसवोदास पोरुसं। चत्तारि काम खंधाणि तत्थसे उववज्जइ॥
मित्तवं नायवं होई, उच्चगोएय वण्णवं। अप्पायंके महापन्ने अभिजाए जसो बले॥
"श्री उत्तराध्ययन सूत्र अ० ३"

बुद्धि से सोचो कि ऐसा धर्म नरक में ले जाने वाला है या स्वर्ग में ? अर्थात इस प्रकार के दुराचार सेवन से सिवाय नरक के और स्थान ही कहां है ।

यह बात समझाई किसको जाय ? इन पाखण्डियों ने तो भद्रिक जनता के शुरू से ही ऐसे बुरे संस्कार डाल दिये हैं और साथ में यह भी प्रतिबन्ध लगा दिया है कि हमारे सिवाय किसी का उपदेश तक भी नहीं सुनना और जनता उन धर्मनाशकों के वचन पर विश्वास कर लेती है । ऐसे प्रज्ञाहिनों[1] के लिये मनुष्य तो क्या पर ब्रह्माजी भी क्या कर सकते हैं ?

अतः मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है कि सब से पहिले आत्मकल्याणार्थ धर्म की परीक्षा[2] करनी जरूरी है जैसे सोने की परीक्षा चार प्रकार से होती है कसोटी, सूलाक, ताप और पीटन । इसी प्रकार धर्म की परीक्षा भी शील, सत्य, दया, दान और तप से होती है, वही धर्म पवित्र कहा जा सकता है कि जिसमें पूरे चारों गुण हों । और आत्म-कल्याण भी उसी धर्माराधन से हो सकता है ।

महानुभावो ! केवल तिलक[†] और मुद्रा धारण करने से तथा मन्त्रोच्चारणमात्र से ही जीवों का कल्याण नहीं होता है । यदि जिसका हृदय आत्म-ज्ञान शून्य है तो वे चाहे ब्राह्मण ही क्यों न हो पर अपना जन्म व्यर्थ ही गंवा देते हैं अतः केवल बाह्य आडम्बर पर ही धोखा न खा जाना चाहिये । इतना ही क्यों पर सम्यग्ज्ञान रहित पाखण्डियों की सहायता करना एवं पोषण करना भी नरक का कारण होता है; क्योंकि पाखण्डी संसार में पाखण्ड फैलाते हैं वे सब सहायकों की सहायता से ही फैलाते हैं, अतः उनको भी उसका फल तो लगना ही चाहिये और इस कारण वे नरक[*] के द्वार देखते हैं ।

हे राजेश्वर ! अब इन पाखण्डियों के यज्ञ का भी थोड़ा सा हाल सुन लीजिये कि इन निर्दय दैत्यों ने संसार में मांस का प्रचार करने के लिये जनता को किस तरह से धोखा दिया है ! पहिले तो मैं शुद्ध यज्ञ का स्वरूप बतला देता हूँ कि जैसे सत्यरूपी स्तूप, तपरूपी अग्नि, कर्मरूपी समिधा अहिंसा रूपी आहुति से आत्मा के साथ अनादि काल से लगे हुये कर्मों को होम कर उसका नाश करना इत्यादि । इस यज्ञ से जीव स्वर्ग एवं मोक्ष का अधिकारी बनता है और इस विषय का यह एक ही उदाहरण नहीं है पर पूर्व महर्षियों ने अपनी अन्तरध्वनि अनेक[3] प्रकार से उद्घोषित की है ।

---

१ यस्य नास्ति स्वयंप्रज्ञा, शास्त्र तस्य करोति किं। लोचनाभ्यां विहीनस्य, दर्पणं किं करिष्यति

२ यथा चतुर्भि कनकं परीक्षते, निघर्षच्छेदन तापताड़नैः ।
तथैव धर्म्मः विदुषा परीक्षते, श्रुतेन शीलेन तपो दया गुणैः ॥

† तिलकैर्मुद्रयामंत्रै, क्षामतादर्शनेन च । अन्त शून्या बहिनाग [illegible] ॥

* यतिने कांचनं दत्वा, ताम्बूलं ब्रह्मचारिणे । चौरेभ्योऽप्यभयं दत्वा, स दाता नरकं व्रजेत् ॥

३ सत्य यूपं तपोह्यग्नि, कर्मणा समिधोत्तमम् । अहिंसामाहुतिं दद्या, देवं [illegible] ॥१॥
इन्द्रियाणि पशून् कृत्वा, वेदी कृत्वा तपो मयीं । अहिंसा माहुतिं कृत्वा, [illegible] ॥
ध्यानाग्नौ जीव कुण्डस्थ, दममारुत दीपिते । [illegible] ॥

४ न शोणित कृतं वस्त्रं, शोणिते नैव शुध्यते । [illegible]

हे पृथेश ! आप जानते हो कि खून से लिप्त हुआ वस्त्र खून से कभी साफ हो सकता है ? नहीं कदापि नहीं । इसी प्रकार क्रूर कर्म करने वाले जीव ऐसी निर्दय प्रवृति करते हैं जिसके जरिये उनको अवश्य नरक में जाना पड़ता है क्योंकि मांस भक्षण करने वाले को एक ही नहीं पर १८ दोष लगते हैं, इतना ही क्यों, पर यज्ञ का नाम लेकर निरपराध प्राणियों का वध करता है वह घोर नरक२ में जाता है और जिस पशु को मारता है उसके जितने बाल हैं उतने हजार वर्ष उसको नरक३ में दुख भोगना पड़ता है ।

हे क्षत्रवीरा ! जब बड़े से बड़ा अपराधी जीव मुंह में तृण लेकर खड़ा हो जाता है तो वह अबध्य४ समझा जाता है तो सदैव तृण भक्षण करने वाले निरपराध जीवों के प्राण लूट लेना कौन बहादुरी की बात है । यदि किसी धर्म वाले इस प्रकार प्राणियों की हिंसा का उपदेश करते हों तो वह नास्तिक से भी नास्तिक हैं । इतना ही क्यों पर ऐसे नास्तिकों पर विश्वास रखने वाले भी घोर नरक में जाकर असंख्यकाल तक घोर दुःखों को भोगते हैं और भी देखिये महर्षियों ने क्या फरमाया है.—

हे पृथ्वीपति ! जो लोग यज्ञ का नाम लेकर निराधार मूक प्राणियों के प्राण हरन करते हैं वे सीधे ही घोर नरक में जावेंगे । और अपने साथियों को भी वे नरक में साथ ले जाते हैं क्योंकि हिंसा से न तो कभी हुआ है और न कभी धर्म होने वाला ही है ।

†"जल पर पत्थर कभी नहीं तरता है, सूर्य पश्चिम में नहीं उगता है, अग्नि कभी शीतलता नहीं देती है, पृथ्वी कभी पाताल में नहीं जाती है इत्यादि पर उपरोक्त कार्य दैवयोग से कभी अपने असली भावों को छोड़ा हुआ भी दिखाई देने लग जाय तथापि हिंसा से धर्म तो कभी भी नहीं होता है ।

हे नरेन्द्र ! कितनेक निर्दय दैत्य भद्रिक लोगों को उल्टे समझाते हैं कि ब्रह्मा५ ने यज्ञ के लिए ही पशु आदि जीवों को पैदा किया है अतः यज्ञ में जिन २ प्राणियों की बलि दी जाती है वह सीधे ही स्वर्ग५ में पहुँच जाते हैं इत्यादि । पर उन निर्दय दैत्यों से कहा जाय कि यदि यज्ञ में बलिदान होने वाले जीव स्वर्ग में पहुँच जाते हैं तो क्या आप स्वयं एवं अपने माता पिता पुत्र आदि को स्वर्ग नहीं चाहते हो ? पहिले उनको बलि स्वर्ग१ पहुँचा दीजिये क्योंकि मूक प्राणी आपसे कभी यह याचना नहीं करते हैं कि हमको आप स्वर्ग

---

१ यस्तु मात्स्यानि, मांसानि भक्षयित्वा प्रपद्यते। अष्टादशापराधं च, कल्पयामि वसुन्धरा॥१॥

२ देवापहार व्याजेन, यज्ञव्याजेन येऽथवा । घ्नन्ति जन्तून् गतघृणा, घोरं ते यान्ति दुर्गतिम ॥१॥

३ अन्धे तमसि मज्जामड, पशुभिर्यजामहे। हिंसा नाम भवेद् धर्मो, न भूतो न भविष्यति ॥

† यदि ग्रावा तोये तरति तरणिर्यद्युद्यते, प्रतिच्यान्सप्तार्चियदि, भजति शैल्य कथमपि ।
यदिक्ष्मापीडं स्यादुपरि, सकलस्यपिजगतः । प्रसूतेसत्वानां तदपिन वधः कापिसुकृतम् ॥

४ वैरिणोऽपि विमुच्यन्ते, प्राणान्ते तृणभक्षणात् । तृणाहाराः सदैवैते, हन्यते पशवः कथम् ॥१॥

५ यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः, स्वयमेव स्वयम्भुवा। यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य, तस्मात् यज्ञेवधोऽवधः ॥
ओषध्यः पशवोवृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणास्तथा । यज्ञार्थ निधानंप्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः ॥

पहुँचावें । वे तो विचारे दीन स्वर से यही प्रार्थना करते हैं 'कि हम स्वर्ग को नहीं चाहते हैं हम तो जंगल के जल घास† पर ही सन्तुष्ट हैं ।'

अरे पाखण्डियो ! यदि जीव हिंसा करके ही स्वर्ग चला जायगा तो नर्क के द्वार तो वन्द२ ही हो जायंगे । यदि कोई मांसभक्षी यह कहते हों कि हम यज्ञ में बलि देकर दुनिया की शान्ति३ करते हैं और इससे कुल वृद्धि भी होती है तथा दशहरे आदि में भैंसे बकरे मारना हमारी कुल परम्परा है तो यह उनकी भूल है क्योंकि न तो हिंसा से कभी शान्ति हुई है और न कुल वृद्धि ही होती है, वरन् हिंसा से तो उल्टी अशान्ति और कुल का नाश ही होता है ।

राजन् ! आप स्वयं सोच सकते हो कि इस प्रकार हिंसा से धर्म की इच्छा रखने वाला अज्ञानी आत्मा मानो जाज्वल्यमान अग्नि से कमल४ की, अंधकार मयी रात्रि में सूर्य की, सर्प के मुँह से अमृत की, वितंडावाद में साधुवाद की अजीर्ण से निरोगता की कालकूट जहर से जीने की आशा रखता है अर्थात् उपरोक्त आशायें जैसे निरर्थक हैं वैसे हिंसा से धर्म की आशा रखना व्यर्थ है ।

हे नरेन्द्र ! जो मनुष्य संसार में रहता है वह भी झूठ बोलने में महापाप समझता है जब एक धर्म के उपदेशक झूठा उपदेश दें तथा मिथ्याग्रन्थों की रचना कर विचारे भद्रिक जीवों को तथा उनकी वंश परम्परा के लिये नरक के द्वार खुल्ला रख देवे तो पहले नरक में जाकर उन भक्तों के लिये उन्हें ही नरक में स्थान करना होगा इसमें शंका की कोई बात नहीं है अर्थात् जो हिंसामय शास्त्रों की रचना करता है वह तो बिना किसी रुकावट के सीधा नरक में ही जाता है ।

हे धराधिप ! संसार में जितने प्राचीन धर्म हैं उन सब का एक ही सिद्धान्त है कि 'अहिंसापरमोधर्मः' क्योंकि धर्म की माता अहिंसा है । बिना अहिंसा न तो धर्म का जन्म होता है और न धर्म की वृद्धि ही

---

१ निहतस्य पशोर्यज्ञे, स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते । स्वपिता यजमानेन, किन्तु तस्मान्नहन्यते ॥

† नाहं स्वर्ग फलोपभोग तृषितो नाभ्यर्थितस्त्वमया । संतुष्टस्तृण भक्षणेन, सततं साधो न युक्तं तव ॥
स्वर्गे यान्ति यदित्वया विनिहता यज्ञेध्रुवं प्राणिनो । यज्ञं किं न करोषि मातृपितृभिः पुत्रैस्तथा बान्धवैः ?॥

२ यूपंछित्वापशून्हत्वा, कृत्वा-रुधिर कर्दमम् । यद्येवं गम्यते स्वर्गे, नरके केन गम्यते ॥

३ हिंसाविघ्नाय जायते, विघ्न शान्त्यै कृतापिहि । कुलाचार धियाऽप्येषा, कृता कुल विनाशिनी ॥

४ स कमल वनमग्नेर्वासरं भास्वदस्ता, दमृत मुरगवक्त्रात् साधुवादं विवादात् ॥
रुगपगम मम जीर्णाज् जीवितं कालकूटा, दभिलषति वधाद्यः प्राणिनां धर्ममिच्छेत् ॥

१—ये चक्रुःक्रूर कर्माणः शास्त्रं हिंसोपदेशकम् क्व ते, यास्यंति नरके नास्तिकेभ्योऽपि नास्तिकाः ॥

२—विश्वस्तो मुग्धधीर्लोकः, पात्यते नरकावनौ । अहो नृशंसैर्लोभान्धै, हिंसाशास्त्रोपदेशकैः ॥

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं । तम्हा पाणवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं ॥

कपिलानां सहस्राणि, यो द्विजेभ्यः प्रयच्छति । एकस्य जीवितं दद्यात्, न च तुल्यं युधिष्ठिर ! ॥

न तो भूयस्तमो धर्मः कश्चिदन्योऽस्ति भूतले । प्राणिनां [illegible]

होती है अतः आप निश्चय समझ लें कि धर्म का लक्षण ही अहिंसा[1] है; इतना ही क्यों पर सर्व धर्मों में पांच-व्रत[2] मूल माने हैं उसमें भी अहिंसा को सबसे पहिला स्थान दिया गया[3] है।

महर्षियों ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि कोई दानेश्वरी कांचन का मेरु और वसुंधरा दान देता है और दूसरा एक मरते हुये जीव को प्राणों का दान देता है तो प्राणदान के सामने कांचन[4] का मेरु और पृथ्वी कुछ भी गिनती में नहीं है।

हे राजन्! एक तरफ तो सब वेदों[5] का अध्ययन, सर्व यज्ञ तथा सर्व तीर्थों की यात्रा और दूसरी ओर एक प्राणी के प्राणों को बचाना, इन दोनों में एक प्राणी के प्राणों को बचाना ही श्रेष्ठ रहेगा, कारण जितने धर्म कृत्य हैं; उनमें जीव दया ही प्रधान है और दया सहित धर्मकृत्य है वही आत्मकल्याण में बन सकता है। जैसे अपने प्राण अपने को वल्लभ हैं वैसे ही सब जीवों को अपने २ प्राण वल्लभ हैं; अतः किसी जीव को तकलीफ पहुँचानी यह मनुष्यधर्म[6] के बाहर की बात है इसमें भी जो मनुष्यों में राजा कहलाता है उसका तो खास फर्ज ही है कि वे नीति के नाते सभी चराचर प्राणियों को अपने प्राणों के तुल्य समझें।

हे नरेन्द्र! संसार में सब धर्मों में दान धर्म को ही श्रेष्ठ माना है जिसमें भी अभयदान को तो यहाँ तक उत्तम माना है कि उसकी बराबरी न गौदान[1] कर सकता है न पृथ्वीदान कर सकता है और न अन्नदान ही कर सकता है।

हे राजन्! अहिंसा सब जीवों का हित करने वाली माता[2] के समान है। अहिंसा ही मरुप्रदेश जैसे निर्जल स्थान में अमृत की नालिका[3] समान है अहिंसा ही दुःखरूपी दावानल के शान्त करने में महामेघ की धारा समान है इत्यादि।

हे नरेन्द्र! आप किसी भी धर्म के साहित्य को उठा कर देखिये वह अहिंसा से ओत प्रोत ही मिलेगा, हाँ कोई लोग उनको काम में लेता हो या न लेता हो यह बात दूसरी है; पर पूर्व महर्षियों का तो यह अटल सिद्धान्त है कि बिना अहिंसा न तो धर्म होता है और न जीवों का कल्याण ही होता है, अतः आप अपना कल्याण करना चाहते हो तो आपको परमेश्वरी अहिंसा का उपासक बन जाना चाहिये।

१—अहिंसा लक्षणो धर्मो ह्यधर्मः प्राणिनाँ वधः। तस्माद् धर्मार्थिभिर्लोकैः कर्त्तव्या प्राणिनाँ दया ॥१॥

२—अहिंसा सर्व जीवेषु, तत्वज्ञैः परिभाषितम्। इदंहि मूल धर्मस्य, शेषस्तस्यैवविस्तरम् ॥२॥

३—पंचैतानि पवित्राणि, सर्वेषां धर्मचारिणाम्। अहिंसासत्यमस्तेयं, त्यागो मैथुन वर्जनम् ॥३॥

४—यो दद्यात् कांचनं मेरुः, कृत्स्नां चैव वसुन्धरा। एकस्य जीवितं दद्यात्, न च तुल्य युधिष्टिर ॥४॥

५—सर्वे वेदा न तत् कुर्यु, सर्वे यज्ञाश्च भारत। सर्वतीर्थाभिषेकाश्च, यत् कुर्यात् प्राणिनां दया ॥५॥

६—दीयते म्रिय माणस्य, कोटिर्जीवित एव वा, धनकोटिं परित्यज्य, जीवो जीवितु मिच्छति ॥६॥

१—न गोप्रदानं न महि प्रदानं, नाऽन्नप्रदानं हि तथा प्रदानम्।
यथा वदन्तीहबुधा प्रदानं, सर्व प्रदानेष्वभयप्रदानम् ॥

२—मातेव सर्व भूतानामहिंसाहितकारिणि। अहिंसैव हि संसारमरवमृतसारिणिः ॥

३—अहिंसा दुःख दवाग्नि प्रवृषेणवनाऽऽवलि, भव भ्रमिरुजातानामहिंसा परमौषधी ॥

हे सज्जनो! मैंने आपको हिंसा और अहिंसा की समालोचना करके बतलाई है। इसमें मेरा कुछ भी स्वार्थ नहीं हैं क्योंकि साधु का जीवन तो सदा परोपकार के लिये ही होता है। अगर किसी जीव को उन्मार्ग जाता हुआ देखें तो हमारा धर्म है कि हम उनको सन्मार्ग बतलावें, फिर मानना न मानना उनकी मरजी की बात है।

सूरिजी के सारगर्भित व्याख्यान का जनता पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा कि वे मन ही मन में हिंसा से घृणा करने लग गये तथा अहिंसा की ओर उनकी श्रद्धा झुकने लग गई। जैनशास्त्रों के अनुसार इधर तो उन लोगों के कर्मों की स्थिति परिपक्व होने से उपादान कारण सुधरा हुआ था, उधर आचार्यश्री का निमित्त कारण मिल गया फिर तो कहना ही क्या था ?

आचार्यश्री ने अपने सन्मुख बैठे हुये मठपतियों एवं ब्राह्मणों से कहा; कि क्यों, भट्टजी महाराज! आपके हृदय में भी अहिंसा भगवती का कुछ संचार हुआ है या नहीं ? कारण मैंने प्रायः आपके महर्षियों के वाक्य ही आपके सन्मुख रखे हैं। हे भूर्षियो ! आपके ऊपर जनता ठीक विश्वास रखती है और आप अपने स्वल्प स्वार्थ के लिये विश्वास रखने वालों को अधोगति के पात्र बना रहे हो यह एक विश्वासघात और कृतघ्नी-पना की बात है। इससे आप खुद डूबते हो और आपके विश्वास पर रहने वालों को भी गहरी खाई में डुबाते हो। अगर आप अपना कल्याण चाहते हो तो वीतराग-ईश्वर सर्वज्ञ प्रणीत शुद्ध पवित्र अहिंसामय धर्म को स्वीकार करो ताकि पूर्व किये हुये दुष्कर्मों से छुट कर और भविष्य के लिये आप की सद्गति हो अतः यह हमारी हार्दिक भावना है।

इस पर ब्राह्मणों ने कहा कि आपके सर्वज्ञ पुरुषों ने कौनसा धर्म बतलाया है कि जिससे आप हमारा भला कर सको ? तथा आपके धर्म का क्या तत्त्व है ? इसको भी सुना दीजिये।

सूरीश्वरजी महाराज ने कहा कि हे महानुभावो ! धर्म का मूल-तत्त्व सम्यक्त्व (श्रद्धा) है ! वह समकित दो प्रकार का है (१) निश्चयसम्यक्त्व (२) व्यवहारसम्यक्त्व। जिसमें यहाँ पर मैं व्यवहार सम्यक्त्व के लिये ही संक्षिप्त से कहूँगा। जैसे:—

देव—अरिहन्त-वीतराग[१] ईश्वर सर्वज्ञ सकलदोषवर्जित कैवल्यज्ञान, केवल्यदर्शन अर्थात् सर्व चराचर पदार्थों को हस्तामलक की तरह जाने देखें और जिनका आत्मज्ञान तत्वज्ञान बड़े ही उच्चकोटि का हो और सर्व जीवों के कल्याण के लिये जिनका सुप्रयत्न हो सर्वजीवों के प्रति जिनकी समदृष्टि हो; "अहिंसा परमोधर्मः" जिनका खास सिद्धान्त हो; क्रीडा-कुतूहल और अष्टादश दोषवर्जित पुनः पुनः अवतार धारण करने से सर्वथा मुक्त हो उन्हें देव समझना चाहिये।

४—तुष्यन्ति भोजनैर्विप्रा, मयूरा घन गर्जितैः। साधवः परकल्याणे, खलाः परविपत्तिभिः
देवत्व श्रीजिनेष्वेव, मुमुक्षुषु गुरुत्वधी। धर्मधीरार्हताधर्मे, तत्स्यात् सम्यक्त्व दर्शनम् ॥

१ न राग रोषादिक दोष लेशो, यत्रास्ति शुद्धः सकल स्वभावः।
शुद्ध स्वरूपः परमेश्वरोऽसौ, मतो मतो देव पदाभिधेयः ॥
तस्मात् स देवः खलु वीतरागः [illegible]
रागादिदोषाऽऽश्रयणाश्रितानां, [illegible]

गुरु—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और निस्पृहता एवं पंचमहाव्रत पांच समिति, तीनगुप्ति, दश प्रकार का यतिधर्म्म, सतरह प्रकार संयम, बारह प्रकार तप, इत्यादि शम दम गुणयुक्त भव्यप्राणियों के कल्याण के लिये जिन्होंने अपना जीवन ही अर्पण कर दिया हो उनको गुरु समझना चाहिये।

धर्म–'अहिंसापरमोधर्मः' अहिंसाही धर्म का मुख्य लक्षण है। इसके साथ क्षमा, तप, दान, ब्रह्मचर्य, देवगुरु संघ की पूजा, स्वधर्मियों की सेवा, उपासना, भक्ति, आदि करना। जिस धर्म से किसी प्राणियों को तकलीफ न पहुँचे और भविष्य में स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति हो उसको धर्म समझना। जैनधर्म की लिये यह श्रद्धा के मूल तीन तत्त्व हैं। इनके अलावा आत्म कल्याण के लिये श्रद्धा के साधन दो प्रकार के बतलाये हैं १—आचार ज्ञान, २—तात्त्विकज्ञान, जिसमें आचार में अहिंसा; जिसकी प्रत्येक धर्म कार्य्य में मुख्यता है। अहिंसा धर्म पालन करने वालों को सबसे पहिले तो जुआ, मांस, मदिरा, वैश्या, चोरी, शिकार, और परस्त्री गमन एवम् सात कुव्यसनों का त्याग करना होता है। आगे चल कर व्रतधारी श्रावक होता है वह एक व्रत से लेकर बारह व्रत स्वीकार कर उसका पालन करता है। व्रत निम्न लिखित हैं:—

(१) पहिलाव्रत—हिलते चलते त्रस जीवों को विना अपराध मारने की बुद्धि से मारने का त्याग करना। अगर कोई अपराध करे व मारने को आवे, अथवा आज्ञा भंग करे इत्यादि उन व्यक्तियों के सामना करना गृहस्थों के लिये व्रतभंग नहीं है।

(२) दूसराव्रत—ऐसा झूठ न बोलना चाहिये कि वह राज कानून से खिलाफ हो अर्थात् राजदंड ले और लोगों में भंडाचार हो। अपनी कीर्ति व प्रतिष्ठा में हानि पहुँचे। इसी प्रकार झूठीगवाहीदेना, विश्वासघात व धोखेबाजी राजद्रोह देशद्रोह मित्रद्रोह इत्यादि न करना इत्यादि असत्य कार्यों की मना है।

(३) तीसराव्रत—विना दी हुई वस्तु नहीं लेना अर्थात् चोरी करने का त्याग है। जिस चोरी से राजदंड ले—लोगों में भंडाचार अर्थात् व्रतधारी की कीर्ति व विश्वास में शंका हो। परभव में उन क्रूर कर्म का बदला देना पड़े। ऐसे कार्य्यों की सख्त मना है।

(४) चौथेव्रत में—स्वदारासंतोष अर्थात् संस्कारपूर्वक शादी की हुई हो उनके सिवाय परस्त्री, वेश्यादि से गमन करना मना है।

(५) पांचवांव्रत में—धन माल द्विपद चतुष्पद राज स्टेट जमीन वगैरह स्वेच्छा से परिमाण किया हो उनसे अधिक ममत्व बढ़ाना मना है।

(६) छठाव्रत में—पूर्वादि छः दिशाओं में जाने की मर्यादा करने पर अधिक जाना मना है।

(७) सातवांव्रत—उपभोग परिभोग की मर्यादा है जैसे खाने पीने के पदार्थ एक ही वक्त काम में आते हैं उसे उपभोग कहते हैं और वस्त्र भूषण स्त्री मकानादि पदार्थ बारम्बार काम में आते हैं उसे परिभोग कहते हैं। इनका परिमाण कर लेने के बाद अधिक नहीं भोग सकते हैं। और मांस, मदिरा, मधु, मक्खन, अनंतकाय, पकाया हुआबासीअन्नादि रसचलितभोजन, द्विदलादि कि जिसमें प्रचुरतासे जीवोत्पत्ति होती हैं वह सर्वथा त्याज्य है। दूसरा व्यापारापेक्षा जो १५ कर्मादान अर्थात् अधिकाधिक कर्मबन्ध के कारण हों जैसे (१) अग्नि का आरंभ कर कोलसादि का व्यापार करना (२) वन कटा कर व्यापार (३) शकटादि बनाकर किराये से फिराना (४) किराये की नियत से मकानात बन्वाना व गाड़ी ऊँट वगैरह भाड़े देना या फिराना (५) पत्थर की खानें निकलवाना (६) दान्त (७) लाख (८) रसतेल घृत मधु वगैरह (९) विष सोमलादि का व्यापार (१०) केशवाले जान-

वरों का व्यापार तथा ऊन जट का व्यापार, (११) यंत्र पीलन आदि (१२) पुरुष को नपुंसक बनाना (१३) अग्नि वगैरह लगवाना (१४) तलाव के जल को शोषन करवाना (१५) असतिजन का पोषन इस प्रकार १५ कर्मादान यानि अपनी आजीविका के निमित्त ऐसे तुच्छ कार्य्य करना व्रतधारी श्रावकों के लिये शक्त मना है । यह १५ कर्म व्यापार के लिये मना किये हैं।

(८) अनर्थ दंडव्रत—निरर्थक आर्त ध्यान करना, अपना स्वार्थ न होने पर भी पापकारी उपदेश देना । दूसरों की उन्नति देख ईर्षा करना—आवश्यकता से अधिक हिंसाकारी उपकरण एकत्र करना । प्रमाद के वश हो घृत तेल दूध दही छाछ पाणी के बरतन खुले रख देना इनको अनर्था दण्ड कहते है अतः पूर्वोक्त चारों बातों का व्रतधारी श्रावक को त्याग करना पड़ता है ।

(९) नौवाव्रतमें—हमेशा समताभाव रह कर सामायिक कर ने का नियम रखना पड़ता है।

(१०) दशवांव्रतमें—दिशादि में रहे हुये द्रव्यादि पदार्थों के लिये १४ नियम याद करना

(११) ग्यारहवाँव्रत—में तिथि पर्व के दिन अथवा अन्य दिवस जब कभी अवकाश मिले अवश्य करने योग्य पौषधव्रत जो ज्ञानध्यान से आत्मा को पुष्ट बनाने रूप पौषधव्रत करना ।

(१२) बारहवांव्रत में—अतिथि संविभाग–महात्माओं को सुपात्र दान देना ।

इनके अलावा श्रावकों को हमेशा परमात्मा की पूजा करना,नये २ तीर्थों की यात्रा करना,स्वधर्मी भाइयों के साथ वात्सल्यता और प्रभावना करना,जीवदया के लिये बने वहां तक अमारि पटह फिराना, जैनमंदिर जैनमूर्ति ज्ञान,साधु,साध्वियां, श्रावक, श्रावकाओं एवं सात क्षेत्र में समर्थ होने पर द्रव्य को खर्चना और जिनशासनोन्नति में तन मन और धन लगाना गृहस्थों का आचार है इत्यादि यह गृहस्थधर्म सम्राट् से लेकर साधारण इन्सान भी धारण कर सुखपूर्वक पालते हुए आत्म-कल्याण कर सकते है ।

जो गृहस्थी संसार से विरक्त होकर साधु बनना चाहता है उनके लिये पांच महाव्रत है जीवहिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पांचों अव्रतों को मन वचन काया से करना, करावंन और अनुमोदन इस प्रकार सर्वथा त्याग करने से पंच महाव्रत का अधिकारी बनता है उसको साधु एवं सन्यासी भी कह सकते हैं ।

अचायी, सच्चायी, अमायी न्यायी और बेपरवायी ये पाँच साधु के खास लक्षण होते हैं । कनककामिनी के सदैव त्यागी होते हैं और स्व-पर कल्याण के लिए वे हमेशा प्रयत्न किया करते हैं यह तो व्रत धारियों का आधार तत्त्व है।

अब थोड़ा सा तात्त्विक विषय को भी समझा देते हैं। जैनधर्म की नींव कर्म सिद्धान्त पर अवलम्बित है जीव शुभ या अशुभ जैसे जैसे कर्म करता है भव भवान्तर में वैसे २ ही फल भोगता है. वे कर्म आठ प्रकार के हैं।

१—पहिला ज्ञानावर्णिय कर्म— जिसके उदय से जीव का ज्ञानगुण आच्छादित हो जाता है, जैसे घाँणी के बैल की आँखों पर पाटे बाँध देने पर उसको कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है और वह घाणी के चारों ओर फिरता ही रहता है । ऐसे ही जीव ज्ञानावर्णीय कर्मोदय से संसार में परिभ्रमन करता है।

२—दूसरा दर्शनावर्णिय कर्म—जीव के दर्शन गुण को रोक देता है. जैसे राजा के पहिरेदार यदि कोई व्यक्ति राजा से मिलना चाहे पर पहिरेदार मिलने नहीं देता।

३—तीसरा वेदनीकर्म—जीव के अव्याबाधगुण को रोक देता है जैसे—मधुलिप्त छुरी जो मधुर भी लगती है और तीक्ष्णता से जबान को भी काट डालती है । इसी प्रकार साता असाता वेदनी कर्म है

४—चौथा मोहनीयकर्म— जो जीव के क्षायिक गुण को आच्छादित कर देता है । जैसे मदिरा पिया हुआ मनुष्य को हिताहित का भान कब नहीं रहता है । वैसे ही मोहनीय कर्मोदय जीव को हिताहित का भान नहीं रहता है ।

५—पाँचवा आयुष्य कर्म—जीव के अटलअवगाहना गुण को रोक देता है; जैसे कारागार में पड़ा हुआ कैदी। जितनी कैद हुई है उतनी कैद भोगने से ही छुटकारा होता है। वैसे ही आयुः कर्म समझ लेना।

६—छट्ठा नामकर्म—जीव के अमूर्तिगुण को रोक देता है जैसे चित्रकार शुभाशुभ दोनों प्रकार के चित्र बना सकता है। वैसे ही शुभ अशुभ दो प्रकार नाम कर्म होता है।

७—सातवां गौत्रकर्म—जीव के अगुरुलघु गुण को रोकदेता है जैसे कुम्भकार का घड़ा जिसमें उच पदार्थ तथा नीच पदार्थ भरे जाते हैं। वैसे ही नीच ऊँच गौत्र कर्म है।

८—आठवां अन्तरायकर्म— जीव के वीर्य गुण को आच्छादित कर देता है जैसे राजा ने किसी को इनाम देने को कहा है पर खजानची बीच में अन्तराय डाल सकता है वैसे ही अन्तराय कर्म समझना इत्यादि।

जैन सिद्धान्त में कर्मों के विपय को खूब विस्तार से कहा है. कर्मों की मूलप्रकृति, उत्तरप्रकृति, बन्ध, उदय, उदीरणा, सत्ता, तथा कर्मबन्ध के कारण जैसे कि--मिथ्यात्त्व, अव्रत, कपाय और योग एवं चार कारण हैं। इन कारणों से जीव के कर्मबन्ध होता है, उस बन्ध के भी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, और प्रदेश एवं चार प्रकार हैं। जैसे २ अध्यवसाय से पाप कर्म करते हैं वैसे २ कर्मों की स्थिति और रस-अनुभाग से कर्मबन्ध हो जाते हैं और उसकी मुद्दतपूर्ण होने पर वे कर्म उदय होते हैं तब उनको भोगना पड़ता है, अतः समझदार मनुष्यों का कर्तव्य है कि इन कर्मबन्ध के कारणों से सदैव बचता रहे तथा पूर्व संचित कर्म हैं उनको तोड़ने के कारण ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं वीर्य हैं इनकी आराधना कर कर्म को हटा दें तो वह जीव आत्मा से परमात्मा बन सकता है जिनको ईश्वर भी कहते हैं।

२—हे धराधीश ! ईश्वर दो प्रकार से माने जाते हैं एक जीवनमुक्त दूसरे विदेहमुक्त। जीवनमुक्त का अर्थ यह है कि ऊपर जो आठ कर्म बतलाये हैं उनमें ज्ञानावर्णिय, दर्शनावर्णिय, मोहनीय और अन्तराय कर्म एवं चार घनघाती कर्म अर्थात आत्मघाती कर्म हैं। वे आत्मा के खास २ गुणों को आच्छादित करदेते हैं अतः इनके दूर करने से कैवल्यज्ञान कैवल्यदर्शन प्राप्त कर लेते हैं। जिससे वे एक समय मात्र में लोकालोक के सर्व भावों को हस्तामलक की तरह देख सकते हैं उनको जीवन मोक्ष कहते हैं तथा शेप रहे हुए वेदनी आयुष्य नाम और गौत्र एवं चार अघाती कर्मों का क्षय करने से इस नाशवान देह को छोड़ जीव मोक्ष में चला जाता है, वहाँ अक्षय सुखों में स्थित हो जाते हैं।

हे राजन् ! ईश्वर सच्चिदानन्द, निरंजननिराकार, सकलउपाधिरहित, स्वगुणभुक्ता आत्मगुणों में ही लीन रहते हैं और लोकालोक के द्रव्य गुण पर्याय को जानते देखते हैं।

कई अनभिज्ञ लोग जो ईश्वरतत्त्व के सच्चे स्वरूप को नहीं जानते हैं वह कहते हैं कि ईश्वर जगत का कर्त्ता-हर्त्ता है, ईश्वर ने सृष्टि की रचना की है, ईश्वर जीवोंको कर्मों के फल भुक्ताते हैं, ईश्वर पुनः पुनः अवतार धारण करते हैं इत्यादि।

पर यह सब कहना बच्चों के खेल सदृश्य है क्योंकि ईश्वर न तो जगत का कर्त्ता हर्त्ता है न ईश्वर ने सृष्टि की रचना ही की है न ईश्वर जीवों को शुभाशुभ कर्मों का फल ही भुक्ताते हैं, और न वे पुनः अवतार ही लेते हैं। इसका कारण यह है कि पूर्वोक्त सब काम कर्मोपाधी वाला जीव ही कर सकता है, परन्तु ईश्वर ने तो सकल कर्मों से मुक्त होकर निरंजन निराकार पद को प्राप्त कर लिया है तब वे सकर्मिक कार्य कैसे कर सकते हैं ? अर्थात् ईश्वर पूर्वोक्त कार्यों से एक का भी कर्त्ता हर्त्ता नहीं है।

हे राजन् ! जैनधर्म ईश्वर को अनादि मानते हैं और यह अनेक प्रमाणों से सिद्ध भी है। अतः न तो ईश्वर कर्त्ता हर्त्ता है, न सृष्टि का रचयिता सिद्ध हो सकता है। दूसरे न ईश्वर जीवों को पुन्य पाप के भुक्ताने वाला ही सिद्ध होता है कारण जीव स्वयं कर्म करता हैं और स्वयं भोगता हैं। भला ! एक मनुष्य ने भंग पी ली तो क्या उसका नशा ईश्वर देता है या स्वयं आ जाता है ? भांग का नशा तो स्वयं आ जाता है। फिर निराकार ईश्वर को जगत के जाल में क्यों फंसाया जाता है ? तीसरे ईश्वर के कर्मों का अंशमात्र भी नहीं रहने से वे पुनः अवतार भी नहीं लेते हैं इत्यादि विस्तार से समझाया।

हे राजन् ! जैन धर्म में मुख्य षट्द्रव्यों को माना है जैसे धर्मद्रव्य; अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, जीव द्रव्य, पुद्गलद्रव्य और कालद्रव्य।

धर्मद्रव्य अर्थात् धर्मास्तिकाय—जो अरूपी है सम्पूर्ण लोक व्यापी है। जीव और पुद्गलों को गमन-समय धर्मास्तिकाय सहायता देता है अर्थात् जीव और पुद्गल गमनागमन करते हैं इसमें धर्मास्तिकाय की ही सहायता है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय जीव पुद्गलों को स्थिर रहने में सहायक है, आकाशास्तिकाय जीव और पुद्गलों को स्थान देने में सहायक है और कालद्रव्य जीव और पुद्गलों की स्थिति को पूर्ण करता है जीव द्रव्य अनन्त है और उपयोग यानी ज्ञान-दर्शन इसका गुण है और पुद्गल रूपी है सम्पूर्ण लोक-व्यापक है। मिलना और बिछुड़ना इसका लक्षण है। इन छः द्रव्य में पांच जड़ हैं और एक जीव द्रव्य चेतन है तथा इन छः द्रव्यों में पांच अरूपी और एक पुद्गल द्रव्य-रूपी है। इन छः द्रव्यों में एक जीव द्रव्य उपादेय है एक पुद्गल द्रव्य हेय है और शेष चार द्रव्य ज्ञेय हैं इत्यादि।

हे नरेन्द्र ! जैनधर्म में नौ तत्त्व माने गये हैं जैसे जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर निर्ज्जरा, बंध और मोक्षतत्त्व। जीव अजीव के छः द्रव्य हैं वह पहले कह दिये हैं तथा पुन्य किसी भी दुःखी प्राणी को सुखी बनाना अर्थात् मन, वचन और काया से आराम पहुँचाना इसमें शुभ भावना से पुण्य होता है जिससे भवान्तर में सब अनुकूल सामग्री मिलती है एवं सुखों का अनुभव करते हैं और किसी जीव को दुःख देने से पाप-कर्म बन्धता है और भवान्तर में इसके कडुए फल से जीवन भर में दुःखों का अनुभव करना पड़ता है। आश्रव पुन्य पाप रूपी कर्म आने का कारण है तब संवर (तत्त्वरमणता) कर्म आने को रोकता है। बन्ध शुभाशुभअध्यवसायों से कर्म का बन्ध होता है। निर्ज्जरा-आत्म प्रदेश पर कर्मों के दलक लगे हुए हैं उनको तप-संयम दया दान पूजनादि सत्कर्मों से हटा देना उसको निर्ज्जरा कहते हैं जब सब कर्म छूट जाता है तब उस जीव की मोक्ष हो जाती है इन नौ तत्त्वों का शास्त्रों में बहुत विस्तार है।

हे नरेश ! तात्त्विक पदार्थों को जानने के लिए सात नय और चार निक्षेप भी बतलाते हैं जैसे—

(१) नैगम नय—वस्तु के एक अंश को वस्तु मानना।

(२) संग्रह नय—वस्तु की सत्ता को वस्तु मानना।

(३) व्यवहार नय—वर्तती वस्तु को वस्तु मानना।

(४) ऋजुसूत्र नय—वस्तु के परिणाम रूप को वस्तु मानना।

(५) शब्द नय—वस्तु के असली गुण को वस्तु मानना है।

(६) संमभिरूढ़नय—वस्तु का एक अंश न्यून होने पर भी वस्तु को वस्तु मानना है।

(७) एवंभूतनय—सम्पूर्ण वस्तु को वस्तु मानना है।

वस्तु के अंश को वस्तुमानने का कारण यह है कि उस शुभ भावना में यदि काल प्राप्त हो जायतो उसकी अच्छी गति होती है१ उदाहरण के तौर पर देखिये । जैसे आप इस समय व्याख्यान सुन रहे हैं इसको सात नयों द्वारा इस प्रकारसमझना चाहिये ।

१—व्याख्यान सुनने की इच्छा की—नैगमनय के मत से व्याख्यान सुना ही कहा जा सकता है।

२—व्याख्यान सुनने को जाने के लिए सब सामग्री एकत्र की—दूसरी संग्रहनय वाले का मत है कि एक अपेक्षा से उसको व्याख्यान सुना ही कहा जाता है, पूर्व उदाहरणा पेक्षा ।

३—व्याख्यान प्रारम्भ हो गया और श्रोताजन व्याख्यान सुन भी रहा है-तीसरी नयका मत है कि उसको व्याख्यान सुना ही कहा जाता है ! पूर्ववत्

४—व्याख्यान के स्थूल विषय जैसे किसी का चरित्र एवं क्रिया—आचार विषयक व्याख्यान सुन लिया पर तात्त्विक विषय को नहीं समझा फिर भी चौथी नय के मत से व्याख्यान सुना ही कहा जाता है।

५—व्याख्यान के तात्त्विक विषय को सुन कर ठीक समझ लिया अर्थात् तत्त्वबोध हो गया उसको पांचवी नय वाला व्याख्यान सुना मानता है ।

६—व्याख्यान का जितना विषय सुना हैं उसमें अंशमात्र न समझने पर भी छटा नय वाला व्याख्यान सुना ही मान लेता है ।

७—व्याख्यान का सब विषय सुन कर सबको धारण कर लेने पर सातवीं नय वाला व्याख्यान सुना मानता है । इसने सम्पूर्ण व्याख्यान सुनना और उस पर अमल करने को व्या० सुना माना ।

हे राजन् ! इसमें यथास्थान नय को स्थापन कर सब सातों नय को यथाक्रम मानने वाले को सम्यग् दृष्टि कहा जाता है और एक एक नय को खेंच कर अपेक्षारहित एकान्त आग्रह करके मानने वाला मिथ्यादृष्टि कहलाया जाता है, अतः जिनभाषित सातों नयों को मानना चाहिये । अब चार निक्षेप भी सुन लीजिये ।

१—नामनिक्षेप-किसी भी पदार्थ का नाम रख दिया जैसे किसी पदार्थ का नाम ऋषभदेव रख दिया और उस नामसे बतलाना यह नाम निक्षेप है ।

२—स्थापनानिक्षेप-किसी भी पदार्थ की स्थापना कर दी उस स्थापना को सत्य मानना यह स्थापन निक्षेप है जैसे ऋषभदेव की मूर्ति या ऋषभदेव ऐस अक्षर लिख देना ।

३—द्रव्य निक्षेप-जिस पदार्थ में भूतकाल में गुण था तथा भविष्य में गुण प्रगट होवेगा उसको द्रव्य निक्षेप कहा जाता है । जैसे-धनासारथवाहा का भव में ऋषभदेव ने तीर्थंकर नामोपार्जन किया वह द्रव्य ऋषभदेव है तथा ऋषभदेव का सिद्ध होने के बाद भी द्रव्य ऋषभदेव कहा जाता है ।

४—भाव निक्षेप-वर्तमान में वस्तु के गुण को भाव निक्षेप कहते हैं। जैसे-समवसरन में बैठे हुए ऋषभदेव

हे राजन ! इनके अलावा द्रव्य, गुण, पर्याय, कारण, कार्य, निश्चय, व्यवहार वगैरह वगैरह जैन सिद्धान्त में तत्त्वज्ञान विषय की विस्तार से चर्चा है तथा आसन, समाधि,१ योग और *अध्यात्म विषय का तो महर्षियों ने बड़े २ ग्रन्थों का निर्माण किया है कि वह उनकी हमेंशां की क्रिया ही थी ।

---

१ इच्छा च शास्त्रं च समर्थता चेत्येषोऽपि योगो मत आदिमोऽत्र
प्रमादतो ज्ञानवतोऽप्यनुष्ठा ऽभिलाषिणो ऽसुन्दरधर्मयोगः
श्रद्धान-बोधोद्धतप्रकृष्टौ हतप्रमादस्य यथाऽऽत्मशक्ति
यो धर्मयोगो वचनानुसारी स शास्त्रयोग परिवेदितव्य ॥

योग तीन प्रकार के हैं, मनयोग वचनयोग कायायोग। इनका निरोध करने को ही वास्तविक योग कहते हैं। इसका ही नाम मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्ति हैं। इनके अलावा क्रियायोग, इच्छायोग शास्त्रयोग, समर्थ्य योग, राजयोग, सहजसमाधियोग, इत्यादि इनके भेद हैं। इन सब में अध्यात्मयोग जो जड़ चैतन्य को यथार्थ भावों में समझ कर चिन्तवन करना उस योग को ही कर्म निर्ज्जरा का हेतु कहा जाता है। अध्यात्मयोग कार्य है और शेषयोग इनके कारण हैं इत्यादि खूब विवेचन करके समझाये।

मैं तो आपको भी सलाह एवं खास तौर पर उपदेश देता हूँ कि आपको किन्हीं भावों के प्रबल पुन्योदय से मनुष्य जन्मादि उत्तम सामग्री मिल गई है इसको सफल बनाने के लिये धर्म आराधन करने में लग जाना चाहिए। क्योंकि संसार में परिभ्रमन करते हुए जीवों को एक धर्म का ही शरण है। यदि जिस प्राणी ने धर्म का आराधन नहीं किया वह सदैव दुःखी ही रहा है १ संसाररूपी दावानल में जलते हुए जीवों के लिये धर्मरूपी उद्यान ही एक विश्राम का स्थान है २ जिस माता पितादि कुटुम्ब के लिये अनर्थ किया जाता है वे दुःख भुक्तने के समय काम नही देंगा पर एक धर्म ही माता पिता है कि दुःख के समय रक्षा कर सकता है ३। संसार में धन धान्य राज सम्पत्ति एवं यशः धर्म से ही मिलता है ४। यदि मनुष्य इस भव और पर

शास्त्रादुपायान् विदुषो महर्षेः शास्त्राऽप्रसाध्यानुभवाधिरोहः।
उत्कृष्ट सामर्थ्य तया भवेद् यः सामर्थ्ययोगं तमुदाहरन्ति ॥
न सिद्धिसम्पादनहेतुभेदा सर्वेऽपि शास्त्राच्छकनीयवोधः।
सर्वज्ञता तच्छ्रुतितोऽन्यथा स्यात् तत्प्रातिभज्ञानगतः स योगः
तत् प्रातिभं केवलवोधभानोः प्राग्वृत्तिकं स्यादरुणोदयाभम्।
'ऋतम्भरा' 'तारक' एवमादिनामानि तस्मिन्नवदन् परेऽपि।

*शुद्धाऽऽत्मतत्त्वं प्रविधाय लक्ष्यममूढ़ दृष्टया क्रियते यदेव।
अध्यात्ममेतत् प्रवदन्ति तज्ज्ञा नचाऽन्यदस्मादपवर्गबीजम् ॥

The enlightened define Adhyatma as everything that is done clearly keeping in view (realising) the unsullied nature of soul. Nothing besides leads to salvation.

"देवतापुरतो वाऽपि जले वाऽकलुषात्मनि। विशिष्ट द्रुमकुंजे वा कर्त्तव्योऽयं सतां मतः"
"पवापलक्षितो यद्वा पुत्रंजीवकमालया। नासाग्रस्थितया दृष्ट्या प्रशान्तेनान्तरात्मना" ॥३८३॥

देखो यह तपस्वी साधु चार चार मास से भूखे प्यासे योगाभ्यास कर रहे हैं।

१ अस्ति त्रिलोक्यामपि कः शरण्यो जीवस्य नानाविधदुःखभाजः ?।
धर्मः शरण्योऽपि न सेव्यते चेद् दुःखप्रहाणं [illegible] ? ॥५७॥

२ संसारदावानलदाहतप्त आत्मैष धर्मोपवनं [illegible]।
क्व तर्हि दुःखानुभवावकाशः ? सौख्यं ततो [illegible] ॥५८॥

३ मातेव पुष्णाति पितेव पाति भ्रातेव च [illegible]।
प्रीणाति धर्मः परिषिञ्चितस्तद् [illegible] ॥५९॥

४ सौभाग्यं धनित्वं [illegible]।
[illegible]

भवमें सुख की इच्छा करता है तो उसको धर्माराधन करना चाहिये, वरन् अधर्म से दुःख ही सहन करना पड़ेगा ५। क्योंकि आम्रका बीज बोने से ही आम्र के फल मिलता है ७ परन्तु बंबुल के बीज बोने से आम्रके फल कभी नहीं मिलता है ६। अतएव सुख का मूल धर्म ही है इन सब बातों में विवेक की जरूरत है यदि विवेकवान पुरुष है तो इस संसार से पार होकर मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है और विवेकशून्य मनुष्य उल्टा संसार को बढ़ा देता है ८। जीव अनादि काल से विषय कषाय आलस्य प्रमाद में ही खुशी एवं मग्न रहा है यदि मोज शोक या मंत्रों से गोष्टी आदि कार्यों में तो खास कामों से भी समय निकाल देता है पर धर्म के लिये कई बहाना करके कहता है कि मुझे समय नहीं मिलता है। यह विवेक-हीनता भवान्तर में कैसे दुःखदाई होगें ऐसे विचार कर धर्म के लिये खास तौर से समय निकाल कर धर्म की आराधना अवश्य करनी चाहिये।

इत्यादि सूरीश्वरजी ने बड़ी ओजस्वी भाषा से धर्म देशना दी कि जिसको श्रवण कर उपस्थित श्रोतागण मन्त्र-मुग्ध बन गये। कारण कि इस प्रकार का धर्म उन्होंने अपनी जिन्दगी भर में कभी नहीं सुना था, अतः वे लोग मन ही मन में सोचने लगे कि दुनिया में तरणतारण कहा जाय तो एक यही महात्मा और इनका कथन किया धर्म ही है क्योंकि इसमें स्वार्थ का तो अंशमात्र भी नहीं है, जो है वह परमार्थ के लिए ही है।

खेद और महाखेद है कि ऐसे महात्मा कई अर्सों से यहां पर विराजमान हैं पर अपन हतभाग्यों ने जाकर कभी दर्शन तक भी नहीं किया हाय! हाय!! एक अमूल्य रत्न को कांच का टुकड़ा समझ कर उनसे दूर रहना सिवाय मूर्खता के और क्या हो सकता है, पर अब गई बात के सोचने से क्या होता है? अब तो इन महात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि आप यहां विराजकर हम अज्ञानियों का उद्धार करावें, इत्यादि सब लोग एक सम्मत होकर सूरीश्वरजी से प्रार्थना की।

हे प्रभो! आज आपने व्याख्यान देकर हमारे अज्ञानरूपी पर्दे को चीर डाला है। हमारी आत्मा अज्ञानरूपी अन्धकार में गोता खा रही थी आपने सूर्य्य सा प्रकाश कर सद्मार्ग बतलाया है।

---

५ इच्छन्ति धर्मस्य फलं तु सर्वे कुर्वन्ति नामुं पुनरादरेण।
नेच्छन्ति पापस्य फलं तु केऽपि कुर्वन्ति पापं तु महादरेण॥ ६१॥

६ इष्यन्त आम्रस्य फलानि चेत् तत् तद्रक्षणादि अविधेयमेव।
एवं च लक्ष्म्यादिफलाय कार्यो कुर्वन्त्यबोधा नहि धर्मरक्षाम्॥ ६२॥

७ सुखस्य मूलं खलुधर्म एवच्छिन्न च मूले क्व फलोपलम्भः।
आरूढ़ शाखा विनि कृन्तनं तद् यद् धर्म मुन्मुच्य सुखानुषङ्गः॥

८ येनैव देहेन विवेक हीना, संसार बीजं परिपोषयन्ति।
तेनैव देहेन विवेकभाजः संसार बीजं परिशोषयन्ति॥

"वयस्यगोष्ठीं विविधां विधातुं मिलेत् कथञ्चित् समयः सदापि।
अल्पोऽवकाशोऽपि न शक्य लाभो देवस्य पूजा करणाय हन्त॥
आत्मोन्नत्ति वास्तविकीं यदीयं समीहतेऽन्तकरण स मर्त्यः।
उपासनार्थं परमेश्वरस्य कथंञ्चिदाप्नोत्यवकाशमेव॥

हे करुणासिन्धो ! आपने केवल हमारे पुत्र को ही जीवन दान नहीं दिया है, पर हम सब लोग मिथ्यात्व समुद्र में डूब रहे थे, आज आप ने हाथ पकड़ कर हमारा उद्धार किया है। जिस धर्म को हम नास्तिक एवं अनीश्वरवादी धर्म समझते थे उसका आपने सत्यस्वरूप समझा कर हमारे चिरकाल के भ्रम को जड़मूल से उखाड़ दिया है। आज हमको एक अमूल्य रत्न की भांति अपूर्व धर्म की प्राप्ति हुई है जिससे हम अपनी आत्मा को कृतार्थ होना समझते हैं।

हे दयासागर ! हमारे शब्दकोष में ऐसा शब्द ही नहीं है कि हम आपके इस उपकार को शब्दों द्वारा व्यक्त कर सकें, तथापि हमारी यही प्रार्थना है कि आप यहां विराजमान रहें और हम अज्ञात लोगों पर दयाभाव लाकर जैनधर्म की शिक्षा-दीक्षा देकर हमारा उद्धार करावें इत्यादि।

इस पर सूरीश्वरजी महाराज ने राजा मन्त्री और उपस्थित लोगों को सम्बोधन करते हुए कहा कि महानुभावो ! इसमें तारीफ और प्रशंसा की क्या बात है ? क्योंकि मैंने जो धर्म देशना दी है इसमें अपने कर्तव्य पालन के अलावा कुछ भी अधिकता नहीं की है। यदि आपने सत्यधर्म को सत्य समझ लिया है तो इस पवित्र जैनधर्म को स्वीकार करने में अब आपको क्षण मात्र भी विलम्ब नहीं करना चाहिये। कारण; धर्म का कार्य शीघ्रातिशीघ्र ही करना चाहिये।

बस, फिर तो देरी ही किस बात की थी। राजा प्रजा ने अपने गले के जनेऊ और कंठियें तोड़ तोड़कर सूरीश्वरजी के चरणों की ओर डाल दिये। बाद उन धर्मजिज्ञासु मुमुक्षुओं की उत्कंठा एवं उत्साह को देख कर सूरीश्वरजी ने सबसे पहिले इस भव या पूर्वभवों में मिथ्यात्वादि पाप कर्म के आचरण किये थे उन सबकी आलोचना करवाई, बाद सम्यक्त्व धारण करने में जो क्रिया विधान करवाना जरूरी था वह विधि विधान करवाने में प्रवृत्तमान हुए।

जब जीवों के कल्याण का समय नजदीक आता है तब निमित्त कारण भी सदा अच्छे से अच्छे बन जाते हैं। इधर तो बड़े ही उत्साह के साथ विधि विधान हो रहा था। उधर जयध्वनि के नाद से गगन गूंज उठा। जनता आकाश की ओर ऊर्ध्व दृष्टि का प्रसार कर देखने लगी तो आकाश से कई विमान आते हुए दीख पड़े। उन विमानों के अन्दर कई तो विद्याधरों के विमान थे जो सूरीश्वरजी के दर्शनार्थ आ रहे थे और कई देवदेवांगनायें भी सूरीश्वरजी की भक्ति से प्रेरित होकर सूरिजी के चरण कमलों का स्पर्श एवं वन्दन करने को आ रहे थे। जब उन आगन्तुकों ने देखा कि राजा प्रजा जो महामिथ्यात्व में फंसे हुये थे, सूरीश्वरजी के शिष्य बनने की तैयारी कर रहे हैं तो उनको बड़ा भारी हर्ष हुआ और उन्हें धन्यवाद दिया क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीवों को इससे अधिक क्या खुशी हो सकती है कि आज ये मिथ्यात्वी लोग सूरीश्वरजी के उपदेश से अपने स्वधर्मी बन रहे हैं।

समयज्ञ देवी चक्रेश्वरी ने पार्श्वदेव का थाल लाकर सूरिजी महाराज के सामने रख दिया, सूरिजी ने वर्द्धमान विद्यादि से उसको अभिमंत्रित कर सबसे पहिले राजा उपलदेव के सिर पर [illegible] । इस प्रकार [illegible] उहड़ के सिर पर [illegible] हाथों से लेकर सूरिजी ने वासक्षेप की [illegible] [illegible] [illegible] सूरिजी

महाराज ने यथाक्रम उन राजा प्रजा पर ऋद्धि सिद्धि वृद्धि संयुक्त वासक्षेप डालकर करीबन् सवा[1]लक्ष क्षत्रियों को जैन धर्म में दीक्षित किये।

तत्पश्चात उन नूतन जैनों एवं विद्याधर और देवदेवांगनाओं को थोड़ी पर सारगर्भित धर्मदेशना दी जिसका उपस्थित श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव पड़ा। तत्पश्चात सभा विसर्जन हुई।

अहा ! हा !! आज उपकेशपुरनगर में सर्वत्र हर्ष छा गया है और घर २ में खुशियां मनाई जा रही हैं। जैनधर्म और आचार्य रत्नप्रभसूरिजी महाजाज की जयध्वनि से गगन गूंज उठा है। घर घर में धवल मंगल के गीत गाये जा रहे हैं। यह शुभ दिन था श्रावण वद १४ का।

जब कि इस वितीकार को वहां के मठधारी पाखंडियों ने देखा एवं सुना तो उन लोगों को बड़ा ही दुःख हुआ। क्यों न हों ? उनके हाथ की सबकी सब बाजी ही चली गई। अतः उन लोगों ने खूब हुल्लड़ मचाया। फिर भी उनका प्रयत्न सर्वथा निष्फल भी नहीं हुआ। मांस मदिरा एवं व्यभिचार के लोलुप शूद्रादि कई लोग उन पाखंडियों के पक्षकार बन उनके उपासक रह भी गये। अतः वे अपने पैर आगे बढ़ाने लगे।

एक दिन उन मठाधीशों के अग्रेसर सब लोग मिल कर राजा उत्पलदेव की राजसभा में आये और राजा को कहने लगे कि नरेन्द्र ! आप जानते हो कि कुल परम्परा से चले आये धर्म को बिना सोचे समझे एकदम छोड़ देने से जीवों की नरक गति होती है। यदि आपको ऐसा ही करना था तो पहिले उन सेवड़ों का हमारे साथ शास्त्रार्थ तो कराना था कि विश्व में सच्चा धर्म कौन है और कौनसे धर्म के पालन करने से जीवों का कल्याण होता है इत्यादि।

राजा ने कहा कि कुल परम्परा और धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है। क्या किसी परम्परा ने अन्याय अकृत्य किया हो तो उनकी संतान भी वही कार्य करती रहे ? केवल मैंने ही क्यों पर मेरे पितामह राजा जयसेन ने भी मिथ्या धर्म का त्याग कर जैनधर्म को स्वीकार किया था तो मैंने क्या अन्याय किया ? मैंने तो अपने पूर्वजों का ही अनुकरण किया है। इतना ही क्यों पर आपके और इन महात्माओं के धर्म की तुलनात्मक

---

१ आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि वैशाखमास में उपकेशपुर नगर में पधारे थे वहां मासकल्प करके आसपास के प्रदेश में भ्रमण किया तथा वापिस उपकेशपुर पधारे। और चतुर्मास भी वहीं किया इस अर्से में मुनियों को कहीं पर भी शुद्धआहार पानी का जोग नहीं मिला था, अतः वे तपस्या करते ही रहे। उस कठोर तपश्चर्या और परोपकार के लिये हजारों कठिनाइयाँ सहन की थीं, उसका जनता पर पड़ने को ही था, परंतु इसमें कुछ निमित्त कारण की भी आवश्यकता अवश्य । बस, श्रावण कृष्णा १३ के दिन मंत्रीपुत्र को सांप का काटना और इस कार्य में देवी की प्रेरणा का होना। बस, सूरिजी ने समय को अनुलक्ष में रख कर एवं जनता को विश्वास दिलाने को इधर तो थोड़ा गरम पानी मंगवाकर अपने अंगुष्ठ प्रक्षालन का जल उस मृतप्राय मंत्रीपुत्र पर छिड़काया तो वह निर्विष हो गया, उधर दूसरे दिन राजाप्रजा को धर्म-देशना देकर उन सबको श्रावणकृष्णा १४ को जैन-धर्म की दीक्षा शिक्षा दी। उन राजा, मंत्री और क्षत्रियों की संख्या पट्टावलीकारों ने सवालक्ष की लिखी है। अतः इस उपकार के बदले में ओसवालों को चाहिये कि श्रावणकृष्णा १४ को अपनी समाज का जन्म-दिन समझ कर सर्वत्र महोत्सव मनावें।

दृष्टि से खूब विवेचना एवं परीक्षा करके ही सत्यधर्म को स्वीकार किया है। दूसरे आप शास्त्रार्थ का व्यर्थ ही घमंड क्यों करते हो ? मेरे खयाल से तो जैसे शेर के सामने गीदड़ और सूर्य के सामने दीपक कुछ गिनती में नहीं वैसे ही जैनधर्म के सामने आप हैं। यदि आपके दिल में इस बात का घमंड है तो अब भी क्या हुआ है, तैयार हो जाइये पर इस बात को पहिले सोच लीजिये कि कहीं इन रहे सहे शूद्र लोगों को भी न खो बैठें ? फिर भी उन पाखण्डी वाममार्गियों का अत्याग्रह होने से सत्य के उपासक महाराजा उत्पलदेव एवं मंत्रीऊहड़देव ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर शास्त्रार्थ करवाने का निश्चय कर लिया और सूरीश्वरजी महाराज से प्रार्थना की, पर सूरिजी का तो यह काम ही था कि उपदेश एवं शास्त्रार्थ कर उन्मार्ग जाते हुए जीवों को सन्मार्ग पर लाना।

राजा के आदेशानुसार ठीक समय पर सभा हुई और इधर से तो सूरीश्वरजी अपने शिष्य-मंडल के साथ सभा में पधारे एवं भूमिपमार्जन कर अपनी कंवली का आसन लगा कर विराज गये तथा उधर से वे पाखण्डी लोग भी खूब सजधज कर बड़े ही घमंड एवं आडम्बर के साथ आये। जब पहले से ही सूरिजी महाराज भूमि पर विराजे थे तो उनको भी भूमि पर आसन लगाकर बैठना पड़ा। सभा-स्थान राजा प्रजा से खचाखच भर गया था शास्त्रार्थ सुनने की सबके दिल में उत्कण्ठा थी।

प्रश्न—वाममार्गियों ने कहा कि जैनधर्म नास्तिक धर्म है ?

उत्तर—सूरिजी ने कहा कि नास्तिक उसे कहा जाता है जो स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप आत्मा, कर्म, मोक्ष और ईश्वरादि तत्त्वों को न माने, पर जैनधर्म तो इन सब बातों को यथार्थ मानता है अतः जैनधर्म नास्तिक नहीं पर कट्टर आस्तिक[1] धर्म है।

प्र०—जैनधर्म प्राचीन नहीं पर अर्वाचीन धर्म है।

उ०—शायद इस प्रदेश में आपने अपनी जिन्दगी में जैनधर्म को अभी ही देखा होगा, फिर भी जैनधर्म अर्वाचीन नहीं पर प्राचीन धर्म है जिसके प्रमाण वेदों एवं पुराणों में मिलते हैं जिन वेदों को व्यासकृत एवं ईश्वरकृत कहा जाता है, उन वेदों के पूर्व भी जैनधर्म विद्यमान था तभी तो वेदों और पुराणों में जैनधर्म के विषय उल्लेख किया गया है।

प्र०—जैनधर्म ईश्वर, और ईश्वर को जगत का कर्ता नहीं मानता है।

उ०—ईश्वर को जिस आदर्श रूप में जैनधर्म मानता है। इस प्रकार शायद ही कोई दूसरा मत मानता हो, क्योंकि जैनधर्म ईश्वर को सच्चिदानन्द, आनन्दघन, निरंजन, निराकार, [illegible] केवलज्ञान, कैवल्य दर्शनादि, अनंतगुणसंयुक्त और स्वगुणभुक्ता, अनंतगुण ऐश्वर्य सहित को ही ईश्वर मानता है। हाँ जैनधर्म का सिद्धान्त ईश्वर को जगत का कर्त्ता नहीं मानते हैं और यह है भी यथार्थ [illegible]. ईश्वर सकलकर्मोपाधी रहित होने से जगत के साथ उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है कि वे जगत् का कर्त्ता [illegible]

१—आत्मास्ति कर्मास्ति परभवोऽस्ति मोक्षोऽस्ति तत्साधनहेतुरस्ति।
इत्येवमन्तःकरणे विधेया सद्भावनाः सुविचारवद्भिः।
परमेश्वरं [illegible] मम आत्मैव [illegible] न च करोति [illegible]

बन सके। आपने यह भी कभी सोचा होगा कि ईश्वर को जगत का कर्त्ता मानने से ईश्वर की ईश्वरता रहती है या कुम्भकार के सदृश्य उन पर कई प्रकार की आपतें आ जाती हैं। भला ! आप ही बतलाइये कि यदि ईश्वर जगत का कर्त्ता हर्ता है तो सृष्टि रचने में ईश्वर उपादान कारण है या निमित्त कारण ?

* जैनधर्म की प्राचीनता के विषय इस समय भी अनेक प्रमाण मिल सकते हैं जैसे कि—

ॐ नमोऽर्हन्तो ऋषभो "यजुर्वेद"

ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा "यजुर्वेद"

ॐ त्रैलोक्यप्रतिष्ठितानां,चतुर्विंशति तीर्थंकराणां। ऋषभादिवर्द्धमानान्तानां,सिद्धानां शरणं प्रपद्ये। "ऋग्वेद"

ॐ पवित्रं नग्न मुपवि (ई) प्रसामहे येषां नग्ना (नग्नेय) जातिर्येषां वीरा। "ऋग्वेद"

ॐ नग्नंसुधीरंदिग्वाससंब्रह्मगर्भंसनातनंउपैमिवीरंपुरुषमर्हतमादित्यवर्णं तमसः पुरुस्तात् स्वाहा। "ऋग्वेद"

नाभिस्तुजनयेत्पुत्रंमरुदेव्यां मनोहरम्। ऋषभं क्षत्रियश्रेष्ठं, सर्वक्षत्रस्यपूर्वकम्॥
ऋषभाद्भारतोजज्ञे,वीरपुत्रशताग्रज। राज्ये अभिषिच्यभरतं, महाप्रव्रज्या माश्रितः "ब्रह्माण्ड पुराण"

युगे युगे महापुण्यं दृश्य ते द्वारिकापुरी। अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभासशशिभूषणः
रेवताद्रौजिनोनेमिर्युगादिर्विमलाचले। ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्यकारणम् "महाभारत"

दर्शयन्वर्त्मवीराणं, सुरासुरनमस्कृतः। नीति त्रयस्य कर्ता यो, युग्गादौप्रथमोजिनः॥
सर्वज्ञ सर्वदर्शी च सर्वदेवनमस्कृतः। छत्रत्रयीभिरापूज्यो मुक्ति मार्गम् सौ वदन्॥
आदित्य प्रमुखाः सर्वेबद्धांजलिभिरिशितुः। ध्यायाँति भवतो नित्यं, यदंघ्रियुगनीरजम्॥
कैलास विमले रम्ये, ऋषभोयं जिनेश्वरः। चकारस्वावतारं यो सर्वः सर्वगतः शिवः॥ "शिवपुराण"

अष्टषष्टिपुतीर्थेषु,यात्राया यत्फलं भवेत्। आदिनाथस्यदेवस्य,स्मरणेनापितद्भवेत्॥ "नागपुराण"

नाहं रामो नमे वांच्छा, भावेषु च न मे मनः। शान्तिमास्थातु मिच्छामि, चात्मन्येव जिनोयथा॥
योग वासिष्ठ प्रथम वैराग्य प्रकरण

नम...र जैनो, जितक्रोधो, जितामयः दक्षिणा मूर्ति सहस्त्रनाम ग्रन्थ

तत्रदर्शनेमुख्यशक्ति रि ति च त्वं ब्रह्मकर्मेश्वरी कर्त्ताऽर्हन् पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वंगुरुः॥
दुर्वासा ऋषिकृत महिम्न स्तोत्र

कुण्डसनाजदद्धात्री,वुद्धगाताजिनेश्वरी। जिनमाताजिनेन्द्रा च,शारदाहंसवाहिनी भवानी सहस्त्रनाम ग्रन्थ

कुलादिबीजंसर्वेषां, प्रथमोविमलवाहनः। चक्षुष्मांश्चयशस्वी,वाभिचन्द्रोथ प्रसंनेजित्॥
मरुदेवि च नाभिश्च, भरतेः कुल सत्तमः। अष्टमो मरुदेव्यां तु, नामे जतिउरुक्रमः॥
दर्शयन्वार्त्मवीराणं, सुरासुरनमस्कृतः। नीति त्रयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमोजिनः॥ मनुस्मृति
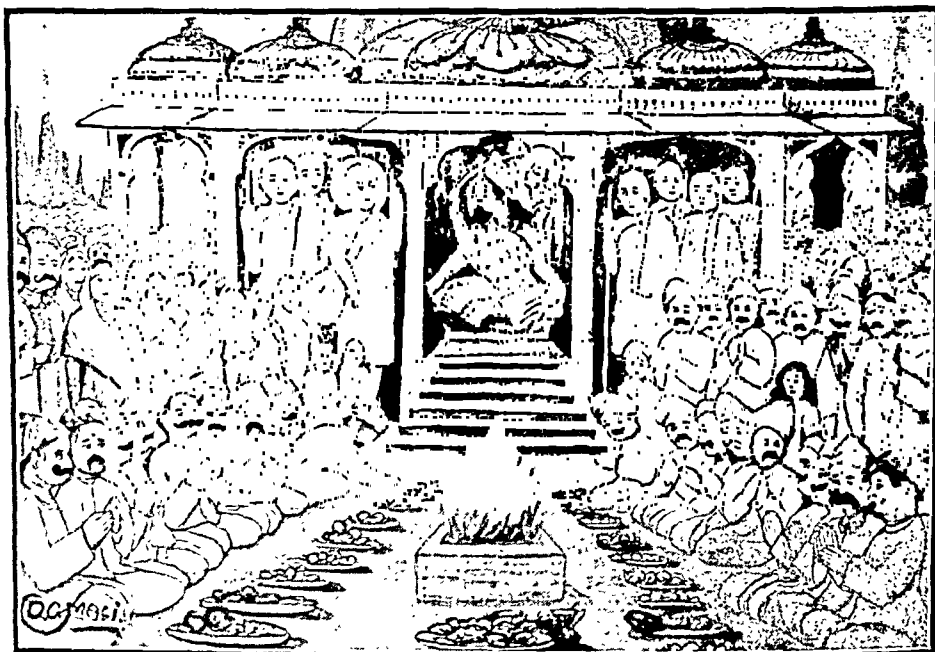
नौरात्रि के समय सूरिजी के साथ भक्त लोग पूजा के लिये देवी के मंदिर में गये । देवी ने कड़ड़-मड़ड़ (मांस मदिरा) न देख कर कोप किया पर सूरिजी ने हित वचनों से देवी को प्रतिबोध देकर सम्यक्त्व धारणी बनाई । और भी बहुत लोगों ने जैन धर्म स्वीकार किया । पृष्ठ ९८

मंत्री उहड़ की धनवती गाय जंगल में जाती है निश्चित स्थान पर उसका दूध स्वयं झर जाता है जहाँ चामुंडा देवी गाय का दूध और बालू रेति से महावीर की मूर्ति बना रही थी । पृष्ठ १०२

जैसे मिट्टी के वरतन को वनाने में मिट्टी उपादान कारण और कुम्भकार निमित्त कारण है। यदि आप कहोगे कि ईश्वर उपादान कारण है क्योंकि सृष्टि ईश्वरमय है तो सृष्टि में भले बुरे, सुशील, व्यभिचारी, दयावान, निर्दय, साहूकार और चोर भी ईश्वर ही है ऐसा मानना पड़ेगा यदि कहो कि ईश्वर निमित्त

आरोहस्व रथे पार्थ गांडीवंच कदे करु । निर्जितामेदिनीमन्ये, निर्ग्रन्था यदि सन्मुखे ॥
महाभारत (तत्त्व निर्णयप्रसाद)

स्पष्ट्वाशत्रुजयंतीर्थं, नत्वारैवतकाचलम् । स्नात्वा गजपदे कुण्डे, पुनर्जन्म न विद्यते ॥
परमात्मानमात्मानं, लसत्केवल निर्मलम् । निरंजन निराकारं ऋपभन्तु महाऋपिम् ॥ स्कन्ध पुराण
अकारादि हकारातं, मूर्द्धाधोरेफसंयुतम् ॥ नाद विन्दु कलाक्रान्तं, चन्द्रमण्डल सन्निभम् ॥
एतद्देविपरंतत्त्वं, यो विजानाति तत्त्वतः । संसार वन्धनं छित्वा, स गच्छेत्परमांगतिम् ॥
दशभिर्भोजितैर्विप्रः, यत्फलं जायते कृते । मुनेरर्हत्सुभक्तस्य तत्फलं जायते फलो ॥ नागपुराण
पद्मासनसमासीनः, श्याममूर्तिर्दिगम्वरः । नेमिनाथःसिवोथैवं नामचक्रेस्य वामनः ।
कलिकाले महाघोरे, सर्वपाप पणाशकः । दर्शनात्स्पर्शना देव, कोटियज्ञ फलप्रदः ॥ प्रभासपुराण
वामनेन रैवते, श्रीनेमिनाथाग्रे, वलिवन्धन सामर्थ्यार्थं,तपस्तेपे वामनावतार
आदित्य त्वमसि आदित्यासद आसीत् । अस्तभ्राद्यॉं वृपभोतरिक्षं जमिमीते वरीमाणं ।
पृथिव्याः आसीत् विश्वा, भुवनानि सम्राड्विश्वे तानिवरुणस्यव्रतानि ॥ ऋग्वेद
यति धामानि हविषा, यजन्तिता तें विश्वापरि । भूरस्तुयज्ञ गयस्फानं प्ररणः सुवीरो वीरहा प्रचार सोमादुर्यात् ॥ ऋग्वेद
समिद्धस्य परमहसोऽग्रे, वन्देतवश्रियंवृपभोगम्भवा नसिममध्वरेष्विध्यस ऋग्वेद
अर्हता ये सुदानवो, नरोअसो मिसा स प्रयज्ञ । यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ऋग्वेद
अर्हन्विभर्पि सायकानि, धन्वार्हन्निष्कंयजतं । विश्वरूपम् अर्हन्निदंदयसेविश्वंभवभुवं । ऋग्वेद
दीर्घायुत्वा युवलायुर्वा शुभ जातायु ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा । वामदेव शान्त्यर्थं मनुविधीयते सास्माकं अरिष्टनेमि स्वाहा ॥
ऋषभंपवित्रंपुरुहूतमध्वरं यज्ञेषुयज्ञपरमपवित्रं, श्रुतधरं यज्ञंप्रतिप्रधानंऋतुयजनपशुमिंद्र माहवेति स्वाहा ॥
× × ज्ञातारमिन्द्रंऋपभंवदन्ति, अतिचारमिन्द्रं तमरिष्टनेमिं, भवेभवे सुभवं सुपार्श्वमिन्द्र हवेतुशक्रं अजितंजिनेन्द्रं तद्वर्द्धमानं पुरुहूतमिंद्रं स्वाहा ॥ दधातु दीर्घायुस्त्वाय वलायवर्चसे. सुप्रजास्त्वाय रक्ष रक्ष रिष्टनेमि स्वाहा ॥ [illegible]
ऋषभ एव भगवान् ब्रह्मा, भगवताब्रह्मणास्वयमेवा । चीर्णानि ब्रह्माणि [illegible] ॥ [illegible]
ॐ नमो अर्हतो ऋषभो ॐ ऋषभः पवित्रं पुरुहूत [illegible]
शत्रुंजयतं पशुरिंद्र माहुरिति स्वाहा ॥ ॐ [illegible]
मिंद्र माहुरिनित्वा ॥ ॐ नम सुवीरं [illegible]

कारण है तो सृष्टि का उपादान कारण जो जड़चैतन्य वह कहाँ से आये ? और इसके पूर्व यह किस स्वरूप में थे कि जिस उपादान को लेकर ईश्वर ने सृष्टि की रचना की इत्यादि सूरीश्वरजी के वचन सुन कर पाखण्डियों की बोलती बंद हो गई वे विचारे इसका उत्तर ही क्या दे सकते ? कारण उन्होंने तत्त्वज्ञान को तो कभी स्पर्श हीं नहीं किया था।

वर्णं तमसः पुरस्तात् स्वाहा ॥ याजस्यनु प्रसव आवभूवेमा च विश्वभुवनानि सर्वतः। स नेमिराजा परियति विद्वान् प्रजां पुष्टि वर्धय मानो अस्मै स्वाहा ॥ ऋग्वेद

आतिथ्यरूपंमासरं महावीरस्यनग्न हु । रुपामुपास दामेत तिथौ रात्रोः सुरासुताः ॥ ऋग्वेद

ककुभः रुपं ऋषभस्य रोचते, बृहच्छुकः शुक्रस्य पुरोगा, सोमसामस्यपुरोगाः पत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वागृह्णामि तस्मै तं साम सोमाय स्वाहा। स्वास्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्तिन स्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वास्तिनो बृहस्पतिर्द धातु ॥ ऋग्वेद

अप्पाददिमेयवामन, रोदसीइमाच विश्वा भुवनानि मन्मना यूथेन निष्टा वृषभो विराजास ॥ ऋग्वेद

सत्राहणंदाघपितुम्रमिध्धं, महामपारं वृषभं सुवज्रंहं तापोवत्राहा सनितो तं वाजं। ऋग्वेद

नयेदिवःपृथिव्याअंतमायुर्नमायाभिर्धनदापर्यभुवन युजंवज्रवृषभश्चक्रे । ऋग्वेद

इमस्तोमअर्हतेजातवेदसे रथंइवसंमहेयममनीपया, भद्राहि न प्रमंतिअस्यसंसदि । ऋग्वेद

तरणिरित्सपासतिवीजंपुरं ध्याः युजाआवइन्द्र पुरुहूतं नमोंगरा नेमि तष्टेव शुद्धं । ऋग्वेद

उपरोक्त प्रमाणों से कितनेक प्रमाण तो आज भी उपलब्ध हैं परन्तु कई प्रमाण स्यात् इस समय वेदों में नहीं मिलते हैं इसका कारण यह हो सकता है कि वेदों की अनेक शाखाओं तथा उन शाखाओं की मंत्रसंहिताओं में भी परस्पर अंतर है जैसे शुक्लयजुर्वेद कृष्णयजुर्वेद आदि वेदों की शाखाओं में भी कई अंतर है अतः जब तक कि समस्त शाखाओं की मंत्रसहिताओं को न देख ली जाय तब तक प्राचीन जैनशास्त्रों में लिखे हुये उपरोक्त मन्त्रों को असत्य नहीं कहा जा सकता है।

पुस्तकों में न्यूनाधिक करने की पद्धति तो उन लोगों में पहिले से ही चली आ रही है। मनुस्मृति के श्लोकसंख्या आर्यसमाजी बहुत थोड़ी बतलाते हैं। शेष श्लोकों को जाली एवं प्रक्षिप्त कहते हैं और सनातन धर्मी सम्पूर्ण मनुस्मृति को मनुकृत मानते हैं। इसी प्रकार गीता के मूल ७ श्लोक कहते हैं जिसको बाद में बढ़ा कर ७० श्लोक कर दिये और आज उनके ७०० श्लोक कहे जाते हैं तथा सत्यार्थप्रकाश किताब में आर्यसमाजी जो चाहते हैं वह स्वेच्छाअनुकूल काटछांट कर देते हैं इत्यादि इस विषय में अधिक जानने वाले जिज्ञासुओं को शंकाकोष, पुराणोंकी पोल, पुराण परिक्षा और पुराणलीला आदि ग्रंथों को देखना चाहिये। इनके अलावाअज्ञानतिमिरभास्कर नामक ग्रंथ भी इस विषय पर काफी प्रकाश डाल सकता है उनको भी देखना खास जरूरी है।

बाद यज्ञ के विषय के प्रश्न हुये जिसको भी सूरिजी ने इस कदर से समझाये कि राजा प्रजादि उपस्थित लोगों की उस निष्ठुर हिंसा प्रति घृणा और अहिंसा की तरफ विशेष रुचि होने लग गई।

इस शास्त्रार्थ में भी सूरीश्वरजी का ही पक्ष विजयी रहा और जैनधर्म की जयध्वनि के साथ सभा विसर्ज्जन हुई । बस ! उपकेशपुर में जहां देखो वहां जैनधर्म और आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज की प्रशंसा एवं गुणानुवाद हो रहा था ।

आचार्यश्री का व्याख्यान हमेशा होता था । उन नूतन जैनों के लिये जिस जिस विषय की आवश्यकता थी उसी विषय का व्याख्यान सूरिजी महाराज दिया करते थे। आचार्यश्री इस बात को सोच रहे थे कि इन लोगों को जैनी तो बना दिया पर यह किस प्रकार से सदैव के लिये सच्चे जैन बने रहें इत्यादि। आखिर सूरिजी ने यह निश्चय किया कि इन लोगों के लिये एक ऐसी सुदृढ़ संस्था कायम करवा दी जाय कि जिसके जरिये यह लोग तथा इनकी वंश परम्परा जैनधर्म की उपासना करते रहें। सूरिजी महाराज ने अपने विचारों को कार्यरूप में परिणित करने के लिए राजा उत्पलदेव के अध्यक्षत्व में एक सभा की और सूरिजी ने अपने विचार सभा के सामने उपस्थित किये जिसको सब लोगों ने प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य किया और आचार्यश्री ने उन नूतन जैन समूह के लिये—

"महाजन संघ"

नाम से संस्था स्थापन करवादी। जब से उपकेशपुर के जैन-महाजनों के नाम से कहलाने लगे। इस संस्था के कायम करने में सूरिजी महाराज के निम्नलिखित उद्देश्य ही मुख्य थे।

(१) जिस समय प्रस्तुत संस्था स्थापित की थी उसके पूर्व उस प्रान्त में क्या राजनैतिक; क्या सामाजिक, और क्या धार्मिक सभी कार्यों की शृंखलायें टूट कर उनका अत्याधिक पतन हो चुका था। अतः इन सबका सुधार करने के लिये ऐसी एक संगठित संस्था की परमावश्यकता थी, और उसी की पूर्ति के लिये आचार्यश्री का यह सफल प्रयास था।

(२) संस्था कायम करने के पूर्व उन लोगों में मांस मदिरा का प्रचुरता से प्रचार था। यद्यपि आचार्यश्री ने बहुत लोगों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा देने के समय इन दुर्व्यसनों से मुक्त कर दिये थे। तथापि सदा के लिये इस नियम को दृढ़तापूर्वक पालन करवाने तथा अन्यान्य समाजोपयोगी नये नियमों को बनवा कर उनका पालन करवाने के लिये भी एक ऐसी संस्था की आवश्यकता थी जिसको सूरिजी ने पूर्ण करने का प्रयत्न किया था।

(३) नये जैन बनाने पर भी अजैनों के साथ उनका व्यवहार बंद नहीं करवाया था क्योंकि किसी भी क्षेत्र को संकुचित बनाना आप पतन का प्रारंभ समझते थे। पर किसी संगठित संस्था के अभाव में वे नये जैन, शेष रहे हुए आचार-पतित अजैनों की संगति कर भविष्य में पुनः पतित न बन जावें, इस कारण से भी एक ऐसी संस्था की आवश्यकता थी जिसकी सूरिजी ने पूर्ति की।

(४) ऐसी संस्था के होने पर अन्य स्थानों के अजैनों को जैन बनाकर संस्था में सम्मिलित कर लिया जाय तो नये जैन बनाने वालों को और बनने वालों को बड़ी सुविधा रहे, इसलिये भी ऐसी एक सुदृढ़ संस्था की जरूरत थी। जिसके लिये ही सूरीश्वरजी का यह सफल प्रयत्न था।

(५) ऐसी संस्था होने से ही संगठन वल उत्तरोत्तर वढ़ता गया और संगठन बल से ही धर्म या समाजोन्नति के क्षेत्र में वे लोग आगे वढ़ते गये। अतः ऐसी संस्था होने की जरूरत थी।

(६) संस्था का ही प्रभाव था कि जो महाजन संघ लाखों की तादाद में था वह करोड़ों की संख्या तक पहुँच गया।

(७) ऐसी सुदृढ़ संस्था के अभाव से ही पूर्व आदि प्रान्तों में जो लाखों करोड़ों लोग जैनधर्म को छोड़ कर मांसाहारी वन गए थे। यदि उस समय वहां भी ऐसी संस्था होती और उसका कार्य ठीक तौर पर चलता तो आज "सराक" जैसी जैनधर्म पालन करने वाली जातियों को हम अपने से बिछुड़ी हुई कभी नहीं देखते, अतएव ऐसी संस्था का होना अत्यन्त आवश्यक था।

(८) संस्था का ही प्रभाव है कि आज "महाजन संघ" भले ही अल्प संख्यक हो, पर वह जैन धर्म को अपने कंधे पर लिए समग्र संसार के सामने टक्कर खा रहा है अर्थात् उसे जीवित रख सका है। यह "महाजन संघ" वनाने का ही शुभ फल है इत्यादि—

सूरिजी महाराज ने जिस लाभको लक्ष्य में रख 'महाजन संघ' नामक संस्था को जन्म दिया था वे सबके सब सिद्ध हुए आज भी हमारी दृष्टिगोचर हो रहे है धन्य है जैनधर्म को जीवित रखने वाले सूरिपुंगव को

सूरिजी महाराज जिस उद्देश्य से अनेक आपत्तियों को सहन कर मरुधर में पधारे थे उन्होंने अपने कार्य्य में खूब सफलता हासिल करली। आज तो उपकेशपुर में जैनधर्म का झंडा फहरा रहा है।

आचार्यश्री उन नूतन श्रावकों को जैनधर्म का स्याद्वाद—तात्त्विक ज्ञान एवं आचार व्यवहार क्रिया काण्ड वगैरह ज्ञानाभ्यास करवा रहे थे। विशेषतया अहिंसा परमोधर्मः के विषय में उनके संस्कार इस कदर जमा रहे थे कि जीवों को मारना तो क्या पर किसी जीव को दुःख पहुँचाना भी एक जवरदस्त पाप है इत्यादि सम्यक् ज्ञान एवं धर्म का प्रचार कर रहे थे।

इसी प्रकार श्रावक के वारह व्रतों का भी उपदेश कर रहे थे। राजा उत्पलदेव और मंत्री उहड़ादि समझदार लोग ज्यों-ज्यों सूरिजी का उपदेश एवं जैनधर्म की विशेषताएँ सुनते थे त्यो-त्यों उनको बड़ा भारी आनन्द आता था।

इस प्रकार आनन्द में समय जा रहा था। पर्यूषणों का समय नजदीक आया तो जनता में और भी उत्साह वढ़ गया। सूरिजी की आज्ञानुसार पर्व का खूब आराधन किया। कारण, जैनों में आत्माराधन में से बड़ा पर्व पर्यूषण ही है। इधर तो सूरिजी महाराज का उपदेश उधर वे उत्साही श्रावक गण, फिर तो ना ही क्या था ? आनन्दपूर्वक पर्वाराधन किया।

जब आश्विन मास आया तो इधर तो सूरिजी ने आंबल की ओलियों और सिद्धचक्र आराधन का उपदेश दिया, उधर पूर्वसंस्कारों की प्रेरणा से लोगों को देवीपूजन याद आ गया। वे लोग विचार करने लगे कि इधर तो सूरिजी कह रहे हैं कि जीव हिंसा नहीं करना और उधर है देवी चामुण्डा। यदि इसको बलि न दी जाय तो अपने को सुख से रहने नहीं देगी।

इस बात का विचार कर सब लोग एकत्र हो पूज्य आचार्य महाराज की सेवा में आये और हाथ जोड़ अर्ज करने लगे कि हे पूज्यवर ! यहां की देवी निर्दय होने के कारण भैंसे और बकरे का बलिदान लेती है और उन्हें मारने के समय आप कौतूहल से प्रसन्न होती है। रक्तांकित भूमि पर आर्द्र चर्म देख

खुश होती है और निष्ठुर हृदय वाले उसके भक्त उसे प्रसन्न करने के लिये ऐसे जघन्य कार्य्य करते हैं। इस पर आचार्यश्री ने कहा कि यह कार्य धर्म के प्रतिकूल एवं महावीभत्सतापूर्ण हैं, अतः आप जैसे धर्मात्माओं को उस देवी के मंदिर में नहीं जाना चाहिये। इस पर भक्त लोगों ने कहा कि हे प्रभो ! यदि हम उस देवी की इस प्रकार पूजा न करें तो वह देवी हमारे सब कुटुम्बों का नाश कर डालेगी। इस पर सूरिजी ने कहा कि तुम क्यों घबराते हो। मैं स्वयं तुम्हारी रक्षा करूंगा। बस! उन भक्त लोगोंने सूरिजी पर विश्वास कर देवी के मंदिर जाना एवं पूजा करना बंद कर दिया। जब देवी ने इस बात को अपने ज्ञान से जाना तो वह प्रत्यक्ष रूप से आचार्य्यश्री के पास जाकर कहने लगी कि हे प्रभो ! मेरे सेवकों को मेरे मंदिर में आने व पूजन करने से रोक दिया यह आपने ठीक नहीं किया है ? सूरिजी ध्यान में थे अतः कुछ भी उत्तर नहीं दिया इसलिये देवी का क्रोध इतना बढ़ गया कि वह आचार्य्यश्री को किसी प्रकार से कष्ट पहुँचाना चाहने लगी। अहा ! क्रोध कैसा पिशाच है कि जिसके वश मनुष्य तो क्या पर देव देवी भी अपना कर्त्तव्य भूल कर वे मान बन जाते हैं खैर देवी ने एक परोपकारी आचार्य्य को कष्ट देने का निश्चय कर लिया। किन्तु आचार्य्य देव सदैव अप्रमत्तावस्था में रहते थे एवं आप श्रीमान इतने प्रभावशाली थे कि उनके अतिशय प्रभाव के सामने देवी का कुछ भी वश नहीं चला। फिर भी एक समय का जिक्र है कि आचार्य्यश्री अकाल के समय स्वाध्याय-ध्यान रहित कुछ प्रमाद योनि निद्राधीन थे। उस समय देवी ने उनकी आंखों में वेदना उत्पन्न करदी। सावधान होने पर आचार्य्यश्री ने जान लिया कि यह तकलीफ देवी ने ही पैदा की है। खैर ऐसा समझ लेने पर भी वे ध्यानस्थ हो गये। बाद चक्रेश्वरी आदि कई देवियें सूरिजी के दर्शनार्थ आई और सूरिजी के नेत्रों में वेदना देख अपने ज्ञान से सब हाल जान लिया और देवी चामुंडा को बुलायी एवं सख्त उपालम्भ दिया। अतः देवी प्रत्यक्ष रूप होकर सूरिजी से कहने लगी कि यह वेदना मैंने ही की है और उसको मैं ही मिटा सकती हूँ। परन्तु आप मेरी प्रिय वस्तु जो करड़-मरड़ है वह मुझे दिला दीजियेगा। मैं शीघ्र ही इस वेदना को दूर कर दूंगी और यावच्चंद्रदिवाकर आपकी किंकरी होकर रहूँगी। यह सुन कर आचार्य्यश्री ने स्वीकार कर लिया कि मैं तुझे करड़ मरड़ दिला दूंगा। इस पर देवी संतुष्ट होकर सूरिजी की वेदना का अपहरण कर तथा चक्रेश्वरी देवी का सत्कार सन्मान कर अपने स्थान पर चली गई। बाद चक्रेश्वरी आदि देवियाँ भी सूरिजी को वन्दन कर अदृश्य हो गई।

जब सूरिजी के भक्त-गण श्रावकों ने सुना कि सूरिजी के नेत्रों में बीमारी हुई है और इसका कारण शायद देवी चामुंडा की पूजा बन्द करवाना ही तो न हो ? अतः सुबह होते ही भक्त-लोगों ने सूरिजी के पास आकर नम्रता पूर्वक प्रार्थना की कि हे प्रभो ! यह चामुंडा आप जैसे समर्थ महात्मा से ही इस प्रकार पेश आई है तो हमारे जैसे अल्प सत्व वालों के लिए तो कहना ही क्या है ? जब तक आप यहां [illegible] हैं तब तक तो फिर भी जनता को विश्वास है पर आपके पधार जाने के बाद न [illegible] यहां का क्या हाल होगा ? अतः हम लोगों की अर्ज है कि आप देवी-पूजन का आदेश दे दीजिये [illegible] हम [illegible] समझें। क्योंकि नागरिक लोगों की यह ही इच्छा है।

सूरिजी ने उन श्रावकों को कहा कि यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो तुम [illegible] तथा कर्पूर [illegible] से देवी पूजन कर सकते हो यदि तुम लोगों को देवी का [illegible] साथ चलने को भी तैयार हूं। बस फिर तो क्या ही था ? [illegible]

एवं सूरिजी ने देवी के मन्दिर में जा कर उन पक्वान्नादि सात्विक पदार्थों को देवी के सामने रख दिया। और आचार्यश्री ने कहा कि लो देवी मैं आपको करड़-मरड़ (लड्डू खाजा गुलराव) दिलावा हूँ। उस समय देवी एक कुमारिका के शरीर में अवतीर्ण होकर बोली कि हे प्रभो ! मैंने अन्य प्रकार के करड़-मरड़ की याचना की थी और आपने मुझे अन्य प्रकार के करड़-मरड़ दिलवाया। इस पर सूरिजी

एकदा प्रोक्तं भो यूयं श्राद्धा तेषां देवीनाँ निर्दय चित्ताया महिष वाल्कटादि जीव वधोस्थि भंग शब्द श्रवण कुतुहल मियया अविरताया रक्तांकित भूमितले आद्रिचर्म्मबद्ध वंदतमाले निष्ठुर जन सेवितं धर्मध्यान विघ्नापके महावीभत्स रौद्रे श्रीचामुण्डादेवीगृहे गंतुं न वुध्यने। इति आचार्य वचः श्रुत्वा ते प्रोचुः प्रभो युक्त मेतत् परं रौद्र देवी यदि छलिस्यामतदा सा कुटुम्वान मारयति। पुनराचार्यैः प्रोक्तं अहं रक्षां करिस्यामि। इत्याचार्य वाक्यं श्रुत्वा ते देवी गृह गमनात् स्थिताः। आचार्याणाम् प्रत्यक्षी भूय देव्या सकोप मित्युक्तं आचार्य मम सेवकान् मम देव गृह अगच्छ मानान् निवारणाय त्वं न भविष्यति। इत्युक्तत्वा गता देवी परं सातिशय काल भावात् महा प्रभावात् अनेक सुरकृत प्रातिहोर्यै आचार्ये देवी न प्रभवति। एकदा छलं लब्ध्वा देव्या आचार्यस्य काल वेलायां किंचित् स्वाध्यायादि रहितस्य वामनेत्र भूरधिष्टिता वेदना जाता। आचार्यैः यावत् सावधानी भूय पीड़ायाः कारणं चिंततं तावत् देवी प्रत्यक्षी भूय। इति प्रोक्तं ।मया पीड़ा कृता। अहं स्वशक्तत्या त्वं स्फेटयिष्यामि। इति सा वष्टंभ। आचार्योक्तं श्रुत्वा सभयाकूतं सविनय प्रोक्तं भवादृशानां ऋषीणां विग्रहं विवोदा न युक्तः यदित्वं करड़-मरड़ ददासि तदाहं वेदनां अपहरामि। आचन्द्रार्कं त्वात् किंकरी भवामि। इति श्रुत्वा आचार्यैः प्रोक्तं करड़-मरड़ दोययिष्योमि। इत्युक्ता गता देवी।

प्रभाते श्रावका नामाकार्य तैः पक्वन्न खज्जकादि सुंडक द्रयं कर्प्पुर कुंकुमादि भोगश्च आनीय श्री चामुण्डादेवी देव गृहे श्रीरत्नप्रभाचार्यः श्रावकैः सार्धगतः। ततः श्रावकैः पार्श्वात् पूजां काराप्य वाम दक्षिणां हस्ताभ्यां पक्वन्न सुंडकादि चूर्ण याद्धः आचार्यैः प्रोक्तं देवी करड़-मरड़ं दत्तमास्ति। अतः परं ममोपासिकात्वं इति वचनानंतरं एव समीपस्थ कुमारिका शरीरे [illegible]ः कृत ततः प्रोक्तं प्रभो अन्य करड़-मरड़ं याचितं अन्य दत्तं। आचार्यैः प्रोक्तं त्वयावधो याचितः सतु लातुं दातुं न वुध्यते इत्यादि सिद्धांत वाक्यं कुमारी शरीरस्था श्रीसच्चिकादेवी सर्व लोक प्रत्यक्षं श्रीरत्नप्रभाचार्यैं प्रतिवोधिता। श्रीउपकेशपुरस्था श्रीमहावीर भक्ता कृता सम्यक्त्वधारिणी संजाता। अस्तां मांसं कुसुममपि रक्तं नेच्छिति। कुमारिका शरीरे अवतीर्ण सती इति वक्ति भो मम सेवका यत्र उपकेशपुरस्थं स्वयंभूमहावीर विंव पूजयति श्रीरत्नप्रभाचार्य उपसेवति भगवन् शिष्यं प्रशिष्यं वा सेवति तस्याहं तोषं गच्छामि। तस्य दुरितं दलयामि यस्य पूजा चित्तं धारयामि। एतानि शरीरे अवतीर्णा सा कुमारी कथ्यतीं। श्रीसच्चिका देव्या वचनात् क्रमेण श्रुत्वा प्रचुरा जनाः श्रावकत्वं प्रतिपन्नाः।

उपकेशगच्छ पट्टावलि पृष्ठ

ने कहा कि जिस प्रकार तुमने मांगा था वह न तो मुझे दिलाना योग्य है और न आपको ग्रहण करना ही योग्य है। इसके अलावा सूरिजी ने और भी कहा कि हे देवी तुमने पूर्व जन्म में कुछ अच्छे कार्य किये थे उसकी वजह से तो तुम्हें देवयोनि प्राप्त हुई है और अब ऐसे जघन्न कार्य में रत हो कर न जाने किस योनि में जन्म लोगी इत्यादि, हित वचनों से महात्मा ने ऐसा प्रतिबोध दिया कि कुमारिका के शरीर में रही हुई देवी को सर्वजनों के समक्ष उपकेशपुर के महावीर मन्दिर की पूर्ण भक्त बना दी। देवी सम्यकत्व धारिणी हो गई, इतना ही क्यों ? देवी ने यहां तक प्रतिज्ञा कर ली कि मांस मदिरा तो क्या ? पर मैं किसी लालपुष्प व लालवस्त्र को भी ग्रहण न करूंगी। बाद में देवी ने उपस्थित लोगों के समक्ष कहा कि उपकेशपुर स्थित श्रीस्वयंभूमहावीर भगवान की मूर्ति को पूजेगा या रत्नप्रभसूरि और इनके शिष्य प्रशिष्यों की सेवा भक्ति करते रहेगा उसके लिए मैं सदैव उनके दुःखों को दलित करने के लिये तैयार रहूँगी।

इस चमत्कारपूर्ण घटना को देख कर पहिले जो जैन बने थे उनकी श्रद्धा दृढ़ मजबूत हो गई तथा और भी बहुत से लोगों ने जैन धर्म की बहुत कुछ प्रशंसा की और उन्होंने सूरिजी के उपदेश से मिथ्या मत को त्याग कर जैन धर्म को स्वीकार कर लिया। अर्थात जैन धर्म का बड़ा भारी उद्योत हुआ।

इसी प्रकार उपकेशगच्छ चरित्र में भी उल्लेख मिलता है यथा :—

एक दिन पूज्य आचार्यश्री ने देवी के उपासक भक्तों को उपदेश दिया कि तुम चंडिका का पूजन मत करो। क्योंकि इसके मन्दिर में हमेशा प्राणियों को मारे जाते हैं अतः देवी पापिनी है। लोगों ने कहा कि हे प्रभो ! यदि हम लोग इस देवी की पूजा न करें तो निस्सन्देह यह सकुटुम्ब हमारा संहार कर देगी। सूरीश्वरजी ने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा। सूरिजी के इस कथन पर श्रावकगण देवी की पूजा से विमुख हो गये। इस पर देवी सूरीश्वरजी पर बहुत कुपित हुई। वह रात दिन गुरु के छल-छिद्र देखने लगी। एक दिन जब गुरुजी सायंकाल के समय विना ध्यान के बैठे एवं सोए हुए थे तो देवी ने उनके नेत्रों में पीड़ा उत्पन्न कर दी। पूज्यसूरिजी ने योगबलद्वारा नेत्र पीड़ा का कारण जान गये और उस देवी के आने पर ऐसा उपदेश दिया कि देवी स्वयं लज्जित हो गई। वह सूरिजी से इस तरह प्रार्थना करने लगी कि हे स्वामिन् ! मैंने अज्ञान भाव से प्रेरित हो आपका यह अपराध किया है, आप मुझे क्षमा करें। मैं अब फिर कभी ऐसा अपराध नहीं करूंगी, हे विभो !आप मुझ पर प्रसन्न हों। सूरिजीबोले देवी इतना कोप क्यों ? देवी ने कहा आपने मेरे भक्तों को मेरी पूजा से मना किया है। यदि आप मेरा अभीष्ट जो (कडड मडड) मुझे दिलादो

---

१ अन्यदोपासकाः पूज्यैः प्रोक्ताः माचण्डिकाऽर्चनम्। कुरुध्वं यदियं [illegible] पातकिनी सदा ॥
स प्रभाषा प्रभो! देवी, नार्च्यते यदि तद् ध्रुवम। हन्ति नः स कुटुम्बेन, [illegible] ॥
अहं रक्षां करिष्यामि, त्युक्ते सूरिभिरर्चनात् । निवृत्ताः श्रावकाः सर्वे, [illegible] ॥
छलं विलोकयन्त्यस्यान्ता गुरूणामहर्निशम् । सायं ध्यान विहीनानां, [illegible] ॥
विज्ञाय ज्ञान तो हेतुं, पूज्याः देवीमबोधयन् । तथा तथा [illegible] ॥
अज्ञान भाव विहितो ऽपराधः क्षम्यतां मम । न विधास्ये पुनः स्वामिन्, [illegible]
सूरि रूचे कथं कोपः ! [illegible] [illegible]
लब्धेऽभीष्टे ममोऽदस्यं, [illegible] । [illegible]

तो हे प्रभो ! आपके और आपके वंशजों के मैं अवश्य आधीन हो जाऊंगी । ऐसा कहती हुई देवी को आचार्यवर ने उत्तर दिया कि हे देवि ! आप अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहें। मैं आपको अभीष्ट 'कडड़ा 'मडड़ा' दिलादूंगा आप उनमें ही रती करना । गुरु के उक्त कथन पर देवी संतोष के साथ अन्तर्ध्यान हो गई और प्रातःकाल गुरुजी के पास सब श्रद्धालु श्रावक एकत्रित हुए उसको कहा कि हे श्रावकों ! तुम सब सुहाली आदि पकान्न तथा प्रत्येक घर से चंदन, अगर, कस्तूरी आदि भव्य भोग एकत्रित करो और इस प्रकार सब सामग्री सजा कर जल्दी ही पौषधागार (पोशाला) में एकत्र मिलो बाद संघ को साथ लेकर चामुंडा देवी के मंदिर चलेंगे। यह सुन कर श्रावक-गण सब सामग्री एकत्रित कर पौशाला में एकत्रित हुये और सूरिजी उन्हें साथ ले चामुंडा के मन्दिर में गये । वहां पहुँच कर श्रावकों ने देवी का पूजन किया और सूरिजी ने कहा कि हे देवी ! तुम अपना अभीष्ट ले लो । ऐसा कह कर दोनों तरफ के पकान्न पूर्ण सुण्डकों (टोपले) को दोनों हाथों से चूर्ण कर पुनः बोले कि हे देवी अपना अभीष्ट ग्रहण करो । यह सुन देवी प्रत्यक्ष रूप हो सूरिजी के सामने खड़ी रही और बोली कि हे प्रभो ! मेरी अभीष्ट वस्तु 'कडड़ा मडड़ा' है । गुरु बोले हे देवी ! यह वस्तु तुझे लेना और मुझे देना योग्य नहीं क्योंकि मांसाहारी तो केवल राक्षस ही होते हैं। देवता तो अमृत पान करने वाले होते हैं। हे देवी ! तू देवताओं के आचरण को छोड़कर राक्षसों के आचरण को करती हुई क्यों नहीं लजाती है ? हे देवी ! तेरे भक्त लोग तेरी भेंट में लाये हुये पशुओं को तेरे सामने मारकर तुमको इस घोर पाप में शामिल कर उस मांस को वे स्वयं खाते हैं, तू तो कुछ नहीं खाती अतः तू व्यर्थ हिंसात्मककार्य्य को अंगीकार करती हुई क्या पाप से नहीं डरती है ? यह तो निर्विवाद है कि चाहे देवता हो चाहे मनुष्य हो पाप कर्म करने वाले को भावान्तर में नरक अवश्य मिलता है । इस जीव हिंसा के समान भयंकर और कोई पाप नहीं है । यह बात सब दर्शनों (धर्म शास्त्रो) में प्रसिद्ध है । अतः तू जगत की माता है तो तेरा कर्तव्य है कि

निज प्रतिज्ञा वचने, स्थिरी भाव्यँ त्वया सदा । कड़ड़ाँ मड़ड़ा देवि दास्ये तत्र रतिं कुथाः ॥
प्रतिज्ञाय गुरूक्तंतद्, देवी सद्यस्तिरोदधे । प्रातः सर्वानपि श्राद्धान्, गुरवः पर्यमीलयन् ॥
मिलितानाँ श्रावकाणाँ, पुरतः सूरयोऽवदन् । पक्वान्नानि विधाप्यन्ताँ, सुहाली प्रभृतीनि भोः॥
प्रतिगेहं घनसाराऽगुरु कस्तूरिकाऽऽदिकः । भोगः संमील्यताँ भव्यो गृह्यताँ कुसुमानि च ॥
कृत्वैवं पौषधागारे, शीघ्र मागम्यताँ यथा । चामुंडाऽऽयतनं यामः, संघेन सहिता वयम् ॥
पूजोपस्कर मादाय, श्रावकाः पौषधौकसि । अभ्ययुः सूरयः सार्धं, तैर्देवी सदन ययुः ॥
[illegible]यू पूजन् सुरीं श्राद्धैः, सूरयो द्वार संस्थिताः । अवदँश्च निजाभीष्टं, लाहि देवि ! ददाम्यहम् ॥
इत्युक्तोभय पार्श्वस्थे, पक्वान्नभृत सुण्डके । पाणिभ्याँ चूर्णयित्वोचुः, स्वाभीष्टं देवि गृह्यताम् ॥
अथ प्रत्यक्ष रूपेण, सूरीणाँ पुरतः स्थिता । प्राह प्रभो मद भीष्टं, कड़ड़ा मड़ड़ा ऽपरा ॥
गुरु रूचे न सा युक्ता, लातुं दातुं च ते मम । पालदा राक्षसा एव, देवा देवि ! सुधा ऽशनाः ॥
पूर्व दर्शन विख्यातं, स्वनामार्थं विदन्त्यपि । पलादानाँ समाचारं, चरन्ती किं न लज्जसे ॥
लोक ढौपायन पशून्, विनिहत्य पुरस्तव । तानत्ति नीत्वा स्वगृहे, त्वमश्नासि न किंचन ॥
स्वां कुर्वाण मुधा हिंसा, पातकान्न बिभेषिकिम् । देवानाँ मानवानाँच, नरकः पाप कर्मणा ॥

सप 'जीवों पर दया भाव रखना' और तू इसी 'अहिंसापरमोधर्म' का आश्रय ले इत्यादि। इस प्रकार सूरिजी कथित उपदेश से प्रतिबुद्ध हुई देवी सूरिजी को कहने लगी, हे प्रभो ! आपने मुझे संसार कूप में पड़ती हुई को बचायी है। हे प्रभो ! आज से मैं आपकी आधीनता स्वीकार करूंगी और आपके गण में भी व्रतधारियों का सांनिध्य करूंगी तथा यावच्चन्द्रदिवाकर आपका दासत्व ग्रहण करूंगी। किन्तु हे प्रातःस्मरणीय सूरिपुंगव ! आप यथा समय मुझे स्मरण में रखना और देवतावसर करने पर मुझे भी धर्मलाभ देना। अपने श्रावकों से कुंकुम, नैवेद्य, पुष्प आदि सामग्री से साधार्मिक की तरह मेरी पूजा करवाना इत्यादि। दीर्घदर्शी श्रीरत्नप्रभ सूरि ने भविष्य का विचार करके देवी के कथन को स्वीकार कर लिया। क्योंकि सत्पुरुष गुणग्राही होते हैं। पापों को खंडित करने वाली वह चंडिका सत्य प्रतिज्ञा वाली हुई। यह जान उस दिनसे जगत में देवी का नाम 'सत्यका' प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर ने देवी को प्रतिवोध देकर सर्वत्र विहार करते हुये सवालाख से भी अधिक श्रावकों को प्रतिवोध दिया।

—ऊहड़मंत्री का बनाया महावीर मन्दिर—

उपकेशपुरनगर में मंत्री ऊहड़ अपनी पुन्यवृद्धि के लिये एक नया मंदिर बना रहा था। पर दिन को जितना मन्दिर बनावे वह रात्रि में गिर जाता था। अतः विस्मय को प्राप्त हुये मंत्री ने तमाम दर्शनकारो से मन्दिर गिर जाने का कारण पूछा। पर उनमें से किसी एक ने भी समुचित उत्तर देकर मंत्री के भ्रमित मन को

पापं नातः परं किंचित्, सर्व दर्शन विश्रुतम। तस्माज्जीव दयाधर्म, सारमेकं समाश्रय ॥
इत्यादिभिरुपदेशैः प्रबुद्धा प्राह हे प्रभो !। भव कूपे पतयालो, हस्तालम्ब मदा मम ॥
इतः प्रभृति दासत्वं, करिष्येऽस्मि तव प्रभो !। आ चन्द्रार्कं त्वद्गणेऽपि संनिध्यं व्रतिनामपि ॥
परमस्मि स्मरणीयाः ! स्मर्तव्या समये सदा। धर्मलाभः प्रदातव्यो, देवताऽवसरे कृते ॥
तथा कुंकुम नैवेद्य—, कुसुमादिभिरुद्यते। श्रावकैः पूजयध्वं मां, यूयं साधर्मिकामिव ॥
दीर्घ दर्शिभिरालोच्य, श्रीरत्नप्रभसूरिभिः। तद्वाक्य मुररी चक्रे, यत्सन्तो गुण [illegible] ॥
सत्य प्रतिज्ञा जातेति, चण्डिका पाप खंडिका। सत्यकेति ततो नाम, विदितं भुवनेऽभवत् ॥
एवं प्रबोध्यतां देवीं, सर्वत्र विहरन् प्रभुः। सपादलक्ष श्राद्धानां, साधिकं [illegible] ॥
इतश्च श्रेष्ठी तत्राऽऽस्ते, ऊहड़ कृष्ण मन्दिरम्। कारयत्यतुलंनव्यं, [illegible] ॥
दिवा विरचितं देव, मंदिरं राज मन्त्रिणा। भित्वं प्राप्नुयाद्रात्रौ, ततो विस्मय [illegible] ॥
अप्राक्षीदार्शिकान् मंत्री, कथ्यतामस्य कारणम्। न कश्चिद्वदे [illegible] ॥
ततोऽपृच्छन्मुनिं मन्त्री, कारणं च कृताञ्जलिः। प्रत्युवाच ततः सूरि, मंदिरं [illegible] ॥
नारायणस्य मन्त्रीति, प्रोवाचाचार्यमक्षरम्। तच्छ्रुत्वा मुनि [illegible] ॥
उपद्रवं नेच्छसि चेत्, महावीरस्य मन्दिरम्। [illegible] ॥
मन्त्रिणैवं कृते चैव, नाभूत् पुनरुपद्रवः। [illegible] ॥
तन्मूल नायक कृते, श्री वीर प्रतिमां नवाम्। [illegible]

संतुष्ट नहीं किया। इस हालत में मंत्री ने आचार्य्य रत्नप्रभसूरि के पास आकर वही सवाल पूंछा कि गुरु महाराज ! दिन को बनाया हुआ मेरा मन्दिर रात्रि में क्यों गिर जाता है ? इस पर सूरिजी ने कहा कि मंत्रेश्वर ! आप मन्दिर किसका बनाते हो ? मंत्री ने कहा कि मंदिर नारायण का बनाता हूँ (जो पहिले से प्रारम्भ किया हुआ है)। इस पर सूरिजी ने अपने ज्ञानबल से देख कर कहा कि यदि आप महावीर के नाम से मन्दिर बनावें तो ऐसा उपद्रव नहीं होगा। मंत्री ने सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य्य कर ली। और महावीर के नाम से मन्दिर बनाना शुरू किया फिर तो एक भी उपद्रव नहीं हुआ और मन्दिर क्रमशः तैयार होने लग गया। जिसको देख सब लोग आश्चर्ययुक्त हो गये।

इधर पहले से ही देवी ने उस मन्दिर के योग्य महावीरदेव की मूर्त्ति बनानी शुरू कर दी थी। जिसका हाल यह है कि–मंत्री की गाय 'जो घड़ासहस्रअवाडावाली–धनघटीगाय के नाम से मशहूर थी' वह गाय गोपाल से पृथक् हो लुणाद्रिपहाड़ी के नजदीक एक कैर का झाड़ के पास जाती थी तो स्वयं दूध-स्राव हो जाता था।

जब गाय का दूध कम होने लगा तो मंत्री ने गोपाल को धमका कर उसका कारण पूंछा ? गोपाल दिन भर गाय के साथ रहा और शाम को प्रस्तुत स्थान दूध-स्राव होता देख कर मंत्री के पास आया और सब हाल कहा एवं साथ चलकर मंत्री को वह स्थान भी बतलाया कि जहां गाय का दूध स्वयं झर जाता था।

बाद मंत्री के दिल में संदेह हुआ कि यहां क्या चमत्कार होगा कि गाय का दूध स्वयं स्राव हो जाता है। इस संदेह के निवारणार्थ सब दर्शनिकों को एकत्र कर अपनी गाय का दूध झरने का कारण पूंछा तो किसी ने कहा यहां धन का खजाना है। किसी ने कहा यहाँ ब्रह्मा की मूर्ति है, किसी ने विष्णु, किसी ने शिव, किसी ने बुद्ध और किसी ने गणेश की मूर्ति बतलाई। इस प्रकार भिन्न २ कारण बतलानेसे मंत्रि का सन्देह नहीं मिटा और इस संदेह २ में उसने कई मास व्यतीत कर दिये।

आचार्य रत्नप्रभसूरि उपकेशपुर में चतुर्मास कल्प करके आस पास के ग्रामों में विहार कर पुनः उपकेशपुर में पधारे थे और किसी उद्यान के एक विभाग में आप ठहरे हुये थे। अतः मंत्री ने जाकर विनय के साथ सूरिजी से अपनी गाय का दूध के विषय प्रश्न पूंछा जिसको अच्छा लाभ वाला जान सूरिजी ने मंत्री से कहा कि मंत्री तुम कल प्रभात होते ही आना मैं तुम्हारे प्रश्न का समुचित उत्तर दूंगा। विश्वास का भाजन मंत्री सूरिजी को वंदन कर अपने मकान पर चला गया। बाद सूरिजी ध्यान में स्थित हो गये। रात्रि में देवी चामुंडा ने सूरिजी के पास आकर अर्ज की कि हे पूज्यवर। कई महीनों से मैं भगवान महावीर की मूर्ति

[illegible] श्रेष्ठिनो धेनुः, सायं निर्गत्य गोकुलात्। लावण्यहृदनामाद्रौ, क्षीरं क्षरति नित्यशः ॥
[illegible]ः श्रेष्ठिनाऽपृच्छि, दुग्धाभावस्य कारणम्। तेन सम्यग विनिश्चित्य, कथितं दर्शितं च तत्॥
[illegible] विमानयाऽपृच्छत्, तथा दर्शनिनोऽखिलान्। स्वर्गोदुग्ध स्राव हेतुं, तेऽप्याख्यन् नैक भाषया॥
केऽप्याहुः शेवधि रिह, केऽपि कृष्णः शिवोऽपरे। त्वदेव गृह योग्योऽयं, बुद्धो लम्बोदरो ऽथवा ॥
मिथो विभिन्न वाच्येभ्य, स्तेभ्यः सन्दिग्धमानसः। मासान् पंच व्यतीयाय, साधिकान् कतिभिर्दिनैः॥
सूरयोऽपि मास कल्पं, तत्र कृत्वाऽन्यतो गतः। चतुर्मास कल्पान्ते, पुनस्तत् पुरमागमन् ॥
तान् पुरोद्यान भूभागे, ऽवस्थिता नवगत्य सः। सूरीनु पेत्य पप्रच्छ, श्रेष्ठी सन्देह मात्मनः ॥
तद्विज्ञाय शुभोदर्कं, सूरि राह विचिन्त्य भोः। प्रातस्ते संशयं श्रेष्ठि, अपने ष्याम्य संशयम् ॥

जो वालूरेती और मंत्री की गाय के दूध से तैयार कर रही हूँ। जब छः मास पूर्ण होगा तब मूर्ति सर्वांग-सुन्दर बन जायगी। जिसको पुरा छ मास होने पर ही निकाली जायगी।

सूरिजी ने कहा देवी आप स्वयं मंत्रीश्वर के पास प्रगट हो सब हाल उसको सुनादो तो अच्छा होगा। देवी ने ऐसा ही किया कि रात्रि में उसने मंत्री के पास जाकर कहा कि मैं यहां की चामुंडा देवी हूँ। गुरु महाराज की आज्ञा से यहां आई हूँ। तुम बड़े ही भाग्यशाली हो कि तुम्हारी गाय के दूध से मैं तुम्हारे मंदिर के योग्य मूर्ति बना रही हूँ। इत्यादि सब हाल सुना दिया और अंत में कहा कि तुम पाप के घररूप-सन्देह का शीघ्र त्याग कर देना। बस इतना कह कर देवी अदृश्य हो गई। सुबह होते ही मंत्री ने सूरिजी के पास आकर चरण-कमलों में नमस्कार किया और अपने प्रश्न के उत्तर कि प्रार्थना की। सूरिजी ने कहा कि रात्रि में देवी ने तुमसे कह दिया है न ?

मंत्री ने कहा हां देवी ने तो कहा पर मैं पुनः आपसे सुनना चाहता हूँ। इस पर सूरिजी ने मंत्री को सब हाल कह सुनाया। सूरिजी से सब हाल सुन कर मंत्री को भगवान महावीर प्रभु की मूर्ति के दर्शन की इतनी उत्कंठा लगी कि उसी समय सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! पधारिये प्रभुबिंब निकलवा कर उसके दर्शन करवाकर हमारे जन्म को कृतार्थ बनावें। इस पर सूरिजी ने कहा मंत्रीश्वर जरा धैर्य रक्खो, अभी सात दिन की देरी है। जब यह मूर्ति सर्वांग सुन्दर बन जायगी तब अच्छे मुहूर्त्त में खूब समारोह के साथ लावेंगे।

श्रद्दधानः सतद्वाक्यं, स्वमन्दिर मयाद् य्यात्। सूरयोऽपि व्यधुर्ध्यानं, निश्या गाच्छा सनामरी ॥
व्याजिज्ञयदिदं देवी, प्रभोर्वीर जिनेशितुः। कुर्वाणाऽस्मि नवं बिम्बं, एतस्मात्तद् भविष्यति ॥
प्रभवः प्रोचिरेदेवि ! प्रत्यक्षी भूय तत्परः। सर्व मेतत्समाख्याहि, स्वमुखेन यथा तथम् ॥
साऽपि गुर्वाज्ञया गत्वा, तत्र प्रत्यक्षरूपिणी। श्रेष्ठिनं गत निद्रंप्राह् प्राह विस्मित मानसम् ॥
भोः श्रेष्ठिन् ! गुर्वनुज्ञाता, ऽयाता हं शासनामरी। गोस्राव हेतुं गदितुं, शृणु तत् प्रयतात्मयः ॥
त्वदोगृक्षीरेण वीरस्य, कुर्वाणा प्रतिमां शुभाम्। वचो हं मास्म तत्कार्षीः, सन्देहं गेह मेननः ॥
इत्युक्त्वा सा तिरोधत्त, सोऽपि मोह वशं वदः। प्रातर्गत्वा च नत्वा च, गुरु पादानुवादिनत् ॥
संयोज्यपाणी सोऽपृच्छत्, प्रश्नं स्वीयमथप्रभुः। प्रोचे शासन देवी ते, आह यद्वे स्वयं निशि ॥
यद्यप्येवंपरं पूज्यै,स्तथापि प्रतिपाद्यताम्। ततः सर्व यथा वृत्तं, [illegible] ॥
व्याजिज्ञ पदथ श्रेष्ठी, शीघ्रं संचलत प्रभो। यथा वीर जिनेशस्य, बिम्बं [illegible]
सूरयोऽपि विलम्बस्व, सादरः नमनासतीम। आने प्यामः शुभे लग्ने, [illegible] ॥
श्रेष्ठ्यपि प्राह तल्लग्नं, शुभं यत्र सुरी यद्वः। पूज्यादिष्ट [illegible] ॥
अत्याग्रहपरय पूज्या, श्चेलुःश्चलपांजिलताः। श्रेष्ठिना [illegible] ॥
तत्र स्वर्णमय यव, स्वस्तिकं कुसुमानि च। [illegible]
हृदये निर्गुप [illegible] कुमाक्रिलाः। [illegible]
दिवि दुन्दुभयोनदुर्भुवि मानद वादितः। [illegible]

मंत्री ने कहा पूज्यवर ! देवी की बनाई मूर्ति और आप जैसे समर्थ पुरुषों का आदेश, हमारे लिये तो यह अच्छे से अच्छा अवसर एवं शुभ मुहूर्त्त है। कृपा कर हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर आप तो शीघ्र पधारें कि हम सब लोग भगवान वीर प्रभु के दर्शन कर भाग्यशाली बनें। इतनी उत्कंठा का यह कारण था कि उन लोगों ने पहिले कभी जैन तीर्थंकरो की मूर्ति के दर्शन नहीं किये थे। अतः उत्कंठा होना स्वभाविक ही थी।

गम्भीर आशय एवं धैर्य चित्तवा ने सूरिजी उन भावुकों की उमंग एवं उत्साह को नहीं रोक सके और भवितव्यता का विचार कर आपने चलने की स्वीकृति दे दी। बस फिर तो था ही क्या ? मंत्री ने सबको खबर दे दी। हस्ती वगैरह सब लवाजमा और सब सामग्री साथ में लेकर सूरिजी के पास आये और सूरिजी भी उन श्रावक वर्ग के साथ हो जहां भगवान वीर प्रभु की प्रतिमा थी वहां पधारे।

जहां गाय का दूध स्रात्र होता था उस संकेत से भूमि खोदकर अन्दर से मूर्ति निकाली और हीरा पन्ना माणक मुक्ताफल तथा सुवर्ण पुष्पों से एवं शुभ भावना से प्रभु को वधाये। हाँ सात दिन की जल्दी करने के कारण मूर्त्ति के वक्षस्थल पर निंबू के फल जैसी दो ग्रन्थियें रह गई। उसको भी सज्जन पुरुषों ने शुभ निमित ही माना।

प्रभु प्रतिमा भूमि से निकलते ही आकाश में दुंदुभी के मधुर नाद होने लगे। इधर मनुष्यों के बजाये हुए बारह प्रकार के वाजों से गगन गूंज उठा अर्थात् वह शब्द आकाश के चारों ओर फैल गया।

पंच प्रकार के पुष्पों की वृष्टि हुई, दिशा सर्वत्र निर्मल वन कर मानो नाचने ही नहीं लगी हो और दक्षिणदिशा का शुभ सुगन्ध एवं मंद मंद वायु चलने लगा।

वाजा गाजा के गंभीर नाद एवं सर्व लवाजमा के साथ भगवान की मूर्ति को गजारूढ़ कर राजा प्रजादि वड़े ही हर्षोत्साह से प्रभु को नगर प्रवेश करवाया। मंत्रेश्वर ने प्रभुप्रतिमा को अपने मन्दिर में ले जाकर आरति आदि भक्ति से योग्यासन पर स्थापन की तत्पश्चात् आचार्य श्री की जयध्वनी से आचार्यदेव को पास ही की पौषधशाला में ठहरा दिये।

तदनंतर श्रेष्टि बुद्धि वाले धर्मज्ञ मंत्रीश्वर ने उस मंदिर की प्रतिष्ठा के लिये सूरिजी से मुहूर्त की प्रार्थना की जिस पर सूरिजी ने माघशुक्ला पंचमी गुरुवार ब्राह्ममुहूर्त और धनुर्लग्न का सर्व-दोष विवर्जित मुहूर्त दिया, जिसको मंत्री ने वड़े ही हर्ष के साथ मुक्ताफलादि से वधाय के ले लिया। उसी दिन से धर्मवीर मंत्रीश्वर प्रतिष्ठा की सामग्री एकत्र करने में लग गया !

पंच वर्णा पुष्प वृष्टि, र्वभूव गगनाङ्गणात् । दिशः प्रसेदुर्वायुश्च, नीरजा दक्षिणो ववौ ॥
अथ मङ्गल तूर्येषु, वाद्यमानेषु सर्वतः । वर्द्धमान जिनं श्रेष्ठी, हृष्टो देव गृहेऽनयत् ॥
भक्ति युक्तस्ततः श्रेष्ठी, निज मंदिर सन्निधौ । गुरूनुपाश्रयेऽनैषी, दुपरूध्य सगौरवम् ॥
ततः प्रतिष्ठा लग्नानि, शोधयित्वा विशुद्ध धीः । लग्नमेकं विनिश्चिक्ये, सर्व दोष विवर्जितम् ॥
माघमासे शुद्धपक्षे, पूर्णायाँ पंचमी तिथौ । ब्राह्मे मुहूर्ते वारेच, गुरौ लग्न पुनर्धनुः ॥
तदुपस्कर कार्याणाँ, मीलने यावदादृतः । श्रेष्ठी प्रवर्तते व्यग्रः, सूरि वाक्याद्यथा विधि ॥
तावत् कोरंटक पुरात्, सङ्घ विज्ञप्ति पाणयः । श्रावकाः समुपेत्याशु, सूरिपादान व वन्दिरे ॥
व्यजिज्ञपन्निदं पूज्याः, कोरंटक पुरे वरे । श्री वीर मन्दिरं सद्यो, विम्बं चाकारयन्नवम् ॥
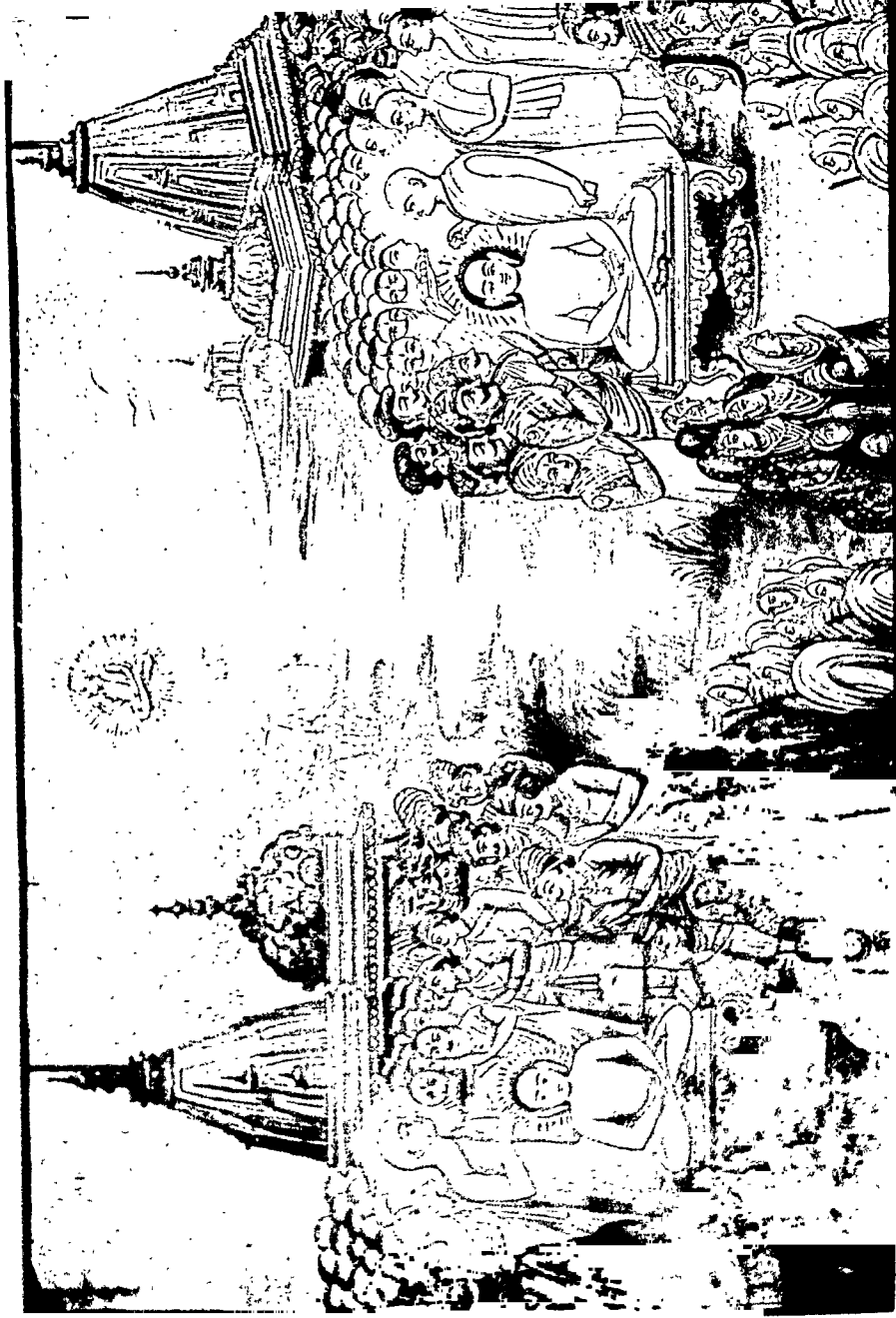
उपकेशपुर में महावीर मन्दिर की तथा कोरंटपुर में भी महावीर मन्दिर की एक ही साथ में आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वीरात् ७० वर्ष माघशुक्ल पंचमी गुरुवार धनुर्लग्न में प्रतिष्ठा करवाई। आचार्यश्री ने वैक्रयलब्धि से दो रूप बनाये थे। पृष्ठ १०५

आचार्य रत्नप्रभसूरि उपकेशपुर में ५०० मुनियों के साथ पधारे थे, जिसमें ३५ मुनियों ने तो सूरीजी के पास में चतुर्मास किया था, शेष कनकप्रभादि ४६५ ने सूरिजी की आज्ञा से विहार कर दिया था। उन्होंने चल कर कोरंटपुर में चतुर्मास किया था औरआपके उपदेश से कोरंटपुर के श्रीसंघ ने अपने यहाँ एक महावीर का मन्दिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा का शुभमुहूर्त माघ शुक्ला पंचमी गुरुवार ब्राह्ममुहूर्त और धनुर्लग्न में निकला। अतः कोरटपुर के श्रीसंघ ने मुनि कनकप्रभ से प्रतिष्ठा के लिये कहा तो मुनिवर ने साफ कह दिया कि प्रतिष्ठा तो हमारे गुरुवर्य रत्नप्रभसूरि ही करावेंगे। अतः कोरंटपुर श्रीसंघ चल कर उपकेशपुर आया और सूरीजी से साग्रह विज्ञप्ति की कि प्रतिष्ठा के समय आप कोरंटपुर पधार कर प्रतिष्ठा करावें। सूरिजी ने कहा कि वही मुहूर्त यहाँ के मन्दिर की प्रतिष्ठा का है जो आपके यहाँ है। फिर हमारे से कैसे आया जा सकेगा ?

इस पर कोरंट संघ निराश हो गया। इतना ही क्यों पर उनके चेहरा भी उदास हो गया जिसको देख कर सूरिजी ने दीर्घ दृष्टि से विचार कर कहा कि महानुभावो ! आप उदास क्यों होते हो ? आप लोगों का यही आग्रह है तो आप प्रतिष्ठा की सब सामग्री तैयार रक्खो; प्रतिष्ठा के ठीक समय पर मैं वहां आकर आपके यहां भी प्रतिष्ठा करवा दूंगा, इत्यादि। इस पर कोरटसंघ खुश हो सूरिजी को वंदनकर निज स्थान को चला गया और वहां जाकर प्रतिष्ठा की सब सामग्री जुटाने में दत्तचित्त से लग गया।

इधर सूरिजी महाराज ठीक लग्न के समय श्रीसम्पन्न उपकेशपुर में वीर बिम्बकी प्रतिष्ठा करवा रहे थे

तत्प्रतिष्ठा विधानाय, संघाऽभ्यर्थनयाऽनया। प्रसीद भगवन्नेहि, पूरयाऽस्मन्मनोरथान् ॥
तदेव लग्नं विज्ञप्ते, रवधार्य धियाँ निधिः। सूरिः प्रोचे कथं भव्याः ! घटतेऽस्माकमागमः ॥
यत्तत्राप्यत्र चैवैकं, लग्नं शुद्धं तथाऽपरम्। तदत्रत्यं कथं त्यक्त्वा, कार्यं मन्यत्र गम्यते ॥
तच्छ्रुत्वा सविषादाँस्तान् व्रीडापन्नान् विलोक्यच। प्रभुराह मास्म यूयं, विषीदत्त मुधा बुधाः॥
देहे क्यादेक लग्नत्वा, न्नसमं लग्न साधनम्। परमत्र साधयित्वा, व्योम्नाऽऽयास्यामि तत्रहि ॥
कार्या प्रतिष्ठा सामग्री, भवद्भिः कृत निश्चयैः। यथा तत्रैव लग्ने ऽहं, कुर्वे संघ समीहितम ॥
ततः प्रोल्लसिताऽऽनन्दाः, श्रावकाः सूरिपुङ्गवम्। वन्दित्वा स्वपुरं जग्मुः, [illegible]॥
ततः सर्वा पि सामग्री, प्रतिष्ठाया उपासकैः। मिलित्वा मीलयामासे: माघे मासे यथा विधि॥
ततः श्रीमत्युपकेशे, पुरे वीर जिनेशतुः। प्रतिष्ठां विधिनाऽऽधाय, श्री [illegible] ॥
कोरंटकपुरे गत्वा, व्योम मार्गेण विद्यया। तस्मिन्नेव धनुर्लग्ने, प्रतिष्ठां [illegible] ॥
श्री महावीर निर्वाणात्, सप्तत्या वत्सरैर्गतैः। उपकेशपुर [illegible] ॥
भूयोऽपि व्योम यानेन, व्यावृत्याऽऽगत्य [illegible]। [illegible] ॥
[illegible] श्रेष्ठी जिन धर्मपरोऽभवत्। [illegible] ॥
श्रीरत्नप्रभसूरीणा मानत्या ऽऽगत्य [illegible]। [illegible]
उपकेशपुर एवं [illegible]। [illegible]
[illegible]। [illegible]

है ? ब्राह्मण अपने पुत्र के वचन को सुनकर बोला कि हे शुद्धान्तःकरण वाले मेरे वत्स ! आज तू मृत्यु के मुख में पहुँच गया था । परन्तु कृपा के सागर महागुणो के आगर पूज्यचरणसूरिजी ने सकुटुम्ब मेरा और तेरा पुनः जीवन दान किया है । ब्राह्मण पुत्र ऐसी सरस वाणी को सुनते ही प्रणाम करने की इच्छा से वहां से उठ कर सब ब्राह्मणों सहित गुणों में श्रेष्ठ गुरुजी के पास गया । वहां जा कर और सूरिजी को आदर सहित देख कर मस्तक के केशों को उनके पैरों में लुटाता हुआ भक्तिपूर्वक स्वयं पृथ्वीतल पर लोटता हुआ उनके पैरों की वन्दना करने लगा और बोला हे भगवन ! मुझे जीवन दान देके आज आपने ब्राह्मण और श्रमण (जैनी सन्यासी) के आपसी चिरकाल के वैर को भुला दिया । हे गुरो ! आज से आप वैश्यों के तुल्य हमारे भी पूज्य हो । इस वचन को तत्रास्थित अन्य ब्राह्मण समुदाय ने भी अंगीकार किया । उस दिन से ले कर सारे ब्राह्मण श्रावक वैश्यों के समान ही पूज्य सूरिजी का गौरव करने लगे और उनकी आज्ञा का आदर करने लगे । इस प्रकार अठारह हजार ब्राह्मणों आदि को प्रतिबोध कर जैन बनाये । जिससे जैन संख्या में वृद्धि और धर्म की खूब प्रभावना हुई इस प्रकार आचार्य श्री ने अनेक स्थानों पर जैन बना कर मारवाड़ जैसा वाममार्गियों के प्रदेश को जैनमय बना दिया पट्टावलीकारों ने इन सब को मिला कर ३८४००० घरों की संख्या बतलाई है वह ठीक ही है अस्तु । आचार्य रत्नप्रभसूरि की सर्वत्र भूरि भूरि प्रशंसा हो रही थी ।

आचार्य रत्नप्रभसूरि के लिये यह दूसरी वार का मौका था क्योंकि पहले मंत्रीपुत्र की घटना ऐसी ही बनी थी उसके बाद देवी को प्रतिबोध दिया तत्पश्चात मंत्री ऊहड़ के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई बाद यह ब्राह्मण के पुत्र की घटना घटी । यही कारण है कि ब्राह्मण लोग कह रहे हैं कि हे पूज्यवर हम ब्राह्मण भी वैश्यों की भाँति आपके उपासक हैं इससे यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मणपुत्र की घटना के पूर्व आचार्य श्री ने उपकेशपुर में राजा मंत्री क्षत्री एवं वैश्य (व्यापारी) लोगों को जैन धर्म में दीक्षित कर चुके थे अतः किसी को यह भ्रान्ति न हो जाय कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने केवल ब्राह्मण पुत्र को जिला कर १८००० लोगों को ही जैन बनाये थे ? पर यह घटना तो बाद में दूसरी वार घटी थी और इस प्रकार सूरिजी ने अपने जीवन में १४००००० नये जैन बनाये थे जो इस ग्रन्थ के पढ़ने से विदित हो जायगा ।

इतिश्रुत्वा (सरसराँ) समुत्थाय विविन्दिषुः । गुरून् गुण गुरून विप्रः, सर्व विप्र समन्वितः ॥
भूपीठे विलुठन भक्त्या, सूरीन वीक्ष्य ससादरम् । पादौ ववन्दे मौलिस्थ, केश प्रोच्छन पूर्वकम ॥
अवादी द्य भगवन, जीवितं ददता मम । विप्र श्रमणयोर्वैरं, मिति मिथ्या कृतं वचः ॥
इतः प्रभृतिनः पूज्या, गुरवो वणिजामिव । अन्यैरपि तदा विप्रै, स्तदुक्तं बहुमन्यत ॥
तदा प्रभृति सर्वेपि, ब्राह्मणः श्रावका इव । तद्गौरवं विदधिरे, तदाज्ञाँ नावमेनिरे ॥
एवं प्रभावयन्तस्ते, सुगुरो जैन शासनम् । अष्टादश सहस्राणिः ब्रह्मानाँ प्रत्यबोधयत् ॥
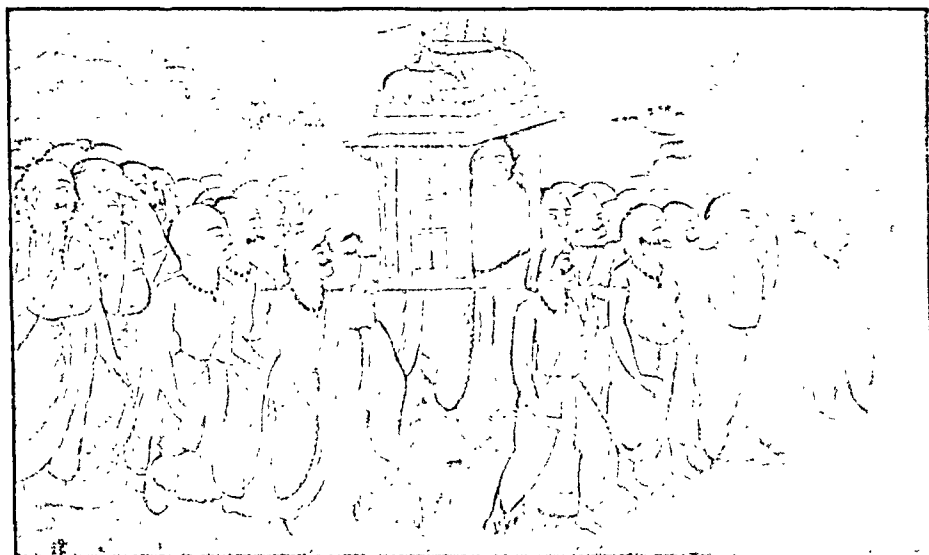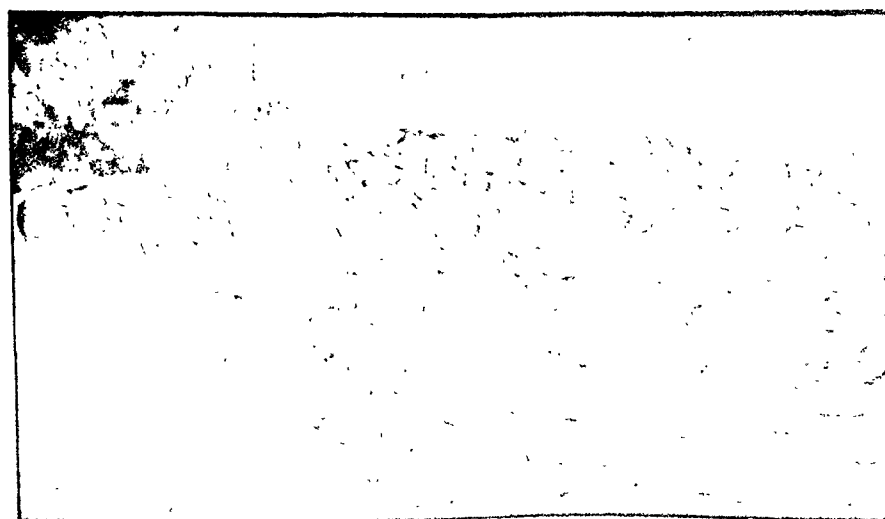
आचार्य रत्नप्रभसूरि अपने जीवन में चौदह लक्ष घरों वालों को नये जैन बना कर वीरात् ८४ वर्ष माघशुक्लपूर्णिमा को श्री शत्रुंजयतीर्थ पर स्वर्गवास किया । पृष्ठ १२०

उपकेशपुर की पहाड़ी पर राजा उत्पलदेव के बनाया हुआ पार्श्वनाथ के मन्दिर की सूरिजी ने प्रतिष्ठा करवाई । उस मूर्ति को हटाकर जैनेतरों ने उसके स्थान पर देवी की मूर्ति रखदी है और पार्श्वमूर्ति को देहरी के पिछले भाग में एक ताक पर रखदी है । पृष्ठ १११

कोरन्ट गच्छ की उत्पत्ति

भारत में पंचमारा (कलिकाल) का पदार्पण हो चुका था। भले ही वह शैशवावस्था का ही क्यों न हो ? पर उसकी मौजूदगी में इतना वृहद् कार्य्य बिल्कुल निर्विघ्नता से सम्पादन हो जाना तो एक उसके लिए कलंक रूप ही था। अतः वह अपनी करने में उठा क्यों रक्खे ? जब उसको कहीं भी अवकाश न मिला तब उसने कोरंटपुर के संघ को उत्तेजित किया।

बात यह बनी कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर और कोरंटपुर के श्री महावीरमन्दिर की एक लग्न में प्रतिष्ठा करवाई थी। इसमें मूलगे रूप से तो उपकेशपुर में और वैक्रय रूप से कोरंटपुर में प्रतिष्ठा करवाई थी। कोरंटपुर में प्रतिष्ठा करवा कर वे तत्काल ही उपकेशपुर पधार गये थे। बाद में जब कोरंट संघ को इस बात की खबर हुई कि आचार्य रत्नप्रभसूरि मूलगे रूप से तो उपकेशपुर में रहे और अपने यहां तो वैक्रय (मायावी) रूप से आये थे, भला इस मायावी रूप से कराई प्रतिष्ठा का क्या प्रभाव पड़ेगा ? अतः उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि मुनि कनकप्रभ को अपने आचार्य बनाकर पुनः प्रतिष्ठा करवानी चाहिये। परन्तु वास्तव में उनके इस निश्चय में कोई औचित्य न था और न उनके अन्तःकरण में रत्नप्रभसूरि के प्रति अश्रद्धा थी, केवल कलिकाल के प्रभाव से मतिभ्रम के कारण ऐसा निश्चय कर डाला; परन्तु जब मुनि कनकप्रभ से संघ ने प्रार्थना की तो पहिले तो उन्होंने इन्कार किया। इतना ही क्यों पर उन्होंने संघ को ठीक समझाया कि रत्नप्रभसूरि जैसे प्रतिभाशाली आचार्य होते हुए दूसरा आचार्य बनना एवं बनाना अनुचित है। इससे समुदाय में भेद पड़ जायगा और भविष्य में संगठन शक्ति का ह्रास होने से बड़ा भारी नुकसान होगा। दूसरे यह तो आप जानते हो कि एक शरीर से इतने फासले पर एक लग्न में दोनों प्रतिष्ठा कैसे हो सकती हैं ? आपके यहां वैक्रय से नहीं आते तो उपकेशपुर में वैक्रय से रहते बात तो एक ही थी। अतः मेरी सलाह है कि इस विषय में आप शान्ति रखें इत्यादि। पर संघ के दिल को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने तो श्रीमाल पद्मावती वगैरह आमन्त्रण भेज संघ को बुला लिया और आग्रह पूर्वक मुनि श्री कनकप्रभ को आचार्य्य पद से विभूषित कर ही दिया। मुनि कनकप्रभ ने भी उन संघ के विग्रह चित्त को शान्त करने के लिए द्रव्य क्षेत्र काल भाव देख कर संघ का कहना स्वीकार कर लिया।

जब इधर आचार्य रत्नप्रभसूरि ने कोरंटपुर का हाल सुना तो आपने विचार किया कि कुदरत ने जो किया है वह अच्छा ही किया है कारण इस समय धर्म प्रचार के लिए ऐसे समर्थ पद की आवश्यकता भी है। क्योंकि आचार्यपद एक ऐसा महत्त्व का एवं जुम्मेदारी का पद है कि जिसको धारण करने पर उसका कर्त्तव्य को अदा करना पड़ता है और कोरंटपुर संघ ने कनकप्रभ को आचार्य्य बना कर मेरे कन्धे का बोझ [illegible] भी हलका कर दिया है अतः कोरन्टसंघ का मुझे उपकार ही मानना चाहिये।

आचार्य रत्नप्रभसूरि इतने दीर्घदर्शी और शासन हितैषी थे कि नूतनाचार्य और कोरंटपुर श्रीसंघ का उत्साह बढ़ाने के लिए अपने कुछ साधुओं को साथ लेकर कोरंटपुर की ओर विहार कर दिया [illegible] है कि 'संदेसे खेती नहीं पकती है और कार लगाओ तो ढोले पधारो'

आचार्य रत्नप्रभसूरि क्रमशः कोरंटपुर के नजदीक पधार रहे थे। यह शुभ समाचार कोरंटपुरमें पहुँचे तो बड़े ही हर्ष के साथ आचार्य्य कनकप्रभसूरी ने अपने शिष्य-मंडल के साथ सूरीजी के स्वागत के लिए प्रस्थान कर दिया। भला इस हालत में कोरंटसंघ कब पीछे रहने वाला था। एक कोरंटसंघ ही क्यों, पर उस प्रान्त में खासी चहल पहल मच गई थी और उन्होंने बड़े ही समारोह से सूरिजी का स्वागत किया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि एवं कनकप्रभसूरि जिस समय कोरंटपुर स्थित महावीर मन्दिर का दर्शन कर व्याख्यान पीठ पर विराजमान हुए तो सूर्य्य और चन्द्र की भांति ही शोभने लगे।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने मंगलाचरण के पश्चात फरमाया कि कोरंट श्रीसंघ ने हमारे गुरुभ्रात कनकप्रभ को आचार्य बना कर योग्य सत्कार किया है इसके लिए मैं आपकी प्रशंसा करता हूँ, क्योंकि जब दुकानें बढ़ती हैं तो उनके संचालक भी बढ़ने ही चाहिए। इस समय हमें धर्म का क्षेत्र विशाल बनाने की परमावश्यकता है। यदि कनकप्रभसूरि इस पद की जुम्मेवारी समझ कर अपना कर्तव्य अदा करेगा तो श्री संघ का किया हुआ प्रस्तुत कार्य अधिक लाभकारी होगा और मैं श्रीसंघ के किए हुए शुभ कार्य्य में शामिल होने की स्वीकृति भी देता हूँ। जिस कारण को लेकर आपने कनकप्रभ को आचार्य बनाया है थोड़ा उसका भी खुलासा कर देना अनुचित न होगा। बात यह थी कि आप लोग तो गुरु महाराज के बनाये हुए श्रद्धासम्पन्न श्रावक थे। आपकी श्रद्धा मजबूत है, पर उपकेशपुर के श्रावक अभी नये हैं, इसलिये मेरी उपस्थिति वहाँ खास जरूरी थी। अतः मैं मूलगे रूप वहाँ रह कर वैक्रय रूप से आपके वहाँ आया था। बस, इसके अलावा दूसरा कोई भी कारण नहीं था। यदि इसके अलावा आप लोगों के दिल में कोई दूसरा भाव हो तो शीघ्र ही निकाल दें।

सूरिजी के इन वचनों को सुन कर कोरंटसंघ बड़ा ही संतुष्ट हुआ और नम्रतापूर्वक कहने लगे कि हे प्रभो ! आप जैसे शासन स्तम्भ एवं धुरंधरों के द्वितीय भाव हो ही कैसे सके ? पर हम अल्प बुद्धि वालों ने अज्ञान के वश एवं कलिकाल के प्रभाव से व्यर्थ ही दुर्विचार कर यह कार्य्य कर डाला है; अतः आपक्षमा प्रदान करावें। इधर कनकप्रभसूरि ने अर्ज की कि हे विभो ! इस संघ की आतुरता से यहाँ का वातावरण देख मैंने संघ का कहना स्वीकार कर लिया था। फिर भी मैं आपका आज्ञापालक एक शिष्य हूँ और आप तो मेरे पूज्य ही हैं मैं यह आचार्य पद आपके चरण कमलों में अर्पण कर देता हूँ। क्योंकि आप जैसे पूज्य पुरुषों की मौजूदगी में यह पद मुझे शोभा नहीं देता है, इत्यादि।

सूरिजी ने संघ एवं कनकप्रभसूरि को सम्बोधन कर कहा कि श्रीसंघ ने आपकी योग्यता पर जो कार्य्य किया है वह अच्छा ही किया है और आज मैं भी अपनी ओर से आपको आचार्य पद दे देता हूँ। अतः अब आप इन चतुर्विध श्रीसंघ का सुन्दर रीति से संचालन कर जैन धर्म की वृद्धि करो।

अहाहा ! जैनाचार्य्यों का धर्म प्रेम स्नेह और वात्सल्यता कि जिसको देख संघ चकित हो गया और मन ही मन पश्चाताप करने लगा कि हम लोगों की भ्रांति मिथ्या ही थी। खैर समय बहुत हो जाने से सभा शान्ति के साथ विसर्जित हुई।

बाद दोनों आचार्यों ने प्रेम के साथ धर्म-प्रचार के हित कई प्रकार की योजना तैयार की और उसको शीघ्र ही काम में लेने का निश्चय किया। इधर कोरंटश्रीसंघ ने सूरिजी से चतुर्मास की विनती की और

आचार्य्य श्री ने उसे स्वीकार भी कर लिया । उधर उपकेशपुर के संघ अग्रेसर कोरंटपुर आये थे । और चतुर्मास के लिये साग्रह प्रार्थना की । इस पर आचार्य्य रत्नप्रभसूरि ने कनकप्रभसूरि को उपकेशपुर चतुर्मास करने का आदेश दे दिया । बस दोनों नगरों के संघ में आज आनन्द एवं हर्ष का पार नहीं था । और दोनों सूरीश्वर ने कई अर्सा तक कोरंटपुर में विराज कर जनता को धर्मोपदेश दिया ।

तत्पश्चात इधर तो कनकप्रभसूरि ने उपकेशपुर की ओर विहार कर दिया और उधर रत्नप्रभसूरि श्रीमाल पद्मावती चन्द्रावती आदि अर्बुदाचल के आस-पास के प्रदेश में विहार कर धर्म की प्रभा बढ़ाई बाद कोरंटपुर में चार्तुमास कर दिया । उस जमाने में अजैनों को जैन बनाने की तो एक मशीन ही चल पड़ी थी । जहां पधारते वहाँ थोड़ी बहुत संख्या में नये जैन बना ही डालते और उनके आत्म-कल्याण साधन के निमित्त जैनमन्दिरों की प्रतिष्ठा भी करवाया करते थे कि जिससे आत्म-कल्याण के साथ धर्म पर श्रद्धा भक्ति भी बढ़ती रहे दूसरा धर्म पर अपणायत और गौरव भी रहता है ।

दोनों सूरियों का दोनों नगरों में चर्तुर्मास हो जाने से श्रीसंघ में धार्मिकप्रेम स्नेह भक्ति एवं श्रद्धा और धर्म का उत्साह खूब ही बढ़ा । जो दोनों संघ में कलिकाल ने अपनी प्रभा का बीज बोया था उसे सत्ययुग में जन्मे हुये सूरिजी ने मूल से नष्ट कर डाला अर्थात् दोनों सूरिजी एवं दोनों नगरों के श्रीसंघ में शान्ति और धर्म-स्नेह बढ़ता ही गया ।

चर्तुमास समाप्त हो जाने के बाद दोनों सूरियों का विहार हुआ । वे भूभ्रमण कर धर्म प्रचार करने में लग गये ।

इस प्रकार उपकेशपुर के आस पास विचरने वाले मुनिगण आचार्य रत्नप्रभसूरि की आज्ञा में रहे उन समूह का आगे चल कर उपकेशगच्छ नाम संस्करण हुआ तथा कोरंटपुर के आस पास में विहार करने वाले श्रमणगण जो आचार्य कनकप्रभसूरि की आज्ञा में रहे आगे चल कर उनके गच्छ का नाम कोरंटगच्छ कहलाया इस तरह से भगवान पार्श्वनाथ की परम्परावृति श्रमणसंघ की दो शाखाए हो गई और वे आद्यावधि विद्यमान हैं ।

—राजा उत्पलदेव के बनाये पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा—

राजा उत्पलदेव जो एक पहाड़ी पर मन्दिर बना रहा था एवं खूब रफ्तार से तैयार हो रहा था । उस मंदिर के लिये चतुर शिल्पकारों से मूर्तियों भी तैयार करवाईं । जब क्रमशः सब काम तैयार होगया तो राजा मंत्री और नागरिक लोगों की प्रतिष्ठा के लिये इतनी उत्कंठा हो आई कि उन्होंने दोनों सूरीश्वरों को [illegible] के लिये अपने निज मनुष्यों को आमन्त्रण पत्रिकायें देकर भेजे और विशेषतया कहलाया कि पूज्यवर ! आप की आज्ञानुसार सब कार्य्य निर्विघ्नता से तैयार हो गया है । अब आप शीघ्र पधार कर इस मंदिर की प्रतिष्ठा करवा कर हम लोगों को कृतार्थ बनावें इत्यादि)

दोनो¹ सूरिजी राजा का आमन्त्रण पाकर विहार कर उपकेशपुर पधारे । [illegible]

१—एक पट्टावली में यह प्रतिष्ठा कनकप्रभसूरि के करकमलों से होना लिखा है, पर पट्टावली नंबर ४ में आचार्य रत्नप्रभसूरि और कनकप्रभसूरि एवं दोनों [illegible] लिखा हुआ है, संभव है कि दोनों सूरिवर पधारे हों । कारण, राजा उत्पलदेव के [illegible] वाले आचार्यरत्नप्रभसूरि ही थे तो ऐसे समय पर वे नहीं पधारे [illegible] । अतः यह अधिक विश्वसनीय है कि प्रतिष्ठा के समय दोनों सूरिवर पधारे हों ।

उत्साह फैल गया। महावीर मंदिर को आज सात वर्ष हो गुजरे थे। आज उपकेशपुर में वही ठाठ लग रहा है। हर्ष के वाजित्र चारों ओर बाज रहे हैं। नूतन मूर्तियों की अंज्जन सिलाका और पहाड़ी पार पार्श्वनाथ मंदिर की प्रतिष्ठा बड़े ही उत्साह के साथ हो गई। इसका समय वंशावलियों में वीर निर्वाण सं० ७७ माघ शुक्लापंचमी का बतलाया है। ठीक है इतने बड़े मंदिर के बनने में शायद सात वर्ष तो लग ही गये होंगे।

उस मन्दिर के कम्पाउण्ड में देवी सच्चायका का भी एक मन्दिर बना दिया था जिसकी प्रतिष्ठा भी पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा के साथ हो सूरिजी के कर-कमलों से करवा दी थी। देवी सच्चायका उपकेशपुर के जैनों की गौत्र देवी कहलाती थी। जिसका प्रभाव जनता पर खूब ही हुआ था तथा इसके अनुकरण में और भी कई नये मन्दिरों की वहाँ तथा आसपास के प्रदेश में सूरिजी ने प्रतिष्ठायें करवाई थीं।

महाराज उत्पलदेव का बनाया पार्श्वनाथ का मन्दिर विक्रम की तेरहवीं शताब्दी तक तो ठीक हालत में पूजित रहा। पर इस समय उपकेशपुर पर यवनों का एक बड़ा आक्रमण हुआ था और उन्होंने कई मन्दिर मूर्तियों को तोड़ फोड़ कर नष्ट भी कर दिया। उस समय उपकेशपुर में एक वीरभद्र[1] नाम का साधु महावीर के मंदिर में ठहरा हुआ था और वह था भी विद्याभूषित, पर जब यवनों का आक्रमण होने वाला था तो संघ अग्रेसरों ने महावीरमन्दिर की मूर्ति के रक्षण निमित, मूल गंभीर की वेदी पर एक पत्थर की दीवार बनादी और वहाँ से बहुत से लोग चले भी गये।

यवनों ने पहाड़ी के ऊपर के पार्श्वनाथ मन्दिर पर भी धावा बोल दिया। कुछ मूर्तियां खंडित कर डालीं। देवी सच्चायका का मन्दिर भी तोड़ डाला। इस बुरी हालत में वहाँ के जैन लोग अपना जान माल लेकर रफूचक्कर हुये। जब जैनेत्तर लोगों ने पार्श्वनाथ के मूल मन्दिर से पार्श्वनाथ की मूर्ति उठा कर टूटे हुये देवी के मन्दिर से देवी की मूर्ति ले जा कर पार्श्वनाथ के मूल मन्दिर में रख दी। इस बात को उस जमाने के सब लोग जानते थे, पर समय व्यतीत होने पर पिछले लोग उस मन्दिर को देवी का मन्दिर ही मानने लग गये। पर वास्तव में यह देवी का नहीं पार्श्वनाथ का ही मन्दिर था और यह बात निम्नलिखित प्रमाणों से साबित भी होती है, जैसे कि:—

१—देवी का मन्दिर हो तो एक ही गम्भारा यानी एक ही देहरी होनी चाहिये, पर इस मन्दिर में तीन देहरी सामने और आस पास में भी देहरियाँ बनी हुई है जो जैन मन्दिर को साबित कर रही हैं।

१ सिद्धसूरिगुरुभ्राता, वीरदेवःसदापुरे । ओकेशेनिवसन्नासीत्, पाठयन्श्रावकार्भकान् ॥
न भोगमनविद्याय, कलासु सकलासु यः । सिद्धःप्रसिद्धःसर्वत्र, सबभूव ततो गुणैः ॥
श्रुत्वा प्रसिद्धं गरिष्ठः, कोऽपी योगीतदाश्रये । एत्योवाच मुने! वारि, पाय्यतां तृषितोऽस्म्यहम् ॥

× × ×

वीरदेव मुनौ तत्र, तिष्ठत्येवं प्रभावके । द्विपञ्चाशदधिकेषु, शतेषु द्वादशस्वथ ॥
विक्रमार्कादयतीतेषूपकेश नगरे बलम् । तुरुष्काणामा जगाम, पौरलोकः पलायितः ॥
वीरदेवो नभोगामि, विद्याबल वशान् स्थिरः । अभूद् यावत्सुरासन्नं, म्लेच्छ सैन्यमुपागमम् ॥
ततः श्रीवीर बिम्बस्य, पुरः पाषाण वीड़कम् । दत्वाद्वारि निस्सार, तावन्म्लेच्छाउपागताः ॥

वाद राजा उत्पलदेव ने आचार्य रत्नप्रभसूरि से अभ्यर्थना की कि हे प्रभो ! अब मेरी वृद्धावस्था है यह चर्तुमास तो आप कृपा कर यहाँ ही करावें ताकि मैं यथाशक्ति धर्म आराधन कर सकूं इत्यादि।

सूरिजी ने अपने परम भक्त राजा उत्पलदेवादि की विनती स्वीकार कर वह चर्तुमास उपकेशपुर में ही करने का निश्चय कर लिया। इस पर उपकेशपुर नगर के भक्तगण का उत्साह खूब बढ़ गया और वे लोग अपना आत्म-कल्याण करने में तत्पर हो गये। वास्तव में सूरिजी का चर्तुमास महाराजा उत्पलदेव के धर्माराधन के लिए वड़ा ही लाभकारी हुआ और दूसरे लोगों ने भी यथाशक्ति धर्म का आराधन किया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य और आत्मकल्याण के विषय पर होता था। अतः कई नर-नारियों ने सूरिजी के पास भगवती जैनदीक्षा को भी स्वीकार कर स्वकल्याण के साथ पर कल्याण करने में तत्पर हो गये। और कई भावुकों के बनाये हुए मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा करवा कर जैनधर्म की खूब प्रभावना की।

एक समय अवसर पाकर राजा उत्पलदेव और मंत्री ऊहड़ ने सूरीश्वरजी से प्रार्थना की कि हे प्रभो ! यों तो आपकी कृपा से हम लोगोंने यथाशक्ति थोड़ा बहुत धर्मकार्य किया ही है पर एक खास बात हमारे दिल में यह है कि हमारे यहां आपश्री के कर कमलों से किसी योग्य मुनिराज को आचार्य पद दिया जाय तो उसका हम लोग महोत्सव करके अपने जीवन को कृतार्थ बनायें। कारण, इस प्रान्त में यह कार्य अभी नहीं हुआ है। अतः सब लोगों की साग्रह उत्कंठा है। दूसरे आपश्रीजी की अवस्था भी वृद्ध होगई है। अतः हमारी इस प्रार्थना को स्वीकार कर हमारे उत्साह को वढ़ायें। सूरिजी ने कहा कि आपकी भावना बहुत अच्छी है, फिरभी मैं इसका विचार करूंगा। इसपर राजाने कहा इस बातके लिए आपको क्या विचार करना है? उपाध्याय वीरधवल आपके पद प्रतिष्ठित होने में सर्व-गुण-सम्पन्न हैं। अतः आप इनको आचार्य बना दें इत्यादि। राजा मंत्री और श्रीसंघ का अति आग्रह होने से सूरिजी ने देवीसत्यका की सम्मति ली पर देवी भी ऐसे सुअवसर को हाथों से कब जाने देने वाली थी। उसने सम्मति दे दी। अतः सूरिजी ने वीरधवल को सूरिपद देने का निश्चय प्रगट कर दिया। फिर तो था ही क्या? राजा ने बड़े उत्साह से पट्ट महोत्सव की तैयारियाँ करनी शुरू कर दीं। केवल उपकेशपुर में ही नहीं पर उस प्रान्त में खूब चहल पहल मच गई। जिनमंदिरों में अठाई महोत्सव शुरु हो गये। कहा जाता है कि इस महोत्सव में राजा उत्पलदेव ने सवा करोड़ द्रव्य व्यय सुर्लभ वोधित्व उपार्जन किया था शुभ मुहूर्त में और स्थिर लग्नमें आचार्य श्री रत्नप्रभसूरिने उपाध्याय व..ल को आचार्य पद से विभूपित बनाये, और आपका नाम देवी सत्यका की सम्मति से यक्षदेवसूरि दिया साथ में ११ मुनियों को उपाध्याय, १५ मुनियों को वाचनाचार्य और १५ मुनियों को पंडित पद भी दिया था। उपकेशपुर में सूरिपद का यह महोत्सव पहिले पहल ही हुआ था। अतः इसका जनता पर खूब प्रभाव हुआ इतना ही क्यों पर कई ३७ पुरुष और ६० महिलाओं ने सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैन दीक्षा स्वीकार की थी। सूरीश्वरजी के उपकेशपुर में चतुर्मास करने से जैनधर्म की खूब उन्नति एवं प्रभावना हुई।

सद्गुरुपद नित वंदोरे भविका। चर्चित होत आनंदोरे ॥भविका० स०॥ राजगृहि सर्वसंघ मिलकर। विनति पत्र पठावे। बहुत से श्रीसंघ सामा आवे। गुरुपद शीश झुकावेरे ॥ भविका० स० ॥ १ ॥ करजोरी पुन विनति करत है। संघ उपद्रव टालो ।यक्ष मानभद्र नित्य सतावे। ताको विघन निवारोरे ॥

"श्री रत्नप्रभसूरि की बड़ी पूजा"

मगधदेश के अन्तर्गत राजगृह नगर में एक यक्ष ने ऐसा उत्पात मचा रक्खा था कि जिसके उपद्रव से सम्पूर्ण नगर निवासी लोग महान दुःखी हो गये, अर्थात नगर में त्राहि त्राहि मच गई। इस संकट के लिए नगर निवासियों ने बहुत उपचार किये पर वे सब के सब निष्फल ही रहे।

मरुधर के कई मनुष्य व्यापारार्थ मगध में गये थे, वहां के लोगों ने मरुधर निवासियों के मुंह से आचार्य रत्नप्रभसूरि की धवल कीर्ति एवं अतिशय प्रभाव सुना और उनकी इच्छा रत्नप्रभसूरि को मगध में लाने की हुई, अतः कई भक्तजन मगध से चल कर मरुधर में आये और आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी के दर्शन कर प्रसन्न हुए। तदनन्तर उन मगधों ने अपनी दुःख गाथा सुनाई और श्रीसंघ का आमन्त्रण पत्र सूरीश्वर जी को दिया और साथ में पूर्व में पधारने की भी साग्रह प्रार्थना की। इस पर सूरीश्वरजी ने बहुत कुछ विचार किया पर आपश्री तो उस समय एक ऐसे ध्यान के कार्य में लगे हुए थे कि उन विशेष कारणों से पधार नहीं सके, परन्तु आपके हृदय में संघ संकट दूर करने की भावना अवश्य थी। अतः आपश्री ने अपने योग्य शिष्य यक्षदेवसूरि को आदेश दे दिया कि राजगृह श्रीसंघ की इतनी आग्रह है तो तुम जाओ और श्री संघ के संकट को दूर करो इत्यादि।

यद्यपि यक्षदेवसूरि की इच्छा सूरीश्वरजी की सेवा छोड़ने की नहीं थी, तथापि सूरीश्वरजी की आज्ञा शिरोधार्य्य भी करना जरूरी बात थी।

अतः गुरु आदेश को शिरोधार्य्य कर लिया पर उस समय कोरंटपुर का संघ भी सूरिजी से विनती करने आया हुआ था और उनकी अत्याग्रह देखकर सूरीश्वरजी ने यक्षदेवसूरि को आज्ञा दे दी कि तुम यहाँ से कोरंटपुर होकर[1] ही पूर्व में जाना। अतः सूरिजी की आज्ञानुसार उपकेशपुर से १०० साधुओं को साथ लेकर यक्षदेवसूरि विहार कर पहिले कोरंटपुर पधारे। अतः कोरंटसंघ में खूब हर्ष एवं उत्साह फैल गया। सूरि जी महाराज ने जिस कार्य के उद्देश्य से पूर्व की ओर पधारने का इरादा किया था वह आपकी परीक्षा तो पहले ही होने वाली थी कि कोरंटपुर में आपके किसी लघु शिष्य ने पात्र प्रक्षालन का जल बिना उपयोग से एक यक्ष की मूर्ति पर डाल दिया। बस, यक्ष क्रोधित हो उस साधु को पागल सा बना दिया यह घटना सूरिजी ने सुनी तो साधु को उपालम्भ दिया और उस यक्ष को प्रत्यक्ष में बुलाकर ऐसा समझाया कि वह सूरिजी महाराज का परम भक्त बनगया। खैर सूरिजी महाराज ने कुछ अर्सा तक कोरंटपुर में स्थिरता कर वहां से विहार किया तो शौरीपुर मथुरा की यात्रा करते हुए पूर्व प्रान्त में पदार्पण किया।

क्रमशः वे विहार करते हुए मगध प्रान्त एवं राजगृह नगर में पधार गये समय के अभाव उन रोज आप नगर के बाहर श्मशानों में ही ठहर गये। नगर में सर्वत्र यह बात फैल गई थी कि मरुधर प्रान्त से एक जबर्दस्त जैन साधु आया है अतः अब अपना सब दुःख संकट दूर हो जायगा।

१—हरिः कोरंटकपुरे, कदाऽपि विहरन् ययौ। [illegible]
तच्छिष्योलघुकःकोऽपि, यक्षमूर्द्धनि मोक्षर्तः। [illegible]
ततः प्रकुपितोयक्षः, शिष्यं तं ग्रहिलं व्यधात्। [illegible]
निर्भर्त्सितः स आचार्यैः, सेवकत्वं प्रपद्यतान्। [illegible]

२—शौरिपुर्यां च मथुरायां, [illegible]
[illegible] जैनधर्मस्य [illegible]

रात्रि समय सूरिजी ने स्मशान में ध्यान लगा दिया था। उसी समय यक्षराज ने मारे गुस्से के स्मशान में आकर इतना उपद्रव करना शुरु किया कि कायर मनुष्य का कलेजा फट जाय या वह जान लेकर वहां से भाग जाय। पर सूरिजी को तो इस बात की परवाह ही नहीं थी और वह यक्ष भी सूरिजी का एक बाल भी वाँका नहीं कर सका। तत्पश्चात् सूरिजी ने 'नमीउण' महा मंत्र का जाप किया जिससे यक्ष का कोप शान्त हुआ और उसने सूरिजी के पास आकर शिर झुका दिया और सूरिजी उस यक्ष को उपदेश देने लगे कि हे यक्षराज! पूर्व जन्म में तो तुमने कुछ अच्छे पुन्यों का संचय किया था कि इस भव में तुमको देवयोनि मिली है पर इस देव योनि में इस प्रकार का घोर पातक कर रहा है इसका फल सिवाय नरक के क्या हो सकेगा इत्यादि। सूरिजी के उपदेश से यक्ष को थोड़ा बहुत बोध तो हुआ पर वह था गुस्से में अतः बोला कि हे महामुनि! इस नगर के लोग बड़े ही नालायक एवं दुष्ट हैं। इन लोगों ने मेरी बहुत आशातना की है। इतना ही नहीं पर मेरी मूर्ति को तोड़फोड़कर टुकड़े २ करदिये हैं तो क्या मैं अपना बदला नहीं लूंगा!

सूरिजी ने कहा, हे यक्षराज! अगर आपका किसी ने अपराध भी किया हो तो उसका बदला लेने में आपकी बड़ाई या महत्त्व नहीं है पर उदारता के साथ उस अपराध को क्षमा करने में ही बड़प्पन है यह वो नीच पुरुषों का काम है कि अपराध का बदला लेना, दूसरे आशातना तो एक दो जीवों ने की होगी और उसका दंड सब नगर को दिया जाय यह विवेकी पुरुषों का काम नहीं है अतः आप शान्ति रक्खें।

सूरिजी के इन वचनों से यक्ष शान्त होकर कहने लगा कि गुरु महाराज आपके उपदेश ने मेरे पर बहुत प्रभाव डाला है और आज से मैं आपको अपना गुरु ही समझता हूँ। मैं अब आपकी आज्ञानुसार इस नगर के लोगों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं दूँगा पर मेरी मूर्ति वापिस बननी चाहिये। सूरिजी ने यक्ष की बात स्वीकार करली और कहा ठीक है यक्षराज! आपकी मूर्ति बन जायगी। अतः यक्ष सूरिजी का भक्त बन गया और वन्दन नमस्कार कर कहा कि पूज्यवर! आप जब मुझे याद करेंगे मैं सेवा में हाजिर होऊंगा। इतना कह कर चला गया।

सुबह सहस्रकिरणवाला सूर्य्य प्रकाशमान होते ही सूरिजी महाराज नगर के नजदीक उद्यान में पधार गये उधर नगर के सब लोग सूरिजी को वंदन करने को आये। सूरिजी ने मधुर ध्वनि से भवतारक देशना दी। व्याख्यान के अन्त में जैन जैनेतर लोगों ने अपनी दुःख कथा कह सुनाई और उसको मिटाने की प्रार्थना की। सूरिजी ने कहा कि किसी भी देवस्थान की आशातना करना इस लोक और परलोक में अहित ही कारण है अतः तुम्हारे नगर से यक्षदेव की आशातना हुई है। यद्यपि देव मिथ्यात्वी था पर अब वह सम्यग्दृष्टि बन गया है। अतः आप लोग उस यक्ष की मूर्ति पूर्ववत स्थापित करो तुम्हारा सब संकट मिट जायगा। भक्त लोगों ने स्वीकार कर लिया। सूरिजी महाराज के इस चमत्कार को देखकर नगर के लोग जैनधर्म की भूरिभूरि प्रशंसा करने लगे। साथ में सूरिजी का भी महान उपकार समझकर कई जैनेतर लोगों ने जैनधर्म को भी स्वीकार कर लिया। अतः सूरिजी के पधारने से जैनधर्म की बड़ी भारी प्रभावना हुई। नगर में जहाँ देखो वहाँ जैनधर्म का ही यशोगान हो रहा था।

सूरिजी ने कई दिन तो राजगृह नगर में ठहरकर जनता को धार्मिक उपदेश सुनाया, बाद आस पास के प्रदेश में विहार किया तथा वहाँ के तीर्थों की यात्रा कर अपनी आत्मा को पवित्र बनाई। श्रीसंघ के अत्याग्रह से वह चतुर्मास तो राजगृह नगर में ही व्यतीत किया।

पट्टावली नं ५ में लिखा है कि यक्षदेवसूरि ने पूर्व देश में विहार कर कई सवा लक्ष अजैनों को जैन बनाये और ३०० मुमुक्षुओं को जैनधर्म की दीक्षा दी फिर भी आपकी इच्छा उस प्रान्त में विचरने की थी परन्तु आपको पुनः आचार्यश्री की सेवा में पधारने की बहुत जल्दी थी। अतः वहाँ से विहार कर जल्दी ही गुरू सेवा में उपकेशपुर पहुँच गये और अपने विहार का सब हाल सूरीश्वरजी की सेवा में निवेदन कर दिया जिसको सुनकर आचार्य्यश्री बहुत प्रसन्न हुये, कहा भी है कि 'कमाऊ बेटो किसको प्यारो नहीं लागे'।

आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज इधर अपना योगकार्य सफल होने के बाद राजपूताना एवं मरुधर प्रान्त में नये नये अजैनों को जैन बना बना कर जैनधर्म का खूब जोरों से प्रचार कर रहे थे और अनेक नये २ मन्दिरों की प्रतिष्ठा कराके जैनधर्म की नींव को मजबूत बना रहे थे। उधर पूर्व बंगाल और मगधदेश में आचार्य जम्बूस्वामी की अध्यक्षता में हजारों साधु जैनधर्म का प्रचार कर रहे थे। आचार्य जम्बूस्वामी को भगवान महावीर के निर्वाण के बाद २० वर्षों में केवल ज्ञान हुआ और ४४ वर्ष तक आपने केवल ज्ञान में धर्मोपदेश दिया और वीर निर्वाण संवत् ६४ में आपकी मोक्ष हुई। आपके पश्चात् आपके पट्टधर प्रभवस्वामी हुये। आपका चरित्र भी महाप्रभावशाली था, जिसको मैं यहां संक्षेप में लिख देता हूँ।

भगवान महावीर प्रभु के—पहले पट्टधर गणधर सौधर्म, दूसरे पट्टधर आर्यजम्बु हुए जिनका जीवन पहले पढ़ चुके हैं अब तीसरे पट्ट पर आचार्यश्रीप्रभवस्वामी बड़े ही प्रतिभाशाली हुये। इनकी जीवनी महत्वपूर्ण रहस्यमयी है। आपका जन्म विन्ध्याचल पर्वत के समीपवर्ती जयपुर नगर के कात्यायन गोत्रिय नरेश जयसेन के घर हुआ था। आपका लघु भाई विनयधर था। जिसका स्वभाव राजसी था। छोटे भाई पर पिता विशेष प्रसन्न रहता था। विनयधर भी चतुर और राजनीति विशारद था अतएव जयसेन ने अपना उत्तराधिकारी विनयधर को ही बनाया। यह बात प्रभव को अनुचित प्रतीत हुई। प्रभव इस बात को सहन न कर सका। अतः वह अपने भाई से असहयोग कर नगर के बाहर चला गया। जाता जाता एक अटवी में पहुँच गया। वहां क्या देखता है कि उस स्थान पर बहुत से तस्कर एकत्रित हैं। वह उनके पास गया और उन्हें अपना परिचय इस ढंग से दिया कि सारे दस्युगण चाहने लगे कि यदि यह रूठा राजकुमार हमारा नायक हो जाय तो हम निर्भय होकर चोरियां करेंगे। बना भी ऐसा ही कि प्रभव उस पल्ली के ४९९ चोरों का नायक बन कर उसने जनता को हर प्रकार से लूटना प्रारम्भ किया। देश भर में त्राहि त्राहि मच गई। उस देश के राजा ने इन चोरों को पकड़ने का पूर्ण प्रयत्न किया पर एक भी चोर हाथ नहीं लगा। प्रभव ने चोरों को ऐसी युक्तियां बता दीं कि कोई उनका बाल भी बांका नहीं कर सकता था। प्रभव की प्रकृति बड़ी उग्र थी। जिस कार्य्य में वह हाथ डालता उसे सम्यक् प्रकार से सम्पादित कर ही लेता था। एक बार वह [illegible] महल में गया और वहां जम्बुकुमार का उपदेश सुना। इस वृत्ति को तिलांजलि दे उसने अपने ५०० चोरों सहित सौधर्माचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की। उसने उग्र प्रकृति के कारण [illegible] ज्ञान शीघ्र ही प्राप्त कर लिया। उसका कार्य इतना श्रेष्ठ हुआ कि वह अन्त में वीरात् ६४ वर्ष में जम्बुमुनि के पीछे आचार्य पद पर आरूढ़ हुआ।

जिस प्रकार प्रभव संसार में लूटने खसोटने में सर्वोपरि थे वैसे ही दीक्षित होने पर [illegible] में पूर्ण योद्धा थे। किसी ने ठीक ही तो कहा है "कर्मे शूरा ते धर्मे शूरा" प्रभव मुनि चौदह पूर्वों के ज्ञाता और सकल शास्त्र पारंगत थे। आपने जैनधर्म का खूब अभ्युदय किया [illegible]

साधुओं का संगठन एवं संचालन भी बड़ी खूबी से किया। हजारों नरनारियों को दीक्षित कर आपने जैनशासन के उत्थान में पूरा हाथ बँटाया।

आपने अन्तिम अवस्थामें श्रुतज्ञान द्वारा उपयोग लगा कर जानना चाहा कि मैं अपने पीछे आचार्यपद से किसको विभूषित करू? पर कोई साधु दृष्टिगोचर नहीं हुआ तब आपने श्रावकवर्ग की ओर निरीक्षण किया तो कोई होनहार पुरुष नहीं जँचा। आपने आश्चर्य किया कि मेरे सम्मुख आज करोड़ों जैनी हैं क्या कोई भी आचार्यपद के योग्य नहीं है? तो अब क्या किया जाय? तब आपने जैनेतर लोगों की ओर दृष्टिपात किया तो आपने समस्या हल होने की सम्भावना अनुभव की। आपको ज्ञात हुआ कि राजगृह नगर का रहने वाला यक्षगौत्रिय यजुर्वेदीय यज्ञारंभ करते हुए अग्रेश्वरों में शय्यंभव भट्ट इस पद के योग्य हो सकता है। इसके अतिरिक्त और कोई नहीं है। तब आपने अपने साधुओं को उस स्थान की ओर भेज कर यह संदेश कहलाया कि वहां यज्ञ करने वालों को जाकर बार २ कहो कि "अहो कष्टं महोकष्टं तत्वं न ज्ञायते परम्"। इस सूत्र को बार बार उच्चारण करो तथा वापिस लौट आओ। आचार्यश्री की आज्ञानुसार मुनिगण उस शान्त स्थान की ओर गये और शय्यंभवभट्ट के समक्ष जाकर उपरोक्त वाक्य की कई वार पुनरावृत्ति की। शय्यंभवभट्ट ने विचार किया कि यह निरापेक्षी जैनमुनि असत्य नहीं बोलते। क्या मेरा श्रम सब व्यर्थ है? क्या सचमुच में प्रतिकूल मार्ग का पथिक हूँ? सत्यासत्य का निर्णय करने के हित वह अपने गुरु के पास खड्ग लेकर गया और पूछा कि आप सत्य सत्य सप्रमाण कहिये कि इस क्रियाकाण्ड का क्या फल है? यदि तुमने संतोषप्रद उत्तर नहीं दिया तो इसी तलवार से तुम्हारी खबर लूंगा। गुरू ने देखा कि अब असत्य कहने से जान जोखों में है तो सत्य हाल कह दिया कि वत्स! इस यज्ञ के स्तम्भ के नीचे जैन: तीर्थंकर शान्तिनाथ स्वामी की मूर्त्ति है और इसी मूर्त्ति के अतिशय से ही अपना यज्ञ का कार्य चल रहा है। अन्यथा अपना इतना प्रभाव कभी नहीं पड़ सकता था। यह समाचार सुनते ही शय्यंभवभट्ट ने यज्ञ स्तम्भ को हटा कर शान्तिनाथ भगवान की मूर्त्ति निकाल कर दर्शन किये। दर्शन करते ही उसे प्रतिबोध हुआ। मिथ्या गुरू को त्याग कर आपने सम्यक् दर्शनका अवलम्बन लिया, यज्ञ यागादि की निष्ठुर क्रियाओं से दूर होकर आपका मन शुद्ध जैनधर्म के चरित्र की ओर झुक गया। आपने प्रभव आचार्य के पास जाकर [illegible] ग्रहण की। दीक्षा लेकर आपने गुरुकुल में रह चौदहपूर्व का अध्ययन एवं मनन किया।

आचार्य प्रभवसूरि आचार्यपद का भार शय्यंभवमुनि को दे निवृत्ति मार्ग पर चलते हुये व्यवहारगिरि पर अनशन लेकर वीरात् ७५ संवत् को स्वयं स्वर्गवास पधारे। आपके पट्ट पर आचार्य शय्यंभवा-चार्य हुए, अतः आपका संक्षिप्त परिचय भी यहां करवा दिया जाता है।

भगवान महावीर के चौथे पट्ट पर शय्यंभवसूरि बड़े ओजस्वी एवं निस्पृह हुए। जिस समय आपने यज्ञ आदि को त्याग कर प्रभवआचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की थी उस समय आपकी धर्मपत्नी गर्भवती थी। इस गर्भ से मनक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब यह बालक आठ वर्ष का हुआ तो सहपाठियों द्वारा प्रश्न पूंछे जाने पर अपनी माता को आकर पूछने लगा कि मेरे पिताजी कहाँ हैं? माता ने अपने पुत्र मनक को उत्तर दिया कि बेटा "तेरा पिता तो जैन साधु है, जब तू मेरे गर्भ में था तब उन्होंने एक जैना-चार्य के पास दीक्षा लेली थी। आज वे मुनि राजा महाराजाओं से पूजे जाते हैं। तेरे पिता अपनी योग्यता से वहाँ भी आज आचार्य पद पर सुशोभित हैं"।

जब माता से पुत्र ने यह बातें सुनी तो उसकी भी इच्छा हुई कि एक बार चलकर देख तो आऊं कि वे आचार्य कैसे हैं ? विचार करते २ उसने मिलने के लिए प्रस्थान करना निश्चय किया। उसने सोचा कि कदाचित् माताजी मेरे प्रस्ताव से सहमत न हों अतएव बिना पूछे चुपचाप वहां से भाग जाना ही ठीक है। 'मनक' अन्त में घर से बाहर निकल गया और शय्यंभव आचार्य का समाचार पूछता पूछता चम्पानगर में पहुँच गया। नगर के द्वार पर यह बैठा था कि उसने आचार्य श्री को प्रवेश करते हुये देखा। उसने उन्हें जैनमुनि समझ कर पूछा कि क्या आपको ज्ञात है कि मेरे पिता शय्यंभव, जो आज कल आपके आचार्य कहलाते हैं इस नगर में हैं ? आचार्यश्री ने उत्तर दिया कि "सो तो ठीक, पर तुम्हें उनसे अब क्या सरोकार है। क्या तुम्हें पिता के पास दीक्षा लेना है ?" मनक ने उत्तर दिया, "जी हाँ, मेरी इच्छा है कि मैं भी दीक्षा लूं"। आचार्य श्री ने कहा कि यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो चलो मेरे साथ। मैं वही हूँ। तुम्हें दीक्षा दूँगा। मनक की दीक्षा समारोह के साथ हुई। आचार्य श्री ने विचार किया कि इस मनक मुनि को कुछ अध्ययन कराना चाहिये क्योंकि श्रुतज्ञान के योग से ज्ञात हुआ कि इसकी आयु स्वल्प है। आचार्य श्री जो शिक्षा प्रणाली से पूर्ण परिचित थे इस मुनि के पाठ्यक्रम की नई योजना करने लगे। पाठ्यक्रम बनाने के हेतु से पूर्वांग उद्धृत कर वैकाल के अन्दर दशाध्ययन सङ्कलित कर उसका नाम दशवैकालिक सूत्र रख दिया और मनक मुनि ने इस सूत्र का अध्ययन कर केवल अर्द्ध वर्ष में ही आराधिपद प्राप्त कर स्वर्ग की ओर प्रयाण किया।

जिस समय मनक मुनि का देहान्त हुआ उस समय आचार्य श्री की आंखों ने आंसुओं की झड़ी लग गई। इन प्रेमाश्रुओं से अन्य मुनियों ने उदासीनता समझ कर आचार्यश्री से प्रश्न किया कि आपकी इस दशा का क्या कारण है ? आचार्य श्री ने उत्तर दिया कि मनक मेरा सांसारिक नाते से पुत्र और धार्मिक नाते से लघु शिष्य था। ऐसी छोटी उम्र में काल कर जाने के कारण मुझे खेद है पर साथ में मेरे ही हाथों से इसने चारित्र आराधन कर उच्च पद को प्राप्त किया है इसी का मुझे हर्ष है।

यशोभद्र आदि मुनियों ने पूछा, "भगवन ! आपने यह बात हमें प्रथम क्यों नहीं प्रकाशित की ? अन्यथा हम इसकी वय्यावच्च का पूर्ण लाभ उठाते।"

आचार्य श्री ने उत्तर दिया कि यदि यह नाता मैं पहिले बता देता तो कदाचित् इसके अध्ययन में व ध्यान में कुछ खामी रह जाती ! इसी कारण से मैंने तुम्हें यह बात नहीं कही। फिर आचार्य श्री ने विचार किया कि इस नूतन सूत्र दशवैकालिक को पुनः पूर्वांग तक संहारण करूँ। इस पर चतुर्विध संघ ने अनुरोध किया कि भगवन् ! इस पंचमकाल में ऐसे सूत्र की नितान्त आवश्यकता है अतएव आप इस सूत्र को ऐसा ही रहने दीजिये ताकि अल्प बुद्धि वाले भी इसका आराधन कर अपना कल्याण करने में समर्थ होंगे। आचार्य श्री ने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर यह सूत्र उसी रूप में रहने दिया। इसी सूत्र के [illegible] से आज साधु साध्वियां अपना कल्याण कर रही हैं और इस आरे के अन्त तक करेंगी [illegible]।

आचार्यश्री शय्यंभवसूरि बड़े ही उपकारी हुये। धर्म का प्रचार करते [illegible]

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने इस भूमि पर जन्म लेकर अपने कल्याण के साथ अनेक भव्यों का कल्याण किया। इतना ही नहीं पर महाजन संघ रूपी एक कल्प वृक्ष लगाकर [illegible] चिरस्थायी बना दी। आपने अपने जीवन में १५०० साधु [illegible] साध्वियों और [illegible]

आचार पतित क्षत्रियों को जैन बना कर जैनशासन की खूब उन्नति की। और मारवाड़ जैसे प्रान्त में अनेक जैन मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर जैन धर्म की नींव सुदृढ़ बनाकर धर्म को चिरस्थायी बना दिया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि एवं आपके साधुओं का विशेष विहार उपकेशपुर एवं उसके आस पास के प्रदेश में होने से आगे चलकर उनके समूह एवं सम्प्रदाय का नाम उपकेशगच्छ हुआ और आचार्य कनकप्रभसूरि के श्रमणों का विहार प्रायः कोरंटपुर एवं उसके आस पास के प्रदेश में होने से वह समूह कोरंटगच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि जैन समाज पर इन आचार्यों का कितना जबर्दस्त उपकार है कि जिन्होंने मांस मदिरा आदि दुर्व्यसन सेवन से नरक के अभिमुख हुए जीवों का दुर्व्यसन छुड़ा कर जैनी बना स्वर्ग मोक्ष के अधिकारी बनाये। यदि इस उपकार को हम लोग क्षण भर भी भूल जांय तो हमारे जैसा कृतघ्नी पापी जगत में कौन होगा ? अतः उन पूज्यवर आचार्यों का प्रति समय उपकार समझ स्मरण करना हमारा सबसे प्रथम कर्तव्य है। लोक युक्ति है कि—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किस के लागूं पाय। बलिहारी गुरु देव की सो, मार्ग दिया बताय॥

मैं इन परोपकारी सूरीश्वर के सम्पूर्ण जीवन से न तो इतना वाकिफ हूँ और न इस लोहे की तुच्छ लेखनी से लिख ही सकता हूँ,तथापि जितना मसाला मुझे मिला है वह एक बालक्रीड़ा की तौर लिखा है। फिर भी मैं उम्मेद रखता हूँ कि मेरा यह लिखा हुआ संक्षिप्त जीवन भी जैनसमाज के लिए परोपकारी होगा।

आचार्य रत्नप्रभसूरि का जन्म महावीर निर्वाण का वर्ष था आपने ४० वर्ष की उम्र में राजपाट सुख सम्पत्ति एवं कुटुम्ब परिवार को त्यागन करके आचार्य स्वयंप्रभसूरि के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा को ग्रहण किया तत्पश्चात् १२ वर्ष पर्यंत ज्ञान ध्यान एवं आचार्य पद योग्य सर्व गुण संपन्न होकर वीरात् ५२ वें वर्ष आचार्य पद पर आरूढ़ हुए और अठारह वर्षो के बाद उपकेशपुर नगर में पधार कर आचार पतित क्षत्रियों को जैन धर्म की दीक्षा शिक्षा देकर 'महाजन संघ' की स्थापना करी तथा १४ वर्ष तक इसकी खूब वृद्धि करी। अन्त में १५०० साधु ३००० साध्वियां और असंख्य भक्त गणों के साथ भवतारक परम पुनीत तीर्थाधिराजश्री शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा कर वहां चतुर्विध श्री संघ की विद्यमानता में अनसन एवं ... के साथ जैनधर्म की आराधना पूर्वक इस नाशवान शरीर का त्याग कर वीरात् ८४ वर्ष माघशुक्ल पूर्णिमा के दिन बारहवाँ अच्युत स्वर्ग की ओरप्रस्थान किया।

अतः ओसवाल समाज का यह सब से पहिला कर्त्तव्य है कि वे प्रति वर्ष श्रावण कृष्ण चतुर्दशी के दिन ओसवाल जाति का जन्म दिन का महोत्सव और माघशुक्ल पूर्णिमा के दिन वही २ सभायें करके आचार्यरत्नप्रभ सूरि की जयन्ति मनाकर यह शुभ सदेश प्रत्येक प्राणी के हृदय तक पहुँचाकर कृतार्थ बने।

षष्टम पट्टधर जो हुए आचार्य रत्न सुनाम था। विद्याधरों के अग्र थे उद्धार उनका काम था॥
उपकेशपुर में पहुंच नृपति रविवंशी उपलदेव को। दीक्षित किया मंत्री ऊहड़ सह लक्ष क्षत्री वीर को॥
उपकेशवंशी ओसवंशी ही आज ओसवाल हैं। आचार्य गुण कैसे करे उनका बहुत उपकार हैं॥

॥ इति भगवान् पार्श्वनाथ के छटे पट्टधर आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि का संक्षिप्त जीवन॥

सिंहावलोकन

१—वीर निर्वाण संवत् एक में आचार्य रत्नप्रभसूरि का विद्याधर वंश में जन्म।

२—वी० नि० सं० ४० में आचार्य स्वयँप्रभसूरि के हाथों से रत्नप्रभसूरि की दीक्षा।

३—वी० नि० सं० ५२ में आचार्यश्री स्वयंप्रभसूरि के करकमलों से आचार्य रत्नप्रभसूरि का आचार्य पद प्रतिष्ठित होना।

४—वी० नि० सं. ७० के वैशाख मास में आचार्य रत्नप्रभसूरि का ५०० मुनियों के साथ में उपकेशपुर पधारना।

५—वी० नि० सं० ७० श्रावण कृष्ण चतुर्दशी के शुभदिन में रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर के सूर्य्यवंशी राजाउत्पलदेव चान्द्रवंशी मंत्री ऊहड़ और नागरिक क्षत्रियों को कुव्यसन छुड़ाकर जैनधर्म में दीक्षित करना।

६—वी० नि० सं० ७० श्रावणशुद्धप्रतिपदा के शुभदिन में उन नूतन जैनों की 'महाजनसंघ' रूपी एक सुदृढ़ संस्था कायम करना।

७—वी. नि. सं. ७० माघशुक्ल पंचमी के दिन आचार्य रत्नप्रभसूरि के कर कमलों से उपकेशपुर और कोरंटपुर नगर में महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा का होना।

८—वी. नि. सं. ७० में कोरंटपुर के श्रीसंघ द्वारा कनकप्रभ को आचार्य पद होना।

९—वी. नि. सं. ७७ में उपकेशपुर के महाराजा उत्पलदेव के बनवाये पहाड़ी पर के प्रभु पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा आचार्य रत्नप्रभसूरि एवं कनकप्रभसूरि के कर कमलों से होना।

१०—वी. नि. सं. ८२ में आचार्यरत्नप्रभसूरि के कर कमलों से वीरधवलोपाध्याय को आचार्य पद से विभूषित कर आपका नाम यक्षदेव सूरि रखना और आचार्य रत्नप्रभसूरिजी अन्तिम सल्लेखना-योग एवं ध्यान में लग जाना। यह पहले जमाना की पद्धति थी कि आचार्य श्री अपने गच्छ का भार किसी योग्य मुनि को देकर आप विशेष निवृति में लग जाते थे तदानुसार आचार्य रत्नप्रभसूरि ने भी किया था।

११—वी. नि. सं. ८३ में आचार्य यक्षदेवसूरि ने राजगृह नगर में उपद्रव करते हुवे यक्ष को प्रतिबोध करके वहाँ चतुर्मास किया तथा पूर्व देश की यात्रा कर सवा लक्ष नये जैन तथा ३०० साधु साध्वियों को दीक्षा देकर पुनः उपकेशपुर पधारना।

१२—आचार्य रत्नप्रभसूरि का अपने शेष जीवन में १४००००० नये जैन श्रावक श्राविकायें तथा १५०० साधु ३००० साध्वियो को जैनधर्म की दीक्षा देना।

१३—वी. नि. सं. ८४ माघशुक्ल पूर्णिमा के दिन श्री सिद्धगिरि पर आचार्य यक्षदेवसूरि को गच्छ नायक पदार्पण कर चतुर्विध श्रीसंघ की मौजुदगी में अनशनपूर्वक आचार्य रत्नप्रभसूरि का स्वर्गगमन होना।

१४—श्रीसिद्धगिरी पर श्रीसंघ की ओर से आचार्य रत्नप्रभसूरि के स्मृति के लिये एक विशाल स्तूप करवाना।

प्रमाणवाद

शान्तिचंद्र—आजकल आप क्या लिख रहे हैं ?

कान्तिचंद्र—मैं प्राचीन इतिहास लिख रहा हूँ।

शान्ति—वह किस विषय का है ?

कान्ति—क्या पूछते हो, विषय बहुत जटिल है।

शान्ति—आखिर वह है क्या ?

कान्ति—मैं अपने पूर्वजों का इतिहास लिख रहा हूँ।

शान्ति—कितनाक लिख लिया है ?

कान्ति—लिखें क्या, भाई साहब कुछ साधन ही नहीं मिलता है।

शान्ति—फिर भी कुछ तो मिला ही होगा न ?

कान्ति—बहुत कम मिला है।

शान्ति—आपने प्राचीन ग्रन्थ पट्टावलियां या कुलगुरुओं की लिखी हुई वंशावलियों का अवलोकन किया है या नहीं ?

कान्ति—मुझे उस साहित्य पर विश्वास नहीं है।

शान्ति—किस कारण से ?

कान्ति—उस साहित्य में केवल इधर उधर की सुनी हुई बातें ही हैं।

शान्ति—पट्टावलियें, वंशावलियें सर्वथा निरा-नहीं हैं उनमें भी ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत तथ्य रहा हुआ है, अतः इतिहास लिखने में वे उपादेय हैं। देखिये खास इतिहास के लिखने वाले पं. गौरीशंकरजीओझा क्या कहते हैं :—

"इतिहास व काव्यों के अतिरिक्त वंशावलियों की कई पुस्तकें मिलती हैं × ×तथा जैनों की कई एक पट्टावलियां आदि मिलती हैं। ये भी इतिहास के साधन हैं। "राजपूताना का इतिहास पृष्ट १०"

कान्ति—कोई कुछ भी कहो, जहाँ तक ऐतिहासिक प्रमाण न मिलें वहाँ तक मैं उन्हें उपादेय नहीं समझता हूँ।

शान्ति—आपका कहना थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जाय तो भी इतिहास के अनुसंधान में वे बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। अतः वह आदरणीय हैं।

कान्ति—इतिहास की सामग्री शिलालेख, ताम्रपत्र, दानपत्र, सिक्का और उस समय के लिखे हुये प्रमाणिक पुरुषों के ग्रन्थ ही हो सकती हैं और इनको ही हम ऐतिहासिक एवं प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं।

शान्ति—आपका कहना ठीक है परन्तु विशाल भारत के लिये पूर्वोक्त साधन अपर्याप्त ही समझे जाते है। अतः इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के साथ परोक्ष प्रमाण (आगम उपमान और अनुमान) मान लिये जांय तो इतिहास सर्वांग-शुद्ध बन सकता है।

कान्ति—मैं इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं हूँ। मेरा सिद्धान्त तो एक ही है।

शान्ति—ये आपका एकान्तवाद केवल हठवाद ही है। लीजिये एक उदाहरण आपके सामने उपस्थित करता हूँ। किसी गोविन्दराजा का शिलालेख वि. सं. ९८० का मिला, उसी वंश के नन्दराजा का दूसरा शिलालेख वि. सं. १०७१ का मिला। इन दोनों के बीच में ९१ वर्ष का अन्तर है जिसके लिये कोई भी साधन नहीं मिला, परन्तु वंशावलियों में गोविन्द का पुत्र चंद्र और चन्द्र का पुत्र इन्द्र लिखा मिलता है अब आप गोविंद का ९१वर्ष राज समझेंगे या वंशावलियों में लिखा हुआ गोविन्द का पुत्र चंद्र तथा चन्द्र का पुत्र इन्द्र और इन्द्र का पुत्र नन्द समझेंगे?

कान्ति—गोविन्द और नन्द के बीच ९१ वर्ष का अन्तर है जिसके लिये चाहे इतिहास में मिले या न मिले, पर अनुमान से दो राजा होना मानना ही पड़ता है इसमें कोई सन्देह नहीं है।

शान्ति—बस, मैं भी यही कहता हूँ और इसी का नाम ही परोक्ष प्रमाण अर्थात् अनुमान प्रमाण

है। इतना ही क्यों पर इन अनुमान प्रामाणादि प्रमाणों से ही इतिहास की भींत खड़ी की जाती है।

कान्ति—मैंने वंशावलियाँ और प्राचीन ग्रन्थ बहुत से देखे हैं उनमें साल, संवत, घटना, स्थान और व्यक्ति के विषय में इतनी गड़बड़ है कि स्थान मिले तो समय नहीं मिलता है और समय मिलता है तो व्यक्ति नहीं मिलता है. तो फिर उस पर कैसे विश्वास किया जाय ?

शान्ति—यदि किसी स्थान पर ऐसा हुआ हो तो क्या सब पट्टावलियें त्याज्य हो सकती हैं। दूसरे इस प्रकार की गड़बड़ इतिहास में भी कम नहीं है और उन लोगों को भी समय समय पर अन्य साधनों द्वारा संशोधन करना पड़ता है। देखिये पृथ्वीराज रासो, मुणोयत नैणसी की ख्यात और टॉड साहब का राजस्थान वगैरह कई ग्रन्थ हैं जो इधर उधर की सुनी हुई बातों के आधार पर निर्माण किये गये हैं और वे परमोपयोगी होने से उनकी गिनती ऐतिहासिक साधनों में है। तो फिर हमारी पट्टावल्यादि का तिरस्कार क्यों किया जाता है ?

कान्ति—आपका कहना ठीक है परन्तु पृथ्वीराज रासो, नैणसी की ख्यात और टॉड राजस्थान आदि ग्रन्थों को इतिहास में स्थान भले ही दे दिया है, परन्तु उनमें बहुत से स्थानों पर त्रुटियें हैं।

शान्ति—हाँ, उन ग्रन्थों में त्रुटियें जरूर रही हुई हैं पर उन त्रुटियों के कारण उनका अनादर कर दिया जाय तो उन ग्रन्थों में जो इतिहास का मसाला है वह आपको खोजने पर भी अन्यत्र नहीं मिल सकता है। अतः संशोधकों का कर्तव्य है कि उनका संशोधन करके उनको काम में लें, जैसे नैणसी की ख्यात काशीनागरीप्रचारिणी सभा ने मुद्रित करवाई है। जहाँ त्रुटियें थीं वहां उन्होंने संशोधन कर फुटनोट में [illegible] कर दी है। इसी प्रकार प्राचीन पट्टावल्यादि ग्रन्थों का भी संशोधन करना चाहिये न कि एकदम उनसे मुँह मोड़ लेना। इतिहास का मसाला जितना पट्टावल्यादि ग्रन्थों में है उतना अन्य स्थानों में नहीं मिलेगा। पर शायद आपकी शिक्षा में इसका स्थान न हो ?

कान्ति—आप परोक्ष प्रमाण किसको कहते हैं ?

शान्ति—आगम, उपमान और अनुमान ये परोक्ष प्रमाण हैं।

कान्ति—आगम का अर्थ क्या है ?

शान्ति—प्राचीन समय के लिखे हुये सूत्र, ग्रन्थ, रास, पट्टावलियां वंशावलियां ये सब आगम प्रमाण, तथा एक वस्तु का सम्बन्ध दूसरी वस्तु से जोड़ देना और आगे चल कर वे सत्य सिद्ध हो जाय उसे अनुमान प्रमाण कहते हैं।

कान्ति—आप जो चाहें वह मानें परन्तु मैं तो ऐतिहासिक प्रमाण एवं प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मानता हूँ।

शांति—आपने एक विद्वान का कहना सुना है ?

कांति—नहीं, कृपा कर सुनाइये।

शांति—वस्तु की मूलस्थिति को जानने के लिये दो प्रमाणों की आवश्यकता है १—प्रत्यक्ष प्रमाण २—परोक्ष प्रमाण। यद्यपि परोक्ष प्रमाण प्रत्यक्ष प्रमाण के सामने गौण है तथापि परोक्ष प्रमाण के बिना प्रत्यक्ष प्रमाण का काम भी नहीं चलता है। सच पूछो तो परोक्ष प्रमाण प्रत्यक्ष प्रमाण का [illegible] मार्गदर्शक है। परोक्ष प्रमाण की सहायता से ही प्रत्यक्ष प्रमाण आगे चलता है। इतना ही क्यों पर प्रत्यक्ष प्रमाण वाले पग २ पर अनुमान प्रमाण की शरण लेते हैं। समझना नहीं कि [illegible]

कान्ति—[illegible]

[illegible]

शान्ति—[illegible]

[illegible]

कान्ति—[illegible]

शान्ति—ओसवालों की उत्पत्ति वि. पू० ४०० वर्ष में हुई। ऐसा मेरा खयाल है।

कान्ति—क्या बात करते हो ? क्या ओसवाल जाति की उत्पत्ति विक्रम पूर्व ४०० वर्ष में हुई है ? मैंने तो आज ही यह बात आपके मुंह से सुनी है ?

शान्ति—हाँ, मैं ठीक कहता हूं।

कान्ति—इसके लिये आपके पास क्या प्रमाण हैं?

शान्ति—यह लीजिये पट्टावलियां वंशावलियां वगैरह वगैरह बहुत प्रमाण हैं।

कान्ति—मैं आपसे पहिले ही कह चुका हूँ कि मुझे इस साहित्य पर विश्वास नहीं हैं।

शान्ति—भाई साहब ! आप अपनी शिक्षा से लाचार हैं वरना यह कभी नहीं कहते। कारण, मैं आपको अभी समझा चुका हूँ कि पट्टावलियां और वंशावलियां इतिहास के खास साधन हैं और यही हमको बतला रहे हैं कि ओसवाल ज्ञाति की उत्पत्ति उपकेशपुर में आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा वि० पू० ४०० वर्ष में हुई। फिर आप नहीं मानते हो इसका क्या कारण है ?

कान्ति—ओसवाल ज्ञाति की उत्पत्ति उपकेशपुर में आचार्य रत्नप्रभसूरि के द्वारा हुई, इसमें तो किसी को शंका नहीं है, पर इसका समय वि० पू० वर्ष का मानने में जरा दिल हिचकिचाता है। इस जाति की उत्पत्ति विक्रम की दशवीं शताब्दी के आस-पास हुई होगी ऐसा विद्वानों का खयाल है जिसको मैं भी ठीक समझता हूँ।

शान्ति—इसके लिये आपके पास क्या प्रमाण है?

कान्ति—प्रमाण तो मेरे पास कुछ भी नहीं है पर इस समय के पूर्व इस जाति के अस्तित्व का शिलालेखादि कोई भी प्रमाण नहीं मिलता है।

शान्ति—जब आपके पास प्रमाण ही नहीं हैं, तो फिर आप दशवीं शताब्दी कैसे कह सकते हो ? और प्रमाण के लिये केवल शिलालेख का ही आग्रह क्यों ? दूसरे भी कई प्रमाण हो सकते हैं।

कान्ति—मैं तो केवल अनुमान से ही कहता हूँ।

शान्ति—अनुमान आप अपने काम की रुकावट में ही मानते हो या सब बातों के लिये ?

कान्ति—कुछ विचार कर कहा कि सब के लिये।

शान्ति—भला आपका काम रुक जाता है जब तो आप अनुमान से मान लेते हो, तब हमारे महान संयमी पुरुषों के लिखे हुये ग्रन्थ पट्टावल्यादि को मानने में आप हिचकिचाते हो। इसको पक्षपात कहते हैं या हठधर्मीपना ?

कान्ति—पर वे सैंकड़ों वर्षों की पुराणी बातें बाद में किस आधार पर लिखी होंगी ?

शान्ति—पहले के लोग सब ज्ञान को कण्ठस्थ रखते थे और गुरु परम्परा से वह ज्ञान सैंकड़ों वर्षों तक उसी रूप में चला आता था। जब बुद्धि की मंदता हुई तो पुस्तकों में लिखा गया, जैसे हमारे धर्म के मूल आगम भगवान महावीर के कहे हुये हैं और उस ज्ञान को करीब १००० वर्ष तक साधु कंठस्थ ही याद रखते रहे। जब स्मरण-शक्ति मंद पड़ने लगी तो उन्होंने पुस्तकों पर लिख लिये। इसी तरह पट्टावल्यादि ग्रन्थों को भी समझ लीजिये।

कान्ति—आपके दबाव और आगम के नाम पर मैं मान तो लेता हूँ, पर मेरी अन्तरात्मा इस बात को मंजूर नहीं करती है।

शान्ति—खैर, इस विषय को तो मैं आपको फिर आगे चल कर समझाऊंगा पर पहिले आप से यह पूछ लेता हूँ कि आपके पिता का क्या नाम है ?

कान्ति—मेरे पिता का नाम है केशरीसिंह।

शान्ति—क्या सबूत ?

कान्ति—दुकान पर मौजूद बैठे हैं आप देख लें।

शान्ति—केशरीसिंहजी के पिता का क्या नाम है ?

कान्ति—उमरावसिंह ?

शान्ति—क्या प्रमाण है ?

कान्ति—हमारे पितामह के समय का उनका फोटू मेरे पास मौजूद है। देख लीजिये।

शान्ति—उमरावसिंह के पिता का क्या नाम है ?

कान्ति—रामसिंह।

शान्ति—क्या सबूत ?

कान्ति—उन्होंने एक सुनार से सोने की कंठी खरीद की थी उसके रुपये सुनार की बही में नाम मंडे हुये थे, जिसके रुपये ब्याज सहित मैंने हाल ही में चुकाये हैं।

शान्ति—रामसिंह के पिता का क्या नाम ?

कान्ति—छत्रसिंह।

शान्ति—क्या प्रमाण है ?

कान्ति—उन्होंने एक तालाब पर छत्री बनाई थी जिसका शिलालेख आज भी मौजूद है।

शान्ति—छत्रसिंह के पिता का क्या नाम था ?

कान्ति—लक्ष्मणसिंह।

शान्ति—क्या सबूत ?

कान्ति—आप तीर्थों की यात्रा पधारे थे उस समय पंडों को कुछ दान दिया था, वह पंडों की बही में उसी समय का लिखा हुआ मिलता है।

शान्ति—लक्ष्मणसिंह के पिता का क्या नाम था ?

कान्ति—सुन्दरसिंह।

शान्ति—क्या सबूत ?

कान्ति—इसके लिये ऐतिहासिक प्रमाण तो कोई नहीं है परन्तु हमारे पितामह ने अपनी याद-दास्त से जैसा कि उन्होंने अपने पितामह से सुना था एक कुर्सीनामा बनाया था। उसमें लक्ष्मणसिंह के पिता का नाम सुन्दरसिंह लिखा है।

शान्ति—इस कुर्सीनामा में आपको किसी प्रकार की शंका तो नहीं है न ?

कान्ति—इसमें शंका का क्या काम, देखलो यह कुर्सीनामा मौजूद है।

शान्ति—शायद कोई तुम्हारे पितामह ने कल्पना से वैसे ही लिख दिया हो।

कान्ति—वाह भई तुम भी कमाल करते हो ? कहीं ये बातें कल्पना से लिखी जाती हैं ? हमारे पितामह ने अपने पितामह के कथनानुसार ठीक ठीक लिखा है।

शान्ति—आपके पितामह के पितामह को कैसे मालूम हुआ होगा ?

कान्ति—वाह ! यह भी कोई पूछने की बात है ? उन्हें अपने पिता से मालूम हुआ होगा।

शान्ति—तो तुम्हारे कहने का अभिप्राय यह है कि वंशपरम्परा से कुर्सीनामे का ज्ञान चला आया है।

कान्ति—हाँ, बस अब तुम समझ गये।

शान्ति—मैं तो समझ गया मेहरबान! पर आप अभी नहीं समझे हैं।

कान्ति—क्यों ?

शान्ति—क्योंकि वंशपरम्परा के ज्ञान से लिखी हुई अपनी वंशावली में तो आपको सन्देह नहीं है, परन्तु गुरु परम्परा के ज्ञान से लिखी हुई पट्टावलियों और वंशावलियों में आपको सन्देह है।

कान्ति—सत्य है भाई साहब! यह मेरा मिथ्या भ्रम था। वास्तव में पट्टावलियों और वंशावलियाँ माननीय ग्रन्थ हैं। यह मेरी भूल थी कि मैं इस साहित्य पर सन्देह करता था।

शान्ति—कान्ति! यह तुम ही नहीं पर तेरे वर्तमान शिक्षा पाये हुये कई एक युवक भी इस भ्रम में पड़े हुये हैं। फिर भी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कान्ति—भाई साहब आपका कहना सत्य है। दूसरों के लिये क्या पर मेरी खुद की ही यही धारणा थी। आप तो क्या पर ब्रह्माजी भी आकर मुझे कह देते कि ओसवालों की उत्पत्ति विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व हुई तो मैं कदापि नहीं मानता। पर आपके साथ वार्तालाप होने से यह निशंक हो चुका है कि पट्टावलियों के अनुसार ओसवालों की उत्पत्ति वि० पू० ४०० वर्षों में हुई है और इसके विषय में पट्टावलियों और वँशावलियों में जो लिखा है उसमें शंका करने की जरूरत भी नहीं है, क्योंकि उन त्यागी संयमी महात्माओं को असत्य लिखने का कोई भी कारण नहीं था अतः वह सत्य ही है। दूसरी बात यह भी है कि यदि पट्टावली और वंशावलियों को न माना जाय तो इस विषय के लिये हमारे पास दूसरा साधन ही क्या है ? आज हम देखते हैं तो किसी ओसवाल के पास ४ पुश्त, किसी के पास ८ पुश्त और किसी के पास १० पुश्त से आगे के नाम तक भी नहीं मिलते हैं तो उनके पूर्वजों ने देशसमाज और धर्म की क्या क्या सेवायें कीं उनका तो पता ही क्या चलता है। यही कारण है कि ओसवाल समाज के रत्नों ने देश की बड़ी बड़ी सेवायें कीं और तन, मन और धन अर्पण किया, पर आज में उनका कहीं पर मान या स्थान नहीं है। मूल कारण पट्टावलियों का अनादर करना ही है। उनके बिना हम जनता को क्या बता सकते हैं ?

एक विद्वान ने ठीक कहा है कि जिस किसी जाति को नष्ट करना है तो पहिले उसका इतिहास नष्ट कर दो, वह स्वयं नष्ट हो जायगी, इस युक्ति के अनुसार ओसवाल जाति के नष्ट होने में मुख्य कारण अपना इतिहास न जानना ही है। खैर, एक बात और पूछनी है और वह यह है कि ओसवाल जैसी बुद्धिशाली और समझदार जाति ने इस पथ का अवलम्बन क्यों किया होगा कि वह अपने इतिहास के लिये इस प्रकार उदासीन रहे।

शान्ति—इसमें मुख्य कारण नये नये गच्छ एवं समुदाय तथा आपसी भेद का ही है।

कान्ति—पर उन्होंने ऐसा क्यों किया और इसमें उनका क्या स्वार्थ था।

शान्ति—नये नये गच्छवालों को अपने उपासक बनाने थे। जब तक उनका प्राचीन इतिहास न भुला दिया जाय तब तक वे उन नूतन गच्छधारियों के भक्त बन ही नहीं सकते थे। अतः उन्होंने कई ओसवालों के इतिहास को ही नष्ट कर दिया। जैसे आदित्यनाग (चोरडियादि) बाप्पनाग (बापनादि) संचेति आदि १८ गोत्र और उनकी सैंकड़ों शाखा उपशाखाओं का इतिहास २४०० वर्ष जितना प्राचीन है जिसको ८००-१००० वर्ष में बतला दिया जिसमें भी ८००-१००० वर्ष में उनके पूर्वजों ने जो कार्य्य किये उसका नाम निशान भी नहीं, केवल एक उत्पत्ति के लिये कल्पना का कलेवर बतला कर बिचारे भद्रिक लोगों के प्राचीन इतिहास का खून कर दिया और भविष्य के लिये उनको कदाग्रह की शकल में ऐसा जकड़ दिया कि वे शोध-खोज एवं निर्णय तक भी नहीं कर सके। दूसरे एक समुदाय भेद भी ऐसा पड़ गया कि उनके उपासक अपने पूर्वजों का नाम लेने में भी पाप समझते हैं। कारण, उन्होंने अनेक मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई, अनेक बार तीर्थयात्रा के संघ निकाल यात्रा की इत्यादि। यह वर्तमान मंदिर मूर्ति नहीं मानने वालों के लिये उनकी मान्यता से खिलाफ है इत्यादि कारणों से ओसवाल जाति का इतिहास नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

कान्ति—भाई साहब यह तो बड़ा भारी कृतघ्नीपना है। कारण, एक साधारण उपकार को भी भूल जाय उसे कृतघ्नी कहते हैं तो जिन महापुरुषों ने

मांस मदिरा और व्यभिचार-सेवी नरक के अभिमुख हो रहे थे उनको दुर्व्यसनों से छुटवा कर सन्मार्ग पर लाये और स्वर्ग मोक्ष के अधिकारी बनाये और केवल उन पर ही नहीं परन्तु उनकी वंश-परम्परा आज तक के लोगों पर बड़ा भारी उपकार है, उनको भूल जाना तो एक जबर्दस्त कृतघ्नीपना है। आपका कहना ठीक है कि इस समाज का पतन प्रायः इस कृतघ्नीपना से हुआ और हो रहा है।

शान्ति—अरे भाई! तुम्हारे जैसे लिखे-पढ़े आदमी का एक घंटा पहिले यह हाल था तो अपठित लोगों का तो कहना ही क्या।

कान्ति—मेहरबान! आपका कहना सत्य है पर अब इस वार्तालाप को ज्यों का त्यों छपवा कर जनता के हाथों में रख देना अच्छा है क्योंकि आजकल के लिखे-पढ़े लोगों के इस प्रकार बात समझ में आजायगी तो साँप की भांति निर्माल कांचली उतार के दूर फेंकने में उसके थोड़ी भी देर नहीं लगेगी। हाँ, हमारी शिक्षा कितनी भी बुरी हो, पर हम को ठीक समझाने वाले हों और हम समझ जायं, तो असत्य त्याग और सत्य ग्रहण करने में हठ-धर्मी कभी नहीं करते हैं। कारण, हम न तो रूढ़ि के गुलाम हैं और न कल्पित परम्परा के दास ही हैं। हम हैं सत्य के शोधक और सत्य के उपासक।

शान्ति—अच्छा भाई कान्तिचन्द्र, आप से वार्तालाप करने में मुझे बड़ा ही आनन्द आया और आपके दिल ने बड़ा भारी पलटा खाया जिससे मैं अपने परिश्रम को भी सफल समझता हूँ और आप की इतनी आग्रह है तो मैं इस सम्वाद को मुद्रित करवा कर सर्व-साधारण की सेवा में रख ही दूंगा।

कान्ति—अच्छा इस सम्वाद को छपाने में खर्चा का क्या इन्तजाम है?

शान्ति—खर्चा का आप कुछ भी विचार न करें। कार्य करने वाले हों तो समाज में द्रव्य की कुछ भी कमी नहीं है। व्यर्थ तो हजारों लाखों का पानी हो रहा है, तो इस छोटे से काम के लिये ऐसी कौन सी बात है।

कान्ति—जेब में हाथ डाल कर २०) नोट निकाल कर दे दिये और कहा कि अधिक खर्चा लगेगा तो मैं दूसरे मास की तनख्वाह आने पर दे दूंगा। आप इसको अवश्य मुद्रित करवा कर हाथों-हाथ भेंट दें।

शान्ति—पर आप तकलीफ क्यों उठाते हो? इतना सा खर्चा तो मैं भी कर सकूंगा।

कान्ति—आपने तो मुझे समझाने में कितना लाभ कमाया है इतना लाभ तो मुझे भी लेने दीजिये।

शान्ति—अच्छा भाई जै जिनेन्द्र की, अब मैं जाता हूँ। आपका समय लिया इसके लिये क्षमा करना।

कान्ति—जै जिनेन्द्र भाई साहब! आप ने तो आज मेरे पर बहुत उपकार किया है कि मैं कृतघ्नीपन के समुद्र में डूब रहा था आपने [illegible] पकड़ कर मेरा उद्धार किया है जिसको मैं कभी भूल नहीं सकता हूँ और फिर कभी कृपा कर इस प्रकार [illegible] का लाभ देना।

१—वि० १० वीं शताब्दी का इतिहास इतना अँधेरे में नहीं है। [illegible] शताब्दी में बनी होती तो तत्कालीन साहित्य में उसका वर्णन अवश्य होता [illegible] घटनाओं का उल्लेख होने पर भी एक जबरदस्त घटना [illegible] नाम निशान तक न होना, यह सूचित करता है कि ओसवाल जाति बहुत प्राचीन [illegible]

२—जैन शिलालेख का समय प्रायः वि० १० वीं शताब्दी [illegible] बहुत पूर्व बन चुकी थी फिर उसका शिलालेख [illegible]

ओसवाल जाति की ऐतहासिकता

ओसवाल ये महाजन संघ का रूपान्तर नाम है। इस महाजन संघ की संस्था को आचार्य रत्नप्रभसूरि ने स्थापित की थी। महाजन संघ में केवल ओसवाल ही नहीं पर श्रीमाल पोरवाल आदि जातियों का भी समावेश हो जाता है। अतः पहिले महाजन संघ के लिये ही लिख दिया जाता है।

१—महाजन यह शब्द सर्वत्र प्रसिद्ध है।

२—इस महाजनसंघ संस्था के निर्वाह के लिये जहाँ २ महाजन लोग बसते है एवं व्यापार करते हैं, वहां वहां व्यापार पर प्राचीन समय से 'महाजनाउ' लागन लगाई गई है ये महाजन संस्था को साबित कर रही है कि यह संस्था बहुत प्राचीन है।

३—महाजनसंघ रूपी संस्था के आय व्यय के हिसाब के लिये ग्रामोग्राम बहियाँ चौपड़ा रहते हैं और उनका हिसाब सालों-साल होता है।

४—महाजनों के वहां लगन शादी होती है उसमें भी संघ पूजा वगैरह दी जाती है उस समय भी 'महाजनाउ' को याद किया करते है। कहीं २ पुत्र जन्म वगैरह शुभ अवसर पर भी महाजन संस्था को कुछ न कुछ भेंट करते हैं।

५—महाजन संघ के महत्व बतलाने वाले प्राचीन अर्वाचीन कई कवित्त भी मिलते हैं।

इत्यादि प्रमाणों से महाजनसंघ की प्राचीनता प्रमाणिकता और महत्ता स्वयं-सिद्ध हो जाती है कि महाजनसंघ रूपी एक सुदृढ़ संस्था प्राचीन कालसे चली आरही है जिस का जन्म समय वि. पू. ४००वर्ष का है।

महाजन न भयो मंत्री, राज गयो रावण को, महाजन की सलाह विन शिशुपाल नास्यो है।
थो भिखारी नल, हरचंद में विखो पड़यो, महाजन वासिष्टी विन कौरव कुल नास्यो है।
मुत्सद्दी विन केते राज्य बदल गये, महाजन की बुद्धि विन यादवकुल घास्यो है।
दिवान राणा महाराणा ज्याके हृदय, भयो भान जाण कमल ज्यूं प्रकाशो है ॥१॥
महाजन जहाँ होत तहाँ हट्टी बजार सार, महाजन जहाँ होत तहाँ नाज ब्याज गल्ला है।
महाजन जहाँ तहाँ लेन देन विधि व्यवहार, महाजन जहाँ होत तहाँ सब ही का भला है।
महाजन जहाँ होत तहाँ लाखन को फेरफार, महाजन जहाँ होत तहाँ हल्लन पै हल्ला है।
महाजन जहाँ होत तहाँ लक्ष्मी प्रकाश करे, महाजन नहीं होत तहाँ रह्यो विन सल्ला है ॥२॥
भूखे नंगे अरु दुखीजन के सदा मां बाप हैं। अकाल के भी काल हैं और हरन दुख संताप हैं ॥
देख नहिं सकते दुखी पशु को भी इनकी बान है। सब जीव इन को प्राणसम हैं रत्नप्रभ की शान है ॥
हैं महाजन ही महा जन सब गुणों की खान हैं। जगतसेठ नगरसेठ पंचादि पद जो महान हैं ॥
पाये अनेकों बार बहु फिर भी न कुछ अभिमान है। ये वीर हैं गंभीर हैं बस रत्नसम रत्नप्रभ संतान हैं ॥

उपकेश वंश

उपकेश वंश—यह महाजन संघ की एक शाखा है। प्राचीन साहित्य में उपकेशवंश के उएश, उकेश, उकेशी, उकेशीय, उकोसिय, और उपकेश एवं नाम मिलते हैं और उनके उत्पन्न होने के कारण इस मुजब हैं:—

१—ऊस—ओसवाली भूमि पर जिस नगर को आबाद किया उसे ऊस-ओ४-उएश कहा, यह उस ओसवाली भूमि का ही द्योतक है। तत्पश्चात उपकेशपुर निवासी लोग उपकेशपुर छोड़ कर अन्य नगरमें जा वसने के कारण वहाँ के लोग उस उपकेशपुर से आये हुये समूह को उपकेशवंशी कहने लग गये और यह बात है भी स्वभाविक, जैसे:—

कोरंटनगर से कोरंटवाल, पालीनगर से पल्लिवाल, खंडवा से खंडेलवाल, श्रीमाल नगर से श्रीमाली, अग्रह से अग्रवाल, महेश्वरी से महेसरी, रामपुर से रामपुरिया, साचोर से सांचोरा, मेड़ता से मेड़तवाल, प्राग्वट से प्राग्वटवंश, इस प्रकार उपकेशपुरवासियों का नाम उपकेशवंश हो गया।

२—उकेश—यह उएश का रूपान्तर प्राकृत भाषा वालों ने उकेस लिखा है।

३—उपकेश—उएश और उकेस को संस्कृत भाषा वालों ने अपनी सहूलियत के लिये उपकेश लिखा है। यह तीनों शब्द नगर के नाम के साथ व्यवहृत किये हैं जैसे:—

१—उपकेशपुर के लिये

उएशपुरे समायती—	"उपकेशगच्छ पट्टावली"
उकेशपुरे धारतव्य—	"उपकेशगच्छ चरित्र"
श्रीमत्युपकेशपुरे—	"नाभिनन्दन जिनोद्वार"

२—उपकेशवंश के लिये

उएशवंशे चंडालिया गोत्रे—	"बा० पूर्णचन्दजी सम्पादित शिला० नं १२८०
उकेशवंशे जांघड़ा गोत्रे—	"बा० पू० ना० स० शि: नं: ४८०
उपकेशवंशे श्रेष्ठिगोत्रे—	"बा० पू० ना० स: शि: नं: १२५६

३—उपकेशगच्छ के लिये

उएश गच्छे श्री सिद्धिसूरिभि:	बुद्धिसागर सूरि सं: लेखाँक ५५८"
उकेशगच्छे श्री कक्कसूरि सन्ताने	" " " १०४८"
उपकेशगच्छे श्री कुकुन्दाचार्य सन्ताने	" " " १९०"

इस महाजन संघ के कई लोग व्यापार करने लगे तो गुर्जरादि प्रान्तों में उन्हें [illegible] कहने लगे, पर इससे इन लोगों का महत्त्व कम नहीं हुआ था। कहा है कि

"लिये दिये लेखे करी, लाख कोट धन धार, वणिक [illegible] [illegible] नहीं, [illegible]
बीस दशा नहिं वणिक [illegible] जो [illegible], [illegible] दशा नहीं [illegible]
बीस दशा नहिं वणिक [illegible] के [illegible], [illegible] नहिं [illegible]
दशो बीस दशा के वणिक नहिं [illegible]

इस प्रकार उएश उकेश और उपकेशवंश के नाम की उत्पत्ति हुई और जैसे उपकेशपुर के साथ उपकेशवंश का सम्बन्ध है वैसे ही उपकेशपुर और उपकेशवंश के साथ उपकेशगच्छ का भी घनिष्ट सम्बन्ध है। इसका समय महाजन संघ की उत्पत्ति से दो तीन शताब्दियों का समझा जा सकता है। कारण, महाजनसंघ के नाम के बाद ३०३ वर्षों में तो १८ गौत्र होने का प्रमाण मिलता है। अतः महाजनसंघ एवं उपकेशवंश को इस समय से पूर्व बना होना मानना न्यायसंगत और युक्तियुक्त है।

उपकेश गच्छ

उपकेशवंश की मूल उत्पत्ति खास तौर तो उपकेशपुर से ही हुई है और इसके प्रतिबोधक आचार्य रत्नप्रभसूरि ही थे। ये बात स्वाभाविक है कि जहाँ लाखों मनुष्योंको मांस मदिरा आदि कुव्यसन छुड़ा कर जैनधर्म में दीक्षित करने पर उनको वार २ उपदेश करने के लिये जाना आना पड़ता ही है। बस, रत्नप्रभसूरि या उनकी संतान उपकेशपुर या उसके आस पास अधिक विहार करने से इस समूह का नाम उएश उकेश और उपकेशगच्छ हो गया जैसे कोरंटपुर से कोरँटगच्छ, सँखेश्वरपुर से सँखेश्वरगच्छ, वल्लभी से वल्लभीगच्छ, वायटगाँव से वायटगच्छ, और सँडेरा से सँडेरागच्छ इत्यादि, इसी माफिक उपकेशपुर से उपकेशगच्छ हुआ।

ओसवाल

ओसवाल-यह उपकेशवँश का अपभ्रँश है क्योंकि विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के आस पास उपकेशपुर का अपभ्रँश ओसियां हुआ, तब से ही उपकेशवँश का नाम ओसवाल हो गया और ऐसा होना असँभव भी नहीं है जैसे जावलीपुर का जालौर, नागपुर का नागौर, माँडव्यपुर का मँडोर, हर्षपुर का हरवाला, कर्च्चरपूर का कुचेरा, किराटकूप का कराडू, आदि अपभ्रँश हुआ है वैसे ही उपकेशपुर का ओसियां हुआ है।

ओसवालों के लिये शिलालेख देखा जाय तो विक्रम की तेरहवीं शताब्दी पूर्व का कोई भी नहीं मिलता है। यदि मिलते भी हैं तो विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के, वे भी बहुत कम सँख्या में। इसका यही कारण हो सकता है कि इस जाति का मूलनाम उपकेशवँश था बाद उसका अपभ्रँश ओसवाल होने पर भी पिछले लोगों ने ग्रन्थों में एवँ शिलालेखों में बीसवीं शताब्दी तक जहाँ तहाँ उपकेशवँश का ही प्रयोग किया है, जैसे पोरवाल जाति का प्रचलित नाम पोरवाल होने पर भी शिलालेखों में आज भी उनको प्राग्वट ही लिखे जाते हैं। इसी प्रकार ओसवालों को समझ लेना चाहिये। यों तो ये ग्रन्थ ही इस जाति की प्राचीनता साबित कर रहा है, परन्तु उन पट्टावलियों वंशावलियों के अलावा वर्त्तमान ऐतिहासिक साधनों के आधार पर अच्छे अच्छे विद्वान लोगों ने इस जाति की प्राचीनता के लिये जो अभिप्राय दिया है उसको मैं यहाँ उद्धृत कर देता हूँ।

श्रीउपकेशवंश की व्युत्पत्ति और उपकेशगच्छ का वास्तविक अर्थ

मूलकर्त्ता—खरतरगच्छीय पं० वल्लभगणि (वि० सं० १६५५)

अथ—ओकेश शब्दस्यार्थाः लिख्यते

१ मूल—इशिक ऐश्वर्ये ओकेषु गृहेषु इष्टे पूज्यमाना सती या सा ओकेशा, सत्यका नाम्नी गोत्र देवता। अत्र ओक शब्दः अकारान्तः तस्यां भवस्तस्या अयमिति वा ओकेशः। भवे इत्यण् प्रत्ययः, तस्येदमित्यनेन वा अण् प्रत्ययः। सत्यका देवीहि नवरात्रादिषु पर्व सु अस्मिन् गणे पूज्यते सा चास्यगणस्य अधिष्ठात्री अतएवाऽस्य गच्छस्य ओकेश इति यथार्थ नाम प्रोच्यते सद्भि-रिति प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥

हिन्दी अनुवाद—मूल शब्द ओकेश में दो भिन्न पद हैं जैसे—"ओक-ईश" इनमें ईश शब्द की व्युत्पत्ति इशिक् ऐश्वर्य्यवाची इस धातु से होती है और ओक का अर्थ है घर। जो श्रावक व्यक्तियों के घरों में पूज्यमान हो करके ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो उसे ओकेशा कहते हैं। यह ओकेशा सत्यका के नाम से प्रसिद्ध एक गोत्र देवी है। "इस जगह सकारान्त ओकस् शब्द का ग्रहण न कर अर्थ संगति की सुविधा के लिए अकारान्त ओक शब्द का ग्रहण किया है जो ध्यान में रहे" और जो गच्छ ओकेशा देवी के नाम पर प्रसिद्ध हो या उसका उपासक हो उस गच्छ को "ओकेशः" ऐसा कह सकते हैं। यहाँ व्याकरण नियम से "भवे" इस अर्थ में या "तस्येदम्" यह उसका है इस अर्थ में सूत्रादेश से अण् प्रत्यय होता है। इस ओकेश गच्छ में नवरात्रादि पर्वों के प्रसंग पर सत्यकादेवी की घर घर पूजा होती है क्योंकि वह देवी इस गच्छ की अधिष्ठात्री देवी है और इसी से इस गच्छ का नाम यथार्थरूप से "ओकेश" यह सज्जनों द्वारा कहा जाता है। यह ओकेश शब्द का पहिला अर्थ हुआ ॥ १ ॥

२ मूल—ईशनमीशः ऐश्वर्यं ओकैर्गृहैरुपलक्षित आढ्यकुलोपलक्षितानां [illegible] सा ओकेशा ओसियानगरी। तत्र भवः ओकेशः। ओसियानगर्यां हि [illegible] ओकेश इति नाम श्रीरत्नप्रभसूरितो विख्यातं जातम्। इति द्वितीयोऽर्थः ॥ २ ॥

हिन्दी अनुवाद—ईशनं याने ईश = ऐश्वर्य्य। तथा ओक—अर्थात् [illegible] धनाढ्य श्रावकों के घरों से युक्त है ऐश्वर्य्य जिसके ऐसी ओकेशा "ओसिया" नाम की नगरी, और उस नगरी में [illegible] गच्छ का नाम ओकेश। क्योंकि इसी नगरी से ही इस गच्छ का नाम "ओकेश" [illegible] से विश्व में विख्यात हुआ है यह ओकेश शब्द का दूसरा अर्थ है।

मूल—अः कृष्णः, उः शंकरः, को ब्रह्मा। एषां द्वन्द्वसमासे ओकास्ते ईशते पूज्यमानाः संतो देवत्वेन मन्यमाना सन्तश्च येभ्यस्ते ओकेशाः। ओकैः-कृष्ण, शंभु ब्रह्मभिर्देवैरीशते ये ते वा ओकेशाः। पर शासन जनाः क्षत्रिय राजपुत्रादयः। प्रतिबोध विधानात्तेषामयं ओकेशः। तस्येद-मित्यण् प्रत्ययः। श्रीरत्नप्रभसूरिभिस्तेप पारतीर्थिकधर्म, निष्ठता सिद्धान्तोक्तविशुद्धजैनधर्म निष्ठायां प्रतिबोध दानेन प्रवर्त्तना कृता। तथा च श्रूयते पूर्वेहि श्रीरत्नप्रभसूरीणां गुरवः श्रीपार्श्वापत्यीय केशीकुमाराऽनगार सन्तानीयत्वेन विख्यातिमन्तो जगति जज्ञिरे। ततः प्राप्तः सूरिमंत्राः सस्वतंत्राः रमणीयाऽतिशय निचयाः स्वकीय निस्तुष शेमुषी प्रागभार संभारात् ज्ञातत्रिदश सूरयः श्रीमच्छ्रीरत्न-प्रभसूरयः कियति गते काले विहरंतः संतः श्रीओसिका नगर्या समवसृताः। तस्यां च सर्वे लोकाः पारतीर्थिक धर्मधारिणोसंति। न कोऽपि जैनधर्मधारी। ततः साध्वाचारं प्रतिपालयद्भिः सिद्धान्तोक्त तीर्थङ्कर धर्म शुभकर्मप्ररूपणाँ कुर्वद्भिः सद्भिः श्रीरत्नप्रभसूरिभिः पारतीर्थिकाः नैकच्छेक विवेकिलोकाः। प्रतिबोधितास्ततः एतेओकेशा इति विरुदो विख्यातो जातः। इति तृतीयोऽर्थः ॥ ३ ॥

हिन्दी अनुवाद—अः=कृष्ण, उः=शंकर, कः=ब्रह्मा, ये एकाक्षरी कोष से प्रसिद्ध नाम हैं। इनका द्वन्द समास करने पर "ओक्" ऐसा शब्द बना। अब ये तीनों देव जिन मनुष्यों द्वारा ईशते=याने देव स्वरूप से पूज्यमान होते हुये ऐश्वर्य को प्राप्त हों उन मनुष्यों को ओकेश कहते हैं। अथवा ओकैः=कृष्णः, शंभु और ब्रह्मा नामक देवताओं से जो खुद ऐश्वर्य्य "धन दौलत" प्राप्त करें उन्हें ओकेश कहते हैं। ये सब पर शासन को धारण करने वाले क्षत्रिय राजपुत्र आदि हैं और उनका प्रतिबोध करने से यह गच्छ ओकेश नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहां "तस्येदम्" इस सूत्र से अण प्रत्यय होता है ये क्षत्रयादि श्री रत्नप्रभसूरि द्वारा इनके पारतीर्थिक धर्म की निष्ठा से सिद्धान्तों से कहे हुए विशुद्ध जैनधर्म की निष्ठा में प्रतिबोध देने से प्रव-र्त्तित हुए। जैसे सुना जाता है कि:—

"प्राचीन काल में श्री रत्नप्रभसूरि के गुरु श्री पार्श्वनाथ सन्तानीय केशीकुमारअनगार के सन्ता-नीय परोक्ष से जगत् में प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। उनसे सूरि मंत्र को प्राप्त कर, सर्व तन्त्र स्वतंत्र, रमणीय [illegible] समूह वाले, स्वकीय निर्मल बुद्धि से बृहस्पति तक को नीचा दिखाने वाले सूरीश्वर श्रीरत्नप्रभसूरि कुछ समय बीत जाने पर विहार करते हुए श्रीओसिकानगरी को आए। वहाँ सब मनुष्य पारतीर्थिक धर्म को धारण करने वाले थे, जैन धर्मी कोई नहीं था। तब साधु के सदाचार को पालने वाले, सिद्धान्त कथित तीर्थङ्करों के धर्म की शुभ-शुद्ध प्ररूपणा को करने वाले महात्मा श्रीरत्नप्रभसूरिजी ने पारतीर्थिक धर्मी अनेक विचारशील क्षत्रिय लोगों को प्रतिबोध दिया। उसी दिन से ये ओकेश गच्छ है" ऐसा विरुद विश्व में विख्यात हुआ। यह इसका तीसरा अर्थ है।

खुलासा—ओक—का अर्थ एकाक्षरी कोष द्वारा कृष्ण, शंभु, और ब्रह्मा होता है, उनसे ऐश्वर्य प्राप्ति करने वाले क्षत्रिय आदि अन्य धर्मावलम्बी ओकेश कहाए और उनके प्रतिबोध देने से श्रीरत्नप्रभसूरि का गच्छ भी ओकेश नाम से प्रसिद्ध होगया।

४—मूल—अः कृष्णः, आ ब्रह्मा, उः शंकरः, एषाँ द्वन्द्वे आवस्ततः ओभिः कृष्ण ब्रह्मा शंकर देवैः कायते स्तूयते देवाधिदेवत्वादिति ओकः प्रस्तावात् श्रीवर्धमानस्वामी। "क्वचिदिति ड़ प्रत्ययः ओकश्चासौ ईशश्च ओकेशस्तस्याऽयं ओकेशः। वर्त्तमान तीर्थाधिपति श्रीवर्धमानजिन पति तीर्थाश्रयणादिति चतुर्थोऽर्थः ॥ ४ ॥

हिन्दी अनुवाद—अः = कृष्ण, आ = ब्रह्मा, उः = शंकर, इनका द्वन्द्व समास करने पर 'ओ" ऐसा शब्द बना फिर ओभिः = कृष्ण ब्रह्मा और शंकर से जो कायते = स्तुति किया जाय देवाधिदेवपणे से वह ओक हुआ याने कृष्णादि से स्तुत देवाधिदेव। यहाँ पर प्रस्तावक्रम से ओक = इसका अर्थ श्रीवर्धमान स्वामी ग्रहण करना चाहिये। ओक इसमें "क्वचित्०"---इससे ड प्रत्यय होता है। अन्तर ओकश्च असौईशः = जो ओक वही ईश्वर ऐसा कर्म धारय समास करने से ओकेश शब्द सिद्ध होता है। फिर 'तस्य अयं = उसका यह" इस तद्धित नियम से ओकेश का उपासक गच्छ भी ओकेश ही रहा। क्योंकि यह गच्छ वर्त्तमान तीर्थाधिपति श्री वर्धमान जिनपति तीर्थङ्कर का आश्रित है। यह ओकेश शब्द का चौथा अर्थ हुआ।

५ मूल—अः अर्हन् "अः स्यादर्हति सिद्धे चेत्युक्तेः" प्रस्तावादिह अ इति शब्देन श्री वर्द्धमानस्वामी प्रोच्यते। ततः अस्य ओका गृहं चैत्यमिति यावत्। ओकः श्रीवर्द्धमानस्वामि चैत्य मित्यर्थः। तस्मादीशः ऐश्वर्यं यस्य स ओकेशः। यतोऽयं गणः श्रीमहावीरतीर्थंकरनाधिष्ठानः स्फाति मवाप्नोति पञ्चमोऽर्थः ॥ एवमस्य पदस्याऽनेकेऽप्यर्थाः संबोभुवति परं किं बहु [illegible] ॥ [illegible] ॥

हिन्दी अनुवाद—अ = अर्हन् "अः स्यादर्हति सिद्धे च" = अः नाम अर्हन् और सिद्ध का है इस वचन से। प्रकरण क्रम से इस स्थल पर अ इस शब्द से वर्धमानस्वामी को जानना चाहिये। फिर अस्य = महावीरस्वामी का ओकः = गृह अर्थात् मन्दिर इस तत्पुरुष समास से ओक इसका अर्थ वर्धमान स्वामी का चैत्य हुआ। बाद में तस्मात् = उस वर्धमान स्वामी के चैत्य से है ईशः = ऐश्वर्य जिसका "इस बहुब्रीहि समास से" वह ओकेश हुआ। कारण यह ओकेश गण श्री महावीर तीर्थङ्कर के [illegible] से ही स्फातिं = वृद्धि को प्राप्त हुआ है। इस प्रकार ओकेश शब्द का यह पाँचवाँ अर्थ हुआ ॥ ५ ॥

शेष में इस ओकेश पद के इस प्रकार अनेक अर्थ हो सकते हैं परन्तु मैंने अधिक [illegible] ठीक नहीं समझा है।

अथ उपकेश शब्दस्य कियन्तोऽर्थाः लिख्यन्ते—तद्यथाः—

१ उप, समीपे केशाः शिरोरुहाः सन्त्यस्येति उपकेशः श्रीपार्श्वसन्तान [illegible]। एतदुत्पत्ति वृत्तान्तस्तु श्रीस्थानांगवृत्त्यादौसमपञ्चः प्रतीत एवास्ति। [illegible]। ततः उपकेशः श्रीकेशीकुमाराऽनगार पूर्वजोगुरुर्विद्यतेयस्मिन्द [illegible] "[illegible] प्रत्ययः" अस्मिन् गच्छे हि श्रीकेशीकुमारानगार पार्श्वानुगामिन्‌द। [illegible] जात मिति प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥

---

* केशीश्रमणाचार्य के [illegible]

वह शक्ति इनमें नहीं आवेगी कि जो सङ्गठन में है। अतः उपकेशपुर में प्रतिबोध पाने वाले तो उपकेशवंशी कहलाते ही हैं। पर बाद में उपकेशपुर के अतिरिक्त स्थानों में प्रतिबोध पाकर जैन बनने वाले संघी, भंडारी, मुनोयत, वरडिया, वाठिया, म्हावक, आर्य सुराणा, सांड, सॉखला, संखलेचा, बोत्थरा, घाड़ीवाल आदि जातियां भी उपकेशवंश के नाम से ही ओलखाई जाने लगीं। इतना ही क्यों पर पूर्वोक्त जातियों के दानवीर उदार नररत्नों ने हजारों, लाखों, करोड़ों द्रव्य व्यय करके जैनमन्दिर मूर्तियां निर्माण करवा कर उनकी प्रतिष्ठा करवाई थी और उस उदार दिल वाले एक गच्छ के आचार्यों के पास नहीं, पर पृथक-पृथक गच्छ वाले आचार्यों के पास प्रतिष्ठा करवाई थी और उन उदार दिल वाले आचार्यों ने उन श्रावकों की जातियों के नामों के साथ उएश उकेश और उपकेशवंश जोड़ दिया था कि वे इस वंश की प्राचीनता एवं विशालता और संगठन बता रहे हैं। पाठकों की जानकारी के लिए नमूने के तौर पर कुछ शिलालेखों का वह विभाग यहां उद्धृत कर दिया जाता है कि जिन जातियों के आदि में उपकेश वंश का उल्लेख हुआ है।

मुनिश्री जिनविजयजी सम्पादित प्रा० जैन लेख संग्रह भाग दूसरा

लेखांक वंश-गोत्र-जाति	लेखांक वंश-गोत्र-जाति	लेखांक वंश-गोत्र-जाति
३८४ उपकेशवंशे गणधर गोत्रे	४१३ उपकेशज्ञाति लोढ़ा गोत्रे	३८९ उ० चुन्दालिया गोत्रे
३८५ उपकेशज्ञाति काकरेच गोत्रे	२९३ उपकेशवंशे वृद्ध शाखा	३९१ उ० भोगर गोत्रे
३९९ उपकेशवंशे कहाड़ गोत्रे	२५९ उपकेशवंशी दरड़ा गोत्रे	३६६ उ० रायभंडारी गोत्रे
३९८ उपकेशज्ञाति श्रीमाल घंडालिया गोत्रे	२६० उपकेशवंशे प्रामेचा गोत्रे	२९५ उपकेशवंशीय वृद्ध सज्जनिय
	२८९ उ० गुलेच्छा गोत्रे	४१५ उपकेशज्ञाति गदइया गोत्रे

श्रीमान् बाबू पूर्णचन्दजी नाहर सं० जैनलेख संग्रह खंड १-२-३

४ उपकेशवंशे जाणेचा गोत्रे	५० उपकेशज्ञातौ आदित्यनाग गोत्रे	५०९ उपकेश ज्ञाति चोपड़ा गोत्रे
५ उपकेशवंशे नाहार गोत्रे	५१ उपकेशज्ञातौ वंब गोत्रे	५९६ उपकेश ज्ञाति भंडारी गोत्रे
६ उपकेशज्ञाति भादड़ा गोत्रे	७४ उ० वलहा गोत्रे रांका साखायां	५९८ ढढिया ग्रामे श्री उएस वंशे
८ उपकेशवंशे लुणिया गोत्रे	७५ उकेशवंशे गन्धी गोत्रे	६१० उकेशवंशे कुर्कट गोत्रे
[illegible]० उपकेशवंशे वारडा गोत्रे	९३ उकेशवंशे गोखरू गोत्रे	६१९ उपकेश ज्ञाति प्रावेच गोत्रे
२९ उपकेशवंशे सेठिया गोत्रे	९९ उपकेशवंशे कांकरिया गोत्रे	६५९ उपकेशवंशे मिठडिया गोत्रे
४१ उपकेशवंशे संखवाल गोत्रे	४९७ उपकेशज्ञाति आदित्य नाग गोत्रे चोरवड्यिया साखायां	६६४ श्री श्री वंशे श्री देवा +
४७ उपकेशवंशे ढोका गोत्रे		१०२२ उ० ज्ञाति विद्याधर गोत्रे
१०८ उपकेशवंशे भोरे गोत्रे	१२९२ उपकेश ज्ञाति आर्या गोत्रे लुणावत साखायां	१२७६ उ० ज्ञा० श्रेष्टिगोत्रे वैद्यसाखा
१२२ उकेशवंशे वरहा गोत्रे		१३८४ उ० वंशे भूरिगोत्रे (भटेवरा)
१३० उपकेशज्ञातौ वृद्धसज्जनिया	१३०३ उपकेशवंशे सुराणा गोत्रे	१३५३ उपकेश ज्ञातौ बोहिया गोत्रे
४०० उपकेशगच्छे तातेहड़ गोत्रे	१३३४ उपकेशवंशे माल्हू गोत्रे	१३८६ उ० ज्ञा० फुलपगर गोत्रे
४०२ उपकेशवंशे नाहटा गोत्रे	१३३५ उपकेशवंशे दोसी गोत्रे	१३८९ उपकेश ज्ञाति-चापणा गोत्रे

४८० उकेशवंशे जांगड़ा गोत्रे
४८८ उकेशवंशे श्रेष्टि गोत्रे
१२७८ उकेशज्ञा० गहलाड़ागोत्रे
१२८० उपकेश ज्ञातौ दूगड़गोत्रे
१२८५ उएशवंशे चंडालिया गोत्रे
१२८७ उपकेशवंशे कटारिया गोत्रे
१०२५ उए ज्ञा० कोठारी गोत्रे
१०९३ उ० ज्ञा० गुदेचा गोत्रे
११०७ उपकेश ज्ञाति डांगरेचा गोत्रे
१२१० उ० सीसोदिया गोत्रे
१२५५ उपकेश ज्ञाति साधु साखायां
१२५६ उपकेश ज्ञातौ श्रेष्टि गोत्रे
१४१३ उकेशवंशे भणशाली गोत्रे
१४३५ उएसवंशे सुचिन्ती गोत्रे
१४९४ उपकेश सुचंति
१५३१ उ० ज्ञातौ बलहागोत्र रांका
१५१६ उपकेश ज्ञातौ सोनी गोत्रे
१५८१ उपकेश वंशे श्रेष्टिगोत्रे०

इसी प्रकार आचार्य बुद्धिसागरसूरि एवं विजयेन्द्रसूरि के सम्पादित किये शिलालेख संग्रह की मुद्रित पुस्तकों में उपकेशवंश के प्रमाण तथा और भी अनेक शिलालेखों में ओसवाल जातियों के आदि में उपकेशवंश का प्रयोग हुआ है पर यहां पर तो केवल नमूने के तौर थोड़े से शिलालेखों को नम्बर के साथ उद्धृत किये हैं।*

जिस प्रकार ओसवालों की जातियों के साथ उपकेशवंश का प्रयोग हुआ है इसी प्रकार पोरवालों के साथ प्राग्वटवंश तथा श्रीमालियों के साथ श्रीमाल वंश एवं श्रीमाली जाति का प्रयोग हुआ है।

इन शिलालेखों के अन्दर ओसवालों की प्रत्येक जातियों के आदि में उपकेशवंश का प्रयोग देख कर आपको इतना तो सहज ही में ज्ञात हो जायगा कि पूर्वाचार्य्यों का हृदय कितना विशाल था कि उन्होंने अपने या दूसरों के बनाये हुये जैनों की तमाम जातियों को उपकेशवंश में शामिल कर दी थी। कारण, वे अच्छी तरह से समझते थे कि ओसवाल जाति की शुरुआत उपकेशपुर से ही हुई थी और शुरू में इस जाति का नाम उपकेशवंश ही था। इतना ही क्यों पर उन दूरदर्शी आचार्यों ने शुरू में महाजनसंघ की स्थापना करने वाले आचार्यश्रीरत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज का सन्मान एवं सत्कार भी किया है।

महाजन संघ, उपकेशवंश और ओसवाल जाति की मूल व्याख्या के पश्चात् अब इस जाति की उत्पत्ति के समय के विषय में जितने प्रमाण मुझे मिले हैं उनको तीन विभागों में विभक्त कर दिया है १-विभाग में पट्टावलियों के प्रमाण २-वंशावलियों के प्रमाण ३-ऐतिहासिक प्रमाण। इनके अलावा कई विद्वानों की सम्मतियें और जैनाचार्य एवं मुनिवरों के लेखों को यथाक्रम आगे के पृष्ठों में लिखने का प्रयत्न किया जायगा।

* इससे हमारा अभिप्राय केवल इस बात को [illegible] करने का है कि [illegible] शब्द जैनजातियों के साथ सदैव व्यवहृत हुआ है। अतः उपरोक्त शिलालेखों में [illegible] को नम्बरों के साथ दे दिया है क्योंकि समय का निर्णय [illegible]

"महाजनसंघ उपकेशवँश और ओसवाल जाति की उत्पत्ति विषय पट्टावल्यादि ग्रन्थों के प्रमाण
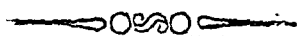
१—हिमवन्त पट्टावली—जैनपट्टावलियों में यह हिमवन्त पट्टावली सबसे प्राचीन पट्टावली है। इसके रचियता आचार्य हिमवन्तसूरि हैं। आपश्री का नामोल्लेख श्रीनन्दी सूत्र की स्थविरावली में मिलता है—

"जेसिइमो अणुओगो पयरइ अजवि अड्ढभरहम्मि, वहुनयर निग्गयजसे ते वन्दे खंदिलायरिए।
ततो हिमवन्त महन्त विकमे धिइ परक्कमणंते, सज्झायणंतधरे हिमवन्त वंदिमोसिरसा॥
कलियसुय अणुओगस्स धारए धारए व पुव्वणं, हिमवन्त खमासमणे वन्दे णागज्जुणायरिए॥

आचार्य हिमवन्तसूरि आर्य खन्दिल के पट्टधर थे। अतः इतिहास के लिए प्रस्तुत पट्टावली बड़ी उपयोगी है। इसमें वर्णित घटनाओं में किसी प्रकार की शंका नहीं है फिर भी समय के लिए संशोधन की आवश्यकता है।

"जसभद्दो मुणि पवरो, तप्पयसोहंकरो परो जाओ। अट्ठमणंदोमगहे, रज्जंकुणइ तयाअइलोही॥
सुट्ठिय सुपडिवुद्धे, अज्जे दुन्ने वि ते नमंसामि। भिक्खुराय-कलिंगा-हिवेण सम्माणिए जिट्ठे॥

हैमवन्त पट्टावली वीर निर्वाण संवत् और जैनकाल गणना पृष्ट १६२

यशोभद्रसूरि नन्दराजा, आर्यसुस्थीसूरि, महाराजाभिक्षुराज (खारवेल) वगैरह जो पट्टावली की उपरोक्त गाथा में वर्णन है वह सब उड़ीसा की खंडगिरिपहाड़ी की हस्ती गुफा से प्राप्त महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराजा खारवेल के शिलालेख से ठीक मिलता है। अतः इस पट्टावली की सत्यता में थोड़ी भी शंका को स्थान नहीं मिलता है। "वी० नि० जै० का० पृष्ठ १८०"

प्रस्तुत हैमवंत पट्टावली को प्रखर इतिहासवेत्ता पं० मुनिश्री कल्याणविजयजी महाराज ने स्वरचित "वीर निर्वाण संवत् और जैनकालगणना" नामक प्रबन्ध में स्थान दिया है और उस पट्टावली के आधार पर लिखा है कि:—

"मथुरा निवासी ओशवंशशिरोमणि श्रावक पोलाक ने गंधहस्ती विवरण सहित उन सर्व सूत्रों को ताड़पत्रआदि में लिखवा कर पठन-पाठन के लिये निग्रन्थों को अर्पण किया। इस प्रकार जैनशासन की उन्नति करके स्थविर आर्यस्कंदिल विक्रम संवत् २०२ में मथुरा में ही अनशन करके स्वर्गवासी हुए" वी० नि० काला० पृ० १८०

प्रस्तुत लेख में गन्धहस्ती विवरण के लिये लिखा है वह विवरण यद्यपि वर्तमान में उपलब्ध नहीं है, पर यत्र-तत्र कई शास्त्रों में इसके अस्तित्व के प्रमाण अवश्य मिलते हैं यथा:—

वि० सं० ९३३ में आचार्यशीलांगसूरि हुये हैं आपने श्रीआचारांगसूत्र पर टीका बनाई है जिसके प्रारम्भ में आप लिखते हैं कि:—

शस्त्र परिज्ञा विवरण मति, वहु गहनं च गंधहस्तिकृतम्।
तस्मात् सुखबोधार्थं, गृह्णम्यहमञ्जसा सारम्॥ "श्रीआचारांगसूत्रटीका"

इनके अलावा गंधहस्तीकृत तत्त्वार्थ भाष्य के सम्बन्ध में मध्यकालीन साहित्य में कहीं २ उल्लेख मिलता है जैसे "धर्मसंग्रहणीटीका" आदि में "यदाह गंधहस्ती-प्राणपानौ उच्छ्वास निश्वासौ" इत्यादि गंधहस्ती के ग्रन्थों के भी अवतरण दिये हुये मिलते हैं।

इससे स्पष्ट पाया जाता है कि पूर्व जमाने में गन्धहस्ती आचार्य ने जैनागमों पर विवरण जरूर लिखा था जिसको ओसवंशशिरोमणिश्रावकपोलक ने लिखवा कर जैनश्रमणों को स्वाध्याय करने के लिये समर्पण किया था

पोलाक के साथ ओसवंश शिरोमणि विशेषण स्पष्ट बतला रहा है कि उस समय मथुरा में इस वंश की संख्या विशेष थी तब ही तो पोलाक को ओसवंश शिरोमणि कहा है। जब हम ओसवंश की वंशावलियों को देखते हैं तो पता मिलता है कि उस समय मथुरा में जैनमंदिर बनाने एवं जैनाचार्यों की आग्रहपूर्वक विनती करके चतुर्मास करवाने वाले बहुत श्रावक बसते थे जो हम आगे चल कर बतलावेंगे। तथा आचार्य स्कन्दिल ने वाचना जैसा वृहद् कार्य उसी मथुरा में प्रारंभकिया था अतः यहां जैनों की घन बसति हो इसमें शंका ही क्या हो सकती है।

प्रस्तुत पट्टावली में उपकेशवंश की उत्पत्ति के विषय में भी लिखा है कि:—

"भगवान महावीर के निर्वाण से ७० वर्ष बाद पार्श्वनाथ की परम्परा के छट्ठे पट्टधर आचार्य रत्नप्रभ ने उपकेशनगर में १८०००० क्षत्रिय पुत्रों को उपदेश देकर जैनधर्मी बनाया, वहाँ से उपकेश नामक वंश चला। [illegible]

इस लेख से भी पाया जाता है कि वीरनिर्वाणात् ७० वें वर्ष में आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा उपकेशपुर में उपकेशवंश की उत्पत्ति हुई थी

इसी प्रकार पं० हीरालाल हंसराज जामनगरवालों ने हेमवंत पट्टावली का आधार लेकर लिखा है:-

"मथुरा निवासी अने श्रावकों मां उत्तम अने ऊसवंस मां शिरोमणि एवा पोलाक नामना

---

†आदित्यनागगोत्र-चोरडिया शाखा में भैंसाशाह नाम के चार पुरुष हुए और चारों ही नामी हुए जैसे

१—वि० सं० २०९ में श्रीशत्रुञ्जयतीर्थ का विराट् संघ निकाला जिसका वर्णन नागोरीजी ने एवं डांगीजी ने अपने लेख में किया है

२—वि० सं० ५०८ में अटारू ग्राम में भैंसाशाह ने जैनमन्दिर बनाया जिसका शिलालेख मुन्शी देवीप्रसादजी की शोधखोज से प्राप्त हुआ और मुन्शीजी ने 'राजपूताना की शोधखोज' नामक पुस्तक में विस्तार से मुद्रित भी किया है।

३—वि० सं० ११०८ में भैंसाशाह हुआ। आपके अपार लक्ष्मी थी और [illegible] का सिक्का चलाने से आपकी सन्तान 'गदइया' नाम से प्रसिद्ध हुई. वे अद्यावधि विद्यमान हैं।

४—विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में नागपुर के भैंसाशाह हुआ जिसके [illegible] 'वालाकोर' ने नागौर में भगवान् ऋषभदेव का मन्दिर बनाया [illegible] बड़ा मन्दिर के नाम से विद्यमान है।

श्रावके गंधहस्तीजीए करेला विवरणो सहित ते सगला सूत्रो ताड़पत्र आदिक पर लिखावी ने स्वाध्याय करवा माटे निग्रन्थों ने समरपन करिया ए रीते श्री जिनशासन नी प्रभावना करीने श्रीआर्यस्कंदिल स्थविर विक्रमअर्कना वे सो वे मां वर्ष मां मथुरा नगरी मां अनशन करीने स्वर्गे गया"।

आंचलगच्छ पट्टावली पृष्ट १६

श्रीमान् चन्दनमलजी नागोरी ने ता० २०-११-१९२५ के जैनपत्र जो भावनगर से प्रकाशित होता है उस में वि० सं० २०९ में आदित्यनाग गोत्रीय श्रीमान्भैंसाशाह के श्रीशत्रुंजय तीर्थ की यात्रा निमित्त निकाले हुये संघ के विषय में एक विस्तृत लेख लिखा है, इससे हमारी उपरोक्त हेमवंतपट्टावली की बात और भी पुष्ट हो जाती है।

श्रीमान् मनोहरसिंहजी डांगी ने 'ओसवाल सुधारक' नामक अखबार के ता० २०-६-३६ के अंक में प्रस्तुत 'भैंसाशाह के संघ का वर्णन' वाला लेख निकाला है। डांगीजी ने भैंसाशाह का आदित्यनाग गोत्र और इसकी चोरडिया शाखा तथा वि० सं० ११०८ में चौरडियों से गदइया शाखा निकली लिखी है पर इसकी उत्पत्ति के विषय में भूल भी की है।

वि० सं० २०२ में आदित्यनाग गोत्र से चोरडिया जाति का नाम-संस्करण हुआ, यह उल्लेख वंशावलियों में मिलता है, अतः वि० सं० २०९ में भैंसाशाह ने तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजय का विराटसंघ निकाला हो तो यह संभव हो सकता है।

ओसवालों की उत्पत्ति का समय वि० सं० २२२ का जनप्रवाद सर्वत्र प्रसिद्ध है। आप किसी भी ओसवाल को पूछेंगे तो वह फौरन जवाब देगा कि ओसवालों की उत्पत्ति बीयेबावीस में हुई, कई कुलगुरुओं की वंशावलियों में भी बीयेबावीस तथा भाटों की विरुदावलियों में भी ओसवालोत्पति का समय बीयेबावीस का ही लिखा मिलता है और इस विषय के कई कवित्त भी मिलते हैं।

आभा नगरी थी आव्यो, जग्गो जग में भाण। साचल परचो जब दीयो, जब शीश चड़ाई आण॥
जुग जीमाड्यो जुगत सु, दीधो दान प्रमाण। देशल सुत जग दीपता, ज्यारी दुनिया माने काँण॥
चूप धरी चित भूप, सेना लई आगल चाले। अरबपति अपार, खडवपति मिलीया माले॥
देरासर बहु साथ, खरच सामो कौण भाले। घन गरजे वरसे नहीं, जगो जुग वरसे अकाले॥
यति सती साथे घणा, राजा राणा वड़ भूप। बोले भाट बिरुदावली, चारण कविता चूप॥
मिलीया सेवग सांमटा, पूरे संख अनूप। जग जस लीनो दान दे यो जग्गो संघपति भूप॥
दान दियी लख गाय, लखवलि तुरंग तेजाला। सोनो सौ मण सात, सहस मोतियन की माला॥
रूपा तो नहीं पार, सहस करहा कर माला। बीयेबावीस भल जागियो, यो ओसवाल भूपाला॥

इस कवित्त को इतना प्राचीन तो नहीं समझा जाता है कि घटना समय में बना हुआ हो, फिर भी इसको बिल्कुल निराधार भी नहीं कहा जा सकता है। कारण, यह कवित्त भी किसी हकीकत पर से ही बना होगा। इस कवित्त में भाट भोजकों को दान देने में संघपति ने दान में करोड़ों का द्रव्य व्यय किया है जिसको देख कर किसी को आश्चर्य एवं शंका करने की आवश्यकता नहीं है। कारण, इस उपकेश वंश ... गा कि "उपकेशे बहुलंद्रव्यं" उपकेश वंश वाले त्यों २ शुभ कार्यों में द्रव्य व्यय करते रहेंगे

स्यों २ उनके द्रव्य की पुष्कल वृद्धि होती रहेगी। केवल एक जगाशाह ने ही नहीं पर ऐसे तो सैंकड़ों हजारों उदार दानेश्वरी हुये हैं कि एक धर्म कार्य में लाखों नहीं पर करोड़ों द्रव्य व्यय किया था। वह जमाना तो जैनों के उत्कृष्ट अभ्युदय का था, पर आज गये गुजरे जमाने में भी जैनी लोग धर्म के नाम पर लाखों रुपये व्यय कर रहे हैं। सेठ कर्मचन्द नगीनचंद पाटण वालों के संघ में छः लक्ष, सेठ माणकलाल भाई अहमदावादवालों के संघ में दश लक्ष, सेठ धारसी पोपटलाल जामनगर वालों के संघमें पांच लक्ष और संघपति पाँचूलालजी वैद्य मेहता फलोदी वालों के संघ में सवा लक्ष रुपये खर्च हुए थे। जब हम पाश्चात्य उदार गृहस्थों की ओर देखते हैं तो एक एक व्यक्ति विद्या प्रचार एवं धर्म प्रचार के लिये करोड़ करोड़ पौंड बात की बात में दे डालते हैं तो उस जमाने में इतना व्यय कर देना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

वि० सं० ११५ में उपकेशगच्छ में एक यक्षदेवसूरि नाम के महाप्रभाविक एवं दशपूर्वधर आचार्य हुये हैं जो आर्य वज्रस्वामी के समकालीन थे। आप सोपारपट्टन में विराजते थे उस समय आर्य वज्रसेन अपने नवदीक्षित चन्द्र, नागेन्द्र, निर्वृति और विद्याधर नामक चार शिष्यों को पढ़ाने के लिये सोपारपट्टण में आये चन्द्रादि चारमुनि किस वंश जति के थे, इस विषय का एक लेख उपाध्याय छगनलाल शान्तिलाल ने आत्मानन्द शताब्दी ग्रन्थ के गुजराती विभाग पृष्ठ १०० पर प्रकाशित करवाया है जिसमें लिखा है कि—

"आर्य वज्रसेन ने (उक्कोसिया गोत्रना) चार स्थविरों शिष्यों तरीके हता"

उपाध्यायजी यह 'उक्कोसिया' शब्द कहां से लाये होंगे ? यह खास कल्पसूत्र में ही लिखा गया है। कारण, उपकेस, उपकेशी, उकेशिय वंश को ही शायद उक्कोसिया कहा हो तो असंभव भी नहीं है।

उवकेशिय और उक्कोसिया एक ही वन्श एवं गोत्र का नाम हो तो निःशंक होकर कहना चाहिये कि विक्रम की दूसरी शताब्दी में उपकेशवंश के उदार वीरों का मथुरा में विस्तृत परिमाण में अस्तित्व था।

जब हम वंशावलियों की ओर देखते हैं तो उपकेशियवंश के बलाहगोत्र बाप्पनागगोत्र, चिंचटगोत्र श्रेष्टि गोत्र और आदित्यनागादिगोत्र के कई उदार वीरों ने विक्रम की दूसरी तीसरी चौथी शताब्दी में मथुरा, आभापुरी, चंदेरी आदि नगरियों में जैन मन्दिर बनाने के प्रमाण मिलते हैं और यह बात असंभव भी नहीं है क्योंकि वि० पू० ९७ वर्ष अर्थात वीरात् ३७३ वर्षे उपकेशपुर में भगवान महावीर की मूर्ति के वक्षःस्थल पर प्रतिष्टा के समय जो दो ग्रन्थियें रह गई थी जिसको छेदन कराने के लिये टांकी लगाने से रक्त की धारा बहने लग गई थी अर्थात् बड़ा भारी उत्पात मच गया, उसकी शांति के लिये आचार्य कक्कसूरि की अध्यक्षता में वृहद् शान्ति स्नात्र पूजा पढ़ाई गई थी, उस समय १८ गोत्र वाले धर्मज्ञ लोग स्नात्रिये बने थे, जिसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार मिलता है।

"तप्तभट्टो बाप्पनाग, स्ततः कर्णाट गोत्रजः। तुर्यो बलाभ्यो नामाऽपि श्रीश्रीमाल पंचमस्तथा॥
कुलभद्रो मोरिषश्च, विरिहिया ह्वयोऽष्टमः। श्रेष्ठि गोत्राण्यमून्यासन् पक्षे दक्षिण संज्ञके॥
सुचिन्तिताऽऽदित्यनागौ, भूरि भाद्रोऽथ चिंचटिः। कुंमटः कन्यकुब्जोऽथ [illegible]
तथाऽन्यः श्रेष्ठि गोत्रीयो, महावीरस्य वामतः। नव तिष्ठन्ति गोत्राणि, [illegible]

इनमें ९ गोत्र वाले प्रभु प्रतिमा के दाहिने और ९ गोत्र वाले बांई ओर [illegible]

जब कि वि०पू० एक शताब्दी में १८ गोत्र केवल पूजा में स्नात्रिये हुये थे तो संभव है कि इनके अलावा भी उप-केशपुर में तथा अन्य नगरों में और भी कई गोत्र होंगे परन्तु उन्हें जानने के लिये हमारे पास इस समय कोई साधन नहीं है फिर भी हम यह तो दावे के साथ कह सकते हैं कि विक्रम की दूसरी तीसरी चौथी शताब्दी में उपकेशवंश के वीरों ने अनेक धर्म कार्य किये थे जो वंशावलियों में आज भी उपलब्ध होते हैं।

इत्यादि प्रमाणों से हेमवन्त पट्टावली विक्रम की दूसरी शताब्दी में लिखी गई हो तो उस समय ओसवाल वंश शिरोमणि पोलाक श्रावक के होने में सन्देह करने की कोई बात नहीं है । अब हम आगे चल कर और पट्टावलियें उद्धृत कर देते हैं कि जिससे हेमवन्त पट्टावली पर और भी प्रकाश पड़े।

२—उपकेशगच्छीय पट्टावलियादि ग्रन्थ

अन्यदा स्वयंप्रभसूरि देशनाँ ददाताँ उपरि रत्नचूड़ विद्याधरो नंदीश्वरे गच्छन् तत्र विमानः स्तंभितः। × गुरुणा लाभंज्ञात्वा तस्मैदीक्षादत्ता । क्रमेणद्वादशाङ्ग चतुर्दश पूर्वी बभूव,गुरुणा स्वपदे स्थापितः श्रीमद् वीरजिनेश्वरात् द्वपंचाशतवर्षआचार्यपदे स्थापितः पंचशतसाधुभिः सह धराँविचरति × तत्र श्रीमद्रत्नप्रभसूरि पंचसयाशिष्य समेत लुणद्रही समायति × मासकल्प अरण्येस्थिता × सपादलक्षश्रावकानाँ प्रतिबोधकारक × प्रचुराजनाः श्रावकत्वंः प्रतिपन्ना। क्रमेण श्रीरत्नप्रभाचार्य वीरात् ८४ वर्षे स्वर्गगत : उपकेशगच्छ पट्टावली १८४

एवं प्रबोध्यतां देवीं सर्वत्र विहरन् प्रभुः । सपादलक्ष श्राद्धानामधिकंप्रत्यबोधयत् ॥
उपकेशगच्छ चरित्र

श्रीमहावीरनिर्वाणाद द्विपंचाशति वत्सरे । गुरोः सूरिपदं प्राप्य ततोऽष्टादशहायनैः ॥
ऊकेश-कोरण्टकयोः पुरयोस्त्रिशला भुवः । जिनस्य विम्बे संस्थाप्य चामुण्डाँ प्रतिबोध्य च ॥
सपादलक्षमधिकश्रद्धानाँ प्रतिबोध्य च । चारित्रं निरतीचारं पालयित्वा यथोदितम् ॥
नाभिनन्दन जिनोद्धार पृष्ट ४५

रयणप्पभसूरिहिं उएशपुरे थप्पिओ उएसवंसं, संठविओ महावीरं वीरनिव्वाणगओ चुल्लासी वरिसेहि सत्तुञ्जे सग्ग संपत्तो तस्स पट्टवर जक्खदेवो जक्ख पडिबुद्धो गयो सिन्ध भूमिओ जत्थ राव रुद्दाट पुत्त कक्काइजिणधम्मे थिरिकिओ ॥
उपकेशगच्छ प्रबन्ध हस्त लिखित

भगवान महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा के समय के विषय में देखिये—

यत्रास्ते वीरनिर्वाणत्सप्तत्यावत्सरैर्गतैः । श्री मद्रत्नप्रभाचार्यैः, स्थापितं वीर मंदिरम् ॥
"नाभिनन्दन जिनोद्धार"

उपकेशे च कोरंटे, तुल्यं वीर विम्बयोः । प्रतिष्ठा निर्मिता शक्त्या, श्री रत्नप्रभसूरिभिः ॥
"उपकेशगच्छ पट्टावली"

सप्तत्यावत्सराणाँ चरमजिनपतेर्मुक्त जातस्य वर्षे ।
पंचम्याँ शुक्लपक्षे सुर गुरू दिवसे ब्रह्मणः सन्मुहूर्त्ते ॥
रत्नाचार्यैः सकल गुण युतैः सर्व संघानुज्ञातैः ।
श्रीमद्वीरस्य बिंबे भव शतमथने निर्मितेयं प्रतिष्ठा ॥ "उपकेशगच्छ चरित्र"

"उपकेशगच्छे श्रीरत्नप्रभसूरियेंन उएशनगरे कोरंटनगरे च समकालं प्रतिष्ठाकृता रूपद्वय कारणेन चमत्कारश्च दर्शिताः ।" "कल्पसूत्र की कल्पद्रुम कलिका टीका स्थविरावलि"

ततः श्रीमत्युपकेशपुरे, वीर जिनेशेतुः । प्रतिष्ठाँ विधिनाऽऽधाय श्रीरत्नप्रभसूरयः ॥
कोरंटकपुरंगत्वा व्योम मार्गेण विद्यया । तस्मिन्नेव धनुर्लग्ने, प्रतिष्ठाँ विदधुर्वराम् ।
श्री महावीरनिर्वाणात्सप्तत्यावत्सरैर्गतैः । उपकेशपुरे वीरस्य सुस्थिरा स्थापनाऽजनि ॥
"नाभिनन्दन जिनोद्धार"

इन पट्टावल्यादि ग्रन्थों से निश्चय होता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वीरात् ७०वें श्रावण कृष्णा चतुर्दशी के शुभ दिन उपकेशपुर में 'महाजनसंघ' की स्थापना करी और उसी वर्ष के माघ शुक्ल पंचमी के दिन शुभ मुहूर्त में शासनाधीश चरम तीर्थंकर भगवान महावीर के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। ये मन्दिर आज भी ओसियां एवं कोरंटपुर में विद्यमान हैं।

विक्रम की दूसरी शताब्दी में उपकेशगच्छाचार्य श्रीयक्षदेवसूरि जो पहले बतलाए जा चुके हैं। आप एक समय सोपारपट्टन में विराजते थे। उस समय वज्रस्वामी के पट्टधर वज्रसेनाचार्य ने चार शिष्यों को दीक्षा दी और वे सपरिवार सोपारपट्टण यक्षदेवसूरि के पास ज्ञानाभ्यास के लिए आये। और वे शिष्यों को ज्ञानाभ्यास करवाने लगे। बीच में ही अकस्मात् आचार्य वज्रसेनसूरि का स्वर्गवास हो गया। बाद उन चारों शिष्यों को आचार्यश्री ने स्वशिष्यों से भी विशेष समझ कर खूब ज्ञानाभ्यास करवाया, इतना ही क्यों पर उन चारों मुनियों के बहुत से शिष्य करवा कर शुभ मुहूर्त में आगम विधि अनुसार क्रिया करवा कर वासक्षेप देकर सूरिपद से विभूषित किया, तत्पश्चात् उन चारों सूरियों ने आचार्य यक्षदेवसूरि का परमोपकार मानते हुए भूमंडल पर विहार किया।

अहा ! हा ! पूर्व जमाने में जैनाचार्यों की कैसी वात्सल्यता ! कैसी उदारता !! और शासनहित कैसी शुभभावना !!! कि समुदाय या गच्छ का किसी प्रकार का भेदभाव न रखते हुए एक दूसरे की किस प्रकार सहायता करते थे जिसका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। यही कारण है कि जैनधर्म की [illegible] से उन्नति हो रही थी।

अस्तु। वे चन्द्रादि चारों सूरीश्वर महान् प्रभाविक हुए कि उन चारों के नाम पर चार कुल [illegible] चार शाखा प्रसिद्ध हो गईं और उन चार कुल एवं शाखाओं में बड़े-बड़े धुरंधर आचार्य हुए जिन्होंने जैनधर्म का खूब ही उद्योत किया। जैसे कि :—

१ — चन्द्रसूरि से चन्द्रशाखा—जिसमें वर्द्धमानसूरि, हेमचन्द्रसूरि, जिनदत्तसूरि, [illegible] उपकेशगच्छ, पूर्णतलगच्छ आदि ये सब चन्द्रकुल में हुए।

२—नागेन्द्रसूरि से नागेन्द्रकुल–जिसमें उदयप्रभसूरि मल्लिसैनसूरि आदि कई महाप्रभाविक आचार्य हुए जिन्होंने लाखों अजैनों को जैन बना कर जैन संख्या की वृद्धि की !

३—निर्वृत्तिसूरि से निर्वृत्ति कुल–जिसमें शेलांगाचार्य्य; द्रोणाचार्य्य, सूराचार्य्य गर्गाचार्य आदि धुरन्धर आचार्य हुए जिनके चरणकमलों में अनेक भूपति सिर झुकाते थे।

४—विद्याधरसूरि से विद्याधरकुल–जिसमें १४४४ ग्रन्थों के रचयिता आचार्य हरिभद्रसूरिआदि महाप्रभाविक आचार्य हुए। जो जैन जैनेत्तर लोगों में खूब मशहूर हैं।

इस विषय का उल्लेख उपकेशगच्छपट्टावली में इस प्रकार मिलता है।

"एवं अनुक्रमेण श्रीवीरात ५८५ वर्षे श्रीयक्षदेवसूरिर्बभूव महाप्रभावकर्त्ता, द्वादशवर्षीय दुर्भिक्षमध्ये वज्रस्वामी शिष्य वज्रसेनस्य गुरौ परलोक प्राप्ते यक्षदेवसूरिणा चतस्रः शाखाः स्थापिता "इत्यादि।"

पट्टावली समुचय पृष्ट १८९

भावार्थ—श्रीवीर के निर्वाणकाल से ५८५ वर्ष बीतने पर महाप्रभाविक श्रीयक्षदेवसूरि आचार्य हुये। इस समय दुर्दैववश १२ वर्ष का अकाल पड़ने पर वज्रस्वामी के शिष्य श्री वज्रसेनसूरि के परलोक प्रयाण करने पर श्रीयक्षदेवसूरि ने चार शाखायें स्थापित की जिसका वर्णन ऊपर लिखा जा चुका है।

इनके अलावा उपकेशगच्छ चरित्र में भी इस विषय का उल्लेख मिलता है।

तदन्वये यक्षदेवसूरिरासीद्धियां निधिः । दशपूर्वधरोवज्रस्वामीशुव्यभवद्यदा ॥
दुर्भिक्षे द्वादशाब्दीये, जनसंहारकारिणी । वर्तमानेऽनाशकेन, स्वर्गेऽगुर्बहुसाधवः ॥
ततो व्यतीते दुर्भिक्षेऽवशिष्टान् मिलितान् मुनीन् । अमेलयन्यक्षदेवा, चार्याचन्द्रगणे तथा॥
तदादि चन्द्रगच्छस्य, शिष्य प्रव्राजनाविधौ । श्राद्धानाँ वास निक्षेपे, चन्द्रगच्छः प्रकीर्त्यते ॥
गणः कोटिकनामापि, वज्रशाखाऽपिसंमता। चान्द्रं कुलं च गच्छेऽस्मिन, साम्प्रतं कथ्यते ततः॥
शतानि पंच साधूनाँ, पुनगच्छेऽपिमिलन्निह । शतानि सप्त साध्वीनाँ,तथोपाध्याय सप्तकम् ॥
दशद्वौवाचनाचार्या, श्चत्वारो गुरवस्तथा । प्रवर्तकौ द्वावभूताँ, तथैवोभे महत्तरे ॥
द्वादशस्युः प्रवर्त्तिन्यः; सुमीति द्वौ महत्तरौ । मिलितौ चन्द्रगच्छान्तः सङ्घेयं कथ्यते गणे ॥

"उपकेशगच्छ चरित्र"

अर्थ—दशपूर्वधर आचार्य वज्रसूरि के सदृश अनेक गुणनिधि आचार्य यक्षदेवसूरि भूमण्डल पर विहार करते थे, उस समय बारह वर्षीय जनसंहार करने वाला भीषण दुष्काल पड़ा था। जब धनिक लोगों के लिए मोतियों के बराबर ज्वार के दाने मिलने मुश्किल हो गये थे तो साधुओं के लिए भिक्षा का कहना ही क्या था ? यदि कहीं मिल भी जाय तो सुख से खाने कौन देता ? उस भयंकर दुकाल में यदि कोई व्यक्ति अपने घर से भोजन कर तत्काल ही बाहर निकल जावे तो भिक्षुक उसका उदर चीर कर अन्दर से भोजन निकाल कर खा जाते थे। इस हालत में कितने ही जैनमुनि अनशनपूर्वक स्वर्ग को चले गये। शेष रहे हुए मुनियों ने ज्यों-त्यों कर उस दुष्काल रूपी अटवी का उल्लंघन किया। जब वज्रसूरि के पट्टधर वज्रसेन के निमित्त ज्ञान से अकाल के बाद सुकाल हुआ तो आचार्य यक्षदेवसूरि (चन्द्रादि चार मुनियों को पढ़ाने वाले) ने रहे हुए साधुओं को एकत्र किये तो ५०० साधु, ७०० साध्वियां, ७ उपाध्याय, १२

वाचनाचार्य ४ गुरु (आचार्य),१ प्रवर्तक, २ महत्तर (पदविशेष) १२ प्रवर्तनी,१ महत्तरिका इत्यादि सबको शामिल मिला कर गच्छ मर्यादा बांध दी कि इस चंद्रकुल में आजसे यदि किसी को दीक्षा दी जाय अथवा श्रावक को समकित या व्रत उच्चाराया जाय उस समय वासक्षेप दिया जाता है उस समय कोटिक गण वज्रीशाखा और चंद्रकुल के नाम लिये जायंगे इत्यादि । यह मर्यादा चंद्रकुल की परम्परा में अद्यावधि विद्यमान है ।

इस प्रमाण से यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जाती है कि विक्रम की दूसरी शताब्दी में उपकेशगच्छ के अन्दर बड़े २ विद्वान् मुनि और यक्षदेवसूरि सरीखे पूर्वधर आचार्य विद्यमान थे, इससे अधिक प्रमाण क्या हो सकता है ।

इस विषय में आचार्य विजयानन्द सूरीश्वरजी अपने जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर नामक ग्रंथ के पृष्ठ ७७ पर आचार्य यक्षदेवसूरि द्वारा चंद्रादिक चार कुलों की थापना होना बतलाया है जो इसी निबन्ध में आप श्री के किये हुये प्रश्नोत्तरों को ज्यों के त्यों उद्धृत कर दिया जायगा ॥

३ कोरंटगच्छीय पट्टावली आदि ग्रन्थ

वीर निर्वाणात् ७० वें वर्षे आचार्यरत्नप्रभसूरि उपकेशपुर नगर में आव्या ! उठे आहार पाणी री जोग नहीं मिल्यो तरे कनकप्रभादि ४६५ साधु विहार करने कोरंटपुर में चौमासो कियो । ज्यारे मुनिवर रा उपदेश सुं कोरंटपुर में महावीरजी रो एक मन्दिर बणायो । उठीने रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर रा राजा उत्पलदेव तथा मंत्रीऊहड़ और सवालक्ष राजपूतों ने जैनधर्म के श्रावक बनाया और मंत्रीऊहड़ ने महावीरस्वामी रो मन्दिर बनायो उण वखत कोरंटपुर का संघ रत्नप्रभसूरि री विनती करवाने उपकेशपुर गयो तरे रत्नप्रभसूरि कह्यो के अठे पण महावीरजी रा मन्दिर री प्रतिष्ठा करवाणी है जिणरो मुहूर्त माघ शुद ५ रो है ने थारो उठारा मन्दिर को मुहूर्त पण माघ शुद्ध ५ को है । पण संघरा आग्रे से रत्नप्रभसूरि [illegible] भरी । [illegible] मुहूर्त पर दोय रूप बना कर एक सुं उपकेशपुर दूसरा से कोरंटपुर में प्रतिष्ठा कराई जिके दोनोंई मन्दिर आज सुधी ऊभा छे इत्यादि । कोरंटपुर की [illegible]

आचार्य विजयानन्दसूरिजी महाराज फर्माते हैं कि :—

तथा अयरणपुर की छावनी से ६ कोस के लगभग कोरंट नाम नगर ऊजड़ पड़ा है जिस जगह कोरंटानामें आज के काल में गाँव बसता है वहां भी श्री महावीरजी की प्रतिमा मन्दिर में श्री रत्नप्रभसूरिजी की प्रतिष्ठा करी हुई अब विद्यमान काल में सो मन्दिर खड़ा है । [illegible]

कोरंटगच्छ के विषय तो पाठक आचार्यरत्नप्रभसूरि के जीवन में पढ़ चुके हैं कि कोरंटगच्छ की उत्पत्ति कोरंटपुर में आचार्यकनकप्रभसूरि से ही हुई है जिसकी प्रमाणिकता के लिए [illegible] के एक देवचन्द्रोपाध्याय का उदाहरण मिलता है कि विक्रम की दूसरी शताब्दी में कोरंटपुर के महावीर मन्दिर में देवचन्द्रोपाध्याय रहता था जिसको सर्वदेवसूरि ने [illegible] जैसे कि:—

> तत्र कोरंटकं नाम पुरं [illegible] । [illegible]
> तत्रास्ति श्री महावीर चैत्यं चैत्यं [illegible]
> उपाध्यायोऽस्ति तत्र श्रीदेवचन्द्र इति [illegible] । [illegible]

आरण्यक तपस्ययाँ, नमस्ययाँ जगत्यपि । सक्तः शक्तान्तरंगाऽरि विजये भवतीर भूः ॥
सर्वदेवमभु सर्व देव सद्ध्यान सिद्धिभृत् । सिद्धिक्षेत्रे पिपासुः श्री वाराणस्याः समागमत् ॥
बहुश्रत परिवारो विश्रान्तस्तत्र वासरान् । काँश्चित प्रबोध्यतं चैत्यव्यवहार ममोचयत् ॥
स पारमार्थिकं तीव्रं धत्ते द्वादशधा तपः । उपाध्याय स्ततः सूरि पदे पूज्यैः मतिष्ठितः ॥

"प्रभाविक चारित्र मानदेव प्रबन्ध पृष्ठ १९१"

उपाध्याय देवचन्द्र का समय विक्रम की पहिली या दूसरी शताब्दी का माना जाता है, अतः कोरंटपुर का महावीर मंदिर उस समय के पूर्व का बना हुआ था और उसकी प्रतिष्ठा उन्हीं रत्नप्रभसूरि द्वारा हुई थी कि जिन्होंने उपकेशपुर में प्रतिष्ठा कराई थी।

कोरंटपुर की प्राचीनता का एक और भी उल्लेख मिलता है जैसे कि :—

"उपकेशगच्छे श्रीरत्नप्रभसूरिः येन उसियानगरे कोरंटकनगरे च समकालं प्रतिष्ठाकृता रूपद्वयकरणेन चमत्कारश्च दर्शितः"

"कल्पसूत्र की कल्पद्रुमकलिका टीका के स्थविरावली अधिकार में"

इनके अलावा 'गच्छमतप्रबन्ध' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ २५ पर श्री आचार्य बुद्धिसागरसूरि लिखते हैं × × × "वि० सं० १२५ माँ कोरंटनगरना नाहड़ मंत्रीश्रे सत्यपुर मां जिनमन्दिर बंधाव्युं तेमां महावीरप्रभु जी प्रतिमानी प्रतिष्ठा श्रीजज्जकसूरिश्रे करी 'जयउवीरसच्चउरीमंडण' अे चैत्यवन्दन मां तेनो पाठ छे वि० सं० १२५ मां कोरंटगच्छ जेना थी प्रसिद्ध थयो ते कोरंटनगरनी जाहोजलाली प्रवर्तती हती"

कोरंटगच्छ की उत्पत्ति तो ऊपर बतलाते हुये कनकप्रभसूरि से ही हो गई थी। शायद यह ज्जजगसूरि कोरंटगच्छ के कोई आचार्य होंगे और मन्त्री के बनाये हुये किसी महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई होगी।

मुनिराज श्री यतीन्द्रविजयजी (वर्त्तमान में आचार्य) लिखते हैं कि:—

यह मन्दिर अन्दाजन २४०० वर्ष का पुराना है। इसकी प्रतिष्ठा पार्श्वनाथ सन्तानिये श्रीरत्नप्रभ[illegible] जी महाराज ने श्रीवीर निर्वाण से ७० वर्ष बाद ओसियाँजी के महावीर-मन्दिर के साथ दो रूप करके एक ही लग्न में की थी।

—कोरंटाजी तीर्थ का इतिहास पृष्ठ २

४ श्री तपागच्छीय पटटावल्यादि

हवे श्री पार्श्वनाथ ना प्रथमगणधर श्रीशुभेय नामे , तष्यशिष्या शिष्याचार्य्य चार्य हरिदत्त श्रीसमुद्रस्वामी। तस्य शिष्याचार्य्यो श्री केशी। श्री वीरवारे केशी स्वामि। तस्य तस्स शिष्य श्री स्वयंप्रभसूरि। तस्य शिष्याचार्य्यो श्री रत्नप्रभसूरि प्रगट हुआ। तेहने श्रीवीर मुक्ति पछी वर्ष बावन आचार्य्य पद हुओ। श्रीवीरमुक्ति गया पछी वर्ष पचेस्तरे (७०) ओईसा नगरी चामुण्डा प्रतिबोधी घणा जीवने अभयदान देई साचिल्ल नाम दीधुं। पुनः तेहीज नगर नो स्वामी परमार (सूर्यवंशी) श्रीउपलदेव प्रति धर्मोपदेश देई एक लाषनें नवाणु हजार गोत्री (५-२) स्यू प्रतिबोध्या तिणे श्रीपार्श्वनाथप्रासाद थाप्यो। एरिज सूरिये प्रतिष्ठयो। तिहाँ थी उपकेशज्ञाति थापी। श्री रत्नप्रभसूरि ने उपकेशगच्छ लोके कह्यो इति चौथो पाट ॥

जैन साहित्य संशोधक खंड १ अंक ३ पृष्ठ ३ में मुद्रित वीरवंशावलि

इसी प्रकार जैन श्वे० कांन्फ्रेंस हेरल्ड अखबार पृष्ठ ३३० में मुद्रित तपागच्छ की पट्टावली में भी आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा ओसवंश की उत्पत्ति लिखी है।

५—आंचलगच्छ पट्टावली

पार्श्वनाथजीनी पाटे छट्ठा आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरिजी के उपकेशपट्टन मां महावीर स्वामि नी प्रतिमा नी प्रतिष्ठा करी तथा ओशयां नगरी मां ओशवालों नी तथा श्रीमाल नगरमां श्रीमाली नी स्थापना करी।

हीरालाल हंसराज कृत जैनधर्म का इतिहास पृष्ठ १४०

श्री महावीर प्रभु थी सीत्तेर वर्षो गया बाद श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी छट्ठी पाटे स्थविर श्रीरत्नप्रभनामना आचार्य थया। तेमणे उपकेश नगर मां अेक लाख अेसी हजार क्षत्रिय पुत्रों ने प्रतिबोध्या, अने तेश्राने जैन धर्म स्वीकारवा थी तेओने तेमणे उपकेश (ओसवाल) नामना वंशमां स्थाप्या। [illegible] पट्टावली पृष्ठ ५

पं० हीरालाल हंसराज जामनगर वालों ने आंचलगच्छ बड़ी पट्टावली का गुजराती भाषान्तर किताब के पृष्ट ७८ पर कुछ ऐतिहासिक घटनायें लिखी हैं जिसके अन्दर से कुछ सार हिन्दी में यहां उद्धृत कर दिया जाता है।

१—भिन्नमाल नगर के राजा भाण ने जब शत्रुञ्जय का संघ निकालने की तैयार की तो प्रस्थान के समय संघपति के तिलक करने के विषय एक ऐसा मतभेद खड़ा हुआ कि राजा भाण के प्रतिबोधक गुरु तो उदयप्रभसूरि थे और इनके संसार पक्ष के काका ने दीक्षा ली उनका नाम सोमप्रभसूरि था। सोमप्रभसूरि ने अपने भतीजपने का हक लगा कर तिलक करना चाहा पर अन्य बहुत आचार्यों की सम्मति से यह निर्णय हुआ कि संघ प्रस्थान का तिलक एवं वासक्षेप उदयप्रभसूरि ही दे सकेंगे क्योंकि राजा भाण को धर्मबोध उदयप्रभसूरि ने ही दिया था।

इस निर्णय के पश्चात भी सब आचार्यों की सम्मति से एक लिखित कर लिया कि जिस आचार्य के प्रतिबोधक श्रावकसंघ निकालें या मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करावें तो उस कार्य में उन आचार्य तथा उनकी संतान का ही प्रधानत्व रहेगा जिन्होंने उनके तथा उनके पूर्वजों को प्रतिबोध देकर [illegible] इत्यादि। इस लिखित में हस्ताक्षर करने वाले आचार्य्यों के नाम इस प्रकार लिखे हैं। १—[illegible] सोमप्रभाचार्य २—[illegible]गच्छीय जि[illegible]सूरि ३—उपकेशगच्छीय[illegible]सूरि ४—[illegible] महेन्द्रसूरि ५—विद्याधरगच्छीय हरियाणंदसूरि ६—सांडेरगच्छीय [illegible]सूरि ७—[illegible] ८—[illegible]सूरि ९—[illegible]सूरि १०—जिनराजसूरि ११—सोमराजसूरि १२—[illegible]सूरि १३—[illegible] सूरि १४—पूर्णभद्रसूरि १५—हंसतिलकसूरि १६—प्रभाकरसूरि १७—[illegible]सूरि १८—[illegible] १९— देवचंदसूरि २०—महेश्वरसूरि २१—[illegible]सूरि २२—[illegible]सूरि २३—[illegible]सूरि २४—[illegible]सूरि २५— जयसिंहसूरि २६—विजयसिंहसूरि २७—[illegible]सूरि २८—[illegible]सूरि २९—[illegible]सूरि ३०—[illegible] हंससूरि ३१—वीरसिंहसूरि ३२—रामप्रभसूरि ३३—[illegible]सूरि ३४—[illegible]सूरि [illegible]

इनके अलावा राजा भाण तथा [illegible] और [illegible] के हस्ताक्षर कराये गये थे, [illegible] बनी रही थी।

[illegible]

समा०—यह ममत्व नहीं पर संघ का व्यवस्थित रखने की सुन्दर व्यवस्था थी और जब तक उन दूरदर्शी आचार्यों की व्यवस्था ठीक तरह से चलती रही तब तक समाज में अच्छी शान्ति रही। बाद में नये नये मत पंथ एवं गच्छ पैदा हुये और उन्होंने उन शासन शुभचिंतकों की व्यवस्था को तोड़-फोड़ दर दर में विभाजित कर दी। बस उस दिन से ही जैन समाज के दिन बदल गये और गच्छ भेद का कलह पैदा होगया। अतः उन दूरदर्शी आचार्यों की व्यवस्था ममत्व भाव की नहीं पर शासन को व्यवस्थित रखने की ही थी।

२—दूसरी एक घटना ऐसी भी लिखी है कि भिन्नमाल के राजा भाण के बहुत राणियें होने पर भी उसके कोई संतान नहीं थी जब एक निमित्त शास्त्र के वेत्ता से पूछा तो उसने अपने निमित्त बल से कहा कि उपकेशपुर में ओसवाल जाति का जगमाल श्रेष्टि है उसकी कन्या रत्नाबाई जो कि बहुत गुणांलंकृत है उसके साथ राजा का विवाह हो तो राजा के सन्तान हो सकती है। राजा भांण ने श्रेष्टिवर्य से रत्ना बाई की याचना की, पर सेठ साहब ने इन्कार कर दिया। तब राजा ने एक वेश्या को धन का लोभ देकर उपकेशपुर भेजी। उसने रत्नाबाई से गुप्त बात की पर रत्नाबाई ने कहा कि यदि राजा के साथ मेरी शादी हो जाय और शायद मेरे पुत्र भी हो जाय परन्तु दूसरी राणियों के पुत्र होगा तो राज का मालिक वह होगा तो फिर मेरे पुत्र की और मेरी क्या दशा होगी, अतः राजा इस बात को स्वीकार करें कि मेरे पुत्र हो तो राज्याधिकार उसको ही दिया जाय दूसरे को नहीं तो मैं शादी करने को तैयार हूँ। वेश्या ने राजा के पास जाकर सब हाल निवेदन किया जिसको राजा ने स्वीकार कर लिया क्योंकि गरजवान क्या नहीं करता है। बस राजा रूप बदल कर वैश्या के साथ उपकेशपुर गया और रत्नाबाई को गुप्तरूप से लेकर भिन्नमाल आया और बड़े ही समारोह से उसके साथ शादी करली। प्रस्तुत पट्टावली पृष्ठ ८

इस घटना से पाया जाता है कि विक्रम की आठवीं शताब्दी में उपकेशपुर उपकेशवंशियों से फला फूला आबाद था।

६—जैन धर्म का प्राचीन इतिहास

श्रीमहावीर स्वामीना निर्वाण पछी सीत्तेर वर्ष बाद श्री पार्श्वनाथ संतानो मां छट्ठी पाटे श्रीरत्नप्रभसूरि नामे आचार्य थया। तेमणे उपकेशपट्टण नामना नगरमाँ श्रीमहावीरस्वामीनी प्रतिमानी प्रतिष्ठा करी। तथा ओश्या नगरीमा क्षत्रियनी जातिओने प्रतिबोधीने ओशवालोनी स्थापना करी, अने श्रीमाल नगर माँ श्रीमालिओनी स्थापना करी। जैन इतिहास पृष्ठ १७ भावनगर से प्रकाशित

७—भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास डाक्टर त्रिभुवनदास लेहरचन्द बड़ोदा वालों का मत है कि:—

२३ माँ तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ संतानीयामाँ छट्ठी पेढ़ीए थयेला रत्नप्रभसूरि नामना आचार्य हता तेमणे लाखोनी संख्यामाँ जैनो बनाव्या हता।" प्राचीन भारतवर्ष भाग बीजो पृष्ठ १७६

ओसवालों की उत्पत्ति पोरवालों के समकालीन हुई है। जब पोरवालों के अस्तित्व का प्रमाण मंत्री विमल के पूर्वज लेहरी नानग का समय विक्रम की आठवीं शताब्दी और जावड़ का समय विक्रम की पहिली शताब्दी का मिलता है तब ओसवाल ज्ञाति को ही अर्वाचीन क्यों मानी जाय अर्थात् ओसवाल ज्ञाति का समय वि० पू० ४०० वर्ष का मानना न्यायसंगत ही है इसी प्रकार श्रीमाली जाति के अतित्व का प्रमाण मिलता है कि वि० सं० ७९५ में आचार्य उदयप्रभसूरि ने श्रीमाल के ९० क्रोडपतियों को जैन बना

कर पूर्व स्थापित श्रीमाल ज्ञाति में मिला दिया। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि श्रीमालज्ञाति के समकालीन ओसवाल जाति ही इतनी ही प्राचीन है कि जितनी श्रीमाल जाति प्राचीन है।

८—खरतरगच्छीय यतिवर्य श्रीपालजी ने अपनी 'जैनसम्प्रदाय शिक्षा' नामक किताब के पृष्ट ६०७ पर ओसवालोत्पत्ति के विषय में लिखा है कि:—

चतुर्दश (चौदह) पूर्वधारी, श्रुतकेवली, लब्धिसंयुक्त, सकलगुणों के आगर, विद्या और मंत्रादि के चमत्कार के भंडार, शान्त, दान्त और जितेन्द्रिय, एवं समस्त आचार्यगुणों से परिपूर्ण, उपकेशगच्छीय जैनाचार्य्य श्रीरत्नप्रभसूरिजी महाराज पाँच सौ साधुओं के साथ विहार करते हुये श्री आबूजी अचलगढ़ पधारे थे, उनका यह नियम था कि वे (उक्त सूरिजी महाराज) मासक्षमण से पारणा किया करते थे, उनकी ऐसी कठिन तपस्या को देख कर अचलगढ़ की अधिष्ठात्री अम्बादेवी प्रसन्न होकर श्री गुरु महाराज की भक्त हो गई, अतः जब उक्त महाराज ने वहाँ से गुजरात की तरफ विहार करने का विचार किया तब अम्बादेवी ने हाथ जोड़ कर उनसे प्रार्थना की कि—"हे परमगुरो! आप मरुधर (मारवाड़) देश की तरफ विहार कीजिये, क्योंकि आपके उधर पधारने से दयामूल धर्म (जिनधर्म) का उद्योत होगा" देवी की इस प्रार्थना को सुन कर उक्त आचार्य महाराज ने उपयोग देकर देखा तो उनको देवी का [illegible] मालूम हुआ।

आगे यतिजी लिखते हैं कि रत्नप्रभसूरि एक शिष्य के साथ उपकेशपुर में पधारे। देवी से रूई मंगा कर सांप बनाया और राजा के कुँवर को कटाया बाद उसका विष उतार कर राजा आदि नगर निवासियों को धर्मोपदेश दिया इसको यतीजी ने बहुत विस्तार से लिखा है साथ में दो छप्पय भी दिए हैं, जिस में एक तो किसी भाटों का अर्वाचीन कल्पित है और प्राचीन पट्टावलियों से मिलता जुलता है जो कि:—

वर्द्धमान तणें पछै वरष वावन पद लीधो। श्रीरत्नप्रभसूरि नाम तासु सत गुरु व्रत दीधो॥
भीनमाल सुं ऊठिया जाय ओसियाँ वसाणा। क्षत्रि हुआ शाख अठारा उठै ओसवाल [illegible]॥
इकलाखचौरासी सहस पर राजकुली प्रतिबोधिया। रत्नप्रभसूरि ओस्यों नगर ओसवाल [illegible] दिन [illegible] ॥१॥

उस समय श्री रत्नप्रभसूरि महाराज ने ऊपर कहे हुए राजपूतों की [illegible] महाजन [illegible] और अठारह गोत्र स्थापित किये थे जो कि निम्नलिखित हैं:—

१ तातहड़गोत्र, २ बाफणागोत्र, करणाट ३ बलहागोत्र, ४ मोराक्षगोत्र, ६ कुलहटगोत्र ७ विरहट गोत्र, ८ श्री श्रीमालगोत्र ९ श्रेष्ठिगोत्र, १० सुचिंतीगोत्र, ११ आइचणागगोत्र, १२ भूरि (भटेवरा) गोत्र, १३ भाद्रगोत्र, १४ चीचटगोत्र, १५ कुमटगोत्र, १६ डिडूगोत्र, १७ कनौजगोत्र १८ लघुश्रेष्ठिगोत्र।

इस प्रकार ओसियां नगरी में महाजनवंश और उक्त १८ गोत्रों की स्थापना कर [illegible] सूरिजी महाराज विहार कर गये और इसके पश्चात् १० वर्ष के पीछे पुनः [illegible] नगर में सूरिजी महाराज विहार करते हुए पधारे और उन्होंने राजपूतों के [illegible] और सुघड़ादि [illegible] से गोत्र स्थापित किये।

प्रिय पाठकवृन्द! इस प्रकार [illegible]

श्री रत्नप्रभसूरिजी महाराज के [illegible]

+ दूसरा कवित्त [illegible]

माहेश्वरी, वैश्य और ब्राह्मण जाति वालों को प्रतिबोध देकर (अर्थात् ऊपर कहे हुए महाजनवंश का विस्तार कर) उनके महाजनवंश और अनेक गोत्रों को स्थापन किया है ।"

इसी प्रकार खरतरगच्छीय यति रामलालजी ने अपनी 'महाजनवंशीय मुक्तावली' नामक किताब में लिखा है कि वीर निर्वाण से ७० वें वर्ष में आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में महाराज उपलदेव आदि क्षत्रियों को प्रतिबोध कर जैन श्रावक बनाये जिनके १८ गोत्रों का नाम ऊपर यति श्रीपाजी के लेखानुसार ही लिखा है तथा खरतरगच्छीय मुनि चिदानन्दजी ने अपने स्याद्वादानुभव रत्नाकर नाम की पुस्तक में भी इसी आशय का लेख लिखा है ।

खरतरगच्छीय वीरपुत्र आनन्दसागरजी ने अपने कल्पसूत्र का हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ४६७ पर लिखा है कि "इसी तरह उपकेशगच्छ में ओसवंश स्थापक श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर हुए जिनने अपनी लब्धि से दो रूप करके ओसियां और कोरंटनगर में समकाल प्रतिष्ठा कराई" ।

९—स्थानकवासी समुदाय के मुनि श्री मणिलाल ने "जैनधर्मनोप्राचीनसंक्षिप्त इतिहास अने प्रभु वीर पट्टावली" नामक एक गुर्जर भाषा की पुस्तक लिखी है जिसके पृष्ट ७२ पर लिखा है कि:—

"महावीर स्वामीना निर्वाण पछी सित्तरे वर्ष बाद श्रीपार्श्वनाथभगवान ना शासन मां छट्ठी पाटे "श्रीरत्नप्रभ" नामे आचार्य थया तेमणे "ओसीया" नामनी नगरी मां क्षत्रिय जाति ने प्रतिबोध आपी श्रावको बनाव्या त्यारे ओसवालों नी स्थापना थई, अने "श्रीमाल" नगर मां श्रीमाली ओनी स्थापना थई, अेम श्री जैनधर्म विद्या प्रसारक वर्ग तरफ थी, बहार पडेल "जैन इतिहास" नामक ग्रंथ मांथी उल्लेख मली आवे छे, महावीर स्वामी ना समय मां पण श्री पार्श्वनाथ भगवानना "संतानिया" संतो विचरता हता, ते श्री उत्तराध्ययन सूत्रमां आवेला श्री पार्श्वनाथ शासनना श्रीकेशीस्वामी अने प्रभु वीरना शासन ना श्री गौतम ... अे बंने वच्चे वृत, वस्त्रो आदि बाबतमां चालेला संवाद पर थी सिद्ध थाय छे । आ उत्पत्ति बाबतनो बधु उल्लेख दृष्टिगोचर थयो नथी; पण समय नुँ अनुसंधान विचारतां आ हकीकत केटलेक अंशे सत्य होवानुं मानी शकाय ।

इस प्रकार और गच्छों की पट्टावल्यादि ग्रन्थों में ओसवाल उत्पत्ति विषयक उल्लेख होना संभव होता है क्यों कि यह एक प्रसिद्ध बात है कि जहाँ ओसवाल पोरवाज और श्रीमालों का प्रसंग आता है वहां इस बात को अवश्य लिखते हैं । आज हम सामयिक पत्र पत्रिकाओं और राजतवारीखों को पढ़ते हैं तो इस विषय के अनेक लेख मिलते हैं । अतः इस विषय में फिर ज्यों २ पट्टावल्यादि ग्रन्थ मिलते जायंगे त्यों २ विषय पर प्रकाश पड़ता जायगा ।

उपरोक्त पट्टावल्यादि ग्रन्थ साधारण व्यक्तियों के लिखे हुये नहीं हैं परन्तु हमारे परमपूज्य महान आचार्यों के लिखे हुये हैं कि जिनपर हमारा अटल विश्वास है । अतः कोई कारण नहीं कि हम इन प्रमाणों में किसी प्रकार की शंका करें क्यों कि उन महाव्रतधारी सत्यवक्ता, निस्पृही आचार्यों को गलत लिखने में कोई भी स्वार्थ नहीं था । अतः इन पट्टावल्यादि के प्रमाणों से ओसवाल जाति की उत्पत्ति का समय वि० पू० ४०० वर्ष मानना न्याय संगत और युक्तियुक्त है ।

महाजनसंघ उपकेशवँश और ओसवाल जाति की प्राचीनता के विषय वंशावलियों के कतिपय प्रमाण
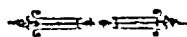
१–विक्रमपूर्व ९७ वर्ष के समय में जिन १८ गोत्रों का उल्लेख मिलता है उसी १८ गोत्रों की वंशावलियों में प्रत्येक गोत्रों के स्थापक वीरात् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि का ही नाम बतलाया जाता है। शायद इसका यह कारण हो कि महाजन सङ्घ के आदि संस्थापक आचार्य रत्नप्रभसूरि थे अतः उन परमोपकारी आचार्यश्री की स्मृति के लिये सर्वत्र अर्थात् क्या उपकेशवंश के अठारह गोत्रों के और क्या ओसवाल जाति के आदि पुरुष रत्नप्रभसूरि ही को बतलाया गया हो तो यह यथार्थ ही है क्योंकि उपकेशवंश अठारह गोत्र और ओसवाल जाति यह कोई अलग-अलग नहीं है पर ये सबके सब उस महाजनसङ्घ के रूपांतर नाम एवं उसकी शाखा प्रतिशाखा रूप हैं अतः उनके आदि में रत्नप्रभसूरि का नाम लेना या लिखना यह उनका कृतज्ञपना ही है।

अब थोड़े से प्रमाण वंशावलियों के बतला देते हैं कि ओसवाल जाति कितनी प्राचीन है ?

१–उपकेशपुर में श्रेष्टिगोत्रीय राव जगदेव ने वि० सं० ११९ में चंद्रप्रभ का मंदिर बनाया जिसकी प्रतिष्टा आचार्य यक्षदेवसूरि ने की।

२–खतरीपुर में तप्तभट्ट गोत्रीय शाह नोढ़ा जैतल ने वि० सं० १२२ में श्री शत्रुञ्जय का विराट् संघ निकाला जिसमें आचार्य यक्षदेव आदि बहुत से साधु साध्वी थे।

३–विजयपट्टन में बाप्पनाग गोत्रीय मंत्री सज्जन ने वि० सं० ११९ में भगवान महावीर का मंदिर बनाया जिसकी प्र० यक्षदेवसूरि ने की। जिसमें मंत्रीश्वर ने सवालाख रुपये खर्च किये।

४–धेनपुर में भाद्रगोत्रीय मंत्री मेहकरण ने वि० सं० २०९ में आचार्य रत्नप्रभसूरि की अध्यक्षता में तीर्थों की यात्रा के लिये एक बड़ा भारी सङ्घ निकाला जिसमें एक लाख यात्रियों की संख्या थी।

५–उपकेशपुर में श्रेष्टिगोत्रीय राव जल्हणदेव ने वि० सं० २०८ में आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से महावीर मंदिर में अठाई महोत्सव किया। जिसमें संघ को आमंत्रण कर एकत्र किया [illegible] स्वामी वात्सल्य और एक दिन नगर सहरनी की और आये हुये स्वधर्मी भाइयों को पहरामणि में [illegible] के साथ एक एक सोना मोहर भी दी, इस शुभावसर पर आचार्य श्री ने विद्वान शिष्यों में से [illegible] को [illegible] पद, १२ को वाचनाचार्य पद ४ को उपाध्याय पद प्रदान किया।

६–भिन्नमाल नगर में [illegible] गोत्रीय शाह पेथड़ [illegible] ने वि० सं० [illegible] में आचार्य [illegible] गुप्तसूरि के उपदेश से भगवान ऋषभदेव का मन्दिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा [illegible] सूरि ने की।

७–मांडव्यपुर में कुलभद्र गोत्रीय शाह लाधा सेठ ने आचार्य सिद्धसूरि के उपदेश से [illegible] ऋषभनाथ के मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया जिसकी प्रतिष्ठा वि० सं० [illegible] में आचार्य सिद्धसूरि द्वारा करवाई।

८–[illegible] में श्रेष्ठि गोत्रीय मंत्री [illegible] ने महावीर का मंदिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा [illegible] में आचार्य सिद्धसूरि ने करवाई।

९—दूघड़ों की वंशावली में लिखा है कि दूघड़ समरथ कांना ने रत्नपुर में श्रीमहावीरका विशाल मंदिर बनाया था जैसे—

वि० सं० २४७ माघशुद्धि ५ उकेशवंशे दूघड़गोत्र शा० समरथ काना केन निज मात कुमारदेवी श्रेयार्थ श्रीमहावीर बिंब करापितं प्र० श्री उपकेशगच्छे कक्क सूरिभिः।

वि० सं० २१९ जेष्ठशुक्ला ७ उपकेशवंशे दूघड़ गोत्र शाह देदा भारमल ने रोहलीग्राम में श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ का मंदिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा उपकेशगच्छीय आचार्य यक्षदेवसूरि से कराई।

१०—गटिया गौत्र का शा० देवराज ने चंदेरी नगरी में सं० ५२१ में श्रीआदिनाथ का मंदिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा सिद्धसूरि ने की तथा आपने शत्रुंजयादि तीर्थों का सङ्घ निकाल कर यात्रा की और साधर्मी भाइयों को लेन-पहिरामणी दी। आपका पुत्र नगराज और नगराज का पुत्र नरदेव बड़े ही नामी हुये।

११—कुमट गौत्रे शा दुर्जनशाल ने वि० सं० ५३९ में आचार्य सिद्धसूरि का पट्ट महोत्सव किया और आपके अध्यक्षत्व में सम्मेतशिखर तीर्थ का सङ्घ निकाल साधर्मी भाइयों को पहिरामणी दी जिसमें एक लक्ष द्रव्य सुकृत कार्य्यों में व्यय किया। आपके पुत्र वनवीर और बनवीर के पुत्र वस्तुपाल तथा वस्तुपाल का पुत्र चन्दकरण हुआ, इसने वि० सं० ६०४ में भिन्नमाल नगर में भगवान् पार्श्वनाथ का मंदिर कराया जिसकी प्रतिष्ठा उपगच्छीय सिद्धसूरि ने करवाई।

१२—आदित्यनागगोत्रे चोरड़िया शाखा में वि० सं० ५१३ में शा० धरमण माधु सलखणादि ने नागपुर में श्रीपार्श्वनाथ का मंदिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य देवगुप्तसूरि ने करवाई और आपके अध्यक्षत्व में श्रीशत्रुंजयादि तीर्थों का सङ्घ निकाला, इन शुभ कार्य्यों में इन वीरों ने पांच लक्ष द्रव्य व्यय ।

१३—बाप्पनागगोत्रे वि० सं० ५८९ में शा० हापु वीरमदेव तोला जागरूपादि ने शत्रुंजयादि तीर्थों का सङ्घ निकाला। स्वामिवात्सल्य कर साधर्मी भाइयों को मोदक में एक एक सुवर्णमुद्रिका और वस्त्रादि की पहिरामणि दी इस सङ्घ में मुख्य नायक आचार्य कक्कसूरि थे।

१४—चोरड़िया जाति से डीडवाना में एक लालाशाह से लालोडिया शाखा निकली। उन लालाशाह ने वि० सं० ६७९ में बड़े भयंकर दुष्काल में मनुष्यों को अन्न और पशुओं को घास देने में अपनी लाखों रुपयों की सम्पत्ति प्रदान कर दी। उस दिन से शाह लाला की संतान 'लालोडिया' नामक शाखा से प्रसिद्ध हुई। लालाशाह के तीसरी पुस्त में जगडूशाह बड़ा ही नामी उदार पुरुष हुआ।

१५—श्रेष्ठि (वैद्य)—वि० सं० ५११ नागपुर में शाह रघुवीर हरचंद ने आचार्यदेवगुप्तसूरि के उपदेश से शत्रुंजयादि तीर्थों का सङ्घ निकाला जिसमें सवालक्ष द्रव्य व्यय किया। साधर्मी भाइयों को सोने मोहरों की पहिरामणी दी और तीन बड़े यज्ञ भी किये तथा आचार्यश्री को नागपुर में चतुर्मास करवा कर अपनी ओर से महा महोत्सव पूर्वक श्री भगवती सूत्र बंचा कर श्री सङ्घ को महाप्रभाविक आगम सुनाया। जिसमें आपने कई लक्ष द्रव्य व्यय किया।

१६—वीरहटगोत्रे वि० सं० ५७८ शा० सारंग के पुत्र सायर ने माघशुक्ला ५ को चन्द्रावती नगरी में आचार्य कक्कसूरि के पट्टमहोत्सव में सवालक्षद्रव्य व्यय किया। इसकी परम्परा में वि० सं० १०३७ में शा० सोनपाल ने हणावा ग्राम से श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला तथा श्रीविमलनाथ स्वामी का मंदिर बनाया जिसकी प्रतिष्टा उपकेशगच्छीय आचार्य सिद्धसूरि ने की। सोनपाल का पुत्र देहल हुआ वह हणावा को छोड़ धारा नगरी गया इसका एक कवित्त भी मिला है।

"धाराधीप देहलने पद मंत्री सिर थापै। शाह मोटो सामंत जगत सगलो दुःख कापै॥
धर्मकर्म सहुसाचवे दान अड़कल समर पै। नवखंड नाम देहल कियो सोनपाल सुत सहु जंपै॥

१७—भाद्रगोत्रे समदड़िया शाह हरचंद ने वि० सं० ७९९ नागपुर में आचार्य कक्कसूरि को ४५ आगम लिखा कर भेंट किया।

१८—श्रेष्टिगोत्रिय शा० रूपचन्द के पुत्र मलयसी ने आभानगरी में आचार्य देवगुप्त सूरि का पट महोत्सव किया, सम्मेतशिखर का संघ निकाल यात्रा की। इस शुभ कार्य में पुष्कल द्रव्य व्यय किया जिस का समय वि० सं० ८३९ का था।

१९—लघुश्रेष्टि गोत्रिय शा० देपाल धनदेव ने वि० सं० ५९५ में आचार्य कक्कसूरि के उपदेश से भीनमालनगर से श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें सात लक्ष द्रव्य व्यय किया। धनदेव की परम्परा के चतुर्थ पट्टधर महानंद ने चन्द्रावती नगरी में वि० सं० ६६९ में आचार्य सिद्धसूरि की [illegible] में शत्रुंजय का बड़ा भारी संघ निकाला। जिसमें तीन लक्ष द्रव्य व्यय कर पुन्योपार्जन किया।

२०—चिंचट गोत्रे शाह वीरदेव ने वि० सं० ५९९ में शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें [illegible] ७ लक्ष द्रव्य खर्च किया इस संघ में आचार्य ककसूरि नायक थे।

इस गोत्र में वि० सं० ७०२ में जल्हन का पुत्र देसल बड़ा ही नामी एवं उदार पुरुष हुआ इसने दुकाल में एक करोड़ मन धान गरीबों को दिया, आपकी संतान देसड़ा कहलाई शा० देसल ने [illegible] में मंदिर बना कर पार्श्वनाथ की सोने की मूर्त्ति बना कर वि० सं० ७०२ में आचार्य कक्कसूरि के कर कमलों से प्रतिष्ठा करवाई। आप-का धर्म पर कैसी श्रद्धा और भावना थी।

२१—कनोजिया गोत्रे वि० सं० ८८५ कनकावती नगरी में शा० राजधर ने [illegible] का मन्दिर बना कर आचार्य देवगुप्त सूरि से प्रतिष्ठा करवाई तथा शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला तत्पश्चात् राजधर ने करोड़ों की सम्पति छोड़कर आचार्यश्री के पास दीक्षा ली।

इसी गोत्र में [illegible] का पुत्र [illegible] को सच्चायिका देवी तुष्टमान हुई जिससे [illegible] बाद उसने करोड़ों रुपया शुभकार्य्य में व्यय किया [illegible] संघ निकाला, [illegible] प्रभावना की और २१ नये मंदिर बना कर प्रतिष्ठा करवाई, [illegible] वंश में [illegible] हुआ, [illegible] महावीर देव का [illegible] को अपार दान दिया इसका समय वि० की [illegible] का था।

२३—मोरख गोत्र वि० सं० ६५८ में शा० रत्नो जोगीदासादि बड़े ही उदार दानेश्वरी हुये । दुकाल में गरीबों और पशुओं को अन्न घास देकर नाम कमाया । आपकी वंश परम्परा में एक नाथाशाह नामका पुरुष पुष्कर में रहता था । उस पर गुरु महाराज की पूर्ण कृपा थी या पूर्वभव के पुन्य से उसके घर में लक्ष्मी अखूट हो गई थी । वि० सं० ७२२ में एक दुकाल पड़ा था । वह महाभयंकर जनसंहारक था उसमें शा० नाथा ने विणजारों द्वारा जहां जिस भाव में मिला धान और घास मंगवा कर दुकाल को सुकाल बना दिया इसकी कीर्ति के कई वंशावलियों में कवित्त भी मिलते हैं जैसे कि

कांते आया रे दुकाल तू नाथा के दरबार में । मिलेगा न मान तोकू जा आ देश पार में ॥
कुत कोरा दोरा लगत हु न पिच्छोरा तौर में । अनाथ सनाथ भयो नाथो उगत ही भौर में ॥

२४—वि० सं० १०१९ में आचार्य सिद्धसूरि ने राष्ट्रकूट वंशीय राव सुखा को प्रतिबोध कर जैन श्रावक बनाया । जिसकी छट्ठी पुस्तक में गोसल धनराज नाम के दो नामी पुरुष हुए ।

सुखो सुप्रसिद्ध नयर मोखीणो अवचल । केसीपुर पोकरणी साख सुखा सुनिश्चल ॥
तस सुत गोसल कल्पवृक्ष अवचल जग छाजै । खीमडीयोगढ़ कउरसिंह जुडील बल गाजै ॥
पीथड़ सिरवरों प्रगट नर सुकवि गल्ह समुचरे । पुविला सयण खीवस जसो धनराज सहु उदरे ॥

२५—भूरिगोत्र—भटेवरा शाखा के शाह नानग वीरमदेव ने वि० सं ४९७ अछुपत्तानगरी में पार्श्वनाथ का देहरा कराया प्र० उपकेशगच्छीय आचार्य देवगुप्त सूरि ने करवाई ।

२६—पद्मावती नगरीमें प्राग्वट नरसिंह चतुर्भुज ने वि०सं० ३३५ में आचार्य यक्षदेवसूरि के उपदेश से नव लक्ष द्रव्य सात क्षेत्र में व्यय कर बाप बेटे ने आचार्य श्री के पास दीक्षा लीनी ।

२७—वि० सं० ४०९ में चन्द्रावती नगरी में प्राग्वट लालन पाताजी ने भगवान महावीर का मंदिर बना कर आचार्य रत्नप्रभसूरि से प्रतिष्ठा करवाई । इस शुभ कार्य में एक लक्ष रुपये खर्च किये । साधर्मी भाइयों को पहिरामणी दी सात बड़े यज्ञ (जीमणवार) किये ।

२८—वि० सं० २७९ में कोरंटपुर में श्रीमाल सावंतसी खेतसी ने आचार्य देवगुप्तसूरि के उपदेश से सम्मेतशिखरजी आदि तीर्थों का बड़ा भारी संघ निकाला । सब तीर्थों की यात्रा की, तीन बड़े (जीमणवार) किये, साधर्मी भाइयों को पहिरामणी दी । इस शुभ कार्य में आपने नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया ।

२९—पिलाणी ग्राम में श्रीमाल चन्द्रभाण कल्याणजी ने वि० सं० २३५ में आचार्य कक्कसूरि पट्ट महोत्सव करके आपके उपदेश से बीस स्थानक तप का उजमणा किया जिसमें ५२ ग्रामों के संघ को आमंत्रण पूर्वक बुलाया । सात यज्ञ (जीमणवार) किये । इस शुभ कार्य्य में तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया ।

* उपकेशगच्छ में क्रमशः ६ रत्नप्रभसूरि ६ यक्षदेवसूरि २३ कक्कसूरि २२ देवगुप्तसूरि २२ सिद्धसूरि नाम के आचार्य हुए हैं इनके अलावा भिन्नमाल शाखा चन्द्रावतीशाखा, कोरंटकशाखा, खीजूपुरीशाखा वगैरह में भी आचार्यों के यही नाम थे अतः समय निर्णय करने वाले चक्र में न पड़ जाय । इसलिये पहले पट्टावलियों से जाँच कर लेनी चाहिए ।

३०—वि० सं० ३०२ रूणी ग्राम में आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से प्राग्वट वंशीय शा० देदा करमण ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला, यज्ञ करके साधर्मी भाइयों को सोना मोहर और वस्त्रादि की पहिरामणी दी। इस दानवीर ने शुभ कार्यों में तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया।

३१—वि० सं० ४६६ में आचार्य कक्कसूरि के उपदेश से कोटियाला ग्राम में श्रीमालवंशीय सुरजण पुनड़ ने अपनी लाखों रुपयों की मिलकियत सात क्षेत्र में खर्च कर सकुटुम्ब पचास नर नारियों के साथ सूरिजी महाराज के पास दीक्षा ली जिससे जैनधर्म की खूब प्रभावना हुई।

३२—वि० सं० ५९२ में आचार्य कक्कसूरि के उपदेश से हथियाण ग्राम में प्राग्वटवंशीय कल्हण करमण ने भगवान पार्श्वनाथ का मंदिर बना कर सुवर्णमय मूर्ति की प्रतिष्ठा आचार्य कक्कसूरि से करवाई।

३३—वि० सं० ५११ में आचार्य देवगुप्तसूरि के उपदेश से चंद्रावती के मंत्री सारंगदेव ने श्री शत्रुंजयादि तीर्थों का बड़ा भारी संघ निकाला तथा चंद्रावती में भगवान् महावीर का मंदिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा कक्कसूरि ने कराई। मंत्रेश्वर ने न्यायोपार्जन द्रव्य को शुभ काम में लगाया।

३४—वि० सं० २१६ में आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से शिवपुरी के मंत्री धनवीर के पुत्र मक्खण ने ४७ नर नारियों के साथ सूरिजी के पास दीक्षा ली जिसके महोत्सव में मंत्रीश्वर ने सवालक्ष द्रव्य खर्च करके जैनधर्म का उद्योत किया।

इत्यादि यह तो केवल नमूने के तौर पर थोड़े से प्रमाण लिखे हैं पर इस प्रकार के प्रमाणों से वंशावलियां भरी पड़ी हैं और यह ग्रन्थ ही इन भंडारों में पड़ी बातों को प्रसिद्ध करने की गरज से निर्माण किया जा रहा है। अतः यथास्थान उन वीरों के धर्म कार्य प्रकाशित किये जावेंगे।

पाठकों को उपरोक्त कार्य्य पढ़ कर आश्चर्य होगा कि एक एक कार्य में वे धर्मज्ञ लोग लाखों रुपये खर्च कर देते थे तो उनके पास कितना द्रव्य होगा या वे इतना द्रव्य कहां से लाते होंगे ?

ऊपर का मेटर लिखने के पश्चात् पुराणी वंशावलियों के पन्ने उल्टते समय एक ऐसी घटना का भी उल्लेख नजर आया है कि वि० सं० ११३ में उपकेशवंशीय बलाहगोत्र के शाह वीरमदेव ने एक महेश्वरी रामपाल की पुत्री के साथ शादी करली थी उस समय उपकेशवंशियों का बेटी व्यवहार राजपूतों के साथ होता था तथापि कई लोगोंने वीरमदेवके लिये महेश्वरीकी कन्या के साथ लग्न कर लेने का विरोध किया जिससे एक मतभेद खड़ा हो गया पर उस समय समाज के शुभचिंतक जैनाचार्य आपसी मतभेद नहीं पड़ने देने के लिये खड़े कदम रहते थे और उन आचार्यों का समाज पर बड़ा भारी अंकुश भी था अतः आचार्य रत्न प्रभसूरि को खबर होते ही उन्होंने महेश्वरी कन्या को विधि विधान से वासक्षेप देकर जैन बनाली जैसे अन्य राजपूतादि को बनाते थे। बस, वह मतभेद वहां ही शांत हो गया।

इस घटना से इतना तो सहज ही में जाना जा सकता है कि विक्रम की दूसरी शताब्दी में ओसवंश एवं उपकेशवंश अच्छी आबादी पर था। अतः इसका जन्म चार पांच शताब्दी पूर्व हुआ हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

इन वंशावलियों में केवल श्रावकों के कराए हुए मन्दिरों की प्रतिष्ठा एवं तीर्थयात्रा निमित्त निकाले सङ्घादि का ही वर्णन नहीं है पर उस समयवर्ती राजकीय प्रकरण का भी बहुत मसाला मिलता है। सूर्य्य-वंशी महाराजा उत्पलदेव ने जैनधर्म स्वीकार करने के बाद कितने पुश्त तक उपकेशपुर में राज किया तथा आपकी संतान में किन-किन वीरों ने कौन से नये नगर एवं ग्राम बसा कर वहां पर कितने २ समय तक राज किया तथा समीपवर्ती माण्डव्यपुर में कौन २ राजा हुए तथा चन्द्रसेन की सन्तान ने चन्द्रावती नगरी में कब तक राज किया।

किस जैनाचार्य्यों ने किस किस समय जैनेतर क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर जैन बनाये और किन किन कारणों से उनकी जातियों के नाम संस्करण हुये इन सब बातों का पता वँशावलियों से मिल सकता है। अतः जैनधर्म और जैन जातियों के हाल जानने के लिये वँशावलियें बड़े ही काम की वस्तुयें हैं। उन वँशावलियों आदि साधनों को न जानने से ही आज हमारी यह दशा हो रही है कि न तो हमारा कहीं स्थान मान है और न हम अपने पूर्वजों के किये हुए सुन्दर कार्यों को जनता के सामने रख ही सकते हैं। यही कारण है कि हमारी नसों में अपने पूर्वजों के गौरव का खून बहना बंद होगया है फिर भी हम समाज का द्रव्य व्यय उन्नति २ चिल्ला रहे हैं पर इस कोरे चिल्लाने की क्या कीमत है ?

हमारी वंशावलियां आज व्यवस्थित रूप में नहीं हैं। जो जिनके पास है उन्होंने उनको अपनी : का मुख्य साधन समझ रक्खा है। यदि कोई जिज्ञासु देखना चाहे तो वे इतना संकुचित भाव रखते कि एक अक्षर दिखाने को अपनी आजीविका का बन्द होना समझते हैं। यही कारण है कि हमारा ऐतिहासिक ज्ञान प्रायः लुप्त हुआ और होता जारहा है और इसकी ओर किसी का लक्ष्य तक भी नहीं पहुँचता है इससे ज्यादा क्या अफसोस हो सकता है !

प्रस्तुत वंशावलियें जो मुझे मिली हैं प्राचीनता की दृष्टि से इतनी प्राचीन तो नहीं हैं कि जिस समय की घटनायें इनमें उल्लिखित हैं फिर भी यह बिल्कुल निराधार भी नहीं हैं। वे भी किसी न किसी आधार एवं वंशपरम्परा से चले आये ज्ञान के आधार पर ही लिखी होंगी।

एक जूना पन्ना में निम्नलिखित मन्दिरों की प्रतिष्ठा के लेख हैं।

१—वि० सं० २०८ माघ शुद्ध ७ बाप्पनाग गौत्रे शा० महीपाल भा० मायादे पु० अरजूनकेन श्रीमहावीर बिम्ब करापितं प्र० रत्नप्रभ सूरिभिः।

२—वि० सं० २४३ फाल्गुन शुद्ध ११ सुचंति गौत्रे शा० आना मानाकेन श्री पार्श्वनाथ बिंब करापितं प्र० कक्क सूरिभिः

३—वि० सं० २९७ जेष्ठ कृष्णा ५ श्रेष्टि गौत्रीय मंत्रीश्वर हरपाल जसदेवकेन श्री आदिनाथ प्रतिमा करापितं प्र० आ० सिद्धसूरिभिः।

४—वि० सं० ३४२ मार्गशीर्ष शुद्ध १३ श्रेष्टिगोत्रीय शा० ठाकुर धर्मसीकेन चौवीसी पट्टक करापिता प्र० कक्कसूरिभिः।

५—वि० सं० ६८३ वैशाख शु० ३ गुरौ श्रेष्टि भोपालकेन श्री पार्श्वबिम्ब करापितं प्र० श्री उपकेश गच्छे कक्कसूरिभिः।

६—वि० सं० ७१२ माघ शुद्ध १३ बाप्पनाग गौत्रे सा० देपाल भा० देवलदे पु० धना [illegible] श्री शान्तिनाथ बिम्ब करापितं प्र० उपकेशगच्छे कक्कसूरिभिः।

७—वि० सं० ७४३ फाल्गुन शु० ७ भौम आदित्यनागगौत्रे चोरडियाशाखायां शा० [illegible] भा० मांगी पु० जसो भा० जसादे पु० नाथ रूपा जोधाकेन श्रीमहावीर बिम्ब करापितं प्र० उपकेश गच्छे देवगुप्तसूरिभिः

८—सं० ८०३ मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी सुचिन्ती गौत्रे सा० भीमा करमादेव [illegible] मातु [illegible] श्रेयार्थं श्रीपार्श्वनाथ बिम्ब करापितं प्रतिष्टा श्री उपकेशगच्छे कक्कसूरिभिः।

९—सं० ८४२ फाल्गुन शुक्ल ३ भाद्रगौत्रे सा० लल्लु भार्या ललतादे पुत्र [illegible] श्री पार्श्वबिम्ब करापितं प्रतिष्टा श्री उपकेश गच्छे देवगुप्तसूरिभिः।

१०—सं० ८७२ ज्येष्ट कृष्णा ७ उकेशवंशे श्रेष्टिगौत्रे सा० जैता भा० जैतलदे पु० [illegible] श्री आदिनाथ बिम्ब करापितं प्रतिष्टा श्री उपकेश गच्छे देवगुप्त सूरिभिः।

११—सं० ९११ ज्येष्ट कृष्णा ११ उकेशवंशे चीचटगौत्रे सा रघुवीर भा० [illegible] पु० [illegible] श्री पार्श्वबिम्ब करापितं प्रतिष्टा श्री उपकेशगच्छे सिद्धसूरिभिः।

१२—सं० ९६६ माह शुक्ल १५ उपकेशपुर वास्तव्य उकेशवंशे [illegible] भरत पूरण [illegible] आदि [illegible] श्री वासपूज्य बिम्ब करापितं प्रतिष्टा श्री उपकेशगच्छे [illegible]

१३—सं० ९८७ माघ शुद्ध ५ उपकेशगच्छे सचंति गौत्रे सा० [illegible] श्री [illegible] बिम्ब करापितं प्र० श्रीउपकेशगच्छे गुप्तसूरिभिः।

१४—सं० ९९९ वैशाख शुक्ला १० श्री उकेशवंशे भाद्रगौत्रे शा० सुंदर [illegible] बिम्ब करापितं प्र० उप० श्री देवगुप्तसूरिभिः।

१५—सं० ५१६ [illegible] उकेशवंशे चोरडिया गौत्रे [illegible] [illegible] श्री महावीर देव बिम्ब करापितं प्र० [illegible]

महाजनसंघ उपकेशवँश और ओसवाल जाति के उत्पति विषयक ऐतिहासिक प्रमाण

१—विक्रमकी बारहवीं शताब्दी से आज पर्यन्तके प्रमाण देने की आवश्यकता ही नहीं है। कारण, इस समय के तो सैंकड़ों प्रमाण उपलब्ध ही हैं। खास तौर तो इस समय पूर्व के प्रमाण उपस्थित करने की :व.: है जिसके लिए ही यह मेरा प्रयत्न है।

पुनीत तीर्थश्रीशत्रुंजय के पन्द्रहवें उद्धारक स्वनामधन्य श्रेष्टिवर्य समरसिंह हुए हैं आपके पूर्वज श्रेष्टि वेसट का वर्णन 'नाभिनन्दन जिनोद्धार' नामक ग्रन्थ में क्रिया है। यह एक ऐतिहासिक ग्रंथ है जिसके पढ़ने से पाठक स्वयं जान सकेंगे कि विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के आस-पास में उपकेशपुर उपकेशवंश एवं उपकेशगच्छ किस परिस्थिति में था। जैसा कि—

अस्ति स्वस्तिचन्व (कच) द् भूमेर्मरुदेशस्य भूषणम्। निसर्गसर्गसुभगमुपकेशपुरं वरम् ॥
सागा यत्र सदारामा अदारा मुनिसत्तमाः। विद्यन्ते न पुनः कोऽपि तादृक् पौरेषु दृश्यते ॥
यत्र रामागतिं हंसा रामा वीक्ष्य च तद्गतिम्। विनोपदेशमन्योन्यं ताँ कुर्वन्ति सुशिक्षिताम् ॥
सरसीषु सरोजानि विकचानि सदाऽभवन्। यत्र दीप्रमणिज्योतिर्ध्वस्तरात्रितमस्त्वतः ॥
निशासु गतभर्तृणाँ गृहजालेषु सुभ्रुवाम्। प्राप्ताश्चन्द्रकराः कामक्षिप्ता रूप्या शरा इव ॥
यत्रास्ते वीरनिर्वाणात्सप्तत्या वत्सरैर्गतैः। श्रीमद्रत्नप्रभाचार्यैः स्थापितं वीरमन्दिरम् ॥
तदादि निश्चलासीनो यत्राख्याति जिनेश्वरः। श्री रत्नप्रभसूरीणाँ प्रतिष्ठाऽतिशयं जने ॥
यत्र कृष्णागरूद्भूतधूमश्यामलितात्विषा। सदैव ध्रियते तस्मान्नभसा श्यामलं वपु ॥
... मेघगर्जित विभ्रमात्। मयूरा कुर्वते नृत्यं यत्र प्रेक्षणकक्षणे ॥
... पुरस्यान्तर्यत्र स्वर्णमयो रथः। पौराणाँ पाप मुच्छेत्तुं मिव भ्रमति सर्वतः ॥
... विदग्धा नाम वापी वा (चा) पीनविभ्रमा। निम्नाऽधोऽधोगामिनीभिर्याऽसौ सोपानपंक्तिभिः ॥
... यैः कौतुकी लोकः, कृत कुङ्कुम हस्तकैः। सोपानैर्यात्यधोभागं, न निर्याति स तैः पुनः ॥
तत्पुरःप्रभावो वंश, ऊकेशाभिध उन्नतः। सुपर्वा सरलः, किन्तु, नान्तः शून्योऽस्ति यः क्वचित् ॥
तत्राऽष्टादश गोत्राणि, पात्राणीव समन्ततः। विभान्ति तेषु विख्यातं, श्रेष्ठिगोत्रं पृथुस्थिति ॥
तत्र गोत्रेऽभवद् भूरि भाग्यसम्पन्न वैभवः। श्रेष्ठी वेसट इत्याख्याविख्यातः क्षितिमंडले ॥
य इत धन संतानै, निचितेष्वर्थिवेश्मसु। तत्रामा (तत्यागा) दिव दारिद्र्यं, त्वरितं दूरतोऽव्रजत् ॥
कीर्त्या यस्य प्रसर्पन्त्या, शुभ्रया भुवने विधुम्। विनाऽपि कौमुदोलासः समाजयत शाश्वतः ॥
यस्माः सोमोऽपि सोमोऽपि, न साम्यं समुपेयिवान्। ऐश्वर्येणाऽनुचरेण, सौम्यत्वेन नवेन च ॥
ऋद्ध्या समृद्धया येन, धनदेवेन (नेव)व(श्री) लितम्। लेभे ननु कुबेरत्वं, न पिशाचकिताऽपि च ॥
कोऽप्याऽपूर्वस्तगद्गुणानाँ स्वभावः प्रभवत्यपम्। मनोऽन्य गुण सम्बद्धं, मोचयन्त्यपि निक्षिपाः ॥

तस्य शस्यतमस्यापि कुतश्चिदपि कारणात् । विरोधः सहजाज्जज्ञे नागराग्रेसरैः सह ॥
ततश्च वेसटः श्रेष्ठी यत्र वैरं परस्परम् । तत्र देशे न वास्तव्यमिति नीतिमचिन्तयत् ॥
एवं विचार्य सोऽथार्ममतिर्गन्तुमना मनाक् । बभूव भूमिभाजाँ किं क्वचिदस्ति स्थिरा मतिः ॥
ततः सर्वस्वमाघ्राय दायाद इव गोत्रतः । अभिमानेन सा श्रेष्ठी बभूव नगरात् पृथक् ॥
सोच्छा (त्सा) हं रथमारूढः शुभायतिविसूचकैः । शकुनैः प्रेरितोऽचालीत् सुवाग्भिः स्वजनैरिव ॥
अविलम्बैः प्रयाणैः स गच्छन्नच्छाशयः पथि । किराटकूपनगरं प्राप पापविवर्जितः ॥
सुरसद्मपताकाभिश्चलन्तीभिश्चतुर्दिशम् । पथिकानाह्वयतीव यत्पुरं सर्वदिग्गतान् ॥
यत्र वापीषु कूजन्तो राजहंसादिपक्षिणः । कथयन्तीव पान्थानाँ वारिणो रमणीयताम् ॥
दह्यमानागरुद्धूतधूमोर्मिकलितेऽम्बरे । वर्षारात्र इवाभाति यत्र नित्यं घनोन्नतिः ॥
नानादेशागतोपान्तविश्रान्तानन्तसार्थिकम् । सार्थं तन्नगरं वीक्ष्य श्रेष्ठी स्थितिमतिं व्यधात् ॥
तत्र वित्रासिताशेषशात्रवो देशनायकः । परमार कुलोत्पन्नो जैत्रसिंहाभिधः सुधीः ॥

नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध १ श्लोक १७ से ४८

मरुभूमि का भूषणरूप उपकेशपुर नाम का एक श्रेष्ठ नगर है जो पृथ्वी पर [illegible] सुन्दर और षट् ऋतु के फल फूलों सहित बाग बगीचे से शोभायमान है। वहाँ रहनेवाले मुनिजन कनक कामिनी के सम्बन्ध से बिलकुल मुक्त हैं परन्तु नागरिक लोगों में ऐसा कोई दृष्टिगोचर नहीं होता है कि जिसके पास पुष्कल द्रव्य और विनीत सुन्दर रमणी न हों। उस नगर में हंसों की चाल [illegible] और रमणियों की चाल हंस बिना ही उपदेश के शिक्षा पा रहे हैं। मकानों पर लगी हुई मणियों की [illegible] से अन्धकार का नाश होता है और तालावों के अन्दर कमल सदा प्रफुल्लित रहते हैं। रात्रि के समय महलों की [illegible] के अन्दर चन्द्र की किरणों का प्रकाश विरहणि औरतों को कामदेव के बाण की भाँति [illegible] है। व्यापार का तो एक ऐसा केन्द्र है कि पिता पुत्र अलग २ व्यापार करनेवाले [illegible] नहीं सकते। उस नगर में वीर निर्वाण से ७०वें वर्ष आचार्य रत्नप्रभसूरि ने भगवान् महावीर के मन्दिर की प्रतिष्ठा की हुई मूर्ति आज पर्यंत विद्यमान है। उस मन्दिर में [illegible] का दीखता है। जब मन्दिर में पूजा भक्ति नाटक होता है जिसकी ध्वनि से [illegible] ने लग जाते हैं। उस नगर के लोगों के पाप को उच्छेद करनेवाला एक [illegible] महावीर की रथयात्रा के निमित्त सालभर में एक बार [illegible] है। [illegible] विदग्धा नामकी ऐसी भूलभुलैया वापी है कि जिस सोपान से [illegible] है फिर कोशिश करने पर भी उस सोपान के द्वारा वापिस नहीं [illegible] है। [illegible] धन धान्य सम्पन्न एवं [illegible] में संगठित हुआ उपकेश [illegible] शोभायमान है [illegible] उपकेशवंश [illegible] शोभायमान है [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible]

उज्ज्वल कीर्ति का प्रकाश विश्व में चारों ओर इतना फैल गया था कि चन्द्र के उदय न होने पर भी रात्रि विकासी कमल सदा के लिए विकसित रहने लगे। स्वयं चन्द्रमा अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्य और सौम्यता से भी श्रेष्टि की वरावरी नहीं कर सकता था लक्ष्मी में तो आप की वरावरी कुवेर भी नहीं कर सकता था क्योंकि कुवेर में पिशाचपना था वह श्रेष्टि में नहीं था। अतः श्रेष्टि के सर्वगुण अलौकिक थे जिस किसी ने एक वार आपके गुणों का दर्शन मात्र कर लिया उसका हृदय दूसरों के अनुराग से सहज ही मुक्त हो जाता था।

ऐसे अलौकिक पुरुष की कीर्त्ति एक स्थान स्थिर होजाय यह कुदरत को मंजूर नहीं था, अतः उस नगर के अग्रेसरों के साथ श्रेष्टि का मतभेद हो गया। इस हालत में श्रेष्टि ने विचार किया कि जहाँ रहने पर अपने या दूसरों के कर्मबंध का कारण हो वहाँ रहने में क्या फायदा है। अतः श्रेष्टि वेसट अपना धनमाल स्टोक गाड़ों में डाल कर तथा आप सकुटम्ब एक रथ में बैठ कर उपकेशपुर से प्रस्थान कर गया। परन्तु भाग्यशाली जहाँ जाता है वहाँ सब सामग्री अनुकूल मिल ही जाती है। चलते समय सेठजी को अच्छे अच्छे शकुन और कई प्रकार के शुभनिमित स्वतः मिल आये क्रमशः चलते हुये किराटकूप नगर के उद्यान तक पहुँच गये। ग्रन्थकार ने किराटकूप नगर का थोड़ा सा वर्णन इस प्रकार किया है।

कीराटकूपनगर बड़ा ही सुंदर था और चारों ओर मंदिरों पर ध्वजायें इस कदर फहरा रहीथी कि मानो मुसाफिरों के मनको मन्दिरों की ओर आकर्षित कर रही हैं। स्वच्छजल से भरी हुई वापियों के अन्दर राजहंसादिक पक्षियों के मधुर शब्द मानों फिरते घूमते मुसाफिरों को वापियों की सुन्दरता और जल की स्वच्छता ही बतला रहे थे जिन मन्दिरों में सुगन्धि धूप इतना हो रहा था कि जिस के धुयें से आकाश मानों वर्षा ऋतु के बादलों की तरह श्यामवर्ण का मालुम होता था। अन्य २ देशों के अनेक सार्थवाह— व्यापारी एवं बनजारे नगर के समीप विश्रान्ति लेते थे इत्यादि नगर की आवादी सुन्दरता और आरोग्य-वर्द्धक जलवायु देखकर श्रेष्टि वेसट का दिल ललचा गया कि मैं इसी नगर में निवास करदूं।

उस नगर में पँवार वंश विभूषण महाबुद्धिवान प्रजापालक 'जैत्रसिंह' नाम का राजा राज करता था जिसने अपने पराक्रम से तमाम शत्रुओं को अपने अधिकार में कर लिया यही कारण था कि उसकी धवल कीर्त्ति चारों ओर फैली हुई थी।

श्रेष्टिवर्य वेसट बहुमूल्य रत्नों की भेंट लेकर राजा के पास जाते हैं और राजा श्रेष्टि को यहाँ आने का कारण पूछता है जब श्रेष्टी ने अपना हाल सुनाया तो राजा खुश होकर सेठ को अपने नगर में रहने की अति आग्रह से आमंत्रण करता है। कहा भी है कि 'भाग्यशाली जहाँ जाता है वहाँ सब ऋद्धियें सिद्धियें तैयार रहती हैं'। राजा और श्रेष्टि का वार्त्तालाप हो रहा था इतने में दरवान आकर अर्ज कर रहा है कि दरवाजे पर महाजनसंघ आया है और आप से मिलना चाहता है। राजा ने आज्ञा दे दी और महाजन-संघ राजा के पास आकर प्रार्थना की कि हमारे मन्दिरों में अठाई महोत्सव शुरु हुआ है। जिसका आज वरघोड़ा है अतः जीवदया के लिये उद्घोषना होजानी चाहिये कि राजभर में कोई जीव न मारने पावे। इस पर राजा ने कहा कि यह तुम्हारा क्या धर्म है कि हरएक काम में तुम लोग इस प्रकार की प्रार्थना किया करते हो? इस पर पास में बैठा हुआ श्रेष्टिवर्य वेसट ने राजा को इस प्रकार का उपदेश दिया कि वह दया—अहिंसा के सच्चे स्वरूप को समझ कर हिंसा त्याग कर अहिंसा भगवती का परम उपासक बन गया और श्रेष्टि ने किराटकूप को अपना निवास स्थान बना लिया। श्रेष्टि वेसट का वंश-वृक्ष ग्रन्थकार ने इस प्रकार लिखा है।

इसमें शाह गोशल के पुत्र देसल का ही यहाँ वर्णन किया जाता है।

उपकेशवंशीय
|
वेसट
|
वरदेव
|
जिनदेव
|
नागेन्द्र
|
सलक्षण
|
(पालनपुर गया)
|
आजड़
|
गोसल
|
देसल
|
(पाटण गया)
|
समरसिंह
|
सालाशाह

श्रेष्टिवर्य्य शाहदेसल बड़ा ही भाग्यशाली धर्मात्मा एवं उदार था आप अपने जीवन में १४ बार तीर्थों की यात्रा निमित्त संघ निकाले जिस में आपने १४ करोड़ रुपये खर्च किये तथा वि० सं० १३६९ में अलाउद्दीन खिलजी ने धर्मान्धता के कारण पुनीत तीर्थ श्री शत्रुंजय का उच्छेद कर दिया था जिसका उद्धार कराना उस समय एक टेढ़ी खीर समझी जाती थी क्यों कि उस समय मुसलमानों के अत्याचार ने भारत में त्राहि २ मचा दी थी, परन्तु उपकेशगच्छाधिपति गुरुचक्रवर्ती आचार्य सिद्धसूरि के उपदेश से श्रेष्टिवर्य्य देसल एवं आपके पुत्ररत्न तिलंग देश के स्वामी स्वनामधन्य समरसिंह ने दो वर्षों के अन्दर अन्दर शत्रुंजय तीर्थ को पुनः स्वर्ग सदृश्य बना कर वि० सं० १३७१ माघशुक्ल १४ सोमवार पुष्य नक्षत्र के शुभमुहूर्त में उपकेशगच्छाधिपति गुरुचक्रवर्ति आचार्य सिद्धसूरि के कर कमलों से प्रतिष्टा कराई इस विषय के लिये उसी समय कई ग्रन्थ निर्माण हुये थे जैसे वि० सं० १३७१ माघशुक्ल १४ को प्रतिष्ठा हुई संवत १३७१ चैतवदी ७ के दिन निर्वृतिगच्छ के आचार्य अम्बदेवसूरि ने "[illegible]" रास की रचना की तथा वि० सं० १३९३ में आचार्य कक्कसूरि ने नाभिनंदन जिनोद्धार नामक ग्रंथ निर्माण किया जिन्होंने अपने हाथों से इस प्रतिष्ठा का करने योग्य सब कार्य्य सम्पादन किया था। अतः दोनों ग्रंथों को ऐतिहासिक ग्रंथ कहा जा सकता है।

नाभिनंदन जिनोद्धार ग्रंथ शत्रुंजय तीर्थ का पंद्रहवां उद्धार को ही लक्ष्य में रख कर लिखा गया है और समरसिंह के पूर्वजों का [illegible] परिचय के लिये ग्रंथकार ने श्रेष्टिवर्य वेसट से ही परिचय करवाया है परंतु वेसट के पूर्वज उपकेशपुर में कब से बसते होंगे इन के लिये यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि वि० पू० ४०० वर्ष में सूर्यवंशी महाराजा उपलदेव को आचार्य रत्नप्रभसूरि ने जैनधर्म में दिक्षित किया [illegible] में वेसट के पूर्वज उपकेशपुर में रहते आये होंगे। जब हम वंशावलियों की ओर देखते हैं तो [illegible] शताब्दी से श्रेष्टिवर्य रघुवीर हुआ उसकी परम्परा में ही वेसट हुआ है [illegible] न लिखेंगे। यहां तो केवल ऐतिहासिक प्रमाण को लक्ष्य में रख कर [illegible] श्रेष्टिवर्य वेसट के समय उपकेशपुर और [illegible] नगर उपकेशवंशियों से [illegible] था और इन विशाल संख्यक लोगों के [illegible] होने के कारण यह [illegible] है

---

*श्रीदेसलः सुकृत [illegible] [illegible]
शत्रुंजय [illegible] [illegible]
†श्रीविक्रमादृष्टपादि [illegible] १३७१ [illegible]
[illegible]

२—वि० सं० १००५ में उपकेशगच्छीय पं० जम्बुनाग ने 'मुनिपति चरित्र' नाम का ग्रन्थ लिखा है और यह ग्रन्थ जैसलमेर के भण्डार में विद्यमान है।

३—वि० सं० १०११ का एक शिलालेख ओसियों के मन्दिर की एक मूर्ति पर है जिसको श्रीमान् पूर्णचन्द्रजी नाहर ने प्राचीन लेख संग्रह भाग १ पृष्ठ ३१ पर मुद्रित करवाया है।

४—वि० सं० १०१३ का शिलालेख भी ओसियां के मन्दिर में लगा हुआ है इसको भी श्रीमान् पूर्णचन्दजी नाहर ने प्राचीन लेख संग्रह भाग १ पृष्ठ १९२ पर छपाया है।

५—वि० सं० १०२५ उपकेशगच्छीय पं० जम्बुनाग ने 'जिनशतक' नामक काव्य की रचना की वह सप्तम काव्य गुच्छक नामक पुस्तक के पृष्ठ ५२ पर मुद्रित हो चुका है।

६—वि० सं० १०७३ आचार्य देवगुप्तसूरि ने 'नवपद प्रकरण' नामक ग्रन्थ निर्माण किया था वह सेठ देवचन्द्र लालभाई सूरत वालों की ओर से मुद्रित हो चुका है तथा नवतत्वगाथा नामक ग्रन्थ भी इसी आचार्य ने लिखा है।

७—वि० सं० ९१५ में उपकेशगच्छवाचनाचार्य कृष्णर्षि के शिष्य जयसिंह ने धर्मोपदेशलघुवृत्ति की रचना की थी। यह पाटण के भण्डार में विद्यमान है जिसकी नोंध जैन ग्रन्थावली पृष्ठ १८२ पर की गई है।

८—विक्रम की नौवीं शताब्दी में वायटगच्छीय आचार्य बप्पभट्टसूरि एक महाप्रभाविक आचार्य हुए जो जैनशासन में विशेष विख्यात हैं। उन्होंने ग्वालियर के राजा आम को प्रतिबोध देकर जैन बनाया जिसने ग्वालियर में एक विशाल मन्दिर बना कर उसमें सुवर्णमय मूर्ति स्थापन करवाई थी। राजा आम के एक राणी वैश्यवंश की थी उनकी सन्तान जैनधर्म पालन करने से ओसवंश में शामिल हुई तथा उनमें से किसी ने राजा के कोठार का काम करने से उनकी जाति राजकोठारी कहलाई, उसी वंश में स्वनामधन्य कर्माशाह हुआ कि जिन्होंने विक्रमकी सोलहवीं शताब्दी में पुनीत तीर्थ श्रीशत्रुंजय का सोलहवां उद्धार करवाया जिसका शिलालेख आज भी शत्रुंजय तीर्थ पर विद्यमान है उसमें लिखा है कि:—

एतश्च गोपाह्वगिरौ गरिष्टः श्रीबप्पभट्टी प्रतिबोधितश्च।
श्री आमराजोऽजनितस्यपत्नी काचित् बभूव व्ययहारि पुत्री ॥
तत्कुक्षि जाताः किल राज कोष्टागाराह्व गोत्रे सुकृतैक पात्रे।
श्री ओसवंशे विशदे विशाले तस्यान्वयेऽमी पुरुषाः प्रसिद्धाः ॥

"प्राचीन लेख संग्रह द्वितीय भाग पृष्ठ २"

इस लेख से इतना तो स्पष्ट पाया जाता है कि वि० सं० ८०० पूर्व ओसवंशीय लोग भारत के चारों ओर फैल गये थे इस प्रकार एक प्रान्त एवं एक नगर में उत्पन्न हुआ महाजनसंघ इस प्रकार फैल जाने में कितनी शताब्दियों का समय चाहिये पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं।

९—मुनि श्री रत्नविजयजी महाराज की शोध खोज से ओसियां के एक भग्न मन्दिर के खण्डहरों में एक टूटी हुई चन्द्रप्रभ की मूर्ति के नीचे खण्डित पत्थर के टुकड़े पर शिलालेख मिला था जिसमें सं० ६०२ ××× आदित्यनाग गोत्रे × × लिखा हुआ था शायद आदित्यनाग गोत्र वालों ने उस मन्दिर एवं मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई हो। इससे पाया जाता है कि सं० ६०२ पूर्व उपकेशपुर उपकेशवंशियों से फला-फूला एवं अच्छा आबाद था।

१०—विक्रम की छट्ठी शताब्दी का जिक्र है कि श्वेत हूण तोरमाण ने पंजाब की तरफ से आकर मारवाड़ को विजय कर भिन्नमाल में अपनी राजधानी कायम की। वहां जैनाचार्य्य हरिगुप्तसूरि आये थे उन्होंने तोरमाण को उपदेश देकर जैनधर्म का अनुरागी बनाया और उसने भिन्नमाल में भगवान् ऋषभदेव का मंदिर भी बनाया पर तोरमाण के बाद उसका पुत्र मेहिरकुल हुआ। जब से मेहिरकुल ने राजसत्ता हाथ में ली तब से ही जैनों के दिन बदल गये। मेहिरकुल ने जैनों पर इतना सख्त जुल्म गुजारा कि कई जैनों को अपने जान माल बचाने की गरज से जननी जन्मभूमि का त्याग कर सौराष्ट्र, कोंकन और लाट प्रदेश (गुजरात) की ओर जाना पड़ा था। आज उक्त प्रदेशों में ओसवाल, पोरवाल और श्रीमालादि जातियां निवास करती दृष्टिगोचर हो रहीं हैं वे सब मेहिरकुल के अत्याचारों से दुखित होकर मारवाड़ से ही गई हुई हैं। अतः विक्रम की छट्ठी शताब्दी में ओसवाल, पोरवाल और श्रीमाल जातियों का मारवाड़ में विशाल संख्या में होना साबित होता है। अतः इससे उपकेशवंश की प्राचीनता साबित होती है।

११—वि० सं० ८०२ में आचार्य शीलगुणसूरि की सहायता से वनराज चावड़ा ने [illegible] नाम का नया पाटन शहर बसाया था। उस समय भी चंद्रावती भिन्नमालादि मारवाड़ के नगर [illegible] जैन जातियों से सुशोभित थे और कई मुत्सद्दी एवम व्यापारियों को आमन्त्रण-पूर्वक [illegible] मारवाड़ से पाटण ले गये थे और यह बात है भी ठीक कि पहिले जमाने में नगर की आबादी का मुख्य कारण महाजन ही समझा जाता था। जहां महाजन होते हैं व्यापार खुल उठता है और व्यापार की उन्नति का कारण भी महाजन ही हैं तथा राजतंत्र चलाने में भी महाजन मुत्सद्दियों की कार्यकुशलता से राज का प्रबन्ध [illegible] और जनता को आराम रहता था। अतः पहिले जमाने में जहां तहां महाजनों की [illegible] रहा करती थी।

इन प्रमाणों से विक्रम की पांचवीं छट्ठी शताब्दी में ओसवंश के लोग भारत के अनेको [illegible] में फैले हुए थे तो यह जाति कितनी प्राचीन समझी जा सकती है।

१२—वल्लभी का भंग जो एक बार ही नहीं किन्तु कई बार हुआ है, पर [illegible] का भंग विक्रम की चौथी शताब्दी में हुआ था और उसमें कांगसी का कारण ही [illegible] जाती है जिसके लिए प्राचीन ग्रन्थों में लिखा हुआ मिलता है कि—

चंपावती नगरी में काकु और पातक नाम के दो [illegible] साधारण [illegible] वहां से श्रीशत्रुंजय तीर्थ का एक बड़ा भारी संघ निकला तो वे काकु और पातक भी उस संघ [illegible] सिद्धगिरी गए थे। पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण किसी वल्लभीनगरी के [illegible] की धर्म-निष्ठा देख कर अपने यहां रख लिए और उनको सहायता देकर व्यापार [illegible] बड़े भारी पुण्योदय हुए कि उस व्यापार में पुष्कल द्रव्य पैदा कर लिया। [illegible] हुए जिनका नाम था रांका और बांका। रांका के एक पुत्री [illegible] देश के व्यापारियों से अपनी पुत्री कन्या के लिए एक रत्न [illegible] वह कांगसी ऐसी थी कि वल्लभीनगरी में उसके बराबर दूसरी कोई नहीं थी [illegible] की कन्या [illegible] में गई थी, [illegible] को राजकन्या ने कहा कि [illegible] वह कांगसी मुझे दे दे [illegible] कन्या ने बालभाव के कारण कांगसी देने से इनकार कर दिया और [illegible]

गई । राजकन्या ने अपने स्थान जाकर माता से कहा कि चम्पा के पास कांगसी है वह मुझे दिला दो नहीं तो मैं अन्न जल नहीं लूंगी । रानी ने राजा को कहा और राजा ने रांकाशाह को बुला कर कांगसी मांगी । रांकाशाह ने चम्पा को कहा और बहुत समझाया पर उसने भी हट पकड़ लिया कि मुझे मरना मंजूर है पर कांगसी नहीं दूँगी । अतः रांका ने लाचार होकर राजा को कहा आप आज्ञा दें तो मैं दूसरी कांगसी मँगा कर या नई बना कर सेवा में हाजिर कर सकता हूँ, पर वह कांगसी तो चम्पा देने को इन्कार है । राजा ने कहा कांगसी की कोई बात नहीं है पर मेरी कन्या ने हठ पकड़ लिया है अतः कांगसी तुमको देनी पड़ेगी । रांकाशाह ने कहा कि यही हाल मेरा है । चम्पा ने हट पकड़ लिया है कि मैं कांगसी नहीं दूंगी । आप ही बतलाइये इसका अब मैं क्या करूं ? आखिर में राजा ने जबरदस्ती से अपनी सत्ता द्वारा रांकाशाह एवं चम्पा से कांगसी छीन ली । इस पर रांकाशाह को बहुत गुस्सा आया और उसने काबुल वालों को बहुत द्रव्य देकर उसकी सेना द्वारा वल्लभीनगरी पर धावा करवा के वल्लभी का भंग करवा दिया । बस उस रांकाशाह की सन्तान रांका कहलाई । इससे यह प्रमाणित होता है कि विक्रम की चौथी शताब्दी पूर्व उपकेशवंशी भारत के कई विभागों में फैले हुए थे ।

१३–१४४४ ग्रन्थ के कर्त्ता प्रसिद्ध आचार्य हरिभद्रसूरि का समय जैन पट्टावल्यादि ग्रन्थों के आधार पर वि० सं० ५८५ का है पर हरिभद्रसूरि नाम के बहुत आचार्य हो गये हैं, अतः आजकल की शोध से उन १४४४ ग्रन्थों के कर्ता हरिभद्रसूरि का समय विक्रम की आठवीं शताब्दी का कहा जाता है । आचार्य हरिभद्र के समकालीन आचार्य देवगुप्तसूरि हुये हैं । आचार्य हरिभद्रसूरि आदि आठ आचार्यों ने महानिशीथ सूत्र का उद्धार किया जिसमें देवगुप्तसूरि भी शामिल थे, यह बात महानिशीथ सूत्र के दूसरे अध्ययन के अन्त में लिखी है जैसे:—

"अचिंतचिंतामणिकप्पभूयस्स महानिसीहसुयस्कंधस्सपुव्वाइंरासअसितह चेव खंडिए उद्देहियाइ एहिं हेउहिं वहवे पतंगा परिसाड़िया तह वि अच्चंतसुमच्छाहसयंति इमं महानिसीहसुयस्कंधक्सिणंपवयणस्स परमाहार भूयं, परंततंमहच्छंति कविउणं पवयणवच्छतेणं वहुभवल संतोवियारियं च काउतहायआयरियंअठयाए आयरियहरिभद्देण १ जं तत्थायरि से हिठंतं सचं समती एसा हिऊणं लिहियंति अन्नेहिपि सिद्धसेण २, वुड्ढवाई ३, जक्खसेण ४, देवगुत्ते ५, जस्सभद्देणंखमासमणसीस रविगुत्त ६, सोमचंद ७, जिणदास-गणि खमग सव्वेसूरिपमुहे हि जुगप्पहाण ८"

महानिशीथ सूत्र अ० दूसरा हस्त लिखित प्रति पाने ७२-१

१४–ओसियों मन्दिर की प्रशस्ति के शिलालेख में उपकेशपुर के पड़िहार राजाओं में वत्सराज की बहुत प्रशंसा लिखी है । जिसका समय वि० सं० ७८३ या ८४ का है । इससे भी यही प्रकट होता है कि उस समय उपकेशपुर की भारी उन्नति थी । अतः आबू के उत्पलदेव पँवार ने ओसियों बसाई यह भ्रम भी दूर हो जाता है । कारण आबू के पँवार उत्पलदेव का समय विक्रम की दशवीं शताब्दी का है तब आठवीं शताब्दी में उपकेशपुर अच्छा आबाद था और वत्सराज पड़िहार वहाँ का शासन कर्त्ता था फिर समझ में नहीं आता है कि उत्पलदेव पँवार ने कौनसी ओसियां बसाई होगी ?

१५–वि० सं० ५०८ का एक शिलालेख कोटा राज्यान्तर्गत अटारू नामक ग्राम के एक जैनमन्दिर के भग्न खण्डहरों में प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ मुंशी देवीप्रसादजी जोधपुरवालों की शोध-खोज से मिला था। मुंशीजी ने उस शिलालेख की ठीक समालोचना करते हुए स्वरचित "राजपूतानाकीशोध-खोज" नामक पुस्तक में लिखा है कि प्रस्तुत शिलालेख में भैंसाशाह के नाम का उल्लेख किया गया है। उस भैंसाशाह के लिए मुन्शीजी ने लिखा है कि भैंसाशाह के और रोड़ा विनजारा के आपस में व्यापारिक सम्बन्ध इतना घनिष्ट था कि जिसको चिरस्थायी बनाने के लिए उन दोनों ने अपने नाम से एक ग्राम आबाद किया जिसका नाम भैंसरोड़ा...भैंसरोड़ा अर्थात् भैंसाशाह का नाम और रोड़ा विनजारा का नाम। प्रस्तुत भैंसरोड़ा ग्राम मेवाड़ इलाके में आज भी विद्यमान है। इस लेख से यह पाया जाता है कि विक्रम की पांचवी शताब्दी पूर्व उपकेशवंश अनेक नगरों में खूब ही फला फूला और वृद्धि पाया हुआ था। जब हेमवन्त पट्टावलीकार दूसरी शताब्दी में मथुरा निवासी ओसवंश शिरोमणि श्रावक पोलाक का उल्लेख करते हैं तथा वि० सं० २२२ में आभा नगरी में धनकुबेर जगाशाह सेठ बसता था उस पर क्यों नहीं विश्वास किया जाय ? तथा वि० पूर्व ९७ वर्ष उपकेशपुर में महावीर स्नात्र समय १८ गोत्र के भावुकों ने स्नात्रीय बन कर पूजा पढ़ाई थी इसमें शंका ही क्यों हो सकती है। पूर्वोक्त सब प्रमाण हमारी पट्टावलियों में लिखा हुआ ओसवंश उत्पत्ति का समय वि० सं० पूर्व ४०० वर्षों को प्रमाणित करता है।

१६–पुरातत्व की शोधखोज से अनेक पदार्थ ऐसेभी मिलते हैं जो इतिहास [illegible] हैं। कुछ अर्सा पहले पूर्व प्रदेश की भूमि खोदने का काम करते समय एक मूर्ति मिली है जिस पर [illegible] खंडित शिलालेख भी है उसमें सं० १८४ (८४) और श्रीवंश अक्षर स्पष्ट दिखाई देते हैं जिसकी समालोचना 'श्वेताम्बर जैन' अखबार में जो आगरे में प्रकाशित होता है की गई थी। जब हम श्रीवंश जाति की ओर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि यह जाति उपकेशवंश की ही होनी चाहिये। कारण, इस जाति का यह शिलालेख विक्रम की सोलहवीं* शताब्दी का मिलता है। इसके अलावा जैनमन्दिरों में भी [illegible] के यत्र तत्र प्रमाण मिलते हैं। यदि हमारी धारणा ठीक है और श्रीवंश जाति उपकेशवंश की ही [illegible] तो कोई कारण नहीं कि हम उपकेश वंश को वीरात् ७० वर्ष मानने में किसी प्रकार की शंका करें, क्योंकि वि० सं० पूर्व ९७ वर्ष में तो उपकेशवंश के १८ गोत्रों का पता मिलता है और वे गोत्र उस समय के पूर्व बन चुके थे। जब वीरात् ७० वर्षों में इस वंश की उत्पत्ति हुई हो तो ८४ वर्ष में गोत्रों का [illegible] हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

१७–महावीर निर्वाण के ८४ वर्ष का एक शिलालेख पं० गौरीशंकरजी ओझा को [illegible] ग्राम से मिला है यह लेख एक पत्थर स्तम्भ पर खुदा हुआ है और [illegible] शिलालेख खंडित है। अतः यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता है कि यह [illegible] इसके पूर्व उक्त [illegible] में और भी कुछ लिखा हुआ था जो प्रस्तुत लेख के साथ [illegible]

---

* संवत् १५३० वर्षे माघसुदि १३ [illegible]
[illegible]
[illegible]

गई। राजकन्या ने अपने स्थान जाकर माता से कहा कि चम्पा के पास कांगसी है वह मुझे दिला दो नहीं तो मैं अन्न जल नहीं लूंगी। रानी ने राजा को कहा और राजा ने रांकाशाह को बुला कर कांगसी मांगी। रांकाशाह ने चम्पा को कहा और बहुत समझाया पर उसने भी हट पकड़ लिया कि मुझे मरना मंजूर है पर कांगसी नहीं दूँगी। अतः रांका ने लाचार होकर राजा को कहा आप आज्ञा दें तो मैं दूसरी कांगसी मँगा कर या नई बना कर सेवा में हाजिर कर सकता हूँ, पर वह कांगसी तो चम्पा देने को इन्कार है। राजा ने कहा कांगसी की कोई बात नहीं है पर मेरी कन्या ने हठ पकड़ लिया है अतः कांगसी तुमको देनी पड़ेगी। रांकाशाह ने कहा कि यही हाल मेरा है। चम्पा ने हट पकड़ लिया है कि मैं कांगसी नहीं दूंगी। आप ही बतलाइये इसका अब मैं क्या करूं? आखिर में राजा ने जबरदस्ती से अपनी सत्ता द्वारा रांकाशाह एवं चम्पा से कांगसी छीन ली। इस पर रांकाशाह को बहुत गुस्सा आया और उसने काबुल वालों को बहुत द्रव्य देकर उसकी सेना द्वारा वल्लभीनगरी पर धावा करवा के वल्लभी का भंग करवा दिया। बस उस रांकाशाह की सन्तान रांका कहलाई। इससे यह प्रमाणित होता है कि विक्रम की चौथी शताब्दी पूर्व उपकेशवंशी भारत के कई विभागों में फैले हुए थे।

१३–१४४४ ग्रन्थ के कर्त्ता प्रसिद्ध आचार्य हरिभद्रसूरि का समय जैन पट्टावल्यादि ग्रन्थों के आधार पर वि० सं० ५८५ का है पर हरिभद्रसूरि नाम के बहुत आचार्य हो गये हैं, अतः आजकल की शोध से उन १४४४ ग्रन्थों के कर्ता हरिभद्रसूरि का समय विक्रम की आठवीं शताब्दी का कहा जाता है। आचार्य हरिभद्र के समकालीन आचार्य देवगुप्तसूरि हुये हैं। आचार्य हरिभद्रसूरि आदि आठ आचार्यों ने महानिशीथ सूत्र का उद्धार किया जिसमें देवगुप्तसूरि भी शामिल थे, यह बात महानिशीथ सूत्र के दूसरे अध्ययन के अन्त में लिखी है जैसेः—

"अचिंतचिंतामणिकप्पभूयस्स महानिसीहसुयस्कंधस्सपुव्वाइंरासअसितह चेव खंडिए उद्देहियाइ एहिं हेउहिं बहवे पतंगा परिसाड़िया तह वि अच्चंतसुमच्छाहसयं ति इमं महानिसीहसुयस्कंधकिसिणंपवयणस्स परमाहार भूयं, परंततंमहच्छंति कविउणं पवयणवच्छतेणं बहुभवल संतोविंयारियं च काउतहायआयरियंअठयाए आयरियहरिभद्देण १ जं तत्थायरि से हिठंतं सच्चं समती एसा हिउणं लिहियंनि अन्नेहिपि सिद्धसेण २, वुड्ढवाई ३, जक्खसेण ४, देवगुत्ते ५, जस्सभद्देणंखमासमणसीस रविगुत्त ६, सोमचंद ७, जिणदास-गणि खमग सव्वेसूरिपमुहे हि जुगप्पहाण ८"

महानिशीथ सूत्र अ० दूसरा हस्त लिखित प्रति पाने ७२-१

१४–ओसियों मन्दिर की प्रशस्ति के शिलालेख में उपकेशपुर के पड़िहार राजाओं में वत्सराज की बहुत प्रशंसा लिखी है। जिसकासमय वि० सं० ८८३ या ८४ का है। इससे भी यही प्रकट होता है कि उस समय उपकेशपुर की भारी उन्नति थी। अतः आबू के उत्पलदेव पँवार ने ओसियां बसाई यह भ्रम भी दूर हो जाता है। कारण आबू के पँवार उत्पलदेव का समय विक्रम की दशवीं शताब्दी का है तब आठवीं शताब्दी में उपकेशपुर अच्छा आबाद था और वत्सराज पड़िहार वहाँ का शासन कर्त्ता था फिर समझ में नहीं आता है कि उत्पलदेव पँवार ने कौनसी ओसियां बसाई होगी?

महाजनसंघ उपकेशवंश और ओसवाल जाति की उत्पत्ती विषय विद्वानों की सम्मतियें

१–श्रीमान् पूर्णचन्द्रजी नाहर ने स्वसम्पादित प्राचीन लेख संग्रह खण्ड तीसरे के पृष्ठ २५ पर लिखा है कि ओसवालों की उत्पत्ति विक्रम सं० ५०० से १००० वर्ष में हुई होगी जैसे कि आप लिखते हैं—

"इतना तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि 'ओसवाल' में 'ओस' शब्द ही प्रधान है। ओस' शब्द भी 'उएस' शब्द का रूपान्तर है और 'उएस' 'उपकेश' का प्राकृत है। इसी प्रकार मारवाड़ के अन्तर्गत 'ओसिया' नामक स्थान भी 'उपकेशनगर' का रूपान्तर है। जैनाचार्य रत्नप्रभसूरिजी वहां के राजपूतों की जीवहिंसा छुड़ा कर उन लोगों को दीक्षित करने के पश्चात वे राजपूत लोग उपकेश अर्थात् ओसवाल नाम से प्रसिद्ध हुये। × × ×

जहाँ तक मैं समझता हूँ (मेरा विचार भ्रमपूर्ण होना भी असम्भव नहीं) प्रथम राजपूतों से जैनी बनाने वाले पार्श्वनाथ सन्तानिया श्रीरत्नप्रभसूरि नाम के आचार्य थे। उपरोक्त घटना के प्रथम श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के पट्ट परम्परा का नाम उपकेशगच्छ भी नहीं था इत्यादि [illegible]

नोट—ओसवालों का उत्पत्ति स्थान ओसियाँ और प्रतिबोधक आचार्य रत्नप्रभसूरि थे इस विषय में श्रीमान नाहरजी हमारे सम्मत हैं तथा आपका यह कहना भी ठीक है कि ओसवाल बनने के पहला के पूर्व पार्श्वनाथ की पट्ट-परम्परा का नाम उपकेशगच्छ भी नहीं था ? क्योंकि पार्श्वनाथ की परम्परा का उपकेशगच्छ नाम उपकेशपुर में महाजनसंघ बनाने के बाद में ही हुआ है। शेष शंकाओं के लिये देखो 'शंकाओं का समाधान' नामक लेख जो इसी ग्रन्थ में प्रकाशित है।

२–इसी प्रकार 'ओसवाल जाति का इतिहास' के लेखक श्रीमान् भंडारीजी ने भी नाहरजी का ही अनुकरण करते हुए कहा है कि ओसवालों की उत्पत्ति वि० सं० ५०० से ९०० के बीच में हुई होगी।

३–श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा बीकानेरवालों ने पल्लीवाल प्रवाहनी नामक एक लेख [illegible] शताब्दी अंक के पृष्ठ १८७ पर मुद्रित करवाया है जिसमें आप लिखते हैं कि:—

"श्वेताम्बर समाज में दो तीर्थंकरों की परम्परा अद्यावधि चली आई है। १–पार्श्वनाथ २–महावीर। भगवान महावीरदेव की विद्यमानता में प्रभु पार्श्वनाथजी के सन्तानिये केशीगणधर [illegible] के प्रमाण श्वे० मूल आगमों में पाये जाते हैं यद्यपि केशी के अतिरिक्त और भी कई सुविहित पार्श्वनाथ सन्तानिये उस समय विद्यमान थे और उनका उल्लेख अंगसूत्रों में कई जगह आता है [illegible] और प्रभाविक थे उनकी परम्परा आज तक भी चली आ रही है इसलिये वे यहाँ [illegible]

इस परम्परा के [illegible] रत्नप्रभसूरिजी नामक आचार्य बहुत प्रभाविक हो गये हैं [illegible] है कि ओसियाँ (उपकेश) नगरी में वीर निर्वाण संवत् ७० के [illegible] राजपूतों को प्रतिबोध देकर जैनधर्मी श्रावक [illegible] बनाये और यहाँ से उपकेशगच्छ [illegible] सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये [illegible]

४–जैनज्योति नामक साप्ताहिक [illegible] के अंक में एक [illegible] लिखते हैं —

आचार्य रत्नप्रभसूरि का स्वर्गवास वीर निर्वाण सं० ८४ में हुआ था और पट्टावलियों में यह भी लिखा मिलता है कि आपश्री के शरीर का सिद्धगिरि पर जहां अग्निसंस्कार हुआ था वहाँ श्रीसंघ ने एक विशाल स्तूप भी बनाया था। शायद प्रस्तुत लेख उस स्तूप के साथ सम्बन्ध रखने वाला हो। और यह बात असम्भव भी नहीं है क्योंकि वीर निर्वाण के बाद ८४ वर्ष का जैसा रत्नप्रभसूरि के स्वर्गवास का उदाहरण मिलता है वैसा दूसरा कोई नहीं मिलता है। यह केवल मेरा अनुमान ही है, पर कभी २ ऐसा अनुमान सत्य भी हो सकता है।

परन्तु यहां एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि रत्नप्रभसूरि का स्वर्गवास सौराष्ट्र के शत्रुँजय तीर्थ पर हुआ है तब वर्ली ग्राम शत्रुंजय से सैंकड़ों मील दूर है, फिर बर्ली से मिलने वाला शिलालेख रत्नप्रभसूरि से क्या सम्बन्ध रख सकता है ?

भगवान महावीर का मोक्ष पावापुरी में हुआ था पर आपके मन्दिर स्तूप अन्यान्य प्रदेश में भी मिलते हैं। इसी प्रकार रत्नप्रभसूरि भी एक महान उपकारी पुरुष हुये हैं और आपके भक्त लोग अनेक स्थानों में रहते थे। आपश्री का उपकार भी बिलकुल निकट समय का ही था। यदि किसी भक्त जन ने भक्ति से प्रेरित हो उस समय तथा बाद में कुछ स्मृति-चिन्ह बनाया हो और उसमें लिख दिया हो कि भगवान महावीर के बाद ८४ वें वर्ष में आपका स्वर्गवास हुआ था तो कुछ असंभव भी नहीं है। मैंने यह निर्णय की तौर पर नहीं पर एक कल्पना की तौर पर ही अनुमान किया है।

इत्यादि उपलब्ध ऐतिहासिक प्रमाणों से हम इस निश्चय पर आ सकते हैं कि भगवान पार्श्वनाथ के छट्ठे पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि हुये थे और उन्होंने वीरात् ७० वें वर्ष उपकेशपुर में पधार कर वहां के राजा और प्रजा के लाखों मनुष्यों को मांस मदिरादि दुर्व्यसन छुड़ा कर जैन धर्म में दीक्षित कर उस समूह का नाम 'महाजन संघ' रखा था। वही महाजन संघ आगे चल कर नगर के नाम पर उपकेशवंश कहलाया और ओसवंश ओसवाल उसी उपकेशवंश का रूपान्तर नाम हुआ था इत्यादि।

हम उपरोक्त प्रमाणों से जिस निश्चय पर आये हैं, जब तक इनके खिलाफ कोई विश्वासनीय प्रमाण न मिले वहाँ तक हमारा दृढ़ विश्वास है कि ओसवालों की उत्पत्ति वि० पू० ४०० वर्ष अर्थात् वीर निर्वाण के बाद ७० वर्ष में हुई थी और इसी प्रकार सब विद्वानों एवं ओसवालों को भी मानना एवं इस मान्यता पर विश्वास रखना चाहिये।

महाजनसंघ उपकेशवंश और ओसवाल जाति की उत्पत्ती विषय विद्वानों की सम्मतियें

१-श्रीमान् पूर्णचन्द्रजी नाहर ने स्वसम्पादित प्राचीन लेख संग्रह खण्ड तीसरे के पृष्ठ २५ पर लिखा है कि ओसवालों की उत्पत्ति विक्रम सं० ५०० से १००० वर्ष में हुई होगी जैसे कि आप लिखते हैं—

"इतना तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि 'ओसवाल' में 'ओस' शब्द ही प्रधान है। ओस' शब्द भी 'उएस' शब्द का रूपान्तर है और 'उएस' 'उपकेश' का प्राकृत है। इसी प्रकार मारवाड़ के अन्तर्गत 'ओसिया' नामक स्थान भी 'उपकेशनगर' का रूपान्तर है। जैनाचार्य रत्नप्रभसूरिजी वहां के राजपूतों की जीवहिंसा छुड़ा कर उन लोगों को दीक्षित करने के पश्चात वे राजपूत लोग उपकेश अर्थात् ओसवाल नाम से प्रसिद्ध हुये। × × ×

जहाँ तक मैं समझता हूँ (मेरा विचार भ्रमपूर्ण होना भी असम्भव नहीं) प्रथम राजपूतों से जैनी बनाने वाले पार्श्वनाथ सन्तानिया श्रीरत्नप्रभसूरि नाम के आचार्य थे। उपरोक्त घटना के प्रथम श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के पट्ट परम्परा का नाम उपकेशगच्छ भी नहीं था इत्यादि [illegible]

नोट—ओसवालों का उत्पत्ति स्थान ओसियाँ और प्रतिबोधक आचार्य रत्नप्रभसूरि थे इस विषय में श्रीमान नाहरजी हमारे सम्मत हैं तथा आपका यह कहना भी ठीक है कि ओसवाल बनने की घटना के पूर्व पार्श्वनाथ की पट्ट-परम्परा का नाम उपकेशगच्छ भी नहीं था ? क्योंकि पार्श्वनाथ की परम्परा का उपकेशगच्छ नाम उपकेशपुर में महाजनसंघ बनाने के बाद में ही हुआ है। शेष शंकाओं के लिये देखो 'शंकाओं का समाधान' नामक लेख जो इसी ग्रन्थ में प्रकाशित है।

२—इसी प्रकार 'ओसवाल जाति का इतिहास' के लेखक श्रीमान् [illegible] ने भी नाहरजी का ही अनुकरण करते हुए कहा है कि ओसवालों की उत्पत्ति वि० सं० ५०० से ९०० के बीच में हुई होगी।

३—श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा बीकानेरवालों ने पल्लीवाल पट्टावली नामक एक लेख [illegible] शताब्दी अंक के पृष्ठ १८७ पर मुद्रित करवाया है जिसमे आप लिखते हैं कि:—

"श्वेताम्बर समाज में दो तीर्थंकरों की परम्परा अद्यावधि चली आती है। १—पार्श्वनाथ [illegible] वीर। भगवान महावीरदेव की विद्यमानता में प्रभु पार्श्वनाथजी के सन्तानिये [illegible] के प्रमाण श्वे० मूल आगमों में पाये जाते हैं यद्यपि केशी के अतिरिक्त और भी [illegible] सन्तानिये उस समय विद्यमान थे और उसका उल्लेख [illegible] और प्रभाविक थे उनकी परम्परा आज तक भी चली आ रही है [illegible]

इस परम्परा के [illegible] रत्नप्रभसूरिजी नामक आचार्य [illegible] है कि ओसियां (उपकेश) नगरी के वीर निर्वाण सम्वत् ७० के [illegible] देकर जैनधर्मी आपने ही बनाये और यहीं से उपकेशवंश [illegible] सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। इस महत्वपूर्ण [illegible]

[illegible]

[illegible]

'ओसवालोत्पत्ति विषयक शँकाओं का समाधान' लेखक—मुनिराज श्रीज्ञानसुन्दरजी प्रकाशक—श्रीरत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला मु० फलौदी (मारवाड़) कीमत—पठन पाठन, पृष्ट ५४ प्रथमावृति श्री रत्नप्रभाकरज्ञानपुष्पमालना १५२ मां ग्रन्थांक तरीके प्रगट थयेल

"आ ग्रन्थ ओसवालजातिना इतिहास ने लागती विगतो थी भरपुर छे, उपकेशवंश-ओसवालवंशनी विगतो अनेक रीते बोधदायक छे आ जातिना प्रथमस्थापक श्रीरत्नप्रभसूरि जो वि० सं० पूर्व ४०० मां अर्थात् वीरनिर्वाणसम्वत् ७० मां मरुधरप्रान्तमां आव्या हता ने उपकेशपुरमां अजैनों ने जैनधर्म मां मेलववानु भागीरथ कार्य कर्यु हतुं । आ पुस्तक ओसवालवंश नी उत्पत्ति थी लई आधुनिक स्थिति सुधी नी सुन्दर रीते सवाल जवाब नी ढब थी चर्चा करे छे । मुनिराज श्रीज्ञानसुन्दरजीना ऐतिहासिक ज्ञान थी जैनजगत परिचित ज छे आ ग्रन्थ तेमना उंड ज्ञान नी विशेष खातरी आपे छे ।

५-ऊसवंश-उकेशवंश—उपकेशज्ञाति – उओशज्ञाति के ओसवालज्ञातिना नामे ओलखातो जथो मूल माँ श्रीमालनगर थी छुटो पड़ी ने जुदा जुदा स्थान माँ जाइ वसेला लोकोनो समूह छे । उत्पलदेव नामनो राजाकुँवर अने ऊहड़नामनो श्रीमाली वाणियो (मन्त्री) ओ वे पोतपोताना कुटुम्बियो थी दुभाइने श्रीमालनगर छोड़ी चाल्या गया । तेमणे राजपूतानाना मध्य भाग मे रेतीली-रणनी वीच्चे उस (उह) वाली एक जगाओ नवु नगर वसाव्यु । नवानगर नुं नाम उस अथवा ओस नगर पाड़युँ । ज्याँ वधारे वस्ती होय त्याँ केटलाक लोको ने धंधा रोजगार ने माटे मुफावुँ पडवुँ होय ते स्वाभाविक छे आवा लोको कोई नवुँ द्वार खोजवाज होय छे । एकाद स्थान नवुं वसे छे अने त्यां पोतानो लगवग लागे एवुंछे अने एवुँ जाणताना साथे तुरतज तेओ ते तरफ पयाण करे छे । राजकुँवर उत्पलदेव अने तेमना साथी ऊहड़ श्रेष्ठिअे श्रीमालनगर माँ थी पोताना कुटुम्बियों ने तोड़ावी लीधा ते साथे श्रीमालनगर माँ थी घणा लोक नवानगर माँ जाइ वस्या × × × × महावीरस्वामी पछी ७० वर्षे अेटले विक्रम संवत् पहिला ४०० वर्षे रत्नप्रभसूरि ओ ओस नगरना निवासियो ने अने त्यौंना राजा उत्पलदेव ने जैनधर्मी बनाया ।

"मणिलाल बकोरभाई व्यास कृत श्रीमाली वाणिया ना ज्ञातिभेद ग्रन्थ पृष्ट ६४"

६-इतिहास-प्रेमी मरुधरकेसरी पूज्य मुनिराज श्री श्री १००८ श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज साहिब की पवित्र सेवा में

बम्बई—६-८-३७

सादर वन्दना के पश्चात् बड़े ही हर्ष के साथ सेवा में निवेदन किया जाता है कि आपश्री की भेजी हुई 'ओसवालोत्पत्ति विषयक शंकाओं का समाधान' नामक पुस्तक मिली, जिसको आद्योपान्त पढ़ने से हमारे चिरकालीन संस्कार जो ओसवालों की उत्पत्ति वि. सं. २२२में होने के थे वह आज रफूचक्कर हो गये और हमारा इतिहास ६२२ वर्ष पूर्व पहुँच गया है अर्थात् हमारी जाति की उत्पत्ति वि. पू. ४०० में हुई थी । आपकी लिखी पुस्तक ने अच्छा प्रभाव डाला है। तदर्थ आपको कोटिशः धन्यवाद । सेवा कार्य लिखावें

आपका चरण किंकर "नथमल उदयमल"

७-विक्रम सम्वत् प्रारम्भ से ठीक चार सौ वर्ष पूर्व अर्थात आज से करीब चौबीस सौ वर्ष पूर्व जैन समाज के संगठन और वृद्धि के निमित्त श्वेताम्बर आम्नाय के जैनाचार्य श्रीमद् रत्नप्रभसूरिजी महाराज ने

जो आन्दोलन ओसियाँ नगर से (जो मारवाड़ में जोधपुर के निकट आजकल तो ग्राममात्र है) आरम्भ किया था और सर्व प्रथम उस नगर के राजा उत्पलदेव पंवार (सूर्यवंशी) को जैनधर्म का प्रतिबोध देकर राजा सहित १८ गोत्रों के क्षत्रियों को जैनधर्म अंगीकार कराया था, एवं उन्हें सकुटुंब जैन क्षत्रिय बनाया था। उसके फलस्वरूप ओसवाल (ओसियाँ वाले) जाति उत्पन्न और आरम्भ हुई। एक जाति की स्थापना सिर्फ चमत्कार वश नहीं हो सकती थी। सिद्धि और चमत्कार तो कई जगह नजर आते हैं लेकिन कोई जनसमूह अन्धश्रद्धा या अंध विश्वास से एक सूत्र में बंधना स्वीकार नहीं करता है। जब तक मनोवृत्तियाँ एक कौम में नहीं आतीं और चित्त को शान्ति व आनन्द की आशा नहीं होती तब तक कोई भी नये पंथ पर आना पसन्द नहीं करता। बाद में १८ गोत्र स्थापित हुये और यह आन्दोलन कभी तीव्र तो कभी मंद गति से चलता रहा।

ओसवाल समाज की परिस्थिति पृष्ठ २ लेखक श्रीमान् [illegible] —[illegible]

८—ओसवाल जाति की उत्पत्ति के विषय मैंने आज पर्यन्त जितने ग्रन्थ देखे हैं उनके [illegible] कर इस निर्णय पर आया हूँ कि ओसवालों की उत्पत्ति विक्रम पूर्व ४०० वर्ष में आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा हुई है और इसका शुरू से महाजन संघ, बाद उपकेशवंश नाम था जिसको आज हम ओसवाल कहते हैं। एक समय इस जाति की बड़ी भारी जाहोजलाली थी। '[illegible]'

९—मैं ओसवालों की उत्पत्ति के विषय में कतई अनभिज्ञ था परन्तु जब मुझे ओसवालोत्पत्ति विषयक साहित्य पढ़ने का मुनि श्रीज्ञानसुंदरजी की कृपा से अवसरप्राप्त हुआ और [illegible] जिनोद्धार पट्टावलियां और वंशावलियां आदि तथा शिलालेख संग्रह आदि का अवलोकन किया तो मेरी भी यह धारणा हुई कि ओसवाल जाति जिसके पहले दो नाम उपकेशवंश और महाजनवंश हैं यह अति प्राचीन है और विक्रम से ४०० वर्ष पहिले इसकी उत्पत्ति होने में कोई शंका नहीं है। जो लोग धार्मिक साहित्य को बिलकुल गप्प ही समझते हैं और उस पर विश्वास नहीं करते उनकी बात तो जाने दीजिये परन्तु मैं उन आदमियों में से नहीं हूं। धार्मिक साहित्य धार्मिक पुरुषों द्वारा लिखा जाता है और वे [illegible] होते हैं। कोई बात किस विशेष कारण से कुछ की कुछ लिख गई हो वह बात दूसरी है, परन्तु यह नहीं हो सकता कि उनका सब साहित्य ही गप्प कल्पित अथवा गप्प हो। [illegible]

जैनाचार्य और मुनिवरों के लेखों में ओसवंश की उत्पत्ति के विषय प्रमाण

१ आचार्य श्रीविजयानन्दसूरीश्वरजी महाराज

प्र०—कौन जाने किसी धूर्त ने अपनी कल्पना से श्रीपार्श्वनाथ औरउनकीपट्टपरम्परा लिख दी होवेगी, इससे हमको क्यों कर श्री पार्श्वनाथ हुये निश्चित होवे ?

उ०—जिन आचार्यों के नाम श्रीपार्श्वनाथजी से लेकर आज तक लिखे हुए हैं उनमें से कितनेक आचार्यों ने जो जो काम किये हैं वे प्रत्यक्ष देखने में आते हैं जैसे श्रीपार्श्वनाथजी से छट्टे पट्ट ऊपर श्री रत्नप्रभसूरिजी ने वीरात् ७० वर्ष पीछे उपकेशपट्टन के श्रीमहावीरस्वामी की प्रतिष्ठा करी सो मंदिर और प्रतिमा आज तक विद्यमान है, तथा अयरणपुर की छावनी से ६ कोस के लगभग कोरंटनामानगर ऊजड़ पड़ा है, जिस जगह कोरंटा नामक आज के काल में गाम बसता है वहाँ भी श्रीमहावीरजी की प्रतिमा-मंदिर की श्रीरत्नप्रभसूरिजी की प्रतिष्ठा करी हुई अब विद्यमान काल में सो मंदिर खड़ा है तथा उसवाल और श्रीमालि जो वणिये लोकों में श्रावक ज्ञाति प्रसिद्ध हैं वे भी प्रथम श्रीरत्नप्रभसूरिजी ने ही स्थापना करी है तथा श्रीपार्श्वनाथजी से १७ सत्तरहवें पट्ट ऊपर श्रीयक्षदेवसूरि हुये हैं। वीरात् ५८५ वर्षे। जिन्होंने बारह वर्षीय काल में वज्रस्वामी के शिष्य वज्रसेन के परलोक हुये पीछे तिनके चार मुख्य शिष्य जिनको वज्रसेनजी ने सोपारक पट्टण में दीक्षा दीनी थी तिनके नाम से चार शाखा-कुल स्थापन करे, वे ये हैं नागेन्द्र १ चंद्र २ निवृत्ति ३ विद्याधर ४। यह चारों कुल जैन मत में प्रसिद्ध हैं, तिनमें से नागेन्द्र कुल में उदयप्रभ सूरि मल्लिषेणसूरि प्रमुख और चन्द्रकुल में वड़गच्छ, तपगच्छ, खरतरगच्छ, पूर्णतल्लीयगच्छ, देवचंद्रसूरि के शिष्य कुमारपाल के प्रतिबोधक श्री हेमचन्द्रसूरि प्रमुख आचार्य हुए हैं तथा निवृत्तकुल में श्रीशीलांकाचार्य श्री द्रोणसूरि प्रमुख आचार्य हुये हैं तथा विद्याधर कुल में १४४४ ग्रंथ के कर्त्ता श्री हरिभद्रसूरि प्रमुखाचार्य हुये हैं तथा मैं इस ग्रंथ का लिखने वाला चन्द्रकुल में हूँ। तथा पैंतीसवें पट्ट ऊपर श्रीदेवगुप्तसूरिजी हुये हैं जिन्हों के समीपे श्रीदेवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणजी ने दो पूर्व पढ़े थे तथा श्रीपार्श्वनाथजी के ४३ वें पट्ट ऊपर श्री कक्कसूरि पंचप्रमाण ग्रंथ के कर्त्ता हुये हैं सो ग्रंथ विद्यमान है तथा ४४ वें पट्ट ऊपर श्रीदेवगुप्तसूरिजी विक्रमात् १०७२ वर्ष नवपद प्रकरण के कर्त्ता हुये हैं सो भी ग्रंथ विद्यमान है तथा श्रीमहावीरजी की परम्परा वाले आचार्यों ने अपने बनाये कितनेक ग्रन्थों में प्रगट लिखा है कि उपकेशगच्छ है सो पट्ट परम्परा से पार्श्वनाथ २३ वें तीर्थंकर से अविच्छिन्न चला आता है। जब जिन आचार्यों की प्रतिमा मंदिर की प्रतिष्ठा करी हुई और ग्रंथ रचे हुये विद्यमान हैं तो फिर उनके होने में जो पुरुष संशय करता है उसको अपने पिता, पितामह, प्रपितामह आदि की वंश परम्परा में भी संशय करना चाहिये। जैसे क्या जाने मेरी सातवीं पेढ़ी का पुरुष आगे हुआ है कि नहीं। इस तरह का जो संशय कोई विवेक-विकल करे उसको सब बुद्धिमान उन्मत्त कहेंगे। इसी तरह श्रीपार्श्वनाथ की पट्ट परम्परा के विद्यमान होने पर जो पुरुष श्री पार्श्वनाथ २३ वें तीर्थंकर के होने में संशय करे तिसको भी प्रेक्षावंत पुरुष उन्मत्त की ही पंक्ति में समझते हैं तथा धूर्त पुरुष जो काम करता है सो अपने किसी संसारिक सुख के वास्ते करता है परन्तु सर्व संसारिक

इन्द्रिय-जन्य सुख से रहित केवल महाकष्ट रूप परम्परा नहीं चला सकता है। इस वास्ते जैनधर्म का संप्रदाय धूर्त का चलाया हुआ नहीं किन्तु अष्टादश दूषण रहित अर्हन् का चलाया हुआ है।

जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर नामक ग्रन्थ पृष्ठ ७७

२—आचार्य श्रीविजयनेमिसूरीश्वरजी जब पालड़ी के संघ के साथ जैसलमेर पधार रहे थे ओसियाँ तीर्थ पर आपके दर्शन हुए और रत्नप्रभसूरि के विषय में वार्तालाप हुआ तो आपने फरमाया कि आचार्य रत्नप्रभसूरि जो भगवान पार्श्वनाथ के छट्टे पाट पर हुये उन का जैन समाज पर बड़ा भारी उपकार है कि उन्होंने इसी ओसियां नगरी में ओसवालवंश की स्थापना की थी इत्यादि।

३—वयवृद्ध मुनिश्री सिद्धविजयजी महाराज जो लोहार की पोल के उपाश्रय विराजते थे जब एक मंदिर में पूजा पढ़ाई जा रही थी वहाँ मैं भी गया और करीब १५ साधु साध्वियें वहाँ पधारे थे। कई साधुओं ने मुझे पूछा कि तुम किस गच्छ के हो ? मैं उपकेशगच्छ का हूँ। उपकेश एटले शुं ? आचार्य रत्नप्रभसूरि का गच्छ उपकेशगच्छ है। यह नाम ही उन्होंने नया ही सुना अर्थात् उनको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। बाद मैंने उन महात्माओं को समझाया तथा मुनिश्रीसिद्धविजयजीमहाराज ने कहा कि अरे साधुओ ! तुम इस बात को भले ही न समझते हो पर मैं जानता हूँ कि उपकेश गच्छ सब से पुराना और [illegible] है इसके संस्थापक हैं आचार्यरत्नप्रभसूरीश्वरजी जो भगवान पार्श्वनाथ के छठे पट्टधर हुये हैं जिन्होंने [illegible] में ओसियाँनगर में क्षत्रियों को प्रतिबोध करके ओसवाल बनाये थे इत्यादि।

४—पन्यास श्रीगुलाबविजयजीमहाराज भट्टी की पोल एवं [illegible] [illegible] विराजते थे। मैं जब वि० सं० १९७४ में अहमदाबाद गया था तो आप के दर्शनार्थ [illegible] ओसवालों के संबंध में बातें हुई तो आपने फरमाया कि ओसवालों को वीर सं० ७० में आचार्य रत्नप्रभसूरि ने बनाये थे। मैंने पूछा कि इसके लिये आपके पास कोई प्राचीन प्रमाण है तो [illegible] प्राचीन पट्टावली के पन्ने निकाल कर मुझे बताया कि देखो इस पट्टावली में [illegible] लिखा है कि [illegible] वर्ष आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर नगर में [illegible] [illegible] जैनों का नाम ही उपकेशवंश तथा ओसवाल हुआ है इत्यादि।

स्थापन करी औशवाल बनाव्या। तथा तेमणे श्रीमाली वंशनो स्थापना करी। तेऔनौ उपकेश वंशनी स्थापना करी तेथी तेऔना गच्छनुं उपकेश नाम प्रसिद्ध थयुं। उपकेशगच्छमाँ धर्म धुरंधर महा प्रभावक अनेक आचार्यों थया छे।

जैन गच्छ मत प्रबंध पृष्ठ ७

७—"अेटलुं तो निर्विवाद सिद्ध थई चूक्यो छे के ओसवाल जाति नो जन्मस्थात एज ओसियां छे पहला जमाना में ज्योरे ओसियों नो नाम उपकेशपुर हतो त्यारे ओसवालजाति नो नाम पण उपकेशवंशज हतो अने आ उपकेशवंश नो जेटलो सम्बन्ध उपकेशपुर ने साथे छे तेटलोज सम्बन्ध उपकेशगच्छ ने साथ छै केम के जेम उपकेशपुर उपर थी त्याना रहेवासी लोगों नो नाम उपकेशवंश थया छै तेमज उपकेशपुर में आचारपतित क्षत्रिय लोगों ने जैन बनाव्या तथा त्यारे पच्छि तेओ ना साधु गणी वख्त उपकेशपुर तथा तेना आस पासना प्रदेश में विचरवा थी तेओनुनाम उपकेशगच्छ थयो छै जेम के वल्लभी में रहवा थी ते साधु वल्लभी गच्छना शंखेश्वर ने आसपास विहार करवां थी शंखेश्वरगच्छ वायटग्राम ने आस पास रहवा थी वायटगच्छ अने संडेरा ग्राम में रहवा थी तथा तेने आस पास भ्रमण करवा थी सांडेरागच्छ ना कहवाया आ प्रमाणे उपकेशपुर में वधारे समय रहवा थी तेम तेने आस पास विचरवा थी उपकेशगच्छ कहेल छे हिवे ओसवाल बनवानो समय जोवानो रहे छे अने माटे पट्टावल्यादिग्रन्थों मां वीर निर्वाण थी ७० मा वर्षनो उल्लेख मिले छ अने ते विल्कुल निराधार पण नथी केमके ओसियाँना एक भग्न देहराना खण्डहर में चन्दाप्रभुनी मूर्ति ने नीचे एक खण्डित लेख अमे अमारी नजरो थी जोव्यो छै अने तेने अन्दर वि० सं० ६०२ नो संवत छे तेमज आदित्यनागगौत्र पण लिखेल छै शेषभाग खण्डित थइ गयो छे छतां अेटलु तो निश्चय थइजायछ के वि० सं० ६०२ पहला आ जाति नो अस्तित्व बहु प्रमाण मां थावो जोइये।

जैनो ने बुद्धिवाद नो देवालो काढ़ीनाख्यो होय तेम लागे छे अेटला माटेज तेओ अकेला तर्क वाद थी कहे छे के ज्या सुधी ऐतिहासिक प्रमाण न मिले त्यां सुधी अमोए आ बात ने मानवामाटे तैयार नथी। भले तेओ माने के न माने आथी कांइ वलवानो नथी केमके वधो शांसन तेओनेज ऊपर अवलम्बित नथी अगर आ प्रमाणे ऐतिहासिक प्रमाण विना कोई पण वस्तु नज मानी शकाय तो वधी पट्टावलियो झूठी ठहरशे। चरमकेवली जम्बुस्वामी अने प्रभावस्वामी ने माटे पण कोई ऐतिहासिक शिलालेख वतावशे खरू के ? अगर ऐतिहासिक प्रमाण न मिले तो शु ते वातों ने असत्य मानाशे ? नहीं ! नहीं !! कदापि नहीं !!!

बीजी वात आ छे के थोड़ी देर ने माटे अमे अेम मानिलइए के वीरात् ७० वर्ष ओसवाल न थया होय तो पछी ओसवाल जाति क्यारे थई ? अने तेने माटे पण कांइ समय तो निश्चित करोज पड़से अने अेम न होय तो जेम कहो के आ ओसवाल जाति आकाश मां थी उतरी आवी छे पण अेटलु तो केउ जोइये के ते दिवस क्या वर्ष क्या मास नो हतो बुद्धिनो देवालो अमे अेटला माटेज कहीए छए के जे प्रमाण जैन पट्टावल्यादि ग्रन्थों मां मले छे तेने तो तेओ मानता नथी अने पोताने पासे किसु पण प्रमाण जड़तो नथी फक्त केवल न कामी तर्क करवा थी शु. वलवानो छे इत्यादि।

"धर्मरत्न"

८—जैनाचार्योंअे लखेली जूनी पट्टावलियों अने प्रशस्तिओमां अेवां सैकड़ों प्रमाण मली आवे छे के तेमां जैनाचार्योंना सिंधमां विचरवाना उल्लेखो मले छे। जूनामां जूनु प्रमाण वि० सं० पूर्वे लगभग ४०० वर्ष ना

समयनुं छे, के जे वखते रत्नप्रभसूरिना पट्टधर यक्षदेवसूरि सिंधमां आव्या हता। अने सिंधमां अवतां तेमने घणु कष्ट उठाववु पडयु हतुं। आ यक्षदेवसूरिना उपदेश थी कक्क नामना एक राजपुत्रे जैन मंदिरो बंधाव्यों हतां, अने पछी दीक्षाधी हती।

"मुनिश्री विद्याविजयजी कृत मारी सिंधयात्रा पेज १२"

९—"उपस या ओसवंश के मूल संस्थापक यही रत्नप्रभसूरिजी थे जिन्होंने ओसवंश की स्थापना महावीर के निर्वाण से ७० वर्ष बाद उवेश (वर्तमान ओसियां) नगर में की थी"। आधुनिक कतिपय कुलगुरु कहा करते हैं कि रत्नप्रभाचार्यजी ने बीये बावीसे (२२२) में ओसवाल बनाये यह कथन कपोल कल्पित है, इसमें सत्यांश बिल्कुल नहीं है। जैन पट्टावली और जैन ग्रन्थों में ओसवंश स्थापना का समय महावीर निर्वाण से ७० वर्ष बाद ही लिखा मिलता है जो वास्तविक मालूम होता है।

आबू के मन्दिरों का निर्माण [illegible] पृ० २

१०—मुनि श्री ललितविजयजी जो आप सद्गुणानुरागी शान्तमूर्ति मुनि श्रीकर्पूरविजयजी महाराज के शिष्य हैं। आपने एक 'आगम सारसंग्रह' नामक वृहद्ग्रन्थ का निर्माण किया है जिसके [illegible] भाग के पृष्ठ १४३ पर लिखा है कि:—"प्रथमे आनगर नो नाम उपकेशपट्टण हतु × × श्रीपार्श्वनाथसन्तान [illegible] श्रीरत्नप्रभसूरि × राजा उपलदेव × आदिकने प्रतिबोधी १८०००० क्षत्रिय राजपुत्रो ने [illegible] विरुद्ध छे इत्यादि"

११–उवएसगच्छह मंडणउ ए गुरु रयणप्पहसूरि त, धम्मु मयाल्लइ [illegible] ॥
तसु पटलच्छीसिरिमउडो गणहर जखदेवसूरि त, हंसवेगि जसु जसु [illegible] ॥
तसु पयकमलमराललउ ए वक्कसूरि मुनिराउ त, ध्यानधनुपि जिणि भंजिय उ ए [illegible] ॥
तसु सींहासणि सोहइ ए देवगुप्तसूरि वईठु त, उदयाचलि जिम [illegible] ॥
तिह पहुपाटअलंकरणु गच्छभार धोरउ त, गजु करइ संजम तणइ ए [illegible] ॥

[illegible]

१२–सब संसार की आर्यजातियों के क्रिया कांड कराने वाले गुरु ब्राह्मण हैं जब ओसवाल जाति के साथ ब्राह्मणों का कोई भी सम्बन्ध नहीं है इसका क्या कारण है ? उत्तर के लिये [illegible] संस्कृत भाग में एक श्लोक उद्धृत किया है और इसके साथ सम्बन्ध रखने वाली बहुत [illegible] उपलब्ध होती हैं जिससे महाजनसंघ एवं उपकेशवंश की प्राचीनता स्वयं सिद्ध हो जाती है

यह तो आप पहिले पढ़ ही चुके हैं कि श्रीमालनगर से [illegible] ब्राह्मण भी उपकेशपुर में आये थे और यह बात [illegible] भी आया करते हैं क्यों कि [illegible] [illegible] 'ब्राह्मणां च [illegible] गुरुः' [illegible] [illegible] [illegible]

अधिक से अधिक टैक्स था (पंचशतीश शोड़षाधिकम्) कि जिसको साधारण लोग सुख से दे ही नहीं सकते थे। फिर भी ब्राह्मणों के साम्राज्य में वह विचारे कर भी तो क्या सकते थे ? उनको मजबूर हो देना ही पड़ता था इस कारण उन ब्राह्मणों की जुलमी सत्ता अर्थात् नादिरशाही से जनता के नाक में दम आ गया था और वह उस कष्ट से मुक्त होना चाहती थी पर इसका कोई उपाय ही नहीं था।

जब उपकेशपुर के राजा मन्त्री और नागरिक लोगों ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था तब उन ब्राह्मणों का टैक्स जनता पर ज्यों का त्यों ही रहा। कारण जैन हो गये तो क्या हुआ ? संस्कार विधान एवं जन्म विवाह और मृत्यवादि क्रिया तो करानी ही पड़ती थीं क्योंकि वह जमाना ही क्रियाकांड का था। थोड़ी २ बातों में भी उन ब्राह्मणों की खुशामद करनी पड़ती थी।

पर कहा है कि 'अतिसर्वत्र वर्जयेत' अन्याय अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो उसके पैर उखड़ ही जाते हैं। इन ब्राह्मणों के अन्याय का भी यही हाल हुआ।

एक समय मंत्री ऊहड़ किसी कार्य्यवशात् मलेच्छों के देश में गया था। वापिस लौट के आया तो ब्राह्मणों ने उद्घोषणा कर दी की ऊहड़ मंत्री मलेच्छो के देश में जाकर पतित बन आया है। अतः इसके यहाँ कोई भी ब्राह्मण क्रियाकाण्ड नहीं करावे इत्यादि। इस पर ऊहड़ ने उन विप्रों के सामने बहुत नम्रता पूर्वक लाचारी की और द्रव्य खर्च करने या ब्राह्मणों को भोजन करने के लिए कहा पर सत्ता के घमंड में ब्राह्मणों ने एक भी नहीं सुनी। अतः मंत्री कुपित हो कर सदैव के लिए जनता को इस शंकान्त से मुक्त होने का एक उपाय सोच कर अपने आदमियों को हुक्म दे डाला और उन्होंने ब्राह्मणों को खूब पीटा परन्तु ब्राह्मण हमेशा अवध्य हुआ करते हैं। तत्पश्चात् एक ऐसी घटना बनी कि ऊहड़ ने एक लक्ष यवनो को बुलाया और ब्राह्मणों के पीछे कर दिये। ब्राह्मण वहां से भाग कर श्रीमालनगर में चले गये यवनो ने भी उनका पीछा किया और चलकर श्रीमालनगर पर धावा बोल दिया। श्रीमाल नगर के महाजनों ने ब्राह्मणों से पूछा और उन्होंने सब हाल कह सुनाया। इस पर महाजनों ने ऊहड़ के पास जाकर प्रार्थना की ऊहड़ ने कहा कि यदि ब्राह्मण उपकेशपुर वासियों पर अपना हक्क छोड़ दें तो मैं उनको समझा कर वापिस लौटा सकता हूँ। बस, महाजनों के कहने से श्रीमाली ब्राह्मणों ने स्वीकार कर लिया और एक इकरारनामा लिख दिया कि आज से उपकेशपुरवासियों पर हमारा कोई हक्क नहीं है। उस दिन से उपकेशवंशियों के साथ ब्राह्मणों का सम्बन्ध टूट गया। अब उपकेशवंश वाले स्वतंत्र हैं कि अपना दिल चाहे उस ब्राह्मण से क्रियाकाण्ड करवा सकते हैं और यह रिवाज आज पर्य्यन्त चला भी आ रहा है कि संसार भर की तमाम आर्य जाति के गुरु ब्राह्मण हैं पर उपकेशवंश यानी ओसवालों के साथ ब्राह्मणों का कोई भी सम्बन्ध नहीं रहा है।

तस्मातउकेशज्ञातिनाँगुरवोब्राह्मणानहिं । उएसनगरंसर्वकररीणासमृद्धिमत् ॥
सर्वथा सर्व (नि) निर्मुक्तमुएशनगरंपरम् । तत्प्रभृतिसंजातमितिलोकप्रवीणाम् ॥१॥

(समश्च्च बचानुसार) "श्रीमाली वणिया ज्ञातिभेद पुस्तक पृष्ट ६७"

इस लेख में मंत्री ऊहड़ का जिक्र आया है। यह वही ऊहड़ है जिसने उपकेशपुर में महावीर मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई थी जिसका समय वि० पू० ४०० वर्ष का ही था।

ओसवंशोत्पत्ति विषयक शंकाओं का समाधान

ऐतिहासिक साधनों के आधार पर उपकेशवंश अर्थात् ओसवालवंशोत्पत्ति का समय निश्चित करना जटिल समस्या है। इस सम्बन्ध में जितने साधनों की आवश्यकता है; उतने साधन उपलब्ध नहीं हैं। यही बाधा भारतीय प्रत्येक विषय के इतिहास-निरूपण में उपस्थित होती है। ऐतिहासिक साधनों की न्यूनता का मुख्य कारण गत शताब्दियों में मुस्लिम शासन की अत्याचार पूर्ण धर्मान्धता ही है। उन्होंने अपने युग में भारतीय इतिहास के प्रधान साधनों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। कई उत्तम २ पुस्तक-भंडार जला दिये; भारतीय मन्दिर और मूर्त्तियों को खंडित कर दिया; अनेक कीर्तिस्तंभ एवं असंख्य शिलालेख नष्ट प्रायः कर दिये। इस प्रकार आर्य्य जनता के धार्मिक अधिकारों पर संघातिक चोट कर ऐतिहासिक साधनों को भविष्य के लिये लुप्त प्रायः कर दिया। इतस्ततः प्राप्त हुये जीर्णावशिष्ट साधनों का भी [illegible] जीर्णोद्धार करते समय लक्ष्य न देने से अलभ्य हो गया। अंततोगत्वा जो कुछ भी [illegible] विद्वानों के हाथ लगा है, उन्हीं साधनों की सहायता से इतिहास की आधार-भित्ति [illegible] है। इधर पौर्वात्य और पाश्चात्य पुरातत्त्वज्ञों और संशोधकों की शोध खोज से इतिहास [illegible] हुई है। वह अपर्याप्त होने पर भी इतिहास-क्षेत्र पर अच्छा प्रकाश डालती है। [illegible]—

१—भगवान महावीर को ऐतिहासिक पुरुष मानने में एक समय [illegible] था, परन्तु पुरातत्त्वज्ञों की खोज के पश्चात् केवल महावीर को ही नहीं अपितु प्रभु पार्श्वनाथ [illegible] ऐतिहासिक महापुरुष एक ही आवाज से स्वीकार करता है। इतना ही नहीं किन्तु अभी [illegible] काठियावाड़ प्रान्त के अन्तर्गत प्रभास पाटण नगर के एक ताम्रपत्र ने तो भगवान नेमिनाथ [illegible] ऐतिहासिक महापुरुष सिद्ध कर दिया है; जो कि श्रीकृष्ण और अर्जुन के समकालीन [illegible]

२—ऐतिहासिक प्रमाणों से मौर्य्य सम्राट चन्द्रगुप्त भी जैन सिद्ध हो चुके हैं [illegible] को लोग काल्पनिक व्यक्ति समझ बैठे थे; आज इतिहास की कसौटी पर [illegible] यही क्यों? किन्तु जो शिलालेख, स्तंभलेख एवं ताम्रपत्र इत्यादि [illegible] थे; उन सब लेखों को डाक्टर त्रिभुवनदास लेहरचंद ने इतिहास के [illegible] के सिद्ध किये हैं। इस सम्बन्ध में नागरी-प्रचारिणी पत्रिका [illegible] श्रीमान सूर्यनारायणजी व्यास ने भी [illegible] किया है कि जो शिलालेख, स्तम्भलेख, ताम्रपत्र इत्यादि [illegible] से प्रायः के [illegible]

३—[illegible]

४—[illegible]

अटारू ग्राम से प्राप्त वि० सं० ५०८ का शिलालेख जो कि इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजी की शोध खोज से प्राप्त हुआ है और आपने जिसका उल्लेख "राजपूताना की शोध खोज" नामक पुस्तक में भी किया है। इन सब साधनों के आधार पर ओसवालजाति की उत्पत्ति का समय विक्रम की दूसरी तीसरी शताब्दी स्थिर होता है और पट्टावलियों के आधार से वि० पू० ४०० वर्ष। तथा ज्यों २ शोध का कार्य विशाल रूप धारण करेगा; त्यों २ ऐतिहासिक विषयों पर अधिकाधिक प्रकाश पड़ता जायगा।

प्राय. १० वर्ष पूर्व मैंने "ओसवालजाति समय निर्णय" सम्बन्धी एक पुस्तिक लिखी थी। इस पुस्तक के द्वारा प्रस्तुत विषय पर अच्छा प्रकाश पड़ा। तथापि कुछ व्यक्तियों ने इसी विषय में कई लचर दलीलें उपस्थित की हैं, उनका समुचित समाधान करना ही मेरे इस निबंध का मुख्य उद्देश्य है।

उपकेश (ओसवाल) वंश के संस्थापक भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के छट्टे पट्टधर आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि थे। इस विषय का प्रस्तुत ग्रन्थ में विस्तृत रूप से उल्लेख किया है। आचार्य रत्नप्रभसूरि वि० पू० ४०० वर्ष अर्थात् वीर निर्वाण सं० ७० में मरुधर प्रान्त के उपकेशनगर में पधारे। अजैनों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा देकर जैन बनाये। इस नवदीक्षित जनसमूह का नाम "महाजन वंश" रख एक सुदृढ़ संस्था स्थापित की। कालान्तर में वे उपकेशनगर से अन्य प्रान्तों में जा जा कर बसने लगे। वहां वे अपने आदि स्थान के नामानुसार "उपकेशवंशी" कहलाने लगे। संभवतः यह नामसंस्कार मूल समय के पश्चात् ही चौथी शताब्दी में हुआ हो इसका एक कारण यह भी है कि महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा के पश्चात् ३०३ वर्ष में उपकेशपुर में महावीर मूर्ति के ग्रन्थीछेद का उपद्रव हुआ तब से कई उपकेशपुर के निवासी लोग उपकेशपुर का त्याग कर अन्य नगरों में जा जा कर बसने लगे और वहाँ के लोग उपकेशपुर से आने वाले को उपकेशी कहने लगे हों और बाद में उस उपकेश शब्द ने उपकेशवंश का रूप धारण कर लिया हो तो यह संभव हो सकता है। जब हम वंशावलियां देखते हैं तो उसमें भी विक्रम की दूसरी शताब्दी में उपकेशवंश के आम तौर से उल्लेख मिलते हैं इससे हमारा ऊपर का कथन और भी पुष्ट हो जाता है।

अब रही शिलालेख की बात इस विषय में यह समझना कठिन नहीं है कि उस समय शायद साधारण बातों के शिलालेख नहीं खुदाये जाते होंगे जैसे आज भी खुदाई काम होता है तो भूगर्भ से बहुत सी जैन मूर्तियां निकलती हैं उस पर शिलालेख नहीं हैं एवं सम्राट सम्प्रति के कई मन्दिर मूर्तियें इस समय मौजूद हैं पर उनमें से किसी पर शिलालेख नहीं है तथा ओसियां और कोरंटा के महावीर मूर्तियों पर भी शिलालेख नहीं है। दूसरे शायद कचित शिलालेख होंगे भी परन्तु मुस्लिम अत्याचारों से वे नष्ट हो गये होंगे*। अतः उस समय और उसके आस पास के समय में जैन समाज की करोड़ों की तादाद और उनके लाखों मूर्तियाँ बनाने पर भी आज उस समय का कोई शिलालेख नहीं मिलता है यही कारण है कि जैन शिलालेखों का समय विक्रम की नौवीं दशवीं शताब्दी से आरंभ होता है।

विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में उपकेशपुर का अपभ्रंश ओसियों नाम हुआ। इस दशा में उपकेशवंश का नाम भी रूपान्तरित हो कर "ओसवाल" होना युक्तियुक्त ही है। वर्तमान "ओसवाल"

* मथुरा का कंकाली टीला आदि का खोद काम करने से कई मूर्तियां आदि प्राचीन स्मारक मिले हैं उसमें थोड़े पर शिलालेख हैं शेष पर शिलालेख नहीं हैं।

शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शोध खोज करने पर भी दशवीं शताब्दी से प्राचीन प्रमाण नहीं मिलता है। यह स्वाभाविक ही है। जिस शब्द का प्राचीनता की दृष्टि से अभाव है, उसका अस्तित्व ढूँढ़ना मानो "पानी को मथ कर घृत निकालना है"। अतएव यह निर्विवाद स्वीकार करना चाहिये कि "महाजन-वंश" के रूप में "ओसवाल" जाति की उत्पत्ति उपकेशपुर में आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि द्वारा हुई। इस घटना के समय के सम्बन्ध में मतभेद अवश्य है। इस सम्बन्ध में नवीन विचार वाले निश्चयात्मक सिद्धान्त पर तो नहीं आये हैं. किन्तु कई प्रकार की दलीलें अवश्य किया करते हैं किसी पदार्थ के निर्णय करने में तर्क और शंकाएं उत्पन्न होना लाभप्रद ही है किंतु इसके पूर्व सत्य को स्वीकार करने की योग्यता प्राप्त करना कुछ विशेष लाभप्रद है।

पदार्थ विशेष की पूर्णतया जांच और निर्णय करने में सर्व प्रथम समय, शक्ति, अभ्यास एवं साधन जुटाना आवश्यक होता है; किन्तु दुःख है कि प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में शायद ही किसी संशोधक ने आज तक यथा-साध्य परिश्रम किया हो। इस महत्वपूर्ण विषय के सम्पादन के लिए सर्व प्रथम कर्त्तव्य तो ओसवालों का ही है। उन्हें चाहिये कि वे अपनी जाति की उत्पत्ति के विषय में शोध खोज कार्य के लिए सतर्क हों। यह लिखते हुए भी हमें दुःख होता है कि अखिल भारतीय ओसवाल महासम्मेलन ने अपने ४-५ अधिवेशनों में इस विषय के इतिहास के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया। यह उचित नहीं कि जिस समाज के उद्धार के लिए तो हम हजारों रुपयों के साथ अपनी शक्ति और समय का व्यय कर दें किन्तु उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में बिलकुल मौन रहें। कहा है कि—"मूलं नास्ति कुतः शाखा" अर्थात् जिस वृक्ष के मूल का पता नहीं; उसके अन्यान्य अङ्गों का उद्धार कैसे संभव हो सकता है ? जब सम्मेलन के विद्वानों की भी यही दशा है तो अन्य साधारण व्यक्तियों के सम्बन्ध में तो कहा ही क्या जाय ? प्रायः ओसवालवंशीय आज केवल धनोपार्जन करने में ही अपना गौरव समझते हैं; किन्तु इन्हें यह चिन्ता नहीं है कि सभ्य समाज उन्हें प्राचीन समझता है या अर्वाचीन ! आधुनिक समय की इस विषम परिस्थिति को देखते हुये यह आवश्यक हो गया है कि हम सर्व प्रथम अपने इतिहास को [illegible] करें।

उपकेश-वंश (ओसवालों) की उत्पत्ति के समय के सम्बन्ध में हमारे [illegible] को जो शंकाएँ उपस्थित होती हैं, उनका समाधान करने के पूर्व हम दो बातों का उल्लेख करना परमावश्यक समझते हैं।—एक तो कई लोगों ने हमारे पूर्वज सूर्य्यवंशी महाराजा उत्पलदेव को भ्रम से परमार जाति का उत्पलदेव समझते हुए ओसवाल जाति को दशवीं शताब्दी का निकटवर्ती समाज समझ लिया है—दूसरी बात महाजनसंघ या उपकेशवंश की उत्पत्ति के वास्तविक समय पर बिलकुल लक्ष्य न देते हुए "ओसवाल" शब्द की उत्पत्ति के समय को ही [illegible] संघ का मूल उत्पत्ति-समय समझ लिया। ये दोनों भ्रमात्मक बातें ओसवाल उत्पत्ति-समय के सत्य निर्णय में बाधक हैं। अतएव प्रथम इनका समाधान करना अतीव आवश्यक है।

उपकेशपुर नामक नगर बसाने वाले उत्पलदेव को [illegible] इतिहासज्ञ [illegible] बतलाते हैं, वस्तुतः वे परमार नहीं थे। भाट भोजकों की वंशावलियों में [illegible] प्राचीन ग्रंथ और पट्टावलियों में उत्पलदेव राजा को परमार लिखा नहीं मिलता है। हमारे उपकेशवंश का समय तो विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व का है, उस समय परमारों का अस्तित्व ही नहीं था [illegible] के बाद [illegible] थे। उसके बाद उत्पलदेव नाम के एक राजा अवश्य हुये हैं, जिनका कि समय [illegible] का है।

इन्हीं परमार जाति के उत्पलदेव को और हमारे श्रीमालनगर के राजवंश में उत्पन्न हुआ सूर्यवंश उत्पलदेव को एक ही समझ लेना यह एक अक्षम्य भूल है देखिये।

तत्र श्री राजा भीमसेनः तत्पुत्र उत्पलदेव कुमार अपर नाम श्री कुमारः तस्य बान्धवः श्री सुरसुन्दरो युवराजो राज्य भारे धुरन्धरः" ॥ "उपकेशगच्छ पट्टावली"

इस उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीमाल के राजवंश के साथ परमारवंश का कोई सम्बंध नहीं है। वंशावलियों में श्रीमालनगर के राजा भीमसैन को सूर्यवंशी कहा है। "तत्रश्रीमालनगरेसूर्यवंशी भीमसैन राजा राज्यंकरोति"। अब आगे चल कर देखिये श्रीमालनगर कितना पुराण है।

श्रीमालनगर की प्राचीनता के संबंध में श्रीमालपुराण में लिखा है:— [विमल प्रबन्ध

श्रीमाले ऽ हं निवत्स्यामि, श्रीमालं दयितं मम। श्रीमाले ये निवत्स्यन्ति, ते भविष्यन्ति मे प्रियाः"॥
श्रीकारस्थापनापूर्वं, श्रीमालेद्वापरान्तरे। श्रीश्रीमाले इतिज्ञाति, तत्स्थाने विहिता श्रिया॥
श्रीमालमितियन्नाम, रत्नमालमितिस्फुटम्। पुष्पमालंपुनर्भिन्नमालं, युगचतुष्टये॥ श्रीमाल पु॰
चत्वारि यस्यनामानि, वितन्वन्ति प्रतिष्ठितिम्। अहो! नगरसौन्दर्य्यं, महार्यं त्रिजगत्यपि॥
"इन्द्रहंस गणि कृत उपदेश कल्पवल्ली"

इस प्रकार अनेक ग्रन्थों में श्रीमालपुर (भिन्नमाल) की प्राचीनता के सम्बन्ध में प्रमाण मिलते हैं। इस नगर की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में यह कथन ठीक है कि विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में भिन्नमाल के शासनकर्त्ता परमार थे। परमार कृष्णराज के दो शिलालेख विक्रम संवत् १११३ और ११२३ के मिले हैं। इसके पूर्व भिन्नमाल नगर पर किसका राज्य था? इस विषय में पं॰ गौरीशंकरजी ओझा ने अपने राजपूताने के इतिहास के पृष्ठ ५६ पर लिखा है कि वि॰ संवत् ४०० और इसके पूर्व भिन्नमाल पर गुर्जरों का राज्य था। विक्रम की ६ ठीं शताब्दी में हूण तोरमाण पंजाब की ओर से मारवाड़ में आया, उस समय भी भिन्नमाल पर गुर्जरों का ही राज्य था। तोरमाण ने गुर्जरों को पराजित कर दिया अतएव वे गुर्जर लाट प्रान्त की ओर चले गये। उन गुर्जर लोग के नामानुसार ही उस प्रान्त का नाम गुर्जर पड़ गया। हूण तोरमाण आया था उस समय मारवाड़में नागपुर, उपकेशपुर, जावलीपुर, माण्डव्यपुर एवँ भिन्नमालादि अनेक प्रसिद्ध नगर थे। इन नगरों में से भिन्नमाल नगर को अधिक पसंद कर हूण तोरमाण ने वहीं पर अपनी राजधानी कायम की। इन प्रकरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय भिन्नमाल नगर अच्छा आबाद नगर होगा। जिस समय तोरमाण ने भिन्नमाल में अपनी राजधानी स्थापित की, उस समय वहां पर जैनाचार्य हरिदत्त एवं देवगुप्त विराजते थे। उन्होंने तोरमाण को जैनधर्म का उपदेश देकर जैनधर्मानुरागी बनाया था। और जैनधर्म का अनुरागी होकर तोरमाण ने भिन्नमालनगर में भगवान् ऋषभदेवजी का मन्दिर बनाया। अतएव इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि उस समय भिन्नमालनगर में जैन-धर्मानुयायियों की खूब अच्छी आबादी होगी इत्यादि। (कुवलयमाला कथा में)

ओझाजी के उपरोक्त लेख में यह भी लिखा मिलता है कि वि॰ सं॰ ६८५ में भिन्नमालनगर पर

चावड़ावंशियों का राज्य था। संभवतः हूणों से ही चावड़ा वंशियों ने भिन्नमालनगर का अधिकार छीन लिया होगा।

पं० हीरालाल हंसराज ने अपनी "जैनगोत्रसंग्रह" नामक पुस्तक में लिखा है कि वि० सं० २०२ में भिन्नमाल पर अजीतसिंह नामक राजा का राज था। उस समय भिन्नमालनगर अच्छी आबादी पर था; परन्तु म्लेच्छ मीर मामोची ने इस नगर पर आक्रमण कर खूब लूटा था। खैर इसके पूर्व भिन्नमाल में किसका राज्य था ? इस सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक साधन उपलब्ध नहीं है पर पट्टावलियों के अनुसार वि० सं० से ४०० वर्ष पूर्व भिन्नमाल पर सूर्य्यवंशी राजा भीमसेन का राज्य होना सिद्ध होता है।

इस प्रकार भिन्नमाल नगर की प्राचीनता सिद्ध करने के पश्चात् इस बात का स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है कि कुछ व्यक्तियों ने आबू एवं किराडू के उत्पलदेव परमार को और उपकेशपुर बसाने वाले भिन्नमाल के राजकुमार उत्पलदेव को एक ही मानने की भूल की है। पट्टावल्यादि प्रमाणों से भिन्नमाल के राजकुमार उत्पलदेव का समय वि० पू० ४०० वर्ष सिद्ध होता है। तब किसी कारणवश आबू के उत्पल-कुमार परमार को जिसका कि समय वि० की दशवीं शताब्दी है—उपकेशपुर (ओसिया) के प्रतिहारों का आश्रय लेना पड़ा हो और—पश्चात् वह वापिस अपने नगर लौट गया हो। ऐसी दशा में ऐसा अनुमान लगाना कि उत्पलदेव परमार ने ही दशवीं शताब्दी में उपकेशपुर (ओसिया) बसाया होगा, सर्वथा भूल है क्योंकि यह बात तो साधारण मनुष्य की समझ में भी आ सकती है कि जब उत्पलदेव परमार ओसियों में आकर प्रतिहारों की शरण में रहा था तब ओसियां उस समय से कितना प्राचीन होगा कि जिसमें उत्पलदेव परमार ने आकर आश्रय लिया था।

दूसरे ओसियों के महावीर मन्दिर में वि० सं० १०१३ का शिलालेख लगा हुआ है उसमें लिखा है कि—

तस्या कार्पात्कल प्रेम्णालक्ष्मणः प्रतिहारताम् ततोऽभवत् प्रतीहार वंशोयम् समुन्नतः ॥६॥ तद्वंशे सवशी वशीकृत रिपुः श्रीवत्सराजोऽभवत्कीर्तिर्यस्य [illegible] स्वारिणी नास्मिन्मानि सुखेन विश्व विवरे नत्येव तस्मादहि [illegible] कार्प्यीन्मनुः ॥ ७ ॥ समुदा समुद्रायेन महता चमूःपुरा पराजिता येन ··········· ॥ ८ ॥ ··········समदारण तेनावनीशेन कृता भिरक्षैः सह ब्राह्मण [illegible] पृथिव्यामुपकेशनामास्ति पुरं गरीयः ॥ ९ ॥

इस शिलालेख में उपकेशपुर में प्रतिहार वत्सराज का राज होना लिखा है। [illegible] का समय विक्रम की आठवीं शताब्दी का है अतः आठवीं शताब्दी में उपकेशपुर [illegible] यह आठवीं शताब्दी में ही नहीं बसा था पर इस समय से भी बहुत प्राचीन [illegible] विक्रमपूर्व चारसौ वर्ष से भी पूर्व बसा लिखा है। [illegible] वि० की दशवीं शताब्दी में ओसियां बसाई थी [illegible] को परमार समझ लेने से ही हुई हो तो इस लेख से संशोधन कर लेना परम आवश्यक है।

दूसरी शंका उपकेशवंश का नाम [illegible] स्पष्ट हुई है। इस सम्बन्ध में [illegible]

और कैसे हुई ? अनेक प्रमाणों के आधार से यही स्पष्ट होता है कि ओसवाल शब्द की उत्पत्ति ओसियां नगरी से ही हुई। ओसियाँ उपकेशपुर का अपभ्रंश शब्द है और इस शब्द की उत्पत्ति का समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के आस पास का है। इसके पूर्व इस नगर का नाम उपकेशपुर और जाति का नाम उएस-ऊकेश और उपकेश था। जैसे —

क—"उएस" यह मूल शब्द है और उसवाली भूमि का द्योतक है, अर्थात् जिस भूमि पर ऊस (ओस का पानी) पड़ता हो उसे ओस अर्थात् उएस कहते हैं। इस भूमि पर जो शहर आबाद हुआ वह उसपुर-ओसपुर उएसपुर कहलाया।

ख—प्राकृत भाषा के लेखकों ने "उएस" शब्द को ग्रन्थबद्ध करने में "ऊकेसपुर" प्रयुक्त किया है।

ग—संस्कृत के रचयिताओं ने अपनी सुविधा के लिये "ऊकेसपुर" को "उपकेशपुर" शब्द के रूप में परिवर्तित कर दिया। प्राचीन ग्रन्थों में इसका नाम उएश, ऊकेश और उपकेशपुर ही मिलता है। यथा:—

"समेत मेतत प्रथितं पृथिव्यामूकेश नामास्ति पुरं" ॥ — ओसिया मंदिर का शिलालेख वि० सं० १०१३ का

"कदाचिदुपकेशपुरेश्वरयःसमवासरन्, वा यादृग तन्नगरंयेन, स्थापितं श्रूयतां तथा" — उपकेशगच्छ चरित्र

"अस्तिअस्तिचव्यक्रद् भूमेर्मरुदेशस्यभूषणम्। निसर्गसर्गसुभगमुकेशपुरं वरम्" — ना० जि० श्लोक १८

"अस्ति उपकेशपुरंनगरं, तत्रोत्पलदेवनरेशोराज्यंकरोति। — उपकेशगच्छ पट्टावली

पूर्वोक्त प्राचीन शिलालेखों व ग्रन्थों में सर्वत्र उएस ऊकेश या उपकेशपुरके नाम का ही उल्लेख मिलता है; परन्तु किसी भी स्थान पर ओसियां शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होता। इससे यह निश्चय होता है कि जिसको आज हम ओसियां कहते हैं; उसका मूल नाम ऊकेस या उपकेशपुर ही था और इसी उपकेशपुर के नामानुकूल यहां के निवासियों का नाम उपकेशवंश हुआ है। यद्यपि कालांतर में तत्कालीन कारणों से गोत्र एवं जातियों के पृथक् पृथक् नाम पड़ गये; किन्तु अद्यावधि इन जातियों के आरम्भ में वही मूल नाम उएस ऊकेस, अथवा उपकेशवंश लिखने की पद्धति विद्यमान है। प्रमाणस्वरूप अनेकों शिलालेख इस समय भी विद्यमान हैं। देखिये इसी ग्रन्थ के पृष्ठ १३६ पर।

जब उपकेशपुर का अपभ्रंश "ओशियां" हुआ, तब से कहीं २ ओसवंश (ओसवाल) शब्द का भी उल्लेख हुआ है पर वह बहुत थोड़े प्रमाण में और वह भी वि० १२ वीं शताब्दी के समीपवर्ती समय में दृष्टिगत होता है जैसे—

"सं० १२१२ ज्येष्ठ वदि ८ भौमे श्रीकोरंटगच्छे श्रीनन्नाचार्य संताने श्री ओसवंशे मंत्रि धाभूकेन श्रीविमलमंत्री हस्तीशालायाँ श्रीआदिनाथ समवसरणं कारयाँ चक्रे श्रीनन्नसूरिपट्टे श्रीकक्कसूरिभिः प्रतिष्ठितं वेलापहन्नी वास्तव्येन। — "सं० जिनविजयजी सं० शि० द्वि० लेखांक २४८

इससे पूर्व ओसवाल शब्द का प्रयोग कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है।

उपरोक्त ऐतिहासिक प्रमाणों से यही प्रमाणित होता है कि ओसवाल शब्द मूल शब्द नहीं है; अपितु

इस स्थान पर हमने समय का निर्णय न करके केवल प्राचीनकाल से व्यवहार में "स" या उपकेश शब्द की व्यवहारिकता को ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

उपकेश शब्द का अपभ्रंश है । प्राचीन कालमें जो जैन धर्मानुयायी उपकेशवंशीय थे वे ही आज ओसवाल नाम से विख्यात हैं । ओसवाल शब्द की प्रसिद्धि का प्रारम्भ वि० की ११ वीं शताब्दी के निकट होता है ।

श्रीमान बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर अपने जैन लेखसंग्रह तृतीयखंड के पृष्ठ २५ पर "ओसवाल ज्ञाति" नामक लेख में लिखते हैं कि :—

"इतना तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि "ओसवाल" में ओस शब्द ही प्रधान है। 'ओस' शब्द भी उएश शब्द का रूपान्तर है और उएश शब्द उपकेश (संस्कृत रूप) का प्राकृत रूप है । इसी प्रकार मारवाड़ के अन्तर्गत "ओसियां" नामक स्थान भी उपकेशनगर का ही रूपान्तर है। जैनाचार्य रत्नप्रभसूरि ने वहां के राजपूतों से जीवहिंसा छुड़ा कर उन्हें दीक्षित किया । पश्चात वे राजपूत लोग उपकेश अर्थात् ओसवाल नाम से प्रसिद्ध हुये ।"

श्रीमान् बाबूजी का कथन भी ऊपर के प्रमाणों से सर्वथा मिलता है। अतएव यह सिद्ध होता है कि "ओसिया" शब्द उपकेश का ही अपभ्रंश है । और इस नगर को बसाने वाले श्रीमालनगर के राजकुमार उत्पलदेव के साथ पँवार (परमार) शब्द किसी स्थान पर नहीं है । अतएव जिन्हें आज हम ओसियां कहते हैं प्राचीन समय में उपकेशनगर था और जिसको आज हम ओसवाल कहते हैं; प्राचीन [illegible] में उन्हीं का मूलनाम उपकेशवंश था ।

उपरोक्त दोनों बातों का निर्णय करने पर हमें इस सारांश को लक्ष्य में लेना चाहिये कि—

१—ओसवाल शब्द की प्राचीनता के सम्बन्ध में विक्रम की ११ वीं शताब्दी से पूर्व [illegible] करने में अपने समय को व्यर्थ व्यय न करें और न इस विषय की व्यर्थ दलीलो द्वारा दूसरो का [illegible] करें । कारण, ओसवाल शब्द मूल नहीं अपितु उपकेश शब्द का अपभ्रंश है । [illegible] ११ वीं शताब्दी से पूर्व इस जाति की प्राचीनता के प्रमाण ढूंढने हो वे "उपकेशवंश" के नाम का [illegible]; क्योंकि ग्यारहवीं शताब्दी से पूर्व इस ओसवाल जाति का यही नाम प्रचलित था । और [illegible] रहे कि उपकेशवंश की प्राचीनता साबित हो जायगी तब ओसवाल जाति की प्राचीनता [illegible] सिद्ध हो जायगी; क्योंकि एक ही जाति के समयानुसार दो नाम व्यवहार में आते है ।

२—दूसरा निष्कर्ष-कि उपकेशपुर बसाने वाले श्रीमाल (भिन्नमाल) नगर के राजकुमार उत्पलदेव और हैं तथा आबू के उत्पलदेव परमार और हैं। दोनो के समय में १४०० वर्ष का अन्तर है । अतएव कोई भी व्यक्ति उपकेशपुर बसाने वाले श्रीमाल नगर के राजकुमार उत्पलदेव को [illegible] समझने की भूल न करें । कारण, वे वस्तुतः परमारवंशी नहीं पर सूर्यवंशी थे । केवल [illegible] के [illegible] होने से कई इतिहासानभिज्ञ मनुष्यो ने एक ही समझने की भूल की है [illegible] हुई है; किन्तु भविष्य के लिये वे शंकाएं निर्मूल हो जावें, इसी [illegible]

अब हम यहाँ पर बतलाना आवश्यक समझते हैं कि [illegible] ओसवाल जाति की उत्पत्ति के विषय किस प्रकार की शंकाएं करते हैं और [illegible] है या [illegible] है [illegible]

शंका नं० १—[illegible]

[illegible]

[illegible]

समाधान—'मुनोयत नैणसी की ख्यात' में किसी भी स्थान पर यह नहीं लिखा है कि आबू के उत्पलदेव परमार ने ओसियां बसाई; किन्तु नैणसी की ख्यात से तो ओसियां की उल्टी प्राचीनता ही सिद्ध होती है। देखिये "नैणसी की ख्यात" प्रकाशक काशीनगरीप्रचारिणी सभा पृष्ठ २३२ पर लिखा है कि:—

"धरणी वराह का भाई उत्पलराय किराडू छोड़ कर ओसियां में जा बसा। सचियाय देवी प्रसन्न हुई और धन-माल दिया। ओसियाँ में देवल कराया।" इसकी टिप्पणी में लिखा है कि "वसंतगढ़ से प्राप्त हुये सं० १०९९ के परमारों के शिलालेख से पाया जाता है कि उत्पल राजा धरणीवराह का भाई नहीं किन्तु परदादा था, जिसका समय दशवीं शताब्दी के आरम्भ में होना चाहिये।"

इस प्रमाण से यही प्रमाणित होता है कि ओसियां नगर उत्पलदेव परमार के पूर्व भी समृद्धि-सम्पन्न नगर था। इसी कारण उत्पलदेव परमार ने किराडू छोड़ कर ओसियां में निवास किया। यहां केवल शंका का ही समाधान है। ओसियां कितनी प्राचीन है, यह हम आगे चल कर सिद्ध करेंगे। तात्पर्य यह है कि शंका करने वालों को पहले ग्रंथ का पूर्वापर सम्बन्ध देख लेना चाहिये ताकि उभय पक्ष के समय शक्ति का अपव्यय न हो।

शंका नं० २—भगवान् श्रीपार्श्वनाथ की परम्परा में रत्नप्रभसूरि नाम के ६ आचार्य हुए हैं। यदि ओसवाल वंश के संस्थापक अंतिम रत्नप्रभसूरि मान लिये जायं तो क्या आपत्ति है ? इनका समय वि० की पांचवीं शताब्दी का है। यह समय ऐतिहासिक प्रमाणों से ओसवाल जाति की उत्पत्ति के समय से मिलता जुलता है। अतः अनुमान किया जा सकता है कि ओसवंश के संस्थापक अन्तिम रत्नप्रभसूरि हैं ?

समाधान—भगवान् श्रीपार्श्वनाथ की परम्परा में रत्नप्रभसूरि नाम के ६ आचार्य हुये और अंतिम रत्नप्रभसूरि का समय ५ वीं शताब्दी का है, यह सत्य है। अतः कुछ समय के लिये मान भी लिया जाय कि ओसवालजाति के आद्यसंस्थापक अंतिम रत्नप्रभसूरि हैं फिर भी इस समय के सम्बन्ध में प्रमाण देने के लिये तो प्रश्न हमारे सामने ज्यों का त्यों खड़ा ही रहेगा न ? आद्यरत्नप्रभसूरि और अंतिम रत्नप्रभसूरि के बीच ९०० वर्षों का अन्तर है। अंतिम रत्नप्रभसूरि के समय के तो अनेकों ग्रन्थ आज भी मिलते हैं; परन्तु किसी भी ग्रन्थ या शिलालेख में यह पता नहीं चलता कि वि० की ५ वीं शताब्दी में अन्तिम रत्नप्रभसूरि ने ओसवालवंश की स्थापना की हो, क्योंकि उस समय का इतिहास इतने अंधेरे में नहीं है। कारण, अन्तिम रत्नप्रभसूरि के समकालीन एवं आस पास के समय में हुए अन्याचार्यों के विषय पट्टावल्यादि ग्रन्थों में बहुत उल्लेख मिलते हैं। जब अन्तिम रत्नप्रभसूरिजी द्वारा एक प्रांत में इतना बड़ा परिवर्तन हो जाना और इस परिवर्तन के सम्बन्ध में उस समय के बने हुये ग्रंथों में गंध तक नहीं मिलना, यही प्रमाणित करता है कि यह घटना तत्कालीन ग्रंथ रचना के पूर्व सैंकड़ों वर्षोंकी होनी चाहिये। अन्यथा इतना महान परिवर्तन जो लाखों मनुष्य एक धर्म को छोड़ दूसरे धर्म की दीक्षा ले कदापि छिपा हुआ नहीं रह सकता। अतएव जिनके सम्बन्ध में प्रमाण की गन्ध तक न मिले उन्हें केवल कल्पना एवं अनुमान मात्र से ओसवाल वंश का संस्थापक मान लेना और आद्य रत्नप्रभसूरि के सम्बन्ध में अनेक प्रमाण मिलने पर भी उनको न मानना यह दुराग्रह के सिवाय क्या है ? उन प्रमाणों को लिखने की आवश्यकता नहीं क्योंकि यह वृहद् ग्रंथ प्रमाण रूप में ही लिखा गया है, एवं आद्योपान्त पठन करने के पश्चात् पाठक स्वयं ही निर्णय कर सकेंगे।

शंका नं० ३—ओसवाल बनाने के समय ओसियां में महावीर का मंदिर बना। उसी मंदिर में एक

प्राचीन शिलालेख लगा हुआ है। शिलालेख का समय वि० सं० १०१३ का है इससे अनुमान हो सकता है कि ओसवालोत्पत्ति का समय दशवीं, ग्यारहवीं शताब्दी का ही हो।

समाधान—यह शंका केवल शिलालेख का संवत् देख कर ही की गई है न कि लेख को आद्योपान्त पढ़ कर। यदि सम्पूर्ण लेख दृष्टि में निकाल लिया होता तो इस शंका को स्थान नहीं मिलता। यही शिलालेख श्रीमान् बाबू पूर्णचन्दजी संपादित शिलालेख संग्रह प्रथमखंड लेखांक ७८८ में ज्यों का त्यों मुद्रित हुआ है। शिलालेख खंडित है फिर भी शेष भाग को भी ध्यानपूर्वक पढ़ने पर यह स्वयं स्पष्ट हो जाता है कि वह लेख न तो ओसवालों की उत्पत्ति का है, और न महावीर के मंदिर की मूल प्रतिष्ठा का ही, न किसी मंदिर बनाने वाले का, न प्रतिष्ठा करने वाले आचार्य का नाम है। इस लेख से तो ओसियां का अधिक प्राचीनत्व सिद्ध होता है। इस शिलालेख में ओसियों में प्रतिहारों का राज्य होना लिखा है; जिसमें वत्सराज प्रतिहार की बहुत प्रशंसा की गई है, (देखो पृष्ठ १७९) तदनुसार विक्रम की ८ वीं शताब्दी में ओसियां वत्सराज के राजत्वकाल में एक ऐश्वर्यशाली नगर सिद्ध होता है। अतएव यह शिलालेख भी इस नगर की प्राचीनता प्रमाणित करता है यह शिलालेख स्थान २ पर अत्यन्त खंडित हो गया है। [illegible] इसके कुछ आवश्यक अंग पाठकों की जानकारी के लिये हम यहां उद्धृत करते हैं:—

× × × प्रकट महिमा मण्डपः कारितोऽत्र × × भूमण्डनो [illegible] पूर्णानां [illegible]
त्रिभाग विकलासन् गोष्ठिकानु × × × तेन जिनदेवधाम [illegible] पुनरमुना [illegible] × × [illegible]
संवत्सर दशशत्यामधिकायां वत्सरैस्त्रयो दशभिः फाल्गुन शुक्ल तृतीय × × [illegible]

इन खंडित वाक्यांशों से यह वृत्तांत ज्ञात होता है कि जिनदेव नामक [illegible] ने वि० सं० १०१३ फाल्गुन शुक्ला तृतीया को किसी मंदिर के रंगमंडप का जीर्णोद्धार करवाया, पर यह ज्ञात नहीं होता है कि यह शिलालेख किस मंदिर का है ? क्योंकि प्रस्तुत शिलालेख दूसरे मंदिरों के खण्डहरों से प्राप्त हुआ था और इसकी रक्षा के निमित्त महावीर मंदिर में लगा दिया गया था।

यदि इस मंदिर को १०१३ में बना हुआ मान लें तो एक आपत्ति हमारे सामने [illegible] जाती है कि वह हमें महावीर मंदिर को १०१३ में बनना मानने से बाध्य करती है और वह यह है कि —

"आचार्य कक्कसूरि के समय मरकी का उपद्रव हुआ था इस समय महावीर मंदिर में [illegible] पदा पर भगवान शान्तिनाथ की मूर्ति स्थापन की थी इस विषय का एक शिलालेख भी मिलता है

"ॐ संवत् १०११ चैत्र सुदी ६ श्री ककुदाचार्य शिष्य देवदत्तगुरुणा [illegible]
[illegible] चैत्यपदे शान्तिप्रतिमा स्थापनीय [illegible]

भला महावीर का मंदिर वि० सं० १०१३ में ही बना होता तो इसके [illegible] में शान्तिनाथ की मूर्ति कैसे स्थापन करवाई जाती। अतः स्पष्ट महावीर का मंदिर १०१३ में नहीं पर [illegible]
[illegible]

शिलालेख महावीर मंदिर का नहीं अपितु जिनदेव नामक श्रावक द्वारा किसी मंदिर के टूटे हुये रंगमंडप के जीर्णोद्धार से सम्बन्ध रखता है। अतएव इस शिलालेख के द्वारा ओसवालवंशोत्पत्ति के समय का अनुमान करना केवल कल्पना मात्र ही है।

शंका नं० ४—कल्पसूत्र में भगवान महावीर से १००० वर्ष तक के आचार्यों की नामावली मिलती है; इस नामावली में न तो रत्नप्रभसूरि का नाम है और न ओसवाल बनाने का उल्लेख है। इससे अनुमान होता है कि इस समय के बाद किसी समय में ओसवालों की उत्पत्ति हुई होगी।

समाधान—श्रीकल्पसूत्र भद्रबाहुकृत है और इसकी स्थविरावली देवऋद्धिगणि क्षमाश्रमण के समय की है; जिनका कि समय ५ वीं शताब्दी का है। श्रीमान देवऋद्धिगणि क्षमाश्रमण ने महावीर से १००० वर्षों का सबका सब इतिहास नहीं लिखा, परन्तु उन्होंने केवल अपनी गुरुआवली लिखी है। भगवान महावीर के समय में दो परम्परायें थीं १—पार्श्वनाथ परम्परा २—महावीर परम्परा। देवऋद्धि क्षमाश्रमण महावीर की परम्परा में थे। आचार्य वज्रसैनसूरि के ४ शिष्यों से चार शाखायें उत्पन्न हुई। उनमें से एक शाखा में क्षमाश्रमणजी थे अतः आपने केवल एक अपनी शाखा की गुरुआवली का उल्लेख कल्पसूत्र में किया है। जब कि श्री क्षमाश्रमणजी कृत कल्पस्थविरावली में महावीर परम्परा और चन्द्रकुलादि समयोचित विषयों का ही इतिहास नहीं मिलता है तो पार्श्वनाथ परम्परा एवं उपकेशगच्छ के लिये तो कल्पसूत्र में स्थान कहां से मिले ? इससे यह तो नहीं कहा जा सकता कि जिस घटना का उल्लेख कल्पसूत्र की स्थविरावली में न हो वह ऐतिहासिक घटना ही नहीं। भला सम्राट सम्प्रति एवं खारवेल वगैरह का महत्वपूर्ण इतिहास है और कल्प स्थविरावली में उनकी गन्ध तक भी नहीं है इसको हम मानते हैं या नहीं ? यदि मानते हैं तो फिर केवल ओसवंश और रत्नप्रभसूरि के लिये ही विरोध क्यों ? खैर। यह शंका तो ओसवाल बनाते की है; परन्तु कल्प स्थविरावली में तो पार्श्वनाथ परम्परा का नाम भी नहीं है, तथापि यह निर्विवाद सिद्ध है कि महावीर के समय के पहिले से ही पार्श्वनाथ की परम्परा विद्यमान थी। अतएव यह शंका निर्मूल है। इससे ओसवालोत्पत्ति की प्राचीनता में आक्षेप नहीं किया जा सकता है।

शंका नं० ५—ओसवालों में प्रथम अठारह गोत्रों का निर्माण हुआ बताया जाता है एवं वे अठारह जाति के राजपूतों से बने हैं। इन अठारह जाति के राजपूतों के सम्बन्ध में एक कवित्त भी कहा जाता है कि:—

"प्रथम साथ पंवार १ शेष शिशोदा २ शृंगाला,
रणथंभा राठौर ३ वसंच ४ बालचचाला ५
दइया ६ भाटी ७ सोनीगरा ८ कच्छावा ९ धनगौड़ १० कहीजे,
जादव ११ जाला १२ जिंद १३ लाज मरजाद लहीजे ॥
खरदरा पाट ओपे खरा लेणा पाटज लाखरा,
एक दिन एते महाजन भये, शूरा बड़ी बड़ी साखरा ॥

इस कवित्त में कई जातियों के नाम रह भी गये हैं, फिर भी ये जातियां इतनी प्राचीन नहीं हैं जितना कि पट्टावलियों में ओसवालोत्पत्ति का समय मिलता है। अतः इस कवित्त के आधार पर इन ओसवाल जाति की उत्पत्ति दशवी ग्यारहवीं शताब्दी के आस पास की समझते हैं।

समाधान—यह कवित्त स्वयं अपने को अर्वाचीन साबित करता है तथा किसी भी प्राचीन ग्रन्थ, पट्टावलियों एवं वंशावलियों में यह कवित्त दृष्टिगोचर नहीं होता। इसके अतिरिक्त शंकाकर्ताओं को जरा यह भी विचारना चाहिये था कि यदि ओसवालोत्पत्ति दशवीं शताब्दी में भी मानली जाय तो भी यह कवित्त तो समय और भाषा की दृष्टि से अर्वाचीन ही ठहरता है। इसी प्रकार इस कवित्त में उल्लिखित राजपूतों की जातियें वि० की पांचवी शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी में पैदा हुई हैं। तब तो इस कवित्त के आधार पर ओसवालोत्पत्ति का समय भी वि० की १७ शताब्दी का ही समझना चाहिये।

इस कवित्त के अनुसार क्या आपकी अन्तरात्मा इस बात को मंजूर करने को तैयार है कि ओसवालों की उत्पति वि० की १७ वीं शताब्दी में हुई होगी ? नहीं, कदापि नहीं।

जरा चश्मा उतार कर देखना चाहिये कि आचार्य रत्नप्रभसूरि के समय न तो इन राजपूत जातियों का अस्तित्व ही था और न उन्होंने अठारह गोत्र स्थापित ही किये थे। सूरिजी का उद्देश्य तो भिन्न २ जातियों के टूटे हुये शक्ति तंतुओं को संगठित करने का था और वास्तव में उन्होंने ऐसा ही किया था। पश्चात् भिन्न २ कारण पाकर गोत्रों का निर्माण हुआ है जैसे कि वीरप्रभु से ३७३ वर्ष उपकेशपुर में महावीर

राजपूतों की १८ जातियां	समय	ओसवालों के १८ गोत्र	समय
१—परमार	विक्रम की नवी शताब्दी	तप्तभट्ट—तातेड़	[illegible]
२—शिशोदा	वि० १४वी शताब्दी	बाप्पनाग—बाफना	
३—राठौर	वि० ६ठी शताब्दी	कर्णाट—करणावट	
४—वासंचा	अप्रसिद्ध	बलाह—रांका बांका	
५—चालेचा	,,	मोरख—पोकरणा	
६—दइयों	वि० की १६वीं शताब्दी	कुलहट	
७—भाटी	वि० की ४थी शताब्दी	वीरहट	
८—सोनीगरा	वि० की १३वीं शताब्दी	श्रीश्रीमाल— प्रसिद्ध	
९—कछावा	वि० की ८वीं शताब्दी	श्रेष्टि—वैद्यमेहता ,,	
१०—गोड़	वि० की १२वीं शताब्दी	सुचंती—संचेती ,,	
११—जादव	प्राचीन	आदित्यनाग—चोरड़िया ,,	
१२—झाला	वि० १०वी शताब्दी	भूरि—भटेवरा ,,	
१३—जिन्द	वि० अप्रसिद्ध	भाद्र—समदड़िया ,,	
इस कवित्त में राजपूतों की कुल १३ जातियां बताई हैं परन्तु ओसवालों के गोत्र १८ हैं। इसके लिये शंकाकर्ता क्या उत्तर देवेंगे।		चींचट—देसरड़ा ,,	
		कुम्भट— ,,	
		कनौजिया— ,,	
		डिडू—कोचर मेहता ,,	
		लघुश्रेष्टि—[illegible]	

मूर्ति के ग्रन्थ छेद का एक उपद्रव हुआ। उस समय शान्ति स्नात्र पूजा पढ़ाई गईथी। उस पूजा में ९जीमणे और ९ डाइ ओर स्नात्रिये बनाये गये थे, उनका उल्लेख ग्रन्थों,में मिलता है कि वे १८ स्नात्रिये १८ गोत्र के थे, पर यह निश्चय नहीं कहा जा सकता कि उस समय १८ गोत्र ही थे ? खैर यहां पर देखना तो यह है कि १८ गोत्रों और राजपूतों की उपरोक्त १८ जातियों का आपस में क्या सम्बन्ध है।

राजपूतों की १३ जाति और ओसवालों के १८ गोत्रों की ऊपर दी हुई इस तालिका से पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं कि इनमें न तो समय की समानता है और न किसी शब्द की समानता है। फिर समझ में नहीं आता है कि ऐसी अर्थशून्य निःसार दलीलें करके जनता में व्यर्थ भ्रम क्यों पैदा किया जाता है ? यह तो केवल "परेश्वर्य दर्शने असहिष्णु" बुद्धि काही प्रदर्शन करना है। अस्तु ऐसे निस्सार कवित्तों पर विश्वास करना अज्ञता का ही द्योतक है। ओसवालों के १८ गोत्रों की सृष्टि हुई है उसमें निम्न लिखित कारण हैं जैसे कि:—

१—तप्तभट्ट—यह एक प्रसिद्ध पुरुष के नाम पर गोत्र हुआ है जिसको आज तातेड़ कहते हैं।

२—वाप्पनाग—यह नागवंशी राव वाप्पा की स्मृति में गोत्र बना है जिसको आज बाफणा-बहुफणा कहते हैं और नाहटा जांघड़ा बैताला दफ्तरी वालिया और पटवा आदि इनकी शाखायें हैं।

३—कर्णाट—यह कर्णाट प्रान्त से आया हुआ समूह का नाम है।

४—बलाह—वह एक वलाहनगर से आये हुये जत्थे का नाम है। रांका बांका सेठ इनकी शाखा है।

५—श्रीश्रीमाल—यह श्रीमालनगर से आये हुए लोगों का गोत्र है।

६—आदित्यनाग—यह आदित्यनाग नामक नागवंशी उदार एवं वीर पुरुष के नाम पर गोत्र हुआ है। चोरड़िया, गुलेच्छा, पारख, सामसुखा और गदइया आदि इनकी शाखायें हैं।

७—माता भूरि के नाम पर भूरि गोत्र कहलाया।

८—कन्नोज से आये हुये कनौजिया कहलाये।

९—कुमट का व्यापार करने से कुमट कहलाये।

१०—संघ में श्रेष्ट काम करने से श्रेष्टि कहलाये।

११—संचय करने से संचेती कहलाये।

इत्यादि कारणों से महाजन संघ के गोत्र बन गये और इन गोत्रों में ज्यों २ वृद्धि होती गई त्यों २ इनकी शाखायें फैलती गई। इनके अलावा बाद में भी जैनेतरों को जैन बनाये गये और इसी प्रकार कारणों से उनके भी गोत्रों का नाम संस्करण होता गया।

इस कथन से पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि पूर्वोक्त कवित्त में बतलाई हुई राजपूतों की १३ जातियों के साथ ओसवालों के १८ गोत्रों का क्या सम्बन्ध है ? कुछ भी नहीं, क्योंकि ओसवालों के १८ गोत्रों का समय वि० पू० ४०० वर्षों का है। तब राजपूतों की पूर्वोक्त १३ जातियों का समय वि० की चौथी से सत्तरहवीं शताब्दी का है तथा राजपूतों की जातियों के कारण कुछ और ही हैं।

समझ में नहीं आता है कि ओसवालजाति का इतिहास लिखने वाले महाशयजी ने इतनी बड़ी भूल क्यों की होगी कि एक कल्पित कवित्त को अपनी ऐतिहासिक किताब में उद्धृत कर अपना खुद का तथा दूसरों का समय शक्ति और द्रव्य का व्यर्थ व्यय क्यों किया होगा।

शंका नं० ६—ओसवालों की उत्पत्ति के समय के सम्बन्ध में कुछ व्यक्ति विक्रम की ८ वीं कुछ दशवीं और कुछ ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी का अनुमान करते हैं। और कहते हैं कि इस विषय के प्रमाण तो हमारे पास कुछ भी नहीं हैं, परन्तु ओसवाल जाति के शिलालेखादि कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलते हैं अतः अनुमान किया जा सकता है कि ओसवाल जाति की उत्पत्ति विक्रम की ८ वीं १० वीं या ११ वीं शताब्दी में हुई होगी ?

समाधान—पहिले ही हम सिद्ध कर चुके हैं कि 'ओसवाल' शब्द इस जाति की उत्पत्ति के समय का नहीं है बल्कि 'महाजनसंघ' और उपकेशवंश शब्दों का रूपान्तरित नाम है। इस रूपान्तरित नामकरण का समय वि० की ११ वीं शताब्दी है। इसलिए इस ओसवाल शब्द के सम्बन्ध में ११ वीं शताब्दी से पूर्व शिलालेख इत्यादि ऐतिहासिक साधन खोजना व्यर्थ है। क्योंकि जिस नाम का प्राचीन काल में जन्म ही न हुआ हो उसका अस्तित्व मिले ही कहां से ?

आज-कल कई लोगों को यह एक प्रकार का चेपी रोग लग गया है कि वे स्वयं तो कुछ परिश्रम करते नहीं हैं; किन्तु प्रत्येक वस्तु के लिए कह उठते हैं कि अमुक वस्तु को हम नहीं मानते क्यों कि इसके प्रमाण के लिए शिलालेख नहीं मिलते हैं। तो क्या जिनका शिलालेख नहीं मिले, वे सब घटनाएँ असत्य ही समझी जाती हैं ? साथ ही जो लोग ओसवालों की उत्पत्ति वि० की ८ वीं, १० वीं एवं ११ वीं शताब्दी की कहते हैं; क्या वे शिलालेखादि ऐतिहासिक साधनों एवं प्रमाणों से प्रमाणित कर सकते हैं ? [illegible] [illegible] दन्त कथनमात्र के अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं है।

वि० की ८ वीं से १० वीं शताब्दी तक का इतिहास इतना अंधेरे में नहीं है कि [illegible] बड़ा जबरदस्त परिवर्तन अर्थात् लाखों मनुष्यों का धर्म परिवर्तन हो जाय और इस परिवर्तन के सम्बन्ध में उस समय या उसके बाद के साहित्य में गन्ध तक न मिले; यह कदापि सम्भव नहीं है [illegible] समय की साधारण घटनाओं के लिये बड़े २ ग्रन्थ निर्माण हो चुके हैं। जैसे कि:—

१—आचार्य हरिभद्रसूरि ब्राह्मण धर्म से जैनधर्म में आए। ऐसी तत्कालीन [illegible] का विस्तृत वर्णन जैनसाहित्य में उपलब्ध होता है। आपका समय जैनग्रन्थों के [illegible]

२—आचार्य बप्पभट्टसूरि ने ग्वालियर के राजा आम को प्रतिबोध देकर जैन बनाया [illegible] एक रानी की संतान ओसवंश में मिल गई, जिसका गोत्र राजकोठागार हुआ जो कि [illegible] एक अंग है। इस घटना का उल्लेख भी जैन साहित्य में [illegible] समय विक्रम की ९ वीं शताब्दी का प्रारम्भिक काल है।

३—आचार्य [illegible] ने [illegible] [illegible] में पाटण नगर बसाया। जिसका उल्लेख भी इसी काल के ग्रन्थों में मिलता है।

४—आचार्य [illegible] ने [illegible]

[illegible] को जैन बनाया इत्यादि [illegible]

५—[illegible]

[illegible] इत्यादि। [illegible]

शताब्दी का है।

६—प्रखर पंडित श्रीमान् द्रोणाचार्य्य के शिष्य सूराचार्य्य ने धारा नगरी में जा कर राजा भोज सभा के पंडितों को मंत्रमुग्ध कर दिया। इस वृतान्त के सम्बन्ध में ग्रन्थों में विस्तृत प्रमाण मिलते । इनका समय विक्रम की ११ वीं १२ वीं शताब्दी का निकटवर्ती है।

७—आचार्य उद्योतनसूरि ने अपने शिष्यों को वट-वृक्ष के नीचे सूरिपद दिया; उसी दिन से बड़ग की स्थापना हुई। इसका उल्लेख तत्कालीन ग्रन्थों में मिलता है। इस घटना का समय १०वीं शताब्दी का।

इत्यादि अनेक प्रमाण उस समय के साहित्य में विद्यमान हैं इतना ही क्यों पर साधारण से सा रण घटनाओं के सम्बन्ध में भी विस्तृत वर्णन किया गया है। ऐसी दशा में आठवीं, दशवीं, ग्यारहवीं शता में अनुमानतः माने गये लाखों मनुष्यों के धर्म परिवर्तन के संबंध में किसी भी ग्रन्थ में कुछ भी उल्लेख मिलना आपके अनुमान को कल्पित प्रमाणित करता है और साथ में यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाता कि ओसवाल जाति (उपकेशवंश-महाजनसंघ) की उत्पत्ति न तो वि० की ८ वीं शताब्दी में हुई और १० वीं ११ शताब्दी में हुई। पर इस घटना का समय इतना प्राचीन है कि जिस समय जैनों का कोई इतिहास व दूसरी घटना पुस्तकारूढ नहीं हुई थीं और न उस समय का कोई शिलालेख ही मिलता है उस समय के आचार्य एवं मुनिवर्ग सब ज्ञान को कंठस्थ ही रखते थे और अपनी शिष्य परम्परा को भी यह शिक्षा दी जाती थी कि वे गुरु परम्परा से ज्ञान मुंहजवानी ही रखते थे। दूसरों के लिए तो क्या पर जो जै धर्म के मुख्य आगम थे वे भी मुंहजवानी ही रखते थे। यदि उस समय की तमाम घटनाओं के लिए केवल शिलालेखों द्वारा ही निर्णय किया जाता हो तो हमारे परमपूज्य जम्बुस्वामी, प्रभवस्वामी, शय्यंभव आचार्य संभूतिविजय और यशोभद्रादि बहुत से ऐसे आचार्य हुए हैं कि शिलालेखों में उनका नाम निशान तक भी नहीं है तो क्या हम उनको भी नहीं मानेंगे ? यह कदापि नहीं हो सकता।

ओसवाल जाति का प्राचीन शिलालेख नहीं मिलने से तो यह जाति उल्टी प्राचीन ही ठहरती है क्योंकि जैन शिलालेखकाल विक्रम की दशवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है अतः इस समय के बहुत पूर्व इस जातिका जन्म हुआ था अतः उस समय का शिललेख न मिलना स्वाभाविक ही है।

अब रही पट्टावलियों की बात। हां, पट्टावलियें घटना समय की नहीं है। इसका कारण उस समय हमारे अन्दर लिखने की पद्धति नहीं थी जब मूल आगम ही वीर निर्वाण से १००० वर्ष बाद लिखे गये थे तो पट्टावलियां इसके पूर्व लिखी जाना सर्वथा असम्भव ही है, पर इससे पट्टावलियों की महत्ता एवं सत्यता को क्षति नहीं पहुँचती है। कारण, पट्टावलियें भी गुरु परम्परा से आये हुए ज्ञान के आधार से ही बनी हैं। यदि २५०० वर्षों का इतिहास लिखते समय हमारी पट्टावलियों को दूर रख दी जाय तो हमारा इतिहास नहीं के बराबर है। हमारी पट्टावलियों में केवल जैनधर्म सम्बन्धी ही उल्लेख नहीं है पर अन्य भी इतने उपयोगी लेख हैं कि वे दूसरी जगह खोजने पर भी नहीं मिलते हैं। देखिये विद्वान लोग क्या कहते हैं:—

"इतिहास व काव्यों के अतिरिक्त वंशावलियों की कई पुस्तकें मिलती हैं + + तथा जैनों की कई एक पटावलियां आदि मिलती हैं। ये भी इतिहास के साधन हैं। पं०गौ०ओ० "राजपूताना का इतिहास पृ० १०"

अतः इतिहास लिखने में पट्टावलियें एक साधन है। हाँ, जब से गच्छों एवं समुदाय के भेद हुये कई लोगों ने मताग्रह के कारण पट्टावलियों में गड़बड़ कर दी है उसके लिये हमारा कर्तव्य है कि हम उनका संशोधन करें न कि एकाध पट्टावली में त्रुटियें देख सब पट्टावलियों का अनादर कर बैठें।

पक्षपात रहित जैनेतर विद्वानों का हमारी पट्टावलियों प्रति जितना सद्भाव है उतना कई जैन नाम धराने वालों का नहीं है इसका कारण पूर्व बतलाया गच्छ एवं समुदाय भेद ही है; पर उन लोगों को मताग्रह के कारण अभी यह बात नहीं सूझती है कि हम अपने ही पैरों पर कुठाराघात कर रहे हैं जिसका भविष्य में क्या फल मिलेगा ? इस सत्य वस्तु को छिपाने एवं मिटाने से जैनजातियों एवं ओसवाल जाति का गौरव बढ़ता है या मिट्टी में मिल जाता है। जिस जाति का २४०० वर्षों का उज्ज्वल इतिहास है उसको ८००–९०० वर्ष जितना समझना कितनी भारी भूल है। इस भूल का परिणाम यह होगा कि १५००–१६०० वर्षों में ओसवाल जाति ने तन धन मन से लाखों नहीं पर करोड़ों रुपया देश सेवा के लिये व्यय किये हैं एवं देश पर बड़ा भारी उपकार किया है उन सब पर पानी फिर जायगा।

अरे अकल के बादशाहो ! जरा विशाल दृष्टि से विचार करो कि ओसवालों को जगतसेठ नगर-सेठ, पंच चौधरी आदि महत्त्वपूर्ण पद मिले हैं वह कुछ करने से ही मिले होंगे, तथा बड़े बड़े राजा महाराजाओं ने पट्टा, परवाने, सनद एवं पत्रों द्वारा ओसवालों का बड़ा भारी उपकार माना है और राज रखने वाला कहा है, यह कुछ करने पर कहा होगा या यों ही लिख दिया है। पर इस उज्ज्वल इतिहास को छिपा देने से आपकी क्या दशा हुई है ! कहाँ पर आपकी पूँछ रही है !! कहाँ पर आपका मान रहा है !!! इतना ही क्यों पर आप दुनिया में जीते गिने जाते हो या मुर्दे ? जो अपने पूर्वजों को भूल कृतघ्नी बन जाते हैं उनकी इससे अधिक क्या दशा हो सकती है।

अरे अर्द्ध शिक्षको ! आज तुम्हारे प्रतिपक्षी तुम्हारे उज्ज्वल इतिहास को [illegible] चाहते हैं और तुम उसमें सहायक बनते हो, यह एक बड़ी मजा की बात है। देखिये [illegible] स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकें जिसमें साधारण व्यक्तियों के विषय में कितने गौरवशाली इतिहास लिखे गये हैं पर तुम्हारे भगवान महावीर के विषय में तो कई लोग महावीर को जानते ही नहीं हैं और कोई जानते हैं तो [illegible] व्यक्ति की तरह दो शब्द लिख दिये। परन्तु वह किसके पुत्र थे इनकी माता कौन थी [illegible] था और उन्होंने कौन सा महत्त्वशाली काम किया था आदि आदि बातों के लिये [illegible] हैं। यह हमारे अर्द्धदग्ध शिक्षितों की संकुचितता का ही परिणाम है। जब भगवान महावीर का ही यह हाल है तो जगडूशाह धन्नाशाहादि जैन दानेश्वरियों का तो नाम ही कहां से हो ! [illegible] भाग्यशाली उदार एवं वीर पुरुषों का पुनीत जीवन पट्टावलियों वंशावलियों में है और इनको [illegible] इन्कार कर दिया इतना ही क्यों बल्कि आपने तो इनको झूठा बतला कर [illegible] आपकी संतान उन वीरों के नाम तक को भी भूल जायगी तो कौन सी [illegible] की बात है ?

ओसवालो ! आप अपने इन पूर्वजों के उदार जीवन नहीं पढ़ोगे वहाँ तक तुम्हारे हृदय के [illegible] नसों में खून कभी नहीं उबलेगा। जब आपके हृदय में गौरव और [illegible] दुनिया के सामने [illegible] भी करने एवं बतलाने काबिल नहीं रहोगे। [illegible] दर दर ठोकरें खाते हो। और [illegible] आपके लिये क्या क्या कर्त्तव्य शेष रहता है।

ओसवालो ! यदि तुम्हारे [illegible]

उसको फौरन हटा दो। कारण, तुम आज किसी भी गच्छ एवं धर्म के उपासक हो पर आचार्य रत्नप्रभसूरि ने तुम्हारे पूर्वजों को मांस मदिरादि दुर्व्यसन छुड़ा कर ओसवाल बनाये हैं। उस महान उपकार को यदि तुम भूल जाओगे तो दुनियाँ तुमको नुगरा कहेगी, गुण चोर कहेगी, कृतघ्नी कहेगी और विशेषतया कहेगी कि ओसवाल जाति अपनी जाति का प्राचीन इतिहास मिटाने वाली एक मुर्दा जाति है।

एक अंग्रेज विद्वान ने ठीक कहा है कि "जिस जाति को नष्ट करना हो तो उसके इतिहास को नष्ट करदो, वह जाति स्वयं नष्ट हो जायगी" बस, तुम्हारी भी यही दशा होने वाली है।

आज भारत की छोटी बड़ी सब जातियाँ अपनी प्राचीनता साबित करने में तन धन अर्पण कर खूब परिश्रम कर रही हैं। जैसे नाई कहते हैं कि हम ब्राह्मण हैं, सेवग कहते हैं कि हम ब्राह्मण हैं, खाती कहते हैं कि हम ब्राह्मण हैं, ढेड़ कहते हैं कि हम ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न हुये हैं इत्यादि अपनी २ प्राचीनता और अपने २ गौरव प्रगट कर रही हैं तब ओसवाल जाति का कुछ पता ही नहीं है। कारण,ओसवालों की प्राचीन पट्टावलियों एवं वंशावलियों में इस जाति को मूल उच्चवर्ण एवंक्षत्रिय बतलाई है और आज २३९६ वर्ष हुये लिखा है। इस पर तो अर्द्ध शिक्षितों का विश्वास नहीं है और खुद के पास कोई प्रमाण नहीं है। अतः उन बिचारों की दशा धोबी के कुत्ता जैसी हुई है कि 'न रहे घर के और न रहे घाट के'।

भला, इतिहास शिलालेख की ढाल आगे रखने वाले ओसवाल जाति की उत्पत्ति वि० सं० ५०० से ९०० के बीच में हुई का अनुमान करते हैं। उन महानुभावों से पूछा जाय कि यदि कोई लड़का यह कहदे कि मेरे बाप का तो मुझे पता नहीं है पर वि० सं० १८०० से १९०० के बीच में होने का अनुमान किया जा सकता है,यह उत्तर उस लड़के के लिये ठीक है न? यदि कोई ऐसी भी कुतर्क कर बैठे कि खैर सं० १८०० से १९०० तक तुम्हारे पिता का होना हम मान लें पर वह रहता कहां था, उसकी जाति क्या थी, उसने अपनी शादी कब और किस के साथ की थी इत्यादि ? क्या इन तर्कों का भी वह लड़का समाधान कर सकेगा ? नहीं। इसी प्रकार कई ओसवाल सज्जन भी वि सं० ५०० से ९०० के बीच में ओसवाल जाति की उत्पत्ति होना कहने वाले यह बता सकेंगे कि अमुक स्थान, अमुक जाति वर्ण वालों से अमुक पुरुष द्वारा ओसवाल जाति की उत्पत्ति हुई है ? नहीं कदापि नहीं। उन्होंने तो एक ही नाम रट रखा है कि ओसवालों के लिये वि० की ११ वीं शताब्दी पहले का कोई शिलालेख नहीं मिलता है। खैर, अब आगे चल कर इसका भी समाधान कर देंगे कि यह कहना कितना महत्त्व रखता है।

किंचित् समय के लिये हम ऐसी भी कल्पना कर लें कि ओसवालजाति आठवीं अथवा दशवीं ग्यारहवीं शताब्दी में बनी, किन्तु इस समय के पूर्व भी तो कोई न कोई जाति जैनधर्म का पालन करती होंगी और उनकी संख्या लाखों की नहीं पर करोड़ों की थी और केवल शिलालेखों से ही सत्यता सिद्ध होती हो तो बताइये कि उन करोड़ों मनुष्यों के सम्बन्ध में कितने शिलालेख मिलते हैं ? शिलालेखों के अभाव में क्या हम मान लें कि ओसवाल जाति की उत्पत्ति के पूर्व जैनधर्म के उपासक कोई भी मनुष्य नहीं थे ? नहीं कदापि नहीं ! शिलालेख मिलें या न मिलें किन्तु जैनधर्म पालन करने वाले उस समय करोड़ों मनुष्य विद्यमान थे। जिसको हमारी पट्टावल्यादि ग्रन्थ डंके की चोट साबित करते हैं।

उपर्युक्त शंका के समाधान में केवल एक बात कहनी शेष रह गई है और वह यह है कि शिलालेखों

का आग्रह करने वालों से हम प्रश्न करते हैं कि अपने जिन पूर्वजों को आप मानते हैं, क्या उन सब के शिलालेख ही क्यों पर नाम को भी आप जानते हैं ? संभवतः २-४ पीढ़ी से पूर्व के कोई ऐतिहासिक साधन नहीं होंगे ? इस प्रश्न के उत्तर में या तो आपको अपने पूर्वजों को मानने से इन्कार करना होगा या हमारी हीपद्धति का अनुकरण करना पड़ेगा। अतएव दुराग्रह मात्र से वस्तुतत्त्व की सिद्धि में गति नहीं हो सकती।

सुज्ञ पाठक ! उपरोक्त समाधानों से यह स्पष्ट रूपेण विदित हो गया होगा कि जैनसाहित्य में एवं अन्य ग्रन्थों में कहीं भी ओसवाल वंशोत्पत्ति का समय आठवीं, नवमी दशवीं अथवा ग्यारहवीं शताब्दि नहीं बताया गया है किन्तु इसके विरुद्ध विक्रम पूर्व ४०० वर्ष में महाजनसंघ; उपकेशवंश.—ओसवालों की उत्पत्ति सिद्ध करने वाले अनेक प्रमाण मिलते हैं और भविष्य में ज्यों ज्यों अधिक शोध होगी त्यों २ अनेक प्रमाण उपलब्ध भी होंगे। जितने प्रमाण हमें मिले हैं वे इसी ग्रंथ में मुद्रित करवा दिये हैं जिससे स्पष्ट सिद्ध हो चुका है कि वि० सं० पू० ४०० वर्ष में आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा उपकेशपुर में क्षत्रिय वर्ण से ओसवाल जाति बनी है अतः उन परमोपकारी आचार्यदेव का जितना उपकार हम माने उतना ही थोड़ा है यदि उन महापुरुषों का उपकार भूल कर हम कृघ्नी बन जाय तो हमारे जैसा पापी इस संसार में कौन हो सकता है। देखिये पं० वीरविजयजी महाराज ने बारहव्रत की पूजा में क्या फरमाया है कि—

" मांसाहारी मातगी बोले । भानु प्रश्न परयोरे । मो० ।
जूठानर पग भूमिशोधन । जल छटकाव करयोरे । मो० ।

जिस चांडालनी के शिर पर भ्रष्टा की ओढी और हाथ में मांस की बोटी है पर वह भूमि को जल छटकाव से शुद्ध करती जा रही थी इसको देख किसी भानु ने उसको प्रश्न पूछा जिसके उत्तर में [illegible] (भंगण) ने कहा कि यदि इस भूमि पर झूठा बोला कृघ्नी लोग निकला हो तो मैं भूमि को शुद्ध कर [illegible] रखती हूँ। क्योंकि झूठा बोला कृतघ्नी बड़े भारी पापी होते हैं उसके परमाणु इतने खराब होते हैं [illegible] भूमि पर पैर रखने से वह भूमि अपवित्र हो जाती है कि उस पर कोई दूसरा पुरुष चले तो वे परमाणु उसके लगने से उसकी चित्तवृत्ति मलीन हो जाती है। अतः मैं भूमि को शुद्ध करके पैर रखती हूँ।

पाठकों झूठ बोलना और किया हुआ उपकार को भूल कर कृतघ्नी बन जाने का [illegible] है अतः उपकारी पुरुषों का उपकार मान कर कृतज्ञ बनो यही मेरी हार्दिक भावना है।

अघटित प्रश्नों का प्रमाणिक उत्तर

आजकल विचार-स्वातन्त्र्य का साम्राज्य है, अतः जिस ओर दृष्टिपात किया जाता है उसी ओर अर्थात् सर्वत्र समाज, जातियां और धर्म के नाम से आक्षेपों तथा समालोचनाओं की वृष्टि दीख पड़ती है। वास्तव में समालोचना संसार में बुरी बला नहीं है; प्रत्युत समाज तथा जाति की बुराइयों को निकालने वाली, मार्गोपदेशिका, एवं उन्नतिदायिनी है। जिस समाज में जितने निःस्वार्थ तथा निष्पक्षपात आलोचक हैं, उतने ही उसके लिए अधिक लाभदायी हैं। किन्तु अनुभव ने इससे प्रतिकूल ही भान कराया। वर्तमान में कुत्सित भावनाओं को आगे रख कर आलोचक महोदय आक्षेपपुंज से कुआलोचना किया करते हैं। जिससे समाज को लाभ के बदले अधिकाधिक हानि पहुँचती जाती है और क्लेश के कारण समाज अस्तव्यस्त हो गया है।

आजकल के लिखे-पढ़े नवयुवकों के मगज में जितनी तर्कशक्ति है उतना उनके पास समय नहीं है कि जिस विषय का वे प्रश्न, तर्क एवं समालोचना करें उसके लिए वे उस समय का इतिहास देख सकें कि उस समय कि क्या परिस्थिति थी, उस समय किन २ बातों की आवश्यकता थी इत्यादि। जब तक इन बातों का अध्ययन न कर लिया जाय तब तक व्यर्थ आक्षेप तथा तर्क करने में अपना तथा दूसरों का समय को ही बर्बाद करना है। दूसरे उन लोगों में यह भी एक विशेष गुण है कि न तो उनको अपने पूर्वजों पर विश्वास है और न प्राचीन ग्रन्थों पर ही भरोसा है, फिर उनको समझाया जाय तो भी किस प्रकार? कारण वे स्वयं अभ्यास करते नहीं और दूसरे कि सुनते नहीं।

खैर! वे लोग क्या क्या प्रश्न करते हैं उनका थोड़ा सा नमूना पाठकों की जानकारी के लिए यहां दर्ज कर दिया जाता है जरा ध्यान लगाकर पढ़ें।

१—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने क्षत्रियों को जैन बना कर उनको गौत्र एवं जातियों के बन्धन में बांध दिये अतः बहुत ही बुरा किया। जो विश्वव्यापी जैन धर्म था वह एक जाति मात्र में ही रह गया?

२—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने एक वीर बहादुर राजपूत वर्ग को ओसवाल बना कर उनकी वीरता को मिट्टी में मिला दी और उनको कायर कमजोर डरपोक बना दिया।

३—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि क्षत्रियों को ओसवाल बनाने के कारण ही शेष क्षत्रियों ने जैनधर्म से किनारा ले लिया।

४—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि के ओसवाल बनाने से ही जैनधर्म राजसत्ता-विहीन बन गया।

५—आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ओसवाल बना कर बहुत बुरा किया कि इसमें अनेक गौत्र जातियें मत पन्थ गच्छ फिरके और समुदायें बन गई। जिसमें इनकी समुदायिक शक्ति के टुकड़े २ हो कर पतन के गहरे गढ़े में गिर गई।

इत्यादि अनेक प्रश्न करते हैं और इन बातों के लिये बहुत से लोगों को शंका भी रहा करती है, पर जब तक वस्तु के असली स्वरूप को मनुष्य नहीं समझ पाता है तब तक शंकाएँ पैदा होना स्वभाविक ही है। पर मैं उन प्रश्नकर्त्ताओं का इस गरज से उपकार मानता हूँ कि उन्होंने इस प्रकार के प्रश्न करके उनके समाधान के लिए हमारे मगज में एक शक्ति पैदा की है। तथा मनके मन में भ्रम करना और उस भ्रम को हटाना

गोंड राजा, ग्वलनेर का श्याम राजा, महाराष्ट्र के चोलवंश, राष्ट्रकूटवंश, पांड्यवंश, कलचूरीवंश, वगैरह, वगैरह, अनेक राजाओं ने जैनधर्म पालन करते हुये भी बड़ी वीरता से राज किया है। इतने दूर क्यों जाते हो, परमार्हत महाराजा कुमारपाल के जीवन को पढ़िये तो आपको जैनों की वीरता का पता चलेगा कि कायर कमजोर थे या वीर थे।

किसी भी धर्म के उपासकों को देखिये, वे सब के सब राजा नहीं होते हैं। कई राज करते हैं तो कई दीवान, प्रधान मन्त्री, महामन्त्री, फौजी हाकिम वगैरह पद वाले होते हैं, तो कई व्यापार एवं कृषी कर्मवाले भी होते हैं। यही हाल जैनधर्म का था और इस प्रकार कई जैनों ने राज कर्मचारी पद को सुशोभित करते हुये भी अपनी वीरता का परिचय दिया था। कायरता तो इनके पास भी नहीं फटकती थी जिसके उज्जवल यश और धवल कीर्ति से इतिहास भरा पड़ा है। वीर यशोदित्य, शार्दूल, नारायण, त्रिभुवनसिंह, जसकरण समर्थसिंह ठाकुरसी, जेतापाता, विमल, वस्तुपाल तेजपाल, समरसिंह, तेजसिंह, सुलतानसिंह वगैरह वगैरह हजारों वीर हुये। हाल थोड़े समय पूर्व भंडारी इन्द्रराजजी, फतेहराजजी, बच्छराजजी, मुनोयत, सुन्दरदास नैणसी, मेहता नथमलजी, और मेहतानी [illegible] सिंहजी। इन्होंने ओसवाल कहलाते हुये भी क्षत्रियों से बढ़ चढ़ के वीरता के काम किये है। क्या कोई इतिहास का जानकर ओसवाल जाति पर कायरता और कमजोरी का कलंक लगा सकता है ? कदापि नहीं !

ओसवाल जाति में कायरता और कमजोरी होने का कारण क्षत्रियों से जैन बनाना नहीं है पर ओसवालों के खराब आचरण तथा दया का असली स्वरूप को न जानने वाले स्वयं ही हैं [illegible] की कृपणता के कारण, आर्त्तध्यान करना, दूसरे का बुरा चाहना, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, [illegible] आदि कई कारण हैं कि वे अपने बुरे आचरणों से स्वयं कायर कमजोर बन बैठे हैं और उनका दोष पूर्वाचार्यों पर पर लगाते हैं। इससे अधिक अन्याय ही क्या हो सकता है ? वास्तव में जैनधर्म वीरों का धर्म है और वीर होगा वही जैनधर्म पालन कर सकता है। आज के जैनधर्मोपासक [illegible] जैन कहलाते हैं। जैनत्व तो इन लोगों से हजार हाथ दूर रहता है। यदि जैनी कहलाना है तो [illegible] पहले वीर बनो जैसे पूर्व जमाने में थे।

६ प्र०—आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि के क्षत्रियों को ओसवाल बनाने से [illegible] बिगाड़ ले लिया।

करीब २००० वर्ष तक क्षत्रिय लोग जैन बन कर ओसवालों में शामिल होते आये हैं। फिर यह क्यों कहा जाय कि ओसवाल बनाने से ही क्षत्रियों ने जैनधर्म से किनारा ले लिया ?

क्षत्रियों के जैनधर्म से किनारा लेने का कारण ओसवाल होना नहीं है पर इसका कारण कुछ और ही है। वह यह है कि एक जैनधर्म के नियम सख्त हैं जो संसार-लुब्ध जीवों से पलना मुश्किल है, दूसरे ओसवालों में जो नये जैन बनने वालों के साथ सहानुभूति पहिले थी वह बाद में नहीं रही। तीसरे ओसवालों का खुद का संगठन भी छिन्न-भिन्न हो गया था। कारण, एक तरफ तो शासन में छेद-भेद डाल नये मत-गच्छ निकाल कर अपनी २ बाड़ाबन्दी में लग गये थे, जिससे समाज में राग द्वेष क्लेश कदाग्रह की भट्टियें धधकने लगीं और उनकी जो शक्ति अजैनों को जैन बनाने में लग रही थी वही शक्ति जैनधर्म को नुकसान पहुँचाने में काम करने लगी। जब खास जैन धर्म का प्रचार बढ़ाने वाले साधुओं का ही यह हाल था तो उनके उपासकों के लिये तो कहना ही क्या था ? वे तो उन साधुओं के हाथ के कठ-पुतले ही बने हुए थे। जैसे वे नचाते वैसे ही नाचते थे। दूसरी ओर आगे चल कर उस ओसवाल समाज में भी एक ऐसा उत्पात मच गया कि जिसके दो टुकड़े बन गये जो लोड़ा साजन और बड़ा साजन के नाम से आज भी जीवित है; इत्यादि कारणों से क्षत्रियों ने जैनधर्म से किनारा ले लिया है न कि ओसवाल बनने से—

४ प्र०—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि के ओसवाल बनाने से ही जैनधर्म राजसत्ता-विहीन बन गया।

उ०—यह केवल समझ की भ्रांति है कि ओसवाल बनाने से जैनधर्म राजसत्ता विहीन बन गया, पर राजसत्ता विहीन होने का कारण ओसवाल बनाना नहीं किन्तु इसका मुख्य कारण उन राजा महाराजाओं को जैनधर्म का सत्य उपदेश नहीं मिलना ही है। राजा महाराजाओं को सदुपदेश क्यों नहीं मिलता है इसका कारण साधुओं में ऐसे ज्ञान का अभाव है, क्यों कि सब से पहिले तो साधु बनते समय यह नहीं देखा जाता है कि यह व्यक्ति साधुपद के योग्य है या अयोग्य ? जब अयोग्यों को साधुपद दे दिया जाता है तो वे अपनी उदरपूर्त्ति में ही अपने जीवन की सफलता समझ कर समाज का भला करने के बजाय समाज के भारभूत बन जाते हैं। कई साधु ऐसे भी होते हैं कि जिन्होंने एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त का मुंह भी नहीं देखा होगा। राजा महाराजा तो दूर रहे पर पूर्वाचार्यों के बनाये हुए श्रावकों को भी वे संभाल नहीं सकते हैं। उदाहरण के तौर पर देखिये एक गुर्जर प्रान्त में आज करीब २००० साधु साध्वियां विद्यमान हैं, फिर भी एक दो शताब्दी पूर्व कई २०-२५ जातियों के हजारों लाखों लोग जैनधर्म पालन करते थे, प्रायः वे सब जैन धर्म को त्याग कर जैनेतर बन गये हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि साधु अपनी सुविधा के लिए बड़े बड़े शहरों में रहना पसन्द करते हैं जहाँ आवश्यकता नहीं, वहाँ १००-१५० एवं २०० साधु साध्वियां एकत्र ठहर जाते हैं। तब जहाँ ग्राम में भ्रमण कर उपदेश की खास जरूरत है वहाँ कोई जाते तक भी नहीं। यदि कभी विहार करते जा निकले तो उनके पण्डित लेखक नौकर चाकर आदि का ठाठ एवं खर्चा देख वे ग्रामड़ा के लोग दूर से ही घबरा जाते हैं। तब दूसरे धर्म वाले लोग घूम घूम कर उनको उपदेश कर तथा कई प्रकार की सुविधाएं बता कर एवं आराम पहुँचा कर अपने धर्म में मिला लेते हैं। जब पूर्वाचार्यों के बनाये श्रावकों का ही यह हाल है तो राजा महाराजाओं को उपदेश देने के लिए तो हम आशा ही क्यों रक्खें ? फिर भी तुर्रा यह कि वर्तमान में अपना कसूर है वह पूर्वाचार्यों पर डाल दिया जाता है। यह एक प्रकार से कृतघ्नपना ही है।

लिये दिल में दबा कर रखने के बजाय प्रश्न करना कई गुणा अच्छा है कि जिससे शंका का समाधान भी हो सके और चित्त का भ्रम दूर होकर विश्वास की भी वृद्धि हो सके।

महानुभावो ! पहिले तो आपको उस समय की परिस्थिति के इतिहास का अभ्यास करना चाहिये था कि उस समय इस महान् कार्य्य की जरूरत थी या नहीं ? दूसरे यह भी सोचना चाहिये था कि आचार्य-रत्नप्रभसूरि ने ओसवाल एवं गौत्र जातियां आदि अलग २ जातियां बनाई थीं या अलग २ जातियों का संगठन कर एक शक्ति एवं संगठनमय सुदृढ़ संस्था स्थापित करवाई थी ? तथा आचार्यश्री ने उन वीर क्षत्रियों को कायर कमजोर बनाये थे या उनकी शक्ति और भी बढ़ाई थी ? आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उन आचारपतित क्षत्रियों को जैन बना कर जैनधर्म को राजसत्ता विहीन बनाया था या जैनधर्म राजाओं का धर्म बन गया था ? आचार्य रत्नप्रभसूरि के राजपूतों को जैन बनाने से जैनधर्म का क्षेत्र संकुचित बन गया था या विशाल बन गया था ? इत्यादि इन सब बातों को खूब दीर्घदृष्टि से सोचना चाहिये था।

इन सब बातों का अभ्यास करके ही प्रश्न करना था। खैर, अब आप अपने प्रश्नों का उत्तर भी सुन लीजिये।

१ प्र०—आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि ने क्षत्रियों को जैन बना कर उनको गौत्र एवं जातियों के बन्धन में बांध कर बहुत ही बुरा किया कि जो विश्वव्यापी जैनधर्म था वह एक जाति मात्र में ही रह गया।

उ०—आचार्यरत्नप्रभसूरि जिस समय मरुधर में पधारे थे उस समय मरुधर [illegible] हुआ था। घर २ में मांस, मदिरा एवं व्यभिचार की भट्टियें धधक रही थीं। वर्ण जाति उपजाति एवं [illegible] मत-पंथों में विभक्त हुई जनता की शक्ति का दुरुपयोग हो रहा था। उस समय में अनेक [illegible] और परिसहों को सहन करके केवल उन जीवों के कल्याण के लिये ही सूरिजी पधारे थे। [illegible] वसति के अभाव में जंगल में ठहर कर चार-चार मास तक भूखे प्यासे रहते हुए भी [illegible] कठोर उपसर्गों को सहन किया था।

सूरिजी ने अपने आत्मबल और उपदेश द्वारा उन आचारपतित क्षत्रियों की शुद्धि कर [illegible] समभावी बनाके उनका संगठन चिरस्थायी बनाये रखने की गरज से 'महाजनसंघ' [illegible] करवाई थी, पर उस समय उनको स्वप्न में भी यह मालूम नहीं था कि हमारे पीछे ऐसे [illegible] हम जिन पृथक् २ वर्ण जाति मत पंथ वालों को एक सूत्र में ग्रंथित कर रहे हैं, [illegible] को टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे; जैसे कि पिछले लोगों ने कर दिया और आज भी कर रहे हैं [illegible] यह कि अपना दोष पूर्वाचार्यों पर मढ़ना इससे अधिक कृतघ्नता [illegible] है।

दूसरे गौत्र और जाति का होना, यह भी रत्नप्रभसूरि के नहीं बनाई है [illegible] संघ' स्थापित करवाया था पर बाद में इस महाजनसंघ की [illegible] अन्दर ऐसे २ नामांकित पुरुष होते गये कि जिनके नाम से [illegible] से पता लग सकता है, जैसे आदित्यनाग के नाम पर आदित्यनाग गौत्र, [illegible] के [illegible] गौत्र, बाफणा से बाफणा गौत्र इत्यादि।

गौत्रों का होना बुरा भी नहीं है क्योंकि [illegible] के विवाह शादी में इन गौत्रों की जरूरत भी रहती है कि [illegible] अपना विवाह करते हैं।

और जातियों के होने से धर्म की विश्व-व्यापकता मिट भी नहीं सकती है । भला ! गौत्र जाति के होने से ही धर्म की विश्व-व्यापकता मिट जाती हो तो भगवान महावीर के समय कश्यप गौत्र, जलंधर गौत्र, कोटन्य गौत्रादि गौत्र वाले जैनधर्म पालन करते थे । उसी समय आनन्दादि गाथापति अर्जुनमाली, सकडाल कुम्भार ऋषभदत्तादि ब्राह्मण और हरकेशी एवं मेत्तारियादि शूद्र लोग भी जैन धर्म पालन करते थे। जैनधर्म की विश्व-व्यापकता गौत्र जातियों से नहीं मिटी है, पर इसका असली कारण कुछ और ही है। और वह है संकुचित विचार वालों की संकुचितता कि जिन्होंने अपने संकुचित विचारों के साथ जैनधर्म के क्षेत्र को भी संकुचित बना दिया । यदि गोत्र एवं जातियां बनने से ही जैनधर्म की विश्व-व्यापकता मिट जाती हो तो आचार्य रत्नप्रभसूरि ने आचारपतित क्षत्रियों को जैन बनाने के बाद भी सैंकड़ों वर्ष तक अजैनों की शुद्धि कर उनको जैन बना कर पूर्व जैनों में शामिल मिलाये थे और उनकी संख्या करोड़ों तक पहुँच गई थी। यह कैसे बन सकता ?

खैर, जैनधर्म के लिये तो आपने अपने परमोपकारी महापुरुषों पर सब दोषारोपण कर दिया, पर आपके साथ ही बौद्ध एवं वेदान्ति धर्म है और उनमें अनेक गौत्र जातियां शामिल होने पर भी उनकी विश्व-व्यापकता नहीं मिटी है तो एक जैनधर्म की विश्व-व्यापकता कैसे मिट सकती है । अतः आचार्य रत्नप्रभसूरि पर यह आक्षेप करना बिल्कुल मिथ्या और अनभिज्ञता का सूचक है कि उन्होंने क्षत्रियों को जैन बना कर उनके पृथक २ गौत्र एवं जातियां बना दीं तथा जातियां बनाने से जैनधर्म जो विश्व-व्यापक था वह केवल एक जाति मात्र में रह गया, इत्यादि ।

उन महापुरुषों ने तो जो किया था वह जीवों के कल्याण और जैनधर्म की उन्नति के लिये ही किया था और उनके इस प्रकार करने से ही जैनधर्म जीवित रह सका है ।

२ प्र०—आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि ने एक वीर बहादुर राजपूतों को ओसवाल बना कर उनकी वीरता को मिट्टी में मिला कर उनको कायर कमजोर डरपोक बना दिया ।

उ०—आचार्य रत्नप्रभसूरि ने न तो ओसवाल बनाये थे और न उनको कायर कमजोर ही बनाये थे। कारण आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में आचारपतित क्षत्रियों को विक्रम पूर्व ४०० वर्षों में जैन क्षत्रिय बनाये थे, तब उपकेशपुर का अपभ्रंश नाम ओसियां तथा ओसियों के नाम से ओसवाल शब्द की उत्पत्ति हुई है; इसका समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी का है। फिर यह आक्षेप रत्नप्रभसूरि पर क्यों ? और इस प्रकार ग्रामों के नाम से तो और भी बहुत नाम हुये हैं जैसे महेश्वरीपुरी से महेश्वरी, खण्डेल से खण्डेलवाल, पाली से पल्लीवाल इत्यादि, तो क्या इन नामों से ही नुकसान हो गया ।

दूसरे ओसवाल कहलाने से ही कायर एवं कमजोर कहना भी एक भ्रम ही है क्योंकि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने जिन क्षत्रियों को जैन बनाये थे न तो वे कायर कमजोर हुये थे और न उनकी संतान ही कायर कमजोर कहलाई थी । जरा इतिहास के पृष्ठों को उलट कर देखिये, राव उत्पलदेव की संतान ने २८ पुश्तों तक राज्य किया था। महाराज चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार, अशोक और सम्राट सम्प्रति ने जैनधर्म पालन करते हुये ही बड़ी वीरता से राज का संचालन किया था। महामेघवाहन चक्रवर्ती खारवेल कट्टर जैन होते हुये भी उन्होंने भारत पर विजय कर चक्रवर्ती पद को प्राप्त किया था। सम्राट विक्रम भारत का राज्य बड़ी वीरता से करता हुआ भी जैन धर्म का पालन करता था।वल्लभी का शिलादित्य राजा, कान्यकुब्ज का चित्र-

अपना बड़े से बड़ा अस्त्र बना कर काम ले रहे हैं जिसके सामने हिंसावादियों को अपना सिर झुकाना ही पड़ा है। इस विषय में अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है कि सच्ची एवं शुद्ध मन से अहिंसा का पालन करने वाला सदैव विजयी होता है।

सच्ची अहिंसा है वहां मान, मद, क्रोध, लोभ, विश्वासघात, धोखेबाजी आदि अनुचित कार्य स्वप्न में भी नहीं होते हैं। जब कि पर आत्मा को थोड़ा ही कष्ट पहुँचाना हिंसा समझी जाती है तो पूर्वोक्त कार्य तो हिंसापूर्ण होते हैं।

हां कितनेक भाई जैन कहलाते हुए भी अहिंसा के स्वरूप को ठीक तौर पर नहीं समझ कर दया का उल्टा दुरुपयोग करते हैं कि वे क्षुद्र प्राणियों की दया करते हुए पांचेन्द्रिय जैसे जीवों तथा अपने भाइयों की ओर दुर्लक्ष रखते हैं। वे अहिंसक कहलाते हुए क्रोध, मान, माया, लोभ, विश्वासघात, धोखेबाजी, झूठ बोलना आदि कुकृत्यों से नहीं बचते। यह तो एक अहिंसा का केवल विकृत ढांचा ही है और इसको अहिंसा नहीं पर वस्तुतः हिंसा ही कही जाती है। और जो लोग आज जैनियों की दया के लिये आक्षेप करते हैं वे इसी विकृत अहिंसा के लिये ही करते हैं न कि सच्ची अहिंसा के लिये।

६—कनौज से आने वाले समूह का गौत्र कनौजिया हो गया ।

७—बलहा नगर से आने वाले लोग बलहा गौत्र से प्रसिद्ध हुये तथा इनके अन्दर रांका और बांका नाम के दो वीर पुरुष हुये जिनकी सन्तान रांका बांका कहलाई ।

८—श्रेष्टिगौत्र-राजा उत्पलदेव की सन्तान ने अनेक ऐसे श्रेष्ठ कार्य्य कर बतलाये कि उनकी परम्परा में वे श्रेष्ठ कहलाये तथा इनकी सन्तान में एक लालसिंह नाम के प्रसिद्ध पुरुष हुये कि उन्हों को वैद्य की पदवी मिली तब से वे श्रेष्टि गौत्री वैद्य एवं वैद्य मेहता कहलाये ।

९—करणाट देश से आये हुये समूह के लोग कर्णाट कहलाने लगे ।

१०—कुमटादि का व्यापार करने वालों का कुमट गौत्र बन गया ।

इत्यादि कारणों से गौत्र एवं जातियें बन गई थीं जिनकी संख्या के लिये निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता है कि उनकी संख्या कितनी थी । और इनकी संख्या हो भी तो नहीं सकती है क्योंकि जब कभी कारण बन गया तब ही जाति बन जाती है । हाँ, जिस दिन महाजन संघ की स्थापना हुई थी उस दिन से ३०३ वर्षों के बाद उपकेशपुर में ग्रन्थि-छेदन का उपद्रव हुआ और उसकी शान्ति के लिये बृहद् शान्ति स्नात्र पूजा भणाई गई। उस पूजा में १८ गौत्र वाले स्नात्रिये थे। उनका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थोंमें किया है। उसके आधार पर अठारह गौत्रों के नाम बतलाये जाते हैं, पर यह केवल उपकेशपुर और उसमेंभी पूजा स्नात्रिये बने उनके गौत्र हैं, पर इनके अलावा उपकेशपुर में तथा उपकेशपुर के अलावा अन्य स्थानों में इन महाजनसंघ रूपी समुद्र में गौत्र रूप कितने रत्न होंगे उनका पता कौन लगा सकता है ?

हाँ, आचार्य रत्नप्रभसूरि के स्थापित किये महाजन संघ के १८ गौत्र होने के कारण यह कह दिया जाय कि रत्नप्रभसूरि ने १८ गौत्र स्थापित किये तो इस उपेक्षा से अनुचित भी नहीं है, क्योंकि वे गौत्र उसी महाजनसंघ के थे कि जिसको रत्नप्रभसूरि ने स्थापित किया था ।

दूसरे यह १८ गौत्र और इनसे भी अधिक गौत्र एवं जातियाँ बन जाना उन महाजनसंघ की उन्नति एवं वृद्धि का ही द्योतक है । कारण जैसे जैसे महाजनसंघ की वृद्धि होती गई और उसमें जैसे जैसे नामांकित पुरुष पैदा हो हो कर देश समाज एवं धर्म की सेवा करते गये वैसे वैसे उनकी सन्तानों के साथ उन पुरुषों के नाम चिरस्थायी बनते गये । बस वे ही नाम जातियों एवं गौत्रों के नाम धारण करते गये, जिनकी संख्या यहां तक बढ़ गई थी कि उनको मनुष्य गिन भी नहीं पाये थे ।

जब उल्टा चक्र चला और महाजनसंघ की अवनति होने लगी तो उन गौत्र और जातियों की संख्या घटने लगी कि वह अंगुलियों पर गिनने जितनी रह गई, अर्थात् गौत्र एवं जातियों का घटना-बढ़ना महाजनसंघ की उन्नति अवनति पर ही था ।

सारांश यह है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अलग २ गौत्र स्थापन नहीं किये थे । वे एक एक कारण पाकर गौत्र एवं जातियेँ बन गई थीं । अगर रत्नप्रभसूरि के स्थापित किये महाजनसंघ के गौत्र होने से यदि इनको रत्नप्रभसूरि के स्थापित किये कह दिया जाय तो पूर्वोक्त अपेक्षा से यह अनुचित भी नहीं है ।

जैन साधुओं की ही क्यों पर आज तो जैनाचार्यों की संख्या भी इतनी बढ़ रही है कि कई दर्जन आचार्य होने पर भी किसी आचार्य ने किसी राज-सभा में जाकर व्याख्यान दिया हो ऐसा कभी सुनने में नहीं आता है । हाँ, यदि किसी श्रावक की कोशिश से यदि किसी छोटे बड़े राजा ने एक दिन किसी आचार्य का व्याख्यान सुन लिया हो तो वे अखबारों में, पुस्तकों में, छोटी बड़ी पत्रिकाओं में, अपने नाम के आगे यह टाइटिल लगा देते हैं कि अमुक राजा प्रतिबोधक आचार्य श्री······· बस इतने में आप कृतकृत्य बन जाते हैं । पर अब जमाना ऐसा नहीं है। जमाना पुकार पुकार कर कहता है कि कुछ काम करके दिखाओ । समझ गये न ? जैनधर्म राजसत्ता विहीन होने का कारण रत्नप्रभसूरि नहीं पर उनको जैनधर्म का उपदेश नहीं मिलना है । आचार्य रत्नप्रभसूरि ने तो क्षत्रियों को जैनधर्मी बना कर जैनधर्म को राष्ट्रीय धर्म बना दिया था यही कारण है कि रत्नप्रभसूरि के बाद भी अनेक राजाओं ने जैनधर्म के परमोपासक बन कर जैनधर्म का पालन एवं प्रचार किया था ।

५ प्र०—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने ओसवाल बना कर बहुत बुरा किया कि इनमें अनेक गौत्र जातियां एवं फिरके समुदाय बन गये, जिससे इनकी सामुदायिक शक्ति टुकड़े २ हो कर पतन के गहरे गढ़े में गिर गई ।

उ०—क्या आपको यह विश्वास है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ही पृथक् २ गौत्र, जातियां, गच्छ समुदाय और फिरके बनाये थे ? आप पहिले पढ़ चुके हो कि आचार्य रत्नप्रभसूरि के [illegible] क्षत्रिय वैश्य ब्राह्मण लोग जो पृथक् २ मत-पंथ में विभाजित हो अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते थे, उनको उपदेश देकर एवं संगठन का महत्व बतला कर उनके हृदय के चिरकाल के ऊँच-नीच के [illegible] को समभावी बना कर 'महाजन संघ' रूपी एक सुदृढ़ संस्था स्थापन की थी और इनमें [illegible] रोटी-व्यवहार था वैसे बेटी-व्यवहार भी चालू हो गया और वह चिरकाल तक चलता भी रहा था । [illegible] नगर के नामों से कई शाखायें चल पड़ी थीं जैसे उपकेशवंश, श्रीमाल वंश, [illegible] का रोटी-बेटी-व्यवहार एक ही था । शिलालेखों से पता मिलता है कि [illegible] इन सबके प्रायः रोटी-बेटी-व्यवहार शामिल था । बाद में संघ के स्वार्थी अगेवानों के [illegible] घुस गया । किसी को धनमद, किसी को राजसत्ता का अहंकार, किसी को [illegible] बस, एक ने कहा कि हम तुमको बेटी नहीं देंगे । दूसरे ने अपनी [illegible] नहीं देंगे । पर उस समय सब की संख्या अधिक होने से किसी को तकलीफ नहीं हुई, [illegible] और न किया प्रयत्न । बस, एक एक के दिल [illegible] हम कभी शामिल थे ही नहीं । फिर भी उस समय के आचार्यों ने धर्म [illegible] से उनका [illegible] खाना-पीना अलग नहीं होने दिया । [illegible] टूट गया । रोटी-व्यवहार शामिल होते हुए भी बेटी-व्यवहार टूट जाना [illegible] कारण था कि [illegible]

बस, इस [illegible]

आचार्य देवगुप्तसूरि महा प्रतिभाशाली एवं धर्म प्रचार आचार्य हुए। आप सूरि पद प्राप्त करने के पश्चात् आपने विशाल समुदाय का संचालन बड़ी कुशलता से किया और आप स्वयं अपने शिष्यों के साथ प्रत्येक प्रान्त में भ्रमण कर जैनधर्म का काफी प्रचार किया आप श्रीमान् एक वार दक्षिण की ओर विहार कर वहाँ की जनता को जैनधर्म का इस प्रकार उपदेश दिया कि हजारों लोग मांस मदिरादि दुर्व्यसनों को त्याग कर भगवान् महावीर के अहिंसा के झंडे की शरण ले अपना कल्याण किया। आचार्य कक्कसूरि के समय जो मुनि दक्षिण की ओर विहार किया था उन्होंने भी वहाँ जनधर्म का खूब प्रचार किया और वे भी आचार्य देवगुप्तसूरि दक्षिण में पधारे है सुन कर सूरिजी को वन्दन करने को आये उन्हों के धर्मप्रचार को देख सूरिजी ने अपनी ओर से प्रसन्नता प्रकट की और योग्य साधुओं को पदवीयों से भूषित कर उनका योग्य सत्कार किया सूरिजी महाराष्ट्रीय एवं तिलंगादिक प्रान्तों में भ्रमण कर कई राजा महाराजाओं को जैनधर्म के उपासक वनाये। सूरिजी यह भी जानते थे कि जिस प्रान्त का उद्धार करना उसी प्रान्त के जन्मे हुए साधु पर निर्भर रहता है अतः सूरिजी ने जिस-जिस प्रांतों के भावुकों को दीक्षा देते थे उन्हीं को उसी-उसी प्रान्तों में विहार की आज्ञा दे देते थे कि वे वहाँ की जनता का उद्धार आसानी से कर सकें।

सूरिजी महाराज दक्षिण प्रान्त में भ्रमण करने के पश्चात आवंति प्रदेश में पधारे वहाँ की जनता को धर्मोपदेश सुना कर जैनधर्म में स्थिर करते हुए मेदपाट की ओर पधारे आप श्री का स्थान स्थान पर सुन्दर स्वागत एवं सत्कार होता था और आप की अमृतमय देशन सुन अपना कल्याण की भावना से लोग धर्माराधना में विशेष प्रयत्नशील बन जाते थे।

तत्पश्चात् आप पुनः मरुधर में पदार्पण किया जननी जन्मभूमि की एवं उपकेशपुर स्थित भगवान् महावीर की यात्रा की और वहाँ कि धर्म पीपासु जनता को धर्मोपदेश सुनाया आप श्रीमानों के पधारने से मरुधरवासियों में धर्मोत्साह खूब बढ़ गया था कई भावुकों ने आपश्री के चरणकमलों में भगवती दीक्षा ग्रहण की और कई मन्दिर मूर्तियों की आपश्रीने प्रतिष्ठा भी करवाई। कहने की आवश्यकता नहीं है कि आप श्रीमानों एवं आपश्री के पूर्वजों ने मरुधर के बड़े-बड़े नगर ही नहीं पर छोटे २ गावड़ों में भ्रमण करने से जैनधर्म का खूब प्रचार हो गया था प्रत्येकग्रामों में जैनमन्दिर एवं जैनपाठशालों स्थापित होगये थे पर एक श्रीमालनगर ही ऐसा रह गया था कि वहाँ अभी वाममार्गियों की ही विशेष प्रबाल्यता थी आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने श्रीमालनगर के वासी राजा जयसेनादि ९०:०० घरवालों को जैनधर्म की दीक्षा दी थी पर बाद में धर्मद्वेष के कारण राजकुँवर चन्द्रसेन ने चन्द्रावतीनगरी बासा कर अपनी राजधानी कायम की थी और श्रीमालनगर का राजा भीमसेन ने धर्मान्धता के कारण जैनों को इतना कष्ट दिया कि श्रीमाल से सब के सब नगरवासी जैनधर्मी लोग नगर का त्याग कर नूतनबसी चन्द्रावतीनगरी में जा बसे। अतः श्रीमाल नगर के राजा मार्गियों के ही उपासक रहे। बाद राजा भीमसेन का पुत्र उत्पलदेव ने उपकेश नगर स्थापन किया आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से वह भी जैनधर्मोपासक बन गये पर का केन्द्र ही बना रहा। फिर भी उन लोगों के तकदीर ही ऐसे थे कि किसी जाने का साहस नहीं किया।

आचार्य देवगुप्तसूरि ने सुना कि भीनामाल नगर में एक बृहद् यज्ञ लाखों प्राणियों की बली भी दी जायगी इत्यादि। सूरिजी का हृदय उन प्राणि

भर आया कि आपने श्रीमालनगर की ओर विहार करने का निश्चय कर लिया। यह केवल निश्चय ही नहीं था पर आपश्री ने तो कम्मरकस कर विहार ही कर दिया और क्रमशः चल कर भीन्नमाल पधार गये। जब इस बात की मालुम वहाँ के राजा तथा यज्ञाध्यक्षकों को हुई तो उन लोगों में बड़ी खलबली मच गई कारण मरुधर में यही एक नगर था कि जहाँ पर वे लोग अपनी मनमानी करने में स्वतन्त्र थे उन लोगों ने सूरिजी को कष्ट पहुँचाने में कुछ भी उठा नहीं रखा पर कितना ही वायु चले इससे मेरू कभी क्षोभ पाने वाला नहीं था। सूरिजी महाराज ने अपने पूर्व आचार्य स्वयंप्रभसूरि श्रीरत्नप्रभसूरि और श्री यक्षदेवसूरि के कष्टों को स्मरण कर विचार किया कि धन्य है उन महापुरुषों को कि जिन्होंने सैकड़ों आफतों को सहन कर अनेक प्रांतों में जैनधर्म का झण्डा फहरा दिया था तो यह कष्ट तो कौनसी गिनती में गिना जाता है। खैर उन पाखण्डियों ने राजसत्ता द्वारा यहां तक तजवीज करली कि नगर में गौचरी जाने पर आहार पानी तक नहीं मिला। सूरिजी ने अपने साधुओं के साथ तपस्या करना शुरु कर दिया और प्रतिदिन आम मैदान में व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया पर पाखण्डियों ने अपनी सत्ता द्वारा जनता को व्याख्यान में जाना मना करवा दिया इस हालत में सूरिजी राज सभा में जाकर व्याख्यान देने लगे। आखिर तो वहां मनुष्य बसते थे बहुत से लोगों ने जाकर राजा को कहा कि दरबार! बात क्या है आपको निर्णय करना चाहिये ? पर राजा तो उन पाखण्डियों के हाथ का कठपुतला बना हुआ था। राजा ने उन कहने वालों की ओर कुछ भी लक्ष नहीं दिया अतः वे अपना अपमान समझ कर राजा और यज्ञवादियों से खिलाफ हो सूरिजी के पास में आये और सूरिजी से पूछने लगे कि महात्माजी ! धर्म के विषय में क्या बात है और आप क्या कहना चाहते हो ?

सूरिजी ने कहा महानुभावो ! आप जानते हो कि साधु हमेशा निस्पृही होते हैं और बिना कुछ लिये दिये केवल जनता का कल्याण के लिये धर्मोपदेश दिया करते हैं। हम लोग घूमते २ यहाँ आय गये हैं और श्रीमालनगर से हमें कुछ लेना देना भी नहीं है केवल अज्ञान के वश जनता उन्मार्ग पर चल कर कर्मबन्ध करके दुर्गति में जाने योग्य दुष्कर्म कर रही है उनको सद्मार्ग पर लगा कर सुखी बनाने के लिये ही हमारा उपदेश एवं प्रयत्न है। आप स्वयं समझ सकते हो कि इस प्रकार असंख्य प्राणियों की घेर हिंसा करना कभी धर्म पुण्य एवं स्वर्ग का कारण हो सकता है ? इसमें भी इस प्रकार के दुष्कर्म को ईश्वर कथित बतलाना यह कितना अज्ञान। कितना पाखण्ड।। कितना अत्याचार।।। इस पर भी आप जैसे समझदार लोग हाँ में हाँ मिला कर इन निरापाध मूक प्राणियों की दुराशीष में शामिल रहते हो पर याद रखिये किसी भव में वे मूक प्राणी सबल हों जायगे और आप निर्बल होंगे तो वे अपना बदला लेने में कभी नहीं चूकेंगे इत्यादि सूरिजी ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा इस प्रकार निडरता पूर्वक उपदेश दिया कि उन सुनने वालों के अज्ञान पटल दूर हो गये जैसे प्रचण्ड सूर्य के प्रकाश से बद्दल दूर हट जाते हैं।

पृच्छक लोगों ने सूरिजी के निस्पृही निडर निर्भय और सत्य वचन सुन कर दाँतों के तले अंगुली दबाते हुए विचार करने लगे कि महात्माजी का कहना तो सत्य है और पूर्व जमाना में एवं महाराजा जयसेन के समय भी इस यज्ञकर्म का विरोध हुआ था और आखिर राज यज्ञ करना बन्द कर अहिंसाधर्मोपासक बन गया था अतः अपने को भी इस बात का निर्णय अवश्य करना चाहिये। बिना ही कारण लाखों जीवों की हिंसा हो रही है इत्यादि। खैर ! वे लोग सूरिजी को नमस्कार कर वहाँ से चले गये। पर सूरिजी का उपदेश से धर्म के विषय निर्णय करने के लिये उन लोगों के हृदय में उत्कण्ठा पैदा हो गई।

उन लोगों ने इस बात का प्रयत्न करना शुरू किया और कई लोगों को इसके लिए समझा बुझा कर अपने पक्षकार भी बना लिये इतना ही क्यों यह राजा के खास प्रधान मंत्री यज्ञदत्त था उसका लक्ष भी धर्म के निर्णय की ओर आकर्षित कर लिया । मंत्री ने राजा को समझाया कि जब अपन धर्म के लिये इतना बड़ा कार्य कर रहे हैं तो इसका निर्णय तो अवश्य होना ही चाहिये इत्यादि । मंत्री पर राजा का पूर्ण विश्वास था, राजा ने मंत्री का कहना मान कर एक दिन मुकर्रर किया कि राजा की ओर से धर्म के विषय में सभा कर निर्णय करवाया जाय । अतः राजा की ओर से एक आमन्त्रण सूरिजी को दिया और दूसरा यज्ञाध्यक्ष ब्राह्मणों एवं पण्डितों को भी दिया गया । जब सूरिजी ने बड़े ही हर्ष के साथ राजा के आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया तब ब्राह्मणों ने राजा को समझाया कि नरेश । यह जैन सेवड़े नास्तिक हैं वेद एवं ईश्वर को तो यह मानते ही नहीं हैं आप क्या धर्म का निर्णय करना चाहते हो जिस धर्म को आपके पूर्वज मानते आये हैं वही धर्म सच्चा है फिर निर्णय क्या करना है क्या आपके पूर्वज नहीं समझते थे ? महाराजा भीमसेन ने बड़ेही कसौटी करके जिस धर्म को स्वीकार किया है उस पर ही आपको स्थिर रहना चाहिये इत्यादि बहुत समझाया । पर राजा ने कह दिया कि ठीक है मैं मेरे पूर्वजों का धर्म छोड़ना नहीं चाहता हूँ पर निर्णय करने में क्या हर्ज है मैंने जैनाचार्य को आमन्त्रण भेजवा दिया है अतः आप सभा में पधार कर अपनी सच्चाई के प्रमाणों से जनता को बतला दें कि यज्ञ करना ईश्वर की आज्ञा एवं ईश्वरके वाक्य सत्य हैं । इस पर ब्राह्मणों को लाचार हो राजा का कहना मानना ही पड़ा ।

ठीक समय पर इधर तो आचार्य श्री देवगुप्तसूरि अपने विद्वान शिष्यों के साथ राज सभा में पधारें उधर से ब्राह्मण समाज अपने पण्डितों को लेकर हाजर हुए । राजा, मंत्री, राजकर्मचारी एवं नागरिकों से सभा हॉल खचाखच भर गया । आचार्य देवगुप्तसूरि ने अहिंसापरमोधर्मः के विषय में जैनागमों के, महात्मा बुद्ध के और वेदान्तियों के वेद एवं पुराणों के इतने प्रमाण सभा के समक्ष रख दिया कि राजा और प्रजा सुन कर मंत्रमुग्ध बन गये । मानो उनके मनमन्दिर में अहिंसा महादेवी की प्राण प्रतिष्ठा तक भी हो गई इसके उत्तर में ब्राह्मणों ने इस प्रकार लच्चर दलीलें पेश की कि जिसका जनता के हृदय पटल पर कुछ भी असर न हुआ इतना ही क्या पर उन लोगों की क्रूरहिंसा की ओर सब को घृणा होने लग गई । वास्तव में यज्ञ एक निष्ठुर कर्म है किसी मांसाहारी पाखण्डियों की चलाई हुई कुप्रथा है जिससे घृणा आजाना एक स्वभाविक बात थी इस पर भी आचार्य श्री का जबर्दस्त उपदेश फिर तो कहना ही क्या था ।

भगवान् महावीर की जयध्वनी के साथ राजा प्रजा अहिंस भगवती के परमोपासक बन गये अर्थात जैन धर्म स्वीकार कर सूरिजी के शिष्य बन गये । इसी हालत में उन यज्ञवादियों के चेहरे फीके पड़ गये और वे हताश होकर हाँ हो का हुल्लड़ मचा कर वहाँ से चले गये ।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा हो रहा था जिस यज्ञ के लिये लाखों मूक् प्राणियों को एकत्र किए गये थे उन सबको छोड़वा दिये गये अतः वे अपने दुःखित हृदय को शान्त करके सूरिजी महाराज को आशीर्वाद देते हुए निर्भयता के साथ अपने बाल बच्चों से जाकर मिले ।

सूरिजी महाराज कई अर्सा तक भीनमाल में स्थिरता कर उन नूतन श्रावकों को जैन धर्म की क्रिया कांड आचार व्यवहार का अभ्यास करवाया जब सूरिजी वहाँ से विहार करने लगे तो भक्त लोगों ने बड़ी

की कि प्रभो । आप यह चातुर्मास यहां ही करावें कि हम लोग जैन धर्म के तत्त्वों को ठीक समझलें इत्यादि ।

सूरिजी ने लाभालाभ का विचार कर उन भक्त जनों की विनती स्वीकार करली और अपने साधुओं को वहां ठहराकर आप आसपास में विहार कर यथा समय भीनमाल पधार कर चतुर्मास किया। सूरिजी के विराजने से बहुत ही लाभ हुआ आपके उपदेश से महावीर का मन्दिर भी बनवाया गया इत्यादि ।

इस प्रकार सूरिजी महाराज ने जैनधर्म का खूब प्रचार किया आपने देशाटन भी बहुत किया मरुधर लाट सौराष्ट्र कच्छ सिन्धु पंचाल अंग बंग कलिंग आवंति मेदपाट और दक्षिणादि प्रान्तों में अनेकवार विहार किया आप श्री ने जैसे जैनेतरों को जैन बनाकर जैन संख्या में वृद्धि की वैसे ही अनेक मुमुक्षुओं को संसार के बन्धनों से मुक्तकर जैन धर्म की दीक्षा देकर श्रमण संघ में भी खूब ही वृद्धि की । पट्टावलीकार लिखते हैं कि आपश्री की आज्ञावृत्ति ५००० साधु साध्वियों पृथक् पृथक् प्रान्तों में विहार करते थे खूबी यह थी कि एक आचार्य इतनी विशाल समुदाय को सभाल सकते थे । क्योंकि भगवान् पार्श्वनाथ के पट्टधरों में एक ही आचार्य होते आये हैं यही कारण है कि भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानियें एक ही आचार्य की आज्ञा में व्यवस्थित रूप में रहते थे । हां योग्य मुनियों को उपाध्याय गणि वाचक पण्डित पद दिया जाता था पर गच्छ नायक शासन करने वाले आचार्य एक ही होते थे और इसमें भी विशेषता यह थी कि देवी सच्चायिका की सम्मति से वे आचार्य अपने पट्टधर बनाते थे ।

आचार्य देवगुप्त सूरि जैनसमाज में बड़े ही विद्वान प्रभावशाली और धर्म प्रचारक आचार्य हुये हैं आप अपनी अन्तिमावस्था में अपने शिष्य एवं सर्वगुण सम्पन्न मुनि धनदेव को भीनमाल नगर के शा० पेथा भारमल भद्रगौत्रीय के महामहोत्सव पूर्वक आचार्य पद प्रतिष्ठित कर आप अनशन एवं समाधिपूर्वक भीनमाल नगर में वीरात् ४५८ वें वर्ष में स्वर्गवासी हुए ।

पट्टावलियों और वंशावलियों में उल्लेख मिलता है कि आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी ने अपने जीवन में ऐसे ऐसे चोखे और अनोखे कार्य किये थे कि जिससे जैनशासन की अच्छी प्रभावना हुई जैसे भीनमालनगर के प्राग्वट नारायण के संघपतित्व में श्रीसिद्धगिरि आदि तीर्थों का विराट् संघ निकाला जिसमें ५००० साधु साध्वियों और करीब पांच लक्षयात्री गण थे इस सघ के हित नारायण ने नौलक्ष द्रव्य व्यय किया । चन्द्रावती के श्रीमाल रामा शार्दूल ने चन्द्रवाती में भगवान् महावीर का बावनदेहरीवाला विशाल मन्दिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा में करीब नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया । कोरंटपुर के बाप्पनाग गौत्र के शाह हरदास काल्हणादि ५४ नर नारियों ने सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा स्वीकार की थी उपकेशपुर के अदित्य नाग गौत्रीय राव गोसलादि चार भाइयों ने सूरिजी के पास दीक्षा ली जिसके महोत्सव में पांच लक्ष रुपये शुभ कार्यों में व्ययकिये इत्यादि यहां तो केवल संक्षिप्त में ही लिखा है पर इस प्रकार सेकड़ों ऐसे अनोखे कार्य हुए अतः सूरिजी के उपकार के लिये जैनसमाज सदैव के लिये आभारी है—

चौदहवें पट्टपर देवगुप्त हुए सूरीश्वर यशः धारी थे
जिनके गुणों का पार न पया आप बड़े उपकारी थे
अजैनों को जैन बना कर महाजन संघ बढ़ाया था
मन्दिरों की प्रतिष्टा करके जीवन कलस चढ़ाया था

इति भगवान् पार्श्वनाथ के चौदहवें पट्टधर आचार्य देवगुप्तसूरि महा प्रभाविक हुए—

उन लोगों ने इस बात का प्रयत्न करना शुरू किया और कई लोगों को इसके लिए समझा बुझा कर अपने पक्षकार भी बना लिये इतना ही क्यों यह राजा के खास प्रधान मंत्री यज्ञदत्त था उसका लक्ष भी धर्म के निर्णय की ओर आकर्षित कर लिया। मंत्री ने राजा को समझाया कि जब अपन धर्म के लिये इतना बड़ा कार्य कर रहे हैं तो इसका निर्णय तो अवश्य होना ही चाहिये इत्यादि। मंत्री पर राजा का पूर्ण विश्वास था, राजा ने मंत्री का कहना मान कर एक दिन मुकर्रर किया कि राजा की ओर से धर्म के विषय में सभा कर निर्णय करवाया जाय। अतः राजा की ओर से एक आमन्त्रण सूरिजी को दिया और दूसरा यज्ञाध्यक्ष ब्राह्मणों एवं पण्डितों को भी दिया गया। जब सूरिजी ने बड़े ही हर्ष के साथ राजा के आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया तब ब्राह्मणों ने राजा को समझाया कि नरेश। यह जैन सेवड़े नास्तिक हैं वेद एवं ईश्वर को तो यह मानते ही नहीं हैं आप क्या धर्म का निर्णय करना चाहते हो जिस धर्म को आपके पूर्वज मानते आये हैं वही धर्म सच्चा है फिर निर्णय क्या करना है क्या आपके पूर्वज नहीं समझते थे ? महाराजा भीमसेन ने बड़े ही कसौटी करके जिस धर्म को स्वीकार किया है उस पर ही आपको स्थिर रहना चाहिये इत्यादि बहुत समझाया। पर राजा ने कह दिया कि ठीक है मैं मेरे पूर्वजों का धर्म छोड़ना नहीं चाहता हूँ पर निर्णय करने में क्या हर्ज है मैंने जैनाचार्य को आमन्त्रण भेजवा दिया है अतः आप सभा में पधार कर अपनी सच्चाई के प्रमाणों से जनता को बतला दें कि यज्ञ करना ईश्वर की आज्ञा एवं ईश्वरके वाक्य सत्य हैं। इस पर ब्राह्मणों को लाचार हो राजा का कहना मानना ही पड़ा।

ठीक समय पर इधर तो आचार्य श्री देवगुप्तसूरि अपने विद्वान शिष्यों के साथ राज सभा में पधारे उधर से ब्राह्मण समाज अपने पण्डितों को लेकर हाजर हुए। राजा, मंत्री, राजकर्मचारी एवं नागरिकों से सभा हॉल खचाखच भर गया। आचार्य देवगुप्तसूरि ने अहिंसापरमोधर्मः के विषय में जैनागमों के, महात्मा बुद्ध के और वेदान्तियों के वेद एवं पुराणों के इतने प्रमाण सभा के समक्ष रख दिया कि राजा और प्रजा सुन कर मंत्रमुग्ध बन गये। मानो उनके मनमन्दिर में अहिंसा महादेवी की प्राण प्रतिष्ठा तक भी हो गई इसके उत्तर में ब्राह्मणों ने इस प्रकार लच्चर दलीलें पेश की कि जिसका जनता के हृदय पटल पर कुछ भी असर न हुआ इतना ही क्या पर उन लोगों की क्रूरहिंसा की ओर सब की घृणा होने लग गई। वास्तव में यज्ञ एक निष्ठुर कर्म है किसी मांसाहारी पाखण्डियों की चलाई हुई कुप्रथा है जिसमें घृणा आजाना एक स्वभाविक बात थी इस पर भी आचार्य श्री का जबर्दस्त उपदेश फिर तो कहना ही क्या था।

भगवान् महावीर की जयध्वनी के साथ राजा प्रजा अहिंस भगवती के परमोपासक बन गये अर्थात् जैन धर्म स्वीकार कर सूरिजी के शिष्य बन गये। इसी हालत में उन यज्ञवादियों के चेहरे फीके पड़ गये और वे हतारा होकर हाँ हो का हुल्लड़ मचा कर वहाँ से चले गये।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा हो रहा था जिस यज्ञ के लिये लाखों मूक प्राणियों को एकत्र किये गये थे उन सबको छोड़वा दिये गये अतः वे अपने दुःखित हृदय को शान्त करके सूरिजी महाराज को आशीर्वाद देते हुए निर्भयता के साथ अपने बाल बच्चों में आकर मिले।

सूरिजी महाराज कई अर्सों तक भीनमाल में स्थिरता कर उन नूतन श्रावकों को जैन धर्म की क्रिया कांड आचार व्यवहार का अभ्यास करवाया जब सूरिजी वहाँ से विहार करने लगे तो सब लोगों ने बड़ी

की कि प्रभो । आप यह चातुर्मास यहां ही करावें कि हम लोग जैन धर्म के तत्त्वों को ठीक समझलें इत्यादि ।

सूरिजी ने लाभालाभ का विचार कर उन भक्तजनों की विनती स्वीकार करली और अपने साधुओं को वहां ठहराकर आप आसपास में विहार कर यथा समय भीनमाल पधार कर चतुर्मास किया। सूरिजी के विराजने से बहुत ही लाभ हुआ आपके उपदेश से महावीर का मन्दिर भी बनवाया गया इत्यादि ।

इस प्रकार सूरिजी महाराज ने जैनधर्म का खूब प्रचार किया आपने देशाटन भी बहुत किया मरुधर लाट सौराष्ट्र कच्छ सिन्धु पंचाल अंग बंग कलिंग आवंति मेदपाट और दक्षिणादि प्रान्तों में अनेकवार विहार किया आप श्री ने जैसे जैनतरों को जैन बनाकर जैन संख्या में वृद्धि की वैसे ही अनेक मुमुक्षुओं को संसार के बन्धनों से मुक्तकर जैन धर्म की दीक्षा देकर श्रमण संघ में भी खूब ही वृद्धि की । पट्टावलीकार लिखते हैं कि आपश्री की आज्ञावृत्ति ५००० साधु साध्वियों पृथक् पृथक् प्रान्तों में विहार करते थे खूबी यह थी कि एक आचार्य इतनी विशाल समुदाय को सभाल सकते थे । क्योंकि भगवान् पार्श्वनाथ के पट्टधरों में एक ही आचार्य होते आये हैं यही कारण है कि भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानियें एक ही आचार्य की आज्ञा में व्यवस्थित रूप में रहते थे । हां योग्य मुनियों को उपाध्याय गणि वाचक पण्डित पद दिया जाता था पर गच्छ नायक शासन करने वाले आचार्य एक ही होते थे और इसमें भी विशेषता यह थी कि देवी सच्चायिका की सम्मति से वे आचार्य अपने पट्टधर बनाते थे ।

आचार्य देवगुप्त सूरि जैनसमाज में बड़े ही विद्वान प्रभावशाली और धर्म प्रचारक आचार्य हुये हैं आप अपनी अन्तिमावस्था में अपने शिष्य एवं सर्वगुण सम्पन्न मुनि धनदेव को भीनमाल नगर के शा० पेथा भारमल भद्रगौत्रीय के महामहोत्सव पूर्वक आचार्य पद प्रतिष्ठित कर आप अनशन एवं समाधिपूर्वक भीनमाल नगर में वीदान् ४५८ वें वर्ष में स्वर्गवासी हुए ।

पट्टावलियों और वंशावलियों में उल्लेख मिलता है कि आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी ने अपने जीवन में ऐसे ऐसे चोखे और अनोखे कार्य किये थे कि जिससे जैनशासन की अच्छी प्रभावना हुई जैसे भीनमालनगर के प्राग्वट नारायण के संघपतित्व में श्रीसिद्धगिरि आदि तीर्थों का विराट् संघ निकाला जिसमें ५००० साधु साध्वियों और करीब पांच लक्षयात्री गए थे इस सघ के हित नारायण ने नौलक्ष द्रव्य व्यय किया । चन्द्रावती के श्रीमाल रामा शार्दूल ने चन्द्रवाती में भगवान् महावीर का बावनदेहरीवाला विशाल मन्दिर बनाया जिसकी प्रतिष्टा में करीब नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया । कोरंटपुर के बाप्पनाग गौत्र के शाह हरदास कालहणादि ५४ नर नारियों ने सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा स्वीकार की थी उपकेशपुर के अदित्य नाग गौत्रीय राव गोसलादि चार भाइयों ने सूरिजी के पास दीक्षा ली जिसके महोत्सव में पांच लक्ष रुपये शुभ कार्यों में व्ययकिये इत्यादि यहां तो केवल संक्षिप्त में ही लिखा है पर इस प्रकार सेकड़ों ऐसे अनोखे कार्य हुए अतः सूरिजी के उपकार के लिये जैनसमाज सदैव के लिये आभारी है—

चौदहवें पट्टपर देवगुप्त हुए सूरीश्वर यशः धारी थे
जिनके गुणों का पार न पया आप बडे उपकारी थे
अजैनों को जैन बना कर महाजन संघ बढ़ाया था
मन्दिरों की प्रतिष्टा करके जीवन कलस चढ़ाया था

इति भगवान् पार्श्वनाथ के चौदहवें पट्टधर आचार्य देवगुप्तसूरि महा प्रभाविक हुए—

१५—आचार्य श्री सिद्धसूरि [द्वितीय]

आचार्यस्तु स सिद्ध सूरिर भवद्वंशेस्तु ते चिंचटे,
नाना मन्दिर पंक्ति कारण पटुः शत्रुंजयस्य प्रियः ।
वल्लम्भी नगरी गतं जनपतिं नाम्ना शिलादित्यकं,
बोधित्वा व्यदधातु भक्त मिहयो शत्रुंजयोद्धारकः ॥

आचार्यश्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज मरुधर के एक चमकते हुए सितारे थे । जैसे भगवान नेमिनाथ के द्वारामति और प्रभु महावीर के राजगृह था वैसे ही उपकेशगच्छाचार्यों के लिए उपकेशपुर नगर था जब जब आचार्यमहाराज उपकेशपुर पधारते थे तब तब उनको कुछ न कुछ अपूर्व लाभ हो ही जाता था यही कारण था कि उपकेशगच्छ के आचार्य उपकेशपुर में विशेष पधारते थे । एक तो इन आचार्यों का विहार क्षेत्र प्रायः मरुधरादि प्रदेश था, दूसरा भगवान् महावीर की यात्रा, तीसरा इस नगर में सबसे प्रथम आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी ने महाजनसंघ की स्थापना की थी । अतः उपकेशपुर की भूमि एक तीर्थ स्वरूप समझी जाती थी। और चतुर्थ देवी सच्चायिका उपकेशगच्छ की अधिष्टात्री भी थी ।

आचार्य देवगुप्तसूरिजी एक समय अपने शिष्यों के परिवार सहित विहार करते हुए उपकेशपुर की ओर पधार रहे थे । यह समाचार मिलते ही जनता में उत्साह का एक समुद्र ही उमड़ उठा कारण आप इसी उपकेशपुर के चमकते हुए सितारे थे अतः लोगों को देश एवं नगर का गौरव था । राजा प्रजा की ओर से आपका सुन्दर स्वागत हुआ । आचार्य श्री का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य एवं तात्त्विक विषय पर होता था जिसका जनता पर काफी प्रभाव पड़ता था ।

उपकेशपुर में चिंचट गौत्रीय शाह रूपणसिंह धनकुबेर के नाम से मशहूर था । आपकी धर्म पत्नी गृहदेवी का नाम जाल्हण देवी था । आपके यों तो कई संतान थीं पर एक भोपाल नाम का पुत्र बड़ा ही होनहार एवं कुल में प्रदीप समान था । रूपणसिंह हमेशा सकुटुम्ब सूरिजी का व्याख्यान सुन कर भक्ति उपासना किया करते थे । उन लोगों के संस्कार ही ऐसे थे कि वे धर्म को ही सार समझते थे ।

एक दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में संसार की असारता का वर्णन करते हुए मनुष्य भव की सफलता का एक ऐसा उपाय बतलाया कि संसार में क्षण मात्र के सुख और बहुतकाल दुःख अर्थात् पौद्गलिक सुख क्षण मात्र के हैं और इसमें रत हो कर धर्माराधन नहीं करते हैं वे जीव दीर्घ काल तक नरक के दुःखों का अनुभव करते हैं । आपश्री ने जब नरक के कुम्भीपाक के दुःखों का वर्णन किया तो श्रोता वर्ग के रोमांच खड़े हो आये और सहसा उनका दिल संसार से विरक्त हो गया ।

शाह रूपणसिंह का लघु पुत्र जो भोपाल नामा किशोर वय में एवं [illegible] [illegible] था उसके कोमल हृदय पर व्याख्यान का ऐसा प्रभाव पड़ा जैसा नाव का प्रचालन [illegible]

सूरिजी ने पूछा कि श्रोताओं ! मेरे उपदेश का आप लोगों पर कुच्छ असर हुआ; हैं क्या कोई भव्य अपना आत्म कल्याण करने के लिये तय्यार है ? क्योंकि ऐसा सुअवसर बार बार मिलना मुश्किल है।

सभा में से सब से पहले बालकुमार भोपाल ने उठ कर कहा 'पूज्यवर ! मैं अपना कल्याण करने के लिये और तो क्या पर आपश्री के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा लेने को भी तैयार हूँ। मैं यह बात निश्चयपूर्वक कहता हूँ। इस बालकुमार का वैराग्यमय वचन सुन कर और भी कई भव्य आपका अनुकरण करने को तैयार हो गये। पर शाह रूपणसिंह और जाल्हण देवी को यह बात कब अच्छी लगने वाली थी उन्होंने अपने प्यारेपुत्र के इस प्रकार के शब्द सुन कर एक दम दुखी हृदय से कहा कि महाराज ! भोपाल अन समझ बालक है इसकी बात पर विश्वास न किया जाय अभी यह दीक्षा में क्या समझता है ? और अभी हम ऐसे बच्चे को दीक्षा लेने भी कैसे देंगे ? अभी तो इसकी शादी भी करनी है इत्यादि।

सूरिजी महाराज ने फरमाया कि रूपणसिंह। आप संतोष रक्खे ? जैन साधुओं का आचार है कि विना माता पिता की आज्ञा किसी को भी दीक्षा नहीं देते हैं पर भोपाल की भावना का तो सभी को अनु मोदन करना ही चाहिये। भले ! भुक्त भोगी लोग जो कि परभव की तय्यारी में हैं ऐसे वृद्ध लोग इन्द्रियों के गुलाम एवं विषय विकार के कीड़े होते हुए संसार के दास बन रहे हैं तब यह बच्चा संसार त्यागने की इच्छा कर रहा है इस हालत में आपको अन्तराय देने की वजाय तो यदि पुत्र से सच्चा प्रेम है तो पुत्र के साथ दीक्षा लेकर स्वपर का कल्याण करे यही आपके लिये सुअवसर है। बस सूरिजी का उपदेश क्या था एक जादू ही था। रूपणसिंह ने सूरिजी के हुक्म को शिरोधार्य कर लिया। सभा विसर्जन होने के पश्चात् रूपणसिंह अपने मकान पर आया और भोपाल की माता जाल्हण देवी को पूछा कि तुम्हारा पुत्र भोपाल गुरु महाराज के पास दीक्षा लेता है। कहो तुम्हारी क्या मरजी है ? जाल्हण देवी ने कहा कि पुत्र ही क्यों पर आप भी तो दीक्षा लेने को तय्यार हुए हो फिर मुझे क्या पूछते हो ? "मैं पूछता हूँ कि तुम अपने पुत्र का साथ करोगी या घर में रहोगी ? " जाल्हण देवी ने जवाब दिया कि जब आपकी इच्छा ही मुझे दीक्षा दिलाने की है तो मैं संसार में रह कर क्या करूंगी। अतः जाल्हणदेवी भी अपने पिती एवं पुत्र का अनुकरण किया।

इस प्रकार नगर में कोई ३७ नरनारियाँ दीक्षा लेने को तैयार हो गये। अहा-ह कैसे लघु कर्म जीव थे कि जिनको केवल व्याख्यान से ही वैराग्य हो आया और इस प्रकार संसार के सुख सम्पति पर लात मार कर दीक्षा लेने को तयार हो गये। बस ! क्षयोपशम इसी को ही कहते हैं।

उपकेशपुर में आज सर्वत्र आनन्द मंगल हो रहा है दीक्षा का बाजा चारों ओर बज रहा है। मुक्ति रमणि के वर बंदोले खा रहे हैं। उपकेशपुर नरेश पुण्यपालादि श्रीसंघ ने दीक्षा महोत्सव के निमित्त जैन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव और पूजा प्रभावना करवा रहे हैं। इन दीक्षा का प्रभाव आस पास के ग्रामों में भी इतना पड़ा कि वे लोग भी झुण्ड के झुण्ड आने लगे। शाह रूपणसिंह के ज्येष्ठ पुत्र क्षेमराज ने अपने माता पिता एवं लघु भ्राता की दीक्षा का खूब महोत्सव मनाया। बाहर से आने वाले स्वधर्मी भाइयों का अच्छी तरह स्वागत किया। इस महोत्सव में शाह क्षेमराज ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया।

शुभ मुहूर्त में सूरीश्वरजी महाराज ने भोपालादि ३७ नरनारियों को बड़े ही समारोह एवं जैन शास्त्रों के विधि विधान से दीक्षा दी और बालकुमार भोपाल का नाम धनदेव रख दिया।

यों तो सूरिजी महाराज की सब साधुओं पर पूर्ण कृपा थी पर मुनिधनदेव एक तो बाल श्रमण था तथा

दूसरा वह भविष्य में होनहार भी था और उसका विनय भक्ति भी अलौकिक था अतः मुनिधनदेव पर कृपा थी। सबसे पहले मुनिधनदेव को शास्त्रों का अध्ययन करवाना आरम्भ किया। मुनि धनदेव पर सूरिजी की अनुग्रह थी वैसे ही सरस्वती की भी पूर्णकृपा थी अतः मुनिधनदेव ने स्वल्प समयमें ही हस्त की भांति सवशास्त्र कंठस्थ कर लिए साथ में व्याकरण न्याय तर्क छंद अलङ्कार काव्य आदि का भी अध्ययन कर लिया इतना ही क्यों पर आपने स्वमत के साथ परमत के तमाम साहित्य का अभ्यास भी कर लिया ज्ञान के साथ साथ और भी तर्क वाद शास्त्रार्थ में भी निपुण हो गये और आपके धैर्यता, गम्भीरता, शीलता, सौम्यता क्षमता और उदारतादि गुण तो इस प्रकार के थे कि आपके गुणों का वर्णन करने में बृहस्पति भी असमर्थ था यही कारण है कि आपनेआचार्य देवगुप्तसूरि के दिल को सहज ही में अपनी ओर आकर्षित कर लिया जिसमें सूरिजी ने अपनी अन्तिमावस्था में चन्द्रावती के प्राग्वट नोढ़ा के महोत्सव पूर्वक अपना सर्व अधिकार मुनिधनदेव को देकर उसको सूरि पद से विभूषित कर आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया।

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज महान् प्रभावशाली हुए आपका विहारक्षेत्र इतना विशाल था। मरुधर लाट सौराष्ट्र कच्छ सिंध पंचाल और पूर्व प्रान्त तक घूम घूमकर जैन धर्म का प्रचार किया करते थे यह बात तो स्वभाविक है कि जिस धर्म के उपदेशक जितने अधिक प्रदेश में विहार करेंगे उनका धर्म उतना ही अधिक क्षेत्र में प्रसरित हो जायगा। यदि वे आचार्य एकाध प्रांन्त में ही बैठ जाते तो वे इतने विशाल प्रदेश में जैनधर्म का प्रचार नहीं कर पाते। हाँ अनूकूलक्षेत्रों में सुख से रहना कौन नहीं चाहते हैं पर इस प्रकार साधु पौद्गलिक सुखों से मोहित हो जाते हैं तो उनका धर्म संसार में चिरकाल तक जीवित नहीं रहता है जिस को आज हम प्रत्यक्ष में देख रहे हैं कि जिन सूरीश्वरों पर शासन की जुम्मेवारी है इतना ही क्यों पर वे खुद शासन सम्राट् जैनधर्म उद्धारक आदि उपाधियों से मान एवं सम्मान पाने की पुकारें करते हैं वह वे एक प्रान्त को छोड़ कर किसी अन्य प्रान्तों में विहार नहीं करने से ही धर्म का पतन हो रहा है। नये जैन बनाना तो दूर किनार रहे पर पूर्वाचार्यों के बनाये हुए जैनों का रक्षण ही नहीं कर सकते हैं। दीक्षा के समय प्रत्येक साधु को रोहिनी आदि चार बहनों का उदाहरण सुनाया जाता है पर उसका अमल कौन करता है ? यही कारण है कि वर्त्तमान सूरीश्वर जैनधर्म के वर्द्धक पोषक और रक्षक नहीं पर भक्षक बन रहे हैं। हमारे पूर्वजों ने करोड़ों की तादाद में जैनों को इस विश्वास पर छोड़ गये थे कि हमारी संतान इनका पोषण कर वृद्धि करेगी पर हम ऐसे सपूत निकले कि करोड़ों की संख्या को घटा कर आज लाखों पर ले आये हैं। भविष्य के लिये ज्ञानी ही जानते हैं कि जैनधर्म का क्या हाल होगा ?

आचार्य श्री सिद्धसूरिजी महाराज अपने पूर्वजों की भाँति प्रत्येक प्रान्त में घूमते रहते थे और अपने साधु साध्वियों को भी प्रत्येक प्रान्त में विहार की आज्ञा दे दिया करते थे अतः आपश्री के शासन समय जैनधर्म का प्रचुरता से प्रचार हो रहा था।

एक समय आपश्री लाट प्रान्त में भ्रमण करते हुए सौराष्ट्र प्रान्त में पधार रहे थे। जब आपका शुभागमन वल्लभीपुरी की ओर हुआ तो वहाँ की जैन जनता में खूब हर्षानंद होने लगा। श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज का सुंदर स्वागत किया। सूरिजी का प्रभावोत्पादक व्याख्यान इतना रोचक पाचक और असरकारी था कि जिसकी प्रशंसा सुनकर वहाँ का नरपति राजा शिलादित्य भी एक समय अपने मंत्री व कर्मचारियों के साथ सूरिजी के व्याख्यान में उपस्थित हुए। सूरिजी को वन्दन कर योग्य स्थान पर बैठ गया।

सूरिजी ने अपनी ओजस्वी भाषा द्वारा राजाओं की नीति और धर्म के विषय में खूब विवेचन के साथ उपदेश दिया। तत्पश्चात् सौराष्ट्र की पवित्र भूमि पर आये हुए तीर्थों का वर्णन करते हुए फरमाया कि तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजय एक महान् तीर्थ है प्रायः यह तीर्थशाश्वता है इस तीर्थ की सेवा उपासना आदि से लाखों करड़ों नहीं पर भूतकाल में अनन्त जीवों ने जन्ममरण के दुख मिटा कर अपना कल्याण किया है। और इस वल्लभी के लोग तो और भी भाग्यशाली है कि यह की भूमि शत्रुंजय तीर्थ की तलेटी का धाम रहा था। कई मुनियों एवं संघपतियोंसे यह भूमि पवित्र हुई है। वल्लभी के लोगों के लिये श्रीशत्रुंजय की भक्ति कर पुण्य संचय करना बिलकुल आसान भी है इत्यादि उपदेश दिया। जिसका प्रभाव यों तो सब लोगों पर हुआ ही था पर विशेष असर राजा शिलादित्य पर हुआ कि आपके हृदय में तीर्थ की सेवा भक्ति करने की भावना प्रबल हो आई। राजा ने किसी अन्य समय सूरिजी के पास आकर धर्म के विषय में अपने दिल की शंकाओं का समाधान कर सूरिजी महाराज के चरण कमल में जैनधर्म को स्वीकार कर लिया।

जब सूरिजी ने वहां से सिद्धगिरी की यात्रा के निमित्त जाने का विचार किया तो और लोगों के साथ राजा शिलादित्य भी श्रीशत्रुंजय की यात्रार्थ सूरिजी के साथ होगया सूरिजी ने यात्रा निमित्त 'छ री' का उपदेश दिया जिसको समझ कर राजा बहुत हर्ष एवं आनन्द में मग्न हो गया और सूरिजी के साथ पैदल 'छ री' पालता हुआ तीर्थधिराज श्री सिद्धगिरि पहुँच कर भगवान् आदीश्वर की यात्रा की। राजा को तीर्थयात्रा का इतना रंग लग गया कि सूरीजी के उपदेश से प्रतिज्ञा करली कि कार्तिक फाल्गुन और आसाढ़ एवं तीन चातुर्मासि के और पर्युषणों के दिनों में यहां आकर मैं अष्टान्हिका महोत्सव करूँगा। तथा तीर्थ सेवा के लिये कुछ ग्राम भी भेंट किये। इतना ही क्यों पर सूरिजी के उपदेश से राजाशिलादित्य ने तीर्थ शत्रुञ्जय का उद्धार भी करवाया। जो पांचवा आरा में यह पहला ही उद्धार था।

आचार्य श्री के उपदेश से राजा शिलादित्य जैनधर्म का परमोपासक बन गया। तीर्थयात्रा के पाश्चात् सूरिजी को विनति कर पुनः वल्लभी ले आये और श्रीसंघ के साथ राजा ने अत्याग्रह से चतुर्मास की विनती की इस पर सूरिजी ने भी लाभालाभ का कारण जान चतुर्मास वहीं कर दिया फिर तो था ही क्या 'यथा राजस्तथाप्रजा' राजा के साथ प्रजा ने भी यथासाध्य धर्माराधन कर अपना कल्याण किया। राजा शिलादित्य ने वल्लभी नगरी में भगवान् आदीश्वर का एक विशाल मन्दिर बनाना प्रारम्भ कर दिया। सूरिजी महाराज के त्याग वैराग्यमय व्याख्यान ने जनता पर खूब ही प्रभाव डाला! राजा के कुटम्ब में एक वृद्धि राजपूत स्त्रि के एक लड़का था उसका भाव सूरिजी के पास दीक्षा लेने का हो गया पर बुढ़िया निराधार थी अतः पुत्र को आज्ञा देनी नहीं चाहती थी पर पुत्र को ऐसा तैसा वैराग्य नहीं था कि वह माता का मोह एवं रोकने से संसार में रह सके। अतः बुढिया ने राजा शिलादित्य के पास जा कर अपना दुःख निवेदन किया कि मेरे एकाएक पुत्र को बहका कर साधु लोग दीक्षा दे रहे हैं अतः आप साधुओं को समझा दें वरन् मैं आपघात कर मर जाऊंगी इत्यादि।

---

[२] तेषां श्री कक्कसूरीणां, शिष्याः श्रीसिद्धसूरयः। वल्लभी नगरेजग्मुर्विहरन्तो मही तले ॥
नृपस्तत्र शिलादित्यः सूरिभिः प्रतिबोधितः। श्री शत्रुंजयतीर्थस्य उद्धारान् विदधे बहून्॥
प्रति वर्ष पर्यूषणे, सचतुर्मासकत्रये। श्री शत्रुंजयतीर्थेऽगात् यात्रायैं नृप उत्तमः ॥
तत्रस्थैः सूरिभिः पौराः स्थापिता केऽपि सत्पथे। यच्चादृशानां निर्माणं लोकोपकृति हेतवे ॥

राजा सूरिजी के पास आया और विनय के साथ सब हाल निवेदन किया इस पर सूरिजी ने कहा कि हे राजन् हम लोगों का यह आचार नहीं है कि हम किसी को बहकावें एवं भ्रम में डाल कर दीक्षा दें। यदि इसप्रकार से कोई दीक्षा ले भी ले तो वह दीक्षा पाल भी कैसे सकेगा है ? भले ! बहकाने से ही कोई दीक्षा लेता हो तो हम आपको एवं सबको ही बहका देते हैं सब दीक्षा लेने को तैयार होजाइये ? नरेश ! जैनदीक्षा कोई बच्चों का खेल नहीं है कि बिना वैराग्य बिना आत्म ज्ञान कोई लेकर उसका पालन कर सकें। और कोई महानुभाव ! सच्चा दिल से दीक्षा लेना भी चाहता हो तो उसको अन्तराय देना भी तो महान् पाप यदि बुढ़िया कुछ कहती हो तो उस को समझना चाहिये कि किस की माता और किस के पुत्र यह तो मुसाफिर वाला मेला मिला है न जाने काल के मुँह में माता पहले जायेगी या पुत्र ? अगर किसी माता पुत्र दीक्षा लेता हो तो उस माता को बड़ी खुशी मनानी चाहिये कि जिसकी कुक्ष में जन्म लेकर स्व पर कल्याण करने वाला पुत्र अपनी माता की कुक्ष को रत्नकुक्ष बना देता है और वह माता सर्वत्र धन्यवाद के योग्य कहलाई जाती है । राजन् ! आप जानते हो कि हम लोगों को इस में क्या स्वार्थ है ? हम लोग तो केवल जनता का कल्याण के लिये ही उपदेश एवं दीक्षा देते हैं फिर भी हमारा कोई आग्रह नहीं है जैसे जिन अच्छा लगे वह वैसा ही करे इत्यादि ।

राजा सूरिजी का वचन सुन कर समझ गया कि सूरिजी परोपकारी हैं अतः राजा ने बुढ़िया को समझा बुझा कर आज्ञा दीलादी और खुद राजा ने दीक्षा का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया ।

सूरिजी ने क्षत्री वीर शोभा को दीक्षा देकर उसको शोभाग्यसुंदर बना लिया । मुनि शोभाग्यसुन्दर पर सूरिजी की पूर्ण कृपा थी उसने शास्त्रों का अध्ययन के पश्चात् छट अट्ठमादि विविध प्रकार की तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया इतना ही क्यों पर तपस्या के पारणा के दिन कई प्रकार के अभिग्रह भी किया करता था और वे भी ऐसे कठिन अभिग्रह थे कि जिसके पूर्ण होने में कई दिन नहीं पर कोई मास तक भी पारणा नहीं होता था । एक वख्त आपने तपस्या के पारणा के लिए अभिग्रह कर उसकी यादी एक कागज पर लिख उसको बन्द कर गुरु महाराज को दे दी थी और पारणा के लिए शहरों में ही नहीं पर पात्र लेकर जंगलों में भी भ्रमण किया करते थे शायद इस अभिग्रह का सम्बन्ध जंगल से भी होगा । इस प्रकार तपोवृद्धि करता हुआ मुनिजी पुनः वल्लभी नगरी में आये आपकी तपस्या के कारण नगरी में सर्वत्र प्रशंसा फैलगई पर वहाँ एक सन्यासी आया हुआ था उसने समझा कि यह सब जैनियों का ढोंग है वह तपसी मुनि के पीछे गुप्त रूप से फरने लगा । एक समय इधर तो मुनि जंगल में भ्रमन करता था उधर एक सिंहनी आई उसके पंजा में कुछ पदार्थ था मुनि ने अपना पात्र सामने कर कहा माता कुछ भिक्षा देंगी ! सिंहनी ने शान्तभाव से उस पदार्थ को मुनि के पात्र में डाल दिया प्रच्छनपने खड़ा हुआ सन्यासी सब हाल देख रहा था मुनि भिक्षा ले कर सूरिजी के पास आया और जिस पत्र को बन्ध कर सूरिजी को दिया था उसको खोलाया तो बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि मुनि ने कैसा कठिन अभिग्रह किया है । उसी समय सन्यासी भी सूरिजी महाराज के पास आया और तपस्वी मुनि की खूब प्रशंसा करता हुआ कहाँ पूज्यवर ! जैन मुनि की तपस्या एवं अभिग्रह को मैं ढोंग समझता था पर यह मेरी भूल थी वास्तव में आप लोगों की सच्ची तपस्या है जिसका मनुष्य पर तो क्या पर क्रूर वृत्ति वाले तिर्यंचों पर भी प्रभाव पड़ता है जो मैंने मेरी आँखों से देखा है कि एक सिंहनी ने तपस्वी मुनि को शान्त वृत्ति से भिक्षा दी है ।

सूरिजी ने तप का महत्त्व बतलाते हुये कहा कि महात्माजी ! तप कोई साधारण व्रत नहीं है। पर पूर्व संचित कई भवों के कर्मों को नष्ट करने के लिये सर्वोत्कृष्ट व्रत तप ही है। तप से आत्मा का विकास होता है अनेक चमत्कारपूर्ण लब्धियें तप से उत्पन्न होती हैं। इतना ही क्यों पर संसार में जन्म मरण का महान दुःख है जिसको समूल नष्ट करने में तथा आत्मा से परमात्मा बनने में मुख्य कारण तप ही है। पूर्व जमाने में बड़े बड़े ऋषियों ने सैकड़ों हजारों वर्ष तक तपस्या की थी जिसका उल्लेख शास्त्रों में मिलता है और इस तप के भी अनेक भेद हैं जैसे—१—बाह्यतप २—आभ्यान्तर तप

बाह्यतप उसे कहते हैं कि जिस तप को लोग जान सकते हैं। जैसे

१—अनशन तप—उपवासादि अनेक प्रकार के तप किये जाते हैं।

२—उणोदरी—जो खाने पीने की खूराक है जिसमें कुछ कम खाना तथा कषाय को मंद करना।

३—भिक्षाचरी तप—आहार पानी की शुद्धता और अनेक प्रकार के अभिग्रहादि करना यह भी एक तप है।

४ -रसत्याग—दूध, दही घृत, मिष्टान्न आदि रस का त्याग करना।

५—कायाक्लेश तप—योग के ८४ आसन, तथा अतापना लेना, लोच करना इत्यादि।

६—प्रतिसलेखना तप-पशु, नपुंसक, स्त्रीमुक्त स्थान में रहना इन्द्रियों का दमन करना इत्यादि।

इन छः प्रकार के तप को बाह्य तप कहते हैं तथा आभ्यान्तर तप निम्न प्रकार है।

१—प्रायश्चित तप—अपने व्रतों में दूषण लगा हो, उसकी गुरु के पास में आलोचना करनी और गुरुदत्त प्रायश्चित का तप करना इसके शास्त्रों में ५० भेद बतलाये हैं।

२—विनयतप—गुरु आदि वृद्ध एवं गुणीजनों का विनय करना इसके १३४ भेद कहे हैं।

३—व्यावच्चतप—वृद्ध ग्लानी तपस्वी ज्ञानी और नवदीक्षित की व्यावच्च करना इसके १० भेद हैं।

४—स्वाध्याय तप—पठन पाठन मनन निधिध्यासनादि करना इसके ५ भेद हैं।

५—ध्यान तप—आर्त रौद्रध्यान से बचना, धर्म व शुक्लध्यान का चिन्तवन आसन, समाधि, योग आध्यात्म विचारणा को ध्यान कहते है।

६— विउस्सग्ग तप—कर्म कषाय संसारादि का त्याग रूप प्रयत्न करना इसके भी अनेक भेद हैं।

इन छः प्रकार के तप को आभ्यान्तर तप कहा जाता है। सन्यासीजी ! इस तप के साथ एक वस्तु की और भी खास जरूरत रहती है। जैसे औषधि के साथ अनुपान होता है और अनुकूल अनुपान से दवाई विशेष गुण देती है। इसी प्रकार तप के साथ सम्यग्दर्शन की जरूरत रहा करती है। सम्यग्दर्शन के साथ तप किया जाय तो कर्म को शीघ्र ही नष्ट कर आत्मा से परमात्मा बन सकता है।

सन्यासीजी ने कहा, पूज्यवर ! मैं आपकी परिभाषा में नहीं समझता हूँ। कि सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं। कृपा कर इसका खुलासा करके समझावें।

सूरिजी ने कहा कि सम्यग्दर्शन, उसे कहते हैं कि—सुदेव, सुगुरु, सुधर्म पर श्रद्धा रखना।

१—देव—सर्वज्ञ, वीतराग, अष्टादश दूषण रहित और द्वादशगुण सहित विश्वोपकारी हो जिनका अलौकिक जीवन और मुद्रा में त्याग शान्ति और परोपकार भरा हो। उनको देव समझना चाहिये।

२—गुरु-कनक कामिनी के त्यागी पंच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के पालक जनकल्याण के लिये जिन्होंने अपना जीवन अर्पण कर दिया हो उनको गुरु मानना चाहिये।

३—धर्म-देव की आज्ञा जैसे 'अहिंसा परमोधर्मः' को धर्म समझना।

इन तीनों तत्वों को व्यवहार से सम्यग्दर्शन कहते हैं तथा मिथ्यात्वमोहनिय (कुदेव कुगुरु, कुधर्म की श्रद्धा रखना) मिश्रमोहनीय (असत्य सत्य को एक सा ही मानना) सम्यक्त्वमोहनिय और अन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ एवं इन सात प्रकृति का क्षय करना इसको निश्चय सम्यग्दर्शन कहा जाता है इसके साथ तप करने से सम्पूर्ण फल मिलता है।

सन्यासीजी ने अपने जीवन में इस प्रकार के शब्द पहिले पहिल सूरिजी से ही सुने थे। अतः कुछ समय विचार कर बोला पूज्यवर ! मेरी इच्छा है कि मैं आपके चरण कमलों में रहकर सम्यग्दर्शन के साथ तप कर आत्मा से परमात्मा बनूं।

सूरिजी ने कहा 'जहांसुखम्' देवानुप्रिय ! केवल आप ही क्यों पर पूर्व जमानों में शिवराजर्षि, पोग्गलसन्यासी और खंदक वगैरह बहुत भव्यों ने इसी मार्ग का अनुकरण किया है और आत्मार्थी मुमुक्षुओं का यह कर्तव्य भी है कि सत्य मार्ग को स्वीकार कर अपना आत्मकल्याण करे।

सन्यासीजी ने अपने भंडोपकरण एक तरफ रखकर सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा स्वीकार करली। सूरिजी ने दीक्षा देकर आपका नाम 'कल्याणमूर्त्ति' रख दिया।

नूतन मुनि कल्याणमूर्त्ति ज्यों ज्यों जैनधर्म की क्रिया और ज्ञानाभ्यास करते गये त्यों २ आपको बड़ा भारी आनन्द आता गया। आपने सोचा कि मेरे जैसी अनेक आत्मायें अज्ञानसागर में गोता खा रही हैं। अतः मेरा कर्तव्य है कि मैं उन्हें समझा बुझा कर जैन धर्म की राह पर लाकर उनका उद्धार करूं। अतः सूरिजी से आज्ञा लेकर कई साधुओं के साथ आप विहार कर जैनधर्म के प्रचार में लग गये।

इस प्रकार सूरिजी ने अनेक मुमुक्षुओं को दीक्षा देकर जैनधर्म के प्रचार में लगा दिया।

आचार्य सिद्धसूरि अनेक प्रान्तों में विहार करते हुये एक समय उपकेशपुर नगर की ओर पधार रहे थे। इस बात का पता वहाँ के राजा रत्नसी आदि वहाँ के श्री संघ को मिला तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा। उन्होंने सूरिजी का नगर-प्रवेश बड़े ही समारोह के साथ करवाया। सूरिजी ने चतुर्विध श्री संघ के साथ भगवान महावीर और गुरु रत्नप्रभसूरिजी के दर्शन स्पर्शन कर अपना अहोभाग्य समझा। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य पर होता था। राजा प्रजा को बड़ा ही आनन्द आ रहा था। श्रीसंघ ने सूरिजी से चर्तुमास की आग्रह से विनती की और सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जान चर्तुमास उपकेशपुर में कर दिया।

एक दिन सूरिजी ने आचार्य रत्नप्रभसूरि और राजा उत्पलदेव व मंत्री ऊहड़ादि का उदाहरण बतलाते हुये समझाया कि इन महापुरुषों ने जैनधर्म के प्रचार के लिए कितना भागीरथ प्रयत्न किया था कि जिसकी बदौलत आज जैनधर्म का चारों ओर सितारा चमक रहा है। अतः आप लोगों को भी इन महात्माओं का अनुकरण करना चाहिये इत्यादि।

सूरिजी का उपदेश सुनकर राजा रत्नसी ने अपने विचारों को कई तरफ दौड़ाते हुये अन्त में इस निर्णय पर स्थिर किया कि उपकेशपुर में एक विराट् सभा का आयोजन किया जाय और उसमें वर्तमान

का प्रस्ताव रखा जाय तो उम्मेद है कि इस कार्य्य में सफलता मिल सके। राजा ने अपना विचार सूरिजी के सामने उपस्थिति किया तो सूरिजी ने प्रसन्नतापूर्वक राजा के कार्य्य पर अपनी अनुमति देदी। पर विशेषता यह थी कि सूरिजी ने कहा कि यह सभा केवल मरुधरवासियों के लिये ही न हो पर जहाँ उपकेशगच्छ एवं वंश के साधु एवं श्रावक हों उन सबके लिये की जाय अर्थात् मरुधरलाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्ध, पांचाल, आवन्ती और मेदपाट वग़ैरह सब प्रान्तों के लिये हो कि तमाम लोग इसमें भाग ले सकें। यह बात राजा के जँचगई और उसने कहा इसके लिये समय निर्णय करना चाहिये। सूरिजी ने कहा कि माघशुक्ल पूर्णिमा जो कि आचार्य रत्नप्रभसूरिजी के स्वर्गारोहण का दिन हैं मुकर्रर किया जाय तो अच्छा है। राजादि श्रीसंघ ने सब प्रकार से ठीक समय निश्चित कर लिया। बस, सकल श्रीसंघ की सम्मति लेकर राजा ने यथा समय अपने मनुष्यों द्वारा प्रत्येक प्रान्त में आमंत्रण पत्रिकायें भिजवा दीं। और आप स्वागत के लिये तैयारियें करने में जुट गया। उपकेशपुर की जनता में इतना उत्साह बढ़ गया कि वे अपने घरों के कामों को छोड़कर इस धर्म्म कार्य्य में संलग्न होगये।

वह समय इतना संतोषवृत्ति का था कि जनता में न तो इतनी तृष्णा थी और न इतनी आवश्यकतायें ही थीं। कारण एक तो देवी का वरदान था कि "उपकेशे वहुलं द्रव्यं" उपकेशवंशियों के पास द्रव्य वहुत था। दूसरे उस जमाने में सब लोग सादा और सरल जीवन गुजारते थे। अतः उनको दो-दो चार-चार और छः छः मास जितने समय की फ़ुरसत मिल सकती थी।

राजा रत्नसी आदि उपकेशपुर श्रीसंघ की ओर से आमंत्रण मिलने से प्रत्येक प्रान्त में चहल-पहल मच गई और सब लोगों की सूरत उपकेशपुर की ओर लग गई। कई लोग तो साधुओं के साथ तीर्थ यात्रा की भांति छरी पाली संघ लेकर उपकेशपुर की ओर प्रस्थान कर दिया था तब कई लोग अपनी सवारियों के जरिये आ रहे थे।

उपकेशपुर एक यात्रा का धाम बन गया था। वास्तव में था भी तीर्थ स्वरूप जहाँ शासनाधीश भगवान् महावीर और महाजनसंघ संस्थापक आचार्य रत्नप्रभसूरिजी की यात्रा हो फिर इससे अधिक तीर्थ ही क्या हो सकता है कि जहाँ देव गुरु की यात्रा तथा स्थावर तीर्थ के साथ जंगमतीर्थ की यात्रा का भी लाभ मिले।

उपकेशगच्छ, कोरंटगच्छ के साधुओं के अलावा लाट सौराष्ट्र एवं आवन्ति प्रदेश में भ्रमण करने वाले वीर सन्तानिये भी गहरी तादाद में पधारे थे। सब का स्वागत बड़े ही समारोह के साथ हुआ विशेषता यह थी कि पृथक २ गच्छों के श्रमण होने पर भी एक ही स्वरूप में दीखते थे। सब का आहार पानी वन्दन व्यवहार शामिल था। इस प्रकार श्रमण संघ की वात्सल्यता का प्रभाव जनता पर कम नहीं पड़ा था। वे देख कर मंत्र मुग्ध बन गये थे और यह श्रमण वात्सल्यता भाव प्रारम्भ कार्य की भावी सफलता की सूचना दे रहा था।

जिस प्रकार श्रमणसंघ के झुण्ड के झुण्ड आ रहे थे। इसी प्रकार श्राद्धवर्ग भी विस्तृत संख्या में आये थे। और वे भी केवल साधारण लोग ही नहीं थे पर कोरंटपुर का राव, चन्द्रावती का राजा, भीममाल का राव, कच्छ का नरेश, सिन्ध का राव वगैरह २ जैन धर्मोपासक नरेश एवं बड़े २ श्रावक लोग एकत्र हुये थे। आगन्तुकों के स्वागत का इन्तजाम पहले से ही हो रहा था। कारण मरुधरवासियों की

कार्य्य कुशलता जगत विख्यात ही थी। दूसरे धर्म प्रचार के उद्देश्य से आये हुओं के लिये स्वागत की इतनी आवश्यकता ही नहीं थी कारण वे सब लोग कार्य करने वाले ही थे।

सभा मण्डप खुला मैदान में इतना विशाल बनाया गया था कि जिसमें हजारों नहीं पर लाखों मनुष्य सुखपूर्वक बैठ सकें। जिसमें भी महिलाओं के लिये खास प्रवन्ध था—

ठीक माघशुक्ला पूर्णिमा के दिन आचार्य सिद्धसूरिजी महाराज की अध्यक्षता में सभा हुई।

मंगलाचरण के पश्चात कई सज्जनों के भाषण हुये तदनन्तर आचार्य सिद्धसूरि के धर्मप्रचार के विषय में व्याख्यान हुआ। आचार्य रत्नप्रभसूरि के समय की कठिनाइयों, तपश्चर्या और सहनशीलता तथा उन्होंने मरुधर में किस प्रकार जैन धर्म की नीव डाल कर महाजनसंघ की स्थापना की उनके सहायक राव उत्पलदेव मंत्री ऊहड़ का स्वार्थ त्याग और धर्मप्रचार का इतिहास बड़ी ओजस्वी वाणी द्वारा सुनाया कि सुनने वालों के हृदय में एक नयी शक्ति उत्पन्न हो गई। साथ में बौद्ध और वेदान्तियों के धर्म प्रचार का दिग्दर्शन भी करवाया तथा बतलाया कि जिस धर्म में राजसत्ता काम करती हो वही धर्म राष्ट्रधर्म बन जाता है। सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के और पुष्पमित्र ने वेद धर्म के अन्दर जान डाल कर उसका प्रचार किया था क्रमशः उसका पगपसारा आपके प्रदेशों में भी होने लगा है अतः आप लोगों को भी कमर कस कर तैयार रहना चाहिये। धर्म प्रचार के लिये एक श्रमण संघ ही पर्याप्त नहीं पर इसमें श्राद्ध वर्ग की भी आवश्यकता है। रथ चलता है वह दो पहियों से चलता है जिसमें भी राजाओं का तो यह कर्त्तव्य ही है कि वह अपनी तमाम शक्ति धर्म प्रचार में लगा दें। देखिये पूर्व जमाने का इतिहास

१—आचार्य रत्नप्रभसूरि के धर्म प्रचार में राजा उत्पलदेव ने सहयोग दिया था।

२—आचार्य यक्षदेवसूरि के धर्म प्रचार में राव रुद्राट और कुंवर कक्क सहायक थे।

३—आचार्य कक्कसूरि के धर्म प्रचार में राजा शिव की सहायता थी।

४—आचार्य भद्रबाहु के धर्म प्रचार में सम्राट चन्द्रगुप्त ने सहयोग दिया था।

५—आचार्य सुहस्थी के धर्म प्रचार में सम्राट सम्प्रति की सहायता थी।

६—आचार्य सुस्थीसूरि के धर्म प्रचार में चक्रवर्त्ति महाराज खारवेल की मदद थी।

इत्यादि अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। अतः आप लोगों को भी चाहिये कि धर्म प्रचार में साधुओं का हाथ बटावें। अर्थात् यथा साध्य सहायता पहुँचावे—

सूरिजी महाराज के प्रभावशाली उपदेश का उपस्थित चतुर्विध श्रीसंघ पर काफी प्रभाव पड़ा और उसी सभा के अन्दर कई लोग बोल उठे कि पूज्यवर ! जैसे आप आज्ञा फरमावें हम लोग पालन करने को तैयार हैं एवं कटिबद्ध हैं। इससे सूरिजी महाराज ने अपने परिश्रम को सफल हुआ समझा।

तत्पश्चात भगवान महावीर और गुरुवर्य्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी की जय ध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई। रात्रि समय राव रत्नसी ने एक सभा की जिसमें संघ अग्रेश्वर नरेश एवं क्षत्रिय और व्यापारी सब लोग शामिल थे। मुख्य बात सूरिजी के उपदेश को कार्य में परिणित करने की थी जिसको सब लोगों ने सहर्ष स्वीकार करली।

उस समय उपकेशगच्छ एवं कोरंटगच्छ में नायक आचार्य एक-एक ही हुआ करते थे। यही कारण था कि उस समय का संगठन बल अच्छा व्यवस्थित था और एक ही आचार्य की नायकता में चतुर्विध

श्रीसंघ का आत्म कल्याण हो रहा था फिर भी आचार्य समयज्ञ थे अपने आज्ञावृति साधुओं को दूर २ प्रदेश में विहार करवाया करते थे। अतः उन साधुओं में पदवीधरों की भी आवश्यकता थी। अतः सूरिजी ने अपने योग्य साधुओं को पदवियां प्रदान करने का भी निश्चय कर लिया था। यही कारण था कि दूसरे दिन पुनः सभा करके उपकेशगच्छ, कोरंटगच्छ और वीरसंतानियों में जो पदवियों के योग्य साधु थे उनको पदवियों से विभूपित किया। जैसे—१५ साधुओं को उपाध्यायपद २७ साधुओं को पण्डित पद १९ साधुओं को वाचनाचार्य १६ साधुओं को गणिपद ११ साधुओं को अनुयोग आचार्य पद

इत्यादि योग्य मुनियों को पदवियां देकर इनके उत्साह में खूब वृद्धि की बाद उन मुनियों की नायकत्व में प्रत्येक २ प्रान्तों में विहार करने की आज्ञा देदी। और सूरिजी स्वयं ५०० साधुओं के साथ बिहार करने को तत्पर हो गये।

इसके अलावा कोरन्टगच्छाचार्य्य सर्वदेवसूरि के शिष्यों के लिये भी भिन्न २ प्रान्तों में विहार करने की सलाह देदी और उन्होंने भी धर्मप्रचार निमित्त विहार कर दिया—

सूरिजी ने इस बात को ठीक समझ ली थी कि जिन साधुओं का जितना विशाल क्षेत्र में विहार होगा उतना ही धर्म प्रचार अधिक बढ़ेगा। कारण जनता झुकती है पर झुकानेवाला होना चाहिये इत्यादि उपकेशपुर में सभा करने से जैनों में खूब अच्छी जागृति हुई इसका सवश्रेय हमारे चरित्रनायक सूरीश्वरजी ही को है। साथ में उपकेशपुर नरेश का कार्य्य भी प्रशंसा का पात्र बन गया था।

आचार्य सिद्धसूरिजी ने अपनी छत्तीस वर्ष की आयु में गच्छ का भार अपने शिर पर लिया था और ६४ वर्ष तक आपने शासन चलाया जिसमें आपने प्रत्येक प्रान्त में अनेक २ बार भ्रमन कर अनेक भूलेभटके मांसाहारियों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा देकर उनका उद्धार कर महाजनसंघ में वृद्धि की। कई प्रान्तों से तीर्थों के संघ निकलवा कर उनको तीर्थयात्रा का लाभ दिया। कई मंदिर मूर्तियों एवं विद्यालयों की प्रतिष्ठा करवाई। कई मुमुक्षुओं को संसार से मुक्त कर जैनधर्म की दीक्षा देकर श्रमणसंघ की संख्या बढ़ाई। कई स्थानों पर बौद्ध और वेदान्तियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजय पताका फहराई। कहने की आवश्यकता नहीं है कि उस विकट परिस्थिति में आप जैसे शासन हितैषी सूरीश्वरजी ने ही जैनधर्म को जीवित रक्खा था। उस समय पृथक २ आचार्य होने पर भी संघ में छेद-भेद कोई नहीं डालते थे। संघ भी सबका यथायोग्य सत्कार करता था। यही कारण था कि उस समय का संघ संगठित व्यवस्थित एवं मजबूत था। कोई भी जाति वर्ण का क्यों न हो पर जिसने जैनधर्म स्वीकार कर लिया उसके साथ रोटी बेटी व्यवहार बड़ी खुशी के साथ कर लिया जाता था और उनको सब तरह की सहायता पहुँचा कर अपने बराबर का भाई बनालिया जाता था। धर्म के साथ इस प्रकार की सुविधाओं के कारण ही जैनों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई थी। उस समय धार्मिक कार्यों में जैनाचार्य का प्रभुत्व था। उनकी आज्ञा का सर्वत्र बहुमान पूर्वक पालन किया जाता था धर्माचार्य्य और श्रमणसंघ में आपसी प्रमस्नेह वात्सल्यता इस प्रकार थी कि वे पृथक् २ गच्छ के होने पर भी एक रूप में दीखते थे। एक दूसरे के कार्य्यों का अनुमोदन करते थे! इतना ही क्यों बल्कि एक दूसरे के कार्य्य में मदद कर उसको सफल बनाने की कोशिश भी किया करते थे इतना वृहद कार्य्य करने पर भी मान अहंकार या अहं पद तो उनके नजदीक तक भी नहीं फटकता था। आडम्बर के स्थान वे कार्य्य करने में अपना गौरव समझते थे।

इत्यादि कारणों से ही उन्होंने जैनधर्म का ठोस कार्य्य करने में सफलता प्राप्त की थी। आचार्य सिद्धसूरिने अपने दीर्घशासन में प्रत्येक प्रान्त में अनेक वार विहार कर जैन जनता को अपने उपदेशामृत का लाभ दिया था तथा लाखों मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित कर उनका उद्धार कर जैन संख्या में आशातीत वृद्धि की थी। अन्त में सूरिजी महाराज ने उपकेशपुर पधार कर अपने योग्य शिष्य उपाध्याय गुणचन्द्र को उपकेशपुर के श्रीसंघ के महामहोत्सव पूर्वक सूरिपद से विभूषित कर दिया और अन्य योग्य मुनियों को भी पदवियाँ प्रदान कर उनके उत्साह में वृद्धि की।

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी ने उपकेशपुर की लुणाद्री पहाड़ी पर अनशनव्रत धारण कर अपना शेष आयुष्य पूर्ण समाधि में विताया और वि० सं० ५२ में नवकार महामंत्र का ध्यान करते हुये स्वर्ग सिधाये।

पट्टावलियों वंशावलीयों और कई चरित्र ग्रंथों में बहुत से उल्लेख मिलते हैं। आपकी जानकारी के लिये कतिपय उदाहरण नमूने के तौर पर यहां बतला दिये जाते हैं।

१—आचार्य सिद्धसूरि के उपदेश से भद्रगोत्रिय शाह पेथा ने उपकेशपुर से श्रीशत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला जिसमें सवालक्ष द्रव्य व्यय किया। स्वाधर्मी भाइयों का सत्कार पहरामणी दी।

२—सूरिजी के उपदेश से माडव्यपुर के डिडूगोत्रिय शाह मलुक नेणसी ने श्री सम्मेतशिखरजी का विराट् संघ निकाला।

३ - मेदनीपुरा के बलाह गोत्रिय शाह साहरण ने शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला जिसमें कई ३००० साधु साध्वीयां थीं।

४—पाली के नगर से तातेड़ गोत्रिय शाह जगमल ने शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला।

५—नागपुर के आदित्य नाग गोत्रिय शाह चतरा खेमा ने श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला।

६—कोरंटपुर के प्राग्वटवंशी रूपणसी ने श्री सम्मेतशिखरजी का विराट संघ निकाला जि उसने नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया।

७—मालपुर के प्राग्वट मंत्री रणवीर ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें सोना मोहरों लेन और पहरामणी दी।

८—चन्द्रावती के प्राग्वट शाह देपाल करमण ने श्री शत्रुंजय गिरनार का संघ निकाला।

९—शिवपुरी के प्राग्वट नाथा भगा ने उपकेशपुर महावीर यात्रार्थ संघ निकाला जिसमें एक द्रव्य व्यय किया।

१०—भीनमाल के श्रीमालवंशी शाह भासड़ ने शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया।

११—सिंध शिवनगर से मंत्री कल्हण ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला।

१२—सिंध अमरेल नगर से श्रेष्ठि गोत्रिय मंत्री यशोदेव ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला। स्वधर्मियों को सोना मोहर की पहरावनी दी।

१३—कच्छ राजपुर से श्रीमाल वंशीय धन्नाशाह ने शत्रुंजय का विराट संघ निकाला।

१४—पंचाल के लोटाकोट से मंत्री हरदेव ने शत्रुंजय का संघ निकाला।

१५—मेदपाट आहेड़ नगर से मंत्री राजपाल ने शत्रुंजय का संघ निकाला।

१६—विजयपुर नगर के बालनाग गोत्रिय शाहसारंग ने श्रीउपकेशपुर का संघ निकाल यात्रा करवाई।

इनके अलावा सिन्ध पंचालादि प्रान्तों से आप तथा आपके योग्य मुनियों के उपदेश एवं अध्यक्षत्व में कई तीर्थों के संघ निकले।

सूरीश्वरजी के उपदेश से अनेक महानुभावों ने संसार का त्याग कर आत्मकल्याण के हेतु भगवती जैन दीक्षा स्वीकार की। थोड़े से नाम यहां दर्ज कर दिये जाते हैं जिनके उल्लेख पट्टावलियों वगैरह में प्रचुरता से मिलते हैं।

१—उपकेशपुर के राव वीरदेव ने अपने पुत्र रामदेवादि के साथ सूरीश्वरजी के चरण कमलों में दीक्षा ग्रहण की।

२—नागपुर के बाप्पनाग गोत्रिय सुखा ने दीक्षा ग्रहण की।

३—मेदनीपुर के कर्णाट गोत्रिय शा० गोरा ने अपनी स्त्री और दो पुत्रियों के साथ दीक्षा ली।

४—आशिका नगरी के भद्रगोत्रिय शाह नारायण ने अपने ८ साथियों के साथ दीक्षा ली।

५—फेफावती नगरी के भूरि गोत्रिय गोशल ने नौ लक्ष द्रव्य तथा छः मास की परणी स्त्री के सहित दीक्षा ली जिसके महोत्सव में आपके पिता करत्था ने एक लक्ष द्रव्य व्यय कर जैन शासन की खूब प्रभावना की।

६—नारदपुरी के श्रेष्टि गोत्रिय शाह हरपाल देवपाल ने महामहोत्सव पूर्वक दीक्षा ली।

७—पद्मावती नगरी के पोरवाल वंशीय शाह माना करना ने ११ नरनारियों के साथ दीक्षा ली जिसके महोत्सव में तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया।

८—सत्यपुर नगर के प्राग्वट मंत्री विजयदेव ने अपनी स्त्री कुमारदेवी १७ नरनारियों के साथ दीक्षा ली इस महोत्सव में मंत्री के पुत्र सोमदेव ने पांच लक्ष द्रव्य व्यय किया था।

९—चन्द्रावती नगरी के श्रीमाल वंशीय मंत्री धर्मसी ने सूरिजी के चरण कमलों में बड़े ही समारोह के साथ दीक्षा ली।

१०—कोरंटपुर के आदित्यनाग गोत्रिय शाह रूपणासी ने अपने पुत्र जेतसी के साथ दीक्षा ली।

११—नरवर के सुचेती महीपाल ने दीक्षा ली।

१२—रूप नगर के क्षत्रिय त्रिभुवनपाल ने दीक्षा ली।

१३—वेनातट के जगदेवादि सात ब्राह्मणों ने सूरिजी के उपदेश से भगवती जैनदीक्षा ग्रहण की।

१४—उपकेशपुर के चिंचट गोत्रिय शा० सारंग विमल ने सूरिजी के उपदेश से दीक्षा ली।

१५—रतनपुर के आदित्यनाग गोत्रिय सुलतान ने दीक्षा ली।

१६—कक्कोलिया गांव के राव विशल ने दीक्षा ली।

इनके अलावा और भी अनेक प्रान्तों एवं अनेक छोटे बड़े ग्रामों के अनेक भव्यों ने सूरिजी के शासन में जैन दीक्षा ग्रहण कर स्वपर का कल्याण किया। क्योंकि पहिले जमाने के जीव ही लघुकर्मी थे कि उनपर थोड़ा उपदेश भी अधिक असर कर जाता था। सूरिजी ने अपने दीर्घशासन में कई १५०० नरनारियों को दीक्षा दी थी ऐसा पट्टावलियों से ज्ञात होता है।

सूरीश्वरजी ने अपने शासन काल में कई मंदिर मूर्त्तियों की प्रतिष्टायें भी करवाई थीं। कवि-

उदाहरण यहाँ दर्ज कर दिये जाते हैं जो वंशावलियों एवं पट्टावलियों में आज भी उपलब्ध हैं जैसे कि:—

१—उपकेशपुर में श्रेष्टि गोत्रिय शाह देदा के बनाये आदीश्वर भगवान् के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई जिस महोत्सव में श्रेष्टिवर्य्य ने एक लक्ष मुद्रा व्यय कर शासन की प्रभावना की।

२—भाभोजी में कुमट गोत्रिय शाह बीरम के बनाये भगवान् महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

३—चंदेलिया ग्राम में मोरक्षा गोत्रिय शाह भंभण के बनाये पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्र०।

४—नाबानी नगरी में आदित्यनाग गोत्रिय शाह पेथा चुनड़े के बनाये महावीर के मंदिर की प्र०।

५—चन्द्रावती नगरी में मंत्री राजवीर के बनाये महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

६—नन्दपुर में प्राग्वट वेसट के बनाये पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

७—कीराट कुम्प में प्राग्वट पेथा के बनाये पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

८—पट्कूप में कुलहट गोत्रिय रामदेव के बनाये वीर के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

९—मुग्धपुर तप्तभट्ट गोत्रिय शा. तोला के आदीश्वर के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

१०—नरवर के कर्णाट गोत्रिय खुमाण के बनाये महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

११—नेपलग्राम के सुचेंति हरदेव के बनाये महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

१२—चाटोड के भद्रगोत्रिय शा. सगरा के बनाये पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

१३—पद्मावती के प्राग्वट रत्नादेदा के बनाये महावीर मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

१४—वल्लभी बलह गोत्रिय मंत्री कल्हण के बनाये ऋषभदेव के म० प्र०।

१५—कठी के श्रीमालवंशी रावण के बनाये शान्तिनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

१६—सलखणपुर के राव पोमल के बनाये महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

१७—जावलीपुर के श्रेष्टि भुवड़ के बनाये महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

१८—भिन्नमाल के प्राग्वट पेथा के बनाये पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

१९—हर्षपुर के बापनाग गोत्रिय शाह लुने महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

२०—कोरंटपुर के श्रीमाल आदू के भगवान् पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

२१—सत्यपुर के प्राग्वट संघपति करमल के बनाये श्रीशान्तिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई।

२२—सारंगपुर श्रेष्टिवर्य्य रत्नश्री के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई।

२३—चन्द्रपुरी बाप्पनाग गोत्रीय शाह कानों के बनाये पार्श्वनाथ मन्दिर की प्र० इनके अलावा सूरिजी ने लाखों मांसभक्षी क्षत्रियों को जैन धर्म में दीक्षित किये अतः जैन समाज पर आपका महा उपकार हुआ है जिसको समाज भूल नहीं सकता है।

पट्ट पन्द्रहवें सिद्ध सूरीश्वर, चिंचट गौत्र कहलाते थे।
आगम ज्ञानबल विद्या पूर्ण, जैन झण्ड फहराते थे॥
वल्लभी का भूप शिलादित्य, चरणे शीश झुकाते थे।
सिद्धाचल का भक्त बनाया, जैनधर्म यश गाते थे॥

॥ इति श्री भगवान् पार्श्वनाथ के १५ वें पट्टधर आचार्य सिद्धसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुए॥

भगवान महावीर की परम्परा—

आचार्य उमास्वाति—आपका जन्म न्यग्रोधिका ग्राम के ब्राह्मण स्वाति की भार्या उमा की कुक्ष से हुआ था। आर्य्य महागिरि के शिष्य बलिसिंह के आप शिष्य थे जैसे पट्टावली में लिखा है कि—

"श्री आर्य महागिरेस्तु शिष्यौ बहुल-बलिस्सहौ यमल भ्रातरौ तस्य बलिस्सह स्य शिष्यः स्वाति, तत्त्वार्थादयो ग्रन्थास्तु तत्कृता एव संभाव्यते" पट्टावली समुच्य पृष्ठ ४६

आचार्य उमास्वाति ने केवल एक तत्त्वार्थ सूत्र ही नहीं बनाया पर आप श्री ने ५०० ग्रन्थों की रचना की थी आचार्यवादीदेवसूरि अपने स्याद्वाद रत्नाकर में लिखते हैं कि--

"पंचशती प्रकरण प्रणयन प्रवीणैस्त्र भवद्भरुमा स्वाति वाचक मुख्यै"

आर्य उमास्वाति के समय के विषय कुछ मतभेद है। कारण, तत्त्वार्थ के भाष्य में स्वयं उमास्वाति महाराज लिखते हैं कि मैं उच्चनागोरी शाखा का हूँ। तब कल्प स्थविरावली में आर्य्यदिन्न के शिष्यशान्ति-श्रेणिक से उच्चनागोरी शाखा का प्रादुर्भाव हुआ लिखा है। जब आर्य दिन्न का समय वी. नि. ४५१ के आस पास है तो उसके बाद उमास्वाति हुये होंगे। तब प्रज्ञापन्नासूत्र की टीका में लिखा है कि आर्य उमास्वाति के शिष्य श्यामाचार्य्य ने प्रज्ञापन्ना सूत्र की रचना की और आपका समय वी.नि. ३३५ से ३७६ का बतलाया है। इससे यही मानना युक्तियुक्त है कि उमास्वति महाराज आर्यबलिस्सह के शिष्य और श्यामाचार्य के गुरु थे और आपका समय वी० नि० की चतुर्थ शताब्दी का ही था।

श्यामाचार्य—आप वाचक उमास्वाति के शिष्य थे और प्रज्ञापन्नासूत्र की संकलना की थी वह आज भी पैंतालीस आगमों के अन्दर उपांग सूत्र में विद्यमान है। प्रस्तुत प्रज्ञापन्ना सूत्र में जो प्रश्नोत्तर किये गये हैं वह सब गौतम स्वामी ने प्रश्न पूछे हैं और भगवान महावीर ने उत्तर दिये हैं। इससे पाया जाता है कि यह सूत्र तो पूर्व का ही होगा परन्तु इसकी संकलना श्यामाचार्य ने की होगी।

प्रज्ञापन्नासूत्र—छत्तीस पदों से विभूषित है। प्रत्येक पद तात्त्विक एवं वैज्ञानिक विषय से ओत प्रोत है जिसका संक्षिप्त से दिग्दर्शन मात्र यहाँ करवा दिया जाता है।

१—पहले पद में—जीव अजीव की प्ररूपणा है जिसमें जीव की प्ररूपना विस्तार से है
२—दूसरे पद में—चौवीस दंडक के स्थानाधिकार हैं। यह पद भी खूब विवरण के साथ लिखा है
३—तीसरे पद में—महादंडक तमाम जीवों की अल्पाबहुत करके समझाया है।
४—चौथे पद में—तमाम जीवों के पर्याप्ता अपर्याप्ता की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति का वर्णन है।
५—पाँचवें पद में—जीव अजीव पर्याय का वर्णन है इसमें संसार भर का विज्ञान है।
६—छट्ठे पद में—चराचर जीवों की गति एवं आगति का वर्णन है।
७—सातवां पद में—श्वासोश्वास का अधिकार है।
८—आठवां पद में—दश प्रकार की संज्ञा का वर्णन है।
९—नौवां पद में—सांसारिक जीवों की योनि का विस्तार है।

१०—दशवां पद में—चरम अचरम का वर्णन है ।
११—ग्यारहवां पद में—भाषा का विवरण विस्तार से लिखा है ।
१२—बारहवां पद में—पांच शरीर के बँधेलगा मुकेलगादि का विस्तार से वर्णन है ।
१३—तेरहवां पद में—परिणाम अर्थात् जीव परिणाम अजीव परिणाम का वर्णन है ।
१४—चौदहवें पद में—क्रोधादि चार कषाय के ५२०० भंगों का वर्णन है ।
१५—पन्द्रहवाँ पद में—पांच भाव इन्द्रियें और आठ द्रव्येन्द्रियों का वर्णन है ।
१६—सोलहवें पद में—प्रयोग योगों की विचित्रता का अधिकार है ।
१७—सतरवें पद में—लेश्या छः उदेश्यों में लेश्याओं का विस्तार है ।
१८—अठारहवें पद में—कायस्थिति जो एक काया में जीव कहां तक रह सके ।
१९—उन्नीसवां पद में—दर्शन-दर्शन कितने प्रकार के और उनके लक्षण ।
२०—वीसवां पद में—अन्तः क्रिया—कौन सा जीव किस प्रकार अन्त क्रिया करते हैं ।
२१—इकवीसवां पद में—शरीर अवगाहना का विस्तार से वर्णन किया है ।
२२—बावीसवां पद में—काइयादि क्रियाओं का वर्णन है ।
२३—तेवीसवां पद में—कर्मों का आबादाकाल कौनसा कर्मबँधने के बाद कितना काल से उदय आवे ।
२४—चौवीसवां पद में—कर्म बान्धता हुआ कितना कर्म साथ में बँध सकता है ।
२५—पंचवीसवां पद में—कर्म बन्धता हुआ कितना कर्मों को वेद सकता है ।
२६—छवीसवां पद में—कर्म वेदता हुआ जीव कितना कर्म बन्ध करता है ।
२७—सतावीसवां पद में—कर्म वेदता हुआ कितना कर्म वेदे ।
२८—अठावीसवाँ पद में—चौवीस दंडक के जीव आहार किस पुद्गलों का लेते हैं ।
२९—गुणतीसवाँ पद में—उपयोग साकार-अनाकार दो प्रकार के उपयोग होते हैं ।
३०—तीसवाँ पद में—पासनीया—इसमें साकार उपयोग का अधिकार है ।
३१—इकतीसवाँ पद में—संज्ञी-जीव संज्ञी असंज्ञी दो प्रकार के होते हैं ।
३२—बत्तीसवां पद में—संयति-संयति असंयति संयतासंयति आदि का वर्णन है ।
३३—तेतीसवाँ पद में—अवधि-अवधिज्ञान कितने प्रकार का है ।
३४—चोतीसवाँ पद में—प्रचारना—प्रचारना कहाँ तक किस प्रकार की है ।
३५—पैंतीसवाँ पद में—वेदना—चौवीस दंडक के जीवों को वेदना किस प्रकार से होती है ।
३६—छवीसवाँ पद में—समुद्घात—सात समुद्घात का विस्तार से वर्णन है ।

इस प्रज्ञापन्नसूत्र के मूलश्लोक करीब ७७८७ हैं

आचार्य विमलसूरि—आप नागिल शाखा के राहु नामक आचार्य्य के शिष्य विजयसूरि के शिष्य थे । आपने प्राकृत भाषा में 'पउमचरियम्' अर्थात् पद्मचरित्र (जैनरामायण) नामक ग्रंथ की रचना की जिसके समय के लिये कहा है कि—

पंचेव य वाससया दुसमाए तीस वरिस संजुत्ता । वीरे सिद्धिमुवगए तओनिवद्धं इयं चरियं ॥

—श्री वीर पुराण

वीरात् ५३० अर्थात् विक्रम सं० ६० में विमलसूरि ने पद्मचरित्र (जैनरामायण) की रचना की जिसको लोग बड़ी रुचि के साथ सुनते और आनन्द को प्राप्त होते थे। यों तो पद्म नामक बलदेव (रामचन्द्रजी) का नाम समवायाङ्ग सूत्र वगैरह जैन मूल आगमों में आता है। पर इस प्रकार विस्तार पूर्वक सब से पहला विमलसूरि का 'पउमचरिय' ग्रन्थ ही है। नागोर के बड़े मन्दिर में एक सर्वधातु की मूर्ति है जिसके पीछे एक लेख खुदा हुआ है। उसमें वि० सं० ३२ के लेख में भी विमलसूरि का नाम है। शायद यह विमलसूरि 'पउमचरिय' ग्रन्थ के लेखक ही हों।

आर्य इन्द्रदिन्न—आर्य्य सुस्थी और आर्य्य सुप्रतिबुद्ध के पट्ट पर आचार्य इन्द्र दिन्न हुये और आचार्य इन्द्रदिन्न के पट्टधर आचार्य दिन्न हुये। इन दशवें और ग्यारहवें पट्टधरों के लिये पट्टावलीकारों ने विशेष वर्णन नहीं किया है। हाँ, स्थविरावलीकार ने आर्य्य दिन्न के मुख्य दो स्थविर बतलाये हैं १—आर्य्य शान्तिसेनिक २—आर्य्य सिंहगिरि। जिसमें आचार्य शान्तिसेनिक से उच्चनागोरी शाखा का प्रादुर्भाव हुआ और आर्य्य शान्तिसेनिक के प्रधान चार शिष्य हुये और वे चारों शिष्य इतने प्रभाविक थे कि उन चारों शिष्यों के नाम से चार शाखायें प्रचलित हुईं जैसे—

१—आर्य्य सेनिक से सेकिन शाखा चली। ३—आर्य्य कुवेर से कुवेरी शाखा चली।
२—आर्य्य तापस से तापस शाखा चली। ४—आर्य्य ऋषि पालित से ऋषि पालित शाखा चली।

दूसरे आर्य्यसिंहगिरि नामक स्थविर के भी मुख्य चार शिष्य थे जैसे १—आर्य्य धनगिरि २—आर्य वज्र ३—आर्य समित ४—आर्य अर्हद्बलि। जिसमें आर्य व्रज से वज्री शाखा और आर्य समित से ब्रह्मद्वीपका शाखा चली जिन्हों का वर्णन आगे आर्य वज्र के अधिकार में किया जायगा।

इनके अलावा पूर्व बतलाये हुए गण कुल शाखाओं में बड़े बड़े धुरन्धर युगप्रवर्तक महान प्रभाविक आचार्य हुए जिन्हों का अधिकार पृथक् २ ग्रन्थों में किया गया है। परन्तु पाठकों की सुविधा के लिए यहां पर संग्रह कर दिया जाता है।

युगप्रधानाचार्य्यों में कालकाचार्य्य का नाम जैन संसार में बहुत प्रसिद्ध है पर कालकाचार्य नाम के कई आचार्य हो गये हैं और उन्हों के साथ कई घटनायें भी घटित हुई हैं परन्तु नाम की साम्यता होने से यह बतलाना कठिन हो गया है कि कौन सी घटना किस आचार्य के साथ घटी। इसके लिए कुछ विस्तार से शोध खोज की जरूरत रहती है, अतः पहले तो यह बतला देना ठीक होगा कि कौन से कालकाचार्य्य किस समय हुए जैसे कि—

सिरिवीराओ गएसु, पणतीसहिएसु तिसय (३३५) वरिसेसु।
पढमो कालगसूरी, जाओ सामज्जनामुत्ति ॥ ५५ ॥
चउसयतिपन्न (४५३) वरिसे, कालगगुरुण सरस्सरी गहिआ।
चउसयसत्तरि वरिसे, वीराओ विक्कमो जाओ ॥ ५६ ॥
पंचेव य वरिससए, सिद्धसेणे दिवायरो जाओ।
सत्तसयवीस (७२०) अहिए, कलिग गुरु, सक्कसंथुणिओ ॥ ५७ ॥

नवसयतेणउएहिं (९९३), समइक्कंतेहिं वद्धमाणाओ ।
पज्जोसवणचउत्थी, कालिकसूरीहिंतो ठविआ ॥ ५८ ॥

रत्न संचय प्रकरण से

१—प्रथम कालकाचार्य वीर नि० सं० ३३५ से ३७६ में
२—द्वितीय कालकाचार्य्य वीरात् ४५३ से ४६५ तक
३—तृतीय कालकाचार्य वीर नि० सं० ७२० में
४—चतुर्थ कालकाचार्य वीरात् ९९३ वर्ष में

कालकाचार्य्य के साथ घटित घटनाऐं

१—राजादत्त को यज्ञफल बतलाकर प्रतिबोध करना । आवश्यक चूर्णी में
२—प्रज्ञापन्ना सूत्र की रचना करना । प्रज्ञापन्ना सूत्र में
३—इन्द्र को निगोद ❀ का स्वरूप बतलाना । उत्तराध्ययन निर्युक्ति में
४—आजीविकों से निमित्त पढ़ना । पंचकल्प चूर्णी में ।
५—अनुयोग का निर्माण करना + । पंचकल्पचूर्णी में
६—गर्दभिल्ल का उच्छेद और साध्वी सरस्वती की रक्षा । निशीथचूर्णी व्यवहार चूर्णी में ।
७—सॉवत्सारिक पर्व भाद्रपद शुक्ल पंचमी का चतुर्थी को करना । निशीथ चूर्णी में ।

❀ इन्द्र ने निगोद के जीवों का स्वरूप पूछा इस घटना के लिए शास्त्रकारों ने तीन आचार्यों के लिए घटित की है १—प्रथम कालकाचार्य (श्यामाचार्य) के साथ २—दूसरा कालकाचार्य जिनको निगोद व्याख्याता के नाम से बतलाया है ३—और तीसरे आर्यरक्षित सूरि के साथ जैसे

इतश्चास्ति विदेहेषु श्री सीमंधर तीर्थकृत । तदुपास्त्यै ययौ शक्रोऽथौपील्याख्यां च तमन्नाः ॥
निगोदाख्यान माख्याच्च केवली तस्य तत्त्वतः । इन्द्रः पप्रच्छ भरते को ऽन्यस्तेषां विचारकृत ॥
अथार्हन्नाह मथुरानगर्यामार्यरक्षितः । निगोदान्मद्वदाचष्ट ततो ऽसौ विस्मयं ययौ ॥
[illegible] च चित्रार्थं वृद्धब्राह्मणरूपभृत् । आययौ गुरुपार्श्वे स शीघ्रं हस्तौ च धूनयन् ॥
[illegible] यष्टिश्रितात्मकः । सद्यासप्रसरो [illegible] ॥
[illegible] स पप्रच्छ निगोदानां विचारणम् । यथावस्थं गुरुर्व्याख्यात्सोऽथ तेन चमत्कृतः ॥
जिज्ञासुर्ज्ञानमहात्म्यं पप्रच्छ निजजीवितम् । ततः श्रुतोपयोगेन व्यचिन्तयदिदं गुरुः ॥
तदायुर्दिवसैः [illegible] संवत्सरैरपि । तेषां शतैः सहस्त्रैश्चायुतैरपि न मीयते ॥
लक्षाभिः कोटिभिः पूर्वैः पल्यैः पल्यमनैरपि । तल्लक्षकोटिभिर्नैव सागरेणापि नान्तभृत् ॥
[illegible] च पूर्णज्ञाने तदायुषि । भवान् सौधर्म सुत्रामा परीक्षा किं स ईश मे ॥

प्रभावक चरित्र [illegible]

यह एक ही घटना तीन आचार्यों के साथ लिखी गई है या एक घटना तीन बार बनी है । [illegible] है कि यह घटना द्वितीय कालकाचार्य (सरस्वती का भाई) के साथ घटी है । [illegible] में जो कालकाचार्य हुये लिखाई उनके साथ भी '[illegible]' लिखा है । शायद इसका अर्थ [illegible] ने स्तुति की है परन्तु किस विषय के लिये इसका वर्णन दृष्टिगोचर नहीं होता है

+ [illegible] । [illegible]

श्री [illegible] —

—वल्लभी में आगम पुस्तकों पर लिखते समय शामिल थे—आवश्यक चूर्णी आदि में।

उपरोक्त घटनायें किस समय और किस कालकाचार्य के साथ घटी थी।

A पहिली घटना के नायक कालकाचार्य उपरोक्त चार कालकाचार्य्य से अलग हैं, कारण इस घटना का समय वीर नि० सं० ३०० के आस पास का बतलाया है।

B. दूसरी तीसरी घटना के नायक उपरोक्त चार कालक से पहिले + कालकाचार्य हैं जिन्हों का नाम श्यामाचार्य भी था और आपका समय वी० ३३५-३७६ है। ❀ पर मेरुतुंगसूरि ने आपका समय ३२० का लिखा है शायद् यह समय दीक्षा को लक्ष में रख लिखा हो।

C चौथी, पांचवीं, छट्ठी और सातवीं घटना के नायक दूसरे कालकाचार्य हैं जिन्हों का समय वीरात् ४५३ से ४६५ तक है।

D आठवीं घटना के स्वामि तीसरे कालकाचार्य हैं जिन्हों का समय वीरात् ७२० का है पर यह अप्रसिद्ध है।

E नौवीं घटना के नायक चतुर्थ कालकाचार्य्य हैं आपका समय वी० नि० ९९३ वर्ष का है।

पूर्वोक्त गाथाओं में सांवत्सरिक चतुर्थी के करने वाले चतुर्थ कालकाचार्य को लिखा है पर वास्तविक चौथ की सांवत्सरी के कर्त्ता द्वितीय कालकाचार्य्य ही हैं जिसके लिये आगे चल कर लिखेंगे।

उपरोक्त चार एवं पांच कालकाचार्यों में धर्म एवं राज में क्रान्ति पैदा करने वाले दूसरे कालकाचार्य हुये उनका ही जीवन यहाँ लिखा जा रहा है।

धारावास नगर में राजा वैरसिंह राज करता था आपकी रानी का नाम सुरसुन्दरी था। आपके दो संतान पैदा हुई जिसमें कुँवर का नाम कालक† और कन्या का नाम सरस्वती था कालककुँवर के सब

+ एक कथा में ऐसा भी लिखा मिलता है कि स्वर्ग से एक ब्राह्मण का रूप धारण करके इन्द्र कालकाचार्य को वन्दन करने को आया था तो ब्राह्मण ने अपना हाथ कालकाचार्य को दिखलाया कि मेरी आयुष्य कितनी है? सूरिजी ने रेखा पर लक्ष देकर सौ दो सौ और तीन सौ वर्ष तक का अनुमान किया पर आयुष्यरेखा तो उससे भी बढ़ती गई तब जाकर उपयोग लगाया कि इस पंचमारे में इससे अधिक आयुष्य हो नहीं सकती है तो यह कौन होगा? विशेष उपयोग लगाने से मालूम हुआ कि यह तो पहिले स्वर्ग का इन्द्र है। सूरिजी ने कहा आपकी आयुष्य दो सागरोपम की है जिसको सुनकर इन्द्र ने सोचा कि कालकाचार्य बड़े ही ज्ञानी हैं।

इससे यह भी पाया जाता है कि जम्बुद्वीपप्रज्ञाप्तिसूत्रादिशास्त्रों में पंचमारा में उत्कृष्ट १२० वर्ष की आयुष्य बतलाई है। यह मुख्यता से कहा है पर गौणता से इससे अधिक आयु भी हो सकती है जैसे कालकाचार्य ने ३०० वर्ष तक का अनुमान किया था। आज पाश्चात्य प्रदेशों में १५०-२०० वर्षों के आयुष्य वाले मनुष्य मौजूद हैं जिसको देख भद्रिक लोग शंका करने लग जाते हैं कि अपने सूत्रों में तो पंचमारा में १२० वर्ष की ही आयु कही है तो १५०-२०० वर्षों की आयु कैसे हो सकती है इसका समाधान उपरोक्त घटना से हो सकता है कि १२० वर्ष का आयुष्य मौख्यतासे कहा है तब गौणतासे पंचमारे में ३०० वर्ष तक की आयुष्य हो सकती है।

१ ❀ सिरिवीर जिणिंदाओ, वरिससया तिन्निवीस (३२०) अहियाओ। कालयसूरी जाओ, सक्को पडिबोहिओ जेण॥

मेरुतुंगसूरि की 'विचारश्रेणी'

१ † कालको काल कोदण्ड खण्डितारिः (?) सुतोऽभवत्। सुता सरस्वती नाम्ना ब्रह्मभूमिश्चपावना॥ ०

कालकाचार्य—

लक्षण क्षत्रियवंशोचित थे। यों तो आप पुरुषकी ७२ कला में निपुण थे पर बाणविद्या और अश्वपरीक्षा के गुण आपमें असाधारण थे। राजकन्या सरस्वती भी महिलाओं की ६४ कला में प्रवीण थी। आपका घराना जैनधर्म का परमोपासक था अतः कुँवर कालक और राजकन्या सरस्वती के धार्मिक संस्कार बचपन से ही जम गये थे और वे दोनों धार्मिक अभ्यास भी किया करते थे।

एक समय आचार्य गुणाकरसूरि जो विद्याधर शाखा के आचार्य थे अपने शिष्य समुदाय के साथ भ्रमण करते हुये धारावासनगर के उद्यान में पधार गये। राजा प्रजा ने सूरिजी का सुन्दर सत्कार किया और धर्मोपदेश श्रवण करने को उद्यान में गये। अतः सूरिजी ने भी आये हुये धर्म-पिपासुओं को देशनामृत का पान कराना शुरू किया।

ठीक उसी समय राजकुँवर कालक अश्व खिलाता हुआ उस उद्यान के एक भाग में आ गया, इससे सूरिजी की वाणी उसको कर्णप्रिय हो गई। कालक ने सूरिजी का सम्पूर्ण व्याख्यान सुना और बाद में आचार्यश्री के पास जाकर वन्दन किया। सूरिजी ने राजकुमार के शुभलक्षण देख संसार की असारता राज ऋद्धि एवं लक्ष्मी की चंचलता और विषय कषाय के कटुक फलों को इस कदर समझाया कि उसका दिल संसार से विरक्त हो गया। साथ में सूरिजी ने तप संयम की आराधना से अक्षय सुखों की प्राप्ति के लिये भी गम्भीरता पूर्वक समझाया कि जिससे कालकने निश्चय कर लिया कि माता पिता की आज्ञा लेकर मैं सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा ग्रहण कर लूंगा। जब कुमार ने माता पिता के पास आकर अपने दिल की बात कही तो वे कब चाहते थे कि कालक जसा पुत्र हमारे से सदैव के लिये अलग हो जाय। उन्होंने बहुत कहा पर जिनके हृदय पर सच्चा वैराग्य का रंग लग जाता है उन्हें संसार कारागृह के सदृश दीखने लग जाता है। विशेषता यह हुई कि कालक की बातें सुनकर राजकन्या सरस्वती भी संसार से विरक्त हो दीक्षा लेने को तैयार हो गई। आखिर राजा ने दीक्षा-महोत्सव किया और कालक एवं सरस्वती ने सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा† ग्रहण कर ली। मुनि कालक ने ज्ञानाभ्यास कर सर्व गुणों को सम्पादित कर लिया। जिन्होंने संसार में राजपद योग्य सर्व गुण हासिल कर लिया वो मुनिपने में सूरिपद योग्य गुण प्राप्त करले इसमें आश्चर्य ही क्या हो सकता है। आचार्य गुणाकर सूरि ने मुनि कालक को सर्वगुण सम्पन्न जान कर सूरि‡ पद से विभूषित कर कई साधुओं के साथ अलग विहार करने की आज्ञा दे दी।

कालकाचार्य विहार करते एक समय उज्जैन*नगरी के उद्यान में पधारे, इधर से साध्वियों के साथ

---

२ † प्रव्रज्यादायि तैस्तस्य तया युक्तस्य च स्वयम्। अधीनी सर्वशास्त्राणि स प्रज्ञातिशयादभूत् ॥ २३ ॥

‡ स्वपदे कालकं योग्यं प्रतिष्ठाप्य गुरुस्ततः। श्रीमान् गुणाकरः सूरिः प्रेत्यकार्याण्यसाधयत् ॥ २४ ॥

* अथ श्री कालकाचार्यो विहरन्नन्यदा ययौ। पुरीमुज्जयिनीं तत्रारामेऽस्याः समवासरत् ॥ २५ ॥

[illegible] तत्र ... ॥ २६ ॥

तत्र श्रीगर्दभिल्लाख्यः पुर्यां राजा महाबलः। कदाचित् ... ॥ २७ ॥

[illegible] ॥ २८ ॥

[illegible] ॥ २९ ॥

[illegible] ॥ ३० ॥

आर्य्या सरस्वती ने भी उज्जैन में पदार्पण किया। उस समय उज्जैन में गर्दभिल्ल नाम का राजा राज करता था, वह अन्यायी तो था ही पर साथ में व्यभिचारी* भी था। एक समय राजा की दृष्टि बालब्रह्मचारिणी सती सरस्वती साध्वी पर पड़ी जिसके रूप यौवन और लावण्य पर मुग्ध बनकर राजा ने अपने अनुचरों से साध्वी को बलात्कार अपने राजमहलों में बुलाली। साध्वी विचारी बहुत रुदन करती हुई खूब चिल्लाई पर जब राजा ही अन्याय कर रहा हो तो सुने भी कौन। साथ की साध्वियों ने आकर सब हाल कालकाचार्य को कहा तो कालकाचार्य को बड़ा ही अफसोस हुआ और उन्होंने राजा के पास जाकर राजा को बहुत समझाया पर वह तो था कामान्ध, उसने सूरिजी की एक भी नहीं सुनी। वे निराश होकर वापिस लौट आये। तदनन्तर उज्जैन के संघ अग्रेश्वर अनेक प्रकार से भेंट लेकर राजा के पास गये और साध्वी को छोड़ने की प्रार्थना की पर उस पापिष्ट व्यभिचारी ने किसी की भी नहीं सुनी। इस हालत में कालकाचार्य ने भीषण प्रतिज्ञा कर ली कि मैं इस व्यभिचारी राजा को सकुटुम्ब पदभ्रष्ट नहीं कर दूँ तो मेरा नाम कालकाचार्य नहीं है। सूरिजी कई दिन तो नगर में पागल की भांति फिरे पर इससे होने वाला क्या था। उस समय भरोंच नगर में बलमित्र भानुमित्र नाम के राजा राज करते थे और वे कालकाचार्यके भानजे थे। कालकाचार्य उनके पास गये पर वे भी गर्दभिल्ल का दमन करने में असमर्थ थे। दूसरे भी कई राजाओं के पास गये पर सूरिजी के दर्द की बात किसी ने भी नहीं सुनी। इस हालत में लाचार हो आप सिन्धु नदी को पार कर पार्श्वकुल अर्थात पार्श्व की खाड़ी के पास के प्रदेश† (ईरान) में गये जिसको शाकद्वीप भी कहते हैं। वहाँ के राजाओं

---

* जैन लेखकों का कथन है कि जिस राजा ने कालकाचार्य की बहिन सरस्वती का उपहरण किया था उसका नाम 'दप्पण' (दर्पण) था और किसी योगी की तरफ से गर्दभी विद्या प्राप्त करने से वह 'गर्दभिल्ल' कहलाता था।

बृहत्कल्प भाष्य और चूर्णि में भी राजा गर्दभ सम्बन्धी कुछ बातें हैं, जिनका सार यह है कि उज्जयिनी नगरी में अनिलपुत्र ध्रव नामक राजा और उसका पुत्र गर्दभ युवराज था। गर्दभ के अडोलिया नाम की बहिन थी। यौवनप्राप्त अडौलिया का रूप सौन्दर्य देख कर युवराज गर्दभ उस पर मोहित हो गया। उसके मंत्री दीर्घपृष्ट को यह मालूम हुई और उसने अडौलिया को सातवें भूमिघर में रख दिया और गर्दभ उसके पास आने जाने लगा।'

चूर्णि का मूल लेख इस प्रकार है—

"उज्जेणी णगरी, तत्थ अणिलसुतो जवो नाम राया, तस्स पुत्तो गद्दभोणाम जुवराया, तस्स रण्णो धूआ गद्दभस्स भइणी अडोलिया णाम, सा य रूपवती तस्स य जुवरण्णो दीहपट्ठो णाम सचिवो (अमात्य इत्यर्थः) ताहे सो जुवराया तं अडोलियं भइणिं पासित्ता अज्झोववण्णो दुबली भवइ। अमच्चेण पुच्छितो णिब्बंधे सिट्ठं। अमच्चेण भण्णाइ सागारियं भविस्सति तो सत्तभूमीघरे छुभउ तत्थ भुंजाहि ताए समं फोए लोगो जाणिस्सइ सा कहिं पिणट्ठा एवं होउत्ति कतं।"

संभव है. साध्वी सरस्वती का अपहारक गर्दभिल और अडेलिया का कामी यह गर्दभ दोनों एक ही हों। जब अपनी बहिन का ही विवेक नहीं था तो दूसरे का तो कहना ही क्या।

× × ×

† शाखिदेशश्च तत्रास्ति राजानस्तत्र शाखयः। शकापराभिधाः सन्ति नवतिः षड्भिरर्गला ॥ ४४ ॥
तेषामेकोधिराजोस्ति सप्तलक्ष तुरङ्गमः। तुरङ्गायुत मानाश्चापरेपि स्युर्नरेश्वराः ॥ ४५ ॥
एको माण्डलिकस्तेषां प्रैषी कालकसूरिणा। अनेक कौतुक प्रेक्षाहृतचित्तः कृतोऽथ सः ॥ ४६ ॥

× × ×

को शाही यानि शाह की उपाधि थी अतः जैन ग्रन्थकारों ने उनको शाही राजा के नाम से लिखा है पर मैं तो यहाँ उनको शक नाम से ही लिखूँगा, कारण वे भारत में आने पर शक ही कहलाते थे और आगे चल कर उन्होंने शक संवत् चलाया वह आज भी चलता है।

उस समय उस शक प्रदेश में ९६ मण्डलीक राजा और उन पर एक सत्ताधीश राजा राज करता था उनके पास सात लक्ष घोड़ों की सैना थी। कालकाचार्य किसी एक मण्डलीक राजा के पास गये और कई दिन वहाँ ठहर कर आपने आत्मिक ज्ञान एवं निमित्तादि अनेक विद्याओं से शक राजा को वश में कर उसका चित्त अपनी ओर आकर्षित कर लिया। शक राजा को भी विश्वास हो गया कि यह कोई निस्पृही महात्मा हैं अतः वह सूरिजी का पक्का भक्त वन गया। हमेशा दोनों की ज्ञानगोष्टी हुआ करती थी।

एक समय ९६ मण्डलिकों के मालिक राजा ने एक कटोरा एक छुरा और एक पत्र उस मण्डलीक शक राजा के पास भेजा जहाँ कालकाचार्य रहता था। उस पत्र को पढ़ कर शक शोकातुर हो गया। कालकाचार्य‡ ने कहा कि आपको भेंट आई है, यह हर्ष का विषय है आप उदास क्यों हैं ? उसने कहा कि यह इनाम नहीं पर काल की निशानी है। पत्र में लिखा है कि इस छुरे से तुम अपना शिर काट कर इस कटोरे में रख कर भेज दो वरना तुम्हारे वालबच्चादि सब कुटुम्ब का नाश कर डालूँगा और यह हुकुम केवल एक मेरे पर ही नहीं पर इस छुरे पर ९६ का नम्बर है अतः ९६ मण्डलिकों पर भेजा होगा।

कालकाचार्य ने अपने कार्य्य की सिद्धि का सुअवसर समझ कर कहा कि आप घबराते क्यों हो ? ९५ मण्डलिकों को यहाँ वुला लीजिये अतः आप ९६ मण्डलीक मिलकर मेरे साथ चलें मैं आपका बचाव ही नहीं पर आपको भारत की मुख्य राजधानी उज्जैन का राज दिलवा दूँगा। मृत्यु के सामने इन्सान क्या नहीं करता है। शक राजा ने ९५ मण्डलिकों को गुप्तरीति* से बुला लिया और ९६ मण्डलीक वहाँ से चल कर भारत में आ गये पर सौराष्ट्र प्रदेश में आये कि चतुर्मास के कारण वरसात शुरू हो गई अतः उन ९६ मण्डलिकों ने अपना पड़ाव सौराष्ट्र में ही डाल दिया इतना ही क्यों पर कुछ सौराष्ट्र का प्रदेश भी अपने अधिकार में कर लिया वाद जब चतुर्मास व्यतीत हो गया तो कालकाचार्य ने चलने की प्रेरणा की पर शकों ने कहा कि हम खर्चा से तंग † हो गये हैं और द्रव्य विना काम चल नहीं सकता है इस पर कालकाचार्य ने कुम्हार के कजावे पर एक ऐसी रसायन डाली कि वह सब सोने का हो गया। तब आचार्य ने शकों को कहा लो तुमको कितना द्रव्य चाहिये जरूरत हो उतना ही सुवर्ण ले लीजिये। इस चमत्कार को देख शक तो आश्चर्य में डूब गये और उनका उत्साह खूब ही वढ़ गया। फिर तो था ही क्या ? उन्होंने इच्छित द्रव्य ग्रहण कर वहाँ से प्रस्थान कर दिया और रास्ता में भरोंच के वलमित्र भानुमित्र वगैरह राजाओं को

‡ [illegible] प्रभाते स्वामिनः स्फुटे। आयातं प्राभृतं हर्षस्थाने किं विषण्णता ॥ ५२ ॥
तेनोचे [illegible] न प्रसादः प्रभो ननु। [illegible] मया निजशिरश्छित्वा [illegible] ॥ ५३ ॥

* सर्वेऽपि [illegible] सूरिभिस्तत्र मेलिताः। [illegible] सिन्धुमुत्तीर्य सुराष्ट्रां [illegible] ॥ ६० ॥

† सूरिणा [illegible] नास्ति येन नो भाति [illegible] ॥ ६२ ॥
[illegible] कुम्भकारस्य [illegible] ॥ ६३ ॥
[illegible] ॥ ६४ ॥
[illegible] ॥ ६५ ॥

श्री वीर [illegible]

साथ में लेकर उज्जैन की ओर चलधरे। गर्दभिल्ल ‡ को इस बात का पता लग गया कि उज्जैन पर शकों की सैना आ रही है पर उसने न तो लड़ाई का सामान तैयार किया न सैना को सजाया और न किल्ला एवं नगर का द्वार ही बन्द किया। इसका कारण यह था कि उसके पास गर्दभिविद्या थी। उसकी साधना करने पर वह गर्दभि के रूप में आती थी और किले पर खड़ी रह कर इस प्रकार का शब्दोचारण करती थी कि पाँच-पाँच मील पर जो कोई मनुष्य होता तो मर ही जाता था। इस गर्व में उसने किसी प्रकार की तैयारी नहीं की पर गर्दभिल्ल के विद्या अष्टमी चतुर्दशी को ही सिद्ध होती थी। शक राजा पहिले ही पहुँच गये थे अतः संग्राम शुरू हो गया पर गर्दभिल्ल की सैना भाग कर किले में चली गई। तब गर्दभिल्ल संग्राम बन्द कर विद्या साधने में लग गया। वातावरण सर्वत्र शान्त देख शकों ने कालकाचार्य से पूछा कि इस शान्ति का क्या कारण है ? सूरिजी ने कहा गर्दभिल्ल गर्दभि विद्या साध रहा है। आप सब लोग अपनी-अपनी सेना लेकर पांच मील से दूर चले जाओ केवल १०८ विश्वासपात्र एवं होशियार बाणधारी सुभट मेरे पास रख दो शकों × ने ऐसा ही किया। सूरिजी ने उन बाणधारियों को समझा दिया कि आप अपना बाण साधकर तैयार रहो कि किल्ले पर जिस समय गर्दभि शब्दोचारण करने को मुँह फाड़े उस समय सब ही एक साथ में गर्दभि के फटे हुए मुँह में बाण फेंक कर उसका मुँह भर दो, बस। आपकी विजय हो जायगी। फिर तो था ही क्या, उन विजयाकांक्षियों ने ऐसा ही किया अर्थात् ज्यों ही गर्दभि ने मुंह फाड़ा त्यों ही उन बाण-धारियों नें बाण चलाये और गर्दभि का मुंह बाणों से भर दिया, वह एक शब्द भी उच्चारण नहीं कर सकी। अतः गर्दभि को बहुत गुस्सा आया और वह गर्दभिल्ल पर नाराज हो उसके शिर पर भ्रष्टा[1] और पेशाब करके एवं पदाघात कर चली गई। इस हालत में शकों ने धावा बोल दिया बस लीला मात्र में गर्द-भिल्ल को पकड़ कर कालकाचार्य के पास लाये। गर्दभिल्ल ने लज्जा के मारे मुँह नीचा कर लिया। कालकाचार्य ने कहा "अरे दुष्ट ! एक सती साध्वी पर अत्याचार करने का यह तो नाम मात्र फल मिला है पर इसका पूरा फल तो नरकादि गति में ही मिलेगा इत्यादि। शक लोग गर्दभिल्ल को जान से मार डालना चाहते थे पर कालकसूरि ने दया लाकर उसको जीवित छुड़ा दिया। गर्दभिल्ल वहाँ से मुँह लेकर जंगल में चला गया वहाँ एक शेर ने उसे मार डाला अतः वह मर कर नरक में गया।

कालकाचार्य सरस्वती साध्वी को छुड़ाकर लाये और पराधीनता में साध्वी को जो कुछ अतिचार लगा उसकी आलोचना[2] देकर उसे पुनः साध्वियों में शामिल करदी तथा स्वयं सूरिजी ने जैन धर्म की रक्षा के लिये सावद्य कार्यों में प्रवृति की उसकी आलोचना करके शुद्ध हुये और पुनः गच्छ का भार अपने शिर पर लिया।

जैनधर्म में उत्सर्गोपवाद दो मार्ग बतलाये हैं। जब आपत्ति आजाती है तब अपवाद मार्ग को ग्रहण कर जैन धर्म की रक्षा करनी पड़ती है जैसे विष्णुकुमार ने महामिथ्या दृष्टि जिन शासन के कट्टर द्वेषी निमूची को सजा

‡ श्रुत्वापि बलमागच्छन् विद्यासामर्थ्यगर्वितः। गर्दभिल्लनरेन्द्रो न पुरीदुर्गमसज्जयत् ॥६८॥
अथाप शालिसैन्यं च विशालातलमेदिनीम्। पतङ्गसैन्यवत्सर्वं प्रागिदगंभयंकरम् ॥६९॥

× इत्याकर्ण्य कृते तत्र देशे कालक सद्गुरुः। सुभटानां शतं साष्टं प्रार्थयच्छब्दवेधिनाम् ॥७०॥
स्थापिताः स्वसमीपे ते लब्ध लक्षाः सुरक्षिताः। स्वरकाले मुखं तस्या बभ्रु (भ्रौ) र्श (रा) पैर्निरन्तरम् ॥७८॥

दी थी इसी प्रकार कालकाचार्य ने भी गर्दभिल्ल को उसके अन्याय की सजा दिलवाई थी। अतः आज जैनसाध्वियां निर्भयता पूर्वक तपसंयम की आराधना करती हैं, यह कालकाचार्य के प्रकाण्ड प्रभाव का ही फल है कि गर्दभिल्ल के बाद आज पर्यन्त ऐसी कोई दुर्घटना नहीं बनी है।

गर्दभिल्ल के चले जाने पर शकों ने उज्जैन पर अपना अधिकार जमा लिया। जिसके यहाँ कालकाचार्य ठहरे थे उसको उज्जैन का राजा तथा दूसरे ९५ मण्डलिकों को छोटे बड़े ९५ प्रदेशों के राजा बना दिये। उस दिन से भारत में शकों का राज जम गया पर शक ६ भागों में विभाजित होने से उनका बल कमजोर पड़ गया वे केवल ४ वर्ष ही उज्जैन में राज कर सके बाद भरोंच के बलमित्र और भानुमित्र ने शकों से उज्जैन का राज छीन कर अपने अधिकार में कर लिया, फिर भी शक भारत से निकल नहीं गये पर उनका जोर दक्षिण भारत की ओर बढ़ता गया, यहाँ तक कि उन्होंने विक्रम के बाद १३५ वर्ष व्यतीत होने पर अपना संवत् चलाया जिसका आज पर्य्यन्त दक्षिण भारत की ओर अधिक प्रचार है।

एक समय कालकाचार्य भ्रमण करते अपने शिष्यों के साथ भरोंच नगर के उद्यान में पधारे। वहाँ पर बलमित्र भानुमित्र राजा राज करते थे जो कालकाचार्य के भानजे लगते थे। उन्होंने बड़े ही महोत्सव के साथ सूरिजी का नगर प्रवेश करवाया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था, श्रोताजन उपदेशामृत का पान कर अपनी आत्मा का कल्याण करते थे

राजा के एक पुरोहित था वह महा मिथ्या दृष्टि और जैनधर्म का कट्टर शत्रु था पर कालकाचार्य ने वाद-विवाद में उसको पराजित कर दिया था. अतः वह अन्दर से द्वेषी पर ऊपर से आचार्य श्री का भक्त बनकर रहता था। राजा के आग्रह से कालकाचार्य ने वहाँ चतुर्मास कर दिया था पर यह बात पुरोहित को अच्छी नहीं लगती थी, उसने एक दिन राजा से कहा कि अपने आचार्य परमपूजनीय हैं इनकी पादुका अपने शिर पर रहनी चाहिये पर जब आचार्यश्री नगर में गमनागमन करते हैं तब इनके पैरों के प्रतिबिंब पर हलके से हलका आदमी पैर रखकर चलता है, यह बड़ा भारी पाप है। राजा ने सरल स्वभाव के कारण पुरोहित की बात को मान लिया पर चतुर्मास में आचार्य श्री को कैसे निकाल दिया जाय यह बड़ा भारी सवाल पैदा हो गया। इसके लिए पुरोहित ने कहा कि इसका सीधा उपाय है कि सब नगर में कहला दिया जाय कि आचार्यों को मिष्टान्नादि भोजन करके बहराया करें अतः अनेषनीक आहार के कारण आचार्य स्वयं चले जायेंगे तो अपन, आशातना से बच जायंगे। बस, राजा ने आर्डर दे दिया और पुरोहित ने नागरिकों से कह दिया। जब साधु भिक्षा को जांय, तो सर्वत्र मिष्टान्नादि आहार मिलने लगा। आचार्यश्री को मालूम हुआ तो उन्होंने आधाकर्मी दोष जानकर वहां से बिहार करने का निश्चय कर लिया। अतः दो साधुओं को प्रतिष्ठनपुर भेजकर राजा को कहला दिया, राजा ने खुश होकर स्वीकार कर लिया। जब कालकाचार्य प्रतिष्ठनपुर पधारे तो वहाँ के राजा प्रजा ने आपका खूब ही सत्कार[१] किया।

१—मा मूर्ध्नि गर्दभिल्लस्य कृत्वा विस्मृत्य शौर्यता। हत्वा च पादघातेन गोरगान्तं दधे गतौ ॥७९॥
अकाण्डपतितेव त्यागन्तिया तेषां पुरो गुरुः। समप्रपन्नमानीयमानीना दुर्गमाधिकम् ॥८०॥
पालयित्वा घृतो बद्धा प्रजाश्च गुरोः पुर। गर्दभिल्लो मर्षुर्भूत्वा प्राह न कालको गुरुः ॥८१॥
२—आलोचित: मन्त्रे प्रायश्च गुरुणाथ सरस्वती। आलोचित प्रतिक्रान्ता पुनर्गणमवाप च ॥८०॥

आचार्यश्री का व्याख्यान हमेशा होता था जिसमें मनुष्य जन्म की दुर्लभता राज ऋद्धि की चंचलता आयुष्य की अस्थिरतादि समझा कर धर्माराधन की ओर जनता का चित्त आकर्षित किया जाता था। आपके व्याख्यान का प्रभाव केवल साधारण जनता पर ही नहीं पर वहां के राजा सातवाहन पर भी खूब अच्छा पड़ता था। यही कारण था कि राजा जैनधर्म का अनुयायी बन गया। जब पर्वपर्युषण के दिन नजदीक आये तो राजा ने पूछा कि प्रभो ! खास पर्युषण का दिन कौन सा है कि जिस दिन धर्म कार्य्य किया जाय ? सूरिजी ने कहा कि भाद्रपद शुक्ल पंचमी को सांवत्सरिक पर्व है उस दिन पौषध प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिये। इस पर राजा ने कहा कि भाद्रपद शुक्ल पंचमी का हमारे यहां इन्द्र-महोत्सव होता है और राजनीति के अनुसार मुझे वहां उपस्थित होना भी जरूरी है। अतः आप सांवत्सरिक पर्व को एक दिन पहिले या पीछे रख दें कि मेरे धर्म करनी बन सके। इस पर सूरिजी ने सोचा कि शास्त्रों में एक दिन पहिले तो पर्वाराधन हो सकता है पर बाद में नहीं होता है अतः लाभालाभ का विचार करके भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी[2] को सांवत्सरिक पर्वाराधन का निश्चय कर दिया इससे राजा प्रजा सबको सुविधा हो गई। भविष्य के लिए सूरिजी ने सोचा कि राजा के इन्द्र-महोत्सव तो वर्षा वर्षा होता है और इस कारण जैसे राजा को समय नहीं मिलेगा वैसे राजकर्मचारी एवं नागरिकों को भी समय नहीं मिलेगा। यही बात दूसरे नगरों के राजा प्रजा के लिए होगी, तो यह सब लोग पर्वाराधन से वंचित रह जायेंगे। अतः हमेशा के लिए सांवत्सरिक की चतुर्थी की जाय तो अच्छा है।

अनुमान लगाया जा सकता है कि कालकाचार्य का उस समय समाज पर कितना प्रभाव था कि उन्होंने एक बिलकुल नया विधान करके सम्पूर्ण समाज से मंजूर करवा लिया। यह कोई साधारण बात नहीं थी। उस समय का समाज दो विभागों में विभक्त था। एक आर्य्य महागिरि की शाखा में तब दूसरा आर्य सुहस्ती की शाखा में पर कालकाचार्य का विधान (चतुर्थी की सांवत्सरी) सबने शिरोधार्य्य कर लिया था और वह विधान कई ११००-१२०० वर्षों तक एक ही रूप में चलता रहा था।

प्रबन्धकारने कालकाचार्य का चतुर्मास भरोंच में लिखा है तब निशीथ चूर्णी में उज्जैन में लिखा है और उज्जैन से ही प्रतिष्टनपुर जाकर पंचमी के बदले चतुर्थी की सांवत्सरी की थी। शायद इसका कारण यह हो कि बलमित्र और भानुमित्र भरोंच के राजा थे और उन्होंने ५२ वर्ष तक भरोंच में राज किया था तथा पिछली अवस्था में केवल ८ वर्ष उज्जैन में राज किया था इस कारण वे भरोंच के राजा के नाम से ही प्रसिद्ध थे अतः प्रबन्धकार ने भरोंच में चतुर्मास करना लिख दिया होगा पर वास्तव में कालकाचार्य का चतुर्मास उज्जैन में ही था और वहाँ से चतुर्मास में प्रतिष्टनपुर जाकर पंचमी के बदले चतुर्थी की सांवत्सरी की थी।

कालकाचार्य के साथ एक अविनीत शिष्यों की घटना ऐसी घटी थी। कि कालदोष से कालकाचार्य के शिष्य अविनीत एवं आचार में शिथिल हो गये थे। बार बार शिक्षा देने पर भी उन्होंने अपने प्रमाद का त्याग नहीं किया इस पर आचार्यश्री ने सोचा कि ऐसे अविनीत साधुओं के साथ रहना केवल कर्मबन्ध का कारण है। अतः आपने शय्यातर[1] को कह दिया कि मैं इन शिष्यों के अविनीतपने के कारण यहाँ से जा

१—नगरे डिण्डिमो वाद्यः सर्वत्र स्वामिपूजिताः । प्रतिलाभ्या वराहारैर्गुरवो राजशासनात् ॥१०९॥

२—राजावदच्चतुर्थ्यां तत्पर्वपर्युषणं ततः । इत्थमस्तु गुरुः प्राह पूर्वैरप्यादृतं ह्यदः ॥१२१॥

रहा हूँ। बन सकेतो तू इनको हितशिक्षा देना। बस, इतना कहकर सूरिजी तो विहार करके प्रबन्धकार के मत से कालकाचार्य विशाला अर्थात् उज्जैन गये थे पर गये किस ग्राम से यह नहीं बतलाया परन्तु निशीथ चूर्णीकार लिखते हैं कि "उज्जैणी कालखमणा सागर खमणा सुवर्ण भूमिसु" अर्थात् उज्जैन नगरी में कालकाचार्य रहते थे और वहां से चल कर सुवर्णभूमि में रहने वाले सागरसूरि के उपाश्रय गये थे। सागरसूरि कालकाचार्य के शिष्य का शिष्य था।

कालकाचार्य सुवर्णभूमि में सागरसूरि[2] के उपाश्रय गये, उस समय सागरसूरि व्याख्यान पीठ पर बैठा था, कालकाचार्य को नहीं पहिचाना अतः वन्दन व्यवहारादि भी नहीं किया। इस हालत में उपाश्रय के एक जीर्ण विभाग में जाकर कालकाचार्य परमेष्ठी का ध्यान लगा कर बैठ गये। जब व्याख्यान समाप्त हुआ तो सागरसूरि ने कालकाचार्य के पास आकर कहा कि हे तपोनिधि! आपको कुछ पूछना हो तो पूछो, मैं आपके मनके संशय को दूर करूंगा इस पर सूरि ने कहा कि मैं वृद्धावस्था के कारण आपके कहने को ठीक समझ नहीं पाया हूँ तथापि मैं आपसे पूंछता हूँ कि अष्ट पुष्पी का क्या अर्थ होता है? सागरसूरि ने गर्व में आकर यथार्थ तो नहीं पर कुछ अटम् पटम् अर्थ कह सुनाया जिससे कालकाचार्य ने सागर सूरि की परीक्षा कर ली

इधर उज्जैन में सुबह गुरु को नहीं देखने से अविनीत शिष्य घबराये कि अपने कारण गुरु अकेले ही चले गये जब उन्होंने शय्यातर को पूंछा तो उन्होंने सब हाल कह दिया। इस हालत में वे शिष्य भी वहाँ से विहार कर सुवर्णभूमि की ओर आये जब उन्होंने सागरचन्द्रसूरि के उपाश्रय जाकर पूछा कि क्या यहाँ गुरु महाराज पधारे हैं? उसने कहा कि एक वृद्ध तपस्वी के अलावा यहाँ कोई नहीं आया है। साधुओं ने कहा अरे वह वृद्ध तपस्वी ही गुरुदेव हैं। सब साधुओं ने आकर सूरिजी को वन्दन किया जिसको देखकर सागरचन्द्रसूरि लज्जित हो गया और दादागुरु को वन्दन कर अपने अपराध की क्षमा मांगी।

कालकाचार्य ने सागरचन्द्रसूरि से कहा कि तुमको ज्ञान का इतना घमंड किस लिये है। क्योंकि तीर्थङ्करों का ज्ञान अनंत है जिसके अनन्तवें भाग गणधरों[1] ने ग्रन्थित किया है जिसका क्रमशः षट्स्थान न्यून जम्बु प्रभव शय्यंभव आदि आचार्यों को ज्ञान रहा। इतना ही क्यों पर जितना ज्ञान मुझे है उतना मेरे शिष्यों में नहीं और उनमें है उतना तेरे में नहीं और तेरे में है उतना तेरे शिष्यों में न होगा, फिर तू इतना गर्व क्यों रखता है? जब तुमको अष्ट पुष्पी का भी पूर्ण ज्ञान नहीं है तो गर्व किस बात का है। मैं तुमको अष्ट पुष्पी[2] का अर्थ बतलाता हूँ "अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य्य अपरिग्रह रागद्वेषत्याग

१—अन्येद्युः कर्मदोषेण सूरीणां तादृशामपि। आसन्न विनयाः शिष्या दुर्गतौ दोहदप्रदा ॥१२७॥
अथ शय्यातरं प्राहुः सूरयो विनयं वचः। कर्मबन्ध निषेधाय यास्यामो वयमन्यतः ॥१२८॥
त्वया कथ्यमतीषां च प्रियकर्कश वाग्भरैः। शिक्षयित्वा विशालायां प्रशिष्यान्तं ययौ गुरुः ॥१२९॥

२—प्रशिष्यः सागरः सूरिस्तत्र व्याख्याति चागमम्। तेन नो विनयः सूरेरभ्युत्थानादिकः कृतः ॥१३०॥
तत ईर्यां प्रतिक्रम्य कोणे कुत्रापि निर्जने। परमेष्ठिस्मरणं कुर्वन्नस्थात् धीः ॥१३१॥

३—श्रीसुधर्मा ततो जम्बूः श्रुतकेवलिनस्ततः। षट्स्थाने पतितास्ते च श्रुते हीनक्रमाद्यतः ॥१३२॥

४—अष्टपुष्पी च तत्त्वज्ञः प्रभुर्व्याख्यानयत्तदा। अहिंसासूनृतास्तेय ब्रह्माकिंचनता तथा ॥१४०॥
रागद्वेषपरित्यागो धर्मध्यानं च सप्तमम्। शुक्लध्यानमष्टमं च पुष्पैरात्मार्चनात् शिवम् ॥१४१॥

धर्मध्यान और शुल्कध्यान इन अष्ठ पुष्पों से भावपूजा करने से जीव का कल्याण होता है इत्यादि"। सागरचन्द्रसूरि का गर्व गलगया और अविनीत शिष्यादि को सुशिक्षा देते हुये कालकाचार्य अनशन समाधि पूर्वक स्वर्ग पधार गये। जैनशासन में कालकाचार्य एक महान प्रभाविक आचार्य हुये हैं।

आचार्य पादलिप्तसूरि—आप पाँचवी शताब्दी के एक प्रभाविक आचार्य थे। आपके प्रभावोंत्पादक जीवन के लिये बहुत से विद्वानों ने विस्तार से वर्णन किया है पर मैं तों यहां अपने उद्देश्यानुसार केवल सारांश मात्र ही लिखता हूँ।

कोशलानगरी के अन्दर राजा विजयब्रह्म राज करते थे। वहाँ पर एक बड़ा ही धानाढ्य फुल्ल नाम का सेठ वसता था जिसके प्रतिमा नामकी सेठानी थी दम्पत्ति सर्व प्रकार से सुखी होने पर भी उनके कोई सन्तान न होने से वे हमेशा चिन्तातुर रहते थे। अनेक देव देवियों की आराधनादि कई उपाय किये पर उसमें वे सफल नहीं हुये फिर भी उन्होंने अपना उद्यम करना नहीं छोड़ा। एक समय सेठानी ने पार्श्वनाथ की अधिष्ठात्री नागजाति की देवी वैरोट्या का महोत्सव पूर्वक तथा अष्टम तप करके आराधन किया अन्तिम रात्रि में देवी ने कहा कि विद्याधर गच्छ के कालकाचार्य की संतान में आचार्य नागहस्ति१ के चरण प्रक्षालन के जल का पान कर, तेरे पुत्र होगा। सेठानी देवी के वरदान को तथाऽस्तु कह कर सुबह होते ही वहाँ से चल कर आचार्य श्री के उपाश्रय आई भाग्यवसात् उस समय आचार्य श्री बाहर जाकर आये थे। उनके पैरों का प्रक्षालन कर एक साधु उस पानी को परठने के लिये जा रहा था। सेठानी ने उस पानी से थोड़ा पानी लेकर आचार्य श्री से दशहाथ दूर ठहर कर जलपान कर लिया बाद सूरीजी के पास आकर वन्दन के साथ सब हाल निवेदन कर दिया। इस निमित्त को सुन कर सूरिजी ने कहा श्राविका! तेरे पुत्र तो होगा पर तू ने मेरे से दश हाथ दूर रह कर जलपान किया है, इस से तेरा पुत्र तेरे से दश योजन दूर मथुरा नगरी में रह कर बड़ा होगा तथा इस पुत्र के बाद नौ पुत्र और भी होंगे। इस पर सेठानी ने कहा कि हे पूज्य! मैं अपने पहिले पुत्र को आपके अर्पण करती हूँ। क्योंकि मेरे से दूर रहे उससे तो आपके पास रहना अच्छा है। सूरिजी ने कहा भद्रे! तेरापुत्र बड़ा ही प्रतिभाशाली होगा और जगत का उद्धार करेगा इत्यादि।

सेठानी ने नागेन्द्र का स्वप्न सूचित गर्भ धारण कर यथा समय पुत्र को जन्म दिया और उसका नाम नागेन्द्र रख दिया तथा अपनी प्रतिज्ञानुसार सेठानी ने अपने पुत्र को सूरिजी के अर्पण कर दिया। सूरिजी ने कहा कि श्राविका! हमारी तरफ से इस बालक का तुम पालन पोषण करो। प्रतिमा सेठानी ने गुरु वचन को शिरोधार्य्य करके लड़के का अच्छी तरह से पालन पोषण किया जब नागेन्द्र ८ वर्ष का हुआ तो सूरिजी ने उसको ज्ञानाभ्यास करवा दिया।

१—आसीत्कालिकसूरिः श्रीश्रुताम्भोनिधिपारगः। गच्छे विद्याधराख्यस्यार्यनागहस्ति सूरयः ॥१५॥
खेलादिलब्धिसम्पन्नाः सन्ति त्रिभुवनार्चिताः। पुत्रमिच्छसि चेत्तेषां पादशौच जलंपिबेः ॥१६॥

२—साहाय प्रथमः पुत्रो भवतामर्पितो मया। अस्तु श्रीपूज्यपार्श्वस्थो दूरस्थस्यास्य को गुणः ॥२२॥

३—नागेन्द्राख्यां ददौ तस्मै फुल्ल उत्फुल्ललोचनः। आप्तो गुरुभिरागत्य सगर्भाष्टमवार्षिकः ॥२९॥

४—प्रव्रज्यां प्रददुस्तस्य शुभे लग्ने स्वरोदये। उपादानं गुरोर्हस्तं शिष्यस्य प्राभवे न नु ॥३१॥

५—श्रुत्वेतिगुरुभिः प्रोक्तः बालेन प्राकृतेन सः। पालित्तो इति श्रङ्गारानिप्रदीप्तानिभाषिता ॥३९॥

आचार्यश्री के गुरुभाई संग्रामसिंहसूरि थे उनको आज्ञा दी अतः उन्होंने नागेन्द्रकुमार को दीक्षा दी और मण्डन नाम के मुनि को उसकी सेवा शुश्रूषा एवं पढ़ाई का कार्य्य सौंपा आखिर नागेन्द्रमुनि थोड़े ही समय में ज्ञानाभ्यास करके धुरन्धर विद्वान हो गया। एक समय आचार्यश्री ने नागेन्द्र को कांजी का पानी लाने के लिए भेजा। वह पानी लेकर वापिस आया तो एक गाथा कह कर पानी देने वाली का वर्णन किया।

"अं वं तंवच्छीए अपुफियं फुप्फ दंत पंतीय नय-सालकंजियं नव वहूईकुड्डराणनेदिन्न"

अर्थ—लाल वस्त्रवाली अभी ऋतु न हुई पुष्प सदृश्य दंत पंक्ति वाली ऐसी नव वधू ने बड़े ही प्रमोद से मुझे नये चावलों की कांजी का दान दिया है। इस श्रृंगार रस गर्भित गाथा को सुन कर गुरु ने कहा "पलित्तओ" तू राग अग्नि में प्रदीप्त है इस पर मुनि नागेन्द्र ने कहा कि गुरुवर्य्य। एक मात्रा की और कृपा करें कि मैं "पालित्तओ" हो जाऊँ। इसका भाव यह है कि:—"गगन गमनोपायभूत पादलेप विद्यां मेदत् येनाहं पादलिप्तक, इतिभिदिये ततो गुरुभि पादलेप विद्या दत्ता अर्थात् गुरु ने नागेन्द्र को पादलेप विद्या प्रदान कर दी कि जिससे वह पैरों पर लेप करके आकाश में जहाँ इच्छा करे वहाँ ही चला जावे।

जब मुनि नागेन्द्र दसवर्ष * का हो गया तो उनको सर्व गुण सम्पन्न समझकर आचार्य पद से विभूपित कर दिया और उनका नाम पादलिप्तसूरि रख दिया।

गुरु आज्ञा से बालाचार्य पादलिप्त सूरि विहार कर मथुरा पधारे। वहां की जनता को अपने ज्ञान से रंजित बनाकर आप † पाटलीपुत्र नगर में पधारे। उस समय पाटलीपुत्र नगर में मुरंड नाम का राजा राज करता था। पादलिप्तसूरि के चमत्कार एवं उपदेश से राजा जैन धर्म को स्वीकार कर आचार्यश्री का परम भक्त बन गया।

एक समय राजा मुरंड ने सूरिजी से पूछा कि पूज्यवर! हम लोग प्रधान वगैरह को अच्छा वेतन देते हैं फिर भी वे बराबर काम नहीं करते हैं तो आपके साधु बिना वेतन आपका कार्य्य कैसे करते होंगे? सूरिजी ने कहा तुम्हारे प्राधानादि स्वार्थ के वश नौकरी करते हैं पर हमारे शिष्य परमार्थ के लिए हमारी आज्ञा का पालन करते हैं। फिर एक नवदीक्षित शिष्य की परीक्षा की और इस परीक्षा के लिए राजा ने अपने मुख्य प्रधान बुला के कहा कि गंगा की धार किस ओर मुंह करके बहती है इसकी पक्की निगाह कर खबर लाओ। प्रधान ने सोचा कि बालाचार्य की संगत करने से राजा भी बाल भाव को प्राप्त होकर व्यर्थ ही कह रहा है। यह बात तो बालक भी जानता है कि गंगा पूर्व की ओर बह रही है। बस प्रधान अपने भोग विलासादि कार्य्य में लग गया, राजा ने अपने गुप्तचरों को प्रधान के पीछे भेज दिया। बाद ४-५ घंटे के आकर राजा को कह दिया कि मैंने पूरी निगाह करली है कि गंगा पूर्व मुँह कर बहती है। राजा के गुप्तचरों ने मंत्री का सब हाल राजा से कह दिया। बाद सूरिजी ने अपने एक शिष्य को भेजा कि निगाह करो कि गंगा किस ओर बहती है? शिष्य ने गुरु आज्ञा पालन करने को गंगा पर आकर ४-५ आदमियों से पूछ कर तलाश की तथा आप स्वयं गंगा में दंडा रख निर्णय किया और गुरु के पास आकर कहा कि गंगा

---

* दशमे वर्षे [illegible] गुरुभिः [illegible]। [illegible] पट्टे [illegible] ॥२५॥

† [illegible] पाटलीपुत्रं। [illegible] तत्र राजासीत मुरुण्डः [illegible] ॥३३॥

पूर्व की ओर बहती है। इसके पीछे भी राजा का गुप्तचर गया था जिससे राजा ने दोनों का हाल जान लिया और सूरिजी के कहने पर दृढ़ विश्वास हो गया।

पादलिप्तसूरि एक समय मथुरा में सुपार्श्वनाथ के दर्शन कर ऊंकारपुर ‡पधारे वहाँ के राजा भीम ने सूरिजी का अच्छा सत्कार किया। सूरिजी के उपदेश से वहाँ का राजा भी जैनधर्मी बन गया।

आचार्य श्री शत्रुंजय की यात्रा कर मानखेटपुर × पधारे वहाँ के राजा कृष्णराज को उपदेश देकर जैन-धर्मोपासक बनाया और राजा के आग्रह से आप वहाँ ही विराजते थे। वहां पर प्रांशुपुर से एक रुद्रदेवसूरि नामक आचार्य पधारे थे वे योनिप्रभृत शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे एक समय अपने शिष्यों को उस शास्त्र की वाचना दे रहे थे उसको बाहर रहा हुआ धीवर (मच्छीमार) सुन रहा था। उसने उस विद्या एवं विधि को अच्छी तरह धारण कर ली कि जिससे माच्छला उत्पन्न कर सके।

बाद दुकाल पड़ा, पानी के अभाव माच्छला नहीं मिले तो उस धीवर ने योनिप्रभृत विद्या से माच्छला पैदा कर दुकाल में अपने कुटुम्ब का पालन किया। बाद फिर गुरू के दर्शन किये धीवर ने अपनी सारी बात कह कर उपकार माना। इस पर आचार्य श्री को बड़ा भारी पश्चाताप करना पड़ा कि मैंने उपयोग नहीं रखा जिससे इतने जीवों की हिंसा हुई। फिर धीवर को उपदेश दिया कि मैं तुझे रत्न बनाने की विद्या बता सकता हूँ पर माच्छला बनाना या मांस खाने का त्याग करना पड़ेगा। धीवर ने कहा पूज्य ! जब मेरा गुजारा हो जाय तो इस लोक और परलोक में निन्दनीय कार्य्य मैं कदापि नहीं करूंगा। आचार्य महाराज ने उस धीवर को रत्न बनाने की विद्या सिखा कर उसको पाप से बचाया।

श्रमणसिंहसूरि—विलास१ पुर नगर में प्रजापति राजा राज करता था उस समय श्रमणसिंहसूरि वहां पधारे। राजा ने कहा कि आप ज्ञानी हैं कुछ चमत्कार बतलावें। इस पर सूरिजी ने कई प्रकार के चमत्कार बतला कर राजा को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा दी जिससे जैनधर्म की अच्छी प्रभावना हुई।

आचार्य खपटसूरि—आप विद्या निपुण जैनशासन के एक चमकते सितारे थे। आपका चरित्र अलौकिक एवं चमत्कारों से ओतप्रोत है और पढ़नेवाले भव्यों को आनन्द का देनेवाला है। आपने एक विशुद्ध राजवंश में उत्पन्न हो जैनधर्म की दीक्षा ग्रहण कर अनेक शास्त्रों का अभ्यास किया अतएव आप तात्त्विक दार्शनिक एवं विद्या मंत्रादि शास्त्रों में बड़े ही धुरन्धर विद्वान थे। अपनी अलौकिक प्रभा का प्रभाव कई राजा महाराजा एवं वादी प्रतिवादियों पर डालते हुए भूमि पर भ्रमण करते थे।

एक समय आप भरोंच नगर में विराजमान थे जहां बीसवें तीर्थङ्कर भगवान मुनि सुव्रत का तीर्थ था और कालकाचार्य का भानेज बलमित्र राजा राज करता था वह कट्टर जैन और आचार्यश्री का परम भक्त था। आचार्य खपटसूरि के एक शिष्य भुवनमुनि२ जो आपके संसार पक्ष में भानेज लगते थे वह भी

---

‡ ततोऽसौ लाटदेशांतश्चोङ्काराख्यपुरे प्रभुः। आगतः स्वागतान्यस्य तत्राधार्द्भीमभूपतिः॥ ९४॥

× मानखेटपुरं प्राप्ताः कृष्णाभूपालरक्षितम्। प्रभवः पादलिप्ताख्य राज्ञाऽभ्यर्च्यंत भक्तितः॥११४॥
तत्र प्रांशुपुरात्प्राप्ताः श्रीरुद्रदेवसूरयः। ते यावदुद्दतत्त्वार्थाः योनिप्राभृते प्रभुते॥११५॥
अन्येद्यु र्निजशिष्याणां पुरस्तस्याद्य शास्त्रतः। व्याख्य.ता शफरोत्पत्तिः पाप सन्तानसाधिका॥११६॥

१—विलास नगरे पूर्वं प्रजापतिरभूत्ततः। ततः श्रमणसिंहाख्याः सूरयश्च समाययुः॥१२१॥

शास्त्रों के मर्मज्ञ एवं अनेक विद्याओं से विभूषित थे। उनकी बुद्धि इतनी प्रबल थी कि कोई भी ज्ञान एक बार सुन लेते तो वह सदैव के लिये कण्ठस्थ ही हो जाता।

गुडशस्त्र नगर से चल कर एक बोधाचार्य भरोंच नगर में आया था उसके साथ मुनि भुवन का धर्म के विषय शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें बोधाचार्य को पराजित कर शासन की खूब ही प्रभावना की। बोधाचार्य इतना लज्जित हो गया कि वह कहीं पर जाकर मुंह दिखाने काबिल ही नहीं रहा। अतः उसने भरोंच में अन्न जल का त्याग कर दिया, आखिर वह मर कर यक्ष योनि में उत्पन्न हुआ और गुडशस्त्र नगर में अकार लोगों को उपद्रव करने लगा अतः लोगों ने उसकी मूर्ति स्थापित की जब जाकर यक्ष शान्त हुआ। बाद पूर्व द्वेष के कारण यक्ष जैनश्रमणों को उपसर्ग करने लगा इससे दुःखी हुये संघ ने दो मुनियों को भेज कर आचार्य खपटसूरि से कहलाया कि यहां का यक्ष जैन संघ को बहुत दुःख देता है अतः आप जल्दी से यहां पधार कर श्रीसंघ के दुःख को दूर कर शांति करावें। इस पर आचार्य श्री ने मुनि भुवन को बुला कर कहा कि मैं गुडशस्त्र नगर जाता हूँ पीछे तुम इस खोपड़ी को भूलचूक कर भी उघाड़ कर नहीं देखना। इतना कहकर आचार्यश्री तो विहार कर गुडशस्त्र नगर में पधार गये और सीधे ही यक्ष के मंदिर में जाकर यक्ष के कान पर पैर रख कपड़ा से शरीर आच्छादित कर सो गये। जब पुजारी यक्ष की पूजा करने को आया तो आचार्य को सोता हुआ देख दूर हटने के लिये बहुत कहा पर उसने एक भी नहीं सुनी। तब पुजारी ने राजा के पास जाकर सब हाल निवेदन किया तो राजा ने क्रोधित हो हुकम दिया कि लकड़ी लाठी एवं पत्थरों से मार कर सेवड़ा को हटा दो। पुजारी ने ऐसा ही किया पर आचार्य को तो इस बात की परवाह ही नहीं। इसका नतीजा यह हुआ कि पुजारी ने जितने लाठी लकड़ी पत्थर चलाये वे सब राजा के अन्तेवर की रानियों पर ही मार पड़ने लगी अतः अन्तेवर गृह में हाहाकार मच गया और रानियों ने पुकार की कि हमारी रक्षा करो! रक्षा करो इत्यादि यह समाचार राजा के पास आया तब जाकर राजा ने सोचा कि यक्षालय में सोने वाला कोई सिद्ध पुरुष होगा ऐसा सोचकर राजा अपने सब परिवार को लेकर यक्ष मंदिर में आया और भक्तिपूर्वक आचार्य देव को वन्दन कर शान्त होने की प्रार्थना की तथा नगर में पधारने के लिए आग्रह किया इस पर आचार्य श्री ने यक्ष को कहा चलो मेरे साथ तथा और भी देव मूर्तियां सूरिजी के साथ हो गईं इतना ही क्यों पर वहाँ दो पत्थर की बड़ी कुड़ियें थीं वह भी सूरिजी के पीछे चल रही थी * इस तरह से सूरिजी ने नगर प्रवेश किया जिसको देखकर राजा एवं प्रजा जैनधर्म के पूर्ण भक्त

२ — तत्रार्यखपटा नाम सूरयो विद्यतो (यो) दिताः। तेषां च भागिनेयोऽस्ति विनेयो भुवनाभिधः ॥१४९॥
कर्णश्रुत्याप्यसौ प्राज्ञो विद्यां जग्राह सर्वतः। बौद्धान्वादे पराजित्य येस्तीर्यं संघ माशिषत् ॥१५०॥
तदा च सौगताचार्य एको वट्टकराभिधः। गुडशस्त्रपुराद्यातो जिगीषुर्जैनशासनम् ॥१५१॥
सर्वानपि प्रवादी स चतुरंग समागुरः। जैनाचार्यस्य शिष्येण जितः स्याद्वादवादिना ॥१५२॥
*—जैनाक्याते पुनः क्रुद्धो नृपस्तं लेष्टुयष्टिभिः। अघातयत्त घातानां प्रवृत्तिमपि वेत्ति सः ॥१६०॥
क्षणेन तुमुलो जज्ञे पुरेऽन्यन्तः पुरेऽपि च। पूत्कुर्वन्तः समाजग्मुः सौविदल्लास्तदा ॥१६१॥
रक्ष रक्ष प्रभो न्यस्तः शुद्धान्तो लेष्टुयष्टिभिः। अदृष्टैर्हन्ति कैश्चित् [illegible] ॥१६२॥
१—[illegible] तत्र द्रोणीद्वयं तथा। [illegible] ॥१६४॥
[illegible] ॥१६५॥

के परमभक्त बन गये। बाद यक्ष एवं मूर्तियों को अपने स्थान जाने की आचार्यश्री ने आज्ञा दे दी और दो कुडियें वहां ही पड़ी रहीं। इस चमत्कार से नगर में जैन धर्म की खूब प्रशंसा होने लगी और जनता पर जैनधर्म का अच्छा प्रभाव पड़ा। राजा और प्रजा जैनधर्म के परमोपासक बन गये।

आचार्य खपटसूरि गुडशस्त्र नगर में विराजते थे उस समय भरोंच से दो ‡ मुनियों ने आकर निवेदन किया कि आप श्री तो यहां पधार गये पीछे मना करते हुये भुवनमुनि ने खोपरी उघाड़ कर पत्र पढ़ लिया और उस विद्या से सरस आहार लाकर रसगृद्धी बन गया है। स्थविरों ने उपालम्भ दिया तो वह जाकर बोद्धों × में मिल गया और विद्या प्रयोग से श्रावकों के घरों से सरस आहार लाकर खा रहा है जिससे जैनधर्म की निन्दा हो रही है। श्री संघ ने आपको बुलाने के लिये हम दोनों साधुओं को भेजा है अतः आप शीघ्र भरोंच पधारें। यह सुनकर सूरिजी भरोंच पधारे। जब भुवन ने पात्र को आज्ञा दी कि श्रावकों के घरों से मिष्टान्न आहार लाओ। तब पात्र आकाश में जा रहा था आचार्यश्री ने एक शिला + विकुबी जिससे पात्र फूट टूट चकनाचूर हो गया। इसकी खबर भुवन को हुई तो वह भय भ्रान्त होकर वहां से भाग गया। बाद आचार्यश्री बौद्ध मंदिर में गये। बौद्धों ने कहा कि आप बुद्ध मूर्ति को नमस्कार करो। पर आचार्य श्री के विद्याबल के प्रभाव से बोद्ध मूर्ति तथा द्वार पर एक बुद्ध श्रावक की मूर्ति ने आकर सूरिजी के चरणों में नमस्कार किया बाद गुरू ने कहा अपने स्थान जाओ पर वे उठते समय कुछ अवनत रहे जिससे अद्यावधि वह बोध मंदिर 'निग्रन्थ नमित' नाम से प्रसिद्ध है।

महेन्द्रोपाध्याय§—आप आचार्य खपटसूरि के शिष्य और महाविद्याभूपित थे एक समय पाटलीपुत्र नगर में दाहिड़† नामक राजा सत्यधर्म का नाश करता हुआ एक हुक्म निकाला कि सब धर्म वाले ब्राह्मणों के चरणों में नमस्कार करें अगर मेरी इस आज्ञा का कोई भी उल्लंघन करेगा तो उसको प्राणदण्ड दिया जायगा इस पर बहुत से लोग प्राण और धन की रक्षा के लिये ब्राह्मणों को नमस्कार करने लग गये पर जैन श्रमणों ने अपने धर्म की रक्षा के लिये प्राणों की कुछ भी परवाह नहीं की और कहने लगे कि राजा का कितना अन्याय—कितनी धर्मान्धता कि त्यागियों का अपमान करवाने के लिये ही यह आज्ञा निकाली है कि तुम सभी ब्राह्मणों को नमस्कार करो। खैर, जैनों ने राजा से कुछ दिन की मुद्दत ले ली और दो विद्वान मुनियों को भरोंच नगर भेज कर आचार्य खपटसूरी को सब हाल कहला दिया और कहलाया कि महेन्द्रोपाध्याय को जल्दी से भिजवावें कि यहाँ के श्रीसंघ का संकट को दूर कर जैनधर्म की विजयपताका फहरावें। दोनों मुनि चलकर भरोंच आये और सूरिजी को सब हाल निवेदन कर दिया। सूरिजी ने अपने शिष्य महेन्द्र को दो कन्नेर की कावें जो एक लाल दूसरी श्वेत थी अभिमंत्रित कर देदी और पाटलीपुत्र जाने के लिये रवाना कर दिया। क्रमशः महेन्द्रर्षि पाटलीपुत्र पधारे और राजसभा में जाकर

‡—इतश्च श्रीभृगुक्षेत्राद् यतिद्वितयमागमत्। तेन प्रोचे प्रभो प्रेपीत्संघो नौ भवदन्ति के ॥१६०॥

×—तत्प्रभावेण पात्राणि गतानि गगनाध्वना। भोज्य पूर्णान्युपायान्ति बौद्धोपासक वेश्मनः ॥१७३॥

+—पूर्णानि तानि भोज्यानामायन्ति गगनाध्वना। गुरुभि, कृतपादर्पाशिलया व्यांम्रि पुस्फुटुः ॥१७७॥

† नगरी पाटलीपुत्रं अारिपुरसप्रभम्। दाहडो नाम राजास्ति मिथ्यादृष्टिर्निकृष्टधीः ॥१८४॥

§ विमृश्य गुरुभिः प्रोचे श्रीआर्यखपटप्रभोः। शिष्याग्रणीर्महेन्द्रोऽस्ति सिद्धप्राभृतसंभृतः ॥१९२॥ प्र० च०

कहा कि आप की आज्ञापालन करने को हम सब लोग तैयार हैं पर यह एक नया कार्य्य है। अतः इस लिये आप अपने ज्योतिषियों से कह दें कि शुभ मुहूर्त देखकर सब ब्राह्मण राजसभा में एकत्र हो जायं और हम सब लोग भी राजसभा में आवेंगे। इससे राजा ने खुश होकर वैसा ही किया। दिन मुकर्र किया। उस दिन सब ब्राह्मण गले में जनेऊ और कपाल पर तिलक करके राजसभा में आकर उच्चासन पर बैठ गये। राजा राजकर्मचारी और नागरिक लोग भी एकत्र हुये। इधर से महेन्द्रर्षि जैन साधुओं को लेकर राजसभा में आये। सभा का दृश्य देख कर राजा से पूछा कि क्या पूर्व‡ सन्मुख बैठे हुये ब्राह्मणों को नमस्कार करें या पश्चिम बैठ हुओं को? ऐसा कहते ही सामने बैठे हुये ब्राह्मणों की पीठ पर लाल कन्नेर की कांब फेरी कि वे तत्काल मृत्युवत मूर्छित हो गये। इस घटना को देख सभा आश्चार्य मुग्ध और भयभ्रान्त हो गई। राजा ने सोचा कि इसमें अपराध तो मेरा ही है कहीं मेरी भी यह हालत न हो जाय। राजा ने फ से सिंहासन से उठ कर महेन्द्रर्षि के चरणों में गिर कर प्रार्थना × की कि हे विद्याशाली! हमारी अज्ञानता के लिये क्षमा करावें। मुनि ने कहा राजा तुमने बहुत अन्याय किया है। पहिले भी बहुत से राजा हो गये पर एक गृहस्थ ब्राह्मण को त्यागी नमस्कार करे ऐसा आग्रह किसी ने भी नहीं किया इत्यादि।

राजा ने कहा कि यह हमारी अज्ञानता थी पर आप महात्मा हैं अब इन ब्राह्मणों को सचेत करो। कारण इनके सब कुटुम्ब वाले रुदन एवं करुण आक्रन्दन कर रहे हैं इस पर मुनि ने कहा कि मैं देव देवियों से कोशिश करूंगा। ऐसा कह कर आकाश की ओर मुँह करके देवताओं से कहा कि तुम इन ब्राह्मणों को अच्छा कर दो। देवों ने कहा कि यदि यह ब्राह्मण जैन दीक्षा स्वीकार करें तो सचेत हो सकते हैं नहीं तो सब मर जायंगे।

जीवन की इच्छा वाले क्या नहीं करते हैं सब ने स्वीकार कर लिया अतः महेन्द्रर्षि ने कन्नेर की दूसरी श्वेत कांब फेरी तो वे सब सचेत हो गये। इससे जैन धर्म की महान प्रभावना हुई। राजा प्रजा ने जैनधर्म स्वीकार कर बड़े ही गाजे बाजे एवं महोत्सव पूर्वक महेन्द्रर्षि को अपने उपाश्रय पहुँचाया।

ब्राह्मण दीक्षा लेने को तैयार हुये पर महेन्द्रर्षि ने कहा कि यह कार्य्य हमारे आचार्य महाराज का है और वे इस समय भरोंच नगर में विराजते हैं। अतः श्रीसंघ की अनुमति से महेन्द्रर्षि ब्राह्मणों को लेकर भरोंच आये और श्रीसंघ के महोत्सव पूर्वक सब ब्राह्मणों को सूरिजी ने दीक्षा प्रदान की।

आचार्य पादलिप्तसूरि जिनका वर्णन पूर्व आ चुका है उन्होंने आचार्य खपटसूरि के पास में रहकर अनेक आगमों का एवं चमत्कारी विद्याओं का अभ्यास किया था और पादलिप्तसूरि ने एक पादलिप्त नाम की भाषा का भी निर्माण किया था कि दूसरा कोई समझ ही नहीं सके। हाँ जिसको पादलिप्तसूरि बतलावें वे जरूर समझ सकते थे।

आचार्य खपटसूरि अधिक समय भरोंच नगर में रहे थे और उन्होंने जैनधर्म की बहुत उन्नति की

‡ कथं तेन [illegible] यद्द्वंमिदं हि नः। पूर्वं पूर्वा [illegible] क्रिया नमामः [illegible] ॥ ... ॥
[illegible] कर्वीतकर्ना [illegible]। संमुखानां [illegible] दृष्टं [illegible] ॥ ... ॥
[illegible] निस्चेष्टा मृतसंनिभाः। [illegible] विलायं [illegible] ॥ ... ॥ प्र० च०
× [illegible] मम। देवो गुरुः पिता माता हि [illegible] ॥ ... ॥

आखिर वहाँ पर अनशन और समाधिपूर्वक स्वर्गवास किया । आपके पट्ट पर श्री संघ ने महेन्द्रोपाध्याय को आचार्य पद पर स्थापित किया । महेन्द्रसूरि बड़े ही विद्यावली एवं चमत्कारी पुरुष थे उन्होंने सर्वत्र विहार कर जैनधर्म की अच्छी उन्नति एवं प्रभावना की ।

सिद्धनागार्जुन आप वीर क्षत्रिय संग्रामसिंह की सुशीलभार्या सुव्रता के पुत्र रत्न थे। तीन वर्ष की शिशु अवस्था में ही आप इतने वीर थे कि एक सिंह के बच्चे को मार डाला था । नागार्जुन बनस्पति जड़ी बूटी एवं सिद्ध रसायन का बड़ा ही प्रेमी था । कई महात्माओं की कृपा से उसको अनेक औषधियों की प्राप्ती भी हुई थी । सुवर्णरस विद्या तो उसके हाथ का एक भूषण ही बन चुकी थी । नागार्जुन अधिक समय जंगल में ही व्यतीत करता था । एक समय औषधियों और विद्या से समृद्ध बना हुआ नागार्जुन अपने घर पर आया जैसे कोई व्यापारी धन कमा कर घर पर आता है ।

नगर में आने के बाद उसने सुना कि यहाँ एक पादलिप्तसूरि आचार्य पधारे हैं और वे पादलेप से आकाश में गमन करते हैं । नागार्जुन* ने आकाशगामिनी एवं पादलेप विद्या की प्राप्ती की गरज से एक पात्र (तुंबी) में कुछ सुवर्ण सिद्धि रस भर कर अपने शिष्य के साथ पादलिप्तसूरि के पास भेजा । शिष्य ने जाकर तुंबी सूरिजी को दी और सब हाल भी कह दिया । निस्पृही सूरिजी ने उसे बेकार समझ कर पात्र के साथ एक ओर फेंक दी । इस पर उस शिष्य ने बड़ा ही अफसोस किया । तब सूरिजी ने कहा तू फिक्र क्यों करता है तुझे पात्र एवं भोजन मिल जायगा । किसी श्रावक को सूचित करा दिया । जब वह शिष्य जाने लगा तो सूरिजी ने एक कांच का पात्र (शीशी) में पेशाब भर कर उसको दे दिया कि इसे नागार्जुन को दे देना । शिष्य अधिक दुःख कर विचारने लगा कि नागार्जुन ऐसे मूर्खों के साथ मित्रता कर क्या लाभ उठाना चाहता है ? खैर, शिष्य ने ज्यों की त्यों आकर शीशी नागार्जुन को दे दी । उसने सूंघा तो पेशाब की बदबू आने लगी । उसने शीशी को एक पत्थर पर डाल दिया । शीशी फूट गई और पेशाब उस पत्थर पर गिर गया । बाद जब औषधी बनाने के लिए अग्नि लगाई और अग्नि का स्पर्श उस पत्थर पर लगा तो वह पत्थर ही सब सोना बन गया । तब तो नागार्जुन को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसका सब गर्व गल कर पानी हो गया । उसने सोचा कि मैंने तो इतने वर्ष परिश्रम कर बड़ी मुश्किल से इस रसायन को प्राप्त की है तब इन महात्मा के सब शरीर एवं मलमूत्र भी सुवर्ण सिद्धि हैं इत्यादि ।

---

*—विद्यादेव्यः षोडशापि चतुर्विंशतिसंख्यया । जैना यक्षास्तथा यक्षिगण्यश्च वोऽभिदधाम्यहम् ॥२१६॥
इत्युक्ते तेन दैवी वाक् प्रादुरासीद्दुरासदा । एषां प्रव्रज्यया मोक्षोऽन्यथा नाल्यपि जीवितम् ॥२१८॥
अभिषेकेण तेषां गीसुत्कला च त्वधीयतः (त) । पृष्टा अङ्गीकृतं तैश्च को हि प्राणान्न वांछति ॥२१९॥
उत्तिष्ठतेति तेनोक्ता अाम्यताथापराल्लता । सज्जीवभूवुः प्राव्रत्त जैना शमितदानवः ॥२२०॥
संघेन सह रोमांचांकुरकन्दलितात्मान । राज्ञा कृतोत्सवेनाथ स्वं विवेशाश्रयं मुनिः ॥२२१॥
अश्वावबोधतीर्थं श्रीभृगुकच्छपुरे हि यैः । श्रीआर्यखपटाख्यानां प्रभूणां महिमाद्भुतम् ॥२२५॥
इत्यार्यखपटश्चक्रे शासनस्य प्रभावनाम् । उपाध्यायो महेंद्रश्च प्रसिद्धिं प्रापुरद्भुतताम् ॥२२८॥
अथार्यखपटः सूरिः कृतभूरिप्रभावनः । अन्तेऽनशनमाधाय दैवीभुवमशिश्रियत ॥२३१॥
श्रीमहेन्द्रस्ततस्तेषां पट्टे सूरिपदेऽभवत् । तीर्थयात्रां प्रचक्राम शनैः संघमयात्रया ॥१३४॥
पुरा ये पाटलीपुत्रे द्विजाः प्रव्रजिता बलात । जातिवैरेणतेनाम्र ते मत्सरमधारयन् ॥२३५॥ प्र० च०

ॐनागार्जुन—आचार्य पादलिप्त के पास जाकर उनकी स्तुति करता हुआ उनका अनुरागी बन गया। जब सूरिजी पैरों पर लेप कर आकाश मार्ग से शत्रुंजय, गिरनार, अष्टापद शिखर और आर्बुदाचल की यात्रा कर के वापिस आये। नागार्जुन ने लेप पहिचान ने की गरज से आचार्य श्री के पैरों का प्रक्षालन किया जिसमें सुगन्ध से स्पर्श से और अन्य प्रकार से १०७ औषधियों को जान गया। जब वह जंगलों से औषधियां लाकर अपने पैरों पर लेप कर आकाश में गमन करने लगा। थोड़ा थोड़ा उड़ता पर एक औषधि की न्यूनता के कारण वह वापिस गिर जाता था जिससे उसके घुटने से रुधिर बहने लग गया। जिसको देख सूरिजी ने कहा बिना गुरु से विद्या फलीभूत नहीं होती है। नागार्जुन ने कहा कि मैंने अपनी बुद्धि की परीक्षा की है। आचार्य श्री ने कहा कि यदि मैं तुझे आकाशगामनी विद्या बतलाऊं तो बदले में तू मुझे क्या देगा ? नागार्जुन ने कहा जो आप फरमावें वही दूंगा।

गुरु—मैं दूसरा कुछ भी नहीं चाहता। तू पवित्र जैनधर्म स्वीकार कर और उसका ही पालन कर। कारण इन भौतिक विद्याओं से आत्म कल्याण नहीं पर आत्मकल्याण जैनधर्म की आराधना से ही होगा।

नागार्जुन ने स्वीकार कर लिया।

तब सूरिजी ने कहा कि जो मसाल १०७ औषधियों द्वारा एकत्र किया है उसको कांजी और चावलों के जल के साथ मिलाले जिससे आकाश में गमन कर सकेगा। नागार्जुन ने ऐसा ही किया और वह आकाश में गमन करने में सफल हो गया।

ॐ—तत्र नागार्जुनो नाम रससिद्धिविदांवरः। भाविशिष्यो गुरोस्तस्य तद्वृत्तमपि कथ्यते ॥२५१॥
तृणरत्नमये पात्रे सिद्धं रसमढौकयत्। छात्रो नागार्जुनस्य श्री पादलिप्तप्रभो पुरः ॥२५२॥
स प्राह रससिद्धं ढौकने कृतवान् रसम्। स्वान्तर्द्धनमहोस्नेहस्तस्येत्येवं स्मितो व्यधात् ॥२५३॥
पात्रं हस्ते गृहीत्वा च भित्तावास्फाल्य खण्डशः। चक्रे च तत्नरो दृष्ट्वा व्यषीदद्वक्त्र वक्रभृत् ॥२५४॥
मा विषीद तव आद्धपर्वतो भोजनं वरम्। प्रदापयिष्यते चैव मुक्त्वा संमान्य भोजितः ॥२५५॥
तस्मै चापृच्छ्यमानाय काच पात्रं प्रपूर्य सः। प्रश्रावस्य ददौ तस्मै प्राभृतं रसवादिने ॥२५६॥
नूनमस्मद्गुरुर्मूर्खः यो ऽनेन स्नेहमिच्छति। विमृशन्निति स स्वामिसमीपं जग्मिवांस्ततः ॥२५७॥
पूज्यैः सहाद्भुता मैत्री तस्येतिस्मितपूर्वकम्। सम्यग्विज्ञप्य वृत्तान्तं तदमत्रं समार्पयत् ॥२५८॥
द्वारमुन्मुद्य यावत्स सविवर्त्त दृशोः पुरः। आजिघ्रत्ति ततः क्षारविस्रगन्धं स मुक्तवान् ॥२५९॥
अहो निर्लोमनामेष मूढतां वा स्पृशेदय। विमृश्येति विषादेन यमंजात्स्मनि सोऽपि मत् ॥२६०॥
देवसंयोगनस्तत्रैकेन वह्निः प्रदीपितः। मद्यपाकनिमित्तं च क्षुत्सिद्धस्यापि दुर्मदः ॥२६१॥
[illegible] वह्नियोगसुवर्णकम्। सुवर्णसिद्धिमुन्मेद्य सिद्धशिष्यो [illegible] ॥२६२॥
[illegible] मुनिवाते गते विचरितुं तदा। [illegible] गत्वा [illegible] ॥२६३॥
[illegible] मध्ये नियमपूर्वकम्। [illegible] ॥२६४॥
[illegible] चरणक्षालनं ध्रुवम्। [illegible] ॥२६५॥
[illegible] ॥२६६॥
[illegible] ॥२६७॥
[illegible] ॥२६८॥ प्र० च०

नागार्जुन पादलिप्तसूरि का इतना श्रद्धा सम्पन्न परमभक्त बन गया कि सिद्धगिरि तीर्थ की तलेटी में एक नगर बसा कर उसका नाम गुरु की स्मृति के लिए पादलिप्तपुर रख दिया जो आज पालीताना के नाम से प्रसिद्ध है और शत्रुंजय तीर्थ पर एक महावीर का मंदिर बनाया तथा एक गुरु पादलिप्तसूरि की मूर्त्ति बनाई जिसकी प्रतिष्ठा पादलिप्त सूरि ने करवाई तथा सूरिजी ने महावीर प्रभु की स्तुति रूप दो गाथा बनाई जिसमें सुवर्ण सिद्धि और आकाश गामिनी विद्यायें गुप्तपने रही पर वे किसी भाग्याशली को प्राप्त हो सकती है। कलियुगियों के लिये नहीं।

एक समय प्रतिष्ठनपुर के राजा सातवाहन ने भरोंच के राजा बलमित्र पर आक्रमण* किया जिसको १२ वर्ष हो गये परन्तु किसी को भी सफलता नहीं मिली। उस समय नागार्जुन योगी वहाँ आया और उसकी बुद्धि चातुर्य से सातबाहन को सफलता मिली अतः सातवाहन विजयी होकर अपने नगर को लौट गया।

एक वक्त राजा सातवाहन की सभा में शास्त्रों का संक्षिप्त सार बतलाने वाले चार† कवि आये और उन्होंने कहा कि हे राजन् !

१—जीर्णे भोजनात्रियः—आत्रेयर्षि ने कहा है कि वैद्यकशास्त्र का सार यह है कि पूर्व किया हुआ भोजन पचने पर नया भोजन करना।

२—कपिलः—प्राणिनांदया-कपिलर्षि ने कहा है कि धर्म शास्त्र का सार है कि प्राणियों की दया करना।

३—वृहस्पतिरविश्वासः—वृहस्पतिर्षि ने कहा है कि नीति शास्त्र का सार है कि किसी का भी विश्वास नहीं करना।

४—पांचालः स्त्रीपु मार्दवम्—पांचाल कवि ने कहा है कि काम शास्त्र का सार है कि स्त्रियों से मृदुता रखना।

इसको सुनकर राजा ने प्रसन्न हो उनको महादान दिया, पर कवियों ने कहा कि राजन् ! यह क्या बात है कि तुम्हारा परिवार हमारे शास्त्र की कोई तारीफ नहीं करता है। इस पर राजा ने अपनी भोगवती वारांगना से कहा कि तू इन कवियों की तारीफ कर। उसने जवाब दिया कि मैं सिवाय पादलिप्तसूरि के किसी की तारीफ नहीं करती हूँ और इस जगत में पादलिप्तसूरि के अलावा कोई तारीफ योग्य है भी नहीं। इस पर किसी शंकर नामक मत्सरी ने कहा कि यदि किसी मृत्यु पाये हुये को जीवित कर दें तो मैं पादलिप्त को चमत्कारी समझूं वरना केवल आकाश में फिरने से क्या लाभ है ? क्योंकि ऐसे तो बहुत से पक्षी आकाश में गमनागमन करते हैं। भोगवती ने कहा कि यह भी कोई बड़ी बात नहीं है, पादलिप्तसूरि के पास यह विद्या भी होगी ही।

आचार्य पादलिप्तसूरि उस समय राजाकृष्ण के आग्रह से मानखेट‡ नगर में रहता था। अतः राजा

---

* इतः पृथ्वीप्रतिष्ठाने नगरे सातवाहनः। सार्व भौमोपमः श्रीमान्नृप आसीद्गुणावनिः ॥३०८॥
तथा श्रीकालकाचार्य स्वस्त्रीयोः श्रीयशोनिधिः। भृगुकच्छपुरं पाति बलमित्राभिधोनृपः ॥३०८॥
अन्येद्युः पुरमेतच्च रुरुधे सातवाहनः। द्वादशाब्दानि तत्रास्थाद्दिनं व्याहनंभवन ॥३०९॥

† जीर्णे भोजनमात्रेयः कपिलः प्राणिनांदया। वृहस्पतिरविश्वासः पांचालःस्त्रीषु मार्दवम् ॥६२०॥

‡ मानखेटपुरात् कृष्णमापृच्छय्य स नृपतिः। श्रीपादलिप्तमाह्वासीदेतस्मादेव कौतुकात् ॥३२८॥ प्र० च०

सातवाहन ने मानखेट के राजा कृष्ण को कहला कर पादलिप्तसूरि को प्रतिष्ठनपुर बुलाया। सूरिजी आकर उद्यान में ठहर गये इसकी खबर मिलते ही एक बृहस्पति कवि ने सूरिजी की परीक्षा के लिए ठसा हुआ घृत एक चांदी की कटोरी में डाल कर किसी चालाक आदमी के साथ सूरिजी के पास भेजा। सूरिजी अपनी विद्या से जान गये और उसमें सुइयें खड़ी करके वापिस लौटा दिया इसका भाव यह था कि पंडितों ने ठसा हुआ घृत भेज कर संकेत किया था कि यहाँ सब पंडित विद्या से पूर्ण रहते हैं यदि आप पंडित हों तो इस नगर में पधारें इस पर सूरिजी ने घृत में सुइयें खड़ी करके संकेत किया कि यहाँ घृत को भेदने वाले पंडित [illegible] हैं। अतः मैं नगर में प्रवेश करूँगा। जिसको देख बृहस्पति मुग्ध हो गया इतना ही क्यों पर राजा भी सूरिजी के प्रति श्रद्धासम्पन्न हो गया और बड़ी धूमधाम से सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव करवाया और सूरिजी के ठहरने को एक मकान भी खोल दिया।

आचार्य श्री का इस प्रकार का सत्कार एक पांचल नामक कवि जो राज सभा में हमेशा तारंगलोला नाम की कथा सुनाया करता था देख नहीं सका। अतः वह ईर्ष्या रूपी अग्नि में जलता था। एक समय प्रसंगोपात् राजा ने कवि की तारंगलोला कथा की प्रशंसा की इस पर सूरिजी ने कहा कि यह तो मेरी तारंगलोला कथा का अर्थ बिन्दु लेकर कथा नहीं पर कंथा बनाई है। अतः कवि राजसभा में लज्जित हो गया।

एक समय पादलिप्त सूरि मायावी मृत्युवत बन गये इससे नगर में हाहाकार मच गया। आखिर बड़ी सेविका* में सूरिजी के शरीर को स्थापन करके स्मशान में ले जा रहे थे जब पांचाल कवि के मकान के पास आये तो कवि घर से निकल कर बड़े ही दुःख के साथ कहने लगा कि हाय! हाय!! महासिद्ध विद्या के पात्र पादलिप्त सूरि ने स्वर्गवास किया। अरे मेरे जैसे मत्सर भाव रखने वालों की क्या गति होगी कि मैंने ऐसे सत्पात्रसूरिजी के साथ व्यर्थ मत्सर भाव रक्खा। इस प्रकार पश्चाताप करते हुए कवि ने एक गाथा कही :—

"सीसं कहवि न फुट्टं जमस्स पालित्त यं हरं तस्य।
जस्स मुह निज्झराओ तारंगलोला नई वूढा ॥१॥"

अर्थात् पादलिप्त जैसे महान आचार्य का हरन करने वाले यम का शिर क्यों न फूट गया जिन सूरि के मुखरूपी द्रह से तारंगलोला रूप महानदी निर्गमन हुई।

पांचाल के शब्द सुनते ही सूरिजी ने सेविका में खड़े होकर कहा कि—

"पांचाल† के सत्य वचन से मैं पुनः जीवित हुआ हूँ।" इस प्रकार कहते हुए सब लोगों के बाजा गाजा एवं हर्षनाद होते हुए सूरिजी अपने उपाश्रय पधारे।

सूरिजी ने मुनियों की दीक्षा, श्रावकों के व्रत और मंदिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा के विधि विधान के लिये "निर्वाण कलिका" नामक ग्रन्थ का निर्माण किया इसके अलावा प्रश्नप्रकाश ज्योतिष का ग्रन्थ और भी कई ग्रन्थों की रचना की।

* शिबिकां[illegible] ॥३१५॥
† [illegible] ॥३३१॥
‡ [illegible] ॥३४५॥
[illegible] ॥३५१॥

एक समय पादलिप्तसूरि अपने आयुष्य को नजदीक जानकर अपने गृहस्थ शिष्य नागार्जुन के साथ विमलाचल पधारे वहाँ युगादीश्वर को वन्दन कर आलोचना पूर्वक अनशनव्रत किया। ३२ दिन तक समाधि के अन्दर रह कर अन्त में नाशवान शरीर का त्याग कर सूरिजी महाराज स्वर्ग पधार गये।

इस पादलिप्त सूरि के प्रबन्ध में जितने आचार्यों का वर्णन आता है उसके अन्दर कई प्रकार के चमत्कार आये हैं जब कि जैनशास्त्रों में साधुओं के लिए इस प्रकार के चमत्कार दिखाने की मनाही है फिर उन विद्वानाचार्यों ने ऐसा क्यों किया होगा ?

जैनागमों नें द्रव्य क्षेत्र काल भाव को लक्ष्य में रखकर उत्सर्गोपवाद दो प्रकार का मार्ग बतलाया है। जब इन आचार्यों के समय की परिस्थिति को देखा जाय तो उन चमत्कारों की जरूरत थी। कारण एक तरफ बोद्धाचार्य्य दूसरी और वेदान्ताचार्य्य इस प्रकार के चमत्कार बतला कर भद्रिक जनता को सत्पथ से पतित बनाकर अपने जाल में फंसाने का प्रयत्न कर रहे थे उस हालत में जैनाचार्य्यों को उनके सामने खड़े कदम रहकर जैन जनता एवं जैनधर्म की रक्षा करना जरूरी बात थी। उन्होंने जो कुछ किया था वह जैन-धर्म की रक्षा के लिए ही किया था न कि निजी स्वार्थ के लिए। अतः उन्होंने जो किया वह शासन के हित के लिये ही किया था और ऐसा करने से ही जैनधर्म जीवित रह सका है। ऐसी कुतर्क करने वाले महाशयों को पहिले उस समय का इतिहास उस समय की परिस्थिति का ज्ञान करना चाहिये ताकि अपनी तर्क का स्वयं समाधान हो सके।

आचार्य वृद्धवादी और सिद्धसेन दिवाकर—आप दोनों आचार्य महाप्रतिभाशाली एवं जिन-शासन की प्रभावना करने वाले हुये हैं जिसमें पहिले वृद्धवादी का सम्बन्ध लिखा जा रहा है।

गौड़ देश के कोशला ग्राम में एक मुकन्द* नामका वृद्ध ब्राह्मण बसता था। उस समय विद्याधर शाखा के आचार्य पादलिप्त सूरि की परम्परा सन्तान में स्कन्दिलाचार्य्य विहार करते हुए कोशल ग्राम में पधारे। आपका व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य एवं आत्म कल्याण पर हुआ करता था एक दिन व्याख्यान में सूरिजी ने फरमाया कि—

"पच्छावि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमर भवणाइं। जेसिं पियो तवो संजमो य, खंतीय बंभचेरं च ॥"

अर्थात् मनुष्य अपनी पिछली अवस्था में भी जिनेन्द्र दीक्षा ग्रहण कर ले तो उसके लिए विमानीक देवों के सुख तो सहज में ही मिल सकते हैं क्योंकि वृद्धावस्था में एक तो ब्रह्मचर्य्य व्रत सुख से पल सकता है दूसरे कषाय की मंदता होने से क्षमा गुण बढ़ जाता है। इनके अलावा सूरिजी ने कहा कि संसार के

*—तत्रास्ति कोशलाग्रामसंवासी विप्रपुङ्गवः। मुकुन्दाभिधया साक्षान्मुकुन्द इव सत्वतः ॥७॥
अपरेद्यु विहारेण लाटमंडलमंडनम्। प्रापुः श्रीभृगुकच्छं ते रेवासेवापवित्रितम् ॥१३॥
श्रुतपाठमहाघोषैरंवरं प्रतिशब्दयन्। मुकुन्दर्षिः समुद्रोर्म्मिध्वानतापन्यदुःखदः ॥१४॥
भृशं स्वाध्यायमभ्यस्यन्नयं निद्राप्रमादिनः। विनिद्रयति वृद्धत्वादाग्रहीस्सरहर्निशम् ॥१५॥
तारुण्योचितया सूक्तया करुणासूयया ततः। अनगारैः खरां वाचमाददे नादरार्दितः ॥१७॥
अजानन्नयसीतं यदुग्रपाठादरार्दितः। फुल्लयिष्यसि तन्मल्लीवल्लीवन मुशलं कथम् ॥२०॥
तत आराधयिष्यामि भारतीदेवतामहन्। यथोग्रतपसा सत्यं यथा स्यादावचो भवेत् ॥२२॥
समुत्तिष्ठ प्रसन्नास्मि पूर्यन्तां ते मनोरथाः। स्खलना न तवेच्छास्तु तद्विधेहि निजेहितम् ॥२८॥ प्र० च०

अन्दर एक चारित्र ही ऐसा निर्भय है कि जिसकी आराधना करने से निर्भय स्थान को प्राप्त कर सकता

"भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं वित्तेऽग्निभूभृद्भयं, दास्ये स्वामिभयं गुणे खलभयं वंशे कुयोषिद्भयम्
स्नेहे वैरभयं नयेऽनयभयं कायेकृतान्ताद्भयं, सर्वं नाम भयंभवे यदि परं वैराग्यमेवाभयम् ॥"

इत्यादि । आपके व्याख्यान का प्रभाव यों तो जनता पर पड़ा ही था पर वृद्ध ब्राह्मण मुकन्द पर तो इतना असर हुआ कि उसने सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैन दीक्षा लेली । आपको ज्ञान पढ़ने की खूब रुचि थी पर बुद्धि इतनी जड़ थी कि परिश्रम करने पर भी सफलता नहीं मिलती थी । खूब जोर-जोर से घोख घाख करता था दिन को तो आस पास के गृहस्थ लोगों के कान कम्प उठते थे और रात्रि में पास में रहने वाले साधुओं की निद्रा भंग होजाती थी अतः वे कहने लगे कि हे मुनि ! रात्रि समय इस प्रकार शब्दोच्चारण से हिंसक जीव जाग कर आरम्भ कर वैठेगा पर मुनि मुकन्द को तो पढ़ना था ज्ञान, उसने अपना अभ्यास चालू रक्खा । इस पर एक समय मुनियों ने गुस्से में होकर कहा रे मुनि ! तू इस वृद्धावस्था में पढ़ कर क्या मूसल फूलावेगा ? मुकुन्द ने कहा कि आत्मा में अनन्त शक्ति है तो मूसल फूलाना कौन सी बड़ी बात है । समय आने पर मूसल भी नवपल्लवित हो सकता है । आचार्य्य श्री के साथ मुनि मुकन्द विहार करते हुये भरोंच नगर में आये वहाँ पर " नालिकेरवसांत" नाम के जिन चैत्य में जाकर सरस्वती देवी की आराधना करनी प्रारम्भ की । चारों आहार का त्याग कर मूर्त्ति के सन्मुख एकाग्र चित्त से देवी भारती की आराधना में २१ दिन व्यतीत हो गये । तब जाकर देवी प्रसन्न हो कर बोली कि मुनि मैं तुमको वरदाई हो गई हूँ अब तेरा मनोरथ सफल होगा । मुकन्द ने कहा तथास्तु । देवी अजेयज्ञान का वर देकर अदृश्य हो गई सुबह मुनि ने आकर गुरुदेव को वंदन नमस्कार किया और आज्ञा लेकर पारणा के लिये नगर में गया । जिस घर में मुनि भिक्षा के लिये गये उस घर में एक मूसल पड़ा हुआ देखा जिससे मुकन्द को युवक मुनि का वचन स्मरण हो आया । मुनि ने मूसल को अचित जल का सिंचन कर सरस्वती से प्रार्थना की कि यह मूसल फूलों से नव प्लावित हो जाय । बस, फिर तो देरी ही क्या थी उसी समय जैसे ताराओं से आकाश शोभित है वैसे ही पुष्प पत्तों से मूसल शोभने लगा । इस चमत्कार को देख सब लोगों को आश्चर्य हुआ । कहने वाले युवक मुनि का जवानी एवं विद्या का गर्व गल गया और उसने अपने अपराध की क्षमा मांग कर वृद्ध मुनि की प्रशंसा की ।

अब तो मुनि मुकन्द सरस्वती देवी की कृपा से बड़ी बड़ी राज सभा में पण्डितों के साथ वाद विवाद कर सर्वत्र विजय प्राप्त करने लग गये । यही कारण है कि आप वृद्ध वादी के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध हो गये । आचार्य स्कन्दिलसूरि मुनि वृद्धवादी को सर्वगुण सम्पन्न जान कर अपने पट्ट पर आचार्य बना कर आप समाधि पूर्वक स्वर्ग गये ।

आचार्य वृद्धवादीसूरि गच्छनायक होकर धरा पर विहार करते हुये एक समय उज्जैन नगरी की ओर आ रहे थे उस समय उज्जैन में राजा विक्रमादित्य राज्य कर रहा था उसी नगरी में देवर्षि नामक ब्राह्मण राजा का मंत्री था जिसके स्त्री का नाम देवश्री था और इनका पुत्र सिद्धसेन + जो चार वेद अठारह पुराणादि ब्राह्मण धर्म के सर्व शास्त्रों का पारगामी था । विद्या का उसको इतना गर्व था कि मेरा जैसा दुनिया भर में

+ [illegible] देवर्षिरिव [illegible] । देवश्रीकुक्षिमूर्तिहंसा सिद्धसेन इति श्रुतः ॥१०॥ प्र० च०

पण्डित ही नहीं है । कई कई कथाओं में तो यहाँ तक भी लिखा मिलता है कि सिद्धसेन अपने पेट पर एक पाटा बांधा हुआ रखता था। पूंछने पर कहता था कि मुझे डर है कि कहीं विद्या से मेरा पेट फट न जाय । पंडित जी एक हाथ में कुदाल और एक हाथ में निसरणी भी रखते थे पूछने पर कहते थे कि यदि कोई वादी आकाश में चला जाय तो इस निसरणी से उसकी टांग पकड़ ले आऊँ और पाताल में चला जाय तो इस कुदाल से पृथ्वी खोद कर उसकी चोटी पकड़ कर खींच लाऊँ । यह गर्व की चर्म सीमा थी इतना होने पर भी एक प्रतिज्ञा उसने ऐसी भी कर ली थी कि जिसके साथ में शास्त्रार्थ करूँ और मध्यस्थ लोग कह दें कि सिद्धसेन हार गया तो मैं जीतने वाले का शिष्य बन जाऊँगा इत्यादि —

एक समय जंगल में इधर से तो आचार्य वृद्धवादी आ रहे थे उधर सिद्धसेन जा रहा था दोनों की आपस में भेंट हुई । सिद्धसेन ने कहा जैन सेवड़ा ! मेरे साथ शास्त्रार्थ करेगा ? वृद्धवादीसूरि ने कहा हाँ । सिद्धसेन ने कहा तब कीजिये शास्त्रार्थ वृद्धवादीसूरि ने कहा यहाँ जंगल में कैसे शास्त्रार्थ किया जाय । कारण यहाँ हार जीत का निर्णय करने वाला मध्यस्थ नहीं है अतः किसी राज सभा में चलो कि वहाँ राजा एवं पण्डितों के समक्ष शास्त्रार्थ किया जाय जिससे जय पराजय का फ़ैसला मिले । सिद्धसेन ने कहा मेरा तो पेट फटा जाता है आप यहाँ ही शास्त्रार्थ करें । यह जंगल के गोपाल हैं इनको मध्यस्थ रख लीजिये ये अपन दोनों के संवाद सुन कर हार जीत का निर्णय कर देंगे । सिद्धसेन का आग्रह देख आचार्य वृद्धवादी ने स्वीकार कर लिया और गोपालों को बुला कर मध्यस्थ मुकर्रर कर दिये ।

पहिले सिद्धसेन ने अपनी पण्डिताई का परिचय करवाता हुआ संस्कृत में इस प्रकार का कथन किया कि जिसको श्रवण कर देवता भी प्रसन्न हो जाय पर मध्यस्थ तो थे गोपाल । वे विचारे संस्कृत भाषा में क्या समझें उनको तो उल्टा खराब ही लगा । गोपालों ने कहा कि तुम ठहर जाओ, कुछ पढ़े तो नहीं और व्यर्थ ही बकवाद करते हो । अब इन बूढे बाबा को बोलने दो । अतः समय के जानकार आचार्य वृद्धवादी बोलने लगे । उनके ओघा तो कमर पर बँधा हुआ ही था और शरीर को घुमाते हुए गोपालों की भाषा में गोपालों के गीत की राग में उच्चैस्वर से गाने लगे कि:—

"नवि मारीइं नवि चोरीइं परदारा गमन न कीजीइं
थोड़ास्युं थोड़ु दीजइ, तउं टगि मगि सग्गि जाइइं ॥१॥
गाय भैंसि जिम निलुचरइ तिमतिम दूध दुणो भरइं
तिमतिम गोवला मनि ठरई, छाछि देयतां तेड्ड करइं ॥२॥
गुलस्युं चावइ तील तंडुली, घड़े वजाइ बाँसली
पहिरण ओढणि हुइं धावली गोवाला मन पुगी रली ॥३॥
मोटा जोटा मिल्या पिंढार, माहो माहि करिये विचार
महीपी दूझणी सरजी भली, दीइ दाबोटा पुगी रली ॥४॥
वन माहि गोवला राज, इन्द तणि घरि परवा न आज
भमर सिर दूझीवली सोल, सुखि समाधि हुई रंगरोल ॥५॥

वाटउ भरीउ दहीने घोल, जीमणो कर लेई घेसि बोल ।
इणि परेइं मुँडो मेंलावउ करइं, स्वर्ग तणी वातज विसरइं ॥६॥
हडहडाटन विक्री जेघणु मर्म्म न बोली जे कहे तणु
कुडी साखी न दीजे आल, ए तुम्ह धर्म्म कहुँ गोवाल ॥७॥
अरडस विच्छु नवि मारइं मारतओ पण उघारइं
कुड कपट थी मन वारीइं इणि परइं आप कारज सारइं ॥८॥
वचन नव कीजइ कही तणु यह वात साची भणु
कीज़ई जीव दयानु जतन, सावय कुल चिंतमणि रतन ॥६॥

वृद्धवादी के इस गीत (उपदेश) को सुन कर गोपाल बराबर समझ गये और उन को बड़ी भारी खुशी हुई तब वे गोपाल ताली देकर कहने लगे ।

गोवालिया उठ्या गहगही, हरखित ताली देता सही
भलो यही ज गरडो डोकरउं, नही भणियों येहीज छोकरउ ॥१॥
भट्ट जे वोल्यो भूत पल्लाप, फोड्या कान विघोयो आप ।
जीत्यो गरड़ो हरयो तु हल्ल, पाये लागी करइं ए गुरमल्ल ॥२॥

प्रबन्धकार लिखता है कि गोपालों के सामने सिद्धसेन ने कहा कि संसार में कोई सर्वज्ञ नहीं है। उत्तर में आचार्य वृद्धवादी ने गोपालों से पूछा कि तुमने सर्वज्ञ देखा है ? गोपालों ने उत्तर दिया कि नगर के मंदिर में सर्वज्ञ वीतराग वैठा है । जिसको हम लोगों ने प्रत्यक्त देखा है और सब लोग उसको सर्वज्ञ वीतराग ईश्वर कहते हैं । यह वात सत्य है फिर यह पण्डित झूठ क्यों वोलता है इत्यादि गोपालों ने वृद्धवादी को सच्चा और सिद्धसेन को झूठा कह कर फैसला दे दिया ।

बस, फिर तो था ही क्या ! सत्यवादी सिद्धसेन ने गुरु महाराज के चरणों में शिर झुका कर कहा कि हे पूज्यवर ! आप कृपा करके मुझे अपना शिष्य बनाइये कारण मैंने पहिले से ही ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि मैं जिससे हार जाऊं उसका शिष्य बन जाऊं । सूरीजी ने कहा सिद्धसेन तू वास्तव में पंडित है पर कहने है तो समयज्ञपने की है । यदि तू जैन दीक्षा लेनी चाहता है तो बहुत अच्छा है पर यदि तेरी इच्छा हो तो अभी किसी राज सभा में चल कर विद्वान पण्डितों के समक्ष शास्त्रार्थ कर फिर वहां जय पराजय का निर्णय हो जायगा । सिद्धसेन ने कहा नहीं प्रभो ! निर्णय तो यहां हो गया है और मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि आपके सामने मैं कुछ भी नहीं हूँ । अतः आप मेरी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर के अपना शिष्य बनावें। सूरिजी ने विधि विधान से सिद्धसेन को दीक्षा देकर उसका नाम कुमुदचन्द्र रख दिया । मुनि कुमुदचन्द्र ने जैन दीक्षा लेने के बाद वर्त्तमान जैन साहित्य का अध्ययन कर लिया । आचार्य वृद्धवादी ने सर्वगुण सम्पन्न जान कुमुदचन्द्र को आचार्य पद से विभूषित कर उनका प्रसिद्ध नाम सिद्धसेनसूरि रख दिया और कई साधुओं को साथ देकर अलग विहार करवा दिया । आचार्य सिद्धसेनसूरि की ज्ञानप्रभा यहां तक फैल गई कि वे सर्वज्ञ पुत्र के नाम से प्रसिद्ध हो गये ।

आचार्य सिद्धसेनसूरि उज्जैन नगर में विराजते थे। एक समय थडिले* जाकर वापिस आरहे थे। राजा विक्रमादित्य हस्ती पर आरुढ़ होकर आचार्य्य के पास से निकल रहा था। उसने सर्वज्ञपुत्र की परीक्षा के लिये हस्ती पर बैठे हुये मन में ही सूरिजी को वंदन किया उस चेष्टा को देख कर सूरिजी ने उच्चस्वर से कहा 'धर्मलाभ' राजा ने कहा कि बिना वन्दन किये ही आप धर्मलाभ किसको दे रहे हैं? सूरिजी ने कहा कि हे नरेश! आपने मुझे मन से वंदन किया जिसके बदले में मैंने धर्मलाभ दिया है। राजा ने हस्ती से उतर कर सूरिजी को वन्दन कर कहा कि मेरे दिल में शंका थी कि लोग आपको सर्वज्ञपुत्र कहते हैं यह केवल शब्द मात्र की प्रशंसा है पर आज मैंने प्रत्यक्ष में देख लिया है कि आप वास्तव में सर्वज्ञ पुत्र हैं इस गुण से प्रसन्न होकर मैं करोड़ सुवर्ण मुद्रा आपको भेंट करता हूँ आप स्वीकार करावें। सूरिजी ने कहा कि हे राजन! हम निस्पृही निर्ग्रन्थों को इन सुवर्ण मुद्रकाओं से क्या प्रयोजन है हम तो केवल भिक्षा वृत्ति पर गुजारा करते हुये जनता को धर्मोपदेश करते हैं। राजा ने कहा कि मैंने मन से जिस धन को अर्पण कर दिया है उसको रख नहीं सकता हूँ। सूरिजी ने कहा कि इसके लिये अनेक रास्ते हैं। दुखी मनुष्यों को सुखी बना सकते हो, मन्दिरादि धर्मस्थानों के जीर्णोद्धारादि कार्यों में लगा कर पुन्योपार्जन कर सकते हो। इत्यादि राजा ने जनमुनियों की निस्पृहता की प्रशंसा की और अर्पण किया हुआ द्रव्य सूरिजी की आज्ञानुसार अच्छे कामों में लगा दिया।

आचार्य्य सिद्धसेनसूरि एक समय भ्रमण करते हुए चित्रकुट† नगर में पधारे वहां एक स्तम्भ आपको दृष्टिगत हुआ। वह स्तम्भ न पत्थर न मिट्टी न काष्ट का था पर किसी औषधियों के लेप से बना हुआ था। सूरिजी ने प्रतिकूल औषधियों से स्तम्भ का एक विभाग खोला तो उसमें कई हजारों पुस्तकें भरी हुई थी जिसमें से एक पुस्तक लेकर उसका एक श्लोक पढ़ा तो उसमें सुवर्ण सिद्धि विद्या थी फिर दूसरे श्लोक को पढ़ा तो उसमें सरसव के दानों से सुभट बनाने की विद्या थी उन दोनों श्लोक को याद कर आगे तीसरे श्लोक को पढ़ना चाहते थे कि पुस्तक स्तम्भ में चली गई और स्तम्भ लेपमय था वैसा ही बन गया। केवल दो विद्या आचार्य श्री के हाथ लगि गई उसको स्मृति पूर्वक याद रखली।

आचार्य श्री विहार करते हुए पूर्व देश के कुंर्मार नगर‡ पधारे वहां देवपाल नामक राजा था। सूरिजी

---

* श्री सिद्धसेनसूरिश्चान्यदा बाह्य भुवि व्रजन्। दृष्टः श्रीविक्रमार्केण राज्ञा राजाध्वगेन सः ॥६१॥
अलक्ष्यं भूप्रणामं स भूपस्तस्मै च चक्रिवान्। तं धर्मलाभयामास गुरुरुच्चतरस्वरः ॥६२॥
तस्य दक्षतया तुष्टः प्रीतिदाने ददौ नृपः। कोटिं हाटकटंकानां लेखकं पत्रकेऽलिखत् ॥६३॥
धर्मलाभ इति प्रोक्त दूरादुद्धृतपाणये। सूरये सिद्धसेनाय ददौ कोटिं नराधिपः ॥६४॥

† अन्यदा चित्रकूटाद्रौ विजहार मुनीश्वरः। गिरे नितंब एकत्र स्तंभमेकं ददर्श च ॥६७॥
नैव काष्टमयो ग्रावमयो न च मृण्मयः। विमृशल्लौषध क्षोदमयं निरचनोच्च तम् ॥६८॥
तद्रसस्पर्शगंधादि निरीक्षाभिर्मतिर्बलात्। औषधानि परिज्ञाय तत्प्रत्यर्थीन्यमीमिलत् ॥६९॥
पुनः पुनर्निघृष्याथ स स्तंभे छिद्र मातनोत्। पुस्तकानां सहस्राणि तन्मध्ये च समैक्षत ॥७०॥
एकं पुस्तक मादाय पत्रमेकं ततः प्रभुः। विवृत्य वाचयामास तदीयामोलिमेकस्याम् ॥७१॥
सुवर्ण सिद्धियोगं स तत्र प्रैक्षत विस्मितः सर्षपैः सुभटानां च निष्पत्ति श्लोक एकके ॥७२॥

‡ सावधानः पुरो यावद्वाचयत्येष हर्षभूः। तत्पत्रं पुस्तकं चाथ जहे श्रीशासनामरी ॥७३॥
तादृकपूर्वगतग्रन्थवाचने नास्ति योग्यता। सत्वहानिर्यतः कालदोषादेतादृशामपि ॥७४॥ प्र० च०

के उपदेश से वह जैन धर्म स्वीकार कर सूरिजी का परम भक्त बन गया*और बहुत आग्रह कर सूरिजी को अपने यहां रख हमेशा ज्ञानगोष्टी किया करता था। एक समय विजयवर्मा राजा सेना लेकर देवपाल पर चढ़ आया। राजा घबराया और सूरिजी के पास आकर अपनी दुःखगाथा कह सुनाई। सूरिजी ने सुवर्ण विद्या से सोना और सरसप विद्या से असंख्य सुभट बना दिये जिससे देवपाल ने विजयवर्मा को भगा दिया। इससे देवपाल ने सूरिजी को दिवाकर उपाधि से विभूषित किया। इतना ही नहीं पर राजा ने भक्तिवश होकर सूरिजी को छत्र, चँवर, पालकी और हस्ती तक देकर एक बादशाही ठाट सा बना दिया और आचार्य श्री अपने चारित्र को विस्मृत हो कर उन सब ठाट के साधनों को उपभोग में भी लेने लग गये।

जब आचार्य वृद्धवादी ने यह बात सुनी कि सिद्धसेन चारित्र से शिथिल होकर पालकी एवं हस्ती पर चढ़कर छत्र चँवरादि राजसी ठाट भोग रहा है तो सूरिजी को बड़ा भारी अफसोस हुआ कि सिद्धसेन जैसों का यह हाल है तो दूसरों का तो कहना ही क्या है। अतः अपने योग्य शिष्य का उद्धार करने के लिये स्वयं सूरिजी वेश बदल कर कुंर्मार नगर में आये और जिस समय सिद्धसेन सुखासन पर बैठ के बहु लोगों के परिवार से राजमार्ग से निकल रहा था उस समय वृद्धवादीसूरि ने उसके पास जाकर एक गाथा कही।

अणहुल्ली फूल्ल म तोड़हु मन आराम म मोडहू।
मण कुसुमेहिं अच्चि निरंजणु हिंडह कांइं वणेण वणु॥

इस गाथा के अर्थ के लिये सिद्धसेन ने बहुत उपयोग लगाया पर गाथा के भाव को नहीं पा सका अटम् पटम् अर्थ कहा पर बुड्ढे ने मंजूर नहीं किया तब सिद्धसेन ने बूढ़े से कहा कि तुम इस गाथा का भाव कहो। बूढ़े ने गाथा का भाव कहते ही सिद्धसेन की सुरत ठिकाने आई और सोचा कि बिना मेरे गुरू के ऐसा विद्वान नहीं कि इस प्रकार की गाथा कह सके। तुरंत ही पालकी से उतर कर गुरु चरणों में गिर पड़ा और अपने अपराध की क्षमा मांगी। गुरू महाराज ने सिद्धसेन को यथायोग्य प्रायश्चित देकर स्थिर किया और गच्छ का भार सिद्धसेन को सौंप कर आप अनशन एवं समाधि के साथ स्वर्ग को पधार गये।

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर शुरू से संस्कृत के अभ्यासी एवं अनुभवी थे। शायद प्राकृत व मागधी भाषा उनको अच्छी नहीं लगी हो या इनके गूढ़ रहस्य को समझने में कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ा हो या उस जमाने की जनता पर विशेष उपकार की भावना हो एवं किसी भी कारण से प्राकृत भाषा को ग्रामीण भाषा समझ कर जैनागमों को संस्कृत में बना देने के इरादे से श्रीसंघ को एकत्र कर अपने मनोगत भाव श्रीसंघ के सामने प्रदर्शित किये कि आप सम्मति दें तो मैं इन सब आगमों को संस्कृत में

---

* स पूर्वदेशपर्यन्ते व्यहार्षीच्च [illegible]। १ कूर्मारनगरं प्राप विद्यायुगयुतः सुधीः ॥७०॥
देवपाल [illegible] तत्र विख्यात विक्रमः। श्रीसिद्धसेनसूरिं स [illegible] रयात ॥७६॥
ततो दिवाकर इति ख्यातनाम्ना भवतु प्रभोः। ततः प्रभृति [illegible] श्री सिद्धसेन दिवाकरः ॥८०॥
[illegible] सुखासन [illegible]। [illegible] ॥८१॥
इति [illegible] वृद्धवादी सूरिर्गुरुः। [illegible] ॥८४॥
अणहुल्ली फुल्ल म तोडहु मन आरामा म मोडहु। मणकुसुमेहिं अच्चि निरंजणु हिंडह [illegible] ॥
[श्री [illegible]

यनाक्ष दूं । सूरिजी के वचन सुनकर श्री संघ सख्त नाराज हुआ और कहा कि तीर्थंकर सर्वज्ञ थे और गणधर भी जिनतुल्य ही थे उन्होंने चौदह पूर्व का ज्ञान संस्कृत में और एकादशांग का ज्ञान प्राकृत भाषा में बनाया है इसमें उन्हों की जन कल्याण की भावना ही मुख्य थी जैसे कहा है कि:—

बालस्त्रीमूढमूर्खादि जनानुगहणाय सः । प्राकृतां तामिहाकार्षीदनास्थात्र कथंहिवः ॥

अतः तीर्थंकर गणधरों के रचे हुए आगमों का अनादर रूप महान् आशातना का प्रायश्चित लेना चाहिये। कारण इस प्रकार मूलअंग सूत्रों को बदल दिए जांय तो फिर जिन वचनों पर विश्वास ही क्या रहेगा इत्यादि।

सत्यत्री सिद्धसेन दिवाकर जी की समझ में आ गया कि मेरी ओर से आशातना अवश्य हुई है। श्रीसंघ से कहा कि जो दंड संघ दे वह मुझे मंजूर है। श्रीसंघ ने विनय के साथ कहा कि दंड देने का हमें क्या अधिकार है। हम तो आपकी आज्ञा के पालन करने वाले हैं। हाँ, दंड स्थविर भगवान दे सकते हैं। स्थविरों से याचना करने पर उन्होंने विचारणापूर्वक दशवा पारंचिक प्रायश्चित दिया कि इस प्रायश्चित की अवधि बारह वर्ष तक है परन्तु आप किसी बड़े राजादि को प्रतिबोध कर जैन धर्म की प्रभावना करें तो श्रीसंघ को अधिकार है कि इसमें रियायत भी कर सके। आत्मकल्याण की भावना वाले सूरिजी ने उस प्रायश्चित को स्वीकार कर लिया और गच्छ का भार अन्य योग्य स्थविर को सौंप कर आप गच्छ से अलग हो गये और ओघा मुँहपति गुप्त रख अवधूत के वेष में संयम की रक्षा करते हुये भ्रमण करने लग गये।

इस भ्रमण में दिवाकरजी ने ७ वर्ष व्यतीत कर दिये बाद एक समय उज्जैनी नगर में गये। राजा के द्वारपाल को कहा कि तू राजा के पास जाकर निवेदन कर कि एक अवधूत हाथ में चार श्लोक लेकर आया है और वह आपसे मिलना चाहता है अतः आपकी आज्ञा हो तो अन्दर आने दिया जाय। राजा ने आज्ञा देदी। दिवाकर जी राजा के पास आये और निम्न लिखित श्लोकों द्वारा राजा की स्तुति की।

अपूर्वेयं धनुर्विद्या भवता शिक्षिता कुतः । मार्गणौघः समभ्येति गुणो याति दिगन्तरम् ॥१॥
सरस्वती स्थिता वक्त्रे लक्ष्मीः करसरोरुहे । कीर्तिः किं कुपिता राजन् ! येन देशान्तरं गता ॥२॥
कीर्तिस्ते जात जाड्येव चतुरम्भोधि मज्जनात् । आतपाय धरानाथ ! गता मार्तण्डमण्डलम् ॥३॥
सर्वदा सर्वदोऽसीति मिथ्या संस्तूयसे जनैः । नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः ॥४॥

इन श्लोकों को सुनकर राजा मंत्रमुग्ध बन गया और बड़े ही सम्मान के साथ अपनी सभा में रक्खा और हमेशा ज्ञानगोष्ठि करता रहा। सब पण्डितों में सिद्धसेन का आसन ऊंचा समझा जाता था।

अमी पानकुरंकाभाः सप्तापि जलराशयः । यद्यशो राजहंसस्य पंजरं भुवनत्रयम् ॥ १ ॥
भयमेकमनेकेभ्यः शत्रुभ्यो विधिवत्सदा । ददासि तच्चते नास्ति राजंश्चित्रमिदमहत् ॥ २ ॥

❀ अन्यदा लोकवाक्येन जातिप्रत्ययतस्तथा । आबाल्यात्संस्कृताभ्यासी कर्मदोषात्प्रबोधितः ॥१०९॥
सिद्धान्तं संस्कृतं कर्तुमिच्छन्संघं व्यजिज्ञपत् । प्राकृते केवलज्ञानिभाषितेऽपि निरादरः ॥११०॥
बालस्त्रीमूढमूर्खादिजनानुग्रहणाय सः । प्राकृतां तामिहाकार्षीदनास्थात्र कथं हि वः ॥११६॥
इति राज्ञा स सन्मानमुख्योऽम्यर्णे स्थितो यदा । तेन साकं ययौ द्रष्टुः स कुडंगेश्वरं कृती ॥१२१॥
अद्येति पुनरासीनः शिव लिङ्गस्य स प्रभुः । उदाजह्रे स्तुतिश्लोकान् तार स्वर परस्तदा ॥ १४॥ प्र० च०

एक समय राजा विक्रमादित्य कुंडगेश्वर महादेव के दर्शनार्थ जा रहा था। दिवाकरजी को भी साथ चलने को कहा, इसपर दिवाकरजी भी साथ हो गये। राजा ने महादेव को नमस्कार किया पर दिवाकरजी बिना नमस्कार किये ही खड़े रहे। राजा ने कहा कि आप जाति के ब्राह्मण और इतने विद्वान होते हुये भी देव को नमस्कार नहीं करते हो इसका क्या कारण है ?

दिवाकरजी–मेरे नमस्कार को सहन करने वाला देव दूसरा ही है। यह देव मेरे नमस्कार को सहन नहीं कर सकेगा।

राजा ने इसका कारण धर्म भेद समझ कर पुनः कहा कि हम देखते हैं आप नमस्कार करें फिर यह देव कैसे सहन नहीं करेगा ?

दिवाकरजी–राजन् ! आप हठ न करें मैं ठीक कहता हूँ। यदि मैं नमस्कार करूंगा तो आपके लिंग को भी आघात पहुँचेगा ?

राजा—खैर। कुछ भी हो आपतो महादेव को नमस्कार कीजिये ?

दिवाकरजी राजा के आग्रह से न्यायावतार* सूत्र की स्तुति और कल्याण मन्दिर स्तोत्र बनाकर देव की स्तुति करने लगे तो महादेव के लिंग के अन्दर से धुँआ निकलना शुरु हुआ जिसको देख लोग कहने लगे कि शिवजी का तीसरा नेत्र प्रगट हुआ है। शायद् शिवजी का अपमान करनेवाले को जलाकर भस्म कर डालेगा। जब कल्याण मन्दिर का तेरहवां श्लोक उच्चारण किया कि धरणेन्द्र साक्षात् आया और महादेव के लिंग की नींबू की भांति चार फांके होकर अन्दर से आवन्ति पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रगट होगई जिसको देख राजा प्रजा उपस्थित लोगों को बड़ा ही आश्चार्य हुआ। राजा ने इसका कारण पूंछा तो दिवाकरजी ने कहा कि भद्रासेठानी के पुत्र आवन्तिकुमार ने वत्तीस रमणिये और करोड़ों द्रव्य त्याग कर जैन दीक्षाली और उसके पुत्रने इस स्थान पर पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित की जिसको आवन्तिपार्श्वनाथ कहते थे पर ब्राह्मणों की प्रबलता में पर्श्वनाथ की मूर्ति दबा कर ऊपर लिंग स्थापित कर दिया वही आज आपके आग्रह से प्रगट हुआ है इस चमत्कारी घटना को देख कर राजा ने जैनधर्म को स्वीकार कर लिया और कट्टर जैन बन गया। 'यथा राजास्तथा प्रजा' और भी बहुत से लोगों ने जैनधर्म को स्वीकार किया जिसमें जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई। इस प्रभाव के कारण श्रीसंघ ने शेष ५ वर्ष माफकर दिवाकर जी को श्रीसंघ में लेकर पुनः गच्छ का भार उनके सुपुर्द कर दिया।

राजा विक्रम ने सूरिजी के उपदेश से श्री शत्रुंजय तीर्थ का एक विराट् संघ निकाला जिसमें हजारों साधु साध्वियाँ और लाखों गृहस्थ संघ में साथ थे। इस संघ का जैनग्रन्थो में बड़े विस्तार से वर्णन किया है।

---

* न्यायावतार सूत्रंच श्री वीरस्तुति मप्यथ। द्वात्रिंशच्छ्लोकमानाश्च त्रिंशदन्याः स्तुतीरपि ॥१३३॥
ततश्चतुश्चत्वारिंशद्वृत्तां स्तुतिमसौ जगौ। कल्याणमन्दिरेत्यादि विख्यातां जिनशासने ॥१३४॥
वृत्ते चैकादशे पूर्णे यत्नोऽस्य समाययौ। धरणेन्द्रो दृढा भक्तिर्न साध्यं तादृशं किमु ॥१३५॥
[illegible] धूमस्तत्रसमं निर्ययौ। [illegible] ॥१३६॥
[illegible] ॥१३७॥
[illegible] ॥१३८॥
[illegible] ॥१३९-४०॥

आचार्य दिवाकरजी एक समय ऊंकार नगर में पधारे वहाँ के श्री संघ ने आपका बड़ा ही समारोह के साथ स्वागत किया। एक समय वहां के श्रीसंघ ने सूरिजी से अर्ज की कि हे प्रभो ! हमारी इच्छा एवं भक्ति होने पर भी मिथ्यात्वी लोग हमको जैन मंदिर नहीं बनाने देते। पूज्यवर ! आपकी मौजूदगी में हम लोगों की आशा सफल न हो यह एक अफसोस की बात है। सूरिजी ने कहा ठीक मैं प्रयत्न करूंगा। सूरिजी वहां से चल कर पुनः उज्जैन पधारे। राजा विक्रम को अपने ज्ञान से इतना प्रसन्न किया कि उसने कहा कि पूज्यवर ! आज्ञा फरमाओं कि मैं आपकी क्या सेवा करूं ? सूरिजी ने कहा हमारी क्या सेवा करनी है यदि आपकी इच्छा हो तो ऊँकार नगर में शिवमन्दिर से उंचाई में एक जैन मन्दिर बना कर पुन्योपार्जन करावें। राजा ने सूरिजी की आज्ञा को शिरोधार्य्य कर बिना बिलम्ब तत्काल ही जैन मन्दिर बना दिया और सूरिजी के करकमलों से उस मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई अतः ऊंकारपुर के श्रीसंघ के मनोरथ सफल हुए।

सूरिजी महाराज वहां से विहार कर भरोंच नगर की ओर जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने कई गोपालों को धर्म उपदेश दिये जैसे कि वृद्धवादी आचार्यों ने गवालों की भाषा में उपदेश दिया था। उसकी स्मृति के लिये गोपालों ने वहां पर तालारसिक नामका ग्राम बसा दिया इस प्रकार धर्मोन्नति करते हुये सूरिजी महाराज भरोंच पधारे। उस समय भरोंच में राजा वलमित्र का पुत्र धनंजय राज करता था। सूरिजी महाराज का परम भक्त था और सूरिजी महाराज का नगर प्रवेश महोत्सव बड़े ही समारोह से किया।

एक समय भरोंच पर किसी दुश्मन राजा की सेना ने आक्रमण किया दुश्मनों की सेना इतनी विशाल संख्या में थी कि धनंजय राजा घबरा गया। उस ने आकर सूरिजी से सब हाल निवेदन किया। सूरिजी थे विद्यावली उन्होंने सरसव प्रयोग से इतने सुभट बना दिये कि उन्होंने क्षण भर में ही दुश्मनों की सेना को भगा दिया तदनन्तर राजा धनंजय ने सूरिजी के पास में दीक्षा लेली। इसप्रकार शासन की प्रभावना करते हुये दक्षिण प्रान्त के प्रतिष्ठनपुर नगर में पधारे वहां के राजा प्रजा ने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। वहां धर्मोपदेश देते हुये सूरिजी को ज्ञात हुआ कि मेरा आयुष्य अल्प है। अतः आपने अपने योग्य शिष्य को सूरिपद पर प्रतिष्ठित कर आप अनशन एवं समाधिपूर्वक स्वर्गवास किया।

वहां का वैतालिक नाम का चारण फिरता हुआ उज्जैन नगरी में आया वहां पर सिद्धसेनदिवाकर की बहिन सिद्ध श्री साध्वी ने उस वैतालिक चारण से अपने भाई सिद्धसेनदिवाकरजी के समाचार पूंछे। इसके जवाब में निरानन्द होकर चरण ने श्लोक का पूर्वार्द्ध कहा।

'स्फुरन्ति वादि खद्योताः साम्प्रतं दक्षिणापथे'

अर्थात् इस समय दक्षिण देश में वादीरूपी खद्योत स्फुरायमान हो रहे हैं। इस पर साध्वी सिद्धी श्री ने अपने अनुमान से श्लोक का उत्तरार्द्ध कहा कि।

"नूनमस्तंगतो वादी, सिद्धसेनो दिवाकरः"

अर्थात् सिद्धसेन दिवाकर सूरि का स्वर्गवास हो गया होगा तभी तो वादी स्फुरायमान हो रहे हैं। वैतालिक को पूछने से साध्वी का अनुमान ठीक निकला। साध्वी ने उसी दिन से अनशन कर दिया और रत्नत्रिय की आराधना करती हुई स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया।

इस प्रकार विद्याधर वंश में पादलिप्तसूरि, वृद्धवादीसूरि एवं सिद्धसेन दिवाकर सूरि प्रभाविक आचार्य हुये । प्रबन्धकार फरमाते हैं कि—विक्रम सं० १५० के बाद श्रावक मिलकर बिहार तथा गिरनार पर्वत के मुकट समान श्रीनेमिनाथ मन्दिर का जीर्णोद्धार कराते हुये बरसात के कारण नष्ट हुआ एकमठ के अंदर मिली हुई प्रशस्ति या कई प्राचीन विद्वानों के ग्रन्थों से संग्रह करके इन महापुरुषों का चारित्र लिखा ।

इति श्री आचार्य श्री वृद्धवादी एवं सिद्धसेन दिवाकर सूरि का सम्बन्ध ।

आचार्य श्री जीवदेवसूरि

लाटदेश के भूषण समान वायट नाम का एक प्राचीन नगर था। यों तो वह नगर ही धन धान्य से परिपूर्ण था पर उस नगर में एक धर्मदेव नामक श्रेष्ठि तो अपार सम्पत्ति का ही मालिक था तथा आपकी गृहस्थंगार स्त्री का नाम शीलवंती था और आपके महीधर एवं महीपाल नामक दो होनहार पुत्र रत्न भी थे फिर तो श्रेष्ठिवर्य्य की बराबरी कौन कर सकता था। महीधर पिता की सेवा में रहता था तब महीपाल बचपन से ही देशाटन किया करता था।

वायट नगर में एक जिनदत्तसूरि नामक महाप्रभाविक आचार्य विराजते थे। श्रेष्ठिपुत्र महीधर सूरिजी के पास आया जाया करता था और कुछ ज्ञानाभ्यास भी किया करता था। जिनदत्तसूरि ने महीधर को होनहार जान कर धर्मोपदेश दिया और संसार की असारता बतला कर उनके माता पिता की आज्ञा से उसे जैन दीक्षा दे दी। शास्त्रों का अध्ययन करवा कर जब महीधर सर्वगुण सम्पन्न हुआ तो उनको आचार्यपद अर्पण कर आपका नाम रसीलसूरि रख दिया।

उधर महीपाल ने राजगृह नगर में श्रुतकीर्ति दिगम्बराचार्य के पास दीक्षा धारण कर ज्ञानाभ्यास किया। श्रुतकीर्ति आचार्य ने महीपाल को योग्य जानकर प्रतिचक्रा और परकायप्रवेश नाम की दो विद्यायें देकर अपने पट्ट पर आचार्य बनाकर उसका नाम सुवर्णकीर्ति रख दिया।

सेठानी शीलवंती ने व्यापारियों द्वारा सुना कि महीपाल ने दीक्षा ले ली और राजगृह नगर की ओर विचरता है। अतः माता पुत्र के स्नेह के कारण राजगृह की ओर गई। पुत्र को दिगम्बर अवस्था में देखकर माता ने कहा मुनि आप दो भाई दो मत में दीक्षित हुए तो अब मुझे कौनसा धर्म पालन करना चाहिये ? अतः आप वायट की तरफ पधार कर दोनों भाई एक निर्णय कर लो कि हम लोग भी उसी धर्म का अनुसरण करें। सुवर्णकीर्ति ने माता का कहना स्वीकार कर वायट की तरफ विहार किया और क्रमशः वायटनगर पधार कर रसीलसूरि से मिले और वार्तालाप एवं ज्ञानगोष्टी करने से श्वेताम्बर धर्म प्राचीन एवं शास्त्रविहित होने से सुवर्णकीर्ति ने दिगम्बर मत का त्याग कर श्वेताम्बर धर्म स्वीकार कर लिया। रसील सूरि ने सुवर्णकीर्ति को श्वेताम्बरीय दीक्षा देकर अपने पट्ट पर आचार्य बना कर आपका नाम जीवदेव सूरि रख दिया।

एक समय जीवदेवसूरि का मासु व्याख्यान दे रहा था। उस सभा में एक योगी आया और आसन लगाकर व्याख्यान में बैठ गया। योगी ने अपनी विद्या से व्याख्यानदाता मुनि की जबान बन्द करदी। जब

आचार्य जीवदेवसूरि को मालूम हुआ तो आपने ऐसी विद्या चलाई कि साधु तो व्याख्यान देता ही रहा किंतु उस योगी का आसन भूमि से चिपट गया। अतः वह उठने के लिये समरथ नहीं हुआ। उसने आचार्य श्री से क्षमा की याचना की अतः सूरिजी ने उसे मुक्त कर दिया।*

जीवदेवसूरि ने अपने साधु साध्वियों को उत्तर दिशा† की ओर जाने की मनाई कर दी तथापि एक दिन दो साध्वियां उत्तर दिशा में थडिला के कारण चली गई। जब वे वापिस आ रही थी उस समय योगी तालाब की पाल पर बैठा हुआ था। उस दुष्ट चित्तवाले योगी ने लघु साध्वी पर लम्बा हाथ कर ऐसा चूर्ण डाला कि साध्वी योगी के वश होकर वहां ही बैठ गई। वृद्ध साध्वी ने बहुत समझाई पर वह तो चूर्ण के कारण परवश थी। आखिर वृद्ध साध्वी ने जाकर जीवदेवसूरि से कहा। उन्होंने चार श्रावकों को बुला कर घास का एक पुतला बना कर दे दिया और उसका सब हाल कह सुनाया। श्रावकों ने उस घास

---

*धर्मदेवः श्रियां धर्मश्रेष्ठि तत्रास्ति विश्रुतः। साक्षाद्धर्म इव न्यायार्जित द्रव्य प्रदानतः ॥१०॥
शीलभूस्तस्य कान्तास्ति नाम्ना शीलवती यथा। आनन्दिवचसा नित्यं जीयन्ते चन्द्रचन्दनाः ॥११॥
तयोः पुत्रावुभावास्तां श्रेयः कर्मसु कर्मठौ। महीधर महीपालाभिधाभ्यां विश्रुताविति ॥१२॥
तत्रास्ति जंगमं तीर्थं जिनदत्तः प्रभुः पुराः। संसार वारिधेः सेतुः केतुः कामारिमज्जे ॥१४॥
अन्यदा तं प्रभुं नत्वा भवोद्विग्नो महीधरः। वंधोर्विरहवैराग्यात् प्रार्थयज्जैन संगमम् ॥१६॥
योग्यं विज्ञाय तं तस्य पितरौ परिपृच्छ्य च। प्रव्रज्यां प्रददौ सूरिरभाग्या लभ्यसेवनः ॥१७॥
महीपालस्तथा तस्य बन्धू राजगृहे पुरे। प्रापदिगम्बराचार्यं श्रुतकीर्तिमिति श्रुतम् ॥२१॥
प्रतिबोध्य व्रतं तस्य ददौ नाम च स प्रभुः। सुवर्णकीर्तिरिति तं निजांचाशिक्षयत्क्रियाम् ॥२२॥
श्रुतकीर्ति गुरुस्तस्यान्यदा निजपदं ददौ। श्रीमदप्रतिचक्राया विद्यां च धरणार्चिताम् ॥२३॥
परकायप्रवेशस्य कलां चासुलभां कलौ। भाग्यसिद्धां प्रभुः प्रदात्तादृग्योगो हि तादृशः ॥२४॥
आचार्यौ किल सौदर्यौ श्वेताम्वर दिगम्बरौ। स्वस्वाचारं तथा तत्वविचारं प्रोचतुः स्फुटम् ॥३३॥
श्रीरासीलप्रभोः पार्श्वे दीक्षाशिक्षाक्रमोदयः। जैनागमरहस्यानि जानन् गीतार्थतां ययौ ॥४५॥
अन्यदा सद्गुरुर्योग्यं वन्धु पट्टे न्यवीविशत्। श्रीजीवदेव इत्याख्याविख्यातः सद्गुरुर्बभौ ॥४६॥
वाचकस्य रसज्ञां चास्तम्भयत् मौनवान् स च। अभूत्तदं (दिं) गितैर्ज्ञातं गुरुणा योगिकर्म तत् ॥५२॥
स्वशक्त्या वाचने शक्तं स्वं विनेयं विधाय च। अमुंचत्समये व्याख्यामव्याकुलमनाः प्रभुः ॥५३॥
तस्य पर्यस्तिकाभूमावासनं वज्रलेपवत्। तस्थौ यथा तथा तस्य प्रस्तरेणेव निर्मितम् ॥५४॥
ततोऽवददसौ कृत्वा करसंपुटयोजनम्। अलीकप्रणिपातेन महाराज विमुंच माम् ॥५५॥
अपि श्रद्धालुभिः कैश्चिद्विज्ञप्तः कृपया प्रभुः। मुक्तोऽगात्तेन कः शनः कुंजरेणेक्षुभक्षणे ॥५६॥

†प्रभुर्न्यषेधयत्तत्र साधुसाध्वीकदम्बकम्। उदीच्यां दिशि गच्छन्तं स्वीकृतायां कुयोगिना ॥५७॥
धर्मकर्मनियोगेन साध्वीयुगमगात्ततः। तत्र कासारसेतौ च तिष्ठन् योगी ददर्श तत् ॥५८॥
अथ सन्मुखमागत्य लाघवालाघवाश्रयः। एकस्या मूर्ध्नि चूर्णंच किंचिच्चिक्षेप निस्त्रपः ॥५९॥
तस्य सा पृष्ठतो गत्वा पार्श्वे निविविशे त (त) तः। वृद्धयोक्ता न चायाति विवष्टं पृच्छलंघनम् ॥६०॥
ततः कुशमयं तत्र पुत्रकं ते समार्पयन्। चतुर्णां श्रावकाणां च शिक्षिता तेप्यधो ययुः ॥६२॥
निर्गत्य च वहिश्चैत्यात्छित्वा तस्य कनिष्ठिकाम्। तत्सांर्वगाः परं तस्य ददृशुस्ते निरङ्गुलिम् ॥६३॥
मुंच साध्वीं न चेत्पातं [illegible] मस्तवन्। न जानामि परं मे वा [illegible] ॥६७॥[illegible]

के पुतले की कनिष्ठका अंगुली काटी तो योगी की अंगुली कट गई जब श्रावकों ने योगी के पास जाकर अपनी कटी हुई अंगुली का हाल पूछा तब उसने कहा कि यह तो अकस्मात् हुआ है। श्रावकों ने कहा कि अरे दुष्ट ! इस सती साध्वी को जल्दी छोड़ दे वरना तेरी कुशलता नहीं है। योगी ने न माना तब पुतले की दूसरी अंगुली काट डाली, तुरत ही योगी की दूसरी अंगुली कट गई। श्रावकों ने कहा कि अभी समय है मान जा नहीं तो इस पुतले का मस्तक काट दिया जायगा। योगी ने डर कर कहा कि साध्वी के सिर पर पानी छिटको। बस, पानी छिड़कते ही साध्वी सावधान हो अपनी गुरुणी के पास आ गई और योगी वहां से भाग कर देशान्तर में चला गया। साध्वी को प्रायश्चित दे शुद्ध कर समुदाय में ले ली। इस प्रकार जीवदेवसूरि ने अनेक वादियों को अपने आत्मिक चमत्कार बतला कर जैनधर्म की प्रभावना की।

राजा विक्रम उज्जैन में राज करता था। [1] उस समय पृथ्वी का ऋण चुकाने के लिए राजा ने अपने आदमियों को प्रत्येक ग्राम नगर में भेजा था उसमें एक लींबा नामक श्रेष्टि को वायट नगर में भेजा। लिंबा वायट में आया तो वहां श्रीमहावीर का मंदिर जीर्ण हुआ देखा। लिंबा ने उस मंदिर का जीर्णोद्धार करा कर विक्रम संवत् के सातवें वर्ष में सुवर्ण कलश एवं ध्वज दंड सहित महावीर मंदिर की प्रतिष्ठा आचार्य जीवदेवसूरि से करवाई। ग्रन्थकार लिखते हैं कि वह मंदिर आज भी (वि० सं० १६३४) विद्यमान है।

महास्थान वायट नगर में अपार धन का धनी एक लल्ल नामक सेठ रहता था [2]। उसने सूर्य ग्रहण में एक लक्ष मुद्राऐं धर्मार्थ निकाली थीं अतः ब्राह्मणों को आमंत्रण कर एक विशाल यज्ञ करना प्रारंभ किया। अग्नि का कुण्ड जल रहा था। ब्राह्मण वेद के पाठोच्चारण कर रहे थे। ऊपर एक वृक्ष पर महाकाय वाला कृष्ण सर्प था। धूम्र से चक्र खाकर नीचे गिरा तो ब्राह्मणों ने कहा कि बलि के लिये स्वयं नागेन्द्र आ गया है। इस प्रकार कह कर उस सर्प को अग्निकुण्ड में डाल दिया जिसको तड़फड़ाता देख कर लल्लसेठ ने कहा अरे यह कैसा दुष्कर्म कि जीते हुये पंचेन्द्रिय जीव को अग्नि में डाल दिया ! ब्राह्मणों ने कहा सेठ चिन्ता न करो मंत्रों द्वारा इसको स्वर्ग पहुँचा देंगे यदि तुमको करना है तो एक सोने का सर्प बना कर ब्राह्मणों को भेंट कर दो। लल्ल ने कहा कि एक तो सर्प मर गया है और इसके लिए सोने का सर्प बना कर दान दिया तो फिर उसके लिए और सर्प बनाना पड़ेगा ये तो महान् दुष्कर्म है। अतः सेठ ने यज्ञ-स्तम्भ को उखाड़ दिया कुण्ड को मिट्टी से पुरा दिया, ब्राह्मणों को विसर्जन कर दिया और सच्चे धर्म की शोध में संलग्न हो गया।

[1] इतः श्री विक्रमादित्यः शास्त्यवन्त्यां नराधिपः। अनृणां पृथिवीं कुर्वन् प्रवर्तयति वत्सरम् ॥ [illegible] ॥
वायटे प्रेषितोऽमात्यो लिम्बाख्यस्तेन भूभुजा। जनानृण्याय जीर्णं [illegible] ॥ [illegible] ॥
उद्धार स्वर्वंशेन निजेन सह मन्दिरम्। अर्हतस्तत्र सौवर्णकुम्भदण्डध्वजान्वितम् ॥ [illegible] ॥
संवत्सरे प्रवृत्ते स सप्तसु वर्षेषु पूर्वतः। गतेषु सप्तमस्यान्तः प्रतिष्ठां ध्वजकुम्भयोः ॥ [illegible] ॥
श्री जीवदेवसूरिभ्यस्तेभ्यस्तत्र व्यधापयत्। अद्याप्यभङ्गं तत्तीर्थमस्त्युदितं [illegible] ॥ [illegible] ॥
[2] इतश्चास्ति महास्थाने वायटे नैगमवजे। दारिद्र्यारिजये महाश्रेष्ठी लल्लः [illegible] ॥ [illegible] ॥
तत्र कुण्डोदकं [illegible] द्रुमात्। धूमाकुलित [illegible] ॥ [illegible] ॥
[illegible] आहुतीः। [illegible] ॥ [illegible] ॥
[illegible] सुर्वान्नवत्। कृपया [illegible] प्राह हि दुष्कर्म [illegible] ॥ [illegible] ॥
[illegible] यदेव [illegible] ॥ [illegible] ॥
[illegible] कुण्डकूटं [illegible] ॥ [illegible]

[श्री जैन प्रस्तर

एक दिन लल्ल के घर पर दो जैनमुनि भिक्षा के लिये आये*तो सेठ ने अपने अनुचरों को कहा कि इन मुनियों के लिये अच्छा भोजन बनाकर प्रतिलाभ करो। मुनियों ने कहा सेठ हमारे लिये पृथ्वी, पानी, अग्नि आदि की हिंसा कर भोजन बनाया जाय वह भोजन हमारे काम में नहीं आता है इत्यादि।

सेठ ने सोचा अहो ये तो साक्षात् दया के अवतार ही दीखते हैं। अतः प्रार्थना की कि पूज्यवर! मैं धर्म का स्वरूप समझना चाहता हूँ कृपया आप मुझे धर्म का स्वरूप समझाइये ? मुनियों ने कहा कि यदि आपको धर्म सुनना हो तो गुरु महाराज के पास आकर सुनो इत्यादि।

लल्ल सेठ आचार्य जीवदेवसूरि के पास आया और सूरिजी ने जैनधर्म का स्वरूप इस प्रकार सुनाया कि सेठने बड़ी खुशी के साथ जैनधर्म स्वीकार कर बारहव्रत धारण कर लिये।

सेठ ने कहा कि हे प्रभो! मैंने सूर्य्यग्रहण में एक लक्ष मुद्रिका दान में निकाली† जिसमें आधा द्रव्य तो यज्ञ में व्यय कर डाला शेष पचास हजार रहा है वह आप ग्रहन करे। सूरिजी ने कहा हम अकिंचत (निस्पृही) है द्रव्य को छूते भी नहीं सो लेने की तो बात ही कहां रही। अगर तुम्हारा ऐसा ही आग्रह हो तो कल शाम को तेरे पास कोई भेंट आवे तो मुझे कहना मैं तुझे रास्ता बतला दूंगा। बस, सेठ अपने घर पर आया। दूसरे दिन शाम को एक सुथार अपूर्व पलंग लेकर आया जिसके पायों पर सुन्दर वृषच कोरे हुए थे। सेठ गुरु वचन याद कर उसको गुरु महाराज के उपाश्रय ले गया। सूरिजी ने उसके दो वृषभों पर वासक्षेप डालकर कहा कि जहाँ ये वृषभ ठहर जांय वहां जिनमन्दिर बना देना वृषभ ठीक 'पीपलातक' स्थान में ठहरे। सेठ ने वहां जिन मंदिर बनाना शुरू कर दिया। जब मन्दिर का काम चल रहा था वहां एक अवधूत आया और उसने कहा कि यहां शल्य यानि स्त्री की हड्डियें हैं अतः उसे निकालने के बाद मन्दिर बनाना अच्छा है। हड्डियें निकालने का विचार किया तो रात्रि में सूरिजी के पास एक देवी ने आकर कहा कि मैं कन्या कुब्ज राजा की राजकन्या थी। म्लेच्छों के भय एवं शील की रक्षा के लिये कुँवा में पड़ कर मरगई थी अतः मेरी हड्डियें उस स्थान पर हैं जहां सेठ मन्दिर बना रहा है। पर उन हड्डियों को मैं निकालने नहीं दूंगी। हाँ, मेरे पास द्रव्य बहुत हैं चाहिये उतना द्रव्य मैं आपको दूंगी। सूरिजी ने उस देवी को मन्दिर में देवी के रूप में स्थापना करनेकी शर्त से संतुष्ट कर मन्दिर तैयार करवाया और श्रेष्टि लल्ल ने उस मन्दिर की खूब

---

* ततः प्रभृत्यसौ धर्मदर्शनानि समीक्षते। भिक्षायै तद्गृहे प्राप्तं श्वेताम्बर मुनिद्वयम् ॥ ९२ ॥
अन्नं संस्कृत्य चारित्रपात्राणां यच्छत ध्रुवम्। अमीषां ते ततः प्रोचुनास्माकं कल्पते हितत् ॥ ९३ ॥
पृथिव्यापस्तथा वह्निर्वायुः सर्वो वनस्पतिः। त्रसाश्च यत्र हन्यन्ते कार्ये नस्तत्र गृह्यते ॥ ९४ ॥
अथ चिन्तयाति श्रेष्टी वितृष्णत्वादहो अमी। निर्ममा निरहङ्काराः सदा शीतल चेतसः ॥ ९५ ॥
ततोऽवददसौ धर्मं निवेदयत मे स्फुटम्। ऊचतुस्तौ प्रभुश्चैत्ये स्थितस्तं कथयिष्यति ॥ ९६ ॥
इत्युक्त्वा गतयोः स्थानं स्वं तयोरपरेऽहनि। ययौ लल्लः प्रभोः पार्श्वे चक्रे धर्मानुयोजनम् ॥ ९७ ॥
श्रुत्वेति स प्रपेदेऽथ स सम्यक्त्वं व्रतावलीम्। धर्मं चतुर्विधं ज्ञात्वा समाचरद्दर्निशम् ॥१०१॥
† आह चैष प्रभो किंचिद्वधार यताधुना। द्रव्यलक्षस्य संकल्पो विहितः सूर्य पर्वणि ॥१०२॥
तदर्धं व्ययितं धर्माभासे वेदस्मृतीक्षिते। कथमर्द्धं मया शेषं व्ययनीयं तदादिश ॥१०३॥
मम चेतसि पूज्यानां दत्तं बहुफलं भवेत्। तद्गृहीत प्रभो यूयं यथेष्टं दत्त चादरात् ॥१०४॥
अथाहुर्गुरवो निष्किंचनानां नो धनादिके। स्पर्शोऽपि नोचितो यस्मादागम्यं किन्तु संप्रद ॥१०५॥ प्र० च०

धामधूम से सूरिजी से प्रतिष्ठा करवाई । सूरिजी ने शर्त के अनुसार उस देवी को उस मन्दिर में सुवर्णों के रूप में स्थापना करवा दी ।

जब से लल्ल सेठ ब्राह्मणधर्म को त्याग कर जैनधर्म में प्रविष्ट हुआ तब से ब्राह्मण जैनधर्म से द्वेष रखने लग गये थे* एक समय कई नादान ब्राह्मणों ने द्वेष के कारण एक कृश एवं मरण शरण हुई गाय को पकड़ कर महावीर चैत्य में लाकर गिरादी और बड़ी खुशी मनाई कि कल श्वेताम्बर जैनों की बड़ी भारी निन्दा और हँसी होगी । ठीक सुबह साधुओं ने देखा और गुरुजी से निवेदन किया । गुरूजी ने साधुओं को अंग रक्षा के तौर पर रख कर आप एकान्त में ध्यान किया । परकाया प्रवेश विद्या आपको पहिले से ही वरदायी थी। अतः गाय पैरों से चलकर मन्दिर के बाहर आई जिसको सब लोगों ने देखा और गाय तो चलती २ ब्रह्म भवन की ओर जाने लगी पुजारी मंदिर का द्वार खोलता ही था कि गाय ने अपने सींगों से पुजारी को गिरा कर ब्रह्मभवन के मूलगम्भार में जाकर पड़ गई जिसको देख सब ब्राह्मण भयभीत हो गए और विचार करने लगे कि यह क्या आफत आ गई ।

कई एकों ने कहा कि यह नादान ब्राह्मणों ने जैनचैत्य में गाय डाली थी उसका बदला है । कई एकों ने कहा कि अब क्या करना चाहिये ? कई एक ने कहा कि वीर चैत्य में श्वेताम्बरसूरि हैं उनकी शरण लो । कई एकों ने कहा कि ब्राह्मणों ने उन पर कई उपद्रव किये हैं क्या अब वे तुम्हारी सुनेंगे ? कई एकों ने कहा कि अगर तुम खुशामद करोगे तो वे दया के अवतार तुम्हारी अवश्य सुनेंगे इत्यादि ।

ब्राह्मण मिलकर सूरीश्वरजी के पास आये और खूब नम्रता एवं दीन स्वर से प्रार्थना की उस समय लल्ल सेठ भी वहाँ बैठा था उसने ब्राह्मणों को जो उपालम्भ देना था दिया और बाद में आपस में द्वेष न रख कर प्रेम भाव रखना इत्यादि ब्राह्मणों से कई शर्तें करवा कर गुरु महाराज से प्रार्थना की । अतः गुरु महाराज ने अपने ध्यान बल से उस गाय को ब्रह्म मंदिर से बाहर निकाली । वह ग्राम के बाहर जाकर भूमि पर गिर गई तब जाकर ब्राह्मणों ने बड़ी खुशी के साथ सूरिजी की जयध्वनि से गगन को गुंजा दिया और जैन तथा ब्राह्मणों के बीच जो भेदभाव था वह मिटकर भ्रातृभाव उत्पन्न हो गया । इतना ही क्यों पर वे ब्राह्मण जैनधर्म को श्रद्धापूर्वक मानने लगे ।

इत्यादि जीवदेवसूरि जैनशासन में महा प्रभाविक आचार्य हुए हैं । जब आपने अपना आयुष्य नजदीक समझा तो अपने पट्ट पर योग्य साधू को आचार्य बनाकर कहा कि मेरी मृत्यु के साथ ही मेरी खोपड़ी

---

* अथ लल्लं द्विजा दृष्ट्वा जिनधर्म्मैकसादरम् । स्वभावं स्वजनानाना दधुर्जैनेषु मत्सरम् ॥ १२८ ॥
अन्यदा [illegible] [illegible] कृत्वो गिरा । आलोच्य सुरभिं कांचिद्वन्त्युदगासितान् ॥ १३१ ॥
[illegible] मूर्नां कृताम् । श्रीमहावीरचैत्यान्तर्मन्यदा प्रावेशयन् हठात् ॥ १३२ ॥
[illegible] च तां मन्त्वा बहिः [illegible] । ते प्राहुरत्र विजेयं जैनानां वैभवं महत् ॥ १३३ ॥
[illegible] दर्शनांतर विडंबकः । इत्यं च कौतुकाविष्ट [illegible] ॥ १३४ ॥
सूरीन्द्र [illegible] पट्टमवीवां । अमानुषप्रयोगोऽत्र ध्यानं [illegible] ॥ १३८ ॥
[illegible] सा धेनुः स्वयमुत्थिता । [illegible] ॥ १३९ ॥
[illegible] । तयुक्ता सूरिभिर्ब्रह्मभवने [illegible] ॥

[श्री वीर सम्वत्

का चूर्ण चूर्ण कर डालना †। कारण, मेरे से पराजित हुए जो योगी है उसके पास एक खोपड़ी तो है और दूसरी मेरी खोपड़ी मिल गई तो वह बड़ा-बड़ा अनर्थ कर डालेगा। अतः मेरी खोपड़ी उसके हाथ नहीं लगनी चाहिये। तुम यह भी विचार नहीं करना कि गुरु महाराज के मृत शरीर की आशातना कैसे करें ? कारण इसमें जैनशासन का भावी नुकसान है अतः मेरा कहना ध्यान में रखना।

आचार्य श्री अनशन और आराधना कर स्वर्गवासी हुये तो शिष्यों ने उनकी खोपड़ी का चूर्ण कर डाला। बाद श्रीसंघ ने महोत्सव पूर्वक सूरिजी के शरीर को सेविका में बैठा कर स्मशान की ओर ले जा रहे थे तो योगी ने पूछा कि आज किस मुनि का स्वर्गवास हुआ है ? किसी ब्राह्मण ने कहा जीवदेवसूरि का। इस पर योगी ने कृत्रिम शोक दर्शाते हुए गुरु महाराज के मुख देखने के लिये सेविका नीचे रखाई पर खोपड़ी का चूरा चूरा हुआ देख कर योगी ने निराश हो कर कहा कि राजा विक्रम की खोपड़ी मेरे पास है पर मैं अभागा हूँ कि जीवदेवसूरि की खोपड़ी मेरे हाथ नहीं लगी। बाद योगी ने अपने विद्याबल से मलिया-गिरि का सरस चन्दन ला कर गुरु महाराज के निर्जीव कलेवर का अग्नि-संस्कार किया।

आचार्य जीवदेवसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुए और आपने अन्तिम आराधना कर वैमानिक देवताओं में जाकर देवता सम्बन्धी सुखों का अनुभव किया।

आचार्य जीवदेवसूरि के साथ घटी हुई गाय की घटना को आधुनिक खरतरों ने अपने आचार्य जिनदत्तसूरि के साथ घटित कर जिनदत्तसूरि को चमत्कारिक बतलाने की व्यर्था कल्पना की है। पर कहाँ

---

† खेटयन्तं वहिः शृङ्गयुगेप्रासुं प्रपात्य च। गर्भागारे प्रविश्यासौ ब्रह्ममूर्तेः पुरोऽपतत् ॥ १४३ ॥
अपरे प्राहुरेको न उपायो व्यसने गुरौ। मृगेंद्रविक्रमं श्वेतांवरं चैत्यान्तरस्थितम् ॥ १५० ॥
सूरो श्रुत्वेति तूष्णी के लल्लः फुल्लयशा जगौ। मद्विज्ञप्तिं द्विजा यूयमेकां शृणुत सूनृताम् ॥ १६१ ॥
विरक्तोऽहं भवद्धर्मात्दृष्ट्वा जीववदं ततः। अस्मिन् धर्म्मे दयामूले लग्नो ज्ञातात्स्वकान्ननु ॥ १६२ ॥
जैनेष्वसूयया यूयमुपद्रवपरंपराम्। विधत्त प्रतिमल्लः कस्तत्र वः स्वल्पदाग्रवः ॥ १६३ ॥
मर्यादामिह कांचिच्चेत् यूयं दर्शयत स्थिराम्। तदहं पूज्यपादेभ्यः किंचित्प्रतिविधापये ॥ १६४ ॥
अथ प्रोचुः प्रधानास्ते त्यं युक्तं प्रोक्तवानसि। समः कः क्षमयामीषां दुर्वारेऽस्मदुपद्रवे ॥ १६५ ॥
स्वरुच्या सांप्रतं जैनधर्मे सततमुत्सवान्। कुर्वतां धार्मिकाणां न कोपि विघ्नान् करिष्यति ॥ १६६ ॥
अस्तु च प्रथमो घृतः श्रीवीरव्रतिनां तथा। सदान्तरं न कर्त्तव्यं भूमिदेवैरतः परम् ॥ १६७ ॥
प्रतिष्ठितो न चाचार्य्यः सौवर्णमुपवीतकम्। परिधाप्याभिषेक्तव्यो ब्राह्मणैर्ब्रह्ममन्दिरे ॥ १६८ ॥
इत्यभ्युपगते तैश्च लल्लः सद्गुरुपादयोः। निवेश्य मौलिमाचख्यौ महास्थानं समुद्र ॥ १६९ ॥
श्री जीवदेव सूरिश्च प्राहोपसमवर्म्मितः। कालत्रयेपि नास्माकं रोषतोधौ जनद्विषी ॥ १७० ॥
तस्थुर्मुहूर्त्तमात्रेण तावद्गौर्ब्रह्मवेश्मतः। उत्थाय चरणप्रागं कुर्वती निर्जगाम सा ॥ १७३ ॥
आस्थानं पुनराजग्मुर्गुरवो गुरवो गुणैः। वेदोदिताभिराशीर्भिर्विप्रैश्चक्रे जयध्वनिः ॥ १७५ ॥
ततः प्रभृति सौदर्यसंबंधादिव बायेट। स्थापितस्तैरिह स्नेहो जैनैरद्यापि वर्त्तते ॥ १७६ ॥

× ततः स्नेहं परित्यज्य निर्जीवेऽस्मत्कलेवरे। कपालं चूर्णयध्वं चेत्तन्न स्यान्निरुपद्रवम् ॥ १८२ ॥
इहार्थे मामकीनाज्ञापालनं ते कुलीनता। एतत्कार्यं ध्रुवं कार्यं जिनशासनरक्षणे ॥ १८३ ॥
इति शिक्षां प्रदायास्मै प्रत्याख्यानविधिं व्यधुः विधायाराधनां दध्युः परमेष्ठिनमस्कृताः ॥ १८४ ॥
निरुध्य पवनं मूर्ध्ना मुक्त्वा प्राणान् गुणाम्बुधः। वैमानिकसुरास्तं तेऽहिर्भिपमहिमभिन्दन् ॥१८५॥ प्र० च०

तो जीवदत्तसूरि का समय प्रबन्धानुसार विक्रम के समकालीन और कहाँ जिनदत्तसूरि का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी का । फिर समझ में नहीं आता है कि खरतरों ने यह जघन्य कार्य्य क्यों किया ?

शायद कई व्यक्ति यह कल्पना कर लें कि जीवदेवसूरि के साथ जैसे गाय की घटना घटित हुई है ही जिनदत्तसूरि के साथ घटित हुई होगी । तभी तो जिनदत्तसूरि के भक्तों ने उनके साथ भी गाय की घटना का उल्लेख किया है ।

जिनदत्तसूरि के जीवन विषय विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में गणधरसार्द्धशतक की वृहद्वृत्ति में जिनपतिसूरि के शिष्य सुमतिगणि ने छोटी २ बातों तक का उल्लेख किया पर गाय वाली घटना की गन्ध तक उसमें नहीं है तथा और भी कई व्यक्तियों ने जिनदत्तसूरि के लिये बहुत कुछ लिखा है पर गाय की घटना का जिक्र मात्र भी नहीं किया इतना ही क्यों पर विक्रम की सोलहवीं शताब्दी तक तो किसी की भी मान्यता नहीं थी कि जिनदत्तसूरि के साथ गाय वाली घटना घटित हुई फिर सतरहवीं शताब्दी में यह स्वप्न क्यों आया होगा ? वास्तव में आधुनिक खरतरों ने इधर उधर के प्रभाविक आचार्यों के साथ घटी हुई घटनाओं को जिनदत्तसूरि के साथ जोड़ जिनदत्तसूरि को चमत्कारी ठहराने की कोशीश की है पर इस प्रकार मात्र कल्पनाए करने से चमत्कारी सिद्ध नहीं होते हैं ।

" इति जीवदेवसूरि का जीवन "

आचार्य स्कन्दिलसूरि और आगमवाचना

आचार्य स्कन्दिलसूरि—जैन संसार में माथुरी वाचना के नाम से स्कन्दिलाचार्य बहुत ही प्रसिद्ध हैं परन्तु स्कन्दिलाचार्य के समय के लिये बड़ी भारी गड़बड़ है । कारण, चार स्थानों पर भिन्न २ समय स्कन्दिलाचार्य का वर्णन आता है जैसे—

१—युगप्रधान पट्टावली में स्कन्दिलाचार्य को श्यामाचार्य्य के बाद युग प्रधान कहा है । श्यामाचार्य का स्वर्गवास वीर वि० सं० ३७६ के आस पास का बतलाया है तदन्तर स्कन्दिलाचार्य युग प्रधान हुये और वे ३८ वर्ष युग प्रधान पद पर रहे तो वीरात् ४१४ वें वर्ष आपका स्वर्गवास हुआ ।

२—प्रभाविक चरित्र वृद्धवादी प्रबन्ध में वृद्धवादी को दीक्षा देने वाले स्कन्दिलाचार्य्य थे जैसे कि—

"पारिजातोऽपारिजातो, जैनशासननन्दने । सर्वश्रुतानुयोगार्द्द कन्दकन्दलनाम्बुदः ॥
विद्याधरवराम्नाये, चिन्तामणिरिवेष्टदः । आसीच्छ्री स्कन्दिलाचार्यः, पादलिप्तप्रभोः कुले ॥

इन स्कन्दिलाचार्य को अनुयोगधार कहा है परन्तु आपका सत्ता समय नहीं बतलाया है तथापि अनुमान किया जा सकता है कि आप विक्रम संवत के पूर्व हुये होंगे । कारण, स्कन्दिलाचार्य ने वृद्धवादी को दीक्षा दी और वृद्धवादी के शिष्य सिद्धसेनदिवाकर हुये जो विक्रम के समकालीन थे अतः इस हिसाब से [illegible]आचार्य का समय विक्रम संवत् पूर्व का ही मानना चाहिये ।

३—हेमवंत पट्टावली में लिखा है कि—

"मथुरानिवासी ओसवंशशिरोमणि श्रावकपोलाक ने गन्धहस्ती विवरणसहित उन सर्वसूत्रोंको ताड़पत्रादि पर लिखाकर पठनपाठन के लिये निर्ग्रन्थों को अर्पण किया। इस प्रकार जैनशासन की उन्नति करके स्थविर आर्यस्कन्दिल विक्रम संवत् २०२ मथुरा में ही अनशन करके स्वर्गवासी हुये"

४—पन्यासजी श्री कल्याण विजयजी महाराज स्वरचित वीर निर्वाण संवत् और जैनकाल गणना नामक ग्रन्थ के पृष्ट १८० पर लिखते हैं कि आर्य स्कन्दिल के नायकत्व में माथुरी वाचना वीर वि० सं० ८२७ से ८४० के बीच में हुई।

उपरोक्त चार स्कन्दिलाचार्यों के अन्दर पहिले नम्बर के स्कन्दिलाचार्य युगप्रधान पट्टावली के हैं। आपका समय संवत् वी० नि० संवत ३७६ से ४१४ का है अतः न तो वृद्धवादी की दीक्षा आपके हाथों से हुई और न माथुरी वाचना का सम्बन्ध आपके साथ है।

अब रहे शेष तीन स्कन्दिलाचार्य्य—इन तीनों के साथ माथुरी वाचना का सम्बन्ध होने पर भी समय पृथक २ बतलाया है। जिसमें पन्यासजी श्री कल्याणविजयजी महाराज ने स्कन्दिलाचार्य द्वारा माथुरी वाचना का समय वी० नि० सं० ८२७ से ८४० का स्थिर किया है और इस विषय की पुष्टि करने में आपने युक्ति एवं प्रमाण भी महत्व के दिये हैं। अब हम पन्यासजी के कथनानुसार आर्य स्कन्दिल का समय विक्रम की चौथी शताब्दी का मान लें तो वृद्धवादी की दीक्षा स्कन्दिलाचार्य के हाथों से नहीं हुई हो या वृद्धवादी को दीक्षा देने वाले स्कन्दिलाचार्य माथुरी वाचना के स्कन्दिलाचार्य से पृथक हों। अगर स्कन्दिलाचार्य और वृद्धवादी इन दोनों आचार्यों को विक्रम की चौथी शताब्दी के आचार्य मानलें तो वृद्धवादी के हस्त दीक्षित शिष्य सिद्धसैन दिवाकर का समय नहीं मिलता है। कारण सिद्धसेनदिवाकर को संवत्सर प्रवर्तक विक्रम के समकालीन बतलाया है। सिद्धसेनदिवाकर ने विक्रम को जैन बनाया तथा आवंती पार्श्वनाथ को प्रगट किया आदि अनेक घटनायें विक्रम के साथ घटी यह सबकी सब कल्पित ठहरेंगी।

जिस विक्रम के साथ सिद्धसेनदिवाकर का सम्बन्ध बतलाया गया है उस विक्रम को संवत्सर प्रवर्तक विक्रम नहीं पर विक्रम की चौथी शताब्दी का एक दूसरा ही विक्रम मानलें तब जाकर इन सबका समाधान हो सके पर ऐसा करने से हमारे पूर्वाचार्यों के बनाये चरित्र प्रबन्ध और पट्टावलियें सबके सब कल्पित हो जायंगे। कारण, आर्य्य स्कन्दिल, वृद्धवादी, सिद्धसैन दिवाकर और राजा विक्रम को वीर निर्वाण के बाद पांचवीं शताब्दी के माने हैं वे सब नौवीं शताब्दी के मानने पड़ेंगे। अतः इनके समाधान के लिये विशेष शोध खोज की आवश्यकता है।

३—तीसरे स्कन्दिलाचार्य्य का वर्णन हेमवन्त पट्टावली में आया है। आपके समय के लिये लिखा है कि वि० सं० २०२ में स्कन्दिलाचार्य्य का स्वर्गवास मथुरा में हुआ अतः आप विक्रम की दूसरी शताब्दी के आचार्य थे। विशेषता में पट्टावलीकार लिखते हैं कि मथुरा में ओसवंशीय पोलाक श्रावक ने गन्धहस्ती विवरण सहित आगम लिखा कर जैन श्रमणों को पठन पाठन के लिये अर्पण किये। इससे यह भी पाया जाता है कि उस समय पूर्व श्रमणों को आगम वाचना मिल गई थी इतना ही क्यों पर उस समय

आगम ठीक व्यवस्थित रूप में हो गये थे कि जिसको लिखा कर श्रावक लोग साधुओं को पठन पाठन के लिये भेंट करते थे।

पट्टावल्यादि ग्रन्थों से यह स्पष्ट सिद्ध हो चुका है कि आर्य वज्रसूरि के समय बारह वर्षीय एक भयंकर दुष्काल पड़ा था और उस दुष्काल में बहुत से जैनश्रमण अनशन कर स्वर्ग पहुँच गये थे शेष बचे हुये साधुओं को आहार पानी के लिये बड़ी मुसीबतें उठानी पड़ती थीं। इधर उधर भटकना पड़ता था। अतः आगमों का पठन पाठन बन्द सा हो जाना कोई बड़ी बात नहीं थी। आर्यवज्र का स्वर्गवास वि० सं० ११४ में हो गया था थोड़े ही समय में एक दुकाल और पड़ गया। उसकी भयंकरता ने तो जैसे जनसंहार किया वैसे श्रमण संहार भी कर दिया। दुकाल के अन्त में आचार्य यक्षदेवसूरि ने बचे हुए साधु साध्वियों को एकत्र किये तो केवल ५०० साधु और ७०० साध्वियां ही उस दुकाल से बच पाये थे। यक्षदेवसूरि ने उन साधु साध्वियों की फिर से व्यवस्था की। उस समय आर्य वज्रसैन ने चन्द्र नागेन्द्रादि को दीक्षा देकर उनको पढ़ानेके लिये आचार्य यक्षदेवसूरि के पास भाये। चारों शिष्यों का ज्ञानाभ्यास चल ही रहा था कि बीच में ही वज्रसेनसूरि का स्वर्गवास होगया उनके शिष्यों की व्यवस्था का कार्य भी यक्षदेवसूरि के सिर पर आ पड़ा इत्यादि।

इस कथन से पाया जाता है कि उस समय जैन श्रमण संघ को आगम वाचना की अत्यधिक आवश्यकता थी और उस समय वाचना भी अवश्य हुई थी यदि उस समय वाचना नहीं हुई होती तो उस समय से करीब २०० वर्ष बाद स्कन्दिलाचार्य का समय आता है वहां तक जैनश्रमणों को न तो ज्ञान रहता न दुकाल में ज्ञान भूलता और न स्कन्दिलाचार्य के समय वाचना की ही जरूरत रहती।

कई स्थानों पर आर्य स्कन्दिलसूरि के समय भी बारहवर्षीय दुष्काल पड़ना लिखा है। यदि आर्य स्कन्दिल आर्य्यवज्र के समसामयिक होने के कारण ही स्कन्दिलाचार्य्य के समय बारह वर्षीय दुर्भिक्ष का उल्लेख किया हो तब तो कुछ मत भेद नहीं है पर जब वज्रसैनसूरि के बाद दोसौ वर्ष में स्कन्दिलाचार्य हुये और जाय तब तो स्कन्दिलाचार्य के समय का दुकाल वज्रसेनाचार्य के समय के दुकाल से पृथक मानना होगा और दुकाल में २०० वर्ष का अन्तर है तो आगम वाचना भी पृथक माननी पड़ेगी तथा वाचना पृथक हुई तो उन वाचनाओं के देने वाले आचार्य भिन्न २ मानना स्वभाविक है। स्कन्दिलाचार्य के समय का दुकाल के अन्त में स्कन्दिलाचार्य ने वाचना दी वैसे ही वज्रसेनाचार्य्य के समय का दुकाल के अन्त में आचार्य यक्षदेवसूरि ने वाचना दी थी कारण, उस समय एक यक्षदेवसूरि ही अनुयोगधर थे और यह बात प्राचीन ग्रन्थों से साबित भी ठहरती है। कारण, उस समय के दुकाल के अन्त में बचे हुये ५०० साधु ७०० साध्वियों की व्यवस्था आप श्री ने ही की थी। जब व्यवस्था की तो वाचना भी अवश्य दी होगी। साथ ही यक्षदेवसूरी ने वज्रसेनाचार्य्य के शिष्य चन्द्रनागेन्द्रादि को वाचना देने का भी उल्लेख मिलता है अतः वज्रसेनाचार्य के समय वाचना अवश्य हुई थी और उस वाचना के नायक आचार्य यक्षदेवसूरि ही थे।

जब स्वल्प समय में दो दो भयंकर दुकाल पड़ा उसमें साधुओं का पठन पाठन बन्द सा हो ज्ञान विस्मृत होजाना स्वभाविक बात है। इस हालत में उन साधुओं को २०० वर्ष तक वाचना नहीं मिलना यह बिल्कुल असम्भव सा प्रतीत होता है।

४—चौथा स्कन्दिलाचार्य्य—प्रभाविक चरित्र वृद्धवादी प्रबन्ध में स्कन्दिलाचार्य को विद्याधर कुल

[श्री जैन ...

(शाखा) के पादलिप्तसूरि के परम्परा का आचार्य कहा जा सकता हैं। नंदी सूत्र की टीका में आचार्य मलयागिरि ने स्कन्दिलाचार्य को सिंहवाचक सूरि के शिष्य कहा है जैसे "तान् स्कन्दिलाचार्यान् सिंहवाचक सूरि शिष्यान्" पर आगे चल कर उसी टीका में सिंहवाचक को ब्रह्मद्वीपिका शाखा के आचार्य लिखा है। तब स्कन्दिलाचार्य्य थे विद्याधर शाखा के आचार्य। शायद् युगप्रधान पट्टावली में सिंहवाचक के बाद नागार्जुन का नाम आता है और स्कन्दिलाचार्य्य नागार्जुन के समकालीन होने से टीका कारने स्कन्दिलाचार्य्य को सिंहवाचक के शिष्य लिखा दिया होगा। पर वास्तव में स्कन्दिलाचार्य्य विद्याधर शाखा के आचार्य हैं स्कन्दिलाचार्य के समय के लिये पट्टावलियों में लिखा है कि वि० सं० ११४ में आर्यवज्र का स्वर्गवास बाद १३ वर्ष आर्य्यरक्षित २० पुष्पमित्र ३ वज्रसेन ६९ आर्य नागहस्ती ५९ रेवतीमित्र ७८ ब्रह्मद्वीप सिंह एवं कुल ३५६ वर्ष व्यतीत होने पर आर्य स्कन्दिल युगप्रधान पद पर आरूढ़ हुये और १४ वर्ष तक युगप्रधान पद पर रहे। इस समय के बीच माथुरी वाचना हुई। ऐसी पन्यासजी की मान्यता है पर ब्रह्मद्वीपसिंह के बाद तो नागार्जुन का नाम आता है और वे ७८ वर्ष युगप्रधान पद परहे पर स्कन्दिलाचार्य का नाम युगप्रधान पट्टावली में नहीं हैं शायद नागार्जुन के समकालीन कोई स्कन्दिलाचार्य्य हुए होंगे ?

माथुरी वाचना के साथ ही साथ वल्लभी नगरी में वल्लभी वाचना भी हुई थी माथुरी वाचना के नायक स्कन्दिलाचार्य थे तब वल्लभी वाचना के नायक थे नागार्जुनाचार्य्य। यह दोनों आचार्य समकालीन थे और इनके समय बड़ा भारी दुकाल भी पड़ा था जैसे आर्यभद्रबाहु और आर्यवज्रसेन के समय में दुर्भिक्ष पड़ा था और जैसे उन दोनों दुर्भिक्षों के अन्त में आगम वाचना हुई थी उसी प्रकार इस समय भी आगम वाचना हुई।

आचार्य भद्रेश्वरसूरि ने अपने कथावली ग्रन्थ में लिखा है :—

"अत्थि महुराउरीए सुयसमिद्धो खंदिलो नाम सूरि, तहा वलहिनयरीए नागज्जुणो नाम सूरि। तेहि य जाए वरिसिए दुक्काले निव्वउ भावंओवि फुट्ठिं (?) काऊण पेसिया दिसोदिसिं साहवो गमिउं च कहवि दुत्थं ते पुणो मिलिया सुगाले, जाव सज्झायंति ताव खंडु खुरुडीहूयं पुव्वाहियं। तओ मा सुयवोच्छित्ती होइ (उ) त्ति पारद्धो सूरीहिं सिद्धंतुधारो। तत्थवि जं न वीसरियं तं तहेव संठवियं। पम्हुट्ठट्ठाणे उण पुव्वावरावउंतसुत्तत्थाणुसारओ कया संघउणा।"

आचार्य हेमचन्द्रसूरि अपने योगशास्त्र की टीका में लिखते हैं :—

"जिन वचनं च दुष्षमाकालवशादुच्छिन्नप्रायमिति मत्वा भगवद्भिर्नागार्जुनस्कन्दिलाचार्य्यप्रभृतिभिः पुस्तकेषु न्यस्तम्।"

आचार्य मलयागिरिजी अपने ज्योतिषकरण्डक टीका में लिखते है :—

"इह हि स्कन्दिलाचार्यप्रवृत्तौ दुष्षमानुभावतो दुर्भिक्ष प्रवृत्त्या साधूनां पठनगुणनादिकं सर्वमप्यनेशत्। ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः संघयोर्मेलापकोऽभवत् तद्यथा—एको वलभ्यांमेको मथुरायाम्। तत्र च सूत्रार्थसंघटने पारस्परवाचनाभेदो जातः विस्मृतयोर्हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा संघटने भवत्यवश्यं वाचनाभेदो न काचिदनुपपत्तिः।

तात्पर्य यह है कि महाभयंकर दुकाल के समय साधुओं के पठन पाठन वंधसा हो गया था अब दुर्भिक्ष के अन्त में सुकाल हुआ तो आचार्य स्कन्दिलसूरि के अध्यक्षत्व में मथुरा नगरी और आर्य नागार्जुनसूरि की नायकता में वल्लभी नगरी में श्रमण संघ को आगमों की वाचना दी गई तथा सूत्रों को पुस्तकों पर लिखा गया। अतः आचार्य स्कन्दिल एवं नागार्जुन के समय दोनों स्थानों में आगम वाचना हुई। इसम किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

इतिहास ज्ञान की पूरी शोध खोज नहीं करने के कारण हमारे अन्दर यह भ्रान्ति फैली हुई है कि वल्लभी नगरी में श्री देवर्द्धिगणीक्षमाश्रमण के अध्यक्षत्व में आगम वाचना हुई थी और कई २ तो देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी को आर्य स्कन्दिल के समसामयिक भी मानते हैं और प्रमाण के लिए उपाध्यायजी विनय विजयजी के लोक प्रकाश के श्लोक बताते हैं।

"दुर्भिक्षे स्कन्दिलाचार्यदेवर्द्धिगणिवार के। गणनाभावतः साधु साध्वीना विस्मृतं श्रुतम्॥
ततः सुभिक्षे संजाते संघस्य मेलगोऽभवत्। वलभ्यां मथुरायां च सूत्रार्थ घटनाकृते॥
वलभ्यां संगते संघे देवर्सिगणिरग्रणीः। मथुरायां संगते च स्कंदिलार्योऽग्रणीरभूत्॥
ततश्च वाचनाभेदस्तत्र ज़ातः कचित् कचित्। विस्मृतस्मरणो भेदो जातु स्यादुभयोरपि॥
तत्तैस्ततोऽर्वाचीननैश्च गीतार्थैः पापभीरुभिः। मतद्वयं तुल्यतया कक्षीकृतमनिर्णयात्॥
—लोकप्रकाश

उपाध्यायजी महाराज ने उपरोक्त बात जनश्रुति सुन कर या अनुमान से लिखी है। कारण, हम ऊपर लिख आए हैं कि मथुरा में स्कन्दिचार्य और वल्लभी में नागार्जुनाचार्य्य के नायकत्व में आगम वांचना हुई थी तब इन दोनों आचार्य के बाद कई १५० वर्ष के देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण हुए हैं वे स्कन्दिलाचार्य्य के समसामयिक कैसे हो सकते हैं ? देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी के समय भी वल्लभी में जैन संघ एकत्र हुए थे पर उस समय आगम वाचना नहीं हुई थी पर दोनों वाचनाओं में पठान्तर वाचान्तर रह गया था उनको ठीक कर आगम पुस्तकों पर लिखे गये थे। जैसे कहा है कि—

"वल्लहि पुरम्मि नयरे देवड्ढिपमुह समण संघेण पुत्थइ अगमु लिहिओ, नवसय असी आओ वीराओ"

क्षमाश्रमणजी ने आगमों को पुस्तकों पर लिखने में मुख्य स्थान माथुरी वाचना को ही दिया था और जो वल्लभी वाचना जो माथुरी वाचना के सदृश्य थी उसे तो माथुरी वाचना के अन्तरगत कर दिया और जो पाठ माथुरी वाचना से नहीं मिलता उसे नागार्जुन के नाम से पाठान्तर रूप में रख दिया जैसे—

"नागार्जुनीयास्तु पठंति—एवं खलु०"। आचारांग टीका।
"नागार्जुनीयास्तु पठंति—समरण भविस्सामो० " आचारांग टीका।
"नागार्जुनीयास्तु पठंति—जे खलु०"। आचारांग टीका।
"नागार्जुनीयास्तु पठंति—पुट्ठो वा०"। आचारांग टीका।
"अत्र स्थले नागार्जुनीयास्तु पठंति—मो कप्प नयं स्वट्ठियं०"। सूत्रकृतांग टीका।
"नागार्जुनीयास्तु पठंति—परिसंयमद्दं वियाणिया०"। सूत्रकृतांग टीका।
"इत्थो विवाहकारेहिं ति नागार्जुनीया अप एवं पठन्ति मर्नुसितिया तंत्रायासयम्" । [illegible]

अतः क्षमाश्रमणजी का इष्ट माथुरी वाचना पर ही विशेष था। यही कारण है कि क्षमाश्रमणजी ने नंदीसूत्र की स्थविरावली की गाथा में कहा है कि :—

"जेसि इमो अणुओगो, पयरइ अज्जावि अड्ढभरहम्मि। बहुनयरनिग्गयजसे, ते वंदे खंदिलायरिए॥

क्षमाश्रमणजी किस वंश शाखा के थे इसके लिये देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी के जीवन प्रसंग में लिखेंगे।

उपरोक्त वाचना के अन्दर हमारे एक संदिग्ध प्रश्न का समाधान सहज ही में हो जाता है। जो हमारी मान्यता थी कि सब से पहिले देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी ने ही आगमों को पुस्तकों में लिखवाये थे वास्तव में यह बात ऐसी नहीं है किन्तु क्षमाश्रमणजी के पूर्व भी आगम पुस्तकों पर लिखे गये थे। इसके लिए कई प्रमाण भी मिलते हैं।

१—पाटलीपुत्र की वाचना के समय आगमों को पुस्तक पर लिखे गये थे या नहीं इसके लिये तो कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

२—महामेघवाहन चक्रवर्ति खारवेल के हस्तीगुफावाले शिलालेख से पाया जाता है कि उस समय अंगसप्तति का कुछ भाग नष्ट हो गया था जिसको खारवेल ने पुनः लिखाया।

३—आचार्य सिद्धसैनदिवाकरजी चित्तौड़ गये थे और वहाँ के स्तम्भ में आपने हजारों पुस्तकें देखी जिसमें से एक पुस्तक लेकर आपने पढ़ी भी थी। अतः पहिले ज्ञान पुस्तकों पर लिखा हुआ अवश्य था।

४—माथुरी वाचना एवं वल्लभी वाचना के समय पुस्तकों पर आगम लिखने का उल्लेख मिलता है। जिसको हम ऊपर लिख आये हैं।

५—अनुयोग द्वार सूत्र में पुस्तकों को द्रव्य श्रुत (ज्ञान) कहा जैसे—

"से किं तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्तं दव्वसुअं ? पत्तयपोत्थय लिहिअं"

६—निशीथसूत्र के बारहवाँ उद्देशा की चूर्णी में भी लिखा है कि—

"सेहउग्गहणधारणादिपरिहाणिं जाणिऊण कालियसुयट्टा, कालियसुयणिज्जुत्तिमिमित्तं वा पोत्थगपणगं घेप्पति"।

७—योगशास्त्र की टीका में आचार्य हेमचन्द्रसूरि लिखते हैं कि—

"जिनवचनं च दुष्षमाकालवशादुच्छिन्नप्रायमिति मत्वा भगवद्भिर्नागार्जुन स्कन्दिलाचार्य्य प्रभृतिभिः पुस्तकेषु न्यस्तम्"।

इन प्रमाणों से स्पष्ट पाया जाता है कि देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण के पूर्व भी जैनागम पुस्तकों पर लिखे हुये थे। इतना ही क्यों पर क्षमाश्रमणजी के पूर्व कई ज्ञान प्रेमी श्रावकों ने आगमों को लिखा कर वे पुस्तकें जैन साधुओं को पठन पाठन के लिये अर्पण करते थे बाद में क्षमाश्रमणजी ने भी वल्लभी नगरी में आगमों के पुस्तकों पर लिखाया और वे विस्तृत रूप में होने से जैन समाज में विशेष प्रसिद्ध है।

जैनागमों की वाचना

जैनधर्म में यह बात बहुत प्रसिद्ध है कि गुरु महाराज अपने शिष्यों को जैनागमों की वाचना [illegible] हैं और शिष्य भी गुरु महाराज का विनय व्यवहार कर वाचना लेता है और उसको ही सम्यग्ज्ञान [illegible] जाता है। यदि कोई शिष्य गुरु महाराज के वाचना दिये विना ही आगम पढ़ लेते हैं तो उसको चतु[illegible] प्रायश्चित वतलाया है ×। कारण, जैनागम अर्द्ध मागधी एवं प्राकृत भाषा में है और उसमें भी कई सूत्र [illegible] शब्द तो ऐसे हैं कि जिनका यथार्थ अर्थ गुरुगम से ही जान सकते हैं। जिन लोगों ने जैनधर्म से [illegible] होकर नये नये मत पन्थ निकाले हैं इसका मुख्य कारण यही है कि उन्होंने जैनागम गुरु गम्यता से [illegible] वाचे किंतु अपनी अल्प बुद्धि से शास्त्रों के वास्तविक अर्थ को न जानकर मनः कल्पना से अर्थ का [illegible] कर डाला है और वाद अभिनिवेश के कारण पकड़ी बात को नहीं छोड़ने से नये नये मत निकाल [illegible] हैं आज भी हम देखते हैं कि एक ही मान्यता वाले एक ही शब्द के पृथक् २ अर्थ कर आपस में [illegible] झगड़ते हैं और आगे चलकर वे ही नये २ पंथ और मत स्थापन कर डालते हैं। अतः जैनधर्म की यह [illegible] मर्याद है कि गुरु महाराज के दी हुई वाचना से ही शिष्य आगम वांचे।

प्रत्येक तीर्थङ्कर अपने शासन समय गणधर स्थापन करते हैं इसका मतलब भी यही है कि वे गण-धर अपने शिष्यों को आगमों की वाचना दें और यही मतलव गणिपद का है। उपाध्याय पद की तो और [illegible] विशेषता है कि वह चतुर्विध श्रीसंघ को सूत्र अर्थ की वाचना दे। साधुओं की सात मंडली में भी वाचना का विधान है जैसे सूत्र वाचना अर्थ वाचना अर्थात् साधु शामिल होकर एक मंडली में बैठकर गुरु महाराज से सूत्र काल में सूत्र वांचना और अर्थ काल में अर्थ वाचना ले। ऐसी वाचनायें तो प्रत्येक गच्छ में प्रत्येक दिन होती ही रहती हैं। पर जब काल दुकाल में प्रचलित वाचना बन्द हो जाती है तब एक विशेष वाचना की आवश्यकता रहती है यहाँ पर उस विशेष वाचना का ही प्रसंग है। और ऐसी वाचनाए निम्नलिखित हुई हैं।

१—आचार्य भद्रबाहु के समय पाटलीपुत्र नगर में पहिली वाचना हुई। उस समय गणधर [illegible] द्वादशांग में एकादशांग ठीक व्यवस्थित किये और बारहवां अंग के लिए आर्य स्थूलभद्र को दशपूर्व [illegible] और चार पूर्व मूल का अभ्यास करवाया। इस वाचना में गणधर रचित अंग सूत्र ज्यों के त्यों नहीं [illegible] रहे थे। कारण, बारहवर्षीय दुकाल के कारण मुनिजन यथावत् आगमों को याद नहीं रख सके परन्तु जिस [illegible] ज्ञान जिस जिस साधुओं को याद रहा उसको ही संकलना कर पुनः एकादशांग व्यवस्था किया इसके लिये देखो तित्थोगालिपइन्ना का पाठ—

ते दाई एक्कमेक्कं, गयमयमेमा चिरंम दट्ठुणम् । परलोगगमणपच्चागय व्व मण्णंति अप्पाणं ॥ [illegible]
ते बिंति एक्कमेक्कं, सज्झाओ कस्स कित्तिओ धरति । हि हु उक्कालेणं अम्हं नट्ठो हु सज्झाओ ॥ [illegible]
जं जस्स धरइ कंठे, तं परियट्टिऊण सव्वेसिम् । तो गेहिं पिंडिताइं, तहियं एक्कारसंगाइं ॥ [illegible]

[illegible] आइयइ × × [illegible]

[illegible]

[श्री जैन [illegible]

इनके अलावा कालकाचार्य अपने प्रशिष्य सागरचन्द्रसूरि से कहता है कि 'षट्स्थान आगम की हानी होती आई है। अतः गणधर रचित आगम भद्रबाहु के समय ज्यों के त्यों नहीं रहे थे तो दुकाल के अन्त में तो रहते ही कहां से? फिर भी उस समय एकादशांग एवं पूर्वो के अलावा उपांगादि सूत्रों की रचना नहीं हुई थी। हाँ, आर्य्य शय्यंभवसूरि ने अपने शिष्य (पुत्र) मणक के लिए पूर्वों से उद्धार कर दशवैकालिकसूत्र की रचना की थी। तदनन्तर आर्य भद्रबाहु ने तीन छेदसूत्र तथा निर्युक्तियों की रचना की और बाद में स्थविरों ने उपांगादि कालिक उत्कालिक सूत्रों की रचना की थी।

२—आर्य्यरक्षितसूरि के समय तक, जैनागमों के एक ही सूत्र एवं शब्द से चारों अनुयोग की व्याख्या होती थी पर आर्यरक्षित सूरिने भविष्य में मंद बुद्धिवालों की सुविधा के लिए, चारों अनुयोग पृथक् २ कर दिये। उस समय भी मूल आगमों को न जाने कितनी हानि पहुँची होगी। और कितने संक्षिप्त करने पड़े होंगे ?

आर्य्यरक्षितसूरि ने चारों अनुयोग पृथक् २ कर दिये तो क्या ८४ आगमों की संकलना आपके ही समय में हो गई थी या बाद में हुई इसके जानने के लिए कोई भी साधन इस समय मेरे पास नहीं है। पर संभव होता है कि यह कार्य आर्यरक्षित के समय ही हुआ था।

३—आर्य्यवज्र और आर्य्यवज्रसैन इन दोनों आचार्यों के समय भी दो भयंकर दुकाल पड़े और उस समय भी साधुगण का पठन-पाठन बन्द-सा होगया अतः दुकाल के अन्त में आगम वाचना की परमावश्यकता थी।

उस समय आर्य्यवज्र दशपूर्वधर थे परन्तु आर्य्यवज्र और वज्रसैन का स्वर्गवास हो गया था। आचार्य यक्षदेवसूरि दशपूर्वधर आर्य थे। वज्र और वज्रसैन के साधु साध्वियों को एकत्र कर उनकी व्यवस्था आपने ही की थी अतः उस समय आगम वाचना आपने ही दी थी। इस वाचना का स्थान शायद सोपारपट्टन ही होगा। कारण, पट्टावली में उल्लेख मिलता है कि चन्द्र नागेन्द्रादि मुनियों को यक्षदेवसूरि ने सोपारपट्टन में आगमों की वाचना दी थी। अतः आर्यवज्र और वज्रसैन के समय के दुकाल के बाद की आगम वाचना आचार्य यक्षदेवसूरि के नायकत्व में सोपारपट्टन में ही हुई होगी।

४—आर्य्य स्कन्दिल के समय के दुकाल के अन्त में आगम वाचना दो स्थानों में हुई। यह प्रसिद्ध ही है कि मथुरा में आर्य्य स्कन्दिल और वल्लभी में आर्य्य नागार्जुन के नायकत्व में वाचना हुई। साथ में यह भी निश्चय है कि आर्य स्कन्दिल की वाचना में जितने आगम एवं सूत्रों की वाचना हुई उतने ही आगमों को उस समय तथा बाद में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणजी ने वल्लभी नगरी में लिखे थे। उन सब की संख्या ८४ आगमों के नाम से जैन शासन में खूब प्रसिद्ध है।

गणधर रचित आगम बहुत विस्तार वाले थे। कहा जाता है कि एक आचारांग सूत्र के १८००० पद थे और एक पद के श्लोकों का हिसाब इस प्रकार बतलाया है कि एक पद के अक्षर १८३४८३०७८८९ होते हैं इनको ३२ अक्षरों का एक श्लोक के हिसाब से बनावे जाय तो ५१०८८४६२१॥ श्लोक होते हैं +

+ एगवन कोडी लक्खा, अट्ठे व सहस्स चुलसीय, सय छक्कं नायव्वं, सड्ढा एगवीस समयम्मि।

[illegible]

यह तो हुआ एक पद, जब आचारांग सूत्र के १८००० पद के श्लोक गिने जांय तो ९११९५९२३१८७०००
श्लोक तो एक आचारांगसूत्र के होते हैं तब आगे के अंगसूत्र द्विगुणित बतलाये हैं परन्तु उनसे कम हो
होते आज आचारांग सूत्र के कुल २५२५ श्लोक रहे हैं। जिसको हम मूलपद और पदों के श्लोक तथा
वर्तमान में रहे हुए श्लोकों के साथ कोष्टक में दे देते हैं

नं०	आगम नामावली	पदसंख्या	पद के श्लोकों की संख्या	वर्तमान श्लोक
१	श्री आचारांग	१८०००	९११९५९२३१८७०००	२५२५
२	,, सूत्रकृतांग	३६०००	१८२९१८४६३७४०००	२१००
३	,, स्थानायांग	७२०००	३६७८३६९२७४८०००	३६००
४	,, समवायांग	१४४०००	७३५६७३८५४९६०००	१६६७
५	,, विवाह प्रज्ञप्ति	२८८०००	१४७१३४७७०९९२०००	१५७५२
६	,, ज्ञाताधर्मकाथांग	५७६०००	२९४२६९५४१९८४०००	५४००
७	,, उपासक दशांग	११५२०००	५८८५३९०८३९६८०००	८१२
८	,, अंतगड़दशांग	२३०४८००	११७७०७८१६७९३६०००	८९९
९	,, अनुत्तरोवाई	४६०८०००	२३५४१५६३३५८७२०००	१९२
१०	,, प्रश्नव्याकरण	९२१६०००	४७०८३१२६७१७४४०००	१२५६
११	,, विपाकसूत्र	१८४३२०००	९४१६६२५३४३४९८००९	१२१६

उपरोक्त कोष्टक से पाठक जान सकते हैं कि मूल द्वादशांग कितने विस्तार वाले थे और वाचना के समय कितने रह गये फिर भी विशेषता यह है कि सूत्रों के अध्ययन उद्देश था उतना ही रहा है। जैसे आचारांग सूत्र के १६ अध्ययन थे तो आज भी १६ ही हैं। उपासकदशांग सूत्र के दशाध्ययन और दश श्रावकों का वर्णन था आज भी दशाध्ययन में दश श्रावकों का वर्णन है पर श्लोक संख्या कम हो गई इस श्लोक संख्या कम होने के कारण आर्य्यरक्षित सूरि ने चारों अनुयोग अलग २ किये थे जब मूल आगमों की सूरत बदल गई थी और उस समय श्लोक संख्या भी कम कर दी गई थी।

दूसरा आर्यस्कन्दिल का समय था परन्तु आर्यस्कन्दिल के समय वल्लभी में नागार्जुन द्वारा भी वाचना हुई थी तो इन दोनों की वाचना प्रायः मिलती जुलती थी केवल थोड़ा सा पाठान्तर [illegible] रहा वह टीकाकारों ने वाचनान्तर के नाम से टीका में रख दिया। अतः आर्य्य स्कन्दिल के समय [illegible] को कम किया जाना संभव नहीं होता है। पर यह कार्य आर्यरक्षितसूरि द्वारा ही हुआ संभव होता है [illegible] जब तक इसका पूरा प्रमाण नहीं मिल जाय वहाँ तक निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। [illegible] नहीं कि मूल आगमों का संक्षिप्त अवश्य हुआ है। एकादशांग तीर्थंकर कथित और गणधर [illegible] किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

आर्यस्कन्दिलसूरि के समय जो आगमों की वाचना हुई और वे आगम पुस्तकों पर [illegible] आगमों की संख्या ८४ की कही जाती है और उनके नामों का निर्देश आर्य्य देवर्द्धिगणि [illegible] अपने नन्दीसूत्र में कालिक उत्कालिक सूत्रों के नाम से किया है उनको यहाँ उद्धृत कर देते हैं।

[[illegible]

— कालिक सूत्रों के नाम —

(१) श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र
(२) श्री दशाश्रुतस्कन्धजी सूत्र
(३) श्री वृहत्कल्पजी सूत्र
(४) श्री व्यवहारजी सूत्र
(५) श्री निशिथजी सूत्र
(६) श्री महानिशिथजी सूत्र
(७) श्री ऋषिभाषित सूत्र
(८) श्री जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र
(९) श्री द्वीपसागर प्रज्ञप्ति सूत्र
(१०) श्री चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र
(११) श्री क्षुलकवैमान प्रवृति
(१२) श्री महावैमान प्रवृति
(१३) श्री अंगचूलिका सूत्र
(१४) श्री वंगचूलिका सूत्र
(१५) श्री विवाहाचूलिका सूत्र
(१६) श्री आरूणोत्पतिक सूत्र
(१७) श्री वारूणोत्पातिक सूत्र
(१८) श्री गारूड़ोत्पातिक सूत्र
(१९) श्री धरणोत्पातिक सूत्र
(२०) श्री वैश्रमणोत्पातिक सूत्र
(२१) श्री वैलंधरोत्पातिक सूत्र
(२२) श्री देवीन्द्रोत्पातिक सूत्र
(२३) श्री उत्थान सूत्र
(२४) श्री समुत्थान सूत्र
(२५) श्री नागपरिआवलिका सूत्र
(२६) श्री निरयावलिका सूत्र
(२७) श्री कप्पयाजी सूत्र
(२८) श्री कप्पवडिंसियासूत्र
(२९) श्री फुप्फीयाजी सूत्र
(३०) श्री पुप्फचूलियाजी सूत्र
(३१) श्री वण्हियाजी सूत्र
(३२) श्री विन्हीदशा सूत्र
(३३) श्री आसीविष भावना सूत्र
(३४) श्री दृष्टिविष भावना सूत्र
(३५) श्री चरणसुमिण भावना सूत्र
(३६) श्री महासुमिण भावना सूत्र
(३७) श्री तेजस निसर्ग सूत्र

उत्कालिक सूत्रों के नाम

(१) श्री दशवैकालिक सूत्र
(२) श्री कल्पाकल्प सूत्र
(३) श्री चूलकल्प सूत्र
(४) श्री महाकल्प सूत्र
(५) श्री उत्पातिक सूत्र
(६) श्री राजप्रश्नी सूत्र
(७) श्री जीवाभिगम सूत्र
(८) श्री प्रज्ञापनासूत्र
(९) श्री महाप्रज्ञापनासूत्र
(१०) श्री प्रमादाप्रमादसूत्र
(११) श्री नन्दीसूत्र
(१२) श्री अनुयोगद्वारसूत्र
(१३) श्री देवीन्द्रस्तुतिसूत्र
(१४) श्री तंदुलव्याली सूत्र
(१५) श्री चन्द्रविजय सूत्र
(१६) श्री सूर्य्यप्रज्ञप्तिःसूत्र
(१७) श्री पौरसी मंडल सूत्र
(१८) श्री मंडलप्रवेश सूत्र
(१९) श्री वियाचारण सूत्र
(२०) श्री विगिच्छओसूत्र
(२१) श्री गणिविजय सूत्र
(२२) श्रीध्यानविभूति सूत्र
(२३) श्री मरणविभूतिसूत्र
(२४) श्री आत्मविशुद्धि सूत्र
(२५) श्री वीतराग सूत्र
(२६) श्री संलेखणासूत्र
(२७) श्री व्यवहार कल्प सूत्र
(२८) श्री चरणविधिसूत्र
(२९) श्री आउर प्रत्यख्यानसूत्र
(३०) श्री महाप्रत्याख्यान सूत्र

प्रसंगोपात श्री स्थानायांग सूत्र में दशदशांग मे

(१) श्री आचार दशा
(२) श्री बन्ध दशा
(३) श्री दोगिद्धिदशा
(४) श्री दीर्घदशा
(५) श्री संक्षेपितदशा
(शेष पांच के नाम ऊपर आगये हैं।)

बारह अंगों के नाम

(१) श्री आचारांगसूत्र
(२) श्री सूत्रकृतांगसूत्र
(३) श्रीस्थानायांगसूत्र
(४) श्री समवायांगसूत्र
(५) श्री भगवतीजीसूत्र
(६) श्री ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र
(७) श्री उपासक दशांगसूत्र
(८) श्री अंतगढ़ दशांगसूत्र
(९) श्री अनुत्तरोपपातिक सूत्र
(१०) श्री प्रश्नव्याकरणसूत्र
(११) श्री विपाकसूत्र
(१२) श्री दृष्टिवाद सूत्र

इस प्रकार ८४ आगमों की व्यवस्था एवं संकलना करके पुस्तकों पर लिखे गये और यह बात प्राचीन समय से प्रसिद्ध भी है कि जैनों में ८४ आगमों की मान्यता है।

जब जैनियों में ८४ आगमों की मान्यता है तब ये क्यों कहा जाता है कि हम ४५ आगम मानते हैं ? इसके कई कारण हैं। एक कारण तो यह है कि वे ८४ आगम ज्यों का त्यों नहीं रहा। दूसरा कारण ८४ आगमों में ऐसे भी आगम हैं कि जिसको पढ़ने से साक्षात् देवता आकर खड़े हो जाते थे जैसे अरुण, वारुण, धरण, वे श्रमण उत्पातिक सूत्र थे। उन्हों को समय को देख कर भंडार कर दिये। तीसरा कारण गुरु महाराज शिष्य को जिस आगम की वाचना देते हैं उसके योगोद्वाहन (तप) कराये जाते है उसके लिये वर्त्तमान साधुओं के शरीर शक्ति वगैरह देखके ४५ आगमों की मान्यता रक्खी है कि वर्त्तमान साधु ४५ आगमों के योगाद्वाहन कर सकते हैं परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि ४५ आगमों के अलावा कोई आगम न माना जाय, आगम ही क्यों पर पूर्वाचार्य्यो के निर्माण किये ग्रन्थ भी प्रमाणिक माने जाते हैं।

इसके अलावा पूर्वाचार्य्यों के निर्माण किये कई ग्रन्थ भी लिखे गये होंगे। जैसे आगमवादियों की मान्यता आगमों की थी वैसे ही निगमवादियों की मान्यतानिगमों की थी। निगमवादियों का अस्तित्व किस समय से प्रारंभ होता है और उनके निगम ग्रन्थ कब और किसने बनाये इसके निर्णय के लिये तो अभी शोध खोज की जरूरत है पर एक समय निगमवादियों का खूब जोर शोर था इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है क्योंकि शिला लेखों वगैरह में निगमवादियों के उल्लेख मिलते हैं।

जैन शासन में दो प्रकार के मार्ग बतलाते हैं १—निवृत्ति २—प्रवृति जिसमें आगमवादी निवृत्ति मार्ग के पोषक थे वे आगमों का पठन पाठन एवं धर्मोपदेश देकर स्वात्मा के साथ परात्मा का कल्याण करते थे अर्थात् वे पांच महाव्रतधारी होने से जिस किसी धार्मिक कार्य्य में आरंभ सारंभ होता हो उसमें प्रवृत्ति तो क्या पर अनुमति तक भी नहीं देते थे।

दूसरे निगमवादी प्रवृति मार्ग के प्रचारक थे। मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाऐं संघ विधान मंत्र [illegible] कार्य तथा गृहस्थों के सोलह संस्कार आदि जितने प्रवृति मार्ग के कार्य्य थे वे सब निगमवादी कराया करते थे।

परन्तु जैसे चैत्यवादियों में विकार पैदा होने से समाज उनसे खिलाफ हो गया था वैसे ही निगम वादियों का हाल हुआ पर उस समय उनको सुधारने की किसी को नहीं सूझी उलटे उनके [illegible] नष्ट करने का प्रयत्न किया गया जिसका नतीजा यह हुआ कि शासन का एक अंग नष्ट होगया और [illegible] [illegible] कहीं होगई कि जो निगमवादियों के कार्य थे वे अब कौन करे ?

[श्री जैन [illegible]

पूजा प्रभावना प्रतिष्ठा संघ विधान वगैरह कि जिसमें धर्म का मिश्रण था वे कार्य तो आगमवादियों के शिर पर आ पड़े कि जिन कार्यों में वे पहले अनुमोदन के अलावा आदेश नहीं दिया करते थे वे स्वयं करने लगे और गृहस्थों के संस्कार वगैरह कार्य विधर्मी ब्राह्मणों के हाथ में देने पड़े। यही कारण है कि आज जैनों के घरों में संस्कार विधान एवं पर्व व्रत वगैरह होते वे प्रायः सब विधर्मियों के ही होते हैं अर्थात् वे सब कार्य उन विधर्मियों की ही विधि विधान से होते हैं।

निगमवादियों को नष्ट करने से जैन समाज को बड़ा भारी नुकसान उठाना पड़ा है। एक तरफ तो आगमवादियों को निगमवादी बनकर अपने संयम से हाथ धो बैठना पड़ा है क्योंकि जिन्होंने तीन करण तीन योग से आरंभ का त्याग किया था अब वे केवल उपदेश ही नहीं पर आदेश तक भी देने लग गये। दूसरी ओर जैन गृहस्थ लोग अपने धर्म से पतित बनकर सब कार्य विधर्मियों के विधि विधान से करने लग गये इतना ही क्यों पर उनके संस्कार ही विधर्मियों के पड़ गये हैं।

निगमवादी जिन निगमशास्त्रों को मानते थे वे उपनिषद् के नाम से ओलखाये जाते थे और उन उपनिषदों में संसार मार्ग के साथ मोक्ष मार्ग का भी निर्देश किया हुआ है। जिसको मैं यहां दर्ज कर देता हूँ।

१—उत्तरारण्यक नाम प्रथमोपनिषद्—इसमें दर्शन के भेदों का निरूपण किया है।

२—पंचाध्याय नाम द्वितीयोपनिषद्—इसके अलग अलग पांच अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में विविध प्रकार के विषयों का वर्णन है।

३—बहुऋचनाम तृतीयोपनिषद्—इसमें चक्रवर्ती भरतमहाराज के निर्माण किये चार वेदों की श्रुतियों को असली रूप में दर्ज किया है।

४—विज्ञानघनार्णवनाम चतुर्थोपनिषद्—इसमें विविध प्रकार से ज्ञान का स्वरूप बतलाया है।

५—विज्ञानेश्वराख्य पंचमोपनिषद—इसमें ज्ञानी पुरुषों का विस्तार से वर्णन किया है।

६—विज्ञानगुणार्णवनाम षष्ठोपनिषद—इसमें भिन्न २ प्रकार से ज्ञान के गुणों का अधिकार है।

७—नवतत्त्वनिदाननिर्णयाख्य सप्तमोपनिषद्—इसमें नौ तत्त्व का विस्तार है।

८—तत्त्वार्थनिधिरत्नाकराभिधाष्टमोपनिषद—इसमें विविध प्रकार से तत्त्वों का स्वरूप है।

९—विशुद्धात्म गुण गंभिराख्य नवमोपनिषद्—इसमें शुद्ध आत्मा के ज्ञानादि गुणों का वर्णन है।

१०—अर्हद्धर्मागमनिर्णयाख्य दशमोपनिषद्—इसमें तीर्थङ्कर भगवान के आगमों का अधिकार है।

११—उत्सर्गापवादवचनानैकांताभिधानैकादशमोपनिषद—इसमें उत्सर्गापवाद एवं अनेकान्त मत है।

१२—अस्तिनास्तिविवेक निगम निर्णयाख्य द्वादशमोपनिषद्—इसमें सप्त भंगी का विस्तार है।

१३—निज मनोनयनाह्लादाख्यत्रयोदशमोपनिषद्—इसमें मन और चक्षु को आनंद देने वाला०

१४—रत्नत्रयनिदाननिर्णयनामचतुर्दशमोपनिषद्—इसमें ज्ञान दर्शन और चरित्र रूप रत्नत्रिय का०

१५—सिद्धागमसंकेतस्तवकाख्यपंचदशमोपनिषद्—इसमें आगमों में आये हुये सांकेतिक शब्दों का विस्तार से खुल्लासा किया है।

१६—भव्यजनभयापहारकनामषोडशोपनिषद्—इसमें भव्यजीवों के भय का नाश करने वाला वि०

१७—रागिजननिर्वेदजनकाख्य सप्तदशमोपनिषद्—इसमें रागीपुरुषों को वैराग्योत्पन्न होनेवाले वि०

१८—स्त्रीमुक्तिनिदाननिर्णयाख्याष्टादशमोपनिषद्—इसमें स्त्रियां भी मोक्ष प्राप्त कर सकें—वर्णन है।

१९—कविजनकल्पद्रुमोपमाख्यैकोनविंशतितमोपनिषद्—इसमें कवियों को कल्पवृक्ष बतलाने का वि०
२०—सकलप्रपंचपथ निदाननामविंशतितमोपनिषद्—इसमें जितने प्रपंची मार्ग हैं उनका वर्णन है।
२१—श्राद्धधर्मसाध्यापवर्गनामैकविंशतितमोपनिषद्—इसमें गृहस्थ धर्म से भी मुक्तिमार्ग की वि०
२२—सप्तनयनिदाननाम द्वाविंशतितमोपनिषद्—इसमें सात नय का स्वरूप विस्तार से बतलाया है।
२३—बंधमोक्षापगमनाम त्रयोविंशतितमोपनिषद्—इसमें बंध मोक्ष का स्वरूप है।
२४—इष्टकमनीयसिद्धनामत्रयोविंशतितमोपनिषद्—इसमें मनोइच्छित सिद्धियां प्राप्त करने का वि०
२५—ब्रह्मकमनीयसिद्धयभिधाननाम पंचीवंशतितमोपनिषद्—इसमें योगमार्ग से मोक्ष प्राप्त करने की वि०
२६—नैः कर्मकमनीयाख्य षड्विंशतितमवेदांतं—इसमें कर्म कागड से रहित वेदांत स्वरूप निरूपण है।
२७—चतुर्वर्गचिंतामणिनाम सप्तविंशतितमवेदांतं—इसमें काम अर्थ धर्म और मोक्ष चारपुरुषार्थ का वि०
२८—पंचज्ञानस्वरूपवेदनाख्यमष्टाविंशतितमवेदांतं—इसमें पांच ज्ञान का विस्तार से वर्णन है।
२९—पंचदर्शनस्वरूपरहस्याभिधानैकोनत्रिंशतमोपनिषद्—इसमें पांच प्रकार के दर्शन का स्वरूप है।
३०—पंचचारित्रस्वरूपरहस्याभिधान त्रिंशत्तमोपनिषद्—इसमें पांच प्रकार के चारित्र का वर्णन है।
३१—निगमागमवाक्यविवरणख्यैकत्रिंशत्तमोपनिषद्—इसमें निगम और आगम का विषय है
३२—व्यवहारसाध्यापवर्गनामद्वात्रिंशत्तमवेदांतं—इसमें व्यवहार मार्ग से मोक्ष की साधना का वि०
३३—निश्चयैकसाध्यापवर्गभिधान त्रयस्त्रिंशत्तमोपनिषद्—इसमें निश्चयमार्ग से मोक्ष प्राप्ती का वर्णन है
३४—प्रायश्चित्तैकसाध्यापवर्गाख्यचतुस्त्रिंशत्तमोपनिषद्—इसमें लगे हुए पाप का प्रायश्चित करने का वि०
३५—दर्शनैकसाध्यापवर्गनाम पंचत्रिंशत्तमवेदांतं—दर्शन से मोक्ष साधन का वर्णन है।
३६—विरताविरतसमानापवर्गाह्व षट्त्रिंशत्तमवेदांतं—समभाव रखने से ही मोक्ष प्राप्त होता है

'जैनधर्म का प्राचीन इतिहास भाग दूसरा'

इन उपनिषदों की विषय सूची से पाया जाता है कि इनमें गृहस्थ धर्म के अलावा जैनधर्म के तात्त्विक आगमिक और दर्शनिक ज्ञान का भी प्रतिपादन किया है। अतः उपनिषद् प्राचीन निगम शास्त्र हैं पर वर्तमान में इन उपनिषदों का आस्तित्व कहीं भी पाया नहीं जाता है। शायद निगमवादियों के साथ उनके निगम शास्त्र भी लोप हो गये हों खैर इन नामों से इतना तो जाना जा सकता है कि पूर्व जमाने में निगमवादी और उनके निगमशास्त्र थे।

राजा विक्रमादित्य आपका कुछ वर्णन तो आचार्य सिद्धसेनदिवाकर और आचार्य जीवदेवसूरि के अधिकार में आ गया है इनके अलावा कई जैनाचार्यों ने राजा विक्रमादित्य के जीवन के विषय बड़े-बड़े ग्रन्थों का निर्माण भी किया है और उनमें से बहुत से ग्रन्थ अद्यावधि विद्यमान भी हैं। यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने पृथ्वी निऋण करके अपने नाम का संवत् चलाया और वह संवत् अद्यावधि चल भी रहा है। अतः राजा विक्रमादीत्य भारत में एक सम्राट् राजा हुआ, ऐसी मान्यता चिरकाल से चली आ रही है परन्तु वर्तमान युग में इतिहास की शोध खोज से कई विद्वान इस निर्णय पर आये हैं कि संवत चलाने वाले विक्रमादित्य नाम का कोई राजा नहीं हुआ है। परन्तु 'विक्रम' यह एक किसी शक्तिशाली वीर भूपति का विशेषण है और जो विक्रम संवत चल रहा है यह वास्तव में कृतसंवत् मालव संवत् एवं मालवगणसंवत् था जो मालव प्रजा की विजय का द्योतक है। उसी मालव संवत् के साथ आगे चलकर विक्रम की नौवी शताब्दी में संवत् के साथ विक्रम नाम लग जाने से विक्रम संवत् बन गया है और इस बात की सावूति के लिये निम्न लिखित शिलालेख बतलाये जाते हैं:—

"श्रीर्म्मालवगणाम्नाते, प्रशस्ते कृतसंज्ञिते। एक षष्ठ्यधिके प्राप्ते, समाशतचतुष्टये [॥] प्रावृका (ट्का) ले शुभे प्राप्ते।"

मंदसौर से मिले हुये नरवर्मन् के समय के लेख में

"कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेष्वेकाशीत्युत्तरेष्वस्यां मालवपूर्वायां [४००] ८०१ कार्तिक शुक्लपंचम्याम"।

राजपूताना म्यूजिअम (अजमेर में रखे हुये नगरी (मध्यमिका, उदयपुर राज्य में) के शिलालेख में।

"मालवानां गणस्थित्या याते शत चतुष्टये। त्रिनवत्यधिकेब्दानाम्रि (मृ) तौ सेव्यघनस्त (स्व) ने॥ सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेह्नि त्रयोदशे॥"

मंदसौर से मिले हुये कुमारगुप्त (प्रथम) के समय के शिलालेख में

"पंचसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्नवति सहितेषु मालवगणस्थितिवशात्कालज्ञानाय लिखितेषु।"

मंदसौर से मिले हुये यशोधर्मन (विष्णुवर्द्धन के समय के शिलालेख में

"संवत्सरशतैर्यातैः सपञ्चनवत्यर्गलैः, [।] सप्तभिमार्यालवेशानां"।

भारतीय प्रा० लिपिमाला १६६

कोटा के पास कणस्वा के शिवमंदिर में लगे हुये शिलालेखों में—

"कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेष्वष्टाविंशेषु ४००-२०८ फाल्गुण (न) बहुलस्यापंचदश्यामेतस्यां पूर्वायां।"

फ्ली; गु० इं०, पृ० २५३

यातेषु चतुर्षु क्रि (कृ) तेषु शतेषु सौम्ये (म्यै) ष्वा ष्टा) शीतसोत्तरपदेष्विह वत्स [रेषु] शुक्ले त्रयोदशदिने भुवि कार्तिकस्य मासस्य सर्वजनचितसुखावहस्य।"

फ्ली, गु० इं० पृ० ४७०

उपरोक्त शिलालेखों में कृत-मालव-मालवगण संवत् का प्रयोग हुआ है। परन्तु संवत् के साथ विक्रम का नाम निर्देश तक कहीं पर भी नहीं हुआ है यदि इस संवत को राजा विक्रम ने ही चलाया होगा तो संवत् के प्रारम्भ में ही विक्रम का नाम अवश्य होता अतः विद्वानों का मत है कि प्रस्तुत संवत् किसी विक्रम

१९—कविजनकल्पद्रुमोपमाख्यैकोनविंशतितमोपनिषद्—इसमें कवियों को कल्पवृक्ष बतलाने का वि०
२०—सकलप्रपंचपथ निदाननामविंशतितमोपनिषद्—इसमें जितने प्रपंची मार्ग हैं उनका वर्णन है।
२१—श्राद्धधर्मसाध्यापवर्गनामैकविंशतितमोपनिषद्—इसमें गृहस्थ धर्म से भी मुक्तिमार्ग की वि०
२२—सप्तनयनिदाननाम द्वाविंशतितमोपनिषद्—इसमें सात नय का स्वरूप विस्तार से बतलाया है।
२३—बंधमोक्षापगमनाम त्रयोविंशतितमोपनिषद्—इसमें बंध मोक्ष का स्वरूप है।
२४—इष्टकमनीयसिद्धनामत्रयोविंशतितमोपनिषद्—इसमें मनोइच्छित सिद्धियां प्राप्त करने का वि०
२५—ब्रह्मकमनीयसिद्धयभिधाननाम पंचीवंशतितमोपनिषद—इसमें योगमार्ग से मोक्ष प्राप्त करने की वि०
२६—नैः कर्मकमनीयाख्य षड्विंशतितमवेदांतं—इसमें कर्म काण्ड से रहित वेदांत स्वरूप निरूपण है।
२७—चतुर्वर्गचिंतामणिनाम सप्तविंशतितमवेदांतं—इसमें काम अर्थ धर्म और मोक्ष चारपुरुषार्थ का वि०
२८—पंचज्ञानस्वरूपवेदनाख्यमष्टाविंशतितमवेदांतं—इसमें पांच ज्ञान का विस्तार से वर्णन है।
२९—पंचदर्शनस्वरूपरहस्याभिधानैकोनत्रिंशतमोपनिपद्—इसमें पांच प्रकार के दर्शन का स्वरूप है।
३०—पंचचारित्रस्वरूपरहस्याभिधान त्रिंशत्तमोपनिपद्—इसमें पांच प्रकार के चारित्र का वर्णन है।
३१—निगमागमवाक्यविवरणख्यैकत्रिंशत्तमोपनिपद—इसमें निगम और आगम का विषय है
३२—व्यवहारसाध्यापवर्गनामद्वात्रिंशत्तमवेदांतं—इसमें व्यवहार मार्ग से मोक्ष की साधना का वि०
३३—निश्चयैकसाध्यापवर्गभिधान त्रयस्त्रिंशत्तमोपनिपद—इसमें निश्चयमार्ग से मोक्ष प्राप्ती का वर्णन है।
३४—प्रायश्चित्तैकसाध्यापवर्गाख्यचतुस्त्रिंशत्तमोपनिपद—इसमें लगे हुए पाप का प्रायश्चित करने का वि०
३५—दर्शनैकसाध्यापवर्गनाम पंचत्रिंशत्तमवेदांतं—दर्शन से मोक्ष साधन का वर्णन है।
३६—विरताविरतसमानापवर्गाह्व पट्त्रिंशत्तमवेदांतं—समभाव रखने से ही मोक्ष प्राप्त होता है

'जैनधर्म का प्राचीन इतिहास भाग दूसरा पृ० ...

इन उपनिपदों की विषय सूची से पाया जाता है कि इनमें गृहस्थ धर्म के अलावा जैनधर्म के तात्विक आगमिक और दर्शनिक ज्ञान का भी प्रतिपादन किया है। अतः उपनिषद प्राचीन निगम शास्त्र है पर वर्तमान में इन उपनिपदों का अस्तित्व कहीं भी पाया नहीं जाता है। शायद निगमवादियों के साथ उनके निगम शास्त्र भी लोप हो गये हों खैर इन नामों से इतना तो जाना जा सकता है कि पूर्व जमाने में निगमवादी और उनके निगमशास्त्र थे।

राजा विक्रमादित्य आपका कुछ वर्णन तो आचार्य सिद्धसेनदिवाकर और आचार्य जीवदेवसूरि के अधिकार में आ गया है इनके अलावा कई जैनाचार्यों ने राजा विक्रमादित्य के जीवन के विषय बड़े-बड़े ग्रन्थों का निर्माण भी किया है और उनमें से बहुत से ग्रन्थ अद्यावधि विद्यमान भी हैं। यह बात सर्वत्र सिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने पृथ्वी निऋण करके अपने नाम का संवत् चलाया और वह संवत् अद्यावधि चल भी रहा है। अतः राजा विक्रमादीत्य भारत में एक सम्राट् राजा हुआ, ऐसी मान्यता चिरकाल से चली आ रही है परन्तु वर्तमान युग में इतिहास की शोध खोज से कई विद्वान इस निर्णय पर आये हैं कि संवत चलाने वाले विक्रमादित्य नाम का कोई राजा नहीं हुआ है। परन्तु 'विक्रम' यह एक किसी शक्तिशाली वीर भूपति का विशेषण है और जो विक्रम संवत चल रहा है यह वास्तव में कृतसंवत् मालव संवत् एवं मालवगणसंवत् था जो मालव प्रजा की विजय का द्योतक है। उसी मालव संवत् के साथ आगे चलकर विक्रम की नौवी शताब्दी में संवत् के साथ विक्रम नाम लग जाने से विक्रम संवत् बन गया और इस बात की साबूति के लिये निम्न लिखित शिलालेख बतलाये जाते हैं:—

"श्रीर्म्मालवगणाम्नाते, प्रशस्ते कृतसंज्ञिते। एक पष्ठ्यधिके प्राप्ते, समाशतचतुष्टये [।।] प्रावृक्का (ट्का) ले शुभे प्राप्ते।"

मंदसौर से मिले हुये नरवर्मन् के समय के लेख में

"कृतेपु चतुर्पु वर्षशतेष्वेकाशीत्युत्तरेष्वस्यां मालवपूर्वायां [४००] ८०१ कार्तिक शुक्लपंचम्याम"। राजपूताना म्यूजिअम (अजमेर में रखे हुये नगरी (मध्यमिका, उदयपुर राज्य में) के शिल लेख में।

"मालवानां गणस्थित्या याते शत चतुष्टये। त्रिनवत्यधिकेब्दानाम्रि (मृ) तौ सेव्यघनस्त (स्व) ने ।। सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेह्नि त्रयोदशे ।।"

मंदसौर से मिले हुये कुमारगुप्त (प्रथम) के समय के शिल लेख में

"पंचसु शतेपु शरदां यातेष्वेकान्नवति सहितेपु मालवगणस्थितिवशात्कालज्ञानाय लिखितेपु।"

मंदसौर से मिले हुये यशोधर्मन (विष्णुवर्द्धन के समय के शिल लेख में

"संवत्सरशतैर्यातैः सपञ्चनवत्यर्गलैः, [।] सप्तभिमार्यालवेशानां"।

भारतीय प्रा० लिपिमाला १६६

कोटा के पास कणस्वा के शिवमंदिर में लगे हुये शिलालेखों में—

"कृतेपु चतुर्पु वर्षशतेष्वष्टाविंशेपु ४००-२०८ फाल्गुण (न) वहुलस्यापंचदश्यामेतस्यां पूर्वायां।"

पर्ली; गु० इं, पृ० २५३

यातेपु चतुर्पु क्रि (कृ) तेपु शतेपु सौस्ये (म्यै) प्वा ष्टा) शीतमोत्तरपदेष्विह वत्स [रेप] शुक्ले त्रयोदशदिने भुवि कार्तिकस्य मासस्य सर्वजनचितसुखावहस्य।"

पर्ली, गु० इं० पृ ४३०

उपरोक्त शिलालेखों में कृत-मालव-मालवगण संवत् का प्रयोग हुआ है। परन्तु संवत् के साथ विक्रम का नाम निर्देश तक कहीं पर भी नहीं हुआ है यदि इस संवत को राजा विक्रम ने ही चलाया होगा तो संवत् के प्रारम्भ में ही विक्रम का नाम अवश्य होता अतः विद्वानों का मत है कि प्रस्तुत संवत् किसी विक्रम

राजा का चलाया नहीं है हाँ विक्रम की नौवी शताब्दी के एक शिलालेख में सब से पहला संवत् के साथ विक्रम का नाम लिखा हुआ मिलता है जैसे कि —

"वसु नव (अ) ष्टौ वर्षागतस्य कालस्य विक्रमाख्यस्य ।
वैशाखस्य सियाता (यां) रविवार युत द्वितीयायाम् ।।"

यह शिलालेख धोलपुरा से मिला है राज चण्डमहासन के समय वि० सं० ८९८ का है इसमें पहला पहल संवत् के साथ विक्रम नाम जुड़ा हुआ है—

कहीं-कहीं जैन विद्वानों ने उज्जैन के राजा वलमित्र को विक्रम की उपाधि से भूपित किया है। राजा बलमित्र था भी प्राक्रमी एवं विक्रम। उसका राज भरोंच में था परन्तु उसने उज्जैन पर चढ़ाई कर शकों को पराजित कर उज्जैन का राज अपने अधिकार में कर लिया उस विजय के उपलक्ष में उसने नया संवत् चलाया इत्यादि। परन्तु इसमें भी वह सवाल तो ज्यों का त्यों खड़ा ही रहता है कि राजा वलमित्र ने अपनी विजय के उपलक्ष में नया संवत् चलाया तो उस समय से ही संवत् के साथ वल एवं विक्रम शब्द क्यों नहीं चलाया ! इसके लिए यह कहा जा सकता है कि राजा बलमित्र ने मालवा प्रान्त को विजय करके अपना नाम की अपेक्षा मालवा शब्द को संवत् के साथ जोड़ देना विशेष गौरव समझा होगा और संवत् के साथ मालव शब्द को जोड़ दिया हो तो यह ठीक समझा जा सकता है। अब हम समय को देखते हैं तो संवत् प्रारम्भ और वलमित्र का समय ठीक मिलता-जुलता है अतः जैन लेखकों का लिखना सत्य प्रतीत होता है कि विक्रम यह राजा वलमित्र का विशेपण है और मालव संवत् को राजा बलमित्र ने अपने मालव विजय के उपलक्ष में ही चलाया था।

जैनाचार्यों ने राजा विक्रम के लिये वड़े-वड़े ग्रन्थों का निर्माण किये हैं और राजा विक्रम को जैन धर्म का प्रचारक लिखा है तथा राजा विक्रम ने उज्जैन से तीर्थ शत्रुंजय का विराट् संघ निकाला और कई मन्दिर भी बनाया इत्यादि यदि राजा वलमित्र को ही विक्रम समझ लिया जाय तो यह बात सर्वथा सिद्ध हुई है कारण राजा वलमित्र जैन धर्म का परमोपासक था उसने ५२ वर्ष भरोंच नगर में राज किया था बाद उज्जैन का राज अपने अधिकार में करके ८ वर्ष तक उज्जैन में भी राज किया यदि उसने उज्जैन से शत्रुंजय का संघ निकाला हो तो यह असंभव भी नहीं है। राजा वलमित्र कालकाचार्य के भानेज थे आचार्य खपटसूरि आचार्य पादलिप्तसूरि उपाध्याय महेन्द्र वगैरह राजा वलमित्र की आग्रह से चिरकाल तक भरोंच में ठहरे थे और कई वादियों को वहां पराजय भी किये थे अतः उनके जैन होने में किसी प्रकार का संदेह भी नहीं हो सकता है।

कई लोग यह भी कहते हैं कि मालव संवत् के कई वर्षों के बाद गुप्तवंशी चन्द्रगुप्त (द्वितीय) राजा हुआ विक्रम उस राजा की उपाधि थी और उसको मालव संवत् के साथ जोड़ देने से ही मालव संवत् का नाम विक्रम संवत् हुआ है परन्तु इस कथन के लिये कोई भी पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता है जैसे राजा बलमित्र के लिये मिलता है। विशेष निर्णय विद्वानों की विचार श्रेणी पर ही छोड़ दिया जाता है।

१—[illegible] विक्रमचरित्र २—[illegible] विक्रमादित्य चरित्र

३—[illegible] वि० व० (सन १९३०) (सन १९३३)

१६—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि (तृतीय)

आचार्यः स हि सूरि सूर्य विदितो नाम्ना तु रत्नप्रभः ।
शोभा तप्तभट्टीय वंश जनता वर्गस्य दीक्षां गतः ॥
त्यक्त्वा मास विवाहितां निजवधूं कोटिंच वित्तं बुधः ।
ज्ञात्वा पूर्वग रत्नसूरि-चरितं शिक्षां-च तस्माद्धयौ ॥

चार्य रत्नप्रभसूरि—इन तीसरे रत्नप्रभसूरि का यश एवं प्रभाव की पताका तीनों लोक में फहरा रही थी। आप ॐकार नगर के तप्तभट्ट गोत्रिय शाह पेथा की भार्या कुङ्ी के राजसी नाम के होनहार पुत्र रत्न थे। आपकी बालक्रीडाओं का वर्णन पट्टावलीकारों ने बहुत विस्तार से किया है। एक दो उदाहरण यहां बतला दिये जाते हैं कि बालकों की क्रीडा किस प्रकार भविष्य सूचक होती हैं। शाह पेथा का घराना पुश्तों से जैनधर्म का परमोपासक था जिसमें आपकी धर्मपत्नी कुङ्ी तो अपना जीवन ही धर्म करने में व्यतीत करती थी। जिन बालकों के माता पिता धर्मज्ञ होते हैं उन्हों का असर बालबच्चों पर अवश्य पड़ ही जाता है। शाह पेथा धनकुबेर एवं करोड़ाधीश था और उनके सात पुत्रियों पर राजशी एक ही पुत्र था अतएव माता पिता का उस पर अधिक से अधिक स्नेह होना एक स्वभाविक ही था। राजशी छः वर्ष का हुआ तो कई मिष्टान्नादि पदार्थ देकर बहुत से लड़कों को अपना सहचारी बना लिया और उन साथियों के साथ क्रीडा करता था कभी २ अपनी माता के साथ गुरु महाराज के उपाश्रय व्याख्यान सुनने को भी जाया करता था। जैसे मुनिजन पाट पर बैठकर श्रोताओं को व्याख्यान सुनाते थे राजशी भी लड़कों को एकत्र कर उनको व्याख्यान सुनाने की चेष्टा किया करता था और जैसे मुनिराज अपने व्याख्यान में संसार की असारता बतलाते थे जिसको राजशी सुनता था उसी प्रकार अपने सहचरों के बीच बैठकर उन बालकों को संसार की असारता बतलाया करता था इत्यादि।

अहा हा ! पूर्व जन्म के यह कैसे सुन्दर संस्कार होंगे। राजशी को इन बातों में बहुत आनन्द आता था। एक दिन राजशी गुरु महाराज के उपाश्रय गया था उस समय साधु भिक्षार्थ नगर में गये थे। राजशी व्याख्यान के पाटा पर बैठकर व्याख्यान देने लग गया। जब साधुओं ने आकर देखा और राजशी को पूछा कि तू क्या कर रहा है ? राजशी ने उत्तर दिया कि मैं व्याख्यान दे रहा हूँ इत्यादि इस बच्चे की चेष्टा देख कर मुनियों ने सोचा कि यदि यह बालक दीक्षा लेगा तो जिनशासन की बड़ी भारी प्रभावना करेगा।

एक समय मुनियों ने गोचरी जाने के लिये पात्रों का प्रतिलेखन कर रखा था। इतने में बालक राजशी आया और झोली सहित पात्र लेकर सीधा ही अपने घर पर आ गया एवं माता के पास जाकर धर्म लाभ दिया। माता ने इस प्रकार राजशी को देख कर उसे उपालम्भ दिया कि बेटा ! साधुओं के पात्रे कभी नहीं लेना। बेटा ने कहा, माता पात्रे मुझे अच्छे लगते हैं इत्यादि। इतने में पीछे मुनि आये और उसके हाथों से पात्र ले लिया इत्यादि धर्म चेष्टा के कई उदाहरण राजशी की बालावस्था के बन चुके थे।

शाह पेथा ने राजशी की उम्र ८ वर्ष की हुई तो अध्यापक के पास पढ़ने को भेज दिया। दूसरे विद्यार्थियों से राजशी में विनयगुण अधिक था। यही कारण था कि अध्यापक महोदय की राजशी पर विशेष कृपा रहती थी और राजशी पढ़ाई में अपने सहपाठियों से हमेशा आगे बढ़ता जाता था।

एक दिन आचार्य सिद्धसूरि ॐकार नगर में पधारे अतः श्रीसंघ ने आपका सुन्दर सत्कार किया सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था। एक दिन माता कुल्ली ने विनय के साथ अपने पुत्र राजसिंह की धर्म चेष्टा के लिये सूरिजी से पूछा कि पूज्यवर ! राजसिंह बाल्यावस्था में ही साधु उचित कार्य करता है इसका क्या कारण है ? सूरिजी ने अपने निमित्त ज्ञान से कहा माता राजसिंह ने पूर्व जन्म में दीक्षा की आराधना की है। अतः इसको दीक्षा पर अनुराग है। माता तू भी धन्य है कि तेरी कुक्षी से राजसी जैसा पुत्र पैदा हुआ है जो कभी राजसी दीक्षा लेगा तो जैनधर्म की प्रभावना के साथ जगत का उद्धार करने वाला होगा इत्यादि सूरिजी के वचन सुनकर माता के दिल में आया कि यह राजसी कहीं दीक्षा न ले ले अतः इसकी शादी जल्दी से कर देनी चाहिये। बस फिर तो देरी ही क्या थी पहिले से ही राजसी की शादी के लिये कई प्रस्ताव आये हुये थे। शाह पेथा ने एक लिखी पढ़ी श्रेष्ठि कन्या के साथ राजसी का सम्बन्ध (सगाई) करदी। इस बात की खबर जब राजसी को हुई तो उसने अपनी माता से कहा कि माता ! पिताजी मुझे जाल में फंसाना चाहते हैं पर मैं हर्गिज इस संसार रूपी जाल में न फंसूगा। माता ने कहा बेटा क्या विवाह करना जाल है ?

पुत्र ने कहा हां माता मैं समझता हूँ कि—विवाह करना जाल है ?

माता—यदि संसार में कोई विवाह न करे तो फिर संसार चले ही कैसे ?

पुत्र—माता मैं संसार की बात नहीं करता हूँ मैं तो अपनी बात करता हूँ।

माता—तू शादी नहीं करेगा तो क्या साधु बनेगा ?

पुत्र—हां माता मैं तो दीक्षा लूंगा।

माता—खैर दीक्षा ले तो दम्पति दोनों साथ में ही लेना शादी तो कर ले वरना हमारी मांग आंखों में अच्छा नहीं लगेगा।

मां बेटा में बातें हो ही रही थीं कि इतने में पेथाशाह घरपर आ गया और पूछा कि आज मां बेटा क्या बातें कर रहे हो। माता बोली आपका पुत्र कहता है कि मुझे शादी नहीं करनी है मुझे तो दीक्षा लेनी है ! शाह पेथा ने कहा कि दीक्षा लेनी है तो भी शादी तो करले फिर सब घर वालों के साथ में ही दीक्षा लेना। राजसी ने सोचा कि जो कर्मों की रेखा है वह तो किसी के भी टाली टल ही नहीं सकती है और इस निमित्त कारण से ही सबका कल्याण होने वाला हो तो भी कौन कह सकता है ? जब माता पिता का इतना आग्रह है तो होने दो शादी अगर मेरे दीक्षा का योग है तो शादी से रुक भी नहीं सकेगा जिसके लिये जम्बूकुंवर आदि अनेक महापुरुषों के उदाहरण विद्यमान है।

राजसी के माता पिता ने बड़े ही समारोह के साथ राजसी का विवाह कर दिया। इधर तो राजसी के लग्न को पूरा एक मास भी नहीं हुआ था कि उधर से आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज भ्रमण करते हुए पुनः ॐकार नगर में पधार गये। सूरिजी का उपदेश हमेशा त्याग वैराग्य पर होता था और आप यह भी फरमाया करते थे कि संसार में जीव मोह एवं ममत्व से दुःखी बनता है, जब तो देखो बेचारा है कि मनुष्य समझ आने पर भी तृष्णा के वशीभूत बना हुआ इस प्रकार विचार करता है कि।

[माता बेटा का संवाद

अज्जं कलं परं पुरारी, पुरिस चिंतंति अत्थी संपति। अंजलि गई भो तुअं,गल्लतमायुः न पिच्छति।।

अरे भव्य ! तू आज कल परसों और वर्षान्तर में धर्म करने का विचार करता है पर अंजली के जल की भांति तेरा आयु क्षीण होता जारहा है इसका भी कभी विचार किया है तीर्थङ्कर देवों ने सो स्पष्ट यानि खुले शब्दों में फरमाया है कि । मनुष्य का आयुष्य अस्थिर है जैसे कि—

दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अचए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमाए ।।१।।
कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमाए ।। २ ।।

अर्थात् आयुष्य का क्षण भर का भी विश्वास नहीं है अतः धर्म करने में क्षणमात्र की भी देर न करनी चाहिये न जाने क्षणान्तर क्या होता है कहा है कि—"धर्मस्यत्वरता गतिः"—इत्यादि

सूरिजी का वैराग्यमय उपदेश सुन कर जैसे कोई सिंह निद्रा से जागकर सावधान हो जाता है वैसे ही राजसी सावधान हो गया और अपने माता पिता के पास जाकर दीक्षा की अनुमति मांगी । पर माता पिता और एक मास की परणी नववधू वगैरह कब चाहते थे कि राजसी इस १६ वर्ष की युवक वय में हमको छोड़ कर दीक्षा लेले परन्तु राजसी का हृदय तो बाल्यावस्था से ही दीक्षा के रंग से रंगा हुआ था वह इस संसार रूप कारागृह में कब रहने वाला था । राजसी ने अपनी स्त्री को इस कदर युक्ति से समझाई कि वह दीक्षा लेने के लिये तैयार हो गई इस हालत में राजसी के माता पिता संसार में कब रहने वाले थे अतः उन्होंने राजसी को पूछा कि घर में करोड़ों रुपये की लक्ष्मी है उस का क्या करना चाहिये ? राजसी ने कहा पिताजी ! शास्त्रों में सातक्षेत्र कहे है उसमें लगाकर पुन्योपार्जन कीजिये दूसरा तो इसका हो ही क्या सकता है। शाह पेथा ने एक एक कोटी द्रव्य तो अपनी सातों पुत्रियों को दे दिया कुछ दीक्षा के महोत्सव के लिए रख लिया । शेष द्रव्य सातों क्षेत्र में जहां जैसी आवश्यकता थी लगा दिया इस प्रकार सूरिजी का उपदेश और राजसी का त्याग वैराग्य देख और भी २३ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये । इस सुअवसर पर जिन मंदिरों में अठाई महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य और साधर्मी भाइयों को पहरामणी याचकों को दान दीन दुखियों का उद्धार वगैरह कार्य्यों में पांच करोड़ द्रव्य व्यय किया । तदनन्तर शुभमुहूर्त्त में राजसी आदि २७ नरनारियों ने सूरिजी के शुभ हस्तविन्द से भगवती जैनदीक्षा ग्रहण करली । शुभ कार्य्य से जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई और घर-घर में जैनधर्म की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी। सूरिजी ने राजसी का नाम 'गुणचन्द्र' रख दिया जो "यथानाम तथा गुण" वाली कहावत को चरितार्थ करता था : कारण राजसी में सब गुण चन्द्र के समान निर्मल थे ।

मुनि गुणचन्द्र सूरिजी के विनयवान शिष्यों में एक था । गुरुकुल वास में रह कर सूरिजी की आज्ञा का भली भांति आराधन किया करता था । मुनिजी ने पूर्वभव में सरस्वती देवी की अच्छी आराधना की थी कि इस भव में भी वह वरदाई हो गई अल्प समय में वर्त्तमान जैनागमों का अध्ययन कर लिया । इतना ही क्यों पर व्याकरण, न्याय, तर्क, काव्य अलंकार छन्द वगैरह के भी धुरंधर विद्वान हो गये तदा स्वमत के

अलावा परमत के साहित्य का भी आपने ठीक अध्ययन कर लिया था। शास्त्रार्थ और वादविवाद में आपका तर्क एवं युक्तिवाद इतना प्रबल था कि प्रतिवादी आपके सामने सदैव नत मस्तक ही रहते थे। जब मुनि गुणचन्द्र की २४ वर्ष की आयु अर्थात् ८ वर्ष की दीक्षा पर्याय हुई तो आचार्य सिद्धसूरि ने अपना आयुष्य नजदीक जाकर तथा मुनगुणचन्द्र को सर्वगुण सम्पन्न देख कर सूरिमंत्र की आराधना पूर्वक उपकेशपुर के श्रीसंघ के महोत्सव के साथ चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष देवी सच्चायिका की सम्मतिपूर्वक मुनिगुणचन्द्र को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम आचार्य रत्नप्रभसूरि रख दिया जो इस गच्छ में क्रमशः सूरि नामावली चली आरही थी। एक समय आप श्री ने प्रथम रत्नप्रभसूरि का जीवन पढ़ा तो आपकी आत्मा पर काफी प्रभाव पड़ा और आपने अपना ध्येय शासन उन्नति का बना लिया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि महान प्रतिभाशाली विद्वान और शासन की प्रभावना करने वाले थे न जाने इस नाम में ही ऐसा चमत्कार रहा हुआ था कि गच्छनायक होते ही आपका सितारा अधिक से अधिक चमकने लग जाता था। सूरिजी ने मरुधर के प्रत्येक ग्रामों में विहार कर सर्वत्र जनता को धर्मोपदेशामृत सुधारस का पान कराया। उपकेशपुर, विजयपट्टन, माडव्यपुर, नागपुर, मेदनीपुर, शंखपुर, कुर्चपुरा, हर्षपुरा, मुग्धपुर, खटकूपपुर, वैराटपुर, तावावती, पालिकापुरी, कोरंटपुर, भिन्नमाल, शिवगढ़, सत्यपुरी, जावलीपुर, चन्द्रावती, शिवपुरी, और पद्मावती वगैरह छोटे बड़े ग्रामों में भ्रमण किया इस विहार के अन्दर कई मुमुक्षुओं को दीक्षा दी, कई मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई। कई जीर्ण मन्दिरों का उद्धार करवाया इत्यादि धर्म प्रचार बढ़ाते हुये क्रमशः आपने पद्मावती नगरी में चतुर्मास करके जनता को खूब उपदेश दिया एक समय आपने तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजय के विषय खूब प्रभावशाली व्याख्यान देते हुये फरमाया कि पूर्व जमाने में कई राजा महाराजा एवं सेठ साहूकारों ने इस तीर्थ की यात्रा निमित्त बड़े २ संघ निकाल कर एवं संघपति बनकर अनेक साधर्मी भाइयों को यात्रा करवा कर अनन्त पुन्योपार्जन किये थे। संघपति पद कोई साधारण पद नहीं पर इस पद को तीर्थङ्करदेव ने भी नमस्कार किया है इत्यादि। आपके उपदेश का प्रभाव जनता पर इस कदर हुआ कि सब की भावना तीर्थयात्रा की ओर झुक गई। उसी सभा में प्राग्वटवंशीय मन्त्री राणक भी था उसने खड़े होकर अर्ज की कि हे पूज्यवर। मेरी इच्छा है कि मैं पुनीत तीर्थ श्रीशत्रुंजय गिरनारादि तीर्थों की यात्रा निमित्त संघ निकालूं अतः मुझे श्रीसंघ आज्ञा प्रदान करावें। सूरिजी ने कहा राणक तू बड़ा ही भाग्यशाली है। ज्ञानियों ने फरमाया है कि मनुष्य का आयुष्य अस्थिर है, लक्ष्मी का स्वभाव चंचल है। इसमें जो कुछ सुकृत कार्य्य बन जाय वही अच्छा है इत्यादि। उस सभा में और भी कई भाइयों की भावना संघ निकालने की थी पर सब से पहिले मंत्री राणा ने अर्ज की अतः श्रीसंघ की तरफ से [illegible] राणा को ही आदेश मिला।

मन्त्री राणा ने अपना महोभाग्य समझकर सूरिजी को वन्दन कर अपने मकान पर आया। मन्त्री राणा के पाण्डवों के सदृश पांच पुत्र थे उनको बुलाकर संघ निकालने के लिये पूछा तो उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा कि पिताजी। आप के उपार्जन किया हुआ द्रव्यपर हमारा कुछ भी अधिकार नहीं है और आप अपना द्रव्य को इस प्रकार सुकृत में लगावें इस में हम लोगों को बड़ी भारी खुशी है और हम [illegible] सामग्री एकत्र करने के लिये आप जो हुकुम फरमावें उसे करने के लिये हम सब सदा कटिबद्ध हैं। मंत्री राणा ने खुश होकर पुत्रों को अलग-अलग काम का जिम्मा दे दिया अतः वे अपने काम को [illegible]

बनाने में लग गये। मंत्री राणा उस समय वृद्धावस्था में था राज का काम पुत्र को सोंप कर आप निर्वृति से धर्माराधना करता था तथापि मन्त्री चलकर राजा के पास गया और राजा ने मंत्रेश्वर की बहुत प्रशंसा की और कहा कि राणा तू बड़ा ही भाग्यशाली है। इस पुन्य कार्य को करके तूने अपने जीवन को सफल बना लिया है। अब इस संघ के लिये जो कुछ सामान की आवश्यकता हो वह बिना संकोच राज से लेजाना ताकि इतना लाभ तो मुझे भी मिले। मन्त्री ने कहा राजन्! यह सब गुरुदेव की पूर्ण कृपा का ही फल है और आपकी मेहरबानी एवं उदारता के लिये मैं आपका उपकार समझता हूँ और आप श्रीमानों की कृपा से ही मेरा प्रारंभ किया कार्य्य सफल होगा पर एक खास मेरी प्रार्थना है कि हुजूर खुद इस संघ में पधारें क्योंकि धर्म सबका एक है देव सब का एक है और तीर्थ सबका एक है। पूर्व जमाने में बड़े-बड़े नरेशों ने संघ सहित इस महान तीर्थ की यात्रा की है। अतः मेरी प्रार्थना पर मंजूरी हुक्म फरमाना चाहिये। इस पर राजा ने कहा राणा मैं सब धर्मों को एक ही समझता हूँ फिर भी जैनधर्म पर मेरा अधिक अनुराग है। आपके आचार्य एवं साधु बड़े ही त्यागी वैरागी हैं। इनके उपदेश जनकल्याण के लिये होता हैं। अतः मैं धर्म में किसी प्रकार का भेद नहीं समझता हूँ जिसमें भी तीर्थों के लिये तो भेद हो ही नहीं सकता है। जैसे हमारे गंगातीर्थ है वैसे आपके शत्रुंजयतीर्थ है पर कहा है कि 'राजेश्वरी नरकेश्वरी'। मेरे जैसों की तकदीर में ऐसे तीर्थ की यात्रा कहाँ लिखी है। हमतों चौरासी के कीड़े चौरासी में ही भ्रमण करेंगे यथार्थ संघ में चलने के लिये अभी तो मैं कुछ नहीं कहता हूँ समय पर बन सका तो मैं विचार अवश्य करूंगा इत्यादि।

मन्त्री ने कहा राजन्! धर्म तो खास राजाओं का ही है और 'यथा राजा तथा प्रजा'। राजा के पीछे ही प्रजा में धर्म का उत्साह बढ़ता है। अगर आप इस संघ में पधारेंगे तो जनता में कितना उत्साह बढ़ जायगा जिसकी कल्पना अभी नहीं की जा सकती है परन्तु इसका लाभ तो आपको ही मिलेगा। जब आप समझते हो कि 'राजेश्वरी सो नरकेश्वरी' तब तो इस नर्क के द्वार वन्द करने के लिये आपको इस धर्म कार्य्य में अधिक उत्साह से भाग लेना चाहिये। आप खुद ही समझदार हैं मैं आपको अधिक क्या कहूँ। यदि आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार करलें तो मेरा उत्साह और भी बढ़ जायगा। इसको भी आप सोच लीजिये।

राजा ने कहा ठीक है राणा मैं इस बात का विचार अवश्य करूंगा।

मंत्री ने कहा विचार करना तो पराधीनों के लिये है आप स्वाधीन हैं। मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि आप मेरी प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करेंगे।

राजा—जब तुझे विश्वास है तो अधिक कहने की जरूरत ही क्या है।

इत्यादि वार्तालाप हुआ। बाद मंत्री राजा को प्रणाम कर अपने स्थान आगया तथा समय पाकर सूरिजी से भी निवेदन कर दिया कि कभी राजा व्याख्यान में आवें तो आप भी इस बात का उपदेश करें क्योंकि राजा संघ के साथ चलने से जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

मंत्रीश्वर के कुशलता पूर्वक कार्य्य करने वाले पांच पुत्र थे। पास में पुष्कल द्रव्य था और राजा की पूरी मदद फिर तो कहना ही क्या था मंत्री ने अलग-अलग काम सब के सुपुर्द कर दिया और वे लोग संघ के लिए सामग्री जुटाने में लग गये।

मंत्री राणा के पुत्रों ने जहां-जहां साधु साध्वियां विराजमान थे वहां-वहां अपने योग्य मनुष्यों को विनती के लिये भेज दिये तथा श्रीसंघ के लिये प्रत्येक ग्राम नगर में आमंत्रण पत्र भिजवा दिये। इस

समय जनता की धर्मप्रति कैसी भावना थी वह इस शुभ कार्य्य से ज्ञात हो जायगी कि आमंत्रण पत्र से हजारों नहीं पर लाखों भावुक जनों ने पद्मावती नगरी की ओर प्रस्थान कर दिया ।

शुभमुहूर्त्त मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी के दिन मंत्री राणा के संघपतित्व में और आचार्य सिद्धसूरि के नायकत्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया । संघ का ठाठ देख राजा जैत्रसिंह के मन में इतना उत्साह बढ़ गया कि वह अपनी रानी को लेकर संघ में शामिल हो गया । फिर तो कहना ही क्या था तीर्थ पर पहुँचे वहां तक तो इस संघ में ५००० साधु साध्वियां और पांच लक्ष मनुष्यों की संख्या होगई थी । छः री० पाली संघ में कितना आनन्द आता है इस बात का अनुभव तो उन्हीं लोगों को होता है कि जो यात्रा को यात्रा समझ कर निर्वृत्ति भाव से दो-दो चार-चार मास साधुओं की भांति भ्रमण कर आनन्द लूटते हैं क्योंकि यात्रा में इन्द्रियों का दमन, कषायों पर विजय, आरम्भ से निवृत्ति, ब्रह्मचर्य्य का पालना, गुरु सेवा, प्रभु पूजा, स्वधर्मियों का समागम, और ज्ञान ध्यान का करना इत्यादि अनेक लाभ मिलता है । यही कारण है कि तीर्थ यात्रा धर्म का एक खास अंग समझा गया है । उस जमाने में संघ बिना यात्रा होनी कठिन थी और ऐसे संघ कभी-कभी भाग्यशाली ही निकालते थे । अतः जनता में उत्साह की तरंगे उछल रही थीं । आज कल तो यात्रा नाम मात्र की रह गई है । पूर्वोक्त गुण खोजने पर भी शायद ही मिलते होंगे ? यद्यपि सब लोग एक से नहीं । होते हैं पर जो पूर्व जमाना में लोगों की धर्म पर श्रद्धा और आत्म-कल्याण की भावना थी वह बहुत कम रह गई है इसमें कर्मों की बहुलयता के अलावा क्या हो सकता है फिर भी यह रास्ता इतना उत्तम है कि कभी-कभी आत्म विकास की लहर आय ही जाति है ।

उस जमाने के अन्दर जैनों के घरों में ऐसा पैसा ही नहीं आता था कि कुक्षेत्र में लगा सकें । अतः यात्रार्थ जो पैसे खर्च किये जाते थे वे साधर्मी भाइयों के तथा देश भाइयों के ही काम में आते थे । आज हजारों लाखों रुपये रेल्वे को दिये जाते हैं वे विदेशों में तो जावे ही हैं पर उसका वहां भी दुरुपयोग ही होता है । जो भाव और आनन्द गुरु महाराज के साथ छरी पाली यात्रा में आता है वह रेलवे से यात्रा करने में नहीं आता है । भला पहिले जमाने में जीवन भर में एक ही यात्रा करते होंगे पर वे एक बार की यात्रा में इतने पाक एवं पवित्र बन जाते थे कि किये हुए कर्मों का प्रक्षालन कर फिर पाप नहीं करते थे । पर आज सालोंसाल यात्रा करने वाले न तो वहां जाकर पाप धोते हैं और न वापिस आकर पाप से डरते हैं । आज की यात्रा को तो एक व्यसन एवं मुसाफिरी ही कही जाती है । हाँ सब सरीखे नहीं होते पर मुख्यता में आज कल का हाल ऐसा ही है । पर कई लोग आत्म भावना वाले भी होते हैं ।

संघ क्रमशः गांव नगर एवं तीर्थों के दर्शन पूजन ध्वज महोत्सव जीर्णोद्धार एवं दीन दुःखियों का उद्धार करता आ रहा था । रास्ता में अनेक राजा महाराजा एवं श्रीसंघ की ओर से अच्छा स्वागत हो रहा था । क्रमशः श्रीसिद्धगिरि के दूर से दर्शन करते ही भावुकों के हृदय कमल विकासायमान होगये । श्रीसंघ ने भिन्न द्रव्य भाव से तीर्थ वन्दन पूजन किया । तत्पश्चात् तीर्थ पर जाकर भगवान आदीश्वर के दर्शन स्पर्शन कर चिरकाल के मनोरथों को सफल किया । इस तीर्थ को सुन कर आस पास के अनेक संघ वहां आये और आठ दिन तक अष्टान्हिका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्यादि किया ... की ओर भी करने योग्य सब विधान किया तत्पश्चात् गिरनारादि तीर्थों की स्पर्शना ... महाराज ने अपने कई साधुओं के साथ लाट सौराष्ट्र प्रदेश में विहार करने के कारण वहां ...

[श्री संघ ...

दूसरे साधु एवं संघ लौट कर पुनः पद्मावती आये। मंत्रीराणा ने संघ को स्वामिवात्सल्य के साथ एक एक सोना मोहर और पांच पांच सेर लड्डू की प्रभावना दी और संघ के चरणों की रज अपने सिर पर लगा कर अपने जीवन को सफल बनाया। धन्य है इस प्रकार शासन की प्रभावना करने वाले नररत्नों को।

यह तो एक संघ का हाल यहां लिखा है। पर इस प्रकार तो अनेक प्रान्तों एवं नगरों से कई आचार्य एवं मुनिवरों के उपदेश से छोटे बड़े कई संघ निकाला करते थे। कारण उस समय एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में एक दो मनुष्यों से आना जाना मुश्किल था। लूट फाट का भय रहता था। तथा यात्रार्थ अथवा व्यापारार्थ आना जाना होता तो इसी प्रकार हजारों लाखों आदमियों के संग से ही जाना आना बनता था। दूसरे उस समय लोगों में धर्मभावना भी बहुत थी तीसरे वह लोग थे भी हलुकर्मी चतुर्थ उनके व्यापारादि सब कार्य्य न्याय एवं नीति पूर्वक थे कि लक्ष्मी तो उनके घर में दासी होकर रहती थी। उनका जीवन सादा एवं सरल था कि वे दूसरे कार्यों की अपेक्षा धर्मकार्य में द्रव्य व्यय करना अधिक पसन्द करते थे। इन शुभ अध्यवसायों के कारण वे संसार में खूब फले फूले रहते थे और धर्मकार्यों में सदैव अग्रभाग लेते थे।

अस्तु। आचार्य रत्नप्रभसूरि ने लाट सौराष्ट्र में विहार कर सर्वत्र जैन धर्म की जागृति एवं प्रभावना करते हुये कच्छ प्रदेश में पदार्पण किया। सूरिजी के पधारने से सर्वत्र चहल-पहल मच गई। उपकेशवंशियों की संख्या सर्वत्र प्रसरित थी, वे लोग रत्नप्रभसूरि का नाम सुन कर प्रथम रत्नप्रभसूरि की स्मृति कर रहे थे। सूरिजी महाराज के उपदेश से कच्छ ठीक जागृत होकर अपने आत्म-कल्याण में लग गया। बाद वहां से आपने सिन्ध को पवित्र बनाया। सिन्ध में बहुत से साधु भी विहार करते थे। जब सूरिजी महाराज देवपुर, आलोट, डबरेल, खखोटी, नरवर होते हुये शिवनगर में पधारे। वहां का राजा कुंतलादि श्रीसंघ ने सूरिजी का खूब ही समारोह के साथ स्वागत किया। सूरिजी के पधारने से जनता में एक प्रकार की नयी चेतनता प्रगट हुई और उत्साह बढ़ गया।

एक दिन सूरिजी व्याख्यान दे रहे थे, किसी अन्य धर्मी ने प्रश्न किया कि सूरिजी महाराज आप निश्चय को मानते हो या व्यवहार को ?

सूरिजी ने उत्तर दिया कि हम निश्चय और व्यवहार दोनों को युगपात समय मानते हैं क्योंकि व्यवहार बिना निश्चय प्रगट नहीं होता है तब निश्चय बिना व्यवहार चल नहीं सकता है। अतः निश्चय और व्यवहार दोनों को मानना ही सम्यक् मार्ग है।

पृच्छक—पूज्य ! यह तो मिश्र मार्ग है। मैंने तो सुना है कि एक मार्ग पर निश्चय किये बिना कल्याण नहीं होता है तो फिर आप जैसे विद्वान मिश्र मार्ग की शरण क्यों लेते हो ?

सूरिजी—एकान्तवाद से कल्याण नहीं, पर कल्याण स्याद्वाद में होता है। अर्थात अकेले निश्चय से कुछ नहीं होता है तब अकेले व्यवहार से भी कार्य्य की सिद्धि नहीं है। हां, निश्चय के अनुसार व्यवहार चलता है पर व्यवहार को छोड़ देने पर अकेला निश्चय भी कुछ नहीं कर सकता है। निश्चय में तो आपके व्याख्यान सुनना था, पर यहां आने का व्यवहार एवं उद्यम किया तब व्याख्यान सुन सके हो।

पृच्छक्—महाराज ! मैं एक निश्चय को ही मानने वाला हूँ। चाहे व्यवहार न करे, पर निश्चय में जो होने वाला होता है वही होकर रहता है। जैसे—

एक मनुष्य निश्चयवादी था और जंगल गया था। वहाँ भूमि खोदते उसे खजाना मिला, पर उसने

समय जनता की धर्मप्रति कैसी भावना थी वह इस शुभ कार्य्य से ज्ञात हो जायगी कि आमंत्रण पत्र से नहीं पर लाखों भावुक जनों ने पद्मावती नगरी की ओर प्रस्थान कर दिया।

शुभमुहूर्त्त मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी के दिन मंत्री राणा के संघपतित्व में और आचार्य सिद्धसूरि नायकत्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया। संघ का ठाठ देख राजा जैत्रसिंह के मन में इतना उत्साह बढ़ा कि वह अपनी रानी को लेकर संघ में शामिल हो गया। फिर तो कहना ही क्या था तीर्थ पर पहुँचे वहाँ तक तो इस संघ में ५००० साधु साध्वियां और पांच लक्ष मनुष्यों की संख्या होगई थी। छ री० पाली संघ में कितना आनन्द आता है इस बात का अनुभव तो उन्हीं लोगों को होता है कि जो यात्रा को यात्रा समझ कर निर्वृत्ति भाव से दो-दो चार-चार मास साधुओं की भांति भ्रमण कर आनन्द लूटते। क्योंकि यात्रा में इन्द्रियों का दमन, कषायों पर विजय, आरम्भ से निवृति, ब्रह्मचर्य्य का पालना, गुरु सेवा, प्रभु पूजा, स्वधर्मियों का समागम, और ज्ञान ध्यान का करना इत्यादि अनेक लाभ मिलता है। यही कारण है कि तीर्थ यात्रा धर्म का एक खास अंग समझा गया है। उस जमाने में संघ बिना यात्रा होती नहीं थी और ऐसे संघ कभी-कभी भाग्यशाली ही निकालते थे। अतः जनता में उत्साह की तरंगे उछल रही थी। आज कल तो यात्रा नाम मात्र की रह गई है। पूर्वोक्त गुण खोजने पर भी शायद ही मिलते होंगे? यद्यपि सब लोग एक से नहीं। होते हैं पर जो पूर्व जमाना में लोगों की धर्म पर श्रद्धा और आत्म-कल्याण की भावना थी वह बहुत कम रह गई है इसमें कर्मों की बहुलयता के अलावा क्या हो सकता है फिर भी यह यात्रा इतनी उत्तम है कि कभी-कभी आत्म विकास की लहर आय ही जाति है।

उस जमाने के अन्दर जैनों के घरों में ऐसा पैसा ही नहीं आता था कि कुक्षेत्र में लगा सकें। यात्रार्थ जो पैसे खर्च किये जाते थे वे साधर्मी भाइयों के तथा देश भाइयों के ही काम में आते थे। आज हजारों लाखों रुपये रेल्वे को दिये जाते हैं वे विदेशों में तो जाते ही हैं पर उसका वहां भी दुरुपयोग होता है। जो भाव और आनन्द गुरु महाराज के साथ छरी पाली यात्रा में आता है वह रेल्वे में यात्रा करने में नहीं आता है। भला पहिले जमाने में जीवन भर में एक ही यात्रा करते होंगे पर वे एक ही यात्रा में इतने पाक एवं पवित्र बन जाते थे कि किये हुए कर्मों का प्रक्षालन कर फिर पाप नहीं करते थे पर आज सालोंसाल यात्रा करने वाले न तो वहां जाकर पाप धोते हैं और न वापिस आकर पाप से डरते हैं। आज की यात्रा को तो एक व्यसन एवं मुसाफिरी ही कही जाती है। हाँ सब सरीखे नहीं होते पर मुख्यता में आज कल का हाल ऐसा ही है। पर कई लोग आत्म भावना वाले भी होते हैं।

संघ क्रमशः गांव नगर एवं तीर्थों के दर्शन पूजन ध्वज महोत्सव जीर्णोद्धार एवं दीन दुःखियों का उद्धार करता जा रहा था। रास्ता में अनेक राजा महाराजा एवं श्रीसंघ की ओर से अच्छा स्वागत होता था। क्रमशः श्रीसिद्धगिरि के दूर से दर्शन करते ही भावुकों के हृदय कमल विकासायमान होगये। बाद श्रीसंघ ने भिन्न द्रव्य भाव से तीर्थ वन्दन पूजन किया। तत्पश्चात् तीर्थ पर जाकर भगवान आदीश्वर के दर्शन स्पर्शन कर चिरकाल के मनोरथों को सफल किया। इस तीर्थ को सुन कर आस पास के और भी अनेक संघ वहां आये और आठ दिन तक अष्टान्हिका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्यादि किये बहुत से भक्ति की और भी करने योग्य सब विधान किया तत्पश्चात् गिरनारादि तीर्थों की स्पर्शना की। सूरि महाराज ने अपने कई साधुओं के साथ लाट सौराष्ट्र प्रदेश में विहार करने के कारण वहां ही रह गये और

दूसरे साधु एवं संघ लौट कर पुनः पद्मावती आये । मंत्रीराणा ने संघ को स्वामिवात्सल्य के साथ एक एक सोना मोहर और पांच पांच सेर लड्डू की प्रभावना दी और संघ के चरणों की रज अपने सिर पर लगा कर अपने जीवन को सफल बनाया । धन्य है इस प्रकार शासन की प्रभावना करने वाले नररत्नों को ।

यह तो एक संघ का हाल यहां लिखा है । पर इस प्रकार तो अनेक प्रान्तों एवं नगरों से कई आचार्य एवं मुनिवरों के उपदेश से छोटे बड़े कई संघ निकाला करते थे । कारण उस समय एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में एक दो मनुष्यों से आना जाना मुश्किल था । लूट फाट का भय रहता था । तथा यात्रार्थ अथवा व्यापारार्थ आना जाना होता तो इसी प्रकार हजारों लाखों आदमियों के संग से ही जाना आना बनता था । दूसरे उस समय लोगों में धर्मभावना भी बहुत थी तीसरे वह लोग थे भी हलुकर्मी चतुर्थ उनके व्यापारादि सब कार्य्य न्याय एवं नीति पूर्वक थे कि लक्ष्मी तो उनके घर में दासी होकर रहती थी । उनका जीवन सादा एवं सरल था कि वे दूसरे कामों की अपेक्षा धर्मकार्य में द्रव्य व्यय करना अधिक पसन्द करते थे। इन शुभ अध्यवसायों के कारण वे संसार में खूब फले फूले रहतेथे और धर्मकार्यों में सदैव अग्रभाग लेते थे ।

अस्तु । आचार्य रत्नप्रभसूरि ने लाट सौराष्ट्र में विहार कर सर्वत्र जैन धर्म की जागृति एवं प्रभावना करते हुये कच्छ प्रदेश में पदार्पण किया । सूरिजी के पधारने से सर्वत्र चहल-पहल मच गई । उपकेशवंशियों की संख्या सर्वत्र प्रसरित थी, वे लोग रत्नप्रभसूरि का नाम सुन कर प्रथम रत्नप्रभसूरि की स्मृति कर रहे थे। सूरिजी महाराज के उपदेश से कच्छ ठीक जागृत होकर अपने आत्म-कल्याण में लग गया । बाद वहां से आपने सिन्ध को पवित्र बनाया । सिन्ध में बहुत से साधु भी विहार करते थे । जब सूरिजी महाराज देवपुर, आलोट, डबरेल, खखोटी, नरवर होते हुये शिवनगर में पधारे । वहां का राजा कुंतलादि श्रीसंघ ने सूरिजी का खूब ही समारोह के साथ स्वागत किया । सूरिजी के पधारने से जनता में एक प्रकार की नयी चेतनता प्रगट हुई और उत्साह बढ़ गया ।

एक दिन सूरिजी व्याख्यान दे रहे थे, किसी अन्य धर्मी ने प्रश्न किया कि सूरिजी महाराज आप निश्चय को मानते हो या व्यवहार को ?

सूरिजी ने उत्तर दिया कि हम निश्चय और व्यवहार दोनों को युगपात समय मानते हैं क्योंकि व्यवहार बिना निश्चय प्रगट नहीं होता है तब निश्चय बिना व्यवहार चल नहीं सकता है । अतः निश्चय और व्यवहार दोनों को मानना ही सम्यक् मार्ग है ।

पृच्छक—पूज्य ! यह तो मिश्र मार्ग है । मैंने तो सुना है कि एक मार्ग पर निश्चय किये बिना कल्याण नहीं होता है तो फिर आप जैसे विद्वान मिश्र मार्ग की शरण क्यों लेते हो ?

सूरिजी—एकान्तवाद से कल्याण नहीं, पर कल्याण स्याद्वाद में होता है । अर्थात अकेले निश्चय से कुछ नहीं होता है तब अकेले व्यवहार से भी कार्य्य की सिद्धि नहीं है । हां, निश्चय के अनुसार व्यवहार चलता है पर व्यवहार को छोड़ देने पर अकेला निश्चय भी कुछ नहीं कर सकता है । निश्चय में तो आपके व्याख्यान सुनना था, पर यहां आने का व्यवहार एवं उद्यम किया तब व्याख्यान सुन सके हो ।

पृच्छक्—महाराज ! मैं एक निश्चय को ही मानने वाला हूँ । चाहे व्यवहार न करे, पर निश्चय में जो होने वाला होता है वही होकर रहता है । जैसे—

एक मनुष्य निश्चयवादी था और जंगल गया था । वहाँ भूमि खोदते उसे खजाना मिला, पर उसने

सोचा कि इसको उठा कर ले जाने का व्यवहार (उद्यम) क्यों किया जाय । निश्चय में लिखा होगा तो आपसे ही घर पर आ जायगा । बस उस खजाने को छोड़ के आ गया । रात्रि में अपनी औरत से सब हाल सुनाया । उस समय गुप्त रहा हुआ एक चोर भी सुनता था । उसने सेठजी के बतलाये हुये स्थान पर आ कर देखा तो वहाँ एक चरू था। खजाना निकालने की गरज से उसमें हाथ डाला तो उस खजाने में साँप बिच्छू के रूप में चोर को काट खाया । चोर ने सोचा कि सेठ ने मुझे मारने का उपाय किया तो इसको लेजा कर सेठ पर डाला जाय कि वह स्वयं मर जाय । बस, चोर ने उस खजाने को लेजा कर सोते हुये सेठ पर डाल दिया कि वह पुनः खजाना हो गया अर्थात् निश्चय रखा तो निधान घर पर आ गया । अतः निश्चय ही को मानना ठीक है । यदि निश्चय में नहीं है तो व्यवहार उलटा नुकसान का कारण बन जाता है। जैसे एक मूषक ने व्यवहारिक उद्यम कर एक छबड़े को काटा अन्दर था सर्प । मूषक को भक्षण कर गया । अतः मेरी मान्यता के अनुसार एक निश्चय ही प्रधान है ।

सूरिजी ने कहा कि ऐसे तो व्यवहार की प्रधानता के भी अनेकों उदाहरण मिल सकते हैं। जैसे आप यहाँ से जाने का उद्यम न करें, फिर कैसे मकान पर पहुँच सकते हैं । रसोई की सब सामग्री होने पर भी बनाने का उद्यम न करें फिर कैसे रसोई बन सकती है । भोजन का ग्रास मुंह में डाला है पर उसे गले उतारने का उद्यम न करें फिर वह कैसे क्षुधा को शान्त कर सकता है । इत्यादि अनेक उदाहरण विद्यमान हैं कि व्यवहार बिना निश्चय काम नहीं देता है । हां, निश्चय से ही व्यवहार चलता है । जैसे निश्चय कार्य्य है तब व्यवहार कारण है पर कारण बिना कार्य बन नहीं सकता है जैसे एक भाई निश्चय को प्रधान मान कर व्यवहार का अनादर करता था तब दूसरा भाई व्यवहार को प्रधान समझ कर निश्चय को नहीं मानता था । इन दोनों में इस विषय पर काफी वाद-विवाद हो गया । अतः वे राजा के पास इंसाफ कराने के लिए गये । दोनों की बातें सुन कर राजा विचार में पड़ गया कि अब मैं किसको सच्चा और किसको झूंठा कहूँ । राजा ने इस कार्य्य को प्रधान पर छोड़ दिया जो स्याद्वाद सिद्धान्त को मानने वाला था ।

प्रधान ने एक मास की तारीख डाल दी । इतने समय में एक छोटा-सा कमरा बनाया, इसकी दीवार में एक छोटा-सा आला रक्खा, उसमें एक छाब में चार लड्डू और जल का एक कोरा घड़ा भरकर रख दिया और उस पर पत्थर चुना ऐसा लगा दिया कि किसी को मालूम न पड़े । जब एक मास के अन्त में उन दोनों की पेशी हुई और वे दोनों हाजिर हुये तो उन दोनों को उस कमरे में डाल कर कपाट बन्द कर दिये । उनके वार्तालाप सुनने को एक गुप्त आदमी को रख दिया । निश्चयवादी तो चुपचाप सो गया पर व्यवहारवादी ने कहा-भाई सोने से क्या होगा कुछ उद्यम (व्यवहार) करिये । निश्चयवादी ने कहा-व्यवहार में क्या धरा है । आखिर तो निश्चय होगा वही होगा । खैर व्यवहारवादी ने दो दिन उद्यम किया कुछ पानी नहीं हुआ पर तीसरे दिन कमरे के भीतर एक दीवार पर मुक्का मारने पर मालूम हुआ कि यहाँ पोलार है । उसने हाथ से या लोहे की चाबी से भींत को खोदा और चुना एवं पत्थर को हटाया तो अन्दर लड्डू और जल देख पाया । तब निश्चयवादी को कहा भाई तेरा निश्चय तो मर जाने के अलावा कोई फल नहीं देता है, पर देख मेरे व्यवहार से लड्डू और जल मिल गया है । उठ इसे खा कर प्राण बचा ले । बस चार लड्डू में से दो निश्चयवादी को दे दिये और दो अपने ले लिये । निश्चयवादी लड्डू तोड़ कर खाने लगा तो लड्डू के अन्दर एक बहुमूल्य रत्न निकला जिसको गुप्त कर अंटी में दबा लिया । चौथे दिन उन दोनों को दरबार में

बुलाया और पूछा कि तुम्हारा इंसाफ हो गया ? दोनों ने कहा कि अच्छी तरह से यानी व्यवहारवादी बोला कि मेरा व्यवहार ही प्रधान है कि दोनों के प्राण बचाये। निश्चयवादी ने कहा मेरा निश्चय ही प्रधान है कि अमूल्य रत्न हाथ लग गया। इस पर प्रधान ने कहा कि तुम दोनों मिलकर चलोगे तो ही फल प्राप्त होगा। यदि उद्यम न करता तो भोजन एवं रत्न कहां से मिलता, फिर भी व्यवहार का फल केवल लड्डू और जल जितना ही था, पर निश्चय का फल रत्न तुल्य है। अतः निश्चय को प्रगट करने के लिये व्यवहार को उपादेय माना करो। दोनों मंजूर कर अपने २ स्थान चले गये। सूरिजी महाराज के उदाहरण ने पृच्छक पर ही नहीं पर आम सभा पर भी बड़ा भारी प्रभाव डाला और स्याद्वाद पर जनता की विशेष श्रद्धा जम गई।

समय परिवर्तनशील है। पूर्व जमाने में निश्चय को मुख्य और व्यवहार को गौण समझा जाता था। उस समय दुनियां को इतना सोच फिक्र एवं आर्तध्यान नहीं था। अर्थात् कुछ भी हानि लाभ होता तो भी इतना हर्ष शोक नहीं होता था कारण वे जान जाते थे कि निश्चय से ऐसा ही होने वाला था पर जब से निश्चय को गौण और व्यवहार को मुख्य माना जाने लगा तब से जनता में सोच फिक्र और आर्तध्यान बढ़ने लग गया। कारण जिस सुख दुख का कारण कर्म समझा जाता था उसके बदले व्यक्ति को समझा जाने लगा। इससे ही आपसी राग-द्वेष वैर-विरोध की वृद्धि हुई है अतः जैनधर्म के सिद्धान्त के जानने वालों को निश्चय को प्रधान और व्यवहार को गौण की मान्यता रखनी चाहिये कि सुख दुख को पूर्व संचित कर्म समझ समभाव से भोग लेवे। अतः निश्चय पर अडिग रहना चाहिये।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने प्रथम रत्नप्रभसूरि की तरह कई मांस मदिरा-सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित किये। कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई। कई वार तीर्थों की यात्रा निमित्त संघ निकलवाये। कई वादी प्रतिवादियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजय वैजंती ध्वजा फहराई और अनेक मुमुक्षुओं को दीक्षा दे श्रमणसंघ में वृद्धि की। सिन्ध भूमि उस समय उपकेशगच्छाचार्यों की एक विहार भूमि थी।

वहां से पंजाब भूमि में पधार कर अपने साधुओं की सार-संभाल की और दीर्घ समय से वहां जैनधर्म के प्रचारार्थ किये हुये कार्यों की सराहना कर उनके उत्साह को बढ़ाया। सावत्थीनगरी में महा-महोत्सवपूर्वक कई योग्य मुनियों को पदस्थ बनाये वहां से तक्षिलादि नगरों में विहार किया और शालीपुर के मंत्री महादेव के संघ के साथ सम्मेतशिखरजी की तीर्थों की यात्रा की और राजगृह चम्पा भद्दलपुर पावा-पुरी काकंदी विशालादि पूर्व की यात्रा करते हुए कलिंग में पधारे कुँवार कुँवारी वगैरह क्षेत्रों की स्पर्शनाकर आवंती मेदपाट में धर्मोपदेश करते हुये पुनः मरुधर की ओर पधारे।

आचार्य रत्नप्रभसूरि मरुधर में विहार करते हुए एक समय वीरपुर नगर की ओर पधारे वीरपुर में नास्तिक वाममार्गियों का खूब अड्डा जमा हुआ था वहां का राजा वीरधवल इन नास्तिकों को मानने वाला था यथा राजास्तथा प्रजा? इस युक्ति अनुसार नगर के बहुत लोग इन पाखण्डियों के भक्त थे। आचार्य रत्नप्रभसूरि (प्रथम) आदि आचार्यों ने वाममार्गियों के मिथ्या धर्म का उन्मूलन कर दिया था पर फिर भी ऐसे अज्ञात नगरों में उन लोगों के अखाड़े थोड़ा बहुत प्रमाण में रह भी गये थे पर इनके लिए भी जैनाचार्यों का खूब जोरों से प्रयत्न था। और इस लिये ही सूरिजी का पधारना हुआ था।

वीरपुर के राजा का कुँवर वीरसेन की शादी उपकेशपुर की राजकन्या सोनलदेवी के साथ हुई थी

सोनलदेवी जैनधर्म की पक्की श्राविका थी उसने अपने श्वसुराल में जैनधर्म का प्रभाव को अच्छी तरह फैला दिया था आचार्य रत्नप्रभसूरिजी उस सोनलदेवी की विनती से ही पधारे थे जब मालूम हुआ कि आचार्य रत्नप्रभसूरि पधार रहे हैं तो उसने गुरु महाराज के स्वागत की अच्छी की तथा वहां के श्रीसंघ ने भी सूरिजी महाराज का सुन्दर स्वागत किया और सूरिजी को नगर प्रवेश वाये । सूरिजी का व्याख्यान सदा हुआ करता था आपका उपदेश में न जाने ऐसा कोई जादू था कि के राजकुँवार वीरसेनादि बहुत से नर नारियों को जैनधर्म की दीक्षा देकर उन सब का उद्धार किया । कुँवार वीरसेन को दीक्षा देकर सूरिजी ने उनका नाम मुनि सोमकलास रखा था मुनि सोमकलस लेते ही ज्ञानाभ्यास करने में लग गया मुनि सोमकलस ने पूर्व जन्म में उज्वल भावों से ज्ञानस सरस्वती की आराधना की थी कि थोड़ा ही समय में विद्वान बन गया अतः सूरिजी ने सोमकलस को ध्याय पद से विभूषित कर दिया ।

उपाध्याय सोमकलस का व्याख्यान बड़ा ही मधुर रोचक और युक्ति पुरसर था कि सुनने वालों पर बड़ा ही प्रभाव पड़ता था इतना होने पर भी उपाध्यायजी गुरुकुलवास से दूर रहना नहीं चाहते थे एक समय सूरिजी ने सिन्ध प्रान्त में विहार किया रास्ता में छोटे छोटे गांव आने के कारण उपाध्याय सोमकलस को कई साधुओं के साथ अलग विहार करवाया अतः उपाध्यायजी एक दिन विहार कर पद्मसोली ग्राम जा रहे थे परन्तु ग्राम में नहीं पहुँचने पहले ही सूर्य अस्त हो गया अतः साधु वृक्षों के नीचे ठहर गये उपाध्याय जी पास ही में निर्जीव भूमिका देखी तो वहां ठहर गये परन्तु वहां थे श्मशान रात्रि समय जब आप ध्यानारियत थे तो एक देवी महा भयंकर रूप बना कर उपाध्यायजी के पास आई और मारी क्रोध के कई उपद्रव करने शुरू किये पर उपाध्यायजी थे वीर क्षत्री वे अपने ध्यान से तनक भी क्षोभ न पाये—अतः देवी हताश होकर एक सुन्दर देवांगना का रूप बना कर अनुकूल उपसर्ग देने लगी फिर भी आप तो मेरु पर्वत की भांति अडिग ही रहे आखिर देवी अपने जितने उपाय थे सब के सब आजमाइश कर लिये पर वीर उपाध्यायजी मनसा से भी चलायमान नहीं हुए । इस सहनशीलता को देख देवी प्रसन्न होकर अर्ज की कि हे प्रभो ! मैंने अज्ञानवश आपको कई प्रकार से उपसर्ग किया उसकी तो आप क्षमा करें और मैं आज से आपकी किंकरी हूँ जिस समय आप याद फरमावें उसी समय मैं सेवा में हाजिर होकर आपका कार्य करने की प्रतिज्ञा करती हूँ । कृपा कर मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार करावे उपाध्यायजी ने अपना ध्यान पार कर कहा कि देवी हम साधु लोग तो उपसर्ग एवं परिसह सहन करने के लिए ही साधु हुए हैं इसमें मेरी दृष्टि में तो आपका कोई अपराध नहीं हुआ है कि जिसकी मैं आपको माफी दूं दूसरा आपने प्रतिज्ञा की वह अच्छी ही है पर हम साधु लोगों के क्या काम होता है कि आपसे करावें हाँ, शासन कार्य के लिये क्या आप [illegible] क्या मैं अपना कर्तव्य ही समझते हैं पूर्व जमाना में आचार्य रत्नप्रभसूरि के कार्य में [illegible] देवी और आचार्य यक्षदेवसूरि के कार्य में मातुलादेवी सहायक बन शासन के कार्य में मदद पहुँचाई है आप भी [illegible] अनुकरण कीजिये । देवी ने तथास्तु कह कर उपाध्यायजी को 'वादविजयता' वरदान देकर [illegible] वन्दन कर अपने स्थान पर चली गई ।

सुबह उपाध्यायजी अपने मुनियों के साथ विहार कर पद्मसोला होकर [illegible] पधारे वहां [illegible] [illegible] होने पर भी किसी जैन को नहीं देखा नगर में आने पर उपाध्यायजी महाराज को [illegible]

यहां उपकेशगच्छ के साधु हैं और किसी कृष्णाचार्य के साथ राज सभा में वाद विवाद करने को गये हैं और सबजैन लोग भी मुनियों के साथ राज सभा में गये हैं अतः कोई भी जैन सेवा में हाजिर नहीं हो सका बस फिर तो देरी ही क्या थी उपाध्यायजी बिना आहारपानी किये और बिना विलम्ब राज सभा में गये मुनियों ने उपाध्यायजी का स्वागत कर आसन दिया उपाध्यायजी ने शास्त्रार्थ की विषय अपने हाथ में ली तो क्षण भर में ही वादी को पराजय कर उस सभा के अन्दर जैनधर्म की विजय पताका फहरा दी इतना ही क्यों पर वहां के राजा प्रजा को जैनधर्म की दीक्षा शिक्षा देकर उन सब को जैन बनाया जिससे वहां का श्रीसंघ बड़ा ही प्रसन्न चित्त हो गाजा बाजा और जिनशासन की जयध्वनि के साथ उपाध्यायजी महाराज को उपाश्रय पहुँचाये—उपाध्यायजी महाराज की यह पहला पहल ही विजय थी।

उपाध्यायजी क्रमशः विहार करते हुए सूरिजी महाराज के पास आये और सब हाल कहने पर सूरिश्वरजी महाराज बड़े ही प्रसन्न हुए सूरिजी महाराज सर्वत्र विहार कर पुनः मरुधर में पधारे और उपाध्याय सोमकलस की इच्छा वीरपुर की स्पर्शना करने की हुई अतः सूरिजी विहार कर वीरपुर पधारे बस फिरतो कहना ही क्या था एक तो सूरीश्वरजी का पधारना दूसरा उपाध्यायजी इस नगर के राजकुंवार थे और लेख पढ़कर एवं विद्वता प्राप्त कर पुनः पधारे अतः जनता के दिल में बड़ा भारी उत्साह था वहां का राजा देवसेनादि श्रीसंघ ने सूरिजी के नगर प्रवेश का अच्छा महोत्सव किया और श्रीसंघ की आग्रह विनतिं से सूरिजी एवं उपाध्यायजी महाराज ने वह चतुर्मास वीरपुर में करने का निश्चय करलिया आपके चतुर्मास से वहां की जनता को बहुत लाभ हुआ आचार्यरत्नप्रभसूरिने उपाध्याय सोमकलस को सूरिमंत्र की आराधना करवा कर राजा देवसेन के बड़ाभारी महोत्सव के साथ उपाध्याय सोमकलस को सूरि पद से भूषीत कर आपका नाम यक्षदेवसूरि रक्ख दिया इन के अलावा भी कई योग्य मुनियोंको पदवियों प्रदान की।

उपकेशगच्छाचार्य्यों की यह तो एक पद्धति ही बनगई कि जब वे गच्छ नायकता का भार अपने सिर पर लेते थे तब कम से कम एक बार तो इन सब प्रदेशों में उनका विहार होता ही था। कारण इन प्रदेशों में महाजन संघ—उपकेशवंश के लोग खूब गहरी तादाद में बसते थे और उनके उपदेश के लिये इस गच्छ के अनेकों मुनि एवं साध्वियें विहार भी करते थे। फिर भी आचार्य्यश्रीके पधार नेसे श्राद्धवर्ग में उत्साह बढ़ जाता था और मुनिवर्ग की सारसँभाल हो जाती थी। दीर्घकाल सूरिपद पर रहने वाले आचार्य तो इन प्रान्तों में कई बार भ्रमण किया करते थे। पट्टावलियों में तो आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी के भ्रमण का हाल बहुत विस्तार से लिखा है पर ग्रन्थ बढ़जाने के भय से मैंने यहाँ संक्षिप्त से ही लिख दिया है कि आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाप्रभाविक जिनशासन के स्थम्भ एक प्रतिभाशाली आचार्य हुये हैं। आप अपने ६३ वर्ष के सुदीर्घ शासन में अनेक प्रकार से जैनधर्म की उन्नति कर अपनी धवल कीर्ति को अमर बना गये। और हम लोगों पर इतना उपकार कर गये हैं कि जिसको हम क्षण भर भी नहीं भूल सकते।

कोरंटगच्छ के आचार्य सर्वदेवसूरि जैनधर्म के प्रखर प्रचारक थे। एक समय विहार करते कोरंटपुर पधारे। वहां पर देवी चक्रेश्वरी ने एक समय रात्रि में सूरिजी से अर्ज की हे प्रभो! आपका आयुष्य अब बहुत कम है आप किसी योग्य शिष्य को सूरिपद देकर अपने पट्टपर आचार्य बना दीजिये। सूरिजी ने कहा देवीजी ठीक है मैं समय पाकर ऐसा ही करूंगा। आचार्य श्री ने विचार ही विचार में कई वर्ष निकाल दिया और अकस्मात एक ही दिन में आपका शरीर टूट गया कि वे अपने हाथों से आचार्य नहीं

यना सके । कोरंटसंघ ने सूरिजी की मृत्यु क्रिया करने के पश्चात् चतुर्विध श्रीसंघ एकत्र होकर विचार , सूरिजी अपने हाथों से अपने पट्टधर बना नहीं सके पर आचार्य बिना गच्छ का संचालन कौन अतः वे लोग चलकर आचार्य्य रत्नप्रभसूरि के पास गये और प्रार्थना की कि प्रभो ! कोरंटगच्छ इतना गच्छ है पर इस समय कोई आचार्य नहीं है अतः आप कोरंटपुर पधार कर योग्य मुनि को आचार्य इत्यादि इस पर आचार्य रत्नप्रभसूरि कोरंटपुर पधारे और कोरंटगच्छ में एक सोमहंस नाम का अच्छा एवं योग्य मुनि था जिसको सूरि मन्त्र की आराधना करवा कर शुभ मुहुर्त में श्रीसंघ के समक्ष पद से विभूपित किया और आपका नाम कनकप्रभसूरि रक्खा इस पद महोत्सव में कोरंटसंघ ने [illegible] द्रव्य व्यय कर जिनशासन की अच्छी प्रभावना की । पूर्व जमाने में गच्छ अलग २ होने पर भी कितना प्रेम स्नेह और एक दूसरे की उन्नति में किस प्रकार सहायक बनते थे जिसका यह एक उदाहरण है । इस प्रकार का धर्म प्रेम से ही जैनधर्म उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था ।

इस प्रकार आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने अपने शासन में जैनधर्म का खूब प्रचार बढ़ाया आप पधारे वहां वहां जैनधर्म की प्रभावना के साथ महाजन संघ की खूब वृद्धि की कई भावुकों को प्रदान कर श्रमण संघ की संख्या बढ़ा कर प्रत्येक प्रान्तों में साधुओं को विहार की आज्ञा दी और [illegible] श्री संघ के ज्ञानवृद्धि के निमित्त अनेक ग्रन्थों की रचना भी की अन्त में आप उपकेशपुर पधारे और अपना आयुष्य नजदीक समझ कर चतुर्विध श्रीसंघ के समीक्ष आलोचना कर अनशनव्रत धारण कर लिया और ३२ दिन परम समाधि में बिता कर स्वर्गधाम पधार गये ।

आचार्य रत्नप्रभसूरि के ६३ वर्ष के दीर्घशासन में शासनोन्नति के अनेक कार्य हुए जिसका [illegible] पट्टावलियों वंशावलियों आदि अनेक ग्रन्थों में विस्तार से मिलते हैं पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से [illegible] को मैं यहाँ पर नहीं लिख सकता हूँ तथापि नमूना के तौर पर कतिपय नामोल्लेख कर देता हूँ ।

आचार्य श्री के उपदेश से भावुकों ने दीक्षा ग्रहण की

१—उपकेशपुर के कुमट गोत्रिय गणधर ने सूरिजी के पास दीक्षा ग्रहण की ।
२—उपकेशपुर के भद्रगोत्रिय सलखणादि ने दीक्षा ली ।
३—नागपुर के आदित्यनाग गोत्रीय शा पुनड़ ने दीक्षा ली ।
४—मंडपुर के सुचंती गोत्रिय १६ साथियों के साथ हरदेव ने दीक्षा ली ।
५—मुग्धपुर के बापनाग गोत्रिय देवपाल ने सपत्नी दीक्षा ली ।
६—काकंदपुरा के कुलभद्रगोत्रिय शाह नेना ने चार मित्रों के साथ दीक्षा ली ।
७—पद्मावती के क्षत्रिय वीरमदेव ने दीक्षा ली ।
८—चन्द्रावती के लुंग गोत्रिय भवना ने ११ भावुकों के साथ दीक्षा ली ।
९—भद्रावती के [illegible] जयदेव ने अपने तीन मित्रों के साथ दीक्षा ली ।
१०—कोरंटपुर प्राग्वट वंश के शाह पोरा ने सपत्नी दीक्षा ली ।
११—[illegible] के प्राग्वटवंश के शाह [illegible] ने दीक्षा ली ।
१२—[illegible] के श्रीमाल [illegible] ने १[illegible] साथियों के साथ दीक्षा ली ।

[सूरिजी के शासनकाल में

१३—चंदेरी के बापनाग गोत्रिय शाह रांणा अपने पुत्र के साथ सूरिजी के पास दीक्षा ली।

१४—विलासपुर के सुचंति गोत्रिय शाह नागा ने	सू०	दी०
१५—जालौन० आदित्यनाग गोत्रिय शाह देवा ने	”	”
१६—रत्नपुर० श्रेष्टिगौत्रिय शादूल ने	”	”
१७—खोखर—प्राग्वट वंशीय देपाल ने	”	”
१८—नलिया—श्रीमाल रेणाने	”	”
१९—करणावती—श्रीमाल साहण सेवा ने	”	”
२०—सीपार—श्रेष्टिगौत्रिय चाहड मन्त्री ने	”	”
२१—सालीपुर—प्राग्वट० पेथा ने अपनी स्त्री और दो लड़कियों के साथ	”	”
२२—लोहरा—ब्राह्मण सदाशिव ने	”	”
२३—धामाणी—डिडूगौत्रिय नागादि ९ मनुष्यों ने	”	”
२४—रामपुर—भूरगौत्रिय हरदेव ने	”	”
२५—चोलीग्राम—चलाहगौत्रिय नागदेव ने	”	”
२६—जाखोलिया—कुलभन्द्र गौत्रिय हेमा नेमा ने	”	”
२७—वैणीपुर—विरहट गौत्रिय काना ने	”	”

यह तो केवल उपकेश वंश वालों के ही नाम लिखा है इनके अलावा महाराष्ट्रीय सिन्ध पंजाब वगैरह देशों के सैकड़ों नर-नारियों की सूरिजी एवं आपके शिष्यों के कर कमलों से दीक्षा हुई थी पर वंशावलियों में उनके नाम दर्ज नहीं हैं खैर इस प्रकार दीक्षा लेने से ही इस गच्छ में हजारों की संख्या में मुनि भूमण्डल पर विहार कर जनकल्याण के साथ शासन की प्रभावना करते थे।

आचार्य श्री के शासन समय तीर्थों के संघ

१—चन्द्रावती से प्राग्वटवंशीय वीरम ने तीर्थराज श्री शत्रुंजयादि का संघ निकाला जिसमें सात लक्ष द्रव्य व्यय किया सोना मोहरों की लेन एवं पेहरामणि दी।

२—मेदनीपुर के सुघड़ गोत्रिय शाह लुणा ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया संघ को पहरामणी दी और सात यज्ञ (जीमणवार) किये।

३—उपकेशपुर के श्रेष्टि गोत्रिय मन्त्री दहेल ने श्री सम्मेतशिखरादि पूर्व के तीर्थों का संघ निकाला जिसमें नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया। साधर्मी भाइयों को पांच सेर का लड्डू के अन्दर पांच पांच सोना मोहरों की पहरामणी दी और सात यज्ञ (स्वाधार्मिक वात्सल्य) किये।

४—हावरेल नगर के मन्त्री हनुमत्त ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया

५—पद्मावती के मन्त्री राणा ने शत्रुंजय का संघ निकाल पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

६—आजोट के प्राग्वट नोढा नोधण ने शत्रुंजय का संघ निकाल पांच लक्ष द्रव्य व्यय किया।

७—स्थम्भनपुर के प्राग्वट हरपाल ने शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें एक लक्ष द्रव्य व्यय किया।

८—मथुरा के आदित्यनाग गोत्रीय कल्हण ने सम्मेत शिखर का संघ निकाला।

९—शकम्भरी के चिंचट गोत्रीय भूरा राजा ने शत्रुंजय का संघ निकाला।

१०—वैराट नगर के वलाह गोत्रिय शाह राजल ने शत्रुंजय का संघ निकाला।

११—जावलीपुर के श्रीमाला नाथा ने शत्रुंजय का संघ निकाला।

इनके अलावा आपश्री के शिष्यों प्रशिष्यों के उपदेश से भी कई प्रान्तों से अनेक बार संघ प्रम कर तीर्थों की यात्रा की और जीवन को पावन बनाया था।

आचार्य श्री के उपदेश से मन्दिरों की प्रतिष्ठा हुई

१—मापाणी ग्राम में सुचेती गोत्रीय शाह नांधण के बनाये पार्श्वनाथ मंदिर की प्र० कराई

२—विजयपुर में तप्तभट गोत्रीय सुगाल के बनाये विमलदेव के मं० की प्र० कराई।

३—पीतलिया ग्राम में भद्र गोत्रिय सग्राम के बनाये शान्तिनाथ मं० की प्र० कराई।

४—ब्रह्मपुरा ग्राम के भूरि गोत्रीय कल्हण के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।

५—गगनपुर में ब्राह्मण जगदेव के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।

६—चन्द्रवती वनमाली सरूप के बनाये महावीर मँ० की प्र० कराई।

७—दान्तीपुर श्री श्रीमाल भीखा के बनाये पार्श्वनाथ मं० की प्र० कराई।

८—आघाट नगरे चिंचट गोत्रीय शा० भूरा के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।

९—दशपुर नगरे बाप्पनाग गोत्रीय हणमत के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।

१०—आलोट नगरे मोरक्षा गोत्रिय चोखा शाह के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।

११—लोहाकोट कर्णाटगोत्रीय धनपाल के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।

१२—हर्षपुरे श्रेष्टि गोत्रीय करणा के बनाये पार्श्व० मं० की प्र० कराई।

१३—कन्नोज नगरे वीरहट गोत्रीय भाणा के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।

१४—डिडुनगरे डिडुगोत्रीय शा० जोगा के बनायें महावीर मं० की प्र० कराई।

यह तो केवल नमूने के तौर पर लिखा है पर इतने सुदीर्घकाल में स्वयं आचार्यश्री व आपश्री के आज्ञावृति मुनियों के उपदेश से तीर्थों के संघ भावुकों की दीक्षा और मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाओं के विषय में तथा एक-एक आचार्यों ने जो शासन का कार्य्य किया है उसको लिखा जाय तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ बन जाता है। आचार्यश्री के उपदेश से लाखों मांस मदिरा सेवियों ने जैनधर्म स्वीकार किया था। यही कारण था कि उस समय जैनों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई थी। इस प्रकार आचार्य देवों का जैन समाज पर इतना उपकार हुआ है कि जिसको हम एक क्षण भी नहीं भूल सकते।

पट्ट सोलहवें अतिशय धारी, रत्नप्रभ सूरीश्वर थे।
प्रतिभाशाली उग्रविहारी, अघ हरण दिनेश्वर थे॥
मृतक पुत्र का पढ़ कर जीवन, ज्योति पुनः जगाई थी।
कलंक नत मस्तक वादी का, धर्म की प्रभा बढ़ाई थी॥

॥ इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के १६ वें पट्ट पर आचार्य रत्नप्रभसूरि महाप्रभाविक हुए।

भगवान् महावीर की परम्परा

आर्य वज्रस्वामि—आचार्यश्री वज्रस्वामि जैनसंसार में खूब प्रतिष्ठित हैं आप अनेक लब्धियें विद्याओं और अतिशय चमत्कारों से जैन धर्म की बड़ी भारी उन्नति की थी आपके नाम की स्मृति रूप वज्री शाखा चली थी जिसके प्रतिशाखा रूप अनेक गच्छ हुए थे आपश्री का अनुकरणीय जीवन संक्षिप्त से यहाँ लिखा जाता है। उस समय मालवा नामक देश बड़ा ही उन्नत समृद्धिशाली और धन-धान्य पूर्ण था उसमें एक तुंबवन नामक ग्राम था वहां वैश्यकुल में सिंहगिरि नाम का बड़ा ही धनाढ्य श्रेष्ठि बसता था। उसके धनगिरि नाम का पुत्र था और उसी नगर में धनपाल नाम का सेठ था जिसके सुनंदा नाम की पुत्री थी जिसकी शादी धनगिरि के साथ कर दी थी। बाद धनगिरि का पिता सिहगिरि ने आचार्यश्री दिन्न के पास दीक्षा ग्रहण करली थी। जब धनगिरि के सुनन्दा स्त्री गर्भवती थी उस समय धनगिरि ने भी वैराग्य की धुन में संसार को असार जानकर आचार्य सिंहगिरि के पास दीक्षा लेली बाद सुनन्दा के पुत्र हुआ पर उसको बाल्यावस्था में ऐसा ज्ञान (जातिस्मरण) उत्पन्न हुआ कि उसकी भावना दीक्षा लेने की होगई किन्तु उस बाल्यावस्था में दीक्षा किस तरह लीजाय उसने अपनी दीक्षा का एक ऐसा उपाय सोचा × कि रात्रि दिन रुदन करना आरंभ कर दिया जिससे उसकी माता सुनन्दा घबरा गई और बार-बार कहने लगी कि इस पुत्र के पिता ने दीक्षा लेली और यह पुत्र की आफत मेरे शिर पर छोड़ गये सुनन्दा अपनी सखियों को कहा करती थी कि यदि इस लड़का का पिता कभी यहाँ आ जाय तो मैं इस पुत्र को उनको सोंप कर सुखी बन जाऊँ इत्यादि। भाग्यवसात् आर्यधनगिरि अपने गुरु के साथ विहार करते हुए उसी तुंबवन ग्राम में आ गये। गुरु महाराज ने निमित्त ज्ञान से जानकर धनगिरि को कहा कि हे मुनि ! आज तुमको जो सचित अचित एवं मिश्र कुच्छ भी पदार्थ मिले वह ले आना। मुनि † समित के साथ धनगिरि भिक्षार्थ ग्राम में गया। फिरता फिरता सुनन्दा के घर पर आ निकला। सुनंदा पहिले से ही पुत्र के रुदन से कँटाल गई थी ! मुनि धनगिरि को आया देख उसकी सखियों ने कहा कि हे सखी ! इस बालक का पिता मुनि आगया है। इस बालक को देकर तू सुखी बन जा जो तुँ पहला कहा करती थी। यह तेरे लिये सुअवसर है। बस सुनन्दा ने मुनि धनगिरि से कहा कि आप अपने पुत्र को ले जाइये मैं तो इसके रुदन से घबरा गई हूँ। मुनि ने कहा

× ममापि भवनिस्तारः संभवी संयमादितः । अत्रोपायं व्यमृक्षच्च रोदनं शैशवोचितम् ॥ ५१ ॥

× × ×

तत्र गोचरचर्यायां विशन्धनगिरिर्मुनिः । गुरुणा दिदिशे पक्षिशब्दज्ञाननिमित्ततः ॥ ५६ ॥

† अद्य यद्द्रव्यमाप्नोषि सचित्ताचित्तमिश्रकम् । ग्राह्यमेव त्वया सर्वं तद्विचारं विना मुने ॥ ५७ ॥

तथेति प्रतिपेदानस्तदार्यसमितान्वितः । सुनन्दासदनं पूर्वमेवागच्छदनुस्पर्धाः ॥ ५८ ॥

तद्धर्मलाभ श्रवणादुपायातः सखी जनः । सुनन्दां प्राह देहि त्वं पुत्रं धनगिरेरिति ॥ ५९ ॥

सापि निर्वेदिता प्राहं पुत्रं संगृह्य वक्षसा । नत्वा जगाद पुत्रेण रुदता खेदितास्मि ते ॥ ६० ॥

गृहाणैनं ततः स्वस्य पार्श्वे स्थापय चेत्सुखी । भवत्यसौ प्रमोदो मे भवत्वेतावतापि यत् ॥ ६१ ॥

स्फुटं धनगिरिः प्राह ग्रहीष्ये नन्दनं निजम् । परं स्त्रियो वचः चंगुचरं यानि पदापदम् ॥ ६२ ॥

क्रियन्तां साक्षिणस्तत्र विवादहतिहेतवे । अप्रसनति पुत्रार्थे न जल्प्यं किमपि त्वया ॥ ६३ ॥

कि स्त्रियों के कहने पर विश्वास नहीं किया जाता है अभी तो दुख के मारी तू पुत्र को मुझे देती है पर बाद में कभी मांगा तो पुत्र तुमको नहीं दिया जायगा। सुनन्दा ने कहा मैं कभी पुत्र को नहीं मांगूंगी। इसके लिये मुनि समित एवं मेरी सखियां साक्षी देंगी।

बस ! धनगिरि छः मास का पुत्र को झोली में डाल कर गुरु महाराज के पास ले आया और गुरु ने झोली को हाथ में ली तो उसमें वजन बहुत था। गुरु ने कहा कि हे मुनि ! तू क्या आज वज्र लाया है यही कारण था कि उस बालक का नाम वज्र रख दिया।

वज्र बालक होने के कारण शय्यात्तर एवं गृहस्थों को सोंप दिया कि वे पालन पोषण करें। और उनके संस्कारों के लिये साध्वियों के उपाश्रय रखने की भी आज्ञा दे दी थी सुनन्दा भी वहाँ आया करती थी। कभी कभी साध्वियों से पुत्र वापिस देने की प्रार्थना भी किया करती थी पर साध्वियां कह देती थीं कि वेहराया हुआ बालक वापिस नहीं दिया जाता है, इस पर भी तुमको पुत्र की जरूरत हो तो गुरु महाराज के पास जाओ और वे जैसी आज्ञा दें वैसा करो इत्यादि। जब साध्वियां सूत्र की स्वाध्याय करती थीं तो बालक वज्र ने सुनने मात्र से एकादशांग का अध्ययन कर लिया। इस प्रकार वज्र ३ वर्ष का हो गया। अब तो सुनंदा को पुत्र प्रति पूरा मोह लग गया और बार २ पुत्र की याचना करने लगी पर मुनि धनगिरि ऐसा शासन का भावि प्रभाविक पुत्र को कब देने वाला था। आखिर सुनन्दा राज में गई राजा ने दोनों के बयान लिये और कहा कि अपनी-अपनी कोशिश करो। बच्चे का दिल होगा उसको दिया जायगा। एक तरफ तो साधुओं ने ओघा पात्रे रख दिये और दूसरी ओर सुनन्दा ने सांसारिक मोहक पदार्थ रख दिये और राज सभा में वज्र को बुलाया। राजा ने कहा तुमको प्रिय हो वही लेलो वज्र ने मोहक पदार्थों को छोड़ ओघा पात्रा लेलिये। बस राजा ने वज्र को मुनियों के सुपुर्द कर दिया। उस समय वज्र की केवल ३ वर्ष की आयु थी।

जब गुरु महाराज ने वज्र को दीक्षा देने का निश्चय किया तो सुनंदा ने सोचा कि मेरे पति ने दीक्षा ले ली मेरा पुत्र दीक्षा लेने को तैयार होगया तो अब मैं संसार में रह कर क्या करूंगी मुझे भी दीक्षा लेना ही हितकारी है अतः वज्र और वज्र की माता ने गुरु महाराज के पास दीक्षा लेली युगप्रधान पट्टावली में वज्र का गृहस्थावास ८ वर्ष का बतलाया है शायद सुनन्दा अपने पुत्र के लिये फिर कहीं तकरार न करे इसलिये वज्र को तीन वर्ष की आयु में साधु वेष दे दिया हो और बाद ८ वर्ष का होने पर दीक्षा दी हो तो यह संभव भी हो सकता है। दूसरे आगम व्यवहारियों के लिये कल्प भी तो नहीं होता है वे ज्ञान के जरिये भविष्य का लाभालाभ देखे वैसा ही कर सकते हैं जब तक वज्र मुनि आठ वर्ष के नहीं हुये वहाँ तक साध्वियों के पास रहा। तत्पश्चात वज्र को दीक्षा देदी और मुनि वज्र गुरु महाराज के साथ विहार कर दिया।

एक समय गुरु महाराज के साथ मुनि वज्र विहार ‡ करता हुआ एक जंगल में पहाड़ के पास आ गया था। उस समय एक जृम्भकदेव ने वज्र की परीक्षा के निमित्त वैक्रय से इतनी वर्षा की कि पृथ्वी जलमय हो गई। वज्र ने एक पर्वत की गुफा में जाकर ध्यान लगा दिया। तीन दिन तक पानी के जीवों की दया के

‡ अनिच्छया च साचार्यादार्यसमितो मुनिः। साक्षी सख्यश्च साध्व्यो मार्ग नातः [illegible] ॥ १७ ॥
बन्धोऽस्मि [illegible] त्वयेदं मम [illegible]। [illegible] ॥ १८ ॥
[illegible] (म) [illegible] ॥ २० ॥
[illegible] ॥ २२ ॥ २० ॥

लिये मुनि वज्र एक गुफा में ठहर गया। देवता ने वर्षा बन्द कर वणिक का रूप धारण कर वज्र को गोचरी के लिए आमंत्रण किया। बालमुनि गुरु आज्ञा लेकर गोचरी गया पर उपयोग से जान लिया कि यह देव पिण्ड है इसलिये भिक्षा नहीं ली। अतः देवता ने प्रसन्न हो वज्र के चरणों में वन्दना कर प्रशंसा की।

दूसरी बार देवता ने गेवर बना कर वज्र की परीक्षा की पर वज्र ने अपने उपयोग से गेवर भी नहीं लिए। अतः देवता ने प्रसन्न हो कर वज्र को आकाशगामनी विद्या प्रदान की।

एक समय सब साधु गौचरी गये थे। वज्र अकेलाही था उसने सब साधुओंकी उपाधी क्रमशः रखकर आप आगम की वाचना देनी शुरू की। इतने में आर्य सिंहगिरि बाहर जाकर आ रहे थे उन्होंने आगम के पाठ सुन कर विचार किया कि भिक्षा के समय मुनियों को आगमों की वाचना कौन दे रहा है ? जब उन्होंने उपयोग से मुनि वज्र को जाना तो बड़ा ही हर्ष हुआ। वे निशीही पूर्वक मकान में आये तो वज्र ने साधुओं की उपधि यथा स्थान रख दी। बाद दूसरे दिन आर्य सिंहगिरि विहार करने लगे तो मुनियों ने कहा कि हमको वाचना कौन देगा ? इस पर आचार्यश्री ने कहा कि तुमको वाचना वज्र मुनि देगा। मुनियों ने स्वीकार कर लिया। अतः वज्र मुनि सब मुनियों को इस कदर की वाचना देने लगे कि साधारण बुद्धि वाले भी सुख पूर्वक समझने लग गये। अतः साधुओं को वाचना के लिए अच्छा संतोष हो रहा था।

कई दिन बाद गुरु महाराज वापिस आये और मुनियों को वाचना के लिये पूछा तो उन्होंने कहा कि हमको अच्छी वाचना मिलती है और सदैव के लिये हमारे वाचनाचार्य मुनि वज्र ही हों। आचार्यश्री ने कहा कि मैं इस लिये ही बाहर गया था। बाद प्रसन्नता पूर्वक आचार्यश्री दशपुर नगर आये और मुनि वज्र को आवन्ती नगरी की ओर भद्रगुप्त सूरि के पास शेष ज्ञान पढ़ने के लिये भेजा दिया। वज्र मुनि क्रमशः आवंति पहुँच गया पर समय हो जाने पर उस रात्रि में नगर के बाहर ही ठहर गये।

तत्राप्यशानयन्ती सा गता राज्ञः पुरस्तदा। यतयश्च समाहूताः संघेन सह भूभृता ॥८१॥
ततो माता प्रथमतोऽनुज्ञाता तत्र भूभृता। क्रीडनैर्भक्ष्यभोज्यैश्च मधुरैः सा न्यमंत्रयत् ॥८५॥
सुते तथारिस्थिते राज्ञानुज्ञातो जनको मुनिः। रजोहरणतुषस्य जगादानपवादगीः ॥८६॥
ततो जयजयारावो मङ्गलध्वनिपूर्वकम्। समस्ततूर्यनादोऽजि सद्यः समजनि स्फुटः ॥
एषणात्रितयचेग्ययुक्तो भुक्तावनादतः तत्रवज्रोययोभाप्य गुरोरनुमतिं ततः ॥१०३॥
द्रव्य क्षेत्र काल भावैरूपयोगं ददौचसः। द्रव्य कुष्माण्ड पाकादि क्षेत्र देशश्चामालवा ॥१०४॥
कालोग्रीष्मस्तथाभावे विचार्ये निमिषा अमी, अस्पृष्ट भूमान्यासा अम्लान कुसुमस्रज ॥१०५॥
चरित्रिणां ततो देवपिण्डो न कल्प्यते नहि। निषिद्धा उपयोगेन तस्य हर्षं परं ययुः ॥६०६॥

×　　　　　×　　　　　×

† अन्यत्र विहरंतश्चान्यदा ग्रीष्मर्तुमध्यतः। प्राग्वदेव सुरास्तेऽमुं घृतपूर्णैर्न्यमन्त्रयन् ॥१०८॥
वज्रे तत्रापि निर्व्यूढे विद्यां ते व्योमगामिनीम्। ददुर्न दुर्लभं किंचित्सत्त्वानां हि [illegible] ॥१०९॥
बाह्यभूमौ प्रयतिषु पूज्येष्वथ परेद्यवि। सदेषणोपयुक्तेषु गीतार्थेषु च गोचरम् ॥११०॥
अवकाशं च बाल्यस्य ददृशापलतस्तदा। सर्वेषामुपधीर्नाम [illegible] भूमौ निवेश्य च ॥१११॥
वाचनां प्रददौ वज्रः श्रुतस्कन्धमजस्य सः। प्रत्येकं गुरुक्रमेण [illegible] ॥११२॥
श्रीमान्सिंहगिरिश्चात्रान्तरे वसतिसन्निधौ। आययौ गर्जितं [illegible] शब्दं तस्याश्रौषीच्च सः ॥११३॥
दध्यौ किं यतयः [illegible] स्वाध्यायैः पालयन्ति नाम् । [illegible] शब्दं ते [illegible] ॥११४॥ प्र० च०

आचार्य भद्रगुप्त को रात्रि में एक स्वप्न आया। † वह सुबह अपने शिष्य को सुना रहे थे कि क्षीर से भरा हुआ पात्र कोई मुनि आकर सब पी गया। इतने में ही वज्रमुनि आकर सूरिजी को वन्दन कर खड़ा हुआ। सूरिजी ने सोचा कि यही मुनि मेरा दूध पीने वाला है। बस! फिर तो देर ही क्या थी सूरि ने बज्र को सब ज्ञान पढ़ा कर अपने गुरू के पास भेज दिया। पूर्व भव के मित्र देवता ने बड़ा महोत्सव किया और गुरुराज ने मुनिवज्र को संघ समक्ष आचार्य पद पर स्थापन कर दिया।

आचार्य वज्रसूरि विहार करते हुए पाटलीपुत्र नगर के उद्यान में पधारे। × पहिले दिन आपने से अपना कुरूप बनाकर देशना दी तब दूसरे दिन असली रूप से उपदेश दिया। अतः आपकी महिमा भर में फैल गई। उस नगर में एक धना नामक श्रेष्टि सप्तकोटि धन का मालिक रहता था उसके एक नामक पुत्री थी। रूखमणिने साध्वियों से वज्रसूरि की महिमा सुनकर प्रतिज्ञा करली कि मैं वर करूंगी वज्रसूरि को ही करूंगी वरना अग्नि की ही शरण लूंगी। सेठ अपनी रूप योवन और लावण्यादि वाली पुत्री रुखमणि को लेकर वज्रसूरि के पास आया और कहा कि हे मुनि! मेरी पुत्री ने प्रतिज्ञा है। अतः मेरा सब धन लेकर मेरी पुत्री के साथ आप विवाह करो इत्यादि।

---

† गत्वा दशपुरे वज्रमवन्त्यां प्रैपुराद्दताः अध्येतुं श्रुतशेषं श्रीभद्रगुप्तस्य संनिधौ ॥ १२७ ॥
स ययौ तत्र रात्रौ च पूर्वहिर्वासमातनोत्। गुरुश्च स्वप्नमाचख्यौ निजशिष्याग्रतो मुदा ॥ १२८ ॥
पात्रं मे पयसा पूर्णमतिथिः कोऽपि पीतवान्। दशपूर्व्याः समग्रायाः कोऽप्यध्येता समेष्यति ॥ १२९ ॥
इत्येवं वदतस्तस्य वज्र आगात्पुरस्ततः। गुरुश्चाध्यापयामास श्रुतं स्वाधीतमाश्रुतम् ॥ १३० ॥
× गुरौ प्रायाद्दिवं प्राप्ते वज्रस्वामिप्रभुर्ययौ। पुरं पाटलिपुत्राख्य मुद्याने समवासरत् ॥ ३४ ॥
अन्यदा स कुरूपः सन् धर्मं व्याख्यानयद्विभुः। गुणानुरूपं नो रूपमिति तत्र जनोऽवदत् ॥ १३५ ॥
अन्येद्युश्चारुरूपेण धर्मख्याने कृते सति। पुरक्षोभभयात्सूरिः कुरूपोऽभूज्जनोऽब्रवीत् ॥ १३६ ॥
प्रागेव तद्गुणग्रामगानात्साध्वीम्य आदता। धनस्य श्रेष्ठिनः कन्या रुक्मिण्यत्रान्वरज्यता ॥ १३७ ॥
बभाषे जनकं स्वीयं सत्यं मद्धापितं शृणु। श्रीमद्वज्राय मां यच्छ शरणं मेऽन्यथानलः ॥ १३८ ॥
तदाग्रहात्तः कोटिशतसंख्यधनैर्युताम्। सुतामादाय निर्ग्रन्थनाथाभ्यर्णं ययौ च सः ॥ १३९ ॥
व्याजिज्ञपत्र नार्यस्त्वां नायते मे सुता ह्यसौ, रूपयो वन सम्पन्ना तद्देवा प्रति गृह्यताम् ॥ १४० ॥
यथेच्छ दानभोगाभ्यामधिकर्जी वित्ता विधि, द्रविणं गृह्यतामेतत्पादौ प्रक्षाल्यामिते ॥ १४१ ॥
महापरिज्ञाध्ययनादाचाराङ्गान्तरस्थितात्। श्रीवज्रेणोद्धृताविद्या तदा गगनगामिनी ॥ १४४ ॥
अ [illegible] न्यदा तत्राभूद्दुर्भिक्षमनिशयम्। सचराचरजीवानां कुर्वद्दुर्भीतलेऽधिकम् ॥ १४६ ॥
[illegible] संघः प्रभोः पार्श्वमाययौ रक्ष रक्ष नः। वदन्निति ततो वज्रप्रभुस्त्वविदधे हृदि ॥ १५० ॥
पटं विस्तार्य तत्रोपवेश्य संघं तदा मुदा। विद्ययाकाशगामिन्याचलद्वज्रोऽग्र गुणाम्बरम् ॥ १५१ ॥
[illegible] (दू) रं गतस्तृणगवेषणे। अन्वागतो वदन्नीनः सोऽपि न्यस्तात्स्मृणिना ॥ १५२ ॥
[illegible] सुभिक्षां महापुरीम्। बौद्धशासनपक्षे यत्र [illegible] ॥ १५३ ॥
[illegible] संघे च [illegible] ॥ १५४ ॥
[illegible] ॥ १५५ ॥
[illegible] ॥ १५६ ॥
[illegible] ॥ १५७ ॥

वज्रसूरि ने इस प्रकार उपदेश दिया कि रुखमणि ने दीक्षा ग्रहण करली। उस समय वज्रस्वामी ने आचारांग सूत्र के महाप्रज्ञाध्यन१ से आकाशगामनी विद्या का उद्धार किया। तथा पहले भी देवता ने दी थी।

एक समय अनावृष्टि के कारण दुनिया का संहार करने वाला द्वादशवर्षीय दुकाल पड़ा। श्री संघ मिल-कर वज्रस्वामि के पास आया और कहा पूज्यवर ! इस सङ्कट से जैनसंघ का उद्धार करो। सूरिजी ने एक कपड़े का पट मंगाओं और तुम सब उस पर बैठ जाओ। बस सब बैठ गये। इतने में शय्यातर घास के लिये गया था वह आया उसने प्रार्थना की तो उसको भी बैठा दिया और विद्या बल से सबको आकाश मार्ग से लेकर महापुरी नगरी में जहां सुकाल वरत रहा था वहां ले आये पर वहां का राजा बोध धर्मोपासक होने से जैन मन्दिरों के लिये पुष्प नहीं लाने देता था। श्री संघ ने आकर अर्ज की कि हे प्रभो ! पर्युषण नजदीक आ रहा है और बोध राजा हमको पूजा के लिये पुष्प नहीं लाने देता है। अतः हमारी भक्ति में भंग होता है। अतः आप जैसे समर्थ होते हुये भी हमारा कार्य्य क्यों नहीं होता है। इस पर वज्रसूरि श्रीसंघ को संतोष करवा कर आप आकाशगामनी विद्या से गमन कर महेश्वरी नगरी के उद्यान में आये वहां एक माली मिला जो कि सूरिजी के पिता का मंत्री था। उसने सूरिजी को वन्दन कर कहा कि कोई कार्य्य हो तो फरमावें। सूरिजी ने पुष्पों के लिये कहा। माली ने कहा ठीक है आप वापिस जाते हुये पुष्प ले जाना। वहां से वज्रसूरि चूलहेववन्त पर्वत पर गये। और लक्ष्मीदेवी को धर्मलाभ दिया। देवी ने सहस्त्र कली वाला कमल दिया वहां से लौटते समय माली के पास आये। उसने बीस लक्ष पुष्प दिये। वज्रसूरि वैक्रय लब्धि से विमान बना कर पुष्प लेकर आ रहे थे तो देवताओं ने आकाश में बाजे बजाये। बोधों ने सोचा कि देवता हमारे मन्दिरों में महोत्सव करने को आये हैं पर वे तो सीधे ही जिनमन्दिरों में गये और भक्ति करने को लग गये। तथा वज्रसूरि बीस लक्ष पुष्प लेकर आये इस चमत्कार का प्रभाव बोध राजा प्रजा पर बड़ा भारी हुआ। अतः राजा प्रजा बोध धर्म को छोड़कर जैनधर्म स्वीकार लिया एवं सूरिजी के परमभक्त बन गये।

आर्य वज्रसूरि के समय मूर्तिवाद अपनी चरमसीमातक पहुँच गया था कि वज्रसूरि जैसे दश पूर्वधर जिन पूजा के लिये बीसलक्ष पुष्प लाकर श्रावकों को दिया था जो साधु सचित पुष्पों का स्पर्श तक नहीं कर सकता हैं शायद वह कहा जाय की वज्रसूरि दशपूर्वधर होने से वे कल्पातितथे और जैनधर्म का अपमान दूर करने की गरज से तथा भविष्य का लाभ जाना हो तथा बोधराजा और प्रजा इसी कारण से जैनधर्म स्वीकार करेंगे अतः उन्होंने स्वयं पुष्प लाना अच्छा एवं लाभ का कारण समझा होगा परन्तु इससे इतना अनुमान तो सहज में ही हो सकता है कि उस समय मूर्ति पूजा पर जनता की श्रद्धा एवं रुचि अधिक झुकी हुई थी इसी समय आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने साधुओं को मूर्तियों को सिर पर उठा कर अन्यत्र ले जाने की आज्ञा दी थी कि म्लेच्छ लोग मूर्तियों को तोड़ फोड़कर नष्ट नहीं कर सके।

पूर्व जमाने में नवकार मंत्र एक स्वतंत्र ग्रन्थ था और आचार्यों ने इस नवकार मंत्र पर स्वतंत्र निर्युक्ति आदि विवरण किया था पर वज्रसूरि ने उस नवकार मंत्र को सूत्रों की आदि में मंगलाचरण के रूप में कर दिया और वह आज भी कई सूत्रों के मंगलाचरण के रूप में विद्यमान है।

आचार्य वज्रसूरि महा प्रभाविक आचार्य होगये हैं। आपके जीवन में एक नहीं पर अनेक घटनायें ऐसी घटी कि जिससे जैनधर्म की बहुत उन्नति हुई। एक समय आप विहार करते दक्षिण की ओर जा रहे थे। उस वक्त श्लेष्म हो जाने से सोंठ लाये थे जितनी जरूरत थी खाई शेष कान पर रखदी परन्तु विस्मृति

होने से प्रतिलेखन के समय सोंठ कान से नीचे गिरी। जब जाकर मालूम हुआ कि अब मेरा आयुष्य नजदीक ही है। अतः मुनि वज्रसेन को सूरिपद देकर आप कई मुनियों के साथ एक पर्वत पर जाकर अनशन समाधि के साथ स्वर्गवास किया। जब इन्द्र ने इस बात को जाना तो वह विमान लेकर आया। उस विमान सहित प्रदक्षिणा दी जिससे उस पर्वत का नाम 'रथावर्तन' हो गया। इति वज्र स्वामि का संक्षिप्त

आर्य्य वज्रसूरि के जीवन की दो महत्वपूर्ण बातें—१–जिस पर्वत पर आर्य्य वज्र का देहान्त हुआ वहां इन्द्र आकर रथ सहित प्रदक्षिणा देने के कारण उस पर्वत का नाम 'रथावर्तन हुआ परन्तु भद्रबाहु कृत आचारांगसूत्र की निर्युक्ति में 'रथावर्तन' का उल्लेख मिलता है इससे पाया जाता है कि पर्वत का नाम 'रथावर्तन' पहिले ही से था या निर्युक्ति वाला रथावर्तन अलग हो और वज्रस्वामी के त्याग वाला रथावर्तन अलग हो। २–दूसरे वज्रसूरि के पूर्व नवकारमंत्र एक स्वतंत्र सूत्र था और इस सूत्र निर्युक्ति वगैरह भी स्वतंत्र रची गई थीं परन्तु वज्रसूरि ने उस स्वतंत्र नवकार मंत्र को सूत्रों के आदि मंगलाचरण के रूप में संकलित कर दिया था।

आर्य्य वज्रसूरि का आयुष्य ८ वर्ष गृहस्थवास, ४४ वर्ष सामन दीक्षा पर्याय, और ३६ वर्ष युगप्रधान पद एवं कुल ८८ वर्ष का आयुष्य अर्थात् वी० नि० सं० ४९६ (वि० सं० २६) जन्म, वी० नि० ५०४ (वि० सं० ३४) दीक्षा, वी० नि० ५४८ (वि० सं० ७८) युगप्रधान और वी० नि० ५८४ (वि० सं० ११४) में स्वर्गवास हुआ था।

आर्य समितसूरि—और ब्रह्मद्वीपिका शाखा—आभीर देश में एक अचलपुर नामका नगर था। उसके नजदीक कन्ना और वेन्ना नदियों के बीच में ब्रह्मद्वीप नाम का द्वीप था उस द्वीप में ५०० तापस तप करते थे जिसमें एक तापस ऐसा भी था कि पैरों पर औषधी का लेप कर जल पर चल कर नगर में पारणा (भोजन) करने को आया जाया करता था। जिसको देख लोग कहते थे कि तपसी की तपस्या कैसा चमत्कार है कि जल पर चल सकता है। साथ में यह भी कहते थे कि क्या जैनमत में भी ऐसा चमत्कारी महात्मा है? इस प्रकार अपमानित शब्द सुन कर जैन श्रावकों ने आर्य्यवज्रसूरि के मामा श्री समितसूरि को साग्रह आमंत्रण किया। जैनधर्म की उन्नति के लिये सूरिजी शीघ्र पधार गये और ...

किमन्यादिन मे नाथ कार्यं सूरिरतोऽवदत। सुमनः सुमनोभिर्यं कार्यमार्यं [illegible] ॥१५८॥
[illegible] श्रुत्वैतं [illegible] आज्ञा गीति निशम्य सः। ययौ देव्याः श्रियः पार्श्वं तं [illegible] ॥१५९॥
[illegible] तां देवीं कार्यमादिशत्। ददौ सहस्रपत्रं सा [illegible] ॥१६०॥
[illegible] विद्यामित्रस्य संनिधौ। आययौ [illegible] ॥१६१॥
[illegible] पुरे। [illegible] ॥१६२॥
[illegible] विकुर्वितं। तं [illegible] ॥१६३॥
[illegible] मुगाः। आयान्ति [illegible] ॥१६४॥
[illegible] निर्ययुः। तत्र [illegible] ॥१६५॥
[illegible] ॥१६६॥
[illegible] ॥१६७॥
[illegible]

[[illegible]

स्वागत किया। जब श्रावकों ने तापस का सब हाल कहा तो सूरिजी ने फरमाया कि इसमें सिद्धाई और चमत्कार कुछ भी नहीं है। यह तो एक औषधि का प्रभाव है यदि पैर या पावडियों को धो दीजाय तो शेष कुछ भी चमत्कार नहीं रहता है। इस पर किसी एक श्रावक ने तपस्वी को भोजन के लिये आमंत्रण करके अपने मकान पर ले आया और उसके पैर एवं पादुका का प्रक्षालन कर भोजन करवाया। बाद कई लोग उसको नदी तक पहुँचाने को गये। पर तपस्वी पानी पर चल नहीं सके। कारण जो औषधी पैरों एवं पादुकाओं पर लगी हुई थी वह श्रावक ने धो डाली थी इससे तपस्वी की पोल खुल गई और वह लज्जित हो गया। उसी समय वहां पर आर्य समितसूरि भी आये और भी बहुत से जैन जैनेतर लोग एकत्र हो गये। उन सबके सामने जैनाचार्य्य ने एक ऐसा मंत्र पढ़ कर दोनों नदियों से प्रार्थना की कि मुझे जाना है तुम दोनों एक होकर मुझे रास्ता दे दो। बस इतना कहते ही दोनों नदियों ने एक होकर सूरिजी को रास्ता दे दिया। अतः सूरिजी ने ब्रह्मद्वीप में जाकर उन ५०० तापसों को तत्वज्ञान सुना कर प्रतिबोध दिया। अतः उन ५०० तापसों ने आत्म कल्याण की उज्ज्वल भावना से सूरिजी के पास भगवती जैन दीक्षा स्वीकार करली अतः उन तापसों से बने हुए मुनियों की संतान ब्रह्मद्वीप शाखा के नाम से पहचानी जाने लगी।

इस प्रकार जैन शासन में अनेक विद्वानों ने आत्मशक्ति द्वारा चमत्कार एवं उपदेश देकर जैनेतरों को जैन बना कर जैनधर्म की उन्नति एवं प्रभावना की उनके चरण कमलों में कोटि कोटि नमस्कार हो। इनके अलावा भी कई युगप्रधान आचार्य हुये हैं। जिन्हों की नामावली आगे चलकर यथा स्थान दी जायगी।

आर्यरक्षितसूरि—आवंती प्रान्त में अमरापुरी के सदृश्य दशपुर नाम का नगर था वहां उदायन नाम का राजा राज करता था। उसके राज में एक सोमदेव नाम का पुरोहित था। वे थे वेद धर्मानुयायी और उसके रुद्रसोमानाम की स्त्री थी और वह थी जैनधर्मोपासिका और जीवादि नौ तत्व वगैरह जैनधर्म के अनेक शास्त्रों की जानकर भी थी। उसके दो पुत्र थे एक आर्य्यरक्षित दूसरा फालगुरक्षित। सोमदेव ने आर्य्यरक्षित

तेन लेपापहारेण तापसो दुर्मनायितः। नावेदीद्भोजनास्वादं विगोपागमशङ्कया ॥ ८८ ॥
तापसो भोजनं कृत्वा सरित्तीरं पुनर्ययौ। लोकैर्वृतो जलस्तम्भकुतूहलदिदृक्षया ॥ ८९ ॥
लेपांशः स्यादद्यापि कोऽपीत्यल्पमतिः स तु। अलीकसाहसं कृत्वा प्राक्प्राविशदम्भसि ॥ ९० ॥

+ + + +

ततः कमण्डलुरिव कुर्वन्बुडबुडारवम्। बुडति स्म सरित्तीरे स तापसकुमारकः ॥ ९१ ॥
वयं मायाविनानेन मोहिताः स्मः कियच्चिरम्। मलिन्यभूदिति मनस्तदा मिथ्यादृशामपि ॥ ९२ ॥

+ + + +

दत्तताले च तत्कालं जने तुमुलकारिणि। आचार्या अपि तत्रागुः श्रुतस्कन्धधुरन्धराः ॥ ९३ ॥

+ + + +

तटद्वये ततस्तस्याः सरितो मिलिते सति। आचार्यः सपरीवारः परतीरभुवं ययौ ॥ ९६ ॥
आचार्यदर्शितं तं चातिशयं प्रेक्ष्य तापसाः। सर्वेऽपि संविविजिरे तद्भक्तश्चाखिलो जनः ॥ ९७ ॥

+ + + +

आचार्यस्यार्यसमितस्यान्तिके प्राव्रजन्य। सर्वे सधितमिथ्यात्वास्तापसा शुद्धचेतसः ॥ ९८ ॥
ते ब्रह्मद्वीपशाखाख्या इति जातास्तदन्वये। ब्रह्मद्वीपिकनामानः श्रमणा आगमोदिताः ॥ ९९ ॥

"[illegible]"

को पढ़ने के लिए काशी भेजा वहां पढ़ कर अधिक ज्ञान की प्राप्ती के लिये पाटलीपुत्र भी गया। वेदांग सब शास्त्रों का पारगामी होकर वापिस दशपुर आया। जब नगर के राजादि सब लोगों ने बड़े स्वागत के साथ नगर प्रवेश करवाया। जब आर्यरक्षित अपनी माता के पास आया तो उस समय रुद्रसोमा सामायिक कर रही थी। अतः आर्य्यरक्षित के नमस्कार करने पर भी उसने कुछ भी नहीं किया बाद आर्य्यरक्षित ने पूछा कि माता मेरी पढ़ाई से राजा प्रजा सब लोग खुश हुए एक आप की उदासीनता क्यों ? इस पर माता ने कहा बेटा ! जिस पढ़ाई से संसार की वृद्धि हो उससे खुशी कैसे हो यदि तू सम्यक् ज्ञान पढ़ के आता तो मुझे जरूर खुशी होती विनयवान पुत्र ने पूछा कि माता कौनसा ग्रंथ किसके पास पढ़ा जाय और वे पढ़ाने वाले कहाँ पर हैं ? मैं पढ़ कर आपको संतोष कराऊं। माता ने कहा बेटा ! वह है दृष्टिवाद ग्रंथ, और पढ़ाने वाले हैं तोसलीपुत्र नामक आचार्य और वे इस समय इक्षुवाडी में विद्यमान हैं। तू जाकर दृष्टिवाद पढ़ कि तेरा कल्याण हो।

रात्रि व्यतीत करने के बाद ज्ञान की उत्कंठा वाला आर्य्यरक्षित घर से चल कर पढ़ने को जा रहा था। रास्ते में एक इक्षुरस वाला सांठा लेकर आया और आर्य्यरक्षित को कहा कि हे मित्र ! मैं तेरे लिये लाया हूँ। अतः तुम वापिस घर पर चलो। आर्य्यरक्षित ने कहा मैं ज्ञानाभ्यास के लिये जा रहा हूँ फिर सोचा कि ९॥ सांठा का अर्थ यही हो सकता है कि मैं जिस दृष्टिवाद का अध्यन करने को जा रहा हूँ ९॥ अध्याय प्राप्त करूंगा। आर्य्यरक्षित चलता २ वहां आया कि जहां तोसलीपुत्र आचार्य विराजते थे लज्जा के कारण वह उपाश्रय के बाहर बैठ गया। इतने में एक ढढुर नामक श्रावक आया उसके साथ अन्दर में जाकर आचार्य को वंदन किया और दृष्टिवाद पढ़ाने की याचना की पर दृष्टिवाद का अध्ययन तो साधु ही कर सकते हैं अतः आर्यरक्षित ज्ञान पढ़ने के लिये जैनदीक्षा स्वीकार करने को तैयार हो गया परन्तु आर्यरक्षित ने सूरिजी से अर्ज की कि हे प्रभो। हमारा कुल ब्राह्मण है। अतः मुझे दीक्षा देकर यहाँ ठहरना ठीक नहीं है। अतः आप शीघ्र विहार कर अन्य स्थान पधार जावें। गुरु ने इसको ठीक समझ आर्यरक्षित को जैन दीक्षा दे दी और वहां से अन्यत्र चले गये और आर्यरक्षित को पढ़ाना शुरू किया। [illegible] और कई पूर्व पढ़ा दिये जितना कि वे जानते थे शेष के लिये कहा कि तुम आर्य्य वज्रसूरि के पास जाओ वे उज्जैन नगरी में विराजते हैं। अतः आर्यरक्षित अन्य साधुओं के साथ विहार कर वज्रसूरि के पास जा रहे थे। रास्ते में एक भद्रगुप्ताचार्य का उपाश्रय आया। वहाँ आर्य्यरक्षित गये। आर्य्यरक्षित को देख [illegible] बहुत खुश हुआ और कहा कि आर्य ! मेरा अन्तिम समय है तुम मुझे मदद एवं सहाय दो। आर्यरक्षित ने मंजूर कर लिया और उनकी व्यावच्च में लग गये। एक समय आर्य्य भद्रगुप्त ने आर्यरक्षित से कहा कि [illegible] वज्रसूरि के पास पूर्व ज्ञान पढ़ने को जाता है यह तो अच्छा है पर तू अलग उपाश्रय में ठहर कर [illegible] [illegible] एवं भोजन भी अलग ही करना। इसको रक्षित ने स्वीकार कर लिया बाद भद्रगुप्त का [illegible] [illegible] गया और आर्य्यरक्षित चल कर वज्रस्वामी के पास आ रहा था। वज्रसूरि को रात्रि में [illegible]

* [illegible] दूध का पात्र भरा हुआ था उसमें से बहुत सा दूध एक अतिथि पी गया।

[illegible]

यह स्वप्न की बात अपने शिष्य को सुनारहे थे कि इतने में आर्य्यरक्षित ने आकर नमस्कार किया। ने पूछा क्या तेरा नाम आर्य्यरक्षित है और पूर्वाध्ययन के लिये आया है ? आर्यरक्षित ने कहा, र वज्रसूरि ने पूछा तुम्हारे भंडोपकरण कहाँ हैं ? आर्य्यरक्षित ने कहा मैं अलग उपाश्रय याचकर भंडो- वहाँ रख आया हूँ तथा आहार पानी शयन वहाँ ही करूंगा और पूर्वों का अध्ययन आपके पास करता आर्य्यवज्र ने कहा अलग रहने से ज्ञान कम होगा। इस पर आर्य्यरक्षित ने भद्रगुप्ताचार्य का आदेश नाया इसपर वज्रसूरि ने श्रुतज्ञान में उपयोग लगा कर देखा तो भद्रगुप्ताचार्य का कहना यथार्थ मालूम अतः आर्यरक्षित अलग रह कर आर्यवज्रसूरि से पूर्व ज्ञान का अध्ययन करने लगा और बड़ी त से साढ़े नौ पूर्व का ज्ञान किया आगे उनको पढ़ने में थकावट आने लगी।

इधर रुद्रसोमा ने सोचा कि मैंने बड़ी भारी भूल की कि आर्य्यरक्षित को दूर भेज दिया। अतः पुत्र फाल्गुरक्षित को बुलाकर आर्य्यरक्षित को लाने के लिये भेजा। वह फिरता-फिरता वज्रसूरि के आकर अपने भाई से मिला और माता के समाचार सुनाये। इस पर आर्य्यरक्षित ने लघुबन्धु को की असारता बतलाते हुये ऐसा उपदेश दिया कि फाल्गुरक्षित ने जैनदीक्षा स्वीकार करली।

आर्य्यरक्षित को एक ओर तो माता से मिलने की उत्कंठा और दूसरी ओर अभ्यास के परिश्रम से ट आरही थी। अतः एक दिन वज्रसूरि से पूछा कि प्रभो ! अब कितना ज्ञान पढ़ना रहा है ? सूरिजी अभी तो सरसप जितना पढ़ा और मेरु जितना पढ़ना है। आर्य्य तुम उत्साह को कम मत करो करते रहो। गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर अभ्यास करने लगा पर उसका दिल एवं अभ्यास शिथिल या। अतः वज्रसूरि से आज्ञा मांगी कि मैं दशपुर की ओर विहार करूं। वज्रस्वामी ने ज्ञानोपयोग से लिया कि इनके लिये ९॥ पूर्व का ज्ञान ही पर्याप्त है। दशवां पूर्व तो मेरे साथ ही चलेगा। अतः र्यरक्षित को आज्ञा देदी। बस, आर्य्यरक्षित अपने भाई फाल्गुरक्षित मुनि को साथ लेकर वहाँ से विहार दिया और क्रमश पाटलीपुत्र आये। साढ़े नौ पूर्व पढ़के आये हुये शिष्य का गुरु तोसलीपुत्राचार्य आदि ने अच्छा बहुमान किया और आर्य्यरक्षित को सर्वगुण सम्पन्न जानकर अपने पट्टपर आचार्य बनाकर लीपुत्राचार्य अनशन एवं समाधि से स्वर्ग पधार गये।

तदनन्तर आर्यरक्षितसूरि विहार कर दशपुर नगर पधारे। आर्य फाल्गुरक्षित ने आगे जाकर अपनी को बधाई दी कि आपका पुत्र जैनधर्म का आचार्य बन कर आया है। इतने में तो आर्य्यरक्षितसूरि ी माता के सामने आगये जिसको साधुवेश में देख माता बहुत खुशी हुई। बाद पिता सोमदेव भी आया कहा पुत्र तू पढ़के आया है अतः उद्यान में ठहरना था कि राजा प्रजा की ओर से महोत्सव करवा के ो नगर प्रवेश कराया जाता। खैर, माता के स्नेह के लिये नगर में आ भी गया तो अब भी उद्यान ला जा कि राजा की ओर से महोत्सवपूर्वक तुम्हारा नगरप्रवेश करवाया जाय। बाद इस साधुवेश को कर तुम्हारे लिये अनेक कन्याओं के प्रस्ताव आये हुये हैं जैसी इच्छा हो उसके साथ तुम्हारा विवाह दिया जाय धन तो अपने घर में इतना है कि कई पुश्त तक खाये और खर्चे तो भी अन्त नहीं आवे। अतः अपने घर का भार शिर पर लेकर संसार के अन्दर सुख एवं भोग विलास भोगते रहो।

आर्य रक्षित सूरि ने अपने पिता के मोह गर्भित वचन सुन कर इस प्रकार उपदेश दिया कि माता और कुटुम्ब दीक्षा लेने को तैयार होगये परन्तु सोमदेव ने कई शर्तें ऐसी रक्खी कि एक तो मेरे से

को पढ़ने के लिए काशी भेजा वहां पढ़ कर अधिक ज्ञान की प्राप्ती के लिये पाटलीपुत्र भी गया। वे वेदांग सब शास्त्रों का पारगामी होकर वापिस दशपुर आया। जब नगर के राजादि सब लोगों ने बड़े स्वागत के साथ नगर प्रवेश करवाया। जब आर्यरक्षित अपनी माता के पास आया तो उस समय माता रुद्रसोमा सामायिक कर रही थी। अतः आर्य्यरक्षित के नमस्कार करने पर भी उसने कुछ भी सत्कार नहीं किया बाद आर्य्यरक्षित ने पूछा कि माता मेरी पढ़ाई से राजा प्रजा सब लोग खुश हुए एक तुमको ही उदासीनता क्यों ? इस पर माता ने कहा बेटा ! जिस पढ़ाई से संसार की वृद्धि हो उससे खुशी कैसे हो ! यदि तू सम्यक् ज्ञान पढ़ के आता तो मुझे जरूर खुशी होती विनयवान पुत्र ने पूछा कि माता वह कौनसा ग्रंथ किसके पास पढ़ा जाय और वे पढ़ाने वाले कहाँ पर हैं ? मैं पढ़ कर आपको संतोष कराऊं। माता ने कहा बेटा ! वह है दृष्टिवाद ग्रंथ, और पढ़ाने वाले हैं तोसलीपुत्र नामक आचार्य और वे इस समय इक्षुवाडी में विद्यमान हैं। तू जाकर दृष्टिवाद पढ़ कि तेरा कल्याण हो।

रात्रि व्यतीत करने के बाद ज्ञान की उत्कंठा वाला आर्य्यरक्षित घर से चल कर पढ़ने को जा रहा था। रास्ते में एक इक्षुरस वाला सांठा लेकर आया और आर्य्यरक्षित को कहा कि हे मित्र ! मैं तेरे लिये भेंट लाया हूँ। अतः तुम वापिस घरपर चलो। आर्य्यरक्षित ने कहा मैं ज्ञानाभ्यास के लिये जा रहा हूँ फिर उसने सोचा कि ९॥ सांठा का अर्थ यही हो सकता है कि मैं जिस दृष्टिवाद का अध्यन करने को जा रहा हूँ उसके ९॥ अध्याय प्राप्त करूंगा। आर्य्यरक्षित चलता २ वहां आया कि जहां तोसलीपुत्र आचार्य विराजते थे पर लज्जा के कारण वह उपाश्रय के बाहर बैठ गया। इतने में एक ढढुर नामक श्रावक आया उसके साथ उपाश्रय में जाकर आचार्य को वंदन किया और दृष्टिवाद पढ़ाने की याचना की पर दृष्टिवाद का अध्ययन तो साधु ही कर सकते हैं अतः आर्यरक्षित ज्ञान पढ़ने के लिये जैनदीक्षा स्वीकार करने को तैयार हो गया परन्तु आर्यरक्षित ने सूरिजी से अर्ज की कि हे प्रभो। हमारा कुल ब्राह्मण है। अतः मुझे दीक्षा देकर यहाँ ठहरना अच्छा नहीं है। अतः आप शीघ्र विहार कर अन्य स्थान पधार जावें। गुरु ने इसको ठीक समझ आर्यरक्षित को जैन दीक्षा दे दी और वहां से अन्यत्र चले गये और आर्यरक्षित को पढ़ाना शुरू किया। अंगोपांग और कई पूर्व पढ़ा दिये जितना कि वे जानते थे शेष के लिये कहा कि तुम आर्य्य वज्रसूरि के पास जाओ वे उज्जैन नगरी में विराजते हैं। अतः आर्यरक्षित अन्य साधुओं के साथ विहार कर वज्रसूरि के पास जा रहे थे। रास्ते में एक भद्रगुप्ताचार्य का उपाश्रय आया। वहाँ आर्य्यरक्षित गये। आर्य्यरक्षित को देख आचार्य बहुत खुश हुआ और कहा कि आर्य ! मेरा अन्तिम समय है तुम मुझे मदद एवं साज दो। आर्यरक्षित ने [illegible] मंजूर कर लिया और उनकी व्यावच्च में लग गये। एक समय आर्य्य भद्रगुप्त ने आर्यरक्षित से कहा कि तू वज्रसूरि के पास पूर्व ज्ञान पढ़ने को जाता है यह तो अच्छा है पर तू अलग उपाश्रय में ठहर कर [illegible] पानी एवं शयन भी अलग ही करना। इसको रक्षित ने स्वीकार कर लिया बाद भद्रगुप्त का स्वर्गवास हो गया और आर्य्यरक्षित चल कर वज्रस्वामी के पास आ रहा था। वज्रसूरि को रात्रि में स्वप्न आया कि मेरे दूध का पात्र भरा हुआ था उसमें से बहुत सा दूध एक अतिथि पी गया।

यह स्वप्न की बात अपने शिष्य को सुनारहे थे कि इतने में आर्य्यरक्षित ने आकर नमस्कार किया। सूरि ने पूछा क्या तेरा नाम आर्य्यरक्षित है और पूर्वाध्ययन के लिये आया है ? आर्यरक्षित ने कहा, । फिर वज्रसूरि ने पूछा तुम्हारे भंडोपकरण कहाँ हैं ? आर्य्यरक्षित ने कहा मैं अलग उपाश्रय याचकर भंडोरण वहाँ रख आया हूँ तथा आहार पानी शयन वहाँ ही करूंगा और पूर्वों का अध्ययन आपके पास करता गा। आर्य्यवज्र ने कहा अलग रहने से ज्ञान कम होगा। इस पर आर्य्यरक्षित ने भद्रगुप्ताचार्य का आदेश सुनाया इसपर वज्रसूरि ने श्रुतज्ञान में उपयोग लगा कर देखा तो भद्रगुप्ताचार्य का कहना यथार्थ मालूम ा। अतः आर्यरक्षित अलग रह कर आर्यवज्रसूरि से पूर्व ज्ञान का अध्ययन करने लगा और बड़ी कल से साढ़े नौ पूर्व का ज्ञान किया आगे उनको पढ़ने में थकावट आने लगी।

इधर रुद्रसोमा ने सोचा कि मैंने बड़ी भारी भूल की कि आर्य्यरक्षित को दूर भेज दिया। अतः रे पुत्र फाल्गुरक्षित को बुलाकर आर्य्यरक्षित को लाने के लिये भेजा। वह फिरता-फिरता वज्रसूरि के स आकर अपने भाई से मिला और माता के समाचार सुनाये। इस पर आर्य्यरक्षित ने लघुबन्धु को सार की असारता बतलाते हुये ऐसा उपदेश दिया कि फाल्गुरक्षित ने जैनदीक्षा स्वीकार करली।

आर्य्यरक्षित को एक ओर तो माता से मिलने की उत्कंठा और दूसरी ओर अभ्यास के परिश्रम से कावट आरही थी। अतः एक दिन वज्रसूरि से पूछा कि प्रभो ! अब कितना ज्ञान पढ़ना रहा है ? सूरिजी कहा अभी तो सरसप जितना पढ़ा और मेरु जितना पढ़ना है। आर्य्य तुम उत्साह को कम मत करो ढ़ाई करते रहो। गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर अभ्यास करने लगा पर उसका दिल एवं अभ्यास शिथिल ड़ गया। अतः वज्रसूरि से आज्ञा मांगी कि मैं दशपुर की ओर विहार करूं। वज्रस्वामी ने ज्ञानोपयोग से ान लिया कि इनके लिये ९॥ पूर्व का ज्ञान ही पर्याप्त है। दशवां पूर्व तो मेरे साथ ही चलेगा। अतः ार्य्यरक्षित को आज्ञा देदी। बस, आर्य्यरक्षित अपने भाई फाल्गुरक्षित मुनि को साथ लेकर वहाँ से विहार र दिया और क्रमश पाटलीपुत्र आये। साढ़े नौ पूर्व पढ़के आये हुये शिष्य का गुरु तोसलीपुत्राचार्य आदि ोसंघ ने अच्छा बहुमान किया और आर्य्यरक्षित को सर्वगुण सम्पन्न जानकर अपने पट्टपर आचार्य बनाकर ोसलीपुत्राचार्य अनशन एवं समाधि से स्वर्ग पधार गये।

तदनन्तर आर्यरक्षितसूरि विहार कर दशपुर नगर पधारे। आर्य फाल्गुरक्षित ने आगे जाकर अपनी ाता को बधाई दी कि आपका पुत्र जैनधर्म का आचार्य बन कर आया है। इतने में तो आर्य्यरक्षितसूरि अपनी माता के सामने आगये जिसको साधुवेश में देख माता बहुत खुशी हुई। बाद पिता सोमदेव भी आया उसने कहा पुत्र तू पढ़के आया है अतः उद्यान में ठहरना था कि राजा प्रजा की ओर से महोत्सव करवा के तुमको नगर प्रवेश कराया जाता। खैर, माता के स्नेह के लिये नगर में आ भी गया तो अब भी उद्यान में चला जा कि राजा की ओर से महोत्सवपूर्वक तुम्हारा नगरप्रवेश करवाया जाय। बाद इस साधुवेश को त्याग कर तुम्हारे लिये अनेक कन्याओं के प्रस्ताव आये हुये हैं जैसी इच्छा हो उसके साथ तुम्हारा विवाह कर दिया जाय धन तो अपने घर में इतना है कि कई पुश्त तक खाये और खर्चे तो भी अन्त नहीं आवे। अतः तुम अपने घर का भार शिर पर लेकर संसार के अन्दर सुख एवं भोग विलास भोगते रहो।

आर्य रक्षित सूरि ने अपने पिता के मोह गर्भित वचन सुन कर इस प्रकार उपदेश दिया कि माता पिता और कुटुम्ब दीक्षा लेने को तैयार होगये परन्तु सोमदेव ने कई शर्तें ऐसी रक्खी कि एक तो मेरे से

नग्न नहीं रहा जायगा जो कई जैनश्रमण रहते हैं और दूसरे उपानह (पादुका) कमंडल, छत्र और अनेक उपकरणों के साथ तुम्हारी दीक्षा ले सकता हूँ। आर्य रक्षितसूरि ने भविष्य का लाभालाभ जानकर उस कहना स्वीकार कर लिया। और सोमदेव रुद्रसोमा आदि सब कुटुम्ब को दीक्षा देदी।

मुनि सोमदेव ज्यों ज्यों जैनधर्म का ज्ञान एवं क्रिया का अभ्यास करता गया तथा जैसे जैसे कारण [illegible] होते गये वैसे वैसे पूर्व पदार्थों का त्याग करता गया और शुद्ध संयम की आराधना करता रहा तत्पश्चात् दीक्षा लेते समय पूर्व संस्कारों से जो शर्तें कि थी वे सब छूट गई और जैन मुनियों का आचरण अनुसार वर्तने लगा।

आर्य्य रक्षितसूरि के शासन में अनेक मुनि तपस्वी एवं अभिग्रहधारी तथा लब्धि सम्पन्न थे जैसे १-घृतपुष्पमित्र २-वस्त्रपुष्पमित्र ३-दुर्बलिकापुष्पमित्र नामके साधु थे और अपनी २ लब्धिपूर्वक कार्य करते थे। दुर्बलिकापुष्पमित्र कई बोधलोगों को प्रतिबोध कर सन्मार्ग पर लाये थे।

इनके अलावा आपके गच्छ में चार प्राज्ञावान्मुनिवर भी थे १-दुर्बलपुष्पमित्र २-विद्यामुनि ३-फाल्गुनामित्र और शुक्राचार्य के धर्मशास्त्र को जीतने वाला ४-गोष्टामाहिल नाम के मुनि विख्यात थे जिसमें विद्यामुनि के आग्रह से आर्य्य रक्षित सूरिने आगमों के चार अनुयोग अलग अलग कर दिये जो पहिले एक ही सूत्र में चारों अनुयोग की व्याख्या की जाती थी।

एक समय आर्य रक्षितसूरि विहार करते हुये मथुरानगरी में पधारे और अधिष्ठायक व्यान्तर के मंदिर में ठहरे थे। उस समय इन्द्र श्रीसीमंधर तीर्थङ्कर + को वन्दन करने को महाविदेह क्षेत्र में गया था और वहाँ प्रभु के मुख से निगोद का स्वरूप सुन कर पूछा कि प्रभो क्या भरतक्षेत्र में भी इस प्रकार निगोद की व्याख्या करनेवाले कोई आचार्य हैं? प्रभो ने कहा हाँ भरतक्षेत्र में आर्यरक्षितसूरि नामक पूर्वधर आचार्य हैं। वह निगोद की व्याख्या अच्छी करते हैं। इन्द्रवृद्ध ‡ ब्राह्मण का रूप बनाकर आचार्य रक्षितसूरि के पास आया और निगोद

+ इतश्चास्ति विदेहेषु श्रीसीमंधरतीर्थकृत्। तदुपान्ते ययौ शक्रोऽन्यदा [illegible] च तत्रागात् ॥ २४६ ॥
निगोदव्याख्यानमाख्याद् केवली तस्य तत्त्वतः। इन्द्रः पप्रच्छ भरते कोऽप्यस्त्येवं विचारकृत ॥ २४७ ॥
आचार्य आह मथुरानगर्यामार्यरक्षितः। निगोदान्महदाचष्ट ततोऽसौविस्मयं ययौ ॥ २४८ ॥
‡ [illegible] च [illegible] वृद्धब्राह्मणरूपभृत्। आययौ गुरुपार्श्वे स [illegible] च [illegible] ॥ २४९ ॥
[illegible] यष्टिश्रितात्मकः। [illegible] ॥ २५० ॥
[illegible] स पप्रच्छ निगोदानां विचारणम्। यथावस्थं गुरुर्व्याख्यान्मोऽथ तेन चमत्कृतः ॥ २५१ ॥
[illegible] पप्रच्छ निजजीवितम्। ततः श्रुतोपयोगेन व्यचिन्तयदिदं गुरुः ॥ २५२ ॥
[illegible] ॥ २५३ ॥
[illegible] ॥ २५४ ॥
[illegible] ॥ २५५ ॥
[illegible] ॥ २५६ ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

का स्वरूप पूछा। इस प्रकार आचार्यश्री ने यथावत स्वरूप कह सुनाया जिससे इन्द्र बहुत हर्षित हुआ बाद इन्द्र ने अपना हाथ आगे कर अपना आयुष्य पूछा। आचार्यश्री ने हस्त रेखा देख कर सौ दोसौ एवं तीन सौ वर्ष तक रेखा देखी पर रेखा तो उससे भी आगे हजार लाख करोड़ वर्ष से भी अधिक पल्योपम सागरोपम तक बढ़ती जारही थी। अतः सूरिजी ने श्रुतोपयोग लगाया तो ज्ञातहुआ कि यह तो पहिले देवलोक का इन्द्र है और इसकी दो सागरोपम की आयुष्य है। यह बात इन्द्र को कहीतो इन्द्र ने सूरिजी की बहुत प्रशंसा की और कहा की श्री सीमंधर तीर्थङ्कर ने जैसे आपकी तारीफ की वैसे ही आप हैं। आज्ञा फरमावें कि मैं क्या करूं? आचार्य ने कहा कि अपने आने का चिन्हस्वरूप कुछ करके बतलाओ कि भिक्षार्थ गये हुये साधुओं को मालूम होजाय कि इन्द्र आया था। अतः इन्द्र ने उपाश्रय का दरवाजा पूर्व में था उसे पश्चिम में कर दिया और सूरिजी को वंदन कर अपने स्थान चला गया। बाद साधु भिक्षा लेकर आये तो पूर्व में दरवाजा नहीं देखा तो उनको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ तब गुरु ने कहा मुनियों उपाश्रय का दरवाजा पश्चिम में है अतः तुम उधरसे चले आओ शिष्यों ने आचार्य से सब हाल सुना जिससे बड़ा ही आश्चर्य हुआ बाद आचार्यश्री ने वहाँ से अन्यत्र विहार कर दिया। आचार्यश्री के जाने के बाद नास्तिक बोधों का मथुरा में आगमन हुआ पर उस समय गोष्टामाहिल नामक मुनि ने शास्त्रार्थ कर बाधों को पराजित कर दिया।

आचार्य रक्षितसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था जान अपने पट्ट पर किसको स्थापित किया जाय इसके लिये सूरिजी ने दुर्बलपुष्पमित्र को योग्य समझा पर सूरिजी के सम्बन्धियों ने फाल्गुरक्षित के लिये आग्रह किया जो आर्यरक्षित के भाई था और कई एकों ने गोष्टामहिल को सूरि बनाने का विचार प्रगट किया। आखिर परीक्षा पूर्वक सूरि पद दुर्बलपुष्पमित्र मुनि को ही दिया गया।

आर्य्य रक्षितसूरि ने दुर्बलपुष्प मित्र को कहा कि मेरा पिता एवं मामा वगैरह मुनि हैं उन प्रति मेरे जैसा भाव रखना तथा मुनि सोमदेव वगैरह को भी कह दिया कि तुम जैसे मुझे समझते हो वैसे ही दुर्बलपुष्पमित्र को समझना। आचार्य रक्षितसूरि ने गच्छ का सुप्रबन्ध करके अनशन एवं समाधि पूर्वक स्वर्ग को ओर प्रस्थान किया। आचार्य दुर्बलपुष्पमित्र गच्छ को अच्छी तरह से चलाते हुये एवं सबको समाधि पहुँचाते हुये गच्छ की उन्नति एवं वृद्धि की। परन्तु गोष्टामहिल मुनि ने ईर्षा एवं द्वेष भाव के कारण अपना मत अलग निकाल कर सातवां निन्हव की पंक्ति में अपना नाम लिखाया।

रुद्रसोमा पुनस्तत्र श्रमणोपासिका तदा। विज्ञातजीवाजीवादि नवतत्त्वार्थ विस्तरा ॥१६॥
कृत सामायिका पुत्रमुत्कण्ठाकुलितं चिरात्। इलातलमिलनमौलिं वीक्ष्यापि प्रणतं भृशम् ॥ १७ ॥
अस्य ग्रन्थस्य वेत्तारस्तेऽधुना स्वेक्षुवाटके। सन्ति तोसलिपुत्राख्याः सूरयो ज्ञानभूरयः ॥ २८ ॥
किंकर्तव्यजडस्तत्राजानन् जैनपरिश्रमम्। ढट्टरश्रावकं सूरिवन्दकं प्रैक्षदागतम् ॥ ३७ ॥
ध्यात्वा तं सूरयोऽवोचन् जैनप्रव्रज्यया विना। न दीयते दृष्टिवादो विधिः सर्वत्र सुंदरः ॥ ४७ ॥
गुरवः शेषपूर्वाणां पाठायोज्जयिनिपुरि। तमार्यरक्षितं प्रैषुः श्रीवज्रस्वामिनोन्तिके ॥ ५८ ॥
गीतार्थैर्मुनिभिः सत्रा तत्रागादार्यरक्षितः। श्रीभद्रगुप्तसूरीणामाश्रये प्राविशत्तदा ॥ ५९ ॥
श्री वज्रस्वामि पादान्ते त्वया पिपठिषाभृता। भोक्तव्यं शयनीयं च नित्यं पृथगुपाश्रये ॥ ६५ ॥
तदा च ददृशे स्वप्नः श्रीवज्रेणाप्यजल्प्यत। विनेयाग्रेऽद्य संपूर्णः पायसेन पतद्ग्रहः ॥ ७० ॥
वस्त्र कच्छाभिसंबद्धं ममास्तु परिधानकम्। नग्नैः शक्यं किमु स्थातुं स्वं यात्मजजनाग्रतः ॥ १५५ ॥
उपानहौ मम स्यातां तथा करक पात्रिका। छत्रिकायोपवीतं च यथा कुर्वे तव प्रतम् ॥ १५८ ॥ प्र० च०

आचार्य रक्षितसूरि जैनशासन में बड़े भारी प्रभाविक एवं युग प्रवर्तक आचार्य हुये आपके शासन में दो बातें जानने काबिल हुई १—पूर्व जमाने में एक ही सूत्र से चारों अनुयोग का अर्थ किया जाता था पर भविष्य में साधुओं की बुद्धि का विचार कर चारों अनुयोग पृथक् २ कर दिये वे अद्यावधि वैसे ही चले आ रहे हैं २—पूर्व जमाने में साध्वियां अपनी आलोचना साध्वियों के पास करती और साध्वियां ही यथायोग्य प्रायश्चित दे दिया करती थी परन्तु आर्य रक्षितसूरि ने उस प्रवृति को बन्द कर साध्वियां अपनी आलोचना साध्वियों के पास न करके साधुओं के पास करे और साधु ही प्रायश्चित दें ऐसा नियम बना दिया।

आर्य रक्षित ९॥ पूर्व ज्ञान के पारगामी थे। इनके बाद इतना ज्ञान किसी आचार्य को नहीं हुआ था युगप्रधान पट्टावली अनुसार आप १९ वें युगप्रधान थे। आपका जन्म वी० नि० सं० ५२२ में हुआ था २२ वर्ष की आयुष्य में दीक्षा ली ४४ वर्षसामान्य दीक्षा पर्याय और १३ वर्ष युगप्रधान पद पर रहकर शासन की खूब उन्नति की। वी० नि० सं० ५९७ वें वर्ष में अर्थात् ७५ वर्ष का सर्व आयुष्य भोग कर स्वर्गवासी हुये।

आचार्य नंदिलसूरि—आप साढ़े नौ पूर्वधर महान प्रभावशाली आचार्य हुए हैं। प्रभाविक चरित्र में आपके विषय में बहुत वर्णन किया है। आपके चरित्रान्तरगत वैराट्या देवी का भी चरित्र वर्णन किया है जिसमें पद्मनीखंडनगर, पद्मप्रभराजा, पद्मावतीरानी, पद्मदत्तश्रेष्ठि, पद्मयशास्त्री, पद्मपुत्र, जिसका वरदत्त की पुत्री वैराट्या के साथ विवाह हुआ था। इत्यादि विस्तृत वर्णन किया है। आगे लिखा है कि—

दुकाल के कारण वरदत्त देशान्तर जाता है और वैराट्य को सासु खूब कष्ट देती है नागेन्द्र स्वप्ना सूचित वैराट्या गर्भ धारण करती है। आचार्य नंदिलसूरि उद्यान में पधारते हैं। वैराट्या सूरि को वन्दन करने को जाती है और अपनी दुःख गाथा सुनाकर पूर्वभव में किये हुए कर्मों को सुनना चाहती है। सूरिजी कर्म सिद्धान्त का रहस्य बतला कर वैराट्या को शान्त करते हैं। वैराट्या को पयसान्न (दूधपाक) का दोहला उत्पन्न होता है। तप के उद्यापनार्थ दूधपाक तैयार होता है। वैराट्या घड़ा हुआ पयसान्न का ... में डाल पानी के बहाने जलाशय पर जाती है। वहां नाग देव की देवी पयसान्न का भक्षण कर जाती है और वैराट्या की क्षमा शान्ति को देख प्रसन्न होती है। वैराट्या पुत्र को जन्म देती है और उसका नाम नागदत्त रखा जाता है। समयान्तर नागदेव की सहायता से पद्मदत्त पद्मयशा और वैराट्यादि सूरिजी के पास दीक्षा लेते हैं। वैराट्या साध्वि जीवन में काल कर भगवान पार्श्वनाथ के सेविका नागकुमार की जाति में वैराट्या देवी पने उत्पन्न होती है इत्यादि विस्तार से वर्णन किया है—

आर्य नंदिल किस वंश परम्परा के थे? इसके लिए चरित्रकार आर्य्य रक्षित के वंश में हुए लिखते हैं पर नंदी स्थविरावली में आर्य्य मंगू के बाद और नागहस्ति के पूर्व के युगप्रधान बतलाया है परन्तु आर्य मंगू का युगप्रधान समय वी. नि. सं० ४५१ से ४७० का है तब आर्य्य रक्षित का समय ५४४ से ५९७ का है यदि नंदिल आर्य्य मंगू के बाद माना जाय तो करीब १०० वर्ष पूर्व का समय आता है। अतः ... मंगू के ... सिद्ध नहीं होते हैं। अतः आर्य नंदिल को आर्य रक्षित के बाद ... कहना ठीक है। आर्य नन्दिल का नाम प्रबन्ध कार एवं युग प्रधान पट्टावली कारों आर्य्य नंदिल ... आपका वास्तविक नाम आर्य नंदिल था ऐसा पं० कल्याण विजयजी महाराज अपनी ... प्रकाशित करते हैं। जो यथार्थ ही समझा जा सकता है।

कालकाचार्य—इसी किताब के पृष्ठ ४०९ पर चार कालकाचार्यका नामोल्लेख किया जिसमें दत्तकों यज्ञ फल कहने वाले का भी नाम आया है जिसके लिये ऐसी घटना बनी थी कि तुरिगिणी नगरी के उद्यान में एक समय कालकाचार्य पधारे थे वहां पर कालकाचार्य के बहन का पुत्र दत्त नाम पुरोहित था उसने अपना स्वामि राजा को छल कपट से कारागर में डाल कर आप स्वयं राज कों अपने अधिकार में कर लिया था और आप वहां का राजा बन गया था राजा दत्त अपनी माता के कहने से एक दिन कालकाचार्य के पास आया उसके हृदय में पहले से ही धर्म द्वेष था अतः उन्मत की भाँति क्रोध युक्त हो कर कालकाचार्य को यज्ञ के विषय में प्रश्न पूछा कि यज्ञ का क्या फल होता है ? आचार्यश्री ने कहा कि यज्ञ में जो पशुओं की हिंसा की जाती है और हिंसा का फल होता है नरक अर्थात् हिंसा करने वाले नरक में जाकर अनन्त दुःखों को भोगता है। यह बात दत्त को बहुत बुरी लगी खैर उसने पुनः पूछा कि हमारा और आपका शेप आयुष्य कितना रहा है और किस कारण मृत्यु होगा एवं मर कर कहाँ जावेंगे ? कालकाचार्य ने कहा दत्त तेरा आयुष्य सात दिन का रहा है तू कुंभी में पच कर मरेगा कुत्ते तेरी लाश को खायंगे और तू मर कर नरक में जावेगा फिर मैं यह कह देता हूँ कि तेरे मुंह में वृष्टा पड़ेगा तब जान लेना कि मेरी मृत्यु आ गई है और मैं समाधि के साथ मर कर स्वर्ग में जाऊँगा। इस जवाब से दत्त को और भी विशेष गुस्सा आया और आचार्य श्री के लिये गुप्तचर को रख दिया कि ये सातदिनों के अन्दर कहीं विहार न कर जाय बाद दत्त अपने स्थान को चला गया और ऐसे स्थान में बैठ गया कि वहाँ न तो मुंह में वृष्टा पड़ सके और न मृत्यु ही आ सके ? पर भवितव्यता को कौन मिटा सकता है दत्त अपने गुप्त स्थान में रह कर दिन गिनता था परन्तु भ्रांति से सातवां दिन को आठवां दिन समझ कर आचार्यश्री के वचन को मिथ्या साबित करने की गर्ज से अश्वारूढ़ हो कर राज मार्ग से जा रहा था राज मार्ग में क्या हुआ था कि एक मालन पुष्पों की छाब लेकर जा रही थी उसके उदर में ऐसी तकलीफ हुई कि वह राज मार्ग में ही टट्टी बैठ गई और पास में पुष्प थे वे वृष्टा पर डाल दिया उसी रास्ते से दत्त आ रहा था घोड़ा का पैर उस वृष्टा पर लगा कि वृष्टा उछल कर थोड़ासा दत्त के मुंह में जा पड़ा जिसका स्वाद आते ही दत्त विचार कर वापिस लौट रहा था परन्तु दत्त का अत्याचार से मंत्री वगैरह सब असन्तुष्ट थे उन्होंने किसी जितशत्रु राजा को ला कर राज गादी बैठा दिया उसने दत्त को पकड़ पिंजरा में डाल दिया। बाद दत्त को कुंभी में डाल कर भट्टी पर चढ़ाया और नीचे अग्नि लगादी और बाद में उसकी लाश कुत्तों ने खाई एवं कदर्थना की और वह मर कर नरक में गया। तत्पश्चात् कालकाचार्य वहां से विहार किया कई अर्सा तक भव्य जीवों का उद्धार कर अन्त में समाधिपूर्वक काल कर स्वर्ग पधार गये इस प्रकार कालका चार्य महा प्रभाविक आचार्य हुए हैं।

श्रीशत्रुंजयतीर्थ का उद्धार

जैन संसार में तीर्थश्रीशत्रुंजय का बड़ा भारी महात्म्य एवं प्रभाव है। इतना ही क्यों पर शत्रुंजय तीर्थ को प्रायः शाश्वता तीर्थ बतलाया है। जैनांगोपांग सूत्र में श्री शत्रुंजय के विषय प्रचुरता से उल्लेख मिलता है। श्रीज्ञातसूत्र तथा अंतगढ़दशांग सूत्र में उल्लेख मिलता है कि हजारों मुनिराज शत्रुंजय तीर्थ पर जाकर अन्तसमय केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गये हैं। जैसे यह तीर्थ प्राचीन है वैसे इस तीर्थ के उद्धार भी बहुत हुए हैं और जैसे मनुष्यों ने इस तीर्थ के उद्धार करवाये हैं वैसे देवताओं के इन्द्रों ने भी तीर्थोद्धार

करवाया था। कलिकाल की कुटिल गति से इस तीर्थ पर कई प्रकार के आक्रमण भी हुए थे। [illegible] समय बौद्धों और जैनों के शास्त्रार्थ हुआ था और बौद्धों की विजय में सौराष्ट्र प्रांत बौद्धों के हाथ में चला गया था इस हालत में शत्रुंजय तीर्थ पर भी बौद्धों का अधिकार हो गया था। इनके अलावा असुरों ने भी शत्रुंजय पर अधिकार रहा था अतः कई वर्षों तक जैनों को शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा से वंचित रहना पड़ा था और इस अंतराय कर्म को हटाने वाले महाप्रभाविक आचार्य वज्रस्वामी और धर्मवीर जावड़ शाह हुए कि इन्होंने दुष्ट असुर के पंजे में गये हुये शत्रुंजय तीर्थ को पुनः दूध एवं शत्रुंजी नदी के निर्मल जल से धोकर एवं शुद्ध बना कर पुनः उद्धार करवाया। तब से जाकर चतुर्विध श्रीसंघ ने श्रीशत्रुंजय तीर्थ की यात्रा की।

जावड़ शाह—आचार्य श्रीस्वयंप्रभसूरि ने पद्मावती नगरी के राजा पद्मसेनादि ४५००० जन समूह को जैनधर्म में दीक्षित किये। आगे चलकर उस समूह का प्राग्वटवंश नाम संस्करण हुआ। वंशावलियों से पता मिलता है कि पद्मावती में प्राग्वट वंशीय शाह देवड़ रहता था। देवड़ के ११ पुत्र थे जिसमें भावड़ भी एक था। भाइयों की अनबनत के कारण भावड़ पद्मावती छोड़ सौराष्ट्र में चला गया और कांपिल्य नगर में जाकर बस गया और व्यापार में भावड़ ने बहुत द्रव्य भी पैदा किया पर कर्मों की गति विचित्र होती है एक ही भव में मनुष्य अनेक दशाओं को देख लेता है यही हाल भावड़ का हुआ था।

भावड़ शाह की गृहणी का नाम भावला था और वह धर्मकरनी में दृढ़ व्रत वाली श्राविका थी। भावड़ शाह के पूर्व जन्म की अन्तराय के कारण धन कम हो गया परन्तु धर्म की तो वृद्धि होती गई कहा है कि 'सत्य की बांधी लक्ष्मी फिर मिलेगी आय।' एक समय भावला के मकान पर दो मुनि भिक्षार्थ निकले। भावला ने अपना अहोभाग्य समझ कर गुरु भक्ति की और उनको सादर आहार पानी दिया। उस समय भावला गर्भवती थी। मुनियों ने निमित्त ज्ञान के बल से कहा कि माता तुम्हारे पुत्र होगा। वह जैन शासन का उद्धार करने वाला भाग्यशाली होगा पुनः मुनियों ने कहा कि कल एक घोड़ी बिकेगी उसको खरीद कर लेना कि जिसमें आपको बहुत लाभ होगा। बस इतना कह कर मुनि तो चले गये। भावला ने सब बात अपने पतिदेव को कह दी जिससे दोनों ने शुभ शकुन मान कर मंगलीक गांठ लगाली।

दूसरे दिन एक सोदागर घोड़ी बेचने को आया उसको भावड़शाह ने खरीद कर ली [illegible] शुभ लक्षण वाले बच्चे पैदा हुए एक तो तीन लक्ष द्रव्य में एक राजा को बेच दिया, दूसरा राजा विक्रम को [illegible] में दे दिया। विक्रम ने खुश हो भावड़शाह को मधुमति आदि १२ ग्राम इनाम में दे दिये। बस, भावड़ शाह वहाँ पर मधुमती का राजा बन गया। बाद उसके एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम जावड़ रखा। [illegible] जब जवान हुआ तब उसकों एक श्रेष्ठि कन्या सुशीला के साथ उसका लग्न कर दिया। [illegible] [illegible] स्वर्गवास हुआ तो राजलक्ष्मी का मालिक जावड़ हुआ। शाह जावड़ राज्य के साथ व्यापार भी [illegible] एक समय जावड़शाह ने बहुत सा माल जहाजों में भर कर विदेश में भेजा था।

यह बात पादलिप्तसूरि के अधिकार में लिखी गई है कि पादलिप्त सूरि महान् प्रभाविक आचार्य हुए हैं। आपके सुयग्य शिष्य नागार्जुन ने शत्रुंजय की तलेटी में पादलिप्तपुर नाम का नगर बसाया था [illegible]

विक्रम की मृत्यु के बाद कायम समुद्र को पार कर लाट में एक [illegible] [illegible] लाट सौराष्ट्र के प्रान्तों में लूट मार शुरू कर दी। उसमें शत्रुंजय को भी बहुत सी हानि पहुंचाई [illegible]

[भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा

लिप्तपुर और मधुमती लूटकर जावड़शाह को भी पकड़ लिया और जाते समय वे जावड़ को भी अनार्य देश म साथ ले गये ।

जावड़ एक पक्का मुत्सद्दी था अपने चातुर्य्य एवं कुशलता से म्लेच्छों को प्रसन्न कर वहाँ भी अपना व्यापार करना शुरू कर दिया । जिससे पुष्कल द्रव्योपार्जन कर लिया और वहाँ आने वाले भारतीयों को अनेक प्रकार की सहायता पहुँचाने लगा। इतना ही क्यों पर जावड़ ने तो अपने सेवा पूजा दर्शन के लिए वहाँ जैनमंदिर और उपाश्रय भी बनवा लियाथा । उस समय जैनमुनियों का बिहार भी उस तरफ हुआ करता था—

इधर बिहार करते हुये मुनियों का एक मण्डल अनार्य देश में आया । जावड़शाह ने उनका स्वागत किया । मुनियों ने जावड़ की धर्म भावना देख वहां स्थिरता करदी और धर्मोपदेश देने लगे जिससे अनार्यों पर भी जैनधर्म का अच्छा प्रभाव हुआ । एक समय प्रसंगोपात श्रीसिद्धाचल का वर्णन करते हुए कहा कि कदर्पि यक्षद्वारा तीर्थ की बड़ी भारी आशातना हो रही है । श्रीसंघ कई अर्सा से यात्रा से वंचित है । हे श्रेष्टि-वर्य्य ! यह पुन्य कार्य तुम्हारे हाथ से होने वाला है । तुम इस कार्य्य के लिये उद्यम करो । इस कार्य्य में द्रव्य की अपेक्षा राजसत्ता की अधिक जरूरत है यहां की साता के अलावा तक्षिला के राजा जगन्मल के पास प्रभु आदीश्वर की मूर्ति है । उसे प्राप्त कर शत्रुंजय पर स्थापित कर अनंत पुन्योपार्जन करो इत्यादि ।

जावड़ का दिल देश एवं मातृभूमि तथा तीर्थ की ओर आकर्षित हुआ । अतः वहां से चल कर तक्षिला‡ आया । बहुमूल्य भेंट देकर राजा को प्रसन्न किया । राजा ने पूछा कहो सेठजी आपको किस बात की जरूरत है जावड़ ने मूर्ति मांगी और राजा ने जावड़ को मूर्ति देदी इतना ही क्यों पर राजा ने तो जावड़ को सौराष्ट्र तक इंतजाम कर मधुमति नगरी तक क्षेमकुशल से पहुँचा दिया ।

जब मनुष्य के पुन्योदय होता है तब चारों ओर से लाभ ही लाभ मिलता है । जावड़ ने जो माल जहाजों द्वारा विदेश में भेजा था उसके लिए इतने वर्ष हो गये कुछ भी समाचार नहीं मिले थे पर इधर तो जावड़ मधुमति आता है और उधर से वे जहाजों भी मधुमति आ पहुँचती है । अहा-हा-धर्म एक कैसा मित्र एवं कैसा सहायक होता है कि जिसका फल अवश्य मिलता है भले थोड़ा दिन की अन्तराय आ भी जाय पर उस अवस्था में मनुष्य अपने धर्म पर पाबन्दी रखता है तो शीघ्र ही आपत्ति से मुक्त हो सुखों का अनुभव करने लग जाता है एक समय जावड़ म्लेच्छों द्वारा पकड़ा गया था तब आज जावड़ शाह अपार सम्पति का धनी बनकर शत्रुंजय का उद्धार की भावना वाला बन गया है ।

उस समय आर्यवज्रसूरि विहार करते हुए मधुमति आये । जावड़शाह सूरिजी को वन्दन करने को गया उस समय लक्षदेवों का अधिपति एक देव भी, सूरिजी को वन्दन करने के लिये आया था । सूरिजी ने धर्मलाभ देकर जावड़ के कार्य में मदद कर तीर्थोद्धार करने का उपदेश दिया देवता ने सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य्य करली ।

जावड़ ने कहा प्रभो ! इस महान तीर्थ का उद्धार करना कोई साधारण सी बात नहीं है । इसमें पुष्कल द्रव्य की आवश्यकता है । सूरिजी ने कहा तुम्हारे जो जहाज आये हैं उनमें रेती सी दीखती है वास्तव में वह रेती नहीं पर तेजमतुरी है जिससे लोहे का सुवर्ण बन जाता है ।

बस, फिर तो कहना ही क्या था ? एक तरफ तो देव की सहायता और दूसरी तरफ द्रव्य की प्रचुरता । जावड़ का उत्साह बढ़ गया । जावड़ सब साधन सामग्री एवं तक्षिला से लाई हुई मूर्ति लेकर श्रीसंघ

‡ उस समय तक्षिला ५०० जैनमन्दिरों से सुशोभित जैनियों का एक केन्द्र था ।

तथा आर्यवज्रसूरि के साथ शत्रुंजय आया । पर वहां के यक्ष ने २१ दिन तक खूब उपद्रव किया । आखिर उसको परास्त होकर वहां से भागना पड़ा ।

बस, फिर तो था ही क्या । जावड़शाह ने शत्रुंजय पर्वत को दूध और शत्रुंजी नदी के निर्मल जल से धुलवाया और वहां का सब काम करवा कर तक्षशिला से लाई हुई भगवान् आदीश्वर की मूर्ति की प्रतिष्ठा आचार्य वज्रसूरि के कर कमलों से करवाई । आचार्य श्री ने द्रव्य क्षेत्र काल भाव को जान कर कपर्दी और चक्रेश्वरीदेवी को वहां के अधिष्ठाता के रूप में स्थापन किया ।

आचार्य वज्रसूरि और जावड़शाह के प्रभावशाली प्रयत्न से चतुर्विध श्रीसंघ को फिर से पुनीत तीर्थ की यात्रा करने का सौभाग्य मिला है । जैन संसार में जावड़शाह खूब प्रसिद्ध पुरुष है और इनके द्वारा कराया हुआ तीर्थधिराज श्रीशत्रुंजय का उद्धार भी महत्वपूर्ण कार्य है जिसको जैन समाज कभी भूल नहीं सकता है आज पर्यन्त चतुर्विध श्रीसंघ तीर्थराज की यात्रा सेवा भक्ति कर अपना कल्याण कर रहा है जिसका सर्व श्रेय स्वानामधन्य प्राग्वट वंश भूषण श्रीमान् जावड़शाह को ही है । यद्यपि इनके बाद श्रीमालों एवं ओसवालों ने भी इस पुनीत तीर्थ का उद्धार करवाया है पर पंचमारा में उस विकट परिस्थिति में उद्धार करवाने वाले गुरु वज्रस्वामि और जावड़शाह विशेष धन्यवाद के पात्र कहा जा सकते हैं ।

श्री शत्रुंजय का संघ— आचार्य जज्जगसूरि विहार करते हुए पालिकापुरी में पधारे श्री संघ ने आपका अच्छा स्वागत किया सूरिजी का प्रभावोत्पादक व्याख्यान हमेशा होता था एक समय आपने श्रीशत्रुंजय तीर्थ का महात्म्य बतलाते हुए तीर्थ यात्रा से शासन की प्रभावना और भविष्य में कल्याणकारी फल का विस्तार से वर्णन किया जिससे जनता की रुची तीर्थयात्रा की हो आई कारण कई अर्सा से श्री शत्रुंजय की यात्रा बन्द थी पर आर्य्य वज्रसूरि और जावड़शाह के प्रयत्न से पुनः तीर्थ का उद्धार हुआ था अतः जनता का दिल पुनीत तीर्थ की यात्रा करने का हो जाना एक स्वाभाविक ही था उसी सभा में बैठा हुआ अपार सम्पत्ति का मालिक प्राग्वट वंशीय शाह जोघड़ा ने सूरिजी एवं श्रीसंघ से अर्ज की कि श्रीसंघ मुझे आदेश दिरावे मैं श्रीशत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकालूँ ? सूरिजी ने कहा जोघड़ा तु बड़ा ही भाग्यशाली है श्री संघ ने भी अनुमोदन के साथ आदेश दे दिया । बस फिर तो कहना ही क्या था शाह जोघड़ा ने बड़ी भारी तैयारियाँ करनी शुरू कर दी । सर्वत्र आमंत्रण पत्रिकाएँ भेज दी । इस संघ में एक लक्ष से भी अधिक यात्रु और तीन हजार साधु साध्वियां थे जिसमें अधिक साधु साध्वियां उपकेश एवं कोरंटगच्छ के ही थे उस समय आचार्य [illegible]सूरि चन्द्रावती नगरी में विराजते थे अतः संघपति जोघड़ा ने स्वयं जाकर विनती की [illegible] सूरिजी ने जोघड़ा की प्रार्थना स्वीकार कर संघ में शामिल होने की मंजूरी फरमादी जब संघ पालिकापुरी से प्रस्थान कर चन्द्रावती आया तो सूरिजी अपने शिष्यों के साथ शामिल हो गये फिर तो था ही क्या [illegible] उत्साह द्विगुणित हो गया आचार्य जज्जगसूरि ने भी सूरिजी का यथायोग्य विनय किया ! [illegible] [illegible] शामिल होने के बाद यह [illegible] ही संघ का अतः जनता एक दम उलट पड़ी थी [illegible] पहुँचा उस समय शत्रुंजय पर छोटा बड़ा तेरह संघ आये थे पर सब से बड़ा संघ [illegible] [illegible] ने [illegible] युगादीश्वर की यात्रा कर पूर्व संचित पाप का प्रक्षालन कर डाला [illegible] पूजा प्रभावना [illegible] और स्वामि वात्सल्यादि किये अनेक महानुभावों ने संघ को [illegible] शाह जोघड़ ने इस संघ में एक करोड़ द्रव्य शुभ क्षेत्र में लगाया—

१७—आचार्य यक्षदेव सूरि (तृतीय)

आचार्यस्तु स यक्षदेव पदयुक् सूरिर्नृपस्य सुतः ।
विद्या ज्ञान कलाधरो न विजहौ धर्मं स्वकीयं च यः ॥
दुष्कालेऽपि च वज्रसेन विदुषः सूरेः सुशिष्यान् सुधीः ।
जज्ञौ ये तु निवृत्ति विद्याधर पुङ् नागेन्द्र चान्द्रान्वयाः ॥
जाताः जैन समाज लोक विषये कर्त्तोपकारस्य ये ।
भूरेः सूरिरयं कदापि न हि किं विस्मार्य कार्योऽस्ति वा ॥
किन्त्वेकं कर वा व वद्ध करता युक्तं सदाभ्यर्थयन् ।
कल्याणं कुरुतां जनस्य भगवन् प्रेम्णा कटाक्षं तव ॥

आचार्यश्री यक्षदेवसूरीश्वरजी महान प्रभाविक आचार्य हुए हैं। आपका जन्म वीरपुर नगर के महान प्रतापी राजा वीरधवल की विदुषी पट्टराज्ञी गुनसेना की पवित्र कुक्ष से हुआ था और आपका शुभ नाम वीरसेन रक्खा था। आपके हाथ पैरों की रेखा और शरीर में रहे हुए शुभ लक्षण आपके भावी होनहार की शुभ सूचना कर रहे थे। आपका पालन पोषण सब क्षत्रियोचित हो रहा था। आप वर्ण में क्षत्री थे पर विद्या में तो ब्राह्मण वर्ण के सदृश्य ही थे कि बालभाव मुक्त होते ही आपके पिताश्री ने महोत्सवपूर्वक विद्यालय में प्रविष्ट किया पर आपकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि अपने सहपाठियों में सदैव अग्रेश्वर ही रहते थे। कहा भी है कि 'बुद्धि कर्मानुसारणी' जिन जीवों ने पूर्व जन्म में ज्ञान पद की एवं देवी सरस्वती की आराधना की हो उनके लिये इस प्रकार शीघ्र ज्ञान प्राप्त कर लेना कोई मुश्किल की बात नहीं है। राजकुँवर वीरसेन आठ वर्ष की पढ़ाई में पुरुष की ७२ कलाओं में एवं राजतंत्र चलाने में विज्ञ बन गया।

जब राजकुँवर वीरसेन सोलह वर्ष का हुआ तो उसकी शादी के लिये अनेक प्रस्ताव मय चित्रों के आये उसमें उपकेशपुर नगर के राव नरसिंह की सुशीला पुत्री सोनलदेवी के साथ वीरसेन का सम्बन्ध (सगाई) कर दी समयान्तर बड़े ही समारोह के साथ विवाह कर दिया। राजकन्या सोनलदेवी के माता पिता जैन-धर्मोपासक थे अतः सोनलदेवी जैनधर्मोपासिका हो यह तो एक स्वभाविक बात है। इतना ही क्यों पर सोनलदेवी को बचपन से ही धार्मिक ज्ञान की अच्छी शिक्षा दी गई थी कि अपना षट्कर्म एवं क्रिया विशेष में सदैव रत रहती थी। जैनमुनि एवं साध्वियों से सोनल ने जैनधर्म के दार्शनिक एवं तात्विक ज्ञान का भी अच्छा अभ्यास कर लिया था जिसमें भी कर्म सिद्धान्त पर तो उसकी अटल श्रद्धा एवं विशेष रुचि थी।

विवाह होने पर सोनलदेवी अपनी सुसराल जाती है और वहां उसकी कसौटी का समय उपस्थित होता है। वाममार्गियों ने एक ऐसा भी रिवाज कर रक्खा था कि कोई भी व्यक्ति परण के आवे तो नगर में या नगर के बाहर जितने देवी देव हों उन सब की जात दें। तदनुसार वीरसेन और सोनलदेवी को

तथा आर्यवज्रसूरि के साथ शत्रुंजय आया। पर वहां के यक्ष ने २१ दिन तक खूब उपद्रव किया। आखिर उसको परास्त होकर वहां से भागना पड़ा।

बस, फिर तो था ही क्या। जावड़शाह ने शत्रुंजय पर्वत को दूध और शत्रुंजी नदी के निर्मल नीर से धुलवाया और वहां का सब काम करवा कर तक्षशिला से लाई हुई भगवान् आदीश्वर की मूर्ति की प्रतिष्ठा आचार्य वज्रसूरि के कर कमलों से करवाई। आचार्य श्री ने द्रव्य क्षेत्र काल भाव को जान कर कपर्दी यक्ष और चक्रेश्वरीदेवी को वहां के अधिष्ठाता के रूप में स्थापन किया।

आचार्य वज्रसूरि और जावड़शाह के प्रभावशाली प्रयत्न से चतुर्विध श्रीसंघ को फिर से पुनीत तीर्थ की यात्रा करने का शौभाग्य मिला है। जैन संसार में जावड़शाह खूब प्रसिद्ध पुरुष है और इनके द्वारा कराया हुआ तीर्थधिराज श्रीशत्रुंजय का उद्धार भी महत्वपूर्ण कार्य है जिसको जैन समाज कभी भूल नहीं सकता है आज पर्यन्त चतुर्विध श्रीसंघ तीर्थराज की यात्रा सेवा भक्ति कर अपना कल्याण कर रहा है जिसका सर्व श्रेय स्वानामधन्य प्राग्वट वंश भूषण श्रीमान् जावड़शाह को ही है। यद्यपि इनके बाद श्रीमाल एवं ओसवालों ने भी ईस पुनीत तीर्थ का उद्धार करवाया है पर पंचमारा में उस विकट परिस्थिति में उद्धार करवाने वाले गुरु वज्रस्वामि और जावड़शाह विशेष धन्यवाद के पात्र कहा जा सकते हैं।

श्री शत्रुंजय का संघ— आचार्य जज्जगसूरि विहार करते हुए पालिकापुरी में पधारे श्री संघ ने आपका अच्छा स्वागत किया सूरिजी का प्रभावोत्पादक व्याख्यान हमेशा होता था एक समय आपने श्रीशत्रुंजय तीर्थ का महात्म्य बतलाते हुए तीर्थ यात्रा से शासन की प्रभावना और भविष्य में कल्याणकारी फल का विस्तार से वर्णन किया जिससे जनता की रुची तीर्थयात्रा की हो आई कारण कई असों से श्री शत्रुंजय की यात्रा बन्द थी पर आर्य्य वज्रसूरि और जावड़शाह के प्रयत्न से पुनः तीर्थ का उद्धार हुआ था अतः सबका दिल पुनीत तीर्थ की यात्रा करने का हो जाना एक स्वाभाविक ही था उसी सभा में बैठा हुआ अपार सम्पत्ति का मालिक प्राग्वट वंशीय शाह जोघड़ा ने सूरिजी एवं श्रीसंघ से अर्ज की कि श्रीसंघ मुझे आदेश दिरावे तो श्रीशत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकालूँ ? सूरिजी ने कहा जोघड़ा तु बड़ा ही भाग्यशाली है श्री संघ ने भी अनुमोदन के साथ आदेश दे दिया। बस फिर तो कहना ही क्या था शाह जोघड़ा ने बड़ी भारी तैयारी करनी शुरू कर दी। सर्वत्र आमंत्रण पत्रिकाएँ भेज दी। इस संघ में एक लक्ष से भी अधिक मनुष्य और तीन हजार साधु साध्वियां थे जिसमें अधिक साधु साध्वियां उपकेश एवं कोरंटगच्छ के ही थे उस समय आचार्य [illegible]सूरि चन्द्रावती नगरी में विराजते थे अतः संघपति जोघड़ा ने स्वयं जाकर विनती की और सूरिजी ने जोघड़ा की प्रार्थना स्वीकार कर संघ में शामिल होने की मंजूरी फरमादी जब संघ पालिकापुरी से प्रस्थान कर चन्द्रावती आया तो सूरिजी अपने शिष्यों के साथ शामिल हो गये फिर तो था ही क्या [illegible] का [illegible] द्विगुणित हो गया आचार्य जज्जगसूरि ने भी सूरिजी का यथायोग्य विनय किया। शत्रुंजय का [illegible] मुक्त होने के बाद यह पहला ही संघ था अतः जनता एक दम उलट पड़ी थी जब संघ शत्रुंजय पहुँचा उस समय शत्रुंजय पर छोटा बड़ा तेरह संघ आये थे पर सब से बड़ा संघ [illegible] का ही था। [illegible] लोगों ने [illegible] युगादीश्वर की यात्रा कर पूर्व संचित पाप का प्रक्षालन कर डाला। आठ दिन [illegible] पूजा [illegible] एवं ध्वज महोत्सवादि और स्वामि वात्सल्यादि किये अनेक महानुभावों ने संघ की [illegible] शाह जोघड़ ने इस संघ में एक करोड़ द्रव्य शुभ क्षेत्र में लगाया—

१७—आचार्य यक्षदेव सूरि (तृतीय)

आचार्यस्तु स यक्षदेव पदयुक् सूरिर्नृपस्य सुतः ।
विद्या ज्ञान कलाधरो न विजहौ धर्मं स्वकीयं च यः ॥
दुष्कालेऽपि च वज्रसेन विदुषः सूरेः सुशिष्यान् सुधीः ।
जज्ञौ ये तु निवृत्ति विद्याधर पुङ् नागेन्द्र चान्द्रान्वयाः ॥
जाताः जैन समाज लोक विषये कर्त्तोपकारस्य ये ।
भूरेः सूरिरयं कदापि न हि किं विस्मार्य कार्योऽस्ति वा ॥
किन्त्वेकं कर वा व बद्ध करता युक्त सदाभ्यर्थयन् ।
कल्याणं कुरुतां जनस्य भगवन् प्रेम्णा कटाक्षं तव ॥

आचार्यश्री यक्षदेवसूरीश्वरजी महान प्रभाविक आचार्य हुए हैं। आपका जन्म वीरपुर नगर के महान प्रतापी राजा वीरधवल की विदुषी पट्टराज्ञी गुनसेना की पवित्र कुक्ष से हुआ था और आपका शुभ नाम वीरसेन रक्खा था। आपके हाथ पैरों की रेखा और शरीर में रहे हुए शुभ लक्षण आपके भावी होनहार की शुभ सूचना कर रहे थे। आपका पालन पोषण सब क्षत्रियोचित हो रहा था। आप वर्ण में क्षत्री थे पर विद्या में तो ब्राह्मण वर्ण के सदृश्य ही थे कि बालभाव मुक्त होते ही आपके पिताश्री ने महोत्सवपूर्वक विद्यालय में प्रविष्ट किया पर आपकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि अपने सहपाठियों में सदैव अग्रेश्वर ही रहते थे। कहा भी है कि 'बुद्धि कर्मानुसारणी' जिन जीवों ने पूर्व जन्म में ज्ञान पद की एवं देवी सरस्वती की आराधना की हो उनके लिये इस प्रकार शीघ्र ज्ञान प्राप्त कर लेना कोई मुश्किल की बात नहीं है। राजकुँवर वीरसेन आठ वर्ष की पढ़ाई में पुरुष की ७२ कलाओं में एवं राजतंत्र चलाने में विज्ञ बन गया।

जब राजकुँवर वीरसेन सोलह वर्ष का हुआ तो उसकी शादी के लिये अनेक प्रस्ताव मय चित्रों के आये उसमें उपकेशपुर नगर के राव नरसिंह की सुशीला पुत्री सोनलदेवी के साथ वीरसेन का सम्बन्ध (सगाई) कर दी समयान्तर बड़े ही समारोह के साथ विवाह कर दिया। राजकन्या सोनलदेवी के माता पिता जैन-धर्मोपासक थे अतः सोनलदेवी जैनधर्मोपासिका हो यह तो एक स्वभाविक बात है। इतना ही क्यों पर सोनलदेवी को बचपन से ही धार्मिक ज्ञान की अच्छी शिक्षा दी गई थी कि अपना षट्कर्म एवं क्रिया विशेष में सदैव रत रहती थी। जैनमुनि एवं साध्वियों से सोनल ने जैनधर्म के दार्शनिक एवं तात्विक ज्ञान का भी अच्छा अभ्यास कर लिया था जिसमें भी कर्म सिद्धान्त पर तो उसकी अटल श्रद्धा एवं विशेष रुचि थी।

विवाह होने पर सोनलदेवी अपनी सुसराल जाती है और वहां उसकी कसौटी का समय उपस्थित होता है। वाममार्गियों ने एक ऐसा भी रिवाज कर रक्खा था कि कोई भी व्यक्ति परण के आवे तो नगर में या नगर के बाहर जितने देवी देव हों उन सब की जाव दें। तदनुसार वीरसेन और सोनलदेवी को भी

उपाध्याय, क्षमाकलसा आदि सप्त साधुओं को वाचनाचार्य्य मुनि पद्मविशाल आदि ७ साधुओं को पति पद आदि पदवियां प्रदान कर उनके उत्साह में वृद्धि की उस समय एक तो साधुओं की संख्या अधि थी दूसरे साधुओं को पृथक २ प्रान्तों में विहार करना पड़ता था अतः उन साधुओं की सार संभाल व आलोचना देने वगैरह के लिये पदवीधरों की आवश्यकता भी थी।

आचार्य यक्षदेवसूरि महान् प्रभावशाली एवं जैनधर्म के प्रचारक एक वीर आचार्य थे। आपने अपने पूर्वजों की भाँति प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जैनधर्म का काफी प्रचार किया। कई मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म की शिक्षा-दीक्षा दी एवं कई मुमुक्षुओं को जैनधर्म की मुनिदीक्षा दी। कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं करवाई। कई नगरों से बड़े २ संघ निकलवा कर तीर्थों की यात्रा की कई स्थानों में राजसभाओं में बौद्ध एवं वेदान्तियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजय पताका फहराई। कई दुष्कालों में देशवासी भाइयों की रक्षा का उपदेश देकर उनको सहायता पहुँचाई कई स्थानों में असंख्य मूक प्राणियों की बली रूप यज्ञप्रथा का उन्मूलन कर उन जीवों को अभयदान दिलवाया और कई जनोपयोगी ग्रन्थों का निर्माण कर जैन धर्म को चिरस्थायी बनाया इत्यादि जैन समाज पर ही नहीं पर अखिल भारत पर आपका महान उपकार हुआ है।

आर्य्य वज्रसूरि के जीवन में लिखा गया है कि आपके समय बारह वर्षीय दुकाल के कारण जैन श्रमणों के पठन पाठन स्वाध्याय ध्यान एवं आगम वाचना बन्द सी हो गई थी और साधुओं की दशा भी छिन्न भिन्न हो गई थी। और बाद थोड़ा ही असाँ में आर्यो वज्रसेन के समय दूसरा जन संहार बारह वर्षी दुकाल पड़ गया जब दुकाल के अन्त में पुनः सुकाल हुआ तो आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने साधु साध्वियों के अलावा आर्य्य वज्रस्वामी के साधु साध्वियों को भी एकत्र कर उन श्रमण संघ की सर्व प्रकार की व्यवस्था कर पुनः संगठन किया था। इसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों* में मिलता है। जिसका भावार्थ

* तदन्वये यक्षदेवसूरिरासीद्धियाँ निधि। दशपूर्वधरो वज्रस्वामी मुख्यमवद्यदा।
दुर्भिक्षे द्वादशाब्दीये, जनसंहारकारिणि। वर्तमानेऽनाशकेन, स्वर्गोऽगुबहुसाधवः ॥
ततो व्यतीते दुर्भिक्षेऽवशिष्टान् मिलितान् मुनीन्। अमेलयन्यक्षदेवाचार्या चन्द्रगणे तथा ॥
तदादि चन्द्रगच्छस्य, शिष्य प्रभावनाविधौ। श्राद्धानाँ वास निक्षेपं, चन्द्रगच्छः प्रकीर्त्यंते ॥
गणः कोटिक नामापि, वज्रनाम्नाऽपि संमता। चान्द्रं कुलं च गच्छेऽस्मिन्, साम्प्रतं कथ्यते गतः ॥
शतानि पंच साधूनां, पुनगच्छेऽपिमिलन्निह। शतानि सप्त साध्वीनां, तथोपाध्याय सप्तकम् ॥
[illegible] वाचनाचार्या, दशसारा गुरवस्तथा। प्रवर्तकौ द्वावभूतां, तथैवामे महत्तरे ॥
[illegible] प्रवर्तिन्यः, सुमीति द्वौ महत्तरौ। मिलिनो चन्द्रगच्छा नः सद्रूपेयं कथ्यते गतो ॥

परम श्राविका सोनलदेवी के उत्साह का पार नहीं था उसने केवल राजघराने का ही उद्धार नहीं किया पर सब नगर का ही उद्धार कर दिया। लिखी पढ़ी महिलाएं क्या नहीं कर सकती हैं ? अब तो सोनलदेवी ज्ञान ध्यान एवं धर्म कार्य में इस प्रकार जुट गई कि उसका दिल संसार से विरक्त होने लग गया। साथ में आचार्यश्री का त्याग वैराग्य मय व्याख्यान फिर तो कहना ही क्या था ? सोनलदेवी अपने पतिदेव को इस प्रकार समझाती थी कि संसार असार है विषय भोग किंपाक फल के समान कटुक फल के दाता हैं इससे ही जीव अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। इस समय सब सामग्री अनुकूल मिली है। यदि इसमें कल्याण साधन किया जाय तो जन्म मरण के दुःखों से छुटकारा मिल सकता है इत्यादि। वीरसेन अपनी पत्नी के भावों को जान गया और कहा कि क्या आपकी इच्छा विषय भोग एवं संसार त्याग देने की है ? देवी ने कहा हां! वीरसेन ने कहा यदि ऐसा ही है तो कीजिये तैयारी मैं भी आपके साथ हूँ। फिर तो कहना ही क्या था? दम्पति चलकर सूरिजी के पास आये और अपने मनोगत भाव प्रकाशित कर दिये। सूरिजी ने कहा राजकुंवर आप बड़े ही भाग्यशाली हैं फिर सोनलदेवी का संयोग यह तो सोने में सुगन्ध है। पूर्व जमाने में बड़े २ चक्रवर्तियों ने जिनेन्द्र दीक्षा की शरण ली है। राज पाट भोग विलास जीव को अनंत वार मिला पर इससे कल्याण नहीं हुआ। कल्याण तो इसका त्याग करने में ही है। अतः आप शीघ्रता कीजिये कहा है कि 'समयंगोयमामपमाए'। क्योंकि गया हुआ समय फिर नहीं आता है—

इस बात का पता जब राजा वीरधवल और रानी गुनसेना को मिला तो पहिले तो वे दुःखी हुए पर जब सोनलदेवी ने अपनी सासू को इस प्रकार समझाया कि उनकी भावना दीक्षा लेने की हो गई। इस हालत में एक राजा ही पीछे क्यों रहे। उसने अपने लौतासा कुँवर देवसेन को राज देकर दीक्षा लेने का विचार कर लिया। जब नगर के लोगों ने इस प्रकार राजा रानी और कुँवर कुँवरानी का यकायक दीक्षा लेने का समाचार सुना तो मंत्र मुग्ध बन गये और कई नरनारी तो उनका अनुकरण करने को भी तैयार हो गये। इधर सूरिजी का उपदेश हमेशा त्याग वैराग्य पर होता ही था। बस, चतुर्मास समाप्त होने तक तो कई ४५ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। राजा वीरधवल ने अपने पुत्र देवसेन को तख्तनशीन कर राजा बनादिया और उसने तथा श्रीसंघ ने दीक्षा का महोत्सव बड़ा ही शानदार किया। कारण एक तो खास राजा रानी और कुँवर कुँवरानी आदि ४५ नरनारियों की दीक्षा। दूसरे इस नगर में इस प्रकार दीक्षा का लेना पहले पहल ही था तीसरे सूरिजी महाराज का अतिशय प्रभाव ही इतना जबरदस्त था कि सब का उत्साह बढ़ रहा था। उधर उपकेशपुर आदि बाहर ग्रामों से भी बहुत से लोग आये हुए थे। जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य आदि धर्मकृत्य महोत्सव पूर्वक हो रहे थे।

स्थिर लग्न एवं शुभ मुहूर्त में सूरीश्वरजी महाराज ने राजा वीरधवलादि मुमुक्षुओं को विधि विधान के साथ दीक्षा देकर उन सब का उद्धार किया। वीरसेन का नाम सोमकलस रक्खा गया था। मुनी सोमकलश बड़ा ही भाग्यशाली था। बुद्धि में तो बृहस्पति भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता था फिर भी सूरीजी महाराज की पूर्ण कृपा होने से स्वल्प समय में वर्त्तमान सकल साहित्य का एवं दशपूर्व तक का अध्ययन कर लिया था। यही कारण था कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था में वीरपुर नगर के राजा देवसेनादि सकल श्रीसंघ के महोत्सव पूर्वक मुनी सोमकलस को सूरि मंत्र की आराधना करवा कर आचार्य पद से विभूषित कर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया साथ में मुनि राजसुन्दर आदि ५ साधुओं को

कर डालेंगी । इसके लिये सोनलदेवी का उदाहरण प्रमाणभूत है पर इसमें मुख्य कारण बालकों को धार्मिक शिक्षा अच्छी तरह से देना ही है । जैसे सोनलदेवी को दी गई थी—

सोनलदेवी जब उपकेशपुर आई तो अपने गुरु महाराज से प्रार्थना की कि गुरुवर्य्य आपके व आपके पूर्वजों के प्रयत्न से बहुत ग्राम नगरों का सुधार हो गया परन्तु अभी ऐसे बहुत ग्राम नगर पड़े हैं वहाँ आप जैसों के विहार की परमावश्यकता है । गुरु महाराज ने कहा सोनल तेरे सुसराल वाले तो वाममार्गी बतलाते हैं ? हाँ गुरुदेव ! जब ही तो मैं अर्ज कर रही हूँ कि आप उधर पधारें आपको बहुत लाभ होंगे । वहाँ के लोग बड़े ही सरल स्वभाव के एवं भद्रिक परिणामी हैं । गुरु महाराज ने फरमाया ठीक है सोनल ! अवसर देखा जायगा जब तेरा जाना होगा तब हम भी अवसर देखेंगे ।

सोनेलदेवी कुछ अर्सा तक उपकेशपुर में रही बाद अपनी सुसराल चली गई उसी समय आचार्य रत्नप्रभसूरि भ्रमण करते हुए वीरपुर नगर में पधार गये । वहाँ के संघ ने सूरिजी का सुन्दर स्वागत किया इतना ही क्यों पर राजकन्या सोनल ने भी अपने सुसराल वालों को प्रेरणा करके सूरिजी का स्वागत करवाया और सोनलदेवी हमेशा व्याख्यान सुनने के लिए भी कोशिश किया करती थी । सूरिजी का व्याख्यान बड़ा ही मधुर रोचक और प्रभावोत्पादक था । नगर भर में जहां देखो वहाँ सूरिजी एवं जैनधर्म की प्रशंसा हो रही थी । यही कारण था कि वहाँ के पाखण्डियों के आसन हिलने लगे । उन्होंने राजा एवं राज्य तथा राजअन्तेवर में जा-जा कर बहुत कहना सुनना किया पर उनकी एक न चली । इस हालत में वे लोग जैनधर्म को नास्तिक धर्म बतला कर खूब पेट भर निन्दा करने लगे । आखिर राजा वीरधवल ने कहा कि मैं इस प्रकार एक त्यागी महात्मा की निन्दा सुनने को तैयार नहीं हूँ यदि आप अपनी सच्चाई बतलाना चाहते हो तो राजसभा में पण्डितों के सामने जैनाचार्य के साथ शास्त्रार्थ करने को तैयार हो जाइये । उन्होंने राजा का कहना स्वीकार कर लिय । अतः राजा ने सूरिजी से भी कहा पर सूरिजी तो शास्त्रार्थ के लिए पहिले से ही तैयार थे । राजा ने एक दिन मुकर्रर कर दोनों पक्षवालों को आमंत्रण पूर्वक राजसभा में बुलाया जिस समय दोनों का शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ उस समय राजसभा श्रोताओं से खचाखच भर गई थी अच्छे २ निष्पक्ष एवं मध्यस्थ पण्डित भी उपस्थित थे । एक तरफ राज अन्तेवर एवं महिला समाज के लिए इन्तजाम कर रक्खा था जिसमें सोनलदेवी आदि राज अन्तेवर एवं नगर की महिलायें बैठ गई थीं ।

वाममार्गियों के पास केवल एक ही शब्द था कि जैनधर्म नास्तिक धर्म है क्योंकि यह वेद एवं वेद कथित ईश्वर और ईश्वर कथित यज्ञ को नहीं मानते हैं ?

आचार्य रत्नप्रभसूरि के पास एक पण्डित निधानमूर्ति नामक विद्वानमुनि थे अपने सूरिजी की आज्ञा लेकर उन वादियों से पूछा कि आप नास्तिक आस्तिक का क्या अर्थ करते हैं ? इस विषय में [illegible] विचार चला । पं० निधानमूर्ति युवकावस्था में होने पर भी उनके शब्द बड़े ही धैर्य गांभीर्य माधुर्य और [illegible] एवं युक्ति मय निकलते थे कि जिसका प्रभाव सभा पर तो हुआ ही था पर उन वाममार्गियों पर भी [illegible] असर हुआ कि वे मिथ्या पंथ का त्याग कर सूरिजी के पास दीक्षा लेने को तैयार हो गये और सूरिजी ने [illegible] उन लोगों को दीक्षा दे अपने शिष्य बना लिये । फिर राजा प्रजा का तो कहना ही क्या [illegible] जैनधर्म में दीक्षित हो जैन श्रावक बन गये और अन्त में सूरिजी से चतुर्मास की विनती [illegible] वे तो और [illegible] का कारण जानकर सूरिजी ने चतुर्मास वहां ही कर दिया ।

[राजसभा में वाममार्गियों का पराजय

परम श्रावका सोनलदेवी के उत्साह का पार नहीं था उसने केवल राजघराने का ही उद्धार नहीं किया पर सब नगर का ही उद्धार कर दिया। लिखी पढ़ी महिलाएं क्या नहीं कर सकती हैं ? अब तो सोनलदेवी ज्ञान ध्यान एवं धर्म कार्य में इस प्रकार जुट गई कि उसका दिल संसार से विरक्त होने लग गया। साथ में आचार्यश्री का त्याग वैराग्य मय व्याख्यान फिर तो कहना ही क्या था ? सोनलदेवी अपने पतिदेव को इस प्रकार समझाती थी कि संसार असार है विषय भोग किंपाक फल के समान कटुक फल के दाता हैं इससे ही जीव अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। इस समय सब सामग्री अनुकूल मिली है। यदि इसमें कल्याण साधन किया जाय तो जन्म मरण के दुःखों से छुटकारा मिल सकता है इत्यादि। वीरसेन अपनी पत्नी के भावों को जान गया और कहा कि क्या आपकी इच्छा विषय भोग एवं संसार त्याग देने की है ? देवी ने कहा हां! वीरसेन ने कहा यदि ऐसा ही है तो कीजिये तैयारी मैं भी आपके साथ हूँ। फिर तो कहना ही क्या था? दम्पति चलकर सूरिजी के पास आये और अपने मनोगत भाव प्रकाशित कर दिये। सूरिजी ने कहा राजकुंवर आप बड़े ही भाग्यशाली हैं फिर सोनलदेवी का संयोग यह तो सोने में सुगन्ध है। पूर्व जमाने में बड़े २ चक्रवर्तियों ने जिनेन्द्र दीक्षा की शरण ली है। राज पाट भोग विलास जीव को अनंत वार मिला पर इससे कल्याण नहीं हुआ। कल्याण तो इसका त्याग करने में ही है। अतः आप शीघ्रता कीजिये कहा है कि 'समयंगोयमामपमाए'। क्योंकि गया हुआ समय फिर नहीं आता है—

इस बात का पता जब राजा वीरधवल और रानी गुनसेना को मिला तो पहिले तो वे दुःखी हुए पर जब सोनलदेवी ने अपनी सासू को इस प्रकार समझाया कि उनकी भावना दीक्षा लेने की हो गई। इस हालत में एक राजा ही पीछे क्यों रहे। उसने अपने लोतासा कुँवर देवसेन को राज देकर दीक्षा लेने का विचार कर लिया। जब नगर के लोगों ने इस प्रकार राजा रानी और कुँवर कुँवरानी का यकायक दीक्षा लेने का समाचार सुना तो मंत्र मुग्ध बन गये और कई नरनारी तो उनका अनुकरण करने को भी तैयार हो गये। इधर सूरिजी का उपदेश हमेशा त्याग वैराग्य पर होता ही था। बस, चतुर्मास समाप्त होने तक तो कई ४५ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। राजा वीरधवल ने अपने पुत्र देवसेन को तख्तनशीन कर राजा बनादिया और उसने तथा श्रीसंघ ने दीक्षा का महोत्सव बड़ा ही शानदार किया। कारण एक तो खास राजा रानी और कुँवर कुँवरानी आदि ४५ नरनारियों की दीक्षा। दूसरे इस नगर में इस प्रकार दीक्षा का लेना पहले पहल ही था तीसरे सूरिजी महाराज का अतिशय प्रभाव ही इतना जबरदस्त था कि सब का उत्साह बढ़ रहा था। उधर उपकेशपुर आदि बाहर ग्रामों से भी बहुत से लोग आये हुए थे। जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य आदि धर्मकृत्य महोत्सव पूर्वक हो रहे थे।

स्थिर लग्न एवं शुभ मुहूर्त में सूरीश्वरजी महाराज ने राजा वीरधवलादि मुमुक्षुओं को विधि विधान के साथ दीक्षा देकर उन सब का उद्धार किया। वीरसेन का नाम सोमकलस रक्खा गया था। मुनी सोमकलश बड़ा ही भाग्यशाली था। बुद्धि में तो बृहस्पति भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता था फिर भी सूरीजी महाराज की पूर्ण कृपा होने से स्वल्प समय में वर्त्तमान सकल साहित्य का एवं दशपूर्व तक का अध्ययन कर लिया था। यही कारण था कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था में धौपुर नगर के राजा देवसेनादि सकल श्रीसंघ के महोत्सव पूर्वक मुनी सोमकलस को सूरि मंत्र की आराधना करवा कर आचार्य पद से विभूषित कर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया साथ में मुनि राजसुन्दर आदि ५ साधुओं को

कर डालेंगी । इसके लिये सोनलदेवी का उदाहरण प्रमाणभूत है पर इसमें मुख्य कारण बालकों को धार्मिक शिक्षा अच्छी तरह से देना ही है । जैसे सोनलदेवी को दी गई थी—

सोनलदेवी जब उपकेशपुर आई तो अपने गुरु महाराज से प्रार्थना की कि गुरुवर्य्य आपके व आपके पूर्वजों के प्रयत्न से बहुत ग्राम नगरों का सुधार हो गया परन्तु अभी ऐसे बहुत ग्राम नगर पड़े हैं वहाँ आप जैसों के विहार की परमावश्यकता है । गुरु महाराज ने कहा सोनल तेरे सुसराल वाले तो हम वाममार्गी बतलाते हैं ? हाँ गुरुदेव ! जब ही तो मैं अर्ज कर रही हूँ कि आप उधर पधारें आपको बहुत लाभ होंगे । वहाँ के लोग बड़े ही सरल स्वभाव के एवं भद्रिक परिणामी हैं । गुरु महाराज ने फरमाया कि हे सोनल ! अवसर देखा जायगा जब तेरा जाना होगा तब हम भी अवसर देखेंगे ।

सोनेलदेवी कुछ अर्सा तक उपकेशपुर में रही बाद अपनी सुसराल चली गई उसी समय आचार्य रत्नप्रभसूरि भ्रमण करते हुए वीरपुर नगर में पधार गये । वहाँ के संघ ने सूरिजी का सुन्दर स्वागत किया इतना ही क्यों पर राजकन्या सोनल ने भी अपने सुसराल वालों को प्रेरणा करके सूरिजी का स्वागत करवाया और सोनलदेवी हमेशा व्याख्यान सुनने के लिए भी कोशिश किया करती थी । सूरिजी का व्याख्यान बड़ा ही मधुर रोचक और प्रभावोत्पादक था । नगर भर में जहां देखो वहाँ सूरिजी एवं जैनधर्म की प्रशंसा हो रही थी । यही कारण था कि वहाँ के पाखण्डियों के आसन हिलने लगे । उन्होंने राजा एवं राज्य तथा राजअन्तेवर में जा-जा कर बहुत कहना सुनना किया पर उनकी एक न चली । इस हालत में वे लोग जैनधर्म को नास्तिक धर्म बतला कर खूब पेट भर निन्दा करने लगे । आखिर राजा वीरधवल ने कहा कि मैं इस प्रकार एक त्यागी महात्मा की निन्दा सुनने को तैयार नहीं हूँ यदि आप अपनी सच्चाई बतलाना चाहते हो तो राजसभा में पण्डितों के सामने जैनाचार्य के साथ शास्त्रार्थ करने को तैयार हो जाइये । उन्होंने राजा का कहना स्वीकार कर लिय । अतः राजा ने सूरिजी से भी कहा पर सूरिजी तो शास्त्रार्थ के लिए पहिले ही तैयार थे । राजा ने एक दिन मुकर्रर कर दोनों पक्षवालों को आमंत्रण पूर्वक राजसभा में बुलाये । जिस समय दोनों का शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ उस समय राजसभा श्रोताओं से खचाखच भर गई थी अच्छे २ निष्पक्ष एवं मध्यस्थ पण्डित भी उपस्थित थे । एक तरफ राज अन्तेवर एवं महिला समाज के लिए इन्तजाम कर रक्खा था जिसमें सोनलदेवी आदि राज अन्तेवर एवं नगर की महिलायें बैठ गई थीं ।

वाममार्गियों के पास केवल एक ही शब्द था कि जैनधर्म नास्तिक धर्म है क्योंकि वह वेद एवं वेद कथित ईश्वर और ईश्वर कथित यज्ञ को नहीं मानते हैं ?

आचार्य रत्नप्रभसूरि के पास एक पण्डित निधानमूर्ति नामक विद्वानमुनि थे उसने सूरिजी की आज्ञा लेकर उन वादियों से पूछा कि आप नास्तिक आस्तिक का क्या अर्थ करते हैं ? इस विषय में खूब विवाद चला । पं० निधानमूर्ति युवकावस्था में होने पर भी उनके शब्द बड़े ही धैर्य गांभीर्य माधुर्य और [illegible] एवं युक्ति युक्त निकलते थे कि जिसका प्रभाव सभा पर तो हुआ ही था पर उन वाममार्गियों पर भी [illegible] बड़ा हुआ कि वे मिथ्या पंथ का त्याग कर सूरिजी के पास दीक्षा लेने को तैयार हो गये और सूरिजी ने उन लोगों को दीक्षा दे अपने शिष्य बना लिये । फिर राजा प्रजा का तो कहना ही क्या था [illegible] जैनधर्म के [illegible] जैन श्रावक बन गये और बाद में सूरिजी से चतुर्मास की [illegible] [illegible] और [illegible] का कारण जानकर सूरिजी ने चतुर्मास वहां ही कर दिया ।

परम श्रावका सोनलदेवी के उत्साह का पार नहीं था उसने केवल राजघराने का ही उद्धार नहीं किया पर सब नगर का ही उद्धार कर दिया। लिखी पढ़ी महिलाएं क्या नहीं कर सकती हैं ? अब तो सोनलदेवी ज्ञान ध्यान एवं धर्म कार्य में इस प्रकार जुट गई कि उसका दिल संसार से विरक्त होने लग गया। साथ में आचार्यश्री का त्याग वैराग्य मय व्याख्यान फिर तो कहना ही क्या था ? सोनलदेवी अपने पतिदेव को इस प्रकार समझाती थी कि संसार असार है विषय भोग किंपाक फल के समान कटुक फल के दाता हैं इससे ही जीव अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। इस समय सब सामग्री अनुकूल मिली है। यदि इसमें कल्याण साधन किया जाय तो जन्म मरण के दुःखों से छुटकारा मिल सकता है इत्यादि। वीरसेन अपनी पत्नी के भावों को जान गया और कहा कि क्या आपकी इच्छा विषय भोग एवं संसार त्याग देने की है ? देवी ने कहा हां! वीरसेन ने कहा यदि ऐसा ही है तो कीजिये तैयारी मैं भी आपके साथ हूँ। फिर तो कहना ही क्या था? दम्पति चलकर सूरिजी के पास आये और अपने मनोगत भाव प्रकाशित कर दिये। सूरिजी ने कहा राजकुंवर आप बड़े ही भाग्यशाली हैं फिर सोनलदेवी का संयोग यह तो सोने में सुगन्ध है। पूर्व जमाने में बड़े २ चक्रवर्तियों ने जिनेन्द्र दीक्षा की शरण ली है। राज पाट भोग विलास जीव को अनंत वार मिला पर इससे कल्याण नहीं हुआ। कल्याण तो इसका त्याग करने में ही है। अतः आप शीघ्रता कीजिये कहा है कि 'समयंगोयमामपमाए'। क्योंकि गया हुआ समय फिर नहीं आता है—

इस बात का पता जब राजा वीरधवल और रानी गुनसेना को मिला तो पहिले तो वे दुःखी हुए पर जब सोनलदेवी ने अपनी सासू को इस प्रकार समझाया कि उनकी भावना दीक्षा लेने की हो गई। इस हालत में एक राजा ही पीछे क्यों रहे। उसने अपने लौतासा कुँवर देवसेन को राज देकर दीक्षा लेने का विचार कर लिया। जब नगर के लोगों ने इस प्रकार राजा रानी और कुँवर कुँवरानी का यकायक दीक्षा लेने का समाचार सुना तो मंत्र मुग्ध बन गये और कई नरनारी तो उनका अनुकरण करने को भी तैयार हो गये। इधर सूरिजी का उपदेश हमेशा त्याग वैराग्य पर होता ही था। बस, चतुर्मास समाप्त होने तक तो कई ४५ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। राजा वीरधवल ने अपने पुत्र देवसेन को तख्तनशीन कर राजा बनादिया और उसने तथा श्रीसंघ ने दीक्षा का महोत्सव बड़ा ही शानदार किया। कारण एक तो खास राजा रानी और कुँवर कुँवरानी आदि ४५ नरनारियों की दीक्षा। दूसरे इस नगर में इस प्रकार दीक्षा का लेना पहले पहल ही था तीसरे सूरिजी महाराज का अतिशय प्रभाव ही इतना जबरदस्त था कि सब का उत्साह बढ़ रहा था। उधर उपकेशपुर आदि बाहर ग्रामों से भी बहुत से लोग आये हुए थे। जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य आदि धर्मकृत्य महोत्सव पूर्वक हो रहे थे।

स्थिर लग्न एवं शुभ मुहूर्त में सूरीश्वरजी महाराज ने राजा वीरधवलादि मुमुक्षुओं को विधि विधान के साथ दीक्षा देकर उन सब का उद्धार किया। वीरसेन का नाम सोमकलस रक्खा गया था। मुनी सोमकलश बड़ा ही भाग्यशाली था। बुद्धि में तो वृहस्पति भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता था फिर भी सूरीजी महाराज की पूर्ण कृपा होने से स्वल्प समय में वर्त्तमान सकल साहित्य का एवं दशपूर्व दश का अध्ययन कर लिया था। यही कारण था कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था में वीरपुर नगर के राजा देवसेनादि सकल श्रीसंघ के महोत्सव पूर्वक मुनी सोमकलस को सूरि मंत्र की आराधना करवा, आचार्य पद से विभूषित कर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया साथ में मुनि राजसुन्दर आदि ५ साधु

उपाध्याय, क्षमाकलसा आदि सप्त साधुओं को वाचनाचार्य मुनि पद्मविशाल आदि ७ साधुओं को प्रवर्त्तक पद आदि पदवियां प्रदान कर उनके उत्साह में वृद्धि की उस समय एक तो साधुओं की संख्या अधिक थी दूसरे साधुओं को पृथक २ प्रान्तों में विहार करना पड़ता था अतः उन साधुओं की सार संभाल एवं आलोचना देने वगैरह के लिये पदवीधरों की आवश्यकता भी थी।

आचार्य यक्षदेवसूरि महान् प्रभावशाली एवं जैनधर्म के प्रचारक एक वीर आचार्य थे। आपने अपने पूर्वजों की भाँति प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जैनधर्म का काफी प्रचार किया। कई मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म की शिक्षा-दीक्षा दी एवं कई मुमुक्षुओं को जैनधर्म की मुनिदीक्षा दी। कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई। कई नगरों से बड़े २ संघ निकलवा कर तीर्थों की यात्रा की कई स्थानों में राजसभाओं में बौद्ध एवं वेदान्तियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजय पताका फहराई। कई दुष्कालों में देशवासी भाइयों के रक्षा का उपदेश देकर उनको सहायता पहुँचाई कई स्थानों में असंख्य मूक प्राणियों की बली रूप पाखण्ड का उन्मूलन कर उन जीवों को अभयदान दिलवाया और कई जनोपयोगी ग्रन्थों का निर्माण कर जैन धर्म को चिरस्थायी बनाया इत्यादि जैन समाज पर ही नहीं पर अखिल भारत पर आपका महान उपकार हुआ है।

आर्य्य वज्रसूरि के जीवन में लिखा गया है कि आपके समय बारह वर्षीय दुकाल के कारण जैन श्रमणों के पठन पाठन स्वाध्याय ध्यान एवं आगम वाचना बन्द सी हो गई थी और साधुओं की दशा भी छिन्न भिन्न हो गई थी। और बाद थोड़ा ही असों में आर्या वज्रसेन के समय दूसरा जन संहार बारह वर्षीय दुकाल पड़ गया जब दुकाल के अन्त में पुनः सुकाल हुआ तो आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने साधु साध्वियों के अलावा आर्य्य वज्रस्वामी के साधु साध्विय को भी एकत्र कर उन श्रमण संघ की सर्व प्रकार की व्यवस्था कर पुनः संगठन किया था। इसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों* में मिलता है। जिसका भावार्थ

* तदन्वये यक्षदेवसूरिरासीद्धियाँ निधि। दशपूर्वधरो वज्रस्वामी युग्यभवयदा
दुर्भिक्षे द्वादशाब्दीये, जनसंहारकारिणि। वर्तमानेऽनाशकेन, स्वर्गोऽगुबहुसाधवः ॥
ततः व्यतीते दुर्भिक्षेऽवशिष्टान् मिलितान् मुनीन्। अमेलयन्यक्षदेवाचार्यां चन्द्रगणे तथा ॥
तदादि चन्द्रगच्छस्य, शिष्य प्रभावनाविधौ। श्राद्धानाँ वास निक्षेपं, चन्द्रगच्छः प्रवर्त्यते ॥
गणः कोटिक नामापि, वज्रशाखाऽपि संमता। चान्द्रं कुलं च गच्छेऽस्मिन, साम्प्रतं कथ्यते ततः ॥
शतानि पंच साधूनां, पुनर्गच्छेऽपिमिलन्निह। शतानि सप्त साध्वीनां, तयोपाध्याय सप्तकम् ॥
द्वाद्वौवाचनाचार्यो, दशसाराः गुरवस्तथा। प्रवर्तको द्वावभूतां, तथैवोभे महत्तरे ॥
द्वात्रिंशत् प्रवर्तिन्यः, सुर्मात्रि द्वौ महत्तरौ। मिलितौ चन्द्रगच्छानाः मद्ध्येयं कथ्यते गतो ॥

"एवं अनुक्रमे श्रीवीरात् ५८५ वर्षे श्री यक्षदेवसूरिर्बभूव महाप्रभावकः, द्वादश वर्षीय दुर्भिक्ष [illegible] वज्रसेनस्वामी [illegible] यक्षदेवसूरिणा [illegible] शाखा स्थापिता चन्द्र [illegible] नागेन्द्र [illegible] [illegible]"

"तथा श्रीपार्श्वनाथजी के [illegible] पट्ट [illegible] श्रीयक्षदेवसूरि हुये हैं [illegible] ५८५ वर्षे [illegible] वज्रस्वामि के [illegible] वज्रसेन के [illegible] हुये [illegible] [illegible] नागेन्द्र २ चन्द्र ३ निवृत्ति ४ विद्याधर [illegible] [illegible] [illegible]"

"[illegible]"

म्लेच्छों का आक्रमणसमय सूरीजीकेद में व साधु श्रावक मूर्तियाँ शिरपर उठाकर सुरक्षितस्थानमें लेजा रहे

सूरीजी को एकेले देख, खटकूंप नगर के श्रावकों ने अपने पुत्रों को दीक्षा दिला रहे हैं।

यह है कि दशपूर्वधर आचार्य श्री वज्रसूरि के सदृश्य अनेक गुणनिधि महाप्रभाविक आचार्य यक्षदेवसूरि भूमण्डल पर विहार करते थे, उससमय बारहवर्षीय जनसंहार करने वाला भीषण दुष्काल पड़ा था। जब धनिक लोगों के लिये मोतियों के बराबर ज्वार के दाने मिलने मुश्किल हो गये थे तो साधुओं के लिए भिक्षा का तो कहना ही क्या था ? यदि कहीं थोड़ी बहुत भिक्षा मिल भी जाय तो सुख से खाने कौन देता था ? उस भयंकर दुष्काल में यदि कोई व्यक्ति अपने घर से भोजन कर तत्काल ही बाहर निकल जावे तो भिक्षुक उसका उदर चीर कर अन्दर से भोजन निकाल कर खा जाते थे। इस हालत में कितने ही जैनमुनि अनशन पूर्वक स्वर्ग को चले गये। शेष रहे हुए मुनियों ने ज्यों त्यों कर उस अकाल रूपी अटवी का उल्लंघन किया जब दुकाल के अन्त में सुकाल हुआ तो उस समय एक आचार्य यक्षदेव सूरि ही अनुयोगधर एवं मुख्याचार्य रहे थे कि दुकाल से बचे हुए साधु साध्वियों को एकत्र कर पुनः संगठन कर सके अतः उन शासन शुभचिन्तक आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने साधु साध्वियों के साथ ही साथ आर्य्य वज्रसूरि के साधु साध्वियों को भी एकत्र किये तो ५०० साधु ७०० साध्वियां ७ उपाध्याय १२ वाचनाचार्य ४ गुरु पदधर २ प्रवृतक २ महत्तर (पद विशेष) १२ प्रवर्तनी २ महत्तरिका इत्यादि। परन्तु दुकाल की भीषण मार से इन सब का पठन पाठन बन्ध सा हो गया था पूर्व पढ़ा हुआ ज्ञान भी प्रायः विस्मृत सा हो गया। उस समय अनुयोगधार केवल एक आचार्य यक्षदेव सूरि ही रह गये थे अतः उन साधुओं को आगमों की वाचना के लिये सोपार पट्टन नगर योग्य समझ कर श्रीसंघ की अत्याग्रह से सब साधु साध्वियों सोपारपट्टन की ओर पधार रहे थे।

आर्य्य वज्रसेनसूरि सोपारपट्टन पधार कर जिनदास सेठ की ईश्वरी सेठानी के चन्द्र नागेन्द्र निर्वृति और विद्याधर नाम के चार पुत्रों की दीक्षा दी थी और आप श्री अपने शिष्यों के साथ वहीं विराजते थे।

जिस समय आचार्य यक्षदेवसूरि सोपारपट्टन पधारे उस समय आर्य्य वज्रसेन अपने शिष्यों के साथ तथा वहाँ का श्रीसंघ ने सूरिजी का खूब उत्साह पूर्वक स्वागत किया। जब आचार्य यक्षदेवसूरि श्रमणसंघ को वाचना देना आरम्भ किया तो वज्रसेनसूरि के शिष्य चन्द्र नागेन्द्र निवृ ति और विद्याधर भी आगम वाचना लेने में शामिल हो गये थे—

सब मुनियों की वाचना चलती ही थी बीच में ही आर्य्य वज्रसैनसूरि का आकस्मात् स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार गुरु महाराज का वियोग सब के लिये दुःख प्रद था पर उन नूतन शिष्यों के लिये तो और भी बड़ा भारी रञ्ज का करण हुआ पर आचार्य यक्षदेवसूरि ने उनको धैर्य्य दिलाया और कहा कि इस बात का तो मुझे भी बड़ा भारी रंज है पर इसका उपाय ही क्या है। जैसे ज्ञानियों ने भाव देखा वह ही हुआ है। तुम किसी प्रकार से घबराना नहीं मैं तुमको ज्ञान दूंगा और शिष्य समुदाय बना कर पदवी प्रदान कर दूंगा कि आप अपने शासन का संचालन करने में समर्थ बन जाओगे इत्यादि।

जब साधुओं के आगम वाचना समाप्त हुई तो सूरिजी का महान उपकार मानते हुए साधु सूरिजी की आज्ञा लेकर विहार किया। और चन्द्रादि चारों मुनि सूरिजी की सेवा में ही रहे।

इस वाचना के पूर्व जैनागम पुस्तकों पर प्रायः नहीं लिखे गये थे यदि थोड़ा बहुत लिखा भी होगा तो दुष्काल के कारण नष्ट भ्रष्ट हो गया होगा अतः सूरिजी ने भविष्य का विचार करके श्रावकों को उपदेश दिया कि कई श्रावकों ने द्रव्य व्यय कर के जितने आगमों की वाचना हुई थी उन सबको पुस्तकों अर्थात् ताड़पत्रादि पर लिखवा लिया कि भविष्य में ज्ञान विच्छेद नहीं हो सके। उस समय जो कोई दीक्षा लेने

वाला आता था तो उनको चन्द्रादि मुनियों के ही शिष्य बना दिये जाते थे। अतः चारों मुनियों के शिष्य भी गहरी तादाद में हो गये। अतः यक्षदेवसूरि ने उन चारों मुनियों को योग्य समझ कर सूरि पद से विभूषित किया। तदन्तर उन चारों सूरियों ने आचार्य यक्षदेवसूरि का महान उपकार मानते हुये सूरिजी की आज्ञा लेकर विहार किया। आचार्य यक्षदेवसूरि का प्रभाव ही ऐसा था कि आपके दिये हुए ज्ञान और सूरि पद से वे चारों सूरि महान प्रभाविक हुये। और उन चारों के नाम से चार कुल प्रसिद्ध हुये जैसे चन्द्र कुल, नागेन्द्रकुल, निर्वृतिकुल और विद्याधर कुल।

कल्पसूत्र की स्थविरावली में आर्य्यवज्रसैन के चार शिष्यों से चार शाखायें निकली जैसे—

१—आर्य्य नागल से नागली शाखा निकली २—आर्य्य पौमिल से पौमिली शाखा निकली

३—आर्य्य जयन्त से जयन्ति शाखा निकली ४—आर्य्य तापस से तापसी शाखा निकली

इन चार शाखाओं के अलावा चन्द्र, नागेन्द्र, निर्वृति और विद्याधर का नाम कल्पसूत्र की स्थविरावली में नहीं आया है। शायद इसका यह कारण हो सकता है कि आर्य्य वज्रसैन के पहिले नागलादि चार शिष्य मुख्य होंगे कि जिन्हों का उल्लेख कल्पसूत्र में कर दिया। बाद में दुष्काल के अन्त में चन्द्रादि चार मुनियों को दीक्षा दी और वज्रसैन का तुरत ही स्वर्गवास हो गया और बाद में यक्षदेवसूरि के कर कमलों से इनको सूरि बनाये थे। अतः कल्पसूत्र में इनका नामोल्लेख नहीं किया हो तो कोई विशेष की बात नहीं है। कारण विक्रम की दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी के ग्रन्थों में इन चन्द्रादि चारों कुलों के प्रमाण मिलते हैं। और इन कुलों की परम्परा संतान में महान् प्रभाविक आचार्य हुए हैं जैसे कि—

१—चन्द्रकुल में—अभयदेवसूरि, हेमचन्द्रसूरि, शान्तिसूरि, जगचन्द्रसूरि आदि आचार्य

२—नागेन्द्रकुल में—आचार्य उदयप्रभसूरि, मल्लीषेणसूरि आदि आचार्य

३—निर्वृति कुल में—द्रुणाचार्य्य, सूराचार्य, गर्गर्षि, दुर्गर्षि, सिद्धर्षि आदि आचार्य

४—विद्याधर कुल में—जिनदत्तसूरि और आपके शिष्य १४४४ ग्रन्थों के कर्त्ता हरिभद्रसूरि इत्यादि उल्लेख मिलते हैं। हाँ, पहिले ये चारों कुलों के नाम से प्रसिद्ध थे पर बाद में इन कुलों ने गच्छों का रूप धारण कर लिया। अतः शिलालेखों एवं अन्य प्रशस्तियों में चन्द्रगच्छादि के नाम से भी [illegible] गोचर होते हैं जिसको हम आगे चल कर यथा समय लिखेंगे।

आचार्य यक्षदेवसूरि का जैन समाज पर अर्थात् आज जितने गच्छ विद्यमान हैं उन सब पर बड़ा भारी उपकार है। कारण, जैन संसार में जितने गच्छ पैदा हुये थे उन चार कुलों से ही हुये हैं और उन कुलों के संस्थापक आचार्य यक्षदेव सूरि ही थे।

इनके अलावा उस समय बार-बार दुकाल का पड़ना, विधर्मियों के संगठित हमले [illegible] विस्तृत क्षेत्र में फैले हुये जैन समाज का रक्षण करना कोई साधारण बात नहीं थी। पर उन [illegible] और आचार्यों ने हजारों मुसीबतों को सहन कर जैनधर्म को जीवित रक्खा। यदि उन [illegible] महात्माओं का हम क्षण भर भी उपकार भूल जावें तो हमारे जैसा कृतघ्नी संसार में कौन होगा?

इतिहास पढ़ने से ज्ञात होता है कि विक्रम पूर्व दो तीन शताब्दियों से विधर्मियों के [illegible] [illegible] शुरू हुये थे और वे क्रमशः विक्रम की तेरहवीं शताब्दी तक चालू ही रहे थे। [illegible] [illegible] के समय की विधर्मियों के आक्रमण खूब जोरों से हो रहे थे उन अनार्यों से [illegible]

तीयों को वहुत सताया । इतना ही क्यों पर उन लोभान्धों ने देवस्थानों पर भी हमले कर खूब धन लूटा । और धन लुटने के साथ उन्होंने तो धर्मान्धता के कारण देवस्थानों की मूर्तियाँ वगैरह कीमती पदार्थों को भी तोड़ फोड़कर नष्ट भ्रष्ट कर डाला था ।

एक समय आचार्य यक्षदेवसूरि अपने ५०० शिष्यों के साथ मुग्धपुर नगर में विराजते थे । आपने सुना कि आस पास में म्लेच्छ लोग ग्रामों को लूट रहे हैं । मन्दिर मूर्तियां तोड़ फोड़ कर नष्ट कर रहे हैं । इस हालत में श्री संघ को एकत्र किया और मन्दिरजी के रक्षण के लिये कहा पर विचारे श्रावक क्या कर सकते थे वे अपने धन जन की रक्षा करने में ही असमर्थ थे ।

आचार्य श्री ने एक देवी को बुला कर कहा कि तुम म्लेच्छों की खबर लाओ कि वे कहां पर हैं और यहां कब तक आवेंगे इत्यादि । देवी म्लेच्छों के पास गई पर कर्म योग से म्लेच्छों के देवों ने उस देवी को पकड़ कर अपने कब्जे में करली अतः देवी वापिस न आ सकी इधर म्लेच्छों के देव सूरिजी के पास आकर कहने लगे कि म्लेच्छ मन्दिर में आ पहुँचे हैं । सूरिजी अपने साधुओं को लेकर मन्दिर में गये तो वहां कोई भी म्लेच्छ नहीं पाये । इस प्रकार म्लेच्छ देव हर समय यही कहते रहे कि म्लेच्छ मन्दिर में आ गये हैं२ ।

आचार्य ने सोचा कि म्लेच्छों के आने पर मूर्तियों का रक्षण होना मुश्किल है अतः पहिले से ही इन्तजाम करना जरूरी है अतः श्रावकों को बुलाकर कहा कि अपने प्राण चले जाय तो परवाह नहीं पर त्रिजगपूजनीय परमात्मा की मूर्तियों की रक्षा करना अपना खास कर्त्तव्य है इत्यादि उपदेश दिया जिससे श्रावक तैयार हो गये । पट्टावली में लिखा है कि वहुत से श्रावक और कई साधु रात्रि समय मूर्त्तियों को सिर पर उठा कर किसी सुरक्षित स्थान में चले गये . इधर देवी म्लेच्छों से छुटकर सूरिजी के पास आई और कहने लगी कि पूज्यवर ! अब म्लेच्छ आ रहे हैं । सूरिजी ने देवी को उपालम्भ दिया कि तू इतनी देर से कैसे आई ! देवी ने कहा पूज्य ! इसमें मेरा कसूर नहीं है । कारण, मेरी असावधानी से म्लेच्छदेवों ने मुझे पकड़ लिया था अतः मैं छुटते ही आपके पास इत्तला देने को आई हूँ ।

खैर दो साधुओं को पहरायत रख सूरिजी ने शेष साधुओं के साथ ध्यान लगा दिया इतने में म्लेच्छ मन्दिर में गये तो वहाँ मूर्त्तियाँ नहीं पाई । अतः वे गुस्से में लाल बबूल होकर सूरिजी के पास आये । और कहा कि बतलाओ मूर्तियाँ वरन् तुम सब को जान से मार डाला जायगा ? पर सूरिजी तो थे ध्यान में उत्तर नहीं दिया अतः म्लेच्छों ने कई साधुओं को जान से मार डाला, कई को घायल किया, कई को मार पीट कर कष्ट पहुँचाया और सूरिजी को पकड़ कर क़ैद कर लिया । इतना कष्ट सहन करते हुये भी सूरिजी अपने कर्तव्य से विचलित नहीं हुए और मूर्त्तियों की रक्षा कर ही ली । आहाहा ! उस समय जैन जनता की मूर्त्तियों पर कैसी श्रद्धा थी कि वे प्राणों की न्योछावर भी करने को तैयार रहते थे , रात्रि में चलना या मूर्ति सिर पर उठाना साधुओं को कल्पता नहीं है पर "आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति" इस सूत्रानुसार साधु ऐसा कार्य्य भी कर सकते हैं ।सूरिजी को कैद कर लिया था पर उनकी निगरानी के लिए जिस सिपाही को रक्खा था वह पहिले जैन था उसे म्लेच्छोंने जबरन पतित बना लिया था उसने अपना कर्तव्य समझ कर सूरिजी को छोड़ दिया और अपने खानगी एक आदमी को साथ में दे कर सूरिजी को सकुशल खटकूप नगर पहुँचा दिया ।

सूरिजी कुशलता पूर्वक खटकूपनगर पहुँच गये पर थे आप अकेले ही जिन्हों को देख कर संघ के लोगों ने बड़ा ही आश्चर्य किया कि पांचसौ मुनियों के साथ विहार करने वाले गच्छनायकसूरिजी

आज अकेले कैसे आये । श्रावकों ने विनय के साथ पूछा और सूरिजी ने सब हाल कहा । इस पर अग्रेश्वरों ने सूरिजी को कोटि-कोटि धन्यवाद दिया कि जिन्होंने अपने प्राणों की परवाह न कर के शासन के आधार रूप प्रभुप्रतिमा की रक्षा की है इत्यादि । उपस्थित लोगों में से किसी ने कहा कि धन्यवाद देने से ही आपकी भक्ति नहीं हो जाती है पर अपने आचार्य अकेले शोभा नहीं देते हैं अतः २ पुत्रों को सूरिजी के शिष्य बना कर शासन की शोभा को बढ़ाइये । सच्ची भक्ति तब ही कही जावगी ।

शासन-शुभचिन्तकों ने उसी बैठक पर एक चिट्ठा (टीप) लिखा । और कहा कि कौन कितने पुत्र देंगे । इस पर किसी ने एक लिखाया, किसी ने दो लिखाया इस प्रकार एकादश, नवयुवकों को लाकर सूरिजी की सेवा में भेंट कर दिया जिन्हों को सूरिजी ने दीक्षा देकर अपने शिष्य बना लिये शिष्यों का चिट्ठा और चालुही था । न जाने इस चिट्ठा में कितने भावुकों के नाम लिखे गये होंगे—

अहाहा ! धन्य है उस समय के श्रावकों को कि धर्म रक्षा के निमित्त पैसों की भांति चिट्ठा कर अपने प्यारे पुत्रों को सूरिजी के चरणों में अर्पण कर दिये जिससे सूरिजी का कितना उत्साह बढ़ा होगा ।

इधर एकादस युवकों को सूरिजी ने दीक्षा दी और उधर से मूर्तियां लेकर जानेवाले सब मुनि तथा म्लेच्छों ने पकड़ लिये थे वे मुनि भी लौट कर सूरिजी के पास आकर शामिल हो गये ।

आचार्य यक्षदेवसूरि का समय दशपूर्वधरों का समय था । उस समय मूर्त्तिवाद अपनी उत्कृष्ट हद पहुँचा हुआ था । आचार्य वज्रसूरि बीस लक्ष पुष्प पूजा के लिये लाये थे । आचार्य यक्षदेवसूरि ने रात्रि में सिर पर मूर्त्तियें उठा कर स्थानानन्तर जाकर मूर्त्तियों की रक्षा की । उस समय रत्न और सुवर्णमय मूर्त्तियां बनाई जाती थीं । एक एक मन्दिर तथा एक एक संघ में करोड़ों द्रव्य व्यय किया जाता और उन पुन्य कार्य्यों से उनके पास लक्ष्मी भी अखूट हो रहती थी ।

इस प्रकार जैनधर्म का रक्षण करते हुये सूरिजी महाराज क्रमशः विहार करके आघाट नगर पधारे वहां भी सूरिजी के उपदेश से बहुत भावुकों ने सूरिजी के पास दीक्षा धारण की ।

ततः पुनर्यक्षदेव सूरयः केचनागवन् । विहरन्तः क्रमेणैतु, स्ते श्रीमुग्धपुरे वरे ॥
जाते म्लेच्छ भये तस्मिन्, नुदन्ताधिगमायने । प्राहैषुः शासनसुरीं, मारना म्लेच्छदैवतैः ॥
तेनागत्याल्पवहं सोचु, म्लेच्छाः सन्ति स्वमंदिरे । तद्वचः प्रत्ययात् पूज्या, स्वदेवा कथयन् ततः ॥
देवकांड इवाररसा, म्लेच्छ सैन्ये समागते । एष शासनदेवीदा, गूढं म्लेच्छा समागताः ॥
[illegible] स्त्वं चिरादागता कथम् । किं करोमि प्रभो ! [illegible] ॥
[illegible], नहि मे दूरगं प्रभो । इत्याख्यायगता देवी, [illegible] ॥
[illegible] प्रभुः । मुनि पंचशतीयुक्तः, [illegible] ॥
[illegible] । सूरि [illegible] ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[[illegible]

आचार्यश्रीयक्षदेवसूरि (समय वि० सं० ११५)

सोपार पट्टन में श्रमण संघ को आगम वाचना दे रहे हैं।

कृष्णार्षि की मूर्ति (पृष्ठ ५३०)

सोपार वहन में आचार्य यक्षदेवसूरि चन्द्रादि चारों मुनियों को आगम वाचना दे रहे है

परिचय पृष्ठ ५०५

आचार्य देवगुप्तसूरि से आर्य देवर्द्धि का ज्ञानाभ्यास

परिचय पृ०

चरित्रकार ने इस घटना का समय विक्रम संवतके एकसौ से कुछ अधिक वर्ष व्यतीत होजाने के बाद का बतलाया है। जो ठीक मिलता हुआ है तदनन्तर सूरिजीमहाराज विहार करते हुते स्थम्भणपुर नगरमें पधारे। वहां के श्रीसंघ ने भगवान् पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया और सर्व धातुमय (पीतल) भगवान् पार्श्वनाथ की बिशाल प्रतिमा तैयार कराई थी। श्रीसंघ के आग्रह से सूरिजी ने उस मूर्त्ति की अंजनसिलाका की एवं प्रतिष्ठा करवाई जिसमें श्रीसंघ ने बहुत द्रव्य व्यय कर जैनधर्म की प्रभावना की।

उस समय की विकट परिस्थिति के अन्दरभी आपने अपने दीर्घकालीन शासनमें अनेक प्रान्तों में घूम घूम कर अनेक भव्यों को दीक्षा देकर जैनश्रमण संघ की वृद्धि की क्योंकि आप जानते थे कि धर्म का रक्षण करने वाला श्रमणसंघ ही है। जितनी अधिक संख्या में साधु होंगे उतनेही विशालक्षेत्र में विहार हो सकेगा। अतः श्रमण संघ में वृद्धि करना खास जरूरी था। दूसरे उस दुष्काल की भयंकरता के कारण सुकाल हो जाने पर भी एक दो एवं थोड़े आदमी एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जा नहीं सकते थे। अतः इच्छा के होते हुये भी वे दूर प्रदेश में रहे हुये तीर्थों की यात्रा नहीं कर सकते थे। यही कारण था कि सूरिजी महाराज के उपदेश से कई भाग्यशालियों ने बड़े २ संघ निकाल कर तीर्थों की यात्रा की और धर्म को चिरस्थाई बनाने के लिये सूरिजी के उपदेश से कई दानवीरों ने अपनी चंचल लक्ष्मी को अचल बनाने के लिये बड़े २ मंदिरों का निर्माण करवा कर उनकी प्रतिष्ठायें भी सूरिजी से करवाई। इनके अलावा अजैनों को जैन बनाना तो आपके पूर्वजों से ही चला आया था और उस मशीन को भी आपने द्रुतगति से चलाई कि लाखों मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म की दीक्षा शिक्षा देकर जैन बनाये। कई दुष्कालों में जैन धनाढ्यों ने अर्बों खर्वों द्रव्य व्यय कर के दानशालायें खुलवा दी थीं और जहाँ तक अन्न मिला वहाँ तक मुंघामुघा मंगाकर दान दिया इत्यादि आचार्यश्री के शासन में अनेक शुभ कार्य हुये कि जिससे जैनधर्म की प्रभावना एवं वृद्धि हुई।

पट्टावलियों वंशावलियों आदि ग्रन्थों में जो आपके शासन समय कार्य हुये शुभ कार्य कि जिन्हों का बहुत उल्लेख मिलता है यदि उन सबको लिखा जाय तो एक स्वतंत्र महाभारत सा ग्रन्थ बन जाता है परन्तु मैं यहां स्थानाभाव के कारण थोड़े से नामों का उल्लेख कर देता हूँ।

१—उपकेशपुर में संचेती गोत्रिय शाह नारायणादि कई मुमुक्षुओं ने दीक्षा ली।
२—धनपुर के प्राग्वट सेणा ने सूरिजी के चरणों में दीक्षा ली।
३—मुग्धपुर के तप्तभट गोत्रिय शाह राजा ने सपत्नीक दीक्षा ली।
४—नागपुर के आदित्यनाग गोत्रिय मंत्री लाखण ने १८ नरनारियों के साथ दीक्षा ली।
५—कोरंटपुर के श्रीमाल सुजा रामा ने सूरिजी के पास दीक्षा ली।
६—वामनपुर के भाद्रगोत्रीय देवा ने दो पुत्रों के साथ दीक्षा ली।
७—मथुरा के ब्राह्मण शंकरादि २४ ब्राह्मणों ने सूरिजी के पास दीक्षा ली।
८—अरणी ग्राम के कुमट खेमा ने सूरिजी के पास दीक्षा ली।
९—पालाट के क्षत्री बीजल ने सूरिजी पास दीक्षा ली।
१०—गाखला ग्राम के बलाह गोत्रिय शाह हंसादि ने दीक्षा ली।
११—माहली ग्राम के चिंचट गोत्रिय मुकन्दादि ९ नरों ने दीक्षा ली।
१२—चन्द्रावती के राव संगण ने १८ नरनारियों के साथ दीक्षा ली।

१३—चोपणी के मोरख गोत्रिय शाह भैंसा ने दीक्षा ली।

१४—विराट नगरे श्रेष्टि गोत्रिय मंत्री रणधीर ने दीक्षा ली।

१५—संखपुर के श्रीश्रीमाल नाथा हरषण ने सूरिजी के पास दीक्षा ली।

इत्यादि अनेक उदाहरण हैं। आपके शासन समय केवल एक उपकेशगच्छ में ३००० साधु साध्वियां भूमण्डल पर विहार करते थे पर यह संख्या पहिले से बहुत कम थी। कारण, बारबार दुकाल के कारण साधु संख्या बहुत कम हो गई थी। फिर भी आपश्री ने अनेक प्रान्तों में विहार कर पुनः श्रमण संघ में खूब वृद्धि की थी अब थोड़े से तीर्थों की यात्रा निमित्त संघ निकालने वालों की भी संख्या लिख देते हैं :

१—चोपावती नगरी से कर्णाट गोत्रिय शाह मालु ने श्रीशत्रुञ्जय का संघ निकाल कर [illegible] द्रव्य व्यय किया आपकी संतान मालु नाम से कहलाई जाने लगी।

२—दसारी ग्राम से आदित्यनाग देपाल रामा ने श्रीशत्रुञ्जय गिरनारादि तीर्थों का संघ निकाला स्वधर्मियों को सोना मुहर की पहरामणी दी जिसमें ९ लक्ष्य द्रव्य व्यय किया।

३—फेकावती नगरी से श्रेष्टि गोत्रिय अरजुन ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला।

४—भिन्नमाल नगर से प्राग्वट आदू ने श्रीशिखरजी का संघ निकालकर चतुर्विध श्री संघ को पूर्व की तमाम यात्रायें करवाई। स्वधर्मी भाइयों को पहरामणी में एक एक मोतियों की माला दी। इस कार्य में सवा करोड़ द्रव्य व्यय किया।

५—सत्यपुरी के श्रीमाल लाखण ने शत्रुञ्जय का संघ निकाल कर यात्रा की।

६—डबरेलपुर के श्रेष्टिगोत्रिय मंत्री नागड़ ने श्रीशिखरजी का संघ निकाला सब तीर्थों की यात्रा की साधर्मी भाइयों को पहरामणी दी जिसमें १९ लक्ष रुपये खर्च किये।

७—उपकेशपुर से सुचंती गोत्रिय शाह जिनदेव ने श्रीशत्रुञ्जयादि तीर्थों का संघ निकाल चतुर्विध श्रीसंघ को यात्रा कराई जिसमें सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया।

८—उज्जैन नगरी से आदित्यनाग गोत्रिय शाह सलखण वीरमदे ने श्री शत्रुञ्जयादि तीर्थों का संघ निकाला जिसमें तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया।

९—वगड़ी ग्राम से चरड़ गोत्रिय शा० लुंबा ने श्रीशत्रुञ्जय का संघ निकाला।

१०—मटकुंप नगर से सुघड़ गोत्रिय शाह पीरा ने शत्रुञ्जयादि तीर्थों का संघ निकाला।

११—विनोड़ा से लुंग गोत्रिय शाह भीमा ने श्री शिखरजी का संघ निकाला।

१२—उपकेशपुर के भूरि गोत्रिय शाह लिगा ने श्रीशत्रुञ्जय का संघ निकाला।

यह तो केवल नाम मात्र की सूची दी है पर इस प्रकार सूरिजी तथा आपके पट्टधर [illegible] उपदेश से पृथक् २ प्रान्तों में अनेक संघ निकलवाकर तीर्थों की यात्रा कर अनंत पुन्योपार्जन किया [illegible]

इसके अलावा सूरिजी ने जैन-मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर जैन धर्म की [illegible]

१—[illegible] के [illegible] गोत्रिय शाह [illegible] के कराये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।

२—[illegible] के [illegible] गोत्रिय शाह [illegible] के बनाये पार्श्वनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।

३—[illegible] के [illegible] शाह [illegible] के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।

४—[illegible] नगरे [illegible] गोत्रिय शाह देवा के बनाये आदीश्वर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।

५—फोफला ग्राम में मल्ल गोत्रिय शा० हाणा के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
६—कीराटपुर के श्रीमाल हणमन्त के बनाये शान्तिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
७—हंसावली आदित्यनागगोत्रिय हरदेव के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
८—चन्द्रावती नगरी के श्रेष्ठि गोत्रिय मन्त्री भुवन के बनाये पार्श्वनाथ महावीर की प्रतिष्ठा कराई ।
९—पद्मावती के बापनागगोत्रिय शाह चुडा के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१०—उच नगर का राव मालदे के बनाये पार्श्वनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
११—मरुनगर के मन्त्री सारंग के बनाये पार्श्वनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१२—राजपुर के श्रेष्ठिगोत्रिय शाह नोधण के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१३—देवली के बाप्पनागगोत्रिय शाह खेमा के बनाये आदिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१४—पुनेटी के चिंचट गोत्रिय शाह हरदेव के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१५—चन्द्रपुर के चरडगोत्रिय शाह अंबड के बनाये शान्तिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१६—अर्जुनपुरी के आदित्यनाग गोत्रिय शाह आना के बनाये विमलदेव की मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१७—पालिकापुरी के बलहा गोत्रिय शाह खेतड़ के बनाये नेमिनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१८—उपकेशपुर के भाद्रगोत्रिय शाह नोढा के बनाये मल्लिनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
१९—खेलचीपुर के कुमटगोत्रिय शाह जीवण के बनाये शीतलनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।
२०—विजयपुर के प्राग्वट वंशीय शाह धरमशी के बनाये पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई ।

इनके अलावा भी संख्याबद्ध मन्दिरों की प्रतिष्ठायें सूरिजी एवं आपके मुनियों ने करवाई थी। इससे पाया जाता है कि उस समय जैन जनता की मन्दिर मूर्त्तियों पर अटूट श्रद्धा थी। और इस पुनीत कार्य्य में द्रव्य लगाने में वे अपने द्रव्यकी सफलता भी समझते थे तभी तो एक एक धर्म कार्य्य में वे लाखों रुपये व्यय कर डालते थे और इन पुन्य कार्य्यों के कारण ही उनके अनाप शनाप द्रव्य बढ़ता था। उस समय महाजन संघ का खूब ही अभ्युदय था। उनका पुन्य रूपी सूर्य्य मध्याह्न में तप रहा था वे बड़े ही हलुकर्मी थे कि उनको थोड़ा भी उपदेश विशेष असरकारी हो जाता था उनकी देवगुरु और धर्म पर अटूट श्रद्धा थी।

आचार्य यक्षदेवसूरि ने ४२ वर्ष तक अपने शासन में अनेक प्रकार से जैनधर्म की उन्नति की और में वी० नि० सं० ६२७ में पुनीत तीर्थ श्री तक्षिला में २७ दिन का अनशन एवं समाधिपूर्वक स्वर्ग पधार गये।

सप्तदश श्री यक्षदेवसूरि, दशपूर्व ज्ञान के धारी थे।
वज्रसेन के शिष्यों को दिना, ज्ञान बड़े दातारी थे ॥
चन्द्र नागेन्द्र निर्वृति विद्याधर, कुल चारों के विधाता थे।
उपकार जिनका है अतिभारी, भूला कभी नहीं जाता है ॥

इति श्री भगवान् पार्श्वनाथ के सतरहवें पट्ट पर आचार्य्य यक्षदेवसूरि महाप्रभाविक आचार्य्य हुये।

भगवान महावीर की परम्परा

भगवान महावीर की परम्परा—आर्य्यवज्रसूरि के यों तो हजारों साधु थे परन्तु उनमें ३ साधु मुख्य थे १–आर्य्यवज्रसैन २–आर्य पद्म ३–आर्य रथ। आर्य्य वज्रसैन से नागली शाखा, आर्य पद्म से पद्म शाखा और आर्य रथ से जयन्ति शाखा निकली। इस शाखा की पट्टावली कल्पसूत्र में दी है जिसको हम आगे प्रसंगोपात देंगे। यहाँ पर तो केवल आर्य्यवज्रसैन का ही सम्बन्ध लिखा जा रहा है।

आर्य्यवज्रसैन जैन संसार में जैनधर्म को जीवित रखने वाले थे। आपने अपने जीवन में दो भयंकर बारहवर्षीय दुकाल देखे थे। एक बारहवर्षीय दुकाल आर्य्यवज्र स्वामी के समय पड़ा था। उस समय वज्र स्वामी ने श्रीसंघ को पट्ट पर बैठा के जहाँ सुकाल वरतता था वहाँ ले गये और दूसरा १२ वर्षीय दुकाल स्वयं वज्रसैन के समय पड़ा। जिसकी भविष्यवाणी आर्य्य वज्र ने वज्रसैन को पहिले ही कर दी थी कि जब एक लक्ष मुद्राओं के मूल्य से एक वक्त का भोजन बनेगा उसके बाद तत्काल (तीन दिन) ही सुकाल हो जायगा। उस दुकाल के विकट समय में जैनाचार्य्यों ने किस प्रकार जैनधर्म को जीवित रक्खा। इसका अनुभव तो भुक्तभोगी ही कर सकता है। वह दुकाल एक दो वर्ष का नहीं पर लगातार १२ वर्ष तक दुकाल पड़ता ही रहा था। उस समय बड़े-बड़े धनाढ्यों को धन के बदले धान मिलना दुष्कर होगया तो बिचारे निर्धन लोगों की तो बात ही कौन पूछता था ? जब गृहस्थों का यह हाल था तो केवल भिक्षावृत्ति पर अपना जीवन गुजारने वाले साधुओं का निर्वाह तो होना कितना मुश्किल हो गया था। अतः बहुत से साधु [illegible] आहार पानी के अभाव अनशन कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर गये। कई साधु कठोर तपश्चर्या में [illegible] तथा बहुत से साधु इधर उधर कई प्रान्तों में चले गये कि जहाँ अपना गुजारा हो सके।

दुष्काल की भयंकरता ने जनता में त्राहि-त्राहि मचा दी थी। धनाढ्यों को मोतियों के बदले [illegible] नहीं मिलती थी। अतः कई लोगों ने विष भक्षण कर दुकाल से अपना पीछा छुड़ाया था। समय [illegible] गया था कि कोई व्यक्ति अपने यहाँ से भोजन कर तत्काल घर बाहर निकल जाता तो भिक्षुक लोग [illegible] उनका उदर चीर के भोजन निकाल कर खा जाता था। इससे अधिक भयंकरता क्या हो सकती है। [illegible] दुकाल एक दो प्रान्तों में ही नहीं था पर प्रायः सब भारत में फैला हुआ था। हाँ कई कई प्रान्तों में सुकाल भी वर्तता था पर वह प्रान्त भी दुकाल की क्रूर दृष्टि से सर्वथा वंचित नहीं रहे थे। वज्रस्वामी [illegible] संघ को बैठाकर महापुरी (जगन्नाथपुरी) में ले गये वहाँ सुकाल वर्तता था पर [illegible]

एक समय का जिक्र है कि आचार्य वज्रसैनसूरि सोपारपट्टन में पधारे आपके [illegible] नगर में गये। उस समय भिक्षा का काम बड़ा ही कठिन था तथापि श्रावक लोगों की इतनी भक्ति थी कि [illegible] बहुत भोजन मिलता तो वे पहिले साधुओं को भिक्षा देकर ही भोजन करते थे। [illegible] नाम का एक श्रावक बड़ा ही धनाढ्य था। आपके ईश्वरी नाम्नी की और कई पुत्र [illegible] [illegible] परन्तु दुकाल के कारण [illegible] धन होने पर भी धान नहीं मिलता था [illegible] [illegible] किया परन्तु यह [illegible] का दिन था। [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] था—

उसी समय दो साधुओं ने सेठानी ईश्वरी के घर पर आकर धर्मलाभ दिया। पर शर्म के मारी सेठानी ने अपना मुंह नीचा कर लिया। कारण मुनियों को दान देने के लिये उसके पास कुछ भी नहीं था। सेठानी बैठी विष पीस रही थी। मुनियों ने पूछा कि सेठानीजी क्या कर रही हो ? सेठानी ने कुछ भी जबाव नहीं दिया पर उसकी आंखों से जल की धारा बहने लगी। इस पर मुनियों ने रुदन का कारण पूंछा तो सेठानी ने कहा पूज्यवर ! आप जैसे कल्पवृत्त मेरे घर पर पधारे पर दुःख है कि आज मेरे पास दान देने को कुछ भी पदार्थ नहीं है और मैं यह विष पीस रही हूँ कि अंन के साथ मिलाकर हम सबके साथ खा पी कर इस दुष्काल से पीछा छुड़ावें। मुनियों ने उस श्राविका की करुण कथा सुनकर कहा माता ! हम अपने गुरु के पास जाकर वापिस आवें वहाँ तक आप धैर्य रखना। इतना कह कर मुनि सूरिजी के पास आये और सब हाल सुनाया तो निमित्त के जानकारसूरिजी ने अपने गुरु बज्रसूरि की बात को याद की और अपने शिष्यों को कहा तुम जाकर श्राविका को कह दो कि जैसे बने वैसे तीन दिन तुम निकाल दो। तीन दिनों के बाद सुकाल हो जायगा अर्थात् जहाजों द्वारा पुष्कल धान आ जायगा। बस, साधु पुनः सेठानी के वहाँ गये और सेठानी को कहा कि यदि हम आपके सब कुटुम्ब को बचा दें तो आप हमें क्या देंगे ? सेठानी ने कहा पूज्यवर ! हम सब लोग आपके ही हैं आप जो फरमावें हम देने को तैयार हैं। इस पर मुनियों ने कहा कि तुम्हारे इतने पुत्र हैं उनमें से चन्द्रनागेन्द्र, निर्वृति और विद्याधर एवं चार पुत्रों को हमे दे देना। श्राविका ! इसमें हमारा कुछ भी स्वार्थ नही है पर यह तुम्हारे पुत्र जगत का उद्धार करेंगे जिसका सुयश तुमको भी मिलेगा इत्यादि सेठानी ने कहा पूज्यवर ! हम लोगों का ऐसा भाग्य हो कहाँ है ? इस दुकाल में हजारों लाखों मनुष्य अन्न वगैर त्राहि-त्राहि करके यों ही मृत्यु के मुँह में जा पड़े हैं। यदि पूर्वोक्त चारों पुत्र आपके चरण कमलों में दीक्षा लें तो मैं बड़ी खुशी के साथ आज्ञा दे दूंगी। यदि और भी कोई हुक्म हो तो फरमाइये मैं शिरोधार्य करने के लिये तैयार हूँ। मुनियों ने कहा श्राविका और हमारा क्या हुक्म हो सकता है। गुरु महाराज ने फरमाया है कि जैसे बन सके आप तीन दिन निकाल दीजिये। बाद, अन्न के इतने जहाज आवेंगे कि इस दुकाल का शिर फोड़ कर गहरा सुकाल कर देंगे।

जैनियों के लिए तीन दिन उपवास करना कोई बड़ी बात नहीं है। कारण इस बात का तो जैनियों के पूरा अभ्यास ही होता है। सेठानी ने मुनियों के वचन को तथाऽस्तु कह कर बधा लिया और विष को दूर रख दिया। पकाये हुये भोजन से मुनियों को भी आमन्त्रण किया पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव के जानकार मुनि सेठानी की प्रार्थना को अस्वीकार कर चल धरे।

आशा एक ऐसी वस्तु है कि मनुष्य आशा ही आशा में कितना ही समय व्यतीत कर देता है। यह अनुभव सिद्ध बात है कि जिस मुसाफिर के पास भोजन तैयार है वह दो चार आठ दस मील पर भी चला जाता है क्योंकि उसको आशा है कि मेरे पास भोजन है आगे चल कर करलूंगा परन्तु भोजन की आशा नहीं है उससे एक दो मील भी चलना मुश्किल हो जाता है। अतएव सेठानी सकुटम्ब ज्यों त्यों कर तीन दिन निकाल दिये। बस, चौथे दिन तो समुद्रमार्ग से बहुत सी अनाज की जहाजें आ पहुँची जिसमे प्रचुरता के साथ अनाज मिलने लग गया और सब लोगों ने अपने प्राण बचा लिये।

इधर मुनियों ने सेठानी के पास जाकर धर्मलाभ दिया। सेठानी ने बड़े ही हर्ष के साथ मुनियों

जैन शासन के निन्हव

निन्हव—निन्हव दो प्रकार के होते हैं। एक देश निन्हव, दूसरे सर्व निन्हव, जैनधर्मी कहलाता हुआ जैनधर्म की श्रद्धा रखता हुआ भी कभी मिथ्यात्व मोहनीय कर्मोदय वीतराग प्रणित आगमों को नहीं मानना या अन्यथा मानकर जैनधर्म से खिलाफ मत निकालना जैसे महात्मा बुद्ध और गोसाला, इन्होंने जैनधर्म की दीक्षा ली एवं पाली भी थी पर बाद में आपने अपने नाम से नया एवं अलग मत निकाले यह सर्वथा निन्हव कहलाये जाते हैं। दूसरा जैनागमों को मानता हुआ कुछ सूत्र-श्रुतियों और शब्दों को नहीं मानना और इस प्रकार तीर्थङ्करों के मत में रहकर अलग मत निकालने वालेको देश निन्हव कहा जाता है। जैसे जमाली आदि और इस प्रकार के अलग मत स्थापन करने वाले शासन के सात निन्हव हुये हैं जिन्हों का उल्लेख उत्तराध्ययन सूत्र उत्पतिकसूत्र आवश्यक सूत्रादि अनेक स्थानों पर उपलब्ध होता है। पाठकों की जानकारी के लिये उन निन्हवों का हाल यहां पर संक्षिप्त से लिख दिया जाता है।

१—प्रवचन का पहिला निन्हव जमाली हुआ—जमाली भगवान महावीर का भानेज था तथा दूसरी ओर भगवान की पुत्री प्रियदर्शना जमाली को ब्याही थी। अतः जमाली भगवान का जमाई भी लगता था। भगवान महावीर को कैवल्यज्ञान हो गया था। वे चलते हुये महान कुण्डनगर के उद्यान में पधारे। जमाली आदि ने भगवान का व्याख्यान सुना और संसार को असार जानकर ५०० साथियों के साथ तथा जमीली की स्त्री ने १००० महिलाओं के साथ भगवान् के पास दीक्षा ली। जमाली ने एकादशांग का ज्ञान पढ़ा बाद भगवान से आज्ञा मांगी कि यदि आपकी इच्छा हो तो मैं ५०० साधुओं को साथ लेकर अन्य प्रदेश में विहार करूं। प्रभुने न इन्कार किया और न आज्ञा दी पर मौन रहे। जमाली ने इस प्रकार दो तीन बार पूछा पर उत्तर न मिलने से 'मौनंसम्मतिलक्षणं' समझ कर जमाली ने ५०० साधुओं के साथ विहार कर दिया और चलता २ सावत्थी नगरी में आया और कोष्टक उद्यान में ठहरा। उस समय उसके शरीर में दाह जल की बड़ी भारी बीमारी हो गई थी। साधुओं को कहा कि बैठने की मेरी शक्ति नहीं है। तुम मेरे लिये शीघ्र संस्तारा तैयार करो मुनियों ने घास लाकर संस्तारा करना शुरू किया। वेदना को सहन न करते हुये जमाली ने पूछा कि क्या संस्तारा तैयार हो गया? साधुओं ने कहा कि संस्तारा अभी किया जा रहा है। इस पर जमाली को शंका हुई कि भगवान ने कहा है कि 'चलमाणे चलिये—कड माणे कडे' यह निरर्थक है। "चलमाणे अचलिये" कडमाणे अकडे" कहना चाहिये अतः भगवान के वचन असत्य हैं पर मैं कहता हूँ यह सत्य है। बस इस कदाग्रह के वस जमाली अपनी वेदना को तो भूल गया और साधुओं को बुला कर कहा कि देखो भगवान के वचन प्रत्यक्ष में असत्य हैं और मैं कहता हूँ वह सत्य है क्योंकि वे कहते हैं कि 'कडमाणे कडे' अर्थात करना आरम्भ किया उसे किया ही कहा जा पर प्रत्यक्ष देखिये तुमने संस्तारा करना प्रारम्भ किया जब तक पूरा न हो वहां तक उसे किया कैसे कहा जा सकता है अतः मैं कहता हूँ कि 'कडमाणे अकडे' यह प्रत्यक्ष सत्य है इत्यादि। इस पर कई साधु जमाली के वचनों को स्वीकार कर जमाली के पास रह गये पर कई साधुओं ने सोचा कि भगवान् का कहना नैगम नय का है तब जमाली कर रहा है एवंभूत नय की बात। अतः जमाली की मति में भ्रम है। भगवान् के वचन सोलह आना सत्य हैं, वह जमाली को छोड़ भगवान के पास चले गये। बाद जमाली आरोग्य हुआ तो स्वयं या साधुओं की प्रेरणा से भगवान

को वन्दन किया और कहा कि पूज्यवर ! आपने हम सब लोगों को जीवन प्रदान किया है और जिन चार पुत्रों के लिये फरमाये वे चारों पुत्र हाजिर हैं कृपा कर उनको दीक्षा देकर हमारे कुल का उद्धार करावें। चन्द्रादि चार पुत्रों को सेठानी ने पहले ही समझा दिये थे अतः वे चारों पुत्र दीक्षा लेने को तैयार हो गये। मुनियों ने सेठानी के दिये हुए चारों नवयुवकों को लेकर आर्य वज्रसेनसूरि के पास आये और सूरिजी ने उनको दीक्षा का स्वरूप समझा कर विधि विधान से दीक्षा दे दी।

उस दुकाल के अन्दर वहुत से मुनियों ने स्वर्गवास कर दिये थे और वचे हुए मुनियों में केवल एक यक्षदेवसूरि ही अनुयोगधर रहे थे और वे भ्रमण करते सोपारपट्टन में पधारे थे आचार्य यक्षदेवसूरि के जीवन में पाठक पढ़ आये थे कि यक्षदेवसूरि ने अपने साधु साध्वियों के अलावा आचार्य वज्रसूरि के शिष्य समुदाय से ५०० साधु ७०० साध्वियों वगैरह वचे हुए साधुओं कों आगमों की वाचना देने के लिये सोपारपट्टन को ही पसन्द किया था कारण ऐसे वड़े नगर विना इतने साधु साध्वियों का निर्वाह भी नहीं हो सकता था। ठीक उसी समय आर्य वज्रसेनसूरि चार शिष्यों को दीक्षा देकर आचार्य यक्षदेवसूरि के पास आकर प्रार्थना की कि इन चारों नूतन साधुओं को भी आप आगमों की वाचना देने की कृपा करावें यह महान् उपकार का कार्य है यक्षदेवसूरि ने कहा कि इतना कहने की आवश्यकता ही क्या है यह तो हमारा खास कर्तव्य ही है हम और आप पृथक् पृथक् नहीं पर शासन की सेवा करने में एक ही हैं। अतः सव साधु साध्वियों को आगमों की वाचना देना सूरिजी ने प्रारम्भ कर दिया परन्तु भवितव्यता ने ऐसा दृश्य वतलाया कि वाचना का कार्य तो चलता ही था वीच में ही आर्य वज्रसेनसूरि का स्वर्गवास हो गया। युग-प्रधान पट्टावली में आर्य वज्रसेनसूरि के लिये कहा है कि ९ वर्ष गृहस्थावास ११६ वर्ष सामान्य व्रत और ३ वर्ष युग-प्रधान पर रहकर १२८ वर्ष का सर्व आयुष्य पूर्ण कर स्वर्गवास पधार गये थे। अतः चन्द्रादि चार मुनियों को तथा दुकाल में वचे हुए साधुओं को आगमों की वाचना आचार्य यक्षदेवसूरि ने ही दी थी इतना ही क्यों पर चन्द्रादि चार मुनियों के शिष्य समुदाय वनवा कर उन चारों को सूरि पद भी आचार्य यक्षदेवसूरि ने ही दिया था तत्पश्चात् आचार्य चन्द्रसूरि आदि ने सूरिजी का उपकार मानते हुए सूरिजी की आज्ञा लेकर अन्यत्र विहार किया अतः दुकाल में वचे साधु साध्वियों व चन्द्रादि चारों सूरियों पर आचार्य यक्षदेवसूरि का महान उपकार हुआ है तथा उन चारों सूरियों के चल कर ८४ तथा ८४ से भी अधिक गच्छ हुए वे सबके सब उपकेशगच्छ एवं आचार्य यक्षदेवसूरि का महान् उपकार समझ कर उन्हों का पूज्य भाव से आदर सत्कार किया करते थे। इति [illegible]

[illegible]

पास चले गये, जिन्होंके मिथ्यात्व मोहनीय का उदय था उन्होंने अपने कदाग्रह को नहीं छोड़ा। यह तिष्यगुप्त मुनि से दूसरे निन्हव का दूसरा मत महावीर के केवल ज्ञान होने के १६ वर्षों के वाद चला।

३—तीसरा निन्हव अव्यक्तवादी—आचार्य आसाढ़भूति अपने शिष्यों को आगमों की वाचना दे रहे थे एक समय रात्रि में किसी को खबर न हुई कि वे अकस्मात् काल कर देवयोनि में चले गये। पर वहाँ जाकर तत्कालिक उपयोग लगा कर अपना साधु भव देखा तो शिष्यों के प्रति दया भाव आया कि इन विचारों को वाचना कौन देगा। वे देवशक्ति से अपने मृत कलेवर में प्रवेश हो गये और शिष्यों को ज्यों की त्यों वाचना देने लगे। किसी शिष्य को इसका भान न रहा। जब शिष्यों को वाचना दे चुके तो आप अपने देवपना का स्वरूप बतला कर चले गये इस हालत में शिष्यों ने विचार किया कि जैसे गुरु महाराज मृत शरीर में रहकर अपने से वंदन करवाया करते थे इस प्रकार और भी साधुओं के शरीर में देव होगा तो कौन जाने, अतः देव अव्रुति अपच्चारवानी होते हैं,उसको हम वन्दन कैसे करें ? एवं वे सबके सब साधुओं ने आपस में वन्दन व्यवहार बन्द कर दिया और स्वच्छन्दचारी बन गये। वे साधु कभी भ्रमण करते थे राजगृह नगर में आये। वहाँ के किसी बलभद्रराजा ने अपने अनुचरोंद्वारा उन साधुओं को चोरों के तौर पर पकड़वा मंगवाया और चोरों की भांति उन्हें मारने लगा। तब साधु बोले कि हे राजन् ! तुम श्रावक होकर हम साधुओं को क्यों पिटवाते हो ? राजा ने कहा कि मुझे क्या मालूम कि आप साधु हैं या आपके शरीर में कोई चोर आकर घुस गया है और मैं न जाने श्रावक हूँ या कोई देव मेरे शरीर में अवतीर्ण हो गया हो। जैसे आपकी मान्यता है कि साधुओं के शरीर में देवता होगा। इत्यादि बहुत युक्तियों से समझाये।

राजा के कहने से उन साधुओं के अन्दर से बहुत से साधु 'मिच्छामि दुक्कडं' देकर वीर शासन में शामिल होगये और जिन्होंके विशेष मिथ्यात्वोदय था उन्होंने अपने हठ कदाग्रह को नहीं छोड़ा। यह वीरात् २१४ वर्ष के वाद अव्यक्त नाम का तीसरा निन्हव हुआ।

४—चोथा निन्हव क्षणकवादी अश्वमित्र—आर्य महागिरि के कोंटीन नामक शिष्य था और उसके एक अश्वमित्र शिष्य था। वे विहार करते हुए मथुरा नगरी में आये वहाँ पर आगमों की वाचना होती थी जिसमें दशवां पूर्व की वाचना में पर्याय के विषय में आया था कि—

"सव्वे पडुप्पन्ननेरइया वोच्छिज्जिस्संति, एवं जाव विमाणियात्ति"

इस पाठ का अर्थ गुरु महाराज ने ठीक समझाने पर भी अश्वमित्र ने विपरीत समझ लिया कि पहिले समय नरकादि जो पदार्थ हैं वह दूसरे समय नष्ट हो जाते हैं और दूसरे समय पुनः नये पदार्थ उत्पन्न होते हैं एवं सब पदार्थ क्षण भंगुर है और समय-समय बदलते रहते हैं। अतः जिस जीव ने पहिले क्षण में पाप एवं पुन्य किया है वह दूसरे समय नष्ट हो जाता है इस मान्यता के कारण उसने अपना अलग मत निकाल दिया और इस प्रकार प्ररूपना करता हुआ राजगृह नगर में आया वहाँ पर एक हासिल के महकमा में श्रावक रहता था उसने साधुओं को समझाने के लिये उनको पकड़ कर पीटवाना शुरू किया। साधुओं ने कहा हम साधु तुम श्रावक फिर हमें क्यों पीटवाते हो ? इस पर दानीजी ने कहा कि आपकी मान्यतानुसार अब क्षणान्तर पर्याय पलट गई है अतः आप साधु नहीं मैं श्रावक नहीं इसको सुन-

के पास आया और भगवान को वन्दना न करता हुआ बोला कि आपके बहुत से साधु आपके पास छद्मस्थ जाते हैं और छद्मस्थ आते हैं पर मैं केवली होकर गया और केवली होकर आया हूँ। इस पर भगवान ने कहा जमाली यदि तू केवली है तो बतला जीव शाश्वता है या अशाश्वता ? लोक शाश्वता है या अशाश्वता ? । बस इसके उत्तर देने में जमाली के दांत जुड़ गये। भगवान ने कहा कि इस प्रश्न के उत्तर तो मेरे सामान्य साधु भी दे सकते हैं तो क्या तू केवली होता हुआ भी इन साधारण प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकता है। आखिर जमाली ने अपना कदाग्रह नहीं छोड़ा और अपना अलग मत चला दिया। अतः भगवान को केवल ज्ञान होने के बाद १४ वां वर्ष में जमाली नाम का प्रथम निन्हव हुआ।

जब जमाली ने अपना अलग मत निकाल दिया तो उसकी औरत जो भगवान की पुत्री और साध्वी के रूप में थी उसने भी जमाली का मत स्वीकार कर लिया था। साध्वियें घूमती हुई सावत्थी नगरी में आई और एक ढंक नाम के श्रावक के मकान में ठहरी। ढंक था भगवान महावीर का श्रावक, जब साध्वियें भिक्षा लेकर आई और एक चद्दर बांध कर अन्दर गोचरी कर रही थी ढंक ने साध्वी को समझाने के लिये चद्दर के एक किनारे अग्नि लगा दी जिसको देख साध्वी चिल्लाने लगी कि मेरी चादर जल गई २ इस पर ढंक ने कहा साध्वी मृषा क्यों बोलती है क्योंकि तुम्हारा मत है कि सम्पूर्ण चादर जल जाने से ही जली कहना। यह सुनते ही साध्वी की अक्ल ठिकाने आ गई कि जमाली का कहना मिथ्या है और भगवान महावीर का कहना सत्य है। उसने भगवान महावीर के पास में जाकर उनकी आज्ञा को स्वीकार किया। इस प्रकार जमाली के कई साधु भगवान के पास आगये हों तो आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि जमाली का मत अधिक नहीं चला था।

२—दूसरा निन्हव तिष्यगुप्त—भगवान महावीर की मौजूदगी में एक वसु नामक आचार्य के पूर्व के ज्ञाता राजगृहनगर के उद्यान में पधारे। अपने शिष्यों को आत्म प्रबोध पूर्व की वाचना दे रहे थे उसमें तिष्यगुप्तमुनि भी शामिल था। वाचना के अन्दर एक स्थान पर ऐसा वर्णन आया कि—

"एगे भंते जीव पएसे जीवेतिवत्तव्वंसिया? णोयणट्ठे समट्ठे।" अर्थात् आत्मा के एक प्रदेश को जीव कहा जाय ? नहीं। तो क्या दो तीन चार यावत् संख्याता असंख्याता एवं आत्मा के सब प्रदेशों से एक कम न्यून को जीव कहा जाय ? नहीं। हे शिष्य ! सम्पूर्ण जीव प्रदेशों को ही जीव कहा जाता है। यहाँ एवंभूतनय का विषय था पर तिष्यगुप्त ने उसको न समझकर यह निश्चय कर लिया कि एक दो [illegible] यावत् एक न्यून असंख्याता प्रदेशों में जीव नहीं है पर एक प्रदेश मिला देने से जीव कहा जाता है [illegible] जीव अन्तिम प्रदेश में ही है। इससे उसने उत्सूत्र प्ररूपना कर डाली कि एक अन्तिम प्रदेश में ही जीव है अतः कर्मों का बन्धन भी एक ही प्रदेश पर होता है। तिष्यगुप्त अपनी मान्यता का प्रचार करता हुआ आमलकप्पा नगरी में आया। वहाँ श्रीमित्र नामक श्रद्धासम्पन्न श्रावक था। उसके यहाँ साधु [illegible] उसने भोजनादि जितने पदार्थ थे उनका अन्तिम एक एक दाना मुनि को बहराया। मुनि ने कहा श्रावक [illegible] क्या आपकी [illegible] है ? श्रावक ने कहा कि यह मेरी धारणा नहीं पर आपकी मान्यता है, [illegible] असंख्याता प्रदेशों को [illegible] है उनको एक अन्तिम प्रदेश में ही जीव मानते हो। [illegible] [illegible] एक दाने में ही मानना चाहिये। अतः [illegible] [illegible]

विच्छू छोड़े रोहगुप्त ने मयूर छोड़े कि बिच्छुओं को उठा कर ले गये। परिव्राजक ने सांप बनाये तो रोहगुप्त ने नकुल बनाये। परिव्राजक ने मूषक बनाये मुनि ने मंजारि बना दी। उसने मृग बनाया तो मुनि ने बाघ बनाये उसने सुअर बनाया और मुनि ने सिंह बना दिया इस प्रकार परिव्राजक की एक भी न चली तब उसने गर्दभि विद्या छोड़ी तो मुनि ने रजोहरण से वश में कर ली। इस प्रकार परिव्राजक को पराजित करने से जैनधर्म की खूब प्रभावना हुई फिर रोहगुप्त खूब बाजागाजा एवं आडम्बर से गुरु महाराज के पास आया और सब हाल कहा। इस पर गुरु ने कहा कि जैनधर्म की प्रभावना करना तो अच्छा है परन्तु तीन राशि स्थापन करी यह ठीक नहीं क्योंकि तीर्थङ्करों ने दो राशि कही हैं। अतः तुम राजसभा में जाकर इस बात का मिच्छामि दुक्कड़म् दो परन्तु रोहगुप्त ने गुरु के वचन को स्वीकार न किया। और तीन राशी नाम का अपना एक नया मत खड़ा कर दिया यह छट्ठा तिराशि निन्हव भगवान महावीर निर्वाण से ५४४ वर्ष में हुआ।

७—गोष्टामाहिल नामक सातवाँ निन्हव—मालवा देश में दर्शनपुर नगर के वासी एक ब्राह्मण ने आर्य रक्षित के पास दीक्षा ली थी आपका नाम 'गोष्टामाहिल' था। एक समय आर्य दुर्वलिकापुष्य पूर्वांग की वाचना दे रहे थे। अन्य साधुओं के साथ गोष्टामाहिल भी वाचना ले रहा था। आठवें पूर्व में कर्मों का विषय आया कि जीवात्मा के कर्म खीर नीर तथा लोहाग्नि की भांति जीव प्रदेशों में मिल जाते हैं। पर गोष्टामाहिल इस बात को विपरीत समझ कर कहने लगा कि जीव के कर्म स्त्री कंचुक एवं पुरुप जामा और बालक के टोपी की भाँति जीव प्रदेशों के ऊपर लगते हैं अन्दर नहीं। दूसरे नौवें पूर्व में प्रत्यखान के अधिकार में साधुओं को यावत् जीव की सामायिक एवं प्रत्याखान कराया जाता है पर गोष्टामाहिल ने कहा कि जावनूजीव के प्रत्याखान करने पर वांच्छा दोष लगता है। कारण, जीवन के अन्त में भोग की वांन्छा के भाव आ जाते हैं इत्यादि। गोष्टामाहिल के कदाग्रह को दुर्वलिकापुण्या चार्य्य ने श्री संघ को कहा। तब श्रीसंघ ने अष्टम तप कर देवी की आराधना कर देवी को महाविदेह क्षेत्र में सीमंधर तीर्थङ्कर के पास भेजी। देवी ने जाकर तीर्थङ्कर से पूंछा तो उन्होंने कहा कि दुर्वलिकाचार्य्य का कहना सत्य है। देवी ने आकर श्रीसंघ को कहा। पर गोष्टामाहिल ने कहा कि देवी झूंठी है तीर्थङ्कर ऐसा कभी नहीं कहते इत्यादि गोष्टामाहिल ने अपने कदाग्रह को नहीं छोड़ा। अतः श्रीसंघ ने संघ बाहर कर दिया। एवं गोष्टामाहिल नामक सातवां निन्हव वीरात ५८४ वर्ष में हुआ। इस प्रकार शासन में सात निन्हव हुए इस समय के बाद भी कई निन्हव हुए कइएकों ने साधुओं को वस्त्र पात्र नही रखने का आग्रह किया कइएकों ने भगवान महावीर का गर्भापहार कल्याणक मानने का हट किया, कइएकों ने स्त्रियों को जिनपूजा करने का निषेध किया। कइएकों ने श्रावक को सामायिक पौषध के समय चरवाला का निषेध किया। कइएक ने मूर्तिपूजा का इन्कार किया कइएकों ने इस समय साधु है ही नही ऐसा आग्रह किया, कइएकों ने मूर्तिपूजा में मिश्र (पुन्य-पाप) मानना ठहराया। कइएकों ने स्त्रयों कों सामायिक पौषध का निषेध किया। कइएकों ने धानमें जीव मानने से इन्कार किया और कइएकोंने मरते जीवों को बचाने में तथा दान देने में पाप बतलाया इत्यादि कलिकाल के प्रभाव से जीवों के मिथ्यात्वोदय होने से जिसके दिलमें आई वहीं उत्सूत्र प्ररूपना कर अपना मत निकाल शासनमें छेदभेद डाल टुकड़े २ कर डाले जिसकों हम क्रमशः समय वार यथास्थान लिखेंगे जिसमें यहाँ पर पहला आचार्य कृष्णर्षि का शिष्य शिवभूति नामक साधु ने दिगम्बर नाम का मत निकाला जिसको यहाँ लिख दिया जाता है—

कर बहुत से साधु समझ गये परन्तु जिन लोगों के मिथ्यात्व कर्म का उदय था उन्होंने अपना हठ नहीं छोड़ा । यह चतुर्थ निन्हव महावीर निर्वाण के बाद २२० वर्ष में हुआ ।

५—पांचवां गंग नामक निन्ह्व—आचार्य महागिरि के धनगुप्त नाम का शिष्य और धनगुप्त के गंगदेव नाम का शिष्य था और वह एक वार उलगातीर नदी उतरता था उस समय ऊपर से ताप नीचे से पानी की शीतलता का अनुभव करता हुआ सोचने लगा कि शास्त्रों में कहा है कि एक समय दो क्रिया नहीं होती हैं यह गलत है क्यों कि मैं एक समय दो क्रिया प्रत्यक्ष में अनुभव कर रहा हूँ । इस प्रकार से विचार करता हुआ मुनि गंगदेव ने आचार्य श्री के पास आकर अपने दिल के विचार कहे तो गुरु ने समझाया कि गंगदेव ! शास्त्र में कहाँ वह सत्य हैं एक समय में जीव दो क्रिया नहीं कर सकता एवं वेद नहीं सकता है और तूं जो नदी उतरते समय शीत और उष्ण दोनों का अनुभव किया वह एक समय का नहीं पर असंख्यात समय का अनुभव है उसको एक समय समझना बड़ा भारी भूल है । छद्मस्थ को अनुभव करने में उपयोग लगने में असंख्यात समय का काल लगता है इत्यादि बहुत समझाया पर गंगदेव नहीं समझा इत्यादि वीर निर्वाण के बाद २२८ वर्ष गंगदेव नामक पंचवाँ निन्हवा हुआ ।

६—छट्ठा निन्हव—अन्तरंजिया नगरी में वलश्री नाम का राजा राज करता था वहाँ पर श्रीगुप्त नाम का आचार्य अपने शिष्यों के साथ विराजते थे उसमें रोहगुप्त नाम का शिष्य भी एक था और वह उत्पातिकादि बुद्धि वाला भी था एक समय वहाँ एक परिव्राजक आया था वह विद्या का इतना घमंडी था कि पेट पर लोहे का पाटा लगाया हुआ रखता था और हाथ में एक जम्बू वृक्ष की शाखा लेकर फिरता था किसी ने पूछा कि पंडितजी पेट पर पाटा क्यों बांधा है ? उत्तर में कहा कि मुझे शंका है कि विद्या से मेरा पेट फट नहीं जाय । जम्बू शाखा के लिए कहा कि मुझे जीतने वाला जम्बूद्वीप में भी कोई नहीं है । एक दिन उस परिव्राजक ने नगर में शास्त्रार्थ के लिए उद्घोषणा कराई जिसको आचार्य श्रीगुप्त के शिष्य रोहगुप्त ने स्वीकार करली । बाद वह गुरु महाराज के पास आया और कहा कि मैं परिव्राजक से वाद करूँगा । गुरु महाराज ने इन्कार कर दिया कि इस प्रकार का वितंडावाद करना अच्छा नहीं है । क्योंकि परिव्राजक तात्विक ज्ञान का पंडित नहीं है परन्तु विद्यावली है । वह विच्छू सर्प मूषक वाराह आदि विद्या में कुशल है । शिष्य ने कहा कि मैंने कह दिया है अतः शास्त्रार्थ तो करूँगा ही । तब गुरू ने उसको प्रतिपक्ष मयूर, नकुल, बिल्ली, सिंह आदि विद्याएँ दीं और रजोहरण भी मंत्र दिया कि जिसमें इन्द्र भी जीतने में समर्थ न हो सकेगा । उस विद्या को ग्रहण करके रोहगुप्त राजसभा में गया । उधर से परिव्राजक भी राजसभा में आया । रोहगुप्त ने कहा कि [illegible] । परिव्राजक ने सोचा कि मैं पर्वपक्ष ग्रहण करूं इससे

निच्छू छोड़े रोहगुप्त ने मयूर छोड़े कि बिच्छुओं को उठा कर ले गये। परिव्राजक ने सांप बनाये तो रोहगुप्त ने नकुल बनाये। परिव्राजक ने मूषक बनाये मुनि ने मंजारि बना दी। उसने मृग बनाया तो मुनि ने बाघ बनाये उसने सुअर बनाया और मुनि ने सिंह बना दिया इस प्रकार परिव्राजक की एक भी न चली तब उसने गर्दभि विद्या छोड़ी तो मुनि ने रजोहरण से वश में कर ली। इस प्रकार परिव्राजक को पराजित करने से जैनधर्म की खूब प्रभावना हुई फिर रोहगुप्त खूब बाजागाजा एवं आडम्बर से गुरु महाराज के पास आया और सब हाल कहा। इस पर गुरु ने कहा कि जैनधर्म की प्रभावना करना तो अच्छा है परन्तु तीन राशि स्थापन करी यह ठीक नहीं क्योंकि तीर्थङ्करों ने दो राशि कही हैं। अतः तुम राजसभा में जाकर इस बात का मिच्छामि दुक्कडम् दो परन्तु रोहगुप्त ने गुरु के वचन को स्वीकार न किया। और तीन राशी नाम का अपना एक नया मत खड़ा कर दिया यह छट्ठा तिराशि निन्हव भगवान महावीर निर्वाण से ५४४ वर्ष में हुआ।

७—गोष्टामाहिल नामक सातवाँ निन्हव—मालवा देश में दर्शनपुर नगर के वासी एक ब्राह्मण ने आर्य रक्षित के पास दीक्षा ली थी आपका नाम 'गोष्टामाहिल' था। एक समय आर्य दुर्वलिकापुष्य पूर्वांग की वाचना दे रहे थे। अन्य साधुओं के साथ गोष्टामाहिल भी वाचना ले रहा था। आठवें पूर्व में कर्मों का विषय आया कि जीवात्मा के कर्म खीर नीर तथा लोहाग्नि की भांति जीव प्रदेशों में मिल जाते हैं। पर गोष्टामाहिल इस बात को विपरीत समझ कर कहने लगा कि जीव के कर्म स्त्री कंचुक एवं पुरुष जामा और बालक के टोपी की भाँति जीव प्रदेशों के ऊपर लगते हैं अन्दर नहीं। दूसरे नौवें पूर्व में प्रत्यखान के अधिकार में साधुओं को यावत् जीव की सामायिक एवं प्रत्याखान कराया जाता है पर गोष्टामाहिल ने कहा कि जावनूजीव के प्रत्याखान करने पर वांच्छा दोष लगता है। कारण, जीवन के अन्त में भोग की वांन्छा के भाव आ जाते हैं इत्यादि। गोष्टामाहिल के कदाग्रह को दुर्वलिकापुष्या चार्य्य ने श्री संघ को कहा। तब श्रीसंघ ने अष्टम तप कर देवी की आराधना कर देवी को महाविदेह क्षेत्र में सीमंधर तीर्थङ्कर के पास भेजी। देवी ने जाकर तीर्थङ्कर से पूंछा तो उन्होंने कहा कि दुर्वलिकाचार्य्य का कहना सत्य है। देवी ने आकर श्रीसंघ को कहा। पर गोष्टामाहिल ने कहा कि देवी झूंठी है तीर्थङ्कर ऐसा कभी नहीं कहते इत्यादि गोष्टामाहिल ने अपने कदाग्रह को नहीं छोड़ा। अतः श्रीसंघ ने संघ बाहर कर दिया। एवं गोष्टामाहिल नामक सातवां निन्हव वीरात ५८४ वर्ष में हुआ। इस प्रकार शासन में सात निन्हव हुए इस समय के बाद भी कई निन्हव हुए कइएकों ने साधुओं को वस्त्र पात्र नही रखने का आग्रह किया कइएकों ने भगवान महावीर का गर्भापहार कल्याणक मानने का हट किया, कइएकों ने स्त्रियों को जिनपूजा करने का निषेध किया। कइएकों ने श्रावक को सामायिक पौषध के समय चरवाला का निषेध किया। कइएक ने मूर्तिपूजा का इन्कार किया कइएकों ने इस समय साधु है ही नहीं ऐसा आग्रह किया, कइएकों ने मूर्तिपूजा में मिश्र (पुन्य-पाप) मानना ठहराया। कइएकों ने स्त्रयों कों सामायिक पौषध का निषेध किया। कइएकों ने धानमें जीव मानने से इन्कार किया और कइएकोंने मरते जीवों को बचाने में तथा दान देने में पाप बतलाया इत्यादि कलिकाल के प्रभाव से जीवों के मिथ्यात्वोदय होने से जिसके दिलमें आई वहीं उत्सूत्र प्रहपना कर अपना मत निकाल शासनमें छेदभेद डाल टुकड़े २ कर डाले जिसकों हम क्रमशः समय वार यथास्थान लिखेंगे जिसमें यहाँ पर पहला आचार्य कृष्णार्षि का शिष्य शिवभूति नामक साधु ने दिगम्बर नाम का मत निकाला जिसको ही लिख दिया जाता है—

दिगम्बर मत्तोत्पात्ति-

दिगम्बरमत—जैसे सात निन्हवों का हाल ऊपर लिखा है वैसे दिगम्बर भी एक निन्हव की पंक्ति में है इस मत की उत्पति खास तौर तो साधु वस्त्र नहीं रखने के एकान्त आग्रह से हुई है तत्पश्चात् अन्य अनेक बातों का रद्दोबदल कर डाला-जैन शास्त्रों में दिगम्बर मत की उत्पत्ति निम्न लिखित प्रकार से हुई है।

रथवीरपुर नामक नगर के देवगणोद्यान में एक कृष्णार्षि नामक जैनाचार्य्य पधारे थे उस नगर में एक शिवभूति नामक ब्राह्मण बसता था और कुछ राज सम्बन्धी काम भी किया करता था परन्तु रात्रि के समय बहुत देरी से घर पर आने की उसकी आदत पड़ गई थी जिससे शिवभूति की स्त्री और माता घबरा गई थीं। एक दिन शिवभूति रात्रि में बहुत देरी से घर पर आया और द्वार खोलने के लिये बहुत पुकारें की परन्तु सब लोग निद्रा देवी की गोद में सो रहे थे जब शिवभूति की माता जागी तो उसने क्रोध के वश होकर कह दिया कि इस समय जिसके द्वार खुले हों वहां चला जा। बस शिवभूति माता के वचन सुनकर वहां से चला गया पर दूसरा रात्रि समय अपने द्वार कौन खुला रक्खे। वह फिरता फिरता कृष्णाचार्य के मकान पर पहुँचा तो वहां द्वार खुल्ला था। शिवभूति मकान के अन्दर प्रवेश करके क्या देखताहै कि साधु जन आत्म ध्यान में संलग्न थे जिन्हों को देखकर शिवभूति ने सोचा कि माता की आज्ञा तो हो ही गई है इनके पास दीक्षा ले लें। सुबह आचार्यश्री से प्रार्थना की और स्वयं लोचभी कर लिया अतः आचार्य श्री ने परोपकार की गरज से शिवभूति को दीक्षा दे दी। एक समय वहां के राजा ने जैन मुनियों के त्याग वैराग्य एवं शिवभूति के पूर्व परिचय के कारण उसको रत्न कंबल वेहराई (अर्पण की) जिसको लेकर शिवभूति ने आचार्य श्री के पास आकर उनके सामने वह रत्नकंबल रख दी। उसको देखकर सूरिजी ने कहा मुनि! यह बहुमूल्य रत्नकंबल क्यों ली है ? कारण साधुओं को तो सादा जीवन गुजारना चाहिये। कंबल लज्जा एवं शित निवारणार्थ जीर्ण प्रायः अल्प मूल्य के वस्त्र से निर्वाह करना चाहिये इत्यादि कह कर उस रत्न कंबल के टुकड़े २ करके सब साधुओं को रजोहरण पर लगाने के लिये निशिथिये करके दे दिये। इस पर शिवभूति के दिल में तो बहुत आई पर गुरु के सामने वह कर क्या सकता था। दूसरे वैराग्य एवं आत्मार्थीपना उसमें था नहीं उसने तो केवल माता के तिरस्कार से ही दीक्षा ली थी।

एक समय आचार्य श्री साधुओं को आगम वाचना दे रहे थे उसमें जिनकल्पी मुनियों का वर्णन आया।

"जिणकप्पिया य दुविहा, पाणीपाया पडिगाह धराय ।

पाउरणमपाउरणा एक्केक्के भावे दुविहा" इत्यादि ॥

शिवभूति ने गुरुमुख से जिनकल्पी का वर्णन सुना और कहा कि जब आगमों में जिनकल्पी का विधान बतलाया है तब यह वस्त्र पात्र रूप परिग्रह क्यों रखा जाता है ? साधु को एकान्त नग्न रहकर जिनकल्पीपना अर्थात् बिलकुल नग्न रहकर संयम पालन एवं आराधन करना चाहिये इत्यादि।

आचार्य श्री ने मधुर वचन और आगमों का गम्भीर आशय को समझाया कि इस समय जैसे [illegible] आदि अनेक बातें विच्छेद हो गई हैं इसी प्रकार जिनकल्पीपना भी विच्छेद हो गया है कारण जिनकल्पी [illegible] करने के लिये [illegible] वज्र ऋषभनाराचसंहनन की आवश्यकता है वह इस समय विच्छेद हो गया है शिवभूति केवल नग्न रहने से ही जिनकल्पी नहीं कहा जाता है पर [illegible]

कुलवास में बीस वर्ष रहकर कम से कम साधिक नौ पूर्व का ज्ञान हासिल करना चाहिये पश्चात् गुरु आज्ञा से ही जिनकल्पीपना धारण किया जाता है अतः न तो इस समय बज्रऋषभनाराच संहनन है और न सब साधु साधिक नौ पूर्व का ज्ञान ही पढ़ सकते हैं इस हालत में जिनकल्पी साधु कैसे हो सकते हैं और कैसे जिनकल्पी मुनि पना का आचार पालन ही कर सकते हैं इत्यादि।

शिवभूति के जिनकल्पीपना का तो एक बायना था उसके हृदय में तो रत्न कॉबल खट रही थी कि उसने अपने कदाग्रह को नहीं छोड़ता हुआ कहा कि थोड़ा रखे तो भी परिग्रह है और अधिक रखे तो भी परिग्रह। फिर इस पाप का मूल परिग्रह को रखा ही क्यों जाय अर्थात् साधुओं को एकान्त-नग्न ही रहना चाहिये। और जिनकल्पीपना को विच्छेद बतलाना यह केवल वस्त्र पात्र पर ममत्व एवं कायरताका ही कारण है कि अपनी कमजोरी से उस परिग्रह को छोड़ा नहीं जाता है। यदि मनुष्य चाहे तो अभी भी जिनकल्पीत्व पालन कर सकता है इतना ही क्यों पर मैं इस काल में भी जिनकल्पी रह सकता हूँ ?

सूरिजी ने पुनः शिवभूति को समझाने की कोशिश करते हुए कहा शिवभूति ! "धर्मोपकरणमेवैतत् न हु परिग्रहः" अर्थात् धर्मोपकरण को परिग्रह नहीं कहा जाता है और शास्त्रों में भी कहा है कि :—

जन्तवो बहवः सन्तिदुर्दर्शा मासचक्षुपाम् । तेभ्यः स्मृतं दयार्थंतु रजोहरणधारणम् ॥ १ ॥
आसने शयने स्थानेनिक्षेपे ग्रहणे तथा। गात्रसंकोचने चेष्टं तेन पूर्वं प्रमार्जनम् ॥ २ ॥
संति संपतिमाः सत्त्वाः सूक्ष्माश्च व्यापिनोऽपरे। तेषां रक्षानिमित्तं च, विज्ञेया मुखवस्त्रिका ॥ ३ ॥
भवन्ति जन्तवो यास्माद्भक्तपानेपु केपुचित् । तस्मात्तेषां पीरक्षार्थं, पात्रग्रहणमिष्यते ॥ ४ ॥
सम्यक्त्वज्ञानशीलानि, तपश्चेतीह सिद्धये। तेषामुपग्रहार्थीदं, स्मृतं चीवरधारणम् ॥ ५ ॥
शीतवातातपैर्दंशै-र्मशकैश्चापि खेदितः। मा सम्यक्त्वादिषु ध्यानं, न सम्यक् संविधास्यति ॥ ६ ॥
तस्य त्वग्रहणे यत्स्यात् ,क्षुद्रप्राणिविनाशनम् । ज्ञान ध्यानोपधातो वा,महान दोषैस्तदेव तत् ॥ ७ ॥
यः पुनरतिसहिष्णुतयैतदन्तरेणापि न धर्मबाधकस्तस्य नैतदस्ति ।
य एतान् वर्जयेद्दोपान् , धर्मोपकरणादृते। तस्य त्वग्रहणं युक्तं, यः स्याज्जिन इव प्रभुः ॥ ८ ॥

इत्यादि बहुत समझाया परन्तु प्रबल मोहनीय कर्मोदय से शिवभूति ने गुरु के वचनों को नहीं माना और वस्त्र छोड़ कर एवं नग्न हो कर उद्यान के एक भाग में जाकर बैठ गया। शिवभूति की बहिन ने भी दीक्षा ली थी वह अपने भाई शिवभूति मुनि को वन्दन करने को उद्यान में गई थी। शिवभूति ने उसको ऐसा विपरीत उपदेश दिया कि वह भी कपड़े छोड़ कर नग्न हो गई। जब वह आर्य्यका (साध्वी) नगर में भिक्षार्थ गई तो उसको नग्न देख लोग अवहेलना एवं निन्दा करने लगे क्योंकि पुरुष तो अन्य मत में भी परम हँसादि नग्न रह सकता है पर स्त्री को नग्न किसी ने नहीं देखी थी। अतः शिवभूति की बहिन साध्वी को नग्न देख लोग निन्दा करें यह बात स्वभाविक ही थी। साध्वी को नग्न फिरती देख एक वैश्या को लज्जा आ गई। उसने एक लाल शाटिका (वस्त्र) अपने मकान से उस नग्न साध्वी पर डाला। साध्वी ने उस वस्त्र को लेजा कर अपने भाई शिवभूति (नग्न) मुनि के पास जाकर रख कर सब हाल कह सुनाया। आखिर तो शिवभूति भी मनुष्य ही था। उसने सोचा कि स्त्रियों को नग्न रहना आज भी अच्छा नहीं है

और भविष्य में तो यह और भी अधिक नुकसान का कारण है। अतः वस्त्र साध्वी को वापिस दे दिया और कहा कि यह वस्त्र तुमको देवता ने दिया है अतः तुम इसको पहिनो और यह वस्त्र फट भी जाय तो दूसरा वस्त्र लेकर हमेशा के लिये वस्त्र पहिनती ही रहना। अतः शिवभूति ने साधु नग्न रहें और साध्वी लाल वस्त्र पहिने ऐसा दुरंगा वेश बना कर एक नया मत निकाल दिया जिसको दिगम्बर मत कहते हैं। जैनधर्म में भगवान् महावीर को निर्वाण के बाद यह पहले ही पहिल इस प्रकार मतभेद खड़ा हुआ और इस मतभेद का समय निम्नलिखित गाथा में बतलाया है कि :—

"छव्वास सएहिं नवोत्तेरहिं तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स। तो बोडियाण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पन्ना॥"

वीर निर्वाण के पश्चात् ६०९ वर्ष जाने के बाद रथपुर नगर में 'बोडिय' यानि शिवभूति ने एकान्त पक्ष को खींच कर नग्न रहने का नया मत निकाला। जिस को दिगम्बर मत भी कहते हैं।

शिवभूति के दो शिष्य हुये १ कौडिन्य २ कोट्ट वीर बाद उनका परिवार बढ़ने लगा।

इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में पूर्वाचार्य्यों ने दिगम्बरमतोत्पत्ति बतलाई है और भगवान् हरिभद्रसूरि ने आवश्यक सूत्र की वृत्ति में एवं उत्तराध्ययन सूत्र की टीका में तथा और भी जहाँ दिगम्बरोत्पत्ति लिखी है वहाँ सर्वत्र यही बात लिखी है कि भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् ६०९ वर्ष रथवीरपुर नगर में कृष्णाचार्य्य के शिष्य शिवभूति द्वारा दिगम्बर मत की उत्पत्ति हुई।

कोई भी व्यक्ति लड़ झगड़ कर नया पन्थ चलाता है वह स्वयं सच्चा एवं प्राचीन बन कर दूसरों को झूंठा एवं अर्वाचीन बतलाते हैं तदनुसार दिगम्बरों ने भी लिख मारा है कि वीर नि० सं० १६० पाटली पुत्र नगर में श्वेताम्बर मत[1] निकला इसका कारण बतलाते हैं कि भद्रबाहु के समय बारहवर्षीय दुकाल पड़ा था उस समय साधुओं ने शिथलाचारी होकर वस्त्र पात्र रखने शुरु कर दिये और उन साधुओं ने अपना श्वेताम्बर नामक मत चला दिया इत्यादि। कई दिगम्बर[2] विक्रम सं० १३६ वल्लभपुरी में श्वेताम्बर मत निकला बतलाते हैं पर यह सब कल्पना मात्र है या अपने पर आगम उत्थापक एवं निह्नवता का जो कलंक है उसको छिपाने का एक मात्र मिथ्या उपाय है।

जैन सिद्धान्तों में तो दोनों प्रकार के साधुओं को स्थान दिया है १—जिन कल्पी २—स्थविर कल्पी पर जिनकल्पी वही हो सकता है कि जिसके वज्रऋषभनाराच संहनन हो जब पंचम आरा में वज्रऋषभनाराच संहनन विच्छेद होगया तब जिनकल्पी भी विच्छेद होजाना स्वभाविक ही है। दूसरे केवल नग्नता को ही जिनकल्पी नहीं कहा जाता है पर जिनकल्पी के लिये और भी कई प्रकार की कठिनाइयां सहन करनी पड़ती हैं। जो मंद संहनन वाले नग्न रहते हुये भी सहन नहीं कर सकते हैं। तथा जिनकल्पी मुनि को कम से कम नौ पूर्वका ज्ञान होना चाहिये इत्यादि यह शिवभूति में नहीं था। दिगम्बरों ने केवल नग्न रहने का हठ पकड़ लिया है और इस हट से दिगम्बरों को कितना नुकसान हुआ है। जरा निम्न लिखित बातों पर लक्ष दीजिये—

१—प्रथम तो दिगम्बर शास्त्रों का कथन है। कि पंचम आरे के अंत तक चतुर्विध श्रीसंघ रहेगा तब [illegible]

1 भद्रबाहु चरित्र - [illegible] भद्रबाहु [illegible] निर्वाण के बाद [illegible] दूसरा [illegible] भद्रबाहु [illegible] भद्रबाहु के [illegible] 2 देखो [illegible]

म्वरों में त्रिविध संघ ही रहा। कारण साध्वी नग्न नहीं रह सके और वस्त्र धारण करने पर वे उसमें संयम नहीं मानते हैं अतः त्रिविध संघ ही रहा। इतना ही क्यों पर भूतकाल में अनन्त तीर्थङ्करों के शासन में अनंत सती साध्वियां मोक्षगई उनके लिये भी दिगम्बरों को इन्कार करना पड़ा। यह एक बड़ा भारी उत्सूत्र है। ॐ

२—दिगम्बरों के नग्नत्व के एकान्त हठ पकड़ने से दिगम्बर साधुओं की आज क्या दशा हुई है जो मुनि पृथ्व्यादि छः काया के जीवों का आरंभ करन करावन और अनुमोदन का त्याग कर पंच महाव्रत धारी बने थे और मधुकरी भिक्षा से अपना निर्वाह करते थे (जैन साधु आज भी मधुकरी भिक्षा से निर्वाह करते हैं) वही दिगम्बर बन कर पात्र न होने से एक ही घर में भिक्षा करते हैं अतः वे पूर्वोक्त नियम का पालन नहीं कर सकते हैं। जब इन साधुओं को भिक्षा करते हुए को देखा जाय तो देखने वाले को घृणा आये बिना भी नहीं रहती है और उनका विहार तो बिना गाड़ी और बिना रसोइये के हो ही नहीं सकता है बस दिगम्बरों में नग्नत्व रहता हुआ भी संयम कूच कर गया है।

३—वृद्ध ग्लानी तपस्वी साधु की व्यावच्च करना दिगम्बरों के शास्त्रों में भी लिखा है पर जब वस्त्र पात्र ही नहीं रखा जाय तो आहार पानी कैसे लाकर दे सकते हैं?

४—नग्न रहने का मुख्य कारण परिसह सहन करना और ममत्व भाव से बचना है परन्तु दिगम्बर साधु नग्न रहने में न तो परिसह को सहन करते हैं और न ममत्व भाव से बच ही सकते हैं। शीत काल में नग्न साधु शीत से बचने के लिये मकान के अन्दर उसमें भी घास बिछाना ओढ़ना चारों ओर पर्दे लगवाने और अग्नि की अंगीठियें जलाना आदि ये सब सावद्य कार्य्य शरीर के ममत्व से ही किये जाते हैं इसमें कई दिगम्बर मुनि अग्नि शरण भी हो गये फिर केवल एक नग्नत्व का हठ पकड़ने में क्या लाभ हैं।

५—दिगम्बराचार्यों ने अपने ग्रन्थों में स्त्री पुरुष और नपुंसक एवं तीनों वेद वालों की मोक्ष होनालिखा ॐ है परन्तु स्वयं वस्त्र नहीं रखने के कारण स्त्रियों के लिये मोक्ष का निषेध करना पड़ा है पर इस कल्पना को दिगम्बराचार्य ने ही असत्य ठहरा दी है। दिगम्बर मत में कई संघ स्थापित हुए थे उसमें यापनीय संघ भी एक है उस यापनीय संघ में एक शकटायन नाम का आचार्य हुआ उन शकटायनाचार्य ने स्त्रियों को मोक्ष होना और केवली को आहार करने के विषय दो प्रकरण बनाया है वे मूल प्रकरण यहां दर्ज करदिये जाते हैं।

स्त्री-मुक्तिप्रकरणं

प्रणिपत्य भुक्तिमुक्तिप्रदममलं धर्ममर्हतो दिशतः। वक्ष्ये स्त्रीनिर्वाणं केवलिभुक्तिं च संक्षेपात् ॥१॥
अस्ति स्त्रीनिर्वाणं पुंवत्, यदविकलहेतुकं स्त्रीषु। न विरुध्यति हि रत्नत्रयसंपद् निवृ तेर्हेतुः ॥२॥
रत्नत्रयं विरुद्धं स्त्रीत्वेन यथाऽमरादि भावेन। इति वाङ्मात्रं नात्र प्रमाणमाप्ताऽऽगमोऽन्यद्वा ॥३॥
जानीतेजिनवचनं श्रद्धत्ते, चरति चाऽऽर्यिका शबलम्। नाऽस्याऽसत्यसंभवोऽस्यां नाऽदृष्टविरोध गतिरस्ति
सप्तमपृथिवीगमनाद्यभावमव्याप्तनेव मन्यन्ते। निर्वाणाऽभावेनाऽपश्चिमतनवो न तां यान्ति ॥५॥

ॐ दिगम्बर पुराणों में तीर्थंकरों के चतुर्विध संघ की संख्या दी है, जिसमें ६–७ गुणस्थान वाली साध्वियों की संख्या भी स्पष्ट है।

विषमगतयोऽप्यधस्ताद् उपरिष्टात् तुल्यमासहस्रारम् । गच्छन्ति च तिर्यञ्चस्तदधोगत्यूनताऽहेतुः ॥६॥
वाद-विकुर्वणत्वादिलब्धिविरहे श्रुते कनीयसि च । जिनकल्प-मनःपर्ययविरहेऽपि न सिद्धिविरहोऽस्ति
वादादिलब्ध्यभाववद् अभविष्यद् यदि च सिद्ध्यभावोऽपि । तासामवारयिष्याद् यथैव जम्बूयुगादारात् ॥८॥
'स्त्री'ति च धर्म विरोधे प्रव्रज्यादोषविंशतौ 'स्त्री'ति । बालादिवद् वदेयुर्न 'गर्भिणी बालवत्से'ति ॥९॥
यदि वस्त्राद् अविमुक्तिः, त्यजेत तद्, अथ न कल्पते हातुम । उत्सङ्गप्रतिलेखनवद्, अन्यथा देशको दुष्येत्
त्यागे सर्वत्यागो ग्रहणेऽल्तो दोष इत्युपादेशि । वस्त्रं गुरुणाऽऽर्याणां परिग्रहोऽपीति चुत्यादौ ॥११॥
यत् संयकोपकाराय वर्तते प्रोक्तमेतदुहकरणम् । धर्मस्यहितत् साधनमतोन्यद् अधिकरणमाहाऽर्हन् ॥१२॥
अस्तैन्यबाहिर व्युत्सर्गविवेकैषणादिसमितीनाम् । उपदेशनमुपदेशो ह्यु पधेरपरिग्रहत्वस्य ॥१३॥
निग्रन्था······शास्त्रे सर्वत्र नैव युज्येत । उपधेग्रन्थत्वेऽस्याः पुमानपि तथा न निर्ग्रन्थः ॥१४॥
संसक्तौ सत्यामपि चोदितयत्नेन परिहरन्त्यार्या । हिंसावती पुमानिव न जन्तुमालाकुले लोके ॥१५॥
वस्त्रं विना न चरणं स्त्रीणामित्यर्हतोच्यत, विनाऽपि । पुंसामिति न्यवार्यत तत्र स्थविरादिवद् मुक्तिः
अर्शो-भगंदरादिषु गृहीतचीरो यतिर्न मुच्येत । उपसर्गेवा चीरे ग्दादिः संन्यस्यते चान्ते ॥१७॥
उत्सङ्गमचेलत्वं नोच्येत तदन्यथा नरस्याऽपि । आचेलक्या (क्यं) योग्यायोग्याऽसिद्धेरदीक्ष्य इव ॥१८॥
इति जिनकल्पादीनां युक्त्यङ्गानाम योग्य इति सिद्धेः । स्याद् अष्टवर्षजातादिरयोग्यो ऽदीक्षणीय इव ॥१९॥
संवर-निर्जररूपो बहुप्रकारस्तपोविधिः शस्त्रे । योगचिकित्साविधिरिव कस्याऽपि कथंचिदुपकारी ॥२०॥
वस्त्राद् न मुक्तिविरहो भवतीत्युक्तं, समग्रमन्यच । रत्नत्रयाद् न वाऽन्यद् युक्त्यङ्गं शिष्यते सद्भिः ॥२१॥
प्रव्राजना निषिद्धा क्वचित्तु रत्नत्रयस्य योगेऽपि । धर्मस्य हानि-वृद्धी निरूपयद्भिर्विशुद्धयर्थम् ॥२२॥
अनतिधन्यत्वान् चेन् संयतवर्गेण नाऽऽर्यिकासिद्धिः । वन्द्यतां ता यदिते, नोनत्वं कल्प्यते तासाम् ॥२३॥
सन्न्यूनापूर्वेभ्यस्ताः स्मारण-चारणादिकारिभ्यः । तीर्थंकराऽऽकारिभ्यो न च जिनकल्पादिरिति [illegible]
अर्हन् न वन्दते न तावताऽसिद्धिरङ्गगतेः । मायाऽन्यथा विमुक्तिः, स्थानं स्त्री-पुंसयोस्तुल्यम् [illegible]
आकृष्यते श्रिया स्त्री पुंसः सर्वत्र किं न तन्मुक्तौ । इत्यमुना श्लेष्यस्त्री-पुंसां सिद्धिः समम[illegible]
मायादिः पुरुषाणामपि देशाधि (द्वेषादि) प्रसिद्धमानश्च । षण्णां संस्थानानां तुल्या वर्णत्रयस्यापि ॥२[illegible]॥
'स्त्री' नाम मन्दसत्त्वा उत्सङ्गमपग्रना न तेनाऽत्र । ननु कथमनल्पवृत्तयः सन्ति हि शीलाम्बुधेवेलाः ॥२८॥
ब्राह्मी सुन्दर्याऽऽर्या राजीमती चन्दना गणधराऽन्या । अपि देव-मनुज-महिताः विख्याताः शील-सत्त्वा[illegible]
गार्हस्थ्येऽपि सुसत्त्वा विख्याता शीलवतितमा जगति । सीतादयः कथं तास्तपसि विसत्त्वा [illegible]
संन्यस्य शान्तलक्ष्मीं पति-पुत्र-भ्रातृ-बन्धुमन्वचम् । पाणिग्रहणवहायाः [illegible]
[illegible] स्त्री-मिथ्यात्वसहायकेन न सुदृष्टिम् । [illegible] चिनोति, तद् न, तदङ्गं [illegible]
[illegible] सर्व-कर्माणि । [illegible]
[illegible] सिद्धि । स्त्रीणां न मनुष्ययोगे [illegible]

शब्दनिवेशनमर्थः प्रत्यासत्या क्वचित् कयाचिदतः । तदयोगे योगे सति शब्दस्याऽन्यः कथं कल्प्यः
स्तन-जघनादिव्यङ्ग्ये 'स्त्री' शब्दोऽर्थे, न तं विहायैव । दृष्टः क्वचिदन्यत्र त्वग्निर्माणवकवद् गौणः
आ षष्ठ्या स्त्रीत्यादौ स्तनादिभिस्त्री स्त्रिया इति च वेदः। स्त्रीवेद स्त्र्यनुबन्धास्तुल्यानां शतपृथक्त्वोक्तिः
न च पुंदेहे स्त्रीवेदोदयभावे प्रमाणमङ्गं च। भावः सिद्धौ पुंवत् पुंमां अपि (पुंसोऽपि) न सिध्यतो वेदः
क्षपकश्रेण्यारोहे वेदनोच्येत भूतपूर्वेण । 'स्त्री' ति नितरामसुख्ये मुख्येऽर्थे युज्यते नेतराम् ॥३९॥
मनुषीषु मनुष्येषु च चतुर्दशगुणोक्तिरार्जि (र्यि) कासिद्धौ । भावस्तवोपरिक्षप्य···नवस्थो नियतउपचारः
पुंसि स्त्रियां, स्त्रियां पुंसि-अतश्च तथा भवेद् विवाहादिः । यतिषु न संवासादिः स्यादगतौ निष्प्रमाणेष्टिः
अनडुह्याऽनड्वाहीं दृष्ट्वाऽनड्वाहमनडुहाऽऽरूढम् । स्त्रीपुंसेतरवेदो वेद्यो ना ऽनियमतो वृत्तेः ॥४२॥
नाम-तदिन्द्रियलब्धेरिन्द्रियनिर्वृत्तिमिव प्रमाद्यङ्गम् । वेदोदयाद् विरचयेद् इत्यतदङ्गेन तद्भेदः ॥४३॥
या पुंसि च प्रवृत्तिः,पुंसि स्त्रीवत्,स्त्रिया स्त्रियां च स्यात्। सा स्वकवेदात् तिर्यगवदलाभे मत्तकामिन्याः
विगतानुवादनीतौ सुरकोपादिषु चतुर्दश गुणाः स्युः ।नव मार्गणान्तर इति प्रोक्तं वेदेऽन्यथा,नीतिः
न च बाधकं विमुक्तेः स्त्रीणामनुशासकं प्रवचनं च। संभवति च मुख्येऽर्थे न गौणइत्यार्यिका सिद्धिः

* इति स्त्री निर्वाण प्रकरणं समाप्तम् ॥

इसके अलावा दिगम्बर समुदाय का परम माननीय ग्रन्थ गोमटसार तथा त्रिलोक्यसार नाम के ग्रन्थों में भी स्त्रियों की मुक्ति होना स्पष्ट शब्दों में उल्लेख मिलता है पर मताग्रह के कारण हमारे दिगम्बर भाई उस ओर लक्ष नहीं देते हैं खैर मैं उस दिगम्बर ग्रन्थ की एक गाथा यहाँ उद्धृत कर देता हूँ—

"वोस नपुंसक वेआ, इत्थीवेयाय हुँति चालीसा । पुं वेआ अडयाला, सिद्धा एक्कमि समय म्मि ॥"

अर्थात् एक समय १०८ सिद्ध होते हैं जिसमें २० नपुंसक ४० स्त्रियों और ४८ पुरुष इस प्रकार १०८ की संख्या दिगम्बराचार्यों ने ही बतलाई है इतना ही क्यों पर उन्होंने तो स्त्रियों को चौदहवां अयोग गुणस्थान होना भी लिखा है । गौमटसार जीव कांड की गाथा ७१४ में भी अयोगी स्त्री का जिक्र है एवं स्त्री को १४ वां गुणस्थान बताया है ।

६—दिगम्बरों ने एक नग्नत्व के आग्रह करने में और भी अनेक मिथ्या प्ररूपना करदी है जैसे दिगम्बर कहते हैं कि केवली कवल आहार नहीं करते हैं जो कि यह कथन खास दिगम्बरों के ग्रन्थों से ही मिथ्या साबित होता है । कारण गोमटसार, दिगम्बरीय तत्त्वार्थ सूत्र, तत्त्वार्थसार आदि ग्रन्थों में केवली के ग्यारह परिसह बतलाये हैं जिसमें क्षुधा और पिपासा परिसह भी हैं इनके अलावा दिगम्बराचार्य्य शाकटायन ने भी केवली के आहार करने की सिद्धि में एक ग्रंथ निर्माण किया है । वह यहाँ उद्धृत कर दिया जाता है ।

॥ केवलिभुक्तिप्रकरणम् ॥

अस्ति च केवलिभुक्तिः समग्रहेतुर्यथा पुरा भुक्तेः । पर्याप्ति-वेद्य-तैजस-दीर्घायुष्कोदयो हेतुः ॥१॥
नष्टानि न कर्माणि क्षुधो निमित्तं विरोधिनो न गुणाः । ज्ञानादयो जिने किं सा संसारस्थितिर्नास्ति

तम इव भासो वृद्धौ ज्ञानादीनां न तारतम्येन । क्षुध् हीयतेऽत्र न च तद् ज्ञानादीनां विरोधगतिः
अविकलकारणभावे तदन्यभावे भवेदभावेन । इदमस्य विरोधीति ज्ञाने न तदस्ति केवलिनि ॥४॥
क्षुद् दुःखमनन्तसुखं विरोधे तस्येति चेत् कुतस्त्यंतत् । ज्ञानादिवन्न तज्जं विरोधि न परं ततो दुःखम्
आहारविषयकाङ्क्षारूपा क्षुद् भवति भगवति विमोहे ! कथास्न्यरूपताऽस्या न लक्ष्यते येन जातेऽ...॥
न क्षुद् विमोहपाको यत् प्रतिसंख्यानभावननिवर्त्या । न भवति विमोहपाकः सर्वोऽपि हि तेन विनिवर्त्यः
शीतोष्णवाततुल्या क्षुत् तत् तत्प्रतिविधान काङ्क्षा तु । मूढस्य भवति मोहात् तथा भृशं बाध्यमानस्य
तैजससमूहकृतस्य द्रव्यस्याऽभ्यवहृतस्य पर्याप्त्या । अनुत्तरपरिणामे क्षुत् क्रमेण भगवति च तत् भवेत्
ज्ञानावरणीयादेर्ज्ञानावरणादि कर्मणः कार्यम् । क्षुत् तद्विलक्षणऽस्यां न तस्य सहकारिभावोऽपि॥१०॥
क्षुद्बाधिते 'न जाने, न चेक्ष' इत्यस्ति न तु विपर्यासः । तद्वेद्यं सहकारि तु; तस्य न तद् वेद्यसहकारि
ज्ञानावरणादीनामशेषविगमे क्षुधि प्रजातायाम् । अपि तद् ज्ञानादीनां हानिः स्यादितरवत् तत्र ॥१२॥
नष्टविपाका क्षुदिति प्रतिपत्तौ भवति चागमविरोधः । शीतोष्ण-क्षुद्-उदन्याऽऽदयो हि ननु वेदनोया इति
उदये फलं न तस्मिन् उदीरणेत्यफलता न वेद्यस्य । नोदीरणा फलात्मा तथा भवेदायुरप्यफलम्॥१४॥
अनुदीर्णवेद्य इति चेद् न क्षुद् वीर्ये किमत्र नहि वीर्यम् । क्षुदभावे क्षुदभावेन स्थित्यै क्षुधि तनोः स्थितिः
अपवर्तते कृतार्थं नायुर्ज्ञानादयो न हीयन्ते । जगदुपकृतावनन्तं वीर्यं किं गततपो भुक्तिः ॥१६॥
ज्ञानाद्यलयेऽपि जिने मोहेऽपि स्याद् क्षुद् उद्भवेद् भुक्तिः। वचन-गमनादिवच्च प्रयोजनं स्व-परसिद्धिः स्यात्
ध्यानस्य समुच्छिन्नक्रियस्य चरमक्षणे गते सिद्धिः । सा नेदानीमस्ति स्वस्य परेषां न कर्तव्या॥१८॥
रत्नत्रयेण मुक्तिर्न विना तेनाऽस्ति चरमदेहस्य । भुक्त्या तथा तनोः स्थितिरायुषि न त्वनपवर्त्ये[illegible]
आयुरिवाऽभ्यवहारो जीवनहेतुर्विनाऽभ्यवहृतेः । चेत् तिष्ठत्वनन्तवीर्ये विनाऽऽयुषा कालमपि तिष्ठेत्
न ज्ञानवदुपयोगो वीर्यं कर्मक्षयेण लब्धिमत्तु । तत्राऽऽयुरिवाऽऽहारोऽपेक्ष्येत न तत्र बाधाऽस्ति॥२१॥
मासं वर्षं वाऽपि च तानि शरीराणि तेन भुक्तेन । तिष्ठन्ति न चाऽकालं नान्यथा पूर्वमपि [illegible]
असति क्षुद्बाधेऽन्यूने [illegible] न शक्तिक्षयो न संक्लेशः । आयुश्चानपवर्त्यं बाधन्तयो प्राग्वदभुनाऽपि
देशोनपूर्वकोटीविहरणमेवं सतीह केवलिनः । सूत्रोक्तमुपपादि न, भुक्तिश्च न नियतकाला स्यात्॥२४॥
[illegible] निमित्तसंपदायुष्कः । स्याद् अनपवर्त्य इति ननु केवलिभुक्तिः गवर्ण्यते ॥२५॥
[illegible] जिनस्य यदौ [illegible] । वाङ्मात्र ना [illegible] प्रमाणमात्रमागमो [illegible]
अस्वेदादि [illegible] तीर्थकपुण्यात् । [illegible] न क्षुद् [illegible]
भुक्तिदोषो [illegible], न दोषश्च भवति निर्दोषं, इति निगदतो निराकर्तीति न स्यात् [illegible]
[illegible] क्षुधो न व्यभिचारो वेदनीयमस्माया: । प्राहोति "एकादश जिने" इतिजिन [illegible]
[illegible] जिन [illegible] ॥३०॥
[illegible] न दोषो न [illegible] । [illegible] तथा तनोः स्थितिरपि न [illegible]

परमावधेर्गुस्थ छद्मस्थस्येव नान्तरायोऽपि । सर्वार्थदर्शनेऽपि स्याद् न चान्यथा पूर्वमपि भुक्तिः॥३२
इन्द्रियविषयप्राप्तौ यद्भिनिवोधप्रसंजनं भुक्तौ । तच्छब्द-गन्ध-रूप-स्पर्शप्राप्त्या प्रतिव्यूढम् ॥३३॥
छद्मस्थे तीर्थकरे विघ्नणनानन्तरं च केवलिनि ! चित्तामलप्रवृत्तौ व्यासैवाऽत्रापि भुक्तवति ॥३४॥
विग्रहगतिमापन्नाद्यागमवचनं च सर्वमेतस्मिन् । भुक्तिं ब्रवीति तस्माद् द्रष्टव्या केवलिनि भुक्तिः
नाऽनाभोगाहारः सोऽपि विशेषितो नाऽभूत । युक्त्याऽभेदे नाङ्गस्थिति-पुष्टि-क्षुच्छमास्तेन
तस्य विशिष्टस्य स्थितिरभविष्यत् तेन सा विशिष्टेन । यद्यभविष्यदिहैषां शाली-तरभोजनेनेव॥३७॥

॥ इति केवलीभुक्ति प्रकरणं ॥

पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि आचार्य शकटायन एक दिगम्बर मत के प्रसिद्ध आचार्य हैं और आप अपने ग्रन्थ में युक्ति पूर्वक केवली को केवल आहार करना सिद्ध कर वतलाते हैं फिर दूसरे प्रमाण की आवश्यकता ही क्या है अतः केवली कवल आहार करते हैं यह श्वेताम्बरों की मान्यता शास्त्रोक्त ठीक है

इनके अलावा दिगम्बरों ने जैन शास्त्रों में क्या-क्या रद्दोवदल किया है उसके लिये महोपाध्यायजी श्रीयशोविजयजी महाराज का बनाया हुआ दिग्पट्ट ८४ वोल और उपाध्याय श्रीमघेविजयजी महाराज कृत युक्ति प्रवोध नामक ग्रन्थों को पढ़ना चाहिये ।

मनुष्य जब आग्रह पर सवार होता है तब इतना हैवान बन जाता है कि वह अपने हिताहित को भी भूल जाता है । यही हाल हमारे दिगम्वर भाइयों का हुआ है ।

अव हम प्राचीन साहित्य की ओर दृष्टिपात कर देखते हैं तो श्वेताम्बरों के पास तीर्थङ्कर कथित एवं गणधररचित द्वादशांग से एक दृष्टिवाद को छोड़ एकादशांग विद्यमान हैं तब दिगम्वरों के पास द्वादशांग से एक भी अंग नहीं है । दिगम्बरों के पास जो साहित्य है वह दिगम्वर मत (वी० नि० सं० ६०९) निकलने के बाद में दिगम्वराचार्य्यों का निर्माण किया हुआ ही है और उसके आदि निर्माणकर्त्ता दिगम्वर आचार्य भूतवली और पुष्पदत्त वतलाये जाते हैं जिन्हों का समय वीरनिर्वाण की सातवीं शताब्दी का है ।

दिगम्बर भाई कहते हैं कि तीर्थङ्कर कथित एवं गणधर रचित सबकेसब आगम अर्थात् द्वादशांग विच्छेद होगये थे और श्वेताम्वरों के पास वर्तमान में जो अंगसूत्र बतलाये जाते हैं वे पीछे से मनः कल्पित नये बनाये हैं और उनके नाम अंग रख दिये हैं । इत्यादि ?

पहिला सवाल तो यही उठता है कि जब तीर्थङ्करप्रणीत सब आगम विच्छेद होगये थे तब दिगम्बराचार्य्यों ने जिन-जिन ग्रन्थों की रचना की वे किन २ शास्त्रों के आधार से की होगी? कारण, दिगम्बरों की मान्यतानुसार तीर्थङ्करप्रणीत आगम तो सबके सब विच्छेद होगये थे । इससे साबित होता है कि दिगम्बरों ने सब ग्रन्थ मनः कल्पित ही बनाये थे ? या श्वेताम्बराचार्यों के ग्रन्थों से मसाला लेकर अपनी मान्यतानुसार नये ग्रन्थों का निर्माण किया है ?

दिगम्बर लोग कहते हैं कि मुनिधारसेन बड़े ही ज्ञानी एवं दो पूर्वधर थे और उन्होंने अपनी अन्तिमावस्था में यह सोचा कि मैं अपना ज्ञान किसी योग्य मुनि को दे जाऊँ अतः उन्होंने भूतवलि और पुष्पदन्त नाम के मुनियों को बुलाकर ज्ञान पढ़ाया और मुनि भूतवलि ने उस ज्ञान को सबसे पहिले पुस्तक पर

कुछ लिखा है वह मनः कल्पित ही लिखा है । अतः दिगम्बरमत प्राचीन नहीं है । पर श्वेताम्बरों के से निकला हुआ एक अर्वाचीन मत है ।

कल्पसूत्र की स्थविरावली में जैनधर्म के आचार्य उनके गण कुल शाखा का वर्णन किया है । आचार्य एवं गण कुल शाखा के नाम मथुरा के कंकाली टीले से मिली हुई मूर्तियों के शिलालेखों मिलते हैं देखिये:—

संवत्सरे ९०..................स्य कुटुँबनिय दानस्य (वोधुय) कोट्टियातोगणातो, प्रश्नवाहनकुलतो, मज्जमातोशाखातो सनिकायभतिगालाए, थवानि............"

यह लेख सम्वत् ९० का एक खण्डित मूर्ति पर का है ।

"सं · ४७ ग्र० २ दि २० एतस्य पूर्वाये चारणेगणोयतिधमिक कुलवाचकस्य रोहनदिस्य शिष्यस्य सेनस्य निर्वतक सावन..........इत्यादि ।

यह लेख सम्वत् ४७ का एक पत्थर खण्ड पर है ।

"सिद्ध, नमोअरिहंतो महावीरस्य देवस्य, राज्ञावसुदेवस्य, संवत्सरे ९८ वर्षे मासे ४ दिवसे ११ एतस्य पूर्वा वे आर्य रोहतियतोगणतो परिहासककुलतो पोनपत्ति कातो शाखातो गणस्य आर्यदेवदत्तस्य...............इत्यादि ।

"सिद्धं सं० ९ हे० ३ दिन १० गहमित्रस्य धितुशीवशिरिस्य वधु एकडलस्य कोट्टियातो गणतो, आर्य तरिकस्य कुटुविनिये, ठानियातो कुलतो वैरातो शाखातो निवर्तना गहपलाये दिति"

इन शिलालेखों से स्पष्ट पाया जाता है कि भगवान् महावीर की परम्परा के आचार्य, गण, कुल, शाखा जो पूर्वोक्त शिलालेखों में लिखा हैं वह श्वेताम्बर समुदाय के पूर्वज ही थे एवं कल्पसूत्र की स्थविरावली में उपरोक्त गण कुल शाखाओं का विस्तार से उल्लेख मिलता है:—

इनके अलावा डा० जेकोबी लिखते हैं कि:—

Additions and alterations may have been made in the sacred texts after that time; but as our argument is not based on a single passage or even apart of the Dhammpada, but on the metrical laws of a variety of metres in this and other Pali Books, the admission of alterations and additions will not materially influence our conclusion, viz; that the whole of the jain siddhanta was composed after the fourth century B. C.

इनके अलावा और आगे चलकर हिन्दुधर्म के शास्त्रों को देखिये जैन मुनियों के लिये क्या कहा है—

"मुण्डं मलिनं वस्त्रं च कुण्डिपात्रसमन्वितम् । दधानं पुंजिकां हस्ते चालयन्तं पदे पदे ॥ १ ॥
वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं क्षिप्यमाणं मुखे सदा । धर्मेति व्याहरन्तं तं नमस्कृत्य स्थितं हरिः" ॥ २ ॥

हस्ते पात्रं दधानश्च तुण्डे वस्त्रस्य धारकः । मलिनान्येव वासांसि धारयन्तोऽल्प भाषिणः ॥ [illegible]
धर्मोलाभः परं तत्त्वं वदन्तो तथा [illegible] । [illegible] ॥ [illegible]

मथुरा का कंकाली टीला के भूगर्भ से मिला हुआ
प्राचीन अयगपट जो दो हजार वर्षों से भी अधिक प्राचीन है ।

मथुरा के कंकाली टीला के खोद काम करते समय
भू गर्भ से मिली हुई प्राचीन खण्डित जैन मूर्तियाँ ।

इन पुराणों के श्लोकों में जैन साधुओं का वर्णन किया है जिसमें वस्त्र रजोहरणऔर मुखवस्त्रिका वाले साधुओं को जैनसाधु कहा है। अतः निर्विवाद सिद्ध होता है कि जैनसाधु प्राचीन समय से ही वस्त्र रजोहरण और मुखवस्त्रिका रखते थे।

अब आप जरा बौद्धग्रन्थों की ओर दृष्टि डालकर देखिये वे क्या लिखते हैं:—

"बौद्धग्रन्थ धम्मपद पर बुद्धघोषाचार्य्य ने टीका रची है उसमें आप लिखते हैं कि निर्गन्थ (जैनसाधु) नीति मर्यादा के लिये वस्त्र रखते हैं"। इससे पाया जाता है कि भगवान् महावीर के समय जैन साधु वस्त्र रखते थे।

इनके अलावा अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने जैन साहित्य का अवलोकन कर अपना मत प्रकट किया है कि भगवान् पार्श्वनाथ के साधु पांचवर्ण के वस्त्र रखते थे तब भगवान् महावीर के साधु एक श्वेतवर्ण के वस्त्र रखते थे जिसके लिये सावत्थी नगरी में भगवान् पार्श्वनाथ के संतानिये केशीश्रमणाचार्य और गौतमस्वामी के आपस में चर्चा हुई जिसका वर्णन उत्तराध्ययनसूत्र के २३ वें अध्ययन में विस्तार से लिखा है।

अब जरा खास दिगम्बराचार्य्यों के प्रमाणों को ही देखिये कि ये अपने ग्रन्थों में क्या लिखते हैं:—

शय्यासनोपधानानि शास्त्रोपकरणानि च। पूर्वं सम्यक् समालोच्य प्रतिलिख्य पुनः पुनः ॥ १२ ॥
गृह्णतोऽस्य प्रयत्नेन क्षिपतो वा धरातले। भवत्यविकला साधोरादानसमितिः स्फुटम् ॥ १३ ॥

श्री शुभचन्द्राचार्य्य फरमाते हैं कि :— ज्ञानार्णव अठारहवां अध्याय

"पिण्डं तथोपधिं शय्यामुद्गमोत्पादनादिना। साधो शोधयतः शुद्धा ह्येषणासमिति भवेत्"॥५॥

श्री अमृतचन्द्रसूरि तत्त्वार्थसार में लिखते हैं कि :— (संवरतत्त्व)

"णाणुवहिं संजमुवहिं तव्वुववहिमण्णमवि उवहिं वा। पयदं गहणिक्खेवो समिद्दी आदाननिक्खेवा" ॥

कुन्दकुन्दाचार्य मूलाचार में कहते हैं:—

राजवार्तिकाकार क्या फरमाते हैं:—

"परमोपेक्षासंयमाभावे तु वीतरागशुद्धात्मानुभूतिभावसंयमरक्षणार्थं विशिष्टसंहननादि-शक्त्यभावे सति यद्यपि तपः पर्यायशरीरसहकारीभूतमन्नपानसंयमशौचज्ञानोपकरण तृणमयप्रावरणादिकं किमपि गृह्णाति तथापि ममत्वं न करोतीति"

इन दिगम्बराचार्य्यों के कथनानुसार साधु संयम के रक्षार्थ आवश्यक उपधि रख सकते हैं यदि उस उपकरण उपधि पर ममत्व भाव रखते हों तो परिग्रह का कारण कहा जा सकता है। यही बात श्वेताम्बर शास्त्र कहता है कि "मुच्छापरिग्गहोवुत्तो" किसी भी उपाधि वगैर पर ममत्व भाव रखना परिग्रह है दूसरा नहीं पर कमण्डलु मोरपिच्छा और घास का संस्तारा तो दिगम्बर मुनि भी रखते हैं। यदि ममत्व का तांता नहीं छुटा हो तो इन पर भी मुर्च्छा आसकती है इतना ही क्यों पर शरीर पर मुर्च्छा एवं ममत्व आ जाय तो वह भी परिग्रह ही है—यदि जिसके ममत्व का तांता ही टूट गया है तो मरुदेवी जैसा को वस्त्राभूषण पहने हुई को भी केवल ज्ञान होगया था। तो साधुओं के उपधि की तो बात ही क्या है ?

इत्यादि उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है कि दिगम्बरों ने नग्न रहने का केवल एक हठ पकड़

रक्खा है । और इस हठ के कारण ही जैन शासन में फूट डालकर अपना कल्पित मत चलाया है। वास्तव श्वेताम्बर समुदाय भगवान महावीर की सन्तान परम्परा प्राचीन है और दिगम्बर स्वच्छन्दचारी मत है । इसके लिये अब विशेष प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है ।

जैसे श्वेताम्बर समुदाय में गण कुल शाखा गच्छ वगैरह भेद प्रभेद हैं वैसे दिगम्बर समुदाय में संघ गच्छ और इनके भेद प्रभेद है परन्तु विशेषता यह है कि श्वेताम्बर समुदाय में जितने गच्छ हुए हैं एक दो गच्छ को छोड़कर सबकी मान्यता-श्रद्धा प्ररूपना एक ही है जब दिगम्बरों में मूलमतोत्पत्ति के में जितने भेद प्रभेद हुए उन सबकी श्रद्धा प्ररूपना पृथक-पृथक है वह भी एक दूसरे से खिलाफ अर्थात् एक दूसरे को मिथ्यात्वी बतलाते हैं ठीक है जिसकी मूल मान्यता ही मिथ्यात्व से उत्पन्न हुई हो उनका यही होता है पाठकों के अवलोकनार्थ दिगम्बर समुदाय के भेद प्रभेद का थोड़ा हाल यहां लिख दिया जाता है:

१—मूलसंघ—इस संघ की स्थापना आचार्य अर्हद्दली द्वारा हुई और इस संघ के कई भेद प्रभेद जैसे—

a—सिंहसंघ—सिंह की गुफा में चतुर्मास करके आने वाले मुनियों का सिंह संघ हुआ इस संघ से नूरगण और चन्द्रकपाट गच्छ निकला

b—नंदिसंघ—नंदिवृक्ष के नीचे चतुर्मास करके आने वाले मुनियों का नंदि संघ हुआ और इस संघ से बलात्कारगण तथा सरस्वती एवं पराजीत गच्छ निकला

c—सेनसंघ—सेनवृक्ष के नीचे वर्षाकाल व्यतीत करके आने वाले मुनियों का सेन संघ हुआ इस संघ को वृषभ संघ भी कहते हैं और सुरथगण और पुष्कर गच्छ इस संघ की शाखाएं हैं

d—देवसंघ—देवदत्ता वैश्या के वहां चतुर्मास करके आने वाले मुनियों का नाम देवसंघ हुआ इस संघ से देशीयगण और पुस्तकगच्छ निकला

इन चार संघों की स्थापना का कारण के लिये श्रुतावतार ग्रन्थ के करता लिखता है कि एक समय अर्हद्दली आचार्य ने सोचा कि अब केवल उदासीनता से ही धर्म नहीं चलेगा पर संघ ममत्व से ही धर्म चलेगा अतः उन्होंने संघों की स्थापना करके धर्म को चलाया

इन संघों के स्थापन का समय श्रुतावतार तथा दर्शनसार ग्रन्थों के अनुसार वीर निर्वाण से ६०३ वर्ष का है तब कवि मेघराज के मतानुसार इन संघों का समय आचार्य अकलंकदेव के स्वर्गवास के बाद का है ऐसा एक शिला लेख में सिद्ध होता है क्योंकि अकलंकदेव के पूर्व बने हुए भगवती आराधना पद्मपुराण हरिवंशादि किसी भी ग्रन्थ में इन संघों का उल्लेख नहीं मिलता है और आचार्य अकलंकदेव के समकालीन आचार्य विद्यानन्दी प्रभाचन्द्र माणिक्यनंदि आदि आचार्यों के भी अनेक ग्रंथ हैं पर उनमें भी इन संघों का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है अगर इन आचार्यों के समय प्रस्तुत संघ होते तो कहीं न कहीं उल्लेख अवश्य किया जाता । हाँ आचार्य गुणभद्र का उत्तरपुराण में सबसे पहला सेनसंघ का उल्लेख हुआ है और गुणभद्र आचार्य अकलंकदेव के बाद सुप्रसिद्ध थे अतः यह मानना ठीक होगा कि इन संघों की स्थापना का समय आचार्य अकलंक देव के बाद अर्थात् विक्रम की नौवीं शताब्दी के आस पास का ही है —

२—द्राविड़ संघ-जैनेन्द्र व्याकरण के कर्त्ता पूज्यपाद तथा देवनंदि के शिष्य वज्रनंदि द्वारा इस संघ की स्थापना हुई वज्रनन्दि बड़े भारी विद्वान थे । देवसेनसूरि ने आपको 'पाहुडवेदी' [illegible]

श्रवण वेलगुल की मल्लिपण प्रशस्ति में वज्रनन्दि के नव स्तोत्रनामक ग्रंथ का उल्लेख कर बहुत प्रशंसा करते हुए प्रशस्तिकर "सकलार्हत्प्रवचनप्रपञ्चान्तर्भाव प्रवणवर सन्दर्भसुभगम्" का विशेषण से भूषीत किया है।

दक्षिण प्रान्त की मथुरा (मदुरा) नगरी में इस संघ की स्थापना हुई मथुरा द्राविड़ देश में होने से इस संघ का नाम 'द्राविड़' संघ हुआ हैं तथा द्रमिल संघ इसका दूसरा नाम है तथा पुन्नाटसंघ कि जिसमें हरिवंश पुराण के कर्त्ता जिनसेनाचार्य हुए हैं वह भी द्राविड़ संघ का नामान्तर हैं। इस संघ में भी कई अंतर्भेद है क्योंकि वादीराजसूरि को द्राविड़ संघ के अन्तर्गत नंदि संघ की अरंगलि शाखा के आचार्य बतलाये हैं। इस संघ में कवि एवं तार्किक और शाब्दिक प्रसिद्ध वादिराजसूरि त्रैविद्य विद्येश्वर, श्रीपालदेव, रूपसिद्धि व्याकरण के कर्ता दयापाल मुनि जिनसेन वगैरह कई विद्वान हुए यह भी कहा जाता है कि तामील एवं कनड़ी साहित्य में इस संघ के बहुत ग्रन्थ मिलते हैं।

दर्शनसार ग्रंथ के कर्त्ता इस संघ की उत्पत्ति वि० सं० ५२५ में बतलाई है और पांच जैनाभासों में इस संघ की भी गणना की है। इस संघ की श्रद्धा और प्ररूपना मूलसंघ से नहीं मिलती हैं अतः कतिपय बातें यहां दर्ज करदी जाती हैं जो विद्यानन्दिने अपने ग्रन्थों में लिखी हैं।

१—अप्राशुक चना खाने में मुनि को दोष नहीं लगता है।

२—प्रायश्चित वगैरह के कई शास्त्रों को रद्दोबदल कर नये बना दिये हैं।

३—बीज मात्र में जीव नहीं होते हैं!

४—मुनियों को खड़े रह कर आहार करने की जरूरत नहीं है।

५—मुनियों के लिये प्रासुक अप्रासुक की क़ैद क्यों होनी चाहिये।

६—मुनियों के लिये सावद्य और गृहकल्पित दोष नहीं मानना चाहिये।

७—उसने लोगों से खेती वसति वाणिज्यादि करवाने का उपदेश देने अदोष बतला दिया था तथा कच्चा जल में भी जीव नहीं मान कर उसका उपयोग करने लग गया था इत्यादि तथा दिगम्बर ग्रन्थ कारों ने भी कई ग्रन्थों में इस विषय के लेख भी लिख दिया है +

उपरोक्त बातों के लिए निश्चयात्मिक तो जब ही कहा जा सकता है कि इस संघ वालों का बनाया हुआ यतिआचार या श्रावकाचार वगैरह ग्रन्थ उपलब्ध हो सकें और उन ग्रन्थों के अन्दर उपरोक्त बातों का प्रतिपादन किया हुआ मिले—

३—यापनीय संघ—इस संघ की स्थापना कल्याण नगर से विक्रम सं० ७०३ में हुई है कहा जाता है कि श्वेताम्बराचार्य श्रीकलस द्वारा इस संघ का प्रादुर्भाव हुआ है।

"कल्लाणे वर नयरे सत्तसए पंच उतरे जादे। जवनिय संघ भट्टो सिरि कलसादो हु सेवड़ दो॥"

शाकटायन व्याकरण कर्त्ता श्रुतकेवली देशीयाचार्य शाकटायन तथा पाल्यकीर्ति वगैरह इस संघ के

+ पाषाण स्फोटितं तोयं घटीयंत्रेण ताडितं। सद्यसन्तप्तवापीनां प्रासुकं जल मुच्यते ॥६३॥

[illegible]

मुहूर्त गालितं तोयं प्रासुकं प्रहर द्वयं। उष्णादेयामहोरात्र मात समुर्च्छितं तमवेत् ॥११६॥

"वृक्ष पर्णोपरी पतित्व यज्जलं मुन्यु परिपतितितप्रासुकं" ([illegible])

विलोडितं यत्र तत्र विक्षिप्तं वस्त्रादिगलितं जलं ॥ ([illegible])

विद्वानाचार्य थे। इस संघ के शकटायान नामक आचार्य ने स्त्रियों को मोक्ष और केवली आहार करने सिद्धि में छोटे-छोटे दो ग्रन्थों का निर्माण किया जिनको इस लेख के अन्दर उद्धृत कर दिये हैं।

४—काष्टासंघ—इस संघ की स्थापना - आदि पुराण के कर्ता जिनसेनाचार्य के गुरुभाई विनयसेन और विनयसेन का शिष्य कुमारसेन द्वारा हुई है कुमारसेन ने नन्दि तट नामक नगर में सन्यास धारण पर बाद में सन्यास पद से भ्रष्ट होकर दूसरे किसी के पास पुनः दीक्षा न लेकर उसने अपना अलग सं० स्थापन कर काष्टा संघ नाम रख दिया। और कुमारसेन के समय में ही यह संघ वागड़ प्रान्त में फैल गया था दर्शनसारग्रन्थ के कर्ता देवसेनाचार्य ने इस संघ की उत्पति का समय विक्रम सं० ७५३ का बतलाया है और इसको भी पांच जैनाभासों में गिना है—और कुमारसेनको मिथ्यात्वी तथा उन्मार्ग प्रवृतक बतलाया है। इस संघ की मान्यता दिगम्बर मत्त से भिन्न है उसका थोड़ा सा नमूना—

(१)— स्त्रियों को मुनि दीक्षा देने का विधान कर दिया।

(२)—क्षुल्लक यानि छोटे साधुओं को वीरचर्या (अतापनायोग) की आज्ञा देदी।

(३)—मयूर पिच्छी के स्थान गाय के वालों की पिच्छी रखने का विधान किया।

(४)—रात्रि भोजन पहलाव्रत की भावना माना जाता था जिसको छट्ठा अणुव्रत नाम का पृथक व्रत मानकर छट्ठा व्रत स्थापना किया।

(५)—आगम शास्त्र और प्रायश्चितादि नये ग्रन्थ बनाकर मिथ्यात्व फैलाया इस संघ में नन्दितट माथुर वागड़ और लाडवागड आदि कई भेद हैं पर कई लोग माथुर संघ को अलग भी मानते हैं।

५—माथुर संघ—इसका दूसरा नाम निः पिच्छी संघ भी है इस संघ के मुनि मयूर पिच्छी तथा गाय के पुच्छ के बालों की पिच्छी नहीं रखते हैं कई लोग इस संघ को काष्टा संघ की एक शाखा बतलाते हैं पर काष्टा संघ गाय के पुच्छ के बाल की पिच्छी रखते हैं अतः यह संघ अलग ही माना जाता है दर्शनसार के कर्त्ता देवसेन लिखते हैं कि काष्टा संघ के बाद २०० वर्षों से माथुर संघ की उत्पति हुई है और आचार्य रामसेन ने मथुरा में इस संघ की स्थापना की थी इस संघ की मान्यता है कि अपने संघ के आचार्य की कराई प्रतिष्टा वाली मूर्त्ति को वन्दन करना दूसरों के कराई मूर्त्ति को वन्दन नहीं करना इसी प्रकार अपने संघ के मुनियों को वन्दन करना दूसरों को नहीं यह एक ममत्व भाव का ही कारण है इस संघ में धर्म परीक्षा सुभाषित रत्नसंदोह आदि ग्रन्थों के कर्त्ता अमितगति आचार्य हुए हैं।

दिगम्बर समुदाय में उपरोक्त संघ प्राचीन समय में उत्पन्न हुए पर यह प्रथा वहाँ तक ही नहीं रह गई थी परन्तु अर्वाचीन समय में भी इनका प्रभाव जाहिर रहा है जैसे—

१—तारणपंथ—इस पन्थ के स्थापक एक तारण स्वामि नाम का साधु विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में हुए। जैसे श्वेताम्बर समुदाय में लोंकाशाह ने मूर्ति पूजा का निषेध कर अपना पन्थ चलाया था वैसे ही [illegible] में तारणस्वामि ने मूर्त्तिपूजा का विरोध कर नया पन्थ चलाया परन्तु तारणपन्थ में [illegible] की पुस्तकों [illegible] से पूजा करते हैं जिसमें श्री तारणस्वामि के बनाये हुए १४ ग्रन्थ हैं उनकी पूजा [illegible] किया करते हैं।

२—तेरहपन्थी — जब दिगम्बर समुदाय में भट्टारकों का और [illegible] बढ़ने लगा [illegible] [illegible] वि० सं० १६८३ के आस पास तेरहपन्थ नाम का एक नया पन्थ का प्रादुर्भाव

हुआ इस पन्थ में भट्टारकों का थोड़ा भी मान सन्मान नहीं है इतना कि क्यों पर परमेश्वर की मूर्त्तिकों प्रक्षाल केसर चन्दन की पूजा तथा पुष्पफल आदि का भी निषेध है।

३—वीसपन्थी—जो लोग भट्टारकों की पत्त में रहे वह वीसपन्थी कहलाये इस पन्थ में परमेश्वर की मूर्त्ति का पूजन प्रक्षाल जल चन्द्रन धूप दीप पुष्पफल से पूजा करते हैं।

४—गुमानपन्थी—इस पन्थ की उत्पति 'मोक्ष मार्ग प्रकाश' ग्रन्थ के कर्ता पं० टोडरमलजी के पुत्र गुमानीरामजी द्वारा हुई है इस पन्थ में जिनमन्दिरों में रात्रि में दीपक करने की तथा प्रक्षलादि करने की बिलकुल मनाई करते हैं अर्थात् मूर्त्ति के दर्शन करते हैं इस मत की उत्पति का समय वि० सं० १८१८ के आसपास का बतलाया जाता है।

५—तोतापन्थी—दिगम्बर आम्नय में एक तोतापन्थ नाम का भी पंथ है।

६—साढ़ सोलह पन्थी वीसपन्थी और तेरहपन्थी दोनों मिल कर एक साढ़ा सोलह पन्थ का पन्थ निकाला है पर यह अभी नागोर से आगे नहीं बढ़ सका—

इनके अलावा वर्तमान में भी कई मत भेद हैं परन्तु उनको संघ पन्थ न कहकर दल एवं पार्टियें कहते हैं शास्त्र छपाने के विषय में एक छपाने वाला दल दूसरा नहीं छपाने वाला दल। पुराणी रूढ़ियों को मानने वाली बाबू पार्टी और नया जमाना के सुधारक पंडित पार्टी इत्यादि।

जैसे श्वेताम्बर समुदाय में ओसवाल पोरवाल श्रीमालादि बहुत सी जातियाँ हैं इसी तरह दिगम्बर समुदाय में भी खंडेलवाल, बघेरवाल, नरसिंहपुरादि कई जातियें हैं जिनमें मुख्य जाति खंडेलवाल है इसको सरावगी भी कहते है प्रसंगोपात दिगम्बर जातियों की उत्पत्ति संक्षिप्त यहाँ लिख दी जाती है।

मत्सदेश में खंडेला नाम का एक नगर था वहाँ पर सूर्यवंशी खंडेलगिर राजा राज करता था एक समय देश भर में मरकी का भयंकर रोग उत्पन्न हुआ जिससे कई आदमी मर गये कई बीमार हो गये जिसको देख राजा को बहुत फिक्र हुआ अतः राजा ने बहुत से उपाय किये पर शान्ति नहीं हुई। तब राजा ने ब्राह्मणों को बुला कर पूछा कि भूदेवों! देश भर में रोग बढ़ता जा रहा है मनुष्य एवं पशु मर रहे हैं अतः इसकी शान्ति के लिये कुछ उपाय करना चाहिये" यह तो हम पहले ही लिख आये हैं कि ब्राह्मण लोग कोई भी छोटा बड़ा कार्य क्यों न हो सिवाय यज्ञ के उनके पास कोई उपाय ही नहीं था अतः भूदेवों ने राजा को कहा कि हे राजन्! नास्तिक जैनों ने यज्ञ करना निषेध करने से नगर एवं ग्राम रक्षक देव को पायमान होने से ही रोगोत्पति हुई हैं इसलिए यदि आप जनता की शान्ति करनी चाहें तो एक बृहद् यज्ञ करवा कर बत्तीस लक्षण संयुक्त पुरुष की बली देकर सब देवताओं को संतुष्ट करें ताकि वह शान्त हो कर दुनिया में शान्ति कर देगा। हे नरेन्द्र! केवल एक आप ही यज्ञ नहीं करवाते हो पर पूर्व जमाना में बहुत से राजा महाराजाओं ने यज्ञ करवा कर जनता की शान्ति की है शास्त्रों में अनेक प्रकार के यज्ञों का विधान है जैसे गोमेधयज्ञ गजमेधयज्ञ अश्वमेधयज्ञ अजामेधयज्ञ नरमेधयज्ञ इत्यादि आप अपनी एवं जनता की शान्ति चाहते हो तो बिना विलम्ब नरमेधयज्ञ करवाइये? राजा अपने भद्रिक परिणामों एवं जनता की शान्ति के लिए ब्राह्मणों के कहने को स्वीकार कर नरमेधयज्ञ करवाने का निश्चय कर लिया बस फिर तो था ही क्या ब्राह्मणों के घर-घर में खुशियें मनाई जाने लगी कारण इस कार्य में ब्राह्मणों का खूब स्वार्थ एवं जिन्दगी की आजीविका थी।

शुभ मुहूर्त में ब्राह्मणों ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया बहुत से निरापराधि मूक प्राणियों को बली लिए एकत्र किये पर यह तो था नरमेध यज्ञ इसके लिए तो किसी लक्षण संयुक्त मनुष्य की आवश्यकता थी राजा के आज्ञाकारी आदमी एक ऐसे पुरुप की तलाश में सर्वत्र घूम रहे थे फिरते २ वे स्मशानों की ओर चले गये वहाँ एक दिगम्बर जैन मुनि ध्यान में खड़ा था उसको योग्य समझ कर वे आदमी उस मुनि को ही पकड़ कर यज्ञ शाला में ले आये जिसको देख कर ब्राह्मणों ने बड़ी खुशी मनाई कारण यज्ञ निपेध करने वाले का ही यज्ञ में बली दी जाय इससे बढ़ कर ब्राह्मणों को और क्या खुशी होती है।

जैन मुनि ने वहाँ का रंग ढंग देख कर जान लिया कि इस यज्ञ में मेरी बली होने वाली है पर उस ब्राह्मणों के साम्राज्य में विचारा वह मुनि कर भी तो क्या सकता था कारण धर्म के रक्षक राजा होते है तब खुद राजा ही इस प्रकार का अत्याचार करे तो फिर रक्षा करने वाला ही कौन ? मुनि ने विचार किया कि केवल मेरे लिये ही यह कार्य नहीं है पर पूर्व जमाने में ऐसे अनेक कार्य बन चुके हैं जैसे गजसुकमाल मुनि के सिर पर अग्नि के अंगारे ब्राह्मण ने ही रखा था. खंदक मुनि की खाल भी ब्राह्मणों ने उतारी थी खंदकाचार्य के पांच सौ मुनियों को ब्राह्मणों ने घानी में डालकर पिला दिये थे और निमूची ब्राह्मण ने जैन मुनियों को देश पार हो जाने की आज्ञा दे दी थी इत्यादि। पर इस प्रकार के अत्याचारों के सामने भी जैनमुनियों ने समभाव रखकर अपनी सहन शीलता का परिचय दिया था आज मेरी कसोटी का समय है उन महापुरुषों का अनुसरण मुझे भी करना चाहिये बस ! मुनि अपनी आलोचना प्रतिक्रमण कर कर्मों से युद्ध करने को केसरिया करके तैयार हो गया। बाद, उन निर्दय दैत्यों यानी ब्राह्मणों ने उन महर्षि मुनि की बली के नाम पर ज्वाजल्यमान अग्नि में डाल कर भस्म भूत कर डाला परन्तु लोही का खरड़ा हुआ कपड़ा लोही से धोने से साफ थोड़ा ही होता है वह तो डबल रक्त रंजित हो जाता है यही हाल ब्राह्मणों का हुआ क्योंकि पापोदय से तो भयंकर रोग पैदा हुआ था और उसकी शान्ति के लिये एक महान तपस्वी और जगत का उद्धार करने वाले मुनि को बुरी हालत से मार डालना यह तो महा घातकी पातक था इससे तो रोग ने और भी भयंकर रूप धारण कर जनता में त्राहि २ मचादी राजा से उस त्रास हालत को देखी नहीं गई जब ब्राह्मणों को बुलाकर राजा ने कहा तो ब्राह्मणों का तो स्वार्थ सिद्ध होने से उनके तो शान्ति हो ही गई थी ब्राह्मणों ने कहा 'हरेच्छा' ईश्वर की यही इच्छा है इनके अलावा विचारे ब्राह्मण कह भी तो क्या सकते [illegible] वे ब्राह्मण तथा उनका कुटुम्ब भी तो रोग के कवलिये बन रहे थे।

एक दिन राजा [illegible] मुनिहिंसा की फिक्र करता हुआ रात्रि में सो रहा था अर्द्ध निद्रावस्था में राजा क्या देखता है कि वह नग्न मुनि राजा के पास आया और कहा कि राजन् ! तूने बड़ा भारी अन्याय किया है इस अन्याय का फल तुमको और ब्राह्मणों को नरक में भोगना पड़ेगा चल मैं तुझे नरक दिखा देता हूँ [illegible] को नरक में ले गया तो वहाँ अग्नि के कुण्ड जल रहे हैं यम लोग पापिष्ट जीवों को [illegible] रहे हैं इत्यादि घोर वेदना को देख राजा थरथर कांपने लग गया। फिर [illegible] राजा ने मुनि से दीन स्वर से प्रार्थना की कि हे मुनि ! मैंने ब्राह्मणों के कहने से [illegible] [illegible] इसका फल सिवाय नरक के और कुछ नहीं मिलता है पर आप [illegible] कृपा कर मुझे ऐसा रास्ता बतलावें कि मैं इस पाप से मुक्त होकर [illegible]

इस पर मुनि ने कहा राजन् ! यदि मैं चाहूं तो [illegible] ब्राह्मणों सहित [illegible]

मेरा साधुधर्म की आराधना के कारण स्वयं मरना स्वीकार कर लिया उस धर्म के प्रभाव से ही मैं स्वर्ग में देव यानि को प्राप्त हुआ हूँ यदि आप उस पाप से मुक्त होना चाहते हो तो कल आपके वहां जिनसेन नामक आचार्य ५०० साधुओंके साथ पधारेंगे। आप सब लोग उनका सन्मान एवं सत्कार कर तथा व्याख्यान सुन जैनधर्म एवं अहिंसापरमोधर्म को स्वीकार कर लेना हिंसासे किये हुए कर्म अहिंसा से ही छूटते हैं। हे राजन्! जैनधर्म पवित्र एवं पतितों को पावन और अधर्म्मों का उद्धार करने वाला धर्म है इत्यादि कह कर देवता तो अदृश्य हो गया बाद राजा की आंखें खुल गई सावचेत हो कर राजा सोचने लगा कि आज यह कैसा स्वप्न आया है क्या मैंने स्वप्न में देखा वह सब सत्य है ? यदि सत्य ही है तो मेरी क्या गति होगी ? वास्तव में मैंने बड़ा भारी अनर्थ किया है एक साधारण जीव को मारना भी पाप है तो मैंने एक जगत्उद्धारक महात्मा को मरवा डाला है इससे सिवाय नरक के और मेरी क्या गति हो सकेगी ? राजा ने सोचा कि पहले तो मुझे रोग की शान्ति का उपाय करना चाहिये। अतः राजा ने ८४ ग्रामों के लोगों को आमन्त्रण करके खंडेला नगर में बुलाये और शान्ति के इच्छुक लोग तत्काल आ भी गये।

इधर से आचार्य जनसेन अपने ५०० शिष्यों के साथ भ्रमण करते हुए खंडेला नगर की ओर पधार गये। जब राजा ने सुना कि जैनाचार्य उद्यान में पधार गये हैं तब उसको स्वप्ने की बात याद आ गई जो मुनिने कही थी राजा इसको ही शान्ति का कारण समझ कर आये हुए ८४ ग्रामों के लोगों के साथ चल कर आचार्य श्री के पास जा कर वन्दन के पश्चात् प्रार्थना की कि हे प्रभो ! मैंने अज्ञान के वश परमार्थ को न समझ कर एक निर्ग्रन्थ मुनि की हिंसा करवा डाली है उसका कूटक फल परभव में तो मिलेगा ही पर इस भव में तो हाथोंहाथ मिल रहा है रोग में खूब वृद्धि हो रही है एक मेरे कारण यह ८४ ग्रामों के लोग दुःख पा रहे हैं पूज्यवर ! आप दया के अवतार, करुणा के समुद्र और सब जीवों के प्रति वात्सल्य भाव रखने वाले हैं अतः आप कृपा कर हम सब लोगों को जीवन दान दिलावें इत्यादि।

आचार्य श्री ने राजादि उपस्थित जनता को उपदेश दिया कि हे भव्यो ! जीव मात्र का कर्तव्य है कि बड़ा से लगा कर छोटा जीवों की रक्षा करे क्योंकि जीव के धन माल राजपाटादि सब सामान छीन लेने पर जितना दुःख नहीं होता है इतना दुःख प्राण हरण में होता है जिसमें संयमी मुनि के प्राण हरण करना इससे तो सिवाय नरक के और क्या गति हो सकती है इत्यादि विस्तार से उपदेश दिया और अन्त में फरमाया कि अब आप इस पाप से तथा रोग से मुक्त होना चाहते हो तो आपके लिये एक ही उपाय है कि आप पवित्र जैनधर्म को स्वीकार कर इसकी ही आराधना एवं प्रचार करो। बस, फिर तो देरी ही क्या थी राजा खंडेलगिरी के साथ ८४ ग्रामों के लोग जो वहां उपस्थित थे सबने बड़ी खुशी से जैनधर्म स्वीकार कर लिया। बाद आचार्य श्री ने उनको धर्म की विधि विधान बतलाते हुए तीर्थंकर भगवान की मूर्ति का स्नात्र वगैरह का उपदेश दिया उन लोगों ने जैन मंदिरों में जाकर स्नात्र कर प्रक्षाल का जल अपने अपने घरों में तथा ८४ ग्रामों वाले उस जल को अपने ग्रामों में ले जाकर सर्वत्र छांटने से रोग की शान्ति हो गई जिससे उन लोगों को धर्म पर और भी दृढ़ विश्वास हो गया।

उस समय ८४ ग्रामों के लोगों ने जैनधर्म को स्वीकार किया था अतः उन समूह की चौरासी जातियें बन गई इसमें कई तो ग्रामों के नाम से कई प्रसिद्ध पुरुषों के नाम से जिसमें जो ग्राम का मुख्या था उसका नाम अमेश्वर रखा गया था उन ८४ ग्राम से ८४ जातियें बन गई जिन्हों का नाम इस प्रकार है —

शुभ मुहूर्त में ब्राह्मणों ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया बहुत से निरापराधि मूक् प्राणियों को लिए एकत्र किये पर यह तो था नरमेध यज्ञ इसके लिए तो किसी लक्षण संयुक्त मनुष्य की [illegible] थी राजा के आज्ञाकारी आदमी एक ऐसे पुरुष की तलाश में सर्वत्र घूम रहे थे फिरते २ वे स्मशानों ओर चले गये वहाँ एक दिगम्बर जैन मुनि ध्यान में खड़ा था उसको योग्य समझ कर वे आदमी उस को ही पकड़ कर यज्ञ शाला में ले आये जिसको देख कर ब्राह्मणों ने बड़ी खुशी मनाई कारण यज्ञ निषेध करने वाले का ही यज्ञ में बली दी जाय इससे बढ़ कर ब्राह्मणों को और क्या खुशी होती है।

जैन मुनि ने वहाँ का रंग ढंग देख कर जान लिया कि इस यज्ञ में मेरी बली होने वाली है उस ब्राह्मणों के साम्राज्य में विचारा वह मुनि कर भी तो क्या सकता था कारण धर्म के रक्षक राजा है तब खुद राजा ही इस प्रकार का अत्याचार करे तो फिर रक्षा करने वाला ही कौन ? मुनि ने वि[illegible] किया कि केवल मेरे लिये ही यह कार्य नहीं है पर पूर्व जमाने में ऐसे अनेक कार्य बन चुके हैं जैसे गजसु[illegible] मुनि के सिर पर अग्नि के अंगारे ब्राह्मण ने ही रखा था, खंदक मुनि की खाल भी ब्राह्मणों ने उतारी खंदकाचार्य के पांच सौ मुनियों को ब्राह्मणों ने घानी में डालकर पिला दिये थे और निमूची ब्राह्मण ने [illegible] मुनियों को देश पार हो जाने की आज्ञा दे दी थी इत्यादि। पर इस प्रकार के अत्याचारों के सामने भी जैनमुनियों ने समभाव रखकर अपनी सहन शीलता का परिचय दिया था आज मेरी कसोटी का समय है उन महापुरुषों का अनुसरण मुझे भी करना चाहिये बस ! मुनि अपनी आलोचना प्रतिक्रमण कर कर्मों से यु[illegible] करने को केसरिया करके तैयार हो गया। बाद, उन निर्दय दैत्यों यानी ब्राह्मणों ने उन महर्षि मुनि को धर्म के नाम पर ज्वाजल्यमान अग्नि में डाल कर भस्म भूत कर डाला परन्तु लोही का खरड़ा हुआ कपड़ा लोही से धोने से साफ थोड़ा ही होता है वह तो डबल रक्त रंजित हो जाता है यही हाल ब्राह्मणों का हुआ क्योंकि पापोदय से तो भयंकर रोग पैदा हुआ था और उसकी शान्ति के लिये एक महान तपस्वी जो जगत का उद्धार करने वाले मुनि को बुरी हालत से मार डालना यह तो महा घातकी पातक था इससे तो रोग ने और भी भयंकर रूप धारण कर जनता में त्राहि २ मचादी राजा से इस त्रास हालत को देखी नहीं गई जब ब्राह्मणों को बुलाकर राजा ने कहा तो ब्राह्मणों का तो स्वार्थ सिद्ध होने से उनके तो शान्ति हो ही गई थी ब्राह्मणों ने कहा 'हरेन्द्र' ईश्वर की यही इच्छा है इनके अलावा विचारे ब्राह्मण कह भी तो क्या सकते ब्राह्मणादि वे ब्राह्मण तथा उनका कुटुम्ब भी तो रोग के कवलिये बन रहे थे।

एक दिन राजा मदनसेन मुनिहिंसा की फिक्र करता हुआ रात्रि में सो रहा था अर्द्ध निद्रावस्था में राजा क्या देखता है कि वह नग्न मुनि राजा के पास आया और कहा कि राजन् ! तूने बड़ा भारी अन्याय किया है इस अन्याय का फल तुमको और ब्राह्मणों को नरक में भोगना पड़ेगा चल मैं तुझे नरक दिखा देता हूँ राजा को नरक में ले गया तो वहां अग्नि के कुण्ड जल रहे हैं यम लोग पापीष्ट जीवों को जबरन अग्नि में डाल रहे हैं इत्यादि घोर वेदना को देख राजा थरथर कांपने लग गया। फिर वापिस अपने स्थान पर आया तो राजा ने मुनि से दीन स्वर से प्रार्थना की कि हे मुनि ! मैंने ब्राह्मणों के चक्र में पड़ कर अज्ञानता से बहुत [illegible] कर डाला है इसका फल सिवाय नरक के दूसरा ही नहीं सकता है पर आप परोपकारी महात्मा हैं कृपाकर मुझे ऐसा रास्ता बतलावें कि मैं इस पाप से मुक्त होकर अखंड ध्यान आने [illegible] इस पर मुनि ने कहा राजन् ! यदि मैं चाहता तो उसी समय ब्राह्मणों सहित नगर को नष्ट कर [illegible]

मेरा साधुधर्म की आराधना के कारण स्वयं मरना स्वीकार कर लिया उस धर्म के प्रभाव से ही मैं स्वर्ग में देव यानि को प्राप्त हुआ हूँ यदि आप उस पाप से मुक्त होना चाहते हो तो कल आपके वहां जिनसेन नामक आचार्य ५०० साधुओंके साथ पधारेंगे। आप सब लोग उनका सन्मान एवं सत्कार कर तथा व्याख्यान सुन जैनधर्म एवं अहिंसापरमोधर्म को स्वीकार कर लेना हिंसासे किये हुए कर्म अहिंसा से ही छूटते हैं। हे राजन् ! जैनधर्म पवित्र एवं पतितों को पावन और अधर्म्मों का उद्धार करने वाला धर्म है इत्यादि कह कर देवता तो अदृश्य हो गया बाद राजा की आंखें खुल गई सावचेत हो कर राजा सोचने लगा कि आज यह कैसा स्वप्न आया है क्या मैंने स्वप्न में देखा वह सब सत्य है ? यदि सत्य ही है तो मेरी क्या गति होगी ? वास्तव में मैंने बड़ा भारी अनर्थ किया है एक साधारण जीव को मारना भी पाप है तो मैंने एक जगत्उद्धारक महात्मा को मरवा डाला है इसके सिवाय नरक के और मेरी क्या गति हो सकेगी ? राजा ने सोचा कि पहले तो मुझे रोग की शान्ति का उपाय करना चाहिये। अतः राजा ने ८४ ग्रामों के लोगों को आमन्त्रण करके खंडेला नगर में बुलाये और शान्ति के इच्छुक लोग तत्काल आ भी गये।

इधर से आचार्य जनसेन अपने ५०० शिष्यों के साथ भ्रमण करते हुए खंडेला नगर की ओर पधार गये। जब राजा ने सुना कि जैनाचार्य उद्यान में पधार गये हैं तब उसको स्वप्ने की बात याद आ गई जो मुनिने कही थी राजा इसको ही शान्ति का कारण समझ कर आये हुए ८४ ग्रामों के लोगों के साथ चल कर आचार्य श्री के पास जा कर वन्दन के पश्चात् प्रार्थना की कि हे प्रभो ! मैंने अज्ञान के वश परमार्थ को न समझ कर एक निर्ग्रन्थ मुनि की हिंसा करवा डाली है उसका कूटक फल परभव में तो मिलेगा ही पर इस भव में तो हाथोंहाथ मिल रहा है रोग में खूब वृद्धि हो रही है एक मेरे कारण यह ८४ ग्रामों के लोग दुःख पा रहे हैं पूज्यवर ! आप दया के अवतार, करुणा के समुद्र और सब जीवों के प्रति वात्सल्य भाव रखने वाले हैं अतः आप कृपा कर हम सब लोगों को जीवन दान दिलावें इत्यादि।

आचार्य श्री ने राजादि उपस्थित जनता को उपदेश दिया कि हे भव्यो ! जीव मात्र का कर्तव्य है कि बड़ा से लगा कर छोटा जीवों की रक्षा करे क्योंकि जीव के धन माल राजपाटादि सब सामान छीन लेने पर जितना दुःख नहीं होता है इतना दुःख प्राण हरण में होता है जिसमें संयमी मुनि के प्राण हरण करना इससे तो सिवाय नरक के और क्या गति हो सकती है इत्यादि विस्तार से उपदेश दिया और अन्त में फरमाया कि अब आप इस पाप से तथा रोग से मुक्त होना चाहते हो तो आपके लिये एक ही उपाय है कि आप पवित्र जैनधर्म को स्वीकार कर इसकी ही आराधना एवं प्रचार करो। बस, फिर तो देरी ही क्या थी राजा खंडेलगिरी के साथ ८४ ग्रामों के लोग जो वहां उपस्थित थे सबने बड़ी खुशी से जैनधर्म स्वीकार कर लिया। बाद आचार्य श्री ने उनको धर्म की विधि विधान बतलाते हुए तीर्थंकर भगवान की मूर्ति का स्नात्र वगैरह का उपदेश दिया उन लोगों ने जैन मंदिरों में जाकर स्नात्र कर प्रक्षाल का जल अपने अपने घरों में तथा ८४ ग्रामों वाले उस जल को अपने ग्रामों में ले जाकर सर्वत्र छांटने से रोग की शान्ति हो गई जिससे उन लोगों को धर्म पर और भी दृढ़ विश्वास हो गया।

उस समय ८४ ग्रामों के लोगों ने जैनधर्म को स्वीकार किया था अतः उन समूह की चौरासी जातियें बन गई इसमें कई तो ग्रामों के नाम से कई प्रसिद्ध पुरुषों के नाम से जिसमें जो ग्राम का मुख्या था उसका नाम ग्रामेश्वर रखा गया था उन ८४ ग्राम से ८४ जातियें बन गई जिन्हों का नाम इस प्रकार है—

शुभ मुहूर्त में ब्राह्मणों ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया बहुत से निरापराधि मूक् प्राणियों को लिए एकत्र किये पर यह तो था नरमेध यज्ञ इसके लिए तो किसी लक्षण संयुक्त मनुष्य की थी राजा के आज्ञाकारी आदमी एक ऐसे पुरुष की तलाश में सर्वत्र घूम रहे थे फिरते २ वे श्मशान की ओर चले गये वहाँ एक दिगम्बर जैन मुनि ध्यान में खड़ा था उसको योग्य समझ कर वे आदमी उस को ही पकड़ कर यज्ञ शाला में ले आये जिसको देख कर ब्राह्मणों ने बड़ी खुशी मनाई कारण यज्ञ निषेध करने वाले का ही यज्ञ में बली दी जाय इससे बढ़ कर ब्राह्मणों को और क्या खुशी होती है।

जैन मुनि ने वहाँ का रंग ढंग देख कर जान लिया कि इस यज्ञ में मेरी बली होने वाली है उस ब्राह्मणों के साम्राज्य में विचारा वह मुनि कर भी तो क्या सकता था कारण धर्म के रक्षक राजा है तब खुद राजा ही इस प्रकार का अत्याचार करे तो फिर रक्षा करने वाला ही कौन ? मुनि ने वि किया कि केवल मेरे लिये ही यह कार्य नहीं है पर पूर्व जमाने में ऐसे अनेक कार्य बन चुके हैं जैसे मुनि के सिर पर अग्नि के अंगारे ब्राह्मण ने ही रखा था, खंदक मुनि की खाल भी ब्राह्मणों ने उतारी खंदकाचार्य के पांच सौ मुनियों को ब्राह्मणों ने घानी में डालकर पिला दिये थे और निमूची ब्राह्मण ने मुनियों को देश पार हो जाने की आज्ञा दे दी थी इत्यादि। पर इस प्रकार के अत्याचारों के सामने भी जैनमुनियों ने समभाव रखकर अपनी सहन शीलता का परिचय दिया था आज मेरी कसोटी का समय उन महापुरुषों का अनुसरण मुझे भी करना चाहिये बस ! मुनि अपनी आलोचना प्रतिक्रमण कर कर्मों से करने को केसरिया करके तैयार हो गया। बाद, उन निर्दय दैत्यों यानी ब्राह्मणों ने उन महर्षि मुनि को बली के नाम पर ज्वाजल्यमान अग्नि में डाल कर भस्म भूत कर डाला परन्तु लोही का खरड़ा हुआ कपड़ा लोही से धोने से साफ थोड़ा ही होता है वह तो डबल रक्त रंजित हो जाता है यही हाल ब्राह्मणों का हुआ क्योंकि पापोदय से तो भयंकर रोग पैदा हुआ था और उसकी शान्ति के लिये एक महान तपस्वी जो जगत का उद्धार करने वाले मुनि को बुरी हालत से मार डालना यह तो महा घातकी पातक था इससे तो रोग ने और भी भयंकर रूप धारण कर जनता में त्राहि २ मचादी राजा से इस त्रास हालत को देखी नहीं गई जब ब्राह्मणों को बुलाकर राजा ने कहा तो ब्राह्मणों का तो स्वार्थ सिद्ध होने से उनके तो शान्ति हो ही गई थी ब्राह्मणों ने कहा 'हरेच्छ' ईश्वर की यही इच्छा है इनके अलावा विचारे ब्राह्मण कह भी तो क्या सकते भाग्यवशात् ये ब्राह्मण तथा उनका कुटुम्ब भी तो रोग के कवलिये बन रहे थे।

एक दिन राजा मदनसेन मुनिहिंसा की फिक्र करता हुआ रात्रि में सो रहा था अर्द्ध निद्रावस्था में राजा क्या देखता है कि वह नग्न मुनि राजा के पास आया और कहा कि राजन् ! तूने बड़ा भारी अन्याय किया है इस अन्याय का फल तुमको और ब्राह्मणों को नरक में भोगना पड़ेगा चल मैं तुझे नरक दिखा देता हूँ राजा को नरक में ले गया तो वहां अग्नि के कुण्ड जल रहे हैं यम लोग पापीष्ट जीवों को जबरन अग्नि में डाल रहे हैं इत्यादि घोर वेदना को देख राजा थरथर कांपने लग गया। फिर वापिस अपने स्थान पर आया तो राजा ने मुनि से दीन स्वर से प्रार्थना की कि हे मुनि ! मैंने ब्राह्मणों के पक्ष में पड़ कर अज्ञानता से बड़ा पातक कर डाला है इसका फल सिवाय नरक के हो ही नहीं सकता है पर आप परोपकारी महात्मा हैं कृपाकर मुझे ऐसा रास्ता बतलावें कि मैं इस पाप से मुक्त होकर अच्छे स्थान जाने जैसा कार्य कर सकूं। इस पर मुनि ने कहा राजन् ! यदि मैं चाहता तो उसी समय ब्राह्मणों सहित नगर को नष्ट कर डालता पर

मेरा साधुधर्म की आराधना के कारण स्वयं मरना स्वीकार कर लिया उस धर्म के प्रभाव से ही मैं स्वर्ग में देव यानि को प्राप्त हुआ हूँ यदि आप उस पाप से मुक्त होना चाहते हो तो कल आपके वहाँ जिनसेन नामक आचार्य ५०० साधुओंके साथ पधारेंगे। आप सब लोग उनका सन्मान एवं सत्कार कर तथा व्याख्यान सुन जैनधर्म एवं अहिंसापरमोधर्म को स्वीकार कर लेना हिंसासे किये हुए कर्म अहिंसा से ही छूटते हैं। हे राजन् ! जैनधर्म पवित्र एवं पतितों को पावन और अधर्म्मों का उद्धार करने वाला धर्म है इत्यादि कह कर देवता तो अदृश्य हो गया बाद राजा की आंखें खुल गई सावचेत हो कर राजा सोचने लगा कि आज यह कैसा स्वप्न आया है क्या मैंने स्वप्न में देखा वह सब सत्य है ? यदि सत्य ही है तो मेरी क्या गति होगी ? वास्तव में मैंने बड़ा भारी अनर्थ किया है एक साधारण जीव को मारना भी पाप है तो मैंने एक जगत्उद्धारक महात्मा को मरवा डाला है इससे सिवाय नरक के और मेरी क्या गति हो सकेगी ? राजा ने सोचा कि पहले तो मुझे रोग की शान्ति का उपाय करना चाहिये। अतः राजा ने ८४ ग्रामों के लोगों को आमन्त्रण करके खंडेला नगर में बुलाये और शान्ति के इच्छुक लोग तत्काल आ भी गये।

इधर से आचार्य जनसेन अपने ५०० शिष्यों के साथ भ्रमण करते हुए खंडेला नगर की ओर पधार गये। जब राजा ने सुना कि जैनाचार्य उद्यान में पधार गये हैं तब उसको स्वप्ने की बात याद आ गई जो मुनिने कही थी राजा इसको ही शान्ति का कारण समझ कर आये हुए ८४ ग्रामों के लोगों के साथ चल कर आचार्य श्री के पास जा कर वन्दन के पश्चात् प्रार्थना की कि हे प्रभो ! मैंने अज्ञान के वश परमार्थ को न समझ कर एक निर्ग्रन्थ मुनि की हिंसा करवा डाली है उसका कुटक फल परभव में तो मिलेगा ही पर इस भव में तो हाथोंहाथ मिल रहा है रोग में खूब वृद्धि हो रही है एक मेरे कारण यह ८४ ग्रामों के लोग दुःख पा रहे हैं पूज्यवर ! आप दया के अवतार, करुणा के समुद्र और सब जीवों के प्रति वात्सल्य भाव रखने वाले हैं अतः आप कृपा कर हम सब लोगों को जीवन दान दिलावें इत्यादि।

आचार्य श्री ने राजादि उपस्थित जनता को उपदेश दिया कि हे भव्यो ! जीव मात्र का कर्तव्य है कि बड़ा से लगा कर छोटा जीवों की रक्षा करे क्योंकि जीव के धन माल राजपाटादि सब सामान छीन लेने पर जितना दुःख नहीं होता है इतना दुःख प्राण हरण में होता है जिसमें संयमी मुनि के प्राण हरण करना इससे तो सिवाय नरक के और क्या गति हो सकती है इत्यादि विस्तार से उपदेश दिया और अन्त में फरमाया कि अब आप इस पाप से तथा रोग से मुक्त होना चाहते हो तो आपके लिये एक ही उपाय है कि आप पवित्र जैनधर्म को स्वीकार कर इसकी ही आराधना एवं प्रचार करो। बस, फिर तो देरी ही क्या थी राजा खंडेलगिरी के साथ ८४ ग्रामों के लोग जो वहां उपस्थित थे सबने बड़ी खुशी से जैनधर्म स्वीकार कर लिया। बाद आचार्य श्री ने उनको धर्म की विधि विधान बतलाते हुए तीर्थंकर भगवान की मूर्ति का स्नात्र वगैरह का उपदेश दिया उन लोगों ने जैन मंदिरों में जाकर स्नात्र कर प्रक्षाल का जल अपने अपने घरों में तथा ८४ ग्रामों वाले उस जल को अपने ग्रामों में ले जाकर सर्वत्र छांटने से रोग की शान्ति हो गई जिससे उन लोगों को धर्म पर और भी दृढ़ विश्वास हो गया।

उस समय ८४ ग्रामों के लोगों ने जैनधर्म को स्वीकार किया था अतः उन समूह की चौरासी जातियें बन गई इसमें कई तो ग्रामों के नाम से कई प्रसिद्ध पुरुषों के नाम से जिसमें जो ग्राम का मुख्या था उसका नाम श्रमेश्वर रखा गया था उन ८४ ग्राम से ८४ जातियें बन गई जिन्हों का नाम इस प्रकार है—

सं०	ग्राम	जाति
१	खंडेला नगर से	खंडेलवाल शाह
२	पाटणी ग्राम से	पाटणी जाति
३	भैंसाणी ग्राम से	भैंसा जाति
४	पहाडी ग्राम से	पहाड्या जाति
५	झाझरी ग्राम से	झाझरिया ,,
६	गंगवाली ग्राम से	गंगवाल ,,
७	पापड़ी ग्राम से	पापड़ीवाल ,,
८	दोसा ग्राम से	दोसी ,,
९	सोठा ग्राम से	सेठी ,,
१०	गोधाणी ग्राम से	गोधा ,,
११	चंदला ग्राम से	चांदूवाल ,,
१२	मिठड़िया ,,	मिठड़िया ,,
१३	दरड़ा ,,	दरडोया ,,
१४	गोदण ,,	गदइया ,,
१५	भूचड़ा ,,	भूंच ,,
१६	वजाणी ,,	वज ,,
१७	वजवासी ,,	वजवासिया ,,
१८	राहोली ,,	राहुका ,,
१९	पाटड़ी ,,	पाटोदा ,,
२०	पादणी ,,	पादोड़ा ,,
२१	सोनी ,,	सोनियाण ,,
२२	बिलाला ,,	बिलाला ,,
२३	बिनायकी ,,	बिनायक्या ,,
२४	बाकली ,,	बाकलीवाल ,,
२५	कांसली ,,	कासलीवाल ,,
२६	बरली ,,	बरलाला ,,
२७	[illegible] ,,	[illegible] ,,
२८	[illegible] ,,	[illegible] ,,
२९	दरडो ग्राम से	दरडावत
३०	भंडशाली ,,	भंडशाली ,,
३१	लुहार ,,	लुहारा ,,
३२	लिंगीया ,,	लिंगिया ,,
३३	छवड़ा ,,	छवड़ा ,,
३४	कुलवाड़ी ,,	काला ,,
३५	वाहुली ,,	बोहरा ,,
३६	टीगाणी ,,	टीगा ,,
३७	वैदिया ,,	वैद ,,
३८	कटोतिया ,,	कटोतिया ,,
३९	झाझरी ,,	झांझरी ,,
४०	चौदर ,,	चौधरी ,,
४१	पाटोल ,,	पाटोला ,,
४२	गोदड़ा ,,	गोदड़िया ,,
४३	निगोता ,,	निगोतिया ,,
४४	अनोपडी ,,	अनोपिया ,,
४५	साखोनी ,,	साखूणिया ,,
४६	पागुंका ,,	पांगलिया ,,
४७	भूतड़ा ,,	भूसाणिया ,,
४८	पावोली ,,	पितलिया ,,
४९	वनमाली ,,	वनमाला ,,
५०	आकोडी ,,	अरडक ,,
५१	रावनी ,,	रावलिया ,,
५२	मादोती ,,	मौदी ,,
५३	कोकणोत ,,	कोकणोजा ,,
५४	जुगड़ी ,,	जुग राज्या ,,
५५	मूलोटी ,,	मूल राज्या ,,
५६	डाहड ,,	डाहड्या ,,
५७	सरवाड़ी ग्राम से	सवडिया
५८	निरपाल ,,	निरपोलिया
५९	निरगोदा ,,	निरगोदा
६०	चरड ,,	चडकिया
६१	सरपति ,,	सरपतिया
६२	बोरा खेड़ी ,,	बोर खेड़िया
६३	कुलभाणी ,,	कुलभाणिया
६४	गोदड़ा ,,	गोधी
६५	दुकड़ा ,,	दुकड़ा
६६	निरपाति ,,	निरपालिया ,,
६७	लटवाड़ा ,,	लाटीवाल ,
६८	घेदला ,,	घेदोलिया ,,
६९	जलवाण ,,	जलवाणिया ,,
७०	भूताल ,,	भूताला ,,
७१	राजभदारा ,,	राजभदा ,,
७२	छेत्रपाल ,,	छेत्रपालिया ,,
७३	लोहट ,,	लोहटिया ,,
७४	मांगड ,,	मांगडिया ,,
७५	मोमासर ,,	मोमाया ,,
७६	मसवाड़ा ,,	मूसालिया ,,
७७	अहंकारा ,,	अहंकारिया ,,
७८	हंसावली ,,	[illegible]
७९	चौवर ,,	[illegible] ,,
८०	[illegible] ,,	[illegible]
८१	[illegible] ,,	[illegible]
८२	[illegible] ,,	[illegible]
८३	[illegible] ,,	[illegible]
८४	[illegible] ,,	[illegible] ,,

इस प्रकार [illegible] हैं जिनमें कुछ नाम यहां [illegible] है [illegible] है [illegible] [illegible]

पुस्तक में इन ८४ जाति के नाम छन्दवद्ध कविता में दिया है कविता में छन्द भंग हैं पर मैं यहाँ ज्यों का त्यों दे देता हूँ—

"चोधरी फीरोड़िया भंशाली वनमाली वंबा जुगराज्य गौतवंशी मोदी अजमेरा है।
पाटणिया अनुपड़िया भीमड़िया भैसा वड़िया राजेंद्रा सरवालिया भूँच ऊकारा है।
पिंगुलिया पितलिया भूतलिया अरड़क आवरिया सुरपतिया हरदिया मालसरा है।
साखुणिया दादड़िया क्षेत्रपाला कोकराज हुकड़िया कुलभाजा पीवा अरु संगारा है।
शाह पाटशी दोसी सेठी वैद कटारिया वज गंगवाल।
भैसा भोरिया मोहनिया मादिया सोनी अरु दाकलीवाल ॥
सांगाणी गोदा लोवडिया दर दोदा अरु फिर कासलीवाल।
पाटोदी पहाड़िया विनायकिया लोहड़िया डुंगिया चाडुवाल ॥
संवका झोजरी पांडिया बेनड़िया काला अरु वलाल।
चरकियां छावड़ा निगादिया निपोलियारु पापड़ीवाल ॥
करवागर नरपतिया निगद्या नागड़िया रारारु लाटीवाल।
वरखोदा छाहड़ जलवाना राजहंस लोवटारु भूवाल ॥
मूलसजारु वोहरागौत्र, जाति चौरासी कहाय, श्रावक श्री जिनसेन के किये देश खंडाला जाय ॥

उपर दी हुई तालिका और इस कविता के नामों में कई नाम रद्दो बद्दल हैं शायद इसका कारण कवित अर्वाचीन होने से कई गौत्रों की शाखा प्रशाखा के नाम दर्ज कर कवि ने चौरासी नामों की संख्या मिलादी हो।

खंड़ेलवाल जाति का उत्पति समय कई स्थानों पर विक्रम संवत् एक माघ शुक्ल पंचमि का वतलाया है और साथ में इस जाति के प्रतिबोधक दिगम्बर आचार्य जिनसेन को लिखा है यह विचारणीय है कारण श्वेताम्बर शास्त्रानुसार दिगम्बरमत की उत्पत्ति वि० सं० १३९ में तव दिगम्बर मतानुसार वि० सं० १३६ में वतलाई जाती है अतः विक्रम संवत् एक में दिगम्बरमत का जन्म ही नहीं हुआ था दूसरे दि० आचार्य जिनसेन के समय के लिये हम देखते हैं कि विक्रम संवत् एक में दिगम्बर मत का जन्मही नहीं हुआ था अर्थात् दि० आचार्य जिनसेन का समय विक्रमकी नौवीं शताब्दी का है यदि खंड़ेलवाल जाति आचार्य जिनसेन प्रतिबोधित है तो इस जातिका उत्पत्ति समय विक्रमकी नौवीं शताब्दी का मानने में कोई भी आपति नहीं है दूसरा नौवीं शताब्दी पूर्व इस जाति के अस्तित्व का कोई प्रमाण भी नही मिलता है इससे भी वही मानना ठीक है कि खंड़ेलवाल जाति विक्रम के नौवीं शताब्दी में प्रायः राजपूतों से वनी है मूल में यह जाति दिगम्बरमत को मानने वाली थी पर बाद में इस जाति के कुछ लोग श्वेताम्बर साधुओंके उपदेश से श्वेताम्बर धर्म को मानने लग गये थे—जो मारवाड़ के कई ग्रामों में आज भी विद्यमान हैं।

दिगम्बरमतोपासक जैसे खंडेलवाल जाति हैं वैसे वघेरवाल जाति भी दिगम्बर मतोपासक है और इस जाति के प्रतिवोधक भी आचार्य जिनसेन ही वतलाये जाते हैं इस जाति की उत्पत्ति भी यज्ञ की घोर हिंसा से अरूची के कारण ही हुई हैं यद्यपि जैनाचार्य एवं वोधाचार्य के उपदेश से यज्ञ प्रथा बन्द सी हो गई थी पर

विक्रम संवत के आसपास राजा रतिदेव ने अन्तिम अश्वमेघ यज्ञ किया था इसके बाद अश्वमेध जैसा नहीं हुआ था विक्रम की नौवीं शताब्दी में कुमारिलभट्ट और आद्य शंकराचार्य हुए उन्होंने सोचा कि एक ओर तो जैनों और बौद्धों का जोर बढ़ता जा रहा है दूसरी ओर जनता हिंसा से घृणा कर वैदिक धर्म से परङ्गमुख होकर जैन एवं बौध मत में जा रही है अतः उन्होंने फरमान निकाला कि कलियुग में यज्ञ की मनाई है तथापि जहां ब्राह्मणों की प्रबल्यता और वाममार्गियों का जोर था वहां छाने छुपके छोटा बड़ा साधारण यज्ञ करवा देते थे कारण उन्हों की आजीविका ही इस प्रकार यज्ञयाग और क्रियाकाण्ड ही थी अतः समय मिलने पर वे कब चूकने वाले थे।

बघेरा नगर में राजा व्याघ्रसिंह राज करता था किसी बहाने से ब्राह्मणों ने राजा को उपदेश दे यज्ञ प्रारम्भ करवाया था यज्ञ में जितने लोग अधिक एकत्र होते थे उतना ही ब्राह्मणों को अधिक लाभ था अतः ५२ ग्रामों के लोग यज्ञ के अन्दर शामिल हुए।

इधर दिगम्बराचार्य जिनसेन अपने शिष्यों के साथ बघेरा नगर के उद्यान में पधारे आचार्य जिनसेन ने पहले खंडेला के यज्ञ के समय सफलता प्राप्त की हुई थी वे चलकर सीधे ही राज सभा में आये और राजा व्याघ्रसिंह को उपदेश देते हुए कहा। राजन्! इस घोर हिंसा रूपी यज्ञ से न तो किसी को लाभ हुआ है और न होनेवाला है हिंसा का फल तो भवान्तर में नरक ही होता है केवल एक हम ही नहीं कहते हैं पर वैदिक धर्म को मानने वालों ने भी हिंसा का बड़े ही जोरों से तिरस्कार किया है—पर बड़े ही दुःख की बात है कि आज भारत के कौने २ में अहिंसा का प्रचार हो रहा है इतना ही क्यों पर कहलाने वाले अनार्य भी अहिंसा भगवती का आदर कर रहे हैं तब आप जैसे आर्य वीर क्षत्री इस प्रकार की रौद्र हिंसा करवा कर देश द्रोह के साथ आत्मद्रोह कर रहे हो इत्यादि इस प्रकार का उपदेश दिया कि राजा को उस निर्दय कार्य से घृणा आ गई बस फिर तो देरी ही क्या थी राजा ने यज्ञ स्तम्भ उखेड़ दिया कुण्ड मिट्टी से पूर दिये ब्राह्मणों को विसर्जन कर दिये और राजा स्वयं बावन ग्रामों वालों के साथ आचार्य जिनसेन के पास जैनधर्म स्वीकार कर लिया उन बावन ग्रामों वालों के बावन गोत्र बन गये वे निम्न लिखित हैं।

अंतोरिया१ आहिडा२ उंकारा३ बड़पाड़ा४ कोटिया५ कासरिया६ कुचालिया७ कुनथा८ मडसा९ कसोरा१० खरडिया११ गुगाला१२ घणोता१३ चुन्दलिया१४ चकोरा१५ छाजा१६ छावड़ा१७ चमाड़ा१८ चमारया१९ जाटवां२० वावड़ा२१ दीवड़ा२२ डोगरचा२३ डोड़वाड़ा२४ धनोरया२५ धोलवा२६ दांबड़ा२७ सोनोसी२८ सौरदा२९ मुरडाया३० बदरिया३१ टागा३२ डुंगरवाल३३ पापला३४ मांगारिया३५ मरिया३६ मालुनिया३७ हाड्या३८ निगोतिया३९ अंबेपुरा४० माथुरिया४१ जांगिया४२ लाबाबा४३ माल्पुरिया४४ मसवरा४५ निवड़४६ सोड़ा४७ वाचड़िया४८ मांडारिया४९ वडमुड़ा५० ओगिया५१ हाड़या५२ इनके अलावा इन जातियों की कई शाखा प्रतिशाखा भी हुई हैं, पीसांगण के एक मथायणी भाई के पास पुरानी हस्त लिखित पुस्तक से हम उक्त ५२ जातियों के नाम उतारे हैं उसके पढ़ने से बघेरवाल की १५५ गोत्र हैं।

इसी प्रकार दिगम्बर समुदाय में नरसिंहपुरा जाति है यह भी नरसिंहपुर में यज्ञ के कारण दिग० आचार्य ने प्रतिबोध कर जैनधर्म में दीक्षित किये जिसके कई गौत्र हैं पीसांगण वाली पुस्तक में इस जाति के ३६ गौत्र लिखे हुए हैं।

घरड़ा१ मरड़ा२ फरड़ा३ फटोतिया४ छहाडवाल५ चेनावास६ वसोहरा७ पंचालो८ सापडिया९ ावत्१० घोरडेच११ वागड१२ ककुचा१३ फत्तसधर१४ मनोहरा१५ मंगोतिया१६ फूलपगर१७ खडनेरा१८ ाणा१ रत्नपरखा२० श्रन्नोतिया२१ लुद्रा२२ चामडिया२३ पामेला२४ तेलिया२५ वल्लोला२६ हरसोला२७ या२८ खामाणिया२९ नागर३० साखिया३१ जसोहरा३२ जडपडा३३ बोकडा३४ कथौटिया३५ मोकरवाड३६

परवार जाति यह भी दिगम्बर जाति है इस जाति के १८ गोत्र हैं जैसे कि १ नागणा, २ पुलकिया, ेवड़ा, ४ डोंगरें, ५ दोरादा, ६ जीलवाण, ७ जोसिया, ८ मीनाकर, ९ दाकलिया, १० कुकुणा, जाणिजा, १२ माकोरा, १३ चादीवाल, १४ मोदिया, १५ नाथाणी, १६ पुरा, १७ घोघण, १८ साजोरा

गौरारा—यह भी दिगम्बर जाति है इस जाति के २३ गोत्र है जैसे कि—१ पायइ, २ गपेली, ेरिया, ४ वेद, ५ नरवेद, ६ सिमरइया, ७ कौसाहिया, ८ सौहाना, ९ जमसरिया १० चौधरी ११ जासुधा चौधरी १३ कौलसा १४ वोरइया १५ ढन १६ साइया १७ अदवइया १८ सारक १९ चौधरी चौधरीडघा २१ तासटिया २२ वडसइया २३ तेतगुरा।

इनके अलावा दिगम्बर डिरेक्टरी में कई जातियों का नाम लिखा है वे सब जातियां दिगम्बर तो ं हैं पर शायद कहीं पर कई व्यक्ति दिगम्बर धर्म पालते होंगे उनको दिगम्बरों ने दिगम्बर जातियों में ना कर डाली है। जैसे कि—

" १ पल्लीवाल, २ खंडेलवाल, ३ परवार, ४ पं० परवार, ५ अग्रवाल, ६ जैसवाल, ७ खैरया, तमेगु, ९ गोलालार, १० फतेहपुरिया, ११ लोहिया, १२ बुदेला, १३ श्रोसवाल, १४ बुरले, १५ मंदिर, गोलापूर्व, १७ गोलसिघड़े, १८ बुंदेला, १९ सैतवाल, २० बघेरवाल, २१ कासार, २२ वदनोरा, भासारी, २४ धाकड़, २५ चरनोगर, २६ चौसके, २७ कुक्करी, २८ समैवा, २९ पद्मावतीपरव, अयोध्या, ३१ गंगेरवाल, ३२ विनायकिया, ३३ लाड, ३४ चौरा के परवार, ३५ जंघडापोरवार नेया, ३७ पंचवीसे, ३८ कटनेरे, ३९ परवार दशा, ४० नूतन जैन, ४१ वेरले, ४२ दि० जैन, पोरवार, ४४ गोलापूर्व, ४५ कृष्णपक्षा, ४६ दसा हुमड़, ४७ वीसा हुमड़, ४८ पंचमा चतुर्थ, पलड़ीवाल, ५० भावसागर, ५१ नेया, ५२ नरसिंहपुरा दशा, ५३ वीसा, ५४ गुजर, ५५ मेवाड़ा , ५६ वीसा, ५७ नागदा दश, ५८ वीसा, ५९ चितोड़ा दशा, ६० चित्तोड़वीसा, ६१ श्रीमाल दशा, वीसा, ६३ सेलावर, ६४ श्रावक, ६५ सादरा, ६६ वोगरा, ६७ वैश्य, ६८ इन्द्र, ६९ पुरोहित, क्षत्रीय, ७१ नागर, ७२ चौधेले, ७३ मिश्र, ७४ शंखवाल, ७५ खुरशाले, ७६ हरदर, ७७ उपाध्याय, ठागर, ७९ वोगर, ८० ब्राह्मण, ८१ गान्धी, ८२ नाई, ८३ घड़ई, ८४ मोकर, ८५ सुकर, ८६ महेश्री इत्यादि।

उपर जिस जाति के नीचे———लाइन लगाई हुई है वे जातियां श्वेताम्बराचार्यों के प्रतिबोधित हैं यदि ई व्यक्ति किसी कारण से दिगम्बरोपासक होगया हो पर वह जाति तो श्वेताम्बर ही कहलाई जायगी कई गम्बर जातियां भी श्वेताम्बर धर्म पालन करती हैं पर उसको हमने दिगम्बर जाति ही लिखी है।

इति दिगम्बर सम्बन्धी इतिहास।

विक्रम संवत के आसपास राजा रतिदेव ने अन्तिम अश्वमेघ यज्ञ किया था इसके बाद अश्वमेध जैसा यज्ञ नहीं हुआ था विक्रम की नौवीं शताब्दी में कुमारिलभट्ट और आद्य शंकराचार्य हुए उन्होंने सोचा कि एक ओर तो जैनों और बौद्धों का जोर बढ़ता जा रहा है दूसरी ओर जनता हिंसा से घृणा कर वैदिक धर्म से पराङ्मुख होकर जैन एवं बौध मत में जा रही है अतः उन्होंने फरमान निकाला कि कलियुग में यज्ञ करने की मनाई है तथापि जहां ब्राह्मणों की प्रबल्यता और वाममार्गियों का जोर था वहां छाने छुपके छोटा बड़ा साधारण यज्ञ करवा देते थे कारण उन्हों की आजीविका ही इस प्रकार यज्ञयाग और क्रियाकाण्ड से ही थी अतः समय मिलने पर वे कब चूकने वाले थे ।

बघेरा नगर में राजा व्याघ्रसिंह राज करता था किसी बहाने से ब्राह्मणों ने राजा को उपदेश देकर यज्ञ प्रारम्भ करवाया था यज्ञ में जितने लोग अधिक एकत्र होते थे उतना ही ब्राह्मणों को अधिक लाभ था अतः ५२ ग्रामों के लोग यज्ञ के अन्दर शामिल हुए ।

इधर दिगम्बराचार्य जिनसेन अपने शिष्यों के साथ बघेरा नगर के उद्यान में पधारे आचार्य जिनसेन ने पहले खंडेला के यज्ञ के समय सफलता प्राप्त की हुई थी वे चलकर सीधे ही राज सभा में आये और राजा व्याघ्रसिंह को उपदेश देते हुए कहा । राजन् ! इस घोर हिंसा रूपी यज्ञ से न तो किसी को लाभ हुआ है और न होनेवाला है हिंसा का फल तो भवान्तर में नरक ही होता है केवल एक हम ही नहीं कहते हैं पर वैदिक धर्म को मानने वालों ने भी हिंसा का बड़े ही जोरों से तिरस्कार किया है—पर बड़े ही दुःख की बात है कि आज भारत के कौने २ में अहिंसा का प्रचार हो रहा है इतना ही क्यों पर कहलाने वाले अनार्य भी अहिंसा भगवती का आदर कर रहे हैं तब आप जैसे आर्य वीर क्षत्री इस प्रकार की रौद्र हिंसा करवा कर देश द्रोह के साथ आत्मद्रोह कर रहे हो इत्यादि इस प्रकार का उपदेश दिया कि राजा को इस निर्दय कार्य से घृणा आ गई बस फिर तो देरी ही क्या थी राजा ने यज्ञ स्तम्भ उखेड़ दिया कुण्ड मिट्टी से पूर दिया ब्राह्मणों को विसर्जन कर दिये और राजा स्वयं बावन ग्रामों वालों के साथ आचार्य जिनसेन के पास जैनधर्म स्वीकार कर लिया उन बावन ग्रामों वालों के बावन गोत्र बन गये वे निम्न लिखित हैं ।

खंडेलिया१ आहिदा२ टंकारा३ ऊदपाढा४ कोटिया५ कावरिया६ कुचालिया७ कुनडा८ [illegible]९ [illegible]१० [illegible]११ गुणाजा१२ धगोला१३ चुन्दलिया१४ चकोरा१५ छाजा१६ छाबड़ा१७ [illegible]१८ [illegible]१९ [illegible]२० [illegible]२१ दीवड़ा२२ दोगच्या२३ दोहलाडा२४ धनोरया२५ धीरया२६ [illegible]२७ [illegible]२८ [illegible]२९ [illegible]३० बड़ल्या३१ टागा३२ डूंगरवाल३३ पापला३४ [illegible]३५ [illegible]३६ [illegible]३७ [illegible]३८ निर्मोलिया३९ [illegible]४० [illegible]४१ [illegible]४२ [illegible]४३ [illegible]४४ [illegible]४५ [illegible]४६ [illegible]४७ [illegible]४८ [illegible]४९ [illegible]५० [illegible]५१ [illegible]५२ इनके अलावा ५२ जातियों की कई शाखा प्रतिशाखा भी हुई हैं, दीवांगा के एक मारवाड़ी भाई के पास पुरानी हस्त लिखित पुस्तक में इस प्रकार ५२ जातियों के नाम आते हैं [illegible] की २०५ [illegible] हैं ।

इसी प्रकार दिगम्बर समुदाय में नरसिंहपुरा जाति है यह भी नरसिंहपुर के नाम से [illegible] आचार्य ने [illegible] को जैनधर्म में दीक्षित किया जिसके [illegible] गोत्र हैं दीवांगा वाली पुस्तक में इन के [illegible] गोत्र लिखे हुए हैं ।

अरड़ा१ मरड़ा२ करड़ा३ फटोतिया४ छहाडवाल५ चेनावास६ घसोहरा७ पंचालो८ सापडिया९ सीनावत्१० घोरडेच११ बागड१२ ककुचा१३ फलसधर१४ मनोहरा१५ मंगोतिया१६ फूलपगर१७ खडनेरा१८ मिलण१९ रत्नपरखा२० अत्रोतिया२१ लुद्रा२२ चामडिया२३ पामेला२४ तेलिया२५ बलोला२६ हरसोला२७ खेमण२८ खामाणिया२९ नागर३० साखिया३१ जसोहरा३२ जडपडा३३ वोकडा३४ कथौटिया३५ मोकरवाड३६

परवार जाति यह भी दिगम्बर जाति है इस जाति के १८ गोत्र हैं जैसे कि १ नागणा, २ पुलकिया, ३ देवड़ा, ४ डोंगरें, ५ दोरादा, ६ जीलवाण, ७ जोसिया, ८ मीनाकर, ९ दाकलिया, १० कुकुणा, ११ जाणिजा, १२ माकोरा, १३ चादीवाल, १४ मोदिया, १५ नाथाणी, १६ पुरा, १७ घोघण, १८ साजोरा

गौरारा—यह भी दिगम्बर जाति है इस जाति के २३ गोत्र है जैसे कि—१ पावइ, २ गपेली, ३ पेरिया, ४ वेद, ५ नरवेद, ६ सिमरइया, ७ कौसाहिया, ८ सौहाना, ९ जमसरिया १० चौधरी ११ जासुधा १२ चौधरी १३ कौलसा १४ वोरइया १५ ढन १६ साइया १७ अदवइया १८ सारक १९ चौधरी २० चौधरीडघा २१ तासटिया २२ वडसइया २३ तेतगुरा।

इनके अलावा दिगम्बर डिरेक्टरी में कई जातियों का नाम लिखा है वे सब जातियां दिगम्बर तो नहीं हैं पर शायद कहीं पर कई व्यक्ति दिगम्बर धर्म पालते होंगे उनको दिगम्बरों ने दिगम्बर जातियों में गणना कर डाली है। जैसे कि—

"१ पल्लीवाल, २ खंडेलवाल, ३ परवार, ४ पं० परवार, ५ अग्रवाल, ६ जैसवाल, ७ खैरया, ८ लमेगु, ९ गोलालार, १० फतेहपुरिया, ११ लोहिया, १२ बुदेला, १३ ओसवाल, १४ बुरले, १५ मंदिर, १६ गोलापूर्व, १७ गोलसिघड़े, १८ बुंदेला, १९ सैतवाल, २० बघेरवाल, २१ कासार. २२ वदनोरा, २३ भासारी, २४ धाकड़, २५ चरनोगर, २६ चौसके, २७ कुक्करी, २८ समैवा, २९ पद्मावतीपरव, ३० अयोध्या, ३१ गंगेरवाल, ३२ विनायकिया, ३३ लाड, ३४ चौरा के परवार, ३५ जंघडापोरवार ३६ नेया, ३७ पंचवीसे, ३८ कटनेरे, ३९ परवार दशा, ४० नूतन जैन, ४१ वेरले, ४२ दि० जैन, ४३ पोरवार, ४४ गोलापूर्व, ४५ कृष्णपक्षा, ४६ दसा हुमड़, ४७ वीसा हुमड़, ४८ पंचमा चतुर्थ, ४९ पलड़ीवाल, ५० भावसागर, ५१ नेया, ५२ नरसिंहपुरा दशा, ५३ वीसा, ५४ गुजर, ५५ मेवाड़ा दश, ५६ वीसा, ५७ नागदा दश ५८ वीसा, ५९ चितोड़ा दशा, ६० चित्तोड़वीसा, ६१ श्रीमाल दशा, ६२ वीसा, ६३ सेलावर, ६४ श्रावक, ६५ सादरा, ६६ वोगरा, ६७ वैश्य, ६८ इन्द्र, ६९ पुरोहित, ७० क्षत्रीय, ७१ नागर, ७२ चौधेले, ७३ मिश्र, ७४ शंखवाल, ७५ खुरशाले, ७६ हरदर, ७७ उपाध्याय, ७८ ठागर, ७९ वोगर, ८० ब्राह्मण, ८१ गान्धी, ८२ नाई, ८३ बढ़ई, ८४ मोकर, ८५ सुकर, ८६ महेश्री ८७ इत्यादि।

ऊपर जिस जाति के नीचे———लाइन लगाई हुई है वे जातियां श्वेताम्बराचार्यों के प्रतिबोधित हैं यदि कोई व्यक्ति किसी कारण से दिगम्बरोपासक होगया हो पर वह जाति तो श्वेताम्बर ही कहलाई जायगी कई दिगम्बर जातियां भी श्वेताम्बर धर्म पालन करती हैं पर उसको हमने दिगम्बर जाति ही लिखी है।

इति दिगम्बर सम्बन्धी इतिहास।

पल्लीवाल जाति

इस जाति की उत्पति का मूल स्थान पाली शहर है जो मारवाड़ प्रान्त के अन्दर व्यापार का एक मुख्य नगर था इस जाति में दो तरह के पल्लीवाल है १—वैश्य पल्लीवाल, २—ब्राह्मण पल्लीवाल और इस प्रकार नगरके नाम से औरभी अनेक जाति पैदा हुई थी जैसे श्रीमाल नगर से श्रीमाल जाति, खंडेला शहर से खंडेलवाल, महेश्वरी नगरी से महेश्वरी जाति, उपकेशपुर से उपकेश जाति, कोरट नगर से कोरटवाल जाति, और सिरोही नगर से सिरोहिया जाति इत्यादि नगरों के नाम से अनेक जातियों उत्पन्न हुई थीं इसी प्रकार पाली नगर से पल्लीवाल जाति की उत्पत्ति हुई है वैश्यों के साथ ब्राह्मणों का भी सम्बन्ध था कारण ब्राह्मणों की आजीविका वैश्यों पर ही थी अतः जहाँ यजमान जाते हैं वहां उनके गुरु ब्राह्मण भी जाया करते हैं जैसे श्रीमाल नगर के वैश्य लोग श्रीमाल नगर का त्यागकर उपकेशपुर में जा बसे तो श्रीमाल नगर के ब्राह्मण भी उनके पीछे चले आये अतः श्रीमाल नगरसे आये हुए वैश्य श्रीमाल वैश्य और ब्राह्मण श्रीमाल ब्राह्मण कहलाये इसी प्रकार पाली के वैश्य और ब्राह्मण पाली के नाम पर पल्लीवाल वैश्य और पल्लीवाल ब्राह्मण कहलाये।

जिस समय का मैं हाल लिख रहा हूँ वह जमाना क्रिया कण्ड का था और ब्राह्मण लोगों ने ऐसे विधि विधान रचडाले थे कि थोड़ी-थोड़ी बातों में क्रिया काण्ड की आवश्यकता रहती थी और वह क्रिया-काण्ड भी जिसके यजमान होते वे ब्राह्मण ही करवाये करते थे उसमें दूसरा ब्राह्मण हस्तक्षेप नहीं कर सकता था अतः वे ब्राह्मण अपनी मनमानी करने में स्वतंत्र एवं निरांकुश थे एक वंशावली में लिखा हुआ मिलता है कि पल्लीवाल वैश्य एक वर्ष में पल्लीवाल ब्राह्मणों को १४०० लीकी और १४०० टके दिया करते थे तथा श्रीमाल वैश्यों को भी इसी प्रकार टेक्स देना पड़ता था, पंचराशीशाषोड्शाधिका' अर्थात ५१६ टका लाग दापा के देने पड़ते हैं। भूदेवों ने ज्यों-ज्यों लाग दापा रूपी टेक्स बढ़ाया त्यों-त्यों यजमानों की अरुची बढ़ती गई। यही कारण था कि उपकेशपुर का मंत्री ऊहड़ ने म्लेच्छों की सेना लाकर श्रीमाली ब्राह्मणों का पिन्डा छुड़वाया इतना ही क्यों बल्कि दूसरे ब्राह्मणों का भी जोर जुल्म बहुत कम पड़ गया। क्योंकि ब्राह्मण लोग भी समझ गये कि अधिक करने से श्रीमाली ब्राह्मणों की भांति यजमानों का सम्बन्ध टूट जायगा जो कि उनके ब्राह्मणों की आजीविका का आधार था अतः पल्लीवालादि ब्राह्मणों का अपने यजमानों के साथ सम्बन्ध ज्यों का त्यों बना रहा था मंत्री ऊहड़ की घटना का समय वि० सं० ४०० पूर्व का था वही समय पल्लीवाल जाति का समझना चाहिये। खास कर तो जैनाचार्यों का मरुधर भूमि में प्रवेश हुआ और उन्होंने दुर्व्यसन सेवित जनता को जैनधर्म में दीक्षित करना प्रारम्भ किया तब से ही [illegible] स्वार्थ प्रिय ब्राह्मणों के आसन कांपने लग गये थे, और उन क्षत्रियों एवं वैश्यों में [illegible] जैन धर्म स्वीकार करने वाले अलग होने लगे तब से ही जातियों की उत्पत्ति होनी शुरू हुई थी इसका समय विक्रम पूर्व चारसौ वर्षों के आस पास का था, और यह क्रमशः विक्रम की आठवीं नौवीं शताब्दी [illegible] रहा [illegible] मूल जातियों के अन्दर शाखा प्रतिशाखा [illegible] वृक्ष की भांति निकलती ही गई [illegible] जातियों का विस्तार [illegible] जैन बनाने वालों का [illegible] जातियों के [illegible] [illegible] लिखेंगे।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय—तो पाली और पल्लीवाल जाति का गौरव कुछ कम नहीं हैं प्राचीन ऐतिहासिक साधनों से पाया जाता है कि पुराने जमाने में इस पाली का नाम फेफावती पाल्हिका पालिका आदि कई नाम था और कई नरेशों ने इस स्थान पर राज भी किया थ पाली नगर एक समय जैनों का मणिभद्र महावीर तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध था, इतिहास के मध्य काल का समय पाली नगरी के लिये बहुत महत्त्व का था विक्रम की बारहवीं शताब्दी के कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्टाएँ के शिलालेख तथा प्रतिष्टा करवाने वाले जैन श्वेताम्बर आचार्यों के शिलालेख आज भी उपलब्ध हैं इत्यादि प्रमाणों से पाली की प्राचीनता में किसी प्रकार के संदेह को स्थान नहीं मिलता हैं।

व्यापार की दृष्टि से देखा जाय—तो भारतीय व्यापारिक नगरोंमें पाली शहर का मुख्य स्थान है पूर्व जमाने में पाली शहर व्यापार का केंद्र था यहाँ बहुत अच्छा बन्ध माल का निकास प्रवेश होता था यह भी केवल एक भारत के लिये ही नहीं था पर भारत के अतिरिक्त दूसरे पश्चात्य प्रदेशों के व्यापारियों के साथ पाली शहर के व्यापारियों का बहुत बड़े प्रमाणमें व्यापार चलता था पाली में बड़े-बड़े धनाढ्य व्यापारी बसते थे और उनका व्यापार विदेशों के साथ था तथा उनकी बड़ी-बड़ी कोठियाँ थीं। फारिस अरब अफ्रिका चीन जापान जावा मिश्र तिब्बत वगैरह प्रदेश तो पाली के व्यापारियों के व्यापार के मुख्य प्रदेश माने जाते थे जब हम पट्टावलियों वंशावलियों आदि ग्रन्थ देखते हैं तो पता मिलता है कि पाली के महाजनों की कई स्थानों पर दुकानें थीं और वालदों पोटों तथा जल एवं थल मार्ग से पुष्कल माल आता जाता था और इस व्यापार में वे बहुत मुनाफा भी कमाते थे। यही कारण था कि वे लोग एक एक धर्म कार्य में करोड़ों द्रव्य व्यय कर डालते थे इतना ही क्यों पर उन लोगों की देश एवं जाति भाइयों के प्रति इतनी वात्सल्यता थी कि पाली में कोई साधर्मी एवं जाति भाई आकर बसता तो प्रत्येक घर से एक एक मुद्रिका और एक एक ईंट अर्पण कर दिया करते थे कि आने वाला सहज ही में लक्षाधिपति बन जाता और यह प्रथा उस समय केवल एक पाली वालों के अन्दर ही नहीं थी पर अन्य नगरों में भी थी जैसे चन्द्रवती और उपकेशपुर के उपकेशवंशी एवं प्राग्वटवंशी अग्रहा के अगरवाल डिडवाना के महेश्वरी आदि कई जातियों में थी कि वे अपने साधर्मी एवं जाति भाइयों को सहायता पहुँचा कर अपने बराबरी के बना लेते थे।

करीबन एक सदी पूर्व एक अंग्रेज महात्मा टॉडसाहब मारवाड़ में पेदल भ्रमण करके पुरातत्व की शोध खोज का कार्य किया था उनके साथ एक ज्ञानचन्द्रजी नामक यति भी रहा करते थे टॉड साहब को जितनी प्राचीन हिस्ट्री मिली थी उतनी ही उन्होंने टॉड राजस्थान नामक ग्रन्थ में छपादी थी उसमें पाली शहर का भी बहुतसा हाल लिखा है उसमें पाली नगर को बहुत प्राचीन बतलाया है व्यापार के लिये तो पाली को प्राचीन जमाने से एक व्यापार की बड़ी मंडी होना लिखा है वहाँ से थोक बन्ध माल विदेशों में जाता था पाली का नमक, सूतका जाड़ा कपड़ा, ऊनी कांबले, कागज वगैरह बड़ा प्रमाण में तैयार होता था और विदेश के व्यापारी खरीदकर अपने देशों में भेजते थे तब विदेशों से हस्तीदान्त, साकू गेंडाकाचमड़ा तांबा टीन जस्त सूखी खजूर पंडखजूर अरब का गुंद सहोगी नारियल बनात रेशमी कपड़ा औषधियें गन्धक पारा चन्दन की लकड़ियें कपुर चाय हरा रंगके कांच भावलपुर से साजी मजिट आल का रंग पक्के फल हिंग मुलतानी छींटें संदूक तथा पलंग की लकड़ियें कोटा से अफिम छींटें जाड़ा कपड़ा भोजन तलवारें और घोड़ा

इनके अलावा सोदागर लोग अपनी बालद एवं पोटों पर लाद कर बड़ी-बड़ी कतारों द्वारा लाखों रुपयों का माल लाते और ले जाते थे ; अतः पाली व्यापार का एक केन्द्र था—

इत्यादि इस उल्लेख से स्पष्ट पाया जाता है कि मारवाड़ में पाली एक व्यापार का मथक और प्राचीन नगर था और वहां पर महाजन संघ एवं व्यापारियों की घनी बस्ती थी।

पल्लीवाल जाति में जैनधर्म—यह निश्चयात्मिक नहीं कहा जा सकता है कि पल्लीवाल जाति में जैनधर्म का पालन करना किस समय से शुरू हुआ पर पल्लीवाल जाति बहुत प्राचीन समय से जैनधर्म पालन करती आई है पुराणी पट्टावलियों वंशावलियों को देखने से ज्ञात होता है पल्लीवाल जाति में विक्रम के चार सौ वर्ष पूर्व से ही जैनधर्म प्रवेश हो चूका था। इस की साबूती के लिये यह कहा जा सकता है कि आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने श्रीमाल नगर में ९०,००० घरों वालों को तथा पद्मावती नगरी के ४५००० घरों के लोगों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा देकर जैन बनाये थे बाद आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर नगर में लाखों क्षत्रियादि लोगों को जैनधर्म की दीक्षा दी और बाद में भी आचार्यश्री मरुधर प्रान्त में बड़े-बड़े नगरों में छोटे-छोटे ग्रामों में भ्रमन कर अपनी जिन्दगी में करीब चौदह लक्ष घर वालों को जैनी बनाये थे जब पाली शहर श्रीमालनगर और उपकेशपुर नगर के बीचमें आया हुआ है भला यह आचार्यश्री के उपदेश से कैसे वंचित रह गया हो अर्थात् पाली नगर में आचार्यश्री अवश्य पधारे और वहां की जनता को जैनधर्म में अवश्य दीक्षित किये होंगे। हां उस समय पल्लीवाल नामकी उत्पत्ति नहीं हुई होगी पर पालीवासियों को आचार्यश्री ने जैन अवश्य बनाये थे। आगे चलकर हम देखते हैं कि आचार्य सिद्धसूरि पाली नगर में पधारते हैं और वहाँ के श्रीसंघ ने आचार्यश्री की अध्यक्षत्व में एक श्रमण सभा का आयोजन करते हैं जिसमें दूर दूर से हजारों साधु साध्वियों का शुभागमन हुआ था इस पर हम विचार कर सकते हैं कि उस समय पाली नगर में जैनियों की खूब गेहरी आबादी होगी तब ही तो इस प्रकार का वृहद् कार्य पाली नगर में हुआ था इस घटना का समय उपकेशपुर में आचार्य रत्नप्रभसूरि ने महाजन संघ की स्थापना करने के पश्चात् दूसरी शताब्दी का बतलाया है इससे स्पष्ट पाया जाता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने पाली की जनता को जैनधर्म में दीक्षित कर जैनधर्मोपासक बनादी थी उस समय के बाद तो कइ भावुकों ने जैनमन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई तथा कइ श्रद्धा सम्पन्न श्रावकों ने पाली से शत्रुंजयादि तीर्थों के संघ भी निकाले थे जिसका उल्लेख हम यथा स्थान इसी ग्रन्थ में करेंगे। इत्यादि प्रमाणों से हम इस निर्णय पर आ सकते हैं कि पाली की जनता में जैनधर्म श्रीमाल और उपकेशवंश के समयसामयिक प्रवेश हो गया था इतना ही क्यों पर पालीवालों का पल्लीवाल नाम संस्करण होने के पूर्व ही वे जैनी बन चुके थे बाद पाली के जैन व्यापारार्थ एवं किसी कारण से पाली छोड़कर अन्य स्थानों में जा बसने से वे पाली वाले कहलाये और बाद पालीवालों का अपभ्रंश पल्लीवाल बन गया था जैसे अन्य नगरों के नाम से जातियां बनी हैं।

जैन समाज में साधुओं की बहुलता एवं जिस ग्राम नगर की ओर विशेष विहार करने के कारण उन ग्राम नगरों के नाम से गच्छ कहलाया जैसे उपकेशपुर के नाम पर उपकेशगच्छ, कोरंट नगर के नाम से कोरंटगच्छ, ब्रह्माणनगर से ब्रह्माणगच्छ, हर्षपुर से हर्षपुरागच्छ, कुर्चपुर नगर से कुर्चपुरागच्छ, [illegible] से [illegible]गच्छ, [illegible] से [illegible]गच्छ, संडेराव से संडेरागच्छ, इत्यादि बहुत से गच्छों का प्रादुर्भाव

हुआ इसी प्रकार पाली नगर के नाम से पल्लीवालगच्छ भी उत्पन्न हुआ उपरोक्त गच्छों की नामावली में पल्लीवालगच्छ का नंबर तीसरा आता है कारण इस गच्छ की पट्टावली देखने से मालूम होता है कि—यह गच्छ बहुत पुराणा है जो उपकेशगच्छ और कोरंटगच्छ के बाद पल्लीवालगच्छ का नम्बर आता है श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा बीकानेर वाला ने श्री आत्मानन्द शताब्दी अंक नामक पुस्तक के हिन्दी विभाग के पृष्ठ १८२ पर पल्लीवालगच्छ की पट्टावलीके विषय में एक लेख मुद्रित करवाया है। मैं केवल उस पट्टावली को यहाँ ज्यों की त्यों उद्धृत कर देता हूँ—

प्रथम २४ तीर्थङ्करों और ११ गणधरों के नाम लिखकर आगे पट्टानुक्रम इस प्रकार लिखा है—

१—श्री स्वामी महावीरजी रे पाटे श्री सुधर्म १
२—तिणरे पाट्टे श्रीजम्बु स्वामी २
३—तत्पाट्टे श्रीप्रभव स्वामी ३
४—तत्पाट्टे श्रीशय्यंभवसूरि ४
५—तत्पाट्टे श्रीजसोभद्रसूरि ५
६—तत्पाट्टे श्रीसंभूतविजय ६
७—तत्पाट्टे श्रीभद्रबाहुस्वामी ७
८—तत्पाट्टे तिण माहें भद्रबाहु री शाख न वधी श्री स्थुलभद्र ८

९—तत्पट्टे श्रीसुहस्तीसूरि २ काकंद्य कोटिसूरिमंत्र जाप्पांवान् कोटिकगण। तिहारै पाटि सुप्रतिबंध ९ तियारै गुरुभाई सुतिणरा शिष्य दोई विज्जाहर १ उचनागोरी २ सुप्रतिबंध पाटि ९ तिणरी शाखा २ तिणांरा नाम मज्झिमिका १ वयरी २।

१०—वयरी रै पाटै श्रीइन्द्रदिन्नसूरि पाटि
११—तत्पट्टे श्रीआर्यदिन्नसूरि
१२—तत्पट्टे श्री सिंहगिरिसूरि पाटि
१३—तत्पट्टे श्री वयर स्वामी पाटि

१४—तत्पट्टे तिणरी शाखा २ तिणाँरा नाम प्रथम श्री वयरसेन पाटि १४ बीजो श्री पद्म २ तिणरी नास्ति। तीजो श्री रथसूरि पाटि श्री पुसगिरि री शाखा बीजी वयरसेन पाटि १४

१५—तत्पट्टे श्री चन्द्रसूरि पाटि १५ संवत् १३० चन्द्रसूरि।

(यहां तक तो दूसरे गच्छों से मिलती जुलती नामावली है केवल नौवें नम्बर में महागिरी का नाम नहीं है और सुप्रतिबंध का नाम अलग चाहिये जिसको सुहस्ती के शामिल कर दिया है। अब १६ वां नंबर में शान्तिसूरि से इस पल्लीवालगच्छ की शाखा एवं पट्टावली अलग चलती है जैसे कि—]

१६—संवत् १९ (१६१) १ श्री शांतिसूरि थाप्पा पाटि १६ श्री संवत १८० स्वर्ग श्री शांतिसूरि पाट्टे १६ तिणरे शिष्य ८ तिणरा नाम।

(१) श्री महेन्द्रसूरि १ तिणथी मथुरावाला गच्छ
(२) श्री शालगसूरि श्री पुरवालगच्छ
(३) श्री देवेन्द्रसूरि खंडेलवालगच्छ
(४) श्री आदित्यसूरि सोझितवालगच्छ
(५) श्री हरिभद्रसूरि मंडोवरागच्छ
(६) श्री विमलसूरि पतनवालगच्छ
(७) श्री वर्द्धमानसूरि भरवच्छेवालगच्छ
(८) श्री मूल पट्टे श्री (..............

१७—श्री जसोदेवसूरि पाटि १७ संवत् ३२९ वर्षे वैसाख सुदि ५ प्रल्हादि प्रतिबोधिता श्री पल्लीवालगच्छ स्थापना संवत ३९० (।)स्वर्गे।

१८—श्री नन्नसूरि पाटि १८ संवत ३५६ स्वर्गे
१९—श्री उजोयण सूरि पाटि १९ स० ४०० स्वर्गे
२०—श्री महेश्वरसूरि पाटि १९ संवत ४२४ स्वर्गे
२१—श्री अभयदेव सूरि पाटि २१ स० ४५० "
२२—श्री आमदेवसूरि पाटि २२ स० ४५६ "
२३—श्री शान्ति सूरि पाटि २३ स० ४९५ "
२४—श्री जसोदेव सूरि पाटि २४ स० ५३४ "
२५—श्री नन्न सूरि पाटि २५ स० ५७० "
२६—श्री उजोयण सूरि पाटि २६ स० ६१६ "
२७—श्री महेश्वर सूरि पाटि २७ स० ६४० "
२८—श्री अभयदेव सूरि पाटि २८ स० ६८१ "
२९—श्री आमदेव सूरि पाटि २९ स० ७३२ "
३०—श्री शान्ति सूरि पाटि ३० स० ७६८ "
३१—श्री जस्योदेव सूरि पाटि ३१ स० ७९५ "
३२—श्री नन्न सूरि पाटि ३२ सम्वत ८३१ "
३३—श्री उजोयण सूरि पाटि ३३ स० ८७२ "
३४—श्री महेश्वरसूरि पाटि ३४ सम्वत ९२१ "
३५—श्री अभयदेव पाटि सूरि ३५ स० ९७२ "
३६—श्री आमदेव सूरि पाटि ३६ सम्वत ९९९ "
३७—श्री शान्ति सूरि पाटि ३७ स० १०३१ "
३८—श्री जस्योदेव सूरि पाटि ३८ स० १०७० "
३९—श्री नन्न सूरि पाटि ३९ स० १०९८ "
४०—श्री उजोयण सूरि पाटि ४० स० ११२३ "
४१—श्री महेश्वर सूरि पाटि ४१ स० ११५५ "
४२—श्री अभयदेव सूरि पाटि ४२ स० ११६९
श्री मलधार अभयदेवसूरि अविगल्या ता पछे अजीतदेव स्वामि श्री अभयदेवसूरि कहा वाण पाटि ४२ स० ११६९ स्वर्गे
४३—श्री आमदेव सूरि पाटि ४३ स० ११९९ "
४४—श्री शान्ति सूरि पाटि ४४ स० १२२४ "
४५—श्री जसोदेव सूरि पाटि ४५ स० १२२४ "
४६—श्री नन्न सूरि पाटि ४६ स० १२३९ "
४७—श्री उजोयण सूरि पाटि ४७ स० १२४३ "
४८—श्री महेश्वर सूरि पाटि ४८ स० १२७४ "
४९—श्री अभयदेव सूरि पाटि ४९ स० १३२१ "
५०—श्री आमदेव सूरि पाटि ५० स० १३७४ "
५१—श्री शान्ति सूरि पाटि ५१ स० १४४८ "
५२—श्री जसोदेव सूरि पाटि ५२ स० १४८८ "
५३—श्री नन्न सूरि पाटि ५३ स० १५३२ "
५४—श्री उजोयण सूरि पाटि ५४ स० १५७२ "
५५—श्री महेश्वर सूरि पाटि ५५ स० १५९९
५६—श्री अभयदेव सूरि पाटि ५६ नवी गच्छ स्थापना किधी गुरांसा (श्री) फलोधी कीधो कांटि छेद करी क्रिया उद्धार कीधो स० १५९५ स्वर्गे "
५७—श्री आमदेव सूरि पाटि ५७ स० १६३४ "
५८—श्री शान्ति सूरि पाटि ५८ स० १६६१ "
५९—श्री जसोदेव सूरि पाटि ५९ स० [illegible] "
६०—श्री नन्न सूरि पाटि ६० स० १७१८
६१—विद्यमान भट्टारक श्री उजोयणसूरि पाटि ६१ स० १६८७ वाचक पद स० १७१८ जेठ सुदि १२ वार शनि दिन सूरि पद विद्यमान विजय राज्ये।

* १६—वें पट्ट का समय संवत् १८० का बतलाया है और १७ वें पट्ट का समय सं० ३२२ का लिखा है [illegible] उपकेशगच्छ की पट्टावली सं० ३२० में [illegible] १८ वें पट्ट का समय सं० ३५६ का लिखा है [illegible] १६ वें और १७ वें पट्ट अन्तर १४२ वर्ष का [illegible] असंभव सी बात है [illegible] उपकेशगच्छ की पट्टावली सं० [illegible] — [illegible]

६१ विद्यमान भट्टारक श्री उजायेगसूरि पटि ६१ संवत् १६८७ वाचक पदं संवत् १७२८ जेष्ठ सुदि १२ वार शनि दिन सूरि पद विद्यमान विजय राज्ये —

उपरोक्त पट्टावली से पाया जाता है कि विक्रम की चौथी शताब्दी में पल्लीवाल गच्छ की स्थापना आचार्य शान्तिसूरि के हाथों से हुई थी—

पाली की जनता को सबसे पहिले प्रतिबोध आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने ही दिया था और आपश्री की परम्परा के आचार्यों ने क्रमशः उनकी वृद्धि करी । बाद में जब पूर्व में आर्य्य सुहस्तीसूरि के समय दुष्काल पड़ा था तब आर्य्य सुहस्तीसूरि सपरिवार आवंति प्रदेश में आये बाद में सौराष्ट्र और मरुधर में आये और पाली की ओर अधिक विहार करने वाले शान्तिसूरि ने पल्लीवालगच्छ की स्थापना की हो तो यह बात विश्वासनीय है ।

जैसे ८४ गच्छों में पल्लीवालगच्छ प्राचीन है वसे ही वैश्यों की ८४ जातियों में भी पल्लीवाल जाति प्राचीन है जहाँ हम चौरासी जातियों के नाम उल्लेख करेंगे पाठक वहाँ से देख सकेंगे कि पल्लीवाल जाति कितनी प्राचीन है ?

पल्लीवाल जाति में बहुत से नररत्न वीर एवं उदार दानेश्वरी हुए हैं जिन्होंने एक एक धर्म कार्य में लाखों करोड़ों द्रव्य व्यय करके कल्याणकारी पुन्योपार्जन किया है हाँ आज उनका सिलसिला वार इतिहास के अभाव हम यहाँ सबका उल्लेख नहीं कर सकते हैं इसका कारण यह है कि अव्वल तो वह जमाना ही ऐसा था कि इन वातें को लिपिबद्ध करने की प्रथा ही कम थी दूसरा जो करते थे वह भी उनके गच्छ वालों के पास तथा वंशावलियों लिखने वालों के पास रहता था पर विदेशियों की धर्मान्धता के कारण कई ज्ञान भंडार ज्यों के त्यों जला दिये गये थे कि उसके अन्दर काफी ग्रन्थ जल गये । तथापि शोध खोज करने पर पल्लीवाल जाति एवं पल्लीवाल गच्छ सम्बन्धी यत्र तत्र बिखरा हुआ साहित्य मिल सकता है अभी विद्वद्वर्य मुनिराज श्री दर्शनविजयजी महाराज ने पल्लीवाल जाति का इतिहास लिखकर इस जाति के विषय अच्छा प्रकाश डाला है पल्लीवाल जाति के वीर पेथड़शाह वगैरह दानेश्वरियों के नाम खास उल्लेखनीय हैं जिसको हम यथा स्थान वर्णन करेंगे यहाँ तो हमारा उद्देश्य खास पल्लीवाल जाति के विषय लिखने का था और हमने उपरोक्त प्रमाणों द्वारा यह बतलाने की कौशिश की है कि पल्लीवाल जाति बहुत प्राचीन है इसका उत्पति स्थान पाली नगर और समय विक्रमपूर्व चार सौ वर्ष पूर्व का है ।

अग्रवाल जाति

जैसे भारतीय जातियों में ओसवाल पोरवाल पल्लीवाल श्रीमालादि जातियें हैं वैसे अग्रवाल भी एक जाति है । इस जाति के इतिहास के लिए वे ही कठिनाइयें हमारे सामने उपस्थित हैं कि जैसी अन्य जातियों का इतिहास के लिये हैं । कारण, इस जाति का भी सिलसिले वार इतिहास नहीं मिलता है । हाँ, इस जाति की उत्पति के लिए कई प्रकार की किम्वदन्तियें प्रचलित हैं जैसा कि—

१—कई कहते हैं कि इस जाति के पूर्वज अगुरु नाम की सुगन्धित लकड़ियों का व्यापार करते थे । अतः इसका नाम अगुरु* पड़ गया और उस अगुरु का ही अपभ्रंश अग्रवाल है ।

* कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता मिलता है कि एक समय भारत में अगुरु जाति की लकड़ियों का बहुत प्रमाण में व्यापार चलता था और अगुरु लकड़ी सुगन्धमय होने से इसका व्यापार भारत में ही नहीं वल्कि भारत के अतिरिक्त पाश्चात्य

उनको प्रत्येक घर से एक मुद्रिका और एक ईंट दी जाती थी कि वह आने वाला सहज ही में लक्षाधिपति बन जाता था ऐसी कथा चन्द्रावती के ओसवाल जाति और पाली की पल्लीवाल जाति में भी प्रचलित है।

अग्रवालों के १७॥ गोत्रों की उत्पत्ति —पूर्व जमाने में देव देवी एवं यज्ञादि क्रिया काण्ड में जनता का दृढ़ विश्वास था और वे कोई भी छोटा बड़ा कार्य्य करना होता तो देवी देवता और यज्ञादि क्रिया कांड द्वारा ही किया करते थे। यद्यपि भगवान महावीर एवं आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से यह प्रथा बहुत कम हो गई थी तथापि सर्वथा नष्ट नहीं हुई थी कारण चिरकाल से पड़ी हुई कुप्रथा यकायक नष्ट होनी मुश्किल थी स्वार्थ प्रिय ब्राह्मण इसके प्रेरक थे जहाँ उन लोगों का थोड़ा बहुत चलता वहाँ वे यज्ञ होम करने में तत्पर रहते थे।

राजा उग्रसेन के अठारह रानियां थी पर किसी के भी पुत्र नहीं था राजा ने ब्राह्मणों को एकत्र कर पुत्र होने का उपाय पूछा पर उन्होंके पास सिवाय पशुवद्ध रूपी यज्ञ के और क्या था उन्होंने कह दिया कि हे राजन्! यदि आपको पुत्र की इच्छा है तो आप अठारह यज्ञ करवाइये आपके अठारह पुत्र अर्थात एक एक रानी के एक एक पुत्र हो जायगा। राजा ने अठारह यज्ञ करवाने का निश्चय किया। यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण एवं ऋषि लोग थे एवं यज्ञ करवाने वाले उनके तथा उनकी सन्तान के गुरु भी समझे जाते थे और शुभ प्रसंग पर लाग लागन एवं दक्षिणा उन गुरुओं को दी जाती थी। यज्ञ में वेद मंत्रों के साथ पशुओं की बलि देना मुख्य काम था। अतः राजा उग्रसेन ने यज्ञ के लिये बहुत से ब्राह्मणों एवं ऋषियों को बुलवाये और यज्ञबलि के लिये बहुत से पशु एकत्र किये थे। यज्ञ प्रारम्भ हुआ और क्रमशः १७ यज्ञ समाप्त भी हो गये पर अठारहवें यज्ञ में राजा को यज्ञ में होने वाली पशुबलि रूप घोर हिंसा प्रति घृणा हो गई अर्थात राजा ने उन निरपराधी पशुओं पर दया लाकर छुड़वा दिये और अपने वंशजों के लिए यज्ञ में बलि देना एवं जीवों की हिंसा करना करवाना बिल्कुल निषेध कर दिया। राजा को इस प्रकार यज्ञ की हिंसा से घृणा आ जाने का क्या कारण होगा? इसके लिये जैन कथाओं से पाया जाता है कि राजा को एक करुणा मूर्ति नामक जैनसाधु का उपदेश लग गया था। और उसने बुरी तरह तड़फड़ाहट करते हुए पशुओं को देखकर यज्ञ कर्म करना बंध करवा दिया था और यह बात असम्भव भी नहीं है क्योंकि चलते हुए यज्ञ के लिए यकायक इस प्रकार हिंसा से घृणा हो जाना और भविष्य में अपनी सन्तान परम्परा के लिए इस प्रकार की क्रूर हिंसा का निषेध कर देना किसी अहिंसा के उपासकों का उपदेश बिना बनना मुश्किल था। अतः यह कथन सर्वथा सत्य समझना चाहिए कि राजा उग्रसेन को जैनमुनि का उपदेश अवश्य लगा था।

राजा के अठारह रानियां थी और उनके अठारह पुत्र हुये जिन्हों से अठारह गोत्रों की उत्पत्ति हुई। कई यह भी कहते हैं कि यज्ञ कराने वाले १८ ऋषि थे उनके नाम से अठारह गोत्र हुये और कई यह भी कहते हैं कि राजा के १७ पुत्रों के तो सत्तर ऋषि गुरु बन गये पर एक के कोई गुरु नहीं बना जिसका यज्ञ अधूरा रहा था अतः उसने अपने बड़े भाई के गुरु को ही गुरु माना। इसलिये उसका आधा गोत्र गिना गया जिससे १७॥ गोत्र कहा जाता है। उन १७॥ गोत्रों का विवरण निम्न कोष्टक में दिया जाता है।

विवाह के बाद उन्होंने काशी और हरिद्वार में कितने ही यज्ञ किये। इसके पश्चात् उन्होंने कोल्हापुर के महीधर राजा की कन्या को प्राप्त किया। इसके बाद दिल्ली के पास आकर उन्होंने आगरा बसाया और वहाँ पर उनने अपनी राजधानी स्थापित की अतः उस नगर के नाम से उन लोगों की जाति का नाम अग्रवाल हुआ है। इत्यादि

संख्या	राजकुमार	ऋषि	गोत्र	सं०	राजकुमार	ऋषि	गोत्र
१	पुष्पदेव	गर्ग	गर्ग	१०	तंबोलकरण	ताँडव	तुंगल
२	गेंदूमल	गौभिल	गोइल	११	ताराचंद	तैत्तिरेय	ताईल
३	करणचंद	कश्यप	कच्छल	१२	वीरभान	वत्स	बाँसल
४	मणिपाल	कौशिक	कांसिल	१३	वासुदेव	धन्यास	टेरन
५	वृन्ददेव	वशिष्ट	बिंदल	१४	नारसेन	नागेन्द्र	नागल
६	ढावणदेव	धौम्य	ढालन(टेलण	१५	अमृतसेन	माँडव्य	मंगल
७	सिंधुपति	शाण्डिल्य	सिंघल	१६	इन्द्रमल	और्व	एरन
८	जैत्रसंघ	जैमिनी	जिंदल	१७	माधवसेन	मुद्गल	मधुकल
९	मन्त्रपति	मैत्रेय	मित्तल	१८	गोधर	गोतम	गोवन

इन गोत्रों का नाम कुछ रद्दोबदल भी मिलता है तथा इन गोत्रों से बाद में कई शाखायें भी निकल गई थीं ! एक समय इस अग्रवाल जाति का बड़ा भारी अभ्युदय था और व्यापार में जैसे ओसवाल पोरवाल और पल्लीवाल जातिऐं बढ़ चढ़ के थी इसी प्रकार अग्रवाल जाति भी खूब उन्नत एवं आबाद थी ।

अग्रवाल जाति के हाथों मे राज कब निकाला और कब से व्यापार क्षेत्र में प्रवेश हुई इसके लिये अग्रवाल जाति का इतिहास पढ़ना चाहिये ।

अग्रवाल जाति में जैनधर्म—अग्रवाल जाति इस समय दो शाखाओं में विभाजित है १-वैष्णव धर्मोपासक २—जैनधर्मोपासक । अग्रवाल जाति में जैनधर्म कब से प्रवेश हुआ इसके लिये अनुमान किया जाता है कि राजा अग्रसेन पर उस समय ही जैनधर्म का प्रभाव पड़ चुका था जब ही तो उसने हिंसामूलक यज्ञ करना बन्द कर अपनी संतान परम्परा के लिये हिंसा करना निषेध कर दिया था पर यह उल्लेख नहीं मिलता है कि राजा ने उसी समय मुल्लमखुल्ला जैनधर्म स्वीकार कर लिया था या बाद में ? हां, पट्टावल्यादि ग्रंथों में यह उल्लेख जरूर मिलता है कि जैनचार्य्य श्री लोहित्यसूरि*ने अग्रवालों को प्रतिबोध देकर जैन बनाया था ! इसके लिये लिखा है कि अग्रहा नगर में किसी प्रसंग में अग्रवाल लोग एकत्र हुये थे उस समय आचार्य लोहित्यसूरि अपने शिष्यों के साथ भ्रमण करते हुये आगरा नगर में पधारे और उन अग्रवालों को उपदेश दिया जिससे वहां उपस्थित थे वे लोग जैनधर्म स्वीकार कर लिया तब से ही अग्रवाल लोग जैनधर्म पालन कर रहे हैं । इन्हों की बस्ती कुछ [illegible] तथा पंजाब की ओर विशेष है । उस समय जैनियों में कुछ [illegible] से [illegible] लिया था कि ओसवालादि जैन जातियों ने अग्रवालों के साथ बेटी व्यवहार [illegible] कर लिया परन्तु बेटी व्यवहार शामिल नहीं हुआ इसी कारण [illegible] में कुछ [illegible] वैष्णव धर्म में [illegible] अग्रवालों में दो धर्म [illegible] दृष्टिगोचर होते हैं १-जैन २-वैष्णव [illegible]

* [illegible]

संख्या	राजकुमार	ऋषि	गोत्र	सं०	राजकुमार	ऋषि	गोत्र
१	पुष्पदेव	गर्ग	गर्ग	१०	तंबोलकरण	ताँडव	तुंगल
२	गेदूमल	गौभिल	गोइल	११	ताराचंद	तैत्तिरेय	ताईल
३	करणचंद	कश्यप	कच्छल	१२	वीरभान	वत्स	बाँसल
४	मणिपाल	कौशिक	कांसिल	१३	वासुदेव	धन्यास	टेरन
५	वृन्ददेव	वशिष्ठ	विंदल	१४	नारसेन	नागेन्द्र	नागल
६	ढावणदेव	धौम्य	ढालन(टेलण	१५	अमृतसेन	मॉडव्य	मंगल
७	सिंधुपति	शाण्डिल्य	सिंघल	१६	इन्द्रमल	और्व	एरन
८	जैत्रसंघ	जैमिनी	जिंदल	१७	माधवसेन	मुद्गल	मधुकल
९	मन्त्रपति	मैत्रेय	मित्तल	१८	गोधर	गोतम	गोबन

इन गोत्रों का नाम कुछ रद्दोबदल भी मिलता है तथा इन गोत्रों से बाद में कई शाखायें भी निकल गई थीं ! एक समय इस अग्रवाल जाति का बड़ा भारी अभ्युदय था और व्यापार में जैसे ओसवाल पोरवाल और पल्लीवाल जातिऐं बढ़ चढ़ के थी इसी प्रकार अग्रवाल जाति भी खूब उन्नत एवं आबाद थी।

अग्रवाल जाति के हाथों से राज कब निकाला और कब से व्यापार क्षेत्र में प्रवेश हुई इसके लिये अग्रवाल जाति का इतिहास पढ़ना चाहिये।

अग्रवाल जाति में जैनधर्म—अग्रवाल जाति इस समय दो शाखाओं में विभाजित है ❀ वैष्णव धर्मोपासक २—जैनधर्मोपासक। अग्रवाल जाति में जैनधर्म कब से प्रवेश हुआ इसके लिये अनुमान किया जाता है कि राजा अग्रसेन पर यज्ञ समय ही जैनधर्म का प्रभाव पड़ चुका था जब ही तो उसने हिंसामूलक यज्ञ करवाना वन्द कर अपनी संतान परम्परा के लिये हिंसा करना निषेध कर दिया था पर यह उल्लेख नहीं मिलता है कि राजा ने उसी समय खुल्लमखुल्ला जैनधर्म स्वीकार कर लिया था या बाद मे ? हां, पट्टावल्यादि ग्रथों में यह उल्लेख जरूर मिलता है कि जैनचार्य्य ❀ लोहित्यसूरि❀ने अग्रवालों को प्रतिबोध देकर जैन बनाया था। इसके लिये लिखा है कि अग्रहा नगर में किसी प्रसंग से अग्रवाल लोग एकत्र हुये थे उस समय आचार्य्य लोहित्यसूरि अपने शिष्यों के साथ भ्रमण करते हुये आगरा नगर में पधारे और उन अग्रवालों को उपदेश दिया जिसमें वहां उपस्थित थे वे लोग जैनधर्म स्वीकार कर लिया तब से ही अग्रवाल लोग जैनधर्म पालन कर रहे ह। उन्हों की वस्ती यू० पी० तथा पंजाब की ओर विशेष है। उस समय जैनियों में कुछ संकीर्णता ने अपना अड्डा जमा लिया था कि ओसवालादि जैन जातियों ने अग्रवालों के साथ रोटी व्यवहार तो शामिल कर लिया परन्तु बेटी व्यवहार शामिल नहीं हुआ इसी कारण कालक्रम से कुछ अग्रवाल पुनः वैष्णव धर्म में चले गये अतः अग्रवालों में दो धर्म आज भी दृष्टिगोचर होरहे हैं १-जैन २-वैष्णव परन्तु

❀ लोहित्याचार्य–दो हुए है—एक श्वेताम्बर समुदाय में लोहित्याचार्य हुए है और दूसरे दिगम्बर समुदाय में भी एक लोहित्याचार्य है। परन्तु अग्रवाल जाति के प्रतिबोधक गुरु से श्वेताम्बर समुदाय के लोहित्याचार्य हैं अतः अग्रवाल जाति शुरू से श्वेताम्बर समुदाय के श्रावक थे पर बाद कई स्थानों में श्वेताम्बर साधुओं के अभाव से कई अग्रवाल भाई दिगम्बर मत को भी मानने लग गये हैं। खैर अग्रवाल जाति प्राचीन समय से जैनधर्मोपासक है।

फिर भी यह खुशी की बात है कि दोनों धर्म के पालने वाले अग्रवालों में रोटी बेटी व्यवहार जैसे पहिले था वैसे ही आज भी है।

अब देखना है समय ! कि अग्रवाल किस समय जैनी बने हैं इसके लिये आचार्य्य लोहितसूरि का समय देखना पड़ेगा क्योंकि अग्रवालों को जैन बनाने वाले आचार्य्य लोहितसूरि थे और जैन पट्टावलियों से पता चलता है कि आर्यदेवर्द्धिगणि क्षमा श्रमणजी आचार्य्य लोहितसूरि के शिष्य थे और उन्होंने वीर संवत ९८० (ई. स. ४५३) में वल्लभी नगरी में आगम पुस्तकारूढ़ किये थे। यदि इनसे ३० वर्ष पूर्व आचार्य लोहित का समय समझा जाय तो ई. स ४२३ के आस पास आगरा नगर में आचार्य लोहितसूरिने अग्रवालों को जैन बनाये थे और बाबुनागेन्द्रनाथ के मतानुसार यह समय राजा अग्रसेन के निकटवर्ती आता है। जब राजा अग्रसेन ने जैनाचार्य के उपदेश से पशुहिंसा एवं मांस प्रति घृणा लाकर अपनी संतान तक के लिये हिंसा निषेध कर दी तो ब्राह्मणों ने उनको कहना सुनना एवं उपदेश अवश्य किया होगा और उस समय या उनके बाद कुछ अर्सा में अग्रवालों ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया हो तो यह सर्वथा मानने योग्य है।

अग्रवाल जाति के जैन श्रावकों ने आत्म कल्याण के लिये बड़े बड़े सुकृत कार्य किये है कई दानेश्वरियों ने दुष्काल में करोड़ों द्रव्य व्यय कर देशवासी भाइयों के प्राण बचाये कई एकों ने तीर्थयात्रार्थ बड़े-बड़े संघ निकाल कर चतुर्विध श्री संघ कों तीर्थों की यात्राऐं करवाई—कइएकों ने स्वपर कल्याणार्थ बड़े-बड़े मन्दिर बनवा कर उसमें त्रिजगपूजनीय तीर्थङ्कर देवों की मूर्त्तियो की प्रतिष्ठा करवाई कइएकों ने जैनाचार्यो के पद महोत्सव एवं नगर प्रवेश महोत्सव में लाखों करोड़ों द्रव्य खर्च कर अनंत पुन्योपार्ज्जन किये। जिसके उल्लेख यत्र तत्र पट्टावलियादि ग्रन्थों में मिलते है। जिसकों हम यथा स्थान दर्ज करदेंगे। यहाँ पर तो केवल अग्रवाल जाति की उत्पति तथा अग्रवाल जाति कबसे जैनधर्म स्वीकार किया इन बातों का ही निर्णय करना था जो उपरोक्त प्रमाणों से पाठक अच्छी तरह से समझ गये होंगे। इति शुभम्

महेश्वरी जाति की उत्पत्ति

महेश्वरी जाति के साथ जैन धर्म का घनीष्ट सम्बन्ध है क्योंकि महेश्वरी जाति के पूर्वज सब के सब जैन धर्मोपासक थे, जिस समय महेश्वरी जाति की उत्पत्ति हुई थी उस समय जैन धर्म का सर्वत्र प्रचार था एवं अहिंसा परमोधर्म का झंडा सर्वत्र फहरा रहा था हिंसामय यज्ञादि क्रिया काण्ड से जनता को अरूची एवं घृणा हो रही थी, जैनाचार्य सर्वत्र विहार कर जनता की शुद्धि कर जैन धर्म के झंडा के नीचे लाकर उनका उद्धार कर रहे थे। फिर भी कहीं कहीं पर ब्राह्मण लोग छाने छूपके छोटा बड़ा यज्ञ कर ही डालते थे ऐसा ही बरताव महेश्वरी जाति की उत्पति में हुआ है।

महेश्वरी जाति की उत्पत्ति के लिये महेश्वरियों के जाग-वही भाट अपनी वंशावलियों में एक कथा बना रखी हैं और जब महेश्वरियों के नाम लिखने को वे लोग आते है तब वह कथा सब को सुनाया करते हैं उसमें सत्य का अंश कितना है पाठक स्वयं समझ जायंगे। खैर कुच्छ भी हो उन जागों के तो यह कथा एक जागीरी बन चूकी है पाठकों की जानकारी के लिये उस कथा को यहां उद्धृत करदी जाती है।

खंडेला नगर में सूर्यवंशी राजा खंडेलसेन राज करता था राजा सर्व प्रकार से सुखी एवं सर्व ऋद्धि सम्पन्न होने पर भी उसके कोई सन्तान नहीं थी, अतः वह सदैव चिन्तातुर रहता था और इसके लिये कई उपाय

भी किये थे, पर उसकी आशा पूर्ण नहीं हुई, अतः एक दिन राजा ने ब्राह्मणों को एकत्र कर ब्रह्मभोज दिया तथा दक्षिणा में पुष्कल द्रव्य का दान देकर प्रार्थना की कि भूर्षियों मेरे पुत्र नहीं है अतः आप प्रसन्न होकर ऐसा उपाय वतलावें कि जिससे मेरा मनोरथ सफल हो ? ब्राह्मणों ने खुश होकर कहा राजा तेरे पुत्र तो होगा पर एक बात याद रखना कि वह १६ वर्ष तक उत्तर दिशा में न जाय यदि कभी भूल चूक कर उत्तर दिशा में चला गया तो उसको इसी शरीर से पुनर्जन्म लेना होगा इत्यादि भूदेवों के आशीर्वाद को राजा ने शिरोधार्य कर लिया और उन ब्राह्मणों को और भी बहुतसा द्रव्य देकर विसर्ज्जन किये।

राजा के चौबीस रानियें थी, जिसमें चम्पावती रानी के गर्भ रहा जिससे राजा बड़ा ही हर्षित हुआ और ब्राह्मणों के वचन पर श्रद्धा भी होगई गर्भ के दिन पूर्ण होने से राजा के वहां पुत्र का जन्म हुआ राजा ने वड़े ही महोत्सव किया और याचकों को दान एवं सज्जनों को सन्मान दिया और बारहवें दिन उसका नाम 'सज्जन कुँवर' रक्ख दिया राजकुँवर का पाँच धायें से पालन पोषण हो रहा था, जब कुँवर पांच वर्ष का हुआ तो अध्यापक के पास पढ़ने के लिये भेज दिया और बारहवर्ष में तो वह सर्व कला में निपुण वन गया इतना ही क्यों पर राजकुँवर ने राज कार्य भी संभालने लग गया राजा को ब्राह्मणों की बात याद थी, अतः कुँवर को कहदिया कि तुम सर्वत्र जाओ आओ पर एक उत्तर दिशा में भूल चूक के भी नहीं जाना उत्तर दिशा में जाने की मेरी सख्त मनाई है, राजकुँवर ने भी पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करली और आनन्द में राज कारभार चलाने लगा मुत्सद्दी उमराव एवं जनता कुँवर के आधीन रह कर उनकी आज्ञा का अच्छी तरह से पालन करने लगे।

एक समय उस नगर में किसी जैनाचार्य का शुभागमन हुआ और उन्होंने जनता को अहिंसा सत्य शील परोपकार आदि विविध विषयों पर उपदेश दिया आचार्य श्री ने मनुष्य जन्म की दुर्लभता राजसम्पति की चञ्चलता कुटम्ब की स्वार्थता और क्षणभंगुर शरीर की असारता पर जोरदार व्याख्यान दिया जिसको सुनकर राजकुंवर सज्जनकुंमार को सूरिजी का कहना सोलह आना सत्य प्रतीत हुआ अतः उसने सूरिजी के चरण कमलों में श्रद्धा पूर्वक जैन धर्म को स्वीकार कर लिया 'यथा राजा तथा प्रजा' जब राजकुंवर ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया तो उमराव मुत्सद्दी तथा नागरिक लोग कब पीछे रहने वाले थे उन लोगों ने भी जैन धर्म स्वीकार कर लिया जैनधर्म का मुख्य सिद्धान्त अहिंसा परमोधर्म का है कि बिना अपराध किसी जीव को मारना तो क्या पर तकलीफ तक भी नहीं पहुँचानी अर्थात पर जीवों को स्वजीव तुल्य समझना चाहिये। राजकुँवर ने जैन धर्म स्वीकार करके अपने राज में जीव हिंसा कतई बन्द करवा दी। जिससे ब्राह्मणों के यज्ञ यगादि कर्म सर्वत्र बन्द हो गये इतना ही क्यों पर राजकुँवर ने तो स्थान २ पर जैन मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाऐं करवा दी कि जनता सदैव सेवा पूजा भक्ति कर अपना कल्याण करने लगी इस कारण शिव मन्दिरों की पूजा बन्द सी हो गई कई थोड़े बहुत ब्राह्मण लोग ही शिवोपासक थे वे लोग भी छाने-छुपके शिव पूजा वगैरह करते थे।

राजकुँवर ने केवल अपने नगर में ही नहीं पर आस पास का प्रदेश अर्थात पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशा में जैनधर्म का काफी प्रचार कर दिया और जीव हिंसा एवं यज्ञ भी सर्वत्र बन्द करवा दिये केवल एक उत्तर दिशा में राजकुँवर नहीं जा सका कारण, राजा ने पहले से ही मनाई कर रखी थी। फिर भी कुंवर इस बात का विचार कर रहा था कि उत्तर दिशा में जाने की मुझे मनाई क्यों की होगी—

एक दिन सज्जनकुँवर ने सुना कि उत्तर दिशा में ब्राह्मणों ने एक यज्ञ करना प्रारम्भ किया है अतः उसे आश्चर्य के साथ बड़ा ही दुःख हुआ कि दरबार ने मुझे तो उत्तर दिशा में जाने की मनाई कर रखी है और ब्राह्मण लोग घोर हिंसा रूप वहां यज्ञ प्रारम्भ किया है यह कैसा अन्याय यह कैसा अत्याचार, मेरे मनाई करने पर भी ब्राह्मणों ने रौद्र हिंसामय यज्ञ शुरू कर दिया! बस! राजकुँवर से रहा नहीं गया अपने बहुत्तर उमरावों को साथ लेकर उत्तर दिशा में चला गया जहां कि यज्ञ हो रहा था सूर्यकुण्ड के पास जाकर राजकुँवर क्या देखता है कि एक ओर यज्ञमण्डप और अग्निकुण्ड बना हुआ है दूसरी ओर बहुत से पशु एकत्र किये हुए दीन स्वर से रूदन एवं पुकारें कर रहे हैं तब तीसरी तरफ बड़े-बड़े जटाधारी गले में जनेऊ और रुद्राक्ष की माला पड़ी हुई कपाल पर तिलक लगे हुए ऋषि एवं ब्राह्मण वेदध्वनी का उच्चारण कर रहे थे इस प्रकार दृश्य देख सज्जन को बड़ा ही गुस्सा आया और उसने अपने उमरावों को हुक्म दिया कि यज्ञ मण्डप उखेड़ दो अग्निकुण्ड को नष्ट करदो पशुओं को छोड़दो और यज्ञ सामग्री छीन लो अर्थात् यज्ञ विध्वंश कर डालो। बस, फिर तो देरी ही क्या थी उन लोगों ने सब यज्ञ को ध्वंश कर दिया। जिसको देख उन ब्रह्म महर्षियों को बड़ा भारी दुःख हुआ उन्होंने गुस्से में आकर उनको ऐसा श्राप दिया कि बहुतर उमरावों के साथ राजकुँवर जड़ पाषण की तरह अचेतन हो गये। इस बात की खबर नगर में हुई तो राजा और कई नागरिक लोग चलकर उत्तर दिशा में आये कि जहां यज्ञ विध्वंश किया था और राजकुँवरादि सब जड़ पाषणवत हुए पड़े थे उनको देख राजा को इतना दुःख हुआ कि वह दुःख के मारे वहीं मर गया उनकी सोलह रानियां तो राजा के साथ सतियें होकर जल गई और शेष आठ रानियां जाकर ब्राह्मणों का शरण लिया! इस वीतिकार को आसपास के राजाओं ने सुना कि खंडेला नगर का राजा तो मर गया है और कुँवर एवं उमराव जड़पाषाण सदृश हुये पड़ा है अतः उन्होंने सेना सहित आकर राज को अपने आधीन में कर लिया बात भी ठीक है कि बिना राजा के राज को कौन छोड़ता है।

इधर राजकुँवर सज्जन की पत्नी (कुँवर रानी) वगैरह ने सुना की बहोत्तर उमरावों के साथ राज कुँवर जड़ पाषाणवत् अचेतन हो गया है तो उनको बहुत दुःख हुआ वह भी बहोत्तर उमराओं की औरतों को लेकर उत्तर दिशा में आई और सबों ने अपने पतियों की हालत देख रोने एवं आक्रन्द करने लगीं पर अब रोना से क्या होने वाला था वे सब चल कर ऋषियों के पास गई और उनसे प्रार्थना करने लगी कि आप इनके अपराध की क्षमा कर इन सबको सचेतन करावें इत्यादि। इस पर ब्राह्मणों ने कहा कि यदि आप को यह कार्य करना ही है तो यह पास में गुफा है वहाँ जाकर शिव पार्वती की आराधना करो ब्राह्मणों ने एक अष्टाक्षरी मंत्र भी दे दिया था कि तुम सब इसमंत्र का जाप करो। बस दुःखी मनुष्य क्या नहीं कर सकता है कुँवरानी वगैरह सब गुफा में जाकर तपस्या के साथ उस मंत्र का जाप किया कि कितनेक दिनों के बाद साक्षात् शिव-पार्वती आये उनको देख कर उन ७३ औरतें जाकर पार्वती के पैरों में गिर गई तब पार्वती ने उनको आशीर्वाद के साथ कहा कि तुम धन धानपुत्र और पति से सुखी रहो तुम्हारा सुहाग कुशल और पति चिरंजीवी हो इस पर उन औरतों ने कहा माता आप वरदान तो दिया है पर हमारे पति तो सब जड़ पाषाणवत् अचेतन पड़े हैं फिर हमारा शोभाग्य कैसे रहेगा इस पर पार्वती ने जाकर शिवजी को कहा कि आप इन सब को सचेतन करो कारण मैंने इनको वरदान दे दिया है वह अन्यथा हो नहीं सकता है अतः पार्वती के अत्यग्रह से शिवजी ने उन सब को सचेतन कर दिये और वे सब आकर शिवजी के चारों ओर खड़े

भी किये थे, पर उसकी आशा पूर्ण नहीं हुई, अतः एक दिन राजा ने ब्राह्मणों को एकत्र कर ब्रह्मभोज दिया तथा दक्षिणा में पुष्कल द्रव्य का दान देकर प्रार्थना की कि भूषियों मेरे पुत्र नहीं है अतः आप प्रसन्न होकर ऐसा उपाय बतलावें कि जिससे मेरा मनोरथ सफल हो ? ब्राह्मणों ने खुश होकर कहा राजा तेरे पुत्र तो होगा पर एक बात याद रखना कि वह १६ वर्ष तक उत्तर दिशा में न जाय यदि कभी भूल चूक कर उत्तर दिशा में चला गया तो उसको इसी शरीर से पुनर्जन्म लेना होगा इत्यादि भूदेवों के आशीर्वाद को राजा ने शिरोधार्य कर लिया और उन ब्राह्मणों को और भी बहुतसा द्रव्य देकर विसर्ज्जन किये।

राजा के चौबीस रानियें थी, जिसमें चम्पावती रानी के गर्भ रहा जिससे राजा बड़ा ही हर्षित हुआ और ब्राह्मणों के वचन पर श्रद्धा भी होगई गर्भ के दिन पूर्ण होने से राजा के वहां पुत्र का जन्म हुआ राजा ने वड़े ही महोत्सव किया और याचकों को दान एवं सज्जनों को सन्मान दिया और बारहवें दिन उनका नाम 'सज्जन कुँवर' रक्ख दिया राजकुँवर का पाँच धायें से पालन पोषण हो रहा था, जब कुँवर पांच वर्ष का हुआ तो अध्यापक के पास पढ़ने के लिये भेज दिया और बारहवर्ष में तो वह सर्व कला में निपुण बन गया इतना ही क्यों पर राजकुँवर ने राज कार्य भी संभालने लग गया राजा को ब्राह्मणों की बात याद थी, अतः कुँवर को कहदिया कि तुम सर्वत्र जाओ आओं पर एक उत्तर दिशा में भूल चूक के भी नहीं जाना उत्तर दिशा में जाने की मेरी सख्त मनाई है, राजकुँवर ने भी पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करली और आनन्द में राज कारभार चलाने लगा मुत्सद्दी उमराव एवं जनता कुँवर के आधीन रह कर उनकी आज्ञा का अच्छी तरह से पालन करने लगे।

एक समय उस नगर में किसी जैनाचार्य का शुभागमन हुआ और उन्होंने जनता को अहिंसा सत्य शील परोपकार आदि विविध विषयों पर उपदेश दिया आचार्य श्री ने मनुष्य जन्म की दुर्लभता राजसम्पति की चञ्चलता कुटम्ब की स्वार्थता और क्षणभंगुर शरीर की असारता पर जोरदार व्याख्यान दिया जिसको सुनकर राजकुंवर सज्जनकुमार को सूरिजी का कहना सोलह आना सत्य प्रतीत हुआ अतः उसने सूरिजी के चरण कमलों में श्रद्धा पूर्वक जैन धर्म को स्वीकार कर लिया 'यथा राजा तथा प्रजा' जब राजकुंवर ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया तो उमराव मुत्सद्दी तथा नागरिक लोग कब पीछे रहने वाले थे उन लोगों ने भी जैन धर्म स्वीकार कर लिया जैनधर्म का मुख्य सिद्धान्त अहिंसा परमोधर्म का है कि बिना अपराध किसी जीव को मारना तो क्या पर तकलीफ तक भी नहीं पहुँचानी अर्थात पर जीवों को स्वजीव तुल्य समझना चाहिये। राजकुँवर ने जैन धर्म स्वीकार करके अपने राज में जीव हिंसा कतई बन्द करवा दी। जिससे ब्राह्मणों के यज्ञ यगादि कर्म सर्वत्र बन्द हो गये इतना ही क्यों पर राजकुँवर ने तो स्थान २ पर जैन मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं करवा दी कि जनता सदैव सेवा पूजा भक्ति कर अपना कल्याण करने लगी इस कारण शिव मन्दिरों की पूजा बन्द सी हो गई कई थोड़े बहुत ब्राह्मण लोग ही शिवोपासक रहे वे लोग भी छाने-छुपके शिव पूजा वगैरह करते थे।

राजकुँवर ने केवल अपने नगर में ही नहीं पर आस पास का प्रदेश अर्थात पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशा में जैनधर्म का काफी प्रचार कर दिया और जीव हिंसा एवं यज्ञ भी सर्वत्र बन्द करवा दिये केवल एक उत्तर दिशा में राजकुँवर नहीं जा सका कारण, राजा ने पहले से ही मनाई कर रखी थी। फिर भी कुँवर इस बात का विचार कर रहा था कि उत्तर दिशा में जाने की मुझे मनाई क्यों की होगी—

एक दिन सज्जनकुँवर ने सुना कि उत्तर दिशा में ब्राह्मणों ने एक यज्ञ करना प्रारम्भ किया है अतः उसे आश्चर्य के साथ बड़ा ही दुःख हुआ कि दरबार ने मुझे तो उत्तर दिशा में जाने की मनाई कर रखी है और ब्राह्मण लोग घोर हिंसा रूप वहां यज्ञ प्रारम्भ किया है यह कैसा अन्याय यह कैसा अत्याचार, मेरे मनाई करने पर भी ब्राह्मणों ने रौद्र हिंसामय यज्ञ शुरू कर दिया! बस! राजकुँवर से रहा नहीं गया अपने बहत्तर उमरावों को साथ लेकर उत्तर दिशा में चला गया जहां कि यज्ञ हो रहा था सूर्यकुण्ड के पास जाकर राजकुँवर क्या देखता है कि एक ओर यज्ञमण्डप और अग्निकुण्ड बना हुआ है दूसरी ओर बहुत से पशु एकत्र किये हुए दीन स्वर से रूदन एवं पुकारें कर रहे हैं तब तीसरी तरफ बड़े-बड़े जटाधारी गले में जनेऊ और रुद्राक्ष की माला पड़ी हुई कपाल पर तिलक लगे हुए ऋषि एवं ब्राह्मण वेदध्वनी का उच्चारण कर रहे थे इस प्रकार दृश्य देख सज्जन को बड़ा ही गुस्सा आया और उसने अपने उमरावों को हुक्म दिया कि यज्ञ मण्डप उखेड़ दो अग्निकुण्ड को नष्ट करदो पशुओं को छोड़दो और यज्ञ सामग्री छीन लो अर्थात् यज्ञ विध्वंश कर डालो। बस, फिर तो देरी ही क्या थी उन लोगों ने सब यज्ञ को ध्वंश कर दिया। जिसको देख उन ब्रह्म महर्षियों को बड़ा भारी दुःख हुआ उन्होंने गुस्से में आकर उनको ऐसा श्राप दिया कि बहुतर उमरावों के साथ राजकुँवर जड़ पाषण की तरह अचेतन हो गये। इस बात की खबर नगर में हुई तो राजा और कई नागरिक लोग चलकर उत्तर दिशा में आये कि जहां यज्ञ विध्वंश किया था और राजकुँवरादि सब जड़ पाषणवत हुए पड़े थे उनको देख राजा को इतना दुःख हुआ कि वह दुःख के मारे वहीं मर गया उनकी सोलह रानियां तो राजा के साथ सतियें होकर जल गई और शेष आठ रानियां जाकर ब्राह्मणों का शरण लिया। इस वीतिकार को आसपास के राजाओं ने सुना कि खंडेला नगर का राजा तो मर गया है और कुँवर एवं उमराव जड़पाषाण सदृश हुये पड़ा है अतः उन्होंने सेना सहित आकर राज को अपने आधीन में कर लिया बात भी ठीक है कि बिना राजा के राज को कौन छोड़ता है।

इधर राजकुँवर सज्जन की पत्नी (कुँवर रानी) वगैरह ने सुना की बहोत्तर उमरावों के साथ राज कुँवर जड़ पाषाणवत् अचेतन हो गया है तो उनको बहुत दुःख हुआ वह भी बहोत्तर उमराओं की औरतों को लेकर उत्तर दिशा में आई और सबों ने अपने पतियों की हालत देख रोने एवं आक्रन्द करने लगीं पर अब रोना से क्या होने वाला था वे सब चल कर भूर्षियों के पास गई और उनसे प्रार्थना करने लगी कि आप इनके अपराध की क्षमा कर इन सबको सचेतन करावें इत्यादि। इस पर ब्राह्मणों ने कहा कि यदि आप को यह कार्य करना ही है तो यह पास में गुफा है वहाँ जाकर शिव पार्वती की आराधना करो ब्राह्मणों ने एक अष्टाक्षरी मंत्र भी दे दिया था कि तुम सब इसमंत्र का जाप करो। बस दुःखी मनुष्य क्या नहीं कर सकता है कुँवरानी वगैरह सब गुफा में जाकर तपस्या के साथ उस मंत्र का जाप किया कि कितनेक दिनों के बाद साक्षात् शिव-पार्वती आये उनको देख कर उन ७३ औरतें जाकर पार्वती के पैरों में गिर गई तब पार्वती ने उनको आशीर्वाद के साथ कहा कि तुम धन धानपुत्र और पति से सुखी रहो तुम्हारा सुहाग कुशल और पति चिरंजीवी हो इस पर उन औरतों ने कहा माता आप वरदान तो दिया है पर हमारे पति तो सब जड़ पाषाणवत् अचेतन पड़े हैं फिर हमारा शोभाग्य कैसे रहेगा इस पर पार्वती ने जाकर शिवजी को कहा कि आप इन सब को सचेतन करो कारण मैंने इनको वरदान दे दिया है वह अन्यथा हो नहीं सकता है अतः पार्वती के अत्यग्रह से शिवजी ने उन सब को सचेतन कर दिये और वे सब आकर शिवजी के चारों ओर खड़े

होगये । पास में पार्वतीजी भी खड़ी थी उसका रूप योवन लावण्य आदि सौंदर्य देख कर राज कुँवर सज्ज का चित्त चञ्चल और विकार सहित हो गया जिस चेष्टा को देख पार्वती ने उसे श्राप दे दिया कि अ मंगता जा मांग खा । बस ! फिर तो देरी ही क्या थी राज कुँवर सज्जन मंगता बन गया जिसको 'जाग कहते हैं उसमें एक मिश्रीलाल कायथ था उसको कोतवाल बना दिया जब बहोत्तर उमराव हाथ जोड़ क बोले हे दयालु हमारे लिए क्या हुक्म है शिवजी ने कहा कि तुम्हारा राज तो दूसरे राजा ने छीन लिया अब तुम वैश्य पद को धारण कर के तलवार की कलम बनालो भाला की दंडी और ढाल के तराजू के पाल बना कर व्यापार करो। इस बीच में ही ब्राह्मण बोल उठे कि भोला शम्भू ! यह तो आपने ठीक किय परन्तु इन नास्तिकों ने हमारी सामग्री ध्वंश कर हमको बड़ा भारी नुकशान पहुँचाया है इसके लिये आपने क्या फैसला दिया है कहीं हम ब्राह्मण मारे नहीं जावें क्योंकि सामग्री के अभाव से हमारा यज्ञ समाप्त कैसे होंगे ? शिवजी ने कहा कि अभी तो इनके पास कुछ है नहीं कारण इनका राज माल वगैरह तो सब दूसरे राजा ने छीन लिया है अतः यह आपको क्या दे सकें । परन्तु इनका और तुम्हारा ऐसा सम्बन्ध कर दिय जाता है कि इन लोगों के घरों में पुत्र जन्म या विवाह शादी और मृत्यु वगैरह का प्रसंग होगा तब शक्ति के अनुसार तुमको कुछ न कुछ दिया करेंगे शिवजी ने दीर्घ दृष्टि से ब्राह्मणों का सदैव के लिये निर्वाहा कर दिया और वे उमराव सदैव के लिए ब्राह्मणों के करजदार बन गये खैर ! शिवजी का फैसला दोनों पक्ष वालों ने मंजूर कर लिया बाद शिव पार्वती अपने स्थान पर चले गये ।

जब वे बहोत्तर उमराव छ ब्राह्मणों के पास गये तो उन ब्राह्मणों ने बारह बारह उमरावों को अपनेर यजमान बना लिये इन पर ही ब्राह्मणों की आजीविका अर्थात् ब्राह्मणों की एक जागीरी बन गई । अब रहा राजकुँवर सज्जन इसके लिये पार्वतीजी का श्राप था वह जागा के नाम से ७२ उमरावों की वंशावलियां लिख कर अपनी आजीविका करने लगा -इत्यादि महेश्वरी जाति का उत्पत्ति बतलाई है ।

इनके अलावा श्रीयुक्त शिवकरणजी रामरतनजी दरक (महेश्वरी) मुडवा वाला ने 'इतिहास कल्पद्रुम महेश्वरी कुल दर्पण'' नाम की एक पुस्तक मुद्रित करवाई है उसमें भी महेश्वरी जाति की उत्पत्ति प्रायः उपरोक्त वही भाटों (जागा) के मतानुसार ही लिखी है और ये दोनों कथाओं प्रायः मिलती जुलती ही हैं इससे पाया जाता है कि दरक महाशय ने किसी जागा के कथा को नकल ही अपनी किताब में उतार ली हैं विशेषता में दरक महाशय ने उन ७२ उमरावों से महेश्वरी की जातियें बनी जिसके नाम एक कविता में दिया है जिसको भी मैं यहाँ दर्ज कर देता हूँ ।

महेश्वरी जाति के ७२ नाम हैं—सोनी१ और सोमाणी२ जाखेड्या३ सोढाणी४ ॥ हुरकट५ न्याति६ हेडा७ करवा८ काकाणी९ मालु१० सारड़ा११ कहाल्या१२ गिलडा१३ जाजू१४ ॥ बाहेती१५ बिदादा१६ बिहाणी१७ बजाजू१८ ॥ कलंत्री१९ कासट२० कचौल्या२१ काल्हाणी२२ झंवर२३ [illegible] डाडा२५ डागा२६ गठाणी२७ राठी२८ बिड्ला२९ दरक३० तोसणीवाल३१ राजे ॥ अजमेरा३२ भंडारी३३ छपरवाल३४ खोजे ॥ भट्टड़ा३५ मूंदड़ा३६ बंग३७ अटल३८ इनाणी३९ ॥ भूराड्या४० भन्साली४१ लढ्ढा[illegible] माल पाणी४२ सिकची४३ लाहोटी४४ गदइया४५ गगराणी४७ ॥ खटखड़ा४८ लखोटया४९ [illegible] चेचाणी५१ मुणयल्या५२ मुदड़ा५३ चौखड़ा५४ चंडक५५ राजे ॥ बलदवा५६ बालदी५७ बुब५८ [illegible]

मंडोवरा६० तौतला ६१ आगीवाल६२ आगसौड़६३ ॥ प्रताणी६४ नाहूदर६५ नवल६६ पचौडा६७ ॥ तापडिया६८ मिणीयार६९ धूत७० धूपड़७१ मोदाणी७२ ॥ साहा दरक शिवकरण बहुतर बखयाति ॥

इस प्रकार महेश्वरी जाति की उत्पत्ति तथा उनकी ७२ जातियों की उत्पत्ति लिखी है तथा इनकी शाखा प्रतिशाखा रूप ८०० जातियों के नाम भी प्रस्तुत ग्रन्थ में लिखा है। इस जाति की उत्पत्ति का समय स्पष्ट रूपसे तो नहीं लिखा हैं पर लेखक के भावों से राजाविक्रम के आस पास के समय का अनुमान किया जा सकता है पर इस समय के लिये विश्वासनीय प्रमाण नहीं दिया है तथापि महाशय दरक जी का परिश्रम प्रस्तुत कहा जा सकता है कि आपने वड़े ही परिश्रम एवं शोध खोज से इस ग्रन्थ कों तैयार किया हैं यदि ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ अधिक शोध खोज की जाती तो ग्रन्थ का महत्व और भी बढ़ जाता।

महाशय दरकजी को वही भटों एवं जागों से जितनी सामग्री प्राप्त हुई वह संग्रह कर के पुस्तक के रूप में छपा दी हैं पर इसमें त्रुटियें बहुत रही है जैसे कि—

१—महेश्वरी जाति का उत्पत्ति स्थान खंडेला नगर बतलाया है यह विचारणीय है क्योंकि खंडेला नगर और महेश्वरी जाति का कोई सम्बन्ध नहीं है खंडेला नगर से खंडेलवाल जाति की उत्पत्ति हुई है जिसको हम ऊपर लिख आये हैं तब महेश्वरीजाति की उत्पत्तिमहेष्मति नगरी जो आवंती प्रान्त में है जिसका अपर नाम महेश्वरी नगरी भी था वहां से महेश्वरी जाति की उत्पत्ति हुई है दूसरा इस जाति का उत्पत्ति समय विक्रम संवत के आस पास लिखना भी गलत है कारण महेश्वरी जाति की उत्पत्ति आद्यशंकराचार्य के समय में हुई है इसके पूर्व कोई भी प्रमाण नहीं मिलता है जैन पट्टावलियों में उल्लेख मिलता है कि विक्रम की आठवीं शताब्दी के अन्त और नौवीं शताब्दी के प्रारम्भ में महेश्वरी नगरी के राजा प्रजा एवं राजकुमारादि को आचार्य श्री कक्कसूरिजी ने प्रतिबोध देकर जैनधर्म की दीक्षा दी थी बाद में वहां शंकराचार्य का आना हुआ और उन लोगों को भौतिक चमत्कार दिखाकर पुनः अपने धर्म में दीक्षित कर लिये थे जब इस बात का पता आचार्य कक्कसूरि को मिला तो वे भी पुनः महेश्वरी नगरी में पधार कर राजकुंवार तथा बहुत से लोगों को पुन जैन बना लिये थे इस समय के बाद भी महेश्वरियों के अन्दर से मालु डागा सोनी लुनियों वगैरह जातियों को प्रतिबोध देकर जैनधर्म में दीक्षित किये थे। कई महेश्वरी भाई यह भी कह उठते हैं कि चोपड़ा नौलखादि ओसवालों को महेश्वरी बना लिये थे जिन्हों की जाति मंत्री कहलाई। पर यह बात बिल्कुल कल्पित है कारण राजपूतों से जैनाचार्यों ने चोपड़ा नोलखा बनाये थे जिसके पूर्व भी महेश्वरियों में मन्त्री जाति का होना पाया जाता है जैन पट्टावलियादि किसी ऐतिहासिक ग्रन्थ में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है कि कोई एक भी ओसवाल जैनधर्म को छोड़ कर महेश्वरी बन गया हो दूसरे ओसवालों का आसन ऊँचा था कि उसको छोड़कर महेश्वरी बन जाना यह बिल्कुल असंभव बात है तीसरे ओसवालों के बजाय महेश्वरी जाति में ऐसी कोई विशेषता भी नहीं थी। हां, कई ओसवाल राज प्रसंग से शिव वैष्णु धर्म पालने लग गये थे पर वे भी अपनी ओसवाल जाति का गौरव तो वैसा ही रखते हैं कि जैसे जैन ओसवाल रखते हैं तथा शिव वैष्णु धर्म पालने वाले ओसवालों का जैन ओसवालों के साथ तथा जैनमन्दिरों के साथ सम्बन्ध भी वही रहा जो शुरू से था वे धर्मान्तर होने पर भी अपना वेटी व्यवहार ओसवालों के साथ करते थे न कि महेश्वरियों के साथ। उनके घरों में जन्म विवाह और मरण सम्बन्धी क्रियाएं जैन धर्मानुसार जैन मन्दिरों में जाकर ही करते हैं तात्पर्य यह है कि वे राजा के दीवान

प्रधान मन्त्री महामन्त्री जैसे उच्च पद पर रहने के कारण राजा का अनुकरण मात्र से धर्मान्तर हो गये हो पर उनका कुल धर्म तो ओसवाल ही रहा था।

बहुत से ग्राम नगरों में महेश्वरी भाई जैनधर्म की उपासना करते थे-पर्युषण जैसे पर्वादि दिनों में कल्पसूत्र का श्रवण करना आचार्यों की सेवा उपासन स्वागत संम्मेलादि जैन धर्म के प्रत्येक कार्य में शामिल रहते थे। फलोदी के पास में पोकरण नामक एक शहर है वहाँ पर महेश्वरी भाई जैनों की धार्मिक सब क्रिया में भाग लेते थे। अन्य स्थानों में भी इसी प्रकार का बरताव था—

ओसवाल और महेश्वरियों से शुरू से ही भाईचारा पना रहा है कई ऐसे भी उदाहारण मिलते हैं कि महेश्वरियों की कन्यायें के साथ ओसवालों के विवाह हुए हैं। तथा महेश्वरी और ब्राह्मणों के अन्दर जो मांस मदिरा की प्रवृति बिलकुल बन्ध हो गई यह भी जैनाचार्य की कृपा का ही फल है महेश्वरियों के गुरु ब्राह्मण है और तमाम ब्राह्मण यज्ञ करवाते थे और उसमें मांस खाते थे जब गुरु मांस खाते थे उनके यज मान मांस खाने से कब बच सकते थे परन्तु जहाँ-जहाँ जैनाचार्यों का भ्रमण एवं उपदेश हुआ वहाँ वहाँ के ब्राह्मण एवं महेश्वरियों ने मास खाना बिलकुल छोड़ दिया परन्तु जहाँ जैनाचार्यों का विहार नहीं हुआ वहाँ के ब्राह्मण मांस भक्षण करते और आज भी कर रहे हैं देखिये पूर्व बंगाल पंजाब सिन्ध शूरसेन महाराष्ट्रीय और वीलंदिके ब्राह्मणोंको कि जिनके गला में जनोऊ रूद्रक्ष की माला होते हुए भी पंचेन्दिय जीवों का मास खाते हैं। स्वर्गस्थ महात्मा तिलक ने एक समय बनारस में अपने पब्लिक व्याख्यान में कहा था कि ब्राह्मण धर्म पर अहिंसा की छाप जैनों ने ही मारी थी कि वे लोग मांस नहीं खाते हैं।

महेश्वरी जाति की उत्पत्ति में लिखा है कि राजपुत्र सज्जनकुँवर उनके उमराव तथा नगरी के लोग जैन हो गये थे और यज्ञ तथा जीवहिंसा का खूब जोरों से निषेध करते थे तथा ब्राह्मणों के यज्ञ को विध्वंस कर दिया था यह उल्लेख स्पष्ट बतला रहा है कि ब्राह्मण यज्ञ में पशुहिंसा करते थे मांस खाते थे तब जैन उनका निषेध कर यज्ञविध्वंश कर अहिंसा धर्म का बड़ी वीरता से प्रचार करते थे यही कारण है कि उस कथा में राजकुँवर सज्जन को मगता (जागा) होना लिख दिया है यदि ब्राह्मणों में श्राप द्वारा किसी को पाषाणवत बना देने जितनी शक्ति होती तो जैन और बोध धर्म का इतना प्रचार कब होने देते तथा वेदक धर्म को मरण के सरण कब जाने देते मेरे खयाल से तो सज्जन जैन होने के कारण उसको मगता एवं जागा केवल जैनों के साथ द्वेष होने के कारण ही लिखा गया है वास्तव में यह कल्पना का कलेवर मात्र है।

हमें अधिक खुशी इस बात की है कि जिन ब्राह्मणों ने या महेश्वरी भाइयों ने जैनाचार्यों के सदुपदेश से यज्ञ जैसी क्रूर प्रवृति और मांस जैसा राक्षसी भेजन को छोड़कर शुद्ध सात्विक पदार्थ के सेवी बन गये यही कारण है कि ओसवाल जाति उनको अपने बराबरी के भाई समझ कर सब व्यवहार उनके साथ बड़ी खुशी से करते हैं जहाँ ओसवाल महेश्वरियों का साथ रहना है वहाँ खानपान जात न्यात में जीमण वार में भाइयों की भाँति शामिल रहते हैं केवल उस जमाने की संकीर्णता या अहंपद के कारण ओसवाल महेश्वरियों में बेटी व्यवहार नहीं हो सका वरन् वे दो अलग जातियें न होकर एक ही जाति बन जाति मेरे खयाल से तो आर्य जातियों में जहाँ भोजन व्यवहार शामिल है वहाँ बेटी व्यवहार शामिल रखने में कोई हर्जा नहीं कारण जिसकी जाति व्यवहार-क्षेत्र जितना विशाल है उतना ही उन्नति क्षेत्र विशाल बन जाता है कई ओसवाल महेश्वरियों में विवाह होने के उदाहरण भी मिलते हैं—

गुडानगर में एक आर्यगोत्री लुनाशाह नाम का ओसवाल रहता था उसी नगर में एक महेश्वरी था और उसके एकपुत्री थी पूर्वभव के संस्कारों की प्रेरणा से लुनाशाह ने उस महेश्वरी कन्याके साथ विवाह कर लिया इस पर ओसवाल जाति ने लुनाशाह के साथ अपना व्यवहार तोड़ दिया बादएक सारंगशाह ओसवाल संघ लेकर तीर्थ यात्रा को जाता हुआ गुडानगर में विश्राम लिया लुनाशाह ने गुडानगर के बाहार एक वापि (वावड़ी) बन्धाई थी जिसमें उसने लाखों रुपये लगाये थे। संघपति को पुच्छ ताच्छ करने से मालुम हुआ कि जनोपयोगी कार्य करने वाला लुनाशाह नामका एक श्रेष्टिवर्य्य यहाँ वसता है संघपति ने लुनाशाह को बुलाकर मिला लुनाशाह ने संघ को भोजन की प्रार्थना की और संघपति ने मंजुर कर ली पर जब संघपति भोजन करने को वेठा तो लुनाशाह को साथ भोजन करने को कहा। इस पर लुनाशाह ने कहा मैं आप के साथ भोजन नहीं कर सकता हूँ कारण मैंने महेश्वरी की कन्या के साथ शादी की है अतः न्यात वालों ने मेरा व्यवहार वन्ध कर रखा है। संघपति ने सोचा की बड़ी जूलम की वात है कि एक सदाचारी सामान व्यवहार वाले महेश्वरी की कन्या के साथ सादी करने से क्या अनर्थ हो गया ? संघपति ने जाति वालों को बुला कर बड़ा ही उपालम्ब दिया और अपनी पुत्री लुनाशाह को परणा कर उनका सब व्यवहार शामिल करवा दिया। इस उदाहरण से पाठक समझ सकते हैं कि ओसवाल और महेश्वरी जाति में कुछ भी भेद भाव नहीं है।

कई लोग कहते हैं कि महेश्वरियों की उत्पत्ति हलकी जातियों से हुई है पर इसके लिये कोई प्रमाण नहीं है अतः जहाँ तक प्रमाण न मिले वहाँ तक ऐसी बातों को प्रमाणिक नहीं समझी जाती है। महेश्वरी जाति में भी बहुत से उदार चित्त वाले ऐसे लोग भी हुए हैं कि जिन्होंने देश समाज हित कई चोखे और अनोखे काम किये हैं व्यापार में जैसे अन्य जातियां हैं वैसे महेश्वरी जाति भी है इस जति का अभ्युदय भी व्यापार से ही हुआ था—जैसे अन्योन्य जातियों का पतन हुआ वैसे महेश्वरी जाति भी अपने पतन से बच नहीं सकी है पहले की अपेक्षा इसकी संख्या भी बहुत कम रह गई है।

१८—आचार्य श्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज (तृतीय)

नित्यं जैन समाज मान हित कृत् स्मार्यः सदार्यः सदा ।
आचार्यस्तु स कक्कसूरि रभवदादित्य नागान्वये ॥
दीक्षां स्वमगता मपीह सुदधावाचार्य पट्टं तथा ।
आसीद्यः कठिनस्तपश्चरणता स्वाचार युक्तोऽस्पृही ॥
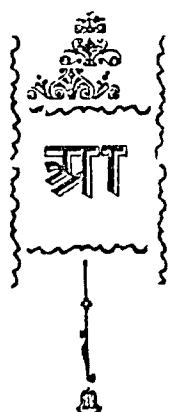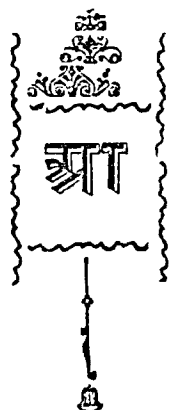
चार्य श्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज अद्वितीय प्रभावशाली एवं धर्म प्रचारक आचार्य हुए। आपका जन्म कोरंटपुर नगर के प्राग्वटवंशीय शाह लाला की सुशीलभूषिता धर्म प्रिय भार्या ललितादेवी की कुक्ष से हुआ। शाह लाला पहिले से ही खूब धनाढ्य था पर जब ललितादेवी गर्भवती हुई तो शाह लाला के घर में चारों ओर से लक्ष्मी का इतना आगमन हुआ कि लाला एक कुवेरलाल ही बन गया और केवल याचक ही नहीं पर जनता भी उसको 'कुवेरलाला' कहने लग गई।

ललितादेवी को गर्भ के प्रभाव से अच्छे २ दोहले उत्पन्न होने लगे। उन दोहलों में परमेश्वर की पूजा गुरु महाराज की सेवा, सार्धर्मियों के साथ वात्सल्यता दीन दुखियों का उद्धार और अमरी पहड़ा वगैरह इत्यादि अनेक प्रकार के मनोरथ होते थे जिन दोहलों को साह लाला ने बड़े ही आनन्द के साथ पूर्ण किये और इन शुभ कार्य्यों में लाखों रुपये खर्च भी किये।

एक समय माता ललितादेवी को ऐसा दोहला उत्पन्न हुआ कि मैं अपनी सखियों के साथ संघ सहित छरी पालती हुई तीर्थ श्री शत्रुंजय जाऊं और वहाँ भगवान आदीश्वर की पूजा कर अष्टान्हि का महोत्सव एवं पूजा प्रभावना स्वामीवात्सल्य आदि करूं। जब ललितादेवी ने अपने दोहले की बात पतिदेव को कही तो शाह लाला बड़े भारी विचार में पड़ गया कि एक तो शत्रुंजय दूर बहुत दूसरे ललितादेवी को गर्भ का आठवाँ मास चल रहा है। इस हालत में यह दोहला कैसे पूर्ण हो सके। शाह लाला ने बहुत अक्ल दौड़ाई पर इसका उपाय कुछ भी उसकी दृष्टि में नहीं आया। शाह लाला अपने मित्र श्रेष्ठि यशोदेव के पास आया और अपने मनोगत भाव कह सुनाये। मंत्री यशोदेव ने भी खूब सोचा पर इस बात का तो कोई रास्ता उनको भी नहीं मिला; अतः वे दोनों चल कर गुरुवर्य्य के पास आये और सब हाल सुनाया। इस पर गुरु महाराज ने सोचा कि गर्भ का जीव पुन्यवान है धर्म भावना से अनुमान किया जा सकता है कि यह गर्भ का जीवन शासन का कार्य करने वाला होगा अतः उन लोगों से कहा कि तुम नगर के बाहर श्रीशत्रुंजय तीर्थ की रचना करवा कर ललितादेवी के मनोरथ पूर्ण करो। यह बात दोनों मित्रों के दिल में जँच गई और उन्होंने शत्रुंजय तीर्थ की हूबहू रचना करवाना निश्चय करके अच्छे समझदार कारीगरों को बुलवाया और सब हाल कह कर समझाया और उन्होंने नगर के बाहर धवलगिरि पहाड़ को पसंद किया एवं तत्काल ही शुरू

दिन में कार्य प्रारम्भ कर दिया। जहाँ द्रव्य खर्चने में उदारता हो वहाँ कार्य्य बनने में क्या देर लगती है। बस, थोड़े ही समय में एक शत्रुंजय तीर्थ तैयार हो गया।

इधर शाह लाला ने अपने नगर में तथा बाहर के ग्राम नगरों में आमंत्रण दे दिया तथा यह एक नया कार्य्य होने से श्रीसंघ में बहुत उत्साह फैल गया। चारों ओर से श्रीसंघ खूब गहरी तादाद में आने लगा जिसका स्वागत शाह ने अच्छी तरह से किया।

शुभ दिन अष्टान्हि का महोत्सव प्रारम्भ हुआ। माता ललितादेवी ने अपनी सखियों के साथ पैदल चल कर धवल पर्वत पर जाकर भगवान् आदीश्वर के दर्शन पूजन किया और ज्यों-ज्यों साधर्मी भाइयों को देखा त्यों-त्यों उसके दिल एवं गर्भ के जीव को बड़ा भारी आनन्द हुआ। श्री संघ ने आठ दिन बड़ी ही धामधूम पूर्वक अठाई महोत्सव मनाया। शाह लाला ने आठ दिन स्वामी वात्सल्य पूजा प्रभावना की। संघ को पहरामनी देकर विसर्जन किया। इस महोत्सव में शाह लाला ने तीन लक्ष्य द्रव्य व्यय कर सम्यक्त्व गुण को बढ़ाया। यह सब गर्भ में आये हुये पुन्यशाली जीव की पुन्यवानी का ही प्रभाव था।

इसी प्रकार एक बार माता सुबह प्रतिक्रमण कर रही थी तो उसमें 'तियलोए चइय वन्दे' सूत्र आया तो आपकी भावना हुई कि मैं तीनों लोकों के चैत्यों को वन्दन करूं। यह बात शाह लाला को सुनाई तो उसने बड़ी खुशी के साथ तीन लोक की रचना करवा कर ललितादेवी का मनोरथ पूर्ण किया। इस प्रकार शुभ दोहला और मनोरथों को सफल बनाती हुई माता ने शुभ रात्रि में पुत्र को जन्म दिया। यह शुभ समाचार सुनते ही शाहलाला के घर में ही नहीं पर नगर भर में हर्षनाद होने लग गया। सज्जनों को सन्मान, याचकों को दान और जिनमन्दिरों में अष्टान्हिक महोत्सवादि करवाके शाह लाला ने खूब हर्ष मनाया। क्रमशः नवजात पुत्र का नाम 'त्रिभुवनपाल' रक्खा। वास्तव में त्रिभुवनपाल त्रिभुवनपाल ही था। इनकी बालक्रीडा होनहार की भांति अनुकरणीय थी। माता पिता ने त्रिभुवन के पालन पोषण और शरीर स्वास्थ्य के लिये अच्छा प्रबन्ध कर रखा था। माता पिता धर्मज्ञ होते हैं तब उनके बालबच्चों के धार्मिक संस्कार स्वभाविक सुदृढ़ बन जाते हैं। त्रिभुवन की उम्र ८ वर्ष की हुई तो विद्याध्यन के लिये पाठशाला में प्रविष्ट हुये। पूर्व जन्म की ज्ञानाराधना के कारण आपकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि आप स्वल्प समय में व्यवहारिक राजनैतिक एवं धार्मिक ज्ञान सम्पादन करने में आशातीत सफलता प्राप्त करली। इधर शाह लाला की कार्य्य कुशलता एवं बुद्धिमत्तादि गुणों से मुग्ध बन वहां के राजाभीम ने दीवान पद से भूषित कर दिया। क्यों न हो जिनके घर में पुन्यशाली पुत्र अवतीर्ण हुआ फिर कमी ही किस बात की थी। शाहलाला इतना उदार दिल वाला था कि अपने स्वधर्मी तो क्या पर नगर एवं देशवासी किसी भाई का भी दुःख उससे देखा नहीं जाता था। किसी भी प्रकार की सहायता से वे उनको सुखी बनाने की कोशिश किया करते थे। शाह लाला ने अपने धर्मज्ञ जीवन में कई बार तीर्थों के संघ निकाल कर आप सकुटुम्ब तथा अन्य हजारों लाखों भाइयों को तीर्थ यात्रा करवा कर पुष्कल पुन्य संचय किया। शाह लाला ने जैनधर्म की उन्नति करने में भी कोई बात उठा नहीं रक्खी थी साधु साध्वियों का तो वह पूर्ण भक्त ही बना रहता था। ठीक है मनुष्य को सदैव सत्कार्य करते रहना चाहिये न जाने किस समय महात्मा का आशीर्वाद मिल जाता है पर शाह लाला जो करता वह केवल परमार्थ की बुद्धि से ही करता था। कारण, उसके पास सब

साधन सामग्री विद्यमान थे। जैसा लाला था वैसे ही ललिता थी और त्रिभुवन तो इन दोनों से भी कुछ और भी विशेषता रखता था। कहा भी है कि—'पूर्वकर्मानुसारेण जायते जन्मिनां हि धीः'

एक समय शाह लाला अर्द्ध निद्रा में क्या देखता है कि आप संग्राम में गये और आपने अपनी वीरता से सोलह सुभटों के सिवाय सब को पराजित कर दिया बाद आप स्वयं यकायक हताश हो भूमि पर गिर पड़े इत्यादि। जब आप जागृत हुये तो आश्चर्य हुआ कि आज मुझे यह क्या स्वप्न आया। यदि कोई इस विषय के ज्ञाता हों तो पूंछ कर निर्णय करूं।

भाग्योदय आचार्य यक्षदेवसूरि भू भ्रमण करते हुये कोरंटपुर नगर की ओर पधार रहे थे यह समाचार मिलते ही शाह लालादि श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज का सुन्दर सत्कार कर नगर प्रवेश करवाया। सूरिजी ने भगवान महावीर की यात्रा कर मंगलाचरण के पश्चात् सारगर्भित देशना दी बाद सभा विसर्ज्जन हुई।

मंत्री लाला समय पाकर सूरिजी के पास गया और वन्दन कर अपने स्वप्न के लिये पूंछा। इस पर सूरिजी ने कहा भक्त अब तेरी उम्र केवल सोलह वर्षों की रही है अतः तुम्हें आत्मकल्याण में लग जाना चाहिये। भक्त लाला ने कहा पूज्यवर ! आत्मकल्याण तो आप जैसे महात्मा ही कर सकते हैं मेरे सिर पर तो अनेक कार्य्य की जुम्मेवारी है जैसे एक तरफ कुटुम्ब का पालन पोषण दूसरी ओर राजकार्य्य तीसरे त्रिभुवन अभी बालक है। इसकी शादी भी करनी है। मुझे घंटा भर की भी फुरसत नहीं मिलती है फिर मैं कैसे आत्मकल्याण कर सकूं ? हाँ मेरी इच्छा इस ओर सदैव बनी रहती है शासन का कार्य पर मेरी रूची है द्रव्य खर्च करने में मैं आगा पीछा नहीं देखता हूँ पर निर्वृत्ति के लिये मुझे समय नहीं मिलता है इत्यादि। सूरिजी ने कहा लाला ! शासन के हित द्रव्य व्यय करना भविष्य में कल्याणकारी अवश्य है पर यह प्रवृति मार्ग है इसके साथ निर्वृति मार्ग का भी आराधन करना चाहिये। क्योंकि शुभ प्रवृति से शुभ कर्मों का संचय होता है और उनको भी भोगना पड़ता है तब निर्वृति से कर्मों की निर्ज्जरा होती है लाला! संसार तो एक प्रकार की मोह जाल है न तो साथ में कुटुम्ब चल सकेगा न राज काज ही चल सकेगा और न पुत्र ही साथ चलने वाला है। भला सोचिये आज शरीर में व्याधि या मृत्यु आ जाय तो पूर्वोक्त कार्य्य कौन करेगा ? बस तुम यही समझ लो कि आज मैं मर गया हूँ फिर तो तुम्हारे पीछे कोई भी काम नहीं रहेगा। सूरिजी का कहना लाला की समझ में आ गया कि बात सच्ची है। आज मैं मर जाऊं तो मेरे पीछे काम कौन करेगा ? अतः पीछे काम की फिक्र करना व्यर्थ है। परन्तु मेरा एक पुत्र है इसकी शादी तो अपने हाथ से कर दूँ। इस विचार से सूरिजी से अर्ज की पर इसके लिए सूरिजी क्या कह सकते थे। सूरिजी का फर्ज तो उपदेश देने का था वह दे दिया।

शाह लाला सकुटुम्ब सूरिजी का हमेशा व्याख्यान सुना करता था। आपका पुत्र त्रिभुवनपाल तो विशेष सूरिजी की सेवा में ही रहता था। एक दिन सूरिजी का व्याख्यान ब्रह्मचर्य्य के महत्व के विषय में हो रहा था। आपने फरमाया कि सब व्रतों में ब्रह्मचर्य्य राजा है। इतना ही क्यों पर शरीर में जितने धातु पदार्थ हैं उनमें भी वीर्य ही राजा है। जिस जीव ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का अखंड रूप से पालन किया है। उनकी जबान सिद्ध हो जाती है। यंत्र मंत्र रसायन वगैरह ब्रह्मचर्य्य से ही सिद्ध होता है। हाथों में ताकत, हृदय में हिम्मत, मगज में बुद्धि खून का विकाश वीर्य से ही होता है। अतः मनुष्य मात्र का धर्म है कि वे सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करें।

इस पर एक ब्राह्मण ने सवाल किया कि गुरु महाराज ! आपका कहना तो सत्य है कि ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करना चाहिये पर शास्त्रों में ऐसा भी तो कहा है:—

"अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च"

अर्थात् जहां तक पुत्रोत्पत्ति न हो वहां तक उसकी स्वर्ग में गति नहीं होती है। अतः गति की इच्छा वाले को शादी कर पुत्रोत्पत्ति अवश्य करनी चाहिये फिर बाद में वह ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन कर सकता है।

सूरिजी ने कहा भूर्षि ! ब्रह्मचर्य्य व्रत दो प्रकार से पालन कर सकते हैं एक साधु धर्म से दूसरा गृहस्थ धर्म से। इसमें साधु धर्म में तो सर्वथा नौवाड़ विशुद्ध ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करना चाहिये जैसे

१—जिस स्थान में स्त्री नपुंसक पशु आदि रहते हों वहाँ ब्रह्मचारी को नहीं रहना चाहिये। साक्षात् स्त्री तो क्या पर स्त्री का चित्र हो वहां भी नहीं ठहरे। कारण यह बातें ब्रह्मचर्य्य व्रत में बाधा डालने वाली हैं। जैसे जिस मकान में मंजीरी रहती हो वहां मूषक ठहरेगा तो कभी उसका विनाश ही होगा।

२—ब्रह्मचारी को हास्यरस शृंगाररस कामरसादि विकार उत्पन्न करने वाली कथा नहीं करनी चाहिये। जैसे नींबू का नाम लेने पर मुंह में पानी छूट ही जाता है।

३—जहां स्त्री बैठी हो वहां दो घड़ी तक पुरुष को नहीं बैठना चाहिये। कारण, उस स्थान के परमाणु ऐसे विकारी हो जाते हैं कि ब्रह्मचर्य्य का भंग कर डालते हैं। जैसे जिस जमीन पर आग लगाई है वहां से आग को हटा कर तत्काल ही ठसा हुआ घृत रखदें तो वह बिना पिघले नहीं रहेगा

४—स्त्रियों के अंगोपांग एवं मुँह स्तन नयन नासिकादि इन्द्रियों को सराग से नहीं देखता जैसे आँखों का ओपरेशन कराया हुआ सूर्य्य की ओर देखेगा तो उसको बड़ा भारी नुकसान होगा।

५—जहां भींत, टाटी, कनात के अन्तर में स्त्री पुरुषों के विषय वचन हो रहा है उसको सुनने की भी मनाई है। जैसे आकाश में घन गर्जना होने से मयूर बोलने लग जाते हैं।

६—पूर्व सेवन किये हुये काम विकार को कभी याद नहीं करना। कारण, जैसे एक वुढ़िया के यहां दो युवक मुसाफिर ठहरे थे। जब वे मुसाफर चलने लगे तो वुढ़िया ने अंधेरे में ही छाछ बिलो कर उनको दे दी। वह छाछ पीकर वे दिसावर को रवाना हो गये। बाद कुछ वर्षों के वे फिर लौट कर आये और उसी वुढ़िया के यहाँ ठहरे। वुढ़िया ने उनको पहचान कर कहा 'अरे बेटा क्या तुम जीते आये हो'। युवकों ने पूछा क्यों ? वुढिया ने कहा उस दिन अंधेरे में असावधानी से दही के साथ सांप विलोया गया था और वह विषमिश्रित छाछ तुमको दी थी एवं पिलाई थी। यह बात सुनते ही उन दोनों के प्राण पखेरू उड़ गये। इसी प्रकार पिछले भोग विलास को याद करते ही मनुष्य विषय विकार व्याप्त हो जाता है।

७—ब्रह्मचारी को हमेशा सरस आहार जो बल वीर्य विकार की वृद्धि करने वाला हो, नहीं करना चाहिये। यदि करेगा तो उसका ब्रह्मचर्य्य व्रत सुख पूर्वक नहीं पल सकेगा। जैसे सन्निपात के रोग वाले को दूध शक्कर पिला देने से उलटो रोग की वृद्धि होगी।

८—रूक्ष भोजन भी प्रमाण से अधिक न करे। करेगा तो जैसे सेर की हांडी में सवा सेर चना पकाने में हांडी फट जाती है, वही हाल ब्रह्मचार्य व्रत का होगा।

९—ब्रह्मचारी को शौक मोज के लिये नहाना धोना शृंगार शोभा करना वगैरह को शास्त्र मनाई हैं। क्योंकि दारू की दुकान में अग्नि की सवावाला सामान रखने से कभी न कभी दुकान में आग लग ही जाती

है। इत्यादि सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य्य पालन करने वालों के यह नियम है और जो लोग स्वेच्छा व्रत पालने वाले होते हैं वे गृहस्था वास में रहते हुए भी आजीवन ब्रह्मचर्य्यव्रत का पालन कर सकते हैं जैसे विजयसेठ और विजयासेठानी हुए हैं तब कई लोग सदारा संतोष अर्थात् मर्यादा से ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करते हैं।

अब आप अपने प्रश्न का उत्तर भी सुन लीजिये कि जैसे 'अपुत्रस्यगतिर्नास्ति' ? यह किसी अल्प मनुष्य का कथन है परन्तु देखिये आप महात्मा मनु ने अपने धर्मशास्त्र मनुस्मृति में यह भी कहा है कि:-

अनेकानि सहस्राणी कुमारी ब्रह्मचारिणाम् । दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसन्ततिम् ॥

इसमें स्पष्ट बतलाया है कि अनेकों ने कुमारावस्था से ही ब्रह्मचर्य्य व्रत का सम्पूर्ण पालन कर स्वर्ग को प्राप्त किया है। इनके अलावा भी कई प्रमाण मिलते हैं जो ब्रह्मचर्य से मोक्ष प्राप्त हुए हैं।

ब्राह्मण देव ! दूसरे व्रत पालन करने सहज हैं पर यह दुस्कर व्रत पालन करना बड़ा भारी कठिन है ऊपर जो नव वाडे बतलाई हैं जिसमें स्त्री जाति का परिचय तक करना मना किया है और दूसरों के लिये तो क्या पर खुद माता एवं बहिन के साथ भी एकान्त में नहीं ठहरना चाहिये जैसे कहा है कि:—

मात्र स्वस्त्र दुहित्रा वा न विविक्ताऽऽसनोभवेत्। बलवानिन्द्रिय ग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

महात्माओं ने तो यहां तक भी फरमाया है कि मैथुन केवल स्त्री पुरुष संयोग को ही नहीं कहते हैं पर मनसा विकार मात्र को भी मैथुन ही कहते हैं।

ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेद् अष्टधा रक्षणं पृथक् । स्मरणं कीर्त्तिनं केलिः प्रक्षेणं गुह्यभाषणम् ॥
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्ति रेव च । एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणाः ॥

ब्राह्मण देव ने कहा पूज्यवर ! आपका कहना सत्य है पर किसी २ शास्त्र में तो यहां तक भी लिखा है कि तपके तपने वाले सन्यासी महात्माओं ने कई राजाओं की रानियों को ऋतुदान दिया था। तब क्या परोपकार के लिये साधुओं को इस बात की छूट दी है।

सूरिजी ने फरमाया कि यह किसी व्यभिचारी ने अपने ऐब छिपाने के लिये परोपकार की ओट में कुकर्म किया होगा। देखिये शास्त्र तो स्पष्ट कह रहा है कि:—

यस्तु मत्रार्जितो भूत्वा पुनः सेवेत मेथुनम् । पष्टिवर्षसहस्राणिं विष्ठायां जायते कृमि ॥

इत्यादि सूरिजी ने ब्रह्मचर्य्य का इस कदर महत्व बतलाया कि उसका भूमि पर इतना प्रभाव हुआ कि उसी ने भरी सभा के बीच खड़ा होकर प्रतिज्ञा पूर्वक ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण कर लिया।

उस सभा में शाह लाला का पुत्र त्रिभुवनपाल भी बैठा था उसने भी इस प्रकार ब्रह्मचर्य्य के महत्व को सुना जिसकी उम्र करीब १६ वर्ष की थी पर पूर्व जन्म का क्षयोपशम इस प्रकार का था कि उसने अपने दिल में निश्चय कर लिया कि मैं आजीवन अखंड ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन करूंगा। त्रिभुवन ने अपने मन में तो दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली पर लज्जा के मारे उस सभा में बोल नहीं सका। जब सभा विसर्जन हुई तो त्रिभुवन ने अपने मनकी बात सूरिजी से कह सुनाई। सूरिजी ने कहा, त्रिभुवन ! तेरा विचार तो उत्तम है पर कुटुम्ब वाले तुमको सुख से रहने नहीं देंगे वह तेरी शादी की बातें कर रहे हैं। त्रिभुवन ने कहा पूज्यवर ! जब मैं दृढ़ता पूर्व प्रतिज्ञा कर चुका हूँ तो मुझे डिगाने वाला है कौन ? सूरिजी ने कहा बहुत अच्छी बात है यह व्रत तेरे कल्याण का कारण है। त्रिभुवन सूरिजी को वंदन कर अपने मकान पर चला गया।

इधर तो शाह लाला आत्म कल्याण की धुन में निर्वृति का उपाय सोच रहा था कि त्रिभुवन की शादी कर आत्म कल्याण करूं उधर त्रिभुवनपाल ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन की प्रतिज्ञा पर डटा हुआ था।

शाह लाला और ललितादेवी आपस में बातें कर रहे थे कि त्रिभुवन की शादी जल्दी से करके अपने को आत्म कल्याण करने में लग जाना चाहिये। त्रिभुवनपाल बीच में ही बोल उठा कि क्यों पिताजी ! आप तो अपना कल्याण करने को तैयार हुए हो और यह संसार रूपी वरमाला मेरे गले में डालना चाहते हो ? यदि आप मुझे अपना प्यारा पुत्र समझते हो तब तो आत्म कल्याण में मुझे भी शामिल रखिये कि मेरे पर आपका डबल उपकार हो जाय। मैं इस बात को सच्चे दिल से चाहता हूँ।

शाह लाल ने कहा पुत्र ! अपने घर में इतना धन है तुम शादी कर इसको सत्कार्य में लगा कर पुन्योपार्जन करो। पिताजी ! जब आप इस धन को असार समझ कर अर्थात् इनका त्याग कर अपने कल्याण की भावना रखते हो तो यह द्रव्य मेरा कल्याण कैसे कर सकेगा ? हाँ, मैं इस द्रव्य में फंस जाऊँ तो इससे मेरा अकल्याण जरूर होगा। आप तो मुझे साथ लेकर सबका कल्याण कीजिये इत्यादि बाप बेटों का आपस में बहुत कुछ संवाद हुआ। जिसको सुन कर ललितादेवी तो बड़ी भारी उदास हो गई। क्या मेरे घर का नाम निशान तक भी नहीं रहेगा ?

आखिर इस बात का झगड़ा सूरिजी के पास आया और सूरिजी ने उन सबको इस क़दर समझाया कि वे सब के सब दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करने के लिये तैयार हो गये। अपने घर में जो अपार द्रव्य था उसको सात क्षेत्र में लगा दिया जिसको देख कर तथा शाह की सहायता से कोरंटपुर तथा आस पास के कई ५२ नरनारी सूरिजी महाराज के चरण कमलों में दीक्षा लेने को तैयार हो गये। फिर महोत्सव का तो कहना ही क्या था। उस प्रदेश में बड़ी भारी चहल-पहल मच गई। शुभ दिन में सूरिजी ने उन मोक्षाभिलाषियों को भगवती जैन दीक्षा देकर अपने शिष्य बना लिए। त्रिभुवनपाल का नाम मुनि देवभद्र रख दिया। इस महान कार्य्य से जैनधर्म की खूब ही उन्नति हुई।।

मुनि देवभद्र पर सूरिजी की पहिले से ही पूर्ण कृपा थी। ज्ञानाध्ययन के लिये तो वृहस्पति भी आपकी स्पर्द्धा नहीं कर सकता था। आपके वदन पर ब्रह्मचर्य्य का तप तेज अजब ही झलक रहा था। तर्क वितर्क और वाद विवाद में अपकी युक्तियें इतनी प्रबल थीं कि वादी लोग आपका नाम सुनकर घबरा उठते थे एवं दूर-दूर भाग छूटते थे इत्यादि सूरिजी के शासन में आप एक योग्य साधु समझे जाते थे।

एक समय आचार्य यक्षदेव सूरि लाट सौराष्ट्र और कच्छ में घूमते घूमते सिन्ध की ओर पधारे। आप श्री का शुभागमन सुन सिन्ध भूमि में आनन्द एवं उत्साह का समुद्र ही उमड़ पड़ा। जहाँ आप पधारते वहाँ एक यात्रा का धाम ही बन जाता था। कई साधु साध्वियाँ एवं भक्त लोग आपके दर्शनार्थ आया करते थे और भक्त लोग अपने २ नगर की ओर पधारने की प्रार्थना करते थे।

सूरिजी अपने शिष्य मंडल के साथ शिवनगर पधारे वहाँ का राव गोंदा जैन धर्मोपासक ही नहीं पर जैन श्रमणों का परम भक्त था। उसने श्री संघ के साथ सूरिजी का सुन्दर स्वागत किया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य और तात्त्विक विषय पर होता था। सूरिजी की वृद्धावस्था के कारण कभी कभी मुनि देवभद्र भी व्याख्यान दिया करता था। आपका व्याख्यान इतना प्रभावोत्पादक था कि सुनने वालों को वैराग्य आये बिना नहीं रह सकता था। चतुर्मास का समय नजदीक आ गया था। श्री संघ ने

विनती की और सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जान कर श्रीसंघ की विनती को स्वीकार कर लिया। बस फिर तो था ही क्या, आज शिवनगर के संघ में हर्ष का पार नहीं था।

सूरि जी के विराजने से केवल शिवनगर की जनता में ही नहीं पर सिन्ध प्रान्त में धर्म का प्रभाव इतना फैला गया कि लोग आत्मकल्याण की भावना से एवं सूरिजी की सेवा तथा व्याख्यान सुनने की गरज से बहुत ग्राम नगरों के लोग तो वहाँ आ आकर अपनी छावनीयें तक भी डाल दी अहा-हा उस जमाना में जनता की भावना आत्मकल्याण की ओर कहाँ तक बढ़ी हुई थी वे लोग संसार में रहते हुए भी किस प्रकार अपना कल्याण करना चाहिते थे सिन्ध प्रदेश में मुख्यतया उपकेशगच्छाचार्यों का ही प्रभुत्व था जिसमें यक्षदेव सूरि का नाम तो और भी मशहूर था कारण इस प्रान्त में सब से पहला यक्षदेवसूरि ने ही धर्म की नीव डाली थी खैर सूरीश्वरजी के चतुर्मास विराजने से धर्म का बहुत लाभ हुआ। कई ४८ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। एक समय राव गोंदा ने सूरिजी से अर्ज की कि प्रभो! आपकी वृद्धावस्था होती चली जा रही है अतः किसी योग्य मुनि को सूरि मंत्र देकर अपने पट्ट पर स्थापन कर दीजिये और यह शुभ कार्य्य यहीं पर हो कि इसका महोत्सव कर हम लोग कृतार्थ बनें। सूरिजी ने कहा ठीक पूर्व जमाने में आचार्य यक्षदेव सूरि ने इसी नगर में राजकुँवार कक्क को दीक्षा देकर सूरि पद पर स्थापन किया था। यदि आपकी ऐसी ही भावना है तो मैं भी विचार करूँगा।

रावजी एवं सकल श्रीसंघ को विश्वास हो गया कि हमारा मनोरथ अवश्य सफल होगा। इधर सूरिजी ने देवी सच्चायका की सम्मति लेकर अपना निश्चय श्रीसंघ के सामने प्रगट कर दिया। बस, फिर तो देरी ही क्या थी। चतुर्मास समाप्त होते ही जिन मन्दिरों में अष्टान्हि का महोत्सवादि प्रारम्भ कर दिया। दीक्षा के उम्मेदवारों में भी वृद्धि हो गई। ठीक शुभ मुहूर्त्त में ६५ नर नारियों को भगवती जैन दीक्षा और मुनि देवभद्र को सूरि पद देकर उनका नाम कक्कसूरि रख दिया और भी कई योग्य मुनियों को पदवियाँ प्रदान कर जैन धर्म का झण्डा फहरा दिया। राव गेंदा ने नूतन सूरिजी की अध्यक्षत्व में पुनीत तीर्थ श्री शत्रुंजय का एक विराट संघ निकाला जिसमें रावजी ने नौलक्ष रुपये व्यय कर शासन की प्रभावना की संघ यात्रा कर वापिस आया और सूरिजी सिन्ध भूमि में विहार करने के बाद आप कुँनाल की ओर पधारे। वहाँ भी आपके आज्ञावृत्ति बहुत से साधु साध्वियों विहार करते थे। उन्होंने सूरिजी के दर्शन कर अपने जीवन को सफल बनाया। सूरिजी महाराज घूमते-घूमते लोहाकोट में पधारे। वहाँ के श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत किया। वहाँ पर आप कई अर्सा तक स्थिरता कर जनता को धर्मोपदेश दिया फलस्वरूप ग्यारा भावुकों को दीक्षा दी तथा श्रेष्टि धनदेव के बनाया हुआ भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई तत्पश्चात् विहार कर कई ग्राम नगरों में धर्मोपदेश एवं धर्म प्रचार करते हुए सूरिजी महाराज तक्षीला की ओर पधार रहे थे यह शुभ समाचार तक्षीला के श्रीसंघ को मिला तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा उन्होंने प्रभावशाली महोत्सव कर सूरिजी का नगर प्रवेश करवाया क्यों न हो उस समय का तक्षिला नगर एक जैनों का केन्द्र था करीबन ५०० तो वहाँ जैन मन्दिर थे इससे अनुमान किया जा सकता है कि उस समय तक्षिला में जैनों की घनी वस्ती और खूब आबादी थी। सूरिजी महाराज अन्तिम सलेखना कर रहे थे अतः व्याख्यान आचार्य कक्कसूरिजी बाच रहे थे आपका व्याख्यान हमेशाँ त्याग वैराग्य तथा तात्त्विक दार्शनिक एवं अध्यात्मीक विषय पर होता था जो श्रोताजन को अपूर्व आनन्द आता था वहाँ भी सूरिजी

के उपदेश से चार ब्राह्मण तीन क्षत्री और पाँच श्रावक एवं बारह भावुकों ने सूरिजी के वृद्ध हाथों से भगवती जैन दीक्षा को धारण की जिससे जैन धर्म की खूब ही प्रभावना हुई इस प्रकार आचार्य श्री यक्षदेव सूरि ने जैन धर्म का उत्कृष को बढ़ाते हुए अपना आयुष्य को नजदीक जान कर अनशन व्रत धारण कर लिया और २७ दिन के अन्त में समाधिपूर्वक स्वर्गवास किया।

आचार्य कक्कसूरि मध्यान्ह के तरुण सूर्य्य की भांति अपनी ज्ञान किरणों का प्रकाश सर्वत्र डालते हुये और जनता का कल्याण करते हुये भूमि पर विहार करने लगे।

आचार्य कक्कसूरिजी महाराज अपने शिष्य मण्डल के साथ विहार करते हुये श्रीपुरनगर की ओर पधार रहे थे। यह खबर वहां के श्रीसंघ को मिली तो उन्होंने सूरिजी का बड़ा ही शानदार स्वागत किया। सूरिजी का प्रभावशाली व्याख्यान हमेशा होता था एक दिन के व्याख्यान में तीर्थङ्करों के निर्वाण भूमिका अधिकार चलता था। सूरिजी ने श्री सम्मेतसिखर का वर्णन करते हुये फरमाया कि उस पवित्र भूमि पर बीस तीर्थङ्करों का निर्वाण हुआ है और इस तीर्थ की यात्रार्थ पूर्व जमाने में कई भाग्यशालियों ने बड़े २ संघ के साथ यात्रा कर संघपति पदको प्राप्त कर लाभ उठाया है इत्यादि। खूब विस्तार से वर्णन किया।

सूरिजी के व्याख्यान का जनता पर खूब प्रभाव हुआ। उस सभा में श्रेष्ठिगोत्रिय मंत्री राजपाल भी था उसकी इच्छा संघ निकाल कर यात्रा करने की हुई। अतः सूरिजी एवं श्रीसंघ से प्रार्थना की और श्रीसंघ ने आदेश दे दिया। फिर तो था ही क्या, मंत्री राजपाल के सात पुत्र थे और उसके पास लक्ष्मी तो इतनी थी कि जिसकी संख्या लगाने में वृहस्पति भी असमर्थ था। अतः अनेक प्रान्तों में आमंत्रण भेजकर चतुर्विध संघ को बुलाया और लाखों नर नारियों के साथ सूरिजी की अध्यक्षता में संघपति राजपाल ने संघ लेकर पूर्व की यात्रा करते हुये तीर्थ श्रीसम्मेतशिखरजी पर आकर बीस तीर्थंकरों के चरण कमलों को स्पर्श एवं सेवा पूजादि ध्वज महोत्सव कर अपने जीवन को सफल बनाया। तत्पश्चात् पूर्व प्रान्त के तमाम तीर्थों कीयात्रा करवाई बाद मुनियां के साथ संघ लौटकर अपने स्थान को आया और सूरिजी कई अर्सा तक पूर्व की ओर विहार किया तदनन्तर आपश्री कलिंग देशकी ओर पधारे और शत्रुंजय गिरनार अवतार रूप खण्डगिरि और उदयगिरी के मन्दिरों के दर्शन किये, वहां से विहार करते हुये मथुरा पधारे उस समय मथुरा जैनों का एक केन्द्र समझा जाता था। उपकेश वंशीय बड़े २ धनाढ्य लोग वहाँ रहते थे। उन्होंने सूरिजी का खूब स्वागत सत्कार किया और श्रीसंघ की आग्रह विनती से सूरीश्वरजी ने वह चतुर्मास मथुरा में करने का निश्चय कर लिया। जिससे जनता का उत्साह खूब बढ़ गया।

सूरिजी महाराज के परमभक्त आदित्यनाग गोत्रिय शाहपद्मा ने सूरिजी से प्रार्थना की कि हे प्रभो! यहां के श्री संघ की इच्छा है कि आप श्री के मुखारविन्द से महाप्रभाविक श्री भगवतीजी सूत्र सुनें। अतः हमारी अर्ज को स्वीकार करावें जिससे हम लोगों को सूत्र की भक्ति एवं सूत्र सुनने का लाभ मिले।

सूरिजी ने इन ज्ञानपिपासुओं की प्रार्थना को स्वीकार करली। अतः शाह पद्मा ने सवा लक्ष मुद्रिका व्यय करके श्री भगवती सूत्र का बड़ा भारी महोत्सव किया और भगवान् गौतम स्वामी के एक एक प्रश्न की सुवर्ण मुद्रिका से पूजा की। मथुरा नगरी के श्रीसंघ के लिये यह पहिला पहिल ही मौका था कि इस प्रकार सूरिजी के मुखार्विन्द से श्रीभगवतीसूत्र का श्रवण किया जाय। जनता में खूब उत्साह था। जैन संघ तो क्या पर श्री भगवती सूत्र को सुनने के लिये अनेक अन्य मतावलम्बी भी आया करते थे। सूरिजी

की व्याख्यान शैली इस कदर की थी कि बहुत से विधर्मी लोग भी जैनधर्म के परमोपासक बन गये। इतना ही क्यों पर कई लोग संसार को असार समझ कर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेने को भी तैयार हो गये! कई भक्त लोगों ने स्वपर कल्याणार्थ जिनमन्दिरों का निर्माण करवाया था और उन मन्दिरों के लिये कई १००० नयी मूर्त्तियें बनाई थीं। मथुरा के श्रीसंघ के लिये यह समय बड़ा ही सौभग्य का था कि एक ओर तो श्री भगवतीसूत्र की समाप्ती का महोत्सव दूसरी ओर कई ६० नर नारियों की दीक्षा के लिये तैयारी, तीसरे सहस्रमूर्त्तियों की अंजनसिलाका, चतुर्थ नूतन बने हुये मन्दिरों की प्रतिष्ठा फिर तो कहना ही क्या था, मथुरा मथुरा ही बन गई थी। इस सुअवसर पर अनेक नगरों के श्रीसंघ को आमंत्रण पूर्वक बुलवाया गया था। आस पास में विहार करने वाले साधु साध्वियां भी गहरी तादाद में आ आकर मथुरा को पावन बना रहे थे। इन शुभ कार्य्यों का शुभ मुहूर्त्त माघ शुक्ल पंचमी का निश्चय हुआ था और पूर्वोक्त कार्य्यों के अतिरिक्त सूरिजी ने अपने योग्य साधुओं को पदवियां प्रदान करने का भी निश्चय कर लिया था। ठीक समय पर पूर्वोक्त सब कार्य्य पूज्य पाद आचार्य कक्कसूरीश्वरजी महाराज के शुभ कर कमलों से सम्पदित हुआ।

१—श्रीमद्भगवती सूत्र की समाप्ति का महोत्सव
२—साठ मुमुक्षुओं को भगवती जैन दीक्षा
३—एक हजार मूर्त्तियों की अंजनसिलाका
४—नूतन बने हुये पाँच मन्दिरों की प्रतिष्ठायें
५—विशालमूर्ति आदि पांच मुनियों को उपाध्याय पद
६—सोमतिलक आदि सात साधुओं को पण्डित पद
७—धर्मशेखरादि सात साधुओं को वचनाचार्य पद।
८—कुमार श्रमणादि ग्यारह साधुओं को गणिपद।

इनके अलावा कई दश हजार अजैनों को जैनधर्म में दीक्षित किये इत्यादि सूरिजी के पधारने एवं विराजने से जैनधर्म की खूब प्रभावना एवं उन्नति हुई।

दुष्कालादि के बुरे असर से जैन जनता रूपी बगीचा कुम्हला रहा था जिसको उपदेशरूपी जल से सिंचन कर जैनाचार्य्यों ने पुनः हरा भरा गुलजार यानी गुलचमन बना दिया।

सूरि के पास ज्यों ज्यों साधु संख्या बढ़ती गई त्यों त्यों योग्य साधुओं को पदवियां प्रदान कर अन्योन्य क्षेत्रों में धर्मप्रचार निमित्त भेजते गये। यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि ज्यों २ साधुओं का विहार क्षेत्र विस्तृत होता जायगा त्यों २ धर्म का प्रचार अधिक से अधिक बढ़ता जायगा।

पांच छः शताब्दियों में तो महाजन संघ एवं उपकेशवंश लोग आस पास के प्रान्तों में वटवृक्ष की तरह खूब फैल गये थे। दूसरे जिन २ प्रान्तों में आचार्य्यों का विहार होता वहां नये जैन बना कर अर्थ महाजन संघ में शामिल कर उनकी वृद्धि कर दी जाती थी और उपकेशगच्छाचार्य जैनधर्म-महाजनसंघ एवं उपकेशवंश की उन्नति करना अपनी जुम्मेदारी एवं कर्त्तव्य ही समझते थे।

आचार्य कक्कसूरिजी मथुरा से विहार कर धर्मप्रचार करते हुये मरुधर की ओर पधार रहे थे। यह शुभ समाचार सुन मरुधर वासियों के मान नगर एवं लोगों के हर्ष का पार नहीं रहा क्योंकि गुरु महाराज का चिरकाल से पधारना इसके अलावा श्री संघ के लिये क्या हर्ष हो सकता है।

आचार्य श्री शाकम्भरी, हंसावली, पद्मावती, मुग्धपुर, नागपुर, षटकूप नगर, हर्षपुर, मेदनीपुर आदि नगरों एवं छोटे बड़े ग्रामों में धर्मोपदेश देते हुये उपकेशपुर पधारे। वहाँ के श्रीसंघ ने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। भगवान महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा के पश्चात श्रीसंघ को धर्मोपदेश सुनाया। आज उपकेशपुर के घर २ में आनन्द मंगल हो रहा है। चतुर्मास के दिन नजदीक आ रहे थे श्रीसंघ ने साग्रह विनती की जिसको स्वीकार कर सूरिजी ने चतुर्मास उपकेशपुर में करना निर्णय कर लिया। वस फिर तो था ही क्या नगर में सर्वत्र उत्साह फैलगया।

सुचंतिगोत्रीय शाह आम्र के महोत्सव पूर्वक व्याख्यान में महा प्रभाविक श्री भगवतीजीसूत्र वाचना शुरू कर दिया जिसको जैन जैनतर बड़ी ही श्रद्धा एवं उत्साह पूर्वक सुन कर लाभ उठा रहे थे। सूरिजी के व्याख्यान में दार्शनिक,तात्त्विक,आध्यात्मिक और ऐतिहासिक सब विषयों पर काफी विवेचन होता था जिसको श्रवणकर श्रोताजन मंत्र मुग्ध वन जाते थे। व्याख्यान किसी विषय पर क्यों न हो परन्तु आत्म कल्याण के लिये त्याग वैराग्य पर विशेष जोर दिया जाता था। संसार की असारता, लक्ष्मी की चंचलता, कुटुम्ब की स्वार्थता, आयुष्य की अस्थिरता इत्यादि। सुकृत के शुभ फल और दुष्कृत के अशुभ फल भव भवान्तर में अवश्य भुगतने पड़ते हैं जिसको आज हम प्रत्यक्ष में देख रहे हैं। अतः जन्म मरण के दुःखों से मुक्त होने का एक ही उपाय है और वह है जैनधर्म की आराधना। यदि इस प्रकार की अनुकूल सामग्री में धर्माराधन किया जाय तो फिर संसार में भ्रमण करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी इत्यादि प्रति दिन उपदेश होता रहता था जिसका प्रभाव भी जनता पर खूब पड़ता था। कई लघुकर्मी जीव सूरिजी की शरण में दीक्षा लेने की तैयारी करने लगे तब कई गृहस्थावास में रहते हुये भी जैनधर्म की अराधना में लग गये।

वाद चतुर्मास के कई ११ भावुकों को दीक्षा दी, कई नूतन वनाये मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई इत्यादि सूरीश्वरजी के विराजने से वहुत उपकार हुआ। तत्पश्चात् वहां से विहार करते हुये छोटे बड़े ग्राम नगरों में धर्मप्रचार करते हुये सूरिजी महाराज नागपूर में पधारे। कई अर्सा तक वहां विराज कर जनता को धर्मोपदेश दिया वहां पर हंसावली के संघ अग्रेश्वर विनती करने को आये जिसको स्वीकार कर सूरिजी विहार करते हुये हंसावली पाधारे। वहां श्रेष्ठि वर्य्य जसा और उसकी पत्नी के आग्रह से श्री भगवती सूत्र व्याख्यान में फरमाया तथा शाह जसा के वनाये महावीर मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई जिससे जैनधर्म की महान् प्रभावना एवं उन्नति हुई। तत्पश्चात् वहाँ से विहार कर क्रमशः कोरंटपुर की ओर पधारे। यह थी आपकी जन्मभूमि जिसमें भी आप आचार्य वन जैनधर्म की उन्नति करते हुये पधारे फिर तो कहना ही क्या था जनता में खूब उत्साह वढ़ गया था। नगर के राजा प्रजा एवं सकल श्रीसंघ की ओर से आपका सुन्दर स्वागत किया भगवान् महावीर की यात्रा कर व्याख्यान पीठ पर विराज कर थोड़ी पर सारगर्भित इस प्रकार की देशना दी कि जिसको सुनकर श्रोताओं के हृदय में आत्मकल्याण की भावना विजली की भांति विशेष चमक उठी वाद जयध्वनि के साथ परिपदा विसर्जन हुई।

कोरंटगच्छीय आचार्य नन्नप्रभसूरि आस पास के प्रदेश में विहार करते थे। उन्होंने सुना कि कोरंटपुर में आचार्य कक्कसूरि का पधारना हुआ है। अतः वे भी अपने शिष्यों के साथ कोरंटपुर पधारे। आचार्य कक्कसूरि एवं श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत करके नगर प्रवेश कराया।

जब व्याख्यान पीठ पर दोनों आचार्य विराजमान हुये तो जनता को यह भ्रांति होने लगी कि

यह चन्द्र और सूर्य्य पृथ्वी पर अवतीर्ण हुये है। सूरिवरों की वात्सल्यता का संघ पर अच्छा प्रभाव हुआ दोनों सूरिवरों ने धर्म देशना दी। तत्पश्चात् परिषदा जयध्वनी के साथ विसर्ज्जन हुई।

श्रमणसंघ में इतना धर्मस्नेह एवं वात्सल्यता थी कि वे पृथक २ दो गच्छों के होने पर भी, एक ही गुरु के शिष्य हो इस प्रकार से व्यवहार रखते थे। आचार्य ककसूरिजी दीक्षा लेने के बाद कोरंटपुर पहली वार ही पधारे थे। श्रीसंघ की इच्छा थी कि आचार्यश्री का चतुर्मास यहां ही हो और साथ में आचार्य नन्नप्रभसूरि का चतुर्मास हो जाय तब तो सोना और सुगन्ध सा काम बनजाय। अतः एक दिन श्रीसंघ ने एकत्र हो दोनों सूरिवरों से चतुर्मास की विनती की जिसको लाभालाभ का कारण समझ कर दोनों सूरियों ने स्वीकार करली। बस फिर तो था ही क्या। कोरंटपुर के घर २ में आनन्द मंगल मनाया जाने लगा। पहले जमाना में चतुर्मास के लिये लम्बी चौड़ी विनतियें एवं मनुहारों की जरुरत नहीं थी साधु अपनी अनुकुलता देख लेता और साथ में लाभालाभ का अनुभव कर लेतें। बस चतुर्मास की स्वीकृती दे ही देते। कारण पहले जमाना में न तो साधुओं के किसी प्रकार का खर्चा रहता था कि किसी धनाढ्य की उनको आवश्यकता रहती थी और न वे आडम्बर की ही इच्छा रखते थे वे तो जनकल्याण और शासन की प्रभावना को ही लक्षमें रखते थे। तब ही तो वे जैनधर्म की उन्नति कर पाये थे।

आचार्य ककसूरिजी ने कुछ समय कोरंटपुर में स्थिरता की। बाद वहां से विहार कर भीन्नमाल सत्यपुरी, शिवगढ़, पद्मावती, चन्द्रावती आदि क्षेत्रों में विहार करते हुये आबुदाचल की यात्रा की पु वहां से विहार करते हुए कोरंटपुर पधार गये और आचार्य नन्नसूरि के साथ चतुर्मास कोरंटपुर में दिया। आप युगल सूरीश्वरों के विराजने से धर्म की अच्छी जागृति और कई अपूर्व धर्म कार्य हुये।

यह बात तो हम पूर्व लिख आये हैं कि उपकेशगच्छाचार्य्यों के लिये यह तो एक नियम सा बनगया था कि सूरिपद प्राप्त होने के पश्चात् कम से कम एक बार तो सब प्रान्तों में विहार कर जनता को धर्मोपदेश देदिया करते थे तदनुसार आचार्य ककसूरिजी महाराज भी मरुधर से लाट, सौराष्ट्र कच्छ, सिंध, पांचालादि प्रान्तों में विहार कर आप मथुरा में पधारे थे। वहाँ हंसावली का शाह जसा अपने पुत्र राणा को स लेकर सूरिजी के दर्शन एवं हंसावली पधारने की विनती करने के लिये आये थे और सूरिजी ने उन भावुकों की प्रार्थना को स्वीकार कर विहार करते हुये क्रमशः हंसावली पधारे और वहां चतुर्मास कर शाह जसा के बाल कुमार राणा के संघपतित्व में विराट् संघ के साथ तीर्थों की यात्रा करते हुये सिद्धगिरी पधारे और वहाँ संघपति बालकुमार राणा आदि कई भावुकों को दीक्षा दी। तदान्तर सूरिजी ने विहार कर सोपार पट्टन पधारे वहाँ की जनता को धर्मोपदेश देकर धर्म का प्रभाव बढ़ाया बाद आस पास के प्रदेश में विहार कर पुनः मरुधर में पधारे। इस समय आपकी अवस्था वृद्ध होगई थी तथापि क्रमशः विहार करते हुए आप कोरंटपुर पधारे वहाँ के श्रीसंघ ने आपका खुब उत्साह पूर्वक स्वागत किया और प्रार्थना की पूज्यवर ! आपकी वृद्धावस्था है अब कृपा कर यहां स्थिरवास कर दीजिये ! सूरिजी ने कहा जहाँ तक विहार होसके साधुओं को विहार करना चाहिये परन्तु शरीर से लाचार हो जाय तब एक स्थान स्थिरवास करना ही पड़ता है जैसी क्षेत्रस्पर्शना होगा वही बनेगा—

एक समय आचार्य श्री ककसूरि अर्द्धनिद्रा में सो रहे थे कि देवी सच्चायका ने आकर वंदन किया सूरिजी ने धर्मलाभ देकर पूछा देवीजी इस समय आपका शुभागमन कैसे हुआ है ? देवी ने कहा कि मैं

एक खास अर्ज करने को आई हूँ, और वह यह है कि अब आपका आयुष्य केवल एक मास का शेष रहा है अतः आप अपने पद पर सूरि बना दीजिये। सूरिजी ने कहा ठीक है देवीजी! आपने हमारे पूर्वजों को समय २ पर इस प्रकार की सहायता की है और आज मुझे भी सावचेत कर दिया अतः मैं आपका अहसान समझता हूँ और यह उपकेशगच्छ जो उन्नति को प्राप्त हुआ है इसमें भी खास आपकी सहायता का ही विशेष कारण है इत्यादि। इस पर देवी ने कहा पूज्यवर! इसमें उपकार की क्या बात है? यह तो मेरा कर्तव्य ही था। पूज्याचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी का मेरे पर कितना उपकार है कि उन्होंने मुझे घातकी पापों से एवं मिथ्यात्व से बचा कर शुद्ध सम्यक्त्व प्रदान किया है। उस महान उपकार को मैं कब भूल सकती हूँ इत्यादि परस्पर बातें हुई। सूरिजी ने कहा देवीजी मैं अपना पट्टाधिकार उपाध्याय विशाल मूर्ति को देना चाहता हूँ। इसमें आपकी क्या राय है? देवी ने कहा बहुत खुशी की बात है। उपाध्यायजी योग्य पुरुष हैं आपके पद के उत्तरदायित्व को वे बराबर संभाल सकेंगे इत्यादि देवी अपनी सम्मति देकर अदृश्य होगई।

प्रभात होते ही आचार्य कक्कसूरिजी ने अपने विचार उपस्थित संघ अग्रेश्वरों को बुलाकर कहा कि मैंने अपना पट्टाधिकार उपाध्याय विशालमूर्ति को देने का निश्चय कर लिया है और वह भी बहुत जल्दी। संघ अग्रेश्वरों ने कहा पूज्यवर! आप अपना पदाधिकार उपाध्यायजी को देना चाहते हो यह तो बहुत खुशी की बात है और हमारा अहोभाग्य भी है कि इस प्रकार का कार्य्य हमारे नगर में हो पर इस कार्य्य को जल्दी से करने को फरमाते हो इससे हमारे दिल को घबराहट होती है। पूज्यवर! आप शासन के स्तम्भ हैं चिरकाल विराजकर हम भूले भटके प्राणियों को सद् रास्ते पर लाकर कल्याण करो।

सूरिजी महाराज ने फरमाया कि अब मेरा आयुष्य शेष एक मास का रहा है। अतः मैं अपना पदाधिकार देकर अनशन व्रत करूंगा। अतः आपको इस कार्य्य में विलम्ब नहीं करना चाहिये। सूरिजी के शब्द सुनकर सब लोग निराश होगये फिर भी उन्होंने आचार्य पद के लिये जो करना था वह सब प्रबन्ध कर लिया और आचार्य श्री ने चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष उपाध्याय विशालमूर्ति को अपने पद पर स्थापन कर उनका नाम देवगुप्त सूरि रख दिया। बस, उस दिन से ही आपश्री ने धवलगिरी की शीतल छाया में अनशन व्रत धारण कर लिया और अन्तिम आराधना में लग गये। बस, २१ दिन के अनशन एवं समाधि के साथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया।

सूरिजी का स्वर्गवास होने से श्रीसंघ को बड़ा भारी आघात पहुँचा पर काल के सामने किसकी चल सकती है? उन्होंने निरुत्साही होकर निर्वाण क्रिया की। आचार्य देवगुप्त सूरि ने साधु समुदाय को धैर्य्य दिला कर कहा कि सूरीजी का विरह हमको भी असह्य है पर इसका उपाय भी नहीं है। सूरिजी ने अपने जीवन में जैनधर्म की खूब सेवा की। देशाटन कर अनेक शुभ कार्य्य किये इत्यादि उन पूज्य पुरुषों का अपने को अनुकरण करना चाहिये।

पट्टावलियों, वंशावलियों आदि ग्रन्थों में आचार्य कक्कसूरिजी ने अपने १७ वर्ष के शासन में प्रत्येक प्रान्तों में विहार कर जैन धर्म की अपूर्व सेवा की एवं अनेक भावुकों को उपदेश देकर उनको कल्याण मार्ग पर लाये जिसको थोड़ा नमूना के तौर पर यहाँ उल्लेख कर दिया जाता है।

आचार्य कक्कसूरि के कर कमलों से दीक्षाएँ हुई

१—कोरंटपुर के दो ब्राह्मण तथा कई श्रावकों ने सूरिजी के पास दीक्षाली
२—विजयपुर के करणाटगौत्रिय पेमाने „ „ „
३—हस्तीपुर के भूरि गोत्रीय नारा ने „ „ „
४—उपकेशपुर के नागवंशीय वीरा ने „ „ „
५—बलापुर के अदित्यनागगौत्रिय सलखण ने „ „ „
६—माडव्यपुर के अदित्य नागगौत्रीय भैरारि ने „ „ „
७—वर्धमानपुर के तप्तभट्टगौत्रीय कल्हण ने „ „ „
८—करणावती के श्रेष्टिगौत्रिय रघुवीर ने „ „ „
९—हंसावली के संघपति राणा ने „ „ „
१०—सोपार के क्षत्रीवंशीय कावादि „ „ „
११—देवपुर के सुघड़ गौत्रिय राहुप ने „ „ „
१२—भद्दलपुर के सुचंत गौत्रिय पेथादि ने „ „ „
१३—रूणीपाली के चारणगौत्रिय मूलादि „ „ „
१४—वीरपुर के कुलभद्र गौत्रिय पोथा ने „ „ „
१५—वावला के भाद्रगौत्रिय हरदेव ने „ „ „
१६—डमरेल के बलाह गौत्रिय रामा ने „ „ „
१७—शिवनगर के चत्रीवंशीय दहड़ ने „ „ „
१८—राजपाली के लघुश्रेष्टि देल्हा ने „ „ „
१९—भोजपुर के चिंचट गौत्रिय नारद ने „ „ „
२०—लोहाकोट के कुंमटगौत्रिय शिवा ने „ „ „
२१—सालीपुर के श्रेष्टिगौत्रिय सुरजण ने „ „ „
२२—मथुरा के सुखागौत्रिय जिनदास ने „ „ „
२३—नंदपुर के भाद्रगौत्रिय नारायण ने „ „ „
२४—उज्जैन के बापनागगौत्रिय जगमाल ने „ „ „
२५—विराट् के ब्राह्मण पुरुषोत्तम ने „ „ „
२६—चित्रकुट के विरहट गौत्रीय घरण ने „ „ „

इनके अलावा पुरुष और बहुत सी बेहनों ने भी वैराग्य प्राप्त हो सूरिजी के हस्तारविन्द से जैन दीक्षा लेकर स्वपर का कल्याण किया है पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से मैंने वंशावलियों के आधार पर केवल नमूना के तौर पर यहां नामोल्लेख कर दिया है कई एकों की दीक्षा का उल्लेख आचार्य श्री के जीवन में लिखा गया है। उस समय एक तो जैन जनता की संख्या करोड़ की थी दूसरे जैन जनता भारत के चारों ओर पसरी हुई थी तीसरा मुख्य कारण उस जमाना के जीव हलुकर्मी थे कि थोड़ा उपदेश में ही वे समझ

का त्याग कर दीक्षा लेने के लिये तैयार हो जाते थे जब ही तो एक एक आचार्य सैकड़ों साधुओं के साथ विहार करते थे और साधुओं की संख्या अधिक होने से ही वे प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जैन धर्म का प्रचार किया करते थे यों तो उपकेशगच्छाचार्य और उन्हों के साधु सब प्रान्तों में विहार करते थे पर मरुधर लाट सौराष्ट्र कोकण कच्छ सिन्ध पंचाल सूरसेन आवन्ती और मेदपाट इन प्रदेशों में तो आपका विशेष विहार होता था और वहां के निवासी यह भी जानते थे कि हम लोगों पर उपकेशगच्छाचार्यों का महान उपकार हुआ है कारण वहां के निवासियों को सबसे पहले उपकेशगच्छाचार्यों ने ही मांस मदिरादि कुव्यसन छुड़ा कर जैन धर्म में दीक्षित किये थे। यही कारण है कि उस समय उपकेश गच्छ में पांच हजार से भी अधिक साधु साध्वियों थे और वे प्रत्येक प्रान्त में विहार करते थे

आचार्य कक्कसूरि के कर कमलों से मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएँ—

आचार्य श्री अच्छी तरह जानते थे कि जहां थोड़े बहुत श्रावक बसते हों वहां पर उनके आत्मकल्याण के लिये जैन मन्दिर की परमावश्यकता है दूसरा उपकेशवंश के बहुत लोग प्रायः व्यापारी थे जहां उनकों व्यापार की सुविधा रहती थी वे वहाँ जाकर अपना निवास स्थान बना लेते थे यही कारण है कि मरुधर में पैदा हुआ महाजन संघ पांच छ शताब्दियों में तो वह बहुत दूर दूर प्रदेश में प्रसर गया इतना ही क्यों पर पिछले आचार्यों ने उस शुद्धि की मशीन को इतनी द्रुतगति से चलाई की जहां लाखों की संख्या थी वहाँ करोड़ों तक पहुँच गई और उनकी संख्या के प्रमाण में हजारों मन्दिर और लाखों मूर्त्तियों भी बन गई उस जमाना में हरेक जैन एक दो मन्दिर बनाना तो अपना जीवन का ध्येय ही समझता था उनके अन्दर से कतिपय नाम नमूना के तौर पर यहां उद्धृत कर दिये जाते हैं।

१—आकोड़ा के राव लाखण के बनाया पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई
२—हणवंतपुर के सुचंति गोत्रीय शाह निंबा के बनाया महावीर मन्दिर की प्र० क०
३—सत्रीपुर के आदित्य नाग० शाह देदा के ,, महावीर ,, ,, ,,
४—हर्षपुर के श्रेष्टि गोत्रीय ,, नाथो के ,, पार्श्वनाथ ,, ,, ,,
५—करणोड के श्रेष्टि गोत्रीय ,, सालग के ,, शान्तिनाथ,, ,, ,,
६—भवानी के बाप्पनाग० ,, कर्मा के ,, विमलनाथ ,, ,, ,,
७—करीट्कूप के भाद्र गौत्रीय ,, करणो के ,, आदीश्वर ,, ,, ,,
८—सत्यपुर के राव (राजा) ,, संगण के ,, महावीर ,, ,, ,,
९—पल्हापुरी के करणाट गौ० , सोमो के ,, महावीर ,, ,, ,,
१०—वाकांणी के भूरि गौ० ,, देवो के ,, महावीर ,, ,, ,,
११—बावला के मोरख गौ० शाह कानो के बनाया महावीर मन्दिर की प्र० क०
१२—नरवर के श्रीश्रीमाल ,, दुर्जण के ,, पार्श्वनाथ ,, ,, ,,
१३—वल्लभी के डिड्डगौ० ,, चन्द्रसेन के ,, नेमिनाथ ,, ,, ,,
१४—सोपार के लघु श्रेष्टि ,, माना के ,, शान्तिनाथ ,, ,, ,,
१५—स्तम्भनपुर मोरख० ,, धर्मशी के ,, महावीर ,, ,, ,,

आचार्य देवगुप्तसूरि महा प्रतिभाशाली एवं धर्म प्रचार आचार्य हुए। आप सूरि पद प्राप्त करने पश्चात् आपने विशाल समुदाय का संचालन बड़ी कुशलता से किया और आप स्वयं अपने शिष्यों के प्रत्येक प्रान्त में भ्रमण कर जैनधर्म का काफी प्रचार किया आप श्रीमान् एक बार दक्षिण की ओर विहार वहाँ की जनता को जैनधर्म का इस प्रकार उपदेश दिया कि हजारों लोग मांस मदिरादि दुर्व्यसनों को त्याग कर भगवान् महावीर के अहिंसा के झंडे की शरण ले अपना कल्याण किया। आचार्य कक्कसूरि के जो मुनि दक्षिण की ओर विहार किया था उन्होंने भी वहाँ जनधर्म का खूब प्रचार किया और वे भी देवगुप्तसूरि दक्षिण में पधारे है सुन कर सूरिजी को वन्दन करने को आये उन्हों के धर्मप्रचार को देख सूरिजी ने अपनी ओर से प्रसन्नता प्रकट की और योग्य साधुओं को पदवीयों से भूषित कर उनका योग्य किया सूरिजी महाराष्ट्रीय एवं तिलंगादिक प्रान्तों में भ्रमण कर कई राजा महाराजाओं को जैनधर्म उपासक वनाये। सूरिजी यह भी जानते थे कि जिस प्रान्त का उद्धार करना उसी प्रान्त के जन्मे हुए साधु पर निर्भर रहता है अतः सूरिजी ने जिस-जिस प्रांतों के भावुकों को दीक्षा देते थे उन्हीं को उसी-उसी प्रान्तों में विहार की आज्ञा दे देते थे कि वे वहाँ की जनता का उद्धार आसानी से कर सकें।

सूरिजी महाराज दक्षिण प्रान्त में भ्रमण करने के पश्चात आवंति प्रदेश में पधारे वहाँ की जनता को धर्मोपदेश सुना कर जैनधर्म में स्थिर करते हुए मेदपाट की ओर पधारे आप श्री का स्थान स्थान पर सुन्दर स्वागत एवं सत्कार होता था और आप की अमृतमय देशन सुन अपना कल्याण की भावना से लोग धर्माराधना में विशेष प्रयत्नशील बन जाते थे।

तत्पश्चात् आप पुनः मरुधर में पदार्पण किया जननी जन्मभूमि की एवं उपकेशपुर स्थित भगवान् महावीर की यात्रा की और वहाँ कि धर्म पीपासु जनता को धर्मोपदेश सुनाया आप श्रीमानों के पधारने से मरुधरवासियों में धर्मोत्साह खूब बढ़ गया था कई भावुकों ने आपश्री के चरणकमलों में भगवती दीक्षा ग्रहण की और कई मन्दिर मूर्तियों की आपश्रीने प्रतिष्ठा भी करवाई। कहने की आवश्यकता नहीं है कि आप श्रीमानों का आपश्री के पूर्वजों ने मरुधर के वड़े-बड़े नगर ही नहीं पर छोटे २ गावड़ों में भ्रमण करने से जैनधर्म का काफी प्रचार हो गया था प्रत्येकग्रामों में जैनमन्दिर एवं जैनपाठशालों स्थापित होगये थे पर एक श्रीमालनगर ही ऐसा रह गया था कि वहाँ अभी वाममार्गियों की ही विशेष प्रबल्यता थी आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने श्रीमालनगर के वासी राजा जयसेनादि ९०:०० घरवालों को जैनधर्म की दीक्षा दी थी पर बाद में धर्मद्वेष के कारण राजकुँवर चन्द्रसेन ने चन्द्रावतीनगरी बासा कर अपनी राजधानी कायम की थी और श्रीमालनगर का राजा भीमसेन ने धर्मान्धता के कारण जैनों को इतना कष्ट दिया कि श्रीमाल से सब के सब नगरवासी जैन श्रीमाल का त्याग कर नूतनबसी चन्द्रावतीनगरी में जा बसे। अतः श्रीमाल नगर के राजा व लोग वाममार्गियों के ही उपासक रहे। बाद राजा भीमसेन का पुत्र उत्पलदेव ने उपकेश नगर स्थापन किया आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से वह भी जैनधर्मोपासक बन गये पर का केन्द्र ही बना रहा। फिर भी उन लोगों के तकदीर ही ऐसे थे कि किसी जाने का साहस नहीं किया।

आचार्य देवगुप्तसूरि ने सुना कि भीनामाल नगर में एक वृहद यज्ञ लाखों प्राणियों की बली भी दी जायगी इत्यादि। सूरिजी का हृदय उन प्राणि

भर आया कि आपने श्रीमालनगर की ओर विहार करने का निश्चय कर लिया। यह केवल निश्चय ही नहीं था पर आपश्री ने तो कम्मरकस कर विहार ही कर दिया और क्रमशः चल कर भीन्नमाल पधार गये। जब इस बात की मालुम वहाँ के राजा तथा यज्ञाध्यक्षकों को हुई तो उन लोगों में बड़ी खलबली मच गई कारण मरुधर में यही एक नगर था कि जहाँ पर वे लोग अपनी मनमानी करने में स्वतन्त्र थे उन लोगों ने सूरिजी को कष्ट पहुँचाने में कुछ भी उठा नहीं रखा पर कितना ही वायु चले इससे मरू कभी क्षोभ पाने वाला नहीं था। सूरिजी महाराज ने अपने पूर्व आचार्य स्वयंप्रभसूरि श्रीरत्नप्रभसूरि और श्री यक्षदेवसूरि के कष्टों को स्मरण कर विचार किया कि धन्य है उन महापुरुषों को कि जिन्होंने सैकड़ों आफतों को सहन कर अनेक प्रांतों में जैनधर्म का झण्डा फहरा दिया था तो यह कष्ट तो कौनसी गिनती में गिना जाता है। खैर उन पाखण्डियों ने राजसत्ता द्वारा यहां तक तजवीज करली कि नगर में गौचरी जाने पर आहार पानी तक नहीं मिला। सूरिजी ने अपने साधुओं के साथ तपस्या करना शुरु कर दिया और प्रतिदिन आम मैदान में व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया पर पाखण्डियों ने अपनी सत्ता द्वारा जनता को व्याख्यान में जाना मना करवा दिया इस हालत में सूरिजी राज सभा में जाकर व्याख्यान देने लगे। आखिर तो वहां मनुष्य बसते थे बहुत से लोगों ने जाकर राजा को कहा कि दरबार! बात क्या है आपको निर्णय करना चाहिये ? पर राजा तो उन पाखण्डियों के हाथ का कठपुतला बना हुआ था। राजा ने उन कहने वालों की ओर कुछ भी लक्ष नहीं दिया अतः वे अपना अपमान समझ कर राजा और यज्ञवादियों से खिलाफ हो सूरिजी के पास में आये और सूरिजी से पूछने लगे कि महात्माजी ! धर्म के विषय में क्या बात है और आप क्या कहना चाहते हो ?

सूरिजी ने कहा महानुभावो ! आप जानते हो कि साधु हमेशा निस्पृही होते हैं और बिना कुछ लिये दिये केवल जनता का कल्याण के लिये धर्मोपदेश दिया करते हैं। हम लोग घूमते २ यहाँ आय गये हैं और श्रीमालनगर से हमें कुछ लेना देना भी नहीं है केवल अज्ञान के वश जनता उन्मार्ग पर चल कर कर्मबन्ध करके दुर्गति में जाने योग्य दुष्कर्म कर रही है उनको सद्मार्ग पर लगा कर सुखी बनाने के लिये ही हमारा उपदेश एवं प्रयत्न है। आप स्वयं समझ सकते हो कि इस प्रकार असंख्य प्राणियों की घोर हिंसा करना कभी धर्म पुण्य एवं स्वर्ग का कारण हो सकता है ? इसमें भी इस प्रकार के दुष्कर्म को ईश्वर कथित बतलाना यह कितना अज्ञान। कितना पाखण्ड।। कितना अत्याचार।।। इस पर भी आप जैसे समझदार लोग हाँ में हाँ मिला कर इन निरापाध मूक प्राणियों की दुराशीष में शामिल रहते हो पर याद रखिये किसी भव में वे मूक प्राणी सबल हो जायगे और आप निर्बल होंगे तो वे अपना बदला लेने में कभी नहीं चूकेंगे इत्यादि सूरिजी ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा इस प्रकार निडरता पूर्वक उपदेश दिया कि उन सुनने वालों के अज्ञान पटल दूर हो गये जैसे प्रचण्ड सूर्य के प्रकाश से बदल दूर हट जाते हैं।

पृच्छक लोगों ने सूरिजी के निस्पृही निडर निर्भय और सत्य वचन सुन कर दाँतों के तले अंगुली दबाते हुए विचार करने लगे कि महात्माजी का कहना तो सत्य है और पूर्व जमाना में एवं महाराजा जयसेन के समय भी इस यज्ञकर्म का विरोध हुआ था और आखिर राज यज्ञ करना बन्द कर अहिंसाधर्मोपासक बन गया था अतः अपने को भी इस बात का निर्णय अवश्य करना चाहिये। बिना ही कारण लाखों जीवों की हिंसा हो रही है इत्यादि। खैर ! वे लोग सूरिजी को नमस्कार कर वहाँ से चले गये। पर सूरिजी का उपदेश से धर्म के विषय निर्णय करने के लिये उन लोगों के हृदय में उत्कण्ठा पैदा हो गई।

उन लोगों ने इस बात का प्रयत्न करना शुरू किया और कई लोगों को इसके लिए समझा बुझा कर अपने पक्षकार भी बना लिये इतना ही क्यों यह राजा के खास प्रधान मंत्री यज्ञदत्त था उसका लक्ष भी धर्म के निर्णय की ओर आकर्षित कर लिया। मंत्री ने राजा को समझाया कि जब अपन धर्म के लिये इतना बड़ा कार्य कर रहे हैं तो इसका निर्णय तो अवश्य होना ही चाहिये इत्यादि। मंत्री पर राजा का पूर्ण विश्वास था, राजा ने मंत्री का कहना मान कर एक दिन मुकर्रर किया कि राजा की ओर से धर्म के विषय में सभा कर निर्णय करवाया जाय। अतः राजा की ओर से एक आमन्त्रण सूरिजी को दिया और दूसरा यज्ञाध्यक्ष ब्राह्मणों एवं पण्डितों को भी दिया गया। जब सूरिजी ने बड़े ही हर्ष के साथ राजा के आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया तब ब्राह्मणों ने राजा को समझाया कि नरेश। यह जैन सेवड़े नास्तिक हैं वेद एवं ईश्वर को तो यह मानते ही नहीं हैं आप क्या धर्म का निर्णय करना चाहते हो जिस धर्म को आपके पूर्वज मानते आये हैं वही धर्म सच्चा है फिर निर्णय क्या करना है क्या आपके पूर्वज नहीं समझते थे ? महाराजा भीमसेन ने बड़े ही कसौटी करके जिस धर्म को स्वीकार किया है उस पर ही आपको स्थिर रहना चाहिये इत्यादि बहुत समझाया। पर राजा ने कह दिया कि ठीक है मैं मेरे पूर्वजों का धर्म छोड़ना नहीं चाहता हूँ पर निर्णय करने में क्या हर्ज है मैंने जैनाचार्य को आमन्त्रण भेजवा दिया है अतः आप सभा में पधार कर अपनी सच्चाई के प्रमाणों से जनता को बतला दें कि यज्ञ करना ईश्वर की आज्ञा एवं ईश्वरके वाक्य सत्य हैं। इस पर ब्राह्मणों को लाचार हो राजा का कहना मानना ही पड़ा।

ठीक समय पर इधर तो आचार्य श्री देवगुप्तसूरि अपने विद्वान शिष्यों के साथ राज सभा में पधारे उधर से ब्राह्मण समाज अपने पण्डितों को लेकर हाजर हुए। राजा, मंत्री, राजकर्मचारी एवं नागरिकों से सभा हॉल खचाखच भर गया। आचार्य देवगुप्तसूरि ने अहिंसापरमोधर्मः के विषय में जैनागमों के, महात्मा बुद्ध के और वेदान्तियों के वेद एवं पुराणों के इतने प्रमाण सभा के समक्ष रख दिया कि राजा और प्रजा सुन कर मंत्रमुग्ध बन गये। मानो उनके मनमन्दिर में अहिंसा महादेवी की प्राण प्रतिष्ठा तक भी हो गई इसके उत्तर में ब्राह्मणों ने इस प्रकार लच्चर दलीलें पेश की कि जिसका जनता के हृदय पटल पर कुछ भी असर न हुआ इतना ही क्या पर उन लोगों की क्रूरहिंसा की ओर सब की घृणा होने लग गई। वास्तव में यज्ञ पर निष्ठुर कर्म है किसी मांसाहारी पाखण्डियों की चलाई हुई कुप्रथा है जिससे घृणा आजाना एक स्वभाविक बात थी इस पर भी आचार्य श्री का जबर्दस्त उपदेश फिर तो कहना ही क्या था।

भगवान् महावीर की जयध्वनी के साथ राजा प्रजा अहिंस भगवती के परमोपासक बन गये अर्थात् जैन धर्म स्वीकार कर सूरिजी के शिष्य बन गये। इसी हालत में उन यज्ञवादियों के चेहरे फीके पड़ गये और वे हताश होकर हाँ हो का हुल्लड़ मचा कर वहाँ से चले गये।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा हो रहा था जिस यज्ञ के लिये लाखों मूक प्राणियों को एकत्र किए गये थे उन सबको छोड़वा दिये गये अतः वे अपने दुःखित हृदय को शान्त करके सूरिजी महाराज को आशीर्वाद देते हुए निर्भयता के साथ अपने बाल बच्चों से जाकर मिले।

सूरिजी महाराज कई अर्सा तक भीनमाल में स्थिरता कर उन नूतन श्रावकों को जन धर्म की क्रिया कलाप आचार व्यवहार का अभ्यास करवाया जब सूरिजी वहाँ से विहार करने लगे तो भक्त लोगों ने बड़े

की कि प्रभो । आप यह चातुर्मास यहां ही करावें कि हम लोग जैन धर्म के तत्त्वों को ठीक समझलें इत्यादि ।

सूरिजी ने लाभालाभ का विचार कर उन भक्त जनों की विनती स्वीकार करली और अपने साधुओं को वहां ठहराकर आप आसपास में विहार कर यथा समय भीनमाल पधार कर चतुर्मास किया। सूरिजी के विराजने से वहुत ही लाभ हुआ आपके उपदेश से महावीर का मन्दिर भी बनवाया गया इत्यादि ।

इस प्रकार सूरिजी महाराज ने जैनधर्म का खूब प्रचार किया आपने देशाटन भी बहुत किया मरुधर लाट सौराष्ट्र कच्छ सिन्धु पंचाल अंग बंग कलिंग आवंति मेदपाट और दक्षिणादि प्रान्तों में अनेकवार विहार किया आप श्री ने जैसे जैनतरों को जैन बनाकर जैन संख्या में वृद्धि की वैसे ही अनेक मुमुक्षुओं को संसार के वन्धनों से मुक्तकर जैन धर्म की दीक्षा देकर श्रमण संघ में भी खूब ही वृद्धि की । पट्टावलीकार लिखते हैं कि आपश्री की आज्ञावृत्ति ५००० साधु साध्वियों पृथक् पृथक् प्रान्तों में विहार करते थे खूबी यह थी कि एक आचार्य इतनी विशाल समुदाय को सभाल सकते थे। क्योंकि भगवान् पार्श्वनाथ के पट्टधरों में एक ही आचार्य होते आये हैं यही कारण है कि भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानियें एक ही आचार्य की आज्ञा में व्यवस्थित रूप में रहते थे । हां योग्य मुनियों को उपाध्याय गणि वाचक पण्डित पद दिया जाता था पर गच्छ नायक शासन करने वाले आचार्य एक ही होते थे और इसमें भी विशेषता यह थी कि देवी सच्चापिका की सम्मति से वे आचार्य अपने पट्टधर बनाते थे ।

आचार्य देवगुप्त सूरि जैनसमाज में बड़े ही विद्वान प्रभावशाली और धर्म प्रचारक आचार्य हुये हैं आप अपनी अन्तिमावस्था में अपने शिष्य एवं सर्वगुण सम्पन्न मुनि धनदेव को भीनमाल नगर के शा० पेथा भारमल भद्रगौत्रीय के महामहोत्सव पूर्वक आचार्य पद प्रतिष्ठित कर आप अनशन एवं समाधिपूर्वक भीनमाल नगर में वीदान् ४५८ वें वर्ष में स्वर्गवासी हुए ।

पट्टावलियों और वंशावलियों में उल्लेख मिलता है कि आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी ने अपने जीवन में ऐसे ऐसे चोखे और अनोखे कार्य किये थे कि जिससे जैनशासन की अच्छी प्रभावना हुई जैसे भीनमालनगर के प्राग्वट नारायण के संघपतित्व में श्रीसिद्धगिरि आदि तीर्थों का विराट् संघ निकाला जिसमें ५००० साधु साध्वियों और करीब पांच लक्षयात्री गण थे इस सघ के हित नारायण ने नौलक्ष द्रव्य व्यय किया । चन्द्रावती के श्रीमाल रामा शार्दूल ने चन्द्रवाती में भगवान् महावीर का बावनदेहरीवाला विशाल मन्दिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा में करीब नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया । कोरंटपुर के बाप्पनाग गौत्र के शाह हरदास काल्हणादि ५४ नर नारियों ने सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा स्वीकार की थी उपकेशपुर के अदित्य नाग गौत्रीय राव गोसलादि चार भाइयों ने सूरिजी के पास दीक्षा ली जिसके महोत्सव में पांच लक्ष रुपये शुभ कार्यों में व्ययकिये इत्यादि यहां तो केवल संक्षिप्त में ही लिखा है पर इस प्रकार सेकड़ों ऐसे अनोखे कार्य हुए अतः सूरिजी के उपकार के लिये जैनसमाज सदैव के लिये आभारी है—

चौदहवें पट्टपर देवगुप्त हुए सूरीश्वर यशः धारी थे
जिनके गुणों का पार न पया आप बडे उपकारी थे
अजैनों को जैन बना कर महाजन संघ बढ़ाया था
मन्दिरों की प्रतिष्टा करके जीवन कलस चढ़ाया था

इति भगवान् पार्श्वनाथ के चौदहवें पट्टधर आचार्य देवगुप्तसूरि महा प्रभाविक हुए—

उन लोगों ने इस बात का प्रयत्न करना शुरू किया और कई लोगों को इसके लिए समझा बुझा कर अपने पक्षकार भी बना लिये इतना ही क्यों यह राजा के खास प्रधान मंत्री यज्ञदत्त था उसका लक्ष भी धर्म के निर्णय की ओर आकर्षित कर लिया। मंत्री ने राजा को समझाया कि जब अपन धर्म के लिये इतना बड़ा कार्य कर रहे हैं तो इसका निर्णय तो अवश्य होना ही चाहिये इत्यादि। मंत्री पर राजा का पूर्ण विश्वास था, राजा ने मंत्री का कहना मान कर एक दिन मुकर्रर किया कि राजा की ओर से धर्म के विषय में सभा कर निर्णय करवाया जाय। अतः राजा की ओर से एक आमन्त्रण सूरिजी को दिया और दूसरा यज्ञाध्यक्ष ब्राह्मणों एवं पण्डितों को भी दिया गया। जब सूरिजी ने बड़े ही हर्ष के साथ राजा के आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया तब ब्राह्मणों ने राजा को समझाया कि नरेश। यह जैन सेवड़े नास्तिक हैं वेद एवं ईश्वर को तो यह मानते ही नहीं हैं आप क्या धर्म का निर्णय करना चाहते हो जिस धर्म को आपके पूर्वज मानते आये हैं वही धर्म सच्चा है फिर निर्णय क्या करना है क्या आपके पूर्वज नहीं समझते थे? महाराजा भीमसेन ने बड़ेही कसौटी करके जिस धर्म को स्वीकार किया है उस पर ही आपको स्थिर रहना चाहिये इत्यादि बहुत समझाया। पर राजा ने कह दिया कि ठीक है मैं मेरे पूर्वजों का धर्म छोड़ना नहीं चाहता हूँ पर निर्णय करने में क्या हर्ज है मैंने जैनाचार्य को आमन्त्रण भेजवा दिया है अतः आप सभा में पधार कर अपनी सच्चाई के प्रमाणों से जनता को बतला दें कि यज्ञ करना ईश्वर की आज्ञा एवं ईश्वरके वाक्य सत्य हैं। इस पर ब्राह्मणों को लाचार हो राजा का कहना मानना ही पड़ा।

ठीक समय पर इधर तो आचार्य श्री देवगुप्तसूरि अपने विद्वान शिष्यों के साथ राज सभा में पधारे उधर से ब्राह्मण समाज अपने पण्डितों को लेकर हाजर हुए। राजा, मंत्री, राजकर्मचारी एवं नागरिकों से सभा हॉल खचाखच भर गया। आचार्य देवगुप्तसूरि ने अहिंसापरमोधर्मः के विषय में जैनागमों के, महात्मा बुद्ध के और वेदान्तियों के वेद एवं पुराणों के इतने प्रमाण सभा के समक्ष रख दिया कि राजा और प्रजा सुन कर मंत्रमुग्ध बन गये। मानो उनके मनमन्दिर में अहिंसा महादेवी की प्राण प्रतिष्ठा तक भी हो गई इसके उत्तर में ब्राह्मणों ने इस प्रकार लच्चर दलीलें पेश की कि जिसका जनता के हृदय पटल पर कुछ भी असर न हुआ इतना ही क्या पर उन लोगों की क्रूरहिंसा की ओर सब की घृणा होने लग गई। वास्तव में यज्ञ एक निष्ठुर कर्म है किसी मांसाहारी पाखण्डियों की चलाई हुई कुप्रथा है जिसमें घृणा आजाना एक स्वाभाविक बात थी इस पर भी आचार्य श्री का जबर्दस्त उपदेश फिर तो कहना ही क्या था।

भगवान् महावीर की जयध्वनी के साथ राजा प्रजा अहिंस भगवती के परमोपासक बन गये अर्थात् जैन धर्म स्वीकार कर सूरिजी के शिष्य बन गये। इसी हालत में उन यज्ञवादियों के चेहरे फीके पड़ गये और वे हतास होकर हाँ हो का हुल्लड़ मचा कर वहाँ से चले गये।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा हो रहा था जिस यज्ञ के लिये लाखों मूक् प्राणियों को एकत्र किये गये थे उन सबको छोड़वा दिये गये अतः वे अपने दुःखित हृदय को शान्त करके सूरिजी महाराज को आशीर्वाद देते हुए निर्भयता के साथ अपने बाल बच्चों से आकर मिले।

सूरिजी महाराज कई अर्सों तक भीनमाल में स्थिरता कर उन नूतन श्रावकों को जैन धर्म की क्रिया काण्ड आचार व्यवहार का अभ्यास करवाया जब सूरिजी वहाँ से विहार करने लगे तो सब लोगों ने बड़ी

की कि प्रभो। आप यह चातुर्मास यहां ही करावें कि हम लोग जैन धर्म के तत्त्वों को ठीक समझलें इत्यादि।

सूरिजी ने लाभालाभ का विचार कर उन भक्त जनों की विनती स्वीकार करली और अपने साधुओं को वहां ठहराकर आप आसपास में विहार कर यथा समय भीनमाल पधार कर चतुर्मास किया। सूरिजी के विराजने से बहुत ही लाभ हुआ आपके उपदेश से महावीर का मन्दिर भी बनवाया गया इत्यादि।

इस प्रकार सूरिजी महाराज ने जैनधर्म का खूब प्रचार किया आपने देशाटन भी बहुत किया मरुधर लाट सौराष्ट्र कच्छ सिन्धु पंचाल अंग वंग कलिंग आवंति मेदपाट और दक्षिणादि प्रान्तों में अनेकवार विहार किया आप श्री ने जैसे जैनतरों को जैन बनाकर जैन संख्या में वृद्धि की वैसे ही अनेक मुमुक्षुओं को संसार के बन्धनों से मुक्तकर जैन धर्म की दीक्षा देकर श्रमण संघ में भी खूब ही वृद्धि की। पट्टावलीकार लिखते हैं कि आपश्री की आज्ञावृत्ति ५००० साधु साध्वियों पृथक् पृथक् प्रान्तों में विहार करते थे खूबी यह थी कि एक आचार्य इतनी विशाल समुदाय को सभाल सकते थे। क्योंकि भगवान् पार्श्वनाथ के पट्टधरों में एक ही आचार्य होते आये हैं यही कारण है कि भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानियें एक ही आचार्य की आज्ञा में व्यवस्थित रूप में रहते थे। हां योग्य मुनियों को उपाध्याय गणि वाचक पण्डित पद दिया जाता था पर गच्छ नायक शासन करने वाले आचार्य एक ही होते थे और इसमें भी विशेषता यह थी कि देवी सच्चायिका की सम्मति से वे आचार्य अपने पट्टधर बनाते थे।

आचार्य देवगुप्त सूरि जैनसमाज में बड़े ही विद्वान प्रभावशाली और धर्म प्रचारक आचार्य हुये हैं आप अपनी अन्तिमावस्था में अपने शिष्य एवं सर्वगुण सम्पन्न मुनि धनदेव को भीनमाल नगर के शा० पेथा भारमल भद्रगौत्रीय के महामहोत्सव पूर्वक आचार्य पद प्रतिष्ठित कर आप अनशन एवं समाधिपूर्वक भीनमाल नगर में वीदान् ४५८ वें वर्ष में स्वर्गवासी हुए।

पट्टावलियों और वंशावलियों में उल्लेख मिलता है कि आचार्यश्री देवगुप्तसूरिजी ने अपने जीवन में ऐसे ऐसे चोखे और अनोखे कार्य किये थे कि जिससे जैनशासन की अच्छी प्रभावना हुई जैसे भीनमालनगर के प्राग्वट नारायण के संघपतित्व में श्रीसिद्धगिरि आदि तीर्थों का विराट् संघ निकाला जिसमें ५००० साधु साध्वियों और करीब पांच लक्षयात्री गण थे इस संघ के हित नारायण ने नौलक्ष द्रव्य व्यय किया। चन्द्रावती के श्रीमाल रामा शार्दूल ने चन्द्रावती में भगवान् महावीर का बावनदेहरीवाला विशाल मन्दिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा में करीब नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया। कोरंटपुर के बाप्पनाग गौत्र के शाह हरदास काल्हणादि ५४ नर नारियों ने सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा स्वीकार की थी उपकेशपुर के आदित्य नाग गौत्रीय राव गोसलादि चार भाइयों ने सूरिजी के पास दीक्षा ली जिसके महोत्सव में पांच लक्ष रुपये शुभ कार्यों में व्ययकिये इत्यादि यहां तो केवल संक्षिप्त में ही लिखा है पर इस प्रकार सेकड़ों ऐसे अनोखे कार्य हुए अतः सूरिजी के उपकार के लिये जैनसमाज सदैव के लिये आभारी है—

चौदहवें पट्टपर देवगुप्त हुए सूरीश्वर यशः धारी थे
जिनके गुणों का पार न पया आप बडे उपकारी थे
अजैनों को जैन बना कर महाजन संघ बढ़ाया था
मन्दिरों की प्रतिष्टा करके जीवन कलस चढ़ाया था

इति भगवान् पार्श्वनाथ के चौदहवें पट्टधर आचार्य देवगुप्तसूरि महा प्रभाविक हुए—

१५--आचार्य श्री सिद्धसूरि [द्वितीय]

आचार्यस्तु स सिद्ध सूरिर भवद्वंशेस्तु ते चिंचटे,
नाना मन्दिर पंक्ति कारण पटुः शत्रुंजयस्य प्रियः।
वल्लम्भी नगरी गतं जनपतिं नाम्ना शिलादित्यकं,
बोधित्वा व्यदधातु भक्त मिहयो शत्रुंजयोद्धारकः॥

आचार्यश्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज मरुधर के एक चमकते हुए सितारे थे। जैसे भगवान नेमिनाथ के द्वारामति और प्रभु महावीर के राजगृह था वैसे ही उपकेशगच्छाचार्यों के लिए उपकेशपुर नगर था जब जब आचार्यमहाराज उपकेशपुर पधारते थे तब तब उनको कुछ न कुछ अपूर्व लाभ हो ही जाता था यही कारण था कि उपकेशगच्छ के आचार्य उपकेशपुर में विशेष पधारते थे। एक तो इन आचार्यों का विहार क्षेत्र प्रायः मरुधरादि प्रदेश था, दूसरा भगवान् महावीर की यात्रा, तीसरा इस नगर में सबसे प्रथम आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी ने महाजनसंघ की स्थापना की थी। अतः उपकेशपुर की भूमि एक तीर्थ स्वरूप समझी जाती थी। और चतुर्थ देवी सच्चायिका उपकेशगच्छ की अधिष्टात्री भी थी

आचार्य देवगुप्तसूरिजी एक समय अपने शिष्यों के परिवार सहित विहार करते हुए उपकेशपुर की ओर पधार रहे थे। यह समाचार मिलते ही जनता में उत्साह का एक समुद्र ही उमड़ उठा कारण आप इसी उपकेशपुर के चमकते हुए सितारे थे अतः लोगों को देश एवं नगर का गौरव था। राजा प्रजा की ओर से आपका सुन्दर स्वागत हुआ। आचार्य श्री का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य एवं तात्त्विक विषय पर होता था जिसका जनता पर काफी प्रभाव पड़ता था।

उपकेशपुर में चिंचट गौत्रीय शाह रूपणसिंह धनकुबेर के नाम से मशहूर था। आपकी धर्म पत्नी का गृहदेवी का नाम जाल्हण देवी था। आपके यों तो कई संतान थीं पर एक भोपाल नाम का पुत्र बड़ा ही होनहार एवं कुल में प्रदीप समान था। रूपणसिंह हमेशा सकुटुम्ब सूरिजी का व्याख्यान सुन कर के भक्ति उपासना किया करते थे। उन लोगों के संस्कार ही ऐसे थे कि वे धर्म को ही सार समझते थे।

एक दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में संसार की असारता का वर्णन करते हुए मनुष्य भव की सफलता का एक ऐसा उपाय बतलाया कि संसार में क्षण मात्र के सुख और बहुतकाल दुःख अर्थात् पौद्गलिक सुख क्षण मात्र के हैं और इसमें रत हो कर धर्माराधन नहीं करते हैं वे जीव दीर्घ काल तक नरक के दुःखों का अनुभव करते हैं। आचार्यश्री ने जब नरक के कुम्भीपाक के दुःखों का वर्णन किया तो श्रोता जनों के रोमांच खड़े हो आये और सहसा उनका दिल संसार से विरक्त हो गया।

शाह रूपणसिंह का लघु पुत्र जो भोपाल अभी किशोर वय में एवं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था उसके कोमल हृदय पर व्याख्यान का ऐसा प्रभाव पड़ा जैसा नाग का [illegible] [illegible] [illegible]

सूरिजी ने पूछा कि श्रोताओं ! मेरे उपदेश का आप लोगों पर कुच्छ असर हुआ; हैं क्या कोई भव्य अपना आत्म कल्याण करने के लिये तय्यार है ? क्योंकि ऐसा सुअवसर बार बार मिलना मुश्किल है ।

सभा में से सब से पहले बालकुमार भोपाल ने उठ कर कहा 'पूज्यवर ! मैं अपना कल्याण करने के लिये और तो क्या पर आपश्री के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा लेने को भी तैयार हूँ । मैं यह बात निश्चयपूर्वक कहता हूँ । इस बालकुमार का वैराग्यमय वचन सुन कर और भी कई भव्य आपका अनुकरण करने को तैयार हो गये । पर शाह रूपणसिंह और जाल्हण देवी को यह बात कब अच्छी लगने वाली थी उन्होंने अपने प्यारेपुत्र के इस प्रकार के शब्द सुन कर एक दम दुखी हृदय से कहा कि महाराज ! भोपाल अन समझ बालक है इसकी बात पर विश्वास न किया जाय अभी यह दीक्षा में क्या समझता है ? और अभी हम ऐसे बच्चे को दीक्षा लेने भी कैसे देंगे ? अभी तो इसकी शादी भी करनी है इत्यादि ।

सूरिजी महाराज ने फरमाया कि रूपणसिंह । आप संतोष रक्खे ? जैन साधुओं का आचार है कि विना माता पिता की आज्ञा किसी को भी दीक्षा नहीं देते हैं पर भोपाल की भावना का तो सभी को अनु मोदन करना ही चाहिये । भले ! भुक्त भोगी लोग जो कि परभव की तय्यारी में हैं ऐसे वृद्ध लोग इन्द्रियों के गुलाम एवं विषय विकार के कीड़े होते हुए संसार के दास बन रहे हैं तब यह बच्चा संसार त्यागने की इच्छा कर रहा है इस हालत में आपको अन्तराय देने की बजाय तो यदि पुत्र से सच्चा प्रेम है तो पुत्र के साथ दीक्षा लेकर स्वपर का कल्याण करे यही आपके लिये सुअवसर है । बस सूरिजी का उपदेश क्या था एक जादू ही था । रूपणसिंह ने सूरिजी के हुक्म को शिरोधार्य कर लिया । सभा विसर्जन होने के पश्चात् रूपणसिंह अपने मकान पर आया और भोपाल की माता जाल्हण देवी को पूछा कि तुम्हारा पुत्र भोपाल गुरु महाराज के पास दीक्षा लेता है । कहो तुम्हारी क्या मरजी है ? जाल्हण देवी ने कहा कि पुत्र ही क्यों पर आप भी तो दीक्षा लेने को तय्यार हुए हो फिर मुझे क्या पूछते हो ? "मैं पूछता हूँ कि तुम अपने पुत्र का साथ करोगी या घर में रहोगी ? " जाल्हण देवी ने जवाब दिया कि जब आपकी इच्छा ही मुझे दीक्षा दिलाने की है तो मैं संसार में रह कर क्या करूंगी । अतः जाल्हणदेवी भी अपने पिती एवं पुत्र का अनुकरण किया ।

इस प्रकार नगर में कोई ३७ नरनारियाँ दीक्षा लेने को तैयार हो गये । अहा-ह कैसे लघु कम जीव थे कि जिनको केवल व्याख्यान से ही वैराग्य हो आया और इस प्रकार संसार के सुख सम्पति पर लात मार कर दीक्षा लेने को तयार हो गये । बस ! क्षयोपशम इसी को ही कहते हैं ।

उपकेशपुर में आज सर्वत्र आनन्द मंगल हो रहा है दीक्षा का बाजा चारों ओर बज रहा है । मुक्ति रमणि के वर वंदोले खा रहे हैं । उपकेशपुर नरेश पुण्यपालादि श्रीसंघ ने दीक्षा महोत्सव के निमित्त जैन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव और पूजा प्रभावना करवा रहे हैं । इन दीक्षा का प्रभाव आस पास के ग्रामों में भी इतना पड़ा कि वे लोग भी झुण्ड के झुण्ड आने लगे । शाह रूपणसिंह के ज्येष्ट पुत्र क्षेमराज ने अपने माता पिता एवं लघु भ्राता की दीक्षा का खूब महोत्सव मनाया । बाहर से आने वाले स्वधर्मी भाइयों का अच्छी तरह स्वागत किया । इस महोत्सव में शाह क्षेमराज ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया ।

शुभ मुहूर्त में सूरीश्वरजी महाराज ने भोपालादि ३७ नरनारियों को बड़े ही समारोह एवं जैन शास्त्रों के विधि विधान से दीक्षा दी और बालकुमार भोपाल का नाम धनदेव रख दिया ।

यों तो सूरिजी महाराज की सब साधुओं पर पूर्ण कृपा थी पर मुनिधनदेव एक हो यान श्रमण था तथा

दूसरा वह भविष्य में होनहार भी था और उसका विनय भक्ति भी अलौकिक था अतः मुनिधनदेव पर विशेष कृपा थी। सबसे पहले मुनिधनदेव को शास्त्रों का अध्ययन करवाना आरम्भ किया। मुनि धनदेव पर जैसे सूरिजी की अनुग्रह थी वैसे ही सरस्वती की भी पूर्णकृपा थी अतः मुनिधनदेव ने स्वल्प समयमें ही हस्तामलक की भांति सवशास्त्र कंठस्थ कर लिए साथ में व्याकरण न्याय तर्क छंद अलङ्कार काव्य आदि का भी अध्ययन कर लिया इतना ही क्यों पर आपने स्वमत के साथ परमत के तमाम साहित्य का अभ्यास भी कर लिया। ज्ञान के साथ साथ और भी तर्क वाद शास्त्रार्थ में भी निपुण हो गये और आपके धैर्यता, गम्भीर्यता, सहनशीलता, सौम्यता चमता और उदारतादि गुण तो इस प्रकार के थे कि आपके गुणों का वर्णन करने में बृहस्पति भी असमर्थ था यही कारण है कि आपनेआचार्य देवगुप्तसूरि के दिल को सहज ही में अपनी ओर आकर्षित कर लिया जिसमे सूरिजी ने अपनी अन्तिमावस्था में चन्द्रावती के प्राग्वट नोढ़ा के महोत्सव पूर्वक अपना सर्व अधिकार मुनिधनदेव को देकर उसको सूरि पद से विभूषित कर आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया।

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज महान् प्रभावशाली हुए आपका विहारक्षेत्र इतना विशाल था कि मरुधर लाट सौराष्ट्र कच्छ सिंध पंचाल और पूर्व प्रान्त तक घूम घूमकर जैन धर्म का प्रचार किया करते थे। यह बात तो स्वभाविक है कि जिस धर्म के उपदेशक जितने अधिक प्रदेश में विहार करेंगे उनका धर्म उतना ही अधिक क्षेत्र में प्रसरित हो जायगा। यदि वे आचार्य एकाध प्रांन्त में ही बैठ जातें तो वे इतने विशाल प्रदेश में जैनधर्म का प्रचार नहीं कर पाते। हाँ अनूकूलक्षेत्रों में सुख से रहना कौन नहीं चाहते हैं पर इस प्रकार साधु पौद्गलिक सुखों से मोहित हो जाते हैं तो उनका धर्म संसार में चिरकाल तक जीवित नहीं रहता है। जिस को आज हम प्रत्यक्ष में देख रहे हैं कि जिन सूरीश्वरों पर शासन की जुम्मेवारी है इतना ही क्यों पर वे खुद शासन सम्राट् जैनधर्म उद्धारक आदि उपाधियों से मान एवं सम्मान पाने की पुकारें करते हैं अब वे एक प्रान्त को छोड़ कर किसी अन्य प्रान्तों में विहार नहीं करने से ही धर्म का पतन हो रहा है। नये जैन बनाना तो दूर किनार रहे पर पूर्वाचार्यों के बनाये हुए जैनों का रक्षण ही नहीं कर सकते है। दीक्षा के समय प्रत्येक साधु को रोहिनी आदि चार बहनों का उदाहरण सुनाया जाता है पर उसका अमल कौन करता है? यही कारण है कि वर्त्तमान सूरीश्वर जैनधर्म के वर्द्धक पोपक और रक्षक नहीं पर भक्षक बन रहे हैं। हमारे पूर्वजो ने करोड़ों की तादाद में जैनों को इस विश्वास पर छोड़ गये थे कि हमारी संतान इनका पोषण कर वृद्धि करेगी पर हम ऐसे सपूत निकले कि करोड़ों की संख्या को घटा कर आज लाखों पर ले आये हैं। भविष्य के लिये ज्ञानी ही जानते हैं कि जैनधर्म का क्या हाल होगा?

आचार्य श्री सिद्धसूरिजी महाराज अपने पूर्वजों की भाँति प्रत्येक प्रान्त में घूमते रहते थे और अपने साधु साध्वियों को भी प्रत्येक प्रान्त में विहार की आज्ञा दे दिया करते थे अतः आपश्री के शासन समय जैनधर्म का प्रचुरता से प्रचार हो रहा था।

एक समय आपश्री लाट प्रान्त में भ्रमण करते हुए सौराष्ट्र प्रान्त में पधार रहे थे। जब आपका शुभागमन वल्लभीपुरी की ओर हुआ तो वहाँ की जैन जनता में खूब हर्षानंद होने लगा। श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज का सुंदर स्वागत किया। सूरिजी का प्रभावोत्पादक व्याख्यान इतना रोचक पाचक और असरकारी था कि जिसकी प्रशंसा सुनकर वहाँ का नरपति राजा शिलादित्य भी एक समय अपने मंत्री व कर्मचारियों के साथ सूरिजी के व्याख्यान में उपस्थित हुए। सूरिजी को वन्दन कर योग्य स्थान पर बैठ गया।

सूरिजी ने अपनी ओजस्वी भाषा द्वारा राजाओं की नीति और धर्म के विषय में खूब विवेचन के साथ उपदेश दिया। तत्पश्चात् सौराष्ट्र की पवित्र भूमि पर आये हुए तीर्थों का वर्णन करते हुए फरमाया कि तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजय एक महान् तीर्थ है प्रायः यह तीर्थशाश्वता है इस तीर्थ की सेवा उपासना आदि से लाखों करड़ों नहीं पर भूतकाल में अनन्त जीवों ने जन्ममरण के दुख मिटा कर अपना कल्याण किया है। और इस वल्लभी के लोग तो और भी भाग्यशाली है कि यह की भूमि शत्रुंजय तीर्थ की तलेटी का धाम रहा था। कई मुनियों एवं संघपतियोंसे यह भूमि पवित्र हुई है। वल्लभी के लोगों के लिये श्रीशत्रुंजय की भक्ति कर पुण्य संचय करना बिलकुल आसान भी है इत्यादि उपदेश दिया। जिसका प्रभाव यों तो सब लोगों पर हुआ ही था पर विशेष असर राजा शिलादित्य पर हुआ कि आपके हृदय में तीर्थ की सेवा भक्ति करने की भावना प्रबल हो आई। राजा ने किसी अन्य समय सूरिजी के पास आकर धर्म के विषय में अपने दिल की शंकाओं का समाधान कर सूरिजी महाराज के चरण कमल में जैनधर्म को स्वीकार कर लिया।

जब सूरिजी ने वहां से सिद्धगिरी की यात्रा के निमित्त जाने का विचार किया तो और लोगों के साथ राजा शिलादित्य भी श्रीशत्रुंजय की यात्रार्थ सूरिजी के साथ होगया सूरिजी ने यात्रा निमित्त 'छ री' का उपदेश दिया जिसको समझ कर राजा बहुत हर्ष एवं आनन्द में मग्न हो गया और सूरिजी के साथ पैदल 'छ री' पालता हुआ तीर्थधिराज श्री सिद्धगिरि पहुँच कर भगवान् आदीश्वर की यात्रा की। राजा को तीर्थयात्रा का इतना रंग लग गया कि सूरीजी के उपदेश से प्रतिज्ञा करली कि कार्तिक फाल्गुन और आसाढ़ एवं तीन चातुर्मासि के और पर्युषणों के दिनों में यहां आकर मैं अष्टान्हिका महोत्सव करूँगा। तथा तीर्थ सेवा के लिये कुछ ग्राम भी भेंट किये। इतना ही क्यों पर सूरिजी के उपदेश से राजाशिलादित्य ने तीर्थ शत्रुञ्जय का उद्धार भी करवाया। जो पांचवा आरा में यह पहला ही उद्धार था।

आचार्य श्री के उपदेश से राजा शिलादित्य जैनधर्म का परमोपासक बन गया। तीर्थयात्रा के पाश्चात् सूरिजी को विनति कर पुनः वल्लभी ले आये और श्रीसंघ के साथ राजा ने अत्याग्रह से चतुर्मास की विनती की इस पर सूरिजी ने भी लाभालाभ का कारण जान चतुर्मास वहीं कर दिया फिर तो था ही क्या 'यथा राजस्तथाप्रजा' राजा के साथ प्रजा ने भी यथासाध्य धर्माराधन कर अपना कल्याण किया। राजा शिलादित्य ने वल्लभी नगरी में भगवान् आदीश्वर का एक विशाल मन्दिर बनाना प्रारम्भ कर दिया। सूरिजी महाराज के त्याग वैराग्यमय व्याख्यान ने जनता पर खूब ही प्रभाव डाला! राजा के कुटम्ब में एक वृद्धि राजपूत स्त्रि के एक लड़का था उसका भाव सूरिजी के पास दीक्षा लेने का हो गया पर बुढ़िया निराधार थी अतः पुत्र को आज्ञा देनी नहीं चाहती थी पर पुत्र को ऐसा तैसा वैराग्य नहीं था कि वह माता का मोह एवं रोकने से संसार में रह सके। अतः बुढिया ने राजा शिलादित्य के पास जा कर अपना दुःख निवेदन किया कि मेरे एकाएक पुत्र को बहका कर साधु लोग दीक्षा दे रहे हैं अतः आप साधुओं को समझा दें वरन् मैं आपघात कर मर जाऊंगी इत्यादि।

---

[१] तेषां श्री कक्कसूरीणां, शिष्याः श्रीसिद्धसूरयः। वल्लभी नगरेजग्मुर्विहरन्तो मही तले॥
नृपस्तत्र शिलादित्यः सूरिभिः प्रतिबोधितः। श्री शत्रुंजयतीर्थेस्य उद्धारान् विदधे बहून्॥
प्रति वर्ष पर्यूषणे, सचतुर्मासकत्रये। श्री शत्रुंजयतीर्थऽगात् यात्रायै नृप उत्तमः॥
तत्रस्थैः सूरिभिः पौराः स्थापिता केऽपि सत्पथे। यत्तादृशानां निर्माणं लोकोपकृति हेतवे॥

राना सूरिजी के पास आया और विनय के साथ सब हाल निवेदन किया इस पर सूरिजी ने कहा हे राजन् हम लोगों का यह आचार नहीं है कि हम किसी को बहकावें एवं भ्रम में डाल कर दीक्षा दें। इसप्रकार से कोई दीक्षा ले भी ले तो वह दीक्षा पाल भी कैसे सकेगा है ? भले ! बहकाने से ही कोई दी लेता हो तो हम आपको एवं सबको ही बहका देते हैं सब दीक्षा लेने को तैयार होजाइये ? नरेश ! जैनदी कोई बच्चों का खेल नहीं है कि बिना वैराग्य बिना आत्म ज्ञान कोई लेकर उसका पालन कर सकें। कोई महानुभाव ! सच्चा दिल से दीक्षा लेना भी चाहता हो तो उसको अन्तराय देना भी तो महान् पाप यदि बुढ़िया कुछ कहती हो तो उस को समझना चाहिये कि किस की माता और किस के पुत्र यह तो ए मुसाफिर वाला मेला मिला है न जाने काल के मुँह में माता पहले जायेगी या पुत्र ? अगर किसी माता पुत्र दीक्षा लेता हो तो उस माता को बड़ी खुशी मनानी चाहिये कि जिसकी कुक्ष में जन्म लेकर स्व पर कल्याण करने वाला पुत्र अपनी माता की कुक्ष को रत्नकुक्ष बना देता है और वह माता सर्वत्र धन्यवाद के यो कहलाई जाती है। राजन् ! आप जानते हो कि हम लोगों को इस में क्या स्वार्थ है ? हम लोग तो केवल जनता का कल्याण के लिये ही उपदेश एवं दीक्षा देते हैं फिर भी हमारा कोई आग्रह नहीं है जैसे जिनको अच्छा लगे वह वैसा ही करे इत्यादि।

राजा सूरिजी का वचन सुन कर समझ गया कि सूरिजी परोपकारी हैं अतः राजा ने बुढ़िया को समझा बुझा कर आज्ञा दीलादी और खुद राजा ने दीक्षा का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया।

सूरिजी ने क्षत्री वीर शोभा को दीक्षा देकर उसको शोभाग्यसुंदर बना लिया। मुनि शोभाग्यसुन्दर पर सूरिजी की पूर्ण कृपा थी उसने शास्त्रों का अध्ययन के पश्चात् छट अट्ठमादि विविध प्रकार की तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया इतना ही क्यों पर तपस्या के पारणा के दिन कई प्रकार के अभिग्रह भी किया करता था और वे भी ऐसे कठिन अभिग्रह थे कि जिसके पूर्ण होने में कई दिन नहीं पर कोई मास तक भी पारणा नहीं होता था। एक वक्त आपने तपस्या के पारणा के लिए अभिग्रह कर उसकी यादी एक कागज पर लिख उसको बन्द कर गुरु महाराज को दे दी थी और पारणा के लिए शहरों में ही नहीं पर पात्र लेकर जंगलों में भी भ्रमण किया करते थे शायद इस अभिग्रह का सम्बन्ध जंगल से भी होगा। इस प्रकार तपोवृद्धि करता हुआ मुनिजी पुनः वल्लभी नगरी में आये आपकी तपस्या के कारण नगरी में सर्वत्र प्रशंसा फैलगई पर वहाँ एक सन्यासी आया हुआ था उसने समझा कि यह सब जैनियों का ढोंग है वह तपसी मुनि के पीछे गुप्त रूप से फरने लगा। एक समय इधर तो मुनि जंगल में भ्रमन करता था उधर से एक सिंहनी आई उसके पंजा में कुछ पदार्थ था मुनि ने अपना पात्र सामने कर कहा माता कुछ भिक्षा देगी ! सिंहनी ने शान्तभाव से उस पदार्थ को मुनि के पात्र में डाल दिया प्रच्छनपने रहा हुआ सन्यासी सब हाल देख रहा था मुनि भिक्षा ले कर सूरिजी के पास आया और जिस पत्र को बन्ध कर सूरिजी को दिया था उसको खोलादा तो बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि मुनि ने कैसा कठिन अभिग्रह किया है। उसी समय सन्यासी भी सूरिजी महाराज के पास आया और तपस्वी मुनि की खूब प्रशंसा करता हुआ कहाँ पूज्यवर ! जैन मुनि की तपस्या एवं अभिग्रह को मैं ढोंग समझता था पर यह मेरी भूल थी वास्तव में आप लोगों की सच्ची तपस्या है जिसका मनुष्य पर तो क्या पर क्रूर वृति वाले तिर्यंचों पर भी प्रभाव पड़ता है जो मैंने मेरी दृष्टि से देखा है कि एक सिंहनी ने तपस्वी मुनि को शान्त वृति से भिक्षा दी है।

सूरिजी ने तप का महत्त्व वतलाते हुये कहा कि महात्माजी! तप कोई साधारण व्रत नहीं है। पर पूर्व संचित कई भवों के कर्मो को नष्ट करने के लिये सर्वोत्कृष्ट व्रत तप ही है। तप से आत्मा का विकास होता है अनेक चमत्कारपूर्ण लब्धियें तप से उत्पन्न होती हैं। इतना ही क्यों पर संसार में जन्म मरण का महान दुःख है जिसको समूल नष्ट करने में तथा आत्मा से परमात्मा वनने में मुख्य कारण तप ही है। पूर्व जमाने में वड़े वड़े ऋषियों ने सैकड़ों हजारों वर्ष तक तपस्या की थी जिसका उल्लेख शास्त्रों में मिलता है और इस तप के भी अनेक भेद हैं जैसे—१—वाह्यतप २—आभ्यान्तर तप

वाह्यतप उसे कहते हैं कि जिस तप को लोग जान सकते हैं। जैसे

१—अनशन तप—उपवासादि अनेक प्रकार के तप किये जाते हैं।

२—उणोदरी—जो खाने पीने की खूराक है जिसमें कुछ कम खाना तथा कपाय को मंद करना।

३—भिक्षाचरी तप—आहार पानी की शुद्धता और अनेक प्रकार के अभिग्रहादि करना यह भी एक तप है।

४—रसत्याग—दूध, दही घृत, मिष्टान्न आदि रस का त्याग करना।

५—कायाक्लेश तप—योग के ८४ आसन, तथा अतापना लेना, लोच करना इत्यादि।

६—प्रतिसलेखना तप-पशु, नपुंसक, स्त्रीमुक्त स्थान में रहना इन्द्रियों का दमन करना इत्यादि।

इन छः प्रकार के तप को वाह्य तप कहते हैं तथा आभ्यान्तर तप निम्न प्रकार है।

१—प्रायश्चित तप—अपने व्रतों में दूपण लगा हो, उसकी गुरु के पास में आलोचना करनी और गुरुदत्त प्रायश्चित का तप करना इसके शास्त्रों में ५० भेद वतलाये हैं।

२—विनयतप—गुरु आदि वृद्ध एवं गुणीजनों का विनय करना इसके १३४ भेद कहे हैं।

३—व्यावचतप—वृद्ध ग्लानी तपस्वी ज्ञानी और नवदीक्षित की व्यावच्च करना इसके १० भेद हैं।

४—स्वाध्याय तप—पठन पाठन मनन निधिध्यासनादि करना इसके ५ भेद हैं।

५—ध्यान तप—आर्त रौद्रध्यान से वचना, धर्म व शुक्लध्यान का चिन्तवन आसन, समाधि, योग आध्यात्म विचारणा को ध्यान कहते है।

६—विउस्सग्ग तप—कर्म कपाय संसारादि का त्याग रूप प्रयत्न करना इसके भी अनेक भेद हैं।

इन छः प्रकार के तप को आभ्यान्तर तप कहा जाता है। सन्यासीजी! इस तप के साथ एक वस्तु की और भी खास जरूरत रहती है। जैसे औपधि के साथ अनुपान होता है और अनुकूल अनुपान से दवाई विशेष गुण देती है। इसी प्रकार तप के साथ सम्यग्दर्शन की जरूरत रहा करती है। सम्यग्दर्शन के साथ तप किया जाय तो कर्म को शीघ्र ही नष्ट कर आत्मा से परमात्मा वन सकता है।

सन्यासीजी ने कहा, पूज्यवर! मैं आपकी परिभाषा में नहीं समझता हूँ। कि सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं। कृपा कर इसका खुलासा करके समझावें।

सूरिजी ने कहा कि सम्यग्दर्शन, उसे कहते हैं कि—सुदेव, सुगुरु, सुधर्म पर श्रद्धा रखना।

१—देव—सर्वज्ञ, वीतराग, अष्टादश दूपण रहित और द्वादशगुण सहित विश्वोपकारी हो जिनका अलौकिक जीवन और मुद्रा में त्याग शान्ति और परोपकार भरा हो। उनको देव समझना चाहिये।

२—गुरु–कनक कामिनी के त्यागी पंच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के पालक जनकल्याण के लिये जिन्होंने अपना जीवन अर्पण कर दिया हो उनको गुरु मानना चाहिये।

३—धर्म–देव की आज्ञा जैसे 'अहिंसा परमोधर्मः' को धर्म समझना।

इन तीनों तत्वों को व्यवहार से सम्यग्दर्शन कहते हैं तथा मिथ्यात्वमोहनिय (कुदेव कुगुरु कुधर्म की श्रद्धा रखना) मिश्रमोहनीय (असत्य सत्य को एक सा ही मानना) सम्यक्त्वमोहनिय और अन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ एवं इन सात प्रकृति का क्षय करना इसको निश्चय सम्यग्दर्शन कहा जाता है इसके साथ तप करने से सम्पूर्ण फल मिलता है।

सन्यासीजी ने अपने जीवन में इस प्रकार के शब्द पहिले पहिल सूरिजी से ही सुने थे। अतः कुछ समय विचार कर बोला पूज्यवर ! मेरी इच्छा है कि मैं आपके चरण कमलों में रहकर सम्यग्दर्शन के साथ तप कर आत्मा से परमात्मा बनूं।

सूरिजी ने कहा 'जहांसुखम्' देवानुप्रिय ! केवल आप ही क्यों पर पूर्व जमानों में शिवराजर्षि, पोग्गलसन्यासी और खंदक वगैरह बहुत भव्यों ने इसी मार्ग का अनुकरण किया है और आत्मार्थी मुमुक्षुओं का यह कर्तव्य भी है कि सत्य मार्ग को स्वीकार कर अपना आत्मकल्याण करे।

सन्यासीजी ने अपने भंडोपकरण एक तरफ रखकर सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैनदीक्षा स्वीकार करली। सूरिजी ने दीक्षा देकर आपका नाम 'कल्याणमूर्त्ति' रख दिया।

नूतन मुनि कल्याणमूर्त्ति ज्यों ज्यों जैनधर्म की क्रिया और ज्ञानाभ्यास करते गये त्यों २ आपको बड़ा भारी आनन्द आता गया। आपने सोचा कि मेरे जैसी अनेक आत्मायें अज्ञानसागर में गोता खा रही हैं। अतः मेरा कर्तव्य है कि मैं उन्हें समझा बुझा कर जैन धर्म की राह पर लाकर उनका उद्धार करूं। अतः सूरिजी से आज्ञा लेकर कई साधुओं के साथ आप विहार कर जैनधर्म के प्रचार में लग गये।

इस प्रकार सूरिजी ने अनेक मुमुक्षुओं को दीक्षा देकर जैनधर्म के प्रचार में लगा दिया।

आचार्य सिद्धसूरि अनेक प्रान्तों में विहार करते हुये एक समय उपकेशपुर नगर की ओर पधार रहे थे। इस बात का पता वहाँ के राजा रत्नसी आदि वहाँ के श्री संघ को मिला तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा। उन्होंने सूरिजी का नगर-प्रवेश बड़े ही समारोह के साथ करवाया। सूरिजी ने चतुर्विध श्री संघ के साथ भगवान महावीर और गुरु रत्नप्रभसूरिजी के दर्शन स्पर्शन कर अपना अहोभाग्य समझा। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य पर होता था। राजा प्रजा को बड़ा ही आनन्द आ रहा था। श्रीसंघ ने सूरिजी से चतुर्मास की आग्रह से विनती की और सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जान चतुर्मास उपकेशपुर में कर दिया।

एक दिन सूरिजी ने आचार्य रत्नप्रभसूरि और राजा उत्पलदेव व मंत्री ऊहड़ादि का उदाहरण बताते हुये समझाया कि इन महापुरुषों ने जैनधर्म के प्रचार के लिए कितना भागीरथ प्रयत्न किया था कि जिसकी बदौलत आज जैनधर्म का चारों ओर सितारा चमक रहा है। अतः आप लोगों को भी इन महात्माओं का अनुकरण करना चाहिये इत्यादि।

सूरिजी का उपदेश सुनकर राजा रत्नसी ने अपने विचारों को कई तरफ दौड़ाते हुये अन्त में इस निर्णय पर स्थिर किया कि उपकेशपुर में एक विराट् सभा का आयोजन किया जाय और उसमें

का प्रस्ताव रखा जाय तो उम्मेद है कि इस कार्य्य में सफलता मिल सके। राजा ने अपना विचार सूरिजी के सामने उपस्थिति किया तो सूरिजी ने प्रसन्नतापूर्वक राजा के कार्य्य पर अपनी अनुमति देदी। पर विशेषता यह थी कि सूरिजी ने कहा कि यह सभा केवल मरुधरवासियों के लिये ही न हो पर जहाँ उपकेशगच्छ एवं वंश के साधु एवं श्रावक हों उन सबके लिये की जाय अर्थात् मरुधरलाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्ध, पांचाल, आवन्ती और मेदपाट वगैरह सब प्रान्तों के लिये हो कि तमाम लोग इसमें भाग ले सकें। यह बात राजा के जँचगई और उसने कहा इसके लिये समय निर्णय करना चाहिये। सूरिजी ने कहा कि माघशुक्ल पूर्णिमा जो कि आचार्य रत्नप्रभसूरिजी के स्वर्गारोहण का दिन हैं मुकर्रर किया जाय तो अच्छा है। राजादि श्रीसंघ ने सब प्रकार से ठीक समय निश्चित कर लिया। बस, सकल श्रीसंघ की सम्मति लेकर राजा ने यथा समय अपने मनुष्यों द्वारा प्रत्येक प्रान्त में आमंत्रण पत्रिकायें भिजवा दीं। और आप स्वागत के लिये तैयारियें करने में जुट गया। उपकेशपुर की जनता में इतना उत्साह बढ़ गया कि वे अपने घरों के कामों को छोड़कर इस धर्म्म कार्य्य में संलग्न होगये।

वह समय इतना संतोषवृत्ति का था कि जनता में न तो इतनी तृष्णा थी और न इतनी आवश्यकतायें ही थीं। कारण एक तो देवी का वरदान था कि "उपकेशे बहुलं द्रव्यं" उपकेशवंशियों के पास द्रव्य बहुत था। दूसरे उस जमाने में सब लोग सादा और सरल जीवन गुजारते थे। अतः उनको दो-दो चार-चार और छः छः मास जितने समय की फुरसत मिल सकती थी।

राजा रत्नसी आदि उपकेशपुर श्रीसंघ की ओर से आमंत्रण मिलने से प्रत्येक प्रान्त में चहल-पहल मच गई और सब लोगों की सूरत उपकेशपुर की ओर लग गई। कई लोग तो साधुओं के साथ तीर्थ यात्रा की भांति छरी पाली संघ लेकर उपकेशपुर की ओर प्रस्थान कर दिया था तब कई लोग अपनी सवारियों के जरिये आ रहे थे।

उपकेशपुर एक यात्रा का धाम बन गया था। वास्तव में था भी तीर्थ स्वरूप जहाँ शासनाधीश भगवान् महावीर और महाजनसंघ संस्थापक आचार्य रत्नप्रभसूरिजी की यात्रा हो फिर इससे अधिक तीर्थ ही क्या हो सकता है कि जहाँ देव गुरु की यात्रा तथा स्थावर तीर्थ के साथ जंगमतीर्थ की यात्रा का भी लाभ मिले।

उपकेशगच्छ, कोरंटगच्छ के साधुओं के अलावा लाट सौराष्ट्र एवं आवन्ति प्रदेश में भ्रमण करने वाले वीर सन्तानिये भी गहरी तादाद में पधारे थे। सब का स्वागत बड़े ही समारोह के साथ हुआ विशेषता यह थी कि पृथक २ गच्छों के श्रमण होने पर भी एक ही स्वरूप में दीखते थे। सब का आहार पानी वन्दन व्यवहार शामिल था। इस प्रकार श्रमण संघ की वात्सल्यता का प्रभाव जनता पर कम नहीं पड़ा था। वे देख कर मंत्र मुग्ध बन गये थे और यह श्रमण वात्सल्यता भाव प्रारम्भ कार्य की भावी सफलता की सूचना दे रहा था।

जिस प्रकार श्रमणसंघ के झुण्ड के झुण्ड आ रहे थे। इसी प्रकार श्राद्धवर्ग भी विस्तृत संख्या में आये थे। और वे भी केवल साधारण लोग ही नहीं थे पर कोरंटपुर का राव, चन्द्रावती का राजा, भीनमाल का राव, कच्छ का नरेश, सिन्ध का राव वगैरह २ जैन धर्मोपासक नरेश एवं बड़े २ श्रावक लोग एकत्र हुये थे। आगन्तुकों के स्वागत का इन्तजाम पहले से ही हो रहा था। कारण मरुधरवासियों की

कार्य्य कुशलता जगत विख्यात ही थी। दूसरे धर्म प्रचार के उद्देश्य से आये हुओं के लिये स्वागत की इतनी आवश्यकता ही नहीं थी कारण वे सब लोग कार्य करने वाले ही थे।

सभा मण्डप खुल्ला मैदान में इतना विशाल बनाया गया था कि जिसमें हजारों नहीं पर लाखों मनुष्य सुखपूर्वक बैठ सकें। जिसमें भी महिलाओं के लिये खास प्रवन्ध था—

ठीक माघशुक्ला पूर्णिमा के दिन आचार्य सिद्धसूरिजी महाराज की अध्यक्षता में सभा हुई।

मंगलाचरण के पश्चात कई सज्जनों के भाषण हुये तदनन्तर आचार्य सिद्धसूरि के धर्मप्रचार के विषय में व्याख्यान हुआ। आचार्य रत्नप्रभसूरि के समय की कठिनाइयों, तपश्चर्या और सहनशीलता तथा उन्होंने मरुधर में किस प्रकार जैन धर्म की नीव डाल कर महाजनसंघ की स्थापना की उनके सहायक राव उत्पलदेव मंत्री ऊहड़ का स्वार्थ त्याग और धर्मप्रचार का इतिहास बड़ी ओजस्वी वाणी द्वारा सुनाया कि सुनने वालों के हृदय में एक नयी शक्ति उत्पन्न हो गई। साथ में बौद्ध और वेदान्तियों के धर्म प्रचार का दिग्दर्शन भी करवाया तथा बतलाया कि जिस धर्म में राजसत्ता काम करती हो वही धर्म राष्ट्रधर्म बन जाता है। सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के और पुष्पमित्र ने वेद धर्म के अन्दर जान डाल कर उसका प्रचार किया था क्रमशः उसका पगपसारा आपके प्रदेशों में भी होने लगा है अतः आप लोगों को भी कमर कस कर तैयार रहना चाहिये। धर्म प्रचार के लिये एक श्रमण संघ ही पर्याप्त नहीं पर इसमें श्राद्ध वर्ग की भी आवश्यकता है। रथ चलता है वह दो पहियों से चलता है जिसमें भी राजाओं का तो यह कर्त्तव्य ही है कि वह अपनी तमाम शक्ति धर्म प्रचार में लगा दें। देखिये पूर्व जमाने का इतिहास

१—आचार्य रत्नप्रभसूरि के धर्म प्रचार में राजा उत्पलदेव ने सहयोग दिया था।

२—आचार्य यक्षदेवसूरि के धर्म प्रचार में राव रुद्राट और कुंवर कक्क सहायक थे।

३—आचार्य कक्कसूरि के धर्म प्रचार में राजा शिव की सहायता थी।

४—आचार्य भद्रबाहु के धर्म प्रचार में सम्राट चन्द्रगुप्त ने सहयोग दिया था।

५—आचार्य सुहस्ती के धर्म प्रचार में सम्राट सम्प्रति की सहायता थी।

६— आचार्य सुस्थीसूरि के धर्म प्रचार में चक्रवर्त्ति महाराज खारवेल की मदद थी।

इत्यादि अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। अतः आप लोगों को भी चाहिये कि धर्म प्रचार में साधुओं का हाथ बटावे। अर्थात् यथा साध्य सहायता पहुँचावे—

सूरिजी महाराज के प्रभावशाली उपदेश का उपस्थित चतुर्विध श्रीसंघ पर काफी प्रभाव पड़ा और उसी सभा के अन्दर कई लोग बोल उठे कि पूज्यवर ! जैसे आप आज्ञा फरमावें हम लोग पालन करने को तैयार हैं एवं कटिबद्ध हैं। इससे सूरिजी महाराज ने अपने परिश्रम को सफल हुआ समझा।

तत्पश्चात भगवान महावीर और गुरुवर्य्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी की जय ध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई। रात्रि समय राव रत्नसी ने एक सभा की जिसमें संघ अग्रेश्वर नरेश एवं क्षत्रिय और व्यापारी सब लोग शामिल थे। मुख्य बात सूरिजी के उपदेश को कार्य में परिणित करने की थी जिसको सब लोगों ने सहर्ष स्वीकार करली।

उस समय उपकेशगच्छ एवं कोरंटगच्छ में नायक आचार्य एक-एक ही हुआ करते थे। यही कारण था कि उस समय का संगठन बल अच्छा व्यवस्थित था और एक ही आचार्य की नायकता में अर्पित

श्रीसंघ का आत्म कल्याण हो रहा था फिर भी आचार्य समयज्ञ थे अपने आज्ञावृति साधुओं को दूर २ प्रदेश में विहार करवाया करते थे। अतः उन साधुओं में पदवीधरों की भी आवश्यकता थी। अतः सूरिजी ने अपने योग्य साधुओं को पदवियां प्रदान करने का भी निश्चय कर लिया था। यही कारण था कि दूसरे दिन पुनः सभा करके उपकेशगच्छ, कोरंटगच्छ और वीरसंतानियों में जो पदवियों के योग्य साधु थे उनको पदवियों से विभूपित किया। जैसे—१५ साधुओं को उपाध्यायपद २७ साधुओं को पण्डित पद १९ साधुओं को वाचनाचार्य १६ साधुओं को गणिपद ११ साधुओं को अनुयोग आचार्य पद

इत्यादि योग्य मुनियों को पदवियां देकर इनके उत्साह में खूब वृद्धि की बाद उन मुनियों की नायकत्व में प्रत्येक २ प्रान्तों में विहार करने की आज्ञा देदी। और सूरिजी स्वयं ५०० साधुओं के साथ विहार करने को तत्पर हो गये।

इसके अलावा कोरन्टगच्छाचार्य्य सर्वदेवसूरि के शिष्यों के लिये भी भिन्न २ प्रान्तों में विहार करने की सलाह देदी और उन्होंने भी धर्मप्रचार निमित्त विहार कर दिया—

सूरिजी ने इस बात को ठीक समझ ली थी कि जिन साधुओं का जितना विशाल क्षेत्र में विहार होगा उतना ही धर्म प्रचार अधिक बढ़ेगा। कारण जनता झुकती है पर झुकानेवाला होना चाहिये इत्यादि उपकेशपुर में सभा करने से जैनों में खूब अच्छी जागृति हुई इसका सबश्रेय हमारे चरित्रनायक सूरीश्वरजी ही को है। साथ में उपकेशपुर नरेश का कार्य्य भी प्रशंसा का पात्र बन गया था।

आचार्य सिद्धसूरिजी ने अपनी छत्तीस वर्ष की आयु में गच्छ का भार अपने शिर पर लिया था और ६४ वर्ष तक आपने शासन चलाया जिसमें आपने प्रत्येक प्रान्त में अनेक २ बार भ्रमन कर अनेक भूलेभटके मांसाहारियों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा देकर उनका उद्धार कर महाजनसंघ में वृद्धि की। कई प्रान्तों से तीर्थों के संघ निकलवा कर उनको तीर्थयात्रा का लाभ दिया। कई मंदिर मूर्तियों एवं विद्यालयों की प्रतिष्ठा करवाई। कई मुमुक्षुओं को संसार से मुक्त कर जैनधर्म की दीक्षा देकर श्रमणसंघ की संख्या बढ़ाई। कई स्थानों पर बौद्ध और वेदान्तियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजय पताका फहराई। कहने की आवश्यकता नहीं है कि उस विकट परिस्थिति में आप जैसे शासन हितैषी सूरीश्वरजी ने ही जैनधर्म को जीवित रक्खा था। उस समय पृथक २ आचार्य होने पर भी संघ में छेद-भेद कोई नहीं डालते थे। संघ भी सबका यथायोग्य सत्कार करता था। यही कारण था कि उस समय का संघ संगठित व्यवस्थित एवं मजबूत था। कोई भी जाति वर्ण का क्यों न हो पर जिसने जैनधर्म स्वीकार कर लिया उसके साथ रोटी बेटी व्यवहार बड़ी खुशी के साथ कर लिया जाता था और उनको सब तरह की सहायता पहुँचा कर अपने बराबर का भाई बनालिया जाता था। धर्म के साथ इस प्रकार की सुविधाओं के कारण ही जैनों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई थी। उस समय धार्मिक कार्य्यों में जैनाचार्य का प्रभुत्व था। उनकी आज्ञा का सर्वत्र बहुमान पूर्वक पालन किया जाता था धर्माचार्य्य और श्रमणसंघ में आपसी प्रमानंद वात्सल्यता इस प्रकार थी कि वे पृथक् २ गच्छ के होने पर भी एक रूप में दीखते थे। एक दूसरे के कार्य्यों का अनुमोदन करते थे! इतना ही क्यों बल्कि एक दूसरे के कार्य्य में मदद कर उसको सफल बनाने की कोशिश भी किया करते थे इतना वृहद् कार्य्य करने पर भी मान अहंकार या अहं पद तो उनके नजदीक तक भी नहीं फटकता था। आडम्बर के स्थान वे कार्य्य करने में अपना गौरव समझते थे।

इत्यादि कारणों से ही उन्होंने जैनधर्म का ठोस कार्य्य करने में सफलता प्राप्त की थी। आचार्य सिद्धसूरिने अपने दीर्घशासन में प्रत्येक प्रान्त में अनेक वार विहार कर जैन जनता को अपने उपदेशामृत का लाभ दिया था तथा लाखों मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित कर उनका उद्धार कर जैन संख्या में आशातीत वृद्धि की थी। अन्त में सूरिजी महाराज ने उपकेशपुर पधार कर अपने योग्य शिष्य उपाध्याय गुणचन्द्र को उपकेशपुर के श्रीसंघ के महामहोत्सव पूर्वक सूरिपद से विभूषित कर दिया और अन्य योग्य मुनियों को भी पदवियाँ प्रदान कर उनके उत्साह में वृद्धि की।

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी ने उपकेशपुर की लुणाद्री पहाड़ी पर अनशनव्रत धारण कर अपना शेष आयुष्य पूर्ण समाधि में विताया और वि० सं० ५२ में नवकार महामंत्र का ध्यान करते हुये स्वर्ग सिधारे।

पट्टावलियों वंशावलीयों और कई चरित्र ग्रंथों में बहुत से उल्लेख मिलते हैं। आपकी जानकारी के लिये कतिपय उदाहरण नमूने के तौर पर यहां बतला दिये जाते हैं।

१—आचार्य सिद्धसूरि के उपदेश से भद्रगोत्रिय शाह पेथा ने उपकेशपुर से श्रीशत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला जिसमें सवालक्ष द्रव्य व्यय किया। स्वाधर्मी भाइयों का सत्कार पहरामणी दी।

२—सूरिजी के उपदेश से माडव्यपुर के डिड्डूगोत्रिय शाह मलुक नेणसी ने श्री सम्मेतशिखरजी का विराट् संघ निकाला।

३ – मेदनीपुरा के बलाह गोत्रिय शाह साहरण ने शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला जिसमें कई ३००० साधु साध्वीयां थीं।

४—पाली के नगर से तातेड़ गोत्रिय शाह जगमल ने शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला।

५—नागपुर के आदित्य नाग गोत्रिय शाह चतरा खेमा ने श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला।

६—कोरंटपुर के प्राग्वटवंशी रूपणसी ने श्री सम्मेतशिखरजी का विराट संघ निकाला जिसमें उसने नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया।

७—मालपुर के प्राग्वट मंत्री रणवीर ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें सोना मोहरों की लेन और पहरामणी दी।

८—चन्द्रावती के प्राग्वट शाह देपाल करमण ने श्री शत्रुंजय गिरनार का संघ निकाला।

९—शिवपुरी के प्राग्वट नाथा भगा ने उपकेशपुर महावीर यात्रार्थ संघ निकाला जिसमें एक लक्ष द्रव्य व्यय किया।

१०—भीनमाल के श्रीमालवंशी शाह भासड़ ने शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया।

११—सिंध शिवनगर से मंत्री कन्हण ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला।

१२—सिंध अमरेल नगर से श्रेष्टि गोत्रिय मंत्री यसोदेव ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला। स्वधर्मियों को सोना मोहर की पहरावनी दी।

१३—कच्छ राजपुर से श्रीमाल वंशीय धन्नाशाह ने शत्रुंजय का विराट संघ निकाला।

१४—पंचाल के लोटाकोट से मंत्री हरदेव ने शत्रुंजय का संघ निकाला।

१५—मेदपाट आघाट नगर से मंत्री राजपाल ने शत्रुंजय का संघ निकाला।

१६—विजयपुर नगर के बालनाग गोत्रिय शाहसारंग ने श्रीउपकेशपुर का संघ निकाल यात्रा करवाई।

इनके अलावा सिन्ध पंचालादि प्रान्तों से आप तथा आपके योग्य मुनियों के उपदेश एवं अध्यक्षत्व में कई तीर्थों के संघ निकले।

सूरीश्वरजी के उपदेश से अनेक महानुभावों ने संसार का त्याग कर आत्मकल्याण के हेतु भगवती जैन दीक्षा स्वीकार की। थोड़े से नाम यहां दर्ज कर दिये जाते हैं जिनके उल्लेख पट्टावलियों वगैरह में प्रचुरता से मिलते हैं।

१—उपकेशपुर के राव वीरदेव ने अपने पुत्र रामदेवादि के साथ सूरीश्वरजी के चरण कमलों में दीक्षा ग्रहण की।

२—नागपुर के बाप्पनाग गोत्रिय सुखा ने दीक्षा ग्रहण की।

३—मेदनीपुर के कर्णाट गोत्रिय शा० गोरा ने अपनी स्त्री और दो पुत्रियों के साथ दीक्षा ली।

४—आशिका नगरी के भद्रगोत्रिय शाह नारायण ने अपने ८ साथियों के साथ दीक्षा ली।

५—फेफावती नगरी के भूरि गोत्रिय गोशल ने नौ लक्ष द्रव्य तथा छः मास की परणी स्त्री के सहित दीक्षा ली जिसके महोत्सव में आपके पिता करत्था ने एक लक्ष द्रव्य व्यय कर जैन शासन की खूब प्रभावना की।

६—नारदपुरी के श्रेष्टि गोत्रिय शाह हरपाल देवपाल ने महामहोत्सव पूर्वक दीक्षा ली।

७—पद्मावती नगरी के पोरवाल वंशीय शाह माना करना ने ११ नरनारियों के साथ दीक्षा ली जिसके महोत्सव में तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया।

८—सत्यपुर नगर के प्राग्वट मंत्री विजयदेव ने अपनी स्त्री कुमारदेवी १७ नरनारियों के साथ दीक्षा ली इस महोत्सव में मंत्री के पुत्र सोमदेव ने पांच लक्ष द्रव्य व्यय किया था।

९—चन्द्रावती नगरी के श्रीमाल वंशीय मंत्री धर्मसी ने सूरिजी के चरण कमलों में बड़े ही समारोह के साथ दीक्षा ली।

१०—कोरंटपुर के आदित्यनाग गोत्रिय शाह रूपणासी ने अपने पुत्र जेतसी के साथ दीक्षा ली।

११—नरवर के सुचेती महीपाल ने दीक्षा ली।

१२—रूप नगर के क्षत्रिय त्रिभुवनपाल ने दीक्षा ली।

१३—वेनातट के जगदेवादि सात ब्राह्मणों ने सूरिजी के उपदेश से भगवती जैनदीक्षा ग्रहण की।

१४—उपकेशपुर के चिंचट गोत्रिय शा० सारंग विमल ने सूरिजी के उपदेश से दीक्षा ली।

१५—रतनपुर के आदित्यनाग गोत्रिय सुलतान ने दीक्षा ली।

१६—कच्छोलिया गांव के राव विशल ने दीक्षा ली।

इनके अलावा और भी अनेक प्रान्तों एवं अनेक छोटे बड़े ग्रामों के अनेक भव्यों ने सूरिजी के शासन में जैन दीक्षा ग्रहण कर स्वपर का कल्याण किया। क्योंकि पहिले जमाने के जीव ही लघुकर्मी थे कि उनपर थोड़ा उपदेश भी अधिक असर कर जाता था। सूरिजी ने अपने दीर्घशासन में कई १५०० नरनारियों को दीक्षा दी थी ऐसा पट्टावलियों से ज्ञात होता है।

सूरीश्वरजी ने अपने शासन काल में कई मंदिर मूर्त्तियों की प्रतिष्टायें भी करवाई थीं। कवि-

उदाहरण यहाँ दर्ज कर दिये जाते हैं जो वंशावलियों एवं पट्टावलियों में आज भी उपलब्ध हैं जैसे कि:—

१—उपकेशपुर में श्रेष्ठि गोत्रिय शाह देदा के बनाये आदीश्वर भगवान् के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई जिस महोत्सव में श्रेष्ठिवर्य्य ने एक लक्ष मुद्रा व्यय कर शासन की प्रभावना की।

२—भाभोज़ी में कुमट गोत्रिय शाह बीरम के बनाये भगवान् महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

३—चंदेलिया ग्राम में मोरक्षा गोत्रिय शाह झंझण के बनाये पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्र०।

४—नाबानी नगरी में आदित्यनाग गोत्रिय शाह पेथा चुनड़े के बनाये महावीर के मंदिर की प्र०।

५—चन्द्रावती नगरी में मंत्री राजवीर के बनाये महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

६—नन्दपुर में प्राग्वट वेसट के बनाये पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

७—कीराट कुम्प में प्राग्वट पेथा के बनाये पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

८—पट्कूप में कुलहट गोत्रिय रामदेव के बनाये वीर के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

९—मुग्धपुर तप्तभट्ट गोत्रिय शा. तोला के आदीश्वर के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

१०—नरवर के कर्णाट गोत्रिय खुमाण के बनाये महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

११—नेवलग्राम के सुचेति हरदेव के बनाये महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

१२—चाटोड के भद्रगोत्रिय शा. सगरा के बनाये पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

१३—पद्मावती के प्राग्वट रत्नादेदा के बनाये महावीर मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

१४—वल्लभी बलह गोत्रिय मंत्री कल्हण के बनाये ऋषभदेव के म० प्र०।

१५—कठी के श्रीमालवंशी रावण के बनाये शान्तिनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

१६—सलखणपुर के राव पोमल के बनाये महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

१७—जाबलीपुर के श्रेष्ठि भुवड़ के बनाये महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

१८—भिन्नमाल के प्राग्वट पेथा के बनाये पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

१९—हर्षपुर के बापनाग गोत्रिय शाह लुने महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

२०—कोरंटपुर के श्रीमाल आदू के भगवान् पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई।

२१—सत्यपुर के प्राग्वट संघपति करमल के बनाये श्रीशान्तिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई।

२२—सारंगपुर श्रेष्ठिवर्य्य रत्नश्री के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई।

२३—चन्द्रपुरी बाप्पनाग गोत्रीय शाह कानों के बनाये पार्श्वनाथ मन्दिर की प्र० इनके अलावा सूरिजी ने लाखों मांसभक्षी क्षत्रियों को जैन धर्म में दीक्षित किये अतः जैन समाज पर आपका महान् उपकार हुआ है जिसको समाज भूल नहीं सकता है।

पट्ट पन्द्रहवें सिद्ध सूरीश्वर, चिंचट गौत्र कहलाते थे।
आगम ज्ञानबल विद्या पूर्ण, जैन झण्डे फहराते थे॥
वल्लभी का नृप शिलादित्य, चरण शीश झुकाते थे।
सिद्धाचल का भक्त बनाया, जैनधर्म यश गाते थे॥

॥ इति श्री भगवान् पार्श्वनाथ के १५ वें पट्टधर आचार्य सिद्धसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुए॥

भगवान महावीर की परम्परा—

आचार्य उमास्वाति—आपका जन्म न्यग्रोधिका ग्राम के ब्राह्मण स्वाति की भार्या उमा की कुक्ष से हुआ था। आर्य्य महागिरि के शिष्य बलिसिंह के आप शिष्य थे जैसे पट्टावली में लिखा है कि—

"श्री आर्य महागिरेस्तु शिष्यौ बहुल-बलिस्सहौ यमल भ्रातरौ तस्य बलिस्सह स्य शिष्यः स्वाति, तत्त्वार्थादयो ग्रन्थास्तु तत्कृता एव संभाव्यते" पट्टावली समुच्च पृष्ठ ४६

आचार्य उमास्वाति ने केवल एक तत्त्वार्थ सूत्र ही नहीं बनाया पर आप श्री ने ५०० ग्रन्थों की रचना की थी आचार्यवादीदेवसूरि अपने स्याद्वाद रत्नाकर में लिखते हैं कि--

"पंचशती प्रकरण प्रणयन प्रवीणौस्त्र भवदभरुमा स्वाति वाचक मुख्यै"

आर्य उमास्वाति के समय के विषय कुछ मतभेद है। कारण, तत्त्वार्थ के भाष्य में स्वयं उमास्वाति महाराज लिखते हैं कि मैं उच्चनागोरी शाखा का हूँ। तब कल्प स्थविरावली में आर्य्यदिन्न के शिष्यशान्ति-श्रेणिक से उच्चनागोरी शाखा का प्रादुर्भाव हुआ लिखा है। जब आर्य दिन्न का समय वी. नि. ४५१ के आस पास है तो उसके बाद उमास्वाति हुये होंगे। तब प्रज्ञापन्नासूत्र की टीका में लिखा है कि आर्य उमास्वाति के शिष्य श्यामाचार्य्य ने प्रज्ञापन्ना सूत्र की रचना की और आपका समय वी.नि. ३३५ से ३७६ का बतलाया है। इससे यही मानना युक्तियुक्त है कि उमास्वति महाराज आर्यबलिस्सह के शिष्य और श्यामाचार्य के गुरु थे और आपका समय वी० नि० की चतुर्थ शताब्दी का ही था।

श्यामाचार्य—आप वाचक उमास्वाति के शिष्य थे और प्रज्ञापन्नासूत्र की संकलना की थी वह आज भी पैंतालीस आगमों के अन्दर उपांग सूत्र में विद्यमान है। प्रस्तुत प्रज्ञापन्ना सूत्र में जो प्रश्नोत्तर किये गये हैं वह सब गौतम स्वामी ने प्रश्न पूछे हैं और भगवान महावीर ने उत्तर दिये हैं। इससे पाया जाता है कि यह सूत्र तो पूर्व का ही होगा परन्तु इसकी संकलना श्यामाचार्य ने की होगी।

प्रज्ञापन्नासूत्र—छत्तीस पदों से विभूषित है। प्रत्येक पद तात्विक एवं वैज्ञानिक विषय से ओत प्रोत है जिसका संक्षिप्त से दिग्दर्शन मात्र यहाँ करवा दिया जाता है।

१—पहले पद में—जीव अजीव की प्ररूपणा है जिसमें जीव की प्ररूपना विस्तार से है
२—दूसरे पद में—चौवीस दंडक के स्थानाधिकार हैं। यह पद भी खूब विवरण के साथ लिखा है
३—तीसरे पद में—महादंडक तमाम जीवों की अल्पाबहुत करके समझाया है।
४—चौथे पद में—तमाम जीवों के पर्याप्ता अपर्याप्ता की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति का वर्णन है।
५—पाँचवें पद में—जीव अजीव पर्याय का वर्णन है इसमें संसार भर का विज्ञान है।
६—छट्ठे पद में—चराचर जीवों की गति एवं आगति का वर्णन है।
७—सातवां पद में—श्वासोश्वास का अधिकार है।
८—आठवां पद में—दश प्रकार की संज्ञा का वर्णन है।
९—नौवां पद में—सांसारिक जीवों की योनि का विस्तार है।

१०—दशवां पद में—चरम अचरम का वर्णन है ।
११—ग्यारहवां पद में—भाषा का विवरण विस्तार से लिखा है ।
१२—वारहवां पद में—पांच शरीर के वँधेलगा मुकेलगादि का विस्तार से वर्णन है ।
१३—तेरहवां पद में—परिणाम अर्थात् जीव परिणाम अजीव परिणाम का वर्णन है ।
१४—चौदहवें पद में—क्रोधादि चार कषाय के ५२०० भंगों का वर्णन है ।
१५—पन्द्रहवाँ पद में—पांच भाव इन्द्रियें और आठ द्रव्येन्द्रियों का वर्णन है ।
१६—सोलहवें पद में—प्रयोग योगों की विचित्रता का अधिकार है ।
१७—सतरवें पद में—लेश्या छः उद्देश्यों में लेश्याओं का विस्तार है ।
१८—अठारहवें पद में—कायस्थिति जो एक काया में जीव कहां तक रह सके ।
१९—उन्नीसवां पद में—दर्शन-दर्शन कितने प्रकार के और उनके लक्षण ।
२०—वीसवां पद में—अन्तः क्रिया—कौन सा जीव किस प्रकार अन्त क्रिया करते हैं ।
२१—इकवीसवां पद में—शरीर अवगाहना का विस्तार से वर्णन किया है ।
२२—बावीसवां पद में—काइयादि क्रियाओं का वर्णन है ।
२३—तेवीसवां पद में—कर्मों का आबादाकाल कौनसा कर्मबँधने के बाद कितना काल से उदय आवे ।
२४—चौवीसवां पद में—कर्म बान्धता हुआ कितना कर्म साथ में बँध सकता है ।
२५—पंचवीसवां पद में—कर्म बन्धता हुआ कितना कर्मों को वेद सकता है ।
२६—छवीसवां पद में—कर्म वेदता हुआ जीव कितना कर्म बन्ध करता है ।
२७—सतावीसवां पद में—कर्म वेदता हुआ कितना कर्म वेदे ।
२८—अठावीसवाँ पद में—चौवीस दंडक के जीव आहार किस पुद्गलों का लेते हैं ।
२९—गुणतीसवाँ पद में—उपयोग साकार-अनाकार दो प्रकार के उपयोग होते हैं ।
३०—तीसवाँ पद में—पासनीया—इसमें साकार उपयोग का अधिकार है ।
३१—इकतीसवाँ पद में—संज्ञी-जीव संज्ञी असंज्ञी दो प्रकार के होते हैं ।
३२—बत्तीसवां पद में—संयति-संयति असंयति संयतासंयति आदि का वर्णन है ।
३३—तेतीसवाँ पद में—अवधि—अवधिज्ञान कितने प्रकार का है ।
३४—चोतीसवाँ पद में—प्रचारना—प्रचारना कहाँ तक किस प्रकार की है ।
३५—पैंतीसवाँ पद में—वेदना—चौवीस दंडक के जीवों को वेदना किस प्रकार से होती है ।
३६—छत्तीसवाँ पद में—समुद्घात—सात समुद्घात का विस्तार से वर्णन है ।

इस प्रज्ञापन्नसूत्र के मूलश्लोक करीब ७७८७ हैं

आचार्य विमलसूरि—आप नागिल शाखा के राहु नामक आचार्य्य के शिष्य विजयसूरि के शिष्य थे । आपने प्राकृत भाषा में 'पउमचरियम्' अर्थात् पद्मचरित्र (जैनरामायण) नामक ग्रंथ की रचना की जिसके समय के लिये कहा है कि—

पंचेव य वाससया दुसमाए तीस वरिस संजुत्ता । वीरे सिद्धिमुवगए तओणिवद्धं इयं चरियं ॥

—श्री वीर परम्परा

वीरात् ५३० अर्थात् विक्रम सं० ६० में विमलसूरि ने पद्मचरित्र (जैनरामायण) की रचना की जिसको लोग बड़ी रुचि के साथ सुनते और आनन्द को प्राप्त होते थे। यों तो पद्म नामक बलदेव (रामचन्द्रजी) का नाम समवायाङ्ग सूत्र वगैरह जैन मूल आगमों में आता है। पर इस प्रकार विस्तार पूर्वक सब से पहला विमलसूरि का 'पउमचरिय' ग्रन्थ ही है। नागोर के बड़े मन्दिर में एक सर्वधातु की मूर्ति है जिसके पीछे एक लेख खुदा हुआ है। उसमें वि० सं० ३२ के लेख में भी विमलसूरि का नाम है। शायद यह विमलसूरि 'पउमचरिय' ग्रन्थ के लेखक ही हों।

आर्य इन्द्रदिन्न—आर्य्य सुस्थी और आर्य्य सुप्रतिबुद्ध के पट्ट पर आचार्य इन्द्र दिन्न हुये और आचार्य इन्द्रदिन्न के पट्टधर आचार्य दिन्न हुये। इन दशवें और ग्यारहवें पट्टधरों के लिये पट्टावलीकारों ने विशेष वर्णन नहीं किया है। हाँ, स्थविरावलीकार ने आर्य्य दिन्न के मुख्य दो स्थविर बतलाये हैं १—आर्य्य शान्तिसेनिक २—आर्य्य सिंहगिरि। जिसमें आचार्य शान्तिसेनिक से उच्चनागोरी शाखा का प्रादुर्भाव हुआ और आर्य्य शान्तिसेनिक के प्रधान चार शिष्य हुये और वे चारों शिष्य इतने प्रभाविक थे कि उन चारों शिष्यों के नाम से चार शाखायें प्रचलित हुईं जैसे—

१—आर्य्य सेनिक से सेकिन शाखा चली। ३—आर्य्य कुवेर से कुवेरी शाखा चली।
२—आर्य्य तापस से तापस शाखा चली। ४—आर्य्य ऋषि पालित से ऋषि पालित शाखा चली।

दूसरे आर्य्यसिंहगिरि नामक स्थविर के भी मुख्य चार शिष्य थे जैसे १—आर्य्य धनगिरि २—आर्य वज्र ३—आर्य समित ४—आर्य अर्हद्बलि। जिसमें आर्य व्रज से वज्री शाखा और आर्य समित से ब्रह्मद्वीपका शाखा चली जिन्हों का वर्णन आगे आर्य वज्र के अधिकार में किया जायगा।

इनके अलावा पूर्व बतलाये हुए गण कुल शाखाओं में बड़े बड़े धुरन्धर युगप्रवृर्तक महान प्रभाविक आचार्य हुए जिन्हों का अधिकार पृथक् २ ग्रन्थों में किया गया है। परन्तु पाठकों की सुविधा के लिए यहां पर संग्रह कर दिया जाता है।

युगप्रधानाचार्य्यों में कालकाचार्य्य का नाम जैन संसार में बहुत प्रसिद्ध है पर कालकाचार्य नाम के कई आचार्य हो गये हैं और उन्हों के साथ कई घटनायें भी घटित हुई हैं परन्तु नाम की साम्यता होने से यह बतलाना कठिन हो गया है कि कौन सी घटना किस आचार्य के साथ घटी। इसके लिए कुछ विस्तार से शोध खोज की जरूरत रहती है, अतः पहले तो यह बतला देना ठीक होगा कि कौन से कालकाचार्य्य किस समय हुए जैसे कि—

सिरिवीराओ गएसु, पणतीसहिएसु तिसय (३३५) वरिसेसु।
पढमो कालगसूरी, जाओ सामज्जनामुत्ति ॥ ५५ ॥
चउसयतिपन्न (४५३) वरिसे, कालगगुरुण सरस्सरी गहिआ।
चउसयसत्तरि वरिसे, वीराओ विक्कमो जाओ ॥ ५६ ॥
पंचेव य वरिससए, सिद्धसेणे दिवायरो जाओ।
सत्तसयवीस (७२०) अहिए, कलिग गुरु, सक्कसंथुणिओ ॥ ५७ ॥

नवसयतेणउएहिं (९९३), समइकंतेहिं वद्धमाणाओ ।
पज्जोसवणचउत्थी, कालिकसूरीहिंतो ठविआ ॥ ५८ ॥　　रत्न संचय प्रकरण से

१—प्रथम कालकाचार्य वीर नि० सं० ३३५ से ३७६ में
२—द्वितीय कालकाचार्य्य वीरात् ४५३ से ४६५ तक
३—तृतीय कालकाचार्य वीर नि० सं० ७२० में
४—चतुर्थ कालकाचार्य वीरात् ९९३ वर्ष में

कालकाचार्य्य के साथ घटित घटनाएं

१—राजादत्त को यज्ञफल बतलाकर प्रतिबोध करना । आवश्यक चूर्णी में
२—प्रज्ञापन्ना सूत्र की रचना करना । प्रज्ञापन्ना सूत्र में
३—इन्द्र को निगोद ❀ का स्वरूप बतलाना । उत्तराध्ययन निर्युक्ति में
४—आजीविकों से निमित्त पढ़ना । पंचकल्प चूर्णी में ।
५—अनुयोग का निर्माण करना + । पंचकल्पचूर्णी में
६—गर्दभिल्ल का उच्छेद और साध्वी सरस्वती की रक्षा । निशीथचूर्णी व्यवहार चूर्णी में ।
७—सांवत्सारिक पर्व भाद्रपद शुक्ल पंचमी का चतुर्थी को करना । निशीथ चूर्णी में ।

❀ इन्द्र ने निगोद के जीवों का स्वरूप पूछा इस घटना के लिए शास्त्रकारों ने तीन आचार्यों के लिए घटित की है १—प्रथम कालकाचार्य (श्यामाचार्य) के साथ २—दूसरा कालकाचार्य जिनको निगोद व्याख्याता के नाम से बतलाया है ३—और तीसरे आर्यरक्षित सूरि के साथ जैसे

इतश्चास्ति विदेहेषु श्री सीमंधर तीर्थकृत । तदुपास्त्यै ययौ शक्रोऽन्यौपीलाख्यां च तमन्नाः ॥
निगोदाख्यान माख्याच्च केवली तस्य तत्वतः । इन्द्रः पप्रच्छ भरते कोऽप्यस्तेषां विचारकृत ॥
अथार्हन्नाह मथुरानगर्यामार्यरक्षितः । निगोदान्मद्ददाचष्ट ततोऽसौ विस्मयं ययौ ॥
अर्वाचीनोऽपि च चित्रार्थं वृद्धब्राह्मणरूपभृत् । आययौ गुरुपार्श्वे स शीघ्रं हस्तौ च धूनयन् ॥
[illegible] केशो यष्टि श्रिताङ्गकः । [illegible] ॥
पूर्वरूपः स पप्रच्छ निगोदानां विचारणम् । यथावस्थं गुरुर्व्याख्यात्सोऽथ तेन चमत्कृतः ॥
जिज्ञासुर्ज्ञानमाहात्म्यं पप्रच्छ निजजीवितम् । ततः श्रुतोपयोगेन व्यचिन्तयदिदं गुरुः ॥
तदायुर्दिवसैर्मासैः संवत्सरैरपि । तेषां शतैः सहस्त्रैश्चायुतैरपि न मीयते ॥
लक्षाभिः कोटिभिः पूर्वैः पल्यैः पल्यशतैरपि । तल्लक्षकोटिभिर्नैव सागरैरपि नान्तभृत ॥
[illegible] च पूर्णज्ञाते तदायुषि । भवान् सौधर्मं सुत्रामा परीक्षा किं म ईश से ॥

प्रभावक चरित्र [illegible]

यह एक ही घटना तीन आचार्यों के साथ लिखी गई है या एक घटना तीन बार बनी है । [illegible] ऐसा है कि यह घटना द्वितीय कालकाचार्य (सरस्वती का भाई) के साथ घटी है । [illegible] कालकाचार्य हुये लिखा है उनके साथ भी 'इन्द्र[illegible]' लिखा है । शायद इसका [illegible] से स्तुति की है परन्तु किस विषय के लिये इनका कथन दृष्टिगोचर नहीं होता है

+ [illegible] । [illegible]

श्री [illegible]

८— शक्रेन्द्र आकर स्तुति की थी। रत्न संचय ग्रन्थादि।

९—वल्लभी में आगम पुस्तकों पर लिखते समय शामिल थे—आवश्यक चूर्णी आदि में।

उपरोक्त घटनायें किस समय और किस कालकाचार्य के साथ घटी थी।

A पहिली घटना के नायक कालकाचार्य उपरोक्त चार कालकाचार्य्य से अलग हैं, कारण इस घटना का समय वीर नि० सं० ३०० के आस पास का बतलाया है।

B. दूसरी तीसरी घटना के नायक उपरोक्त चार कालक से पहिले + कालकाचार्य हैं जिन्हों का नाम श्यामाचार्य भी था और आपका समय वी० ३३५-३७६ है। ❀ पर मेरुतुंगसूरि ने आपका समय ३२० का लिखा है शायद् यह समय दीक्षा को लक्ष में रख लिखा हो।

C चौथी, पांचवीं, छट्टी और सातवीं घटना के नायक दूसरे कालकाचार्य हैं जिन्हों का समय वीरात् ४५३ से ४६५ तक है।

D आठवीं घटना के स्वामि तीसरे कालकाचार्य हैं जिन्हों का समय वीरात् ७२० का है पर यह अप्रसिद्ध है।

E नौवीं घटना के नायक चतुर्थ कालकाचार्य्य हैं आपका समय वी० नि० ९९३ वर्ष का है।

पूर्वोक्त गाथाओं में सांवत्सरिक चतुर्थी के करने वाले चतुर्थ कालकाचार्य को लिखा है पर वास्तविक चौथ की सांवत्सरी के कर्त्ता द्वितीय कालकाचार्य्य ही हैं जिसके लिये आगे चल कर लिखेंगे।

उपरोक्त चार एवं पांच कालकाचार्यों में धर्म एवं राज में क्रान्ति पैदा करने वाले दूसरे कालकाचार्य हुये उनका ही जीवन यहाँ लिखा जा रहा है।

धारावास नगर में राजा वैरसिंह राज करता था आपकी रानी का नाम सुरसुन्दरी था। आपके दो संतान पैदा हुई जिसमें कुँवर का नाम कालक† और कन्या का नाम सरस्वती था कालककुँवर के सब

+ एक कथा में ऐसा भी लिखा मिलता है कि स्वर्ग से एक ब्राह्मण का रूप धारण करके इन्द्र कालकाचार्य को वन्दन करने को आया था तो ब्राह्मण ने अपना हाथ कालकाचार्य को दिखलाया कि मेरी आयुष्य कितनी है ? सूरिजी ने रेखा पर लक्ष देकर सौ दो सौ और तीन सौ वर्ष तक का अनुमान किया पर आयुष्यरेखा तो उससे भी बढ़ती गई तब जाकर उपयोग लगाया कि इस पंचमारे में इससे अधिक आयुष्य हो नहीं सकती है तो यह कौन होगा ? विशेष उपयोग लगाने से मालूम हुआ कि यह तो पहिले स्वर्ग का इन्द्र है। सूरिजी ने कहा आपकी आयुष्य दो सागरोपम की है जिसको सुनकर इन्द्र ने सोचा कि कालकाचार्य बड़े ही ज्ञानी हैं।

इससे यह भी पाया जाता है कि जम्बुद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रादिशास्त्रों में पंचमारा में उत्कृष्ट १२० वर्ष की आयुष्य बतलाई है। यह मुख्यता से कहा है पर गौणता से इससे अधिक आयु भी हो सकती है जैसे कालकाचार्य ने २०० वर्ष तक का अनुमान किया था। आज पाश्चात्य प्रदेशों में १५०-२०० वर्षों के आयुष्य वाले मनुष्य मौजूद हैं जिसको देख भद्रिक लोग शंका करने लग जाते हैं कि अपने सूत्रों में तो पंचमारा में १२० वर्ष की ही आयु कही है तो १५०-२०० वर्षों की आयु कैसे हो सकती है इसका समाधान उपरोक्त घटना से हो सकता है कि १२० वर्ष का आयुष्य मुख्यतामें कहा है तब गौणतासे पंचमारे में २०० वर्ष तक की आयुष्य हो सकती है।

१ ❀ सिरिवीर जिणिंदाओ, वरिससया तिन्निवीस (३२०) अहियाओ। कालयसूरी जाओ, सक्को पडिबोहिओ जेण ॥ मेरुतुंगसूरि की 'विचारश्रेणी'

१ † कालको काल कोदण्ड खण्डितारिः (?) सुतोऽभवत्। सुता सरस्वती नाम्ना ब्रह्मभूर्दिव्यपावना ॥ ७ ॥

लक्षण क्षत्रियवंशोचित थे। यों तो आप पुरुषकी ७२ कला में निपुण थे पर बाणविद्या और अश्वपरीक्षा गुण आपमें असाधारण थे। राजकन्या सरस्वती भी महिलाओं की ६४ कला में प्रवीण थी। आपका [illegible] जैनधर्म का परमोपासक था अतः कुँवर कालक और राजकन्या सरस्वती के धार्मिक संस्कार बचपन ही जम गये थे और वे दोनों धार्मिक अभ्यास भी किया करते थे।

एक समय आचार्य गुणाकरसूरि जो विद्याधर शाखा के आचार्य थे अपने शिष्य समुदाय के भ्रमण करते हुये धारावासनगर के उद्यान में पधार गये। राजा प्रजा ने सूरिजी का सुन्दर सत्कार और धर्मोपदेश श्रवण करने को उद्यान में गये। अतः सूरिजी ने भी आये हुये धर्म-पिपासुओं को देशना का पान कराना शुरू किया।

ठीक उसी समय राजकुँवर कालक अश्व खिलाता हुआ उस उद्यान के एक भाग में आ [illegible] इससे सूरिजी की वाणी उसको कर्णप्रिय हो गई। कालक ने सूरिजी का सम्पूर्ण व्याख्यान सुना और [illegible] में आचार्यश्री के पास जाकर वन्दन किया। सूरिजी ने राजकुमार के शुभलक्षण देख संसार की असारता राज ऋद्धि एवं लक्ष्मी की चंचलता और विषय कषाय के कटुक फलों को इस कदर समझाया कि उस दिल संसार से विरक्त हो गया। साथ में सूरिजी ने तप संयम की आराधना से अक्षय सुखों की प्राप्ति लिये भी गम्भीरता पूर्वक समझाया कि जिससे कालकने निश्चय कर लिया कि माता पिता की आज्ञा लेकर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा ग्रहण कर लूंगा। जब कुमार ने माता पिता के पास आकर अपने [illegible] की बात कही तो वे कब चाहते थे कि कालक जैसा पुत्र हमारे से सदैव के लिये अलग हो जाय। उन्होंने बहुत कहा पर जिनके हृदय पर सच्चा वैराग्य का रंग लग जाता है उन्हें संसार कारागृह के समान दीखने लग जाता है। विशेषता यह हुई कि कालक की बातें सुनकर राजकन्या सरस्वती भी संसार से विरक्त हो दीक्षा लेने को तैयार हो गई। आखिर राजा ने दीक्षा-महोत्सव किया और कालक एवं सरस्वती सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा† ग्रहण कर ली। मुनि कालक ने ज्ञानाभ्यास कर सर्व गुणों को सम्पादित कर लिया। जिन्होंने संसार में राजपद योग्य सर्व गुण हासिल कर लिया तो मुनिपने में सूरिपद योग्य गुण प्राप्त करले इसमें आश्चर्य ही क्या हो सकता है। आचार्य गुणाकर सूरि ने मुनि कालक को सर्वगुण सम्पन्न जान कर सूरि‡ पद से विभूषित कर कई साधुओं के साथ अलग विहार करने की आज्ञा दे दी।

कालकाचार्य विहार करते एक समय उज्जैन*नगरी के उद्यान में पधारे, इधर से साध्वियों के [illegible]

---

२ † [illegible] तया गुरुस्य च स्वयम्। अधीनी सर्वशास्त्राणि स [illegible] ॥ २३ ॥

‡ [illegible] कालकं योग्यं प्रतिष्ठाप्य गुरुस्ततः। श्रीमान् गुणाकरः सूरिः [illegible] ॥ २५ ॥

* अथ श्री कालकाचार्यो विहरन्नन्यदा ययौ। पुरीमुज्जयिनीं बाह्यारामेऽस्याः समवासरत् ॥ २६ ॥

[illegible] तत्र मत्वा [illegible] ॥ २७ ॥

तत्र [illegible] पुर्यां राजा महाबलः। कदाचित्पुर [illegible] ॥ २८ ॥

[illegible] स्वयम्। [illegible] कालकसूरीणां [illegible] ॥ २९ ॥

[illegible] ॥ ३० ॥

[illegible] ॥ ३१ ॥

आर्य्या सरस्वती ने भी उज्जैन में पदार्पण किया। उस समय उज्जैन में गर्दभिल्ल नाम का राजा राज करता था, वह अन्यायी तो था ही पर साथ में व्यभिचारी※ भी था। एक समय राजा की दृष्टि बालब्रह्मचारिणी सती सरस्वती साध्वी पर पड़ी जिसके रूप योवन और लावण्य पर मुग्ध बनकर राजा ने अपने अनुचरों से साध्वी को बलात्कार अपने राजमहलों में बुलाली। साध्वी विचारी बहुत रुदन करती हुई खूब चिल्लाई पर जब राजा ही अन्याय कर रहा हो तो सुने भी कौन। साथ की साध्वियों ने आकर सब हाल कालकाचार्य को कहा तो कालकाचार्य को बड़ा ही अफसोस हुआ और उन्होंने राजा के पास जाकर राजा को बहुत समझाया पर वह तो था कामान्ध, उसने सूरिजी की एक भी नहीं सुनी। वे निराश होकर वापिस लौट आये। तदनन्तर उज्जैन के संघ अग्रेश्वर अनेक प्रकार से भेंट लेकर राजा के पास गये और साध्वी को छोड़ने की प्रार्थना की पर उस पापिष्ट व्यभिचारी ने किसी की भी नहीं सुनी। इस हालत में कालकाचार्य ने भीषण प्रतिज्ञा कर ली कि मैं इस व्यभिचारी राजा को सकुटुम्ब पदभ्रष्ट नहीं कर दूँ तो मेरा नाम कालकाचार्य नहीं है। सूरिजी कई दिन तो नगर में पागल की भांति फिरे पर इससे होने वाला क्या था। उस समय भरोंच नगर में बलमित्र भानुमित्र नाम के राजा राज करते थे और वे कालकाचार्यके भानजे थे। कालकाचार्य उनके पास गये पर वे भी गर्दभिल्ल का दमन करने में असमर्थ थे। दूसरे भी कई राजाओं के पास गये पर सूरिजी के दर्द की बात किसी ने भी नहीं सुनी। इस हालत में लाचार हो आप सिन्धु नदी को पार कर पार्श्वकुल अर्थात पार्श्व की खाड़ी के पास के प्रदेश† (ईरान) में गये जिसको शाकद्वीप भी कहते हैं। वहाँ के राजाओं

※ जैन लेखकों का कथन है कि जिस राजा ने कालकाचार्य की बहिन सरस्वती का उपहरण किया था उसका नाम 'दप्पण' (दर्पण) था और किसी योगी की तरफ से गर्दभी विद्या प्राप्त करने से वह 'गर्दभिल्ल' कहलाता था।

बृहत्कल्प भाष्य और चूर्णि में भी राजा गर्दभ सम्बन्धी कुछ बातें हैं, जिनका सार यह है कि उज्जयिनी नगरी में अनिलपुत्र यव नामक राजा और उसका पुत्र गर्दभ युवराज था। गर्दभ के आडोलिया नाम की बहिन थी। यौवनप्राप्त अडौलिया का रूप सौन्दर्य देख कर युवराज गर्दभ उस पर मोहित हो गया। उसके मंत्री दीर्घपृष्ट को यह मालूम हुई और उसने अडोलिया को सातवें भूमिघर में रख दिया और गर्दभ उसके पास आने जाने लगा।'

चूर्णि का मूल लेख इस प्रकार है—

"उज्जेणी णगरी, तत्थ अणिलसुतो जवो नाम राया, तस्स पुत्तो गद्दभोणाम जुवराया, तस्स रण्णो धूआ गद्दभस्स भइणी अडोलिया णाम, सा य रूपवती तस्स य जुवरण्णो दीहपट्ठो णाम सचिवो (अमात्य इत्यर्थः) ताहे सो जुवराया तं अडोलियं भइणिं पासित्ता अज्झोववण्णो दुबली भवइ। अमच्चेण पुच्छितो णिव्वंधे सिट्ठं। अमच्चेण भण्णाइ सागारियं भविस्सति तो सत्तभूमीघरे छुभउ तत्थ भुंजाहि ताए समं फोए लोगों जाणिस्सइ सा कहिं पिणट्ठा एवं होउत्ति कतं।"

संभव है. साध्वी सरस्वती का अपहारक गर्दभिल और अडोलिया का कामी यह गर्दभ दोनों एक ही हों। जब अपनी बहिन का ही विवेक नहीं था तो दूसरे का तो कहना ही क्या।

× × ×

† शाखिदेशश्च तत्रास्ति राजानस्तत्र शाखयः। शकापराभिधाः सन्ति नवतिः षड्भिरर्गला ॥ ४४ ॥
तेषामेकोधिराजोस्ति सप्तलक्ष तुरङ्गमः। तुरङ्गायुत मानाश्चापरेपि स्युर्नश्वराः ॥ ४५ ॥
एको माण्डलिकस्तेषां प्रैषी कालकसूरिणा। अनेक कौतुक प्रेक्षाहृतचित्तः कृतोऽथ सः ॥ ४६ ॥

× × ×

को शाही यानि शाह की उपाधि थी अतः जैन ग्रन्थकारों ने उनको शाही राजा के नाम से लिखा है पर मैं तो यहाँ उनको शक नाम से ही लिखूँगा, कारण वे भारत में आने पर शक ही कहलाते थे और आगे चल कर उन्होंने शक संवत् चलाया वह आज भी चलता है।

उस समय उस शक प्रदेश में ९६ मण्डलीक राजा और उन पर एक सत्ताधीश राजा राज करता था उनके पास सात लक्ष घोड़ों की सैना थी। कालकाचार्य किसी एक मण्डलीक राजा के पास गये और कई दिन वहाँ ठहर कर आपने आत्मिक ज्ञान एवं निमित्तादि अनेक विद्याओं से शक राजा को वश में कर उसका चित्त अपनी ओर आकर्षित कर लिया। शक राजा को भी विश्वास हो गया कि यह कोई निस्पृही महात्मा हैं अतः वह सूरिजी का पक्का भक्त बन गया। हमेशा दोनों की ज्ञानगोष्टी हुआ करती थी।

एक समय ९६ मण्डलिकों के मालिक राजा ने एक कटोरा एक छुरा और एक पत्र उस मण्डलीक शक राजा के पास भेजा जहाँ कालकाचार्य रहता था। उस पत्र को पढ़ कर शक शोकातुर हो गया। कालकाचार्य‡ ने कहा कि आपको भेंट आई है, यह हर्ष का विषय है आप उदास क्यों हैं ? उसने कहा कि यह इनाम नहीं पर काल की निशानी है। पत्र में लिखा है कि इस छुरे से तुम अपना शिर काट कर इस कटोरा में रख कर भेज दो वरना तुम्हारे बालबच्चादि सब कुटुम्ब का नाश कर डालूँगा और यह हुकुम केवल एक मेरे पर ही नहीं पर इस छुरे पर ९६ का नम्बर है अतः ९६ मण्डलिकों पर भेजा होगा।

कालकाचार्य ने अपने कार्य्य की सिद्धि का सुअवसर समझ कर कहा कि आप घबराते क्यों हो ? आपका बचाव ९५ मण्डलिकों को यहाँ बुला लीजिये अतः आप ९६ मण्डलीक मिलकर मेरे साथ चलें मैं आपका बचाव ही नहीं पर आपको भारत की मुख्य राजधानी उज्जैन का राज दिलवा दूँगा। मृत्यु के सामने इन्सान क्या नहीं करता है। शक राजा ने ९५ मण्डलिकों को गुप्तरीति‡ से बुला लिया और ९६ मण्डलीक वहाँ से चल कर भारत में आ गये पर सौराष्ट्र प्रदेश में आये कि चतुर्मास के कारण बरसात शुरू हो गई अतः उन ९६ मण्डलिकों ने अपना पड़ाव सौराष्ट्र में ही डाल दिया इतना ही क्यों पर कुछ सौराष्ट्र का प्रदेश भी अपने अधिकार में कर लिया बाद जब चतुर्मास व्यतीत हो गया तो कालकाचार्य ने चलने की प्रेरणा की पर शकों ने कहा कि हम खर्चा से तंग † हो गये हैं और द्रव्य बिना काम चल नहीं सकता है इस पर कालकाचार्य ने कुम्हार के कजावे पर एक ऐसी रसायन डाली कि वह सब सोने का हो गया। तब आचार्य ने शकों को कहा लो तुमको कितना द्रव्य चाहिये जरूरत हो उतना ही सुवर्ण ले लीजिये। इस चमत्कार को देख शक तो आश्चर्य में डूब गये और उनका उत्साह खूब ही बढ़ गया। फिर तो था ही क्या ? उन्होंने इच्छित द्रव्य ग्रहण कर वहाँ से प्रस्थान कर दिया और रास्ता में भरोंच के बलमित्र भानुमित्र वगैरह राजाओं को

---

‡ दृष्टश्चित्रान्नुर्नान्द्रेण प्रसादे स्वामिनः स्फुटं । आयाते प्राभृते हर्षस्थाने किं विवर्णता ॥ ५२ ॥
तेनोचे मित्र कोपोऽयं न प्रसादः प्रभोर्ननु । [illegible] मया निरदिष्टश्चा [illegible] ॥ ५३ ॥

‡ सर्वेऽपि गुप्तमाहूय सूरिभिस्तत्र मेलिताः । [illegible] सिन्धुमुत्तीर्य सुराष्ट्रायां समाययुः ॥ ६० ॥

† सूरिणा [illegible] । [illegible] नास्ति येन नो भाति [illegible] ॥ ६१ ॥
अन्येद्युः कुम्भकारस्य गृहे [illegible] । [illegible] ॥ ६३ ॥
[illegible] । [illegible] ॥ ६४ ॥
[illegible] । [illegible]

श्री जैन [illegible]

साथ में लेकर उज्जैन की ओर चलधरे। गर्दभिल्ल ‡ को इस बात का पता लग गया कि उज्जैन पर शकों की सैना आ रही है पर उसने न तो लड़ाई का सामान तैयार किया न सैना को सजाया और न किल्ला एवं नगर का द्वार ही बन्द किया। इसका कारण यह था कि उसके पास गर्दभिविद्या थी। उसकी साधना करने पर वह गर्दभि के रूप में आती थी और किले पर खड़ी रह कर इस प्रकार का शब्दोचारण करती थी कि पाँच-पाँच मील पर जो कोई मनुष्य होता तो मर ही जाता था। इस गर्व में उसने किसी प्रकार की तैयारी नहीं की पर गर्दभिल्ल के विद्या अष्टमी चतुर्दशी को ही सिद्ध होती थी। शक राजा पहिले ही पहुँच गये थे अतः संग्राम शुरू हो गया पर गर्दभिल्ल की सैना भाग कर किले में चली गई। तब गर्दभिल्ल संग्राम बन्द कर विद्या साधने में लग गया। वातावरण सर्वत्र शान्त देख शकों ने कालकाचार्य से पूछा कि इस शान्ति का क्या कारण है? सूरिजी ने कहा गर्दभिल्ल गर्दभि विद्या साध रहा है। आप सब लोग अपनी-अपनी सेना लेकर पांच मील से दूर चले जाओ केवल १०८ विश्वासपात्र एवं होशियार बाणधारी सुभट मेरे पास रख दो शकों × ने ऐसा ही किया। सूरिजी ने उन बाणधारियों को समझा दिया कि आप अपना बाण साधकर तैयार रहो कि किल्ले पर जिस समय गर्दभि शब्दोचारण करने को मुँह फाड़े उस समय सब ही एक साथ में गर्दभि के फटे हुए मुँह में बाण फेंक कर उसका मुँह भर दो, बस। आपकी विजय हो जायगी। फिर तो था ही क्या, उन विजयाकांक्षियों ने ऐसा ही किया अर्थात् ज्यों ही गर्दभि ने मुंह फाड़ा त्यों ही उन बाणधारियों नें बाण चलाये और गर्दभि का मुंह बाणों से भर दिया, वह एक शब्द भी उच्चारण नहीं कर सकी। अतः गर्दभि को बहुत गुस्सा आया और वह गर्दभिल्ल पर नाराज हो उसके शिर पर भृष्टा[1] और पेशाब करके एवं पदाघात कर चली गई। इस हालत में शकों ने धावा बोल दिया बस लीला मात्र में गर्दभिल्ल को पकड़ कर कालकाचार्य के पास लाये। गर्दभिल्ल ने लज्जा के मारे मुँह नीचा कर लिया। कालकाचार्य ने कहा "अरे दुष्ट! एक सती साध्वी पर अत्याचार करने का यह तो नाम मात्र फल मिला है पर इसका पूरा फल तो नरकादि गति में ही मिलेगा इत्यादि। शक लोग गर्दभिल्ल को जान से मार डालना चाहते थे पर कालकसूरि ने दया लाकर उसको जीवित छुड़ा दिया। गर्दभिल्ल वहाँ से मुँह लेकर जंगल में चला गया वहाँ एक शेर ने उसे मार डाला अतः वह मर कर नरक में गया।

कालकाचार्य सरस्वती साध्वी को छुड़ाकर लाये और पराधीनता में साध्वी को जो कुछ अतिचार लगा उसकी आलोचना[2] देकर उसे पुनः साध्वियों में शामिल करदी तथा स्वयं सूरिजी ने जैन धर्म की रक्षा के लिये सावद्य कार्यों में प्रवृति की उसकी आलोचना करके शुद्ध हुये और पुनः गच्छ का भार अपने शिर पर लिया।

जैनधर्म में उत्सर्गोपवाद दो मार्ग बतलाये हैं। जब आपत्ति आजाती है तब अपवाद मार्ग को ग्रहण कर जैन धर्म की रक्षा करनी पड़ती है जैसे विष्णुकुमार ने महामिथ्या दृष्टि जिन शासन के कट्टर द्वेषी निमूची को सजा

‡ श्रुत्वापि बलमागच्छन् विद्यासामर्थ्यगर्वितः। गर्दभिल्लनरेन्द्रो न पुरीदुर्गंमसज्जयन् ॥६८॥
अथाप शाखिसैन्यं च विशालातलमेदिनीम्। पतङ्गसैन्यवत्सर्वं प्रागिदर्गभयंकरम् ॥६९॥

× इत्याकर्ण्य कृते तत्र देशे कालक सद्गुरुः। सुभटानां शतं साष्टं मार्यचच्छब्ददेधिनाम् ॥७०॥
स्थापिताः स्वसमीपे ते लब्ध लक्षाः सुरक्षिताः। स्वरकाले मुखं तस्या बभ्रु (भौ) र्वा (बा) णैर्निरन्तरम् ॥७८॥

दी थी इसी प्रकार कालकाचार्य ने भी गर्दभिल्ल को उसके अन्याय की सजा दिलवाई थी । अतः आज जैनसाध्वियां निर्भयता पूर्वक तपसंयम की आराधना करती हैं, यह कालकाचार्य के प्रकाण्ड प्रभाव का ही फल है कि गर्दभिल्ल के बाद आज पर्यन्त ऐसी कोई दुर्घटना नहीं बनी है ।

गर्दभिल्ल के चले जाने पर शकों ने उज्जैन पर अपना अधिकार जमा लिया । जिसके यहाँ कालकाचार्य ठहरे थे उसको उज्जैन का राजा तथा दूसरे ९५ मण्डलिकों को छोटे बड़े ९५ प्रदेशों के राजा बना दिये । उस दिन से भारत में शकों का राज जम गया पर शक ६ भागों में विभाजित होने से उनका बल कमजोर पड़ गया वे केवल ४ वर्ष ही उज्जैन में राज कर सके बाद भरोंच के बलमित्र और भानुमित्र ने शकों से उज्जैन का राज छीन कर अपने अधिकार में कर लिया, फिर भी शक भारत से निकल नहीं गये पर उनका जोर दक्षिण भारत की ओर बढ़ता गया, यहाँ तक कि उन्होंने विक्रम के बाद १३५ वर्ष व्यतीत होने पर अपना संवत् चलाया जिसका आज पर्य्यन्त दक्षिण भारत की ओर अधिक प्रचार है ।

एक समय कालकाचार्य भ्रमण करते अपने शिष्यों के साथ भरोंच नगर के उद्यान में पधारे । वहाँ पर बलमित्र भानुमित्र राजा राज करते थे जो कालकाचार्य के भानजे लगते थे । उन्होंने बड़े ही महोत्सव के साथ सूरिजी का नगर प्रवेश करवाया । सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था, श्रोताजन उपदेशामृत का पान कर अपनी आत्मा का कल्याण करते थे

राजा के एक पुरोहित था वह महा मिथ्या दृष्टि और जैनधर्म का कट्टर शत्रु था पर कालकाचार्य ने वाद-विवाद में उसको पराजित कर दिया था. अतः वह अन्दर से द्वेषी पर ऊपर से आचार्य श्री का भक्त बनकर रहता था । राजा के आग्रह से कालकाचार्य ने वहाँ चतुर्मास कर दिया था पर यह बात पुरोहित को अच्छी नहीं लगती थी, उसने एक दिन राजा से कहा कि अपने आचार्य परमपूजनीय हैं इनकी पादुका अपने शिर पर रहनी चाहिये पर जब आचार्यश्री नगर में गमनागमन करते हैं तब इनके पैरों के प्रतिबिंब पर हलके से हलका आदमी पैर रखकर चलता है, यह बड़ा भारी पाप है । राजा ने सरल स्वभाव के कारण पुरोहित की बात को मान लिया पर चतुर्मास में आचार्य श्री को कैसे निकाल दिया जाय यह बड़ा भारी सवाल पैदा हो गया । इसके लिए पुरोहित ने कहा कि इसका सीधा उपाय है कि सब नगर में कहला दिया जाय कि आचार्य को मिष्टान्नादि भोजन करके बहराया करें अतः अनेपनीक आहार के कारण आचार्य स्वयं चले जांयगे तो अपन, आशातना से बच जांयगे । बस, राजा ने आर्डर दे दिया और पुरोहित ने नागरिकों से कह दिया । जब साधु भिक्षा को जांय, तो सर्वत्र मिष्टान्नादि आहार मिलने लगा । आचार्यश्री को मालूम हुआ तो उन्होंने आधाकर्मी दोष जानकर वहां से बिहार करने का निश्चय कर लिया । अतः दो साधुओं को प्रतिष्ठनपुर भेजकर राजा को कहला दिया, राजा ने खुश होकर स्वीकार कर लिया । जब कालकाचार्य प्रतिष्ठनपुर पधारे तो वहाँ के राजा प्रजा ने आपका खूब ही सत्कार[1] किया ।

१—सा मूर्ध्नि गर्दभिल्लस्य कृत्वा विम्भूय मौर्व्यया । हत्वा च पादघातेन शेषगान्धर्दभे मतीं ॥७९॥
अवटोर्पतिति क्षापयित्वा तेषां पुरो गुरुः । समप्रर्पन्यमानीयमानीता दुर्गमाविशत् ॥८०॥
पालयित्वा पूतो ब्रह्म मतस्य च गुरोः पुर । गर्दभिल्लो मदैर्मुक्तः माद नं कालको गुरुः ॥८१॥
२—आलोचिता मते मार्गे गुण्याय सरस्वती । आलोचित प्रतिकान्ता पुनर्गीगमताम च ॥८२॥

आचार्यश्री का व्याख्यान हमेशा होता था जिसमें मनुष्य जन्म की दुर्लभता राज ऋद्धि की चंचलता आयुष्य की अस्थिरतादि समझा कर धर्माराधन की ओर जनता का चित्त आकर्षित किया जाता था। आपके व्याख्यान का प्रभाव केवल साधारण जनता पर ही नहीं पर वहां के राजा सातवाहन पर भी खूब अच्छा पड़ता था। यही कारण था कि राजा जैनधर्म का अनुयायी बन गया। जब पर्वपर्युषण के दिन नजदीक आये तो राजा ने पूछा कि प्रभो ! खास पर्युषण का दिन कौन सा है कि जिस दिन धर्म कार्य्य किया जाय ? सूरिजी ने कहा कि भाद्रपद शुक्ल पंचमी को सांवत्सरिक पर्व है उस दिन पौषध प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिये। इस पर राजा ने कहा कि भाद्रपद शुक्ल पंचमी का हमारे यहां इन्द्र-महोत्सव होता है और राजनीति के अनुसार मुझे वहां उपस्थित होना भी जरूरी है। अतः आप सांवत्सरिक पर्व को एक दिन पहिले या पीछे रख दें कि मेरे धर्म करनी बन सके। इस पर सूरिजी ने सोचा कि शास्त्रों में एक दिन पहिले तो पर्वाराधन हो सकता है पर बाद में नहीं होता है अतः लाभालाभ का विचार करके भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी[२] को सांवत्सरिक पर्वाराधन का निश्चय कर दिया इससे राजा प्रजा सबको सुविधा हो गई। भविष्य के लिए सूरिजी ने सोचा कि राजा के इन्द्र-महोत्सव तो वर्षा वर्षा होता है और इस कारण जैसे राजा को समय नहीं मिलेगा वैसे राजकर्मचारी एवं नागरिकों को भी समय नहीं मिलेगा। यही बात दूसरे नगरों के राजा प्रजा के लिए होगी, तो यह सब लोग पर्वाराधन से वंचित रह जायेंगे। अतः हमेशा के लिए सांवत्सरिक की चतुर्थी की जाय तो अच्छा है।

अनुमान लगाया जा सकता है कि कालकाचार्य का उस समय समाज पर कितना प्रभाव था कि उन्होंने एक बिलकुल नया विधान करके सम्पूर्ण समाज से मंजूर करवा लिया। यह कोई साधारण बात नहीं थी। उस समय का समाज दो विभागों में विभक्त था। एक आर्य्य महागिरि की शाखा में तब दूसरा आर्य सुहस्ती की शाखा में पर कालकाचार्य का विधान (चतुर्थी की सांवत्सरी) सबने शिरोधार्य्य कर लिया था और वह विधान कई ११००-१२०० वर्षों तक एक ही रूप में चलता रहा था।

प्रबन्धकारने कालकाचार्य का चतुर्मास भरोंच में लिखा है तब निशीथ चूर्णी में उज्जैन में लिखा है और उज्जैन से ही प्रतिष्टनपुर जाकर पंचमी के बदले चतुर्थी की सांवत्सरी की थी। शायद इसका कारण यह हो कि बलमित्र और भानुमित्र भरोंच के राजा थे और उन्होंने ५२ वर्ष तक भरोंच में राज किया था तथा पिछली अवस्था में केवल ८ वर्ष उज्जैन में राज किया था इस कारण वे भरोंच के राजा के नाम से ही प्रसिद्ध थे अतः प्रबन्धकार ने भरोंच में चतुर्मास करना लिख दिया होगा पर वास्तव में कालकाचार्य का चतुर्मास उज्जैन में ही था और वहाँ से चतुर्मास में प्रतिष्टनपुर जाकर पंचमी के बदले चतुर्थी की सांवत्सरी की थी।

कालकाचार्य के साथ एक अविनीत शिष्यों की घटना ऐसी घटी थी। कि कालदोष से कालकाचार्य के शिष्य अविनीत एवं आचार में शिथिल हो गये थे। बार बार शिक्षा देने पर भी उन्होंने अपने प्रमाद का त्याग नहीं किया इस पर आचार्यश्री ने सोचा कि ऐसे अविनीत साधुओं के साथ रहना केवल कर्मबन्ध का कारण है। अतः आपने शय्यातर[१] को कह दिया कि मैं इन शिष्यों के अविनीतपने के कारण यहाँ से जा

१—नगरे डिण्डिमो वाद्यः सर्वत्र स्वामिपूजिताः। प्रतिलाभ्या वराहारैरु रंवो राजशासनात् ॥१०९॥

२—राजावदच्चतुर्थ्यां तत्पर्वपर्युषणं ततः। इत्थनस्तु गुरुः प्राह पूर्वं स्यात्रं यदः ॥१२१॥

रहा हूँ। बन सकेतो तू इनको हितशिक्षा देना। वस, इतना कहकर सूरिजी तो विहार करके प्रबन्धकार के मत से कालकाचार्य विशाला अर्थात् उज्जैन गये थे पर गये किस ग्राम से यह नहीं बतलाया परन्तु निशीथ चूर्णीकार लिखते हैं कि "उज्जैणी कालखमणा सागर खमणा सुवर्ण भूमिसु" अर्थात् उज्जैन नगरी में कालकाचार्य रहते थे और वहां से चल कर सुवर्णभूमि में रहने वाले सागरसूरि के उपाश्रय गये थे। सागरसूरि कालकाचार्य के शिष्य का शिष्य था।

कालकाचार्य सुवर्णभूमि में सागरसूरि२ के उपाश्रय गये, उस समय सागरसूरि व्याख्यान पीठ पर बैठा था, कालकाचार्य को नहीं पहिचाना अतः वन्दन व्यवहारादि भी नहीं किया। इस हालत में उपाश्रय के एक जीर्ण विभाग में जाकर कालकाचार्य परमेष्ठी का ध्यान लगा कर बैठ गये। जब व्याख्यान समाप्त हुआ तो सागरसूरि ने कालकाचार्य के पास आकर कहा कि हे तपोनिधि! आपको कुछ पूछना हो तो पूछो, मैं आपके मनके संशय को दूर करूंगा इस पर सूरि ने कहा कि मैं वृद्धावस्था के कारण आपके कहने को ठीक समझ नहीं पाया हूँ तथापि मैं आपसे पूंछता हूँ कि अष्ट पुष्पी का क्या अर्थ होता है ? सागरसूरि ने गर्व में आकर यथार्थ तो नहीं पर कुछ अटम् पटम् अर्थ कह सुनाया जिससे कालकाचार्य ने सागर सूरि की परीक्षा कर ली

इधर उज्जैन में सुबह गुरू को नहीं देखने से अविनीत शिष्य घबराये कि अपने कारण गुरु अकेले ही चले गये जब उन्होंने शय्यातर को पूंछा तो उन्होंने सब हाल कह दिया। इस हालत में वे शिष्य भी वहाँ से विहार कर सुवर्णभूमि की ओर आये जब उन्होंने सागरचन्द्रसूरि के उपाश्रय जाकर पूछा कि क्या यहाँ गुरू महाराज पधारे हैं ? उसने कहा कि एक वृद्ध तपस्वी के अलावा यहाँ कोई नहीं आया है। साधुओं ने कहा अरे वह वृद्ध तपस्वी ही गुरुदेव हैं। सब साधुओं ने आकर सूरिजी को वन्दन किया जिसको देखकर सागरचन्द्रसूरि लज्जित हो गया और दादागुरु को वन्दन कर अपने अपराध की क्षमा मांगी।

कालकाचार्य ने सागरचन्द्रसूरि से कहा कि तुमको ज्ञान का इतना घमंड किस लिये है। कारण तीर्थङ्करों का ज्ञान अनंत है जिसके अनन्तवें भाग गणधरों१ ने ग्रन्थित किया है जिसका क्रमशः घटते घटते न्यून जम्बु प्रभव शय्यंभव आदि आचार्यों को ज्ञान रहा। इतना ही क्यों पर जितना ज्ञान मुझे है उतना मेरे शिष्यों में नहीं और उनमें है उतना तेरे में नहीं और तेरे में है उतना तेरे शिष्यों में न होगा, तो तू इतना गर्व क्यों रखता है ? जब तुमको अष्ट पुष्पी का भी पूर्ण ज्ञान नहीं है तो गर्व किस बात का है। मैं तुमको अष्ट पुष्पी२ का अर्थ बतलाता हूँ "अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य्य अपरिग्रह रागद्वेषत्याग

१—अन्येद्युः कर्मदोषेण सूरीणां तादृशामपि। आसन्न विनयाः शिष्या दुर्गतौ दोहदप्रदाः ॥१२९॥
अथ शय्यातरं प्राहुः सूरयो विनयं वचः। कर्मबन्ध निषेधाय यास्यामो वयमन्यतः ॥१३०॥
त्वया कथ्यमनीषां च प्रियकर्कश वाक्भरे। शिक्षयित्वा विशालायां प्रशिष्यान्तं ययौ गुरुः ॥१३१॥
२—प्रशिष्यः सागरः सूरिस्तत्र व्याख्याति चागमम्। तेन नो विनयः सूरेरभ्युत्थानादि को दधे ॥१३८॥
तत ईर्यां प्रतिक्रम्य कोणे कुत्रापि निर्जने। परमेष्ठिपरावर्त कुर्वन्नध्यातवान् धीः ॥१३९॥
१—श्रीसुधर्मा ततो जम्बूः श्रुतकेवलिनस्ततः। पदस्थाने पतितास्ते च श्रुते हीनक्रमादयुः ॥१४०॥
२—अष्टपुष्पी च तत्पृष्टः प्रभुर्व्याख्यानयत्तदा। अहिंसामूलतामेव ब्रह्मचिकचना तथा ॥१४८॥
गुरुर्भक्तिरभ्यासो धर्मध्यानं च सप्तमम्। शुक्लध्यानमष्टमं च पुष्पमाहुर्मनीषिणः ॥१४९॥

धर्मध्यान और शुक्लध्यान इन अष्ठ पुष्पों से भावपूजा करने से जीव का कल्याण होता है इत्यादि"। सागरचन्द्रसूरि का गर्व गलगया और अविनीत शिष्यादि को सुशिक्षा देते हुये कालकाचार्य अनशन समाधि पूर्वक स्वर्ग पधार गये। जैनशासन में कालकाचार्य एक महान प्रभाविक आचार्य हुये हैं।

आचार्य पादलिप्तसूरि—आप पाँचवी शताब्दी के एक प्रभाविक आचार्य थे। आपके प्रभावोंत्पादक जीवन के लिये बहुत से विद्वानों ने विस्तार से वर्णन किया है पर मैं तों यहां अपने उद्देश्यानुसार केवल सारांश मात्र ही लिखता हूँ।

कोशलानगरी के अन्दर राजा विजयब्रह्म राज करते थे। वहाँ पर एक बड़ा ही धानाढ्य फुल्ल नाम का सेठ बसता था जिसके प्रतिमा नामकी सेठानी थी दम्पत्ति सर्व प्रकार से सुखी होने पर भी उनके कोई सन्तान न होने से वे हमेशा चिन्तातुर रहते थे। अनेक देव देवियों की आराधनादि कई उपाय किये पर उसमें वे सफल नहीं हुये फिर भी उन्होंने अपना उद्यम करना नहीं छोड़ा। एक समय सेठानी ने पार्श्वनाथ की अधिष्ठात्री नागजाति की देवी वैरोट्या का महोत्सव पूर्वक तथा अष्टम तप करके आराधन किया अन्तिम रात्रि में देवी ने कहा कि विद्याधर गच्छ के कालकाचार्य की संतान में आचार्य नागहस्ति[1] के चरण प्रक्षालन के जल का पान कर, तेरे पुत्र होगा। सेठानी देवी के वरदान को तथाऽस्तु कह कर सुबह होते ही वहाँ से चल कर आचार्य श्री के उपाश्रय आई भाग्यवसात् उस समय आचार्य श्री बाहर जाकर आये थे। उनके पैरों का प्रक्षालन कर एक साधु उस पानी को परठने के लिये जा रहा था। सेठानी ने उस पानी से थोड़ा पानी लेकर आचार्य श्री से दशहाथ दूर ठहर कर जलपान कर लिया बाद सूरीजी के पास आकर वन्दन के साथ सब हाल निवेदन कर दिया। इस निमित्त को सुन कर सूरिजी ने कहा श्राविका! तेरे पुत्र तो होगा पर तू ने मेरे से दश हाथ दूर रह कर जलपान किया है, इस से तेरा पुत्र तेरे से दश योजन दूर मथुरा नगरी में रह कर बड़ा होगा तथा इस पुत्र के बाद नौ पुत्र और भी होंगे। इस पर सेठानी ने कहा कि हे पूज्य! मैं अपने पहिले पुत्र को आपके अर्पण करती हूँ। क्योंकि मेरे से दूर रहे उससे तो आपके पास रहना अच्छा है। सूरिजी ने कहा भद्रे! तेरापुत्र बड़ा ही प्रतिभाशाली होगा और जगत का उद्धार करेगा इत्यादि।

सेठानी ने नागेन्द्र का स्वप्न सूचित गर्भ धारण कर यथा समय पुत्र को जन्म दिया और उसका नाम नागेन्द्र रख दिया तथा अपनी प्रतिज्ञानुसार सेठानी ने अपने पुत्र को सूरिजी के अर्पण कर दिया। सूरिजी ने कहा कि श्राविका! हमारी तरफ से इस बालक का तुम पालन पोषण करो। प्रतिमा सेठानी ने गुरु वचन को शिरोधार्य्य करके लड़के का अच्छी तरह से पालन पोषण किया जब नागेन्द्र ८ वर्ष का हुआ तो सूरिजी ने उसको ज्ञानाभ्यास करवा दिया।

१—आसीत्कालिकसूरिः श्रीश्रुताम्भोनिधिपारगः। गच्छे विद्याधराख्यस्यार्यनागहस्ति सूरयः ॥१५॥
खेलादिलब्धिसम्पन्नाः सन्ति त्रिभुवनार्चिताः। पुत्रमिच्छसि चेत्तेषां पादशौच जलंपिबेः ॥१६॥
२—साहाय प्रथमः पुत्रो भवतामर्पितो मया। अस्तु श्रीपूज्यपार्श्वस्थो दूरस्थस्यास्य को गुणः ॥२२॥
३—नागेन्द्राख्यां ददौ तस्मै फुल्ल उत्फुल्ललोचनः। आप्तो गुरुभिरागत्य सगर्भोष्टमवार्षिकः ॥२९॥
४—प्रव्रज्यां प्रददुस्तस्य शुभे लग्ने स्वरोदये। उपादानं गुरोर्हस्तं शिष्यस्य प्राभवे न तु ॥३१॥
५—श्रुत्वेतिगुरुभिः प्रोक्तः बालेन प्राकृतेन सः। पालित्तो इति श्रृङ्गाराग्निप्रदीप्तानिभाषिणा ॥३९॥

आचार्यश्री के गुरुभाई संग्रामसिंहसूरि थे उनको आज्ञा दी अतः उन्होंने नागेन्द्रकुमार को दीक्षा दी और मण्डन नाम के मुनि को उसकी सेवा शुश्रूषा एवं पढ़ाई का कार्य्य सौंपा आखिर नागेन्द्रमुनि थोड़े ही समय में ज्ञानाभ्यास करके धुरन्धर विद्वान हो गया। एक समय आचार्यश्री ने नागेन्द्र को कांजी का पानी लाने के लिए भेजा। वह पानी लेकर वापिस आया तो एक गाथा कह कर पानी देने वाली का वर्णन किया।

"अं वं तंवच्छीए अपुफियं फुप्फ दंत पंतीय नय सालकंजियं नव वहूईकुड्डराणनेदिन्नं"

अर्थ—लाल वस्त्रवाली अभी ऋतु न हुई पुष्प सदृश्य दंत पंक्ति वाली ऐसी नव वधू ने बड़े ही प्रमोद से मुझे नये चावलों की कांजी का दान दिया है। इस श्रृंगार रस गर्भित गाथा को सुन कर गुरु ने कहा "पलित्तओ" तू राग अग्नि में प्रदीप्त है इस पर मुनि नागेन्द्र ने कहा कि गुरुवर्य्य। एक मात्रा की और कृपा करें कि मैं "पालित्तओ" हो जाऊँ। इसका भाव यह है कि:—"गगन गमनोपायभूतां पादलेप विद्यां मेदत् येनाहं पादलिप्तक, इतिभिदिये ततो गुरुभि पादलेप विद्या दत्ता अर्थात् गुरु ने नागेन्द्र को पादलेप विद्या प्रदान कर दी कि जिससे वह पैरों पर लेप करके आकाश में जहाँ इच्छा करे वहाँ ही चला जावे।

जब मुनि नागेन्द्र दसवर्ष * का हो गया तो उनको सर्व गुण सम्पन्न समझकर आचार्य पद से विभूषित कर दिया और उनका नाम पादलिप्तसूरि रख दिया।

गुरु आज्ञा से बालाचार्य पादलिप्त सूरि विहार कर मथुरा पधारे। वहां की जनता को अपने ज्ञान से रंजित बनाकर आप † पाटलीपुत्र नगर में पधारे। उस समय पाटलीपुत्र नगर में मुरंड नाम का राजा राज करता था। पादलिप्तसूरि के चमत्कार एवं उपदेश से राजा जैन धर्म को स्वीकार कर आचार्यश्री का परम भक्त बन गया।

एक समय राजा मुरंड ने सूरिजी से पूछा कि पूज्यवर! हम लोग प्रधान वगैरह को अच्छा वेतन देते हैं फिर भी वे बराबर काम नहीं करते हैं तो आपके साधु बिना वेतन आपका कार्य्य कैसे करते होंगे? सूरिजी ने कहा तुम्हारे प्रधानादि स्वार्थ के वश नौकरी करते हैं पर हमारे शिष्य परमार्थ के लिए हमारी आज्ञा का पालन करते हैं। फिर एक नवदीक्षित शिष्य की परीक्षा की और इस परीक्षा के लिए राजा ने अपने मुख्य प्रधान बुला के कहा कि गंगा की धार किस ओर मुंह करके बहती है इसकी पक्की निगाह कर खबर लाओ। प्रधान ने सोचा कि बालाचार्य की संगत करने से राजा भी बाल भाव को प्राप्त होकर व्यर्थ ही कह रहा है। यह बात तो बालक भी जानता है कि गंगा पूर्व की ओर बह रही है। बस प्रधान अपने भोग विलासादि कार्य्य में लग गया, राजा ने अपने गुप्तचरों को प्रधान के पीछे भेज दिया। बाद ४-५ घंटे के आकर राजा को कह दिया कि मैंने पूरी निगाह करली है कि गंगा पूर्व मुँह कर बहती है। राजा के गुप्तचर ने मंत्री का सब हाल राजा से कह दिया। बाद सूरिजी ने अपने एक शिष्य को भेजा कि निगाह करो कि गंगा किस ओर बहती है? शिष्य ने गुरु आज्ञा पालन करने को गंगा पर आकर ४-५ आदमियों से पूछ कर तलाश की तथा आप स्वयं गंगा में दंडा रख निर्णय किया और गुरु के पास आकर कहा कि गंगा

* दुस्सर्वे दसमे वर्षे गुरुभिः स्थापितः पदे। [illegible] ॥२२॥

† [illegible] पाटलीपुरं। [illegible] तत्र राजास्ति मुरुण्डो [illegible] ॥२३॥

पूर्व की ओर बहती है। इसके पीछे भी राजा का गुप्तचर गया था जिससे राजा ने दोनों का हाल जान लिया और सूरिजी के कहने पर दृढ़ विश्वास हो गया।

पादलिप्तसूरि एक समय मथुरा में सुपार्श्वनाथ के दर्शन कर ऊंकारपुर ‡पधारे वहाँ के राजा भीम ने सूरिजी का अच्छा सत्कार किया। सूरिजी के उपदेश से वहाँ का राजा भी जैनधर्मी बन गया।

आचार्य श्री शत्रुंजय की यात्रा कर मानखेटपुर × पधारे वहाँ के राजा कृष्णराज को उपदेश देकर जैन-धर्मोपासक बनाया और राजा के आग्रह से आप वहाँ ही विराजते थे। वहाँ पर प्रांशुपुर से एक रुद्रदेवसूरि नामक आचार्य पधारे थे वे योनिप्रभृत शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे एक समय अपने शिष्यों को उस शास्त्र की वाचना दे रहे थे उसको बाहर रहा हुआ धीवर (मच्छीमार) सुन रहा था। उसने उस विद्या एवं विधि को अच्छी तरह धारण कर ली कि जिससे माच्छला उत्पन्न कर सके।

बाद दुकाल पड़ा, पानी के अभाव माच्छला नहीं मिले तो उस धीवर ने योनिप्रभृत विद्या से माच्छला पैदा कर दुकाल में अपने कुटुम्ब का पालन किया। बाद फिर गुरु के दर्शन किये धीवर ने अपनी सारी बात कह कर उपकार माना। इस पर आचार्य श्री को बड़ा भारी पश्चाताप करना पड़ा कि मैंने उपयोग नहीं रखा जिससे इतने जीवों की हिंसा हुई। फिर धीवर को उपदेश दिया कि मैं तुझे रत्न बनाने की विद्या बता सकता हूँ पर माच्छला बनाना या मांस खाने का त्याग करना पड़ेगा। धीवर ने कहा पूज्य ! जब मेरा गुजारा हो जाय तो इस लोक और परलोक में निन्दनीय कार्य्य मैं कदापि नहीं करूंगा। आचार्य महाराज ने उस धीवर को रत्न बनाने की विद्या सिखा कर उसको पाप से बचाया।

श्रमणसिंहसूरि—विलास१ पुर नगर में प्रजापति राजा राज करता था उस समय श्रमणसिंहसूरि वहां पधारे। राजा ने कहा कि आप ज्ञानी हैं कुछ चमत्कार बतलावें। इस पर सूरिजी ने कई प्रकार के चमत्कार बतला कर राजा को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा दी जिससे जैनधर्म की अच्छी प्रभावना हुई।

आचार्य खपटसूरि—आप विद्या निपुण जैनशासन के एक चमकते सितारे थे। आपका चरित्र अलौकिक एवं चमत्कारों से ओतप्रोत है और पढ़नेवाले भव्यों को आनन्द का देनेवाला है। आपने एक विशुद्ध राजवंश में उत्पन्न हो जैनधर्म की दीक्षा ग्रहण कर अनेक शास्त्रों का अभ्यास किया अतएव आप तात्विक दार्शनिक एवं विद्या मंत्रादि शास्त्रों में बड़े ही धुरन्धर विद्वान थे। अपनी अलौकिक प्रभा का प्रभाव कई राजा महाराजा एवं वादी प्रतिवादियों पर डालते हुए भूमि पर भ्रमण करते थे।

एक समय आप भरोंच नगर में विराजमान थे जहां बीसवें तीर्थङ्कर भगवान मुनि सुव्रत का तीर्थ था और कालकाचार्य का भानेज बलमित्र राजा राज करता था वह कट्टर जैन और आचार्यश्री का परम भक्त था। आचार्य खपटसूरि के एक शिष्य भुवनमुनि२ जो आपके संसार पक्ष में भानेज लगते थे वह भी

---

‡ ततोऽसौ लाटदेशांतश्चोङ्काराख्यपुरे प्रभुः। आगतः स्वागतान्यस्य तत्राधाद्भीमभूपतिः ॥ ९४ ॥

× मानखेटपुरं प्राप्ताः कृष्णभूपालरक्षितम्। प्रभवः पादलिप्ताख्य राज्ञाऽभ्यर्च्यंत भक्तितः ॥११४॥

तत्र प्रांशुपुरात्प्राप्ताः श्रीरुद्रदेवसूरयः। ते चाचचुर्दत्तवाचाः श्रीयोनिप्राभृते श्रुते ॥११५॥

अन्येद्यु निजशिष्याणां पुरस्तस्माच्च शास्त्रतः। व्याख्याता शफरोत्पत्तिः पाप सन्तानसाधिका ॥११६॥

१—विलास नगरे पूर्वं प्रजापतिरभूत्ततः। ततः श्रमणसिंहाख्याः सूरयश्च समाययुः ॥१२९॥

शास्त्रों के मर्मज्ञ एवं अनेक विद्याओं से विभूषित थे । उनकी बुद्धि इतनी प्रबल थी कि कोई भी ज्ञान एक बार सुन लेते तो वह सदैव के लिये कण्ठस्थ ही हो जाता ।

गुडशस्त्र नगर से चल कर एक बोधाचार्य भरोंच नगर में आया था उसके साथ मुनि भुवन का धर्म के विषय शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें बोधाचार्य को पराजित कर शासन की खूब ही प्रभावना की । बोधाचार्य इतना लज्जित हो गया कि वह कहीं पर जाकर मुंह दिखाने काबिल ही नहीं रहा । अतः उसने भरोंच में अन्न जल का त्याग कर दिया, आखिर वह मर कर यक्ष योनि में उत्पन्न हुआ और गुडशस्त्र नगर में अकार लोगों को उपद्रव करने लगा अतः लोगों ने उसकी मूर्ति स्थापित की जब जाकर यक्ष शान्त हुआ। बाद पूर्व द्वेष के कारण यक्ष जैनश्रमणों को उपसर्ग करने लगा इससे दुःखी हुये संघ ने दो मुनियों को भेज कर आचार्य खपटसूरि से कहलाया कि यहां का यक्ष जैन संघ को बहुत दुःख देता है अतः आप जल्दी से यहां पधार कर श्रीसंघ के दुःख को दूर कर शांति करावें । इस पर आचार्य श्री ने मुनि भुवन को बुला कर कहा कि मैं गुडशस्त्र नगर जाता हूँ पीछे तुम इस खोपड़ी को भूलचूक कर भी उघाड़ कर नहीं देखना । इतना कहकर आचार्यश्री तो विहार कर गुडशस्त्र नगर में पधार गये और सीधे ही यक्ष के मंदिर में जाकर यक्ष के कान पर पैर रख कपड़ा से शरीर आच्छादित कर सो गये । जब पुजारी यक्ष की पूजा करने को आया तो आचार्य को सोता हुआ देख दूर हटने के लिये बहुत कहा पर उसने एक भी नहीं सुनी । अतः पुजारी ने राजा के पास जाकर सब हाल निवेदन किया तो राजा ने क्रोधित हो हुकम दिया कि लकड़ी लाठी एवं पत्थरों से मार कर सेवड़ा को हटा दो । पुजारी ने ऐसा ही किया पर आचार्य को तो इस बात की परवाह ही नहीं । इसका नतीजा यह हुआ कि पुजारी ने जितने लाठी लकड़ी पत्थर चलाये वे सब राजा के अन्तेवर की रानियों पर ही मार पड़ने लगी अतः अन्तेवर गृह में हाहाकार मच गया और रानियों ने पुकार की कि हमारी रक्षा करो ! रक्षा करो इत्यादि यह समाचार राजा के पास आया तब जाकर राजा ने सोचा कि यक्षालय में सोने वाला कोई सिद्ध पुरुष होगा ऐसा सोचकर राजा अपने सब परिवार को लेकर यक्ष मंदिर में आया और भक्तिपूर्वक आचार्य देव को वन्दन कर शान्त होने की प्रार्थना की तथा नगर में पधारने के लिए आग्रह किया इस पर आचार्य श्री ने यक्ष को कहा चलो मेरे साथ तथा और भी देव मूर्तियां सूरिजी के साथ हो गईं इतना ही क्यों पर वहाँ दो पत्थर की बड़ी कुंड़ियें थीं वह भी सूरिजी के पीछे चल रही थी * इस तरह से सूरिजी ने नगर प्रवेश किया जिसको देखकर राजा एवं प्रजा जैनधर्म के परम भक्त

२ — तत्रार्यखपटा नाम सूरयो विद्यतो (यो) दिताः । तेषां च भागिनेयोऽस्ति विनेयो भवनाभिधः ॥१२९॥
कर्णश्रुत्याप्यसौ प्राज्ञो विद्यां जग्राह सर्वतः । बौद्धान्वादे पराजित्य यैस्तीर्थं संघ साक्षिकम् ॥१३०॥
तदा च सौगताचार्य एको वटुकराभिधः । गुडशस्त्रपुरायातो जिगीषुर्जैनशासनम् ॥१५०॥
सर्वानिप प्रवादी स चतुरंग समागुरः । जैनाचार्यस्य शिष्येण जितः स्याद्वादवादिना ॥१५१॥

*—वैराग्याते पुनः क्रुद्धो नृपस्तं लेष्टुयष्टिभिः । अघातयस्य घातानां प्रवृत्तिमपि वेत्ति सः ॥१६०॥
अन्तेन दुमुचे जने पुरेऽप्यन्तः पुरेऽपि च । पूत्कुर्वन्तः समाजग्मुः सौविदल्लास्तदा ॥१६१॥
रक्ष रक्ष प्रभो न्यस्तः शुद्धान्तो लेष्टुयष्टिभिः । अदृष्टैर्हिन्ते : कैश्चित् महाशब्दैः ॥१६२॥

१—वर्ष्मं तत्पदस्थेन तत्र द्रोणीद्वयं तथा । चालितं कौतुकेनेव तत्पश्चाल्लोकसम्मदात् ॥१६४॥
कन्धराधातुं वीक्ष्य जनोऽजनि प्रदोऽपि च । जिनशासनमस्तोऽनुमन्यमानं च निर्जितः ॥१६५॥

के परमभक्त बन गये। बाद यक्ष एवं मूर्तियों को अपने स्थान जाने की आचार्यश्री ने आज्ञा दे दी और दो कुडियें वहां ही पड़ी रहीं। इस चमत्कार से नगर में जैन धर्म की खूब प्रशंसा होने लगी और जनता पर जैनधर्म का अच्छा प्रभाव पड़ा। राजा और प्रजा जैनधर्म के परमोपासक बन गये।

आचार्य खपटसूरि गुडशस्त्र नगर में विराजते थे उस समय भरोंच से दो ‡ मुनियों ने आकर निवेदन किया कि आप श्री तो यहां पधार गये पीछे मना करते हुये भुवनमुनि ने खोपरी उघाड़ कर पत्र पढ़ लिया और उस विद्या से सरस आहार लाकर रसगृद्धी बन गया है। स्थविरों ने उपालम्भ दिया तो वह जाकर बोद्धों × में मिल गया और विद्या प्रयोग से श्रावकों के घरों से सरस आहार लाकर खा रहा है जिससे जैनधर्म की निन्दा हो रही है। श्री संघ ने आपको बुलाने के लिये हम दोनों साधुओं को भेजा है अतः आप शीघ्र भरोंच पधारें। यह सुनकर सूरिजी भरोंच पधारे। जब भुवन ने पात्र को आज्ञा दी कि श्रावकों के घरों से मिष्टान्न आहार लाओ। तब पात्र आकाश में जा रहा था आचार्यश्री ने एक शिला + विक्रुबी जिससे पात्र फूट टूट चकनाचूर हो गया। इसकी खबर भुवन को हुई तो वह भय भ्रान्त होकर वहां से भाग गया। बाद आचार्यश्री बौद्ध मंदिर में गये। बौद्धों ने कहा कि आप बुद्ध मूर्ति को नमस्कार करो। पर आचार्य श्री के विद्यावल के प्रभाव से बोद्ध मूर्ति तथा द्वार पर एक बुद्ध श्रावक की मूर्ति ने आकर सूरिजी के चरणों में नमस्कार किया बाद गुरू ने कहा अपने स्थान जाओ पर वे उठते समय कुछ अवनत रहे जिससे अद्यावधि वह बोध मंदिर 'निग्रन्थ नमित' नाम से प्रसिद्ध है।

महेन्द्रोपाध्याय§—आप आचार्य खपटसूरि के शिष्य और महाविद्याभूपित थे एक समय पाटलीपुत्र नगर में दाहिड़† नामक राजा सत्यधर्म का नाश करता हुआ एक हुक्म निकाला कि सब धर्म वाले ब्राह्मणों के चरणों में नमस्कार करें अगर मेरी इस आज्ञा का कोई भी उल्लंघन करेगा तो उसको प्राणदण्ड दिया जायगा इस पर बहुत से लोग प्राण और धन की रक्षा के लिये ब्राह्मणों को नमस्कार करने लग गये पर जैन श्रमणों ने अपने धर्म की रक्षा के लिये प्राणों की कुछ भी परवाह नहीं की और कहने लगे कि राजा का कितना अन्याय—कितनी धर्मान्धता कि त्यागियों का अपमान करवाने के लिये ही यह आज्ञा निकाली है कि तुम सभी ब्राह्मणों को नमस्कार करो। खैर, जैनों ने राजा से कुछ दिन की मुद्दत ले ली और दो विद्वान मुनियों को भरोंच नगर भेज कर आचार्य खपटसूरी को सब हाल कहला दिया और कहलाया कि महेन्द्रोपाध्याय को जल्दी से भिजवावें कि यहाँ के श्रीसंघ का संकट को दूर कर जैनधर्म की विजयपताका फहरावें। दोनों मुनि चलकर भरोंच आये और सूरिजी को सब हाल निवेदन कर दिया। सूरिजी ने अपने शिष्य महेन्द्र को दो कन्नेर की कावें जो एक लाल दूसरी श्वेत थी अभिमंत्रित कर देदी और पाटलीपुत्र जाने के लिये रवाना कर दिया। क्रमशः महेन्द्रर्षि पाटलीपुत्र पधारे और राजसभा में जाकर

‡—इतश्च श्रीभृगुक्षेत्रात् यतिद्वितयमागमत्। तेन प्रोचे प्रभो प्रेषीत्संघो नो भवदन्ति के ॥१६०॥

×—तत्प्रभावेण पात्राणि गतानि गगनाध्वना। भोज्य पूर्णान्युपायान्ति बौद्धोपासक वेश्मनः ॥१७३॥

+—पूर्णानि तानि भोज्यानामायन्ति गगनाध्वना। गुरुभि, कृतपादस्पशिलया स्फोटि पुस्फुटुः ॥१७७॥

† नगरी पाटलीपुत्रं अमरिपुरसप्रभम्। दाहडो नाम राजास्ति मिथ्यादृष्टिर्निकृष्टधीः ॥१८४॥

§ विमृश्य गुरुभिः प्रोचे श्रीआर्यखपटप्रभोः। शिष्याग्रणीर्महेन्द्रोऽस्ति सिद्धप्राभृतसंस्कृतः ॥१९२॥ प्र० च०

कहा कि आप की आज्ञापालन करने को हम सब लोग तैयार हैं पर यह एक नया कार्य्य है। अतः इसलिये आप अपने ज्योतिषियों से कह दें कि शुभ मुहूर्त देखकर सब ब्राह्मण राजसभा में एकत्र हो जायं और हम सब लोग भी राजसभा में आवेंगे। इससे राजा ने खुश होकर वैसा ही किया। दिन मुकर्र किया। उस दिन सब ब्राह्मण गले में जनेऊ और कपाल पर तिलक करके राजसभा में आकर उच्चासन पर बैठ गये राजा राजकर्मचारी और नागरिक लोग भी एकत्र हुये। इधर से महेन्द्रर्षि जैन साधुओं को लेकर राजसभा में आये। सभा का दृश्य देख कर राजा से पूछा कि क्या पूर्व ‡ सन्मुख वैठे हुये ब्राह्मणों को नमस्कार करें या पश्चिम बैठ हुओं को ? ऐसा कहते ही सामने बैठे हुये ब्राह्मणों की पीठ पर लाल कन्नेर की कांब फेरी कि वे तत्काल मृत्युवत मूर्छित हो गये। इस घटना को देख सभा आश्चार्य मुग्ध और भयभ्रान्त हो गई। राजा ने सोचा कि इसमें अपराध तो मेरा ही है कहीं मेरी भी यह हालत न हो जाय। राजा ने चट से सिंहासन से उठ कर महेन्द्रर्षि के चरणों में गिर कर प्रार्थना × की कि हे विद्याशाली ! हमारी अज्ञानता के लिये क्षमा करावें। मुनि ने कहा राजा तुमने बहुत अन्याय किया है। पहिले भी बहुत से राजा हो गये पर एक गृहस्थ ब्राह्मण को त्यागी नमस्कार करे ऐसा आग्रह किसी ने भी नहीं किया इत्यादि।

राजा ने कहा कि यह हमारी अज्ञानता थी पर आप महात्मा हैं अब इन ब्राह्मणों को सचेत करो। कारण इनके सब कुटुम्ब वाले रुदन एवं करुण आक्रन्दन कर रहे हैं इस पर मुनि ने कहा कि मैं देव देवियों से कोशिश करूंगा। ऐसा कह कर आकाश की ओर मुँह करके देवताओं से कहा कि तुम इन ब्राह्मणों को अच्छा कर दो। देवों ने कहा कि यदि यह ब्राह्मण जैन दीक्षा स्वीकार करें तो सचेत हो सकते हैं नहीं तो सब मर जायंगे।

जीवन की इच्छा वाले क्या नहीं करते हैं सब ने स्वीकार कर लिया अतः महेन्द्रर्षि ने कनेर की दूसरी श्वेत कांब फेरी तो वे सब सचेत हो गये। इससे जैन धर्म की महान प्रभावना हुई। राजा प्रजा ने जैनधर्म स्वीकार कर बड़े ही गाजे बाजे एवं महोत्सव पूर्वक महेन्द्रर्षि को अपने उपाश्रय पहुँचाया।

ब्राह्मण दीक्षा लेने को तैयार हुये पर महेन्द्रर्षि ने कहा कि यह कार्य्य हमारे आचार्य महाराज का है और वे इस समय भरोंच नगर में विराजते हैं। अतः श्रीसंघ की अनुमति से महेन्द्रर्षि ब्राह्मणों को लेकर भरोंच आये और श्रीसंघ के महोत्सव पूर्वक सब ब्राह्मणों को सूरिजी ने दीक्षा प्रदान की।

आचार्य पादलिप्तसूरि जिनका वर्णन पूर्व आ चुका है उन्होंने आचार्य खपटसूरि के पास में रहकर अनेक आगमों का एवं चमत्कारी विद्याओं का अभ्यास किया था और पादलिप्तसूरि ने एक पादलिप्त नाम की भाषा का भी निर्माण किया था कि दूसरा कोई समझ ही नहीं सके। हाँ जिसको पादलिप्तसूरि बतलावें वे जरूर समझ सकते थे।

आचार्य खपटसूरि अधिक समय भरोंच नगर में रहे थे और उन्होंने जैनधर्म की बहुत उन्नति की

‡ कथं तेन [illegible] यदपूर्वमिदं हि नः। पूर्वं पूर्वामुखान् किंवा नमामः पश्चिमामुखान् ॥ ... ॥
[illegible] । संमुखानां पराङ्मुख दृष्टं [illegible] ॥ ... ॥
[illegible] निश्चेष्टा मृतसंनिभाः। [illegible] विस्मयं [illegible] ॥ ... ॥
× [illegible] दर्शनं मम। देवो गुरुः पिता माता [illegible] ॥ ... ॥

आखिर वहाँ पर अनशन और समाधिपूर्वक स्वर्गवास किया। आपके पट्ट पर श्री संघ ने महेन्द्रोपाध्याय को आचार्य पद पर स्थापित किया। महेन्द्रसूरि बड़े ही विद्यावली एवं चमत्कारी पुरुष थे उन्होंने सर्वत्र विहार कर जैनधर्म की अच्छी उन्नति एवं प्रभावना की।

सिद्धनागार्जुन आप वीर क्षत्रिय संग्रामसिंह की सुशीलभार्या सुव्रता के पुत्र रत्न थे। तीन वर्ष की शिशु अवस्था में ही आप इतने वीर थे कि एक सिंह के बच्चे को मार डाला था। नागार्जुन वनस्पति जड़ी बूटी एवं सिद्ध रसायन का बड़ा ही प्रेमी था। कई महात्माओं की कृपा से उसको अनेक औषधियों की प्राप्ती भी हुई थी। सुवर्णरस विद्या तो उसके हाथ का एक भूषण ही बन चुकी थी। नागार्जुन अधिक समय जंगल में ही व्यतीत करता था। एक समय औषधियों और विद्या से समृद्ध बना हुआ नागार्जुन अपने घर पर आया जैसे कोई व्यापारी धन कमा कर घर पर आता है।

नगर में आने के बाद उसने सुना कि यहाँ एक पादलिप्तसूरि आचार्य पधारे हैं और वे पादलेप से आकाश में गमन करते हैं। नागार्जुन® ने आकाशगामिनी एवं पादलेप विद्या की प्राप्ती की गरज से एक पात्र (तुंवी) में कुछ सुवर्ण सिद्धि रस भर कर अपने शिष्य के साथ पादलिप्तसूरि के पास भेजा। शिष्य ने जाकर तुंवी सूरिजी को दी और सब हाल भी कह दिया। निस्पृही सूरिजी ने उसे वेकार समझ कर पात्र के साथ एक ओर फेंक दी। इस पर उस शिष्य ने बड़ा ही अफसोस किया। तब सूरिजी ने कहा तू फिक्र क्यों करता है तुझे पात्र एवं भोजन मिल जायगा। किसी श्रावक को सूचित करा दिया। जब वह शिष्य जाने लगा तो सूरिजी ने एक कांच का पात्र (शीशी) में पेशाब भर कर उसको दे दिया कि इसे नागार्जुन को दे देना। शिष्य अधिक दुःख कर विचारने लगा कि नागार्जुन ऐसे मूर्खों के साथ मित्रता कर क्या लाभ उठाना चाहता है ? खैर, शिष्य ने ज्यों की त्यों आकर शीशी नागार्जुन को दे दी। उसने सूंघा तो पेशाब की बदबू आने लगी। उसने शीशी को एक पत्थर पर डाल दिया। शीशी फूट गई और पेशाब उस पत्थर पर गिर गया। बाद जब औषधी बनाने के लिए अग्नि लगाई और अग्नि का स्पर्श उस पत्थर पर लगा तो वह पत्थर ही सब सोना बन गया। तब तो नागार्जुन को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसका सब गर्व गल कर पानी हो गया। उसने सोचा कि मैंने तो इतने वर्ष परिश्रम कर बड़ी मुश्किल से इस रसायन को प्राप्त की है तब इन महात्मा के सब शरीर एवं मलमूत्र भी सुवर्ण सिद्धि हैं इत्यादि।

®—विद्यादेव्यः षोडशापि चतुर्विंशतिसंख्यया। जैना यक्षास्तथा यक्षिगण्यश्च वोऽभिदधाम्यहम् ॥२१६॥
इत्युक्ते तेन दैवी वाक् प्रादुरासीद्दुरासदा। एषां प्रव्रज्यया मोक्षोऽन्यथा नाल्यपि जीवितम् ॥२१८॥
अभिषेकेण तेषां गीमुत्वल्ला च स्यधीयतः (त)। पृष्टा अङ्गीकृतं तैश्च को हि प्राणान्न वांछति ॥२१९॥
उत्तिष्ठतेति तेनोक्ता भ्राम्यताथापरालता। सञ्जीवभूवुः प्राग्वत्ते जैना द्यमितदान्तयः ॥२२०॥
संघेन सह रोमांचांकुरकन्दलितात्मान। राज्ञा कृतोत्सवेनाथ स्वं विवेशाश्रयं मुनिः ॥२२१॥
अश्वावबोधतीर्थं श्रीभृगुकच्छपुरे हि यैः। श्रीआर्यखपटाख्यानां प्रभूणां महिमाद्भुतम् ॥२२५॥
इत्यार्यखपटश्चक्रे शासनस्य प्रभावनाम्। उपाध्यायो महेन्द्रश्च प्रसिद्धिं प्रापुरद्भुताम् ॥२२८॥
अथार्यखपटः सूरिः कृतभूरिप्रभावनः। अन्तेऽनशनमाधाय दैवीभुवमशिश्रियत ॥२३१॥
श्रीमहेन्द्रस्ततस्तेषां पट्टे सूरिपदेऽभवत्। तीर्थयात्रां प्रचक्राम शनैः संघनदाग्रया ॥२३४॥
पुरा ये पाटलीपुत्रे द्विजाः प्रव्रजिता बलात्। जातिवैरेणतेनाथ ते मत्सरमधारयन् ॥२३५॥ प्र० च०

*नागार्जुन—आचार्य पादलिप्त के पास जाकर उनकी स्तुति करता हुआ उनका अनुरागी बन गया। वह सूरिजी पैरों पर लेप कर आकाश मार्ग से शत्रुंजय, गिरनार, अष्टापद शिखर और आर्बुदाचल की यात्रा कर के वापिस आये। नागार्जुन ने लेप पहिचान ने की गरज से आचार्य श्री के पैरों का प्रक्षालन किया जिसमें सुगन्ध से स्पर्श से और अन्य प्रकार से १०७ औषधियों को जान गया। जब वह उन्हीं औषधियां लाकर अपने पैरों पर लेप कर आकाश में गमन करने लगा। थोड़ा थोड़ा उड़ता पर एक औषधि की न्यूनता के कारण वह वापिस गिर जाता था जिससे उसके घुटने से रुधिर बहने लग गया। जिसको देख सूरिजी ने कहा बिना गुरु से विद्या फलीभूत नहीं होती है। नागार्जुन ने कहा कि मैंने अपनी बुद्धि की परीक्षा की है। आचार्य श्री ने कहा कि यदि मैं तुझे आकाशगामनी विद्या बतलाऊं तो बदले में तू मुझे क्या देगा? नागार्जुन ने कहा जो आप फरमावें वही दूंगा।

गुरु—मैं दूसरा कुछ भी नहीं चाहता। तू पवित्र जैनधर्म स्वीकार कर और उसका ही पालन कर। कारण इन भौतिक विद्याओं से आत्म कल्याण नहीं पर आत्मकल्याण जैनधर्म की आराधना से ही होगा।

नागार्जुन ने स्वीकार कर लिया।

तब सूरिजी ने कहा कि जो मसाल १०७ औषधियों द्वारा एकत्र किया है उसको कांजी और चावलों के जल के साथ मिलाले जिससे आकाश में गमन कर सकेगा। नागार्जुन ने ऐसा ही किया और वह आकाश में गमन करने में सफल हो गया।

---

*—तत्र नागार्जुनो नाम रससिद्धिविदांवरः। भाविशिष्यो गुरोस्तस्य तद्वृत्तमपि कथ्यते ॥२६१॥
तृणरत्नमये पात्रे सिद्धं रसमढौकयत्। छात्रो नागार्जुनस्य श्री पादलिप्तप्रभो पुरः ॥२६२॥
स प्राह रससिद्धं ढौकने कृतवान् रसम्। स्वान्तद्धं नमहोस्नेहस्तस्येत्येवं स्मितो व्यधात् ॥२६३॥
पात्रं हस्ते गृहीत्वा च भित्तावास्फाल्य खण्डशः। चक्रे च तत्तरीं दृष्ट्वा व्यषीदद्वक्त्र वक्रभृत् ॥२६४॥
मा विषीद तव आद्धपदर्वतो भोजनं वरम्। प्रदापयिष्यते चैंव मुक्त्वा संमान्य भोजितः ॥२६५॥
तस्मै चापृच्छ्यमानाय काच पात्रं प्रपूर्य सः। प्रश्रावस्य ददौ तस्मै प्राभृतं रसवादिने ॥२६६॥
नूनमस्मद्गुरुर्मूर्खः यो ऽनेन स्नेहमिच्छति। विमृशन्निति स स्वामिसमीपं जग्मिवांस्ततः ॥२६७॥
पूज्यैः सहाकृता मैत्री तस्येतिस्मितपूर्वकम्। सम्यग्विज्ञप्य वृत्तान्तं तदमत्रं समार्पयत् ॥२६८॥
द्वारमुन्मुद्य यावत्स सन्निवत्ते दृशोः पुरः। आजिघ्रत्ति ततः क्षारविस्रगन्धं स मुक्तवान् ॥२६९॥
अहो निर्लोमतामेव मृदुतां वा स्पृशेदथ। विमृशयेति विषादेन यमंजात्मनि सोऽपि सन् ॥२७०॥
दैवसंयोगतस्तत्रैकेन वह्निः प्रदीपितः। मद्यपाकनिमित्तं च क्षुत्सिद्धस्यापि दुस्तरः ॥२७१॥
[illegible] वह्नियोगसुवर्णकम्। सुवर्णसिद्धिमुत्प्रेक्ष्य सिद्धशिष्यो [illegible] ॥२७२॥
[illegible] मुनिव्राते गते विचरितुं तदा। प्रागुक्तपदनीयान्ते गत्वा व्योम्ना प्रणम्य च ॥२७३॥
[illegible] मध्ये नियमपूर्वकम्। विद्याचारणलब्धीनां समानान्ते [illegible] ॥२७४॥
[illegible] चरणक्षालनं ध्रुवम्। [illegible] ॥२७५॥
[illegible] ॥२७६॥
[illegible] ॥२७७॥
[illegible] ॥२७८॥ प्र० च०

नागार्जुन पादलिप्तसूरि का इतना श्रद्धा सम्पन्न परमभक्त बन गया कि सिद्धगिरि तीर्थ की तलेटी में एक नगर बसा कर उसका नाम गुरु की स्मृति के लिए पादलिप्तपुर रख दिया जो आज पालीताना के नाम से प्रसिद्ध है और शत्रुंजय तीर्थ पर एक महावीर का मंदिर बनाया तथा एक गुरु पादलिप्तसूरि की मूर्त्ति बनाई जिसकी प्रतिष्ठा पादलिप्त सूरि ने करवाई तथा सूरिजी ने महावीर प्रभु की स्तुति रूप दो गाथा बनाई जिसमें सुवर्ण सिद्धि और आकाश गामिनी विद्यायें गुप्तपने रही पर वे किसी भाग्याशली को प्राप्त हो सकती है। कलियुगियों के लिये नहीं।

एक समय प्रतिष्ठनपुर के राजा सातवाहन ने भरोंच के राजा बलमित्र पर आक्रमण* किया जिसको १२ वर्ष हो गये परन्तु किसी को भी सफलता नहीं मिली। उस समय नागार्जुन योगी वहाँ आया और उसकी बुद्धि चातुर्य से सातवाहन को सफलता मिली अतः सातवाहन विजयी होकर अपने नगर को लौट गया।

एक वक्त राजा सातवाहन की सभा में शास्त्रों का संक्षिप्त सार बतलाने वाले चार† कवि आये और उन्होंने कहा कि हे राजन् !

१—जीर्णे भोजनात्रियः—आत्रेयर्षि ने कहा है कि वैद्यकशास्त्र का सार यह है कि पूर्व किया हुआ भोजन पचने पर नया भोजन करना।

२—कपिलः-प्राणिनांदया-कपिलर्षि ने कहा है कि धर्म शास्त्र का सार है कि प्राणियों की दया करना।

३—बृहस्पतिरविश्वासः—बृहस्पतिर्षि ने कहा है कि नीति शास्त्र का सार है कि किसी का भी विश्वास नहीं करना।

४—पांचालः स्त्रीषु मार्दवम्—पांचाल कवि ने कहा है कि काम शास्त्र का सार है कि स्त्रियों से मृदुता रखना।

इसको सुनकर राजा ने प्रसन्न हो उनको महादान दिया, पर कवियों ने कहा कि राजन्! यह क्या बात है कि तुम्हारा परिवार हमारे शास्त्र की कोई तारीफ नहीं करता है। इस पर राजा ने अपनी भोगवती वारांगना से कहा कि तू इन कवियों की तारीफ कर। उसने जवाब दिया कि मैं सिवाय पादलिप्तसूरि के किसी की तारीफ नहीं करती हूँ और इस जगत में पादलिप्तसूरि के अलावा कोई तारीफ योग्य है भी नहीं। इस पर किसी शंकर नामक मत्सरी ने कहा कि यदि किसी मृत्यु पाये हुये को जीवित कर दें तो मैं पादलिप्त को चमत्कारी समझूं वरना केवल आकाश में फिरने से क्या लाभ है ? क्योंकि ऐसे तो बहुत से पक्षी आकाश में गमनागमन करते हैं। भोगवती ने कहा कि यह भी कोई बड़ी बात नहीं है, पादलिप्तसूरि के पास यह विद्या भी होगी ही।

आचार्य पादलिप्तसूरि उस समय राजाकृष्ण के आग्रह से मानखेट‡ नगर में रहता था। अतः राजा

* इतः पृथ्वीप्रतिष्ठाने नगरे सातवाहनः। सार्व भौमोपमः श्रीमान्नृप आसीद्गुणावनिः ॥३०८॥
तथा श्रीकालकाचार्य स्वस्रीयोः श्रीयशोनिधिः। भृगुकच्छपुरं पाति बलमित्राभिधोनृपः ॥३०८॥
अन्येद्युः पुरमेतच्च रुरुधे सातवाहनः। द्वादशाब्दानि तत्रास्थाद्दिनं व्याहनंमदन ॥३०९॥

† जीर्णे भोजनमात्रेयः कपिलः प्राणिनांदया। बृहस्पतिरविश्वासः पांचालस्त्रीषु मार्दवम् ॥६२०॥

‡ मानखेटपुराद् कृष्णमाहृष्टव्य स नृपतिः। श्रीपादलिप्तमाह्वासीदेतस्मादेव कौतुकात् ॥३२७॥ प्र० च०

सातवाहन ने मानखेट के राजा कृष्ण को कहला कर पादलिप्तसूरि को प्रतिष्ठनपुर बुलाया। सूरिजी आ उद्यान में ठहर गये इसकी खबर मिलते ही एक वृहस्पति कवि ने सूरिजी की परीक्षा के लिए ठसा हुआ एक चांदी की कटोरी में डाल कर किसी चालाक आदमी के साथ सूरिजी के पास भेजा। सूरिजी अप विद्या से जान गये और उसमें सुइयें खड़ी करके वापिस लौटा दिया इसका भाव यह था कि पंडितों ने ठ हुआ घृत भेज कर संकेत किया था कि यहाँ सब पंडित विद्या से पूर्ण रहते हैं यदि आप पंडित हों तो इस न में पधारें इस पर सूरिजी ने घृत में सुइयें खड़ी करके संकेत किया कि यहाँ घृत को भेदने वाले पंडित विद्य हैं। अतः मैं नगर में प्रवेश करूँगा। जिसको देख वृहस्पति मुग्ध हो गया इतना ही क्यों पर राजा सूरिजी के प्रति श्रद्धासम्पन्न हो गया और बड़ी धूमधाम से सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव करवा और सूरिजी के ठहरने को एक मकान भी खोल दिया।

आचार्य श्री का इस प्रकार का सत्कार एक पांचल नामक कवि जो राज सभा में हमेशा तारंगलोल नाम की कथा सुनाया करता था देख नहीं सका। अतः वह ईर्ष्या रूपी अग्नि में जलता था। एक समय प्रसंगोपात् राजा ने कवि की तारंगलोला कथा की प्रशंसा की इस पर सूरिजी ने कहा कि यह तो मेरी तारंगलोला कथा का अर्थ विन्दु लेकर कथा नहीं पर कंथा बनाई है। अतः कवि राजसभा में लज्जित हो गया।

एक समय पादलिप्त सूरि मायावी मृत्युवत बन गये इससे नगर में हाहाकार मच गया। आखिर बड़ी सेविका* में सूरिजी के शरीर को स्थापन करके स्मशान में ले जा रहे थे जब पांचाल कवि के मकान के पास आये तो कवि घर से निकल कर बड़े ही दुःख के साथ कहने लगा कि हाय! हाय!! महासिद्ध विद्या के पात्र पादलिप्त सूरि ने स्वर्गवास किया। अरे मेरे जैसे मत्सर भाव रखने वालों की क्या गति होगी कि मैंने ऐसे सत्पात्रसूरिजी के साथ व्यर्थ मत्सर भाव रक्खा। इस प्रकार पश्चाताप करते हुए कवि ने एक गाथा कही

"सीसं कहवि न फुट्टं जमस्स पालित्त यं हरं तस्य।
जस्स मुह निज्झराओं तारंगलोला नई वूढ़ा ॥१॥"

अर्थात् पादलिप्त जैसे महान आचार्य का हरन करने वाले यम का शिर क्यों न फूट गया जिस सूरि के मुखरूपी द्रह से तारंगलोला रूप महानदी निर्गमन हुई।

पांचाल के शब्द सुनते ही सूरिजी ने सेविका में खड़े होकर कहा कि—

"पांचाल† के सत्य वचन से मैं पुनः जीवित हुआ हूँ।" इस प्रकार कहते हुए सब लोगों के बाजा गाजा एवं हर्षनाद होते हुए सूरिजी अपने उपाश्रय पधारे।

सूरिजी ने मुनियों की दीक्षा, श्रावकों के व्रत और मंदिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा के विधि विधान के लिये "निर्वाण‡ कलिका" नामक ग्रन्थ का निर्माण किया इसके अलावा प्रश्नप्रकाश ज्योतिष का ग्रन्थ और भी कई ग्रन्थों की रचना की।

* [illegible] मायु [illegible]। [illegible] ॥३१३॥
† [illegible] । [illegible] ॥३३१॥
‡ [illegible] ॥३४१॥
[illegible] ॥३४१॥

एक समय पादलिप्तसूरि अपने आयुष्य को नजदीक जानकर अपने गृहस्थ शिष्य नागार्जुन के साथ विमलाचल पधारे वहाँ युगादीश्वर को बन्दन कर आलोचना पूर्वक अनशनव्रत किया । ३२ दिन तक समाधि के अन्दर रह कर अन्त में नाशवान शरीर का त्याग कर सूरिजी महाराज स्वर्ग पधार गये।

इस पादलिप्त सूरि के प्रबन्ध में जितने आचार्यों का वर्णन आता है उसके अन्दर कई प्रकार के चमत्कार आये हैं जब कि जैनशास्त्रों में साधुओं के लिए इस प्रकार के चमत्कार दिखाने की मनाही है फिर उन विद्वानाचार्यों ने ऐसा क्यों किया होगा ?

जैनागमों नें द्रव्य क्षेत्र काल भाव को लक्ष्य में रखकर उत्सर्गोपवाद दो प्रकार का मार्ग बतलाया है । जब इन आचार्यों के समय की परिस्थिति को देखा जाय तो उन चमत्कारों की जरूरत थी । कारण एक तरफ बोद्धाचार्य्य दूसरी ओर वेदान्ताचार्य्य इस प्रकार के चमत्कार बतला कर भद्रिक जनता को सत्पथ से पतित बनाकर अपने जाल में फंसाने का प्रयत्न कर रहे थे उस हालत में जैनाचार्य्यों को उनके सामने खड़े कदम रहकर जैन जनता एवं जैनधर्म की रक्षा करना जरूरी बात थी । उन्होंने जो कुछ किया था वह जैन-धर्म की रक्षा के लिए ही किया था न कि निजी स्वार्थ के लिए । अतः उन्होंने जो किया वह शासन के हित के लिये ही किया था और ऐसा करने से ही जैनधर्म जीवित रह सका है । ऐसी कुतर्क करने वाले महाशयों को पहिले उस समय का इतिहास उस समय की परिस्थिति का ज्ञान करना चाहिये ताकि अपनी तर्क का स्वयं समाधान हो सके ।

आचार्य वृद्धवादी और सिद्धसेन दिवाकर—आप दोनों आचार्य महाप्रतिभाशाली एवं जिन-शासन की प्रभावना करने वाले हुये हैं जिसमें पहिले वृद्धवादी का सम्बन्ध लिखा जा रहा है ।

गौड़ देश के कोशला ग्राम में एक मुकन्द* नामका वृद्ध ब्राह्मण बसता था । उस समय विद्याधर शाखा के आचार्य पादलिप्त सूरि की परम्परा सन्तान में स्कन्दिलाचार्य्य विहार करते हुए कोशल ग्राम में पधारे । आपका व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य एवं आत्म कल्याण पर हुआ करता था एक दिन व्याख्यान में सूरिजी ने फरमाया कि—

"पच्छावि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमर भवणाइं । जेसिं पियो तवो संजमो य, खंतीय बंभचेरं च ॥"

अर्थात् मनुष्य अपनी पिछली अवस्था में भी जिनेन्द्र दीक्षा ग्रहण कर ले तो उसके लिए विमानीक देवों के सुख तो सहज में ही मिल सकते हैं क्योंकि वृद्धावस्था में एक तो ब्रह्मचर्य्य व्रत सुख से पल सकता है दूसरे कषाय की मंदता होने से क्षमा गुण बढ़ जाता है । इनके अलावा सूरिजी ने कहा कि संसार के

*—तत्रास्ति कोशलाग्रामसंवासी विप्रपुङ्गवः । मुकुन्दाभिधया साक्षान्मुकुन्द इव सत्त्वतः ॥७॥
अपरेद्यु र्विहारेण लाटमंडलमंडनम् । प्रापुः श्रीभृगुकच्छं ते रेवासेवापवित्रितम् ॥१३॥
श्रुतपाठमहाघोषैरंबरं प्रतिशब्दयन् । मुकुन्दर्षिः समुद्रोर्म्मिध्वानसापत्न्यदुःखदः ॥१४॥
भृशं स्वाध्यायमभ्यस्यन्नयं निद्राप्रमादिनः । विनिद्रयति वृद्धत्वादाग्रहीत्सदहर्निशम् ॥१५॥
तारुण्योचितया सूक्तया करुणासूयया ततः । अनगारैः खरां वाचमाददे नादरार्दितः ॥१७॥
अजानन्वयसोऽतं यदुग्रपाठादरार्दितः । पुष्पयिष्यसि तन्मल्लीवल्लीवन मुशलं कथम् ॥२०॥
तत आराधयिष्यामि भारतीदेवतामहम् । अथोग्रतपसा सत्यं यथा स्यादचो भवेत् ॥२२॥
समुत्तिष्ठ प्रसन्नास्मि पूर्यन्तां ते मनोरथाः । स्खलना न तवेच्छातु वाग्विधेहि निर्शेहिनम् ॥२७॥ प्र० च०

अन्दर एक चारित्र ही ऐसा निर्भय है कि जिसकी आराधना करने से निर्भय स्थान को प्राप्त कर सक

"भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं वित्ते ऽग्निभूभृद्भयं, दास्ये स्वामिभयं गुणे खलभयं वंशे कुयोषिद्भयम्
स्नेहे वैरभयं नयेऽनयभयं कायेऽकृतान्ताद्भयं, सर्वं नाम भयंभवे यदि परं वैराग्यमेवाभयम् ॥

इत्यादि । आपके व्याख्यान का प्रभाव यों तो जनता पर पड़ा ही था पर वृद्ध ब्राह्मण मुकन्द पर तो इतना असर हुआ कि उसने सूरिजी के चरण कमलों में भगवती जैन दीक्षा लेली । आपको ज्ञान पढ़ने की खूब रुचि थी पर बुद्धि इतनी जड़ थी कि परिश्रम करने पर भी सफलता नहीं मिलती थी । खूब जोर-जोर से घोखा करता था दिन को तो आस पास के गृहस्थ लोगों के कान कम्प उठते थे और रात्रि में पास में रहने वाले साधुओं की निद्रा भंग हो जाती थी अतः वे कहने लगे कि हे मुनि ! रात्रि समय इस प्रकार शब्दोच्चारण से हिंसक जीव जाग कर आरम्भ कर बैठेगा पर मुनि मुकन्द को तो पढ़ना था ज्ञान, उसने अपना अभ्यास चालू रक्खा । इस पर एक समय मुनियों ने गुस्से में होकर कहा रे मुनि ! तू इस वृद्धावस्था में पढ़ कर क्या मूसल फूलावेगा ? मुकुन्द ने कहा कि आत्मा में अनन्त शक्ति है तो मूसल फूलाना कौन सी बड़ी बात है । समय आने पर मूसल भी नवपल्लवित हो सकता है । आचार्य्य श्री के साथ मुनि मुकन्द विहार करते हुये भरोंच नगर में आये वहाँ पर " नालिकेरवसांत" नाम के जिन चैत्य में जाकर सरस्वती देवी की आराधना करनी प्रारम्भ की । चारों आहार का त्याग कर मूर्त्ति के सन्मुख एकाग्र चित्त से देवी भारती की आराधना में २१ दिन व्यतीत हो गये । तब जाकर देवी प्रसन्न हो कर बोली कि मुनि मैं तुमको वरदाई हो गई हूँ अब तेरा मनोरथ सफल होगा । मुकन्द ने कहा तथास्तु । देवी अजेयज्ञान का वर देकर अदृश्य हो गई । सुबह मुनि ने आकर गुरुदेव को वंदन नमस्कार किया और आज्ञा लेकर पारणा के लिये नगर में गया । जिस घर में मुनि भिक्षा के लिये गये उस घर में एक मूसल पड़ा हुआ देखा जिससे मुकन्द को युवक मुनि का वचन स्मरण हो आया । मुनि ने मूसल को अचित जल का सिंचन कर सरस्वती से प्रार्थना की कि यह मूसल फूलों से नव प्लावित हो जाय । बस, फिर तो देरी ही क्या थी उसी समय जैसे ताराओं से आकाश शोभित है वैसे ही पुष्प पत्तों से मूसल शोभने लगा । इस चमत्कार को देख सब लोगों को आश्चर्य हुआ । कहने वाले युवक मुनि का जवानी एवं विद्या का गर्व गल गया और उसने अपने अपराध की क्षमा मांग कर वृद्ध मुनि की प्रशंसा की ।

अब तो मुनि मुकुन्द सरस्वती देवी की कृपा से बड़ी बड़ी राज सभा में पण्डितों के साथ वाद विवाद कर सर्वत्र विजय प्राप्त करने लग गये । यही कारण है कि आप वृद्ध वादी के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध हो गये । आचार्य स्कन्दिलसूरि मुनि वृद्धवादी को सर्वगुण सम्पन्न जान कर अपने पट्ट पर आचार्य बना कर आप समाधि पूर्वक स्वर्ग गये ।

आचार्य वृद्धवादीसूरि गच्छनायक होकर धरा पर विहार करते हुये एक समय उज्जैन नगरी की ओर आ रहे थे उस समय उज्जैन में राजा विक्रमादित्य राज्य कर रहा था उसी नगरी में देवर्षि नामक ब्राह्मण राजा का मंत्री था जिसके स्त्री का नाम देवश्री था और इनका पुत्र सिद्धसेन + जो चार वेद अठारह पुराणादि ब्राह्मण धर्म के सर्व शास्त्रों का पारगामी था । विद्या का उसको इतना गर्व था कि मेरा जैसा दुनिया भर में ...

+ श्रीकात्यायनगोत्रीयो देवर्षिर्द्विजपुंगवः । देवश्रीकुक्षिसंभूतोऽभूत् सिद्धसेन इति श्रुतः ॥१४॥ प्र० च०

पण्डित ही नहीं है। कई कई कथाओं में तो यहाँ तक भी लिखा मिलता है कि सिद्धसेन अपने पेट पर एक पाटा बांधा हुआ रखता था। पूंछने पर कहता था कि मुझे डर है कि कहीं विद्या से मेरा पेट फट न जाय। पंडित जी एक हाथ में कुदाल और एक हाथ में निसरणी भी रखते थे पूछने पर कहते थे कि यदि कोई वादी आकाश में चला जाय तो इस निसरणी से उसकी टांग पकड़ ले आऊँ और पाताल में चला जाय तो इस कुदाल से पृथ्वी खोद कर उसकी चोटी पकड़ कर खींच लाऊँ। यह गर्व की चर्म सीमा थी इतना होने पर भी एक प्रतिज्ञा उसने ऐसी भी कर ली थी कि जिसके साथ मैं शास्त्रार्थ करूँ और मध्यस्थ लोग कह दें कि सिद्धसेन हार गया तो मैं जीतने वाले का शिष्य बन जाऊँगा इत्यादि —

एक समय जंगल में इधर से तो आचार्य वृद्धवादी आ रहे थे उधर सिद्धसेन जा रहा था दोनों की आपस में भेंट हुई। सिद्धसेन ने कहा जैन सेवड़ा ! मेरे साथ शास्त्रार्थ करेगा ? वृद्धवादीसूरि ने कहा हाँ। सिद्धसेन ने कहा तब कीजिये शास्त्रार्थ वृद्धवादीसूरि ने कहा यहाँ जंगल में कैसे शास्त्रार्थ किया जाय। कारण यहाँ हार जीत का निर्णय करने वाला मध्यस्थ नहीं है अतः किसी राज सभा में चलो कि वहाँ राजा एवं पण्डितों के समक्ष शास्त्रार्थ किया जाय जिससे जय पराजय का फैसला मिले। सिद्धसेन ने कहा मेरा तो पेट फटा जाता है आप यहाँ ही शास्त्रार्थ करें। यह जंगल के गोपाल हैं इनको मध्यस्थ रख लीजिये ये अपन दोनों के संवाद सुन कर हार जीत का निर्णय कर देंगे। सिद्धसेन का आग्रह देख आचार्य वृद्धवादी ने स्वीकार कर लिया और गोपालों को बुला कर मध्यस्थ मुकर्रर कर दिये।

पहिले सिद्धसेन ने अपनी पण्डिताई का परिचय करवाता हुआ संस्कृत में इस प्रकार का कथन किया कि जिसको श्रवण कर देवता भी प्रसन्न हो जाय पर मध्यस्थ तो थे गोपाल। वे विचारे संस्कृत भाषा में क्या समझें उनको तो उल्टा खराब ही लगा। गोपालों ने कहा कि तुम ठहर जाओ, कुछ पढ़े तो नहीं और व्यर्थ ही बकवाद करते हो। अब इन बूढे बाबा को बोलने दो। अतः समय के जानकार आचार्य वृद्धवादी बोलने लगे। उनके ओघा तो कमर पर बँधा हुआ ही था और शरीर को घुमाते हुए गोपालों की भाषा में गोपालों के गीत की राग में उच्चेस्वर से गाने लगे कि:—

"नवि मारीइं नवि चोरीइं परदारा गमन न कीजीइं
थोड़ास्युं थोड़ु दीजई, तउं टगि मगि सग्गि जाइइं ॥१॥
गाय भैंसि जिम निलुचरइ तिमतिम दूध दुणो भरइं
तिमतिम गोवला मनि ठरई, छाछि देयतां तेडु करइं ॥२॥
गुलस्युं चावइ तील तंडुली, घड़े वजाइ बाँसली
पहिरण ओढणि हुइं धावली गोवाला मन पुगी रली ॥३॥
मोटा जोटा मिल्या पिंढार, माहो माहि करिये विचार
महीपी दूझणी सरजी भली, दीइ दावोटा पुगी रली ॥४॥
वन माहि गोवला राज, इन्द तणि घरि परवा न आज
भमर सिर दूझीवली सोल, सुखि समाधि हुई रंगरोल ॥५॥

वाटउ भरीउ दहीने घोल, जीमणो कर लेइं घेसि बोल ।
इणि परेइं मुँडो मेंलावउ करइं, स्वर्ग तणी बातज विसरइं ॥६॥
हडहडाटन विक्री जेघणु मर्म्म न बोली जे कहे तणु
कुडी साखी न दीजे आल, ए तुम्ह धर्म्म कहुँ गोवाल ॥७॥
अरडस विच्छु नवि मारइं मारतओ पण उधारइं
कुड कपट थी मन वारीइं इणि परइं आप कारज सारइं ॥८॥
वचन नव कीजइ कही तणु यह बात साची भणु
कीजइं जीव दयानु जतन, सावय कुल चिंतमणि रतन ॥९॥

वृद्धवादी के इस गीत (उपदेश) को सुन कर गोपाल बराबर समझ गये और उन को बड़ी भारी खुशी हुई तब वे गोपाल ताली देकर कहने लगे।

गोवालिया उठ्या गहगही, हरखित ताली देता सही
भलो यही ज गरडो डोकरउं, नहीं भणियों येहीज छोकरउ ॥१॥
भट्ट जे बोल्यो भूत पल्लाप, फोड्या कान विघोयो आप।
जीत्यो गरडो हरयो तु हल्ल, पाये लागी करइं ए गुरमल्ल ॥२॥

प्रबन्धकार लिखता है कि गोपालों के सामने सिद्धसेन ने कहा कि संसार में कोई सर्वज्ञ नहीं है। उत्तर में आचार्य वृद्धवादी ने गोपालों से पूछा कि तुमने सर्वज्ञ देखा है ? गोपालों ने उत्तर दिया कि नगर के मंदिर में सर्वज्ञ वीतराग बैठा है। जिसको हम लोगों ने प्रत्यक्ष देखा है और सब लोग उसको सर्वज्ञ वीतराग ईश्वर कहते हैं। यह बात सत्य है फिर यह पण्डित झूठ क्यों बोलता है इत्यादि गोपालों ने वृद्धवादी को सच्चा और सिद्धसेन को झूठा कह कर फैसला दे दिया।

बस, फिर तो था ही क्या ! सत्यवादी सिद्धसेन ने गुरु महाराज के चरणों में शिर झुका कर कहा कि हे पूज्यवर ! आप कृपा करके मुझे अपना शिष्य बनाइये कारण मैंने पहिले से ही ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि मैं जिससे हार जाऊं उसका शिष्य बन जाऊं। सूरीजी ने कहा सिद्धसेन तू वास्तव में पंडित है पर कमी है तो समयज्ञपने की है। यदि तू जैन दीक्षा लेनी चाहता है तो बहुत अच्छा है पर यदि तेरी इच्छा हो तो अभी किसी राज सभा में चल कर विद्वान पण्डितों के समक्ष शास्त्रार्थ कर फिर वहां जय पराजय का निर्णय हो जायगा। सिद्धसेन ने कहा नहीं प्रभो ! निर्णय तो यहां हो गया है और मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि आपके सामने मैं कुछ भी नहीं हूँ। अतः आप मेरी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर के अपना शिष्य बनावें। सूरिजी ने विधि विधान से सिद्धसेन को दीक्षा देकर उसका नाम कुमुदचन्द्र रख दिया। मुनि कुमुदचन्द्र ने जैन दीक्षा लेने के बाद वर्त्तमान जैन साहित्य का अध्ययन कर लिया। आचार्य वृद्धवादी ने सर्वगुण सम्पन्न जान कुमुदचन्द्र को आचार्य पद से विभूषित कर उनका प्रसिद्ध नाम सिद्धसेनसूरि रख दिया और कई साधुओं को साथ देकर अलग विहार करवा दिया। आचार्य सिद्धसेनसूरि की ज्ञानप्रभा यहां तक फैल गई कि वे सर्वज्ञ पुत्र के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

आचार्य सिद्धसेनसूरि उज्जैन नगर में विराजते थे। एक समय थंडिले* जाकर वापिस आरहे थे। राजा विक्रमादित्य हस्ती पर आरुढ़ होकर आचार्य्य के पास से निकल रहा था। उसने सर्वज्ञपुत्र की परीक्षा के लिये हस्ती पर बैठे हुये मन में ही सूरिजी को वंदन किया उस चेष्टा को देख कर सूरिजी ने उच्चस्वर से कहा 'धर्मलाभ' राजा ने कहा कि बिना वन्दन किये ही आप धर्मलाभ किसको दे रहे हैं ? सूरिजी ने कहा कि हे नरेश ! आपने मुझे मन से वंदन किया जिसके बदले में मैंने धर्मलाभ दिया है। राजा ने हस्ती से उतर कर सूरिजी को वन्दन कर कहा कि मेरे दिल में शंका थी कि लोग आपको सर्वज्ञपुत्र कहते हैं यह केवल शब्द मात्र की प्रशंसा है पर आज मैंने प्रत्यक्ष में देख लिया है कि आप वास्तव में सर्वज्ञ पुत्र हैं इस गुण से प्रसन्न होकर मैं करोड़ सुवर्ण मुद्रा आपको भेंट करता हूँ आप स्वीकार करावें। सूरिजी ने कहा कि हे राजन् ! हम निस्पृही निर्ग्रन्थों को इन सुवर्ण मुद्रकाओं से क्या प्रयोजन है हम तो केवल भिक्षा वृत्ति पर गुजारा करते हुये जनता को धर्मोपदेश करते हैं। राजा ने कहा कि मैंने मन से जिस धन को अर्पण कर दिया है उसको रख नहीं सकता हूँ। सूरिजी ने कहा कि इसके लिये अनेक रास्ते हैं। दुखी मनुष्यों को सुखी बना सकते हो, मन्दिरादि धर्मस्थानों के जीर्णोद्धारादि कार्यों में लगा कर पुन्योपार्जन कर सकते हो। इत्यादि राजा ने जनमुनियों की निस्पृहता की प्रशंसा की और अर्पण किया हुआ द्रव्य सूरिजी की आज्ञानुसार अच्छे कामों में लगा दिया।

आचार्य्य सिद्धसेनसूरि एक समय भ्रमण करते हुए चित्रकुट† नगर में पधारे वहां एक स्तम्भ आपको दृष्टिगत हुआ। वह स्तम्भ न पत्थर न मिट्टी न काष्ट का था पर किसी औषधियों के लेप से बना हुआ था। सूरिजी ने प्रतिकूल औषधियों से स्तम्भ का एक विभाग खोला तो उसमें कई हजारों पुस्तकें भरी हुई थी जिसमें से एक पुस्तक लेकर उसका एक श्लोक पढ़ा तो उसमें सुवर्ण सिद्धि विद्या थी फिर दूसरे श्लोक को पढ़ा तो उसमें सरसव के दानों से सुभट बनाने की विद्या थी उन दोनों श्लोक को याद कर आगे तीसरे श्लोक को पढ़ना चाहते थे कि पुस्तक स्तम्भ में चली गई और स्तम्भ लेपमय था वैसा ही बन गया। केवल दो विद्या आचार्य श्री के हाथ लगी गई उसको स्मृति पूर्वक याद रखली।

आचार्य श्री विहार करते हुए पूर्व देश के कुंर्मार नगर‡ पधारे वहां देवपाल नामक राजा था। सूरिजी

---

* श्री सिद्धसेनसूरिश्चान्यदा बाह्य भुवि व्रजन्। दृष्टः श्रीविक्रमार्केण राज्ञा राजाध्वगेन सः ॥६१॥
अलक्ष्यं भूम्रणामं स भूपस्तस्मै च चक्रिवान्। तं धर्मलाभयामास गुरुरुच्चतरस्वरः ॥६२॥
तस्य दक्षतया तुष्टः प्रीतिदाने ददौनृपः। कोटिं हाटकटंकानां लेखकं पत्रकेऽलिखत् ॥६३॥
धर्मलाभ इति प्रोक्त दूरादुद्ध तपाणये। सूरये सिद्धसेनाय ददौ कोटिं नराधिपः ॥६४॥

† अन्यदा चित्रकूटाद्रौ विजहार मुनीश्वरः। गिरे र्नितंब एकत्र स्तंभमेकं ददर्शच ॥६७॥
नैव काष्टमयो ग्रावमयो न नचमृण्मयः। विमृशत्नौषध क्षोदमयं निरचनोच्च तम् ॥६८॥
तद्रसस्पर्शगंधादि निरीक्षाभिर्मतिर्बलात्। औषधानि परिज्ञाय तत्प्रत्यर्थीन्यमीमिलन् ॥६९॥
पुनः पुनर्निघृष्याथ स स्तंभे छिद्र मातनोत्। पुस्तकानां सहस्राणि तन्मध्ये च समैक्षत ॥७०॥
एकं पुस्तक मादाय पत्रमेकं ततः प्रभुः। विवृत्य वाचयामास तदीयानोलिमेकिकाम् ॥७१॥
सुवर्ण सिद्धियोगं स तत्र प्रैक्षत विस्मितः सर्षपैः सुभटानां च निष्पत्ति श्लोक एकके ॥७२॥

‡ सावधानः पुरो यावद्वाचयत्येष हर्षभूः। तत्पत्रं पुस्तकं चाथ जहे श्रीशासनामरी ॥७३॥
तादृकपूर्वगतग्रन्थवाचने नास्ति योग्यता। सत्वहानिर्यतः कालदौस्थ्यादेतादृशामपि ॥७४॥ प्र० च०

के उपदेश से वह जैन धर्म स्वीकार कर सूरिजी का परम भक्त बन गया*और बहुत आग्रह कर सूरिजी को अपने यहां रख हमेशा ज्ञानगोष्टी किया करता था। एक समय विजयवर्मा राजा सेना लेकर देवपाल पर चढ़ आया। राजा घबराया और सूरिजी के पास आकर अपनी दुःखगाथा कह सुनाई। सूरिजी ने सुवर्ण विद्या से सोना और सरसप विद्या से असंख्य सुभट बना दिये जिससे देवपाल ने विजयवर्मा को भगा दिया। इससे देवपाल ने सूरिजी को दिवाकर उपाधि से विभूषित किया। इतना ही नहीं पर राजा ने भक्तिवश होकर सूरिजी को छत्र, चँवर, पालकी और हस्ती तक देकर एक बादशाही ठाट सा बना दिया और आचार्य श्री अपने चारित्र को विस्मृत हो कर उन सब ठाट के साधनों को उपभोग में भी लेने लग गये।

जब आचार्य वृद्धवादी ने यह बात सुनी कि सिद्धसेन चारित्र से शिथिल होकर पालकी एवं हस्ती पर चढ़कर छत्र चँवरादि राजसी ठाट भोग रहा है तो सूरिजी को बड़ा भारी अफसोस हुआ कि सिद्धसेन जैसों का यह हाल है तो दूसरों का तो कहना ही क्या है। अतः अपने योग्य शिष्य का उद्धार करने के लिये स्वयं सूरिजी वेश बदल कर कुंर्मार नगर में आये और जिस समय सिद्धसेन सुखासन पर बैठ के बहुत लोगों के परिवार से राजमार्ग से निकल रहा था उस समय वृद्धवादीसूरि ने उसके पास जाकर एक गाथा कही।

> अणहुल्ली फूल्ल म तोड़हु मन आराम म मोडहू।
> मण कुसुमेहिं अचि निरंजणु हिंडह कांइं वणेण वणु॥

इस गाथा के अर्थ के लिये सिद्धसेन ने बहुत उपयोग लगाया पर गाथा के भाव को नहीं समझ सका अटम् पटम् अर्थ कहा पर बुढ़े ने मंजूर नहीं किया तब सिद्धसेन ने बूढ़े से कहा कि तुम इस गाथा का भाव कहो। बूढ़े ने गाथा का भाव कहते ही सिद्धसेन की सुरत ठिकाने आई और सोचा कि सिवाय मेरे गुरु के ऐसा विद्वान नहीं कि इस प्रकार की गाथा कह सके। तुरंत ही पालकी से उतर कर गुरु के चरणों में गिर पड़ा और अपने अपराध की क्षमा मांगी। गुरु महाराज ने सिद्धसेन को यथायोग्य प्रायश्चित देकर स्थिर किया और गच्छ का भार सिद्धसेन को सौंप कर आप अनशन एवं समाधि के साथ स्वर्ग धाम को पधार गये।

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर शुरू से संस्कृत के अभ्यासी एवं अनुभवी थे। शायद प्राकृत एवं मागधी भाषा उनको अच्छी नहीं लगी हो या इनके गूढ़ रहस्य को समझने में कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ा हो या उस जमाने की जनता पर विशेष उपकार की भावना हो एवं किसी भी कारण से प्राकृत भाषा को प्रामीण भाषा समझ कर जैनागमों को संस्कृत में बना देने के इरादे से श्रीसंघ को एकत्र कर अपने मनोगत भाव श्रीसंघ के सामने प्रदर्शित किये कि आप सम्मति दें तो मैं इन सब आगमों को संस्कृत में

---

* स पूर्वदेशपर्यन्ते व्यहार्षीच्च परेद्यवि। कर्मारनगरं प्राप विद्यायुग्गुनः सुधीः ॥ [illegible] ॥
देवपाल नरेन्द्रोऽस्ति तत्र विख्यात विक्रमः। श्रीसिद्धसेनसूरिं स नं [illegible] ॥ [illegible] ॥
ततो दिवाकर इति ख्यातनाख्या भवतु प्रभोः। ततः प्रभृति गीतः श्री सिद्धसेन दिवाकरः ॥ [illegible] ॥
[illegible] सुखासन [illegible] ॥ [illegible] ॥
इति श्रुत्वा गुरुर्वृद्धवादी सूरिर्निजगुरुः। [illegible] ॥ [illegible] ॥
अणहुल्लों फुल्ल म तोडहु मन आरामा म मोडहु। मणकुसुमेहिं अच्चि निरंजणु हिंडहु [illegible]

यना& दूं। सूरिजी के वचन सुनकर श्री संघ सख्त नाराज हुआ और कहा कि तीर्थंकर सर्वज्ञ थे और गणधर भी जिनतुल्य ही थे उन्होंने चौदह पूर्व का ज्ञान संस्कृत में और एकादशांग का ज्ञान प्राकृत भाषा में बनाया है इसमें उन्हों की जन कल्याण की भावना ही मुख्य थी जैसे कहा है कि:—

वालस्त्रीमूढमूर्खादि जनानुगहणाय सः। प्राकृतां तामिहाकार्षीदनास्थात्र कथंहिवः ॥

अतः तीर्थंकर गणधरों के रचे हुए आगमों का अनादर रूप महान् आशातना का प्रायश्चित लेना चाहिये। कारण इस प्रकार मूलअंग सूत्रों को बदल दिए जांय तो फिर जिन वचनों पर विश्वास ही क्या रहेगा इत्यादि।

सत्यग्राही सिद्धसेन दिवाकर जी की समझ में आ गया कि मेरी ओर से आशातना अवश्य हुई है। श्रीसंघ से कहा कि जो दंड संघ दे वह मुझे मंजूर है। श्रीसंघ ने विनय के साथ कहा कि दंड देने का हमें क्या अधिकार है। हम तो आपकी आज्ञा के पालन करने वाले हैं। हाँ, दंड स्थविर भगवान दे सकते हैं। स्थविरों से याचना करने पर उन्होंने विचारणापूर्वक दशवा पारंचिक प्रायश्चित दिया कि इस प्रायश्चित की अवधि बारह वर्ष तक है परन्तु आप किसी बड़े राजादि को प्रतिबोध कर जैन धर्म की प्रभावना करें तो श्रीसंघ को अधिकार है कि इसमें रियायत भी कर सके। आत्मकल्याण की भावना वाले सूरिजी ने उस प्रायश्चित को स्वीकार कर लिया और गच्छ का भार अन्य योग्य स्थविर को सौंप कर आप गच्छ से अलग हो गये और ओघा मुँहपति गुप्त रख अवधूत के वेष में संयम की रक्षा करते हुये भ्रमण करने लग गये।

इस भ्रमण में दिवाकरजी ने ७ वर्ष व्यतीत कर दिये बाद एक समय उज्जैनी नगर में गये। राजा के द्वारपाल को कहा कि तू राजा के पास जाकर निवेदन कर कि एक अवधूत हाथ में चार श्लोक लेकर आया है और वह आपसे मिलना चाहता है अतः आपकी आज्ञा हो तो अन्दर आने दिया जाय। राजा ने आज्ञा देदी। दिवाकर जी राजा के पास आये और निम्न लिखित श्लोकों द्वारा राजा की स्तुति की।

अपूर्वेयं धनुर्विद्या भवता शिक्षिता कुतः। मार्गणौघः समभ्येति गुणो याति दिगन्तरम् ॥१॥
सरस्वती स्थिता वक्त्रे लक्ष्मीः करसरोरुहे। कीर्तिः किं कुपिता राजन्! येन देशान्तरं गता ॥२॥
कीर्तिस्ते जात जाड्येव चतुरम्भोधि मज्जनात्। आतपाय धरानाथ! गता मार्तण्डमण्डलम् ॥३॥
सर्वदा सर्वदोऽसीति मिथ्या संस्तूयसे जनैः। नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः ॥४॥

इन श्लोकों को सुनकर राजा मंत्रमुग्ध बन गया और बड़े ही सम्मान के साथ अपनी सभा में रक्खा और हमेशा ज्ञानगोष्ठि करता रहा। सब पण्डितों में सिद्धसेन का आसन ऊंचा समझा जाता था।

अमी पानकुरंकाभाः सप्तापि जलराशयः। यद्यशो राजहंसस्य पंजरं भुवनत्रयम् ॥ १ ॥
भयमेकमनेकेभ्यः शत्रुभ्यो विधिवत्सदा। ददासि तच्चते नास्ति राजंश्चित्रमिदंमहत् ॥ २ ॥

& अन्यदा लोकवाक्येन जातिप्रत्ययतस्तथा। आबाल्यात्संस्कृताभ्यासी कर्मदोषात्प्रबोधितः ॥१०९॥
सिद्धान्तं संस्कृतं कर्तुमिच्छन्संघं व्यजिज्ञपत्। प्राकृते केवलज्ञानिभाषितेऽपि निरादरः ॥११०॥
बालस्त्रीमूढमूर्खादिजनानुग्रहणाय सः। प्राकृतां तामिहाकार्षीदनास्थात्र कथं हि वः ॥१११॥
इति राज्ञा स सन्मानमुक्तोऽभ्यर्णे स्थितो यदा। तेन साकं ययौ द्रष्टुः स कुडंगेश्वरे कृती ॥१३१॥
अथ्येति पुनरासीनः शिव लिङ्गस्य स प्रभुः। उदाजह्रे स्तुतिश्लोकान् तार स्वर करम्बदा ॥ १४॥ प्र० च०

एक समय राजा विक्रमादित्य कुंडगेश्वर महादेव के दर्शनार्थ जा रहा था। दिवाकरजी को भी साथ चलने को कहा, इसपर दिवाकरजी भी साथ हो गये। राजा ने महादेव को नमस्कार किया पर दिवाकरजी बिना नमस्कार किये ही खड़े रहे। राजा ने कहा कि आप जाति के ब्राह्मण और इतने विद्वान होते हुये भी देव को नमस्कार नहीं करते हो इसका क्या कारण है ?

दिवाकरजी—मेरे नमस्कार को सहन करने वाला देव दूसरा ही है। यह देव मेरे नमस्कार को सहन नहीं कर सकेगा।

राजा ने इसका कारण धर्म भेद समझ कर पुनः कहा कि हम देखते हैं आप नमस्कार करें फिर यह देव कैसे सहन नहीं करेगा ?

दिवाकरजी—राजन् ! आप हठ न करें मैं ठीक कहता हूँ। यदि मैं नमस्कार करूंगा तो आपके लिंग को भी आघात पहुँचेगा ?

राजा—खैर। कुछ भी हो आपतो महादेव को नमस्कार कीजिये ?

दिवाकरजी राजा के आग्रह से न्यायावतार* सूत्र की स्तुति और कल्याण मन्दिर स्तोत्र बनाकर देव की स्तुति करने लगे तो महादेव के लिंग के अन्दर से धुँआ निकलना शुरु हुआ जिसको देख लोग कहने लगे कि शिवजी का तीसरा नेत्र प्रगट हुआ है। शायद् शिवजी का अपमान करनेवाले को जलाकर भस्म कर डालेगा। जब कल्याण मन्दिर का तेरहवां श्लोक उच्चारण किया कि धरणेन्द्र साक्षात् आया और महादेव के लिंग की नींबू की भांति चार फांके होकर अन्दर से आवन्ति पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रगट होगई जिसको देख राजा प्रजा उपस्थित लोगों को बड़ा ही आश्चार्य हुआ। राजा ने इसका कारण पूछा तो दिवाकरजी ने कहा कि भद्रासेठानी के पुत्र आवन्तिकुमार ने बत्तीस रमणिये और करोंड़ों द्रव्य त्याग कर जैन दीक्षाली और उसके पुत्रने इस स्थान पर पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित की जिसको आवन्तिपार्श्वनाथ कहते थे पर ब्राह्मणों की प्रबलता में पर्श्वनाथ की मूर्ति दबा कर ऊपर लिंग स्थापित कर दिया वही आज आपके आग्रह से प्रगट हुआ है इस चमत्कारी घटना को देख कर राजा ने जैनधर्म को स्वीकार कर लिया और कट्टर जैन बन गया। 'यथा राजास्तथा प्रजा' और भी बहुत से लोगों ने जैनधर्म को स्वीकार किया जिसमें जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई। इस प्रभाव के कारण श्रीसंघ ने शेष ५ वर्ष माफकर दिवाकरजी को श्रीसंघ में लेकर पुनः गच्छ का भार उनके सुपुर्द कर दिया।

राजा विक्रम ने सूरिजी के उपदेश से श्री शत्रुंजय तीर्थ का एक विराट् संघ निकाला जिसमें हजारों साधु साध्वियों और लाखों गृहस्थ संघ में साथ थे। इस संघ का जैनग्रन्थो में बड़े विस्तार से वर्णन किया है।

* न्यायावतार सूत्रंच श्रीं वीरस्तुति मप्यथ। द्वात्रिंशच्छ्लोकमानाश्च त्रिंशदन्याः स्तुतीरपि ॥१३७॥
ततश्चतुश्चत्वारिंशद्वृत्तां स्तुतिमसौ जगौ। कल्याणमन्दिरेत्यादि विख्यातां जिनशासने ॥१३८॥
अस्य चैकादशं वृत्तं पठतोऽस्य समाययौ। धरणेंद्रो दृढा भक्तिं सान्निध्यं तादृशां [illegible] ॥१३९॥
[illegible] धूमस्तत्रस्तेन निर्ययौ। [illegible] ॥१४०॥
[illegible] लोको [illegible] दिनो [illegible]। [illegible] ॥१४१॥
[illegible] निर्ययौ ! [illegible] ॥१४२॥
[illegible] पुरतो [illegible]। [illegible] श्रीपार्श्वनाथस्य प्रतिमा [illegible] ॥१४३॥

आचार्य दिवाकरजी एक समय ऊंकार नगर में पधारे वहाँ के श्री संघ ने आपका बड़ा ही समारोह के साथ स्वागत किया। एक समय वहां के श्रीसंघ ने सूरिजी से अर्ज की कि हे प्रभो! हमारी इच्छा एवं भक्ति होने पर भी मिथ्यात्वी लोग हमको जैन मंदिर नहीं बनाने देते। पूज्यवर! आपकी मौजूदगी में हम लोगों की आशा सफल न हो यह एक अफसोस की बात है। सूरिजी ने कहा ठीक मैं प्रयत्न करूंगा। सूरिजी वहां से चल कर पुनः उज्जैन पधारे। राजा विक्रम को अपने ज्ञान से इतना प्रसन्न किया कि उसने कहा कि पूज्यवर! आज्ञा फरमाओं कि मैं आपकी क्या सेवा करूं? सूरिजी ने कहा हमारी क्या सेवा करनी है यदि आपकी इच्छा हो तो ऊँकार नगर में शिवमन्दिर से उचाई में एक जैन मन्दिर बना कर पुन्योपार्जन करावें। राजा ने सूरिजी की आज्ञा को शिरोधार्य्य कर बिना बिलम्ब तत्काल ही जैन मन्दिर बना दिया और सूरिजी के करकमलों से उस मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई अतः ऊंकारपुर के श्रीसंघ के मनोरथ सफल हुए।

सूरिजी महाराज वहां से विहार कर भरोंच नगर की ओर जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने कई गोपालों को धर्म उपदेश दिये जैसे कि वृद्धवादी आचार्यों ने गवालों की भाषा में उपदेश दिया था। उसकी स्मृति के लिये गोपालों ने वहां पर तालारसिक नामका ग्राम बसा दिया इस प्रकार धर्मोन्नति करते हुये सूरिजी महाराज भरोंच पधारे। उस समय भरोंच में राजा बलमित्र का पुत्र धनंजय राज करता था। सूरिजी महाराज का परम भक्त था और सूरिजी महाराज का नगर प्रवेश महोत्सव बड़े ही समारोह से किया।

एक समय भरोंच पर किसी दुश्मन राजा की सेना ने आक्रमण किया दुश्मनों की सेना इतनी विशाल संख्या में थी कि धनंजय राजा घबरा गया। उस ने आकर सूरिजी से सब हाल निवेदन किया। सूरिजी थे विद्यावली उन्होंने सरसव प्रयोग से इतने सुभट बना दिये कि उन्होंने क्षण भर में ही दुश्मनों की सेना को भगा दिया तदनन्तर राजा धनंजय ने सूरिजी के पास में दीक्षा लेली। इसप्रकार शासन की प्रभावना करते हुये दक्षिण प्रान्त के प्रतिष्ठनपुर नगर में पधारे वहां के राजा प्रजा ने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। वहां धर्मोपदेश देते हुये सूरिजी को ज्ञात हुआ कि मेरा आयुष्य अल्प है। अतः आपने अपने योग्य शिष्य को सूरिपद पर प्रतिष्ठित कर आप अनशन एवं समाधिपूर्वक स्वर्गवास किया।

वहां का वैतालिक नाम का चारण फिरता हुआ उज्जैन नगरी में आया वहां पर सिद्धसेनदिवाकर की बहिन सिद्ध श्री साध्वी ने उस वैतालिक चारण से अपने भाई सिद्धसेनदिवाकरजी के समाचार पूंछे। इसके जवाब में निरानन्द होकर चरण ने श्लोक का पूर्वार्द्ध कहा।

'स्फुरन्ति वादि खद्योताः साम्प्रतं दक्षिणापथे'

अर्थात् इस समय दक्षिण देश में वादीरूपी खद्योत स्फुरायमान हो रहे हैं। इस पर साध्वी सिद्धी श्री ने अपने अनुमान से श्लोक का उत्तरार्द्ध कहा कि।

"नूनमस्तंगतो वादी, सिद्धसेनो दिवाकरः"

अर्थात् सिद्धसेन दिवाकर सूरि का स्वर्गवास हो गया होगा तभी तो वादी स्फुरायमान हो रहे हैं। वैतालिक को पूछने से साध्वी का अनुमान ठीक निकला। साध्वी ने उसी दिन से अनशन कर दिया और रत्नत्रिय की आराधना करती हुई स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया।

इस प्रकार विद्याधर वंश में पादालिप्तसूरि, वृद्धवादीसूरि एवं सिद्धसेन दिवाकर सूरि प्रभाविक आचार्य हुये। प्रबन्धकार फरमाते हैं कि—विक्रम सं० १५० के बाद श्रावक मिलकर विहार तथा गिरनार पर्वत के मुकट समान श्रीनेमिनाथ मन्दिर का जीर्णोद्धार कराते हुये बरसात के कारण नष्ट हुआ एकमठ के अंदर मिली हुई प्रशस्ति या कई प्राचीन विद्वानों के ग्रन्थों से संग्रह करके इन महापुरुषों का चारित्र लिखा।

इति श्री आचार्य श्री वृद्धवादी एवं सिद्धसेन दिवाकर सूरि का सम्बन्ध।

आचार्य श्री जीवदेवसूरि

लाटदेश के भूषण समान वायट नाम का एक प्राचीन नगर था। यों तो वह नगर ही धन धान्य से परिपूर्ण था पर उस नगर में एक धर्मदेव नामक श्रेष्ठि तो अपार सम्पत्ति का ही मालिक था तथा आपकी गृहशृंगार स्त्री का नाम शीलवंती था और आपके महीधर एवं महीपाल नामक दो होनहार पुत्र रत्न भी थे फिर तो श्रेष्ठिवर्य्य की बराबरी कौन कर सकता था। महीधर पिता की सेवा में रहता था तब महीपाल बचपन से ही देशाटन किया करता था।

वायट नगर में एक जिनदत्तसूरि नामक महाप्रभाविक आचार्य विराजते थे। श्रेष्ठिपुत्र महीधर सूरिजी के पास आया जाया करता था और कुछ ज्ञानाभ्यास भी किया करता था। जिनदत्तसूरि ने महीधर को होनहार जान कर धर्मोपदेश दिया और संसार की असारता बतला कर उनके माता पिता की आज्ञा से उसे जैन दीक्षा दे दी। शास्त्रों का अध्ययन करवा कर जब महीधर सर्वगुण सम्पन्न हुआ तो उनको आचार्यपद अर्पण कर आपका नाम रसीलसूरि रख दिया।

उधर महीपाल ने राजगृह नगर में श्रुतकीर्ति दिगम्बराचार्य के पास दीक्षा धारण कर ज्ञानाभ्यास किया। श्रुतकीर्ति आचार्य ने महीपाल को योग्य जानकर अप्रतिचक्रा और परकायप्रवेश नाम की दो विद्यायें देकर अपने पट्ट पर आचार्य बनाकर उसका नाम सुवर्णकीर्ति रख दिया।

सेठानी शीलवंती ने व्यापारियों द्वारा सुना कि महीपाल ने दीक्षा ले ली और राजगृह नगर की ओर विचरता है। अतः माता पुत्र के स्नेह के कारण राजगृह की ओर गई। पुत्र को दिगम्बर अवस्था में देखकर माता ने कहा मुनि आप दो भाई दो मत में दीक्षित हुए तो अब मुझे कौनसा धर्म पालन करना चाहिये? अतः आप वायट की तरफ पधार कर दोनों भाई एक निर्णय कर लो कि हम लोग भी उसी धर्म का अनुसरण करें। सुवर्णकीर्ति ने माता का कहना स्वीकार कर वायट की तरफ विहार किया और क्रमशः वायटनगर पधार कर रसीलसूरि से मिले और वार्तालाप एवं ज्ञानगोष्टी करने से श्वेताम्बर धर्म प्राचीन एवं शास्त्रविहित होने से सुवर्णकीर्ति ने दिगम्बर मत का त्याग कर श्वेताम्बर धर्म स्वीकार कर लिया। रसील सूरि ने सुवर्णकीर्ति को श्वेताम्बरीय दीक्षा देकर अपने पट्ट पर आचार्य बना कर आपका नाम जीवदेवसूरि रख दिया।

एक समय जीवदेवसूरि का साधु व्याख्यान दे रहा था। उस सभा में एक योगी आया और आसन लगाकर व्याख्यान में बैठ गया। योगी ने अपनी विद्या से व्याख्यानदाता मुनि की जबान बन्द करदी। जब

आचार्य जीवदेवसूरि को मालूम हुआ तो आपने ऐसी विद्या चलाई कि साधु तो व्याख्यान देता ही रहा किंतु उस योगी का आसन भूमि से चिपट गया। अतः वह उठने के लिये समरथ नहीं हुआ। उसने आचार्य श्री से क्षमा की याचना की अतः सूरिजी ने उसे मुक्त कर दिया।*

जीवदेवसूरि ने अपने साधु साध्वियों को उत्तर दिशा† की ओर जाने की मनाई कर दी तथापि एक दिन दो साध्वियां उत्तर दिशा में थडिला के कारण चली गई। जब वे वापिस आ रही थी उस समय योगी तालाब की पाल पर बैठा हुआ था। उस दुष्ट चित्तवाले योगी ने लघु साध्वी पर लम्बा हाथ कर ऐसा चूर्ण डाला कि साध्वी योगी के वश होकर वहां ही बैठ गई। वृद्ध साध्वी ने बहुत समझाई पर वह तो चूर्ण के कारण परवश थी। आखिर वृद्ध साध्वी ने जाकर जीवदेवसूरि से कहा। उन्होंने चार श्रावकों को बुला कर घास का एक पुतला बना कर दे दिया और उसका सब हाल कह सुनाया। श्रावकों ने उस घास

---

*धर्मदेवः श्रियां धर्मश्रेष्ठि तत्रास्ति विश्रुतः। साक्षाद्धर्म इव न्यायार्जित द्रव्य प्रदानतः ॥१०॥
शीलभूस्तस्य कान्तास्ति नाम्ना शीलवती यथा। आनन्दिवचसा नित्यं जीयन्ते चन्द्रचन्दनाः ॥११॥
तयोः पुत्रावुभावास्तां श्रेयः कर्मसु कर्मठौ। महीधर महीपालाभिधाभ्यां विश्रुतावितिं ॥१२॥
तत्रास्ति जंगमं तीर्थं जिनदत्तः प्रभुः पुराः। संसार वारिधेः सेतुः केतुः कामाद्यरिव्रजे ॥१४॥
अन्यदा तं प्रभुं नत्वा भवोद्विग्नो महीधरः। बंधोर्विरहवैराग्यात् प्रार्थयज्जैन संगमम् ॥१६॥
योग्यं विज्ञाय तं तस्य पितरौ परिपृच्छय च। प्रव्रज्यां प्रददौ सूरिरभाग्या लभ्यसेवनः ॥१७॥
महीपालस्तथा तस्य बन्धू राजगृहे पुरे। प्रापदिगम्बराचार्यं श्रुतकीर्तिमिति श्रुतम् ॥२१॥
प्रतिबोध्य मतं तस्य ददौ नाम च स प्रभुः। सुवर्णकीर्तिरिति तं निजांचाशिक्षयत्क्रियाम् ॥२२॥
श्रुतकीर्ति गुरुस्तस्यान्यदा निजपदं ददौ। श्रीमदप्रतिचक्राया विद्यां च धरणार्चिताम् ॥२३॥
परकायप्रवेशस्य कलां चासुलभां कलौ। भाग्यसिद्धां प्रभुः प्रदात्तादृग्योगो हि तादृशः ॥२४॥
आचार्यौ किल सौदर्यौ श्वेताम्बर दिगम्बरौ। स्वस्वाचारं तथा तत्वविचारं प्रोचतुः स्फुटम् ॥३३॥
श्रीरासीलप्रभोः पार्श्वे दीक्षाशिक्षाक्रमोदयः। जैनागमरहस्यानि जानन् गीतार्थतां ययौ ॥४५॥
अन्यदा सद्गुरुर्योग्यं बन्धु पट्टे न्यवीविशत्। श्रीजीवदेव इत्याख्याविख्यातः सद्गुरुर्बभौ ॥४६॥
वाचकस्य रसज्ञां चास्तम्भयन् मौनवान् स च। अभूत्तदं (दिं) गितैर्ज्ञातं गुरुणा योगिकर्म तत् ॥५२॥
स्वशक्त्या वाचने शक्तं स्वं विनेयं विधाय च। अमुंचत्समये व्याख्यामव्याकुलमनाः प्रभुः ॥५३॥
तस्य पर्यस्तिकाभूमावासनं वज्रलेपवत्। तस्थौ यथा तथा तस्य प्रस्तरेणेव निर्मितम् ॥५४॥
ततोऽवददसौ कृत्वा करसंपुटयोजनम्। अलीकप्रणिपातेन महाराज विमुंच माम् ॥५५॥
अपि श्रद्धालुभिः कैश्चिद्विज्ञप्तः कृपया प्रभुः। मुक्तोऽगात्तेन कः शनैः कुंजरेणेवभञ्जने ॥५६॥

†प्रभुर्न्यषेधयत्तत्र साधुसाध्वीकदम्बकम्। उदीच्यां दिशि गच्छन्तं स्वीकृतायां कुयोगिना ॥५७॥
धर्मकर्मनियोगेन साध्वीयुगमगात्ततः। तत्र कासारसेतौ च तिष्ठन् योगी ददर्श तत् ॥५८॥
अथ सन्मुखमागत्य लाघवालाघवाश्रयः। एकस्या मूर्ध्नि चूर्णंच किंचिच्चिक्षेप निस्त्रपः ॥५९॥
तस्य सा पृष्ठतो गत्वा पार्श्वे निविविशे स (त) तः। वृद्धयोक्ता न चायाति विदष्टं पृच्छलंघनम् ॥६०॥
ततः कुशमयं तत्र पुत्रकं ते समार्पयन्। चतुर्णां श्रावकाणां च शिक्षिता तेभ्यो ददुः ॥६२॥
निर्गत्य च बहिश्चैत्यात्छित्वा तस्य कनिष्ठिकाम्। तत्सार्वंगाः परं तस्य ददृशुर्न्ते निरङ्गलिम् ॥६३॥
मुंच साध्वी न चेपातं ह्यस्यामस्तव मस्तकम्। न जानामि परं मे वा सर्वंतरसेव ॥६७॥प्र० च०

के पुतले की कनिष्ठका अंगुली काटी तो योगी की अंगुली कट गई जब श्रावकों ने योगी के पास जाकर [illegible] कटी हुई अंगुली का हाल पूछा तब उसने कहा कि यह तो अकस्मात् हुआ है। श्रावकों ने कहा कि [illegible] दुष्ट ! इस सती साध्वी को जल्दी छोड़ दे वरना तेरी कुशलता नहीं है। योगी ने न माना तब पुतले की दूसरी अंगुली काट डाली, तुरत ही योगी की दूसरी अंगुली कट गई। श्रावकों ने कहा कि अभी [illegible] है मान जा नहीं तो इस पुतले का मस्तक काट दिया जायगा। योगी ने डर कर कहा कि साध्वी के [illegible] पर पानी छिटको। बस, पानी छिड़कते ही साध्वी सावधान हो अपनी गुरुणी के पास आ गई और योगी वहां से भाग कर देशान्तर में चला गया। साध्वी को प्रायश्चित दे शुद्ध कर समुदाय में ले ली। इस प्रकार जीवदेवसूरि ने अनेक वादियों को अपने आत्मिक चमत्कार बतला कर जैनधर्म की प्रभावना की।

राजा विक्रम उज्जैन में राज करता था। ‡उस समय पृथ्वी का ऋण चुकाने के लिए राजा ने [illegible] आदमियों को प्रत्येक ग्राम नगर में भेजा था उसमें एक लींबा नामक श्रेष्टि को वायट नगर में भेजा। लिंबा वायट में आया तो वहां श्रीमहावीर का मंदिर जीर्ण हुआ देखा। लिंबा ने उस मंदिर का जीर्णोद्धार [illegible] कर विक्रम संवत् के सातवें वर्ष में सुवर्ण कलश एवं ध्वज दंड सहित महावीर मंदिर की प्रतिष्ठा आचार्य जीवदेवसूरि से करवाई। ग्रन्थकार लिखते हैं कि वह मंदिर आज भी (वि० सं० १६३४) विद्यमान है।

महास्थान वायट नगर में अपार धन का धनी एक लल्ल नामक सेठ रहता था‡। उसने सूर्य-ग्रहण में एक लक्ष मुद्राऐं धर्मार्थ निकाली थीं अतः ब्राह्मणों को आमंत्रण कर एक विशाल यज्ञ करना प्रारंभ किया। अग्नि का कुण्ड जल रहा था। ब्राह्मण वेद के पाठोच्चारण कर रहे थे। ऊपर एक वृक्ष पर महाकाय वाला कृष्ण सर्प था। धूम्र से चक्र खाकर नीचे गिरा तो ब्राह्मणों ने कहा कि बलि के लिये स्वयं नागेन्द्र आ गया है। इस प्रकार कह कर उस सर्प को अग्निकुण्ड में डाल दिया जिसको तड़फड़ाता देख कर लल्ल सेठ ने कहा अरे यह कैसा दुष्कर्म कि जीते हुये पंचेन्द्रिय जीव को अग्नि में डाल दिया ! ब्राह्मणों ने कहा सेठ चिन्ता न करो मंत्रों द्वारा इसको स्वर्ग पहुँचा देंगे यदि तुमको करना है तो एक सोने का सर्प बना कर ब्राह्मणों को भेंट कर दो। लल्ल ने कहा कि एक तो सर्प मर गया है और इसके लिए सोने का सर्प बना कर [illegible] तो फिर उसके लिए और सर्प बनाना पड़ेगा ये तो महान् दुष्कर्म है। अतः सेठ ने यज्ञ-स्तम्भ को उखाड़ दिया, कुण्ड को मिट्टी से पुरा दिया, ब्राह्मणों को विसर्जन कर दिया और सच्चे धर्म की शोध में संलग्न हो गया।

‡इतः श्री विक्रमादित्यः शास्त्यवन्तीं नराधिपः। अनृणां पृथिवीं कुर्वन् प्रवर्तयति वत्सरम् ॥ [illegible]
वायटे प्रेषितोऽमात्यो लिम्बाख्यस्तेन भूभुजा। जनानृण्याय जीर्णं श्रीमहावीरधाम तत् ॥ [illegible]
उद्धार स्ववंशेन [illegible] सह मन्दिरम्। अर्हतस्तत्र सौवर्णकुम्भदण्डध्वजान्वितम् ॥ [illegible]
संवत्सरे प्रवृत्ते स पट्सु वर्षेषु पूर्वतः। गतेषु सप्तमस्यान्तः प्रतिष्ठां ध्वजकुम्भयोः ॥ [illegible]
श्री जीवदेवसूरिभ्यस्तेभ्यस्तत्र व्यधापयत्। अद्याप्यभङ्गं तत्तीर्थमस्मद्गिरः [illegible] ॥ [illegible]
[illegible] महास्थाने प्रधानो नैगमव्रजे। दारिद्र्यारिजये [illegible] लल्लः [illegible] ॥ [illegible]
तत्र [illegible] ॥ [illegible]
[illegible] आहुतीः। [illegible] ॥ [illegible]
[illegible] ॥ [illegible]
[illegible] ॥ [illegible]
[illegible]

[श्री जैन ग्रन्थ

एक दिन लल्ल के घर पर दो जैनमुनि भिक्षा के लिये आयेॐतो सेठ ने अपने अनुचरों को कहा कि इन मुनियों के लिये अच्छा भोजन बनाकर प्रतिलाभ करो। मुनियों ने कहा सेठ हमारे लिये पृथ्वी, पानी, अग्नि आदि की हिंसा कर भोजन बनाया जाय वह भोजन हमारे काम में नहीं आता है इत्यादि।

सेठ ने सोचा अहो ये तो साक्षात् दया के अवतार ही दीखते हैं। अतः प्रार्थना की कि पूज्यवर! मैं धर्म का स्वरूप समझना चाहता हूँ कृपया आप मुझे धर्म का स्वरूप समझाइये? मुनियों ने कहा कि यदि आपको धर्म सुनना हो तो गुरु महाराज के पास आकर सुनो इत्यादि।

लल्ल सेठ आचार्य जीवदेवसूरि के पास आया और सूरिजी ने जैनधर्म का स्वरूप इस प्रकार सुनाया कि सेठने बड़ी खुशी के साथ जैनधर्म स्वीकार कर बारहव्रत धारण कर लिये।

सेठ ने कहा कि हे प्रभो! मैंने सूर्य्यग्रहण में एक लक्ष मुद्रिका दान में निकाली† जिसमें आधा द्रव्य तो यज्ञ में व्यय कर डाला शेष पचास हजार रहा है वह आप ग्रहन करे। सूरिजी ने कहा हम अकिंचन (निरपृही) है द्रव्य को छूते भी नहीं सो लेने की तो बात ही कहां रही। अगर तुम्हारा ऐसा ही आग्रह हो तो कल शाम को तेरे पास कोई भेंट आवे तो मुझे कहना मैं तुझे रास्ता बतला दूंगा। बस, सेठ अपने घर पर आया। दूसरे दिन शाम को एक सुथार अपूर्व पलंग लेकर आया जिसके पायों पर सुन्दर वृषभ कोरे हुए थे। सेठ गुरु वचन याद कर उसको गुरु महाराज के उपाश्रय ले गया। सूरिजी ने उसके दो वृषभों पर वासक्षेप डालकर कहा कि जहाँ ये वृषभ ठहर जांय वहां जिनमन्दिर बना देना वृषभ ठीक 'पीपलातक' स्थान में ठहरे। सेठ ने वहां जिन मंदिर बनाना शुरू कर दिया। जब मन्दिर का काम चल रहा था वहां एक अवधूत आया और उसने कहा कि यहां शल्य यानि स्त्री की हड्डियें हैं अतः उसे निकालने के बाद मन्दिर बनाना अच्छा है। हड्डियें निकालने का विचार किया तो रात्रि में सूरिजी के पास एक देवी ने आकर कहा कि मैं कन्या कुब्ज राजा की राजकन्या थी। म्लेच्छों के भय एवं शील की रक्षा के लिये कुँवा में पड़ कर मरगई थी अतः मेरी हड्डियें उस स्थान पर हैं जहां सेठ मन्दिर बना रहा है। पर उन हड्डियों को मैं निकालने नहीं दूंगी। हाँ, मेरे पास द्रव्य बहुत हैं चाहिये उतना द्रव्य मैं आपको दूंगी। सूरिजी ने उस देवी को मन्दिर में देवी के रूप में स्थापना करने की शर्त से संतुष्ट कर मन्दिर तैयार करवाया और श्रेष्टि लल्ल ने उस मन्दिर की खूब

ॐ ततः प्रभृत्यसौ धर्मदर्शनानि समीक्षते। भिक्षायै तद्गृहे प्राप्तं श्वेताम्बर मुनिद्वयम् ॥ ९२ ॥
अन्नं संस्कृत्य चारित्रपात्राणां यच्छत ध्रुवम्। अमीषां ते ततः प्रोचुर्नास्माकं कल्पते हितत् ॥ ९३ ॥
पृथिव्यापस्तथा वह्निर्वायुः सर्वो वनस्पतिः। त्रसाश्च यत्र हन्यन्ते कार्ये नस्तत्र गृह्यते ॥ ९४ ॥
अथ चिन्तयाति श्रेष्ठी वितृष्णत्वादहो अमी। निर्ममा निरहङ्काराः सदा शीतल चेतसः ॥ ९५ ॥
ततोऽवददसौ धर्मं निवेदयत मे स्फुटम्। ऊचतुस्तौ प्रभुश्चैत्ये स्थितस्तं कथयिष्यति ॥ ९६ ॥
इत्युक्त्वा गतयोः स्थानं स्वं तयोरपरेऽहनि। ययौ लल्लः प्रभोः पार्श्वे चक्रे धर्मानुयोजनम् ॥ ९७ ॥
श्रुत्वेति स प्रपेदेऽथ स सम्यक्त्वं प्रतावलीम्। धर्मं चतुर्विधं ज्ञात्वा समाचरदहर्निशम् ॥१०१॥
† आह चैष प्रभो किंचिदवधार यताधुना। द्रव्यलक्षस्य संकल्पो विहितः सूर्य पर्वणि ॥१०२॥
तदर्धं व्ययितं धर्माभासे वेदस्मृतीक्षिते। कथमर्द्धं मया शेषं व्ययनीयं तदादिश ॥१०३॥
मम चेतसि पूज्यानां दत्तं बहुफलं भवेत्। तद्गृहीत प्रभो यूयं यथेष्टं दत्त वादरात् ॥१०४॥
अथाहुर्गुरवो निष्किंचनानां नो धनादिके। स्पर्शोऽपि नोचितो यस्मादुपायं किन्तु संग्रह ॥१०५॥ प्र० च०

धामधूम से सूरिजी से प्रतिष्ठा करवाई । सूरिजी ने शर्त के अनुसार उस देवी को उस मन्दिर में सुवर्ण देवी के रूप में स्थापना करवा दी ।

जब से लल्ल सेठ ब्राह्मणधर्म को त्याग कर जैनधर्म में प्रविष्ट हुआ तब से ब्राह्मण जैनधर्म से द्वेष रखने लग गये थे॥ एक समय कई नादान ब्राह्मणों ने द्वेष के कारण एक कृश एवं मरण शरण हुई गाय को पकड़ कर महावीर चैत्य में लाकर गिरादी और बड़ी खुशी मनाई कि कल श्वेताम्बर जैनों की बड़ी भारी निन्दा और हँसी होगी । ठीक सुबह साधुओं ने देखा और गुरुजी से निवेदन किया । गुरुजी ने साधुओं को अंग रक्षक के तौर पर रख कर आप एकान्त में ध्यान किया । परकाया प्रवेश विद्या आपको पहिले से ही बरदायी थी । अतः गाय पैरों से चलकर मन्दिर के बाहर आई जिसको सब लोगों ने देखा और गाय तो चलती २ ब्रह्म भवन की ओर जाने लगी पुजारी मंदिर का द्वार खोलता ही था कि गाय ने अपने सींगों से पुजारी को गिरा कर ब्रह्मभवन के मूलगम्भार में जाकर पड़ गई जिसको देख सब ब्राह्मण भयभीत हो गए और विचार करने लगे कि यह क्या आफत आ गई ।

कई एकों ने कहा कि यह नादान ब्राह्मणों ने जैनचैत्य में गाय डाली थी उसका बदला है । कई एकों ने कहा कि अब क्या करना चाहिये ? कई एक ने कहा कि वीर चैत्य में श्वेताम्बरसूरि हैं उनकी शरण लो । कई एकों ने कहा कि ब्राह्मणों ने उन पर कई उपद्रव किये हैं क्या अब वे तुम्हारी सुनेंगे ? कई एकों ने कहा कि अगर तुम खुशामद करोगे तो वे दया के अवतार तुम्हारी अवश्य सुनेंगे इत्यादि ।

ब्राह्मण मिलकर सूरीश्वरजी के पास आये और खूब नम्रता एवं दीन स्वर से प्रार्थना की उस समय लल्ल सेठ भी वहाँ बैठा था उसने ब्राह्मणों को जो उपालम्भ देना था दिया और बाद में आपस में द्वेष न रख कर प्रेम भाव रखना इत्यादि ब्रांह्मणों से कई शर्तें करवा कर गुरु महाराज से प्रार्थना की । अतः गुरु महाराज ने अपने ध्यान बल से उस गाय को ब्रह्म मंदिर से बाहर निकाली । वह ग्राम के बाहर जाकर भूमि पर गिर गई तब जाकर ब्राह्मणों ने बड़ी खुशी के साथ सूरिजी की जयध्वनि से गगन को गुंजा दिया और जैन तथा ब्राह्मणों के बीच जो भेदभाव था वह मिटकर भ्रातृभाव उत्पन्न हो गया । इतना ही क्यों पर कई ब्राह्मण जैनधर्म को श्रद्धापूर्वक मानने लगे ।

इत्यादि जीवदेवसूरि जैनशासन में महा प्रभाविक आचार्य हुए हैं । जब आपने अपना आयुष्य नजदीक समझा तो अपने पट्ट पर योग्य साधू को आचार्य बनाकर कहा कि मेरी मृत्यु के साथ ही मेरी [illegible]

॥ अथ [illegible] द्विजा दृष्ट्वा जिनधर्मैकसादरम् । स्वभावं [illegible] दधुर्जैनेषु मत्सरम् ॥ १२८ ॥
[illegible] पापतः [illegible] गिरा । आलोच्य सुरभिं कांचिदंचन्मृत्युदशास्थिताम् ॥ १३१ ॥
[illegible] तां मृतां कृशाम् । श्रीमहावीरचैत्यान्तर्मायेनायन् [illegible] ॥ १३२ ॥
[illegible] बहिः [illegible] । ते प्राहुरत्र विज्ञेयं जैनानां वैभवं महत् ॥ १३३ ॥
[illegible] श्वेतांबर [illegible] । दृश्यं च कौतुकादिदानीं [illegible] ॥ १३४ ॥
[illegible] पट्टमाश्रितौ । [illegible] ध्यानं [illegible] ॥ १३८ ॥
[illegible] धेनुः स्वयमुत्थिता । [illegible] ॥ १३९ ॥
[illegible] । [illegible] सुरभिर्ब्रह्मभवने [illegible] ॥

का चूर्ण चूर्ण कर डालना † कारण, मेरे से पराजित हुए जो योगी है उसके पास एक खोपड़ी तो है और दूसरी मेरी खोपड़ी मिल गई तो वह बड़ा-बड़ा अनर्थ कर डालेगा। अतः मेरी खोपड़ी उसके हाथ नहीं लगनी चाहिये। तुम यह भी विचार नहीं करना कि गुरु महाराज के मृत शरीर की आशातना कैसे करें ? कारण इसमें जैनशासन का भावी नुकसान है अतः मेरा कहना ध्यान में रखना।

आचार्य श्री अनशन और आराधना कर स्वर्गवासी हुये तो शिष्यों ने उनकी खोपड़ी का चूर्ण कर डाला। बाद श्रीसंघ ने महोत्सव पूर्वक सूरिजी के शरीर को सेविका में बैठा कर स्मशान की ओर ले जा रहे थे तो योगी ने पूछा कि आज किस मुनि का स्वर्गवास हुआ है ? किसी ब्राह्मण ने कहा जीवदेवसूरि का। इस पर योगी ने कृत्रिम शोक दर्शाते हुए गुरु महाराज के मुख देखने के लिये सेविका नीचे रखाई पर खोपड़ी का चूरा चूरा हुआ देख कर योगी ने निराश हो कर कहा कि राजा विक्रय की खोपड़ी मेरे पास है पर मैं अभागा हूँ कि जीवदेवसूरि की खोपड़ी मेरे हाथ नहीं लगी। बाद योगी ने अपने विद्यावल से मलिया-गिरि का सरस चन्दन ला कर गुरु महाराज के निर्जीव कलेवर का अग्नि-संस्कार किया।

आचार्य जीवदेवसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुए और आपने अन्तिम आराधना कर वैमानिक देवताओं में जाकर देवता सम्बन्धी सुखों का अनुभव किया।

आचार्य जीवदेवसूरि के साथ घटी हुई गाय की घटना को आधुनिक खरतरों ने अपने आचार्य जिनदत्तसूरि के साथ घटित कर जिनदत्तसूरि को चमत्कारिक बतलाने की व्यर्था कल्पना की है। पर कहाँ

---

† खेटयन्तं वहिः शृङ्गयुगेनामुं प्रपात्य च। गर्भागारे प्रविश्यासौ ब्रह्ममूर्तेः पुरोऽपतत् ॥ १४३ ॥
अपरे प्राहुरेको न उपायो व्यसने गुरौ। मृगेंद्रविक्रमं श्वेतांवरं चैत्यान्तरस्थितम् ॥ १५० ॥
सूरो श्रुत्वेति तूष्णी के लल्लः फुल्लयशा जगौ। मद्विज्ञसिं द्विजा यूयमेकां शृणुत सूनृताम् ॥ १६१ ॥
विरक्तोऽहं भवद्धर्मादृष्ट्वा जीववदं ततः। अस्मिन् धर्म्मे दयामूले लग्नो ज्ञातास्वकाक्षनु ॥ १६२ ॥
जैनेष्वसूयया यूयमुपद्रवपरंपराम्। विधत्त प्रतिमल्लः कस्तत्र वः स्वल्पशम्रवः ॥ १६३ ॥
मर्यादामिह कांचिश्चेत् यूयं दर्शयत स्थिराम्। तदहं पूज्यपादेभ्यः किंचित्प्रतिविधापये ॥ १६४ ॥
अथ प्रोचुः प्रधानास्ते त्वं युक्तं प्रोक्तवानसि। समः कः क्षमयामीषां दुर्वारेऽस्मदुपद्रवे ॥ १६५ ॥
स्वरुच्या सांप्रतं जैनधर्मे सततमुत्सवान्। कुर्वतां धार्मिकाणां न कोपि विघ्नान् करिष्यति ॥ १६६ ॥
अस्तु च प्रथमो घृष्टः श्रीवीरव्रतिनां तथा। सदान्तरं न कर्त्तव्यं भूमिदेवैरतः परम् ॥ १६७ ॥
प्रतिष्ठितो न आचार्य्यः सौवर्णमुपवीतकम्। परिधाप्याभिषेक्तव्यो ब्राह्मणैर्ब्रह्ममन्दिरे ॥ १६८ ॥
इत्यभ्युपगते तैश्च लल्लः सद्गुरुपादयोः। निवेश्य मौलिमाचख्यौ महास्थानं समुद्धर ॥ १६९ ॥
श्री जीवदेव सूरिश्च प्राहोपशमवर्म्मितः। कालत्रयेपि नास्माकं रोषतोषौ जनद्विषौ ॥ १७० ॥
तस्थुर्मुहूर्त्तमात्रेण तावद्गौर्ब्रह्मवेश्मतः। उत्थाय चरणप्रागं कुर्वती निर्जगाम सा ॥ १७३ ॥
आस्थानं पुनराजग्मुर्गुरवो गुरवो गुणैः। वेदोदिताभिराशीर्भिर्विप्रैश्चक्रे जयध्वनिः ॥ १७५ ॥
ततः प्रभृति सौदर्यसंबंधादिव वायेट। स्थापितस्तैरिह स्नेहो जैनैरद्यापि वर्त्तते ॥ १७६ ॥

× ततः स्नेहं परित्यज्य निर्जीवेऽस्मत्कलेवरे। कपालं चूर्णयध्वं चेत्तत्र स्यान्निरुपद्रवम् ॥ १८२ ॥
इहार्थे मामकीनाज्ञापालनं ते कुलीनता। एतत्कार्यं ध्रुवं कार्यं जिनशासनरक्षणे ॥ १८३ ॥
इति शिक्षां प्रदायास्मै प्रत्याख्यानविधिं व्यधुः विधापाराधनां दध्युः परमेष्ठिनमस्कृताः ॥ १८४ ॥
निरुध्य पवनं मूर्ध्ना मुक्त्वा प्राणान् गुणाम्बुधः। वैमानिकसुरावासं तेऽशिश्रियमलिम्लिचन् ॥ १८५ ॥ प्र० च०

तो जीवदत्तसूरि का समय प्रबन्धानुसार विक्रम के समकालीन और कहाँ जिनदत्तसूरि का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी का। फिर समझ में नहीं आता है कि खरतरों ने यह जघन्य कार्य्य क्यों किया?

शायद कई व्यक्ति यह कल्पना कर लें कि जीवदेवसूरि के साथ जैसे गाय की घटना घटित हुई वैसे ही जिनदत्तसूरि के साथ घटित हुई होगी। तभी तो जिनदत्तसूरि के भक्तों ने उनके साथ भी गाय की घटना का उल्लेख किया है।

जिनदत्तसूरि के जीवन विषय विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में गणधरसार्द्धशतक की बृहद्वृत्ति में जिनपतिसूरि के शिष्य सुमतिगणि ने छोटी २ बातों तक का उल्लेख किया पर गाय वाली घटना की गन्ध तक उसमें नहीं है तथा और भी कई व्यक्तियों ने जिनदत्तसूरि के लिये बहुत कुछ लिखा है पर गाय की घटना का जिक्र मात्र भी नहीं किया इतना ही क्यों पर विक्रम की सोलहवीं शताब्दी तक तो किसी की भी मान्यता नहीं थी कि जिनदत्तसूरि के साथ गाय वाली घटना घटित हुई फिर सतरहवीं शताब्दी में यह लेख क्यों आया होगा? वास्तव में आधुनिक खरतरों ने इधर उधर के प्रभाविक आचार्यों के साथ घटी हुई घटनाओं को जिनदत्तसूरि के साथ जोड़ जिनदत्तसूरि को चमत्कारी ठहराने की कोशीश की है पर इस प्रकार मात्र कल्पनाए करने से चमत्कारी सिद्ध नहीं होते हैं।

" इति जीवदेवसूरि का जीवन "

आचार्य स्कन्दिलसूरि और आगमवाचना

आचार्य स्कन्दिलसूरि—जैन संसार में माथुरी वाचना के नाम से स्कन्दिलाचार्य बहुत ही प्रसिद्ध हैं परन्तु स्कन्दिलाचार्य के समय के लिये बड़ी भारी गड़बड़ है। कारण, चार स्थानों पर भिन्न २ समय स्कन्दिलाचार्य का वर्णन आता है जैसे—

१—युगप्रधान पट्टावली में स्कन्दिलाचार्य को श्यामाचार्य्य के बाद युग प्रधान कहा है। श्यामाचार्य का स्वर्गवास वीर वि० सं० ३७६ के आस पास का बतलाया है तदन्तर स्कन्दिलाचार्य युग प्रधान हुये और वे ३८ वर्ष युग प्रधान पद पर रहे तो वीरात् ४१४ वें वर्ष आपका स्वर्गवास हुआ।

२—प्रभाविक चरित्र वृद्धवादी प्रबन्ध में वृद्धवादी को दीक्षा देने वाले स्कन्दिलाचार्य्य थे जैसे कि—

"पारिजातोऽपारिजातो, जैनशासननन्दने। सर्वश्रुतानुयोगार्द्र कन्दकन्दलनाम्बुदः ॥
विद्याधरवराम्नाये, चिन्तामणिरिवेष्टदः। आसीच्छ्री स्कन्दिलाचार्यः, पादलिप्तप्रभोः कुले ॥

इन स्कन्दिलाचार्य को अनुयोगधार कहा है परन्तु आपका सत्ता समय नहीं बतलाया है तथापि अनुमान किया जा सकता है कि आप विक्रम संवत के पूर्व हुये होंगे। कारण, स्कन्दिलाचार्य ने वृद्धवादी को दीक्षा दी और वृद्धवादी के शिष्य सिद्धसेनदिवाकर हुये जो विक्रम के समसामयिक थे अतः इन [illegible] आचार्य का समय विक्रम संवत् पूर्व का ही मानना चाहिये।

३—हेमवंत पट्टावली में लिखा है कि—

"मथुरानिवासी ओसवंशशिरोमणि श्रावकपोलाक ने गन्धहस्ती विवरणसहित उन सर्वसूत्रोंको ताड़पत्रादि पर लिखाकर पठनपाठन के लिये निर्ग्रन्थों को अर्पण किया। इस प्रकार जैनशासन की उन्नति करके स्थविर आर्यस्कन्दिल विक्रम संवत् २०२ मथुरा में ही अनशन करके स्वर्गवासी हुये"

४—पन्यासजी श्री कल्याण विजयजी महाराज स्वरचित वीर निर्वाण संवत् और जैनकाल गणना नामक ग्रन्थ के पृष्ट १८० पर लिखते हैं कि आर्य स्कन्दिल के नायकत्व में माथुरी वाचना वीर वि० सं० ८२७ से ८४० के बीच में हुई।

उपरोक्त चार स्कन्दिलाचार्यों के अन्दर पहिले नम्बर के स्कन्दिलाचार्य युगप्रधान पट्टावली के हैं। आपका समय संवत् वी० नि० संवत ३७६ से ४१४ का है अतः न तो वृद्धवादी की दीक्षा आपके हाथों से हुई और न माथुरी वाचना का सम्बन्ध आपके साथ है।

अब रहे शेष तीन स्कन्दिलाचार्य्य—इन तीनों के साथ माथुरी वाचना का सम्बन्ध होने पर भी समय पृथक २ बतलाया है। जिसमें पन्यासजी श्री कल्याणविजयजी महाराज ने स्कन्दिलाचार्य द्वारा माथुरी वाचना का समय वी० नि० सं० ८२७ से ८४० का स्थिर किया है और इस विषय की पुष्टि करने में आपने युक्ति एवं प्रमाण भी महत्व के दिये हैं। अब हम पन्यासजी के कथनानुसार आर्य स्कन्दिल का समय विक्रम की चौथी शताब्दी का मान लें तो वृद्धवादी की दीक्षा स्कन्दिलाचार्य के हाथों से नहीं हुई हो या वृद्धवादी को दीक्षा देने वाले स्कन्दिलाचार्य माथुरी वाचना के स्कन्दिलाचार्य से पृथक हों। अगर स्कन्दिलाचार्य और वृद्धवादी इन दोनों आचार्यों को विक्रम की चौथी शताब्दी के आचार्य मानलें तो वृद्धवादी के हस्त दीक्षित शिष्य सिद्धसैन दिवाकर का समय नहीं मिलता है। कारण सिद्धसेनदिवाकर को संवत्सर प्रवर्तक विक्रम के समकालीन बतलाया है। सिद्धसेनदिवाकर ने विक्रम को जैन बनाया तथा आवंती पार्श्वनाथ को प्रगट किया आदि अनेक घटनायें विक्रम के साथ घटी यह सबकी सब कल्पित ठहरेंगी।

जिस विक्रम के साथ सिद्धसेनदिवाकर का सम्बन्ध बतलाया गया है उस विक्रम को संवत्सर प्रवर्तक विक्रम नहीं पर विक्रम की चौथी शताब्दी का एक दूसरा ही विक्रम मानलें तब जाकर इन सबका समाधान हो सके पर ऐसा करने से हमारे पूर्वाचार्यों के बनाये चरित्र प्रबन्ध और पट्टावलियें सबके सब कल्पित हो जायंगे। कारण, आर्य्य स्कन्दिल, वृद्धवादी, सिद्धसैन दिवाकर और राजा विक्रम को वीर निर्वाण के बाद पांचवीं शताब्दी के माने हैं वे सब नौवीं शताब्दी के मानने पड़ेंगे। अतः इनके समाधान के लिये विशेष शोध खोज की आवश्यकता है।

३—तीसरे स्कन्दिलाचार्य्य का वर्णन हेमवन्त पट्टावली में आया है! आपके समय के लिये लिखा है कि वि० सं० २०२ में स्कन्दिलाचार्य्य का स्वर्गवास मथुरा में हुआ अतः आप विक्रम की दूसरी शताब्दी के आचार्य थे। विशेषता में पट्टावलीकार लिखते हैं कि मथुरा में ओसवंशीय पोलाक श्रावक ने गन्धहस्ती विवरण सहित आगम लिखा कर जैन श्रमणों को पठन पाठन के लिये अर्पण किये। इससे यह भी पाया जाता है कि उस समय पूर्व श्रमणों को आगम वाचना मिल गई थी इतना ही क्यों पर उस समय

आगम ठीक व्यवस्थित रूप में हो गये थे कि जिसको लिखा कर श्रावक लोग साधुओं को पठन पाठन के लिये भेंट करते थे।

पट्टावल्यादि ग्रन्थों से यह स्पष्ट सिद्ध हो चुका है कि आर्य वज्रसूरि के समय बारह वर्षीय भयंकर दुष्काल पड़ा था और उस दुष्काल में बहुत से जैनश्रमण अनशन कर स्वर्ग पहुँच गये थे शेष बचे हुये साधुओं को आहार पानी के लिये बड़ी मुसीबतें उठानी पड़ती थीं। इधर उधर भटकना पड़ता था। अतः आगमों का पठन पाठन बन्द सा हो जाना कोई बड़ी बात नहीं थीं। आर्यवज्र का स्वर्गवास वि० सं० ११४ में हो गया था थोड़े ही समय में एक दुकाल और पड़ गया। उसकी भयंकरता ने तो जैसे जनसंहार किया वैसे श्रमण संहार भी कर दिया। दुकाल के अन्त में आचार्य यक्षदेवसूरि ने बचे हुए साधु साध्वियों को एकत्र किये तो केवल ५०० साधु और ७०० साध्वियां ही उस दुकाल से बच पाये थे। यक्षदेवसूरि ने उन साधु साध्वियों की फिर से व्यवस्था की। उस समय आर्य वज्रसैन ने चन्द्र नागेन्द्रादि को दीक्षा देकर उनको पढ़ानेके लिये आचार्य यक्षदेवसूरि के पास भाये। चारों शिष्यों का ज्ञानाभ्यास चल ही रहा था कि बीच में ही वज्रसेनसूरि का स्वर्गवास होगया उनके शिष्यों की व्यवस्था का कार्य भी यक्षदेवसूरि के सिर पर आ पड़ा इत्यादि।

इस कथन से पाया जाता है कि उस समय जैन श्रमण संघ को आगम वाचना की अत्यधिक आवश्यकता थी और उस समय वाचना भी अवश्य हुई थी यदि उस समय वाचना नहीं हुई होती तो उस समय में करीब २०० वर्ष बाद स्कन्दिलाचार्य का समय आता है वहां तक जैनश्रमणों को न तो ज्ञान रहता न दुकाल में ज्ञान भूलता और न स्कन्दिलाचार्य के समय वाचना की ही जरूरत रहती।

कई स्थानों पर आर्य स्कन्दिलसूरि के समय भी बारहवर्षीय दुष्काल पड़ना लिखा है। यदि आर्य स्कन्दिल आर्य्यवज्र के समसामयिक होने के कारण ही स्कन्दिलाचार्य्य के समय बारह वर्षीय दुर्भिक्ष का उल्लेख किया हो तब तो कुछ मत भेद नहीं है पर जब वज्रसैनसूरि के बाद दोसौ वर्ष में स्कन्दिलार्य हुये उनके जाय तब तो स्कन्दिलाचार्य के समय का दुकाल वज्रसेनाचार्य के समय के दुकाल से पृथक मानना होगा और दुकाल में २०० वर्ष का अन्तर है तो आगम वाचना भी पृथक माननी पड़ेगी तथा वाचना पृथक हुई तो उन वाचनाओं के देने वाले आचार्य भिन्न २ मानना स्वभाविक है। स्कन्दिलाचार्य के समय का दुकाल के अन्त में स्कन्दिलाचार्य ने वाचना दी वैसे ही वज्रसेनाचार्य्य के समय का दुकाल के अन्त में आचार्य यक्षदेवसूरि ने वाचना दी थी कारण, उस समय एक यक्षदेवसूरि ही अनुयोगधर थे और यह बात प्राचीन ग्रन्थों से साबित भी ठहरती है। कारण, उस समय के दुकाल के अन्त में बचे हुये ५०० साधु ७०० साध्वियों की व्यवस्था आप श्री ने ही की थी। जब व्यवस्था की तो वाचना भी अवश्य दी होगी। साथ ही यक्षदेवसूरि ने वज्रसेनाचार्य्य के शिष्य चन्द्रनागेन्द्रादि को वाचना देने का भी उल्लेख मिलता है अतः वज्रसेनाचार्य के समय वाचना अवश्य हुई थी और उस वाचना के नायक आचार्य यक्षदेवसूरि ही थे।

जब स्वल्प समय में दो दो भयंकर दुकाल पड़ा उसमें साधुओं का पठन पाठन बन्द हो [illegible] विस्मृत होजाना स्वभाविक बात है। इस हालत में उन साधुओं को २०० वर्ष तक वाचना नहीं [illegible] यह बिल्कुल असम्भव सा प्रतीत होता है।

४—चौथा स्कन्दिलाचार्य्य—प्रभाविक चरित्र वृद्धवादी प्रबन्ध में स्कन्दिलाचार्य को [illegible]

[श्री वीर परम्परा

(शाखा) के पादलिप्तसूरि के परम्परा का आचार्य कहा जा सकता हैं । नंदी सूत्र की टीका में आचार्य मलयागिरि ने स्कन्दिलाचार्य को सिंहवाचक सूरि के शिष्य कहा है जैसे "तान् स्कन्दिलाचार्यान् सिंहवाचक सूरि शिष्यान्" पर आगे चल कर उसी टीका में सिंहवाचक को ब्रह्मद्वीपिका शाखा के आचार्य लिखा है । तब स्कन्दिलाचार्य्य थे विद्याधर शाखा के आचार्य । शायद् युगप्रधान पट्टावली में सिंहवाचक के बाद नागार्जुन का नाम आता है और स्कन्दिलाचार्य्य नागार्जुन के समकालीन होने से टीका कारने स्कन्दिलाचार्य्य को सिंहवाचक के शिष्य लिखा दिया होगा । पर वास्तव में स्कन्दिलाचार्य्य विद्याधर शाखा के आचार्य हैं स्कन्दिलाचार्य के समय के लिये पट्टावलियों में लिखा है कि वि० सं० ११४ में आर्यवज्र का स्वर्गवास बाद १३ वर्ष आर्य्यरक्षित २० पुष्पमित्र ३ वज्रसेन ६९ आर्य नागहस्ती ५९ रेवतीमित्र ७८ ब्रह्मद्वीप सिंह एवं कुल ३५६ वर्ष व्यतीत होने पर आर्य स्कन्दिल युगप्रधान पद पर आरूढ़ हुये और १४ वर्ष तक युगप्रधान पद पर रहे । इस समय के बीच माथुरी वाचना हुई । ऐसी पन्यासजी की मान्यता है पर ब्रह्मद्वीपसिंह के बाद तो नागार्जुन का नाम आता है और वे ७८ वर्ष युगप्रधान पद परहे पर स्कन्दिलाचार्य का नाम युगप्रधान पट्टावली में नहीं हैं शायद नागार्जुन के समकालीन कोई स्कन्दिलाचार्य्य हुए होंगे ?

माथुरी वाचना के साथ ही साथ वल्लभी नगरी में वल्लभी वाचना भी हुई थी माथुरी वाचना के नायक स्कन्दिलाचार्य थे तब वल्लभी वाचना के नायक थे नागार्जुनाचार्य्य । यह दोनों आचार्य समकालीन थे और इनके समय बड़ा भारी दुकाल भी पड़ा था जैसे आर्यभद्रबाहु और आर्यवज्रसेन के समय में दुर्भिक्ष पड़ा था और जैसे उन दोनों दुर्भिक्षों के अन्त में आगम वाचना हुई थी उसी प्रकार इस समय भी आगम वाचना हुई ।

आचार्य भद्रेश्वरसूरि ने अपने कथावली ग्रन्थ में लिखा है :—

"अत्थि महूराउरीए सुयसमिद्धो खंदिलो नाम सूरि, तहा वलहिनयरीए नामज्जुणो नाम सूरि । तेहि य जाए वरिसिए दुक्काले निव्वउ भावंओवि फुठ्ठिं (?) काऊण पेसिया दिसोदिसिं साहवो गमिउं च कहवि दुत्थं ते पुणो मिलिया सुगाले, जाव सज्झायंति ताव खंडु खुरुडीहूयं पुव्वाहियं । तओ मा सुयवोच्छित्ती होइ (उ) त्ति पारद्धो सूरीहिं सिद्धंतुधारो । तत्थवि जं न वीसरियं तं तहेव संठवियं । पम्हुट्ठट्ठाणे उण पुव्वावरावउं तसुत्तत्थाणुसारओ कया संघउणा ।"

आचार्य हेमचन्द्रसूरि अपने योगशास्त्र की टीका में लिखते हैं :—

"जिन वचनं च दुष्षमाकालवशादुच्छिन्नप्रायमिति मत्वा भगवद्भिर्नागार्जुनस्कन्दिलाचार्य्यप्रभृतिभिः पुस्तकेषु न्यस्तम् ।"

आचार्य मलयागिरिजी अपने ज्योतिषकरण्डक टीका में लिखते है :—

"इह हि स्कन्दिलाचार्यप्रवृत्तौ दुष्षमानुभावतो दुर्भिक्ष प्रवृत्त्या साधूनां पठनगुणनादिकं सर्वमप्यनेशत् । ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः संघयोर्मेलापकोऽभवत् तद्यथा—एको वलभ्यांमेको मथुरायाम् । तत्र च सूत्रार्थसंघटने परस्परवाचनाभेदो जातः विस्मृतयोर्हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा संघटने भवत्यवश्यं वाचनाभेदो न काचिदनुपपत्तिः ।

तात्पर्य यह है कि महाभयंकर दुकाल के समय साधुओं के पठन पाठन वंधसा हो गया था जब दुर्भिक्ष के अन्त में सुकाल हुआ तो आचार्य स्कन्दिलसूरि के अध्यक्षत्व में मथुरा नगरी और आर्य नागार्जुनसूरि की नायकता में वल्लभी नगरी में श्रमण संघ को आगमों की वाचना दी गई तथा सूत्रों को पुस्तकों पर लिखा गया। अतः आचार्य स्कन्दिल एवं नागार्जुन के समय दोनों स्थानों में आगम वाचना हुई। इसम किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

इतिहास ज्ञान की पूरी शोध खोज नहीं करने के कारण हमारे अन्दर यह भ्रान्ति फैली हुई है कि वल्लभी नगरी में श्री देवर्द्धिगणीक्षमाश्रमण के अध्यक्षत्व में आगम वाचना हुई थी और कई २ तो देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी को आर्य स्कन्दिल के समसामयिक भी मानते हैं और प्रमाण के लिए उपाध्यायजी विनय विजयजी के लोक प्रकाश के श्लोक बताते हैं।

"दुर्भिक्षे स्कन्दिलाचार्यदेवर्द्धिगणिवार के। गणनाभावतः साधु साध्वीना विस्मृतं श्रुतम्।
ततः सुभिक्षे संजाते संघस्य मेलगोऽभवत्। वलभ्यां मथुरायां च सूत्रार्थ घटनाकृते॥
वलभ्यां संगते संघे देवर्सिगणिरग्रणीः। मथुरायां संगते च स्कंदिलार्योऽग्रणीरभूत्॥
ततश्च वाचनाभेदस्तत्र ज़ातः क्वचित् क्वचित्। विस्मृतस्मरणो भेदो जातु स्यादुभयोरपि॥
तत्तैस्ततोऽर्वाचीननैश्च गीतार्थैः पापभीरुभिः। मतद्वयं तुल्यतया कक्षीकृतमनिर्णयात्॥
—लोकप्रकाश

उपाध्यायजी महाराज ने उपरोक्त बात जनश्रुति सुन कर या अनुमान से लिखी है। कारण, हम ऊपर लिख आए हैं कि मथुरा में स्कन्दिचार्य और वल्लभी में नागार्जुनाचार्य्य के नायकत्व में आगम वांचना हुई थी तब इन दोनों आचार्य के बाद कई १५० वर्ष के देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण हुए हैं वे स्कन्दिलाचार्य्य के समसामयिक कैसे हो सकते हैं ? देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी के समय भी वल्लभी में जैन संघ एकत्र हुए थे पर उस समय आगम वाचना नहीं हुई थी पर दोनों वाचनाओं में पठान्तर वाचान्तर रह गया था उनको टीका का आगम पुस्तकों पर लिखे गये थे। जैसे कहा है कि—

"वल्लहि पुरम्मि नयरे देवड्ढिपमुह समण संघेण पुत्थइ अगमु लिहिओ, नवसय असी आओ वीराओ"

क्षमाश्रमणजी ने आगमों को पुस्तकों पर लिखने में मुख्य स्थान माथुरी वाचना को ही दिया था और जो वल्लभी वाचना जो माथुरी वाचना के सदृश्य थी उसे तो माथुरी वाचना के अन्तरगत कर दिया और जो पाठ माथुरी वाचना से नहीं मिलता उसे नागार्जुन के नाम से पाठान्तर रूप में रख दिया जैसे—

"नागार्जुनीयास्तु पठंति—एवं खलु०"। आचारांग टीका।
"नागार्जुनीयास्तु पठंति—समरण भविस्सामो० " आचारांग टीका।
"नागार्जुनीयास्तु पठंति—जे खलु०"। आचारांग टीका।
"नागार्जुनीयास्तु पठंति—पुट्ठो वा०"। आचारांग टीका।
"अत्रान्तरे नागार्जुनीयास्तु पठंति—मी कय नयं ववट्ठियं०"। सूत्रकृतांग टीका।
"नागार्जुनीयास्तु पठंति—परिसंयम्हं वियाणिया०"। सूत्रकृतांग टीका।
"इत्थी विसयगिद्धेहिं ति नागार्जुनीया अप एवं पठन्ति समुल्लिखिता ..."।

अतः क्षमाश्रमणजी का इष्ट माथुरी वाचना पर ही विशेष था। यही कारण है कि क्षमाश्रमणजी ने नंदीसूत्र की स्थविरावली की गाथा में कहा है कि :—

"जेसि इमो अणुओगो, पयरइ अज्जावि अड्ढभरहम्मि । बहुनयरनिग्गयजसे, ते वंदे खंदिलायरिए ॥

क्षमाश्रमणजी किस वंश शाखा के थे इसके लिये देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी के जीवन प्रसंग में लिखेंगे।

उपरोक्त वाचना के अन्दर हमारे एक संदिग्ध प्रश्न का समाधान सहज ही में हो आता है। जो हमारी मान्यता थी कि सब से पहिले देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी ने ही आगमों को पुस्तकों में लिखवाये थे वास्तव में यह बात ऐसी नहीं है किन्तु क्षमाश्रमणजी के पूर्व भी आगम पुस्तकों पर लिखे गये थे। इसके लिए कई प्रमाण भी मिलते हैं।

१—पाटलीपुत्र की वाचना के समय आगमों को पुस्तक पर लिखे गये थे या नहीं इसके लिये तो कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

२—महामेघवाहन चक्रवर्ति खारवेल के हस्तीगुफावाले शिलालेख से पाया जाता है कि उस समय अंगसप्तति का कुछ भाग नष्ट हो गया था जिसको खारवेल ने पुनः लिखाया।

३—आचार्य सिद्धसैनदिवाकरजी चित्तौड़ गये थे और वहाँ के स्तम्भ में आपने हजारों पुस्तकें देखी जिसमें से एक पुस्तक लेकर आपने पढ़ी भी थी। अतः पहिले ज्ञान पुस्तकों पर लिखा हुआ अवश्य था।

४—माथुरी वाचना एवं वल्लभी वाचना के समय पुस्तकों पर आगम लिखने का उल्लेख मिलता है। जिसको हम ऊपर लिख आये हैं।

५—अनुयोग द्वार सूत्र में पुस्तकों को द्रव्य श्रुत (ज्ञान) कहा जैसे—

"से किं तं जाणयसरीरभविअसरीरवइरित्तं दव्वसुअं ? पत्तयपोत्थय लिहिअं"

६—निशीथसूत्र के बारहवाँ उद्देशा की चूर्णी में भी लिखा है कि—

"सेहउग्गहणधारणादिपरिहाणिं जाणिऊण कालियसुयट्ठा, कालियसुयणिज्जुत्तिमिमित्तं वा पोत्थगपणगं चेप्पति"।

७—योगशास्त्र की टीका में आचार्य हेमचन्द्रसूरि लिखते हैं कि—

"जिनवचनं च दुष्षमाकालवशादुच्छिन्नप्रायमिति मत्वा भगवद्भिर्नागार्जुन स्कन्दिलाचार्य्य प्रभृतिभिः पुस्तकेषु न्यस्तम्"।

इन प्रमाणों से स्पष्ट पाया जाता है कि देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण के पूर्व भी जैनागम पुस्तकों पर लिखे हुये थे। इतना ही क्यों पर क्षमाश्रमणजी के पूर्व कई ज्ञान प्रेमी श्रावकों ने आगमों को लिखा कर वे पुस्तकें जैन साधुओं को पठन पाठन के लिये अर्पण करते थे बाद में क्षमाश्रमणजी ने भी वल्लभी नगरी में आगमों के पुस्तकों पर लिखाया और वे विस्तृत रूप में होने से जैन समाज में विशेष प्रसिद्ध है।

जैनागमों की वाचना

जैनधर्म में यह बात बहुत प्रसिद्ध है कि गुरु महाराज अपने शिष्यों को जैनागमों की वाचना देते हैं और शिष्य भी गुरु महाराज का विनय व्यवहार कर वाचना लेता है और उसको ही सम्यग्ज्ञान कहा जाता है । यदि कोई शिष्य गुरु महाराज के वाचना दिये विना ही आगम पढ़ लेते हैं तो उसको चतुर्लघु प्रायश्चित बतलाया है ×। कारण, जैनागम अर्द्ध मागधी एवं प्राकृत भाषा में है और उसमें भी कई सूत्र एवं शब्द तो ऐसे हैं कि जिनका यथार्थ अर्थ गुरुगम से ही जान सकते हैं । जिन लोगों ने जैनधर्म से पृथक् होकर नये नये मत पन्थ निकाले हैं इसका मुख्य कारण यही है कि उन्होंने जैनागम गुरु गम्यता से नहीं वाचे किंतु अपनी अल्प बुद्धि से शास्त्रों के वास्तविक अर्थ को न जानकर मनः कल्पना से अर्थ का अनर्थ कर डाला है और वाद अभिनिवेश के कारण पकड़ी बात को नहीं छोड़ने से नये नये मत निकाल दिये हैं आज भी हम देखते हैं कि एक ही मान्यता वाले एक ही शब्द के पृथक् २ अर्थ कर आपस में लड़ते झगड़ते हैं और आगे चलकर वे ही नये २ पंथ और मत स्थापन कर डालते हैं । अतः जैनधर्म की यह खास मर्याद है कि गुरु महाराज के दी हुई वाचना से ही शिष्य आगम वांचे ।

प्रत्येक तीर्थङ्कर अपने शासन समय गणधर स्थापन करते हैं इसका मतलब भी यही है कि वे गणधर अपने शिष्यों को आगमों की वाचना दें और यही मतलब गणिपद का है । उपाध्याय पद की तो और भी विशेषता है कि वह चतुर्विध श्रीसंघ को सूत्र अर्थ की वाचना दे । साधुओं की सात मंडली में भी वाचना का विधान है जैसे सूत्र वाचना अर्थ वाचना अर्थात् साधु शामिल होकर एक मंडली में बैठकर गुरु महाराज से सूत्र काल में सूत्र वांचना और अर्थ काल में अर्थ वाचना ले । ऐसी वाचनायें तो प्रत्येक गच्छ में प्रत्येक दिन होती ही रहती हैं । पर जब काल दुकाल में प्रचलित वाचना बन्द हो जाती है तब एक विशेष वाचना की आवश्यकता रहती है यहाँ पर उस विशेष वाचना का ही प्रसंग है । और ऐसी वाचनाए निम्नलिखित हुई हैं ।

१—आचार्य भद्रबाहु के समय पाटलीपुत्र नगर में पहिली वाचना हुई । उस समय गणधर रचित द्वादशांग में एकादशांग ठीक व्यवस्थित किये और बारहवां अंग के लिए आर्य स्थूलभद्र को दशपूर्व अर्थ और चार पूर्व मूल का अभ्यास करवाया । इस वाचना में गणधर रचित अंग सूत्र ज्यों के त्यों ही रहे थे । कारण, बारहवर्षीय दुकाल के कारण मुनिजन यथावत् आगमों को याद नहीं रख सके परन्तु जिस ज्ञान जिस जिस साधुओं को याद रहा उसको ही संकलना कर पुनः एकादशांग व्यवस्था किया इसके लिये देखो तित्थोगालिपइन्ना का पाठ—

ते दोइं एक्केक्कं, सयसयमेमा चिरंम दट्ठुणम् । परलोगगमणपच्चागय व्व मण्णंति अप्पाणए ॥७०॥
ते विंति एक्कमेक्कं, सज्झाओ कस्स कित्तिओ धरति । हि हु उक्कालेणं अम्हं नट्ठो हु सज्झाओ ॥७१॥
जं जस्स धरइ कंठे, तं परियट्टिऊण सव्वेसिम् । तो गेहिं पिंडिताइं, तहियं एक्कारसंगाइं ॥७२॥

---

* निच्चू [illegible] ×   × आवश्यक [illegible]

इनके अलावा कालकाचार्य अपने प्रशिष्य सागरचन्द्रसूरि से कहता है कि 'षट्स्थान आगम की हानी होती आई है। अतः गणधर रचित आगम भद्रबाहु के समय ज्यों के त्यों नहीं रहे थे तो दुकाल के अन्त में तो रहते ही कहां से ? फिर भी उस समय एकादशांग एवं पूर्वों के अलावा उपांगादि सूत्रों की रचना नहीं हुई थी। हाँ, आर्य्य शय्यंभवसूरि ने अपने शिष्य (पुत्र) माणक के लिए पूर्वों से उद्धार कर दशवैकालिकसूत्र की रचना की थी। तदनन्तर आर्य भद्रबाहु ने तीन छेदसूत्र तथा निर्युक्तियों की रचना की और बाद में स्थविरों ने उपांगादि कालिक उत्कालिक सूत्रों की रचना की थी।

२—आर्य्यरक्षितसूरि के समय तक, जैनागमों के एक ही सूत्र एवं शब्द से चारों अनुयोग की व्याख्या होती थी पर आर्यरक्षित सूरिने भविष्य में मंद बुद्धिवालों की सुविधा के लिए, चारों अनुयोग पृथक् २ कर दिये। उस समय भी मूल आगमों को न जाने कितनी हानि पहुँची होगी। और कितने संक्षिप्त करने पड़े होंगे ?

आर्य्यरक्षितसूरि ने चारों अनुयोग पृथक् २ कर दिये तो क्या ८४ आगमों की संकलना आपके ही समय में हो गई थी या बाद में हुई इसके जानने के लिए कोई भी साधन इस समय मेरे पास नहीं है। पर संभव होता है कि यह कार्य आर्यरक्षित के समय ही हुआ था।

३—आर्य्यवज्र और आर्य्यवज्रसैन इन दोनों आचार्यों के समय भी दो भयंकर दुकाल पड़े और उस समय भी साधुगण का पठन-पाठन बन्द-सा होगया अतः दुकाल के अन्त में आगम वाचना की परमावश्यकता थी।

उस समय आर्य्यवज्र दशपूर्वधर थे परन्तु आर्य्यवज्र और वज्रसैन का स्वर्गवास हो गया था। आचार्य यक्षदेवसूरि दशपूर्वधर आर्य थे। वज्र और व्रज्रसैन के साधु साध्वियों को एकत्र कर उनकी व्यवस्था आपने ही की थी अतः उस समय आगम वाचना आपने ही दी थी। इस वाचना का स्थान शायद सोपारपट्टन ही होगा। कारण, पट्टावली में उल्लेख मिलता है कि चन्द्र नागेन्द्रादि मुनियों को यक्षदेवसूरि ने सोपारपट्टन में आगमों की वाचना दी थी। अतः आर्यवज्र और वज्रसैन के समय के दुकाल के बाद की आगम वाचना आचार्य यक्षदेवसूरि के नायकत्व में सोपारपट्टन में ही हुई होगी।

४—आर्य्य स्कन्दिल के समय के दुकाल के अन्त में आगम वाचना दो स्थानों में हुई। यह प्रसिद्ध ही है कि मथुरा में आर्य्य स्कन्दिल और वल्लभी में आर्य्य नागार्जुन के नायकत्व में वाचना हुई। साथ में यह भी निश्चय है कि आर्य स्कन्दिल की वाचना में जितने आगम एवं सूत्रों की वाचना हुई उतने ही आगमों को उस समय तथा बाद में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणजी ने वल्लभी नगरी में लिखे थे। उन सब की संख्या ८४ आगमों के नाम से जैन शासन में खूब प्रसिद्ध है।

गणधर रचित आगम बहुत विस्तार वाले थे। कहा जाता है कि एक आचारांग सूत्र के १८००० पद थे और एक पद के श्लोकों का हिसाब इस प्रकार बतलाया है कि एक पद के अक्षर १८३४८३०७८८९ होते हैं इनको ३२ अक्षरों का एक श्लोक के हिसाब से बनावे जाय तो ५१०८८४६२१॥ श्लोक होते हैं +

+ एगवन कोटी लक्खा, अट्ठे व सहस्स चुलसीय, सय छक्कं नायव्वं, सट्ठा एगवीस समयम्मि।

[illegible] गाथा ३०६

यह तो हुआ एक पद, जब आचारांग सूत्र के १८००० पद के श्लोक गिने जांय तो ९१९५९२३१८०००० श्लोक तो एक आचारांगसूत्र के होते हैं तब आगे के अंगसूत्र द्विगुणित बतलाये हैं परन्तु उनसे कम हो होते आज आचारांग सूत्र के कुल २५२५ श्लोक रहे हैं। जिसको हम मूलपद और पदों के श्लोक तथा वर्तमान में रहे हुए श्लोकों के साथ कोष्टक में दे देते हैं

नं०	आगम नामावली	पदसंख्या	पद के श्लोकों की संख्या	वर्तमान श्लोक
१	श्री आचारांग	१८०००	९१९५९२३१८७०००	२५२५
२	„ सूत्रकृतांग	३६०००	१८३९१८४६३७४०००	२१००
३	„ स्थानायांग	७२०००	३६७८३६९२७४८०००	३६००
४	„ समवायांग	१४४०००	७३५६७३८५४९६०००	१६६७
५	„ विवाह प्रज्ञप्ति	२८८०००	१४७१३४७७०९९२०००	१५७५२
६	„ ज्ञाताधर्मकाथांग	५७६०००	२९४२६९५४१९८४०००	५४००
७	„ उपासक दशांग	११५२०००	५८८५३९०८३९६८०००	८१२
८	„ अंतगड़दशांग	२३०४८००	११७७०७८१६७९३६०००	८९९
९	„ अनुत्तरोवाई	४६०८०००	२३५४१५६३३५८७२०००	१९२
१०	„ प्रश्नव्याकरण	९२१६०००	४७०८३१२६७१७४४०००	१२४६
११	„ विपाकसूत्र	१८४३२०००	९४१६६२५३४३४८८००९	१२१६

उपरोक्त कोष्टक से पाठक जान सकते हैं कि मूल द्वादशांग कितने विस्तार वाले थे और वाचना के समय कितने रह गये फिर भी विशेषता यह है कि सूत्रों के अध्ययन उद्देश था उतना ही रहा है। जैसे आचारांग सूत्र के १६ अध्ययन थे तो आज भी १६ ही हैं। उपासकदशांग सूत्र के दशाध्ययन और दश श्रावकों का वर्णन था आज भी दशाध्ययन में दश श्रावकों का वर्णन है पर श्लोक संख्या कम हो गई। इस श्लोक संख्या कम होने के कारण आर्य्यरक्षित सूरि ने चारों अनुयोग अलग २ किये थे उस समय मूल आगमों की सूरत बदल गई थी और उस समय श्लोक संख्या भी कम कर दी गई थी।

दूसरा आर्यस्कन्दिल का समय था परन्तु आर्यस्कन्दिल के समय वल्लभी में नागार्जुन द्वारा भी वाचना हुई थी सो इन दोनों की वाचना प्रायः मिलती जुलती थी केवल थोड़ा सा पाठान्तर [illegible] रहा वह टीकाकारों ने वाचनान्तर के नाम से टीका में रख दिया। अतः आर्य्य स्कन्दिल के समय [illegible] को कम किया जाना संभव नहीं होता है। पर यह कार्य आर्यरक्षितसूरि द्वारा ही हुआ संभव होता है। [illegible] जब तक इसका पूरा प्रमाण नहीं मिल जाय वहाँ तक निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। [illegible] नहीं कि मूल आगमों का संक्षिप्त अवश्य हुआ है। एकादशांग तीर्थंकर कथित और गणधर [illegible] किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

आर्यस्कन्दिलसूरि के समय जो आगमों की वाचना हुई और वे आगम पुस्तकों पर [illegible] आगमों की संख्या ८४ की कही जाती है और उनके नामों का निर्देश आर्य्य देवर्द्धिगणि [illegible] अपने नन्दीसूत्र में कालिक उत्कालिक सूत्रों के नाम से किया है उनको यहाँ उद्धृत कर देते हैं।

[[illegible]

— कालिक सूत्रों के नाम —

(१) श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र
(२) श्री दशाश्रुतस्कन्धजी सूत्र
(३) श्री वृहत्कल्पजी सूत्र
(४) श्री व्यवहारजी सूत्र
(५) श्री निशिथजी सूत्र
(६) श्री महानिशिथजी सूत्र
(७) श्री ऋषिभाषित सूत्र
(८) श्री जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र
(९) श्री द्वीपसागर प्रज्ञप्ति सूत्र
(१०) श्री चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र
(११) श्री क्षुलकवैमान प्रवृति
(१२) श्री महावैमान प्रवृति
(१३) श्री अंगचूलिका सूत्र
(१४) श्री वंगचूलिका सूत्र
(१५) श्री विवाहाचूलिका सूत्र
(१६) श्री अरूणोत्पतिक सूत्र
(१७) श्री वारूणोत्पातिक सूत्र
(१८) श्री गारूड़ोत्पातिक सूत्र
(१९) श्री धरणोत्पातिक सूत्र
(२०) श्री वैश्रमणोत्पातिक सूत्र
(२१) श्री वैलंधरोत्पातिक सूत्र
(२२) श्री देवीन्द्रोत्पातिक सूत्र
(२३) श्री उत्थान सूत्र
(२४) श्री समुत्थान सूत्र
(२५) श्री नागपरिआवलिका सूत्र
(२६) श्री निरयावलिका सूत्र
(२७) श्री कप्पयाजी सूत्र
(२८) श्री कप्पवडिंसियासूत्र
(२९) श्री पुप्फीयाजी सूत्र
(३०) श्री पुप्फचूलियाजी सूत्र
(३१) श्री वरिग्याजी सूत्र
(३२) श्री विन्हीदशा सूत्र
(३३) श्री आसीविष भावना सूत्र
(३४) श्री दृष्टिविष भावना सूत्र
(३५) श्री चरणसुमिण भावना सूत्र
(३६) श्री महासुमिण भावना सूत्र
(३७) श्री तेजस निसर्ग सूत्र

उत्कालिक सूत्रों के नाम

(१) श्री दशवैकालिक सूत्र
(२) श्री कल्पाकल्प सूत्र
(३) श्री चूलकल्प सूत्र
(४) श्री महाकल्प सूत्र
(५) श्री उत्पातिक सूत्र
(६) श्री राजप्रश्नी सूत्र
(७) श्री जीवाभिगम सूत्र
(८) श्री प्रज्ञापनासूत्र
(९) श्री महाप्रज्ञापनासूत्र
(१०) श्री प्रमादाप्रमादसूत्र
(११) श्री नन्दीसूत्र
(१२) श्री अनुयोगद्वारसूत्र
(१३) श्री देवीन्द्रस्तुतिसूत्र
(१४) श्री तंदुलव्याली सूत्र
(१५) श्री चन्द्रविजय सूत्र
(१६) श्री सूर्य्यप्रज्ञप्ति सूत्र
(१७) श्री पौरसी मंडल सूत्र
(१८) श्री मंडलप्रवेश सूत्र
(१९) श्री विद्याचारण सूत्र
(२०) श्री विगिच्छओसूत्र
(२१) श्री गणिविजय सूत्र
(२२) श्रीध्यानविभूति सूत्र
(२३) श्री मरणविभूतिसूत्र
(२४) श्री आत्मविशुद्धि सूत्र
(२५) श्री वीतराग सूत्र
(२६) श्री संलेखणासूत्र
(२७) श्री व्यवहार कल्प सूत्र
(२८) श्री चरणविधिसूत्र
(२९) श्री आउर प्रत्यख्यानसूत्र
(३०) श्री महाप्रत्याख्यान सूत्र

प्रसंगोपात श्री स्थानायांग सूत्र में दशदशांग ने

(१) श्री आचार दशा
(२) श्री बन्ध दशा
(३) श्री दोगिद्धिदशा
(४) श्री दीर्घदशा
(५) श्री संक्षेपितदशा
(शेष पांच के नाम ऊपर आगये हैं।)

बारह अंगों के नाम

(१) श्री आचारांगसूत्र
(२) श्री सूत्रकृतांगसूत्र
(३) श्रीस्थानायांगसूत्र
(४) श्री समवायांगसूत्र
(५) श्री भगवतीजीसूत्र
(६) श्री ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र
(७) श्री उपासक दशांगसूत्र
(८) श्री अंतगढ़ दशांगसूत्र
(९) श्री अनुत्तरोपपातिक सूत्र
(१०) श्री प्रश्नव्याकरणसूत्र
(११) श्री विपाकसूत्र
(१२) श्री दृष्टिवाद सूत्र

इस प्रकार ८४ आगमों की व्यवस्था एवं संकलना करके पुस्तकों पर लिखे गये और यह बात प्राचीन समय से प्रसिद्ध भी है कि जैनों में ८४ आगमों की मान्यता है।

जब जैनियों में ८४ आगमों की मान्यता है तब ये क्यों कहा जाता है कि हम ४५ आगम मानते हैं ? इसके कई कारण हैं। एक कारण तो यह है कि वे ८४ आगम ज्यों का त्यों नहीं रहा। दूसरा कारण ८४ आगमों में ऐसे भी आगम हैं कि जिसको पढ़ने से साक्षात् देवता आकर खड़े हो जाते थे जैसे आरुण, वारुण, धरण, वे श्रमण उत्पातिक सूत्र थे। उन्हीं को समय को देख कर भंडार कर दिये। तीसरा कारण गुरु महाराज शिष्य को जिस आगम की वाचना देते हैं उसके योगोद्वाहन (तप) कराये जाते है उसके लिये वर्त्तमान साधुओं के शरीर शक्ति वगैरह देखके ४५ आगमों की मान्यता रक्खी है कि वर्त्तमान साधु ४५ आगमों के योगाद्वाहन कर सकते हैं परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि ४५ आगमों के अलावा कोई आगम न माना जाय, आगम ही क्यों पर पूर्वाचार्य्यों के निर्माण किये ग्रन्थ भी प्रमाणिक माने जाते हैं।

इसके अलावा पूर्वाचार्य्यों के निर्माण किये कई ग्रन्थ भी लिखे गये होंगे। जैसे आगमवादियों की मान्यता आगमों की थी वैसे ही निगमवादियों की मान्यतानिगमों की थी। निगमवादियों का आविष्कार किस समय से प्रारंभ होता है और उनके निगम ग्रन्थ कब और किसने बनाये इसके निर्णय के लिये तो अभी शोध खोज की जरूरत है पर एक समय निगमवादियों का खूब जोर शोर था इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है क्योंकि शिला लेखों वगैरह में निगमवादियों के उल्लेख मिलते हैं।

जैन शासन में दो प्रकार के मार्ग बतलाते हैं १—निवृंति २—प्रवृति जिसमें आगमवादी निवृत्ति मार्ग के पोषक थे वे आगमों का पठन पाठन एवं धर्मोपदेश देकर स्वात्मा के साथ परात्मा का कल्याण करते थे अर्थात् वे पांच महाव्रतधारी होने से जिस किसी धार्मिक कार्य्य में आरंभ सारंभ होता हो उसमें प्रवृत्ति तो क्या पर अनुमति तक भी नहीं देते थे।

दूसरे निगमवादी प्रवृति मार्ग के प्रचारक थे। मंदिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएँ संघ विधान मंत्र यंत्र कार्य तथा गृहस्थों के सोलह संस्कार आदि जितने प्रवृति मार्ग के कार्य्य थे वे सब निगमवादी कराया करते थे।

परन्तु जैसे चैत्यवादियों में विकार पैदा होने से समाज उनसे खिलाफ हो गया था वैसे ही निगमवादियों का हाल हुआ पर उस समय उनको सुधारने की किसी को नहीं सूझी उलटे उनके ही ग्रंथों को नष्ट करने का प्रयत्न किया गया जिसका नतीजा यह हुआ कि शासन का एक अंग नष्ट होगया और यह समस्या खड़ी होगई कि जो निगमवादियों के कार्य थे उन्हें अब कौन करे ?

पूजा प्रभावना प्रतिष्ठा संघ विधान वगैरह कि जिसमें धर्म का मिश्रण था वे कार्य तो आगमवादियों के शिर पर आ पड़े कि जिन कार्यों में वे पहले अनुमोदन के अलावा आदेश नहीं दिया करते थे वे स्वयं करने लगे और गृहस्थों के संस्कार वगैरह कार्य विधर्मी ब्राह्मणों के हाथ में देने पड़े। यही कारण है कि आज जैनों के घरों में संस्कार विधान एवं पर्व व्रत वगैरह होते वे प्रायः सब विधर्मियों के ही होते हैं अर्थात् वे सब कार्य उन विधर्मियों की ही विधि विधान से होते हैं।

निगमवादियों को नष्ट करने से जैन समाज को बड़ा भारी नुकसान उठाना पड़ा है। एक तरफ तो आगमवादियों को निगमवादी बनकर अपने संयम से हाथ धो बैठना पड़ा है क्योंकि जिन्होंने तीन करण तीन योग से आरंभ का त्याग किया था अब वे केवल उपदेश ही नहीं पर आदेश तक भी देने लग गये। दूसरी ओर जैन गृहस्थ लोग अपने धर्म से पतित बनकर सब कार्य विधर्मियों के विधि विधान से करने लग गये इतना ही क्यों पर उनके संस्कार ही विधर्मियों के पड़ गये हैं।

निगमवादी जिन निगमशास्त्रों को मानते थे वे उपनिषद् के नाम से ओलखाये जाते थे और उन उपनिषदों में संसार मार्ग के साथ मोक्ष मार्ग का भी निर्देश किया हुआ है। जिसको मैं यहां दर्ज कर देता हूँ।

१—उत्तरारण्यक नाम प्रथमोपनिषद्—इसमें दर्शन के भेदों का निरूपण किया है।

२—पंचाध्याय नाम द्वितीयोपनिषद्—इसके अलग अलग पांच अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में विविध प्रकार के विषयों का वर्णन है।

३—बहुश्रचनाम तृतीयोपनिषद्—इसमें चक्रवर्ती भरतमहाराज के निर्माण किये चार वेदों की श्रुतियों को असली रूप में दर्ज किया है।

४—विज्ञानघनार्णवनाम चतुर्थोपनिषद्—इसमें विविध प्रकार से ज्ञान का स्वरूप बतलाया है।

५—विज्ञानेश्वराख्य पंचमोपनिषद—इसमें ज्ञानी पुरुषों का विस्तार से वर्णन किया है।

६—विज्ञानगुणार्णवनाम षष्ठोपनिषद—इसमें भिन्न २ प्रकार से ज्ञान के गुणों का अधिकार है।

७—नवतत्त्वनिदाननिर्णयाख्य सप्तमोपनिषद—इसमें नौ तत्त्व का विस्तार है।

८—तत्त्वार्थनिधिरत्नाकराभिधाष्टमोपनिषद—इसमें विविध प्रकार से तत्त्वों का स्वरूप है।

९—विशुद्धात्म गुण गंभिराख्य नवमोपनिषद्—इसमें शुद्ध आत्मा के ज्ञानादि गुणों का वर्णन है।

१०—अर्हद्धर्मागमनिर्णयाख्य दशमोपनिषद्—इसमें तीर्थङ्कर भगवान के आगमों का अधिकार है।

११—उत्सर्गापवादवचनानैकांताभिधानैकांदशमोपनिषद—इसमें उत्सर्गोपवाद एवं अनेकान्त मत है।

१२—अस्तिनास्तिविवेक निगम निर्णयाख्य द्वादशमोपनिषद्—इसमें सप्त भंगी का विस्तार है।

१३—निज मनोनयनाह्लादाख्यत्रयोदशमोपनिषद्—इसमें मन और चक्षु को आनंद देने वाला०

१४—रत्नत्रयनिदाननिर्णयनामचतुर्दशमोपनिषद्—इसमें ज्ञान दर्शन और चरित्र रूप रत्नत्रिय का०

१५—सिद्धागमसंकेतस्तवकाख्यपंचदशमोपनिषद्—इसमें आगमों में आये हुये सांकेतिक शब्दों का विस्तार से खुल्लासा किया है।

१६—भव्यजनभयापहारकनामषोडशोपनिषद्—इसमें भव्यजीवों के भय का नाश करने वाला वि०

१७—रागिजननिर्वेदजनकाख्य सप्तदशमोपनिषद्—इसमें रागीपुरुषों को वैराग्योत्पन्न होनेवाले वि०

१८—स्त्रीमुक्तिनिदाननिर्णयाख्याष्टादशमोपनिषद्—इसमें स्त्रियां भी मोक्ष जा सकें—वर्णन है।

१९—कविजनकल्पद्रुमोपमाख्यैकोनविंशतितमोपनिषद्—इसमें कवियों को कल्पवृक्ष बतलाने का वि०
२०—सकलप्रपंचपथ निदाननामविंशतितमोपनिषद्—इसमें जितने प्रपंची मार्ग हैं उनका वर्णन है।
२१—श्राद्धधर्मसाध्यापवर्गनामैकविंशतितमोपनिषद्—इसमें गृहस्थ धर्म से भी मुक्तिमार्ग की वि०
२२—सप्तनयनिदाननाम द्वाविंशतितमोपनिषद्—इसमें सात नय का स्वरूप विस्तार से बतलाया है।
२३—बंधमोक्षापगमनाम त्रयोविंशतितमोपनिषद्—इसमें बंध मोक्ष का स्वरूप है।
२४—इष्टकमनीयसिद्धनामत्रयोविंशतितमोपनिषद्—इसमें मनोइच्छित सिद्धियां प्राप्त करने का वि०
२५—ब्रह्मकमनीयसिद्धयभिधाननाम पंचीवंशतितमोपनिपद—इसमें योगमार्ग से मोक्ष प्राप्त करने की वि०
२६—नैः कर्मकमनीयाख्य षड्विंशतितमवेदांतं—इसमें कर्म कापड से रहित वेदांत स्वरूप निरूपण है
२७—चतुर्वर्गचिंतामणिनाम सप्तविंशतितमवेदांतं—इसमें काम अर्थ धर्म और मोक्ष चारपुरुषार्थ का वि०
२८—पंचज्ञानस्वरूपवेदनाख्यमष्टाविंशतितमवेदांतं—इसमें पांच ज्ञान का विस्तार से वर्णन है।
२९—पंचदर्शनस्वरूपरहस्याभिधानैकोनत्रिंशतमोपनिपद्—इसमें पांच प्रकार के दर्शन का स्वरूप है।
३०—पंचचारित्रस्वरूपरहस्याभिधान त्रिंशत्तमोपनिपद्—इसमें पांच प्रकार के चारित्र का वर्णन है।
३१—निगमागमवाक्यविवरणख्यैकत्रिंशत्तमोपनिपद—इसमें निगम और आगम का विषय है
३२—व्यवहारसाध्यापवर्गनामद्वात्रिंशत्तमवेदांतं—इसमें व्यवहार मार्ग से मोक्ष की साधना का वि०
३३—निश्चयैकसाध्यापवर्गभिधान त्रयस्त्रिंशत्तमोपनिपद—इसमें निश्चयमार्ग से मोक्ष प्राप्ती का वर्णन है
३४—प्रायश्चित्तैकसाध्यापवर्गाख्यचतुस्त्रिंशत्तमोपनिपद—इसमें लगे हुए पाप का प्रायश्चित करने का वि०
३५—दर्शनैकसाध्यापवर्गनाम पंचत्रिंशत्तमवेदांतं—दर्शन से मोक्ष साधन का वर्णन है।
३६—विरताविरतसमानापवर्गाह्व षट्त्रिंशत्तमवेदांतं—समभाव रखने से ही मोक्ष प्राप्त होता है

'जैनधर्म का प्राचीन इतिहास भाग दूसरा पृ० १२

इन उपनिषदों की विषय सूची से पाया जाता है कि इनमें गृहस्थ धर्म के अलावा जैनधर्म के तात्विक आगमिक और दर्शनिक ज्ञान का भी प्रतिपादन किया है। अतः उपनिषद प्राचीन निगम शास्त्र हैं पर वर्तमान में इन उपनिषदों का आस्तित्व कहीं भी पाया नहीं जाता है। शायद निगमवादियों के साथ इन निगम शास्त्र भी लोप हो गये हों खैर इन नामों से इतना तो जाना जा सकता है कि पूर्व जमाने में निगमवादी और उनके निगमशास्त्र थे।

राजा विक्रमादित्य आपका कुछ वर्णन तो आचार्य सिद्धसेनदिवाकर और आचार्य जीवदेवसूरि के अधिकार में आ गया है इनके अलावा कई जैनाचार्यों ने राजा विक्रमादित्य के जीवन के विषय बड़े-बड़े ग्रन्थों का निर्माण भी किया है और उनमें से बहुत से ग्रन्थ अद्यावधि विद्यमान भी हैं। यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने पृथ्वी निऋण करके अपने नाम का संवत् चलाया और वह संवत् अद्यावधि चल भी रहा है। अतः राजा विक्रमादीत्य भारत में एक सम्राट् राजा हुआ, ऐसी मान्यता चिरकाल से चली आ रही है परन्तु वर्तमान युग में इतिहास की शोध खोज से कई विद्वान इस निर्णय पर आये हैं कि संवत चलाने वाले विक्रमादित्य नाम का कोई राजा नहीं हुआ है। परन्तु 'विक्रम' यह एक किसी शक्तिशाली वीर भूपति का विशेषण है और जो विक्रम संवत चल रहा है यह वास्तव में कृतसंवत् मालव संवत् एवं मालवगणसंवत् था जो मालव प्रजा की विजय का द्योतक है। उसी मालव संवत् के साथ आगे चलकर विक्रम की नौवी शताब्दी में संवत् के साथ विक्रम नाम लग जाने से विक्रम संवत् बन गया है और इस बात की साबूति के लिये निम्न लिखित शिलालेख बतलाये जाते हैं:—

"श्रीर्म्मालवगणाम्नाते, प्रशस्ते कृतसंज्ञिते। एक षष्ठ्यधिके प्राप्ते, समाशतचतुष्टये [।।] प्रावृक्का (ट्का) ले शुभे प्राप्ते।"

मंदसौर से मिले हुये नरवर्मन् के समय के लेख में

"कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेष्वेकाशीत्युतरेष्वस्यां मालवपूर्वायां [४००] ८०१ कार्तिक शुक्लपंचम्याम"।

राजपूताना म्यूजिअम (अजमेर में रखे हुये नगरी (मध्यमिका, उदयपुर राज्य में) के शिलालेख में।

"मालवानां गणस्थित्या याते शत चतुष्टये। त्रिनवत्यधिकेब्दानाम्रि (मृ) तौ सेव्यघनस्त (स्व) ने ।। सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेह्नि त्रयोदशे ।।"

मंदसौर से मिले हुये कुमारगुप्त (प्रथम) के समय के शिलालेख में

"पंचसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्नवति सहितेषु मालवगणस्थितिवशात्कालज्ञानाय लिखितेषु।"

मंदसौर से मिले हुये यशोधर्मन (विष्णुवर्द्धन के समय के शिलालेख में

"संवत्सरशतैर्यातैः सपश्चनवत्यर्गलैः, [।] सप्तभिमार्यालवेशानां"।

भारतीय प्रा० लिपिमाला १६६

कोटा के पास कणस्वा के शिवमंदिर में लगे हुये शिलालेखों में—

"कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेष्वष्टाविंशेषु ४००-२०८ फाल्गुण (न) बहुलस्यापंचदश्यामेतस्यां पूर्वायां।"

फ्ली; गु० इं, पृ० २५३

यातेषु चतुर्षु क्रि (कृ) तेषु शतेषु सौम्ये (म्यै) प्वा ष्टा) शीतसोत्तरपदेष्विह वत्स [रेष]
शुक्ले त्रयोदशदिने भुवि कार्तिकस्य मासस्य सर्वजनचित्तसुखावहस्य।"

फ्ली, गु० इं० पृ ४३०

उपरोक्त शिलालेखों में कृत-मालव-मालवगण संवत् का प्रयोग हुआ है। परन्तु संवत् के साथ विक्रम का नाम निर्देश तक कहीं पर भी नहीं हुआ है यदि इस संवत को राजा विक्रम ने ही चलाया होगा तो संवत् के प्रारम्भ में ही विक्रम का नाम अवश्य होता अतः विद्वानों का मत है कि प्रस्तुत संवत् किसी विक्रम

१९—कविजनकल्पद्रुमोपमाख्यैकोनविंशतितमोपनिषद्—इसमें कवियों को कल्पवृक्ष बतलाने का वि०
२०—सकलप्रपंचपथ निदाननामविंशतितमोपनिषद्—इसमें जितने प्रपंची मार्ग हैं उनका वर्णन है।
२१—श्राद्धधर्मसाध्यापवर्गनामैकविंशतितमोपनिषद्—इसमें गृहस्थ धर्म से भी मुक्तिमार्ग की वि०
२२—सप्तनयनिदाननाम द्वाविंशतितमोपनिषद्—इसमें सात नय का स्वरूप विस्तार से बतलाया है।
२३—बंधमोक्षापगमनाम त्रयोविंशतितमोपनिषद्—इसमें बंध मोक्ष का स्वरूप है।
२४—इष्टकमनीयसिद्धनामत्रयोविंशतितमोपनिषद्—इसमें मनोइच्छित सिद्धियां प्राप्त करने का वि०
२५—ब्रह्मकमनीयसिद्धयभिधाननाम पंचीवंशतितमोपनिषद—इसमें योगमार्ग से मोक्ष प्राप्त करने की वि०
२६—नैः कर्मकमनीयाख्य षड्विंशतितमवेदांतं—इसमें कर्म कायड से रहित वेदांत स्वरूप निरूपण है।
२७—चतुर्वर्गचिंतामणिनाम सप्तविंशतितमवेदांतं—इसमें काम अर्थ धर्म और मोक्ष चारपुरुषार्थ का वि०
२८—पंचज्ञानस्वरूपवेदनाख्यमष्टाविंशतितमवेदांतं—इसमें पांच ज्ञान का विस्तार से वर्णन है।
२९—पंचदर्शनस्वरूपरहस्याभिधानैकोनत्रिंशतमोपनिषद्—इसमें पांच प्रकार के दर्शन का रहस्य है।
३०—पंचचारित्रस्वरूपरहस्याभिधान त्रिंशत्तमोपनिषद्—इसमें पांच प्रकार के चारित्र का वर्णन है।
३१—निगमागमवाक्यविवरणख्यैकत्रिंशत्तमोपनिपद—इसमें निगम और आगम का विषय है
३२—व्यवहारसाध्यापवर्गनामद्वात्रिंशत्तमवेदांतं—इसमें व्यवहार मार्ग से मोक्ष की साधना का वि०
३३—निश्चयैकसाध्यापवर्गभिधान त्रयस्त्रिंशत्तमोपनिपद—इसमें निश्चयमार्ग से मोक्ष प्राप्ती का वर्णन है
३४—प्रायश्चित्तैकसाध्यापवर्गोख्यचतुस्त्रिंशत्तमोपनिपद—इसमें लगे हुए पाप का प्रायश्चित करने का वि०
३५—दर्शनैकसाध्यापवर्गनाम पंचत्रिंशत्तमवेदांतं—दर्शन से मोक्ष साधन का वर्णन है।
३६—विरताविरतसमानापवर्गाह्व षट्त्रिंशत्तमवेदांतं—समभाव रखने से ही मोक्ष प्राप्त होता है

'जैनधर्म का प्राचीन इतिहास भाग दूसरा १० १३३

इन उपनिषदों की विषय सूची से पाया जाता है कि इनमें गृहस्थ धर्म के अलावा जैनधर्म का तात्विक आगमिक और दर्शनिक ज्ञान का भी प्रतिपादन किया है। अतः उपनिषद प्राचीन निगम शास्त्र है पर वर्तमान में इन उपनिषदों का आस्तित्व कहीं भी पाया नहीं जाता है। शायद निगमवादियों के साथ उनके निगम शास्त्र भी लोप हो गये हों खैर इन नामों से इतना तो जाना जा सकता है कि पूर्व जमाने में निगमवादी और उनके निगमशास्त्र थे।

राजा विक्रमादित्य आपका कुछ वर्णन तो आचार्य सिद्धसेनदिवाकर और आचार्य जीवदेवसूरि के अधिकार में आ गया है इनके अलावा कई जैनाचार्यों ने राजा विक्रमादित्य के जीवन के विषय बड़े-बड़े ग्रन्थों का निर्माण भी किया है और उनमें से बहुत से ग्रन्थ अद्यावधि विद्यमान भी हैं। यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने पृथ्वी निऋण करके अपने नाम का संवत् चलाया और वह संवत् अद्यावधि चल भी रहा है। अतः राजा विक्रमादीत्य भारत में एक सम्राट् राजा हुआ, ऐसी मान्यता चिरकाल से चली आ रही है परन्तु वर्तमान युग में इतिहास की शोध खोज से कई विद्वान इस निर्णय पर आये हैं कि संवत चलाने वाले विक्रमादित्य नाम का कोई राजा नहीं हुआ है। परन्तु 'विक्रम' यह एक किसी शक्तिशाली वीर भूपति का विशेषण है और जो विक्रम संवत चल रहा है यह वास्तव में कृतसंवत् मालव संवत् एवं मालवगणसंवत् था जो मालव प्रजा की विजय का द्योतक है। उसी मालव संवत् के साथ आगे चलकर विक्रम की नौवी शताब्दी में संवत् के साथ विक्रम नाम लग जाने से विक्रम संवत् बन गया है और इस बात की साबूति के लिये निम्न लिखित शिलालेख बतलाये जाते हैं:—

"श्रीर्म्मालवगणाम्नाते, प्रशस्ते कृतसंज्ञिते। एक षष्ठ्यधिके प्राप्ते, समाशतचतुष्टये [।।] प्रावृका (ट्का) ले शुभे प्राप्ते।"

मंदसौर से मिले हुये नरवर्मन् के समय के लेख में

"कृतेपु चतुर्पु वर्पशतेष्वेकाशीत्युतरेष्वस्यां मालवपूर्वायां [४००] ८०१ कार्तिक शुक्लपंचम्याम" ।

राजपूताना म्यूजिअम (अजमेर में रखे हुये नगरी (मध्यमिका, उदयपुर राज्य में) के शिल लेख में।

"मालवानां गणस्थित्या याते शत चतुष्टये। त्रिनवत्यधिकेब्दानाम्रि (मृ) तौ सेव्यघनस्त (स्व) ने ।। सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेह्नि त्रयोदशे ।।"

मंदसौर से मिले हुये कुमारगुप्त [प्रथम) के समय के शिल लेख में

"पंचसु शतेपु शरदां यातेष्वेकान्नवति सहितेपु मालवगणस्थितिवशात्कालज्ञानाय लिखितेपु।"

मंदसौर से मिले हुये यशोधर्मन (विष्णुवर्द्धन के समय के शिल लेख में

"संवत्सरशतैर्यातैः सपश्चनवत्यर्गलैः, [।] सप्तभिमार्यालवेशानां" ।

भारतीय प्रा० लिपिमाला १६६

कोटा के पास कणस्वा के शिवमंदिर में लगे हुये शिलालेखों में—

"कृतेपु चतुर्पु वर्पशतेष्वष्टाविंशेपु ४००-२०८ फाल्गुण (न) बहुलस्यापंचदश्यामेतस्यां पूर्वायां।"

फ्ली; गु० इ०, पृ० २५३

यातेपु चतुर्पु क्रि (कृ) तेपु शतेपु सौम्ये (म्यै) प्वा ष्टा) शीतसोत्तरपदेष्विह वत्स [रेप] शुक्ले त्रयोदशदिने भुवि कार्तिकस्य मासस्य सर्वजनचितसुखावहस्य।"

फ्ली, गु० इ० पृ ४७०

उपरोक्त शिलालेखों में कृत-मालव-मालवगण संवत् का प्रयोग हुआ है। परन्तु संवत् के साथ विक्रम का नाम निर्देश तक कहीं पर भी नहीं हुआ है यदि इस संवत को राजा विक्रम ने ही चलाया होगा तो संवत् के प्रारम्भ में ही विक्रम का नाम अवश्य होता अतः विद्वानों का मत है कि प्रस्तुत संवत् किसी विक्रम

राजा का चलाया नहीं है हाँ विक्रम की नौवीं शताब्दी के एक शिलालेख में सब से पहला संवत् के साथ विक्रम का नाम लिखा हुआ मिलता है जैसे कि —

"वसु नव (अ) ष्टौ वर्षागतस्य कालस्य विक्रमाख्यस्य ।
वैशाखस्य सियाता (यां) रविवार युत द्वितीयायाम् ।।"

यह शिलालेख धोलपुरा से मिला है राज चण्डमहासन के समय वि० सं० ८९८ का है इसमें पहला पहल संवत् के साथ विक्रम नाम जुड़ा हुआ है—

कहीं-कहीं जैन विद्वानों ने उज्जैन के राजा बलमित्र को विक्रम की उपाधि से भूषित किया है। राजा बलमित्र था भी प्राक्रमी एवं विक्रम। उसका राज भरोंच में था परन्तु उसने उज्जैन पर चढ़ाई कर शकों को पराजित कर उज्जैन का राज अपने अधिकार में कर लिया उस विजय के उपलक्ष में उसने नया संवत् चलाया इत्यादि। परन्तु इसमें भी वह सवाल तो ज्यों का त्यों खड़ा ही रहता है कि राजा बलमित्र ने अपनी विजय के उपलक्ष में नया संवत् चलाया तो उस समय से ही संवत् के साथ बल एवं विक्रम शब्द क्यों नहीं चलाया? इसके लिए यह कहा जा सकता है कि राजा बलमित्र ने मालवा प्रान्त को विजय करके आपना नाम की अपेक्षा मालवा शब्द को संवत् के साथ जोड़ देना विशेष गौरव समझा होगा और संवत् के साथ मालव शब्द को जोड़ दिया हो तो यह ठीक समझा जा सकता है। अब हम समय को देखते हैं तो संवत् प्रारम्भ और बलमित्र का समय ठीक मिलता-जुलता है अतः जैन लेखकों का लिखना सत्य प्रतीत होता है कि विक्रम यह राजा बलमित्र का विशेषण है और मालव संवत् को राजा बलमित्र ने अपने मालव विजय के उपलक्ष में ही चलाया था।

जैनाचार्यों ने राजा विक्रम के लिये बड़े-बड़े ग्रन्थों का निर्माण किये हैं और राजा विक्रम को जैन धर्म का प्रचारक लिखा है तथा राजा विक्रम ने उज्जैन से तीर्थ शत्रुंजय का विराट् संघ निकाला और कई मन्दिर भी बनाया इत्यादि यदि राजा बलमित्र को ही विक्रम समझ लिया जाय तो यह बात सर्वथा सिद्ध हुई है कारण राजा बलमित्र जैन धर्म का परमोपासक था उसने ५२ वर्ष भरोंच नगर में राज किया बाद उज्जैन का राज अपने अधिकार में करके ८ वर्ष तक उज्जैन में भी राज किया यदि उसने उज्जैन से शत्रुंजय का संघ निकाला हो तो यह असंभव भी नहीं है। राजा बलमित्र कालकाचार्य के भानेज थे आचार्य खपटसूरि आचार्य पादलिप्तसूरि उपाध्याय महेन्द्र वगैरह राजा बलमित्र की आग्रह से विशेष तक भरोंच में ठहरे थे और कई वादियों को वहां पराजय भी किये थे अतः उनके जैन होने में किसी प्रकार का संदेह भी नहीं हो सकता है।

कई लोग यह भी कहते हैं कि मालव संवत् के कई वर्षों के बाद गुप्तवंशी चन्द्रगुप्त (द्वितीय) राजा हुआ विक्रम उस राजा की उपाधि थी और उसको मालव संवत् के साथ जोड़ देने से ही मालव संवत् का नाम विक्रम संवत् हुआ है परन्तु इस कथन के लिये कोई भी पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता है जैसा कि बलमित्र के लिये मिलता है। विशेष निर्णय विद्वानों की विचार श्रेणी पर ही छोड़ दिया जाता है।

१—राजवल्लभसूरिकृत विक्रमचरित्र २—शुभशील गणीकृत विक्रमादित्य चरित्र
३—[illegible] वि० च० (स० १४९०) (स० १९४२)

[श्री जैन [illegible]

१६—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि (तृतीय)

आचार्यः स हि सूरि सूर्य विदितो नाम्ना तु रत्नप्रभः ।
शोभा तप्तभट्टीय वंश जनता वर्गस्य दीक्षां गतः ॥
त्यक्त्वा मास विवाहितां निजवधूं कोटिंच वित्तं बुधः ।
ज्ञात्वा पूर्वग रत्नसूरि-चरितं शिक्षां-व तस्माद्धधौ ॥

चार्य रत्नप्रभसूरि—इन तीसरे रत्नप्रभसूरि का यश एवं प्रभाव की पताका तीनों लोक में फहरा रही थी । आप ॐकार नगर के तप्तभट्ट गोत्रिय शाह पेथा की भार्या कुक्षी के राजसी नाम के होनहार पुत्र रत्न थे । आपकी बालक्रीडाओं का वर्णन पट्टावलीकारों ने बहुत विस्तार से किया है । एक दो उदाहरण यहां बतला दिये जाते हैं कि बालकों की क्रीडा किस प्रकार भविष्य सूचक होती हैं । शाह पेथा का घराना पुश्तों से जैनधर्म का परमोपासक था जिसमें आपकी धर्मपत्नी कुक्षी तो अपना जीवन ही धर्म करने में व्यतीत करती थी । जिन बालकों के माता पिता धर्मज्ञ होते हैं उन्हों का असर बालबच्चों पर अवश्य पड़ ही जाता है । शाह पेथा धनकुबेर एवं करोड़ाधीश था और उनके सात पुत्रियों पर राजशी एक ही पुत्र था अतएव माता पिता का उस पर अधिक से अधिक स्नेह होना एक स्वभाविक ही था । राजशी छः वर्ष का हुआ तो कई मिष्टान्नादि पदार्थ देकर बहुत से लड़कों को अपना सहचारी बना लिया और उन साथियों के साथ क्रीडा करता था कभी २ अपनी माता के साथ गुरु महाराज के उपाश्रय व्याख्यान सुनने को भी जाया करता था । जैसे मुनिजन पाट पर बैठकर श्रोताओं को व्याख्यान सुनाते थे राजशी भी लड़कों को एकत्र कर उनको व्याख्यान सुनाने की चेष्टा किया करता था और जैसे मुनिराज अपने व्याख्यान में संसार की असारता बतलाते थे जिसको राजशी सुनता था उसी प्रकार अपने सहचरों के बीच बैठकर उन बालकों को संसार की असारता बतलाया करता था इत्यादि ।

अहा हा ! पूर्व जन्म के यह कैसे सुन्दर संस्कार होंगे । राजशी को इन बातों में बहुत आनन्द आता था । एक दिन राजशी गुरु महाराज के उपाश्रय गया था उस समय साधु भिक्षार्थ नगर में गये थे । राजशी व्याख्यान के पाटा पर बैठकर व्याख्यान देने लग गया । जब साधुओं ने आकर देखा और राजशी को पूछा कि तू क्या कर रहा है ? राजशी ने उत्तर दिया कि मैं व्याख्यान दे रहा हूँ इत्यादि इस बच्चे की चेष्टा देख कर मुनियों ने सोचा कि यदि यह बालक दीक्षा लेगा तो जिनशासन की बड़ी भारी प्रभावना करेगा ।

एक समय मुनियों ने गोचरी जाने के लिये पात्रों का प्रतिलेखन कर रखा था । इतने में बालक राजशी आया और झोली सहित पात्र लेकर सीधा ही अपने घर पर आ गया एवं माता के पास जाकर धर्म लाभ दिया । माता ने इस प्रकार राजशी को देख कर उसे उपालम्भ दिया कि बेटा ! साधुओं के पात्रे कभी नहीं लेना । बेटा ने कहा, माता पात्रे मुझे अच्छे लगते हैं इत्यादि । इतने में पीछे मुनि आये और उसके हाथों से पात्र ले लिया इत्यादि धर्म चेष्टा के कई उदाहरण राजशी की बालावस्था के बन चुके थे ।

शाह पेथा ने राजशी की उम्र ८ वर्ष की हुई तो अध्यापक के पास पढ़ने को भेज दिया। दूसरे विद्यार्थियों से राजशी में विनयगुण अधिक था। यही कारण था कि अध्यापक महोदय की राजशी पर विशेष कृपा रहती थी और राजशी पढ़ाई में अपने सहपाठियों से हमेशा आगे बढ़ता जाता था।

एक दिन आचार्य सिद्धसूरि ॐकार नगर में पधारे अतः श्रीसंघ ने आपका सुन्दर सत्कार किया सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था। एक दिन माता कुल्ली ने विनय के साथ अपने पुत्र राजसिंह की धर्म चेष्टा के लिये सूरिजी से पूछा कि पूज्यवर ! राजसिंह बाल्यावस्था में ही साधु उचित कार्य करता है इसका क्या कारण है ? सूरिजी ने अपने निमित्त ज्ञान से कहा माता राजसिंह ने पूर्व जन्म में दीक्षा की आराधना की है। अतः इसको दीक्षा पर अनुराग है। माता तू भी धन्य है कि तेरी कुक्षी से राजसी जैसा पुत्र पैदा हुआ है जो कभी राजसी दीक्षा लेगा तो जैनधर्म की प्रभावना के साथ जगत का उद्धार करने वाला होगा इत्यादि। सूरिजी के वचन सुनकर माता के दिल में आया कि यह राजसी कहीं दीक्षा न ले ले अतः इसकी शादी जल्दी से कर देनी चाहिये। बस फिर तो देरी ही क्या थी पहिले से ही राजसी की शादी के लिये कई प्रस्ताव आये हुये थे। शाह पेथा ने एक लिखी पढ़ी श्रेष्ठि कन्या के साथ राजसी का सम्बन्ध (सगाई) करदी। इस बात की खबर जब राजसी को हुई तो उसने अपनी माता से कहा कि माता ! पिताजी मुझे जाल में फंसाना चाहते हैं पर मैं हर्गिज इस संसार रूपी जाल में न फंसूगा। माता ने कहा बेटा क्या विवाह करना जाल है ?

पुत्र ने कहा हां माता मैं समझता हूँ कि—विवाह करना जाल है ?

माता—यदि संसार में कोई विवाह न करे तो फिर संसार चले ही कैसे ?

पुत्र—माता मैं संसार की बात नहीं करता हूँ मैं तो अपनी बात करता हूँ।

माता—तू शादी नहीं करेगा तो क्या साधु बनेगा ?

पुत्र—हां माता मैं तो दीक्षा लूंगा।

माता—खैर दीक्षा ले तो दम्पति दोनों साथ में ही लेना शादी तो कर ले वरना हमारी मांग आंख में अच्छा नहीं लगेगा।

मां बेटा में बातें हो ही रही थीं कि इतने में पेथाशाह घरपर आ गया और पूछा कि आज मां बेटा क्या बातें कर रहे हो। माता बोली आपका पुत्र कहता है कि मुझे शादी नहीं करनी है मुझे तो दीक्षा लेनी है ! शाह पेथा ने कहा कि दीक्षा लेनी है तो भी शादी तो करले फिर सब घर वालों के साथ में ही दीक्षा लेना। राजसी ने सोचा कि जो कर्मों की रेखा है वह तो किसी के भी टाली टल ही नहीं सकती है और इस निमित्त कारण से ही सबका कल्याण होने वाला हो तो भी कौन कह सकता है ? जब माता पिता का इतना आग्रह है तो होने दो शादी अगर मेरे दीक्षा का योग है तो शादी से रुक भी नहीं सकेगा जिसके लिये जम्बुकुंवर आदि अनेक महापुरुषों के उदाहरण विद्यमान है।

राजसी के माता पिता ने बड़े ही समारोह के साथ राजसी का विवाह कर दिया। इधर तो राजसी के लग्न को पूरा एक मास भी नहीं हुआ था कि उधर से आचार्यश्री सिद्धसूरिजी महाराज भ्रमन करते हुए पुनः ॐकार नगर में पधार गये। सूरिजी का उपदेश हमेशा त्याग वैराग्य पर होता था और आप बार बार फरमाया करते थे कि संसार में जीव मोह एवं ममत्व से दुःखी बनता है तृष्णा तो ऐसी बैतरणी है कि मनुष्य समझ आने पर भी तृष्णा के वशीभूत बना हुआ इस प्रकार विचार करता है कि।

[माता बेटा का संवाद

अज्जं कलं परं पुरारी, पुरिस चिंतंति अत्थी संपति। अंजलि गई भो तुअं, गल्लतमायुः न पिच्छति॥

अरे भव्य ! तू आज कल परसों और वर्षान्तर में धर्म करने का विचार करता है पर अंजली के जल की भांति तेरा आयु क्षीण होता जारहा है इसका भी कभी विचार किया है तीर्थङ्कर देवों ने सो स्पष्ट यानि खुले शब्दों में फरमाया है कि। मनुष्य का आयुष्य अस्थिर है जैसे कि—

दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमाए ॥१॥
कुसग्गे जह ओसविंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमाए ॥ २ ॥

अर्थात् आयुष्य का क्षण भर का भी विश्वास नहीं है अतः धर्म करने में क्षणमात्र की भी देर न करनी चाहिये न जाने क्षणान्तर क्या होता है कहा है कि—"धर्मस्यत्वरता गतिः"—इत्यादि

सूरिजी का वैराग्यमय उपदेश सुन कर जैसे कोई सिंह निद्रा से जागकर सावधान हो जाता है वैसे ही राजसी सावधान हो गया और अपने माता पिता के पास जाकर दीक्षा की अनुमति मांगी। पर माता पिता और एक मास की परणी नववधू वगैरह कब चाहते थे कि राजसी इस १६ वर्ष की युवक वय में हमको छोड़ कर दीक्षा लेले परन्तु राजसी का हृदय तो बाल्यावस्था से ही दीक्षा के रंग से रंगा हुआ था वह इस संसार रूप कारागृह में कब रहने वाला था। राजसी ने अपनी स्त्री को इस कदर युक्ति से समझाई कि वह दीक्षा लेने के लिये तैयार हो गई इस हालत में राजसी के माता पिता संसार में कब रहने वाले थे अतः उन्होंने राजसी को पूछा कि घर में करोड़ों रुपये की लक्ष्मी है उस का क्या करना चाहिये ? राजसी ने कहा पिताजी ! शास्त्रों में सातक्षेत्र कहे है उसमें लगाकर पुन्योपार्जन कीजिये दूसरा तो इसका हो ही क्या सकता है। शाह पेथा ने एक एक कोटी द्रव्य तो अपनी सातों पुत्रियों को दे दिया कुछ दीक्षा के महोत्सव के लिए रख लिया। शेष द्रव्य सातों क्षेत्र में जहां जैसी आवश्यकता थी लगा दिया इस प्रकार सूरिजी का उपदेश और राजसी का त्याग वैराग्य देख और भी २३ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। इस सुअवसर पर जिन मंदिरों में अठाई महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य और साधर्मी भाइयों को पहरामणी याचकों को दान दीन दुखियों का उद्धार वगैरह कार्य्यों में पांच करोड़ द्रव्य व्यय किया। तदनन्तर शुभमुहूर्त्त में राजसी आदि २७ नरनारियों ने सूरिजी के शुभ हस्तविन्द से भगवती जैनदीक्षा ग्रहण करली । शुभ कार्य्य से जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई और घर-घर में जैनधर्म की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी। सूरिजी ने राजसी का नाम 'गुणचन्द्र' रख दिया जो "अथानाम तथा गुण" वाली कहावत को चरितार्थ करता था : कारण राजसी में सब गुण चन्द्र के समान निर्मल थे।

मुनि गुणचन्द्र सूरिजी के विनयवान शिष्यों में एक था। गुरुकुल वास में रह कर सूरिजी की आज्ञा का भली भांति आराधन किया करता था। मुनिजी ने पूर्वभव में सरस्वती देवी की अच्छी आराधना की थी कि इस भव में भी वह वरदाई हो गई अल्प समय में वर्त्तमान जैनागमों का अध्ययन कर लिया। इतना ही क्यों पर व्याकरण, न्याय, तर्क, काव्य अलंकार छन्द वगैरह के भी धुरंधर विद्वान हो गये तथा स्वमत के

अलावा परमत के साहित्य का भी आपने ठीक अध्ययन कर लिया था। शास्त्रार्थ और वादविवाद में आपका तर्क एवं युक्तिवाद इतना प्रबल था कि प्रतिवादी आपके सामने सदैव नत मस्तक ही रहते थे। जब मुनि गुणचन्द्र की २४ वर्ष की आयु अर्थात् ८ वर्ष की दीक्षा पर्याय हुई तो आचार्य सिद्धसूरि ने अपना आयुष्य नजदीक जाकर तथा मुनगुणचन्द्र को सर्वगुण सम्पन्न देख कर सूरिमंत्र की आराधना पूर्वक उपकेश पुर के श्रीसंघ के महोत्सव के साथ चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष देवी सच्चायिका की सम्मतिपूर्वक मुनिगुण चन्द्र को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम आचार्य रत्नप्रभसूरि रख दिया जो इस गच्छ में क्रमशः सूरि नामावली चली आरही थी। एक समय आप श्री ने प्रथम रत्नप्रभसूरि का जीवन पढ़ा तो आपकी आत्मा पर काफी प्रभाव पड़ा और आपने अपना ध्येय शासन उन्नति का बना लिया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि महान प्रतिभाशाली विद्वान और शासन की प्रभावना करने वाले थे न जाने इस नाम में ही ऐसा चमत्कार रहा हुआ था कि गच्छनायक होते ही आपका सितारा अधिक से अधिक चमकने लग जाता था। सूरिजी ने मरुधर के प्रत्येक ग्रामों में विहार कर सर्वत्र जनता को धर्मोपदेशरूपी सुधारस का पान कराया। उपकेशपुर, विजयपट्टन, माडव्यपुर, नागपुर, मेदनीपुर, शंखपुर, कुर्चपुरा, हर्षपुरा, मुग्धपुर, खटकूपपुर, वैराटपुर, तावावती, पालिकापुरी, कोरंटपुर, भिन्नमाल, शिवगढ़, सत्यपुरी, जावलीपुर, चन्द्रावती, शिवपुरी, और पद्मावती वगैरह छोटे बड़े ग्रामों में भ्रमण किया इस विहार के अन्दर कई मुमुक्षुओं को दीक्षा दी, कई मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई। कई जीर्ण मन्दिरों का उद्धार करवाया इत्यादि धर्म प्रचार बढ़ाते हुये क्रमशः आपने पद्मावती नगरी में चतुर्मास करके जनता को खूब उपदेश दिया एक समय आपने तीर्थाधिराज श्रीशत्रुँजय के विषय खूब प्रभावशाली व्याख्यान देते हुये फरमाया कि पूर्व जमाने में कई राजा महाराजा एवं सेठ साहूकारों ने इस तीर्थ की यात्रा निमित्त बड़े २ संघ निकाल कर एवं संघपति बनकर अनेक साधर्मी भाइयों को यात्रा करवा कर अनन्त पुन्योपार्जन किये थे। संघपति पद कोई साधारण पद नहीं पर इस पद को तीर्थङ्करदेव ने भी नमस्कार किया है इत्यादि। आपके उपदेश का प्रभाव जनता पर इस कदर हुआ कि सब की भावना तीर्थयात्रा की ओर झुक गई। उसी सभा में प्राग्वटवंशीय मन्त्री राणक भी था उसने खड़े होकर अर्ज की कि हे पूज्यवर। मेरी इच्छा है कि मैं पुनीत तीर्थ श्रीशत्रुंजय गिरनारादि तीर्थों की यात्रा निमित्त संघ निकालूं अतः मुझे श्रीसंघ आज्ञा प्रदान करावे। सूरिजी ने कहा राणक तू बड़ा ही भाग्यशाली है। ज्ञानियों ने फरमाया है कि मनुष्य का आयुष्य अस्थिर है, लक्ष्मी का स्वभाव चंचल है। इसमें जो कुछ सुकृत कार्य्य बन जाय वही अच्छा है इत्यादि। उस सभा में और भी कई भाइयों की भावना संघ निकालने की थी पर सब से पहिले मंत्री राणा ने अर्ज की अतः श्रीसंघ की तरफ से राणा को ही आदेश मिला।

मन्त्री राणा ने अपना महोभाग्य समझकर सूरिजी को वन्दन कर अपने मकान पर आया। मन्त्री राणा के पाण्डवों के सदृश पांच पुत्र थे उनको बुलाकर संघ निकालने के लिये पूछा तो उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा कि पिताजी। आप के उपार्जन किया हुआ द्रव्यपर हमारा कुछ भी अधिकार नहीं है और आप अपना द्रव्य को इस प्रकार सुकृत में लगावें इस में हम लोगों को बड़ी भारी खुशी है और संघ के सामग्री एकत्र करने के लिये आप जो हुकुम फरमावें उसे करने के लिये हम सब भाई हाजिर हैं। मंत्री राणा ने खुश होकर पुत्रों को अलग-अलग काम का जिम्मा दे दिया अतः वे अपने काम में लग गये

बनाने में लग गये। मंत्री राणा उस समय वृद्धावस्था में था राज का काम पुत्र को सोंप कर आप निर्वृति से धर्माराधना करता था तथापि मन्त्री चलकर राजा के पास गया और राजा ने मंत्रेश्वर की बहुत प्रशंसा की और कहा कि राणा तू बड़ा ही भाग्यशाली है। इस पुन्य कार्य को करके तूने अपने जीवन को सफल बना लिया है। अब इस संघ के लिये जो कुछ सामान की आवश्यकता हो वह बिना संकोच राज से लेजाना ताकि इतना लाभ तो मुझे भी मिले। मन्त्री ने कहा राजन् ! यह सब गुरुदेव की पूर्ण कृपा का ही फल है और आपकी मेहरबानी एवं उदारता के लिये मैं आपका उपकार समझता हूँ और आप श्रीमानों की कृपा से हीं मेरा प्रारंभ किया कार्य्य सफल होगा पर एक खास मेरी प्रार्थना है कि हुजूर खुद इस संघ में पधारें क्योंकि धर्म सबका एक है देव सब का एक है और तीर्थ सबका एक है। पूर्व जमाने में बड़े-बड़े नरेशों ने संघ सहित इस महान तीर्थ की यात्रा की है। अतः मेरी प्रार्थना पर मंजूरी हुक्म फरमाना चाहिये। इस पर राजा ने कहा राणा मैं सब धर्मों को सक ही समझता हूँ फिर भी जैनधर्म पर मेरा अधिक अनुराग है। आपके आचार्य एवं साधु बड़े ही त्यागी वैरागी हैं। इनके उपदेश जनकल्याण के लिये होता हैं। अतः मैं धर्म में किसी प्रकार का भेद नहीं समझता हूँ जिसमें भी तीर्थों के लिये तो भेद हो ही नहीं सकता है। जैसे हमारे गंगातीर्थ है वैसे आपके शत्रुंजयतीर्थ है पर कहा है कि 'राजेश्वरी नरकेश्वरी'। मेरे जैसों की तकदीर में ऐसे तीर्थ की यात्रा कहाँ लिखी है। हमतो चौरासी के कीड़े चौरासी में ही भ्रमण करेंगे यथार्थ संघ में चलने के लिये अभी तो मैं कुछ नहीं कहता हूँ समय पर बन सका तो मैं विचार अवश्य करूंगा इत्यादि।

मन्त्री ने कहा राजन् ! धर्म तो खास राजाओं का ही है और 'यथा राजा तथा प्रजा'। राजा के पीछे ही प्रजा में धर्म का उत्साह बढ़ता है। अगर आप इस संघ में पधारेंगे तो जनता में कितना उत्साह बढ़ जायगा जिसकी कल्पना अभी नहीं की जा सकती है परन्तु इसका लाभ तो आपको ही मिलेगा। जब आप समझते हो कि 'राजेश्वरी सो नरकेश्वरी' तब तो इस नर्क के द्वार बन्द करने के लिये आपको इस धर्म कार्य्य में अधिक उत्साह से भाग लेना चाहिये। आप खुद ही समझदार हैं मैं आपको अधिक क्या कहूँ। यदि आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार करलें तो मेरा उत्साह और भी बढ़ जायगा। इसको भी आप सोच लीजिये।

राजा ने कहा ठीक है राणा मैं इस बात का विचार अवश्य करूंगा।

मंत्री ने कहा विचार करना तो पराधीनों के लिये है आप स्वाधीन हैं। मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि आप मेरी प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करेंगे।

राजा—जब तुझे विश्वास है तो अधिक कहने की जरूरत ही क्या है।

इत्यादि वार्तालाप हुआ। बाद मंत्री राजा को प्रणाम कर अपने स्थान आगया तथा समय पाकर सूरिजी से भी निवेदन कर दिया कि कभी राजा व्याख्यान में आवें तो आप भी इस बात का उपदेश करें क्योंकि राजा संघ के साथ चलने से जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

मंत्रीश्वर के कुशलता पूर्वक कार्य्य करने वाले पांच पुत्र थे। पास में पुष्कल द्रव्य था और राजा की पूरी मदद फिर तो कहना ही क्या था मंत्री ने अलग-अलग काम सब के सुपुर्द कर दिया और वे लोग संघ के लिए सामग्री जुटाने में लग गये।

मंत्री राणा के पुत्रों ने जहां-जहां साधु साध्वियां विराजमान थे वहां-वहां अपने योग्य मनुष्यों को विनती के लिये भेज दिये तथा श्रीसंघ के लिये प्रत्येक ग्राम नगर में आमंत्रण पत्र भिजवा दिये। इस

समय जनता की धर्मप्रति कैसी भावना थी वह इस शुभ कार्य्य से ज्ञात हो जायगी कि आमंत्रण पत्र से हजारों नहीं पर लाखों भावुक जनों ने पद्मावती नगरी की ओर प्रस्थान कर दिया।

शुभमुहूर्त्त मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी के दिन मंत्री राणा के संघपतित्व में और आचार्य सिद्धसूरि के नायकत्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया। संघ का ठाठ देख राजा जैत्रसिंह के मन में इतना उत्साह बढ़ गया कि वह अपनी रानी को लेकर संघ में शामिल हो गया। फिर तो कहना ही क्या था तीर्थ पर पहुँचे वहाँ तक तो इस संघ में ५००० साधु साध्वियां और पांच लक्ष मनुष्यों की संख्या होगई थी। छः री० पाली संघ में कितना आनन्द आता है इस बात का अनुभव तो उन्हीं लोगों को होता है कि जो यात्रा को यात्रा समझ कर निर्वृत्ति भाव से दो-दो चार-चार मास साधुओं की भांति भ्रमण कर आनन्द लूटते हैं क्योंकि यात्रा में इन्द्रियों का दमन, कषायों पर विजय, आरम्भ से निवृत्ति, ब्रह्मचर्य्य का पालना, गुरु सेवा, प्रभु पूजा, स्वधर्मियों का समागम, और ज्ञान ध्यान का करना इत्यादि अनेक लाभ मिलता है। यही कारण है कि तीर्थ यात्रा धर्म का एक खास अंग समझा गया है। उस जमाने में संघ बिना यात्रा होनी कठिन थी और ऐसे संघ कभी-कभी भाग्यशाली ही निकालते थे। अतः जनता में उत्साह की तरंगे उछल रही थीं। आज कल तो यात्रा नाम मात्र की रह गई है। पूर्वोक्त गुण खोजने पर भी शायद ही मिलते होंगे? यद्यपि सब लोग एक से नहीं। होते हैं पर जो पूर्व जमाना में लोगों की धर्म पर श्रद्धा और आत्म-कल्याण की इच्छा थी वह बहुत कम रह गई है इसमें कर्मों की बहुलयता के अलावा क्या हो सकता है फिर भी यह यात्रा इतना उत्तम है कि कभी-कभी आत्म विकास की लहर आय ही जाति है।

उस जमाने के अन्दर जैनों के घरों में ऐसा पैसा ही नहीं आता था कि कुक्षेत्र में लगा सके। अतः यात्रार्थ जो पैसे खर्च किये जाते थे वे साधर्मी भाइयों के तथा देश भाइयों के ही काम में आते थे। आज हजारों लाखों रुपये रेल्वे को दिये जाते हैं वे विदेशों में तो जाते ही हैं पर उसका वहां भी दुरुपयोग ही होता है। जो भाव और आनन्द गुरु महाराज के साथ छरी पाली यात्रा में आता है वह रेलवे से यात्रा करने में नहीं आता है। भला पहिले जमाने में जीवन भर में एक ही यात्रा करते होंगे पर वे एक बार की यात्रा में इतने पाक एवं पवित्र बन जाते थे कि किये हुए कर्मों का प्रक्षालन कर फिर पाप नहीं करते थे। पर आज सालोंसाल यात्रा करने वाले न तो वहां जाकर पाप धोते हैं और न वापिस आकर पाप से डरते हैं। आज की यात्रा को तो एक व्यसन एवं मुसाफिरी ही कही जाती है। हाँ सब धर्मात्मा नहीं होते हैं पर मुख्यता में आज कल का हाल ऐसा ही है। पर कई लोग आत्म भावना वाले भी होते हैं।

संघ क्रमशः गांव नगर एवं तीर्थों के दर्शन पूजन ध्वज महोत्सव जीर्णोद्धार एवं दीन दुःखियों का उद्धार करता आ रहा था। रास्ता में अनेक राजा महाराजा एवं श्रीसंघ की ओर से अच्छा स्वागत हो रहा था। क्रमशः श्रीसिद्धगिरि के दूर से दर्शन करते ही भावुकों के हृदय कमल विकासायमान होगये। [illegible] श्रीसंघ ने भिन्न द्रव्य भाव से तीर्थ वन्दन पूजन किया। तत्पश्चात् तीर्थ पर जाकर भगवान [illegible] के दर्शन स्पर्शन कर चिरकाल के मनोरथों को सफल किया। इस तीर्थ को सुन कर आस पास के [illegible] अनेक संघ वहां आये और आठ दिन तक अष्टान्हिका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्यादि [illegible] ने भक्ति की और भी करने योग्य सब विधान किया तत्पश्चात् गिरनारादि तीर्थों की स्पर्शना की। [illegible] महाराज ने अपने कई साधुओं के साथ लाट सौराष्ट्र प्रदेश में विहार करने के कारण वहां [illegible]

दूसरे साधु एवं संघ लौट कर पुनः पद्मावती आये। मंत्रीराणा ने संघ को स्वामिवात्सल्य के साथ एक एक सोना मोहर और पांच पांच सेर लड्डू की प्रभावना दी और संघ के चरणों की रज अपने सिर पर लगा कर अपने जीवन को सफल बनाया। धन्य है इस प्रकार शासन की प्रभावना करने वाले नररत्नों को।

यह तो एक संघ का हाल यहां लिखा है। पर इस प्रकार तो अनेक प्रान्तों एवं नगरों से कई आचार्य एवं मुनिवरों के उपदेश से छोटे बड़े कई संघ निकाला करते थे। कारण उस समय एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में एक दो मनुष्यों से आना जाना मुश्किल था। लूट फाट का भय रहता था। तथा यात्रार्थ अथवा व्यापारार्थ आना जाना होता तो इसी प्रकार हजारों लाखों आदमियों के संग से ही जाना आना बनता था। दूसरे उस समय लोगों में धर्मभावना भी बहुत थी तीसरे वह लोग थे भी हलुकर्मी चतुर्थ उनके व्यापारादि सब कार्य्य न्याय एवं नीति पूर्वक थे कि लक्ष्मी तो उनके घर में दासी होकर रहती थी। उनका जीवन सादा एवं सरल था कि वे दूसरे कार्यों की अपेक्षा धर्मकार्य में द्रव्य व्यय करना अधिक पसन्द करते थे। इन शुभ अध्यवसायों के कारण वे संसार में खूब फले फूले रहते थे और धर्मकार्यों में सदैव अग्रभाग लेते थे।

अस्तु। आचार्य रत्नप्रभसूरि ने लाट सौराष्ट्र में विहार कर सर्वत्र जैन धर्म की जागृति एवं प्रभावना करते हुये कच्छ प्रदेश में पदार्पण किया। सूरिजी के पधारने से सर्वत्र चहल-पहल मच गई। उपकेश-वंशियों की संख्या सर्वत्र प्रसरित थी, वे लोग रत्नप्रभसूरि का नाम सुन कर प्रथम रत्नप्रभसूरि की स्मृति कर रहे थे। सूरिजी महाराज के उपदेश से कच्छ ठीक जागृत होकर अपने आत्म-कल्याण में लग गया। बाद वहां से आपने सिन्ध को पवित्र बनाया। सिन्ध में बहुत से साधु भी विहार करते थे। जब सूरिजी महाराज देवपुर, आलोट, डबरेल, खखोटी, नरवर होते हुये शिवनगर में पधारे। वहां का राजा कुंतलादि श्रीसंघ ने सूरिजी का खूब ही समारोह के साथ स्वागत किया। सूरिजी के पधारने से जनता में एक प्रकार की नयी चेतनता प्रगट हुई और उत्साह बढ़ गया।

एक दिन सूरिजी व्याख्यान दे रहे थे, किसी अन्य धर्मी ने प्रश्न किया कि सूरिजी महाराज आप निश्चय को मानते हो या व्यवहार को ?

सूरिजी ने उत्तर दिया कि हम निश्चय और व्यवहार दोनों को युगपात समय मानते हैं क्योंकि व्यवहार बिना निश्चय प्रगट नहीं होता है तब निश्चय बिना व्यवहार चल नहीं सकता है। अतः निश्चय और व्यवहार दोनों को मानना ही सम्यक् मार्ग है।

पृच्छक—पूज्य ! यह तो मिश्र मार्ग है। मैंने तो सुना है कि एक मार्ग पर निश्चय किये बिना कल्याण नहीं होता है तो फिर आप जैसे विद्वान मिश्र मार्ग की शरण क्यों लेते हो ?

सूरिजी—एकान्तवाद से कल्याण नहीं, पर कल्याण स्याद्वाद में होता है। अर्थात अकेले निश्चय से कुछ नहीं होता है तब अकेले व्यवहार से भी कार्य्य की सिद्धि नहीं है। हां, निश्चय के अनुसार व्यवहार चलता है पर व्यवहार को छोड़ देने पर अकेला निश्चय भी कुछ नहीं कर सकता है। निश्चय में तो आपके व्याख्यान सुनना था, पर यहां आने का व्यवहार एवं उद्यम किया तब व्याख्यान सुन सके हो।

पृच्छक्—महाराज ! मैं एक निश्चय को ही मानने वाला हूँ। चाहे व्यवहार न करे, पर निश्चय में जो होने वाला होता है वही होकर रहता है। जैसे—

एक मनुष्य निश्चयवादी था और जंगल गया था। वहाँ भूमि खोदते उसे खजाना मिला, पर उसने

समय जनता की धर्मप्रति कैसी भावना थी वह इस शुभ कार्य्य से ज्ञात हो जायगी कि आमंत्रण पत्र से नहीं पर लाखों भावुक जनों ने पद्मावती नगरी की ओर प्रस्थान कर दिया।

शुभमुहूर्त्त मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी के दिन मंत्री राणा के संघपतित्व में और आचार्य सिद्धसूरि नायकत्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया। संघ का ठाठ देख राजा जैत्रसिंह के मन में इतना उत्साह बढ़ा कि वह अपनी रानी को लेकर संघ में शामिल हो गया। फिर तो कहना ही क्या था तीर्थ पर पहुँचे [illegible] तक तो इस संघ में ५००० साधु साध्वियां और पांच लक्ष मनुष्यों की संख्या होगई थी। [illegible] री० पाली संघ में कितना आनन्द आता है इस बात का अनुभव तो उन्हीं लोगों को होता है कि जो [illegible] को यात्रा समझ कर निर्वृत्ति भाव से दो-दो चार-चार मास साधुओं की भांति भ्रमण कर आनन्द लूटे। क्योंकि यात्रा में इन्द्रियों का दमन, कषायों पर विजय, आरम्भ से निर्वृत्ति, ब्रह्मचर्य्य का पालना, गुरु [illegible] प्रभु पूजा, स्वधर्मियों का समागम, और ज्ञान ध्यान का करना इत्यादि अनेक लाभ मिलता है। यही कारण है कि तीर्थयात्रा धर्म का एक खास अंग समझा गया है। उस जमाने में संघ बिना यात्रा होती नहीं थी और ऐसे संघ कभी-कभी भाग्यशाली ही निकालते थे। अतः जनता में उत्साह की तरंगे उछल रही थीं। आज कल तो यात्रा नाम मात्र की रह गई है। पूर्वोक्त गुण खोजने पर भी शायद ही मिलते होंगे। यद्यपि सब लोग एक से नहीं। होते हैं पर जो पूर्व जमाना में लोगों की धर्म पर श्रद्धा और आत्म-कल्याण की [illegible] थी वह बहुत कम रह गई है इसमें कर्मों की बहुलयता के अलावा क्या हो सकता है फिर भी यह यात्रा [illegible] उत्तम है कि कभी-कभी आत्म विकास की लहर आय ही जाति है।

उस जमाने के अन्दर जैनों के घरों में ऐसा पैसा ही नहीं आता था कि कुक्षेत्र में लगा [illegible] यात्रार्थ जो पैसे खर्च किये जाते थे वे साधर्मी भाइयों के तथा देश भाइयों के ही काम में आते थे। [illegible] हजारों लाखों रुपये रेल्वे को दिये जाते हैं वे विदेशों में तो जाते ही हैं पर उसका वहां भी दुरुपयोग होता है। जो भाव और आनन्द गुरु महाराज के साथ छरी पाली यात्रा में आता है वह रेल्वे में [illegible] करने में नहीं आता है। भला पहिले जमाने में जीवन भर में एक ही यात्रा करते होंगे पर वे एक [illegible] यात्रा में इतने पाक एवं पवित्र बन जाते थे कि किये हुए कर्मों का प्रक्षालन कर फिर पाप नहीं करते थे पर आज सालोंसाल यात्रा करने वाले न तो वहां जाकर पाप धोते हैं और न वापिस आकर पाप से [illegible] हैं। आज की यात्रा को तो एक व्यसन एवं मुसाफिरी ही कही जाती है। हाँ सब सरीखे नहीं होते हैं पर मुख्यता में आज कल का हाल ऐसा ही है। पर कई लोग आत्म भावना वाले भी होते हैं।

संघ क्रमशः गांव नगर एवं तीर्थों के दर्शन पूजन ध्वज महोत्सव जीर्णोद्धार एवं दीन दुःखियों का उद्धार करता जा रहा था। रास्ता में अनेक राजा महाराजा एवं श्रीसंघ की ओर से [illegible] था। क्रमशः श्रीसिद्धगिरि के दूर से दर्शन करते ही भावुकों के हृदय कमल विकासायमान होगये। [illegible] श्रीसंघ ने भिन्न द्रव्य भाव से तीर्थ वन्दन पूजन किया। तत्पश्चात् तीर्थ पर जाकर भगवान [illegible] दर्शन स्पर्शन कर चिरकाल के मनोरथों को सफल किया। इस तीर्थ को सुन कर आस पास के [illegible] अनेक संघ वहां आये और आठ दिन तक अष्टान्हिका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्यादि [illegible] से भक्ति की और भी करने योग्य सब विधान किया तत्पश्चात् गिरनारादि तीर्थों की स्पर्शना की। [illegible] महाराज ने अपने [illegible] साधुओं के साथ लाट सौराष्ट्र प्रदेश में विहार करने के [illegible]

दूसरे साधु एवं संघ लौट कर पुनः पद्मावती आये। मंत्रीराणा ने संघ को स्वामिवात्सल्य के साथ एक एक सोना मोहर और पांच पांच सेर लड्डू की प्रभावना दी और संघ के चरणों की रज अपने सिर पर लगा कर अपने जीवन को सफल बनाया। धन्य है इस प्रकार शासन की प्रभावना करने वाले नररत्नों को।

यह तो एक संघ का हाल यहां लिखा है। पर इस प्रकार तो अनेक प्रान्तों एवं नगरों से कई आचार्य एवं मुनिवरों के उपदेश से छोटे बड़े कई संघ निकाला करते थे। कारण उस समय एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में एक दो मनुष्यों से आना जाना मुश्किल था। लूट फाट का भय रहता था। तथा यात्रार्थ अथवा व्यापारार्थ आना जाना होता तो इसी प्रकार हजारों लाखों आदमियों के संग से ही जाना आना बनता था। दूसरे उस समय लोगों में धर्मभावना भी बहुत थी तीसरे वह लोग थे भी हलुकर्मी चतुर्थ उनके व्यापारादि सब कार्य्य न्याय एवं नीति पूर्वक थे कि लक्ष्मी तो उनके घर में दासी होकर रहती थी। उनका जीवन सादा एवं सरल था कि वे दूसरे कामों की अपेक्षा धर्मकार्य में द्रव्य व्यय करना अधिक पसन्द करते थे। इन शुभ अध्यवसायों के कारण वे संसार में खूब फले फूले रहते थे और धर्मकार्यों में सदैव अग्रभाग लेते थे।

अस्तु। आचार्य रत्नप्रभसूरि ने लाट सौराष्ट्र में विहार कर सर्वत्र जैन धर्म की जागृति एवं प्रभावना करते हुये कच्छ प्रदेश में पदार्पण किया। सूरिजी के पधारने से सर्वत्र चहल-पहल मच गई। उपकेशवंशियों की संख्या सर्वत्र प्रसरित थी, वे लोग रत्नप्रभसूरि का नाम सुन कर प्रथम रत्नप्रभसूरि की स्मृति कर रहे थे। सूरिजी महाराज के उपदेश से कच्छ ठीक जागृत होकर अपने आत्म-कल्याण में लग गया। बाद वहां से आपने सिन्ध को पवित्र बनाया। सिन्ध में बहुत से साधु भी विहार करते थे। जब सूरिजी महाराज देवपुर, आलोट, डबरेल, खखोटी, नरवर होते हुये शिवनगर में पधारे। वहां का राजा कुंतलादि श्रीसंघ ने सूरिजी का खूब ही समारोह के साथ स्वागत किया। सूरिजी के पधारने से जनता में एक प्रकार की नयी चेतनता प्रगट हुई और उत्साह बढ़ गया।

एक दिन सूरिजी व्याख्यान दे रहे थे, किसी अन्य धर्मी ने प्रश्न किया कि सूरिजी महाराज आप निश्चय को मानते हो या व्यवहार को ?

सूरिजी ने उत्तर दिया कि हम निश्चय और व्यवहार दोनों को युगपात समय मानते हैं क्योंकि व्यवहार बिना निश्चय प्रगट नहीं होता है तब निश्चय बिना व्यवहार चल नहीं सकता है। अतः निश्चय और व्यवहार दोनों को मानना ही सम्यक् मार्ग है।

पृच्छक—पूज्य ! यह तो मिश्र मार्ग है। मैंने तो सुना है कि एक मार्ग पर निश्चय किये बिना कल्याण नहीं होता है तो फिर आप जैसे विद्वान मिश्र मार्ग की शरण क्यों लेते हो ?

सूरिजी—एकान्तवाद से कल्याण नहीं, पर कल्याण स्याद्वाद में होता है। अर्थात अकेले निश्चय से कुछ नहीं होता है तब अकेले व्यवहार से भी कार्य्य की सिद्धि नहीं है। हां, निश्चय के अनुसार व्यवहार चलता है पर व्यवहार को छोड़ देने पर अकेला निम्रय भी कुछ नहीं कर सकता है। निश्चय में तो आपके व्याख्यान सुनना था, पर यहां आने का व्यवहार एवं उद्यम किया तब व्याख्यान सुन सके हो।

पृच्छक्—महाराज ! मैं एक निम्रय को ही मानने वाला हूँ। चाहे व्यवहार न करे, पर निम्रय में जो होने वाला होता है वही होकर रहता है। जैसे—

एक मनुष्य निश्चयवादी था और जंगल गया था। वहाँ भूमि खोदते उसे खजाना मिला, पर उसने

सोचा कि इसको उठा कर ले जाने का व्यवहार (उद्यम) क्यों किया जाय। निश्चय में लिखा होगा तो आपसे ही घर पर आ जायगा। बस उस खजाने को छोड़ के आ गया। रात्रि में अपनी औरत से सब हाल सुनाया। उस समय गुप्त रहा हुआ एक चोर भी सुनता था। उसने सेठजी के बतलाये हुये स्थान पर जा कर देखा तो वहाँ एक चरू था। खजाना निकालने की गरज से उसमें हाथ डाला तो उस खजाने में साँप बिच्छू के रूप में चोर को काट खाया। चोर ने सोचा कि सेठ ने मुझे मारने का उपाय किया तो इसको लेजा कर सेठ पर डाला जाय कि वह स्वयं मर जाय। बस, चोर ने उस खजाने को लेजा कर सोते हुये सेठ पर डाल दिया कि वह पुनः खजाना हो गया अर्थात् निश्चय रखा तो निधान घर पर आ गया। अतः निश्चय ही को मानना ठीक है। यदि निश्चय में नहीं है तो व्यवहार उल्टा नुकसान का कारण बन जाता है। जैसे एक मूषक ने व्यवहारिक उद्यम कर एक छबड़े को काटा अन्दर था सर्प। मूषक को भक्षण कर गया। अतः मेरी मान्यता के अनुसार एक निश्चय ही प्रधान है।

सूरिजी ने कहा कि ऐसे तो व्यवहार की प्रधानता के भी अनेकों उदाहरण मिल सकते हैं। जैसे आप यहाँ से जाने का उद्यम न करें, फिर कैसे मकान पर पहुँच सकते हैं। रसोई की सब सामग्री होने पर भी बनाने का उद्यम न करें फिर कैसे रसोई बन सकती है। भोजन का ग्रास मुंह में डाला है पर उसे गले उतारने का उद्यम न करें फिर वह कैसे क्षुधा को शान्त कर सकता है। इत्यादि अनेक उदाहरण विद्यमान हैं कि व्यवहार बिना निश्चय काम नहीं देता है। हां, निश्चय से ही व्यवहार चलता है। जैसे निश्चय कार्य्य है तब व्यवहार कारण है पर कारण बिना कार्य बन नहीं सकता है जैसे एक भाई निश्चय को प्रधान मान कर व्यवहार का अनादर करता था तब दूसरा भाई व्यवहार को प्रधान समझ कर निश्चय को नहीं मानता था। इन दोनों में इस विषय पर काफी वाद-विवाद हो गया। अतः वे राजा के पास इंसाफ कराने के लिए गये। दोनों की बातें सुन कर राजा विचार में पड़ गया कि अब मैं किसको सच्चा और किसको झूंठा कहूँ। राजा ने इस कार्य्य को प्रधान पर छोड़ दिया जो स्याद्वाद सिद्धान्त को मानने वाला था।

प्रधान ने एक मास की तारीख डाल दी। इतने समय में एक छोटा-सा कमरा बनाया, इसकी दीवार में एक छोटा-सा आला रक्खा, उसमें एक छाबमें चार लड्डू और जल का एक कोरा घड़ा भरकर रख दिया और उस पर पत्थर चुना ऐसा लगा दिया कि किसी को मालूम न पड़े। जब एक मास के अन्त में उन दोनों की पेशी हुई और वे दोनों हाजिर हुये तो उन दोनों को उस कमरे में डाल कर कपाट बन्द कर दिये। उनके वार्तालाप सुनने को एक गुप्त आदमी को रख दिया। निश्चयवादी तो चुपचाप सो गया पर व्यवहारवादी ने कहा-भाई सोने से क्या होगा कुछ उद्यम (व्यवहार) करिये। निश्चयवादी ने कहा—व्यवहार में क्या धरा है। आखिर तो निश्चय होगा वही होगा। खैर व्यवहारवादी ने दो दिन उद्यम किया कुछ मानी नहीं हुई पर तीसरे दिन कमरे के भीतर एक दीवार पर मुक्का मारने पर मालूम हुआ कि यहाँ पोलार है। उसने हाथ से या लोहे की चाबी से भींत को खोदा और चुना एवं पत्थर को हटाया तो अन्दर लड्डू और जल पाया। तब निश्चयवादी को कहा भाई तेरा निश्चय तो मर जाने के अलावा कोई फल नहीं देता है, पर देख मेरे व्यवहार से लड्डू और जल मिल गया है। उठ इसे खा कर प्राण बचा ले। बस चार लड्डू में से दो निश्चयवादी को दे दिये और दो अपने ले लिये। निश्चयवादी लड्डू तोड़ कर खाने लगा तो लड्डू के अन्दर से एक बहुमूल्य रत्न निकला जिसको गुप्त रूप से अंटी में दबा लिया। चौथे दिन उन दोनों को दरबार में

बुलाया और पूछा कि तुम्हारा इंसाफ हो गया ? दोनों ने कहा कि अच्छी तरह से यानी व्यवहारवादी बोला कि मेरा व्यवहार ही प्रधान है कि दोनों के प्राण बचाये। निश्चयवादी ने कहा मेरा निश्चय ही प्रधान है कि अमूल्य रत्न हाथ लग गया। इस पर प्रधान ने कहा कि तुम दोनों मिलकर चलोगे तो ही फल प्राप्त होगा। यदि उद्यम न करता तो भोजन एवं रत्न कहां से मिलता, फिर भी व्यवहार का फल केवल लड्डू और जल जितना ही था, पर निश्चय का फल रत्न तुल्य है। अतः निश्चय को प्रगट करने के लिये व्यवहार को उपादेय माना करो। दोनों मंजूर कर अपने २ स्थान चले गये। सूरिजी महाराज के उदाहरण ने पृच्छक पर ही नहीं पर आम सभा पर भी बड़ा भारी प्रभाव डाला और स्याद्वाद पर जनता की विशेष श्रद्धा जम गई।

समय परिवर्तनशील है। पूर्व जमाने में निश्चय को मुख्य और व्यवहार को गौण समझा जाता था। उस समय दुनियां को इतना सोच फिक्र एवं आर्तध्यान नहीं था। अर्थात् कुछ भी हानि लाभ होता तो भी इतना हर्ष शोक नहीं होता था कारण वे जान जाते थे कि निश्चय से ऐसा ही होने वाला था पर जब से निश्चय को गौण और व्यवहार को मुख्य माना जाने लगा तब से जनता में सोच फिक्र और आर्तध्यान बढ़ने लग गया। कारण जिस सुख दुख का कारण कर्म समझा जाता था उसके बदले व्यक्ति को समझा जाने लगा। इससे ही आपसी राग-द्वेष वैर-विरोध की वृद्धि हुई है अतः जैनधर्म के सिद्धान्त के जानने वालों को निश्चय को प्रधान और व्यवहार को गौण की मान्यता रखनी चाहिये कि सुख दुख को पूर्व संचित कर्म समझ समभाव से भोग लेवे। अतः निश्चय पर अडिग रहना चाहिये।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने प्रथम रत्नप्रभसूरि की तरह कई मांस मदिरा-सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित किये। कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई। कई बार तीर्थों की यात्रा निमित्त संघ निकलवाये। कई वादी प्रतिवादियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजय वैजंती ध्वजा फहराई और अनेक मुमुक्षुओं को दीक्षा दे श्रमणसंघ में वृद्धि की। सिन्ध भूमि उस समय उपकेशगच्छाचार्यों की एक विहार भूमि थी।

वहां से पंजाब भूमि में पधार कर अपने साधुओं की सार-संभाल की और दीर्घ समय से वहां जैनधर्म के प्रचारार्थ किये हुये कार्यों की सराहना कर उनके उत्साह को बढ़ाया। सावत्थीनगरी में महा-महोत्सवपूर्वक कई योग्य मुनियों को पदस्थ बनाये वहां से तक्षिलादि नगरों में बिहार किया और शालीपुर के मंत्री महादेव के संघ के साथ सम्मेतशिखरजी की तीर्थों की यात्रा की और राजगृह चम्पा भद्दलपुर पावा-पुरी काकंदी विशालादि पूर्व की यात्रा करते हुए कलिंग में पधारे कुँवार कुँवारी वगैरह क्षेत्रों की स्पर्शनाकर आवंती मेदपाट में धर्मोपदेश करते हुये पुनः मरुधर की ओर पधारे।

आचार्य रत्नप्रभसूरि मरुधर में विहार करते हुए एक समय वीरपुर नगर की ओर पधारे वीरपुर में नास्तिक वाममार्गियों का खूब अड्डा जमा हुआ था वहां का राजा वीरधवल उन नास्तिकों को मानने वाला था यथा राजास्तथा प्रजा। इस युक्ति अनुसार नगर के बहुत लोग उन पाखण्डियों के भक्त थे। आचार्य रत्नप्रभसूरि (प्रथम) आदि आचार्यों ने वाममार्गियों के मिथ्या धर्म का उन्मूलन कर दिया था पर फिर भी ऐसे अज्ञात नगरों में उन लोगों के अखाड़े थोड़ा बहुत प्रमाण में रह भी गये थे पर उनके लिए भी जैनाचार्यों का खूब जोरों से प्रयत्न था। और इस लिये ही सूरिजी का पधारना हुआ था।

वीरपुर के राजा का कुँवर वीरसेन की शादी उपकेशपुर की राजकन्या सोनलदेवी के साथ हुई थी

सोनलदेवी जैनधर्म की पक्की श्राविका थी उसने अपने श्वसुराल में जैनधर्म का प्रभाव को अच्छी तरह फैला दिया था आचार्य रत्नप्रभसूरिजी उस सोनलदेवी की विनती से ही पधारे थे जब मालूम हुआ कि आचार्य रत्नप्रभसूरि पधार रहे हैं तो उसने गुरु महाराज के स्वागत की अच्छी की तथा वहां के श्रीसंघ ने भी सूरिजी महाराज का सुन्दर स्वागत किया और सूरिजी को नगर प्रवेश वाये। सूरिजी का व्याख्यान सदा हुआ करता था आपका उपदेश में न जाने ऐसा कोई जादू था कि के राजकुँवार वीरसेनादि बहुत से नर नारियों को जैनधर्म की दीक्षा देकर उन सब का उद्धार किया। कुँवार वीरसेन को दीक्षा देकर सूरिजी ने उनका नाम मुनि सोमकलास रखा था मुनि सोमकलस लेते ही ज्ञानाभ्यास करने में लग गया मुनि सोमकलस ने पूर्व जन्म में उज्वल भावों से ज्ञानपद सरस्वती की आराधना की थी कि थोड़ा ही समय में विद्वान बन गया अतः सूरिजी ने सोमकलस को ध्याय पद से विभूषित कर दिया।

उपाध्याय सोमकलस का व्याख्यान बड़ा ही मधुर रोचक और युक्ति पुरसर था कि सुनने वालों पर बड़ा ही प्रभाव पड़ता था इतना होने पर भी उपाध्यायजी गुरुकुलवास से दूर रहना नहीं चाहते थे एक समय सूरिजी ने सिन्ध प्रान्त में विहार किया रास्ता में छोटे छोटे गांव आने के कारण उपाध्याय सोमकलस को कई साधुओं के साथ अलग विहार करवाया अतः उपाध्यायजी एक दिन विहार कर पड़सोली ग्राम जा रहे थे परन्तु ग्राम में नहीं पहुँचने पहले ही सूर्य अस्त हो गया अतः साधु वृक्षों के नीचे ठहर गये उपाध्याय जी पास ही में निर्जीव भूमिका देखी तो वहां ठहर गये परन्तु वहां थे श्मशान रात्रि समय जब आप ध्यानारियत थे तो एक देवी महा भयंकर रूप बना कर उपाध्यायजी के पास आई और मारी क्रोध के उपद्रव करने शुरू किये पर उपाध्यायजी थे वीर क्षत्री वे अपने ध्यान से तनक भी क्षोभ न पाये—अतः देवी शान्त होकर एक सुन्दर देवांगना का रूप बना कर अनुकूल उपसर्ग देने लगी फिर भी आप तो मेरु पर्वत की भांति अडिग ही रहे आखिर देवी अपने जितने उपाय थे सब के सब आजमाइश कर लिये पर वीर उपाध्यायजी मनसा से भी चलायमान नहीं हुए। इस सहनशीलता को देख देवी प्रसन्न होकर अर्ज की कि हे प्रभो ! मैंने अज्ञानवश आपको कई प्रकार से उपसर्ग किया उसकी तो आप क्षमा करें और मैं आज से आपकी किंकरी हूँ जिस समय आप याद फरमावें उसी समय मैं सेवा में हाजिर होकर आपका कार्य करने की प्रतिज्ञा करती हूँ। कृपा कर मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार करावे उपाध्यायजी ने अपना ध्यान पार कर कहा देवी हम साधु लोग तो उपसर्ग एवं परिसह सहन करने के लिए ही साधु हुए हैं इसमें मेरी दृष्टि से तो आपका कोई अपराध नहीं हुआ है कि जिसकी मैं आपको माफी दूं दूसरा आपने प्रतिज्ञा की वह अच्छी ही है पर हम साधु लोगों के क्या काम होता है कि आपसे करावें हां, शासन कार्य के लिये क्या [illegible] देवी [illegible] क्या मैं अपना कर्तव्य ही समझते हैं पूर्व जमाना में आचार्य रत्नप्रभसूरि के कार्य में [illegible] देवी और आचार्य यक्षदेवसूरि के कार्य में मानुलादेवी सहायक बन शासन के कार्य में मदद पहुँचाई है आप भी उनका अनुकरण कीजिये। देवी ने तथास्तु कह कर उपाध्यायजी को 'वादविजयता' वरदान देकर [illegible] वन्दन कर अपने स्थान पर चली गई।

सुबह उपाध्यायजी अपने मुनियों के साथ विहार कर पड़सोली होकर [illegible] पधारे [illegible] कारण बस्ती होने पर भी किसी जैन को नहीं देखा नगर में आने पर उपाध्यायजी महाराज की [illegible]

यहां उपकेशगच्छ के साधु हैं और किसी कृष्णाचार्य के साथ राज सभा में वाद विवाद करने को गये हैं और सबजैन लोग भी मुनियों के साथ राज सभा में गये हैं अतः कोई भी जैन सेवा में हाजिर नहीं हो सका बस फिर तो देरी ही क्या थी उपाध्यायजी बिना आहारपानी किये और बिना विलम्ब राज सभा में गये मुनियों ने उपाध्यायजी का स्वागत कर आसन दिया उपाध्यायजी ने शास्त्रार्थ की विषय अपने हाथ में ली तो क्षण भर में ही वादी को पराजय कर उस सभा के अन्दर जैनधर्म की विजय पताका फहरा दी इतना ही क्यों पर वहां के राजा प्रजा को जैनधर्म की दीक्षा शिक्षा देकर उन सब को जैन बनाया जिससे वहां का श्रीसंघ बड़ा ही प्रसन्न चित्त हो गाजा वाजा और जिनशासन की जयध्वनि के साथ उपाध्यायजी महाराज को उपाश्रय पहुँचाये—उपाध्यायजी महाराज की यह पहला पहल ही विजय थी।

उपाध्यायजी क्रमशः विहार करते हुए सूरिजी महाराज के पास आये और सब हाल कहने पर सूरिश्वरजी महाराज बड़े ही प्रसन्न हुए सूरिजी महाराज सर्वत्र विहार कर पुनः मरुधर में पधारे और उपाध्याय सोमकलस की इच्छा वीरपुर की स्पर्शना करने की हुई अतः सूरिजी विहार कर वीरपुर पधारे बस फिरतो कहना ही क्या था एक तो सूरीश्वरजी का पधारना दूसरा उपाध्यायजी इस नगर के राजकुंवार थे और लेख पढ़कर एवं विद्वता प्राप्त कर पुनः पधारे अतः जनता के दिल में बड़ा भारी उत्साह था वहां का राजा देवसेनादि श्रीसंघ ने सूरिजी के नगर प्रवेश का अच्छा महोत्सव किया और श्रीसंघ की आग्रह विनतिं से सूरिजी एवं उपाध्यायजी महाराज ने वह चतुर्मास वीरपुर में करने का निश्चय करलिया आपके चतुर्मास से वहां की जनता को बहुत लाभ हुआ आचार्यरत्नप्रभसूरिने उपाध्याय सोमकलस को सूरिमंत्र की आराधना करवा कर राजा देवसेन के बड़ाभारी महोत्सव के साथ उपाध्याय सोमकलस को सूरि पद से भूषीत कर आपका नाम यक्षदेवसूरि रक्ख दिया इन के अलावा भी कई योग्य मुनियोंको पदवियों प्रदान की।

उपकेशगच्छाचार्य्यो की यह तो एक पद्धति ही बनगई कि जब वे गच्छ नायकता का भार अपने सिर पर लेते थे तब कम से कम एक बार तो इन सब प्रदेशों में उनका विहार होता ही था। कारण इन प्रदेशों में महाजन संघ—उपकेशवंश के लोग खूब गहरी तादाद में बसते थे और उनके उपदेश के लिये इस गच्छ के अनेकों मुनि एवं साध्वियें विहार भी करते थे। फिर भी आचार्य्यश्री के पधार नेसे श्राद्धवर्ग में उत्साह बढ़ जाता था और मुनिवर्ग की सारसँभाल हो जाती थी। दीर्घकाल सूरिपद पर रहने वाले आचार्य तो इन प्रान्तों में कई बार भ्रमण किया करते थे। पट्टावलियों में तो आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी के भ्रमण का हाल बहुत विस्तार से लिखा है पर ग्रन्थ बढ़जाने के भय से मैंने यहाँ संक्षिप्त से ही लिख दिया है कि आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाप्रभाविक जिनशासन के स्थम्भ एक प्रतिभाशाली आचार्य हुये हैं। आप अपने ६३ वर्ष के सुदीर्घ शासन में अनेक प्रकार से जैनधर्म की उन्नति कर अपनी धवल कीर्ति को अमर बना गये। और हम लोगों पर इतना उपकार कर गये हैं कि जिसको हम क्षण भर भी नहीं भूल सकते।

कोरंटगच्छ के आचार्य सर्वदेवसूरि जैनधर्म के प्रखर प्रचारक थे। एक समय विहार करते कोरंटपुर पधारे। वहां पर देवी चक्रेश्वरी ने एक समय रात्रि में सूरिजी से अर्ज की है प्रभो! आपका आयुष्य अब बहुत कम है आप किसी योग्य शिष्य को सूरिपद देकर अपने पट्टपर आचार्य बना दीजिये। सूरिजी ने कहा देवीजी ठीक है मैं समय पाकर ऐसा ही करूंगा। आचार्य श्री ने विचार ही विचार में वर्ष कर्म निकाल दिया और अकस्मात एक ही दिन में आपका शरीर छूट गया कि वे अपने हाथों से आचार्य नहीं

यना सके । कोरंटसंघ ने सूरिजी की मृत्यु क्रिया करने के पश्चात् चतुर्विध श्रीसंघ एकत्र होकर विचार, सूरिजी अपने हाथों से अपने पट्टधर बना नहीं सके पर आचार्य बिना गच्छ का संचालन कौन अतः वे लोग चलकर आचार्य्य रत्नप्रभसूरि के पास गये और प्रार्थना की कि प्रभो ! कोरंटगच्छ इतना गच्छ है पर इस समय कोई आचार्य नहीं है अतः आप कोरंटपुर पधार कर योग्य मुनि को आचार्य इत्यादि इस पर आचार्य रत्नप्रभसूरि कोरंटपुर पधारे और कोरंटगच्छ में एक सोमहंस नाम का अच्छा एवं योग्य मुनि था जिसको सूरि मन्त्र की आराधना करवा कर शुभ मुहुर्त में श्रीसंघ के समक्ष पद से विभूषित किया और आपका नाम कनकप्रभसूरि रक्खा इस पद महोत्सव में कोरंटसंघ ने बहुत द्रव्य व्यय कर जिनशासन की अच्छी प्रभावना की । पूर्व जमाने में गच्छ अलग २ होने पर भी कितना प्रेम स्नेह और एक दूसरे की उन्नति में किस प्रकार सहायक बनते थे जिसका यह एक उदाहरण है । इस प्रकार का धर्म प्रेम से ही जैनधर्म उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था ।

इस प्रकार आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने अपने शासन में जैनधर्म का खूब प्रचार बढ़ाया आप पधारे वहां वहां जैनधर्म की प्रभावना के साथ महाजन संघ की खूब वृद्धि की कई भावुकों को प्रदान कर श्रमण संघ की संख्या बढ़ा कर प्रत्येक प्रान्तों में साधुओं को विहार की आज्ञा दी और श्री संघ के ज्ञानवृद्धि के निमित्त अनेक ग्रन्थों की रचना भी की अन्त में आप उपकेशपुर पधारे और अपना आयुष्य नजदीक समझ कर चतुर्विध श्रीसंघ के समीक्ष आलोचना कर अनशनव्रत धारण कर लिया और ३२ दिन परम समाधि में बिता कर स्वर्गधाम पधार गये ।

आचार्य रत्नप्रभसूरि के ६३ वर्ष के दीर्घशासन में शासनोन्नति के अनेक कार्य हुए जिनका पट्टावलियों वंशावलियों आदि अनेक ग्रन्थों में विस्तार से मिलते हैं पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से उन सब को मैं यहाँ पर नहीं लिख सकता हूँ तथापि नमूना के तौर पर कतिपय नामोल्लेख कर देता हूँ ।

आचार्य श्री के उपदेश से भावुकों ने दीक्षा ग्रहण की

१—उपकेशपुर के कुमट गोत्रिय गणधर ने सूरिजी के पास दीक्षा ग्रहण की ।

२—उपकेशपुर के भद्रगोत्रिय सलखणादि ने दीक्षा ली ।

३—नागपुर के आदित्यनाग गोत्रीय शा पुनड़ ने दीक्षा ली ।

४—मंडपुर के सुचंती गोत्रिय १६ साथियों के साथ हरदेव ने दीक्षा ली ।

५—मुग्धपुर के बापनाग गोत्रिय देवपाल ने सपत्नी दीक्षा ली ।

६—काकंदनगरी के कुलभद्रगोत्रिय शाह नेना ने चार मित्रों के साथ दीक्षा ली ।

७—पद्मावती के क्षत्रिय वीरमदेव ने दीक्षा ली ।

८—चन्द्रावती के तुंग गोत्रिय भवना ने ११ भावुकों के साथ दीक्षा ली ।

९—पद्मावती के ब्राह्मण जयदेव ने अपने तीन मित्रों के साथ दीक्षा ली ।

१०—कोरंटपुर प्राग्वट वंश के शाह पोपा ने सपत्नी दीक्षा ली ।

११—कोसाम्बी के प्राग्वटवंश के शाह कुम्भा ने दीक्षा ली ।

१२—चित्रकूट के श्रीमाल रामदेव ने १२ साथियों के साथ दीक्षा ली ।

[सूरिजी के शासनकाल में तीर्थों

१३—चंदेरी के बापनाग गोत्रिय शाह रांणा अपने पुत्र के साथ सूरिजी के पास दीक्षा ली।

१४—विलासपुर के सुचंति गोत्रिय शाह नागा ने सू० दी०

१५—जालौन० आदित्यनाग गोत्रिय शाह देवा ने „ „

१६—रत्नपुर० श्रेष्टिगौत्रिय शादूल ने „ „

१७—खोखर—प्राग्वट वंशीय देपाल ने „ „

१८—नलिया—श्रीमाल रेणाने „ „

१९—करणावती—श्रीमाल साहण सेवा ने „ „

२०—सीपार—श्रेष्टिगौत्रिय चाहड मन्त्री ने „ „

२१—सालीपुर—प्राग्वट० पेथा ने अपनी स्त्री और दो लड़कियों के साथ „ „

२२—लोहरा—ब्राह्मण सदाशिव ने „ „

२३—धामाणी—डिडूगौत्रिय नागादि ९ मनुष्यों ने „ „

२४—रामपुर—भूरगौत्रिय हरदेव ने „ „

२५—चोलीग्राम—बलाहगौत्रिय नागदेव ने „ „

२६—जासोलिया—कुलभन्द्र गौत्रिय हेमा नेमा ने „ „

२७—वैणीपुर—विरहट गौत्रिय काना ने „ „

यह तो केवल उपकेश वंश वालों के ही नाम लिखा है इनके अलावा महाराष्ट्रीय सिन्ध पंजाब वगैरह देशों के सैकड़ों नर-नारियों की सूरिजी एवं आपके शिष्यों के कर कमलों से दीक्षा हुई थी पर वंशावलियों में उनके नाम दर्ज नहीं हैं खैर इस प्रकार दीक्षा लेने से ही इस गच्छ में हजारों की संख्या में मुनि भूमण्डल पर विहार कर जनकल्याण के साथ शासन की प्रभावना करते थे।

आचार्य श्री के शासन समय तीर्थों के संघ

१—चन्द्रावती के प्राग्वटवंशीय वीरम ने तीर्थराज श्री शत्रुंजयादि का संघ निकाला जिसमें सात लक्ष द्रव्य व्यय किया सोना मोहरों की लेन एवं पेहरामणि दी।

२—मेदनीपुर के सुघड़ गोत्रिय शाह लुणा ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया संघ को पहरामणी दी और सात यज्ञ (जीमणवार) किये।

३—उपकेशपुर के श्रेष्टि गोत्रिय मन्त्री दहेल ने श्री सम्मेतशिखरादि पूर्व के तीर्थों का संघ निकाला जिसमें नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया। साधर्मी भाइयों को पांच सेर का लड्डू के अन्दर पांच पांच सोना मोहरों की पहरामणी दी और सात यज्ञ (स्वाधार्मिक वात्सल्य) किये।

४—हावरेल नगर के मन्त्री हनुमन्त ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया

५—पद्मावती के मन्त्री राणा ने शत्रुंजय का संघ निकाल पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

६—आजोट के प्राग्वट नोदा नोधण ने शत्रुंजय का संघ निकाल पांच लक्ष द्रव्य व्यय किया।

७—स्थम्भनपुर के प्राग्वट हरपाल ने शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें एक लक्ष द्रव्य व्यय किया।

८—मथुरा के आदित्यनाग गोत्रीय कल्हण ने सम्मेत शिखर का संघ निकाला।

९—शकम्भरी के चिंचट गोत्रीय भूरा राजा ने शत्रुंजय का संघ निकाला।

१०—वैराट नगर के बलाह गोत्रिय शाह राजल ने शत्रुंजय का संघ निकाला।

११—जावलीपुर के श्रीमाला नाथा ने शत्रुंजय का संघ निकाला।

इनके अलावा आपश्री के शिष्यों प्रशिष्यों के उपदेश से भी कई प्रान्तों से अनेक बार संघ प्रम कर तीर्थों की यात्रा की और जीवन को पावन बनाया था।

आचार्य श्री के उपदेश से मन्दिरों की प्रतिष्ठा हुई

१—झापाणी ग्राम में सुचेती गोत्रीय शाह नांधण के बनाये पार्श्वनाथ मंदिर की प्र० कराई

२—विजयपुर में तप्तभट गोत्रीय सुगाल के बनाये विमलदेव के मं० की प्र० कराई।

३—पीतलिया ग्राम में भद्र गोत्रिय सग्राम के बनाये शान्तिनाथ मं० की प्र० कराई।

४—ब्रह्मपुरा ग्राम के भूरि गोत्रीय कल्हण के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।

५—गगनपुर में ब्राह्मण जगदेव के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।

६—चन्द्रवती वनमाली सरूप के बनाये महावीर मँ० की प्र० कराई।

७—दान्तीपुर श्री श्रीमाल भीखा के बनाये पार्श्वनाथ मं० की प्र० कराई।

८—आघाट नगरे चिंचट गोत्रीय शा० भूरा के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।

९—दशपुर नगरे बाप्पनाग गोत्रीय हणमत के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।

१०—आलोट नगरे मोरक्षा गोत्रिय चोखा शाह के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।

११—लोहाकोट कर्णाटगोत्रीय धनपाल के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।

१२—हर्षपुरे श्रेष्ठि गोत्रीय करणा के बनाये पार्श्व० मं० की प्र० कराई।

१३—कन्नौज नगरे वीरहट गोत्रीय भाणा के बनाये महावीर मं० की प्र० कराई।

१४—डिडुनगरे डिडुगोत्रीय शा० जोगा के बनायें महावीर मं० की प्र० कराई।

यह तो केवल नमूने के तौर पर लिखा है पर इतने सुदीर्घकाल में स्वयं आचार्यश्री आपश्री के आज्ञावृति मुनियों के उपदेश से तीर्थों के संघ भावुकों की दीक्षा और मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाओं के विषय में तथा एक-एक आचार्यों ने जो शासन का कार्य्य किया है उसको लिखा जाय तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ बन जाता है। आचार्यश्री के उपदेश से लाखों मांस मदिरा सेवियों ने जैनधर्म स्वीकार किया था। यही कारण था कि उस समय जैनों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई थी। इस प्रकार आचार्य देवों का जैन समाज पर इतना उपकार हुआ है कि जिसको हम एक क्षण भी नहीं भूल सकते।

पट्ट सोलहवें अतिशय धारी, रत्नप्रभ सूरीश्वर थे।
प्रतिभाशाली उग्रविहारी, अघ हरण दिनेश्वर थे॥
मृतक पुत्र को दे कर जीवन, ज्योति पुनः जगाई थी।
करके नत मस्तक वादी का, धर्म की प्रभा बढ़ाई थी॥

॥ इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के १६ वें पट्ट पर आचार्य रत्नप्रभसूरि महाप्रभावक हुए।

[आचार्य यक्षदेवसूरि

भगवान् महावीर की परम्परा

आर्य व्रजस्वामि—आचार्यश्री व्रजस्वामि जैनसंसार में खूब प्रतिष्ठित हैं आप अनेक लब्धियें विद्याओं और अतिशय चमत्कारों से जैन धर्म की बड़ी भारी उन्नति की थी आपके नाम की स्मृति रूप वज्री शाखा चली थी जिसके प्रतिशाखा रूप अनेक गच्छ हुए थे आपश्री का अनुकरणीय जीवन संक्षिप्त से यहाँ लिखा जाता है। उस समय मालवा नामक देश बड़ा ही उन्नत समृद्धिशाली और धन-धान्य पूर्ण था उसमें एक तुंबवन नामक ग्राम था वहां वैश्यकुल में सिंहगिरि नाम का बड़ा ही धनाढ्य श्रेष्ठि बसता था। उसके धनगिरि नाम का पुत्र था और उसी नगर में धनपाल नाम का सेठ था जिसके सुनंदा नाम की पुत्री थी जिसकी शादी धनगिरि के साथ कर दी थी। बाद धनगिरि का पिता सिंहगिरि ने आचार्यश्री दिन्न के पास दीक्षा ग्रहण करली थी। जब धनगिरि के सुनन्दा स्त्री गर्भवती थी उस समय धनगिरि ने भी वैराग्य की धुन में संसार को असार जानकर आचार्य सिंहगिरि के पास दीक्षा लेली बाद सुनन्दा के पुत्र हुआ पर उसको बाल्यावस्था में ऐसा ज्ञान (जातिस्मरण) उत्पन्न हुआ कि उसकी भावना दीक्षा लेने की होगई किन्तु उस बाल्यावस्था में दीक्षा किस तरह लीजाय उसने अपनी दीक्षा का एक ऐसा उपाय सोचा × कि रात्रि दिन रुदन करना आरंभ कर दिया जिससे उसकी माता सुनन्दा घबरा गई और बार-बार कहने लगी कि इस पुत्र के पिता ने दीक्षा लेली और यह पुत्र की आफत मेरे शिर पर छोड़ गये सुनन्दा अपनी सखियों को कहा करती थी कि यदि इस लड़का का पिता कभी यहाँ आ जाय तो मैं इस पुत्र को उनको सोंप कर सुखी बन जाऊँ इत्यादि। भाग्यवसात् आर्यधनगिरि अपने गुरु के साथ विहार करते हुए उसी तुंबवन ग्राम में आ गये। गुरु महाराज ने निमित्त ज्ञान से जानकर धनगिरि को कहा कि हे मुनि! आज तुमको जो सचित अचित एवं मिश्र कुच्छ भी पदार्थ मिले वह ले आना। मुनि † समित के साथ धनगिरि भिक्षार्थ ग्राम में गया। फिरता फिरता सुनन्दा के घर पर आ निकला। सुनंदा पहिले से ही पुत्र के रुदन से कँटाल गई थी! मुनि धनगिरि को आया देख उसकी सखियों ने कहा कि हे सखी! इस बालक का पिता मुनि आगया है। इस बालक को देकर तू सुखी बन जा जो तुँ पहला कहा करती थी। यह तेरे लिये सुअवसर है। बस सुनन्दा ने मुनि धनगिरि से कहा कि आप अपने पुत्र को ले जाइये मैं तो इसके रुदन से घबरा गई हूँ। मुनि ने कहा

× ममापि भवनिस्तारः संभवी संयमादृते। अत्रोपायं व्यमृक्षच्च रोदनं शैशवोचितम् ॥ ५१ ॥

× × ×

तत्र गोचरचर्यायां विशन्धनगिरिर्मुनिः। गुरुणा दिदिशे पक्षिशब्दज्ञाननिमित्ततः ॥ ५६ ॥

† अद्य यद्द्रव्यमाप्नोषि सचित्ताचित्तमिश्रकम्। ग्राह्यमेव त्वया सर्वं तद्विचारं विना मुने ॥ ५७ ॥

तथेति प्रतिपेदानस्तदार्यसमितान्वितः। सुनन्दासदनं पूर्वमेवागच्छद्गुरूक्तधीः ॥ ५८ ॥

तद्गर्भलाभ श्रवणादुपायातः सखी जनः। सुनन्दां प्राह देहि त्वं पुत्रं धनगिरेरिति ॥ ५९ ॥

सापि निर्वेदिता प्राहं पुत्रं संगृह्य वक्षसा। नत्वा जगाद पुत्रेण रुदता खेदितास्मि ते ॥ ६० ॥

गृहाणैनं ततः स्वस्य पार्श्वे स्थापय येन्सुखी। भवत्यसौ प्रमोदो मे भवत्वेतावतापि यत् ॥ ६१ ॥

स्फुटं धनगिरिः प्राह ग्रहीष्ये नन्दनं निजम्। परं स्त्रियो वचः दंगुवत् यान्ति पदापदम् ॥ ६२ ॥

क्रियन्तां साक्षिणस्तत्र विवादहतिहेतवे। अप्यग्रन्ति पुत्रार्थे न जल्पं किमपि त्वया ॥ ६३ ॥

कि स्त्रियों के कहने पर विश्वास नहीं किया जाता है अभी तो दुख के मारी तू पुत्र को मुझे देती है पर बाद में कभी मांगा तो पुत्र तुमको नहीं दिया जायगा। सुनन्दा ने कहा मैं कभी पुत्र को नहीं मांगूंगी। लिये मुनि समित एवं मेरी सखियां साक्षी देंगी।

बस ! धनगिरि छः मास का पुत्र को झोली में डाल कर गुरु महाराज के पास ले आया और गुरु झोली को हाथ में ली तो उसमें वजन बहुत था। गुरु ने कहा कि हे मुनि ! तू क्या आज वज्र लाया है यही कारण था कि उस बालक का नाम वज्र रख दिया।

वज्र बालक होने के कारण शय्यात्तर एवं गृहस्थों को सोंप दिया कि वे पालन पोषण करें। उनके संस्कारों के लिये साध्वियों के उपाश्रय रखने की भी आज्ञा दे दी थी सुनन्दा भी वहाँ आया थी। कभी कभी साध्वियों से पुत्र वापिस देने की प्रार्थना भी किया करती थी पर साध्वियां कह देती थी वेहराया हुआ बालक वापिस नहीं दिया जाता है, इस पर भी तुमको पुत्र की जरूरत हो तो गुरु महाराज के पास जाओ और वे जैसी आज्ञा दें वैसा करो इत्यादि। जब साध्वियां सूत्र की स्वाध्याय करती थीं तो बालक वज्र ने सुनने मात्र से एकादशांग का अध्ययन कर लिया। इस प्रकार बज्र ३ वर्ष का हो गया। अब तो सुनंदा को पुत्र प्रति पूरा मोह लग गया और बार २ पुत्र की याचना करने लगी पर मुनि धनगिरि ऐसा शासन का भावि प्रभाविक पुत्र को कब देने वाला था। आखिर सुनन्दा राज में गई राजा ने दोनों के बयान लिं और कहा कि अपनी-अपनी कोशिश करो। बच्चे का दिल होगा उसको दिया जायगा। एक तरफ तो साधुओं ने ओघा पात्रे रख दिये और दूसरी ओर सुनन्दा ने सांसारिक मोहक पदार्थ रख दिये और राजा सभा में बज्र को बुलाया। राजा ने कहा तुमको प्रिय हो वही लेलो वज्र ने मोहक पदार्थों को छोड़ ओघा पात्रा लेलिये। बस राजा ने वज्र को मुनियों के सुपुर्द कर दिया। उस समय वज्र की केवल ३ वर्ष की आयु थी।

जब गुरु महाराज ने वज्र को दीक्षा देने का निश्चय किया तो सुनंदा ने सोचा कि मेरे पति ने दीक्षा ली मेरा पुत्र दीक्षा लेने को तैयार होगया तो अब मैं संसार में रह कर क्या करूंगी मुझे भी दीक्षा लेना ही हितकारी है अतः बज्र और बज्र की माता ने गुरु महाराज के पास दीक्षा लेली युगप्रधान पट्टावली में वज्र का गृहस्थावास ८ वर्ष का बतलाया है शायद सुनन्दा अपने पुत्र के लिये फिर कहीं तकरार न करे इसलिये वज्र को तीन वर्ष की आयु में साधु वेष दे दिया हो और बाद ८ वर्ष का होने पर दीक्षा दी हो तो यह संभव भी हो सकता है। दूसरे आगम व्यवहारियों के लिये कल्प भी तो नहीं होता है वे ज्ञान के जरिये भविष्य का लाभालाभ देखे वैसा ही कर सकते हैं जब तक वज्र मुनि आठ वर्ष के नहीं हुये वहाँ तक साध्वियों के पास रहा। तत्पश्चात वज्र को दीक्षा देदी और मुनि वज्र गुरु महाराज के साथ विहार कर दिया।

एक समय गुरु महाराज के साथ मुनि वज्र विहार ‡ करता हुआ एक जंगल में पहाड़ के पास आ रहा था। उस समय एक जृम्भकदेव ने वज्र की परीक्षा के निमित्त वैक्रय से इतनी वर्षा की कि पृथ्वी जलमय हो गई। वज्र ने एक पर्वत की गुफा में जाकर ध्यान लगा दिया। तीन दिन तक पानी के जीवों की दया के

‡ [illegible] च [illegible] मुनिः। साक्षी [illegible] मार्गं [illegible] ॥ ३३ ॥
[illegible] मम [illegible]। [illegible] निजकाम्यं ॥ १८ ॥
[illegible] (म) [illegible]। [illegible] ॥ ३० ॥
[illegible]। [illegible] ॥ ३३ ॥ ३० ॥

लिये मुनि वज्र एक गुफा में ठहर गया। देवता ने वर्षा बन्द कर वणिक का रूप धारण कर वज्र को गोचरी के लिए आमंत्रण किया। बालमुनि गुरु आज्ञा लेकर गोचरी गया पर उपयोग से जान लिया कि यह देव पिण्ड है इसलिये भिक्षा नहीं ली। अतः देवता ने प्रसन्न हो वज्र के चरणों में वन्दना कर प्रशंसा की।

दूसरी बार देवता ने गेवर बना कर वज्र की परीक्षा की पर वज्र ने अपने उपयोग से गेवर भी नहीं लिए। अतः देवता ने प्रसन्न हो कर वज्र को आकाशगामनी विद्या प्रदान की।

एक समय सब साधु गौचरी गये थे। वज्र अकेलाही था उसने सब साधुओंकी उपाधी क्रमशः रखकर आप आगम की वाचना देनी शुरू की। इतने में आर्य सिंहगिरि बाहर जाकर आ रहे थे उन्होंने आगम के पाठ सुन कर विचार किया कि भिक्षा के समय मुनियों को आगमों की वाचना कौन दे रहा है ? जब उन्होंने उपयोग से मुनि वज्र को जाना तो बड़ा ही हर्ष हुआ। वे निशीही पूर्वक मकान में आये तो वज्र ने साधुओं की उपधि यथा स्थान रख दी। बाद दूसरे दिन आर्य सिंहगिरि विहार करने लगे तो मुनियों ने कहा कि हमको वाचना कौन देगा ? इस पर आचार्यश्री ने कहा कि तुमको वाचना वज्र मुनि देगा। मुनियों ने स्वीकार कर लिया। अतः वज्र मुनि सब मुनियों को इस कदर की वाचना देने लगे कि साधारण बुद्धि वाले भी सुख पूर्वक समझने लग गये। अतः साधुओं को वाचना के लिए अच्छा संतोष हो रहा था।

कई दिन बाद गुरु महाराज वापिस आये और मुनियों को वाचना के लिये पूछा तो उन्होंने कहा कि हमको अच्छी वाचना मिलती है और सदैव के लिये हमारे वाचनाचार्य मुनि वज्र ही हों। आचार्यश्री ने कहा कि मैं इस लिये ही बाहर गया था। बाद प्रसन्नता पूर्वक आचार्यश्री दशपुर नगर आये और मुनि वज्र को आवन्ती नगरी की ओर भद्रगुप्त सूरि के पास शेष ज्ञान पढ़ने के लिये भेजा दिया। वज्र मुनि क्रमशः आवंति पहुँच गया पर समय हो जाने पर उस रात्रि में नगर के बाहर ही ठहर गये।

तत्राप्यमानयन्ती सा गता राज्ञः पुरस्तदा। यतयश्च समाहूताः संघेन सह भूभृता ॥८१॥
ततो माता प्रथमतोऽनुज्ञाता तत्र भूभृता। क्रीडनैर्भक्ष्यभोज्यैश्च मधुरैः सा न्यमंत्रयत् ॥८५॥
सुते तथास्थिते राज्ञानुज्ञातो जनको मुनिः। रजोहरणमुपस्य जगादानपवादगीः ॥८६॥
ततो जयजयारावो मङ्गलध्वनिपूर्वकम्। समस्ततूर्यनादोऽपि सद्यः समजनि स्फुटः ॥
एषणात्रितयचेग्ययुक्तो भुक्तावनादतः तत्रवजोययोभाप्य गुरोरनुमतिं ततः ॥१०३॥
द्रव्य क्षेत्र काल भावैरुपयोगं ददौ चसः। द्रव्य कुष्माण्ड पाकादि क्षेत्र देशश्चामालवा ॥१०४॥
कालोग्रीष्मस्तथाभावे विचार्ये निमिषा अमी, अस्पृष्ट भूम्रमान्यासा अम्लान कुसमस्रज ॥१०५॥
चरित्रिणां ततो देवपिण्डो न कल्प्यते नहि। निषिद्धा उपयोगेन तस्य हर्षं परं ययुः ॥१०६॥

× × ×

† अन्यत्र विहरंतश्चान्यदा ग्रीष्मर्तुमध्यतः। प्राग्वदेव सुरास्तेऽमुं घृतपूर्णैर्न्यमन्त्रयन् ॥१०८॥
वज्रे तत्रापि निर्व्यूढे विद्यां ते व्योमगामिनीम्। ददुर्न दुर्लभं किंचित्सत्वानां हि नादृशाम् ॥१०९॥
बालभूमौ प्रयतिषु पूज्येष्वथ परेद्यवि। सदेपणोपयुक्तेषु गीतार्थेषु च गोचरम् ॥११०॥
अवकाशं च वाल्यस्य ददश्चापलतस्तदा। सर्वेषामुपधीनामग्रार्द भूमौ निवेश्य च ॥१११॥
वाचनां प्रददौ वज्रः श्रुतस्कन्धमजस्य सः। प्रत्येकं गुरुक्रमेण पथितन्यमहोदमाद् ॥११२॥
श्रीमान्सिंहगिरिश्चात्रान्तरे वसतिसन्निधौ। आययौ गर्जितोऽन्धं शब्दं तन्याश्र्योभ्य सः ॥११३॥
दध्यौ किं यतयः प्राप्ताः स्वाध्यायैः पालयन्ति नाम् ।निश्चित्यैवश्च शब्दं ते तोषतो ययुः ॥११४॥ प्र० च०

आचार्य भद्रगुप्त को रात्रि में एक स्वप्न आया । † वह सुबह अपने शिष्य को सुना रहे थे कि दूध से भरा हुआ पात्र कोई मुनि आकर सब पी गया । इतने में ही वज्रमुनि आकर सूरिजी को वन्दन कर खड़ा हुआ । सूरिजी ने सोचा कि यही मुनि मेरा दूध पीने वाला है। बस! फिर तो देर ही क्या थी सूरि ने बज्र को सब ज्ञान पढ़ा कर अपने गुरू के पास भेज दिया । पूर्व भव के मित्र देवता ने बड़ा महोत्सव किया और गुरुराज ने मुनिवज्र को संघ समक्ष आचार्य पद पर स्थापन कर दिया ।

आचार्य वज्रसूरि विहार करते हुए पाटलीपुत्र नगर के उद्यान में पधारे । × पहिले दिन आपने से अपना कुरूप बनाकर देशना दी तब दूसरे दिन असली रूप से उपदेश दिया । अतः आपकी महिमा भर में फैल गई। उस नगर में एक धना नामक श्रेष्टि सप्तकोटि धन का मालिक रहता था उसके एक नामक पुत्री थी । रूखमणिने साध्वियों से वज्रसूरि की महिमा सुनकर प्रतिज्ञा करली कि मैं वर करूंगी वज्रसूरि को ही करूंगी वरना अग्नि की ही शरण लूंगी । सेठ अपनी रूप यौवन और लावण्यादि वाली पुत्री रुखमणि को लेकर धज्रसूरि के पास आया और कहा कि हे मुनि ! मेरी पुत्री ने प्रतिज्ञा है । अतः मेरा सब धन लेकर मेरी पुत्री के साथ आप विवाह करो इत्यादि ।

---

† गत्वा दशपुरे वज्रमवन्त्यां प्रैपुराद्दताः अध्येतुं श्रुतशेषं श्रीभद्रगुप्तस्य संनिधौ ॥ १२७ ॥
स ययौ तत्र रात्रौ च पूर्वंहिर्वासमातनोत् । गुरुश्च स्वप्नमाचख्यौ निजशिष्याग्रतो मुदा ॥ १२८ ॥
पात्रं मे पयसा पूर्णमतिथिः कोऽपि पीतवान् । दशपूर्व्याः समग्रायाः कोऽप्यध्येता समेष्यति ॥ १२९ ॥
इत्येवं वदतस्तस्य वज्र आगात्पुरस्ततः । गुरुश्चाध्यापयामास श्रुतं स्वाधीतमाश्रुतम् ॥ १३० ॥
× गुरौ प्रायाद्दिवं प्राप्ते वज्रस्वामिप्रभुर्ययौ । पुरं पाटलिपुत्राख्य मुद्याने समवासरत् ॥ ३४ ॥
अन्यदा स कुरूपः सन् धर्मं व्याख्यानयद्विभुः । गुणानुरूपं नो रूपमिति तत्र जनोऽवदत् ॥ १३५ ॥
अन्येद्युश्चारुरूपेण धर्मख्याने कृते सति । पुरक्षोभभयात्सूरिः कुरूपोऽभूज्जनोऽब्रवीत् ॥ १३६ ॥
प्रागेव तद्गुणग्रामगानात्साध्वीभ्य आदृता । धनस्य श्रेष्ठिनः कन्या रुक्मिण्यत्रान्वरज्यता ॥ १३७ ॥
बभाषे जनकं स्वीयं सत्यं मद्भाषितं शृणु । श्रीमद्वज्राय मां यच्छ शरणं मेऽन्यथानलः ॥ १३८ ॥
तदाग्रहाच्चः कोटिशतसंख्यधनैर्युताम् । सुतामादाय निर्ग्रन्थनाथाभ्यर्णं ययौ च सः ॥ १३९ ॥
व्याजिज्ञपत्र नाथेत्वां नायते मे सुता ह्यसौ, रूपयौ वन सम्पन्ना तदेषा प्रति गृह्यताम् ॥ १४० ॥
यथेच्छ दानभोगाभ्यामधिकं [illegible] विता विधि, द्रविणगृह्यतामेत तत्पादौ प्रक्षाल्यामिते ॥ १४१ ॥
महापरिज्ञाध्ययनादाचाराङ्गान्तरस्थितात् । श्रीवज्रेणोद्धृताविद्या तदा गगनगामिनी ॥ १४४ ॥
[illegible] तत्राभूदुर्भिक्षमनिशायम् । सचराचरजीवानां कुर्वद्दुर्वालेऽधिकम् ॥ १३१ ॥
[illegible] संघः प्रभोः पादवंमाययौ रक्ष रक्ष नः । वदन्निति ततो वज्रप्रभुस्तत्कृपे हृदि ॥ १५० ॥
[illegible] विस्तार्य नयोपवेदय संघं तदा मुदा । [illegible] गामिन्याचचलद्व्योम्ना [illegible] ॥ १५१ ॥
[illegible] (द्) रं गतस्तृणगवेषणे । [illegible] ॥ १५२ ॥
[illegible] महापुरीम् । [illegible] ॥ १५३ ॥
[illegible] ॥ १५४ ॥
[illegible] ॥ १५५ ॥
[illegible] ॥ १५६ ॥
[illegible]

वज्रसूरि ने इस प्रकार उपदेश दिया कि रुखमणि ने दीक्षा ग्रहण करली। उस समय वज्रस्वामी ने आचारांग सूत्र के महाप्रज्ञाध्यन१ से आकाशगामनी विद्या का उद्धार किया। तथा पहले भी देवता ने दी थी।

एक समय अनावृष्टि के कारण दुनिया का संहार करने वाला द्वादशवर्षीय दुकाल पड़ा। श्री संघ मिलकर वज्रस्वामि के पास आया और कहा पूज्यवर ! इस सकट से जैनसंघ का उद्धार करो। सूरिजी ने एक कपड़े का पट मंगाओ और तुम सव उस पर बैठ जाओ। बस सब बैठ गये। इतने में शय्यातर घास के लिये गया था वह आया उसने प्रार्थना की तो उसको भी बैठा दिया और विद्या बल से सबको आकाश मार्ग से लेकर महापुरी नगरी में जहां सुकाल वरत रहा था वहां ले आये पर वहां का राजा वोध धर्मोपासक होने से जैन मन्दिरों के लिये पुष्प नहीं लाने देता था। श्री संघ ने आकर अर्ज की कि हे प्रभो ! पर्युषण नजदीक आ रहा है और वोध राजा हमको पूजा के लिये पुष्प नहीं लाने देता है। अतः हमारी भक्ति में भंग होता है। अतः आप जैसे समर्थ होते हुये भी हमारा कार्य्य क्यों नहीं होता है। इस पर वज्रसूरि श्रीसंघ को संतोष करवा कर आप आकाशगामनी विद्या से गमन कर महेश्वरी नगरी के उद्यान में आये वहां एक माली मिला जो कि सूरिजी के पिता का मंत्री था। उसने सूरिजी को वन्दन कर कहा कि कोई कार्य्य हो तो फरमावें। सूरिजी ने पुष्पों के लिये कहा। माली ने कहा ठीक है आप वापिस जाते हुये पुष्प ले जाना। वहां से वज्रसूरि चूलहेववन्त पर्वत पर गये। और लक्ष्मीदेवी को धर्मलाभ दिया। देवी ने सहस्त्र कली वाला कमल दिया वहां से लौटते समय माली के पास आये। उसने बीस लक्ष पुष्प दिये। वज्रसूरि वैक्रय लब्धि से विमान बना कर पुष्प लेकर आ रहे थे तो देवताओं ने आकाश में बाजे बजाये। वोधों ने सोचा कि देवता हमारे मन्दिरों में महोत्सव करने को आये हैं पर वे तो सीधे ही जिनमन्दिरों में गये और भक्ति करने को लग गये। तथा वज्रसूरि बीस लक्ष पुष्प लेकर आये इस चमत्कार का प्रभाव वोध राजा प्रजा पर बड़ा भारी हुआ। अतः राजा प्रजा वोध धर्म को छोड़कर जैनधर्म स्वीकार लिया एवं सूरिजी के परमभक्त बन गये।

आर्य वज्रसूरि के समय मूर्तिवाद अपनी चरमसीमातक पहुँच गया था कि वज्रसूरि जैसे दश पूर्व धर जिन पूजा के लिये बीसलक्ष पुष्प लाकर श्रावकों को दिया था जो साधु सचित पुष्पों का स्पर्श तक नहीं कर सकता हैं शायद वह कहा जाय की वज्रसूरि दशपूर्वधर होने से वे कल्पातितथे और जैनधर्म का अपमान दूर करने की गरज से तथा भविष्य का लाभ जानाहो तथा बोधराजा और प्रजा इसी कारण से जैनधर्म स्वीकार करेंगे अतः उन्होंने स्वयं पुष्प लाना अच्छा एवं लाभ का कारण समझा होगा परन्तु इससे इतना अनुमान तो सहज में ही हो सकता है कि उस समय मूर्ति पूजा पर जनता की श्रद्धा एवं रुचि अधिक झुकी हुई थी इसी समय आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने साधुओं को मूर्तियों को सिर पर उठा कर अन्यत्र ले जाने की आज्ञा दी थी कि म्लेच्छ लोग मूर्तियों को तोड़ फोड़कर नष्ट नहीं कर सके।

पूर्व जमाने में नवकार मंत्र एक स्वतंत्र ग्रन्थ था और आचार्यों ने इस नवकार मंत्र पर स्वतंत्र निर्युक्ति आदि विवरण किया था पर वज्रसूरि ने उस नवकार मंत्र को सूत्रों की आदि में मंगलाचरण के रूप में कर दिया और वह आज भी कई सूत्रों के मंगलाचरण के रूप में विद्यमान है।

आचार्य वज्रसूरि महा प्रभाविक आचार्य होगये हैं। आपके जीवन में एक नहीं पर अनेक घटनायें ऐसी घटी कि जिससे जैनधर्म की बहुत उन्नति हुई। एक समय आप विहार करते दक्षिण की ओर जा रहे थे। उस वक्त श्लेष्म हो जाने से सोंठ लाये थे जितनी जरूरत थी खाई शेष कान पर रखदी परन्तु विस्मृति

होने से प्रतिलेखन के समय सोठ कान से नीचे गिरी। जब जाकर मालूम हुआ कि अब मेरा आयुष्य नज-दीक ही है। अतः मुनि वज्रसेन को सूरिपद देकर आप कई मुनियों के साथ एक पर्वत पर जाकर अनशन समाधि के साथ स्वर्गवास किया। जब इन्द्र ने इस बात को जाना तो वह विमान लेकर आया। उस विमान सहित प्रदक्षिणा दी जिससे उस पर्वत का नाम 'रथावर्तन' हो गया। इति वज्र स्वामि का संक्षिप्त

आर्य्य वज्रसूरि के जीवन की दो महत्वपूर्ण बातें—१-जिस पर्वत पर आर्य्य वज्र का देहान्त हुआ वहां इन्द्र आकर रथ सहित प्रदक्षिणा देने के कारण उस पर्वत का नाम 'रथावर्तन हुआ परन्तु भद्रबाहु कृत आचारांगसूत्र की निर्युक्ति में 'रथावर्तन' का उल्लेख मिलता है इससे पाया जाता है कि पर्वत का नाम 'रथावर्तन' पहिले ही से था या निर्युक्ति वाला रथावर्तन अलग हो और वज्रस्वामी के देह त्याग वाला रथावर्तन अलग हो। २-दूसरे वज्रसूरि के पूर्व नवकारमंत्र एक स्वतंत्र सूत्र था और इस सूत्र की निर्युक्ति वगैरह भी स्वतंत्र रची गई थीं परन्तु वज्रसूरि ने उस स्वतंत्र नवकार मंत्र को सूत्रों के आदि में मंगलाचरण के रूप में संकलित कर दिया था।

आर्य्य वज्रसूरि का आयुष्य ८ वर्ष गृहस्थवास, ४४ वर्ष सामन दीक्षा पर्याय, और ३६ वर्ष युगप्रधान पद एवं कुल ८८ वर्ष का आयुष्य अर्थात् वी० नि० सं० ४९६ (वि० सं० २६) जन्म, वी० नि० ५०४ (वि० सं० ३४) दीक्षा, वी० नि० ५४८ (वि० सं० ७८) युगप्रधान और वी० नि० ५८४ (वि० सं० ११४) में स्वर्गवास हुआ था।

आर्य समितसूरि—और ब्रह्मद्वीपिका शाखा—आभीर देश में एक अचलपुर नामका नगर था। उसके नजदीक कन्ना और वेन्ना नदियों के बीच में ब्रह्मद्वीप नाम का द्वीप था उस द्वीप में ५०० तापस तप करते थे जिसमें एक तापस ऐसा भी था कि पैरों पर औषधी का लेप कर जल पर चल कर नगर में पारणा (भोजन) करने को आया जाया करता था। जिसको देख लोग कहते थे कि तपसी की महिमा कैसा चमत्कार है कि जल पर चल सकता है। साथ में यह भी कहते थे कि क्या जैनमत में भी ऐसा चमत्कारी महात्मा है? इस प्रकार अपमानित शब्द सुन कर जैन श्रावकों ने आर्यवज्रसूरि के मामा आर्य समितसूरि को साग्रह आमंत्रण किया। जैनधर्म की उन्नति के लिये सूरिजी शीघ्र पधार गये और [illegible]

किमप्यादिश मे नाथ कार्यं सूरिस्ततोऽवदत । सुमनः सुमनोभिर्यं कार्यमार्य कुरुष्व तत् ॥१४८॥
पुष्पैश्च पूर्तिकेलाको भ्राता गीति निशम्य सः । ययौ देव्याः श्रियः पार्श्वे तं [illegible] ॥१४९॥
धर्मध्यान[illegible] तां देवी कार्यमादिशत् । ददौ सहस्रपत्रं सा [illegible] ॥१५०॥
[illegible] विंशतिर्लक्षाः पुष्पाणां तेन [illegible] ॥१५१॥
[illegible] पुरे । [illegible] ॥१५२॥
[illegible] ॥१५३॥
[illegible] आयान्ति [illegible] ॥१५४॥
[illegible] ॥१५५॥
[illegible] ॥१५६॥
[illegible] ॥१५७॥
[illegible] ॥१५८॥

[[illegible]

स्वागत किया। जब श्रावकों ने तापस का सब हाल कहा तो सूरिजी ने फरमाया कि इसमें सिद्धाई और चमत्कार कुछ भी नहीं है। यह तो एक औषधि का प्रभाव है यदि पैर या पावडियों को धो दीजाय तो शेष कुछ भी चमत्कार नहीं रहता है। इस पर किसी एक श्रावक ने तपस्वी को भोजन के लिये आमंत्रण करके अपने मकान पर ले आया और उसके पैर एवं पादुका का प्रक्षालन कर भोजन करवाया। बाद कई लोग उसको नदी तक पहुँचाने को गये। पर तपस्वी पानी पर चल नहीं सके। कारण जो औषधी पैरों एवं पादुकाओं पर लगी हुई थी वह श्रावक ने धो डाली थी इससे तपस्वी की पोल खुल गई और वह लज्जित हो गया। उसी समय वहां पर आर्य समितसूरि भी आये और भी बहुत से जैन जैनेतर लोग एकत्र हो गये। उन सबके सामने जैनाचार्य्य ने एक ऐसा मंत्र पढ़ कर दोनों नदियों से प्रार्थना की कि मुझे जाना है तुम दोनों एक होकर मुझे रास्ता दे दो। बस इतना कहते ही दोनों नदियों ने एक होकर सूरिजी को रास्ता दे दिया। अतः सूरिजी ने ब्रह्मद्वीप में जाकर उन ५०० तापसों को तत्वज्ञान सुना कर प्रतिबोध दिया। अतः उन ५०० तापसों ने आत्म कल्याण की उज्ज्वल भावना से सूरिजी के पास भगवती जैन दीक्षा स्वीकार करली अतः उन तापसों से बने हुए मुनियों की संतान ब्रह्मद्वीप शाखा के नाम से पहचानी जाने लगी।

इस प्रकार जैन शासन में अनेक विद्वानों ने आत्मशक्ति द्वारा चमत्कार एवं उपदेश देकर जैनेतरों को जैन बना कर जैनधर्म की उन्नति एवं प्रभावना की उनके चरण कमलों में कोटि कोटि नमस्कार हो। इनके अलावा भी कई युगप्रधान आचार्य हुये हैं। जिन्हों की नामावली आगे चलकर यथा स्थान दी जायगी।

आर्यरक्षितसूरि—आवंती प्रान्त में अमरापुरी के सदृश्य दशपुर नाम का नगर था वहां उदायन नाम का राजा राज करता था। उसके राज में एक सोमदेव नाम का पुरोहित था। वे थे वेद धर्मानुयायी और उसके रुद्रसोमानाम की स्त्री थी और वह थी जैनधर्मोपासिका और जीवादि नौ तत्व वगैरह जैनधर्म के अनेक शास्त्रों की जानकर भी थी। उसके दो पुत्र थे एक आर्य्यरक्षित दूसरा फालगुरक्षित। सोमदेव ने आर्यरक्षित

तेन लेपापहारेण तापसो दुर्मनायितः। नावेदीद्भोजनास्वादं विगोपागमशङ्कया ॥ ८८ ॥
तापसो भोजनं कृत्वा सरित्तीरं पुनर्ययौ। लोकैर्वृतो जलस्तम्भकुतूहलदिदृक्षया ॥ ८९ ॥
लेपाश्रयः स्यादद्यापि कोऽपीत्यल्पमतिः स तु। अलीकसाहसं कृत्वा प्राग्वत्प्राविशदम्भसि ॥ ९० ॥
+ + + +
ततः कमण्डलुरिव कुर्वन्बुडबुडारवम्। ब्रुडति स्म सरित्तीरे स तापसकुमारकः ॥ ९१ ॥
वयं मायाविनानेन मोहिताः स्मः कियच्चिरम्। मलिन्यभूदिति मनस्तदा मिथ्यादृशामपि ॥ ९२ ॥
+ + + +
दत्तताले च तत्कालं जने तुमुलकारिणि। आचार्या अपि तत्रागुः श्रुतस्कन्धधुरन्धराः ॥ ९३ ॥
+ + + +
तटद्वये ततस्तस्याः सरितो मिलिते सति। आचार्यः सपरीवारः परतीरभुवं ययौ ॥ ९६ ॥
आचार्यैर्दर्शितं तं चातिशयं प्रेक्ष्य तापसाः। सर्वेऽपि संविविजिरे तद्भक्तश्चाजितो जनः ॥ ९७ ॥
+ + + +
आचार्यस्यार्यसमितस्यान्तिके प्राव्रजन्नथ। सर्वे मथितमिथ्यात्वास्तापसा शुद्धचेतसः ॥ ९८ ॥
ते ब्रह्मद्वीपवास्तव्या इति जातास्तदन्वये। ब्रह्मद्वीपिकनामानः श्रमणा आगमोदिताः ॥ ९९ ॥
"[illegible]"

को पढ़ने के लिए काशी भेजा वहां पढ़ कर अधिक ज्ञान की प्राप्ती के लिये पाटलीपुत्र भी गया। वेदांग सब शास्त्रों का पारगामी होकर वापिस दशपुर आया। जब नगर के राजादि सब लोगों ने बड़े स्वागत के साथ नगर प्रवेश करवाया। जब आर्यरक्षित अपनी माता के पास आया तो उस समय रुद्रसोमा सामायिक कर रही थी। अतः आर्य्यरक्षित के नमस्कार करने पर भी उसने कुछ भी नहीं किया बाद आर्य्यरक्षित ने पूछा कि माता मेरी पढ़ाई से राजा प्रजा सब लोग खुश हुए एवं आप की उदासीनता क्यों ? इस पर माता ने कहा बेटा ! जिस पढ़ाई से संसार की वृद्धि हो उससे खुशी कैसे हो यदि तू सम्यक् ज्ञान पढ़ के आता तो मुझे जरूर खुशी होती विनयवान पुत्र ने पूछा कि माता कौनसा ग्रंथ किसके पास पढ़ा जाय और वे पढ़ाने वाले कहाँ पर हैं ? मैं पढ़ कर आपको संतोष करवा दूं। माता ने कहा बेटा ! वह है दृष्टिवाद ग्रंथ, और पढ़ाने वाले हैं तोसलीपुत्र नामक आचार्य और वे इस समय इक्षुवाडी में विद्यमान हैं। तू जाकर दृष्टिवाद पढ़ कि तेरा कल्याण हो।

रात्रि व्यतीत करने के बाद ज्ञान की उत्कंठा वाला आर्य्यरक्षित घर से चल कर पढ़ने को जा रहा था। रास्ते में एक इक्षुरस वाला सांठा लेकर आया और आर्य्यरक्षित को कहा कि हे मित्र ! मैं तेरे लिये लाया हूँ। अतः तुम वापिस घर पर चलो। आर्य्यरक्षित ने कहा मैं ज्ञानाभ्यास के लिये जा रहा हूँ फिर सोचा कि ९॥ सांठा का अर्थ यही हो सकता है कि मैं जिस दृष्टिवाद का अध्यन करने को जा रहा हूँ ९॥ अध्याय प्राप्त करूंगा। आर्य्यरक्षित चलता २ वहां आया कि जहां तोसलीपुत्र आचार्य विराजते थे लज्जा के कारण वह उपाश्रय के बाहर बैठ गया। इतने में एक ढढुर नामक श्रावक आया उसके साथ अन्दर में जाकर आचार्य को वंदन किया और दृष्टिवाद पढ़ाने की याचना की पर दृष्टिवाद का अध्ययन तो साधु ही कर सकते हैं अतः आर्यरक्षित ज्ञान पढ़ने के लिये जैनदीक्षा स्वीकार करने को तैयार हो गया परन्तु आर्यरक्षित ने सूरिजी से अर्ज की कि हे प्रभो। हमारा कुल ब्राह्मण है। अतः मुझे दीक्षा देकर यहाँ ठहरना ठीक नहीं है। अतः आप शीघ्र विहार कर अन्य स्थान पधार जावें। गुरु ने इसको ठीक समझ आर्यरक्षित को जैन दीक्षा दे दी और वहां से अन्यत्र चले गये और आर्यरक्षित को पढ़ाना शुरु किया। आचार्यश्री ने और कई पूर्व पढ़ा दिये जितना कि वे जानते थे शेष के लिये कहा कि तुम आर्य्य वज्रसूरि के पास जाओ वे उज्जैन नगरी में विराजते हैं। अतः आर्यरक्षित अन्य साधुओं के साथ विहार कर वज्रसूरि के पास आ रहे थे। रास्ते में एक भद्रगुप्ताचार्य का उपाश्रय आया। वहाँ आर्य्यरक्षित गये। आर्य्यरक्षित को देख आचार्य बहुत खुश हुआ और कहा कि आर्य ! मेरा अन्तिम समय है तुम मुझे मदद एवं साज दो। आर्यरक्षित ने [illegible] मंजूर कर लिया और उनकी व्यावच्च में लग गये। एक समय आर्य्य भद्रगुप्त ने आर्यरक्षित से कहा कि [illegible] वज्रसूरि के पास पूर्व ज्ञान पढ़ने को जाता है यह तो अच्छा है पर तू अलग उपाश्रय में ठहर [illegible] [illegible] एवं भोजन भी अलग ही करना। इसको रक्षित ने स्वीकार कर लिया बाद भद्रगुप्त का [illegible] [illegible] गया और आर्य्यरक्षित चल कर वज्रस्वामी के पास आ रहा था। वज्रसूरि को रात्रि में स्वप्न [illegible] [illegible] दूध का पात्र भरा हुआ था उसमें से बहुत सा दूध एक अतिथि पी गया।

[illegible] जैन संसार में बिना माता पिता की आज्ञा के दीक्षा देना [illegible] [illegible] [illegible] (चोरी) कहा गया है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

यह स्वप्न की बात अपने शिष्य को सुनारहे थे कि इतने में आर्य्यरक्षित ने आकर नमस्कार किया। वज्रसूरि ने पूछा क्या तेरा नाम आर्य्यरक्षित है और पूर्वाध्ययन के लिये आया है ? आर्यरक्षित ने कहा, हाँ। फिर वज्रसूरि ने पूछा तुम्हारे भंडोपकरण कहाँ हैं ? आर्य्यरक्षित ने कहा मैं अलग उपाश्रय याचकर भंडोपकरण वहाँ रख आया हूँ तथा आहार पानी शयन वहाँ ही करूंगा और पूर्वों का अध्ययन आपके पास करता रहूँगा। आर्य्यवज्र ने कहा अलग रहने से ज्ञान कम होगा। इस पर आर्य्यरक्षित ने भद्रगुप्ताचार्य का आदेश कह सुनाया इसपर वज्रसूरि ने श्रुतज्ञान में उपयोग लगा कर देखा तो भद्रगुप्ताचार्य का कहना यथार्थ मालूम हुआ। अतः आर्यरक्षित अलग रह कर आर्यवज्रसूरि से पूर्व ज्ञान का अध्ययन करने लगा और बड़ी मुश्किल से साढ़े नौ पूर्व का ज्ञान किया आगे उनको पढ़ने में थकावट आने लगी।

इधर रुद्रसोमा ने सोचा कि मैंने बड़ी भारी भूल की कि आर्य्यरक्षित को दूर भेज दिया। अतः दूसरे पुत्र फाल्गुरक्षित को बुलाकर आर्य्यरक्षित को लाने के लिये भेजा। वह फिरता-फिरता वज्रसूरि के पास आकर अपने भाई से मिला और माता के समाचार सुनाये। इस पर आर्य्यरक्षित ने लघुबन्धु को संसार की असारता बतलाते हुये ऐसा उपदेश दिया कि फाल्गुरक्षित ने जैनदीक्षा स्वीकार करली।

आर्य्यरक्षित को एक ओर तो माता से मिलने की उत्कंठा और दूसरी ओर अभ्यास के परिश्रम से थकावट आरही थी। अतः एक दिन वज्रसूरि से पूछा कि प्रभो ! अब कितना ज्ञान पढ़ना रहा है ? सूरिजी ने कहा अभी तो सरसप जितना पढ़ा और मेरु जितना पढ़ना है। आर्य्य तुम उत्साह को कम मत करो पढ़ाई करते रहो। गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर अभ्यास करने लगा पर उसका दिल एवं अभ्यास शिथिल पड़ गया। अतः वज्रसूरि से आज्ञा मांगी कि मैं दशपुर की ओर विहार करूं। वज्रस्वामी ने ज्ञानोपयोग से जान लिया कि इनके लिये ९॥ पूर्व का ज्ञान ही पर्याप्त है। दशवां पूर्व तो मेरे साथ ही चलेगा। अतः आर्य्यरक्षित को आज्ञा देदी। बस, आर्य्यरक्षित अपने भाई फाल्गुरक्षित मुनि को साथ लेकर वहाँ से विहार कर दिया और क्रमश पाटलीपुत्र आये। साढ़े नौ पूर्व पढ़के आये हुये शिष्य का गुरु तोसलीपुत्राचार्य आदि श्रीसंघ ने अच्छा बहुमान किया और आर्य्यरक्षित को सर्वगुण सम्पन्न जानकर अपने पट्टपर आचार्य बनाकर तोसलीपुत्राचार्य अनशन एवं समाधि से स्वर्ग पधार गये।

तदनन्तर आर्यरक्षितसूरि विहार कर दशपुर नगर पधारे। आर्य फाल्गुरक्षित ने आगे जाकर अपनी माता को बधाई दी कि आपका पुत्र जैनधर्म का आचार्य बन कर आया है। इतने में तो आर्य्यरक्षितसूरि अपनी माता के सामने आगये जिसको साधुवेश में देख माता बहुत खुशी हुई। बाद पिता सोमदेव भी आया उसने कहा पुत्र तू पढ़के आया है अतः उद्यान में ठहरना था कि राजा प्रजा की ओर से महोत्सव करवा के तुमको नगर प्रवेश कराया जाता। खैर, माता के स्नेह के लिये नगर में आ भी गया तो अब भी उद्यान में चला जा कि राजा की ओर से महोत्सवपूर्वक तुम्हारा नगरप्रवेश करवाया जाय। बाद इस साधुवेश को त्याग कर तुम्हारे लिये अनेक कन्याओं के प्रस्ताव आये हुये हैं जैसी इच्छा हो उसके साथ तुम्हारा विवाह कर दिया जाय धन तो अपने घर में इतना है कि कई पुश्त तक खाये और खर्चे तो भी अन्त नहीं आवे। अतः तुम अपने घर का भार शिर पर लेकर संसार के अन्दर सुख एवं भोग विलास भोगते रहो।

आर्य रक्षित सूरि ने अपने पिता के मोह गर्भित वचन सुन कर इस प्रकार उपदेश दिया कि माता पिता और कुटुम्ब दीक्षा लेने को तैयार होगये परन्तु सोमदेव ने कई शर्तें ऐसी रक्खी कि एक तो मेरे से

को पढ़ने के लिए काशी भेजा वहां पढ़ कर अधिक ज्ञान की प्राप्ती के लिये पाटलीपुत्र भी गया। वेद वेदांग सब शास्त्रों का पारगामी होकर वापिस दशपुर आया। जब नगर के राजादि सब लोगों ने बड़े ही स्वागत के साथ नगर प्रवेश करवाया। जब आर्य्यरक्षित अपनी माता के पास आया तो उस समय माता रुद्रसोमा सामायिक कर रही थी। अतः आर्य्यरक्षित के नमस्कार करने पर भी उसने कुछ भी सत्कार नहीं किया बाद आर्य्यरक्षित ने पूछा कि माता मेरी पढ़ाई से राजा प्रजा सब लोग खुश हुए एक तुमको ही उदासीनता क्यों ? इस पर माता ने कहा बेटा ! जिस पढ़ाई से संसार की वृद्धि हो उससे खुशी कैसे हो। यदि तू सम्यक् ज्ञान पढ़ के आता तो मुझे जरूर खुशी होती विनयवान पुत्र ने पूछा कि माता वह कौनसा ग्रंथ किसके पास पढ़ा जाय और वे पढ़ाने वाले कहाँ पर हैं ? मैं पढ़ कर आपको संतोष कराऊं। माता ने कहा बेटा ! वह है दृष्टिवाद ग्रंथ, और पढ़ाने वाले हैं तोसलीपुत्र नामक आचार्य और वे इस समय इक्षुवाडी में विद्यमान हैं। तू जाकर दृष्टिवाद पढ़ कि तेरा कल्याण हो।

रात्रि व्यतीत करने के बाद ज्ञान की उत्कंठा वाला आर्य्यरक्षित घर से चल कर पढ़ने को जा रहा था। रास्ते में एक इक्षुरस वाला सांठा लेकर आया और आर्य्यरक्षित को कहा कि हे मित्र ! मैं तेरे लिये सांठे लाया हूँ। अतः तुम वापिस घर पर चलो। आर्य्यरक्षित ने कहा मैं ज्ञानाभ्यास के लिये जा रहा हूँ फिर उसने सोचा कि ९॥ सांठा का अर्थ यही हो सकता है कि मैं जिस दृष्टिवाद का अध्यन करने को जा रहा हूं उसके ९॥ अध्याय प्राप्त करूंगा। आर्य्यरक्षित चलता २ वहां आया कि जहां तोसलीपुत्र आचार्य विराजते थे पर लज्जा के कारण वह उपाश्रय के बाहर बैठ गया। इतने में एक ढढ्ढर नामक श्रावक आया उसके साथ उपाश्रय में जाकर आचार्य को वंदन किया और दृष्टिवाद पढ़ाने की याचना की पर दृष्टिवाद का अध्ययन तो साधु ही कर सकते हैं अतः आर्यरक्षित ज्ञान पढ़ने के लिये जैनदीक्षा स्वीकार करने को तैयार हो गया परन्तु आर्यरक्षित ने सूरिजी से अर्ज की कि हे प्रभो। हमारा कुल ब्राह्मण है। अतः मुझे दीक्षा देकर यहाँ ठहरना अच्छा नहीं है। अतः आप शीघ्र विहार कर अन्य स्थान पधार जावें। गुरु ने इसको ठीक समझ आर्यरक्षित को जैन दीक्षा दे दी और वहां से अन्यत्र चले गये और आर्यरक्षित को पढ़ाना शुरू किया। [illegible] और कई पूर्व पढ़ा दिये जितना कि वे जानते थे शेष के लिये कहा कि तुम आर्य्य वज्रसूरि के पास जाओ वे उज्जैन नगरी में विराजते हैं। अतः आर्यरक्षित अन्य साधुओं के साथ विहार कर वज्रसूरि के पास जा रहे थे। रास्ते में एक भद्रगुप्ताचार्य का उपाश्रय आया। वहाँ आर्य्यरक्षित गये। आर्य्यरक्षित को देख आचार्य बहुत खुश हुआ और कहा कि आर्य ! मेरा अन्तिम समय है तुम मुझे मदद एवं साज दो। आर्यरक्षित ने [illegible] मंजूर कर लिया और उनकी व्यावच्च में लग गये। एक समय आर्य्य भद्रगुप्त ने आर्यरक्षित से कहा कि तू वज्रसूरि के पास पूर्व ज्ञान पढ़ने को जाता है यह तो अच्छा है पर तू अलग उपाश्रय में ठहर कर [illegible] पानी एवं शयन भी अलग ही करना। इसको रक्षित ने स्वीकार कर लिया बाद भद्रगुप्त का स्वर्गवास हो गया और आर्य्यरक्षित चल कर वज्रस्वामी के पास आ रहा था। वज्रसूरि को रात्रि में [illegible]

यह स्वप्न की बात अपने शिष्य को सुनारहे थे कि इतने में आर्य्यरक्षित ने आकर नमस्कार किया। वज्रसूरि ने पूछा क्या तेरा नाम आर्य्यरक्षित है और पूर्वाध्ययन के लिये आया है ? आर्यरक्षित ने कहा, हाँ। फिर वज्रसूरि ने पूछा तुम्हारे भंडोपकरण कहाँ हैं ? आर्य्यरक्षित ने कहा मैं अलग उपाश्रय याचकर भंडोपकरण वहाँ रख आया हूँ तथा आहार पानी शयन वहाँ ही करूंगा और पूर्वों का अध्ययन आपके पास करता रहूँगा। आर्य्यवज्र ने कहा अलग रहने से ज्ञान कम होगा। इस पर आर्य्यरक्षित ने भद्रगुप्ताचार्य का आदेश कह सुनाया इसपर वज्रसूरि ने श्रुतज्ञान में उपयोग लगा कर देखा तो भद्रगुप्ताचार्य का कहना यथार्थ मालूम हुआ। अतः आर्यरक्षित अलग रह कर आर्यवज्रसूरि से पूर्व ज्ञान का अध्ययन करने लगा और बड़ी मुश्किल से साढ़े नौ पूर्व का ज्ञान किया आगे उनको पढ़ने में थकावट आने लगी।

इधर रुद्रसोमा ने सोचा कि मैंने बड़ी भारी भूल की कि आर्य्यरक्षित को दूर भेज दिया। अतः दूसरे पुत्र फाल्गुरक्षित को बुलाकर आर्य्यरक्षित को लाने के लिये भेजा। वह फिरता-फिरता वज्रसूरि के पास आकर अपने भाई से मिला और माता के समाचार सुनाये। इस पर आर्य्यरक्षित ने लघुबन्धु को संसार की असारता बतलाते हुये ऐसा उपदेश दिया कि फाल्गुरक्षित ने जैनदीक्षा स्वीकार करली।

आर्य्यरक्षित को एक ओर तो माता से मिलने की उत्कंठा और दूसरी ओर अभ्यास के परिश्रम से थकावट आरही थी। अतः एक दिन वज्रसूरि से पूछा कि प्रभो ! अब कितना ज्ञान पढ़ना रहा है ? सूरिजी ने कहा अभी तो सरसप जितना पढ़ा और मेरु जितना पढ़ना है। आर्य्य तुम उत्साह को कम मत करो पढ़ाई करते रहो। गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर अभ्यास करने लगा पर उसका दिल एवं अभ्यास शिथिल पड़ गया। अतः वज्रसूरि से आज्ञा मांगी कि मैं दशपुर की ओर विहार करूं। वज्रस्वामी ने ज्ञानोपयोग से जान लिया कि इनके लिये ९॥ पूर्व का ज्ञान ही पर्याप्त है। दशवां पूर्व तो मेरे साथ ही चलेगा। अतः आर्य्यरक्षित को आज्ञा देदी। बस, आर्य्यरक्षित अपने भाई फाल्गुरक्षित मुनि को साथ लेकर वहाँ से विहार कर दिया और क्रमश पाटलीपुत्र आये। साढ़े नौ पूर्व पढ़के आये हुये शिष्य का गुरु तोसलीपुत्राचार्य आदि श्रीसंघ ने अच्छा बहुमान किया और आर्य्यरक्षित को सर्वगुण सम्पन्न जानकर अपने पट्टपर आचार्य बनाकर तोसलीपुत्राचार्य अनशन एवं समाधि से स्वर्ग पधार गये।

तदनन्तर आर्यरक्षितसूरि विहार कर दशपुर नगर पधारे। आर्य फाल्गुरक्षित ने आगे जाकर अपनी माता को बधाई दी कि आपका पुत्र जैनधर्म का आचार्य बन कर आया है। इतने में तो आर्य्यरक्षितसूरि अपनी माता के सामने आगये जिसको साधुवेश में देख माता बहुत खुशी हुई। बाद पिता सोमदेव भी आया उसने कहा पुत्र तू पढ़के आया है अतः उद्यान में ठहरना था कि राजा प्रजा की ओर से महोत्सव करवा के तुमको नगर प्रवेश कराया जाता। खैर, माता के स्नेह के लिये नगर में आ भी गया तो अब भी उद्यान में चला जा कि राजा की ओर से महोत्सवपूर्वक तुम्हारा नगरप्रवेश करवाया जाय। बाद इस साधुवेश को त्याग कर तुम्हारे लिये अनेक कन्याओं के प्रस्ताव आये हुये हैं जैसी इच्छा हो उसके साथ तुम्हारा विवाह कर दिया जाय धन तो अपने घर में इतना है कि कई पुश्त तक खाये और खर्चे तो भी अन्त नहीं आवे। अतः तुम अपने घर का भार शिर पर लेकर संसार के अन्दर सुख एवं भोग विलास भोगते रहो।

आर्य रक्षित सूरि ने अपने पिता के मोह गर्भित वचन सुन कर इस प्रकार उपदेश दिया कि माता पिता और कुटुम्ब दीक्षा लेने को तैयार होगये परन्तु सोमदेव ने कई शर्तें ऐसी रक्खी कि एक तो मेरे से

नम नहीं रहा जायगा जो कई जैनश्रमण रहते हैं और दूसरे उपानह (पादुका) कमंडल, छत्र और अनेक उपकरणों के साथ तुम्हारी दीक्षा ले सकता हूँ। आर्य रक्षितसूरि ने भविष्य का लाभालाभ जानकर अ कहना स्वीकार कर लिया। और सोमदेव रुद्रसोमा आदि सब कुटुम्ब को दीक्षा देदी।

मुनि सोमदेव ज्यों ज्यों जैनधर्म का ज्ञान एवं क्रिया का अभ्यास करता गया तथा जैसे जैसे कारण होते गये वैसे वैसे पूर्व पदार्थों का त्याग करता गया और शुद्ध संयम की आराधना करता रहा तत्पश्चात् लेते समय पूर्व संस्कारों से जो शर्तें कि थी वे सब छूट गई और जैन मुनियों का आचरण अनुसार वर्तने ल

आर्य्य रक्षितसूरि के शासन में अनेक मुनि तपस्वी एवं अभिग्रहधारी तथा लब्धि सम्पन्न थे १-घृतपुष्पमित्र २-वस्त्रपुष्पमित्र ३-दुर्बलिकापुष्पमित्र नामके साधु थे और अपनी २ लब्धिपूर्वक कार्य कर थे। दुर्बलिकापुष्पमित्र कई बोधलोगों को प्रतिबोध कर सन्मार्ग पर लाये थे।

इनके अलावा आपके गच्छ में चार आज्ञावान्मुनिवर भी थे १-दुर्बलपुष्पमित्र २-विंध्यमुनि ३-फाल्गुरक्षित और शुक्राचार्य के धर्मशास्त्र को जीतने वाला ४-गोष्टामाहिल नाम के मुनि विख्यात थे जिसमें विंध्यमुनि के आग्रह से आर्य्य रक्षित सूरिने आगमों के चार अनुयोग अलग अलग कर दिये जो पहिले एक ही — चारों अनुयोग की व्याख्या की जाती थी।

एक समय आर्य रक्षितसूरि विहार करते हुये मथुरानगरी में पधारे और अधिष्ठायक व्यान्तर के में ठहरे थे। उस समय इन्द्र श्रीसीमंधर तीर्थङ्कर + को वन्दन करने को महाविदेह क्षेत्र में गया था और प्र के मुख से निगोद का स्वरूप सुन कर पूछा कि प्रभो क्या भरतक्षेत्र में भी इस प्रकार निगोद की व्याख्या करने कोई आचार्य हैं ? प्रभो ने कहा हाँ भरतक्षेत्र में आर्यरक्षितसूरि नामक पूर्वधर आचार्य हैं। वह निगोद व्याख्या अच्छी करते हैं। इन्द्रवृद्ध ‡ ब्राह्मण का रूप बनाकर आचार्य रक्षितसूरि के पास आया और नि

+ इतश्चास्ति विदेहेषु श्रीसीमंधरतीर्थकृत्। तदुपान्ते ययौ शक्रोऽश्रौषीदाख्यां च तन्मनाः ॥ २४६ ॥
निगोदाख्यानमाख्याद् केवली तस्य तत्त्वतः। इन्द्रः पप्रच्छ भरते कोऽन्यस्तेषां विचारकृत ॥ २४७ ॥
आचार्य आह मथुरानगर्यामार्यरक्षितः। निगोदान्महदाचष्ट ततोऽसौविस्मयं ययौ ॥ २४८ ॥
‡ [illegible] च [illegible] वृद्धब्राह्मणरूपभृत्। आययौ गुरुपार्श्वे स [illegible] ॥ २४९ ॥
[illegible] ॥ २५० ॥
[illegible] निगोदानां विचारणम्। यथावस्थं गुरुर्व्याख्यान्सोऽथ तेन चमत्कृतः ॥ २५१ ॥
[illegible] पप्रच्छ निजजीवितम्। ततः श्रुतोपयोगेन व्यचिन्तयदिदं गुरुः ॥ २५२ ॥
[illegible] ॥ २५३ ॥
[illegible] ॥ २५४ ॥
[illegible] ॥ २५५ ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

का स्वरूप पूछा। इस प्रकार आचार्यश्री ने यथावत स्वरूप कह सुनाया जिससे इन्द्र बहुत हर्षित हुआ बाद इन्द्र ने अपना हाथ आगे कर अपना आयुष्य पूछा। आचार्यश्री ने हस्त रेखा देख कर सौ दोसौ एवं तीन सौ वर्ष तक रेखा देखी पर रेखा तो उससे भी आगे हजार लाख करोड़ वर्ष से भी अधिक पल्योपम सागरोपम तक बढ़ती जारही थी। अतः सूरिजी ने श्रुतोपयोग लगाया तो ज्ञातहुआ कि यह तो पहिले देवलोक का इन्द्र है और इसकी दो सागरोपम की आयुष्य है। यह बात इन्द्र को कहीतो इन्द्र ने सूरिजी की बहुत प्रशंसा की और कहा की श्री सीमंधर तीर्थङ्कर ने जैसे आपकी तारीफ की वैसे ही आप हैं। आज्ञा फरमावें कि में क्या करूं ? आचार्य ने कहा कि अपने आने का चिन्हस्वरूप कुछ करके बतलाओ कि भिक्षार्थ गये हुये साधुओं को मालूम होजाय कि इन्द्र आया था। अतः इन्द्र ने उपाश्रय का दरवाजा पूर्व में था उसे पश्चिम में कर दिया और सूरिजी को वंदन कर अपने स्थान चला गया। बाद साधु भिक्षा लेकर आये तो पूर्व में दरवाजा नहीं देखा तो उनको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ तब गुरु ने कहा मुनियों उपाश्रय का दरवाजा पश्चिम में है अतः तुम उधरसे चले आओ शिष्यों ने आचार्य से सब हाल सुना जिससे बड़ा ही आश्चर्य हुआ बाद आचार्यश्री ने वहाँ से अन्यत्र विहार कर दिया। आचार्यश्री के जाने के बाद नास्तिक बोधों का मथुरा में आगमन हुआ पर उस समय गोष्टामाहिल नामक मुनि ने शास्त्रार्थ कर बाधों को पराजित कर दिया।

आचार्य रक्षितसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था जान अपने पट्ट पर किसको स्थापित किया जाय इसके लिये सूरिजी ने दुर्बलपुष्पमित्र को योग्य समझा पर सूरिजी के सम्बन्धियों ने फाल्गुरक्षित के लिये आग्रह किया जो आर्यरक्षित के भाई था और कई एकों ने गोष्टामहिल को सूरि बनाने का विचार प्रगट किया। आखिर परीक्षा पूर्वक सूरि पद दुर्बलपुष्पमित्र मुनि को ही दिया गया।

आर्य्य रक्षितसूरि ने दुर्बलपुष्प मित्र को कहा कि मेरा पिता एवं मामा वगैरह मुनि हैं उन प्रति मेरे जैसा भाव रखना तथा मुनि सोमदेव वगैरह को भी कह दिया कि तुम जैसे मुझे सभझते हो वैसे ही दुर्बलपुष्पमित्र को समझना। आचार्य रक्षितसूरि ने गच्छ का सुप्रबन्ध करके अनशन एवं समाधि पूर्वक स्वर्ग को ओर प्रस्थान किया। आचार्य दुर्बलपुष्पमित्र गच्छ को अच्छी तरह से चलाते हुये एवं सबको समाधि पहुँचाते हुये गच्छ की उन्नति एवं वृद्धि की। परन्तु गोष्टामहिल मुनि ने ईर्षा एवं द्वेष भाव के कारण अपना मत अलग निकाल कर सातवां निन्हव की पंक्ति में अपना नाम लिखाया।

रुद्रसोमा पुनस्तत्र श्रमणोपासिका तदा। विज्ञातजीवाजीवादि नवतत्त्वार्थ विस्तरा ॥१६॥
कृत सामायिका पुत्रमुत्कण्ठाकुलितं चिरात्। इलातलमिलनमौलिं वीक्ष्यापि प्रणतं भृशम् ॥ १७ ॥
अस्य ग्रन्थस्य वेत्तारस्तेऽधुना स्वेक्षुवाटके। सन्ति तोसलिपुत्राख्याः सूरयो ज्ञानभूरयः ॥ २८ ॥
किंकर्तव्यजडस्तत्राजानन् जैनपरिश्रमम्। दड्ढरश्रावकं सूरिवन्दकं प्रैक्षदागतम् ॥ ३७ ॥
ध्यात्वा तं सूरयोऽवोचन् जैनप्रव्रज्यया विना। न दीयते दृष्टिवादो विधिः सर्वत्र सुंदरः ॥ ४७ ॥
गुरवः शेषपूर्वाणां पाठायोज्जयिनिपुरि। तमार्यरक्षितं प्रैषुः श्रीवज्रस्वामिनोन्तिके ॥ ५८ ॥
गीतार्थैर्मुनिभिः सत्रा तत्रागादार्यरक्षितः। श्रीभद्रगुप्तसूरीणामाश्रये प्राविशत्तदा ॥ ५९ ॥
श्री वज्रस्वामि पादान्ते त्वया पिपठिपाभृता। भोक्तव्यं शयनीयं च नित्यं पृथगुपाश्रये ॥ ६५ ॥
तदा च ददृशे स्वप्नः श्रीवज्रेणाप्यजल्प्यत। विनेयाग्रेऽद्य संपूर्णः पायसेन पतद्ग्रहः ॥ ७० ॥
वत्स कच्छाभिसंबद्धं ममास्तु परिधानकम्। नग्नैः शक्यं किमु स्थातुं स्वैः पाल्नजतुताग्रः ॥ १४५ ॥
उपानहौ मम स्यातां तथा करक पात्रिका। छत्रिकायोपवीतं च यथा कुर्वे तव प्रतम् ॥ १५८ ॥ ८० ८०

आचार्य रक्षितसूरि जैनशासन में बड़े भारी प्रभाविक एवं युग प्रवर्तक आचार्य हुये आपके शासन में दो बातें जानने काबिल हुई १—पूर्व जमाने में एक ही सूत्र से चारों अनुयोग का अर्थ किया जाता था पर भविष्य में साधुओं की बुद्धि का विचार कर चारों अनुयोग पृथक् २ कर दिये वे अद्यावधि वैसे ही चले आ रहे हैं २—पूर्व जमाने में साध्वियां अपनी आलोचना साध्वियों के पास करती और साध्वियां ही यथायोग्य प्रायश्चित दे दिया करती थी परन्तु आर्य रक्षितसूरि ने उस प्रवृति को बन्द कर साध्वियां अपनी आलोचना साध्वियों के पास न करके साधुओं के पास करे और साधु ही प्रायश्चित दें ऐसा नियम बना दिया।

आर्य रक्षित ९॥ पूर्व ज्ञान के पारगामी थे। इनके बाद इतना ज्ञान किसी आचार्य को नहीं हुआ था युगप्रधान पट्टावली अनुसार आप १९ वें युगप्रधान थे। आपका जन्म वी० नि० सं० ५२२ में हुआ था २२ वर्ष की आयुष्य में दीक्षा ली ४४ वर्षसामान्य दीक्षा पर्याय और १३ वर्ष युगप्रधान पद पर रहकर शासन की खूब उन्नति की। वी० नि० सं० ५९७ वें वर्ष में अर्थात् ७५ वर्ष का सर्व आयुष्य भोग कर स्वर्गवासी हुये।

आचार्य नंदिलसूरि—आप साढ़े नौ पूर्वधर महान प्रभावशाली आचार्य हुए हैं। प्रभाविक चरित्र में आपके विषय में बहुत वर्णन किया है। आपके चरित्रान्तरगत वैराट्या देवी का भी चरित्र वर्णन किया है। जिसमें पद्मनीखंडनगर, पद्मप्रभराजा, पद्मावतीरानी, पद्मदत्तश्रेष्ठि, पद्मयशास्त्री, पद्मपुत्र, जिसका वरदत्त के पुत्री वैराट्या के साथ विवाह हुआ था। इत्यादि विस्तृत वर्णन किया है। आगे लिखा है कि—

दुकाल के कारण वरदत्त देशान्तर जाता है और वैराट्य को सासु खूब कष्ट देती है नागेन्द्र के स्वप्ना सूचित वैराट्या गर्भ धारण करती है। आचार्य नंदिलसूरि उद्यान में पधारते हैं। वैराट्या सूरि को वन्दन करने को जाती है और अपनी दुःख गाथा सुनाकर पूर्वभव में किये हुए कर्मों को सुनना चाहती है। सूरिजी कर्म सिद्धान्त का रहस्य बतला कर वैराट्या को शान्त करते हैं। वैराट्या को पयसान्न (दूधपाक) का दोहला उत्पन्न होता है। तप के उद्यापनार्थ दूधपाक तैयार होता है। वैराट्या घड़ा हुआ पयसान्न के ले कर पानी के बहाने जलाशय पर जाती है। वहां नाग देव की देवी पयसान्न का भक्षण कर जाती है और वैराट्या की क्षमा शान्ति को देख प्रसन्न होती है। वैराट्या पुत्रको जन्म देती है और उसका नाम नागेन्द्र रखा जाता है। तदनन्तर नागदेव की सहायता से पद्मदत्त पद्मयशा और वैराट्यादि सूरिजी के पास दीक्षा लेते हैं। वैराट्या साध्वि जीवन में काल कर भगवान पार्श्वनाथ के सेविका नागकुमार की जाति में वैराट्या देवी पने उत्पन्न होती है इत्यादि विस्तार से वर्णन किया है—

आर्य नंदिल किस वंश परम्परा के थे? इसके लिए चरित्रकार आर्य रक्षित के वंश में हुये लिखे हैं पर नंदी स्थविरावली में आर्य मंगू के बाद और नागहस्ति के पूर्व के युगप्रधान बतलाया है परन्तु आर्य मंगू का युगप्रधान समय वी. नि. सं० ४५१ से ४७० का है तब आर्य रक्षित का समय ५४४ से ५९७ [illegible] है यदि नंदिल आर्य मंगू के बाद माना जाय तो करीब १०० वर्ष पूर्व का समय आता है। [illegible] मंगू के वंश पर सिद्ध नहीं होते हैं। अतः आर्य नंदिल को आर्य रक्षित के बाद [illegible] [illegible] है। आर्य नन्दिल का नाम प्रबन्ध का एवं युग प्रधान पट्टावली कर्त्ता आर्यनंदिल [illegible] आपका वास्तविक नाम आर्यनंदिल था ऐसा पं० कल्याण विजयजी महाराज अपनी प्रबन्धपर्यालोचना में [illegible] करते हैं। जो यथार्थ ही समझा जा सकता है।

कालकाचार्य—इसी किताब के पृष्ठ ४०९ पर चार कालकाचार्यका नामोल्लेख किया जिसमें दत्तकों यज्ञ फल कहने वाले का भी नाम आया है जिसके लिये ऐसी घटना बनी थी कि तुरिगिणी नगरी के उद्यान में एक समय कालकाचार्य पधारे थे वहां पर कालकाचार्य के बहन का पुत्र दत्त नाम पुरोहित था उसने अपना स्वामि राजा को छल कपट से कारागर में डाल कर आप स्वयं राज को अपने अधिकार में कर लिया था और आप वहां का राजा बन गया था राजा दत्त अपनी माता के कहने से एक दिन कालकाचार्य के पास आया उसके हृदय में पहले से ही धर्म द्वेष था अतः उन्मत्त की भाँति क्रोध युक्त हो कर कालकाचार्य को यज्ञ के विषय में प्रश्न पूछा कि यज्ञ का क्या फल होता है ? आचार्यश्री ने कहा कि यज्ञ में जो पशुओं की हिंसा की जाती है और हिंसा का फल होता है नरक अर्थात् हिंसा करने वाले नरक में जाकर अनन्त दुःखों को भोगता है । यह बात दत्त को बहुत बुरी लगी खैर उसने पुनः पूछा कि हमारा और आपका शेष आयुष्य कितना रहा है और किस कारण मृत्यु होगा एवं मर कर कहाँ जावेंगे ? कालकाचार्य ने कहा दत्त तेरा आयुष्य सात दिन का रहा है तू कुंभी में पच कर मरेगा कुत्ते तेरी लाश को खायंगे और तू मर कर नरक में जावेगा फिर मैं यह कह देता हूँ कि तेरे मुंह में वृष्टा पड़ेगा तब जान लेना कि मेरी मृत्यु आ गई है और मैं समाधि के साथ मर कर स्वर्ग में जाऊँगा । इस जवाब से दत्त को और भी विशेष गुस्सा आया और आचार्य श्री के लिये गुप्तचर को रख दिया कि ये सातदिनों के अन्दर कहीं विहार न कर जाय बाद दत्त अपने स्थान को चला गया ओर ऐसे स्थान में बैठ गया कि वहाँ न तो मुंह में वृष्टा पड़ सके और न मृत्यु ही आ सके ? पर भवितव्यता को कौन मिटा सकता है दत्त अपने गुप्त स्थान में रह कर दिन गिनता था परन्तु भ्रांति से सातवां दिन को आठवां दिन समझ कर आचार्यश्री के वचन को मिथ्या साबित करने की गर्ज से अश्वारूढ़ हो कर राज मार्ग से जा रहा था राज मार्ग में क्या हुआ था कि एक मालन पुष्पों की छाब लेकर जा रही थी उसके उदर में ऐसी तकलीफ हुई कि वह राज मार्ग में ही टट्टी बैठ गई और पास में पुष्प थे वे वृष्टा पर डाल दिया उसी रास्ते से दत्त आ रहा था घोड़ा का पैर उस वृष्टा पर लगा कि वृष्टा उछल कर थोड़ासा दत्त के मुंह में जा पड़ा जिसका स्वाद आते ही दत्त विचार कर वापिस लौट रहा था परन्तु दत्त का अत्याचार से मंत्री वगैरह सब असन्तुष्ट थे उन्होंने किसी जितशत्रु राजा को ला कर राज गादी बैठा दिया उसने दत्त को पकड़ पिंजरा में डाल दिया । बाद दत्त को कुंभी में डाल कर भट्टी पर चढ़ाया और नीचे अग्नि लगादी और बाद में उसकी लाश कुत्तों ने खाई एवं कदर्थना की और वह मर कर नरक में गया । तत्पश्चात् कालकाचार्य वहां से विहार किया कई वर्षो तक भव्य जीवों का उद्धार कर अन्त में समाधिपूर्वक काल कर स्वर्ग पधार गये इस प्रकार कालका चार्य महा प्रभाविक आचार्य हुए हैं ।

श्रीशत्रुंजयतीर्थ का उद्धार

जैन संसार में तीर्थश्रीशत्रुंजय का बड़ा भारी महात्म्य एवं प्रभाव है । इतना ही क्यों पर शत्रुंजय तीर्थ को प्रायः शाश्वता तीर्थ बतलाया है । जैनांगोपांग सूत्र में श्री शत्रुंजय के विषय प्रचुरता से उल्लेख मिलता है । श्रीज्ञातसूत्र तथा अंतगढ़दशांग सूत्र में उल्लेख मिलता है कि हजारों मुनिराज शत्रुंजय तीर्थ पर जाकर अन्तसमय केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गये हैं । जैसे यह तीर्थ प्राचीन है वैसे इस तीर्थ के उद्धार भी बहुत हुए हैं और जैसे मनुष्यों ने इस तीर्थ के उद्धार करवाये हैं वैसे देवताओं के इन्द्रों ने भी तीर्थोद्धार

करवाया था। कलिकाल की कुटिल गति से इस तीर्थ पर कई प्रकार के आक्रमण भी हुए थे। [illegible] समय बौद्धों और जैनों के शास्त्रार्थ हुआ था और बौद्धों की विजय में सौराष्ट्र प्रांत बौद्धों के हाथ में चला गया था इस हालत में शत्रुंजय तीर्थ पर भी बौद्धों का अधिकार हो गया था। इनके अलावा असुरों का भी शत्रुंजय पर अधिकार रहा था अतः कई वर्षों तक जैनों को शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा से वंचित रहना पड़ा था और इस अंतराय कर्म को हटाने वाले महाप्रभाविक आचार्य वज्रस्वामी और धर्मवीर जावड़ शाह [illegible] कि इन्होंने दुष्ट असुर के पंजे में गये हुये शत्रुंजय तीर्थ को पुनः दूध एवं शत्रुंजी नदी के निर्मल जल से धोकर एवं शुद्ध बना कर पुनः उद्धार करवाया। तब से जाकर चतुर्विध श्रीसंघ ने श्रीशत्रुंजय तीर्थ की यात्रा की।

जावड़ शाह—आचार्य श्रीस्वयंप्रभसूरि ने पद्मावती नगरी के राजा पद्मसेनादि ४५००० जन समूह को जैनधर्म में दीक्षित किये। आगे चलकर उस समूह का प्राग्वटवंश नाम संस्करण हुआ। वंशावलियों से पता मिलता है कि पद्मावती में प्राग्वट वंशीय शाह देवड़ रहता था। देवड़ के ११ पुत्र थे जिसमें भावड़ भी एक था। भाइयों की अनबनत के कारण भावड़ पद्मावती छोड़ सौराष्ट्र में चला गया और कांपिल्य नगर में जाकर बस गया और व्यापार में भावड़ ने बहुत द्रव्य भी पैदा किया पर कर्मों की गति विचित्र होती है एक ही भव में मनुष्य अनेक दशाओं को देख लेता है यही हाल भावड़ का हुआ था।

भावड़ शाह की गृहणी का नाम भावला था और वह धर्मकरनी में दृढ़ व्रत वाली श्राविका थी। भावड़ शाह के पूर्व जन्म की अन्तराय के कारण धन कम हो गया परन्तु धर्म की तो वृद्धि होती गई [illegible] है कि 'सत्य की बांधी लक्ष्मी फिर मिलेगी आय।' एक समय भावला के मकान पर दो मुनि विहार करते निकले। भावला ने अपना अहोभाग्य समझ कर गुरु भक्ति की और उनको सादर आहार पानी दिया। उस समय भावला गर्भवती थी। मुनियों ने निमित्त ज्ञान के बल से कहा कि माता तुम्हारे पुत्र होगा। वह जैन शासन का उद्धार करने वाला भाग्यशाली होगा पुनः मुनियों ने कहा कि कल एक घोड़ी बिकेगी उसे खरीद कर लेना कि जिसमे आपको बहुत लाभ होगा। बस इतना कह कर मुनि तो चले गये। भावला ने सब बात अपने पतिदेव को कह दीं जिससे दोनों ने शुभ शकुन मान कर मंगलीक गांठ लगाली।

दूसरे दिन एक सोदागर घोड़ी बेचने को आया उसको भावड़शाह ने खरीद कर ली जिसके [illegible] शुभ लक्षण वाले बच्चे पैदा हुए एक तो तीन लक्ष द्रव्य में एक राजा को बेच दिया, दूसरा राजा विक्रम को [illegible] में दे दिया। विक्रम ने खुश हो भावड़शाह को मधुमति आदि १२ ग्राम इनाम में दे दिये। बस, भावड़ [illegible] वहां पर मधुमती का राजा बन गया। बाद उसके एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम जावड़ रखा। [illegible] जब जवान हुआ तब उसकों एक श्रेष्ठि कन्या सुशीला के साथ उसका लग्न कर दिया। [illegible] [illegible] हुआ तो राज्यलक्ष्मी का मालिक जावड़ हुआ। शाह जावड़ राज्य के साथ व्यापार भी [illegible]

एक समय जावड़शाह ने बहुत सा माल जहाजों में भर कर विदेश में भेजा था।

[illegible] के अधिकार में लिखी गई है कि पादलिप्त सूरि महान् प्रभाविक आचार्य [illegible] [illegible] हैं। आपके सुयोग्य शिष्य नागार्जुन ने शत्रुंजय की तलेटी में पादलिप्तपुर नाम का नगर बसाया [illegible]

विक्रम की मृत्यु के बाद [illegible] समुद्र को पार कर लाट में एक [illegible] [illegible] लाट सौराष्ट्र के प्रान्तों में लूट मार शुरू कर दी। उसमें शत्रुंजय को भी बहुत [illegible]

[[illegible]

लिम्रपुर और मधुमती लूटकर जावड़शाह को भी पकड़ लिया और जाते समय वे जावड़ को भी अनार्य देश म साथ ले गये ।

जावड़ एक पक्का मुत्सद्दी था अपने चातुर्य्य एवं कुशलता से म्लेच्छों को प्रसन्न कर वहाँ भी अपना व्यापार करना शुरू कर दिया । जिससे पुष्कल द्रव्योपार्जन कर लिया और वहाँ आने वाले भारतीयों को अनेक प्रकार की सहायता पहुँचाने लगा । इतना ही क्यों पर जावड़ ने तो अपने सेवा पूजा दर्शन के लिए वहाँ जैनमंदिर और उपाश्रय भी बनवा लियाथा । उस समय जनमुनियों का विहार भी उस तरफ हुआ करता था—

इधर विहार करते हुये मुनियों का एक मण्डल अनार्य देश में आया । जावड़शाह ने उनका स्वागत किया । मुनियों ने जावड़ की धर्म भावना देख वहां स्थिरता करदी और धर्मोपदेश देने लगे जिससे अनार्यों पर भी जैनधर्म का अच्छा प्रभाव हुआ । एक समय प्रसंगोपात श्रीसिद्धाचल का वर्णन करते हुए कहा कि कदर्पि यक्षद्वारा तीर्थ की बड़ी भारी आशातना हो रही है । श्रीसंघ कई अर्सा से यात्रा से वंचित है । हे श्रेष्टि-वर्य्य ! यह पुन्य कार्य तुम्हारे हाथ से होने वाला है । तुम इस कार्य्य के लिये उद्यम करो । इस कार्य्य में द्रव्य की अपेक्षा राजसत्ता की अधिक जरूरत है यहां की साता के अलावा तक्षिला के राजा जगन्मल के पास प्रभु आदीश्वर की मूर्ति है । उसे प्राप्त कर शत्रुंजय पर स्थापित कर अनंत पुन्योपार्जन करो इत्यादि ।

जावड़ का दिल देश एवं मातृभूमि तथा तीर्थ की ओर आकर्षित हुआ । अतः वहां से चल कर तक्षिला‡ आया । बहुमूल्य भेंट देकर राजा को प्रसन्न किया । राजा ने पूछा कहो सेठजी आपको किस बात की जरूरत है जावड़ ने मूर्ति मांगी और राजा ने जावड़ को मूर्ति देदी इतना ही क्यों पर राजा ने तो जावड़ को सौराष्ट्र तक इंतजाम कर मधुमति नगरी तक क्षेमकुशल से पहुँचा दिया ।

जब मनुष्य के पुन्योदय होता है तब चारों ओर से लाभ ही लाभ मिलता है । जावड़ ने जो माल जहाजों द्वारा विदेश में भेजा था उसके लिए इतने वर्ष हो गये कुछ भी समाचार नहीं मिले थे पर इधर तो जावड़ मधुमति आता है और उधर से वे जहाजों भी मधुमति आ पहुँचती है । अहा-हा-धर्म एक कैसा मित्र एवं कैसा सहायक होता है कि जिसका फल अवश्य मिलता है भले थोड़ा दिन की अन्तराय आ भी जाय पर उस अवस्था में मनुष्य अपने धर्म पर पाबन्दी रखता है तो शीघ्र ही आपत्ति से मुक्त हो सुखों का अनुभव करने लग जाता है एक समय जावड़ म्लेच्छों द्वारा पकड़ा गया था तब आज जावड़ शाह अपार सम्पति का धनी बनकर शत्रुंजय का उद्धार की भावना वाला बन गया है ।

उस समय आर्यवज्रसूरि विहार करते हुए मधुमति आये । जावड़शाह सूरिजी को वन्दन करने को गया उससमय लक्षदेवों का अधिपति एक देव भी, सूरिजी को वन्दन करने के लिये आया था । सूरिजी ने धर्मलाभ देकर जावड़ के कार्य में मदद कर तीर्थोद्धार करने का उपदेश दिया देवता ने सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य्य करली ।

जावड़ ने कहा प्रभो ! इस महान तीर्थ का उद्धार करना कोई साधारण सी बात नहीं है । इसमें पुष्कल द्रव्य की आवश्यकता है । सूरिजी ने कहा तुम्हारे जो जहाज आये हैं उनमें रेती सी दीखती है वास्तव में वह रेती नहीं पर तेजमतुरी है जिससे लोहे का सुवर्ण बन जाता है ।

बस, फिर तो कहना ही क्या था ? एक तरफ तो देव की सहायता और दूसरी तरफ द्रव्य की प्रचु-रता । जावड़ का उत्साह बढ़ गया । जावड़ सब साधन सामग्री एवं तक्षिला से लाई हुई मूर्ति लेकर श्रीसंघ

‡ उस समय तक्षिला ५०० जैनमन्दिरों से सुशोभित जैनियों का एक केन्द्र था ।

तथा आर्यवज्रसूरि के साथ शत्रुंजय आया । पर वहां के यक्ष ने २१ दिन तक खूब उपद्रव किया । आखिर उसको परास्त होकर वहां से भागना पड़ा ।

बस, फिर तो था ही क्या । जावड़शाह ने शत्रुंजय पर्वत को दूध और शत्रुंजी नदी के निर्मल जल से धुलवाया और वहां का सब काम करवा कर तक्षशिला से लाई हुई भगवान् आदीश्वर की मूर्ति की प्रतिष्ठा आचार्य वज्रसूरि के कर कमलों से करवाई । आचार्य श्री ने द्रव्य क्षेत्र काल भाव को जान कर कपर्दी यक्ष और चक्रेश्वरीदेवी को वहां के अधिष्ठाता के रूप में स्थापन किया ।

आचार्य वज्रसूरि और जावड़ शाह के प्रभावशाली प्रयत्न से चतुर्विध श्रीसंघ को फिर से पुनीत तीर्थ की यात्रा करने का सौभाग्य मिला है । जैन संसार में जावड़शाह खूब प्रसिद्ध पुरुष है और इनके द्वारा कराया हुआ तीर्थधिराज श्रीशत्रुंजय का उद्धार भी महत्त्वपूर्ण कार्य है जिसको जैन समाज कभी भूल नहीं सकता है आज पर्यन्त चतुर्विध श्रीसंघ तीर्थराज की यात्रा सेवा भक्ति कर अपना कल्याण कर रहा है जिसका सर्व श्रेय स्वानामधन्य प्राग्वट वंश भूषण श्रीमान् जावड़शाह को ही है । यद्यपि इनके बाद श्रीमाल एवं ओसवालों ने भी इस पुनीत तीर्थ का उद्धार करवाया है पर पंचमारा में उस विकट परिस्थिति में उद्धार करवाने वाले गुरु वज्रस्वामि और जावड़शाह विशेष धन्यवाद के पात्र कहा जा सकते हैं ।

श्री शत्रुंजय का संघ— आचार्य जज्जगसूरि विहार करते हुए पालिकापुरी में पधारे श्री संघ ने आपका अच्छा स्वागत किया सूरिजी का प्रभावोत्पादक व्याख्यान हमेशा होता था एक समय आपने श्रीशत्रुंजय तीर्थ का महात्म्य बतलाते हुए तीर्थ यात्रा से शासन की प्रभावना और भविष्य में कल्याणकारी का बड़े विस्तार से वर्णन किया जिससे जनता की रुची तीर्थयात्रा की हो आई कारण कई अर्सा से श्री शत्रुंजय की यात्रा बन्द थी पर आर्य्य वज्रसूरि और जावड़शाह के प्रयत्न से पुनः तीर्थ का उद्धार हुआ था अतः जनता का दिल पुनीत तीर्थ की यात्रा करने का हो जाना एक स्वाभाविक ही था उसी सभा में बैठा हुआ अपार [illegible] का मालिक प्राग्वट वंशीय शाह जोघड़ा ने सूरिजी एवं श्रीसंघ से अर्ज की कि श्रीसंघ गुरु आदेश दिलावें तो मैं श्रीशत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकालूँ ? सूरिजी ने कहा जोघड़ा तु बड़ा ही भाग्यशाली है श्री संघ ने भी अनुमोदन के साथ आदेश दे दिया । बस फिर तो कहना ही क्या था शाह जोघड़ा ने बड़ी भारी तैयारियां करनी शुरू कर दी । सर्वत्र आमंत्रण पत्रिकाएँ भेज दी । इस संघ में एक लक्ष से भी अधिक यात्रु और तीन हजार साधु साध्वियां थे जिसमें अधिक साधु साध्वियां उपकेश एवं कोरंटगच्छ के ही थे उस समय आचार्य रत्नप्रभसूरि चन्द्रावती नगरी में विराजते थे अतः संघपति जोघड़ा ने स्वयं जाकर विनती की [illegible] सूरिजी ने जोघड़ा की प्रार्थना स्वीकार कर संघ में शामिल होने की मंजूरी फरमादी जब संघ पालिकापुरी से प्रस्थान कर चन्द्रावती आया तो सूरिजी अपने शिष्यों के साथ शामिल हो गये फिर तो था ही क्या [illegible] [illegible] द्विगुणित हो गया आचार्य जज्जगसूरि ने भी सूरिजी का यथायोग्य विनय किया ! शत्रुंजय [illegible] [illegible] होने के बाद यह पहला ही संघ था अतः जनता एक दम उलट पड़ी थी जब संघ शत्रुंजय पहुँचा उस समय शत्रुंजय पर छोटा बड़ा तेरह संघ आये थे पर सब से बड़ा संघ [illegible] [illegible] [illegible] ने [illegible] युगादीश्वर की यात्रा कर पूर्व संचित पाप का प्रक्षालन कर डाला आठ दिन [illegible] [illegible] [illegible] अष्टाह्निकादि और स्वामि वात्सल्यादि किये अनेक महानुभावों ने संघ की [illegible] [illegible] शाह जोघड़ ने इस संघ में एक करोड़ द्रव्य शुभ क्षेत्र में लगाया—

१७—आचार्य यक्षदेव सूरि (तृतीय)

आचार्यस्तु स यक्षदेव पदयुक् सूरिर्नृपस्य सुतः ।
विद्या ज्ञान कलाधरो न विजहौ धर्मं स्वकीयं च यः ॥
दुष्कालेऽपि च वज्रसेन विदुषः सूरेः सुशिष्यान् सुधीः ।
जज्ञौ ये तु निवृत्ति विद्याधर पुङ् नागेन्द्र चान्द्रान्वयाः ॥
जाताः जैन समाज लोक विषये कर्त्तोपकारस्य ये ।
भूरेः सूरिरयं कदापि न हि किं विस्मार्य कार्योऽस्ति वा ॥
किन्त्वेकं कर वा व बद्ध करता युक्तं सदाभ्यर्थयन् ।
कल्याणं कुरुतां जनस्य भगवन् प्रेम्णा कटाक्षं तव ॥

आचार्यश्री यक्षदेवसूरीश्वरजी महान प्रभाविक आचार्य हुए हैं। आपका जन्म वीरपुर नगर के महान प्रतापी राजा वीरधवल की विदुषी पट्टराज्ञी गुनसेना की पवित्र कुक्ष से हुआ था और आपका शुभ नाम वीरसेन रक्खा था। आपके हाथ पैरों की रेखा और शरीर में रहे हुए शुभ लक्षण आपके भावी होनहार की शुभ सूचना कर रहे थे। आपका पालन पोषण सब क्षत्रियोचित हो रहा था। आप वर्ण में क्षत्री थे पर विद्या में तो ब्राह्मण वर्ण के सदृश्य ही थे कि बालभाव मुक्त होते ही आपके पिताश्री ने महोत्सवपूर्वक विद्यालय में प्रविष्ट किया पर आपकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि अपने सहपाठियों में सदैव अग्रेश्वर ही रहते थे। कहा भी है कि 'बुद्धि कर्मानुसारणी' जिन जीवों ने पूर्व जन्म में ज्ञान पद की एवं देवी सरस्वती की आराधना की हो उनके लिये इस प्रकार शीघ्र ज्ञान प्राप्त कर लेना कोई मुश्किल की बात नहीं है। राजकुँवर वीरसेन आठ वर्ष की पढ़ाई में पुरुष की ७२ कलाओं में एवं राजतंत्र चलाने में विज्ञ बन गया।

जब राजकुँवर वीरसेन सोलह वर्ष का हुआ तो उसकी शादी के लिये अनेक प्रस्ताव मय चित्रों के आये उसमें उपकेशपुर नगर के राव नरसिंह की सुशीला पुत्री सोनलदेवी के साथ वीरसेन का सम्बन्ध (सगाई) कर दी समयान्तर बड़े ही समारोह के साथ विवाह कर दिया। राजकन्या सोनलदेवी के माता पिता जैन-धर्मोपासक थे अतः सोनलदेवी जैनधर्मोपासिका हो यह तो एक स्वभाविक बात है। इतना ही क्यों पर सोनलदेवी को बचपन से ही धार्मिक ज्ञान की अच्छी शिक्षा दी गई थी कि अपना षटकर्म एवं क्रिया विशेष में सदैव रत रहती थी। जैनमुनि एवं साध्वियों से सोनल ने जैनधर्म के दार्शनिक एवं तात्विक ज्ञान का भी अच्छा अभ्यास कर लिया था जिसमें भी कर्म सिद्धान्त पर तो उसकी अटल श्रद्धा एवं विशेष रुचि थी।

विवाह होने पर सोनलदेवी अपनी सुसराल जाती है और वहां उसकी कसौटी का समय उपस्थित होता है। वाममार्गियों ने एक ऐसा भी रिवाज कर रक्खा था कि कोई भी व्यक्ति परण के आवे तो नगर में या नगर के बाहर जितने देवी देव हो उन सब की जात दें। तदनुसार वीरसेन और सोनलदेवी को

तथा आर्यवज्रसूरि के साथ शत्रुंजय आया। पर वहां के यक्ष ने २१ दिन तक खूब उपद्रव किया। आखिर उसको परास्त होकर वहां से भागना पड़ा।

बस, फिर तो था ही क्या। जावड़शाह ने शत्रुंजय पर्वत को दूध और शत्रुंजी नदी के निर्मल नीर से धुलवाया और वहां का सब काम करवा कर तक्षशिला से लाई हुई भगवान् आदीश्वर की मूर्ति की प्रतिष्ठा आचार्य वज्रसूरि के कर कमलों से करवाई। आचार्य श्री ने द्रव्य क्षेत्र काल भाव को जान कर कपर्दी यक्ष और चक्रेश्वरीदेवी को वहां के अधिष्ठाता के रूप में स्थापन किया।

आचार्य वज्रसूरि और जावड़शाह के प्रभावशाली प्रयत्न से चतुर्विध श्रीसंघ को फिर से पुनीत तीर्थ की यात्रा करने का शौभाग्य मिला है। जैन संसार में जावड़शाह खूब प्रसिद्ध पुरुष है और इनके द्वारा कराया हुआ तीर्थधिराज श्रीशत्रुंजय का उद्धार भी महत्वपूर्ण कार्य है जिसको जैन समाज कभी भूल नहीं सकता है आज पर्यन्त चतुर्विध श्रीसंघ तीर्थराज की यात्रा सेवा भक्ति कर अपना कल्याण कर रहा है जिसका सर्व श्रेय स्वानामधन्य प्राग्वट वंश भूषण श्रीमान् जावड़शाह को ही है। यद्यपि इनके बाद श्रीमालों एवं ओसवालों ने भी ईस पुनीत तीर्थ का उद्धार करवाया है पर पंचमारा में उस विकट परिस्थिति में उद्धार करवाने वाले गुरु वज्रस्वामि और जावड़शाह विशेष धन्यवाद के पात्र कहा जा सकते हैं।

श्री शत्रुंजय का संघ— आचार्य जज्जगसूरि विहार करते हुए पालिकापुरी में पधारे श्री संघने आपका अच्छा स्वागत किया सूरिजी का प्रभावोत्पादक व्याख्यान हमेशा होता था एक समय आपने श्रीशत्रुंजय तीर्थ का महात्म्य बतलाते हुए तीर्थ यात्रा से शासन की प्रभावना और भविष्य में कल्याणकारी फल का विस्तार से वर्णन किया जिससे जनता की रुची तीर्थयात्रा की हो आई कारण कई असों से श्री शत्रुंजय की यात्रा बन्द थी पर आर्य्य वज्रसूरि और जावड़शाह के प्रयत्न से पुनः तीर्थ का उद्धार हुआ था अतः जनता का दिल पुनीत तीर्थ की यात्रा करने का हो जाना एक स्वाभाविक ही था उसी सभा में बैठा हुआ अपार सम्पत्ति का मालिक प्राग्वट वंशीय शाह जोधड़ा ने सूरिजी एवं श्रीसंघ से अर्ज की कि श्रीसंघ मुझे आदेश दिरावें तो मैं श्रीशत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकालूँ ? सूरिजी ने कहा जोधड़ा तु बड़ा ही भाग्यशाली है श्री संघ ने भी अनुमोदन के साथ आदेश दे दिया। बस फिर तो कहना ही क्या था शाह जोधड़ा ने बड़ी भारी तैयारी करनी शुरु कर दी। सर्वत्र आमंत्रण पत्रिकाएँ भेज दी। इस संघ में एक लक्ष से भी अधिक मनुष्य और तीन हजार साधु साध्वियां थे जिसमें अधिक साधु साध्वियां उपकेश एवं कोरंटगच्छ के ही थे उस समय आचार्य [illegible]सूरि चन्द्रावती नगरी में विराजते थे अतः संघपति जोधड़ा ने स्वयं जाकर विनती की और सूरिजी ने जोधड़ा की प्रार्थना स्वीकार कर संघ में शामिल होने की मंजूरी फरमादी जब संघ पालिकापुरी से प्रस्थान कर चन्द्रावती आया तो सूरिजी अपने शिष्यों के साथ शामिल हो गये फिर तो था ही क्या [illegible] परस्पर द्विगुणित हो गया आचार्य जज्जगसूरि ने भी सूरिजी का यथायोग्य विनय किया। शत्रुंजय की यात्रा सुलभ होने के बाद यह पहला ही संघ था अतः जनता एक दम उलट पड़ी थी जब संघ शत्रुंजय पहुँचा उस समय शत्रुंजय पर छोटा बड़ा तेरह संघ आये थे पर सब से बड़ा संघ जोधड़ा का ही था [illegible] लोगों ने भगवान् युगादीश्वर की यात्रा कर पूर्व संचित पाप का प्रक्षालन कर डाला आठ दिन [illegible] पूजा प्रभावना [illegible] स्वामि वात्सल्यादि किये अनेक महानुभावों ने [illegible] शाह जोधड़ ने इस संघ में एक करोड़ द्रव्य शुभ क्षेत्र में लगाया—

१७—आचार्य यक्षदेव सूरि (तृतीय)

आचार्यस्तु स यक्षदेव पदयुक् सूरिर्नृपस्य सुतः।
विद्या ज्ञान कलाधरो न विजहौ धर्म स्वकीयं च यः॥
दुष्कालेऽपि च वज्रसेन विदुषः सूरेः सुशिष्यान् सुधीः।
जज्ञौ ये तु निवृत्ति विद्याधर पुङ् नागेन्द्र चान्द्रान्वयाः॥
जाताः जैन समाज लोक विषये कर्त्तोपकारस्य ये।
भूरेः सूरिरयं कदापि न हि किं विस्मार्य कार्योऽस्ति वा॥
किन्त्वेकं कर वा व वद्ध करता युक्तं सदाभ्यर्थयन्।
कल्याणं कुरुतां जनस्य भगवन् प्रेम्णा कटाक्षं तव॥

आचार्यश्री यक्षदेवसूरीश्वरजी महान प्रभाविक आचार्य हुए हैं। आपका जन्म वीरपुर नगर के महान प्रतापी राजा वीरधवल की विदुषी पट्टराज्ञी गुनसेना की पवित्र कुक्ष से हुआ था और आपका शुभ नाम वीरसेन रक्खा था। आपके हाथ पैरों की रेखा और शरीर में रहे हुए शुभ लक्षण आपके भावी होनहार की शुभ सूचना कर रहे थे। आपका पालन पोषण सब क्षत्रियोचित हो रहा था। आप वर्ण में क्षत्री थे पर विद्या में तो ब्राह्मण वर्ण के सदृश्य ही थे कि बालभाव मुक्त होते ही आपके पिताश्री ने महोत्सवपूर्वक विद्यालय में प्रविष्ट किया पर आपकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि अपने सहपाठियों में सदैव अग्रेश्वर ही रहते थे। कहा भी है कि 'बुद्धि कर्मानुसारणी' जिन जीवों ने पूर्व जन्म में ज्ञान पद की एवं देवी सरस्वती की आराधना की हो उनके लिये इस प्रकार शीघ्र ज्ञान प्राप्त कर लेना कोई मुश्किल की बात नहीं है। राजकुँवर वीरसेन आठ वर्ष की पढ़ाई में पुरुष की ७२ कलाओं में एवं राजतंत्र चलाने में विज्ञ बन गया।

जब राजकुँवर वीरसेन सोलह वर्ष का हुआ तो उसकी शादी के लिये अनेक प्रस्ताव मय चित्रों के आये उसमें उपकेशपुर नगर के राव नरसिंह की सुशीला पुत्री सोनलदेवी के साथ वीरसेन का सम्बन्ध (सगाई) कर दी समयान्तर बड़े ही समारोह के साथ विवाह कर दिया। राजकन्या सोनलदेवी के माता पिता जैन-धर्मोपासक थे अतः सोनलदेवी जैनधर्मोपासिका हो यह तो एक स्वभाविक बात है। इतना ही क्यों पर सोनलदेवी को बचपन से ही धार्मिक ज्ञान की अच्छी शिक्षा दी गई थी कि अपना षट्कर्म एवं क्रिया विशेष में सदैव रत रहती थी। जैनमुनि एवं साध्वियों से सोनल ने जैनधर्म के दार्शनिक एवं तात्विक ज्ञान का भी अच्छा अभ्यास कर लिया था जिसमें भी कर्म सिद्धान्त पर तो उसकी अटल श्रद्धा एवं विशेष रुचि थी।

विवाह होने पर सोनलदेवी अपनी सुसराल जाती है और वहां उसकी कसौटी का समय उपस्थित होता है। वाममार्गियों ने एक ऐसा भी रिवाज कर रक्खा था कि कोई भी व्यक्ति परण के आवे तो नगर में या नगर के बाहर जितने देवी देव हों उन सब की जात दें। तदनुसार वीरसेन और सोनलदेवी को भी

उपाध्याय, क्षमाकलसा आदि सप्त साधुओं को वाचनाचार्य्य मुनि पद्मविशाल आदि ७ साधुओं को पं पद आदि पदवियां प्रदान कर उनके उत्साह में वृद्धि की उस समय एक तो साधुओं की संख्या अ थी दूसरे साधुओं को पृथक २ प्रान्तों में विहार करना पड़ता था अतः उन साधुओं की सार संभाल आलोचना देने वगैरह के लिये पदवीधरों की आवश्यकता भी थी।

आचार्य यक्षदेवसूरि महान् प्रभावशाली एवं जैनधर्म के प्रचारक एक वीर आचार्य थे। आपने पूर्वजों की भाँति प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जैनधर्म का काफी प्रचार किया। कई मांस मदिरा सेवियों जैनधर्म की शिक्षा-दीक्षा दी एवं कई मुमुक्षुओं को जैनधर्म की मुनिदीक्षा दी। कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई। कई नगरों से बड़े २ संघ निकलवा कर तीर्थों की यात्रा की कई स्थानों में राजसभाओं में बोध वेदान्तियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजय पताका फहराई। कई दुष्कालों में देशवासी भाइयों रक्षा का उपदेश देकर उनको सहायता पहुँचाई कई स्थानों में असंख्य मूक प्राणियों की बली रूप यज्ञ उन्मूलन कर उन जीवों को अभयदान दिलवाया और कई जनोपयोगी ग्रन्थों का निर्माण कर जैन धर्म चिरस्थायी बनाया इत्यादि जैन समाज पर ही नहीं पर अखिल भारत पर आपका महान उपकार हुआ है।

आर्य्य वज्रसूरि के जीवन में लिखा गया है कि आपके समय बारह वर्षीय दुकाल के कारण जै श्रमणों के पठन पाठन स्वाध्याय ध्यान एवं आगम वाचना बन्द सी हो गई थी और साधुओं की दशा भी छिन्न भिन्न हो गई थी। और बाद थोड़ा ही असों में आर्यो वज्रसेन के समय दूसरा जन संहार बारह वर्षी दुकाल पड़ गया जब दुकाल के अन्त में पुनः सुकाल हुआ तो आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने साधु साध्वियों के अलावा आर्य्य वज्रस्वामी के साधु साध्विय को भी एकत्र कर उन श्रमण संघ की सर्व प्रकार की व्यवस्था कर पुनः संगठन किया था। इसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों* में मिलता है। जिसका भावार्थ

* तदन्वये यक्षदेवसूरिरासीद्धियाँ निधि। दशपूर्वधरोवज्रस्वामी मुख्यमवत्यदा
दुर्भिक्षे द्वादशाब्दीये, जनसंहारकारिणे। वर्तमानेऽनाशकेन, स्वर्गोऽगुबहुसाधवः॥
ततो व्यतीते दुर्भिक्षेऽवशिष्टान् मिलितान् मुनीन्। अमेलयन्यक्षदेवाचार्या चन्द्रगणे तथा॥
तदादि चन्द्रगच्छस्य, शिष्य प्रमाणनाविधी। श्राद्धानाँ वास निक्षेपं, चन्द्रगच्छः प्रकीर्त्यते॥
गणः कोटिक नामापि, वज्रनाशाऽपि संमता। चान्द्रं कुलं च गच्छेऽस्मिन, साम्प्रतं कथ्यते ततः॥
[illegible]नि पंच साधूनां, पुनगच्छेऽपिमिलन्निह। शतानि सप्त साध्वीनां, तथोपाध्याय सप्तकम्॥
[illegible] वाचनाचार्या, दशसारा गुरवस्तथा। प्रवर्तकी द्वायभूतां, तथैवाभे महत्तरा॥
[illegible] प्रवर्तिन्यः, सुमति द्वौ महत्तरौ। मिलिनो चन्द्रगच्छा नः सद्गुरोयं कथ्यते गणे॥

"[illegible] श्रीवीरात् ५८५ वर्षे श्री यक्षदेवसूरिर्विभूव महाप्रभावकत्वं, द्वादश वर्षीय दुर्भिक्ष [illegible] [illegible] मध्ये यक्षदेवसूरिणा [illegible] स्थापिता चान्द्र नाम्ना [illegible] [illegible]"

"[illegible] श्री यक्षदेवसूरि हुये हैं संवत् ५८५ [illegible] [illegible]"

परम श्राविका सोनलदेवी के उत्साह का पार नहीं था उसने केवल राजघराने का ही उद्धार नहीं किया पर सब नगर का ही उद्धार कर दिया। लिखी पढ़ी महिलाएं क्या नहीं कर सकती हैं ? अब तो सोनलदेवी ज्ञान ध्यान एवं धर्म कार्य में इस प्रकार जुट गई कि उसका दिल संसार से विरक्त होने लग गया। साथ में आचार्यश्री का त्याग वैराग्य मय व्याख्यान फिर तो कहना ही क्या था ? सोनलदेवी अपने पतिदेव को इस प्रकार समझाती थी कि संसार असार है विषय भोग किंपाक फल के समान कटुक फल के दाता हैं इससे ही जीव अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। इस समय सब सामग्री अनुकूल मिली है। यदि इसमें कल्याण साधन किया जाय तो जन्म मरण के दुःखों से छुटकारा मिल सकता है इत्यादि। वीरसेन अपनी पत्नी के भावों को जान गया और कहा कि क्या आपकी इच्छा विषय भोग एवं संसार त्याग देने की है ? देवी ने कहा हां! वीरसेन ने कहा यदि ऐसा ही है तो कीजिये तैयारी मैं भी आपके साथ हूँ। फिर तो कहना ही क्या था? दम्पति चलकर सूरिजी के पास आये और अपने मनोगत भाव प्रकाशित कर दिये। सूरिजी ने कहा राजकुंवर आप बड़े ही भाग्यशाली हैं फिर सोनलदेवी का संयोग यह तो सोने में सुगन्ध है। पूर्व जमाने में बड़े २ चक्रवर्तियों ने जिनेन्द्र दीक्षा की शरण ली है। राज पाट भोग विलास जीव को अनंत वार मिला पर इससे कल्याण नहीं हुआ। कल्याण तो इसका त्याग करने में ही है। अतः आप शीघ्रता कीजिये कहा है कि 'समयंगोयमामपमाए'। क्योंकि गया हुआ समय फिर नहीं आता है—

इस बात का पता जब राजा वीरधवल और रानी गुनसेना को मिला तो पहिले तो वे दुःखी हुए पर जब सोनलदेवी ने अपनी सासू को इस प्रकार समझाया कि उनकी भावना दीक्षा लेने की हो गई। इस हालत में एक राजा ही पीछे क्यों रहे। उसने अपने लौतासा कुँवर देवसेन को राज देकर दीक्षा लेने का विचार कर लिया। जब नगर के लोगों ने इस प्रकार राजा रानी और कुँवर कुँवरानी का यकायक दीक्षा लेने का समाचार सुना तो मंत्र मुग्ध बन गये और कई नरनारी तो उनका अनुकरण करने को भी तैयार हो गये। इधर सूरिजी का उपदेश हमेशा त्याग वैराग्य पर होता ही था। बस, चतुर्मास समाप्त होने तक तो कई ४५ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। राजा वीरधवल ने अपने पुत्र देवसेन को तख्तनशीन कर राजा बनादिया और उसने तथा श्रीसंघ ने दीक्षा का महोत्सव बड़ा ही शानदार किया। कारण एक तो खास राजा रानी और कुँवर कुँवरानी आदि ४५ नरनारियों की दीक्षा। दूसरे इस नगर में इस प्रकार दीक्षा का लेना पहले पहल ही था तीसरे सूरिजी महाराज का अतिशय प्रभाव ही इतना जबरदस्त था कि सब का उत्साह बढ़ रहा था। उधर उपकेशपुर आदि बाहर ग्रामों से भी बहुत से लोग आये हुए थे। जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य आदि धर्मकृत्य महोत्सव पूर्वक हो रहे थे।

स्थिर लग्न एवं शुभ मुहूर्त में सूरीश्वरजी महाराज ने राजा वीरधवलादि मुमुक्षुओं को विधि विधान के साथ दीक्षा देकर उन सब का उद्धार किया। वीरसेन का नाम सोमकलस रक्खा गया था। मुनी सोमकलश बड़ा ही भाग्यशाली था। बुद्धि में तो बृहस्पति भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता था फिर भी सूरीजी महाराज की पूर्ण कृपा होने से स्वल्प समय में वर्त्तमान सकल साहित्य का एवं दशपूर्व तक का अध्ययन कर लिया था। यही कारण था कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था में वीरपुर नगर के राजा देवसेनादि सकल श्रीसंघ के महोत्सव पूर्वक मुनी सोमकलस को सूरि मंत्र की आराधना करवा कर आचार्य पद से विभूषित कर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया साथ में मुनि राजसुन्दर आदि ५ साधुओं को

कर डालेंगी। इसके लिये सोनलदेवी का उदाहरण प्रमाणभूत है पर इसमें मुख्य कारण बालकों को [illegible] शिक्षा अच्छी तरह से देना ही है। जैसे सोनलदेवी को दी गई थी—

सोनलदेवी जब उपकेशपुर आई तो अपने गुरु महाराज से प्रार्थना की कि गुरुवर्य्य आपके [illegible] आपके पूर्वजों के प्रयत्न से बहुत ग्राम नगरों का सुधार हो गया परन्तु अभी ऐसे बहुत ग्राम नगर पड़े [illegible] वहाँ आप जैसों के विहार की परमावश्यकता है। गुरु महाराज ने कहा सोनल तेरे सुसराल वाले तो वाममार्गी बतलाते हैं ? हाँ गुरुदेव ! जब ही तो मैं अर्ज कर रही हूँ कि आप उधर पधारें आपको [illegible] लाभ होंगे। वहाँ के लोग बड़े ही सरल स्वभाव के एवं भद्रिक परिणामी हैं। गुरु महाराज ने फरमाया [illegible] है सोनल ! अवसर देखा जायगा जब तेरा जाना होगा तब हम भी अवसर देखेंगे।

सोनेलदेवी कुछ अर्सा तक उपकेशपुर में रही बाद अपनी सुसराल चली गई उसी समय आ[illegible] रत्नप्रभसूरि भ्रमण करते हुए वीरपुर नगर में पधार गये। वहाँ के संघ ने सूरिजी का सुन्दर स्वागत कि[illegible] इतना ही क्यों पर राजकन्या सोनल ने भी अपने सुसराल वालों को प्रेरणा करके सूरिजी का स्वाग[illegible] वाया और सोनलदेवी हमेशा व्याख्यान सुनने के लिए भी कोशिश किया करती थी। सूरिजी का व्याख्[illegible] बड़ा ही मधुर रोचक और प्रभावोत्पादक था। नगर भर में जहां देखो वहाँ सूरिजी एवं जैनधर्म की प्रशं[illegible] हो रही थी। यही कारण था कि वहाँ के पाखण्डियों के आसन हिलने लगे। उन्होंने राजा एवं राज[illegible] तथा राजअन्तेवर में जा-जा कर बहुत कहना सुनना किया पर उनकी एक न चली। इस हालत में वे [illegible] जैनधर्म को नास्तिक धर्म बतला कर खूब पेट भर निन्दा करने लगे। आखिर राजा वीरधवल ने कहा [illegible] इस प्रकार एक त्यागी महात्मा की निन्दा सुनने को तैयार नहीं हूँ यदि आप अपनी सच्चाई बतलाना [illegible] हो तो राजसभा में पण्डितों के सामने जैनाचार्य के साथ शास्त्रार्थ करने को तैयार हो जाइये। उन्होंने रा[illegible] का कहना स्वीकार कर लिया। अतः राजा ने सूरिजी से भी कहा पर सूरिजी तो शास्त्रार्थ के लिए पहि[illegible] ही तैयार थे। राजा ने एक दिन मुकर्रर कर दोनों पक्षवालों को आमंत्रण पूर्वक राजसभा में बुला[illegible] जिस समय दोनों का शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ उस समय राजसभा श्रोताओं से खचाखच भर गई थी [illegible] अच्छे २ निष्पक्ष एवं मध्यस्थ पण्डित भी उपस्थित थे। एक तरफ राज अन्तेवर एवं महिला समाज के लि[illegible] इन्तजाम कर रक्खा था जिसमें सोनलदेवी आदि राज अन्तेवर एवं नगर की महिलायें बैठ गई थीं।

वाममार्गियों के पास केवल एक ही शब्द था कि जैनधर्म नास्तिक धर्म है क्योंकि यह वेद [illegible] कथित ईश्वर और ईश्वर कथित यज्ञ को नहीं मानते हैं ?

आचार्य रत्नप्रभसूरि के पास एक पण्डित निधानमूर्ति नामक विद्वानमुनि थे उसने सूरिजी की [illegible] लेकर उन वादियों से पूछा कि आप नास्तिक आस्तिक का क्या अर्थ करते हैं ? इस विषय में [illegible] विवाद चला। पं० निधानमूर्ति युवकावस्था में होने पर भी उनके शब्द बड़े ही धैर्य गांभीर्य माधुर्य और [illegible] एवं युक्ति युक्त निकलते थे कि जिसका प्रभाव सभा पर तो हुआ ही था पर उन वाममार्गियों पर भी [illegible] असर हुआ कि वे मिथ्या पंथ का त्याग कर सूरिजी के पास दीक्षा लेने को तैयार हो गये और सूरिजी ने [illegible] उन लोगों को दीक्षा दे अपने शिष्य बना लिये। फिर राजा प्रजा का तो कहना ही क्या था [illegible] जैनधर्म में दीक्षित हो जैन श्रावक बन गये और अन्त में सूरिजी से चतुर्मास की विनती की [illegible] थे ही और लाभालाभ का कारण जानकर सूरिजी ने चतुर्मास वहाँ ही कर दिया।

[राजसभा में वाममार्गियों का [illegible]

परम श्रावका सोनलदेवी के उत्साह का पार नहीं था उसने केवल राजघराने का ही उद्धार नहीं किया पर सब नगर का ही उद्धार कर दिया। लिखी पढ़ी महिलाएं क्या नहीं कर सकती हैं ? अब तो सोनलदेवी ज्ञान ध्यान एवं धर्म कार्य में इस प्रकार जुट गई कि उसका दिल संसार से विरक्त होने लग गया। साथ में आचार्यश्री का त्याग वैराग्य मय व्याख्यान फिर तो कहना ही क्या था ? सोनलदेवी अपने पतिदेव को इस प्रकार समझाती थी कि संसार असार है विषय भोग किंपाक फल के समान कटुक फल के दाता हैं इससे ही जीव अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। इस समय सब सामग्री अनुकूल मिली है। यदि इसमें कल्याण साधन किया जाय तो जन्म मरण के दुःखों से छुटकारा मिल सकता है इत्यादि। वीरसेन अपनी पत्नी के भावों को जान गया और कहा कि क्या आपकी इच्छा विषय भोग एवं संसार त्याग देने की है ? देवी ने कहा हां! वीरसेन ने कहा यदि ऐसा ही है तो कीजिये तैयारी मैं भी आपके साथ हूँ। फिर तो कहना ही क्या था? दम्पति चलकर सूरिजी के पास आये और अपने मनोगत भाव प्रकाशित कर दिये। सूरिजी ने कहा राजकुंवर आप बड़े ही भाग्यशाली हैं फिर सोनलदेवी का संयोग यह तो सोने में सुगन्ध है। पूर्व जमाने में बड़े २ चक्रवर्तियों ने जिनेन्द्र दीक्षा की शरण ली है। राज पाट भोग विलास जीव को अनंत वार मिला पर इससे कल्याण नहीं हुआ। कल्याण तो इसका त्याग करने में ही है। अतः आप शीघ्रता कीजिये कहा है कि 'समयंगोयमामपमाए'। क्योंकि गया हुआ समय फिर नहीं आता है—

इस बात का पता जब राजा वीरधवल और रानी गुनसेना को मिला तो पहिले तो वे दुःखी हुए पर जब सोनलदेवी ने अपनी सासू को इस प्रकार समझाया कि उनकी भावना दीक्षा लेने की हो गई। इस हालत में एक राजा ही पीछे क्यों रहे। उसने अपने लौतासा कुँवर देवसेन को राज देकर दीक्षा लेने का विचार कर लिया। जब नगर के लोगों ने इस प्रकार राजा रानी और कुँवर कुँवरानी का यकायक दीक्षा लेने का समाचार सुना तो मंत्र मुग्ध बन गये और कई नरनारी तो उनका अनुकरण करने को भी तैयार हो गये। इधर सूरिजी का उपदेश हमेशा त्याग वैराग्य पर होता ही था। बस, चतुर्मास समाप्त होने तक तो कई ४५ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। राजा वीरधवल ने अपने पुत्र देवसेन को तख्तनशीन कर राजा बनादिया और उसने तथा श्रीसंघ ने दीक्षा का महोत्सव बड़ा ही शानदार किया। कारण एक तो खास राजा रानी और कुँवर कुँवरानी आदि ४५ नरनारियों की दीक्षा। दूसरे इस नगर में इस प्रकार दीक्षा का लेना पहले पहल ही था तीसरे सूरिजी महाराज का अतिशय प्रभाव ही इतना जबरदस्त था कि सब का उत्साह बढ़ रहा था। उधर उपकेशपुर आदि बाहर ग्रामों से भी बहुत से लोग आये हुए थे। जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य आदि धर्मकृत्य महोत्सव पूर्वक हो रहे थे।

स्थिर लग्न एवं शुभ मुहूर्त में सूरीश्वरजी महाराज ने राजा वीरधवलादि मुमुक्षुओं को विधि विधान के साथ दीक्षा देकर उन सब का उद्धार किया। वीरसेन का नाम सोमकलस रक्खा गया था। मुनी सोमकलश बड़ा ही भाग्यशाली था। बुद्धि में तो बृहस्पति भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता था फिर भी सूरीजी महाराज की पूर्ण कृपा होने से स्वल्प समय में वर्त्तमान सकल साहित्य का एवं दशपूर्व तक का अध्ययन कर लिया था। यही कारण था कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था में शंखपुर नगर के राजा देवसेनादि सकल श्रीसंघ के महोत्सव पूर्वक मुनी सोमकलस को सूरि मंत्र की आराधना करवा कर आचार्य पद से विभूषित कर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया साथ में मुनि राजसुन्दर आदि ५ साधुओं को

कर डालेंगी। इसके लिये सोनलदेवी का उदाहरण प्रमाणभूत है पर इसमें मुख्य कारण बालकों को धार्मिक शिक्षा अच्छी तरह से देना ही है। जैसे सोनलदेवी को दीं गई थी—

सोनलदेवी जब उपकेशपुर आई तो अपने गुरु महाराज से प्रार्थना की कि गुरुवर्य्य आपने व आपके पूर्वजों के प्रयत्न से बहुत ग्राम नगरों का सुधार हो गया परन्तु अभी ऐसे बहुत ग्राम नगर पड़े हैं वहाँ आप जैसों के विहार की परमावश्यकता है। गुरु महाराज ने कहा सोनल तेरे सुसराल वाले तो वाममार्गी बतलाते हैं? हाँ गुरुदेव! जब ही तो मैं अर्ज कर रही हूँ कि आप उधर पधारें आपको बहुत लाभ होंगे। वहाँ के लोग बड़े ही सरल स्वभाव के एवं भद्रिक परिणामी हैं। गुरु महाराज ने फरमाया ठीक है सोनल! अवसर देखा जायगा जब तेरा जाना होगा तब हम भी अवसर देखेंगे।

सोनेलदेवी कुछ अर्सा तक उपकेशपुर में रही बाद अपनी सुसराल चली गई उसी समय आचार्य रत्नप्रभसूरि भ्रमण करते हुए वीरपुर नगर में पधार गये। वहाँ के संघ ने सूरिजी का सुन्दर स्वागत किया इतना ही क्यों पर राजकन्या सोनल ने भी अपने सुसराल वालों को प्रेरणा करके सूरिजी का स्वागत करवाया और सोनलदेवी हमेशा व्याख्यान सुनने के लिए भी कोशिश किया करती थी। सूरिजी का व्याख्यान बड़ा ही मधुर रोचक और प्रभावोत्पादक था। नगर भर में जहां देखो वहाँ सूरिजी एवं जैनधर्म की प्रशंसा हो रही थी। यही कारण था कि वहाँ के पाखण्डियों के आसन हिलने लगे। उन्होंने राजा एवं राजसभा तथा राज अन्तेवर में जा-जा कर बहुत कहना सुनना किया पर उनकी एक न चली। इस हालत में वे लोग जैनधर्म को नास्तिक धर्म बतला कर खूब पेट भर निन्दा करने लगे। आखिर राजा वीरधवल ने कहा कि मैं इस प्रकार एक त्यागी महात्मा की निन्दा सुनने को तैयार नहीं हूँ यदि आप अपनी सच्चाई बतलाना चाहते हो तो राजसभा में पण्डितों के सामने जैनाचार्य के साथ शास्त्रार्थ करने को तैयार हो जाइये। उन्होंने राजा का कहना स्वीकार कर लिय। अतः राजा ने सूरिजी से भी कहा पर सूरिजी तो शास्त्रार्थ के लिए पहिले से ही तैयार थे। राजा ने एक दिन मुकर्रर कर दोनों पक्षवालों को आमंत्रण पूर्वक राजसभा में बुलाये और जिस समय दोनों का शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ उस समय राजसभा श्रोताओं में खचाखच भर गई थी अच्छे २ निष्पक्ष एवं मध्यस्थ पण्डित भी उपस्थित थे। एक तरफ राज अन्तेवर एवं महिला समाज के लिये इन्तजाम कर रक्खा था जिसमें सोनलदेवी आदि राज अन्तेवर एवं नगर की महिलायें बैठ गई थीं।

वाममार्गियों के पास केवल एक ही शब्द था कि जैनधर्म नास्तिक धर्म है क्योंकि यह वेद [illegible] कथित ईश्वर और ईश्वर कथित यज्ञ को नहीं मानते हैं?

आचार्य रत्नप्रभसूरि के पास एक पण्डित नियानमूर्ति नामक विद्वानमुनि थे उसने सूरिजी की [illegible] लेकर उन वादियों से पूछा कि आप नास्तिक आस्तिक का क्या अर्थ करते हैं? इस [illegible] विवाद चला। पं० नियानमूर्ति युवकावस्था में होने पर भी उनके शब्द बड़े ही धैर्य गांभीर्य [illegible] एवं युक्ति युक्त निकलते थे कि जिसका प्रभाव सभा पर तो हुआ ही था पर उन वाममार्गियों [illegible] [illegible] कि वे मिथ्या पंथ का त्याग कर सूरिजी के पास दीक्षा लेने को तैयार हो गये और [illegible] [illegible] [illegible] दीक्षा दे अपने शिष्य बना लिये। फिर राजा प्रजा का तो कहना ही क्या [illegible] जैनधर्म [illegible] [illegible] जैन श्रावक बन गये और बाद में सूरिजी से चतुर्मास की विनती की [illegible] [illegible] और [illegible] का कारण जानकर सूरिजी ने चतुर्मास वहां ही कर दिया।

परम श्राविका सोनलदेवी के उत्साह का पार नहीं था उसने केवल राजघराने का ही उद्धार नहीं किया पर सब नगर का ही उद्धार कर दिया। लिखी पढ़ी महिलाएं क्या नहीं कर सकती हैं ? अब तो सोनलदेवी ज्ञान ध्यान एवं धर्म कार्य में इस प्रकार जुट गई कि उसका दिल संसार से विरक्त होने लग गया। साथ में आचार्यश्री का त्याग वैराग्य मय व्याख्यान फिर तो कहना ही क्या था ? सोनलदेवी अपने पतिदेव को इस प्रकार समझाती थी कि संसार असार है विषय भोग किंपाक फल के समान कटुक फल के दाता हैं इससे ही जीव अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। इस समय सब सामग्री अनुकूल मिली है। यदि इसमें कल्याण साधन किया जाय तो जन्म मरण के दुःखों से छुटकारा मिल सकता है इत्यादि। वीरसेन अपनी पत्नी के भावों को जान गया और कहा कि क्या आपकी इच्छा विषय भोग एवं संसार त्याग देने की है ? देवी ने कहा हां! वीरसेन ने कहा यदि ऐसा ही है तो कीजिये तैयारी मैं भी आपके साथ हूँ। फिर तो कहना ही क्या था? दम्पति चलकर सूरिजी के पास आये और अपने मनोगत भाव प्रकाशित कर दिये। सूरिजी ने कहा राजकुंवर आप बड़े ही भाग्यशाली हैं फिर सोनलदेवी का संयोग यह तो सोने में सुगन्ध है। पूर्व जमाने में बड़े २ चक्रवर्तियों ने जिनेन्द्र दीक्षा की शरण ली है। राज पाट भोग विलास जीव को अनंत वार मिला पर इससे कल्याण नहीं हुआ। कल्याण तो इसका त्याग करने में ही है। अतः आप शीघ्रता कीजिये कहा है कि 'समयंगोयमामपमाए'। क्योंकि गया हुआ समय फिर नहीं आता है—

इस बात का पता जब राजा वीरधवल और रानी गुनसेना को मिला तो पहिले तो वे दुःखी हुए पर जब सोनलदेवी ने अपनी सासू को इस प्रकार समझाया कि उनकी भावना दीक्षा लेने की हो गई। इस हालत में एक राजा ही पीछे क्यों रहे। उसने अपने लौतासा कुँवर देवसेन को राज देकर दीक्षा लेने का विचार कर लिया। जब नगर के लोगों ने इस प्रकार राजा रानी और कुँवर कुँवरानी का यकायक दीक्षा लेने का समाचार सुना तो मंत्र मुग्ध बन गये और कई नरनारी तो उनका अनुकरण करने को भी तैयार हो गये। इधर सूरिजी का उपदेश हमेशा त्याग वैराग्य पर होता ही था। बस, चतुर्मास समाप्त होने तक तो कई ४५ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। राजा वीरधवल ने अपने पुत्र देवसेन को तख्तनशीन कर राजा बनादिया और उसने तथा श्रीसंघ ने दीक्षा का महोत्सव बड़ा ही शानदार किया। कारण एक तो खास राजा रानी और कुँवर कुँवरानी आदि ४५ नरनारियों की दीक्षा। दूसरे इस नगर में इस प्रकार दीक्षा का लेना पहले पहल ही था तीसरे सूरिजी महाराज का अतिशय प्रभाव ही इतना जबरदस्त था कि सब का उत्साह बढ़ रहा था। उधर उपकेशपुर आदि बाहर ग्रामों से भी बहुत से लोग आये हुए थे। जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य आदि धर्मकृत्य महोत्सव पूर्वक हो रहे थे।

स्थिर लग्न एवं शुभ मुहूर्त में सूरीश्वरजी महाराज ने राजा वीरधवलादि मुमुक्षुओं को विधि विधान के साथ दीक्षा देकर उन सब का उद्धार किया। वीरसेन का नाम सोमकलस रक्खा गया था। मुनी सोमकलश बड़ा ही भाग्यशाली था। बुद्धि में तो वृहस्पति भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता था फिर भी सूरीजी महाराज की पूर्ण कृपा होने से स्वल्प समय में वर्त्तमान सकल साहित्य का एवं दशपूर्व तक का अध्ययन कर लिया था। यही कारण था कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था में वीरपुर नगर के राजा देवसेनादि सकल श्रीसंघ के महोत्सव पूर्वक मुनी सोमकलस को सूरि मंत्र की आराधना करवा आचार्य पद से विभूषित कर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया साथ में मुनि राजसुन्दर आदि ५ साधु

उपाध्याय, क्षमाकलसा आदि सप्त साधुओं को वाचनाचार्य्य मुनि पद्मविशाल आदि ७ साधुओं को प्रवर्तक पद आदि पदवियां प्रदान कर उनके उत्साह में वृद्धि की उस समय एक तो साधुओं की संख्या अधिक थी दूसरे साधुओं को पृथक २ प्रान्तों में विहार करना पड़ता था अतः उन साधुओं की सार संभार एवं आलोचना देने वगैरह के लिये पदवीधरों की आवश्यकता भी थी।

आचार्य यक्षदेवसूरि महान् प्रभावशाली एवं जैनधर्म के प्रचारक एक वीर आचार्य थे। आपने अपने पूर्वजों की भाँति प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जैनधर्म का काफी प्रचार किया। कई मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म की शिक्षा-दीक्षा दी एवं कई मुमुक्षुओं को जैनधर्म की मुनिदीक्षा दी। कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं करवाई। कई नगरों से बड़े २ संघ निकलवा कर तीर्थों की यात्रा की कई स्थानों में राजसभाओं में बौद्धों एवं वेदान्तियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म की विजय पताका फहराई। कई दुष्कालों में देशवासी भाइयों के रक्षा का उपदेश देकर उनको सहायता पहुँचाई कई स्थानों में असंख्य मूक प्राणियों की बली रूप पाखण्ड के उन्मूलन कर उन जीवों को अभयदान दिलवाया और कई जनोपयोगी ग्रन्थों का निर्माण कर जैन धर्म को चिरस्थायी बनाया इत्यादि जैन समाज पर ही नहीं पर अखिल भारत पर आपका महान उपकार हुआ है।

आर्य्य वज्रसूरि के जीवन में लिखा गया है कि आपके समय बारह वर्षीय दुकाल के कारण जैन श्रमणों के पठन पाठन स्वाध्याय ध्यान एवं आगम वाचना बन्द सी हो गई थी और साधुओं की दशा भी छिन्न भिन्न हो गई थी। और बाद थोड़ा ही असों में आर्या वज्रसेन के समय दूसरा जन संहार बारह वर्षी दुकाल पड़ गया जब दुकाल के अन्त में पुनः सुकाल हुआ तो आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने साधु साध्वियों के अलावा आर्य्य वज्रस्वामी के साधु साध्विय को भी एकत्र कर उन श्रमण संघ की सर्व प्रकार की व्यवस्था कर पुनः संगठन किया था। इसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों* में मिलता है। जिसका भावार्थ

* तदन्वये यक्षदेवसूरिरासीद्धियाँ निधि। दशपूर्वधरो वज्रस्वामी मुख्यमवयदा
दुर्भिक्षे द्वादशाब्दीये, जनसंहारकारिणि। वर्तमानेऽनायकेन, स्वर्गोऽभुवहुसाधवः॥
ततः व्यतीते दुर्भिक्षेऽवशिष्टान् मिलितान् मुनीन्। अमेलयन्यक्षदेवाचार्या चन्द्रगणे तथा॥
तदादि चन्द्रगच्छस्य, शिष्य प्रव्राजनाविधौ। आद्यानाँ वास निक्षेप, चन्द्रगच्छः प्रदीप्यते॥
गणः कोटिक नामापि, वज्रनाखाऽपि संमता। चान्द्रं कुलं च गच्छेऽस्मिन, साम्प्रतं कथ्यते गणः॥
शतानि पंच साधूनां, पुनर्गच्छेऽपिमिलन्निह। शतानि सप्त साध्वीनां, तयोपाध्याय सप्तकम्॥
द्वाद्वौवाचनाचार्यो, चत्वारो गुरवस्तथा। प्रवर्तको द्वात्रिंशतां, तथैवोभे महत्तरे॥
द्वाद्वशकुः प्रवर्तिन्यः, सुमति द्वौ महत्तरौ। मिलितौ चन्द्रगच्छा नः मद्धियं कथ्यते गणो॥

म्लेच्छों का आक्रमणसमय सूरीजीकैद में व साधु श्रावक मूर्तियाँ शिरपर उठाकर सुरक्षितस्थानमें लेजा रहे हैं।

सूरीजी को एकेले देख, खटकूंप नगर के श्रावकों ने अपने पुत्रों को दीक्षा दिला रहे हैं।

यह है कि दशपूर्वधर आचार्य श्री वज्रसूरि के सदृश्य अनेक गुणनिधि महाप्रभाविक आचार्य यक्षदेवसूरि भूमण्डल पर विहार करते थे, उससमय बारहवर्षीय जनसंहार करने वाला भीषण दुष्काल पड़ा था। जब धनिक लोगों के लिये मोतियों के बराबर ज्वार के दाने मिलने मुश्किल हो गये थे तो साधुओं के लिए भिक्षा का तो कहना ही क्या था ? यदि कहीं थोड़ी बहुत भिक्षा मिल भी जाय तो सुख से खाने कौन देता था ? उस भयंकर दुष्काल में यदि कोई व्यक्ति अपने घर से भोजन कर तत्काल ही बाहर निकल जावे तो भिक्षुक उसका उदर चीर कर अन्दर से भोजन निकाल कर खा जाते थे। इस हालत में कितने ही जैनमुनि अनशन पूर्वक स्वर्ग को चले गये। शेष रहे हुए मुनियों ने ज्यों त्यों कर उस अकाल रूपी अटवी का उल्लंघन किया जब दुकाल के अन्त में सुकाल हुआ तो उस समय एक आचार्य यक्षदेवसूरि ही अनुयोगधर एवं मुख्याचार्य रहे थे कि दुकाल से बचे हुए साधु साध्वियों को एकत्र कर पुनः संगठन कर सके अतः उन शासन शुभचिन्तक आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपने साधु साध्वियों के साथ ही साथ आर्य्य वज्रसूरि के साधु साध्वियों को भी एकत्र किये तो ५०० साधु ७०० साध्वियां ७ उपाध्याय १२ वाचनाचार्य ४ गुरु पदधर २ प्रवृतक २ महत्तर (पद विशेष) १२ प्रवर्तनी २ महत्तरिका इत्यादि। परन्तु दुकाल की भीषण मार से इन सब का पठन पाठन बन्ध सा हो गया था पूर्व पढ़ा हुआ ज्ञान भी प्रायः विस्मृत सा हो गया। उस समय अनुयोगधार केवल एक आचार्य यक्षदेव सूरि ही रह गये थे अतः उन साधुओं को आगमों की वाचना के लिये सोपार पट्टन नगर योग्य समझ कर श्रीसंघ की अत्याग्रह से सब साधु साध्वियों सोपारपट्टन की ओर पधार रहे थे।

आर्य्य वज्रसेनसूरि सोपारपट्टन पधार कर जिनदास सेठ की ईश्वरी सेठानी के चन्द्र नागेन्द्र निर्वृति और विद्याधर नाम के चार पुत्रों की दीक्षा दी थी और आप श्री अपने शिष्यों के साथ वहीं विराजते थे।

जिस समय आचार्य यक्षदेवसूरि सोपारपट्टन पधारे उस समय आर्य्य वज्रसेन अपने शिष्यों के साथ तथा वहाँ का श्रीसंघ ने सूरिजी का खूब उत्साह पूर्वक स्वागत किया। जब आचार्य यक्षदेवसूरि श्रमणसंघ को वाचना देना आरम्भ किया तो वज्रसेनसूरि के शिष्य चन्द्र नागेन्द्र निर्वृति और विद्याधर भी आगम वाचना लेने में शामिल हो गये थे—

सब मुनियों की वाचना चलती ही थी बीच में ही आर्य्य वज्रसैनसूरि का आकस्मात् स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार गुरु महाराज का वियोग सब के लिये दुःख प्रद था पर उन नूतन शिष्यों के लिये तो और भी बड़ा भारी रञ्ज का करण हुआ पर आचार्य यक्षदेवसूरि ने उनको धैर्य्य दिलाया और कहा कि इस बात का तो मुझे भी बड़ा भारी रंज है पर इसका उपाय ही क्या है। जैसे ज्ञानियों ने भाव देखा वह ही हुआ है। तुम किसी प्रकार से घबराना नहीं मैं तुमको ज्ञान दूंगा और शिष्य समुदाय बना कर पदवी प्रदान कर दूंगा कि आप अपने शासन का संचालन करने में समर्थ बन जाओगे इत्यादि।

जब साधुओं के आगम वाचना समाप्त हुई तो सूरिजी का महान उपकार मानते हुए साधु सूरिजी की आज्ञा लेकर विहार किया। और चन्द्रादि चारों मुनि सूरिजी की सेवा में ही रहे।

इस वाचना के पूर्व जैनागम पुस्तकों पर प्रायः नहीं लिखे गये थे यदि थोड़ा बहुत लिखा भी होगा तो दुष्काल के कारण नष्ट भ्रष्ट हो गया होगा अतः सूरिजी ने भविष्य का विचार करके श्रावकों को उपदेश दिया कि कई श्रावकों ने द्रव्य व्यय कर के जितने आगमों की वाचना हुई थी उन सबकों पुस्तकों अर्थात् ताड़पत्रादि पर लिखवा लिया कि भविष्य में ज्ञान विच्छेद नहीं हो सके। उस समय जो कोई दीक्षा लेने

वाला आता था तो उनको चन्द्रादि मुनियों के ही शिष्य बना दिये जाते थे। अतः चारों मुनियों के शिष्य भी गहरी तादाद में हो गये। अतः यक्षदेवसूरि ने उन चारों मुनियों को योग्य समझ कर सूरि पद से विभूषित किया। तदन्तर उन चारों सूरियों ने आचार्य यक्षदेवसूरि का महान उपकार मानते हुये सूरिजी की आज्ञा लेकर विहार किया। आचार्य यक्षदेवसूरि का प्रभाव ही ऐसा था कि आपके दिये हुए ज्ञान और सूरि पद से वे चारों सूरि महान प्रभाविक हुये। और उन चारों के नाम से चार कुल प्रसिद्ध हुये जैसे चन्द्रकुल, नागेन्द्रकुल, निर्वृतिकुल और विद्याधर कुल।

कल्पसूत्र की स्थविरावली में आर्य्यवज्रसैन के चार शिष्यों से चार शाखायें निकली जैसे—

१—आर्य्य नागल से नागली शाखा निकली २—आर्य्य पौमिल से पौमिली शाखा निकली
३—आर्य्य जयन्त से जयन्ति शाखा निकली ४—आर्य्य तापस से तापसी शाखा निकली

इन चार शाखाओं के अलावा चन्द्र, नागेन्द्र, निर्वृति और विद्याधर का नाम कल्पसूत्र की स्थविरावली में नहीं आया है। शायद इसका यह कारण हो सकता है कि आर्य्य वज्रसैन के पहिले नागादि चार शिष्य मुख्य होंगे कि जिन्हों का उल्लेख कल्पसूत्र में कर दिया। बाद में दुष्काल के अन्त में चन्द्रादि चार मुनियों को दीक्षा दी और वज्रसैन का तुरत ही स्वर्गवास हो गया और बाद में यक्षदेवसूरि के कर कमलों से इनको सूरि बनाये थे। अतः कल्पसूत्र में इनका नामोल्लेख नहीं किया हो तो कोई विशेष बात नहीं है। कारण विक्रम की दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी के ग्रन्थों में इन चन्द्रादि चारों कुलों के प्रमाण मिलते हैं। और इन कुलों की परम्परा संतान में महान् प्रभाविक आचार्य हुए हैं जैसे कि—

१—चन्द्रकुल में—अभयदेवसूरि, हेमचन्द्रसूरि, शान्तिसूरि, जगचन्द्रसूरि आदि आचार्य
२—नागेन्द्रकुल में—आचार्य उदयप्रभसूरि, मल्लीषेणसूरि आदि आचार्य
३—निर्वृति कुल में—द्रुणाचार्य्य, सूराचार्य, गर्गर्षि, दुर्गर्षि, सिद्धर्षि आदि आचार्य
४—विद्याधर कुल में—जिनदत्तसूरि और आपके शिष्य १४४४ ग्रन्थों के कर्त्ता हरिभद्रसूरि

इत्यादि उल्लेख मिलते हैं। हाँ, पहिले ये चारों कुलों के नाम से प्रसिद्ध थे पर बाद में इन कुलों ने गच्छों का रूप धारण कर लिया। अतः शिलालेखों एवं ग्रन्थ प्रशस्तियों में चन्द्रगच्छादि के नाम से भी दृष्टि गोचर होते हैं जिसको हम आगे चल कर यथा समय लिखेंगे।

आचार्य यक्षदेवसूरि का जैन समाज पर अर्थात् आज जितने गच्छ विद्यमान हैं उन सब पर बड़ा भारी उपकार है। कारण, जैन संसार में जितने गच्छ पैदा हुये थे उन चार कुलों से ही हुये हैं और उन कुलों के संस्थापक आचार्य यक्षदेव सूरि ही थे।

इनके अलावा उस समय बार-बार दुकाल का पड़ना, विधर्मियों के संगठित हुमले होना [illegible] विस्तृत क्षेत्र में फैले हुये जैन समाज का रक्षण करना कोई साधारण बात नहीं थी। पर उन [illegible] वीर आचार्यों ने हजारों मुसीबतों को सहन कर जैनधर्म को जीवित रक्खा। यदि उन [illegible] महापुरुषों का हम क्षण भर भी उपकार भूल जावें तो हमारे जैसा कृतघ्नी संसार में कौन होगा?

इतिहास पढ़ने से ज्ञात होता है कि विक्रम पूर्व दो तीन शताब्दियों से विदेशियों के [illegible] शुरू हुये थे और वे क्रमशः विक्रम की तेरहवीं शताब्दी तक चालू ही रहे थे। [illegible] भूमि के ऊपर भी विदेशियों के आक्रमण खूब जोरों से हो रहे थे उन अनार्यों ने [illegible]

तीयों को बहुत सताया। इतना ही क्यों पर उन लोभान्धों ने देवस्थानों पर भी हमले कर खूब धन लूटा। और धन लुटने के साथ उन्होंने तो धर्मान्धता के कारण देवस्थानों की मूर्तियों वगैरह कीमती पदार्थों को भी तोड़ फोड़कर नष्ट भ्रष्ट कर डाला था।

एक समय आचार्य यक्षदेवसूरि अपने ५०० शिष्यों के साथ मुग्धपुर नगर में विराजते थे। आपने सुना कि आस पास में म्लेच्छ लोग ग्रामों को लूट रहे हैं। मन्दिर मूर्तियां तोड़ फोड़ कर नष्ट कर रहे हैं। इस हालत में श्री संघ को एकत्र किया और मन्दिरजी के रक्षण के लिये कहा पर विचारे श्रावक क्या कर सकते थे वे अपने धन जन की रक्षा करने में ही असमर्थ थे।

आचार्य श्री ने एक देवी को बुला कर कहा कि तुम म्लेच्छों की खबर लाओ कि वे कहां पर हैं और यहां कब तक आवेंगे इत्यादि। देवी म्लेच्छों के पास गई पर कर्म योग से म्लेच्छों के देवों ने उस देवी को पकड़ कर अपने कब्जे में करली अतः देवी वापिस न आ सकी इधर म्लेच्छों के देव सूरिजी के पास आकर कहने लगे कि म्लेच्छ मन्दिर में आ पहुँचे हैं। सूरिजी अपने साधुओं को लेकर मन्दिर में गये तो वहां कोई भी म्लेच्छ नहीं पाये। इस प्रकार म्लेच्छ देव हर समय यही कहते रहे कि म्लेच्छ मन्दिर में आ गये हैं२।

आचार्य ने सोचा कि म्लेच्छों के आने पर मूर्तियों का रक्षण होना मुश्किल है अतः पहिले से ही इन्तजाम करना जरूरी है अतः श्रावकों को बुलाकर कहा कि अपने प्राण चले जाय तो परवाह नहीं पर त्रिजगपूजनीय परमात्मा की मूर्तियों की रक्षा करना अपना खास कर्त्तव्य है इत्यादि उपदेश दिया जिससे श्रावक तैयार हो गये। पट्टावली में लिखा है कि बहुत से श्रावक और कई साधु रात्रि समय मूर्त्तियों को सिर पर उठा कर किसी सुरक्षित स्थान में चले गये. इधर देवी म्लेच्छों से छुटकर सूरिजी के पास आई और कहने लगी कि पूज्यवर! अब म्लेच्छ आ रहे हैं। सूरिजी ने देवी को उपालम्भ दिया कि तू इतनी देर से कैसे आई! देवी ने कहा पूज्य! इसमें मेरा कसूर नहीं है। कारण, मेरी असावधानी से म्लेच्छदेवों ने मुझे पकड़ लिया था अतः मैं छुटते ही आपके पास इत्तला देने को आई हूँ।

खैर दो साधुओं को पहरायत रख सूरिजी ने शेष साधुओं के साथ ध्यान लगा दिया इतने में म्लेच्छ मन्दिर में गये तो वहाँ मूर्त्तियाँ नहीं पाई। अतः वे गुस्से में लाल बबूल होकर सूरिजी के पास आये। और कहा कि बतलाओ मूर्तियाँ वरन् तुम सब को जान से मार डाला जायगा? पर सूरिजी तो थे ध्यान में उत्तर नहीं दिया अतः म्लेच्छों ने कई साधुओं को जान से मार डाला, कई को घायल किया, कई को मार पीट कर कष्ट पहुँचाया और सूरिजी को पकड़ कर क़ैद कर लिया। इतना कष्ट सहन करते हुये भी सूरिजी अपने कर्तव्य से विचलित नहीं हुए और मूर्त्तियों की रक्षा कर ही ली। आहाहा! उस समय जैन जनता की मूर्त्तियों पर कैसी श्रद्धा थी कि वे प्राणों की न्योछावर भी करने को तैयार रहते थे, रात्रि में चलना या मूर्ति सिर पर उठाना साधुओं को कल्पता नहीं है पर "आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति" इस सूत्रानुसार साधु ऐसा कार्य्य भी कर सकते हैं। सूरिजी को कैद कर लिया था पर उनकी निगरानी के लिए जिस सिपाही को रक्खा था वह पहिले जैन था उसे म्लेच्छोंने जबरन पतित बना लिया था उसने अपना कर्तव्य समझ कर सूरिजी को छोड़ दिया और अपने खानगी एक आदमी को साथ में दे कर सूरिजी को सकुशल खटकूप नगर पहुँचा दिया।

सूरिजी कुशलता पूर्वक खटकूपनगर पहुँच गये पर थे आप अकेले ही जिन्हों को देख कर संघ के लोगों ने बड़ा ही आश्चर्य किया कि पांचसौ मुनियों के साथ विहार करने वाले गच्छनायकसूरिजी

आज अकेले कैसे आये। श्रावकों ने विनय के साथ पूछा और सूरिजी ने सब हाल कहा। इस पर सं अग्रेश्वरों ने सूरिजी को कोटि-कोटि धन्यवाद दिया कि जिन्होंने अपने प्राणों की परवाह न कर के शासन के आधार रूप प्रभुप्रतिमा की रक्षा की है इत्यादि। उपस्थित लोगों में से किसी ने कहा कि धन्यवाद देने से ही आपकी भक्ति नहीं हो जाती है पर अपने आचार्य अकेले शोभा नहीं देते हैं अतः २ पुत्रों को सूरिजी के शिष्य बना कर शासन की शोभा को बढ़ाइये। सच्ची भक्ति तब ही कही जावगी।

शासन-शुभचिन्तकों ने उसी बैठक पर एक चिट्ठा (टीप) लिखा। और कहा कि कौन कितने पुत्र देते हैं इस पर किसी ने एक लिखाया, किसी ने दो लिखाया इस प्रकार एकादश, नवयुवकों को लाकर सूरि की सेवा में भेंट कर दिया जिन्हों को सूरिजी ने दीक्षा देकर अपने शिष्य बना लिये शिष्यों का चिट्ठा चालुही था। न जाने इस चिट्ठा में कितने भावुकों के नाम लिखे गये होंगे—

अहाहा ! धन्य है उस समय के श्रावकों को कि धर्म रक्षा के निमित्त पैसों की भांति चिट्ठा कर अपने प्यारे पुत्रों को सूरिजी के चरणों में अर्पण कर दिये जिससे सूरिजी का कितना उत्साह बढ़ा होगा

इधर एकादस युवकों को सूरिजी ने दीक्षा दी और उधर से मूर्त्तियां लेकर जानेवाले सब मुनि तथा म्लेच्छों ने पकड़ लिये थे वे मुनि भी लौट कर सूरिजी के पास आकर शामिल हो गये।

आचार्य यक्षदेवसूरि का समय दशपूर्वधरों का समय था। उस समय मूर्त्तिवाद अपनी उन्नति पर पहुँचा हुआ था। आचार्य वज्रसूरि वीस लक्ष पुष्प पूजा के लिये लाये थे। आचार्य यक्षदेवसूरि ने रात्रि में सिर पर मूर्त्तियें उठा कर स्थानानन्तर जाकर मूर्त्तियों की रक्षा की। उस समय रत्न और सुवर्ण मय मूर्त्तियां बनाई जाती थीं। एक एक मन्दिर तथा एक एक संघ में करोड़ों द्रव्य व्यय किया जाता और उन पुन्य कार्य्यों से उनके पास लक्ष्मी भी अखूट हो रहती थी।

इस प्रकार जैनधर्म का रक्षण करते हुये सूरिजी महाराज क्रमशः विहार करके आघाट नगर में पधारे वहां भी सूरिजी के उपदेश से बहुत भावुकों ने सूरिजी के पास दीक्षा धारण की।

ततः पुनर्यक्षदेव सूरयः केचनागवन् । विहरन्तः क्रमेणेयु, स्ते श्रीमुग्धपुरे वरे ॥
जाते म्लेच्छ भये तस्मिन्, न्तुदन्ताधिगमायने । प्राहेयुः शासनसुरीं, मारता म्लेच्छदैवतः ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

आचार्यश्रीयक्षदेवसूरि (समय वि० सं० ११५)

सोपार पट्टन में श्रमण संघ को आगम वाचना दे रहे हैं।

कृष्णार्षि की मूर्ति (पृष्ट ५३०)

सोपार वहन में आचार्य यक्षदेवसूरि चन्द्रादि चारों मुनियों को आगम वाचना दे रहे हैं

परिचय पृष्ठ ५०५

आचार्य देवगुप्तसूरि से आर्य देवर्द्धि का ज्ञानाभ्यास

परिचय पृष्ठ

चरित्रकार ने इस घटना का समय विक्रम संवतके एकसौ से कुछ अधिक वर्ष व्यतीत होजाने के वाद का घतलाया है। जो ठीक मिलता हुआ है तदनन्तर सूरिजीमहाराज विहार करते हुते स्थम्भणपुर नगरमें पधारे। वहां के श्रीसंघ ने भगवान् पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया और सर्व धातुमय (पीतल) भगवान् पार्श्वनाथ की बिशाल प्रतिमा तैयार कराई थी। श्रीसंघ के आग्रह से सूरिजी ने उस मूर्त्ति की अंजनशिलाका की एवं प्रतिष्ठा करवाई जिसमें श्रीसंघ ने बहुत द्रव्य व्यय कर जैनधर्म की प्रभावना की।

उस समय की विकट परिस्थिति के अन्दरभी आपने अपने दीर्घकालीन शासनमें अनेक प्रान्तों में घूम घूम कर अनेक भव्यों को दीक्षा देकर जैनश्रमण संघ की वृद्धि की क्योंकि आप जानते थे कि धर्म का रक्षण करने वाला श्रमणसंघ ही है। जितनी अधिक संख्या में साधु होंगे उतनेही विशालक्षेत्र में विहार हो सकेगा। अतः श्रमण संघ में वृद्धि करना खास जरूरी था। दूसरे उस दुष्काल की भयंकरता के कारण सुकाल हो जाने पर भी एक दो एवं थोड़े आदमी एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जा नहीं सकते थे। अतः इच्छा के होते हुये भी वे दूर प्रदेश में रहे हुये तीर्थों की यात्रा नहीं कर सकते थे। यही कारण था कि सूरिजी महाराज के उपदेश से कई भाग्यशालियों ने बड़े २ संघ निकाल कर तीर्थों की यात्रा की और धर्म को चिरस्थाई बनाने के लिये सूरिजी के उपदेश से कई दानवीरों ने अपनी चंचल लक्ष्मी को अचल बनाने के लिये बड़े २ मंदिरों का निर्माण करवा कर उनकी प्रतिष्ठायें भी सूरिजी से करवाई। इनके अलावा अजैनों को जैन बनाना तो आपके पूर्वजों से ही चला आया था और उस मशीन को भी आपने द्रुतगति से चलाई कि लाखों मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म की दीक्षा शिक्षा देकर जैन बनाये। कई दुष्कालों में जैन धनाढ्यों ने अर्बों खर्बों द्रव्य व्यय कर के दानशालायें खुलवा दी थीं और जहाँ तक अन्न मिला वहाँ तक मुंघामुघा मंगाकर दान दिया इत्यादि आचार्य श्री के शासन में अनेक शुभ कार्य हुये कि जिससे जैनधर्म की प्रभावना एवं वृद्धि हुई।

पट्टावलियों वंशावलियों आदि ग्रन्थों में जो आपके शासन समय कार्य हुये शुभ कार्य कि जिन्हों का बहुत उल्लेख मिलता है यदि उन सबको लिखा जाय तो एक स्वतंत्र महाभारत सा ग्रन्थ बन जाता है परन्तु मैं यहां स्थानाभाव के कारण थोड़े से नामों का उल्लेख कर देता हूँ।

१—उपकेशपुर में संचेती गोत्रिय शाह नारायणादि कई मुमुक्षुओं ने दीक्षा ली।
२—धनपुर के प्राग्वट सेणा ने सूरिजी के चरणों में दीक्षा ली।
३—मुग्धपुर के तप्तभट गोत्रिय शाह राजा ने सपत्नीक दीक्षा ली।
४—नागपुर के आदित्यनाग गोत्रिय मंत्री लाखण ने १८ नरनारियों के साथ दीक्षा ली।
५—कोरंटपुर के श्रीमाल सुजा रामा ने सूरिजी के पास दीक्षा ली।
६—वामनपुर के भाद्रगोत्रीय देवा ने दो पुत्रों के साथ दीक्षा ली।
७—मथुरा के ब्राह्मण शंकरादि २४ ब्राह्मणों ने सूरिजी के पास दीक्षा ली।
८—अरणी ग्राम के कुमट खेमा ने सूरिजी के पास दीक्षा ली।
९—पालाट के क्षत्री बीजल ने सूरिजी पास दीक्षा ली।
१०—गाखला ग्राम के बलाह गोत्रिय शाह हंसादि ने दीक्षा ली।
११—माहली ग्राम के चिंचट गोत्रिय मुकन्दादि ९ नरों ने दीक्षा ली।
१२—चन्द्रावती के राव संगण ने १८ नरनारियों के साथ दीक्षा ली।

१३—चोपणी के मोरख गोत्रिय शाह भैंसा ने दीक्षा ली।

१४—विराट नगरे श्रेष्टि गोत्रिय मंत्री रणधीर ने दीक्षा ली।

१५—संखपुर के श्रीश्रीमाल नाथा हरषण ने सूरिजी के पास दीक्षा ली।

इत्यादि अनेक उदाहरण हैं। आपके शासन समय केवल एक उपकेशगच्छ में ३००० साधु साध्वियें भूमण्डल पर विहार करते थे पर यह संख्या पहिले से बहुत कम थी। कारण, बारबार दुकाल के कारण साधु संख्या बहुत कम हो गई थी। फिर भी आपश्री ने अनेक प्रान्तों में विहार कर पुनः श्रमण संघ में खूब वृद्धि की थी अब थोड़े से तीर्थों की यात्रा निमित्त संघ निकालने वालों की भी संख्या लिख देता हूँ।

१—चोपावती नगरी से कर्णाट गोत्रिय शाह मालु ने श्रीशत्रुञ्जय का संघ निकाल कर [illegible] द्रव्य व्यय किया आपकी संतान मालु नाम से कहलाई जाने लगी।

२—दसारी ग्राम से आदित्यनाग देपाल रामा ने श्रीशत्रुञ्जय गिरनारादि तीर्थों का संघ निकाला स्वधर्मियों को सोना मुहर की पहरामणी दी जिसमें ९ लक्ष्य द्रव्य व्यय किया।

३—फेफावती नगरी से श्रेष्टि गोत्रिय अरजुन ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला।

४—भिन्नमाल नगर से प्राग्वट आदू ने श्रीशिखरजी का संघ निकालकर चतुर्विध श्री संघ को [illegible] की तमाम यात्रायें करवाईं। स्वधर्मी भाइयों को पहरामणी में एक एक मोतियों की माला दी। इस संघ में सवा करोड़ द्रव्य व्यय किया।

५—सत्यपुरी के श्रीमाल लाखण ने शत्रुञ्जय का संघ निकाल कर यात्रा की।

६—डबरेलपुर के श्रेष्टिगोत्रिय मंत्री नागड़ ने श्रीशिखरजी का संघ निकाला सब तीर्थों की [illegible] की साधर्मी भाइयों को पहरामणी दी जिसमें १९ लक्ष रुपये खर्च किये।

७—उपकेशपुर से सुचंती गोत्रिय शाह जिनदेव ने श्रीशत्रुञ्जयादि तीर्थों का संघ निकाल चतुर्विध श्रीसंघ को यात्रा कराई जिसमें सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया।

८—उज्जैन नगरी से आदित्यनाग गोत्रिय शाह सलखण वीरमदे ने श्री शत्रुञ्जयादि तीर्थों का संघ निकाला जिसमें तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया।

९—वगाड़ी ग्राम से चरड़ गोत्रिय शा० लुंबा ने श्रीशत्रुञ्जय का संघ निकाला।

१०—[illegible] नगर से सुघड़ गोत्रिय शाह पीरा ने शत्रुञ्जयादि तीर्थों का संघ निकाला।

११—[illegible] से लुंग गोत्रिय शाह भीमा ने श्री शिखरजी का संघ निकाला।

१२—उपकेशपुर के भूरि गोत्रिय शाह लिंगा ने श्रीशत्रुञ्जय का संघ निकाला।

यह तो केवल नाम मात्र की सूची दी है पर इस प्रकार सूरिजी तथा आपके पट्टधर [illegible] उपदेश से प्रत्येक प्रान्तों में अनेक संघ निकलवाकर तीर्थों की यात्रा कर अनंत पुण्योपार्जन किया [illegible]

इनके अलावा सूरिजी ने जैन-मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर जैन धर्म की [illegible]

१—[illegible] के [illegible] गोत्रिय शाह [illegible] के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई।

२—[illegible] के [illegible] गोत्रिय शाह [illegible] के बनाये पार्श्वनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई।

३—[illegible] के [illegible] शाह [illegible] के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई।

४—[illegible] नगर के सुघड़ गोत्रिय शाह [illegible] के बनाये आदीश्वर मन्दिर की प्रतिष्ठा [illegible]

५—फोफला ग्राम में मल्ल गोत्रिय शा० हाणा के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
६—कीराटपुर के श्रीमाल हणमन्त के बनाये शान्तिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
७—हंसावली आदित्यनागगोत्रिय हरदेव के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
८—चन्द्रावती नगरी के श्रेष्ठि गोत्रिय मन्त्री भुवन के बनाये पार्श्वनाथ महावीर की प्रतिष्ठा कराई।
९—पद्मावती के बापनागगोत्रिय शाह चुडा के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
१०—उच नगर का राव मालदे के बनाये पार्श्वनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
११—मरुनगर के मन्त्री सारंग के बनाये पार्श्वनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
१२—राजपुर के श्रेष्ठिगोत्रिय शाह नोधण के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
१३—देवली के बाप्पनागगोत्रिय शाह खेमा के बनाये आदिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
१४—पुनेटी के चिंचट गोत्रिय शाह हरदेव के बनाये महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
१५—चन्द्रपुर के चरडगोत्रिय शाह अंबड के बनाये शान्तिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
१६—अर्जुनपुरी के आदित्यनाग गोत्रिय शाह आना के बनाये विमलदेव की मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
१७—पालिकापुरी के वलहा गोत्रिय शाह खेतड़ के बनाये नेमिनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
१८—उपकेशपुर के भाद्रगोत्रिय शाह नोढा के बनाये मल्लिनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
१९—खेलचीपुर के कुमटगोत्रिय शाह जीवण के बनाये शीतलनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
२०—विजयपुर के प्राग्वट वंशीय शाह धरमशी के बनाये पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।

इनके अलावा भी संख्याबद्ध मन्दिरों की प्रतिष्ठायें सूरिजी एवं आपके मुनियों ने करवाई थीं। इससे पाया जाता है कि उस समय जैन जनता की मन्दिर मूर्त्तियों पर अटूट श्रद्धा थी। और इस पुनीत कार्य्य में द्रव्य लगाने में वे अपने द्रव्यकी सफलता भी समझते थे तभी तो एक एक धर्म कार्य्य में वे लाखों रुपये व्यय कर डालते थे और इन पुन्य कार्य्यों के कारण ही उनके अनाप शनाप द्रव्य बढ़ता था। उस समय महाजन संघ का खूब ही अभ्युदय था। उनका पुन्य रूपी सूर्य्य मध्याह्न में तप रहा था वे बड़े ही हलुकर्मी थे कि उनको थोड़ा भी उपदेश विशेष असरकारी हो जाता था उनकी देवगुरु और धर्म पर अटूट श्रद्धा थी।

आचार्य यक्षदेवसूरि ने ४२ वर्ष तक अपने शासन में अनेक प्रकार से जैनधर्म की उन्नति की और में वी० नि० सं० ६२७ में पुनीत तीर्थ श्री तक्षिला में २७ दिन का अनशन एवं समाधिपूर्वक स्वर्ग पधार गये।

सप्तदश श्री यक्षदेवसूरि, दशपूर्व ज्ञान के धारी थे।
वज्रसेन के शिष्यों को दिना, ज्ञान बड़े दातारी थे॥
चन्द्र नागेन्द्र निर्वृति विद्याधर, कुल चारों के विधाता थे।
उपकार जिनका है अतिभारी, भूला कभी नहीं जाता है॥

इति श्री भगवान् पार्श्वनाथ के सतरहवें पट्ट पर आचार्य्य यक्षदेवसूरि महाप्रभाविक आचार्य्य हुये।

भगवान महावीर की परम्परा

भगवान महावीर की परम्परा—आर्य्यवज्रसूरि के यों तो हजारों साधु थे परन्तु उनमें ३ साधु [illegible] थे १-आर्य्यवज्रसैन २-आर्य पद्म ३-आर्य रथ। आर्य्य वज्रसैन से नागली शाखा, आर्य पद्म से पद्म शाखा और आर्य रथ से जयन्ति शाखा निकली। इस शाखा की पट्टावली कल्पसूत्र मे दी है जिसको हम [illegible] प्रसंगोपात देंगे। यहाँ पर तो केवल आर्य्यवज्रसैन का ही सम्बन्ध लिखा जा रहा है।

आर्य्यवज्रसैन जैन संसार में जैनधर्म को जीवित रखने वाले थे। आपने अपने जीवन में दो [illegible] बारहवर्षीय दुकाल देखे थे। एक बारहवर्षीय दुकाल आर्य्यवज्र स्वामी के समय पड़ा था। उस समय [illegible] स्वामी ने श्रीसंघ को पट्ट पर बैठा के जहाँ सुकाल वरतता था वहाँ ले गये और दूसरा १२ वर्षीय दुकाल स्वयं वज्रसैन के समय पड़ा। जिसकी भविष्यवाणी आर्य्य वज्र ने वज्रसैन को पहिले ही कर दी थी कि जब एक लक्ष मुद्राओं के मूल्य से एक वक्त का भोजन बनेगा उसके बाद तत्काल (तीन दिन) ही सुकाल हो जायगा। उस दुकाल के विकट समय में जैनाचार्य्यों ने किस प्रकार जैनधर्म को जीवित रखा। [illegible] अनुभव तो भुक्तभोगी ही कर सकता है। वह दुकाल एक दो वर्ष का नहीं पर लगातार १२ वर्ष तक दुकाल पड़ता ही रहा था। उस समय बड़े-बड़े धनाढ्यों को धन के बदले धान मिलना दुष्कर होगया तो [illegible] निर्धन लोगों की तो बात ही कौन पूछता था ? जब गृहस्थों का यह हाल था तो केवल भिक्षावृत्ति पर [illegible] जीवन गुजारने वाले साधुओं का निर्वाह तो होना कितना मुश्किल हो गया था। अतः बहुत से साधु [illegible] आहार पानी के अभाव अनशन कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर गये। कई साधु कठोर तपश्चर्या में [illegible] तथा बहुत से साधु इधर उधर कई प्रान्तों में चले गये कि जहाँ अपना गुजारा हो सके।

दुष्काल की भयंकरता ने जनता में त्राहि-त्राहि मचा दी थी। धनाढ्यों को मोतियों के [illegible] नहीं मिलती थी। अतः कई लोगों ने विष भक्षण कर दुकाल से अपना पीछा छुड़ाया था। समय [illegible] गया था कि कोई व्यक्ति अपने यहाँ से भोजन कर तत्काल घर बाहर निकल जाता तो भिक्षुक लोग [illegible] उनका उदर चीर के भोजन निकाल कर खा जाता था। इससे अधिक भयंकरता क्या हो सकती है ? [illegible] दुकाल एक दो प्रान्तों में ही नहीं था पर प्रायः सब भारत में फैला हुआ था। हाँ कई कई प्रान्तों में सुकाल भी वर्तता था पर वह प्रान्त भी दुकाल की क्रूर दृष्टि से सर्वथा वंचित नहीं रहे थे। [illegible] संघ को बैठाकर महापुरी (जगन्नाथपुरी) में ले गये वहाँ सुकाल वर्तता था पर [illegible]

एक समय का जिक्र है कि आचार्य वज्रसैनसूरि सोपारपट्टन में पधारे थे आपके [illegible] नगर में [illegible]। उस समय भिक्षाका काम बड़ाही कठिन था तथापि श्रावक लोगों की [illegible] थोड़ा बहुत भोजन मिलता तो वे पहिले साधुओं को भिक्षा देकर ही भोजन करते थे। [illegible] नाम का [illegible] बड़ा ही धनाढ्य था। आपके ईश्वरी नाम्की स्त्री और [illegible] पुत्र [illegible] [illegible] परन्तु दुकाल के कारण [illegible] धन होने पर भी धान नहीं मिलता था [illegible] [illegible] किया परन्तु यह [illegible] का दिन था। [illegible] [illegible] है [illegible] विष [illegible] [illegible] [illegible] नहीं था—

[भगवान महावीर की परम्परा

उसी समय दो साधुओं ने सेठानी ईश्वरी के घर पर आकर धर्मलाभ दिया। पर शर्म के मारी सेठानी ने अपना मुंह नीचा कर लिया। कारण मुनियों को दान देने के लिये उसके पास कुछ भी नहीं था। सेठानी बैठी विष पीस रही थी। मुनियों ने पूछा कि सेठानीजी क्या कर रही हो ? सेठानी ने कुछ भी जबाव नहीं दिया पर उसकी आंखों से जल की धारा बहने लगी। इस पर मुनियों ने रुदन का कारण पूंछा तो सेठानी ने कहा पूज्यवर ! आप जैसे कल्पवृक्ष मेरे घर पर पधारे पर दुःख है कि आज मेरे पास दान देने को कुछ भी पदार्थ नहीं है और मैं यह विष पीस रही हूँ कि अंन के साथ मिलाकर हम सबके साथ खा पी कर इस दुष्काल से पीछा छुड़ावें। मुनियों ने उस श्राविका की करुण कथा सुनकर कहा माता ! हम अपने गुरु के पास जाकर वापिस आवें वहाँ तक आप धैर्य रखना। इतना कह कर मुनि सूरिजी के पास आये और सब हाल सुनाया तो निमित्त के जानकारसूरिजी ने अपने गुरु वज्रसूरि की बात को याद की और अपने शिष्यों को कहा तुम जाकर श्राविका को कह दो कि जैसे बने वैसे तीन दिन तुम निकाल दो। तीन दिनों के बाद सुकाल हो जायगा अर्थात् जहाजों द्वारा पुष्कल धान आ जायगा। बस, साधु पुनः सेठानी के वहाँ गये और सेठानी को कहा कि यदि हम आपके सब कुटुम्ब को बचा दें तो आप हमें क्या देंगे ? सेठानी ने कहा पूज्यवर ! हम सब लोग आपके ही हैं आप जो फरमावें हम देने को तैयार हैं। इस पर मुनियों ने कहा कि तुम्हारे इतने पुत्र हैं उनमें से चन्द्रनागेन्द्र, निर्वृति और विद्याधर एवं चार पुत्रों को हमे दे देना। श्राविका ! इसमें हमारा कुछ भी स्वार्थ नही है पर यह तुम्हारे पुत्र जगत का उद्धार करेंगे जिसका सुयश तुमको भी मिलेगा इत्यादि सेठानी ने कहा पूज्यवर ! हम लोगों का ऐसा भाग्य ही कहाँ है ? इस दुकाल में हजारों लाखों मनुष्य अन्न बगैर त्राहि-त्राहि करके यों ही मृत्यु के मुँह में जा पड़े हैं। यदि पूर्वोक्त चारों पुत्र आपके चरण कमलों में दीक्षा लें तो मैं बड़ी खुशी के साथ आज्ञा दे दूंगी। यदि और भी कोई हुक्म हो तो फरमाइये मैं शिरोधार्य करने के लिये तैयार हूँ। मुनियों ने कहा श्राविका और हमारा क्या हुक्म हो सकता है। गुरु महाराज ने फरमाया है कि जैसे बन सके आप तीन दिन निकाल दीजिये। बाद, अन्न के इतने जहाज आवेंगे कि इस दुकाल का शिर फोड़ कर गहरा सुकाल कर देंगे।

जैनियों के लिए तीन दिन उपवास करना कोई बड़ी बात नहीं है। कारण इस बात का तो जैनियों के पूरा अभ्यास ही होता है। सेठानी ने मुनियों के वचन को तथाऽस्तु कह कर बधा लिया और विष को दूर रख दिया। पकाये हुये भोजन से मुनियों को भी आमन्त्रण किया पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव के जानकार मुनि सेठानी की प्रार्थना को अस्वीकार कर चल धरे।

आशा एक ऐसी वस्तु है कि मनुष्य आशा ही आशा में कितना ही समय व्यतीत कर देता है। यह अनुभव सिद्ध बात है कि जिस मुसाफिर के पास भोजन तैयार है वह दो चार आठ दस मील पर भी चला जाता है क्योंकि उसको आशा है कि मेरे पास भोजन है आगे चल कर करलूंगा परन्तु भोजन की आशा नहीं है उससे एक दो मील भी चलना मुश्किल हो जाता है। अतएव सेठानी सकुटम्ब ज्यों त्यों कर तीन दिन निकाल दिये। बस, चौथे दिन तो समुद्रमार्ग से बहुत सी अनाज की जहाजें आ पहुँची जिसमे प्रचुरता के साथ अनाज मिलने लग गया और सब लोगों ने अपने प्राण बचा लिये।

इधर मुनियों ने सेठानी के पास जाकर धर्मलाभ दिया। सेठानी ने बड़े ही हर्ष के साथ मुनियों

जैन शासन के निन्हव

निन्हव—निन्हव दो प्रकार के होते हैं। एक देश निन्हव, दूसरे सर्व निन्हव, जैनधर्मी कहलाता हुआ जैनधर्म की श्रद्धा रखता हुआ भी कभी मिथ्यात्व मोहनीय कर्मोदय वीतराग प्रणित आगमों को नहीं मानना या अन्यथा मानकर जैनधर्म से खिलाफ मत निकालना जैसे महात्मा बुद्ध और गोसाला, इन्होंने जैनधर्म की दीक्षा ली एवं पाली भी थी पर बाद में आपने अपने नाम से नया एवं अलग मत निकाले यह सर्वथा निन्हव कहलाये जाते हैं। दूसरा जैनागमों को मानता हुआ कुछ सूत्र-श्रुतियों और शब्दों को नहीं मानना और इस प्रकार तीर्थङ्करों के मत में रहकर अलग मत निकालने वालेको देश निन्हव कहा जाता है। जैसे जमाली आदि और इस प्रकार के अलग मत स्थापन करने वाले शासन के सात निन्हव हुये हैं जिन्हों का उल्लेख उत्तराध्ययन सूत्र उत्पतिकसूत्र आवश्यक सूत्रादि अनेक स्थानों पर उपलब्ध होता है। पाठकों की जानकारी के लिये उन निन्हवों का हाल यहां पर संक्षिप्त से लिख दिया जाता है।

१—प्रवचन का पहिला निन्हव जमाली हुआ—जमाली भगवान महावीर का भानेज था तथा दूसरी ओर भगवान की पुत्री प्रियदर्शना जमाली को व्याही थी। अतः जमाली भगवान का जमाई भी लगता था। भगवान महावीर को कैवल्यज्ञान हो गया था। वे चलते हुये महान कुण्डनगर के उद्यान में पधारे। जमाली आदि ने भगवान का व्याख्यान सुना और संसार को असार जानकर ५०० साथियों के साथ तथा जमीली की स्त्री ने १००० महिलाओं के साथ भगवान् के पास दीक्षा ली। जमाली ने एकादशांग का ज्ञान पढ़ा बाद भगवान से आज्ञा मांगी कि यदि आपकी इच्छा हो तो मैं ५०० साधुओं को साथ लेकर अन्य प्रदेश में विहार करूं। प्रभुने न इन्कार किया और न आज्ञा दी पर मौन रहे। जमाली ने इस प्रकार दो तीन बार पूछा पर उत्तर न मिलने से 'मौनंसम्मतिलक्षणं' समझ कर जमाली ने ५०० साधुओं के साथ विहार कर दिया और चलता २ सावत्थी नगरी में आया और कोष्टक उद्यान में ठहरा। उस समय उसके शरीर में दाह जल की बड़ी भारी बीमारी हो गई थी। साधुओं को कहा कि बैठने की मेरी शक्ति नहीं है। तुम मेरे लिये शीघ्र संस्तारा तैयार करो मुनियों ने घास लाकर संस्तारा करना शुरू किया। वेदना को सहन न करते हुये जमाली ने पूछा कि क्या संस्तारा तैयार हो गया ? साधुओं ने कहा कि संस्तारा अभी किया जा रहा है। इस पर जमाली को शंका हुई कि भगवान ने कहा है कि 'चलमाणे चलिये—कड माणे कडे' यह निरर्थक है। "चलमाणे अचलिये" कडमाणे अकडे" कहना चाहिये अतः भगवान के वचन असत्य हैं पर मैं कहता हूँ यह सत्य है। बस इस कदाग्रह के वस जमाली अपनी वेदना को तो भूल गया और साधुओं को बुला कर कहा कि देखो भगवान के वचन प्रत्यक्ष में असत्य हैं और मैं कहता हूँ वह सत्य है क्योंकि वे कहते हैं कि 'कडमाणे कडे' अर्थात करना आरम्भ किया उसे किया ही कहा जा पर प्रत्यक्ष देखिये तुमने संस्तारा करना प्रारम्भ किया जब तक पूरा न हो वहां तक उसे किया कैसे कहा जा सकता है अतः मैं कहता हूँ कि 'कडमाणे अकडे' यह प्रत्यक्ष सत्य है इत्यादि। इस पर कई साधु जमाली के वचनों को स्वीकार कर जमाली के पास रह गये पर कई साधुओं ने सोचा कि भगवान् का कहना नैगम नय का है तब जमाली कर रहा है एवंभूत नय की बात। अतः जमाली की मति में भ्रम है। भगवान् के वचन सोलह आना सत्य हैं, वह जमाली को छोड़ भगवान के पास चले गये। बाद जमाली आरोग्य हुआ तो स्वयं या साधुओं की प्रेरणा से भगवान

को वन्दन किया और कहा कि पूज्यवर ! आपने हम सब लोगों को जीवन प्रदान किया है और जिन चार पुत्रों के लिये फरमाये वे चारों पुत्र हाजिर हैं कृपा कर उनको दीक्षा देकर हमारे कुल का उद्धार कराये। चन्द्रादि चार पुत्रों को सेठानी ने पहले ही समझा दिये थे अतः वे चारों पुत्र दीक्षा लेने को तैयार हो गये। मुनियों ने सेठानी के दिये हुए चारों नवयुवकों को लेकर आर्य वज्रसेनसूरि के पास आये और सूरिजी ने उनको दीक्षा का स्वरूप समझा कर विधि विधान से दीक्षा दे दी।

उस दुकाल के अन्दर बहुत से मुनियों ने स्वर्गवास कर दिये थे और बचे हुए मुनियों में केवल एक यक्षदेवसूरि ही अनुयोगधर रहे थे और वे भ्रमण करते सोपारपट्टन में पधारे थे आचार्य यक्षदेवसूरि के जीवन में पाठक पढ़ आये थे कि यक्षदेवसूरि ने अपने साधु साध्वियों के अलावा आचार्य वज्रसूरि के शिष्य समुदाय से ५०० साधु ७०० साध्वियों वगैरह बचे हुए साधुओं को आगमों की वाचना देने के लिये सोपारपट्टन को ही पसन्द किया था कारण ऐसे वड़े नगर विना इतने साधु साध्वियों का निर्वाह भी नहीं हो सकता था। ठीक उसी समय आर्य वज्रसेनसूरि चार शिष्यों को दीक्षा देकर आचार्य यक्षदेवसूरि के पास आकर प्रार्थना की कि इन चारों नूतन साधुओं को भी आप आगमों की वाचना देने की कृपा करावे यह महान् उपकार का कार्य है यक्षदेवसूरि ने कहा कि इतना कहने की आवश्यकता ही क्या है यह तो हमारा खास कर्तव्य ही है हम और आप पृथक् पृथक् नहीं पर शासन की सेवा करने में एक ही हैं। अतः सब साधु साध्वियों को आगमों की वाचना देना सूरिजी ने प्रारम्भ कर दिया परन्तु भवितव्यता ने ऐसा दृश्य बतलाया कि वाचना का कार्य तो चलता ही था बीच में ही आर्य वज्रसेनसूरि का स्वर्गवास हो गया। युग-प्रधान पट्टावली में आर्य वज्रसेनसूरि के लिये कहा है कि ९ वर्ष गृहस्थावास ११६ वर्ष सामान्य व्रत और ३ वर्ष युग-प्रधान पर रहकर १२८ वर्ष का सर्व आयुष्य पूर्ण कर स्वर्गवास पधार गये थे। अतः चन्द्रादि चार मुनियों को तथा दुकाल में बचे हुए साधुओं को आगमों की वाचना आचार्य यक्षदेवसूरि ने ही दी थी इतना ही क्यों पर चन्द्रादि चार मुनियों के शिष्य समुदाय बनवा कर उन चारों को सूरि पद भी आचार्य यक्षदेवसूरि ने ही दिया था तत्पश्चात् आचार्य चन्द्रसूरि आदि ने सूरिजी का महान् उपकार मानते हुए सूरिजी की आज्ञा लेकर अन्यत्र विहार किया अतः दुकाल में बचे साधु साध्वियों पर एवं चन्द्रादि चारों सूरियों पर आचार्य यक्षदेवसूरि का महान उपकार हुआ है तथा उन चारों सूरिजी के [illegible] चल कर ८४ तथा ८४ से भी अधिक गच्छ हुए वे सबके सब उपकेशगच्छ एवं आचार्य यक्षदेवसूरि [illegible] को महान् उपकार समझ कर उन्हों का पूज्य भाव से आदर सत्कार किया करते थे। इति [illegible]

[illegible]

[भगवान् [illegible]

पास चले गये, जिन्होंके मिथ्यात्व मोहनीय का उदय था उन्होंने अपने कदाग्रह को नहीं छोड़ा। यह तिष्य-गुप्त मुनि से दूसरे निन्हव का दूसरा मत महावीर के केवल ज्ञान होने के १६ वर्षों के बाद चला।

३—तीसरा निन्हव अव्यक्तवादी—आचार्य आसाढ़भूति अपने शिष्यों को आगमों की वाचना दे रहे थे एक समय रात्रि में किसी को खबर न हुई कि वे अकस्मात् काल कर देवयोनि में चले गये। पर वहाँ जाकर तत्कालिक उपयोग लगा कर अपना साधु भव देखा तो शिष्यों के प्रति दया भाव आया कि इन विचारों को वाचना कौन देगा। वे देवशक्ति से अपने मृत कलेवर में प्रवेश हो गये और शिष्यों को ज्यों की त्यों वाचना देने लगे। किसी शिष्य को इसका भान न रहा। जब शिष्यों को वाचना दे चुके तो आप अपने देव-पना का स्वरूप बतला कर चले गये इस हालत में शिष्यों ने विचार किया कि जैसे गुरु महाराज मृत शरीर में रहकर अपने से वंदन करवाया करते थे इस प्रकार और भी साधुओं के शरीर में देव होगा तो कौन जाने, अतः देव अव्रति अपच्चारवानी होते हैं,उसको हम वन्दन कैसे करें ? एवं वे सबके सब साधुओं ने आपस में वन्दन व्यवहार बन्द कर दिया और स्वच्छन्दचारी बन गये। वे साधु कभी भ्रमण करते थे राजगृह नगर में आये। वहाँ के किसी बलभद्रराजा ने अपने अनुचरोंद्वारा उन साधुओं को चोरों के तौर पर पकड़वा मंगवाया और चोरों की भांति उन्हें मारने लगा। तब साधु बोले कि हे राजन् ! तुम श्रावक होकर हम साधुओं को क्यों पिटवाते हो ? राजा ने कहा कि मुझे क्या मालूम कि आप साधु हैं या आपके शरीर में कोई चोर आकर घुस गया है और मैं न जाने श्रावक हूँ या कोई देव मेरे शरीर में अवतीर्ण हो गया हो। जैसे आपकी मान्यता है कि साधुओं के शरीर में देवता होगा। इत्यादि बहुत युक्तियों से समझाये।

राजा के कहने से उन साधुओं के अन्दर से बहुत से साधु 'मिच्छामि दुक्कडं' देकर वीर शासन में शामिल होगये और जिन्होंके विशेप मिथ्यात्वोदय था उन्होंने अपने हठ कदाग्रह को नहीं छोड़ा। यह वीरात् २१४ वर्ष के बाद अव्यक्त नाम का तीसरा निन्हव हुआ।

४—चोथा निन्हव क्षणकवादी अश्वमित्र—आर्य महागिरि के कोंटीन नामक शिष्य था और उसके एक अश्वमित्र शिष्य था। वे विहार करते हुए मथुरा नगरी में आये वहाँ पर आगमों की वाचना होती थी जिसमें दशवां पूर्व की वाचना में पर्याय के विपय में आया था कि—

"सव्वे पडुप्पन्ननेरइया वोच्छिज्जिस्संति, एवं जाव विमाणियात्ति"

इस पाठ का अर्थ गुरु महाराज ने ठीक समझाने पर भी अश्वमित्र ने विपरीत समझ लिया कि पहिले समय नरकादि जो पदार्थ हैं वह दूसरे समय नष्ट हो जाते हैं और दूसरे समय पुनः नये पदार्थ उत्पन्न होते हैं एवं सब पदार्थ क्षण भंगुर है और समय-समय बदलते रहते हैं। अतः जिस जीव ने पहिले क्षण में पाप एवं पुन्य किया है वह दूसरे समय नष्ट हो जाता है इस मान्यता के कारण उसने अपना अलग मत निकाल दिया और इस प्रकार प्ररूपना करता हुआ राजगृह नगर में आया वहाँ पर एक हासिल के महकमा में श्रावक रहता था उसने साधुओं को समझाने के लिये उनको पकड़ कर पीटवाना शुरु किया। साधुओं ने कहा हम साधु तुम श्रावक फिर हमें क्यों पीटवाते हो ? इस पर दानीजी ने कहा कि आपकी मान्यतानुसार अब क्षणान्तर पर्याय पलट गई है अतः आप साधु नहीं मैं श्रावक नहीं इसको पुन-

के पास आया और भगवान को वन्दना न करता हुआ बोला कि आपके बहुत से साधु आपके पास से छद्मस्थ जाते हैं और छद्मस्थ आते हैं पर मैं केवली होकर गया और केवली होकर आया हूँ। इस पर भगवान ने कहा जमाली यदि तू केवली है तो बतला जीव शाश्वता है या अशाश्वता ? लोक शाश्वता है या अशाश्वता ? । बस इसके उत्तर देने में जमाली के दांत जुड़ गये। भगवान ने कहा कि इस प्रश्न के उत्तर तो मेरे सामान्य साधु भी दे सकते हैं तो क्या तू केवली होता हुआ भी इन साधारण प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकता है। आखिर जमाली ने अपना कदाग्रह नहीं छोड़ा और अपना अलग मत चला दिया। अतः भगवान को केवल ज्ञान होने के बाद १४ वां वर्ष में जमाली नाम का प्रथम निन्हव हुआ।

जब जमाली ने अपना अलग मत निकाल दिया तो उसकी औरत जो भगवान की पुत्री और साध्वी के रूप में थी उसने भी जमाली का मत स्वीकार कर लिया था। साध्वियें घूमती हुई सावत्थी नगरी में आई और एक ढंक नाम के श्रावक के मकान में ठहरी। ढंक था भगवान महावीर का श्रावक, जब साध्वियें भिक्षा लेकर आई और एक चद्दर बांध कर अन्दर गोचरी कर रही थी ढंक ने साध्वी को समझाने के लिये चद्दर के एक किनारे अग्नि लगा दी जिसको देख साध्वी चिल्लाने लगी कि मेरी चादर जल गई र ढंक ने कहा साध्वी मृषा क्यों बोलती है क्योंकि तुम्हारा मत है कि सम्पूर्ण चादर जल जाने से ही जली कहना। यह सुनते ही साध्वी की अक्ल ठिकाने आ गई कि जमाली का कहना मिथ्या है और भगवान महावीर का कहना सत्य है। उसने भगवान महावीर के पास में जाकर उनकी आज्ञा को स्वीकार किया। इस प्रकार जमाली के कई साधु भगवान के पास आगये हों तो आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि जमाली का मत अधिक नहीं चला था।

२—दूसरा निन्हव तिष्यगुप्त—भगवान महावीर की मौजूदगी में एक वसु नामक आचार्य १४ पूर्व के ज्ञाता राजगृहनगर के उद्यान में पधारे। अपने शिष्यों को आत्म प्रबोध पूर्व की वाचना दे रहे थे उसमें तिष्यगुप्तमुनि भी शामिल था। वाचना के अन्दर एक स्थान पर ऐसा वर्णन आया कि—

"एगे भंते जीव पएसे जीवेत्तिवत्तव्वंसिया? णोयणट्ठे समट्ठे।" अर्थात् आत्मा के एक प्रदेश को जीव कहा जाय ? नहीं। तो क्या दो तीन चार यावत् संख्याता असंख्याता एवं आत्मा के सब प्रदेशों में एक कम न्यून को जीव कहा जाय ? नहीं। हे शिष्य ! सम्पूर्ण जीव प्रदेशों को ही जीव कहा जाता है। यहाँ एवंभूतनय का विषय था पर तिष्यगुप्त ने उसको न समझकर यह निश्चय कर लिया कि एक दो [illegible] यावत् एक न्यून असंख्याता प्रदेशों में जीव नहीं है पर एक प्रदेश मिला देने से जीव कहा जाता है अतः जीव अन्तिम प्रदेश में ही है। इससे उसने उत्सूत्र प्ररूपना कर डाली कि एक अन्तिम प्रदेश में ही जीव है अतः कर्मों का बन्धन भी एक ही प्रदेश पर होता है। तिष्यगुप्त अपनी मान्यता का प्रचार करता हुआ आमलकल्पा नगरी में आया। वहाँ मित्रश्री नामक श्रद्धासम्पन्न श्रावक था। उसके यहाँ साधु भिक्षार्थ गये। उसने [illegible] इत्यादि जितने पदार्थ थे उनका अन्तिम एक एक दाना मुनि को बेहराया। मुनि ने कहा श्रावक क्या आप हमारी अवहेलना करते हैं ? श्रावक ने कहा कि यह मेरी अवहेलना नहीं पर आपकी मान्यता है, आप असंख्याता प्रदेशों को छोड़ कर एक अन्तिम प्रदेश में ही जीव मानते हो। तदनुसार [illegible] एक दाने में ही मानना चाहिये। अतः [illegible]

विच्छू छोड़े रोहगुप्त ने मयूर छोड़े कि विच्छुओं को उठा कर ले गये। परिव्राजक ने सांप बनाये तो रोहगुप्त ने नकुल बनाये। परिव्राजक ने मूषक बनाये मुनि ने मंजारि बना दी। उसने मृग बनाया तो मुनि ने बाघ बनाये उसने सुअर बनाया और मुनि ने सिंह बना दिया इस प्रकार परिव्राजक की एक भी न चली तब उसने गर्दभि विद्या छोड़ी तो मुनि ने रजोहरण से वश में कर ली। इस प्रकार परिव्राजक को पराजित करने से जैनधर्म की खूब प्रभावना हुई फिर रोहगुप्त खूब बाजागाजा एवं आडम्बर से गुरु महाराज के पास आया और सब हाल कहा। इस पर गुरु ने कहा कि जैनधर्म की प्रभावना करना तो अच्छा है परन्तु तीन राशि स्थापन करी यह ठीक नहीं क्योंकि तीर्थङ्करों ने दो राशि कही हैं। अतः तुम राजसभा में जाकर इस बात का मिच्छामि दुक्कड़म् दो परन्तु रोहगुप्त ने गुरु के वचन को स्वीकार न किया। और तीन राशी नाम का अपना एक नया मत खड़ा कर दिया यह छट्ठा तिराशि निन्हव भगवान महावीर निर्वाण से ५४४ वर्ष में हुआ।

७—गोष्टामाहिल नामक सातवाँ निन्हव—मालवा देश में दशपुर नगर के वासी एक ब्राह्मण ने आर्य रक्षित के पास दीक्षा ली थी आपका नाम 'गोष्टामाहिल' था। एक समय आर्य दुर्वलिकापुष्प पूर्वांग की वाचना दे रहे थे। अन्य साधुओं के साथ गोष्टामाहिल भी वाचना ले रहा था। आठवें पूर्व में कर्मों का विषय आया कि जीवात्मा के कर्म खीर नीर तथा लोहाग्नि की भांति जीव प्रदेशों में मिल जाते हैं। पर गोष्टामाहिल इस बात को विपरीत समझ कर कहने लगा कि जीव के कर्म स्त्री कंचुक एवं पुरुष जामा और बालक के टोपी की भाँति जीव प्रदेशों के ऊपर लगते हैं अन्दर नहीं। दूसरे नौवें पूर्व में प्रत्यख्यान के अधिकार में साधुओं को यावत् जीव की सामायिक एवं प्रत्याखान कराया जाता है पर गोष्टामाहिल ने कहा कि जावनजीव के प्रत्याखान करने पर वांच्छा दोष लगता है। कारण, जीवन के अन्त में भोग की वांन्छा के भाव आ जाते हैं इत्यादि। गोष्टामाहिल के कदाग्रह को दुर्वलिकापुष्पाचार्य्य ने श्री संघ को कहा। तब श्रीसंघ ने अष्टम तप कर देवी की आराधना कर देवी को महाविदेह क्षेत्र में सीमंधर तीर्थङ्कर के पास भेजी। देवी ने जाकर तीर्थङ्कर से पूंछा तो उन्होंने कहा कि दुर्वलिकाचार्य्य का कहना सत्य है। देवी ने आकर श्रीसंघ को कहा। पर गोष्टामाहिल ने कहा कि देवी झूंठी है तीर्थङ्कर ऐसा कभी नहीं कहते इत्यादि गोष्टामाहिल ने अपने कदाग्रह को नहीं छोड़ा। अतः श्रीसंघ ने संघ बाहर कर दिया। एवं गोष्टामाहिल नामक सातवां निन्हव वीरात् ५८४ वर्ष में हुआ। इस प्रकार शासन में सात निन्हव हुए इस समय के बाद भी कई निन्हव हुए कइएकों ने साधुओं को वस्त्र पात्र नहीं रखने का आग्रह किया कइएकों ने भगवान महावीर का गर्भापहार कल्याणक मानने का हट किया, कइएकों ने स्त्रियों को जिनपूजा करने का निषेध किया। कइएकों ने श्रावक को सामायिक पौषध के समय चरवाला का निषेध किया। कइएक ने मूर्तिपूजा का इन्कार किया कइएकों ने इस समय साधु है ही नहीं ऐसा आग्रह किया, कइएकों ने मूर्तिपूजा में मिश्र (पुन्य-पाप) मानना ठहराया। कइएकों ने स्त्रयों को सामायिक पौषध का निषेध किया। कइएकों ने धानमें जीव मानने से इन्कार किया और कइएकोंने मरते जीवों को बचाने में तथा दान देने में पाप बतलाया इत्यादि कलिकाल के प्रभाव से जीवों के मिथ्यात्वोदय होने से जिसके दिलमें आई वहीं उत्सूत्र प्ररूपना कर अपना मत निकाल शासनमें छेदभेद डाल टुकड़े २ कर डाले जिसको हम क्रमशः समय वार यथास्थान लिखेंगे जिसमें यहाँ पर पहला आचार्य कृष्णर्षि का शिष्य शिवभूति नामक साधु ने दिगम्बर नाम का मत निकाला जिसको यहाँ लिख दिया जाता है—

कर बहुत से साधु समझ गये परन्तु जिन लोगों के मिथ्यात्व कर्म का उदय था उन्होंने अपना हठ नहीं छोड़ा। यह चतुर्थ निन्हव महावीर निर्वाण के बाद २२० वर्ष में हुआ।

५—पांचवां गंग नामक निन्हव—आचार्य महागिरि के धनगुप्त नाम का शिष्य और धनगुप्त के गंगदेव नाम का शिष्य था और वह एक बार उलगातीर नदी उतरता था उस समय ऊपर से ताप नीचे से पानी की शीतलता का अनुभव करता हुआ सोचने लगा कि शास्त्रों में कहा है कि एक समय दो क्रिया नहीं होती हैं यह गलत है क्यों कि मैं एक समय दो क्रिया प्रत्यक्ष में अनुभव कर रहा हूँ। इस प्रकार से विचार करता हुआ मुनि गंगदेव ने आचार्य श्री के पास आकर अपने दिल के विचार कहे तो गुरु ने समझाया कि गंगदेव! शास्त्र में कहाँ वह सत्य हैं एक समय में जीव दो क्रिया नहीं कर सकता एवं वेद नहीं सकता है और तू जो नदी उतरते समय शीत और उष्ण दोनों का अनुभव किया वह एक समय का नहीं पर असंख्यात समय का अनुभव है उसको एक समय समझना बड़ा भारी भूल है। छद्मस्थ को अनुभव करने में उपयोग लगने में असंख्यात समय का काल लगता है इत्यादि बहुत समझाया पर गंगदेव नहीं समझा इत्यादि वीर निर्वाण के बाद २२८ वर्ष गंगदेव नामक पंचवाँ निन्हवा हुआ।

६—छट्ठा निन्हव—अन्तरंजिया नगरी में बलश्री नाम का राजा राज करता था वहाँ पर श्रीगुप्त नाम का आचार्य अपने शिष्यों के साथ विराजते थे उसमें रोहगुप्त नाम का शिष्य भी एक था और वह उत्पातिकादि बुद्धि वाला भी था एक समय वहाँ एक परिव्राजक आया था वह विद्या का इतना घमंडी था कि पेट पर लोहे का पाटा लगाया हुआ रखता था और हाथ में एक जम्बू वृक्ष की शाखा लेकर फिरता था किसी ने पूछा कि पंडितजी पेट पर पाटा क्यों बांधा है ? उत्तर में कहा कि मुझे शंका है कि विद्या से मेरा पेट फट नहीं जाय। जम्बू शाखा के लिए कहा कि मुझे जीतने वाला जम्बूद्वीप में भी कोई नहीं है। एक दिन उस परिव्राजक ने नगर में शास्त्रार्थ के लिए उद्घोषणा कराई जिसको आचार्य श्रीगुप्त के शिष्य रोहगुप्त ने स्वीकार करली। बाद वह गुरु महाराज के पास आया और कहा कि मैं परिव्राजक से वाद करूँगा। गुरु महाराज ने इन्कार कर दिया कि इस प्रकार का वितंडावाद करना अच्छा नहीं है। क्योंकि परिव्राजक तात्विक ज्ञान का पंडित नहीं है परन्तु विद्यावली है। वह बिच्छू सर्प मूषक वाराह आदि विद्या में कुशल है। शिष्य ने कहा कि मैंने कह दिया है अतः शास्त्रार्थ तो करूँगा ही। तब गुरु ने उसको प्रतिपक्ष मयूर, नकुल, बिल्ली, सिंह आदि विद्याएँ दीं और रजोहरण भी मंत्र दिया कि जिससे इन्द्र भी जीतने में समर्थ न हो सकेगा। उन विद्या को ग्रहण करके रोहगुप्त राजसभा में गया। उधर से परिव्राजक भी राजसभा में आया। रोहगुप्त ने कहा कि तुम पूर्वपक्ष ग्रहण करोगे या उत्तरपक्ष। परिव्राजक ने सोचा कि मैं पूर्वपक्ष ग्रहण करूं इसमें [illegible] ही ऐसी बात कहूँ कि जिसको यह खंडन नहीं कर सके। बस, परिव्राजक ने पूर्वपक्ष ग्रहण करके कहा कि राशि दो प्रकार की है। जीव राशि अजीव राशि ? रोहगुप्त ने सोचा कि यह तो हमारा ही सिद्धान्त है परन्तु यहाँ तो था वाद-विवाद। परिव्राजक के पक्ष को खंडन करना था उसने कह दिया कि राशि दो प्रकार की नहीं पर तीन प्रकार की होती है। जीव राशि, अजीव राशि, नोजीवराशि। और मैंने [illegible] [illegible] [illegible]

ोहगुप्त ने मयूर छोड़े कि विच्छुओं को उठा कर ले गये । परिव्राजक ने सांप बनाये तो रोहगुप्त ने
परिव्राजक ने मूषक बनाये मुनि ने मंजारि बना दी । उसने मृग बनाया तो मुनि ने बाघ बनाये
बनाया और मुनि ने सिंह बना दिया इस प्रकार परिव्राजक की एक भी न चली तब उसने गर्दभि
ो मुनि ने रजोहरण से वश में कर ली । इस प्रकार परिव्राजक को पराजित करने से जैनधर्म की
हुई फिर रोहगुप्त खूब बाजागाजा एवं आडम्बर से गुरु महाराज के पास आया और सब
:स पर गुरु ने कहा कि जैनधर्म की प्रभावना करना तो अच्छा है परन्तु तीन राशि स्थापन करी
क्योंकि तीर्थङ्करों ने दो राशि कही हैं । अतः तुम राजसभा में जाकर इस बात का मिच्छामि
न्तु रोहगुप्त ने गुरु के वचन को स्वीकार न किया । और तीन राशी नाम का अपना एक नया
दिया यह छट्ठा तिराशि निन्हव भगवान महावीर निर्वाण से ५४४ वर्ष में हुआ ।

गोष्टामाहिल नामक सातवाँ निन्हव—मालवा देश में दर्शनपुर नगर के वासी एक ब्राह्मण ने आर्य
त दीक्षा ली थी आपका नाम 'गोष्टामाहिल' था । एक समय आर्य दुर्वलिकापुष्य पूर्वांग की
थे । अन्य साधुओं के साथ गोष्टामाहिल भी वाचना ले रहा था । आठवें पूर्व में कर्मों का
कि जीवात्मा के कर्म खीर नीर तथा लोहाग्नि की भांति जीव प्रदेशों में मिल जाते हैं । पर
इस बात को विपरीत समझ कर कहने लगा कि जीव के कर्म स्त्री कंचुक एवं पुरुष जामा
के टोपी की भाँति जीव प्रदेशों के ऊपर लगते हैं अन्दर नहीं । दूसरे नौवें पूर्व में प्रत्यखान के
साधुओं को यावत् जीव की सामायिक एवं प्रत्याखान कराया जाता है पर गोष्टामाहिल ने कहा
त के प्रत्याखान करने पर वांच्छा दोष लगता है । कारण, जीवन के अन्त में भोग की वांन्छा के
हैं इत्यादि । गोष्टामाहिल के कदाग्रह को दुर्वलिकापुण्या चार्य्य ने श्री संघ को कहा । तब श्रीसंघ
कर देवी की आराधना कर देवी को महाविदेह क्षेत्र में सीमंधर तीर्थङ्कर के पास भेजी । देवी
र्थङ्कर से पूंछा तो उन्होंने कहा कि दुर्वलिकाचार्य्य का कहना सत्य है । देवी ने आकर श्रीसंघ
र गोष्टामाहिल ने कहा कि देवी झूंठी है तीर्थङ्कर ऐसा कभी नहीं कहते इत्यादि गोष्टामाहिल ने
ह को नहीं छोड़ा । अतः श्रीसंघ ने संघ बाहर कर दिया । एवं गोष्टामाहिल नामक सातवां निन्हव
वर्ष में हुआ । इस प्रकार शासन में सात निन्हव हुए इस समय के बाद भी कई निन्हव हुए
ाधुओं को वस्त्र पात्र नही रखने का आग्रह किया कइएकों ने भगवान महावीर का गर्भापहार
ानने का हट किया, कइएकों ने स्त्रियों को जिनपूजा करने का निषेध किया । कइएकों ने श्रावक
; पौषध के समय चरवाला का निषेध किया । कइएक ने मूर्तिपूजा का इन्कार किया कइएकों
साधु है ही नही ऐसा आग्रह किया, कइएकों ने मूर्तिपूजा में मिश्र (पुन्य-पाप) मानना
इएकों ने स्त्रयों कों सामायिक पौषध का निषेध किया । कइएकों ने धानमें जीव मानने से
और कइएकोंने मरते जीवों को बचाने में तथा दान देने में पाप बतलाया इत्यादि कलिकाल के
तीवों के मिथ्यात्वोदय होने से जिसके दिलमें आई वहीं उत्सूत्र प्ररूपना कर अपना मत निकाल
भेद डाल टुकड़े २ कर डाले जिसकों हम क्रमशः समय वार यथास्थान लिखेंगे जिसमें यहाँ पर
ार्य कृष्णार्षि का शिष्य शिवभूति नामक साधु ने दिगम्बर नाम का मत निकाला जिसको ही
जाता है ...

दिगम्बर मतोत्पत्ति–

दिगम्बरमत—जैसे सात निन्हवों का हाल ऊपर लिखा है वैसे दिगम्बर भी एक निन्हव की पंक्ति में है इस मत की उत्पत्ति खास तौर तो साधु वस्त्र नहीं रखने के एकान्त आग्रह से हुई है तत्पश्चात् उन्होंने अनेक बातों का रद्दोबदल कर डाला-जैन शास्त्रों में दिगम्बर मत की उत्पत्ति निम्न लिखित प्रकार से हुई है।

रथवीरपुर नामक नगर के देवगणोद्यान में एक कृष्णार्षि नामक जैनाचार्य्य पधारे थे उस नगर में एक शिवभूति नामक ब्राह्मण बसता था और कुछ राज सम्बन्धी काम भी किया करता था परन्तु रात्रि के समय बहुत देरी से घर पर आने की उसकी आदत पड़ गई थी जिससे शिवभूति की स्त्री और माता घबरा गई थीं। एक दिन शिवभूति रात्रि में बहुत देरी से घर पर आया और द्वार खोलने के लिये बहुत पुकारें कीं परन्तु सब लोग निद्रा देवी की गोद में सो रहे थे जब शिवभूति की माता जागी तो उसने क्रोध के वश होकर कह दिया कि इस समय जिसके द्वार खुले हों वहां चला जा। बस शिवभूति माता के वचन सुनकर वहां से चला गया पर दूसरा रात्रि समय अपने द्वार कौन खुला रक्खे। वह फिरता फिरता कृष्णाचार्य के मकान पर पहुँचा तो वहां द्वार खुल्ला था। शिवभूति मकान के अन्दर प्रवेश करके क्या देखता है कि साधु जन आत्म ध्यान में संलग्न थे जिन्हों को देखकर शिवभूति ने सोचा कि माता की आज्ञा तो हो ही गई है इनके पास दीक्षा ले लें। सुबह आचार्यश्री से प्रार्थना की और स्वयं लोचभी कर लिया अतः आचार्य श्री ने परोपकार की गरज से शिवभूति को दीक्षा दे दी। एक समय वहां के राजा ने जैन मुनियों के त्याग वैराग्य एवं शिवभूति के पूर्व परिचय के कारण उसको रत्न कंबल बेहराई (अर्पण की) जिसको लेकर शिवभूति ने आचार्य श्री के पास आकर उनके सामने वह रत्नकंबल रख दी। उसको देखकर सूरिजी ने कहा मुनि! यह बहुमूल्य रत्नकंबल क्यों ली है? कारण साधुओं को तो सादा जीवन गुजारना चाहिये। कंवर लज्जा एवं शित निवारणार्थ जीर्ण प्रायः अल्प मूल्य के वस्त्र से निर्वाह करना चाहिये इत्यादि कह कर इस रत्न कंबल के टुकड़े २ करके सब साधुओं को रजोहरण पर लगाने के लिये निशिथिये करके दे दिये। इस पर शिवभूति के दिल में तो बहुत आई पर गुरु के सामने वह कर क्या सकता था। दूसरे वैराग्य एवं आत्मार्थीपना उसमें था नहीं उसने तो केवल माता के तिरस्कार से ही दीक्षा ली थी।

एक समय आचार्य श्री साधुओं को आगम वाचना दे रहे थे उसमें जिनकल्पी मुनियों का वर्णन आया।

"जिणकप्पिया य दुविहा, पाणीपाया पडिगाह धराय।
पाउरणमपाउरणा एक्केक्के भावे दुविहा" इत्यादि ॥

शिवभूति ने गुरुमुख से जिनकल्पी का वर्णन सुना और कहा कि जब आगमों में जिनकल्पी का विधान बतलाया है तब यह वस्त्र पात्र रूप परिग्रह क्यों रखा जाता है? साधु को एकान्त नग्न रहकर [illegible] अर्थात् बिलकुल नग्न रहकर संयम पालन एवं आराधन करना चाहिये इत्यादि।

आचार्य श्री ने मधुर वचन और आगमों का गम्भीर आशय को समझाया कि इस समय जैसे [illegible] अनेक बातें विच्छेद हो गई हैं इसी प्रकार जिनकल्पीपना भी विच्छेद हो गया है कारण जिनकल्पी [illegible] करने के लिये [illegible] वज्रऋषभनाराचसंहनन की आवश्यकता है वह इस समय विच्छेद हो [illegible] है शिवभूति केवल नग्न रहने से ही जिनकल्पी नहीं कहा जाता है पर [illegible]

[भगवान् महावीर की परम्परा

कुलवास में बीस वर्ष रहकर कम से कम साधिक नौ पूर्व का ज्ञान हासिल करना चाहिये पश्चात् गुरु आज्ञा से ही जिनकल्पीपना धारण किया जाता है अतः न तो इस समय वज्रऋषभनाराच संहनन है और न सब साधु साधिक नौ पूर्व का ज्ञान ही पढ़ सकते हैं इस हालत में जिनकल्पी साधु कैसे हो सकते हैं और कैसे जिनकल्पी मुनि पना का आचार पालन ही कर सकते हैं इत्यादि।

शिवभूति के जिनकल्पीपना का तो एक बायना था उसके हृदय में तो रत्न कॉंबल खट रही थी कि उसने अपने कदाग्रह को नहीं छोड़ता हुआ कहा कि थोड़ा रखे तो भी परिग्रह है और अधिक रखे तो भी परिग्रह। फिर इस पाप का मूल परिग्रह को रखा ही क्यों जाय अर्थात् साधुओं को एकान्त-नग्न ही रहना चाहिये। और जिनकल्पीपना को विच्छेद बतलाना यह केवल वस्त्र पात्र पर ममत्व एवं कायरताका ही कारण है कि अपनी कमजोरी से उस परिग्रह को छोड़ा नहीं जाता है। यदि मनुष्य चाहे तो अभी भी जिनकल्पीत्व पालन कर सकता है इतना ही क्यों पर मैं इस काल में भी जिनकल्पी रह सकता हूँ ?

सूरिजी ने पुनः शिवभूति को समझाने की कोशिश करते हुए कहा शिवभूति ! "धर्मोपकरणमेवैतत् न हु परिग्रहः" अर्थात् धर्मोपकरण को परिग्रह नहीं कहा जाता है और शास्त्रों में भी कहा है कि :—

जन्तवो बहवः सन्तिदुर्दर्शा मासचक्षुषाम् । तेभ्यः स्मृतं दयार्थंतु रजोहरणधारणम् ॥ १ ॥
आसने शयने स्थानेनिक्षेपे ग्रहणे तथा। गात्रसंकोचने चेष्टं तेन पूर्वं प्रमार्जनम् ॥ २ ॥
संति संपतिमाः सत्त्वाः सूक्ष्माश्च व्यापिनोऽपरे। तेषां रक्षानिमित्तं च, विज्ञेया मुखवस्त्रिका ॥ ३ ॥
भवन्ति जन्तवो यास्माद्भक्तपानेषु केषुचित्। तस्मात्तेषां पीरक्षार्थं, पात्रग्रहणमिष्यते ॥ ४ ॥
सम्यक्त्वज्ञानशीलानि, तपश्चेतीह सिद्धये। तेषामुपग्रहार्थांदं, स्मृतं चीवरधारणम् ॥ ५ ॥
शीतवातातपैर्दंशै-र्मशकैश्चापि खेदितः। मा सम्यक्त्वादिषु ध्यानं, न सम्यक् संविधास्यति ॥ ६ ॥
तस्य त्वग्रहणे यत्स्यात्, क्षुद्रप्राणिविनाशनम्। ज्ञान ध्यानोपधातो वा, महान दोषैस्तदैव तत् ॥ ७ ॥
यः पुनरतिसहिष्णुतयैतदन्तरेणापि न धर्मबाधकस्तस्य नैतदस्ति।
य एतान् वर्जयेद्दोषान्, धर्मोपकरणादृते। तस्य त्वग्रहणं युक्तं, यः स्याज्जिन इव प्रभुः ॥ ८ ॥

इत्यादि बहुत समझाया परन्तु प्रबल मोहनीय कर्मोदय से शिवभूति ने गुरु के वचनों को नहीं माना और वस्त्र छोड़ कर एवं नग्न हो कर उद्यान के एक भाग में जाकर बैठ गया। शिवभूति की बहिन ने भी दीक्षा ली थी वह अपने भाई शिवभूति मुनि को वन्दन करने को उद्यान में गई थी। शिवभूति ने उसको ऐसा विपरीत उपदेश दिया कि वह भी कपड़े छोड़ कर नग्न हो गई। जब वह आर्य्यका (साध्वी) नगर में भिक्षार्थ गई तो उसको नग्न देख लोग अवहेलना एवं निन्दा करने लगे क्योंकि पुरुष तो अन्य मत में भी परम हँसादि नग्न रह सकता है पर स्त्री को नग्न किसी ने नहीं देखी थी। अतः शिवभूति की बहिन साध्वी को नग्न देख लोग निन्दा करें यह बात स्वभाविक ही थी। साध्वी को नग्न फिरती देख एक वैश्या को लज्जा आ गई। उसने एक लाल शाटिका (वस्त्र) अपने मकान से इस नग्न साध्वी पर डाला। साध्वी ने उस वस्त्र को लेजा कर अपने भाई शिवभूति (नग्न) मुनि के पास जाकर रख कर सब हाल कह सुनाया। आखिर तो शिवभूति भी मनुष्य ही था। उसने सोचा कि स्त्रियों को नग्न रहना आज भी अच्छा नहीं है

और भविष्य में तो यह और भी अधिक नुकसान का कारण है। अतः वस्त्र साध्वी को वापिस दे दिया और कहा कि यह वस्त्र तुमको देवता ने दिया है अतः तुम इसको पहिनो और यह वस्त्र फट भी जाय तो दूसरा वस्त्र लेकर हमेशा के लिये वस्त्र पहिनती ही रहना। अतः शिवभूति ने साधु नग्न रहें और साध्वी लाल वस्त्र पहिने ऐसा दुरंगा वेश बना कर एक नया मत निकाल दिया जिसको दिगम्बर मत कहते हैं। जैनधर्म में भगवान् महावीर को निर्वाण के बाद यह पहले ही पहिल इस प्रकार मतभेद खड़ा हुआ और इस मतभेद का समय निम्नलिखित गाथा में बतलाया है कि:—

"छव्वास सएहिं नवोत्तेरहिं तइया सिद्धि गयस्स वीरस्स। तो बोडियाण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पन्ना॥"

वीर निर्वाण के पश्चात् ६०९ वर्ष जाने के बाद रथपुर नगर में 'बोडिय' यानि शिवभूति ने एकान्त पक्ष को खींच कर नग्न रहने का नया मत निकाला। जिस को दिगम्बर मत भी कहते हैं।

शिवभूति के दो शिष्य हुये १ कौडिन्य २ कोट्ट वीर बाद उनका परिवार बढ़ने लगा।

इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में पूर्वाचार्य्यों ने दिगम्बरमतोत्पत्ति बतलाई है और भगवान् हरिभद्रसूरि ने आवश्यक सूत्र की वृत्ति में एवं उत्तराध्ययन सूत्र की टीका में तथा और भी जहाँ दिगम्बरोत्पत्ति लिखी है वहाँ सर्वत्र यही बात लिखी है कि भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् ६०९ वर्ष रथवीरपुर नगर में कृष्णाचार्य्य के शिष्य शिवभूति द्वारा दिगम्बर मत की उत्पत्ति हुई।

कोई भी व्यक्ति लड़ झगड़ कर नया पन्थ चलाता है वह स्वयं सच्चा एवं प्राचीन बन कर दूसरों को झूंठा एवं अर्वाचीन बतलाते हैं तदनुसार दिगम्बरों ने भी लिख मारा है कि वीर नि० सं० १६० पाटली पुत्र नगर में श्वेताम्बर मत[1] निकला इसका कारण बतलाते हैं कि भद्रबाहु के समय बारहवर्षीय दुकाल पड़ा था उस समय साधुओं ने शिथलाचारी होकर वस्त्र पात्र रखने शुरू कर दिये और उन साधुओं ने अपना श्वेताम्बर नामक मत चला दिया इत्यादि। कई दिगम्बर[2] विक्रम सं० १३६ वल्लभपुरी में श्वेताम्बर मत निकला बतलाते हैं पर यह सब कल्पना मात्र है या अपने पर आगम उत्थापक एवं निन्हवपना का जो कलंक है उसको छिपाने का एक मात्र मिथ्या उपाय है।

जैन सिद्धान्तों में तो दोनों प्रकार के साधुओं को स्थान दिया है १—जिन कल्पी २—स्थविर कल्पी पर जिनकल्पी वही हो सकता है कि जिसके वज्रऋषभनाराच संहनन हो जब पंचम आरा में वज्रऋषभनाराच संहनन विच्छेद होगया तब जिनकल्पी भी विच्छेद होजाना स्वभाविक ही है। दूसरे केवल नग्न को ही जिनकल्पी नहीं कहा जाता है पर जिनकल्पी के लिये और भी कई प्रकार की कठिनाइयां सहन करनी पड़ती हैं। जो मंद संहनन वाले नग्न रहते हुये भी सहन नहीं कर सकते हैं। तथा जिनकल्पी मुनि को कम से कम नौ पूर्व का ज्ञान होना चाहिये इत्यादि वह शिवभूति में नहीं था। दिगम्बरों ने केवल नग्न रहने का हट पकड़ लिया है और उस हट से दिगम्बरों को कितना नुकसान हुआ है। जरा निम्न लिखित बातों पर लक्ष दीजिये—

१—अव्वल तो दिगम्बर शास्त्रों का कथन है। कि पंचम आरे के अंत तक चतुर्विध श्रीसंघ रहेगा तब फिर

[1] भद्रबाहु चरित्र — जिसका कर्तृत्व [illegible] में जो भद्रबाहु हुए हैं वह वीर निर्वाण के बाद दूसरी शताब्दी के [illegible] दूसरा विक्रम की दूसरी शताब्दी में [illegible] ने दूसरा भद्रबाहु को पहला भद्रबाहु के साथ [illegible] की [illegible] है। [2] देखो [illegible] की [illegible] —

म्बरों में त्रिविध संघ ही रहा। कारण साध्वी नग्न नहीं रह सके और वस्त्र धारण करने पर वे उसमें संयम नहीं मानते हैं अतः त्रिविध संघ ही रहा। इतना ही क्यों पर भूतकाल में अनन्त तीर्थङ्करों के शासन में अनंत सती साध्वियां मोक्षगई उनके लिये भी दिगम्बरों को इन्कार करना पड़ा। यह एक बड़ा भारी उत्सूत्र है। *

२—दिगम्बरों के नग्नत्व के एकान्त हठ पकड़ने से दिगम्बर साधुओं की आज क्या दशा हुई है जो मुनि पृथ्व्यादि छः काया के जीवों का आरंभ करन करावन और अनुमोदन का त्याग कर पंच महाव्रत धारी बने थे और मधुकरी भिक्षा से अपना निर्वाह करते थे (जैन साधु आज भी मधुकरी भिक्षा से निर्वाह करते हैं) वही दिगम्बर बन कर पात्र न होने से एक ही घर में भिक्षा करते हैं अतः वे पूर्वोक्त नियम का पालन नहीं कर सकते हैं। जब इन साधुओं को भिक्षा करते हुए को देखा जाय तो देखने वाले को घृणा आये बिना भी नहीं रहती है और उनका विहार तो बिना गाड़ी और बिना रसोइये के हो ही नहीं सकता है बस दिगम्बरों में नग्नत्व रहता हुआ भी संयम कूच कर गया है।

३—वृद्ध ग्लानी तपस्वी साधु की व्यावच्च करना दिगम्बरों के शास्त्रों में भी लिखा है पर जब वस्त्र पात्र ही नहीं रखा जाय तो आहार पानी कैसे लाकर दे सकते हैं?

४—नग्न रहने का मुख्य कारण परिसह सहन करना और ममत्व भाव से बचना है परन्तु दिगम्बर साधु नग्न रहने में न तो परिसह को सहन करते हैं और न ममत्व भाव से बच ही सकते हैं। शीत काल में नग्न साधु शीत से बचने के लिये मकान के अन्दर उसमें भी घास बिछाना ओड़ना चारों ओर पर्दे लगवाने और अग्नि की अंगीठियें जलाना आदि ये सब सावद्य कार्य्य शरीर के ममत्व से ही किये जाते हैं इसमें कई दिगम्बर मुनि अग्नि शरण भी हो गये फिर केवल एक नग्नत्व का हठ पकड़ने में क्या लाभ हैं।

५—दिगम्बराचार्यों ने अपने ग्रन्थों में स्त्री पुरुष और नपुंसक एवं तीनों वेद वालों की मोक्ष होनालिखा * है परन्तु स्वयं वस्त्र नहीं रखने के कारण स्त्रियों के लिये मोक्ष का निषेध करना पड़ा है पर इस कल्पना को दिगम्बराचार्य ने ही असत्य ठहरा दी है। दिगम्बर मत में कई संघ स्थापित हुए थे उसमें यापनीय संघ भी एक है उस यापनीय संघ में एक शकटायन नाम का आचार्य हुआ उन शकटायनाचार्य ने स्त्रियों को मोक्ष होना और केवली को आहार करने के विषय दो प्रकरण बनाया है वे मूल प्रकरण यहां दर्ज करदिये जाते हैं।

स्त्री-मुक्तिप्रकरणं

प्रणिपत्य भुक्तिमुक्तिप्रदममलं धर्ममर्हतो दिशतः। वक्ष्ये स्त्रीनिर्वाणं केवलिभुक्तिं च संक्षेपात् ॥१॥
अस्ति स्त्रीनिर्वाणं पुंवत्, यदविकलहेतुकं स्त्रीषु। न विरुध्यति हिरत्नत्रयसंपद् निर्वृतेर्हेतुः ॥२॥
रत्नत्रयं विरुद्धं स्त्रीत्वेन यथाऽमरादि भावेन। इति वाङ्मात्रं नात्र प्रमाणमाप्ताऽऽगमोऽन्यद्वा ॥३॥
जानीतेजिनवचनं श्रद्धत्ते, चरति चाऽऽर्यिका शबलम्। नाऽस्याऽसत्यसंभवोऽस्यां नाऽदृष्टविरोध गतिरस्ति
सप्तमपृथिवीगमनाद्यभावमव्याप्तनेव मन्यन्ते। निर्वाणाऽभावेनाऽपश्चिमतनवो न तां यान्ति ॥५॥

---

* दिगम्बर पुराणों में तीर्थंकरों के चतुर्विधि संघ की संख्या दी है, जिसमें ६-७ गुणस्थान वाली साध्वीयों की संख्या भी स्पष्ट है।

विषमगतयोऽप्यधस्ताद् उपरिष्टात् तुल्यमासहस्रारम् । गच्छन्ति च तिर्यञ्चस्तदधोगत्यूनताऽहेतुः ॥६॥
वाद-विकुर्वणत्वादिलब्धिविरहे श्रुते कनीयसि च । जिनकल्प-मनः पर्यवविरहेऽपि न सिद्धिविरहोऽस्ति
वादादिलब्ध्यभाववद् अभविष्यद् यदि च सिद्ध्यभावोऽपि । तासामवारयिष्याद् यथैव जम्बूयुगादारात् ॥८॥
'स्त्री'ति च धर्म विरोधे प्रव्रज्यादोपविंशतौ 'स्त्री'ति । वालादिवद् वदेयुर्न 'गर्भिणी वालवत्से' ति ॥९॥
यदि वस्त्राद् अविमुक्तिः, त्यजेत तद्, अथ न कल्पते हातुम । उत्सङ्गप्रतिलेखनवद्, अन्यथा देश को दृष्टे
त्यागे सर्वत्यागो ग्रहणेऽन्तो दोष इत्युपादेशि । वस्त्रं गुरुणाऽऽर्याणां परिग्रहोऽपीति चुत्यादौ ॥११॥
यत् संयकोपकाराय वर्तते प्रोक्तमेतदुहकरणम् । धर्मस्यहितत् साधनमतोन्यद् अधिकरणमाहाऽर्हन् ॥१२॥
अस्तैन्यवाहिर व्युत्सर्गविवेकैषणादिसमितीनाम् । उपदेशनमुपदेशो ह्युपधेरपरिग्रहत्वस्य ॥१३॥
निग्रन्था······शास्त्रे सर्वत्र नैव युज्येत । उपधेग्रन्थत्वेऽस्याः पुमानपि तथा न निर्ग्रन्थः ॥१४॥
संसक्तौ सत्यामपि चोदितयत्नेन परिहरन्त्यार्या । हिंसावती पुमानिव न जन्तुमालाकुले लोके ॥१५॥
वस्त्रं विना न चरणं स्त्रीणामित्यर्हतोच्यत, विनाऽपि । पुंसामिति न्यवार्यत तत्र स्थविरादिवद् मुक्तिम्
अर्शो-भगंदरादिषु गृहीतचीरो यतिर्न मुच्येत । उपसर्गेवा चीरे ग्दादिः संन्यस्यते चान्ते ॥१७॥
उत्सङ्गमचेलत्वं नोच्येत तदन्यथा नरस्याऽपि । आचेलक्या (क्यं) योग्यायोग्याऽसिद्धेरदीक्ष्य इव ॥१८॥
इति जिनकल्पादीनां युक्त्यङ्गानाम योग्य इति सिद्धेः । स्याद् अष्टवर्षजातादिरयोग्यो ऽदीक्षणीय इव ॥१९॥
संवर-निर्जररूपो वहुप्रकारस्तपोविधिः शस्त्रे । योगचिकित्साविधिरिव कस्याऽपि कथंचिदुपकारी ॥२०॥
वस्त्राद् न मुक्तिविरहो भवतीत्युक्तं, समग्रमन्यच । रत्नत्रयाद् न वाऽन्यद् युक्त्यङ्गं शिष्यते सद्भिः ॥२१॥
प्रव्राजना निषिद्धा क्वचित्तु रत्नत्रयस्य योगेऽपि । धर्मस्य हानि-वृद्धी निरूपयद्भिर्विवृद्ध्यर्थम् ॥२२॥
अनतिवन्द्यत्वान् चेन् संयतवर्गेण नाऽऽर्यिकासिद्धिः । वन्द्यतां ता यदिते, नोनत्वं कल्प्यते तासाम् ॥२३॥
सन्त्यूनापुरुषेभ्यस्ताःस्मारण-चारणादिकारिभ्यः । तीर्थंकराऽऽकारिभ्यो न च जिनकल्पादिरिति गणकर्त्री
अर्हन् न वन्दते न तावनाऽसिद्धिरङ्गगतेः । मासाऽन्यथा विमुक्तिः, स्थानं स्त्री-पुंसयोस्तुल्यम् [नाम्
आकृष्यते श्रिया स्त्री पुंसः सर्वत्र किं न तन्मुक्तौ । इत्यमुना क्षेप्यस्त्री-पुंसां सिद्धिः गममक······
मासादिः पुरुषाणामपि देशादि (ङ्गपादि) प्रसिद्धमानश्च । षण्णां संस्थानानां तुल्या वर्णत्रयस्यापि ॥२७॥
'स्त्री' नाम मन्दसत्त्वा उत्सङ्गमपथना न तेनाऽत्र । ननु कथमनल्पवृत्तयः सन्ति हि शीलाम्बुधेवेलाः ॥२८॥
ब्राह्मी सुन्दर्याऽऽर्या राजीमती चन्दना गणधराऽन्या । अपि देव-मनुज-महिताःविख्याताःशील-सत्त्वा······
गार्हस्थ्येऽपि सुसत्त्वा विख्याता शीलवतितमा जगति । सीतादयः कथं तास्तपसि विसत्त्वा ······
संन्यस्य ······ पति-पुत्र-भ्रातृ-बन्धुमन्वन्वन् । ······ किमसत्त्वं ······
सहसा ······ स्त्री-मिथ्यात्वसहायकेन न सुदृष्टिः । स्त्रीत्वं चिनोति, तद् न, तदर्थं ······
अन्तः कोटी कोटीस्थितिकानि भवन्ति सर्व-कर्माणि । सम्यक्त्वलाभ ······
यस्यान्तेऽन्यत्वं पुरुषासामादिगामः सिद्धिः । स्त्रीणां न मनुष्याणि ······

शब्दनिवेशनमर्थः प्रत्यासत्या क्वचित् कयाचिदतः । तदयोगे योगे सति शब्दस्याऽन्यः कथं कल्प्यः
स्तन-जघनादिव्यङ्ग्ये 'स्त्री' शब्दोऽर्थे, न तं विहायैव । दृष्टः क्वचिदन्यत्र त्वग्निर्माणवकवद् गौणः
आ पष्ठ्या स्त्रीत्यादौ स्तनादिभिस्त्री स्त्रिया इति च वेदः। स्त्रीवेद स्त्र्यनुबन्धास्तुल्यानां शतपृथकत्वोक्तिः
न च पुंदेहे स्त्रीवेदोदयभावे प्रमाणमङ्गं च। भावः सिद्धौ पुंवत् पुंसां अपि (पुंसोऽपि) न सिध्यतो वेदः
क्षपकश्रेण्यारोहे वेदनोच्येत भूतपूर्वेण । 'स्त्री' ति नितरामुख्ये मुख्येऽर्थे युज्यते नेतराम् ॥३९॥
मनुषीषु मनुष्येषु च चतुर्दशगुणोक्तिराजि (र्यि) कासिद्धौ । भावस्तवोपरिक्षिप्य ... नवस्थो नियतउपचारः
पुंसि स्त्रियां, स्त्रियां पुंसि-अतश्च तथा भवेद् विवाहादिः । यतिषु न संवासादिः स्यादगतौ निष्प्रमाणेष्टिः
अनडुह्याऽनड्वाहीं दृष्ट्वाऽनड्वाहमनडुहाऽऽरूढम् । स्त्रीपुंसेतरवेदो वेद्यो ना ऽनियमतो वृतेः ॥४२॥
नाम-तदिन्द्रियलब्धेरिन्द्रियनिर्वृत्तिमिव प्रमाद्यङ्गम् । वेदोदयाद् विरचयेद् इत्यतदङ्गेन तद्वेदः ॥४३॥
या पुंसि च प्रवृत्तिः,पुंसि स्त्रीवत्,स्त्रिया स्त्रियां च स्यात्। सा स्वकवेदात् तिर्यगवदलाभे मत्तकामिन्याः
विगतानुवादनीतौ सुरकोपादिषु चतुर्दश गुणाः स्युः । नव मार्गणान्तर इति प्रोक्तं वेदेऽन्यथा,नीतिः
न च बाधकं विमुक्तेः स्त्रीणामनुशासकं प्रवचनं च। संभवति च मुख्येऽर्थे न गौणइत्यार्यिका सिद्धिः

* इति स्त्री निर्वाण प्रकरणं समाप्तम् ॥

इसके अलावा दिगम्बर समुदाय का परम माननीय ग्रन्थ गोमटसार तथा त्रिलोक्यसार नाम के ग्रन्थों में भी स्त्रियों की मुक्ति होना स्पष्ट शब्दों में उल्लेख मिलता है पर मत्ताग्रह के कारण हमारे दिगम्बर भाई उस ओर लक्ष नहीं देते हैं खैर मैं उस दिगम्बर ग्रन्थ की एक गाथा यहाँ उद्धृत कर देता हूँ—

"वीस नपुंसक वेआ, इत्थीवेयाय हुँति चालीसा । पुं वेआ अडयाला, सिद्धा एक्कम्मि समय म्मि ॥"

अर्थात् एक समय १०८ सिद्ध होते हैं जिसमें २० नपुंसक ४० स्त्रियों और ४८ पुरुष इस प्रकार १०८ की संख्या दिगम्बराचार्यों ने ही बतलाई है इतना ही क्यों पर उन्होंने तो स्त्रियों को चौदहवां अयोग गुणस्थान होना भी लिखा है । गोमटसार जीव कांड की गाथा ७१४ में भी अयोगी स्त्री का जिक्र है एवं स्त्री को १४ वां गुणस्थान बताया है ।

६—दिगम्बरों ने एक नग्नत्व के आग्रह करने में और भी अनेक मिथ्या प्ररूपना करदी है जैसे दिगम्बर कहते हैं कि केवली कवल आहार नहीं करते हैं जो कि यह कथन खास दिगम्बरों के ग्रन्थों से ही मिथ्या साबित होता है । कारण गोमटसार, दिगम्बरीय तत्त्वार्थ सूत्र, तत्त्वार्थसार आदि ग्रन्थों में केवली के ग्यारह परिसह बतलाये हैं जिसमें क्षुधा और पिपासा परिसह भी हैं इनके अलावा दिगम्बराचार्य्य शकटायन ने भी केवली के आहार करने की सिद्धि में एक ग्रंथ निर्माण किया है । वह यहाँ उद्धृत कर दिया जाता है ।

॥ केवलिभुक्तिप्रकरणम् ॥

अस्ति च केवलिभुक्तिः समग्रहेतुर्यथा पुरा भुक्तेः । पर्याप्ति-वेद्य-तैजस-दीर्घायुष्कोदयो हेतुः ॥१॥
नष्टानि न कर्माणि क्षुधो निमित्तं विरोधिनो न गुणाः । ज्ञानादयो जिने किं सा संसारस्थितिर्नास्ति

परमावधेर्भुक्स्थ छद्मस्थस्येव नान्तरायोऽपि । सर्वार्थदर्शनेऽपि स्याद् न चान्यथा पूर्वमपि भुक्तिः॥३२
इन्द्रियविषयप्राप्तौ यद्भिनिबोधमसंजनं भुक्तौ । तच्छब्द-गन्ध-रूप-स्पर्शप्राप्त्या प्रतिव्यूढम् ॥३३॥
छद्मस्थे तीर्थकरे विघ्नणनानन्तरं च केवलिनि । चित्तामलप्रवृत्तौ व्यासैवाऽत्रापि भुक्तवति ॥३४॥
विग्रहगतिमापन्नाद्यागमवचनं च सर्वमेतस्मिन् । भुक्तिं ब्रवीति तस्माद् द्रष्टव्या केवलिनि भुक्तिः
नाऽनाभोगाहारः सोऽपि विशेषितो नाऽभूत । युक्त्याऽभेदे नाङ्गस्थिति-पुष्टि-क्षुच्छमास्तेन
तस्य विशिष्टस्य स्थितिरभविष्यत् तेन सा विशिष्टेन । यद्यभविष्यदिहैषां शाली-तरभोजनेनेव॥३७॥

॥ इति केवलीभुक्ति प्रकरणं ॥

पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि आचार्य शकटायन एक दिगम्बर मत के प्रसिद्ध आचार्य हैं और आप अपने ग्रन्थ में युक्ति पूर्वक केवली को केवल आहार करना सिद्ध कर बतलाते हैं फिर दूसरे प्रमाण की आवश्यकता ही क्या है अतः केवली कवल आहार करते हैं यह श्वेताम्बरों की मान्यता शास्त्रोक्त ठीक है

इनके अलावा दिगम्बरों ने जैन शास्त्रों में क्या-क्या रद्दोबदल किया है उसके लिये महोपाध्यायजी श्रीयशोविजयजी महाराज का बनाया हुआ दिग्पट्ट ८४ बोल और उपाध्याय श्रीमघेविजयजी महाराज कृत युक्ति प्रबोध नामक ग्रन्थों को पढ़ना चाहिये ।

मनुष्य जब आग्रह पर सवार होता है तब इतना हैवान बन जाता है कि वह अपने हिताहित को भी भूल जाता है । यही हाल हमारे दिगम्बर भाइयों का हुआ है ।

अब हम प्राचीन साहित्य की ओर दृष्टिपात कर देखते हैं तो श्वेताम्बरों के पास तीर्थङ्कर कथित एवं गणधररचित द्वादशांग से एक दृष्टिवाद को छोड़ एकादशांग विद्यमान हैं तब दिगम्बरों के पास द्वादशांग से एक भी अंग नहीं है । दिगम्बरों के पास जो साहित्य है वह दिगम्बर मत (वी० नि० सं० ६०९) निकलने के बाद में दिगम्बराचार्य्यों का निर्माण किया हुआ ही है और उसके आदि निर्माणकर्त्ता दिगम्बर आचार्य भूतबली और पुष्पदन्त बतलाये जाते हैं जिन्हों का समय वीरनिर्वाण की सातवीं शताब्दी का है ।

दिगम्बर भाई कहते हैं कि तीर्थङ्कर कथित एवं गणधर रचित सबकेसब आगम अर्थात् द्वादशांग विच्छेद होगये थे और श्वेताम्बरों के पास वर्तमान में जो अंगसूत्र बतलाये जाते हैं वे पीछे से मनः कल्पित नये बनाये हैं और उनके नाम अंग रख दिये हैं । इत्यादि ?

पहिला सवाल तो यही उठता है कि जब तीर्थङ्करप्रणीत सब आगम विच्छेद होगये थे तब दिगम्बराचार्य्यों ने जिन-जिन ग्रन्थों की रचना की वे किन २ शास्त्रों के आधार से की होगी ? कारण, दिगम्बरों की मान्यतानुसार तीर्थङ्करप्रणीत आगम तो सबके सब विच्छेद होगये थे । इससे साबित होता है कि दिगम्बरों ने सब ग्रन्थ मनः कल्पित ही बनाये थे ? या श्वेताम्बराचार्यों के ग्रन्थों से मसाला लेकर अपनी मान्यतानुसार नये ग्रन्थों का निर्माण किया है ?

दिगम्बर लोग कहते हैं कि मुनिधारसेन बड़े ही ज्ञानी एवं दो पूर्वधर थे और इन्होंने अपनी अन्तिमावस्था में यह सोचा कि मैं अपना ज्ञान किसी योग्य मुनि को दे जाऊँ अतः इन्होंने भूतबलि और पुष्पदन्त नाम के मुनियों को बुलाकर ज्ञान पढ़ाया और मुनि भूतबलि ने इस ज्ञान को सबसे पहिले पुस्तक पर

कुछ लिखा है वह मनः कल्पित ही लिखा है। अतः दिगम्बरमत प्राचीन नहीं है। पर श्वेताम्बरों के से निकला हुआ एक अर्वाचीन मत है।

कल्पसूत्र की स्थविरावली में जैनधर्म के आचार्य उनके गण कुल शाखा का वर्णन किया है। आचार्य एवं गण कुल शाखा के नाम मथुरा के कंकाली टीले से मिली हुई मूर्तियों के शिलालेखों मिलते हैं देखिये:—

संवत्सरे ६०………………स्य कुटुँबनिय दानस्य (वोधुय) कोट्टियातोगणतो, प्रश्नवाहनकुलतो, मज्जमातोशाखातो सनिकायभतिगालाए, थवानि………"

यह लेख सम्वत् ६० का एक खण्डित मूर्ति पर का है।

"सं. ४७ ग्र० २ दि २० एतस्य पूर्वाये चारणेगणोयतिधमिक कुलवाचकस्य रोहनदिस शिष्यस्य सेनस्य निर्वतक सावन………इत्यादि।

यह लेख सम्वत् ४७ का एक पत्थर खण्ड पर है।

"सिद्ध, नमोअरिहंतो महावीरस्य देवस्य, राज्ञावसुदेवस्य, संवत्सरे ९८ वर्षे मासे ४ दिवसे ११ एतस्य पूर्वा वे आर्य रोहतियतोगणतो परिहासककुलतो पोनपत्रिकातो शाखातो गणस्य आर्यदेवदत्तस्य………इत्यादि।

"सिद्धं सं० ९ हे० ३ दिन १० गहमित्रस्य धितुशीवशिरिस्य वधु एकडलस्य कोट्टियातो गणतो, आर्य तरिकस्य कुटुविनिये, टानियातो कुलतो वैरातो शाखातो निवर्तना गहपलाये दिति"

इन शिलालेखों से स्पष्ट पाया जाता है कि भगवान् महावीर की परम्परा के आचार्य, गण, कुल, शाखा जो पूर्वोक्त शिलालेखों में लिखा हैं वह श्वेताम्बर समुदाय के पूर्वज ही थे एवं कल्पसूत्र की स्थविरावली में उपरोक्त गण कुल शाखाओं का विस्तार से उल्लेख मिलता है:—

इनके अलावा डा० जेकोबी लिखते हैं कि:—

Additions and alterations may have been made in the sacred texts after that time; but as our argument is not based on a single passage or even a part of the Dhammpada, but on the metrical laws of a variety of metres in this and other Pali Books, the admission of alterations and additions will not materially influence our conclusion, viz; that the whole of the jain siddhanta was composed after the fourth century B. C.

इनके अलावा और आगे चलकर हिन्दूधर्म के शास्त्रों को देखिये जैन मुनियों के लिये क्या कहा है—

"मुण्डं मलिनं वस्त्रं च कुण्डिपात्रसमन्वितम्। दधानं पुंजिकां हस्ते चालयन्तं पदे पदे ॥ १ ॥
वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं क्षिप्यमाणं मुखे सदा। धर्मेति व्याहरन्तं तं नमस्कृत्य स्थितं हरिः" ॥ २ ॥

[illegible]

हस्ते पात्रं दधानाश्च तुण्डे वस्त्रस्य धारकाः। मलिनान्येव वासांसि धारयन्तोऽल्पभाषिणः ॥ [illegible]
धर्मेति लाभः परं तत्र वदन्तो [illegible] । मार्जनी [illegible] ॥ [illegible]

मथुरा का कंकाली टीला के भूगर्भ से मिला हुआ
प्राचीन आयगपट जो दो हजार वर्षों से भी अधिक प्राचीन है।

मथुरा के कंकाली टीला के खोद काम करते समय
भू गर्भ से मिली हुई प्राचीन खण्डित जैन मूर्तियाँ।

इन पुराणों के श्लोकों में जैन साधुओं का वर्णन किया है जिसमें वस्त्र रजोहरणऔर मुखवस्त्रिका वाले साधुओं को जैनसाधु कहा है। अतः निर्विवाद सिद्ध होता है कि जैनसाधु प्राचीन समय से ही वस्त्र रजोहरण और मुखवस्त्रिका रखते थे।

अब आप जरा बौद्धग्रन्थों की ओर दृष्टि डालकर देखिये वे क्या लिखते हैं:—

"बौद्धग्रन्थ धम्मपद पर बुद्धघोषाचार्य्य ने टीका रची है उसमें आप लिखते हैं कि निर्गन्थ (जैनसाधु) नीति मर्यादा के लिये वस्त्र रखते हैं"। इससे पाया जाता है कि भगवान् महावीर के समय जैन साधु वस्त्र रखते थे।

इनके अलावा अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने जैन साहित्य का अवलोकन कर अपना मत प्रकट किया है कि भगवान् पार्श्वनाथ के साधु पांचवर्ण के वस्त्र रखते थे तब भगवान् महावीर के साधु एक श्वेतवर्ण के वस्त्र रखते थे जिसके लिये सावत्थी नगरी में भगवान् पार्श्वनाथ के संतानिये केशीश्रमणाचार्य और गौतमस्वामी के आपस में चर्चा हुई जिसका वर्णन उत्तराध्ययनसूत्र के २३ वें अध्ययन में विस्तार से लिखा है।

अब जरा खास दिगम्बराचार्य्यों के प्रमाणों को ही देखिये कि ये अपने ग्रन्थों में क्या लिखते हैं:—

शय्यासनोपधानानि शास्त्रोपकरणानि च। पूर्वं सम्यक् समालोच्य प्रतिलिख्य पुनः पुनः ॥ १२ ॥
गृह्णतोऽस्य प्रयत्नेन क्षिपतो वा धरातले। भवत्यविकला साधोरादानसमितिः स्फुटम् ॥ १३ ॥

श्री शुभचन्द्राचार्य्य फरमाते हैं कि :— ज्ञानार्णव अठारहवां अध्याय

"पिण्डं तथोपधिं शय्यामुद्गमोत्पादनादिना। साधोः शोधयतः शुद्धा ह्येषणासमिति भवेत्"॥५॥

श्री अमृतचन्द्रसूरि तत्त्वार्थसार में लिखते हैं कि :— (संवरतत्त्व)

"णाणुवहिं संजमुवहिं तव्वुववहिमण्णमवि उवहिं वा। पयदं गहणिक्खेवो समिदी आदाननिक्खेवा" ॥

कुन्दकुन्दाचार्य मूलाचार में कहते हैं:—

राजवार्तिकाकार क्या फरमाते हैं:—

"परमोपेक्षासंयमाभावे तु वीतरागशुद्धात्मानुभूतिभावसंयमरक्षणार्थं विशिष्टसंहननादिशक्त्यभावे सति यद्यपि तपः पर्यायशरीरसहकारीभूतमन्नपानसंयमशौचज्ञानोपकरण तृणमयमावरणादिकं किमपि गृह्णाति तथापि ममत्वं न करोतीति"

इन दिगम्बराचार्य्यों के कथनानुसार साधु संयम के रक्षार्थ आवश्यक उपधि रख सकते हैं यदि उस उपकरण उपधि पर ममत्व भाव रखते हों तो परिग्रह का कारण कहा जा सकता है। यही बात श्वेताम्बर शास्त्र कहता है कि "मुच्छापरिग्गहोवुत्तो" किसी भी उपाधि वगैर पर ममत्व भाव रखना परिग्रह है दूसरा नहीं पर कमण्डलु मोरपिच्छा और घास का संस्तारा तो दिगम्बर मुनि भी रखते हैं। यदि ममत्व का तांता नहीं छुटा हो तो इन पर भी मुर्च्छा आसकती है इतना ही क्यों पर शरीर पर मुर्च्छा एवं ममत्व आ जाय तो वह भी परिग्रह ही है—यदि जिसके ममत्व का तांता ही टूट गया है तो मरुदेवी जैसों को वस्त्राभूषण पहने हुई को भी केवल ज्ञान होगया था। तो साधुओं के उपधि की तो बात ही क्या है?

इत्यादि उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है कि दिगम्बरों ने नग्न रहने का केवल एक हट पकड़

रक्खा है । और इस हठ के कारण ही जैन शासन में फूट डालकर अपना कल्पित मत चलाया है । वास्तव में श्वेताम्बर समुदाय भगवान महावीर की सन्तान परम्परा प्राचीन है और दिगम्बर स्वच्छन्दचारी [illegible] मत है । इसके लिये अब विशेष प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है ।

जैसे श्वेताम्बर समुदाय में गण कुल शाखा गच्छ वगैरह भेद प्रभेद हैं वैसे दिगम्बर समुदाय में संघ गच्छ और इनके भेद प्रभेद है परन्तु विशेषता यह है कि श्वेताम्बर समुदाय में जितने गच्छ हुए हैं [illegible] एक दो गच्छ को छोड़कर सबकी मान्यता-श्रद्धा प्ररूपना एक ही है जब दिगम्बरों में मूलमतोत्पत्ति के [illegible] में जितने भेद प्रभेद हुए उन सबकी श्रद्धा प्ररूपना पृथक-पृथक है वह भी एक दूसरे से खिलाफ अर्थात् एक दूसरे को मिथ्यात्वी बतलाते हैं ठीक है जिसकी मूल मान्यता ही मिथ्यात्व से उत्पन्न हुई हो उनका यही [illegible] होता है पाठकों के अवलोकनार्थ दिगम्बर समुदाय के भेद प्रभेद का थोड़ा हाल यहां लिख दिया जाता है:

१—मूलसंघ—इस संघ की स्थापना आचार्य अर्हद्दली द्वारा हुई और इस संघ के कई भेद प्रभेद जैसे—

a—सिंहसंघ—सिंह की गुफा में चतुर्मास करके आने वाले मुनियों का सिंह संघ हुआ इस संघ से नूरगण और चन्द्रकपाट गच्छ निकला

b—नंदिसंघ—नंदिवृक्ष के नीचे चतुर्मास करके आने वाले मुनियों का नंदि संघ हुआ और इस संघ से बलात्कारगण तथा सरस्वती एवं पराजीत गच्छ निकला

c—सेनसंघ—सेनवृक्ष के नीचे वर्षाकाल व्यतीत करके आने वाले मुनियों का सेन संघ हुआ इस संघ को वृषभ संघ भी कहते हैं और सुरथगण और पुष्कर गच्छ इस संघ की शाखाएं हैं

d—देवसंघ— देवदत्ता वैश्या के वहां चतुर्मास करके आने वाले मुनियों का नाम देवसंघ हुआ इस संघ से देशीयगण और पुस्तकगच्छ निकला

इन चार संघों की स्थापना का कारण के लिये श्रुतावतार ग्रन्थ के करता लिखता है कि एक समय अर्हद्दली आचार्य ने सोचा कि अब केवल उदासीनता से ही धर्म नहीं चलेगा पर संघ ममत्व से ही धर्म चलेगा अतः उन्होंने संघों की स्थापना करके धर्म को चलाया

इन संघों के स्थापन का समय श्रुतावतार तथा दर्शनसार ग्रन्थों के अनुसार वीर निर्वाण से [illegible] वर्ष का है तब कवि मेघराज के मतानुसार इन संघों का समय आचार्य अकलंकदेव के स्वर्गवास के बाद का है ऐसा एक शिला लेखमें सिद्ध होता है क्योंकि अकलंकदेव के पूर्व बने हुए भगवती आराधना पद्मपुराण [illegible] आदि किसी भी ग्रन्थ में इन संघों का उल्लेख नहीं मिलता है और आचार्य अकलंकदेव के समकालीन आचार्य विद्यानन्दी प्रभाचन्द्र माणिक्यनंदि आदि आचार्यों के भी अनेक ग्रंथ हैं पर उनमें भी इन संघों का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है अगर इन आचार्यों के समय प्रस्तुत संघ होते तो कहीं न कहीं उल्लेख अवश्य किया जाता ? हाँ आचार्य गुणभद्र का उत्तरपुराण में सबसे पहला सेनसंघ का उल्लेख हुआ है और गुणभद्र आचार्य अकलंकदेव के बाद प्रसिद्ध थे अतः यह मानना ठीक होगा कि इन संघों की स्थापना का समय आचार्य अकलंक देव के बाद अर्थात् विक्रम की नौवीं शताब्दी के आस पास का ही है—

२—द्राविड़ संघ-जैनेन्द्र व्याकरण के कर्त्ता पूज्यपाद तथा देवनंदि के शिष्य वज्रनंदि द्वारा इस संघ की स्थापना हुई वज्रनन्दि बड़े भारी विद्वान थे । देवसेनसूरि ने आपको 'पाहुडवेदि' [illegible]

श्रवण वेलगुल की मल्लिपण प्रशस्ति में वज्रनन्दि के नव स्तोत्रनामक ग्रंथ का उल्लेख कर बहुत प्रशंसा करते हुए प्रशस्तिकर "सकलार्हत्प्रवचनप्रपञ्चान्तर्भाव प्रवणवर सन्दर्भसुभगम" का विशेषण से भूषीत किया है।

दक्षिण प्रान्त की मथुरा (मदुरा) नगरी में इस संघ की स्थापना हुई मथुरा द्राविड़ देश में होने से इस संघ का नाम 'द्राविड़' संघ हुआ हैं तथा द्रमिल संघ इसका दूसरा नाम है तथा पुन्नाटसंघ कि जिसमें हरिवंश पुराण के कर्त्ता जिनसेनाचार्य हुए हैं वह भी द्राविड़ संघ का नामान्तर हैं। इस संघ में भी कई अंतर्भेद है क्योंकि वादीराजसूरि को द्राविड़ संघ के अन्तर्गत नंदि संघ की अरंगलि शाखा के आचार्य बतलाये हैं। इस संघ में कवि एवं तार्किक और शाब्दिक प्रसिद्ध वादिराजसूरि त्रैविद्य विद्येश्वर, श्रीपालदेव, रूपसिद्धि व्याकरण के कर्ता दयापाल मुनि जिनसेन वगैरह कई विद्वान हुए यह भी कहा जाता है कि तामील एवं कनड़ी साहित्य में इस संघ के बहुत ग्रन्थ मिलते हैं।

दर्शनसार ग्रंथ के कर्त्ता इस संघ की उत्पत्ति वि० सं० ५३५ में बतलाई है और पांच जैनाभासों में इस संघ की भी गणना की है। इस संघ की श्रद्धा और प्ररूपना मूलसंघ से नहीं मिलती हैं अतः कतिपय बातें यहां दर्ज करदी जाती हैं जो विद्यानन्दिने अपने ग्रन्थों में लिखी हैं।

१—अप्राशुक चना खाने में मुनि को दोष नहीं लगता है।

२—प्रायश्चित वगैरह के कई शास्त्रों को रद्दोबदल कर नये बना दिये हैं।

३—बीज मात्र में जीव नहीं होते हैं!

४—मुनियों को खड़े रह कर आहार करने की जरूरत नहीं है।

५—मुनियों के लिये प्रासुक अप्रासुक की क़ैद क्यों होनी चाहिये।

६—मुनियों के लिये सावद्य और गृहकल्पित दोष नहीं मानना चाहिये।

७—उसने लोगों से खेती वसति वाणिज्यादि करवाने का उपदेश देने अदोष बतला दिया था तथा कचा जल में भी जीव नहीं मान कर उसका उपयोग करने लग गया था इत्यादि तथा दिगम्बर ग्रन्थ कारों ने भी कई ग्रन्थों में इस विषय के लेख भी लिख दिया है +

उपरोक्त बातों के लिए निश्चयात्मिक तो जब ही कहा जा सकता है कि इस संघ वालों का बनाया हुआ यतिआचार या श्रावकाचार वगैरह ग्रन्थ उपलब्ध हो सकें और उन ग्रन्थों के अन्दर उपरोक्त बातों का प्रतिपादन किया हुआ मिले—

३—यापनीय संघ—इस संघ की स्थापना कल्याण नगर से विक्रम सं० ७०३ में हुई है कहा जाता है कि श्वेताम्बराचार्य श्रीकलस द्वारा इस संघ का प्रार्दुभाव हुआ है।

"कल्लाणे वर नयरे सत्तसए पंच उतरे जादे। जवनिय संघ भट्टो सिरि कलसादो हु सेवड़ दो॥"

शकटायन व्याकरण कर्त्ता श्रुतकेवली देशीयाचार्य शकटायन तथा पाल्यकीर्ति वगैरह इस संघ के

+ पाषाण स्फोटितं तोयं घटीयंत्रेण ताडितं। सद्यसन्तप्तवापीनं प्रासुकं जल मुच्यते ॥६३॥

'मा० [illegible]

मुहूर्त गालितं तोयं प्रासुकं प्रहर द्वयं। उष्णादेयामहोरात्र मात समुर्च्छितं तन्वेत् ॥११६॥

"वृक्ष पर्णोपरी पतित्व यज्जलं सुन्तु परिपतितितप्रासुकं" ([illegible])

विलोडितं यत्र तत्र विक्षिप्तं वस्त्रादिगलितं जलं ॥ ([illegible])

विद्वानाचार्य थे । इस संघ के शकटायान नामक आचार्य ने स्त्रियों को मोक्ष और केवली आहार करने सिद्धि में छोटे-छोटे दो ग्रन्थों का निर्माण किया जिनको इस लेख के अन्दर उद्धृत कर दिये हैं ।

४—काष्टासंघ—इस संघ की स्थापना - आदि पुराण के कर्ता जिनसेनाचार्य के गुरुभाई विनयसेन और विनयसेन का शिष्य कुमारसेन द्वारा हुई है कुमारसेन ने नन्दि तट नामक नगर में सन्यास धारण पर वाद में सन्यास पद से भ्रष्ट होकर दूसरे किसी के पास पुनः दीक्षा न लेकर उसने अपना अलग सं० स्थापन कर काष्टा संघ नाम रख दिया । और कुमारसेन के समय में ही यह संघ वागड़ प्रान्त में फैल गया था दर्शनसारग्रन्थ के कर्ता देवसेनाचार्य ने इस संघ की उत्पति का समय विक्रम सं० ७५३ का बतलाया है और इसको भी पांच जैनाभासों में गिना है—और कुमारसेनको मिथ्यात्वी तथा उन्मार्ग प्रवृतक बतलाया है। इस संघ की मान्यता दिगम्बर मत्त से भिन्न है उसका थोड़ा सा नमूना—

(१)— स्त्रियों को मुनि दीक्षा देने का विधान कर दिया ।

(२)—क्षुल्लक यानि छोटे साधुओं को वीरचर्या (अतापनायोग) की आज्ञा देदी ।

(३)—मयूर पिच्छी के स्थान गाय के वालों की पिच्छी रखने का विधान किया ।

(४)—रात्रि भोजन पहलाव्रत की भावना माना जाता था जिसको छट्ठा अणुव्रत नाम का पृथक व्रत मानकर छट्ठा व्रत स्थापना किया ।

(५)—आगम शास्त्र और प्रायश्चितादि नये ग्रन्थ बनाकर मिथ्यात्व फैलाया इस संघ में नन्दितट माथुर वागड़ और लाडवागड आदि कई भेद हैं पर कई लोग माथुर संघ को अलग भी मानते हैं ।

५—माथुर संघ—इसका दूसरा नाम निः पिच्छी संघ भी है इस संघ के मुनि मयूर पिच्छी तथा गाय के पुच्छ के बालों की पिच्छी नहीं रखते हैं कई लोग इस संघ को काष्टा संघ की एक शाखा बतलाते हैं पर काष्टा संघ गाय के पुच्छ के बाल की पिच्छी रखते हैं अतः यह संघ अलग ही माना जाता है दर्शनसार के कर्त्ता देवसेन लिखते हैं कि काष्टा संघ के बाद २०० वर्षों से माथुर संघ की उत्पति हुई है और आचार्य रामसेन ने मथुरा में इस संघ की स्थापना की थी इस संघ की मान्यता है कि अपने संघ के आचार्य की कराई प्रतिष्टा वाली मूर्ति को वन्दन करना दूसरों के कराई मूर्त्ति को वन्दन नहीं करना इसी प्रकार अपने संघ के मुनियों को वन्दन करना दूसरों को नहीं यह एक ममत्व भाव का ही कारण है इस संघ में धर्म परीक्षा सुभाषित रत्नसंदोह आदि ग्रन्थों के कर्त्ता अमितगति आचार्य हुए हैं ।

दिगम्बर समुदाय में उपरोक्त संघ प्राचीन समय में उत्पन्न हुए पर यह प्रथा वहाँ तक ही नहीं रह गई थी परन्तु अर्वाचीन समय में भी उनका प्रभाव जाहिर रहा है जैसे—

१—तारणपंथ—इस पन्थ के स्थापक एक तारण स्वामि नाम का साधु विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में हुए । जैसे श्वेताम्बर समुदाय में लोंकाशाह ने मूर्ति पूजा का निषेध कर अपना पन्थ चलाया था वैसे ही दिगम्बर समुदाय में तारणस्वामि ने मूर्तिपूजा का विरोध कर नया पन्थ चलाया परन्तु तारणपन्थ में पुस्तकों की पूजा करते हैं जिनमें श्री तारणस्वामि के बनाये हुए १४ ग्रन्थ हैं उनकी पूजा भक्ति [illegible] किया करते हैं ।

२—[illegible] इस दिगम्बर समुदाय में भट्टारकों का और [illegible] बढ़ने लगा [illegible] [illegible] वि० सं० १६८३ में [illegible] नाम का एक नया पन्थ का प्रादुर्भाव

हुआ इस पन्थ में भट्टरकों का थोड़ा भी मान सन्मान नहीं है इतना कि क्योंपर परमेश्वर की मूर्तिकों प्रक्षाल केसर चन्दन की पूजा तथा पुष्पफल आदि का भी निषेध है।

३—वीसपन्थी—जो लोग भट्टारकों की पक्ष में रहे वह वीसपन्थी कहलाये इस पन्थ में परमेश्वर की मूर्त्ति का पूजन प्रक्षाल जल चन्द्रन धूप दीप पुष्पफल से पूजा करते हैं।

४—गुमानपन्थी—इस पन्थ की उत्पत्ति 'मोक्ष मार्ग प्रकाश' ग्रन्थ के कर्ता पं० टोडरमलजी के पुत्र गुमानीरामजी द्वारा हुई है इस पन्थ में जिनमन्दिरों में रात्रि में दीपक करने की तथा प्रक्षलादि करने की बिलकुल मनाई करते हैं अर्थात् मूर्त्ति के दर्शन करते हैं इस मत की उत्पत्ति का समय वि० सं० १८१८ के आसपास का बतलाया जाता है।

५—तोतापन्थी—दिगम्बर आम्नय में एक तोतापन्थ नाम का भी पंथ है।

६—साढ़ सोलह पन्थी वीसपन्थी और तेरहपन्थी दोनों मिल कर एक साढ़ा सोलह पन्थ का पन्थ निकाला है पर यह अभी नागोर से आगे नहीं वढ़ सका—

इनके अलावा वर्तमान में भी कई मत भेद हैं परन्तु उनको संघ पन्थ न कहकर दल एवं पार्टियें कहते हैं शास्त्र छपाने के विषय में एक छपाने वाला दल दूसरा नहीं छपाने वाला दल। पुराणी रूढ़ियों को मानने वाली वाबू पार्टी और नया जमाना के सुधारक पंडित पार्टी इत्यादि।

जैसे श्वेताम्बर समुदाय में ओसवाल पोरवाल श्रीमालादि बहुत सी जातियाँ हैं इसी तरह दिगम्बर समुदाय में भी खंडेलवाल, वघेरवाल, नरसिंहपुरादि कई जातियें हैं जिनमें मुख्य जाति खंडेलवाल है इसको सरावगी भी कहते है प्रसंगोपात दिगम्बर जातियों की उत्पत्ति संक्षिप्त यहाँ लिख दी जाती है।

मत्सदेश में खंडेला नाम का एक नगर था वहाँ पर सूर्यवंशी खंडेलगिर राजा राज करता था एक समय देश भर में मरकी का भयंकर रोग उत्पन्न हुआ जिससे कई आदमी मर गये कई बीमार हो गये जिसको देख राजा को बहुत फिक्र हुआ अतः राजा ने बहुत से उपाय किये पर शान्ति नहीं हुई। तब राजा ने ब्राह्मणों को बुला कर पूछा कि भूदेवों! देश भर में रोग बढ़ता जा रहा है मनुष्य एवं पशु मर रहे हैं अतः इसकी शान्ति के लिये कुछ उपाय करना चाहिये" यह तो हम पहले ही लिख आये हैं कि ब्राह्मण लोग कोई भी छोटा बड़ा कार्य क्यों न हो सिवाय यज्ञ के उनके पास कोई उपाय ही नहीं था अतः भूदेवों ने राजा को कहा कि हे राजन्! नास्तिक जैनों ने यज्ञ करना निषेध करने से नगर एवं ग्राम रक्षक देव को पायमान होने से ही रोगोत्पत्ति हुई हैं इसलिए यदि आप जनता की शान्ति करनी चाहें तो एक वृहद् यज्ञ करवा कर बत्तीस लक्षण संयुक्त पुरुष की बली देकर सब देवताओं को संतुष्ट करें ताकि वह शान्त हो कर दुनिया में शान्ति कर देगा। हे नरेन्द्र! केवल एक आप ही यज्ञ नहीं करवाते हो पर पूर्व जमाना में बहुत से राजा महाराजाओं ने यज्ञ करवा कर जनता की शान्ति की है शास्त्रों में अनेक प्रकार के यज्ञों का विधान है जैसे गोमेधयज्ञ गजमेधयज्ञ अश्वमेधयज्ञ अजामेधयज्ञ नरमेधयज्ञ इत्यादि आप अपनी एवं जनता की शान्ति चाहते हो तो विना विलम्ब नरमेधयज्ञ करवाइये? राजा अपने भद्रिक परिणामों एवं जनता की शान्ति के लिए ब्राह्मणों के कहने को स्वीकार कर नरमेधयज्ञ करवाने का निश्चय कर लिया बस फिर तो था ही क्या ब्राह्मणों के घर-घर में खुशियें मनाई जाने लगी कारण इस कार्य में ब्राह्मणों का खूब स्वार्थ एवं जिन्दगी की आजीविका थी।

शुभ मुहूर्त में ब्राह्मणों ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया बहुत से निरापराधि मूक प्राणियों को बली लिए एकत्र किये पर यह तो था नरमेध यज्ञ इसके लिए तो किसी लक्षण संयुक्त मनुष्य की आव थी राजा के आज्ञाकारी आदमी एक ऐसे पुरुष की तलाश में सर्वत्र घूम रहे थे फिरते २ वे स्मशानों ओर चले गये वहाँ एक दिगम्बर जैन मुनि ध्यान में खड़ा था उसको योग्य समझ कर वे आदमी उस मु को ही पकड़ कर यज्ञ शाला में ले आये जिसको देख कर ब्राह्मणों ने बड़ी खुशी मनाई कारण यज्ञ निषेध करने वाले का ही यज्ञ में बली दी जाय इससे बढ़ कर ब्राह्मणों को और क्या खुशी होती है।

जैन मुनि ने वहाँ का रंग ढंग देख कर जान लिया कि इस यज्ञ में मेरी बली होने वाली है उस ब्राह्मणों के साम्राज्य में विचारा वह मुनि कर भी तो क्या सकता था कारण धर्म के रक्षक राजा है तब खुद राजा ही इस प्रकार का अत्याचार करे तो फिर रक्षा करने वाला ही कौन ? मुनि ने विचा किया कि केवल मेरे लिये ही यह कार्य नहीं है पर पूर्व जमाने में ऐसे अनेक कार्य बन चुके हैं जैसे गजसुकुमार मुनि के सिर पर अग्नि के अंगारे ब्राह्मण ने ही रखा था. खंदक मुनि की खाल भी ब्राह्मणों ने उतारी थी खंदकाचार्य के पांच सौ मुनियों को ब्राह्मणों ने घानी में डालकर पिला दिये थे और निमूची ब्राह्मण ने जैन मुनियों को देश पार हो जाने की आज्ञा दे दी थी इत्यादि। पर इस प्रकार के अत्याचारों के सामने भी जैनमुनियों ने समभाव रखकर अपनी सहन शीलता का परिचय दिया था आज मेरी कसोटी का समय है उन महापुरुषों का अनुसरण मुझे भी करना चाहिये बस ! मुनि अपनी आलोचना प्रतिक्रमण कर कर्मों से युद्ध करने को केसरिया करके तैयार हो गए। बाद, उन निर्दय दैत्यों यानी ब्राह्मणों ने उन महर्षि मुनि की बली के नाम पर ज्वाजल्यमान अग्नि में डाल कर भस्म भूत कर डाला परन्तु लोही का खरड़ा हुआ कपड़ा लोही से धोने से साफ थोड़ा ही होता है वह तो डबल रक्त रंजित हो जाता है यही हाल ब्राह्मणों का हुआ क्योंकि पापोदय से तो भयंकर रोग पैदा हुआ था और उसकी शान्ति के लिये एक महान तपस्वी भी जगत का उद्धार करने वाले मुनि को बुरी हालत से मार डालना यह तो महा घातकी पातक था इससे तो रोग ने और भी भयंकर रूप धारण कर जनता में त्राहि २ मचादी राजा से इस त्रास हालत को देखी नहीं गई जब ब्राह्मणों को बुलाकर राजा ने कहा तो ब्राह्मणों का तो स्वार्थ सिद्ध होने से उनके तो शान्ति हो ही गई थी ब्राह्मणों ने कहा 'हरेच्छा' ईश्वर की यही इच्छा है इसके अलावा बिचारे ब्राह्मण कह भी तो क्या सकते ब्राह्मणवर्ग के आचार्य तथा उनका कुटुम्ब भी तो रोग के कवलिये बन रहे थे।

एक दिन राजा [illegible] मुनिहिंसा की फिक्र करता हुआ रात्रि में सो रहा था अर्द्ध निद्रावस्था में राजा क्या देखता है कि वह नग्न मुनि राजा के पास आया और कहा कि राजन् ! तूने बड़ा भारी अनर्थ किया है इस अनर्थ का फल तुमको और ब्राह्मणों को नरक में भोगना पड़ेगा चल मैं तुझे नरक दिखा देता हूँ राजा को नरक में ले गया तो वहाँ अग्नि के कुण्ड जल रहे हैं यम लोग पापिष्ट जीवों को अग्नि में [illegible] रहे हैं इत्यादि घोर वेदना को देख राजा थरथर कांपने लग गया। फिर [illegible] राजा ने मुनि से दीन स्वर से प्रार्थना की कि हे मुनि ! मैंने ब्राह्मणों के वश में पड़कर [illegible] कर डाला है इसका फल सिवाय नरक के और कुछ नहीं मिल सकता है पर आप [illegible] कृपाकर मुझे ऐसा रास्ता बतलावें कि मैं इस पाप से मुक्त होकर [illegible]

तब मुनि ने कहा राजन् ! यदि मैं चाहूँ तो [illegible] ब्राह्मणों सहित [illegible]

मेरा साधुधर्म की आराधना के कारण स्वयं मरना स्वीकार कर लिया उस धर्म के प्रभाव से ही मैं स्वर्ग में देव यानि को प्राप्त हुआ हूँ यदि आप उस पाप से मुक्त होना चाहते हो तो कल आपके वहां जिनसेन नामक आचार्य ५०० साधुओंके साथ पधारेंगे। आप सब लोग उनका सन्मान एवं सत्कार कर तथा व्याख्यान सुन जैनधर्म एवं अहिंसापरमोधर्म को स्वीकार कर लेना हिंसासे किये हुए कर्म अहिंसा से ही छूटते हैं। हे राजन् ! जैनधर्म पवित्र एवं पतितों को पावन और अधर्म्मों का उद्धार करने वाला धर्म है इत्यादि कह कर देवता तो अदृश्य हो गया बाद राजा की आंखें खुल गई सावचेत हो कर राजा सोचने लगा कि आज यह कैसा स्वप्न आया है क्या मैंने स्वप्न में देखा वह सब सत्य है ? यदि सत्य ही है तो मेरी क्या गति होगी ? वास्तव में मैंने बड़ा भारी अनर्थ किया है एक साधारण जीव को मारना भी पाप है तो मैंने एक जगत्उद्धारक महात्मा को मरवा डाला है इससे सिवाय नरक के और मेरी क्या गति हो सकेगी ? राजा ने सोचा कि पहले तो मुझे रोग की शान्ति का उपाय करना चाहिये। अतः राजा ने ८४ ग्रामों के लोगों को आमन्त्रण करके खंडेला नगर में बुलाये और शान्ति के इच्छुक लोग तत्काल आ भी गये।

इधर से आचार्य जनसेन अपने ५०० शिष्यों के साथ भ्रमण करते हुए खंडेला नगर की ओर पधार गये। जब राजा ने सुना कि जैनाचार्य उद्यान में पधार गये हैं तब उसको स्वप्ने की बात याद आ गई जो मुनिने कही थी राजा इसको ही शान्ति का कारण समझ कर आये हुए ८४ ग्रामों के लोगों के साथ चल कर आचार्य श्री के पास जा कर वन्दन के पश्चात् प्रार्थना की कि हे प्रभो ! मैंने अज्ञान के वश परमार्थ को न समझ कर एक निर्ग्रन्थ मुनि की हिंसा करवा डाली है उसका कूटक फल परभव में तो मिलेगा ही पर इस भव में तो हाथोंहाथ मिल रहा है रोग में खूब वृद्धि हो रही है एक मेरे कारण यह ८४ ग्रामों के लोग दुःख पा रहे हैं पूज्यवर ! आप दया के अवतार, करुणा के समुद्र और सब जीवों के प्रति वात्सल्य भाव रखने वाले हैं अतः आप कृपा कर हम सब लोगों को जीवन दान दिलावें इत्यादि।

आचार्य श्री ने राजादि उपस्थित जनता को उपदेश दिया कि हे भव्यो ! जीव मात्र का कर्तव्य है कि बड़ा से लगा कर छोटा जीवों की रक्षा करे क्योंकि जीव के धन माल राजपाटादि सब सामान छीन लेने पर जितना दुःख नहीं होता है इतना दुःख प्राण हरण में होता है जिसमें संयमी मुनि के प्राण हरण करना इससे तो सिवाय नरक के और क्या गति हो सकती है इत्यादि विस्तार से उपदेश दिया और अन्त में फरमाया कि अब आप इस पाप से तथा रोग से मुक्त होना चाहते हो तो आपके लिये एक ही उपाय है कि आप पवित्र जैनधर्म को स्वीकार कर इसकी ही आराधना एवं प्रचार करो। बस, फिर तो देरी ही क्या थी राजा खंडेलगिरी के साथ ८४ ग्रामों के लोग जो वहां उपस्थित थे सबने बड़ी खुशी से जैनधर्म स्वीकार कर लिया। बाद आचार्य श्री ने उनको धर्म की विधि विधान बतलाते हुए तीर्थंकर भगवान की मूर्ति का स्नात्र वगैरह का उपदेश दिया उन लोगों ने जैन मंदिरों में जाकर स्नात्र कर प्रक्षाल का जल अपने अपने घरों में तथा ८४ ग्रामों वाले उस जल को अपने ग्रामों में ले जाकर सर्वत्र छांटने से रोग की शान्ति हो गई जिससे उन लोगों को धर्म पर और भी दृढ़ विश्वास हो गया।

उस समय ८४ ग्रामों के लोगों ने जैनधर्म को स्वीकार किया था अतः उन समूह की चौरासी जातियें बन गई इसमें कई तो ग्रामों के नाम से कई प्रसिद्ध पुरुषों के नाम से जिसमें जो ग्राम का मुख्या था उसका नाम अमेश्वर रखा गया था उन ८४ ग्राम से ८४ जातियें बन गई जिन्हों का नाम इस प्रकार है—

शुभ मुहूर्त में ब्राह्मणों ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया बहुत से निरापराधि मूक प्राणियों को लिए एकत्र किये पर यह तो था नरमेध यज्ञ इसके लिए तो किसी लक्षण संयुक्त मनुष्य की आव थी राजा के आज्ञाकारी आदमी एक ऐसे पुरुष की तलाश में सर्वत्र घूम रहे थे फिरते २ वे स्मशान ओर चले गये वहाँ एक दिगम्बर जैन मुनि ध्यान में खड़ा था उसको योग्य समझ कर वे आदमी उस को ही पकड़ कर यज्ञ शाला में ले आये जिसको देख कर ब्राह्मणों ने बड़ी खुशी मनाई कारण यज्ञ निषेध करने वाले का ही यज्ञ में बली दी जाय इससे बढ़ कर ब्राह्मणों को और क्या खुशी होती है।

जैन मुनि ने वहाँ का रंग ढंग देख कर जान लिया कि इस यज्ञ में मेरी बली होने वाली है उस ब्राह्मणों के साम्राज्य में विचारा वह मुनि कर भी तो क्या सकता था कारण धर्म के रक्षक राजा है तब खुद राजा ही इस प्रकार का अत्याचार करे तो फिर रक्षा करने वाला ही कौन ? मुनि ने वि किया कि केवल मेरे लिये ही यह कार्य नहीं है पर पूर्व जमाने में ऐसे अनेक कार्य बन चुके हैं जैसे गजसु मुनि के सिर पर अग्नि के अंगारे ब्राह्मण ने ही रखा था, खंदक मुनि की खाल भी ब्राह्मणों ने उतारी खंदकाचार्य के पांच सौ मुनियों को ब्राह्मणों ने घानी में डालकर पिला दिये थे और निमूची ब्राह्मण ने मुनियों को देश पार हो जाने की आज्ञा दे दी थी इत्यादि। पर इस प्रकार के अत्याचारों के सामने जैनमुनियों ने समभाव रखकर अपनी सहन शीलता का परिचय दिया था आज मेरी कसोटी का समय है उन महापुरुषों का अनुसरण मुझे भी करना चाहिये बस ! मुनि अपनी आलोचना प्रतिक्रमण कर कर्मों से युद्ध करने को केसरिया करके तैयार हो गया। बाद, उन निर्दय दैत्यों यानी ब्राह्मणों ने उन महर्षि मुनि को बली के नाम पर ज्वाजल्यमान अग्नि में डाल कर भस्म भूत कर डाला परन्तु लोही का खरड़ा हुआ कपड़ा लोही से धोने से साफ थोड़ा ही होता है वह तो डबल रक्त रंजित हो जाता है यही हाल ब्राह्मणों का हुआ क्योंकि पापोदय से तो भयंकर रोग पैदा हुआ था और उसकी शान्ति के लिये एक महान तपस्वी व जगत का उद्धार करने वाले मुनि को बुरी हालत से मार डालना यह तो महा घातकी पातक था इससे तो रोग ने और भी भयंकर रूप धारण कर जनता में त्राहि २ मचादी राजा से इस त्रास हालत को देखी नहीं गई जब ब्राह्मणों को बुलाकर राजा ने कहा तो ब्राह्मणों का तो स्वार्थ सिद्ध होने से उनके तो शान्ति हो ही गई थी ब्राह्मणों ने कहा 'हरेच्छ' ईश्वर की यही इच्छा है इनके अलावा विचारे ब्राह्मण कह भी तो क्या सकते भाग्यवश वे ब्राह्मण तथा उनका कुटुम्ब भी तो रोग के कवलिये बन रहे थे।

एक दिन राजा मदनसेन मुनिहिंसा की फिक्र करता हुआ रात्रि में सो रहा था अर्द्ध निद्रावस्था में राजा क्या देखता है कि वह नग्न मुनि राजा के पास आया और कहा कि राजन् ! तूने बड़ा भारी अन्याय किया है इस अन्याय का फल तुमको और ब्राह्मणों को नरक में भोगना पड़ेगा चल मैं तुझे नरक दिखा देता हूँ राजा को नरक में ले गया तो वहां अग्नि के कुण्ड जल रहे हैं यम लोग पापिष्ट जीवों को जबरन अग्नि में डाल रहे हैं इत्यादि घोर वेदना को देख राजा थरथर कांपने लग गया। फिर [illegible] अपने स्थान पर आया [illegible] राजा ने मुनि से दीन स्वर से प्रार्थना की कि हे मुनि ! मैंने ब्राह्मणों के चक्र में पड़ कर [illegible] पातक कर डाला है इसका फल सिवाय नरक के और ही नहीं सकता है पर आप [illegible] कृपाकर मुझे ऐसा रास्ता बतलावें कि मैं इस पाप से मुक्त होकर [illegible] इस पर मुनि ने कहा राजन् ! यदि मैं चाहता तो उसी समय ब्राह्मणों [illegible]

मेरा साधुधर्म की आराधना के कारण स्वयं मरना स्वीकार कर लिया उस धर्म के प्रभाव से ही मैं स्वर्ग में देव यानि को प्राप्त हुआ हूँ यदि आप उस पाप से मुक्त होना चाहते हो तो कल आपके वहां जिनसेन नामक आचार्य ५०० साधुओंके साथ पधारेंगे। आप सब लोग उनका सन्मान एवं सत्कार कर तथा व्याख्यान सुन जैनधर्म एवं अहिंसापरमोधर्म को स्वीकार कर लेना हिंसासे किये हुए कर्म अहिंसा से ही छूटते हैं। हे राजन्! जैनधर्म पवित्र एवं पतितों को पावन और अधर्मों का उद्धार करने वाला धर्म है इत्यादि कह कर देवता तो अदृश्य हो गया बाद राजा की आंखें खुल गई सावचेत हो कर राजा सोचने लगा कि आज यह कैसा स्वप्न आया है क्या मैंने स्वप्न में देखा वह सब सत्य है ? यदि सत्य ही है तो मेरी क्या गति होगी ? वास्तव में मैंने बड़ा भारी अनर्थ किया है एक साधारण जीव को मारना भी पाप है तो मैंने एक जगत्उद्धारक महात्मा को मरवा डाला है इससे सिवाय नरक के और मेरी क्या गति हो सकेगी ? राजा ने सोचा कि पहले तो मुझे रोग की शान्ति का उपाय करना चाहिये। अतः राजा ने ८४ ग्रामों के लोगों को आमन्त्रण करके खंडेला नगर में बुलाये और शान्ति के इच्छुक लोग तत्काल आ भी गये।

इधर से आचार्य जनसेन अपने ५०० शिष्यों के साथ भ्रमण करते हुए खंडेला नगर की ओर पधार गये। जब राजा ने सुना कि जैनाचार्य उद्यान में पधार गये हैं तब उसको स्वप्ने की बात याद आ गई जो मुनिने कही थी राजा इसको ही शान्ति का कारण समझ कर आये हुए ८४ ग्रामों के लोगों के साथ चल कर आचार्य श्री के पास जा कर वन्दन के पश्चात् प्रार्थना की कि हे प्रभो! मैंने अज्ञान के वश परमार्थ को न समझ कर एक निर्ग्रन्थ मुनि की हिंसा करवा डाली है उसका कूटक फल परभव में तो मिलेगा ही पर इस भव में तो हाथोंहाथ मिल रहा है रोग में खूब वृद्धि हो रही है एक मेरे कारण यह ८४ ग्रामों के लोग दुःख पा रहे हैं पूज्यवर! आप दया के अवतार, करुणा के समुद्र और सब जीवों के प्रति वात्सल्य भाव रखने वाले हैं अतः आप कृपा कर हम सब लोगों को जीवन दान दिलावें इत्यादि।

आचार्य श्री ने राजादि उपस्थित जनता को उपदेश दिया कि हे भव्यो! जीव मात्र का कर्तव्य है कि बड़ा से लगा कर छोटा जीवों की रक्षा करे क्योंकि जीव के धन माल राजपाटादि सब सामान छीन लेने पर जितना दुःख नहीं होता है इतना दुःख प्राण हरण में होता है जिसमें संयमी मुनि के प्राण हरण करना इससे तो सिवाय नरक के और क्या गति हो सकती है इत्यादि विस्तार से उपदेश दिया और अन्त में फरमाया कि अब आप इस पाप से तथा रोग से मुक्त होना चाहते हो तो आपके लिये एक ही उपाय है कि आप पवित्र जैनधर्म को स्वीकार कर इसकी ही आराधना एवं प्रचार करो। बस, फिर तो देरी ही क्या थी राजा खंडेलगिरी के साथ ८४ ग्रामों के लोग जो वहां उपस्थित थे सबने बड़ी खुशी से जैनधर्म स्वीकार कर लिया। बाद आचार्य श्री ने उनको धर्म की विधि विधान बतलाते हुए तीर्थंकर भगवान की मूर्ति का स्नात्र वगैरह का उपदेश दिया उन लोगों ने जैन मंदिरों में जाकर स्नात्र कर प्रक्षाल का जल अपने अपने घरों में तथा ८४ ग्रामों वाले उस जल को अपने ग्रामों में ले जाकर सर्वत्र छांटने से रोग की शान्ति हो गई जिससे उन लोगों को धर्म पर और भी दृढ़ विश्वास हो गया।

उस समय ८४ ग्रामों के लोगों ने जैनधर्म को स्वीकार किया था अतः उन समूह की चौरासी जातियें बन गई इसमें कई तो ग्रामों के नाम से कई प्रसिद्ध पुरुषों के नाम से जिसमें जो ग्राम का मुख्या था उसका नाम अग्रेश्वर रखा गया था उन ८४ ग्राम से ८४ जातियें बन गई जिन्हों का नाम इस प्रकार है—

शुभ मुहूर्त में ब्राह्मणों ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया बहुत से निरापराधि मूक प्राणियों को लिए एकत्र किये पर यह तो था नरमेध यज्ञ इसके लिए तो किसी लक्षण संयुक्त मनुष्य की थी राजा के आज्ञाकारी आदमी एक ऐसे पुरुष की तलाश में सर्वत्र घूम रहे थे फिरते २ वे स्मशान ओर चले गये वहाँ एक दिगम्बर जैन मुनि ध्यान में खड़ा था उसको योग्य समझ कर वे आदमी उस को ही पकड़ कर यज्ञ शाला में ले आये जिसको देख कर ब्राह्मणों ने बड़ी खुशी मनाई कारण यज्ञ निषेध करने वाले का ही यज्ञ में बली दी जाय इससे बढ़ कर ब्राह्मणों को और क्या खुशी होती है।

जैन मुनि ने वहाँ का रंग ढंग देख कर जान लिया कि इस यज्ञ में मेरी बली होने वाली है उस ब्राह्मणों के साम्राज्य में विचारा वह मुनि कर भी तो क्या सकता था कारण धर्म के रक्षक राजा है तब खुद राजा ही इस प्रकार का अत्याचार करे तो फिर रक्षा करने वाला ही कौन ? मुनि ने वि. किया कि केवल मेरे लिये ही यह कार्य नहीं है पर पूर्व जमाने में ऐसे अनेक कार्य बन चुके हैं जैसे गज मुनि के सिर पर अग्नि के अंगारे ब्राह्मण ने ही रखा था, खंदक मुनि की खाल भी ब्राह्मणों ने उतारी खंदकाचार्य के पांच सौ मुनियों को ब्राह्मणों ने घानी में डालकर पिला दिये थे और निमूची ब्राह्मण ने मुनियों को देश पार हो जाने की आज्ञा दे दी थी इत्यादि। पर इस प्रकार के अत्याचारों के सामने जैनमुनियों ने समभाव रखकर अपनी सहन शीलता का परिचय दिया था आज मेरी कसोटी का समय उन महापुरुषों का अनुसरण मुझे भी करना चाहिये बस ! मुनि अपनी आलोचना प्रतिक्रमण कर कर्मों से करने को केसरिया करके तैयार हो गया। बाद, उन निर्दय दैत्यों यानी ब्राह्मणों ने उन महर्षि मुनि को धर्म के नाम पर ज्वाजल्यमान अग्नि में डाल कर भस्म भूत कर डाला परन्तु लोही का खरड़ा हुआ कपड़ा लोही से धोने से साफ थोड़ा ही होता है वह तो डबल रक्त रंजित हो जाता है यही हाल ब्राह्मणों का हुआ क्योंकि पापोदय से तो भयंकर रोग पैदा हुआ था और उसकी शान्ति के लिये एक महान तपस्वी जो जगत का उद्धार करने वाले मुनि को बुरी हालत से मार डालना यह तो महा घातकी पातक था इससे तो रोग ने और भी भयंकर रूप धारण कर जनता में त्राहि २ मचादी राजा से उस त्रास हालत को देखी नहीं गई जब ब्राह्मणों को बुलाकर राजा ने कहा तो ब्राह्मणों का तो स्वार्थ सिद्ध होने से उनके तो शान्ति हो ही गई थी ब्राह्मणों ने कहा 'हरेच्छा' ईश्वर की यही इच्छा है इनके अलावा विचारे ब्राह्मण कह भी तो क्या सकते भाग्यवशात् वे ब्राह्मण तथा उनका कुटुम्ब भी तो रोग के कवलिये बन रहे थे।

एक दिन राजा मदनसेन मुनिहिंसा की फिक्र करता हुआ रात्रि में सो रहा था अर्द्ध निद्रावस्था में राजा क्या देखता है कि वह नग्न मुनि राजा के पास आया और कहा कि राजन् ! तूने बड़ा भारी अन्याय किया है इस अन्याय का फल तुमको और ब्राह्मणों को नरक में भोगना पड़ेगा चल मैं तुझे नरक दिखा देता हूँ राजा को नरक में ले गया तो वहां अग्नि के कुण्ड जल रहे हैं यम लोग पापिष्ट जीवों को जबरन अग्नि में डाल रहे हैं इत्यादि घोर वेदना को देख राजा थरथर कांपने लग गया। फिर वापिस अपने स्थान पर आया तो राजा ने मुनि से दीन स्वर से प्रार्थना की कि हे मुनि ! मैंने ब्राह्मणों के चक्र में पड़ कर अनजान में महान् पातक का हत्या है इसका फल सिवाय नरक के दो ही नहीं सकता है पर आप परोपकारी महात्मा हैं कृपाकर मुझे ऐसा रास्ता बतलावें कि मैं इस पाप से मुक्त होकर अच्छे स्थान जाने लायक कार्य कर सकूं ? इस पर मुनि ने कहा राजन् ! यदि मैं चाहता तो उसी समय ब्राह्मणों सहित नगर को नष्ट कर सकता था

मेरा साधुधर्म की आराधना के कारण स्वयं मरना स्वीकार कर लिया उस धर्म के प्रभाव से ही मैं स्वर्ग में देव यानि को प्राप्त हुआ हूँ यदि आप उस पाप से मुक्त होना चाहते हो तो कल आपके वहां जिनसेन नामक आचार्य ५०० साधुओंके साथ पधारेंगे । आप सब लोग उनका सन्मान एवं सत्कार कर तथा व्याख्यान सुन जैनधर्म एवं अहिंसापरमोधर्म को स्वीकार कर लेना हिंसासे किये हुए कर्म अहिंसा से ही छूटते हैं। हे राजन् ! जैनधर्म पवित्र एवं पतितों को पावन और अधर्मों का उद्धार करने वाला धर्म है इत्यादि कह कर देवता तो अदृश्य हो गया बाद राजा की आंखें खुल गई सावचेत हो कर राजा सोचने लगा कि आज यह कैसा स्वप्न आया है क्या मैंने स्वप्न में देखा वह सब सत्य है ? यदि सत्य ही है तो मेरी क्या गति होगी ? वास्तव में मैंने बड़ा भारी अनर्थ किया है एक साधारण जीव को मारना भी पाप है तो मैंने एक जगत्उद्धारक महात्मा को मरवा डाला है इससे सिवाय नरक के और मेरी क्या गति हो सकेगी ? राजा ने सोचा कि पहले तो मुझे रोग की शान्ति का उपाय करना चाहिये । अतः राजा ने ८४ ग्रामों के लोगों को आमन्त्रण करके खंडेला नगर में बुलाये और शान्ति के इच्छुक लोग तत्काल आ भी गये ।

इधर से आचार्य जिनसेन अपने ५०० शिष्यों के साथ भ्रमण करते हुए खंडेला नगर की ओर पधार गये । जब राजा ने सुना कि जैनाचार्य उद्यान में पधार गये हैं तब उसको स्वप्ने की बात याद आ गई जो मुनिने कही थी राजा इसको ही शान्ति का कारण समझ कर आये हुए ८४ ग्रामों के लोगों के साथ चल कर आचार्य श्री के पास जा कर वन्दन के पश्चात् प्रार्थना की कि हे प्रभो ! मैंने अज्ञान के वश परमार्थ को न समझ कर एक निर्ग्रन्थ मुनि की हिंसा करवा डाली है उसका कूटक फल परभव में तो मिलेगा ही पर इस भव में तो हाथोंहाथ मिल रहा है रोग में खूब वृद्धि हो रही है एक मेरे कारण यह ८४ ग्रामों के लोग दुःख पा रहे हैं पूज्यवर ! आप दया के अवतार, करुणा के समुद्र और सब जीवों के प्रति वात्सल्य भाव रखने वाले हैं अतः आप कृपा कर हम सब लोगों को जीवन दान दिलावें इत्यादि ।

आचार्य श्री ने राजादि उपस्थित जनता को उपदेश दिया कि हे भव्यो ! जीव मात्र का कर्तव्य है कि बड़ा से लगा कर छोटा जीवों की रक्षा करे क्योंकि जीव के धन माल राजपाटादि सब सामान छीन लेने पर जितना दुःख नहीं होता है इतना दुःख प्राण हरण में होता है जिसमें संयमी मुनि के प्राण हरण करना इससे तो सिवाय नरक के और क्या गति हो सकती है इत्यादि विस्तार से उपदेश दिया और अन्त में फरमाया कि अब आप इस पाप से तथा रोग से मुक्त होना चाहते हो तो आपके लिये एक ही उपाय है कि आप पवित्र जैनधर्म को स्वीकार कर इसकी ही आराधना एवं प्रचार करो । बस, फिर तो देरी ही क्या थी राजा खंडेलगिरी के साथ ८४ ग्रामों के लोग जो वहां उपस्थित थे सबने बड़ी खुशी से जैनधर्म स्वीकार कर लिया । बाद आचार्य श्री ने उनको धर्म की विधि विधान बतलाते हुए तीर्थंकर भगवान की मूर्ति का स्नात्र वगैरह का उपदेश दिया उन लोगों ने जैन मंदिरों में जाकर स्नात्र कर प्रक्षाल का जल अपने अपने घरों में तथा ८४ ग्रामों वाले उस जल को अपने ग्रामों में ले जाकर सर्वत्र छांटने से रोग की शान्ति हो गई जिससे उन लोगों को धर्म पर और भी दृढ विश्वास हो गया ।

उस समय ८४ ग्रामों के लोगों ने जैनधर्म को स्वीकार किया था अतः उन समूह की चौरासी जातियें बन गई इसमें कई तो ग्रामों के नाम से कई प्रसिद्ध पुरुषों के नाम से जिसमें जो ग्राम का मुख्या था उसका नाम ग्रामेश्वर रखा गया था उन ८४ ग्राम से ८४ जातियें बन गई जिन्हों का नाम इस प्रकार है —

सं०	ग्राम	जाति	सं०	ग्राम	जाति	सं०	ग्राम	
१	खंडेला नगर से	खंडेलवाल शाह	२९	दरडो ग्राम से	दरडावत	५७	सरवाड़ी ग्राम से	सवड़िया
२	पाटणी ग्राम से	पाटणी जाति	३०	भंडशाली „	भंडशाली „	५८	निरपाल „	निरपोलिया
३	भैंसाणी ग्राम से	भैंसा जाति	३१	लुहार „	लुहारा „	५९	निरगोदा „	निरगोदा
४	पहाडी ग्राम से	पहाड्या जाति	३२	लिंगीया „	लिंगिया „	६०	चरड „	चडकिया
५	झाझरी ग्राम से	झाझरिया „	३३	छबड़ा „	छबड़ा „	६१	सरपति „	सरपतिया
६	गंगवाली ग्राम से	गंगवाल „	३४	कुलवाड़ी „	काला „	६२	घोरा खेड़ी „	घोर खेड़िया
७	पापड़ी ग्राम से	पापड़ीवाल „	३५	वाहुली „	बोहरा „	६३	कुलभाणी „	कुलभाणिया
८	दोसा ग्राम से	दोसी „	३६	टीगाणी „	टीगा „	६४	गोदड़ा „	गोधी
९	सोठा ग्राम से	सेठी „	३७	वैदिया „	वैद „	६५	दुकड़ा „	दुकड़ा
१०	गोधाणी ग्राम से	गोधा „	३८	कटोतिया „	कटोतिया „	६६	निरपाति „	निरपालिया „
११	चंदला ग्राम से	चांदूवाल „	३९	झाझरी „	झांझरी „	६७	लटवाड़ा „	लाटीवाल
१२	मिठड़िया „	मिठड़िया „	४०	चौदर „	चौधरी „	६८	चेदला „	चेदोलिया „
१३	दरड़ा „	दरडोया „	४१	पाटोल „	पाटोला „	६९	जलवाण „	जलवाणिया „
१४	गोदण „	गदइया „	४२	गोदड़ा „	गोदड़िया „	७०	भूताल „	भूताला „
१५	भूचड़ा „	भूंच „	४३	निगोता „	निगोतिया „	७१	राजभदारा „	राजभद्रा „
१६	वजाणी „	वज „	४४	अनोपडी „	अनोपिया „	७२	क्षेत्रपाल „	क्षेत्रपालिया „
१७	वजवासी „	वजवासिया „	४५	साखोनी „	साखूणिया „	७३	लोहट „	लोहटिया „
१८	राहोली „	राहुका „	४६	पागुंका „	पांगलिया „	७४	मांगड़ „	मांगड़िया „
१९	पाटड़ी „	पाटोदा „	४७	भूतड़ा „	भूसाणिया „	७५	मोमामर „	मोनग्या „
२०	पादणी „	पादोड़ा „	४८	पातोली „	पितलिया „	७६	मसवाड़ा „	मूमालिया „
२१	सोनी „	सोनियाग „	४९	वनमाली „	वनमाला „	७७	अहंकारा „	अहंकारिया
२२	बिलाला „	बिलाला „	५०	आकोडी „	अरड़क „	७८	हंसावली „	राजहंस
२३	बिनायकी „	बिनायक्या „	५१	रावनी „	रावलिया „	७९	चोत्रा „	[illegible] „
२४	वाकली „	वाकलीवाल „	५२	मादोती „	मीदी „	८०	[illegible] „	[illegible]
२५	कांसली „	कासलीवाल „	५३	कोकगोत „	कोकगोता „	८१	[illegible] „	[illegible]
२६	[illegible] „	[illegible] „	५४	जुगड़ी „	जुग राज्या „	८२	[illegible] „	[illegible]
२७	[illegible] „	[illegible] „	५५	मूलोरी „	मूल राज्या „	८३	[illegible] „	[illegible]
२८	[illegible] „	[illegible] „	५६	छाबड़ „	छाबड़्या „	८४	[illegible] „	[illegible] „

इस प्रकार खण्डेलवालों की [illegible] नाम [illegible] है जिनमें कुछ नाम यहाँ दर्ज की हैं और [illegible] के [illegible] किया जाता है उसमें नहीं बदल हो ही जाता है पर यह बात [illegible] है कि [illegible] राजपूतों को प्रतिबोध कर जैन बनाये थे इसके अलावा [illegible]

पुस्तक में इन ८४ जाति के नाम छन्दवद्ध कविता में दिया है कविता में छन्द भंग हैं पर मैं यहाँ ज्यों का त्यों दे देता हूँ —

"चोधरी फीरोड़िया भंशाली वनमाली वंबा जुगराज्य गौतवंशी मोदी अजमेरा है ।
पाटणिया अनुपड़िया भीमड़िया भैसा वड़िया राजेंद्रा सरवालिया भूँच ऊकारा है ।
पिंगुलिया पितलिया भूतलिया अरड़क आवरिया सुरपतिया हरदिया मालसरा है ।
साखुणिया दादड़िया क्षेत्रपाला कोकराज हुकड़िया कुलभाजा पीवा अरु संगारा है ।
शाह पाटशी दोसी सेठी वैद कटारिया वज गंगवाल ।
भैसा भोरिया मोहनिया मादिया सोनी अरु दाकलीवाल ॥
सांगाणी गोदा लोवडिया दर दोदा अरु फिर कासलीवाल ।
पाटोदी पहाड़िया विनायकिया लोहड़िया डुंगिया चाडुवाल ॥
संवका झोजरी पांडिया वेनड़िया काला अरु वलाल ।
चरकियां छावड़ा निगादिया निपोलियारु पापड़ीवाल ॥
करवागर नरपतिया निगद्या नागड़िया रारारु लाटीवाल ।
वरखोदा छाहड़ जलवाना राजहंस लोचटारु भूवाल ॥
मूलसजारु वोहरागौत्र, जाति चौरासी कहाय, श्रावक श्री जिनसेन के किये देश खंडाला जाय ॥

उपर दी हुई तालिका और इस कविता के नामों में कई नाम रद्दो बदल हैं शायद इसका कारण कवित अर्वाचीन होने से कई गौत्रों की शाखा प्रशाखा के नाम दर्ज कर कवि ने चौरासी नामों की संख्या मिलादी हो ।

खंड़ेलवाल जाति का उत्पति समय कई स्थानों पर विक्रम संवत् एक माघ शुक्ल पंचमि का वतलाया है और साथ में इस जाति के प्रतिबोधक दिगम्बर आचार्य जिनसेन को लिखा है यह विचारणीय है कारण श्वेताम्बर शास्त्रानुसार दिगम्बरमत की उत्पत्ति वि० सं० १३९ में तव दिगम्बर मतानुसार वि० सं० १३६ में वतलाई जाती है अतः विक्रम संवत् एक में दिगम्बरमत का जन्म ही नहीं हुआ था दूसरे दि० आचार्य जिनसेन के समय के लिये हम देखते हैं कि विक्रम संवत् एक में दिगम्बर मत का जन्मही नहीं हुआ था अर्थात् दि० आचार्य जिनसेन का समय विक्रमकी नौवीं शताब्दी का है यदि खंड़ेलवाल जाति आचार्य जिनसेन प्रतिबोधित है तो इस जातिका उत्पत्ति समय विक्रमकी नौवीं शताब्दी का मानने में कोई भी आपति नहीं है दूसरा नौवीं शताब्दी पूर्व इस जाति के अस्तित्व का कोई प्रमाण भी नही मिलता है इससे भी वही मानना ठीक है कि खंड़ेलवाल जाति विक्रम के नौवीं शताब्दी में प्रायः राजपूतों से वनी है मूल में यह जाति दिगम्बरमत को मानने वाली थी पर बाद में इस जाति के कुछ लोग श्वेताम्बर साधुओंके उपदेश से श्वेताम्बर धर्म को मानने लग गये थे—जो मारवाड़ के कई ग्रामों में आज भी विद्यमान हैं ।

दिगम्बरमतोपासक जैसे खंडेलवाल जाति हैं वैसे वघेरवाल जाति भी दिगम्बर मतोपासक हैं और इस जाति के प्रतिवोधक भी आचार्य जिनसेन ही वतलाये जाते हैं इस जाति की उत्पत्ति भी यज्ञ की घोर हिंसा से अरुची के कारण ही हुई हैं यद्यपि जैनाचार्य एवं वोधाचार्य के उपदेश से यज्ञ प्रथा वन्द सी हो गई थीपर

विक्रम संवत के आसपास राजा रतिदेव ने अन्तिम अश्वमेघ यज्ञ किया था इसके बाद अश्वमेध जैसा नहीं हुआ था विक्रम की नौवीं शताब्दी में कुमारिलभट्ट और आद्य शंकराचार्य हुए उन्होंने सोचा कि एक ओर तो जैनों और बौद्धों का जोर बढ़ता जा रहा है दूसरी ओर जनता हिंसा से घृणा कर वैदिक धर्म से परङ्गमुख होकर जैन एवं बौध मत में जा रही है अतः उन्होंने फरमान निकाला कि कलियुग में यज्ञ की मनाई है तथापि जहां ब्राह्मणों की प्रबल्यता और वाममार्गियों का जोर था वहां छाने छुपके जोर वहां साधारण यज्ञ करवा देते थे कारण उन्हों की आजीविका ही इस प्रकार यज्ञयाग और क्रियाकाण्ड ही थी अतः समय मिलने पर वे कब चूकने वाले थे।

बघेरा नगर में राजा व्याघ्रसिंह राज करता था किसी बहाने से ब्राह्मणों ने राजा को उपदेश दे यज्ञ प्रारम्भ करवाया था यज्ञ में जितने लोग अधिक एकत्र होते थे उतना ही ब्राह्मणों को अधिक लाभ था अतः ५२ ग्रामों के लोग यज्ञ के अन्दर शामिल हुए।

इधर दिगम्बराचार्य जिनसेन अपने शिष्यों के साथ बघेरा नगर के उद्यान में पधारे आचार्य जिनसेन ने पहले खंडेला के यज्ञ के समय सफलता प्राप्त की हुई थी वे चलकर सीधे ही राज सभा में आये और राजा व्याघ्रसिंह को उपदेश देते हुए कहा। राजन्! इस घोर हिंसा रूपी यज्ञ से न तो किसी को लाभ हुआ है और न होनेवाला है हिंसा का फल तो भवान्तर में नरक ही होता है केवल एक हम ही नहीं कहते हैं पर वैदिक धर्म को मानने वालों ने भी हिंसा का बड़े ही जोरों से तिरस्कार किया है—पर बड़े ही दुःख की बात है कि आज भारत के कौने २ में अहिंसा का प्रचार हो रहा है इतना ही क्यों पर कहलाने वाले अनार्य भी अहिंसा भगवती का आदर कर रहे हैं तब आप जैसे आर्य वीर क्षत्री इस प्रकार की रौद्र हिंसा करवा कर देश द्रोह के साथ आत्मद्रोह कर रहे हो इत्यादि इस प्रकार का उपदेश दिया कि राजा को उस निर्दय कार्य से घृणा आ गई बस फिर तो देरी ही क्या थी राजा ने यज्ञ स्तम्भ उखेड़ दिया कुण्ड मिट्टी से पूर दिया ब्राह्मणों को विसर्जन कर दिये और राजा स्वयं बावन ग्रामों वालों के साथ आचार्य जिनसेन के पास जैनधर्म स्वीकार कर लिया उन बावन ग्रामों वालों के बावन गोत्र बन गये वे निम्न लिखित हैं।

अंजोरिया१ आहिडा२ टंकारा३ बदपाडा४ कोटिया५ कासरिया६ कुचालिया७ कुनडा८ मडवारा९ कसौरा१० खरड़िया११ गुगाला१२ घणोता१३ चुन्दलिया१४ चकोरा१५ छाजा१६ छावड़ा१७ चमौड़ा१८ चमारका१९ जाठड़ी२० वावड़ा२१ दीवडा२२ दोगरचा२३ कोड़वाडा२४ धनोरया२५ धौलया२६ दांतेड़ा२७ सोनोसेर२८ सौरया२९ मुसडाया३० वहुरिया३१ टागा३२ डुंगरवाल३३ पापड़ा३४ मामारिया३५ मरियाना३६ मालुनिया३७ हाम्या३८ निर्गोनिया३९ अरेपुरा४० माथुरिया४१ जोगिया४२ लावाया४३ मामुरिया४४ ममचना४५ सिवड़४६ सोड़ा४७ वावड़िया४८ माहारिया४९ बड़मुड़ा५० ओगिया५१ डाहणा५२ इनके अलावा इन जातियों की कई शाखा प्रतिशाखा भी हुई हैं, पीसांगण के एक सरायगी भाई के पास पुरानी हस्तलिखित पुस्तक में इस प्रकार ५२ जातियों के नाम आते हैं उसके कहने से बघेरवाल की १५२ गोत्र हैं।

इसी प्रकार दिगम्बर समुदाय में नरसिंहपुरा जाति है यह भी नरसिंहपुर के राजा के समय दि० आचार्यों ने प्रतिबोध कर जैनधर्म में दीक्षित किये जिसके कई गोत्र हैं पीसांगण वाली पुस्तक में १० कुल के ३१ गोत्र लिखे हुये हैं।

अरड़ा१ मरड़ा२ फरड़ा३ फटोतिया४ छहाडवाल५ चेनावास६ वसोहरा७ पंचालो८ सापडिया९ सौनावत्१० घोरडेच११ वागड१२ ककुचा१३ फलसधर१४ मनोहरा१५ मंगोतिया१६ फूलपगर१७ खडनेरा१८ मिलणा१९ रत्नपरखा२० अत्रोतिया२१ लुद्रा२२ चामडिया२३ पामेला२४ तेलिया२५ वलोला२६ हरसोला२७ खेमणा२८ खामाणिया२९ नागर३० साखिया३१ जसोहरा३२ जडपहा३३ वोकडा३४ कथौटिया३५ मोकरवाड३६

परवार जाति यह भी दिगम्बर जाति है इस जाति के १८ गोत्र हैं जैसे कि १ नागणा, २ पुलकिया, ३ देवड़ा, ४ डोंगरें, ५ दोरादा, ६ जीलवाण, ७ जोसिया, ८ मीनाकर, ९ दाकलिया, १० कुकुणा, ११ जाखिजा, १२ माकोरा, १३ चादीवाल, १४ मोदिया, १५ नाथाणी, १६ पुरा, १७ घोघण, १८ साजोरा

गौरारा—यह भी दिगम्बर जाति है इस जाति के २३ गोत्र है जैसे कि—१ पायइ, २ गपेली, ३ पेरिया, ४ वेद, ५ नरवेद, ६ सिमरइया, ७ कौसाहिया, ८ सौहाना, ९ जमसरिया १० चौधरी ११ जासुधा १२ चौधरी १३ कौलसा १४ वोरइया १५ ढन १६ साइया १७ अदवइया १८ सारक १९ चौधरी २० चौधरीडघा २१ तासटिया २२ वडसइया २३ तेतगुरा ।

इनके अलावा दिगम्बर डिरेक्टरी में कई जातियों का नाम लिखा है वे सब जातियां दिगम्बर तो नहीं हैं पर शायद कहीं पर कई व्यक्ति दिगम्बर धर्म पालते होंगे उनको दिगम्बरों ने दिगम्बर जातियों में गणना कर डाली है। जैसे कि—

" १ पल्लीवाल, २ खंडेलवाल, ३ परवार, ४ पं० परवार, ५ अग्रवाल, ६ जैसवाल, ७ खैरया, ८ लमेगु, ९ गोलालार, १० फतेहपुरिया, ११ लोहिया, १२ बुदेला, १३ ओसवाल, १४ बुरले, १५ मंदिर, १६ गोलापूर्व, १७ गोलसिंघड़े, १८ बुंदेला, १९ सैतवाल, २० वघेरवाल, २१ कासार, २२ वदनोरा, २३ भासारी, २४ धाकड़, २५ चरनोगर, २६ चौसके, २७ कुकरी, २८ समैवा, २९ पद्मावतीपरव, ३० अयोध्या, ३१ गंगेरवाल, ३२ विनायकिया, ३३ लाड, ३४ चौरा के परवार, ३५ जंघडापोरवार ३६ नेया, ३७ पंचवीसे, ३८ कटनेरे, ३९ परवार दशा, ४० नूतन जैन, ४१ वेरले, ४२ दि० जैन, ४३ पोरवार, ४४ गोलापूर्व, ४५ कृष्णपक्षा, ४६ दसा हुमड़, ४७ वीसा हुमड़, ४८ पंचमा चतुर्थ, ४९ पलड़ीवाल, ५० भावसागर, ५१ नेया, ५२ नरसिंहपुरा दशा, ५३ वीसा, ५४ गुजर, ५५ मेवाड़ा दशा, ५६ वीसा, ५७ नागदा दशा, ५८ वीसा, ५९ चितोड़ा दशा, ६० चित्तोड़वीसा, ६१ श्रीमाल दशा, ६२ वीसा, ६३ सेलावर, ६४ श्रावक, ६५ सादरा, ६६ वोगरा, ६७ वैश्य, ६८ इन्द्र, ६९ पुरोहित, ७० क्षत्रीय, ७१ नागर, ७२ चौधेले, ७३ मिश्र, ७४ शंखवाल, ७५ खुरशाले, ७६ हरदर, ७७ उपाध्याय, ७८ ठागर, ७९ वोगर, ८० ब्राह्मण, ८१ गान्धी, ८२ नाई, ८३ घड़ई, ८४ मोकर, ८५ सुकर, ८६ महेश्री ८७ इत्यादि ।

उपर जिस जाति के नीचे——— लाइन लगाई हुई है वे जातियां श्वेताम्बराचार्यों के प्रतिबोधित हैं यदि कोई व्यक्ति किसी कारण से दिगम्बरोपासक होगया हो पर वह जाति तो श्वेताम्बर ही कहलाई जायगी कई दिगम्बर जातियां भी श्वेताम्बर धर्म पालन करती हैं पर उसको हमने दिगम्बर जाति ही लिखी है ।

इति दिगम्बर सम्बन्धी इतिहास ।

विक्रम संवत के आसपास राजा रतिदेव ने अन्तिम अश्वमेघ यज्ञ किया था इसके बाद अश्वमेध जैसा यज्ञ नहीं हुआ था विक्रम की नौवीं शताब्दी में कुमारिलभट्ट और आद्य शंकराचार्य हुए उन्होंने सोचा कि एक ओर तो जैनों और बौद्धों का जोर बढ़ता जा रहा है दूसरी ओर जनता हिंसा से घृणा कर वैदिक धर्म से पराङ्मुख होकर जैन एवं बौध मत में जा रही है अतः उन्होंने फरमान निकाला कि कलियुग में यज्ञ करने की मनाई है तथापि जहां ब्राह्मणों की प्रबल्यता और वाममार्गियों का जोर था वहां छाने छुपके छोटा बड़ा साधारण यज्ञ करवा देते थे कारण उन्हों की आजीविका ही इस प्रकार यज्ञयाग और क्रियाकाण्ड में ही थी अतः समय मिलने पर वे कब चूकने वाले थे।

वघेरा नगर में राजा व्याघ्रसिंह राज करता था किसी बहाने से ब्राह्मणों ने राजा को उपदेश देकर यज्ञ प्रारम्भ करवाया था यज्ञ में जितने लोग अधिक एकत्र होते थे उतना ही ब्राह्मणों को अधिक लाभ था अतः ५२ ग्रामों के लोग यज्ञ के अन्दर शामिल हुए।

इधर दिगम्बराचार्य जिनसेन अपने शिष्यों के साथ वघेरा नगर के उद्यान में पधारे आचार्य जिनसेन ने पहले खंडेला के यज्ञ के समय सफलता प्राप्त की हुई थी वे चलकर सीधे ही राज सभा में आये और राजा व्याघ्रसिंह को उपदेश देते हुए कहा। राजन् ! इस घोर हिंसा रूपी यज्ञ से न तो किसी को लाभ हुआ है और न होनेवाला है हिंसा का फल तो भवान्तर में नरक ही होता है केवल एक हम ही नहीं कहते हैं पर वैदिक धर्म को मानने वालों ने भी हिंसा का बड़े ही जोरों से तिरस्कार किया है—पर बड़े ही दुःख की बात है कि आज भारत के कौने २ में अहिंसा का प्रचार हो रहा है इतना ही क्यों पर कहलाने वाले अनार्य भी अहिंसा भगवती का आदर कर रहे हैं तब आप जैसे आर्य वीर क्षत्री इस प्रकार की रौद्र हिंसा करवा कर देश द्रोह के साथ आत्मद्रोह कर रहे हो इत्यादि इस प्रकार का उपदेश दिया कि राजा को उस निर्दय कर्म से घृणा आ गई बस फिर तो देरी ही क्या थी राजा ने यज्ञ स्तम्भ उखेड़ दिया [illegible] ब्राह्मणों को विसर्जन कर दिये और राजा स्वयं बावन ग्रामों वालों के साथ आचार्य जिनसेन के पास जैनधर्म स्वीकार कर लिया उन बावन ग्रामों वालों के बावन गोत्र बन गये वे निम्न लिखित हैं।

ठंठोरिया१ आहिठा२ उंकारा३ वडपाडा४ कोटिया५ कावरिया६ कुचालिया७ कुनवाड़८ [illegible]९ [illegible]१० [illegible]११ गुणाठा१२ पणोला१३ चुन्दलिया१४ चकोरा१५ छाजा१६ छाबड़ा१७ [illegible]१८ [illegible]१९ [illegible]२० [illegible]२१ दीवडा२२ डोंगरचा२३ डोंडवाडा२४ धनोरया२५ धीवरा२६ [illegible]२७ [illegible]२८ [illegible]२९ [illegible]३० [illegible]३१ टागा३२ डुंगरवाल३३ पापला३४ [illegible]३५ [illegible]३६ [illegible]३७ [illegible]३८ निर्मलिया३९ [illegible]४० [illegible]४१ [illegible]४२ [illegible]४३ [illegible]४४ [illegible]४५ [illegible]४६ [illegible]४७ [illegible]४८ [illegible]४९ बडमुडा५० [illegible]५१ [illegible]५२ [illegible]

[illegible] ५२ जातियों की कई शाखा प्रशाखायें भी हुई हैं, [illegible] के [illegible] के पास [illegible] लिखित पुस्तक में इस प्रकार ५२ जातियों के नाम आते हैं [illegible]

[illegible] दिगम्बर समुदाय में [illegible] जाति है [illegible] आचार्यों ने [illegible] का जैनधर्म में दीक्षित किये [illegible] पुस्तक में [illegible] के ३३ गोत्र लिखे हुए हैं।

अरड़ा१ मरड़ा२ करड़ा३ फटोतिया४ छहाडवाल५ चेनावास६ वसोहरा७ पंचालो८ सापडिया९ सौनावत्१० पौरडेच११ वागड१२ फकुचा१३ फलसघर१४ मनोहरा१५ मंगोतिया१६ फूलपगर१७ खडनेरा१८ मिलण१९ रत्नपरखा२० अत्रोतिया२१ लुद्रा२२ चामडिया२३ पामेला२४ तेलिया२५ बलोला२६ हरसोला२७ खेमणा२८ खामाणिया२९ नागर३० साखिया३१ जसोहरा३२ जडपडा३३ वोकडा३४ कथौटिया३५ मोकरयाड३६

परवार जाति यह भी दिगम्बर जाति है इस जाति के १८ गोत्र हैं जैसे कि १ नागणा, २ पुलकिया, ३ देवड़ा, ४ ढोंगरें, ५ दोरादा, ६ जीलवाण, ७ जोसिया, ८ मीनाकर, ९ दाकलिया, १० कुकुणा, ११ जाणिजा, १२ माकोरा, १३ चादीवाल, १४ मोदिया, १५ नाथाणी, १६ पुरा, १७ घोघण, १८ साजोरा

गौरारा—यह भी दिगम्बर जाति है इस जाति के २३ गोत्र है जैसे कि—१ पावइ, २ गपेली, ३ पेरिया, ४ वेद, ५ नरवेद, ६ सिमरइया, ७ कौसाहिया, ८ सौहाना, ९ जमसरिया १० चौधरी ११ जासुधा १२ चौधरी १३ कौलसा १४ वोरइया १५ ढन १६ साइया १७ अदवइया १८ सारक १९ चौधरी २० चौधरीडघा २१ तासटिया २२ वडसइया २३ तेतगुरा।

इनके अलावा दिगम्बर डिरेक्टरी में कई जातियों का नाम लिखा है वे सब जातियां दिगम्बर तो नहीं हैं पर शायद कहीं पर कई व्यक्ति दिगम्बर धर्म पालते होंगे उनको दिगम्बरों ने दिगम्बर जातियों में गणना कर डाली है। जैसे कि—

" १ पल्लीवाल, २ खंडेलवाल, ३ परवार, ४ पं० परवार, ५ अग्रवाल, ६ जैसवाल, ७ खैरया, ८ लमेगु, ९ गोलालार, १० फतेहपुरिया, ११ लोहिया, १२ बुदेला, १३ ओसवाल, १४ बुरले, १५ मंदिर, १६ गोलापूर्व, १७ गोलसिघड़े, १८ बुंदेला, १९ सैतवाल, २० बघेरवाल, २१ कासार. २२ वदनोरा, २३ भासारी, २४ धाकड़, २५ चरनोगर, २६ चौसके, २७ कुकरी, २८ समैवा, २९ पद्मावतीपरव, ३० अयोध्या, ३१ गंगेरवाल, ३२ विनायकिया, ३३ लाड, ३४ चौरा के परवार, ३५ जंघडापोरवार ३६ नेया, ३७ पंचवीसे, ३८ कटनेरे, ३९ परवार दशा, ४० नूतन जैन, ४१ वेरले, ४२ दि० जैन, ४३ पोरवार, ४४ गोलापूर्व, ४५ कृष्णपत्ता, ४६ दसा हुमड़, ४७ वीसा हुमड़, ४८ पंचमा चतुर्थ, ४९ पलड़ीवाल, ५० भावसागर, ५१ नेया, ५२ नरसिंहपुरा दशा, ५३ वीसा, ५४ गुजर, ५५ मेवाड़ा दशा, ५६ वीसा, ५७ नागदा दश ५८ वीसा, ५९ चितोड़ा दशा, ६० चित्तोड़वीसा, ६१ श्रीमाल दशा, ६२ वीसा, ६३ सेलावर, ६४ श्रावक, ६५ सादरा, ६६ वोगरा, ६७ वैश्य, ६८ इन्द्र, ६९ पुरोहित, ७० क्षत्रीय, ७१ नागर, ७२ चौघेले, ७३ मिश्र, ७४ शंखवाल, ७५ खुरशाले, ७६ हरदर, ७७ उपाध्याय, ७८ ठागर, ७९ वोगर, ८० ब्राह्मण, ८१ गान्धी, ८२ नाई, ८३ बढ़ई, ८४ मोकर, ८५ सुकर, ८६ महेश्री ८७ इत्यादि।

उपर जिस जाति के नीचे——लाइन लगाई हुई है वे जातियां श्वेताम्बराचार्यों के प्रतिबोधित हैं यदि कोई व्यक्ति किसी कारण से दिगम्बरोपासक होगया हो पर वह जाति तो श्वेताम्बर ही कहलाई जायगी कई दिगम्बर जातियां भी श्वेताम्बर धर्म पालन करती हैं पर उसको हमने दिगम्बर जाति ही लिखी है।

इति दिगम्बर सम्बन्धी इतिहास।

पल्लीवाल जाति

इस जाति की उत्पति का मूल स्थान पाली शहर है जो मारवाड़ प्रान्त के अन्दर व्यापार का एक मुख्य नगर था इस जाति में दो तरह के पल्लीवाल है १—वैश्य पल्लीवाल, २—ब्राह्मण पल्लीवाल और इस प्रकार नगरके नाम से औरभी अनेक जाति पैदा हुई थी जैसे श्रीमाल नगर से श्रीमाल जाति, खंडेला शहर से खंडेलवाल, महेश्वरी नगरी से महेश्वरी जाति, उपकेशपुर से उपकेश जाति, कोरट नगर से कोरटवाल जाति, और सिरोही नगर से सिरोहिया जाति इत्यादि नगरों के नाम से अनेक जातियों उत्पन्न हुई थीं इसी प्रकार पाली नगर से पल्लीवाल जाति की उत्पत्ति हुई है वैश्यों के साथ ब्राह्मणों का भी सम्बन्ध था कारण ब्राह्मणों की आजीविका वैश्यों पर ही थी अतः जहाँ यजमान जाते हैं वहां उनके गुरु ब्राह्मण भी जाया करते हैं जैसे श्रीमाल नगर के वैश्य लोग श्रीमाल नगर का त्यागकर उपकेशपुर में जा बसे तो श्रीमाल नगर के ब्राह्मण भी उनके पीछे चले आये अतः श्रीमाल नगर से आये हुए वैश्य श्रीमाल वैश्य और ब्राह्मण श्रीमाल ब्राह्मण कहलाये इसी प्रकार पाली के वैश्य और ब्राह्मण पाली के नाम पर पल्लीवाल वैश्य और पल्लीवाल ब्राह्मण कहलाये।

जिस समय का मैं हाल लिख रहा हूँ वह जमाना क्रिया कण्ड का था और ब्राह्मण लोगों ने ऐसे विधि विधान रच डाले थे कि थोड़ी-थोड़ी बातों में क्रिया काण्ड की आवश्यकता रहती थी और वह क्रिया-काण्ड भी जिसके यजमान होते वे ब्राह्मण ही करवाये करते थे उसमें दूसरा ब्राह्मण हस्तक्षेप नहीं कर सकता था अतः वे ब्राह्मण अपनी मनमानी करने में स्वतंत्र एवं निरांकुश थे एक वंशावली में लिखा हुआ मिलता है कि पल्लीवाल वैश्य एक वर्ष में पल्लीवाल ब्राह्मणों को १४०० लीकी और १४०० टंक दिया करते थे तथा श्रीमाल वैश्यों को भी इसी प्रकार टेक्स देना पड़ता था, 'पंचशतीशतषोड़शाधिका' अर्थात ५१६ टका लाग दापा के देने पड़ते हैं। भूदेवों ने ज्यों-ज्यों लाग दापा रूपी टेक्स बढ़ाया त्यों-त्यों यजमानों की अरूची बढ़ती गई। यही कारण था कि उपकेशपुर का मंत्री ऊहड़ ने म्लेच्छों की सेना लाकर श्रीमाली ब्राह्मणों का पिन्डा छुड़वाया इतना ही क्यों बल्कि दूसरे ब्राह्मणों का भी जोर जुल्म बहुत कम पड़ गया। क्योंकि ब्राह्मण लोग भी समझ गये कि अधिक करने से श्रीमाली ब्राह्मणों की भांति यजमानों का सम्बन्ध टूट जायगा जो कि उनके ब्राह्मणों की आजीविका का आधार था अतः पल्लीवालादि ब्राह्मणों का अपने यजमानों के साथ सम्बन्ध ज्यों का त्यों बना रहा था मंत्री ऊहड़ की घटना का समय वि० सं० ४०० पूर्व का था वही समय पल्लीवाल जाति का समझना चाहिये। खास कर तो जैनाचार्यों का मरुधर भूमि में प्रवेश हुआ और उन्होंने दुर्व्यसन सेवित जनता को जैनधर्म में दीक्षित करना प्रारम्भ किया तब से ही उन [illegible] के स्वार्थ सिद्ध ब्राह्मणों के आसन कांपने लग गये थे, और उन क्षत्रियों एवं वैश्यों में से [illegible] धर्म स्वीकार करने वाले अलग होगये तब से ही जातियों की उत्पत्ति होनी शुरू हुई थी इसका समय विक्रम पूर्व चार सौ वर्षों के आस पास का था, और यह क्रमशः विक्रम की आठवीं नौवीं शताब्दी [illegible] रहा [illegible] इन सब जातियों के अन्दर शाखा प्रतिशाखा तो वट वृक्ष की भांति निकलती ही गई [illegible] [illegible] जैन बनाने वालों की [illegible] [illegible] जातियों के [illegible] [illegible] [illegible] जैन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जिनको हम आगे चल कर यथा समय लिखेंगे।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय—तो पाली और पल्लीवाल जाति का गौरव कुछ कम नहीं हैं प्राचीन ऐतिहासिक साधनों से पाया जाता है कि पुराने जमाने में इस पाली का नाम फेफावती पाल्हिका पालिका आदि कई नाम था और कई नरेशों ने इस स्थान पर राज भी किया थ पाली नगर एक समय जैनों का मणिभद्र महावीर तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध था, इतिहास के मध्य काल का समय पाली नगरी के लिये बहुत महत्त्व का था विक्रम की बारहवीं शताब्दी के कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएँ के शिलालेख तथा प्रतिष्ठा करवाने वाले जैन श्वेताम्बर आचार्यों के शिलालेख आज भी उपलब्ध हैं इत्यादि प्रमाणों से पाली की प्राचीनता में किसी प्रकार के संदेह को स्थान नहीं मिलता हैं।

व्यापार की दृष्टि से देखा जाय—तो भारतीय व्यापारिक नगरोंमें पाली शहर का मुख्य स्थान है पूर्व जमाने में पाली शहर व्यापार का केद्र था यहाँ बहुत जथ्था बन्ध माल का निकास प्रवेश होता था यह भी केवल एक भारत के लिये ही नहीं था पर भारत के अतिरक्त दूसरे पश्चात्य प्रदेशों के व्यापारियों के साथ पाली शहर के व्यापारियों का बहुत बड़े प्रमाणमें व्यापार चलता था पाली में बड़े-बड़े धनाढय व्यापारी बसते थे और उनका व्यापार विदेशों के साथ था तथा उनकी बड़ी-बड़ी कोठियाँ थीं। फारिस अरब अफ्रिका चीन जापान जावा मिश्र तिब्बत वगैरह प्रदेश तो पाली के व्यापारियों के व्यापार के मुख्य प्रदेश माने जाते थे जब हम पट्टावलियों वंशावलियों आदि ग्रन्थ देखते हैं तो पता मिलता है कि पाली के महाजनों की कई स्थानों पर दुकानें थीं और बालदों पोटों तथा जल एवं थल मार्ग से पुष्कल माल आता जाता था और इस व्यापार में वे बहुत मुनाफा भी कमाते थे। यही कारण था कि वे लोग एक एक धर्म कार्य में करोड़ों द्रव्य व्यय कर डालते थे इतना ही क्यों पर उन लोगों की देश एवं जाति भाइयों के प्रति इतनी वात्सल्यता थी कि पाली में कोई साधर्मी एवं जाति भाई आकर बसता तो प्रत्येक घर से एक एक मुद्रिका और एक एक ईंट अर्पण कर दिया करते थे कि आने वाला सहज ही में लक्षाधिपति बन जाता और यह प्रथा उस समय केवल एक पाली वालों के अन्दर ही नहीं थी पर अन्य नगरों में भी थी जैसे चन्द्रवती और उपकेशपुर के उपकेशवंशी एवं प्राग्वटवंशी अग्रहा के अगरवाल डिडवाना के महेश्वरी आदि कई जातियों में थी कि वे अपने साधर्मी एवं जाति भाइयों को सहायता पहुँचा कर अपने बराबरी के बना लेते थे।

करीबन एक सदी पूर्व एक अंग्रेज महात्मा टॉडसाहब मारवाड़ में पेदल भ्रमण करके पुरातत्त्व की शोध खोज का कार्य किया था उनके साथ एक ज्ञानचन्द्रजी नामक यति भी रहा करते थे टॉड साहब को जितनी प्राचीन हिस्ट्री मिली थी उतनी ही उन्होंने टॉड राजस्थान नामक ग्रन्थ में छपादी थी उसमें पाली शहर का भी बहुतसा हाल लिखा है उसमें पाली नगर को बहुत प्राचीन बतलाया है व्यापार के लिये तो पाली को प्राचीन जमाने से एक व्यापार की बड़ी मंडी होना लिखा है वहाँ से थोक बन्ध माल विदेशों में जाता था पाली का नमक, सूतका जाड़ा कपड़ा, ऊनी कांबले, कागज वगैरह बड़ा प्रमाण में तैयार होता था और विदेश के व्यापारी खरीदकर अपने देशों में भेजते थे तब विदेशों से हस्तीदान्त, साफू गेंडाकाचमड़ा तांबा टीन जस्त सूखी खजूर पंडखजूर अरब का गुंद सहोगी नारियल बनात रेशमी कपड़ा औषधियें गन्धक पारा चन्दन की लकड़ियें कपुर चाय हरा रंगके कांच भावलपुर से साजी मजिट आल का रंग पक्के फल हिंग मुलतानी छींटें संदूक तथा पलंग की लकड़ियें कोटा से अफिम छींटें जाड़ा कपड़ा भोजने तलवारें और घोड़ा

इनके अलावा सोदागर लोग अपनी बालद एवं पोटों पर लाद कर बड़ी-बड़ी कतारों द्वारा लाखों रुपयों का माल लाते और ले जाते थे ; अतः पाली व्यापार का एक केन्द्र था—

इत्यादि इस उल्लेख से स्पष्ट पाया जाता है कि मारवाड़ में पाली एक व्यापार का मथक और प्राचीन नगर था और वहां पर महाजन संघ एवं व्यापारियों की घनी बस्ती थी।

पल्लीवाल जाति में जैनधर्म—यह निश्चयात्मिक नहीं कहा जा सकता है कि पल्लीवाल जाति में जैनधर्म का पालन करना किस समय से शुरू हुआ पर पल्लीवाल जाति बहुत प्राचीन समय से जैनधर्म पालन करती आई है पुराणी पट्टावलियों वंशावलियों को देखने से ज्ञात होता है पल्लीवाल जाति में विक्रम के चार सौ वर्ष पूर्व से ही जैनधर्म प्रवेश हो चूका था। इस की साबूती के लिये यह कहा जा सकता है कि आचार्य स्वयंप्रसूरि ने श्रीमाल नगर में ९०,००० घरों वालों को तथा पद्मावती नगरी के ४५००० घरों के लोगों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा देकर जैन बनाये थे बाद आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर नगर में लाखों क्षत्रियादि लोगों को जैनधर्म की दीक्षा दी और बाद में भी आचार्यश्री मरूधर प्रान्त में बड़े-बड़े नगरों में छोटे-छोटे ग्रामों में भ्रमन कर अपनी जिन्दगी में करीब चौदह लक्ष घर वालों को जैनी बनाये थे अब पाली शहर श्रीमालनगर और उपकेशपुर नगर के बीचमें आया हुआ है भला वह आचार्यश्री के उपदेश से कैसे वंचित रह गया हो अर्थात् पाली नगर में आचार्यश्री अवश्य पधारे और वहां की जनता को जैनधर्म में अवश्य दीक्षित किये होंगे। हां उस समय पल्लीवाल नामकी उत्पत्ति नहीं हुई होगी पर पालीवासियों को आचार्यश्री ने जैन अवश्य बनाये थे। आगे चलकर हम देखते हैं कि आचार्य सिद्धसूरि पाली नगर में पधारते हैं और वहाँ के श्रीसंघ ने आचार्यश्री की अध्यक्षत्व में एक श्रमण सभा का आयोजन करते हैं जिसमें दूर दूर से हजारों साधु साध्वियों का शुभागमन हुआ था इस पर हम विचार कर सकते हैं कि उस समय पाली नगर में जैनियों की खूब गेहरी आबादी होगी तब ही तो इस प्रकार का वृहद् कार्य पाली नगर में हुआ था इस घटना का समय उपकेशपुर में आचार्य रत्नप्रभसूरि ने महाजन संघ की स्थापना करने के पश्चात् दूसरी शताब्दी का बतलाया है इससे स्पष्ट पाया जाता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने पाली की जनता को जैनधर्म में दीक्षित कर जैनधर्मोपासक बनादी थी उस समय के बाद तो कई भावुकों ने जैनमन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई तथा कई श्रद्धा सम्पन्न श्रावकों ने पाली से शत्रुंजयादि तीर्थों के संघ भी निकाले थे जिसका उल्लेख हम यथा स्थान इसी ग्रन्थ में करेंगे। इत्यादि प्रमाणों से हम इस निर्णय पर आसकते हैं कि पाली की जनता में जैनधर्म श्रीमाल और उपकेशवंश के समसामयिक प्रवेश हो गया था इतना ही क्यों पर पालीवालों का पल्लीवाल नाम संस्करण होने के पूर्व ही वे जैनी बन चुके थे बाद पाली के [illegible] व्यापारार्थ एवं किसी कारण से पाली छोड़कर अन्य स्थानों में जा बसने से वे पाली वाले कहलाये और बाद पालीवालों का अपभ्रंश पल्लीवाल बन गया था जैसे अन्य नगरों के नाम से जातियां बनी हैं।

[illegible] में साधुओं की बहुलता एवं जिस ग्राम नगर की ओर विशेष विहार करने के कारण [illegible] नगरों के नाम से गच्छ कहलाया जैसे [illegible] के नाम पर [illegible], कोरंट नगर के नाम से [illegible], [illegible] से [illegible], हर्षपुर से हर्षपुरागच्छ, कुर्चपुर नगर से कुर्चपुरागच्छ, [illegible] से [illegible], [illegible] से [illegible], सांडेराव से सांडेरागच्छ, इत्यादि बहुत से गच्छों का प्रादुर्भाव

हुआ इसी प्रकार पाली नगर के नाम से पल्लीवालगच्छ भी उत्पन्न हुआ उपरोक्त गच्छों की नामावली में पल्लीवालगच्छ का नंबर तीसरा आता है कारण इस गच्छ की पट्टावली देखने से मालूम होता है कि—यह गच्छ बहुत पुराणा है जो उपकेशगच्छ और कोरंटगच्छ के बाद पल्लीवालगच्छ का नम्बर आता है श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा बीकानेर वाला ने श्री आत्मानन्द शताब्दी अंक नामक पुस्तक के हिन्दी विभाग के पृष्ठ १८२ पर पल्लीवालगच्छ की पट्टावलीके विषय में एक लेख मुद्रित करवाया है। मैं केवल उस पट्टावली को यहाँ ज्यों की त्यों उद्धृत कर देता हूँ—

प्रथम २४ तीर्थङ्करों और ११ गणधरों के नाम लिखकर आगे पट्टानुक्रम इस प्रकार लिखा है—

१—श्री स्वामी महावीरजी रे पाटे श्री सुधर्म१
२—तिणरे पाट्टे श्रीजम्बु स्वामी २
३—तत्पाट्टे श्रीप्रभव स्वामी ३
४—तत्पाट्टे श्रीशय्यंभवसूरि ४
५—तत्पाट्टे श्रीजसोभद्रसूरि ५
६—तत्पाट्टे श्रीसंभूतविजय ६
७—तत्पाट्टे श्रीभद्रबाहुस्वामी ७
८—तत्पाट्टे तिण माहें भद्रबाहु री शाख न वधी श्री स्थुलभद्र ८

९—तत्पट्टे श्रीसुहस्तीसूरि २ काकंद्य कोटिसूरिमंत्र जाप्पांवान् कोटिकगण। तिहारै पाटि सुप्रतिबंध ९ तियारै गुरुभाई सुतिणरा शिष्य दोई विज्जाहर १ उचनागोरी २ सुप्रतिबंध पाटि ९ तिणरी शाखा २ तिणांरा नाम मज्झिमिका १ वयरी २।

१०—वयरी रै पाटै श्रीइन्द्रदिन्नसूरि पाटि
११—तत्पट्टे श्रीआर्यदिन्नसूरि
१२—तत्पट्टे श्री सिहगिरिसूरि पाटि
१३—तत्पट्टे श्री वयर स्वामी पाटि

१४—तत्पट्टे तिणरी शाखा २ तिणाँरा नाम प्रथम श्री वयरसेन पाटि १४ बीजो श्री पद्म २ तिणरी नास्ति। तीजो श्री रथसूरि पाटि श्री पुसगिरि री शाखा बीजी बयरसेन पाटि १४

१५—तत्पट्टे श्री चन्द्रसूरि पाटि १५ संवत् १३० चन्द्रसूरि।

(यहां तक तो दूसरे गच्छों से मिलती जुलती नामावली है केवल नौवें नम्बर में महागिरी का नाम नहीं है और सुप्रतिबंध का नाम अलग चाहिये जिसको सुहस्ती के शामिल कर दिया है। अब १६ वां नंबर में शान्तिसूरि से इस पल्लीवालगच्छ की शाखा एवं पट्टावली अलग चलती है जैसे कि—]

१६—संवत् १९ (१६१) १ श्री शांतिसूरि थाप्पा पाटि १६ श्री संवत १८० स्वर्ग श्री शांतिसूरि पाट्टे १६ तिणरे शिष्य ८ तिणरा नाम।

(१) श्री महेन्द्रसूरि १ तिणथी मथुरावाला गच्छ
(२) श्री शालगसूरि श्री पुरवालगच्छ
(३) श्री देवेन्द्रसूरि खंडेलवालगच्छ
(४) श्री आदित्यसूरि सोझितवालगच्छ
(५) श्री हरिभद्रसूरि मंडोवरागच्छ
(६) श्री विमलसूरि पतनवालगच्छ
(७) श्री वर्द्धमानसूरि भरवच्छेवालगच्छ
(८) श्री मूल पट्टे श्री (..............

१७—श्री जसोदेवसूरि पाटि १७ संवत् ३२९ वर्षे वैसाख सुदि ५ प्रल्हादि प्रतिबोधिता श्री पल्लीवालगच्छ स्थापना संवत ३९० (।)स्वर्ग।

१८—श्री नन्नसूरि पाटि १८ संवत ३५६ स्वर्गे
१९—श्री उजोयण सूरि पाटि १९ स० ४०० स्वर्गे
२०—श्री महेश्वरसूरि पाटि १९ संवत ४२४ स्वर्गे
२१—श्री अभयदेव सूरि पाटि २१ स० ४५० ”
२२—श्री आमदेवसूरि पाटि २२ स० ४५६ ”
२३—श्री शान्ति सूरि पाटि २३ स० ४९५ ”
२४—श्री जसोदेव सूरि पाटि २४ स० ५३४ ”
२५—श्री नन्न सूरि पाटि २५ स० ५७० ”
२६—श्री उजोयण सूरि पाटि २६ स० ६१६ ”
२७—श्री महेश्वर सूरि पाटि २७ स० ६४० ”
२८—श्री अभयदेव सूरि पाटि २८ स० ६८१ ”
२९—श्री आमदेव सूरि पाटि २९ स० ७३२ ”
३०—श्री शान्ति सूरि पाटि ३० स० ७६८ ”
३१—श्री जस्योदेव सूरि पाटि ३१ स० ७९५ ”
३२—श्री नन्न सूरि पाटि ३२ सम्वत ८३१ ”
३३—श्री उजोयण सूरि पाटि ३३ स० ८७२ ”
३४—श्री महेश्वरसूरि पाटि ३४ सम्वत ९२१ ”
३५—श्री अभयदेव पाटि सूरि ३५ स० ९७२ ”
३६—श्री आमदेव सूरि पाटि ३६ सम्वत ९९९ ”
३७—श्री शान्ति सूरि पाटि ३७ स० १०३१ ”
३८—श्री जस्योदेव सूरि पाटि ३८ स० १०७० ”
३९—श्री नन्न सूरि पाटि ३९ स० १०९८ ”
४०—श्री उजोयण सूरि पाटि ४० स० ११२३ ”
४१—श्री महेश्वर सूरि पाटि ४१ स० ११५५ ”

४२—श्री अभयदेव सूरि पाटि ४२ स० ११६९
श्री मलधार अभयदेवसूरि अविगत्या ता पाटे
अजीतदेव स्वामि श्री अभयदेवसूरि करा-
वाण पाटि ४२ स० ११६९ स्वर्गे
४३—श्री आमदेव सूरि पाटि ४३ स० ११९९ ”
४४—श्री शान्ति सूरि पाटि ४४ स० १२२४ ”
४५—श्री जसोदेव सूरि पाटि ४५ स० १२३४ ”
४६—श्री नन्न सूरि पाटि ४६ स० १२३९ ”
४७—श्री उजोयण सूरि पाटि ४७ स० १२४३ ”
४८—श्री महेश्वर सूरि पाटि ४८ स० १२७३ ”
४९—श्री अभयदेव सूरि पाटि ४९ स० १३२१ ”
५०—श्री आमदेव सूरि पाटि ५० स० १३७४ ”
५१—श्री शान्ति सूरि पाटि ५१ स० १४४८ ”
५२—श्री जसोदेव सूरि पाटि ५२ स० १४८८ ”
५३—श्री नन्न सूरि पाटि ५३ स० १५३२ ”
५४—श्री उजोयण सूरि पाटि ५४ स० १५७२ ”
५५—श्री महेश्वर सूरि पाटि ५५ स० १५९९ ”
५६—श्री अभयदेव सूरि पाटि ५६ नवी गच्छ स्था-
पना किधी गुरांसा (श्री) कटोरा कीधो कोटि
द्रव्य करी किया उद्धार कीधो स० १५९५ स्वर्गे
५७—श्री आमदेव सूरि पाटि ५७ स० १६३४ ”
५८—श्री शान्ति सूरि पाटि ५८ स० १६६१ ”
५९—श्री जसोदेव सूरि पाटि ५९ स० १६९२ ”
६०—श्री नन्न सूरि पाटि ६० स० १७१८

६१—विद्यमान भट्टारक श्री उजोयणसूरि पटि ६१ स० १६८७ वाचक पद स० १७२८ जेष्ट सुदि १२ वार
शनि दिन सूरि पद विद्यमान विजय राज्ये ।

* १९—वाँ पट्ट का समय संवत १८० का बतलाया है और २० वाँ पट्ट का समय सं० ३२९ का लिखा है [illegible] [illegible] सं० ३१० में हुई लिखी है फिर १८ वाँ पट्ट का समय सं० ३५६ का लिखा है [illegible] [illegible] १९ वाँ और २० वाँ पट्ट अन्तर १२९ वर्ष का होना असंभव सी बात है [illegible] [illegible] [illegible]

६१ विद्यमान भट्टारक श्री उजायेणसूरि पटि ६१ संवत् १६८७ वाचक पदं संवत् १७२८ जेष्ठ सुदि १२ वार शनि दिन सूरि पद विद्यमान विजय राज्ये —

उपरोक्त पट्टावली से पाया जाता है कि विक्रम की चौथी शताब्दी में पल्लीवाल गच्छ की स्थापना आचार्य शान्तिसूरि के हाथों से हुई थी—

पाली की जनता को सबसे पहिले प्रतिबोध आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने ही दिया था और आपश्री की परम्परा के आचार्यों ने क्रमशः उनकी वृद्धि करी। बाद में जब पूर्व में आर्य्य सुहस्तीसूरि के समय दुष्काल पड़ा था तब आर्य्य सुहस्तीसूरि सपरिवार आवंति प्रदेश में आये बाद में सौराष्ट्र और मरुधर में आये और पाली की ओर अधिक विहार करने वाले शान्तिसूरि ने पल्लीवालगच्छ की स्थापना की हो तो यह बात विश्वासनीय है।

जैसे ८४ गच्छों में पल्लीवालगच्छ प्राचीन है वसे ही वैश्यों की ८४ जातियों में भी पल्लीवाल जाति प्राचीन है जहाँ हम चौरासी जातियों के नाम उल्लेख करेंगे पाठक वहाँ से देख सकेंगे कि पल्लीवाल जाति कितनी प्राचीन है ?

पल्लीवाल जाति में बहुत से नररत्न वीर एवं उदार दानेश्वरी हुए हैं जिन्होंने एक एक धर्म कार्य में लाखों करोड़ी द्रव्य व्यय करके कल्याणकारी पुन्योपार्जन किया है हाँ आज उनका सिलसिला वार इतिहास के अभाव हम यहाँ सबका उल्लेख नहीं कर सकते हैं इसका कारण यह है कि अव्वल तो वह जमाना ही ऐसा था कि इन बातें को लिपिबद्ध करने की प्रथा ही कम थी दूसरा जो करते थे वह भी उनके गच्छ वालों के पास तथा वंशावलियों लिखने वालों के पास रहता था पर विदेशियों की धर्मान्धता के कारण कई ज्ञान भंडार ज्यों के त्यों जला दिये गये थे कि उसके अन्दर काफी ग्रन्थ जल गये। तथापि शोध खोज करने पर पल्लीवाल जाति एवं पल्लीवाल गच्छ सम्बन्धी यत्र तत्र बिखरा हुआ साहित्य मिल सकता है अभी विद्वद्वर्य मुनिराज श्री दर्शनविजयजी महाराज ने पल्लीवाल जाति का इतिहास लिखकर इस जाति के विषय अच्छा प्रकाश डाला है पल्लीवाल जाति के वीर पेथड़शाह वगैरह दानेश्वरियों के नाम खास उल्लेखनीय हैं जिसको हम यथा स्थान वर्णन करेंगे यहाँ तो हमारा उद्देश्य खास पल्लीवाल जाति के विषय लिखने का था और हमने उपरोक्त प्रमाणों द्वारा यह बतलाने की कोशिश की है कि पल्लीवाल जाति बहुत प्राचीन है इसका उत्पति स्थान पाली नगर और समय विक्रमपूर्व चार सौ वर्ष पूर्व का है।

अग्रवाल जाति

जैसे भारतीय जातियों में ओसवाल पोरवाल पल्लीवाल श्रीमालादि जातियें हैं वैसे अग्रवाल भी एक जाति है। इस जाति के इतिहास के लिए वे ही कठिनाइयें हमारे सामने उपस्थित हैं कि जैसी अन्य जातियों का इतिहास के लिये हैं। कारण, इस जाति का भी सिलसिले वार इतिहास नहीं मिलता है। हाँ, इस जाति की उत्पति के लिए कई प्रकार की किम्वदन्तियें प्रचलित हैं जैसा कि—

१—कई कहते हैं कि इस जाति के पूर्वज अगुरु नाम की सुगन्धित लकड़ियों का व्यापार करते थे। अतः इसका नाम अगुरु* पड़ गया और उस अगुरु का ही अपभ्रंश अग्रवाल है।

---

* कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता मिलता है कि एक समय भारत में अगुरु जाति की लकड़ियों का बहुत प्रमाण में व्यापार चलता था और अगुरु लकड़ी सुगन्धमय होने से इसका व्यापार भारत में ही नहीं बल्कि भारत के अतिरिक्त पाश्चात्य

२—कई लोगों का मत है कि अग्रवालों के पूर्वजों ने आग्रहा (आगरा) नाम का नगर बसाया था इससे इस जाति का नाम अग्रवाल हुआ।

३—कई एकों का मत है कि अग्रवाल जाति क्षत्रियों से उत्पन्न हुई है।

४—कई कहते हैं कि अग्रवाल जाति वैश्यों से पैदा हुई।

५—कई कहते हैं कि राजा अग्रसेन की सन्तान होने से इस जाति का नाम अग्रवाल हुआ है पर अग्रसेन के लिये भी तो कई मत प्रचलित है जैसे कि—

a—पौराणिक कथाओं में राजा अग्रसेन की पूर्व परम्परा ब्रह्माजी से मिलाई है।

b—कई कहते हैं कि श्रीकृष्ण के समय यदुवंश में अग्रसेन राजा हुआ है।

c—कई कहते हैं कि युधिष्ठिर की तेरहवीं पुश्त में राजा अग्रसेन हुआ

d—कई कहते हैं कि आबू के परमारों में राजा अग्रसेन हुआ जिसका समय ई० स० ८[illegible] आस पास का है।

e—इतिहास मर्मज्ञ बंगाल के बाबू नागेन्द्रनाथ वसु कहते हैं कि सम्राट समुद्रगुप्त के समय (ई० सं० ३२६ से ३७५) राजा उग्रसेन हुआ।

इत्यादि जिसमें बंगाल के इतिहास कार बाबू नागेन्द्रनाथ वसु का मत है कि उपरोक्त पांच अग्रसेन में अन्तिम सम्राट समुद्रगुप्त के समय में जो उग्रसेन हुआ है वही अग्रवाल जाति का पूर्वज होना चाहिये जिसका समय ईसा की चतुर्थ शताब्दी है। उस उग्रसेन की सन्तान ही अग्रवाल कहलाई।

उपरोक्त मतों में ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो बाबू नागेन्द्रनाथ का मत प्रमाणिक पाया जाता है। बाबुजी के इस मत से हम भी सहमत है।

अग्रसेन के साथ अग्रहा नगर का घनिष्ट सम्बन्ध है। कई विद्वानों का मत है कि राजा अग्रसेन ने ही अग्रहा नगर बसाया था और वहाँ पर अग्रवालों के एक लक्ष घरों की बस्ती थी। वे धन धान्य में बड़े ही समृद्धशाली थे। एक ऐसी भी कथा प्रचलित है कि अग्रहा नगर में कोई भी जाति भाई रहने को आता तो

[illegible] था। शायद अग्रवालों के पूर्वजों ने अगुरु का व्यापार किया हो और इस कारण इन लोगों [illegible] का नाम अग्रवाल हुआ हो तो असंभव भी नहीं है जैसे कुमटका व्यापार से कुमट जाति बनी [illegible] का व्यापार से [illegible] [illegible] से [illegible] इत्यादि वे जातियें ओसवालों में आज भी विद्यमान है।

[illegible] अग्रसेन नामक एक वैश्य राजा एक लाख मनुष्यों के परिवार के साथ दक्षिण में राज करता था। [illegible] के [illegible] प्रताप नगर में राजा थे। उनके [illegible] [illegible] एक कन्या हुई। उस समय [illegible] नामक एक और राजा [illegible] [illegible] नाम की आठ कन्याएँ थी। [illegible] [illegible] कन्याओं का विवाह हो गया। [illegible] [illegible] [illegible]

उनको प्रत्येक घर से एक मुद्रिका और एक ईंट दी जाती थी कि वह आने वाला सहज ही में लक्षाधिपति बन जाता था ऐसी कथा चन्द्रावती के ओसवाल जाति और पाली की पल्लीवाल जाति में भी प्रचलित है।

अग्रवालों के १७॥ गोत्रों की उत्पत्ति—पूर्व जमाने में देव देवी एवं यज्ञादि क्रिया काण्ड में जनता का दृढ़ विश्वास था और वे कोई भी छोटा बड़ा कार्य्य करना होता तो देवी देवता और यज्ञादि क्रिया कांड द्वारा ही किया करते थे। यद्यपि भगवान महावीर एवं आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से यह प्रथा बहुत कम हो गई थी तथापि सर्वथा नष्ट नहीं हुई थी कारण चिरकाल से पड़ी हुई कुप्रथा यकायक नष्ट होनी मुश्किल थी स्वार्थ प्रिय ब्राह्मण इसके प्रेरक थे जहाँ उन लोगों का थोड़ा बहुत चलता वहाँ वे यज्ञ होम करने में तत्पर रहते थे।

राजा उग्रसेन के अठारह रानियां थी पर किसी के भी पुत्र नहीं था राजा ने ब्राह्मणों को एकत्र कर पुत्र होने का उपाय पूछा पर उन्होंके पास सिवाय पशुबद्ध रूपी यज्ञ के और क्या था उन्होंने कह दिया कि हे राजन्! यदि आपको पुत्र की इच्छा है तो आप अठारह यज्ञ करवाइये आपके अठारह पुत्र अर्थात एक एक रानी के एक एक पुत्र हो जायगा। राजा ने अठारह यज्ञ करवाने का निश्चय किया। यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण एवं ऋषि लोग थे एवं यज्ञ करवाने वाले उनके तथा उनकी सन्तान के गुरु भी समझे जाते थे और शुभ प्रसंग पर लाग लागन एवं दक्षिणा उन गुरुओं को दी जाती थी। यज्ञ में वेद मंत्रों के साथ पशुओं की बलि देना मुख्य काम था। अतः राजा उग्रसेन ने यज्ञ के लिये बहुत से ब्राह्मणों एवं ऋषियों को बुलवाये और यज्ञबलि के लिये बहुत से पशु एकत्र किये थे। यज्ञ प्रारम्भ हुआ और क्रमशः १७ यज्ञ समाप्त भी हो गये पर अठारहवें यज्ञ में राजा को यज्ञ में होने वाली पशुबलि रूप घोर हिंसा प्रति घृणा हो गई अर्थात राजा ने उन निरपराधी पशुओं पर दया लाकर छुड़वा दिये और अपने वंशजों के लिए यज्ञ में बलि देना एवं जीवों की हिंसा करना करवाना बिलकुल निषेध कर दिया। राजा को इस प्रकार यज्ञ की हिंसा से घृणा आ जाने का क्या कारण होगा? इसके लिये जैन कथाओं से पाया जाता है कि राजा को एक करुणा मूर्ति नामक जैनसाधु का उपदेश लग गया था। और उसने बुरी तरह तड़फड़ाहट करते हुए पशुओं को देखकर यज्ञ कर्म करना बंध करवा दिया था और यह बात असम्भव भी नहीं है क्योंकि चलते हुए यज्ञ के लिए यकायक इस प्रकार हिंसा से घृणा हो जाना और भविष्य में अपनी सन्तान परम्परा के लिए इस प्रकार की क्रूर हिंसा का निषेध कर देना किसी अहिंसा के उपासकों का उपदेश बिना बनना मुश्किल था। अतः यह कथन सर्वथा सत्य समझना चाहिए कि राजा उग्रसेन को जैनमुनि का उपदेश अवश्य लगा था।

राजा के अठारह रानियां थी और उनके अठारह पुत्र हुये जिन्हों से अठारह गोत्रों की उत्पत्ति हुई। कई यह भी कहते हैं कि यज्ञ कराने वाले १८ ऋषि थे उनके नाम से अठारह गोत्र हुये और कई यह भी कहते हैं कि राजा के १७ पुत्रों के तो सत्तर ऋषि गुरु बन गये पर एक के कोई गुरु नहीं बना जिसका यज्ञ अधूरा रहा था अतः उसने अपने बड़े भाई के गुरु को ही गुरु माना। इसलिये उसका आधा गोत्र गिना गया जिससे १७॥ गोत्र कहा जाता है। उन १७॥ गोत्रों का विवरण निम्न कोष्टक में दिया जाता है।

विवाह के बाद उन्होंने काशी और हरिद्वार में कितने ही यज्ञ किये। इसके पश्चात् उन्होंने कोल्हापुर के महीधर राजा की कन्या को प्राप्त किया। इसके बाद दिल्ली के पास आकर उन्होंने आगरा बसाया और वहाँ पर उनने अपनी राजधानी स्थापित की अतः उस नगर के नाम से उन लोगों की जाति का नाम अग्रवाल हुआ है। इत्यादि

संख्या	राजकुमार	ऋषि	गोत्र	सं०	राजकुमार	ऋषि	गोत्र
१	पुष्पदेव	गर्ग	गर्ग	१०	तंबोलकरण	ताँडव	तुंगल
२	गेंदूमल	गौभिल	गोइल	११	ताराचंद	तैत्तिरैय	ताईल
३	करणचंद	कश्यप	कच्छल	१२	वीरभान	वत्स	बाँसल
४	मणिपाल	कौशिक	कांसिल	१३	वासुदेव	धन्यास	टेरन
५	वृन्ददेव	वशिष्ठ	बिंदल	१४	नारसेन	नागेन्द्र	नागल
६	ढावणदेव	धौम्य	ढालन(टेलण	१५	अमृतसेन	माँडव्य	मंगल
७	सिंधुपति	शाण्डिल्य	सिंघल	१६	इन्द्रमल	और्व	एरन
८	जैत्रसंघ	जैमिनी	जिंदल	१७	माधवसेन	मुद्गल	मधुकल
९	मन्त्रपति	मैत्रेय	मित्तल	१८	गोधर	गोतम	गोवन

इन गोत्रों का नाम कुछ रद्दोबदल भी मिलता है तथा इन गोत्रों से बाद में कई शाखायें भी निकल गई थीं ! एक समय इस अग्रवाल जाति का वड़ा भारी अभ्युदय था और व्यापार में जैसे ओसवाल पोरवाल और पल्लीवाल जातिऐं वढ़ चढ़ के थी इसी प्रकार अग्रवाल जाति भी खूब उन्नत एवं आबाद थी।

अग्रवाल जाति के हाथों से राज कब निकाला और कब से व्यापार क्षेत्र में प्रवेश हुई इसके लिये अग्रवाल जाति का इतिहास पढ़ना चाहिये।

अग्रवाल जाति में जैनधर्म—अग्रवाल जाति इस समय दो शाखाओं में विभाजित है १ वैष्णव धर्मोपासक २—जैनधर्मोपासक। अग्रवाल जाति में जैनधर्म कब से प्रवेश हुआ इसके लिये अनुमान किया जाता है कि राजा अग्रसेन पर यज्ञ समय ही जैनधर्म का प्रभाव पड़ चुका था जब ही तो उसने हिंसामूलक यज्ञ करवाना वन्द कर अपनी संतान परम्परा के लिये हिंसा करना निषेध कर दिया था पर यह उल्लेख नहीं मिलता है कि राजा ने उसी समय खुल्लमखुल्ला जैनधर्म स्वीकार कर लिया था या बाद मे ? हां, पट्टावल्यादि ग्रंथों में यह उल्लेख जरूर मिलता है कि जैनचार्य्य * लोहित्यसूरि * ने अग्रवालों को प्रतिबोध देकर जैन बनाया था। इसके लिये लिखा है कि अग्रहा नगर में किसी प्रसंग से अग्रवाल लोग एकत्र हुये थे उस समय आचार्य लोहित्यसूरि अपने शिष्यों के साथ भ्रमण करते हुये आगरा नगर में पधारे और उन अग्रवालों को उपदेश दिया जिसमें वहां उपस्थित थे वे लोग जैनधर्म स्वीकार कर लिया तब से ही अग्रवाल लोग जैनधर्म पालन कर रहे ह। उन्हों की वस्ती यू० पी० तथा पंजाब की ओर विशेष है। उस समय जैनियां में कुछ संकीर्णता ने अपना अड्डा जमा लिया था कि ओसवालादि जैन जातियों ने अग्रवालों के साथ रोटी व्यवहार तो शामिल कर लिया परन्तु बेटी व्यवहार शामिल नहीं हुआ इसी कारण कालक्रम से कुछ अग्रवाल पुनः वैष्णव धर्म में चले गये अतः अग्रवालों में दो धर्म आज भी दृष्टिगोचर होरहे हैं १-जैन २-वैष्णव परन्तु

* लोहित्याचार्य—दो हुए है—एक श्वेताम्बर समुदाय में लोहित्याचार्य हुए है और दूसरे दिगम्बर समुदाय में भी एक लोहित्याचार्य है। परन्तु अग्रवाल जाति के प्रतिबोधक गुरु से श्वेताम्बर समुदाय के लोहित्याचार्य हैं अतः अग्रवाल जाति गुरू से श्वेताम्बर समुदाय के श्रावक थे पर बाद कई स्थानों में श्वेताम्बर साधुओं के अभाव से कई अग्रवाल भाई दिगम्बर मत को भी मानने लग गये हैं। खैर अग्रवाल जाति प्राचीन समय से जैनधर्मोपासक है।

फिर भी यह खुशी की बात है कि दोनों धर्म के पालने वाले अग्रवालों में रोटी बेटी व्यवहार जैसे पहिले था वैसे ही आज भी है।

अब देखना है समय! कि अग्रवाल किस समय जैनी बने हैं इसके लिये आचार्य्य लोहितसूरि का समय देखना पड़ेगा क्योंकि अग्रवालों को जैन बनाने वाले आचार्य्य लोहितसूरि थे और जैन पट्टावलियों से पता चलता है कि आर्यदेवऋद्धिगणि क्षमा श्रमणजी आचार्य्य लोहितसूरि के शिष्य थे और उन्होंने वीर संवत ९८० (ई. स. ४५३) में वल्लभी नगरी में आगम पुस्तकारूढ़ किये थे। यदि इनसे ३० वर्ष पूर्व आचार्य लोहित का समय समझा जाय तो ई. स ४२३ के आस पास आगरा नगर में आचार्य लोहितसूरिने अग्रवालों को जैन बनाये थे और बाबुनागेन्द्रनाथ के मतानुसार यह समय राजा अग्रसेन के निकटवर्ती आता है। जब राजा अग्रसेन ने जैनाचार्य के उपदेश से पशुहिंसा एवं मांस प्रति घृणा लाकर अपनी संतान तक के लिये हिंसा निषेध कर दी तो ब्राह्मणों ने उनको कहना सुनना एवं उपदेश अवश्य किया होगा और उस समय या उनके बाद कुछ अर्सा में अग्रवालों ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया हो तो यह सर्वथा मानने योग्य है।

अग्रवाल जाति के जैन श्रावकों ने आत्म कल्याण के लिये बड़े बड़े सुकृत कार्य किये है कई दानेश्वरियों ने दुष्काल में करोड़ों द्रव्य व्यय कर देशवासी भाइयों के प्राण बचाये कई एकों ने तीर्थयात्रार्थ बड़े-बड़े संघ निकाल कर चतुर्विध श्री संघ कों तीर्थों की यात्राऐं करवाई—कइएकों ने स्वपर कल्याणार्थ बड़े-बड़े मन्दिर बनवा कर उसमें त्रिजगपूजनीय तीर्थङ्कर देवों की मूर्त्तियो की प्रतिष्ठा करवाई कइएकों ने जैनाचार्यों के पद महोत्सव एवं नगर प्रवेश महोत्सव में लाखों करोड़ों द्रव्य खर्च कर अनंत पुन्योपार्ज्जन किये। जिसके उल्लेख यत्र तत्र पट्टावलियादि ग्रन्थों में मिलते है। जिसकों हम यथा स्थान दर्ज करेंगे। यहाँ पर तो केवल अग्रवाल जाति की उत्पति तथा अग्रवाल जाति कबसे जैनधर्म स्वीकार किया इन बातों का ही निर्णय करना था जो उपरोक्त प्रमाणों से पाठक अच्छी तरह से समझ गये होंगे। इति शुभम्

महेश्वरी जाति की उत्पत्ति

महेश्वरी जाति के साथ जैन धर्म का घनीष्ट सम्बन्ध है क्योंकि महेश्वरी जाति के पूर्वज सब के सब जैन धर्मोपासक थे, जिस समय महेश्वरी जाति की उत्पत्ति हुई थी उस समय जैन धर्म का सर्वत्र प्रचार था एवं अहिंसा परमोधर्म का झंडा सर्वत्र फहरा रहा था हिंसामय यज्ञादि क्रिया काण्ड से जनता को अरूची एवं घृणा हो रही थी, जैनाचार्य सर्वत्र विहार कर जनता की शुद्धि कर जैन धर्म के झंडा के नीचे लाकर उनका उद्धार कर रहे थे। फिर भी कहीं कहीं पर ब्राह्मण लोग छाने छूपके छोटा बड़ा यज्ञ कर ही डालते थे ऐसा ही बरताव महेश्वरी जाति की उत्पति में हुआ है।

महेश्वरी जाति की उत्पत्ति के लिये महेश्वरियों के जाग-बही भाट अपनी वंशावलियों में एक कथा बना रखी हैं और जब महेश्वरियों के नाम लिखने को वे लोग आते है तब वह कथा सब को सुनाया करते हैं उसमें सत्य का अंश कितना है पाठक स्वयं समझ जायंगे। खैर कुच्छ भी हो उन जागों के तो यह कथा एक जागीरी बन चूकी है पाठकों की जानकारी के लिये उस कथा को यहां उद्धृत करदी जाती है।

खंडेला नगर में सूर्यवंशी राजा खंडेलसेन राज करता था राजा सर्व प्रकार से सुखी एवं सर्व ऋद्धि सम्पन्न होने पर भी उसके कोई सन्तान नहीं थी, अतः वह सदैव चिन्तातुर रहता था और इसके लिये कई उपाय

भी किये थे, पर उसकी आशा पूर्ण नहीं हुई, अतः एक दिन राजा ने ब्राह्मणों को एकत्र कर ब्रह्मभोज दिया तथा दक्षिणा में पुष्कल द्रव्य का दान देकर प्रार्थना की कि भूषियों मेरे पुत्र नहीं है अतः आप प्रसन्न होकर ऐसा उपाय बतलावें कि जिससे मेरा मनोरथ सफल हो ? ब्राह्मणों ने खुश होकर कहा राजा तेरे पुत्र तो होगा पर एक बात याद रखना कि वह १६ वर्ष तक उत्तर दिशा में न जाय यदि कभी भूल चूक कर उत्तर दिशा में चला गया तो उसको इसी शरीर से पुनर्जन्म लेना होगा इत्यादि भूदेवों के आशीर्वाद को राजा ने शिरोधार्य कर लिया और उन ब्राह्मणों को और भी बहुतसा द्रव्य देकर विसर्ज्जन किये।

राजा के चौबीस रानियें थीं, जिसमें चम्पावती रानी के गर्भ रहा जिससे राजा बड़ा ही हर्षित हुआ और ब्राह्मणों के वचन पर श्रद्धा भी होगई गर्भ के दिन पूर्ण होने से राजा के वहां पुत्र का जन्म हुआ राजा ने बड़े ही महोत्सव किया और याचकों को दान एवं सज्जनों को सन्मान दिया और बारहवें दिन उनका नाम 'सज्जन कुँवर' रक्ख दिया राजकुँवर का पाँच धायें से पालन पोषण हो रहा था, जब कुँवर पांच वर्ष का हुआ तो अध्यापक के पास पढ़ने के लिये भेज दिया और बारहवर्ष में तो वह सर्व कला में निपुण बन गया इतना ही क्यों पर राजकुँवर ने राज कार्य भी संभालने लग गया राजा को ब्राह्मणों की बात याद थी, अतः कुँवर को कहदिया कि तुम सर्वत्र जाओ आओ पर एक उत्तर दिशा में भूल चूक के भी नहीं जाना उत्तर दिशा में जाने की मेरी सख्त मनाई है, राजकुँवर ने भी पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करली और आनन्द में राज कारभार चलाने लगा मुत्सद्दी उमराव एवं जनता कुँवर के आधीन रह कर उनकी आज्ञा का अच्छी तरह से पालन करने लगे।

एक समय उस नगर में किसी जैनाचार्य का शुभागमन हुआ और उन्होंने जनता को अहिंसा सत्य शील परोपकार आदि विविध विषयों पर उपदेश दिया आचार्य श्री ने मनुष्य जन्म की दुर्लभता राजसम्पति की चञ्चलता कुटम्ब की स्वार्थता और क्षणभंगुर शरीर की असारता पर जोरदार व्याख्यान दिया जिसको सुनकर राजकुंवर सज्जनकुंमार को सूरिजी का कहना सोलह आना सत्य प्रतीत हुआ अतः उसने सूरिजी के चरण कमलों में श्रद्धा पूर्वक जैन धर्म को स्वीकार कर लिया 'यथा राजा तथा प्रजा' जब राजकुंवर ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया तो उमराव मुत्सद्दी तथा नागरिक लोग कब पीछे रहने वाले थे उन लोगों ने भी जैन धर्म स्वीकार कर लिया जैनधर्म का मुख्य सिद्धान्त अहिंसा परमोधर्म का है कि बिना अपराध किसी जीव को मारना तो क्या पर तकलीफ तक भी नहीं पहुँचानी अर्थात पर जीवों को स्वजीव तुल्य समझना चाहिये। राजकुँवर ने जैन धर्म स्वीकार करके अपने राज में जीव हिंसा कतई बन्द करवा दी। जिससे ब्राह्मणों के यज्ञ यगादि कर्म सर्वत्र बन्द हो गये इतना ही क्यों पर राजकुँवर ने तो स्थान २ पर जैन मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं करवा दी कि जनता सदैव सेवा पूजा भक्ति कर अपना कल्याण करने लगी इस कारण शिव मन्दिरों की पूजा बन्द सी हो गई कई थोड़े बहुत ब्राह्मण लोग ही शिवोपासक थे वे लोग भी छाने-छुपके शिव पूजा वगैरह करते थे।

राजकुँवर ने केवल अपने नगर में ही नहीं पर आस पास का प्रदेश अर्थात पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशा में जैनधर्म का काफी प्रचार कर दिया और जीव हिंसा एवं यज्ञ भी सर्वत्र बन्द करवा दिये केवल एक उत्तर दिशा में राजकुँवर नहीं जा सका कारण, राजा ने पहले से ही मनाई कर रखी थी। फिर भी कुंवर इस बात का विचार कर रहा था कि उत्तर दिशा में जाने की मुझे मनाई क्यों की होगी—

एक दिन सज्जनकुँवर ने सुना कि उत्तर दिशा में ब्राह्मणों ने एक यज्ञ करना प्रारम्भ किया है अतः उसे आश्चर्य के साथ बड़ा ही दुःख हुआ कि दरबार ने मुझे तो उत्तर दिशा में जाने की मनाई कर रखी है और ब्राह्मण लोग घोर हिंसा रूप वहां यज्ञ प्रारम्भ किया है यह कैसा अन्याय यह कैसा अत्याचार, मेरे मनाई करने पर भी ब्राह्मणों ने रौद्र हिंसामय यज्ञ शुरू कर दिया! बस ! राजकुँवर से रहा नहीं गया अपने बहत्तर उमरावों को साथ लेकर उत्तर दिशा में चला गया जहां कि यज्ञ हो रहा था सूर्यकुण्ड के पास जाकर राजकुँवर क्या देखता है कि एक ओर यज्ञमण्डप और अग्निकुण्ड बना हुआ है दूसरी ओर बहुत से पशु एकत्र किये हुए दीन स्वर से रूदन एवं पुकारें कर रहे हैं तब तीसरी तरफ बड़े-बड़े जटाधारी गले में जनेऊ और रुद्राक्ष की माला पड़ी हुई कपाल पर तिलक लगे हुए ऋषि एवं ब्राह्मण वेदध्वनी का उच्चारण कर रहे थे इस प्रकार दृश्य देख सज्जन को बड़ा ही गुस्सा आया और उसने अपने उमरावों को हुक्म दिया कि यज्ञ मण्डप उखेड़ दो अग्निकुण्ड को नष्ट करदो पशुओं को छोड़दो और यज्ञ सामग्री छीन लो अर्थात् यज्ञ विध्वंश कर डालो। बस, फिर तो देरी ही क्या थी उन लोगों ने सब यज्ञ को ध्वंश कर दिया। जिसको देख उन ब्रह्म महर्षियों को बड़ा भारी दुःख हुआ उन्होंने गुस्से में आकर उनको ऐसा श्राप दिया कि बहुतर उमरावों के साथ राजकुँवर जड़ पाषण की तरह अचेतन हो गये। इस बात की खबर नगर में हुई तो राजा और कई नागरिक लोग चलकर उत्तर दिशा में आये कि जहां यज्ञ विध्वंश किया था और राजकुँवरादि सब जड़ पाषणवत हुए पड़े थे उनको देख राजा को इतना दुःख हुआ कि वह दुःख के मारे वहीं मर गया उनकी सोलह रानियां तो राजा के साथ सतियें होकर जल गई और शेष आठ रानियां जाकर ब्राह्मणों का शरण लिया। इस वीतिकार को आसपास के राजाओं ने सुना कि खंडेला नगर का राजा तो मर गया है और कुँवर एवं उमराव जड़पाषाण सदृश हुये पड़ा है अतः उन्होंने सेना सहित आकर राज को अपने आधीन में कर लिया बात भी ठीक है कि बिना राजा के राज को कौन छोड़ता है।

इधर राजकुँवर सज्जन की पत्नी (कुँवर रानी) वगैरह ने सुना की बहोत्तर उमरावों के साथ राज कुँवर जड़ पाषाणवत् अचेतन हो गया है तो उनको बहुत दुःख हुआ वह भी बहोत्तर उमराओं की औरतों को लेकर उत्तर दिशा में आई और सबों ने अपने पतियों की हालत देख रोने एवं आक्रन्द करने लगीं पर अब रोना से क्या होने वाला था वे सब चल कर ऋषियों के पास गई और उनसे प्रार्थना करने लगी कि आप इनके अपराध की क्षमा कर इन सबको सचेतन करावें इत्यादि। इस पर ब्राह्मणों ने कहा कि यदि आप को यह कार्य करना ही है तो यह पास में गुफा है वहाँ जाकर शिव पार्वती की आराधना करो ब्राह्मणों ने एक अष्टाक्षरी मंत्र भी दे दिया था कि तुम सब इसमंत्र का जाप करो। बस दुःखी मनुष्य क्या नहीं कर सकता है कुँवरानी वगैरह सब गुफा में जाकर तपस्या के साथ उस मंत्र का जाप किया कि कितनेक दिनों के बाद साक्षात् शिव-पार्वती आये उनको देख कर उन ७३ औरतें जाकर पार्वती के पैरों में गिर गई तब पार्वती ने उनको आशीर्वाद के साथ कहा कि तुम धन धानपुत्र और पति से सुखी रहो तुम्हारा सुहाग कुशल और पति चिरंजीवी हो इस पर उन औरतों ने कहा माता आप वरदान तो दिया है पर हमारे पति तो सब जड़ पाषाणवत् अचेतन पड़े हैं फिर हमारा शोभाग्य कैसे रहेगा इस पर पार्वती ने जाकर शिवजी को कहा कि आप इन सब को सचेतन करो कारण मैंने इनको वरदान दे दिया है वह अन्यथा हो नहीं सकता है अतः पार्वती के अत्यग्रह से शिवजी ने उन सब को सचेतन कर दिये और वे सब आकर शिवजी के चारों ओर खड़े

भी किये थे, पर उसकी आशा पूर्ण नहीं हुई, अतः एक दिन राजा ने ब्राह्मणों को एकत्र कर ब्रह्मभोज तथा दक्षिणा में पुष्कल द्रव्य का दान देकर प्रार्थना की कि भूर्षियों मेरे पुत्र नहीं है अतः आप प्रसन्न हो ऐसा उपाय बतलावें कि जिससे मेरा मनोरथ सफल हो ? ब्राह्मणों ने खुश होकर कहा राजा तेरे पुत्र होगा पर एक बात याद रखना कि वह १६ वर्ष तक उत्तर दिशा में न जाय यदि कभी भूल चूक कर दिशा में चला गया तो उसको इसी शरीर से पुनर्जन्म लेना होगा इत्यादि भूदेवों के आशीर्वाद को ने शिरोधार्य कर लिया और उन ब्राह्मणों को और भी बहुतसा द्रव्य देकर विसर्जन किये।

राजा के चौबीस रानियें थी, जिसमें चम्पावती रानी के गर्भ रहा जिससे राजा बड़ा ही हुआ और ब्राह्मणों के वचन पर श्रद्धा भी होगई गर्भ के दिन पूर्ण होने से राजा के वहां पुत्र का जन्म हु राजा ने बड़े ही महोत्सव किया और याचकों को दान एवं सज्जनों को सन्मान दिया और बारहवें दिन उस नाम 'सज्जन कुँवर' रक्ख दिया राजकुँवर का पाँच धायें से पालन पोषण हो रहा था, जब कुँवर प वर्ष का हुआ तो अध्यापक के पास पढ़ने के लिये भेज दिया और बारहवर्ष में तो वह सर्व कला में निपु बन गया इतना ही क्यों पर राजकुँवर ने राज कार्य भी संभालने लग गया राजा को ब्राह्मणों की बात य थी, अतः कुँवर को कहदिया कि तुम सर्वत्र जाओ आओ पर एक उत्तर दिशा में भूल चूक के भी न जाना उत्तर दिशा में जाने की मेरी सख्त मनाई है, राजकुँवर ने भी पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करले और आनन्द में राज कारभार चलाने लगा मुत्सद्दी उमराव एवं जनता कुँवर के आधीन रह कर उनकी आज्ञा का अच्छी तरह से पालन करने लगे।

एक समय उस नगर में किसी जैनाचार्य का शुभागमन हुआ और उन्होंने जनता को अहिंसा सत्य शील परोपकार आदि विविध विषयों पर उपदेश दिया आचार्य श्री ने मनुष्य जन्म की दुर्लभता राजसम्पत्ति की चञ्चलता कुटम्ब की स्वार्थता और क्षणभंगुर शरीर की असारता पर जोरदार व्याख्यान दिया जिसको सुनकर राजकुंवर सज्जनकुंमार को सूरिजी का कहना सोलह आना सत्य प्रतीत हुआ अतः उसने सूरिजी के चरण कमलों में श्रद्धा पूर्वक जैन धर्म को स्वीकार कर लिया 'यथा राजा तथा प्रजा' जब राजकुंवर ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया तो उमराव मुत्सद्दी तथा नागरिक लोग कब पीछे रहने वाले थे उन लोगों ने भी जैन धर्म स्वीकार कर लिया जैनधर्म का मुख्य सिद्धान्त अहिंसा परमोधर्म का है कि बिना अपराध किसी जीव को मारना तो क्या पर तकलीफ तक भी नहीं पहुँचानी अर्थात पर जीवों को स्वजीव तुल्य समझना चाहिये। राजकुँवर ने जैन धर्म स्वीकार करके अपने राज में जीव हिंसा कतई बन्द करवा दी। जिससे ब्राह्मणों के यज्ञ यगादि कर्म सर्वत्र बन्द हो गये इतना ही क्यों पर राजकुँवर ने तो स्थान २ पर जैन मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाऐं करवा दी कि जनता सदैव सेवा पूजा भक्ति कर अपना कल्याण करने लगी इस कारण शिव मन्दिरों की पूजा बन्द सी हो गई कई थोड़े बहुत ब्राह्मण लोग ही शिवोपासक रहे वे लोग भी छाने-छुपके शिव पूजा वगैरह करते थे।

राजकुँवर ने केवल अपने नगर में ही नहीं पर आस पास का प्रदेश अर्थात पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशा में जैनधर्म का काफी प्रचार कर दिया और जीव हिंसा एवं यज्ञ भी सर्वत्र बन्द करवा दिये केवल एक उत्तर दिशा में राजकुँवर नहीं जा सका कारण, राजा ने पहले से ही मनाई कर रखी थी। फिर भी कुँवर इस बात का विचार कर रहा था कि उत्तर दिशा में जाने की मुझे मनाई क्यों की होगी—

एक दिन सज्जनकुँवर ने सुना कि उत्तर दिशा में ब्राह्मणों ने एक यज्ञ करना प्रारम्भ किया है अतः उसे आश्चर्य के साथ बड़ा ही दुःख हुआ कि दरबार ने मुझे तो उत्तर दिशा में जाने की मनाई कर रखी है और ब्राह्मण लोग घोर हिंसा रूप वहां यज्ञ प्रारम्भ किया है यह कैसा अन्याय यह कैसा अत्याचार, मेरे मनाई करने पर भी ब्राह्मणों ने रौद्र हिंसामय यज्ञ शुरू कर दिया! बस ! राजकुँवर से रहा नहीं गया अपने बहत्तर उमरावों को साथ लेकर उत्तर दिशा में चला गया जहां कि यज्ञ हो रहा था सूर्यकुण्ड के पास जाकर राजकुँवर क्या देखता है कि एक ओर यज्ञमण्डप और अग्निकुण्ड बना हुआ है दूसरी ओर बहुत से पशु एकत्र किये हुए दीन स्वर से रूदन एवं पुकारें कर रहे हैं तब तीसरी तरफ बड़े-बड़े जटाधारी गले में जनेऊ और रुद्राक्ष की माला पड़ी हुई कपाल पर तिलक लगे हुए ऋषि एवं ब्राह्मण वेदध्वनी का उच्चारण कर रहे थे इस प्रकार दृश्य देख सज्जन को बड़ा ही गुस्सा आया और उसने अपने उमरावों को हुक्म दिया कि यज्ञ मण्डप उखेड़ दो अग्निकुण्ड को नष्ट करदो पशुओं को छोड़दो और यज्ञ सामग्री छीन लो अर्थात् यज्ञ विध्वंश कर डालो। बस, फिर तो देरी ही क्या थी उन लोगों ने सब यज्ञ को ध्वंश कर दिया। जिसको देख उन ब्रह्म महर्षियों को बड़ा भारी दुःख हुआ उन्होंने गुस्से में आकर उनको ऐसा श्राप दिया कि बहुतर उमरावों के साथ राजकुँवर जड़ पाषण की तरह अचेतन हो गये। इस बात की खबर नगर में हुई तो राजा और कई नागरिक लोग चलकर उत्तर दिशा में आये कि जहां यज्ञ विध्वंश किया था और राजकुँवरादि सब जड़ पाषाणवत हुए पड़े थे उनको देख राजा को इतना दुःख हुआ कि वह दुःख के मारे वहीं मर गया उनकी सोलह रानियां तो राजा के साथ सतियें होकर जल गई और शेष आठ रानियां जाकर ब्राह्मणों का शरण लिया! इस बीतिकार को आसपास के राजाओं ने सुना कि खंडेला नगर का राजा तो मर गया है और कुँवर एवं उमराव जड़पाषाण सदृश हुये पड़ा है अतः उन्होंने सेना सहित आकर राज को अपने आधीन में कर लिया बात भी ठीक है कि बिना राजा के राज को कौन छोड़ता है।

इधर राजकुँवर सज्जन की पत्नी (कुँवर रानी) वगैरह ने सुना की बहोत्तर उमरावों के साथ राज कुँवर जड़ पाषाणवत् अचेतन हो गया है तो उनको बहुत दुःख हुआ वह भी बहोत्तर उमराओं की औरतों को लेकर उत्तर दिशा में आई और सबों ने अपने पतियों की हालत देख रोने एवं आक्रन्द करने लगीं पर अब रोना से क्या होने वाला था वे सब चल कर ऋषियों के पास गई और उनसे प्रार्थना करने लगी कि आप इनके अपराध की क्षमा कर इन सबको सचेतन करावें इत्यादि। इस पर ब्राह्मणों ने कहा कि यदि आप को यह कार्य करना ही है तो यह पास में गुफा है वहाँ जाकर शिव पार्वती की आराधना करो ब्राह्मणों ने एक अष्टाक्षरी मंत्र भी दे दिया था कि तुम सब इसमंत्र का जाप करो। बस दुःखी मनुष्य क्या नहीं कर सकता है कुँवरानी वगैरह सब गुफा में जाकर तपस्या के साथ उस मंत्र का जाप किया कि कितनेक दिनों के बाद साक्षात् शिव-पार्वती आये उनको देख कर उन ७३ औरतें जाकर पार्वती के पैरों में गिर गई तब पार्वती ने उनको आशीर्वाद के साथ कहा कि तुम धन धानपुत्र और पति से सुखी रहो तुम्हारा सुहाग कुशल और पति चिरंजीवी हो इस पर उन औरतों ने कहा माता आप वरदान तो दिया है पर हमारे पति तो सब जड़ पाषाणवत् अचेतन पड़े हैं फिर हमारा सोभाग्य कैसे रहेगा इस पर पार्वती ने जाकर शिवजी को कहा कि आप इन सब को सचेतन करो कारण मैंने इनको वरदान दे दिया है वह अन्यथा हो नहीं सकता है अतः पार्वती के अत्याग्रह से शिवजी ने उन सब को सचेतन कर दिये और वे सब आकर शिवजी के चारों ओर खड़े

होगये । पास में पार्वतीजी भी खड़ी थी उसका रूप योवन लावण्य आदि सौंदर्य देख कर राज कुँवर सज्जन का चित्त चञ्चल और विकार सहित हो गया जिस चेष्टा को देख पार्वती ने उसे श्राप दे दिया कि अरे मंगता जा मांग खा । बस ! फिर तो देरी ही क्या थी राज कुँवर सज्जन मंगता बन गया जिसको 'जागा' कहते हैं उसमें एक मिश्रीलाल कायथ था उसको कोतवाल बना दिया जब बहोत्तर उमराव हाथ जोड़ कर बोले हे दयालु हमारे लिए क्या हुक्म है शिवजी ने कहा कि तुम्हारा राज तो दूसरे राजा ने छीन लिया है अब तुम वैश्य पद को धारण कर के तलवार की कलम बनालो भाला की दंडी और ढाल के तराजू के पालने बना कर व्यापार करो । इस बीच में ही ब्राह्मण बोल उठे कि भोला शम्भू ! यह तो आपने ठीक किया परन्तु इन नास्तिकों ने हमारी सामग्री ध्वंश कर हमको बड़ा भारी नुकशान पहुँचाया है इसके लिये आपने क्या फैसला दिया है कहीं हम ब्राह्मण मारे नहीं जावें क्योंकि सामग्री के अभाव से हमारा यज्ञ समाप्त कैसे होंगे ? शिवजी ने कहा कि अभी तो इनके पास कुछ है नहीं कारण इनका राज माल वगैरह तो सब दूसरे राजा ने छीन लिया है अतः यह आपको क्या दे सकें । परन्तु इनका और तुम्हारा ऐसा सम्बन्ध कर दिया जाता है कि इन लोगों के घरों में पुत्र जन्म या विवाह शादी और मृत्यु वगैरह का प्रसंग होगा तब शक्ति के अनुसार तुमको कुछ न कुछ दिया करेंगे शिवजी ने दीर्घ दृष्टि से ब्राह्मणों का सदैव के लिये निर्वाहा कर दिया और वे उमराव सदैव के लिए ब्राह्मणों के करजदार बन गये खैर ! शिवजी का फैसला दोनों पक्ष वालों ने मंजूर कर लिया बाद शिव पार्वती अपने स्थान पर चले गये ।

जब वे बहोत्तर उमराव छ ब्राह्मणों के पास गये तो उन ब्राह्मणों ने बारह बारह उमरावों को अपने२ यजमान बना लिये इन पर ही ब्राह्मणों की आजीविका अर्थात् ब्राह्मणों की एक जागीरी बन गई । अब रहा राजकुँवर सज्जन इसके लिये पार्वतीजी का श्राप था वह जागा के नाम से ७२ उमरावों की वंशावलियाँ लिख कर अपनी आजीविका करने लगा -इत्यादि महेश्वरी जाति का उत्पत्ति बतलाई है ।

इनके अलावा श्रीयुक्त शिवकरणजी रामरतनजी दरक (महेश्वरी) मुड़वा वाला ने 'इतिहास कल्पद्रुम महेश्वरी कुल दर्पण'' नाम की एक पुस्तक मुद्रित करवाई है उसमें भी महेश्वरी जाति की उत्पत्ति प्रायः उपरोक्त वही भाटों (जागा) के मतानुसार ही लिखी है और ये दोनों कथाओं प्रायः मिलती जुलती ही हैं इससे पाया जाता है कि दरक महाशय ने किसी जागा के कथा को नकल ही अपनी किताब में उतार दी हैं विशेषता में दरक महाशय ने उन ७२ उमरावों से महेश्वरी की जातियें बनी जिसके नाम एक कविता में दिया है जिसको भी मैं यहाँ दर्ज कर देता हूँ ।

महेश्वरी जाति के ७२ नाम हैं—सोनी१ और सोमणी२ जाखेड्या३ सोढाणी४ ॥ हुरकट५ न्याति६ हेडा७ करवा८ काकाणी९ मालु१० सारड़ा११ कहाल्या१२ गिलडा१३ जाजू१४ ॥ बाहेती१५ बिदादा१६ बिहाणी१७ बजाजू१८ ॥ कलंत्री१९ कासट२० कचौल्या२१ काहलाणी२२ झंवर२३ काबरा२४ डाडा२५ डागा२६ गठाणी२७ राही२८ बिड़ला२९ दरक३० तोसणीवाल३१ राजे ॥ अजमेरा३२ भंडारी३३ छपरवाल३४ खोजे ॥ भटडा३५ भूतडा३६ बंग३७ अटल३८ इनाणी३९ ॥ भूराड्या४० भन्साली४१ लड्डा४२ माल पाणी४३ सिकची४४ लाहोटी४५ गदइया४६ गगुराणी४७ ॥ खटखड़ा४८ लखोटया४९ आसावा५० चेचाणी५१ मुणधड्या५२ मुदड़ा५३ चौखड़ा५४ चंडक५५ राजे ॥ बलदवा५६ बालदी५७ तुवा५८ बांगड़...

मंडोवरा६० तौतला६१ आगीवाल६२ आगसौड़६३ ॥ प्रताणी६४ नाहूदर६५ नवल६६ पचौडा६७ ॥ तापडिया६८ मिणीयार६९ धून७० धूपड़७१ मोदाणी७२ ॥ साहा दरक शिवकरण बहुतर बखयाति ॥

इस प्रकार महेश्वरी जाति की उत्पत्ति तथा उनकी ७२ जातियों की उत्पत्ति लिखी है तथा इनकी शाखा प्रतिशाखा रूप ८०० जातियों के नाम भी प्रस्तुत ग्रन्थ में लिखा है। इस जाति की उत्पत्ति का समय स्पष्ट रूपसे तो नहीं लिखा हैं पर लेखक के भावों से राजाविक्रम के आस पास के समय का अनुमान किया जा सकता है पर इस समय के लिये विश्वासनीय प्रमाण नहीं दिया है तथापि महाशय दरक जी का परिश्रम प्रस्तुत कहा जा सकता है कि आपने बड़े ही परिश्रम एवं शोध खोज से इस ग्रन्थ को तैयार किया हैं यदि ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ अधिक शोध खोज की जाती तो ग्रन्थ का महत्त्व और भी बढ़ जाता।

महाशय दरकजी को वही भटों एवं जागों से जितनी सामग्री प्राप्त हुई वह संग्रह कर के पुस्तक के रूप में छपा दी हैं पर इसमें त्रुटियें बहुत रही है जैसे कि—

१—महेश्वरी जाति का उत्पत्ति स्थान खंडेला नगर बतलाया है यह विचारणीय है क्योंकि खंडेला नगर और महेश्वरी जाति का कोई सम्बन्ध नहीं है खंडेला नगर से खंडेलवाल जाति की उत्पत्ति हुई है जिसको हम ऊपर लिख आये हैं तब महेश्वरी जाति की उत्पत्ति महेष्मति नगरी जो आवंती प्रान्त में है जिसका अपर नाम महेश्वरी नगरी भी था वहां से महेश्वरी जाति की उत्पत्ति हुई है दूसरा इस जाति का उत्पत्ति समय विक्रम संवत के आस पास लिखना भी गलत है कारण महेश्वरी जाति की उत्पत्ति आद्यशंकराचार्य के समय में हुई है इसके पूर्व कोई भी प्रमाण नहीं मिलता है जैन पट्टावलियों में उल्लेख मिलता है कि विक्रम की आठवीं शताब्दी के अन्त और नौवीं शताब्दी के प्रारम्भ में महेश्वरी नगरी के राजा प्रजा एवं राजकुमारादि को आचार्य श्री कक्कसूरिजी ने प्रतिबोध देकर जैनधर्म की दीक्षा दी थी बाद में वहां शंकराचार्य का आना हुआ और उन लोगों को भौतिक चमत्कार दिखाकर पुनः अपने धर्म में दीक्षित कर लिये थे जब इस बात का पता आचार्य कक्कसूरि को मिला तो वे भी पुनः महेश्वरी नगरी में पधार कर राजकुंवार तथा बहुत से लोगों को पुन जैन बना लिये थे इस समय के बाद भी महेश्वरियों के अन्दर से मालु डागा सोनी लुनियों वगैरह जातियों को प्रतिबोध देकर जैनधर्म में दीक्षित किये थे। कई महेश्वरी भाई यह भी कह उठते हैं कि चोपड़ा नौलखादि ओसवालों को महेश्वरी बना लिये थे जिन्हों की जाति मंत्री कहलाई। पर यह बात बिल्कुल कल्पित है कारण राजपूतों से जैनाचार्यों ने चोपड़ा नोलखा बनाये थे जिसके पूर्व भी महेश्वरियों में मन्त्री जाति का होना पाया जाता है जैन पट्टावलियादि किसी ऐतिहासिक ग्रन्थ में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है कि कोई एक भी ओसवाल जैनधर्म को छोड़ कर महेश्वरी बन गया हो दूसरे ओसवालों का आसन ऊँचा था कि उसको छोड़कर महेश्वरी बन जाना यह बिल्कुल असंभव बात है तीसरे ओसवालों के बजाय महेश्वरी जाति में ऐसी कोई विशेषता भी नहीं थी। हां, कई ओसवाल राज प्रसंग से शिव विष्णु धर्म पालने लग गये थे पर वे भी अपनी ओसवाल जाति का गौरव तो वैसा ही रखते हैं कि जैसे जैन ओसवाल रखते हैं तथा शिव विष्णु धर्म पालने वाले ओसवालों का जैन ओसवालों के साथ तथा जैनमन्दिरों के साथ सम्बन्ध भी वही रहा जो शुरू से था वे धर्मान्तर होने पर भी अपना बेटी व्यवहार ओसवालों के साथ करते थे न कि महेश्वरियों के साथ। उनके घरों में जन्म विवाह और मरण सम्बन्धी क्रियाएं जैन धर्मानुसार जैन मन्दिरों में जाकर ही करते हैं तात्पर्य यह है कि वे राजा के दीवान

प्रधान मन्त्री महामन्त्री जैसे उच्च पद पर रहने के कारण राजा का अनुकरण मात्र से धर्मान्तर हो गये हो पर उनका कुल धर्म तो ओसवाल ही रहा था।

बहुत से ग्राम नगरों में महेश्वरी भाई जैनधर्म की उपासना करते थे-पर्युषण जैसे पर्वादि दिनों में कल्पसूत्र का श्रवण करना आचार्यों की सेवा उपासन स्वागत संम्मेलादि जैन धर्म के प्रत्येक कार्य में शामिल रहते थे। फलोदी के पास में पोकरण नामक एक शहर है वहाँ पर महेश्वरी भाई जैनों की धार्मिक सब क्रिया में भाग लेते थे। अन्य स्थानों में भी इसी प्रकार का बरताव था—

ओसवाल और महेश्वरियों से शुरू से ही भाईचारा पना रहा है कई ऐसे भी उदाहारण मिलते हैं कि महेश्वरियों की कन्यायें के साथ ओसवालों के विवाह हुए हैं। तथा महेश्वरी और ब्राह्मणों के अन्दर जो मांस मदिरा की प्रवृति बिलकुल बन्ध हो गई यह भी जैनाचार्य की कृपा का ही फल है महेश्वरियों के गुरु ब्राह्मण है और तमाम ब्राह्मण यज्ञ करवाते थे और उसमें मांस खाते थे जब गुरु मांस खाते थे उनके यज मान मांस खाने से कब बच सकते थे परन्तु जहाँ-जहाँ जैनाचार्यों का भ्रमण एवं उपदेश हुआ वहाँ वहाँ के ब्राह्मण एवं महेश्वरियों ने मास खाना बिलकुल छोड़ दिया परन्तु जहाँ जैनाचार्यों का विहार नहीं हुआ वहाँ के ब्राह्मण मांस भक्षण करते और आज भी कर रहे हैं देखिये पूर्व बंगाल पंजाब सिन्ध शूरसेन महाराष्ट्रीय और तैलंदिके ब्राह्मणोंको कि जिनके गला में जनोऊ रूद्रक्ष की माला होते हुए भी पंचेन्दिय जीवों का मास खाते हैं। स्वर्गस्थ महात्मा तिलक ने एक समय बनारस में अपने पब्लिक व्याख्यान में कहा था कि ब्राह्मण धर्म पर अहिंसा की छाप जैनों ने ही मारी थी कि वे लोग मांस नहीं खाते हैं।

महेश्वरी जाति की उत्पत्ति में लिखा है कि राजपुत्र सज्जनकुँवर उनके उमराव तथा नगरी के लोग जैन हो गये थे और यज्ञ तथा जीवहिंसा का खूब जोरों से निषेध करते थे तथा ब्राह्मणों के यज्ञ को विध्वंस कर दिया था यह उल्लेख स्पष्ट बतला रहा है कि ब्राह्मण यज्ञ में पशुहिंसा करते थे मांस खाते थे तब जैन उनका निषेध कर यज्ञविध्वंश कर अहिंसा धर्म का बड़ी वीरता से प्रचार करते थे यही कारण है कि उस कथा में राजकुँवर सज्जन को मगता (जागा) होना लिख दिया है यदि ब्राह्मणों में श्राप द्वारा किसी को पाषाणवत बना देने जितनी शक्ति होती तो जैन और बोध धर्म का इतना प्रचार कब होने देते तथा वेदक धर्म को मरण के सरण कब जाने देते मेरे खयाल से तो सज्जन जैन होने के कारण उसको मगता एवं जागा केवल जैनों के साथ द्वेष होने के कारण ही लिखा गया है वास्तव में यह कल्पना का कलेवर मात्र है।

हमें अधिक खुशी इस बात की है कि जिन ब्राह्मणों ने या महेश्वरी भाइयों ने जैनाचार्यों के उपदेश से यज्ञ जैसी क्रूर प्रवृति और मांस जैसा राक्षसी भोजन को छोड़कर शुद्ध सात्विक पदार्थ के सेवी बन गये यही कारण है कि ओसवाल जाति उनको अपने बराबरी के भाई समझ कर सब व्यवहार उनके साथ बड़ी खुशी से करते हैं जहाँ ओसवाल महेश्वरियों का साथ रहना है वहाँ खानपान जात न्यात में औसर वार में भाइयों की भाँति शामिल रहते हैं केवल उस जमाने की संकीर्णता या अहंपद के कारण ओसवाल महेश्वरियों में बेटी व्यवहार नहीं हो सका वरन् वे दो अलग जातियें न होकर एक ही जाति बन जाति मेरे खयाल से तो आर्य जातियों में जहाँ भोजन व्यवहार शामिल है वहाँ बेटी व्यवहार शामिल रखने में कोई हर्जा नहीं कारण जिसकी जाति व्यवहार-क्षेत्र जितना विशाल है उतना ही उन्नति क्षेत्र विशाल बन जाता है कई ओसवाल महेश्वरियों में विवाह होने के उदाहरण भी मिलते हैं—

गुडानगर में एक आर्यगोत्री लुनाशाह नाम का ओसवाल रहता था उसी नगर में एक महेश्वरी था और उसके एकपुत्री थी पूर्वभव के संस्कारों की प्रेरणा से लुनाशाह ने उस महेश्वरी कन्याके साथ विवाह कर लिया इस पर ओसवाल जाति ने लुनाशाह के साथ अपना व्यवहार तोड़ दिया बादएक सारंगशाह ओसवाल संघ लेकर तीर्थ यात्रा को जाता हुआ गुडानगर में विश्राम लिया लुनाशाह ने गुडानगर के बाहार एक वापि (वावड़ी) बन्धाई थी जिसमें उसने लाखों रुपये लगाये थे। संघपति को पुच्छ ताच्छ करने से मालुम हुआ कि जनोपयोगी कार्य करने वाला लुनाशाह नामका एक श्रेष्ठिवर्य्य यहाँ वसता है संघपति ने लुनाशाह को बुलाकर मिला लुनाशाह ने संघ को भोजन की प्रार्थना की और संघपति ने मंजुर कर ली पर जब संघपति भोजन करने को वेठा तो लुनाशाह को साथ भोजन करने को कहा। इस पर लुनाशाह ने कहा मैं आप के साथ भोजन नहीं कर सकता हूँ कारण मैंने महेश्वरी की कन्या के साथ शादी की है अतः न्यात वालों ने मेरा व्यवहार बन्ध कर रखा है। संघपति ने सोचा की बड़ी जूलम की बात है कि एक सदाचारी सामान व्यवहार वाले महेश्वरी की कन्या के साथ सादी करने से क्या अनर्थ हो गया ? संघपति ने जाति वालों को बुला कर बड़ा ही उपालम्ब दिया और अपनी पुत्री लुनाशाह को परणा कर उनका सब व्यवहार शामिल करवा दिया। इस उदाहरण से पाठक समझ सकते हैं कि ओसवाल और महेश्वरी जाति में कुछ भी भेद भाव नहीं है।

कई लोग कहते हैं कि महेश्वरियों की उत्पत्ति हलकी जातियों से हुई है पर इसके लिये कोई प्रमाण नहीं है अतः जहाँ तक प्रमाण न मिले वहाँ तक ऐसी बातों को प्रमाणिक नहीं समझी जाती है। महेश्वरी जाति में भी वहुत से उदार चित्त वाले ऐसे लोग भी हुए हैं कि जिन्होंने देश समाज हित कई चोखे और अनोखे काम किये हैं व्यापार में जैसे अन्य जातियां हैं वैसे महेश्वरी जाति भी है इस जाति का अभ्युदय भी व्यापार से ही हुआ था—जैसे अन्योन्य जातियों का पतन हुआ वैसे महेश्वरी जाति भी अपने पतन से बच नहीं सकी है पहले की अपेक्षा इसकी संख्या भी वहुत कम रह गई है।

१८—आचार्य श्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज (तृतीय)

नित्यं जैन समाज मान हित कृत् स्मार्यः सदार्यः सदा ।
आचार्यस्तु स कक्कसूरि रभवदादित्य नागान्वये ॥
दीक्षां स्वप्रगता मपीह सुदधानाचार्य पट्टं तथा ।
आसीद्यः कठिनस्तपश्चरणता स्वाचार युक्तोऽस्पृही ॥

चार्य श्री कक्कसूरीश्वरजी महाराज अद्वितीय प्रभावशाली एवं धर्म प्रचारक आचार्य हुए। आपका जन्म कोरंटपुर नगर के प्राग्वटवंशीय शाह लाला की सुशीलभूषिता धर्म प्रिय भार्या ललितादेवी की कुक्ष से हुआ। शाह लाला पहिले से ही खूब धनाढ्य था पर जब ललितादेवी गर्भवती हुई तो शाह लाला के घर में चारों ओर से लक्ष्मी का इतना आगमन हुआ कि लाला एक कुबेरलाल ही बन गया और केवल याचक ही नहीं पर जनता भी उसको 'कुबेरलाला' कहने लग गई।

ललितादेवी को गर्भ के प्रभाव से अच्छे २ दोहले उत्पन्न होने लगे। उन दोहलों में परमेश्वर की पूजा गुरु महाराज की सेवा, साधर्मियों के साथ वात्सालयता दीन दुखियों का उद्धार और अमरी पड़हा वगैरह इत्यादि अनेक प्रकार के मनोरथ होते थे जिन दोहलों को साह लाला ने बड़े ही आनन्द के साथ पूर्ण किये और इन शुभ कार्य्यों में लाखों रुपये खर्च भी किये।

एक समय माता ललितादेवी को ऐसा दोहला उत्पन्न हुआ कि मैं अपनी सखियों के साथ संघ सहित छरी पालती हुई तीर्थ श्री शत्रुंजय जाऊं और वहाँ भगवान आदीश्वर की पूजा कर अष्टान्हि का महोत्सव एवं पूजा प्रभावना स्वामीवात्सल्य आदि करूं। जब ललितादेवी ने अपने दोहले की बात पतिदेव को कही तो शाह लाला बड़े भारी विचार में पड़ गया कि एक तो शत्रुंजय दूर बहुत दूसरे ललितादेवी को गर्भ का आठवाँ मास चल रहा है। इस हालत में यह दोहला कैसे पूर्ण हो सके। शाह लाला ने बहुत अक्ल दौड़ाई पर इसका उपाय कुछ भी उसकी दृष्टि में नहीं आया। शाह लाला अपने मित्र श्रेष्ठि यशोदेव के पास आया और अपने मनोगत भाव कह सुनाये। मंत्री यशोदेव ने भी खूब सोचा पर इस बात का तो कोई रास्ता उनको भी नहीं मिला: अतः वे दोनों चल कर गुरुवर्य्य के पास आये और सब हाल सुनाया। इस पर गुरु महाराज ने सोचा कि गर्भ का जीव पुन्यवान है धर्म भावना से अनुमान किया जा सकता है कि यह गर्भ का जीव शासन का कार्य करने वाला होगा अतः उन लोगों से कहा कि तुम नगर के बाहर श्रीशत्रुंजय तीर्थ की रचना करवा कर ललितादेवी के मनोरथ पूर्ण करो। यह बात दोनों मित्रों के दिल में जँच गई और उन्होंने शत्रुंजय तीर्थ की हूबहू रचना करवाना निश्चय करके अच्छे समझदार कारीगरों को बुलवाया और सब हाल कह कर समझाया और उन्होंने नगर के बाहर धवलगिरि पहाड़ को पसंद किया एवं तत्काल ही कुछ

दिन में कार्य प्रारम्भ कर दिया। जहाँ द्रव्य खर्चने में उदारता हो वहाँ कार्य्य बनने में क्या देर लगती है। बस, थोड़े ही समय में एक शत्रुंजय तीर्थ तैयार हो गया।

इधर शाह लाला ने अपने नगर में तथा बाहर के ग्राम नगरों में आमंत्रण दे दिया तथा यह एक नया कार्य्य होने से श्रीसंघ में बहुत उत्साह फैल गया। चारों ओर से श्रीसंघ खूब गहरी तादाद में आने लगा जिसका स्वागत शाह ने अच्छी तरह से किया।

शुभ दिन अष्टान्हि का महोत्सव प्रारम्भ हुआ। माता ललितादेवी ने अपनी सखियों के साथ पैदल चल कर धवल पर्वत पर जाकर भगवान् आदीश्वर के दर्शन पूजन किया और ज्यों-ज्यों साधर्मी भाइयों को देखा त्यों-त्यों उसके दिल एवं गर्भ के जीव को बड़ा भारी आनन्द हुआ। श्री संघ ने आठ दिन बड़ी ही धामधूम पूर्वक अठाई महोत्सव मनाया। शाह लाला ने आठ दिन स्वामी वात्सल्य पूजा प्रभावना की। संघ को पहरामनी देकर विसर्जन किया। इस महोत्सव में शाह लाला ने तीन लक्ष्य द्रव्य व्यय कर सम्यक्त्व गुण को बढ़ाया। यह सब गर्भ में आये हुये पुन्यशाली जीव की पुन्यवानी का ही प्रभाव था।

इसी प्रकार एक बार माता सुबह प्रतिक्रमण कर रही थी तो उसमें 'तियलोए चइय वन्दे' सूत्र आया तो आपकी भावना हुई कि मैं तीनों लोकों के चैत्यों को वन्दन करूं। यह बात शाह लाला को सुनाई तो उसने बड़ी खुशी के साथ तीन लोक की रचना करवा कर ललितादेवी का मनोरथ पूर्ण किया। इस प्रकार शुभ दोहला और मनोरथों को सफल बनाती हुई माता ने शुभ रात्रि में पुत्र को जन्म दिया। यह शुभ समाचार सुनते ही शाहलाला के घर में ही नहीं पर नगर भर में हर्षनाद होने लग गया। सज्जनों को सन्मान, याचकों को दान और जिनमन्दिरों में अष्टान्हिक महोत्सवादि करवा के शाह लाला ने खूब हर्ष मनाया। क्रमशः नवजात पुत्र का नाम 'त्रिभुवनपाल' रक्खा। वास्तव में त्रिभुवनपाल त्रिभुवनपाल ही था। इनकी बालक्रीडा होनहार की भांति अनुकरणीय थी। माता पिता ने त्रिभुवन के पालन पोषण और शरीर स्वास्थ्य के लिये अच्छा प्रबन्ध कर रखा था। माता पिता धर्मज्ञ होते हैं तब उनके बालबच्चों के धार्मिक संस्कार स्वभाविक सुदृढ़ बन जाते हैं। त्रिभुवन की उम्र ८ वर्ष की हुई तो विद्याध्यन के लिये पाठशाला में प्रविष्ट हुये। पूर्व जन्म की ज्ञानाराधना के कारण आपकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि आप स्वल्प समय में व्यवहारिक राजनैतिक एवं धार्मिक ज्ञान सम्पादन करने में आशातीत सफलता प्राप्त करली। इधर शाह लाला की कार्य्य कुशलता एवं बुद्धिमत्तादि गुणों से मुग्ध बन वहां के राजाभीम ने दीवान पद से भूषित कर दिया। क्यों न हो जिनके घर में पुन्यशाली पुत्र अवतीर्ण हुआ फिर कमी ही किस बात की थी। शाहलाला इतना उदार दिल वाला था कि अपने स्वधर्मी तो क्या पर नगर एवं देशवासी किसी भाई का भी दुःख उससे देखा नहीं जाता था। किसी भी प्रकार की सहायता से वे उनको सुखी बनाने की कोशिश किया करते थे। शाह लाला ने अपने धर्मज्ञ जीवन में कई बार तीर्थों के संघ निकाल कर आप सकुटुम्ब तथा अन्य हजारों लाखों भाइयों को तीर्थ यात्रा करवा कर पुष्कल पुन्य संचय किया। शाह लाला ने जैनधर्म की उन्नति करने में भी कोई बात उठा नहीं रक्खी थी साधु साध्वियों का तो वह पूर्ण भक्त ही बना रहता था। ठीक है मनुष्य को सदैव सत्कार्य करते रहना चाहिये न जाने किस समय महात्मा का आशीर्वाद मिल जाता है पर शाह लाला जो करता वह केवल परमार्थ की बुद्धि से ही करता था। कारण, उसके पास सब

साधन सामग्री विद्यमान थे। जैसा लाला था वैसे ही ललिता थी और त्रिभुवन तो इन दोनों से भी कु और भी विशेषता रखता था। कहा भी है कि—'पूर्वकर्मानुसारेणजायते ज्ञन्मिनां हि धीः'

एक समय शाह लाला अर्द्ध निद्रा में क्या देखता है कि आप संग्राम में गये और आपने अपनी वीरता से सोलह सुभटों के सिवाय सब को पराजित कर दिया बाद आप स्वयं यकायक हताश हो भूमि पर गिर पड़े इत्यादि। जब आप जागृत हुये तो आश्चर्य हुआ कि आज मुझे यह क्या स्वप्न आया। यदि कोई इस विषय के ज्ञाता हों तो पूंछ कर निर्णय करूं।

भाग्योदय आचार्य यक्षदेवसूरि भू भ्रमण करते हुये कोरंटपुर नगर की ओर पधार रहे थे यह समाचार मिलते ही शाह लालादि श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज का सुन्दर सत्कार कर नगर प्रवेश करवाया। सूरिजी ने भगवान महावीर की यात्रा कर मंगलाचरण के पश्चात् सारगर्भित देशना दी बाद सभा विसर्ज्जन हुई।

मंत्री लाला समय पाकर सूरिजी के पास गया और वन्दन कर अपने स्वप्न के लिये पूंछा। इस पर सूरिजी ने कहा भक्त अब तेरी उम्र केवल सोलह वर्षों की रही है अतः तुम्हें आत्मकल्याण में लग जाना चाहिये। भक्त लाला ने कहा पूज्यवर ! आत्मकल्याण तो आप जैसे महात्मा ही कर सकते हैं मेरे सिर पर तो अनेक कार्य्य की जुम्मेवारी है जैसे एक तरफ कुटुम्ब का पालन पोषण दूसरी ओर राजकार्य्य तीसरे त्रिभुवन अभी बालक है। इसकी शादी भी करनी है। मुझे घंटा भर की भी फुरसत नहीं मिलती है फिर मैं कैसे आत्मकल्याण कर सकूं ? हाँ मेरी इच्छा इस ओर सदैव बनी रहती है शासन का कार्य पर मेरी रूची है द्रव्य खर्च करने में मैं आगा पीछा नहीं देखता हूँ पर निर्वृत्ति के लिये मुझे समय नहीं मिलता है इत्यादि। सूरिजी ने कहा लाला ! शासन के हित द्रव्य व्यय करना भविष्य में कल्याणकारी अवश्य है पर यह प्रवृति मार्ग है इसके साथ निर्वृति मार्ग का भी आराधन करना चाहिये। क्योंकि शुभ प्रवृति से शुभ कर्मों का संचय होता है और उनको भी भोगना पड़ता है तब निर्वृति से कर्मों की निर्ज्जरा होती है लाला ! संसार तो एक प्रकार की मोह जाल है न तो साथ में कुटुम्ब चल सकेगा न राज काज ही चल सकेगा और न पुत्र ही साथ चलने वाला है। भला सोचिये आज शरीर में व्याधि या मृत्यु आ जाय तो पूर्वोक्त कार्य्य कौन करेगा ? बस तुम यही समझ लो कि आज मैं मर गया हूँ फिर तो तुम्हारे पीछे कोई भी काम नहीं रहेगा। सूरिजी का कहना लाला की समझ में आ गया कि बात सच्ची है। आज मैं मर जाऊं तो मेरे पीछे काम कौन करेगा ? अतः पीछे काम की फिक्र करना व्यर्थ है। परन्तु मेरा एक पुत्र है इसकी शादी तो अपने हाथ से कर दूँ। इस विचार से सूरिजी से अर्ज की पर इसके लिए सूरिजी क्या कह सकते थे। सूरिजी का फर्ज तो उपदेश देने का था वह दे दिया।

शाह लाला सकुटुम्ब सूरिजी का हमेशा व्याख्यान सुना करता था। आपका पुत्र त्रिभुवनपाल तो विशेष सूरिजी की सेवा में ही रहता था। एक दिन सूरिजी का व्याख्यान ब्रह्मचर्य्य के महत्व के विषय में हो रहा था। आपने फरमाया कि सब व्रतों में ब्रह्मचर्य्य राजा है। इतना ही क्यों पर शरीर में जितने धातु पदार्थ हैं उनमें भी वीर्य ही राजा है। जिस जीव ने आजीवन ब्रह्मचर्य्य व्रत का अखंड रूप से पालन किया है। उनकी जबान सिद्ध हो जाती है। यंत्र मंत्र रसायन वगैरह ब्रह्मचर्य्य से ही सिद्ध होता है। हाथ में ताकत, हृदय में हिम्मत, मगज में बुद्धि खून का विकाश वीर्य से ही होता है। अतः मनुष्य मात्र का धर्म है कि वे सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करें।

इस पर एक ब्राह्मण ने सवाल किया कि गुरु महाराज ! आपका कहना तो सत्य है कि ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करना चाहिये पर शास्त्रों में ऐसा भी तो कहा है:—

"अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च"

अर्थात् जहां तक पुत्रोत्पत्ति न हो वहां तक उसकी स्वर्ग में गति नहीं होती है । अतः गति की इच्छा वाले को शादी कर पुत्रोत्पत्ति अवश्य करनी चाहिये फिर बाद में वह ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन कर सकता है ।

सूरिजी ने कहा भूर्षि ! ब्रह्मचर्य्य व्रत दो प्रकार से पालन कर सकते हैं एक साधु धर्म से दूसरा गृहस्थ धर्म से । इसमें साधु धर्म में तो सर्वथा नौवाड़ विशुद्ध ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करना चाहिये जैसे

१—जिस स्थान में स्त्री नपुंसक पशु आदि रहते हों वहाँ ब्रह्मचारी को नहीं रहना चाहिये । साक्षात् स्त्री तो क्या पर स्त्री का चित्र हो वहां भी नहीं ठहरे । कारण यह बातें ब्रह्मचर्य्य व्रत में बाधा डालने वाली हैं । जैसे जिस मकान में मंजीरी रहती हो वहां मूषक ठहरेगा तो कभी उसका विनाश ही होगा ।

२—ब्रह्मचारी को हास्यरस शृंगाररस कामरसादि विकार उत्पन्न करने वाली कथा नहीं करनी चाहिये । जैसे नींबू का नाम लेने पर मुंह में पानी छूट ही जाता है ।

३—जहां स्त्री बैठी हो वहां दो घड़ी तक पुरुष को नहीं बैठना चाहिये । कारण, उस स्थान के परमाणु ऐसे विकारी हो जाते हैं कि ब्रह्मचर्य्य का भंग कर डालते हैं । जैसे जिस जमीन पर आग लगाई है वहां से आग को हटा कर तत्काल ही ठसा हुआ घृत रखदें तो वह बिना पिघले नहीं रहेगा

४—स्त्रियों के अंगोपांग एवं मुँह स्तन नयन नासिकादि इन्द्रियों को सराग से नहीं देखता जैसे आँखों का ओपरेशन कराया हुआ सूर्य्य की ओर देखेगा तो उसको बड़ा भारी नुकसान होगा ।

५—जहां भीत, टाटी, कनात के अन्तर में स्त्री पुरुषों के विषय वचन हो रहा है उसको सुनने की भी मनाई है । जैसे आकाश में घन गर्जना होने से मयूर बोलने लग जाते हैं ।

६—पूर्व सेवन किये हुये काम विकार को कभी याद नहीं करना । कारण, जैसे एक बुढ़िया के यहां दो युवक मुसाफिर ठहरे थे । जब वे मुसाफर चलने लगे तो बुढ़िया ने अंधेरे में ही छाछ बिलो कर उनको दे दी । वह छाछ पीकर वे दिसावर को रवाना हो गये । बाद कुछ वर्षों के वे फिर लौट कर आये और उसी बुढ़िया के यहाँ ठहरे । बुढ़िया ने उनको पहचान कर कहा 'अरे बेटा क्या तुम जीते आये हो' । युवकों ने पूछा क्यों ? बुढिया ने कहा उस दिन अंधेरे में असावधानी से दही के साथ सांप बिलोया गया या और वह विषमिश्रित छाछ तुमको दी थी एवं पिलाइ थी । यह बात सुनते ही उन दोनों के प्राण पखेरू उड़ गये । इसी प्रकार पिछले भोग विलास को याद करते ही मनुष्य विषय विकार व्याप्त हो जाता है ।

७—ब्रह्मचारी को हमेशा सरस आहार जो बल वीर्य विकार की वृद्धि करने वाला हो, नहीं करना चाहिये । यदि करेगा तो उसका ब्रह्मचर्य्य व्रत सुख पूर्वक नहीं पल सकेगा । जैसे सन्निपात के रोग वाले को दूध शक्कर पिला देने से उलटो रोग की वृद्धि होगी ।

८—रूक्ष भोजन भी प्रमाण से अधिक न करे । करेगा तो जैसे सेर को हांडी में सवा सेर चना पकाने में हांडी फट जाती है, वही हाल ब्रह्मचार्य व्रत का होगा ।

९—ब्रह्मचारी को शौक मोज के लिये नहाना धोना शृंगार शोभा करना वगैरह को शास्त्र मनाई हैं । क्योंकि दारू की दुकान में अग्नि की सबावाला सामान रखने से कभी न कभी दुकान में आग लग ही जाती

है। इत्यादि सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य्य पालन करने वालों के यह नियम है और जो लोग स्वेच्छा व्रत पालने वाले होते हैं वे गृहस्था वास में रहते हुए भी आजीवन ब्रह्मचर्य्यव्रत का पालन कर सकते हैं जैसे विजयसेठ और विजयासेठानी हुए हैं तब कई लोग सदारा संतोष अर्थात् मर्यादा से ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करते हैं।

अब आप अपने प्रश्न का उत्तर भी सुन लीजिये कि जैसे 'अपुत्रस्यगतिर्नास्ति' ? यह किसी अल्पज्ञ मनुष्य का कथन है परन्तु देखिये आप महात्मा मनु ने अपने धर्मशास्त्र मनुस्मृति में यह भी कहा है कि:—

अनेकानि सहस्राणी कुमारी ब्रह्मचारिणाम् । दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसन्ततिम् ॥

इसमें स्पष्ट बतलाया है कि अनेकों ने कुमारावस्था से ही ब्रह्मचर्य्य व्रत का सम्पूर्ण पालन कर स्वर्ग को प्राप्त किया है। इनके अलावा भी कई प्रमाण मिलते हैं जो ब्रह्मचर्य से मोक्ष प्राप्त हुए हैं।

ब्राह्मण देव! दूसरे व्रत पालन करने सहज हैं पर यह दुस्कर व्रत पालन करना बड़ा भारी कठिन है ऊपर जो नव वाडे बतलाई हैं जिसमें स्त्री जाति का परिचय तक करना मना किया है और दूसरों के लिये तो क्या पर खुद माता एवं बहिन के साथ भी एकान्त में नहीं ठहरना चाहिये जैसे कहा है कि:—

मात्र स्वस्त्र दुहित्रा वा न विविक्ताऽऽसनोभवेत्। बलवानिन्द्रिय ग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

महात्माओं ने तो यहां तक भी फरमाया है कि मैथुन केवल स्त्री पुरुष संयोग को ही नहीं कहते हैं पर मनसा विकार मात्र को भी मैथुन ही कहते हैं।

ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेद् अष्टधा रक्षणं पृथक् । स्मरणं कीर्त्तिनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्ति रेव च । एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनोषिणाः ॥

ब्राह्मण देव ने कहा पूज्यवर! आपका कहना सत्य है पर किसी २ शास्त्र में तो यहां तक भी लिखा है कि तपके तपने वाले सन्यासी महात्माओं ने कई राजाओं की रानियों को ऋतुदान दिया था। तब क्या परोपकार के लिये साधुओं को इस बात की छूट दी है।

सूरिजी ने फरमाया कि यह किसी व्यभिचारी ने अपने ऐब छिपाने के लिये परोपकार की ओट में कुकर्म किया होगा। देखिये शास्त्र तो स्पष्ट कह रहा है कि:—

यस्तु प्रव्राजितो भूत्वा पुनः सेवेत मैथुनम् । षष्टिवर्षसहस्राणिं विष्ठायां जायते कृमि ॥

इत्यादि सूरिजी ने ब्रह्मचर्य्य का इस कदर महत्व बतलाया कि उसका भूपि पर इतना प्रभाव हुआ कि उसी ने भरी सभा के बीच खड़ा होकर प्रतिज्ञा पूर्वक ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण कर लिया।

उस सभा में शाह लाला का पुत्र त्रिभुवनपाल भी बैठा था उसने भी इस प्रकार ब्रह्मचर्य्य के महत्व को सुना जिसकी उम्र करीब १६ वर्ष की थी पर पूर्व जन्म का क्षयोपशम इस प्रकार का था कि उसने अपने दिल में निश्चय कर लिया कि मैं आजीवन अखंड ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन करूंगा। त्रिभुवन ने अपने मन में वो दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली पर लज्जा के मारे उस सभा में बोल नहीं सका। जब सभा विसर्जन हुई तो त्रिभुवन ने अपने मनकी बात सूरिजी से कह सुनाई। सूरिजी ने कहा, त्रिभुवन! तेरा विचार तो उत्तम है पर कुटुम्ब वाले तुमको सुख से रहने नहीं देंगे वह तेरी शादी की बातें कर रहे हैं। त्रिभुवन ने कहा पूज्यवर! जब मैं दृढ़ता पूर्व प्रतिज्ञा कर चुका हूँ तो मुझे डिगाने वाला है कौन? सूरिजी ने कहा बहुत अच्छी बात है यह व्रत तेरे कल्याण का कारण है। त्रिभुवन सूरिजी को वंदन कर अपने मकान पर चला गया।

इधर तो शाह लाला आत्म कल्याण की धुन में निर्वृति का उपाय सोच रहा था कि त्रिभुवन की शादी कर आत्म कल्याण करूं उधर त्रिभुवनपाल ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन की प्रतिज्ञा पर डटा हुआ था।

शाह लाला और ललितादेवी आपस में बातें कर रहे थे कि त्रिभुवन की शादी जल्दी से करके अपने को आत्म कल्याण करने में लग जाना चाहिये। त्रिभुवनपाल बीच में ही बोल उठा कि क्यों पिताजी! आप तो अपना कल्याण करने को तैयार हुए हो और यह संसार रूपी वरमाला मेरे गले में डालना चाहते हो? यदि आप मुझे अपना प्यारा पुत्र समझते हो तब तो आत्म कल्याण में मुझे भी शामिल रखिये कि मेरे पर आपका डबल उपकार हो जाय। मैं इस बात को सच्चे दिल से चाहता हूँ।

शाह लाल ने कहा पुत्र! अपने घर में इतना धन है तुम शादी कर इसको सत्कार्य में लगा कर पुन्योपार्जन करो। पिताजी! जब आप इस धन को असार समझ कर अर्थात् इसका त्याग कर अपने कल्याण की भावना रखते हो तो यह द्रव्य मेरा कल्याण कैसे कर सकेगा? हाँ, मैं इस द्रव्य में फंस जाऊँ तो इससे मेरा अकल्याण जरूर होगा। आप तो मुझे साथ लेकर सबका कल्याण कीजिये इत्यादि बाप बेटों का आपस में बहुत कुछ संवाद हुआ। जिसको सुन कर ललितादेवी तो बड़ी भारी उदास हो गई। क्या मेरे घर का नाम निशान तक भी नहीं रहेगा?

आखिर इस बात का झगड़ा सूरिजी के पास आया और सूरिजी ने उन सबको इस क़दर समझाया कि वे सब के सब दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करने के लिये तैयार हो गये। अपने घर में जो अपार द्रव्य था उसको सात क्षेत्र में लगा दिया जिसको देख कर तथा शाह की सहायता से कोरंटपुर तथा आस पास के कई ५२ नरनारी सूरिजी महाराज के चरण कमलों में दीक्षा लेने को तैयार हो गये। फिर महोत्सव का तो कहना ही क्या था। उस प्रदेश में बड़ी भारी चहल-पहल मच गई। शुभ दिन में सूरिजी ने उन मोक्षाभिलाषियों को भगवती जैन दीक्षा देकर अपने शिष्य बना लिए। त्रिभुवनपाल का नाम मुनि देवभद्र रख दिया। इस महान कार्य्य से जैनधर्म की खूब ही उन्नति हुई।।

मुनि देवभद्र पर सूरिजी की पहिले से ही पूर्ण कृपा थी। ज्ञानाध्ययन के लिये तो बृहस्पति भी आपकी स्पर्द्धा नहीं कर सकता था। आपके वदन पर ब्रह्मचर्य्य का तप तेज अजब ही झलक रहा था। तर्क वितर्क और वाद विवाद में आपकी युक्तियें इतनी प्रबल थीं कि वादी लोग आपका नाम सुनकर घबरा उठते थे एवं दूर-दूर भाग छूटते थे इत्यादि सूरिजी के शासन में आप एक योग्य साधु समझे जाते थे।

एक समय आचार्य यक्षदेव सूरि लाट सौराष्ट्र और कच्छ में घूमते घूमते सिन्ध की ओर पधारे। आप श्री का शुभागमन सुन सिन्ध भूमि में आनन्द एवं उत्साह का समुद्र ही उमड़ पड़ा। जहाँ आप पधारते वहाँ एक यात्रा का धाम ही बन जाता था। कई साधु साध्वियाँ एवं भक्त लोग आपके दर्शनार्थ आया करते थे और भक्त लोग अपने २ नगर की ओर पधारने की प्रार्थना करते थे।

सूरिजी अपने शिष्य मंडल के साथ शिवनगर पधारे वहाँ का राव गोंदा जैन धर्मोपासक ही नहीं पर जैन श्रमणों का परम भक्त था। उसने श्री संघ के साथ सूरिजी का सुन्दर स्वागत किया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य और तात्त्विक विषय पर होता था। सूरिजी की वृद्धावस्था के कारण कभी कभी मुनि देवभद्र भी व्याख्यान दिया करता था। आपका व्याख्यान इतना प्रभावोत्पादक था कि सुनने वालों को वैराग्य आये बिना नहीं रह सकता था। चतुर्मास का समय नजदीक आ गया था। श्री संघ ने

विनती की और सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जान कर श्रीसंघ की विनती को स्वीकार कर लिया। बस फिर तो था ही क्या, आज शिवनगर के संघ में हर्ष का पार नहीं था।

सूरि जी के विराजने से केवल शिवनगर की जनता में ही नहीं पर सिन्ध प्रान्त में धर्म का प्रभाव इतना फैला गया कि लोग आत्मकल्याण की भावना से एवं सूरिजी की सेवा तथा व्याख्यान सुनने की गरज से बहुत ग्राम नगरों के लोग तो वहाँ आ आकर अपनी छावनीयें तक भी डाल दी अहा-हा उस जमाना में जनता की भावना आत्मकल्याण की ओर कहाँ तक बढ़ी हुई थी वे लोग संसार में रहते हुए भी किस प्रकार अपना कल्याण करना चाहिते थे सिन्ध प्रदेश में मुख्यतया उपकेशगच्छाचार्यों का ही प्रभुत्व था जिसमें यक्षदेव सूरि का नाम तो और भी मशहूर था कारण इस प्रान्त में सब से पहला यक्षदेवसूरि ने ही धर्म की नीव डाली थी खैर सूरीश्वरजी के चतुर्मास विराजने से धर्म का बहुत लाभ हुआ। कई ४८ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। एक समय राव गोंदा ने सूरिजी से अर्ज की कि प्रभो! आपकी वृद्धावस्था होती चली जा रही है अतः किसी योग्य मुनि को सूरि मंत्र देकर अपने पट्ट पर स्थापन कर दीजिये और यह शुभ कार्य्य यहीं पर हो कि इसका महोत्सव कर हम लोग कृतार्थ बनें। सूरिजी ने कहा ठीक पूर्व जमाने में आचार्य यक्षदेव सूरि ने इसी नगर में राजकुँवार कक्क को दीक्षा देकर सूरि पद पर स्थापन किया था। यदि आपकी ऐसी ही भावना है तो मैं भी विचार करूँगा।

रावजी एवं सकल श्रीसंघ को विश्वास हो गया कि हमारा मनोरथ अवश्य सफल होगा। इधर सूरिजी ने देवी सच्चायका की सम्मति लेकर अपना निश्चय श्रीसंघ के सामने प्रगट कर दिया। बस, फिर तो देरी ही क्या थी। चतुर्मास समाप्त होते ही जिन मन्दिरों में अष्टान्हि का महोत्सवादि प्रारम्भ कर दिया। दीक्षा के उम्मेदवारों में भी वृद्धि हो गई। ठीक शुभ मुहूर्त्त में ६५ नर नारियों को भगवती जैन दीक्षा और मुनि देवभद्र को सूरि पद देकर उनका नाम कक्कसूरि रख दिया और भी कई योग्य मुनियों को पदवियाँ प्रदान कर जैन धर्म का झण्डा फहरा दिया। राव गेंदा ने नूतन सूरिजी की अध्यक्षत्व में पुनीत तीर्थ श्री शत्रुंजय का एक विराट संघ निकाला जिसमें रावजी ने नौलक्ष रुपये व्यय कर शासन की प्रभावना की संघ यात्रा कर वापिस आया और सूरिजी सिन्ध भूमि में विहार करने के वाद आप कुँनाल की ओर पधारे। वहाँ भी आपके आज्ञावृत्ति बहुत से साधु साध्वियों विहार करते थे। उन्होंने सूरिजी के दर्शन कर अपने जीवन को सफल बनाया। सूरिजी महाराज घूमते-घूमते लोहाकोट में पधारे। वहाँ के श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत किया। वहाँ पर आप कई अर्सा तक स्थिरता कर जनता को धर्मोपदेश दिया फलस्वरूप ग्यारा भावुकों को दीक्षा दी तथा श्रेष्टि धनदेव के बनाया हुआ भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई तत्पश्चात् विहार कर कई ग्राम नगरों में धर्मोपदेश एवं धर्म प्रचार करते हुए सूरिजी महाराज तक्षीला की ओर पधार रहे थे यह शुभ समाचार तक्षीला के श्रीसंघ को मिला तो उनके हर्ष का पार नहीं रहा उन्होंने प्रभावशाली महोत्सव कर सूरिजी का नगर प्रवेश करवाया क्यों न हो उस समय का तक्षिला नगर एक जैनों का केन्द्र था करीबन ५०० तो वहाँ जैन मन्दिर थे इससे अनुमान किया जा सकता है कि उस समय तक्षिला में जैनों की घनी वस्ती और खूब आबादी थी। सूरिजी महाराज अन्तिम सलेखना कर रहे थे अतः व्याख्यान आचार्य कक्कसूरिजी वाच रहे थे आपका व्याख्यान हमेशाँ त्याग वैराग्य तथा दार्शनिक दार्शनिक एवं अध्यात्मीक विषय पर होता था जो ओताजन को अपूर्व आनन्द आता था वहाँ भी सूरिजी

के उपदेश से चार ब्राह्मण तीन क्षत्री और पाँच श्रावक एवं बारह भावुकों ने सूरिजी के वृद्ध हाथों से भगवती जैन दीक्षा को धारण की जिससे जैन धर्म की खूब ही प्रभावना हुई इस प्रकार आचार्य श्री यक्षदेव सूरि ने जैन धर्म का उत्कृष को बढ़ाते हुए अपना आयुष्य को नजदीक जान कर अनशन व्रत धारण कर लिया और २७ दिन के अन्त में समाधिपूर्वक स्वर्गवास किया।

आचार्य कक्कसूरि मध्यान्ह के तरुण सूर्य्य की भांति अपनी ज्ञान किरणों का प्रकाश सर्वत्र डालते हुये और जनता का कल्याण करते हुये भूमि पर विहार करने लगे।

आचार्य कक्कसूरिजी महाराज अपने शिष्य मण्डल के साथ विहार करते हुये श्रीपुरनगर की ओर पधार रहे थे। यह खबर वहां के श्रीसंघ को मिली तो उन्होंने सूरिजी का बड़ा ही शानदार स्वागत किया। सूरिजी का प्रभावशाली व्याख्यान हमेशा होता था एक दिन के व्याख्यान में तीर्थङ्करों के निर्वाण भूमिका अधिकार चलता था। सूरिजी ने श्री सम्मेतसिखर का वर्णन करते हुये फरमाया कि उस पवित्र भूमि पर बीस तीर्थङ्करों का निर्वाण हुआ है और इस तीर्थ की यात्रार्थ पूर्व जमाने में कई भाग्यशालियों ने बड़े २ संघ के साथ यात्रा कर संघपति पदको प्राप्त कर लाभ उठाया है इत्यादि। खूब विस्तार से वर्णन किया।

सूरिजी के व्याख्यान का जनता पर खूब प्रभाव हुआ। उस सभा में श्रेष्ठिगोत्रिय मंत्री राजपाल भी था उसकी इच्छा संघ निकाल कर यात्रा करने की हुई। अतः सूरिजी एवं श्रीसंघ से प्रार्थना की और श्रीसंघ ने आदेश दे दिया। फिर तो था ही क्या, मंत्री राजपाल के सात पुत्र थे और उसके पास लक्ष्मी तो इतनी थी कि जिसकी संख्या लगाने में वृहस्पति भी असमर्थ था। अतः अनेक प्रान्तों में आमंत्रण भेजकर चतुर्विध संघ को बुलाया और लाखों नर नारियों के साथ सूरिजी की अध्यक्षता में संघपति राजपाल ने संघ लेकर पूर्व की यात्रा करते हुये तीर्थ श्रीसम्मेतशिखरजी पर आकर बीस तीर्थंकरों के चरण कमलों को स्पर्श एवं सेवा पूजादि ध्वज महोत्सव कर अपने जीवन को सफल बनाया। तत्पश्चात् पूर्व प्रान्त के तमाम तीर्थों कीयात्रा करवाई बाद मुनियां के साथ संघ लौटकर अपने स्थान को आया और सूरिजी कई अर्सा तक पूर्व की ओर विहार किया तदनन्तर आपश्री कलिंग देशकी ओर पधारे और शत्रुंजय गिरनार अवतार रूप खण्डगिरि और उदयगिरी के मन्दिरों के दर्शन किये, वहां से विहार करते हुये मथुरा पधारे उस समय मथुरा जैनों का एक केन्द्र समझा जाता था। उपकेश वंशीय बड़े २ धनाढ्य लोग वहाँ रहते थे। उन्होंने सूरिजी का खूब स्वागत सत्कार किया और श्रीसंघ की आग्रह विनती से सूरीश्वरजी ने वह चतुर्मास मथुरा में करने का निश्चय कर लिया। जिससे जनता का उत्साह खूब बढ़ गया।

सूरिजी महाराज के परमभक्त आदित्यनाग गोत्रिय शाहपद्मा ने सूरिजी से प्रार्थना की कि हे प्रभो! यहां के श्री संघ की इच्छा है कि आप श्री के मुखारविन्द से महाप्रभाविक श्री भगवतीजी सूत्र सुनें। अतः हमारी अर्ज को स्वीकार करावें जिससे हम लोगों को सूत्र की भक्ति एवं सूत्र सुनने का लाभ मिले।

सूरिजी ने इन ज्ञानपिपासुओं की प्रार्थना को स्वीकार करली। अतः शाह पद्मा ने सवा लक्ष मुद्रिका व्यय करके श्री भगवती सूत्र का बड़ा भारी महोत्सव किया और भगवान् गौतम स्वामी के एक एक प्रश्न की सुवर्ण मुद्रिका से पूजा की। मथुरा नगरी के श्रीसंघ के लिये यह पहिला पहिल ही मौका था कि इस प्रकार सूरिजी के मुखार्विन्द से श्रीभगवतीसूत्र का श्रवण किया जाय। जनता में खूब उत्साह था। जैन संघ तो क्या पर श्री भगवती सूत्र को सुनने के लिये अनेक अन्य मतावलम्बी भी आया करते थे। सूरिजी

की व्याख्यान शैली इस कदर की थी कि बहुत से विधर्मी लोग भी जैनधर्म के परमोपासक बन गये। इतना ही क्यों पर कई लोग संसार को असार समझ कर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेने को भी तैयार हो गये! कई भक्त लोगों ने स्वपर कल्याणार्थ जिनमन्दिरों का निर्माण करवाया था और उन मन्दिरों के लिये कई १००० नयी मूर्त्तियें बनाई थीं। मथुरा के श्रीसंघ के लिये यह समय बड़ा ही सौभग्य का था कि एक ओर तो थी भगवतीसूत्र की समाप्ती का महोत्सव दूसरी ओर कई ६० नर नारियों की दीक्षा के लिये तैयारी, तीसरे सहस्रमूर्त्तियों की अंजनसिलाका, चतुर्थ नूतन बने हुये मन्दिरों की प्रतिष्ठा फिर तो कहना ही क्या था, मथुरा मथुरा ही बन गई थी। इस सुअवसर पर अनेक नगरों के श्रीसंघ को आमंत्रण पूर्वक बुलवाया गया था। आस पास में विहार करने वाले साधु साध्वियां भी गहरी तादाद में आ आकर मथुरा को पावन बना रहे थे। इन शुभ कार्य्यों का शुभ मुहूर्त्त माघ शुक्ल पंचमी का निश्चय हुआ था और पूर्वोक्त कार्य्यों के अतिरिक्त सूरिजी ने अपने योग्य साधुओं को पदवियां प्रदान करने का भी निश्चय कर लिया था। ठीक समय पर पूर्वोक्त सब कार्य्य पूज्य पाद आचार्य कक्कसूरीश्वरजी महाराज के शुभ कर कमलों से सम्पदित हुआ।

१—श्रीमद्भगवती सूत्र की समाप्ति का महोत्सव
२—साठ मुमुक्षुओं को भगवतो जैन दीक्षा
३—एक हजार मूर्त्तियों की अंजनसिलाका
४—नूतन बने हुये पाँच मन्दिरों की प्रतिष्ठायें
५—विशालमूर्ति आदि पांच मुनियों को उपाध्याय पद
६—सोमतिलक आदि सात साधुओं को पण्डित पद
७—धर्मशेखरादि सात साधुओं को वचनाचार्य पद।
८—कुमार श्रमणादि ग्यारह साधुओं को गणिपद।

इनके अलावा कई दश हजार अजैनों को जैनधर्म में दीक्षित किये इत्यादि सूरिजी के पधारने एवं विराजने से जैनधर्म की खूब प्रभावना एवं उन्नति हुई।

दुष्कालादि के बुरे असर से जैन जनता रूपी बगीचा कुम्हला रहा था जिसको उपदेशरूपी जल से सिंचन कर जैनाचार्य्यों ने पुनः हरा भरा गुलजार यानी गुलचमन बना दिया।

सूरि के पास ज्यों ज्यों साधु संख्या बढ़ती गई त्यों त्यों योग्य साधुओं को पदवियां प्रदान कर अन्योन्य क्षेत्रों में धर्मप्रचार निमित्त भेजते गये। यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि ज्यों २ साधुओं का विहार क्षेत्र विस्तृत होता जायगा त्यों २ धर्म का प्रचार अधिक से अधिक बढ़ता जायगा।

पांच छः शताब्दियों में तो महाजन संघ एवं उपकेशवंश लोग आस पास के प्रान्तों में बटवृक्ष की तरह खूब फैल गये थे। दूसरे जिन २ प्रान्तों में आचार्य्यों का विहार होता वहां नये जैन बना कर उन्हें महाजन संघ में शामिल कर उनकी वृद्धि कर दी जाती थी और उपकेशगच्छाचार्य जैनधर्म-महाजनसंघ एवं उपकेशवंश की उन्नति करना अपनी जुम्मेदारी एवं कर्त्तव्य ही समझते थे।

आचार्य कक्कसूरिजी मथुरा से विहार कर धर्मप्रचार करते हुये मरुधर की ओर पधार रहे थे। यह शुभ समाचार सुन मरुधर वासियों के मान नगर एवं लोगों के हर्ष का पार नहीं रहा क्योंकि गुरु महाराज का चिरकाल से पधारना इसके अलावा श्री संघ के लिये क्या हर्ष हो सकता है।

आचार्य श्री शाकम्भरी, हंसावली, पद्मावती, मुग्धपुर, नागपुर, षटकूप नगर, हर्षपुर, मेदनीपुर आदि नगरों एवं छोटे बड़े ग्रामों में धर्मोपदेश देते हुये उपकेशपुर पधारे। वहाँ के श्रीसंघ ने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। भगवान महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा के पश्चात श्रीसंघ को धर्मोपदेश सुनाया। आज उपकेशपुर के घर २ में आनन्द मंगल हो रहा है। चतुर्मास के दिन नजदीक आ रहे थे श्रीसंघ ने साग्रह विनती की जिसको स्वीकार कर सूरिजी ने चतुर्मास उपकेशपुर में करना निर्णय कर लिया। बस फिर तो था ही क्या नगर में सर्वत्र उत्साह फैलगया।

सुचंतिगोत्रीय शाह आम्र के महोत्सव पूर्वक व्याख्यान में महा प्रभाविक श्री भगवतीजीसूत्र वाचना शुरू कर दिया जिसको जैन जैनतर बड़ी ही श्रद्धा एवं उत्साह पूर्वक सुन कर लाभ उठा रहे थे। सूरिजी के व्याख्यान में दार्शनिक,तात्त्विक,आध्यात्मिक और ऐतिहासिक सब विषयों पर काफी विवेचन होता था जिसको श्रवणकर श्रोताजन मंत्र मुग्ध बन जाते थे। व्याख्यान किसी विषय पर क्यों न हो परन्तु आत्मकल्याण के लिये त्याग वैराग्य पर विशेष जोर दिया जाता था। संसार की असारता, लक्ष्मी की चंचलता, कुटुम्ब की स्वार्थता, आयुष्य की अस्थिरता इत्यादि। सुकृत के शुभ फल और दुष्कृत के अशुभ फल भव भवान्तर में अवश्य भुगतने पड़ते हैं जिसको आज हम प्रत्यक्ष में देख रहे हैं। अतः जन्म मरण के दुःखों से मुक्त होने का एक ही उपाय है और वह है जैनधर्म की आराधना। यदि इस प्रकार की अनुकूल सामग्री में धर्माराधन किया जाय तो फिर संसार में भ्रमण करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी इत्यादि प्रति दिन उपदेश होता रहता था जिसका प्रभाव भी जनता पर खूब पड़ता था। कई लघुकर्मी जीव सूरिजी की शरण में दीक्षा लेने की तैयारी करने लगे तब कई गृहस्थावास में रहते हुये भी जैनधर्म की अराधना में लग गये।

बाद चतुर्मास के कई ११ भावुकों को दीक्षा दी, कई नूतन बनाये मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई इत्यादि सूरीश्वरजी के विराजने से बहुत उपकार हुआ। तत्पश्चात् वहां से विहार करते हुये छोटे बड़े ग्राम नगरों में धर्मप्रचार करते हुये सूरिजी महाराज नागपूर में पधारे। कई असा तक वहां विराज कर जनता को धर्मोपदेश दिया वहां पर हंसावली के संघ अग्रेश्वर विनती करने को आये जिसको स्वीकार कर सूरिजी विहार करते हुये हंसावली पाधारे। वहां श्रेष्ठि वर्य्य जसा और उसकी पत्नी के आग्रह से श्री भगवती सूत्र व्याख्यान में फरमाया तथा शाह जसा के बनाये महावीर मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई जिससे जैनधर्म की महान् प्रभावना एवं उन्नति हुई। तत्पश्चात् वहाँ से विहार कर क्रमशः कोरंटपुर की ओर पधारे। यह थी आपकी जन्मभूमि जिसमें भी आप आचार्य बन जैनधर्म की उन्नति करते हुये पधारे फिर तो कहना ही क्या था जनता में खूब उत्साह बढ़ गया था। नगर के राजा प्रजा एवं सकल श्रीसंघ की ओर से आपका सुन्दर स्वागत किया भगवान् महावीर की यात्रा कर व्याख्यानपीठ पर विराज कर थोड़ी पर सारगर्भित इस प्रकार की देशना दी कि जिसको सुनकर श्रोताओं के हृदय में आत्मकल्याण की भावना बिजली की भांति विशेष चमक उठी बाद जयध्वनि के साथ परिषदा विसर्जन हुई।

कोरंटगच्छीय आचार्य नन्नप्रभसूरि आस पास के प्रदेश में विहार करते थे। उन्होंने सुना कि कोरंटपुर में आचार्य कक्कसूरि का पधारना हुआ है। अतः वे भी अपने शिष्यों के साथ कोरंटपुर पधारे। आचार्य कक्कसूरि एवं श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत करके नगर प्रवेश कराया।

जब व्याख्यान पीठ पर दोनों आचार्य विराजमान हुये तो जनता को यह भ्रांति होने लगी कि

यह चन्द्र और सूर्य पृथ्वी पर अवतीर्ण हुये है। सूरिवरों की वात्सल्यता का संघ पर अच्छा प्रभाव दोनों सूरिवरों ने धर्म देशना दी। तत्पश्चात् परिषदा जयध्वनी के साथ विसर्ज्जन हुई।

श्रमणसंघ में इतना धर्मस्नेह एवं वात्सल्यता थी कि वे पृथक २ दो गच्छों के होने पर भी, ही गुरु के शिष्य हो इस प्रकार से व्यवहार रखते थे। आचार्य कक्कसूरिजी दीक्षा लेने के बाद कोरं पहली वार ही पधारे थे। श्रीसंघ की इच्छा थी कि आचार्यश्री का चतुर्मास यहां ही हो और साथ आचार्य नन्नप्रभसूरि का चतुर्मास हो जाय तब तो सोना और सुगन्ध सा काम बनजाय। अतः एक दि श्रीसंघ ने एकत्र हो दोनों सूरिवरों से चतुर्मास की विनती की जिसको लाभालाभ का कारण समझ क दोनों सूरियों ने स्वीकार करली। वस फिर तो था ही क्या। कोरंटपुर के घर २ में आनन्द मंगल मनाय जाने लगा। पहले जमाना में चतुर्मास के लिये लम्बी चौड़ी विनतियें एवं मनुहारों की जरुरत नहीं थी साधु अपनी अनुकुलता देख लेता और साथ में लाभालाभ का अनुभव कर लेतें। वस चतुर्मास की स्वीकृती दे ही देते। कारण पहले जमाना में न तो साधुओं के किसी प्रकार का खर्चा रहता था कि किसी धनाड्य की उनको आवश्यकता रहती थी और न वे आडम्बर की ही इच्छा रखते थे वे तो जनकल्याण और शासन की प्रभावना को ही लक्षमें रखते थे। तब ही तो वे जैनधर्म की उन्नति कर पाये थे।

आचार्य कक्कसूरिजी ने कुछ समय कोरंटपुर में स्थिरता की। बाद वहां से विहार कर भीन्नमाला, सत्यपुरी, शिवगढ़, पद्मावती, चन्द्रावती आदि क्षेत्रों में विहार करते हुये आबुदाचल की यात्रा की पुनः वहां से विहार करते हुए कोरंटपुर पधार गये और आचार्य नन्नसूरि के साथ चतुर्मास कोरंटपुर में कर दिया। आप युगल सूरीश्वरों के विराजने से धर्म की अच्छी जागृति और कई अपूर्व धर्म कार्य हुये।

यह वात तो हम पूर्व लिख आये हैं कि उपकेशगच्छाचार्य्यों के लिये यह तो एक नियम सा बनगया था कि सूरिपद प्राप्त होने के पश्चात् कम से कम एक वार तो सब प्रान्तों में विहार कर जनता को धर्मोपदेश देदिया करते थे तदनुसार आचार्य कक्कसूरिजी महाराज भी मरुधर से लाट, सौराष्ट्र कच्छ, सिंध, पांचालादि प्रान्तों में विहार कर आप मथुरा में पधारे थे। वहाँ हंसावली का शाह जसा अपने पुत्र राणा को स लेकर सूरिजी के दर्शन एवं हंसावली पधारने की विनती करने के लिये आये थे और सूरिजी ने भावुकों की प्रार्थना को स्वीकार कर विहार करते हुये क्रमशः हंसावली पधारे और वहां चतुर्मास कर जसा के वाल कुमार राणा के संघपतित्व में विराट् संघ के साथ तीर्थों की यात्रा करते हुये सिद्धगिरी पधारे और वहाँ संघपति वालकुमार राणा आदि कई भावुकों को दीक्षा दी। तदान्तर सूरिजी ने विहार कर सोपार पट्टन पधारे वहाँ की जनता को धर्मोपदेश देकर धर्म का प्रभाव बढ़ाया बाद आस पास के प्रदेश में विहार कर पुनः मरुधर में पधारे। इस समय आपकी अवस्था वृद्ध होगई थी तथापि क्रमशः विहार करते हुए आप कोरंटपुर पधारे वहाँ के श्रीसंघ ने आपका खूब उत्साह पूर्वक स्वागत किया और प्रार्थना की पूज्यवर ! आपकी वृद्धावस्था है अब कृपा कर यहां स्थिरवास कर दीजिये ! सूरिजी ने कहा जहाँ तक विहार हो सके साधुओं को विहार करना चाहिये परन्तु शरीर से लाचार हो जाय तब एक स्थान स्थिरवास करना ही पड़ता है जैसी क्षेत्रस्पर्शना होगा वहीं बनेगा—

एक समय आचार्य श्री कक्कसूरि अर्द्धनिद्रा में सो रहे थे कि देवी सच्चायका ने आकर वंदन किया सूरिजी ने धर्मलाभ देकर पूछा देवीजी इस समय आपका शुभागमन कैसे हुआ है ? देवी ने कहा कि मैं

एक खास अर्ज करने को आई हूँ, और वह यह है कि अब आपका आयुष्य केवल एक मास का शेष रहा है अतः आप अपने पद पर सूरि बना दीजिये । सूरिजी ने कहा ठीक है देवीजी ! आपने हमारे पूर्वजों को समय २ पर इस प्रकार की सहायता की है और आज मुझे भी सावचेत कर दिया अतः मैं आपका अहसान समझता हूँ और यह उपकेशगच्छ जो उन्नति को प्राप्त हुआ है इसमें भी खास आपकी सहायता का ही विशेष कारण है इत्यादि । इस पर देवी ने कहा पूज्यवर ! इसमें उपकार की क्या बात है ? यह तो मेरा कर्तव्य ही था । पूज्याचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी का मेरे पर कितना उपकार है कि उन्होंने मुझे घातकी पापों से एवं मिथ्यात्व से बचा कर शुद्ध सम्यक्त्व प्रदान किया है । उस महान उपकार को मैं कब भूल सकती हूँ इत्यादि परस्पर बातें हुई । सूरिजी ने कहा देवीजी मैं अपना पट्टाधिकार उपाध्याय विशाल मूर्ति को देना चाहता हूँ । इसमें आपकी क्या राय है ? देवी ने कहा बहुत खुशी की बात है । उपाध्यायजी योग्य पुरुष हैं आपके पद के उत्तरदायित्व को वे बराबर संभाल सकेंगे इत्यादि देवी अपनी सम्मति देकर अदृश्य होगई ।

प्रभात होते ही आचार्य कक्कसूरिजी ने अपने विचार उपस्थित संघ अग्रेश्वरों को बुलाकर कहा कि मैंने अपना पट्टाधिकार उपाध्याय विशालमूर्ति को देने का निश्चय कर लिया है और वह भी बहुत जल्दी । संघ अग्रेश्वरों ने कहा पूज्यवर ! आप अपना पदाधिकार उपाध्यायजी को देना चाहते हो यह तो बहुत खुशी की बात है और हमारा अहोभाग्य भी है कि इस प्रकार का कार्य्य हमारे नगर में हो पर इस कार्य्य को जल्दी से करने को फरमाते हो इससे हमारे दिल को घबराहट होती है । पूज्यवर ! आप शासन के स्तम्भ हैं चिरकाल विराजकर हम भूले भटके प्राणियों को सद् रास्ते पर लाकर कल्याण करो ।

सूरिजी महाराज ने फरमाया कि अब मेरा आयुष्य शेष एक मास का रहा है । अतः मैं अपना पदाधिकार देकर अनशन व्रत करूंगा । अतः आपको इस कार्य्य में विलम्ब नहीं करना चाहिये । सूरिजी के शब्द सुनकर सब लोग निराश होगये फिर भी उन्होंने आचार्य पद के लिये जो करना था वह सब प्रबन्ध कर लिया और आचार्य श्री ने चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष उपाध्याय विशालमूर्ति को अपने पद पर स्थापन कर उनका नाम देवगुप्त सूरि रख दिया । बस, उस दिन से ही आपश्री ने धवलगिरी की शीतल छाया में अनशन व्रत धारण कर लिया और अन्तिम आराधना में लग गये । बस, २१ दिन के अनशन एवं समाधि के साथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया ।

सूरिजी का स्वर्गवास होने से श्रीसंघ को बड़ा भारी आघात पहुँचा पर काल के सामने किसकी चल सकती है ? उन्होंने निरुत्साही होकर निर्वाण क्रिया की । आचार्य देवगुप्त सूरि ने साधु समुदाय को धैर्य्य दिला कर कहा कि सूरीजी का विरह हमको भी असह्य है पर इसका उपाय भी नहीं है । सूरिजी ने अपने जीवन में जैनधर्म की खूब सेवा की । देशाटन कर अनेक शुभ कार्य्य किये इत्यादि उन पूज्य पुरुषों का अपने को अनुकरण करना चाहिये ।

पट्टावलियों, वंशावलियों आदि ग्रन्थों में आचार्य कक्कसूरिजी ने अपने १७ वर्ष के शासन में प्रत्येक प्रान्तों में विहार कर जैन धर्म की अपूर्व सेवा की एवं अनेक भावुकों को उपदेश देकर उनको कल्याण मार्ग पर लाये जिसको थोड़ा नमूना के तौर पर यहाँ उल्लेख कर दिया जाता है ।

आचार्य कक्कसूरि के कर कमलों से दीक्षाएँ हुई

१—कोरंटपुर के दो ब्राह्मण तथा कई श्रावकों ने सूरिजी के पास दीक्षाली
२—विजयपुर के करणाटगौत्रिय पेमाने ,, ,, ,,
३—हस्तीपुर के भूरि गोत्रीय नारा ने ,, ,, ,,
४—उपकेशपुर के नागवंशीय वीरा ने ,, ,, ,,
५—बलापुर के अदित्यनागगौत्रिय सलखण ने ,, ,, ,,
६—माडव्यपुर के अदित्य नागगौत्रीय भैरादि ने ,, ,, ,,
७—वर्धमानपुर के तप्तभट्टगौत्रीय कल्हण ने ,, ,, ,,
८—करणावती के श्रेष्टिगौत्रिय रघुवीर ने ,, ,, ,,
९—हंसावली के संघपति राणा ने ,, ,, ,,
१०—सोपार के क्षत्रीवंशीय कावादि ,, ,, ,,
११—देवपुर के सुघड़ गौत्रिय राहुप ने ,, ,, ,,
१२—भद्दलपुर के सुचंत गौत्रिय पेथादि ने ,, ,, ,,
१३—रूणीपाली के चारणगौत्रिय मूलादि ,, ,, ,,
१४—वीरपुर के कुलभद्र गौत्रिय पोथा ने ,, ,, ,,
१५—थावला के भाद्रगौत्रिय हरदेव ने ,, ,, ,,
१६—डमरेल के बलाह गौत्रिय रामा ने ,, ,, ,,
१७—शिवनगर के चत्रीवंशीय दुद्दड़ ने ,, ,, ,,
१८—राजपाली के लघुश्रेष्टि देल्हा ने ,, ,, ,,
१९—भोजपुर के चिंचट गौत्रिय नारद ने ,, ,, ,,
२०—लोहाकोट के कुंमटगौत्रिय शिवा ने ,, ,, ,,
२१—सालीपुर के श्रेष्टिगौत्रिय सुरजण ने ,, ,, ,,
२२—मथुरा के सुखागौत्रिय जिनदास ने ,, ,, ,,
२३—नंदपुर के भाद्रगौत्रिय नारायण ने ,, ,, ,,
२४—उज्जैन के बापनागगौत्रिय जगमाल ने ,, ,, ,,
२५—विराट् के ब्राह्मण पुरुषोत्तम ने ,, ,, ,,
२६—चित्रकुट के विरहट गौत्रीय धरण ने ,, ,, ,,

इनके अलावा पुरुष और बहुत सी बेहनों ने भी वैराग्य प्राप्त हो सूरिजी के हस्तारविन्द से जैन दीक्षा लेकर स्वपर का कल्याण किया है पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से मैंने वंशावलियों के आधार पर केवल नमूना के तौर पर यहां नामोल्लेख कर दिया है कई एकों की दीक्षा का उल्लेख आचार्य श्री के जीवन में लिखा गया है। उस समय एक तो जैन जनता की संख्या करोड़ की थी दूसरे जैन जनता भारत के चारों ओर प्रसरी हुई थी तीसरा मुख्य कारण उस जमाना के जीव हलुकर्मी थे कि थोड़ा उपदेश से ही वे संसार

का त्याग कर दीक्षा लेने के लिये तैयार हो जाते थे जब ही तो एक एक आचार्य सैकड़ों साधुओं के साथ विहार करते थे और साधुओं की संख्या अधिक होने से ही वे प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जैन धर्म का प्रचार किया करते थे यों तो उपकेशगच्छाचार्य और उन्हों के साधु सब प्रान्तों में विहार करते थे पर मरुधर लाट सौराष्ट्र कोकण कच्छ सिन्ध पंचाल सूरसेन आवन्ती और मेदपाट इन प्रदेशों में तो आपका विशेष विहार होता था और वहां के निवासी यह भी जानते थे कि हम लोगों पर उपकेशगच्छाचार्यो का महान उपकार हुआ है कारण वहां के निवासियों को सबसे पहले उपकेशगच्छाचार्यों ने ही मांस मदिरादि कुव्यसन छुड़ा कर जैन धर्म में दीक्षित किये थे। यही कारण है कि उस समय उपकेश गच्छ में पांच हजार से भी अधिक साधु साध्वियों थे और वे प्रत्येक प्रान्त में विहार करते थे

आचार्य कक्कसूरि के कर कमलों से मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएँ—

आचार्य श्री अच्छी तरह जानते थे कि जहां थोड़े बहुत श्रावक बसते हों वहां पर उनके आत्मकल्याण के लिये जैन मन्दिर की परमावश्यकता है दूसरा उपकेशवंश के बहुत लोग प्रायः व्यापारी थे जहां उनको व्यापार की सुविधा रहती थी वे वहाँ जाकर अपना निवास स्थान बना लेते थे यही कारण है कि मरुधर में पैदा हुआ महाजन संघ पांच छ शताब्दियों में तो वह बहुत दूर दूर प्रदेश में प्रसर गया इतना ही क्यों पर पिछले आचार्यों ने उस शुद्धि की मशीन को इतनी द्रुतगति से चलाई की जहां लाखों की संख्या थी वहाँ करोड़ों तक पहुँच गई और उनकी संख्या के प्रमाण में हजारों मन्दिर और लाखों मूर्त्तियों भी बन गई उस जमाना में हरेक जैन एक दो मन्दिर बनाना तो अपना जीवन का ध्येय ही समझता था उनके अन्दर से कतिपय नाम नमूना के तौर पर वहां उद्धृत कर दिये जाते हैं।

१—आकोड़ा के राव लाखण के बनाया पार्श्वनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई
२—हणवंतपुर के सुचंति गोत्रीय शाह निंबा के बनाया महावीर मन्दिर की प्र० क०
३—क्षत्रीपुर के आदित्य नाग० शाह देदा के ,, महावीर ,, ,, ,,
४—हर्षपुर के श्रेष्टि गोत्रीय ,, नाथो के ,, पार्श्वनाथ ,, ,, ,,
५—करणोड के श्रेष्टि गोत्रीय ,, सालग के ,, शान्तिनाथ,, ,, ,,
६—भवानी के बाप्पनाग० ,, कर्मा के ,, विमलनाथ ,, ,, ,,
७—करीटकूप के भाद्र गौत्रीय ,, करणो के ,, आदीश्वर ,, ,, ,,
८—सत्यपुर के राव (राजा) ,, संगण के ,, महावीर ,, ,, ,,
९—पल्हापुरी के करणाट गौ० , सोमो के ,, महावीर ,, ,, ,,
१०—वाकांणी के भूरि गौ० ,, देवो के ,, महावीर ,, ,, ,,
११—बावला के मोरख गौ० शाह कानो के बनाया महावीर मन्दिर की प्र० क०
१२—नरवर के श्रीश्रीमाल ,, दुर्जण के ,, पार्श्वनाथ ,, ,, ,,
१३—वल्लभी के डिडूगौ० ,, चन्द्रसेन के ,, नेमिनाथ ,, ,, ,,
१४—सोपार के लघु श्रेष्टि ,, माना के ,, शान्तिनाथ ,, ,, ,,
१५—स्तम्भनपुर मोरख० ,, धर्मसी के ,, महावीर ,, ,, ,,

१६—चक्रावती के श्रेष्टि गो० ,, बेरीशाल के ,, आदीश्वर ,, ,, ,,
१७—खोखर के आदित्यनाग० ,, नरशी के ,, वासपूज्य ,, ,, ,,
१८—खीणोदी के बाप्पनाग ,, खतेणी के ,, आदीश्वर ,, ,, ,,
१९—जीवा ग्राम के बाप्पनाग ,, चापा के ,, पार्श्वनाथ ,, ,, ,,
२०—डाबरेलनगर बलाहा शाह समरा के बनाया पार्श्वनाथ ,, ,, ,,
२१—मथुरा के तप्तभट गौ० ,, आशधर के ,, महावीर ,, ,, ,,
२२—भादावर के आदित्य ,, जैतसी के ,, ,, ,, ,, ,,
२३—परखल के चरड गोत्र ,, पुन्यपाल के ,, शान्तिनाथ ,, ,, ,,
२४—सहाना के लुंग गौत्रीय शाह गुणराज के बनाया मुनि सुव्रत मन्दिर की प्र० करवाई
२५—संखपुर के श्रेष्टि गौत्र ,, मुकन के ,, सुमतिनाथ ,, ,, ,,
२६—आघाट के आदित्यनाग० मंत्री जसवीर के ,, शान्तिनाथ ,, ,, ,,
२७—आसिका के बलाहा० नाना के ,, महावीर ,, ,, ,,
२८—विराह के डिडु गौ० रूपा ,, ,, ,, ,, ,,
२९—उपकेशपुर के कनौजिया गौ० कल्हण के ,, ,, ,, ,, ,,

३०—आचार्य कक्कसूरि एक समय कोरंटपुर में विराजते थे वहां का मंत्री नाहड को उपदेश दिया और उसका विचार एक जैनमंदिर बनवाने का हुआ परन्तु उस समय वह सत्युपुरी (साचौर) के मंत्री पद पर था उसकी इच्छा हुई कि वहां कोरंटपुर में तो बहुत मंदिर हैं यदि सत्यपुरी में मन्दिर बनाया जाय तो अधिक लाभ का कारण होगा आचार्य श्री से अर्ज की कि मेरा विचार है कि मैं सत्यपुरी में चरम तीर्थंकर शासनाधीश भगवान महावीर का मंदिर बनाऊं ? सूरिजी ने कहा, बहुत अच्छी बात है जहां आवश्यकता हो वहां मंदिर बनाने में विशेष लाभ है। मंत्रीश्वर ने सत्यपुरी में आलीशान मंदिर बनवा कर भगवान महावीर की मूर्ति की अञ्चनसिलाका एवं प्रतिष्ठा आचार्य कक्कसूरि के कर कमलों से बड़े ही उत्साह से करवाई। कई कई पट्टावलियों में प्रतिष्ठाकार आचार्य का नाम जज्जगसूरि लिखा मिलता है पर यह नाम कक्कसूरि का ही अपर नाम और यह कक्कसूरि कोरंटगच्छ के आचार्य थे मंत्री नाहड जाति का श्रीमाल और कोरंटगच्छोपासक श्रावक था। इस मंदिर का उल्लेख जगचिन्तामणि के चैत्यवन्दन में भी आता है "जयउ वीर साचउरीमण्डण"

३१—पट्टावली में कथा एक लिखी है कि उपकेशपुर में आदित्यनाग गौत्रीय सोभा नाम का श्रेष्टि रहता था उसकी माता को स्वप्न आया कि अब तेरा आयुष्य एक मास का है अतः तू श्री शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा कर तेरा शरीर वहां तीर्थ पर छूटेगा इत्यादि। माता सुबह अपना पुत्र सोमा को सब हाल कहा सोमा ने कहा माता स्वप्न तो जंजाल है और कई प्रकार से स्वप्न आया करता है पर माता ने कहा कि नहीं बेटा मैं तो शत्रुंजय जाऊंगी और इस शरीर को वहीं पर छोडूंगी माता का आग्रह देख सोमा ने कहा यदि आपको शत्रुंजय ही जाना है तो कुछ रोज ठहर जाओ मैं शत्रुंजय का संघ निकालूंगा अतः आप शत्रुंजय की यात्रा संघ के साथ करना पर माता तो जानती थी कि मेरा आयुः एक मास का ही है फिर कब संघ निकले और कब मैं शत्रुंजय जाऊं अतः बेटा से कहा कि मेरा जन्म सुधारना चाहता है तो मुझे

कल ही रवाना करदे—बस सोमा ने अपना पुत्र धवल और आठ आदमियों को देकर माता को रवाना करदी। माता रथ पर बैठ गई और चलती चलती परमा ग्राम में पहुँची वहां एक मन्दिर था पर समय बहुत हो जाने से पट्ट मंगल हो गया था माता के दर्शन का नियम था पुजारी के पास गई तो उसने कहा कि मैं अभी आ नहीं सकता हूँ आपके ऐसे ही दर्शन करना हो तो अपना नया मंदिर बनाले इस ताना के मारी माता ने उस दिन उपवास कर लिया और चतुर कारीगरों को बुलवा कर नया मंदिर की नींव डलवा दी माता ने कुछ रकम तो वहां के संघ अग्रेश्वरों को दे दी और कह दिया कि शेष रकम हमारे पुत्र सोमा से मंगवा लेना सोमा बड़ा व्यापारी था जिसको सब लोग जानते थे माता वहां से २९ वें दिन सिद्धगिरी पर पहुँची और भगवान आदीश्वर की यात्रा कर अनशन कर दिया दूसरे दिन माता का स्वर्गवास हो गया उसी दिन सोमाशाह वगैरह कई लोग शत्रुंजय आ गये पर सोमा के माता का मिलाप नहीं हुआ सोमा ने विचार किया कि यदि मैं माता को नहीं भेजता तो बड़ा भारी पश्चाताप करना पड़ता मैं हतभाग्य हूँ कि माता की अन्तिम सेवा नहीं कर सका फिर भी माता के मनोरथ सफल हो गया—सोमा ने अपनी माता की मृत्यु क्रिया करके वापस लौटता हुआ परमा ग्राम में आया और माता के प्रारम्भ किया मंदिर को सम्पूर्ण करवा कर उसकी प्रतिष्ठा आचार्य कक्कसूरि के हाथों से करवाई। इस प्रकार सूरिजी ने अपने हाथों से अनेक मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर जैन धर्म को चिरस्थायी बना दिया था।

आचार्य श्री के समय केवल धर्म प्रचार की ही आवश्यकता नहीं थी परन्तु उस समय कई वादियों का भी जैन धर्म पर आक्रमण हुआ करते थे अतः उन्हों के सामने भी हर समय कटिबद्ध रहना पड़ता था कई राजा महाराजाओं की सभाओं में जाकर शास्त्रार्थ द्वारावादियों को पराजय कर जैन धर्म की विजयपताका फहराया करते थे। सूरिजी के आज्ञावृति बहुत से साधु ऐसे थे कि उन्हों का तो यह एक कार्य ही बन चुका था कि वे वादियों के साथ शास्त्रार्थ कर स्याद्वाद सिद्धान्त का प्रचार किया करें।

आचार्य कक्कसूरिजी ने पुनीत तीर्थ श्रीशत्रुंजय गिरनार एवं सम्मेतशिखरादि तीर्थों की यात्रा निमित्त बड़े-बड़े संघ निकला कर हजारों लाखों भावुकों को तीर्थ यात्रा का लाभ पहुँचाया पट्टावलीकारों आपश्री के जीवन में संघों का भी विस्तार से वर्णन किया है परन्तु ग्रंथ बढ़ जाने के भय से यहां पर इतना ही कहदेना पर्याप्त होगा कि श्रद्धा सम्पन्न भावुकों ने तीर्थयात्रार्थ लाखों करोड़ों द्रव्य व्यय कर कल्याणकारी शुभ कर्मोपार्जन किया।

आचार्य कक्कसूरि ने अपने जीवन में जैन शासन की महान् सेवा की है। जिसको न तो जबान द्वारा वर्णन किया जा सकता है और न लोहा की तुच्छ लेखनी द्वारा लिखा ही जा सकता है ऐसे जैनधर्म के प्रभाविक पुरुषों के चरण कमलों में कोटि कोटि वन्दन हो।

पट्ट अठारहवे कक्कसूरीश्वर अदित्य नाग उज्जारे थे।
सहस्रों साधु रू साध्वियों जैसे चन्द्र बिच तारे थे ॥
वादी मानी और पाखंडी देख दूर भग जाते थे।
सुरनर पति जिनके चरणों में झुकझुक शीश नमाते थे ॥

इति भगवान् पार्श्वनाथ के अठारहवे पट्टधर कक्कसूरि महान प्रभाविक आचार्य हुए—

१६—आचार्य देवगुप्तसूरि (तृतीय)

आचार्यस्तु स देवगुप्त पद भागादित्य नागान्वये,
आदित्येन समः सुदीप्त तपसा स्वीयप्रभा धारया ।
नित्यं वादि विवाद वात शमने लब्धप्रसिद्धस्तु यः,
भारत्या अवतार रूप धरणो धर्मध्वजोद्धारकः ।
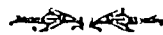
आचार्य देवगुप्तसूरीश्वरजी महाराज जैन संसार में देव की तरह परमपूजनीय हुये हैं आपका अवतार जगत के जीवों के उपकार के लिये ही हुआ था। आपका जन्म मरुधर के नागपुर नगर के धनकुबेर आदित्यनाग गोत्रिय शाह भैरा की पत्नी नन्दा की पवित्र कुक्ष से हुआ था। जब आप गर्भ में थे तब माता नन्दा को धन कुबेर देवता ने साक्षात्दर्शन दिये थे। तत्पश्चात् पुत्र का जन्म हुआ तो कइ महोत्सवों के साथ नवजात पुत्र का नाम धनदेव रख गया था। धनदेव के माता पिता सदाचारी एवं धर्मज्ञ थे अतः उनका प्रभाव धनदेव पर भी हुआ करता था। धनदेव के बच्चापना से ही धार्मिक संस्कार सुदृढ़ जम गये थे। आपकी बालक्रीड़ा अनुकरणीय थी तथा विद्याध्ययन में तो आप अपने सहपाठियों से सदैव अग्रेश्वर ही रहते थे। जब धनदेव ने युवक अवस्था मे पदार्पण किया तो समान धर्म वाली श्रेष्ठि कन्या के साथ विवाह कर दिया। आप देवताओं की भांति सुख में कालनिर्गमन कर रहे थे।

आचार्य यक्षदेवसूरि का पधारना नागपुर में हुआ। आप श्री का व्याख्यान हमेशा हुआ करता था। एक दिन सूरिजी ने व्याख्यान में फरमाया कि संसार रूप समुद्र को तरने के लिये चार प्रकार के जीव हैं।

१—डोका समान-डोका ज्वार बाजरी मकाई का डोका जिसको जल में डालने पर वह अकेला ही तर सकता है परन्तु दूसरे को नहीं तारता है। इसी भांति एक एक मनुष्य ऐसे भी होते हैं कि वे स्वयं तर सकें परन्तु दूसरे को नहीं तार सकें जैसे जिनकल्पी साधु

२—तुंबा समान-तुम्बा को जल में डालने से एक तुंब और एक दूसरा जो तुंबा का आलम्बन करने वाला एवं तुम्बा एक जीव को तार सकता है जैसे प्रतिमधारी साधु एक शिष्यको दीक्षा देकर आप एकान्त जाकर ध्यान में लग जाते हैं

३—काष्ठ की नौका के समान-काष्ठ की नौका आप तरती है और दूसरे अनेक जीवों को तार सकती है जैसे स्थविर कल्पी साधु आप तरते हैं और उपदेश देकर अनेकों को तारते हैं।

४—पत्थर की नौका के समान-पत्थर की नौका आप डूबती है और उस पर चढ़ने वालों को भी डुबा देती हैं जैसे मिथ्यात्वी, पाखण्डी, उत्सूत्र प्ररूपक आदि आप स्वयं डूबते हैं और अनेकों को डुबा देते हैं।

A यही बात गृहस्थों के लिये समझ लीजिये। एक ऐसा साधारण गृहस्थ होता है कि वह एकान्त में रहकर अपना कल्याण कर लेता है पर साधन के अभाव दूसरे का कल्याण करने में असमर्थ है

B दूसरा एक अपना और एक दूसरे का कल्याण कर सकें। कारण उनके पास साधन इतना ही है।

C तीसरा आप तो तरता ही है और अनेक भावुकों को भी तारने में निमित्त कारण बन जाता है

जैसे एक सत्ताधीश धर्मात्मा राजा एवं धनाढ्य सेठसाहुकार चाहे तो अपने कल्याणके साथ अनेकोंका कल्याण कर सकते हैं शास्त्रों में कहा है कि जैनकुल में जन्म लिया है तो उनको साधनके होते हुये कमसे कम तीन कार्य अवश्य करने चाहिये १-अपने न्याय से उपार्जन किये द्रव्यसे जिनमन्दिर बनाकर परमेश्वर की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाना इससे अपना तो कल्याण है ही पर दूसरे अनेक जीवों का कल्याण हो सकता है जैसे आवश्यकसूत्र में आचार्य भद्रबाहु ने मन्दिर बनाने के लिये कुँवा का दृष्टान्त दिया है कि कुँवा बनाने में बहुत कठिनाइयां सहन करनी पड़ती हैं। मिट्टी कर्दम का लेप शरीर पर लगजाता है पर जब कुँवा के अन्दर से पानी निकलता है तब उसी पानी से मिट्टी कर्दम वगैरह सब धुल जाता है। और वह कुँवा रहेगा तब तक उसका शीतल जल पीकर अनेक आत्मा अपनी तप्त तृषा मिटा कर शान्ति को प्राप्त हो कूँप बनाने वाले को आशीर्वाद देंगे इत्यादि इसी प्रकार मन्दिर बनाने में मिट्टी जल पत्थरादि का उपयोग करना पड़ता है और देखने में द्रव्य आरंभ भी दीखता है पर जब मन्दिर तैयार हो उसकी प्रतिष्ठा होकर परमात्मा की मूर्ति स्थापित हो जाती है उसकी भावना से वह द्रव्यारम्भ रूपी लेप स्वयं नष्ट होजाता है और जहाँ तक वह मन्दिर बना रहेगा अनेक भव्यात्मायें परमेश्वर की सेवा भक्ति पूजा भावना कर अपना कल्याण करेंगी और मन्दिर बनाने वालों के शुभ कार्य्य का अनुमोदन करते रहेंगे अतः गृहस्थों के लिये साधनों के होते हुये पहला यह कार्य्य करना उसका खास कर्त्तव्य है महानिशीथ सूत्र में मन्दिर बनाने वाला श्रावक की गति बारहवां स्वर्ग की बतलाई है। २-दूसरा तीर्थों की यात्रा के लिये श्रीसंघ को अपने मकान पर बुलाकर अपने हाथों से उनके तिलक कर संघ निकाल कर संघ को तीर्थयात्रा करवानी चाहिये। जैनधर्म में संघपति पद का महत्त्व कम नहीं है जोकि श्रीसंघ को तीर्थङ्कर भी नमस्कार करते हैं। अतः साधन एवं सामग्री हो तो जीवन में एक बार संघ अवश्य निकाले। ३-तीसरे महाप्रभाविक श्री भगवती आदि सूत्र का अपनी ओर से महोत्सव कर गुरुमहाराज के करकमलों में अर्पण कर श्रीसंघ को तीर्थङ्करों के वचन सुनाना। इस प्रकार बन सके तो तीनों कार्य करे। बाद में दीक्षा लेकर चारित्र की आराधना करनी चाहिये इत्यादि विस्तार से व्याख्यान सुनाया। D-चतुर्थ-मनुष्य के लिए पहले बतला दिया है कि वह आप डूबता है और अनेकों को डुबाता है इत्यादि।

उस व्याख्यान में शाह भैरा भी था सूरिजी का उपदेश ध्यान लगा कर सुना और अपने दिल में निश्चय कर लिया कि आज मेरे पास सब साधन तैयार हैं कि मैं सूरिजी के बतलाये तीनों कार्य्य कर सकता हूँ। बस फिर तो देरी ही क्या थी सूरिजी की सम्मति लेकर चतुर कारीगरों को बुलवा कर मन्दिर का कार्य प्रारम्भ कर दिया जिसकी देख रेख के लिये अपने पुत्र धनदेव को मुकर्रर कर दिया। शाह भैरा ने सोचा कि यदि गुरु महाराज का चतुर्मास यहाँ हो जाय तो श्रीभगवतीसूत्र का महोत्सव करके दूसरा कार्य्य भी कर लूं बाद चतुर्मास के तीर्थो की यात्रार्थ संघ भी निकाल दूं इतने में मन्दिर तैयार हो जाय तो इसकी प्रतिष्ठा भी करवा दूं। अतः एक वर्ष में तीनों कार्य्य बन जाय तो सूरिजी की आज्ञा का पालन हो सकता है

सूरिजी को चतुर्मास के लिये श्रीसंघ ने बहुत आग्रह पूर्वक विनती की थी तथा शाह भैरा ने अपने भाव प्रदर्शित करते हुये कहा कि पूज्यवर! आपके विराजने से हमारे सब मनोरथ सिद्ध होजायेंगे। अतः कृपा कर चतुर्मास की स्वीकृति शीघ्र दे दीरावें। महात्माओं का तो जीवन ही परोपकार के लिये होता है। सूरिजी महाराज ने लाभालाभ का विचार कर चतुर्मास नागपुर में करने की मन्जूरी फरमादी। बस, नागपुर के श्रीसंघ में खूब ही हर्ष आनन्द एवं उत्साह फैल गया। शाह भैरा ने श्रीभगवती सूत्र का आदेश लेकर बड़ा भारी महोत्सव किया और रात्रि जागरण पूजा प्रभावना स्वामीवात्सल्यादि किया और हीरा

पन्ना मुक्ताफलादि से ज्ञान पूजा की तथा प्रत्येक प्रश्न की सुवर्ण मुद्रिकाओं से पूजा की। केवल शा भेरा ही नहीं पर श्रीसंघ भी ऐसा सुअवसर हाथों से कब जाने देने वाले। बहुत से लोग श्रीभगवतीजी सू की पूजा भक्ति करते हुये वीतराग वाणी का श्रवण कर अपनी आत्मा का कल्याण करने लगे।

इधर धनदेव की देख रेख में मन्दिरजी का काम चल रहा था। और धनदेव वस्तु शास्त्र एवं शिल्पकला का अध्ययन कर बड़ी दिलचस्पी से अपनी जुम्मेदारी का कार्य्य सम्पादन कर रहा था जब शाह भैरा के दोनों कार्य्य इच्छानुसार हो रहे थे तो अब तीसरे कार्य्य के लिये सूरिजी के पास आकर प्रार्थना की कि प्रभो! आपकी अनुग्रह से मेरे जीवन के ध्येय रूप दो कार्य्य तो हो रहे हैं पर तीसरे कार्य्य के लिये मुझे क्या करना चाहिये? सूरिजी ने कहा भैरा तू बड़ा ही भाग्यशाली है। दो कार्य कर लिये तो तीसरे के लिये ऐसी कौन सी बड़ी बात है। पर पहले यह निश्चय करले कि तुमको संघ शत्रुंजयादि दक्षिण के तीर्थों का निकालना है। या सम्मेतशिखरादि पूर्व के तीर्थों का? भैरा ने सूरिजी के अभिप्राय को जानलिया और कहा पूज्यवर! शत्रुंजय तीर्थ नजदीक है और रास्ते में भी सर्व प्रकार की सुविधायें हैं अतः यह कार्य्य धनदेव के लिये रहने दूं और मैं सम्मेतशिखरजी का ही संघ निकालूं ऐसी मेरी इच्छा है फिर आप हुक्म फरमावें वही शिरोधार्य करने को मैं तैयार हूँ। सूरिजी महाराज ने फरमाया कि ठीक है सम्मेतशिखरजी की यात्रा करने में कठिनाइयें अवश्य हैं द्रव्य भी अधिक व्यय करना होगा पर लाभ भी तो अधिक है। कारण साधारण लोगों के शत्रुंजय की यात्रा की अपेक्षा शिखरजी की यात्रा बड़ी कठिनता से होती है अतः तुम तो सम्मेत शिखरजी की यात्रा का ही विचार रक्खो।

बस, फिर तो क्या देरी थी शाह भैरा ने श्री संघ को एकत्र कर आज्ञा मांगी और श्रीसंघ ने आदेश देते हुये कहा शाह भैरा! तू भाग्यशाली है आदित्यनाग कुल में जन्म लिया ही प्रमाण है। भैरा ने कहा कि यह सब पूज्याचार्य देव और श्रीसंघ की कृपा का ही सुमधुर फल है और यह कार्य्य मैंने श्रीसंघ की मदद पर ही उठाया है। श्रीसंघ अपना कार्य्य समझ के इसको पूर्ण करावे। श्रीसंघ ने कहा कि इसमें कहने की जरूरत ही क्या है श्रीसंघ सब तरह की मदद के लिये तैयार है।

यों तो शाह भैरा बड़ा भारी व्यापारी था विशाल कुटुम्ब का मालिक था राज काज में एवं हजारों के साथ सम्बन्ध रखने वाला था। बहुत से राजा और जागीरदारों को करज देने वाला बोहरा था। उसके हुक्म मात्र से ही सब काम होता था। फिर भी शाह भैरा ने इस संघ का काम के लिये सब कार्य्य अलग २ विभागों में बांट कर अलग २ कमेटियें बनाकर उनके सुपुर्द कर दिया। शाह भैरा सूरिजी महाराज की सेवा भक्ति करता हुआ श्रीभगवतीसूत्र सुन रहा था और सब काम सिलसिलेवार हो ही रहा था। सर्दी गर्मी के सब साधनों का संग्रह कर लिया था। प्रत्येक प्रान्त एवं ग्राम नगरों में आमंत्रण भेज दिये थे। मामला दूर का होने के कारण चतुर्मास उतरते ही मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को आचार्य श्री की अध्यक्षता एवं शाह भैरा के संघपतित्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया। पट्टावलीकार ने इस संघ का विस्तृत रूप से वर्णन किया है। पांच हजार साधु साध्वी और एक लक्ष नरनारियों तथा पांच हजार सिपाही राजाओं की ओर से पहरायत के तौर पर साथ में थे। सोना चाँदी चन्दनादि के १८४ देरासर संघ के साथ में थे। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उस जमाने में जैन-समाज की धर्म एवं तीर्थों पर कितनी श्रद्धा थी। सम्मेत शिखर जी के संघ ने इतनी लम्बी यात्रा करके आने में कम से कम छ-छः मास जितना समय

तो लग ही जाता था। उस जमाने के लाखों करोड़ों रुपयों के व्यापार करने वालों को कितना संतोष था कि छ सात और आठ आठ मास तक घर के सब काम छोड़ देना वह भी एक दो मनुष्य नहीं पर सब घर के लोग। कारण ऐसे पुन्य कार्य्य में पीछे कौन रहे। जिस नौकर गुमास्ता और पड़ौसियों पर धनमाल और घर छोड़ जाते उन लोगों का कितना विश्वास था। इन सब बातों को देखते हुये यही कहना पड़ता है कि वह जमाना सत्य का था, संतोष का था नीति का था, विश्वास का था और धर्म का था उस जमाने के जीव कितने हलुकर्मी थे कि इतने बड़े लक्ष्मीपात्र होने पर भी अपना जीवन सदा और सरल रखते थे। जैनाचार्य्यो का थोड़ा सा उपदेश होने पर धर्म के लिये अपना सर्वस्व अर्पण करने को आगे पीछे का कुछ भी विचार नहीं करते थे। वस,इन पुन्य कार्य्यों से ही उनके पुन्य हमेशा बढ़ते रहते थे।

श्रीसंघ आनंद मंगल के साथ रास्ते में नये २ मंदिरों के दर्शन तीर्थों की यात्रा जीर्णोद्धार अष्टान्हिका महोत्सव ध्वजारोहण, पूजा प्रभावना, स्वामिवात्सल्य साधर्मियों की सहायता और दीन दुखियों का उद्धार करतासम्मेतशिखरजी पर पहुंचा तीर्थ के दर्शन स्पर्शन कर सब का दिल प्रसन्न हुआ। सब लोगों ने सेवा पूजा भक्ति आदि का यथाशक्ति लाभ लिया और बीस तीर्थङ्करों की निर्वाण भूमि की यात्रा एवं अष्टान्हिका महोत्सव ध्वजमहोत्सव वगैरह अनेकों शुभ कार्य्यों से लाभ उठाया। इस प्रकार पूर्व की सब यात्रायें कीं। तत्पश्चात वहाँ विहार करने वाले साधु पूर्व में रहे शेष तीर्थयात्रा करते हुये संघ के साथ पुनः नागपुर आये।

आचार्य यक्षदेवसूरि ने वह चतुर्मास मेदनीपुर में किया बाद चतुर्मास के पुनः नागपुर पधारे। इतने में शाह भैरा का प्रारम्भ किया जिनालय भी तैयार होगया। शाह भैरा ने सूरिजी से मन्दिर की प्रतिष्ठा के लिये प्रार्थना की पर सूरिजी ने कहा भैरा! तेरे तीन काम तो सफल होगये पर एक कार्य्य शेष रह गया है। शाह भैरा ने कहा पूज्यवर! वह भी फरमा दीजिये कि बन सके तो साथ में ही कर लिया जाय। सूरिजी ने कहा भैरा! ये तीन कार्य्य तो द्रव्य द्वारा करने के थे तुमने कर डाले पर चतुर्थ कार्य तो आत्मभाव का है और आत्मा से ही हो सकता है और इसमें द्रव्य की अपेक्षा आत्म त्याग वैराग्य की आवश्यकता है। भैरा ने कहा पूज्यवर! मेरे से बन गया तो मैं अधूरा न रख चारों कार्य पूरा कर दूंगा। सूरिजी ने कहा कि चतुर्थ कार्य्य दीक्षा लेने का है शाह भैरा ने क्षणमात्र विचार करके कहा पूज्यदयालु! इसमें कौनसी बड़ी बात है आपजैसे हजारों साधु साध्वियों ने दीक्षा ली है तो मैं इतने से काम के लिये अधूरा क्यों रक्खूं। चलो दीक्षा लेने को भी मैं तैयार हूँ। सूरिजी ने कहा 'जहासुखम' शाह भैरा ने घर पर जाकर धनदेव और उसकी माता को कहा कि पूज्याचार्य देव दीक्षा के लिये कहते हैं और मैंने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया है। सेठानी ने कहा क्या आचार्य महाराज के कहने से ही आप दीक्षा लेने को तैयार हुये हैं? हाँ, आचार्य महाराज ने कहा कि तीन कार्य कर लिये तो अब एक काम शेष क्यों रखते हो? तो फिर मैं एक काम को बाकी क्यों रक्खूं, पूरा ही करलूं सेठानी ने कहा आप दीक्षा लेते हो तो मैं घर में रह कर क्या करूँ? चलो आपके साथ मैं भी तैयार हूँ। धनदेव ने कहा कि फिर मैं ही अकेला घर में रह कर क्या करूंगा? मैं भी आपके साथ दीक्षा लूंगा। सेठानी ने कहा बेटा! हम दोनों को दीक्षा लेने दे और तू घर पर रह क्योंकि अभी घर सँभालनेवाला तेरे कोई पुत्र नहीं है। धनदेव ने कहा कि माता यदि तू घर में रहे तो मैं भी रहूँगा नहीं तो मैं घर में रह कर क्या करूं। अतः माता ने पुत्र के स्नेह भाव से घर में रहना मंजूर कर

लिया और शाह भैरा ने मंदिर की प्रतिष्ठा के साथ ही सूरिजी महाराज के पास दीक्षा ले ली जिसका महोत्सव धनदेव ने बड़े ही समारोह से किया।

धनदेव का दिल तो संसार से विरक्त हो गया था पर केवल माता के स्नेह से उसने घर में रहना मंजूर किया था और माता का भाव अपने पतिदेव के साथ दीक्षा लेने का था परन्तु घर सँभालने वाला कोई पौत्र होजाय तो फिर दीक्षा लूंगी इस आशा से मां बेटा दीक्षा का भाव होने पर भी भोगावली कर्म क्षय करने को संसार में रह गये।

'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' इस अटल सिद्धान्त को कौन मिटा सकता है। धनदेव के संसार में रहते हुए के क्रमशः चार पुत्र हुये पर इससे लक्ष्मी देवी रुष्ट होकर धनदेव से किनारा लेलिया। यहाँ तक कि धनदेव के पिता ने करोड़ों की सम्पत्ति छोड़कर दीक्षा ली थी आज धनदेव को शाम सुबह भोजन का पता नहीं है। जब मनुष्य के अशुभ कर्मोदय होता है तब शरीर पर के कपड़े भी खाने लग जाते हैं। धनदेव जैनधर्म के कर्म सिद्धान्त का जानकार अच्छा ज्ञानी था तथापि कभी २ आर्तध्यान इस प्रकार घेर लेता था जिससे वह मन ही मन में पश्चाताप करने लग जाता था कि धन्य है पिताजी को कि वे भरी साहिबी में दीक्षा लेकर सुखी बन गये। मैं कैसा भाग्य हीन रहा कि उस सुवर्ण समय को व्यर्थ खोदिया।

यदि मैं भी। उस समय में ही दीक्षा लेलेता तो आज मुझे इन दुःखों का अनुभव क्यों करना पड़ता क्षणान्तर वह सोचता है कि मेरे पूर्व जन्म में अन्तराय कर्म बन्धा हुआ था। दीक्षा लेलेता तो इस कर्म को कैसे भोगता और कर्म बिना भोगे निर्जरा नहीं, कहा है कि 'कडाणकम्मण नवि तहसमोक्खो' कभी यह भी विचार करता था कि खैर कुछ नहीं अब भी मैं दीक्षा लेलूं; क्षणभर में सोचता है कि इस दरिद्रावस्था में दीक्षा लूंगा तो लोग कहेंगे कि धन नष्ट होगया और अन्न कमा के खाने की हिम्मत नहीं अतः बिचारा दीक्षा लेकर मांग खायेगा इत्यादि इस प्रकार दरिद्रता के साम्राज्य में अनेक तरंगे उठने लगी। फिर भी उस निर्धनावस्था में भी धनदेव ने अपनी धर्म करनी को न्यून नहीं की पर पहिले से बढ़ाता ही गया। ज्ञानियों का यही तो मज़ा है कि उदय आये कर्मो को सम्यक् प्रकार से भोगते हैं और अनुदय की उदीरणा कर उदय में लाता है कि उन कर्मों का करजा शीघ्र ही चुक जाता है।

एक समय आचार्य्य कक्कसूरिजी भ्रमण करते नागपुर पधारे। अन्योन्य लोगों के साथ धनदेव भी सूरिजी को वन्दन करने को आया और उनके साथियों ने परिचय करवाया कि गुरु महाराज। यह धनदेव शाह भैरा का पुत्र है। भैरा ने स्वर्गीय आचार्य्य यक्षदेवसूरि के उपदेश से महा प्रभाविक श्री भगवतीजी सूत्र बंचाया सम्मेतशिखरजी का संघ निकाला, जिन मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई और सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा ली। धनदेव भी धर्मज्ञ एवं जैनसिद्धान्त का अच्छा जानकार है पर अन्तराय कर्मोदय इनकी आर्थिक स्थिति खराब होगई है। सूरिजी ने कहा महानुभाव। ज्ञानियों ने इसी लिये तो संसार को असार बतलाया है क्योंकि सुख के अन्त में दुःख और दुःख के अन्त में सुख हुआ ही करता है। क्या दुःख और क्या सुख ये सब पौद्गलिक वस्तु है। इससे क्या खुशी और क्या नाराजी जैनधर्म का सिद्धान्त तो यह है कि पौद्गलिक सुख हो चाहे दुःख हो पर अपने ध्येय से विचलित न होना चाहिये इत्यादि। धनदेव ने सूरिजी के आशीर्वाद शब्द सुने तो उसकी आत्मा में एक नवीन चेतनता प्रगट हुई। इधर तो धनदेव के अशुभकर्मों का क्षय हुआ और उधर से सूरिजी के शुभ वचन अतः लक्ष्मीदेवी पर पूछती २ धनदेव के घर में आ गई। वह

कारण है कि इधर से तो धनदेव ने कारणवसात भूमि खोदी वो पुष्कल द्रव्य मिल गया उधर जिन्हों पर करजा लेना था वह घर पर आकर देने लगे उधर व्यापार में भी उनको खूब गहरा लाभ होने लगा। बस, एक मास में धनदेव का घर फिर लक्ष्मी देवी से शोभायमान होने लगा। धनदेव ने चार पुत्रों की शादी एक मास में करदी और आप जैसे सर्प कांचली छोड़कर भाग जाता है वैसे धनदेव संसार को सर्पकंचुक समझ कर उससे भाग कर आचार्य्यकक्कसूरि के चरणों में आकर अपने १४ साथियों के साथ भगवती जन-दीक्ष स्वीकार करली तब जा कर शान्ति का श्वास लिया। आचार्य्य श्री ने धनदेव को दीक्षा देकर आपका नाम सोमतिलक रखा आप की योग्यता देख मथुरा में आपको उपाध्याय पदसे विभूषित किया। आपसूरिजी के शासन को अच्छी तरह से चलाया करते थे। आचार्य्य श्री कक्कसूरि की सेवा में रहकर आपने धर्म के अच्छे २ कार्य्य सम्पादन किये। कई राजा महाराजाओं की सभा में वादियों से शास्त्रार्थ कर उनको परास्त कर जैनधर्म का झंडा फहराया था। इसी कारण आचार्य्य कक्कसूरिजी ने अपने अन्त समय चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष उपाध्याय सोमतिलक को अपने पट्ट पर आचार्य्य बनाकर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख दिया था।

आचार्य्य देवगुप्तसूरि जनशासन रुपी आकाश में सूर्य्य सदृश्य प्रकाश के करने वाले हुये थे आपको जैसे संसार में लक्ष्मीदेवी वरदाई थी। वैसे ही श्रमणावस्था मे सरस्वतीदेवी वरदाई थी। आप जैनागमों के अलावा व्याकरण न्याय तर्क छन्द अलङ्कारादि सर्व साहित्य के पारगामी थे। जैसे समुद्र भांति भांति के अमूल्य रत्नों से शोभायमान होता है वैसे ही आपका शासन अनेक विद्या एवं लब्धिपात्रों से सुशेभित था। पट्टावलीकारों ने कतिपय मुनियों का परिचय करवाते हुये लिखा है कि आचार्य्य श्री के शासन में।

१—धर्ममूर्ति नामका वाचनाचार्य बड़ा ही लब्धिपात्र था एक समय सूरिजी की आज्ञा लेकर कई मुनियों के साथ उसने सिन्धभूमि में विहार किया। क्रमशः वह विहार करता वीरपुरनगर में पहुंचा। वहां पर एक सन्यासी आया हुआ था वह अपने योग बल से पृथ्वी से अधर रहकर जनता को चमत्कार बतलाकर सद्धर्म से पतित बना रहा था। ठीक उसी समय धर्ममूर्ति नामका वाचानाचार्य वहां पधार गये। जैनसंघने आपका अच्छा स्वागत किया और वहां के सन्यासी का सब हाल कह सुनाया। इस पर धर्म मूर्ति ने कहा श्रावकों। इस चमत्कार से आत्मकल्याण नहीं है। ये तो योग विद्या है और जिसका अभ्यास किया हुआ होता है वह योग विद्या के बलसे अधर रह सकता है। श्रावकों ने कहा कि महाराज भले ही इससे आत्मकल्याण नहीं होगा पर भद्रिकजनता इससे विस्मित होकर उसकी अनुयायी बन जाती है। तब क्या अपने जैन में में ऐसी विद्या नहीं है मूर्तिजी ने कहा कि नास्ति नही है। श्रावकों ने कहा कि नास्ति नहा है तो फिर वे विद्यायें किस काम की हैं कि धर्म का ध्वंश होता हो तब भी काम में न ली जांय ? वाचनाचार्य्य ने कहा ठीक है। कल मैं पाट पर बैठ कर व्याख्यान दुंगा आप पाट को निकाल लेना बस, दूसरे दिन वाचनाचार्य्य का व्याख्यान आम मैदान में हुआ। हजारों मनुष्य व्याख्यान सुनने को एकत्र हुये थे थोड़ासा व्याख्यान हुआ कि श्रावकों ने पाटा को खींच लिया तो वाचनाचार्य्य अधर रहकर व्याख्यान बांचने लगे जिस को देखकर जनता आश्चर्यमुग्ध बनगई। इस बात को सन्यासीजी ने सुनी तो उसने सोचा कि इस जैनसाधु के पास कितनी विद्या होगी। वे चलकर वाचनाचार्य्य के पास आये और बड़े ही शिष्टाचार से बातें करने लगे। आखिर उन्होंने कहा कि मुनिजी मेरे पास जो विद्या है वह एक जनाचार्य्य से ही मैंने प्राप्त की है, कृपा करके आपभी कुछ यादगारी बक्सावें वाचानाचार्य्यजी ने कहा महात्माजी आप उसी विद्या की खोज करो जिससे जन्म मरणके

दुःख मिटजाय। सन्यासीजी ने कहा कि खैर, आपही कृपा कर बतलाइये कि ऐसी कौनसी विद्या है कि जिससे जन्म मरण मिट जाय ? वाचनाचार्य्य ने कहा कि वीतराग की वाणी एक ऐसी विद्या है कि जिससे जैनदीक्षा ग्रहण कर आराधना कीजिये। अतः जन्म मरण मिटाने के लिये दूसरी कोई विद्या नहीं है इत्यादि तर्क वितर्क से इस कदर समझाया कि सन्यासीजी ने वाचनाचार्य्यजी के पास जैनदीक्षा स्वीकार करली जिससे केवल वीरपुर में ही नहीं पर सिन्धु मण्डल में जैनधर्म का खूब उद्योत हुआ।

२—आचार्य श्री के दूसरा शिष्य पं० राजसुन्दर था आप ज्योतिष विद्या में बड़े ही प्रवीण थे आप विहार करते हुये एक समय भरोंच नगर में गये। वहाँ पर एक ज्योतिषी विद्वानों की सभा हुई थी। सब लोगों को आमंत्रण दिया पर पं० राजसुन्दर को किसी ने आमन्त्रण नहीं दिया। कारण, उन लोगों का खयाल था कि जैनधर्म त्याग वैराग्य मय धर्म है। वे लोग सिवाय त्याग वैराग्य में कष्ट करने के और क्या जानते हैं ? खैर जिस समय सभा हुई तो बिना आमंत्रण पं० राजसुन्दर सभा में चला गया इस पर उन विद्वानों ने पं० राजसुन्दर का स्वागत कर आसन दिया पर वे जैनधर्म के नियमानुसार रजोहरण से भूमि परमार्जन कर कांबली डाल कर बैठ गये। सभा का कार्य शुरू हुआ तो किसी ने वर्ष फल किसी ने मास फल किसी ने राजविग्रह किसी ने वर्षा आगमन विषय कहा। जब पं० राजसुन्दर को पूछा तो उसने कहा कि आजरात्रि आठ घड़ी ४८ पल के बाद बरसात होगी। ज्योतिषियों ने सोचा ऐसा तो कोई योग नहीं दीखता है फिर यह जैनश्रमण किस आधार से कहता है। दूसरे विद्वानों की बातों की नोंध के साथ जैन मुनि के कथन की नोंध करली और यह बात जनता के कानों तक भी पहुँच गई। ठीक बतलाये हुये टाइम पर मुसलाधार बरसात होने लग गई। बस, जो विद्वान जैनश्रमणों की हँसी करते थे वही उनके चरणों में अपना शिर झुकाने लगे और कई लोग पं० राजसुन्दर के पास आकर ज्योतिष विषय का अभ्यास करने लगे। पण्डितजी को राजा प्रजा की ओर से अच्छा सन्मान मिला।

३—आचार्य श्री के शासन में एक पद्मकलस नामक उपाध्याय था। वे परकाया प्रवेश विद्या में निपुण थे। अपनी विद्या का चमत्कार बतलाकर कई राजा महाराजाओं को जैनधर्म के परमोपासक बनाये।

४ चतुर्थ पण्डित नागप्रभ था। आप आकाशगमिनी विद्या में पारगामी थे आप अष्टम अष्टम तप का पारणा किया करते थे और पारणा के दिन श्रीशत्रुंजय तीर्थ और उपकेशपुर मंडन महावीर की यात्रा करके ही पारणा किया करते थे। एक समय पं० नागप्रभ अष्टम के पारणा के दिन अपनी आकाशगामिनी विद्या के बल से शत्रुंजयतीर्थ का चैत्यवंदन करने को आकाश में जा रहे थे। रास्ते में कोई सन्यासी भी पैरों पर लेपकर आकाश में जा रहा था। दोनों की आकाश में भेंट हो गई तो आपस में बातें करते दोनों शत्रुंजय पर आगये। सन्यासी ने देखा तो जैनश्रमण के पैरों पर लेप नहीं था। तब सन्यासी ने पूछा कि आपके पैरों पर लेप नहीं है फिर आप आकाश में गमन कैसे करते हो। जैनश्रमण ने उत्तर दिया कि पैरों पर लेप करके आकाश में गमन करना यह पराधीनता है। लेप नहीं मिलने से गति रुक जाती है। कभी कोई लेप धो डालता है तो भी गति रुक जाती है। अतः मैं इस लेप की विद्या को विद्या नहीं समझता हूँ विद्या तो ऐसी होनी चाहिए कि जो आत्मा से प्राप्त हुई हो जिसकी गति को कोई रोक ही नहीं सके। सन्यासीजी सुन कर मंत्रमुग्ध बन गये और जैनश्रमण से प्रार्थना करने लगे कि महात्माजी ऐसी विद्या तो आप मुझे भी बतलाइये, मैं आपके उपकार को कभी नहीं भूलूंगा। मुनिनागप्रभ ने कहा यदि आपको विद्या की आवश्यकता है, तो जैनदीक्षा स्वीकार

करो और याद में कहूँ वैसे तपस्या करो। आकाशगामिनी विद्या वो क्या पर आत्मा में अनंत विद्यायें एवं लब्धियें छिपी हुई हैं वे प्रगट हो सकती हैं। बस फिर तो देरी ही क्या थी। सन्यासीजी ने महाप्रभाविक तीर्थ श्रीशत्रुंजय पर मुनि नागप्रभ के पास जैन दीक्षा स्वीकार करली और तप संयम की आराधना में लग गया ज्यों २ आपको जैनधर्म का तात्विक ज्ञान होता गया त्यों २ आशा और तृष्णा मिटती गई इस प्रकार नागप्रभ ने अनेक भव्यों का उद्धार किया।

५—पं० न्यायमुनि नाम का एक विद्वान मुनि था। देवी का उसको बरदान था कि आप शास्त्रार्थ में सदैव विजयी रहोगे। आपने कई राजसभाओं में बौद्धों एवं वेदान्तियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्म का विजय झंडा फहराया था। आपके विषय पट्टावली कार ने वहुत विस्तार से लिखा है। भरोंच, जावलीपुर, चन्द्रावती, उज्जैन, मथुरा, शिवनगर वगैरह बहुत स्थानों में वादियों के साथ शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की थी। इत्यादि सूरीश्वरजी के शासन में ऐसे अनेक विद्या सम्पन्न साधु थे कि जिन्होंने जैनधर्म की खूब उन्नति की।

आचार्य देवगुप्तसूरिजी महाराज नौ वर्ष उपाध्याय पद और तीन वर्ष सूरिपद पर रह कर जैनधर्म का खूब प्रचार बढ़ाया। कई भावुकों के निकाले हुए संघ के साथ तीर्थयात्रा की। कई मुमुक्षुओं को जैन-दीक्षा दे श्रमणसंघ में वृद्धि की कई मांस मदिरादि कुव्यसन सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित कर उनका उद्धार किया कई मंदिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर जैनधर्म को चिरस्थायी वनाया आदि आपने अपने जीवन में अनेक शुभ कार्य्य कर संसार का उद्धार किया। अन्त में आप अपना आयुष्य को नजदीक जानकर श्रीशत्रुं-जयतीर्थ की शीतल छाया में विक्रम सं० १७७ में अपने पट्टपर मुनि राजहंस को सूरि वना कर उनका नाम सिद्ध सूरि रख दिया और आप १३ दिन के अनशनपूर्वक समाधि के साथ स्वर्ग पधार गये।

अदित्यनाग कुल आप दिवाकर, देवगुप्त यशधारी थे।
सरस्वती की पूर्ण कृपा, सद्ज्ञान विस्तारी थे॥
दर्शन ज्ञान चरण गुण उत्तम, पुरुषार्थ में पूरे थे।
वन्दन उनके चरण कमलमें, तप तपने में सूरे थे॥

। इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के १९ वें पट्टपर आचार्य देवगुप्तसूरि महा प्रभाविक आचार्य हुए।

जैन व्यापारियों का पाश्चात्य प्रदेशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध

इस बात का पता लगना कठिन है कि भारतीय व्यापारियों का व्यापार सम्बन्ध पाश्चात्य प्रदेशों के साथ कब से प्रारम्भ हुआ था ? फिर भी हमारे चरित्रादि प्राचीन ग्रन्थों से पाया जाता है कि इतिहास काल के पूर्व हजारों वर्षों से भारतीय व्यापारियों का व्यापार सम्बन्ध पाश्चात्य प्रदेशों के साथ था और वे जल और थल दोनों रास्तों से पाश्चात्य प्रदेशों में आया जाया करते थे। उदाहरण के तौर पर श्रीज्ञाता धर्मकथांग सूत्र के आठवें अध्ययन में उल्लेख मिलता है कि चम्पा नगरी का अरणक नाम का जैन व्यापारी जहाजों में पुष्कल माल लेकर समुद्र को पार कर पाश्चात्य प्रदेश में व्यापारार्थ गया था इसी सूत्र के नौवें अध्ययन में जिनरिख और जिनपाल दो भाइयों के वर्णन में कहा है कि इन दोनों बन्धुओं ने ११ बार जहाजों द्वारा पाश्चात्य प्रदेशों में व्यापार किया और वापिस आये। जब बारहवीं बार वे पुनः जहाजें लेकर गये तो वापिस लौटते समय उनको किसी देवी का उपसर्ग हुआ था। राजा श्रीपाल के चरित्र में भी उल्लेख मिलता है कि वे कोसंबी नगरी के धवल सेठ के साथ भरोंच नगर से पांच सौ जहाजें लेकर बब्बरकुल और रत्नद्वीप में गये। वहां केवल व्यापार ही नहीं पर दोनों स्थानों के राजाओं की कन्याओं के साथ राजा श्रीपाल ने विवाह भी किया था इनके अलावा भी बहुत से उल्लेख मिलते हैं।

भगवान् पार्श्वनाथ और प्रभु महावीर के अन्तर काल में भी कई व्यापारी लोग पाश्चात्य प्रदेशों में व्यापारार्थ गये इतना ही क्यों पर उन भारतीय व्यापारियों ने वहां के लोगों को कई प्रकार की सभ्यता भी सिखाई थी और व्यापार की सुविधा के लिये धातु के सिक्कों का आविष्कार भी किया था। भारतीय व्यापारी किसी को कर हासल नहीं देते थे और उन्होंने वहां जाकर अपना उपनिवेश भी स्थापित किया था।

जब हम भगवान महावीर और उनके पीछे के समय को देखते हैं तो ऐसे बहुत से प्रमाण मिलते हैं कि भारतीय व्यापारियों का ही क्यों पर कई राजाओं का भी पाश्चात्य प्रदेशों के साथ सम्बन्ध रहा दृष्टिगोचर होता है जैसे राजगृह का राजा श्रेणिक (बिंबसार) का आर्द्रकपुर नगर के राजा के साथ अच्छा सम्बन्ध था और उस सम्बन्ध को चिरस्थायी बनाने के लिए श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार ने आर्द्रकपुर के राजकुमार आर्द्रक के लिये भगवान् आदीश्वर की मूर्ति भेजी थी जिसको देख आर्द्रककुंवर को बोध हुआ और उसने भगवान महावीर के पास आकर दीक्षा ली थी जब आर्द्रकुंवर ने जैन दीक्षा ली तो उसने अपनी जन्मभूमि में भी जैनधर्म का अवश्य प्रचार किया होगा। इसका उल्लेख सूत्रकृतांग सूत्र की टीका में है।

श्री भगवतीसूत्र के नौवां शतक और ३३ वां उद्देशा में महान कुंडनगर का अधिपति ऋषभदत्त और आपकी गृहदेवी देवानन्दा का वर्णन चलता है जो भगवान के माता पिता थे उनके घर में पारस आदि अठारह देश की दासियां थीं जैसे—

"बहूहिं खुज्जहिं चिलाइयाहिं वामणियाहिं वडाहियाहिं बब्बरयाहिं ईसिगणियाहिं जोण्हियाहिं चारुगणियहिं पल्लवियाहिं ल्यासयहिं लाउसियाहिं आरबीहिं दमिलिहिं सिंघलीहिं पुलिंदीहिं पुक्खलीहिं मुरंडीहिं सबरिहिं पारसीहिं नाणदेसीहिं × × संदेसनेवत्थ गहिया वेसाहिं इत्यादि।

इससे पाया जाता है कि उस समय भारतीयों का पाश्चात्य देशों के साथ केवल व्यापार ही क्यों पर

वैवाहिक सम्बन्ध भी था। कारण, राजाओं में यह रिवाज था कि जब अपनी कन्या की शादी करते थे तो धन माल के साथ दासियां भी दिया करते थे और यह रिवाज आज भी राजा एवं राजपूतों में विद्यमान है।

भगवान् महावीर के उपासकों की संख्या यों तों करोड़ों की थी परन्तु उनमें १५९००० तो उत्कृष्ट व्रतधारी श्रावक थे ऐसा कल्पसूत्र में लिखा है और उपासकदशाङ्ग सूत्र में आनन्दादि दस श्रावकों का वर्णन किया है ये दशों श्रावक गाथापति-वैश्य अर्थात् व्यापारी थे जिसमें आनन्द वाणिया ग्राम नगर में रहता था सिवानन्द नामक उसके स्त्री थी। बारह करोड़ सोनइयों का उसके पास द्रव्य था जिसमें चार करोड़ तो भूमि में जमा रखता था, चार करोड़ का जेवर भूमि आदि स्टेट था और चार करोड़ व्यापार में लगे रहते थे। आनन्द के गायें भी पुष्कल थी, चार गोकल गायों के थे और प्रत्येक गोकल में दश-दश हजार गायें थीं। आनन्द के ५०० हल भूमि थी जिसमें वह खेती करवा कराता था। आनन्द का व्यापार भारत और भारत के बाहर पाश्चात्य देशों के साथ थी भी और समुद्री व्यापार के लिये चार बड़े और चार छोटे जहाज भी थे और पांच सौ गाड़े भारत के व्यापार के लिये और पांच सौ गाड़े जहाजों पर माल लाने और पहुँचाने के लिये रहते थे। इससे पाया जाता है कि आनन्द का समुद्री व्यापार विशाल था तब ही तो पांच सौ गाड़े केवल जहाजों पर माल पहुँचाने को एवं लाने को रख छोड़े थे। इसी प्रकार शेष नौ श्रावकों का व्यवसाय था जिसको हम निम्न कोष्टक में दे देते हैं।

सं	श्रावक नाम	नगर	द्रव्यकोटि	भूमि में	व्यापारमें	घरस्टेट	गोकल
१	आनन्द	वानियग्राम	१२ करोड	४ करोड	४ करोड	४ करोड	४
२	कामदेव	चम्पानगरी	१८ ,,	६ ,,	६ ,,	६ ,,	६
३	चूलनिपति	बनारसी	२४ ,,	८ ,,	८ ,,	८ ,,	८
४	सूरादेव	बनारसी	१८ ,,	६ ,,	६ ,,	६ ,,	६
५	चूळशतक	आलंभिया	१८ ,,	६ ,,	६ ,,	६ ,,	६
६	कुंडकोलिक	कपीलपुर	१८ ,,	६ ,,	६ ,,	६ ,,	६
७	शकडाल	पोलासपुर	३ ,,	१ ,,	१ ,,	१ ,,	१
८	महाशतक	राजगृह	२४ ,,	८ ,,	८ ,,	८ ,,	८
९	नन्दनीपिता	सावत्थी	१२ ,,	४ ,,	४ ,,	४ ,,	४
१०	शालिनी पिता	सावत्थी	१२ ,,	४ ,,	४ ,,	४ ,,	४

शेष आनन्द के सदृश बतलाया है। अतः इनका व्यापार भी आनन्द की तरह पाश्चात्य प्रदेशों में था

सम्राट चन्द्रगुप्त के इतिहास पढ़ने से यह भी पता लगजाता है कि सम्राट चन्द्रगुप्त ने कितने ही पाश्चात्य प्रदेश पर अपना राज स्थापित कर दिया था। इससे भारतीय व्यापारियों को और भी सुविधा होगई थी कि वे पुष्कल प्रमाण में व्यापारार्थ जाया आया करते थे। सम्राट चन्द्रगुप्त के समय एक देश के राजदूत दूसरे देशों में आया जाया करते थे और राजाओं की सभा में रहते भी थे। जैसे यूनानी राजदूत मेगस्थनीज सम्राट चन्द्रगुप्त की सभा में रहता था। कई लोग यात्रार्थ भी एक दूसरे देशों में आया जाया करते थे जिससे मालूम होजाता था कि कौन से देश में क्या रीतरिवाज हैं, कौन से पदार्थ पैदा होते हैं क्या क्या कला कोशल व्यापार वगैह वगैरह हैं इत्यादि। सम्राट चन्द्रगुप्त ने पाश्चात्य राजाओं की कन्याओं के साथ विवाह भी किया था।

सम्राट सम्प्रति के समय तो पाश्चात्य देश भारत का एक प्रान्त ही वैसा बनगया था। सम्राट राजा सम्प्रति कट्टरजैन था और उसने जैन धर्म के प्रचारार्थ अपने सुभटों को जैन मुनियों का वेष पहिना कर अनार्य देशों में भेजे थे और उन नकली साधुओं ने पाश्चात्य प्रदेशों में जाकर वहाँ के लोगों को जैन धर्म की शिक्षा दी तथा जैन मुनियों का आचार विचार समझाया जिससे बाद में जैनसाधुओं ने भी पाश्चात्य प्रदेशों में भ्रमण कर जैन धर्म का प्रचार बढाया तथा सम्राट सम्प्रति ने उन पाश्चात्य लोगों के कल्याणार्थ अनेक मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई जिसके खण्डहर भूगर्भ से आज भी निकल रहे हैं जैसे आस्ट्रीया में भगवान महावीर की मूर्ति तथा अमरीका में सिद्धचक्र जी का गटा आदि। इतना ही क्यों पर मक्का में जैन मंदिर तो चौदहवीं शताब्दी तक विद्यमान थे बाद जब वहाँ जैनों की बस्ती नहीं रही तब वहाँ की मूर्तियां मधुमति (महुआ) के व्यापारियों ने वहाँ से उठाकर अपने नगर में ले आये। सारांश यह है कि जब पाश्चात्य प्रदेशों में जैन धर्मका इतना प्रचार बढ गया था और जैन साधु वहां जाने आने लगगये थे तो जैन व्यापारी वहाँ व्यापारार्थ बहुत गहरी तादाद में जांय इसमें असंभव जैसी कोई बात भी नहीं है। इतनाही क्यों पर बहुत जैन व्यापारि ने तो व्यापार के लिये वहाँ अपनी दुकाने भी खोल दी थीं और वे खुद तथा अनेक वेतनदार मुनीम गुमास्ता एवं नौकर हमेशा के लिये वहाँ रहते थे।

सम्राट सम्प्रति के बाद के समय के तो पुष्कल प्रमाण मिलते हैं कि जैन व्यापारी व्यापारार्थ पाश्चात्य देशों में जल एवं थल के रास्ते व्यापारार्थ जाते आते थे उसका उल्लेख पट्टावलियों में मिलता है परन्तु वहां वल्यदि में विशेष वर्णन धार्मिक कार्यों का ही है अतः कहीं प्रसंगोपात् ही व्यापार का उल्लेख किया है जो कुछ मिला है वह मैंने इस ग्रन्थ में ग्रन्थित कर दिया है।

अब कुछ आजकल के इतिहास संशोधकों के प्रमाण भी यहाँ उद्धृत कर दिये जाते हैं। कि वे लोग क्या कहते हैं उनका उल्लेख करने के पूर्व एक बात का खास तौर पर खुलासा कर देना जरूरी है जैसे कि—

"भारत में किसी भी धर्म को पालन करने वाले लोग क्यों न हों परन्तु पाश्चात्य लोग उनको भारतीय लोग एवं बाद में हिन्दू जाति के नाम से पुकारते थे एवं लिखते थे क्योंकि वे भारत एवं हिन्दूस्तान में रहने वाले थे जैसे पाश्चात्य देशों के लोग किसी धर्म के पालने वाले क्यों न हों पर हम उनको यूरोपियन आदि के ही कहेंगे। यह नाम उनके देश को लक्ष्य में रख कर ही कहे जाते हैं। इतनी दूर क्यों जाते हो पर केवल एक भारत को ही देखिये बंगाल में रहने वाले बंगाली, मारवाड़ में रहने वाले मारवाड़ी, गुजरात में रहने वाले गुजराती के नाम से पुकारे जाते हैं। सारांश यह है कि यह नाम धर्म या वर्ण के साथ सम्बन्ध नहीं रखते

हैं पर केवल देश के साथ ही सम्बन्ध रखते हैं। अतः हिन्दुस्थान में रहने वाले लोग हिन्दूजाति के नाम से ही लिखे गये हैं। इतिहासकारों ने जिस हिन्दूजाति का उल्लेख किया है उसमें जैन बौद्ध वेदान्ति वगैरह सब शामिल हैं परन्तु व्यापार करने में अधिक संख्या जैन जातियों की ही थी। कारण, भगवान् महावीर के उपासकों में वैश्यवर्ण वाले अधिक थे बाद में आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने महाजन संघ की स्थापना की उसमें अधिक क्षत्री वर्ण के लोग थे। वैश्य एवं व्यापारी लोग भी कम नहीं थे और जो क्षत्री लोग थे उनसे भी कई लोग अपनी सुविधा के लिये धीरे-धीरे व्यापार करने लग गये। इसका अर्थ यह तो कदापि नहीं हो सकता है कि जैनधर्म पालने वाले सब वैश्य ही थे; पर बहुत से राजा एवं राजपूत भी थे। किन्तु जहाँ करोड़ों की संख्या हो वहाँ सब तरह के लोग हुआ करते हैं। हाँ, जैनधर्म पालन करने वालों में अधिक लोग क्षत्रिय और वैश्य ही थे अतः व्यापार में अधिक हिस्सा जैन व्यापारियों का ही था उसमें भी अधिक भाग उपकेशवंशियों का था 'उपकेशे बहुलं द्रव्यं' यह वरदान भी व्यापार को लक्ष्य में रख कर ही दिया गया था। तदनुसार उपकेशवंशीय व्यापारियों ने व्यापार में पुष्कलद्रव्य उपार्जन किया। यही कारण है कि उपकेशवंशीय ने एक एक धर्म कार्य में करोड़ों द्रव्य व्यय कर दिया। एक एक दुकाल में देशवासी भाइयों के प्राणबचाने को करोड़ों द्रव्य खर्च कर दिया यह सब व्यापार का ही सुन्दर फल था।

जैन व्यापारियों में कई एक वीर क्षत्रीय थे उन्होंने विदेशों में जाकर उपनिवेश स्थापना किये हों और वहाँ के राजाओं को कर नहीं दिया हो तो यह बात संभव हो सकती है और यह कार्य वीरोचित भी है।

अब थोड़ा सा खुल्लासा धर्म के विषय में भी कर दिया जाता है। जैन धर्म और बौद्धधर्म ये दोनों पृथक् २ धर्म हैं परन्तु वेदान्तियों की हिंसा के लिये दोनों धर्मों का उपदेश मिलता जुलता ही था। वेदान्ति लोग दोनों धर्मवालों को नास्तिक कहते एवं लिखते थे। बौद्धधर्म का पाश्चात्य प्रदेशों में अधिक प्रचार होगया था अतः पाश्चात्य लोगों ने जैनों को भी बौद्ध ही लिख दिया है। यही कारण है कि थोड़ा अर्सा पूर्व लोगों की धारणा थी कि जैन और बौद्ध एक ही धर्म है तथा जैन एक बौद्धों की शाखा है अतः इस भ्रान्ति के कारण जैनधर्मोपासकों के किये हुये कार्य्यों को बौद्धों के नामपर चढ़ा दिये हों तो आश्चर्य की बात नहीं है। वास्तव में जैनों ने पाश्चात्य प्रदेशों में जैनधर्म का काफी प्रचार किया था फिर भी आज वहाँ जैनधर्म के स्मारक चिन्हों के अलावा जैनधर्मोपासक नहीं मिलते हैं इसका क्या कारण होगा? इसके उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जैनधर्म में साधुओं के आचार विचार के नियम इतने सख्त होते हैं। कि देशान्तर में जाने में उनको बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जब भारत में लगातार कई वर्षों तक जनसंहारक भयंकर दुष्काल पड़ा उस विकट परिस्थिति में जैनश्रमणों का पाश्चात्य प्रदेशों में विहार बन्द होगया फिर पीछे कोई साधु वहाँ पहुँच नहीं सका। तब बौद्धभिक्षुओं के लिये सब प्रकार की सुविधा होने से उनका वहाँ भ्रमण रहा अतः बौद्धों का प्रचार बढ़ गया। यही कारण है कि पिछले लेखकों ने जैनों के किये हुये कार्य को बौद्धों के नाम से लिख दिये। जब जैनमन्थों को सूक्ष्मदृष्टि से अवलोकन करने से पता लगता है कि एक समय पाश्चात्य प्रदेशों में जैनधर्म का काफी प्रचार था और उन्होंने जन कल्याण कारी कार्य किया है।

प्रसंगोपात् इतना लिखने के पश्चात् अब हम वर्तमान इतिहास संशोधकों की ओर पाठकों का लक्ष दोराते हुए उनके लेखों से कतिपय प्रमाण यहाँ उद्धृत कर देते हैं:—

१—चीन की मुद्राओं का इतिहास देखा जाय तो सब से पहिले भारतीय शक्तिशाली व्यापारियों ने

अपने व्यापार की सुविधा के लिए धातु मुद्राओं का आविष्कार किया था उनके अनुकरण में फिर वहाँ के एकों ने अपने राज में मुद्रायें चलाईं।

२—मृच्छकटिक नाटक में राजधानी के बीच "श्रेष्टिचत्वर" का उल्लेख है। श्रेष्टि चत्वर को लोग धनकुवेर कहा करते थे। भारत के सभी प्रधान २ व्यापारिक केन्द्रों में उनकी कोठियां थीं। भिन्न भिन्न प्रकार के जवाहिरात, और रेशमी मुल्यवान वस्त्र का व्यापार बहुत होता था। तथा अटूट धनराशि नगर की एकान्त गली में, अन्धकारपूर्ण कोठरी में रक्षित रखी जाती थी। आवश्यकता होने पर राजामहाराजों को भी उनसे कर्ज लेना पड़ता था। उन लोगों में अहंकार या गौरव की भावनाऐं नहीं थीं वे अपनी जाती का पालन करते थे। विशाल देवालय स्थापित करके देवता और गुरु के प्रति भक्ति दिखा कर उन्होंने यश प्राप्त किया था इत्यादि उल्लेख मिलता है।

३—एक फ्रान्सीसी लाकूपेरी पुरातत्ववेत्ता ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि ई० स० पूर्व सातसौ वर्ष में भारतीय व्यापारी गण चीन में व्यापारार्थ आये थे और उन्होंने वहाँ धातु की मुद्रा प्रचलित की थी इतना ही क्यों पर ई० स० पूर्व ६०० वर्ष उपसागर के चारों और भारतीय व्यापारी फैल गये थे और वर्तमान में जैसे यूरोपियन शक्तिशाली हैं वैसे ही प्राचीन समय में भारतीय व्यापारी भी ऐसे ही शक्तिशाली थे कि अपनी शक्ति से वे लोग वहाँ उपनिवेश स्थापित करते थे।

४—ई० स० पूर्व छट्ठी शताब्दी में चीन में एक मुद्रासंघ स्थापित किया था जिसमें चीन के व्यापारियों ने सहयोग दिया था व मुद्रायें वर्तमान में भी उपलब्ध होती हैं अर्थात् भारतीय वस्तुओं को चीन वाले बड़ी कदर करते थे और बड़ी रुचि से खरीद भी करते थे।

५—केवल चीन देश में अपना वाणीज्य प्रसार करके भारतीय व्यापारियों ने अपने साहस का अन्त नहीं किया। प्रत्युत पाश्चात्य प्रदेश में और भी कई देशों में उन्होंने अपने व्यापारिक अस्तित्व को कायम किया, जिसका उल्लेख उन देशों के इतिहास में मिलता है।

६—ग्रीस देश के वणिक एरियन ने अपने 'पेरिप्लस' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि भारतीय व्यापारी अरब देश के पूड़ेमन नगर मे उतरा करते थे और मिश्र के व्यापारी वहीं से उनके पास से भारतीय वस्तुयें खरीद लिया करते थे। मिश्रदेश के वासी भारतीय वाणिकों के संसर्ग में आने के पूर्व कपास का व्यवहार करना नहीं जानते थे। स्ट्रेबोने लिखा है कि भारत ही कपास की जन्मभूमि है। वाणिज्य के द्वारा वह क्रमशः मिश्र और दूसरे देशों में पहुँचा!

७—एरियन-ईसा की पहिली शताब्दी में मिश्र से भारत में व्यापार करने के लिये आया था। अपने ग्रन्थ में दक्षिण भारत के निवासियों के लिये वाणिज्य सम्बन्धी प्रभाव का वर्णन विस्तार से किया है।

८—जावा द्वीप के इतिहास में लिखा है कि ईसवी सन् से ७५ वर्ष पूर्व हिन्दू वाणिक [illegible] से इस द्वीप में गये थे और उन्होंने वहाँ अपना एक संवत् भी प्रचलित किया था।

९—इसवी सन् पहली शताब्दी में युनानी डिसमाइस मिश्र से भारत में आया था उसने भारत में घूमघूम कर व्यापार के केन्द्र स्थानों का निरीक्षण किया था।

१०—अलेक जैडियस पन्टेनस ईसाई पादरी बनकर ई० स० १३८ में भारत में आया था [illegible] का व्यापार देखकर पुनः अपने देश में जाकर वहाँ के लोगों को व्यापारिक शिक्षा दे कर [illegible]

११—ईस्वी सन् २०० पूर्व सेई० स० २०० तक मिश्र निवासी लाज जाति के तथा भीतर पैथन और टगौर से बंगाल की खाड़ी तक व्यापार के लिये आते थे।

इनके अलावा भी इतिहास में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिससे कहा जा सकता है कि भारत व्यापार की जन्म भूमि हैं अन्य देशों ने व्यापारिक शिक्षा भारत से ही पाई है। पश्चात्य लोग भारत के माल को बड़ी रूची से खरीदते और काम में लेते थे वे भारतीय जहाजों की हमेशाँ प्रतिक्षा किया करते थे—

अब थोड़े भारतीय उन प्रदेशों का नामोल्लेख कर दिये जाते है कि जहाँ बड़े बड़े प्रमाण में माल तैयार होता था और वे व्यापार के लिये केन्द्र कहलाते थे। पाश्चात्य लोग वहाँ से माल ले जाते थे।

१—भरोंचनगर पुराणे जमाने से ही व्यापार का केन्द्र रहा है। कोसंबी नगरी का धवल श्रेष्टि पांचसौ जहाजें लेकर भरोंचनगर में आया था अपना माल बेचकर वहां से अन्य माल खरीद कर जहाजें भरकर पश्चात्य देश में ले गया था।

२—शौर्यपुर नगर में सोनारूपापारा की छापका व कपड़ा पर जरी बुटें आदि का कम थोकबन्ध होता था जहाजें बनाने के बड़े २ कारखाने थे जिसमें ५०० से १००० टन वजन वाले जहाज तैयार होते थे।

३—रांदेर-यह पहले बड़ा नगर था यहाँ पुष्कल व्यापार होता था

४—वल्लभी नगरी-यह भी पुराणा जमाने से व्यापार का मथक था।

५—अंकलेश्वर-यहाँ कागज बहुत प्रमाण में बनते थे और भारत के अलावा विदेश में भी जाते थे।

६—महाराष्ट्रय प्रान्त के केवला जिला भी एक व्यापार का केन्द्र था विदेशी लोग वहाँ आया जाया करते थे और जथ्था बन्ध माल खरीद कर अपने देशों में ले जाया करते थे।

७—सोपार पट्टन-यह भी एक व्यापार की मंडी थी समुद्र मार्ग से व्यापारी लोग आया जाया करते थे।

८—स्तम्भनपुर-यह भी व्यापार का मुख्य स्थान था।

९—उपकेशपुर यहाँ के बड़े-बड़े व्यापारी जल और थल के रास्ते से जथ्था बन्ध व्यापार विदेशों में किया करते थे कई कई लोगों ने तो विदेश में अपनी कोठियें भी स्थापित कर दी थीं इसी प्रकार नागपुर मेदनीपुर माडव्यपुर सत्यपुर मुग्धपुर और भीन्नमालादि नगरों के व्यापारियों का व्यापार विदेश के साथ था।

१०—कलिंग के व्यापारी बहुत प्रसिद्ध है कि वे थोकबन्द माल विदेशों में भेजते थे सम्राट् खारवेल के जीवन से पता मिलता है कि एक समय महाराज खारवेल घुड़सवार होकर जंगल में गया था वहाँ आपको कई कलिंग के व्यापारी मिले पर वे थे दुःखी और अपनी दुःख की बात राजा खारवेल को निवेदन की थी कि विदेशी लोग कर के लिये हम लोगों को हेरान करते हैं इसको सुनकर कलिंगपति ने सैना तैयार कर विदेशियों पर धावा बोल दिया आखिर उन्हों को पराजयकर भारतीय व्यापारियों के लिये सदैव के लिये आराम कर दिया। इस प्रकार बंगाल के व्यापारियों का भी विदेश में व्यापार था—

११—ढाका बंगाल का कपड़ा मुलक मशहूर था।

और भी भारत की कोई भी प्रान्त ऐसी नहीं थी कि जहाँ थोक बन्द माल तैयार नहीं होता था अर्थात् भारत बड़ा ही उद्योगी देश था हर प्रकार का माल यहाँ तैयार होता था और व्यापार के लिये वे देश विदेश में जाते आते थे। यही कारण था कि भारत एक समृद्धशाली धनकुबेर देश था। हम देखते हैं कि जैन धन कुबेरों ने एक एक धर्म कार्यों में करोड़ों रुपये बात की बात में खर्च कर डालते थे इसका कारण वे

व्यापार में करोड़ों रुपये पैदा करते थे। दूसरे उनका सत्यशील और धर्म की श्रद्धाही ऐसी थी कि लक्ष्मी तो उनके घरों में दाशी बनकर रहती थी उन पुन्य के ही कारण किसी को चित्रावल्ली किसी को पारस किसी को तेजमतुरी और किसी को सुवर्ण सिद्धि रसायन मिल जाती थी और उनसे पैदा हुआ द्रव्य सत् कार्य में लगाया करते थे जैसे।

१—श्रीमान् जावड़ शाह को तेजमतुरी मिली थी उसने उस द्रव्य से पुनीत तीर्थश्री शत्रुंजय महातीर्थ का उद्धार करवा कर आचार्य वज्रसूरि के कर कमलों से प्रतिष्ठा करवाई।

२—श्रीमान् रांका वांका श्रेष्ठि को सुवर्ण सिद्धि रसायन मिली थी उसने कई जनोपयोगी कार्य किये।

३—श्रीमान् पेथड़शाह को चित्रावली मिली जिससे उसने श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला और रास्ता में चलता चलता ८४ मन्दिरों की नावें लगवाई—

४—श्रीजगडूशाह जिसको तेजमतुरी मिली जिससे वि० सं० १३१३-१४-१५ तीन वर्ष लगातार दुकाल पड़ा जिसमें करोड़ों द्रव्य खर्च कर देशबासी भाइयों के प्राण बचाये।

५—श्रीसारंगशाह को पारस मिला था जिससे भी उसने कई दुकाल में अन्न और घास मंगवाकर मनुष्यों एवं पशुओं को प्राण दान दिया। और श्री शत्रुंजय का विराट् संघ निकाला।

इत्यादि अनेक ऐसे उदाहरण हैं कि इस ग्रन्थ में यथास्थान दर्ज कर दिये जायंगे। इनके अलावा भारतीय विद्वानों ने भी स्वरचित इतिहास ग्रन्थों में इस विषय का विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है कि भारतीय व्यापारियों का विदेशों के साथ जल और थल मार्ग से विस्तृत प्रमाण में व्यापार होता था तथा भारतीय लोगों ने पश्चात्य देशों में अनेक वार भ्रमण किया इतनाही क्यों पर भारतियों ने तो विदेश में जाकर उपनिवेश स्थापना कर उन प्रदेशों को अपना निवास स्थान भी बना दिया था। इस विषय में सरस्वती मासिक के सम्पदक श्रीमहावीर प्रसादजी द्विवेदी जी ने एक महत्व पूर्ण लेख लिख सरस्वती मासिक में प्रकाशित करवाया है पाठकों के पढ़नार्थ उस लेख को ज्यों का त्यों यहाँ उद्धृत कर दिया जाता है।

प्राचीन भारतवर्ष की सभ्यता का प्रचार

"पश्चिमी देशों के इतिहासज्ञ पुरावस्तुवेता, और पारदर्शी विद्वानों ने अभ्रान्त प्रमाणों और प्रबल युक्तियों से सिद्ध कर दिखाया है कि पृथ्वी मंडल पर विद्या, ज्ञान, कला, कौशल और सभ्यता का जन्मदाता भारतवर्ष ही है। वे भारतवासियों ही की सन्तानें थीं जिन्होंने प्राचीन समय में अनेक देश देशान्तरों में जाकर वहाँ सभ्यता फैलाई। प्राचीन भारत वासियों ही ने उन महान् और प्रभावशाली साम्राज्यों की स्थापना की। जिनका गौरव एवं वर्णन प्राचीन इतिहास के पृष्ठों पर ही नहीं लिखा गया किन्तु उनके स्मारक चिन्ह एशिया, यूरुप, अफ्रीका और अमरीका में आज तक वर्तमान हैं। वे स्मारक चिन्ह प्राचीन हिन्दू जाति (भारतियों) के महान अद्भुत कार्यों के प्रमाण हैं।

यजुर्वेद अध्याय ६ और मनुस्मृति वगैरह शास्त्रों में तथा कितनी ही कथायें हैं जिसमें भारतवर्ष के मनुष्यों और महात्माओं का अमरीका जाना सिद्ध होता है। महात्मा व्यासजी शुकदेवजी के साथ अमरीका गये और वहाँ कुछ काल ठहरे थे। शुकदेवजी यूरोप (जिसे प्राचीन आर्य हरिवर्ष कहते थे) ईरान और तुर्किस्तान होकर लौट आये। इस यात्रा में तीन वर्ष लगे थे। यह वृत्तान्त महाभारत में

शांतिपर्व के ३२६ वें अध्याय में लिखा है। अन्य देशों में दो बार पाण्डवों के जाने का उल्लेख भी महाभारत में है। पहली दफे वे ब्रह्मदेश, श्याम, चीन, तिब्बत मंगोलिया तातार और ईरान को गये और हिरात, काबुल, कन्धार और बिलोचिस्तान होकर लौट आये। उनकी दूसरी यात्रा पश्चिम की तरफ हुई वे लंका से प्रस्थान करके अरब, मिश्र, जंजुबार और अफ्रीका के दूसरे भागों में गये। यह वृत्तान्त महाभारत में (सभा पर्व के २६-२८ अध्याय में) लिखा है। इस यात्रा के समय मार्ग में उन्हें अगस्त्य तीर्थ, पुष्पतीर्थ, सुदामातीर्थ, करन्धमतीर्थ और भारद्वाजतीर्थ मिले थे। राजा सगर के पृथ्वी विजय की भी कथा पुराणों में है। राजा धृतराष्ट्र ने अफगानिस्तान के राजा की पुत्री का पाणीग्रहण किया था। अर्जुन ने अमरीका के राजा कुरु राजा की पुत्री से विवाह किया। श्री कृष्ण के पोते अनिरुद्ध का विवाह सुंड (सुएड) के राजा चाण की पुत्री उषा के साथ हुआ था। महाराजा अशोक ने काबुल के राजा सिल्युकस की पुत्री से विवाह किया था।

ईसा के जन्म के अन्तर सहस्त्रों हिंदू तुर्किस्तान, ईरान और रूस में रहते थे। मनुस्मृति के दशवें अध्याय से मालूम होता है कि क्षत्रियों की प्रजा कितनी ही जातियाँ ब्राह्मण (साधुओं) के दर्शन न होने के कारण पतित हो गईं थीं।

"एशिया" एशिया का पुराना नाम जम्बुद्वीप है। एशिया नाम भी हिंदुओं का ही रखा हुआ है। इस विषय में कर्नल टॉड का कथन सुनिये वे कहते हैं कि धुमिदा और मजस्व की सन्तानों से इन्दु (चंद) वंशीय "अश्व" नाम की एक जाति थी। उस अश्व जाति के लोग सिन्ध के दोनों तरफ दूर तक जा बसे थे। इस कारण उस पृथ्वी भाग का नाम एशिया हुआ। एशिया खंड के कितने ही देशों में हिन्दू जाति फैल गई थी। उनमें से कुछ देशों का संक्षिप्त उल्लेख नीचे दिया जाता है।

"अफगानिस्तान" प्राचीन भारत में अपवंश नाम की नाग जाति थी उसमें अपगण नाम का एक मनुष्य हुआ। इसी अपगण की सन्तान अफगान कहलाई। प्राचीन काल में हिन्दुस्तान और अफगानिस्तान में गहरा सम्बन्ध था। इसके कितने ही प्रमाण हैं। राजा धृतराष्ट्र ने अफगानिस्तान के राजा की पुत्री गान्धारी से विवाह किया था। महाभारत में लिखा है कि जिस समय पाण्डव जिस समय दिग्विजय करने गये थे उस समय वे कन्धार अर्थात् गान्धार में राजा धृतराष्ट्र के श्वशुर के महमान हुए थे हिरात नगर हरि के नाम से विख्यात हुआ है। बौद्ध (जैन) राजाओं के समय तक अफगानिस्तान हिन्दुस्तान का ही अंश समझा जाता था। कर्नल टॉड लिखते है कि जैसलमेर के इतिहास से ज्ञात होता है कि विक्रम संवत् के बहुत पूर्व इस क्षत्रिय जाति का राज्य गजनी से समरकन्द तक फैला हुआ था। यह राज्य महाभारत युद्ध के पीछे स्थापित हुआ था। गजनी नगर उन्ही लोगों का बसाया हुआ है।

"तुर्किस्तान" तुर्किस्तान में भी हिन्दु जाति का राज्य था। तर्क का पुत्र तमक हिंदु पुराणों में तरिक्षक नाम से विख्यात हैं। अध्यापक मैक्समूलर लिखते हैं कि तुर्वा और उसकी सन्तान को शाप हुआ था भारत छोड़कर उनके चले जाने का यह कारण था! कर्नल टॉड अपने नामी ग्रन्थ राजस्थान में लिखते हैं कि जैसलमेर के प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि यदुवंश अर्थात् चन्द्रवंश की वान्हीक जाति ने महासमर के युद्ध के पीछे खुरासान में राज्य किया।

"साइबेरिया" महाभारत के युद्ध बाद बहुत सी सूर्य्य और चन्द्रवंशी जातियाँ हिन्दुस्तान को छोड़कर दूर २ जा बसी थीं। एक हिंदूजाति ने साइबेरिया में जाकर अपना राज्य स्थापित किया। इस राज्य की राजधानी "वज्रापुर" था। जब इस देश का राजा किसी युद्ध में मारा गया तब श्री कृष्ण के तीन पुत्र प्रद्युम्न, गद और साम्बु बहुत से ब्राह्मणों और क्षत्रियों को साथ लेकर वहाँ पहुँचे। इन तीनों भाइयों में ज्येष्ठ भाई वहाँ की गद्दी पर बैठे। श्रीकृष्ण की मृत्यु होने पर वे मातमपुरसी के लिये फिर द्वारिका आये थे। यह सब वृत्तान्त हरिवंश पुराण में विष्णु पर्व के ८७ वें अध्याय में लिखा है। साइबेरिया और उत्तरी एशिया के प्रदेशों में हिन्दुओं की सन्तान अभी तक मिलती है। साइबेरिया और फिनलैंड में यदुवंश की दो जातियों का होना इतिहास से ज्ञात होता है। उन जातियों के नाम श्याम-यदु और जादो हैं।

"जावा द्वीप" जावा के इतिहास में स्पष्ट लिखा है कि भारत के कलिंग प्रान्त से हिन्दू उस द्वीप में जाकर बसे थे। उन्होंने वहां के लोगों को सभ्यता सिखाई और अपना संवत चलाया। यह संवत् इस समय तक प्रचलित है। उसका आरम्भ ईसा से ७५ वर्ष पहिले हुआ था। इसके पीछे फिर हिन्दुओं का एक दल जावा गया। उस दल के लोग बौद्ध (जैन) मतावलम्बी थे। उस द्वीप में यह कथा सुनी जाती है कि सातवीं सदी के आरम्भ में गुजरात देश का एक राजा पांच हजार आदमी लेकर वहां पहुँचा और मतराम के एक स्थान पर बस गया। कुछ काल पीछे दो हजार मनुष्य और गये। ये सब बौद्ध-जैनी थे। उन लोगों ने धर्म का प्रचार किया। जिसमें बौद्ध मत का प्रचार विशेष किया। चीन देश का एक प्रसिद्ध यात्री, जिसने इस द्वीप को चौथी सदी में देखा था, लिखता है कि जावा में उस समय सब लोग हिन्दु मतानुयायी थे अर्थात् सर्व आर्य्य थे और सर्वजाति का धर्म चलता था।

"लंका"-लंका में तो अत्यन्त प्रचीन काल से हिन्दुओं का आवागमन रहा है रावण को मारने के बाद लंका का राज्य सदाचारी विभीषण को दे दिया गया था पिछले समय में लंका और भारतवर्ष में बहुत घनिष्ट सम्बन्ध था इस द्वीप का दूसरा नाम सिंहलद्वीप है जिसका अपभ्रष्ट नाम "सिलोन" है।

"अफ्रीका मिश्र"-सात आठ हजार वर्ष हुये जब एक मनुष्य दल हिन्दुस्तान से मिश्र गया और वहीं बस गया। वहीं उन हिन्दुओं ने बड़ी उच्च श्रेणी की सभ्यता फैलाई और अपनी विद्या और पराक्रम से बड़ा प्रभावशाली साम्राज्य स्थापित किया। एक प्रसिद्ध पुरावस्तुवेत्ता लिखते हैं कि मिश्र निवासी बहुत प्राचीन काल में हिन्दुस्तान से स्वेज के रास्ते आये थे। वे नील नदी के किनारे बस गये थे। मिश्र के प्राचीन इतिहास से मालूम होता है कि उस देश के निवासियों के पूर्वज एक ऐसे स्थान से आये थे जिसका होना अब हिंदुस्तान के पन्त कहते थे।

"सिंधु नदी का जल"-अटक से बारह मील नीचे जाकर नीला दिखाई देता है इस कारण यहाँ पर सिन्धु नदी का नाम "नीलाब" होगया है। यह नीलाब या नील नाम मिश्र की सब से प्रसिद्ध नदी का है। सिंधु नदी का प्राचीन नाम "अबोसिन" है। अबीसीनिया जो अफ्रीका में एक बड़े प्रांत का नाम है इस अबोसिन से बना है। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि सिन्धुतट के निवासियों की पहुँच मिश्र तक अवश्य हुई थी।

"अबीसीनिया" यह देश सिन्धु नदी के तटपर रहनेवालों का बसाया हुआ है। प्राचीन काल

 [भारतीय व्यापारियों का

में इस देश और भारतवर्ष से बहुत व्यापार होता था। कितने ही हिन्दू इस देश में आते थे। इस विषय में टॉड साहब ने राजस्थान के इतिहास के दूसरे भाग में बहुत कुछ लिखा है।

"यूरोप" यूरोप नाम संस्कृत शब्द हरियुषीया से निकला है और यूरोप भूमि भारत के प्राचीन निवासियों की परिचित थी इसके वेदोक्त प्रमाण लीजिये। ऋग्वेद में कहा है हरियुषीया देश में जाकर इन्द्रने वरशिल दैत्य के पुत्रों का बध किया।

"यूनान"– पोकोक साहब ने अपनी पुस्तक में इस बात के प्रबल प्रमाण दिये हैं कि यूनान देश को भारत के निवासियों ने ही अर्थात् मगध के हिन्दुओं ने ही बसाया था मगध देश की राजधानी का नाम प्रचीन काल में 'राजगृह' था उसमें रहने वाले गृहका कहलाते थे। इसी गृहका से ग्रीक शब्द बना है विहार देश का नाम पलश्वा था। वहाँ से वह जनसमूह ग्रीस में जाकर बसा वह पेलासगी कहलाया और उस देश का नाम पेलासगो पड़ गया। एक प्रसिद्ध यूनानी कवि असिपस के लेखानुसार यूनानियों के विख्यात राजा पेलास गस हिन्दुस्तान में विहार का प्राचीन राजधानी में उत्पन्न हुआ था! मेकडोनियन और मेसेडन शब्द मगध के अपभ्रंश हैं। मनुष्यों के कितने ही समूह मगध से जाकर यूनान में बसे और उसके प्रांतों को पृथक् २ नाम से पुकारने लगे। कैलाश पर्वत का नाम यूनान में "केनन" है और रोम में "कोक्लिन" है। क्षत्रियों की कई जातियों का यूनान में जाकर बसना सिद्ध होता है। यूनान में देवी देवता भारतवर्ष के देवी देवताओं की नकल है। उस देश का धर्म विधान साहित्य और कला शास्त्र भी हिंदू जाति ही की चीज है।

'रोम"–रोम शब्द राम से बना है। एशिया माइनर में हिन्दू जाति जाकर बसी, रोमवाले उसी की सन्तान है। रोम की समीवर्तिनी यूट्रेसियन जाति भी हिन्दु ही थी। रोम के देवी देवता भी हिन्दुस्तान के देवी देवताओं के प्रतिरूप हैं। यह भी इस बात का प्रमाण है कि रोम निवासी हिन्दु जाति के ही हैं।

"अमरीका" अमरीका की आश्चर्यजनक प्राचीन सभ्यता के चिन्हों पर दृष्टि डाली जाय तो मालूम होगा कि यूरूप वासियों के प्रवेश करने के पहिले वहाँ कोई सभ्य जाति अवश्य रहती थी। दक्षिण अमरीका में बड़े २ नगरों के खंडहरों, दुढकोट, सुंदरभवनों, जलाशयों सड़कों, नहरों आदि के चिन्ह मिलते हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में यहाँ कोई बड़ी उच्चश्रेणी की सभ्य जाति रहती थी। अच्छा, तो यह सभ्यता आई कहाँ से ? यूरोपीय पुरावस्तु वेत्ताओं ने इसका पता लगाया है। वे कहते हैं ये सभ्यता और कहीं से नहीं हिन्दुस्तान से आई थी। वेरन महाशय का कथन है कि इस समय भी अमरीका में हिन्दुओं के स्मारक चिन्ह मिलते हैं।

अब पोकाक महाशय का कथन सुनिये वे कहते हैं कि पेरु निवासियों की और उनके पूर्वज हिन्दुओं की सामाजिक प्रथायें एक सी पाई जाती हैं। प्राचीन अमरीका की इमारतों का ढंग हिन्दुओं के जैसा है। स्क्वायर साहब कहते हैं कि बौद्ध (जैन) मत के स्तूप दक्षिण हिन्दुस्तान और उसके उपद्वीपों में मिलते हैं, वैसे ही मध्यम अमरीका में भी पाये जाते हैं। जैसे हिन्दु पृथ्वी माता को पूजते हैं वैसे ही वे भी पूजते हैं। देवी देवताओं और महात्माओं के पदचिन्ह जैसे हिन्दुस्तान में पूजते हैं वैसे वहाँ भी देखाते हैं। जिस प्रकार लंका में भगवान् बुद्ध के और गोकुल में श्रीकृष्ण के पदचिन्हों की पूजा की जाती है उसी तरह मेक्सिको में भी एक देवता के पदचिन्ह पूजे जाते हैं। जैसे सूर्य्य चन्द्र और उनके ग्रहण हिन्दुस्तान में

माने जाते हैं उसी तरह वहां भी घंटा घड़ियाल आदि जैसे ही हिन्दुस्तान में इन अवसरों पर बजाये जाते हैं वहाँ भी उसी के बाजे बजते हैं। सूर्य्य चन्द्र का राहु से ग्रसित होना वे भी मानते हैं वहां के पुजारी सर्प आदि के चिन्ह कंठ में धारण करते हैं इससे हिन्दुस्तान के महादेव और काली आदि देवी देवताओं का स्मरण होता है। हिन्दुस्तान में जैसे गणेश जी की मूर्ति की पूजा होती है। उसी तरह वहाँ भी एक वैसे ही देवता की पूजा होती है। जिस प्रकार हिन्दू धर्म ग्रन्थों में प्रलय का वर्णन है वैसा ही इन लोगों के ग्रंथों में भी है उनमें एक कथा है कि उनके एक महात्मा की आज्ञा से सूर्य की गति रुक गई थी वह ठहर गया था। हमारे महाभारत में भी ऐसा ही उल्लेख है। जयद्रथ वध के समय श्री कृष्ण की आज्ञा से सूर्य्य ठहर गये थे। कृष्ण की मृत्यु पर अर्जुन के शोक नाद से भी सूर्य्य का रथ रुक गया था। हिन्दुओं की तरह अमरीका के आदिम निवासी भी पृथ्वी को कच्छप की पीठ पर ठहरी हुई मानते हैं। सूर्य्यदेव की पूजा दोनों देशों में होती है। मेक्सिको में सूर्य के प्राचीन मन्दिर हैं। जीव के आवागमन के सिद्धान्त में भी हिन्दुओं की तरह उन लोगों का विश्वास है। धार्मिक विषयों के अतिरिक्त सामाजिक विषयों में भी बहुत कुछ समता देख पड़ती है। उन लोगों के कितने ही रीत रिवाज हिन्दुओं के से हैं। उनका पहिनना हिन्दुओं के ही ढंग का है। वे भी खंडा ऊपर चलते हैं। स्त्रियों के वस्त्र भी हिन्दु स्त्रियों के सदृश ही जान पड़ते हैं। अमरीका में हिन्दु श्रीरामचन्द्रजी के बाद गये ऐतिहासिक कथाओं से भी जाना जाता है कि महाभारत के युद्ध के बहुत पीछे तक हिन्दु अमरीका को जाया करते है रामचन्द्रजी और सीताजी की पूजा उनके असली नाम से वहाँ आज तक होती है पेरू में रामोत्सव नाम से रामलीला भी होती है। अमरीका वालों की भवन निर्माण शैली और प्राचीन ऐतिहासिक बातें ऐसी हैं जिसका विचार करने पर उन लोगों को हिन्दु जाति से ही उत्पन्न मानना पड़ता है। महाभारत में लिखा है कि अर्जुन ने पातालदेश जीत कर वहाँ के राजा की कन्या 'उलूपी' से विवाह किया था। उससे एक पुत्र हुआ जिसका नाम 'अवर्णव' था। वह बड़ा पराक्रमी था।

प्राचीन काल में भारतवर्ष से अमेरिका जाने के दो रास्ते थे। एक हिन्दुस्तान से लंका अथवा बंगाल की खाड़ी से जावा और बोर्नियो होते हुये मेक्सिको पेरू या मध्य अमरीका तक चला गया था। दूसरा चीन, मंगोलिया, साइबेरिया, और बहिरंग के मुहाने से होकर उत्तरी अमरीका तक गया था।

इस समय जहां बहिरंग का मुहाना है वहाँ प्राचीन समय में जल न था वह स्थान अमरीका से मिला हुआ था। पीछे भौमिक परिवर्तन होने से वहां जल होगया। जैसे पहिले एशिया से अफ्रीका महाद्वीप स्थल मार्ग से मिला था उसी तरह अमेरिका देश भी मिला था। अब एशिया और अफ्रीका के बीच स्वेज नहर और एशिया और अमरीका के बीच बहिरंग का मुहाना है।

सरस्वती संम्वत् १९९१ वैशाख मास के अंक से

महाजन संघ की पंचायतें

पुराने जमाने में ऐसा रिवाज था कि राजा की ओर से सभासद चुने जाते थे और जनता के छोटे बड़े तमाम कार्यों का निपटारा उन सभासदों द्वारा होता था जैसे आप सम्राट् चन्द्रगुप्त अशोक और सम्प्रति के समय का इतिहास पढ़ आये हो। पर जब महाजन संघ की स्थापना हुई और बाद जैनाचार्यों

ने ग्रामोग्राम अजैनों को जैन बनाकर महाजन संघ में वृद्धि की और राजा विक्रम के समय तक तो महाजन संघ अपनी शाखा प्रतिशाखा से इतना फला फूला कि उनकी संख्या करोड़ों तक पहुँच गई और प्रत्येक ग्राम नगर में प्रसरित भी हो गया। अतः इसका संगठन बल मजबूत बनाने के लिये ऐसी पंचायतें स्थापित करदीं कि संघ एवं समाज का सब कार्य्य उन पंचायतों द्वारा होने लगा वे पंचायतें केवल कल्पना मात्र से नहीं बनाई पर खास शास्त्रों के अनुसार बनाई गई थीं जैसे जैनागमों में लिखा है कि देवताओं की व्यवस्था के लिये स्वर्ग में एक इन्द्र होता है उनके कार्य में मददगार सामानीक देव और सलाहकार तीन प्रकार की परिषदा के देव भी होते हैं जैसे—

१—सामानीक देव—इन्द्र कोई भी काम करना चाहे तो पहले सामानीक देवों के साथ परामर्श करे जब सामानीक देव सहमत हो जाय तब ही इन्द्र वह कार्य कर सकता है। जैसे राजा के उमराव।

२—आभ्यान्तर परिषदा के देव—जिस कार्य को इन्द्र करना चाहे तो पहिले आभ्यान्तर परिषदा के देवताओं की सलाह लेता है और वे सलाह दे दें तब ही कार्य किया जाय। जैसे राजा के मुत्सद्दी।

३—मध्यम परिषदा के देवताओं से विचार करे। जैसे कार्य कर्ता बुद्धिमान।

४—बाह्य परिषदा के देवताओं (आम जनरल) को एकत्र कर हुक्म सुनादें कि हम व सामानीक देव, या आभ्यान्तर परिषदा के देव और मध्यम परिषदा के देवों ने निर्णय कर लिया है कि अमुक कार्य किया जाय अतः तुम इस कार्य को शीघ्र करो।

इसी प्रकार हमारी पंचायतों में भी

१—इन्द्र के स्थान एक संघपति या नगर सेठ बनाया गया।

२—सामानीक देवों के स्थान—चार चौधरी एवं पांच पंच

३—आभ्यान्तर परिषदा के देवों के स्थान प्रतिष्ठित बुद्धिवान् समाज के शुभ चिन्तक सलाह देने वाले।

४—मध्यम परिषदा के देवों के स्थान कार्य.पद्धति के ज्ञाता।

५—बाह्य परिषदा के देवों के स्थान—आम पब्लिक।

इस प्रकार की व्यवस्था करने में न तो निर्नायकता रहती है और न नायक निरंकुश ही बन जाते हैं और कार्य निर्विघ्नतया सफल हो जाता है। महाजन संघ में इस प्रकार की पंचायतें बड़े २ नगरों में ही नहीं पर छोटे २ ग्रामों में भी थीं और वे केवल एक महाजन संघ का ही काम नहीं करतीं पर तमाम नगर का भी काम कर लेती थीं केवल नागरिकों को ही नहीं पर सत्ताधीश राजाओं को भी महाजनों की पंचायतों पर पूर्ण विश्वास था पहिले जमाने में इस प्रकार इन्साफी पंचायतें होने से किसी को भी राज अदालत देखने का समय ही नहीं मिलता था। कदाचित् कोई राज अदालत में चला भी जाता तो आखिर राज भी उनका इंसाफ पंचायतों पर छोड़ देते थे। जब तक पदाधिकारी पंचों के हृदय में न्याय सत्य सफाई और निष्पक्षता रही वहाँ तक पंचायतों का कार्य व्यवस्था के साथ चलता रहा और जनता उन पंचों को परमेश्वर ही कहती थी। जिसका एक दो उदाहरण यहाँ लिख दिया जाता है।

१—कुसमपुर नगर के राजा के दिल में इस बात की शंका पैदा हुई कि दुनियां कहती है कि पंचों में परमेश्वर हैं तो क्या यह बात सत्य है ? इसकी परीक्षा अवश्य करनी चाहिये।

राजा ने रात्रि समय वरदत्त सेठ की दुकान पर जाकर कहा सेठजी एक हजार रुपयों की जरू-

रत है मैं नगर का राजा हूँ आप खाते में नाम न लिखें सुबह ही रकम पहुँचा दी जायगी। सेठजी ने बिना नाम लिखे राजा को रुपये दे दिये। एक दो तीन दिन व्यतीत होगये रुपये आये नहीं। सेठजी ने राजाज्ञा भंग के भय से रुपये राजा के नाम भी नहीं लिखे। आखिर सेठजी ने राजा से कहलाया कि या तो हजार रुपये भेज दीरावें या नाम लिखने की आज्ञा फरमावें। राजा ने सेठ को बुलाकर खूब धमकाया और कहा कि कौन तेरे रुपये लाया है। जब तू मेरे से ही बिना लाये रुपये मांगता है तो इस प्रकार दूसरे लोगों से तो बिना दिये कितने रुपये वसूल किये होंगे और जो तू कोटाधीश बना है इसी प्रकार बिना दिये रुपये वसूल करके ही बना होगा इत्यादि। विचारा सेठ बड़ी ही चिंता में पड़ गया। रुपये नहीं आवें जिसकी तो चिंता नहीं पर राज मुझे सच्चे को झूंठा बताता है इस बात का बड़ा ही दुःख है। राजा ने कहा क्यों सेठजी क्या करना है ? सेठजी ने कहा कि आप फरमाते हो कि रुपये मैं नहीं लाया तो ऐसा ही सही। राजा ने कहा ऐसा नहीं अपने मामले की पंचायत करवालें। सेठजी ने कहा ठीक है बस, पंचों को बुलाकर दोनों ने अपने अपने हाल सुनाकर कहा कि हमारी पंचायती कर दीजिये। पंचों में कई ने सोचा कि राजा रात्रि समय स्वयं जाकर सेठजी से हजार रुपये लावे यह असम्भव है तब किसी ने कहा कि सेठजी की इतनी हिम्मत नहीं है कि राजा के राज में रहते हुये राजा पर झूंठा कलंक लगावे दूसरे महाजनों की पोते बाकी में हजार रुपयों का फरक चल नहीं सकता है इत्यादि विचार ही विचार में टाइम होगया राजा की रजा लेकर सब भोजन करने को गये उन पंचों में रुपये देने वाले सेठजी भी शामिल थे। भोजन करके चार पंच तो आगये पर सेठजी नहीं आये। चारों पंचों ने बार बार कहा कि सेठजी अभी तक नहीं आये इतने ही में राजा ने सहसा कह दिया कि सेठजी का मकान दूर है, आता होगा। बस, एक पंच ने निर्णय कर लिया कि सेठजी का कहना सत्य है। राजा जरूर सेठजी के वहाँ से रुपये लाया है। यदि राजा रुपये नहीं लाता तो उसको क्या मालूम कि सेठजी का घर दूर है। बस, सेठजी आये और सबने एक विचार कर राजा से कहा कि सेठजी सत्य कहते हैं आप एक हजार रुपये सेठजी के यहाँ पहुँचा दें। राजा ने कहा किस न्याय से ? पंचों ने कहा बतलाओ हमारा घर वहाँ से कितनी दूर है ? राजा ने कहा मुझे क्या मालूम पंचों ने कहा तब सेठजी का घर दूर है आपको कैसे ज्ञात हुआ ? राजा ने कहा मैंने आप लोगों की परीक्षा के लिये ही इतना प्रपंच किया है कि यह सत्य है पंच परमेश्वर हैं। राजा ने सेठजी को हजार रुपया और पंचों को इनाम देकर विसर्जन किया।

२—इसी प्रकार काशी के राजा ने एक इभ्य सेठ के पूर्वजों के नाम पर एक लक्ष रुपयों का खत मांड कर सेठ को बुलाया और कहा कि तुम्हारे पूर्वजों पर एक लक्ष रुपये बाकी लेना निकलते हैं। तुमको मय व्याज के जमा करवाना चाहिये। विचारे सेठ ने सोचा कि 'समुद्र में रहना और मगर से बैर रखना' ठीक नहीं है अतः उसने कहा कि हमारे पूर्वज परम्परा से कहते आये हैं कि राजा की रकम देनी है पर व्याज के झगड़े से दी नहीं गई है। राजा कहते हैं रकम व्याज से ली जाय और हम कहते हैं कि बिना व्याज की रकम का व्याज नहीं दिया जाय इत्यादि। अतः लक्ष रुपये तैयार हैं जब फरमावें तब ही हाजिर किये जावें राजा ने कहा कि अब इस झगड़े को कहां तक रक्खा जाय पंच डाल दें जो फैसला दें वह मंजूर कर लो। सेठ ने कहा ठीक है। बस, पंचों को बुलाकर दोनों ने अपना २ हाल सुना दिया। पंच सोचने लगे कि इतना बड़ा सेठ पुरखों से धनाढ्य है खत लिखकर रुपये लेजाय यह असंभव है। तब एक ने कहा

[पंचों में परमेश्वर है

राजा के पास पुराने खत हैं यह भी तो झूठ नहीं हो सकता। इसी विचार में समय होगया और सब पंच भोजन करने को चले गये। एक पंच ने जिस समय का राजा का खत था उस समय की अपनी बहियें निकाल कर देखी तो मालूम हुआ कि राजा ने अपने खत में जो रुपयों का सिक्का लिखा है वह उस समय का नहीं पर बहुत पीछे का है इससे निर्णय किया कि खत जाली बनाया है। बस, भोजन करके सब पंच वापिस राजा के पास आये और सब एक मत होकर राजा को कहा कि खत आपका जाली है। राजा ने गुस्से में आकर कहा कि तुम साहूकार साहूकार का पक्ष करते हो वरना मेरा खत जाली होने की क्या साबूती है ? पंचों ने कहा कि आपने बड़ी चतुराई से जाली खत लिखा है परन्तु इसमें सिक्का को बदलाने की गलती होगई है। जो सिक्का आपने लिखा है वह खत के समय से बहुत पीछे का है। राजा ने सुन कर कहा कि मैंने आपकी परीक्षा के लिये ऐसा किया है। पर पंच परमेश्वर कहलाते हैं यह सत्य ही है।

करीब एक शताब्दी पूर्व एक अंग्रेज टॉड साहब हुये हैं। उसने राजपूताने में भ्रमण कर वहां का हाल 'टॉड राजस्थान' नामक पुस्तक में लिखा है। जिसमें आप लिखते हैं कि ग्राम २ में ऐसी पंचायतें मैं देखता हूँ कि जहाँ रईस की जरूरत भी नहीं है। वे पंचायतें ग्राम के सब काम स्वयं निपटा देती हैं इत्यादि। इससे पाया जाता है कि एक शताब्दी पूर्व महाजनों की पंचायतें सुव्यवस्थित थीं और वे पंच ग्राम का लेन देन का एवं झगड़े टंटे का काम आपस में निपटा देते थे कि लोगों को राज अदालतों का मुंह देखना नहीं पड़ता था परन्तु बाद में वे पंचायतें उसी रूप में नहीं रही। न जाने उनके खाने में ऐसा कौनसा अन्न आया होगा कि पक्षपात एवं स्वार्थ तथा अहंपद रूपी पिशाच उनके हृदय में घुस गया कि अपने परोपकारी कामों से हाथ धो बैठे और दुनिया का निपटारा करने वालों स्वयं आपस में लड़ झगड़ कर अपना महत्त्व खो दिया कि उन खुद को ही अदालतों में जाकर इन्साफ लेना पड़ता है। पुराने जमाने की पंचायतों का यशः आज भी अमर एवं जीवित है।

जहाँ महाजनों की पंचायते हैं वहां उन पंचायतें के निर्वाह के लिये ग्रामोंग्राम शुभ प्रसंगों पर लागन लगाई हुई है उसकी आय व्यय के हिसाब को पंचायत हिसाब कहा जाता हैं पंचायत आमन्द के लिये कई मकान दुकानें और बरतन विगैरह आता है वह पंचायत में जमा होता हैं इस प्रकार की पंचायतें छोटे छोटे ग्रामों से लगा कर बड़े बड़े नगरों में हैं इतना ही क्यों पर उपकेश वंशीय लोग अपने मूल स्थान को छोड़ कर अन्य स्थानों में वास किया और वह उनकी थोड़ी बहुत बसती जम जाती थी वहां भी उनकी पंचातियों का प्रबन्ध होजाता था आज उन पंचायतों का रूप बदल गया है पर उनका मूल ध्येय केवल जाति का ही नहीं पर साधारण जनता की सेवा करने का ही था—

२०—आचार्य श्री सिद्धसूरि (तृतीय)

आचार्यस्तु स सिद्धसूरि रिह वैडीहृवाख्य गोत्रात्मजः ।
यो हीरेण समश्वसुद्युतियुतः सर्वैश्च देवैः स्तुतः ॥
श्रुत्वा यस्य रसेन पूरित तमं वाक्यामृतं मानवाः ।
देवा मंत्र बलेन मुग्धमन सो व्याख्यानमध्येऽभवन् ॥

आचार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज जैन संसार में सिद्ध पुरुष के नाम से विख्यात थे केवल जैन ही क्यों पर जैनेतर लोग भी आपके आत्मिक चमत्कार एवं सिद्धियों को देख मंत्र-मुग्ध बन कर आपके चरण कमलों की सेवा करते थे । आपने अपने पूर्वजों की स्थापित की हुई मशीन को द्रुतगति से चलाने में एक चतुर ड्राइवर का काम किया अर्थात् आप एक धर्मप्रचारक आचार्य हुये हैं । आपश्री का जीवन महत्वपूर्ण था ।

माडव्यपुर नगर के राजा सुरजन के मुख्य मंत्री श्रेष्टि गोत्रीय नागदेव था । नागदेव पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों देवियों की महती कृपा थी यही कारण था कि मंत्री नागदेव को लोग धन में कुबेर और बुद्धि में बृहस्पति ही कहा करते थे । नागदेव के रंभा नाम की सुशीला स्त्री थी पर उसके कोई संतान न होने से मंत्री ने दूसरा विवाह क्षत्रिय हरनारायण की पुत्री देवला के साथ किया था पर पूर्व कर्मोदय उसके भी कोई संतान नहीं हुई । मंत्री ने सच्चायिका देवी का आराधन किया । तीन उपवास की अन्तिम रात्रि में देवी ने कहा कि उपकेशपुर के चिंचट गोत्रिय शाह रामा की पुत्री कमला के साथ विवाह कर तेरे बहुत संतान होंगी । श्रेष्टि ने देवी के बचनों को तथाऽस्तु कर लिया । देवी अदृश्य होगई । श्रेष्टि ने तीन उपवास का पारणा किया और एक योग्य पुरुष को उपकेशपुर भेजा । वह जाकर शाह रामा से मिला और मंत्री नागदेव के समाचार कहे तो शाहरामा बड़ा ही खुश हुआ कारण, उसको नागदेव जैसा जमाई मिलना कहां था । उसने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और थोड़े ही दिनों में कमला का विवाह मंत्री नागदेव के साथ कर दिया । बस फिर तो था ही क्या देवी का वचन सफल हो ही गया । कमला के क्रमशः सात पुत्र हुए इतना ही क्यों पर पहले परणी हुई रंभा और देवला के भी सात सात पुत्र हुए पट्टावली कारों ने नागदेव के परिवार का बहुत विस्तार से वर्णन किया है । माता कमला के लघु पुत्र का नाम तेजसी बतलाया है तेजसी एक तेज का पुंज ही था जिसकी क्रांति का तेज सूर्य की भाँति सर्वत्र फैल गया था ।

मंत्री नागदेव का घराना शुरू से ही जैनधर्मोपासक था । नागदेव ने धर्मकार्यों में लाखों नहीं पर करोड़ों का द्रव्य व्यय कर पुष्कल पुन्योपार्जन किया था इतना ही क्यों पर अनेक क्षत्रियों को जैनधर्मो-पासक बना कर जैन धर्म का प्रचार में खूब सहयोग दिया था—

एक समय आचार्य कक्कसूरिजी महाराज का पधारना माडव्यपुर में हुआ । श्रीसंघ ने सूरिजी महा० का खूब उत्साह के साथ स्वागत किया । सूरिजी का व्याख्यान बड़ा ही प्रभावोत्पादक होता था । आपके

व्याख्यान में तत्त्विक, दर्शनिक और अध्यात्मिक बातों के साथ त्याग वैराग्य पर अधिक जोर दिया जाता था जिसको श्रवण कर जनता की भावना आत्म कल्याण करने में दृढ़ हो रही थी।

मंत्री नागदेव अपनी तीनों स्त्रियों और सब पुत्रों के साथ सूरिजी की सेवा भक्ति में रहता था और हमेशा व्याख्यान भी सुनता था वह भी केवल व्यसन रूप ही नहीं पर बड़ी रुचि के साथ, तथा नागदेव को संसार की असारता का भी खयाल होने लग गया था अतः वह संसार के कार्यों से उदासीन रहने लगा। इधर कुँवर तेजसी की कोमल आत्मा पर तो सूरिजी के व्याख्यान ने इतना प्रभाव डाला कि उसको संसार एक कारागृह ही दीखने लगा। पर इस प्रकार का वैराग्य छिपा हुआ कब तक रह सकता एक दिन तेजसी ने सूरिजी के पास जाकर अर्ज की कि हे प्रभो! आपके व्याख्यान से मेरा दिल संसार से विरक्त हो गया है। अब मैंने निश्चय कर लिया है कि आपश्री के चरणार्विन्द में भगवती जैन दीक्षा ग्रहन कर मैं अपना कल्याण सम्पादन करूँ। यह मेरी भावना सफल करना आपके हाथ में है।

बस, फिर तो था ही क्या, सूरिजी तो इस बात को चाहते ही थे कि कोई भी भावुक इस दुःखमय संसार का त्याग कर आत्म कल्याण करे। सूरिजी ने इस प्रकार का उपदेश दिया कि तेजसी का वैराग्य दुगुणित होगया। तेजसी सूरिजी को वन्दन कर अपने मकान पर आया और अपने माता पिता को बधाई देने लगा कि मैं सूरिजी के पास दीक्षा लेना चाहता हूँ आप आज्ञा प्रदान करावें। यद्यपि मंत्री स्वयं संसार से उदास था तथापि मोहनी कर्म एक इतना प्रबल होता है कि वह अपना असर किये विना नहीं रहता है। नागदेव ने कहा बेटा! अभी तुम्हारी बाल्यावस्था है। तेरी माँ तो तेरी शादी के लिये बहुत दिन हुये मुझे कह रही है मैंने इसके लिये निश्चय भी कर रक्खा है। अतः इस समय तेरे दीक्षा लेने का अवसर नहीं है इत्यादि पास में ही तेजसी की माता बैठी थी। उसने तो अपने जलते हुये कलेजे से ऐसे शब्दोच्चारण किये कि तुझे किसने भ्रमा दिया है तू दीक्षा की बात करता तो मैं अपने सामने काल को ही देखती हूँ। बेटा! मैं तेरे विना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती हूँ। मैं तुझको हर्गिज दीक्षा नहीं लेने दूंगी। व्यर्थ ही दीक्षा की बात कह कर दुनिया में हँसी क्यों करवाता है इत्यादि।

तेजसी ने कहा माता पूर्वजन्म में तो अपन लोगों ने अच्छे सुकृत किये हैं कि यहां सब सामग्री अच्छी मिली है यदि इस मिली हुई सामग्री का दुरुपयोग किया जाय तो क्या बार बार ऐसी सामग्री मिल सकेगी। माता पिता तो पुत्र के हितचिंतक होते हैं और पुत्र के हितार्थ अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं तो आप मेरे हित में बाधा क्यों डालते हो। मैं तो आपको भी कह देना चाहता हूँ कि आप भी अपना कल्याण करने को इसी मार्ग का अनुकरण करें। कारण, एक दिन मरना तो सबके लिये निश्चय ही है फिर इस घोर दुःखों का खजाना रूप संसार में रह कर मिला हुआ अमुल्य मनुष्य का भव व्यर्थ क्यों खो दिया जाय? माता सच्चा प्रेम तो जम्बु कुँवर के माता पिताओं का था कि उन्होंने अपने पुत्र के साथ दीक्षा लेकर अपना कल्याण किया अतः आपको भी विचार करना चाहिये। इस विषय में मैं आपसे अधिक क्या कहूँ?

मंत्री नागदेव तो पहिले से ही संसार से उदास रहता था उसको तो अपने पुत्र का कहना ठीक रुचिकर हुआ पर माता कमला अभी मोहनीय कर्म के उदय कई प्रकार से समझा बुझा कर अपने पुत्र को घर में रखने की कोशिश करती थी। पर नागदेव ने कहा कि जब तेजसी इस बाल्यावस्था में ही दीक्षा लेना

२०—आचार्य श्री सिद्धसूरि (तृतीय)

आचार्यस्तु स सिद्धसूरि रिह वैडीङ्गवाख्य गोत्रात्मजः ।
यो हीरेण समश्वसुद्युतियुतः सर्वैश्च देवैः स्तुतः ॥
श्रुत्वा यस्य रसेन पूरित तमं वाक्यामृतं मानवाः ।
देवा मंत्र वलेन मुग्धमन सो व्याख्यानमध्येऽभवन् ॥

आचार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज जैन संसार में सिद्ध पुरुष के नाम से विख्यात थे केवल जैन ही क्यों पर जैनेतर लोग भी आपके आत्मिक चमत्कार एवं सिद्धियों को देख मंत्र-मुग्ध बन कर आपके चरण कमलों की सेवा करते थे । आपने अपने पूर्वजों की स्थापित की हुई मशीन को द्रुतगति से चलाने में एक चतुर ड्राइवर का काम किया अर्थात् आप एक धर्मप्रचारक आचार्य हुये हैं । आपश्री का जीवन महत्त्वपूर्ण था ।

माडव्यपुर नगर के राजा सुरजन के मुख्य मंत्री श्रेष्टि गोत्रीय नागदेव था । नागदेव पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों देवियों की महती कृपा थी यही कारण था कि मंत्री नागदेव को लोग धन में कुबेर और बुद्धि में बृहस्पति ही कहा करते थे । नागदेव के रंभा नाम की सुशीला स्त्री थी पर उसके कोई संतान न होने से मंत्री ने दूसरा विवाह क्षत्रिय हरनारायण की पुत्री देवला के साथ किया था पर पूर्व कर्मोदय उसके भी कोई संतान नहीं हुई । मंत्री ने सच्चायिका देवी का आराधन किया । तीन उपवास की अन्तिम रात्रि में देवी ने कहा कि उपकेशपुर के चिंचट गोत्रिय शाह रामा की पुत्री कमला के साथ विवाह कर तेरे बहुत संतान होंगी । श्रेष्टि ने देवी के बचनों को तथाऽस्तु कर लिया । देवी अदृश्य होगई । श्रेष्टि ने तीन उपवास का पारणा किया और एक योग्य पुरुष को उपकेशपुर भेजा । वह जाकर शाह रामा से मिला और मंत्री नागदेव के समाचार कहे तो शाहरामा वड़ा ही खुश हुआ कारण, उसको नागदेव जैसा जमाई मिलना कहां था । उसने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और थोड़े ही दिनों में कमला का विवाह मंत्री नागदेव के साथ कर दिया । बस फिर तो था ही क्या देवी का वचन सफल हो ही गया । कमला के क्रमशः सात पुत्र हुए इतना ही क्यों पर पहले परणी हुई रंभा और देवला के भी सात सात पुत्र हुए पट्टावली कारों ने नागदेव के परिवार का बहुत विस्तार से वर्णन किया है । माता कमला के लघु पुत्र का नाम तेजसी वतलाया है तेजसी एक तेज का पुंज ही था जिसकी क्रांति का तेज सूर्य की भाँति सर्वत्र फैल गया था ।

मंत्री नागदेव का घराना शुरू से ही जैनधर्मोपासक था । नागदेव ने धर्मकार्यों में लाखों नहीं पर करोड़ों का द्रव्य व्यय कर पुष्कल पुन्योपार्जन किया था इतना ही क्यों पर अनेक क्षत्रियों को जैनधर्म के उपासक बना कर जैन धर्म का प्रचार में खूब सहयोग दिया था—

एक समय आचार्य कक्कसूरिजी महाराज का पधारना माडव्यपुर में हुआ । श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज का खूब उत्साह के साथ स्वागत किया । सूरिजी का व्याख्यान वड़ा ही प्रभावोत्पादक होता था । अतः

व्याख्यान में तत्त्विक, दर्शिनिक और अध्यात्मिक बातों के साथ त्याग वैराग्य पर अधिक जोर दिया जाता था जिसको श्रवण कर जनता की भावना आत्म कल्याण करने में दृढ़ हो रही थी।

मंत्री नागदेव अपनी तीनों स्त्रियों और सब पुत्रों के साथ सूरिजी की सेवा भक्ति में रहता था और हमेशा व्याख्यान भी सुनता था वह भी केवल व्यसन रूप ही नहीं पर बड़ी रुचि के साथ, तथा नागदेव को संसार की असारता का भी खयाल होने लग गया था अतः वह संसार के कार्यों से उदासीन रहने लगा। इधर कुँवर तेजसी की कोमल आत्मा पर तो सूरिजी के व्याख्यान ने इतना प्रभाव डाला कि उसको संसार एक कारागृह ही दीखने लगा। पर इस प्रकार का वैराग्य छिपा हुआ कब तक रह सकता एक दिन तेजसी ने सूरिजी के पास जाकर अर्ज की कि हे प्रभो ! आपके व्याख्यान से मेरा दिल संसार से विरक्त हो गया है। अब मैने निश्चय कर लिया है कि आपश्री के चरणार्विन्द में भगवती जैन दीक्षा ग्रहन कर मैं अपना कल्याण सम्पादन करूँ। यह मेरी भावना सफल करना आपके हाथ में है।

वस, फिर तो था ही क्या, सूरिजी तो इस वात को चाहते ही थे कि कोई भी भावुक इस दुःखमय संसार का त्याग कर आत्म कल्याण करे। सूरिजी ने इस प्रकार का उपदेश दिया कि तेजसी का वैराग्य दुगुणित होगया। तेजसी सूरिजी को वन्दन कर अपने मकान पर आया और अपने माता पिता को बधाई देने लगा कि मैं सूरिजी के पास दीक्षा लेना चाहता हूँ आप आज्ञा प्रदान करावें। यद्यपि मंत्री स्वयं संसार से उदास था तथापि मोहनी कर्म एक इतना प्रवल होता है कि वह अपना असर किये विना नहीं रहता है। नागदेव ने कहा वेटा ! अभी तुम्हारी बाल्यावस्था है। तेरी माँ तो तेरी शादी के लिये बहुत दिन हुये मुझे कह रही है मैंने इसके लिये निश्चय भी कर रक्खा है। अतः इस समय तेरे दीक्षा लेने का अवसर नहीं है इत्यादि पास में ही तेजसी की माता बैठी थी। उसने तो अपने जलते हुये कलेजे से ऐसे शब्दोच्चारण किये कि तुझे किसने भ्रमा दिया है तू दीक्षा की वात करता तो मैं अपने सामने काल को ही देखती हूँ। वेटा ! मैं तेरे विना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती हूँ। मैं तुझको हर्गिज दीक्षा नहीं लेने दूंगी। व्यर्थ ही दीक्षा की बात कह कर दुनिया में हँसी क्यों करवाता है इत्यादि।

तेजसी ने कहा माता पूर्वजन्म में तो अपन लोगों ने अच्छे सुकृत किये हैं कि यहां सब सामग्री अच्छी मिली है यदि इस मिली हुई सामग्री का दुरुपयोग किया जाय तो क्या वार वार ऐसी सामग्री मिल सकेगी। माता पिता तो पुत्र के हितचिंतक होते हैं और पुत्र के हितार्थ अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं तो आप मेरे हित में बाधा क्यों डालते हो। मैं तो आपको भी कह देना चाहता हूँ कि आप भी अपना कल्याण करने को इसी मार्ग का अनुकरण करें। कारण, एक दिन मरना तो सबके लिये निश्चय ही है फिर इस घोर दुःखों का खजाना रूप संसार में रह कर मिला हुआ अमुल्य मनुष्य का भव व्यर्थ क्यों खो दिया जाय ? माता सच्चा प्रेम तो जम्बु कुँवर के माता पिताओं का था कि उन्होंने अपने पुत्र के साथ दीक्षा लेकर अपना कल्याण किया अतः आपको भी विचार करना चाहिये। इस विषय में मैं आपसे अधिक क्या कहूँ ?

मंत्री नागदेव तो पहिले से ही संसार से उदास रहता था उसको तो अपने पुत्र का कहना ठीक रुचिकर हुआ पर माता कमला अभी मोहनीय कर्म के उदय कई प्रकार से समझा बुझा कर अपने पुत्र को घर में रखने की कोशिश करती थी। पर नगदेव ने कहा कि जब तेजसी इस बाल्यावस्था में ही दीक्षा लेना

चाहता है तो अपन तो मुक्त भोगी है तेजसी के साथ अपने को भी दिक्षा लेनी चाहिये। कारण ऐसा सुअवसर अपने लिये फिर कब आने वाला है इत्यादि।

इस पर तो माता कमला को और भी अधिक गुस्सा आगया और उसने कहा कि तेजसी क्या दीक्षा ले आप खुद तेजसी को दीक्षा दिलाना चाहते हैं। तब ही तो आप मुझे उपदेश दे रहे हो।

नागदेव ने कहा कि ठीक है तेजसी ही क्यों पर मैं खुद ही दीक्षा लेना चाहता हूँ। बतलाओ अब आपकी क्या इच्छा है ? तुम खुद सोच सकती हो कि क्या इस प्रकार की अनुकूल सामग्री मिलने पर भी सम्पूर्ण जिन्दगी इस कर्मबन्ध के कारण रूप संसार कार्य में ही व्यतीत कर देना। अपने तो मुक्तभोगी हैं पर देखो इस तेजसी को कि इसने संसार को क्या देखा है फिर भी दीक्षा लेने को तैयार हो गया है।

कमला ने कहा कि आप तो बाप वेटा दीक्षा लेने को तैयार होगये हैं न ?

नागदेव ने कहा तेजसी के लिये मैं नहीं कहता हूँ पर मैं तो अपनी कह सकता हूँ कि मेरी इच्छा तो दीक्षा लेने की है और मैं तो आपसे भी कहता हूँ कि ऐसा सुअवसर आप भी हाथों से न जाने दीजिये।

तेजसी - क्या माता तू मेरे से इतना प्रेम करती हुई भी मैं दीक्षा लूं और तू घर में रहेगी ?

कमला—वेटा ! मैं जान गई हूँ कि तेरा बाप ही सब को दीक्षा दिलाने की कोशिश करता है। यदि तुम बाप वेटे का यही इरादा है तो एक मुझको ही क्यों सब के सब घरवालों को दीक्षा क्यों न दिलावें कि सबका कल्याण होजाय। इत्यादि माता कमला ने खूब गुस्सा में जवाब दिया।

नागदेव ने कहा कि आप जरा शान्त हो कर अपना तो निश्चय करलो बाद घरवालों की बात करना।

कमला—जब आपकी इच्छा ही मुझे दीक्षा दिलाने की है तो मैं कह ही क्या सकती हूँ मेरा पुत्र एवं पति दीक्षा लेता है तब मेरी इच्छा हो या न हो मैं भी आपके साथ दीक्षा लेने को तैयार हूँ। कहिये अब आपको क्या करना है ?

नागदेव ने अपनी दूसरी दोनों औरतों को और २० पुत्रों को बुला कर कहा कि हम तीनों जनों ने दीक्षा लेने का निश्चय किया है और तुम्हारे अन्दर से किसी का विचार हो तो हमारे साथ हो जाइये। इस पर पहिले तो खूब वादविवाद हुआ पर आखिर नागदेव की दोनों औरतें और ७ पुत्र दीक्षा लेने को तैयार होगये अर्थात् बात ही की बात में एक घर से १२ भावुक वैरागी बन गये।

इस बात की खबर सूरिजी को मिली तो सूरिजी कमी क्यों रखें। व्याख्यान में दीक्षा ही दीक्षा के यश एवं गुण गाये जाने लगे कि माडव्यपुर एवं आस पास के ग्राम तथा बाहर से आये हुये दर्शनार्थी लोगों में से कई ४५ नरनारी दीक्षा के उम्मेदवार बनगये। अहा-हा तेजसी कैसा निमित्त बना है।

भलो ! उस जमाने के कैसे हलुकर्मी जीव थे। उन लोगों का उपादान कारण बहुत सुधरा हुआ था और पूर्व भवों की ऐसी प्ररणा थी कि थोड़ा सा निमित्त कारण मिलजाने पर वे अपना आत्म कल्याण करने को कटिबद्ध होजाते थे और इस प्रकार दीक्षायें होने से ही वे आचार्य एवं मुनिजन भी दो दो सौ एवं पांचसौ साधुओं के साथ प्रत्येक प्रान्तों में विहार कर जैनधर्म का प्रचार किया करते थे।

माडव्यपुर नगर के आज घर घर में आनंद मङ्गल छागया। मुहल्ले-मुहल्ले के मन्दिरों में अष्टा-न्हिका महोत्सव के बाजे बजने लगे। मुक्ति रमणिके वर घर घर में बंदोले खारहे हैं। सब लोग इस पुनीत कार्य का अनुमोदन कर रहे हैं। नागदेव के पुत्र सोमदेवादि अपने माता पिता एवं भ्राताओं की

दीक्षा के महोत्सव में खूब खुल्ले हाथों से द्रव्य व्यय करने को उत्साहित हो रहे हैं। नगर में सर्वत्र सूरिजी महाराज की भूरि भूरि प्रशंसा और यशोगान गाये जा रहे हैं। वर्तमान हैं तो पंचमारा पर आज तो माडव्यपुर में चौथा आरा ही वरत रहा है।

शुभ मुहूर्त में सूरिजी महाराज के वृद्धहस्तारविन्द से तेजसी आदि ५७ नर नारियों की दीक्षा बड़े ही ठाठ से होगई। सूरिजी ने तेजसी का नाम राजहंस रख दिया। जो साधु रूप हंसों में राजा ही था।

बस व्यापारी जैसे व्यापार में लाभ मिलजाने के बाद फौरन रवाना होजाता है वैसे ही सूरिजी महाराज को पुष्कल लाभ होगया अब वे क्यों ठहरें अपने शिष्य मंडल को साथ लेकर सूरिजी उपकेशपुर की ओर विहार कर दिया। मुनि राजहंस को पहिले से ही संयम की रुचि और ज्ञान पढ़ने की उत्कंठा विशेष थी फिर आचार्य कक्कसूरिजी की पूर्ण कृपा तब तो कहना ही क्या ? स्वल्प समय में ही आपने सामायिक साहित्य का अध्ययन कर लिया। ग्यारह अंग एवं चारपूर्ण तो आपने हस्तामलक की भांति कण्ठस्थ ही करलिये थे। व्याकरण, न्याय, तर्क, छन्द, काव्यादि के धुरंधर विद्वान् होगये विशेषता यह थी कि आपने दीक्षा लेने के पश्चात् एक दिन भी गुरु सेवा नहीं छोड़ी थी। पहिले जमाने के साधु गुरुकुल वास में रहने में अपना गौरव समझते थे। बात भी ठीक है कि जो गुण हासिल होते हैं वह गुरुकुल वास में रहने से ही होते हैं। मुनि राजहंस कों योग्य समझ कर सूरिजी ने अष्ट महानिमित्त का अध्ययन करवा कर कई विद्याएँ भी प्रदान करदी जिससे मुनि राजहंस की योग्यता और भी बढ़ गई।

आचार्य कक्कसूरी महाराज लाट सौराष्ट्र और कच्छादि प्रदेश में विहार करते हुये सिन्धधरा में पधारे आप का चतुर्मास मारोटकोट नगर में हुआ। आप के विराजने से यों तो बहुत उपकार हुआ पर १७ भावुकों ने दीक्षा लेने का निश्चय किया और चतुर्मास के बाद श्री संघने दीक्षा के निमित्त बड़ा ही समारोह से महोत्सव किया और उन दिक्षाओं के साथ मुनिराज हंसादि ७ साधुओं को उपाध्याय पद ध्यानान धानादि पांच साधुओं को वाचकपद संयमकुशलादि तीन मुनियों को प्रवृतकपद मंगलकलसादि ११ मुनियों को गणिपद प्रदान किया। हाँ, जहाँ विशाल समुदाय होता है और उनको अन्योन्य प्रान्तों में विहार करवाना पड़ता है तब पदवीधरों की भी आवश्यकता रहती है। सूरिजी ने अपने शासन में भूभ्रमन कर धर्म का प्रचार बढाया।

आचार्य कक्कसूरि ने अपने पट्ट पर उपाध्याय विशालमूर्ति को सूरि बनाकर उनका नाम देवगुप्तसूरि रख दिया था पर देवगुप्तसूरि का आयुष्य अल्प था। वे केवल ३ वर्ष ही आचार्य पद पर रहे और अन्त में आ ने पद पर उपाध्याय राजहंस को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया था।

हमारे चरित्रनायक सिद्धसूरीश्वरजी महाराज बाल ब्रह्मचारी महान तपस्वी साहित्य के धुरंधर विद्वान एवं निमित शास्त्र के पारगामी और विद्या भूषित मरुधर के एक जगमगाता सितारा ही थे। आपश्री जी के आज्ञावृति श्रमणसंघ मरुधर मेदपाट आवंती लाट सौराष्ट्र कच्छ सिन्ध पजाब महाराष्ट्र और सूरसेनादी सब प्रान्तों में विहार करते थे। उन सबकी संख्या कई पांच हजार से भी अधिक थी।

एक समय सूरिजी अपने विद्वान शिष्यों के साथ विहार करते हुए पुनित तीर्थ श्री शत्रुंजय की यात्रा कर वल्लभी नगरी में पधारे थे। उस जमाने का वल्लभी जैनों का एक केन्द्र ही था। श्रीसंघने सूरि का शानदार स्वागत किया और सूरिजी का झंड़ेली व्याख्यान हमेशा होता था।

ठीक उसी समय सौराष्ट्र में कहीं-कहीं बौद्धों के भिक्षु भी भ्रमण करते थे पर जैनाचार्य्यों की प्रबल

सत्ता के कारण उनके पैर जम नहीं सकते थे। आचार्य्य सिद्धसूरि वल्लभी में बिराजते थे। उस समय बौद्धाचार्य्य बुद्धार्य भी अपने शिष्यों के साथ वल्लभी में आया था और अपने धर्म के प्रचार के लिये उपदेश भी देता था यह बात जैनाचार्य्य सिद्धसूरि से कब सहन होने वाली थी। आप के पास एक विमल-कलस नाम का वाचक था उसने वादी चक्रवर्ति की उपाधि को चरितार्थ करते हुये शास्त्रार्थ में अनेक वादियों को पराजय किया था। अतः वह बुद्धार्य से कब चूकने वाला था। उस समय वल्लभी में राजा शल्यादित्य राज करता था वाचक विमल-कलस ने राजसभा में जाकर शास्त्रार्थ के लिये कहा और राजा ने मंजूर कर दोनों आचार्यों को आमंत्रण दे दिया और ठीक समय पर सभा हुई। आचार्य सिद्धसूरि वाचकजी के साथ पधारे। उधर बौद्धाचार्य्य भी अपने साधुओं के साथ आये पर स्याद्वाद सिद्धान्त के मर्मज्ञ वाचकजी के सामने विचारा क्षणक मत वाले वोध कहाँ तक ठहर सकता। बस, थोड़े ही समय में बौद्धाचार्य्य को परास्त कर दिया और जैनधर्म की जयध्वनि के साथ आचार्य श्री अपने स्थान पर आगये और बौद्धाचार्य्य वहाँ से रफूचक्कर होगया।

आचार्य सिद्धसूरि ने उस समय की परिस्थिति देखकर वल्लभी में एक श्रमण संघ की सभा करने का विचार कर अपने साधुओं की सम्मति लेकर यह प्रस्ताव राजा शिलादित्य एवं सकल श्री संघ के सामने रक्खा और कहा कि इस समय बौद्धों का भ्रमण आपकी तरफ ही नहीं पर और भी कई प्रान्तों में हो रहा है। अतः जैन-धर्म की रक्षा के लिये सकल श्रीसंघ को कटिबद्ध हो जाना चाहिये जिसमें भी श्रमण संघ को तो प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जनता को सदुपदेश देना चाहिये। इतना ही नहीं पर साधुओं को स्वपरमत के साहित्य का भी गहरा अध्ययन करना चाहिये। कारण अब जमाना ऐसा नहीं है कि केवल क्रिया कांड में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लें। अब तो वादियों के सामने स्याद्वाद शस्त्र लेकर खड़े रहने का जमाना है। अतः एक श्रमणसंघ की सभा होना जरूरी है।

सूरिजी के कहने का मतलब श्रीसंघ अच्छी तरह से समझ गया और सूरिजी के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर श्रमणसभा बुलाने का निश्चय कर लिया। निश्चय ही क्यों पर कार्य्य प्रारम्भ भी कर दिया अर्थात् जहां २ मुनि महाराज विराजते थे वहाँ वहाँ खास श्रावकों को आमन्त्रण के लिये भेज दिये। उस समय के श्रमणसंघ के हृदय में जैनधर्म की कितनी बिजली थी वह इस कार्य्य से ठीक पता लग जाता है कि आमंत्रण मिलते ही केवल नजदीक २ के ही नहीं पर बहुत दूर दूर के साधु विहार करके वल्लभी नगरी की ओर आ रहे थे। सभा का समय भी इसलिये दूर का रक्खा गया था कि नजदीक और दूर के सब साधु इस सभा में शामिल हो सकें। ठीक है दीर्घ दृष्टि से किया हुआ कार्य्य विशेष फलदाता होता है।

इस सभा में केवल श्रमणसंघ ही एकत्र हूये हों ऐसी बात नहीं थी पर श्रावगों भी शामिल थे और यह कार्य्य भी दोनों का ही था, रथ चलता है वह दो पहियों से ही चलता है फिर भी मुख्यता श्रमणसंघ की ही थी एवं श्रमण संघ की संख्या सैकड़ों की नहीं पर हजारों की थी और इसके कई कारण भी थे जैसे एक तो आचार्य श्री के दर्शन दूसरे धर्म प्रचार की भावना तीसरा बहुत साधुओं को समागम और चौथा विशेष कारण यह था कि वल्लभी के पास ही सिद्धगिरि तीर्थ था कि जिसकी यात्रा का लाभ मिल सके। अतः चतुर्विध श्री संघ की अच्छी उपस्थिति थी वल्लभियों ही तो एक यात्रा का धाम था पर इस सम्मेलन के कारण तो विशेष बन गया। यह वही वल्लभी है कि जहाँ आगम पुस्तकारूढ़ किया था

उस समय के श्रमणसंघ में कितनी वात्सल्यता थी वह आप इस सम्मेलन से जान सकोगे कि क्या भगवान पार्श्वनाथ के सन्तानिये और क्या भगवान् महावीर के सन्तानिये आपस में मिल जुलकर जैन धर्म का प्रचार करते थे इस सम्मेलन में भी दोनों परम्परा के आचार्य अपने अपने आज्ञावृत्ति साधुओं को लेकर आये थे और सबके दिल में जैनधर्म के प्रचार की लग्न थी पृथक २ गच्छ परम्परा के आचार्य होने पर भी उनका सब व्यवहार शामिल था कि गृहस्थ लोगों को यह मालूम नहीं देता था कि श्रमण संघ में दो पार्टी अर्थात् दो परम्परा के साधू हैं यही कारण था कि उस समय के श्रमण संघ जो चाहते वह कर सकते थे एक दूसरे के कार्य को अनुमोदन कर मदद पहुँचाते थे तब ही जैनों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई थी।

वल्लभी श्री संघ ने आगंतुकों के लिये पहिले से ही अच्छा प्रबन्ध कर रक्खा था तथा सभा के लिये भी ऐसा मण्डप तैयार करवा दिया था कि जिसमें हजारों मनुष्य सुखपूर्वक बैठ सकें। ठीक समय पर आचार्य श्री सिद्धसूरि के अध्यक्षत्व में सभा हुई सभा में चतुर्विध श्रीसंघ उपस्थित था। राजा शिलादित्य ने पधारने वाले चतुर्विधि श्रीसंघ का उपकार माना। वाचक विमलकलास ने सभा का उद्देश्य कह सुनाया तत्पश्चात् आचार्यश्री ने जैनधर्म प्रचार के लिये पूर्वकालीन परिस्थिति और जैनश्रमण संघ का त्याग और वैराग्य एवं विहार क्षेत्र की विशालता बतलाते हुये अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा आचार्य स्वयंप्रभसूरि, रत्नप्रसूरि, यक्षदेवसूरि, कक्कसूरि, देवगुप्तसूरि, सिद्धसूरि, आर्य, सुहस्तीसूरि आदि आचार्य और इनके आज्ञावृति साधुओं का इतिहास सुनाया कि जैनधर्म के प्रचार के लिये उन्होंने किस प्रकार की कठिनाइयों का सामना किया था। इतना ही क्यों पर अपने प्राणों को भी अर्पण करने की भीषण प्रतिज्ञा करली थी। चार चार मास तक उन्होंने आहार पानी के दर्शन तक भी नहीं किये थे। इतना ही क्यों पर उन पाखण्डियों ने उन तपस्वी साधुओं को दुःख देने में संकट पहुँचाने में कुछ भी उठा नहीं रक्खा था। पर धर्म प्रचार के निमित्त उन्होंने सब को सहर्ष सहन कर अपने ध्येय की पूर्ति कर ही ली थी। अगर उस समय की परिस्थिति को स्मरण किया जाय तो आज अपने को न तो किसी प्रकार का कष्ट है और पाखण्डियों का उपद्रव ही है। आज तो अपने केवल प्रत्येक प्रान्त में विहार करना और जिस साहित्य की आवश्यकता है उसका अध्ययन करना एवं वादी प्रतिवादियों के सामने खड़े कदम डट कर रहने की जरूरत हैं। इससे आप जैनसमाज का रक्षण एवं वृद्धि कर जैनधर्म का झंडा सर्वत्र फहरा सकोगे। मानो सूरिजी ने उन श्रमणसंघ की आत्मा में नयी बिजली का संचार कर दिया। साथ में राजा महाराजा और सेठ साहुकारों की ओर लक्ष्य करके आपने फरमाया कि जैनधर्म का प्रचार करने में केवल एक श्रमण संघ ही पर्याप्त नहीं है पर साथ में आप लोगों के सहयोग की भी आवश्यकता है पूर्व जमाने राजा श्रेणिक, कोणिक, चन्द्रगुप्त, सम्पति, बलदेव, रुद्राट और शिवदत्तादि नरेशों ने तथा उड्डादि मन्त्रियों ने और धनाढ्य गृहस्थोंने जैनधर्म के प्रचार के लिये खूब परिश्रम कर आचार्यों को सहयोग दिया कि जिन प्रान्तों में जैन धर्म का नाम निशान नहीं था पर आज वहाँ जैनधर्म की ध्वजा फहराने लगगई और सैकड़ों हजारों जैनमंदिर और लाखों करोड़ों मन्दिरों के उपासक आपकी नजरों के सामने विद्यमान हैं फिर भी अभी आपको बहुत काम करना है। पूर्व जमाने में आचार्यों ने दक्षिण प्रान्त में कई साधुओं को विहार करवाया था पर इस समय दक्षिण में क्या हो रहा है इसका पता नहीं है। अतः समर्थ साधुओं को दक्षिण की ओर भी विहार करना चाहिये।

इत्यादि सूरीजी ने खूब ही उपदेश दिया। सज्जनों! उपदेश एक किस्म की बिजली है। मृत प्रायः

मनुष्य के अन्दर जान डालने वाला उपदेश ही है । आज सूरिजी के उपदेश का प्रभाव प्रत्येक आत्मा पर इस प्रकार हुआ कि उनकी सुरत धर्मप्रचार की ओर लग गई । क्या साधु और क्या श्रावक सबके मुँह से यही शब्द निकल रहे थे कि हम धर्म प्रचार के लिये प्राणों की आहुति देने को भी तैयार हैं । जिस को सुनकर सूरिजी ने बहुत संतोष प्रगट किया और बाद में जैनधर्म की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई।

इस सभा से सूरिजी को अपने निर्धारित कार्य के लिये बहुत सफलता मिली । जिस कार्य को आप चाहते थे वह कार्य बड़े ही उत्साह के साथ कर पाये । कई मुनियों को पदवियां प्रदान कर अन्योन्य प्रान्तों में विहार करवाया जिसमें सूरिजी महाराज ने स्वयं ३०० साधुओं के साथ दक्षिण देश की ओर विहार करने का निश्चय कर लिया और कितने साधुओं को तो दक्षिण की ओर विहार भी करवा दिया ।

पूर्व जमाने में जैनाचार्य जैनधर्म के प्रचार के निमित किस प्रकार प्रयत्न करते थे । आज कल कांग्रेस कमेटियां और सभायें होती हैं और इनके द्वारा जनता में जागृति की जाती है ये कोई नई बातें नहीं हैं पर हमारे पूर्वाचार्य्यों से ही चली आई हैं । मरुधरादि प्रान्तों में विहार करने वाले उपकेशगच्छाचार्य्यों के जीवन के लिये आप पिछले प्रकरण में पढ़ आये हैं कि प्रत्येक आचार्य्यों ने अपने शासन समय किसी न किसी प्रान्त में एक दो श्रमण सभायें अवश्य की हैं और उन सभाओं द्वारा चतुर्विध श्रीसंघ में खूब जागृति पैदा की । यही कारण था कि एक ओर से वाममार्गियों का दूसरी ओर से बौद्धों का तीसरी ओर से वेदान्तियों का जोरदार आक्रमण होने पर भी जैनाचार्य्यों ने कटिवद्ध होकर जैनधर्म का रक्षण ही नहीं बल्कि जैनधर्म का जोरों से प्रचार भी बढ़ाया था । जिन स्वयंप्रभसूरि और रत्नप्रभसूरि ने लाखों की संख्या में जैन बनाये थे पिछले आचार्य्यों ने उनकी संख्या को बढ़ाकर करोड़ों तक पहुँचा दी थी और इस प्रचार कार्य में उनको बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था । जिनकी उन्होंने कुच्छ परवाह ही नहीं रखी—

वे आचार्य थे स्याद्वाद के जान चतुर मुत्सद्दी । कार्य्य करने की हथोटी उनको याद थी । जहाँ नये जैन बनाते वहाँ तत्काल ही जैन मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा तथा जैन विद्यालय की स्थापना करवा देते तथा उनको धर्मोपदेश के लिये नये नये साधुओं को भेजते रहते थे कि उन नूतन श्रावकों की धर्म पर श्रद्धा दृढ़ हो जाती । इधर श्रावक वर्ग भी आचार्य श्री की आज्ञा के पालक थे । नूतन जैनों के साथ वे बड़ी खुशी के साथ रोटी बेटी व्यवहार कर अपने स्वधर्मी भाई समझ अपने बराबरी के बना लेते थे । बहुत से नगरों में तो आचार्य श्री के उपदेश से ऐसा रिवाज सा ही हो गया था कि कोई भी नया साधर्मी नगर में आकर बसता था तो एक एक ईंट और एक एक रुपैया एवं सुवर्ण मुद्रका प्रत्येक घर से अर्पण किया जाता था कि वह सहज ही में धनवान् एवं व्यापारी बन जाता था ।

इसके अलावा एक 'सारथवाह' पद की भी उस समय विशेषता थी कि वह अपने साधर्मी भाइयों को ही नहीं पर नगर निवासियों को देशान्तर ले जाते थे और अपनी रकम देकर व्यापार करवाते थे कि कोई भाई बेकार न रहे । उन सारथवाह का द्रव्य न्यायोपार्जित होने से उस द्रव्य से सैकड़ों मनुष्य लाभ उठा सकते थे । हाँ, मनुष्यों की उन्नति के दिन आते हैं तब सब संयोग अनुकूल बन जाते हैं । अतः जैनों की उन्नति के ये कि चतुर्विध श्री संघ में प्रेम, स्नेह, ऐक्यता और प्रत्येक व्यक्ति की प्रवृत्ति जैनधर्म की वृद्धि की ओर रहती थी ।

अस्तु । आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज ने अपने शिष्य मण्डल के साथ दक्षिण की ओर विहार किया

तो क्रमशः रास्ते के क्षेत्रों की स्पर्शना करते हुए दक्षिण में पधारे और आप वहाँ पर जाकर क्या देखते हैं कि उपकेशगच्छीय सैकड़ों साधु दक्षिण में विहार करते हैं। आचार्य सिद्धसूरि को आये सुनकर साधु साध्वियों के झुण्ड के झुण्ड आपके दर्शनार्थ आने लगे। उनका धर्मप्रचार देख सूरिजी को बड़ा ही संतोष हुआ कारण उन दक्षिण विहारी साधुओं का प्रभाव बड़े २ राजा महाराजाओं पर हो रहा था और काफी तादाद में जनता जैनधर्म का आराधन कर रही थी।

आचार्य श्री ने वह चतुर्मास तो मदुरा नगरी में किया बाद चतुर्मास के दक्षिण विहारी श्रमण संघ की मानखेट राजधानी में एक सभा की जिसमें प्रायः दक्षिण विहारी सब साधु एकत्र हुये जिसमें अधिक साधु तो दक्षिण के जन्मे हुए ही थे। आचार्य श्री ने कइ योग्य साधुओं को पदवी प्रदान कर उनके उत्साह बढ़ाया तत्पश्चात् आप दक्षिण भूमि में विहार कर दूसरा चतुर्मास मानखेट नगर में किया और वहाँ के साधुओं की ठीक व्यवस्था कर दक्षिण से विहार कर तैलंगादि प्रांत में घूमते हुए आवन्ति प्रदेश में पधारे और आपका चतुर्मास उज्जैन नगरी में हुआ।

आचार्यश्री के हस्त दीक्षित वीरशेखर नाम का एक लघु शिष्य था पर विद्यामंत्रों में वह वृद्ध कहलाता था। एक समय मुनि वीरशेखर जंगल में जा रहा था तो पीछे से एक सन्यासी भी आया। उसने पूछा कि अरे मुनि ! तुम केवल दुनिया को भारभूत ही हो या कुछ विद्यामंत्र भी जानते हो ? मुनि ने उत्तर दिया कि विद्या और मन्त्र तो सब हमारे घर से ही निकले हैं और लोग तो हमारे ही यहां से विद्या मन्त्र प्राप्त कर सिद्ध बन बैठे हैं जैसे एक समुद्र के छींटे उड़ते हैं उन छींटों से ही लोग अलग तालाब बना लेते हैं। बालमुनि के गौरवपूर्ण शब्द सुनकर सन्यासी ने मुनि के रास्ते पर इतने सर्प बना दिये कि मुनि का मार्ग ही बन्द होगया अर्थात पैर रखने जितनी भी जगह नहीं रही। इसको देख मुनि समझ गया कि यह सन्यासी की करामात है पर मुनि ने अपनी विद्या से इतने मयूर बनाये कि उन सर्पों की पूंछें पकड़ पकड़ कर आकाश में लेगये जिसको देख सन्यासी मन्त्रमुग्ध बन गया कि यह लघु साधु तो बड़ा ही चमत्कारि दीखता है। सन्यासी ने अपनी विद्या से हस्ती ही हस्ती बना दिये। मुनि ने अपनी विद्या से हस्तियों पर अकुंश लिये हुये महावत बना दिये कि उनके अंकुश लगाने से हस्ती चिल्लाहट करते लग गयी।

सन्यासी अपनी मेकला (थैली) से एक गुटका निकाल उसका पैरों पर लेप कर आकाश में उड गया पर मुनि तो विना ही लेप किये केवल अपनी विद्या के बल से ही आकाश में गमन कर योगी के साथ नभमण्डलमें घुमने लग गये इत्यादि कई प्रकार विद्या बाद हुआ आखिर मुनि ने उस सन्यासी को कहा कि महात्माजी। यह तो सब बाह्य विद्यायें हैं। केवल इन विद्याओं को इस प्रकार बतलाने से ही आत्म कल्याण नहीं हैं। आप उस विद्या को सीखो कि जिससे आत्मा से परमात्मा बन सको !

सन्यासी ने कहा मुनि। वह विद्या कौनसी है कि जो आत्मा से परमात्मा बना सके ? मुनि ने कहा सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र इनकी आराधना करने से आत्मा परमात्मा बन सकता है। सन्यासी ने पूछा कि मैं इब में नहीं समझता हूँ कि सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र क्या पदार्थ है ? और इसकी आराधना किस प्रकार की जाती है मुनिवर्य ने सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र के भेद प्रभेद का विवरण करके बतलाया और साथ में पंच महाव्रतरूप दीक्षा लेकर इनकी आराधना का मार्ग भी बतला दिया। अतः सन्यासीजी ने उसी जंगल में अपना वेश छोड़ कर मुनि वीरशेखर के पास भगवती जैनदीक्षा ग्रहण करली और वे दोनों

चल कर सूरिजी महाराज के पास आये। सूरिजी उन दोनों का हाल सुनकर बड़े ही प्रसन्न हुये और उस समय सन्यासीजी को बड़ी दीक्षा देकर आप का नाम सन्यासमूर्ति रख दिया जो भविष्य में भी आपकी स्मृति करवाता रहे। मुनि सन्यासमूर्ति विद्यामंत्रों का तो पहिले ही जानकार था फिर भी आप रहे मुनि वीरशेखर के पास। वीरशेखर ने पहिले तो जैन धर्म के स्याद्वाद रहस्यमय सिद्धान्तों का अध्ययन करवाया जिससे वे जैनांगोपांगादि सब शास्त्रों के जानकार बन गये। बाद मुनि सन्यासमूर्ति को मत मतान्तरों के वाद विवाद में भी प्रवीण बना दिया। क्योंकि उस समय इसकी भी परमावश्यकता थी।

पट्टावलीकार लिखते हैं कि मुनि वीरशेखर और सन्यासमूर्ति ने अपने आत्मिक चमत्कारों से कई हजारों जैनेतरों को जैन बनाये। इतना ही क्यों पर कई सन्यासियों और बौद्ध-भिक्षुओं को भी जैन दीक्षा दी थी। कहा भी है कि चमत्कार को सब नमस्कार करते हैं।

जैसे रत्नाकर रत्नों से शोभा पाता है वैसे ही सिद्धसूरि ऐसे सिद्धपुरुषों-मुनियों से जगत में शोभा पाते हुए शासन कार्य करने में विख्यात हो रहे थे। इस गच्छ की अधिक उन्नति होने का मुख्य कारण यही है कि इस गच्छ में शुरू से ही एक ही आचार्य होता आया है। हजारों साधु भिन्न २ प्रान्तों में विहार करने वाले होने पर भी वे सब एक आचार्य की आज्ञा का आदरपूर्वक पालन करते थे। आप श्री के अलावा कोरंटगच्छ के आचार्य एवं मुनि वे भी मरुधरादि प्रान्तों में विहार करते थे पर वे भी उपकेशगच्छाचार्यों के साथ अच्छा मेल मिलाप एवं उनकी आज्ञा का पालन किया करते थे ओर उनका विहार प्रायः आबू के आस पास के प्रदेश में ही होता था तब उपकेशगच्छाचार्यों का विहार दक्षिण से लगा कर पूर्व तक होता था।

आचार्य सिद्धसूरि के ज्यों ज्यों साधुओं की वृद्धि होती गई त्यों त्यों अन्योन्य प्रान्त में मुनियों को भेजते गये जैसे कई साधुओं को बुलेन्दखण्ड की ओर तथा कई को शूरसेन एवं मत्सप्रदेश की ओर भेज दिये और आप अपने विशाल साधुओं के साथ विहार कर दिया महेश्वरी विदेशी माण्डवगढ़ हरीपुर मड़कोली पयोली दशपुर वगैरह प्रदेश में जैन धर्म का साम्राज्य स्थपित कर रहे थे तब इसके निकटवृत्ति मेदपाट में भी जैनधर्म का काफी प्रचार था उस प्रदेश में आज भी जैनधर्म के अनेक प्राचीन स्मारक चिन्ह उपलब्ध होते हैं जब सूरिजी चित्रकोटादि होते हुए आघाट नगर की ओर पधारे तो वहाँ के श्रीसंघ के उत्साह का पार नहीं रहा संघ की ओर से सूरिजी का अच्छा स्वागत किया और श्री संघ की साग्रह विनती को स्वीकार कर सूरिजी ने आघाट नगर में चतुर्मास करने का निर्णय कर लिया बस! फिर तो कहना ही क्या था जनता का उत्साह खूब बढ़ गया और भावुक लोग आत्मकल्याणार्थ धर्म कार्य में संलग्न हो गये। सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा हो रहा था आप श्री के व्याख्यान में न जाने क्या जादू था कि सुनने वाले मंत्र मुग्ध बन जाते थे। चतुर्मास समाप्त होने में ही था एक दिन सूरिजी ने उपदेश दिया कि उपकेशवंशियों! आपकी जन्मभूमि उपकेशपुर है वहां पर आपके पूर्वजों को आचार्यरत्नप्रभसूरि ने मांस मदिरादि दुर्व्यसन छोड़ा कर जैनधर्म में दीक्षित किये थे आपके लिये वह भूमि एकतीर्थ स्वरूप है विशेषता में शासनाधीश चरमतीर्थंकर भगवान महावीर का मन्दिर की यात्रा करने काबिल है इत्यादि सूरिजी के उपदेश का इस कदर असर हुआ कि उसी सभा में श्रेष्टि गौत्रीय मंत्री मुकुन्द ने उठकर प्रार्थना की कि प्रभो! मेरी इच्छा है कि मैं उपकेशपुर का संघ निकाल कर भगवान् महावीर की यात्रा करूँ इसमें यहां के श्रीसंघ तो मुझे सहायता दी पर आप साहिबजी को भी इस संघ में पधार कर मेरे उत्साह को बढ़ाना चाहिये अतः मेरी नम्र

[मुनि सन्यासमूर्त्ति और धर्म प्रचार

स्वीकार होनी चाहिए ? सूरिजी ने संघ अग्रेश्वरों की ओर इसारा करके कहाकि क्यों मन्त्रीश्वर क्या कह रहा है इसके लिये आपलोगों की क्या इच्छा है ? संघअग्रेश्वरों ने कहाकि पूज्यवर ! मंत्रीश्वर भाग्यशाली हैं जो एक महान् कल्याण कारी कार्य करने को प्रस्तुत हुआ है फिर आप जैसे प्रतापीक पुरुषों का सहयोग फिर इस लाभ का तो कहना ही क्या है संघ के ऐसा भाग्य ही कहां है कि एक तीर्थ भूमि की यात्राकर आत्मकल्याण कर सकें। हम मन्त्रीश्वर के कार्य की अनुमोदना करते हैं और सब लोग यात्रा के लिए चलने को तैयार हैं। बाद सूरिजी ने भी अपनी स्वीकृति फरमादी अतः मन्त्रेश्वर के सब मनोरथ सफल हो गये वस जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई। संघ की बात विद्युद्वेग की भाँति नगर भर में फैल गई और लोग तीर्थयात्रा के लिये तैयारियाँ करने लग गए मन्त्रीश्वर ने आसपास के प्रदेशों में आमन्त्रण पत्रिकाएँ भेजवादी चतुर्मास समाप्त होते ही आस पास में चतुर्मास करने वाले 'साधु साध्वियां' तथा खूब गेहरी तादाद में संघ भी एकत्र होगया शुभ मुहूर्व मार्गशर्ष शुक्ल पंचमी के दिन मन्त्री मुकन्द के संघपतित्व में संघने प्रस्थान कर दिया पट्टावली कर लिखते है कि कइ पांचसो साधु साधियों और दश हजार नरनारी संघ में थे क्रमशः छरी पाली चलता हुआ संघ उपकेशपुर पहुँचा तो वहाँका श्रीसंघ ने आचार्य श्रीसिद्धसूरि के साथ श्रीसंघ का आदर सत्कार किया ओर संघने भी अपनी जन्मभूमि एवं भगवान् महावीर की यात्रा की मन्दिर में अष्टान्हिका महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामीवात्सल्य और ध्वज महोत्सव कर अपने जीवन को सफल बनाया तत्पश्चात मेदपाट में विहार करने वालों के साथ संघ वपिस लौट गया और सूरिजी महाराज वहां के राजा प्रजा के आग्रह कुछ अर्सा की स्थिरता कर वहाँकी जनता को धर्मोपदेश देकर धर्म की जगृति एवं उन्नति की जब सूरिजी महाराज विहार का इरादा कियातो रात्रि के समय देवी सच्चायिका सूरिजी की सेवामें उपस्थित हो प्रार्थना की कि प्रभो ! आपका यह चतुर्मास उपकेशपुर में ही होना चाहिये उपकेशगच्छाचार्यों का कमसे कम एक चतुर्मास तो उपकेशपुर में अवश्य होना ही चाहिये पूज्यवर ! यह आपके पूर्वज रत्नप्रभसूरि के उपकार की भूमिका हैं इत्यादि देवीने खूब आग्रह से विनती की इस पर सूरिजी ने फरमाया देवी अभी तो बहुत समय है देवीने कहा हाँ समय वहुत है पर आप आस पास के क्षेत्रों में विहार कर पुनः यहाँ पधार कर चतुर्मास तो यहाँ ही करावें आपकों बहुत लाभ होगा ? सूरिजी ने कहा ठीक है देवीजी आपकी विनति कों हमारे पूर्वजोंने स्वीकार कर लाभ उठाया था अतः क्षेत्र स्पर्शना होगी तो मेरी भी ना नहीं है।

दूसरे दिन वहां के राजादि श्रीसंघ को मालूम हुआ कि सूरिजी महाराज विहार करने वाले हैं अतः सकल श्रीसंघ एकत्र होकर चतुर्मास के लिये बहुत आग्रह से प्रार्थना की इस पर सूरिजी महाराज ने वही उत्तर दिया जो देवी को दिया था सूरिजी महाराज उपकेशपुर से विहार कर माण्डव्यपुर शेखपुर आसिका दुर्ग खटकुंपपुर मुग्धपुर नागपुर मेदनीपुर पद्मावती हंसावली शाकम्भरी आदि क्षेत्रों में भ्रमन कर एवं जनता को खूब धर्मोपदेश देकर धर्म की प्रभावना की और पुनः उपकेशपुर पधार कर वह चतुर्मास उपकेशपुर में ही करदिया जिससे देवी के एवं श्री संघ के हर्ष का पार नहीं था।

भाग्यवशात् उपकेशपुर और उसके आसपास के प्रदेश नहीं पर सर्वत्र ऐसा भयंकर दुकाल पड़ा कि अन्नके अभाव दुनिया में हाहाकार एवं त्राहि-त्राहि मच गई इस प्रकार जनता का दुःख सूरिजी से देखा एवं सुना नहीं गया आपने अपने व्याख्यान में ऐसा उपदेश दिया कि उपकेशपुर के साहूकार लोगों ने एक एक दिन मुकर्रर कर ३६० दिन लिख लिया कि देश भर में अपने योग्य पुरुषों को भेजकर मनुष्यों को अन्न और

पशुओं को घास वगैरह का माकूली इन्तजाम करवा दिया इस कार्य में करोड़ों रुपये व्यय कर जहां जिस भाव में मिला अन्न और घास मंगवा कर अपने देशवासी भाइयों के प्राण बचाये पट्टावलिकारों ने लिखा है कि विक्रम सं० १९४ का दुःकाल तो केवल उपकेशपुरवासियों ने करोड़ों द्रव्य व्यय कर निकाल दिया पर अशुभ कर्मोदय दूसरे वर्ष अर्थात् वि० सं० १९५ के वर्ष भी दुःकाल पड़ गया जिसको निकालना तो एक कठिन समस्या खड़ी हो गई कारण द्रव्य के लिये तो कमी नहीं थी पर अन्न एवं घास मिलना मुश्किल हो गया तथापि सूरिजी के उपदेश से लोगों ने देश के हित खूब उद्यम किया देश और विदेश में जहां जिस भाव से मिल सका वहां से अन्न और घास मंगवा कर जनता को मरती हुई को बचाई। उस समय एक तो उपकेशवंशियों के पास द्रव्य बहुत था दूसरे उनके उपदेशक जैनाचार्य दया के अवतार ही थे उन्हों का उपदेश परोपकार के लिये ही हुआ करता था अतः महाजन संघ परोपकार के लिये बात ही बात में करोड़ों रुपये खर्च कर डालते थे यही कारण है कि केवल साधारण जनता ही क्यों परन्तु बड़े बड़े राजा महाराज महाजनसंघ का आदर सत्कार किया करते थे और नगरसेठ जगतसेठ वगैरह उपाधियों से सन्मान किया करते थे। इन दोनों भयंकर दुःकालों में साधुओं का विहार तक भी प्रायः बन्द सा ही हो गया था जब दुःकाल के अन्त में पुनः सुकाल हुआ तब जाकर साधुओं का विहार हुआ—

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी मरुधर के छोटे बड़े ग्राम नगर में विहार कर जैनधर्म का खूब प्रचार एवं उद्योत किया था रत्नपुर विजयपुर ताबावती पाल्हीकापुरी कोरंटपुर सत्यपुर भीन्नमाल जावलीपुर शिवपुरी चन्द्रावती पद्मावती आदि नगरों में भ्रमन करते हुए आपश्री शाकम्भरी नगरी में पधारे वहां के राजा नागभट्ट को जैनधर्म में दीक्षित किया "यथा राजास्तथा प्रजा" धर्म करने में उत्साही बन गये।

राजा नागभट्ट ने एक समय सूरिजी से प्रार्थना की कि हे प्रभो ! अब आपकी वृद्धावस्था है तो आप अपने पट्ट पर किसी योग्य मुनि को आचार्य बनावें कि इस पद का महोत्सव करने का सौभाग्य इस नगर को मिले कारण हमारी जानकारी में इस प्रकार का उत्तम कार्य इस नगरी में नहीं हुआ है केवल एक मेरी ही नहीं पर सकल श्रीसंघ की यही इच्छा है विशेषता में यहां की जनता चाह रही है कि वादी चक्रवर्ती उपाध्याय रत्नभूषण महाराज को पद प्रतिष्ठित किया जाय अतः आप जैन शासन की प्रभावना करने योग्य हैं इत्यादि। सूरिजी ने कहा भावुकों ! आपकी भावना अच्छी है पर मैं कल विचार कर आपको जवाब दूंगा।

आचार्य श्री ने रात्रि समय देवी सच्चायिका को याद किया देवी आकर सूरिजी के चरण कमलों में वन्दन किया और अर्ज की कि प्रभो ! मेरे योग्य कार्य हो सो फरमावें ? सूरिजी ने कहा कि मेरी इच्छा है कि उपाध्याय रत्नभूषण को सूरि पद दिया जाय तथा यहां के श्रीसंघ की भी उत्कण्ठा है इसमें आपकी क्या राय है ? देवी ने कहा पूज्यवर ! आप जो विचार किया है वह बहुत ही उत्तम है उपाध्यायजी इस पद के योग्य एवं सर्व गुण सम्पन्न हैं आप इनको पदार्पण कर उपकेशपुर पधार इत्यादि कहकर देवी अदृश्य हो गई [illegible] सूरिजी राजादि सकल संघ के सामने अपने विचार प्रगट कर दिये बस फिर तो कहना ही क्या [illegible] खूब बढ़ गया और वे अपना कार्य सम्पादन करने में जुट गये जिन मन्दिरों में [illegible] और आस पास के ग्राम नगरों में आमन्त्रण पत्र भेज दिये ठीक [illegible] और सूरिजी महाराज ने शुभमुहूर्त में उपाध्याय [illegible] रख दिया तत्पश्चात् आचार्य सिद्धसूरि उपदेश-

[शाकम्भरी का राव नागभट्ट

पुर पधार गये और वहां अन्तिम सलेखना कर अन्त में २७ दिनों का अनशन पूर्वक समाधि से देह त्याग कर स्वर्ग पधार गये।

आचार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज ने अपने बावीस वर्ष के शासन काल में अनेक प्रान्तों में भ्रमण कर जैनधर्म की खूब प्रभावना एवं प्रचार बढ़ाया था पट्टावलियों आदि ग्रन्थों में आपके विषय में बहुत विस्तार से वर्णन किया है पर मैं यहाँ पर आपश्री के परोपकारी हाथों से जो जनोपयोगी कार्य हुए हैं जिनका केवल नामोल्लेख ही कर देता हूँ कि जिसको पढ़ कर उनका अनुमोदन करने मात्र से पाठकों का कल्याण हो सके।

आचार्य श्री के कर कमलों से भावुकों को दीक्षा

१—नरवर के बलाह गौत्रीय शाह छापा ने सूरिजी के पास दीक्षाली
२—डबरेल के श्रेष्टि गौत्रीय शाह फाल्गु ने ,, ,, ,,
३—उतोल के बाप्पनाग गौत्रीय शाह चूड़ा ने ,, ,, ,,
४—बारोटी के भाद्र गौत्रीय शाह देवपाल ने ,, ,, ,,
५—खखोटी के सुघड़ गौत्रीय शाह चौपसी ,, ,, ,,
६—भुजपुर के लुंग गौत्रीय शाह देदा ने ,, ,, ,,
७—हीगोटी के भूरी गौत्रीय शाह रामा ने ,, ,, ,,
८—सोपार के आदित्य नाग शाह कल्हण ने ,, ,, ,,
९—सींदली के आदित्यनाग शाह सूरजण ने ,, ,, ,,
१०—देवपट्टन के तप्तभट्ट गौ० शाह नाथा ने ,, ,, ,,
११—कल्याण के बाप्पनाग गौ० शाह राजा ने ,, ,, ,,
१२—दक्षिण के बारह दक्षिणीयों ने ,, ,, ,,
१३—भद्रावती के करणाट गौत्रीय शाह भादा ने ,, ,, ,,
१४—उज्जैन के श्रेष्टि गौत्रीय मंत्री करमण ने ,, ,, ,,
१५—मधुवर्ती के सुंचेती गौत्रीय शाह महीधर ने ,, ,, ,,
१६—रूपनगर के कुमट गौत्रीय शाह धरण ने ,, ,, ,,
१७—आकोर के आदित्यनाग० शाह धना ने ,, ,, ,,
१८—विराट के ब्राह्मण जगदेव ने ,, ,, ,,
१९—उपकेशपुर के कुलभद्र गौ० शाह राजा ने ,, ,, ,,
२०—नागपुर के आदित्यनाग० शाह नारायण ने ,, ,, ,,
२१—हंसावली के श्रेष्टि गौत्रीय शाह पावा ने ,, ,, ,,
२२—मधुरा के बाप्पानाग गौ० शाह पोमा ने ,, ,, ,,
२३—खंडला के बलाहा गौ० शाह जेता ने ,, ,, ,,
२४—मुग्धपुर के डिड्डूगौत्रीय मंत्री कडुआने ,, ,, ,,

पशुओं को घास वगैरह का माकूली इन्तजाम करवा दिया इस कार्य में करोड़ों रुपये व्यय कर जहां जिस भाव में मिला अन्न और घास मंगवा कर अपने देशवासी भाइयों के प्राण बचाये पट्टावलिकारों ने लिखा है कि विक्रम सं० १९४ का दुःकाल तो केवल उपकेशपुरवासियों ने करोड़ों द्रव्य व्यय कर निकाल दिया पर अशुभ कर्मोदय दूसरे वर्ष अर्थात् वि० सं० १९५ के वर्ष भी दुःकाल पड़ गया जिसको निकालना तो एक कठिन समस्या खड़ी हो गई कारण द्रव्य के लिये तो कमी नहीं थी पर अन्न एवं घास मिलना मुश्किल हो गया तथापि सूरिजी के उपदेश से लोगों ने देश के हित खूब उद्यम किया देश और विदेश में जहां जिस भाव से मिल सका वहां से अन्न और घास मंगवा कर जनता को मरती हुई को बचाई। उस समय एक तो उपकेशवंशियों के पास द्रव्य बहुत था दूसरे उनके उपदेशक जैनाचार्य दया के अवतार ही थे उन्हों का उपदेश परोपकार के लिये ही हुआ करता था अतः महाजन संघ परोपकार के लिये बात ही बात में करोड़ों रुपये खर्च कर डालते थे यही कारण है कि केवल साधारण जनता ही क्यों परन्तु बड़े बड़े राजा महाराज महाजनसंघ का आदर सत्कार किया करते थे और नगरसेठ जगतसेठ वगैरह उपाधियों से सन्मान किया करते थे। इन दोनों भयंकर दुःकालों में साधुओं का विहार तक भी प्रायः बन्द सा ही हो गया था जब दुःकाल के अन्त में पुनः सुकाल हुआ तब जाकर साधुओं का विहार हुआ—

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी मरुधर के छोटे बड़े ग्राम नगर में विहार कर जैनधर्म का खूब प्रचार एवं उद्योत किया था रत्नपुर विजयपुर तावावती पाल्हीकापुरी कोरंटपुर सत्यपुर भीन्नमाल जावलीपुर शिवपुरी चन्द्रावती पद्मावती आदि नगरों में भ्रमन करते हुए आपश्री शाकम्भरी नगरी में पधारे वहां के राजा नागभट्ट को जैनधर्म में दीक्षित किया "यथा राजास्तथा प्रजा" धर्म करने में उत्साही बन गये।

राजा नागभट्ट ने एक समय सूरिजी से प्रार्थना की कि हे प्रभो ! अब आपकी वृद्धावस्था है तो आप अपने पट्ट पर किसी योग्य मुनि को आचार्य बनावें कि इस पद का महोत्सव करने का सौभाग्य इस नगर को मिले कारण हमारी जानकारी में इस प्रकार का उत्तम कार्य इस नगरी में नहीं हुआ है केवल एक मेरी ही नहीं पर सकल श्रीसंघ की यही इच्छा है विशेषता में यहां की जनता चाह रही है कि वादी चक्रवर्ती उपाध्याय रत्नभूषण महाराज को पद प्रतिष्ठित किया जाय अतः आप जैन शासन की प्रभावना करने योग्य हैं इत्यादि। सूरिजी ने कहा भावुकों ! आपकी भावना अच्छी है पर मैं कल विचार कर आपको जवाब दूँगा।

आचार्य श्री ने रात्रि समय देवी सच्चायिका को याद किया देवी आकर सूरिजी के चरण कमलों में वन्दन किया और अर्ज की कि प्रभो ! मेरे योग्य कार्य हो सो फरमावें ? सूरिजी ने कहा कि मेरी इच्छा है कि उपाध्याय रत्नभूषण को सूरि पद दिया जाय तथा यहां के श्रीसंघ की भी उत्कण्ठा है इसमें आपकी क्या राय है ? देवी ने कहा पूज्यवर ! आप जो विचार किया है वह बहुत ही उत्तम है उपाध्यायजी इस पद के योग्य एवं सर्व गुण सम्पन्न है आप इनको पदार्पण कर उपकेशपुर पधार इत्यादि कहकर देवी अदृश्य हो गई सुबह सूरिजी राजादि सकल संघ के सामने अपने विचार प्रगट कर दिये बस फिर तो कहना ही क्या था जनता का उत्साह खूब बढ़ गया और वे अपना कार्य सम्पादन करने में जुट गये जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव प्रारम्भ करवा दिया और आस पास के ग्राम नगरों में आमन्त्रण पत्र भेज दिये ठीक समय पर बहुत से भक्त जन शाकम्भरी में एकत्र हो गये और सूरिजी महाराज ने शुभमुहूर्त में उपाध्याय रत्नभूषण को सूरि पद प्रदान कर आपका नाम रत्नप्रभसूरि रख दिया तत्पश्चात् आचार्य सिद्धसूरि शाकम्भ-

पुर पधार गये और वहां अन्तिम सलेखना कर अन्त में २७ दिनों का अनशन पूर्वक समाधि से देह त्याग कर स्वर्ग पधार गये।

आचार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज ने अपने बावीस वर्ष के शासन काल में अनेक प्रान्तों में भ्रमण कर जैनधर्म की खूब प्रभावना एवं प्रचार बढ़ाया था पट्टावलियों आदि ग्रन्थों में आपके विषय में बहुत विस्तार से वर्णन किया है पर मैं यहाँ पर आपश्री के परोपकारी हाथों से जो जनोपयोगी कार्य हुए हैं जिनका केवल नामोल्लेख ही कर देता हूँ कि जिसको पढ़ कर उनका अनुमोदन करने मात्र से पाठकों का कल्याण हो सके।

आचार्य श्री के कर कमलों से भावुकों को दीक्षा

१—नरवर के बलाह गौत्रीय शाह हापा ने सूरिजी के पास दीक्षाली
२—डवरेल के श्रेष्टि गौत्रीय शाह फाल्गु ने ,, ,, ,,
३—उतोल के बाप्पनाग गौत्रीय शाह चूड़ा ने ,, ,, ,,
४—वारोटी के भाद्र गौत्रीय शाह देवपाल ने ,, ,, ,,
५—खखोटी के सुघड़ गौत्रीय शाह चौपसी ,, ,, ,,
६—भुजपुर के लुंग गौत्रीय शाह देदा ने ,, ,, ,,
७—हीगोटी के भूरी गौत्रीय शाह रामा ने ,, ,, ,,
८—सोपार के आदित्य नाग शाह कल्हण ने ,, ,, ,,
९—सींदली के आदित्यनाग शाह सूरजण ने ,, ,, ,,
१०—देवपट्टन के तप्तभट्ट गौ० शाह नाथा ने ,, ,, ,,
११—कल्याण के बाप्पनाग गौ० शाह राजा ने ,, ,, ,,
१२—दक्षिण के बारह दक्षिणीयों ने ,, ,, ,,
१३—भद्रावती के करणाट गौत्रीय शाह भादा ने ,, ,, ,,
१४—उज्जैन के श्रेष्टि गौत्रीय मंत्री करमण ने ,, ,, ,,
१५—मधुवती के सुंचेती गौत्रीय शाह महीधर ने ,, ,, ,,
१६—रूपनगर के कुमट गौत्रीय शाह धरण ने ,, ,, ,,
१७—आकोर के आदित्यनाग० शाह धना ने ,, ,, ,,
१८—विराट के ब्राह्मण जगदेव ने ,, ,, ,,
१९—उपकेशपुर के कुलभद्र गौ० शाह राजा ने ,, ,, ,,
२०—नागपुर के आदित्यनाग० शाह नारायण ने ,, ,, ,,
२१—हंसावली के श्रेष्टि गौत्रीय शाह पाता ने ,, ,, ,,
२२—मथुरा के बाप्पानाग गौ० शाह पोमा ने ,, ,, ,,
२३—खंडला के बलाहा गौ० शाह जेता ने ,, ,, ,,
२४—मुग्धपुर के डिड्डूगौत्रीय मंत्री कडुआने ,, ,, ,,

पशुओं को घास वगैरह का माकूली इन्तजाम करवा दिया इस कार्य में करोड़ों रुपये व्यय कर जहां जिस भाव में मिला अन्न और घास मंगवा कर अपने देशवासी भाइयों के प्राण बचाये पट्टावलिकारों ने लिखा है कि विक्रम सं० १९४ का दुःकाल तो केवल उपकेशपुरवासियों ने करोड़ों द्रव्य व्यय कर निकाल दिया पर अशुभ कर्मोदय दूसरे वर्ष अर्थात् वि० सं० १९५ के वर्ष भी दुःकाल पड़ गया जिसको निकालना तो एक कठिन समस्या खड़ी हो गई कारण द्रव्य के लिये तो कमी नहीं थी पर अन्न एवं घास मिलना मुश्किल हो गया तथापि सूरिजी के उपदेश से लोगों ने देश के हित खूब उद्यम किया देश और विदेश में जहां जिस भाव से मिल सका वहां से अन्न और घास मंगवा कर जनता को मरती हुई को बचाई। उस समय एक तो उपकेशवंशियों के पास द्रव्य बहुत था दूसरे उनके उपदेशक जैनाचार्य दया के अवतार ही थे उन्हों का उपदेश परोपकार के लिये ही हुआ करता था अतः महाजन संघ परोपकार के लिये बात ही बात में करोड़ों रुपये खर्च कर डालते थे यही कारण है कि केवल साधारण जनता ही क्यों परन्तु बड़े बड़े राजा महाराज महाजनसंघ का आदर सत्कार किया करते थे और नगरसेठ जगतसेठ वगैरह उपाधियों से सन्मान किया करते थे। इन दोनों भयंकर दुःकालों में साधुओं का विहार तक भी प्रायः बन्द सा ही हो गया था जब दुःकाल के अन्त में पुनः सुकाल हुआ तब जाकर साधुओं का विहार हुआ—

आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी मरुधर के छोटे बड़े ग्राम नगर में विहार कर जैनधर्म का खूब प्रचार एवं उद्योत किया था रत्नपुर विजयपुर ताबावती पाल्हीकापुरी कोरंटपुर सत्यपुर भीन्नमाल जावलीपुर शिवपुरी चन्द्रावती पद्मावती आदि नगरों में भ्रमन करते हुए आपश्री शाकम्भरी नगरी में पधारे वहां के राजा नागभट्ट को जैनधर्म में दीक्षित किया "यथा राजास्तथा प्रजा" धर्म करने में उत्साही बन गये।

राजा नागभट्ट ने एक समय सूरिजी से प्रार्थना की कि हे प्रभो! अब आपकी वृद्धावस्था है तो आप अपने पट्ट पर किसी योग्य मुनि को आचार्य बनावें कि इस पद का महोत्सव करने का सौभाग्य इस नगर को मिले कारण हमारी जानकारी में इस प्रकार का उत्तम कार्य इस नगरी में नहीं हुआ है केवल एक मेरी ही नहीं पर सकल श्रीसंघ की यही इच्छा है विशेषता में यहां की जनता चाह रही है कि वादी चक्रवर्ती उपाध्याय रत्नभूषण महाराज को पद प्रतिष्ठित किया जाय अतः आप जैन शासन की प्रभावना करने योग्य है इत्यादि। सूरिजी ने कहा भावुकों! आपकी भावना अच्छी है पर मैं कल विचार कर आपको जवाब दूंगा।

आचार्य श्री ने रात्रि समय देवी सच्चायिका को याद किया देवी आकर सूरिजी के चरण कमलों में वन्दन किया और अर्ज की कि प्रभो! मेरे योग्य कार्य हो सो फरमावें? सूरिजी ने कहा कि मेरी इच्छा है कि उपाध्याय रत्नभूषण को सूरि पद दिया जाय तथा यहां के श्रीसंघ की भी उत्कण्ठा है इसमें आपकी क्या राय है? देवी ने कहा पूज्यवर! आप जो विचार किया है वह बहुत ही उत्तम है उपाध्यायजी इस पद के योग्य एवं सर्व गुण सम्पन्न है आप इनको पदार्पण कर उपकेशपुर पधार इत्यादि कहकर देवी अदृश्य हो गई सुबह सूरिजी राजादि सकल संघ के सामने अपने विचार प्रगट कर दिये बस फिर तो कहना ही क्या था जनता का उत्साह खूब बढ़ गया और वे अपना कार्य सम्पादन करने में जुट गये जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव प्रारम्भ करवा दिया और आस पास के ग्राम नगरों में आमन्त्रण पत्र भेज दिये ठीक समय पर बहुत से भक्त जन शाकम्भरी में एकत्र हो गये और सूरिजी महाराज ने शुभमुहूर्त में उपाध्याय रत्नभूषण को सूरि पद प्रदान कर आपका नाम रत्नप्रभसूरि रख दिया तत्पश्चात् आचार्य सिद्धसूरि स्वर्ग-

११—मथुरा से वाचनाचार्य गुणतिलक के उपदेश से चिंचट गौत्रीय शाह गुणपाल ने श्री सम्मेत शिखरजी का संघ निकाला जिसमें सात लक्ष द्रव्य व्यय किया।

इनके अलावा भी अन्य प्रान्तों से कई कई छोटे बड़े संघ निकले थे उस समय धर्म कार्य में मुख्य संघ निकाल कर तीर्थ यात्रा करना और साधर्मी भाइयों को अपने घर आगणे बुला कर अधिक से अधिक द्रव्य पेहरामणी में देना बड़ा ही महत्व का कार्य समझा जाता था अतः जिसके पास द्रव्य होता वह या तो मन्दिर बना कर प्रतिष्ठा करवाने में या तीर्थो के संघ निकालने में या आचार्य के पट्ट महोत्सव करने में ही लगते थे और इसमें अपने जन्म की सार्थकता भी समझते थे।

सूरिजी महाराज या आपके मुनियों के हाथों से प्रतिष्ठाएँ

१—नागपुर के	अदित्य नाग०	वीरदेव ने	भ०	महावीर	के	मन्दिर	की प्रतिष्ठा
२—खावड़ा के	अदित्य नाग०	सलखण ने	"	पार्श्वनाथ		"	"
३—मुग्धपुर के	बाप्पनाग गौ०	अजड़ ने	"	शान्तिनाथ		"	"
४—खट कूप के	श्रेष्टि गोत्रीय	माला ने	"	महावीर		"	"
५—नारायणपुराके	भूरिगौत्रीय	चोपा ने	"	आदीश्वर		"	"
६—रूपनगर के	भाद्रगौत्रीय	मंत्रीरणवीर	"	"		"	"
७—खंडेला के	सोनी गौ०	सुखा ने	"	महावीर		"	"
८—सापाणी के	सुघड़ गौ०	मूला ने	"	"		"	"
९—विराटपुर के	चरड़ गौ०	देवा ने	"	"		"	"
१०—मथुरा के	सुंचति गौ०	धरण ने	"	पार्श्वनाथ		"	"
११—भीलाणी के	श्री श्रीमाल	देदा ने	"	"		"	"
१२—नखर के	श्रेष्टि गौ०	आखा ने	"	महावीर		"	"
१३—तक्षिला के	श्रीमाल	खीवसी ने	"	"		"	"
१४—सालीपुर के	चिंचट गौ०	पवरा ने	"	"		"	"
१५—वीरपुर के	कुलभद्र०	जगमाल ने	"	"		"	"
१६—वजवार के	बलाहा०	जेता ने	"	विमलनाथ		"	"
१७—मारोट के	मोरक्षगौ०	वागा ने	"	नेमिनाथ		"	"
१८—कटपुर के	ब्राह्मण	हेरदेव ने	"	महावीर		"	"
१९—वर्द्धमान के	प्राग्वट०	करमण ने	"	"		"	"
२०—कपीलपुर के	प्राग्वट०	गोंदा ने	"	"		"	"
२१—शत्रुंजयपर	श्रेष्टि गौ०	चूड़ा ने	"	पार्श्वनाथ		"	"
२२—सोपार० के	कुंमट गौ०	पोमा ने	"	"		"	"
२३—चन्द्रावती के	बाप्प नाग०	राणा ने	"	शान्तिनाथ		"	"
२४—देलीपुर के	आदित्य नाग०	आदू ने	"	"		"	"

२५—सत्यपुर के चिंचट गौ० शाह खेमा ने ,, ,, ,,
२६—भीनमाल के श्रीमाल शाह रामपाल ने ,, ,, ,,
२७—रामनगर के प्राग्वट शाह पारस ने ,, ,, ,,

इनके अलावा कई पुरुष और बहुत सी बहिनों ने भी सूरिजी की सेवा में दीक्षा लेकर अपना कल्याण किया था तथा आपके आज्ञावृति मुनियों ने भी बहुत से नर नारियों को दीक्षा देकर श्रमण संघ में वृद्धि की थी यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि जिस गच्छ समुदाय में जितनी श्रमण संख्या अधिक है उतना ही धर्म प्रचार अधिक क्षेत्र में फैल जाता है।

आचार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज तथा आप श्री के आज्ञा वृति साधुओं के उपदेश से कई महानुभावों ने तीर्थ यात्रा निमित बड़े बड़े संघ निकाल कर तीर्थों की यात्रा कर अनंत पुन्योपार्जन किया था पट्टावलियों में उल्लेख मिलता है कि :—

१—चन्द्रवती से वाचनाचार्य शोभाग्यकीर्ति के उपदेश से प्राग्वट वंशीय धरण ने सिद्धाचलजी का संघ निकाला जिसमें धरण ने तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया साधर्मी भाइयों को सोना मोहरों तथा वस्त्रादि की पेहरामणी दी।

२—उपकेशपुर से मुनि हेमतिलक के उपदेश से श्रेष्टि वर्य्य कर्मा ने तीर्थों के संघ निकालकर पांचाल लक्ष द्रव्य व्यय किया तीन यज्ञ (स्वामिवात्सल्य) करके संघ को पेहरामणी दी।

३—मारोटकोट से उपाध्याय मंगलकलस के उपदेश से चरड़गौत्रीय शाह गुणराज ने श्री शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला। जिसमें नौ लक्ष द्रव्य खर्च किया संघ को पहरामणी दी।

४—सावत्थी नगरी से वाचनाचार्य देवप्रभ के उपदेश से संचेती गौत्रीय शाह रूपण ने श्रीसम्मेतशिखरजी का तीर्थ निकाल कर पूर्व देश की सब यात्रा की जिसमें शाह ने नौ लक्ष द्रव्य व्यय किया साधर्मी भाइयों को सोना मोहरों और सवासेर लड्डुओं की प्रभावना दी।

५—हंसावली से उपाध्याय निधानमूर्त्ति के उपदेश से भाद्रगौत्रीय शाह मधवा ने श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें सवालक्ष द्रव्य व्यय किया:—

६—नागपुर से सूरिजी के उपदेश से आदित्य नाग गौत्रीय शाह पीर जाला ने श्रीशत्रुंजय गिरनारादि का संघ निकाला जिसमें तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया। पांच यज्ञ (जीमणवार) कर पेहरामणी दी।

७—भीन्नमाल से वाचनाचार्य ज्ञान कलस के उपदेश से प्राग्व: वंशीयशाह सारंग ने श्री शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला साधर्मी भाइयों को सोना मुहर की पेहरावणी दी।

८—स्तम्भन नगर से उपाध्याय मेरुप्रभ के उपदेश से मंत्री राजा ने श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला साधर्मी भाइयों को पांच पांच सोना मुहरों की पेहरामणी दी। और तीन यज्ञ किये:—

९—पद्मावती से सूरिजी के उपदेश से श्रीमाल आदू ने तीर्थों का संघ निकाला जिसमें पांच लक्ष द्रव्य व्यय किया साधर्मी भाइयों को पेहरावणी दी।

१०—उज्जैन से उपाध्याय मेरुनन्दन के उपदेश से राव भारथ ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला में एक लक्ष द्रव्य व्यय किया। सधर्मी भाइयों को पेहरामणी दी।

११—मथुरा से वाचनाचार्य गुणतिलक के उपदेश से चिंचट गौत्रीय शाह गुणपाल ने श्री सम्मेत शिखरजी का संघ निकाला जिसमें सात लक्ष द्रव्य व्यय किया।

इनके अलावा भी अन्य प्रान्तों से कई कई छोटे बड़े संघ निकले थे उस समय धर्म कार्य में मुख्य संघ निकाल कर तीर्थ यात्रा करना और साधर्मी भाइयों को अपने घर आगणे बुला कर अधिक से अधिक द्रव्य पेहरामणी में देना बड़ा ही महत्व का कार्य समझा जाता था अतः जिसके पास द्रव्य होता वह या तो मन्दिर बना कर प्रतिष्ठा करवाने में या तीर्थो के संघ निकालने में या आचार्य के पट्ट महोत्सव करने में ही लगते थे और इसमें अपने जन्म की सार्थकता भी समझते थे।

सूरिजी महाराज या आपके मुनियों के हाथों से प्रतिष्ठाऐं

१—नागपुर के	अदित्य नाग०	वीरदेव ने	भ०	महावीर के	मन्दिर की	प्रतिष्ठा
२—खावड़ा के	अदित्य नाग०	सलखण ने	"	पार्श्वनाथ	"	"
३—मुग्धपुर के	बाप्पनाग गौ०	अजड़ ने	"	शान्तिनाथ	"	"
४—खट कूप के	श्रेष्टि गोत्रीय	माला ने	"	महावीर	"	"
५—नारायणपुरा के	भूरिगोत्रीय	चोपा ने	"	आदीश्वर	"	"
६—रूपनगर के	भाद्रगौत्रीय	मंत्रीरणवीर	"	"	"	"
७—खंडेला के	सोनी गौ०	सुखा ने	"	महावीर	"	"
८—सापाणी के	सुघड़ गौ०	मूला ने	"	"	"	"
९—विराटपुर के	चरड़ गौ०	देवा ने	"	"	"	"
१०—मथुरा के	सुंचति गौ०	धरण ने	"	पार्श्वनाथ	"	"
११—भीलाणी के	श्री श्रीमाल	देदा ने	"	"	"	"
१२—नखर के	श्रेष्टि गौ०	आखा ने	"	महावीर	"	"
१३—तक्षिला के	श्रीमाल	खीवसी ने	"	"	"	"
१४—सालीपुर के	चिंचट गो०	चतरा ने	"	"	"	"
१५—वीरपुर के	कुलभद्र०	जगमाल ने	"	"	"	"
१६—वजवार के	बलाहा०	जेता ने	"	विमलनाथ	"	"
१७—मारोट के	मोरक्षगौ०	वागा ने	"	नेमिनाथ	"	"
१८—कटपुर के	ब्राह्मण	हेरदेव ने	"	महावीर	"	"
१९—वर्द्धमान के	प्राग्वट०	करमण ने	"	"	"	"
२०—कपीलपुर के	प्राग्वट०	गोंदा ने	"	"	"	"
२१—शत्रुंजय पर	श्रेष्टि गौ०	चूड़ा ने	"	पार्श्वनाथ	"	"
२२—सोपार० के	कुंमट गौ०	पोमा ने	"	"	"	"
२३—चन्द्रावती के	बाप्प नाग०	राणा ने	"	शान्तिनाथ	"	"
२४—टेलीपुर के	आदित्य नाग०	आदू ने	"	"	"	"

२५—सत्यपुर के प्राग्वट० भीमा ने " महावीर " "
२६—श्रीनगर के श्रीमाल० भोलाने " " " "
२७—उपकेशपुरके कनोजिया० दोलाने " " " "

वंशावलियों में कई दुकालों में द्रव्य व्यय कर देश की सेवा करने वाले उदार पुरुषों के नामों का जैसे उल्लेख किया है वैसे ही विदेशियों के साथ युद्ध कर देश की रक्षा करने वाले वीरों के नामों का भी उल्लेख किया है। उस समय के उपकेशवंशी लोग सबके सब व्यापार नहीं करते थे पर बहुत से लोग राज करते थे तथा राज के मंत्री महामंत्री वगैरह उच्चपद पर नियुक्त हो राजतंत्र भी चलाते थे और आज की भांति उनका वैवाहिक क्षेत्र संकुचितभी नहीं था पर उन जैन क्षत्रियों का विवाह शादी अजैन क्षत्रियों के साथ भी होता था और उन्हें समय समय प्रतिपक्षियों के साथ युद्ध भी करना पड़ता था तथा जो लोग व्यापार करते थे वे भी आज की भांति कमजोर नहीं थे। पर बड़ी भारी वीरता रखते थे पूर्व प्रकरणों में आप पढ़ आये है कि भारतीय व्यापारी अन्य प्रदेशों में जा जा कर उपनिवेश स्थापन किये थे वे व्यापार करते थे पर दल बल क्षत्रियोंके सदृश ही रखते थे।

इत्यादि आचार्य सिद्धसूरि का शासन जैन समाज की उन्नति का समय था आपके शासन में जैन समाज मन धन व्यवसाय और धर्म से समृद्धशाली था आचार्य सिद्धसूरि अपने २२ वर्ष के शासन में जैन समाज की बड़ी कीमती सेवा बजाई थीं अन्त में विक्रम संवत १९९ में आप स्वर्ग धाम को पधार गये

बीसवें पट्टधर सिद्धसूरीश्वर विद्यागुण भंडारी थे
शासन के हित सब कुच्छ करते चमत्कार सुचारी थे
ज्ञान दिवाकर लब्धि धारक अहिंसाधर्म प्रचारी थे
उनके गुणों का पार न पाया सुर गुरु जिभ्या हजारी थे

इति भगवान् पार्श्वनाथ के बीसवें पट्ट पर आचार्य सिद्धसूरि परम प्रभाविक आचार्य हुए"

२१—आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि (चतुर्थ)

धृत्वा पारस द्रव्य राशिमसकौ वंशावतंसोऽभवत् ।
यो रत्नप्रभसूरि नाम विदितो योगेश्वरो विद्यया ॥
ख्यातो लोकसमूह आत्मवशता सामर्थ्यभारेण च ।
लोकान् जैन मतेतरान् विहितवान् जैनान् प्रभापुंजयुक् ॥

आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा में आप चतुर्थ रत्नप्रभसूरि थे। वादि रूप चर्तुगति के अन्त करने में आप चक्रवर्ति सदृश विजयी थे। आपश्री का पवित्र जीवन परम रहस्यमय था। आप हंसावली नगरी के उपकेशवंशीय श्रेष्ठिवर्य्य शाह जसा की धर्म परायण सुलक्षणा भार्या पातोली के प्यारे पुत्र रत्न थे। शाहजसा एक साधारणस्थिति का गृहस्थ था पर आप सकुटुम्ब धर्मकरनी में इतना संलग्न थे कि जितना मिले उसमें संतोष कर अहिर्निश धर्म कार्य करने में ही अपना समय व्यतीत करते थे। बस इनके जैसा दुनियां में कोई सुखी एवं संतोषी ही नहीं है।

आचार्य श्री सिद्धसूरि के अनुयायी वाचक श्री धर्मदेव वृद्धावस्था के कारण हंसावली में ही स्थिरवास कर रहते थे। शाह जसा आपका परमभक्त एवं श्रद्धासम्पन्न श्रावक था जसा ने वाचकजी की विनयभक्ति करके जैनधर्म के तत्व ज्ञानमय सिद्धान्त का खूब अभ्यास किया अपनी नित्यक्रिया सामायिक प्रतिक्रमण के अलवा जीवाजीव का स्वरूप और कर्मसिद्धान्त का तो आप इतना मर्मज्ञ हो गया कि उसको हटाने के लिये खूब ही प्रयत्न किया करते थे पर पूर्वजन्म की अन्तराय भी इतनी जबरदस्त थी कि जसा अपने कुटुम्ब का पालनपोषण बड़ी मुश्किल से करता था फिर भी वह पुद्गलिक दुःख सुखों को एक कर्मों का खेल ही समझता था पर कहा है कि दुःख के अन्त में सुख और सुख के अन्त में दुःख हुआ ही करता है कारण, कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से अमावस्या तक अंधेरा बढ़ता ही जाता है पर आखिर तो शुक्लपक्ष आही जाता है अतः कृष्ण पक्ष का भी अन्त है। जब शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से उद्योत बढ़ता-बढ़ता पूर्णिमा तक पूर्णोद्योत हो जाता है तब फिर चक्र के अनुसार पुनः कृष्ण पक्ष आही जाता है और ऐसे अनंताकाल चक्र व्यतीत हो गया और भविष्य में होगा। इस बात को शाह जसा अच्छी तरह समझ गया था। कहा है कि श्रद्धा का मूल कारण ज्ञान ही है और ज्ञान से ही श्रद्धा दृढ़ मजबूत रहती है। शाह जसा भी इसी कोटि का मनुष्य था कि उसका हाड़ और हाड़ की मींजी जैनधर्म में रंगी हुई थी। जैसे शाह जसा धर्मज्ञ था वैसे ही उसकी पत्नी पतोली भी धर्म करणी में अहर्निश तत्पर रहती थी। इतना ही क्यों पर जसा का सब कुटुम्ब ही धर्म परिवार कहा जाता था। बात भी ठीक है कि जैसे मुख्य पुरुष होता है वैसे ही उनका परिवार भी होता है।

२५—सत्यपुर के प्राग्वट० भीमा ने " महावीर " "
२६—श्रीनगर के श्रीमाल० भोलाने " " " "
२७—उपकेशपुरके क़नौजिया० दोलाने " " " "

वंशावलियों में कई दुकालों में द्रव्य व्यय कर देश की सेवा करने वाले उदार पुरुषों के नामों का भी उल्लेख किया है वैसे ही विदेशियों के साथ युद्ध कर देश की रक्षा करने वाले वीरों के नामों का भी उल्लेख किया है। उस समय के उपकेशवंशी लोग सबके सब व्यापार नहीं करते थे पर बहुत से लोग राज करते थे तथा राज के मंत्री महामंत्री वगैरह उच्चपद पर नियुक्त हो राजतंत्र भी चलाते थे और आज की भांति उनका वैवाहिक क्षेत्र संकुचितभी नहीं था पर उन जैन क्षत्रियों का विवाह शादी अजैन क्षत्रियों के साथ भी होता था और उन्हें समय समय प्रतिपक्षियों के साथ युद्ध भी करना पड़ता था तथा जो लोग व्यापार करते थे वे भी आज की भांति कमजोर नहीं थे। पर बड़ी भारी वीरता रखते थे पूर्व प्रकरणों में आप पढ़ आये है कि भारतीय व्यापारी अन्य प्रदेशों में जा जा कर उपनिवेश स्थापन किये थे वे व्यापार करते थे पर दल बल क्षत्रियोंके सदृश ही रखते थे।

इत्यादि आचार्य सिद्धसूरि का शासन जैन समाज की उन्नति का समय था आपके शासन में जैन समाज मन धन व्यवसाय और धर्म से समृद्धशाली था आचार्य सिद्धसूरि अपने २२ वर्ष के शासन में जैन समाज की बड़ी कीमती सेवा बजाई थीं अन्त में विक्रय संवत १९९ में आप स्वर्ग धाम को पधार गये

बीसवें पट्टधर सिद्धसूरीश्वर विद्यागुण भंडारी थे
शासन के हित सब कुच्छ करते चमत्कार सुचारी थे
ज्ञान दिवाकर लब्धि धारक अहिंसाधर्म प्रचारी थे
उनके गुणों का पार न पाया सुर गुरु जिभ्या हजारी थे

इति भगवान् पार्श्वनाथ के वीसवें पट्ट पर आचार्य सिद्धसूरि परम प्रभाविक आचार्य हुए"

२१—आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि (चतुर्थ)

धृत्वा पारस द्रव्य राशिमसकौ वंशावतंसोऽभवत् ।
यो रत्नप्रभसूरि नाम विदितो योगेश्वरो विद्यया ॥
ख्यातो लोकसमूह आत्मवशता सामर्थ्यभारेण च ।
लोकान् जैन मतेतरान् विहितवान् जैनान् प्रभापुंजयुक् ॥

आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा में आप चतुर्थ रत्नप्रभसूरि थे। वादि रूप चर्तुगति के अन्त करने में आप चक्रवर्ति सदृश विजयी थे। आपश्री का पवित्र जीवन परम रहस्यमय था। आप हंसावली नगरी के उपकेशवंशीय श्रेष्ठिवर्य्य शाह जसा की धर्म परायण सुलक्षणा भार्या पातोली के प्यारे पुत्र रत्न थे। शाहजसा एक साधारणस्थिति का गृहस्थ था पर आप सकुटुम्ब धर्मकरनी में इतना संलग्न थे कि जितना मिले उसमें संतोष कर अहिर्निश धर्म कार्य करने में ही अपना समय व्यतीत करते थे। बस इनके जैसा दुनियां में कोई सुखी एवं संतोषी ही नहीं है।

आचार्य श्री सिद्धसूरि के अनुयायी वाचक श्री धर्मदेव वृद्धावस्था के कारण हंसावली में ही स्थिरवास कर रहते थे। शाह जसा आपका परमभक्त एवं श्रद्धासम्पन्न श्रावक था जसा ने वाचकजी की विनयभक्ति करके जैनधर्म के तत्व ज्ञानमय सिद्धान्त का खूब अभ्यास किया अपनी नित्यक्रिया सामायिक प्रतिक्रमण के अलवा जीवाजीव का स्वरूप और कर्मसिद्धान्त का तो आप इतना मर्मज्ञ हो गया कि उसको हटाने के लिये खूब ही प्रयत्न किया करते थे पर पूर्वजन्म की अन्तराय भी इतनी जबरदस्त थी कि जसा अपने कुटुम्ब का पालनपोषण बड़ी मुश्किल से करता था फिर भी वह पुद्गलिक दुःख सुखों को एक कर्मों का खेल ही समझता था पर कहा है कि दुःख के अन्त में सुख और सुख के अन्त में दुःख हुआ ही करता है कारण, कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से अमावस्या तक अंधेरा बढ़ता ही जाता है पर आखिर तो शुल्कपक्ष आही जाता है अतः कृष्ण पक्ष का भी अन्त है। जब शुल्क पक्ष की प्रतिपदा ने उद्योत बढ़ता-बढ़ता पूर्णिमा तक पूर्णोद्योत हो जाता है तब फिर चक्र के अनुसार पुनः कृष्ण पक्ष आही जाता है और ऐसे अनंताकाल चक्र व्यतीत हो गया और भविष्य में होगा। इस बात को शाह जसा अच्छी तरह समझ गया था। कहा है कि श्रद्धा का मूल कारण ज्ञान ही है और ज्ञान से ही श्रद्धा दृढ़ मजबूत रहती है। शाह जसा भी इसी कोटि का मनुष्य था कि उसका हाड़ और हाड़ की मींजी जैनधर्म में रंगी हुई थी। जैसे शाह जसा धर्मज्ञ था वैसे ही उसकी पत्नी पतोली भी धर्म करणी में अहर्निश तत्पर रहती थी। इतना ही क्यों पर जसा का सब कुटुम्ब ही धर्म परिवार कहा जाता था। बात भी ठीक है कि जैसे मुख्य पुरुष होता है वैसे ही उनका परिवार भी होता है।

२५—सत्यपुर के	प्राग्वट०	भीमा ने	"	महावीर	"	"
२६—श्रीनगर के	श्रीमाल०	भोलाने	"	"	"	"
२७—उपकेशपुरके	कनौजिया०	दोलाने	"	"	"	"

वंशावलियों में कई दुकालों में द्रव्य व्यय कर देश की सेवा करने वाले उदार पुरुषों के नामों का भी उल्लेख किया है वैसे ही विदेशियों के साथ युद्ध कर देश की रक्षा करने वाले वीरों के नामों का भी उल्लेख किया है। उस समय के उपकेशवंशी लोग सबके सब व्यापार नहीं करते थे पर बहुत से लोग राज करते थे तथा राज के मंत्री महामंत्री वगैरह उच्चपद पर नियुक्त हो राजतंत्र भी चलाते थे और आज की भांति उनका वैवाहिक क्षेत्र संकुचितभी नहीं था पर उन जैन क्षत्रियों का विवाह शादी अजैन क्षत्रियों के साथ भी होता था और उन्हें समय समय प्रतिपक्षियों के साथ युद्ध भी करना पड़ता था तथा जो लोग व्यापार करते थे वे भी आज की भांति कमजोर नहीं थे। पर बड़ी भारी वीरता रखते थे पूर्व प्रकरणों में आप पढ़ आये है कि भारतीय व्यापारी अन्य प्रदेशों में जा जा कर उपनिवेश स्थापन किये थे वे व्यापार करते थे पर दल बल क्षत्रियोंके सदृश ही रखते थे।

इत्यादि आचार्य सिद्धसूरि का शासन जैन समाज की उन्नति का समय था आपके शासन में जैन समाज मन धन व्यवसाय और धर्म से समृद्धशाली था आचार्य सिद्धसूरि अपने २२ वर्ष के शासन में जैन समाज की बड़ी कीमती सेवा बजाई थीं अन्त में विक्रय संवत १९९ में आप स्वर्ग धाम को पधार गये

बीसवें पट्टधर सिद्धसूरीश्वर विद्यागुण भंडारी थे
शासन के हित सब कुच्छ करते चमत्कार सुचारी थे
ज्ञान दिवाकर लब्धि धारक अहिंसाधर्म प्रचारी थे
उनके गुणों का पार न पाया सुर गुरु जिभ्या हजारी थे

इति भगवान् पार्श्वनाथ के बीसवें पट्ट पर आचार्य सिद्धसूरि परम प्रभाविक आचार्य हुए"

नहीं चाहता हो। जसा तुम बड़े ही भाग्यशाली हो कि श्रीसंघ को इस प्रकार लाभ पहुँचाने की प्रेरणा की है। हम बहुत खुशी हैं और विनती के लिये साथ चलने को भी तैयार हैं और आशा है कि सूरिजी महाराज अपने पर अवश्य कृपा करेंगे इत्यादि जयध्वनि के साथ निश्चय कर लिया कि आज ही रवाना हो जाना चाहिये। श्रीसंघ के अन्दर से कई २५ श्रावक तैयार हो गये।

उस समय आचार्य कक्कसूरि नागपुर नगर में विराजमान थे। हंसावली के श्रावक चल कर शीघ्र ही नागपुर आये और श्रीसंघ की विनती सूरिजी के सामने रखी। सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जान कर विननी स्वीकार करली। बस, हंसावली के श्रीसंघ के एवं शाह जसा और आपकी पत्नी पातोली के मनोरथ सिद्ध हो गये। आचार्य श्रीकक्कसूरिजी आपने शिष्य मंडल के साथ विहार करते हुए क्रमशः हंसावली पधार गये। श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज का बड़ा ही शानदार स्वागत किया।

शाह जसादि श्रीसंघ ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर! यहां के श्रीसंघ की इच्छा है कि आपश्रीजी के मुखारविन्द से परम प्रभाविक पंचमाङ्ग श्रीभगवतीजी सूत्र सुनें। सूरिजी ने कहा बहुत खुशी की बात है। बस, फिर तो था ही क्या, शाह जसादी श्रीसूत्रजी के महोत्सव की तैयारी करने में लग ही गया और भाग्यशालिनी पातोली देवी का दोहला पूर्ण होने से उसके हर्ष का पार भी न रहा। शाह जसा बाजे गाजे एवं बड़ी ही धामधूम पूर्वक सूत्रजी को अपने मकान पर लाया और रात्रि जागरण पूजा प्रभावना की दूसरे दिन स्वामिवात्सल्य किया बाद वरघोड़ा चढ़ाया जिसमें केवल जैन ही नहीं पर जैनेतर एवं सम्पूर्ण नगर निवासी एवं राजा राजकर्मचारी लोग शामिल थे। श्रेष्ठिवर्य जसा एवं पातोली देवी ने इस महोत्सव एवं ज्ञानपूजा में सवा करोड़ द्रव्य व्यय किया. जिसके पास पारस है वहां द्रव्य की क्या कमती है।

जब श्रीसूत्रजी बचना प्रारम्भ हुआ तो प्रत्येक प्रश्न को सेठानी पातोली सुवर्ण मुद्रिका से पूजन करती थी एवं ३६००० प्रश्नों की छत्तीस हजार सुवर्ण मुद्रिका से पूजा की और उस द्रव्य से जैनागमों को लिखा कर भंडारों में रखवा दिये। धन्य है उन दानवीरों को कि जिनशासन के उत्थान के लिये अपनी लक्ष्मी व्यय करने में खूब ही उदारता रखते थे। यद्यपि शाह जसा के पास पारस होने से उसके धन की कमी नहीं थी परन्तु इसमें भी उदारता की आवश्यकता है कारण हम ऐसे मनुष्यों को भी देखते हैं कि जिन्हों के पास बहुत द्रव्य है पर उदारता न होने से उनका लाभ नहीं उठा सकते हैं।

आचार्य कक्कसूरिजी के चतुर्मास के अन्दर ही माता पातोली ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। जिसका अनेक महोत्सव के साथ राणा नाम रक्खा। क्रमशः राणा चम्पकलता की भांति बड़ा हो रहा था आचार्य श्री ने राणा की हस्त रेखा या अन्य लक्षणों से कहा था कि श्राविका! यह तेरा पुत्र जैनधर्म में महा प्रभाविक होगा। माता ने कहा पूज्यवर! आपके वचनों को मैं बंधा कर लेती हूँ।

इधर तो श्रीभगवती सूत्र बच रहा था उधर जसा के मंदिरजी का काम चल रहा था फिर भी जसा बहुत से कारीगरों को रख कर जहां तक बन सके मंदिर जल्दी से तैयार कराने की कोशिश में था। जहां द्रव्य की छूट हो वहां क्या नहीं हो सकता है। केवल दिन को ही नहीं परन्तु रात्रि में भी काम होता था और कारीगरों को मनमानी तनख्वाह दी जाती थी और साथ में इनाम देने की भी घोषणा करदी थी। बस, फिर तो देरी ही क्या थी थोड़े ही दिनों में मूल गंभारा शिखर और रंगमंडप तैयार हो गया।

शाह जसा ने सोचा कि आयुष्य का क्या विश्वास है। जब जैन मंदिर मूलगम्भारा और रंगमंडप

सेठानी पतोली एक समय अर्द्ध निन्द्रावस्था में सो रही थी तो वह स्वप्न में क्या देखती है कि एक सफेद हाती गगन से उतारता हुआ मुँह में प्रवेश करता है इतने में तो माता जाग उठी और अपने स्वप्न को सावधानी से याद कर अपने पतिदेव को स्वप्ने का सब हाल कहा पतिदेव ने कहा प्रिये! तू भाग्यशालिनी है और इस शुभ स्वप्न से ज्ञात होता है कि तेरे उदर में कोई भाग्यशाली जीव अवतीर्ण हुआ है इत्यादि जिसको श्रवण कर धर्मप्रिय पातोली ने बहुत हर्ष मनाया ! बस मानों कि शाह जसा के पुष्ट अन्तराय कर्म को तोड़ कर नष्ट करने को ही स्वर्ग से एक सुभट आया हो ।

इधर शाह जसा बरसात के अन्त में जंगल गया था वहाँ उसने एक पारस का खण्ड देखा। जसा शास्त्रों का ज्ञाता था पारस को पहचान लिया पर अदत के भय से उसे नहीं लिया पर जब जसा दो चार कदम आगे बढ़ा तो एक अदृश्य आवाज हुई कि जसा यह पारस तेरी तक़दीर में लिखा हुआ है मैं तुझे अर्पण करता हूँ तू इसे ले जाकर इसका सदुपयोग करना इत्यादि ।

शाह जसा ने सोचा कि यह अदृश्य प्रेरणा करने वाला कौन होगा और यदि मैं इस पारस को ले भी लूँ तो मेरे पीछे अनेक प्रकार की उपाधियाँ बढ़ जायगी । एवं धर्म कार्य्य में अन्तराय पड़ेगी । अतः जसा ने कहा कि इस पारस को आप किसी योग्य पुरुष को ही दीजिये । जवाब मिला कि इस कार्य के लिये जसा तू ही योग्य है तब उस अदृश्य व्यक्ति के आग्रह से शाह जसा ने प्रणामपूर्वक पारस को ग्रहण कर अपने मकान पर आगया इधर पातोली ने अपने पतिदेव को कहा कि आज रात्रि में मुझे और भी स्वप्न आया जिसमें मैंने देखा है कि आपको बड़ा भारी लाभ हुआ और अपना घर धन से भर गया । इस का क्या अर्थ होगा ? शाह जसा ने कहा भद्रे ! तू बड़ी पुन्यवती है और तेरा स्वप्न सफल भी होगया है । तेरे और तेरे गर्भ के प्रभाव से आज मुझे पारस मिला है । देखो यह पारस मैं ले आया हूँ

बस, फिर तो था ही क्या शाह जसा ने उस पारस से पुष्कल सुवर्ण बना लिया । सबसे पहिले तो उसने एक विशाल जिनमन्दिर बनाना शुरू कर दिया अब तो जसा खर्च करने में कमी ही क्यों रखें । उस मन्दिर के लिये ९६ अंगुल की सुवर्णमय भगवान् महावीर की मूर्ति बनाने का निश्चय किया और इस मंदिर में एक करोड़ रुपये खर्च करने का संकल्प भी कर लिया ।

इधर पातोलीदेवी ने गर्भ की प्रेरणा से नगर के पूर्व दिशा में जनोपयोगी एक विशाल तालाब बनाना शुरू कर दिया । इसके अलावा भी दम्पति ने कई सुकृत कार्य में खुल्ले दिल से द्रव्य व्यय करने लगे । जिसमें भी साधर्मी भाइयों के लिये तो आपका लक्ष्यविशेष रहता था कारण जसा जानता था कि मनुष्य आर्थिक संकट में जीवन किस प्रकार निकालता है ।

इधर देवी पातोली को दोहला उत्पन्न हुआ कि गुरुवर्य आचार्य कक्कसूरिजी महाराज के मुखारविन्द से मैं महाप्रभाविक श्री भगवतीजी सूत्र सुनूं । इस दोहले की बात अपने पतिदेव को कही तो शाह जसा के हर्ष का पार नहीं रहा और उसी वक्त अपने पुत्र सालग को कहा कि तुम जाओ सूरिजी महाराज को विनती कर चतुर्मास के लिये यहां लाओ । सालिग ने कहा कि आपकी आज्ञा तो मुझे स्वीकार है पर मेरी राय में यहां के श्रीसंघ की ओर से विनती हो तो और भी अच्छा रहेगा ? शाह जसा के बात जंच गई और तत्काल ही श्रीसंघ को एकत्र किया और कहा कि आचार्य श्रीकक्कसूरि को चतुर्मास के लिये विनती की जाय अतः आप स्वीकृति दिरावें । श्रीसंघ ने कहा कि ऐसा हतभाग्य कौन है कि कल्पवृक्ष को अपने घर पर बुलाना

नहीं चाहता हो। जसा तुम बड़े ही भाग्यशाली हो कि श्रीसंघ को इस प्रकार लाभ पहुँचाने की प्रेरणा की है। हम बहुत खुशी हैं और विनती के लिये साथ चलने को भी तैयार हैं और आशा है कि सूरिजी महाराज अपने पर अवश्य कृपा करेंगे इत्यादि जयध्वनि के साथ निश्चय कर लिया कि आज ही रवाना हो जाना चाहिये। श्रीसंघ के अन्दर से कई २५ श्रावक तैयार हो गये।

उस समय आचार्य कक्कसूरि नागपुर नगर में विराजमान थे। हंसावली के श्रावक चल कर शीघ्र ही नागपुर आये और श्रीसंघ की विनती सूरिजी के सामने रखी। सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जान कर विनती स्वीकार करली। बस, हंसावली के श्रीसंघ के एवं शाह जसा और आपकी पत्नी पातोली के मनोरथ सिद्ध हो गये। आचार्य श्रीकक्कसूरिजी आपने शिष्य मंडल के साथ विहार करते हुए क्रमशः हंसावली पधार गये। श्रीसंघ ने सूरिजी महाराज का बड़ा ही शानदार स्वागत किया।

शाह जसादि श्रीसंघ ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! यहां के श्रीसंघ की इच्छा है कि आपश्रीजी के मुखारविन्द से परम प्रभाविक पंचमाङ्ग श्रीभगवतीजी सूत्र सुनें। सूरिजी ने कहा बहुत खुशी की बात है। बस, फिर तो था ही क्या, शाह जसादी श्रीसूत्रजी के महोत्सव की तैयारी करने में लग ही गया और भाग्यशालिनी पातोली देवी का दोहला पूर्ण होने से उसके हर्ष का पार भी न रहा। शाह जसा बाजे गाजे एवं बड़ी ही धामधूम पूर्वक सूत्रजी को अपने मकान पर लाया और रात्रि जागरण पूजा प्रभावना की दूसरे दिन स्वामिवात्सल्य किया बाद वरघोड़ा चढ़ाया जिसमें केवल जैन ही नहीं पर जैनेतर एवं सम्पूर्ण नगर निवासी एवं राजा राजकर्मचारी लोग शामिल थे। श्रेष्ठिवर्य जसा एवं पातोली देवी ने इस महोत्सव एवं ज्ञानपूजा में सवा करोड़ द्रव्य व्यय किया. जिसके पास पारस है वहां द्रव्य की क्या कमती है।

जब श्रीसूत्रजी वचना प्रारम्भ हुआ तो प्रत्येक प्रश्न को सेठानी पातोली सुवर्ण मुद्रिका से पूजन करती थी एवं ३६००० प्रश्नों की छत्तीस हजार सुवर्ण मुद्रिका से पूजा की और उस द्रव्य से जैनागमों को लिखा कर भंडारों में रखवा दिये। धन्य है उन दानवीरों को कि जिनशासन के उत्थान के लिये अपनी लक्ष्मी व्यय करने में खूब ही उदारता रखते थे। यद्यपि शाह जसा के पास पारस होने से उसके धन की कमी नहीं थी परन्तु इसमें भी उदारता की आवश्यकता है कारण हम ऐसे मनुष्यों को भी देखते हैं कि जिन्हों के पास बहुत द्रव्य है पर उदारता न होने से उनका लाभ नहीं उठा सकते हैं।

आचार्य ककसूरिजी के चतुर्मास के अन्दर ही माता पातोली ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। जिसका अनेक महोत्सव के साथ राणा नाम रक्खा। क्रमशः राणा चम्पकलता की भांति बड़ा हो रहा था आचार्य श्री ने राणा की हस्त रेखा या अन्य लक्षणों से कहा था कि श्राविका ! यह तेरा पुत्र जैनधर्म में महा प्रभाविक होगा। माता ने कहा पूज्यवर ! आपके वचनों को मैं वधा कर लेती हूँ।

इधर तो श्रीभगवती सूत्र वच रहा था उधर जसा के मंदिरजी का काम चल रहा था फिर भी जसा बहुत से कारीगरों को रख कर जहां तक बन सके मंदिर जल्दी से तैयार कराने की कोशिश में था। जहां द्रव्य की छूट हो वहां क्या नहीं हो सकता है। केवल दिन को ही नहीं परन्तु रात्रि में भी काम होता था और कारीगरों को मनमानी तनख्वाह दी जाती थी और साथ में इनाम देने की भी घोषणा करदी थी। बस, फिर तो देरी ही क्या थी थोड़े ही दिनों में मूल गंभारा शिखर और रंगमंडप तैयार हो गया।

शाह जसा ने सोचा कि आयुष्य का क्या विश्वास है। जब जैन मंदिर मूलगम्भारा और रंगमंडप

तैयार हो गया है तो मैं सूरिजी के कर कमलों से प्रतिष्ठा करवा लूं । सेठजी ने अपनी सेठानी की सलाह ली तो वह भी सेठजी से सहमत हो गई तब जसा ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! यह जैन मंदिर तैयार हो गया है इसकी प्रतिष्ठा करवा कर हम लोगों को कृतार्थ बनाइये शेष जो कार्य रहा है वह मैं बाद में करवा लूंगा क्योंकि आप जैसे पूज्य पुरुषों का संयोग हमको बार बार मिलना कहां पड़ा है ? इत्यादि।

सूरिजी ने कहा जसा ! तू बड़ा ही भाग्यशाली है । धर्म के कार्य्य में क्षण मात्र भी विलम्ब नहीं करना चाहिये । कारण, शास्त्रकारों ने कहा है कि 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' अतः 'धर्मस्तत्वरतागति' अर्थात् धर्मकार्य्य शीघ्र ही कर लेना चाहिये । दूसारा आयुष्य का भी तो क्या विश्वास है—

शाह जसा ने चतुर शिल्पियों को बुला कर ९६ अंगुल प्रमाण की सुवर्णमय भगवान महावीर की मूर्ति बनवाई और इसके अलावा बहुत सर्व धातु और पाषाण की मूर्तियां भी बनवाई ।

शाह जसा ने सूरिजी से प्रार्थना की कि पूज्यवर ! मेरी इच्छा है कि आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी की भी एक मूर्ति बनवा कर इसी मंदिर में एक देहरी बना कर स्थापन करवाऊं । कारण हम लोगों पर सबसे पहला उपकार उन पूज्य परमोपकारी आचार्य महाराज का ही हुआ है ।

सूरिजी ने कहा जसा ! उपकारी पुरुषों का उपकार मानना कृतज्ञ पुरुषों का सब से पहिला कर्तव्य है पर उपकार इस प्रकार से माना जाय कि आगे चल कर अपकार का कारण न बन जाय । तीर्थङ्करों के मन्दिर में आचार्यों की मूर्तियें स्थापन करनी और तीर्थङ्करों की पूजा की तरह से आचार्यों की पूजा होनी यह एक तीर्थङ्करों की आशातना है । कारण, तीर्थङ्करों के पांच कल्याणक हुये वैसे आचार्यों के पांच कल्याणक नहीं हुये हैं । आचार्यों के केवल एक दीक्षा कल्याणक हुआ है फिर उनको जल चन्दनादि की पूजा किस कल्याणक की कराई जा सके । दूसरा भाव तीर्थङ्करों की पुष्पादि से अग्रपूजा होती थी अतः स्थापना तीर्थङ्करों की पुष्पों से अग्रपूजा कर सकते हो पर भाव आचार्य कि पुष्पादि से पूजा होना किसी शास्त्र में नहीं कहा है तो स्थापनाचार्य की पुष्पादि से पूजा कैसे की जा सकती है ? जसा इस बात को तुम दीर्घ दृष्टि से विचार कर सकता है— कि भविष्य में इस भक्तिका क्या नतीजा होगा—

दूसरे तीर्थंकर निश्चय मोक्षगामी हैं तब आचार्य के लिए भजना है । आचार्य की तो भव्याभव्य का भी निश्चय नहीं है वे तीर्थकरों की बराबर कैसे पूजा सकते हैं । भले कई आचार्य अतिशय प्रभाविक हों या तीर्थंकरों द्वारा उनका निर्णय भी हो जाय कि यह मोक्षगामी हैं जैसे रत्नप्रभसूरि का हुआ है पर तीर्थंकरों के मन्दिर में आचार्यों की मूर्त्तियें स्थापन कर पूजा करने की प्रवृत्ति चल पड़ी तो भविष्य में जितने आचार्य होंगे उनके अनुयायी अपने २ आचार्यों की मूर्त्तियाँ तीर्थंकरों के मन्दिर में स्थापन करेंगे तो मन्दिर आचार्यों की मूर्त्तियों से ही भर जायगा । इतना ही क्यों पर इसमें रागद्वेष इतना बढ़ जायगा कि वे आपस में अपने अपने आचार्यों की मूर्त्तियां तीर्थङ्करों के मंदिर में स्थापन करने के लिये लड़ेंगे झगड़ेंगे और कर्मक्षय करने के स्थान कर्म बन्ध के स्थान बन जायँगे और उनके पक्षपाती श्राद्धवर्ग भी इसी मार्ग का अनुकरन करेंगे। अतः धर्म के स्थान अधर्म की वृद्धि होगी इसलिये मैं आपके विचार से सहमत नहीं हो सकता हूं ।

जसा ने कहा पूज्य गुरुदेव आपकी दीर्घ दृष्टि के विचार मेरी समझ में आगये हैं पर एक शंका और भी पूछ लेता हूं कि कि सिद्धचक्रजी के गटा में नौपद की स्थापना है उसमें आचार्य उपाध्याय और साधु इन तीनों की भी स्थापना है और वे तीर्थङ्करों के साथ पूजे भी जाते हैं तो क्या वहाँ भी आशातना है ?

सूरिजी—जसा ! नौपदजी के गट्टा में जो आचार्योपाध्याय और साधु की स्थापना है वह वर्तमान काल की नहीं है पर भूतकाल की है अर्थात् आचार्य होकर मोक्ष गये उपाध्याय होकर मोक्ष गये और साधु होकर मोक्ष गये जिसको नैगमनय के मत से भूतकाल की वर्तमान में स्थापना कर पूजे जाते हैं ।

जसा—पूज्यवर ! तब तो अन्य लिंगी और गृहस्थलिंगी भी मोक्ष जाते हैं उनकी भी स्थापना उसी लिंग में होनी चाहिये ?

सूरिजी—जसा ! अन्य लिंगी और गृहस्थलिंगी मोक्ष जाते हैं वह बिना भाव चरित्र के मोक्ष नहीं जाते हैं । अन्य लिंगी प्रथम गुणस्थान और गृहस्थलिंगी पहले से पांचवे गुणस्थान वृति होते हैं जब वे छट्ठा गुणस्थान को स्पर्श करते हुए ऊपर चढ़ते हैं तब जाकर वे तेरहवें गुणस्थान कैवल्य ज्ञान प्राप्त करते हैं। अतः उनकी अलग स्थापना की जरूरत नहीं पर वे साधु पद में ही गिने जाते हैं ।

जसा—क्यों पूज्यवर ! आदि तीर्थंकरों के मन्दिर में न करवा कर एक अलग मन्दिर बनवा कर गुरुदेव की मूर्ति स्थापित की जाय तो क्या हर्ज है ?

सूरिजी—जसा ! मैं हर्ज की बात नहीं करता हूँ पर भविष्य की बात करता हूँ । जैसे आचार्य रत्नप्रभसूरि का तुम पर उपकार है वैसा मुझ पर भी है पर आप सोचिये कि गणधर सौधर्म एवं जम्बु तो केवली आचार्य हुये हैं । क्या उनके कोई भी भक्त नहीं थे कि किसी ने उनकी मूर्ति एवं मन्दिर नहीं करवाया । पर वे लोग अच्छी तरह से समझते थे कि मन्दिर और मूर्तियां केवल तीर्थंकरों की ही होती हैं कि जिन्हों के पांच कल्याणक हुये हों ।

जसा—क्यों गुरुदेव ! श्रीसिद्धगिरि तीर्थ पर एवं उपकेशपुर में आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि जी महाराज के थूँभ है तब यहाँ बनवाने में क्या हर्ज है ?

सूरिजी—तब ही तो तुम्हारी भावना हुई है और तुम्हारी देखा देखी पीछे दूसरों की भी भावना होगी और वही बात मैं कह रहा हूँ । जसा थूंभ करवाना दूसरी बात है और तीर्थंकरों के मन्दिर में आचार्यो की मूर्ति स्थापन करवा कर तीर्थंकरों की भाँति जल चन्दन पुष्पादि से पूजा करवाना दूसरी बात है । थूंभ तो केवल एक स्मृति चिन्ह होता है । जिसकी तीर्थंकरों की भाँति पूजा नहीं की जाती है ।

जसा—क्यों गुरु महाराज ! स्थापनाचार्य्य रखे जाते हैं यह भी तो एक गुरु मूर्ति ही है फिर गुरु मूर्ति बनाने में क्या हर्जा है ?

सूरिजी—गुरु स्थापना रखना शास्त्र में कहा है पर मूर्ति और स्थापनाचार्य में अन्तर है । कारण मूर्ति की सदैव जल चन्दनादि से पूजा होती है तब स्थापनाजी का भावस्तव किया जाता है । मूर्ति के लिये मन्दिरादि स्थान की आवश्यकता रहती है तब स्थापना साधुओं के पास रहती है । स्थापना गुरुभाव से रक्खी जाती है तब मूर्ति की पूजा जन्मादि कल्याणक की भाँति होती है ।

जसा—ठीक है गुरु महाराज आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । पर आप मुझे ऐसा रास्ता बतलावें कि मैं किसी प्रकार से गुरु भक्ति करके अपने मनोरथ को पूर्ण कर सकूं ।

सूरिजी—जसा ! इसके लिये अनेक मार्ग हैं पर सबसे बढ़िया बात ... सब आगम लिखवा कर ज्ञान भंडार में स्थापन कर दो कि भविष्य में बड़ा भारी लाभ हो ... सबसे उत्तम गुरुभक्ति है । दूसरे गुरु महाराज की आज्ञा धर्म प्रचार बढ़ाने की है उस

जसा-तथास्तु ।

जसा ने मंदिरजी के पास एक ओर औषधशाला और दूसरी ओर एक ज्ञान भंडार बनाने का निश्चय कर लिया । और उसी समय कार्य प्रारंभ कर दोनों स्थान तैयार करवा दिये—

सूरिजी ने एक दिन अपने व्याख्यान में षट्द्रव्य का वर्णन करते हुये काल द्रव्य का इस खूबी के साथ व्याख्यान दिया कि संसार के जीवाजीव जितने पदार्थ हैं उन सब पर काल की धाक है । काल सब की अवधि को पूर्ण कर देता है । देवता कब चाहते हैं कि हमारे सुखों की अवधि पूर्ण हो जाय, पल्योपम और सागरोपम की स्थिति भी क्षय हो जाती है तब अस्थिर काल की स्थिति वाले मनुष्य का तो कहना ही क्या है । धन, कुटुम्ब, मान, प्रतिष्ठा और लक्ष्मी की भी अवधि हुआ करती है । उस अवधि के अन्दर ही मनुष्य कुछ कर लेते हैं तो हो सकता है वरना पछताने के सिवाय और क्या हाथ लगता है इत्यादि ।

शाह जसा सूरिजी के उपदेश से सावधान हो गया और सोचा कि मेरे पास में पारस है पर इसकी भी तो अवधि होगी । इसके चले जाने पर तो मेरी वही स्थिति रहेगी जो पहले थी । अतः इसके अतिरक्त में मुझे इसका सदुपयोग कर लेना चाहिये । सब से पहिले तो मंदिरजी की प्रतिष्ठा करवाने का कार्य्य मेरे सामने है इसको शीघ्र ही कर लेना चाहिये । शाह जसा ने इस प्रतिष्ठा के कार्य्य में लोहे की जगह सोने से काम लेना शुरू किया । प्रतिष्ठा पर पधारने वाले साधर्मि भाइयों के लिये सोने के थाल और कंठिये तैयार करवाये जिसके पास खास पारस है वह क्या नहीं कर सकता है ।

शाह जसा ने इस प्रतिष्ठा के लिए बड़ी २ तैयारियें करनी शुरू करदीं और दूर दूर आमंत्रण पत्रिकायें भेज कर स्वधर्मी भाइयों को बुलवाये । इधर जिन मंदिरों में अष्टान्हिक महोत्सव प्रारम्भ हो गया । उधर सूरिजी महाराज ने उन नूतन मूर्तियों की अंजनसिलाका कार्य्य प्रारम्भ करवा दिया । सुवर्णमय मूर्ति के नेत्रों के साथ ऐसी मणिये लगवाई गई कि रात्रि में दीपक की आवश्यकता नहीं रहती थी ।

प्रतिष्ठा के समय केवल श्राद्धवर्ग ही नहीं आये थे पर हजारों साधु साध्वियां दूर दूर से पधारे थे कई राजा महाराज भी आये थे और श्रावकों की तो गिनती ही नहीं थी ।

एक पट्टावली में इस प्रतिष्ठा का समय माघ शुक्ला १३ का लिखा है तब प्रबन्धकार ने फाल्गुन शुक्ल सप्तमी का लिखा है । शायद मूर्तियों की अंजनसिलाका माघ शुक्ल १३ की हुई हो और मंदिरजी की प्रतिष्ठा फाल्गुण शुक्ल सप्तमी की हुई हो और यह बात संभव भी हो सकती है क्योंकि इतना बड़ा महोत्सव पच्चीस दिन रहा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है । या दोनों कार्य्यों का मुहूर्त अलग २ हो ।

शुभ मुहूर्त में शाह जसा और सेठानी पतोली ने भगवान महावीर की सुवर्णमय मूर्ति अपने हाथों से स्थापित की । मंदिरजी पर सुवर्ण कलस अपने पुत्र राणा जो एक नवजात बालक था के हाथ से स्थापित कराया । पट्टावलीकार लिखते हैं कि उस समय सुमधुर वायु और थोड़ा सा जल तथा आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई थी । ऐसे पुन्य कार्य्यों में देवता कब पीछे रहने वाले थे वे भी तो इस प्रकार का लाभ उठावें इसमें आश्चर्य ही क्या ? जसा के अन्य पुत्रादि कुटुम्ब वालों ने दंड ध्वज तथा अन्य मूर्तियों स्थापन कर लाभ हासिल किया—और आचार्य कक्कसूरि ने सब के ऊपर वासक्षेप डाला ।

पूजा प्रभावना स्वामिवात्सल्य मुहूर्त की शुरुआत से ही हो रहा था पर महोत्सव के अंत में स्वर्ण

भाइयों को सोने के थाल एवं सोना की कंठियों और वस्त्रों की पहरावणी दी तथा याचकों को एक एक सौ सुवर्ण मुद्रिकाएँ एवं वस्त्र भूषण आदि बहुत सा धन माल देकर जसा ने अपने यशः को अमर बना दिया।

इस सुअवसर पर आचार्य कक्कसूरि ने आये हुये साधुओं में जो पदवियों योग्य थे उनको पदवियें प्रदान कर जैनशासन की बड़ी भारी उन्नति की इतना ही क्यों पर हंसावली के राजा रामदेव पर भी सूरिजी का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा कि उसने स्वयं मांस मदिरा का त्याग कर अपने राज में किसी निरपराधी जीव को नहीं मारने की उद्घोषणा कर दी "यथा राजा तथा प्रजा" इस महा वाक्यानुसार अन्य भी बहुत से लोगों ने मांस मदिरादि मिथ्यात्व का त्याग कर अहिंसाधर्म को स्वीकार किया।

अहा हा ! पूर्व जमाने में साधु और श्रावकों की धर्म पर कैसी अटूट श्रद्धा थी और वे दोनों एक दिल हो जैन धर्म की उन्नति एवं जैनधर्म का किस प्रकार प्रचार करते थे जिसका यह एक उज्वल उदाहरण है। आचार्य शासन के शुभचिंतक थे तब श्रावक लोग आचार्यों का आशीर्वाद लेना चाहते थे। भले ही आचार्य मुँह से आशीर्वाद शब्द का उच्चारण नहीं करते होंगे पर उनकी आज्ञा का पालन करने से तथा उनकी इच्छानुसार कार्य्य करने से उनकी अन्तरात्मा स्वयं आशीर्वाद दे दिया करती थी।

आज हम देखते हैं कि शायद ही कोई प्रतिष्ठा निर्विघ्नतया समाप्त होती हो कारण पहिले तो आचार्य को नाम का हो चाहे काम का हो पर स्वार्थ अवश्य रहता है जब श्रावक भी ऐसे ही होते हैं कि अपना काम निकल जाने पर आचार्यों को पूछते ही नहीं हैं कि वे कहां वसते हैं दोनों ओर स्वार्थ का साम्राज्य जमा हुआ हैं अर्थात जहां स्वार्थ होता है वहां स्नेह ठहर ही नहीं सकता है।

शाह जसा ने सूरिजी महाराज की खूब भक्ति कर लाभ उठाया श्रीभगवतीजी सूत्र वचाया और नूतन मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई और इन दोनों कार्यों से जैनधर्म की प्रभावना भी अच्छी हुई तत्पश्चात सूरिजी महाराज हंसावली नगरी से विहार कर अन्य प्रदेश में पधार गये। शाह जसा ने कई कोसों तक सूरिजी महाराज के विहार में साथ में रह कर भक्ति की, सच्ची भक्ती इसका ही नाम है। शाह जसा बड़ा ही भाग्यशाली था। आपके गृहदेवी पातोली और लघुपुत्र राणा तो दो कदम आगे थे—

जैसे आज श्रावकों के नाम पर्वतसिंह, पहाड़सिंह, जोधसिंह, सबलसिंह, शार्दूलसिंह, उमरावसिंह वगैरह होते हैं वैसे नाम पहिले श्रावकों के नहीं होते थे हाँ उनके नाम दो तीन अक्षरों के ही होते थे किन्तु वे लोग काम आज के श्रावकों से कई गुणे अधिक करते थे देखिये

सेठानी पातोली ने श्री भगवती सूत्र वँचाया जिसमें करीबन एक करोड़ द्रव्य ज्ञान खाते में व्यय किया। हंसावली के बाहर एक सरोवर-तालाब बनाया जिसमें एक करोड़ द्रव्य खर्च किया जब शाह जसा ने मन्दिर और मूर्त्तियों के निमित्त एक करोड़ क्या ही क्यों कई करोड़ द्रव्य शुभ क्षेत्र में व्यय कर दिया और केवल एक हंसावलि का श्रेष्ठवर्य जसा ही नहीं पर ऐसे अनेक दानेश्वरों ने जिन मन्दिरों से मेदनी मण्डित करदी थी परंतु कालांतर धर्मान्ध म्लेच्छों के आक्रमण से वे सब मन्दिर बच नहीं सके। इसका मुख्य कारण एक तो धर्मान्धता थी और दूसरे पहिले जमाने में प्रतिष्ठा के समय मूर्ति के नीचे गुप्त भंडार रखा जाता था और उसमें श्रीसंघ पुष्कल द्रव्य डाल देते थे शायद उनका आशय तो कभी जीर्णोद्धार में वह द्रव्य काम आने का ही होगा परन्तु परिणाम कुछ उलटा ही हुआ कि उस द्रव्य के लोभ से वे लोग मन्दिर तोड़ डालते थे। यही कारण है कि आज प्राचीन मंदिर बहुत कम नजर आते हैं। प्राचीन ग्रन्थों से पाया जाता है कि

कुमारिया (कुतिनगरी) में एक समय तीन सौ मंदिर थे। चंद्रावती (आबू के पास) में ३६० मंदिर थे पद्मावती (पुष्कर) में पाँच सौ जैन मंदिर थे। तक्षिला में पाँच सौ मंदिर थे पाटण में ३०० मंदिर थे उपकेशपुर में १०० मंदिर तो बारहवी शताब्दी में थे इसके पूर्व कितने ही होंगे इत्यादि प्रत्येक नगर में इस प्रकार मंदिरों की विशाल संख्या थी। जब आज विक्रम् की दशवीं ग्यारहवीं शताब्दी के भी बहुत कम मंदिर मिलते हैं। हाँ सम्राट सम्प्रति के बनाये लाखों मंदिरों से कोई २ मंदिर एवं मूर्त्तियाँ अवश्य मिलती खैर कुछ भी हो पर मंदिर मूर्त्तियें बनाने वालों ने तो अपनी उज्जल भावना से पुंज्योपार्जन कर ही लिया था

शाह जसा के करने योग्य कार्य्य में अब केवल एक तीर्थ यात्रा निमित्त संघ निकालना ही शेष रह गया था। उसके लिये श्रेष्ठवर्य्य हर समय भावना रखता था कि कब मुझे समय मिले और कब मैं अपने मनोरथ को सफल बनाऊँ। सेठानी की भी यही भावना थी और इस बात की चर्चा भी होती थी—

शाह जसा ने अपने पास के पारस कों मूँजियों की लक्ष्मी की तरह भंडार में नहीं रख छोड़ा था पर उसका हमेशा सदुपयोग करता था। हंसावली का तो क्या पर कोई भी साधर्मी भाई शाह जसा के घर पर आ निकलता तो वह रीते हाथ कभी नहीं जाता था पर उस समय ऐसे लोग थे भी बहुत कम जो दूसरों की आसा पर जीवें। फिर भी काल दुकाल या म्लेच्छों के आक्रमण समय जसा याद आ ही जाता—

कभी २ शाहजसा स्वामीवात्सल्य करता था तो एक दो दिन का नहीं पर लगातार मास दो मास तक स्वामी वात्सल्य किया ही करता था। जिन मन्दिरों की भक्ति तो बारह मास चलती ही रहती थी तमाम खर्चा शाह जसा की ओर से होता था। इस प्रकार जसा का यश सर्वत्र फैल गया था—

मरुधर में कभी २ छोटा बड़ा दुकाल भी पड़ा करता था। शाह जसा के और दुकाल के ऐसी ही अनबन थी कि वह अपने देश में दुकाल का आना तो क्या पर पैर भी नहीं रखने देता था। केवल एक अपना देश (मरुधर) ही क्यों पर शाह जसा तो भारत के किसी देश में काल का नाम सुन लेता तो हाथ में लकड़ी (लक्ष्मी) लेकर उसको शीघ्र ही वहाँ से भगा देता था धन्य है ऐसे नर रत्नों को कि जिन्होंने संसार में जन्म लेकर जैन धर्म की बड़ी २ सेवायें कर उसको उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया।

आचार्य कक्कसूरीश्वरजी महाराज जैन धर्म में अद्वितीय प्रभाविक थे। एक प्रांत में नहीं पर प्रत्येक प्रांत में घूम २ कर जैन धर्म का खूब प्रचार किया करते थे। हंसावली में मंदिर की प्रतिष्ठा करवाने के बाद आपने देशटन के लिये विहार कर दिया। लाट सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्ध, पंजाब, सौरसेन, मरुधरादि प्रान्तों में घूमने में कम से कम दस वर्ष तो लग ही जाते थे और उपकेशगच्छाचार्य्यों की यह एक पद्धति थी कि सूरी पद पर प्रतिष्ठित होने के बाद कम से कम एक बार तो इन प्रांतों में वे अवश्य भ्रमण किया करते थे।

इधर शाह जसा अपनी धर्मपत्नी पातोली के साथ आत्मकल्याणर्थ धर्म कार्य साधन करने में संलग्न थे। पातोली का पुत्र राणा क्रमशः बड़ा हो रहा था। उसके माता-पिता की धार्मिकता का प्रभाव उस पर पड़ना ही था। ज्ञानाभ्यास में उसकी अधिक रुचि एव सरस्वती की कृपा थी। उसने श्रावक के करने योग्य क्रिया-सामायिक प्रतिक्रमण देववन्दनादि सब क्रियायें तथा नौ तत्त्व कर्म ग्रन्थादि कंठस्थ कर लिया था। जब राणा करीब १२ वर्ष का हुआ तो एक समय उसके माता पिता बातें कर रहे थे कि जैन गृहस्थों के करने काबिल दो कार्य तो कर लिये अर्थात् श्री भगवती सूत्र को बँचाना और जैन मंदिर की प्रतिष्ठा करवाना पर एक कार्य तीर्थयात्रार्थ संघ निकालना शेष रहा है। अगर गुरु महाराज का पधारना हो जाय तो इसको भी शीघ्र कर लिया जाय इत्यादि

पास बैठे हुए राणा ने भी सब बातें सुनी और उसने कहा माता ! दो कार्य्य आपने किये तो एक कार्य्य तो मुझे करने दीजिये । माता ने कहा बेटा तू बड़ा ही पुण्यशाली है जब तू गर्भ में आया था उस दिन से ही हम लोग इस प्रकार का अनुभव करने लगे हैं और तेरे पिता और मैंने जो कार्य्य कर पाये हैं वह तेरी पुण्यवानी का ही कारण है और संघ निकालने का कार्य्य शेष रहा है वह शायद तेरे लिये ही रहा होगा वरना इतने दिनों का बिलम्ब होने का कारण ही क्या था । कारण तेरे पिता के पास सब साधन था पर कुदरत ने यह कार्य्य खास तौर पर तेरे लिये ही रखा है । अतः बेटा ! तू संघपति बनकर अवश्य संघ निकाल मैं भी तेरे संघ में साथ चलकर तीर्थों की यात्रा करके अपना जन्म को सफल बनाऊंगी ।

माता की बात सुनकर राणा को हर्ष हुआ । इधर राणा के पिता जसा ने भी राणा को कहा बेटा ! एक संघ ही क्या पर तेरे से जितना धर्म कार्य बन सके तू खुल्ले दिल से कर लक्ष्मी चञ्चल है, इसका जितना शुभकार्यों में उपयोग हो उतना ही अच्छा है राणा था तो एक बारह वर्ष का बचा पर पूर्व भव के संस्कारों के कारण उसकी प्रज्ञा एवं धर्म भावना अच्छे २ समझदारों से भी बढ़ चढ़ के थी । राणा ने अपनी माता से पूछा कि अपने गुरु महाराज कब पधारेंगे ? माता ने कहा बेटा वे महात्मा अतिथि हैं । उनको आने का निश्चय नहीं है । यदि बेटा तू चाहे तो गुरुदेव को जल्दी भी लासकता है । राणा ने कहा माता मैं तो चाहता हूँ कि आचार्यश्री जल्दी से पधारें और मैं संघ निकाल कर तीर्थों की यात्रा करूँ । अतः तू यह बतला कि वे गुरु महाराज कैसे जल्दी पधार सकें जिसका मैं प्रयत्न करूँ ? माताने कहा गुरु महाराज परोपकारी हैं जहाँ उपकार के कार्य होता हो वहाँ जल्दी पधार जाते हैं अतः तूँ जाकर गुरु महाराज को विनती कर कि वे जल्दी पधारें । बेटाने कहा कि तूँ यह तो बतला कि गुरु महाराज विराजते कहाँ हैं ? कि मैं वहाँ जाकर विनती करूँ । माता ने कहा कि तेरे पिता से मैंने सुना है कि आचार्यश्री अभी मथुरा में विराजते हैं । बेटा ने कहा ठीक है तब मैं मथुरा जाकर विनती करूंगा । माता ने कहा बेटा मथुरा यहाँ से नजदीक नहीं पर बहुत दूर है । बेटा ने कहा कि दूर हो तो क्या हुआ जरूरी काम होतो दूर भी जाना पड़ता है । देखिये व्यापारी लोग व्यापारार्थ कितनो दूर जाते हैं । माता ने कहा तूँ जाता है तो तुम्हारे पिता को भी साथ ले जा राणा ने कहा ठीक है आने दे पिताजी को इत्यादि मां बेटे बातें करते थे । इतने में शाह जसा घर पर आगया । तुरंत ही राणा ने कहा पिताजी मैं गुरु महाराज को लेने के लिए जाता हूँ आप भी मेरे साथ चलें पिता ने कहा कि क्या तूँ गुरु महाराज का चेला बनेगा ? राणा ने कहा मुझे तो तीर्थयात्रा का संघ निकालना है क्यों कि श्रीभागवती सूत्र मां ने वँचाया आपने मंदिर की प्रतिष्ठा करवाई तो अब तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकालना मेरा काम है इसलिए मैं गुरु महाराज को बुलाने के लिये जाता हूँ सेठ जी बहुत खुश हुये और कहाकि अच्छा बेटा मैं तेरे साथ चलूँगा । शाह जसा के कहने से और भी बहुतसे धर्म प्रेमी तैयार होगये क्योंकि खर्चा तो सब जसा का ही लगता था अतः वे सब चलकर मथुरा पहुँचे और सूरिजी को हंसावली पधारने की विनती की । जब राणा और सूरिजी के वार्तालाप हुआ तो सूरिजी को बड़ा ही आनन्द आया । राणा एक होनहार बालक था । सूरिजीने तो राणा के जन्म समय ही धारणा करली थी कि यह बालक भविष्य में शासन का प्रभाविक पुरुष होगा । वे ही चिन्ह आज नजर आरहे हैं । सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जानकर बालकुंवर राणा की विनती स्वीकार करली । बस, आये हुये हंसावली के लोग खुश होकर वापिस लौट गये और सूरिजी मथुरा से विहार कर मरुधर की ओर आने लगे । जब सूरिजी हंसावली के

नजदीक पधारे तो श्रीसंघ ने बड़े ही समारोह से नगर प्रवेश का महोत्सव किया। और बड़े ही धाम धूम से नगर प्रवेश करवाया।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था। राणा ने संघ निकालने की बात कही पर ऋतु गरमी की आगई थी। श्रीसंघ और विशेष राणा की विनती से सूरिजी ने चतुर्मास हंसावली में करने का निश्चय कर लिया। बस फिर तो था ही क्या राणा के मनोरथ सफल होगये राणा सूरिजी की सेवा भक्ति करता हुआ ज्ञानाभ्यास करने में इस प्रकार तत्पर होगया कि मानों सूरिजी का एक लघु शिष्य ही हो।

बालकुमार राणा को तो निकालना था संघ इसलिये ही तो विनती कर सूरिजी को लाया था। राणाने अपने माता पिता को कहा कि गुरुदयाल पधार गये हैं अब निकालो संघ ? शाह जसा ने कहा बेटा संघ चतुर्मास में नहीं निकलता है चतुर्मास समाप्त होने के बाद निकाला जायगा। शाह जसा ने सूरिजी एवं श्रीसंघ की आज्ञा लेकर पहले से ही संघ की तैयारियां कराना शुरु कर दिया। क्योंकि जसा ने जैसे श्रीभगवतीजी सूत्र तथा मंदिर प्रतिष्ठा का धाम धूम से महोत्सव किया था वैसे ही संघ के लिये करना था। और संघपति बनाना था राणा को फिर इस संघ में कमी ही किस बात की रह सके। खूब दूर दूर के प्रदेश में आमंत्रण पत्रिकायें भिजवादीं। शाह जसा कोई साधारण व्यक्ति नहीं था जसा की ओर से सोने के थाल की पहरावणी सर्वत्र प्रसिद्ध थी अतः खूब गहरी तादाद में साधर्मी भाई एकत्र हुये इधर साधु साध्वियों की संख्या बहुत थी जिसमें कई पद प्रतिष्ठित—पदवीधर भी थे। सूरिजी के दिये हुये शुभ मुहूर्त में बालकुमार राणा को संघपति पद से विभूषित किया। राणा के दो वृद्ध भ्राता और चार लघु बान्धव भी थे अतः सात पुत्र का पिता शाह जसा और माता पातोली संघ की सेवा में अपने जीवन की सफलता समझ रहे थे।

सूरिजी महाराज की अध्यक्षता में संघ प्रस्थान कर क्रमशः चलता हुआ उपकेशपुर आया भगवान महावीर की यात्रा ध्वजमहोत्सव और देवी सच्चायिका के दर्शन किये। वहाँ से श्रीसिद्धगिरी के लिये रवाना हुये रास्ते में जहाँ जहाँ मंदिर आये वहाँ वहाँ दर्शन कर आवश्यकतानुसार द्रव्य दिया इतना ही क्यों पर गरीबों का उद्धार याचकों को दान जीवदयादि अनेक पुन्य कार्य्य करते हुये पहला गिरनारादि सब तीर्थों की यात्रा करते हुये जब संघ तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय पहुँचा तो तीर्थराज के दर्शन करते ही आनंद की लहर में कई भवों के किये हुये पातक नष्ट हो गये। उस पुनीत तीर्थ के प्रभाव को तो वहां जाने वाले भुक्त भोगी ही जान सकते हैं। वहां के परमाणु इतने स्वच्छ होते हैं कि भावुकों के अन्तःकरण को साफ निर्मल बना देते हैं। संघपति राणा था तो बालक पर उनके पूर्व जन्म के ऐसे संस्कार थे कि वह तीर्थयात्रा कर बड़े ही आनन्द को प्राप्त हो गया। शाह जसा ने अष्टान्हिकमहोत्सव, ध्वजारोपण महोत्सव और स्वामीवात्सल्यादि सब कार्य बड़े ही उत्साह से किया और इन शुभकार्यों में खुल्ले दिल से द्रव्य व्यय किया जिसको अपना अहोभाग्य समझा। जब संघ ने वापिस लोटने का विचार किया तो सूरिजी ने कहा कि मैं अब यहां रह कर अन्तिम आराधना करूंगा और मेरे बहुत से साधु आपके साथ संघ में चलेंगे। इस पर संघ के लोगों ने निराश होकर अर्ज की कि प्रभो ! आप जैसे संघ लाये हैं वैसे पहुँचा दें। सूरिजी ने कहा कि इसमें मुझे कोई एतराज नहीं है पर जब मेरी वृद्धावस्था है और यह शरीर यहीं छूटे तो अच्छा है इत्यादि समझाने से श्रीसंघ तो समझ गया पर संघपति राणा ने कह दिया कि सूरिजी यहीं तो होवे चलेंगा बरना मैं सूरिजी के पास ही रहूँगा। सूरिजी ने मजाक में कहा राणा तेरी तीर्थयात्रा तो हो गई है

अब संयम यात्रा शेष रही है अब तू दीक्षा लेकर मेरी अन्तिम सेवा कर कि जनता का उद्धार करने में समर्थ बन जाय इत्यादि। जिस जीव के पूर्व जन्म का संस्कार और कर्मों का क्षयोपशम होता है उसको थोड़ा उपदेश भी अधिक असर कर देता है। बस राणा के दिल में यह बात जच गई कि मैं तो सूरिजी के पास दिक्षा लूंगा। राणा अपने माता पिता के पास आया और कहा कि मैं तो सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लूंगा। पर माता पिता कब आज्ञा देने वाले थे कि राणा तूँ दीक्षा लेले। माता पिता और राणा के बहुत चर्चा हुई। माता पिता ने कहा राणा अपने घर में पारस है जिससे लोहा का सुवर्ण बन जाता है अतः घर में रह कर धर्माराधना करो? जवाब में राणा ने संयम के सामने लक्ष्मी की असारता बतला कर माता पिता को ठीक समझा दिये। राणा तो जनता का राणा ही निकला। उसने पुनीत तीर्थराज की शीतल छाया में बड़े ही समारोह में सूरिजी के कर कमलों से भगवती जैन दीक्षा ग्रहण कर ही ली।

सूरिजी ने संघपति की माला शाह जसा को पहना दी और शाह जसा संघ को लेकर वापिस लौट गया। शाह जसा बड़ा ही धर्मज्ञ एवं समझदार था। पहिले तो मोहनीय कर्म के कारण पुत्र को दीक्षा के लिये खींचातानी की थी। पर राणा की दीक्षा होने के पश्चात उसने सोचा कि राणा पहिले से ही भाग्यशाली था और दीक्षा लेने पर तो और भी पूजनीय हो गया है। मेरा ऐसा भाग्य ही कहां कि मेरा पुत्र दीक्षा ले। मेरा कर्तव्य था कि मैं भी पुत्र के साथ दीक्षा लेता पर अभी मेरे कर्मों का जोर है। माता पावोली ने कहा पतिदेव सोच किस बात है यदि यही राणा परलोकवासी हो जाता तो आप क्या करते इससे तो दीक्षा लेना अच्छा ही है। सेठजी ने कहा सेठानी तूँ बड़ी पुन्यवती है तेरी कुक्ष को धन्य है कि तेरे पुत्र ने सूरिजी के हाथों से दीक्षा ली है इससे बढ़ के पुन्य ही क्या हो सकता है इस प्रकार दम्पति खुशी मनाते हुये संघ लेकर पुनः अपने नगर में आये। बाद जसा ने स्वामिवात्सल्य कर संघ को सोने की कंठियां और वस्त्र की पोशाक देकर विसर्जन किया। याचकों को इच्छित दान दिया। जसा की कीर्ति पहिले ही दूर दूर फैली हुई थी अब तो जसा का यशः भूमण्डल व्यापक बन गया।

आचार्य कक्कसूरि ने बालकुमार राणा को दीक्षा देकर उसका नाम रत्नभूषण रख दिया मुनि रत्नभूषण पहले से ही विद्या का प्रेमी था पूर्व भव में ज्ञान पद एवं सरस्वती की आराधना की थी फिर भी सूरिजी महाराज की पूर्ण कृपा कि थोड़ा ही समय में आपने सम्पूर्ण एकादश अंगों के साथ कई पूर्वों का ज्ञान भी कण्ठस्थ कर लिया। इतना ही क्यों पर सूरिजी महाराज ने मुनि रत्नभूषण को पात्र समझ कर कई अतिशय विद्यायें भी प्रदान कर दीं। अतः रत्नभूषण मुनि की सर्वत्र प्रसिद्धि हो गई।

आचार्यश्री ने देवीसच्चायिकाके कथनानुसार अपना आयुष्य नजदीक जानकर उपाध्याय विशाल मूर्ति को अपने पद पर स्थापन कर आपका नाम देवगुप्त सूरि रख दिया बाद २१ दिन के अनशनपूर्वक स्वर्ग हुए।

आचार्य श्रीदेवगुप्तसूरि केवल तीन वर्ष ही सूरि पद पर स्थित रहे उनके बाद आचार्य सिद्धसूरि हुये आप श्री की भी रत्नभूषण पर पूर्ण कृपा थी। मुनि रत्नभूषण उम्र में तो बहुत छोटा था पर आपका ज्ञान बहुत विशाल था तथा आपको योग्य समझ कर आचार्य श्रीसिद्धसूरि ने वाचनाचार्यजी पद से विभूषित बना दिया था। कई मुनि आपकी सेवा में उपस्थित हो आगमों की वाचना लिया करते थे। शास्त्रार्थ में तो आप इतने निपुण थे कि कई राजा महाराजाओं की सभा में बौद्ध एवं दिगम्बराचार्यों को नतमस्तक कर जैनधर्म की ध्वजा पताका सर्वत्र फहरा दी थी यही कारण था कि आपका नाम सुनने मात्र से वादी पदरा

कर दूर भागते थे। शाकम्भरी के राजा नागभट ने आपको वादी चक्रवर्ती का विरुद्ध इनायत किया था अतः आप वादी-चक्रवर्ती के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध थे।

आचार्य श्रीसिद्धसूरि ने अपनी अन्तिम अवस्था में वाचनाचार्य रत्नभूषण को सूरि पद से विभूषित कर आपका नाम रत्नप्रभसूरि रख दिया था।

आचार्य्य रत्नप्रभसूरि इस नाम में न जाने क्या जादू की शक्ति एवं बिजली सा तेज रहा हुआ था कि आचार्य पद प्रतिष्ठित होते ही आपका इतना प्रभाव बढ़ गया कि चक्रवर्ती की भांति अपना विजयचक्र आपके आगे आगे बढ़ता ही रहा। आप श्रीमान जिस किसी प्रांत में विहार करते उस २ प्रांत में धर्म जागृति एवं धर्मोन्नति का विजयचक्र स्थापित कर ही देते थे।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने पहिला ही चतुर्मास सत्यपुर में किया और वहाँ आपने शाह लाखन के पुत्र धर्मशी आदि अष्टादश नरनारियों को दीक्षा दी और धर्मशी का नाम धर्ममूर्त्ति रख दिया था। वास्तव में वह एक धर्म की प्रतिमूर्त्ति ही था तत्पश्चात् सूरिजी ने उपकेशपुर पधार कर भगवान महावीर की यात्रा की वहाँ से आप नागपुर पधारे वहाँ अदित्यनाग गोत्रीय शाह सहजपाल के आग्रह से चर्तुमास कर व्याख्यान में श्रीभगवतीजी सूत्र वांचा जिसके महोत्सव एवं पूजा में सहजपाल ने सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया तथा चर्तुमास के बाद भद्रगोत्रिय शाह देवा ने पुनीत तीर्थ श्री सिद्धगिरि का विराट संघ निकाला। इस संघ में हजारों साधु साध्वी और लाखों भावुकों की संख्या थी संघ क्रमशः शत्रुंजय पहुँच कर भगवान युगादीश्वर की यात्रा की। शाह देवा ने संघ पूजा तीर्थ पूजा अष्टान्हिका एवं ध्वज महोत्सव किया। इन पुनीत कार्य्यों में शाह देवा ने पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि की इच्छा थी दक्षिण की ओर विहार करने की अतः आप तो वहीं रहे और उपाध्याय कनककुशल तथा वाचनाचार्य देवकुशल आदि मुनिगण संघ के साथ वापिस लौट आये। शाह देवा ने नागपुर में आकर स्वामि-वात्सल्य किया और संघ के प्रत्येक श्रावक को सवासेर लड्डू और पांच पांच सुवर्ण मुद्रिकायें तथा वस्त्रादि की पहरामणि देकर विसर्जन किया। धन्य है ऐसे नररत्नों को कि जिन्हों की उज्वल कीर्ति आज भी इतिहास के पृष्ठों पर गर्जना कर रही है।

आपश्री ने पुनीत तीर्थ श्रीशत्रुंजय की यात्रा कर अपने शिष्य मंडल के साथ दक्षिण की ओर विहार कर दिया था। घूमते घूमते महाराष्ट्रीय प्रान्त में पधारे वहाँ की जनता में खूब ही चहल पहल मच गई। वहाँ पहिले से ही आपके बहुत साधु विहार करते थे उन्होंने सुना कि आचार्य रत्नप्रभसूरिजी महाराज का पधारना महाराष्ट्रीय प्रान्त में हो रहा है अतः बहुत से साधु साध्वियां सूरिजी के दर्शनार्थ आरहे थे। आचार्य श्री ने उनका धर्म प्रचार देखकर प्रसन्नता प्रगट की। तदनन्तर सूरिजी महाराज अपने शिष्य समुदाय के साथ नंदपुर, पिष्टपुर, गुडतुर, ऐलोर, नेदुतुर आभीयपुर, कोकनाड़ा, काजलुरु, माचपुर, गुडीवडनगर, गुंतुपल्ली, जागीया, कोंही, रावलपानु, तल्लेगी, विजयनेर, कोथरू, वरणीकोट, हाडीकोट, पाकुगंट, मुगलेच, मानखेड, मानखेट, महोली, खेटपुर तपाली आदि कई ग्राम नगरों में भ्रमण करते हुये मानखेट के श्रीसंघ के आग्रह से चतुर्मास वहाँ ही कर दिया इस विहार के अन्दर कई मुमुक्षुओं को जैनदीक्षा देकर जैनधर्म की प्रभावना की दूसरे सूरीश्वरजी बड़े ही समयज्ञ थे और आप यह भी जानते थे कि जिस देश का उद्धार करना है तो

उस देश के वीरों को साधु बनाना चाहिये कि वे अपने देश के रीतिरिवाज रहन सहन आचार व्यवहार के मर्मज्ञ होने से थोड़े परिश्रम से भी जनता का कल्याण कर सकते हैं।

सूरिजी के चतुर्मास करने से केवल एक नगर में ही नहीं पर आस पास के ग्रामों के लोगों पर भी जैनधर्म का काफी प्रभाव पड़ा था और कई जैनेतरों ने जैनधर्म भी स्वीकार किया था।

जिस समय आचार्य रत्नप्रभसूरि महाराष्ट्रीय प्रान्त में भ्रमण कर जैनधर्म का प्रचार कर रहे थे उस समय बौद्धभिक्षु भी वहाँ अपने धर्म का प्रचार में लगे हुए थे परन्तु सूरिजी के आज्ञावृति कई साधु पहले से ही वहाँ विचरते थे उसमें देवभद्र और वीरभद्र नाम के दो साधु शास्त्रार्थ में बड़े ही निपुण थे कई राजा महाराजाओं की सभा में वेदान्तियों एवं बौद्धों का पराजय कर वादियों पर पूरी धाक जमा दी थी फिर सूरीश्वरीजी का पधारना हो गया तब तो कहना ही क्या ?

प्रायः करके सूरिजी का व्याख्यान राजसभाओं में ही हुआ करता था। इस प्रकार सूरिजी ने दो वर्ष तक महाराष्ट्रीय प्रान्त में सर्वत्र घूम घूम कर जैनधर्म का प्रचार बढ़ाया था। यों तो महाराष्ट्रीय प्रान्त में आचार्य लोहित्य ने जैनधर्म की नींव डाली थी पिछले आचार्यों ने उसका सिंचन कर मजबूत बनाया था पर सूरिजी महाराज के पधारने और २ वर्ष तक सर्वत्र विहार करने से जैनधर्म और भी उन्नति पर पहुँच गया था सूरिजी ने कई योग्य साधुओं को पद प्रतिष्ठित बना कर उनके उत्साह में वृद्धि की और उसी प्रान्त में विहार करने की आज्ञा देकर आप वहाँ से वापिस लौटकर क्रमशः विहार करते हुये आवंती प्रदेश में पदार्पण किया और घूमते २ उज्जैन नगरी की ओर पधार रहे थे वहाँ के श्रीसंघ के साथ श्रेष्ठिगोत्रिय मंत्री रघुवीर ने सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव किया जिसमें सवा लक्ष रुपये शुभ कार्य्य में व्यय किये।

श्रीसंघ के आग्रह से वह चतुर्मास सूरिजी ने उज्जैन में करना निश्चय कर लिया बस फिर तो था ही क्या जनता का उत्साह कई गुणा बढ़ गया। भद्रगोत्रीय शाह माला ने बड़े ही महोत्सव के साथ सूरिजी से महाप्रभाविक श्रीभगवतीसूत्र वचाया जिसमें शाह माला ने हीरा पन्ना माणिक मोतियों से ज्ञान की पूजा की और प्रत्येक प्रश्न की सुवर्ण मुद्रिका से पूजाकर शास्त्रजी को बड़ी रूची से सुना। अहा ! उस जमाने में जैन श्रीसंघ की धर्म पर एवं आगमों पर कैसी भक्ति एवं श्रद्धा थी कि एक एक धर्म कार्य्यों में लाखों करोड़ों द्रव्य खर्च कर देते थे। चतुर्विध श्रीसंघ ने सूरिजी के मुखारविन्द से श्रीभगवतीसूत्र सुनकर अपने जीवन को सफल बनाया। और द्रव्य की आनन्द से आगम लिखा कर उनको चिरस्थायी बनाये।

बाद चतुर्मास के बाप्पनागगोत्रीय शाहमेघा के बनाये पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर की प्रतिष्ठा बड़े ही धूमधाम से करवाई और इस सुअवसर पर ८ पुरुष और १३ बहिनों को सूरिजी ने भगवती जैनदीक्षा देकर उनका उद्धार किया एवं सूरिजी के विराजने से आवंती देश में जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई।

उज्जैन से विहार कर सूरिजी आवंती प्रदेश में घूम रहे थे वहाँ मथुरा के संघ अग्रेश्वर सूरिजी की सेवा में उपस्थित हुये और प्रार्थना की कि पूज्यवर ! इस समय मथुरा में बौद्धाचार्य्य बुद्धकीर्ति आया हुआ है और वह व्यान्तरिक बल से जैनों को उपद्रव कर धर्म से पतित बनाने की कोशिश कर रहा है। अतः आप शीघ्र मथुरा पधारकर जैन संघ की रक्षा करें हम इसीलिये आये हैं कि आप सब प्रकार से समर्थ हैं। आपके पूर्वजों ने भी अनेक स्थानों पर संघ रक्षा की है। अतः आप मथुरा जल्दी पधारें ?

सूरिजी ने फरमाया कि महानुभावो ! आपके इतने आग्रह की आवश्यकता नहीं है यह तो हमारा

कर्त्तव्य ही है कि संघ में उपद्रव होता हो तो हम प्रयत्न करें। आप निशंक रहें हम शीघ्र ही मथुरा पहुँचेंगे। सूरिजी के वचन सुन संघ अग्रेश्वरों को संतोष हुआ कि अपना परिश्रम सफल हो गया है। संघनायकों ने सोचा कि जब सूरिजी जल्दी ही पधारने वाले हैं तो अपने भी सूरिजी की सेवा का लाभ क्यों न उठावें। बस, सुबह होते ही सूरिजी ने विहार कर दिया और मथुरा के श्रावक भी सूरिजी के साथ होगये। बिना विलम्ब थोड़ा समय में ही सूरिजी महाराज मथुरा पहुँच गये। संघनायक ने आगे जाकर शुभ समाचार सबको सुना दिये फिर तो था ही क्या सबका उत्साह बढ़ गया। और सूरिजी का बड़ा ही शानदार स्वागत किया।

सूरिजी महाराज के पास एक धर्ममूर्ति नाम का बाल शिष्य था वह विद्या मंत्र में बड़ा ही निपुण था। उसने सूरिजी के मंगलाचरण के पश्चात् आम जनता में शास्त्रार्थ के लिये उद्घोषणा करदी कि यदि कोई भी व्यक्ति शास्त्रार्थ करना चाहता हो तो धर्मवाद, विद्यावाद, मंत्रवाद जैसा वादी चाहे वैसा ही शास्त्रार्थ करने को हम तैयार हैं। बस सब नगर में जहाँ देखो वहाँ यही चर्चा हो रही थी। जैनों का उत्साह खूब बढ़ गया अतः वे लोग कहने में कब चूकने वाले थे। आओ मैदान में और करो शास्त्रार्थ।

रात्रि समय बौद्धाचार्य्य ने एक शक्ति को सूरिजी के मकान पर भेजी पर सूरिजी के सब साधु ज्ञान ध्यान कर रहे थे शक्ति का कुछ भी जोर नहीं चला पर जब इस बात का पता धर्ममूर्ति को लगा तो उसने अपने विद्याबल से उस शक्ति को ऐसी जकड़कर बांधली कि साथ में बौद्धाचार्य्य भी बँध गया। बौद्धाचार्य्य ने बहुत उपाय किया पर न तो आप बन्धनमुक्त हो सका और न शक्ति ही वापिस आसकी। सुबह भक्त लोग दर्शनार्थ आए तो बुद्धिकीर्ति बन्धा हुआ पाया पूछने पर वह लज्जित हो गया। आखिर उसको सूरिजी महाराज से माँफी माँगनी पड़ी जब जाकर वह बंधन से मुक्त हुआ। शक्ति ने तो यहाँ तक प्रतिज्ञा करली कि अब मैं जैनाचार्य्य के सामने कभी पेश नहीं आऊँगी। बस, बौद्धाचर्य्य का घमण्ड गल गया। उसने सोचा कि यहाँ मेरी कुछ भी चलने की नहीं है। अब मेरे लिए यही अच्छा है कि मैं यहाँ से रफूचक्कर बन जाऊँ। बस, वह किसी भक्त से बिना कहे ही पिछली रात्रि में नौ दो ग्यारह होगया।

जैनधर्म का विजय डंका सर्वत्र बजने लगा। जो लोग बौद्धाचार्य्य के भौतिक चमत्कारों से विचलित हुए थे वे भी जैनधर्म में स्थिर होगए और कई बौद्धलोगों को भी सूरिजी ने जैनधर्मोपासक बना लिए। सूरिजी महाराज का व्याख्यान हमेशा होता था जिसको श्रवण कर जनता खूब आनन्द लूटरही थी। सूरिजी मथुरा से विहार कर हस्तनापुर, सिंहपुरादि तीर्थों की यात्रा करते हुए कुनाल में पधारे। कुनाल के श्रीसंघ ने सूरिजी का स्थान स्थान पर स्वागत किया। सूरिजी ने रहाडी, मुगोली, सावत्थी लोहाकोट, सालीपुर, श्रीपुर और तक्षशिला तक विहार कर जनता को धर्मोपदेश कर जागृत किया। पञ्जाब में भी आपके बहुत से साधु विहार कर रहे थे। उनके कार्य्य पर आपने प्रसन्नता प्रगट कर उनका योग्य सत्कार कर उत्साह को बढ़ाया और वह चातुर्मास तक्षशिला नगर में किया जहाँ जैनों की घनी आबादी और करीब ५०० जैन मन्दिर थे। आप श्री के विराजने पर धर्म की अच्छी उन्नति हुई। वहाँ से विहार कर आप श्री ने क्रमशः सिन्ध भूमि को पवित्र बनाया। सिन्ध में भी आपके बहुत से साधु सध्वियाँ विहार करते थे। सिन्ध के बड़ियार, मलकापुर, रेणुकोट, सोलोर, आलोर, डबरेल, सिनपुर नगरकोट, नारायणपुर, मनसोल, देवानकोट, वीरपुर, मीन्कोट, ललपोट करीपुरा, कणजोरा, सीतपुर, सिद्धपुर, थणोर, चणडोली, चुडी, धीथोली, कोलपुर आदि सर्वत्र विहार कर धर्म की जागृति की कई मांस मदिरा सेवियों को जैन धर्म की शिक्षा दीक्षा

देकर उन पतितोंका उद्धार किया। एक चतुर्मास आपने शिव नगर में किया तब दूसरा मारोट कोट में किया बाद वहाँसे कच्छभूमि की स्पर्शना करते हुए सौराष्ट्र में पधार कर तीर्थाधिराज श्रीविमलाचलजी की यात्रा की और कई अर्सा तक सौराष्ट्र एवं लाट प्रदेश में भ्रमण कर आर्बुदाचल की यात्रा कर चन्द्रावती, पद्मावती, शिवपुरी होते हुये कोरंटपुर पधार कर भगवान महावीर की यात्रा की। उस समय कोरंटगच्छ के आचार्य कनकप्रभसूरि कोरंटपुर में ही विराजते थे। जब रत्नप्रभसूरि का आगमन सुना तो श्रीसंघ के साथ आपने सूरिजी का खूब स्वागत किया। दोनों गच्छों के आचार्य में इतना मेल मिलाप था कि किसी को यह मालूम नहीं होता था कि ये दो गच्छों के भिन्न २ आचार्य हैं। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था। कोरंटसंघ और आचार्य कनकप्रभसूरि के आग्रह से आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वह चतुर्मास कोरंटपुर में ही करने का निश्चय कर लिया अतः जनता में धर्मोत्साह खूब बढ़ गया। केवल एक कोरंटपुर का ही क्यों पर आस पास के ग्रामों के लोगों ने भी अच्छा लाभ उठाया। चन्द्रावती पद्मावती और उपकेशपुर के कई भक्तों ने तो सूरिजी की सेवा एवं देशना श्रवण की गरज से कोरंटपुर में आकर छावनीयें ही डाल दी थीं। पूर्व जमाने में गुरुदेव की सेवा और आगमों के सुनने में विशेष लाभ समझा जाता था। और इस प्रकार लाभ उठाया भी करते थे—

सूरिजी महाराज का व्याख्यान प्रायः त्याग वैराग्य एवं संसार की असारता पर ही विशेष हुआ करता था कि जिसका जनता पर खूब ही प्रभाव पड़ता था। कई मुमुक्षुओं ने संसार को असार समझ कर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेने की तैयारी कर ली थी। इतना ही क्यों पर चंद्रावती के प्राग्वट वंशीय मन्त्री करण को भी संसार त्याग की भावना हो गई उसने सूरिजी से प्रार्थना की कि प्रभो! चतुर्मास के बाद आप चन्द्रावती पधारें तो मेरी इच्छा है कि मैं इस असार संसार का त्याग कर आपके चरण कमलों में भगवती जैन दीक्षा ग्रहण करूँ। सूरिजी ने कहा 'जहा सुखम्' और जैसी क्षेत्रस्पर्शता

बस, चतुर्मास समाप्त होते ही कोरंटपुर में बारह भावुकों को दीक्षा देकर सूरिजी चन्द्रावती पधारे। मंत्रीश्वरण ने सूरिजी के नगर-प्रवेश का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया और करने लगा दीक्षा की तैयारियें। जिन मन्दिरों में अष्टान्हि का महोत्सव पूजा प्रभावना स्वामि वात्सल्यादि अनेक शुभ कार्य किये। मंत्री करण के पुत्र मंडण ने इस उत्सव में सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया। मंत्री करण के साथ कई १८ नरनारी भी दीक्षा लेने को तैयार होगये। इन सबको शुभ मुहूर्त में सूरिजी ने विधि विधान के साथ दीक्षा दी जिससे जैनधर्म की खूब ही प्रभावना हुई। जब एक बड़ा आदमी धर्म करने में अग्रेश्वरी होता है तो उन के अनुकरण में ओर भी अनेक भावुक अपना कल्याण कर लेते हैं जिसके लिये मंत्रेश्वर का एक ताजा उदाहरण है

आचार्य रत्नप्रभसूरि भिन्नमाल, सत्यपुरी, शिवगढ़, श्रीनगर आदि नगरों में विहार करते पाल्हिकापुरी में पधारे वहाँ के श्रीसंघ ने आपका सुन्दर स्वागत किया। कुछ अर्सा स्थिरता कर वहाँ की जनता को धर्मोपदेश दिया। वहाँ से तांबावती, विराट-नगर, मेदनीपुर, पद्मावती, हंसावली होते हुये नागपुर पधारे। वहाँ भी आपने सात महानुभावों को दीक्षा दी। बाद हर्षपुर, संखखपुर, माडव्यपुर होते हुये उपकेशपुर पधार रहे थे यह शुभ संवाद सुन उपकेशपुर की जनता में उत्साह का समुद्र ही उमड़ उठा। वहाँ के श्रीसंघ ने सूरिजी का बड़ा ही शानदार नगरप्रवेश महोत्सव किया। सूरिजी ने चतुर्विध श्रीसंघ के साथ भगवान् महा-

वीर की यात्रा की और श्रीसंघ को धर्मोपदेश सुनाया। आज उपकेशपुर के घरघर में आनन्द मंगल छा गया हैं क्योंकि उपकेशपुर वासियों के चिरकाल के मनोरथ सफल होगये इससे बढ़कर आनंद ही क्या होता है।

उपकेशपुर का राजघराना महाराज उत्पलदेव से ही जैनधर्मोपासक था और उन्होंने जैनधर्म के प्रचार के लिये खूब प्रयत्न किया और कर भी रहे थे। यही कारण था कि उपकेशपुर जैनों का एक केन्द्र था।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था राजा और श्रीसंघ ने चतुर्मास की विनती की और लाभालाभ का कारण जानकर सूरिजी ने श्रीसंघ की विनती को स्वीकार कर ली फिर तो था ही क्या।

कभी २ देवी संच्चायका भी सूरिजी को वंदन करने को आया करती थी। एक दिन सूरिजी ने देवी से पूछा कि देवी जी! अनुमान से पाया जाता है कि अब मेरा आयुष्य नजदीक है मैं अपने पट्ट पर आचार्य बनाना चाहता हूँ और इस पद के लिये मैंने धर्ममूर्ति मुनि को योग्य समझा है। इसमें आपकी क्या राय है? देवी ने कहा आपका आयुष्य अभी ८ मास २७ दिन का है और मुनि धर्ममूर्ति आपके पट्टपर आचार्य होने में सर्वगुण सम्पन्न हैं। विशेष में देवी ने कहा कि पूज्यवर! आपकी अध्यक्षता में यहाँ एक सभा की जाय तो आपको बहुत लाभ होगा और इस समय ऐसी सभा की आवश्यता भी है आपके पूर्वजों ने भी समय २ पर सभा कर धर्म की जागृति की थी। सूरिजी ने कहा बहुत खुशी की बात है देवी जी! मैं इस बात का प्रयत्न करूँगा और आपकी सहायता से सफलता भी मिलेगी। देवी सूरिजी को वंदन कर अदृश्य हो गई।

दूसरे दिन सूरिजी ने अपने व्याख्यान में पिछले इतिहास को सुनाते हुये अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा कहा कि वीरो! यह वही उपकेशपुर है कि एक दिन यहाँ पर नास्तिकों का साम्राज्य बरत रहा था पर आचार्य रत्नप्रभसूरि और राजा उत्पलदेव एवं मंत्री ऊहड़ के प्रयत्न से जनता अपना कल्याण साधन कर रही इतना ही क्यों पर आज तो जैनधर्म का सर्वत्र सितारा चमक रहा है। अनेक प्रान्तों में जैन श्रमणों का विहार एवं उपदेश हो रहा है। पूर्वाचार्यों ने समय २ पर सभायें करके जैनधर्म के प्रचार की योजना की और उसमें काफी सफलता भी मिली थी। आज भी ऐसी सभाओं की आवश्यकता प्रतित होती है सज्जनों! आप जानते हो कि सभाओं के अन्दर चतुर्विध श्रीसंघ एकत्र मिलने से कितने फायदे हैं जैसे चतुर्विध श्रीसंघ का एकत्र होना, आपस में एक दूसरे का परिचय एवं धर्म स्नेह बढ़ना एक ही गच्छ का समुदाय के साधु अन्योन्य प्रान्त में विहार करने से वे एक दूसरे को पहिचानते भी नहीं हैं जिन्हों का मिलाप होना, आचार्य को यह ज्ञात हो जाय कि हमारे गच्छ में कौन कौन साधु किस किस प्रकृति के कहाँ कहाँ विहार करते हैं और उनके अन्दर क्या क्या विशेष योग्यता है। सभा में एकत्र होने से संगठन बल मजबूत होता है और उस संगठन शक्ति द्वारा क्या क्या कार्य किया जाय उसका भी निश्चय हो सकता है समाज में शिथिलता एवं विकार हो वह निकल सकता है। कुछ समयानुसार परिवर्तन करना हो तो हो सकता है इतना ही क्यों पर सभाओं से समाज में एक नया जीवन भी प्रकट हो सकता है एवं अनेक कार्य हो सकते हैं इत्यादि सूरिजी ने उपदेश दिया और वहाँ के राजा मूलदेव वगैरह श्रीसंघ ने सूरिजी के अभिप्राय को समझ कर उसी व्याख्यान में खड़े होकर कहा पूज्यवर! यह लाभ तो उपकेशपुर को ही मिलना चाहिये हम लोग यहाँ पर सभा करने को तैयार हैं। बस फिर तो था ही क्या सूरिजी ने फरमाया कि आप लोग बड़े ही भाग्यशाली हैं। यही क्यों पर पहिले भी कई बार आपके यहाँ सभाएँ हुई थी इत्यादि भगवान् महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि की जयध्वनि के साथ व्याख्यान समाप्त हुआ। तदनन्तर राजा मूलदेव के

नेतृत्व में उपकेशपुर श्रीसंघ की एक सभा हुई और उसमें उपकेशपुर में चतुर्विध श्रीसंघ की सभा के लिये कार्यक्रम एवं सर्व प्रकार की योजना तैयार की तथा कार्य के लिये अलग २ समितियें स्थापित कर सब कार्यों को अच्छी तरह से व्यवस्थित कर दिया केवल एक समय का निर्णय करना सूरिजी पर रक्खा कारण ऐसा समय रखना चाहिये कि दूर और नजदीक के प्रायः सब साधु साध्वियां इस सभा में आसकें जिससे इस सभा का लाभ सब को मिल सके इत्यादि ।

ऐसे वृहत् कार्य के लिये खास तौर से दो बातों की आवश्यकता थी एक द्रव्य दूसरे कार्यकर्त्ता । उपकेशपुर में दोनों बातों की अनुकूलता थी । उपकेशवंशियों के पास पुष्कल द्रव्य था और कार्यकर्त्ता के लिये मरुधरवासियों की कार्यकुशलता मशहूर ही थी ।

संघ अग्रेश्वर ने सूरिजी के पास आकर सभा के लिये समय निर्णय की याचना की तो सूरिजी ने दीर्घ दृष्टि से विचार कर कहा कि माघ या फाल्गुण का मास रक्खा जाय तो नजदीक एवं दूर के प्रायः सब साधु साध्वियां एवं श्रमणसंघ सुविधा से आ सकते हैं इत्यादि ।

श्री संघ ने कहा ! यदि माघ शुक्ल पूर्णिमा का दिन रखा जाय तो अच्छा है क्योंकि यह दिन परोपकारी आद्याचार्य रत्नप्रभसूरि की स्वर्गारोहण तिथि है । यों ही हमारे यहाँ माघपूर्णिमा का अष्टान्हिका महोत्सव आदि हुआ करता है और पहले यहाँ सभा हुई वह माघ पूर्णिमा के दिन हुई थी और यह समय है भी सबको अनुकूल । कारण, चतुर्मास समाप्त होने के बाद तीन मास में भारत के किसी भी विभाग में श्रमणसंघ होगे वे आ सकेंगे और हमारे थली प्रान्त में पानी वगैरह की भी सुविधा रहेगी इत्यादि । सूरिजी ने श्रीसंघ के कथन को मंजूर कर लिया। अतः श्रीसंघ अपने कार्य में संलग्न हो गया अर्थात् जो करने योग्य कार्य्य थे वे क्रमशः करने लग गये और आमन्त्रण के लिये अपने योग्य पुरुषों को सर्वत्र भेज दिये।

इधर नजदीक और दूर-दूर देशों से चतुर्विध श्रीसंघ का शुभागमन हुआ । करीब ५ हजार साधु साध्वियाँ और लाखों गृहस्थ लोग उपकेशपुर को पावन बना रहे थे उपकेशपुर तो आज एक यात्रा का धाम ही बन गया था। साधुओं के परस्पर ज्ञानगोष्ठी और श्रावकों के धर्म स्नेह में खूब वृद्धि हो रही थी । स्वागत का सब इन्तजाम पहले से ही माकूल किया हुआ था ! विशेषता यह थी कि उपकेशगच्छ कोरंटगच्छ और वीरसन्तानिये एवं पृथक २ गच्छ समुदाय के साधु होने पर भी वे सब एक ही रूप में दीखते थे ।

ठीक समय पर आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी की नायकता में चतुर्विध श्रीसंघ की एक सभा हुई। सूरिजी ने पूर्व जमाने का इतिहास और वर्तमान समय की परिस्थिति का दिग्दर्शन करवाते हुये अपने ओजस्वी शब्दों में कहा वीरो ! साधुओं का जीवन ही परोपकार के लिये होता है। जिस देश प्रान्त नगर और घर में धर्मभावना फली फूली होती है वहाँ सदैव सुख शान्ति रहती है । चाहे साधु हो चाहे गृहस्थ हो दोनों का ध्येय आत्मकल्याण का ही होना चाहिये जिसमें भी विशेषता यह है कि स्वात्मा के साथ परात्मा का कल्याण करना । तीर्थङ्कर भगवान ने इसलिये ही घूम-घूम कर उपदेश दिया था। आचार्य रत्नप्रभसूरि यक्षदेवसूरि आदि आचार्यों ने हजारों कठिनाइयें इसी लिये सहन की थीं। अतः आप लोगों का भी यही कर्त्तव्य है कि स्वात्मा के साथ परात्मा का कल्याण करने को कटिबद्ध होजाइये जैसे पूर्व जमाने में नास्तिकों का जोर था वैसे ही आज क्षणिक वादियों का जोर बढ़ता जा रहा है उनके सामने डट कर रहना कर्त्तव्य ही बना लेना चाहिये इस विषय के साहित्य का अध्ययन करना चाहिये इत्यादि आपके [illegible]

श्रमणसंघ पर गहरा असर हुआ। साथ में श्राद्ववर्ग ने भी जागृत हो अपना फर्ज अदा करने की प्रतिज्ञा करली इत्यादि। पूर्व जमाने में केवल कागजों में प्रस्ताव करके ही कृतकृत्य नहीं बनते थे पर वे जिस कार्य को करना आवश्यक समझते उसे तत्काल ही करके बतला देते थे। यही कारण है कि उस समय जैनधर्म उन्नति की चरम सीमा तक पहुँगया था।

उसी सभा के अन्दर आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अपना पदाधिकार मुनी धर्ममूर्ति को अर्पण कर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया और इनके अलावा और भी कई योग्य मुनियों को पद प्रदान किये। बाद जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई।

रात्रि समय में राजा मूलदेव की प्रेरणा से श्राद्द सभा भी हुई उसमें आचार्य श्री का उपकार मानता और साधुओं के धर्मप्रचार कार्य में हाथ बटाना अर्थात् यथासंभव मदद करने की प्रतिज्ञा की और भी धर्मसम्बन्धी कई कार्य्य करने के नियम बनाये गये और उनको तत्काल कार्य रूपमें प्रवृत करने का निश्चय किया—

तत्पश्चात् नूतन सूरिजी की आज्ञानुसार साधुओं ने पृथक् २ प्रान्तों एवं नगरों की ओर विहार किया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि को देवी के बतलाये ८ मास २७ दिनों की स्मृति करनेसे ज्ञात हुआ कि अब मेरा आयुष्य केवल २१ दिन का रहा है अतः आपने अलोचना प्रतिक्रमण करके उपकेशपुर की लुणाद्री पहाड़ी पर जाकर अनशन व्रत कर दिया और समाधी पूर्वक नाशवान शरीर का त्याग कर स्वर्ग पधार गये।

आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने अपने १९ वर्षों के शासन में प्रत्येक प्रान्तों में घूम घूम कर जैनधर्मका खूब ही प्रचार बढ़ाया पूज्यराध्य आचार्य श्री के जीवन में किये हुए कार्यों के लिये पट्टावल्यादि ग्रन्थों में बहुत विस्तार से उल्लेख मिलता है पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भयसे यहाँ थोड़ामें ही बतला दिया जाता है कि आपश्री ने जन कल्याण के लिये कैसे २ चोखे और अनोखे कार्य किया है।

आचार्यश्री के करकमलों से भावुकों को दीक्षाएँ।

१—सत्यपुर में धर्मसी आदि अठारह नरनारियों को दीक्षादी।

२—दक्षिण की ओर विहार कर वहाँ भी बहुत भव्यों को दीक्षादी।

३—उज्जैन के चतुर्मास के बाद इक्वीस नर नारियों को दीक्षादी।

४—तक्षिला के श्रेष्टि गौत्रीय गोसल ने सूरिजी के पास दीक्षा ली
५—रहाड़ी के भाद्र गौत्रीय बागा ने " "
६—सावत्थी के चिंचट गौत्रीय ऊंकार ने " "
७—रेणुकोट के अदित्य नाग० आदू ने " "
८—मसकापुर के आदित्य नाग० भगा ने " "
९—कोटीपुर के बाप्प नाग० गोपाल ने " "
१०—थणोद के बलाहा गौ० दूगा ने " "
११—चुड़ी के प्राग्वट वंशी कर्मा ने " "
१२—भंटेसर के प्राग्वट वंशी करमण ने " "

१३—खारखेटी के श्रीमाल वंशी	धरण	ने	सूरिजी के पास दीक्षा ली
१४—रावुड़ी के क्षत्रीय वीर	देदा	ने	,, ,,
१५—पादलिप्त के तप्तभट्ट गौ०	नागा	ने	,, ,,
१६—उरजूनी के करणाटगौ०	अर्जुन	ने	,, ,,
१७—करणावतीके करणाटगौ०	हरपाल	ने	,, ,,
१८—मुग्धपुर के मोरक्ष गौ०	नारा	ने	,, ,,
१९—नागपुर के सुचती गौ०	रणछोड़	ने	,, ,,
२०—पाल्हीका के बोहरा शाह	नारायण	ने	,, ,,
२१—दुर्गा पुर के मंत्री	सालग	ने	,, ,,
२२—शंखपुर के सोनी गौत्रीय	माना	ने	,, ,,
२३—छत्रीपुर के सुघड़ गौत्रीय	सल्हण	ने	,, ,,
२४—खटकूप के मल गौत्रीय	ढाढर	ने	,, ,,
२५—क्षान्तिपुर के चरड़ गौत्रीय	मुकन्द	ने	,, ,,
२६—खेड़ीपुर के लुंग गौत्रीय	कल्हण	ने	,, ,,
२७—उपकेशपुर के श्रेष्टि गौत्रीय	सुरजन	ने	,, ,,
२८—धोलपुर के कुलभद्र गौ०	हाडा	ने	,, ,,
२९—वीरभी के विरहट्यगौत्रीय	पुरा	ने	,, ,,

इनके अलावा कई बाइयों ने भी दीक्षा ली थी तथा आपके मुनि गण के उपदेश से भी बहुत नर-नारियों ने दीक्षाएँ ली थी ये तो मैंने केवल पट्टावलियों से थोड़ा सा नाम लिखा हैं और पट्टावलियों में केवल उपकेशवंश वालों ने दीक्षा ली जिन्हों का ही उल्लेख किया है इनके अलावा इतर जातियों के लोगों को भी दीक्षा दिया करते थे परन्तु उन सब के उल्लेख मिलते नहीं हैं।

आचार्यश्री के तथा आपके मुनियों के उपदेश से मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं—

१—नागपुर के आदित्यनाग०	मधु के बनाये	पार्श्वनाथ०	मन्दिर०	प्र०	
२—डिडुपुर के बाकुप्पनाग०	शाह	अजड़ने	पार्श्वनाथ	,,	,,
३—नंदपुर के प्राग्वटवंशी०	,,	रहाप ने	महावीर	,,	,,
४—ब्राह्मणगाव के प्राग्वट	,,	करणा ने	,,	,,	,,
५—नारदपुरी के सुंचितगौ०	,,	सादा ने	,,	,,	,,
६—पाटली के प्राग्वट ,,	,,	भारखर ने	पार्श्वनाथ	,,	,,
७—कीराटकुंप के राव—गोपाल ने			शान्तिनाथ	,,	,,
८—पालिका के कुलभद्र गौ०	शाह	अमरा ने	आदीश्वर	,,	,,
९—श्रीनगर के श्रेष्टिगौत्र०	,,	उरजन ने	,,	,,	,,
१०—खटकूपपुर के चिंचट गौ०	,,	दहाड ने	महावीर	,,	,,

श्रमणसंघ पर गहरा असर हुआ। साथ में श्राद्धवर्ग ने भी जागृत हो अपना फर्ज अदा करने की प्रतिज्ञा करली इत्यादि। पूर्व जमाने में केवल कागजों में प्रस्ताव करके ही कृतकृत्य नहीं बनते थे पर वे जिस कार्य को करना आवश्यक समझते उसे तत्काल ही करके बतला देते थे। यही कारण है कि उस समय जैनधर्म उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचगया था।

उसी सभा के अन्दर आचार्य रत्नप्रभसूरि ने अपना पदाधिकार मुनी धर्ममूर्ति को अर्पण कर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया और इनके अलावा और भी कई योग्य मुनियों को पद प्रदान किये। बाद जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई।

रात्रि समय में राजा मूलदेव की प्रेरणा से श्राद्ध सभा भी हुई उसमें आचार्य श्री का उपकार मानना और साधुओं के धर्मप्रचार कार्य में हाथ बटाना अर्थात् यथासंभव मदद करने की प्रतिज्ञा की और भी धर्मसम्बन्धी कई कार्य्य करने के नियम बनाये गये और उनको तत्काल कार्य रूपमें प्रवृत करने का निश्चय किया—

तत्पश्चात् नूतन सूरिजी की आज्ञानुसार साधुओं ने पृथक् २ प्रान्तों एवं नगरों की ओर विहार किया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि को देवी के बतलाये ८ मास २७ दिनों की स्मृति करनेसे ज्ञात हुआ कि अब मेरा आयुष्य केवल २१ दिन का रहा है अतः आपने अलोचना प्रतिक्रमण करके उपकेशपुर की लुणाद्री पहाड़ी पर जाकर अनशन व्रत कर दिया और समाधी पूर्वक नाशवान शरीर का त्याग कर स्वर्ग पधार गये।

आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने अपने १९ वर्षों के शासन में प्रत्येक प्रान्तों में घूम घूम कर जैनधर्मका खूब ही प्रचार बढ़ाया पूज्यराध्य आचार्य श्री के जीवन में किये हुए कार्यों के लिये पट्टावल्यादि ग्रन्थों में बहुत विस्तार से उल्लेख मिलता है पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भयसे यहाँ थोड़ामें ही बतला दिया जाता है कि आपश्री ने जन कल्याण के लिये कैसे २ चोखे और अनोखे कार्य किया है।

आचार्यश्री के करकमलों से भावुकों को दीक्षाएँ।

१—सत्यपुर में धर्मसी आदि अठारह नरनारियों को दीक्षादी।
२—दक्षिण की ओर विहार कर वहाँ भी बहुत भव्यों को दीक्षादी।
३—उज्जैन के चतुर्मास के बाद इकवीस नर नारियों को दीक्षादी।

४—तक्षिला के श्रेष्टि गौत्रीय	गोसल ने	सूरिजी के पास	दीक्षा ली
५—रहाड़ी के भाद्र गौत्रीय	बागा ने	,,	,,
६—सावत्थी के चिंचट गौत्रीय	ऊंकार ने	,,	,,
७—रेणुकोट के अदित्य नाग०	आदू ने	,,	,,
८—मसकापुर के आदित्य नाग०	भगा ने	,,	,,
९—कोटीपुर के बाप्प नाग०	गोपाल ने	,,	,,
१०—धरोद के बलाहा गो०	दूगा ने	,,	,,
११—चुड़ी के प्राग्वट वंशी	कर्मा ने	,,	,,
१२—चंद्रेसर के प्राग्वट वंशी	करमण ने	,,	,,

१३—खारखेटी के श्रीमाल वंशी	धरण	ने	सूरिजी के पास दीक्षा ली
१४—रावुटी के क्षत्रीय वीर	देदा	ने	,, ,,
१५—पादलिप्त के तप्तभट्ट गौ०	नागा	ने	,, ,,
१६—उरजूनी के करणाटगौ०	अर्जुन	ने	,, ,,
१७—करणावतीके करणाटगौ०	हरपाल	ने	,, ,,
१८—मुग्धपुर के मोरक्ष गौ०	नारा	ने	,, ,,
१९—नागपुर के सुचती गौ०	रणछोड़	ने	,, ,,
२०—पाल्हीका के बोहरा शाह	नारायण	ने	,, ,,
२१—दुर्गा पुर के मंत्री	सालग	ने	,, ,,
२२—शंखपुर के सोनी गौत्रीय	माना	ने	,, ,,
२३—छत्रीपुर के सुघड़ गौत्रीय	सल्हण	ने	,, ,,
२४—खटकूप के मल गौत्रीय	ढाढर	ने	,, ,,
२५—क्षान्तिपुर के चरड़ गौत्रीय	मुकन्द	ने	,, ,,
२६—खेड़ीपुर के लुंग गौत्रीय	कल्हण	ने	,, ,,
२७—उपकेशपुर के श्रेष्टि गौत्रीय	सुरजन	ने	,, ,,
२८—धोलपुर के कुलभद्र गौ०	हाडा	ने	,, ,,
२९—वीरभी के विरहट्गौत्रीय	पुरा	ने	,, ,,

इनके अलावा कई बाइयों ने भी दीक्षा ली थी तथा आपके मुनि गण के उपदेश से भी बहुत नर-नारियों ने दीक्षाएँ ली थी ये तो मैंने केवल पट्टावलियों से थोड़ा सा नाम लिखा हैं और पट्टावलियों में केवल उपकेशवंश वालों ने दीक्षा ली जिन्हों का ही उल्लेख किया है इनके अलावा इतर जातियों के लोगों को भी दीक्षा दिया करते थे परन्तु उन सब के उल्लेख मिलते नहीं हैं ।

आचार्यश्री के तथा आपके मुनियों के उपदेश से मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं—

१—नागपुर के आदित्यनाग०	मधु के बनाये		पार्श्वनाथ०	मन्दिर०	प्र०
२—डिडुपुर के बाकुप्पनाग०	शाह	अजड़ने	पार्श्वनाथ	,,	,,
३—नंदपुर के प्राग्वटवंशी०	,,	रहाप ने	महावीर	,,	,,
४—ब्राह्मणगाव के प्राग्वट	,,	करणा ने	,,	,,	,,
५—नारदपुरी के सुंचितगौ०	,,	सादा ने	,,	,,	,,
६—पाटली के प्राग्वट ,,	,,	भारखर ने	पार्श्वनाथ	,,	,,
७—कीराटकुंप के राव—गोपाल ने			शान्तिनाथ	,,	,,
८—पालिका के कुलभद्र गौ०	शाह	अमरा ने	आदीश्वर	,,	,,
९—श्रीनगर के श्रेष्टिगौत्र०	,,	उरजन ने	,,	,,	,,
१०—खटकूपपुर के चिंचट गौ०	,,	दहाड ने	महावीर	,,	,,

११—कुण्हरी के डिडु गौ० ,, देसल ने ,, मन्दिर० प्र०
१२—धौलापुर के लघुश्रेष्ठि गौ० ,, सारंग ने ,, ,, ,,
१३—सेसलाना के कुमट गौ० ,, लूंढा ने पार्श्वनाथ ,, ,,
१४—भट्टपुर के चरड़ गौत्रीय ,, लल्ल ने ,, ,, ,,
१५—लोहापुर के मल गौत्रीय ,, टोडा ने ,, ,, ,,
१६—उज्जैन के विरहट गौ० ,, भोला ने मुनिसुव्रत ,, ,,
१७—मंडपाचल के भाद्र गौ० ,, नांनग ने नेमिनाथ ,, ,,
१८—खलखेड़ा के नाग गौ० ,, कुलधर ने चंद्रप्रभ ,, ,,
१९—सेदहरा के बप्पनाग गौ० ,, अर्जुन ने महावीर ,, ,,
२०—बरासणी के कनोजिया गौ० ,, खीवशी ने ,, ,, ,,
२१—पद्मावती के विरहट गौ० ,, पोमा ने ,, ,, ,,
२२—अकलाणी के भूरि गौ० ,, सुजा ने ,, ,, ,,
२३—मालपुर के बलाह गौ० ,, हरदेव ने ,, ,, ,,
२४—भवानीपुर के श्रीश्रीमाल गौ० ,, कल्हण ने ,, ,, ,,
२५—कालुर के ,, ,, ,, डुगा ने पार्श्वनाथ ,, ,, ,,
२६—रावपुरा के अदित्यनाग ,, माला ने चन्द्रवाल ,, ,,
२७—हस्तीपुर के प्राग्वट ,, फरसा ने मल्लिनाथ ,, ,,
२८—प्राशुपुर के प्राग्वट ,, कानड़ ने महावीर ,, ,,
२९—जावलीपुर के श्री माल ,, हरला ने पार्श्वनाथ ,, ,,
३०—उपकेशपुर के श्रष्ठगौत्रिया राव जगदेव ने चन्द्रप्रभ ,, ,,
३१—क्षत्रीपुर के तप्तभट्ट गौत्री शाह नोढा ने पार्श्वनाथ ,, ,,
३२—विजयपट्टन के बाप्प नाग मंत्री सज्जन ने महावीर ,, ,,

इनके अलावा भी कई मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवाई थी वह जमाना मूर्त्ति वाद का ही था दूसरा लोगों के पास द्रव्य बहुत था तीसरा शायद् आचार्यो ने भी यही सोचा होगा कि अब जमाना ऐसा आवेगा कि आत्म भावना की अपेक्षा मन्दिर मूर्त्तियों के आलम्बन से धर्म करने वाले विशेष लोग होंगे अतः उन्होंने इस ओर अधिक लक्ष दिया हो ? कुच्छ भी हो पर यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि जैन मन्दिरों से जैन धर्म जीवित रह सका है जबसे म्लेच्छ लोगों ने मन्दिरों को तोड़ फोड़ नष्ट करने का दुःसाहस किया तब से ही कई प्रान्तों जैनधर्म से निर्वासित होगई

जिस प्रकार जैन गृहस्थ मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा करवाते थे इसी प्रकार जैन तीर्थों की यात्रार्थ बड़े बड़े संघ निकाल कर तीर्थों की यात्रा भी किया करते थे और धनाढ्य लोग यात्रा निमित लाखों करोड़ों द्रव्य व्यय कर अपने जीवन की सफलता समझते थे और वे संघ एक प्रान्त से नहीं पर अनेक प्रान्तों से निकलते थे श्री शत्रुजय का संघ निकालते तब गिरनारादि तीर्थों की यात्रा कर लेते और श्री सम्मेतशिखर का

संघ निकलते तो पूर्व की तमाम यात्रा कर लेते आचार्य रत्नप्रभसूरि के शासन समय में संघ निकले जिसकी सूची पट्टावलियों वंशावलियों में इस प्रकार दी हुई मिलती है।

१—उपकेशपुर से बाप्प नाग गौत्रीय पुनडने श्री शत्रुजय का संघ निकाला
२—पाल्हिकापुरी से सुचंती गौत्रीय आखा ने ,, ,,
३—पद्मावती से प्राग्वट वंशीय नोढ़ा ने ,, ,,
४—कुर्चपुरा से तप्तभट्ट गौत्रीय फुँवा ने ,, ,,
५—चन्द्रावती से मंत्री रणधीर ने श्री सम्मेत शिखरजी ,,
६—डाबरेल नगर से श्रेष्टी वर्य्य नोंधण ने श्री शत्रुजय का ,,
७—तक्षिला से भाद्रगौत्रीय जावड़ा ने ,, ,,
८—नागपुर से अदित्यनाग० देदा ने ,, ,,
९—नारदपुरी से कुमट गौ० सारंग ने ,, ,,
१०—सालीपुर से चिंचट गौ० सलखण ने ,, ,,
११—हर्षपुरा से बलाह गौ० हरपाल ने ,, ,,
१२—कोरंटपुर से श्रीमाल० रावल ने ,, ,,
१३—शिवपुरी से प्राग्वट दूधा ने श्री सम्मेत शिखर का ,,

आचार्य रत्नप्रभसूरि एक महान् प्रभाविक आचार्य हुये हैं आपका विहार क्षेत्र बहुत ही विशाल था। कुनाल से लगाकर महाराष्ट्रीय प्रान्त तक आपने भ्रमण किया था आपश्री के साधु साध्वी तो सब प्रान्तों में भ्रमण कर धर्म प्रचार करते थे। आचार्यश्री ने अपने जीवन में कई पाँचसो नरनारियों को दीक्षादी थी और हजारों लाखों मांस मदिरा सेवियों को जैनधर्म में दीक्षित किये अतः आपश्री का जैन समाज पर महान उपकार हुआ है। ऐसे जैनधर्म के रक्षक पोषक एवं वृद्धक महात्माओं के चरणों में कोटि कोटि नमस्कार हो।

श्रेष्टिकुल श्रृंगार अनोपम, पारस के अधिकारी थे।
रत्नप्रभसूरि गुण भूरि, शासन में यशधारी थे॥
योगविद्या में थी निपुणता, पढ़ने को कई आते थे।
अजैनों को जैन बनाये, जिनके गुण सुर गाते थे॥

॥ इति श्रीभगवान् पार्श्वनाथ के २१ वें पट्ट पर आचार्य रत्नप्रभसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुये॥

आदित्यनाग गोत्र की चोरडिया शाखा

चित्रकोट नगर में आदित्यनाग गोत्रीय शाह आमदेव निंबदेव नाम के कोटीध्वज व्यापारी थे और उसी नगर में आमदेव निंबदेव नाम के प्राग्वटवंशीय कोटीध्वज व्यापारी थे। पहिले जमाने में कागज पत्र एवं समाचार कासिदों द्वारा ही आया जाया करते थे। एक समय उज्जैन से किसी व्यापारी ने प्राग्वट आमदेव निंबदेव के नाम से पत्र लिख कर कासिद के हाथ दे दिया कि तुम चित्रकोट जाकर पत्र का जवाब ले आओ कासिद ने चित्रकोट जाकर बाजार में पूछा कि आमदेव निंबदेव कौन है ? आदित्यनाग गोत्रीय आमदेव पास में खड़ा था उसने कासिद से कहा आमदेव मैं हूँ तेरे क्या काम है ? कासिद ने अपने पास का पत्र आमदेव को दे दिया। आमदेव पत्र पढ़ कर उसमें जो व्यापार सम्बन्धी तेजी मंदी का समाचार था उसको जान गया। कासिद को भोजन करवा कर कह दिया कि तू थका हुआ है थोड़ा सोजा। कासिद सो गया। आमदेव ने अपना काम कर लिया बाद जब कासिद जगा तो पत्र उसको दे दिया और कहा कि यह पत्र तो दूसरे आमदेव का है तू वहां जाकर पत्र दे दे। कासिद ने प्राग्वट वंशी आमदेव के यहां जाकर पत्र दिया उसने पत्र बाँच कर व्यापार के लिये भाव मँगाये तो थोड़ी ही देर में भाव बहुत तेज हो गये तब कासिद को कहा भाई तू थोड़े पहले आजाता तो अच्छा होता। कासिद ने कहा सेठजी मैं तो कब का ही आया हुआ था पर एक दूसरे आमदेव ने मुझे रोक लिया था आमदेव ने सोचा कि दूसरा आमदेव तो आदित्य-नाग गोत्रिय है शायद उसी ने इस पत्र से बाजार को तेज कर दिया होगा अतः प्राग्वट-आमदेव ने जाकर आदित्य नाग गोत्रिय आमदेव को कहा कि आपने हमारा पत्र चोर लिया यह अच्छा नहीं किया इत्यादि। उस दिन से आदित्यनाग गोत्रिय आमदेव चोरलिया के नाम से पुकारे जाने लगे। उस चोरलिया का अपभ्रंश चोर-डिया हो गया और वह अद्यावधि भी विद्यमान है। इसका समय वंशावली कार ने विक्रम संवत् २०२ का बतलाया है। चोरड़िया जाति का मूल गोत्र आदित्यनाग है।

कई लोग चोरडिया जाति की उत्पत्ति विक्रम की बारहवीं शताब्दी में राठौर राजपूतों से हुई बतलाते हैं और राठौर राजपूतों को प्रतिबोध देकर उनकी जाति चोरड़िया हुई कहते हैं यह बिलकुल असत्य एवं कल्पना मात्र ही है। इससे करीब १५०० वर्षों के इतिहास का खून होता है। इन १५०० वर्षों में चोरड़िया जाति के नर रत्नों ने देश समाज और धर्म की बड़ी बड़ी सेवायें करके जो यश प्राप्त किया है उस सब पर पानी फिर जाता है। गच्छ कदाग्रह एक कैसी बलाय है कि अपने स्वार्थ के लिये शासन को कितना नुकसान पहुँचा देते हैं जिसका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। इसी इतिहास ग्रन्थ में आप देखेंगे कि विक्रम की बारहवीं शताब्दी के पूर्व चोरड़िया जाति के दानवीरों ने परमार्थ के क्या २ काम किये हैं। अतः चोरड़िया जाति आदित्यनाग गोत्र की एक शाखा है और यह बात विक्रम की पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी के शिलालेख के प्रमाण से और भी पुष्ट हो जाती है कि चोरड़िया जाति स्वतंत्र गोत्र नहीं है पर आदित्यनाग गोत्र की एक शाखा है। देखिये—

"सं० १४८० वर्षे ज्येष्ठ वद ५ ऊकेश ज्ञातीय आइच्चणाग गोत्रे सा० आ० सा० भा० वाछि पु० सा० हांसु नाहू भा० रूपी पु० लेना वान्हा सावड़ श्रीनेमिनाथ बिंबं का० पूर्वज नि० पु० आत्मा श्रे० प्र० उ कुक० ग० श्री सिद्धसूरिभिः

"बाबू पूर्ण० लेख संग्रह लेखांक ..."

राज भी उन शिष्यों की ठीक परीक्षा करके ही अपना उत्तरदायित्व दिया करते थे। आचार्य रत्नप्रभसूरि ने मुनि धर्ममूर्ति को सर्व गुण सम्पन्न जान कर अपनी अन्तिमावस्था में सूरिमंत्र की आराधना करवादी और सूरि· पद से विभूषित बनाकर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया।

आचार्य यक्षवदेसूरि महाप्रभावशाली आचार्य हुये हैं आप बाल ब्रह्मचारी और साहित्य के धुरंधर विद्वान थे। आप कई अलौकिक विद्याओं से विभूषित थे। अपने सोलह वर्ष की किशोर अवस्था में दीक्षा लेकर सोलह वर्ष गुरुकुलवास में रहे और सर्वगुण सम्पादित कर सूरिपद को सुशोभित किया। आप कई राजसभाओं में शास्त्रार्थ में भी विजय हुये थे।

आचार्ययक्षदेवसूरि एक समय विहार करते हुये भिन्नमाल नगर में पधारे आपका व्याख्यान हमेशा होता था और जैन जैनेतर गहरी तादाद में ज्ञानामृत का पान कर रहे थे अतः नगर में आपकी खूब महिमा फैल रही थी पर असहिष्णुता के कारण कई ब्राह्मण लोग उनको सहन नहीं कर सके वे कहने लगे कि जैना· चार्य्य कितने ही विद्वान हों पर वे हमारे तो शिष्य ही हैं अर्थात् हम ब्राह्मणों की बराबरी नहीं कर सकते हैं क्योकि "ब्राह्मण च जगतगुरु" अर्थात ब्राह्मण ही सब जगत के गुरु हैं। इस बात को कई श्रावकों द्वारा आचार्यश्री ने सुनी तो आपश्री ने फरमाया कि यदि ब्राह्मणो में गुरुत्व के गुण हों तो जगत को अपना गुरु मानने में क्या हर्ज है। समझदार केवल नामकी ही नहीं पर गुणों की पूजा करते हैं देखिये खास ब्राह्मणों के शास्त्र में ब्राह्मणों के लक्षण बतलाये हैं।

सत्यंब्रह्म तपो ब्रह्म ब्रह्म चेन्द्रियनिग्रहः। सर्वभूतदया ब्रह्म एतद्ब्राह्मण लक्षणम् ॥ ३८५ ॥
क्षमादम्मो दया दानं सत्यशील धृतिर्घृणा। विद्या विज्ञान मास्तिक्य-मेतद् ब्राह्मण लक्षणम् ॥२०॥
मैथुनं ये न सेवंते ब्रह्मचारी दृढव्रताः। ते संसारसमुद्रस्य पारं गच्छन्ति सुव्रताः ॥ २९ ॥
अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचार्यापरिग्रही। कामक्रोध निवृत्तस्तु ब्राह्मणः स युधिष्ठिर ॥ ३३ ॥
नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं तु ये चरन्ति सुनिश्चिताः। देवानामपि ते पूज्याः पवित्रं मङ्गलं तथा ॥ ४० ॥

यदि इन लक्षणों से विपरीत है उसको ब्राह्मण नहीं कहा जाता है देखिये

सत्यं नास्ति तपो नास्ति नास्ति चेन्द्रियनिग्रहः। सर्वभूतदया नास्ति एतच्चाण्डाल लक्षणम् ॥३८६॥

यदि कोई शूद्र भी है और ब्राह्मण कर्म करता है तो वह ब्राह्मण ही है देखिये

शूद्रोऽपि शीलसंपन्नो गुणवान्ब्राह्मणो भवेत्। ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रापत्यसमो भवेत् ॥ ३८३ ॥

सब जातियों में ब्राह्मण एवं चाण्डाल मिलते हैं

सर्वजातिषु चाण्डालाः सर्वजातिषु ब्राह्मणाः। ब्राह्मणेष्वपि चाण्डालाश्चण्डालेष्वपि ब्राह्मणाः ॥ ३८२ ॥

केवल नाममात्र का ही घमंड हो तो एक कीट का नाम भी इन्द्रगोप होता है

ब्राह्मणा ब्रह्मचर्येण यथा शिल्पेन शिल्पिकः। अन्यथा नाममात्रं स्यादिन्द्रगोपककीटवत् ॥

केवल वेद पढ़ लेने से ही ब्राह्मण नहीं कहलाते हैं देखिये

चतुर्वेदोऽपि यो भूत्वा चण्डं कर्म समाचरेत्। चण्डालः सतु विज्ञेयो न वेदास्तत्र कारणम् ॥ ३८४ ॥

और भी देखिये

ये स्त्रीजंघोरुसंस्पृष्टाः काम गृध्राश्च ये द्विजाः। ये चरितोधमा भ्रष्टाः तेऽपि शूद्रा युधिष्ठिर ॥ २४ ॥
यस्तु रक्तेषु दन्तेषु, वेद मुच्चरते द्विजः । अमेध्यं तस्य जिह्वाग्रे, सूतकं च दिने दिने ॥ २५ ॥
हस्ततलप्रमाणां तु. यो भूमि कर्षति द्विजः । नश्यते तस्य ब्रह्मत्वं, शूद्रत्वं स्वीभजायते ॥ २६ ॥
अव्रतानामशीलानां, जातिमात्रोपजीविनां । सहस्रमुचितानां तु, ब्रह्मत्वं नोपजायते ॥ २७ ॥
हिंसकोऽनृतवादीच, यः चौर्योपरतश्च तु । परदारोपसेवीच , सर्वे ते पतिता द्विजाः ॥ ३० ॥
गोविक्रियास्तु ये विप्रा, ज्ञेयास्ते मातृविक्रियाः । तैर्हि देवाश्च वेदाश्च, विक्रीता नात्र संशयः ॥ ३१ ॥
खरो द्वादशजन्मानि, षष्टिजन्मानि शूकरः । श्वानः सप्ततिजन्मानि, इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ३२ ॥

अब जरा जैनधर्म के सिद्धान्त को भी सुन लिजिये

नवि मुंडिएण समणो, न ऊँकारेण बंभणो, न मुणीरण्ण वासेणं कुस चिरेण तावसो ॥
समयाए समणो होइ, बंभचेरण बंभणो नाणेण मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥
कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ । वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दोहोइउ कम्मुणा ॥

अर्थात् न केवल सिर मुंडाने से साधु होता है न ॐकार का जाप करने से ब्राह्मण ही होता है न केवल वनवास करने से मुनि होता है और न कुशचिवर धारण करने से तपस्वी कहलाता है किन्तु राग द्वेष रहित साम्य भाव से साधु ब्रह्मचर्य्य पालन करने से ब्राह्मण, ज्ञान पढ़ने से मुनि और तप करने से तपस्वी

महानुभावो ? जीव के न तो कोई वर्ण है और न कोई जाति है परन्तु वर्ण जाति कर्म के पीछे है जैसे जो जीव शूद्र कर्म करते हैं वह शूद्र कहलाते हैं और ब्रह्मकर्म करने वाले ब्राह्मण कहलाते हैं। अतः जगत से पूजा पाने की अभिलाषा वालों को चाहिये कि वे पूज्यत्व के गुण पैदा करें फिर कहने की आवश्यकता ही नहीं रहती है जनता स्वयं पूजने लग जाती है।

इत्यादि सूरिजी के उपदेश का असर उपस्थित जनता पर ही नहीं पर कई महानुभाव ब्राह्मणों पर भी काफी पड़ा और वे कह उठे कि महात्माजी का कहना सत्य है पूजा नाम की नहीं पर गुणों की ही होती है बस जयध्वनी के साथ सूरिजी का व्याख्यान समाप्त हुआ।

सूरिजी की नगर भरमें खूब ही प्रशंसा होने लगी पर यह बात उन दुर्जन ब्राह्मणों को कब अच्छी लगने वाली थी। उन्होंने यह कह कर हुल्लड़ मचाया कि जैन ईश्वर को नहीं मानते हैं जैन वेदों को नहीं मानते हैं अतः जैन नास्तिक हैं और यह बात केवल हम ही नहीं कहते हैं पर पुराण इतिहास देखिये राजा भीमसेन ने जैनियों को अपने नगर से निकाल दिया था फिर चन्द्रसेन ने चन्द्रावती नगरी बसाकर जैनों को स्थान दिया पर आज के राजा हमारी सुनते ही नहीं यही कारण है कि जैनियों का जोर दिन ब दिन बढ़ता जा रहा है इत्यादि।

'वादे वादे जायते तत्त्वम्' ठीक है कई वक्त वाद विवाद तत्त्वबोध का कारण बनजाता है। आज भीन्नमाल का भी यही हाल होरहा है। ब्राह्मणों के वाद विवाद ने जनता में ठीक जागृति पैदा करदी है। सूरिजी भी अपनी सत्यता पर तुले हुए थे ब्राह्मणों में उस समय दो दल बनगये थे एक दल सत्य के पक्ष में था और उनको सूरिजी के निष्पक्ष वचन अच्छे लगते थे तब दूसरा दल चिरकाल से चली आई रूढ़ी को आगे रख कर राजा प्रजा पर हुकूमत करना चाहता था।

दूसरे दिन सूरिजी का खूब जोरदार व्याख्यान हुआ जनता की संख्या हमेशों से बहुत बढ़कर थी राजा प्रजा और राज कर्मचारी भी उपस्थित थे। सूरिजी ने मंङ्गलाचरण में ही ईश्वर को नमस्कार करते हुये फरमाया कि:—हे ईश्वर परमात्मा ? सच्चिदानन्द सर्वज्ञ अक्षय अरूपी सकल उपाधीमुक्त निरंजन निराकार स्वगुण भुक्ता आदि अनंतगुण संयुक्त। हे विभो ! तुम्हारे नाम स्मरणमात्र से हमारे जैसे जीवों का कल्याण होता है अतः तुमको वार २ नमस्कार करता हूँ। तत्पश्चात् सूरिजी ने अपना व्याख्यान देना प्रारम्भ किया।

श्रोता गण? आप जानते हो कि जब तक जीवों के कर्मरूपी उपाधि लगी रहती है तब तक वे नाना प्रकार की योनियों में अवतार धारण करते हैं और अवधि पूर्ण होने से मृत्यु को भी प्राप्त होते हैं और ऊँच नीच सुखी दुःखी होना यह पूर्व संचित कर्मों के फल हैं। जब जीव तप संयमादि सत्कर्मों से सकलकर्मों को नष्ट कर देता है तब वह आत्मा से परमात्मा बन जाता है उनको ही ईश्वर कहते हैं।

कई लोग यह भी कह बैठते हैं कि जैन ईश्वर को नहीं मानते हैं पर यह लोगों की अनभिज्ञता ही है। कारण जैसे जैनों ने शुद्ध पवित्र सच्चिदानन्द को ईश्वर माना है वैसे किसी दूसरे मत ने नहीं माना है। भला इतना तो आप स्वयं सोच सकते हो कि जैन ईश्वर को नहीं मानते तो लाखों करोड़ों द्रव्य व्यय कर मन्दिर क्यों बनाते और अहिर्निश ईश्वर की भक्ति गुणा कीर्त्तन क्यों करते ? तथा जैन साधु राजऋद्धि एवं सुख सम्पति का त्याग कर इस प्रकार के कठिन परिसहों को क्यों सहन करते इत्यादि प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध होता है कि जैनधर्म ईश्वर को अवश्य एवं यथार्थ मानता है।

अब जरा ईश्वर मानने वाले नहीं पर ईश्वर की विडम्बना करने वालों के भी हाल सुन लीजिये। जो लोग ईश्वर को निरंजन एवं निराकार मानते हैं फिर भी उनको पुनः पुनः अवतार भी धारण करवाते हैं जैसे इस समय दश अवतार की कल्पना कर रक्खी है जिसका परिचय आप लोगों को करवाये देता हूँ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः। रामो रामश्च कृष्णाश्च बुद्धः कल्की च ते दश ॥

इन दस अवतारों का विस्तार से वर्णन करके समझाया और बतलाया कि जब ईश्वर सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान है तो उसको अवतार की क्या आवश्यकता जिसमें भी मनुष्य जैसी पवित्र योनि को छोड़ मच्छ कच्छ वराहा और नरसिंह जैसे अवतार धारण करना भलों ऐसी पशु योनियों में अवतार लेना क्या बुद्धि मता कही जा सकती है ? अब आप स्वयं सोच सकते हो कि ईश्वर की मान्यता जैनों की श्रेष्ठ है या ब्राह्मणों की ?

अब रहा वेद का मानना—वेदों शुरू से तो जैनों के घर से ही प्रचलित हुए हैं भगवान आदीश्वर के मुखारविन्द से दिये उपदेश का साररूप भरत महाराज ने चार वेदों में संकलित कर जनता को उपदेश के लिए ब्राह्मणों को दिये थे और वे परमार्थी ब्राह्मण इन वेदों द्वारा स्वपर का कल्याण करते थे पर जब से ब्राह्मणों के मगज में स्वार्थ का कीड़ा पैदा हुआ तब से उन्होंने वेदों की असली श्रुतियों को बदल कर नकली वेद बना लिये। अतः जिन असली वेदों से जन कल्याण होता था वही नकली वेद निरपराधीमूक प्राणियों के कोमल कंठ पर छुरा चलाकर यज्ञ वेदियें रक्त रंजित कर रहे हैं। इसलिए जैन इन नकली वेदों को नहीं मानते हैं पर असली वेदों के तो जैन शुरू से ही उपासक थे और आज भी हैं इत्यादि।

× १ संसारदर्शनवेद, २ संस्थापन परामर्शनवेद, ३ तत्त्वबोधवेद, ४ विद्याप्रबोधवेद। (आवश्यकसूत्रवृत्ति)

सूरिजी के निडर एवं निष्पक्ष व्याख्यान का प्रभाव जनता पर ही क्यों पर उस सभा में बैठे हुए सम-भावी ब्राह्मणों पर भी काफी पड़ा था। फलस्वरूप कई पन्द्रह सौ ब्राह्मणों ने सूरिजी के चरण कमलों में जैन-धर्म स्वीकार कर लिया अतः सूरिजी की विजय और जैन धर्म की बड़ी भारी प्रभावना हुई। आचार्य यक्ष-देवसूरि कई अर्सा तक भीन्नमाल में विराजमान रहे बाद वहाँ से अन्यत्र विहार कर दिया।

सूरिजी महाराज दिग्वजयी चक्रवर्ती की भाँति सत्यपुर शिवगढ़ वबोली श्रीनगर, जावलीपुर, मेयाणी, करकोली रोजाल, कोरंटपुर, चन्द्रावती, पद्मावती आदि स्थानों में भ्रमण करते अनेक भव्यों को धर्म उपदेश देते हुए लाट प्रांत में पधारे उस समय स्तम्भनपुर में बौद्धाचार्य जयकेतु आया हुआ था और वह अपने बौद्धधर्म का प्रचार के लिये भरसक प्रयत्न भी करता था। श्री संघ ने सुना कि मरुधर से आचार्य यक्षदेव सूरि पधारे हैं। अतः संघ अग्रेश्वरों ने सूरिजी की सेवा में आकर स्तम्भनपुर पधारने की प्रार्थना की। सूरिजी महाराज ने विशेष लाभ का कारण जान स्तम्भनपुर की ओर विहार कर दिया बस फिर तो था ही क्या जनता का खूब उत्साह बढ़ गया उन्होंने स्वागत के लिए बड़ी २ तैयारियाँ कीं और सूरिजी महाराज का नगर प्रवेश का महोत्सव बड़े ही समारोह के साथ किया। बिचारे क्षणिकवादी बौद्धाचार्य की क्या ताकत थी कि वह स्याद्वाद सिद्धाँत के सामने क्षण भर भी ठहर सके। एक दिन सूरिजी के कई साधु थण्डिले भूमि को जा रहे थे वहाँ बौद्ध भिक्षुओं की भेंट हुई कुछ मत मतान्तर के विषय भी वार्तालाप हुआ पर सूरिजी के साधुओं के सामने वे नतमस्तक हुये अतः उन्होंने सोचा कि यहाँ अपनी चलने की नहीं है एवं यहाँ से रफूचक्कर होना ही अच्छा है बस दूसरे दिन ही बौद्धाचार्य वहां से चल पड़े यह सूरिजी महाराज की दूसरी विजय थी। वह चतुर्मास सूरिजी का स्तम्भनपुर में हुआ जिससे कई प्रकार से धर्म की उन्नति हुई। बाद चतुर्मास के शाह धरण के निकाले हुये संघ के साथ आप श्री ने श्रीशत्रुंजय तीर्थ की यात्रा की। तत्पश्चात् सौराष्ट्र देश में भ्रमन कर जैनधर्म की उन्नति एवं प्रचार को बढ़ाया। तत्पश्चात् आपने वहां से कच्छभूमि को पावन बनाया। कच्छ के रहीड नहिया कोमनपुर कटीला भाद्रेश्वर माडव्यपुर धूरा हापाणादि ग्राम नगरों में विहार करते हुये कच्छ प्रदेश को जागृत किया और तदान्तर आपने सिन्ध धरा में पदार्पण किया। सिन्ध की जनता को प्रथम यक्षदेवसूरि की स्मृति हो रही थी। सिन्ध में आपके बहुत से साधु साध्वियां भी विहार करते थे। आपने डाडोली, मानपुर, शिवनगर, उच्चकोट वीरपुर, डमरेल, रत्नगर, रामपुर आदि नगरों में भ्रमण कर जनता को धर्मोपदेश से जागृत की कई मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई, कई मुमुक्षुओं को दीक्षा दी और कई पतिताचार वालों को जैन बनाये। उस समय सिन्ध प्रान्त में जैनधर्म की अच्छी जाहो जलाली थी। उपकेश गच्छाचार्य्यों का बार २ आना जाना रहा करता था और आचार्यदेव के आज्ञावर्ती साधुओं का तो सदैव वहाँ विहार होना ही रहता था। इतना ही क्यों पर बहुत से साधु तो सिन्ध प्रांत के ही सुपुत्र थे और वह अपनी जन्मभूमि का आसानी से उद्धार भी किया करते थे। आचार्य यक्षदेवसूरि सिन्ध में विहार करने के पश्चात् सीधे ही कुनाल-पंजाब में पधारे वहाँ भी आपके बहुत से साधु साध्वी विहार करते थे। जब सूरिजी का शुभागमन सुना तो पंजाब में एक नई चेतनता उत्पन्न हो गई।

सूरिजी ने कुनाल में घूमते हुये लोहाकोट में चतुर्मास किया और मंत्री नागसेनादि १५ नर नारियों को दीक्षा दी जिसमें नागसैन का नाम मुनि विशालकलश रक्खा। तत्पश्चात् तक्षिला आदि की ओर

करके आप श्री जी हस्तनापुर सिंहपुरादि तीर्थों की यात्रा करते हुये आप मथुरा में पधारे। वहां के श्रीसंघ ने सूरिजी का बड़ा ही शानदार नगर प्रवेश महोत्सव किया।

उस समय मथुरा में बौद्धों का खूब ही जमघट रहता था और वे अपने धर्म का प्रचार भी करते थे। बौद्धाचार्य जयकेतु आपने भिक्षुओं के साथ वहां आया हुआ था फिर भी वहां जैनों का जोर भी कम नहीं था। उपकेश वंशीय कइ लोगों ने व्यापारार्थ वहाँ आकर वास कर दिया था उनकी संख्या भी काफी थी।

भला, एक नगर में दो धर्म के धुरंधर आचार्य एकत्र हों वहाँ धर्म विषय वाद हुये बिना कैसे रह सकता है। बस, मथुरा का भी यही हाल था। धर्म की चर्चा सर्वत्र गर्जना कर रही थी—

आचार्य यक्षदेवसूरि यों तो ३०० मुनियों के साथ मथुरा में पधारे थे पर आपके पास वीरभद्र और देवभद्र दो साधु बड़े ही प्रभावशाली एवं विद्वान थे। जैसे वे आगमादि साहित्य के धुरंधर थे वैसे ही वे विद्याओं एवं लब्धियों से भी विभूषित थे। जिसका परिचय पाठक पहले कर चुके हैं।

बौद्धाचार्य को अपनी शक्ति का भान नहीं था। उसने स्थम्भनपुर का बदला लेने के लिये शास्त्रार्थ करने को आवाहन कर दिया जिसको आचार्य श्री ने बड़ी खुशी के साथ स्वीकार कर लिया। वहाँ के राजा बलभद्र की राज सभा में शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ। ठीक समय पर दोनों आचार्य अपने विद्वान् शिष्यों के साथ राज सभा में उपस्थित हुये। बोद्धों का सिद्धान्त क्षणिकवाद था तब जैनियों का सिद्धान्त था स्याद्वाद। बौद्ध सब पदार्थों को क्षणिक स्वभाव वाले बतलाते थे तब जैन प्रत्येक पदार्थ को द्रव्य गुण पर्याय संयुक्त प्रतिपादित करते थे। द्रव्य गुण नित्य अक्षय हैं तब पर्याय क्षणिक है।

सूरिजी की अध्यक्षता में पंडित वीरभद्र और देवभद्र ने आगम एवं युक्ति प्रमाण से अपनी मान्यता को दृढ़ता के साथ साबित कर बतलाई और साथ में बौद्धों के क्षणक वाद का इस प्रकार खण्डन किया कि विचारे क्षणिक वादी बौद्ध उनके सामने ठहर ही नहीं सके। आखिर विजय माला जैनियों के ही कंठ में सुशोभित हुई और बौद्धों को नत मस्तक होना पड़ा अर्थात् जैनों का विजय डंका सर्वत्र बजने लगा।

सूरिजी महाराज ने श्रीसंघ के अत्याग्रह विनती से मथुरा में चतुर्मास कर दिया जिससे जैनधर्म की अच्छी प्रभावना एवं उन्नति हुई कई मन्दिर एवं मूर्तियों की प्रतिष्टा करवाई। कई मुमुक्षुओं को जैन दीक्षा देकर उनका उद्धार किया तथा बाद चतुर्मास के सूरिजी विहार करते हुए आवंति प्रदेश में पधारे वहां सर्वत्र विहार कर जनता को धर्मोपदेश सुनाया वहां से मेदपाट को पावन बनाया।

उस समय का चित्रकोट जैनों का एक केन्द्र कहलाता था जब सूरिजी मध्यमका पधारे थे तो चित्रकोट के भक्तजनों ने दर्शन के लिए तांता सा लगा दिया और अपने वहां पधारने की प्रार्थना की। सूरिजी महाराज चित्रकोट पधारे तो श्रीसंघ ने नगर प्रवेश का शानदार महोत्सव किया कारण उस समय मंत्री महामंत्री सेनापति वगैरह जितने राजकर्मचारी थे वह सब जैन एवं उपकेशवंशी ही थे फिर कमी ही किस बात की थी। सूरिजी का सारगर्भित व्याख्यान हमेशाँ होता था जैन जैनेतर खूब आनन्द लूट रहे थे श्रीसंघ की अति आग्रह से विनति होने से सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जान वह चतुर्मास चित्रकोट में करना निश्चय कर लिया श्रेष्टिवर्य्य मंत्री सादा ने बड़े ही महोत्सव पूर्वक श्रीभगवती सूत्र बचाया जिसमें मंत्रीश्वर ने ज्ञानपूजा वगरह में सवा लक्ष द्रव्य व्यय कर अनन्त पुन्योपार्जन किया इसी प्रकार अन्य लोगों ने भी लाभ हांसिल किया सूरिजी के व्याख्यान का राज प्रजा पर खूब प्रभाव पड़ता था जैनाचार्यों के

व्याख्यान का मुख्य ध्येय त्याग वैराग्य और संसार की असारता बतलाने का था और हलूकर्मी जीवों को आपका उपदेश लग भी जाता था आज हमें आश्चर्य होता है कि हम वर्षों तक उपदेश देते हैं कोई विरले ही दीक्षा लेते हैं तब उस जमाने में थोड़ा सा उपदेश से बहुत से लोग दीक्षा लेने को तैयार हो जाते थे इसका कारण यही हो सकता है कि उस जमाना के जीवों के क्षयोपसमथी वे लोग भाग्यशाली थे और अपने कल्याण को खरे जिगर से चाहते थे सूरिजी के चतुर्मास करने से धर्म की अच्छी उन्नति हुई कई सात पुरुष और चौदह बहनों सूरिजी के चरणों में दीक्षा लेने को तैयार हो गये चतुर्मास समाप्त होते ही जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सवादि दीक्षा की तैयारियें होने लगी। सूरिजी ने शुभ मुहूर्त और स्थिर लग्न ने उन मुमुक्षुओं को विधि विधान से दीक्षा दे कर उनका उद्धार किया। तत्पश्चात वहाँ से ग्रामानुग्राम विहार करते आघाट नगर में पधारे वहाँ का श्रीसंघ ने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। सूरिजी के पास सैकड़ों साधु रहते थे जब आप पढ़ा नगर से विहार करते तब थोड़े थोड़े साधुओं को सर्वत्र विहार की आज्ञा दे देते थे कि कोई भी जैन बसती वाला ग्राम धर्मोपदेश से वंचित नहीं रहता था। यही कारण है कि वे जैनधर्म का प्रचार करने में अच्छी सफलता प्राप्त कर लेते थे। मेदपाट में पहले से ही सूरिजी के साधुविहार करते थे जब सूरिजी को आघाट नगर में पधारे सुना तो वे सब दर्शनार्थी आये सूरिजी ने उनके प्रचार कार्य की खूब सराहना कर उनका उत्साह को द्विगुनित कर दिया कि भविष्य के लिये दूसरे मुनि भी अपना प्रचार कार्य को बढ़ाते रहे। सूरिजी शासन तन्त्र चलाने में बड़े ही कुशल थे जिन साधुओं ने मेदपाट में विहार करने को बहुत अर्सा हो गया था उनको अपने साथ में ले लिये और अपने पास के साधुओं को मेदपाट में विहार करने की आज्ञा फरमादी। सूरिजी महाराज स्वतन्त्र विहार करने वाले मुनियों में पदवीधरों की आवश्यकता को भी जानते थे अतः आपने इसी आघाट नगर में कई योग्य मुनियों को पदवियां प्रदान करने का भी निश्चय कर लिया था। इससे वहाँ के श्रीसंघमें हर्षका पार नहीं रहा—

मुनि निधानकलस बड़े ही त्यागी वैरागी और तपस्वी थे। आप पहिले तो ज्ञान सम्पादन करने में जुट गये अतः सूरिजी महाराज की पूर्ण कृपा से थोड़े ही समय में जैनागमों का अध्ययन कर लिया और साथ में व्याकरण न्याय तर्क छन्द अलंकारादि साहित्य के आप धुरंधर विद्वान बन गये तर्क वाद एवं युक्ती प्रमाण तो आपका इतना जबर्दस्त था कि वादी प्रतिवादी आपके सामने ठहर ही नहीं सकते थे। कहा भी है कि 'कर्मेशूरा सो धर्मेशूरा' जब आप संसार में मंत्री पद को सुशोभित करते हुये राजतंत्र चलाने में कुशल थे तो यहाँ धर्म शासन चलाने में दक्ष हों तो कौनसी आश्चर्य की बात है।

सूरिजी महाराज ने मुनि निधानकलस की योग्यता पर विचार कर कुमट गोत्रिय मंत्री रणदेव के महामहोत्सव पूर्वक कई मुनियों को पदवियां प्रदान की जिसमें निधानकलस को उपाध्याय पद से विभूषित बनाये तत्पश्चात् सूरीश्वरजी भ्रमण करते हुए मथुरा की ओर पधार रहे थे तो मथुरा वासियों के आनंद का पार नहीं रहा। वे पहले से ही आपश्रीजी के दर्शनों के पिपासु बन रहे थे—

यह तो हम कई बार कह आये हैं कि उपकेशगच्छाचार्यों को धर्म प्रचार के लिये तो एक लगन ही लगी थी कि वे गच्छनायकता की जुम्मावारी को अपने सिर पर लेते थे तो एक बार तो इस प्रकार [illegible] दे ही देते थे। इसका खास कारण यह था कि उपकेशगच्छाचार्यों ने इन प्रदेशों में भ्रमण कर [illegible] नहीं पर करोड़ो अजैनों को जैन बनाये थे। अतः उनको धर्मोपदेश देना एक जरूरी बात थी। [illegible]

उपकेशगच्छ के साधुसाध्वियां वहाँ सदैव विहार करते ही थे पर गच्छनायक आचार्य के पधारने से चतुर्विध श्रीसंघ में उत्साह बढ़ जाता था अतः कमसे कम एक बार तो इन क्षेत्रों में वे अवश्य पधारते थे।

आचार्य यक्षदेवसूरि एक महान प्रभाविक आचार्य हुये। आपके आज्ञावृति हजारों साधु साध्वियां प्रत्येक प्रान्त में विहार कर महाजनसंघ का रक्षण पोषण और वृद्धि करते थे। खूबी यह थी कि इस गच्छ में एक ही आचार्य होते थे और वे सब प्रान्तों को सँभाल लेते थे। आचार्य यक्षदेवसूरि मरूधरमें सर्वत्र विहार करते हुए अपनी अन्तिम अवस्था में उपकेशपुर पधारे थे और वहाँ के श्रीसंघ के महामहोत्सव पूर्वक उपाध्याय निधानकलस को अपने पट्टपर स्थापन कर आप अन्तिम सलेखान एवं अनशन और समाधि पूर्वक स्वर्गवास किया पट्टावली कारोंने आपके शासन समय की कई घटनाए लिखी थी जिसमें आभा नगरी के जगा शाह सेठ की महत्व पूर्ण घटना का विस्तार से वर्णन किया है जिसको संक्षिप्तसे यहाँ लिखदी जाती है।

आभानगरी में बाप्पनागगोत्रीय शाह देशल बड़ा भारी व्यापारी वसता था जिसने विदेश में जहाजों द्वारा व्यापार कर करोड़ों का द्रव्य पैदा किया था। एक वर्ष बड़ा भारी दुकाल पड़ा था। शाह देसल ने करोड़ों रुपये व्यय कर गरीबों को अन्न और पशुओं को घास देकर उनके प्राण बचाये। भाग्यवशात दूसरे वर्ष भी दुकाल पड़ गया। शाह देशल का पुत्र जगा भी दानेश्वरी था। दूसरे वर्ष के दुकाल में शाह जगाने बीड़ा उठा लिया। जहाँ तक अपने पास में द्रव्य रहा वहाँ तक जहाँ जिस भाव मिला अन्न और घास मँगा कर जनता को देता रहा पर दुकाल के कारण दुनियाँ एक दम उलट पड़ी थी। शाह जगाने विदेश से जहाजों द्वारा अन्न मँगाया और अपने पास जो द्रव्य शेप रहा था वह जहाजों के साथ विदेश में भेज दिया था। भाग्यवशात् वापिस आते हुये जहाज पानी में डूब गया। यह समाचार मिलते ही शाह जगा निराश होगया उसके पास अब द्रव्य भी नहीं था कि कुछ दूसरा उपाय कर सके पर घर पर आये हुये लोगों को इन्कार करना भी तो जगा अपना कर्त्तव्य नहीं समझता था अर्थात् अपनी मृत्यु ही समझता था। अतः अपनी औरत का जेवर और जायदाद तक को बेच कर आये हुओं को अन्न दिया पर इस प्रकार वह कार्य कितने दिन चलने वाला था आखिर शाह जगा हताश होगया और आये हुये अन्नार्थियों को ना कहने से मर जाना अच्छा समझ कर उसने देवी सच्चायिका को प्रार्थना की कि या तो मुझे शक्ति दो कि मैं रहे हुये शेप दुकाल को निकालूं या मुझे मृत्यु ही दे दीजिये।

देवी सच्चायिका ने शाह जगा की उदारता सत्यता परोपकारता पर प्रसन्न होकर उसको अखूट निधान बतला दिया जिससे उसने काल का शिर फोड़ डाला। जब दुकाल के अन्त में सुकाल हुआ तो एक विराट संघ लेकर उपकेशपुर आया। जगाशाह का संघ कोई साधारण संघ नहीं था पर इस संघ में सैकड़ों साधु साध्वियां लाखों नर नारी और कई राजा महाराजा साथ में थे। संघपति ने उपकेशपुर पहुँच कर भगवान महावीर की यात्रा और देवी सच्चायिका का पूजन किया और याचकों को एक करोड़ रुपयों का दान दिया इत्यादि इस घटना का समय वंशावलियों में वि० सं० २२२ का बतलाया है। इस जगाशाह के विशाल दान की यादगारी में याचक लोगों ने ओसवालों की उत्पत्ति का समय बीयेबावीस लिख दिया है। वास्तव में यह समय ओसवालों की उत्पत्ति का नहीं पर जगाशाह के दान का ही समझना ही चाहिये।

कारण उस समय ओसवाल शब्द का जन्म भी नहीं हुआ था इस घटना के विषय वंशावलियों में अ कवित्त भी मिलते हैं। यद्यपि वे कवित इतने प्राचीन नहीं है पर सर्वथा निराधार भी नहीं है।

आभा नगरी थी आव्यो, जग्गो जग में भाण। साचल परचो जब दीयो, जब शीश चढ़ाई आण ॥
जुग जीमाड्यो जुगत सु, दीधो दान प्रमाण। देशलसुत जग दीपता, ज्यारी दुनिया माने काँण ॥
चूप धरी चित भूप, सैना लई आगल चाले। अश्वपति अपार, खडखपति मिलीया माले ॥
देरासर बहु साथ खरच सामो कौण भाले। घन गरजे वरसे नहीं, जगो जुग वरसे अकाले ॥
यति सती साथे घणा, राजा राणा बड़ भूप। बोले भाट बिरुदावली, चारण कविता चूप ॥
मिलीया भोजक सांमटा, पूरे संक्ख अनूप। जग जस लीनो दान दे, यो जग्गो संघपति भूप ॥
दान दियी लख गाय, लखवलि तुरंग तेजाला। सोनो सौ मण सात, सहस मोतियन की माला ॥
रूपानो नहीं पार, सहस करहा करमाला। बीयेबावीस भल जागियो, तुं ओसवाल भूपाला ॥

जगाशाह का विचार श्री शत्रुंजय गिरनारादि तीर्थों की यात्रा करने का था पर ऋतु प्रतिकूल आगई थी अतः वे जा नहीं सके पर वहां से एक एक करोड़ रुपये दोनों तीर्थों के उद्धारार्थ भेजवा दिये और संघ के साथ स्वाधर्मी भाइयों को सोने की कण्ठियों और वस्त्रों की पहरामणी देकर संघ पूजा की तत्पश्चात् संघ विसर्ज्जन हुआ। जिस पर देव देवियों को प्रसन्नता हो वे पुन्योपार्जन करने में कमी क्यों रक्खे। शाह जगा ने इस प्रकार सुकृत कार्य करके अपना नाम अमर कर दिया था—

यह तो एक जगाशाह का हाल लिखा है पर उस जमाना में ऐसे कई दानेश्वरी हुए हैं और उन की इस प्रकार उदारता के कारण ही इस जाति की साधारण जनता ही नहीं पर बड़े-बड़े राजा महाराजाओं ने बड़ी भारी इज्जत बड़ाई और सन्मान कर अनेक उपाधियों से भूषित किये थे।

पट्टावलियो वंशावलियों आदि चरित्र ग्रन्थों में सूरिजी के शासन में अनेक भावुकों ने संसार को असार जान कर दीक्षा को स्वीकार की थी जिनके कतिपय नाम

१—भाडव्यपुर	के	भूरिगौत्रीय	हरपाल ने	जैन दीक्षा ली
२—पतालानी	के	डिड्डगौत्रीय	चूड़ा ने	"
३—पाड्यपुरा	के	सुघड़गौत्रीय	पहाड़ ने	"
४—नागपुर	के	चारड़गौत्रीय	संगार ने	"
५—संखपुर	के	भलोटगौत्रीय	खीवसी ने	"
६—भावाणी	के	श्री श्रीमाल गौ०	गेंदादि ९ जने	"
७—करगोट	के	चोरड़िया जाति	आदू ने	"
८—खटकुंप	के	भाद्रगौत्रीय	शंख ने	"
९—भावोली	के	प्राग्वटीय	दूधा ने	"

* यह कवित्त इतना पुराना तो नहीं है पर चली आई दंतकथा के अनुसार किसी पिछले कवि ने इस प्रकार के कविता का रूप दे दिया हो तो कोई असंभव नहीं कहा जा सकता है।

इस लेख में जिस गौत्र का नाम आइच्चणाग लिखा है यह प्राकृत रूप है और इसी आइच्चणाग का रूपान्तर संस्कृत आदित्यनाग नाम लिखा है। इसके लिये निम्न शिला लेख

"सं० १५१४ वर्षे मार्ग शीर्ष सुद १० शुक्रे उपकेश ज्ञातौ आदित्यनाग गौत्रे सा० गुणधर पुत्र सा० डालण भा० कपूरी पुत्र सा० खेमपाल भ० जिणदेवाइ पु० सा० सोहिलेन भ्रातृ पासदत्त देवदत्त भार्य नानू युगतेन पित्रोः पुण्यार्थ श्री चन्द्रप्रभ चतुर्विंशति पट्टकारितः प्रतिष्ठितः श्री उपकेश गच्छे कक्कुदाचार्य संताने श्री कक्कसूरिभिः श्रीभट्ट नगरे—

बाबू पूर्णचन्दजी सं० शि० प्र० पृष्ठ १३ लेखांक ५०

उपरोक्त आइच्चणाग और आदित्यनाग गौत्र लिखा है ये दोनों एक ही हैं इन गौत्रों की एक शाखा चोरडिया-चोरवेडिया है और निम्नलिखित शिलालेखों में भी ऐसा ही लिखा है देखिये शिलालेख—

"सं० १५६२ व० वै० सु० १० र वौ उकेश ज्ञातौ श्री आदित्यनाग गौत्रे चोरवेडिया शाखायां व० डालण पुत्र रत्नपालेन सं० श्रीवत व० धधुमल्ल युक्तेन मातृ पितृ श्रेय श्रीसंभवनाथ बिंबं का० प्र० उपकेश गच्छे कुकुदाचार्ये० श्रीदेवगुप्तसूरिभिः

बा० पू० सं० शि० प्र० पृष्ठ ११७ लेखांक ४६६

आगे आदित्यनाग गौत्र और चोरडिया शाखा किस गच्छ के उपासक हैं वह भी देखिये—

"सं० १५१९ वर्षे ज्येष्ट वद ११ शुक्रे उपकेश ज्ञातीय चोरवेडिया गौत्रे उएशगच्छे सा० सोमा भा० धनाइ० पु० साधु सोहागदे सुत ईसा सहितेन स्व श्रेयसे श्री सुमतिनाथ बिंबंकारिता प्रतिष्टितं श्री कक्क-सूरिभिः सीणिरा वास्तव्यं

लेखांक ५५७

इस लेख में चोरडिया जाति उएश-उपकेश गच्छ की बतलाई है

उपरोक्त चार शिलालेख स्पष्ट बतला रहे हैं कि चोरड़िया जाति का मूलगौत्र आदित्यनाग है और आदित्यनाग गौत्र की उत्पत्ति नागवंशीय क्षत्रीवीर आदित्यनाग के नाम से हुई है आदित्यनाग को आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपदेश देकर जैन बनाया था तत्पश्चात् आदित्यनाग ने श्रीशत्रुंजयतीर्थ की यात्रार्थ विराट संघ निकाला तथा और भी अनेक धर्म कार्य करने से आदित्यनाग की संतान आदित्यनाग के नाम से कहलाने लगी आगे चल कर उन लोगों का आदित्यनाग गौत्र बन गया और इस गौत्र की इतनी उन्नति एवं आबादी हुई कि चोरडिया गुलेच्छा पारख गादियादि ८४ जातियें बन गई जिसका वर्णन आप आगे चल कर इसी ग्रन्थ में पढ़ सकोगे—

आदित्यनाग गोत्र आचार्य रत्नप्रभसूरि स्थापित महाजन संघ के १८ गोत्रों में से एक है। प्राकृत के लेखकों ने आदित्यनाग को, अइच्चणाग' भी लिखा है जो ऊपर के शिलालेखों में दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है। आदित्यनाग गोत्रिय आमदेव निंबदेव के लघु भ्राता भैंसाशाह हुआ जिसने वि० सं० २०९ में श्रीशत्रुंजय का विराट् संघ निकाल के यात्रा की थी। हाँ, इस अदित्यनाग गोत्र की चोरडिया शाखा में भैंसा नाम के चार पुरुष हुये हैं और चारों ही धर्मज्ञ एवं दानेश्वरी हुये हैं पर कितनेक वंशावलिकारों ने एवं-लेखकों ने तीसरे भैंसाशाह के साथ घटी घटना को पहिले भैंसाशाह के साथ जोड़ देने की भूल की है और

नाम की सभ्यता होने से ऐसी भूल हो ही जाती है जैसे पंचमी से चतुर्थी की सांवत्सरी के कर्त्ता वीर की पांचवी शताब्दी में कालकाचार्य हुये पर नाम की साम्यता होने से उस घटान को वीर की दशवीं शताब्दी में हुये कालकाचार्य्य के साथ जोड़ दी है। यही हाल भैंशाशाह का हुआ है जिसको हम यथा स्थान लिखकर खुलासा करेंगे।

---

*इसी ग्रन्थ के पृष्ठ १३६ पर चारों भैंशाशाह का समय लिख आये हैं वहाँ से देखेंगे।

× भूस्वर्गायमण्डनानेक गगन चुम्बिसन्मंदिर पताका वीजित गत कल्म से स्वस्व धर्म परिपाळन निरत नरनारी गण संकलिते सन्नपति शासन संतुष्ट वर्णनिवहे सुप्राकार परीखादिव्यावृत दिग्विभागे अति मनोहरे श्री चित्रकोट नगरे-चोरलिया शाखापाथोज दिन मणि रादित्यनाग गोत्रीयः ससक्षेत्रदत्त प्रसूत धनाशाविस्तृत कीर्तिलतासच्छाय श्री दीप्ततेजाः सर्वप्राणि प्रियरसाल वदाम्रदेवाभिधः श्रेष्ठिपुंगवः॥ पूर्वजन्मोपार्जित पुण्य पूतात्मा स च नाना दिग्देशान्तरालकृता नेकविधवस्तु जात व्यापरेण तदंगतया कुवेर समान धन राशि ना च अलभत जनता सु प्रसिद्धिम्।

तस्मिन्नेव च खलु कमनीयनगरे प्राग्वट वंशावतंस श्री आम्रदेवनामा कश्चिन्महावैक्रयिको वसतिस्म॥ नैगमप्रधानः॥ नानाव्यापारसमृद्धि सज्जित चत्वरहट्टप्रतोली विभाग कमनीयतर श्रीभृगुकच्छ (भरोंच) इति शुभनामसमलंकृतनगरात् कश्चित्कासीदनामाख्यः पत्रहरश्चित्रकोटे नगरे समादुढौके।

तथा च चित्रकोट नगरस्य विस्ताररम्यापणिकासु प्रतिष्टांगटकञ्च नगरप्रसिद्धाम्रदेवश्रेष्ठिनः पत्रच्छनामादिकम्॥ परंच तन्नाम कलितेनापरेणकेनचिद्दक्षनैगमेन-आदित्यनागगोत्रेण आगन्तुक व्यवहार शून्य काशीदात्पत्रमादाय आपादि च तत्र च मनोरमे पत्रे विविधक्रय्यवस्तूनांमनर्घ्यं मूल्य समाचारा आसन चतुरेण तेन सुन्दररसवत्या काशीदं भोजयित्वा सुख शयनीयतल्पे तं मधुरालापैर स्वापन- स च काशीद मनोहराहारास्वादनतर्योदरम्परि मृजः सन् सानंद पञ्चघण्टा परिमित काले सुष्वाप।

तदन्तरे बुद्धिशालिना तेन नानाविधवस्तुजातं स्वरैवाकीर्णीतम् पश्चाच्छनैशनैः स काशीदश्च नेत्रोन्मीलिकांतिराव जागार भणितश्चाम्रदेवेन भो देवानाम्प्रिय। नास्तीदम्पर्णं मामकीनम किन्तु मन्नामसदृशः कश्चिदपर प्राग्वटवंशीयो श्रुति तस्येदं दलं तत्र प्रयाहि देहिच असौ काशीदोऽपि विमनाः सन् प्राग्वटान्वयिश्रेष्ठिप्रवराम्रदेवस्याभ्यर्णं मंक्षु जगाम दर्शितवान् पत्रं पत्रं पठितश्च भूयः शिरोधूनन पूर्वकम् व्याजहार-यदि च-भवान् चतुर्घण्टा पूर्वंहता-आगमिष्यन्-तर्हि अतीव पेशलमभविष्य तथा च तवेभ्यराजस्य महान् लाभोऽभविष्यत् सच प्रहिल श्चेतस्ततो दिशोऽवलोकयन किञ्चिन्निरवस्य सादरमभाषत्। महानुभाव श्रेष्ठिन्-पट्घण्टापरिमितपूर्वकालो त्रागमम किन्चान्याम्रदेवेन भोजयित्वा स्वापितोहम्- ससभ्रमभुत्थाय चकित इवोक्तन् किं तेन पत्रं पठितम् ओ (स्वीकारे) मित्युक्तेसति शीघ्रमेव आपणे गत्वा प्राग्वटवंशीयाम्रदेवः आदित्यनाग वंशीयाम्रदेव प्रति सावमर्शं प्रावोचन्।

अरे व्यंसकराट् मामकं पत्र मुन्मुद्रायित्वा स्वकीयकार्यं साधितं धिक् स्तेयवृत्ति महाजनवंश-समुत्पन्नोऽपि चौर्यं कर्म करोति इत्यादि साक्षेपवचनैस्तदुपरि समजनि तदारभ्य सर्वे तं (चोरलिया) इति वचनपुरस्सरमाह्वयाम सुः तद्दिनादेव तत्संतति चोरलियेत्यभिधया प्रसिद्धाभूत दन्यत्र।

२२—आचार्य श्री यक्षदेवसूरि (चतुर्थ)

रत्नं सुंचित वंश मध्य सुमतो यो यक्षदेव स्तुतः।
ज्ञानापार महोदधिः सुगदितो मुख्योऽभवद्गन्थकृत् ॥
साहित्यस्य विचार चारु सरणा वग्रे मतः सर्ववित्।
मोक्षेच्छुनयमादिशत् सुसरलं मार्गं सुवन्धस्ततः ॥

आचार्य श्री यक्षदेवसूरीश्वर महाप्रतिभाशाली एवं जैनधर्म के एक धुरंधर आचार्य हुवे हैं। आप श्रीमान् आजीवन ब्रह्मचारी थे। अंबा पद्मा छुपत्ता और विजय एवं चार देवियां हमेशा आपकी सेवा करती थी आप वचनसिद्धि आदि अनेक लब्धियों और कई चमत्कार विद्याओं से विभूषित थे। कई राजा महाराजा आपके चरण कमलों की सेवा करते थे। आपका जीवन पूर्ण रहस्यमय था। पट्टावलीकारों ने लिखा है कि आप सत्यपुर नगर के सुचन्ति गोत्र के दानवीर लाखण की सुशीला भार्या मांगी के धर्मसी नाम के लाड़ले पुत्र रत्न थे। आपकी बालक्रीड़ा एक होनहार प्रचण्ड प्रतापी पुरुषोंचित थी। विनयगुण और धार्मिक संस्कार तो आपके घराने में शुरू से ही चले ही आरहे थे। अतः धर्मसी के लिये इन गुणों के प्राप्त करने के लिये किसी अध्यापक की आवश्यकता ही नहीं थी। माता पिता ही उनके अध्यापक थे।

शाह लाखण के सात भाई और सात पुत्र थे और कई नगरों में आपकी दुकानें भी थी तथा विदेशियों के साथ आपका विशाल व्यापार था। एक दुकान आपकी जावाद्वीप में भी थी। व्यापार में आपने करोड़ों द्रव्य पैदा किया था। शाह लाखण जैसे द्रव्य पैदा करने में चतुर व्यापारी था। वैसे ही न्यायोपार्जित द्रव्य व्यय करने में भी कुशल था। जो कार्य करता था वह दीर्घ दृष्टि एवं सद्विचार से ही करता था और शुभकार्य में उदारतापूर्वक लक्ष्मी का सदुपयोग भी किया करता था। आपने उपाध्याय पद्महंस के उपदेश से सत्यपुर में भगवान् पार्श्वनाथ का विशाल मन्दिर बनाकर उसमें ४१ अंगुल के प्रमाणवाली भगवान् पार्श्वनाथ की सुवर्णमय मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई तथा श्री शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रार्थ एक विराट् संघ निकाला और चांदी का थाल सोने की कटोरी में पांच पांच मुद्रिकायें साधर्मी भाइयों को पहिरामणी दी इत्यादि इन शुभ कार्य्यों में शाह लाखन ने एक करोड़ द्रव्य खर्च कर अनंत पुन्योपार्जन किया जिससे शाह लाखन की उज्ज्वल कीर्ति चारों ओर फैल गई थी।

एक समय सत्यपुर के उद्यान में एक सन्यासी आया था और वह बाल ब्रह्मचारी होने से उसके पास कई विद्यायें भी थी जिसका चमत्कार दिखा कर जनता को अपनी ओर आकर्षित किया करता था। 'चमत्कार को नमस्कार' इस युक्ति से जनता में सन्यासीजी की बहुत महिमा फैलगई।

एक समय धर्मसी अपने साथियों के साथ सन्यासीजी के पास चला गया और सन्यासीजी को देखा कि कभी सिंह तो कभी सर्प कभी मयूर तो कभी गरुड़ बन जाते हैं। कभी स्थानान्तर तो कभी आकाश-गमन, कभी मिष्टान्न का ढेर तो कभी रुपयों का ढेर लगा कर आये हुवे लोगों को संतुष्ट कर रहे हैं।

नाम की सभ्यता होने से ऐसी भूल हो ही जाती है जैसे पंचमी से चतुर्थी की सांवत्सरी के कर्त्ता वीर की पांचवी शताब्दी में कालकाचार्य हुये पर नाम की साम्यता होने से उस घटान को वीर की दशवीं शताब्दी में हुये कालकाचार्य्य के साथ जोड़ दी है। यही हाल भैंशाशाह का हुआ है जिसको हम यथा स्थान लिखकर खुलासा करेंगे ।

*इसी ग्रन्थ के पृष्ठ १३१ पर चारों भैंशाशाह का समय लिख आये हैं वह से देखेंगे ।

× भूस्वर्गायमण्डनानेक गगन चुम्बिसन्मंदिर पताका वीजित गत कल्म से स्वस्त्र धर्म परिपालन निरत नरनारी गुण संकलिते सन्नपति शासन संतुष्ट,वर्णनिवहे सुप्राकार परीखादिव्यावृत दिग्विभागे अति मनोहरे श्री चित्रकोट नगरे-चोरलिया शाखापाथोज दिन मणि रादित्यनाग गोत्रीयः ससक्षेत्रदत्त प्रसूत धनाशाविस्तृत कीर्तिलतासच्छाय श्री दीप्ततेजाः सर्वप्राणि प्रियरसाल वदाम्रदेवाभिधः श्रेष्ठिपुंगवः ॥ पूर्वजन्मोपार्जित पुण्य पूतात्मा स च नाना दिग्देशान्तरालकृता नेकविधवस्तु जात व्यापरेण तदंगतया कुबेर समान धन राशि ना च अलभत जनता सु प्रसिद्धिम् ।

तस्मिन्नेव च खलु कमनीयनगरे प्राग्वट वंशावतंस श्री आम्रदेवनामा कश्चिन्महावैक्रयिको वसतिस्म ॥ नैगमेप्रधानः ॥ नानाव्यापारसमृद्धि सज्जित चत्वरहट्टप्रतोली विभाग कमनीयतर श्रीभृगुकच्छ (भरोंच) इति शुभनामसमलंकृतनगरात् कश्चित्कासीदनामाख्यः पत्रहरश्चित्रकोटे नगरे समादुढौके ।

तथा च चित्रकोट नगरस्य विस्ताररम्यापणिकासु प्रतिष्टांगटकञ्च नगरप्रसिद्धाम्रदेवश्रेष्ठिनः पप्रच्छनामादिकम् ॥ परंच तन्नाम कलितेनापरेणकेनचिद्दक्षनैगमेन-आदित्यनागगोत्रेण आगन्तुक व्यवहार शून्य काशीदात्पत्रमादाय आपादि च तत्र च मनोरमे पत्रे विविधक्रय्यवस्तूनांमनर्घ्यं मूल्य समाचारा आसन चतुरेण तेन सुन्दररसवत्या काशीदं भोजयित्वा सुख-शयनीयतल्पे तं मधुरालापैर स्वापन- स च काशीद मनोहराहारास्वादनतर्योदरम्परि मृजः सन् सानंद पञ्चघण्टा परिमित काले सुष्वाप ।

तदन्तरे बुद्धिशालिना तेन नानाविधवस्तुजातं स्वरैवाकीर्णीतम् पश्चाच्छनैशनैः स काशीदस्च नेत्रोन्मीलितोविरामं च जागार भणितश्चाम्रदेवेन भो देवानाम्प्रिय । नास्तीदम्पर्णं मामकीनम किन्तु मन्नामसदृशः कश्चिदपर प्राग्वटवंशीयो वणि तस्येदं दलं तत्र प्रयाहि देहिच असौ काशीदोऽपि विमनाः सन् प्राग्वटान्वयिश्रेष्ठिप्रवराम्रदेवस्याम्पर्णं मंक्षु जगाम दर्शितवान पत्रं पत्रं पठितश्च भूयः शिरोधूनन पूर्वकम् व्याजहार-यदि च-भवान् चतुर्घण्टा पूर्वहता-आगमिष्यन् तर्हि अतीव पेशलमभविष्य तथा च तवेभ्यराजस्य महान् लाभोऽभविष्यत् सच प्रहिल श्वेतस्ततो दिशोऽवलोकयन किञ्चिच्चिदवस्य सादरमभाणीत् । महानुभाव श्रेष्ठिन्-पट्घण्टापरिमितपूर्वकालो आगमम किन्चान्याम्रदेवेन भोजयित्वा स्वापितोहम्- ससभ्रममुन्मत्त वणिक चक्रि इवोच्चम् किं तेन पत्रं पठितम् ओ (स्वीकारे) मित्युक्तेसति शीघ्रमेव आपणे गत्वा प्राग्वटवंशीयाम्रदेवः-आदित्यनाग वंशीयाम्रदेव प्रति सावमर्दो प्रावोचत् ।

अरे व्यंसकरात् मामकं पत्र मुन्मुद्रायित्वा स्वकीयकार्यं साधितं धिक् स्तेयवृत्ति महाजनवंशे-समुत्पन्नोऽपि चौर्यं कर्म करोति इत्यादि साक्षेपवचनैस्तदुपरि समजनि तदारम्य सर्वे तं (चोरलिया) इति वचनपुरस्सरमाह्वयाम सुः तदिनादेव तत्सन्तति चोरलियेत्यभिधया प्रसिद्धाभूत दन्यत्र ।

२२—आचार्य श्री यक्षदेवसूरि (चतुर्थ)

रत्नं सुंचित वंश मध्य सुमतो यो यक्षदेव स्तुतः ।
ज्ञानापार महोदधिः सुगदितो मुख्योऽभवद्ग्रन्थकृत् ॥
साहित्यस्य विचार चारु सरणा वग्रे मतः सर्ववित् ।
मोक्षेच्छ्नयमादिशत् सुसरलं मार्गं सुवन्यस्ततः ॥

आचार्य श्री यक्षदेवसूरीश्वर महाप्रतिभाशाली एवं जैनधर्म के एक धुरंधर आचार्य हुये हैं। आप श्रीमान् आजीवन ब्रह्मचारी थे। अंबा पद्मा छूपत्ता और विजय एवं चार देवियां हमेशा आपकी सेवा करती थी आप वचनसिद्धि आदि अनेक लब्धियों और कई चमत्कार विद्याओं से विभूषित थे। कई राजा महाराजा आपके चरण कमलों की सेवा करते थे। आपका जीवन पूर्ण रहस्यमय था। पट्टावलीकारों ने लिखा है कि आप सत्यपुर नगर के सुचन्ति गोत्र के दानवीर लाखण की सुशीला भार्या मांगी के धर्मसी नाम के लाड़ले पुत्र रत्न थे। आपकी बालक्रीड़ा एक होनहार प्रचण्ड प्रतापी पुरुषोंचित थी। विनयगुण और धार्मिक संस्कार तो आपके घराने में शुरू से ही चले ही आरहे थे। अतः धर्मसी के लिये इन गुणों के प्राप्त करने के लिये किसी अध्यापक की आवश्यकता ही नहीं थी। माता पिता ही उनके अध्यापक थे।

शाह लाखण के सात भाई और सात पुत्र थे और कई नगरों में आपकी दुकानें भी थी तथा विदेशियों के साथ आपका विशाल व्यापार था। एक दुकान आपकी जावाद्वीप में भी थी। व्यापार में आपने करोड़ों द्रव्य पैदा किया था। शाह लाखण जैसे द्रव्य पैदा करने में चतुर व्यापारी था। वैसे ही न्यायोपार्जित द्रव्य व्यय करने में भी कुशल था। जो कार्य करता था वह दीर्घ दृष्टि एवं सद्विचार से ही करता था और शुभकार्य में उदारतापूर्वक लक्ष्मी का सदुपयोग भी किया करता था। आपने उपाध्याय पद्महंस के उपदेश से सत्यपुर में भगवान् पार्श्वनाथ का विशाल मन्दिर बनाकर उसमें ४१ अंगुल के प्रमाणवाली भगवान् पार्श्वनाथ की सुवर्णमय मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई तथा श्री शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रार्थ एक विराट् संघ निकाला और चांदी का थाल सोने की कटोरी में पांच पांच मुद्रिकायें साधर्मी भाइयों को पहिरामणी दी इत्यादि इन शुभ कार्य्यों में शाह लाखन ने एक करोड़ द्रव्य खर्च कर अनंत पुन्योपार्जन किया जिससे शाह लाखन की उज्ज्वल कीर्ति चारों ओर फैल गई थी।

एक समय सत्यपुर के उद्यान में एक सन्यासी आया था और वह बाल ब्रह्मचारी होने से उसके पास कई विद्यायें भी थी जिसका चमत्कार दिखा कर जनता को अपनी ओर आकर्षित किया करता था। 'चमत्कार को नमस्कार' इस युक्ति से जनता में सन्यासीजी की बहुत महिमा फैलगई।

एक समय धर्मसी अपने साथियों के साथ सन्यासीजी के पास चला गया और सन्यासीजी को देखा कि कभी सिंह तो कभी सर्प कभी मयूर तो कभी गरुड़ बन जाते हैं। कभी स्थानान्तर तो कभी आकाशगमन, कभी मिष्टान्न का ढेर तो कभी रुपयों का ढेर लगा कर आये हुये लोगों को संतुष्ट कर रहे हैं।

जब सन्यासीजी अपने आसन पर बैठे तब धर्मसी ने पूछा कि महात्माजी इनके अलावा आ आत्मकल्याण की विद्या भी जानते हैं मैं उसको ही चाहता हूँ, सन्यासीजी ने कहा कि आत्मकल्याण के लिये केवल एक ही साधन है और वह है ब्रह्मचर्य्यव्रत यदि मनुष्य ४० वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करता है वह वचनसिद्धि को प्राप्त कर लेता है इत्यादि ब्रह्मचर्य्य का महात्म्य बतलाते हुये कहा:—

मैथुनं ये न सेवन्ते ब्रह्मचारी दृढ़व्रताः । ते संसार समुद्रस्य पारं गछन्ति सुव्रताः ॥
ब्रह्मचर्येण शुद्धस्य सर्वभूतहितस्य च । पदे पेद यज्ञफलं प्रस्थितस्य युधिष्ठिर ! ॥
एकरात्र्युपितस्यापि यागतिर्ब्रह्मचारिणः । न सा शक्रसहस्रेण वक्तुं शक्या युधिष्ठिरः ॥
ब्रह्मचर्य भवेन्मूलं सर्वेषां धर्मचारिणाम् । ब्रह्मचर्यस्य भङ्गेन व्रताः सर्वे निरर्थकाः ॥
समुद्रतरणे यद्वत् उपायो नौका प्रकीर्तिता। संसार तरणे तद्वत् ब्रह्मचर्य्यं प्रकीर्तितम् ॥
ये तपश्च तपस्यन्ति कौमाराः ब्रह्मचारिणः । विद्यावेदव्रतस्नाता दुर्गाण्यपि तरन्ति ते ॥

इसके अलावा घर में रहे हुये गृहस्थ को भी ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करना चाहिये सन्तान की इ वालों को भी ऋतुकाल वर्ज के सदैव ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करना चाहिये—

ऋतुकाले व्यतिक्रान्ते यस्तुसेवेत मैथुनम् । ब्रह्महत्याफलं तस्य सूतकं च दिने दिने ॥
ग्रहणेऽप्यथ संक्रान्तावमावास्यां चतुर्दश्याम् । नरश्चाण्डालयोनिः स्याचैलाभ्यङ्गेस्त्रीसेवने ॥
अमावास्यामष्टमीं च पौर्णमासी चतुर्दशीम् । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यगस्पृष्टौ स्नातको द्विजः ? ॥

इत्यादि सन्यासीजी ने ब्रह्मचर्य्यव्रत पर खूब ही प्रकाश डाला ।

धर्मसी ने सोचा कि जिस मजहब के देव कामातुर और गुरु ऋतुदान देने वाले है । उस धर्म ब्रह्मचर्य्य के इस प्रकार गुण गाये जाते हों यह असंभव सी बात है पर यह वस्तु किसी अन्य धर्म से ली गई हो ऐसा संभव होता है । खैर धर्मसी वहां से उठकर जैन साधुओं के पास आया और पूछा कि जैनधर्म में ब्रह्मचर्य्य का महत्त्व किसी ग्रन्थ में बतलाया है ? मुनिराज ने कहा धर्मसी एक ग्रन्थ में ही क्यों पर सैकड़ों ग्रन्थों में ब्रह्मचर्य्य का महत्त्वपूर्ण वर्णन किया है और वह भी केवल कहने मात्र का नहीं पर मल्लीनाथ, नेमिनाथ तथा जम्बू और वज्रस्वामी आजीवन ब्रह्मचारी रहे । इतना ही क्यों पर जैनधर्म में ब्रह्मचर्य्यव्रत के रक्षणार्थ ऐसे सख्त नियम बनाये हैं कि जैसे—

जं विवित्तमणाइन्नं, रहिअं थीजणेण य । बंभचेरस्सरक्खट्ठा, आलयं तु निसेवए ॥
मणपल्हायजणणिं, कामराग विवड्ढणिं । बंभचेररओ भिक्खू, थीकहं तु विवज्जए ॥
समं च संथवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं । बंभचेररओ भिक्खू, णिच्चसो परिवज्जए ॥
अंग-पच्चंगसंठाणं, चारुल्लवियपेहियं । बंभचेररओ थीणं, चक्खुगेज्झं विवज्जए ॥
कुइयं रुइयं गीयं, हसियं थणिय कंदियं । बंभचेररओ थीणं, सोयगेज्झं विवज्जए ॥
हासं खिड्डं रतिं दप्पं, सहसाऽवत्तासियाणि य । बंभचेररओ थीणं, नाणुचिंते कयाइ वि ॥
पणीयं भत्तपाणं तु, खिप्पं मयविवड्ढणं । बंभचेररओ भिक्खू, णिच्चसो परिवज्जए ॥

धम्मलद्धं मिअं काले, जत्तत्थं पणिहाणवं । नाइमत्तं तु भुंजेज्जा, बंभचेररओ सया ॥
विभूसं परिवज्जेज्जा, सरीरपरिमंडणं । बंभचेररओ भिक्खू, सिंगारत्थं न धारए ॥
सद्दे रूवे य गंधे य, रसे फासे तहेव य । पंचविहे कामगुणे, णिच्चसो परिवज्जए ॥

तथा ब्रह्मचारियों के लिये निम्नलिखित बातें दूषण रूप बतलाई हैं तथा इन नियमों से आप समझ सकते हो कि जैनधर्म में ब्रह्मचर्य का कितना महत्त्व है और इस व्रत के प्रभाव से ब्रह्मचारी पुरुषों को देवता भी नमस्कार करते हैं । यथा—

सुखशय्यासनं वस्त्रं, ताम्बूलं स्नानमर्द्दनम् । दन्तकाष्ठं सुगन्धं च, ब्रह्मचर्यस्य दूषणम् ॥ ३७ ॥
शृंगारमदनोत्पादं, यस्मात्स्नानं प्रकीर्तितम् । तत्स्मात्स्नानं परित्यक्तं, नैष्ठिकैर्ब्रह्मचारिभिः ॥ ३८ ॥
देव-दाणव-गंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा । बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति तं ॥
नैष्टिकं ब्रह्मचर्यं तु, ये चरन्ति सुनिश्चिताः । देवानामपि ते पूज्यः, पवित्रं मङ्गलं तथा ॥ ४० ॥
शीलानामुत्तमं शीलं, व्रतानामुत्तमं व्रतम् । ध्यानानामुत्तमं ध्यानं, ब्रह्मचर्यं सुरक्षितम् ॥ ४१ ॥

महानुभावों ! ब्रह्मचर्य व्रत सब व्रतों का राजा है सब व्रतों से इस व्रत का पालना दुष्कर है धन्य है स्थुलभद्र को कि जिस वेश्या के साथ बारह वर्ष रंग राग में रहे फिर उसी के वहां चतुर्मास कर अपनी परीक्षा दी । धन्य है सेठ सुदर्शन को कि इस व्रत की रक्षा के लिये शूली को स्वर्ग समझ कर हंसता २ शूली चढ़ गया । धन्य है माता धारणी को कि ब्रह्मचर्यव्रत की रक्षा के लिये जिभ्या निकाल कर प्राणों की आहुती दे दी । इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण हैं—जो कई व्यक्ति त्रिकरण शुद्ध ब्रह्मचर्य व्रत की आराधना करता है उसके दर्शन मात्र से जनता के पाप क्षय हो जाते हैं इतना ही क्यों पर ब्रह्मचारी पुरुष के दर्शन से रोगियों का रोग भी नष्ट हो जाता है जैसे कि चन्द्रपुर नगर में एक पुरंधर नाम का धनाढ्य सेठ बसता था उसके सुदर्शन नाम का पुत्र था किसी महात्माजी के व्याख्यान में ब्रह्मचर्य व्रत का महात्म्य सुनकर उसने प्रतिज्ञा करली कि मैं आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालूंगा इस महान व्रत के साथ सुदर्शन सत्य वचन बोलने का भी नियम ले लिया कि मैं कभी असत्य नहीं बोलूंगा । इन दोनों व्रतों की रक्षा के लिये सुदर्शन अपने मकान के एक एकान्त कमरा में रहने लगा जिसमें स्त्रियों के लिये तो वह किसी का मुंह देखना भी नहीं चाहता था इस प्रकार सुदर्शन अपने व्रतों का सुखपूर्वक पालन कर रहा था ।

एक समय नगर के बाहर एक तापस आया बहुत से लोग उसके दर्शन करने को गये एक कुष्टी भी वहां गया और तापस के चरणों में नमस्कार करके अपने कुष्ट रोग मिटाने की प्रार्थना की ? इस पर तपस्वी ने कहा कि यदि तू सुदर्शन के दर्शन करले तो उसके दर्शनमात्र से तेरा सर्व रोग चला जायगा । बस फिर तो कुष्टी क्या चाहता था कुष्टी चल कर सेठजी के द्वार पर आया और प्रार्थना करने लगा कि हे महापुरुष कृपा कर इस कुष्टी को एक बार दर्शन दीजिये ? यह महोपकार का काम है मैं आपका उपकार कभी नहीं भूलूंगा । इत्यादि परन्तु सुदर्शन ने इस पर ध्यान नहीं दिया जब सुदर्शन के पिता को दया आ गई और जाकर अपने पुत्र को आग्रह के साथ कहा अतः पिता के कहने से सुदर्शन ने मकान की एक बारी खोल कर कुष्टी के सामने देखा तो कुष्टी का रोग चला गया जिससे जनता को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और नगर भर में सुदर्शन की महिमा फैल गई अब तो थोड़ा ही दर्द क्यों न हो पर बिना पैसा बिना परिश्रम से अपना

रोग कौन मिटाना नहीं चाहता था नगर के तमाम बीमार सुदर्शन के वहां आने लगे इससे घबरा कर सुदर्शन ने सुबह की टाइम मुकर्रर करदी कि सब लोग सुबह आकर मकान के नीचे खड़े हो जायं तब सुदर्शन दरवाजा खोल सबकी ओर दृष्टि प्रसार करे कि सबका रोग चला जाय ज्यों ज्यों इस बात की मालुम होती गई त्यों त्यों बीमारों की संख्या बढ़ती गई। केवल चन्द्रपुर ही नहीं पर आस पास के ग्रामों के बीमार भी आने लगे। नगर में जहां देखो वहां सुदर्शन की प्रशंसा हो रही थी अच्छे २ आदमी कह रहे थे कि ब्रह्मचारी पुरुषों की देवता सेवा कर रहे हैं तब सुदर्शन तो ब्रह्मचारी के साथ सत्य व्यक्ता है इसके लिये तो कहना ही क्या है ? इस प्रकार सब नगर वालों को इस बात की खुशी थी परन्तु नगर के वैद्य हकीम कि जिन्हों की आजीविका केवल बीमारों की चिकित्सा पर ही थी उन्हों की आमद बन्द हो जाने से वे सख्त नाराज थे उन्होंने ऐसा उपाय सोचा कि इस सुदर्शनका ब्रह्मचर्य व्रत नष्ट हो जाय तो अपना रुजगार खुला हो जाय। अहा-हा दुष्ट मनुष्य अपने स्वल्प स्वार्थ के लिये कहां तक अनर्थ करने को तैयार हो जाते हैं यदि वे वैद्य वगैरह अन्य प्रकार से उद्यम करते तो भी उन लोगों का गुजारा हो सकता पर उन लोगों को अन्य कोई उपाय नहीं सूझा। अतः उन्होंने अपनी दुर्बुद्धिसे कई उपाय सोचा आखिर उन्होंने किसी अन्य नगर से एक धूर्त वैश्या को लाकर उसको लोभ देकर कहा कि तुम इस सुदर्शन का ब्रह्मचर्य नष्ट कर दे तो तुमको पुष्कल द्रव्य दिया जायगा। लोभ जगत में बुरी बलाय हुआ करता है संसार में ऐसा कौनसा अनर्थ है कि लोभी नहीं करा सके ? वैश्या ने स्वीकार कर लिया और उसके उपाय सोचने लगी कि सुदर्शन से मिलाप कैसे हो सके और यह किस पर विश्वास रखता है तलाश करने पर मालूम हुआ कि धर्मी पुरुषों के साथ इसका विश्वास है वैश्या कपट बुद्धि से धार्मिक विधान का अभ्यास कर धार्मिक उपकरण वगैरह पास में रखने लगी। एक दिन वैश्या खूब जेवर सुन्दर वस्त्र पहन कर सवारी करके सेठजी के मकान पर मुसाफिर की तौर आई सेठ पुरंदर ने उसका स्वागत करके पूछा कि आप कौन हैं कहां से और किस प्रयोजन से यहाँ आये हैं ? कपटी धर्मंग्य ने उत्तर दिया कि मैं शंखपुर नगर के वृद्ध सेठ की लड़की बाल विधवा श्रीमति नाम की श्राविका हूँ। तीर्थ यात्रार्थ गई थी रास्ते में सुना कि एक महान् धर्मात्मा बाल ब्रह्मचारी सुदर्शन सेठ है कि जिसके दर्शन मात्र से रोगियों का रोग चला जाता है अतः दर्शन की गर्ज से मैं आई हूँ मुझे जल्दी से दर्शन करवा दें मेरे नौकर चाकर सब नगर के बाहर बगीचे में ठहरे हुए हैं और मुझे जल्दी से जाना है ? सेठजी ने बड़े सेठ की पुत्री तथा धर्मीष्ट जानकर एक कमरे में उसे ठहराई और भोजन के लिये कहा उत्तर में धूर्त वैश्या ने कहा कि आज मेरा व्रत है अतः मैं भोजन नहीं करूंगी कृपा कर कुँवर साहब का दर्शन करवा दीजिये। सेठजी ने जाकर सुदर्शन से कहा कि एक धर्मीष्ट बहिन तेरा दर्शन करना चाहती है और उसको वापिस जाने की बहुत जल्दी है अतः तुम दर्शन दे दो। सुदर्शन ने कहा पिताजी मैं किसी औरत को देखना नहीं चाहता हूँ। पिता ने जाकर कह दिया कि अभी दर्शन न होगा इस पर धूर्त वैश्या ने रोना शुरू कर दिया कि मैं कैसी अभाग्यनी हूँ कि एक उत्तम पुरुष का दर्शन न कर सकी इत्यादि इस पर सेठजी को रहम आगया और जाकर बेटा को जोर देकर कहा कि मैं [illegible] सका हूँ मेरे कहने से ही तुम इस धर्मंग्य बहिन को दर्शन दे दें। बस पिताजी उस कुपात्र को ले आये उसने दर्शन करते ही ऐसा कटाक्ष का बाण चलाया कि सुदर्शन पर उसका बुरा असर हुआ जब दर्शन कर वैश्या जाने लगी तो सुदर्शन ने कहा कि तुम ठहरो कुछ तीर्थ की बातें करनी हैं। बस फिर तो था ही [illegible]

के जाने के बाद सुदर्शन का रत्न लुटा गया और वैश्या रफूचक्कर हो गई। दूसरे दिन जब बीमार आये तो सुदर्शन ने दरवाजा नहीं खोला और कहला दिया कि अब मेरे अन्दर वह गुण नहीं रहा है कि जिससे आप लोगों का रोग चला जाता था अर्थात् माया कपटाई रहित सत्य बात थी वह सबके सामने कह दी। फिर भी लोगों ने अति आग्रह किया जिससे सुदर्शन ने दरवाजा खोला तो भी बीमारों का आधा रोग चला गया अर्थात् जो रोग एक दिन में जाता था वह दो दिनों में जाना लगा। सुदर्शन ने सोचा कि यदि मैं पहले से ही दीक्षा ले लेता तो आज मेरा यह दिन नहीं आता खैर अब भी दीक्षा लेना अच्छा है सुदर्शन ने माता पिता की आज्ञा लेकर मुनिराज के पास दीक्षा लेली। मुनिराज श्री ने धर्मसी को ब्रह्मचर्य का महात्म्य पर उदाहरण सुना कर केवल धर्मसी पर ही नहीं पर उपस्थित जनता पर ब्रह्मचर्य एवं सत्य का अच्छा प्रभाव डाला जिसमें धर्मसी की इच्छा तो केवल जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करना ही क्यों। पर सूरिजी के चरण कमलों में दीक्षा लेने की होगई।

इत्यादि मुनिराज का उपदेश सुनकर धर्मसी ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि मैं आजीवन ब्रह्मचर्य्य व्रत पालूँगा और जल्दी दीक्षा धारण कर लूँगा। यह बात क्रमशः शाह लाखण के कानों तक पहुँची तो शाह लाखण ने धर्मसी की शादी जल्दी कर देने का विचार कर लिया पर जब धर्मसी को इस बात का पता लगा तो उसने साफ शब्दों में कह दिया कि मैंने तो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की प्रतिज्ञा करली है और मेरी इस प्रतिज्ञा को मनुष्य तो क्या पर देवता भी भंग नहीं कर सकता है। शाह लाखण बड़े ही विचार में पड़ गया कि अब इस धर्मसी को कैसे समझाया जाय।

इधर आचार्य रत्नप्रभसूरि भू भ्रमण करते हुये सत्यपुर नगर में पधार गये श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत किया। शाह लाखण सूरिजी का परम भक्त श्रावक था। एक दिन सूरिजी से अर्ज की कि प्रभो! धर्मसी अभी बालक है इसकी शादी करनी है पर इसने किसी की बहकावट में आकर हट पकड़ लिया है कि मैं आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करूँगा इसकी मुझे बड़ी भारी दुविधा लगी हुई है कि अब मैं क्या करूं? सूरिजी ने कहा लाखण यदि धर्मसी सच्चे दिल से ब्रह्मचर्य पालन करना चाहता है तब तो तेरा अहोभाग्य है। फिर कभी समय मिलने पर मैं इसकी परीक्षा कर लूँगा।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य मय होता था जो धर्मसी को विशेष रुचिकर था। एक दिन ध[र्म]सी ने सूरिजी के पास आकर अर्ज की कि हे प्रभो! मैंने आजीवन ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन की तो प्रतिज्ञा करली है पर अब मेरे माता [पि]ता मुझे कई प्रकार से तंग कर रहे हैं। अतः मेरी इच्छा है कि मैं आपके चरण कमलों में दीक्षा लेकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन करूँ।

सूरिजी ने कहा धर्मसी ये तो सोने में सुगन्धवाली कहावत को तू चरितार्थ करता है। अगर तू ने ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करली है तब तो अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने को दीक्षा लेना ही अच्छा है और निरतिचारव्रत तब ही पालन हो सकेगा। फिर भी सूरिजी ने धर्मसी की कई प्रकार से परीक्षा करली जिसमें धर्मसी एक योग्य एवं होनहार ही पाया गया अतः सूरिजी ने लाखन को बुलाकर कह दिया कि मैंने धर्मसी की ठीक परीक्षा करली है यह एक तुम्हारे कुल में अमूल्य रत्न है। यह केवल ब्रह्मचर्य्यव्रत ही पालन करना नहीं चाहता है पर इसकी इच्छा तो दीक्षा लेने की है [illegible] [दी]क्षा लेगा तो जैनधर्म का उद्धार करने वाला एक प्रभाविक पुरुष होगा इत्यादि।

शाह लाखण ने कहा पूज्यवर ! यह सोलहवर्ष का लड़का दीक्षा में क्या समझता है ? सूरिजी ने कहा लाखण ! जो होनहार होता है वह बालक ही होता है। कारण, एक तो धर्मसी बालब्रह्मचारी और दूसरे इस वय में दीक्षा लेगा तो ज्ञानाभ्यास भी विशेष करेगा। अतः तेरे सात पुत्र हैं जिसमें एक पुत्र जिनशासन के उद्धार के लिये भी दे तो इसमें कौन सी बात है ?

लाखण ! इस संसार में जन्म लेकर अनेकों जीव यों ही मर गये हैं। उनको कोई याद भी नहीं करता है। तब तेरा पुत्र दीक्षा लेकर जगत का उद्धार करेगा इसका सब श्रेय तेरे को ही है। भला यह तो धर्मसी की भावना है पर दूसरे तेरे इतने पुत्रादि परिवार हैं किसी को जाकर पूछ कि कोई दीक्षा लेने को तैयार है ? अतः इस कार्य्य के लिये तुमको थोड़ा भी विलम्ब करना उचित नहीं है। और न मोह ममत्व के वश अन्तराय कर्म बन्ध ने की ही जरूरत है—

शाह लाखण समझ गया कि धर्मसी की इच्छा दीक्षा लेने की है और सूरिजी की इच्छा दीक्षा देने की है। यदि मैं इन्कार भी करूंगा तो मेरी कुछ चलने की नहीं है। अतः सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य करना ही अच्छा है। सूरिजी को वंदन कर लाखण अपने घर आया और धर्मसी को बहुत समझाया कि बेटा ! दीक्षा का पालना बहुत कठिन है और तेरे से दीक्षा पलनी भी मुश्किल है अतः तू घर में रह कर ही आत्मकल्याण कर। धर्मसी ने कहा कि हां, पिताजी दीक्षा का पालना जरूर कठिन है पर वह मेरे लिये नहीं किन्तु कायरों के लिये है। सूरवीर तो आज भी हजारों मुनि दीक्षा पालन करते है। आप मुझे दीक्षा दिला कर देखिये मैं दीक्षा पालन कर सकता हूँ या नहीं ? इत्यादि बहुत जवाब सवाल हुये आखिर शाह लाखण ने निश्चय कर लिया कि धर्मसी दीक्षा अवश्य लेगा। अतः उसने जिनमन्दिरों में अष्टाह्निका महोत्सवादि दीक्षा का बड़े ही धामधूम से महोत्सव करवाया।

दीक्षा लेनेवाला केवल एक धर्मसी ही नहीं था पर इनके साथ इनके कई साथियों ने भी दीक्षा लेने का निश्चय कर रक्खा था फिर भी सूरिजी का व्याख्यान इसी विषय पर होता था तो कई १८ नरनारियों ने दीक्षा की तैयारी करली। अहाहा ! पहिले जमाने के लोग कैसे लघु कर्मी थे कि वे एक को देख दूसरे भी धर्म करने को तैयार होजाते थे जैसे आज पापकर्म में एक की देखा देखी दूसरे करने को तैयार होजाते हैं वैसे ही पहिले जमाने में धर्म करनी के लिये होता था। यह सब पूर्व संचित कर्मों का उदय एवं क्षयोपसम का ही कारण है।

ठीक शुभ मुहूर्त में सूरिजी महाराज ने उन मुमुक्षुओं को विधि विधान के साथ दीक्षा देदी जिसमें धर्मशी का नाम 'धर्ममूर्ति' रख दिया ! बस धर्ममूर्ति अपने ब्रह्मचर्य्य व्रत के लिये निर्भय बन गया और ज्ञानभ्यास करने में अहर्निश परिश्रम करने में लग गया। धर्ममूर्ति ने पूर्व जन्म में ज्ञानपद की एवं सरस्वती देवी की आराधना की थी और इस भव में भी देवी सरस्वती की आप पर पूर्ण कृपा थी कि वह बिना किसी अनुष्ठान के किये ही स्वयं देवी सरस्वती बरदाई होगई थी। फिर तो कहना ही क्या था मुनि धर्ममूर्ति वर्त्तमान साहित्य का धुरंधर पण्डित होगया।

आप इतने विशाल विद्वान होने पर भी गुरुकुलवास में रहते थे और इसमें ही अपना गौरव एवं कर्त्तव्य समझते थे। पूर्व जमाने में गुरुकुल वास का बड़ा भारी महत्व था और वहां रहके गुरुकुल में रहते थे तब ही तो वे सर्व प्रकार की योग्यता हांसिल कर गुरु पद को सुशोभित करते थे और आचार्य आदि

१६—रूपनगर के तप्तभट्ट गो० साहरण के	बनाये	महावीर	मन्दिर की	प्रतिष्ठा	कराई	
१७—चोरग्राम के आदित्यनाग मलहर के	,,	,,	,,	,,	,,	
१८—खीमड़ली ग्राम के भाद्र गो० नारायणके	,,	पार्श्वनाथ	,,	,,	,,	
१९—रत्नपुर के कनोजिया गो० हरदेव के	,,	,,	,,	,,	,,	
२०—चैनपुरा के कुमट गौत्रीय केल्हण के	,,	,,	,,	,,	,,	
२१—वागड़ीया ग्राम के प्राग्वट वंशीय फूवाके	,,	,,	,,	,,	,,	
२२—रुद्रदेवपुर के प्राग्वट वंशीय डांवार के	,,	,,	,,	,,	,,	
२३—चित्रकोट के प्रग्वट वंशीय जिनदास के	,,	सुमतिनाथ	,,	,,	,,	
२४—जाबलीपुर के प्राग्वट वंशीय विंदा के	,,	चन्द्राप्रभु	,,	,,	,,	
२५—तक्षिला के श्रीमाल वंशीय राजा के	,,	महावीर	,,	,,	,,	
२६—जाकोटनगर के ,, ,, दूधा के	,,	,,	,,	,,	,,	
२७—उमरोल ग्राम के श्रीमाल वंशीय देवा के	,,	,,	,,	,,	,,	

इनके अलावा कइ घर दरोसर को भी प्रतिष्टाएं करवाई थी आचार्य श्री ने कई विधि विधान एवं तात्विक विषय के ग्रन्थ निर्माण करके भी जैन समाज पर महान् उपकार किया है वर्तमान में शायद वे ग्रन्थ उपलब्ध न भी हो पर पट्टावलियों में कइ ग्रन्थों के नाम जरूर मिलते है—

संचेती गोत्र के थे वे भूषण, यक्षदेव वर सूरी थे ।
ज्ञाननिधि निर्माण ग्रन्थों के, कविता शक्ति पुरी थे ॥
प्रचारक थे जैन धर्म के, अहिंसा के वे स्थापक थे ।
उज्ज्वल यशः अरु गुण जिनके, तीन लोक में व्यापक थे ॥

॥ इति श्री भगवान् पार्श्वनाथ के २२ वें पट्ट पर आचार्य यक्षदेवसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुये ॥

शाह खेमा की लिखी पढ़ी सुशील कन्या नन्दा के साथ बड़े ही महोत्सव के साथ शादी करदी बस मंत्री ने संसार में करने योग्य कार्य कर लिया अब वह आत्मकल्याण करना चाहता था। एक समय मौका देख मंत्री ने राजा से अर्ज की कि हुजूर ! मैं अब आत्म कल्याण करना चाहता हूँ आप मंत्री पद किसी योग्य पुरुष को दे दीजिये ? राजाने कहा मंत्री यह पद तुमारे घराना में रहता आया है तुमारे पूर्वजों से ही राज की अच्छी सेवा करते आये हैं और तुम्हारा घराना ही राज में विश्वास पात्र है अतः यह पद तो तुमारे ही खानदान में रहना चाहिये तुम नहीं तो तुमारे पुत्र को मुकर्रर करदें। अतः राजा के आग्रह से नागसेन को मंत्री पद पर नियुक्त करदिया नागसेन भी इस पद के योग्य था उसने मंत्री पद की जुम्मावारी अपने शिर पर ले ली बस मंत्री कनकसेन सब खट पटों को छोड़ कर धर्माराधना में लग गया-मनुष्य जन्म का सार भी यही है कि कम से कम भुक्त भोगी होने पर तो आत्म कल्याण में लग ही जाना चाहिये।

मंत्री नागसेन के क्रमशः सात पुत्र और दो पुत्रियें हुई और मंत्री ने सब की शादियें वगैरह भी करदीं। अब तो मंत्री अपना आत्म कल्याण करना चाहता था। ठीक है "यद्दशी भावना तद्दशी सिद्धि र्भवति" मनुष्य की जैसी भावना होती है वैसा ही कार्य बन ही जाता है पर भावना होनी चाहिये सच्चे दिल की—

एक समय आचार्य श्रीयक्षदेवसूरि पंजाब में विहार करते हुए क्रमशः लोहाकोट नगर में पधारे श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत किया। मत्री नागसेन ने तो और भी विशेष आनन्द मनाया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशाँ होता था दार्शनिक तात्विक एवं संसार की असारता कुटुम्ब की स्वार्थकता लक्ष्मी की चंचलता आयुष्य की अस्थिरतादि पर अधिक जोर दिया जाता था। त्यागियों का व्याख्यान भी त्याग वैराग्य मय होता है आपश्री के व्याख्यान का जनता पर बड़ा भारी असर पड़ता था जिसमें भी मंत्री नागसेन तो सूरिजी का व्याख्यान सुन कर मुग्ध ही बन जाता था मंत्री बिना नागा हमेशाँ व्याख्यान सुनता था वह भी केवल व्यसन रूप ही नहीं पर व्याख्यान पर बराबर अमल भी करता था एक दिन मन्त्री ने पौषध व्रत किया था समय मिलने पर मन्त्री सूरिजी के पास गया और अर्ज की कि गुरुदेव ! हम लोगों का कैसे उद्धार होगा हम जान बूझ कर मोह रूपी किचड़ में फंस कर जिन्दगी व्यर्थ ही गमा रहे हैं। हम व्याख्यान सुनते हैं और समझते भी हैं कि जो सामग्री इस समय मिली है इसका सदुपयोग न करें तो फिर बार बार ऐसी उत्तम सामग्री का मिलना मुश्किल है। पर न जाने कर्मो का कितना जोर है कि हम कर नही सकते है।

सूरिजी ने फरमाया मंत्रीश्वर आपका कहना सत्य है कि जो आत्म कल्याण के लिये इस समय अनुकूल सामग्री मिली है वैसी बार २ मिलना कठिन है। इतना ही क्यों पर मैं तो यह भी समझता हूँ कि इस प्रकार के परिणाम आना भी कर्मों का जबरदस्त क्षयोपशम है और इसको थोड़ा सा बढ़ाया जाय तो सुविधा से आत्म कल्याण हो सकता है। मंत्रीश्वर ! शास्त्रकारों ने फरमाया है कि संसार के ७२ कलाओं में विज्ञ हो गया हो पर एक धर्म कला की ओर लक्ष्य नहीं है तो वे सब कर्म बन्ध का ही कारण होती हैं। देखो हमारे पास बहुत से बाल ब्रह्मचारी साधु हैं। ये बाल्यावस्था में ही दीक्षा लेकर आत्म कल्याण में लग गये हैं तो आप तो भुक्त भोगी हैं। संसार में करने योग्य सब कुछ कर लिया है। अब तो आपको संसार को तिलाञ्जलि देकर आत्म-कल्याण करना चाहिए। आपके पूर्वज धर्मसेन ने पूज्याचार्य रत्नप्रभसूरि के पास दीक्षा लेकर सूरिपद को सुशोभित किया था। और स्वात्मा के साथ अनेक जीवों का

२३--आचार्यश्री कक्कसूरि (चतुर्थ)

आदित्यस्तु स नाग गोत्रगसुधीः ककः सुसूरिर्नुतः।
पट्शास्त्री विधिना दधौ वनितया साकं स्वदीक्षां च यः ॥
श्रुत्वा गर्जन तर्जनं सुविपुलं शत्रोः कुलं माद्रवत्।
जैनादेश विशेषतां तु ततवान् तेनायमस्ति स्तुतः ॥

आचार्य श्रीकक्कसूरिश्वरजी महाराज धर्मप्रचार करने में अद्वितीय वीर थे। आपका अखंड ब्रह्म और प्रकाण्ड प्रभाव जनता में खूब फैला हुआ था। आपके अलौकिकगुण करने में बृहस्पति भी असमर्थ था आर्य्य देशों में कुनाल एक प्रसिद्ध देश है जिसकी वीर प्रसूति भूमि पर लोहाकोट नामक का स्वर्ग सदृश नगर है इस नगर में मंत्री पृथुसेनादि कई नररत्न उत्पन्न हुए जिन्हों के जीवन पाठक पिछले प्रकरणों में पढ़ आये हैं उन पृथुसेन की संतान परम्परा में कनकसेन नामक पुरुष हुआ जो धनमें कुबेर और बुद्धि में बृहस्पति की स्पर्द्धा करता था आपके गृहदेवी का नाम प्रभावती था आपका दम्पति जीवन बड़े ही सुख शान्ति में व्यतीत हो रहा था मंत्री कनकसेन के शिर पर राज कार्य की जुम्मावारी होने पर भी वह सदैव धर्म करनी में तत्पर रहता था एक समय प्रभावती देवी ने अर्द्धनिशा में नागेन्द्र का शुभ स्वप्न देखा और उस स्वप्ने की बात अपने पतिदेव को कही जिसको सुनकर मंत्री ने बड़ा ही हर्ष मनाया जिन मदिरों में स्नात्रादि महोत्सव किया माता प्रभावती को गर्भ के प्रभाव से अच्छे २ दोहले उत्पन्न हुए जिसको मंत्री ने बड़ी खुशी के साथ पूर्ण किये जब माता प्रभावती ने शुभ समय पुत्ररत्न को जन्म दिया तो मंत्री के हर्ष का पार नहीं रहा उसने अपने वहाँ मंगल मनाता हुआ धर्म कार्यों में वृद्धि की एवं याचकों को पुष्कल दान दिया और महोत्सव पूर्व बारहवें दिन नागेन्द्र के स्वप्नानुसार अपने नवजात पुत्र का नाम नागसेन रक्खा। मंत्रीश्वर ने अपने प्यारे पुत्र के पालन पोषण का अच्छा प्रबन्ध किया कि उसके स्वास्थ्य में किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचे पूर्व जमाना में बच्चों के खेल कूद भी ऐसे होते थे कि उसके संस्कार शुरु से ही अच्छे जम जाते थे मंत्री कनकसेन और प्रभावती शुरु से ही जैन धर्मोपासक थे इतना ही क्यों पर वे धर्म कार्य्य में बड़ी रूची एवं लग्न वाले थे बच्चों के ढंग में अभ्यास उनके माता पिता ही होते हैं यदि वे अपने बाल बच्चों के संस्कार अच्छे बनाना चाहें तो सहज ही में बना सकते हैं पर वर्तमान इस ओर लक्ष बहुत कम दिया जाता है नतीजा हमारे सामने है। अस्तु।

नागसेन जब आठ वर्ष का हुआ तो उसको विद्याध्यान के लिये पाठशाला में प्रवेश किया नागसेन ने पूर्व जन्म में ज्ञानपद एवं सरस्वती देवी की उज्ज्वल भावों से आराधना की थी कि उसके लिये विद्या देवी स्वयं वरदाई होगई थी वह अपने सहपाठियों से सदैव अग्रेसर ही रहता था यह बात ध्रुव है कि पूर्व जन्म के संस्कार मनुष्य के साथ ही जन्म ले लिया करते हैं।

जब नागसेन युवकावस्था में पदार्पण किया तो मंत्री कनकसेन ने उसी नगरमें [illegible]

शाह खेमा की लिखी पढ़ी सुशील कन्या नन्दा के साथ बड़े ही महोत्सव के साथ शादी करदी बस मंत्री ने संसार में करने योग्य कार्य कर लिया अब वह आत्मकल्याण करना चाहता था। एक समय मौका देख मंत्री ने राजा से अर्ज की कि हजूर ! मैं अब आत्म कल्याण करना चाहता हूँ आप मंत्री पद किसी योग्य पुरुष को दे दीजिये ? राजाने कहा मंत्री यह पद तुमारे घराना में रहता आया है तुमारे पूर्वजों से ही राज की अच्छी सेवा करते आये हैं और तुम्हारा घराना ही राज में विश्वास पात्र है अतः यह पद तो तुमारे ही खानदान में रहना चाहिये तुम नहीं तो तुमारे पुत्र को मुकर्रर करदें। अतः राजा के आग्रह से नागसेन को मंत्री पद पर नियुक्त करदिया नागसेन भी इस पद के योग्य था उसने मंत्री पद की जुम्मावारी अपने शिर पर ले ली बस मंत्री कनकसेन सब खट पटों को छोड़ कर धर्माराधना में लग गया-मनुष्य जन्म का सार भी यही है कि कम से कम भुक्त भोगी होने पर तो आत्म कल्याण में लग ही जाना चाहिये।

मंत्री नागसेन के क्रमशः सात पुत्र और दो पुत्रियें हुई और मंत्री ने सब की शादियें वगैरह भी करदीं। अब तो मंत्री अपना आत्म कल्याण करना चाहता था। ठीक है "यद्दशी भावना तद्दृशी सिद्धि र्भवति" मनुष्य की जैसी भावना होती है वैसा हा कार्य बन ही जाता है पर भावना होनी चाहिये सच्चे दिल की—

एक समय आचार्य श्रीयक्षदेवसूरि पंजाब में विहार करते हुए क्रमशः लोहाकोट नगर में पधारे श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत किया। मत्री नागसेन ने तो और भी विशेष आनन्द मनाया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशाँ होता था दार्शनिक तात्विक एवं संसार की असारता कुटुम्ब की स्वार्थकता लक्ष्मी की चंचलता आयुष्य की अस्थिरतादि पर अधिक जोर दिया जाता था। त्यागियों का व्याख्यान भी त्याग वैराग्य मय होता है आपश्री के व्याख्यान का जनता पर बड़ा भारी असर पड़ता था जिसमें भी मंत्री नागसेन तो सूरिजी का व्याख्यान सुन कर मुग्ध ही बन जाता था मंत्री विना नागा हमेशाँ व्याख्यान सुनता था वह भी केवल व्यसन रूप ही नहीं पर व्याख्यान पर बराबर अमल भी करता था एक दिन मन्त्री ने पौषध व्रत किया था समय मिलने पर मन्त्री सूरिजी के पास गया और अर्ज की कि गुरुदेव ! हम लोगों का कैसे उद्धार होगा हम जान बूझ कर मोह रूपी किचड़ में फंस कर जिन्दगी व्यर्थ सी गमा रहे हैं। हम व्याख्यान सुनते हैं और समझते भी हैं कि जो सामग्री इस समय मिली है इसका सदुपयोग न करें तो फिर वार वार ऐसी उत्तम सामग्री का मिलना मुश्किल है। पर न जाने कर्मों का कितना जोर है कि हम कर नहीं सकते है।

सूरिजी ने फरमाया मंत्रीश्वर आपका कहना सत्य है कि जो आत्म कल्याण के लिये इस समय अनुकूल सामग्री मिली है वैसी वार २ मिलना कठिन है। इतना ही क्यों पर मैं तो यह भी समझता हूँ कि इस प्रकार के परिणाम आना भी कर्मों का जबरदस्त क्षयोपशम है और इसको थोड़ा सा बढ़ाया जाय तो सुविधा से आत्म कल्याण हो सकता है। मंत्रीश्वर ! शास्त्रकारों ने फरमाया है कि संसार के ७२ कलाओं में विज्ञ हो गया हो पर एक धर्म कला की ओर लक्ष्य नहीं है तो वे सब कर्म बन्ध का ही कारण होती हैं ! देखो हमारे पास बहुत से बाल ब्रह्मचारी साधु हैं। ये बाल्यावस्था में ही दीक्षा लेकर आत्म कल्याण में लग गये हैं तो आप तो भुक्त भोगी हैं। संसार में करने योग्य सब कुछ कर लिया है। अब तो आपको संसार को तिलाञ्जलि देकर आत्म-कल्याण करना चाहिए। आपके पूर्वज धर्मसेन ने पूज्याचार्य रत्नप्रभसूरि के पास दीक्षा लेकर सूरिपद को सुशोभित किया था। औरस्वात्मा के साथ अनेक जीवों का

उद्धार किया था। उनकी संतान परम्परा में आप हैं। अतः आप शीघ्र ही सावधान हो जावे। आप समझदार के लिये इतना ही कहना पर्याप्त है।

बस, आत्मा निमित्त वासी होता है। उपादान कारण मंत्रीजी का सुधरा हुआ था निमित्त मिल गया सूरिजी का मंत्री ने कहा अच्छा गुरु महाराज मैं इसका विचार अवश्य करूंगा। जब मंत्री संस्तारा पौरषी पढ़ रहा था तो उसमें निम्न गाथा आई कि:—

'एगोऽहं नत्थि में कोइ नाहमन्नस्स कस्सई। एवं अदीणमणसो आप्पाण मणु सासई॥
एगो मे सासओ आप्पा नाण दंसण संजुओ। सेसामें बाहरा भावा सव्व संजोग लक्खणा॥
संजोग मूला जीवाणं पत्ता दुक्ख परंपरा। तम्हा संजोग संबंधं सव्वंतिविहेण वोसिरिअं॥"

इन गाथाओं पर मंत्री ने खूब विचार किया कि मैं अकेला हूँ। संसार में मेरा कोई नहीं है। संसार दुःख का घर है और इस संसार के कारण ही जीव दुख परम्परा का संचय कर दुःखी बनता है। मेरा तो केवल ज्ञानदर्शन ही है इत्यादि भावना के साथ शयन किया तो अर्द्ध निद्रा के अन्दर मंत्री क्या देखता है कि आप सूरिजी के कर कमलों से दीक्षित ही नहीं पर सूरिपद प्रतिष्ठित हुआ है जब मनुष्य का कल्याण का समय आता है तब सर्व निमित्त कारण अच्छे मिल जाते हैं।

मंत्री नागसैन ने सुबह पारणा भी नहीं किया और सबसे पहले राजा के पास जाकर अपना इस्तीफा दे दिया। राजा ने कहा नागसैन ऐसा क्यों ? मंत्री ने कहा हुजूर मुझे बड़ा भारी भय लगता है। दरबार ने कहा मेरे राज्य में तुझे क्या भय है ? मंत्री ने कहा हुजूर भय मोह रूपी पिशाच का है। राजा ने कहा क्या तू संसार से डरता है ? हाँ हुजूर। राजा ने कहा तो फिर क्या करेगा ?

मंत्री—गुरुदेव के चरणों की सेवा करूंगा।

राजा—यह तो संसार में रहकर भी कर सकता है ?

मंत्री—संसार में रहकर पूर्ण सेवा नहीं हो सकती है ?

राजा—तो क्या तू सदैव के लिए गुरु की सेवा में रहना चाहता है ?

मंत्री—हाँ, हुजूर मेरी इच्छा तो ऐसी ही है।

राजा—मंत्री ! इसके लिए इतनी जल्दी क्या है, ठहर जाओ। वृद्धावस्था आने दो ?

मंत्री—हुजूर ! काल का क्या भरोसा है कि वह कब उठा कर ले जाय।

राजा तो एक दम मंत्र मुग्ध बन गया कि आज मंत्री क्या बात कह रहा है ? एक ही रात्रि में इसको क्या भ्रम हो गया है। अतः राजा ने कहा मंत्री ! तुमने अपने कुटुम्बियों को तो पूँछ लिया है न !

मंत्री—इसमें कुटुम्ब को पूछने की क्या जरूरत और कुटुम्ब तो स्वार्थ का है वह कब कहेगा कि आप इनको छोड़ कर सदैव के लिये अलग हो जाय।

राजा—मंत्री ! यह यकायक तुझ को कैसे रंग लग गया ?

मंत्री—गुरु महाराज की कृपा है।

राजा और मंत्री की बातें हो रही थीं उसी समय मंत्री का पुत्र बुलाने को आया और कहने लगा कि पारणा की तैयारी हो गई है, पधारिये। आप पारणा करावें माता वगैरह सब राह देख रहे हैं—

राजा ने कहा देवसैन ! तुम्हारा पिता तो आज मंत्री पद का इस्तीफा दे रहा और है कहता है कि मैं संसार को छोड़ दूंगा । मुझे तो इस बातका बड़ा ही आश्चर्य होता है—

देवसैन—नहीं हजूर ! पिताजी के सिर पर कितना कार्य रहा हुआ हैं । अभी तो मेरे छोटे भाई बुद्धसैन का विवाह का कार्य चल रहा है ।

राजा—भला तू पूछ कर तो देख यह क्या कहता है ।

देवसैन—पधारिये, पारणा का टाइम हो गया है ।

नागसैन—हजूर मैं जाता हूँ ।

राजा—हाँ, तुम जाओ पर तेरा इस्तीफा मंजूर नहीं किया जाता है ।

मंत्री—यह आपकी मर्जी है पर मैं तो अब न इस पद पर रहूँगा और न मेरा यहाँ आना ही बनेगा ।

देवसैन ने सुना तो उसके दिल में कुछ शंका हुई कि यह क्या बात है । खैर, पिताजी को लेकर घर पर आया । मंत्री ने परमेश्वर की पूजा कर पारणा किया । इतने में तो सब कुटुम्ब में यह बात फैल गई कि मंत्रीश्वर ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया है और सूरिजी के पास दीक्षा लेने को तैयार है पर स्वार्थ के सरदार कुटुम्ब वाले यह कब चाहते थे कि हमारे शिरनायक हमको छोड़कर दीक्षा ले लें । उन्होंने बहुत कुछ कहा आखिर में कहा बुद्धसैन का विवाह प्रारम्भ किया है तो यह तो आप अपने हाथों से करलें ।

मंत्री ने कहा कि मैं तो अपने किये हुये विवाह को भी छोड़ता हूँ तो मैं किसका विवाह करूं । मैं तो आज ही सूरिजी के पास दीक्षा ले लूंगा इत्यादि ।

आखिर जाना और मरना किसके कहने से रुक सकता है । राजा ने देवसैन को मंत्री पद दिया और देवसैन ने अपने पिता की दीक्षा का बड़ा शानदार महोत्सव किया । सूरिजी के प्रभावशाली उपदेश से मंत्री के साथ कई १५ नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हुये और सूरिजी ने उन भावुकों को विधि विधान से भगवती जैनदीक्षा प्रदान की । और नागसैन का नाम निधानकलस रख दिया ।

मुनि निधानकलस की योग्यता देख सूरिजी ने आघाट नगर में उपाध्याय पद और उपकेशपुर में सूरि पद से विभूषित कर आपका नाम कक्कसूरि रख दिया था । कक्कसूरि इस नाम में ऐसा चमत्कार रहा हुआ है कि सूरि पद प्रतिष्ठित होते ही आप एक विजयी सुभट की भांति जैनधर्म के प्रचार के निमित्त जुट गये । पूर्व जमाने में आचार्य पद एक महत्व का पद समझा जाता था जिसको यह पद अर्पण किया जाता था पहिले खूब परीक्षा की जाती थी तथा पद लेने वाला पहिले इस पद की जिम्मेदारी को ठीक तौर पर समझ लेता था और अपना कर्तव्य करने में वह सदैव तत्पर रहता था तब ही वह पदवी शोभायमान होती थी ।

आचार्य कक्कसूरि ने अपने शिष्यों के साथ उपकेशपुर नगर से विहार कर दिया और मरुधर में सर्वत्र भ्रमण कर जनता को धर्मोपदेश देकर सत्पथ पर लाने का खूब प्रयत्न किया । और उसमें आपको सफलता भी खूब ही मिली । सच्चे दिल और उज्वल भावना से किया हुआ कार्य शीघ्र ही होता है ।

एक समय सूरिजी विहार करते हुये जा रहे थे तो एक अटवी में बहुत से लोग एकत्र हुये थे, वे केवल हलकी जातियों के ही नहीं पर उनमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य भी शामिल थे । हां जैनाचार्यों के प्रयत्न से मरुधर में सर्वत्र अहिंसा धर्म का प्रचार हो गया था तथापि कई-कई स्थानों में उन हिंसकों का अस्तित्व

रह भी गया था और वे लोग ग्राम नगरों में नहीं पर पर्वतों की श्रेणियों एवं जंगलों में जाकर देवी पूजा के नाम पर पशु हिंसा कर मांस मदिरा सेवन करते थे। यहां सब एकत्र होने का भी यही कारण था।

भाग्यवसात् आचार्य कक्कसूरिजी वहां जा निकले और उन निरपराधी मूक् प्राणियों को देख आपका हृदय दया से लबालब भर गया और सूरिजी ने अग्रेश्वर लोगों को कहा महानुभावो ! आप यह क्या कर रहे हो ? आपकी आकृति से तो आप किसी खानदानी घराने के पाये जाते हो फिर समझ में नहीं आता है कि इन निरपराधी प्राणियों को यहां एकत्र क्यों किया है इत्यादि।

जंगली लोगों ने कहा महात्माजी आप अपने रास्ते जावें आपको इससे क्या प्रयोजन है ?

सूरिजी ने कहा कि महानुभावो ! मुझे आप पर और इन मूक प्राणियों पर करुणा आ रही है। अतः मैं आपको कुछ कहना चाहता हूँ। उन जंगलियों के अन्दर कई ऐसे भी मनुष्य थे उन्होंने कहा महात्माजी ! आप क्या कहना चाहते हो जल्दी से कह दीजिये।

सूरिजी—मैं आपसे इतना ही पूछना चाहता हूँ कि आपके किसी देवगुरु का इष्ट है या नहीं ?

जंगली—इष्ट क्यों नहीं हम ईश्वर का इष्ट रखते हैं और यथावकाश ईश्वर का भजन स्मरण भी करते हैं।

सूरिजी—तब तो आप ईश्वर के कथन को भी मानते होंगे ?

जंगली—क्यों नहीं हम ईश्वर के बचनों को वारबार मानते हैं।

सूरिजी—यह भी आपको मालूम है कि ईश्वर ने आपके लिये क्या कहा है ?

जंगली—ईश्वर ने क्या कहा है ?

सूरिजी—लीजिये मैं आपको ईश्वर का कथन सुना देता हूँ।

सब लोग तमाशगिरि की भांति ईश्वर का सन्देश सुनने को एकत्र होगये और सूरिजी आगे कहने लगे।

मार्यमाणस्य हेमाद्रिं राज्यं चापि प्रयच्छतु। तदनिष्टं परित्यज्य जीवो जीवितुमिच्छति ॥
वरमेकस्य सत्वस्य प्रदत्ताऽभयदक्षिणा। न तु विप्रसहस्रेभ्यो गोसहस्रमलङ्कृतम्।
हेमधेनुधरादीनां दातारः सुलभा भुवि। दुर्लभः पुरुषो लोके यः प्राणिष्वभयप्रदः।
महतामपि दानानां कालेन क्षीयते फलम्। भीताभयप्रदानस्य क्षय एव न विद्यते।

नातो भूयस्तमो धर्मः कश्चिदन्योऽस्ति भूतले, प्राणिनां भयभीतानामभयं यत्प्रदीयते।
अभयं सर्वसत्त्वेभ्यो यो ददाति दया परः, तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयमेव न विद्यते ॥
यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु, तस्य ज्ञानं च मोक्षश्च न जटाभस्मचीवरैः।
अमेध्यमध्ये कीटस्य सुरेन्द्रस्य सुरालये, समाना जीविताकाङ्क्षा समं मृत्युभयं द्वयोः ॥
यो यत्र जायते जन्तुः स तत्र रमते चिरम्, अतः सर्वेषु जीवेषु दयां कुर्वन्तु साधवः।
यावन्ति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भारत !, तावद्वर्षसहस्राणि पच्यन्ते पशुघातकाः ॥
तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवम्, नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥

न हिंसासदृशं पापं त्रैलोक्ये सचराचरे, हिंसको नरकं गच्छेत् स्वर्गं गच्छेदहिंसकः ॥
धर्मो जीवदयातुल्यो न क्वापि जगतीतले, तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्या जीवदया नृभिः ।
एकतः क्रतवः सर्वे समग्रवर दक्षिणाम्, एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम् ॥
सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत !, सर्वे तीर्थाभिषेकाश्च यत्कुर्यात्प्राणिनां दया ।
अहिंसा परमोधर्मः अहिंसैव परं तपः, अहिंसैव परं दानमित्याहुर्मुनयः सदा ॥

ईश्वर ने फरमाया है कि किसी जीव को मारोगे तो तुमको भविष्य में नरक के दुःख भुक्तने पड़ेंगे और जन्म जन्म में तुमको भी इसी प्रकार मरना पड़ेगा अतः तुम जीवों की रक्षा करो जीवों की रक्षा जैसा कोई धर्म ही नहीं है । ईश्वर ने यह भी कहा है कि तुम जीवों का मांस भक्षण मत करो । जैसे कि—

यः स्वार्थे मांसपचनं कुरुते पापमोहितः, यावन्ति पशुरोमाणि तावत्स नरकंव्रजेत ।
परप्राणैस्तु ये प्राणान्स्वान्पुषन्ति हि दुर्धियः, आकल्पं नरकान्भुक्त्वा भुज्यन्ते तत्रतैः पुनः ॥

सज्जनों ! पूर्व महर्षियों ने मांस के साथ मदिरा का भी निषेध किया है देखिये—

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिवेत्, तया सकाये निर्दग्धे मुच्यते किल्मिषात्ततः ।
तस्माद् ब्राह्मण राज्यन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिवेत्, गौडी माध्वी च पैष्टी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ॥
मदिरापान मात्रेण वुद्धिर्नश्यति दूरतः, वैदग्धी वन्धुरस्यापि दौर्भाग्येणेन कामिनी ।
मद्यपस्य शवस्येव लुठितस्य चतुष्पथे, मूत्रयन्ति मुखे श्वानो व्यात्ते विवरशङ्कया ॥
विवेकः संयमो ज्ञानं सत्यं शौचं दया क्षमा, मद्यात्मलीयते सर्वं तृण्या वह्निकणादिव ।
दोषाणां कारणं मद्यं मद्यं कारणमापदाम्, रोगातुर इवापथ्यं तस्मान्मद्यं विवर्जयेत् ॥

इत्यादि सूरिजी ने निडरता पूर्वक उन जघन्य कर्मों का फल नरकादि घोर दुःखों का अतिशय वर्णन कर उन भद्रिकों की सरल आत्मा में वे भाव पैदा कर दिये कि थोड़े समय पूर्व जिस निष्ठुर कर्म को अच्छा समझते थे उसी को वह लोग घृणा की दृष्टि से देखने लगे और वे बोल उठे कि महात्माजी ! हम लोगों ने तो यही सुना था कि देवी को बलि देने से वह संतुष्ट होती है जिससे मनुष्यों का उदय और विश्व की शान्ति होती है । सूरिजी ने कहा महानुभावो ! जिस पदार्थ को देख मनुष्य भी घृणा करता है उससे देवता कैसे संतुष्ट होते होंगे । यह तो किसी पेट भरे मांस लोलुपी ने देवताओं के नाम से कुप्रथा चलादी है और भद्रिक लोग उन पाखण्डियों के जाल में फंस कर इस प्रकार के जघन्य कर्म करने लग गये हैं । इस लिये ही तो दयालु परमात्मा ने जगत् के जीवों के कल्याण के लिये उपरोक्त हुक्म फरमाया है । यदि आप परमात्मा के प्यारे भक्त हैं तो आपको परमेश्वर का हुक्म मानना चाहिये ।

उन लोगों ने कहा महात्माजी ? हम परमात्मा के हुकुम को नहीं मानेंगे तो और किसके हुकुम को मानेंगे ?

सूरिजी-यदि आप परमात्मा का हुकुम मानते हो तो इन पशुओं को छोड़दो और अहिंसा धर्म को स्वीकार करलो इससे परमात्मा खुश होगा और आपका कल्याण भी होगा । हम जो कहते हैं वह आप के अच्छा के लिये ही कहते हैं । दूसरे हमको आपसे कोई स्वार्थ नहीं है ।

बस फिर तो देरी ही क्या थी सब पशुओं को छोड़ दिये कि वे सूरिजी को आशीर्वाद देते हुये अपने अपने स्थान में जाकर अपने बाल बच्चों से मिले। और सूरिजी को आशीर्वाद देने लगे।

सूरिजीने उन आचार पतित लोगों की शुद्धिकर अहिंसा परमोधर्म के उपासक बनाये। तत्पश्चात् सूरिजीने उस मण्डल के छोटे बड़े प्रत्येक ग्रामों में विहार कर हजारों मनुष्यों को पापाचार छुड़ा कर जैनधर्मोंपासक बना लिये। आज बेतुकी बातें करने वालों को यह मालूम नहीं है कि उन आचार्यों ने किस प्रकार भूखे प्यासे रह कर एवं अनेक कठिनाइयों और परिसहों को सहन करके वाममार्गीरूप बज्र किले को भेद कर अहिंसा एवं जैनधर्म का प्रचार किया था।

आचार्य्य कक्कसूरि उस मण्डल में घूमते हुये चन्द्रवती पधारे वहाँ के श्रीसंघ की विनती से वह चतुर्मास चन्द्रावती में किया। शाह डावरके पुत्र कल्याणादि को दीक्षा दी और शाह डावर के निकाले हुये शत्रुंजय तीर्थादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ में पधार कर तीर्थों की यात्रा की। तदन्तर सूरिजी सोराष्ट्र प्रान्त में विहार कर सर्वत्र जैनधर्म के प्रचार को बढ़ा रहे थे। उस समय वर्द्धमानपुर नगर में श्रीमालवंशीय शाह देदा ने भगवान् महावीर का एक विशाल मन्दिर बनाया था। जब मंदिर तैयार होगया तो उसकी प्रतिष्ठा के लिये आचार्य कक्कसूरि को विनती कर कहा कि प्रभो! आप वर्द्धमानपुर पधार कर हमलोगों को कृतार्थ करें। अतः सूरिजी वर्द्धमानपुर पधारे और शाह देदा के बनाये जिन बिम्बों की अंजनसिलाका एवं मंदिर की प्रतिष्ठा बड़े ही समारोह से करवाई। उस समय जैन मंदिर मूर्त्तियों पर चतुर्विध श्रीसंघ की अटूट श्रद्धा थी और अपना न्यायोपार्जित द्रव्य ऐसे पवित्र कार्य्य में व्यय कर अपना कल्याण करते थे।

सूरिजी महाराज सौराष्ट्र से विहार कर कच्छभूमि में पधारे और सर्वत्र भ्रमन करते माण्डव्यपुर में चतुर्मास किया। आपका व्याख्यान हमेशा बँचता था एक दिन के व्याख्यान में किसी ने प्रश्न किया कि जैनधर्म किसने और कब चलाया?

सूरिजी महाराज ने उत्तर दिया कि जैनधर्म अनादिकाल से प्रचलित है और सृष्टि के साथ इस धर्म का घनिष्ट सम्बन्ध है जब सृष्टि अनादि है तब जैनधर्म भी अनादि है इसमें शंका ही किस बात की है?

वादी तब फिर यह क्यों कहा जाता है कि जैनधर्म में पहिले तीर्थङ्कर ऋषभदेव हुये हैं?

सूरिजी यह काल की अपेक्षा से कहा जाता है। कारण, जैनों में काल दो प्रकार का माना है १-उत्सर्पिणी २-अवसर्पिणी जिसमें इस समय अवसर्पिणी काल वरत रहा है और इस अवसर्पिणी कालमें २४ तीर्थङ्कर हुये हैं जिसमें प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव हुये हैं। अतः प्रथम तीर्थङ्कर आदिनाथ एवं ऋषभदेव माना जाता है और भूतकाल में ऐसी अनंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल व्यतीत हो चुका है उसमें तीर्थङ्करों की भी अनन्त चौवीसियाँ होगई थी इत्यादि विस्तार से समझाने पर जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा और प्रश्न कर्त्ता को भी ज्ञात होगया कि जैनधर्म एक पुराणा धर्म है।

सूरिजी ने कच्छ में भ्रमण कर कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई कई भावुकों को जैनधर्म की दीक्षा दी और कई नये जैनधर्मी भी बनाये बाद वहाँ से विहार कर आपने सिन्ध धरा को पावन किया।

सूरिजी सिन्ध में भ्रमण करते डमरेल नगर में पधारे वहाँ उपकेश वंशियों की अधिक संख्या थी। वे लोग मरुधर से व्यापारार्थ आये थे। वे दिन ही उपकेश वंशियों की वृद्धि के थे। उनकी धन के साथ जन की भी खूब वृद्धि होती थी। अतः उपकेश वंशी लोग बहुत प्रदेश में फैले हुये नजर आते थे।

सूरिजी ने डमरेलपुर में चतुर्मास कर दिया था। वहाँ श्रेष्ठि गोत्रीय शाह महादेव प्रभूत सम्पति वाला श्रावक रहता था। उसने सूरिजी से प्रार्थना की कि प्रभो ! मैंने आचार्य यज्ञदेव सूरि के पास परिग्रह व्रत का प्रमाण किया था और साथ में यह भी प्रतिज्ञा करली थी कि प्रमाण से अधिक बढ़ जायगा तो मैं उस द्रव्य को शुभ क्षेत्र में लगा दूंगा पूज्यवर ! इस समय मेरे पास में प्रमाण से बहुत अधिक द्रव्य बढ़ गया है अब मैं व्यापार तो नहीं करता हूँ पर उस बढ़े हुए द्रव्य का मुझे क्या करना चांहिये कौन से कार्य में लगाना चाहिये इसके लिये मैं आपकी अनुमति लेना चाहता हूँ। कृपा कर मुझे ऐसा मार्ग बतलावें कि जिससे मेरा कल्याण हो और व्रत में अतिचार भी न लगे। सूरिजी ने सोच विचार कर कहा महादेव शास्त्र में सात क्षेत्र कहे हैं पर जिस समय जिस क्षेत्र में अधिक आवश्यकता हो उस क्षेत्र को पोषण करना अधिकलाभ का कारण हो सकता है। मेरी राय से तो बीस तीर्थङ्करों की निर्वाण भूमि श्रीसम्मेतशिखरजी तीर्थ की यात्रा निमित्त संघ निकाल कर चतुर्विध श्री संघ को यात्रा करवाना अधिक लाभ का कारण होगा। कारण उस विकट प्रदेश में साधारणव्यक्ति जा नहीं सकता है और कई अर्सा से इस प्रान्त से उस तीर्थ की यात्रार्थ संघ नहीं निकला है। अतः यह लाभ लेना तेरे लिये बड़ा ही कल्याण का कारण है। सूरिजी के कहने को महादेव ने शिरोधार्य्य कर लिया बस, फिर तो देरी ही क्या थी। शाह महादेव ने अपने पुत्र पौत्रों को बुला-कर कह दिया कि गुरुमहाराज की सम्मति पूर्वक मैंने सम्मेत शिखरजी की यात्रार्थ संघ निकालने का निश्चय कर लिया है। अतः तुम लोग संघ के लिये सामग्री तैयार करो। यह सुन कर सबको बड़ी खुशी हुई। कारण वे लोग चाहते थे कि प्रमाण से अधिक द्रव्य घर में रखना अच्छा नहीं है। अतः उन सबको खुशी होना स्वाभाविक बात थी।

अहा हा ! वह जमाना कैसा धर्मज्ञता का था कि महादेव तो क्या पर उसके कुटुम्ब में भी कोई ऐसा नहीं था जो यह पसंद करता हो कि प्रमाण से अधिक द्रव्य किसी प्रकार से अपने काम में लिया जाय। इस सत्यता के कारण ही तो बिना इच्छा किये लक्ष्मी उन सत्यवादियों के यहाँ रहना चाहती थी और लक्ष्मी को यह भी विश्वास था कि यह लोग मेरा कभी दुरुपयोग न करेंगे और मुझे लगावेंगे तो अच्छे कार्यों में ही लगावेंगे परन्तु आज का चक्र उल्टा ही चल रहा है। अव्वल तो जीवों के इतनी तृष्णा है कि वे व्रत लेवे ही नहीं कदाचित कोई लेवे हैं तो इतनी तृष्णा बढ़ाते हैं कि दस हजार की रक़म अपने पास होगी तो लक्ष रुपयों का परिग्रह रक्खेंगे कि जीवन भर में ही वह तृष्णा शान्त नहीं होती है। शायद पूर्वभव के पुन्योदय प्रमाण से अधिक परिग्रह बढ़ जाय तो कई विकल्प कर लेते हैं जैसे इतना मेरे इतना स्त्री के इतना पुत्र के इतना पुत्रवधु एवं पौत्र के इत्यादि पर ममता तो मूल पुरुष की ही रहती है।

श्रेष्ठि वर्य्य महादेव ने अपने कुटुम्ब वालों की सम्मति ले ली तब तो सूरिजी के व्याख्यान में आकर श्रीसंघ को अर्ज की कि मेरी भावना तीर्थाधिराज श्रीसम्मेतशिखरजी की यात्रार्थ संघ निकालने की है। अतः श्री संघ मुझे आदेश दीरावें। इसको सुन कर श्रीसंघ ने बहुत खुशी मनाई और श्रेष्ठिवर्य्य महादेव को बड़ा ही धन्यवाद दिया। कारण सिन्ध प्रान्त से शत्रुंजय का संघ तो कई बार निकला था पर शिखरजी का संघ उस समय पहिले ही था अतः जनता में उत्साह फैल जाना एक स्वाभाविक बात थी। इस विषय में सूरिजी ने तीर्थयात्रा से दर्शन की विशुद्धता, संघपति का महत्त्व, द्रव्य की सफलता और छरीपाली यात्रा का आनंद का थोड़ा सा किन्तु सारगर्भित वर्णन करते हुये महादेव और श्रीसंघ के उत्साह में अभिवृद्धि की तदनन्तर

महादेव को आदेश देते हुए भगवान् महावीर और आचार्य्य श्री की जय ध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई। आज तो डामरेलपुर में जहाँ देखो वहाँ श्रेष्ठिवर्य्य महादेव और शिखरजी के संघ की ही बातें हो रही हैं। साथ में आचार्य कक्क सूरिजी महाराज के प्रभाव की प्रभावना भी सर्वत्र मधुर स्वर से गाई जा रही थी। जैसे महादेव के वहाँ संघ की तैयारियाँ हो रही थीं वैसे ही नागरिक लोग संघ में जाने के लिये तैयारियें कर रहे थे। क्योंकि यह संघ महीना पन्द्रह दिनों में लौट कर आने वाला नहीं था। कम से कम छः मास लगना तो संभव ही था। दूसरे आज पर्यन्त शिखरजी का संघ नहीं निकला था अतः सबकी भावना संघ में जाने की थी। भला ऐसा सुअवसर हाथों से कौन जाने देने वाले थे।

श्रेष्टिवर्य्य महादेव जैसा धर्मज्ञ था वैसा ही वह उदार दिल वाला भी था संघ निकालने में वह अपना अहोभाग्य समझता था केवल सिन्ध में ही नहीं पर दूर २ प्रदेश में आमंत्रण पत्रिकायें भेज दी थीं। साधु साध्वियों के लिये अपने कुटुम्बियों तथा संबन्धियों को बिनती के लिये भेज दिये थे। मामला दूर का होने से दो तीन स्थान ऐसे भी मुकर्रर कर दिये थे कि देरी से पधारने वाले साधु साध्वियां संघ में शामिल हो सकें।

महादेव अपने राजा के पास गया, चौकी पहरे के लिये राजा से प्रार्थना की जिसको तो राजा ने स्वीकार करली पर साथ में महादेव ने एक यह भी अर्ज की कि डामरेल नगर के बहुत से जैन लोग संघ में चलने वाले हैं पीछे उनके घरों की एवं मालमिलकियत की रक्षा के लिये आप पर ही छोड़ दिया जाता है। राजा ने कहा महादेव तू बड़ा ही भाग्यशाली है। डमरेल से इस प्रकार का संघ निकलना तेरी कीर्ति तो है ही पर साथ में डमरेल नगर की भी अमर कीर्ति है। हम लोगों से और कुछ नहीं बने तो भी तुम्हारे इस पुनीत कार्य्य के लिये इतना तो हम भी कर सकते हैं और इसके लिये तुम निशंक रहो किसी की एक शीली मात्र भी आगे पीछे नहीं होगी चाहे खुले मकान छोड़ जाओ इत्यादि। महादेव ने बड़ी खुशी मनाते हुये कहा कि हुजूर यह मेरा नहीं पर आपका ही यश एवं कीर्ति है और आपकी कृपा से ही मैंने इस प्रकार वृहद् कार्य्य को उठाया है। और आपकी सहायता से ही इस कार्य्य में सफलता प्राप्त करूँगा। महादेव राजा का परमोपकार मानता हुआ अपने मकान पर आया। और नागरिक लोगों को राजा का संदेशा सुना दिया तब तो नहीं चलने वालों का भी संघ में चलने का विचार होगया।

ठीक चतुर्मास समाप्त होते ही मार्गशीर्ष शुक्ल त्रोदशी के शुभ मुहूर्त्त में सूरिजी के वासक्षेप पूर्वक श्रेष्ठिवर्य्य महादेव के संघपतित्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया। संघ के अन्दर कई रत्नों की मूर्त्तियां सुवर्ण के देरासर पूजाभक्ति के साधन, हजारों साधु साध्वियां और लाखों नर नारी थे। प्रत्येक ग्राम नगर के मन्दिरों के दर्शन तीर्थों पर ध्वजारोहणादि महोत्सव करते हुये, दीन दुखियों का उद्धार और याचकों को दान देते हुये तथा जैनों की वस्तीवाले ग्राम नगरों से भेंट और वधावना होते हुये संघ श्री सम्मेतशिखरजी पहुँचा। जबतीर्थ के दूर से दर्शन हुये तो संघ ने हीरे पन्ने माणिक और मोतियों से वधाया और तीर्थङ्करों की निर्वाणभूमि का स्पर्शन कर अपना अहोभाग्य समझा तथा अष्टान्हिका महोत्सव ध्वजारोहण पूजा प्रभावना साधर्मी वात्सल्यादि धर्म कृत्य किये। सूरिजी और संघपति का अधिक परिचय होने से सूरिजी ने जान लिया कि संघपति महादेव बड़ा ही त्यागी वैरागी और आत्मार्थी है। यदि यह दीक्षा ले ले तो इसका शीघ्र कल्याण हो सकता है। एक दिन सूरिजी ने संघपति को कहा महादेव यह तीर्थभूमि है तुमने संघ निकाल कर अनंत पुन्योपार्जन किया पर अब तेरी दीक्षा का समय है। यदि इस तीर्थ भूमि पर तू दीक्षा ले तो तेरा जल्दी कल्याण होगा। महा-

देव ने अपने दिल में सोचा कि सूरिजी बड़े ही उपकारी पुरुष हैं और मेरे पर आपका धर्म प्रेम है अब संसार में रहकर मुझे करना ही क्या है। अतः सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य्य करना ही कल्याण का कारण है। अतः महादेव ने अपनी स्त्री और पाँचों पुत्रों को बुला कर कहा कि मेरी इच्छा यहाँ दीक्षा लेने की है। पुत्रों ने कहा आपकी इच्छा दीक्षा लेने की है तो संघ लेकर घर पर पधारो वहां आप दीक्षा लेलेना इत्यादि। महादेव ने कहा कि मेरे अन्तराय क्यों देते हो ? मेरी इच्छा तो इस तीर्थ भूमि पर ही दीक्षा लेने की है, महादेव की स्त्री ने सोचा कि जब मेरे पतिदेव दीक्षा लेने को तैयार होगये हैं तो फिर मुझे घर में रह कर क्या करना है, अतः वह भी तैयार होगई। जब संघ में इस बात की चर्चा फैली तो कई १४ नर-नारी दीक्षा लेने को तैयार होगये। बस एक तरफ तो संघपति की वरमाल महादेव के बड़े पुत्र लाल्हा को पहिनाई गई और दूसरी ओर संघपति महादेव आपकी धर्मपत्नी और १४ नर नारियों एवं १६ मुमुक्षुओं को भगवती जैन दीक्षा दी गई। अहा हा ! जब जीवों के कल्याण का समय आता है। तब निमित्त कारण भी सब अनुकूल बन जाता है। इसके लिये मंत्री महादेव का ताजा उदाहरण सामने है।

सूरिजी रात्रि में संथारा पौरसी भणाकर शयन किया था जब आप निद्रा से मुक्त हो ध्यान में बैठते थे इतने में तो देवी सायिक ने आकर सूरिजी को वन्दन की सूरिजी ने धर्मलाभ देकर कहा देवीजी आप अच्छे मौका पर आये। देवी ने कहां प्रभों ! आप तीर्थ की यात्रा करे और मैं पीछे रहूँ यह कब बन सकता है केवल मैं एकली नहीं हूँ पर देवी मातुला भी साथ में हैं इसने ही मुझे आकर संघ की खबर दी थी इत्यादि। सूरिजी ने कहाँ कहो देवीजी गच्छ सम्बन्धी और कुछ कहना है, देवी ने कहाँ पूज्यवर ! मैं क्या कहूँ। आप स्वयं प्रज्ञावान् है। फिर भी इतना तो मैं कह देती हूँ कि आप इधर पधारे हैं तो यहीं विहार कर इस तीर्थ भूमि पर ही अपना कल्याण करे और मुनि कल्याण कलस आपके पद योग्य एवं सर्व गुण सम्पन्न है इनको सूरि पद देकर संघ के साथ भेजदें कि उधर विहार कर गच्छ की उन्नति करते रहेंगे। सूरिजी ने कहा ठीक है देवीजी मुनि कल्याण कलस मेरे गच्छ में एक योग्य विद्याबली एवं शास्त्रों का पारंगत मुनि है मैं इनको सूरि मंत्र का आराधन तो पहले से ही करवा दिया हैं फिर आपकी सम्मति होगई। देवीजी। आपने हमारे पूर्वजों को भी प्रत्येक कार्य में समय समय सहायता पहुँचाई है और आज मुझे भी आपने सावधान किया है। अब मैं कल सुबह ही मुनि कल्याण-कलस को सूरि पद अर्पण कर दूंगा। दोनों देवियां सूरिजी को वंदन कर अदृश्य होगई।

सूरिजी महाराज ने सुबह होते ही अपनी नित्य क्रिया से फुरसत पाकर संघ को एकत्र किया और कहा कि मैं अपना पदाधिकार मुनि कल्याण कलस को देना चाहता हूँ। संघ के लोगों ने विचार किया कि क्या बात है केवल रात्रि में ही सूरिजी ने यह क्या विचार कर लिया। अतः संघ ने विज्ञप्ति की कि पूज्यवर आप संघ लेकर वापिस पधारें हम लोग सूरिपद के योग्य महोत्सव करेंगे और मुनिकल्याण कलस को सूरिपद हमारे यहाँ पधार कर ही दीरावें।

सूरिजी ने कहा मैंने अपना विहार पूर्व में करने का निश्चय कर लिया है। कारण, यहाँ विशेष लाभालाभ का कारण है। आपके संघ के लिये मैं सूरि बन देता हूँ वह आपके साथ चलेगा।

बस, सूरिजी ने निश्चय कर लिया तो उसको बदलनेवाला था ही कौन ? उसी दिन विधि विधान के साथ तीर्थभूमि पर सूरिजी ने मुनिकल्याण कलस को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख

महादेव को आदेश देते हुए भगवान् महावीर और आचार्य्य श्री की जय ध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई। आज तो डामरेलपुर में जहाँ देखो वहाँ श्रेष्ठिवर्य्य महादेव और शिखरजी के संघ की ही बातें हो रही हैं। साथ में आचार्य कक्क सूरिजी महाराज के प्रभाव की प्रभावना भी सर्वत्र मधुर स्वर से गाई जा रही थी। जैसे महादेव के वहाँ संघ की तैयारियाँ हो रही थीं वैसे ही नागरिक लोग संघ में जाने के लिये तैयारियें कर रहे थे। क्योंकि यह संघ महीना पन्द्रह दिनों में लौट कर आने वाला नहीं था। कम से कम छः मास लगना तो संभव ही था। दूसरे आज पर्यन्त शिखरजी का संघ नही निकला था अतः सबकी भावना संघ में जाने की थी। भला ऐसा सुअवसर हाथों से कौन जाने देने वाले थे।

श्रेष्ठिवर्य्य महादेव जैसा धर्मज्ञ था वैसा ही वह उदार दिल वाला भी था संघ निकालने में वह अपना अहोभाग्य समझता था केवल सिन्ध में ही नहीं पर दूर २ प्रदेश में आमंत्रण पत्रिकायें भेज दी थीं। साधु साध्वियों के लिये अपने कुटुम्बियों तथा संबन्धियों को विनती के लिये भेज दिये थे। मामला दूर का होने से दो तीन स्थान ऐसे भी मुकर्रर कर दिये थे कि देरी से पधारने वाले साधु साध्वियां संघ में शामिल हो सकें।

महादेव अपने राजा के पास गया, चौकी पहरे के लिये राजा से प्रार्थना की जिसको तो राजा ने स्वीकार करली पर साथ में महादेव ने एक यह भी अर्ज की कि डामरेल नगर के बहुत से जैन लोग संघ में चलने वाले हैं पीछे उनके घरों की एवं मालमिलकियत की रक्षा के लिये आप पर ही छोड़ दिया जाता है। राजा ने कहा महादेव तू बड़ा ही भाग्यशाली है। डमरेल से इस प्रकार का संघ निकलना तेरी कीर्ति तो है ही पर साथ में डमरेल नगर की भी अमर कीर्ति है। हम लोगों से और कुछ नहीं बने तो भी तुम्हारे इस पुनीत कार्य्य के लिये इतना तो हम भी कर सकते हैं और इसके लिये तुम निशंक रहो किसी की एक शीली मात्र भी आगे पीछे नहीं होगी चाहे खुले मकान छोड़ जाओ इत्यादि। महादेव ने बड़ी खुशी मनाते हुये कहा कि हुजूर यह मेरा नहीं पर आपका ही यश एवं कीर्ति है और आपकी कृपा से ही मैंने इस प्रकार वृहद् कार्य्य को उठाया है। और आपकी सहायता से ही इस कार्य्य में सफलता प्राप्त करूँगा। महादेव राजा का परमोपकार मानता हुआ अपने मकान पर आया। और नागरिक लोगों को राजा का संदेशा सुना दिया तब तो नहीं चलने वालों का भी संघ में चलने का विचार होगया।

ठीक चतुर्मास समाप्त होते ही मार्गशीर्ष शुक्ल त्रोदशी के शुभ मुहूर्त्त में सूरिजी के वासक्षेप पूर्वक श्रेष्ठिवर्य्य महादेव के संघपतित्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया। संघ के अन्दर कई रत्नों की मूर्त्तियां सुवर्ण के देरासर पूजाभक्ति के साधन, हजारों साधु साध्वियां और लाखों नर नारी थे। प्रत्येक ग्राम नगर के मन्दिरों के दर्शन तीर्थों पर ध्वजारोहणादि महोत्सव करते हुये, दीन दुखियों का उद्धार और याचकों को दान देते हुये तथा जैनों की वस्तीवाले ग्राम नगरों से भेंट और वधावना होते हुये संघ श्री सम्मेतशिखरजी पहुँचा। जबतीर्थ के दूर से दर्शन हुये तो संघ ने हीरे पन्ने माणिक और मोतियों से वधाया और तीर्थङ्करों की निर्वाणभूमि का स्पर्शन कर अपना अहोभाग्य समझा तथा अष्टान्हिका महोत्सव ध्वजारोहण पूजा प्रभावना साधर्मी वात्सल्यादि धर्म कृत्य किये। सूरिजी और संघपति का अधिक परिचय होने से सूरिजी ने जान लिया कि संघपति महादेव बड़ा ही त्यागी वैरागी और आत्मार्थी है। यदि यह दीक्षा ले ले तो इसका शीघ्र कल्याण हो सकता है। एक दिन सूरिजी ने संघपति को कहा महादेव यह तीर्थभूमि है तुमने संघ निकाल कर अनंत पुन्योपार्जन किया पर अब तेरी दीक्षा का समय है। यदि इस तीर्थ भूमि पर तू दीक्षा ले तो तेरा जल्दी कल्याण होगा। महा-

देव ने अपने दिल में सोचा कि सूरिजी बड़े ही उपकारी पुरुष हैं और मेरे पर आपका धर्म प्रेम है अब संसार में रहकर मुझे करना ही क्या है। अतः सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य्य करना ही कल्याण का कारण है। अतः महादेव ने अपनी स्त्री और पाँचों पुत्रों को बुला कर कहा कि मेरी इच्छा यहाँ दीक्षा लेने की है। पुत्रों ने कहा आपकी इच्छा दीक्षा लेने की है तो संघ लेकर घर पर पधारो वहां आप दीक्षा लेलेना इत्यादि। महादेव ने कहा कि मेरे अन्तराय क्यों देते हो ? मेरी इच्छा तो इस तीर्थ भूमि पर ही दीक्षा लेने की है, महादेव की स्त्री ने सोचा कि जब मेरे पतिदेव दीक्षा लेने को तैयार होगये हैं तो फिर मुझे घर में रह कर क्या करना है, अतः वह भी तैयार होगई। जब संघ में इस बात की चर्चा फैली तो कई १४ नर-नारी दीक्षा लेने को तैयार होगये। बस एक तरफ तो संघपति की वरमाल महादेव के बड़े पुत्र लाखा को पहिनाई गई और दूसरी ओर संघपति महादेव आपकी धर्मपत्नी और १४ नर नारियों एवं १६ मुमुक्षुओं को भगवती जैन दीक्षा दी गई। अहा हा ! जब जीवों के कल्याण का समय आता है। तब निमित्त कारण भी सब अनुकूल बन जाता है। इसके लिये मंत्री महादेव का ताजा उदाहरण सामने है।

सूरिजी रात्रि में संथारा पौरसी भणाकर शयन किया था जब आप निद्रा से मुक्त हो ध्यान में बैठते थे इतने में तो देवी साचयिक ने आकर सूरिजी को वन्दन की सूरिजी ने धर्मलाभ देकर कहा देवीजी आप अच्छे मौका पर आये। देवी ने कहां प्रभों ! आप तीर्थ की यात्रा करे और मैं पीछे रहूँ यह कब बन सकता है केवल मैं एकली नहीं हूँ पर देवी मातुला भी साथ में हैं इसने ही मुझे आकर संघ की खबर दी थी इत्यादि। सूरिजी ने कहाँ कहो देवीजी गच्छ सम्बन्धी और कुछ कहना है, देवी ने कहाँ पूज्यवर ! मैं क्या कहूँ। आप स्वयं प्रज्ञावान् है। फिर भी इतना तो मैं कह देती हूँ कि आप इधर पधारे हैं तो यहीं विहार कर इस तीर्थ भूमि पर ही अपना कल्याण करे और मुनि कल्याण कलस आपके पद योग्य एवं सर्व गुण सम्पन्न है इनको सूरि पद देकर संघ के साथ भेजदें कि उधर विहार कर गच्छ की उन्नति करते रहेंगे। सूरिजी ने कहा ठीक है देवीजी मुनि कल्याण कलस मेरे गच्छ में एक योग्य विद्यावली एवं शास्त्रों का पारंगत मुनि है मैं इनको सूरि मंत्र का आराधन तो पहले से ही करवा दिया हैं फिर आपकी सम्मति होगई। देवीजी। आपने हमारे पूर्वजों को भी प्रत्येक कार्य में समय समय सहायता पहुँचाई है और आज मुझे भी आपने सावधान किया है। अब मैं कल सुबह ही मुनि कल्याण-कलस को सूरि पद अर्पण कर दूंगा। दोनों देवियां सूरिजी को वंदन कर अदृश्य होगई।

सूरिजी महाराज ने सुबह होते ही अपनी नित्य क्रिया से फुरसत पाकर संघ को एकत्र किया और कहा कि मैं अपना पदाधिकार मुनि कल्याण कलस को देना चाहता हूँ। संघ के लोगों ने विचार किया कि क्या बात है केवल रात्रि में ही सूरिजी ने यह क्या विचार कर लिया। अतः संघ ने विज्ञप्ति की कि पूज्यवर आप संघ लेकर वापिस पधारें हम लोग सूरिपद के योग्य महोत्सव करेंगे और मुनिकल्याण कलस को सूरिपद हमारे यहाँ पधार कर ही दीरावें।

सूरिजी ने कहा मैंने अपना विहार पूर्व में करने का निश्चय कर लिया है। कारण, यहाँ विशेष लाभालाभ का कारण है। आपके संघ के लिये मैं सूरि बन देता हूँ वह आपके साथ चलेगा।

बस, सूरिजी ने निश्चय कर लिया तो उसको बदलनेवाला था ही कौन ? उसी दिन विधि विधान के साथ तीर्थभूमि पर सूरिजी ने मुनिकल्याण कलस को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख

महादेव को आदेश देते हुए भगवान् महावीर और आचार्य्य श्री की जय ध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई आज तो डामरेलपुर में जहाँ देखो वहाँ श्रेष्ठिवर्य्य महादेव और शिखरजी के संघ की ही बातें हो रही हैं साथ में आचार्य कक्क सूरिजी महाराज के प्रभाव की प्रभावना भी सर्वत्र मधुर स्वर से गाई जा रही थी जैसे महादेव के वहाँ संघ की तैयारियाँ हो रही थीं वैसे ही नागरिक लोग संघ में जाने के लिये तैयारियें कर रहे थे। क्योंकि यह संघ महीना पन्द्रह दिनों में लौट कर आने वाला नहीं था। कम से कम छः मास लगना तो संभव ही था। दूसरे आज पर्यन्त शिखरजी का संघ नहीं निकला था अतः सबकी भावना संघ में जाने की थी। भला ऐसा सुअवसर हाथों से कौन जाने देने वाले थे।

श्रेष्ठिवर्य्य महादेव जैसा धर्मज्ञ था वैसा ही वह उदार दिल वाला भी था संघ निकालने में वह अपना अहोभाग्य समझता था केवल सिन्ध में ही नहीं पर दूर २ प्रदेश में आमंत्रण पत्रिकायें भेज दी थीं। साधु साध्वियों के लिये अपने कुटुम्बियों तथा संबन्धियों को विनती के लिये भेज दिये थे। मामला दूर का होने से दो तीन स्थान ऐसे भी मुकर्रर कर दिये थे कि देरी से पधारने वाले साधु साध्वियां संघ में शामिल हो सकें

महादेव अपने राजा के पास गया, चौकी पहरे के लिये राजा से प्रार्थना की जिसको तो राजा ने स्वीकार करली पर साथ में महादेव ने एक यह भी अर्ज की कि डामरेल नगर के बहुत से जैन लोग संघ में चलने वाले हैं पीछे उनके घरों की एवं मालमिलकियत की रक्षा के लिये आप पर ही छोड़ दिया जाता है। राजा ने कहा महादेव तू बड़ा ही भाग्यशाली है। डमरेल से इस प्रकार का संघ निकलना तेरी कीर्ति तो है ही पर साथ में डमरेल नगर की भी अमर कीर्ति है। हम लोगों से और कुछ नहीं बने तो भी तुम्हारे इस पुनीत कार्य्य के लिये इतना तो हम भी कर सकते हैं और इसके लिये तुम निशंक रहो किसी की एक शीली मात्र भी आगे पीछे नहीं होगी चाहे खुले मकान छोड़ जाओ इत्यादि। महादेव ने बड़ी खुशी मनाते हुये कहा कि हुजूर यह मेरा नहीं पर आपका ही यश एवं कीर्ति है और आपकी कृपा से ही मैंने इस प्रकार वृहद् कार्य्य को उठाया है। और आपकी सहायता से ही इस कार्य्य में सफलता प्राप्त करूँगा। महादेव राजा का परमोपकार मानता हुआ अपने मकान पर आया। और नागरिक लोगों को राजा का संदेशा सुना दिया तब तो नहीं चलने वालों का भी संघ में चलने का विचार होगया।

ठीक चतुर्मास समाप्त होते ही मार्गशीर्ष शुक्ल त्रोदशी के शुभ मुहूर्त्त में सूरिजी के वासक्षेप पूर्वक श्रेष्ठिवर्य्य महादेव के संघपतित्व में संघ ने प्रस्थान कर दिया। संघ के अन्दर कई रत्नों की मूर्त्तियां सुवर्ण के देरासर पूजाभक्ति के साधन, हजारों साधु साध्वियां और लाखों नर नारी थे। प्रत्येक ग्राम नगर के मन्दिरों के दर्शन तीर्थों पर ध्वजारोहणादि महोत्सव करते हुये, दीन दुखियों का उद्धार और याचकों को दान देते हुये तथा जैनों की वस्तीवाले ग्राम नगरों से भेंट और बधावना होते हुये संघ श्री सम्मेतशिखरजी पहुँचा। जबतीर्थ के दूर से दर्शन हुये तो संघ ने हीरे पन्ने माणिक और मोतियों से बधाया और तीर्थङ्करों की निर्वाणभूमि का स्पर्शन कर अपना अहोभाग्य समझा तथा अष्टान्हिका महोत्सव ध्वजारोहण पूजा प्रभावना सावर्मी वात्सल्यादि धर्म कृत्य किये। सूरिजी और संघपति का अधिक परिचय होने से सूरिजी ने जान लिया कि संघपति महादेव बड़ा ही त्यागी वैरागी और आत्मार्थी है। यदि यह दीक्षा ले ले तो इसका शीघ्र कल्याण हो सकता है। एक दिन सूरिजी ने संघपति को कहा महादेव यह तीर्थभूमि है तुमने संघ निकाल कर अनंत पुन्योपार्जन किया पर अब तेरी दीक्षा का समय है। यदि इस तीर्थ भूमि पर तू दीक्षा ले तो तेरा जल्दी कल्याण होगा। महा-

देव ने अपने दिल में सोचा कि सूरिजी बड़े ही उपकारी पुरुष हैं और मेरे पर आपका धर्म प्रेम है अब संसार में रहकर मुझे करना ही क्या है। अतः सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य्य करना ही कल्याण का कारण है। अतः महादेव ने अपनी स्त्री और पाँचों पुत्रों को बुला कर कहा कि मेरी इच्छा यहाँ दीक्षा लेने की है। पुत्रों ने कहा आपकी इच्छा दीक्षा लेने की है तो संघ लेकर घर पर पधारो वहां आप दीक्षा लेलेना इत्यादि। महादेव ने कहा कि मेरे अन्तराय क्यों देते हो ? मेरी इच्छा तो इस तीर्थ भूमि पर ही दीक्षा लेने की है, महादेव की स्त्री ने सोचा कि जब मेरे पतिदेव दीक्षा लेने को तैयार होगये हैं तो फिर मुझे घर में रह कर क्या करना है, अतः वह भी तैयार होगई। जब संघ में इस बात की चर्चा फैली तो कई १४ नर-नारी दीक्षा लेने को तैयार होगये। बस एक तरफ तो संघपति की वरमाल महादेव के बड़े पुत्र लाखा को पहिनाई गई और दूसरी ओर संघपति महादेव आपकी धर्मपत्नी और १४ नर नारियों एवं १६ मुमुक्षुओं को भगवती जैन दीक्षा दी गई। अहा हा ! जब जीवों के कल्याण का समय आता है। तब निमित्त कारण भी सब अनुकूल बन जाता है। इसके लिये मंत्री महादेव का ताजा उदाहरण सामने है।

सूरिजी रात्रि में संथारा पौरसी भणाकर शयन किया था जब आप निद्रा से मुक्त हो ध्यान में बैठते थे इतने में तो देवी सच्चायिका ने आकर सूरिजी को वन्दन की सूरिजी ने धर्मलाभ देकर कहा देवीजी आप अच्छे मौका पर आये। देवी ने कहा प्रभो ! आप तीर्थ की यात्रा करे और मैं पीछे रहूँ यह कब बन सकता है केवल मैं एकली नहीं हूँ पर देवी मातुला भी साथ में हैं इसने ही मुझे आकर संघ की खबर दी थी इत्यादि। सूरिजी ने कहाँ कहो देवीजी गच्छ सम्बन्धी और कुछ कहना है, देवी ने कहाँ पूज्यवर ! मैं क्या कहूँ। आप स्वयं प्रज्ञावान् है। फिर भी इतना तो मैं कह देती हूँ कि आप इधर पधारे हैं तो यहीं विहार कर इस तीर्थ भूमि पर ही अपना कल्याण करे और मुनि कल्याण कलस आपके पद योग्य एवं सर्व गुण सम्पन्न है इनको सूरि पद देकर संघ के साथ भेजदें कि उधर विहार कर गच्छ की उन्नति करते रहेंगे। सूरिजी ने कहा ठीक है देवीजी मुनि कल्याण कलस मेरे गच्छ में एक योग्य विद्यावली एवं शास्त्रों का पारंगत मुनि है मैं इनको सूरि मंत्र का आराधन तो पहले से ही करवा दिया हैं फिर आपकी सम्मति होगई। देवीजी। आपने हमारे पूर्वजों को भी प्रत्येक कार्य में समय समय सहायता पहुँचाई है और आज मुझे भी आपने सावधान किया है। अब मैं कल सुवह ही मुनि कल्याण-कलस को सूरि पद अर्पण कर दूंगा। दोनों देवियां सूरिजी को वंदन कर अदृश्य होगई।

सूरिजी महाराज ने सुबह होते ही अपनी नित्य क्रिया से फुरसत पाकर संघ को एकत्र किया और कहा कि मैं अपना पदाधिकार मुनि कल्याण कलस को देना चाहता हूं। संघ के लोगों ने विचार किया कि क्या बात है केवल रात्रि में ही सूरिजी ने यह क्या विचार कर लिया। अतः संघ ने विज्ञप्ति की कि पूज्यवर आप संघ लेकर वापिस पधारें हम लोग सूरिपद के योग्य महोत्सव करेंगे और मुनिकल्याण कलस को सूरिपद हमारे यहाँ पधार कर ही दीरावें।

सूरिजी ने कहा मैंने अपना विहार पूर्व में करने का निश्चय कर लिया है। कारण, यहाँ विशेष लाभालाभ का कारण है। आपके संघ के लिये मैं सूरि बन देता हूँ वह आपके साथ चलेगा।

बस, सूरिजी ने निश्चय कर लिया तो उसको बदलनेवाला था ही कौन ? उसी दिन विधि विधान के साथ तीर्थभूमि पर सूरिजी ने मुनिकल्याण कलस को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख

महादेव को आदेश देते हुए भगवान् महावीर और आचार्य्य श्री की जय ध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई। आज तो डामरेलपुर में जहाँ देखो वहाँ श्रेष्ठिवर्य्य महादेव और शिखरजी के संघ की ही बातें हो रही है। साथ में आचार्य कक्क सूरिजी महाराज के प्रभाव की प्रभावना भी सर्वत्र मधुर स्वर से गाई जा रही थी। जैसे महादेव के वहाँ संघ की तैयारियाँ हो रही थीं वैसे ही नागरिक लोग संघ में जाने के लिये तैयारियें कर रहे थे। क्योंकि यह संघ महीना पन्द्रह दिनों में लौट कर आने वाला नहीं था। कम से कम छः मास लगना तो संभव ही था। दूसरे आज पर्यन्त शिखरजी का संघ नहीं निकला था अतः सबकी भावना संघ में जाने की थी। भला ऐसा सुअवसर हाथों से कौन जाने देने वाले थे।

श्रेष्ठिवर्य्य महादेव जैसा धर्मज्ञ था वैसा ही वह उदार दिल वाला भी था संघ निकालने में वह अपना अहोभाग्य समझता था केवल सिन्ध में ही नहीं पर दूर २ प्रदेश में आमंत्रण पत्रिकायें भेज दी थीं। साधु साध्वियों के लिये अपने कुटुम्बियों तथा संबन्धियों को बिनती के लिये भेज दिये थे। मामला दूर का होने से दो तीन स्थान ऐसे भी मुकर्रर कर दिये थे कि देरी से पधारने वाले साधु साध्वियां संघ में शामिल हो सकें।

महादेव अपने राजा के पास गया, चौकी पहरे के लिये राजा से प्रार्थना की जिसको तो राजा ने स्वीकार करली पर साथ में महादेव ने एक यह भी अर्ज की कि डामरेल नगर के बहुत से जैन लोग संघ में चलने वाले हैं पीछे उनके घरों की एवं मालमिलकियत की रक्षा के लिये आप पर ही छोड़ दिया जाता है। राजा ने कहा महादेव तू बड़ा ही भाग्यशाली है। डमरेल से इस प्रकार का संघ निकलना तेरी कीर्ति तो है ही पर साथ में डमरेल नगर की भी अमर कीर्ति है। हम लोगों से और कुछ नहीं बने तो भी तुम्हारे इस पुनीत कार्य्य के लिये इतना तो हम भी कर सकते हैं और इसके लिये तुम निशंक रहो किसी की एक शीली मात्र भी आगे पीछे नहीं होगी चाहे खुले मकान छोड़ जाओ इत्यादि। महादेव ने बड़ी खुशी मनाते हुये कहा कि हुजूर यह मेरा नहीं पर आपका ही यश एवं कीर्ति है और आपकी कृपा से ही मैंने इस प्रकार वृहद् कार्य्य को उठाया है। और आपकी सहायता से ही इस कार्य्य में सफलता प्राप्त करूँगा। महादेव राजा का परमोपकार मानता हुआ अपने मकान पर आया। और नागरिक लोगों को राजा का संदेशा सुना दिया तब तो नहीं चलने वालों का भी संघ में चलने का विचार होगया।

ठीक चतुर्मास समाप्त होते ही मार्गशीर्ष शुक्ल त्रोदशी के शुभ मुहूर्त्त में सूरिजी के वासक्षेप पूर्वक श्रेष्ठिवर्य्य महादेव के संघपतित्व में संघ ने प्रयान कर दिया। संघ के अन्दर कई रत्नों की मूर्त्तियां सुवर्ण के देरासर पूजाभक्ति के साधन, हजारों साधु साध्वियां और लाखों नर नारी थे। प्रत्येक ग्राम नगर के मन्दिरों के दर्शन तीर्थों पर ध्वजारोहणादि महोत्सव करते हुये, दीन दुखियों का उद्धार और याचकों को दान देते हुये तथा जैनों की वस्तीवाले ग्राम नगरों से भेंट और बधावना होते हुये संघ श्री सम्मेतशिखरजी पहुँचा। जबतीर्थ के दूर से दर्शन हुये तो संघ ने हीरे पन्ने माणिक और मोतियों से बधाया और तीर्थङ्करों की निर्वाणभूमि का स्पर्शन कर अपना अहोभाग्य समझा तथा अष्टान्हिका महोत्सव ध्वजारोहण पूजा प्रभावना सार्धमी वात्सल्यादि धर्म कृत्य किये। सूरिजी और संघपति का अधिक परिचय होने से सूरिजी ने जान लिया कि संघपति महादेव बड़ा ही त्यागी वैरागी और आत्मार्थी है। यदि यह दीक्षा ले ले तो इसका शीघ्र कल्याण हो सकता है। एक दिन सूरिजी ने संघपति को कहा महादेव यह तीर्थभूमि है तुमने संघ निकाल कर अनंत पुन्योपार्जन किया पर अब तेरी दीक्षा का समय है। यदि इस तीर्थ भूमि पर तू दीक्षा ले तो तेरा जल्दी कल्याण होगा। महा-

देव ने अपने दिल में सोचा कि सूरिजी बड़े ही उपकारी पुरुष हैं और मेरे पर आपका धर्म प्रेम है अब संसार में रहकर मुझे करना ही क्या है। अतः सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य्य करना ही कल्याण का कारण है। अतः महादेव ने अपनी स्त्री और पाँचों पुत्रों को बुला कर कहा कि मेरी इच्छा यहाँ दीक्षा लेने की है। पुत्रों ने कहा आपकी इच्छा दीक्षा लेने की है तो संघ लेकर घर पर पधारो वहां आप दीक्षा लेलेना इत्यादि। महादेव ने कहा कि मेरे अन्तराय क्यों देते हो ? मेरी इच्छा तो इस तीर्थ भूमि पर ही दीक्षा लेने की है, महादेव की स्त्री ने सोचा कि जब मेरे पतिदेव दीक्षा लेने को तैयार होगये हैं तो फिर मुझे घर में रह कर क्या करना है, अतः वह भी तैयार होगई। जब संघ में इस बात की चर्चा फैली तो कई १४ नर-नारी दीक्षा लेने को तैयार होगये। बस एक तरफ तो संघपति की वरमाल महादेव के बड़े पुत्र लाखा को पहिनाई गई और दूसरी ओर संघपति महादेव आपकी धर्मपत्नी और १४ नर नारियों एवं १६ मुमुक्षुओं को भगवती जैन दीक्षा दी गई। अहा हा ! जब जीवों के कल्याण का समय आता है। तब निमित्त कारण भी सब अनुकूल बन जाता है। इसके लिये मंत्री महादेव का ताजा उदाहरण सामने है।

सूरिजी रात्रि में संथारा पौरसी भणाकर शयन किया था जब आप निद्रा से मुक्त हो ध्यान में बैठते थे इतने में तो देवी सच्चायिका ने आकर सूरिजी कों वन्दन की सूरिजी ने धर्मलाभ देकर कहा देवीजी आप अच्छे मौका पर आये। देवी ने कहां प्रभों ! आप तीर्थ की यात्रा करे और मैं पीछे रहूँ यह कब बन सकता है केवल मैं एकली नहीं हूँ पर देवी मातुला भी साथ में हैं इसने ही मुझे आकर संघ की खबर दी थी इत्यादि। सूरिजी ने कहाँ कहो देवीजी गच्छ सम्बन्धी और कुछ कहना है, देवी ने कहाँ पूज्यवर ! मैं क्या कहूँ। आप स्वयं प्रज्ञावान् है। फिर भी इतना तो मैं कह देती हूँ कि आप इधर पधारे हैं तो यहीं विहार कर इस तीर्थ भूमि पर ही अपना कल्याण करे और मुनि कल्याण कलस आपके पद योग्य एवं सर्व गुण सम्पन्न है इनको सूरि पद देकर संघ के साथ भेजदें कि उधर विहार कर गच्छ की उन्नति करते रहेंगे। सूरिजी ने कहा ठीक है देवीजी मुनि कल्याण कलस मेरे गच्छ में एक योग्य विद्यावली एवं शास्त्रों का पारंगत मुनि है मैं इनको सूरि मंत्र का आराधन तो पहले से ही करवा दिया हैं फिर आपकी सम्मति होगई। देवीजी। आपने हमारे पूर्वजों को भी प्रत्येक कार्य में समय समय सहायता पहुँचाई है और आज मुझे भी आपने सावधान किया है। अब मैं कल सुबह ही मुनि कल्याण-कलस को सूरि पद अर्पण कर दूंगा। दोनों देवियां सूरिजी को वंदन कर अदृश्य होगई।

सूरिजी महाराज ने सुबह होते ही अपनी नित्य क्रिया से फुरसत पाकर संघ को एकत्र किया और कहा कि मैं अपना पदाधिकार मुनि कल्याण कलस को देना चाहता हूँ। संघ के लोगों ने विचार किया कि क्या बात है केवल रात्रि में ही सूरिजी ने यह क्या विचार कर लिया। अतः संघ ने विज्ञाति की कि पूज्यवर आप संघ लेकर वापिस पधारें हम लोग सूरिपद के योग्य महोत्सव करेंगे और मुनिकल्याण कलस को सूरिपद हमारे यहाँ पधार कर ही दीरावें।

सूरिजी ने कहा मैंने अपना विहार पूर्व में करने का निश्चय कर लिया है। कारण, यहाँ विशेष लाभालाभ का कारण है। आपके संघ के लिये मैं सूरि बन देता हूँ वह आपके साथ चलेगा।

बस, सूरिजी ने निश्चय कर लिया तो उसको बदलनेवाला था ही कौन ? उसी दिन विधि विधान के साथ तीर्थभूमि पर सूरिजी ने मुनिकल्याण कलस को सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख

दिया और आपने ५०० साधुओं को पूर्व में विहार करने के लिये अपने पास रख कर शेष साधुओं को देवगुप्तसूरि के साथ में संघ भेज दिये । संघ पुनः लौट कर डमरेलपुर नगर में आया । श्रेष्ठिवर्य्य लाखा ने संघ को साधर्मिक वात्सल्य देकर पांच पांच सुवर्ण मुद्रिकायें और वस्त्रादि की पहरामणी देकर संघ को विसर्जन किया।

पूर्व में उस समय बौद्धाचार्य्य बौद्धधर्म का खूब जोरों से प्रचार कर रहे थे जैनधर्म में उस समय पूर्व में ऐसा कोई प्रभावशाली आचार्य नहीं था कि बढ़ते हुये बौद्धों के वेग को रोक सके । शायद देवी सच्चायिका की प्रेरणा इसलिये ही हुई हो और यह कार्य्य कोई कम लाभ का भी नहीं था । सूरिजी ने २०० मुनियों को तो अपने साथ में रक्खे और शेष तीन सौ साधुओं की पचास पचास साधुओं की छः टुकड़ियाँ बना दी जिन्हों के ऊपर एक एक पदवीधर नियुक्त कर दिया और पूर्व प्रान्त के प्रत्येक नगर में विहार का आदेश दे दिया । बस, फिर तो था ही क्या । इस सिलसिले से विहार करने से जैसे सूर्य्य के सामने तारों का तेज फीका पड़ जाता है वैसे ही बौद्धों का प्रचार कार्य रुक गया और जैनधर्म का प्रचार बढ़ने लगा । राजगृह चम्पा वैशाला वणिज्य ग्राम नगर और कपिलवस्तु तक विहार कर दिया । इधर तो हिमाचल और उधर कलिंग प्रदेश तक जैन साधुओं का विहार हुआ । सूरिजी ने केवल जैनों का रक्षण ही नहीं किया था पर हजारों लाखों जैनेतरों को जैन बना कर उनका भीउद्धार किया—

जब सूरिजी ने अपना अन्तिम समय नजदीक जाना तो पुनः शिखरजी पधार गये और अपने साधुओं को शिखरजी के आस पास के प्रदेश में विहार करने की आज्ञा दे दी और उन विद्वान साधुओं ने वहां भ्रमण कर जैनधर्म का खूब ही प्रचार किया । आज जो सिंहभूम मानभूमादि प्रदेश में सारक जाति पाई जाती है यह सब उन आचार्यों के बनाये हुये जैन श्रावक है ।

सारक जाति के पूर्वजों ने अनेक मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा भी करवाई थी कई बार तीर्थ श्री सम्मेत शिखरजी की यात्रार्थ संघ भी निकाले थे और कई मुमुक्षुओं ने आचार्य श्री एवं आपके शिष्यों के पास दीक्षा भी ली थी और वे मुनि कितने ही समय तक वहां विहार भी किया था परन्तु पिछले अर्से में जब जैन श्रमणों का विहार बन्द हुआ तब से ही वे लोग धर्म को भूलते गये तथापि उन लोगों के असली संस्कार थे वे सर्वथा नहीं मिटे पर आज पर्यन्त उनमें अहिंसा वगैरह के संस्कार विद्यमान है—

आचार्य कक्कसूरिजी महाराज महा प्रभाविक आचार्य हुये आपने अपने २५ वर्ष के शासन समय में सर्वत्र विहार कर जैन धर्म की खूब ही ध्वजा पताका फहराई । आपने जैसे महाजनसंघ एवं उपकेशवंश की वृद्धि की वैसे ही भावुकों को दीक्षा दे श्रमणसंघ की भी अभिवृद्धि की । अन्त में वि० सं० २६० का फाल्गुण कृष्ण अष्टमी के दिन सम्मेतशिखर तीर्थ पर २७ दिन के अनशनपूर्वक समाधि के साथ स्वर्गवास पधार गये ।

पट्टावलियों वंशावलियों में सूरिजी के शासन में अनेक महानुभावों ने संसार का त्याग कर बड़े ही वैराग्यभाव से दीक्षा ली उनके नामों में थोड़े से नाम यहां दर्ज कर देता हूँ :—

१—उपकेशपुर के कनोजिया गौत्रीय पोलाक ने दीक्षा ली ।
२—चम्पापुरा के कर्नाट गौत्रीय परमा ने ,,
३—माडव्यपुर के बलाह गौत्रीय कल्हण ने ,,
४—शंखपुर के चिंचट गौत्रीय आगा ने ,,
५—मुग्धपुर के श्री श्रीमाल गौत्रीय मूला ने ,,

६—खटकुंप के	सुचंति	गौत्रीय	नन्दा ने	दीक्षा ली
७—मेदनीपुर के	भद्र	गौत्रीय	रामा ने	,,
८—नागपुर के	चोरडिय	जाति के	चतरा ने	,,
९—पद्मावती के	सुघड़	गौत्रीय	करणा ने	,,
१०—कोरंटपुर के	प्राग्वट	वंशीय	धन्ना ने	,,
११—भीन्नमाल के	श्रीमाल	वंशीय	धरण ने	,,
१२—सत्यपुर के	श्रेष्टि	गौत्रीय	हाना ने	,,
१३—चिचोड़ के	प्राग्वट	वंशीय	धरण ने	,,
१४—चित्रकोट के	भूरि	गौत्रीय	मुसल ने	,,
१५—लाकोटी के	ब्राह्मण		ब्रह्मदेव ने	,,
१६—उज्जैन के	वाप्पनाग	गौत्रीय	शंख ने	,,
१७—सोपार के	श्रीमाल	वंशीय	कानड ने	,,
१८—डावरेल के	चरड़	गौत्रीय	वीरम ने	,,
१९—करणावतीके	प्राग्वट	वंशीय	भाखर ने	,,
२०—मडोनी के	ब्राह्मण		श्रीकण्ठ ने	,,
२१—मथुरा के	श्री श्रीमाल	गौत्रीय	वैना ने	,,
२२—खंडपुर के	प्राग्वट	वंशीय	जोधा ने	,,
२३—जोगनीपुरके	श्रेष्टि	गौत्रीय	मंत्री मुरारने	,,
२४—सालीपुर के	आदित्य नाग	गौत्रीय	मंत्री रणधीर ने	,,
२५—कोकाली के	क्षत्रीय वंशीय		मोकलदेव ने	,,
२६—आनन्दपुरके	प्राग्वट वंशीय		विरधा ने	,,
२७—हूलण के	सोनी जाति के		सीताराम ने	,,

इनके अलावा कई पुरुष तथा बहुत सी बेहनों की दीक्षा का वर्णन भी पट्टावलियों में किया है पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से सब का नाम नहीं दिया है पर यह बात सादी और सरल है कि इस प्रकार दीक्षा लेते थे तब ही तो हजारों साधु साध्वियों प्रत्येक प्रान्त में विहार कर धर्मोपदेश दिया करते थे।

आचार्य श्री कक्कसूरि के शासन में तीथा के संघ—

१—भीन्नमाल नगर से श्रीमाल वंशीय खरत्था ने श्री शत्रुञ्जादि तीर्थो का संघ निकाला जिसमें तीन हजार साधु साध्वियों और लाखों श्रावक थे इस संघ में शाह खरत्थाने चौदह लक्ष द्रव्य व्यय किया सार्धर्मी भाइयों को सवासेर के लड्डू और पांच पांच सोना मुहरो तथा वस्त्रों की पेहरामणि दी—

२—सोपरपुर पट्टन से प्राग्वट सुरजण ने श्री शत्रुञ्जय गिरनारादि तीर्थो का संघ निकाला जिसमें ५२ देरासर थे कई पचवीसो साधु साध्वियों और साधिक एक लच यात्रुगण थे संघपति सुरजण ने इस संघ में एक कोटी द्रव्य व्यय किया साधर्मी भाइयों को सोना की कटियों और पांच पाचा सोना मुहरों लेन

में दी याचकों को खूब दान दिया। संघपति सुरजन अपार सम्पति का धनी था आपकी कइ नगरों में दुकानों थी पश्चात्य प्रदेशों के साथ जहाजों द्वारा व्यापार चलता था चीन जावा वगैरह में आपकी कोठियें भी थीं इतना होने पर भी धर्म करने में दृढ़ चित और खूब रुची वाला था साधर्मी भाइयों की ओर आपका अधिक लत्त था व्यापार में भी साधर्मी भाइयों को विशेष स्थान दिया करता था ऐसे नर रत्नों से ही जैन धर्म की उन्नति एवं प्रभावना होती थी।

३—नागपुर का आदित्यनाग गौत्रीय शाह लाखण ने श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ का संघ निकाला जिसमें आपने बारह लक्ष द्रव्य व्यय किया साधर्मी भाइयों को पेहरामणि दी और पांच बड़े यज्ञ किये।

४—कोरंटपुर का श्रेष्टि गौत्रीय मंत्री अर्जुन ने उपकेशपुर स्थित भगवान् महावीर की यात्रार्थ संघ निकाला जिसमें मंत्रीश्वर ने तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया। साधर्मियों को लेन दी।

५—आलोट नगर से रावनारायण ने श्री शत्रुञ्जय का संघ निकाला जिसमें पन्द्रहसौ मुनि साध्वियों और कइ पचास हजार गृहस्थ थे इस संघ में १९ हस्ती भी थे रावजी ने अपनी वृद्धावस्था में जबर्दस्त पुन्योपार्जन कर श्री शत्रुंजय की शीतल छाया में दीक्षा ग्रहण कर केवल तेरह दिनों में पुनीत तीर्थ भूमि पर देह त्याग कर स्वर्ग चले गये।

६—उपकेशपुर से भाद्र गौत्रीय शाह गोपाल ने श्री सम्मेतशिखरजी का संघ निकाला इस संघ में एक लक्ष से भी अधिक नर नारी थे संघ लोटते समय ऋतु ग्रष्म आगई थी रास्ते में पानी का स्थान नहीं आने से संघ बहुत व्याकुल होगया अतः वाचनाचार्य गुणविलास के पास आकर अर्ज की अतः वाचनाचार्य ने स्वरोदय वली थे ध्यान लगा कर ऐसा संकेत किया कि पुष्कल जल मिल गया जिससे संघ ने अपने प्राण वचा लिया और सकुशाल उपकेशपुर पहुँच गये शाह गोपाल ने सात यज्ञ किये और स्वाधर्मी भाइयों ने पेहरामणी दी तथा यचकों को इच्छित दान देकर अपनी कीर्ति को अमर वनादी।

इत्यादि और भी कई छोटे बड़े संघ निकले जिन्हों का पट्टावलियों में विस्तार से वर्णन है।

सूरिजी के शासन में मन्दिर मूर्त्तियों की प्रतिष्ठाएं भी बहुत हुई—

१—आसलपुर	के	प्राग्वट —	शाह वागा	के बनाया	महावीर० प्र०
२—दसलान	के	प्राग्वट	,, भीमा	के ,,	,, ,,
३—इंदावटी	के	भूरिगौ०	,, हंसा	के ,,	,, ,,
४—आघाट	के	चिंचटगौ०	,, करमण	के ,,	पार्श्वनाथ ,,
५—विराट	के	मलगौत्रीय	,, धीरा	के ,,	,, ,,
६—ममाणिया	के	चरडगौत्रीय	,, कानड	के ,,	शान्तिनाथ ,,
७—धौलपुर	के	आदित्यनागगौ०	,, रूपणसी	के ,,	नेमिनाथ ,,
८—पलवृद्धि	के	बापनागगौ०	,, लाखणसी	के ,,	मुनिसुव्रत ,,
९—नागपुर	के	श्रेष्ठगौत्रीय	,, पुनड़ा	के ,,	महावीर ,,
१०—दर्पपुर	के	सुचंतिगौत्रीय	,, पौमा	के ,,	,, ,,

११—स्तम्भनपुर	के	बलाहागौ०	शाह देपाल	के बनाया	महावीर०	प्र०
१२—वटपुर	के	कर्णाटगौ०	,, झांझण	के ,,	,,	,,
१३—शंखपुर	के	तप्तभटगौ०	,, छाप्पा	के ,,	,,	,,
१४—भासिल	के	प्राग्वट	महादेव	के ,,	,,	,,
१५—कानपुर	के	श्रीमाल	,, जैता	के ,,	,,	,,
१६—करोट	के	श्रीमाल	,, नन्दा	के ,,	,,	,,
१७—पालिकपुर	के	कनोजिया	,, नागा	के ,,	,,	,,
१८—कीराटकुप	के	डिडूगौ०	,, राणा	के ,,	,,	,,
१९—नागपुर	के	लघुश्रेष्ठिगो०	,, राजसी	के ,,	,,	,,
२०—उज्जैन	के	मोरक्षगौ०	,, आखा	के ,,	पार्श्वनाथ	,,
२१—मण्डव	के	कुलभद्रगौ०	,, वीरदेव	के ,,	ऋषभदेव	,,
२२—महेन्दपुर	के	विरहटगौ०	,, मोथा	के ,,	अजीतनाथ	,,
२३—वेनातट	के	पुष्करणा जाति	,, खेता	के ,,	महावीर	,,

इनके अलावा कई छोटे बड़े मन्दिर और घर देशान्तर की प्रतिष्ठा हुई ।

वंशावली में एक चमत्कारी घटना लिखि हैं वीरपुर [सिन्ध] में एक सोमरुद्र वामयर्णियों का नेत आया था वह था मंत्र बली जनता को चमत्कार बतलाने को शाम के समय जैन मन्दिर से एक मूर्त्ति को मंत्र बल से तालाव पर लेजा कर वापिस मन्दिर में ले आया और लोगों को कहने लगा कि जैन लोग अपने देव की मूर्ति को पानी नहीं पीलाते है अतः मूर्त्ति स्वयं तालाब पर पानी पीने को जाया करती हैं इस प्रकार आठ दिन गुज़र गये । इससे जैनों को बड़ा ही दुःख हुआ वे लोग किसी विद्याबली साधु को लाना चाहते थे इधर उधर मनुष्यों को भेजे भी थे पर उनकी आशा सफल नहीं हुई । एक दिन सुना कि डमरेल नगर में पण्डित आनन्द मुनि विराजते हैं और वे अच्छे विद्यावली भी है संघ अग्रेश्वर डामरेल जाकर सब हाल कहा और वीरपुर पधारने की प्रार्थना की अतः पं० आनन्दमुनि विहार कर वीरपुर पधारे श्रीसंघ ने बड़े ही समारोह से आपका स्वागत किया । सोमरुद्र ने हमेशा की तरह मूर्त्ति को मन्दिर से निकाल कर तालाव पर लेजा रहा था पर मूर्त्ति बजार के बीच आइ तो रुक गई आगे चल नहीं सकी । इधर पं० आनन्द मुनि ने नगर के अन्दर जितने शिवलिंगादि देवी देवता थे उन सब को मंत्र बल से बजार में ले आया कि जहां जैन मूर्ति रुकी हुई थी । बजार में एक ओर सोमरुद्र खड़ा था दूसरी ओर पं० आनन्दमुनि । इस चमत्कार को देखने के लिये जैन जैनेत्तर हजारों लोग एकत्र होगये । पं० आनन्दमुनि ने कहा महात्माजी यदि आप इन सब मूर्त्तियों को तलाव की ओर ले जावें तो मैं आपका शिष्य बन जाउ और मैं मन्दिर की ओर ले जाउ तो आप मेरा शिष्य बन जावे । जनता के समक्ष सोमरुद्र ने स्वीकार कर लिया पर पंडितजी के सामने उनका मंत्र कुच्छ काम नहीं कर सका तब पं० आनन्द ने हुक्म दिया कि अहो देवी देवताओं तुम इस जैनमूर्त्ति को जैन मन्दिर में पहुँचा दो । बस आगे जैन मूर्त्ति और पिच्छे सब देवी देवता चल कर जैन मन्दिर में आये । बस- सोमरुद्र पण्डितजी का शिष्य बनगया—इस चमत्कार से जैन धर्म का बहुत प्रभावना हुई वंशावली कार लिखते है कि वे सब देवी देवता आज तक भी जैन मन्दिर में मौजुद है ।

पट्ट तेवीसवें कक्कसूरिजी, आदित्य नाग कुल भूषण थे ।
जिनकी तुलना करके देखो, चन्द्र में भी दूषण थे ॥
षट दर्शन के थे वे ज्ञाता, वादी लज्जित हो जाते थे ।
अजैनों को जैन बनाकर, नाम कमाल कमाते थे ॥

॥ इति श्री भगवान् पार्श्वनाथ के २३ वें पट्ट पर आचार्य ककसूरि महान् प्रभाविक आचार्य हुवे ॥

२४—आचार्य श्रीदेवगुप्तसूरि (चतुर्थ)

भूषा सीन्कुमटे स्वगोत्र विषये वै देवगुप्तो गुणी ।
भूत्वा दीक्षित एव जैन सुमते चक्रे कठोरं तपः ॥
येनासन् बहवोऽपि भूमिपगणाः शिष्याः प्रभावान्विताः ।
वन्द्योऽयं सुविकाशमान विधुवत् कल्याणकारी प्रभुः ॥
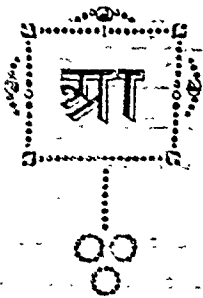
आचार्य देवगुप्त सूरीश्वरजी महाराज एक देवमूर्त्ति की भांति केवल मनुष्यों से ही नहीं पर देव देवियों से सदैव परिपूजनीय थे । आप चन्द्र जैसे शीतल, सूर्य्य जैसे तेजस्वी, सागर जैसे गंभीर, पृथ्वी जैसे धैर्य्यवान, मेरु जैसे अकम्प, और मनोकामना पूर्ण करने में कल्पवृक्ष सदृश्य मरुधर के चमकते हुये सितारे ही थे । आप जैन धर्म का प्रचार करने में अद्वितीय वीर थे अपने पूर्वजों की स्थापित की हुई शुद्धि की मशीन को चलाने में एक चतुर मशीनगर का काम किया करते थे । आप का जीवन जनता के कल्याण के लिये ही हुआ था जिसका अनुकरण हमारे जैसे पामर जीवों को पावन बना देता है ।

जिस समय का हाल हम लिख रहे हैं उस समय आबुदाचल की शीतल छाया में अलकापुरी से स्पर्द्धा करने वाली चन्द्रावती नाम की नगरी थी जिसको सूर्य्यवंशी महाराज चन्द्रसेन ने आबाद की थी। चन्द्रावती नगरी जब से आबाद हुई तब से वह जैनियों का एक केन्द्र ही कहलाता था क्योंकि वहाँ बसने वाले राजा और प्रजा जैनधर्म के ही उपासक थे । चन्द्रावती नगरी में सैकड़ों जैन तीर्थङ्करों के मन्दिर थे और लाखों मनुष्य श्रद्धा पूर्वक उन मन्दिरों की सेवा पूजा भी करते थे ।

उपकेशगच्छ एवं कोरंटगच्छ के आचार्यों ने समय समय पर चन्द्रावती में चतुर्मास कर तथा आपके मुनिगण वहां ठहर कर सदैव धर्मोपदेश दिया करते थे । धर्म के प्रभाव से उन लोगों के पुण्य भी बढ़ते जा रहे थे । चन्द्रावती नगरी में बड़े २ व्यापारी लोग भी बस रहे थे । उनका व्यापारी सम्बन्ध केवल भारतीयों के साथ ही नहीं था पर वे पाश्चात्य प्रदेश के व्यापारियों के साथ व्यापार सम्बन्ध रखते थे । भारत से लाखों करोड़ों का माल विदेशों में भेजते थे तथा वहां से भी कई प्रकार के पदार्थ भारत में लाते थे कई लोगों ने तो वहां अपनी कोठियें भी खोल दी थीं जिससे वे पुष्कल द्रव्य पैदा करते थे और उस न्यायोपार्जित द्रव्य को शुभ कार्यों में व्यय कर कल्याणकारी पुण्य संचय भी किया करते थे । जैनधर्म का प्रचार एवं उन्नति करना वे अपना सबसे पहिला कर्त्तव्य समझते थे ।

उन व्यापारियों के अन्दर कुमट गोत्रीय शाह डावर नाम का एक व्यापारियों का अग्रेसर सेठ बसता था । उसके पास इतना द्रव्य था कि लोग उसको धन कुबेर के नाम से ही पुकारते थे । शाह डावर जैसा धनेश था वैसा परोपकारी भी था । साधर्मी भाइयों की ओर उसका अधिक लक्ष्य था । दानेश्वरी तो ऐसा था कि याचकों के दरिद्र को देश पार कर दिया था । शाह डावर के पत्नी नानक गृहदेवी थी जिसने आठ

पुत्र और सात पुत्रियों को जन्म देकर अपने जीवन को कृतार्थ बना लिया था जिसमें एक कल्याण ना का पुत्र तो कल्याण की मूर्ति ही था। इतनी सम्पत्ति इतना परिवार होने पर भी शाह डावर एवं आपक पत्नी पन्ना धर्मकरणी करने में इतने दृढ़ प्रतिज्ञा वाले थे कि वे अपने जीवन का अधिक समय धर्म साध में ही व्यतीत करते थे। जब माता पिता की इस प्रकार धर्म प्रवृति होती है तो उनके बाल बच्चों पर ध का प्रभाव पड़े बिना कैसे रह सकता है ?

शाह डावर पाश्चात्य प्रदेश के साथ व्यापार करता था तो उसके हाथ एक ऐसा पन्ना लग गया कि उसने उस पन्ना की एक भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति बना कर अपने घर देरासर में प्रतिष्ठा करवादी जिसक सेठजी आदि सब परिवार के लोग त्रिकाल सेवा पूजा किया करते थे।

पूर्व जमाने में घर देरासर की प्रवृति अधिक थी और इससे कई प्रकार के लाभ भी थे। कारण एक तो घर देरासर होने से क्या स्त्री और क्या पुरुष सब कुटुम्ब वाले सेवा पूजा एवं दर्शन का लाभ ले सकते थे इतना ही क्यों पर जैनेतर नौकर चाकर भी परमात्मा के दर्शन उपासना एवं पूजा का लाभ उठ सकते थे। दूसरे घर में अपने इष्ट देव होने से दूसरे अन्य देव देवियों को स्थान नहीं मिल सकता था तीस जैनेतरों की लड़की परणीज कर लाते थे वह भी जैन धर्मोपासिका बन जाती थी। चौथे घर में देरासर हो से धर्म पर श्रद्धा भी मजबूत रहती थी इत्यादि अनेक फायदे थे।

एक समय परोपकारी आचार्य कक्कसूरीश्वरजी महाराज भू भ्रमण करते हुए चन्द्रावती के नजदी पधार रहे थे। यह शुभ समाचार चन्द्रावती के संघ को मिलते ही उनके हर्ष का पार नहीं रहा और वे लो सूरिजी के स्वागत की तैयारी करने लग गये। फिर तो कहना ही क्या था बड़े ही समारोह से नगर प्रवे का महोत्सव किया। सूरिजी ने चन्द्रावती में पदार्पण कर जैन मंदिरों के दर्शन किये और बाद थोड़ी प सारगर्भित देशना दी। सूरिजी का व्याख्यान इतना प्रभावोत्पादक था कि जिस किसी ने एक बार सुन लिय फिर तो उसको ऐसा रंग लग जाता था कि बिना सूरिजी का व्याख्यान सुने उसको चैन ही नहीं पड़ता था

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा विविध विषय पर होता था पर आपके व्याख्यान में संसार की असा रता और त्याग वैराग्य एवं आत्म कल्याण पर अधिक जोर दिया जाता था।

एक दिन व्याख्यान में सूरिजी ने सामुद्रिक शास्त्र का इस खूबी से वर्णन किया कि हस्त पदों क रेखा शरीर के तिल मास लक्षणियादि के भविष्य में होने वाले शुभाशुभ फल विस्तार से बयान किये औ कहा कि श्रोता जनों ! सर्वज्ञ के ज्ञान से कोई भी विषय शेष नहीं रह जाता है। हां, उसमें हेय ज्ञेय औ उपादेय अवश्य होता है। पर जब तक वस्तु तत्व का सम्यक् ज्ञान नहीं होता है तब तक हेय में त्याग बुद्धि ज्ञेय में ज्ञापक बुद्धि और उपादेय में धारण बुद्धि नहीं हो सकती है अतः हेय ज्ञेय और उपादेय को सम्यक् प्रकार से समझ कर हेय का त्याग ज्ञेय को जानना और उपादेय को अंगीकार करना चाहिये इत्यादि।

सूरिजी का व्याख्यान सब को कर्ण प्रिय था। प्रत्येक मनुष्य की भावना थी कि हमारे शरीर में कोई भी शुभ लक्षण शुभ रेखादि है या नहीं ? यही विचार शाह कल्याण के हृदय में चक्कर लगाने लगा। कल्याण समय पाकर सूरिजी के पास पहुँचा और वन्दन कर अपना हाथ सूरिजी के सामने बढ़ाया जिसक सूरिजी ने ध्यान लगा कर देखा और कहा कल्याण तेरे शरीर में इतने उत्तम लक्षण हैं कि यदि तू भगवती जैन दीक्षा गृहण कर ले तो तेरी भाग्य रेखा इतनी जबर्दस्त खुलेगी कि तू एक जैनधर्म का उद्धारक हो

स्वात्मा के साथ अनेकों का कल्याण करने में भाग्यशाली वन जायगा। अर्थात् अपने नाम को सार्थक बना देगा अर्थात् कल्याण तु एक कल्याण की ही मूर्ति वन जायगा।

इनके अलावा सूरिजी ने और भी कहा कि कल्याण अनुकूल सामग्री में कुछ कर लेना अच्छा है और उसका ही जीवन सफल समझा जाता है। शास्त्रकारों ने तो स्पष्ट शब्दों में फरमाया है कि:—

"जाजा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई, अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राईओ।"
"जाजा वच्चइ रयणी न सा पडि नियत्तई, धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ"

अधर्म में जो समय जाता है वह व्यर्थ जाता है तब धर्म कार्य्य में समय जाता है उसका समय सफल जाता है। कल्याण ! काल का विश्वास नहीं है बड़े-बड़े अवतारी पुरुष भी चले गये हैं तो साधारण जन की तो गिनती ही क्या है ?

"तीर्थङ्करा गणधारिणः सुरपत्तयश्चक्रि केशवा रामाः। संहृक्त हत विधिना शेषेषु नरेषु का गणना?"

इत्यादि हितकारी उपदेश दिया। कल्याण था लघुकर्मी कि सूरिजी के वचन सिद्ध पुरुष की औषधी की तरह रुच गये और उसने कहा पूज्यवर ! आपका कहना सोलह आना सत्य है। हजारों कोशिश करने पर भी इस प्रकार की अनुकूल सामग्री मिलनी दुष्कर है। अतः मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं जल्दी से जल्दी आपकी सेवा में दीक्षा लूंगा। बस, सूरिजी को वन्दन कर कल्याण अपने घर पर आया। पर आज तो कल्याण का रंग ढंग कुछ दूसरा ही था। उसके चेहरे पर उदासीनता एवं वैराग्य का रंग झलक रहा था।

माता पन्ना ने पूछा बेटा ! आज तू उदास क्यों है ? क्या तेरे पिता ने तुझे कुछ कहा है। कल्याण ने कहा नहीं माता पिताजी ने कुछ भी नहीं कहा है।

"माता—फिर तू उदास क्यों है ?

"बेटा—माता मैंने संसार में जन्म लेकर इतने दिन यों ही गफलत में खो दिये जिसकी मुझे उदासीनता है।

"माता एक दम चौंक उठी और कहा बेटा ! तू क्या कार्य करना चाहता है। आज अपने घर में सब साधन है तू चाहे सो कार्य कर सकता है।

"बेटा—माता मैं सूरिजी महाराज के पास दीक्षा लेना चाहता हूँ।

माता—बेटा ये तुझे किसने सिखाया है, तू जानता है कि तेरी सगाई कब से ही करदी है अब २-३ मास में तेरा विवाह करना है। देख अपने घर में विवाह की सब तैयारियें हो रही हैं।

बेटा—माता मैं ऐसा अचिरकाल का विवाह करना नहीं चाहता हूँ कि जिसके लिये भवान्तर में दुःख सहन करना पड़े। मैं तो ऐसा विवाह करूंगा कि जिसके जरिये सदैव के लिये सुखी बन जाऊं।

माता तो बेटा के शब्द सुनकर महान् दुखी बन गई और उसी समय शाह डावर को बुला कर कहा कि आपका बेटा क्या कहता है जिसको सुन लीजिये ? डावर ने पूछा कि बेटा तेरी मां क्या कहती है। कल्याण ने कहा आप ही पूछ लीजिये। पन्ना रोती हुई कहने लगी कि बेटा कहता है कि मैं दीक्षा लूंगा इस बात को मैं कैसे बरदाश्त कर सकती हूँ ? आप अपने बेटे को समझा दीजिये वरना मेरी मृत्यु नजदीक ही है।

"शाह डावर ने कहा कल्याण क्या बात है तेरी मां क्या कहती है ?

"कल्याण—माता ठीक कहती है मेरी इच्छा दीक्षा लेने की है।

"पिता—इसका कारण क्या है कि तू आज दीक्षा का नाम लेता है ?

"कल्याण—क्या आपने गुरु महाराज के व्याख्यान में नहीं सुना है गुरु महाराज ने फरमाय कि विषय सुख तो क्षण भर के हैं पर उसके दुःख चिरकाल तक भुगतने पड़ते हैं।

खण मित्त सुक्खा बहुकालदुक्खा, पगामदुक्खा अणिकाम सोक्खा।
संसार मोक्खस्स विपक्ख भूया, खाणीअणत्थाणउकाम भोगा ॥१॥

पिताजी मैं क्षणभर के सुखों के लिये चिरकाल के दुःख भुगतना अच्छा नहीं समझता हूँ। आप कृपा कर मुझे आज्ञा दीरावें कि मैं दीक्षा लेकर अपना कल्याण करूं।

पिता ने कहा ठीक है मैं इस पर विचार करूंगा जाओ अभी तो काम करो। सेठानी पन्ना को कि तुम क्यों दुःख करती हो मैं कल्याण को समझा दूंगा। यदि कल्याण के भाग में दीक्षा की रेखा है तो उसे मिटा भी कौन सकता है।

शाह डावर समय पाकर शाम को सूरिजी महाराज के पास गया। डावर सूरिजी का परम भ था। गच्छ में भी एक अग्रेश्वर श्रावक था। डावर जैसा धनाढ्य था वैसा धर्मज्ञ भी था। उसने सूरि से नम्रता पूर्वक अर्ज की कि पूज्यवर ! आज कल्याण ने घर पर आकर दीक्षा की बात की जिससे उस मां ने बहुत दुःख किया और भोजन तक भी नहीं किया। अतः कल्याण को समझा दिया जाय कि अ दीक्षा का नाम न ले, और २-४ मास में उसका विवाह भी करना है। अतः निर्विघ्नता से विवाह हो ज तो मेरे चित्त को शान्ति रहे दूसरा कल्याण अभी बच्चा है दीक्षा में क्या समझता है।

सूरिजी ने कहा डावर ! तू भाग्यशाली है और गच्छ में अग्रेश्वर भी है तू जानता है कि साधु को तो इस बात का कुछ भी स्वार्थ नहीं है। दूसरे मेरे शिष्यों की भी कमी नहीं है। हजारों साधु साध्वि गच्छ मे विद्यमान हैं। एक कल्याण विना हमारा कोई काम रुका हुआ भी नहीं है कि कल्याण को दी देने की कोशिश की जाय परन्तु मुझे आश्चर्य इस बात का है कि इस सामग्री में स्वयं तुझको दीक्षा ले चाहिये इस हालत में कल्याण की दीक्षा रोकने की कोशिश करता है। कल्याण दीक्षा लेगा या नहीं इस लिये तो निश्चय कौन कह सकता है। श्रावक शासन का एक अंग होता है। यदि तेरे आठ पुत्रों में से पुत्र मांगा जाय तो क्या तू इन्कार कर सकेगा ? इसका उत्तर डावर क्या दे सकता था। डावर ! य यह कल्याण तेरे घर में रहेगा तो एक तेरे घर का ही काम करेगा परन्तु दीक्षा ले ली तो जैन शासन उद्धार और हजारों लाखों का कल्याण करने में समर्थ बन जायगा। इससे तुझ को हानि नहीं पर अधि से अधिक फायदा है। यदि कल्याण दीक्षा लेना चाहता हो तो तुम अन्तराय कर्म नहीं बन्धना अगर मोह नीया कर्मोदय से कुछ मोह आ भी जाय तो ज्ञान दृष्टि से विचार करना। तथा श्राविका को भी समझा देना

शाह डावर समझ गया कि सूरिजी की इच्छा कल्याण को दीक्षा देने की है। बस, सूरिजी को वन्दन कर अपने घर पर आया और सेठानी पन्ना को कहा कि कल्याण दीक्षा की बात करता है केवल कल्याण ही नहीं पर गुरु महाराज भी शामिल हैं। खैर, तू पुण्यवती है तेरी कुक्ष से तेरा बेटा दीक्षा ले इसका सब यशः तेरे को ही है। अतः अब कहने सुनने की जरूरत नहीं है के साथ कल्याण को दीक्षा दीरादें। इसमें ही कल्याण का और सबका कल्याण है।

सेठजी के वचन सुन सेठानी को बहुत गुस्सा आया और क्रोध के साथ कहा कि मैं अपने जीते जी तो कल्याण को दीक्षा नहीं लेने दूंगी बाद मेरे मरने के भले ही बाप बेटा दीक्षा लेलेना।

सेठजी ने कहा यदि तेरी मृत्यु होगई तो आठ नहीं पर सात बेटा ही तुझे उठाकर श्मशान में ले जाकर जला देंगे फिर कल्याण के लिये इतना आग्रह क्यों करती है ? जिस सूरिजी को अपना गुरु समझते हैं उन्होंने कल्याण को मांग लिया फिर नहीं देने में अपनी क्या शोभा रहेगी। और कल्याण जाता कहां है तेरे पास नहीं तो गुरु महाराज के पास रहेगा। मैं सूरिजी के पास स्वीकार कर आया हूँ इत्यादि। इच्छा न होते हुये भी सेठानी को सेठजी से सहमत होना पड़ा। दूसरे दिन डाबर ने कल्याण की खूब परीक्षा की पर वहां हलद का रंग नहीं था, पर रंग था चोल मजीठ का। शाह डाबर ने जिन मन्दिरों में अष्टान्हि का महोत्सव करवाया और भी दीक्षा के लिये जो कुछ करने को था वह सब विधान किया। कल्याण के साथ कोई २२ नर नारी दीक्षा के लिये तैयार हो गये। सूरिजी महाराज ने उन सबको विधि विधान से भगवती जैन दीक्षा देकर अपने शिष्य बना लिये। कल्याण का नाम कल्याणकलश रख दिया। वास्तव में कल्याण था भी कल्याण मन्दिर का कलश ही। मुनि कल्याणकलस ने गुरुकुल वास में रहकर ज्ञानाभ्यास करना शुरू किया। मुनि कल्याण में विनय गुण की विशेषता थी कि उसने स्वल्प समय में वर्तमान साहित्य का अध्ययन कर लिया। न्याय, तर्क, छन्द, काव्यादि, साहित्य में आप धुरंधर विद्वान होगये। मुनि कल्याण कलस ने निमित्तज्ञान का भी अध्ययन कर लिया था। यही कारण था कि आचार्य कक्कसूरि ने तीर्थ श्री सम्मेवशिखर की शीतल छाया में हजारों मुनियों में मुनि कल्याणकलस को सर्वगुणसम्पन्न जानकर सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम देवगुप्तसूरि रख दिया था जो पट्ट क्रमशः चला आ रहा था।

आचार्य देवगुप्तसूरिजी बड़े ही प्रभाव शाली एवं धर्म प्रचारक आचार्य हुए। आचार्य श्री धर्मप्रचार करते हुए एक समय चन्द्रावती की ओर पधार रहे थे। शाह डाबर ने सुना कि आचार्य देवगुप्तसूरि चन्द्रावती पधार रहे हैं तो उसनेअपनी स्त्री पन्ना को कहा कि तुम्हारा बेटा आचार्य बनकर आ रहा है। पन्ना कई अर्सा से पुत्र से मिलना चाहती थी। यों तो चन्द्रावती के राजा प्रजा ने सूरिजी के नगर प्रवेश का महोत्सव किया ही था पर उसमें शाह डाबर ने विशेष भाग लिया। इतना ही क्यों पर शाह डाबर ने इस महोत्सव में सवा लक्ष द्रव्य व्यय किया। जब सूरिजी ने मन्दिरों के दर्शन कर उपाश्रय पधार कर धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया तो माता पन्ना के हर्ष का पार नहीं रहा इतना ही क्यों पर माता पन्ना के तो हर्ष के आँसू बहने लग गये। व्याख्यान के अंत में सभा विसर्जन हो गई तथापि माता पन्ना वहाँ खड़ी २ अपने बेटा के सामने देख रही थी। सैकड़ों साधु और साध्वियों के अधिपति कल्याण (सूरिजी) ने माता को उच्च स्वर से धर्म लाभ दिया और पूछा कि श्राविका धर्म साधन करती हो न ? संसार में धर्म ही सार है पूर्व जन्म के लिये खर्ची साथ में ले जाना ? इस पर माता ने पहले तो उपालम्भ दिया कि आप तो हम लोगों को छोड़ के चले गये और जाने के बाद दर्शन भी नहीं दिये इत्यादि। माता पन्ना ने पुनः कहा कि आप तो संसार से तर गये अब हमको भी ऐसा रास्ता बतलाइये कि हमारा भी कल्याण हो जाय? सूरिजी ने कहा—माता जिनेन्द्र देव के धर्म की आराधना करो। संसार समुद्र से पार करने वाला यह एक जैनधर्म ही है, इत्यादि। माता ने कहा कि आप यह चतुर्मास यहीं करावें कि हम लोग कुछ लाभ उठा सकें। सूरिजी ने कहा कि क्षेत्रस्पर्शना। माता का दिल जाने का नहीं था

पर साधु भिक्षा लेकर आ गये थे अतः माता वन्दन कर अपने स्थान पर चली गई। परअपने पुत्र का अतिशय प्रभाव को देखा जिससे उसके हर्ष का पार नहीं था।

शाह डावर ने अपनी स्त्री से कहा देख लिया न बेटा को तेरा बेटा कितने ठाठ से रहता है। अपने घर में रहता तो घर वाले या नगर वाले ही मानते पर आज वह जहाँ जाते हैं वहाँ बड़े २ राजा महाराजा उनकी पूजा करते हैं। यदि बेटा के साथ अपन भी दीक्षा ले लेते तो अपना भी कल्याण हो जाता। सेठानी ने कहा कि अब भी क्या हुआ है दीक्षा लेकर कल्याण करो। सेठजी ने कहा ठीक है, आप तो मेरे साथ हो न ? बस हँसी २ में सेठानी ने कह दिया कि आप दीक्षा लें तो मैं भी तैयार हूँ। जब आचार्य देवगुप्तसूरि को पता लगा कि मेरे माता पिता दीक्षा का विचार कर रहे हैं अतः मेरा कर्त्तव्य है कि इनका उद्धार करूँ। समय पाकर सूरिजी ने शाह डावर को उपदेश दिया। डावर ने कहा कि अब हमारी अवस्था तो वृद्ध हो गई है तथापि आपके विश्वास पर हम दोनों आपके पास दीक्षा लेने का विचार कर रहे हैं पर आप यहाँ चर्तुमास करें मैं कुछ द्रव्य शुभ कार्य में लगाकर दीक्षा लूंगा तथा चन्द्रावती श्री संघ ने भी सूरिजी से चर्तुमास की खूब आग्रह से विनती की और सूरिजी ने लाभालाभ का कारण जानकर चतुर्मास की स्वीकृति दे दी। बस, फिर तो था ही क्या शाह डावर एवं जनता का उत्साह कई गुना बढ़ गया।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था। तथा चन्द्रावती में एक सन्यासी ने भी चर्तुमास किया था उन्होंने एक दिन कहा कि इस संसार की भूमि पर सात द्वीप और सात समुद्र हैं और स्वर्ग में पाँचवा ब्रह्म लोक है इनके अलावा न तो द्वीप समुद्र हैं और न स्वर्ग ही है इत्यादि। यह बात सूरिजीके कानों तक पहुँची तो आपने अपने व्याख्यान में फरमाया कि सात द्वीप और सात समुद्र ही नहीं पर असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्र हैं तथा स्वर्ग में पाँचवा देवलोक ही क्यों पर उसके ऊपर क्रमशः सर्वार्थसिद्ध वैमान तक कुल २६ देवलोक हैं। सात द्वीप सात समुद्र की प्ररूपना करने वाला मूल पुरुष शिवराजर्षि थे जिनका वर्णन श्री भगवती सूत्र के ११ शतक ९ उद्देशा में इस प्रकार किया है।

हस्तनापुर के राजा शिव ने तापसी दीक्षा ली और तप करने से उनको विभंग ज्ञान उत्पन्न हुआ और उन्होंने अपने ज्ञान से सातद्वीप सातसमुद्र देखे और जैसा देखा वैसा ही लोगों को कह दिया पर बहुत से लोगों ने इस बात को नहीं मानी जिससे शिवराजर्षि को शंका उत्पन्न हुई अतः शंका से जो ज्ञान था वह भी चला गया। उस समय भगवान महावीर देव का पधारना हस्तनापुर में हुआ अतः शिवराजर्षि अपनी शंका का समाधान करने को भगवान् के पास गया। भगवान् ने उसके मनकी बात कहकर समझाया कि ऋषिजी आपने विभंग ज्ञान से केवल सातद्वीप सातसमुद्र ही देखा है परन्तु द्वीप समुद्र असंख्याते है इससे ऋषिजी ने कइ तर्क वितर्क की और अन्त में शिवराजर्षि ने भगवान महावीर के पास दीक्षा लेली और तप संयम की आराधना करने से अतिशय ज्ञान होगया जिससे आप स्वयं असंख्याते द्वीप समुद्र देखने लग गये।

इसी प्रकार श्री भगवती सूत्र के ११ वाँ शतक के १२ वाँ उद्देशा में वर्णन किया है कि—पोग्गल सन्यासी ने विभंग ज्ञान द्वारा स्वर्ग में पाँचवा ब्रह्म देवलोक देखा अतः उन्होंने प्ररूपना करदी कि ब्रह्म देवलोक के सिवाय स्वर्ग में देवलोक नहीं है कई लोगों ने इसको नहीं माना तब उसने भी भगवान् महावीर के पास जाकर निर्णय किया और जैनदीक्षा स्वीकार करली थी और वे कर्मक्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त किया तब जाकर लोगों को समझाया कि स्वर्ग २६ है अन्त में मोक्ष चले गये। जब इन दोनों मान्यताओं के मूल

पुरुषों ने अपनी भूल स्वीकार कर जैन दीक्षा धारण कर अपना कल्याण कर लिया तो उन गलत मान्यता के नाम से भ्रम फैलाना हित का कारण नहीं होसकता है। इस बात को सुनकर दूसरे दिन सन्यासीजी ने सूरिजी के व्याख्यान में आकर पूँछा कि आपके धर्म में सृष्टिक्रम अर्थात् स्वर्ग मृत्यु और पाताल को कैसे माना है मैं उसको सुनना एवं समझना चहाता हूँ ? ।

सूरिजी ने सन्यासीजी को समझाया कि नीचे लोक में सात नरक हैं मृत्युलोक में मनुष्य तिर्यंच हैं और ऊर्ध्वलोक में देवता हैं और सम्पूर्ण लोक के अग्रभाग में ईश्वर सिद्ध है।

नीचे लोक में सात नरक हैं उनके नाम घमा, वंनसा, शीला, अंजना, रिठा, मघा, माघवती इन सात नरकों के गोत्र रत्नप्रभा, शार्करप्रभा, बालुकप्रभ पङ्कप्रभा, धूम्रप्रभा, तमप्रभा और तमस्तम प्रभा; महारंभ महापरिग्रह की इच्छा पांचेन्द्रियजीवों के घाती और मांस के आहारी इन पापों के करने वाले नर्क में जाते हैं जिसमें भी जैसा पाप वैसी सजा (नरक) नरक में आयुष्य भी अलग २ होती हैं वहाँ से पूरा आयुष्य भुगत लेता है तब छुटकारा पाकर जीव पुन मृत्युलोक में आता है।

मृत्युलोक में मनुष्य और तियच रहते हैं। मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं कर्मभूमि अकर्मभूमि और समुच्छिम मनुष्य। कर्मभूमि मनुष्य उसे कहते हैं कि जहाँ असि मसि और कसी कर्म से आजीवका करते हों जैसे अपने यहाँ मनुष्य हैं दूसरे-अकर्मभूमि जिसको जुगलिये भी कहते हैं उनके यहाँ असि मसि कसी नहीं होती है पर कल्पवृक्ष उनकी मनोकामना पूर्ण करते हैं वे बड़े ही भद्रिक परिणामी होते हैं उनका आयुष्य और शरीर दीर्घ होता है पर काम भोग की इच्छा बिलकुल स्वल्प होती है। जिन्दगी भर में एक ही दफे भोग करते हैं जिससे एक युगल पैदा होता है और आगे चलकर अपने जीवन के अन्तिम भाग में वही दम्पति बन जाते हैं। उनकी गति केवल एक स्वर्ग की ही होती है।

समुच्छिम मनुष्य-जो मनुष्य के टट्टी पेशाबादि असूची पदार्थों के अन्दर अन्तर महूर्त में ही समुच्छिम मनुष्य पैदा होजाते हैं, उनका आयुष्य अन्तर मुहूर्त का होता है। मृत्युलोक में दूसरे तिर्यंच हैं जिसके पांच भेद हैं एकेन्द्रिय, बीन्द्रिय तेन्द्रिय, चौरीन्द्रिय और पांचेन्द्रिय इनके अलावा इस मृत्युलोक में जम्बुद्वीप आदि असंख्याता द्वीप लवण समुद्रादि असंख्याता समुद्र हैं जिसमें जम्बुद्वीप धातकीखंड और पुष्करार्द्ध एवं ढाई द्वीप में मनुष्यतिर्यंच दोनों हैं और शेष द्वीप समुद्रों में तिर्यंच रहते हैं।

३-उर्ध्वलोक इसमें देवता रहते हैं। देवता चार प्रकार के होते हैं जैसे भुवनपति, व्यान्तर, ज्योतिषि और वैमानीक जिसमें भुवनपति और व्यान्तर तो नीचे लोक में, ज्योतिषी तिर्यग लोक में और वैमानीक उर्ध्व लोक में रहते हैं इन नरक तिर्यंच मनुष्य और देवताओं के अलग २ भेद करे जांय तो ५६३ भेद होते हैं और इन तीन लोक के ऊपर मुक्त जीव रहते हैं वे कर्म मुक्त होने से मोक्ष में जाने के बाद फिर वहाँ से नहीं लौटते हैं पर वहाँ अनंत सुखों में सदैव के लिये स्थिर रहते हैं। अधो मध्य, और उर्ध्व, अथवा स्वर्ग मृत्यु पाताल इन तीनों को लोक एवं सृष्टि कही जाति है जिसका आकार नीचे से चौड़ा तीपाया के जैसे मध्य में संकीर्ण-गोल झलर के जैसे उर्ध्व चौड़ा उभी मर्दंग के सदृश और सम्पूर्ण लोग का आकार जामा पहना हुआ कम्मर के हाथ लगाकर नाचता हुआ पुरुष के सदृश है

इस सृष्टि को न किसीने रची है न कभी इसका विनासही होगा हाँ कभी उन्नति और कभी अवनीति हुआ करती है इसी प्रकार अनादि काल से उन्नति अवनीति का काल चक्र चलताही रहता है।

सन्यासीजी ! यह बात किसी साधारण व्यक्ति की कही हुई नहीं है कि जिसमें शंका को स्थान मिले पर इसके कथन करने वाले हैं सर्वज्ञदेव कि जिन्होंने अपने केवल ज्ञान दर्शन द्वारा सम्पूर्ण लोकालोक को हस्तामलक की तरह प्रत्यक्ष देख कर कहीं है । अतः यह बात विश्वास करने काबिल है और बड़े २ ऋषियों मुनियों ने इस विषय के अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया है वह अद्यावधि विद्यमान भी हैं ।

सूरिजी की समझाने की शैली उत्तम प्रकार की होने से सन्यासीजी अच्छी तरह से समझ गये और सूरिजी के कहने पर आपको विश्वास भी होगया तथा दिल की शंका मिटाने के लिये सन्यासीजी ने पूछा कि महात्माजी ! इस प्रकार सृष्टि की रचना किसने एवं कब की होगी ? यह एक मेरा सवाल है ।

सूरिजी ने कहा-सृष्टि का कोई कर्त्ता हर्त्ता नहीं है । सृष्टि द्रव्यापेक्षा शाश्वती है । और पर्यायापेक्षा अशाश्वत है क्योंकि इसकी पर्याय समय २ बदलती है जैसे सुवर्ण द्रव्यापेक्ष नित्य है पर उसकी पर्याय सुरत-आकृत बदलती रहती है । चूड़ी का बाजू और बाजू का कंठा बना लिया तथापि सुवर्ण नित्य है वैसे ही सृष्टि में जल के स्थान स्थल और स्थल के स्थान जल हो जाता है इस प्रकार सृष्टि की उन्नति अवनीति होती रहती है पर सृष्टि सदैव के लिये शाश्वती है ।

सन्यासीजी—यह भी तो कहा जाता है कि सृष्टि ईश्वर ने रची है और इसका कर्त्ता हर्त्ता भी ईश्वर हैं !

सूरिजी—सन्यासीजी ! ईश्वर साकार हैं या निराकार

सन्यासी—ईश्वर निराकार है

सूरिजी—आप स्वयं सोच लीजिये कि निराकार ईश्वर ने साकार सृष्टि की रचना कैसे की होगी ! कि जिस ईश्वर के हस्त पैरादि आकार ही नहीं है वे आकार वाली सृष्टि की रचना कैसे कर सके ।

सन्यासी—सृष्टि की रचना करने में ईश्वर को हस्त पैरों की क्या आवश्यकता है वे तो इच्छा मात्र से ही सृष्टि की रचना कर डालते हैं ऐसा हमारे शास्त्र में लिखा है ।

सूरिजी—क्या ईश्वर के भी इच्छा है ? यदि है तो वह जड़ है या चेतन । यदि चेतन है तो, 'एको-ऽहं द्वितीय नास्ति' यह कहना असत्य ठहरेगा । यदि इच्छा जड़ है तो ईश्वर से भिन्न है या अभिन्न ?

सन्यासी तो बड़े ही चक्कर में पड़ गये और इसका उत्तर नहीं दे सके इस पर सूरिजी ने कहा कि महात्माजी ! आप स्वयं सोच सकते हो कि इस सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर को माना जाय तो ईश्वर सृष्टि रचने में उपादान कारण है या निमित्त ? यदि उपादान कारण ईश्वर को माना जाय तो सृष्टि की रचना क्या ईश्वर ही सृष्टि रूप है और सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ को ईश्वर ही समझना पड़ेगा । यदि मानो कि ईश्वर सृष्टि रचना में निमित्त कारण है तो ईश्वर उपादान कारण कहाँ से लाये ? यह एक सवाल पैदा होगा । यदि कहो कि उपादान कारण पहिले था तो मानना पड़ेगा कि पहिले सृष्टि थी उसको ही ईश्वर ने नयी सृष्टि रची इससे सृष्ट का कर्त्ता ईश्वर नहीं परसृष्टि अनादि ही सिद्ध होती है ।

भला थोड़ी देर के लिये हम मानलें कि ईश्वर नेही सृष्टि रची है तो सृष्टि के रचना काल में जीव थे वे पहिले किस अवस्था में और कहाँ पर थे कारण आपकी मान्यतानुसार तो पहिले एक ईश्वर ही था फिर सृष्टि के आदि में ईश्वर जीव कहाँ से लाया कि जिन जीवों से सृष्टि की रचना की और पहले वे जीव सुखी थे या दुखी या सुखी दुखी दोनों प्रकार के थे । यदि कहा जाय कि जीव सुखी थे तो ईश्वर को क्या जरूरत थी कि उन जीवों से सृष्टि की रचना कर उनको दुखी बनाये । यदि वे जीव दुखी थे तो वह दुःख किस

भव में उपार्जन किया क्योंकि बिना सृष्टि के दुःख पैदा हो नहीं सकता है इससे भी यही सिद्ध होगा कि सृष्टि अनादि काल से प्रवाह रूप से चली आती है।

यदि ईश्वर ने जीवों को सुखी बनाये थे तो दुखी क्यों बन गये तथा दुःखी बनाये थे तो क्या ईश्वर को उन जीवों प्रति द्वेष था कि बिना ही कारण विचारे जीवों को दुःखी बना कर दुःख दिया।

सन्यासीजी! संसार में जितने आस्तिक मत हैं उन सबकी मान्यता है कि परमाणु प्रकृति आत्मा और ईश्वर ये चारों शाश्वत है और इन पदार्थों से सृष्टि कही जाती है। जिसमें परमाणुओं का स्वभाव मिलने और बिछुड़ने का है और सृष्टि में जितने दृश्य पदार्थ हैं वह सब परमाणुओं से ही बने हैं। जब परमाणु शाश्वत हैं तो उनसे बने हुए पदार्थ को शाश्वत क्यों नहीं माना जाय ? अतः परमाणुओं से बनी हुई सृष्टि भी अनादि है। हाँ, किसी द्रव्य क्षेत्र काल भाव में परमाणुओं की स्थान अपेक्षा न्यूनाधिकता होती है तब सृष्टि की उन्नति अवनति भी अवश्य होती है। जैसे मानो कि एक बड़ा नगर किसी ने नष्ट कर डाला और उस नगर का तमाम सामान नष्ट होकर जंगल सा बन गया और उस नगर के लोगों ने एक उन्नत भूमि पर स्वर्ग सदृश्य नया नगर बसा दिया। अब हम पुराने नगर के लिये प्रलय कह सकते हैं तब नूतन नगर के लिये नयी सृष्टि पैदा की कह सकते हैं परन्तु वास्तव में न तो प्रलय है और न नूतन रचना ही है यह केवल परमाणुओं का मिलना बिछुड़ना ही है। इसी प्रकार आप सृष्टि को भी समझ लीजिये इत्यादि।

सूरिजी के इस विवेचन का प्रभाव उपस्थित जनता पर खूब ही पड़ा। इतना ही क्यों पर सरल आत्मा वाले सन्यासीजी पर तो इतना असर हुआ कि वे उसी सभा में अपना वेश एक ओर रख कर सूरिजी महाराज के पास जैन दीक्षा लेकर आपश्री के शिष्य ही बन गये। हाँ, सत्योपासक का तो यह कर्त्तव्य ही है कि सत्य वस्तु समझ में आजाने के बाद वे क्षण भर की भी देरी नहीं करते हैं अर्थात् सत्य को स्वीकार कर ही लेते हैं। हमारे सन्यासीजी भी उसी श्रेणी के मुमुक्षु थे।

शाह डावर और सेठानी पन्ना अपने पुत्र के विवेचन को सुनकर मंत्र मुग्ध बन गये और यह बात है भी स्वभाविक कि जिसके कुल में ऐसा प्रतापी पुत्र जन्म लेकर इस प्रकार जनता का कल्याण करे इससे अधिक खुशी की बात ही क्या हो-सकती है। शाह डावर और पन्ना का वैराग्य कई गुणा बढ़ गया और उनकी वैराग्य बिजली इतनी सतेज हो गई कि कब चतुर्मास समाप्त हो और कब हम दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करें इत्यादि।

शाह डावर ने अपने विचारानुसार कई साधर्मीभाइयों को गुप्त सहायता दी तथा जैन धर्म के प्रचार निमित्त और सात क्षेत्रों में पुष्कल द्रव्य व्यय कर लाभ प्राप्त किया शाह डावर के पुत्र भी इतने विनयवान एवं सुपुत्र थे कि इस प्रकार द्रव्य के व्यय करने पर भी वे चूं तक भी नहीं की, इतना ही क्यों पर उल्टा खुशी हो अनुमोदन ही किया। मैं पहिले ही कह आया हूँ कि उस जमाने में निश्चय की मान्यता प्रधान थी और जहाँ निश्चय पर विश्वास है वहाँ सदैव संतोष ही रहता है। उस जमाने के लोग दूसरों की आशा पर नहीं पर अपनी भुजाओं पर जीवन व्यतीत करते थे और उनके लिये यह बड़े से बड़ा सुख था।

दुनिया कुछ भी करो समय तो अपना काम करता ही जाता है। इधर तो चतुर्मास समाप्त होता है उधर शाह डावर और उनकी धर्म पत्नी पन्ना दीक्षा की तैयारी कर रहे हैं। पर उन वृद्ध दम्पति की दीक्षा की भावना देख चन्द्रावती के तथा आस पास के आये हुये लोगों के अन्दर से कई ३२ नर नारी दीक्षा ...

को तैयार होगये। इसमें मुख्य कारण तो सूरिजी के त्याग वैराग्य मय व्याख्यान का ही था शाह डावर के ज्येष्ठ पुत्र कानड़ ने अपने माता पिता की दीक्षा का बड़ा ही शानदार महोत्सव किया। केवल महोत्सव में ही नहीं पर साधर्मीभाइयों को पहरामणी और याचकों को दान में उस दानेश्वरी ने लाखों द्रव्य खर्च किया।

सूरिजी ने शुभ मुहूर्त्त में उन मोक्ष के उम्मेदवारों को विधि विधान के साथ भगवती जैन दीक्षा देकर उन सब का उद्धार किया। बस, पुत्र हो तो ऐसा ही हो कि अपने माता पिता का इस प्रकार उद्धार करें जैसे भगवान् महावीर और आर्य रक्षित सूरि ने अपने माता पिताओं को दीक्षा देकर उद्धार किया था।

आचार्य देवगुप्तसूरि चन्द्रावती नगरी से विहार कर यूथपति की भांति भूमंडल पर भ्रमण करने लगे एक समय आचार्य देवगुप्तसूरि अपने शिष्य समुदाय के साथ भूमण्डल को पवित्र एवं भव्य जीवों का उद्धार करते हुये कान्यकुब्ज देश एवं आप कन्नोज राजधानी में पधार रहे थे। वहां की जनता को खबर होते ही उनके हर्ष का पार नहीं रहा, उत्साह का समुद्र उमड़ पड़ा भलो गुरु महाराज पधारे इससे बढ़ कर और खुशी क्या हो सकती है। अतः वे बड़े ही समारोह से सूरिजी का स्वागत कर नगर प्रवेश कराया।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा हुआ करता था। एक समय इधर तो सूरिजी का व्याख्यान हो रहा था उधर पास ही से वहाँ का राजा चित्रगेंद घुड़सवार होकर जारहा था राजा ने मनही से सूरिजी को वन्दन किया। सूरिजी ने राजा की अंगचेष्टा से जानकर उच्चस्वर से धर्म लाभ दिया राजा सुनकर चला गया पर मन में समझ गया कि यह महात्मा बड़े ही अतिशय ज्ञानी हैं।

शाम के समय राजा ने अपने प्रधान मंत्री रावल को कहा रावल ! तेरे आचार्य यहाँ आये हैं और वे अच्छे ज्ञानी बतलाते हैं। एक दिन राज सभा में उनका व्याख्यान होना चाहिये। रावल ने कहा हाँ हुजूर आचार्य श्री अच्छे ज्ञानी हैं और उनका व्याख्यान अपनी राजसभा में अवश्य होना चाहिये। मेरा खयाल तो है कि सूरिजी का व्याख्यान कल ही हो तो अच्छा है राजा ने कहा कि अच्छा कल ही सही।

मंत्री रावल ने सूरिजी के पास जाकर वन्दन के पश्चात् राजा की ओर से निवेदन किया कि आपश्री का व्याख्यान कल राज-सभा में हो तो अच्छा है क्योंकि राजा की इच्छा आपका व्याख्यान सुनने की है। सूरिजी ने कहा बहुत अच्छा है राजा की और आपकी प्रार्थना को हम स्वीकार करते हैं। बस, मंत्री ने सब प्रकार की तैयारियां करलीं। पुरुष वर्ग के साथ ही साथ महिलाओं के लिये भी कनात वगैरह का अच्छा प्रबन्ध कर दिया कि वे भी सूरिजी का व्याख्यान सुन सकें।

दूसरे दिन ठीक टाइम पर सूरिजी अपने विद्वान शिष्यों को साथ लेकर राजसभा में पधारे। इधर राजा और राजकर्मचारियों ने सूरिजी का अच्छा स्वागत किया। सूरिजी के पधारने से पहिले ही सभा श्रोताजनों से खचाखच भर गई थी। उधर महाराणीजी आदि राजअंतेवर और नागरिक महिलायें उपस्थित हो गई थीं। सूरिजी के एक बाल शिष्य था सबसे पहिले मंगलाचरण उसने किया जिसकी सारगर्भित मधुरवाणी राजा प्रजा को इतनी प्रिय होगई कि वे चाहते थे कि सम्पूर्ण व्याख्यान ही बालमुनि दे परन्तु बालमुनि मंगलाचरण करके चुप रह गया। तत्पश्चात् सूरीश्वरजी ने अपनी ओजस्वी वाणी से अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया। आपने धर्म का महत्त्व, धर्म का स्वरूप और धर्म की साधना के विषय खूब ही विवरण के साथ व्याख्यान दिया जिसमें बतलाया कि दुनिया में अनेक धर्म प्रचलित हैं तथा धर्म का नाम ही इतना प्रिय है कि जनता इसको बिना संकोच अपना लेती है। पर मैं आज आपके सामने धर्म का स्वरूप कहूँगा—

हजारों मनुष्य सभा में होने पर भी वातावरण शान्त था सबका दिल धर्म का स्वरूप सुनने की ओर लग रहा था और एकाग्र चित्त से जैसे चातक ज़लबिन्दु की आशा करते हैं वैसे जनता सूरिजी के व्याख्यान के लिये टकटकी लगा कर उत्सक हो रही थी।

सूरिजी ने कहा 'वत्थुसहावधम्मों' अर्थात् वस्तु के असली स्वभाव को धर्म कहा जाता है और उस स्वभाव में विकृति होजाना अधर्म है। जैसे आत्मा का असली स्वभाव ज्ञान दर्शन चरित्र में रमणता करने का है जिसको धर्म कहा जाता है और वही आत्मा अपने असली स्वभाव को भूल कर विषय कषाय में रमणता करता है उसे अधर्म कहा जाता है। जब आत्मा अज्ञान के वश सांसारिक माया में लिप्त होकर परवस्तु यानि विपय कषाय के चक्र में पड़कर धर्म के नाम पर अधर्म करने में तत्पर होती है तब उसको असली रास्ते पर लाने के लिये किसी न किसी निमित्त कारण की आवश्यकता रहती है उसमें सबसे प्रथम कारण देव गुरु धर्म का है कि उनकी उपासना से आत्मा में चैतन्यता प्रगट हो जाती है और निज घर में आकर अपने असली स्वरूप में रमणता करने लग जाता है यहाँ पर संक्षिप्त से देव गुरु धर्म के निमित्त का थोड़ा सा स्वरूप बतला देना अप्रासांगिक न होगा।

१—देव—चाहे इस समय किसी धर्म के देव विद्यमान नहीं हैं पर उनका निर्दोष जीवन पढ़ने से ज्ञात हो जाता है कि जिस देव को देवत्व प्राप्त होने के बाद किसी प्रकार की लीला कौतूहल रागद्वेषादि अष्टादश दूषण नहीं है केवल विश्वोपकार में ही उनकी जीवनयात्रा समाप्त हुई थी ऐसे देव के स्मरण से मन पवित्र होता है गुण कीर्तिन से वचन पावन और उनकी शान्त मुद्रा एवं ध्यानावस्थित आकृति वाली मूर्ति की सेवा पूजा करने से काया पवित्र हो जाती है ऐसे देव की उपासना प्रथम कारण है।

२—गुरु—कनक कामिनी के त्यागी नौवाड़ विशुद्ध ब्रह्मचर्य्य के पालक आरंभ परिग्रह एवं संसारी कार्य्यों से मुक्त और चार कषाय एवं पांच इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करली है अहर्निश स्वपर कल्याण में जिनका प्रयत्न हो ऐसे गुरु दूसरा कारण है।

३—धर्म—जिसके अन्दर अहिंसा एवं स्याद्वाद और जिनाज्ञा को अग्र स्थान और साथ में सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य परोपकारादि कार्य किये जायं यह धर्म तीसरा कारण है!

जिस जीव ने संसार में जन्म लेकर पूर्वोक्त देवगुरुधर्म को अच्छी तरह से पहिचान नहीं की है एवं उपासना भी नहीं की है उसका जन्म पशु की भांति निरर्थक अर्थात् पृथ्वी को भारभूत ही समझा जाता है।

जैसे समझदार मनुष्य इच्छित स्थान पहुँचने के लिये हस्ती अश्वरथादि का संग्रह करता है वैसे ही मोक्ष नगर में जाने के लिये देवगुरुधर्म की उपासना कर लाभ का संग्रह करना चाहिये।

श्रोताओं स्वकल्याण के साथ पर कल्याण करना भी महान् पुन्य है। पूर्व जमाने में कई राजा महाराजा एवं सेठ साहूकार हो गये हैं और उन्होंने सर्व साधारण के कल्याण के लिये जैन मन्दिरों से मेदनी मंडित करवा दी थी जैसे राजा अमलदेव रावरुद्राट कक्क सम्राट चन्द्रगुप्त अशोक सम्प्रति चक्रवर्ति खारवेलादि नरेशों ने अनेक पुन्य कार्य्य किये जिसमें उन्होंने हजारों लाखों मन्दिर बना दिये थे। भले ही आज उन नरेशों का संसार में अस्तित्व नहीं है पर उनके किये हुये पुन्य कार्य रूपी अमर यशः दुनिया में जीवित है और जहाँ तक उनके बनाये पुन्य के स्तम्भ रूप मन्दिर रहेंगे वहां तक उनके धवल यश को जनता गाया

ही करेगी इत्यादि सुरिजी ने खूब प्रभावशाली उपदेश दिया बाद जैन शासन की जयध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई ।

सूरिजी के व्याख्यान का प्रभाव यों तो सब लोगों पर हुआ ही था पर विशेष वहां के राजा चित्रगेंद पर हुआ कारण उनको सूरिजी पर पहले ही श्रद्धा हो गई थी कि मन से वन्दन करने पर भी आपने धर्मलाभ दे दिया था फिर सुन लिया सूरिजी का व्याख्यान जिसमें सूरिजी का किंचित मात्र भी स्वार्थ नहीं था जो आपने फरमाया वह केवल जीवों के कल्याण के लिये ही कहा था।

राजा चित्रगेन्द सूरिजी का पक्का भक्त बन गया और कई प्रकार से तर्क वितर्क कर धर्म का निर्णय कर जैनधर्म को स्वीकार भी कर लिया और अपनी ओर से एक विशाल जैनमंदिर बनाना भी शुरू कर दिया और उस मंदिर के लिये भगवान् महावीर की सुवर्णमय मूर्ति बनाई जिसके नेत्रों के साथ सवा सवा लक्ष रुपयों की दो मणियें लगाईं थी जो रात्रि में सूर्य्य के सदृश्य प्रकाश करती थीं ।

जब राजा के बनवाया मन्दिर और मूर्त्ति तैयार हो गया तो राजा ने अपने निज मनुष्य को भेज कर गुरुवर्य्य देवगुप्तसूरि को बुलवाये और आचार्य श्री का पधारना कन्नौज राजधानी में हुआ तो राजा एवं सकल श्रीसंघ ने सूरिजी का नगर प्रवेश महोत्सव बड़े ही समारोह से किया और सूरिजी महाराज के उपदेश से राजा ने जिन मन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव करवाया तथा आचार्य श्री देवगुप्तसूरि के कर कमलों से नूतन बनाई मूर्त्तियों की अंजनसिलाका तथा मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई जिसमें राजा ने सवा करोड़ द्रव्य व्यय कर जैन धर्म की उन्नति के साथ अनंत पुन्य भी संचय किया ।

आचार्य देवगुप्तसूरि महान प्रभाविक एवं जैनधर्म के कट्टर प्रचारक आचार्य हुये हैं केवल एक चित्रगेंद राजा को ही जैनी नहीं बनाया पर अनेक राजाओं को जैनधर्म में दीक्षित कर जैनधर्म को उन्नति के ऊंचे शिखर पर पहुँचा दिया था । पट्टावली कारों ने आप श्री के जीवन विषय बहुत विस्तार से वर्णन किया है ।

आचार्य देवगुप्तसूरि को विहार करने का बड़ा ही शौक था । सैकड़ों कोसो का फासला आपको एक खेल ही नजर आता था । कहाँ मरुधर और कहाँ पूर्व, वे इच्छा करते तब ही विहार कर देते । भला उस जमाने के मनुष्यों के संहनन कितने ही मजबूत हों परन्तु बिना धर्मोत्साह इस प्रकार का विहार हो नहीं सकता पर धर्मप्राण आचार्य देवगुप्तसुरि के नस-नस में जैनधर्म के प्रचार की भावना ठूस ठूस कर भरी हुई थी आप कन्नौज से विहार कर पूर्व की ओर पधारे, अंग वंग कलिंग की भूमि में भ्रमण करते हुये सम्मेतशिखर तीर्थ पर जाकर बीस तीर्थंकरों की और आचार्य कक्कसूरि की निर्वाणभूमि की यात्रा की । बाद कई अर्सा तक उस प्रदेश में भ्रमण कर वहाँ विचरने वाले साधुओं की सार सम्भाल तथा वहां की जनता में धर्मभावना विशेष रूप से पैदा की । तत्पश्चात् आप पांचाल सिन्ध कच्छ सौराष्ट्र लाटप्रदेश में भ्रमण करते हुये मरुधर में पधारे जिसको सुनकर मरुधरवासियों के उत्साह का पार नहीं रहा आप क्रमशः विहार करते उपकेशपुर पधारे । श्रीसंघ ने आपका उत्साह पूर्वक स्वागत किया । श्रीसंघ के आग्रह से सूरिजी ने उपकेशपुर में चतुर्मास कर दिया । सूरिजी के विराजने से यों तो बहुत उपकार हुआ पर एक विशेष बात यह हुई कि आपश्री ने कुमट गौत्रीय शाह जैता के पुत्र सारंग को भविष्य में होनहार समझ के

तदन्वये देवगुप्ताचार्या यैः प्रतिबोधितः । श्री कान्यकुब्ज देशस्य स्वामी चित्रांगदाभिधः ॥
स्वराजधानी नगरे, स्वर्ण बिम्ब समन्वितम् । योऽकार नज्जिन गृहं देवगुप्त प्रतिष्ठितम् ॥ उ० च०

दीक्षा दे अपना शिष्य बना लिया था और उसका नाम सौभाग्यकीर्ति रख दिया था। तत्पश्चात सूरिजी ने मरुधर मेदपाट आवंती प्रदेश में विहार कर जैनधर्म का प्रचार एवं उन्नति की। जब आप श्रीमान् उज्जैन नगरी में विराजते थे तब वहां के श्रीसंघ ने वहां एक जैनों की सभा की और बहुत दूर २ से चतुर्विध श्रीसंघ वहां आया धर्म प्रचार के विषय खूब जोरदार व्याख्यान हुये जिससे चतुर्विध श्रीसंघ और विशेष श्रमणसंघ में धर्म प्रचार करने की विजली पैदा हुई और वे धर्म प्रचार के लिये कटिबद्ध भी होगये। आये हुये साधुओं के अन्दर कई योग्य साधुओं को सूरिजी ने पदवियां भी प्रदान की जैसे—

१—मुनि सौभाग्यकीर्त्ति आदि सात साधुओं को उपाध्याय पद प्रदान किया।
२—मुनि राजहंसादि ग्यारह साधुओं को बाचनाचार्य पद।
३—मुनि दयामूर्त्ति आदि पांच साधुओं पण्डित पद।
४—मुनि चारित्रसुन्दरादि पांच मुनियों को गणिपद।
५—मुनि मङ्गलकलसादि तीन मुनियों को प्रवृतकपद।

सूरिजी बड़े ही समयज्ञ थे आप यह भी जानते थे कि भिन्न २ प्रांतों में विहार करने वाले साधुओं में नायकत्व की जरूरत है तथा योग्य मुनियों की कदर करने से एक तो उनका उत्साह बढ़ता रहेगा और दूसरे भी साधु अपनी योग्यता बढ़ाने की कोशिश करेंगे। राजनीति में भी देखा जाता है कि केवल एक राजा ही राजतंत्र नहीं चला सकता है पर उनके राजतंत्र चलाने में मन्त्री, महामन्त्री, दीवान, प्रधान, हाकिम, हवलदार आदि कई पदवीधरों की आवश्यकता रहती है। इसी प्रकार धर्मशासन भी केवल एक आचार्य से ही नहीं चलता है पर आचार्य के अलावा उपाध्याय, गणी, गणविच्छेदक, पण्डित, वाचनाचार्य और प्रवृतकादि पद प्रतिष्ठितों की आवश्यकता रहती है और उसकी पूर्त्ति के लिये ही सूरिजी ने योग्य साधुओं को पदवियां प्रदान की थी। तदनन्तर सूरिजी ने उन पदवीधरों की अध्यक्षता में मुनियों को पृथक् २ प्रान्तों में विहार करने की आज्ञा देदी और उन महात्माओं ने सूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य्य कर निर्दिष्ट स्थानों की ओर विहार भी कर दिया।

पहिले जमाने में दश-दश वीस-वीस एवं इनसे भी अधिक दीक्षायें एक ही साथ में होजाती थी इसका मुख्य कारण तो उस जमाने में जीवों का हलुकर्मी पाना था। दूसरे दीक्षा देने वाले आचार्य निस्पृही और परोपकारी थे। तीसरे उनका व्याख्यान त्याग वैराग्य एवं आत्मकल्याण के लिये ही होता था। चतुर्थ वे केवल अपनी जमात बढ़ाने को ही दीक्षा नहीं देते थे। पर उनकी भावना संसार के कारागृह से छुड़ा कर उनका उद्धार करने की ही रहती थी। पांचवें दीक्षा लेने वालों की पहिले पूरी परीक्षा की जाती थी और जो योग्य होता उसको ही दीक्षा दी जाती थी यही कारण था कि जनता में दीक्षा का बड़ा भारी महत्त्व समझा जाता था। चाहे कोई दीक्षा न भी लेता हो पर दीक्षा लेने वाले को वे अच्छा समझते थे और उनको पूज्य भाव से देखते थे।

धर्म प्रचार का मुख्य तय आधार साधुओं पर ही रहता है। जितनी अधिक संख्या में साधु होते है उतना ही अधिक धर्म प्रचार होता है। एक समय अनार्य देशों तक साधु विहार करते थे तो उन अनार्य देशों में भी जैन धर्म का काफी प्रचार होगया था। अतः धर्मप्रचार के लिये साधुओं की आवश्कता है।

उपकेशगच्छ के आचार्यों के पास अधिक दीक्षा लेने का कारण यह था कि एक तो इन प्रान्तों में

जैन धर्म की नींव ही उपकेशगच्छाचार्यों ने डाली थी। दूसरे उपकेशगच्छाचार्य्यों का इन प्रान्तों में विहार विशेष होता था तीसरे उनका व्याख्यानभी त्याग वैराग्य पर विशेष होता था चौथे इस गच्छके आचार्य इतने कुशल होते थे कि कोई भी प्रान्त साधु विहीन नहीं रखते थे प्रत्येक प्रान्त में आवश्यकतानुसार साधुओं का विहार करवा ही देते थे। पांचवा इस गच्छ में एक ही आचार्य होते आये है कि सब साधु साध्वियां एक ही आचार्य की आज्ञा में चलते थे कि आपस में मान बड़ाई या मनोमालिन्यता का कारण ही नहीं था। छट्ठा आचार्य स्वयं कम से कम एक बार तो उन सब प्रान्तों को संभाल ही लेते थे इत्यादि कारणों से उपकेशगच्छीय आचार्यों ने साधु संखया खूब बढ़ाई थी और जैनधर्म का प्रचार भी प्रचुरता से किया था यदि उनका अनुकरण आज भी किया जाय तो आज भी आसानी से धर्म प्रचार कर सकते हैं परन्तु वर्तमान आचार्यों में तो स्वार्थता, शिथिलता, कायरता लोलुपता और अहंपदादि कई ऐसे गुण (!) घुस गये हैं कि वे सामग्री के सद्भाव कुछ करने काबिल नहीं रहे हैं यही कारण है कि कई प्रान्तों में जहाँ लाखों जैन थे वे क्षेत्र जैनधर्म विहीन बन गये हैं इसके लिये सिवाय भवितव्यता के और क्या कहा जा सकता है।

आचार्य देवगुप्तसूरि बड़े ही प्रभाविक आचार्य थे आपके ब्रह्मचर्यादि अनेक अतिशय गुणों से रंजित हो राजा महाराजा तो क्या पर कई देवी देवता भी आपकी सेवा में उपस्थित रहते थे। आपश्री के उपदेश में तो न जाने क्या जादू का चमत्कार रहा हुआ था कि क्या मनुष्य और क्या देवता जो एक बार आपके उपदेशामृत का पान कर लेता था वह सदैव उसके लिये लालायित ही रहता था।

एक समय अंबा पद्मा अच्छूपत्ता और विजय एवं चारों देवियां श्री सीमन्धर स्वामी का व्याख्यान सुनने के लिये गई थी तो तीर्थङ्कर भगवान् ने श्रीमुख से फरमाया कि इस समय भरतक्षेत्र में देवगुप्तसूरि अद्वितीय ब्रह्मचारी है और जैसी वाणी में मधुरता देवगुप्त के है वैसी दूसरे में नहीं है। व्याख्यान समाप्त होने के बाद चारों देवियां चलकर भरतक्षेत्र में देवगुप्तसूरि के पास आई। उस समय देवगुप्तसूरि आबू की कन्दरा में परमनिर्वृति में ध्यान लगा रहे थे। देवियों ने अपने मायावी रूप से अनेक प्रकार से अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग दिये पर वहां तो थे अकम्पमेरू जिसको कौन चला सके। आखिर देवियों ने अपने अपराध की माफी मांगती हुई कहा कि पूज्यवर ! जैसा सीमन्धर प्रभु ने अपने मुख से आपके अद्भुत गुणों का वर्णन किया वैसे ही आप हैं। हम चारों देवियां आज से आपके चरणार्विन्द की किंकरी हैं। अतः सेवाकार्य फरमा कर कृतार्थ करें हे प्रभो ! आप निर्वृति का एकान्त में सेवन करते हैं इसमें तो केवल आपका ही कल्याण है पर आप अपनी मधुरवाणी से उपदेश दिरावे तो उसमें अनेक जीवों का कल्याण हो सकता है और हम लोगों ने तीर्थङ्कर सीमंधर देव के मुखसे आपके वाणीकी मधुरता सुनी है उसी समय से आपके व्याख्यान की इतनी प्यासी हैं जैसे मरुधर के लोग पानी से प्यासे रहते हैं। अतः कृपा कर उपदेश सुनावें।

आचार्य देवगुप्तसूरि ने उन देवियों को थोड़ा पर सारगर्भित उपदेश सुनाया जिसमें कहा कि पूर्व जन्म में क्या क्या कार्य करने से देवयोनि प्राप्त होती है और देवयोनि में देवताओं को क्या क्या कार्य करना चाहिये कि जिससे सुलभ बोधित्व प्राप्त हो, संसार के भ्रमण से छूट कर अक्षय सुख हासिल करलें इत्यादि। देवियाँ सूरिजी का मधुर उपदेश सुन कर खुश होगई और उनका दिल चाहने लगा कि ऐसा उपदेश हमेशा सुना करें।

आचार्य देवगुप्तसूरि जैसे माई के सपूत विरले ही होंगे कि जिन्होंने अपने जन्म देने वाले माता पिता को दीक्षा देकर उनकी सेवा भक्ति कर स्वर्ग पहुँचा दिये।

आचार्य देवगुप्तसूरिजी ने अपने २२ वर्ष के शासन में जैनधर्म की खूब ही कीमती सेवा की। अन्त में देवी सच्चायिका की प्रेरणा से आप तीर्थ श्री शत्रुंजय पधारे। आपश्री का शुभागमन शत्रुंजय का सुन चारों तरफ से संघ आपके दर्शनार्थ आये तीर्थ स्पर्शन और गुरुसेवा फिर तो कहना ही क्या था। सूरिजी अपना शेष अल्प आयुष्य जानकर श्रीसंघ के महा-महोत्सव के साथ उपाध्याय सोभाग्यकीर्ति को अपने प पर आचार्य बनाकर उनका नाम सिद्धसूरि रक्खा दया बाद में आप एक मास के अनशनपूर्वक समाधि मर के साथ स्वर्ग पधार गये।

आपके स्वर्गवास से मनुष्यों को तो क्या पर देवियां भी निरानन्द होगइ थीं। देवियों ने महाविदे क्षेत्र में जाकर पूछा कि हे प्रभो! भरत क्षेत्र में आचार्य देवगुप्तसूरि का देहान्त होगया वे किस स्थान में गये होंगे। तीर्थङ्करदेव ने फरमाया कि देवगुप्तसूरि आठवें स्वर्ग में महाऋद्धि वाला देव हुआ है और वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में एक राज कुँवर होगा और दीक्षा लेकर मोक्ष जायगा। देवियों ने पुनः सिद्धिगिरि प आकर चतुर्विध श्रीसंघ को सब हाल कह सुनाया। श्रीसंघ ने उन महाविभूती की यादगारी के लिये अर्थात आचार्य देवगुप्तसूरि का एक स्तुम्भ बनाकर उनकी पादुका स्थापन की।

पट्टावलियों वंशावलियों आदि चरित्र ग्रन्थों में आचार्यश्री के जीवन के साथ अनेक व्याख्यायें मिलती है। पर ग्रन्थ बढ़ जाने के भयसे यहाँ पर थोड़े से केवल नामोल्लेख ही कर दिया जाता है।

आचार्य श्री के शासन समय भावुकों की दीक्षाएं।

१	उपकेशपुर	के भद्रगौत्रीय	शाह	कुम्भा	ने	सूरिके पास	दीक्षाली
२	शखपुर	के श्रेष्टिगौत्रीय	,,	नारायण	ने	,,	,,
३	नागपुर	के बाप्पनाग गौ०	,,	हरपाल	ने	,,	,,
४	पद्मावती	के आदित्यनाग०	,,	काला	ने	,,	,,
५	हर्षपुर	के भूरिगौत्री०	,,	देपाल	ने	,,	,,
६	नागपुर	के सुघड़ गौ०	,,	मुंजल	ने	,,	,,
७	हंसावली	के चोरलिया जाति	,,	रामा	ने	,,	,,
८	विराटपुर	के मल्ल गौ०	,,	कल्हण	ने	,,	,,
९	आसिका०	के चंडालिया	,,	यशवीर	ने	,,	,,
१०	शाकम्भरी	के तप्तभट्ट०	,,	माथुर	ने	,,	,,
११	कावण	के करणाट०	,,	सहरण	ने	,,	,,
१२	पालिका०	के श्री श्रीपाल	,,	करमण	ने	,,	,,
१३	कोरंटापुर	के प्राग्वट	,,	मुसल	ने	,,	,,
१४	चन्द्रावती	के श्रीमाल	,,	मेहराज	ने	,,	,,
१५	मुग्धपुर	के प्राग्वट	,,	मुकन्द	ने	,,	,,
१६	मदडुंप	के बलाह०	,,	मालर	ने	,,	,,
१७	वानरेक	के कुलभद्र	,,	मारथ	ने	,,	,,
१८	कच्छकोट	के चोरड़ि०	,,	मीमा	ने	,,	,,

१९	कीराटपुर	के श्री श्रीमाल	शाह	सगा	ने	सूरिके	पास दीक्षाली
२०	वर्धमान०	के श्रेष्टि गौ०	,,	हेमा	ने	,,	,,
२१	सोपार०	के कुमट गौ०	,,	माना	ने	,,	,,
२२	उज्जैन	के कनौरिजया	,,	दोला	ने	,,	,,
२३	माडव्यपुर	के चिंचट	,,	जोधा	ने	,,	,,
२४	आघाट०	के चरड़ गौ०	,,	कुमार	ने	,,	,,
२५	मध्यमिका	के अदित्यनाग	,,	खीवसी	ने	,,	,,
२६	चंदेरी	के संचेती गौ०	,,	चांचा	ने	,,	,,
२७	मथुरा	के सुघड़ गौ०	,,	चहाड़	ने	,,	,,
२८	लोहाकोट	के बोरलिया०	,,	देवा	ने	,,	,,
२९	वीरपुर	के ब्राह्मण०	,,	जगदेव	ने	,,	,,
३०	रानकपुर	के राव०	,,	हप्पा	ने	,,	,,

इनके अलावा आपश्री के जीवन में कई स्थानों पर मुमुक्षुओं को दीक्षा दी थी और कई बहिनों ने भी दीक्षा ग्रहण कर अपना कल्याण किया था। तथा आपके आज्ञावृत्ति मुनियों ने भी बहुत से भव्यों को दीक्षा देकर श्रमण संघ में आशातिता वृद्धि की थी आपका शासन समय जैनधर्म की उन्नति का समय था—

आचार्यश्री के शासन समय तीर्थों के संघ—

१—नागपुर नगरसे अदित्यनाग गौत्रीय शाह फुवा ने श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला साधर्मी भाइयों को सोना मुहरों की पहरामणि दी सात यज्ञ किये। आपके एक पुत्र और दो पुत्रियां दीक्षा भी ली।

२—चन्द्रावती नगरी से प्राग्वटवंशीय शाह कर्मा ने श्री शत्रुंजय गिरनारादि तीर्थों का संघ निकाला जिसमें ८४ देरासर और एक लक्ष से अधिक यात्रु लोग थे शाह कर्मा ने साधर्मी भाइयों ने सोना मुहरों की पहरामणी दी और तीन बड़े यज्ञ किये। इन शुभ कार्यों में कई पन्द्रह लक्ष द्रव्य व्यय किया।

३—उज्जैन से श्रेष्टि नारा ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें श्रेष्टिवर्य्यनारा ने नौ लक्ष रुपयें व्यय कर अनन्त पुन्योपार्जन किया। और साधर्मी भाइयों को पहरामणी दी—

४—शिव नगर से भद्र गौत्रीय मंत्री लाखण ने श्री सम्मेता शिखरजी तीर्थ का संघ निकाला जिसमें ११ हस्ती १२० देरासर तीन हजार साधु साधियों और करीबन एक लक्ष यात्रुओं की संख्या थी मंत्री ने बड़े ही उदार चित से पुष्कल द्रव्य व्यय किया ओर पूर्व की तमाम यात्राएँ की धन्य है ऐसे नर रत्नों को।

५—कोरंटपुर से श्रीमाल हाला ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला—

६—सोपारपट्टन से बलाह गौत्रीय शाह मघा गोसल ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला—

७—टेलीपुर ने प्राग्वट जालण ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला—

८—शंखपुर से तप्तभट्ट गौत्रीय मंत्री नागदेव ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला—

९—दान्तीपुरा से बापनाग गौत्रीय शाह लाधा ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला—

१०—स्तम्भनपुर से प्राग्वट रघुवीर ने श्री शत्रुंजय का विराट संघ निकाला—

११—उपकेशपुर से अदित्यनाग गौ० शाह सोमनाग ने श्री शत्रुंजय को संघ निकाला—
१२—चित्रकोट से सुचिंती गौत्रीय मंत्री हरदेव ने श्री उपकेशपुर का संघ निकाला—
१३—चंदेरी से चरड़ गौत्रीय शाहसुखा ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला—
१४—माण्डवगढ़ से कुलभद्र गौत्रीय शाह नाथा ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला—
१५—पद्मावती से मोरख गौत्रीय शाह गुणपाल ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला—
१६—शिवपुरी से प्राग्वट शाह भैराने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला—
१७—मथुरा से श्रेष्टि गौत्रीय शाह शाखला ने श्री सम्मेत शिखरजी का संघ निकाला—
जिसमें संघपति शाखला ने एक करोड़ द्रव्य व्यय किया साधर्मी भाइयों को साना की केबियों और सोना के चूड़ा की पहरामणि देकर अपनी उज्वल कीर्ति को दुनियों के इतिहास में अमर बना गये।

इत्यादि अनेक महानुभावों ने अपनी चल लक्ष्मी को ऐसे पुनीत कार्यों में अचल बना कर के साथ परात्मा का कल्याण किया इन संघ निकलने में आचार्य श्री तथा आपके मुनिवरो का ही उपदे

आचार्यश्री के शासन में मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं

१—मुगेरानगर	के	बाप्पनाग गौ०	मोखम ने	भ०	महावीर	के	म० प्र०
२—धोलागढ़	के	कन्याकुब्ज	तारा ने	”	”	के	” ”
३—गुडानगर	के	मल्ल गौ०	देहल ने	”	”	के	” ”
४—रत्नपुरा	के	सुचंती गौ०	रूपणसीने	”	पार्श्व०	के	” ”
५—छत्रीपुरा	के	आदित्यनाग०	कल्हण ने	”	”	के	” ”
६—हंसावली	के	चरड गौ०	पुना ने	”	शान्ति०	के	” ”
७—बिराटपुर	के	सुघड़ गौ०	नैणा ने	”	महावीर	के	” ”
८—नारायणपुर	के	श्रेष्ठि गौ०	जैतसी ने	”	”	के	” ”
९—टेलीपुर	के	श्रेष्टि गौ०	गोकल ने	”	”	के	” ”
१०—हर्षपुर	के	कुलभद्र गौ०	भाणा ने	”	”	के	” ”
११—नन्दपुर	के	बलाह गौ०	जैता ने	”	आदिनाथ	के	” ”
१२—भवानीपुर	के	भूरि गौ०	भोला ने	”	”	के	” ”
१३—शाकम्भरी	के	चिंचट गौ०	रामदेव ने	”	महावीर	के	” ”
१४—रूपावटी	के	लघुश्रेष्टि गौ०	हाँसा ने	”	”	के	” ”
१५—कुम्पुरा	के	करणाट गौ०	मूंजा ने	”	”	के	” ”
१६—वनपुर	के	कुमट गौ०	धवल ने	”	पार्श्व०	के	” ”
१७—जाँसोरपुर	के	आदित्यनागगौ०	पेथा ने	”	”	के	” ”
१८—बड़नगर	के	चोरड़ गौ०	दुरपाल ने	”	महावीर	के	” ”
१९—[illegible]पुर	के	माद्रगौ०	देवा ने	”	”	के	” ”
२०—सुवपुर	के	श्रीमाल गौ०	रामा ने	”	”	के	” ”

२१—मेदनीपुर	के	प्राग्वट गौ०	भोमा ने	भ०	विमल०	के	म० प्र०
२२—मुजपुर	के	प्राग्वट गौ०	दोला ने	,,	पार्श्व०	के	,, ,,
२३—वीरपुर	के	प्राग्वट गौ०	रावल ने	,,	,,	के	,, ,,
२४—देवपुर	के	गान्धी गौ०	नींबा ने	,,	,,	के	,, ,,
२५—लाढापुर	के	बोहरा गौ०	कांना ने	,,	,,	के	,, ,,
२६—भीनामाल	के	श्रेष्टि गौ०	सज्जन ने	,,	,,	के	,, ,,
२७—मंडाणी	के	बाप्पनाग गौ०	नौढ़ा ने	,,	पार्श्व०	के	,, ,,
२८—शौर्यपुर	के	भाद्र गौ०	माना ने	,,	,,	के	,, ,
२९—मथुरा	के	करणाट गौ०	खंगार ने	,,	शान्ति०	के	,, ,,
३०—वैराटपुर	के	प्राग्वट वंशीय	जोरा ने	,,	चन्द्रप्रभ	के	,, ,,
३१—कविलपुर	के	प्राग्वट वंशीय	थाना ने	,,	आदीश्वर	के	,, ,,

इत्यादि अनेक स्थानों पर जैन मंदिरों की प्रतिष्ठाएं करवाई ! कहने की आवश्यकता नहीं है कि उस जमाना में जनता की मन्दिरों पर कितनी श्रद्धा थी दूसरे जैनाचार्यो ने भी जहाँ नये जैन बनाये वहाँ सबसे पहला मन्दिर का उपदेश दिया करते थे इससे एक तो धर्म पर श्रद्धा मजबूत बनी रहती दूसरे इससे गृहस्थों के पुन्य भी बढ़ते थे कारण इस निमित कारण से गृहस्थों के घर से प्रतिदिन कुछ न कुछ द्रव्य निकल ही जाता । जब उस समय का इतिहास देखा जाता है तो इस प्रकार के मन्दिरों की आवश्यकता भी थी तीसरे उस समय जैनों की संख्या करोड़ों की थी और उसके पास लक्ष्मी भी अखूट थी और वे लोग तीर्थों के संघ निकलने में मन्दिर बनाने में साधर्मी भाइयों को सहायता देने में अपने जीवन की सार्थकता समझते थे इत्यादि कारणों से पाया जाता है कि उस समय प्रत्येक आचार्य के समय इस प्रकार के मन्दिरों की प्रतिष्टा हुआ करती थी मैंने यहां पर केवल थोड़े से नामों का ही उल्लेख किया है ।

चार वीस पट्ट सूरि शोभे, देवगुप्त यक्षधारी थे ।
कुमट गोत्र उद्योत किया गुरु, जैनधर्म प्रचारी थे ॥
शुद्ध संयम अरु तप उत्कृष्टा, ज्ञान गुण भंडारी थे ।
सुविहित शिरोमणि जिनकी सेवा, करते पुन्य के भारी थे ॥

॥ इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के २४ वें पट्ट पर आचार्य देवगुप्तसूरि महान प्रभाविक आचार्य हुये ॥

२५ आचार्य सिद्धसूरि (चतुर्थ)

श्रेष्ठी श्रेष्ठ गुणान्वितो दिनमणिर्गोत्रे स्वकीये मतः
आचार्यस्तु स सिद्धसूरिरभवत् सिद्धेः सुवर्णस्य च ॥
स्वामी दीक्षित एव गतवान् विद्यासमुद्रस्तथा ।
यतो येन कृतः स्वत्तः संविपुलो जैनीयधर्मोन्नतौ ॥
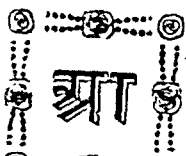
आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज एक सिद्ध पुरुष ही थे। अनेक विद्यायें और लब्धि आपको स्वयं वरदाई थी। मंत्र यंत्र में आप सिद्धहस्त थे। आप जैसे विद्वान् थे वैसे धर्म प्रचारक भी थे। आपश्री ने अनेक सिद्ध कार्य्य करते हुए धर्म के उत्कर्ष को बढ़ाया था। आपका जन्म उपकेशपुर नगर के महाराज उत्पलदेव की सन्तान परम्परा के श्रेष्टि गोत्रीय जैता की गृह देवी एवं धर्मपरायण चम्पादेवी की पवित्र कुक्ष से हुआ था। आपका नाम सारंग था। शाह विशाल कुटुम्ब वाला होने पर भी उसके पूर्वभव की ऐसी कोई अन्तराय थी कि द्रव्य के लिये अनेक करने पर भी उसका गुजारा बड़े ही मुश्किल से चलता था। निर्धन लोगों के घर में जैसे दरिद्र का होता है वैसे ही क्लेश भी अपना अड्डा जमा बैठता है। इन दोनों से शाह जैता महान् दुःखी रहता

एक समय आचार्य देवगुप्त सूरिजी का पधारना उपकेशपुर में हुआ। समय पाकर शाह जैता सूरिजी की सेवा में आकर अपनी दुःख गाथा कह सुनाई। इस पर सूरिजी ने कहा जैता! जीवों के सुख और दुःख पूर्वसंचित कर्मानुसार होते हैं पर न तो सदैव दुःख रहता है और न सुख ही रहता अर्थात् सुख और दुःख का चक्र चलता ही रहता है। सामग्री के होते हुए भी जीव पुन्य संचय नहीं करते हैं उसका यह फल है फिर भी आत्मा में अनंत शक्ति है। कैसा ही कर्म क्यों न हो उसे हटा सकता है। दूसरे दुःख अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाता है तब समझ लेना चाहिये कि अब इसका अन्त होने वाला है। तेरे नियम व्रत भी है या नहीं ? शाह जैता ने कहा प्रभो ! मेरी इच्छा तो बहुत रहती है पर सांसारिक प्रपंच के कारण मैं कुछ कर नहीं सकता हूँ। सूरिजी ने कहा जैता। पूर्वभव में तो कुछ नहीं किया जिसका फल भुगत रहा है। यदि इस भव में भी कुछ नहीं करेगा तो भविष्य में क्या पावेगा। अतः तुमको धर्म आराधन अवश्य करना चाहिये। जैता ने कहा तथास्तु, जैसे मेरे से बन सके वैसा रास्ता बतलाइये। सूरिजी ने कहा कि जैता श्रावक का आचार है कि कम से कम हमेशा परमेश्वर की पूजा और एक सामायिक तो करनी चाहिये। जैता! परमेश्वर की पूजा इस भव और परभव में हित सुख और कल्याण का कारण है और सामायिक से जीव को शान्ति मिलती है। सूरिजी और जैता के बीच बातें हो रही थी इतने में सारंग भी आ गया। जिसको देख सूरिजी ने कहा जैता यह लड़का कौन है ? इसकी भाग्यरेखा इतनी जोरदार है कि यह कोई प्रभाविक पुरुष होगा ! जैता ने कहा पूज्यवर ! यह आपका लघु श्रावक है। सूरिजी जान गये कि यह जैता का पुत्र है। शाह जैता सूरिजी के शुभ वचन सुनकर बड़ा खुश हुआ। उसके दिल का सब फिक्र

चोरों की भांति भाग छूटा। मनुष्य का भाग कैसे खुलता है और नीचे गिरा हुआ मनुष्य किस कद्र उच्च स्थिति को पहुँचता है और गुरू महाराज का वचन कैसे सिद्ध होता है जिसको आप आगे के पृष्ठों पर पढ़ोगे कि सारंग का जीवन एक उदाहरण रूप बन जाता है।

सूरिजी ने कुछ अर्सा ठहर कर विहार कर दिया! पीछे एक समय सारंग अपने भाइयों से अनबन के कारण एक दिन बिना किसी के कहे घर से निकल गया। सारंग के घर में था भी तो क्या कि कुछ रास्ते के लिये साथ ले जाता फिर भी सारंग को अपनी तकदीर पर भरोसा था। वह चलता चलता जा रहा था मार्ग में एक सिद्ध पुरुष का साथ हो गया। बस सारंग की तकदीर खुलने का यह एक निमित्त कारण था, सारंग सिद्ध पुरुष के साथ हो गया और चलते हुए एक दिन कांही विश्राम लिया, भाग्यवशात् सिद्ध पुरुष बीमार होगया यहां तक कि उसके जीने की आशा तक भी छूट गई। परन्तु सारंग ने उस सिद्ध पुरुष की इतनी चाकरी की कि वह मरने से बच गया। इसमें उपादान कारण तो उसका आयुष्य ही था पर निमित्त सारंग का भी साथ था। ज्ञानी पुरुषों का कर्त्तव्य है कि अपने निमित्त से दूसरों का भला हुआ हो वो उसके उपादान कारण को ही समझे और दूसरे के निमित्त से अपना भला हुआ हो तो उस निमित्त कारण को याद करे। तात्पर्य यह हुआ कि अपने निमित्त से दूसरों का भला हुआ हो तो उसे भूल जाना कि इसका उपदान ही अच्छा था मैं तो केवल निमित्त कारण ही था और दूसरे के निमित्त से अपना भला हुआ हो तो उस निमित्त को हमेशा स्मरण में रखना। और बन सके तो प्रत्युपकार करे।

सिद्ध पुरुष भी एक ज्ञानी था उसने सारंग का बड़ा भारी उपकार माना जिसके प्रत्युपकार के लिये उसने सोचा कि मैं इसका बदला कैसे दे सकूं? सिद्धपुरुष ने सारंग को एक सुवर्णसिद्धविद्या प्रदान की सारंग ने कहा कि मैंने अपने कर्त्तव्य से अधिक कुछ भी नहीं किया अतः यह विद्या आप अपने पास ही रहने दीजिये और देना ही है तो किसी योग्य पुरुष को दीजिये कि इसका सदुपयोग हो सके। सारंग के निष्कपट और निस्पृहता के वचन सुन सिद्ध पुरुष को उस पर और भी श्रद्धा बढ़ गई। और उसने सुवर्ण सिद्ध विद्या आम्नाय के साथ सारंग को देदी। बस, फिर तो था ही क्या' सारंग ने उस विद्या द्वारा पुष्कल सुवर्ण बनालिया और उस सुवर्ण द्वारा अनेक निराधार गरीबों का उद्धार कीया। कारण, जिस मनुष्य ने गरीबीदेवी को देखी हो उसको ही अनुभव होता है कि गरीबाई कैसे निकाली जाती है। सारंग घूमता घूमता सोपार पट्टन में आया। यदपि वहाँ सारंग के जान पहिचान वाला कोई नहीं था पर उसके पास था सुवर्ण का खजाना और परोपकार की बुद्धि कि सारंग सर्वत्र प्रसिद्ध होगया। कुछ दिन ठहरने से कई लोगों से परिचय भी हो गया। कई लोगों ने अपनी कन्या की सारंग के साथ सादी करनी चाही। पर सारंग ने इसे स्वीकार नहीं किया। सारंग ने वहां रहकर शुभकार्यों में खूब सुवर्ण व्यय किया कि सारंग की कीर्ति सर्वत्र फैल गई। कहा है कि "सर्वेगुणाःकांचनमाश्रयन्ति"। सारंग महावीर देव की यात्रार्थ एक संघ लेकर तीन वर्षों से वापिस उपकेशपुर आया वहाँ तक उपकेशपुर में सारंग का कुछ भी पता नहीं था। शाह जैता के तेरह पुत्र थे सारंग को याद भी कौन करता था। पर जब उपकेशपुर का संघ, संघ आया जान कर उसको वधाने के लिये गया तो संघपति की माला सारंग के शुभ कंठ में सुशोभित देखी तब जाकर लोगों को मालूम हुआ कि यह तो शाह जैता का पुत्र सारंग है। अतः लोगों ने जाकर जैता को बधाई दी कि तुम्हारा पुत्र सारंग संघ लेकर आया है, इसको जैता अपनी निर्धनता की मस्करी ही

समझी पर जब जाकर देखा तो वास्तव में संघपति सारंग ही निकला। उस समय जता को सूरिजी के वचन याद आये। श्रीसंघ संघपति सारंग को वधाकर नगर में ले गया और आये हुये संघ ने शासनाधीश भगवान महावीर की यात्रा कर अपने पापों का प्रक्षालन किया।

बाद सारंग अपने घर पर आया और संघ का अच्छा स्वागत कर उनको एक एक सेर सोने की पहरामणी देकर विसर्जन किया। बस, आज तो उपकेशपुर के घर २ में सारंग की पुन्यवानी की ही बातें हो रही हैं। इधर कई धनाढ्यों के कन्यायें बड़ी हो रही थीं जिसका सारंग से विवाह के लिये आग्रह किया जवाब में सारंग ने कहा ऐसे प्रस्ताव तो रास्ते में भी बहुत आये थे पर मैंने स्वीकार नहीं किये क्योंकि मेरी इच्छा शादी करने की नहीं है जैनशास्त्रानुसार जिस जीव के वेद् मोहनिय कर्म का प्रबल्य उदय होता है उसको ही काम विकार सताता है पर जिस जीव ने पूर्वभव में वेदमोहनीय कर्म नहीं बाँधा है तथा बाँधे हुवे का क्षय तथा क्षयोपशम करदिया है, उनके सामने कितने ही विषय विकार के साधन खड़े हो पर उसके दिलमें कभी विकार पैदा ही नहीं होता है। उसके अन्दर सारंग भी एक था। माता पिता वगैरह सम्बन्धियों ने बहुत कौशीश की पर सारंग ने किसी एक की भी नहीं सुनी। अहा-हा इस प्रकार जवानी और सम्पति जिसमें ब्रह्मचर्य व्रत पालना कितना दुःकर है ? ऐसे नर बहुत कम होते हैं जैसा कि सारंग है।

सारंग ने अपने माता पिता और भाइयों को कह दिया कि सुवर्ण का खजाना मेरे पास है जिसको जितना लाभ उठाना हो वह खुशी से उठावे। कारण, प्रत्येक वस्तु की स्थिती हुआ करती है और वह अपनी स्थिती से अधिक समय तक ठहर नहीं सकती है अतः इसका जितना सदुपयोग किया जाय उतना ही अच्छा है। शाह जैता ने उपकेशपुर में भगवान महावीर देव का एक आलीशान मंदिर बनाना शुरू कर दिया और उस मंदिर के योग्य १०४ अंगुल प्रमाण सुवर्ण की मूर्ती बनाने का निश्चय कर लिया। इतना ही क्यों पर चतुर शिल्पकारों को बुला कर मूर्ति तैयार भी करवा ली।

जब तक मंदिर तैयार हो वहां तक श्री शत्रुंजयादि तीर्थों की यात्रा निमित्त एक विराट् संघ निकालने का भी निश्चय कर लिया और इस कार्य्य को प्रारंभ भी कर दिया तीर्थयात्रा का संघ के साथ साधर्मी भाइयों की सहायता, गरीबों का उद्धार और सात क्षेत्र में पुष्कल द्रव्य खर्चना भी शुरू कर दिया अर्थात् सारंग की तरफ से द्रव्य की खुले दिल से छूट थी। सारंग जानता था कि मेरी स्थिति तो वह थी कि पूरी पेट की पूजा भी नहीं होती थी। जब किसी देव गुरु धर्म के प्रभाव से सहज ही में अन्तराय टुट गई है तो इसमें जो सदुपयोग बन जाय वही अच्छा है। इस प्रकार सारंग तथा सारंग के सम्बन्धी लोगों ने जितना चाहा उतना लाभ उठाया। जिसमें अधिक लक्ष साधर्मी भाइयों की ओर रहा।

अब. शाह जैता के संघपतित्व में संघ का आयोजन बड़े ही समारोह से हुआ। इस संघ में साधु साध्वी एवं श्रावक श्राविकाओं की संख्या विशेष थी। प्रबन्ध भी अच्छा था। खर्च के लिए जिसके पास सुवर्ण सिद्धि हो फिर कमी किस बात की। संघ यात्रा कर वापिस आनन्द से उपकेशपुर लौट आया।

इधर आचार्य देवगुप्तसूरि का पुनः उपकेशपुर की ओर पधारना हो रहा था। शाह जैता और सारंग ने सूरिजी का आगमन सुनकर बड़ा ही हर्ष मनाया और श्रीसंघ के साथ सूरिजी का नगर प्रवेश बड़े ही समारोह से करवाया। सूरिजी ने सारंग का सब हाल सुना तथा शाह जैता ने आकर सूरिजी के चरणारविंद में शिर झुका कर कहा पूज्यवर ! आपका वचन सिद्ध हो गया है और सारंग बड़ा ही भाग्यशाली

निकला तथा सारंग भी सूरिजी के पदार्विन्द में नमस्कार करके बैठ गया तथा सूरिजी से अर्ज की कि गुरु महाराज क्या आज्ञा है ? सूरिजी ने कहा सारंग प्रवृति से निवृति अनंत गुणा फल देती है । अतः निवृति मार्ग को स्वीकार करो यही आज्ञा है । सारंग ने कहा गुरु महाराज मैं आपकी ही इन्तजारी कर रहा था । शाह जैता को मालूम हुआ कि सारंग तो सूरिजी के पास निवृति (दीक्षा) लेने को तैयार हुआ है । अतः जैता ने सूरिजी से कहा प्रभो ! आप जल्दी न करावें, सारंग के साथ हम भी दीक्षा लेने को तैयार हैं । तीर्थों का संघ निकाल कर यात्रा तो हम लोगों ने कर ली है पर अब मंदिर की प्रतिष्ठा का काम शेष रहा है पहले इन मूर्तियों की अंजनशीलाका और मंदिर की प्रतिष्ठा करवा दें । बाद हम सब दीक्षा लेंगे । सूरिजी ने जैता की बात को ठीक समझ कर स्वीकार करली । इधर शाह जैता मन्दिर की प्रतिष्ठा के लिये खूब जोर से तैयारियें करने लगा । यह प्रतिष्ठा कोई साधारण प्रतिष्ठा नहीं थी पर एक विशेष प्रतिष्ठा थी क्यों कि जिसके घर में सोने का खजाना हो फिर तो कहना ही क्या है ? शाह जैता ने बहुत दूर दूर प्रदेशों में श्रीसंघ को आमंत्रण भेज दिये, अतः श्राद्धवर्ग और साधु-साध्वियां खूब गहरी संख्या में पधारे । शुभ मुहूर्त में महा महोत्सव के साथ सूरिजी के कर कमलों से जिस दिन मन्दिरजी की प्रतिष्ठा हुई उसी दिन उसी मुहूर्त में सारंग के साथ शाह जैतादि ५६ नर नारियों को सूरिजी ने बड़े ही धामधूम से दीक्षा देदी और सारंग का नाम सौभाग्यकीर्ति रख दिया ।

शाह जैता और सारंग ने संघ को पहरामणी आदि का प्रबन्ध पहले से ही कर रक्खा था और यह कार्य जैता ने अपने शेष पुत्रों के जुम्मे कर दिया था । अतः शाह जैता, सारंग, सारंग की माता ने दीक्षा लेने के बाद आये हुए श्री संघ को शाह खेता ने सोने के थाल एवं २५-२५ सोने की मुहरों की पहरामणी दी और याचकों को दान देकर उनके घरों से दरिद्र को भगा दिया अहाहा ! सारंग ने पूर्व जन्म में किसी प्रकार के पुण्य संचय किये होंगे कि इस भव में बिना कुछ परिश्रम किये सुवर्णसिद्धि हाथ लग गई और उसको भी उसने मूंजियों की भांति संचय कर नहीं रक्खी परन्तु उसके जरिये अनेकों को आराम पहुँचा कर जैन धर्म की खूब ही प्रभावना की और अन्त में सारंग इतना भाग्यशाली निकला कि आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की आराधना करता हुआ दीक्षा स्वीकार करली । यह कार्य कितना दुष्कर है 'एक जवानी और पैसा पल्ले, राम करे तो सीधा चल्ले" इस लौकिक कहावत को सारंग ने मिथ्या साबित करके बतला दी ।

एक तो सारंग की युवक वय और दूसरे सुवर्णसिद्धी विद्या द्वारा सोने का खजाना, इस हालत में विषय वासना पर लात मार देना यह सारंग जैसे का ही काम था । सारंग ने अपना नाम अमर कर दिया ।

यदि जैता निर्धन अवस्था में दीक्षा ले लेता तो दुर्जन लोग कह उठते कि बिचारे के पास खाने को नहीं था अतः दीक्षा लेली पर जैता सच ही विजयीता निकला आज तो जैता की सर्वत्र भूरि २ प्रशंसा होती है कि धन्य है जैता को कि सब उम्र तो दुःख में निकाली और जब सुख मिला है तब उस पर लात मार कर दीक्षा लेली है । जैता के तेरह पुत्रों में एक सारंग ऐसा भाग्यशाली निकला कि जैता ने तीर्थयात्रा के लिये संघ निकला । जैन मन्दिर में सुवर्ण प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवा कर देवजइंडा चढ़ाया । श्री संघ को अपने आंगणे बुलाकर सुवर्ण की पहिरामणी दी । साधर्मी भाइयों की सहायता, गरीबों का उद्धार, याचकों को दान और सात क्षेत्रों का पोषण कर अपनी कीर्ति को अमर बनाकर अन्त में दीक्षा भी लेली । अब ही तो कहा है कि नर के नसीब कौन जानता है कि किस समय क्या होता है । क्या शाह जैता स्वप्न में भी

जानता था कि मेरी जिन्दगी में मैं इस प्रकार के कार्य्य करूँगा। परन्तु यह सब पूर्व भव में संचय किये शुभ कर्मों का ही फल है। अतः प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि सामग्री होते हुये शुभ कार्य कर पुन्योपार्जन करना चाहिये क्योंकि मनुष्य को समझना चाहिये कि लक्ष्मी सदैव के लिये स्थिर नहीं रहती है इससे तो जितना लाभ लिया जाय उतना ही अच्छा है।

बहुत दूर काल के चरित्रादि ग्रन्थों में तो हम पढ़ते हैं इस प्रकार सुवर्ण सिद्धि तेजमतुरी आदि से सुवर्ण बनाया जाता था पर वे विद्यायें पांचवें आरे में भी बिल्कुल नष्ट नहीं हो गई थी। आचार्य सिद्धसेन दिवाकरजी को चित्तौड़ के किले में पुस्तकें मिली थीं जिसके दो श्लोकों में सुवर्ण सिद्धि और सरसव सुभट नामक दो विद्यायें मिली थी और आपने कुर्मार नगर के राजा के लिये इन विद्याओं का उपयोग भी किया था। आचार्य पादलिप्तसूरि और नागार्जुन के पास भी सुवर्ण सिद्धि विद्या थी। श्रीशत्रुंजय के उद्धारक जावड़ के यहाँ तेजमतुरी थी जिससे सुवर्ण बनाकर श्रीशत्रुंजय का उद्धार करवाया था जगडूशाह ने भी तेजमतुरी से दुष्काल को सुकाल बनाया इत्यादि पांचवें आरे के भी कई उदाहरण मिलते हैं और इसमें आश्चार्य करने जैसी बात भी नहीं है कारण यह सब पुन्य प्रकृति के फल हैं।

अस्तु। मुनि सोभाग्यकीर्ति पर सूरिजी महाराज की पूर्ण कृपा थी। मुनि शौभाग्यकीर्ति द्रव्य लक्ष्मी को छोड़ कर भाव लक्ष्मी (ज्ञान) को प्राप्त करने में जुट गया और थोड़े ही समय में सामयिक साहित्य का अध्ययन कर लिया। यही कारण था कि उज्जैन नगरी में सूरिजी ने अपने करकमलों से शोभाग्यकीर्ति को उपाध्याय पद से विभूषित किया और अन्त समय पुनित तीर्थ श्रीशत्रुंजय पर सूरिपद अर्पण कर आपका नाम सिद्धसूरि रख दिया था। आचार्य सिद्धसूरीश्वरजी महाराज बड़े ही अतिशयधारी बालब्रह्मचारी उग्रविहारी धर्मप्रचारी एवं महान प्रतिभाशाली आचार्य थे आपकी धवल कीर्ति पहिले से ही फैली हुई थी।

आचार्य सिद्धसूरि श्रीत्रुंजय तीर्थ पर विराजमान थे उस समय महात्मा तापस भी शत्रुंजय पर आया था उसको पता लगा कि सारंग साधु बन गया है और अभी यहाँ पर ही ठहरा हुआ है। वह चलकर मिलने के लिये आया तो आचार्य श्री ने तापस को उपकारी समझ कर उसका यथोचित सत्कार किया। दोनों महात्मा आपस में मिले और परस्पर एक दूसरे का उपकार प्रदर्शित किया। तापस ने कहा कि आपने मुझे मरने से बचाया उस उपकार को मैं कब भूल सकता हूँ तब आचार्य श्री ने कहा आपने मुझे सुवर्णसिद्धि विद्या दी थी जिससे मैंने कई शुभ कार्य्य किये इत्यादि आपके उपकार को मैं भी कैसे भूल सकता हूँ।

बाद सूरिजी ने तापस को कहा महात्माजी! नीतिकारों ने कहा है कि "बुद्धिफलंतत्वविचारणंच" बुद्धि का फल है तत्व का विचार करना विद्या और लब्धियें केवल इस भव में शुभ फल देने वाली है पर मनुष्य को चाहिये कि जन्म मरण से छुटकारा पाकर आत्मा अक्षय सुख कैसे प्राप्त करता है इसके लिये विचार एवं प्रयत्न करे। तापस ने कहा इसमें ऐसी कौनसी बात है। कारण, पांच तत्वों से आत्मा बना है जब तत्वों में तत्त्व मिलजायगा तब आत्मा आत्मा में मिल जायगा फिर न जन्म है और न मरण ही है।

सूरिजी ने कहा कि यह तो आपका एक भ्रम है क्योंकि पांच तत्व से आत्मा नहीं बनता है पर शरीर बनता है। आत्मा शरीर से भिन्न है। इन तत्वों के नष्ट होने पर आत्मा नष्ट नहीं होता है पर शरीर नष्ट [illegible] है कारण आत्मा सदैव शाश्वत एवं नित्य द्रव्य है। आत्मा में अनन्तज्ञान, अनंतदर्शन, अनन्तचारित्र, [illegible] वीर्य्य रूप गुण हैं। वह अक्षय है, हाँ कर्मों के प्रसंग से उस पर आवरण आजाता है जिससे

[सिद्धगिरि पर सूरिजी और तापस

आत्मा अपना भान भूल कर चतुर्गति में जन्म मरण करता है। यदि तप संयमादि से कर्मों को समूल नष्ट कर दिये जाय तो आत्मा परमात्मा बन कर सदैव के लिये परमसुखी बन जाता है। अतः आत्मिक अक्षय सुख की प्राप्ति के लिये सम्यक् ज्ञान दर्शन चरित्र की आवश्यकता है उसे स्वीकार कर आराधना करावे।

तापस ने कहा कि क्या आत्मा और शरीर पृथक् २ पदार्थ हैं ?

सूरिजी ने कहा हाँ महात्माजी ! आत्मा और शरीर पृथक् २ पदार्थ हैं और इस बात को आप आसानी से समझ भी सक्ते हो कि जिस पदार्थ की उत्पत्ति है उसका विनाश भी आवश्य होता है। जैसे पांच तत्वों से शरीर पैदा होता है तब तत्त्व तत्वों में मिल जाने से उसका नाश भी हो जाता है। जिसको चरम चक्षुवाले प्रत्यक्ष में देख रहे हैं। तब आत्मा न तो कभी नया उत्पन्न होता है और न कभी उसका नाश ही होता है। हाँ, कर्मों के आवरणों के कारण उसकी पर्याय अवश्य पलटती है जैसे कभी नर कभी नरक कभी देवता कभी तिर्यंच परन्तु आत्मा अक्षय है उसका कभी विनाश नहीं होता है। उदाहरण के तौर पर देखिये सोना एक द्रव्य है पर उसकी पर्याय बदलती रहती है जैसे सोने की चूड़ी है उसकी कंठी बन सकती है और कंठी की चूड़ी बन सकती है पर सोना रूपी द्रव्य तो शाश्वता है इसी प्रकार आत्मा को भी समझ लीजिये इत्यादि युक्ति एवं प्रमाण द्वारा सूरिजी ने इस प्रकार समझाया कि तापस को सूरिजी का कहना सत्य प्रतीत हुआ। तापस खुद विद्वान था आत्म कल्याण की भावना वाला था उसने स्वयं सोच लिया कि जीव सुख और दुख भोगव रहा है यह पूर्व संचित कर्मों का ही फल है और इन कर्मों को नष्ट करने के लिये ही तप जपादि क्रिया कांड एवं योग आसन समाधि लगाई जाती है अतः सूरिजी का कहना सत्य है कि आत्मा सदैव शाश्वता एवं एक नित्य पदार्थ है और आत्म के साथ रहे हुए कर्मो को नष्ट करने के लिये भिन्न २ मतों में पृथक् २ साधनायें भी हैं तथापि जैन धर्म की साधना में त्याग वैराग्य निस्पृहता और निर्वृत्ति को विशेष स्थान दिया है। अतः मुझे जैन दीक्षा लेकर एवं सूरिजी की सेवा में रह कर आत्म कल्याण करना ठीक होगा। अतः तापस ने सूरिजी से कहा प्रभो! मैं आपके चरणों में जैन दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करना चाहता हूँ। सूरिजी ने कहा 'जहासुखम्' बस फिर तो देरी ही क्या थी तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय की पवित्र एवं शीतल छाया में सूरिजी ने तापस को जैन दीक्षा देकर उसका नाम 'तपोमूर्ति' रख दिया।

तपोमूर्त्ति ने ज्यों-ज्यों जैनधर्म की क्रिया और ज्ञान का अभ्यास किया त्यों-त्यों उनको बड़ा ही आनन्द आने लगा। मुनि'तपोमूर्त्ति' पहले से ही अनेक विद्याओं से परिपूर्ण थे फिर कर लिया जैनधर्म के स्याद्वाद सिद्धांत का अभ्यास फिर तो कहना ही क्या था उनके हृदय में जैनधर्म के प्रचार की बिजली चमक उठी। अतः वे जैनधर्म के प्रचार के लिये भरसक प्रयत्न करने में संलग्न हो गये।

उल्टे रास्ते चलने वाला मनुष्य जब सुलटे रास्ते पर आ जाता है तब वह खूब वेग से चलता है तथा उल्टे मार्ग की कठिनाइयों का अनुभव किये हुए मनुष्य के हृदय में दयाभाव भी पैदा हो जाता है और वह उल्टे मार्ग जाने वालों को सुलटे मार्ग पर लाने की कोशिश भी बहुत करता है। यही हाल हमारे मुनि तपोमूर्ति महात्मा का था !

आचार्य सिद्धसूरि श्रीशत्रुंजय से विहार करते हुये सोपारपट्टन की ओर पधारे। तपोमूर्ति मुनि भी आपके साथ में ही थे। श्रीसंघ ने आपका सुन्दर सत्कार किया। वहाँ के लोग सूरिजी से पहले से ही परि-

चित थे। लोगों को ज्ञात हुआ कि आचार्य तो वही हैं जो सुवर्ण सिद्धि वाले सारंग थे पर लोगों को आश्च
इस बात का हुआ कि सुवर्ण सिद्धि छोड़ कर सारंग ने दीक्षा क्यों ली होगी ?

सूरिजी ने एक दिन अपने व्याख्यान में यह बतलाया कि संसार में लोभ एक ऐसी बुरी बलाय
कि जीव को अधोगति में ले जाता है। लोभ के कोई मर्यादा भी नहीं होती है कि वह कभी संतोष पा
क्षण भर सुख से रहता है। शास्त्रों में कहा है कि:—

जहाँ लाभो तहाँ लोभो लाभ लोभो प वड्डई । दो मासा कणयं कज्जं कोड़ी एवि न निट्ठिई ॥

श्रोताओ ? ज्यों २ लाभ बढ़ता है त्यों २ लोभ भी बढ़ता जाता है। जैसे एक कपिल नामक ब्राह्म
दो मासा सोने के लिये राजा के पास गया था पर उसके लाभ बढ़ने से इतना लोभ बढ़ गया कि जिसक
कुछ हद ही नहीं रही जिसका शास्त्रों में उल्लेख किया है कि:—

कौसंबी नगरी में जयशत्रु राजा राज करता था। चौदह विद्या निधान कासप नामक उसके मानन
पुरोहित था। उस पुरोहित के जसा नाम की स्त्री थी और उसके कपिल नाम का एक पुत्र भी था। कपि
बाल्यावस्था में था तब उसका पिता गुजर गया था। अतः राजा ने पुरोहित पद किसी दूसरे ब्राह्मण को
दिया। उसने पद की खुशी में एक जुलूस निकाला। जिसको देख जसा दिलगीर हुई। कपील ने दिलगीरी
कारण पूँछा तो माता ने कहा बेटा तेरा पिता विद्यावान् था और राजपुरोहित पद पर रह कर इस प्रका
जुलूस निकालता था। बेटा ने कहा माता मैं विद्या पढ़ कर इस पद का अधिकारी बनूंगा। माता ने क
कि यहाँ तो नये पुरोहित के मनाई कर देने के कारण कोई तुझे विद्या पढ़ावेगा नहीं। यदि तू विद्या पढ़
चाहे तो सावत्थी नगरी में इन्द्रदत्त नाम का अध्यापक तेरे पिता का दोस्त है वहां चला जा वह तुझको वि
पढ़ावेगा। कपील चलकर सावत्थी आया, इन्द्रदत्त से मिला। उसने कहा कि विद्या तो मैं पढ़ा दूंगा पर ते
भोजन का क्या इन्तजाम है ? कपिल ने कहा मैं ब्राह्मण हूँ भिक्षा मांग कर ले आऊंगा। अध्यापक ने क
मांगी हुई भिक्षा से पढ़ाई नहीं होगी कारण पढ़ाई के लिये अच्छा पौष्टिक भोजन होना चाहिये। खैर, इन्
द्रदत्त कपिल को साथ लेकर एक शालीभद्र नाम के इभ्भ श्रेष्ठि के पास गया और आशीर्वाद देकर प्रार्थना क
कि यहाँ एक ब्राह्मण का लड़का कौसंबी से विद्या पढ़ने के लिये आया है। विद्या तो मैं भी पढ़ा दूंगा प
इसके भोजन का इन्तजाम नहीं है। यदि आप भोजन का इन्तजाम करदें तो आपको बड़ा पुण्य होग
श्रेष्टिवर्य्य ने स्वीकार कर लिया और एक तरुण दासी इसके लिये नियत करदी कि जिस समय कपि
विद्याध्ययन करके आवे तो गरमागरम भोजन करके खिलादे। ठीक कपिल विद्याध्ययन करने लगा औ
भोजन के समय सेठजी के यहाँ आकर भोजन कर लेता था परन्तु इधर तो दासी तरुणावस्था में उधर कपि
भी जवान था। हाँसी मस्करी और कामदेव के बाणों से कपिल और दासी के आपस में प्रेम-प्रीती लग गई
जिससे दासी के गर्भ रह गया। सेठजी को खबर होते ही उन दोनों को घर से निकाल दिया। बस, कपि
का विद्याध्ययन छूट गया और वह दोनों की उदर पूर्ति के प्रपंच में फँस गया। इतना ही क्यों पर दासी क
गर्भ की वृद्धि हो रही थी उसके प्रसूत समय के लिये भी तो कुछ सामान की आवश्यकता थी जिसकी भ
कपिल को फिक्र हो थी। कपिल ऐसा भाग्यहीन था कि कई दानेश्वरों के पास याचना की पर कुछ भी प्राप्ति
नहीं हुई। दासी ने कहा रे दुर्भागी ? मेरा स्थान भी छुड़ाया और जीवन भी भ्रष्ट कर दिया; क्यों रे ये इतना
भी काम नहीं बनता है ? खैर, यहाँ का राजा ब्राह्मणों को दो मासा सोना हमेशा देता है। वहाँ जा तो

मासा सोना तो ला कि जिससे मेरा गुजारा होगा। कपिल हमेशा दो मासा सोने के लिये जाता पर दूसरे ब्राह्मण पहिले आकर राजा से सोना लेजाते। आखिर एक दिन कपिल अर्द्धरात्रि के समय उठ कर गया तो पुलिस वाले ने पकड़ लिया और सुबह जाकर राजा के सामने खड़ा किया। राजा ने कपिल से रात्रि में आने का कारण पूछा ? उसने अपने नगर से निकला वहाँ से रात्रि समय का सब हाल था वैसा सत्य कह सुनाया। कपिल की सत्यता पर मंत्रमुग्ध बन राजा ने वरदान दे दिया कि ब्राह्मण जो तेरी इच्छा हो मांग ले मैं देने को तैयार हूँ। कपिल ने सोचा कि जब राजा ने बरदान ही दे दिया है तो अब दो मासा सोना ही क्यों मांगें, मांगलें एक तोला पर पुनः सोचा कि एक तोले से क्या होगा मांगलें सौ, हजार, लाख, करोड़, तोला इस प्रकार कपिल की तृष्णा यहाँ तक बढ़ गई कि राजा का राज ही क्यों नहीं मांग लिया जाय परन्तु कपिल ने सोचा कि अहो तृष्णा ? कि दो मासा सोने के लिये मैं आया था पर तृष्णा यहाँ तक बढ़ गई कि राज से भी संतोष नहीं। इस प्रकार कपिल की सुरत संतोष की ओर बढ़ती २ संसार की असारता तक पहुँची और त्याग भावना आते ही देवता ने ओघा मुहपत्ती लाकर देदिये। कपिल साधु बन गया उसकी भावना यहाँ तक प्रशस्त हो गई कि कैवल्य ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने अपने ज्ञान से जाना कि राजगृह नगर के पास अट्ठारह योजन की अटवी है और उसमें वलभद्रादि पाँचसौ चोर हैं वे मेरे उपदेश से प्रतिबोध पाने वाले हैं। अतः कपिल केवली वहाँ गया और चोरों ने कहा हमें कुछ गायन करके सुनाओ कपिल ने कहा विना वाजित्र के नाच एवं गायन हो नहीं सकता है। पांचसौ चोरों ने कहा हम हस्त ताल बजावेंगे तुम नाचकर गायन करो। तब कपिल केवली ने गायन करते हुये निम्न लिखित गाथा कही।

"अधुवे असासयम्मी संसारम्मी दुक्ख पउराए। किं नाम हो ज्जतं कम्मयं, जेणाहंदोग्गइंनगच्छे जा॥"

इस गाथा से ५०० चोरों को प्रतिबोध करके उन सबको दीक्षा देकर उनका उद्धार किया। महानुभावो ! इस उदाहरण से आप स्वयं सोच सकते हो कि तृष्णा कहाँ तक पहुँचती है और जब मनुष्य को सन्तोष की लहर आती है तब आत्मा किस आनन्द का अनुभव करता है। आत्मा का कल्याण न राजपाट में न धन धान्य में न सोना चाँदी रत्न माणिक में पर आत्मा का कल्याण इसका त्याग करने में है। पूर्व जमाने में बड़े २ चक्रवर्ती छः खंड की ऋद्धि पर लात मार कर मुनि पद को स्वीकार किया था तब ही उनको सन्तोष एवं कल्याण प्राप्त हुआ। क्या मैं उम्मेद कर सकता हूँ कि मेरे इस सारगर्भित उपदेश का कुछ प्रभाव आप लोगों पर भी पड़ेगा ? एक तो उस जमाने के लोग लघु कर्मी थे दूसरे उन लोगों को इस प्रकार का उपदेश कभी २ ही मिलता था तीसरे उपदेश दाताओं के भी यश नाम कर्म का उदय और ऐसा ही प्रभाव था। बस, वे महानुभाव थे कुंवा के कबूतर कि सूरिजी महाराज की फटकार के साथ उपदेश लगते ही पूरे ५० नरनारी दीक्षा लेने को तैयार हो गये अहहा ! वह कैसा भद्रिक जमाना था, वे कैसे हलुकर्मी जीव थे, उन्होंने पूर्व जन्म में कैसे शुभ कर्मोपार्जन किये थे और उनके मोक्ष कितनी नजदीक थी कि बात की बात में घर-संसार त्याग कर दीक्षा लेने को तैयार हो जाते थे। सूरिजी महाराज ने वहाँ कुछ दिन स्थिरता कर उन भावुकों को दीक्षा दी तथा अन्य लोगों ने भी त्याग प्रत्याख्यान कर लाभ उठाया।

तदनन्तर सूरिजी महाराज ने अन्यत्र विहार कर दिया और आवंती मेदपाट में उपदेश करते हुये मरुधर में पदार्पण किया तो मरुधर वासियों के हर्ष का पार नहीं रहा क्योंकि मरुधर वासी पहिले से ही सूरी

श्वरजी की प्रतीक्षा कर रहे थे। सूरिजी शाकम्भरी, हंसावली, भरहटपुर पद्मावती कुर्च्चपुर होते हु पधारे। वहाँ के श्रीसंघ ने आप श्रीका बड़े ही समारोह से सत्कार किया। नागपुर में आदित्यना शाह कानड़ ने भगवान पार्श्वनाथ का मंदिर बनाया था जिसकी प्रतिष्ठा सूरिजी के कर कमलों से शाह कानड़ ने इस प्रतिष्ठा में सवा लक्ष्य द्रव्य व्यय कर जैनधर्म की अच्छी प्रभावना की। वहाँ मुग्धपुर, खटकुंपनगर, संखपुर, आसिकदुर्ग, हर्षपुर, मेदिनीपुर, माडव्यपुर होते हुए उपकेशपुर पधारे वहाँ के श्रीसंघ के उत्साह का पार नहीं था। कारण प्रथम तो आप उपकेशपुर के सुपुत्र जैनधर्म की प्रभावना कर आपने दीक्षा ली थी तीसरे आप आचार्य पद से विभूषित हो जैन पताका फहराते हुये पधारे। ऐसा कौन हतभाग्य हो कि जिसे अपनी मातृभूमि का गौरव न हो? सूरिजी महाराज का बड़े ही उत्साह से नगर प्रवेश महोत्सव किया। चतुर्विध श्रीसंघ के साथ महावीर और आचार्य रत्नप्रभसूरि की यात्रा कर जीवन को सफल बनाया।

सूरिजी महाराज दीक्षा लेने के पश्चात् अब ही पधारे थे। जनता की खूब भक्ति थी। सूरि व्याख्यान मधुर रोचक और प्रभावोत्पादक था। जनता खूब उत्साह से सुनती थी। जैन ही क्यों पर लोग भी लाभ उठाते थे। एक दिन सूरिजी महाराज ने फरमाया कि शास्त्रकारों ने मोक्ष मार्ग स लिये मुख्य दो रास्ते बतलाये हैं १-मुनिधर्म २- गृहस्थ धर्म जिसमें मुनि धर्म की विशेषता है परन्तु का अधिकारी वही हो सकता है कि जिसमें मुनिधर्म पालन करने की योग्यता हो। केवल शारिरि जैसे नंगे सिर, नंगे पैर चलना, शिर का लोच करना, शीतोष्णादि परिसह सहन करना आदि को पद नहीं कहा जाता है पर मुनि पद मन की वृत्तियों पर निर्भर है अगर मन वश में नहीं हुआ हो तो रिक कष्ट न तो आते हुए कर्मों को रोक सकता है और न पूर्व कर्मों की सम्यक निर्ज्जरा ही कर सक इतना ही क्यों पर शास्त्रकारों ने तो यहाँ तक भी कहा है कि:—

चिरं पि से मुँडरुई भवित्ता, अथि-रव्वए तवनियमेहिं भट्ठे ।
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता, न पारए होइ हु संपराये ॥
पोल्लेव मुट्ठी जह से असारे, अयंतिए कूडकहावणे वा ।
राढामणी वेरुलियप्पगासे, अमहग्घए होइ य जाणएसु ॥
कुसीललिंगं इह धारइत्ता, इसिज्झयं जीविय वूहइत्ता ।
असंजए संजय लप्पमाणे, विणिघायमागच्छइसेचिरंपि ॥
विसं पिबित्ता जह कालकूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं ।
एसेव धम्मो विसओववण्णो, हणाइ वेयाल इवाविवण्णो ॥
उद्देसियं कीयगडं नियागं, न मुंचई किंचि अणेसणिज्जं ।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता, इओ चुए गच्छइ कट्टु पावं ॥
न तं अरी कंठछेत्ता करेति, जंसे करे अप्पणिया दुरप्पा ।
से नाहिती मच्चुमुहं तु पत्ते, पच्छाणुतावेण दयाविहूणे ॥

१४—मुजपुर के	श्रीमालवंशी	भगा	ने	सूरिजी के पास	दीक्षा ली
१५—चावड़ी के	प्राग्वट वंशी	पोलाक	ने	,,	,,
१६—करणावती के	प्राग्वट वंशी	जाकण	ने	,,	,,
१७—भद्रावती के	मोरक्षगो०	गोंदा	ने	,,	,,
१८—त्रिपुरा के	कनोजिया०	जोगड़	ने	,,	,,
१९—देवपुर के	चिंचटगो०	पाथु	ने	,,	,,
२०—जानपुर के	मल्लगो०	गुणपाल	ने	,,	,,
२१—रत्नपुर के	चरड़गो०	मुकुद	ने	,,	,,
२२—बड़गाँव के	सुघड़गो०	ढढर	ने	,,	,,
२३—मिसाला के	श्रेष्टिगो०	मुकंद	ने	,,	,,
२४—दशपुर के	बाप्पनागगो०	मेहराय	ने	,,	,,
२५—उज्जैन के	कुलभद्रगो०	रावल	ने	,,	,,
२६—रायपुर के	प्राग्वट वंशी	रामा	ने	,,	,,
२७—देवलागढ़ के	प्राग्वट वंशी	भादू	ने	,,	,,

इनके अलावा कई स्त्रियों को तथा आपके आज्ञावृति मुनिश्वरों ने भी कई मुमुक्षुओं को दीक्षायें दी थी यही कारण था कि आपका शासन में बहुत सी प्रान्तों में मुनि महाराज विहार कर जैनधर्म का प्रचार खूब जोरों से कर रहे थे कई मुनि अलोकिक विद्या और लब्धियों को धारण करने वाले भी थे जिससे भी वे अपने कृत कार्य में सफलता हासिल कर शासन की कीमती सेवा बजाई थी :—

आचार्य्य सिद्धसूरीश्वरजी के समय वादी प्रतिवादियों के साथ कई प्रकार के शास्त्रार्थ भी हुए करते थे उनके सामने भी दट कर रहना पड़ता था कई राजा महाराजाओं की सभाओं में आप स्वयं एवं आपके विद्वान् मुनि वादियों के साथ शास्त्रार्थ कर जैन धर्म की विजय विजयंति चारों ओर फहरादी थी और ज्यों ज्यों वे देश विदेश में घूम घूम कर नये जैन बनाते थे त्यों त्यों उनके आत्मकल्याण के लिये अनेक ग्रन्थों का निर्माण और नये नये मन्दिरों की प्रतिष्टाएँ भी करवा देते थे कारण वे भविष्य वेता इस बात को अच्छी तरह से जानते थे कि इस कलिकाल में धर्म के ये दो ही स्थम्भ है। १ आगम-शास्त्र २ मन्दिर।

आचार्य्य श्री के शासन में मन्दिरों की प्रतिष्टाएं

१—स्यानपुर के श्रेष्टिवार्य० कल्हण के	बनाये	महावीर	मन्दिर की	प्रतिष्टा
२—सोपारपट्टन के कुलीरात्र० रावण के	,,	,,	,,	,,
३—मदनपुर के करणाट० करण के	,,	,,	,,	,,
४—चंदेरीपुरी के बाप्पनाग बालड़ के	,,	पार्श्वनाथ	,,	,,
५—दशपुरनगर के आदित्यनाग सालग के	,,	,,	,,	,,
६—उज्जैन नगर के भद्र गो० वीरदेव के	,,	,,	,,	,,
७—माण्डवगढ़ के सुचा गो० नारायण के	,,	,,	,,	,,

३—ऊँकारपुर से भूरि गौत्री शाह नारा ने श्री शत्रुँजय का संघ निकाला
४—आघाट से श्रदित्य० शाह जोधा ने ,, ,,
५—मथुरा से श्रेष्ठिगौ० शाह आदू ने ,, ,,
६—विराट् नगर से बाप्पनाग० शाह देदा ने ,, ,,
७—मेदिनीपुर से भाद्र गौ० शाह नागदेव ने ,, ,,
८—चंदेरी से कन्नोजिया गौ० शाह देवा ने ,, ,,
९—रामपुरा से वलाह गौ० शाह रावल ने ,, ,,
१०—खटकूंप से करणाट गौ० शाह गोपाल ने ,, ,,
११—उपकेशपुर से श्रेष्ठि गौ० शाह रतना ने ,, ,,
१२—रत्नपुर से सुचंति गौ० शाह हीरा ने ,, ,,
१३—क्षत्रीपुरा के ब्राह्मण शिवदास ने ,, ,,
१४—तावावती के चरड गौ कुंभा युद्ध में काम आया उसकी स्त्री सती हुई
१५—पाल्हिका के श्रेष्ठिवीर भाणा युद्ध मे. ,, ,,
१६—उच्चकोट के मन्त्री राणो युद्ध में ,, ,,
१७—शिवगढ़ के श्रेष्ठिनारायण युद्ध में ,, ,,
१८—गोसलपुर के राव रुद्राट ,, ,, ,,
१९—डमरेल के श्रेष्ठि सांगा ,, ,, ,,

आचार्यश्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज महान् प्रतिभाशाली आचार्य हुए हैं आप अपने सोलह वर्ष शासन में कई प्रान्तों में विहार कर जनधर्म का प्रचार एवं प्रभावना कर खूब कीमति सेवा की ऐसे महापु का हम जितना उपकार माने उतना ही थोड़ा है उस विकट अवस्था में जैन धर्म जीवित रह सका यह महान् उपकारी पुरुषों के उपकार का ही मधुर फल है यदि ऐसे परमोपकारी पुरुषों का एक क्षण भरी हम उपकार भूल जावे तो हमारे जैसा कृतघ्नी इस संसार में कौन हो सकेगा ? अतः हमें समय समय महान् उपकारी पुरुषों का उपकार को याद करना चाहिये—

श्रेष्टिकुल अवतंस पच्चीसवें, सिद्धसूरि गुण भूरि थे।
जैनधर्म के आप दिवाकर, शासन के वर धूरि थे ॥
विद्या और सिद्धि ये दोनों, वरदान दिया यशवारी को।
शासन का उद्योत किया गुरु, वन्दन हो उपकारी को ॥

॥ इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के २५ वें पट्टपर आचार्य सिद्धसूरीश्वर महाप्रभाविक आचार्य हुये ॥

भगवान महावीर की परम्परा—

भगवान महावीर की परम्परा में १—सौधर्माचार्य २ जम्बु ३ प्रभव ४ शय्यंभव ५ यशोभद्र ६ सभूति विजय–भद्रबाहु ७ स्थुलिभद्र ८ महागिरी–सुहस्ती ९ सुस्थि–सुप्रतिबुद्धि १० इन्द्र दिन्न ११ आर्य दिन्न १२ सिंहगिरी ३ आर्य्यवज्र १४ आर्य वज्रसेन। इन सबका वर्णन पूर्व प्रकरणों में लिखा जा चुका है। आर्य वज्रसेन के साथ कदर्पि यक्ष की घटना बनी उसको यहाँ लिख दी जाती है।

आर्य वज्रसेनसूरि विहार करते हुए मधुमति नगरी में पधारे। उस नगरी में एक कदर्पि नामक वणकर रहता था उसके आडी और कुहाडी नाम की दो स्त्रियाँ थी वे भक्षाभक्ष एवं पयापय में विवेक रखती थीं पर कदर्पि अभक्ष एवं अपय में अशक्त होकर माँस मदिरा का सेवन करता था इस हालत में उसकी दोनों स्त्रियों ने उपालम्ब दिया जिससे कदर्पि क्रोधित होकर जंगल में जाकर एवं चिन्तातुर होकर बैठ गया। इधर से सूरिजी महाराज थंडिल भूमि को पधार रहे थे। कदर्पि ने आचार्य श्री को देखकर खड़ा हुआ और वन्दन नमस्कार किया आचार्य श्री ने कदर्पि को अल्पायुः वाला जान कर उपदेश दिया कि तूँ कुछ व्रत नियम ले जिससे तुम्हारा कल्याण हो। इस पर कदर्पि ने कहा प्रभो! आप उचित समझे वह प्रत्याख्यान करवादें आचार्यश्री ने कहा कि तू भोजन करे तब उसके पूर्व कंदोरा की देरी की गाँठ छोड़ "नमो अरिहन्ताणं" शब्द का उच्चारण करना जब भोजन करले तो फिर गाँठ लगा देना अर्थात् जब तक गाँठ रहे तेरे पच्चखान हैं कुछ खाना पीना नहीं और जब गाँठ छोड़ दे तब तू खुल्ला है एक नवकार कह कर भोजन कर सकता है इसको गंठसी प्रत्याख्यान कहते हैं। कदर्पि ने गुरु वचन को स्वीकार कर लिया परन्तु उसको माँसादिका व्यसन पड़ा था उसको छोड़ नहीं सका। एक समय में किसी ने मैदान में माँस पकाया था। आकाश में कोई गरुड़ एक सर्प को मुँह में लेकर जा रहा था उस सर्प के मुँह से विष गिरा वह पकता हुआ माँस में पड़ गया। उस माँस के खाने में कदर्पि भी शामिल था बस! माँस खाते ही उसका शरीर विष व्याप्त हो गया और थोड़ी देर में कदर्पि कालकर व्रत के प्रभाव से व्यन्तरदेव की योनि में जाकर देवपने उत्पन्न हो गया!

जब कदर्पि की दोनों स्त्रियों को मालुम हुआ कि मेरा पति एक महात्मा की संगत में रहा था और उन्होंने कुछ सिखाया जिससे मेरा पति मर गया अतः उन दोनों ने राजा के पास जाकर कहा कि इन महात्मा ने मेरे पति को मार डाला है! राजा ने बिना सोचे समझे आचार्यश्री को बुलाकर पहरा में बैठा दिया? उधर कदर्पि का जीव व्यन्तरदेव हुआ था उसने उपयोग लगाया तो परोपकारी आचार्यश्री निर्दोष होने पर भी राजा ने उनका अपमान किया अतः उसने नगर के प्रमाण वाली एक शिला विकुर्वी जिसको देख राजा प्रजा घबरा उठे और देव से प्रार्थना की कि यदि हमारा अपराध हुआ हो तो क्षमा करावे! देव ने कहा अरे मूर्खों ऐसे विश्वोपकारी महात्माओं का अपमान करते हो यह शिला तुम अपराधियों के लिये बनाई है नगर पर डालते ही तुम्हारा और नगर का विनाश हो जायेगा! इतना कहते ही राजा प्रजा ने सूरीश्वरजी के चरणों में नमस्कार कर अपने अपराध की क्षमा मांगी और खूब गाजे बाजे के साथ सूरिजी को उपाश्रय में पहुँचाया तब जाकर उपद्रव की शान्ति हुई! देव कदर्पि ने कहा पूज्यवर! मैंने जिन्दगी भर पाप कर्म संचय किया पर केवल एक वचन (नवकार) के स्मरण मात्र से मैं इस देव ऋद्धि को प्राप्त हुआ हूँ अतः कृपाकर कोई कार्य बतलावें कि मैं उसको कर कृतार्थ बनूं! सूरिजी ने कहा देव! नवकार मंत्र ऐसी औषधि है कि

कई भवों के कर्म रूप रोग को मिटा कर मोक्ष रूप अक्षय आरोग्यता प्रदान करता है। हम साधुओं के क काम होता है यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यह पुनीत तीर्थश्रीशत्रुँजय है इसकी सेवा भक्ति कर सुलभबोधि उपार्जन करो ! देवने सूरिजी के हुक्म को स्वीकार कर लिया और सूरिजी ने कदर्पि यक्ष को शत्रुँजय अधिष्ठायक पने स्थापन कर दिया इति कदर्पि यक्ष का सम्बन्ध !

१५—आचार्य चन्द्रसूरि— आप श्री का वर्णन आचार्य यक्षदेवसूरि तथा आर्य वज्रसेनसूरि के जीव में आ चुका है कि आप सोपरपट्टन के उकेसिय गोत्र के जिनदास सेठ की ईश्वरी सेठानी के अनेक पुत्रों एक होनहार भाग्यशाली पुत्र थे ! दुकाल के अन्त में आप अपने नागेन्द्र निर्वृति और विद्याधर भ्राताओं साथ वज्रसेनसूरि के कर कमलों से दीक्षित हुए थे सोपारपट्टन में आचार्य यक्षदेवसूरि के पास ज्ञानाभ्या कर रहे थे। अकस्मात् वज्रसेनसूरि का स्वर्गवास होगया। आचार्य यक्षदेवसूरि ने आपको पूर्वो एवं अंगों अध्ययन करवा कर सूरि पद प्रदान किया था। आप बड़े ही प्रतिभाशाली एवं जैन शासन के प्रभाविक पुरु थे आपका बिहार क्षेत्र कांकण सौराष्ट्र आवंती मेदपाट और मरुधर प्रान्त तक था आपके शिष्यों का सम दाय भी विशाल था आपका समय बड़ा ही विकट था तथापि जैनधर्म का प्रचार के लिये आपने बहुत प्रय किया था ! आपकी सन्तान चन्द्रकुल के नाम से ओलखाई जाति थी इस कुल में बड़े बड़े प्रभाविक आचा हुए ! जिन्हों का हम आगे यथास्थान वर्णन करेंगे आपश्री ने आचार्य यक्षदेवसूरि का महान उपकार मान और उनके प्रभाव से ही आप इस स्थिति को प्राप्त हुए थे इत्यादि।

१६—श्री सामन्तभद्रसूरि— आप आचार्य चन्द्रसूरि के पट्टधर थे आपका ज्ञान समुद्र के सदृ अगम्य था। एकादशांग के अलावा आप कई पूर्वों के भी पाठी थे आपके निरातिचार चरित्र और कठोर त का प्रभाव राजा महाराजा पर तो क्या पर कई देव देवियों पर भी पड़ता था आप नगरों की अपेक्षा वन उपवन एवं जंगलों में रहना विशेष पसन्द करते थे इनसे एक तो गृहस्थों का परिचय कम दूसरा उपाधि कम तीसरा ध्यान की सुविधा आसन समाधि योग साधना निर्विघ्न तय बन सकता था ! इत्यादि अनेक लाभ थे। आचार्य महागिरिजी से यह प्रवृति चली आ रही थी परन्तु बीच में कई भयंकर दुकाल के कारण अधिक मुनि नगरों में रहना पसन्द कर लिया था तथापि जंगलों में रहने वाले भी बहुत मुमुक्षु उस समय विद्यमान थे। आपके शासन समय यह भी प्रवृति थी कि आचार्य अपने शिष्यों में जिसको योग्य समझते उनको गच्छ भार सुपर्द कर आप इस प्रकार जंगलों में रहकर अन्तिम सलेखना किया करते थे ! आचार्य सामन्तभद्र के पूर्व ही जैनशासन में दो समुदायें बन चुकी थीं श्वेताम्बर—दिगम्बर। आचार्य श्री ने इन दोनों को एक बनाने में खूब ही प्रयत्न किया परन्तु कलिकाल की क्रूरता के कारण आपका प्रयत्न सफल नहीं हुआ और दिन ब दिन समुदायिकता बढ़ती ही गई।

आचार्य श्री जंगलों में रहते हुए भी जन कल्याणार्थ कई ग्रंथों का भी निर्माण किया था जैसे आप्त मीमंसा यह एक न्याय का अपूर्व ग्रंथ है तथा युक्त्यनुशासन, स्वयंभूस्तोत्र, जिनस्तुति शतक आदि कई ग्रंथ बनाये थे। सामन्तभद्राचार्य नामक एक आचार्य दिगम्बर समुदाय में भी हुये हैं इन दोनों आचार्य का समय भी मिलता जुलता ही है शायद आप जंगलों में रहने के कारण दोनों के सामन्तभद्र एकही हों अर्थात् सामन्त भद्राचार्य को दोनों समुदाय वाले समान दृष्टि से मानते हैं। पर सामन्तभद्रा के गुरु एवं शिष्य परम्परा तो श्वेताम्बर पट्टावलियों में लिखी है वह दिगम्बर में नहीं मिलती है अतः सामन्तभद्राचार्य श्वेताम्बर समुदाय

में हुए हैं और उनका निर्ग्रन्थपना के कारण शायद दिगम्बर अपने आचार्य मानते हों खैर कुछ भी हो सामन्तभद्राचार्य महा प्रभाविक बन में विहार करने वाले एक आचार्य हुए और आपके बनवास के कारण ही आपके सन्तान का नाम बनवासी गच्छ हुआ है, इनके पूर्व निर्ग्रन्थ एवं कोटीगण कहलाता था।

१७—आचार्यवृद्धदेवसूरि—आपका नाम तो देवसूरि था पर आप आचार्य पद के समय वृद्धावस्था में होने के कारण आपको वृद्धदेवसूरि कहा जाता था पट्टावलिकारों ने आपके चरित्र विषय में विशेष वर्णन नहीं किया है पर प्रभाविक चरित्र में आचार्य मानदेवसूरि के प्रबन्ध में आप श्री के विषय में भी कुछ उल्लेख किया हुआ मिलता है तथाच—

१ तत्र कोरंटकं नामपुर मस्त्युन्नताश्रयम् ! द्वि जिव्हा विमुखा यत्र विनता नदंना जनाः !! ५
तत्रास्ति श्रीमहावीर चैत्यं चैत्यं दध द्दम ! कैलासशैल वद्भाति सर्वाश्रयतया नया !! ६
उपाध्यायोस्ति तत्र श्री देवचन्द्र इति श्रुतः ! विद्वद्वृन्द शिरो रत्न तमस्त तिहरो जने !! ७
आरण्यकतपस्यायां नमस्यायां जगत्यपि ! सक्त शक्तां तरंगारिविजये भवतीरभूः !! ८
सर्वदेवप्रभुः सर्वदेव सद्ध्यान सिद्धिभृत् ! सिद्धक्षेत्रे यियासुः श्री वाराणस्या समागमत् !! ९
बहु श्रुत परिवारो विश्रांत स्तत्र वासरान् ! कांश्चित्प्रबोध्य तं चैत्यव्यवहार ममोचयत् !! १०
स पारमार्थिकं तीर्थं धरे द्वादशधा तपः ! उपाध्यायस्ततः सूरि पदे पूज्यैः प्रतिष्ठितः !! ११
श्री देवसूरिरित्याख्या तस्य ख्यांतिं ययौ किल ! धूयंतेऽद्यापि वृद्धेभ्यो वृद्धास्ते देव सूरयः !! १२
श्री सर्वदेव सूरिशः श्री मच्छत्रुंजये गिरौ ! आमार्थं साधयामास श्रीनाभेयैकवासन !! १३ प्र०च०

"सप्तशतिदेश (सिरोही और मारवाड़ की सरहद) में कोरंटपुर नाम का एक समृद्धशाली नगर है वहाँ के लोग बड़े ही धनाढ्य और धर्म कर्म करने में सदैव तत्पर रहते हैं उस नगर में धर्म की दृढ़ नींव एवं धर्म मर्य्यादा को नव, ल्लवित करने वाला भगवान महावीर[2] का मन्दिर जो कैलाश पर्वत के सदृश

१— कोरंटपुर का नाम प्राचीन पट्टावलियों में कोलापुर पट्टन के नाम से लिखा है आचार्य रत्नप्रभसूरि ५०० मुनियों के साथ जब उपकेशपुर पधारे थे वहां सब साधुओं का निर्वाह होता नहीं देखा तो सूरिजी महाराज ने साधुओं को विहार की आज्ञा दे दी थी ४६५ साधु विहार कर कोरंटपुर नगर में चतुर्थमास कर दिया। कोरंटपुर में इतने साधुओं का निर्वाह कैसे हो गया ? आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने श्रीमाल-पद्मावती में हजारों घरों वालों को जैन बनाने के बाद कोरंटपुरादि आस-पास के प्रदेश मे विहार कर वहाँ भी हजारों लाखों लोगों को जैन बनाये वे लोग वहाँ बसते थे और उनकी संख्या इतना प्रमाण में थी कि ४६५ मुनियों का सुख पूर्वक निर्वाह हो सका।

२—कोरंटपुर में महावीर का मंदिर है उसकी प्रतिष्ठा आचार्य रत्नप्रभसूरि ने करवाई थी जिसका समय वीर निर्वाण के पश्चात् ७० वर्ष का है पट्टावलि में उल्लेख मिलता है कि—

उप श च कोरंटे ! तुल्यं श्री वीर बिम्बयो। प्रतिष्ठा निर्मित शक्त्या, श्री रत्नप्रभसूरिभि ॥ १ ॥

३—आचार्य रत्नप्रभसूरि के लघु गुरु भाई कनकप्रभ को कोरंट संघ की ओर से आचार्य पद प्रदान किया गया और उनका अधिक विहार कोरंटपुर के आस पास होने से आपके समुदाय का नाम कोरंटगच्छ पड़ गया इस गच्छ के आचार्यों ने लाखों नूतन श्रावक बनाये थे जैसे बोत्थरा, धाड़ीवाल, रातडीया, मींनी, खांजसरादि कई जातियां आज भी विद्यमान हैं। अतः कोरंटपुर नगर महावीर मन्दिर और कोरंटगच्छ ये बहुत प्राचीन हैं।

४—पट्टावलियादि ग्रन्थों में चैत्यवास का समय वीरात् ८८२ का लिखा है शायद यह समय चैत्यवासियों की प्रबल सत्ता का होगा परन्तु उपाध्याय देवचन्द्र के पूर्व ही चैत्यवास प्रारम्भ हो गया था जिसके लिये ऊपर दिए हुए प्रमाण से साबित होता है और हम आगे चल कर एक चैत्यवास प्रकरण अलग एवं स्वतन्त्र ही लिखेंगे।

मुमुक्षुओं को आनन्द का देने वाला है। उस मन्दिर की सेवा पूजा उपासना करने वाले बहुत से सुबुद्धि लोग बसते हैं ! उस मन्दिर में एक देवचन्द्र नामक उपाध्याय भी रहते हैं और उस मन्दिर की सब व्यवस्था उपाध्यायजी द्वारा ही होती है।

उसी समय सुविहित शिरोमणि महान प्रभाविक सर्वदेवसूरि नामक एक आचार्य बनारसी से सिद्धगिरी की यात्रार्थ बिहार करते हुए कोरंटपुर नगर में पधारे। वहां के श्रीसंघ ने आचार्यश्री का सुन्दर स्वागत किया संघ की भक्ति देख सूरिजी ने कई दिन तक वहां स्थिरता की। तब आपश्री ने सुना कि यहां महावीर मन्दिर में एक देवचन्द्र उपाध्याय रहता है वह गीतार्थ एवं विद्वान होता हुआ भी महावीर मन्दिर की सब व्यवस्था करते हैं जो साधु धर्म के लिये अकल्पनिक है ! अतः आचार्य सर्वदेवसूरि ने उपाध्याय देवचन्द्र को हितकारी एवं मधुर उपदेश देकर उनको समझाया और उपाध्यायजी भी समझ गये जब उन्होंने मन्दिर की व्यवस्था एवं चैत्यवास का त्याग कर उग्रविहार करना स्वीकार कर लिया तब आचार्य सर्वदेवसूरि ने उनको योग्य समझकर सूरिपद से विभूषित कर दिये और आप सामन्तभद्रसूरि के पट्टधर * वृद्धदेवसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए ! पट्टावली एवं प्रबन्धकार लिखते हैं कि आचार्य वृद्धदेवसूरि बड़े ही तपस्वी थे आपने अपनी अन्तिम व्यय में अपने पट्टधर मुनि प्रद्योतन को आचार्य बनाकर आप अनसन एवं समाधि पूर्वक स्वर्ग पधार गये।

१८ आचार्य प्रद्योतनसूरि महाप्रतिभाशाली उग्रविहारी एवं धर्मप्रचारी एक जबर्दस्त आचार्य हुए। आप भू भ्रमण करते हुए एक समय मारवाड़ की ओर बिहार किया और क्रमशः नारदपुरी नगरी में पधारे संघ ने आपका अच्छा सत्कार किया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ता था उसी नगर में एक श्रेष्ठि† जिनदत्त बड़ा ही धनेश्वरी एवं श्रद्धा सम्पन्न श्रावक रहता था और आपके गृहदेवी का नाम धारणी था आपके एक मानदेव नाम का पुत्र भी था वह भी सूरिजी का व्याख्यान सुना करता था एक दिन आचार्यश्री ने संसार की असारता, लक्ष्मी की चंचलता, कुटुम्ब की स्वार्थता और आयुष्य की अस्थिरतादि का उपदेश दिया और साथ में दीक्षा का महत्व और आत्म कल्याण करने की परमावश्यकता समझाई। यों तो आपके व्याख्यान का प्रभाव सब लोगों पर हुआ ही था पर श्रेष्ठि पुत्र मानदेव की आत्मा पर तो इस कदर असर हुआ कि उसने सूरिजी से अर्ज की कि हे प्रभो ! मैं मेरे माता पिता की आज्ञा लेकर आपके चरण कमलों में दीक्षा लूंगा ? सूरिजी ने कहा 'जहा सुखम्' मानदेव आचार्य श्री को वन्दन कर अपने घर पर आया और माता पिता से दीक्षा के लिये आज्ञा मांगी परन्तु मोहकर्म की पाश में बन्धे हुए माता पिता कब चाहते थे कि मानदेव हमको छोड़ दीक्षा ले ले ? परन्तु जिसको संसार से घृणा आ गई हो वह इस कारागृह में कब रह सकता है आखिर माता पिता की आज्ञा लेकर मानदेव सूरिजी की सेवा में भगवती जैन दीक्षा ले ही ली। मुनि मानदेव गुरुदेव का विनय भक्ति करके जैनागमों—अंग उपांग मूल छेदादि वर्तमान समग्र साहित्य का अध्ययन कर लिया और भी ऐसे अलौकिक गुणों को हासिल

---

* आचार्य सामन्तभद्र और उपाध्याय देवचन्द्र के आपस में क्या सम्बन्ध था इस विषय का प्रबन्धकार ने कुछ भी खुलासा नहीं किया है। उपाध्याय देवचन्द्र के समय चैत्यवास की बहुलता होगी पर सुविहितों का भी सर्वथा अभाव नहीं था और सुविहित उस समय इस प्रकार के चैत्यवास को हेय समझते थे यही कारण है कि सर्वदेवसूरि ने देवचन्द्रोपाध्याय को चैत्य की व्यवस्था करने से मुक्त कर उग्र विहार बनाया।

† आचार्य रत्नप्रभसूरि स्थापित महाजन संघ के अठारह गौत्रों में श्रेष्टि गौत्र छट्ठा है।

किया कि जिससे खुश होकर आचार्य श्री ने अपने पट्ट पर मुनि मानदेव को आचार्य बना कर अपना सर्वाधिकार मानदेवसूरि को सौंप दिया।

१९ आचार्य मानदेवसूरि बालब्रह्मचारी एवं उत्कृष्ट तपस्वी होने के कारण जया और विजय दो देवियां आपके चरण कमलों में हमेशा वन्दन करने को आया करती थी कई पट्टावलियों में लक्ष्मी और सरस्वती इन दो देवियों के नाम लिखा है परन्तु ऐसे महापुरुषों के दो चार नहीं पर इनसे भी अधिक देव-देवियाँ सेवा करते हों तो क्या आश्चर्य की बात है। गुणी जन सर्वत्र पूजनीय होते हैं।

आचार्य मानदेवसूरि अपने शेष जीवन में ६ विगइ के त्याग कर दिया था प्रायः आप अज्ञातकुल की गौचरी करते थे और पिछली अवस्था में आप नारदपुरी (नाडोल) में भगवान नेमिनाथ के चैत्य (मन्दिर) में ही विराजते थे इससे पाया जाता है कि चैत्य में सुविहित आचार्य भी ठहरते थे और साधु चैत्य में ठहरें तो कोई दोष भी नहीं है दोष है। ममता एवं सावद्य कार्य करने का इस विषय में हम आगे एक चैत्यवास प्रकरण स्वतंत्र रूप में लिखेंगे।

पंजाब की सरहद पर अलकापुर की सदृश तक्षशिलापुरी * नगरी थी वहां जैनों के ५०० मन्दिर थे और लाखों भावुक धनधानपूर्ण और कुटुम्ब परिवार से समृद्ध श्रावक लोग बसते थे समय समय पर जैनाचार्यों का शुभागमन भी हुआ करता था उसमें भी उपकेशगच्छाचार्यों का विशेष पधारना होता था जब वे पंजाब में आते थे तब तक्षशिला की स्पर्शना अवश्य किया करते थे। कहा है कि सदैव एक सी स्थिति किसी की भी नहीं रहती है एक समय सुवर्णमय द्वारामति स्वर्ग समान शोभा देती थी पर दिन आने पर वह जल कर भस्मीभूत हो गई थी यही हाल आज तक्षशिला का हो रहा है जहां देखो मरकी का उपद्रव से पशुओं की भाँति मरे हुए मनुष्य की लाशें नजर आ रही थीं पशु पंखी तथा राक्षसों को खून और मांस से तृप्ती हो रही थी इस उपद्रव ने तो चारों ओर त्राहि त्राहि मचादी थी इतना ही क्यों पर मन्दिरों का भी पता नहीं कि वहाँ पूजा होती है या नहीं एक समय संघ अग्रेश्वर मन्दिर में एकत्र होकर विचार किया कि सुख शान्ति के दिनों में अधिष्टायिक एवं शासन देव देवियां आते जाते और दर्शन भी देते पर इस महान संकट के समय सब देव देवी कहां चले गये कि संघ के अन्दर इस प्रकार संकट, मन्दिरों की पूजा का पता नहीं जिसमें इतनी इतनी प्रार्थना कराने पर प्रसाद चढ़ाने पर भी कोई नहीं आता है इसका कारण क्या होगा ? इस प्रकार संताप करते हुए संघ को देख शासन देवी अदृश्य रहकर बोली कि आप इस प्रकार खेद क्यों करते हो इसमें शासन देव देवियों का कोई भी दोष नहीं है कारण दुष्ट मलेच्छों के देवों ने इस प्रकार क्रूरता की है कि उसके सामने हमारी कुछ चल नहीं सकती है ! जैसे इज्जतहीन नंगे लुच्चों के सामने इज्जतदार साहूकारों की नहीं चलती है पर मैं आपको यह भी कह देती हूँ कि इस नगरी का तीन वर्षों के बाद भंग होगा अतः इस उपद्रव से बच कर तुम यहां से चले जाना ? इस पर संघ ने कहा कि तीन वर्ष बाद रहेगा कौन ? यदि इस उपद्रव से बचने का कोई उपाय नहीं मिला तो सब लोग स्मरन हो जायेंगे और दे

---

* अथ तक्षशिलापुर्यां चैत्य पंचशती नृति ! धर्म क्षेत्रे तदा जज्ञे गरिष्टमरिष्टं अंते !! २७
अकाल मृत्युं संपाति रोगै लोकि उपद्रुतः ! जज्ञे यथौरपं वैद्यो न गुणं न हरेत् !! २८
प्रति जागरणे म्लानं देहस्नेह प्रयाति यः ! गृहागतः स रोगेन पात्यते तत्र वै द्रुतम् !! २९
स्वजनः कोपि कस्यापि नात्रीह सनये तदा ! आक्रंद भैरवारावैदृश्यमानपुरी !! ३० २०१०

भुवन सदृश इन जिनालयों की न जाने क्या दशा होगी अतः आप कोई ऐसा उपाय बतलावें कि संघ की रक्षा हो इत्यादि ? शासन देवी ने कहा ‡ कि मैं आपको एक उपाय बतलाती हूँ कि मरुस्थल में नारदपुरि (नाडोल) नगरी में आचार्य मानदेवसूरिजी विराजते हैं उनके ब्रह्मचर्य एवं तपश्चर्या का इतना प्रभाव है कि कैसा ही उपद्रव क्यों न होवे पर उनके पधारने से सब शान्ति हो जाती है अतः तुम मानदेवसूरि को लाने का प्रयत्न करो पर मेरा पहले का कहना ध्यान में रखना कि तीन वर्षों के बाद इस नगरी का ध्वंश होने वाला है जो लोग इस नगरी को छोड़ कर अन्यत्र चले जायेंगे वह बच जायगे इत्यादि कह कर देवी तो अदृश हो गई !

श्रीसंघ ने आचार्य मानदेवसूरि को बुलाने के लिये विचार किया पर ऐसी विकट स्थिति में घर कुटुम्ब को छोड़ कर जावे कौन ? आखिर बहुत कहा तब संघ सेवा को लक्ष में रख एक वरदत्त नाम का श्रावक ने स्वीकार किया अतः संघ ने एक विनतिपत्र लिख कर वरदत्तको नारदपुरी भेजा और वह क्रमशः चलता हुआ नाडोल आया भगवान् नेमिनाथ के मंदिर में मानदेवसूरि विराजते थे समय मध्यान्ह का था । सूरिजी ध्यानमें मग्न थे उस समय हमेशा की भाँति जया-विजया दोनों देवियों सूरिजी को वंदन करने के लिये आई थी और वे एकान्त खूँणा में बैठी हुई सूरिजीके ध्यान की राय देखरही थीं । उसी समय वरदत्त निसीही पूर्व मन्दिरमें प्रवेश किया और जहाँसूरिजी थे वहां जाकर एक कोने में बैठी हुई दो युवा एवं स्वरूपवान औरतोंको देखी तो वरदत्त का दिलबदल गया और सोचनेलगा कि हमारे वहाँ की शासनदेवी हमको धोका दिया है क्या ऐसे ढूंगी एवं व्यभिचारी मनुष्यों से उपद्रव कभी शान्त हो सकता है ? इस विकाल की टाइम में साधुओंके पास एकान्त में युवा औरतें क्यों शायद हमको देख ढूंगी महात्मा ने ध्यान लगा लिया होगा इत्यादि कई विकल्प करने लगा । गुरु ध्यान न पारें वहाँ तक बाहर बैठ गुरू का छेद्र देखने लगा ! इधर तो गुरू ने ध्यान पारा उधर वरदत्त अन्दर आने लगा तो जयादेवी उसकी दुष्टता देख उसको जकड़ कर बांध लिया और कहने लगी कि रे दुष्ट तूँ ऐसे प्रभावशील आचार्य के लिये इस प्रकार दुष्ट परिणाम कर लिया परन्तु अरे विवेक शून्य तुझे दीखता नहीं है कि हमारे पैर भूमि से चार अंगुल ऊँचे हैं हमारे नेत्र अचल हैं हमारे गले की पुष्पमाला विकसित है इससे हम मनुष्य नहीं पर देवांगना है और गुरू भक्ति से प्रेरित हो हमेशा वन्दन करने को आया करती हैं । वरदत्त सुनकर लज्जित हुआ सूरिजी के कहने से देवियों ने उसको बन्धन मुक्त किया । वरदत्त ने श्री संघ का विज्ञापन पत्र सूरिजी को दिया सूरिजीने कहा कि संघ की आज्ञा प्रमाण करना मेरा कर्त्तव्य है पर

‡ देवी प्राह्याथ नड्डूले मानदेवाख्यया गुरुः ! श्रीमानस्ति तमानाय्य तत्पदक्षालनोदकैः !! ४३
आवासानभिषिञ्चध्वं यथा शाम्यति डामरम् ! एव मुक्त्वा तिरोधत्त श्रीमच्छासन देवता !! ४४
श्रावकं वीरदत्तं ते प्रैषुर्नड्डूल पत्तने ! विज्ञप्तिकां गृहीत्वा च स तत्र क्षिप्रमागमत् !! ४५
भूमन्नाथयं दृष्ट्वा व्यधान्नैषेधिकी तदा ! मध्यान्हे सूरि पादाश्च मध्ये उपाश्रयं स्थिताः !! ४६
उपाविशन् मुने स्थाने स्थाने स ब्रह्मसंविदाम ! पर्यंकासनमासीना नासाग्रन्यस्तलोचनः !! ४७
ईक्ष स्वान्तिके दृष्टी चरणावक्षितिस्पृशौ ! पुष्प माल्या न च म्लाना देव्यावालोक [illegible] !! ५८
श्री शान्तिनाथ पार्श्वस्य प्रभु स्तुति पवित्रितम् ! गभितं तेन मंत्रेण सर्वाशिवनिवारिणा !! ७२
श्री शान्ति स्तवनमिन्त्यं गृहीत्वा स्तवन वरम् ! स्वस्थो गच्छ निज स्थानमित्थं प्रत्यभिव्यधि !! ७३
कोटि कुर्वन्ति यत्नानः [illegible] ! गते वर्षे त्रये नष्ट्वा तुरुष्कैः सा महापुरी !! ७६
सूरिः श्रीमानदेवाख्यः शासनस्य प्रभावना ! विधायान्तेऽनशनं चैत्यं दिव्यं पदं निरवद्य !! ८० २०-८०

मेरा तक्षशिला आना तो इस समय बन नहीं सकता मैं यहाँ बैठा ही तुम्हारे उपद्रव की शान्ति कर दूंगा अतः सूरिजी ने लघु शान्ति रूप शान्तिस्तव बना कर वरदत्त को दे दिया। वरदत्त गुरु को वन्दन कर पुनः तक्षशिला आया और गुरु महाराज का दिया हुआ शान्तिस्तव संघ को देकर सब विधि कह सुनाई उसी प्रकार करने से नगर में सर्वत्र शान्ति हो गई जिससे जैन एवं जैनेत्तर सब लोगों ने सूरिजी एवं जैनधर्म का महान् उपकार समझा बाद बहुत से लोग तक्षशिला त्याग कर सिन्ध शूरसेन वगैरहः जहाँ अपना सुविधा देखी वहां चले गये और तीन वर्षों के बाद तुर्कों ने तक्षशिला का ध्वंस कर डाला। बाद कई अर्सा से बादशाह गजनी ने तक्षशिला का पुनरुद्धार कर उसका नाम गजनी* रख दिया था ।

इधर आचार्य मानदेवसूरि ने मनुष्यों को ही क्यों पर कई देव देवियों को धर्मोपदेश देकर उनको आत्म कल्याण का उत्तम रास्ता बतलाया और अनेक भव्यों का उद्धार कर अपने आयुष्य के अन्त में किसी योग्य मुनि को अपने पट्ट पर आचार्य बना कर आप अनसन एवं समाधि पूर्व स्वर्ग सिधार गये इस प्रकार आचार्य मानदेवसूरि शासन के महान् प्रभाविक आचार्य हुए हैं आपका समय के लिये हम आगे चल कर विचार करेंगे—

२०—आचार्य माननुंगसूरि—आप बड़े ही विद्या बली एवं अनेक लब्धियों से विभूपित थे कई राजा महाराजा आपके चरणों की सेवा कर अपने जीवन को कृतार्थ हुआ समझते थे। आपका पवित्र चरित्र बड़ा ही अनुकरणीय है। बनारसी † नगरी में जिस समय ब्रह्मक्षत्री वंशका हर्षदेव राजा राज करता था और उसी

---

* तक्षशिला नगरी जैनों का एक धर्म चक्र नाम का भगवान् चन्द्रप्रभ का तीर्थ था प्रबन्धकार स्वयम् लिखते हैं कि तक्षशिला के खोद काम से पीतल वगैरह की जैनमूर्तियां आज भी निकलती हैं और यह सत्य भी है प्रबन्धकार के समय ही क्यों पर आज भी वहाँ के खोद काम से जैनमूर्तियों वगैरह स्मारक चिन्ह भूमि से निकलते हैं।

चीनी यात्री हुयेनत्सांग विक्रम् की छटो शताब्दी में भारत की यात्रार्थ आया था उस समय धर्मचक्रतीर्थ बौद्धों के हाथ में था और चंद्रप्रभ बोधिसत्व तीर्थ कहलाता था। इनके अलावा भी बहुत से जैनमन्दिर बौद्धों ने अपने कब्जे में कर लिया था। जो उक्त चीनी यात्री के यात्रा विवरण से स्पष्ट पाया जाता है।

वीर वंशावलीकार लिखते हैं कि आचार्य मानदेवसूरि ने बहुत से क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर उपकेश (वंश) में मिलाये। पन्यासश्रीकल्याणविजयजी महाराज ने मानदेवसूरि की प्रर्यालोचना में लिखते हैं कि ओसवाल जाति पश्चिम दिशा से आई होगी इत्यादि। पन्यासजी महाराज का यह अनुमान कहां तक ठीक है कारण मानदेवसूरि के समय इस जाति का नाम ओसवाल नहीं था पर उपकेशवंश था और इस नाम संस्करण का कारण उपकेशपुर था जो मरुस्थल का एक नगर था दूसरा उपकेशवंश को रहन-सहन रीति-रिवाज वेशभाषा वगैरह सब मारवाड़ की ही है अतः इस जाति की मूलोत्पत्ति मरुधर से ही हुई है हाँ पट्टावलियादि ग्रंथों में उस समय तक्षशिला में उपकेश वंशियों की बहुत आबादी थी और देवी के कथन से उन्होंने तीन वर्ष के बाद तक्षशिला का भंग होना समझ कर वे लोग वहाँ से चल कर पंजाब में आ गये हों तो यह बात संभव हो भी सकती है। पर ओसवाल जाति को ही पश्चिम की ओर से आई कहना तो केवल भ्रम ही है।

तक्षशिला के भंगपूर्व उपकेशगच्छाचार्यों का कई बार तक्षशिला में विहार हुआ और कई चतुर्मास भी वहां किये थे यदि उपकेशवंशियों का वहाँ गहरी तादाद में अस्तित्व नहीं होता तो वहाँ उपकेशगच्छाचार्यों के इस प्रकार बार-बार आना आना शायद ही होता तथा वीर वंशावली के लेखानुसार मानदेवसूरि बहुत से क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर उपकेश बनाना भी इस बात को साबित करता है कि इनके पूर्व उपकेश वासियों का भारत के चारों ओर प्रचार हो गया था।

† सदा सुरसरिद्वीचीनिचयाचांतकश्मला । पुरी वाराणसी पल्लिसाहार्दिव दिवः पुरः ॥ ५
असीत् कोविद कोटीरनर्घिद्वारिद्वारान् । तत्र श्री हर्षदेवाख्यो राजा न नु कलंक भूः ॥ ६
ब्रह्म क्षत्रिय जातीयो धनदेवाभि सुधीः । श्रेष्ठीतत्रानद्धिप्रद्या भूत्पदं कारकः ॥ ७

नगरी में श्रेष्टिवीर्य धनदेव नाम का एक धनाड्य व्यापारी नागरिकों में अग्रेश्वर जैन श्रावक बसता था उसके गृहदेवी शीलवती से एक मानतुगं नामका पुत्र हुआ उसकी बाल क्रीड़ा होन हार की सूचना दिया करती थी जब मानतुगं युवक अवस्था में पदार्पण किया तो एक समय वह किसी चैत्य में रहे हुऐ चारुकीर्ति दिगम्बराचार्य के पास गया और उनकों अभिवादन किया बदले में दिगम्बराचार्य ने धर्म वृद्धि रूप आशीर्वाद देकर उसको संसार असारता के विषय उपदेश दिया जिससे मानतुगं संसार को असार समझ कर आचार्य श्री के पास दीक्षा लेने को तैयार हो गया परन्तु मानतुगं के माता पिता कब चाहते थे कि हमारा प्यारा पुत्र मानतुगं हमको छोड़ कर साधु बन जाये। फिर भी मानतुगं ने अपने माता पिता को समझा बुझा कर आज्ञा प्राप्त कर दिगम्बराचार्य के पास दीक्षा ग्रहन करली। आचार्य ने उसका नाम महाकीर्ति रखा और अपने मत की शिक्षा दी कि मुनि-साधुओं को सूत ऊन या रेशम का थोड़ा भी वस्त्र नहीं रखना अर्थात बिलकुल नग्न ही रहना, केवली केवल आहार नहीं करे, स्त्रियों की मुक्ति नहीं होती है साधुओं को भिक्षा ग्रहन समय ३२ अन्तराय होती हैं इत्यादि ? उस समय दिगम्बरों के पास और था ही क्या ? मुनि महाकीर्ती अपने मत में ठीक जान कार हो गया साथ में थोड़ी बहुत तपस्या भी करता था और अपने गुरु के साथ चैत्यालय में ठहरे हुए थे—

उसी बनारसी नगरी में एक श्रेष्टिवर्य्य लक्ष्मीधर नाम का सेठ बसता था वह बड़ा ही धनाड्य एवं प्रसिद्ध पुरुष था मानतुगं की बहिन लक्ष्मीधर को ब्याही थी वे दोनों दम्पति श्वेताम्बराचार्यों को मानने वाले श्वेताम्बर श्रावक थे एक समय दिगम्बर मुनि महाकीर्ति भिक्षा के लिये भ्रमण करता हुआ अपनी बहिन के वहां चला गया बहिन ने अपना भाई जान उनका सत्कार कर आहार के लिये आमन्त्रण किया जब महाकीर्ति अपने पास का कमण्डल से पानी लेकर मुख प्रक्षालन करने लगा *१ तो उस पानी में बहुत त्रस

तत्सुतो मानतुंगाख्यो विख्यातः सत्व सत्यभू । अवज्ञात पर द्रव्य वनिता वितथा ग्रहः ॥ ८
संतीह मुनयो जैना नग्ना भग्नस्मराधय । तच्चैत्ये जग्मिवानन्यदिवसे विवशेतरः ॥ ९
बीतराग प्रभुनत्वा गत्वा गुरुपदांतिकम् । प्रागमद्धर्म्मं वृद्धयाशीर्वादेन गुरुणार्हित ॥ १०
महाव्रतानि पंचास्योपादिशन्नग्नतां तथा । उर्णकर्पासकौशेय शौचा वृति निषेधतः ॥ ११
इत्याद्यनेकधा धर्म्मं मार्गाकर्णनतस्तदा । वैराग्य रंगिणो मानतुंगस्य व्रत कांक्षिणः ॥ १२
तन्माता पितरौ पृष्ठ्वाचार्यं स्तस्य व्रत ददौ । चारुकीर्ति महीकीर्तिरित्य स्याख्यां ददौ चसः ॥ १३
स्त्रीणां न निर्वृतिर्मान्यामुक्तिः केवलिनोपिहि । द्वात्रिंशदन्तरायाणि वुबुधे च वुधेश्वरः ॥ १४
*१अशोधन प्रमादेनानुसंधानाज्जलस्य च । नैके संमूर्छितास्तत्र पूतरास्तत्कमण्डलौ ॥ २०
गडूषार्थंमृषिर्यावच्चुलुकेजलमाददे । ददर्शतान्स्वसाप्राह लीना श्वेतांवर मते ॥ २१
व्रते कृपा रसः सार स्तदमी द्वीन्द्रियास्त्रसाः । विपंयते प्रमादाद्धस्तज्जैनसद्दर्शनंहि ॥ २२
लज्जा वरण मात्रेश्च वस्त्र खण्डे परिग्रहः । तत्र पात्रे कथं न स्यायाद्दष्ट्वि कांमिदं किमु ॥ २३
धन्या श्वेतांम्बरा जैनाः प्राणि रक्षार्थमुद्यताः । न सव्विदधतेनीरमपि रात्रौ क्रियां धता ॥ २४

*१—मानतुंग की दीक्षा होने के बाद भी दिगम्बराचार्य बनारसीके चैत्य में ही ठहरे इससे पाया जाता है कि जैसे श्वेताम्बरों में चैत्यवास की प्रवृति थी वैसे ही दिगम्बरों में भी चैत्यवास की प्रवृति थी।

२—मानतुंगसूरि ने बनारस के राजा हर्षदेव की सभा में भक्तामर की रचना कर चमत्कार बतलाना प्रबन्धकार ने लिखा है पर वीर वंशावली में उज्जैन नगरी के राजा वृद्धभोज की सभा में मानतुंगसूरि ने भक्तामर बना कर चमत्कार बतलाया लिखा है। उज्जैन में हर्षदेव का राज होना पाया जाता है यदि थानेश्वर एवं कनौज के वैश्य कुल का हर्षदेव राजा ही यह हर्षदेव हो तो इसका राज बनारस में भी था पर उसका समय देखते वे मानतुंगसूरि इन मानतुंगसूरि से पृथक होना चाहिये इसके लिये हम आगे चल कर मानतुंगसूरि के समय निर्णय के स्थान लिखेंगे—

जीव उनकी बहिन को दिख पड़े॰ इसमें एक तो अप्रकाश कारी भाजन दूसरे प्रति लेखन का प्रमाद तीसरा उसमें हमेशा पानी का रहना इन सब कारणों से जीवों की उत्पत्ति हो जाना एक सभाविक बात थीं, बहिन ने कहा मुनि ? सर्व व्रतों में जीव दया व्रत प्रधान है जिसके लिये तुम्हारा इतना प्रमाद है कि असख्यं त्रस जीवों की विराधना होती है भला ? संयम की मर्यादा के लिये स्वल्प वस्त्र पात्र में तो तुम परिग्रह कहते हो तब यह ताम्र का कमंडल तथा मौर पिछी रखते हो क्या यह परिग्रह नहीं है इत्यादि बहुत कुछ कहा ? इसका पश्चाताप करता हुआ मुनि महाकीर्ति बोला कि बहिन क्या किया जाय यहां कोई श्वेताम्बर आचार्य आता ही नहीं है ? बहिन ने कहा ठीक है अभी थोड़ा समय में शूरसेन, प्रान्त की ओर से श्वेताम्बराचार्य आने वाले हैं आने पर में आपको सूचना देदुगी ? महाकीर्ति ने कहा बहुत अच्छी बात है मैं श्वेताम्बराचार्य से अवश्य मिलुगा। बाद बहिन ने मुनि को भिक्षा दी और मुनि भिक्षा कर अपने स्थान पर चले गये।

थोड़ा ही समय के बाद भगवान पार्श्वनाथ की कल्याणक भूमि की यात्रार्थ॰एक जिनसिंहसूरि नामका आचार्य अपने शिष्यों के परिवार से बनारसी नगरी की ओर पधारे और उद्यान में ठहर गये नगरी में खबर होने से सब लोग सूरिजी को वन्दन करने या उपदेश श्रवण करने को गये इस बात की सूचना बहिन ने भाई मानतुंग को दी अतः मानतुंग भी आचार्यश्री के पास गया और आचार्य द्वारा जैन धर्म का स्वरूप सुन कर उसने श्वेताम्बर दीक्षा स्वीकार करली[2] आचार्यश्री ने मानतुंग को योग्य समझ कर जैनागमों का अध्ययन करवाया और कई विद्याओं की आम्नाय भी प्रदान की जब मानतुंग सर्व गुण सम्पन्न हो गया तब आचार्य श्री ने उसको आचार्य पद[3] से विभूषित कर गच्छ का सर्व भार मानतुंगसूरि को सुप्रत कर दिया मानतुंग सूरि पर सरस्वती देवी की पूर्ण कृपा थी कि उसके प्रभाव से आप काव्यादि कवित बनाने में निपुण बनगये।

प्रस्तुत बनारसी नगरी में वेद वेदाँग का जान कार धूरंधर विद्वान मयूर[4] नामका एक ब्राह्मण था जिसका राज सभा में अच्छा मान था उसके एक पुत्री थी जिस का वर के लिये मयूर चिन्तातुर रहता था कारण वह चाहता था कि मेरी पुत्री जैसे स्वरूपवान एवं लिखी पढ़ी विदुषी है वैसा ही वर मिले तो अच्छा ? उसी नगरी में काव्य तर्क छन्दादि कला में प्रवीण वेद पुरांण का पारंगत बाण[5] नाम का ब्राह्मण रहता था उसकी मयूर से भेट हुई और मयूर ने बाण को सर्व प्रकार से योग्य समझ कर अपनी पुत्री की शादी धांम के साथ करदी बाद बाण को राज सभा में ले गया जिसकी विद्वता देख राजा ने बाण का अच्छा सन्मान किया। और हमेशा राज सभा में आने का भी कहाँ अतः मयूर और बाण दोनों विद्वान राजा हर्षदेव की सभा का नामी पंडित कहलाये जाने लगे—

मयूर की पुत्री के साथ बाण आनन्द पूर्वक सुख से रहने लगा। एक दिन बाण ने अपनी पत्नी का

॰ अन्यदा जिनसिंहाख्याः सूरयः पुरमाययुः। पुरा श्री पार्श्व तीर्थेश कल्याणक पवित्रितम्ः ॥ ३७

२ गुरुनिर्दीक्षितश्चासौ नदीष्णो प्रेरितं च कचित्। तपस्या विधि पूर्वं चागम मभ्यास्यतादरात् ॥ ३८

३ ततः प्रतीति भूत्सन्यक्तयः श्रुत समर्जनात्। योग्यः सन् गुरुभिः सूरिपदे गच्छाधरः कृतः ॥ ३९

४ कोविदानां शिरोरत्न मयूर इति विश्रुतः। ब्राह्मणे साप्पंदर्प्पानां मयूर इव दर्पहृत् ॥ ४२

५—तर्क लक्षण साहित्यरसास्वादवरो कवीः। अनू बानो महाविद्वो बाणाख्यः मानुनान्वित ॥ ४३

स स्नेह अपमान किया कि वह रुष्टमान होकर अपने पिता के घर पर चली गइ। बाण उसको मनाने लिये गया पर स्त्री हट के कारण वह बाण के कहने पर खुशी नहीं हुई तब उसकी सखियों ने भी समझाया पर उसका कोप शान्त नहीं हुआ तब सखियों के कहने से बाण अपनी पत्नि के महल पर जा बहुत कुछ समझाया यहां तक कि रात्रि का शेष भाग रह गया अर्थात दिन उगने कि तैयारी हो गई भी वह नहीं समझी अतः बाण ने कहा कि हे ! सुन्दरी—

"गत प्रायः रात्रिः कृशतनु शशी शीर्यं इव । प्रदीपोयं निद्रावस मुपगतो घूर्णत इव ॥
प्रणमान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो । कुच प्रत्यासत्या हृदयमपि ते सुभ्रु कठिनम् ॥ १ ॥

हे कृशोदरी ? चन्द्र का प्रकाश मन्द पड़ गया है दीपक निस्तेज हो रहा है तथापि तुं अपना नहीं छोड़ती है इससे मालुम होता है किं कठीन स्तनों के पास में रहने से तेरा हृदय भी कठोर बन गया है

इस समय भींत के अन्तर में मयूर सुत्ता वह जगृत हो अपने जमाई के बचन सुना और उसने को कहा है भद्र ? सुभ्रु के स्थान चंडी शब्द का प्रयोग कर क्यों कि दृढ़ कोप करने वाली के लिये यह शब्द प्रयुक्त है। अपने पिता के शब्द सुनकर कन्या लज्जित होगई उसने सोचा कि मेरा सब वृन्तात पिता ने सुन लिया होगा उसे अपने अकृत्य पर बड़ा ही पश्चाताप हुआ और शान्त चित्तसे अपने पति का कहना स्वीकार कर संतुष्ट हो गई परन्तु भ्रांति के कारण अपने पिता पर उसको क्रोध हो आया और उसने श्राप दिया कि मेरे शील का प्रभाव हो तो मेरा पिता कुष्टि हो जाय॥। बस शील के प्रभाव से मयूर कुष्टी हो गया। बाद मयूर पुत्री अपने पति बाण के साथ सुसराल चली गई।

मयूर कुष्टी होने के कारण लज्जा के मारा राजसभा में जा नहीं सका जब कई दिन हो गया तो राजाने सभा को मयूर न आने का कारण पूछा तो बाण ने मयूर की निन्दा करता हुआ सकेत में कहा कि उसके शरीर में कोढ़ का रोग हुआ है इस को सुन राजा को बड़ा ही दुखः हुआ अतः अपने मनुष्यों को भेज कर मयूर को राज सभा में बुलाया। मयूर की इच्छा नहीं थी पर राजा के बुलाने पर वह शरीर को कपड़ा से अच्छादित कर राज सभा में आया। तब भी बाण ने मस्करी की कि शीत निवारण * के लिये मयूर ने वस्त्र से शरीर अच्छादित किया है कहा भी है कि 'जाट जमाई भाणजा' अपने नहीं होते है। इत्यादि।

जब मयूर राज सभा से लौट कर वापिस अपने घर पर आरहा था तो इच्छा हुई कि इस प्रकार कोढ़ सहित जीवन की बजाय तो मरना ही अच्छा है अतः उसने कोढ़ निवारिणार्थ सूर्य देव की आराधना करनी शुरु की सो श्लोक से सूर्य की स्तुति की जिससे मयूर का कोढ़ चला गया और शरीर कंचन जैसा हो गया सुबह राज सभा में गया तो राजा ने पुच्छा की मयूर तेरा शरीर निरोग कैसे हुआ मयूर ने कहा कि मैंने सूर्य देव की आराधना की है अतः राजा ने मयूर की प्रशंसा की जिसको बाण या बाण के पक्षकार पण्डित सहन

१—[illegible] संजल्पया [illegible] । पिता [illegible] ॥ ५२
[illegible] ॥ ५३
[illegible] ॥ ५७
[illegible] ॥ ५८
२—[illegible] मयूरं [illegible] ॥ ६१
३—[illegible] ॥ ६४

नहीं कर सके। इस पर राजा ने कहा कि यदि वाण में शक्ति हो तो ऐसा कोई चमत्कार कर के दीखावे। बाण ने कहा कि आप मेरे हाथ पग छेद के चड़ीं के मन्दिर में रख दें मयूर ने अपनी पुत्री दुखीः न हो जाय इस लिये राजा को मनाई की पर राजा ने एक की भी नहीं सुनी अतः राजा ने बाण के हाथ पग काट कर चंडी के मन्दिर के पिच्छे पहुँचा दिया[७] बाण ने एक चंडी शतक की रचना कर चंडी की स्तुति की जिससे चंडी ने बाण के हाथ पैर दे दिये। बाण राज सभा में आगया[८] जिसके नये आये हुए हाथ पैर देख राजादि सभा ने बाण की भी प्रशंसा की। अबतो मयुर-बाण (शश्वर जमात) का वाद विवाद खुब बढ़ गया जिसका निर्णय करना राजा पर आ पड़ा। राजा ने कहा कि तुम दोनो[९] काश्मीर चले जाओ वहां की सरस्वती देवी तुम्हारा इन्साफ कर देगी राजा अपने योग्य पुरुषों को साथ देकर दोनों पण्डितों को कश्मीर भेज दिये। क्रमशः चल कर सरस्वती के मन्दिर में आकर कठोर तपस्या से देवी की आराधना की तब देवी प्रत्यक्ष रूप से आकर दोनों पण्डितों को दूर दूर बैठा कर एक समस्या पुछी कि।

" शतचन्द्रं नभस्तलम् "

इस समस्या की पुर्ति के लिये पण्डितों ने कहा—

"दामोदर कराधात विह्वली कृस चेतसा, दृष्टं चाणूरमल्लेन शतचन्द्रं नभस्तलम्।"

परन्तु बाण ने शीघ्र[१०] कहा तब मयूर ने कुछ विलम्ब से कहा अतः बाण की जय और मयूर का

काव्यानां शततः सूर्यं स्तुतिं संविदधेततः। देवान्साक्षात्करोतिस्म, येषामेकेमपि स्मृतम्॥ ८५

६ - प्रातः प्रकट देहोऽसावावयौ राज पर्षदि। श्रीहर्षराजः पप्रच्छासीत्केकि रुग्नया यद्॥८७

आसीद्देर परं ध्यातः सहस्र किरणो मया। तुष्टो देहं ददावद्य भक्तैः किं नाम दुष्करम्॥ ८८

७—इति राज्ञो वचः श्रुत्वा बाणः प्राह तिसाहसात्। हस्तौ पादौ च संच्छिद्य चंडिका वास गृह्यत॥ ९१

८—उक्त्वा चेवं कृते राज्ञा चंडि स्तोतु प्रच क्रमे। वागकाव्यैरतिश्रव्यै स्रग्धरादारडंबरे॥ १०४

ततश्च प्रथमे वृत्ते निर्वृते सप्तमेऽक्षरे। समाधौ तन्मुखो भूत्वा देवी प्राह वरं वृणु॥ १०५

विदेहि पाणि पांद में इत्युक्ति समनं तरम्। संपूर्ण वयवे शोभा प्ररयम्र इव निर्जरः॥ १०६

९—वाग्देवी मूल मूर्तिस्था यत्रास्ते तत्र गम्यताम्। उभाभ्यामपि काश्मीर निर्वृत्ति प्रवरे पुरे॥ १०९

१२ तत्र गत्वा पुरो मन्त्री गुरु नानम्य चावदत्त ! आदायपतिवात्सल्याद्भूपपादोऽवधार्यताम्!! १२०

[११] तौ भूपालःस्तुवन्नित्यममरायंचान्यदा जगौ। प्रत्यक्षोतिशयो भूमिदेवाना मेव दृश्यते॥ १२२

कुत्रापि दर्शनेन्यस्मिन् कथमस्ति प्रजल्पतः। प्राह मंत्री यदि स्वामी शृणोति प्रोच्यते ततः॥ १२३

जैन श्वेतांबराचार्यो मानतुंगा भिधः सुधीः। महा प्रभाव संपन्नो विद्यते ताव के पुरे॥ १२४

चेत्कुतहल मंत्रास्ति तदाहयत तं गुरुम। चिरं वो यादृशं कार्यं तादृशं पूर्यते तथा॥ ११५

इत्या कर्ण्य नृपः प्राह तं सत्पात्र समानय। सन्मान पूर्व मेतेषां निस्पृहाणां नृप क्रियान्॥ १२६

गुरु राइ महामात्य राज्ञानः किं प्रयोजनम्! निरीहाणामियं भूमिर्नहि प्रेत्य मयापि नाम्!! १२८

मंत्रिणोचे प्रभो श्रेष्ठा भावनातः प्रभावना! प्रभाव्यं शासनं पूज्यैस्तद्राज्ञो रंजनो भवेत्!! १२९

इतिनिर्बंधतस्तास्य श्रीमानतुंग सूरयः ! राज सौधंसमाजग्मुरभ्युत्थायोच्चनृपतिः!! १३०

धर्मलाभाशिषंदत्वा निविष्टाउचितासने! नृपःमहद्विजन्मानःकौतुकं सातिशयाः श्रिता!! १३१

एकेनसूर्यमाराध्य स्वांगात्रोगोविनोज्झितः! अपरश्चंडिकासेवावशाद्धेमकरक्रमौ!! १३२

भवतामपि शक्तिश्चेत्काप्यस्तियतिनायकाः! तदाकंचिच्चमत्कारंदृश्यादर्शयताधुना!! १३३

इत्याकर्ण्यपि ते प्राहुर्नगृहस्था वयंनृप! धनधान्य गृह क्षेत्र कलत्रा पत्य हेतवे!! १३४

पराजय का फैसला मिला ! फिर वहाँ से वापिस बनारस आये पूर्व की हुई शर्त के अनुसार मयूर ने अपने बनाये सब ग्रन्थ राज सभा में लाकर अपने हाथों से जला दिये पर भस्म जब तक उड़ी तब तक उसमें सूर्य की किरणों से अक्षर दिखाई देते थे ! इससे राजा ने मयूर को सन्मानित किया और दोनों पण्डितों को सन्मान पूर्वक राज सभा में रखा ।

एक समय राजा अपनी राजसभा को कहने लगा कि इस समय जैसा प्रभाव ब्राह्मणों में है वैसा किसी अन्य धर्मियों में देखने में नहीं आता है ? [११] इस पर एक मन्त्री ने कहा कि 'बहुरत्नावसुन्धरा' जैसे ब्राह्मणों में चमत्कार है वैसे अन्य धर्मियों में भी बहुत से प्रभाविक पुरुष विद्यमान है दूर क्यों पर आपके ही नगर में एक मानतुंग नाम का जैनाचार्य महान विद्वान और अनेक अतिशय चमत्कारों से सुशोभित है । राजा ने कहा यदि ऐसा है तो जैनाचार्य को सभा में लावो ? मंत्री ने कहा हजूर वे निर्ग्रन्थ निस्पृही यति है केवल हाजरी भरने को एवं आशीर्वाद देने को ब्राह्मणों की मुआफिक नहीं आते है हां यदि आप आमन्त्रण भेज कर बुलावे तो धर्मोपदेश देने को वे आ सकते है । राजा ने मंत्री का कहना स्वीकार कर मंत्री के साथ आपने योग पुरुषों को मानतुंगसूरि के पास भेजा ! मंत्री ने सूरिजी को वन्दन कर राज सभा में पधारने की प्रार्थना की । इस पर सूरिजी ने कहा मंत्री ! हम निस्पृहीयों को राजा से क्या लेना है जो कि हम राजसभा में चलें ? मंत्री ने कहा [१२] गुरु महाराज आप निर्ग्रन्थ है आपको राजा से कुछ भी

राजरंजनविद्याभिर्लोकाक्षेपादिका क्रिया ! यद्विदध्मः परं कार्यं शासनोत्कर्ष एव नः !! १२५
इत्युक्ते प्राह भूपालो निगडैरापदंन्त्येताम् ! आपादमस्तकं ध्वाँते निवेश्यप्रवदन्निति !! १२६
ततोऽपवरके राजपुरुषैःपरुष रसदा ! निगडैश्चचतुश्चत्वारिंशत्संख्यैरयोमयैः !! १२७
नियंत्रितः समुत्पाद्य लोह यंत्र समो गुरुः ! न्यवेश्यताथ तद्वारारी च पिहितौ तत !! १२८
अनि जीर्ण सनाराचं ताळकं प्रददुस्ततः ! सूचि भेद्य तमस्कांडः स पाताल निभो बभौ : !! १२९
वृत्तं भक्तामर इति प्रव्यं प्राग्हैक मानसः ! प्रदकृत्य निगडं तत्र त्रुटित्वा पपे तित्क्षणात् !! १३०
प्राक् संख्यया च वृत्तेषुभगते द्रुतं ततः ! श्रीमानतुंगसूरिश्च मुक्तो मुक्तो भवत् !! १३१
स्वयं मुद्र टिते द्वार यंत्रे संयम संयत ! सदानुकूलः श्रीमान् गुरुः सलवपूर्व भो !! १३२
अंतः संसदमागत्य धर्मलाभं नृप ददौ ! प्रातः पूर्वाचलाद्विर्यन्भास्वानिवमहाद्युति !! १३३
नृप प्राह रामस्ताहक् भक्तिश्चाप्यति मानुषी ! देव देवी कृताधारं विना कस्य दशां महः !! १३४
देवः पुरमद्वः धन्यः कृत पुण्यश्च वासरः ! यत्र ते वदनं प्रैक्षि प्रभो प्रातिम संनिभम् !! १३५
आदेश नुकृता वेशं प्रयच्छ स्वच्छता निधे ! आजन्म रक्षा दक्षः स्याद्यथा मे त्वदनुग्रह !! १३६
धनवेति नृपे वाचं प्राहुस्ते यद् किंचनाः ! लक्ष्मी ना मुपयोगं च कुर्यात्वयैं विदुम्महे !! १३७
परंश्रीनन्तुनांनीयं प्रदापि वसुधा निनाद् ! जैनधर्म्म इनादीमं परिदर्श परिपालय !! १३८
[illegible] ! [illegible] पूज्यानां वंचिता वयम् !! १३९
[illegible] एव सच्छ्याः ! [illegible] प्रत्यर्थी ममः !! १४०
[illegible] ! [illegible] या क्रिया सा मति भ्रमः !! १४१
[illegible] ! [illegible] धर्मः गुरुः परीक्षया !! १४२
[illegible] ! [illegible] !! १४३
[illegible] ! [illegible] !! १४४

नहीं लेना है पर राजा को धर्मोपदेश देना तो आपका कर्तव्य है अतः आप धर्मोपदेश देने को भी पधारिये दूसरे राजा का दिल में यह भी भ्रम है कि विश्व में सिवाय ब्राह्मणों के और कोई प्रभाविक पुरुष है ही नहीं राजा ने अपने इन पुरुषों को आमन्त्रण के लिये मेरे साथ भेजे हैं इत्यादि । सूरिजी ने मंत्री की प्रार्थना स्वीकार कर उनके साथ राज सभा में आये । राजा ने सिंहासन छोड़ सूरिजी का सत्कार किया और प्रार्थना की कि जैसे ब्राह्मण लोग देवताओं की आराधना कर अपना रोग मिटाते है काटे हुए हाथ पैर पुनः बना देते है वैसे आप भी किसी प्रकार का चमत्कार दीखा सकते हो ? यदि आपके अन्दर कुछ प्रभाव हो तो कृपा कर इस सभा के सामने बतलाइये ? आचार्यश्री ने उत्तर देते हुए कहा कि हे राजन् ! हम न तो गृहस्थ हैं और न गृहस्थों के करने योग्य कार्य ही करते है न हमें धन माल भूमि वगैरह की गरज है फिर अनेक आरंभ सारंभ करने वाले राजा को धन धान्य पुत्र कलित्र प्राप्ती रूप आशीर्वाद देकर खुश करने में क्या लाभ है इत्यादि सूरिजी ने निरस एवं निस्पृहिता से सत्य २ कह सुनाया कारण सूरिजी को राजा की खुशामदी से कोई भी प्रयोजन नहीं था पर कहा जाता है कि 'सच कहने से मां भी माथे में देती है' राजा एक दम नाराज होकर अपने अनुचरों को हुक्म देदिया कि इस जैन सेवड़ो को लोहा की ४४ साकलों से जकड़ के बान्ध लो और अन्धेरी कोठरी में डाल दो और उसके द्वार पर एक जबर्दस्त ताला लगादो तथा पक्के पहरे भी लगा दो ! अनुचरों ने ऐसा ही करके आचार्य को अन्धेरी कोठड़ी में डाल कर पेहरा लगा दिया । विचारा मंत्री का मुंह फीका पड़ गया, और ब्राह्मणों का नुर तो नौ गज चढ़ गया ।

आचार्यश्री ने बिलकुल फिक्र नहीं किया पर इतना जरूर सोचा कि इस कारण से जैन धर्म की निंदा कर अज्ञानी जीव कर्म बान्ध कर बैठेंगे । उन्होंने भगवान आदीश्वरजी का स्तोत्र भक्तामर बनना शुरु किया जिसका एक २ श्लोक बनाते गये और एक २ शांकल टूटती गई इस प्रकार ४४ काव्य बनाने से ४४ शांकलें टूट पड़ी और चार श्लोकों से कोटरी के ताले टूट पड़े और स्वयं कपाट खुल गये ? बस ! सूरिजी सीधे ही राज सभा में आकर राजा को धर्मलाभ दिया जिसको देख राजा आश्चर्य में डूब गया कि मेरी नजरों के सामने जिस को ४४ लोहा की शांकलों से जकड़ कर अन्धेरी कोठरी में डाल दिया जिसके ताले की चाबी मेरे पास पड़ी है फिर बन्धन मुक्त होकर महात्माजी कैसे आगये । सत्य है कि यह कोई अलौकीक महात्मा है जिनके लिये ब्राह्मणों की भाँति किसी देव की आराधना की भी आवश्यकता नहीं पड़ी और ब्राह्मण चमत्कारी होने पर भी बड़े ही अभिमानी हैं और आपस में बड़े बनने की बड़ी भावना रही हुई है पर यहां तो न देखा लोभ न देखा बड़ा ही का अभिमान और न देखा खुशामदी का काम ? अतः राजा ने सूरिजी की अच्छे २ शब्दों में खूब प्रशंसा की पर सूरिजी के लिये तो तिरस्कार और सत्कार एकसा ही दीखाई दे रहा था ।

राजा ने नम्रता के साथ सूरिजी से प्रार्थना की कि प्रभो ? मैं आपके अलौकिक अतिशय प्रभाव से प्रसन्न हुआ हूँ । कृपा कर आप कुछ हुक्म फरमावे कि मैं आपके चरणों में भेट कर कृतार्थ बनु ? सूरिजी ने कहा राजन् ! हम योगियों को क्या चाहिये हम न भूमि मकान रखते हैं और किसी काम में लक्ष्मी का उपयोग करते हैं यदि आप की ऐसी ही इच्छा हो तो आप जैन धर्म के स्वरूप को सुन एवं समझ कर आत्म कल्याणार्थ जैनधर्म को स्वीकार करे कि जिससे आपका इस भव और परभव में जल्दी कल्याण हो । राजा ने सूरिजी के मुखार्विन्द से स्याद्वाद सिद्धान्त और अहिंसा परमोधर्म को सुनकर जैनधर्म को स्वीकार कर

लिया तत्पश्चात् सूरिजी के उपदेश से कइ जैनमन्दिर बनवाये और कई जीर्ण मन्दिरों का उद्धार करवाया और भी धर्म कार्य कर जैनधर्म की खुब उन्नति एवं प्रभावना की इस प्रकार आचार्य मानतुंगसूरि अनेक भूले भटके प्राणियों पर दया भाव लाकर उनका उद्धार कर जैनधर्म का प्रचार को बढ़ाया।

आचार्य मानतुंगसूरि के शरीर में एक समय असाध्य रोगोत्पन्न हो गया था आपने धरणेन्द्र को बुला कर अनसन की सम्मति मांगी इस पर इन्द्र ने कहा पूज्यवर। अपका आयुष्य: अभी शेष रहा है अतः आप अनसन का बिचार छोड़ दें पूज्यवर ! आप जानते हो कि कर्म फल तो तीर्थङ्करादि सिलाका पुरुषों को भी भोगवना पड़ा था तथापि मैं आपको एक अठारह अक्षरों का मंत्र देता हूँ इस से शान्ति हो जायेगी इन्द्र मन्त्र देकर पताल लोक में चला गया ! मानतुंगसूरि सुबह और शाम को उस मन्त्र का जप किया करते थे अतः शान्ति एवं समाधि रहती थी सूरिजी ने भव्य जीवों के कल्याणार्थ उन अठारह अक्षरों गर्भित भयहर स्तोत्र बना दिया कि जिससे नौ प्रकार का रोग की शान्ति हो जावे और प्रबन्धकार लिखते है कि वह भयहर स्तोत्र आज भी अनेक प्राणियों के रोग की शान्ति करने को विद्यमान है।

इस प्रकार आचार्य मानतुंगसूरि भूभ्रमन कर जैन धर्म का खुब उद्योत किया और अन्त में आप अपने योग्य शिष्य मुनि गुणाकार को सूरिपद से विभूपित कर अनसन एवं समाधि पूर्व काल कर स्वर्ग पधार गये इति मानतुंगसूरि का सक्षिप्त जीवन !!

पट्टावली कार तथा प्रबन्ध कार ने यह नहीं बतलाया कि मानदेवसूरि और मानतुंगसूरि के आपस में क्या सम्बन्ध था कारण मानतुंगसूरि के गुरु जिनसिंहसूरि बतलाया है और मानदेवसूरि ने अपने पट्ट पर एक योग्य मुनि को आचार्य बनाने का प्रबन्ध में उल्लेख किया है पर मानतुंग का नाम नहीं लिखा है यह एक विचारणीय विषय है ! दूसरा मानतुंगसूरि ने अपनी अन्तिम अवस्था में गुणाकारसूरि को आचार्य पद दिया लिखा है तब पट्टावलीयों में मानतुंगसूरि के पट्ट धर वीरसूरि लिखा है तो मानतुंगसूरि और वीरसूरि के क्या सम्बन्ध था और गुणाकारसूरि को मानतुंगसूरि ने आचार्य पद दिया था तो वे उनके पट्टधर क्या नहीं हुए यह भी एक विचारणीय प्रसंग है ! आगे चल कर हम सब के समय का निर्णय करेंगे उस समय इन बातों पर भी विचार करेंगे और इस लिये ही हमने पूर्वोक्त आचार्यों का समय नहीं लिखा है ! कारण इनके समय में बहुत सी गड़ बड़ सी दिखाई देती है खैर अभी हम पट्टावलियों के आधार पर इन आचार्यों का संक्षिप्त से जीवन लिखा दिया है। विशेष फिर आगे लिखा जायगा।

आचार्य मल्लवादीसूरि

भरोंच नगर में एक जिनानन्दसूरि[1] नाम के आचार्य विराजते थे और बुद्धानन्द नामक बौद्धाचार्य भी वहीं रहता था। एक समय दोनों आचार्यों का राज सभा में वाद हुआ जिसमें बौद्धाचार्य बुद्धानंद ने वितंडावाद करके जिनानन्दाचार्य को जीत लिया। अन्त जिनानन्दाचार्य भरोंच से विहार कर वल्लभी नगरी में पधार गये।

वल्लभी नगरी के राजा शिलादित्य की बहिन दुर्लभादेवी थी और उसके तीन पुत्र थे जिनयश, यक्ष और मल्ल। आचार्य जिनानन्द ने दुर्लभादेवी और उनके तीनों पुत्रों को संसार की असारता का उपदेश देकर दीक्षा देदी और तीनों को आगमों का अध्ययन करवाया। बुद्धिशालियों के लिये ऐसा कौनसा कार्य दुष्कर

होता है कि जिसे वे नहीं कर सकते ? अर्थात् वे तीनों साधु धुरंधर विद्वान होगये जिसमें भी सबसे छोटे मल्ल मुनि की बुद्धि सब में श्रेष्ठ थी अस्तु पांचवाँ ज्ञानप्रवादपूर्व से पूर्व महर्षियों ने अज्ञान को नाश करने वाला नयचक्र नामक ग्रन्थ का उद्धार किया। जिसके बारह आरारूप बारह विभाग हैं और आद्योपान्त में जिन चैत्य की पूजा का विधान भी आता है। प्रस्तुत ग्रन्थ पुस्तकारूढ़ कर एकान्त में गुप्त रक्खा गया था। विना गुरू की आज्ञा कोई भी उसको पढ़ नहीं सकता था।

एक समय गुरुमहाराज ने विचार किया कि यह मल्ल मुनि अपनी चपलता के कारण कभी निषेध की हुई पुस्तक पढ़ लेगा तो इसको बड़ा भारी संताप होगा। अतः साध्वी दुर्लभादेवी के समक्ष गुरु महाराज ने मल्ल मुनि से कहा कि मुने ? तुम इस पूर्वाचार्य निषेध की पुस्तक को नहीं खोलना एवं नहीं पढ़ना इत्यादि हितशिक्षा देकर आचार्य जिनानन्द ने यात्रार्थ वहाँ से विहार करदिया।

पीछे से बालभाव के कारण आचार्य की निषेध की हुई पुस्तक माता (दुर्लभासाध्वी) की अनुपस्थिति में मल्लमुनि ने खोल कर पहिले पन्ने का पहिला श्लोक पढ़ा—

"विधि नियमभंगवृत्ति व्यतिरिक्तत्वादनर्थ कम वोचत्। जैनादन्यच्छासन-मनृतं भवतीति वैधर्म्यम्॥"

मुनि मल्ल इस श्लोक का अर्थ विचारता ही था कि उसके हाथ से श्रुत देवता ने पुस्तक खींच कर लेली। इस हालत में मुनि मल्ल चिंतातुर होकर रोने लग गया। यह खबर साध्वी दुर्लभा अर्थात् मुनि मल्ल

१ चारुचारित्रपाथोधिशम कल्लोलकेलितः। सदानन्दो जिनानन्दः सूरिस्तत्राच्युतः श्रिया॥ ६॥
अन्यदा धनदानाहिमत्तश्रिरो छलं वहन्। चतुरङ्गसभावज्ञामज्ञातमदविभ्रमः॥ ७॥
चैत्ययात्रासमायातं जिनानन्दमुनीश्वरम्। जिग्ये वितंडया बुद्धया नन्दाख्यः सौगतो मुनिः॥ ८॥
पराभवात्पुरं त्यक्त्वा जगाम वल्भीं प्रभुः। प्राकृतोऽपि जितोऽन्येन कस्तिष्ठेत्तत्पुरांतरा॥ ९॥
तत्र दुर्लभदेवीति गुरोरस्ति सहोदरी। तस्याः पुत्रास्त्रयः सन्ति ज्येष्ठो जिनयशोऽभिधः॥ १०॥
द्वितीयो यक्षनामाभून्मल्लनामा तृतीयकः। संसारासारता चैषां मातुलैः प्रतिपादिता॥ ११॥
पूर्वर्षिभिस्तथा ज्ञानप्रवादाभिधपंचमात्। नयचक्रमहाग्रन्थपूर्वाच्चक्रे तमोहरः॥ १४॥
विधानरूपास्तिष्ठन्ति तत्रापि द्वादशारकाः। तेषामारंभपर्यन्ते क्रियते चैत्यपूजनम्॥ १५॥
किंचित्पूर्वगतत्वाच्च नयचक्रं विनापरम्। पाठिता गुरुभिः सर्वं कल्याणगीमतयोऽभवत् (न्)॥ १६॥
एष मल्लो महाप्राज्ञस्तेजसा हरिकोपनः। उन्मोच्य पुस्तकं बाल्यात्सत्वरं वाचयिष्यति॥ १७॥
ततस्योपद्रवेऽस्मास्वनुतापोऽतिदुस्तरः। प्रत्यक्षं तज्जनन्यास्तजगदे गुरुणा च सः॥ १८॥
वत्सेदं पुस्तकं पूर्वं निषिद्धं मा विमोचयः। निषिद्धं वि [illegible] तीर्थयात्रादि [illegible]॥ १९॥
मातुरप्यसमक्षं स पुस्तकं बालिशोऽमुचत्। उन्मान्यं प्रथमे पत्रे आर्यामेनामवाचयत्॥ २०॥
विधिनियमभंगवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकमवोचत्। जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम्॥ २१॥
अर्थं चिन्तयतोऽस्याथ पुस्तकं श्रुतदेवता। पत्रं चाच्छेदयामास दुरंता गुरुणां क्षतिः॥ २२॥
इतिकर्तव्यतामूढो मल्लश्चिरमरोदीत् [illegible] दैवशात्किं [illegible]॥ २३॥
पृष्टः किमिति मात्राद दूरं चाऽपुस्तकं ययौ। संघो विषादमापेदे [illegible] [illegible]॥ २४॥
आत्मनः स्खलितं साधु समाचरयते स्वयम्। विचारयति [illegible]॥ २५॥
गिरिपल्ल [illegible] पर्वतगुहान्तरे। [illegible]॥ २६॥ प्र० च०

की माता को मिली । उसने रोने का कारण पूछा तो मल्ल ने अपने हाथ से किसी ने पुस्तक खींचलेने का हाल कहा । इस पर साध्वी एवं सकल श्री संघ को आश्चर्य के साथ दुःख हुआ ।

मुनि मल्ल ने कई उपाय सोचे परन्तु आखिर उसने श्रुतदेवता* की आराधना करना ठीक समझ 'गिरिखण्ड' नामक पर्वत की गुफा में जाकर छट छट पारणा और पारणा के दिन रूक्ष आहार लेना किया जिसको चार मास होगया । इस पर साध्वी दुर्लभा एवं श्रीसंघ ने मुनि को विगइ लेने का आग्रह किया पर मुनि ने इनकार कर दिया खैर छ मास के अंत में श्रुत देवता ने संतुष्ट होकर परीक्षा के लिये मुनि को प्रकार के प्रश्न पुच्छे जिसके उत्तर मुनिमल्लने शीघ्र और भाव पूर्ण दिये—

मुनि मल्ल की स्मरण शक्ति से प्रसन्न होकर देवता ने वरदान दिया । मुनि ने पुस्तक मांगी । देवी ने कहा पुस्तक तो नहीं मिलेगी ? कारण उसके पढ़ने से कई उपसर्ग होंगे परन्तु मैं आपको वरदान देती कि जो एक श्लोक आपने पढ़ा है उससे ही आप सम्पूर्ण ग्रन्थ की रचना कर सकोगे, कहीं पर भी स्खलना न आवेगी इत्यादि मुनि मल्ल 'तथास्तु' कह कर अपने स्थान आये और अपनी माता एवं श्रीसंघ को सब कहा जिससे सब लोग संतुष्ट एवं प्रसन्न हुये । तत्पश्चात् मुनि मल्ल ने दश हजार श्लोक प्रमाण वाला नयचक्र ग्रन्थ रचा जिसको देख राजा प्रजा खुश हुये और उस पुस्तक रत्न को गजारूढ़ करवा कर महामहोत्सव पूर्वक उपाश्रय में पधराया । आचार्य जिनानन्दसूरि दीर्घकाल से वल्लभी नगरी में पधारे श्रीसंघ की प्रार्थना से सूरिजी ने मुनि मल्ल को योग्य समझ कर आचार्य पद से विभूषित किया ।

श्री जिनयश नामक मुनि ने एक प्रमाण विषय का ग्रन्थ बनाया और गुरु के कहने से अल्लराजा की राजसभा में जाकर उस ग्रन्थ को पढ़कर सुनाया तथा यक्षमुनि ने अष्टांग निमित्त नामक ग्रन्थ की रचना की।

आचार्य मल्ल ने किसी स्थविरों से बौद्धों द्वारा अपने गुरु जिनानन्द का पराजय सुना था

*श्रुतदेवतया संघसमाराधितया ततः । ऊचे तदा परीक्षार्थं को मिष्टा इति भारतीम् ॥ २९ ॥
वल्ला इत्युत्तरं प्रादान्मल्लः फुल्लतपोनिधिः । षण्मासान्ते पुनः प्राह वाग्वं केनेति तत्पुरः ॥ ३० ॥
उक्तं गुडघृतेनेति धारणात्स्तुतोष सा । वरं वृणीष्वेति च प्राह तेनोक्तं यच्छ पुस्तकम् ॥ ३१ ॥
श्रुताधिष्ठायिनि प्रोचेऽवहितो मद्वचः शृणु । ग्रन्थेऽत्र प्रकटे कुर्युर्द्विषो देवा उपद्रवम् ॥ ३२ ॥
श्लोकेनैकेन शास्त्रस्य सर्वमर्थं ग्रहीष्यसि । इत्युक्त्वा सा तिरोधत्त गच्छं मल्लश्च संगतः ॥ ३३ ॥
नयचक्रं नवं तेन श्लोकायुतमितं कृतम् । प्राग्ग्रन्थार्थप्रकाशेन सर्वोपादेयतां ययौ ॥ ३४ ॥
शास्त्रस्यास्य प्रवेशं द संघश्चक्रे महोत्सवात् । हस्तिस्कन्धाधिरूढस्य प्रौढस्य च महीशितुः ॥ ३५ ॥
तथा जिनयशोनामा प्रमाणग्रन्थमादधे । अल्लभूपसभेऽवादि श्रीनन्दगुरोगिरा ॥ ३६ ॥
यक्षेण संहिता चक्रे निमित्ताष्टांगबोधनी । सर्वान् प्रकाशयत्यर्थान् या दीपकलिका यथा ॥ ३७ ॥
मल्लः समुल्लसन्मुल्लोफुल्लवेल्लद्यशोनिधिः । शुश्राव स्थविराख्यानात् न्यक्कारं बौद्धतो गुरोः ॥ ३८ ॥
अमानैः प्रयाणैः स भृगुकच्छं समागमत् । संघः प्रभावनां चक्रे प्रवेशादि महोत्सवैः ॥
बुद्धानन्दस्ततो बौद्धानन्दमद्भुतमाचरत् । स्वेनाम्बरो मया वादे जितो दृष्टे [illegible] ॥
मल्लाचार्यः स पञ्चाशी [illegible] । नयचक्रमहाग्रन्थ [illegible] ॥ ४० ॥
नाव [illegible] गतो गृहम् । [illegible] ॥ ४६ ॥
मल्लाचार्ये [illegible] । महोत्सवेन [illegible] ॥ ४८ ॥
विदर्द तत्र [illegible] मुनिसत्तमः । मल्लवादी [illegible] ॥ ६१-७० ॥

आपसे सहन नहीं हो सकी अतः आप विहार करते हुए भरोंच नगर की ओर पधारे। श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत सत्कार किया और नगर प्रवेश करवाया।

बौद्धाचार्य्य बुद्धानंद भी उस समय भरोंच में ही था। जिनानन्द को जीत लेने से उसका गर्व अहंकार खूब बढ़ गया था और आचार्य मल्ल के लिये यद्वा तद्वा शब्द कहने लगा। तब आचार्य मल्ल ने कहा कि केवल शब्द मात्र से जय पराजय का निर्णय नहीं होता है पर परीक्षा किसी राजसभा में ही हो सकती है। अतः राज सभा में दोनों आचार्यों का शास्त्रार्थ होना निश्चय हुआ और ठीक समय पर राजा एवं पण्डितों की सभा में शास्त्रार्थ शुरू हुआ। कई दिन शास्त्रार्थ चला आखिर बौद्धाचार्य्य पराजित होगया अर्थात् बुद्धानंद का निरानन्द होगया और आचार्य मल्ल का नाम मल्लवादीसूरि अर्थात 'यथा नाम तथा गुण' वाली कहावत चरतार्थ होगई। उस समय से आप मल्लवादीसूरि के नाम से विख्यात होगये।

आचार्य मल्लवादीसूरि ने अपने गुरु जिनानन्दसूरि को भरोंच में बुलाया और श्रीसंघ ने बड़े ही समारोह के साथ स्वागत किया। गुरु महाराज मल्लवादीसूरि की विजय एवं कुशलता देख कर आनन्दमय बन गये। इस प्रकार मल्लवादीसूरि महा-प्रभाविक आचार्य हुये। और उन्होंने सर्वत्र विहार कर वादियों पर जबर्दस्त धाक जमादी और बहुत अजैनों को जैन बना कर धर्म की प्रभावना की।

उधर बुद्धानंद जैनों के साथ द्वेष रखता हुआ मर कर व्यान्तर देव हुआ। उसने मल्लवादीसूरि के बनाये हुये नयचक्र तथा पद्मचरित्र अर्थात् २४००० श्लोक प्रमाण वाला जैन रामायण नामक ग्रन्थ एवं इन दोनों ग्रन्थों का अपहरण कर सदा के लिये नष्ट कर दिये।✻ मरने पर भी दुष्टों की दुष्टता नहीं जाती है। जिसका यह एक ज्वलंत उदाहरण है।

आचार्य मल्लवादीसूरि के समय के विषय प्रबंधकार खुल्लासा नहीं किया है पर अन्योन्य साधनों से आप का समय विक्रम की पांचवी शताब्दी का अनुमान किया जा सकता है और उसी समय लाट सौराष्ट्रादि प्रान्तों में बोधो का जोर जमा हुआ था जिसको आचार्य मल्लवादीसूरि ने कम कर दिया था अर्थात उनका बढ़ता हुआ प्रचार को रोक दिया और जैनधर्म का प्रचार को सर्वत्र बढ़ाया—

प्रबन्धकार आचार्य मल्लबादी और बोधों का शास्त्रार्थ भरोंच में हुआ बतलाते हैं तब अन्य स्थानों पर इस शास्त्रार्थ का स्थान वल्लभी नगरी बतलाया है और यह संभव भी हो सकता है कारण वल्लभी में बोधों के द्वारा आचार्य जिनानन्दसूरि का पराजय होने के ही कारण तीर्थ श्री शत्रुञ्जय बोधों के अधिकार में चला गया था और कई अर्सा तक जैनसंघ श्री शत्रुंजय की यात्रा से वंचित रहा था तदान्तर आचार्य मल्लवादी सूरि ने बोधों का पराजय कर पुनः शत्रुंजय अपने स्वाधिन किया। आचार्य मल्लवादी जैनशासन में एक मल्ल ही थे आप की ज्ञान किरणों का प्रकाश चारों ओर पड़ रहा था वादियों पर तो इस कदर कि धाक जमगइ थी कि जैसे शेर के सामने गीदड़ भाग छुटते हैं वैसे ही मल्लवादीसूरि का नाम सुनते ही वादी कम्प उठते थे मल्लवादी सूरि ने सर्वत्र विहार कर फिर से जैनधर्म का विचार चमका दिया था।

मल्लबादी सूरि नामके और भी कई आचार्य हुये पर वे बाद में हुये हैं सब से पहिले मल्लवादी

✻ वल्लभ्याः श्रीजिनानन्दः प्रभुरानायितस्तदा। संघमभ्यर्थ्य पूज्यः स्वः सूरिणा मल्लवादिना ॥६६॥
नयचक्रमहाग्रन्थः शिष्याणां पुरतस्तदा। व्याख्यातः परवादीन्द्रकुन्दनेन्दन केसरी ॥६९॥
श्रीपद्मचरितं नाम रामायणमुदाहरत्। चतुर्विंशति देवस्य सहस्रा ग्रन्थमानतः ॥७०॥ प्र० च०

की माता को मिली। उसने रोने का कारण पूछा तो मल्ल ने अपने हाथ से किसी ने पुस्तक खींचलेने का सब हाल कहा। इस पर साध्वी एवं सकल श्री संघ को आश्चर्य के साथ दु ख हुआ।

मुनि मल्ल ने कई उपाय सोचे परन्तु आखिर उसने श्रुतदेवता* की आराधना करना ठीक समझ कर 'गिरिखण्ड' नामक पर्वत की गुफा में जाकर छट छट पारणा और पारणा के दिन रूक्ष आहार लेना शुरु किया जिसको चार मास होगया। इस पर साध्वी दुर्लभा एवं श्रीसंघ ने मुनि को विगइ लेने का आग्रह किया। पर मुनि ने इनकार कर दिया खैर छ मास के अंत में श्रुत देवता ने संतुष्ट होकर परीक्षा के लिये मुनि को कई प्रकार के प्रश्न पुच्छे जिसके उत्तर मुनिमल्लने शीघ्र और भाव पूर्ण दिये—

मुनि मल्ल की स्मरण शक्ति से प्रसन्न होकर देवता ने वरदान दिया। मुनि ने पुस्तक मांगी। देवता ने कहा पुस्तक तो नहीं मिलेगी? कारण उसके पढ़ने से कई उपसर्ग होंगे परन्तु मैं आपको वरदान देता कि जो एक श्लोक आपने पढ़ा है उससे ही आप सम्पूर्ण ग्रन्थ की रचना कर सकोगे, कहीं पर भी स्खलना न आवेगी इत्यादि मुनि मल्ल 'तथास्तु' कह कर अपने स्थान आये और अपनी माता एवं श्रीसंघ को सब हाल कहा जिससे सब लोग संतुष्ट एवं प्रसन्न हुये। तत्पश्चात् मुनि मल्ल ने दश हजार श्लोक प्रमाण वाला नयचक्र ग्रन्थ रचा जिसको देख राजा प्रजा खुश हुये और उस पुस्तक रत्न को गजारूढ़ करवा कर महामहोत्सव पूर्वक उपाश्रय में पधराया। आचार्य जिनानन्दसूरि दीर्घकाल से वल्लभी नगरी में पधारे श्रीसंघ की प्रार्थना से सूरिजी ने मुनि मल्ल को योग्य समझ कर आचार्य पद से विभूषित किया।

श्री जिनयश नामक मुनि ने एक प्रमाण विषय का ग्रन्थ बनाया और गुरु के कहने से अमुराजा की राजसभा में जाकर उस ग्रन्थ को पढ़कर सुनाया तथा यक्षमुनि ने अष्टांग निमित्त नामक ग्रन्थ की रचना की।

आचार्य मल्ल ने किसी स्थविरों से बौद्धों द्वारा अपने गुरु जिनानन्द का पराजय सुना यह बा...

---

*श्रुतदेवतया संघसमाराधितया ततः। ऊचे तदा परीक्षार्थं को मिष्टा इति भारतीम् ॥ २९ ॥
वल्ला इत्युत्तरं प्रादान्मल्ल फुल्लतपोनिधिः। षण्मासान्ते पुनः प्राह वाचं केनेति तद्गुरः ॥ ३० ॥
उक्तं गुडघृतेनेति धारणातस्तुतोष सा। वरं वृणिष्वेति च प्राह तेनोक्तं यच्छ पुस्तकम् ॥ ३१ ॥
श्रुताधिष्ठायिनि प्रोचेऽस्वहितो मद्वचः शृणु। ग्रन्थेऽत्र प्रकटे कुर्युर्द्विषो देवा उपद्रवम् ॥ ३२ ॥
श्लोकेनैकेन शास्त्रस्य सर्वमर्थं ग्रहीष्यसि। इत्युक्त्वा सा तिरोधत्त गच्छं मल्लश्च सगात ॥ ३३ ॥
नयचक्रं नवं तेन श्लोकायुतमितं कृतम्। प्राग्ग्रन्थार्थं प्रकाशेन सर्वोपादेयतां ययौ ॥ ३४ ॥
शास्त्रस्यास्य प्रवेशं हं संघश्चक्रे महोत्सवात्। हस्तिस्कन्धाधिरूढस्य प्रौढस्य च महीशितुः ॥ ३५ ॥
तथा जिनयशोनाम्ना प्रमाणग्रन्थमादधे। अल्लभूपसुभेवादि श्रीनन्दगुरुगिरा ॥ ३० ॥
यक्षेण संहिता चक्रे निमित्ताष्टाङ्गबोधनी। सर्वान् प्रकाशयत्यर्थान् या दीपकलिका यथा ॥ ३१ ॥
मल्ल प्रमुल्ल-सन्मुल्लो फुल्लवेल्लद्यशोनिधिः। शुश्राव स्थविरास्यानात् स्वकारं बौद्धतो गुरोः ॥ ४० ॥
श्रमणाः प्रयत्नैः स भृगुकच्छं समागमत्। संघः प्रभावनां चक्रे प्रवेशादि महोत्सवैः ॥
बुद्धानन्दस्ततो बौद्धानन्दनमुनमाचरत्। श्वेताम्बरो मया वादे जिग्ये दर्पं अश्रमुष ॥
मल्लाचार्यः स पन्नासीं पाश्चात्य[illegible]मवदत्। नयचक्रमहाग्रन्थाभिप्रायं मत्पुरस्कृतः ॥ ४७ ॥
[illegible] लीलतोऽस्मी जनो गृहम्। मल्लेनाप्रतिमल्लेन जितमित्यभवत् [illegible] ॥ ४८ ॥
मल्लाचार्ये दधौ पुण्यहर्षं [illegible]। महोत्सवेन भूपतः [illegible] ॥ ४९ ॥
जितं [illegible] वादीति [illegible] मुनिपमोः। मल्लवादी ततः [illegible] ॥ ५०-५१ ॥

आपसे सहन नहीं हो सकी अतः आप विहार करते हुए भरोंच नगर की ओर पधारे। श्रीसंघ ने आपका अच्छा स्वागत सत्कार किया और नगर प्रवेश करवाया।

बौद्धाचार्य्य बुद्धानंद भी उस समय भरोंच में ही था। जिनानन्द को जीत लेने से उसका गर्व अहंकार खूब बढ़ गया था और आचार्य मल्ल के लिये यद्वा तद्वा शब्द कहने लगा। तब आचार्य मल्ल ने कहा कि केवल शब्द मात्र से जय पराजय का निर्णय नहीं होता है पर परीक्षा किसी राजसभा में ही हो सकती है। अतः राज सभा में दोनों आचार्यों का शास्त्रार्थ होना निश्चय हुआ और ठीक समय पर राजा एवं पण्डितों की सभा में शास्त्रार्थ शुरू हुआ। कई दिन शास्त्रार्थ चला आखिर बौद्धाचार्य्य पराजित होगया अर्थात् बुद्धानंद का निरानन्द होगया और आचार्य मल्ल का नाम मल्लवादीसूरि अर्थात 'यथा नाम तथा गुण' वाली कहावत चरतार्थ होगई। उस समय से आप मल्लवादीसूरि के नाम से विख्यात होगये।

आचार्य मल्लवादीसूरि ने अपने गुरु जिनानन्दसूरि को भरोंच में बुलाया और श्रीसंघ ने बड़े ही समारोह के साथ स्वागत किया। गुरु महाराज मल्लवादीसूरि की विजय एवं कुशलता देख कर आनन्दमय बन गये। इस प्रकार मल्लवादीसूरि महा-प्रभाविक आचार्य हुये। और उन्होंने सर्वत्र विहार कर वादियों पर जबर्दस्त धाक जमादी और बहुत अजैनों को जैन बना कर धर्म की प्रभावना की।

उधर बुद्धानंद जैनों के साथ द्वेष रखता हुआ मर कर व्यान्तर देव हुआ। उसने मल्लवादीसूरि के बनाये हुये नयचक्र तथा पद्मचरित्र अर्थात् २४००० श्लोक प्रमाण वाला जैन रामायण नामक ग्रन्थ एवं इन दोनों ग्रन्थों का अपहरण कर सदा के लिये नष्ट कर दिये।✽ मरने पर भी दुष्टों की दुष्टता नहीं जाती है। जिसका यह एक ज्वलंत उदाहरण है।

आचार्य मल्लवादीसूरि के समय के विषय प्रवंधकार खुल्लासा नहीं किया है पर अन्योन्य साधनों से आप का समय विक्रम की पांचवी शताब्दी का अनुमान किया जा सकता है और उसी समय लाट सौराष्ट्रादि प्रान्तों में बोधो का जोर जमा हुआ था जिसको आचार्य मल्लवादीसूरि ने कम कर दिया था अर्थात उनका बढ़ता हुआ प्रचार को रोक दिया और जैनधर्म का प्रचार को सर्वत्र बढ़ाया—

प्रबन्धकार आचार्य मल्लवादी और बोधों का शास्त्रार्थ भरोंच में हुआ बतलाते हैं तब अन्य स्थानों पर इस शास्त्रार्थ का स्थान वल्लभी नगरी बतलाया है और यह संभव भी हो सकता है कारण वल्लभी में बोधों के द्वारा आचार्य जिनानन्दसूरि का पराजय होने के ही कारण तीर्थ श्री शत्रुञ्जय बोधों के अधिकार में चला गया था और कई अर्सा तक जैनसंघ श्री शत्रुंजय की यात्रा से वंचित रहा था तदान्तर आचार्य मल्लवादी सूरि ने बोधों का पराजय कर पुनः शत्रुंजय अपने स्वाधिन किया। आचार्य मल्लवादी जैनशासन में एक मल्ल ही थे आप की ज्ञान किरणों का प्रकाश चारों ओर पड़ रहा था वादियों पर तो इस कदर कि धाक जमगइ थी कि जैसे शेर के सामने गीदड़ भाग छुटते हैं वैसे ही मल्लवादीसूरि का नाम सुनते ही वादी कम्प उठते थे मल्लवादी सुरि ने सर्वत्र विहार कर फिर से जैनधर्म का सितार चमका दिया था।

मल्लवादी सूरि नामके और भी कई आचार्य हुये पर वे बाद में हुये हैं सब से पहिले मल्लवादी

✽ वलभ्यां श्रीजिनानन्दः प्रभुरागामितस्तदा। संघनन्दर्थ्य पूज्यः स्वः सूरिणा मल्लवादिना ॥६६॥
नयचक्रमहाग्रन्थः शिष्याणां पुरतस्तदा। व्याख्यातः परवादीन्द्रजन्मभेदन केसरी ॥६९॥
श्रीपद्मचरितं नाम रामायणमुदाहरत्। चतुर्विंशति रेतस्य सहस्रा ग्रन्थमानतः ॥७०॥ प्र० च०

सूरि बौद्धों को पराजित करने वाले विक्रम की पांचवीं छटी शताब्दी के अन्दर ही हुये हैं जिन्हों का वर्णन संक्षिप्त में यहाँ किया है।

चैत्यवास प्रकरण

चैत्यवास—चैत्य-मन्दिर—वास—ठहरना अर्थात मन्दिर में ठहरने को चैत्यवास कहते हैं!

चैत्यवासी—मन्दिर में ठहरने वाले--यदि साधु मन्दिर में ठहरे तो चैत्यवासी साधु और गृहस्थ मन्दिर में ठहरे तो चैत्यवासी गृहस्थ अर्थात् जो मन्दिर में ठहरे वही चैत्यवासी कहलाते हैं सामनतः चैत्य-वासी का यही अर्थ है ?

प्रश्न-चैत्य-मन्दिर के किस विभाग को चैत्य कहा जाय! कारण एक तो मूल गम्भारा कि जहाँ तीर्थङ्करों की मूर्तियों स्थापित की जाती है दूसरा मन्दिर का तमाम कम्पाउन्ड ? जैसे फलोदी कापरड़ा पानसर भोयण वगैरह स्थानों में है।

मन्दिर–मूल गम्भारा को ही कहा जाता है न कि मन्दिर के सब कम्पाउन्ड ? जैसे गृहस्थों के घरों में देरासर होते हैं तो वे मूल गम्भारा को छोड़ कर सब मकान में रह सकते हैं एवं खाते पीते और सब काम करते हैं इसी प्रकार मन्दिर में भी मूल गम्भारा को छोड़ शेष मकान में साधु ठहर सकते हैं। और वहाँ व्याख्यान भी दे सकते हैं आहार पानी कर सकते हैं क्यों कि जब तीर्थङ्कर देव विद्यामान थे तब भी साधु भगवान के पास ही ठहरते थे और आहार पानी भी वही करते थे ऐसा बहुतसे सूत्रों में उल्लेख मिलते हैं।

"समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूर सामंते" अर्थात् नातिदूर नाति निकट"

"भात पाणी पडिदीसइ २ ता" अर्थात भातपानी भगवान को देख कर" श्री भगवतीजी सूत्र"

जब भाव तीर्थङ्करों के पास साधु ठहरते और आहार पानी करते थे तब स्थापना तीर्थङ्करों यानि जिनप्रतिमा के पास साधु ठहरे और वहां आहार पानी करें तो क्या दोष हैं ? केवल जैन साधु ही नहीं पर बौद्धादि अन्य धर्मों के साधु भी अपने २ मन्दिरों में ठहरते हैं! और उपदेश भी दिया करते हैं।

प्रश्न–गृहस्थों के घरों में तो छोटी मूर्तियां (ग्यारह इंच से बड़ी नहीं) रहती हैं पर मन्दिरों में तो छोटी बड़ी सब तरह की मूर्तियां रहती है तो घर देरासर और मन्दिर की बराबरी कैसे हो सकती हैं ?

उत्तर—मूर्तियां चाहे छोटी हो चाहे बड़ी हो उनकी भक्ति और आशातना तो बराबर ही होती है ?

प्रश्न—जैन साधुओं को मन्दिर में ठहरने की मनाई क्यों है ?

उत्तर—पहले जमाने में तो जैन साधु जंगल वन उद्यान और मन्दिरों में ही ठहरते थे परन्तु जब बारह वर्षी वगैरह जनसंहार भयंकर दुकाल पड़े तब गृहस्थ लोगों ने मन्दिरों की सारसंभाल एवं व्यवस्था की जो अपनी जुम्मेवारी थी वह साधुओं पर डालदी और कई साधुओंने मन्दिरकी व्यवस्था अपने सिर ले भी ली और उनने अपने संयम को भूल कर सावद्यकार्यों में भी प्रवृति करने लगगये। जब वे अपने चारित्रकी मर्यादा का उलंघन कर ममता में खूच गये तो उन्होंके प्रवृति संघ को अहची होगई और उनको मन्दिरों से दूर कर यह नियम बना लिया कि अब कोई भी साधु मन्दिर में नहीं ठहर सके। इस लिये अब जैन साधु मन्दिर में नहीं ठहरते हैं। क्या उस समय और क्या आज विरोध मन्दिर में ठहरने का नहीं है पर साधुओं को सावद्य कृत्य करने का है!

प्रश्न—चैत्यवास कब से शुरू हुआ।

उत्तर—जब से मन्दिर हुआ तब से ही चैत्यवास समझ लीजिये।

प्रश्न—इसमें कोई शास्त्र प्रमाण भी है।

उत्तर—महानिशीथ सूत्र के पांचवा अध्ययन में विस्तार से उल्लेख मिलता है कि अनन्तकाल पह हुन्डासर्पिण काल में बहुत से साधु चैत्यवासी विद्यमान थे तथा आचार्य हरिभद्र सूरि ने समरादित्य की कथ लिखी है उसमें भी जैन साधु साध्वियों के मकान में तीर्थङ्करों की मूर्तियों थी और मन्दिरों में ठहरने अलावा जिस मकान (उपाश्रय) में साधु ठहरते वहां भी वे मूर्तियों की स्थापना कर देते थे। और ऐ सैकड़ों उपाश्रय आज भी विद्यमान है। साधु मन्दिरों में ठहरते तथा उपाश्रयों में मूर्तियां स्थापना करते थे उसमें भी वे दीर्घ दृष्टि से अनेक प्रकार के लाभ समझते थे जैसे कि।

१ - चतुर्विध संघ की धर्म पर श्रद्धा दृढ़ एवं मजबूत रहती है।

२—मन्दिर जी का सदैव रक्षण होता है !

३—देव, गुरु की उपासना करने में गृहस्थों को अच्छी सुविधा रहती है यदि देव और गुरु के मका में विशेष अन्तर हो तो कभी-कभी आलस्य प्रमाद भी आक्रमण कर बैठता है ? यदि देव, गुरु का एक स्थान हो तो देव पूजा करके सीधा हीं गुरु वन्दन कर व्याख्यानादि उपदेश सुन सकते हैं !

४—गुरु मन्दिर में ठहरा हो तो गृहस्थो को लिहाज रहती है कि मैं मन्दिर नहीं जाउंगा, पूज नहीं करूँगा तो गुरु महाराज क्या कहेंगे ?

५—मन्दिर की आशातना होती भी रुक जाती है !

६—गृहस्थ लोग स्वतंत्रा पूर्वक कृत्याकृत्य कार्य नहीं कर सके।

७—साधुओं के लिये आधा कर्मी मकान बनाने की भी जरूरत न रहे ।

८—देव द्रव्य का भी दुरुपयोग नहीं हो सके।

९—अन्य लोग भी आचार्य श्री के पास आते हैं तो उनको सहज ही में देव दर्शन हो सकता है।

इत्यादि मुनि मन्दिरों में ठहरने से अनेक प्रकार से लाभ था ! जब से मुनियों ने मन्दिरों में रहन बन्द किया तब से उपरोक्त लाभ से हाथ धोना पड़ा इतना ही क्यों पर उलटा नुकसान ही हुआ है। क्य मुनि मन्दिरों में रहते तो हजारों रुपये तीर्थ यात्रार्थ टेक्स का लगा सकते ? स्वप्न में भी नहीं।

प्रश्न—सुना जाता है कि पूर्व जमाने में साधु जगलों में ही ठहरते थे फिर नगर में कब से रहने लगे तथा चैत्यवास कब से हुआ ? यदि चैत्यवास शास्त्र सम्मत्त था तो फिर संघ को इस प्रवृति से अरुची क्यों हुई ? इसका क्या कारण हुआ था ?

उत्तर—इन सब का उत्तर उपर दे दिया गया है तथापि और सुन लीजिये कि- काल दो प्रकार का होता है एक उत्सर्पिणी दूसरा अवसर्पिणी। उत्सर्पिणी में ज्यों २ काल व्यतीत होता है त्यों २ उन्नति होती है तब अवसर्पिणी काल में अवनति होती है ! जिसमें भी हुन्डासर्पिणी अनंता काल से कभी २ आती है जो उपर हम श्रीमहानिशीथ सूत्र का उदाहरण दिया है वह अनंता काल पूर्व का है और उस समय हुन्डा-सर्पिणी काल था और धर्मश्री नामक अन्तिम तीर्थंकर के निर्वाण के बाद चैत्यवास में विकार होगया था।

वैसे ही हमारे लिये इस समय भी हुन्डासर्पिणी का आगमन हुआ है और अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर का निर्वाण के बाद चैत्यवास में विकार हो गया ।

यह बात हम पहले आचार्य भद्रबाहु के जीवन में लिख आये हैं कि पूर्व जमानेमें साधु प्रायः जंगलों में एवं वन उपवनों में ही ठहरते थे । प्रश्नव्याकरणसूत्र* में साधुओं को दिन २ प्रति फल फूलों की आज्ञा लेने का भी उल्लेख मिलता है इससे पाया जाता है कि जंगलों में रहने वाले साधु निर्जीव-फासुक फल फूलों से भी अपनी क्षुधा को शान्त कर आत्म कल्याण करते थे और कई नगर में भी भिक्षार्थ आते जाते थे परन्तु जब उपरा उपरी लगेतार बारह वर्ष जन संहार दुकाल पड़ा उस हालत में साधु जंगलों को छोड़ नगर में रहना स्वीकर कर लिया ? यदि वे मन्दिरों में ठहरें तो भी सैकड़ों हजारों मुनियों का निर्वाह कैसे हो सके? अतः वे गृहस्थोंके मकानमें ठहरना स्वीकार किया उन्हों के लिये आचार्य भद्रबाहु को नियम भी बनाना पड़ा जो वृहत्कल्प एवं व्यवहार सूत्र में संकलित कर दिये कि गृहस्थ के घर में घृत तैल गुड़ खाण्ड वगैरह के वर्तन इधर उधर बिखरे हुए पड़ा हो तो हाथ की रेखा सूके वहां तक भी नहीं ठहरे यदि साधारण प्रबन्ध किया हुआ हो तो एक मास और विशेष प्रबन्ध किया हो तो चार मास ठहर सके । (देखो इस ग्रन्थ का पृष्ठ २४१) इससे स्पष्ट पाया जाता है कि उस समय नगरों में साधुओं के ठहरने के लिये धर्मशाला उपाश्रय प्रायः नहीं थे ! और साधुओं के निमित्त बनाया हुआ मकान में साधु ठहर नहीं सकते थे कारण ऐसा मकान को शास्त्रकारों ने आधा कर्मी जो संयम की घात करने वाला कहा है ! दशवैकालिकसूत्र छट्ठा अध्ययन में पृथ्व्यादि का आरंभ करने कराने व अनुमोदन करने वाले साधु आचार से भ्रष्ट, आचारांग सूत्र में वर्ज्य किया और निशीथ सूत्र में दंड बतलाया है अतः वे निस्पृही आत्मार्थी विशुद्ध चारित्र के पालने वाले मोक्षाभिलाषी महात्मा मन कर के भी अपने लिये मकान की इच्छा नहीं करते थे ।

एक यह बात भी है कि कोई भी अच्छा आदमी आपत्तकाल में किसी भी प्रकार से अनुचित कार्य करता है उसको वह अच्छी तरह से जानता है कि मैं इस आपत्तकाल में यह कार्य लाचार होकर करता हूँ पर यह मेरे लिये हित का कारण नहीं है अतः जितना मूल पुरुष को पश्चाताप रहता है उतना उनकी परम्परा सन्तान को नहीं होता है वह तो उनको प्रवृति ही समझ लेते हैं यदि कोई कह तो अनेक हेतु युक्तियों लगा कर उस कार्य को सिद्ध एवं शास्त्र सम्मत बतलाने की कोशिश करता रहेगा ! उदाहरण जैसे गृहस्थ लोग अपनी कन्या के पैसा लेना महान् पाप एवं अधर्म समझते हैं पर किसी आपत्तकाल में ऐसा अनुचित कार्य कर भी लिया हो तो उसको शर्म आती है पश्चाताप करता है और उस कार्य को अनुचित एवं बड़ा भारी पाप तथा अधर्म समझता है पर उनकी सन्तान परम्परा में इतना दुःख नहीं पर वे एक प्रकार की प्रवृति समझ लेता है इतना ही क्यों पर जितने अधिक पैसा ले उतनी ही खुशी मनाते हैं । यही हाल हमारे निस्पृही निर्ग्रन्थों का हुआ जंगल में रहने वाले महात्मा अब से महाभयंकर दुकाल के कारण नगर में रहना स्वीकार किया उस समय गृहस्थों के अधिक परिचय वा मकानादि कई दोषों के कारण वे पश्चाताप करते थे पर बाद उनकी सन्तान परम्परा में वह पश्चाताप नहीं रहा पर उसको एक

* [illegible]
[illegible]"

"[illegible]"

प्रवृति ही समझली ज्यों ज्यों प्रवृति बढ़ती गई त्यों त्यों चारित्र के अन्दर शिथिलता भी बढ़ती गई ? जब निर्ग्रन्थ जंगलों में रहते थे तो उनको इतने वस्त्र पात्रों की आवश्यकता ही नहीं थी श्रीआचारांगसूत्र में साधुओं को अचेल और पाणि पत्र रहना लिखा है यदि ऐसे न रह सके तो एक वस्त्र और एक पात्र रख सके कल्पसूत्र में जीर्ण वस्त्र रखना लिखा है श्रीआचारांग सूत्र में यह भी लिया है कि शीत काल का आगमन समय साधु गृहस्थों से ऐसा जीर्ण वस्त्र जांच लें कि शीतकाल निकलने के बाद उसको टुकड़े २ करके परठ दे ! वृहत्कल्प सूत्र में लिखा है कि साधु भिक्षार्थ जाय तो अपने सब उपकरण साथ में ले जाय इत्यादि। इन प्रमाणों से पाया जाता है कि साधु जहां तक जंगलों में रहे वहां तक साधुओं के बिलकुल स्वल्प उपाधि रहती थीं ! जब नगर निवास किया तो आचार्य भद्रबाहु ने वृहत्कल्प में लिख दिया कि जब गृहस्थ दीक्षा ले तब तीन स्थान कपड़े के साथ में लेकर दीक्षा ले अर्थात् तीन स्थान कपड़ा ले जिससे चद्दर चोल पट्टादि सब वस्त्र बन जावे ! आत्मा निमित वासी है संज्ञा बढ़ाने से बढ़ती है और घटाने से घटती है एक तो नगर में गृहस्थों के संसर्ग में रहना दूसरा वस्तु की सुगमता से प्राप्ती तीसरा रखने के लिये मकान इत्यादि कारणों से निर्ग्रन्थों की आत्मा प्रलोभन में फँसकर आराम चाहने लग गई हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है कुछ भी हो पर यह बात तो निःशंक है कि जो निर्ग्रन्थपना जंगल में रहने के समय या वह नगर निवास करने के पश्चात के समय नहीं रहा था—

उन्नति या अवनति एक दम नहीं होती पर शनैः शनैः हुआ करती है नगर निवास करने पर श्रमण संघ में शिथिलता का श्रीगणेश तो होगया था ! भाग्यवसात् आर्य्य सुहस्ती के समय एक भयंकर दुकाल और पड़ गया उसने तो जनता में त्राहि त्राहि मचा दी थी उस समय पूर्व में विहार करने वाले साधु पश्चिम में चले आये और आवंति प्रदेश में वे विचरने लगे उस विकट अवस्था में भी सुविहितों का अभाव नहीं था आर्य्य महागिरि वगैरह जंगलों में रहकर जिन कल्पी की तुलना कर रहे थे आर्य सुहस्ति ने उस अकाल पीड़ित एक भिक्षु को दीक्षा दी वह उसी दिन की रात्रि में मरकर राजा सम्प्रति हुआ जब आचार्य सुहस्ति जीवत स्वामी की यात्रार्थ उज्जैन पधारे और राजा सम्प्रति को अपना भक्त बना उसके द्वारा जैन धर्म का प्रचार बढ़ा रहे थे कहा जाता है कि राजा सम्प्रति ने सवा लक्ष नये मन्दिर बनाये एवं हजारों मन्दिरों का जर्णोद्धार करवाया इस हालत में राजा सम्प्रति अपने गुरु के ठहरने के लिये मकान का अभाव के कारण उनके कष्टों को कैसे नहीं देखे होंगे ? और उस त्रुटि की पूर्ति के लिये उसने कुछ नहीं किया हो यह संभव नहीं होता है राजा सम्प्रति ने जहाँ नये मन्दिर बनाये उनके अन्दर एक ओर साधु ठहरने के लिये मकान बनवा दिया था और वे मन्दिर के कम्पाउन्ड में होने से तथा समीपहोने से उस मकान का नाम उपाश्रय रख दिया सौ सवासौ वर्षों पहले जिन मकानों को आधा कर्मी कहा जाता था वे विचार बदल गये और उन मकानों में साधु आराम से निवास करने लग गये !

कुदरत को इतने से ही संतोष नहीं हुआ पर आर्यवज्रसूरि के समय एक भयंकर बारह वर्षीय दुकाल पड़ा तथा थोड़ा ही अर्सा में आर्यवज्रसेन के समय पुनः बारह वर्षीय जनसंहार दुकाल पड़ गया। इन दोनों दुकालों ने तो जनता में इस कदर की त्राहि-त्राहि मचादी कि यदि कोई गृहस्थ अपने मकान में भोजन कर तत्काल ही बाहर निकल जाय तो भूखे भिखारी उसका उदर चीर कर अन्दर से भोजन निकाल कर खा जाते थे इससे अधिक क्या भयंकर होता है सेठ साहूकार और राजा तथा महाराजाओं को जहाँ एक

वैसे ही हमारे लिये इस समय भी हुन्डासर्पिणी का आगमन हुआ है और अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर का निर्वाण के बाद चैत्यवास में विकार हो गया ।

यह बात हम पहले आचार्य भद्रबाहु के जीवन में लिख आये हैं कि पूर्व जमानेमें साधु प्रायः जंगलों में एवं वन उपवनों में ही ठहरते थे। प्रश्नव्याकरणसूत्र* में साधुओं को दिन २ प्रति फल फूलों की आज्ञा लेने का भी उल्लेख मिलता है इससे पाया जाता है कि जंगलों में रहने वाले साधु निर्जीव-फासुक फल फूलों से भी अपनी क्षुधा को शान्त कर आत्म कल्याण करते थे और कई नगर में भी भिक्षार्थ आते जाते थे परन्तु जब उपरा उपरी लगेतार बारह वर्ष जन संहार दुकाल पड़ा उस हालत में साधु जंगलों को छोड़ नगर में रहना स्वीकार कर लिया ? यदि वे मन्दिरों में ठहरें तो भी सैकड़ों हजारों मुनियों का निर्वाह कैसे हो सके? अतः वे गृहस्थोंके मकानमें ठहरना स्वीकार किया उन्हों के लिये आचार्य भद्रबाहु को नियम भी बनाना पड़ा जो वृहत्कल्प एवं व्यवहार सूत्र में संकलित कर दिये कि गृहस्थ के घर में घृत तैल गुड़ खाण्ड वगैरह के वर्तन इधर उधर बिखरे हुए पड़ा हो तो हाथ की रेखा सूके वहां तक भी नहीं ठहरे यदि साधारण प्रबन्ध किया हुआ हो तो एक मास और विशेष प्रबन्ध किया हो तो चार मास ठहर सके। (देखो इस ग्रन्थ का पृष्ठ २४१) इससे स्पष्ट पाया जाता है कि उस समय नगरों में साधुओं के ठहरने के लिये धर्मशाला उपाश्रय प्रायः नहीं थे ! और साधुओं के निमित्त बनाया हुआ मकान में साधु ठहर नहीं सकते थे कारण ऐसा मकान को शास्त्रकारों ने आधा कर्मी जो संयम की घात करने वाला कहा है ! दशवैकालिकसूत्र छट्ठा अध्ययन में पृथ्व्यादि का आरंभ करने कराने व अनुमोदन करने वाले साधु आचार से भ्रष्ट, आचारांग सूत्र में वर्ज्य किया और निशीथ सूत्र में दंड बतलाया है अत' वे निस्पृही आत्मार्थी विशुद्ध चारित्र के पालने वाले मोक्षाभिलाषी महात्मा मन कर के भी अपने लिये मकान की इच्छा नहीं करते थे।

एक यह बात भी है कि कोई भी अच्छा आदमी आपत्तकाल में किसी भी प्रकार से अनुचित कार्य करता है उसको वह अच्छी तरह से जानता है कि मैं इस आपत्तकाल में यह कार्य लाचार होकर करता हूँ पर यह मेरे लिये हित का कारण नहीं है अतः जितना मूल पुरुष को पश्चाताप रहता है उतना उनकी परम्परा सन्तान को नहीं होता है वह तो उनको प्रवृति ही समझ लेते हैं यदि कोई कहे तो अनेक हेतु युक्तियों लगा कर उस कार्य को सिद्ध एवं शास्त्र सम्मत बतलाने की कोशिश करता रहेगा ! उदाहरण जैसे गृहस्थ लोग अपनी कन्या के पैसा लेना महान् पाप एवं अधर्म समझते है पर किसी आपत्तकाल में ऐसा अनुचित कार्य कर भी लिया हो तो उसको शर्म आती है पश्चाताप करता है और उस कार्य को अनुचित एवं बड़ा भारी पाप तथा अधर्म समझता है पर उनकी सन्तान परम्परा में इतना दुःख नहीं पर वे एक प्रकार की प्रवृति समझ लेता है इतना ही क्यों पर जितने अधिक पैसा ले उतनी ही खुशी मनाते हैं। यही हाल हमारे निस्पृही निर्ग्रन्थों का हुआ जंगल में रहने वाले महात्मा मन से महाभयंकर दुकाल के कारण नगर में रहना स्वीकार किया उस समय गृहस्थों के अधिक परिचय या मकानादि के दोषों के कारण वे पश्चाताप करते थे पर बाद उनकी सन्तान परम्परा में वह पश्चाताप नहीं रहा पर उनको एक

* [illegible] ...इ लि इ हरिय [illegible]"

"[illegible]"

प्रवृति ही समझली ज्यों ज्यों प्रवृति बढ़ती गई त्यों त्यों चारित्र के अन्दर शिथिलता भी बढ़ती गई ? जब निर्ग्रन्थ जंगलों में रहते थे तो उनको इतने वस्त्र पात्रों की आवश्यकता ही नहीं थी श्रीआचारांगसूत्र में साधुओं को अचेल और पाणि पत्र रहना लिखा है यदि ऐसे न रह सके तो एक वस्त्र और एक पात्र रख सके कल्पसूत्र में जीर्ण वस्त्र रखना लिखा है श्रीआचारांग सूत्र में यह भी लिया है कि शीत काल का आगमन समय साधु गृहस्थों से ऐसा जीर्ण वस्त्र जांच लें कि शीतकाल निकलने के बाद उसको टुकड़े २ करके परठ दे ! बृहत्कल्प सूत्र में लिखा है कि साधु भिक्षार्थ जाय तो अपने सब उपकरण साथ में ले जाय इत्यादि इन प्रमाणों से पाया जाता है कि साधु जहां तक जंगलों में रहे वहां तक साधुओं के बिलकुल स्वल्प उपाधि रहती थीं ! जब नगर निवास किया तो आचार्य भद्रबाहु ने बृहत्कल्प में लिख दिया कि जब गृहस्थ दीक्षा ले तब तीन स्थान कपड़े के साथ में लेकर दीक्षा ले अर्थात् तीन स्थान कपड़ा ले जिससे चद्दर चोल पट्टादि सब वस्त्र बन जावे ! आत्मा निमित वासी है संज्ञा बढ़ाने से बढ़ती है और घटाने से घटती है एक तो नगर में गृहस्थों के संसर्ग में रहना दूसरा वस्तु की सुगमता से प्राप्ती तीसरा रखने के लिये मकान इत्यादि कारणों से निर्ग्रन्थों की आत्मा प्रलोभन में फँसकर आराम चाहने लग गई हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है कुछ भी हो पर यह बात तो निःशंक है कि जो निर्ग्रन्थपना जंगल में रहने के समय या वह नगर निवास करने के पश्चात के समय नहीं रहा था—

उन्नति या अवनति एक दम नहीं होती पर शनैः शनैः हुआ करती है नगर निवास करने पर श्रमण संघ में शिथिलता का श्रीगणेश तो होगया था ! भाग्यवसात् आर्य्य सुहस्ती के समय एक भयंकर दुकाल और पड़ गया उसने तो जनता में त्राहि त्राहि मचा दी थी उस समय पूर्व में विहार करने वाले साधु पश्चिम में चले आये और आवंति प्रदेश में वे विचरने लगे उस विकट अवस्था में भी सुविहितों का अभाव नहीं था आर्य्य महागिरि वगैरह जंगलों में रहकर जिन कल्पी की तुलना कर रहे थे आर्य सुहस्ति ने उस अकाल पीड़ित एक भिक्षु को दीक्षा दी वह उसी दिन की रात्रि में मरकर राजा सम्प्रति हुआ जब आचार्य सुहस्ति जीवत स्वामी की यात्रार्थ उज्जैन पधारे और राजा सम्प्रति को अपना भक्त बना उसके द्वारा जैन धर्म का प्रचार बढ़ा रहे थे कहा जाता है कि राजा सम्प्रति ने सवा लक्ष नये मन्दिर बनाये एवं हजारों मन्दिरों का जर्णोद्धार करवाया इस हालत में राजा सम्प्रति अपने गुरु के ठहरने के लिये मकान का अभाव के कारण उनके कष्टों को कैसे नहीं देखे होंगे ? और उस त्रुटि की पूर्ति के लिये उसने कुछ नहीं किया हो यह संभव नहीं होता है राजा सम्प्रति ने जहाँ नये मन्दिर बनाये उनके अन्दर एक और साधु ठहरने के लिये मकान बनवा दिया था और वे मन्दिर के कम्पाउन्ड में होने से तथा समीप होने से उस मकान का नाम उपाश्रय रख दिया सौ सवासौ वर्षों पहले जिन मकानों को आधा कर्मी कहा जाता था वे विचार बदल गये और उन मकानों में साधु आराम से निवास करने लग गये !

कुदरत को इतने से ही संतोष नहीं हुआ पर आर्यवज्रसूरि के समय एक भयंकर बारह वर्षीय दुकाल पड़ा तथा थोड़ा ही अर्सा में आर्यवज्रसेन के समय पुनः बारह वर्षीय जनसंहार दुकाल पड़ गया । इन दोनों दुकालों ने तो जनता में इस कदर की त्राहि-त्राहि मचादी कि यदि कोई गृहस्थ अपने मकान में भोजन कर तत्काल ही बाहर निकल जाय तो भूखे भिखारी उसका उदर चीर कर अन्दर से भोजन निकाल कर खा जाते थे इससे अधिक क्या भयंकर होता है सेठ साहूकार और राजा तथा महाराजाओं को जहाँ तक

मोतियों के बदले ज्वार मिलती वहाँ तक तो अपने प्राण बचाये तब साधारण लोग तो विचारे अन्न-अन्न करके अपनी जीवन यात्रा पूर्ण कर परलोक वासी हो गये थे। जब गृहस्थों की यह हालत थी तो केवल भिक्षा वृत्ति पर जीवन गुजारने वाले साधुओं का तो कहना ही क्या था कहाँ उनके लिये ४२ दोष वर्ज कर भिक्षा और कदाचित् भिक्षा मिल भी जावे तो खाना कौन देता था यही कारण था कि बहुत से साधु तो अनसन कर स्वर्ग का रास्ता लिया था हजारों साधु साध्वियों में से दुकाल के अन्त में केवल ५०० साधु ७०० साध्वियाँ ही जीवित रह सके जिन्हों को आचार्य यक्षदेवसूरि ने एकत्र कर एवं उनका संगठन कर उनको आगम वाचाना देकर स्थिर किये इनका हाल आचार्य यक्षदेवसूरि के जीवन में विस्तार से लिखा गया है।

उपरोक्त लेख का सारांश यह है कि आचार्य भद्रबाहु के समय से साधुओं ने बसतिवास किया और आचार्य सुहस्तिसूरि के समय से चैत्यवास हुआ और इनके प्रवृतक सुविहित आचार्य थे और यह प्रवृति उस समय चतुर्विध श्रीसंघ की सम्मति पूर्वक ही हुई थी इसमें उस समय किसी का विरोध भी नहीं था और प्रवृति से ही शासन एवं शासन के आधार भूत मन्दिरों की रक्षा हुई है आगे चल कर इसमें विकार होजाना यह बात दूसरी है और जब हम उस समय के दुकालों का हाल देखते हैं तो ऐसा हो जाना कोई बड़ी बात नहीं थी। दुकाल से बचे हुए ५०० साधु ७०० साध्वियाँ और उनका संगठन कर आगम वाचंना देने वाले आचार्य यक्षदेवसूरि को भी हम कोटिशः धन्यवाद दे एवं उनका जितना उपकार मानें उतना थोड़ा है चाहे वे किसी प्रवृति से अपना जीवन बचाया हो पर शासन को पुनः जीवन देने वाले ये ही महापुरुष थे।

उस दुकाल के समय को हम देखते हैं कि मूर्त्तिवाद अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया था यक्षदेवसूरि ने मूर्तियों की रक्षा के निमित्त रात्रि समय साधुओं को आज्ञा देदी और साधु मूर्तियों को अपने शिर पर उठा कर रात्रि में अन्यत्र चले गये आर्य्य वज्रस्वामी जिनपूजा के लिये बीसलक्षपुष्प लाये। इनके पूर्व सिद्धसेन दिवाकर ने कल्याणमन्दिर की रचना कर आवंति पार्श्वनाथ प्रगट किये, कुर्मापुर के राजा के लिये सरसव सुभट और सुवर्ण सिद्धि का प्रयोग किया, कालका आचार्य कुम्भार के नीवाड़ा को सुवर्ण का बनाकर शाही सैना को सुवर्ण देकर उज्जैन का भंग करवा कर व्यभिचारी गर्दभिल्ल को सजा दी। आर्य खपटसूरि ने बौद्धों की मूर्तियों को भूमि पर चला कर नगर में ले गये, महेन्द्रोपाध्याय ने राजा दाहड़ की सभा में एक मंत्री हुई कांबा से ब्राह्मणों को मूर्च्छित कर दिया, आचार्य पादलिप्तसूरि आकाश गमन कर हमेशा तीर्थों की यात्रा करते तथा नागार्जुन को आकाशगामनी विद्या बतलाई। रुद्रदेवसूरि ने अपने शिष्यों को योनि प्राभृत आगम की वाचना दी जिसको श्रीवर सुनकर एवं धारण कर मच्छियें बनाकर दुकाल निकाला पुनः उसको मनुष्य बनाने की विधि बतलाई आदि २ मुविनितों की क्रियाऐ हमें बतला रही हैं कि उस समय सर्वत्र चैत्यवास हो चुका था अतः चैत्यवास सुविहित सम्मत था। हम ऊपर लिख भी आये हैं कि चैत्यवास कोई बुरा नहीं था पर इससे शासन को अनेक फायदे थे।

हम ऊपर लिख आये हैं कि दुष्कालादि के कारण जैन श्रमणों में कुछ शिथिलता का भी प्रवेश हो चुका था फिर भी उस समय बहुत से उग्र विहारी मौजुद थे आचार्यचन्द्रसूरि के पट्टधर सामन्तभद्रसूरि वन में रहकर कठोर तपश्चर्या करते थे दिगम्बर मत के प्रादुर्भाव का भी यही समय था वे नग्न था [illegible] कुछ समय भी रहते थे। इसी समय कहीं २ चैत्यवास में विकार भी हो गया था जिसके लिये [illegible] कोरंटपुर के महावीर मन्दिर की व्यवस्था करने वाले उपाध्याय देवचन्द्र का उदाहरण मिलता है जो वनवासी

पर आये हैं। हमें क्या मालूम हम तो खुद ही किराये की राह देख रहे हैं। जौहरियों ने कहा कि रथ में महारानीजी बतलायी जाती हैं। इतने में दासियों ने कहा कि हमारी मजूरी कौन देगा ? पर्दा दूर करके रथ में देखा तो रथ में कोई नहीं। बस ! अब तो हाहाकार मच गया। जौहरियों के करोड़ों का जेवर चले जाने से वे लोग कोतवाल के पास गये और सब हाल कहा। कोतवाल ने जौहरियों को विश्वास दिलाकर स्वयं पहरा देने और ठग को पकड़ने के लिये भीषण प्रतिज्ञा की और रात्रि के समय की गश्त देने लग गया।

जब अभयकुमार को इस बात का पता लगा कि आज कोतवाल पहरा देगा तो उसने लाखों रुपये के वस्त्र-भूषण पहन कर औरत का रूप बना आधी रात्रि में एक रास्ते से जाने लगा। वहाँ कोतवाल पहरा दे रहा था। कोतवाल ने औरत से पूछा कि तू कौन है ? रात्रि में कहां जाती है ? औरत ने उत्तर दिया कि मैं पति से अपमानित हो कुवांमें पड़ कर मरने को जारही हूँ। कोतवाल ने औरत के रूप पर मोहित होकर कहा कि तू मरती क्यों है ? तू मेरे घर पर चल मैं तुमको अच्छे मान से रक्खूँगा। औरत ने कहा मैं किसी पुरुष का विश्वास नहीं करती हूँ। मुझे जाने दो, मैं मरूँगी ही। कोतवाल ने खूब विश्वास दिलाकर औरत को अपने घर पर लेगया। जब औरत घर पर पहुँची तो देखा कि द्वार पर बहुत से खोड़े पड़े हैं। (जो चोरों के पैरों को डाल कर, खीली ठोक कर कैद में बन्द कर दिये जाते हैं) औरत ने पूंछा कि यह क्या है ? कोतवाल ने कहा यह खोड़े हैं औरत ने पूंछा कि इसका क्या किया जाता है ? कोतवाल ने जवाब दिया कि इसमें चोरों के पैर डालकर बंध कर दिये जाते हैं ? देखें, मैं पैर डालती हूँ ! कोतवाल ने कहा—आप नहीं, मैं पेर डालकर बतला देता हूँ। कोतवाल ने खोड़ा में पैर डाला तो औरत ने कहा कि ऐसे तो पैर निकल जाता है। कोतवाल ने कहा कि नहीं ये मेघचा पड़ा है इससे खीली जोर से ठोक दी जाती है। उसने मेघचा लेकर खूब जोर से खीली ठोक दी और कोतवाल के ही जूतों से पांच दस जूता लगा कर पुकार दिया कि हे लोगों मैंने ठग को पकड़ लिया है। एवं खोड़ा में बंद कर दिया है। दौड़ो-दौड़ो जल्दी दौड़ो इतना कह औरत तो भाग गई। जब पुकार सुनकर लोग आये तो रात्रि में हो-हो की हुल्लड़ में कोतवाल को न पहचानने के कारण, जो आये वही कोतवाल को जूते लकड़ी से मारने लगे कोतवाल बहुत चिल्ला २ कर कहा, मगर सुने कौन ? जब सूर्योदय हुआ तब जाकर मालूम हुआ कि, ठग, कोतवाल को भी ठग गया है। इसके लिये राजा श्रेणिक की सभा में सब लोग एकत्र हुए। तब उस सभा में दीवान ने बीड़ा उठाया कि आज मैं ठग को पकड़ूंगा। बस ! दीवान सा० ने रात्रि के समय पेहरा देने लगे। इस बात की खबर पाकर अभयकुमार एक अवधूत योगी का रूप धारण कर बाजार के बीच में लकड़ा जलाकर जाप करने बैठ गया। दीवान साहब फिरते २ योगी के पास आ गये। कुछ सिद्धियों के बारे में पूंछने लगे। योगी ने कहा कि तुम महान पापी हो। तुमको कोई भी सिद्धि नहीं बतलाई जायगी जब दीवान ने बहुत आग्रह किया तो योगी ने कहा कि तुम व्यर्थ मुझे क्यों छेड़ते हो कारण इस कार्य के लिये सब से पहले तो लोक लज्जा जीतनी पड़ती है। तुमसे जीती नहीं जायगी अतः सीधे चले जाओ। दीवान ने कहा महाराजजी आप कहोगे मैं सब कुछ करूँगा। आप मुझे सिद्धि बतलाइये योगी ने कहा देख इसके लिये पहले तो शिर मुंडाना पड़ेगा, कोपीन लगा कर, एवं शरीर पर भस्म रमाकर, कल दुपहर तक जप करना होगा। जाप करना साधारण नहीं है किन्तु आपका जप राजा भी नहीं छुड़ा सकता है। तब फिर जाकर सिद्धि होगी। दीवान ने सब स्वीकार कर लिया। शिर के बाल कटा डाले, नग्न हो

शरीर के भस्म लगा कर एक आसन पर बैठ, योगी के बतलाये 'रुढ, मुंड स्वाहा' २ जप करने लगा। यो ने कहा कि मैं जाकर शिवजी से प्रार्थना करूंगा कल दोपहर को वापिस आकर ऋद्धि-सिद्ध करवा दूंगा इत कह कर योगी तो चला गया। दीवान साहब बैठ कर जोर २ से 'रूंढ मुंढ स्वाहा' का जाप कर रहे हैं सूर्योदय हो गया तब भी दीवान साहब अपने घर पर नहीं पहुँचे। राज सभा ने सब जगह तलाश करवा पर, कहीं पर पता न चला। तब बाजार के लोगों ने योगी की ओर देखा तो मालुम हुआ कि कल वाल योगी युवक था पर यह तो वृद्ध है। ध्यान लगा कर देखा तो सूरत दीवान जैसी पाई गई। यह खबर राज के पास पहुँची तो राजा ने खुद आकर बाजार में देखा तो दीवान बैठा जोर २ से जप कर रहा है राजा ने कहा दीवानजी आप ठग को पकड़ने गये पर ठग आपको ठग गया है। जाप को छोड़ कर एवं राख को धोक घर पधारें। दीवान शरम के मारे बोल न सका। पर, मन में समझ गया कि धूर्त-ठग मुझे ठग गया है दीवान शर्मिन्दा हो घर पर गया और सब नगर में हंसी हुई। इस पर राजा ने कहा कि ठग कोई जबर है। अब दूसरों से पकड़ा नहीं जायगा। फिर खुद राजा ने राज सभा में खड़ा होकर ठग को पकड़ने का बीड़ा उठाया और रात्रि के समय घोड़े पर सवार हो राजा नगर में पहरा देने को निकल पड़ा। इस बात का पता भी अभयकुमार को मिल गया।

अभयकुमार सब बातों की निगाह रखता था। कुमार ने धोबी का रूप बना कर रात्रि में तालाब पर कपड़े धोने को गया। एक मिट्टी की हांडी पर सफेदा-कालस लगा कर साथ ले गया। राजा को घोड़े पर सवार हुआ तालाब की ओर आता देख वह मिट्टी का बरतन पानी में तेरा दिया। राजा ने आकर धोबी से पूछा कि रे धोबी ! तूने कोई ठग देखा है। धोबी ने कहा महाराज मैं ठग को क्या जानू परन्तु घोड़े की आवाज सुन कर एक मनुष्य अभी पानी में पड़ गया देखिये वह तैरता जा रहा है राजा ने सोचा कि ठग यही है और मेरे डर से वह तालाब में चला गया है। बस राजा ने अपनी अच्छी पोशाक एवं घोड़ा धोबी को दे दिया और धोबी के कपड़े पहन तलवार हाथ में लेकर तालाब में उस हांडी की ओर चला गया। ज्यों २ राजा पानी में आगे बढ़ता जाता है त्यों २ पानी के हिलने से मिट्टी का बरतन आगे बढ़ता जाता है। राजा गुस्सा में आकर कहता है कि अरे ठग तूने जौहरी बाजार लूटा, कोतवाल एवं दीवान को ठगा। पर, अब कहाँ जायगा ? नंगी तलवार से तेरे शिर को उड़ा दूंगा। इधर धोबी राजा की पोशाक पहन घोड़े पर सवार होकर तालाब के दरवाजे पर आकर दरवान को कहा कि अरे लोगों आज मैंने ठग को पकड़ लिया है। अभी वह आवेगा और कहेगा कि मैं राजा हूँ परन्तु तुम उसको जाने नहीं देना। दरवाजे वालों ने घोड़ा देख राजा समझ कर उनका कहना स्वीकार कर लिया। कुमार ने माता के पास आकर सब हकीकत कहदी। माता ने कहा बेटा ! तेरा पिता शीतकाल में तकलीफ पावेगा। कुमर ने कहा कि तकलीफ देखे बिना मालूम कैसे होगा कि एक सेठ की पुत्री को विवाह कर आया हूँ। खैर इधर राजा तैरता २ नजदीक पहुंच कर तलवार की झाट मारी तो मिट्टी का बरतन फूट गया राजा ने सोचा कि अरे वह धोबी नहीं पर वही ठग था। राजा हताश हुआ। तालाब में से बड़ी मुश्किल से निकला। शीत पड़ रहा था। कपड़े पानी में तर हो गये थे। जल्दी २ दरवाजे पर आया। मगर दरवानों को तो पहले ही ठग कह गया था। दरवाजे पर राजा को रोक दिया कि तुम ठग हो। राजा [illegible] कहा पर दरवाजे वालों ने एक भी नहीं सुनी तब क्या करे ? रात्रि तो ज्यों-त्यों बड़ी मुश्किल से

निकाली। सुबह देखा तो वह राजा ही निकला खैर! राजा अपने स्थान पर गये और अब तो ठग को पकड़ने के लिये सब लोग हताश हो गये। राजा ने एक उपाय सोच कर पानी से भरे कुवे में मुद्रिका डाल दी। और ढोड़ी पिटवाई कि अगर कुवे में न उतर कर इस मुद्रिका को निकाल देगा तो राजा अपना महा मंत्री बनावेगा। लोगों ने बहुत उपाय सोचा मगर कोई न निकाल सका तब अभयकुमार ने एक दूसरा कुवां उस कुवे के पास खुदवाया और मुद्रिका वाले कुवे के अंदर पैंप जैसा कुछ लगा पानी निकाल नये कुवे में भर दिया जब मुद्रीका दीखने लगी तो उस पर गोबर डाल दिया कि मुद्रिका उस गोबर में चिपक गई। इस पर जलता हुआ घास डाला कि गोबर सूक गया फिर वह पानो वापिस उसी कुँवा में ढलवा दिया कि मुद्रिका वाला गोबर पानी के ऊपर आ गया कुमार ने गोबर को खेंच कर एवं मुद्रिका निकाल कर राजा के सामने रखदी। यद्यपि अभयकुमार बालावस्था में था पर राजा ने अपने वचन के अनुसार उसको मंत्री पद देने को राज सभा में चलने के लिये आग्रह किया तब कुमार ने कहा मैं इकला ही नहीं, परमेरे साथ मेरी माता भी है। जब राजा ने कहा कि अच्छा तुम्हारी माता को भी साथ लेलो। तब अभयकुमार ने अपनी माता के पास जाकर राजा के दिये हुए मुद्रिकादि चिन्ह लाकर राजा को बतलाये। जिससे राजा को ज्ञान हुआ कि यह ठग नहीं बल्कि मेरा ही पुत्र है। बात भी ठीक है। बिना पुत्र मुझे कौन ठग सकता है। राजा ने गज अश्व, रथादि सब सेनाओं के साथ नन्दाराणी को आदर सत्कार के साथ नगर प्रवेश करवाया और अभयकुमार को महामंत्री का पद दिया। बाद जौहरियां का गहनादि सब उनको दे दिया।

अभयकुमार ने अपनी बुद्धि से राज्य के क्या क्या कार्य किये, वे सब जैन शास्त्रों में विद्यमान हैं। इतना ही क्या वर्तमान में महाजनलोग दीपमालिका का पूजन करते हैं तब अपनी २ वहियों में अभयकुमार की बुद्धि का भी उल्लेख करते हैं अतः अभयकुमार महान् बुद्धि शाली जैनमन्त्री हुआ और अन्त में मंत्री पद त्याग कर भगवान महावीर के पास दीक्षा लेकर स्वयं अपना कल्याण किया।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी राजा श्रेणिक का जीवन महत्त्व पूर्ण है। राजा श्रेणिक ने अपने राज की सीमा बहुत दूर २ तक फैला दी थी। राज्य का प्रबन्ध भी अच्छा था। आपके शासन काल में व्यापार की भी अच्छी उन्नति हुई थी व्यापार की सुविधाओं के लिये सिक्काओं का चलन भी आप ही के शासन काल में हुआ था इतना सब कुछ होने पर भी राजा श्रेणिक की मृत्यु बड़ी दुर्घटना के साथ हुई थी। राजा श्रेणिक के अन्तिम समय आपके पुत्र कूणिक ने राज के लोभ के कारण राजा को पिंजरे में बंद कर दिया था और राजा को विष प्रयोग कर मरना पड़ा था।

७—राजा कूणिक—श्रेणिक के बाद मगद का राज मुकुट कूणिक के मस्तक पर चमकने लगा। कूणिक के कई नाम थे जैसे अजातशत्रु, अजितशत्रु, अशोकचन्द, राजा दर्शक इत्यादी। कूणिक का जन्म भी एक विचित्र घटना से हुआ था। जैन शास्त्रों में लिखा है कि जिस समय रानी चेलना गर्भवती थी तब उसको देहलोत्पन्न हुआ कि मैं राजा श्रेणिक के कलेजे का मांस खाऊंगी पर रानी बड़ी समझदार थी। रानी ने इस बातको किसी से भी नहीं कही। अतः उसका शरीर क्षीण होने लगा। रानी की यह हालत देख कर राजा ने बहुत आग्रह से पूछा इस पर असली बात रानी ने राजा से कहदी। राजा इससे बड़ी चिन्ता में पड़ गया कि या तो मेरा प्राण जायगा या रानी मर जायगी। इतने में अभयकुमार आया अभयकुमार के

कहने पर उसने एक ऐसी तजवीज की कि कोई भी जान न जाय। रानी चेलना को एक कनात दी और राजा को बाहर बिठा कर सुला दिया और तत्काल का मांस लाकर राजा के हृदय पर जब छुरी से काट २ कर मांस रानी को दिया जाता था राजा खूब चिल्लाता था जिससे रानी संतोष के साथ पूर्ण हो गया। पर रानी ने सोचा कि जब यह गर्भ में आते ही अपने ही पिता के मांस मांगता है जन्म लेने पर न जाने क्या २ अनर्थ करेगा। अतः इस गर्भ को गिरा दूं। कई उपाय किये पर गर्भ शकुशल रहा। जब जन्म हुआ तो दासी द्वारा रानी ने नवजात पुत्र बाड़ी में डलवा दिया। इस बात की खबर राजा श्रेणिक को हुई तो कुँवर को लाकर रानी को उपालभ्य दिया। कुँवर को अशोक बाड़ी में डाल दिया उस समय कुर्कट ने उसकी एक कोमल उंगली अंगभंग होने से उसका नाम कूणिक रखा था जिस ऊंगली को कुर्कट ने खाई थी उसमें बहुत बीमा मगर रानी चेलना ने इसके लिये कोई भी इलाज नहीं कराया। पर राजा श्रेणिक उस ऊंगली चूस २ कर उसका पीप दूर फेंका करता था। राजा श्रेणिक, कूणिक का शुभ चिन्तक होकर पर जब जवान हुआ तो, रानी चेलना की धारणा सत्य हो गई। कारण—पिता को मार कर के लिये काली आदि दस भाइयों को राज का हिस्सा देना मंजूर कर अपने पक्ष में कर लिया श्रेणिक को पिंजरा में देकर आप मगद का राजा बन गया।

कूणिक राजा बन, अपनी माता के चरण भेंट ने को गया, पर रानी पहले से ही उदास थी राजा कूणिक ने माता को उदास देख कर कहा—माता तेरे पुत्र को राज मिलने पर सब लोग खुश खुश न होने का क्या कारण है। रानी ने कहा—बेटा ! तूने कौनसी बहादुरी करके राज प्राप्त कि जिससे मुझे खुशी हो ? मैंने तो तुझे जब ही पहचान किया कि जब तू गर्भ में आया था। क्यों गर्भ में आते ही पिता के कलेजा का मांस खाने को मांगा था मैंने गर्भ गिराने की बहुत कोशिश की पर गिरा नहीं। जब तेरा जन्म हुआ तो मैंने तुझे अशोकवाड़ी की उखाड़ी पर डलवा दिया था मगर तेरे जाकर तुझे ले आया तेरी ऊंगली को कुर्कट खा गया था जिसके अन्दर रक्त बिगड़ गया था जिस कारण तु सारी रात्री रूदन करता रहता था मैंने तेरी जरा भी परवाह नहीं की परन्तु तेरे पिता बिगड़े हुए रक्त को मुँह से चूस चुस कर थूकते हुए सारी रात्रि व्यतीत कर देते थे। उस उपकार का तूने पिता को पिंजरे में डालने के रूप में दिया। बतला मुझे खुशी किस बात की हो ? इतने शब्द से सुनते ही कूणिक के दिल में पिता के प्रति भक्ति पैदा हुई और पिता को पिंजरे से मुक्त करने के लिये बजाय इसके कि किसी दूसरे को भेजे, खुद ही हाथ में फरसी (कुल्हाड़ा) लेकर पिता की चला। जब पिता ने इसको आता हुआ देखा तो सोचा कि मुझे इसने पिंजरे में तो पहले ही बंद कर है पर अब तो वध (मारना) करने को आ रहा है, न जाने पुत्र मुझे किस कुमौत से मारेगा। इससे अच्छा है कि मैं स्वयं ही मर जाऊँ। राजा ने अपने पास की हीर कणी (विषयुक्त) खाकर तत्काल मरण हो दिया। जिसको देख कूणिक ने पश्चात्ताप किया। पर अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत। बाद में क्या हो सकता था ? कूणिक के पूर्वभव में पिता के साथ ऐसे ही कर्म बांधे थे। अतः जीवन में बड़ा से बड़ा कलंक लग गया पर अब उपाय भी क्या हो सकता था !

जब कभी राजा कूणिक राज्यसभा में आकर बैठता तो अपने पिता का स्थान देखकर आंखें भ

बड़ी चिंता करता था? और उसका मन भी नहीं लगता था। अतः उसने अपनी राजधानी अंगदेश की चम्पा-नगरी में ले जाना उचित समझा। जब राजा अपनी राजधानी चम्पा नगरी में ले गया तो कूणिक के लघु भ्राता विहल्ल कुमार जो कि अपने माता पिता की मौजूदगी में राज के हिस्से के बदले हार हाथी (जिसकी कथा राजा श्रेणिक के जीवन में लिखी गई है) दे दिये थे! वह भी अपना परिवारादि माल स्टाक और हार हाथी लेकर चम्पानगरी में चला गया। विहल्लकुमार और उसकी रानी हार एवं हस्ती से भली प्रकार ऐश-आराम करने लगे, कभी २ नदी पर जाते और हस्ती के जरिये जल मज्जन व जल क्रीड़ा करते थे जिसकी प्रशंसा नगर में चारों ओर फैल गई थी। कूणिक की रानी पद्मावती ने वह हाल सुन हार हाथी मंगाने के लिये कूणिक से कहा। पहले तो कूणिक ने इन्कार कर दिया और कहा कि वह भी मेरा छोटा भाई है। माता-पिता का दिया हुआ हार हस्ती लेना ठीक नहीं है। पर जब रानी ने बहुत आग्रह किया तब कूणिक ने विहल्ल कुमार को राजदूत द्वारा कहलाया कि राज में जो रत्न होता है उसका मालिक राजा ही होता है इस लिये हार हस्ती को भेज दो। इसके उत्तर में विहल्ल कुमार ने कहलाया कि अव्वल तो आप वृद्ध भ्राता, दूसरे पिता की दी हुई चीज है अतः आप को हार-हस्ती लेना नहीं चाहिये। यदि आप ऐसा न कर सकें तो हार-हस्ती के बदले में मुझे आधा राज दे दें। पर कूणिक ने इसको मंजूर नह किया और वार वार हार हस्ती के लिये तकाजा किया। विहल्ल कुमार ने सोचा कि जिसने पिता को पिंजरे में बंद कर दिया तो मैं क्या विश्वास रख सकता हूँ। वह समय पाकर हार-हस्ती और माल सामान लेकर नगर से निकल वैशाला नगरी के राजा चेटक के (जो खुद की माता के पिता अपने नाना लगते थे) शरण में चला गया।

जब इस बात की खबर राजा कूणिक को मिली तो कूणिक ने राजा चेटक पर पत्र लिखा कि आप हमारे नानाजी हैं, बुजुर्ग एवं राजनीति के अनुभवी हैं। विहल्ल कुमार मेरी बिना आज्ञा हार-हस्ती लेकर आपके यहाँ आया है। आप उसको समझा बुझा कर हार हस्ती के साथ वापिस भेजदें। इस तरह का पत्र लिख कर राजा चेटक के पास भेज दिया। राजा चेटक ने पत्र पढ़ा और जवाब में लिखा कि मेरी दृष्टि में तो जैसे चेलना का पुत्र विहल्लकुमार है वैसे तुम परन्तु न्याय की दृष्टि से पहिले तो तुम्हारे मा बाप का दिया हुआ हारहस्ती लेने में शोभा नहीं देता यदि तुम लेना चाहो तो आधा राज देना इन्साफ की बात है।

जब यह पत्र राजा कूणिक ने पढ़ा तो बड़ा गुस्सा आया और फौरन लिख दिया कि या तो विहल्ल-कुमार और हारहस्ती को भिजवादो वरना युद्ध करने के लिये तैयार हो जाओ। राजा चेटक न्यायशील था शरण में आये हुए विहल्लकुमार को वापिस भेजना ठीक न समझा पर कूणिक की अपेक्षा चेटक के पास सेना कम होने की वजह से काशी कौशल वगैरा १८ राजाओं को बुला कर सलाह पूछी तो उन्होंने कहा कि विहल्लकुमार का पक्ष न्याय एवं सत्य का है अतः यदि युद्ध करना पड़े तो हम आपके साथ हैं। बात ही बात में युद्ध छिड़ गया। कूणिक अपने १० भाइयों व ३३ हजार गज, अश्व, रथ अनगिनती पैदल सेना के साथ तथा राजा चेटक के ५७ हजार गज, अश्व, रथ, और अनगिनती पैदल सेना के साथ युद्ध-स्थल में आ गये। पहिले दिन के युद्ध में राजा चेटक द्वारा कालीकुमार मारा गया (राजा चेटक को देवी का वरदान था कि राजा का बाण खाली न जाय) दूसरे दिन के युद्ध में सुकाली, इस प्रकार दस दिन में दस भाई मर गये अब तो कूणिक अकेला रह गया। इस हालत में कूणिक ने अष्टम तप कर देवता की आराधना

की यदि किसी ने पूर्व भव में मुझे वचन दिया हो तो इस समय मेरी सहायता करे, इससे बचनबद्ध शक्रेन्द्र चमरेन्द्र दो इन्द्र आये और कूणिक को बहुत समझाया कि एक तो तुम्हारा छोटा भाई और दूसरे नाना इत्यादि इस युद्ध में कुछ भी सार नहीं है। पर अभिमान के गज पर चढ़े हुए कूणिक ने किसी की भी नहीं अतः वचनबद्ध होकर दोनों इन्द्रो ने कूणिक को मदद दी। पहिले दिन के युद्ध में एक हस्ती पर चमरेन्द्र कूणिक सवार होकर युद्ध किया जिसमें ८४,००,००० आदमियों के प्राण गये। दूसरे दिन चमरेन्द्र और कूणिक एक दूसरे हस्ती पर सवार होकर युद्ध किया जिसमें ९६,००,००० आदमियों के प्राण गये। बस! चेटक की सेना ठहर न सकी वे सब वैशालानगरी में जाकर नगरी के दरवाजे बन्द दिये। वैशाला में एक मुनिसुव्रतदेव का स्तूप था जिसके प्रभाव से कि कूणिक वैशाला को भंग नहीं सका और कई दिन सेना सहित नगरी के चारों ओर घेरा डाल कर पड़ा रहा। विहल्लकुमार रात्रि के समय अचानक हस्ती पर सवार होकर, कूणिक की फौज में आता था और बहुत सी फौज को कत्ल कर जाता। जब कूणिक को इस बात का पता लगा तो उसने रास्ते में एक आड़ी खाई खुदा कर उसके आग लगा कर ऊपर से ढांकदी। दूसरे दिन जब विहल्ल कुमार आया तो उसको यह मालूम नहीं परन्तु हस्ती को जातिस्मरण ज्ञान होने से वह जान गया और आगे पैर रखने से हस्ती रुक गया इस विहल्लकुमार ने अंकुश लगाते हुए कहा कि अरे हस्ती तेरे लिये इतना अनर्थ हुआ और तू इस समय बढ़ने से क्यों रुक गया है? इस पर हस्ती ने अपनी सूंड़ से विहल्लकुमार को एक किनारे रख कर आगे बढ़ा त्यों ही वह आग में जा पड़ा। जिसको देखते ही विहल्लकुमार समझ गया। वह हस्ती के परचाताप करने लगा। इतने में आस पास के देवता विहल्लकुमार को उठा कर भगवान् महावीर के संमवसरण में रख दिया। विहल्लकुमार ने भगवान महावीर से दीक्षा ले ली। देव रूपी हार देव गये। हस्ती आग में जल करमर गया। जिस हार-हाथी के लिये करोड़ों के प्राण गये उन दोनों बातों की समाप्ती भी हो गई। तब भी कूणिक वहाँ से नहीं हटा।

कूणिक ने एक निमितिया को पूछा कि मैं विशाला नगरी को भंग कैसे कर सकूंगा। उसने कहा इस नगरी में मुनिसुव्रतदेव का स्तूप है। इसके गिरने पर ही नगरी का भंग हो सकेगा। इस पर एक वेश्या द्वारा कुल ब्रत्यनिक साधु को बुला कर वेशाला के स्तूप को गिरवा करके वेशाला का भंग कराया। चेटक एक कुवा में गिर रहा था उसको देवता उठा कर देव भवन में ले गये। वहाँ १५ दिन का अनशन करके स्वर्ग चला गया। कूणिक ने वैशाला का राज अपने देश में मिला लिया। राजा चेटक के पुत्र शोभनराव था। जो अपनी सुसराल कलिंग की राजधानी कंचनपुर में चला गया कलिंग पति के पुत्र न होने से आपने अपना राज शोभनराव को दे दिया।

इस युद्ध के सम्बन्ध की एक बात भगवती सूत्र ७ उद्देश्य ९ में आती है वह ऐसी है कि एक समय गौतम स्वामी ने प्रश्न किया कि हे भगवान्! बहुत से लोग कहा करते हैं कि युद्ध में लोग जो मरते हैं वे सब देवता के रूप में उत्पन्न होते हैं। भ० महावीर ने उत्तर दिया कि यह बात मिथ्या है। हाँ किसी जीव के शुभाध्यवसाय रहता है वह मर कर देव हो सकता है।

हे भगवान्! चेटक कूणिक के युद्ध में लाखों मनुष्य मरे हैं उनकी क्या गति हुई होगी?

हे गौतम ! दस हजार जीव तो एक मछली की कुक्ष में पैदा हुए एक जीव देवता में और एक जीव मनुष्य योनि में और शेष जीव नरक तिर्यंच गति में उत्पन्न हुए हैं।

हे भगवान। युद्ध में मर कर देवता में कौन गया ?

हे गौतम—मैं सुनाता हूँ तू ध्यान लगा कर सुन।

राजा चेटक के सामंतों में एक वर्णनागनतुआ भी था और वह जैनधर्म का एक व्रत धारी श्रावक भी था। उसकी प्रतिज्ञा थी कि मैं छठ-छठ (दोदो दिन के अन्तर से भोजन करता तप करता रहूँ। परन्तु जिस दिन छठ का तप था उसी दिन राजा चेटक का संदेश आया कि कल तुमको संग्राम में जाना होगा। इस पर वर्णनागनतुआ ने अपने मन में सोचा कि एक तो मालिक का नमक खा रहा हूँ उसको हराम न करके हलाल करना है। दूसरे युद्ध में जाना है और वहाँ पर जीवन—मरण का सवाल है। अतः आज छठ का पारणा न करअष्टम का निश्चय कर लेना चाहिये क्योंकि पारणा करने पर शरीर भारी पड जायगा इतना काम नहीं होगा इत्यादि विचारों से उसने अष्टम का व्रत कर लिया और अपनी सेना लेकर युद्ध स्थल पर आ गया। उस वर्णनागनतुआ के एक बाला मित्र भी था। उसका यह नियम था कि जो यह मित्र कहे एवं करे वैसा ही करना जो उसको फल होगा वह मुझे भी होगा। यह सब धार्मिक क्रिया मित्र के साथ किया करता था वह भी अपनी सेना को साथ लेकर युद्ध में चला गया। जब युद्ध आरम्भ हुआ तो वर्णनाग नतुआ के विपक्षी ने कहा वर्ण तू श्रावक है तेरे पर मुझे दया आती है अतः तू तेरा बाण चलाले नहीं तो तेरे मन की मन में रह जायगी ? वर्ण ने जवाब दियाकि मुझे बिना अपराध किसी को मारना नहीं कल्पता है यह कहते ही प्रतिपक्षी को गुस्सा आया और खेंच कर जोर से बाण चलाया कि वर्ण के कलेजे में लगा इस पर वर्ण ने बाण चलाया जिससे प्रति विपक्षी का प्राण छूट गया इस हालत में संग्राम बन्द हो गया। वर्ण अपना रथ लेकर एकान्त स्थल में आया रथ से अश्वों को मुक्त कर आपने एक धूलि की वेदिका बनाई उस पर सूर्य सन्मुख बैठ कर भगवान महावीर को नमस्कार करके कहा कि पहले भी मैंने भगवान महावीर के समीप श्रावक के बारह व्रत लिये थे और इस समय भी भगवान महावीर को साक्षी से यावत् जीव व्रतग्रहन एवं चार आहार—अठारह पापों का सर्वथा त्याग करता हूँ। अर्थात् अन्तिम जीवन तक अनशन कर लिया बाद अपने शरीर में से लगा हुआ बाण खेंच कर निकाल दिया जिससे वर्ण के प्राण पखेरू उड़ गये। वे वहां से मर कर देव योनि में उत्पन्न हुए। इसी प्रकार वर्ण के बाल मित्र का हाल हुआ। वह जानता तो कुछ नहीं था पर उसके भी बाण लगा और एकान्त स्थल में आकर वर्ण के माफिक सब क्रिया करके कहा कि जैसा मेरे मित्र को हुआ वैसा मुझे भी होना। वह मर कर मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए नजदीक में रहने वाले देवताओं ने वर्णनागनतुआ के अनशनपूर्वक मृत्यु के कारण उसके शरीर पर सुगन्धी पुष्प जल बरसा कर महोत्सव किया जिससे इधर लोग कहने लगे कि वीरता के साथ मरने वाले देव गति में उत्पन्न होते हैं। वास्तव में देवता होना युद्ध का कारण नहीं पर शुभाध्यवसाय से ही देव होने का कारण है।

राजा कूणिक एक वीर राजा था। आपने अपने पिता श्रेणिक के विशाल साम्राज्य की सीमा को कम न की बल्कि बढ़ाई थी। मगद और अंग तो पहले से ही आपके अधिकार में थे पर वैशाला के राज को मगद के राज में मिला लिया था इससे उत्तर भारत में सर्वत्र आपकी आज्ञा चलने लग गई थी। राजा

कूणिक ने दक्षिण भारत को विजय करने का प्रयत्न भी किया था पर उत्तर भारत से दक्षिण भारत जाने के लिये सीधा रास्ता नहीं था। क्योंकि बीच में विंध्याचल पर्वत था। राजा कूणिक ने उस प० को तोड़ कर मार्ग निकालने की कोशिश की थी मगर आप उसमें सफल नहीं हो सके क्योंकि आप आयुः ने आपका साथ नहीं दिया।

राजा कूणिक जैसे अपने साम्राज्य बढ़ाने में प्रयत्नशील था वैसे ही जैन धर्म के प्रचार को बढ़ाने भी था। राजा कूणिक भगवान महावीर का परमभक्त था। इतना ही नहीं बल्कि राजा कूणिक का तो ऐ नियम था कि जब तक भगवान महावीर कहाँ विराजते हैं, खबर न मिले अन्न जल ग्रहण नहीं करता था एक समय भगवान महावीर चम्पा नगरी की ओर पधारे। राजा कूणिक ने आपका इस प्रकार स्वागत कि कि जिसका विस्तृत वर्णन श्रीउववाई सूत्र में किया है तथा भारहूत नगर के पास एक विशाल स्तूप भी बन वाया था जो आज भी अजातशत्रु के स्तूप के नाम से प्रसिद्ध है। राजा कूणिक ने नये मन्दिर बनवा वैसे ही जीर्ण मन्दिरों की भी मरम्मत करवाई और शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रार्थ अंग एवं मगद से ए विराट संघ भी निकाला था। इत्यादि राजा कूणिक का जीवन विस्तृत है।

कई लोग राजा कूणिक को बौद्ध धर्मी भी कहते हैं। और बोद्ध धर्म के ग्रंथों में बुद्धदेव के भ राजाओं के नामों में अजातशत्रु का भी नाम आता है इत्यादि। बौद्ध ग्रंथों में उनके भक्त राजाओं की नामा वाली में कई जैन राजाओं के नाम भी लिख दिये हैं वह केवल अपने धर्म की महिमा बढ़ाने के लिये लिखा है खैर अजातशत्रु के विषय बौद्ध ग्रंथों मे ऐसे भी उल्लेख मिलता है कि बुद्धदेव और अजातशत्रु आपस में कैसा व्यवहार था जैसे कि बुद्ध के एक देवदत्त नाम का शिष्य था वह किसी कारण से बुद्ध खिलाफ हो गया था और वह एक दिन अजातशत्रु के पास जाकर कहा कि आप अपने मनुष्यों को हुक्म दें कि मैं बुद्ध को मारू उसमें मदद दें इस पर राजा अजातशत्रु ने अपने आदमियों को ऐसा ही हुक्म दे दिया। य तो हुए अजातशत्रु के बुद्ध प्रति भाव[1]। अब बुद्ध के भावों को देखिये एक दिन बुद्ध अपने भिक्षुओं को रहा है कि भिक्षुओ ! प्रतिष्ठित राजकन्या का पुत्र मगद का राजा अजातशत्रु ! पाप का सहोदर और साक्षी है[2]।

पाठक ! सोच सकते हैं कि क्या परस्पर ऐसे विचार एवं भाव रखने वाले गुरु शिष्य कहला सकते कदापि नहीं। शायद अजातशत्रु कभी बुद्ध के पास चला गया हो और उन लोगों ने अपने भक्त राजाओं की नामावली में उनका भी नाम लिख दिया है। वो कागज कलम स्याही उनके घर की ही होगा। प अजातशत्रु जैनधर्मी होने के पुष्ट प्रमाण जैन साहित्य में विस्तृत संख्या में मिलते हैं। इनके अलावा भर भारहूत के पास अपनी ओर से स्तूम्भ बना कर शिलालेख खुदवाया वह अद्यावधि विद्यमान है।

८—राजा उदाई—कूणिक के बाद राजा उदाई राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। राजा उदाई बड़ा ही वीर था। इसने राज की सीमा अपने बापदादों से भी आगे बढ़ादी थी। राजा श्रेणिक ने गिरिव्रज से अपनी राजधानी हटा कर राजगृह नगर बसा कर वहाँ कायम की। तब कौणिक ने अपनी राजधानी अंग देश की चम्पा नगरी में स्थापना की और राजा उदाई को चम्पा नगरी पसंद नहीं आई इस अपनी राजधानी के लिये एक नयानगर बसाना चाहा। राजा की आज्ञा से मन्त्रियों ने भूमि की तलाश करने को गंगा के तट

1. Vinaya texts, pt. III, p. 213. 2. Rhys davids (Mrs) op. cit., p. 100.

घूम कर तलाश करते हुये एक जंगल में आये जहाँ पटली के वृक्ष बहुत थे। एक वृक्ष पर एक पक्षी मुँह खोल कर बैठा था तो अन्य जीव उसके मुंह में आ आ कर पड़ जाते थे। मन्त्रियों ने सोचा कि यह जंगल सुन्दर और अच्छा है। जैसे पक्षी के मुंह में बिना परिश्रम भक्ष आता है उसी प्रकार अपने राजा के राज में बिना परिश्रम ही अन्य राज आया करेंगे। ये सब हाल जाकर राजा उदई को कहा तो राजा ने वहाँ नगर बनाने का हुक्म दे दिया।

बस ! फिर क्या देरी थी, थोड़े ही वर्षों में वहाँ सुन्दर नगर बन गया जिसका नाम पाटलीपुत्र रख दिया। राजा उदई अपनी राजधानी पाटलीपुत्र में ले गया। राजा उदई ने पाटलीपुत्र में एक विशाल जैन मन्दिर भी बनवाया जिसमें भगवान नेमिनाथ की मूर्ति स्थापना करवाई तथा वहाँ से शत्रुंजयादि तीर्थों की यात्रार्थ एक विराट संघ निकाल कर नगर निवासियों एवं भावुकों को तीर्थों की यात्रा करवाई।

ई० सं० १८८२ में पाटलीपुत्र (पटणा) के पास खुदाई का काम करवाते समय यक्ष की दो मूर्तियां निकाली जिनको कलकत्ता के म्युजियम (अजायबघर) में भारहुत गेलरी विभाग में रखी हुई हैं। सर केनिंगहोम का मत यह है कि मूर्तियां सम्राट अशोक के पूर्व की नहीं है पर जयसवालजी ने कहा कि ये दोनों मूर्तियें अशोक के पूर्व की हैं जिसका कारण वे बतलाते हैं कि पुराणों में राजा उदई को अज और नंद को अजय कहा है। जब उनके सिक्कों पर एक ओर अज और दूसरी ओर सम्राट नाम खुदा हुआ है। इससे यह माना जा सकता है कि ये दोनों मूर्तियाँ राजा उदई के समय की बनी हुई होंगी।

राजा कूणिक का जो काम दक्षिण भारत को अपने राज में मिला लेने का था उसको राजा उदई ने पूरा करने की इच्छा की। अतः राजा उदई ने नागदशक सेनापति जो बड़ा वीर था द्वारा अपनी सेना सुसज्जित करवाई। राजा उदई ने स्वयं सेना के साथ विजय की आकांक्षा करते हुए प्रस्थान कर दिया और क्रमशः विजय करते हुए दक्षिण के अन्त तक पहुँच गया। राजा उदई ने अपने पुत्र अनिरुद्ध और नागदशक की वीरता पर प्रसन्न होकर आगे सिंहलद्वीप जाने की भी आज्ञा दे दी। और उनकी विजयी सेना ने लीला मात्र में सिंहलद्वीप के राजा विजय को विजय कर सिंहलद्वीप को अपने अधिकार में कर लिया। वहां पर राजधानी के लिये नयानगर बना कर, राजकुंवर की विजय की स्मृति के लिये नये नगर का नाम अनुरुद्धपुर नगर रख दिया। इसके बाद वहाँ का प्रबन्ध एक सुयोग्य व्यक्ति को सुपुर्द कर सेना सहित सब लौट कर अपने देश आगये। इस विजय यात्रा में कई दश वर्ष जितना समय लग गया।

राजा उदई के शासन में राज सीमा सिंहलद्वीप तक फैल गई थी। उसी प्रकार व्यापार में भी आशातीत उन्नति हुई। राजा ने अपने नाम के सिक्के भी चलाये और देश वासियों को सब तरह से उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया था इस भूपति का सम्बन्ध केवल भारत के नरपतियों के साथ ही नहीं था बल्कि पाश्चात्य देशों के राजाओं के साथ भी था। इस देश के विद्वान् पाश्चात्य प्रदेशों में जाते थे और उधर के विद्वान् इस देश में आकर राजा के अतिथि बनते थे। कला कौशल की भी इस समय अच्छी उन्नति हुई थी अर्थात राजा उदई के राज की सीमा उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक फैल गई थी और आपने शान्ति पूर्ण राज किया। अपना जीवन बड़ी ही शान्ति से व्यतीत किया। इतना ही नहीं बल्कि आपने अन्तिम अवस्था में पाप का प्रायश्चित करने के निमित्त यात्रार्थ निकल गये थे और आपकी जीवन यात्रा भी इसी यात्रा में समाप्त हो गई थी।

जैन ग्रन्थों में राजा उदाई की मृत्यु एक दुष्ट के षडयंत्र द्वारा खून से हुइ लिखी है। राजा उ के पुत्र नहीं था अतः राजा उदाई के साथ शिशुनाग वंश का अंत हो गया और मगद की गद्दी पर र नंद का अधिकार हो गया था पर शाह त्रिभुवनदास लेहरचन्द बड़ौदा वाले ने अपने प्राचीन भारतवर्ष पु: पहला पृष्ठ २०७ पर लिखा है कि दुष्ट व्यक्ति के षडयंत्र द्वारा मृत्यु शिशुनाग वंशी राजा उदाई की नहीं थी और वह अपुत्रीय भी नहीं पर उसके दो पुत्र थे अनुरुद्ध और मुंदा इन दोनों पुत्रों ने मगद की ग पर आठ वर्ष तक शासन किया था तब वात्सपति राजा उदाई अपुत्रीय था और उसकी मृत्यु एक षड् एवं खून द्वारा हुई जब कि शाह का कहना है कि मगदेश्वर राजा उदाई के मृत्यु के बाद उदाई के अनुरुद्ध ने मगद पर आठ वर्ष तक शासन किया। और राजा अनुरुद्ध ने सिंहलद्वीप में भगवान महा का एक स्तूप भी बनवाया था। और भी उसने धार्मिक कार्य किये थे। जब इस प्रकार राजा धर्म उन्नति करने वाले होते हैं तभी तो धर्म की प्रभावना होती है।

मगद के सिंहासन पर शिशुनाग वंश के अन्तिम राज्य राजा मुंदा का हुआ और इसके ही सम में मगद देश का राज कमजोर हो गया था क्योंकि राजा मुंदा राज की सार संभाल की अपेक्षा भो विलास में अधिक रक्त विलासी हो गया था। कहा जाता है कि जब इसकी रानी की मृत्यु हो गई तब से वह रानी के प्रेम में इतना मुग्ध हो गया कि रानी की लाश तक को नहीं उठाने दिया। इस हाल में मगद जैसे साम्राज्य का रक्षण कैसे हो सकता है ? यही कारण है कि बहुत राजा स्वतंत्र बन गये। आदमियों को जो बहुत विश्वसनीय थे जो सूबों पर रखे गये थे वो भी स्वतंत्र होकर वहां के शासक गये। अर्थात् मुंदा के समय मगद साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। इस हालत में राजा का सेनापति शिशु नागवंशी नागदशक था वह मगद के सिंहासन पर राजा बनकर राज सत्ता अपने हाथ में ले ली। राजा मुंदा के साथ शिशुनाग वंश का अन्त होगया। इस घटना का समय भगवान महावीर निर्वाण के ६०३ बाद का था। अर्थात् ई० सं० पूर्व ४६७ वर्ष का था। यहां तक शिशुनाग वंश के १० राजा हुए और इन समय ३३३ वर्ष जो वायु पुराण में लिखे हुआ हैं नागदशक के सिक्कों पर नाग (सर्प) का चिन्ह होने वह भी नागवंश का ही था ऐसा निर्णय सहज ही में हो सकता है।

सेनापति नागदशक भी शिशुनाग वंश का ही वीर था पर यह लघु शाखा का होने से इसको नाग वंशी कहते थे। जब नागदशक ने मगद का साम्राज्य अपने आधीन कर लिया। तब से आपको नंदिवर्धन के नाम से पुकारा जाने लगा। और इसके पीछे जितने राजा मगद की गद्दी पर बैठे थे वे सब नंद वंश नाम से बोलाये जाने लगे।

१—नंदवर्धन—यह राजा उदाई के शासन समय से ही सेनापति के पद पर नियुक्त था और राजा उदाई—अनुरुद्ध ने जो देश विजय किये थे इसमें मुख्यतया सेनापति नागदशक की सहायता थी अतः नागदशक एक वीर पराक्रमी योद्धा था जब मगदपति बना तो राजा मुंदा के शासन में फैली हुई अराजकता की व्यवस्था करना सबसे पहले हाथ में लिया। और जो जो राजा स्वतंत्र हो गये फिर वापिस मगद की सत्ता में मिला लिया और मगद की राज व्यवस्था ठीक कर ली। राजा नंदवर्धन के मंत्रियों में मुख्य मंत्री कल्पक था वह ब्राह्मण वर्ण का होने पर भी कट्टर जैन धर्मोपासक था।

जैसे शिशु नाग वंश के राजा जैनधर्मी थे वैसे ही नंदवंशी राजा भी जैन धर्मोपासक ही थे। इस विषय में अब अधिक लिखने की आवश्यकपा नहीं रही है क्योंकि इतिहासकारों ने यह स्पष्ट कर दिया कि नंदवंशी राजा ब्राह्मण धर्म के खिलाफ थे। जब ब्राह्मणों के खिलाफ थे तो वे जैनधर्मी ही थे। इसका विशेष प्रमाण यह है कि नंदवंशी राजा ने कलिंग पर चढ़ाई की और वहाँ के धन माल के साथ कलिंग जिन अर्थात् खंड गिरी पहाड़ी (कुमार-कुमारी पर्वत जो शत्रुञ्जय गिरनार अवतार के नाम से उस प्रान्त में मशहूर था) पर के जैन मन्दिर से भगवान ऋषभदेव की मूर्ति उठा कर ले गया था इससे स्पष्ट सिद्ध है कि वे नंदवंशी राजा जैन थे दूसरा एक यह भी प्रमाण मिलता है कि नंदवंशी राजा सब के सब जैनधर्मोपासक थे। प्रमाण के लिये देखिये—Smith's Early History of India Page 114. में और डाक्टर शेषागिरिराव ए. ए. एण्ड आदि मगध के नन्द राजाओं को जैन होना लिखते हैं, क्योंकि जैनधर्मी होने से वे आदीश्वर भगवान की मूर्ति को कलिङ्ग से अपनी राजधानी में ले गये थे। देखिये South India Jainism Vol. 11 Page 82.

महाराजा खारवेल के शिलालेख से स्पष्ट पाया जाता है कि नंदवंशीय नृप जैनी थे। क्योंकि उन्होंने जैन मूर्ति को बलजोरी ले जा कर मगध देश में स्थापित की थी। इससे यही सिद्ध होता है कि यह घराना जैनधर्मोपासक था ये राजा सेवा तथा दर्शन आदि के लिए ही जैन मूर्ति ला कर मन्दिर बनवाते होंगे। जैन इतिहासवेत्ताओं ने विश्वासपूर्वक लिखा है कि नन्दवंशीय राजा जैनी थे।

"बारस मे च वसे······सेहि वितासयति उतरपथराजानो······मगधानं च वहुलं भयं जनेतो हथि सुगंगाय पाययति [।] मागधंच राजानं वहसतिमितं पादे वंदापयति [।] नंदराज नीतंच कलिंग जिन संनिवेस'। गहरतनान पडिहारेहिं अंगमागध वसुंच नेयाति [।]

"कलिंग की हाथी गुफा का शिलालेख"

यह शिलालेख स्पष्ट बतला रहा है कि नंदवंशी राजा जैनी थे। इनके अलावा तित्थोगाली पइन्ना में उल्लेख मिलता है कि पुष्पमित्र ने नंदों के करवाये पांच स्तूप देख कर लोगों से पूछा कि यह स्तूप किसके हैं और किसने बनाये ? इस पर लोगों ने कहा महा बलवान नन्द राजाओं ने यह स्तूप बनाये तथा इनके अन्दर बहुतसा धन है, अतः पुष्पमित्र ने उन स्तूपों को खुदवा कर धन निकाल लिया। देखिये निम्न लिखित गाथाएं।

"सो अविणय पज्जतो, अण्णनरिन्दे तणं पिव गणंतो, नगरं अहिडंतो पेच्छीहि पंच थूभेउ ॥
पुट्ठायवेंतिमणुआ नंदोराया चिरं इहं आसि, बलितो अत्थसमिद्धा रूवसमिद्धा जणसमिद्धा ॥
तेण उइहं हिरण्णं निखितंसि बहुबल धणसयं, नगरं नाणि अन्नो रायाणो हाणि विलुंत्रे ॥
तं वयणं सोउणं खणे होति समंत तो तओ थूभं, नंदस्स संतियं तंपरिवज्जइ सो अह हिरण्णं ॥

नन्दवंशी राजा नन्दवर्धन का मन्त्री कल्पक ब्राह्मण जाति का होता हुआ भी जैन धर्मोपासक था उसकी परम्परा में जैन धर्म का पालन करते हुए अन्तिम नन्द राजा के समय शकडाल नाम का मंत्री हुआ वह भी कट्टरजैन था। इसके दो पुत्र और सात पुत्रियां थी जिनमें बड़ा पुत्र स्थूलिभद्र और सात पुत्रियों ने जैनधर्म

की श्रमण दीक्षा ली थी। जिस राजा के ९ पीढ़ी तक जैन धर्मोपासक मन्त्री होते आये हैं वे राजा धर्मावलम्बी कैसे हो सकते हैं ? प्रमाणों के लिए निम्न लिखित प्रमाण पढ़ें।

नन्दवंशी राजा जैनधर्मी होने के कारण ब्राह्मण हमेशा उनके खिलाफ रहते थे। इतना ही नहीं ब्राह्मणधर्म के पुराणों में नन्द राजाओं को शूद्र वर्ण के नाम से लिखा है। जिसको हमने ऊपर लिख है कि नन्द वंश का मूल पुरुष नागदशक शिशु नागवंशी राजाओं का दसवां पुरुष था अतः वे क्षत्रिय वर्ण के ही थे। और इनका लग्न शादी भी क्षत्रियों के साथ हुए थे जैसे नागदशक का वत्सपति राजा उदई की पुत्री के साथ हुआ था समझ में नहीं आता कि पुराणकारों ने नन्दवंशी रा को शुरू से ही शूद्र वर्ण क्यों लिख दिया है।

राजा नन्दवर्धन के शासनकाल में कुछ जबरदस्त घटनायें घटी थी। एक अनावृष्टि और अतिवृष्टि, अनावृष्टि के समय राजा नन्द वर्धन एक नहर मगध में लाया था जो राजा खारवेल के गुफा के शिलालेख से पाया जाता है क्योंकि इसी नहर से राजा खारवेल एक नहर अपने कलिंग में ले या। दूसरे अतिवृष्टि की घटना जो शोण गंगा नदी के अन्दर ऐसी बाढ़ आ गई थी कि पाटली पुत्र की नहीं थी यदि जैन मन्त्रों द्वारा शान्ति नहीं करवाई होती। श्रीमान् शाह के लेखानुसार अति वृष्टि का भगवान महावीर के निर्वाण के बाद ५९ वर्ष के और अनावृष्टि का समय महावीर के ६४ वर्ष बाद का राजाओं के सिक्का भी मिले हैं जिससे पता चलता है कि वे कट्टर जैनधर्मी थे।

२—महापद्मानन्द—यह नन्दवर्धन राजा का पुत्र था आपका उत्तराधिकारी भी था। उसके शा समय में बौद्धधर्म की महासभा वैशाला नगर में हुई थी जिसमें महाराज पद्मानंद की विशेष मदद

दूसरा एक सामाजिक परिवर्तन भी इसके राज के समय में हुआ। राजा श्रेणिक के समय वर्णों में बेटी लेन देन का रिवाज था पर श्रेणिक ने धंधा रुजगार के पीछे पृथक २ श्रेणियें बना थी। इससे उच्च श्रेणी वाला अपने से हलकी श्रेणी वाले को पुत्री देने में संकोच करने लगे। और ब्रा के प्रयत्न से यह प्रथा दिन ब दिन मजबूत बनती आई पर, इधर जैनों एवं बौद्धों ने शुरु से वर्ण बन्धनों को तोड़ कर सब के लिये मार्ग साफ कर दिया था तथापि ब्राह्मण रुढ़ि थोड़ी बहुत चलती ही इधर राजा पद्मानंद जैन था। उसने ब्राह्मणों की अनुचित प्रथा को उन्मूलन करने के लिये कई शुद्र की कन्याओं के साथ लग्न करके जनता पर अपना प्रभाव डाला। राजा महापद्म की क्षत्राणियों से पुत्र और शूद्रानियों से ३ पुत्र हुए जिनमें क्षत्राणी से पैदा हुए ६ पुत्र क्रमशः मगद की गद्दी पर राजा, परन्तु उनका राज बहुत ही कम चला बाद क्षत्रियाणी का कोई पुत्र नहीं था अतः नवमे पट्ट पर महान शुद्राणी से पैदा हुए पुत्र को राज गद्दी पर बिठाया इसलिये उन ६ राजाओं के शासन में ऐसी कोई मा योग्य घटना नहीं हुई थी अतः महानंद राजा के समय का हाल ही लिखना शेष रह जाता है।

९ वां महानंद राजा—यह महापद्म दूसरे नंद की शुद्राणी का पुत्र था और [illegible] के नन्द [illegible] बना था इसके कई नाम थे। नौवां नंद, महानंद धनानंद (धनलोभी) [illegible]सेन, [illegible]

१—[illegible] की मूर्ति—पट्टावलियों से पता मिलता है कि इस मूर्ति को मगदेश्वर बिंबसार (श्रेणिक राजा ने बना कर प्रतिष्ठा करवाई थी।

(स्वभाव के कारण) मगद में फली हुई शिथिलता को सब से पहले दूर की। इसका महा मंत्री शकडाल था जो पहले नंद का मंत्री कल्पक की वंश परम्परा पर महा बुद्धिमान मंत्री था राजा ने मंत्री की बुद्धि चातुर्य से पंजाब, कम्बोज प्रान्तों को विजय कर अपने अधिकार में कर लिया। पहले से बहुत अर्से इतनी शहन शाहियत के आधीन थे महानंद ने उत्तर हिन्द में त्रिपुटी यानि पाणिनी—चाणक्य—वररुचि तीन रत्नों को ले आया था।

जब कम्बोज कश्मीर की सत्ता महानन्द की हाथ में आई तो वहां की स्वर्गसदृश तक्षशिला भी इनकी हकूमत में आ गई। वहां पर एक महा विद्यालय भी चलता था। इधर मगद में भी नालंदा नामका महा विद्यालय भी चलता था। महानन्द इन दोनों विद्यालयों का सहायक एवं प्राणदाता था। हम पहले लिख आये हैं कि राजा महानंद धन लोभी था। उसने सुवर्ण एकत्र कर ५ बड़े स्तूप बनवाये थे। कई लोग कहते हैं कि भूमि में पहाड़ जितना खोद कर उसमें सुवर्ण भर दिया था। उसके ऊपर स्तूप बनवाये थे। जो नन्दों के अन्दर सबसे अधिक समय इस महा-वीर का राज चला था और इसने अपनी राज सीमा उत्तर से दक्षिण भारत में फैला दी थी यह भी कहा गया है कि सूर्य उदय होकर अस्त भी हो जाता है। यही हाल भूमि के राजा चक्रवर्तियों का हुआ है। एक दिन नंद वंश का उदय होने का दिन था आज अस्त होने की तैयारियां हो रही हैं इसके लिये निमित्त कारण भी ऐसे ही बन जाते हैं। जिस चाणक्य को पुण्यभाव से मगद में लाये थे वह उसके राज के अस्त का जरिया बन गया। जिसको मौर्यवंश की शुरुआत में लिखा जायगा।

श्रीमान् त्रिभुवनदास लेहरचंद बड़ौदा वाले ने 'प्राचीन भारत वर्ष' नामक ग्रन्थ में राजाओं की वंशावलियों तथा उसका समय लिखा है। पाठकों की जानकारी के लिये यहां लिखा दिया जाता है।

शिशुनाग वंश के १० राजा (वि० सं० पू० ८०५ से)		नंद वंश के ९ राजा (ई० सं० पूर्व ४१२ से)	
१—शिशुनाग राजा	६०	१—नंदवर्धन राजा	१७
२—काकवर्ण ,,	३६	२—महापद्म ,,	२८
३—क्षेमवर्द्धन ,,	५०	३—अश्वबोध ,,	२
४—क्षेमजित ,,	३६	४—ज्येष्ठवर्धन ,,	२
५—प्रसेनजित ,,	४३	५—सुदेव ,,	२
६—श्रेणिक	५२	६—धनदेव ,,	२
७—कूणिक	३२	७—बृहद्रथ ,,	२
८—उदाई ,,	१६	८—बृहस्पती मित्र ,,	२
९—अनुरुद्ध } १०—मुंदा }	८	९—महानन्द ,,	४३
	३३३		१००

\+ इन वंशावलियों में जो वर्ष लिखे गये हैं वह अनुमान से ही लिखा मालूम होता है।

२—विदह देश—यह विदह देश मगद के पास ठीक पाड़ोस में ही आया है इस देश की रा मथिला नगरी में होना शास्त्रों में लिखा है पर हम जिस समय का इतिहास लिख रहे हैं उस समय देश के राजा चेटक की राजधानी वैशाला नगरी में थी। राजा चेटक का घराना जैन धर्म को पालन था इसके गुरु पार्श्वनाथ के सन्तानिया थे जब भगवान् महावीर का शासन प्रवृत्तमान हुआ तो आ महावीर के भक्त राजाओं में अग्रमहेश्वर थे आप गण शतक राजाओं के नायक थे कासी कौशल के गण राजा आपकी आज्ञा शिर धार्य करते थे यही कारण है कि राजा चेटक और मगदेश्वर के आपस में युद्ध हुआ तो काशी कौशल के अट्ठारह गण राजा आपकी मदद में आये थे भ० महा अन्तिम समय राजा चेटक अपने अठारह गण शतक राजाओं के साथ भ० महावीर की सेवा में र पौषध व्रत किया था राजा चेटक के परिवार में एक शोभनराय पुत्र और सात पुत्रियां थीं एक समय प्रसंग पर भ० महावीर ने श्री मुख से फरमाया था कि राजा चेटक के सातों पुत्रियाँ सतियाँ हैं और प्रकार उन्होंने अपने सतीत्व का परिचय भी दिया था पाठक पिछले प्रकरण में पढ़ आये हैं कि उन सति अपना सतीत्व व्रत की रक्षा के लिये नाशवान प्राणों की आहूति देदी थी उन सातों सतियों का अ जैन शास्त्रों में बहुत विस्तार से किया है पर मैं तो यह केवल नामोल्लेख कर देता हूँ।

१—प्रभावती—जिसकों—सिन्धुदेश—वितभय पाटण के राजा उदाइ कों परणाई
२—शिवादेवी—आवन्तिकी—उज्जैन नगरी का राजा चण्ड प्रद्योतन को ,,
३—ज्येष्टादेवी—क्षत्री कुण्ड नगर के राजा नन्दीवर्धन को ,,
४—मृगावती—वत्स देश—कौसम्बी का राजा सन्तानिक को ,,
५—पद्मावती—अङ्ग देश चम्पा नगरी के राजा दधिवहान को ,,
६—चेलना—मगद देश—राजगृह नगर के सम्राट् श्रेणिक को ,,
७—सुज्येष्टा—आजीवन कुवारी रहकर भ० महावीर के पास दीक्षा ले ली।

जब राजा कुणिक ने वैशाला कों जीत कर उसके राज को मगद एवं अंग देश में मिला लि तब चेटक का पुत्र शोभनराय भाग कर कलिंग देश जो अपना श्वशुराल था चला गया वहाँ के राज पुत्र न होने से कलिंग का राज शोभनराय कों देदिया जिसकों हम कलिंग के राजाओं में लिख आये हैं। विदेह देश के राज यहाँ से खत्म हो कर मगद सम्राज्य में मिल गया और शोभनराय की परम्परा कलिंग पतियों के नाम ओलखाने लगी है।

३—आवन्ती देश—आवन्ती देश दो भागों में विभाजित था एक पूर्व आवन्ती दूसरी पश्चि आवन्ती। पूर्व आवन्ती की राजधानी विदिशा नगरी थी जो उज्जैन नगरी से करीब ८० मील पूर्व में तब पश्चिम आवन्ती की राजधानी उज्जैन नगरी में थी। इस आवन्ती प्रदेश के साथ जैन धर्म का घनि सम्बन्ध रहा है इस प्रदेश के शासन कर्ता सब के सब राजा जैन धर्म के उपासक थे। भगवान् महावीर शासन समय उज्जैन नगरी में राजा चण्ड प्रद्योतन राज्य करता था उसका विवाह विशाला नगरी के रा चेटक की पुत्री शिवादेवी के साथ हुआ था इनके अलावा मगधपति वत्सपति के साथ भी चण्ड प्रद्यो का सम्बन्ध रहा है और सिन्धु सौवीर की राजधानी वितभय पट्टन का राजा उदाइ के साथ भी इस सम्बन्ध रहा है उसको मैं राजा उदाइ के अधिकार में लिखूँगा।

मगदपति राजा बिम्बसार (श्रेणिक) के पुत्र एवं मन्त्री अभयकुमार के साथ भी चण्डप्रद्योतन राजा का सम्बन्ध था जिसके लिये जैन शास्त्रों में एक कथा लिखी गई है कि एक समय राजा चण्ड मगद की राजधानी राजगृह नगर पर सैना लेकर चढ़ आया था पर राजा श्रेणिक ने सोचा कि बिना ही कारण युद्ध कर लाखों मनुष्यों का सँहार करना इसकी अपेक्षा तो राजा चण्ड बिना युद्ध किया ही चला जाय तो अच्छा है दूसरा राजा श्रेणिक और चण्ड आपस में साडू भी होते थे। खैर उस समय अभयकुमार राजा श्रेणिक को परिणाम करने को आया था पित को चिन्तातुर देख कर कारण पूछा तो राजा ने चण्ड का हाल कहा इस पर अभयकुमार ने विश्वास दिलाया कि आप इस बात की चिन्ता न करे मैं ऐसा ही करूँगा कि राजा चण्ड बिना युद्ध किये चला जायगा। राजा श्रेणिक को अभयकुमार के कहने पर सदा विश्वास था कारण अभयकुमार बड़ा ही बुद्धि कुशल था।

अभयकुमार अपनी बुद्धि चातुर्य से कुच्छ सुवर्णादि द्रव्य लेजा कर गुप्त पने नगर के बाहर और राजा चण्ड की सेना के पास भूमि में दाट दिया जिसकी किसी को खबर न पड़ी बाद कुमार राजा चण्ड के पास गया और युद्ध सम्बन्धी बातें करनी शुरू की और कहा कि आप हमारे मासाजी लगते हो अतः मैं आपके हित की बात कहने को आया हूँ और वह यह है कि आपकी सैना के मुख्य योद्धे राजा श्रेणिक से रिश्वत लेकर उनके हो गये हैं। शायद आपको धोखा देकर आपका अहित न कर डाले मैं आपका शुभ-चिन्तक हूँ अतः आपको चेता दिया है पर राजा चण्ड को विश्वास नहीं हुआ तब अभयकुमार राजा को साथ लेजा कर पास ही भूमि के अन्दर दाटा हुआ द्रव्य दिखाया जिससे राजा चण्ड को विश्वास हो गया और रात्रि में हस्ती पर सवार होकर एवं भाग कर उज्जैन आ गया और अपने योद्धाओं पर गुस्सा कर उनके लिये दरबार में आने की सख्त मनाई करदी। उधर जब युद्ध का समय हुआ और देखा तो राजा चण्ड का पता नहीं लगा बस बिना नायक की सेना क्या कर सकती है वे योद्धा भी अपनी सेना लेकर उज्जैन की ओर चल धरा। जब उज्जैन आकर राज सभा में जाने लगे तो उन सब को बाहर ही रोक दिये। जब उन लोगों ने राजा से कहलाया कि भाग कर तो आप आये और गुस्सा हमारे पर क्यों ? राजा ने कहलाया कि अरे नीच योद्धाओ तुम हमारा नमक खाते हुए भी राजा श्रेणिक से रिश्वत लेकर उनसे मिल गये। क्या तुम मुँह दिखाने लायक हो। इस पर योद्धाओं ने विचार किया कि इसमें हो या न हो मन्त्री अभयकुमार की कूटनीति है अतः उन्होंने राजा से कहलाया कि एक बार हमारी बात तो सुन लीजिये। इस पर राजा ने योद्धाओं को राजसभा में बुलवा कर उनकी सब बातें सुनी जिनसे राजा को ज्ञान हुआ कि यह सब अभयकुमार का ही प्रपंच था। मैं उसके धोखा में आकर हाथ में आया सुअवसर गमा दिया इत्यादि। कथा विस्तृत है।

आवंती प्रदेश में जैसे उज्जैन का महत्त्व है वैसा ही विदिशानगरी का भी महत्व है इतना ही क्यों पर विदिशानगरी जैनों का एक तीर्थधाम था आचार्य महागिरि और सुहस्ती एक समय विदिशा की यात्रार्थ पधारे थे और कई स्थानों पर तो यह भी लिखा मिलता है कि आचार्य सुहस्ती सूरि ने राजा सम्प्रति को विदिशानगरी में ही धर्म का उपदेश देकर जैन बनाया था इससे पाया जाता है कि राजा सम्प्रति ने अपने राज के समय उज्जैननगरी की राजधानी छोड़ विदिशानगरी में अपनी राजधानी बनाई होगी तब ही तो सुहस्ती सूरि ने विदिशा में राजा को प्रतिबोध दिया था इतना ही क्यों सम्राट् अशोक के समय भी विदिशा धन धान से समृद्ध और बहुत से धनाढ्य व्यापारी वहाँ व्यापार भी करते थे हुए अशोक एक व्यापारी की कन्या

मंत्री अभयकुमार की बुद्धि चातुर्य—

के साथ विवाह करने का उल्लेख इतिहास में मिलता है और उनके पूर्व सम्राट् चन्द्रगुप्त ने वहां एक राजमह बना कर वर्ष में कई समय वहाँ व्यतीत करने का भी उल्लेख मिलता है अतः सम्राट् सम्प्रति ने अपनी रा धानी विदिशानगरी में बनाई हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अब यह सवाल रह जाता है। विदिशा नगरी में ऐसा क्या था कि उसको इतना महत्व दिया गया ? विदिशानगरी के चार नाम १ विदिशा, २ वेशनगर, ३ सांचीपुर, ४ भिलसा।

१—यह नगरी चार दिशाओं की अपेक्षा विदिशा में बसी है इससे विदिशा कही जाती है।

२—यह नगरी वेश नदी के किनारे पर बसी है अतः वेशनगर कहा गया है।

३—इस नगरी के पास जैन स्तूपों का संग्रह—संचय होने से सांचीपुरी कही जाती है।

४—वर्तमान में वहाँ एक छोटासा ग्राम रह गया है अतः लोग उसे भिलसा कहते हैं।

एक तो विदिशानगरी में भगवान महावीर के मौजूदगी समय की मूर्ति जिसको जीवित मूर्ति कह जाती है दूसरे वहाँ कई छोटे बड़े स्तूप हैं और कई लोग तो भगवान महावीर स्वामि का मोक्ष और शरी का अग्नि संस्कार इसी स्थान में हुआ बतलाते हैं अतः यह जैनियों का पुनीत तीर्थधाम है और इस प्रकार तीर्थधाम होने से ही जैनाचार्य यात्रार्थ आते थे सम्राट् चन्द्रगुप्त ने वहां अपने ठहरने को राजमहल करवाय सम्राट् अशोक भी वहां आया था और सम्राट् सम्प्रति तो अपनी राजधानी का नगर विदिशा को ही बना दिया था। इस विषय में अधिक उल्लेख हम स्तूप प्रकरण में करेंगे। यहां तो इतना ही कह देना उचित है कि विदिशा एवं साँचीपुर जैनों का तीर्थ धाम अवश्य था इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

ऊपर हम लिख आये हैं कि आवंती प्रदेश के साथ जैनधर्म का घनिष्ट सम्बन्ध रहा है आवंती के सिंहासन पर विक्रम पूर्व छठी शताब्दी से विक्रम की चौथी शताब्दि तक के भिन्न २ वंश के राजाओं ने वहाँ राज किया है जिसमें थोड़ासा अपवाद छोड़ कर वे राजा जैनधर्म का पालन एवं प्रचार करने वाले ही थे इस विषय में विस्तृत वर्णन तो श्रीमान् त्रिभुवनदास लहेरचन्द शाह बड़ौदा वाले ने अपने "प्राचीन भारतवर्ष के पांच भागों में किया है पर यहाँ स्थानाभाव में उन राजाओं की मात्र नामावली देदेता हूँ।

नं०	राजाओं के नाम	समय कहाँ से कहाँ तक	राजकाल	
१	पुनिक	ई० स० पूर्व ५९६–५७५	२१	यह समय श्रीमान् शाह की पुस्तक अनुसार दिया गया है शायद इसमें अन्य लेखकों का मत-भेद भी हो।
२	चण्ड प्रद्योतन	,, ५७५–५२७	४८	
३	पालक	,, ५२७–५२०	७	
४	नंदिवर्धन	,, ५२०–५०१	१९	
५	आवंतीसेन	,, ५०१–४८७	१४	
६	[illegible]	,, ४८७–४६७	२०	

(क)   आवंति देश विदिशानगरी

जिस दिन भगवान महावीर का निर्वाण हुआ उसी दिन उज्जैन में राजा चण्ड प्रद्योतन का भी देहान्त हो गया था और उसी दिन उज्जैन के सिंहासन पर चण्ड के पुत्र पालक का राजाभिषेक हुआ। आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने परिशिष्ट पर्व में पालक का राज ६० वर्ष का लिखा है तब शाह ने ऊपर ६० वर्षों में चार राजा होना लिखा है पर दोनों लेखों में समय का कोई अन्तर नहीं पड़ता है। वीरात् ६० वर्ष के बाद उज्जैन की राजसत्ता नन्दवंशी राजाओं के अधिकार में चली गई उन्होंने आवंती का राज मगद में मिला लिया पर जैनाचार्यों ने कालगणना आवंती के राजाओं से ही की है अतः प्रद्योतन वंशी राजा जैन थे वैसे नन्दवंशी राजा भी जैन थे इस विषय में हम नन्दवंशी राजाओं के अधिकार में लिख आये हैं और नन्दवंश की वंशावली भी लिख आये हैं करीबन १०० वर्ष नंदों का राज रहा बाद आवंती का अधिकार मौर्य वंश के हाथों में चला गया मौर्य वंश के राजाओं में केवल एक अशोक ही बौद्ध धर्म का मानने वाला हुआ वह भी जब तक बौद्ध धर्म स्वीकार नहीं किया वहां तक तो जैन ही था कारण उसके पिता और पिता मह। जैनधर्मी ही थे अतः अशोक जैन ही था अशोक बौद्ध होने पर भी उसका जैन श्रमणों से अभाव नहीं हुआ था जो उसके शिलालेखों से प्रगट होता है नन्दवंशी राजाओं के बाद मौर्यवंशी राजाओं का उदय हुआ पर मौर्य वंश के राजाओं के समय में सब का एकमत नहीं है। आचार्य हेमचन्द्र सूरि के मतानुसार मौर्यवंश का राज वीर सं० १५५ से प्रारम्भ होता है तब पन्यासजी श्री कल्याणविजयजी म० मतानुसार वीर नि० सं० २१० वर्षों से मौर्यों का राज शुरू होता है तब मेरुतुंगाचार्य की विचार श्रेणी में मौर्य वंश का राज १०८ वर्ष और तित्थोगली पइन्ना में मौर्यों का राज १६० वर्ष रहा लिखा है तब त्रि० लो० शाह मौर्यों का राज १७८ वर्ष लिखा है मेरे मतानुसार मौर्य वंश का राज वी० नि० स० १५५ में शुरु और १६३ वर्ष राज करना आता है अब इसमें कौनसा मत ठीक है विद्वानों पर ही छोड़ दिया जाता है मौर्य वंश की नामावली भी पहले लिखदी जा चुकी है।

मौर्य वंश के पश्चात् शूंगवंशी राजा पुष्पमित्र का राज हुआ उसने अपने स्वामी मौर्य वंश के राजा वृद्रथं को मार कर मौर्य वंश का अन्त कर स्वयं राजा बन गया पुष्प मित्र कट्टर ब्राह्मणधर्म का राजा था। इसने जैन एवं बौद्धधर्म पर बड़ा भारी अत्याचार किया था यहां तक कि जैनधर्म एवं बौद्ध धर्म के साधु का शिर काट कर लाने वाले को इनाम में एकसौ दिनारें दी जायगी पर वह भी ३० वर्ष एवं मतान्तर ३५ वर्ष राज कर खतम हुआ इनके बाद में राजा बलमित्र भानुमित्र के राज की गिनती की जाती है यद्यपि वे भरोंच नगर पर राज करते थे पर उनका राज उज्जैन पर भी रहा था इसलिये इनकी गिनती भी उज्जैन के राजाओं में की गई है इनने ६० वर्ष तक राज किये और ये दोनों बांधव जैनधर्म के परम उपाशक थे तथा कालकाचार्य के भानेज भी लगते थे इनके बाद नरवाहन ने उज्जैन के सिंहासन पर ४० वर्ष राज किया था तदनन्तर गन्धर्व भील्ल वंश का राजा गन्धर्व भील्ल और शकों ने १० वर्ष राज किया इनके पश्चात राजा विक्रमादित्य का राज उज्जैन के सिंहासन पर कायम हुआ राजा विक्रम प्रजापालनरूप न्याय-निपुण राजा था इसने जैनधर्म को स्वीकार कर अपने राज में अहिंसा धर्म का खूब प्रचार किया इस राजा ने तीर्थ श्री शत्रुंजय का विराट् संघ निकला था राजा विक्रम के गुरु महान् प्रभाविक आचार्य सिद्धसेन दिवाकर थे जिन्होंने कल्याण मन्दिर स्तोत्र बना कर आवंती पार्श्वनाथ को प्रगट किये थे इनकी वंशावली—

(अनुसंधान इसी ग्रन्थ के पृ० ५६१ पर देखो)

२६....आचार्य श्रीरत्नप्रभसूरि (पांचवें)

भद्रे स्वे सुविभूति सन्ततिसमो रत्नप्रभः सूरि भाक्।
श्री तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ सरणौ रत्नप्रभः पंचमः ॥
तत्कल्पोऽ यमपीह शुद्धचरितैः पंचाननोऽजयत।
साफल्यं सुववार यं तु बहुधा धर्मप्रचारे क्षमम् ॥
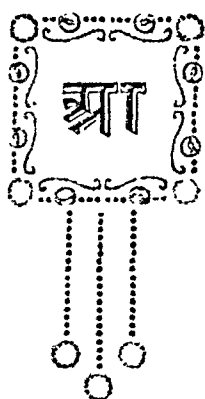
आचार्य रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज अद्वितीय प्रतिभाशाली थे आप पांचमहाव्रत करने में पांच समिति आराधन करने में पांचेन्द्रिय एवं पांच प्रमाद विजय क और पांचाचार पालन करने में पांचायणसिंह की भांति बड़े भारी शूरवीर थे। की आवश्यकता नहीं है कि रत्नों की खान में रत्न ही उत्पन्न होते हैं। रत्नप्र के नाम में ही ऐसा चमत्कार रहा हुआ है कि शासन का भार अपने सि लेकर उन्होंने जैनधर्म को खूब ही उन्नतशील बनाया था जिनके उपकार को समाज क्षणमात्र भी भूल नहीं सकता है। आपका जीवन बड़ा ही रहस् अनुकरणीय है।

जिस समय की बात को हम लिख रहे हैं। उस समय भारतीय नगरों में सोपारपुर पाटण बड़ा उन्नतशील नगर था। व्यापार का तो एक केन्द्र ही था। जैनों की अच्छी आबादी थी। व्यापारार्थ स्थानों से बहुत से लोग आ आकर सोपारपट्टन को अपना निवास स्थान बना रहे थे। उसमें भद्र गो शाह देदा नामक साहूकार भी एक था। शाह देदा के तीन पुत्र थे, राणा, साहरण, और लुम्बा। रा तो वहां के राजा के मन्त्री पद पर तथा साहरण सेनापति पद पर नियुक्त थे। तब लुम्बा व्यापार क था। शाह लुम्बा का व्यापार केवल भारत ही में ही नहीं, पर भारत के बाहर पाश्चात्य प्रदेशों में भी आपका व्यापार जल और थल दोनों मार्गों से होता था। साधर्मी भाइयों की ओर आपका अधिक ल था। उनको व्यापार में शामिल रख कर तथा वेतन पर रख कर लाभ पहुँचाना अपना कर्तव्य सम था। यही कारण था कि इस प्रकार की सहायता पाकर उस समय जैनेतर लोग खुशी से जैन बन जाते इन तीनों भ्राताओं के जैसे द्रव्य बढ़ता था वैसे परिवार भी बढ़ता। शाह राणा के नौ पुत्र तीन पुत्रियें साहरण के आठ पुत्र पांच पुत्रियां थीं तब शाह लुम्बा के पांच पुत्र और सात पुत्रियां थीं। उस समय केवल प्राग्वट वंश और श्रीमालवंश के तो आपस में विवाह सम्बन्ध था ही पर क्षत्रिआदि के [illegible] दान में भी कोई लग्न शादी कर लेने तो रुकावट नहीं थी और ऐसे अनेक उदाहरण वंशावलियों वगैरह में उपलब्ध भी होते हैं। शाह लुम्बा के एक पुत्र का विवा. क्षत्रिय कन्या के साथ तथा दूसरे पुत्र का [illegible] पुत्री के साथ हुआ था। इसी प्रकार शाह राणा की पुत्री क्षत्रियों के यहां परणाई थी। [illegible] [illegible]वंशी लोग भी प्रायः क्षत्रिय वंश के ही थे। शाह देदा का घराना वंश परम्परा से जैनधर्म का उपा

था। 'उपकेशे बहुलंद्रव्यं' इस वरदान के अनुसार शाह देदा कोटाधीश था और आपके तीनों पुत्रों ने भी पुष्कल द्रव्य उपार्जन किया था शाह राणा ने सातबार तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाल कर शत्रुञ्जय से सम्मेतशिखर तीर्थों तक तमाम तीर्थों की यात्रा की। शाह साहरण ने श्रीशत्रुञ्जय पर भगवानमहावीर का विशालमन्दिर बनाया। शाह लुम्बा ने सोपारपट्टन में भगवान आदीश्वर का चौरासीदेहरीवाला मंदिरबनवाया और साधर्म्मी भाइयों को सोने का थाल और सुवर्ण मुद्रिका की पहरामणी दी। उस समय में श्रीसंघ को अपने घर बुलाकर इस प्रकार की पहिरामणी देना बड़ा ही गौरव का कार्य्य समझा जाता था उस जमाने के लोग अपने निज के लिये बिलकुल सादा जीवन स्वल्प खर्चा रखते थे पर धर्म कार्य्यों में खूब खुले दिल से द्रव्य व्यय करते थे और उनके पुन्य ही ऐसे थे कि ज्यों ज्यों शुभ कार्य्यों में लक्ष्मी व्यय करते थे त्यों त्यों लक्ष्मी उनके घरों में बिना बुलाये आकर स्थिर वास कर बैठ जाती थी। क्योंकि उस जमाने के व्यापार में सत्य न्याय और पुरुषार्थ एवं तीन बात मुख्य समझी जाती थीं जो खासकर लक्ष्मी को प्रिय थी। इन त्रिपुटी बन्धुओं की उदारता के लिये तो पट्टावलीकार लिखते हैं कि इनके घर पर कोई भी व्यक्ति आशा करके आता था वह कभी निराश होकर नहीं जाता था। जिसमें भी साधर्मियों के लिये तो और भी विशेषता थी।

शाह लुम्बा के यों तो पांच पुत्र थे पर उसमें एक खेमा नाम का पुत्र बड़ा ही होनहार था। उसका अधिक समय धर्म कार्य में ही जाता था। वह संसार से सदैव विरक्त रहता था। आत्मिक ज्ञान की उसको बड़ी भारी रुचि थी जिसमें भी योगाभ्यास के लिये तो खेमा विशेष प्रयत्न करता था। सोपारपट्टन में साधुओं का संयोग विशेष मिलने से खेमा धर्म करनी में संलग्न रहता था।

एक समय धर्मप्राण लब्ध प्रतिष्ठित धर्म प्रचारक आचार्य श्री सिद्धसूरीश्वरजी महाराज अपने विद्वान शिष्य समुदाय के साथ विहार करते हुये सोपारपट्टन पधार रहे थे। इस बात की खबर मिलते ही श्रीसंघ के हर्ष का पार नहीं रहा अतः सुन्दर स्वागत कर सूरिजी का नगर प्रवेश करवाया। यह वे ही सूरिजी हैं कि एक दिन सारंग के रूप में अनगिनती सुवर्ण शुभकार्य्यों में व्यय किया था। अतः ऐसे त्यागी महात्मा प्रति जनता की अधिक से अधिक भक्ति हो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या हो सकती है।

सूरिजी का व्याख्यान हमेशा त्याग वैराग्य पर हुआ करता था कि जिसका जनता पर खूब ही प्रभाव पड़ता था। एक दिन के व्याख्यान में सूरिजी ने संसार की असारता, लक्ष्मी की चंचलता, आयुष्य की अस्थिरता और कुटुम्ब की स्वार्थता, के विषय में व्याख्यान देते हुये कहा कि संसार की असारता समझ कर छः खण्ड में एक छत्र राज करने वाले चक्रवर्तियों ने आत्म भावना से दीक्षा लेकर अपना कल्याण किया है। भगवान रामचन्द्र और पांच पांडव कब जानते थे कि लक्ष्मी को छोड़ हमको बन बन में भटकना पड़ेगा। एक अरब और पैंतीस क्रोड़ सोनाइयों का धणी धन्नाशाह कब जानता था कि मैं आधी रोटी के टुकड़े के लिये घर-घर का दास बन जाऊँगा। भगवान् श्रीकृष्ण कब जानते थे कि सुवर्णमय द्वारामती छोड़कर मैं बन में पानी के लिये बिल बिलाता मर जाऊँगा। आयुष्य की अस्थिरता के लिये पल्योपम और सागरोपम के आयुष्य क्षय हो जाते हैं। तीर्थङ्कर और चक्रवर्तियों के आयुष्य क्षीण हो जाते हैं भगवान् महावीर देव से इन्द्र ने प्रार्थना की थी कि आप अपने आयुष्य को एक समय न्यूनाधिक करें पर ऐसा करने में वे भी असमर्थ थे। कुटुम्ब की स्वार्थता, क्या राजा श्रेणिक यह जानता था कि मेरा पुत्र ही मुझे कारागृह में डाल देगा ? क्या राजा प्रदेशी यह जानता था कि मेरी अर्द्धांगना मुझे जहर देदेगी ? क्या ...... स्वप्न में भी कभी जानता

था कि मेरी माता ही मुझे अग्नि में जला देने का प्रयत्न करेंगी इत्यादि हजारों उदाहरण विद्यमान हैं। समझ में नहीं आता है कि संसारी जीव किस विश्वास पर निश्चित होकर बैठे हैं। प्यारे आत्मबन्धु पूर्व जमाने में कुछ अच्छे कर्म किये थे जिससे तो यहाँ सब सामग्री अनुकूल मिल गई है पर भविष्य के लि क्या करना है। शास्त्रकारों ने फरमाया है कि:—

जहा य तिन्नि वणिया, मूलं घेत्तूण निग्गया । एगोऽत्थ लहइ लाहं, एगो मूलेण आगओ ॥
एगो मूलं पि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ । ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह ।

जैसे एक साहूकार ने अपने तीनों पुत्रों को बुलाया और उनको एक एक हजार रुपये देकर दिसा भेज दिये। उसमें एक ने तो एक बड़े नगर में जाकर सुन्दर मकान किराये पर लेकर खूब मौज मजा रंग राग खाना पीना भोग विलास में लग गया और वे हजार रुपये थोड़े दिनों में खर्च कर दिये और सेठ के नाम पर कर्जा करना हुन्डियें लिखना शुरु कर दिया। तब दूसरा पुत्र ऐसे नगर में पहुँचा कि जहाँ थे. बहुत धंधा कर अपने खर्च जितनी पैदास कर अपना गुजारा चलाने लगा। और तीसरा पुत्र ऐसे नगर गया कि जहाँ व्यापार कर लाखों करोड़ों रुपये पैदास कर लिये। तब पिताजी ने तीनों पुत्रों को एक ही सा में बुलाये तथा पुत्रों के आने के बाद जो एक एक हजार रुपयों की रकम दी थी उसको वापिस मांगी। तो एक रकम खर्च करदी और उलटा कर्जा बतलाया दूसरे ने ज्यों के त्यों हजार रुपये देदिये और तीसरे ने व्यापार में पैदा करके लाया था वे लाखों रुपये पिता जी के सामने रख दिये। बतलाइये पिता किस पुत्र प बुरा होगा? यही दृष्टान्त अपनी आत्मा पर घटाइये कि एक एक हजार की रकम तुल्य मनुष्य भव मिला है एक मनुष्य ने खाना पीना भोग विलास कर मनुष्य जन्म व्यर्थ खोदिया और ऐसे पाप कर्म रूपी कर्जा लिया कि भविष्य में नरक एवं तिर्यंच में जाना पड़े। तब दूसरे मनुष्य ने न तो ज्यादा पाप किया और ज्यादा पुण्य ही किया उसने मनुष्य भव का मनुष्य भव में जाने जैसा कर्म किया। तब तीसरे मनुष्य ने मनुष्य जन्म बड़ी दुर्लभता से मिला जानकर सामग्री के सद्भाव दान पुण्य सेवा पूजा तीर्थयात्रा मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा साधर्मी भाइयों से वात्सल्यता और अन्त में भोग विलास एवं संसार को छोड़ दीक्षा लेकर पुन्योपार्जन किया वे मनुष्यभव छोड़ कर स्वर्ग सुखों के अधिकारी बन गये। इसमें भी उत्कृष्ट मार्ग तो दीक्षा लेना ही है कि एक दो या पन्द्रह भवों में जन्म मरण के दुःखों से छूट कर मोक्ष में चला जाय इत्यादि, वैराग्य मय देशना दी।

यों तो सूरिजी के उपदेश ने सब पर ही असर किया था पर वीर खेमा पर तो इतना प्रभाव [illegible] कि वह दीक्षा लेने को तैयार होगया और कई पचास नर नारी खेमा का अनुकरण करने को कटिबद्ध होगये। खेमा के माता पिता स्त्री और पुत्रों ने बहुत कुछ समझाया पर खेमा का रंग हल्दी जैसा नहीं था कि ताप लगने से उतर जाय। खेमा ने सब को समझा कर दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। शाह [illegible] ने अपने पुत्र की दीक्षा का बड़ा भारी महोत्सव किया जिसमें तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया। ठीक शुभ मुहूर्त में सूरिजी ने खेमादि ५० नर नारियों को भगवती जैन दीक्षा देकर उन सबका उद्धार किया। खेमा का नाम मुनि गुणतिलक रक्खा गया। मुनि गुणतिलक बड़ा ही त्यागी वैरागी तपस्वी और ध्यानी था आपके ज्ञानावर्णिय कर्म, मोहनीयकर्म और अन्तरायकर्म एवं तीनों कर्मों का क्षयोपशम था कि उसने थोड़ा परिश्रम करने पर ही वर्तमान साहित्य का अध्ययन कर लिया। वह भी केवल जैन साहित्य ही नहीं पर जैनेतर साहित्य का भी [illegible] [illegible]। व्याकरण, न्याय, तर्क, छन्द, काव्य तथा ज्योतिष और अष्टांग निमित्त का भी [illegible]

आपकी कठोर तपश्चर्या से कई देवी देवता भी आपकी सेवा करते थे। विद्या और लब्धियाँ तो स्वयं वरदाई होकर आपकी सेवा में रहना अपना अहोभाग्य ही समझती थीं इत्यादि मुनि गुणतिलक की भाग्य रेखा यहाँ तक चमक उठी कि आचार्य सिद्धसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था में मुनि गुणतिलक को सर्वगुण सम्पन्न जान कर मथुरा श्रीसंघ के महामहोत्सव पूर्वक सूरिपद से विभूषित कर आपका नाम रत्नप्रभसूरि रख दिया।

आचार्य रत्नप्रभसूरि बड़े ही प्रतापी आचार्य हुये आपकी कठोर तपश्चार्या और योगाभ्यास के कारण आपका प्रभाव अतिशय इतना बढ़ गया था कि बड़े २ राजा महाराजा और देवी देवता आपके चरणार्विन्द की सेवा कर अपना अहोभाग्य समझते थे। कई जैन एवं जैनेतर मुमुक्षु योगाभ्यास करने को आपकी सेवा में उपस्थित रहते थे और आप अपनी उदारतापूर्वक पात्र को अभ्यास करवाया करते थे। एक समय सूरिजी महाराज भूभ्रमण करते हुये भिन्नमाल नगर में पधारे वहाँ के श्रीसंघ ने सूरिजी का सुन्दर स्वागत किया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था जिसको श्रवण कर जनता अपना अहोभाग्य समझती थी।

मरुधर में एक भिनमाल ही ऐसा नगर था कि जैनों के और ब्राह्मणों के हमेशा से वाद विवाद चलता आया था। यद्यपि कई ब्राह्मणों ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था पर जो लोग शेष रहे थे वे कुछ न कुछ विवाद खड़ा कर ही देते थे और अपनी वाड़ा वन्दी की वे कई प्रकार से कोशिश किया करते थे।

वहाँ का राजा अजीवदेव और आपकी रानी रत्नादे जैनधर्मोपासक थे पर जैन धर्म के नियम सख्त होने से कई जिह्वा लोलुपी लोगों से पलना मुश्किल भी था राजा अजीतसिंह के कई पुत्र थे। उसमें एक गंगदेव नाम का पुत्र ब्राह्मणों की संगति से मांस मदिरा के दुर्व्यसन में पड़ गया जो जैनधर्म के नियमों से खिलाफ था। उसके माता पिता ने बहुत समझाया पर वह जैनधर्म को अच्छा समझता हुआ भी उन दुर्व्यसनों को छोड़ने में असमर्थ था। कुँवर गंगदेव ब्राह्मणों की संगति से भोजन भी रात्रि में ही करता था। एक दिन भाग्यवसात् रात्री में भोजन बनाया उसमें रसोइया की असावधानी से कई जहरीला जानवर भोजन के साथ पच गया कि उसका विष भोजन के साथ मिल गया। गंगदेव ने रात्रि में भोजन किया तो उसका शरीर विष व्यापक बन गया। सुबह। ब्राह्मणों ने कई यंत्र मंत्र दवाई झाड़ झपटादि अनेक उपचार किये पर वे सब कृतघ्नी पर किया हुआ उपकार कि भाँति निःसफल ही हुये।

अतः गंगदेव के माता पिता आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि के पास आये और प्रार्थना की कि हे प्रभो? यह गंगदेव ब्राह्मणों की संगति से मांस मदिरा का भक्षण तथा रात्रि भोजन भी करता है जिससे आज वह जीवन से हाथ धो बैठा है पूज्यवर? आपके पूर्वज आचार्य रत्नप्रभसूरि ने पहिले भी हमारे पूर्वजों को इस तरह से जीवन दान दिया था अतः कृपा कर मुझे पुत्ररूपी भिक्षा प्रदान करावे। सूरिजी ने कहा कि अनंत तीर्थंकरों ने रात्रि भोजन का निषेध किया है। क्या साधु और क्या गृहस्थ सब को रात्रि भोजन का त्याग रखना चाहिये। रात्रि भोजन से इस भव में प्राणघात और परभवमें नरकादि फल मिलता है इत्यादि।

राजा ने कहा पूज्यवर! आपका फरमाना सत्य है। कल्याण हो आचार्य स्वयंप्रभसूरि और आचार्य रत्नसूरिका कि उनकी कृपा से हम लोग इस महान पाप से बच गये हैं फिर आप जैनों के उपदेश से हम रात्रि भोजन के लिये दृढ़ प्रतिज्ञावाले हैं पर इस गंगदेव ने ब्राह्मणों की संगति से इस पाप को शिर पर लिया है। फिर भी आपका धर्म तो किसी भी जीव पर उपकार करने का है। अतः हम लोगों पर दया भाव लाकर इसको जीवन प्रदान करावें।

सूरिजी ने अपने योग बल से राजकुँवर के विषय को अपहरण कर लिया अतः राजकुंवार स होकर इधर उधर देखने लगा तो उसकी माता ने कहा बेटा ! तू आज नये जन्म में आया है। हम लो वहुत समझाया था कि तू रात्रि भोजन मत कर अर्थात् रात्रि भोजन का त्याग करदे पर तू नहीं माना इ ही फल है कि तेरे लिये स्मशान की तैयारी कर दी थी पर कल्याण हो पूज्य दयालु आचार्य देव का जिन्होंने तुझको जीवन दान दिया है। अब तू जैनधर्म की शरण ले और रात्रि भोजन का सर्वथा त्य कर दे। राजकुँवर ने केवल माता के कहने से ही नहीं पर स्वयं अनुभव करके मिथ्याधर्म और अधर्म प्र का त्याग कर जैनधर्म स्वीकार कर लिया। इस प्रसंग पर राजकुँवर के पक्ष में जो लोग थे उन्होंने जैनधर्म को स्वीकार कर लिया। अतः नगर भर में जैनधर्म की भूरि २ प्रशंसा होने लगी और सब ल कहने लगे कि जैनाचार्य कैसे दयालु होते हैं कि एक राजकुँवर को जीवन दान देकर महान् उपकार किया

बस, दूसरे दिन व्याख्यान में सूरिजी ने रात्रि भोजन के विषय में खूब जोर से कहा कि रात्रि भो करना जैनशास्त्रों में केवल साधुओं के लिये ही नहीं पर गृहस्थों के लिये भी बिल्कुल मना किया है। प्रा जैनधर्म पालन करने वाले रात्रि भोजन नहीं करते हैं क्यों कि रात्रि समय तमाम पदार्थ अभक्ष्य बतलाये हैं रात्रि भोजन से दूसरे जीवों की हिंसा तो होती ही है पर कभी कभी स्वयं रात्रि भोजन करने वाले को काल कवलित बनना पड़ता है। और इस प्रकार मरने से भविष्य में भी गति नहीं होती है। तथा जैनधर्म इस उत्तम नियम को अन्य धर्म वालों ने भी अपनाया है एवं उन लोगों ने भी अपने धर्म ग्रन्थों में रा भोजन का खूब जोरों से निषेध किया है। नमूने के तौर पर देखिये:—

चत्वारो नरकद्वाराः प्रथमं रात्रि भोजनम् । परस्त्रीगमनं चैव सन्धानानन्त कायके ॥
मृते स्वजन मात्रेऽपि सूतकं जायते किल । अस्तंगते दिवानाथे भोजनं क्रियते कथम् ॥
रक्तीभवन्ति तोयानिअन्नानि पिशितानि च । रात्रौ भोजन सक्तस्य ग्रासे तन्मांसभक्षणम् ॥
चत्वारि खलु कर्माणि सन्ध्याकाले विवर्जयेत् । आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च विशेषतः ॥
आहाराज्जायते व्याधिः क्रूरगर्भश्च मैथुनात् । निद्रातो धननाशश्च स्वाध्याये मरणं भवेत् ॥
तत्त्वं मत्वा न भोक्तव्यं रात्रौ पुंसा सुमेधसा । क्षेमं शौचं दयाधर्मं स्वर्गं मोक्षं च वांछता ॥
नैवाहुतिर्न च स्नानं न श्राद्धं देवतार्चनम् । दानं वा विहितं रात्रौ भोजनं तु विशेषतः ॥
[illegible] क्रूरैरसंस्पृष्ट मुच्छिष्टं प्रेतसंचारात् । सूक्ष्मजीवाकुलं वापि निशि भोज्यं न युज्यते ॥
मेधां पिपीलिका हन्ति यूका कुर्याज्जलोदरम् । कुरुते मक्षिका वान्ति कुष्ठरोगं च कोलिकः ॥
कण्टको दारुखण्डं च वितनोति गलव्यथाम् । व्यंजनान्तर्निपतितस्तालु विध्यति वृश्चिकः ॥
विलग्नश्च गले वालः स्वरभङ्गाय जायते । इत्यादयो दृष्टदोषाः सर्वेषां निशि भोजने ॥
नाप्रेक्ष्य सूक्ष्मजन्तूनि निश्यद्यात्प्राशुकान्यपि । अप्युद्यत्केवलज्ञानैर्नादृतं यन्निशाशनम् ॥
ये रात्रौ सर्वदाऽऽहारं वर्जयन्ति सुमेधसः । तेषां पक्षोपवासस्य फलं मासेन जायते ॥
दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे । नक्तं तद्धि विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम् ॥
संध्यायां यक्षरक्षोभिः सदा भुक्तं कुलोद्वह । सर्ववेलां व्यतिक्रम्य रात्रौ भुक्तमभोजनम् ॥

[रात्रि भोजन निषेध का उपदेश

इत्यादि रात्रि भोजन का सख्त निषेध किया है परन्तु शास्त्रों के अनभिज्ञ लोग आप स्वयं डूबते हैं और अपने विश्वास पर रहने वाले भद्रिक लोगों को भी डुबाते हैं। कई अज्ञानी लोग एक सूर्य में दो वक्त भोजन नहीं करना कहकर रात्रिभोजन करते हैं और दूसरों को करने का उपदेश करते हैं परन्तु इसका मतलब रात्रि भोजन करने का नहीं है पर यह उल्लेख तो ब्रह्मचारी एवं ब्राह्मणों के लिये है कि एक सूर्य्य में दो बार भोजन नहीं करना अर्थात् सदैव एकासना व्रत करना। जिससे ब्रह्मचार्य्य व्रत सुविधा से पले और एक बार भोजन करने से एक वर्ष में नौ मास की तपश्चर्या भी हो जाय। कारण १२ मास में रात्रि भोजन न करने से छ मास और दिनों में भी एक बार भोजन करने से तीन मास एवं नौ मास का तप हो जाता है। इसलिये ब्रह्मचारी एवं ब्राह्मणों को और साधुओं को एक दिन में एक बार ही भोजन करने की आज्ञा है यदि उससे क्षुधा शान्त न होती हो तो सूर्य्य के अस्तित्व में एक बार की बजाय दो बार भी भोजन करले पर रात्रि में तो भूल चूक के थोड़ा भी आहार नहीं करे इत्यादि। सूरिजी महाराज के व्याख्यान का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा और जनता रात्रि भोजन के पाप एवं अनर्थ से भयभ्रान्त हो कर प्रायः सबने रात्रि भोजन का त्याग कर दिया! इसका मुख्य कारण एक तो सूरिजी का व्याख्यान दूसरा राजकुंवर गंगदेव का रात्रि भोजन के लिये उदाहरण तीसरा जनता का भाग्य ही अच्छा था इत्यादि सूरिजी के विराजने से जनता का बड़ा भारी उपकार हुआ!

इस प्रकार महान उपकार करते हुये सूरिजी भिन्नमाल से विहार कर आसपास के ग्राम नगरों में भ्रमण करते हुए जावलीपुर पधार रहे थे वहां के अदित्यनाग गोत्रिय शाह झाला ने सूरिजी का बड़ा ही शानदार नगर प्रवेश का महोत्सव किया। सूरिजी का व्याख्यान हमेशा होता था शाह झाला ने कहा पूज्यवर! मेरी अवस्था वृद्ध है और मेरे दिल में महा प्रभाविक श्री भगवतीजी सूत्र सुनने की अभिलाषा लग रही है। अतः आप चतुर्मास करके मुझे और यहाँ के श्रीसंघ को आगम सुनावें तो महान उपकार होगा! सूरिजी ने कहा झाला क्षेत्र स्पर्शन होगा वही काम आवेगा। तत्पश्चात् वहां के श्रीसंघ ने सामह विनती की और लाभा-लाभ का कारण जान सूरिजी ने चतुर्मास की स्वीकृति देदी। बस झाला का मनोरथ सफल होगया। उसने भगवती सूत्र के महोत्सव के लिये बड़ी भारी तैयारियें करनी शुरू करदी। झाला के मन में कई अर्सा से उत्साह था पर साधारण साधु तो श्री भगवतीजी सूत्र वाच नहीं सकता था और गीतार्थों का योग नहीं मिला था पर कहा है कि जिसके सच्चे दिल की भक्ति होती है वह कार्य बन ही जाता है। शाह झाला ने बड़े ही समारोह के साथ महाप्रभाविक श्री पंचमाङ्ग अपने घर पर लाया। रात्रि में जागरण पूजाप्रभावना सुबह साधर्मी वात्सल्य करके आलीशान जुलूस के साथ सूत्रजी को सूरिजी के करकमलों में अर्पण करके हीरा पन्ना माणिक मोती एवं सुवर्ण के पुष्पों से सबसे पहिले शाह झाला ने ज्ञान पूजा की तत्पश्चात् श्रीसंघ ने भी पूजा की जिसमें करीब एक करोड़ रुपयों का द्रव्य ज्ञान में जमा हुआ जिस द्रव्य से आगम लिखा कर भंडारों में अर्पण कर देने का निश्चय हुआ। तत्पश्चात् पूज्य आचार्यदेव ने व्याख्यान में महा प्रभाविक ज्ञान समुद्र शास्त्रजी को वाचना प्रारंभ किया। पहिले जमाने में इस प्रकार श्री भगवतीजी सूत्र की वाचना कभी-कभी हुआ करती थी। जनता की ज्ञानरुचि ज्ञानभक्ति इतनी थी कि कई नगरों के लोगों ने तो आगम सुनने के लिये जावलीपुर में आकर अपनी छावनियें ही डाल दीं। कारण कि मनुष्य भव और श्रावक के कुल में

जन्म लिया फिर योग मिलने पर भी श्री भगवती सूत्र नहीं सुना उसका जन्म ही व्यर्थ समझा जाता भला ऐसा सुअवसर हाथ में आया कौन जाने देने वाले थे ।

शाह झाला ने प्रत्येक प्रश्न की सुवर्ण मुद्रिका से पूजा की । तदनुसार और भी कई महानुभा इस प्रकार पूजा कर ज्ञानावर्णिय कर्म का क्षयोपशम करते हुये अनंत पुन्योपार्जन किया । सम्पूर्ण भगवत चार छः मास में पूर्ण होने वाला नहीं था । कारण ४१ मूल शतक १३८ अन्तरशतक १९ वर्ग और तो १०००० उद्देशा और २८८००० पद थे पर जब चारों अनुयोग पृथक् २ कर दिये थे उस समय १ उद्देशा और १५७७२ श्लोक मूल के रह गये थे तथा इस पर निर्युक्ति चूर्णी वगैरह विवरण विशेष था सूरिजी महाराज के श्रीभगवतीसूत्र हस्तामलक की तरह कण्ठस्थ ही था । अतः आप श्री ने मात्र छः मा श्रीभगवतीसूत्र सम्पूर्ण बांच दिया अतः शाह झाला ने पूर्णाहुति का भी बड़े ही समारोह से महोत्सव श्रीभगवतीसूत्र की पुनः वरघोड़ा पूजा प्रभावना और स्वामिवात्सल्य कर ज्ञान पद की आराधना की इत क्यों पर शाह झाला ने अपने १४ साथियों के साथ असार संसार का त्याग कर सूरिजी के पास दीक्षा कारण, 'नाणस्ससारंवृति' ज्ञान का सार व्रत लेना है । प्राग्वट पोमा के बनाये श्री विमलनाथदेव के म की प्रतिष्ठा भी सूरिजी के कर कमलों से हुई और भी जिनशासन की कई प्रकार से प्रभावना हुई ।

सूरिजी महाराज के साधुओं में पद्महंस और मंगलकलस ये दो साधु बड़े ही विद्याबली लब्धिपात्र थे । एक दिन वे दोनों मुनि थडिले जाकर आ रहे थे । उधर से राजकुँवरादि कई क्षत्रीय लोग जी शिकार को लेकर नगर की ओर आ रहे थे । जिसको देख उभय मुनियों के कोमल हृदय में दया के उत्पन्न हो गये अतः वे तत्काल ही बोल उठे कि हे महानुभावो ! इन विचारे निरपराधी मूक प्राणियों क्यों पकड़ लाये हो ! देखिये इनका शरीर कांप रहा है । यदि आप क्षत्री हैं तो इन भय पाते हुये प्राणि की रक्षा करना आपका धर्म है । अतः इनको अभयदान दीजिये ।

क्षत्रियों ने मुनियों का कहना हँसी हँसी में उड़ा दिया और कहा महात्माजी आप अपने रा जाइये तथा आपको उपदेश ही देना हो तो बाजार में जाकर महाजन लोगों को दीजिये हम तो क्ष हैं और शिकार करना हमारा धर्म है । मुनियों ने कहा वीर क्षत्रियो ! आपका धर्म गरीब पशुओं को मा का नहीं पर इनकी रक्षा करने का है । किन्हीं स्वार्थी लोगों ने आपको उल्टा रास्ता बतला दिया है । आपको ठीक कहता हूँ कि इन जीवों को अभयदान दीजिये इसमें आपका इस भव में और पर भव कल्याण है । यह जघन्य कार्य्य आप जैसे उत्तम क्षत्रियों को शोभा नहीं देता है इत्यादि ! इसपर उन क्षत्रि को बड़ा गुस्सा आया और तलवार निकाल कर उन मुनियों के सामने उन पशुओं के कोमल कंठ पर चला लगे पर मुनियों के विद्याबल से उन क्षत्रियों का हाथ जैसे ऊँचा उठा था वैसा ही रह गया । उन्होंने बहु कोशिश की पर हाथ टस से मस नहीं हुआ । इस अतिशय प्रभाव को देख कर वे क्षत्रीय लोग भयभ्रान्त हो गये और मन ही मन में सोचने लगे कि यह क्या हुआ ? क्या इन साधुओं की करामात तो नहीं है इस संकट से बचने के लिये अब दूसरा उपाय ही तो क्या था । अतः उन्होंने साधुओं से विनय की कि महा स्वामी कृपा कर हमारे अपराध की माफी करावें और हमारे हाथ को छोड़ दीजिये । मुनि ! आपको इत ना कष्ट हुआ जितने ही आप घबरा गये तब दूसरे जीवों के प्राण लेने को आप तैयार हुये हैं । क्या आपका अपना तलवार देख इन जीवों को भय नहीं होता होगा । और आप इस समय समर्थ हैं कि इन मूक प्राणि

के प्राण नष्ट करने में अपनी बहादुरी समझते होंगे पर किसी भव में आप निर्बल और ये जीव सबल हो गये तो क्या यह अपना बदला नहीं लेंगे ? उस समय आपका क्या हाल होगा इसको तो थोड़ा सोचो और जिस धर्म को आप मानते हैं उस धर्म के धर्मशास्त्र क्या कहते हैं उनको तो जरा ध्यान लगा कर सुनलीजिये—

यावन्ति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भारत । तावद्वर्षसहस्राणि पच्यन्ते पशु घातकाः ! ॥
यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वोऽत्र मारणम् । वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि ॥
शोणितं यावत पांशून संगृह्णाति महीतलात् । तावतोऽद्वानमुत्रान्यैः शोणितोत्पाद को ऽर्धते ॥
ताडयित्वा तृणेनापि संरम्भान्मति पूर्वकम् । एकविंशतिमाजानीः पापयोनिषु जायते ॥
तामिस्रगन्धतामिसं महारौरवरौरवम् । नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥
धर्मो जीवदयातुल्यो न क्वापि जगतीतले । तस्मात्सर्व प्रयत्नेन कार्या जीवदया नृभिः ॥
एकस्मिन रक्षिते जीवे त्रैलोक्यं रक्षितं भवेत् । घातिते घातितं तद्वत्तस्माज्जीवान्न मारयेत् ॥
न हिंसासदृशं पापं त्रैलोक्ये सचराचरे । हिंसको नरकं गच्छेत् स्वर्गं गच्छेदहिंसकः ॥
सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत ! । सर्वे तीर्थाभिषेकाश्च यत्कुर्यात्प्राणिनां दया ॥
आत्मा विष्णुः समस्तानां वासुदेवो जगत्पतिः । तस्मान्न वैष्णवै- कार्या परहिंसा विशेषतः ॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । अभयं येन भूतेभ्यो दत्तं सर्वसुखावहम् ॥

इत्यादि एक ओर तो क्षत्रियों के तलवार वाले हाथ ज्यों के त्यों खड़े थे और दूसरी ओर धर्म-शास्त्रों का सुनना । बस, वीर क्षत्रियों की आत्मा ने पलटा खाया और उन्होंने कहा महात्माजी ! हम लोगों ने अज्ञान में भ्रमित हो कर बहुत जीवों को सताया, उनके प्राणों को नष्ट किया हैं पर आज आपके उपदेश को सुनकर हम लोगों को इतना तो ज्ञान हो ही गया है कि इतने दिन हम गलत रास्ते पर थे। और निरपराध जीवों की शिकार कर उनके प्राणों को नष्ट किया जिसका बदला हमको परलोक में अवश्य देना पड़ेगा। परन्तु आज से हम प्रतिज्ञा करते हैं कि अपने जीवन में हम किसी निरपराधी जीवों को मारना तो क्या पर तकलीफ तक भी नहीं देंगे और आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमारे किये हुये पाप कर्म किसी प्रकार से छुट सकते हों तो आप ऐसा उपाय बतलावें कि जिससे हमारे पापों का क्षय हो जाय ।

मुनियों ने कहा वीरो ! आखिर तो क्षत्रिय, क्षत्रीय ही होते हैं । हमें बड़ी खुशी है कि आप थोड़े से उपदेश से ठीक रास्ते पर आगये हो । आपको अपने कृत कर्मों का क्षय ही करना है तो जिनेन्द्र भगवान् के कथन किये धर्म को स्वीकार कर उसका आराधन करो कि आपके किये कर्मों का नाश हो जायगा । यह कह कर मुनियों ने अपनी विद्या से क्षत्रियों के हाथ खुल्ले कर दिये कि वे अपनी तलवारें म्यान में डाल कर मुनियों से पूछने लगे की आपका धर्म तो स्वीकार करने को हम लोग तैयार हैं पर आपके धर्म के क्या नियम हैं ? और उसकी आराधना कैसे हो सकती है ? कृपा कर इस बात को हमें समझावें । मुनियों ने शुद्ध देव गुरु धर्म का स्वरूप बतलाया तत्पश्चात् गृहस्थधर्म के बारह व्रत और साधु धर्म के पांच महाव्रत को इस प्रकार समझाया कि वे समकितमूल जितने व्रत सुविधा से पाल सके उतने व्रत धारण कर मुनियों का उपकार मानते हुए वन्दनकर अपने स्थान चले गये और मुनि भी अपने स्थान पर आये ।

जब युगल मुनि सूरिजी के पास आये और सब हाल कह सुनाया तो सूरिजी बहुत कारण, कमाऊ पूत किसको प्यारे नहीं लगते हैं। जब वे युगल मुनियों के बनाये हुये नूतन जैन जी के पास आये और दोनों मुनियों की खूब तारीफ की कि पूज्यवर ! हम लोग अज्ञान के वस पराधी प्राणियों के प्राण हरण कर नरक जाने की तैयारियें कर रहे थे पर कल्याण हो आपका और का कि हम लोगों को बचा लिया। उन क्षत्रियों ने कुछ रत्नादि सूरिजी के सामने भेट रख कर दयालु ! यह द्रव्य हम आप या दोनों मुनियों की सेवा में भेंट करना चाहते हैं। गर्ज कि इन ने हम लोगों पर बहुत उपकार किया है अतः इसको आप स्वीकार करावें। आचार्यदेव ने सोचा कितने भद्रिक हैं और इनके दिल में देव गुरु धर्म प्रति कितनी भक्ति है पर धर्म के स्वरूप को न पाखण्डि लोग इनके द्रव्य को हरण कर अपनी इन्द्रियों का पोषण करते हैं। अतः सूरिजी फरमाया कि महानुभावों ! हम निर्ग्रन्थों को द्रव्य से कोई प्रयोजन नहीं है। यह द्रव्य तो साधु उलटा दूषणरूप है। यदि इस द्रव्य से कुछ लाभ होता तो हम अपने घर की लक्ष्मी पर ला योग क्यों लेते ? क्षत्रियों ने कहा पूज्य दयालु ! योग लिया तो क्या हुआ हरेक कार्य्य के करने में द्रव्य की तो आवश्यकता रहती ही होगी ?

सूरिजी—देवानुप्रिय ! हमारे किसी भी कार्य के लिए द्रव्य की आवश्यकता नहीं केवल मधुकरी भिक्षा से ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं हम हजारों कोसों तक देश विदे भ्रमण करते हैं अतः सवारी या किराए की भी हमें जरूरत नहीं। वस्त्र एवं भिक्षा की जिस समय तब गृहस्थों के यहाँ से हम स्वयं जाकर थोड़ा २ ले आते हैं कि जिससे गृहस्थ को न तो हमारे बननी पड़े न उनको किसी प्रकार की तकलीफ ही उठानी पड़े और हमारा गुजार भी होजाय। अ बतलाइए कि दूसरे हमारे क्या कार्य हैं कि जिनके लिए खर्च एवं द्रव्य की आवश्यकता रहे ?

क्षत्रियों ने कहा ठीक गुरु महाराज नगर में तो आपका निर्वाह हो जाता होगा पर आप किसी छोटे ग्रामडे में जा निकले वहाँ तो रसोई बनानी ही पड़ती है न ? फिर द्रव्य बिना कैसे काम चल

सूरिजी—अव्वल तो हमारे साधु तपस्या करते हैं और तप करने में ये शूरवीर भी हो मास कई १५ दिन तथा छोटी बड़ी तपस्या किया करते हैं और जहाँ भिक्षा का योग नहीं बने व तपोवृद्धि करते हैं और यह तो हम योग लिया इसके पहिले ही जानते थे कि हम योग आरा नहीं लेते हैं। पर खूब कष्ट सहन कर मोक्ष प्राप्त करने के लिये ही लेते हैं। दूसरे साधु होकर हैं उनके पीछे सैकड़ों उपाधियाँ खड़ी होजाती हैं कि वे योग का साधन कर ही नहीं सकते हैं। गृ इस द्रव्य को किसी शुभ कार्य में लगाते हैं तो उसके लिए भूषण है नहीं तो नरक ले जाने वाला चाहिए इत्यादि सूरिजी ने खूब उपदेश दिया।

[illegible] सुनकर आश्चर्य में डूब गये। उन्होंने सोचा कि ऐसे निर्लोभी महात्मा तो हमने में आज ही देखे हैं। उन्होंने पुनः प्रार्थना की कि हे कल्याणसिन्धो ! हम तो अपने मकान से इस आपके भेंट करने को ही लाये थे। अब इसको हम अपने घर में तो रख ही नहीं सकते हैं। आप ही [illegible] इस द्रव्य को क्या करें और हमारे पर महान् उपकार करने वाले दोनों मुनियों को हम क्या

सूरिजी-इस द्रव्य को आप जिनमन्दिरों में अष्टान्हिका महोत्सव वगैरह सुकृत कार्यों में लगा सकते हो और आपके कराये इस महोत्सव के साथ हम उन दोनों मुनियों को आपकी यादगीरी में पण्डित पद दे सकते हैं।

क्षत्रियों ने सूरिजी का कहना शिरोधार्य कर लिया और जिनमन्दिरों में अठाई महोत्सव करवाना प्रारम्भ भी कर दिया तत्पश्चात् उन नूतन श्रावकों के भाव बढ़ाने के लिये तथा उन योग्य साधुओं की योग्यता पर उन दोनों मुनियों को पण्डित पद से विभूषित बना दिये। बाद सूरिजी ने अपने कई साधुओं को वहां ठहरा कर आपने वहां से विहार कर दिया। सत्यपुर, चन्द्रावती, पद्मावती आदि नगरों के लोगों को धर्मोपदेश देते हुये सिन्धभूमि में धर्मप्रचार करतेहुए वीरपुर नगर में पधारे। यह तो हम पहिले ही कह आये हैं कि पूर्व जमाने में जैनाचार्य्यों का व्याख्यान मुख्य त्याग वैराग्य और आत्मकल्याण पर विशेष होता था यही कारण था कि जनता में त्याग भावना विशेष रहती थी। वीरनगर में बाप्पनाग गौत्रिय गोशल नामक सेठ के राहुली नाम की भार्या थी उसके पुत्र धरण को दीक्षा दे उसका नाम जयानंद रख दिया। तत्पश्चात् सूरिजी ने कई अर्सा सिन्ध में विहार कर धर्मप्रचार बढ़ाया। पट्टावलीकारों ने आपके विहार के विषय बहुत लिखा है। आपने कई मुमुक्षुओं को दीक्षा दी, कई मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई, कई तीर्थों की यात्रा की। बहुत अजैनों को जैनधर्म में दीक्षित कर जैन संख्या को बढ़ाई इत्यादि आपने अपने शासन समय जैनधर्म के उत्कर्ष को खूब बढ़ाया। अपने विहार भी खूब दूर दूर प्रदेशों तक किया था। पांचाल पूर्व वगैरह में घूमते घूमते पुनः मरुधर में पधारे। आप अपनी अन्तिमावस्था में नागपुर में विराजते थे।

एक रात्रि में आप विचार कर रहे थे कि शायद् अब मेरा आयुष्य बहुत नजदीक ही हो, किसको सूरिपद दूं? इतने में तो देवी सच्चायिका ने कहा पूज्यवर! मुनि जयानन्द आपके पद को सुशोभित करने वाला सर्वगुण सम्पन्न है। अतः आप मुनि जयानन्द को ही सूरिपद अर्पण कर दीरावें। बस सूरिजी देवी के वचन को 'तथाऽस्तु' कह स्वीकार कर लिया और दूसरे दिन संघ अग्रेश्वरों को सूचित भी कर दिया जिसमें अदित्यनाग गोत्रिय शाह भेरा ने सूरिपद के लिये बड़े ही समारोह से महोत्सव किया जिसमें शाह भेरा ने तीन लक्ष द्रव्य व्यय किया और सूरिजी ने मुनि जयानन्द को सूरिपद देकर आपका नाम यक्षदेवसूरि रख दिया। तत्पश्चात् सूरिजी निर्वृतिभाव का सेवन करते हुए अन्तिम सलेखना में लग गये और अन्त में अनशनव्रत की अराधना कर २७ दिनों के अनशन के अन्त में समाधि-पूर्वक नाशवान शरीर को छोड़ स्वर्ग पधार गये।

आचार्यश्री के शासन मे मुमुक्षुओं की दीक्षा

१—भादोला	के	भाद्रगौत्री	शाह नाथा	ने दीक्षा ली।
२—नाहरपुर	के	बलाहगौत्रीय	रघुवीर	ने सूरि० दीक्षा०।
३—उपकेशपुर	के	श्रेष्टिगौत्रीय	रघुवीर	ने ,, ,,
४—क्षत्रीपुरा	के	श्रेष्टिगौत्रीय	हरदेव	ने ,, ,,
५—विजयपट्टन	के	बाप्पनाग	राना	ने ,, ,,
६—शंखपुर	के	अदित्यनाग	लखनसी	ने ,, ,,
७—मांडव्यपुर	के	भाद्रगौ०	नोंदा	ने ,, ,,
८—घाटोंवि	के	विरहगौ०	धीरा	ने ,, ,,

९—देवपुर के चरड़गो० धरण ने सूरि० दीक्षा
१०—धनिया के सुघड़गो० मुंमल ने ,, ,,
११—धोलागढ़ के सुचंतिगो० सांवत ने ,, ,,
१२—जोगनीपुर के मल्लगो० कुम्भा ने ,, ,,
१३—ताबावती के करणाटगो० करमण ने ,, ,,
१४—पाल्हिका के बलहागो० पुंजा ने ,, ,,
१५—खटकुंप के विंचटगो० मूला ने ,, ,,
१६—भवानीपुर के ब्राह्मण शंकर ने ,, ,,
१७—अहिछत्तापुरी के सुथार सारंग ने ,, ,,
१८—मथुरा के कनोजिया सेजपाल ने ,, ,,
१९—वैराटपुर के कुपडगो० मुंजल ने ,, ,,
२०—सिंहपुर के बोहरागो० नारायण ने ,, ,,
२१—हस्तनापुर के भाद्रगो० नागकेतु ने ,, ,,
२२—लोहाकोट के कुलभद्रगो० फागु ने ,, ,,
२३—श्रीनगर के श्रीश्रीमाल लखा ने ,, ,,
२४—वक्षिशाल के श्रीमालवंश लाखण ने ,, ,,
२५—डिडुपुर के प्राग्वटवंश देसल ने ,, ,,
२६—मेथोली के प्राग्वटवंश दीपा ने ,, ,,
२७—वीरपुर के श्रीमालवंश रांणा ने ,, ,,
२८—चन्द्रावती के प्राग्वटवंश चतरा ने ,, ,,
२९—सौपारपटन के लघुश्रेष्ठि चामु ने ,, ,,
३०—देवपट्टन के मल्लगो० कल्याण ने ,, ,,
३१—रानकपुर के लुंगगो० कुराशाह ने ,, ,,
३२—हर्षपुर के सुघड़गो० भीमदेव ने ,, ,,

इनके अलावे बहुत सी बहिनों ने तथा सूरिजी के शिष्यों ने भी अनेक प्रान्तों में अनेक भव्यों को भगवती जैन दीक्षा देकर उनका उद्धार किया। यहाँ तो केवल थोड़ा सा नाम नमूना के तौर लिख दिया है।

सूरीश्वरजी के शासन में तीर्थों के संघ

१—भद्रावती से भाद्रगौत्रीय नरसिंग ने श्री शत्रुंजय का संघ निकाला
२—नारदी से अदित्यनाग गौत्रीय शाह मेरा ने ,, ,, ,,
३—वीरपुर से चिंचट गौत्रीय शाह दुर्गाने ,, ,,
४—बाड़ेली से बप्पनाग गौ० शाह कल्हण ने ,,
५—कुर्चपुरा से श्रेष्ठि गौ० ,, दरजाने ,

६—हँसावली से सुचंति गौ० शाह धरणानेश्री शत्रुंजय का संघ निकाला
७—दुर्गापुर से श्री श्रीमाल० ,, मोकलने ,,
८—नन्दपुर से भूरि गौ० ,, मौथा ने ,,
९—उपकेशपुर से भाद्र गौ० ,, कजल ने ,,
१०—वैराट नगरसे बलहा गौ० ,, कुर्मा ने ,,
११—चित्रकोट से करणाट गौ० ,, खेतशीने ,,
१२—दशपुर से कुमट गौ० ,, खीमड़ ने ,,
१३—उज्जैननगरीसे ब्राह्मणवंशी ,, पुरुषोतम ने ,,
१४—मालपुरा से क्षत्रिय वंशी राव ,, गेहलड़ा ने ,,
१५—डामरेलनगरसे प्राग्वटवंशी ,, गोवीन्दने ,,
१६—तक्षिशाल से प्राग्वटवंशी ,, गोपाल ने ,,
१७—मुग्धपुर से श्रीमाल वंशी ,, चंचग ने ,,
१८—नागपुर से कनोजिया गौ० ,, चतराने ,,
१९—भवानीपुर से लघु श्रेष्टि गौ० ,, शांखलाने ,,
२०—उपकेशपुर के राव दाहड़ की पुत्री शृंगार ने एक बड़ा तलाव खुदाया
२१—नागपुर में श्रेष्टि नारायण की स्त्री फंकली ने एक तलाव खुदाया
२२—मेदनीपुर के राव हनुमत की पुत्री पेपा ने एक कुँवा खुदवाया।
२३—डिड्डूनगर के बाप्पनाग देदाने दुकालमें एक बड़ा तलाव खुदाया
२४—शिवगढ़ के मंत्री मुरार संग्राम में पंचत्व को प्राप्त हुआ उसकी दो स्त्रियें सतियाँ हुई जेट वद ४ के दिन मेला भरीजे
२५—माडव्यपुर के डिडु मेंकरण युद्ध में मरा गया जिसकी स्त्री सोहाग सती हुई माघ शुद्ध ७ का मेला भरीजे सती की पूजा हुवे
२६—सारणी ग्राम का राव जुजार युद्ध में काम आया जिसकी स्त्री सती हुई जिसका चांतरा गाम से पूर्व दिशा में एक कोश दूर वहाँ मेला भरता है।

आचार्य श्री के शासन में मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं

१—श्री शत्रुञ्जय पर शाह नन्द ने भगवान् आदीश्वर के मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई।
२—मधुमति में डिडु गौत्रीय शाह नूता ने महावीर मन्दिर प्रतिष्ठाए।
३—कर्पासपुर में कुमट गौ० ,, शार्दुल ने ,, ,, ,,
४—वर्द्धमानपुर में कनौजिय गौ० ,, हेमा ने पार्श्व० ,, ,,
५—रावड़ में आदित्यनाग० ,, कुराने ,, ,, ,,
६—कुन्दड़ा में बाप्पनाग गौ० ,, पुराने महावीर ,, ,,
७—भुजपुर में चरड गौ० ,, रूपा ने ,, ,, ,,

८—भद्रपुर में सुघड़ा गौ०	शाह	दाना ने	शान्ति	महावीर	प्रतिष्ठाए
९—तनोड़ा में मल्ल गौ०	,,	माना ने	शान्ति	,,	,,
१०—सिद्धपुर में बोहारा गौ०	,,	भोपाल ने	आदीश्वर	,,	,,
११—आलोट में तप्तभट गौ०	,,	घेवला ने	महावीर	,,	,,
१२—तक्षिशिल में करणाट गौ०	,,	डुंगर ने	,,	,,	,,
१३—शालीपुर में बलाह गौ०	,,	नोढ़ा ने	,,	,,	,,
१४—लोहाकोट में भद्र गौ०	,,	नौधण ने	,,	,,	,,
१५—मथुरा में कुलभद्र गौ०	,,	नागड़ ने	पार्श्व	,,	,,
१६—शौर्यपुर में वीरहट गौ०	,,	जोगड़ा ने	,,	,,	,,
१७—खंडेला में श्री श्रीमाल०	,,	जोधा ने	,,	,,	,,
१८—आमेर में श्रेष्टि गौ०	,,	जसा ने	,,	,,	,,
१९—छत्रपुर में चोरड़िया गौ०	,,	खूमा ने	महावीर	,,	,,
२०—चंदेरी में सुंचंति गौ०	,,	बालड़ा ने	,,	,,	,,
२१—चन्द्रावती में नागड़ गौ०	,,	बोहित्थ ने	,,	,,	,,
२२—रामपुर में करणाट गौ०	,,	भीमा ने	नेमिनाथ	,,	,,
२३—पालिहका में करणाट गौ०	,,	लाभा ने	पार्श्वनाथ	,,	,,
२४—कीराटपुर में चिंचट गौ०	,,	रावल ने	,,	,,	,,
२५—वीनात् में चौरलिया०	,,	राणा ने	महावीर	,,	,,
२६—मादड़ी में लुघावत्०	,,	फूसा ने	,,	,,	,,
२७—सोजाली में महेसेणा०	,,	फागु ने	,,	,,	,,
२८—प्रतापपुर में राव	,,	आदू ने	शान्ति	,,	,,
२९—जंगालुपुर में यादववंशी	,,	पातु ने	,,	,,	,,
३०—विक्रमपुर में आदित्यनाग	,,	ऊंकार ने	वीमल	,,	,,
३१—नागपुर में सुचंति	,,	चोवड़ ने	महावीर	,,	,,
३२—रूपावती में श्री श्रीमाल	,,	श्रादड़ ने	,,	,,	,,
३३—राजपुर में श्रेष्टि गौ०	,,	श्रानू ने	,,	,,	,,

पट्ट छब्बीसवें रत्नप्रभसूरि, पंचम रत्न प्रधान थे।
जैसे पंचानन सिंह को देखे वादी गण भये दीन थे॥
देश विदेश में विहार करके, नये जैन बनाते थे।
उग्र विहारी गुरु आचारी, मन्दिर मूर्ति बढ़ाते थे॥

॥ इति श्री भगवान पार्श्वनाथ के २६ वें पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुए॥

के आदर्श गुणों से प्रसन्न हो कर आचार्य यक्षदेवसूरि ने अपनी अन्तिमावस्था में आपको आचार्य पद से विभूषित कर आपका नाम कक्कसूरि रक्खा था।

जब आप आचार्य बन गये तो अखिल गच्छ की जुम्मेवारी आपके सिर आ पड़ी पर इस कार्य में आप पहले से ही अच्छे निपुण एवं कुशल थे बाद आपश्री ने एक समय चन्द्रावती नगरी में पधार कर वहाँ के राजा त्रिभुवनसेन को ऐसा उपदेश दिया कि उसने मरुधरादि प्रान्तों में विहार करने वाले साधुओं की एक सभा की जिसमें उपकेशगच्छ एवं कोरंटगच्छ के प्रायः सब साधु साध्वियों को आमंत्रण देकर बुलवाये। इसमें कोरंटगच्छ के आचार्य सोमप्रभसूरि (द्वितीय) अपने शिष्य समुदाय के साथ पधारे। दोनों गच्छों के करीब २००० साधु साध्वियाँ तथा आवन्ति प्रदेश में विचरने वाले कई साधु भी इस सभा में एकत्र हुये थे। उस समय श्राद्ध वर्ग भी बहुत संख्या में आये थे कारण कि ऐसा कल्याण कारी अवसर उन लोगों को फिर कब मिलने वाला था। इस प्रकार चतुर्विध श्री संघ चन्द्रावती में एकत्र हुआ।

ठीक समय पर सभा हुई। उसमें आचार्य कक्कसूरिजी महाराज ने अपनी ओजस्विनी वाणी द्वारा साधु साध्वियों को संबोधन करके कहाः—महानुभावों! आपने संसार को असार जान कर सब भौतिक सुख साहबी त्याग कर दीक्षा ली है अतः आप अपना कल्याण करें इसमें कोई विशेषता की बात नहीं है पर अपने कल्याण के साथ अन्य भूले भटके भाइयों को सन्मार्ग पर लाकर उनका कल्याण करना यही आपके जीवन की विशेषता है। आप जानते हैं कि इस समय मुनियों को प्रत्येक प्रांत में घूम घूम कर जैनधर्म का प्रचार करने की कितनी आवश्यकता है। अपने पूर्वज महात्माओं ने किस प्रकार की कठिनाइयों और परिसहों को सहन कर अपने लिये विहार के कैसे सुगम रास्ते बना गये हैं कि आज आप किसी भी प्रांत में जावें अपने को वहाँ भी कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं रहती है। मरुधर, लाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिंध और पांचाल तक तो जैनधर्म का प्रचार हो गया है पर अभी दक्षिण की ओर किसी का भी विहार नहीं हुआ है। हां, प्राचीन जमाने में लोहित्याचार्य ने दक्षिण में जाकर जैनधर्म का प्रचार अवश्य किया था पर इस समय वहां का क्या हाल है? अतः आप लोगों को दक्षिण की ओर विहार करना चाहिये और यही आपकी परीक्षा का समय है जैसे मनुष्य स्वयं मरना चाहे तो एक सुई भी काफी है तब ये जो बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र रक्खे जाते हैं वे किस लिये हैं? अन्यायी को सजा देने के लिये। इसी प्रकार आप अपना कल्याण एक नवकार मंत्र मात्र से कर सकते हैं फिर इतने शास्त्रों का अध्ययन किया है वह किस लिये? उपरोक्त न्याय से यह भूले भटके प्राणियों के लिये ही है कि इन शास्त्रों द्वारा उनको समझाया जाय इत्यादि। सूरिजी ने इस प्रकार का उपदेश दिया कि उपस्थित मुनियों के हृदयों में जैनधर्म प्रचार के लिये मानो एक प्रकार की बिजली ही चमक उठी हो, जिसका फल यह थी कि उन मुनियों की भावना दक्षिण में विहार करने की हो गई। उसी सभा में कई मुनियों ने सूरिजी से प्रार्थना की कि हे पूज्यवर! यदि आप आज्ञा फरमावें तो हम लोग दक्षिण की ओर विहार करने को तैयार हैं। बस सूरिजी यही चाहते थे। आचार्यश्री ने योग्य मुनियों को पदवियों से विभूषित कर पाँच पदवीधरों के साथ पाँचसौ साधुओं को देकर अर्थात् एक एक पदवीधर के साथ सौ-सौ साधु देकर पाँच मार्ग बता दिये और क्रमशः सौ-सौ साधुओं को एक-एक रास्ते जाने की आज्ञा दे दी। और मुनिवर्ग ने बड़े उत्साह के साथ विहार करने के लिये प्रस्थान भी कर दिया। बलिहारी है उन सूरीश्वरजी एवं आदर्श के त्यागी ...

उत्पन्न हुए कि इतनी चमत्कारी एवं सुंदर आकृतिवाली मूर्ति होने पर भी इसके हृदय पर दो ये ग्रंथियें शो- नहीं देती हैं हरस के मुवाफिक खराब लगती हैं । किसी ने कहा कि स्त्रियों के स्तन की भाँति ये गांठें अच्छ नहीं दिखती हैं, किसी ने कहा कि अब काल गिरता एवं खराब आता है । यदि अंगलूणे करते समय किस की भावना खराब होजायगी तो महान् आशातना का कारण होगा इत्यादि जिसके जैसा जीमें आया वैसे कहा । इस पर नवयुवकों ने विचार किया कि इन ग्रंथियों को कटाकर दूर क्यों न करवादी जाय । इस उ से उन्होंने बुजुर्गों से प्रार्थना की कि मूर्ति के हृदय पर जो दो ग्रंथियें हैं उनको कटा दी जाय तो क्या हानि है ? इस पर दुखी हृदय से वृद्धों ने कहाः—अरे मूर्खों ! तुमने बिना विचारे यह सवाल क्यों किया है ! खैर, आज तो हमने सुन लिया है पर आइंदे से कभी ऐसा शब्द न निकालना । क्या तुम लोगों को यह मालूम नहीं है कि यह प्रभावशाली मूर्ति देवी सच्चायिका ने बनाई है और महा प्रतिभाशाली आचार्यश्री रत्नप्रभ सूरि ने इसकी शुभ-लग्न में प्रतिष्ठा करवाई है । उस समय ये दोनों ग्रंथियें मौजूद थीं, यदि ये इन ग्रंथियों को ठीक नहीं समझते तो क्या उस समय सुथार नहीं था, या क्या टाँकी नहीं थी, वे स्वयं हटा देते पर उन्होंने सोच समझ कर इन ग्रंथियों को रहने दिया है । ये श्रीसंघ की भलाई के लिये ही हैं और इस मूर्ति की प्रतिष्ठा होने के बाद श्रीसंघ की सब तरह से वृद्धि हुई है अतः तुम लोग जवानी के मद में कहीं मूल प्रतिष्ठा का भंग कर अनर्थ न कर डालना इत्यादि खूब समझाया । उस समय तो नवयुवकों ने वृद्धो का कहना मान लिया पर उनके दिल में यह बात हर दम खटकती जरूर थी और वे लोग ऐसे समय की राह देख रहे थे कि मौका मिलने पर दोनों गाठे हटा कर अपना दिल चाहा करलें ।

यदुत भगवन् महावीरस्यहृदयेग्रन्थीद्वयं पूजांकुर्वतांकुशोभाकरोति अतःमशकरोगवत्छेदयितां को दोषां? वृद्धैः कथितं अयं अघटितः टंकिना घातो नअर्हःविशेषतो अस्मिन् स्वयंभूश्रीमहावीर बिंबं । वृद्ध- वाक्यमवगण्यप्रच्छन्नंसूत्रधारस्यद्रव्यंदत्वाग्रन्थिद्वयंछेदितं ततक्षणादेवसूत्रधारोमृतःग्रन्थिच्छेद- प्रदेशेतु रक्तधाराछुटिता । तत् उपद्रवोजातः । तदा उपकेशगच्छाधिपति आचार्यश्रीकक्कसूरिभिःपाद- स्दिःचतुर्विधसंघेनाहूता । वृत्तांतंकथितं आचार्यैः चतुर्विधसंघसहितेनउपवासत्रयंकृतं । तृतीयउपवास- शान्तेरात्रिसमयेशासनदेवीप्रत्यक्षी भूयआचार्यायप्रोक्तं—हे प्रभो न युक्तंकृतंबालश्रावकैःमद्घटितं- बिंबंआशातितंकलानी शक्तंअतोनंतरंउपकेशनगरंशनैः २ उपभ्रंशंभविष्यति । गच्छेविरोधीभावि- ष्यति । श्रावकाणां कलहोभविष्यति गोष्ठिकानगरात् दिशेदिशंयास्यंति । आचार्यैःप्रोक्तंपरमेश्वरि ! भवितव्यंपरं त्वंअस्यतुरुधिरंनिवारय ? देव्याप्रोक्तंघृतघटेनदधिघटेनइक्षुरसघटेनदुग्धघटेनजलघटेन कृतोपवासत्रययदा भविष्यति तदा अष्टादशागोत्रमेलंकुरु तेमी तातहडगोत्रं, बापणागोत्रं, कर्णाटगोत्रं, बलहगोत्रं, मोराक्षगोत्रं, कुलहटगोत्रं, विरहटगोत्रं, श्री श्रीमालगोत्रं, श्रेष्ठिगोत्रं, एतेदक्षिणबाहु, सुचंतीगोत्रं, आइचणागगोत्रं, भूरिगोत्रं, भाद्रगोत्रं, चींचटगोत्रं, कुंभटगोत्रं, कनउजयागोत्रं, डिडुगोत्रं, लघुश्रेष्ठिगोत्रं, एतेवामबाहुस्नात्रंकर्तव्यं नान्यथाऽशिवो, शान्तिर्भविष्यति । मूल प्रतिष्ठानंतरं प्रतिष्ठादिविसानीतै सनत्रये ३०३ अनेहासि ग्रंथियुगस्य वीरोरस्थस्य भेदोऽजनि दैवयोगात् ।

उत्पन्न हुए कि इतनी चमत्कारी एवं सुंदर आकृतिवाली मूर्ति होने पर भी इसके हृदय पर दो ये ग्रंथियें शोभा नहीं देती हैं हरस के मुवाफिक खराब लगती हैं। किसी ने कहा कि स्त्रियों के स्तन की भाँति ये गांठें अच्छी नहीं दिखती हैं, किसी ने कहा कि अब काल गिरता एवं खराब आता है। यदि अंगलूणे करते समय किसी की भावना खराब होजायगी तो महान् आशातना का कारण होगा इत्यादि जिसके जैसा जीमें आया वैसे ही कहा। इस पर नवयुवकों ने विचार किया कि इन ग्रंथियों को कटाकर दूर क्यों न करवादी जाय। इस बात से उन्होंने बुजुर्गों से प्रार्थना की कि मूर्ति के हृदय पर जो दो ग्रंथियें हैं उनको कटा दी जाय तो क्या हानि है ? इस पर दुखी हृदय से वृद्धों ने कहा:—अरे मूर्खों ! तुमने बिना विचारे यह सवाल क्यों किया है ! और, आज तो हमने सुन लिया है पर आइंदे से कभी ऐसा शब्द न निकालना। क्या तुम लोगों को यह मालूम नहीं है कि यह प्रभावशाली मूर्ति देवी सच्चायिका ने बनाई है और महा प्रतिभाशाली आचार्यश्री रत्नप्रभ सूरि ने इसकी शुभ-लग्न में प्रतिष्ठा करवाई है। उस समय ये दोनों ग्रंथियें मौजूद थीं, यदि ये इन ग्रंथियों को ठीक नहीं समझते तो क्या उस समय सुथार नहीं था, या क्या टाँकी नहीं थी, वे स्वयं हटा देते पर उन्होंने सोच समझ कर इन ग्रंथियों को रहने दिया है। ये श्रीसंघ की भलाई के लिये ही हैं और इस मूर्ति की प्रतिष्ठा होने के बाद श्रीसंघ की सब तरह से वृद्धि हुई है अतः तुम लोग जवानी के मद में कहीं मूल प्रतिष्ठा का भंग कर अनर्थ न कर डालना इत्यादि खूब समझाया। उस समय तो नवयुवकों ने वृद्धों का कहना मान लिया पर उनके दिल में यह बात हर दम खटकती जरूर थी और वे लोग ऐसे समय की राह देख रहे थे कि मौका मिलने पर दोनों गाठें हटा कर अपना दिल चाहा करलें।

यदुत भगवन् महावीरस्यहृदयेग्रन्थीद्वयं पूजांकुर्वतांकुशोभाकरोति अतःमशकरोगवत्छेदयितां को दोषा? वृद्धैः कथितं अयं अघटितः टंकिना घातो नअर्हःविशेषतो अस्मिन् स्वयंभूश्रीमहावीर बिंबं। इद वाक्यमवगण्यप्रच्छन्नंसूत्रधारस्यद्रव्यंदत्वाग्रन्थिद्वयंछेदितं तत्क्षणादेवसूत्रधारोमृतःग्रन्थिच्छेद प्रदेशेतु रक्तधाराछुटिता। तत्उपद्रवोजातः। तदा उपकेशगच्छाधिपति आचार्यश्रीकक्कसूरिभिःगाम्भिदःचतुर्विधसंघेनाहूता। वृत्तांतंकथितं आचार्यैः चतुर्विधसंघसहितेनउपवासत्रयंकृतं। तृतीयउपवासप्रान्तेरात्रिसमयेशासनदेवीमत्यक्षी भूयआचार्यायप्रोक्तं—हे प्रभो न युक्तंकृतंबालश्रावकैःमद्घाटितं बिंबंआशातितंकलानी शकृतंअतोनंतरंउपकेशनगरंशनैः २ उपभ्रंशंभविष्यति। गच्छेविरोधीभविष्यति। श्रावकाणां कलहोभविष्यति गोष्ठिकानगरात् दिशेदिशंयास्यंति। आचार्यैःप्रोक्तंपरमेश्वरि! भवितव्यंपरं त्वंअस्तुरुधिरं निवारय ? देव्याप्रोक्तंघृतघटेनदधिघटेनइक्षुरसघटेनदुग्धघटेनजलघटेन कृतोस्नात्रयदा भविष्यति तदा अष्टादशगोत्रमेलंकुरु तेमी तातहडगोत्रं, बापणागोत्रं, कर्णाटगोत्रं, बलहगोत्रं, मोराक्षगोत्रं, कुलहटगोत्रं, विरहटगोत्रं, श्री श्रीमालगोत्रं, श्रेष्ठिगोत्रं, एतेदक्षिणबाहु सुचंतीगोत्रं, आइचणागगोत्रं, भूरिगोत्रं, भाद्रगोत्रं, चींचटगोत्रं, कुंभटगोत्रं, कनउजयागोत्रं, डिडुगोत्रं, लघुश्रेष्टिगोत्रं, एतेवामबाहुस्नात्रंकर्तव्यं नान्यथाशिवो, शान्तिर्भविष्यति। मूल प्रतिष्ठानंतरं प्रतिष्ठादिविसात्तोते सतत्रये ३०३ अनेहसि ग्रंथियुगस्य शीरोरस्थस्य भेदोऽजनि दैवयोगात्।

एक आदमी को पत्र देकर शीघ्रगामिनी औष्ट्री (ऊँट) द्वारा भेज दिया और कह दिया कि प मांडव्यपुर तलाश करना, न मिलने पर आबू जाना इत्यादि। सवार रवाना होकर मांडव्यपुर पहुँचा, तल करने पर भाग्यवशात् सूरिजी वहीं मिल गये। श्रीसंघ का विनती पत्र पढ़कर बड़ा ही अफसोस किया भवितव्यता को कौन मिटा सकता है ? तब सूरिजी आकाश गामिनी विद्या से केवल एक मुहूर्तमात्र में उ केशपुर पधार गये। वहाँ के हाल देख सूरिजी ने संघ अग्रेश्वरों के साथ अष्टम तप किया। तीसरे दिन रात्रि में देवी सूरिजी के पास आई पर उस समय उसके कोप का पार नहीं था, यही कारण था कि सूरि नगर में आये पर देवीजी को इतना भी भान नहीं रहा कि वह तीन दिनों में सूरिजी महाराज की सेवा नहीं आ सकी। जिस समय देवी आई है उस समय क्रोध के कारण विनय व्यवहार को भी भूल गई।

सूरिजी ने कहा :—"देवीजी ! जो भवितव्यता थी वह बन चुकी, अब प्रकोप करने में क्या लाभ अब तो इसके लिये शान्ति का प्रयत्न करना ही अच्छा है।"

देवी क्रोधातुर होकर बोलीं:—प्रभो ! इस नगर के लोग बड़े ही मूर्ख हैं कि पूज्याचार्य रत्नप्रभसू की कराई हुई प्रतिष्ठा का भंग कर दिया। यदि यह मूर्त्ति थी वैसी ही रहती तो इस महाजनसंघ का सू अभ्युदय होता, पर इनकी तकदीर ही ऐसी थी। मूर्त्ति के टाँकी लगाने से भविष्य में इस महाजनसंघ में फूट पड़ेगी, कोई भी कार्य शांति एवं मिल जुल के नहीं होंगे क्लेश कदाग्रह का तो यह घर ही बन जायगा, तन धन से भी हानि होगी, इधर-उधर ये भ्रमण करते रहेंगे, इनका भविष्य अच्छा नहीं रहेगा।"

सूरिजी:—'देवीजी ! ज्ञानियों ने जो जैसा भाव देखा है वैसा ही होगा, परन्तु अब आप पहले रु धारा बन्द करें और इसकी शान्ति का उपाय बतलावें।" इसमें ही सबका कल्याण है।

देवी:—"पूज्यवर ! आप तो शांति की कहते हैं पर मैं इन दुष्ट पापियों का मुंह तक देखना नहीं चाहती हूँ। ये लोग यहां से अपना मुँह लेकर चले जाँय तो भी अच्छा हो।"

सूरिजी:—"देवी ! जरा शांत होकर विचार करें कि यदि यह संघ इस नगर को छोड़ कर चला जायगा तो पीछे रहेगा क्या ? और ये जो इतने मंदिर मूर्त्तियां हैं इनकी सेवा पूजा कौन करेगा ? दूसरा तो क्या पर आपकी भी सेवा पूजा कौन करेगा ? हाँ मनुष्य तो अज्ञानी हैं क्रोध के मारे अपना मान भूल जाते हैं पर आश्चर्य है कि देवता भी क्रोध के वश अपना मान भूल जाते हैं। भला देवीजी ! जरा सोचिये कि यह अपराध चंद व्यक्तियों ने किया है या सब नगर ने ? यदि चंद व्यक्तियों ने किया है तो सब नगर पर इतना कोप क्यों ?" इत्यादि नरम गरम वचनों से सूरिजी ने देवी को उपदेश दिया।

उपायान् विविधांश्चक्रुस्तावष्टम्भ हेतवे । नोपरेमे परं श्राद्धा, स्ततोव्याकुलतांगताः ॥
श्री माण्डव्यपुरे प्रैषीन्सविज्ञप्तिकमौष्ट्रिकम् । सङ्घश्रीकक्कसूरीण, माकारण कृतेत्वरात् ॥
सूरयोऽपि समाजग्मुः, कृतवन्तोऽष्टमंतपः । आविर्भूयगुरुनूचे, साक्षाच्छासनदेवता ॥
प्रभो न भव्यं विदधे, श्रावकैर्मूढबुद्धिभिः । भग्नोमूलप्रतिष्ठाया, यदयंसमजायत ॥
परस्परं तत्पौराणां, विरोधोभविताऽधुना । दिशोदिशं प्रयास्यन्ति, लोका दारिद्र्य पीडिताः ॥
पुर भङ्गोऽपि सम्भावी, किं यद्भिर्वाम्परे रिति । नाभविष्यत्तदभङ्ग, मभविष्यदिदंसदा ॥
सूरि रोवाच यद्भाव्यं, कर्मयोगेनदेहिनाम । तदन्यथाविधातुंनो, शक्तादेवासुराअपि ॥

इस घटना का समय मूल प्रतिष्ठा (वीरात् ७० वर्ष) से तीन सौ तीन वर्ष का अर्थात् वीरात् ३७ वर्ष का था। भवितव्यता टारी नहीं टरती है कि महाजनसंघ के अभ्युदय में इस प्रकार का रोड़ा आ खड़ा हुआ। परन्तु इसका उपाय ही क्या था, कारण ज्ञानियों ने यही भाव देखा था। महाजनसंघ का जैसा उदय ३०३ वर्षों में हुआ था वैसा बाद में नहीं हुआ।

आचार्य कक्कसूरिजी महाराज ने कई दिन वहाँ विराजमान रह कर जनता को धर्मोपदेश सुनाया।

यद्यपि उपकेशपुर नगर में उपद्रव की शान्ति तो गई थी पर फिर भी राजा प्रजा की इच्छा थी कि सूरिजी महाराज चातुर्मास यही करें, तो अच्छा रहेगा इत्यादि अतः श्री संघ ने सूरिजी महाराज से साग्रह विनती की और लाभा लाभ का कारण जान कर सूरिजी महाराज ने श्रीसंघ की विनति स्वीकार करली अतः वह चातुर्मास उपकेशपुर में ही किया।

आपश्री के विराजने से वहाँ की जनता ने यथा शक्ति बहुत लाभ प्राप्त किया। कई भावुकों ने सूरिजी के पास जैन दीक्षा भी ली। चातुर्मास के बाद सूरिजी के प्रभावशाली उपदेश से उपकेशपुर के आदित्य नाग गोत्रीय स्वनामधन्य शाह आशल ने श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला। सूरिजी महाराज भी संघ में पधारे वहाँ की यात्रा कर सूरिजी ने अपने योग्य शिष्य मुनि देवसिंह को अपने पद पर सूरि बना कर उनका

द्विमज्जनविधि, रेवं प्रवर्त्तते सदा। देव्यादेशो गुरुक्तं च, कथंस्यादन्यथाकिंचित् ॥
...क्षिणा वाहौ, नववामे नवक्रमात्। अष्टादशापि गोत्राणि, तिष्ठन्त्यत्र क्रमोद्यम ॥
...भटो वप्पनाग, स्ततः कर्णाट गौत्रजः। तुर्यो वालभ्य नामापि, श्रीमालः पंचमस्तथा ॥
कुलभद्रो मोरिपश्च, भिरिहिद्याह्वयोऽष्टमः। श्रेष्ठीगोत्राण्य मून्यासन्, पक्षे दक्षिण संज्ञके ॥
सुचिंतिताऽऽदित्य नागौ, भोरो भाद्राथ चिंचिटिः। कुंभटः कन्यकुब्जोथ, डिड्डभाख्योऽष्टि मोपि च ॥
तथान्यः श्रेष्ठि गोत्रीयो, महावीरस्य नामतः। नव तिष्ठन्ति गोत्राणि, पंचामृत महोत्सवे ॥
वीर प्रतिष्ठा दिवसादतीते, शतत्रयेऽनेहसि वत्सराणाम् ॥
त्रिभिर्युते गन्थि युगस्य वीरो, रः स्थस्य [illegible] योगात् ॥

इस घटना का समय मूल प्रतिष्ठा (वीरात् ७० वर्ष) से तीन सौ तीन वर्ष का अर्थात् वीरात् ३७ वर्ष का था। भवितव्यता टारी नहीं टरती है कि महाजनसंघ के अभ्युदय में इस प्रकार का रोड़ा आ खड़ा हुआ। परन्तु इसका उपाय ही क्या था, कारण ज्ञानियों ने यही भाव देखा था। महाजनसंघ का जै[न] उदय ३०३ वर्षों में हुआ था वैसा बाद में नहीं हुआ।

आचार्य कक्कसूरिजी महाराज ने कई दिन वहाँ विराजमान रह कर जनता को धर्मोपदेश सुनाया।

यद्यपि उपकेशपुर नगर में उपद्रव की शान्ति तो गई थी पर फिर भी राजा प्रजा की इच्छा थी कि सूरिजी महाराज चातुर्मास यहीं करें, तो अच्छा रहेगा इत्यादि अतः श्री संघ ने सूरिजी महाराज से साग्रह विनती की और लाभा लाभ का कारण जान कर सूरिजी महाराज ने श्रीसंघ की विनति स्वीकार करली अतः वह चातुर्मास उपकेशपुर में ही किया।

आपश्री के विराजने से वहाँ की जनता ने यथा शक्ति बहुत लाभ प्राप्त किया। कई भावुकों ने सूरिजी के पास जैन दीक्षा भी ली। चातुर्मास के बाद सूरिजी के प्रभावशाली उपदेश से उपकेशपुर के आदित्य नाग गोत्रीय स्वनामधन्य शाह आशल ने श्रीशत्रुंजय का संघ निकाला। सूरिजी महाराज भी संघ में पधारे वहाँ की यात्रा कर सूरिजी ने अपने योग्य शिष्य मुनि देवसिंह को अपने पद पर सूरि बना कर उनका

तदादिमज्जनविधि, रेवं प्रवृत्ते सदा। देव्यादेशो गुरुक्तं च, कथंस्यादन्यथाकिंचित् ॥
वीरस्यदक्षिणो बाहौ, नवनामे नवक्रमात्। अष्टादशापि गोत्राणि, तिष्ठन्त्यत्र क्रमोह्यम ॥
ततभटो बप्पनाग, स्ततः कर्णाट गोत्रजः। तुर्यो बालस्य नामापि, श्रीमालः पंचमस्तथा ॥
कुलभद्रो मोरिषश्च, भिरिहिद्याह्वयोऽष्टमः। श्रेष्ठीगोत्राण्य मून्यासन्, पक्षे दक्षिण संज्ञके ॥
सुचिंतिताऽऽदित्य नागौ, भोरो भाद्राथ चिंचिटिः। कुंभटः कन्यकुब्जोथ, डिंडुभाख्योऽष्टि मोपि च ॥
तथान्यः श्रेष्ठि गोत्रीयो, महावीरस्य नामतः। नव तिष्ठन्ति गोत्राणि, पंचामृत महोत्सवे ॥
वीर प्रतिष्ठा दिवसादतीते, शतत्रयेऽनेहसि वत्सराणाम् ॥
त्रिभिर्युते ग्रन्थि युगस्य वीरो, रः स्थस्य भेदोऽजनि देव योगात् ॥

* इन १८ गोत्रों के अलावा उपकेशपुर में कितने गोत्र वाले बसते थे क्यों कि इतना दीर्घ समय अर्थात् ३०३ वर्षों में और भी कई गोत्र अवश्य बन गये होंगे तथा उपकेशपुर के अलावा अन्य प्रदेशों में भी लाखों जैनी बसते थे, उनके भी कई गोत्र बन गये होंगे पर इन बातों को जानने के लिये हमारे पास इस समय कोई भी साधन नहीं है। हाँ इस समय के बाद कई गोत्रों का पता अवश्य मिलता है जिनको हम आगे के पृष्ठों में लिखेंगे।

"कई लोग कहते हैं कि ओसियाँ में ओसवाल रात्रि में नहीं रह सकते हैं इसका यही कारण है कि [illegible] हुआ था। पर यह बात बिल्कुल निराधार है कारण उपद्रव का समय वि० पू० ९२ वर्ष का है तब विक्रम की [illegible] शताब्दी तक तो ओसियाँ में महाजनों की घनी बस्ती थी जिसके प्रमाण हम पहले लिख आये हैं तथा विक्रम की [illegible] शताब्दी में ओसियाँ पर यवनों का आक्रमण हुआ था उस समय बहुत से लोग ओसियाँ को त्याग कर अन्य स्थानों में [illegible] गये थे तथापि विक्रम की चौदहवीं पन्द्रहवीं शताब्दि में वहाँ थोड़े बहुत प्रमाण में महाजनों की बस्ती होने के प्रमाण मिल सकते हैं। अतः यह बात गलत है कि ओसियाँ में ओसवाल नहीं रह सकते हैं। यदि कोई रहना चाहे तो [illegible] खुशी से रह सकते हैं।

१४—आचार्य श्री देवगुप्त सूरि (द्वितीय)

आचार्यस्तु स देवगुप्त सूरिरभवद्गोत्रस्य भूषा सुधीः ।
श्रेष्ठी श्रेष्ठ गुणान्वितो बहुतरैः कान्ति प्रतानैर्वृतः ॥
ग्रामं ग्राममनेक देश विषये निर्माय जैनेत्तरन् ।
जैनान् जनमतस्य वर्धन परो वन्द्यौ विभूतिः सदा ॥

आचार्य देवगुप्त सूरि—आपका गृहस्थ जीवन बड़ा ही चमत्कारी घटनापूर्ण था। पट्टावलीकार ने लिखा है कि उपकेशपुर के राजा उत्पलदेव की सन्तान परम्परा में धर्मवात्सल्य लक्ष्मी मे कुबेर की स्पर्द्धा करने वाला श्रेष्टिगौत्रीय राव करत्था था। आपका संसार जीवन ए राजस्वी ठाठ वाला था, आपके ११ पुत्र होने पर भी कोई पुत्री नहीं थी जिसकी राव सदैव प्रतीक्षा कर रहे थे। इतना ही क्यों पर केवल एक पुत्री की गरज से रावजी ने अपनी दूसरी शादी बाप्प नागगौत्रीय राव देपाल की सुशील कन्या कुमारदेवी के साथ कर ली, पर लिखित लेखों को कौन मिटा सकता है ? एक दिन कुमारदेवी ने स्वप्न के अन्दर रत्नादि से चमकता हुआ देवविमान देखा, तदानुसार कुमारदेवी ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया और उसका शुभ नाम देवसिंह रखा गया। माता पिता ने देवसिंह का भली भांति लालन पालन किया। बच्चों के अच्छे या बुरे संस्कार पड़ना उनके माता पिताओं पर निर्भर है। बचपन के संस्कार तमाम जिन्दगी भर स्थिर रहते हैं। इतना ही क्यों पर माता पिता के आचरणों की भी उनके बाल बच्चों पर गहरी छाप पड़ जाती है। राव करत्था और उनकी भार्या दोनों सदाचारी एवं धर्म एवं देव गुरु के पूर्ण भक्त थे। जब वे मन्दिर उपाश्रय जाते थे तब अक्सर देवसिंह को भी साथ ले जाते थे। अतः देवसिंह के बचपन से ही धर्म के सुन्दर संस्कार जम गये। जब देवसिंह आठ वर्ष की उम्र को अति क्रमण कर गया तो उनके माता पिता ने उनके विद्याध्ययन का अच्छा प्रबन्ध कर दिया। राव करत्था अच्छी तरह से जानता था कि मनुष्य का जीवन व्यवहारिक ज्ञान के साथ साथ धार्मिक ज्ञान से ही सुखमय बनता है। अतः अपने पुत्र को व्यवहारिक ज्ञान के साथ धार्मिक अभ्यास भी करवाया करता था। देवसिंह ने पूर्व जन्म में ज्ञान पद की आराधना खूब भक्ति के साथ की होगा कि अपने सहपाठियों से हमेशा अग्रेसर रहता था, यों कहा जाय तो देवसिंह ने थोड़े ही समय में अच्छा ज्ञान हासिल कर लिया। देवसिंह अपने माता पिता तो क्या पर एकादश वृद्ध भ्राताओं का भी विनय करने में अपनी योग्यता का ठीक परिचय करा देता था।

इसी समय का जिक्र है कि श्रीसंघ के प्रबल पुन्योदय से महा मान्विक एवं अनेक लब्धियों से पूर्ण आचार्य कक्कसूरिजी महाराज का शुभागमन उपकेशपुर में हुआ जिनकी जनता कई अर्से से प्रतीक्षा कर रही थी। राजा एवं प्रजा ने मिल कर सूरिजी महाराज का नगर प्रवेश बड़ी ही धूमधाम एवं समारोह से करवाया। सूरिजी भगवान् महावीर की यात्रा कर उपाश्रय में पधारे और धर्म जिज्ञासुओं को लक्ष्य में सारगर्भित धर्म देशना इस प्रकार से दी कि उपस्थित जनता पर खूब ही प्रभाव पड़ा।

खर्चा है और वह एक दो रुपये कमा भी ले तो उसका घाटा पूरा नहीं होता है। उस खर्च के लिये उसको दो रास्ते सोधने होंगे या तो खर्च बिल्कुल बन्द करदे या पैदास को वढ़ावे।

माता—बेटा! मैं तेरी इन बातों को नहीं समझ पाई हूँ कि तू क्या कह रहा है?

बेटा—माता! मैं कह रहा हूँ कि जीव के अनादिकाल के कर्म लगे हुये हैं और पाप रूपी करने से और भी कर्मों का संचय हो रहा है अतः पापारंभ करता हुआ थोड़ा बहुत धर्म कार्य साधन भी ले तो उससे वह घाटा पूरा नहीं हो सकता है। वल्कि घाटा और वढ़ता जा रहा है।

माता ने मुसकरा कर कहा—बेटा संसार में पापारंभ तो होता ही है और जब तक घर में बैठे वहाँ तक इससे बच भी तो नहीं सकते हैं। यदि तू कुछ उपाय जानता हो तो बता।

बेटा—माता यदि पापारंभ से नहीं बच सके तो इस जीव का कल्याण कैसे हो सकेगा? और जो घर का ही कारण है तो ऐसे घर को छोड़ क्यों नहीं दिया जाय कि कर्म बन्धन का हेतु जो पापारंभ है बच कर कल्याण साधन कर सके। माता घर तो अनंतीवार किया और छोड़ा पर धर्म की आराधना एक बार भी नहीं की अतः घर की परवाह न कर धर्माराधना करना ही अच्छा है जिससे घाटा से बच सके

माता—वाह बेटा! यह तो अच्छी बात कही, क्या तू पागल तो नहीं हो गया है? व्याख्यान सब नगर के लोग सुनते हैं और सब लोग तेरी तरह घर छोड़ दें तो यह नगर ही शून्य हो जायगा!

बेटा—माता! मैं नगर की बात नहीं करता हूँ। और ऐसा बनना भी असम्भव है। मानों कि लोग चाहते हैं कि हम कोटाधीश बन जायँ, पर सब लोग कोटाधीश बन नहीं सकते हैं। पर जिसके शुभ कर्मों का उदय होता है वही कोटाधीश बन सकता है।

माता—तो क्या एक तेरे ही शुभ कर्म हैं कि तुँ घर छोड़ने की बातें कर रहा हैं?

बेटा—हाँ माता! यदि मेरे ऐसे शुभ कर्म उदय हो जांय तो मैं बड़ी खुशी मनाऊँगा।

माता और पुत्र हँसी खुशी में बात कर रहे थे कि इतने में देवसिंह का पिता राव करत्था वह भी आ गया। देवसिंह की माता ने अपने पतिदेव से कहा आप अपने प्यारे पुत्र की बातें तो सुनिये यह क्या कह रहा है? कारण आज आप ने भी व्याख्यान सुना है और यह भी व्याख्यान सुन आया है।

पिता—क्यों बेटा! तेरी मां क्या कहती है और तू क्या बातें करता है?

बेटा—पिताजी! मैं व्याख्यान की बातें कर रहा हूँ।

पिता—व्याख्यान की क्या बातें हैं? व्याख्यान तो सब लोग सुनते ही हैं।

बेटा—व्याख्यान सुनने पर अमल करने की बातें मैं माँ को सुना रहा हूँ।

पिता—तू व्याख्यान की बातों पर क्या अमल करना कराना चाहता है?

माता—हँस कर कहा कि आपका बेटा घर छोड़ना चाहता है और मुझे भी उपदेश देता है।

पिता—क्यों बेटा! क्या तेरी माँ जो कह रही है यह बात सत्य है?

बेटा—हाँ पिताजी, मेरी माँ का कहना सोलह आने सत्य है।

पिता—तो क्या तू घर छोड़ के दिसावर जायगा या साधुओं के साथ?

बेटा—पिताजी साधुओं के साथ जाना भी तो एक प्रकार से दिसावर ही है।

पिता—पर अपनी मां को तो पूंछ ले कि यह तेरे साथ चलेगी या नहीं?

भर आया कि आपने श्रीमालनगर की ओर विहार करने का निश्चय कर लिया। यह केवल निश्चय ही नहीं था पर आपश्री ने तो कम्मरकस कर विहार ही कर दिया और क्रमशः चल कर भीन्नमाल पधार गये। जब इस बात की मालुम वहाँ के राजा तथा यज्ञाध्यक्षकों को हुई तो उन लोगों में बड़ी खलबली मच गई कारण मरुधर में यही एक नगर था कि जहाँ पर वे लोग अपनी मनमानी करने में स्वतन्त्र थे उन लोगों ने सूरिजी को कष्ट पहुँचाने में कुछ भी उठा नहीं रखा पर कितना ही वायु चले इससे मरू कभी क्षोभ पाने वाला नहीं था। सूरिजी महाराज ने अपने पूर्व आचार्य स्वयंप्रभसूरि श्रीरत्नप्रभसूरि और श्री यक्षदेवसूरि के कष्टों को स्मरण कर विचार किया कि धन्य है उन महापुरुषों को कि जिन्होंने सैकड़ों आफतों को सहन कर अनेक प्रांतों में जैनधर्म का झण्डा फहरा दिया था तो यह कष्ट तो कौनसी गिनती में गिना जाता है। खैर उन पाखण्डियों ने राजसत्ता द्वारा यहां तक तजबीज करली कि नगर में गौचरी जाने पर आहार पानी तक नहीं मिला। सूरिजी ने अपने साधुओं के साथ तपस्या करना शुरु कर दिया और प्रतिदिन आम मैदान में व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया पर पाखण्डियों ने अपनी सत्ता द्वारा जनता को व्याख्यान में जाना मना करवा दिया इस हालत में सूरिजी राज सभा में जाकर व्याख्यान देने लगे। आखिर तो वहां मनुष्य बसते थे बहुत से लोगों ने जाकर राजा को कहा कि दरबार! बात क्या है आपको निर्णय करना चाहिये ? पर राजा तो उन पाखण्डियों के हाथ का कठपुतला बना हुआ था। राजा ने उन कहने वालों की ओर कुछ भी लक्ष नहीं दिया अतः वे अपना अपमान समझ कर राजा और यज्ञवादियों से खिलाफ हो सूरिजी के पास में आये और सूरिजी से पूछने लगे कि महात्माजी ! धर्म के विषय में क्या बात है और आप क्या कहना चाहते हो ?

सूरिजी ने कहा महानुभावो ! आप जानते हो कि साधु हमेशा निस्पृही होते हैं और बिना कुछ लिये दिये केवल जनता का कल्याण के लिये धर्मोपदेश दिया करते हैं। हम लोग घूमते २ यहाँ आय गये हैं और श्रीमालनगर से हमें कुछ लेना देना भी नहीं है केवल अज्ञान के वश जनता उन्मार्ग पर चल कर कर्मबन्ध करके दुर्गति में जाने योग्य दुष्कर्म कर रही है उनको सद्मार्ग पर लगा कर सुखी बनाने के लिये ही हमारा उपदेश एवं प्रयत्न है। आप स्वयं समझ सकते हो कि इस प्रकार असंख्य प्राणियों की घोर हिंसा करना कभी धर्म पुण्य एवं स्वर्ग का कारण हो सकता है ? इसमें भी इस प्रकार के दुष्कर्म को ईश्वर कथित बतलाना यह कितना अज्ञान। कितना पाखण्ड ।। कितना अत्याचार ।।। इस पर भी आप जैसे समझदार लोग हाँ में हाँ मिला कर इन निरापाध मूक प्राणियों की दुराशीष में शामिल रहते हो पर याद रखिये किसी भव में वे मूक प्राणी सबल हों जायगे और आप निर्बल होंगे तो वे अपना बदला लेने में कभी नहीं चूकेंगे इत्यादि सूरिजी ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा इस प्रकार निडरता पूर्वक उपदेश दिया कि उन सुनने वालों के अज्ञान पटल दूर हो गये जैसे प्रचण्ड सूर्य के प्रकाश से बद्दल दूर हट जाते हैं।

पृच्छक लोगों ने सूरिजी के निस्पृही निडर निर्भय और सत्य वचन सुन कर दाँतों के तले अंगुली दबाते हुए विचार करने लगे कि महात्माजी का कहना तो सत्य है और पूर्व जमाना में एवं महाराजा जयसेन के समय भी इस यज्ञकर्म का विरोध हुआ था और आखिर राज यज्ञ करना बन्द कर अहिंसाधर्मोपासक बन गया था अतः अपने को भी इस बात का निर्णय अवश्य करना चाहिये। बिना ही कारण लाखों जीवों की हिंसा हो रही है इत्यादि। खैर ! वे लोग सूरिजी को नमस्कार कर वहाँ से चले गये। पर सूरिजी का उपदेश से धर्म के विषय निर्णय करने के लिये उन लोगों के हृदय में उत्कण्ठा पैदा हो गई।

आचार्य देवगुप्तसूरि महा प्रतिभाशाली एवं धर्म प्रचार आचार्य हुए। आप सूरि पद प्राप्त पश्चात् आपने विशाल समुदाय का संचालन बड़ी कुशलता से किया और आप स्वयं अपने शिष्यों प्रत्येक प्रान्त में भ्रमण कर जैनधर्म का काफी प्रचार किया आप श्रीमान् एक वार दक्षिण की ओर वहाँ की जनता को जैनधर्म का इस प्रकार उपदेश दिया कि हजारों लोग मांस मदिरादि दुर्व्यसनों को कर भगवान् महावीर के अहिंसा के झंडे की शरण ले अपना कल्याण किया। आचार्य कक्कसूरि के जो मुनि दक्षिण की ओर विहार किया था उन्होंने भी वहाँ जनधर्म का खूब प्रचार किया और वे भी देवगुप्तसूरि दक्षिण में पधारे है सुन कर सूरिजी को वन्दन करने को आये उन्हों के धर्मप्रचार को देख ने अपनी ओर से प्रसन्नता प्रकट की और योग्य साधुओं को पदवीयों से भूषित कर उनका योग्य किया सूरिजी महाराष्ट्रीय एवं तिलंगादिक प्रान्तों में भ्रमण कर कई राजा महाराजाओं को जैन उपासक वनाये। सूरिजी यह भी जानते थे कि जिस प्रान्त का उद्धार करना उसी प्रान्त के जन्मे हुए पर निर्भर रहता है अतः सूरिजी ने जिस-जिस प्रांतों के भावुकों को दीक्षा देते थे उन्हीं को उसी-उसी में विहार की आज्ञा दे देते थे कि वे वहाँ की जनता का उद्धार आसानी से कर सकें।

सूरिजी महाराज दक्षिण प्रान्त में भ्रमण करने के पश्चात् आवंति प्रदेश में पधारे वहाँ की को धर्मोपदेश सुना कर जैनधर्म में स्थिर करते हुए मेदपाट की ओर पधारे आप श्री का स्थान स्थान सुन्दर स्वागत एवं सत्कार होवा था और आप की अमृतमय देशना सुन अपना कल्याण की भावना लोग धर्माराधना में विशेष प्रयत्नशील बन जाते थे।

तत्पश्चात् आप पुनः मरुधर में पदार्पण किया जननी जन्मभूमि की एवं उपकेशपुर स्थित महावीर की यात्रा की और वहाँ कि धर्म पीपासु जनता को धर्मोपदेश सुनाया आप श्रीमानों के पधा मरुधरवासियों में धर्मोत्साह खूब बढ़ गया था कई भावुकों ने आपश्री के चरणकमलों में भगवती दीक्षा और कई मन्दिर मूर्तियों की आपश्रीने प्रतिष्ठा भी करवाई। कहने की आवश्यकता नहीं है कि आप आपश्री के पूर्वजों ने मरुधर के बड़े-बड़े नगर ही नहीं पर छोटे २ गावड़ों में भ्रमण करने से जैनधर्म का प्रचार हो गया था प्रत्येकग्रामों में जैनमन्दिर एवं जैनपाठशालों स्थापित होगये थे पर एक श्रीमालनगर ऐसा रह गया था कि वहाँ अभी वाममार्गियों की ही विशेष प्रवाल्यता थी आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने श्रीमाल के वासी राजा जयसेनादि ९०:०० घरवालों को जैनधर्म की दीक्षा दी थी पर बाद में धर्मद्वेष के राजकुँवर चन्द्रसेन ने चन्द्रावतीनगरी बासा कर अपनी राजधानी कायम की थी और श्रीमालनगर का भीमसेन ने धर्मान्धता के कारण जैनों को इतना कष्ट दिया कि श्रीमाल से सब के सब नगरवासी जैन श्रीमाल का त्याग कर नूतनवसी चन्द्रावतीनगरी में जा बसे। अतः श्रीमाल नगर के राजा प्रजादि सब लोग वाममार्गियों के ही उपासक रहे। बाद राजा भीमसेन का पुत्र उत्पलदेव ने उपकेश नगर बसा कर आनन्द स्थापन किया आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से वह भी जैनधर्मोपासक बन गये पर श्रीमालनगर तो का केन्द्र ही बना रहा। फिर भी उन लोगों के तकदीर ही ऐसे थे कि किसी जैनाचार्यों ने श्रीमाल जाने का साहस नहीं किया।

आचार्य देवगुप्तसूरि ने सुना कि भीनामाल नगर में एक वृहद यज्ञ का आयोजन हो रहा है लाखों प्राणियों की बली भी दी जायगी इत्यादि। सूरिजी का हृदय उन प्राणियों की करुणा से

भर आया कि आपने श्रीमालनगर की ओर विहार करने का निश्चय कर लिया। यह केवल निश्चय ही नहीं था पर आपश्री ने तो कम्मरकस कर विहार ही कर दिया और क्रमशः चल कर भीन्नमाल पधार गये। जब इस बात की मालुम वहाँ के राजा तथा यज्ञाध्यक्षकों को हुई तो उन लोगों में बड़ी खलबली मच गई कारण मरुधर में यही एक नगर था कि जहाँ पर वे लोग अपनी मनमानी करने में स्वतन्त्र थे उन लोगों ने सूरिजी को कष्ट पहुँचाने में कुछ भी उठा नहीं रखा पर कितना ही वायु चले इससे मेरू कभी क्षोभ पाने वाला नहीं था। सूरिजी महाराज ने अपने पूर्व आचार्य स्वयंप्रभसूरि श्रीरत्नप्रभसूरि और श्री यक्षदेवसूरि के कष्टों को स्मरण कर विचार किया कि धन्य है उन महापुरुषों को कि जिन्होंने सैकड़ों आफतों को सहन कर अनेक प्रांतों में जैनधर्म का झण्डा फहरा दिया था तो यह कष्ट तो कौनसी गिनती में गिना जाता है। खैर उन पाखण्डियों ने राजसत्ता द्वारा यहां तक तजवीज करली कि नगर में गौचरी जाने पर आहार पानी तक नहीं मिला। सूरिजी ने अपने साधुओं के साथ तपस्या करना शुरु कर दिया और प्रतिदिन आम मैदान में व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया पर पाखण्डियों ने अपनी सत्ता द्वारा जनता को व्याख्यान में जाना मना करवा दिया इस हालत में सूरिजी राज सभा में जाकर व्याख्यान देने लगे। आखिर तो वहां मनुष्य बसते थे बहुत से लोगों ने जाकर राजा को कहा कि दरबार! बात क्या है आपको निर्णय करना चाहिये ? पर राजा तो उन पाखण्डियों के हाथ का कठपुतला बना हुआ था। राजा ने उन कहने वालों की ओर कुछ भी लक्ष नहीं दिया अतः वे अपना अपमान समझ कर राजा और यज्ञवादियों से खिलाफ हो सूरिजी के पास में आये और सूरिजी से पूछने लगे कि महात्माजी! धर्म के विषय में क्या बात है और आप क्या कहना चाहते हो ?

सूरिजी ने कहा महानुभावो! आप जानते हो कि साधु हमेशा निस्पृही होते हैं और विना कुछ लिये दिये केवल जनता का कल्याण के लिये धर्मोपदेश दिया करते हैं। हम लोग घूमते २ यहाँ आय गये हैं और श्रीमालनगर से हमें कुछ लेना देना भी नहीं है केवल अज्ञान के वश जनता उन्मार्ग पर चल कर कर्मबन्ध करके दुर्गति में जाने योग्य दुष्कर्म कर रही है उनको सद्मार्ग पर लगा कर सुखी बनाने के लिये ही हमारा उपदेश एवं प्रयत्न है। आप स्वयं समझ सकते हो कि इस प्रकार असंख्य प्राणियों की घेर हिंसा करना कभी धर्म पुण्य एवं स्वर्ग का कारण हो सकता है ? इसमें भी इस प्रकार के दुष्कर्म को ईश्वर कथित बतलाना यह कितना अज्ञान। कितना पाखण्ड।। कितना अत्याचार।।। इस पर भी आप जैसे समझदार लोग हाँ में हाँ मिला कर इन निरापाध मूक प्राणियों की दुराशीष में शामिल रहते हो पर याद रखिये किसी भव में वे मूक प्राणी सबल हो जायगे और आप निर्बल होंगे तो वे अपना बदला लेने में कभी नहीं चूकेंगे इत्यादि सूरिजी ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा इस प्रकार निडरता पूर्वक उपदेश दिया कि उन सुनने वालों के अज्ञान पटल दूर हो गये जैसे प्रचण्ड सूर्य के प्रकाश से बद्दल दूर हट जाते हैं।

पृच्छक लोगों ने सूरिजी के निस्पृही निडर निर्भय और सत्य वचन सुन कर दाँतों के तले अंगुली दबाते हुए विचार करने लगे कि महात्माजी का कहना तो सत्य है और पूर्व जमाना में एवं महाराजा जयसेन के समय भी इस यज्ञकर्म का विरोध हुआ था और आखिर राज यज्ञ करना बन्द कर अहिंसाधर्मोपासक बन गया था अतः अपने को भी इस बात का निर्णय अवश्य करना चाहिये। विना ही कारण लाखों जीवों की हिंसा हो रही है इत्यादि। खैर! वे लोग सूरिजी को नमस्कार कर वहाँ से चले गये। पर सूरिजी का उपदेश से धर्म के विषय निर्णय करने के लिये उन लोगों के हृदय में उत्कण्ठा पैदा हो गई।

आचार्य देवगुप्तसूरि महा प्रतिभाशाली एवं धर्म प्रचार आचार्य हुए। आप सूरि पद प्राप्त पश्चात् आपने विशाल समुदाय का संचालन बड़ी कुशलता से किया और आप स्वयं अपने शिष्यों प्रत्येक प्रान्त में भ्रमण कर जैनधर्म का काफी प्रचार किया आप श्रीमान् एक वार दक्षिण की ओर. वहाँ की जनता को जैनधर्म का इस प्रकार उपदेश दिया कि हजारों लोग मांस मदिरादि दुर्व्यसनों को कर भगवान् महावीर के अहिंसा के झंडे की शरण ले अपना कल्याण किया। आचार्य कक्कसूरि के जो मुनि दक्षिण की ओर विहार किया था उन्होंने भी वहाँ जनधर्म का खूब प्रचार किया और वे भी देवगुप्तसूरि दक्षिण में पधारे है सुन कर सूरिजी को वन्दन करने को आये उन्हों के धर्मप्रचार को देख ने अपनी ओर से प्रसन्नता प्रकट की और योग्य साधुओं को पदवीयों से भूषित कर उनका योग्य किया सूरिजी महाराष्ट्रीय एवं तिलंगादिक प्रान्तों में भ्रमण कर कई राजा महाराजाओं को उपासक बनाये। सूरिजी यह भी जानते थे कि जिस प्रान्त का उद्धार करना उसी प्रान्त के जन्मे हुए पर निर्भर रहता है अतः सूरिजी ने जिस-जिस प्रांतों के भावुकों को दीक्षा देते थे उन्हीं को उसी-उसी में विहार की आज्ञा दे देते थे कि वे वहाँ की जनता का उद्धार आसानी से कर सकें।

सूरिजी महाराज दक्षिण प्रान्त में भ्रमण करने के पश्चात् आवंति प्रदेश में पधारे वहाँ की को धर्मोपदेश सुना कर जैनधर्म में स्थिर करते हुए मेदपाट की ओर पधारे आप श्री का स्थान स्थान सुन्दर स्वागत एवं सत्कार होता था और आप की अमृतमय देशना सुन अपना कल्याण की भावना लोग धर्माराधना में विशेष प्रयत्नशील बन जाते थे।

तत्पश्चात् आप पुनः मरुधर में पदार्पण किया जननी जन्मभूमि की एवं उपकेशपुर स्थित महावीर की यात्रा की और वहाँ कि धर्म पीपासु जनता को धर्मोपदेश सुनाया आप श्रीमानों के पधार मरुधरवासियों में धर्मोत्साह खूब बढ़ गया था कई भावुकों ने आपश्री के चरणकमलों में भगवती दीक्षा और कई मन्दिर मूर्तियों की आपश्रीने प्रतिष्ठा भी करवाई। कहने की आवश्यकता नहीं है कि आप आपश्री के पूर्वजों ने मरुधर के बड़े-बड़े नगर ही नहीं पर छोटे २ गावड़ों में भ्रमण करने से जैनधर्म का प्रचार हो गया था प्रत्येकग्रामों में जैनमन्दिर एवं जैनपाठशालों स्थापित होगये थे पर एक ऐसा रह गया था कि वहाँ अभी वाममार्गियों की ही विशेष प्रबाल्यता थी आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने के वासी राजा जयसेनादि ९०:०० घरवालों को जैनधर्म की दीक्षा दी थी पर बाद में धर्मद्वेष के राजकुँवर चन्द्रसेन ने चन्द्रावतीनगरी बासा कर अपनी राजधानी कायम की थी और श्रीमालनगर भीमसेन ने धर्मान्धता के कारण जैनों को इतना कष्ट दिया कि श्रीमाल से सब के सब नगरवासी जैन का त्याग कर नूतनबसी चन्द्रावतीनगरी में जा वसे। अतः श्रीमाल नगर के राजा प्रजादि सब लोग मार्गियों के ही उपासक रहे। बाद राजा भीमसेन का पुत्र उत्पलदेव ने उपकेश नगर बसा कर अपना स्थापन किया आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से वह भी जैनधर्मोपासक बन गये पर श्रीमालनगर तो का केन्द्र ही बना रहा। फिर भी उन लोगों के तकदीर ही ऐसे थे कि किसी जैनाचार्यों ने श्रीमाल नगर आने का साहस नहीं किया।

आचार्य देवगुप्तसूरि ने सुना कि भीनामाल नगर में एक वृहद् यज्ञ का आयोजन हो रहा है लाखों प्राणियों की बली भी दी जायगी इत्यादि। सूरिजी का हृदय उन प्राणियों की करुणा से